



हिन्दी

# विश्वकोष

— बंगला विश्वकोषके सम्पादक

श्रीनगेन्द्रनाथ वसु प्राच्यविद्यामहार्थव,

सिद्धान्त-वारिधि, शब्द-रत्नाकर, तत्त्वचिन्तामणि, एम. आर. ए, एम

तथा हिन्दीके विद्वानों द्वारा सङ्गनिरा ।

—\*—

षोडश भाग

[ भवानन्द सिद्धान्तवागीश—सम्पादावन्ध ]

THE

ENCYCLOPÆDIA INDICA

VOL. XVI.

COMPILED WITH THE HELP OF HINDI EXPERTS

BY

NAGENDRANATH VASU, Prāchyavidyāmahārnavā,

Siddhanta-vāridhi, Śabda-ratnākara, Tattva-chintāmani, M. R. A. S.

Compiler of the Bengali Encyclopædia; the late Editor of Banglā Sāhitya Parīshad

and Khyashta Patrikā; author of Castes & Sects of Bengal, Mayura

bhanja Archæological Survey Reports and Modern Buddhism,

Hony. Archæological Secretary, Indian Research Society,

Associate Member of the Asiatic

Society of Bengal &c. &c. &c.

—\*—

Printed by B. Basu, at the Visvakosha Press.

Published by

Nagendranath Vasu and Visvanath Vasu

9, Visvakosha Lane, Baghbazar, Calcutta

1928.



हिन्दी

# विष्वकोष

षोडश भाग

... तद्दान्तवागोश—नवहोपवासी एक प्रसिद्ध  
नैर्वायिक और वैद्याकरण । आप ख्यातनामा पण्डित  
विद्यानिवासके पिता और रुद्रतर्कवागोशके पितामह थे ।  
भट्टाचार्य शतावधान राघवेन्द्र और जगदीश भट्टाचार्य  
आपके छात्र थे । ये ईसाकी १६वीं शताब्दीके शैव भाग-  
में विद्यमान थे ।

आपने अनेक ग्रन्थोंकी रचना की है ; जैसे—तत्त्वचिन्ता-  
मणि व्याख्या, तत्त्वचिन्तामणिदीपिति शूद्रार्थप्रकाशिका  
भवानन्दो या शब्दार्थ सारमञ्जरी, अनुमानदीपिति सार-  
मञ्जरी, अवयव, अवयवप्रथरहस्य, आख्यातवादटिप्पण,  
उदाहरणलक्षणटीका, उपनयनलक्षणटीका उपाधिसिद्धान्त-  
प्रथमटीका, कारकवाद, कारकाद्यर्थनिर्णय, कारकार्य,  
कारणवादार्थ, फेवलान्त्रविप्रथमटीका, तृतीय चक्रवर्ति-  
लक्षणटीका, तृतीय प्रगल्भलक्षण-टीका, दशलकार विचार,  
द्वितीय चक्रवर्तिलक्षणटीका, द्वितीय स्वलक्षणटीका, पक्षता  
ग्रन्थरहस्य, पक्षतापूर्वपक्षप्रथमटीका, परामर्शप्रथरहस्य,  
पुच्छलक्षण टीका, पूर्णपक्षप्रथम टीका, प्रतिपालक्षणटीका,  
प्रथमप्रगल्भलक्षण टीका, प्रामाण्यवादरहस्य, यादवुद्धि-  
विचार, मिथलक्षण, लङ्घार्णवाद, व्याप्तिवाद, सङ्गति-  
लक्षण, सत्प्रतिपक्षपूर्वपक्षप्रथमटीका, सत्प्रतिपक्षसिद्धांत-

प्रथमटीका, सत्यभिचारसिद्धांतप्रथमटीका, सहचार,  
सामान्यनिवृत्ति टीका, सिद्धांतलक्षणटीका और हेतुवा  
भास आदि ।

भवानी ( सं० खो० ) भवस्य भार्या भव (इन्द्रवरुणमयवर्णांति  
पा २।१।४६) इति स्त्रियां ङोप्, ततः आनुक् । भव पत्नी,  
दुर्गा ।

भवानी—मन्द्राजप्रदेशके नीलगिरि पर्वतकी कुन्दशाखा-  
वाही एक नदी । यह अक्षा० ११' ६" उ० तथा देशा०  
७६' ३७" पू० समतल क्षेत्र पर गिर कर पूर्वकी ओर  
बह गई है । वादमें प्रायः १०५ मील स्थान तै कर  
भवानी-नगरमें कावेरी नदीके साथ मिली है । शाखा-  
नदी इसके कलेवरकी बढाती है । कावेरी-सङ्गम स्थानके  
भवानी नगरको छोड़ कर इसके किनारे मेट्टु पालयम,  
सत्यमङ्गलम्, अट्टानि, दैनैकट्टोटिया आदि कई एक प्रधान  
नगर अवस्थित हैं ।

भवानी—१ मन्द्राजप्रदेशके कोयम्बतूर जिलेके अन्तर्गत एक  
तालुक । यह अक्षा० ११' २३" से १२' ५७" उ० तथा  
देशा० ७७' ५१" पू०के मध्य अवस्थित है । भूपरिमाण  
७१५ वर्गमील है । इसके पूर्व और दक्षिणमें कावेरी तथा  
भवानी नदी बहती हैं । इसमें इत्ती नामका एक शहर

भीरु ११ मान मगने हैं। जनार्दनका देह मानके करीब है। यहाँ बड़े जगद साधनी गिर मन्दिर और दुर्गादेविका स्वर्णमण्डप देखा जाता है। इनके उत्तर पश्चिम पार्श्व-तोय धर्मदेवतामें बलशक्तिका स्थान है।

२ उरु हान्दकता प्रधान नगर और मन्दर। यह भारत २१° २७' उ० ७७° ५७' ४०" पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या ८६३० है। यहाँ यह स्थान मधुसूताहके विना सामान्यके अधिकारमें था। यहाँ कावेरी और भयानी नदीके ऊपर पुल बना हुआ है। यहाँ मधुसूतेश्वरका विचित्र गिर-मन्दिर विद्यमान है। प्रति वर्षके बार्निग नाममें बहुतसे धारी इकट्ठे होते हैं। इनके समीप ही एक प्राचीन दुर्गका धर्मसाधनीय देखा जाता है। शहरमें सुन्दर मरीचा और मूर्ती कपड़े मैदान होते हैं।

भयानी—स्यनामयता दिग्देवी, दिवानलकी कन्या और महादेवकी स्त्री। जलिकुपनी भयानीकी जन्म और भया-पद भेदमें ही प्रभारकी प्रकृति है। बहुत ही शक्ति प्रकृति ही पूजा होती है। जन्म प्रकृतिमें ये उमा, गौरी, पार्वती, देवयनी, जगन्नाता और भयानी नामसे तथा भीमा प्रकृतिमें दुर्गा, काव्यी, चण्डी, चण्डिका और भैरवी नामसे प्रसिद्ध हैं।

हृद्यकवचमान रानीदेव विष्णुके द्वारा धिन्न होने पर उनके अङ्गविशेषों एक एक देवोंसोठ स्थापित हुआ था।

'हृद्यकवचम भवती शु विन्दके विन्दविना' (मत्स्य०)

वैष्णवदेवताकी भयानीका जन्म हुआ था। इस उद्देशमें इस दिन भयानीपूजा किया जाता है। (कामाक्षी)

विष्णुदेविकाभीरवी पुष्टिजल और प्रकृतिके अनुसार दिग्देवी भयानीदेवी नामाकारमें पूजित होती हैं। दिग्देवी भयानीदेवीके साथ सितदेवीय भादसिग और शंकर-देवी रहने शिबूद, गोपम और भिलमकी मण्डलें मण्ड-गया देवी जाती हैं।

पार्वतीकामें इन्हीं मन्दा, विष्णु और महादेवकी समक विनाई मण्डल अथवा जलिकुपनीविधा करने से उबरी जलिकुपनी विद्यमान है। मंदिरम लिकुपनी गिर तथा शक्तिविधि में मण्डलकी सुन्दरमूर्तियों पूजा करते हैं।

नेराल-राजधानी भातसायनगवर्धमें महाभूमिधाममें भयानी-पूजा-पद्धति बहुत परिमाणमें प्रचलित है। महाराष्ट्रके अधिकांशकालमें भयानी-पूजाका विशेष प्रचार था। यहांका सुलजाभयानीका मन्दिर जनसाधारणके निकट तीर्थक्षेत्रमें गिना जाता है। समस्त राजपूतानेमें विशेषतः मेवारमें महासमावेष्टेने नी दिन तक भयानीकी पूजा होती है। महाराणा अपने प्रधान आमात्य और सामन्त राजाओंमें परिचर हो इस पूजामें शामिल होते हैं।

कहते हैं कि भयानीने आदिष्ट हो कर महाराष्ट्र-केजरी गियाजोने विजयपुरके सेनापति अकजल राँकी 'भयानी' नामक सङ्घमें संहार किया था। गियाजोने देवीसुत उस अन्तकी अर्थनाके लिये अपने राजमहलमें एक मन्दिर बनवाया था। अङ्गरेज सम्भुद्वयके प्राक्काल तक महाराष्ट्रपतिकी संतान उसकी पूजा करती थीं।

भयानी—नाट्यी राजकुललक्ष्मी, राजा रामकान्तकी सहिषी। 'रानी भयानी' नामसे इनको संघात्यमें बहुत प्रसिद्धि है। ये महाशय अत्रपूर्णा रूपिणी प्राज्ञान-प्रति-पालिनी और शोचदुर्गिणीकी जन्मनी थी। पञ्चसूत्रिमें दिग्भूमि और प्राज्ञपरक्षा तथा अपने हृद्देश्यके शोच-दुर्गिणीकी अङ्गुष्ठाया वीर्यके लिए आप शान्त्यमें भयानी-रूपमें हो अथवा ही हुई थीं। उस समय उत्तर-पश्चिम पङ्कमें चैसा कोई भी प्राज्ञान न था, जिम्मेने रानी भयानी द्वारा ही हुई भूमिप्राप्ति या धार्मिक महाप्राप्त न प्रकण की हो। बहुतसे ही पर सुन्दर काजोपम तक भावकी अक्षय पुष्पकारिणी अन्धीकी महिमा घोषित कर रही हैं। मुनिदावायके समीपयकी गङ्गनगरमें अब भी उनको अमूल-नीय देवमण्डिका निदर्शन पाया जाता है। भागीरथीके तीर पर अपने साधु जोगनकी भक्तिपाहित करनेके उद्देश्ये अपने अपने मिनर वास-भूमि बहुतगर्में ही जीवनका शेषभाग बिताया था। यहाँ पर द्रव्यवा गङ्गा-के पुष्पमय मल्लिकों प्रायः का जीवनशरीर सदाके लिए निर्धारित हुआ था।

बहुनगरके साथ रानीभयानीकी जीवनीका अधिक सम्बन्ध है। बहुनगर उनके अतिशय आदरकी चोख थी, इसलिए यहाँ उमका धोड़ागा वर्णन किया जाता है। उन्होंने इस स्थानकी देव मन्दिरीमें परिपूर्ण कर

वाराणसीके समतुल्य बना दिया था। अब बड़नगरने अर्पण-रूप धारण कर लिया है, फिर भी सर्वत्र एक न एक देवमन्दिर नयनगोचर हुआ करता है। महारानी भवानी द्वारा स्थापित वहाँकी भवानीश्वर शिव मूर्ति और राजराजेश्वरकी प्रतिमा वाराणसीके विश्वेश्वर और अन्नपूर्णासे किसी प्रकार कम नहीं कही जा सकती। भवानीको पुण्यवती कन्या तातादेवी द्वारा स्थापित गोपाल मूर्ति, विन्दुमाधव और अष्टभुज गणेशने दुर्गिन्द्रराजका स्थान अधिकार किया है। इसके सिवा वहाँ और भी सैकड़ों देवालय विद्यमान हैं, उसे बङ्गालका एक तीर्थ-स्थान समझना चाहिए।

नाटोर-राजवंशके प्रतिष्ठिता राय रायां रघुनन्दनने मुर्शिदाबाद नवाब सरकारके यहाँ नायब कानून-गोका फार्म करते हुए अपने भ्राता रामजीवनके नामसे जो जमींदारियां प्राप्त की थीं, रामजीवनकी पुत्रवधु रामकान्तकी पत्नी भारत खिख्याता रानी भवानीने उनका सद्गुण्य कर पुण्यश्लोक नाम अर्जन किया है। नाटोर देखो।

व० सं० ११५३में राजा रामकान्तके परलोक सिधारने पर, राजवधु रानी भवानी उनकी समस्त सम्पत्तिकी उत्तराधिकारिणी हुईं। उस समय उनकी सारी भू सम्पत्ति से डेढ़ करोड़ रुपये कर वसूल होता था, जिसमेंसे करीब १० लाख रुपये सरकारको राजस्व स्वरूप दिये जाते थे।

रानी भवानी राजशाही जिलेके अन्तर्भाती छानिम-ग्राम-निवासी आत्माराम चौधरीकी कन्या थीं, उनकी माताका नाम कस्तूरीदेवी था। नाटोर-राजसरकारके

विश्वस्त कर्मचारी दयारामके X उद्योगसे यह अलोक-सामान्या ब्राह्मणकुमारी राज-रानी हुई थीं। रामकान्तके वधःप्राप्त होने तथा जमींदारीके शासन और यथारोति राजस्व प्रदानमें असमर्थ होने पर नवाब अलीवर्दी खाने देवीप्रसाद पर राजग्राही जमींदारीका भार अर्पण किया। दोयान दयाराम वालिका भवानी पर वृत्त हो स्नेह करते थे। उर्दू साथ ले कर राजा और रानी मुर्शिदाबाद आ कर जगतसेठ फतेचंद्रके शरणापन्न हुए। जगतसेठके अनुरोधसे उनका राज्य वापस दे दिया गया था। स्वामीका लोकान्तर हो जाने पर रानी भवानीने अपने हाथमें राज्यभार ले लिया था। एकमात्र दयाराम ही उनके परामर्शदाता और राजकार्य-परिचालक थे।

अल्पावस्थामें घैषण्यदशा प्राप्त होने पर उन्होंने हिंदू रमणीके लिए आवश्यक कर्तव्य ब्रह्मचर्यका अवलम्बन कर जीवनका शेष भाग बड़े आनन्दसे बिताया था। उस समय आप देवसेवा, ब्राह्मणसेवा, दीन हीन पालन, जलाशय-अनन और वृक्ष प्रतिष्ठिति पुण्यकार्योंका अनुष्ठान किया करती थीं, जिससे जनसाधारण उनकी मुक्तकण्ठसे प्रशंसा करने थे। तारा नामक उनकी एक कन्या थी। यशोहर जिलेके अन्तर्गत खुरजाग्राम \* निवासी रघुनाथ लाहिड़ी † नामक एक ब्राह्मणकुमारके साथ तारादेवीका विवाह हुआ था। परन्तु रघुनाथ थोड़ी उमरमें ही ताराको चिरब्रह्मचारिणी और रानी देवीके चक्षुष्पल पर पहाड़ रख कर स्वर्गधाम-को सिधार गये। अगत्या रानी भवानीको दत्तकपुत्र ग्रहण करना पड़ा। यह गृहीत पुत्र ही बंगालके

\* Holwell's Interesting Historical Events p. 132

† भवनेद पाया जाता है, कि इनकी माताका नाम जयदुर्गा था। उन्होंने मातृपूजाके लिए द्वाविनाग्राममें अपने जन्मस्थान अर्थात् सतिषाग्रहके ऊपर मंदिर बनवा कर वहाँ एक सुरार्णमयी प्रतिमा प्रतिष्ठित की थी। अर्थात् जयदुर्गाकी पूजा प्रचलित है। परन्तु अभी तक बड़नगरस्थक स्त्रीशिव-शिवमूर्ति कस्तूरी-देवीके नामकी घोषणा कर रही है।

X दीवातायिता राजवंशके आदिपुरुष। भवानीके विवाह-पत्रमें इनके इलाह्वर हैं।

\* किन्हींके मतसे यह ग्राम राजशाही जिलेके नाटोरके पास है।

† बाहावलंदकी अधिकारिणी रघुनाथरायकी पत्नी रानी सत्यवती भवानीकी मातृव्याया थीं। वे अन्तिम दशामें कारीयातिनी हो कर उक्त सम्पत्ति अपने भगिनीपुत्रको दे गई थीं। रामकान्तकी मृत्युके बाद रानी भवानीने वह सम्पत्ति भले जामाना रघुनाथको दे दी। रघुनाथकी मृत्युके बाद वह कुछ समयके लिए राजा गौरीप्रसादके पास और बादमें रानी भवानीके हाथ आई।

सायक-शूद्रामणि राजयोगी रामकृष्ण हैं। रामकृष्णके वषःप्राण होने पर राना उनके हाथमें जमींदारीका भार सौंप दिया और स्वयं गङ्गातीरमें जा कर रहने लगीं। पहले कह चुके हैं कि, बड़नगरमें उनका निवास-भवन था, बीच-बीचमें ये वहां जा कर मो रहती थीं। पाँछे ये सांसारिक विप्लवोंने मुक्त हो कर देव सेवामें लीन हो गईं। उनके प्रपत्नसे बड़नगर देवमन्दराद्रिसे परिपूर्ण हो कर कागों-तुल्य हो गया था। माताके साथ तारादेवी ५ भौं गङ्गावासीनो हो गई थीं।

रानी भवानीकी समस्त कीर्तियोंकी एक धारा-पादिक तालिका बनाना कठिन है। अब भी कागो गया भादि तोपस्थानोंमें उनका अक्षय कीर्ति यां देवीप्यमान हैं। बड़नगरमें रह कर ये नित्य प्रतिजो पुण्य कार्य करती थीं, उनका स्मरण करने मात्रसे चमत्कृत होना पड़ता है। क्षुद्र रमणो हृदयमें हतना थल और अश्व-यस्याय रह सकना है, यह बात धारणाके परे है।

प्रतिदिन चार दण्ड रात्रि रहने रानी भवानी शय्या त्याग कर जप करने बैठ जाती थीं। अर्धादण्ड रात्रि रहते जप समाप्त करके ये अपने हाथमें पुण्य-चयनार्थ उद्यानमें प्रवेश करती थीं। अन्धकार रात्रिमें प्रकाश करनेके लिए उनके आगे पोछे नौकर चाकर मगाल लिये फिरते थे। पुण्यचयनके बाद प्रातःकाल ही ये गङ्गास्नान करती थीं और दोनों संध्या गङ्गातीर पर बैठ कर जप, गङ्गा-पूजा और शिवपूजा करती थीं। उसके बाद प्रत्येक देवालयमें पुण्याञ्जलि दे कर, पुराण-पाठ या श्रवण, शिव-पूजा और इष्टपूजामें लग जाती थीं। इस प्रकार करीब दोपहर हो जाता था। उसके बाद, अपने हाथमें भोजन

० प्रसाद है, कि—भागीरथीनदीमें नौका-विहार करते समय शिरात्रके प्रवाह पर आनुभाषिकेनः स्पर्शप्राप्त्यवधि ताराको वेला और वे ठग पर सुख हो गये। उन्होंने तारासे हस्त्य करनेके अनिश्चयसे बड़नगरका ही भादमो भेजे। राणी भवानीका यह दुःखकाद मित्रो ही उन्होंने उस पारके राधकभागमें मन्तरान काशीमें ही समाचार भेजा। काशीमें शिरात्रके मन्तरादको स्वयं करनेके लिए अनेक पैदाशोहा भेजा था। कई कारणोंसे शिरात्रके नाम पर म बाद अगस्त टररहा है।

बना कर दस ब्राह्मणोंको जिनाती थीं। फिर परिवाररूप अन्य ब्राह्मणोंके भोजनकी व्यवस्था कर रायं बाईं पहर बीते विध्यात्र प्रहण करती थीं। तद्नन्तर दीवान् वृत्तार-में कुजासन पर बैठ कर सुखशुद्धि पूर्वक कर्मचारोगणको राजकार्यकी आज्ञा देती थीं। कर्मचारोगण उनके आदेशानुसार आज्ञाएँ लिख लेते थे। तीसरे पहर ये फिर बङ्गला भागामें पुराणपाठ श्रवण करती थीं। दो दण्ड दिन रहते हुए उनका पुराण श्रवण समाप्त होता था। उस समय कर्मचारोगण उनके आदेशानुसार लिम्बो हुई आज्ञाओं पर हस्ताक्षर करा ले जाते थे। मन्थवाके समय पुनः गङ्गादर्शन और गङ्गाके समीप घृतप्रदीप-प्रदानके उपरान्त वास-भवनमें जा कर चार दण्ड तक जप करती थीं। पश्चान् जल प्रहण करके द्वापतर दीवानमें जा कर राजकार्यका पर्यवेक्षण कर यथा-यथ आज्ञा देती थीं। रात्रि एक पहरके समय ये प्रजा-जनोंकी प्रार्थना सुन कर उसका विचार करती थीं। अंतमें पीरजम कीन किस प्रकार है इस बातका तत्प्रा-नुसंधान कर रात्रि डेढ पहरके समय विधमार्गं प्रायण करती थीं।

रानी भवानीमें बड़नगर और उसके निकटवर्ती देवा-लयोंके लिए प्रायः एक लाल गण्डेकी वृत्ति निर्दिष्ट कर दी थी, जो देवकार्यमें ही व्ययित होती थी। ये उसमेंसे एक दमड़ी भी अपने काममें न लाती थीं। उन्होंने अपने लिए और सहवारी विधवा-मण्डलीके लिए रायमेंहटने वृत्ति पानेको प्रार्थना की थी। ऐसे अनुल्लेख्यके अधिकारियों हो कर स्वायंभवाय-पूर्णाक, अङ्कुरेजोकी वृत्ति भिन्ना करना उनके कठोर प्रलक्ष्यकी पराकाष्ठा है।

इस प्रकार कठोर प्रलक्ष्यं आपलभ्यन्-पूर्णाक देव-प्राप्त्य और दीनजनोंकी सेवा। धार्यमतीयन उदरमर्गं कर रानी भवानीने ७६ वर्षकी अवस्थामें गङ्गातीर पर देहत्याग किया। वर्तमान समय रानी भवानी हिन्दू-विधवाका आदर्श चरित्र दिया गई है, इसमें संशय नहीं।

रानी भवानीके जोयनकालमें ही राजा रामहल्की मृत्यु हो गई। इसलिए उनके पुत्र विधवागण सम्पर्णके अधिकारी हुए। विधवागण वैष्णवधर्ममें दीक्षित हो गये थे, इसमें उनकी महिरी रानी शयमणि रानी भवानीके

निकट जा कर रहने लगी थीं । भवानी जयमणिका को समस्त देवोत्तर सम्पत्ति दानपत्र-सूत्रमें अर्पण कर गई। इसके सिवा उनके नामसे एक वृत्ति थी, जो अब लुप्त हो गई है ।

काशीमें रानी भवानी द्वारा स्थापित भवानिध्वर-मन्दिर है, उसके शिलालेखमें लिखा है कि --

“पायाभ्याहृतिरागेन्दुसमिते शकवत्सरे ।

निवासनगरे श्रीमद्विभवायस्य सजिभ्यो ॥

धरामेन्द्र-वारेन्द्र-नौडूमून्दिन्द्र भागिनी ।

निर्ममे भोभवानी श्रीभवानीध्वर मन्दिरम् ॥”

इससे मालूम होता है, कि काशीका भवानीध्वर मन्दिर (शक सं० १६७५में) स्थापित हुआ था । प्रवाद है, कि उसी एक ही समयमें वड़नगरमें भी भवानीध्वर-मन्दिर निर्मित हुआ था । इसके सिवा वड़नगरमें राज-राजेध्वरी-मन्दिर, करुणामयो-मन्दिर, चार बङ्गला मन्दिर, जोड़बङ्गला आदि उन्हीं प्रतिष्ठित किये थे । किन्तु ही प्रधान प्रधान देव-मन्दिर अब भी भगवायस्थामें विद्यमान हैं । रानी भवानी राज-प्रासादके नीचेवाले कमरोंमें रहती थीं । अब वह राजप्रासाद भगवायस्थामें पड़ा है । उसके दक्षिणमें दीवानखाना और दिवानखानाके दक्षिणमें रानी भवानीका ब्राह्मण-भोजनका स्थान है । वहाँ पर वे ब्राह्मणोंके लिए स्वयं अपने हाथसे भोजन बनाती थीं । भवानी-कच ( सं० ६० ) पापप्रहादिके प्रकोपको निवारण करनेवाला देवोंके नामका एक कच ।

( स्वाम्ज )

भवानीदास—पञ्जाब-केजरी महाराज रणजित्‌सिंहके दीवान और सम्राट् अहमदशाहके मन्त्री ठाकुरदासके पुत्र ।

१८०८ ई०में मुसलमान राजा शाह सुजाकी सैनिकवृत्ति

\* पहले ही कहा जा चुका है, कि रानी भवानी देवोत्तर सम्पत्ति जयमणिका दे गई थीं । उस दानपत्रके त्रिजित प्रयाजी-के दोपसे जयमणिके पोत्यपुत्रके साथ नाटोर-राजवंशका मुकदमा चला था । विचार-निष्पत्तिके बाद उक्त सम्पत्ति तीन भागोंमें विभक्त हो गई । नाटोर-वंशीय राजारामेश्वरके, वड़नगरके कुमार-गण वारदेवी द्वारा प्रतिष्ठित गोपालके और मठवाटीकेपुरोहितगण गिणिकेके लेवक निहित हुए हैं ।

छोड़ देने पर, महाराज रणजित्‌सिंहने आपकी धपना दीवान नियुक्त किया । राजस्व-सम्बन्धी कार्यमें आप विलक्षण पारदाशिता रखते थे । महाराजके राजस्व और सेना-विभागके आयत्ययका संस्कार कर आपने वधेष्ट कृतिस्वका परिचय दिया था । १८०६ ई०में ये सेना ले कर जम्मु विजयके लिए गए । एक मास अवरोधके बाद जम्मु अधिकार कर इन्होंने वहाँके विद्रोही सरदार देहूको राज्यसे वहिष्कृत कर दिया । १८१३ ई०में हरि-पुरका पार्यत्य प्रदेश अधिग्रहण कर आप रणजित्‌सिंह द्वारा विशेष सम्मानित हुए थे । बादमें आप मुलतान, पेशावर और खुसुफजै युद्धमें जयो हुए थे । कोपाध्यक्ष मिश्र बेलोराम द्वारा आप पर खजानेकी चोरीका अभि-योग लगा गया, जिससे क्रुद्ध हो कर महाराज रणजित्‌सिंहने सभामें आपको ग्यान-सहित तलवार मारी और एक लाख रुपये जुर्माना किया था । उसके बाद रणजित्‌सिंहने उन्हें पार्यत्यप्रदेशमें एक नौकरी दे कर निर्वासित कर दिया । परन्तु राजकार्यमें उनकी विशेष पारदाशिता और कर्मदक्षता देख कर महाराजने उन्हें फिर लाहौर बुला लिया । १८३४ ई०में भवानीदासकी जीवन-लोला समाप्त हुई ।

भवानीदास ( सं० पु० ) गङ्गादेशके एक अधिपति ।

भवानीदास धन्यर्चो—ज्योतिषाङ्करके प्रणेता ।

भवानीपति ( सं० पु० ) भवान्याः पतिः ई-सन् । महादेव । काव्यादिमें भवानीपति इस पदका प्रयोग करनेसे द्योप होता है ।

भवानीपाटना—मध्यप्रदेशके सम्बलपुर जिलेके अधीन कालाहण्डी सामन्तराज्यका प्रधान नगर ।

भवानीपाठक—चारेन्द्र भूमिवासी एक ब्राह्मण क्षत्रिय । यह वस्तु-सद्वार कह कर जनसाधारणमें परिचित था । बचपनमें भलीभांति शास्त्रवर्चा करके ये जन्मभूमिके दुःखसे कातर हो गया । मुसलमानोशासनसे खदेगीय हीन्दुःखों प्रजावर्गका फलेश दूर करनेके लिये यह छत्र-धेशी संन्यासीसेनाकी सहायतासे मुसलमानोंका राजस्व अपहरण करता था और उस प्रभारकको प्रजाके हृदयमें ढाल देता था । अंगरेजों-शासनके प्रारम्भमें भवानी और देवने रङ्गपुर अञ्चलमें जो धपना प्रभुत्व फैलाया



था, यह इतिहासमें वर्णित है। यह घटना इतिहासमें १७३३ ई० का संवत्समीचिद्रोह नामसे मशहूर है।

प्रायः ५० हजार संवत्समी अनुचरोसे परिपुल पाठक-ने प्रसार वेगवाली विद्रोहाकी जल्दगति और तीव्रभूमिको आलोचन करके अंगरेजोंके हृदयमें अतन्तु उपस्थित कर दिया था। पाठकके एक और साथी था जिमका नाम मजनुदाद था। जगलकुशाकी पाठकके दृष्टियों परा मर्शमें देवी और मजनुके कराल हृषाणकी सहयोगिता पारं थी। इस समय एक नो देश दुर्मिहमे प्रपोडित था, दूसरे हेरिस बहादुरका धामानुषिक मत्था पार। अशहारने प्रजा हाहाकार कर रही थी, पर कठोरनापूर्वक प्रजाके रक्तजोषणमें हेरिस बहादुर तिल-माल भी पश्चिन नहीं होने थे। यह म्थ देव कर तिरोह जालाध्यायो प्राणनका जोणित उत्तम हो उठा। उसने अत्रयलशरीन दुःखो प्रजाको 'राजाके दोषसे प्रजाका कष्ट' द्विगुना कर उजोगित किया। धीरे धीरे ये म्थके म्थ क्लबुष्ट हो कर विद्रोही दलमें परिणत हुए। किन्तु अङ्गरेजोंकी कमानोंके सामने तलवार, तोर बादि ले कर संगालो सेना क्थ तक उदर सकली थी। जब ये अङ्गरेजोंका बल अधिक देवने थे, तब निचिद्रु अरण्यमें छिप कर आत्मरक्षा करते थे। अन्धा मीका देण कर हो ये अङ्गरेजों पर टूट पड़ने और उन्हें अन्धो प्रास्ति देने थे। इस प्रकार मैनापनि रामस मसौय विद्रोहीके हाथने यमपुर निषादे। उका तीन व्यक्तियोंके उपद्रवने अस्थिर हो कर रङ्गपुरके तत्कालीन कलेकर सुद्वैट साहबने रोषेनाष्ट प्रेगनको एक हल सिपाहीके साथ उन म्थोंके विरुध भेजा। अहारबन्धमें हो भवानीपाठकके साथ प्रेगनका युध छिड़ा। इस युधमें संवत्समीको हार गही होंमें पर भी परिणामदनी भवानीपाठकने भायो भमङ्गलकी धाजडा करके आत्मसमर्पण किया ०।

भवानीपुर—१ कलकत्तेके दक्षिणांगयती एक शहर। यह

अक्षा० २१° ३२' उ० तथा देशा० ७८° २३' पू० आदि-गङ्गाके किनारे अवस्थित है। इसके पास ही अलीपुर-की पसुनाला और छोटे लाटका प्रसाद अवस्थित है। २ यारेंद्रभूमके नाटोस तीन योजन उत्तरमें अवस्थित एक प्राचीन प्राम। यहां मत्तीयोजना अंगुलिपोड है।

(देवाली)

भवानीप्रसाद—एक ग्रन्थकार। इन्होंने पूजामालिका और सांचिन्वामणि नामक दो ग्रन्थ लिखे हैं।

भवानीचहभ (सं० पु०) जिय।

भवानीजुदर—१ शुद्ध भूदेवकृत धर्मयजिय नामकके टीका-कतां। २ चैनसिंहकण्ठरु मन्त्र, चन्द्रचिन्तामणि, रुद्रनिचरण और स्वप्नकाजाताविचार नामक चार ग्रन्थके प्रणेता।

भवानीजुदर सेतुपति—रामनाथके सेतुजंघीय एक राजा। इन्होंने १८५४-१७२८ ई० तक राज्यशासन किया था।

सेतुपति'न देते।

भवास्तकृत् (सं० पु०) अंत' करोतीनि क-नि.पू., भवस्य जग्मनः अस्तकृत् ६ तत्। येचा, प्रमा। एताको निद्रि-तावस्थामें समस्त जगत् ध्वंस होता है। २ संसारनाशक के प्राण। 'भ्रामानुमुकिः।' प्राण होनेसे ही मुक्ति होती है, फिर उसको जग्ममृष्टयु कुछ भी नहीं होती।

भवामोष्ट (सं० पु०) भवस्य धमोष्टः। १ शुभमुल। भये अभीष्टः ७ तत्। (त्रि०) २ भायमे ईप्सित।

भवायना (सं० पु०) जियका उपासक या भक्त, शीय।

भवायना (सं० त्री०) भवःजिय धय धयनामाध्रयसाल-मरुधा, जियजिस्तसि स्थितत्यादुस्थाल शरयं। गङ्गा। कोई कोई मीरादित्य-प्रयुक्त इंगू परके 'भवायना' यह पत्र निष्पन्न करते हैं। (त्रि०) २ जियतत्पर, शीय।

भवास्य—चातुर्मास्य-प्रयोगके प्रणेता।

भविक (सं० द्वि०) भवः प्रभायः मेधवायंश्चिकित्सेयं उपायस्तेनास्थव्येति टत्। मङ्गल। (त्रि०) २ मङ्गलपुत्र।

भविनाग्नि (सं० त्रि०) आकाशजयो।

भवित (सं० त्रि०) भवो मङ्गलं जानोऽप्येति तारकादि रकादित्यु। अनोन्तरालिक, जो हो चुका है।

भवितथ (सं० त्रि०) भविष्यकाले कर्मणि भाये ज्यषाट्.

० गुनी हैं, कि कृतेः स्वरकार उन्हें कमानासेही मत्ता ही थी। फिर किणो किणोका वरना है, कि कन्त्येक लुद्धमें तारमंसाडक और उनके अर्थेनाथ होंन सेनाली निहन, भाड भावन और ४२ करी हूट. में।

प्रप्यानुज्ञाप्राप्तकालार्थं च भू-धातोस्तव्यः । भवनीय,  
अवश्य होनेवाली बात, होनहार ।

“न भवदुःखमहं शोच्यो नार्य राजाराम्यति ।

भविष्यमानेनेव येनाहं निवनं गतः ।” ( अमिपु० )

भविष्यमें सुख वा दुःख अवश्यमावी है, जिसे  
खण्डन करनेका किसीका भी साध्य नहीं है । यही  
भविष्य है ।

विद्याना भी भविष्यको बदल नहीं सकते । इसे  
भाग्य या अदृष्ट कहते हैं । भविष्यके फलसं कव धया  
होगा, उसका स्थिर करना कठिन है । भविष्यका  
द्वार सभी जगह विद्यमान है ।

भविष्यता ( सं० स्त्री० ) भविष्यस्य भावः तल्-टाप् ।

१ भाग्य, अदृष्ट, किस्मत । २ भावी, होनहार ।

भविष् ( सं० त्रि० ) भू-शीलार्थे-त्च् । भवनशील ।

भवित्र ( सं० त्रि० ) भुवन, अन्तरोक्ष और उदक ।

भविम ( सं० पु० ) भवाय कात्यादि प्रकाशाय इनः सूर्य इव  
ततः पृथोदरादित्वात् साधुः । काव्यकर्ता ।

भविपुला ( सं० स्त्री० ) छन्दोभेद ।

भविल ( सं० पु० ) भू ( सति कव्यनिमिदिभङ्गिभविष्यसिपिषि-  
तुषिष्कुकिमभ्य हलच् । उणा० १।१५ ) इति ढलच् । १ पिङ्ग,  
जार । २ मध्य, भविष्यत् ।

भविष्णु ( सं० त्रि० ) भू ( युवभ । पा ३।२।३८ ) इति इष्णुच् ।

भवते धातोश्छन्दसि विषये ताच्छील्यार्थिषु ‘इष्णुच्’  
प्रत्ययो भवतीति काशिका । भवनशील, भविता ।

भविष्य ( सं० त्रि० ) भू-लटः सद्भेति शतस्यट्च्, ततो  
विभाषायां पृथोदरात् तस्य लोपः । १ भविष्यत्काल,  
आनेवाला काल । २ भविष्यत् कालसम्बन्धी । ( स्त्री० )

३ पुराणविशेष, भविष्यपुराण । ४ फलविशेष ।

पुराण देखो ।

भविष्य—राष्ट्रकूटवंशीय एक राजा, देवराजके पुत्र ।  
राष्ट्रकूटवंश देखो ।

भविष्यगङ्गा ( सं० स्त्री० ) शम्भलेभरतीर्थमें अवस्थित  
एक पुण्यतोया सरित् । ( स्कन्दपुराण शम्भलमाहात्म्य )

भविष्यगुप्ता ( सं० स्त्री० ) कालके अनुसार गुप्ता नायिका-  
का एक भेद ।

भविष्यत् ( सं० त्रि० ) भू लट् शतस्यट् च । वर्तमान

कालके उपरान्त आनेवाला काल, आगामी काल । पर्याय—  
अनागत, भवस्तन, प्रगेतन, चत्स्यत् । चत्स्यमाण,  
आगामी, भावी ।

भविष्यत्ता ( सं० स्त्री० ) वर्तमान उत्तरणपूर्वक भवि-  
ष्यन्मुखमें लीनता । ( स्त्री० ) २ भविष्यत्व, भविष्यतका  
भाव ।

भविष्यदपेक्ष ( सं० पु० ) अवश्यमावी किसी भविष्यत्  
घटनाका अलङ्कारभेद ।

भविष्यद्वक्ता ( सं० पु० ) १ भविदाणी करनेवाला, वह  
जो होनेवाली बात पहलेसे ही कह दे ।

भविष्यपुराण ( सं० स्त्री० ) अष्टादश महापुराणके अन्तर्गत  
पुराणभेद । इसके प्रतिपाद्य विषयादि नारदपुराण शब्दमें  
दिष्टे गये हैं । विस्तृत विवरण पुराण शब्दमें देखो ।

भविष्यसुरतिगोपना ( हिं० स्त्री० ) भविष्यगुप्ता देखो ।

भविष्योत्तर ( सं० स्त्री० ) पुराणभेद, भविष्योत्तरपुराण ।

भवोयस् ( सं० त्रि० ) अतिशयेन बहुः बहु-ईयसुन्,  
वहोर्लोपे भुश्च वहीति भूरादेशः वेदेन इलोपः । बहुतर ।

भवोला ( हिं० वि० ) १ भावयुक्त, भावपूर्ण । २ वांका,  
तिरछा ।

भवुया—१ शाहाबाद जिलेके अन्तर्गत एक उपविभाग । भू-  
परिमाण १३०१ वर्गमील है । भवुया चाँद और मोहनीय  
ले कर १८६५ ई०में यह उपविभाग संगठित हुआ है ।

२ उक्त उपविभागका प्रधान नगर । यह अक्षा०  
२५° २' ३०" उ० तथा देशा० ८३° ३६' ३५" पू०के मध्य  
अवस्थित है ।

भवेश ( सं० पु० ) १ शिवका एक नाम । २ संसारका  
स्वामी ।

भवेश—एक हिन्दू राजा, सांख्यप्रवचनभाष्यके प्रणेता  
राजा हरसिंह देवके पिता ।

भवेश—एक ज्योतिर्विद् । इन्होंने धोपतिवृत्त ज्ञातक-पद्धति  
को टिप्पणी लिखी है ।

भवेशकवि—एक प्राचीन कवि । ये परिभाषाविद्येक प्रणेता  
वर्द्धमानके पिता थे ।

भव्य ( सं० स्त्री० ) भवतीति भूयते इति वा भू ( भव्यं  
येति । पा ३।३।६८ ) इति यत् । भव्याद्यः शब्दाः कर्त्तरि  
या निपात्यन्ते इति काशिका । १ फलविशेष, भलता ।

पर्याय—भय, भविष्य, भावन, वयवशीघ्रन, लोमफल, पिच्छिलवोज। गुण—अम्ल, कटु, उष्ण। कष्टे फलका गुण—वात और कफनाशक। पके फलका गुण—मधु, राग्ल, रुचिकारक, अम और शूलनाशक। २ कर्मरङ्गवृक्ष, कमरल। ३ कारवेह, करेला। ४ निम्बवृक्ष, नोमका पेड़। ५ शरीर धारण करनेवाला। ६ स्वसिद्धक, वह जिसे लिङ्ग पदकी प्राप्ति हो। ७ मनु वाशुपके अन्तर्गत देवताओं के एक वर्गका नाम। ८ नये मन्वन्तरके एक ऋषिका नाम। ९ पुटाणानुसार ध्रुवके एक पुत्रका नाम। १० रसमेद। (त्रि०) ११ शुभ, मङ्गल सूचक। १२ जो देवने-मे भारी और सुन्दर जान पड़े, शानदार। १३ सत्य, सच्चा। १४ योग्य, लायक। १५ भविष्यमें होनेवाला। १६ श्रेष्ठ, बड़ा। १७ प्रसन्न, खुश। (ह्यो०) १८ अस्थि, हड्डी।

भयवज्जीवन (सं० पु०) निर्युक्तिभाष्य नामक जैनग्रन्थके रचयिता।

भयता (सं० स्त्री०) भयस्व भावः तल्लटाप्। भयता-का भाव या धर्म।

भय्या (सं० स्त्री०) भयव टाप्। १ उमा, पार्वती। २ गज-पिप्लो, गजपीपल।

भविराज—एक प्राचीन वीरराज-मन्त्री। ये अशमकराजके प्रधान सचिव थे।

भविरा (सं० स्त्री०) फन्दविशेष।

भव (सं० पु०) भवतीति भव-कुम्भुरादि शब्दे, अच्। कुम्भुर, कुत्ता।

भवक (सं० पु० खो०) भवतीति भव- (पुन्रुन शिल्पित्तशयार-पूर्वस्वापि। उष्ण ३३२) क्नुन्। कुम्भुर, कुत्ता।

भवण (सं० स्त्री०) भव ल्युट्। कुम्भुरशब्द, कुत्तेका भौकता।

भवत् (सं० स्त्री०) अन्तःकरण।

भवा (सं० स्त्री०) स्वर्णशरीर।

भवो (सं० स्त्री०) भव-स्त्रियां जातिरवात् डङ्। शुनी, कुत्ता।

भसत् (सं० स्त्री०) चमस्तीति भस् (भृद्भमभाऽदिः। उष्ण ११२६) इति अदिः। १ काष्ठ, लकड़ी। २ अभ्यर्मांस, घोड़का मांस। ३ जवन। ४ आस्कर। ५ योनि। ६

मांस। ७ कारण्डवपञ्जी। ८ प्लव। ९ काल। १० हृत्पिण्ड।

भसघ (सं० त्रि०) कटिप्रदेशभय, तत्सम्बन्धीय।

भसन (सं० पु०) चमस्तीति भस्-ल्यु। भ्रमर, भौंरा।

भसन्त (सं० पु०) चमस्तीति भस बाहुलकात् भञ्। काल, समय।

भसन्धि (सं० पु०) भानां नक्षत्राणां सन्धिः। अश्लेषा, ज्येष्ठा और रेवती नक्षत्रोंके चौथे चरणकी बावके नक्षत्रों-को संधि।

भसमा (हिं० पु०) पोसा हुआ भाटा। २ नीलकी पत्ती-की चुकनी। ३ एक प्रकारका खिजाव जिससे बाल काले किये जाते हैं।

भसमूह (सं० पु०) भानां नक्षत्राणां समूहः। नक्षत्र-समूह।

भसान (सं० पु०) काली या सरस्वती आदि मूर्त्तिकी पूजा-के उपरान्त किसी नदीमें प्रवाहित करना।

भसाना (सं० त्रि०) १ किसी चीजको पानीमें तिरनेके लिये छोड़ना। २ किसी चीजको पानीमें डालना।

भसिड (हिं० स्त्री०) कमलकी जड़, कमलनाल।

भसित (सं० स्त्री०) भस्-क्त। भस्म।

भसौड (हिं० स्त्री०) कमलनाल, मुरार।

भसुर (हिं० पु०) पतिका बड़ा भाई, जेट।

भसुंड (हिं० पु०) हाथीकी सूंड।

भसुचक (सं० पु०) भानां नक्षत्राणां सूचकः। दैवज्ञ, ज्योतिषी।

भस्त्रका (सं० स्त्री०) भस्त्रये इति भस् दीप्ती लृट् टाप्। चर्मप्रसेधिका, आग सुलगानेकी भाथी।

भस्त्रा (सं० स्त्री०) भस्त्रयेऽनयेति भस् (हुयमाश्रुर्भात-भ्यलृन्। उष्ण ५१६७) इति लृट्, अजादिरवात् टाप्। १ अग्निदोषक चर्मनिर्मित यंत्रविशेष, आग सुलगानेकी भाथी। पर्याय—चर्मप्रसेधिका, भस्त्राका, भस्त्रका, भस्त्री, भस्त्रिका। २ चर्मस्थली, चमड़ेकी घेली।

भस्त्राका (सं० स्त्री०) भस्त्रा, भाथी।

भस्त्रिक (सं० त्रि०) भस्त्रया हरति (भस्त्रादिभ्यः ङ्। पा ५३१२६) इति ङ्। भस्त्रा द्वारा हरणकारी।

भस्वी (सं० स्त्री०) भस्वते ऽनयेति भस्-वन, गौरादि-त्वात् ङीप् । भस्त्रा, भाषी ।

भस्वीय (सं० त्रि०) भस्त्रा उदकरादित्वात्-छ (पा ४।२।१०) भस्त्राका अदूरदेशादि ।

भस्म (सं० स्त्री०) भस्मन् देखो ।

भस्मक (सं० स्त्री०) भस्म-संज्ञायाम् कन्, वा भस्म करोति क्-ङ । १ रोगभेद, भस्मकौटरोग ।

भात्रप्रकाशमें इस रोगके निदानादि लिखे हैं । अधिक और रूखी चीज खानेवाले व्यक्तियोंका कफ क्षीण तथा चायु और पित्तवर्द्धित हो कर जठरान्नि अत्यन्त वर्द्धित हो जाती है एवं वह वर्द्धित अग्नि चायुके साथ संयुक्त हो कर थोड़ी ही देरके अन्दर भस्मीभूत कर डालती है इसीसे इसको भस्मकरोग कहते हैं । भस्मकरोगमें रक्तादि धातु परिपाक हो जाती है । सुतरां उसको उपेक्षा करना ही श्रेय है । पिपासा, घर्म, दाह और मूर्च्छा ये सब भस्मकरोगके उपद्रव हैं । भस्मकरोगमें यदि खाई हुई वस्तु जल्दी पच जाय और धातु परिपाक हो, तो समझना चाहिये कि रोगीका जीवन शीघ्र ही नष्ट होनेको है । (भावपू० जाडराग्निविकारा०) २ अतिशय बुभुक्ष, बहुत अधिक भूख । ३ स्वर्ण, सोना । ४ रुप । ५ विडङ्ग । ६ भागी । (वैद्यकनि०)

भस्मकानि : सं० पु० ) तशामक रोगविशेष, भस्मकौट-रोग ।

भस्मकारी (हिं० वि०) भस्मकरनेवाला, जलानेवाला । भस्मकूट (सं० पु०) कामरूपस्थित पर्वतभेद । इस पर्वत पर स्वयं शिवजी यास करते हैं ।

भस्मगन्धा (सं० स्त्री०) भस्मेन इव गन्धो यस्याः । रेणु-का नामक गन्धद्रव्य ।

भस्मगन्धिका (सं० स्त्री०) भस्मगन्धोऽस्त्यस्या इति भस्मगन्ध (अत इति ङी० । पा ४।२।१५) इति ङन् टाप् । रेणुकाश्च गन्धद्रव्य ।

भस्मगन्धिनी (सं० स्त्री०) भस्मनः इव बाहुल्येन गन्धो ऽस्यस्या इति भाष्यगन्ध इति ङीप् । रेणुका इव गन्ध-द्रव्य ।

भस्मगर्भं (सं० पु०) भस्म गर्भं यस्य । त्रिनिशरूक्ष ।

भस्मगर्भा (सं० स्त्री०) भस्मगर्भं यस्याः इति टाप् । १

शोशम् । २ रेणुका नामक गन्धद्रव्य । ३ त्रिनिशरूक्ष । भस्मजावाल (सं० पु०) उपनिषद्भेद ।

भस्मता (सं० स्त्री०) भस्मनोभावः तल् टाप् । भस्मका भाव वा धर्म ।

भस्मतूल (सं० स्त्री०) भस्म तूलति तूलयति वेति तूल-क । १ ग्रामकूट । २ पाशु-चर्षण । ३ उह्मि, तुपार ।

भस्मन् (सं० स्त्री०) बलस्तीति भस्-भर्त्सानदीप्तयोः (सर्षणान्मो मनिव । उण् ४।१४) इति मनिन् । १ दृष्य फाष्ठादि-विकार, लकड़ी आदिके जलने पर बची हुई राख । २ चिताको राख जिसे शिवजी अपने मस्तक पर लगाते हैं, मदनके भस्म होने पर महादेवने उस भस्मको अपने सर्वाङ्गमें लगाया था ।

“महादेशोऽथ तद्रूप मनोभवशरीरजम् ।

आदाय सर्वाण्यपु भूतिलेपं तदा करात् ॥

लक्ष्मणायि भस्मानि समादाय तदा हरः ।

सगणोऽन्तर्दधे कालीं विहाय विधि सम्भते ॥”

(कालिकापु० ४१ अ०)

भस्मको ललाटमें लगा कर तब शिवपूजा करनी होती है । भस्म; त्रिपुण्ड्रक, रुद्राक्ष-धारण और विल्यपल-के बिना शिवपूजा करनेसे सम्यक् फल प्राप्त नहीं होता । इस पर कोई कोई कहने हैं, कि पूजाका फल बिलकुल नहीं होगा. सो नहीं, कुछ अवश्य होता है ।

“विना भस्मविपुयद्रूपेण विना रुद्राक्ष मालया ।

पूजितोऽपि महादेवो न स्यादस्य फलप्रदः ॥”

(आह्निक०)

भस्म धारण करके उसके ऊपर चन्दनादि धारण नहीं करना चाहिये । किन्तु चन्दनादिके ऊपर भस्म धारण किया जा सकता है ।

विधिपूर्वक जावालीक मंत्रपाठ द्वारा भस्म धारण विधेय है । भस्म लगानेसे उसको आग्नेय स्नान कहते हैं । स्नान देखो ।

“आग्नेयं भस्मना स्नानं यावच्च गौरजः कृतम् ॥” (यामत)

जाँसेके बरतनको राघसे मलने पर यह विशुद्ध होता है ।

२ अद्रमरीविकार, एक प्रकारका पथरीरोग । अमरी देखो । (त्रि०) ४ जो जल कर राख हो गया हो, जला हुआ ।

भस्ममयि (सं० पु०) शिवका नामान्तर ।  
भस्ममेह (सं० पु०) मेहजगित अशरीर रोगभेद ।  
भस्मरोहा (सं० स्त्री०) भस्मनि रोहतीति यह-अच्-  
टाप् । दग्ध वृक्ष ।

भस्मवेधक (सं० पु०) भस्म इव वेधकः । कर्पूर, कपूर ।  
भस्मसात् (सं० अर्थ०) भस्म कालस्नान सम्पन्नं करोति  
भस्मन्-साति । भस्माकारमें परिणत, छार खार कर  
डालना । २ सम्यक् भस्मोभूत, एकदम राख कर देना ।  
भस्मसूत (सं० पु०) १ रससिन्दूर । २ चूड़ागणिरस ।  
भस्मस्नान (सं० पु०) सारे शरीरमें राख मलना, राखसे  
नहाना ।

भस्माकार (सं० पु०) भस्म करोतीति कृ (कर्मयण्) । पा  
३।२।२ इति अण् । रजक, धोवो ।

भस्माग्नि (सं० पु०) उदरानिज रोगभेद ।

भस्माङ्ग (सं० पु०) कपोत, कयूत ।

भस्माङ्गी—दाक्षिणात्यके महिसुर राज्यके-तुमकुड़ जिलान्त-  
र्गत एक पर्वत । इस पर्वतके शिखर पर भस्माङ्गेश्वर-  
का मन्दिर अवस्थित है । पर्वतके चारों ओर गिरिदुर्ग  
स्थापित हैं । देख कर अनुमान किया जाता है, कि  
विधर्मियोंके हाथसे देवमन्दिर और देवसूक्तिकी रक्षाके  
लिये ये सब दुर्गादि बनाये गये थे । यहां वेदार नामक  
पार्ष्तीय जातिका वास है ।

भस्माङ्गेश्वर—दाक्षिणात्यस्थ भस्माङ्गी पर्वतका शिव-  
लिङ्ग भेद ।

भस्माचल (सं० पु०) कामरूपस्थित पर्वतभेद ।

भस्माह्वय (सं० पु०) भस्म आह्वयते स्पन्दते इति धा-  
हु-धाहुलकात्या । कर्पूर, कपूर ।

भस्मासुर (सं० पु०) पुराणानुसार एक प्रसिद्ध दैत्य ।  
इसकी तपस्यासे संतुष्ट हो कर शिवजीने इसे बर दिया  
था, कि जिसके गिर पर तुम हाथ रखोगे वह भस्म हो  
जायगा, एक दिन यह पार्वती पर मोहित हो कर शिवको  
ही जलाने पर उद्यत हुआ । शिवजी भागे । यह  
देख कर भ्राष्ट्रवर्णने यदुक्ता रूप धारण कर छलसे इसके  
सिर पर इसका हाथ फेरवा दिया जिससे यह स्वयं भस्म  
हो गया । शिवजीने बर पानेके पहले इसका नाम  
पूकासुर था ।

भस्मित (सं० लि०) १ जलाया हुआ । २ जला हुआ ।  
भस्मीभूत (सं० लि०) १ जो जल कर राख हो गया  
हो, बिलकुल जला हुआ । २ विनाशित, जिसका नाश  
किया गया हो ।

भहराना (हि० कि०) १ टूट पड़ना । २ भौंकेसे गिर  
पड़ना, एकाएक गिरना । ३ फिसल पड़ना । ४ किसी  
काममें जोरिने लग जाना ।

भहूँ (हि० स्त्री०) भीह देलौ

भाईं (हि० पु०) खरादनेवाला, कुनी ।

भाँउर (हि० स्त्री०) भांर देलौ ।

भाँकड़ी (हि० पु०) एक जंगली भाड़ जिसे हसद  
सिंघाड़ा भी कहते हैं । यह गोबरूसे मिलता जुलता  
होता है ।

भाँग (हि० स्त्री०) मादकताको उत्पन्न करनेवाला सनकी  
जातिरा एक पौधा, जो गांजिका (Canali-sariva)  
समश्रेणीका कहा गया है । गांजा शब्दमें यह लिखा जा  
चुका है, कि गांजिका पेड़ स्त्री पुंके भेदसे दो प्रकारका  
है । पुं वृक्ष फूल-भांगके नामसे और स्त्री वृक्ष गुल-  
भांगके नामसे प्रसिद्ध है इनके फूलोंसे दोनोंका पार्थक्य  
मालूम हो जाता है । पत्तने पर इसके पुं प वीजकोप  
और पत्तादि समेत जाष्ठाप्रवर्तोंकोमल पत्तोंकी हाथसे  
दबा कर जो गोंद-सा निकाला जाता है, उसे 'चरस'  
कहते हैं । जटा गांजा है और पत्तोंकी भांग कहते हैं ।  
गजिकावृक्षकी समश्रेणीका एक प्रकारका रांडा-  
वृक्ष देखनेमें आता है उसकी पकी पत्तियां ही भांग  
नामक मादक द्रव्य है । कोई कोई इसे चन-सिद्धि वा  
जंगली भांग कहते हैं । गांजाको जटाने सरी हुई  
पत्तियों का नाम गांजापत्ती-भांग है । गांजा देखो ।

विभिन्न देशोंमें भांग प्रवृत्त गांजा और भाँग दोनोंके  
बदले व्यवहृत होता है । हिन्दो—सज्जा, सज्जो, सिद्धि ।  
बङ्गला—सिद्धि, भांग । संस्कृत—भङ्गा । पञ्जाबी—  
भङ्गो, भांग, वेण्णो, सज्जो । काश्मीरी—यूनी । मराठी  
भांग, भाड़ । दाक्षिणात्य—सिद्धि, गांजिका फाड़ ।  
तामिल—भङ्गा इलाई । तेलगू—भङ्गाभङ्गु । कनाड़ी—  
भङ्गा, भङ्गांगोड़ । फारसी—दरसेवेण्ण । प्राची—केन-  
दिन । सिन्धु—सुखो-सयदा

इस सूत्रसे जगत्के लिए हितकर दो चीजें उत्पन्न होती हैं। वे दोनों ही मनुष्यके वड़े कामकी चीज हैं। जटा और पतले जो गांजा और सिद्धि नामक मादक द्रव्य होता है, वह मादकता दोपसे दृष्ट होने पर भी भेज गुणमें साधारणके लिए विशेष उपकारी कहा गया है। सुधृत, भावप्रकाश आदि वैद्यक ग्रन्थोंमें भङ्गके गुण लिखे हैं। भङ्गा और मिद्धि देखो।

हिन्दूधर्मके प्राचीन वेदादि ग्रन्थोंमें भी भांगका उल्लेख पाया जाता है। ऋग्वेद और अथर्ववेदमें इने सोमके अङ्गभूत कहा गया है। यज्ञमें ऋषीगण सोमके बदले इसे ही पान करते थे। इसकी छालसे सन नामकी एक तरहकी रस्सी बनती है। सुप्राचीन वैदिकयुगमें उसका भी व्यवहार था। ऋग्वेदान्तर्गत कौशिकी ब्राह्मणका 'भङ्गाजाल' और 'भङ्गशयन' शब्द इस बातका परिचय दे रहा है। उक्त ग्रन्थमें भङ्ग शब्द स्त्रीलिङ्ग और पुलिङ्गमें व्यवहृत हुआ है, इससे भी दो प्रकारके वृक्षोंका अस्तित्व सूचित होता है।

पुराणादिमें शिवके भङ्गपानसे रक्तनेत्र होनेका उल्लेख है; दुर्गापूजाके विजया-वरणके समय दुर्गादेवीके सुखमें भांग और पान दिया जाता है। यात्राकालमें सिद्धि प्रदान करती है, इससे इसका दूसरा नाम सिद्धि है। बङ्गालमें विजयादशमीके दिन इसे दुर्गाकी प्रसादी पचित द्रव्य मान कर सर्वसाधारण लोग पानीय रूपमें इसका व्यवहार करते हैं। उस दिन हिन्दूमात्र ही घरमें समागत वन्धु और कुटुम्बियोंको सिद्धि और मिष्टान्न भोजन करा कर शुभालिङ्गन करते हैं।

पहले गांजा और चरस शब्दमें उसके सेवानादिका विषय लिखा जा चुका है। भांग (सिद्धि) अनेक मसालों के साथ घोट छान कर पीई जाती है। इसके सेवनसे शोणित और जरीर उष्ण, मस्तिष्क विवृत, मन एकाग्र, दुःखका ह्रास और स्फूर्तिकर विकाश आदि मादकता लक्षणोंका क्रमशः विकाश होता है। मात्रानुसार सेवन करनेसे इससे पिप्तादिदोष नष्ट होते और उद्दामिकी वृद्धि होती है।

साधारणतः काली मिर्च, सोंफ, छोटी इलायची, लवङ्ग, जायती, जायफल, पोस्ता, गुलाबके फूल, खीरके

बीज, खरबूजाके बीज आदिके साथ भांग घोंटी जाती है। सुवह थोड़ी भागको पानोमें भिगो कर, शामको करीब ४ बजे उम्ने अच्छी तरह मल कर घोना चाहिये। फिर उसे उपयुक्त मसालोंके साथ सिल बटिया या पत्थरके इमामदस्तामें तोमके घोंटेसे घोंटना चाहिये और उसमें कच्चा दूध, मिसरो, नारियलका पानी आदि मिला कर सेवन करना चाहिये। उत्तर-पश्चिम प्रान्तमें मुसलमानों और हिन्दुओंमें तथा मथुरा घन्दाधनमें चाँवे आदि यज-चासियोंमें काफी भांगका सेवन होता है, तथा राजपूताना औरवं गालियोंमें भी भांग पीनेका प्रचार है।

भांगरा ( हिं० खी० ) किसो घातु आदिकी गर्द या छोटे छोटे कण ।

भांज ( हिं० खी० ) १ किसी पादार्थको मोड़ने या तह करनेका भाव अथवा क्रिया । २ भांजने या घुमानेकी क्रिया या भाव । ३ वह घन जो रुपया, नोट आदि घुमानेके बदलेमें दिया जाय, मुनाई । ४ तानेका सत ।

भांजना ( हिं० कि० ) १ तह करना, मोड़ना । २ मुद्र आदि घुमाना । ३ दो या कई लड़कोंको एकमें मिला कर बटना ।

भांजा ( हिं० पु० ) भाजना देखो ।

भांजी ( हिं० खी० ) वह बात जो किसीके होते हुए काममें बाधा डालनेके लिये कही जाय, शिकायत ।

भांड ( हिं० पु० ) १ भाट देखा । २ देशी छोटोंकी छपाईमें कई रंगोंमेंसे केवल काले रंगकी छपाई जो प्रायः पहले होती है ।

भांटा ( हिं० पु० ) बैंग देखा ।

भांडू ( हिं० पु० ) १ परिहासक, वह जो खूब हंसा सकता हो ।

२ परिहास रसिक सम्प्रदाय विशेष । राजा और सम्मानित लोगोंकी सभामें नाना प्रकार अङ्गुष्ठी अथवा मुललित वाक्य चिन्त्यास या हँसी-मजाक द्वारा उपस्थित व्यक्तियोंका मनोरञ्जन करना ही इनका प्रधान कर्म है। मुसलमान लोग इनके तमाशोंको 'नकल' कहते हैं। प्राचीन संस्कृत नाटकोंके राजानुवर विदूषक वर्त्तमान भांडूके अनुरूप थे। परंतु भांडूसे विदूषकके नायमें बहुत प्रभेद देखनेमें आता है । प्राचीन हिंदू राजाओंके

विदूषक कालान्तरमें 'भांडू' नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। नव-द्वीपके राजा महाराजा कृष्णचन्द्रकी सभामें गोपाल भांडू और सभ्राट् अकबरशाहकी सभामें वीरवल अपना कृतित्व दिखा गये हैं।

मुसलमान राजाओंके समयमें भी भांडूका आदर था। कहा जाता है कि मुगल-पति तैमूरलङ्कने पुत्रशोकसे विह्वल हो कर बारह वर्ष तक निरन्तर विलाप किया था। सैयद हुसेन नामक एक पारिषदने भरवी भाषामें एक सुललित हास्योद्दीपक ग्रन्थ बना कर उनके शोकको मिटाया। इसके लिए मुगल वादशाहने उन्हें "भांडू"-को उपाधिसे विभूषित किया। ये सैयद हुसेन ही भांडू-सम्प्रदायके प्रतिष्ठाता थे। क्रमशः भां ने स्वतन्त्र व्यवसाय करना शुरू कर दिया, जिससे वे जाखा जातिके रूपमें परिगणित होने लगे। हुसेन सैयद-वंशीय होने पर भी वर्तमान भांडू लोग शैल या मुगलवंशसे उत्पन्न हैं। सिया और सुन्ना सम्प्रदायके भेदसे इनका विवाहादि होता है। आचार-व्यवहारमें प्रायः ये मुसलमानोंके सदृश ही हैं, कोई कोई आचार हिन्दू जैसे भी हैं। भांडू जाति चैंड और काश्मीरी नामको दो शाखाओंमें विभक्त हैं। अयोध्याके नवाब नसीरउद्दौलने काश्मीरी भांडूको बुलाया था।

वर्तमान हिंदू भांडू कैथला (कापिष्ठली), बाहानिया, उज्जहार, यथेला, गूजर, नुनिया, कड़ा, पिसरहड़र, बरहा, नरदिया और ग्राहपुरी आदि श्रेणियोंमें विभक्त हैं। फिर मुसलमानभांडूको निम्नलिखित श्रेणियाँ हैं—बरसा, भंदेला, घुड़दिया, देगी, गावघाणी, हमलपुरी, इरघाजरंहा, जसोया, कैथला, कायस्थ, काशीवाल, काश्मीरी, काठिया, कतौला, कबवाल, खा चारिया, खली, खेती, मोथरा, मुसल-मानो, नकल, नौमसलिक, पठान, पट्टया, पुरबिया, रावत, सादिकी, शोच, तराकिया आदि।

इनके बारह या चौदह वर्षकी अवस्थामें ही विवाहका योग्यकाल समझा जाता है। विधवाएँ अपने अपने स्वामीके वंशमें विवाह कर सकती हैं, अन्यत्र नहीं। स्त्रीके चरित्रमें सन्देह हो तो ये उसे घरसे निकाल देते हैं और यह स्त्री फिर कभी उस वंशमें विवाह नहीं कर सकती। मुसलमान रीत्यानुसार इनकी विवाहादिकी

क्रियाएँ होती हैं। लखनऊके भांडू सिया-सम्प्रदाय-मुक्त हैं और अन्य मुसलमान भांडू सभी सुन्नी-सम्प्रदाय-के अन्तर्गत हैं।

लखनऊके भांडू लोग पांचपीर (गाजीमियाँ) और सैयद हुसेनकी भक्ति करते हैं। वे पांचपीरकी मलीदा, सरखत और फूलमालासे पूजा करते हैं और सैयद हुसेनकी हलुआ, मलीदा और मिठाईसे पूजते हैं। सब-ई-बरात उत्सवमें परलोकगत व्यक्तियोंके लिए ग्वाद्यद्व्यादि चढ़ाये जाते हैं। चैंड लोग डोलक और काश्मीरी लोग तबला और सारंगी बजाते हैं। भांडू लोग आमोदके लिए प्रधान सहकारी हैं, इन्में सन्देह नहीं। पश्चिम और उत्तर-भारतमें विशेषतः युक्तप्रान्तमें जन्मोत्सवमें भांडू लोग आ कर हास्यकर खेल दिखलाते हैं और विवाहादिमें तो अधिकतासे इनके तमाशे होते हैं। इस कार्यमें इन्हें काफी आमदनी होती है और दर्शकगण भी हास्य दृश्यको देख कर परम आनन्द उपभोग करते हैं।

भांडा (हि० पु०) १ पाल, बरतन। २ बड़ा बरतन।  
भांति (हि० स्त्री०) तरह, क्रिम।  
भांपना (हि० क्रि०) १ ताड़ना, पहचानना। २ देवना।  
भांभो (हि० पु०) जूता सोनेवाला, चमार।  
भांयं भांयं (हि० पु०) गितान्त एकान्त स्थान या सभ्राटेमें होनेवाला शब्द।  
भांवता (हि० पु०) भावता देखो।  
भांवना (हि० क्रि०) १ किसी चीजको खराद या चकरा आदि पर झुमाना, खरादना।  
भांवर (हि० स्त्री०) १ चारों ओर घूमना या चकराकाटना, परिक्रमा करना। २ अग्निकी वह परिक्रमा जो विवाहके समय घर और धूमू मिल कर करते हैं। ३ हल जोतनेके समय एक बार खेतके चारों ओर घूम आना।  
(पु०) ४ भांय देखो।  
भा (सं० स्त्री०) भा-दोती (पिंडिदादिम्बोऽण्। पा ३।३।१०४) इत्यङ्, टाप्। १ प्रभा, चमक, प्रकाश। २ कान्ति, गोमा, छटा। ३ किरण, रश्मि। ४ विजली, विद्युत्।  
भाइ (हि० स्त्री०) प्रकार तरह। २ टंग, चालढाल।  
भाई (हि० पु०) १ किसी व्यक्तिके माता-पितासे उत्पन्न

दूसरा पुण्य, सहोदर, भैया । प्रान्त देखो । २ अपनी जाति या समाजका कोई व्यक्ति, विरादरी । ३ संबोधन । ४ किसी वंश या परिवारकी किसी एक पीढ़ीके किसी व्यक्तिके लिये उसी पीढ़ीका दूसरा पुण्य । भाईचारा ( हि० पु० ) १ भाईके समान होनेका भाव । २ परममित्र या बंधु होनेका भाव । भाईदूज ( हि० स्त्री० ) कार्तिक शुद्ध द्वितीया, यमद्वितीया । इस दिन बहन अपने भाईको टोका लगाती और भोजन कराती है । भ्रान्द्रितीया देखो । भाईपन ( हि० पु० ) १ भ्रान्त्यत्व, भाई होनेका भाव । २ परम मित्र या बंधु होनेका भाव । भाईबंधु ( हि० पु० ) भाई और मित्र-बंधु आदि, अपनी जाति और विरादरीके लोग । भाईविरादरी ( हि० स्त्री० ) जाति या समाजके लोग । भांड ( हि० पु० ) उत्पत्ति, जन्म । भाउदाजी—बम्बई प्रदेशवासी एक प्रवक्तृत्वविद् । कोङ्कण विभागके सावन्तवाड़ीके निकटस्थ किसी ग्राममें इनका जन्म हुआ था । अपनी धी-शक्तिके प्रभावसे इन्होंने विद्योपार्जन कर जनसाधारणमें अच्छा नाम कमा लिया था । ये एलफिन्स्टन और ब्राण्ट मेडिकल कालेज नामक विद्यालयमें पाठाभ्यास करके फर्मेश्वरमें उतरे थे । इनके सबसे बम्बई शहरमें संस्कारसभा ( Bombay Reform Association ), शिक्षा-समिति ( Board of Education ), जादूगर आदि स्थापित हुए थे । १६वीं शताब्दीके मध्य भागमें जन्म ले कर ये विद्वत्समाजमें प्रतिष्ठा लाभ कर गये हैं । भाउसाहब—प्रसिद्ध महाराष्ट्र-सेनापति । इन्होंने पानीपतकी ३री लड़ाईमें विशाल महाराष्ट्र-बाहिनीको ले कर अहमदशाहका मुकाबला किया था ।

सदाशिव भाउ देखो ।

भाऊ ( हि० पु० ) १ प्रेम, स्नेह । २ भावना । ३ स्वभाव । ४ धृति, विचार । ५ महत्त्व, महिमा । ६ अवस्था, हालत । ७ रूप, शक्ति ।

भाकर ( सं० पु० ) १ पुराणानुसार नैर्ऋत्यकोणमेंका एक देश । २ भास्कर, सूर्य ।

भाकसी ( हि० स्त्री० ) भद्रो, भरसाई ।

भाकूट ( सं० पु० ) भया दीप्या कूटतीति कूट-क । मत्स्य-विशेष, एक प्रकारकी मछली । इसका सिर बहुत बड़ा होता है । इसका गुण—मधुर, शीतल, घृण्य, श्लेष्म-कारि और शुक्र माना गया है ।

भाकुरि ( सं० पु० ) भां कुर्चति कुर्च-कि षृणोदरादित्वात् साधुः । दीनिकारक ।

भाकूट ( सं० पु० ) भायुकाः कूटाः शिखराणि यस्य । १ परंतमेद । २ मत्स्यविशेष ।

भाकोप ( सं० पु० ) भानां दोषानां कोप इव । सूर्य ।

भाक ( सं० लि० ) भक्तेः गोण्यावृत्ते रागतमिति भक्ति-अण् । १ पारिभाषिक, औपचारिक । "नन्वेव परत सतमे मासि क्रियमाणस्य कथं पापमतिक्रमम्" ( तिथितत्व ) ममम माममें जो मासिक धाड़ होता है, उसे किस प्रकार पान्मासिक कह सकते हैं ? यह ध्र द् सप्तम मासमें होने पर भी उपचारवशतः उसे पान्मासिक कहते हैं, यही भाक है । जहां पर उपचारवशतः अथवा लक्षण शक्ति द्वारा अर्थकी प्रतीति होती है, उसे भाक कहते हैं । भक्त-स्येदमिति अण् । २ भक्त-सम्बन्धी । भक्त-मस्मै दीयते नियुक्तमिति भक्त ( भक्तदादन्यतरस्याम् । पा ४, ४।६८ ) इत्यण् । ३ अन्न द्वारा पोष्य । ४ नियत अन्नदान ।

भकाय हितं अण् । ५ भक्त-सम्पादन-साधन तण्डुल ।

भाक्तिक ( सं० लि० ) भक्तमस्मै नियुक्तं दीयते इति भक्त ( भक्तदादन्य तरस्यां । पा ४।४।६८ ) इति पक्षे ढक् १ अन्न द्वारा पोष्य । २ अन्नदान ।

भाक्ष ( सं० लि० ) भक्षा जीलमस्य छत्रादित्वाद्वाण् ( पा ४।४।६२ ) भक्षणशाल ।

भाक्षालक ( सं० लि० ) भक्षालि-देशे भवः ( धृमादिभ्यश्च । पा ४।२।१२० ) इति वुञ् । भक्षालिदेश भवमात् ।

भाखर ( हि० पु० ) पघल, पहाड़ ।

भाग ( सं० पु० ) भाज्यते इति भज भागसेवयोः कर्मणि घञ् । १ अंश, हिस्सा । २ भाग्य, किरमत । ३ पार्श्व, तरफ । ४ सीमाग्य, खुश-नसीबी । ५ भाग्यका कल्पित स्थान, ललाट । ६ एक प्राचीन देशका नाम । ७ पेशवर्ग, वैभय । ८ प्रातःकाल, भोर । ९ पूर्व-फल्युत्त नक्षत्र । १० तत्समसंख्या, एकादश-संख्या । ११ किसी राजाको अनेक अंशों या भागोंमें बांटनेकी क्रिया, गुणनके विपरीत क्रिया ।



जिस राशिके भाग किये जाते हैं उसे भाज्य और जिससे भाग देते अथवा जिनके अंशोंमें भाग देते हैं उसे भाजक कहते हैं । भाज्यको भाजकसे भाग देने पर जो संख्या निकलती है उसे फल और जो शेष रह जाता है उसे भागशेष कहते हैं ।

भाग दो प्रकारका है, मिश्र और अमिश्र । जब भाज्य और भाजक दोनों ही अनवच्छिन्न अथवा एक जातीय अवच्छिन्न संख्या हो, तो उसे अमिश्र भाग और जब भाज्य अथवा भाजक, दोनों ही नाना अंशोंकी अवच्छिन्न संख्या हो, तब उसे मिश्रभाग कहते हैं ।

यदि + ऐसा चिह्न किसी दो संख्याके बीचमें रहे, तो पहलेकी दूसरी संख्यामें भाग करना होगा, इसका नाम विभक्त है । भागमें यदि भाज्य अवच्छिन्न और भाजक अनवच्छिन्न संख्या हो, तो भागफल अवच्छिन्न संख्या होगा । जैसे, ३० रु०में दस भाग देनेसे ५ और ३०को दस भाग देनेसे ५ होता है, अर्थात् ६ रु० ३० रुपयमें ५ वार शामिल है ।

अमिश्रभाग—भाज्य भाजकको इस प्रकार घटाओ— भाजक भागफल . भाज्यके अङ्कोंमें बाईं ओरसे ऐसे कितने अङ्क लो जो भाजककी अपेक्षा अधिक हो । पीछे पहाड़ा द्वारा देख लो, कि इस बाईं ओरको अल्प संख्याके भीतर भाजक कितने वार शामिल है । जितनी वार शामिल होगा उसे भागफलके स्थानमें रखो । इस अङ्कको भाजकके साथ गुणा कर गुणनफलको भाज्यके नीचे बैठायो । अब घटा कर जो संख्या निकलेगी उसकी दाहिनी ओर भाज्यकी शेष संख्या बैठा कर पूर्व-वत् क्रिया करते जाओ । यदि भाजक अवशिष्टको अपेक्षा अधिक हो, तो भागफलमें शून्य बैठा कर भाज्यके दूसरे अंशको नीचे उतारो । इस प्रकार जब तक भाज्यके सभी अङ्क न उतर जायं, तब तक क्रिया करते रहो । आखिरमें यदि शेष कुछ भी न बचे तो केवल भागफल स्थिर हुआ और यदि शेष बचे तो भागफल और भागशेष स्थिर होगा ।

यदि कोई गुणनफल उसके ऊपरके अङ्कोंको अपेक्षा अधिक हो, तो भागफलके शेष अङ्कको घटा देना पड़ेगा और यदि अवशिष्ट भाजकको अपेक्षा अधिक अथवा

उसके समान हो, तो भागफलके शेष अङ्कको बढ़ा देना होगा । यदि भाजक २०से अधिक न हो, तो भाग पहाड़ी द्वारा सुगमतासे सम्पन्न हो सकता है ।

उदाहरण—२३३८२६८में ६७५८का भाग दो ।

६७५८	२३३८२६८	( ३४६
	२०२७४	
	३१०८६	
	२७०७२	
	४०५४८	
	४०५४८	
	०	

भागफल = ३४६

यहाँ पर भाजक छः हजार सात सौ अठायन है और भाज्यके प्रथम पांच अङ्क तैस लाख अठतीस हजार दो सौ हैं, इसके भीतर भाजक ३०० वार है, तथा  $६७५८ \times ३०० = २० - २७४००$ ; किन्तु बनानेकी सुविधा के लिये शून्य न रख कर ४ को २के नीचे रखना तथा इस गुणनफलको घटानेसे ३१०८ निकला । अब नियमानुसार ६को नीचे उतारा । इस ६ से छः दश अथवा ६० समझा जाता है । किन्तु उपरोक्त कारणसे शून्य नहीं रखा गया । अब कुल संख्यासे तीन लाख दश हजार आठ सौ अठसठ समझा जाता है । इसके मध्य भाजक ४० वार शामिल है,  $६७५८ \times ४० = २७०३२०$  पहलेकी तरह शून्य अलग कर २७०३२ को ३१०८६ से घटाया और घटावफल ४०५४ निकला इससे चालीस हजार पांच सौ चालीस समझा जाता है तथा नियमानुसार ८ उतारनेसे कुल संख्या चालीस हजार पांच सौ अड़चालीस हुई । इसके भीतर भाजक ६ वार है । नीचेकी प्रक्रिया देखो ।

६७५८	२०२७४०० + २७०३२० + ४०५४८	( ३०० + ४० + ६ = ३४६
	२०२७४००	
	२७०३२०	
	२७०३२०	
	४०५४८	
	४०५४८	

यदि भाजकके शेषमें शून्य रहे, तो प्रक्रियाको निम्नोक्त

नियम द्वारा घटा सकते हैं। भाजकमें जितने शून्य हैं, उन्हें एक चिह्नसे पृथक् करो, पीछे नियमानुसार भाग दो। जो भागशेष रहेगा उसको वाद् भाज्यके पृथक् किये हुए अंकोंको वैठा देनेसे कुल अवशिष्ट निकल आयेगा।

भाज्य और भाजक दोनोंके शेषमें जब शून्य रहे, तब भी उक्त नियमानुसार क्रिया करना होगा। यदि एक राशिको दूसरी राशिसे भाग करने पर शेष कुछ भी न बचे, तो दूसरी राशिको पहली राशिका उत्पादक वा गुणनीयक कहते हैं। यथा—२का १२में भाग देनेसे शेष कुछ भी नहीं रहता है इसलिए २ १२ का उत्पादक वा गुणनीयक है।

मिश्रभाग—एक मिश्रराशिको कुल समान अंशोंमें विभक्त करने अथवा एक मिश्रराशिमें दूसरी मिश्रराशि कितनी बार शामिल है उसे जाननेके तरोकेको मिश्रभाग कहते हैं। जब भाजक अवच्यञ्चन संख्या हो, तब ऐसा किया जाता है।

अमिश्रभागमें भाज्य और भाजक जिस प्रकार रखा जाता है, यहाँ भी उसी प्रकार रखना होगा। पीछे भाजक भाज्यको सर्वाच्च श्रेणीको राशिमें कितनी बार शामिल है, यह देखना होगा। जितनी बार शामिल होगा उसे भागफलको जगह वैठाओ। अनन्तर सामान्य भागमें जिस प्रकार गुणा और बटाव किया जाता है उसी प्रकार करना होगा। यदि शेष कुछ बच रहे, तो उसे निम्न श्रेणीकी राशिमें परिणत करो और जो फल होगा उसे भाजक द्वारा भाग दो, इस प्रकार करते करते शेष पर्यन्त भाग करना होगा।

अलावा इसके एक और प्रकारका भाग है जिसे समानुपातिक भाग कहते हैं। जब किसी संख्यामें इस प्रकार भाग देना होगा कि अंश किसी निर्दिष्ट समानुपातानुसार हो, तब निम्नलिखित नियमानुसार करना होगा।

नियम—कुछको घेसे भिन्नमें लाभो जिनका साधारण हर समस्त अनुपातकी समष्टि हो और अवयवोंके भङ्ग अलग लव हो। पीछे प्रत्येक भिन्नको दी हुई संख्याको गुणा करो, गुणफल जो होगा वही निर्णीत अंश निकलेगा। (पाठीगणित)

भागक (सं० त्रि०) १ अंशभागसम्बन्धीय। (पु०) २ भाजक।

भागकर (सं० पु०) १ शिव। करोतीति कृ-ट कर, भागस्य करः। २ भागकारक, विभाग करनेवाला।

भागजाति (सं० स्त्री०) भागस्य जातिः। विभागके चार प्रकारोंमेंसे एक। इसमें एक हर और एक अंश होता है, चाहे वह समभिन्न हो वा विषम भिन्न हो जैसे— $\frac{1}{2}$ ,  $\frac{1}{3}$  भागड़ (हि० स्त्री०) भागने, विशेषतः बहुतसे लोगोंके एक साथ घरशर कर भागनेकी क्रिया या भाव।

भागण (सं० पु०) भागना गणः। १ सूर्यादिको प्रभा। २ भागसम्बन्धीय।

भागत्याग (हि० पु०) जहदजहलक्षणया देना।

भागदा (सं० स्त्री०) भागं वदाति दा-अङ्। भागप्रदाता, भाग देनेवाला।

भागदुघ (सं० पु०) विभागप्रद।

भागध (सं० त्रि०) प्राप्य वस्तुका अंश प्रदान।

भागधेय (सं० स्त्री०) भाग एव भागरूप नामभ्यो धेयः। इति अभिधानानुपसंस्कृत्यं। १ भाग्य, तक्रदोर। (पु०) भागने धोयतेऽस्ती वा कर्मणि यत्। २ राजदेयकर, वह कर जो राजाको दिया जाता है। ३ दयाद, सपिंड।

भागना (हि० कि०) १ किसी स्थानसे हटनेके लिये दौड़ कर निकल जाना, चटपट दूर हो जाना। २ पिण्ड छुड़ाना, कोई काम करनेसे बचना। ३ टल जाना, हट जाना।

भागनेय (सं० पु०) भागिन्य देना।

भागफल (सं० पु०) वह संख्या जो भाज्यको भाजकसे भाग देने पर प्राप्त हो, लब्धि।

भागभाज (सं० त्रि०) भागं भजते भज गिञ्। विभागकर्त्ता, वाँटनेवाला।

भागमण्डल—मन्द्राज प्रदेशके कूर्ग विभागान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह अक्षा० १२° २३' उ० तथा देशा० ७५° ३६' पू०के मध्य विस्तृत है। यहाँ एक प्राचीन कुर्मका धर्मसाधशेष देखा जाता है। टीपुसुलतानके साथ जब कुर्मराजका युद्ध छिड़ा था, उस समय इस स्थानने युद्धक्षेत्रमें परिणत हो कर ऐतिहासिक प्रसिद्धि लाभ की है। १७८५ ई०में हैदरके पुत्र टीपूने इस नगरको घेरा

धर्महरणी नाम रखा गया है। यहां ध्वंसावशिष्ट दुर्गादि-  
ध्यतीत शैल्युगके अनेक मन्दिरादिका निदर्शन पाया  
जाता है।

इस जिलेमें तरह तरहके धान और नीलकी खेती  
होती है। पहले यहां रेशम बहुल प्रमाणमें प्रस्तुत होता  
था, पर अभी उसका ह्रास हो गया। यहांका चारु  
तमाम मगहर है और दूर दूर देशोंमें उसकी रपतनी  
होती है। जिस विस्मयकर उँगू ज्वरकी कथा आज भी  
यङ्गवासीके हृदयमें जागरूक है उसकी उत्पत्ति सबसे  
पहले इसी जिलेमें १७७२ ई०को हुई थी।

इस जिलेमें २ शहर और ३०६३ ग्राम लगते हैं। जन-  
संख्या घास लाखसे ऊपर है जिनमेंसे सैकड़ों पीछे ८६  
हिन्दूकी और १० मुसलमानकी संख्या है तथा शेष १में  
अन्यान्य जातियां हैं।

जिलेकी प्रधान उपज है धान, गेहूं, मटर, चना, मकई,  
उचार, तिल, अरहर और ईल। कोयले, लकड़ोंके कोयले,  
रुई, मसाले, चने, रेशम और तम्बाकूकी दूसरे दूसरे देशों  
से आगमन होर यहांसे धान, चावल, गेहूं, चने, तेल-  
हन और नीलकी रपतनी होती है। राजकार्यकी सुविधा-  
के लिये यह जिला चार उपविभागोंमें विभक्त है, यथा—  
भागलपुर, बांका, मधेपुरा और सुपौल। डिस्ट्रिक्ट मजि-  
स्ट्रेट-कलेक्टर तथा उनके सहकारी पांच डिप्टी कलेक्टर  
और दो सव-डिप्टी कलेक्टर द्वारा राजकार्य परिचालित  
होता है।

विद्याशिक्षणमें यह जिला बहुत पीछे पड़ा हुआ है।  
सैकड़ों पीछे ४ मनुष्य पढ़े लिखे मिलते हैं। पर धन  
यहांके अधियासियोंका ध्यान इस ओर अधिक भुका है।  
प्रतिवर्ष नये नये स्कूल खोले जा रहे हैं। अभी कुल मिला  
कर १५११६ स्कूल हैं जिनमेंसे १ आर्ट स्कूल, २५ सेकण्डरी,  
१०६२ प्राइमरी और १३१ स्पेशल स्कूल हैं। इनमेंसे  
तेजनारायण जुबनो कालेज और कर्णगढ़की संस्कृत पाठ  
शाला ही प्रचलन हैं। स्कूलके अलावा २० अस्पताल हैं।  
जिलेकी आबहवा बहुत स्वास्थ्यमद्द है, पर गङ्गाके उत्तर  
कोजा किनारे अवस्थित किशनगञ्ज इलाकेकी आब-  
हवा बिलकुल खराब है। यहां भूकम्प मलेरियाका प्रकीर्ण  
देखा जाता है। जिलेका ताप-परिमाण ३२° से ८६°

और अप्रिल मासमें ६७° चढ़ जाता है। वार्षिक वृष्टिपात  
५१ इञ्च है।

३ भागलपुर जिलेका सहर उपविभाग। यह अक्षा०  
२५° ४' से २५° ३०' उ० तथा देशा० ८६° ३६' से ८७°  
३१' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ६३३ वर्ग-  
मील और जनसंख्या छः लाखके करीब है। इसमें  
भागलपुर और कहलगाँव नामके २ शहर और ८३० ग्राम  
लगते हैं।

४ उक्त जिलेका प्रधान नगर। यह अक्षा० २५° १६'  
उ० तथा देशा० ८७° ३' पू० गङ्गाके दाहिने किनारे अव-  
स्थित है। कलकत्तेसे रेलवे द्वारा इसको दूरी २६५ मील  
और नदी द्वारा ३२६ मील है। जनसंख्या अस्सी  
हजारके करीब है। यहां ई-आई-रेलवेकी लूप लाइनका  
एक स्टेशन है जहांसे इसको एक शाखा-लाइन बाँसी तक  
और दूसरी घा० एन० डबलूकी बरारी तक दौड़ गई है।  
बरारीघाटमें फेरो स्टीमर द्वारा मुसाफिर पुण्यसलिला  
भागोरथी पार कर घा० एन० डबलूकी ही दूसरी-गाड़ी पर  
सवार होते हैं। यहां गङ्गातटका दृश्य बड़ा ही मनो-  
रम है। यहांके गङ्गातट पर अवस्थित बरारीके जमीं-  
दार ठाकुरजीकी प्रकाण्ड अट्टालिकाएँ और मन्दिरादि  
इसकी शोभाको और भी परिवर्द्धित करते हैं। इनमेंसे  
'हरिमन्दिर' उल्लेखयोग्य है। उक्त मन्दिर सर्गीय वायू  
धोमोहनठाकुरकी अक्षयकौस्तिका परिचायक है। उक्त  
उदारचेता दयापरवश महाशयके धार्मिक सुपुत्र श्रीकेशव-  
मोहन ठाकुर अपने पूज्य पिताकी अक्षय कौस्तिकी  
अक्षुण्ण रखनेमें विशेष यत्नवान् हैं।

भागलपुर स्टेशनसे थोड़ी ही दूर उत्तर हो बड़ी बड़ी  
धर्मशालाएँ हैं। शहर और शहरतटोंमें मुसलमानों-  
की कई एक मसजिदें और ओसवाल जैनोंके दो विषयात  
मन्दिर हैं। इनमेंसे एक मन्दिर जगत्शेठ कर्तृक प्रति-  
ष्ठित है। हिन्दूमन्दिरोंमेंसे 'वृद्धानाथका मन्दिर' ही उल्लेख  
योग्य है। यह शहरके उत्तर गङ्गाके किनारे प्रतिष्ठित है।

पहले ही कहा जा चुका है, कि मुसलमानी अमलदारी-  
में यहांकी विशेष ओरुद्धि हुई थी। गङ्गालेके मरुगान-  
शासन कर्त्ताओंका दमन करनेके लिये सम्राट् अह-  
मद शाहने १५७३ और १५७५ ई०में मुगल-सेना भेजी।

दूसरी बारके युद्धमें मानसिंह परिचालित सेना दलने इसी नगरमें छावनी डाली थी। तभीसे यहां मुगलसेना-निवेश स्थापित हुआ था।

१५६२ ई०में मुगलसेनाके उड़ीसा-विजयमें प्रेरित होने पर यह स्थान किसी कौञ्जदारके शासनाधीन हुआ।

भागलपुरके राजस्य संग्रहक और सुशासन प्रतिष्ठाता मि० अणुप्रस हिमलैण्ड साहबके स्मरणार्थ यहां नौ स्मृति-स्तम्भ विद्यमान हैं।

ग्रहरसे उत्तर पूर्वमें अदालत पड़ती है। इसका अहाता बहुत लम्बा चौड़ा है। यहीं पर सब अदालत लगती हैं। इस स्थानसे थोड़ी ही दूर पूर्व सेण्ट्रल जेल-से सटा हुआ 'धानन्दगढ़' नामक एक सुन्दर राजप्रासाद है। यह भवन वास्तवमें अपने नामको सार्थक बनाता है। यह कहनेमें अतिशयोक्ति नहीं होती, कि भागलपुर शहर भरमें तथा आसपासके स्थानोंमें इस जोड़का सुन्दर भवन नहीं हैं। इसके अभ्यन्तर भागमें सूक्ष्म-शिल्प-कार्य अक्रामक चमक रहे हैं। सद्र फाउण्डेसे ले कर प्रासाद तक दोनों बगलमें कतारकी कतार तरह तरहके पेड़ लगे हैं। सच पूछिये, तो यहांकी शोभा मनको मोहती है। भवनके चारों ओर जो आमकी चाटिका है वह हृदयको विचित्रताका सञ्चार करती है। इस सुख्य अट्टालिकामें बरारीके जमींदार बाबू सूर्यमोहन ठाकुर रहते हैं। आप स्वर्गीय बाबू प्राणमोहन ठाकुरके कनिष्ठ पुत्र और स्टेटके तीन पट्टीदारोंमेंसे एक हैं। आपके चचा स्वर्गीय बाबू उग्रमोहन ठाकुर मरते समय अपनी जमींदारी जो करीब एक लाख रु० आयकी है, इन्हींके नामसे बिल कर गये हैं। बाल्यावस्थामें ही आप माता पिता-होन हो चुके हैं। आप अभी हैं तो नाबालिग, पर जमींदारी सम्बन्धी कार्योंमें बिलक्षण पारदर्शिता रखते हैं आपका सम्भाव बहुत ईसमुल है और प्रजाके दुःख सुखको सुननेके लिये सर्वैय तत्पर रहते हैं। आपकी दानशीलता बहुतोंके लिये आदर्शरूप है। आपने पैतृक सम्पत्तिके रूपमें धार्मिक प्रेमकी अभिरुचि प्राप्त की है।

आप सभी पट्टीदार स्वर्गीय बाबू मदनमोहन ठाकुरके वंशधर हैं। यहां पर यह कह देना अत्यावश्यक है,

कि मदनमोहन ठाकुर एक उच्च दर्जेके वकील थे। वकालतसे उन्हें निश्चय नाम कमा लिया था। 'बनेली-राज' शब्दमें जो लिखा गया है, कि ये बाबू वेदानन्दके यहां नौकरी करते थे, यह बात असत्य सी प्रतीत होती है। कारण, बरारी छेठसे हमें जो विवरण मिला है, उसमें इसका कहीं भी जिक्र नहीं है, बल्कि साफ साफ लिखा है कि, 'छेठके प्रतिष्ठाता बाबू मदन ठाकुर एक अच्छे वकील थे। उनका स्वतन्त्र कारोबार था और बहुत-सी नीलकी फौजियां भी थीं, इत्यादि।' अतः इस विषयस्त सूत्रसे उनका बनेलीराजके अधीन काम करना असत्य ठहरता है। शारी देखें।

शहरकी जनसंख्या ७५०६० है जिनमेंसे हिन्दूकी संख्या सैकड़ों पीछे ७०, मुसलमानकी २६ और शेष १में ईसाई तथा जैन हैं। यहां १८६४ ई०में म्युनिस्पलिटी स्थापित हुई है। यहांका टी. एन. जुबली कालेज स्थानीय जमींदार बाबू तेजनाथरायसिंह द्वारा १८८७ ई०में स्थापित हुआ है। वही यह कालेज शहरसे थोड़ी ही दूर पश्चिम नाथनगरके समीप एक विशाल भवनमें उठ कर चला गया है। इसमें छात्रावास भवन भी संलग्न है। उक्त कालेजके अलावा एक सरकारी, तीन सरकारी साहाय्य-प्राप्त हाई स्कूल, एक शिक्षक ट्रेनिंग स्कूल तथा कई एक मिडिल और प्राइमरी स्कूल हैं। ट्रेनिंग स्कूल के पास ही सरकारी अस्पताल और पुलिस ट्रेनिंग स्टेशन है। यहांके कारागारमें बहुत बहियां कम्बल फैदियों द्वारा तैयार होता है। इसीके पास हीमें स्थानीय जमींदार बाबू रमणीमोहन द्वारा प्रतिष्ठित एक मेडिकल अस्पताल भी है। शहरकी आबहवा कुल मिला कर स्वास्थ्यप्रद है।

भागलपुर—युक्तप्रदेशके गोरखपुर जिलान्तर्गत धर्मरा नदी तीरस्थ एक नगर। यह अक्षा० २६' १०' ४०" उ० तथा देशा० ८३' ५२' ५०"के मध्य अवस्थित है। जन-साधारणका विश्वास है, कि जामदग्न्य परशुरामने यहां पर जन्मग्रहण किया था। यहां एक सुभाषीन प्रस्तर स्तम्भ विद्यमान है; किसीके मतसे परशुराम और किसीके मतसे राजा भीमसिंह उक्त स्तम्भके स्थापयिता माने जाते हैं। अन्त्या इसके यहां बहुतसं संयक च्यंसा-यथेका निदर्शन है।

भीर पश्चिममें वासस्थान निर्दिष्ट हुआ। इन्हींको सन्तति भाट नामसे प्रसिद्ध हुई।

किन्हींका मत है कि, कालोने राक्षसोंको निघन करते समय अपने अद्भुत कीर्त्तिकलापको मानव-समाजके समक्ष प्रकट करनेके लिए अपने स्वदेकणसे भाटोंकी सृष्टि की। किन्हींका ऐसा मत है कि, जो निकट ब्राह्मणगण राजसभामें तथा सेनाके साथ सर्वदा गमना गमन करके पूर्वपुरुषोंके कीर्त्तिकलापोंका कोत्तन-पूर्वक राजा और सैनिकोंको उत्साहित और उल्लासित करते थे, वर्तमान भाटगण उन्हींके वंशधर हैं। महाभारतमें, कुदक्षेत्रसे हस्तिना लौटते समय भाटोंके साथ युधिष्ठिरका साक्षात्कार हुआ था, ऐसा उल्लेख है। उक्त महाकाव्यमें ये ब्राह्मण कहे गये हैं। ऐसे अनेक प्रमाण पाये जाते हैं, कि जिनसे इन्हें ब्राह्मण ही प्रमाणित किया जा सकता है। ये यशोपयोत धारण करने हैं, नीच-जातिके लोग इन्हें महागज कह कर पुकारते हैं। ये अपने अपने प्रभुको यजमान और अपनेको यज्ञयाजक कहते हैं। परंतु किञ्चिन् विवेचना करने पर मालूम होता है कि राजपूत आदि जातियां भयसायके कारण भाट वर्णको प्राप्त हुई हैं और ये इन्होमें मिल गई हैं।

चारणगण भाटोंके समान ही हैं। इनको उत्पत्ति और कार्यादि भाटोंके सदृश है। (चारण देखो)

उपर्युक्त किम्वदन्तियों और भाटोंकी वर्तमान सामाजिक अवस्था पर विचार करनेसे मालूम होता है, कि ये उत्कृष्ट वर्णसे जातिच्युत हो कर निकृष्टवर्णको प्राप्त हुए हैं, अथवा पूर्व-वर्णित मागधादि सङ्कर-वर्णसे राज-धंशानुकीर्त्तन आदि द्वारा राजप्रासाद और प्रतिष्ठा प्राप्त करके ये क्रमशः उच्चवर्णका परिचय दे रहे हैं। कुछ भी हो, वर्णालये भाटगण क्षत्रियके औरस और विधवा ब्राह्मणोंके गर्भसे अपनी उत्पत्तिको स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है कि, वर्णालये आदिभार द्वारा कर्त्तव्यमें लगे गये पञ्च ब्राह्मणोंके वंशधरोंकी राष्ट्रदेशमें विस्तृतिसे पहले वर्णालयमें दिन यज्ञयाग हीन ब्राह्मणोंका वास था, उनकी एकतम शाखा, जो घटकतावृत्ति द्वारा जीविका-निर्वाह करती थी, उसीके ये वंशधर हैं। वर्णालयेनकी कीर्त्तनीयमर्षदा ग्रहण करनेमें असमर्थताके कारण ये

बंगालसे विताडित हुए थे। इस प्रकार राजानुग्रहसे वञ्चित होनेसे तथा बंगालके सोमान्त देशमें निरुपया अवस्थामें आ पड़नेसे क्रमशः उनकी अवस्था विपरीत होने लगी और इस तरह ये क्रमशः श्राद्धादिका हेय दान ग्रहण करनेके लिए बाध्य हुए। यही कारण है, कि आज भाटगण इस प्रकार निकृष्ट वर्णव्यक्तिको प्राप्त हुए हैं।

वास्तवमें जब भी ध्रोहृष्टके राष्ट्रीय ब्राह्मणगण भाटोंके साथ एकत्र भोजन करते हैं। किंतु टाका और त्रिपुराको तरफ ये अप्सृश्य समझे जाते हैं। वहां ये छत्रादि बना कर उदरपूर्ति करते हैं।

ये भरद्वाज, विरम, वृषोन्धि, गजमोम, याग, केलिया, महापात्र, राय और राजभाट इन तीन्नाखाओंमें विभक्त हैं। उपाखाओंमें बुचन्द शहरके सपहर, मथुराके बड़वार, इटायाके आटसैल और चर्प, फानपुरके लाहौर, इलाहाबाद के गङ्गवार, गाजोपुरके बन्दोजन आजमगढ़के लखौरिया, उनाय और सीतापुरके कर्नौजिया, रायबरेलाके भामलविया, फैजाबादके आटसैल, चम्पोजन दक्षिणवार और गङ्गावर, गोण्डाके बसरिया, सुलतानपुरके गा, गङ्गावार, मथुरिया और राणा; प्रतापगढ़के गध्व, गङ्गावार, और जुम्हैन, तथा बाराबङ्कोके बसोधिवा आदि प्रसिद्ध हैं।

जातितत्त्वविद् इलियटका मत है कि भाट और याग जाति एक ही है। कार्यका विशेषतासे ये बरमभाट या वादी, याग-भाट और राजभाट नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। किसी विशेष कार्यांगलक्षमें पूर्वोक्त भाटगण नियोजित हुए थे। शोचक भाटगण विवाह अथवा निमन्त्रणमें पूर्वपुरुषोंके कीर्त्तिकलाप गाते हैं और प्रत्येक वंशकी धारावाहिक तालिका रख देते हैं। ये दो या तीन वर्ष बाद अपने अपने यजमानोंके पास जाते हैं और उनके अदातसारमें जो घटनाएँ हुई हैं उन्हें तथा, जन्ममृत्युका विशेष विवरण लिख कर यजमानोंके अवस्थानुसार रुपये, पन्ना और घन्नादि ले कर लौट आते हैं। राजपूताना और दिल्लीके सन्धिस्थलमें, गङ्गातीरवर्षों द्वारा नगर और अधोध्यको उत्तरांशमें इनका प्रधान वासस्थान है। रोहिलखण्डमें गौड़ ब्राह्मण ही भाटोंका कार्य करते हैं। किसी किसीने इनको प्रधानता आटसैल, महापात्र, केलिया,

मैनपुरीवाल, जङ्गल, भटर और दशान्धि इन सात श्रेणियोंमें विभक्त किया है। परन्तु इस प्रकार श्रेणि-विभाग करनेसे चौरासो जातीय आदि थोक किसी प्रकार भी इसके अन्तर्गत नहीं किया जा सकता।

जो भाट मुसलमानोंके प्रादुर्भावसे इसलाम-धर्ममें श्रोक्षित हुए थे, वे तुर्कभाट या मुसलमान भाट कहलाते हैं। अब वे मुसलमानोंकी तरह किया करते हैं, फिर भी उन्होंने पूर्वपुरुषाजित वंशानुकीर्त्तन प्रथाको नहीं छोड़ा है।

विवाहपद्धति।—उच्च जातियोंकी भांति इनमें भी गोत्रानुसार विवाह प्रथा प्रचलित है। मिर्जापुर आदि स्थानोंमें बहनकी कन्या, फूफूकी कन्या, शालकी लड़की और मामाकी लड़कीके साथ विवाह नहीं होता। स्त्रीको बहन बड़ी न हो तो उसके साथ विवाह हो सकता है। साधारणतः कम उम्रमें ही यथासाध्य यौतुक दे कर कन्याएँ प्याही जाती हैं। पिता गरीब होने पर कभी कभी ज्यादा उम्रमें भी कन्याका विवाह हुआ करता है। परन्तु उससे पिताको निन्दा होती है। दरिद्र पिता यदि शुल्क ग्रहण करे, तो भी समाजमें वह अपवादजनक है। विधवा-विवाह और निःसंतान भ्रातृ-जायाके साथ विवाह निषिद्ध है।

पुत्र उत्पन्न होने पर तथा कन्यादानके समय नन्दी-मुख श्राद्ध किया जाता है। इनमेंसे हिन्दू कानूनके अनुसार उत्तराधिकारका अधिकार प्रचलित है। परन्तु पंगालमें घनिष्ठ ह्राति मौजूद होने पर दौहित्र उत्तराधिकारी नहीं हो सकता।

मुसलमान भाट 'तुर्कभाट'के नामसे प्रसिद्ध हैं। पूर्व-भारतके मुसलमान भाटोंका कहना है, कि वे राजा चेतसिंहके अघोन कार्य करते थे। जोनाथन उनकान माहवने हिंसापरवश हो कर बलपूर्वक उन्हें मुसलमान बना लिया तथा पश्चिमदेशवासी भाटोंको साहबउद्दीन महम्मद धोरीने मुसलमान बनाया था। उनमें हिन्दू और मुसलमान दोनों जातिके आचार प्रचलित हैं। वे हिन्दुओंकी तरह विवाहके समय पुरोहित द्वारा हिन्दू-प्रधानुसार कन्यादानका कार्य सम्पादन करते हैं। उसके बाद वे मुसलमान काजो द्वारा निकाह आदिका कार्य करते हैं।

मुसलमान भाट धनियोंके घर गा बजा कर जीविका-निर्वाह करते हैं। मिर्जापुरियोंमें याब, काष्ठरोगण, खादानी, राजभाट और बन्दोजन उपशाखाएँ पाई जाती हैं। ये बालकोंकी सुन्नत कराते और मृतदेहको गाड़ते हैं, फिर भी हिन्दुओंको धादादि कियाएँ इनमें प्रचलित हैं।

हिन्दू-भाटगण धर्मनिष्ठ है तथा शैव और वैष्णव इन दो सम्प्रदायोंमें विभक्त है। प्रचलित हिन्दू-देवदेवियोंके सिवा वे बड़धौर, महावीर और शारदाको आराधना करते हैं। यैशाख संक्रान्तिमें रत्ननशालामें लड्डू और होम द्वारा गौरीपति अर्थात् शिवकी अर्चना की जाती है। यैशाख-मासके मङ्गलवारमें घटस्थापन करके लड्डू, उपचोत, पुष्प माला आदि द्वारा महावीरकी पूजा होती है। संक्रामकरोगका प्रभाव होने पर वे भयानीगो आराधना करते हैं। भाट (सं० पु०) १ वर्णसङ्कर जातिविशेष। २ स्तुति, पाठक। ३ राजदूत। ४ भाड़ा।

भाट (हि० खो०) १ वह भूमि जो नदीके दो करारोंके बीचमें हो, पैटा। २ नदीका किनारा। ३ नदीका बहाव, उतार। ४ बहावकी वह मिट्टी जो नदीका चढ़ाव उतरने पर उसके किनारों परकी भूमि पर घा कटारमें जमती है।

भाटक (सं० पु० श्लो०) भाटतीति भट पोषणे ष्वुल्। व्यवहारार्थं दत्तशकटादि लभ्य धन, भाड़ा।

भाटकल—धर्मप्रदेशके अन्तर्गत उत्तर कनाड़ा जिलेका एक प्राचीन शहर। यह अज्ञा० १३° ५६' ३०" तथा देशा० ७४° ३२' ५०"के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या सात हजारके करीब है। इसका प्राचीन नाम मणिपुर है। १४वीं शताब्दीसे १६वीं शताब्दी तक यह नगर घटिकल, घटिकुल आदि नामसे पाश्चात्य भ्रमणकारियोंके निकट विख्यात था।

पहले इस नगरमें चावल और चीनीका जोरों वाणिज्य चलता था। गोभा, अरमुज आदि स्थानोंके घणिक इस स्थानमें हमेशा वाणिज्यके लिये आया करते थे। १५०५ ई०में पुर्तगालीने इस नगरमें एक फोटी खोली। किन्तु गोभा नगर अयोधके बादसे उन्होंने इस स्थानकी आशा एक तरहसे छोड़ दी थी। १६५६ ई०में अंगरेजोंने यहाँ पर दो पजेन्सी

को, पर किसी प्रकार के कृतकार्य न हो सके। कप्तान हिमन्तना कहता है, कि १८वीं शताब्दीके प्रारम्भमें यहाँ अनेक हिन्दू और जैन देवमन्दिरोंका मरनाचशेष चर्तमान था।

भाटकुली—अमरावती जिलेका एक नगर। यह अमरावती शहरसे १० मील दूर अक्षा० २०° ५४' ३०" तथा देशा० ७७° ३६' ५०"के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २७६७ है।

भाटनेर—हनुमानगढ़ जिलेका एक शहर। यह स्थानक गिरिदुर्ग इतिहासमें विख्यात है। राजस्थानके प्रणेता टाड तथा कप्तान पाउनेट आदि महाशयगण इस दुर्गको भूरि भूरि प्रशंसा कर गये हैं। तारीख-इ-हिन्द नामक मुसलमान इतिहासमें लिखा है, कि मुल्तान महमूदने १००१ ई०में भारत-चढ़ाईके समय इस दुर्ग पर अधिकार किया था। राजस्थानमें लिखा है, कि यह दुर्ग तैमुर लङ्गसे अधिग्रहण हुआ था। उन्होंने अपने वंशके किसी सम्भ्रान्त व्यक्तिके हाथ इस दुर्गका कुल भार सौंपा। किन्तु भट्टिगणके निकट परास्त हो कर मुगलोंने इस दुर्गको छोड़ दिया। १५२७ ई०में सेन्सिह कोन्थालत सदाछायल-राजपूतोंको परास्त कर भाटनेरको पुनः अपने अधिकारमें लाये। १५४६ ई०में हुमायूँके भाई कामरानने सेन्सिह और पाँच हजार राजपूतोंको मार कर इस दुर्गको फतह किया। किन्तु थोड़े ही दिनोंके अन्दर वे बीकानेरके राजा जैतसासे पराजित हो कर दुर्ग छोड़नेको बाध्य हुए। पीछे फिरोज छपालके पुनः इस दुर्गको हस्तगत करने पर राय जैतमाने अपने लड़केको उनके विरुद्ध भेजा। उन्होंने मुसलमानोंको परास्त कर दुर्ग पर अधिकार जमाया।

सम्वत् १८१६ अथवा १८१७ ई०में होसैन महमूद नामक एक भट्टिनेता इस नगरको जीतनेके कुछ समय बाद ही पराजित हुए। सम्वत् १८६१ ई०में बीकानेरको सेनाने बड़े कष्टसे इस स्थानको जीता था। १८०० ई०में जाज टामसने इस दुर्ग पर दखल जमाया। किन्तु वे अधिक दिन तक इसे अपने अधिकारमें न रक सके। आन्तरिक यह दुर्ग बीकानेर राज्यके अन्तर्भूत हुआ था यह शहर अभी हनुमानगढ़ नामसे प्रसिद्ध है।

भाटपुर—भयोप्याके अन्तर्गत हरसाही जिलेका एक ग्राम। यह गोमतो नदीके दाहिने किनारे पड़ता है।

भाटशोल ( स० ह्री० ) जलजात तन्नामक उद्भिदविशेष।  
(Aeschly nomece Paludosa)

भाटा ( हि० पु० ) १ पानीका चढ़ावकी ओरसे उतारको ओर जाना, चढ़ावका उतरना। २ समुद्रके चढ़ावका उतरना, ज्वारका उल्टा। ज्वारभाटा देखे। ३ पयरीली भूमि।

भाटि (भट्टि)—राजपूत जातिविशेष। ये लोग चन्द्रवंशीय यदु-कुल-सम्भूत हैं। प्रवाद है, कि भाटिगणने अति प्राचीन कालमें अपने आदिम स्थानका परित्याग कर मरुस्थल और गजनीमें राज्य बसाया। पीछे रोमके बादशाह तथा खोरामनाधिपतिने युद्धमें परास्त हो कर ये लोग पुनः सिन्धुनदीको पार कर गये और पञ्जाबमें उपनिवेश बसाया। दुशाल और जयशाल नामक भाटिके दो पुत्र थे। जयशालसे जगलमौर राज्यकी सृष्टि हुई। दुशालने भट्टियानामें अपना वासस्थान कायम किया। जाट और बत्तू शाखा दुशालसे उत्पन्न हैं।

राठोर जातिके अभ्युदयके पहले जगलमौरका राज्य बहुत दूर तक विस्तृत था। जगलमौर राजगण भाटि-वंशीय हैं। पञ्जाबमें प्रायः सब जगह इस जातिका वास देखा जाता है। किन्तु भट्टियानाके अन्तर्गत भाटनेर नगर इनका आदि वासस्थान कह कर प्रसिद्ध है।

जाट और भाटिगण अभी इस प्रकार मिश्रित हैं कि, उनके मध्य कोई पृथक्ता नहीं देखी जाती। इन लोगोंके मध्य भी बत्तू और जहमवर आदि उपशाखाएँ हैं। भाटिगण हिन्दूधर्मावलम्बी हैं। मुसलमानों, अमलदारीमें बहुतोंने मुसलमान धर्मग्रहण किया था। भाटिगण उच्चवंशीय राजपूतोंके साथ वैवाहिक सम्बन्ध करते हैं।

भाटि—मुन्दरवनका जो अंश हिजली परगना और मेपना नदीके मध्यवर्ती है, उसे मुसलमान ऐतिहासिकगण भाटि नामसे उल्लेख कर गये हैं। यह अक्षा० २०° ३०' से २२° ३०' ३०" तथा देशा० ८८° से ६१° १४' ५०"के मध्य विस्तृत है। उषारके समय जलप्लावित होता है और भाटाके समय जग उठता है, इसी कारण इसे भाटि कहते हैं। वर्तमान समयमें मुन्दरवनका जो अंश बापरवाञ्च और तुलना जिलेमें अवस्थित है, यह भी भाटि कहलाना है।

भाटिया—राजपूत जातिको एक शाखा । प्रधानतः मथुरा, सिन्धु, गुजरात; युक्तप्रदेश, वधर, कच्छ, पंजाब और बङ्गालके कई स्थानोंमें इनका निवास है । इनकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें नाना प्रकार किम्वदन्तियां प्रसिद्ध हैं । मथुराके भाटिया लोग भाटसिंहको अपना पूर्वपुरुष कहते हैं । पुराणोल्लिखित यदुवंश ध्रुवसके समय ओधू और यज्ञनाम नामके दो यादवोंने भाग कर आत्मरक्षा की थी । यज्ञनाम कुछ दिन राजा वानासुरके आश्रयमें रहे थे । उसके बाद महाराजाधिराज पाण्डवकुल-तिलक परीक्षितने मातृगर्भमें श्रीहृण्य द्वारा जीवनरक्षाके प्रतिदानस्वरूप, असहाय यज्ञनामको मथुरा और इन्द्रप्रस्थ राज्य प्रदान किया । यज्ञनाम और उनके वंशके अन्वयो नरपतिगण निर्ब्रह्मतः राज्य करते रहे । यदुवंशीय शेष राजा जयसिंहके राजस्थकालमें ययानाके राजा अजयपालने मथुरा पर चढ़ाई कर जयसिंहको पराजित और निहत्त किया । विजयपाल, अजयराज और विजयराज नामक जयसिंहके तीन पुत्रोंने कर्नाऊँ जा कर वहाँ एक राज्य स्थापित किया । उसके बाद ज्येष्ठ भ्राताके साथ दोनों भाइयोंका कलह उपस्थित हुआ, तो उन दोनोंने करौलीके निकटवर्ती एक भयानक जंगलमें जा कर देवी अम्बामाईकी आराधना की । देवीने सन्तुष्ट हो कर उन्हें जब बर देना चाहा, तो उन्होंने राज्यप्राप्तिका बर माँगा । इसके बाद देवीके आदेशसे अजयराजने भट्टिसिंह नाम रख कर जैसलमेर राज्य स्थापित किया । परंतु जैसलमेरकी प्रचलित किम्वदन्तीके साथ उल्लिखित मथुराके प्रवादमें कुछ पार्याय्य दृष्टिगोचर होता है । श्रीहृण्यकी मृत्युके बाद यादवगण चारों तरफ जाने लगे । उस समय श्रीहृण्यके दो पुत्रोंने सिन्धुके किनारे उपनिवास स्थापन किया था । उसके बाद उन लोगोंमें शालिवाहन नामक एक व्यक्तिने पंजाब जय कर वहाँ अपने नामानुसार एक नगर स्थापित किया । कालांतरमें ये राजनीराज मुलतान महमूद द्वारा पराजित और विताड़ित हो कर जैसलमेरमें वास करने लगे ।

इस प्रकार कहा गया है कि, भाटियाओंके पार्व्यात्य वासस्थानकी छोड़ कर मथुरा आ कर बसने पर राजपूतोंने उनके साथ वैवाहिक-सम्बन्ध स्थापन करना अस्वी-

कार किया । उसके लिए उन लोगोंने मुलतानमें एक सभा बुलाई और अनेक वादानुवाचके बाद शास्त्रब्रह्मणोंके साथ परामर्श कर स्थिर किया कि, पाल और पात्रीके पूर्वपुरुषोंमें ४६ पुरुषका व्यवधान होने पर परस्परमें विवाह हो सकता है । इस प्रकार वंश-व्यवधानमें उनमें स्वतन्त्र नुस्ख या योककी उत्पत्ति हुई थी । स्वगोत्रमें विवाह प्रचलित होने पर भी एक नुस्खमें नहीं हो सकता । उन थोड़ोंका नामकरण किसी किसी व्यक्ति वा नगर अथवा व्यवसायके नामानुसार हुआ था । सप्त गोत्रमें कुल मिला कर ८४ नाम हैं ।

भाटिया हिन्दूधर्मवलम्बी हैं और हिन्दू-रीत्यानुसार ही इनकी विवाहादि क्रियाएँ निष्पन्न होती हैं । इन लोगोंके विवाहमें कुलाचार्यकी आवश्यकता नहीं होती । वर-कन्याके पिता अथवा अभिभावकगण ही विवाहकी बात चोत तय कर लेते हैं । कन्याके पिता मनोनोत भावो जामताके पास कुछ शक्कर, एक रुपया और नारियल भेजेगे । इसको 'सगुन' कहते हैं । ये चीजे उसके पिता, भाई और बन्धवगणोंके सामने उसे दी जाती हैं । इस प्रकार सगाई पक्की होने पर फिर विवाहमें कोई बाधा नहीं आ सकती । परन्तु यदि वर अथवा कन्याको कोई अङ्गुष्ठानि हो, तो विवाह नहीं होता । लड़कियोंका विवाह बारह वर्षसे पहले होता है । खो बन्ध्या होने पर, रोगग्रस्त अथवा ध्यभिचारिणी होने पर ही एक स्त्रीके रहते हुए पुरुष दूसरा विवाह कर सकता है, अन्यथा नहीं । असती स्त्री और पर दारासक्त पुरुषोंको समाजच्युत किया जाता है ।

भाटियागण प्रायः ध्यवसायी होते हैं । ये हृषिकाय, नीकरो और दुकानदारी आदि द्वारा भी जीविका-निर्वाह करते हैं ।

२ दक्षिणात्यका एक ध्यवसायी सम्प्रदाय ।

भाट्या देखो ।

भाटियारा (भाटियारा) —सेनापतिनीको पश्चात्तामी ब्राह्मणव्य विक्रयकारो जातिविरुध, युक्तप्रदेशवासी मुसलमान । सराय आदिमें पाचकवृत्ति और तमाकू

६ कोई कोई अनुमान करते हैं, कि संस्कृत शब्दकार शब्दके अन्वयमें उनका वर्त्तमान नामकरण हुआ है ।



आदि घेवना ही इनका जातीय व्यवसाय है। ये लोग अपनेको शेरगाहके पुत्र सलीमशाहके वंशधर बतलाते हैं; मुगल-सम्राट् हुमायूँ द्वारा शेरगाहसी पराजयके बाद इन लोगोंने दैत्यराममें पहुँच कर दास्यवृत्तिका अवलम्बन किया है। उक्त प्रवादके मूलमें चाहे कुछ भी सच न रहे, पर इन लोगोंमें शेरगाहसी और सलीमशाहसी नामक शोक अवश्य है। इसीसे अनुमान किया जाता है, कि इन लोगोंने उक्त प्रवादके अवलम्बन पर दो शोकोंका उद्गावन कर लिया है।

फिर दूसरी कियदन्तीसे जाना जाता है, कि ये लोग हिन्दू भाट्टि जातिसे इस्लाम-धर्ममें दीक्षित होनेके बाद वर्तमान संज्ञाको प्राप्त हुए हैं। इनमें भाट्टियारा और हरिचारा नामक दो स्वतन्त्र शोक हैं। घेणभूवाको पृथक्तासे आपसमें स्वतन्त्रता देनी जाती है। विभिन्न स्थानमें रहनेके कारण इनके प्रायः ५२ श्रेणोविभाग हो गये हैं। आगे चर कर भाट्टि जाति अथवा अन्य श्रेणोके हिन्दू इनके साथ मिल गये थे, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। भोल, चौहान, जालशुबी मुन्वेरी, नामवाँ आदि हिन्दू नामधेय श्रेणो हैं; उसका प्रष्टष्ट प्रमाण है।

ये लोग सभी सुश्रो-सम्प्रदायो मुसलमान हैं। गाजी-मीया और पांचपीरके ऊपर इन लोगोंकी अचला भक्ति है। मृतदेह दफनाई जानेके बाद प्रेतात्माकी कुशल-प्राथनाके लिये ये लोग तीसरे दिन 'तोज' और चालीसवें दिन 'छेदलम्' नामक उत्सव मनाते हैं। विवाहका शुभ दिन निर्देश करनेके लिये ब्राह्मणका परामर्श लेते थे, पर अभी सभी कार्य मुसलमानों प्रधानुसार होते हैं। शेरगाहसी और सलीमशाहसी रमणियाँ ज्योतिचार-शैयसे कलङ्कित हैं। सरायमें पंखियोंका आदर-सत्कार करनेमें ये विशेष पट्ट हैं। मिर्जापुर प्रदेशके पश्चिमवासों भाट्टियागण 'महोमीर' कहलाते हैं। ये लोग मांस घेव कर अपना गुणारा चलाते हैं।

भाट्या (भाट्टिया) दक्षिणात्यवासो वंशिकविशेष। भाट्टि-जातिसे इनकी उत्पत्ति है। ये लोग सर्वतोभाष्यमें हिन्दू हैं, सभी निरामिषवांगो हैं, मध मांस या मत्स्य-भोजन इनमें विलकुल निषिद्ध है। इनमेंसे अधिकांश वैष्णव हैं, गोपाल, कृष्ण आदि विष्णुमूर्तिके उपासक हैं।

देवद्विजमें इनकी विशेष भक्ति है। स्थानीय सभी देवता-विग्रहके प्रति ये लोग विशेष श्रद्धावान् हैं।

भाट (हि० ग्यो०) १ घह मट्टो जो नदी अपने साथ चढ़ाव-में बहा कर लाती है और उतारके समय फछारमें ले जाती है। यह मट्टी तहके रूपमें भूमि पर जम जाती है और खादका काम देती है। २ भाट देणो। ३ घारा, बहाव।

भाटा (हि० पु०) १ भाटा देणो। २ गवुडा।

भाटो (हि० स्त्री०) पानोका उतार, भाटा।

भाड़ (हि० पु०) भड़भूँजोंकी मट्टी। इस मट्टीमें वे अनाज भूननेके लिये बाढ गरम करते हैं। इसका आकार एक छोटी कोठरी सा होता है जिसमें एक द्वार होता है और और जिसकी छत पर बहुतसे मट्टीके बरतन ऊपरकी मुँह करके जड़े होते हैं। इसको शीघर सया हाथ ऊँची होती है। इसके द्वारसे इन्धन डाला जाता है। आगकी गरमोसे बाढ लाल होता है जिसे अलग निकाल कर दूसरे बरतनमें दानोंके साथ रग कर भूतते हैं। दो तीन बार इस प्रकार गरम बाढ डालने और चलानेसे दाने खिल जाते हैं।

भाड़भूत (भारभूत) बम्बई प्रदेशके भरौच जिलान्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह नर्मदाके उत्तरो किनारे अवस्थित है। यहां भारभूँब्यर महादेवके सामने हर शोसर्वे वर्ष एक मास तक मेला लगता है। उस समय लाखों मनुष्य इकट्ठे होते हैं। यहांके देवमन्दिरका गर्च गयमेंष्टसे दिया जाता है।

भाड़ा (हि० पु०) १ किराया। २ हाथ भर ऊँची एक प्रकारकी घास। यह निर्यल भूमिमें बहुतायतमें उगती है। पशु इसे बड़े चावसे खाते हैं। ३ यह दिना जिन ओरको दायु बहती हो।

भाण (सं० पु०) भणवतेऽनेति भण-भणिकरणे घम्। भाट-कादि दृशरूपके अन्तर्गत रूपकविशेष। यह एक मट्टुका होना है और इसमें हास्यरसकी प्रधानता होती है। इसका नापक कोई नियुग, पण्डित या अन्य चतुर व्यक्ति होता है। इसमें मठ आकाशकी और देव कर आप ही आप मारो कहानी उक्ति प्रत्युक्तिके रूपमें कहता जाता है, मानो यह किसीसे बात कर रहा हो। यह बोध शीघ्रमें

हस्ता जाता और कोषादि करता जाता है। इसमें धूर्सके चरित्रका अनेक अवस्थाओं सहित वर्णन होता है। बीच-बीचमें कहीं कहीं संगीत भी होता है। इसमें जीर्थ और सीमाय द्वारा शृङ्गार रस भी सूचित होता है। संस्कृत भाषाओंमें कौशिकी वृत्ति द्वारा कथाका वर्णन किया जाता है। यह दृश्यकाव्य है। नाटक देखो।

- २. व्याज. मिस। ३. ज्ञान, बोध।

भाणक (सं० पु०) भाण एव स्वार्थे कन्। भाण। भाणकस्थान (सं० श्लो०) रोमकसिद्धान्त वर्णित स्थान भेद।

भाणिका (सं० स्त्री०) भाण, एक अंकमे समाप्त होनेवाला हास्वरसप्रधान दृश्यकाव्य।

भाण्ड (सं० फली०) भण्यते भणति चेति भन्-शब्दे (अमन्ताहुः। उण् १।११३) इति ड, ततः प्रहादित्वाच्। १. पात्र, बरतन। मिताक्षरामें लिखा है, कि चाहक के दोषसे यदि भाँड़ फूट जाय, तो उसे क्षतिपूर्ण करना होगा। यदि द्रव्यकृत वा राजकृत फूट जाय, तो कुछ भी नहीं देना होगा। (मिताक्षरा०) २. घणिकका मूल घन, पूँजी। ३. भूया। ४. अभवभूया। ५. भण्डवृत्ति, भाँड़पन। ६. गर्दभाण्डवृक्ष।

भाण्डक—मध्यप्रदेशके चम्पा जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षां २०° ७' उ० तथा देशां ७६° ७' पू० चम्पानगरसे ६ कोस उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। नगरके पश्चिममें एक सुप्राचीन जङ्गल है जो मतालसे भरपत तक फैला हुआ है। प्रवाद है, कि यहाँ महाभारतके भद्रावती नगरी स्थापित थी। भीमसेन यहाँ पर युवनाभ्य राजके साथ युद्ध करके उनके सङ्घण नामक यक्षीय अश्वको हार ले गये थे। दिवाला पर्वत पर आज भी भीमके पर्दाचिह्न देखे जाते हैं।

भाण्डकके गुहामन्दिर तथा दिवाला और विन्ध्यासन पर्वतके मन्दिरादि, गिरिदुर्ग, अद्रावनीके मन्दिर, राजप्रासादकी ध्वंसावशेषमिति, निकटस्थ हद्दोपरिस्थ सेतु और सैकड़ों मन्दिरादिके ध्वंसावशेषसे यहाँका प्राचीन समृद्धिका विषय जाना जाता है। अभी इसकी यह समृद्धि अपहृत हो गई है।

जैन हरिवंशमें इस प्राचीन नगरका उल्लेख है।

यह प्राचीन कौशल-राज्यके अन्तर्भूक्त था। प्रत्नतत्त्वविद् कनिहमने इसे शिलालिपि कथित वाकाटक राज्य माना है। पूर्वोक्त ध्वंसावशेषको छोड़ कर यहाँ पार्श्वनाथ, बदरीनाथ और चण्डीदेवीका मन्दिर विद्यमान है। यहाँके विन्ध्यासन पर आज भी अनेक सुप्राचीन बौद्धस्तूपमन्दिरका भग्नावशेष देखनेमें आता है।

भाण्डक (सं० श्लो०) धृद्र पात्रविशेष, छोटा भाँड़। भाण्डगोपक (सं० पु०) यह जो बौद्धसंघारामादिमें भाण्डादिको रक्षा करते हैं, बौद्धमण्डारी। भाण्डपति (सं० पु०) घणिक, व्यवसायी। भाण्डपुट (सं० पु०) भाण्डे पुटो यस्य। नापित, नार्ह। भाण्डपुष्प (सं० पु०) सर्पविशेष। पर्याय—कौषकुटि-फन्दल।

भाण्डप्रतिभाण्डक (सं० श्लो०) १. विनिमय, बदला बदला। २. लीलावत्युक्त अष्टविशेष। इसका नियम इस प्रकार है,—विनिमय प्रक्रियाका फल तैपसिकके अनुसार और अपेक्षाकृत सहजमें जाना जाता है। अन्यान्य विषयोंमें बहुराशिकके साथ इस प्रक्रियाका सम्पूर्ण ऐक्य है। विक्रयता फेल इतनी हो है, कि दोनों श्रेणीके फल और हरको विनिमयकी तरह इसमें मूल्यका भी परिवर्तन करना होता है।

तोचि इसका एक उदाहरण दिया जाता है,—

यदि ३०० अनारका मूल्य १६ रु० और ३० आमका १ रु० हो, तो १० अनारके बदलेमें कितने आम मिलेंगे ?

३००	३०	परिवर्तन	
१६	१	३००	३०
१०		१	१६
			१०
३०० + ४८००		गुणनफल	

भागफल १६  
अथवा ३०० अनारका दाम यदि १६ रु० हो, तो १० का दाम कितना होगा ? इससे १० अनारका दाम  $\frac{१६ \times १०}{३००} = ८ \frac{८}{१५}$  आना जाना गया। फिर ३० आमका दाम १ रु० होनेसे एक आमका दाम २ पैसा हुआ। अब देखना चाहिये, कि १ आमका दाम १० अनारके मध्य कितनी बार शामिल हैं :—

परायण श्रीकृष्णके सेवक गणभेद । २ नापित जानिकी । एक ग्राम्या । नापित देतो ।

भाण्डारिया—वर्षाई प्रदेशके काठियावाड़ राज्यके अन्तर्गत एक सामन्तराज्य । यहांके सरदार गायकवाड़-राज और जूनागढ़के नवाबको कर देते हैं ।

भाण्ड ( स० पु० ) भण्ड-इन, धृषोदरादित्वात् साधुः । नापितके क्षुरादिका आधार ।

भाण्डिक ( स० पु० ) १ भाण्डिल, हजाम । २ तुम्हो आदि पजा कर राजाओंको जगानेवाला मनुष्य ।

भाण्डिकजङ्घि ( स० पु० ) भाण्डिकङ्कना गोत्रापत्य ।

भाण्डित ( स० पु० ) भाण्डिनका गोत्रापत्य ।

भाण्डितायन ( स० पु० ) भाण्डितका गोत्रापत्य ।

भाण्डित्य ( स० पु० ) भाण्डितका गोत्रापत्य ।

भाण्डिनो ( स० स्त्री० ) १ पेटिका, पेटो । २ मञ्जुषा, छोटी पिटारो ।

भाण्डिल ( स० पु० ) भाण्डिकस्यभ्येति भाण्डिल-लन् । नापित, हजाम ।

भाण्डिलायन ( स० पु० ) भाण्डिलस्य गोत्रापत्यं भवादित्वात् फल् ( या ४।१।११० ) नापितका गोत्रापत्य ।

भाण्डिवाह ( स० पु० ) भाण्डि क्षुराधाधारे वहतीति यह धण् । नापित, हजाम ।

भाण्डिशाला ( स० स्त्री० ) क्षीर प्रह, यह स्थान जहां घेत कर हजामत बनाई या बनवाई जाती है ।

भाण्डोर ( स० पु० ) मण्ड-इन्च्, धृषोदरादित्वात् साधुः । घट्टस, बड़का पेड़ । २ मञ्जमण्डलके मध्य सोलह घटघनोंमेंसे दूसरा घटघन । ३ क्षुपविशेष ।

भाण्डोरलतिका ( स० स्त्री० ) मञ्जिष्टा, मजोठ ।

भाण्डोरघन—वृन्दावनके चौरासी बनों में एक घन । श्रीकृष्णका लीलाक्षेत्र होनेके कारण यह एक पवित्र तीर्थक्षेत्र समझा जाता है । यहां सुदाम मत्स्या और बन्दरामकी मूर्ति स्थापित है ।

भाण्डेर—युक्तप्रदेशके भोसरी जिल्लाअन्तर्गत एक प्राचीन नगर ।

यह अक्षां २५° ४३' ३०" उ० तथा देशां ७८° ४७' ५५" पू०के मध्य अवस्थित है । भूपरिमाण २४८ एकड़ है । इस नगरको प्राकृतिक जीभा भूति मनोरम है । यह मंडल निसर्गमत्तक भूमिसे पर्यटके पारदेश नरक विभव

पर्यटके ऊपर बीदसङ्काराम, असंख्य मन्दिर, तड़ाग और कृपादिका चिह्न विद्यमान हैं । मन्नाट और कुजेशके अधिकांशकालमें निर्मित एक मस्जिदमें दीर्घकोसिसे बनेरूप्य निदर्शन पाये जाते हैं । दुर्मिक्ष और प्लेगके कारण यह नगर कमशः जनशून्य होता जा रहा है । यहां सड़ूभा नामक वस्त्र और सफेद कम्बल तैयार हो कर भाऊ, ग्वालियर, कालपी आदि स्थानोंमें भेजे जाते हैं ।

भाण्डेश्वर—बिहार और उड़ीसाके हजारीबाग जिल्लाअन्तर्गत एक छोटा पर्यट । इसकी ऊँचाई १७५१ फुट है । यह पहाड़ दुरारोह और बसने लायक नहीं है । इसके चारों ओर बहुतसे छोटे छोटे पहाड़ हैं ।

भात ( स० स्त्री० ) भा-दीमी क । १ प्रभात, सवेरा । २ दीप्ति, प्रकाश । ( त्रि० ) ३ क्षीमित्युक्त, चमकीला ।

भात ( दि० पु० ) १ पानोंमें उबाला हुआ चावल, पकाया हुआ चावल । भक्त देवता । २ विवाहको एक रसम जिसमें समथोको भात गानेके लिये कन्याके घर बुलाया जाता और उसे भात खिलाया जाता है । यह रसम विवाहके दूसरे या तीसरे दिन होता है ।

भातगाँव—नेपालराज्यके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर । यह अक्षां २७° ४२' ३०" तथा देशां ८५° २६' पू०के मध्य अवस्थित है । जनसंख्या नौस हजामके करीब है । इसका प्राचीन संस्कृत नाम अक्तपुरो है । पहले यह नगर नेपालवामो ग्राहणोंका मियतर घास स्थान था । नैवार जानिके सम्बुद्धयमे यहां हिन्दूनेवारोंकी संख्या अधिक है । गुराणोंके आक्रमणके पहले यहां महर्ष्यजीय राजा राज्य करने थे । १७६८ ई०में उन्हें गुरखाओंने परास्त किया था । यहां नेपालराज्यका एक सेना-निवास है । यह नगर ८ मील लंबे काठके एक पुलने राजधानी काठ-मण्डूके साथ संयोजित है । स्थानीय व्यवहारोगदीगो पोतल और तंबिके बरतन नैवार होने हैं । यहां एक अस्पताल है जिसका निर्माण १९०४ ई०में हुआ है ।

नेवार देवा ।

भातगाँव—मध्यप्रदेशके पिन्नामपुर जिल्लेकी एक तामी- ३४' २०" उ० तथा देशां ८२' ३५" पू०के मध्य अवस्थित है । भूपरिमाण २२ वर्गमील है । यहांके अधिकांश हैं ।

२ उक्त सम्पत्तिका प्रधान ग्राम और शिवनारायण तहसीलका सदर ।

भातगाँव—विहार और उड़ीसाके पूर्णिया जिलेका एक शहर ।

भाता ( हि० पु० ) उपजका वह भाग जो हलवाहिको राशि-मैसे खलिहानमें मिलता है। पूर्वकालमें जब मासिक चेतन या दैनिक मजदूरी देनेकी प्रथा नहीं थी, तब हल जोतनेवालेको अन्नकी उपजका छटा भाग दिया जाता था और उसके बदलेमें वह वर्ष भर स-परिवार खेतके सब काम काज करता था। यह प्रथा अब भी नेपालकी तराई में कहीं कहीं है।

भाति ( सं० खी० ) भा-क्तिन् । १ जोभा, कान्ति ।

भाति ( हि० खी० ) भाति देखो ।

भातु ( सं० पु० ) भातोति भा (कमिषण-जनिगाभायादिभ्यश्च । उण् १।७३) इति तु । १ सूर्य । २ दोस ।

भातु—निरुद्ध जातिविशेष । युक्तप्रदेश और दक्षिणात्यमें इसका वास है। युक्तप्रदेशमें ये नारायण और वाँसकी पूजा करते हैं। परन्तु दक्षिणात्यके भातु मूर्तिपूजा करते ही नहीं। ये ध्यायाम, कुन्दन और चेन्द्रजालिक शोड़ा द्वारा अपनी जीविका निर्वाह करते हैं। ये संशोय, बेरीय, हादुर, कोलाहाडी, दुग्ग, दुधेरवर आदि नामोंसे भिन्न भिन्न स्थानोंमें प्रसिद्ध हैं।

भातुड़िया—१ एक प्राचीन गण्ड ग्राम, भातुड़िया जिलेका प्रधान नगर। इसके पश्चिममें महानन्दी और पुनर्भवा, दक्षिणमें गङ्गा, पूर्वमें करतोया और उत्तरमें दिनाजपुर तथा थोड़ाघाट है। मुसलमानी अमलदारोंमें मालवहका पूर्वोक्त भातुड़िया नामसे प्रसिद्ध था; भातुड़िया राज कंत्र यहांके शासनकर्त्ता थे। पीछे ग्राह्यणवंशीय जर्माँदार रामकृष्णकी स्त्री शर्वाणीदेवीने इस सम्पत्तिका भोग किया। उनकी मृत्युके बाद यह स्थान नादोरराजवंशके पूर्वपुत्र-रघुनन्दनके हाथ लगा।

२ वर्द्धमान जिलेका एक गण्ड ग्राम। यह अक्षा० २३° २६' ३०" तथा देशा० ८८° २३' पूर्वके मध्य अवस्थित है।

भातोड़ी—बम्बई प्रदेशके अहमदनगर जिलेके अन्तर्गत एक गण्ड ग्राम। यह अहमदनगरसे ५ कोस उत्तर-पर्व

मेहकरी नदीके किनारेअवस्थित है। यहां ४४५ निजाम-शाही राज मूर्तजा निजामशाह ( १५६५-१५८८ ई० ) के प्रधान मन्त्री सलायत खाँका बनाया हुआ एक सुवहन् हद है। १८७७ ई०में ब्रिटिश-सरकारने इसका संस्कार कराया था। यहांका नरसिंह-मन्दिर गिल्पनेपुण्य-पूर्ण है।

भाथा ( हि० पु० ) १ चमड़ेकी बनी हुई लम्बी शैली। इसमें तीर भर कर तीर चलानेवाले पीठ पर वा कटिमें बांधते हैं। इसे तरकज या तूणीर भी कहते हैं। २ बड़ी भाथी।

भाथी ( हि० खी० ) १ चमड़ेकी धींकनी जिसे लगा कर लोहार भट्टीकी आग सुलगाते हैं। धींकनी देखो।

भाद्र—बम्बई प्रदेशके अहमदाबाद जिलेमें प्रवाहित एक नदी। रणपुरके निकट भाद्रगोमासङ्गम पर आजम खाँ नामक गुजरातके एक सूबादार द्वारा प्रतिष्ठित ( १६३८ ई० ) एक भग्नदुर्ग विद्यमान है। २ भाद्रमास।

भाद्र—बंगालके अन्तर्गत बाँकुड़ा और मानभूम जिलेमें रहनेवाली वाउरी जाति द्वारा अनुष्ठित एक उत्सव, जो भाद्रमासकी संक्रान्ति और उससे पहले दिन हुआ करता है। यह भाद्रोंके महोत्सव होता है, इसीसे इसका नाम भाद्र पड़ा है। लगभग प्रत्येक वाउड़ीके घरमें, भाद्रमासके प्रारम्भसे ही स्त्रियाँ पत्रके ऊपर वा एक चौकोन तख्त पर एक कुमारी मूर्ति स्थापन कर उसे देवीकी मूर्ति मान कर नाना अलङ्कारोंसे सुशोभित किया जाता है। उस मासमें प्रत्येक शामको घण्टाघण्टा रमणो और बालिकाएँ एकत्र हो कर उस देवीके चारों तरफ नृत्यगीतादि करती हुई प्रदक्षिणा देती हैं। मासके अन्तमें दो दिन तक राति दिन नृत्यगीत और ढोल बजा कर बड़ी धूमधामसे इस उत्सवको पूरा करती हैं। इसे उनका व्रत समझना चाहिए।

भाद्रों ( हि० पु० ) एक महोत्सवका नाम, सावनके बाद और कारके पहलेका महोत्सव। भाद्र देणो।

भाद्र ( सं० पु० ) भाद्रो पूर्णिमास्वस्तिमन्त्रिति भाद्रो। ( वास्तिन पीर्षानगोति वा ४।२।२१ ) इत्यण्। वैशाख आदि बारह मासोंके अन्तर्गत एक मास। इस मासकी पूर्णिमा तिथिमें भाद्रपद नक्षत्रका योग होता है।

इसलिये इसका नाम भाद्र हुआ है । प्रथमतः यह मास दो प्रकारका है, सौर और चान्द्र । सूर्य और चन्द्र ले कर सौर और चान्द्र हुआ है । सिहरादिमें जितने दिन सूर्य रहते हैं, उतने दिन सौरभाद्र है । चान्द्र-मास भी मुख्य और गौणचान्द्रके भेदसे दो प्रकारका है । सिहरूप रव्यारूप शुक्र प्रतिपदादि अमास्यस्या पर्यन्त मुख्य चान्द्र भाद्र है और सिहरूप रव्यारूप पूर्णिमा पर्यन्त गौणचान्द्र । (मलमासवत्य) पर्याय—नभस्य, प्रौष्ठपद, भाद्रपद । (अमर) इस मासमें जन्मग्रहण करने पर धौर, वराहूनभोंका प्रिय, रिपुसंहर्ता, कुटिल और स्वयंदा हास्ययुक्त होता है ।

“नभस्यमासे तनु जन्म यत्न धोरौ मनोशुभ वरागनानाम् ।  
रिपुसाम्भो वृष्टिभोऽतिमर्मा प्रसन्नमर्ता स भवेत् सहायः ॥”  
(कीर्त्तिस०)

यदि भाद्रमासमें किसीके घर गाय बियाये, तो उसको ६ मासके भोतर मृत्यु हो जाती है । अतएव भाद्रमासमें गाय बियाये पर तुरत ही वह गाय ब्राह्मणको दान कर देना चाहिए । पश्चात् यथाविधान होम करना आवश्यक है । यहाँ भाद्रमासमें सिर्फ सौरभाद्र हो समझना चाहिए । चान्द्रभाद्रमें गाय बियाये तो कोई दोष नहीं है ।

“भानी सिद्धान्ते चैव कस्य गोः सम्प्रयुक्ते ।  
गरवां तस्य निर्दिष्टं पद्ममिमांसेनं संशयः ॥  
तव शान्ति प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् ।  
प्रयूतां तत्त्वयादेव तां गो विप्राय दास्येत् ॥”

होमादि शान्ति-विधान करनेको आवश्यकता नहीं । संक्रान्तिमें इस पुण्यकालके बाद प्रसव होने पर शान्ति-करना उचित है, शार्भादान अनावश्यक है ।

श्रमण्योत्तरपेण्डनदपञ्चमक पुष्यरुद्राभ्यन्तरे गोः पूगये विरुग्मृशानक-गोपूदानपूर्वकं शान्तिः कार्येति विद्वेषः तदति-रिक्तसिहरूपयो गोःपूगये शान्तिमात् कर्त्तव्यं न गोः पूदानम् ॥”  
(निर्वाणकियु)

भाद्रमासमें कीनमे दर्भ करना आवश्यक है, उसका विषय कृत्तरक्षमें इस प्रकार लिखा है,—आवयो पूर्णमासे वाद् भाद्र कृत्पाशुमोघन समोको करना चाहिए । जन्माद्यो मध्यमें विद्वेष विरह्ये वेते ।

भाद्रमासकी शुक्ला पक्षमोको नागपूजा की जाती

है । जो विधानानुसार कर्कोटकादि नागपूजा करते हैं, उनको फिर समम पुष्य पर्यन्त नाग भय नहीं रहता । इसलिये इस भाद्रको पक्षमोको नागपूजामें कहा गया है । ७

भाद्रमासकी शुक्ला पक्षाङ्गोके दिन भगवान् विष्णुका पार्श्व परिवर्त्तन होता है, इसलिये पार्श्वपरिवर्त्तन-पक्षाङ्गो अवश्य करनी चाहिए । भाद्र शुक्ला द्वादशोके दिन सां-कालमें भगवान् विष्णुकी पूजा कर कृतज्ञलि हो इस मन्त्रका पाठ करना चाहिए ।

“ॐ वायुदेव जगत्पथ प्रान्तेयं द्वादशी तव ।  
पार्श्वेन परिवर्त्तं क्ष मुपां स्वधिदि माधव ॥”

पश्चात् इस मन्त्रसे पूजा करनी चाहिए ।

“त्वयि मुने जगत्पथ जगत् मुपां भवेदिति ।  
प्रुद्धे त्वयि सुष्येते जगत् सर्ववराचरम् ॥” (कृत्यवत्तर)

भाद्रमासके उभय पक्षकी चतुर्थी तिथिको चन्द्र-दर्शन नहीं करना चाहिए । दैवान् यदि चन्द्रदर्शन हो जाय, तो प्रायश्चित्त करना उचित है । ८

भाद्रमासमें अगस्त की अर्थ देना सभीके लिए भाव-श्यक कर्त्तव्य है । यह सौर मासमें हो दिया जाता है । संक्रान्तिके पहले तीन दिनोंमें प्रातःकालमें स्नानादि कर संकल्प करना चाहिए । “ॐ अथेत्यादि सर्वांगिलपिन-सिद्धिकामोऽगस्त्यपूजनमहं करिष्ये ॥” इस प्रकार

७ “सिवा भाद्रपदे शान्ति पञ्चम्यां भद्रयान्तिनतः ।

यस्त्वाशिव्य नरो भस्त्वा कृपावर्षादि पर्याकैः ॥

पूजयेद्भद्रपुष्येभै सर्पिस्तुष्टुनुवाय मे ।

तस्य नुधि तामायानि पद्मगासप्तकाद्यः ।

भाग्ममात् कुलारत्न्य नभयं गरतो भवेत् ।

तस्मात् सर्वप्रसन्नेन नागान् संपूजयेत्तः ॥” (कृत्यवत्तर)

८ “नागरयोऽभिगतस्तु निनागरमोचिविदु ।

स्वित्तन्वचतुर्थ्यांमयापि मनुष्यानात्तेषु तव ॥

अतश्चतुर्थ्यां चन्द्रन्तु प्रमादाशोष्य मानवः ।

पेश्वापे विद्यानायं प्रादु सुतो वापुश्च मुपा ॥”

भगिदरो भिष्यारोयादिवयोभूः केऽभिमागम अयाती मनुष्यान धेयु । तत्रैव प्रादु-मुष्येऽदरवृणो वा मुकविसहता-न्याव ७ अर्थेत्यादि गिरां चतुर्थी चन्द्रदर्शनजन्य-वारत्तवतामो धातुषीवावयम् कर्त्तव्ये ॥” इत्यादि । (इत्यन्तये भाद्रपुष्यम्)

संकल्प करके शालग्राम चा जलमें दक्षिणामुखसे अगस्त्य-  
की पूजा करना चाहिए। बादमें मितपुष्पाक्षत-युक्त  
जल श्राद्धमें ले कर अर्घ्य देना चाहिए। मन्त्र इस प्रकार  
है—

“ॐ काराण्यप्रतीकान् अग्निमाहृत सम्भव।

मिश्रावकृणुषोः पुत्र कुम्भयन्ते नमोऽस्तुते ॥” ;

पश्चात् इस मन्त्रसे प्रार्थना की जाती है,—

‘आतापिर्भक्षिता येन दातापिरच महाभुरः।

समुद्रः शोषितः येन स मेऽगस्त्यः प्रदीदतु ॥”

(कृत्यतत्त्व)

भाद्रद्वार्य (सं० हि०) भद्रदाह सम्बन्धीय।

भाद्रपद (सं० पु०) भाद्रपदा नक्षत्रयुक्ता पूर्णिमासी माद्र-

पदी सा यत्र मासे सः, भाद्रपदी-अण्। भाद्रमास।

भाद्रपदा (सं० स्त्री०) १ पूर्व भाद्रपदा नक्षत्र। २ उत्तर

भाद्रपदा नक्षत्र। पर्याय—पौष्टगदा।

भाद्रमातुर (सं० पु०) भद्रमातुरपत्यमिति भद्रमातृ

(मातृस्त्वर्थात्सम्भद्रपूर्वायाः। पा ४।१।११) इति अण्,

उकाराप्रचान्तादेशः इति कारिका। सती पुत्र, तिस्रो को

माता सती हो।

भाद्रमीक्ष (सं० स्त्री०) भद्रमुञ्ज निर्मित मेखला।

भाद्रवर्माण (सं० पु०) भद्रवर्माका गोत्रापत्य।

भाद्रयिक (सं० पु०) चीन-ग्रान्य, चेना।

भाद्रशर्मि (सं० पु०) भद्रशर्माका गोत्रापत्य।

भाद्रसाम (सं० पु०) भद्रसामका गोत्रापत्य।

भान (सं० स्त्री०) भा भावे ल्युट्। १ प्रकाश, रोशनी। २

दोमि, चमक। ३ ज्ञान, प्रकाश। ४ प्रतीति, आभास।

भान (हि० पु०) १ भानु देखो। २ तुङ्ग नामक वृक्ष। तुङ्ग देखो।

भानजा (हि० पु०) वहिनका लड़का।

भानपुर—मध्यप्रदेशके इन्दौर राज्यके भानपुर तह-

सीलका प्रधान नगर। यह अक्षांश २४° ३१' उ० तथा

देशांश ७५° ४५' पू०के मध्य रेवानदीके किनारे एक गण्ड-

शीलके तटदेश पर अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः

४६३६ है। समुद्रसतह इसकी ऊँचाई १३४४ फुट है।

नगर चारों ओर प्राचीरसे घिरा है। जहरके धोचमें

यज्ञोपवन्तराय होलकरका असम्पूर्ण प्रासाद धीर दुर्ग

अवस्थित है। इस प्रासादमें यज्ञोपवन्तकी प्रस्तर-प्रति-

मूर्ति विद्यमान है। १८११ ई०में भानपुरकी छापनोके मध्य  
यज्ञोपवन्तकी मृत्यु हुई थी। उनका भग्नावशेष जहाँ  
पर गिरा था, उसके ऊपर श्वेतप्रस्तर निर्मित छतरी  
बनाई गई है। जहरमें नायब सुवाका कार्यालय, स्कूल,  
कारागार, अस्पताल और टाकबंगला है।

भानमती (हि० स्त्री०) वह नदी जो जाड़का खेल करती  
हो, जाड़गरनी।

भाननेर—मध्यप्रदेशके जबलपुर जिलान्तर्गत एक गिरि-  
श्रेणी। यह विन्ध्यपर्वतमालाकी दक्षिण पूर्व शाखा है  
और नरसिंहपुर जिलेके नर्मदा नदी तीरस्थ सङ्गलघाट  
पर्यन्तसे ले कर मैहिर उपत्यका तक विस्तृत है। यहाँकी  
कालुमर नामक गिरिश्रेणी २५४४ फुट ऊँची है।

भानवी (हि० स्त्री०) यमुना।

भानवीय (सं० स्त्री०) १ भानु सम्बन्धीय। (स्त्री०)

२ दक्षिण चक्षु, दाहिनी आँख।

भाना (हि० कि०) १ मालूम होना, जान पड़ना। २

अध्या लगना, रुचना। ३ शोभा देना, सोहना। ४ चम-

काना।

भानिकर (सं० पु०) किरणसमूह, आलोक।

भानियर—काश्मीरराज्यके पार्वत्यप्रदेशके अन्तर्गत एक

गण्डग्राम। यह उरिले नौसरो जानेके रास्ते पर अव-

स्थित है। यहाँ विचित्र कारुकार्ययुक्त एक हिन्दू देव-

मन्दिर है।

भानु (सं० पु०) भाति चतुर्दशभुवनेषु स्वप्रभया दीप्यते

इति भा (दामाम्ना नुः १।३२) इति नु। १ सूर्य। २

विष्णु। ३ किरण। ४ अर्कवृक्ष, मदार। ५ एक देव-

गन्धर्वका नाम। ६ कृष्णके एक पुत्रका नाम। ७ उत्तम

मन्वन्तरके एक देवताका नाम। ८ राजा। ९ जैन ग्रंथों-

के अनुसार वर्तमान अवसरपिपीके पंद्रहवें अर्धनुके पिता-

का नाम। १० अङ्कुरा मृष्ट तपसके एक पुत्रका नाम।

११ यादवधिशेष। १२ प्राधाके एक पुत्रका नाम। १३

प्रभु, मातृिक। (स्त्री०) १४ कृष्णकी एक कन्याका नाम।

१५ दक्षकी एक कन्याका नाम। १६ धर्मकी एक पत्नी-

का नाम।

भानु—रामसहस्रनामके प्रणेता।

भार ( सं० पु० ) त्रिपते इति भृश मरणे ( भक्तरी न कारके संज्ञा ) । पा ३।३।१६ ) इति घञ् । १ परिमाण जो बोल पसेरोका होता है । २ चिन्तु । ३ मुक्तय, बोध ।

भार ( हिं० पु० ) १ यह बोध जिसे बहंगोके द्वेनों पहों पर रख कर कंधे पर उठा कर ले जाते हैं । २ रक्षा, संभाल । ३ किसी कर्त्तव्यके पालनका उत्तरदायित्व । ४ आश्रय, सहारा ।

भारक ( सं० पु० ) भार नामकी तौल ।

भारकी ( सं० स्त्री० ) भृ बाहुलकात् अङ्गच् । पोषणकली स्त्री, दाई ।

भारङ्गी ( सं० स्त्री० ) एक प्रकारका पीधा । इसको ऊँचाई मनुष्यके शराबर होती है । इसकी पत्तियाँ मधुपर्की पत्तियों से मिलती हुई सुदार और नरम होती हैं । लोग इन पत्तियोंका साग बना कर खाते हैं । इसमें सफेद फूल लगते हैं । इसको जड़, हंडल, पत्ती और फल औषधिक काममें भाते हैं । इसके फूलका नाम गुल्ममसर्ग है । इसकी पत्तियोंका प्रयोग ज्वर, दाह, दिक्की और त्रिदोषमें होता है । इसके मूलका गुण गर्म, रुचिकर, और दोषन माना गया है । इसका स्याद कडुआ, कसैला, चरचरा और रूखा है ।

भारद्व ( सं० पु० ) उत्तरकुशदेशज शकुनपक्षी ।

भारत ( सं० पु० ) भारतान् भरतर्षगीयानाधिकृत्य एतौ प्रथम इत्यण् । १ प्रथमेश, महाभारतका पूर्वरूप या मूल जो २४००० श्लोकका है । यह महर्षि वेदव्यास द्वारा रचा गया है । विशेष विररख महाभारत इन्द्रमें देता । २ धर्मभेद, जम्बूद्वीपके नक्षत्रयुक्त अन्तर्गत सर्वविशेष । भरतस्य मुनेरयं भरत-अण् । ( पु० ) ३ नट । ४ अग्नि । भरतस्य गोत्रापदवामिति भरत-अण् । ५ भरत का गोत्रावस्थ, भरतके गोत्रमें उत्पन्न पुत्रय । ६ कथा, लंका चौड़ा विवरण ।

भारत—समरसरोवराहरणके प्रणेता ।

भारतमाचार्य—सर्वज्ञसाधुनृप एक सप्रथमभार ।

भारतकर्ण—सर्वप्रकणिकाके रचयिता ।

भारतकाण्ड ( सं० पु० ) भारतवर्ष देश ।

भारतवर्षराय—एक सुप्रसिद्ध बहू-कवि । ये कालिका मनुज ( अष्टादशस्कन्ध ) विरा कर अपनेको यज्ञयागिणोंके निकट विरपरिचित कर गये हैं । प्रथमकी भाषा अशतोऽ

होने पर भी उसकी रचना वैचित्र्य और कवित्व पूर्ण धर्मपुर सरल पद्य-यास देखनेसे चमत्कृत होना पड़ता है । साहित्य और काव्यादि सासाधारणतः सामयिक समाज-चित्र सद्बलित हो सकता है । कवि भारतचंद्रने अपने अपने ग्रंथके मध्य जिन सय अमार्जित रुचिका वाच्यविन्यास किया है, यह तत्कालीन सामाजिक विप्लवका परिचायक है । नवायी अमलदारोंमें मुसलमानोंके अत्याचार और सुपायिलासी जमादारोंकी यथेच्छा चारितासे उस समय समाजमें एक विशेष उच्छृङ्खला उपस्थित हो गई थी । उस खिलासिता और कामिनोकान्धन लालसामें पड़ कर उस समय सभी प्रायः आदिरसके अनुरागी हो गये थे । इसी कारण आदिरस-सुखास्वादनोत्सुक नयद्रोपाधिपति महाराज हृणचंद्रके आदेशसे कविश्रेष्ठ भारतचंद्र विद्या सुन्दरकी तरह आदिरस पूर्ण ग्रंथके प्रणयनमें समर्पण हुए थे । जो कुछ हो, आप सामयिक रुचिके यज्ञवर्ती हो कर अपने कवित्व-शक्तिको परकाष्ठा दिखला गये हैं ।

भारतमण्डल—जम्बूद्वीपके अन्तर्गत भारताख्य देशभेद ।

भारतवर्ष देश ।

भारतवर्ष—जम्बूद्वीपके अन्तर्गत एक देश । हिन्दुस्तान कहनेसे भी भारतवर्षका ज्ञान होता है । ब्रह्माण्डपुराणमें लिखा है—

“भरवाषा प्रजाता ये मनुर्भरत उच्यते ।

निहननचनान्चैव यं तद्वारसं स्मृतं ॥”

( पृ०भाग ४८, १० )

प्रजायौका मरण करतेथे, इसलिय मनु भरत नाममें भाष्यत है और भरत नामक मनु प्रतिपादित होनेसे इस वर्णका नाम भारतवर्ष हुआ । कोई कोई बुद्धन्तके पुत्र भरतके नामानुसार भारतवर्ष नामकी निहाल बतलाते हैं । कुमारिकाण्ड और नारसिंहपुराणमें लिखा है, जम्बूद्वीपाधिपति अर्भोग्रके उषेष्ठ पुत्र नाभिने द्विमास्यका भाषिपरय प्राप्त किया । नाभिके पुत्र श्रवण और उनके पुत्र भरत थे । इन भरतने बहुत काल तक धर्मानुसार जिस वर्णका ज्ञान किया था, यही उनके

नामानुसार भारतवर्ष कहलाया \*। मार्कण्डेयपुराणके अनुसार, भरतके पिताने उन्हें यह राज्य दिया था इसलिए इस वर्णका नाम भारतवर्ष पड़ा।।

पौराणिक सीमा और भूचिह्नान्त ।

ब्रह्माण्ड, मत्स्य, विष्णु आदि पुराणोंमें भारतवर्षको जो सीमा निर्दिष्ट है, वह नीचे दी जाती है—

“उत्तरं यत् समुद्रस्य हिमवदक्षिणपार्श्वे यत् ।

वर्षं तद्भारतं नाम यत्केयं भारती प्रजा ॥”

जो देश समुद्रके उत्तरमें और हिमालय पर्वतके दक्षिणमें है, उसका नाम भारतवर्ष है । यहांको प्रजा भारती नामसे प्रसिद्ध है ।

पौराणिक विभाग ।

उक्त पुराणोंमें लिखा है,—

“भारतस्यास्य वर्षस्य नवभेदाः प्रकीर्तिताः ।

समुद्रान्तरिता जेयास्तेत्वगम्याः परस्परम् ॥

इन्द्रद्वीपः कशेरुध ताम्रवर्णो गमन्निमान् ।

नागद्वीपमथा सौम्यो गान्धर्वस्त्वथ वाह्याः ॥

अयन्तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ।

योजनानां सहस्रान्तु द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरं ॥

आयतो ह्यकुमारिकादामेद्राममवाच वै ।

तिर्गुत्तरविन्दीयाः सहस्रवर्षमेव च ।

द्वीपो ह्यपनिषिद्योऽयं म्लेच्छैरेन्तेषु नित्यशः ।

पूर्वं किराता ह्यस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्यूताः ॥

मास्रयाः क्षत्रिया वैश्या मध्ये शूद्राश्च भगनाः ।

इत्यायुद्वर्षिज्यायै केन यन्तो व्यवस्थिताः ॥”

(अष्टावक्रपुराण ४८।१२-२७)

इस भारतवर्षके नौ विभाग कहे गये हैं । इसका प्रत्येक भाग समुद्र द्वारा अन्तरित होनेसे परस्पर अलग है । इन नौ विभागोंके नाम ये हैं—इन्द्रद्वीप, कशेरु, ताम्रवर्ण, गमन्निमान्, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व और वाह्य, इसके निधा नीचां सागर वेष्टित द्वीपः है । इस

\* “नामेः पुत्रस्तु ऋषभाक्षरतो चाम्बरततः ।

तस्य नाम्नां त्विदं वर्षं भारतं येति कीर्तयते ॥”

( कुमारिका ३३ अ० )

नारसिंहपुराण ३०वां अध्याय देखना चाहिये ।

† “हिमाद्रं दक्षिणं वर्षं भरताय ददौ पिता ।

संसाय भारतं वर्षं —” ( मार्कण्डेयपु० )

नीचें द्वीपका उत्तर-दक्षिणमें आयत सहस्र योजन है, किंतु कुमारिकासे गङ्गा तक इसका उत्तर-दक्षिणमें यक्ष-रूप विस्तार तीन सहस्र योजन है । इस नीचें द्वीपके प्रान्तभागमें सर्वदा बहुतर स्लेच्छ घास करते हैं । इसकी पूर्वसीमामें किरातों, पश्चिममें यवनों तथा मध्य भाग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णोंका, यक्ष, युद्ध और वाणिज्यादि अवलम्बन-पूर्वक घास है । वामन-पुराणमें नवम द्वीप कुमारिद्वीप नामसे कहा गया है \* । वामन पुराणके मतसे—

“पूर्वं किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्यूताः ।

भान्ना दक्षिणतो वीर तुष्काभापि चोत्तरे ॥”

अर्थात् इस कुमारद्वीपके पूर्वसीमामें किरातराज्य, पश्चिममें यवनराज्य, दक्षिणमें आन्ध्रराज्य और उत्तरमें तुष्करराज्य है । यह कुमारद्वीप ही वर्त्तमानमें भारतवर्ष नामसे प्रसिद्ध है । इस नवम द्वीपके अतिरिक्त अन्य आठ द्वीप वर्त्तमान भारतवर्षके बाहर भारतमहासागरके मध्यमें अवस्थित जान पड़ते हैं । उनमें ताम्रवर्ण और नागद्वीप वर्त्तमान सिंहलद्वीपका अंश विशेष है, येसो प्रसिद्धि थी, इसके बहुत प्रमाण भी मिलते हैं । परन्तु इन्द्रद्वीपके प्राचीन नाम परिवर्तित होनेसे उनके वर्त्तमान अवस्थानका निर्णय करना एक प्रकारसे दुःसाध्य ही है ।

पुराणानुसार भारतीय अनुद्वीप ।

उक्त नौ द्वीपोंके अतिरिक्त ब्रह्माण्डपुराणमें और भी कई एक भारतीय अनुद्वीपोंका उल्लेख है । जैसे—

“अङ्गद्वीपं यवद्वीपं मलयद्वीपमेव च ।

सङ्गद्वीपं कुसुद्वीपं यराहद्वीपमेव च ॥

अङ्गद्वीपं निबोध त्वं नानावह्वसमाकुलं ।

नानाम्लेच्छगण्यार्कीर्णं तद्द्वीपं बहुविस्तरं ॥

हेमविद्रुमपूर्णां रत्नानामाकरं क्षितिं ।

नदीशैलवनेभिर्बन्धं समितं लवणाम्मसा ॥

तत्र चक्रगिरिनाम नैर्गमिर्नरकन्दरः ।

तत्र सा तु दुरी चास्य नानावस्त्र समाधया ॥

‡ अयन्तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ।

कुमारारज्यपरिन्त्यातो द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरं ॥”

( वामनपुराण )

मास्कराचार्यके गोलाचर्यायने यह नवम द्वीप ‘कुमारिका’ नामसे बयित हुआ है ।



स मध्ये नागदेवस्य नेकदेशे महागिरिः ।  
 कोटिभ्यां नाग-निरुधं प्रातो नदनदीरति ॥  
 यद्यदीनमिति प्रोक्तं नानास्तनाइत्यन्यत्रम् ।  
 यथापि चूतिमात्रम् पर्वतो भातुमपिष्ठतः ॥  
 समुद्रगानां प्रमथः प्रमथः क.प्रमथ्य तु ।  
 तथैव मन्त्रपदोपमेयमेव सुप्रयुक्तम् ॥  
 गणित्वात्कार स्वीतमाकर् कनकरस्य च ।  
 आकर् चन्दननाम्न समुद्रानां तथाकर् ॥  
 नानाम्लेच्छगणाकीर्णं नदीपर्यन्तमपिष्ठतं ।  
 तत्र श्रीमान्नु भयः पर्वतो रजताकरः ॥  
 महामन्त्र इत्येवं विख्यातो वर पर्वतः ।  
 द्वितीय मन्दरं नाम प्रथितम् सदा शिरो ॥  
 भगस्त्वभयनं तत्र देवासुरनमस्कृतं ।  
 तथा काञ्चननारादस्य मन्त्रयत्पारस्य हि ॥  
 निरुच्यैरनुषां सोमाङ्गे राभमं सिद्ध सेवितं ।  
 नाना पुष्प फलेष्वेन रम्यादपि विशिष्यते ॥  
 तथा विकृतमित्ये नानाधातु विभूषिते ।  
 अनेकयोत्रनीलैश्चै निष्कामानुरीष्ये ॥  
 तस्य कृतकं रम्ये हेमप्रकारस्तोरणा ।  
 निर्मुद्बन्धभी विद्या हर्म्यमागदमनिनी ॥  
 नतयोत्रनविल्लीष्यां विष्टकृञ्जनमायना ।  
 नित्यमनुदिता स्वीता इन्द्र नाम महापुरी ॥  
 सा कामरुचिणां स्थानं राक्षसानी महात्मनां ।  
 आरागो बहदमानां तद्विद्यादेव विदिषां ।  
 मातृपामामयस्याथा त्वगस्या सा महापुरी ।  
 तस्य द्वीपस्य वै पूर्वं तं नदनदी पविः ॥  
 गोपयोनामोपस्य इन्द्रराज्यामको महान् ।  
 तथैव राज्यं विष्णो बहुधीर्षुत्तमाभिव ॥  
 नतयोत्रनविल्लीष्यां नानाम्लेच्छ गणायत्नं ।  
 तत्र कृष्णमिनीनां भीमरङ्गस्यममः ॥  
 नानास्तनाइः पुष्यः प.पुष्पुर्जिनितिविः ।  
 इन्द्रनामा महापुष्या स्यम्पु पु.भयने नदी ॥  
 क्व इन्द्रनुतो नाम नमराजहृत्तमः ।  
 तथैव च बहुदीर्षं नमोपुष्यो भोगिमम् ॥  
 नाना प्रमथमाकीर्णं नानास्तनाइर् विदम् ।  
 कामरा नाम शिष्वाङ्गुर्नविपिपिर्वादी ॥

महाभागा भगवती वृष्णभिलाभिरुच्यते ।  
 तथा वराहद्वीपे च नाना म्लेच्छगणायुक्तौ ॥  
 नानानातिममाकीर्णो नानाविधानवसाने ।  
 भन्धान्यनुतो स्वीतो धर्मिष्ठममसङ्कुले ॥  
 नदीनोत्रवनेश्विषैर्बहुषुष्पकजोपयोः ।  
 वराहपर्वतो नाम तत्र रम्यः शिक्तःशयः ।  
 अनेकचन्द्रदरी-मुद्रा-निर्भर-नीलितः ।  
 तस्मात् सुरसगानीषा पृथपतीर्थनरद्विषी ॥  
 वाराही नाम वरदा पूषु चालस्य महादेवी ॥  
 वाराहस्यैव तत्र विष्णोपे प्रभविष्णोपे ।  
 भगन्पदेवतास्तस्मै नमस्कृष्वन्ति वै प्रजाः ॥  
 एतं पठेते कथिता भनुद्वीपाः समन्ततः ।  
 भारतदेशपदेशो वै दक्षिणे बहुविस्तरः ॥<sup>१</sup>

( न० प० ५११५-५२ )

अध्यात् अङ्गद्वीप, यवद्वीप, मलयद्वीप, शङ्खद्वीप, कुज-  
 द्वीप और चराहद्वीप नामान्ने प्रसिद्ध बहुप्रकार प्राणिपरि-  
 पूर्णं नाना रत्नोंके आकर लक्ष द्वीप हैं । विशाल अङ्गद्वीप-  
 में म्लेच्छजाति रहता है और उसमें सुवर्ण, प्रवाल तथा  
 नाना प्रकारके रत्नोंकी खानें हैं । यह द्वीप अनेक प्रकार  
 नदी पर्वत और वन द्वारा अत्यङ्कुल और लक्षण-समुद्र  
 द्वारा परिघेष्टित है । यहाँ चक्र नामका एक पर्वत है ।  
 उसकी गुहाएं अति विस्तृत और नाना प्रकारके प्राणियों-  
 से परिपूर्ण हैं । यह महागिरि नागदेशके मध्य भागमें  
 अवस्थित है । इसके ऊपर बहुतमे प्रदेग है । पर्वतके  
 क्षेणों प्रायतभाग समुद्र तक फैले हुए हैं ।

यवद्वीप नानाविध रत्नोंका आकर है । उसमें नाना  
 धातु-मण्डित चूतिमान नागक एक पर्वत है । इस  
 पर्वतमे अनेक नदियां उत्पन्न हुई हैं और उसमें नाना  
 प्रकारके रत्न पाये जाते हैं ।

मलयद्वीपमें बहुविध चन्दन, स्वर्ण, मणि और रत्न  
 मिलते हैं । यहाँ बहुतमे म्लेच्छ वाम करते हैं । उसमें  
 अनेक नदियां और छोटे छोटे पर्वत अवस्थित हैं । बहुत  
 भागमें ये वन और उद्ययनों द्वारा परिजोमित होनेसे इस  
 द्वीपकी प्राकृतिक शोभा अतिनाप जनोदारित्वा है । यहाँ  
 एक बहनाकर मलय पर्वत है, जो महामलय नाममें भी  
 प्रसिद्ध है । मन्दार नामका भी एक पर्वत है, जिस

पर देवासुर-पूजित अगस्त्य मुनिका आश्रम प्रतिष्ठित हैं। पूर्वोक्त मलय पर्वतके स्वर्णमय पादमें मनोहर तुणादि निर्मित अति पवित्र एक आश्रम है। यह स्थान सर्वदा अनेक प्रकारके पुष्पों और फलोंसे अलंकृत रहता है, तथा प्रति पर्वमें वहाँ सर्गों अवतारों हुआ करता है। वहाँ विकृत निलय पर नाना धातु विभूषित अत्युच्च नाना प्रकार सानु और गुहा शोभित मनोहर शृङ्गों, प्राचीरों और तोरण-युक्त प्रासादोंसे शोभित लङ्कापुरी शोभित है। यह एक सौ योजन विस्तृत और ३०० सौ योजन लम्बी है। वहाँ सुरद्वेषी कामरूपी महाबलशाली राक्षसगण निवास करते हैं। यह स्थान मनुष्योंके अगम्य होनेसे कभी भी मानवों द्वारा परिपोषित नहीं होता।

इस द्वीपके पुरादिशामें समुद्रके निकट शङ्खद्वीप है। वहाँ गोकर्ण नामक महादेवका अति पुरातन आलय और शत योजन विस्तृत एक राज्य है। उसमें अनेक प्रकारकी मूर्त्तियाँ अवस्थान करती हैं। वहाँ अनेक प्रकार रत्न परिपूरित शङ्खकी भांतिका शुभ्रवर्ण अति मनोहर एक-शङ्ख नामक पर्वत है, जिस पर सत्कर्माशाली प्राणी वास करते हैं। इस पर्वतसे शङ्खनामा नामक एक पूत-सलिल नदी प्रवाहित हुई है। इसी पर्वत पर शङ्खमुख नामक नागराजका आलय है।

नाना प्रकारके काननादिसे परिशोभित, बहुग्राम-समाकोर्ण, नानारत्नकार और बहुविध पुष्पवान् पुराणोंसे परिपूर्ण कुरगद्वीप भारतके प्रान्तभागमें अवस्थित है। वहाँके मनुष्य दुष्टचित्तविनाशिनो महाभाग भगवतो कामदा देवोंकी पूजा करके अमोघ लाभ करते हैं।

वराहद्वीपमें अधिः संख्यक मूर्त्तियोंका आवास है। वहाँ अन्याय जातियाँ भी हैं। यह द्वीप नाना प्रकारके घनधान्यसे पूर्ण है। इसमें अनेक नदियाँ, पुष्पल-शोभित वन और वराह नामक शिलामय अति रमणीय एक पर्वत है, जिससे निर्मलसलिला तरङ्गमयी नदी उत्पन्न हुई है। वहाँके मनुष्य एकाग्रचित्तसे उस सर्व-लोक प्रसवकारी अनन्त विष्णुको नमस्कार और पूजा-नादि करते हैं, अन्य देवताओंकी उपासना नहीं करते। इसी प्रकार दक्षिणदिशामें अनेक प्रकारके भारतद्वीप हैं।

(महायष्टुः)

ऊपर जिन छह भारतीय अनुद्वीपोंका विषय लिखा गया है, वे भारतमहासागरमें अवस्थित हैं। उनमेंसे अङ्गद्वीप अब अन्नम वा कम्बोज नामसे (कम्बोज देखो), यवद्वीप अब भी यवद्वीप नामसे, मलयद्वीप अब सुमात्रा नामसे (उपनिवेश देखो), शङ्खद्वीप अब सम्बर नामसे और वराहद्वीप अब अष्ट्रेलिया नामसे प्रसिद्ध है। वर्त्मान भौगोलिक गण भी भारतीय द्वीपपुञ्ज (Indian Archipelago) नामसे इनका उल्लेख किया करते हैं।

वैरागिक खण्ड वा वर्त्तमान भारतवर्ष।

प्रायः प्रत्येक पुराणमें ही भारतवर्षका विषय अल्प-विस्तररूपसे आलोचन हुआ है। अति संक्षेपमें उसको यहाँ आलोचना की जाती है। मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है—एकमात्र भारतवर्षके सिवा और कहीं भी पाप और पुण्यका फलभोग नहीं करना पड़ता। यहाँ स्वर्ग है और यहाँ अपर्ण है। महेंद्र, मलय, सह्य, शक्तिमान्, सद्, विन्ध्य और पारिपाव ये सात भारतवर्षके कुलपर्वत हैं। इन पर्वतोंके समीप और भी हजारों पर्वत हैं। इनके सानु विस्तृत, उच्छिन्न, विपुलायत और मनोहर हैं।

इस भारतवर्षमें कोलाहल, वृषाज, मन्दर, ददूर, वातस्यन, वैद्युत, मैनाक, स्वरस, तुङ्गप्रस्थ, नागगिरि, रोचन, पाण्डर, पुष्प, उज्जयन्त, रैवत, अर्बुद, ऋष्यमूक, गोमन्त, कूटशैल, वृत्तस्मर, ध्रुवपर्वत, क्षीर तथा और भी जो सैकड़ों पर्वत हैं, उनके द्वारा जनपद समूह मूर्च्छ और आर्षा इन दो भागोंमें विभिक्षित हैं।

भारतवर्षमें गङ्गा, सरस्वती, सिन्धु, चन्द्रभागा, यमुना, शतद्रु, चितस्ता, घेरावती, कुङ्ग, गोमती, भूतपापा, वाह्यदा, दृगलतो, विपादा, देविका, बंधु, निच्यीरा, गण्डकी, कीर्णिकी ये नदियाँ हिमालयके पादंशसे समुद्रत हुई हैं। आर्षा और मूर्च्छगण इन नदियोंका जलपान करते हैं।

वेदस्मृति, वेदवती, वृषघ्नी, सिन्धु, वेण्वा, नन्दिनी, सदानोरा, महो, पारा, नम प्यती, तापी, विदिगा, देव-घनी, शिवा और तरणो ये सब नदियाँ पारिपाव धर्मको आश्रित हैं। शोण, नर्मद, सुरथा, अद्रिजा, मन्दाकिनी, वृषार्णा, चित्रकूट, चिन्नोत्पला, तमाळा, वरमोदा, पिना-चिका, पिपली, धोणि, विपादा, वञ्जुला, सुमेरुजा,

न मध्ये नागदेहस्य नैकदेशं महागिरिः ।  
 कौटिल्यां नाग-निवर्षं प्रसो नदनदीरति ॥  
 मण्डीरमिति श्लोकं नानारत्नाकरान्वितम् ।  
 तत्राग्निं घृतिमाश्रयं परतो घातुमण्डितः ॥  
 समुद्रमार्गं प्रयासः प्रभवः कदाचनस्य तु ।  
 तथैव मलयद्वीपेभ्योऽपि सुप्रकृतम् ॥  
 मण्डितानाकरं स्वीतमाकरं वनकस्य च ।  
 शकटं चन्दनानात्रं समुद्रानां तथाकरं ॥  
 नानाम्लेच्छदगणाकीर्णं नदीरतमण्डितं ।  
 तत्र भीमालु मन्त्रयः परतो रत्नाकरः ॥  
 महामन्त्रय इत्येवं विख्यातो यत्र परतोः ।  
 द्वितीय मन्दरं नाम प्रथितं सदा जितौ ॥  
 भगस्त्वधभवनं तत्र देवामुलमच्छरं ।  
 तथा कान्चनमादस्य मत्तयस्यापरस्या हि ॥  
 निरुञ्जैत्युगा गोमातौ राधम् तिष्ठ सेवितं ।  
 नाना पुत्र्य फलेनेन सार्गादग्नि विहित्यने ॥  
 तथा विरुष्टनिलये गानाधातु निवृषिते ।  
 भनेकयोज्ञोत्संगे विषमासुरदरीरुहे ॥  
 तस्य वृद्धते रम्ये हेमप्राकारोत्सवा ।  
 निरुह्यतमीं गिर्या हर्म्यप्रागादमान्जिनी ॥  
 शतयोज्ञविस्तीर्णा भिन्नयोज्ञनामावता ।  
 निरुधनुर्दिया स्तीता लङ्का नाम महापुरी ॥  
 सा कामस्वरिण्या स्थानं रात्रयानां महात्मनां ।  
 भातायां वनरत्नानां गदियादेव विदिया ।  
 मातुषाध्यामसम्भाषा शमाम्ना या महापुरी ।  
 तस्य द्वीपस्य वै पूर्वं तीरं नदनदी पतेः ॥  
 शोकधर्तमणोपेत्य नृदहस्यवातयो मारुतः ।  
 तथैव रात्र्यं गिनेन सङ्घर्षेण समस्तितं ॥  
 स्वयोज्ञविस्तीर्णं नानाम्लेच्छद गयामवर्ष ।  
 तत्र दङ्गगिरिनामं भीमनृदहस्यमः ॥  
 नानारत्नाकरः सुषयः पूषयश्चिन्निर्षेयः ।  
 नङ्गनामा मरातुपया फलान् पूषयते नदी ॥  
 यत्र नङ्गपुरी नाम नानारत्नाकराजकः ।  
 तथैव च कुरुर्षीयं नानात्र यथैव सोमिणम् ॥  
 नभ्यां प्राणयथाशक्तिं नानारत्नाकरं निवृष्युः ।  
 कामनां नाम विष्णुनामं दुर्गविलिखितं ॥

महाभागा मण्डवनी पृभाभिस्ताभिरिच्छते ।  
 तथा पराद्वीपे च नाना म्लेच्छदगणाकुले ॥  
 नानाजातिसमाकीर्णं नानाधिधानरत्नने ।  
 भनभान्यदुने स्वदीने भन्दिद्वयनसङ्कुले ॥  
 नदीसौत्रस्नेभिर्नेर्षदुष्पुष्पकजोषयोः ।  
 पराद्वीपतो नाम तत्र रम्यः दिशोऽथयः ।  
 अनेककन्दरदरी-मुद्रा-निर्भर-सौमिणः ।  
 तस्मात् सुरगणानोया पूषयतीर्थनङ्गिणी ॥  
 यारादो नाम यरदा पूषुत्तास्य महामरी ॥  
 यारादरुदेणा तत्र विष्णोपे प्रमविष्णोपे ।  
 अनन्यदेवतास्तस्मै नमस्कृत्यन्ति वै प्रजाः ॥  
 एतं पृथेते वधिता अनुद्रीणाः समन्ततः ।  
 भारतद्वीपदेशो वै दक्षिणे बहुविस्तारः ॥

( म०प० ५११४-४२ )

अर्थात् अङ्गद्वीप, यवद्वीप, मलयद्वीप, शङ्खद्वीप, कुज-  
 द्वीप और वराहद्वीप नामसे प्रसिद्ध बहुप्रकार प्राणिपरि-  
 पूर्णं नाना रत्नोष्के आकर छह द्वीप हैं । गिजाह, शङ्खद्वीप-  
 में म्लेच्छजाति रहता है और उसमें सुषयं, प्रयाल तथा  
 नाना प्रकारके रत्नोष्की खानें हैं । यह द्वीप अनेक प्रकार  
 नदा पर्वत और घन द्वारा अलङ्कृत और लक्षण-समुद्र  
 द्वारा परिच्छिन्न है । यहाँ चक्र नामका एक पर्वत है ।  
 उसको मुद्रापर्वत विस्तृत और नाना प्रकारके प्राणिपौ-  
 षे परिपूर्ण है । यह महागिरि नागदेवके मध्य भागमें  
 अवस्थित है । इसके ऊपर बहुतमे प्रदेश हैं । पर्वतके  
 योनो प्राग्भग समुद्र तक फैले हुए हैं ।

यवद्वीप नानाविध रत्नोष्का आकर है । उसमें नाना  
 धातु-मण्डित घृतिमात्र नामक एक पर्वत है । इस  
 पर्वतसे अनेक नदियां उत्पन्न हुई हैं और उसमें नाना  
 प्रकारके रत्न पाये जाते हैं ।

मलयद्वीपमें बहुविध चन्दन, सफरं, मणि और रत्न  
 मिलते हैं । यहाँ बहुतसे म्लेच्छ पाए जाते हैं । उसमें  
 अनेक नदियां और छोटे छोटे पर्वत अवस्थित हैं । बहुत  
 मानिके पत्त और उपपत्तो द्वारा परिजोमित होनेसे इस  
 द्वीपको प्राकृतिक जीना अतिजय मनोहारिणी है । यहाँ  
 एक रत्नाकर मलय पर्वत है, जो महामन्त्रय नाममें भी  
 प्रसिद्ध है मन्त्रय नामका और एक पर्वत है, जिस

पर देवासुर-पूजित अगस्त्य मुनिका आश्रम प्रतिष्ठित हैं। पूर्वोक्त मलय पर्वतके स्वर्णमय पादमें मनोहर तृणादि निर्मित अति पवित्र एक आश्रम है। यह स्थान सर्वादा अनेक प्रकारके पुष्पों और फलोंसे अलंकृत रहता है, तथा प्रति पर्वमें वहाँ स्वर्ग अवतीर्ण हुआ करता है। वहाँ त्रिकूट-निलय पर नाना घातु विभूषित अत्युच्च नाना प्रकार सानु और गुहा शोभित मनोहर शृङ्गों, प्राचीरों और तोरण-युक्त प्रासादोंसे शोभित लङ्कापुरी शोभित है। यह एक सी योजना विस्तृत और ३०० सी योजना टमनी है। यहाँ सुरद्वेष को कामरूपी महाबलशाली राक्षसगण निवास करते हैं। यह स्थान मनुष्योंके अपम्य होनेसे कभी भी मानवों द्वारा परिपोषित नहीं होता।

इस द्वीपके पूर्वदिशामें समुद्रके निकट शङ्खद्वीप है। यहाँ गोकर्ण नामक महादेवका अति धृष्ट आलय और शत योजन विस्तृत एक राज्य है। उसमें अनेक प्रकारकी मलेच्छ जातियाँ अवस्थान करती हैं। वहाँ अनेक प्रकार रत्न परिपूर्ण शङ्खकी भांतिका शुभ्रवर्ण अति मनोहर एक शङ्ख नामक पर्वत है, जिस पर सत्कर्मशाली प्राणी वास करते हैं। इस पर्वतसे शङ्खनामा नामक एक पूत-सलिल नदी प्रवाहित हुई है। इसी पर्वत पर शङ्खमुख नामक नागराजका आलय है।

नाना प्रकारके काननादिसे परिशोभित, बहुप्रा-समाहोण, नानारत्नाकर और बहुविध पुष्पयान पुष्पों-से परिपूर्ण कुरशद्वीप भारतके प्रान्तभागमें अवस्थित है। यहाँके मनुष्य दुष्टचित्तविनाशिनो महाभागा भगवती कामदा देवीको पूजा करके अभीष्ट लाभ करते हैं।

वराहद्वीपमें अधिरु संख्यक मूच्छोका आवास है। यहाँ अत्यान्व जातियाँ भी हैं। यह द्वीप नाना प्रकारके घनधान्यसे पूर्ण है। इसमें अनेक नदियाँ, पुष्पफल-शोभित वन और वराह नामक जिलामय अति रमणीय एक पर्वत है, जिससे निर्मलसलिल्या तरङ्गमयी नदी उत्पन्न हुई है। यहाँके मनुष्य एकाम्रचित्तसे उस सर्व-लोक प्रसन्नकारी अनन्त विष्णुकी नमस्कार और पूजा-नादि करते हैं, अन्य देवताओंको उपासना नहीं करते। इसी प्रकार दक्षिणदिशामें अनेक प्रकारके भारतद्वीप हैं।

( प्रभाषण )

ऊपर जिन छह भारतीय अनुद्वीपोंका विषय लिखा गया है, वे भारतमहासागरमें अवस्थित हैं। उनमेंसे अङ्गद्वीप अथ अन्नम वा कम्बोज नामसे ( कम्बोज देतो ), यवद्वीप अथ भी यवद्वीप नामसे, मलयद्वीप अथ सुमात्रा नामसे ( उपनिषेस देतो ), शङ्खद्वीप अथ सम्भर नामसे और वराहद्वीप अथ अट्ट्रेलिया नामसे प्रसिद्ध हैं। वर्तमान भौगोलिक गण भी भारतीय द्वीपयुक्त ( Indian Archipelago ) नामसे इनका उल्लेख किया करते हैं।

वीराणिक लखड वा वर्तमान भारतवर्ष।

प्रायः प्रत्येक पुराणमें ही भारतवर्षका विषय अल्प-विस्तररूपसे आलोचन हुआ है। अति संक्षेपमें उसको यहाँ आलोचना की जाती है। मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है—एकमात्र भारतवर्षके सिवा और कहीं भी गाप और पुण्यका फलभोग नहीं करना पड़ता। यहीं स्वर्ग है और यहीं अपवर्ग है। महेंद्र, मलय, सहा, शक्तिमान, श्रद्ध, विन्ध्य और पारिपाल ये सात भारतवर्षके कुलपर्वत हैं। इन पर्वतोंके समीप और भी हजारों पर्वत हैं। इनके सानु विस्तृत, उच्चिष्ठ, विपुलायत और मनोहर हैं।

इस भारतवर्षमें कोलाहल, वीर्राज, मन्दर, दूर्धर, वातस्वन, वैद्युत, मैनाक, स्वयंस, तुङ्गप्रस्थ, नागगिरि, रोचन, पाण्डर, पुष्प, उज्जयन्त, रिवत, अशुद, श्राव्यभूक, गोमन्त, कूटशैल, कनस्मर, श्रोपर्वत, क्षीरतथा और भी जो सैकड़ों पर्वत हैं, उनके द्वारा जनपद समूह मूच्छ और आर्य इन दो भागोंमें विभक्षित हैं।

भारतवर्षमें गङ्गा, सरस्वती, सिन्धु, चन्द्रभागा, यमुना, शतद्रु, वितस्ता, येरावती, कुह, गोमती, धृतपापा, वाहुदा, दृगढती, विपासा, देविका, चंशु, निदर्चीरा, गण्डकी, कौशिकी ये नदियाँ हिमालयके पादश्रमे समुद्भूत हुई हैं। आर्य और मूच्छगण इन नदियोंका जलपान करते हैं।

वेदस्मृति, वेदवती, पूवधनी, सिंधु, धेष्वा, नन्दिनी, सदानोरा, मही, पारा, चमपवती, तापी, विदिशा, धेन्वती, जिमा और तरणी ये सब नदियाँ पारिपाल पर्वतकी आश्रित हैं। जोण, नर्मदा, सुरथा, अद्रिजा, मन्दाकिनी, दशार्णा, शिवकूटा, चित्तौपत्या, तमाला, वरमोदा, पिनाचिका, पिप्पली, श्रोणि, विपासा, यम्बुजा, शुकजा,

भक्तिमत्ता, शकुन्ती, विदिया, क्षुद्रु और वेनवाहिनी, ये नदियां ब्रह्मपर्वतके पाददेशसे निकली हैं। जिम्मा, पयोण्यां, निर्दिन्धवा, नापो, निरधावती, वेणवा, वैतरणी सिन्धु-पाटी, कुमुदनी, कर्तोया, महागौरी, दुर्गा, अन्तर्जिम्मा ये नदियां विन्ध्य-पादसे निकली हैं और सभी पुष्पतोया तथा पवित्रस्वभावा हैं। गोदावरी, भीमरथा, कृष्णवेण्या, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा, याथा और कावेरी, ये नदियां भी विन्ध्यपाद प्रवृत्ता हैं। इतमाया, नाभ्रपर्णी, पुष्पा और उदपलावती मलयशिखरभृता हैं। इन नदियोंका जल अत्यन्त शीतल है। पितृकुल्या, सोमकुल्या, ऋषिकुल्या, इक्षुका, विदिया, लाङ्गलिनी और चंडाकरा आदि नदियां महेन्द्र पर्वतसे उदरप्र हुं हैं। ऋषिकुल्या, कुमाती, मन्दागा, मन्दावाहिनी, कृषा, पलाजिनो, ये शक्तिमात्र पर्वतसे निकली हैं। हिमवन्-पादसे निकली हुई सरस्वती और गङ्गा आदि नदियां परम पवित्र-स्वरूपा हैं। इन महानदियोंके सिवा यहां हजारों छोटी छोटी नदियां भी हैं, जिनमें कोई-कोई तो वर्षाकालमें प्रवाहित होती हैं और अग्रिम नदा ही प्रवाहित रहती हैं।

महत्त्व, अरुमकूट, कुन्ज, कुन्ताल, काजि, कोशल, वाघर्ष, कलिङ्ग, मल्लक, गृक, ये जनाद् मध्यदेशमें अवस्थित हैं। जहां गोदावरी नदी है, सहायपर्वतके उन उत्तर-दिशाओंमें जो देश हैं, वे सब परम रमणीय और सर्वोत्कृष्ट हैं।

महाराजा भागीशका रमणीय गोपसंनपुर, पाहोका, घाटघान, भागीर, कालतोय, अपरान्त, गूढ, पाण्य, चर्म-पालिदक, वाग्धारा, यवन, सिन्धु, सीवीर, मद्रक, जगद्गुज, कलिङ्ग, पारद, हापटण माठर, वट्टभद्र, कैरेय, देवा-मालिक, इतिशोपनिषेन, वैश्य और गूढपुत्र, काश्मीर, दरद, कर्ष, हर्षयसंग, चोम, तुंगार, घातनी, भातौय, मर्याज, पुष्कल, कयोका, मर्याक, मूलकार, मूलिक, जगुष्ट, भीषक, आनिमद्र, किरान, तामस, हंसमार्ग, वाश्मीर, मज्ज, शक्ति, तुदक, भीर्ष, इर्ष, ये समस्त जनपद उत्तर दिशामें अवस्थित हैं।

प्राच्य जनपद—अध्यायक, मूदकर, भर्तृगिरी, प्रयद्ग, चण्डोप, मालद, मालवर्षिक, प्रसीधर, प्रविजय, भागीष,

मल्लक, प्राग्ज्योतिष, मद्रक, विदेश, ताप्रेलिस, मल्ल, मण्य और गोमन्त, ये प्राच्य जनपद हैं। दक्षिणावस्थित जनपद—पुण्ड्र, केरल, गोलांगुल, श्रीलक्ष्म, मृषिक, कुसुम, वासक, महाराष्ट्र, मल्लिक, कलिङ्ग, आमीर, वैदिपक, आश्रयक, जयप, पुलिन्द, विन्ध्यमालीय, वैदर्भ, इल्लक, पौलिक, मालिक, भोगवर्द्धन, नैविक, पुन्तल, भर्ग, उद्भिद् और घनदारक, ये देश दक्षिणाव्यमें हैं।

अपमन्तदेशस्थित जनपद—सुपर्णक, कालियणी, दुर्ग, नालिकट, पुलिन्द, सुमीन, रूपप, भ्यापद, कुगमी, फटाक्षर, नासिक्य, उत्तर नर्मद, भद्रकच्छ, माद्वेय, सारस्वत, काश्मीर, सुगान्द्र, आवन्त्य और आर्षुद, ये अरु-गन्त देश हैं।

साराज, कणप, केरल, उत्कल, उत्तमार्ण, द्वापा, भोज, किष्कन्धय, तोजल, कोजल, नैपुर, वैदिज, तुम्बुर, तुम्बुर पट्ट, नैरथ, अमज, तुष्टिकार, योहिहोय और अवन्ति ये जनपद विन्ध्य-पृष्ठ पर अवस्थित हैं। मोहोर, हंस-मार्ग, कुक, गुर्गण, स्वस, कुन्त प्रावरण, ऊर्ण शार्प, विगां माल्य, किरात और तामम ये पार्श्वदेश हैं। इन स्थानोंमें ही मत्स्य और तैत्ति शादि चारों सुगौरी विधि प्रचलित हैं। इस भारतवर्षके दक्षिण, पश्चिम और पूर्वामें महासागर हैं। हिमालय पर्वत इसके उत्तर-में, घनगुणाकारमें अवस्थित हैं। केवल इन भारतवर्ष-में ही मानव शुभाशुभ कर्मांशुसारप्रवृत्त, इन्द्रिय, देवदय, मनुष्यत्व आदि प्राप्त करते हैं। यही एकमात्र कर्मांशुमि है; संसारमें इसके अतिरिक्त द्वितीय कर्मांशुमि नहीं है। देवगण भी देवमयने स्रष्ट हो कर यहांके मनुष्यत्वको प्राप्त करनेके लिए संसारा अभिगमना रखते हैं। मनुष्य-गण यहां जो कुछ करते हैं, सुर या असुरगण भी पीता नहीं कर सकते। ( मार्कण्डेयपुर० १००० )

विष्णुपुत्राणमें लिखा है—भारतवर्षका विस्तार भी हजार योजनका है। भारतवर्ष स्वर्ग और मोक्षप्राप्ति के लिये सर्वोत्कृष्ट कर्मांशुमि है। यहां महेन्द्र, मलय, सहा, शक्ति-मात्र श्रेष्ठ, विष्णु और पारिवार्य ये मान कुल-पर्वत हैं। इन स्थानमें स्वर्गादि और पाशाणादि लोकमें तामस विद्या जा सकता है। अन्य किसी स्थानमें मनुष्योंके कर्मांशु विधि नहीं है। इसके पूर्वमें किशतगण,

पश्चिममें यन्न और मध्यमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र रहते हैं। शतद्रु और चन्द्रभागा आदि नदी हिमालयके मूलदेशसे निर्गत हुई हैं। नर्मदा और सुरसा आदि नदियां विन्ध्याचलसे, तापी और पयोष्णी आदि नदियां अरुणचलसे, गोदावरी, भीमरथी और कृष्णवेणी आदि महा पर्यंतसे, कृतमाला और ताम्रपर्णी आदि मलय पर्यंतसे, त्रिसोमा और ऋषिकुल्यादि महेन्द्र पर्यंतसे तथा कुमारी आदि नदियां शुक्तिमान पर्यंतसे उत्पन्न हुई हैं। इन नदियोंको हजार हजार शाखा-नदी और उपनदियां हैं। कुण्ड पञ्चाल-वासिगण, मध्यदेशादि स्थानवासिगण, पूर्व देशवासिगण, पुण्ड्र, कलिङ्ग, मगध और सम्पूर्ण दक्षिणात्यवासिगण तथा इनके सिवा अपरान्त, सोराष्ट्र, शूद्र, भोद, अर्बुद, कादम्ब, मालव और पारिपात्रनिवासिगण, सीवोर, सैन्धव, हुन, शाल्व और शाकल-वासिगण उक्त नदियोंके तीर पर वास करते हैं तथा उनका जल पान करते हैं। ( विष्णुपुराण )

पुराणोंमें भारतवर्षको जैसे सीमा और जनपदादिका उल्लेख है, उससे मालूम होता है, कि प्राचीन भारतवर्षका आकार वर्तमान भारतकी आकृतिकी अपेक्षा कुछ अल्प था। जिस समय पुराणादि सङ्कलित हुए थे, उस समय पश्चिममें यवननिवास भावोनिया या फारस, पूर्वमें पूर्वोपद्रोपके सीमान्तस्थ कम्बोज वा आनम, उत्तरमें तुर्किस्तान और दक्षिणमें सिद्धलहोप पर्यन्त भारतवर्षके सीमान्तभूक्त था। वैशिकोंके आक्रमणसे इसका भायतन हासको प्राप्त हो गया है।

प्राकृतिक दृश्य और भू वृत्तान्त।

भारतवर्षकी आकृति एक त्रिभुजकी भांति है। गिरिशेख हिमालय उसकी भूमि है तथा पूर्वाघाट और पश्चिमघाट दो भुजाएँ। यह अक्षा० ८०° से ३५° उ० और देशा० ६६° ३८' से ६८° ३२' पू०के मध्य है। उत्तरमें हिमालय पर्वतका दुर्मेघ प्राचीर पार होने पर तिब्बतकी मालभूमि प्रवृत्ती है। दक्षिणमें भारत-महासागर है। भारत महासागरकी एक शाखा अरब-महासागर पश्चिममें कुछ दूर तक तथा द्वितीय शाखा बङ्गोपसागर पूर्णमें कुछ दूर तक विस्तृत है। उत्तरपश्चिमकोणमें हिमालयसे निकले

हुए सालिमान और हाला पर्वतका प्राचीर पार करनेके बाद अरुगानिस्तान और अंग्रेजों द्वारा रक्षित बलुचिस्तान पड़ता है। पूर्वमें हिमालयसे निकली हुई अनुगत गिरिश्रेणी बङ्गोपसागरके किनारे निम्न अन्तरोप तक विस्तृत है। इस अन्वोष्य गिरि-प्राचीरको पार कर अङ्ग्रेजोंमें ब्रह्मदेश पर अधिकार कर उसे भारतके अन्तर्गत कर लिया है उत्तरमें हिमालय पर्वतकी गोदमें प्रत्यन्त पर्वतके ऊपर पार्वतीय स्वाधीन राज्य नेपाल और भूटान तथा सिक्किमदेश है।

विन्ध्याचलने भारतवर्षके मध्यमें रह कर उसे दो भागोंमें विभक्त कर दिया है। उत्तरमें आर्यावर्त और दक्षिणमें दक्षिणात्य है। आर्यावर्त चार भागोंमें विभक्त है। उसे—हिमालयप्रदेश, मध्यप्रदेश, प्राच्यप्रदेश और प्रतोच्यप्रदेश। दक्षिणात्य भी चार विभागोंमें बँटा हुआ है, जैसे—नर्मदाप्रदेश, गोदावरीप्रदेश, कृष्णाप्रदेश और कावेरीप्रदेश।

आर्यावर्त—उत्तरमें तिब्बतकी तीन माइल ऊँची मालभूमि और दक्षिणमें दक्षिणापथकी आधी माइल ऊँची मालभूमिके मध्यमें आर्यावर्तका पूर्वपश्चिम-विस्तारो निम्न क्षेत्र है। उत्तर और दक्षिणकी मालभूमिका जल-स्रोत नदियोंके आकारमें इस निम्न भूमि पर गिर रहा है, दोनों मालभूमियोंसे कर्म लाने करने कितने ही समय इस प्रान्तको आच्छादित किया है। इस मृत्तिकाके कितने ही नोचे जाने पर पाषाण मिलता है। परन्तु दक्षिणमें मालभूमि पर कोमल मिट्टी नहीं जमी है, पाषाण निकला हुआ है। यही कारण है, कि आर्यावर्त की तितना श्रेयशाली है दक्षिणात्य उतना नहीं। आर्यावर्तमें तीन बड़े नदियां हैं। १ पश्चिममें सिन्धु, यह नदी हिमालयके उत्तरसे निकल कर उसके प्राचीरकी भेदती हुई पञ्जाब-क्षेत्रमें जा पड़ती है। शतद्रु, विपागा, चंद्रभागा, इरावती और वितस्ता ये पांच नदियां क्रमशः सिन्धुमें जा मिली हैं। इस पञ्चनद विप्रीत प्रदेशका नाम पञ्चनददेश या पञ्जाब है। पञ्जाबके बाद सिन्धु नदी सिन्धु प्रदेशकी मरुभूमिमें घुसी है। बलुचिस्तानकी मरुभूमि मनोहर हाला पर्वतकी पार कर यहाँ तक आई है। उसके बीचमें बहने लगी नदी

अथ मागधमें जा मिती है। पश्चिममें जीमे सिंधु है, वैसे ही, २ पूर्णमें—प्रप्रयुव। यह नदी भी हिमालयके उत्तरी भागमें उत्पन्न हुई है। पूर्वी प्रांतमें राक्षसा फाट कर निकलने लगी यह नदी कुछ दूर तक पूर्णमुखी है। प्रप्रयुव नदी उत्तरमें हिमालयकी गोदमें भूतान देश और दक्षिणमें गङ्गोपसागर तक विस्तृत उच्च पार्वत्यप्रदेशमें बहती हुई चली गई है। इस घातका नाम आसाम उपत्यका है। आसाम-उपत्यकाकी बङ्गालप्रदेशका पूर्व-द्वार समझना चाहिए। इस द्वारमें प्रप्रयुवने बङ्गालकी सम-भूमिमें प्रवेश कर दक्षिणकी तरफ जा गङ्गामें प्रवेश किया है। दोनोंके मिलित स्रोत बङ्गोपसागरमें प्रवाहित है।

३ मध्यमें—गङ्गा है। गङ्गा हिमालयके दक्षिण कोट्टसे निकली है। द्रवीभूत तुषारकी धारा आम-पासमें स्रोत मध्य पकती हुई हरिद्वारके निकट समतलमें भई और उससे गङ्गाका स्रोत क्रमशः मन्द हो गया है। गङ्गा कुछ दूर तक दक्षिणमुखी गई है। प्रयागमें यमुनासङ्गमके निकट दक्षिण पक्षकी मालभूमिको उच्च पायाण देश सामने पड़ जानेसे भाग्य दक्षिणकी तरफ न जा सकनेके कारण गङ्गा पूर्वकी ओर प्रवाहित हुई है। दक्षिण मालभूमिका जल चर्मण्यतो नदीके आकारमें यमुनाका जलस्रोत बढ़ा रहा है। प्रयागमें राजमहल तक गङ्गा मालभूमिके किनारे किनारे पूर्वकी ओर प्रवाहित है। इस प्रदेशमें उत्तरमें हिमालयसे जो नदियाँ आ कर गङ्गामें मिट्टी हैं, उनमें सोमती, सरयू, गण्डकी और कौनकी ही प्रधान हैं। दक्षिणकी मालभूमिसे जोण नदीका जल भी इस प्रांतमें जा मिटा है। राजमहलके बाद गङ्गा का धारास्रोतमें विभक्त है। प्रथम क्षोणधारा भागोरयो दक्षिणगहिनो है और दूसरी प्रवलधारा पद्म पूर्वदक्षिणवाहिनो है। पद्मके साथ प्रप्रयुवके संगमके बाद दोनोंका मिश्रित स्रोत दक्षिणकी ओर प्रवाहित है।

राजमहलकी नै कर गङ्गोपसागर पर्वत प्रदेश बिकीणकार है। इसके दक्षिणमें गङ्गोपसागर और पश्चिममें भागोरयो है। भागोरयो पार होने ही छोटा-नागपुरमें दक्षिणपक्षकी मालभूमिका शरणा कहा जा सकता है। पूर्णमें पद्म और प्रप्रयुवकी मिश्रित धारा है। इस धाराको पार कर कुछ दूर जाने पर सिंधुकी उच्च मालभूमि

पडती है। दोनों ओरकी उच्च पायाणमय मालभूमिमें से यह प्रदेश किन्तो समय मागधके गर्भमें था। बङ्गोपसागर राजमहल तक विस्तृत था। गङ्गाके प्रयागमें बहनेवाले कर्ममें कालक्रमसे धीरे धीरे सागर-गर्भकी पूर्ण कर, सैकड़ों वर्ष मिट्टी पर मिट्टी बिछा कर इस प्रदेशका निर्माण किया है। भागोरयो और पद्मसे निकली हुई सहस्रजलधारा ऊर्ध्वनामके जालकी भांति इस भूमि पर विस्तृत है। यहाँके समय समग्र प्रदेश जलमग्न हो जाता है और वर्षा शीत जाने पर फिर ज्योंका त्यों हो जाता है। परन्तु समग्र प्रदेशकी भूमि पर मिट्टीका आस्तरण जमा रह जाता है।

गङ्गाके स्रोतके साथ जिनना कीचड़ और मिट्टी बढती है, उनको धीरे किसी भी नदीके स्रोतमें नहीं बढती। इस कारण देश-निर्माण शक्तिमें गङ्गा अलङ्घनीया है।

गङ्गा प्लास्तिकमें हमारी जननी है। गङ्गाके द्वारा भारतको यह बङ्गभूमि सागधके गर्भसे उत्तोलित और गठित है। बङ्गालके पश्चिममध्य देश गङ्गाऔर उमकी उन्नदियों द्वारा प्रवाहित मिट्टीके द्वारा ही उर्वर और शस्यजाती प्रांतरमें परिणत हुए हैं। जननीसमय गङ्गा साधारणकी पालवती है। प्रतियर्ष धपने प्रवाहके द्वारा नवीन मिट्टी बिछा कर भूमि को उर्वरता और शस्य-संगुष्टि की वृद्धि किया करता है। भारतके कनेड़ों धादमी अतायास लक्ष्य इस शस्य-सम्भारकी पा कर प्राण पारण करने हैं। अन्ध्याय देशोंमें शस्य-उत्पादनके लिए कृतिना परिश्रम किया जाता है। परन्तु गङ्गामातृका देशोंमें कृषक केवल बीज बो कर ही फल प्राप्त करते हैं, बस इतना ही उनका परिश्रम है।

इसके सिवा, इस असाधारण-लक्ष्य शस्य-संगुष्टिकी नाथमें लक्ष्य कर गङ्गाके स्रोतमें तथा दो, एक प्रदेशकी संगुष्टि गङ्गाके प्रवाहमें बिना लपके अन्य प्रदेशमें पड़ूष जायगा। इस विरतभाव पर चट्टा कर मायमें उत्तर दिमें ही हो सुहो पा जायेगे। अर्थात्तमें अन्नप्राप्तिपथके निर प्रहति निर्मित यह राजमहल है, इस पथके शीघ्र बीजगी मनुष्य इत बंध कर थाम करने है और गङ्गाके प्रवाहमें धपने धपने देशका पद्मप्रस्थ बढ़ा कर गे जाने तथा

विदेशसे नाना द्रव्य ले आते हैं। इस प्रकारसे गङ्गाके किनारे बड़े बड़े समृद्धशिक्षाली नगर निर्मित हो गये हैं। आर्यावर्तमें जितने भी बड़े बड़े नगर हैं, प्रायः सभी गङ्गाके किनारे वा उसकी किसी शाखा नदीके किनारे बसे हुए दिखाई देगे।

आर्यावर्त सिन्धु, गङ्गा और ब्रह्मपुत्र इन नदियोंसे जोमित विस्तृत समतल क्षेत्र है। इसके प्रदेशोंके नाम इस प्रकार हैं। १ पश्चिममें सिन्धुनदीके किनारे पञ्चनदीत पञ्चाव। २ उसके दक्षिणमें मध्यभूमि सट्टण सिन्धु प्रदेश। ३ पूर्वमें यमुना-तौर पर उत्तर-पश्चिम प्रदेश। ४ उसका एकांश गोमती-धीत अयोध्या। ५ उत्तर-पश्चिम प्रदेश पार हो कर विहार प्रदेश। ६ विहारके पूर्वमें बङ्गाल। ७ बङ्गालके पूर्वोत्तरकोणमें ब्रह्मपुत्र-धीत आसाम-उपत्यका। इन सात प्रदेशोंके सिवा उत्तरमें हिमालयकी गोदमें कई पर्वतीय प्रदेश हैं, जिनमें काश्मीर, नेपाल और भूटान प्रधान हैं।

दक्षिणायन।—आर्यावर्तके दक्षिणमें उच्च पाषाणमय मालभूमिका नाम दक्षिणायन है। यह मालभूमि त्रिकोणाकार है। उच्चता आधी माइल है। किसी समय यह भूमि और भी ऊँची थी, और उसका ऊपरी भाग इससे भी समतल था। लाखों वर्षकी वृष्टिकी धारासे और नदीके स्रोतसे मालभूमि अब क्षयको प्राप्त हो गई है। जो स्थान क्षयित नहीं हुए हैं, वे अब भी ऊँचे और पर्वत जैसे दिखते हैं। जित स्थानोंमें नदियोंने बहुत समयसे रास्ता काट कर नहर-सी बना दी है, वहाँ अब उपत्यका दिखाई पड़ते हैं। कहेनाक मतलब यह है कि मालभूमिका ऊपरी भाग अब समतल नहीं रहा है। समग्र मालभूमि खण्ड-खण्ड, ऊँची-नीची हो कर पर्वत और उपत्यकाओंमें बँट गई है। पर्वत कहीं कहीं तो श्रेणीय हो लगातार खड़े हैं, और कहीं कहीं अलग दोख पड़ते हैं। इस प्रकार उत्पन्न पर्वतश्रेणियोंने मालभूमिके विभुजको तीन दिशाओंमें घेर रखा है।

पश्चिममें शरव सागरके किनारे एक पर्वतश्रेणी, जिसका नाम पश्चिमघाट या सह्याद्रिश्रेणी है, गुजरातसे ले कर कुमारिका तक चली गई है। समुद्रसे ये श्रेणीय पर्वत ठीक सोड़ी-दार घाट जैसे मालूम देते

हैं। पूर्वमें बङ्गोपसागरके किनारेसे भी एक पर्वतश्रेणी उड़ियासे कुमारीका तक गई है। जिसका नाम है पूर्वघाट। यह श्रेणी पश्चिम घाटके समान ऊँची नहीं है, और न वैसे अक्षण्य वा श्रेणीय हो है। बहुत सी नदियाँ इस श्रेणीको काट कर बङ्गोपसागरमें जा मिली हैं, जिनमें महानदी, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी प्रधान हैं। उच्चतर पश्चिमघाटको कोई भी नदी काट नहीं सकती है, इसीलिसे यह अक्षण्य है। केवल उत्तरप्रान्तमें दो जगह नर्मदा और तापती नदी इसे भेद कर काग्ये-उपसागरमें प्रवाहित हुई हैं।

मालभूमिकी पश्चिम-घाटश्रेणी, पूर्वसीमामें पूर्वघाटश्रेणी, कुमारिकासे प्रायः दोनों समुद्रके किनारे किनारे उत्तरकी ओर चली गई हैं। मालभूमिकी उत्तरसीमामें भी एक पर्वतश्रेणी है, जिसका नाम विन्ध्यश्रेणी है। परन्तु विन्ध्याचलकी पर्वतश्रेणी कहना भूल है। यह पर्वत-प्राचीर सट्टण नहीं मालूम देता। यह सर्वत्र ही खण्डित और छिन्न हो कर एक सुदीर्घ और विस्तृत पार्वत्यप्रदेशमें परिणत है। इस पार्वत्यप्रदेशका दैर्घ्य गुजरातसे भागोरथीके किनारे तक है और विस्तार एक तरफ नर्मदासे यमुनातीर तक और दूसरी ओर महानदीसे गङ्गातीर तक है। यह भू-भाग पर्वतसंकुल दुर्गमप्रदेश है। इस प्रदेशका कुछ विशेष विवरण देना आवश्यक है।

इस पार्वत्यप्रदेशकी पश्चिम-सीमामें आरावल्ली पर्वत गुजरातसे यमुनातीरमें दिल्ली तक विस्तृत है। गुजरातके निकट आरावल्लीका सर्वोच्च शृङ्ग 'आष' या अबुद पर्वत जैन मन्दिरोंसे अलंशत है। आरावल्लीके पश्चिमांश और पूर्वांशमें कुछ दूरमें राजपूताना-प्रदेश है। राजपूतानाके पश्चिमांशमें सिन्धुप्रदेशकी मध्यभूमि प्रसारित हैं। पूर्वांश पर्वतमय है। इस पर्वतसे सट्टी हुई चर्मण्यती नदी उत्तरके जमुनाकी ओर प्रवाहित है। राजपूताना और नर्मदाके बीचकी मालभूमि मालयप्रदेश है और मालयके पश्चिममें उपर्युक्त गुजरात है। राजपूताना और मालयके पूर्वमें पर्वतमय स्वदेशीयके अधीन मध्यभारत प्रदेश और अङ्गरेजों द्वारा अधिष्टत मध्यप्रदेश है। इस पर्वतके उत्तरमें भी नदी नदी मालयकी



तरल और पृथ्वीगतो महानदी यज्ञोपसागरकी ओर प्रावित हुई है। मध्यभारत और मध्य प्रदेशके पूर्वमें और भी दो प्रदेश हैं। एक पर्वतसंकुल छोटानागपुर भागोरशीके किनारे तक विस्तृत है। छोटा-नागपुर प्रदेश में पार्श्व-नाथ-पर्वतका शिखर जैनमन्दिरोंसे शोभित हो कर मानो अयुद्ध पर्वतका अनुकरण ही कर रहा है। दूसरा पर्वतसंकुल उड़ीसाप्रदेश यज्ञोपसागर-सैकतमें समात है। छोटा-नागपुरका कुछ पानी तो भ्रम्य, दामोदर, काँसाई, रूपनारायण आदि पार्श्वतय नदियोंको सृष्टि करता हुआ भागोरशीमें पड़ता है और कुछ तुपुपरिणा, वैनरणी आदि छोटी छोटी नदियोंके आकारमें उड़िसा हो कर यज्ञोपसागरमें जाता है। महानदी भी उड़िसामें प्रवाहित है।

पार्श्वतय प्रदेशके दक्षिणकी मालभूमि विदेप पर्वत-संकुल नहीं है। हाँ, सर्वत्र ऊँचो-नीचो अवश्य है। दोनों घाटश्रेणियोंके दक्षिणमें एकत्र हो कर नील-गिरिको सृष्टि की है। कहनेका तात्पर्य यह है, कि मालभूमिको ढाल पश्चिमसे पूर्व की ओर है। पश्चिम ऊँचा है और पूर्व नीचा। यही कारण है, कि गर्मदा और तामोके सिवा अन्यत्र नदियाँ पश्चिमघाटमें उत्पन्न हो कर मालभूमि पार करती हुई यज्ञोपसागरमें जा मिली हैं। नदियोंकी रफ्तार प्रायः एक-सी है। ऊँचोसे नीचे उतरने समय वेगमें चलती हैं, पर्वतके रास्ते काट कर उतरने समय गर्जन करती हैं और समतलक्षेत्रमें घोंरे घोंरे बहती रहती हैं।

नर्मदा और ताप्ती मालभूमिको काटती हुई गई हैं। दोनोंके बीचमें पापाणमय भूमि ऊँचो हो कर पर्वत-श्रेणी ऊँचो दिखाई देती है। इस श्रेणीका नाम गान-पुरा-पर्वत है।

मालभूमि पर तीन बड़े प्रदेश देशीय राजाओंके अधिकाधी हैं। ईदगाबाद, महिपुर और निरवाडुडो। इनके उत्तर-पूर्व और पश्चिममें भद्रदेशीका अधिकार है। पूर्वभागको मद्राजप्रदेश कहते हैं। ईदगाबादके उत्तरमें बरार है।

दक्षिण नाम ।

सर्वप्रथम भारतवर्षके ईदगाबाद और 'हिन्दुस्तान'

कहते हैं। संस्कृत 'सिन्धु' शब्द जिल्द-भाषामें 'हिन्दू' हो गया है। फिर यही 'हिन्दू' शब्द प्राचीन प्रोब्रिमें 'हिन्दोस' या 'इन्दोस' प्राचीन पारसिक राजा द्रायुसके जिलालेगीमें 'इयुस' ग्रीकोंमें 'सिन्धु' या 'इन्दु' नामसे तथा हिब्रू लोगोंमें 'इदुद' मिरांपक प्रंथोंमें 'हादू' पारसिक प्रंथोंमें 'हिंदू' और अरबोंमें 'हिन्द' नामसे उद्दिष्टित हुआ है। वैदिक ऋषि गण पूर्वमें सिंधुनद प्रवाहित पञ्जाब प्रदेशमें वास करते थे। उन्होंने 'सप्त सिंधव' नामसे इस स्थानका उल्लेख किया है। पारसिकोंके उच्चारणानुसार यही 'हिंदू' परिणत हुआ है। इस प्रकारसे पश्चिम सोमान्तवासियोंमें सिंधुवासी आर्यगण हिंदू नामसे परिचित होनेमें यान-प्रभावके समय समस्त उत्तर भारत या भार्यावर्ष 'हिन्दुस्तान' नामसे प्रख्यात हुआ था, और उसमें समस्त भारतवर्ष ही 'हिन्दुस्तान' कहलाया।

राजकीय विभाग ।

वर्तमान भारतको चार राजकीय भागोंमें विभक्त किया जाता है। जैसे—१ अंग्रेजों राज्य, २ कर्द राज्य ३ स्वाधीन राज्य और ४ अन्य यूरोपीय जातियों द्वारा अधिष्टत राज्य ।

अंग्रेजों राज्य ।

अंग्रेजों द्वारा शासित राज्य १४ प्रधान प्रादेशिक विभागोंमें विभक्त है। जैसे—१ पञ्जाब, २ आसाम, ३ गिदर और उड़ीसा, ४ गुजरात, ५ मध्यप्रदेश, ६ पंजाब ७ मद्रास, ८ बम्बई, ९ प्रथमप्रदेश, तथा १० बुरुग (Bengal) ११ ब्रजमें और मेदिनापुर, १२ बरार, १३ अन्धप्रदेश और निकोबर, १४ ब्रिटिश बलुचिस्तान, और १५ सीमागत-प्रदेश। इनमेंसे आदि ६ प्रदेश एक एक गवर्नरके अधीन हैं। और शेष ९ प्रदेश कोष कमिश्नरी द्वारा शासित होते हैं। ये समस्त प्रदेश गवर्नर जनरल (पापमहाय)के अधीन हैं। पहले प्रप्रदेश गवर्नर वृषभ था, गवर्नर-जनरल स्वयं उद्धारके उक्त गवर्नरमें निर्या दिया है।

१। पञ्जाबप्रदेश ।—इस प्रदेशको राजधानी लखनऊ है। इसके अधीन ५ विभाग और २४ जिले हैं। सीमा विभागोंका लक्षणयैक जिलेका और उसके गवर्नरका लक्षणयैक विभाग होता है।

(१) प्रेमिडेन्सो विभागमें ५ जिले हैं : जैसे—१ चौबोस-परगना-सदर अलीपुर । २ नदोवा, रुष्णनगर । ३ यशोहर, यशोहर । ४ खुलना, खुलना । ५ मुर्शिदाबाद, वरहम ।

(२) राजशाही-विभागमें ७ जिले हैं :—१ दिनाजपुर, दिनाजपुर । २ राजशाही, रामपुर-बोयालिया । ३ रङ्गपुर, रङ्गपुर । ४ बोगड़ा, बोगड़ा । ५ पबना, पबना । ६ दारजिलिंग, दारजिलिंग । ७ जलपाईगुड़ी, जलपाईगुड़ी ।

(३) ढाका विभागमें ४ जिले हैं :—१ ढाका, ढाका । २ फरोदपुर, फरोदपुर । ३ बालरगञ्ज, बारिसाल । मैमनसिंह, मैमनसिंह ।

(४) चट्टग्राम-विभागमें ३ जिले हैं :—१ चट्टग्राम, चट्टग्राम । २ नोआखाली, नोआखाली । ३ त्रिपुरा, कुमिल्ला ।

(५) वर्द्धमान विभागमें ६ जिले हैं :—१ हवड़ा, हवड़ा । ४ हुगली, हुगली । ३ वर्द्धमान, वर्द्धमान । ४ बाँकुड़ा, बाँकुड़ा । ५ चोरमूम, सिउड़ी । ६ मेदिनीपुर, मेदिनीपुर ।

२। आठम-प्रदेश ।—यह प्रदेश १२ जिलोंमें विभक्त है । यथा—१ भालपाड़ा, धुबड़ी । २ कामरूप, गौहाटी । ३ दरंग, तेजपुर, ४ लक्ष्मीपुर डिबरूगढ़ । ५ जिवसागर, जिवसागर । ६ नीगां, नीगां, ७ नागापहाड़, कोहिमा । ८ खसिया और जयन्तिया, गिल । ९ गारो पहाड़, तुरा । १० कछाड़, सिलचर । ११ थ्रोहट्ट, थ्रोहट्ट वा सिलहट्ट । १२ उत्तर और दक्षिण लुसाई पहाड़, लुले । ३। विहार और उड़िस्या प्रदेश ।—इस प्रदेशमें कुल ५ विभाग और २० जिले हैं । यहाँ की राजधानी पटना है ।

(१) भागलपुर विभागमें ४ जिले हैं :—१ भागलपुर, भागलपुर । २ मुङ्गेर, मुङ्गेर । ४ पूर्णिया पूर्णिया । ४ संथालपरगना, नया दुमका ।

(२) पटना विभागमें ७ जिले हैं—१ पटना, बाको-पुर । २ गया, गया । ३ शाहाबाद, आरा ।

(३) निरहृत विभागमें ४ जिले हैं :—१ दरभङ्गा, दरभङ्गा । २ मुजफ्फरपुर, मुजफ्फरपुर । ३ सारन, छपरा । ४ चम्पारन, मोतिहारी ।

(४) उड़िस्याविभागमें ४ जिले हैं :—१ बालेश्वर, बालेश्वर । २ कटक, कटक । ३ पुरी, पुरी । ४ अंगुल, अंगुल ।

(५) छोटानागपुर विभागमें ५ जिले हैं—१ हजारीबाग, हजारीबाग । २ लोहरदगा, रांची । ३ पालामू, दालतनगञ्ज । ४ सिंहभूमि, चाईबासा । ५ मानभूमि, पुर्णिया ।

४। उत्तरप्रदेश (आगरा-अवध)—इस प्रदेशके गयनरफे अधोन ६ विभाग और ४८ जिले हैं । राजधानी लखनऊ है ।

(१) इलाहाबाद विभागमें ७ जिले हैं—१ इलाहाबाद, इलाहाबाद । २ फतेपुर, फतेपुर । ३ कानपुर, कानपुर । ४ बाँदा, बाँदा । ५ हमिरपुर, हमिरपुर । ६ झाँसी, झाँसी । ७ भालन, भालन ।

(२) बनारस, विभागमें ५ जिले हैं :—१ बनारस, बनारस वा काशी । २ बलिया, बलिया । ३ गाजीपुर, गाजीपुर । ४ जौनपुर, जौनपुर । ५ मिरजापुर, मिरजापुर ।

(३) गोरखपुर विभागमें ३ जिले हैं :—१ गोरखपुर, गोरखपुर । २ बस्तो, बस्तो । ३ आजमगढ़, आजमगढ़ ।

(४) आगरा विभागमें ६ जिले हैं—१ आगरा, आगरा । २ पटा, पटा और खासगंज । ३ मैनपुरी, मैनपुरी । ४ फारुखाबाद, फारुखाबाद । ५ इटावा, इटावा । ६ मथुरा, मथुरा ।

(५) मेरठ विभागमें ६ जिले हैं—१ देहरादून, देहरादून । २ मेरठ, मेरठ । ३ अलीगढ़, अलीगढ़ और कोषल । ४ बुलन्दशहर, बुलन्दशहर । ५ मुजफ्फरनगर, मुजफ्फरनगर । ६ सहारनपुर, सहारनपुर ।

(६) कुमायूँ विभागमें ३ जिले हैं :—१ अलमोड़ा, अलमोड़ा । २ नैनीताल, नैनीताल । ३ गढ़वाल, धीनगर ।

(७) रोहिलखण्ड विभागमें ६ जिले हैं :—१ शाहजहाँपुर शाहजहाँपुर । २ पालीमोंत पालीमोंत । ३ बरेली, बरेली ४ बुदाऊँ, बुदाऊँ । ५ मुरादाबाद, मुरादाबाद । ६ विजनीर, विजनीर ।

(८) लखनऊ विभागमें ६ जिले हैं :—१ लखनऊ, लखनऊ । २ सोतापुर, सोतापुर । ३ हरदोई । ४ उन्नाव, उन्नाव । ५ रायबरेली, रायबरेली । ६ नैनी, लखनपुर ।

(९) फैजाबाद विभागमें ६ जिले हैं :—१ फैजाबाद, फैजाबाद । २ बराबंकी, बराबंकी । ३ गोंडा, गोंडा । ४ बर-बंकी, नवाबगंज । ५ सुलतानपुर, सुलतानपुर । ६ प्रतापगढ़, प्रतापगढ़ ।

५। मध्यप्रदेश—इस प्रदेशके अधीन ४ विभाग और ३८ जिले हैं। राजधानी नागपुर है।

(१) नागपुर विभागमें ५ जिले हैं:—१ नागपुर, नागपुर। २ भण्डारा, भण्डारा। ३ चांद्रा, चांद्र। ४ चर्पा, दिगनपाट। ५ बालाघाट, बड़ा।

(२) जबलपुर विभागमें ५ जिले हैं:—१ जबलपुर, जबलपुर। २ सागर, सागर। ३ दमोह, दमोह। ४ मिशनी, मिशनी। ५ मण्डला, मण्डला।

(३) छत्तीसगढ़ विभागमें ३ जिले हैं:—१ बिलासपुर, बिलासपुर। २ रायपुर, रायपुर। ३ मन्डलापुर, मन्डलापुर।

(४) नर्मदा विभागमें ५ जिले हैं:—१ बेतूल, बेतूल। २ छिन्दावाड़ा, छिन्दावाड़ा। ३ होशंगाबाद, होशंगाबाद। ४ नोमदा, नोमदा। ५ नरमिहपुर, नरमिहपुर।

६। पञ्जाब प्रदेश।—पञ्जाब गवर्नमेंटके अधीन ३ विभाग और ३१ जिले हैं। भारतको प्रधान राजधानी दिल्ली है।

(१) दिल्ली विभागमें ७ जिले हैं:—१ दिल्ली, दिल्ली। २ गद्दगांव, रियासी। ३ रोहतक, रोहतक। ४ हिमाचल

(२) पंजाब विभागमें ३ जिले हैं:—१ पंजाब, पंजाब। २ हजारा, हजारा। ३ कोहाट, कोहाट। विरेह—यह विभाग नवगठित खोसामन प्रदेशके अन्तर्गत है।

७। मन्दाज प्रेसिडेन्सी।—मन्दाज गवर्नमेंटके अधीन ४ विभाग और २१ जिले हैं। राजधानी मन्दाज है।

१ उत्तरविभागमें ७ जिले हैं:—१ गजाम, बहरमपुर। २ विशालपट्टन, विशालपट्टन। ३ गोंदाघरी, कीकनर (काकनाड़ा)।

(२) मध्य विभागमें ८ जिले हैं:—१ कृष्णा, मच्छलीपट्टन। २ नेन्दूर, नेन्दूर। ३ श्रीरंगपट्ट, श्रीरंगपट्ट। ४ उत्तर भारकाडू, नितूर। ५ कड़ापा, कड़ापा। ६ कर्णम, कर्णम। ७ केन्दरी, बल्लार। ८ अनन्तपुर, अनन्तपुर।

(३) दक्षिण विभागमें ५ जिले हैं:—१ दक्षिण भारकाडू, कडान्दूर। २ तञ्जौर, तञ्जौर। ३ मदुरा, मदुरा। ४ त्रिनेयल्वरी, पालमकोट। ५ त्रिनितावल्ली, त्रिनितावल्ली।

(४) पश्चिमविभागमें ५ जिले हैं:—१ मलयार, कालीकट। २ दक्षिण कनाड़ा, मंगलोर। ३ कोयंबनोर, कोयंबनोर। ४ सेलम, सेलम (वेर)।

१। ब्रह्मप्रदेश (बर्मा)।—यह प्रदेश दो भागोंमें विभक्त है। एक उत्तर-ब्रह्म और दूसरा निम्न ब्रह्म।

(१) उत्तर-ब्रह्म (मानराज्य सहित) मन्दाले।

(२) निम्नब्रह्म ४ भागोंमें विभक्त है। १ आराकान आकाशय। २ पेगू, पेगू। ३ तेनासेरिम, मीलमोन। ४ इरावती, रंगून।

१०। कुर्ग।—मेरकरा या महादेवपट्टनम्।

११। अजमेर वा मेरवाड़ा।—अजमेर।

१२। बरार।—अमरावती।

१३। अन्दामन और निकोबरी।—पोर्टब्लेयर।

१४। ब्रिटिश बलुचिस्तान।—कोयेटा।

१५। सीमान्तप्रदेश।—पेशावर, कोहाट।

करद और मित्र राज्य।

भारतवर्षमें करद और मित्र राज्योंकी संख्या छह सीसे भी ज्यादा होगी। उनमेंसे प्रधान प्रधान राज्योंके नाम लिखे जाते हैं:—

निजामराज्य, सिन्धिवातारज्य, गायकवाड महिसुर, तिरुवाङ्कोड और काश्मीर राज्य प्रधान हैं। इनके सिवा राजपूताना एजेन्सीके अधीन १८ और मध्यभारतीय एजेन्सीके अधीन ७ राज्य हैं। राजपूतानामें जयपुर, जोधपुर या मारवाड़, भरतपुर, जैसलमेर, बीकानेर, कोटा, अलवर और धौलपुर तथा मध्यभारतमें रोवाँ, पन्ना, भूपाल और शुन्धलखण्ड ये राज्य प्रधान हैं।

बङ्गाल गवर्नमेण्टके अधीन कोचबिहार और पार्वत्य त्रिपुरा, युक्तप्रदेशकी गवर्नमेण्टके अधीन रामपुर और गढ़वाल; पञ्जाब गवर्नमेण्टके अधीन पटियाला, भिन्द, नामा, कपूरथला, बहावलपुर और चम्बर; बम्बई गवर्नमेण्टके अधीन कच्छ, काठियावाड़, काम्बी, सायन्तवाड़ी, कोल्हापुर, इन्दौर आदि प्रधान राज्य हैं।

स्वाधीन राज्य।

भारतमें स्वाधीन राज्य दो ही हैं:—नेपाल और भूटान।

यूरोपीय अन्यान्य जातिकी अधिकार।

चम्पनगर, पुंदिचेरी, माहरी, करिकाल और भूटान ये स्थान फरासीसियोंके अधिकारमें हैं तथा गोवा, दमन

और दीऊ ये स्थान पोर्तुगोसोंके अधिकारमें हैं।

पूर्वोक्त पूर्वोक्त राज्यास विलीन विवरण उनी शब्दमें देला।

जलवायु और वृष्टि।

यह विद्याल भारतभूमि नाना नद-नदियों, वन-उप-वनों और हृद पर्वतगिरिमालाओंसे समाच्छन्न है। वन, पर्वत, नदी और जलस्यक्षेत्रादिके प्राकृतिक समावेशके कारण स्थान-विशेषमें जलवायुका भी उत्कर्षापरक देवनेमें आता है। उत्तरमें हिमालय पर्वतके तुपार-गण्डित शिखरोंका समूह गगनतलको स्पर्श कर रहा है। विशाल वाहू-चेष्टनसे गिरिराजने मानो भारतके उत्तर-पश्चिम और उत्तरपूर्व-क्षेत्रोंको भङ्गगत ही कर रखा है। मध्य-माला-समन्वित इन पर्वतोंके चक्षुस्वल्प पर बहती हुई वायु विभिन्न गतियोंमें इनस्ततः विचरण करती रहती हैं। इसीलिये समतलक्षेत्र और हिमालयप्रदेशको वायु-गति पृथक् पृथक् है।

इसकी पश्चिम, दक्षिण और पूर्व-सीमामें क्रमशः अरब-उपसागर, भारतमहासागर और बङ्गोपसागर ये तीन प्रशान्त समुद्र अपने अपने विस्तारों यक्षस्वलों पर ऊर्मिमाला धारण कर नाना रङ्गों और वायुतरङ्गोंमें क्रीड़ा कर रहे हैं। इनूविद्याल वारिधि-हृदय पर कर्षाट और मकरकान्तिधर्मोंमें सूर्यके प्रखर रश्मिजालसे आन्दालित हो वायुराजि एक प्रवल प्रवाहको प्राप्त होते हैं। जिसको कि नाधारण समुदाय मीसामी वायु कहता है। इनस्ततः सञ्चारमान भारतप्रवेगोन्मुख वायुराजि गिरि-कन्दराओं और समतलक्षेत्रोंको अतिक्रम कर भारतके चक्षुस्वल्प पर जो अशनी क्रीड़ा करतो है, उमासे तृप्तान, आंधी, पृष्टि और भूमिकी उत्पादिका शक्तियां एकत्र हो कर देवका एक महामङ्गल साधन करती हैं।

किस प्रकार इस क्रिया द्वारा भारतवासियोंका उपकार साधित होता है, यह बात बिना भारतभूमिका प्राकृतिक अवस्थान-निर्णयके नहीं जानी जा सकती। इसलिये यहाँ प्राकृतिक सीन्दर्यका एक संक्षिप्त चित्र खींचा जाता है।

उत्तरमें पृथिव्योको सर्वोच्च पर्वतमालाने विद्याल वायुओंको धारण कर भारतके पश्चिमोत्तर और पूर्व-विभागको आच्छन्न कर दिया है। उत्तरी अमंश्य

५। मध्यप्रदेश—इस प्रदेशके अधीन ४ विभाग और १८ जिले हैं। राजधानी नागपुर है।

(१) नागपुर विभागमें ५ जिले हैं—१ नागपुर, नागपुर। २ भण्डारा, भण्डारा। ३ चांदा, चांदा। ४ वर्धा, हिंगनघाट। ५ वालाघाट, वडा।

(२) जबलपुर विभागमें ५ जिले हैं—१ जबलपुर, जबलपुर। २ सागर, सागर। ३ दमोह, दमोह। ४ सियनी, सियनी। ५ मण्डला, मण्डला।

(३) छत्तीसगढ़ विभागमें ३ जिले हैं—१ विलासपुर, विलासपुर। २ रायपुर, रायपुर। ३ सम्बलपुर, सम्बलपुर।

(४) नर्मदा विभागमें ५ जिले हैं—१ वेतूल, वेतूल। २ छिन्दवाड़ा, छिन्दवाड़ा। ३ होशङ्गाबाद, होशङ्गाबाद। ४ नीमाड़ा, खण्डवा। ५ नरसिंहपुर, नरसिंहपुर।

६ पञ्जाबप्रदेश।—पञ्जाब गवर्नमेंटके अधीन ६ विभाग और ३१ जिले हैं। भारतको प्रधान राजधानी दिल्ली है।

(१) दिल्ली विभागमें ७ जिले हैं—१ दिल्ली, दिल्ली। २ गुड़गांव, रिवाड़ा। ३ रोहतक, रोहतक। ४ हिसार, हिसार। ५ करनाल, करनाल। ६ अम्बाला। ७ सिमला, सिमला।

(२) जालन्धरमें ५ विभागमें ५ जिले हैं—१ जालन्धर, जालन्धर। २ होशियारपुर, होशियारपुर। ३ फाङ्गड़ा, फाङ्गड़ा। ४ लुधियाना, लुधियाना। ५ फिरोजपुर, फिरोजपुर।

(३) लाहोर विभागमें ६ जिले हैं—१ लाहोर, लाहोर। २ अमृतसर, अमृतसर। ३ गुरुदासपुर, गुरुदासपुर। ४ मुलत न, मुलतान, ५ फझ, फझ ६ मण्टगोमरी, मण्टगोमरी।

४ रावलपिण्डी विभागमें ६ जिले हैं—रावलपिण्डी, रावलपिण्डी। २ फेलम, फेलम। ३ गुजरात, गुजरात। ४ शाहपुर शाहपुर। ५ गुजरानवाला, गुजरानवाला। ६ सियालकोट, सियालकोट।

५ डेराजात विभागमें ४ जिले हैं—डेरा-इसमाइल खां, डेरा-इसमाइल खां। २ डेरा गाजी खां, डेरा गाजी खां। ३ बन्नु, बन्नु। ४ मुजफ्फरगढ़, मुजफ्फरगढ़।

(६) पेशावर विभागमें ३ जिले हैं—१ पेशावर, पेशावर। २ हजार, हजार। ३ कोहाट, कोहाट। विशेष-यह विभाग नवगठित सीमान्त प्रदेशके अन्तर्गत है।

७ मन्द्राज प्रेसिडेन्सी।—मन्द्राज गवर्नमेंटके अधीन ४ विभाग और २१ जिले हैं। राजधानी मन्द्राज है।

१ उत्तरविभागमें ७ जिले हैं—१ गञ्जाम, वहरमपुर। २ विशालपट्टन, विशालपट्टन। ३ गोदावरी, कोकनद (काकनाडा)।

(२) मध्य विभागमें ८ जिले हैं—१ कृष्णा, मछलीपट्टन। २ नेल्लूर, नेल्लूर। ३ चैङ्गलपट्ट, सैदापेट। ४ उत्तर आरकाडू, चित्तूर। ५ कड्यापा, कड्यापा। ६ कर्णूल, कर्णूल। ७ वेल्लूरी, वल्लार। ८ अनन्तपुर, अनन्तपुर।

(३) दक्षिण विभागमें ५ जिले हैं—१ दक्षिण आरकाडू, कडालडू। २ तञ्जोर, तञ्जोर। ३ मदुरा, मदुरा। ४ त्रिनेवेल्ली, पालमकोट। ५ त्रिचिनापल्ली, त्रिचिनापल्ली।

(४) पश्चिमविभागमें ५ जिले हैं—१ मलवा, कालीकट। २ दक्षिण कनाड़ा, मंगलोर। ३ कोयम्बतोर, कोयम्बतोर। ४ सेलम, सेलम (चेर)। ५ नीलगिरि, उतकामन्द।

बम्बई प्रेसिडेन्सी।—बम्बई गवर्नमेंटके अधीन ४ विभाग और २३ जिले हैं। बम्बई नगर इस प्रदेशकी राजधानी है।

(१) उत्तरविभागमें ६ जिले हैं—१ अहमदाबाद, अहमदाबाद। २ भड़ौच, भड़ौच ३ खेड़ा, खेड़ा। ४ पञ्चमहल, गोदड़ा। ५ धाना, धाना। ६ सूत, सूत।

(२) मध्य विभागमें ६ जिले हैं—१ खानदेश, धूलिया। २ नासिक, नासिक। ३ अहमदनगर, अहमदनगर। ४ पूना, पूना। ५ सतारा, सतारा। ६ शोलापुर, शोलापुर।

(३) दक्षिण विभागमें ६ जिले हैं—१ कोलाबा, अलीबाग। २ धारवाड़, धारवाड़। ३ कनाड़ा, कनाड़ा। ४ रत्नगिरि, रत्नगिरि। ५ बेलगाम, बेलगाम। ६ बीजापुर, बीजापुर।

(४) सिन्धु विभागमें ५ जिले हैं—१ कराची, कराची। २ हैद्राबाद, हैद्राबाद। ३ गिकारपुर, गिकारपुर। ४ धर और पार्कर, अमरकोट। ५ उत्तर-सिन्धुसीमा, जेकोबाबाद।

- ६। ब्रह्मदेश (बर्मा)।—यह प्रदेश दो भागोंमें विभक्त है। एक उत्तर-ब्रह्म और दूसरा निम्न ब्रह्म।
- (१) उत्तर-ब्रह्म (सानराज्य सहित) मन्डाले।
- (२) निम्नब्रह्म ४ भागोंमें विभक्त है। १ आराकान आकायब। २ पेगू, पेगू। ३ तेनासेरिम, मीलमोन। ४ इरावती, रंगून।
- १०। कुर्ग।—मेरकटा वा महादेवपट्टनम्।
- ११। अजमेर वा मेरवाड़ा।—अजमेर।
- १२। बरार।—अमरावती।
- १३। अन्दासन और निकोबर।—पोर्टब्लेयर।
- १४। ब्रिटिश बलुचिस्तान।—कोयेटा।
- १५। सीमान्तप्रदेश।—पेशावर, कोहाट।
- कद और मित्र राज्य।
- भारतवर्षमें कद और मित्र राज्योंकी संख्या छह सीसे भी ज्यादा होगी। उनमेंसे प्रधान प्रधान राज्योंके नाम लिखे जाते हैं:—
- निजामराज्य, सिन्धियाराज्य, गायकवाड महिसुर, तिक्वाड्डोड और काश्मीर राज्य प्रधान हैं। इनके सिवा राजपूताना एजेन्सीके अधीन १८ और मध्यभारतीय एजेन्सीके अधीन ७ राज्य हैं। राजपूतानामें जयपुर, जोधपुर वा मारवाड़, भरतपुर, जैसलमेर, वोकानेर, कोटा, अलवर और धौलपुर तथा मध्यभारतमें रोता, पन्ना, भूपाल और शुन्देलखण्ड ये राज्य प्रधान हैं।
- बङ्गाल गवर्नमेंन्टके अधीन कोचबिहार और पार्श्वत्य त्रिपुरा, युक्तप्रदेशकी गवर्नमेंन्टके अधीन रामपुर और गढ़वाल; पञ्जाब गवर्नमेंन्टके अधीन पटियाला, फिन्द, नामा, कपूरथला, बहावलपुर और चम्बर; बम्बई गवर्नमेंन्टके अधीन कच्छ, काठियावाड़, काश्मीर, सायन्तवाड़ी, कोल्हापुर, इन्दौर आदि प्रधान राज्य हैं।
- स्वाधीन राज्य।
- भारतमें स्वाधीन राज्य दो ही हैं:—नेपाल और भूटान।

और दोऊ ये स्थान पोर्तुगीजोंके अधिकारमें है। पूर्वीक पृथक् राज्यका विलुप्त विवरण उनी गन्धमें देता।

जनवायु और वृष्टि।

यह विद्याल भारतभूमि नाना नद-नदियों, घन-उप-वनों और हृद पर्वतगिरिमालाओंसे समाच्छन्न है। घन, पर्वत, नदी और शस्यक्षेत्रादिके प्राकृतिक समावेशके कारण स्थान-विशेषमें जलवायुका भी उत्कर्षापकर्ष देवनेमें आता है। उत्तरमें हिमालय पर्वतके तुयार-गण्डित शिखरोंका समूह गगनतलको स्पर्श कर रहा है। विद्याल वाह-घेष्टनसे गिरिराजने मानो भारतके उत्तर-पश्चिम और उत्तरपूर्व-कोणोंको भङ्गगत हो कर रखा है। मेघ-माला-ममन्थित इन पर्वतोंके वक्षस्थल पर बहती हुई वायु विभिन्न गतियोंमें इतस्ततः विचरण करती रहती है। इसोलिए समतलक्षेत्र और हिमालयप्रदेशकी वायु-गति पृथक् पृथक् है।

इसकी पश्चिम, दक्षिण और पूर्व-सोमामें क्रमशः अरब-उपसागर, भारतमहासागर और बङ्गोपसागर ये तीन प्रशान्त समुद्र अपने अपने विस्तारों वक्षस्थलों पर ऊर्मिमाला धारण कर नाना रङ्गों और वायुतरङ्गोंमें झोड़ा कर रहे हैं। इनविद्याल वारिधि-हृदय पर कर्षाट और मकरकान्तियोंमें मूर्धके प्रवर रश्मिजालसे आन्दालित हो वायुराजि एक प्रबल प्रवाहको प्राप्त होती है। जिसको कि साधारण समुद्रवायु मौसमी वायु कहता है। इतस्ततः सञ्चारमान भारतप्रदेशोन्मुख वायुराजि गिरि-कन्दराओं और मनतलक्षेत्रोंको अधिक्रम कर भारतके वक्षस्थल पर जो बरनी झोड़ा करतो है, उसीमें तूफान, आंधी, वृष्टि और भूमिकी उत्पादिका शक्तियां एकत्र हो कर देशका एक महामङ्गल साधन करती हैं।

किन्तु प्रकार इस क्रिया द्वारा भागतवामियोंका उपकार साधित होता है, यह बात बिना भारतभूमिका प्राकृतिक अवस्थान-निर्णयके नहीं जानी जा सकती। इसलिए यहाँ प्राकृतिक मीन्द्याका एक संक्षिप्त चित्र धींचा जाता है।

उत्तरमें पृथिवीकी सर्वोच्च पर्वतमालाने विद्याल वाहोंको धारण कर भारतके पश्चिमी उत्तर और विभागको आच्छन्न कर दिया है। उसकी

उपत्यकाएँ, अधित्यकाएँ, फन्दराएँ, घाटियाँ और नदियाँ तथा सञ्चिन्न हृदाकार जलराशिका समूह इस सञ्चारमान वायुकी क्रीड़ाभूमि हैं। एशिया महादेशसे भारतखण्डको वियोजन करनेवाला यह हिमालय प्रदेश भारतका उत्तर-विभाग कहलाता है। इससे उत्पन्न शतद्रु, सिन्धु, गङ्गा, यमुना, घग्घरा और शाखाप्रशाखा-प्रसृत ब्रह्मपुत्र नद-प्रवाहित विस्तृत आर्वायर्त भूमि इसका मध्यविभाग है और उससे परवर्ती विन्ध्य पर्वतमालाके अधित्यका प्रदेशसे पूर्व और पश्चिम घाटपर्वत श्रेणियोंके मध्य-वर्ती, कुमारिका तक विस्तोर्ण, दक्षिणात्य भूभाग भारत महादेशका तृतीय विभाग है। इस दक्षिण-भारतमें नर्मदा, ताप्ती, महानदी, गोदावरी, कृष्णा और कावेरी आदि नदियोंने, अपने अपने अववाहिकामार्गसे प्रधावित हो कर पार्श्ववर्ती उच्च भूमिसे समतलक्षेत्रों को पृथक् कर दिया है।

वनराजि-समाच्छन्न पार्वत्यप्रदेशका विशाल शाल-वन और सेंगुन, सीसम, पीपल, बबूल, महुआ, फाऊ आदि ऊँचे वृक्षोंके विस्तीर्ण प्रान्तर भाग तथा नदीमाला समाकोण समतलक्षेत्रके आप्रकानन वसन्तको मलय हिल्लोलोंसे आन्दोलित हो कर प्रीणके उत्तम वायु-प्रवाहसे फलभारावनत और पक्वताको प्राप्त हो रहे हैं। विस्तृतायतन शाखाप्रशाखावाही वट, अश्वत्थ, कपास, तिनितड़ी, बबूल आदि वृक्षोंका समूह फल-फूलोंसे सुजो-मित हो कर नदी-तीरवर्ती क्षेत्रोंमें विराज रहा है। प्रशस्त प्रान्तर देशमें उक्त पवनान्दोलित वृक्षोंकी प्रोभा बढ़ी हो रमणीय है।

नदियोंके उत्पत्तिस्थानसे अवतरण कर धीरे धीरे जितना निम्नवर्ती त्रिकोणद्वोपांशमें उपनोत होंगे, उतना ही नूतन प्राकृतिक सौन्दर्य नयनगोचर होगा। नदियोंके जलसे प्लावित सैकतदेशके विस्तोर्ण धान्यक्षेत्रोंके बीच बीचमें बाँसोंके झाड़ू, नारिकेल, खजूर, सुपारी और ताड़ वृक्षोंके समूह उन्नत मस्तक हो खड़े खड़े गानों स्वभावकी समताको तोड़ रहे हैं। उस विशाल प्रान्तर देशकी निर्जनताको भेद कर स्थान स्थान पर जो ग्रामों वा पत्तियोंके समूह हैं, वे उस देशके वासियोंके अत्यावश्यकोय फदली आदि

उपवनोंसे परिगोभित और समाच्छादित हो कर बड़े मनोहर दौघ पड़ते हैं। ग्रामोंसे स्पष्ट हुए बाँसोंके झाड़ू और नारियलके पेड़ साधारणतः विशेष उपकारो है। उनसे रस्सी, तेल, खाद्य पदार्थ तथा और भी कामकी चीजें मिला करती हैं। जिन ग्रामोंमें बाँस और नारियल आदिके वृक्ष अधिक संख्यामें रहते हैं, वहाँ तूफानका प्रकोप कम होता है। नदीके तीरवर्ती ग्राम वृक्षादि द्वारा समाच्छन्न न होनेसे सदा ही तूफानकी आशङ्कामें शङ्कित रहते हैं।

नदियाँ जितनी ऊँची भूमियोंको छोड़ कर नीचेकी तरफ जातो हैं। उतना ही प्राकृतिक द्रव्योंमें भी परिवर्तन होते देखा जाता है। शुष्क और उच्च भूमि उत्तरभारतके गेहूँ, जौ, मक्का, ज्वार और बाजरा तथा निम्न त्रिकोण द्वोपांशवर्ती क्षेत्रोंके धान्यादि इसके उज्ज्वल प्रमाण हैं। वृषकोने अपनी अपनी वास-भूमिके सन्निकट उपयुक्त स्थान पर उपयुक्त धान्य बोना सीख लिया है। रङ्गपुरकी ऋद्धि मिट्टी पर और १२ फुटके करीब नीची दलदल-जमीन पर भी खेती है। बंगालके शंखभाण्डार वाखरगंज जिलेमें भी इसी तरहकी गोची दलदल भूमि पर खेती होती है।

ईश, तिल, तीसी, सरसों, तम्बाकू, रुई, नील, जाफरान, कुसुम, हलदी, अदरक, धनियाँ, मिर्च, जौरा आदि उत्कृष्ट मसाले और रंगके पदार्थ जलवायुके गुणसे उत्तर और उत्तरपश्चिम-भारत तथा निम्न बङ्गालमें उत्पन्न होते हैं। मुसम्बर, अण्डी आदि द्विप-क्षेत्रों-उत्पन्न पदार्थोंके सिवा गुल्माच्छादित वनोंमें नाना प्रकारकी जड़ी-बूटी पैदा होती है। रजन, गोंद, सीरीस और भोगविलासके काममें आनेवाले नाना प्रकारके वृक्ष धने जङ्गलों और पार्श्वतय वनभूमिसे आ कर यहाँ वाणिज्यद्रव्योंमें परिणत होते हैं। आसामकी उपत्यकामें उत्पन्न चाय, युक्तप्रान्तमें गन्नाके किनारे उत्पन्न अफीम, निम्नबंगालमें पैदा होनेवाली रेंगम, पाट, सन और जङ्गलोंमें उत्पन्न लाख और तसर सुखामिलापो मानव जीवनके लिए आवश्यक सामग्री है। यनोंमें उत्पन्न होनेवाला महुआ पार्वतीय असभ्य जातियोंका प्रधान आहार्य द्रव्य है और उससे बनेवाली मटियाँ भी उस देशके

रहनेवालों को एक प्यारी चोत है। बङ्गालमें खोपडियोंके ऊपर फलनेवाले पेड़ा-फल और विलायती कद्दू तथा बांगनो'में पैदा होनेवाले तरबूज, बैंगन आदि फल जलवायुके गुणसे धीरेधीरे प्राप्त करते हैं। साल, मीसम और तून नामक वृक्षोंके समूह नासा घणोंकी पुष्पलताओं द्वारा वेष्टित हो कर घनको गोभा बढ़ा रहे हैं। शोच बोचमें बड़ी बड़ी पुष्करिणी फमल, कद्दार और कुमुदमालाओंसे मंडित हो कर गोभाकी वृद्धि कर रही हैं। जिन उद्भिद् वा वनस्पतियोंसे भारतवासियोंका प्रासाच्छादन, अङ्गच्छादन और वैदिकिकोंका वाणिज्य चलता है, वे सब वनस्पतियां उन उन देशवासियोंके उपयोगितानुसार उन्हीं उन्हीं स्थानोंमें उत्पन्न होती हैं।

सिन्धुनदके उत्पत्ति-स्थान हिमालयकन्दरसे ले कर प्रसूत पर्वत उच्च हिमालय-भूमि पर कुछ गिरि-संरुदोंको छोड़ कर अन्यत्र कहीं भी नदोंके अववाहिका-चिह्न दृष्टिगोचर नहीं होते। कैलास-शिखरसे निकली हुई एकमात्र जतद्र नदी ही पार्वतीय उपत्यका-भूमिकी विच्छिन्न करती हुई दक्षिणकी ओर बह गई है। इस पर्वत प्राचोरके १६,१७ फुट ऊँचे स्थान पर दितमें तिष्ठत अधिष्ठका-मुनी एक शुष्क उत्तरवायुका सञ्चार होता है। उस समय दक्षिणवाही कोई भी वायु पर्वत-भूमि पर नहीं चलती। परन्तु रात्रिको दक्षिण ढालू प्रदेशसे एक दक्षिणामिमुखी गीतल वायु नदीके समतल प्रयात तक प्रवाहित होती है। यह प्रयात-स्निग्ध गीतल पवन अधिकतर प्रथम मालूम देता है। समतलभोजसे पर्वतकी ऊँची गिरा तक बहनेवाले गीतल प्रवाहकी पार्वतीय वायुका गीतकटिबन्ध कहा जा सकता है।

प्राचीन आर्य उपनिबिंदकी छोड़ कर हिमालयकी पादभूमिसे समुद्रतीर पर्यन्त विस्तृत दलदल-युक्त सिन्धु विभाग, कच्छकी लघुगाका सैकतभूमि, जैमलमेर और धोकानेरका पर्वतसप्तकोर्ण मरुप्रदेश और लुसाई नदीसे प्लावित उर्वर मरुप्रदेशोंमें प्रायः वर्षा नहीं होती। इसके पूर्ववर्ती भारावल्ली शिखरसे लगे हुए स्थानोंमें तथा उत्तरपञ्जाब प्रदेशमें दक्षिण पश्चिमों मौसुमीवायु और उससे विपरीत मौसुम गीतबलुमें बहुत वर्षा होती

है। पञ्जाबके दक्षिणदिग्दर्शी मुलतान और सिरसा विभागमें वर्षाका परिमाण ७ इंच है।

चतुर्थीप डेल्टा भागमें दो विस्तृत श्वेद क्षेत्र देखनेमें आते हैं। उनमेंसे प्रथम आसाम-उपत्यका और प्रसूतनदके दलदलयुक्त अन्वाहिका प्रदेशको ले कर बना है। इसको उत्तर-सीमामें हिमालयपाद-प्रसूत गण्डशीलमाला और दक्षिणमें गारो, खसिया और नागा पर्वत है। दूसरा विभाग उन दोनों पर्वतोंके निम्नभागमें अवस्थित फोल और दलदलयुक्त स्थान त्रिपुरा और लुसाई राज्यसे विच्छिन्न है। इस प्रदेशका जलवायु साधारणतः जलासक्त है। पर्वतमालाके दक्षिणदिशामें प्रचल वर्षा होनेके कारण स्थानीय स्वास्थ्यमें विशेष वैषम्य उपस्थित होता है। शिवसागर और सिलचर नामक स्थानकी वैकालिक वायवीय चापकी परिणति आयुर्विद्याविदोंके लिए एक आलोचनाकी वस्तु है।

आर्यावर्तके अनुगाङ्गप्रदेशकी अतिप्रम करनेसे पुनः विन्ध्य और सातपुरा पर्वतमालाकी विस्तृती अधिष्ठका भूमि दृष्टिगोचर होती है। इसके उत्तरमें कर्कटकान्ति, पूर्वमें सोमान्तरप्रदेश, दक्षिणमें मध्यप्रदेश और पश्चिममें काम्बे-उपसागर है। भारतके पश्चिधल पर स्थापित यह विस्तृती अधिष्ठकाभूमि भूतत्त्वकी भीमोलिक धाला-चनाके लिए विशेष उपयोगी है। इसकी प्रधान प्रधान अववाहिकाविधीत नदियां उत्तरमें गङ्गा और नर्मदां तथा दक्षिणमें ताप्ती, गोदावरी, महानदी और अन्यान्य प्राप्ताभ्रोंमें जा मिलो हैं। सुदूर पश्चिममें नर्मदा और ताप्ती नदी प्रवाहित सीमान्तराल दो उपत्यकाओंमें पूर्व-पश्चिमामिमुखी वायु चलती है। दक्षिण-पश्चिम मौसुमके समय यहां बहुत वर्षा होती है।

विन्ध्य-गिरिवालाके विस्तीर्णी अधिष्ठका देशकी पार कर उत्तर ती तरफ मालवा और बुन्देलखण्डकी अधि-रथकासे पहुँच सकते हैं। यह नर्मदा उपत्यकासे पूर्वमें जीण नदी तक विस्तीर्ण है। इसके मध्य-यहित पश्चिमदेशमें भारावली पर्वत अहमदाबादसे दिल्लीके समीप तक गया है। वहाँ इस पर्वतमालाके रहनेसे स्थानीय और पूर्वदिग्दर्शी अजमेरप्रदेशकी वर्षा



और वायु भिन्न गतिको प्राप्त हुई है। आबू पहाड़के पार्श्व-वर्ती स्थानमें वायु दक्षिणपश्चिम-गतिमें प्रवाहित है। वहां जब दक्षिणपश्चिम मौसुमी वायु चलती है तो बहुत वर्षा होती है। आश्चर्यका विषय है, कि इसके पश्चिमपार्श्वदेशमें वीकानेरके मरुभू-प्रांतर पर्यन्त विस्तृत स्थानमें कभी वर्षा नहीं होती।

सातपुरा शैलमालाके दक्षिण-दिश्वर्ती त्रिकोणाकार दक्षिणात्य अधित्यका भूमि पश्चिममें सहायद्रि (पश्चिम घाट), दक्षिणमें नीलगिरि और पूर्बमें पूर्बघाट पर्वत-वेष्टित तटभूमि द्वारा संगठित है। यहां हमेशा दक्षिण-पश्चिमी मौसुम-वायु बहती रहनेसे वर्षाको भी कमी नहीं रहती; परन्तु जब यह वायु पश्चिममुखी हो कर घाट-प्राचरके ऊपर चलती है, तब उसके निकटवर्ती पूना आदि स्थानोंमें वर्षाको कमी हो जाती है। उस समय पूर्वदिश्वर्ती स्थानमें पर्याप्त वर्षा हुआ करती है। परन्तु पश्चिमघाट और सातपुरा पर्वतमालासे टकरा कर उपर-से लौटते समय वह बङ्गोपसागरमें प्रवाहित एक पूर्व-वायुगतिके साथ मिल जाती है। फिर वह उत्तरकी ओर अनुगङ्गाप्रदेशमें न बह कर पुनः दक्षिणपूर्व भारतके किनारे प्रवाहित होती है। यही पहले दक्षिणपूर्व मौसुमी वायु कहलाती थी। (अब भी बहुतसे लोग इसे दक्षिण-पूर्व मौसुमी वायु कहते हैं।) यह उस दक्षिण-पश्चिम मौसुमी वायुको एक भिन्न गति मानें है। इससे वर्षा खूब होती है।

पूर्व और पश्चिम-घाटके कोणाकार संयोग-स्थलमें नीलगिरिका अधित्यका प्रदेश है। इसके दक्षिणमें अन-मलय, पालनी और त्रिवाङ्गोडका पार्वत्यप्रदेश है। इन दोनोंके व्यवधानमें ३५ माइल विस्तीर्ण पालघाट नामक गिरिसङ्घट है। यहांकी दक्षिणपश्चिम मौसुमी वायुकी फौड़ा अतीव रमणीय है। उस समय यहां बहुत वर्षा होती है, किन्तु उत्तरपूर्वी मौसुमके समय बेहोरके निकट वर्ती मालचर उपकूलमें प्रबल वेगसे तूफान होता है। सामुद्रिक वायुके स्वच्छन्द विहारके कारण यहांकी उत्-कामन्द उपत्यका साधारणके लिए विशेष स्वास्थ्यकर है। कप्तान न्यूबोल्डका कहना है कि, इस स्थानकी वायु पूर्वकी ओर निकल कर कभी कभी बङ्गोपसागरमें भीषण तूफान ला देती है।

उक्त दोनों घाटोंके पार्श्ववर्ती भारतोपकूल और पर्वत-तट साधारणतः वनसे घिरा हुआ है। परन्तु वाणिज्य-बन्दर साफ-सुथरे शस्यादिसे परिपूर्ण हैं। यहां वर्षा-ऋतुमें प्रबल वृष्टिपात होता है। इसलिए यहांकी वायु उष्ण होने पर भी जलसिक्त मालूम पड़ती है।

ब्रह्मदेशमें आधा नगरीके समस्त भूभाग पर्वतमय है। भूमिकम्पले समय समय पर यहांकी बहुत हो हानि होती रहती है। १८३६ ई०में आधा नगरी श्रीहीन हो गई थी। पर्वत और उपत्यकादिके अवस्थानके भेदसे यहां किसी किसी स्थानकी वायुको गति-में भी बहुत कुछ परिवर्तन हो जाता है। वायुके ऊपरमें स्थित मेघमालाकी गतिका पर्यवेक्षण करके डा० अण्डसेनेने निश्चय किया है, कि, यहां भी हिमालय प्रदेशकी तरह एक दक्षिणपश्चिम वायुगति विद्यमान है। ईरावती नदीकी उपत्यकाके नीचे अर्धात् पेरू विभागके समीपस्थित प्रदेशमें प्रभूत वर्षा होती है। यहांका जल-वायु नतो बहुत ठण्डा ही है और न विशेष गरम, साधारणके लिए मनोरम है। परन्तु पेरूका उत्तरवर्ती उपत्यका विभाग शुष्क और दृक्षादि-रहित मरुभूमि सङ्ग है। यहां वायुका प्रायः असाव ही समझना चाहिए।

आवहविद्याविदोंने अनुसंधितसु हो कर वायुमान यन्त्रकी सहायतासे भारतके उच्च और निम्न स्थानोंसे वायुका उत्ताप और चाप ग्रहण कर जो सिद्धान्त निश्चय किया है, वह वायवीय अवस्था-भेदसे वृष्टिपातके निरा-करणमें समर्थ है। नीचे उदाहरण स्वरूप कुछ स्थानोंके नाम, चाप, ताप और वृष्टिपातका नक्सा दिया जाता है।

स्थान	वायवीय ताप	चाप	वृष्टिपात
फलकत्ता	७६-२'	२६°८४'	६६ १६ इंच
बम्बई	७८-८'	२६°८२२'	६७ "
मन्द्राज	८२-४'	२६°८५६'	४४ "
वाजिलिंग	५३-६'	२४°०५८'	११६ २५ "
सिमला	५४-३' (जून)		७० ४२ "
दिल्ली	६४-३' (जून)		२७ ५ "
मुल्तान	६५-		७ १६ "
पोर्बन्दर	८०-५'		११८ २५ "
सागरद्वीप	७६-५'		७३ ८५ "
फॉल्सपॉयट	८०-२०'	२६° ८२'	

ऊपरकी निर्दिष्ट परिमाण-सूची वार्षिक हिसाबके सामञ्जस्यानुसार उद्धृत की गई है। कभी कभी स्थान विशेषमें वृष्टिपात और तापनिर्दिष्ट संख्यासे द्विगुण भी हो जाता है। वायवीय ताप और चापके ऐसे उन्नमन और अवनमनको देख कर आवहविद्विगुण मेघ, वृष्टि और आंधीके तारतम्यको समझनेमें समर्थ होते हैं। इसीलिए मेघ-मण्डित आकाशमें घोर धनघटा और वारिसिञ्जन-सहित सारङ्गोन, टर्णांडो आदि भीषण ऋटिका-प्रवाह कभी कभी भारतभूमिको आलोकित कर दिया करता है। हिन्दूशास्त्रोंमें इसे एक प्रकारका दैव विपत्तयान कहा गया है।

भारतवर्षीय आवहविद्याविद्वगण याह्य प्रकृतिके साथ वायुकी गतिविधिकी पर्यालोचना कर इस प्रकारके एक सिद्धान्तमें उपनोत हुए हैं :—

वायुका चाप अधिक होनेसे शीतकालमें वृष्टि और और हिमालयके पश्चिमदेशमें प्रभूत तुषारपात होगा। साथ ही दक्षिण-पश्चिममें मौसुमी वायु भी चलती रहेगी, उस वायुका वेग क्षीण होनेसे किसी किसी जगह लगातार बार बार वृष्टिपात और कहीं कहीं दीर्घकाल-ध्यापी अनावृष्टि हुआ करती है। अतएव दुर्मिशादि उप-द्रव भी पीछे पीछे चलते हैं। बहुत ऊहापोहके साथ भारतवर्षके प्राकृतिक अवस्थानका पर्यवेक्षण करनेसे बात होगा कि वायु-प्रवाहके इस नियमित कारणसे ही बङ्गाल और मालाबरकी अपेक्षा दक्षिणात्य और उत्तर-भारतमें ऋषिकालमें उपयोगी वृष्टिपातका अभाव हुआ करता है। चापके आधिपत्यके कारण वायुके विपर्ययसे ही पहले इस शस्यपूर्णा भारतभूमि पर बहुत बार दुर्मिश हो चुका है। दुर्मिशके प्राकालीन वायवीय परिवर्तनके समय सूर्यमें एक विन्दुपात दिखलाई देता है। किसी भी एक समयसे दूसरे समय तक जो सूर्यमें उक्त प्रकारका विन्दुपात होता है, वह सौरविन्दु संवत्सर (Sun-spot Cycles) नामसे प्रसिद्ध है। १८६८ ई०के भारी भूकम्प और दुर्मिशके समय इस प्रकारका सौरविन्दु और भानुकम्प दिखलाई दिया था। यह भावी दुर्वटना-सूचक एक दैवचिह्न है।

जलवायुके प्रभावसे ही ऋषिकार्यकी उन्नति और अव-

नति होती है। प्रकृतिकी समता-रक्षापूर्वक वृष्टिपात और वायुप्रवाह अपने अपने कार्यमें तत्पर रहें तो भूमि-की उर्वरता बढ़ती है। अतिवृष्टि या अनावृष्टि विशेष अमङ्गलकारी है। स्थान विशेषमें १२ फुट नीचे जलगर्भसे धान्य उत्पन्न होता है, किन्तु लगातार वर्षा हो कर यदि वह धान्यको डुबो दे, तो धान्य नाशकी अप्रति सम्भावना है। इसी प्रकार धान्य-वपनके बाद ऊँची सूखी भूमिमें भी अधिकवर्षा होनेसे जड़ सड़ कर धान्यकी विशेष क्षति करती है। इसीलिए किसान लोग स्वाभाविक आवश्यक वर्षा चाहते हैं। वृष्टिका अभाव होने पर नदी आदिसे नहर या बम्बा निकाल कर खेतोंमें पानी पहुंचाया जाता है। परंतु लगातार ५-६ वर्ष सूखा पड़नेसे नदीमें भी जलाभाव हो कर दुर्मिश अनिवार्य हो जाता है। प्रशस्त मार्गादि तथा वाणिज्यकी सुविधा होनेसे अब भारतवर्षको स्थानोय दुर्मिशसे विशेष पीड़ित नहीं होना पड़ता है। दक्षिणात्य भूमिके पार्वत्य विभागमें गमनागमनकी विशेष सुविधा न होनेसे वहाँ दुर्मिशका प्रकोप अधिक होता है। अनावृष्टिके कारण सुदूरप्रापी दुर्मिशसे तथा वाणिज्यके लिए भारतीय पण्यद्रव्य विदेशमें जानेसे भारतवासी विशेष क्षतिग्रस्त और दुर्मिश पीड़ित हुआ करते हैं।

समग्र भारतवर्षमें करोड़ ६ करोड़ आदमी ऋषिकार्य (खेती-बारी) द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं। ये धर्मजीवी किसान लोग अपनी अपनी भूमिको अव-स्थानुसार खाद दे कर तथा अन्यान्य उपायोंसे उर्वरता बढ़ाने हैं। उससे साधारण जमीनको अपेक्षा अधिक नाज पैदा होता है। जमीनमें बीज बोनेके पहले पहल जोतना पड़ता है। उसके बाद बीज फैला कर फिर उसे जोतने-से अंकुर उत्पन्न होते हैं। धान्यकी खेतीकी प्रथा पृथक् है। उसमें पहले जोती हुई पनोली जमीन पर बीज कबोरे जाते हैं पीछे अंकुर निकल कर तब वे एक बिल्लके होते हैं, तब उन्हें दूसरे साफ खेतमें गाड़ देते हैं। भारतवर्षमें प्रधानतः धान्य, गेहूँ, जौ, जूआर, बाजरा, उरद, अरहर, चना, मटर आदि अनाज तथा राई, सरसों, तोसी, रेड़ी और तिल आदि तैलकरोत्र, पैंगन, आलू, गोबी, मूली, पिप्लाज, लहसुन, गाजर, सकरकन्दी आदि शाकसब्जो, आम, फेला, कटहद, दाड़िम, अमरुद, चरपूज,

फूट, ककडी, नौबू, आदि समस्त सुमिष्ट और अम्लमधुर-फल, सुपारी, नारियल, खजूर, ईख, तम्बाकू, चाय, अफीम, और पाट, सन, रेगम, रुई नील, लाख आदि द्रव्य उत्पन्न होते हैं। किसान लोग अपनी अपनी जमीनमें पैदा हुई चीजोंको बेच कर जमीनकी मालगुजारी देने और अपने जीवन निर्वाहकी आवश्यक सामग्री संग्रह करते हैं। दक्षिणमें नीलगिरीसे लगाकर हिमालयके ढाल

प्रदेश तक तथा पूर्वमें खासिया पर्वतसे चट्टग्राम तक और ब्रह्म आदि स्थानोंमें चाय, आलू, गोधी और सिनकाना नामक उद्भिदकी खेती होती है। उक्त पदार्थोंको खेती-बारीका विवरण उन उन शब्दमें लिखा गया है। अंगरेजों द्वारा शासित भारतके विभिन्न स्थानोंमें अधिकतर किस चीजको कितनी जमीनमें खेती होती है, उसकी एक तालिका नीचे दी गई है :—

उत्पन्न होनेवाले द्रव्य	मद्राज	बम्बई	सिन्धु	पंजाब	मध्यप्रदेश	निम्नब्रह्म	मिहसुर	बरार
धान्य (चावल)	४६०००००	११६५०००	५१२०००	४०००००	४५५००००	२५५५०००	५४००००	३१०००
गेहूं	१६०००	५६१०००	३५४०००	७००००००	३६०००००	...	११०००	५२५०००
क्षुद्रशास्य उद्बुद	१०६०००००	५८०००००	६३४०००	६००००००	५१४००००	...	३४०००००	२९६००००
तैलकरचीज	८०००००	६२८०००	१८००००	८०००००	१३६००००	१५०००	१३००००	४६००००
रुई	१००००००	१३५००००	७००००	६६००००	८४००००	१००००	१५०००	२०८००००
तम्बाकू	६००००	३५०००	६०००	८००००	४८०००	१७०००	१६०००	१७०००
नील	१२००००	१४०००	१००००	११००००	...	७००	...	...
ईख	२१८००	५००००	४८००	३८००००	१०००००	४०००	१३०००	५०००

यह जमीनका परिमाण अन्त्याप्तसे लिखा गया है। कहीं कहीं इससे भी कहीं अधिक जमीन जोती और बोई जाती है।

बंगालमें धान्य और पाटकी खेती मुख्य है। सारे बंगाल भरमें कितनी जमीन पर धान और पाटकी खेती होती है, इसका निर्दिष्ट विवरण उपलब्ध नहीं है। पाट, नील, इष्ट, तम्बाकू और तैलकर चीजोंका विवरण उन उन शब्दोंमें देला।

हल जोतनेमें बैल, भैंसे, ऊँट और घोड़े आदि जोय काम आते हैं। इन पशुओंकी सहायताके बिना जमीनका जोतना बिलकुल असम्भव है। अनाज और सब्जी पैदा करनेके लिए किसानोंमें जैसा उद्योग, परिश्रम और आग्रह पाया जाता है, वैसा याण्डियके अभिप्रायसे सम्प्रदाय विशेषमें पशुपालनको आकांक्षा भी प्रबल हो उठी है। वे भी किसानोंकी तरह अपने अपने पशुओंका पालन और उनके बच्चे पैदा कर बेचा करते हैं। पंजाब और उससे पश्चिम प्रदेशमें बुद्ध-व्यवस्थाके लिए घोड़े और खघर, घोके लिए भैंसें, यान और हाणिके लिए ऊँट बेचनेके

लिए हाथी और ऊनके लिये बकरे और भेड़ें, चरवी और खानेके लिए सूअर आदि पशु पाले जाते हैं।

लोभ और लाभके चशबर्तों हो कर गवर्नमेंटने जैसे मैग्नेसिह राजवंशका हस्ति-विक्रय व्यवसाय छीन लिया, वैसे ही दक्षिण, मध्य और पश्चिम-भारतके वन्य प्रदेशसे अर्थ सञ्चय करनेके अभिप्रायसे उन लोगोंने देशीय सामानोंसे वन्य विभाग हस्तगत कर लिये। जिससे मूल्यवान साल, सेंगुन, सिरीस तृण आदिके अङ्गुल-प्रकृतिके अधीन रह कर पुष्ट कलेबरमें विद्यमान रह सकें तथा दावानलसे जल न सकें इसके लिए गवर्नमेंटने विशेष व्यवस्था की है। १८४४ और १८४७ ईमें बम्बई और मद्राज गवर्नमेंटने वन्य विभाग अधिकार करनेके लिये प्रयास किया था। उनके प्रस्तावित विषयमें लम्बांश अधिक जान कर गवर्नमेंटने १८६४ ईमें आंग्ल-ब्राण्डिसकी वन्यविभागाका प्रधान परिदर्शक (Inspector General of Forest) बनाया था। उसके दूसरे ही वर्ष यन्त्र-रक्षण सम्यंघों एक कानून बना दिया गया। गवर्न-

मेण्ट द्वारा अधिकृत समस्त वनभूमि साधारणतः रक्षित (Reserved.) और मुक्त (Open) ऐसे दो प्रकार की हैं। रक्षित वन वन्य-विभागके कार्यकर्ताओं द्वारा, खास अधोनतामें स्थापित हैं। जंगलियों द्वारा आग लगाये जानेके भयसे उसके चारों तरफ सशस्त्र प्रहरी नियुक्त हैं। इनमें असभ्य पार्वत्य जातियां वास नहीं कर सकतीं। 'मुक्त' वनोंको रक्षाके लिए किसी प्रकारका पहरा नहीं है। वन्य जातियां इच्छानुसार उनमें खेतो-बारी कर सकती हैं; परन्तु उनमें भी जहाँ जहाँ सालके पेड़ हैं, वे रक्षित हैं। इन प्रदेशोंमें आवादीके लिए वन्य विभाग (Forest Department) में वार्षिक बहुत रुपये व्यय होते हैं; इसे नृतीय श्रेणी समझना चाहिए।

उत्तर-पश्चिम सीमान्तदेश, आसाम, चट्टग्राम, आराकान, ब्रह्म, मध्यभारत और पश्चिमघाट आदि पर्वत-मालाओंमें अनेक असभ्य जातियोंका वास है। वे स्वतन्त्र प्रधासे कृषिकार्य निर्वह करते हैं। ब्रह्ममें 'लौङ्ग्या', ३० प० सीमान्तमें 'जूम', हिमालयमें 'कील', मध्यप्रदेशमें 'दटा' और पश्चिमघाट पर्वतमालामें 'कुमारो' प्रधासे खेतोबारी होती है। इन स्थानोंमें हलसे खेत नहीं जोते जाते। कहीं वन्य भूमिको जला कर, कहीं गुरपासे मिट्टी छील कर और कहीं कुडाहड़ी या कुदालोसे खोद कर बीज बोये जाते हैं। ये एक जमीन पर लगातार दो वर्ष पैती नहीं करते। हर वर्ष जमीन बदल लिया करते हैं। ये जमीनमें किसी प्रकारका सार नहीं देते और न शिक्षित किसानोंकी तरह कुछ उलट-फेर ही करते हैं। तथापि इनके खेतोंमें बहुतायतसे धान्यादि अनाज पैदा होता है।

वाणिज्य।

पष्यद्रव्यकी खरोद-विक्रीका नाम वाणिज्य है। भारतीय प्रजाके परिश्रम और कृषि-कौशलसे उत्पन्न द्रव्यको ही 'पष्य' कहते हैं। वर्ष भर सरदी-गरमी; वर्षा और घाम सह कर कष्टसहिष्णु कृषकगण अपने अपने खेतोंमें जो फसल पैदा करते हैं उसमेंसे कुछ अंश अपने भरण-पोषण और आगामी बीजके लिए रख कर बाकी सब मालगुजारी आदि आनुसङ्गिक व्यय-भार वहन-के लिए महानजनोंके हाथ देव देनेको वाध्य होते हैं।

कहीं कहीं पेशगी देनेवाले महाजन लोग उस बाकीके अंशसे भी ज्यादा माल ले लेते हैं, जिससे बेचारे किसानों-को अपने भरणपोषणमें भी अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं। इन अत्याचारोंसे कभी कभी प्रजा-विद्रोह आदि उत्पात तथा दुर्मिक्षादि भी दिखाई देने लगते हैं। यद्दालकी नीलकी कोठीवालोंका अत्याचार, १७९३ ई०के सन्ध्यासि-विद्रोह और १८३१-३२ ई०के कोल विद्रोह आदि उच्च-डुलताओंका कारण था। राजा प्रजाके कष्टों पर ध्यान नहीं देते थे, इसी कारण प्रजा ऐसे उद्धत भावकी धारण करती थी।

प्रजागण अपने अपने परिश्रमसे उपार्जित धान्यादि महानजनोंके हाथ सौंप कर निश्चिन्ततासे पैर पसार कर सोते हैं। निरीहस्वभाव दीन दुःखी किसान लोग तो अपनी अपनी जमीनकी तरफीमें लगे रहते हैं, पर महाजन लोग लाभकी आशासे एक जगह-की चीज दूसरी जगह ले कर बेच देते हैं। फल यह होता है, कि जहाँ पैदावारी होती है, वहाँके लोग कष्ट पाते हैं। उच्च महाजन लोग शहरोंमें दून भाव पर माल बेच कर मनमें फूले नहीं समाते।

भारतीय वाणिज्य साधारणतः चार प्रकारसे चला करता है। १ अर्णवयान द्वारा वैदेशिक राज्यके साथ, २ उपकूल वसों नगरोंमें, ३ हिमालयके उत्तर और पूर्व सीमान्तवर्ती राज्योंके साथ और ४ भारतसाम्राज्यके मध्य।

विस्तीर्ण समुद्रके बीचमें रहने पर भी भारतके उप-कूलदेशोंमें वाणिज्यके लिए उपयोगी बन्दरगाह नहीं हैं। गङ्गा और ब्रह्मपुत्र नदीके समग्र अथवाहिक्का प्रदेश-में उत्पन्न होनेवाले द्रव्यका वाणिज्य फेरल कलकत्ताके मार्गसे ही होता है। इसके सिया अन्य स्थानोंमें पैदा होनेवाली चीजे भी देशीय और वैदेशिक बणिक् सम्प्र-दाय द्वारा अन्धेरी तरह बोरे आदिमें भरी जा कर गाड़ी, नाव या रेलसे कलकत्ता बन्दरकी तरफ जाती है। भारतकी चीजे भारतमें ही स्वदेशियोंके व्यवहारार्थ जो जाती आती हैं, यह अन्तर्वाणिज्य कहलाता है और जो द्रव्य वैदेशिकोंके जहाजोंमें भर कर सुदूर देशान्तरोंमें भेजा जाता है, उसका नाम सामु-द्रिक-वैदेशिक-वाणिज्य है। इसी तरह गुजरात, दक्षि-

णात्य और मध्यप्रदेशका तमाम अनाज बम्बई हो कर, सिन्धु प्रदेशका अनाज कराची हो कर और इरावती प्रवाहित निम्न ब्रह्ममें उत्पन्न होनेवाला माल रंगून हो कर समुद्रके मार्गसे नाना देशोंमें भेजा जाता है। यह भी सामुद्रिक वाणिज्य है और सड़कोंके सिवा इन चारों बन्दरोंमें माल पहुंचानेकी सुविधाके लिए रेलपथ भी विस्तृत है। इनके अतिरिक्त मालावर उपकूलमें गोआ, फोचीन, मङ्गलोर, कोन्नानोर और वेपूर तथा करमण्डल-उपकूलस्थ मछलीपत्तन आदि छोटे छोटे बन्दरगाहोंमें भी भारतका औपकूलिक वाणिज्य होता है। मालावर उपकूलवर्ती वाणिज्य बन्दरगाहोंमें भी भारतका औपकूलिक वाणिज्य चलता है। माला-वार उपकूलवर्ती वाणिज्यबन्दरोंमें अथवा वहांको नदियोंमें जहाज जा सकते हैं। परन्तु करमण्डल उपकूलवर्ती मन्द्राज आदि नगरोंमें प्रवेश करनेका मार्ग निरापद नहीं है। वैदेशिक जहाज नजदोफमें हो समुद्रमें ठहराये जाते हैं। वहांसे छोटे छोटे स्टीमरों या नावोंके जरियेसे माल ला कर जहाजोंमें लादा जाता है। भारतीय सामुद्रिक वाणिज्यका चालीसवां भाग कलकत्ताके मार्गसे और तदनु रूप बम्बईके मार्गसे तथा पट्टांश मन्द्राज, चतुर्थांश रंगून, द्वि-अंश कराची और शेष अष्टांश उपकूलवर्ती छोटे बन्दरोंसे होता है।

बहुत समयसे भारतमें वैदेशिक वाणिज्यका प्रभाव विस्तृत था। उस समय भारतीय वणिक् विभिन्न देशोंमें स्वदेशीय पण्य द्रव्य ले कर वाणिज्यके लिए गमन करते थे। चीन, यव, बालि आदि द्वीपों और अरब, इजिप्ट, रोम आदि सुदूर देशोंमें भारतीय धनरत्न और धान्यादि शस्यका विक्रय होता था। भारतमें उत्पन्न मुक्ता प्रवाल, मरतक, होरा सुन्ती आदि मूल्यवान् प्रस्तरीयोंकी प्रसिद्धि समुद्र-रोमसाम्राज्यमें भी परिल्याप्त थी। नेल्डूर, बाली आदि स्थानोंमें उस प्राचीन भारतीय वाणिज्यके निदर्शन मिले हैं। इसके सिवा ऐतिहासिक और भ्रमणकारियोंके वृत्तान्त पढ़नेसे भी उस वाणिज्यकी स्मृति जागृत हो उठती है।

भारतवासियोंका यह वाणिज्य-गीरवके अपसृत होने तथा उर्चागनमें भारतीय (हिंदू) वणिकोंका

ध्यान-वाणिज्य प्रसारकी ओर न रहने पर भी भारतीय वाणिज्यका किसी प्रकार हास नहीं हुआ है। अ-वैदेशिक वणिक्-सम्प्रदाय भारतको सामग्री वाणिज्य शक्तिको हड़प रहा है। भारतमें हिंदू राजाओंका लो-होने पर क्रमशः विधर्मी मुसलमानोंका शासन फैल गया। ११६३ ई०में महमद गौरीके भारतप्रक्रमणके बाद उत्तर-भारतमें मुसलमानोंका प्रभाव विस्तृत हुआ उस समय मुसलमान लोग भारतमें पैदा होनेवाली तर-तरहकी चीजें अफगानिस्तान, तुर्किस्तान आदिमें ले-कर उसके बदले वहांके मेंड, बकरे, रोम, सींग आदि-भारतमें ला कर बेचते थे। अब भी मुसलमान और कु-पञ्जाबी आदि वणिक् अफगान सीमान्त और तुर्किस्तान रह कर पारवर्त्य वाणिज्यको प्रसार बढ़ा रहे हैं। अला-उद्दीन खिलजीके दाक्षिणात्य आक्रमणसे पहले दक्षिणात्य में राष्ट्रकूट, यादव, चालुक्य आदि राजवंश राजत्व करते थे। उस समय हिंदू वणिक्गण वाणिज्यकी उन्नतिमें-दक्षिण थे। उस समय अरब आदि देशोंसे विदेश-वणिक् लोग भारतमें आ कर पण्यद्रव्य खरीद ले जाते थे। मुगलसम्राट् अकबरशाहके दण्डप्रतापसे दाक्षिणात्य मुगल और मुसलमानोंका प्रभाव मजबूत हो गया था, तब दाक्षिणात्यके कठोर सभी वाणिज्य मुसलमान राजपुरुषोंके हस्तगत हो गये। अत्याचारी मुसलमानराजपुरुषोंके ऊपर क्रुद्ध होकर सम्मयतः हिन्दू वणिकोंने मुसलमानोंके घासभूमि अरब आदि देशोंमें जा पण्य द्रव्य बेचन-बन्द कर दिया था। साथ ही इस्लाम-धर्मदीक्षाके प्रया-मुसलमानोंके कठोर शासनसे पीड़ित हो कर, विद्वेषयत-हो चाहे जातिव्युत्पत्ते भयसे, वे मुसलमानोंका सहवास छोड़नेके लिए सब तरहसे पाथ्य हुए थे। यही कारण है कि इस प्रकार छोड़े ही समयके भीतर भारतवासियों-हिन्दुओंका वैदेशिक वाणिज्यका अन्त हो गया।

जिस प्रकार भारतीय पण्य द्रव्य किसी समय दूर-देशोंके लिए भेजे जाते थे, उसी प्रकार वहांकी कोई न-फोंडे चीज उस समय भारतवासियोंकी अङ्ग-शोभा बढ़ाती-थी। अरतर्वाणिज्यके फलसे दाक्षिणात्यसे जिस प्रकार-प्रवाल, मुक्ता आदि समुद्रज मूल्यवान् द्रव्य उत्तरभारतमें-आते थे, उसी प्रकार सुदूर अष्ट्रेलिया द्वीपसे अब भी

मुक्ता, प्रवालादि भारतमें आया करते हैं। भारतमें यवन राजाओंके अधिकारकालमें नाना प्रकार अलङ्कार और अंगरखे आदिका प्रचार था। भास्कर शिल्पमय शीश और शक चित्रोंसे उसका पूरा आभास मिलता है।

भारतका प्राचीन वाणिज्यकालोत्थान होने पर पुर्तगाल ओल्डन्डाज, फरासीसी, जर्मन और अंग्रेज वणिक्गण वाणिज्यके उद्देशसे एक एक कर भारतमें पदार्पण करने लगे। पुर्तगालीने वाणिज्यके अभिप्रायसे भारतमें आकर भारत महासागरके किनारे फैला प्रभुत्व विस्तार किया था, 'पुर्तगाल' शब्दमें उसका विस्तृत विवरण देखना चाहिए। जर्मन वणिकोंका अर्थ-पिपासाके कारण हो जा परामर्श-दाताओंके पारस्परिक विरोधके कारण, अकालमें ही समुद्रगर्भमें जलबुद्बुदवत् नाश हो गया था। ओल्डन्डाजोंने कुछ दिनोंके लिए भांगोरथी तौरवत्तों श्रीरामपुर नाममें रह कर वाणिज्यकी उन्नतिकी चेष्टा की थी, परंतु अंग्रेजों और फरासीसियोंके साथ प्रतियोगितामें पराङ्मुख हो कर वे श्रीरामपुरकी फोटी अंग्रेज वणिकोंके हाथ बेच कर निम्न बंगालकी वाणिज्याशां विसर्जित करनेके लिए बाध्य हुए। आखिरमें भारतमें दृढमिति स्थापनके लिए फरासीसी और अंग्रेज वणिकोंमें घोर प्रतिद्वन्द्विता आरम्भ हुई। दक्षिणात्यमें फरासीसी और अंग्रेजोंका विरोध इतिहासमें ज्वलन्त अक्षरोंमें लिखा है। १७५७ ई०में फरासीसियों और आखिरमें नवाब सिराजउद्दौलाकी परास्त कर अंग्रेज वणिकोंने लार्ड क्लाइवकी अधिनायकतामें बङ्गराज्यमें प्रभुत्व स्थापन किया। १८०३ ई०में महाराष्ट्र विजयके बाद समस्त दक्षिणात्यमें अंग्रेज वणिकोंका प्रसार बढ़ने लगा। उसके बाद १८५७ ई०के प्रसिद्ध सिपाही विद्रोहके बादसे अंग्रेज-वणिक्-सम्प्रदायने अप्रतिहत प्रभावसे भारतमें सामुद्रिक वाणिज्यका विस्तार किया। अब अंग्रेज, फरासीसी, ग्रीक, जर्मन, हिन्दू, पुर्तगाल, यहूदी, पारसी, मुसलमान आदि नाना जातीय वणिक्-सम्प्रदायने भारतके वाणिज्य सूत्रकी धारण किया है, परन्तु सभी अंग्रेजको शुक्य देने हैं।

वैदेशिक वणिक्समिति द्वारा भारतमें आने वाली चीजें ये हैं—कोदरे, घुले हुए और छोटे आदि नाना प्रकारके सूती

वस्त्र, छतरी, कोयला, लोहेकी तमाम चीजें सुरा, कैची, उत्तरे, आदि अग्रशस्त्र, कल कञ्जे, धनेक प्रकारके मद्य, तांबा, लोहा मीसा, सोना, चांदो आदि धातुएं, नाना प्रकार पाचद्रव्य, रेडगाड़ीका असहाय, नमक, रेशम और उससे बनी हुई चीजें, गरम मसाले, चीनी, पशुमे वस्त्र, नारियलका तेल और औषधादि नाना प्रकार उपकरण।

भारतसे विदेशको जानेवाली चीजें—चाय, फाफो, रूई, सूतीवस्त्र, सूत, नील और अन्यान्य रंग, धान्य, चायल, गेहूं, चना आदि अनाज। पशुचर्म, पटसन और घोरे, लाख, तैलादि, बफोम, सीरा, मसीना, तिल, राई, रेडो आदि तैलकर बीज, रेशम और उससे उपन्न वस्त्रादिके वस्त्र, गरम मसाला, चीनी, साल और सेंगुनकी लकड़ी, तम्बाकू, ऊन और ऊनके वस्त्र आदि। इनके सिवा और भी बहुत सी चीजें विभिन्न देशोंकी जाती हैं। विशेष विवरण उन्हीं शब्दोंमें देते।

यह पहले ही लिखा जा चुका है कि वर्तमान युगमें एकमात्र अंग्रेज वणिकोंने जागतिक वाणिज्यका पूर्णाधिकार अपने हाथमें ले रखा है। उनके उत्साहसे प्राच्य देशोत्पन्न सभी प्रकारके पण्यद्रव्य इंग्लैण्डकी राजधानी लण्डनमें लाये जाते हैं और वहांसे यूरोपके विभिन्न देशवासी वणिक्गण प्रयोजनानुसार सन, ऊत आदि चीजें खरीद लिये जाते हैं। पहले दक्षिण अफ्रीकाके उत्तमाशा अन्तरीपकी घेष्टन कर पण्यवाही जहाज यूरोपमें पहुंचते थे। १८६६ ई०में स्वेज संयोजनसे नहर काटो जानेसे वाणिज्यका प्रसार बढ़ा और एक लम्बे रास्तेका भी आविष्कार हुआ। अब वणिक् दुलकी विशेष कष्ट नहीं सहना पड़ता। भारतीय पण्य द्रव्यसे परिपूर्ण हो कर अर्णवपोत एक मासके भीतर ही सुदूर इंग्लैण्डमें पहुंच जाने हैं।

भारतका आधुनिक वाणिज्य भारतीय सभ्य जातियों द्वारा ही प्रचलित हुआ है। सुभाचोत आर्य-युगमें जो लोग वाणिज्यकार्यमें निगुक्त थे, वे मनु द्वारा 'वैश्य' नामसे उक्त हुए हैं। अब भी उस वैश्यपंथके बहुतने लोग वाणिज्यकार्यमें लिप्त हैं। बम्बई प्रदेशके पारसी, गुजराती, बनिया और राजपूतानेके जैन मारवाड़ी

लोग वाणिज्य व्यापारमें समाधि क उन्नत हैं। दाक्षिणात्य, मद्राज और मैसूर विभागमें लिङ्गायत लोग, करमण्डल उपकूलमें शेठो और कोमती लोग तथा उन्नतशील शूद्र, मारवाड़ी, शेठो और नाखुदा लोग देशीय वाणिज्यका विस्तार कर रहे हैं। बङ्गालके वाणिज्यको हस्तगत करने के लिए बहुतसे जैन मारवाड़ी मुशिदावादमें भा कर बसे हैं। ये उत्तरमें चीन सोमान्त और पूर्वांम खसिया पर्वत तक जा कर वहाँके लोगोंके साथ स्वच्छन्दता पूर्ण व्यापार करते हैं। युक्तप्रदेशका वाणिज्यकेन्द्र बनियोंके हाथमें है। समग्र प्रजायप्रदेशमें खलो वा क्षत्री कहलानेवाले वैश्यसम्प्रदायने वाणिज्य विस्तार कर रखा है। देशीय वणिक्गण भारतसोमान्तवर्षों अरुगानिस्तान, उसके निकटवर्ष पार्यत्य राज्य, काश्मीर लाडक, तिब्बत, नेपाल, चीन, आसाम सोमान्तस्थित पार्यत्य प्रदेश, उत्तर और निम्न ब्रह्म तथा श्याम, कम्बोडिया आदि दूर देशोंमें जा कर अपना अपना वाणिज्य करते हैं।

प्रत्येक नगरस्थित बाजारोंमें अथवा ग्रामोंको हाट वगैरहमें स्थानीय एक एक छोटा वाणिज्य चला करता है। किसी किसी हाटमें हथकौंके लाये हुए धान्यादि शस्योंका बहुत बड़ा कारोबार भी होता है। आड़तियां महाजन लोग उन स्थानमें रह कर खरीद विक्री किया करते हैं। देवोद्देशसे मेला या उत्सवादि होने पर उसमें भी कहीं कहीं इस प्रकारसे धान्यादि शस्य और गाय, बैल, घोड़ा आदि पशुओंका क्रयविक्रय होते देला जाता है।

भारतमें रेलपथके विस्तारके पहले रास्ता और नदियों द्वारा वाणिज्यकी वस्तुएं जगह जगह जाया आया करती थीं। कलकत्तासे उत्तर पश्चिम प्रदेशमें गमनकी सुविधाके लिए १६वीं शताब्दीमें अफगानके सम्राट् शेरशाहने वर्त्तमान ग्रेण्ड ट्रैङ्क रोड नामक सुविस्तृत मार्ग चलाया। वडे लाट वेल्टिकर बहादुरने उसका संस्कार कर वाणिज्यके मार्गका सुविस्तृत किया है। इस प्रकार प्रशस्त मार्गमेंसे कुछ सड़के निकाल कर उत्तर पश्चिम-भारतके प्रधान प्रधान नगरोंमें मिला दो गईं। इन्हीं मार्गोंसे किसी समय

वणिक् लोग पेशावर तक जाया करते थे। और तो षया, हिमालय, नीलगिरि और पश्चिमगण्ट आदि पर्वतमालाओंके ऊपरसे गिरिसङ्कोटों हो कर मालसे लदो हुईं। बैलगाड़ियां आया जाया करती थीं। अब भारतमें उत्तर, दक्षिण, पूर्वा, पश्चिम और मध्यभारत सर्वांग ही रेलों हो गईं हैं। उनमेंसे कुछ वणिक् सम्प्रदायके अधीन हैं। इसके सिवा अंग्रेज गवर्नमेंण्ट और सामन्तराजों द्वारा परिचालित भी कई एक रेल हैं। उनमें इष्ट-इण्डिया, ग्रेटइष्टनबेङ्गाल, राजपूताना-मालवा, बम्बई वडोदा आदिका रेलपथ प्रधान हैं।

ध्वजे वा रत्नपत्र देखो।

पहले लिख चुके हैं कि अनावृष्टि, अतिवृष्टि और ज्यादा रपतनी होने पर देशमें दुर्मिश्र होता है। रेलें चल जाने से गमनागमन और वाणिज्य परिचालनके लिए विशेष सुविधा हुई है सही, पर देशवासोका दुःख और अज्ञानि दिन दिन बढ़ती जाती है। जहाँ रेल वा गमनयोग्य मार्ग नहीं है कोई भी वणिक् वहाँ जा कर व्यापार करनेको तयार नहीं थे, परन्तु अब रेलके कारण सुविधा हो जानेसे उन स्थानोंको सभी चीजोंको लाभार्थी वणिक् लोग इच्छानुसार विभिन्न स्थानोंमें भेज देते हैं। पहले वे इच्छानुसार उन चीजोंको इस्तेमाल करते थे, पर अब वे अपने ही देशमें पैदा होनेवाली चीजोंसे खुद ही प्रसन्न रह जाते हैं और इस तरह धड़ा कष्ट पाते हैं। इस पर ऊपरसे यदि जलवायुकी गड़बड़ी हो जाय या वर्षा न हो, तो ऐसी हालतमें दुर्मिश्र होना सामान्यिक ही है।

इतिहास देखनेसे मालूम होता है, कि १७६६-७० ई० में निम्न गाङ्गप्रदेश (बङ्गालमें) एक महामारी उपस्थित हुई थी। १७८०-१७८३ ई०में कोङ्कणराज्य हैदर द्वारा लुटनेके बाद वहाँ दुर्मिश्र हुआ था। महामति वार्कने इसका भांजस्वनी भाषाओं बच्छा चित्त लींचा है। १७८३-८४ ई०में बृहत्कालश्यापी अनावृष्टिके कारण उत्तर-पश्चिम प्रदेशमें दुर्मिश्र हुआ था। उस समय धरिन हेष्टिगुस् बहादुरने दुर्मिश्रसे पीड़ित प्रजाओंके सहायताार्थ कई एक धान्य-शालायें खुलवा दी थीं। उनमेंसे पटनाका गोला अब भी विद्यमान है। १८५४ ई०में और एक

वार अंग्रेजों ने उस गोलाको खोल कर बरिदोंको उदर  
 पूर्ति की थी। १७६०-६२ ई०में मन्द्राजप्रदेशमें दो वर्ष  
 तक महामारीका प्रकोप रहा था। उसके बाद १८६०  
 ई०में पुनः भोयणमूर्ति धारण कर दुर्मिक्षने युक्तप्रदेश  
 में अपना प्रभुत्व जमाया था। उस समय दुर्मिक्षने  
 फठोर प्रपीड़नसे प्रजावर्गको भारी कष्टोंका सामना करना  
 पड़ा था। चारों ओर हाहाकार छा गया था और उसने  
 भयानक रूप धारण किया था, जिसका आश्रम हमें  
 तत्कालीन राज्यशासनको गिथिलतासे विलक्षणरूपमें  
 मिलता है। १८६५ ई०में पुनः उड्डियाप्रदेशमें  
 महादुर्मिक्ष आ धमका। उस समय लाखों उड्डियावासी  
 भूयों मर गये। १८६४ ई०में, आश्विन मासके भोयण  
 पूर्णान और वाढ़के कारण निम्न बङ्गाल बह गया था,  
 जिससे स्थानीय शस्यमण्डारकी विशेष क्षति हुई थी।  
 उसी समयसे धान्यादिकी तेजी शुरू होने लगी। इसके  
 २३ वर्ष बाद वं० सन् १२७४में तारीख २१ कार्तिक शुक्र-  
 वारके दिन "कार्तिककी आंधी" से बङ्गाल प्रदेश ऐसा  
 तहस नहस हो गया कि तबसे धान्यादि शय्योंका मूल्य  
 ही बढ़ गया। सुना जाता है, कि आश्विनकी आंधीमें  
 पहले बङ्गालमें (ii) आना मन चावल विकता था और  
 कार्तिककी आंधीके बाद (८) १०) मन चावल विकता था।  
 उस समय बहुतेरे बंगवासी गरीब भाई भूखों मर गये  
 थे और नाना प्रकारसे कष्ट सहें थे। १८६८-७० ई०में  
 सूखा पड़ा जिससे युक्तप्रदेश और राजपूतानेमें दुर्मिक्ष-  
 का सञ्चार हुआ। इसके बाद १७३-७४ ई०में विहार  
 प्रांतमें भयानक दुर्मिक्षने दर्शन दिये थे। उस समय  
 गवर्नमेंटने स्थानीय पीड़ित लोगोंके कष्ट दूर करनेका  
 प्रयत्न किया था। इसके छोड़े ही दिन बाद १८७६  
 ई०में पुनः समग्र भारतमें एक दीर्घवर्षी दुर्मिक्षका

सञ्चार हुआ। ऐसी लोमहर्षण दुर्घटना भारतके अदृष्टमें  
 फिर कभी नहीं हुई। उस समय अनाहारसे और विस्विका  
 आदि रोगोंसे दक्षिणभारत प्रायः जनशून्य हो गया था।  
 १८६८-६९ ई०में पुनः दक्षिणभारतमें दुर्मिक्षका प्रकोप  
 दिक्कलाई दिया था। उम समय भारतके बड़े लाट लाई  
 कर्जन और उनकी सहधर्मिणी महोदयाने कर्मक्षेत्रमें  
 उपस्थित रह कर विभिन्न देजवासियोंसे अर्थ याचना की  
 थी। उनकी प्रार्थनासे प्राप्त धनादिसे दीन दुःखी प्रजा-  
 को उन्नतपूर्ति हुई थी। गवर्नमेंटके राजकोषसे भी  
 प्रजावर्गके दुःखनिवारणार्थ अर्थ व्यय किया गया था।  
 वर्तमान सदीमें १६०२, १६१०, १६२१, १६२४ ई०में  
 भी जगह जगह अन्नकष्ट और जलकष्ट ही चुका है  
 और उड्डिया आदि प्रदेशोंमें प्रायः हुआ करता है।

शासन-प्रणाली।

अंग्रेजों द्वारा अधिष्टत भारतवर्षका सुशुद्धतासे  
 शासन करनेके लिए विलायतकी पार्लियामेंट द्वारा पांच  
 वर्षोंके लिए एक राजप्रतिनिधि नियुक्त किये जाते हैं  
 जो गवर्नर जनरल कहलाते हैं। वे और उनकी मन्त्रि-  
 सभा भारतके लिए आवश्यक कानून बना कर शासन  
 कार्य निष्पन्न करते हैं। किन्तु किसी किसी विषयमें  
 बड़े लाट या गवर्नर जनरलको मन्त्रिसभासे विना परा-  
 मर्श लिये ही स्वगतानुसार कार्य करनेकी क्षमता प्राप्त  
 है। उपरोक्त मन्त्रि सभामें बड़े लाट बहादुरके सिवा  
 और भी छः सात सुदक्ष एवं विप्र अंग्रेज कर्मचारी हैं।  
 निर्दिष्ट सभयान्तरसे इस सभाका अधिवेशन हुआ करता  
 है। भारतीय आईन और शासन-सम्बन्धी समस्त  
 विचार तथा वैदेशिक राजनीतिकी आलोचना और  
 मीमांसा करना इसका उद्देश्य है। इसके अलावा आईन  
 बनाने के लिए पूर्वांक सम्मर्ष, बन्दई और मन्द्राजके  
 शासनकर्ताओंके प्रतिनिधि, तथा कुछ मनोनीत देशीय  
 और वैदेशिक सुयोग्य सम्मर्षोंको ले कर एक सभा और  
 भी संगठित है। जिस प्रदेशमें उस व्यवस्थापक सभाका  
 अधिवेशन होता है, वहाँके शासनकर्ता भी उस सभाके  
 सम्य नमस्के जाते हैं। इस सभाके कार्य विवरणको  
 माधारण समुदाय भी जान सकता है, उसके लिए कोई  
 याधा नहीं।

\* No useful lesson of administrative experie-  
 nce is to be learned from the long list of famines  
 and scarcities which afflicted the several provin-  
 ces of India at recurring periods during the  
 first half of the present century. ( W. W. Hun-  
 ter, 'India', )



लोग वाणिज्य व्यापारमें समाधिक्त उन्नत हैं। दक्षिणात्य, मन्द्राज और मैसूर विभागमें लिङ्गायत लोग, करमण्डल उपकूलमें शेठों और कोमती लोग तथा उन्नतशील शूद्र, मारवाड़ों, शेठों और नाखुदा लोग देशीय वाणिज्यका विस्तार कर रहे हैं। बङ्गालके वाणिज्यको हस्तगत करने के लिए बहुतसे जैन मारवाड़ों मुगिदावादमें आ कर बसे हैं। ये उत्तरमें चीन सीमान्त और पूर्वमें खसिया पर्वत तक जा कर वहाँके लोगोंके साथ स्वच्छन्दता पूर्वक व्यापार करते हैं। युक्तप्रदेशका वाणिज्यकेन्द्र बनियोके हाथमें है। समग्र पञ्जाबप्रदेशमें खती या क्षत्री कहलानेवाले वैश्यसम्प्रदायने वाणिज्य विस्तार कर रखा है। देशीय वणिक्गण भारतसीमान्तवर्ती अरुगानिस्तान, उसके निकटवर्ती पार्श्वत्य राज्य, काश्मीर लाङ्क, तिब्बत, नेपाल, चीन, आसाम सीमान्तस्थित पार्श्वत्य प्रदेश, उत्तर और निम्न ब्रह्म तथा श्याम, फ्योडिया आदि दूर देशोंमें जा कर अपना अपना वाणिज्य करते हैं।

प्रत्येक नगरस्थित पाजारोंमें अथवा ग्रामोंको हाट वगैरहमें स्थानीय एक एक छोटा वाणिज्य चला करता है। किसी किसी हाटमें हथकौंके लाये हुए धान्यादि शस्योंका बहुत बड़ा कारोबार भी होता है। आड़तियां महाजन लोग उन स्थानमें रह कर खरोद बिक्री किया करते हैं। देवोद्देशसे मेला या उत्सवादि होने पर उसमें भी कहीं कहीं इस प्रकारसे धान्यादि शस्य और गाय, बैल, घोड़ा आदि पशुओंका क्रयविक्रय होते देखा जाता है।

भारतमें रेलपथके विस्तारके पहले रास्ता और नदियों द्वारा वाणिज्यकी यस्तुएँ जगह जगह जाया करती थीं। कलकत्तासे उत्तर पश्चिम प्रदेशमें अफगानिस्तानके सुविधाके लिए १६वीं शताब्दीमें अफगानोंके राजाशेरशाहने यत्नमान प्रयत्न करके रेलपथके विस्तार का प्रारम्भ कर दिया था। पठानोंके सत्कार कर वाणिज्यके प्रसारणके लिए प्रयत्न करने लगे।

वणिक् लोग पैशावर तक जाया करते थे। और तो क्या, हिमालय, नीलगिरि और पश्चिमवाट आदि पर्वतमालाओंके ऊपरसे गिरिसिद्धों हो कर मालसे लदो हुई पैलगड़ियां आया जाया करती थीं। अब भारतमें उत्तर, दक्षिण, पूर्व, पश्चिम और मध्यभारत सर्वांत ही रेलें हो गई हैं। उनमेंसे कुछ वणिक् समुदायके अधीन हैं। इसके सिवा अंग्रेज गवर्नमेंट और सामन्तराजों द्वारा परिचालित भी कई एक रेल हैं। उनमें इण्डिया, प्रेस्टेइण्डिया, राजपूताना-मालवा, बम्बई बड़ोदा आदिका रेलपथ प्रधान हैं।

रेलवे वा रेलपथ देखो।

पहले लिप चुके हैं कि अनाष्टि, अतिशुष्टि और ज्याद रपतनी होने पर देशमें दुर्मिश्र होता है। रेलें चल जाने से गमनागमन और वाणिज्य परिचालनके लिए विशेष सुविधा हुई है सही, पर देशवासियोंका दुःख और अशान्ति दिन दिन बढ़ती जाती है। जहाँ रेल वा गमनयोग्य मार्ग नहीं है कोई भी वणिक् वहाँ जा कर व्यापार करनेको तयार नहीं थे, परन्तु अब रेलके कारण सुविधा हो जानेसे उन स्थानोंकी सभी चीजोंकी लाभार्थी वणिक् लोग इच्छानुसार विभिन्न स्थानोंमें भेज देते हैं। पहले वे इच्छानुसार उन चीजोंको इस्तेमाल करते थे, पर अब वे अपने ही देशमें पैदा होनेवाली चीजोंसे खुद ही वञ्चित रह जाते हैं और इस तरह बड़ा कष्ट पाते हैं। इस पर ऊपरसे यदि जलवायुकी गड़बड़ी हो जाय वा वर्षा न हो, तो ऐसी हालतमें दुर्मिश्र होना स्वामयिक ही है।

इतिहास देखनेसे मालूम होता है, कि १७६६-७० ई० में निम्न गान्धुप्रदेश (बङ्गाल)में एक महामारी उपस्थित हुई थी। १७८०-१७८३ ई०में कोङ्कणराज्य हैदर द्वारा लुटनेके बाद वहाँ दुर्मिश्र हुआ था। महामति वाकेंने इसका शोचस्विकनी भाषामें अच्छा चित्र खींचा है। १७८३-८४ ई०में बङ्गालव्यापी अनाष्टिके कारण उत्तर पश्चिम प्रदेशमें दुर्मिश्र हुआ था। उस समय वारेन हेस्टिंग्स बहादुरने दुर्मिश्रसे पीड़ित प्रजाओंके सहायताार्थ कई एक धार्य-शालायें खुलवा दीं थीं। उनमेंसे परना-

वार अंग्रेजों ने उस गोलाको खोल कर दरिद्रोंकी उदर पूर्ति की थी । १७६०-६२ ई०में मन्द्राजप्रदेशमें दो वर्ष तक महामारीका प्रकोप रहा था । उसके बाद १८६० ई०में पुनः भोपणमूर्ति धारण कर दुर्मिक्षने युक्तप्रदेश में खपना प्रभुत्व जमाया था । उस समय दुर्मिक्षके फठोर-प्रपौंडनसे प्रजावर्गको भारी कष्टोंका सामना करना पड़ा था । चारों ओर हाहाकार छा गया था और उसने भयानक रूप धारण किया था, जिसका आभास हमें आत्कालीन राज्यशासनकी शिथिलतासे चित्तक्षणरूपसे मिलता है \* । १८६५-६६ ई०में पुनः उड़ियाप्रदेशमें महादुर्मिक्ष आ धमका । उस समय लाखों उड़ियावासी भूखों मर गये । १८६४ ई०में, आग्निबन मासके भोपण नूफान और बाढ़के कारण निम्न बङ्गाल बह गया था, जिससे स्थानीय ग्रन्थभण्डारकी विध्वंस क्षति हुई थी । उसी समयसे धान्यादिकी तेजी शुरू होने लगी । इसके २३ वर्ष बाद १८८९ सन् १२७४में तारीख २१ कालिक शुक्र-धारके दिन "कार्तिककी आंधी" से बङ्गाल प्रदेश ऐसा तहस नहस हो गया कि तबसे धान्यादि शायोंका मूल्य ही बढ़ गया । सुना जाता है, कि आग्निबनकी आंधीसे पहले बङ्गालमें ॥) आना मन चावल विकता था और कार्तिककी आंधीके बाद ८) १०) मन चावल बिका था । उस समय बहुतेरे वंगवासी गरीब भाई भूखों मर गये थे और नाना प्रकारसे कष्ट सहें थे । १८६८-७० ई०में सूखा पड़ा जिससे युक्तप्रदेश और राजपूतानेमें दुर्मिक्षका सञ्चार हुआ । इसके बाद १७३-७४ ई०में विहार प्रान्तमें भयानक दुर्मिक्षने दर्शन दिये थे । उस समय गवर्नमेण्टने स्थानीय पीड़ित लोगोंके कष्ट दूर करनेका प्रयत्न किया था । इसके थोड़े ही दिन बाद १८७६ ई०में पुनः समग्र भारतमें एक दीर्घघागी दुर्मिक्षका

सञ्चार हुआ । ऐसी लोमहर्षण दुर्घटना भारतके अष्टदृष्टमें फिर कभी नहीं हुई । उस समय अनाहारसे और विसृष्टिका आदि रोगोंसे दक्षिणभारत प्रायः जनशून्य हो गया था । १८६८-६९ ई०में पुनः दक्षिणभारतमें दुर्मिक्षका प्रकोप दिखलाई दिया था । उस समय भारतके बड़े लाट लांडे कर्जन और उनको सहधर्मिणी महोदयाने कर्मक्षेत्रमें उपस्थित रह कर विभिन्न देशवासियोंसे अर्थ याचना की थी । उनकी प्रार्थनासे प्राप्त धनादिसे दीन दुःखी प्रजाकी उद्धारपूर्ति हुई थी । गवर्नमेण्टके राजकोषसे भी प्रजावर्गके दुःखनिवारणार्थ अर्थव्यय किया गया था । वर्तमान सदीमें १९०२, १९१०, १९२१, १९२४ ई०में भी जगह जगह अन्नकष्ट और जलकष्ट हो चुका है और उड़िया आदि प्रदेशोंमें प्रायः हुआ करता है ।

शासन-प्रणाली ।

अंग्रेजों द्वारा अधिकृत भारतवर्षका सुशुद्धलतासे शासन करनेके लिए विलायतकी पार्लियामेंट द्वारा पाँच वर्षके लिए एक राजप्रतिनिधि नियुक्त किये जाते हैं जो गवर्नर जनरल कहलाते हैं । वे और उनकी मन्त्रि-सभा भारतके लिए आवश्यक कानून बना कर शासन कार्य निष्पन्न करती हैं । किन्तु किसी किसी विषयमें बड़े लाट वा गवर्नर जनरलको मन्त्रिसभासे विना परामर्श लिये ही स्वमतानुसार कार्य करनेकी क्षमता प्राप्त है । उपरोक्त मन्त्रि सभामें बड़े लाट बहादुरके सिवा और भी छः सात सुदक्ष एवं विद्वान् अंग्रेज कर्मचारी हैं । निर्दिष्ट सभयान्तरसे इस सभाका अधिवेशन हुआ करता है । भारतीय आईन और शासन-सम्बन्धी समस्त विचार तथा वैदेशिक राजनीतिकी आलोचना और मीमांसा करना इसका उद्देश्य है । इसके अलावा आईन बनाने के लिए पूर्वोक्त सभ्यों, वम्बई और मन्द्राजके शासनकर्ताओंके प्रतिनिधि, तथा कुछ मनोनीत देशीय और वैदेशिक सुयोग्य सभ्योंको ले कर एक सभा और भी संगठित है । जिस प्रदेशमें उस व्यवस्थापक सभाका अधिवेशन होता है, वहाँके शासनकर्ता भी उस सभाके सम्बन्धमें समझे जाते हैं । इस सभाके कार्य विवरणको साधारण समुदाय भी जान सकता है, उसके लिए कोई

\* No useful lesson of administrative experience is to be learned from the long list of famines and scarcities which afflicted the several provinces of India at recurring periods during the first half of the present century. ( W. W. Hunter 'India' )

विचार-कार्यकी सुविधाके लिए बङ्गाल, विहार, बम्बई, मन्द्राज, मध्यप्रदेश, युक्तप्रदेश और पञ्जाबमें "हार्ड-कोर्ट" नामके एक एक सर्वोच्च विचारालय हैं। उनमें प्रदेशीय फौजदारी और दीवानों मामले मुकदमोंका फैसला किया जाता है। इसके सिवा प्रत्येक जिलेमें गवर्नर और प्रादेशिक शासनकर्त्ताओंका अधीनस्त जज और सब-जज तथा प्रत्येक महकमामें २३ मुन्सिफ विचार कार्यमें नियुक्त हैं।

समग्रिक गवर्नर-जनरल भारतके सर्वमयकर्त्ता होने पर भी वास्तवमें वे स्वयं समस्त कार्य नहीं करते। शासन-कार्यकी सुविधाके लिए अंगरेजों द्वारा अधिकृत भारत कई-एक प्रदेशोंमें विभक्त हैं। प्रत्येक प्रदेशमें 'गवर्नर' वा 'चीफ कमिश्नर' उपाधि-धारी एक एक शासन-कर्त्ता नियुक्त हैं। वे 'गवर्नर-जनरल'के कर्त्तृत्वार्थोन्त में रह कर अपने अपने प्रदेशका शासन करते हैं। गवर्नर पार्लियामेण्ट सभासे और चीफ कमिश्नर सिविल-सर्विससे मनोनीत हो कर भेजे जाते हैं।

शिल्प-जात द्रव्य ।

अति प्राचीनकालसे भारतमें शिल्पकी चर्चा चली आ रही है। दो-तीन शताब्दोंके पहले, भारतवर्ष शिल्प विद्यामें पृथिवीके अन्य किसी देशकी अपेक्षा होन नहीं था परन्तु वर्त्तमानमें कोयलेके व्यवहार-प्रसङ्गसे प्राकृतिक-विज्ञानके अभिनव तत्त्वोंका आविष्कार होनेसे, यूरोप और अमेरिकाने शिल्प-विद्यामें परमोत्कर्ष प्राप्त किया है। भारतवर्ष अब किसी प्रकार भी उनकी सम-कक्षता नहीं कर सकता। पूर्वके गौरवकी धोता हुआ प्रमशः पीछे हटता जाता है। वाष्प-परिचालित मशीनोंकी शक्तियोंके साथ दैहिक बलकी प्रतियोगिता नितान्त असम्भव जान, भारतके जिन-जीवियोंने हताश हो कर अपने-अपनी जातीय वृत्तियां छोड़ दी हैं और वे अथ रुचि-विद्याका आश्रय ग्रहण कर रहे हैं।

बहु प्राचीन समयसे ही भारतवर्षमें सर्वोत्कृष्ट स्तरीय वस्त्र तयार हुआ करते थे। पूर्वा-पाश्चात्य दण्डिगुण भारतमें आ कर इस देशके स्तरीय पदार्थोंकी उत्पत्ति से और उन्हें अपने-अपने देशमें ले जा कर बेचने और लाम उड़ाया करते थे। सूक्ष्मता, चाकचिप्य और निर्माणकीशल-

में भारतीय वस्त्र आज भी जगत्में अतुलनीय हैं। परन्तु मैनचेष्टरके वस्त्र अति सुलभ मूल्यमें विक्रानेके कारण यह व्यवसाय दिनोंदिन शोहीन हो रहा है।

रेशमी वस्त्र प्रायः भारतके सर्व स्थानोंमें प्रचलित हैं। आसाम और ब्रह्मदेशमें प्रायः सभी लोग रेशमी वस्त्र पहना करते हैं। ये वस्त्र खियां तैयार करती हैं, ब्रह्मदेशमें चीनसे रेशम आती है। आसाम में रेशमके फोड़ोंसे रेशम बनती है। बङ्गालमें भी प्रायः सर्वत्र रेशमका प्रचार है। पञ्जाब और सिन्धु-प्रदेशके शहरोंमें तथा भागलपुर, आगरा, हैदराबाद और दक्षिणात्यके अनेक स्थानोंमें सूत मिला कर रेशमी वस्त्र बनाये जाते हैं। बनारस, मुर्शिदाबाद, अहमदाबाद और त्रिचिनापल्लीमें बहुतायतसे विशुद्ध रेशमी वस्त्र तयार होते हैं। फिलहाल बम्बई आदि शहरोंमें भी रेशमी वस्त्र तयार करनेके लिए फोड़ियां स्थापित हुई हैं। बम्बईसे नाना प्रकारके रेशमी वस्त्र बन कर ब्रह्म देशमें विक्रयार्थ जाते हैं।

ढाका, पटना और दिल्लीमें मसलिन वस्त्रों पर रेशमी सूतसे फूल काढ़े जाते हैं। यहां सलमेका काम भी होता है। गुजरातमें चामरकी चोर्जोंपर सलमेका काम किया जाता है। शानदार उत्सवों पर सलमा सितारेके कामदार मजमलके चंदयें, हाथीके हींदे, घोड़ोंके साज और छतरी आदिका व्यवहार होता है। ये सब गुलबर्गा और औरङ्गाबादमें बनते हैं।

बङ्गालमें तथा भारतके उत्तरांशमें अनेक स्थानोंमें सतरंची और दरो तयार होती हैं। काश्मीर, पञ्जाब, सिन्धु आदि प्रदेशोंमें तथा आगरा, मिरजापुर, जबलपुर, वराङ्गल, मालाचार और मछलीपत्तन आदि स्थानोंमें उत्कृष्ट पेशमी गलीचे बनते हैं। काशी और मुर्शिदाबादमें मलमलके उमदा कार्पेट (गलोचा) बना करते हैं। तन्जौर और सालममें रेशमके कार्पेट तयार होते हैं।

भारतके अनेक स्थानोंमें सोने और चांदीके उत्कृष्ट गहने और यामन आदि तयार होते हैं। ढाका और कटककी चांदीकी घोड़ोंका काय-कार्य विशेष प्रसिद्ध है। त्रिचिनापल्ली, दिल्ली, बनारस आदिकी सोने और चांदीकी जरी और साड़ों काय-कार्यके लिए मशहूर

है। भारतवर्षकी प्राचीन राजधानियोंमें उत्कृष्ट लौह-निर्मित शस्त्र-शस्त्र प्रस्तुत होते हैं। तलवारोंकी स्थान भी यहाँ एकसे एक उमड़ा बनती हैं। पञ्जाबके अनेक स्थानोंमें बन्दूक बनती हैं और बहुत जगह स्थानीय व्यवहारोपयोगी ताँबे और पीतलके वासन भी तयार होते हैं। बनारसके तामे और पीतलके बरतन सबसे उत्तम होते हैं।

मुर्शिदाबादके खागराके बरतन बहुत मशहूर हैं। भारतके घण्टे बहुत ही सुन्दर और सुमधुर शब्दयुक्त होते हैं। सिंधु-प्रदेशमें अनेक प्रकारके सुन्दर मिट्टीके बरतन बनते हैं।

बौद्धधर्मके प्रभावकालमें भारतमें जो प्रस्तर-मूर्तियाँ और गुहामन्दिर खोदित हुए थे, उनके द्वारा भारतके शिल्प-नैपुण्यका विलक्षण परिचय मिलता है। भारतके अनेक स्थानोंमें काष्ठ-निर्मित गृहादिमें शिल्पकार्यका विलक्षण प्रभाव देख पड़ता है। मुर्शिदाबाद, अमृतसर, काशी और त्रियांकुर्में हाथीके दांतकी चीजें बनती हैं। कृष्णनगरके बने हुए मिट्टीके किलीने बहुत ही खूबसूरत होते हैं।

खनिज पदार्थ।

भारतके प्रायः सब जगह लोहेकी खानें पाई जाती हैं। यहाँका खनिज अपरिष्कृत लौह पृथ्वीके अन्यान्य स्थानोंमें प्राप्त लोहोंकी अपेक्षा बहुत विशुद्ध है। देशीय प्रधानसा। यहाँ खनिज धातुसे विशुद्ध धातु बनाई जाती है। परन्तु यह प्रथा बहुत ही ध्ययसाध्य है। इसलिए भारतीय लौह बिलायती लोहेके साथ प्रतियोगितामें अक्षम है। बङ्गालके अन्तर्गत रानीगंज और उसके आस-पास तथा मध्य प्रदेशके चरार और मोहपानीमें कोयले की खानें हैं। इनमें रानीगंजकी खान सबसे बड़ी है। रानीगंजकी कोयलेकी खानका आयतन ५०० माइल है। यहाँ छह यूरोपीय तथा अन्यान्य कम्पनियोंकी व्यवसाय करती हैं। सन्धाल और वाउरी लोग यहाँकी खानमें काम करते हैं। यूरोपीय-कोयलेमें फी-सब्रो उसे ६ भाग तक परन्तु भारतीय-कोयलेमें १४से २० भाग तक राख रहती है। देशी-कोयलेमें

बरोरका कोयला ही ऐसा है, जिसमें राख कमती होती है और वह करीब यूरोपीय कोयलेकी तरह साफ होता है।

करमण्डल उपकूलसे उडिप्या पर्यन्त समुद्र तीरवर्ती स्थानोंमें समुद्रके पानीको जला कर नमक बनाया जाता है। राजपूतानाकी सांभर झीलके पानीसे भी नमक बनता है। पञ्जाब प्रदेशके पर्यंतोंमें बहुतसी नमककी खानें हैं। दक्षिणात्यमें स्थानीय नमक काममें लाया जाता है। उडिप्यामें विलायती और सैन्धव लयणका प्रचार है। पूर्व-बङ्गमें विलायती नमक ही अधिकतासे प्रचलित है।

विहारान्तर्गत निरहुत, सारन, चम्पारन आदि जिलोंसे तथा युक्तप्रदेशके कानपुर, गाजीपुर, इलाहाबाद और बनारस जिलेसे प्रतिवर्ष १६,००,००० मन सोरा कलकत्तामें आता है। यहाँसे यह सोरा विक्रयार्थ अमेरिका आदि देशोंकी भेजा जाता है।

भारतके अनेक स्थानोंमें सोना भी पाया जाता है। पार्वत्य नदियोंसे भी अनेक स्थानमें सोना इकट्ठा किया जाता है। परन्तु इस तरीकेसे जो सोना प्राप्त किया जाता है, वह परिश्रमके मूल्यके बराबर भी नहीं होता। दार्जिलिंगसे पश्चिम कुमायूँके मध्यवर्ती हिमालय प्रदशमें बहुतसी तबिकी खानें हैं। उन खानोंसे नेपाली मजदूर लोग अग्नि-प्रस्तोंको काट कर उससे विशुद्ध धातु बनाते हैं। छोटा-नागपुरके सिंहभूमि जिलेमें अपरिष्कृत ताँबा बहुत मिलता है। पञ्जाबके सोमान्त प्रदेशमें सोसा उत्पन्न होता है। पञ्जाबके पार्वतीय सामान्त-राज्यमें तथा महिसुर और ब्रह्मदेशमें बहुत जगह मिट्टीके तेल (केरोसिन)-की खानें हैं। खासिया पहाड़का सिलिट-चूना तथा बाङ्गालका फटनी चूना कलकत्ता तथा अन्यान्य स्थानोंमें बहुत जाता है। राजपूतानाके अन्तर्गत मरकतनाके संगमरमर पत्थरसे आगरेका प्रसिद्ध ताज-महल बना है। वरण-कम्पनीकी रानीगंजकी टाली और अन्यान्य पत्थरकी चीजें काफ़ी मशहूर हैं।

प्राचीनकालसे भारतवर्ष रत्नप्रसू नामसे इतिहासमें प्रसिद्ध है। किसी समय गोलकुण्डाका हीरा अत्यन्त

आदरकी और मूल्यवान् वस्तु थी। परन्तु वर्तमानमें यहां हीरा दुर्घ्याय है। कोई कोई कहते हैं कि, गोलकुण्डाका हीरा मग़द्राजके ग़ज़ाम और गोदावरी जिल्लेसे निज़ाम राज्यकी सीमा तक विस्तृत भूभागमें पाया जाता था। १८१८ ई० तक महानदी-तीरवर्ती सम्बलपुरमें हीरा मिलता था। आजकल सिर्फ़ एक पञ्चाराज्यमें हीरा पाया जाता है।

#### प्राणि-वत्त्व ।

पशुपति सिंह भारतके पशुओंमें प्रथम उल्लेखयोग्य है। वर्तमान समयमें गुजरातकी मरुभूमिमें यह अद्भुत जन्तु दिव्यार्थ देता है। परन्तु इन सिंहोंके केशर न होनेसे प्राणितत्त्ववित् परिष्ठतगण इन्हें वास्तविक सिंह नहीं मानते। हिम्र पशुओंमें ध्यात्र प्रधान और अनिष्टकर है। प्रतिवर्ष भारतमें असंख्य मनुष्य और पशु इनके हाथसे अकालमें प्राण गंधाते हैं। हिमालयसे सुन्दरधन तक इस देशके प्रायः सर्ज स्थानोंमें यह जन्तु देखनेमें आता है। यह करीब ८ हाथ तक लम्बा होता है। इसके सिया, तरशू, चीता, घबल-बाघ, मेघवर्ण और स'गमरमरके रंगका घन्यविडाल आदि ध्यात्र जातीय जन्तु भारतके जङ्गलोंमें पाये जाते हैं। तरशू ध्यात्रके समान प्राणि-हत्या करता है। इसकी लम्बाई करीब ५ हाथकी होती है। चीता दक्षिणात्यमें उपादातर देखनेमें आता है। स्थानीय अधियासिगण हरिणके शिकारके लिए इन्हें शिकारी कुत्तोंकी तरह शिक्षा दिया करते हैं। ये पृथिवीस्थ सम्पूर्ण पशुओंकी अपेक्षा द्रुतगामो होते हैं। लिरिया, सियार, और जंगली कुत्ते आदि कुक्कुर जातीय प्राणि भी उल्लेख योग्य हैं। लिरिया भेड़, बकरी आदिके छोटे छोटे बच्चोंका शिकार करता है और दाय मिलने पर छोटे छोटे लड़के को भी उठा ले जाता है। जंगली कुत्ते ही परच जानेके बाद शिकारी कुत्ते हो जाते हैं। इसके बाद देशके बड़े बड़े जंगलों और पहाड़ोंमें काले भालू भी पाये जाते हैं। ये चिउंटी, शहद और फल खा कर अपना गुजारा करते अक्षत होने पर कमी आदमियों पर भी आक्रमण कर बैठते हैं। पञ्जाबसे आसाम तक भारतके उत्तरांगमें भोटो भालू देखे जाते हैं।

भारतवर्षमें कुर्ग, मैयूर और आसामके पार्वतत्य उप-

त्यकामें हाथी रहते हैं। आजकल हाथीका रोजगार खयं गवर्नमेण्टने अपने हाथमें ले लिया है। गवर्नमेण्टकी आज्ञा बिना कोई भी हाथी पकड़ या उसका शिकार नहीं कर सकता। इसके लिए १८७६ ई०का ६ठा आर्डिन नामक एक स्वतन्त्र कानून बना हुआ है। यदि कोई गवर्नमेण्टकी अनुमतिके बिना हाथीका शिकार करे या पकड़े तो उसे कानूनन पहली बार ५०० जुर्माना और दूसरी बार ५०० जुर्माना और ६ मासकी कैदको सजा दी जाती है। भारतीय हस्ती लगभग ८ हाथ ऊंचा होता है। साधारणतः हाथी 'खेदा' बना कर पकड़ा जाता है। उपयुक्त स्थान देख कर उसके चारो तरफ २।४ हाथ अन्तरसे बड़े बड़े साल पुस गाड़ दिये जाते हैं। उन पेड़ोंके सहारे चारों तरफ मजबूत घिरावके बीचमें बहुतसे फेलेके पेड़ गाड़ दिये जाते हैं, इस तरह खेदा बन जाने पर उसमें पाले हुए हाथीके जरिये जङ्गली हाथियोंको आवद्ध किया जाता है और फिर खानेकी कमीके कारण जब वे बहुत कमजोर हो जाते हैं तब पाले हुए हाथीकी सहायतासे उनके पैरोंमें सांकले डाल दी जाती है। उसके बाद क्रमशः वे पालव जैसे हो जाते हैं। भारतमें हस्तियोंकी संख्या दिनों दिन घटती ही जाती है।

भारतवर्षमें चार प्रकारके गण्डार ( गैंडे ) देखनेमें आते हैं। एक जातीय गैंडा ब्रह्मपुत्र नदीके किनारे तथा सुन्दरवनमें पास करते हैं। इसके कपाल पर एक एक खड्ग रहता है। इसके अतिरिक्त पूर्वोक्त स्थानोंमें यद्यो-पीय गैंडे भी दिखलाई दिया करते हैं। सुमात्रा, चट्ट-ग्राम और मद्रदेशमें भी गैंडे हैं। इन गैंडोंके कपाल पर दो दो खड्ग देखनेमें आते हैं।

जंगली सूअर भारतके सर्वत्र देखे जाते हैं। ये जस्यके लिए तो प्रधान अन्तराय-रूप हैं। पराहजातीय एक प्रकारका क्षुद्र जन्तु नेपालकी तराई और सिक्किममें पाया जाता है। कुछ वर्षों हुए इस जातिका एक सूअर आसाम में मारा गया था। सिन्धु और कच्छ प्रदेशकी मरुभूमिमें प्रायः घन्य गैंडे मिलते हैं। हिमालयके जंगलमें अनेक जातीय जंगली भेड़ और बकरियाँ देखनेमें आती हैं। ये करीब १२००० फुट नीचे रहती

हैं। गुजरात और उड़िसाके जङ्गलोंमें ह्यम कुराके भुरडके मुण्ड विचरन करते हैं। इनके प्रत्येक सारभुरडमें एकसे अधिक नारमृग नहीं देखे पड़ता। स्थानीय हिन्दू लोग इनका मांस खाते हैं। हिन्दुस्तानमें गुजरातकी तरह नोली गाय बहुत पायी जाती हैं। ये मृग-जातीय होने पर भी इसका गाय जैसा आकार है और इसीलिए हिन्दू लोग इसे नहीं मारते और न इसका मांस ही छूते हैं। इसके अतिरिक्त सांनर, वारसिहा, चिताल आदि अनेक जातिके मृग भारतमें पाये जाते हैं। सांनर मृग घूसखर्ण होता है। इसके सिंहकी तरह एक प्रकार का केशर भी है। वारसिहा बंगाल और आसामके जङ्गलोंमें रहता है। चिताल हरिन देसनेमें बड़ा खूबसूरत होता है। पूर्वांचल पर्वत, मध्यभारत, आसाम तथा ब्रह्मदेशमें गौर और गयाल आदि अनेक प्रकारकी जंगली गायें पायी जाती हैं। आसाम और ब्रह्मदेशके जंगलों में से बहुत प्रसिद्ध हैं। इसके सिवा भारतके अन्यान्य स्थानोंमें भी ये भैंसे ठेके जाते हैं। भारतवर्षमें प्रायः सर्वांत छोटे और बड़े बहुत तरहके चूहे पाये जाते हैं, जो जमीनके नीचे बिल बना कर रहते हैं। एक तरहका चूहा नारियलके पेड़ पर भी रहता है।

भारतवर्ष अनेक प्रकारके सुन्दर और बलिष्ठ पक्षियोंका वासस्थान है। मयूर, तोता, मैना, काकातुआ (सफेद सुआ), चन्दना, कतूर, फोयल, आदि पक्षी पाले जाते हैं। श्येन, शकुनि, गृध्र और विहङ्गम भी मांस द्वारा जीवन धारण करते हैं। बगुला आदि मछलीका शिकार करते हैं। हंस और अन्यान्य जलचर पक्षियोंकी संख्या भी काफी है।

स्रोसुप जन्तु भारतमें अधिकतासे देखे जाते हैं। सर्प, गौड, गिरगिट, छिपकली आदि जन्तु इसी श्रेणीके अन्तर्गत हैं। वर्षाकालमें इस देशके सर्वे स्थानोंमें, विशेषतः निम्न बंगालमें सर्पका अत्यन्त प्रादुर्भाव हुआ करता है। प्रति वर्ष बङ्गालमें सैकड़ों व्यक्ति सर्पके काटसे मर जाते हैं। विषधर सर्पोंमें गोधूरा, पातराज, शङ्खचूड़ आदि प्रधान हैं। सर्पके काटने पर 'आमोनिया' सेवन करनेसे बहुत कुछ उपशम होता है।

भारतवर्षीय समस्त जलजन्तुओंमें छोटी और बड़ी

तरह तरहके मछलियों पाये जाते हैं। 'रोहित' 'सुमेल' आदि मछली बड़ी होती हैं और 'शङ्ख' 'मिचरु' आदि छोटी। पारस्य मछलियोंमें 'मसुरि' या 'महासोला' बरक की एक प्रकारकी मछली देखनेमें आती है, जिसका वजन ३० सेर तक होता है। सुपुक भी मत्स्यजातीय मशु है। इस देशमें बहुत तरहके कोड़े मकोड़े भी पाये जाते हैं। मधुमक्षिका आदि कीड़ोंका निःस्वार्थ परिश्रम मनुष्यके दितके लिए होता है। मक्खर, विडरो, सटमल आदिका काटना बड़ा कष्टकर होता है। कई जातिके कीड़ और पतङ्ग नाना प्रकार विचित्र वर्णोंसे विभित होते हैं, जिन्हें देख कर विधाताके भद्रभुत कौरावका पता लगता है।

उत्तर।

भारतवर्षमें अनेक तरहके उद्भिद् उपपन्न होते हैं। उद्भिद् विद्याके प्रधानुसार भेषी-विभाग कर उनका नाम वेनेसे मन्थका कलेयर बहुत बढ़ जायगा। इसलिये इस देशके उद्भिदोंका समूल विपरण लिप्या जाता है। कार्पासकी सुबिधाके लिए भारतवर्षको प्रधानतः सार भागोंमें विभक्त किया जाता है। जैसे—हिमालयदेश, उत्तर-पश्चिमप्रदेश, पश्चिमभारत और भारतमा। हिमालय प्रदेशमें चीनदेशीय पक्ष और लता गुन्नादि उपपन्न होते हैं। यहाँ यूरोपके वेपदायजातीय पक्ष भी पाये जाते हैं। उत्तरपश्चिमविभागमें पृक्षादिकी संख्या भारतके अन्यान्य स्थानोंकी अपेक्षा बहुत कम है। यहाँ फारस, अरब और मिस्रदेशीय पृक्षादि उपपन्न होते हैं। विस्तृत प्रदेशके अधिकांश पृक्षा अफरीकरी लामे हुए प्राप्त पड़ते हैं। पश्चिम भारतका वास्तविक पेड़ प्रसिद्ध है। यहाँ नारियल और ताड़की पेटी होती है। तथा लूण, साल, पीया आदि बहुतायतसे पैदा होती है। आसाम-विभागमें मलय उपद्वीप-जात पृक्षाकतादि उपपन्न होते हैं।

विद्या-गुणाली।

बहुत प्राचीन समयसे ही भारतमें विविध विद्याकी आलोचना होती रही है। शास्त्रविद्या, शास्त्रविद्या, महाविद्या, आदिमें भारतवासी हिन्दूगण उन्नतिके लक्ष्यता योगदानमें बड़ सुके थे। जिनमें गणय पाषाणय लुग्ग जातियोंके पूर्वजुगय स्वनायक बनायुग पक्षी,



इतिहास ।

भारतका आदि इतिहास अतीत कालके गंभीर गहुरमें निहित हैं। भारतके आदि प्रथम वेद और रामायण महाभारतादि नाना पुराणोंसे जो आदि पृस्तान्त प्राप्त होता है, वह इतना रूपक और कल्पनामिश्रित है कि, उससे निष्कालिस सत्य निकाल लेना एक तरहसे दुःसाध्य है।

कुछ भी हो; क्या देशीय और क्या पाश्चात्य, वर्तमान सभी पुराविद्वगण एक वाक्यसे स्वीकार करते हैं कि, हमारी ऋक्संहिता जगत्वा आदि ग्रन्थ है। इस आदि ग्रन्थसे हम समझ सकते हैं कि, पञ्चनद-तीर-वासी वैदिक आर्यगणोंने जब अन्तर्भारतमें प्रवेश किया था, तब उनके साथ नाना स्थानोंमें कृष्णवर्ण दास वा दस्यु जातिका युद्ध विग्रह चल रहा था।

आर्योंके पूर्ववर्ती भारतवासी ।—वही कृष्णवर्ण दास वा दस्यु गण ही भारतके आदिम अधिवासी गिने जाते हैं। ऋक्संहितामें ये दस्यु वा दासगण 'अनास' अर्थात् नासिका रहित, भक्तु वा यज्ञहीन, प्रथी अर्थात् जल्पक, 'मृधवाच' हिसितवाक्, भ्रद्वाहीन और बुद्धिशून्य इत्यादि विशेषणोंसे विशेषित किये गये हैं। (ऋक् ५।२६।१०, ७।३।१) ये लोग याग यज्ञादिको नहीं मानते थे, न करते थे, आर्योंसे इनकी सम्पूर्ण भिन्न प्रकृति थी, भिन्न कार्य थे। आर्यगण उन्हें मनुष्योंमें नहीं गिनते थे। (ऋक् १०।२२।७-८) तथापि उन लोगोंने बहुतसे ग्राम नगरादि बसाये थे, तथा उनके प्रयत्नसे अनेक दुर्भेद्य दुर्ग बने थे। गृह, नमुचो, शम्बर, बल आदि दास वा असुरगण उस आदिम जातिके अधिनायक थे। ऋक्संहितामें लिखा है कि, आर्योंके मुख्य देवता इन्द्रने उस दस्यु वा दास जातिके प्रभावकी मूढ करके उन्हें अपने वशमें किया था। (ऋक् ६।१८।१) आर्योंके प्रभावसे दस्युगण पराजित हो कर कोई वन जङ्गलमें दूर देशोंको भाग गये थे, कोई आर्योंको अधीनताको स्वीकार कर शूद्ररूपसे आर्य समाजभुक्त हुए थे। अन्धव्रत नामसे उनका वर्णन किया गया है। उनका आचार-व्यवहार आर्य जातिसे सम्पूर्ण भिन्न था। (ऋक् ८।५।१०) इसीलिप छान्दोग्योपनिषद्में लिखा है कि—'आज भी जो

यत्कि दीनहीन, भ्रद्वाहीन वा यज्ञहीन है, उसे असुर वा असुरधर्मा कहा जाता है। असुरोंका यही सनातनधर्म है कि, वे शवदेहको अर्थ, वसन और अलङ्कारोंसे सजाया करते हैं। वे समझते हैं, कि इस प्रकारके कार्य कानसे ही इहलोकका पुण्यार्थ सिद्ध हो जाता है।" छान्दोग्योपनिषद्में असुर वा दासजातिका विशेष लक्षण जैसा लिखा है, वर्तमान पार्वत्य वा वन्य कोल, भोल, श्वर आदि अनार्य जातिके आचार व्यवहारमें उसका आभास पाया जाता है। आज भी आदिम जातियोंके मृदोदेशसे निर्मित प्रस्तर-स्तम्भोंको खोद कर देखनेसे उसके नीचे पीतल तांबे वा सोनेके एक प्रकारके अलङ्कार पाये जाते हैं। स्मरणातीत कालसे भारतकी आदिम जातियोंके दुर्भेद्य गिरि-गहुरोंमें आश्रय लेने पर भी, वे इस प्राचीन प्रथाको न छोड़ सकी थीं। दुर्भेद्य पर्वत वा अरण्योंमें वास और नगरवासी सुसभ्य जातियोंसे संश्रव न रहनेसे इनका आदिभाव अब भी सम्पूर्णरूपसे परिवर्तित नहीं हुआ। वराहमिहिरने पर्णश्वरके नामसे जिस प्राचीन जातिका उल्लेख किया है, उसकी 'पतुआ' नामक शाखा अब तक केवल पेड़के पत्तोंसे ही अपनी लज्जा-रक्षा करती थी। १८७२ ई०में अंग्रेज-सरकारकी कोशिशसे उन लोगोंने पहले पहल कपड़ा पहनना सीखा है। इस पार्वत्य वा वन्य-जातिकी शाखाएँ हिमालयसे नीलगिरि तक भारतके प्रायः समस्त पार्वत्यप्रदेशोंमें थोड़ी बहुत संख्यामें वास करती हैं। निज न गिरि-गहुरोंमें उनकी दुर्भेद्य दुर्गरूपमें रक्षा होती रहनेसे और वैदेशिक संश्रव न होनेसे हजारों वर्षोंसे वे एक रीतिसे उसी तरह बस रही हैं। अब पाश्चात्य प्रभावके विस्तारके साथ साथ उनकी भी व्यवस्थाओंमें परिवर्तन हो रहा है और कालान्तरमें सभ्य जातिमें इनकी गिनती होने लगेगी इसके चिह्न भी इनमें दिखलाई दे रहे हैं।

ऋक्संहितामें उस आदिम जातिकी सभ्यताका परि-

३ "तस्मादपि अथेह अर्दान अश्रुधर्मान अत्रयमान आङुरासुरो बतेति। असुराणां ही पोषणनपत् प्रोक्तस्य शरीर भिन्नया वंशनेन अर्णकारोग्रैति संसृष्ट्वन्त्येवेन क्षुप्त लोक जैष्यन्तो मन्त्यन्ते।" (छान्दोग्योपनिषद्. ८।५।१२)



पर्वतकी कन्दराओंमें जीव-जन्तुओंकी तरह वास करते थे, उस समय भारतवर्षमें आर्य सन्तानगण वेद, वेदान्त, उपनिषद्, पुराण, दर्शन, स्मृति, न्याय, अलङ्कार नाटक और विज्ञान आदि नाना प्रकार शास्त्रोंमें परिश्रिता प्राप्त कर, सभ्य-जगत्में शीर्ष स्थानीय थे। गणित, ज्योतिष, संगीत, भास्कर्य आदि वैज्ञानिक, शिल्प और कलाविद्या; तथा नालिकादि युद्धास्त्र निर्माणके विषयमें भी उनका विशेष नैपुण्य देख पड़ता था।

अङ्गरेजों द्वारा अधिकृत वर्तमान भारतमें शिक्षा-विभाग अङ्गरेजों गवर्मेण्ट द्वारा परिचालित होता है। सुप्राचीन वैदिक युगमें वेद और उपनिषदादि ग्रंथ मुनि ऋषियोंके आयत्त थे। वे इच्छानुसार शिष्य परम्परामें उन के प्रवृत्तार्थकी आगृहीत किया करते थे। मन्त्रादि सङ्गीतके स्वरमें हृदयमें गूँथ देते थे। पीछे वेद ऋषियोंके अभावमें उनके वंशधर ब्राह्मणोंने उन ग्रंथोंकी आलोचनाका भार अपने ऊपर लिया। वे स्वतः प्रवृत्त हो कर अध्यापना और अध्ययनकार्यमें प्रती हुए थे। विद्याशिक्षामात्र ब्राह्मणोंका ही कार्य था। वे जयानी अथवा हस्तलिखित पोथियोंकी सहायतासे विभिन्न देशागत छात्रमण्डलीको शिक्षा दिया करते थे। इस तरह वंशानुक्रमसे छात्रशिक्षकों द्वारा उक्त सुप्राचीन महामूल्य शास्त्रादि परिरक्षित और प्रचलित हुए। यद्यपि भारत बहुत दिनों तक नाना वैदेशिक आक्रमणोंसे प्रपीडित रहा, तो भी टोल, पाठशाला, मठ और सद्गुरुआदि बहु प्रकारसे विद्याकी चर्चा यहां बनी ही रही है। बड़े बड़े ग्रामों और नगरोंमें तथा भद्र और उच्च वंशीय वणिकोंको देशीय भाषामें आर्यव्यक्तिय विषयकी शिक्षा दी जाती थी। मुसलमान राजाओंके राज्यमें राज्य और राजसभाके परिषदोंकी ऐतिहासिक ग्रन्थ-रचनाके लिए उत्साहित किया जाता था। प्राचीन हिंदुओंमें पारयाप्यहिक इतिहास लिखनेकी कोई सुन्य परंपरा न थी। पौराणिक उपाख्यानों तथा महामारत रामायण आदिमें जिन राजवंशोंका इतिहास लिखा गया है। उक्तकी आनुपद्धिक बहुत सा घटनाएँ रूपक-परिणित होनेसे राजोपाख्यान मूलतः अविश्वाम्य हो गये हैं। परन्तु मुसलमानोंके प्राधान्यमें इतिहास लिखनेकी

जो पद्धति चली है, वह समधिक उत्कर्षा प्राप्त है, इसमें सन्देह नहीं।

ई०-ई०एडया-कम्पनीने पहले पहले भारतके विद्या-प्रसार सम्बन्धमें कोई चेष्टा नहीं की। वारेन हेस्टिंग्सने बङ्गालके शासनकर्तृत्व-कालमें कलकत्ता-मदरसा-कालेजकी स्थापना कर अपनी उदारनीतिका परिचय दिया था। लार्ड आमहर्स्टके शासनकालमें (१८२४ ई०में) कलकत्ताके संस्कृत कालेजकी स्थापना हुई। १८२५ ई०में चैण्डिकके समयमें कलकत्ता-मैडिकल-कालेज स्थापित हुआ। १८३१ ई०में अङ्गरेजोंकी छुपासे बनारसमें आगरा-कालेज प्रतिष्ठित होने पर उत्तरप्रदेशप्रदेशमें पाश्चात्य धर्म-याजकोंने स्वधर्म-प्रचारके लिए देशीय भाषाकी शिक्षा प्राप्त कर तथा उन भाषाओंमें बहुतसे ग्रंथ रच कर साधारणमें प्रचार किया था। कलकत्ताके पार्श्ववर्ती श्रीरामपुर ग्राममें 'चैण्डिक मिशन' सम्भारपने विद्याशिक्षाकी उन्नतिके लिए पुस्तकादि मुद्रित की थीं। कैरो, मर्सिन आदि श्रीरामपुरके मुद्दण-पत्रोंमें हस्तियासी रामायण और 'समाचार-चन्द्रिका' नामक साप्ताहिक पत्र छपा कर विद्याशिक्षाके प्रसारकी बहुत कुछ वृद्धि कर गये हैं। विद्योन्नतिके विषयमें मिसरियोंके प्रबल आग्रहको देख कर गवर्मेण्टने स्वतः प्रवृत्त हो कर शिक्षाविभागकी उन्नतिकी ओर ध्यान दिया। बहुत वादानुवादके बाद 'भारतगवर्मेण्ट १८५४ ई०में शिक्षा विस्तारके लिए बन्दपरिचर हुई। उस समय कलकत्ता, बम्बई और मद्राजमें तीन विश्वविद्यालय स्थापित हुए। अङ्गरेजों शिक्षाके लिए प्रत्येक जिलेमें एक एक स्कूल खोला गया और बङ्गला विद्यालयोंकी आर्थिक सहायता की गई। शिक्षाकार्य सुचारुरूपसे चले इसके लिए प्रत्येक विभागमें एक एक डिरेक्टर और कई परिदूषक नियुक्त किये गये। बादमें विश्वविद्यालयके परीक्षीतीर्ण छात्रोंको उनकी योग्यताके अनुसार निर्दिष्ट समयके लिए कुछ छात्रवृत्तियाँ देनेकी प्रथा भी प्रचलित हुई। इन छात्रवृत्तियोंके बल पर दरिद्र छात्रोंकी मनोपाम बड़ व्ययसाध्य अंग्रेजों शिक्षाप्रामका सुयोग प्राप्त हुआ है।

इतिहास ।

भारतका आदि इतिहास अतौत क लके गंभीर गहरमें निहित हैं । भारतके आदि प्रंथ वेद और रामायण महाभारतादि नाना पुराणोंसे जो आदि युत्तान्त प्राप्त होता है, यह इतना रूपक और कल्पनामिश्रित है कि, उससे निष्ठाळिस सत्य निकाल लेना एक तरहसे दुःसाध्य है ।

कुछ भी हो; क्या देशीय और क्या पाश्चात्य, वर्तमान सभी पुराविद्वगण एक चापयसे स्वीकार करते हैं कि, हमारी ऋक्संहिता जगत्का आदि ग्रन्थ है । इस आदि ग्रन्थसे हम समझ संकते हैं कि, पञ्चनद-तीर-घासी वैदिक आर्यगणोंने जब अन्तर्भारतमें प्रवेश किया था, तब उनके साथ नाना स्थानोंमें कृष्णवर्ण दास वा दस्यु जातिका युद्ध विप्रद चल रहा था ।

आर्योंके पूर्ववर्ती भारतवासी ।—वही कृष्णवर्ण दास वा दस्यु गण हो भारतके आदिम अधिवासी गिने जाते हैं । ऋक्संहितामें ये दस्यु वा दासगण 'अनास' अर्थात् नासिका रहित, अक्रतु वा यज्ञहीन, प्रथी अर्थात् जल्पक, 'मूध्रवाच' हिसितवाक्य, श्रद्धाहीन और युद्धशून्य इत्यादि विशेषणोंसे विशेषित किये गये हैं । ( ऋक् १०।२।१०, ७।६।३ ) ये लोग याग यज्ञादिको नहीं मानते थे, न करते थे, आर्योंसे इनकी सम्पूर्ण भिन्न प्रकृति थी, भिन्न कार्य थे । आर्यगण उन्हें 'मनुष्योंमें नहीं' गिनते थे । ( ऋक् १०।२।७-८ ) तथापि उन लोगोंमें बहुतसे ग्राम नगरादि बसाये थे, तथा उनके प्रयत्नसे अनेक दुर्भेद्य दुर्ग बने थे । शूल, तनुचो, शम्बर, बल आदि दास वा असुरगण उस आदिम जातिके अधिनायक थे । ऋक्संहितामें लिखा है कि, आर्योंके मुख्य देवता इन्द्रने उस दस्यु वा दास जातिके प्रभावके नष्ट करके उन्हें अपने यशमें किया था । ( ऋक् ६।१।२।३ ) आर्योंके प्रभावसे दस्युगण पराजित हो कर कोई बग जङ्गलमें दूर देशोंकी भाग गये थे, कोई आर्योंकी अधीनताकी स्वीकार कर शूद्ररूपसे आर्य समाजभुक्त हुए थे । अन्यत्रत नामसे उनका वर्णन किया गया है । उनका आचार-व्यवहार आर्यजातिसे सम्पूर्ण भिन्न था । ( ऋक् ८।१।१० ) इसीलिए छान्दोग्योपनिषद्में लिखा है कि—'बाज भी जो

यक्ति दीनहीन, श्रद्धाहीन वा यज्ञहीन है, उसे असुर वा असुरधर्मा कहा जाता है । असुरोंका यही सनातनधर्म है कि, वे शत्रुदेहको अर्थ, बसन और अलङ्कारोंसे सजाया करते हैं । वे समझते हैं, कि इस प्रकारके कार्य करनेसे ही इहलोकका पुण्यार्थ सिद्ध हो जाता है ।\* छान्दोग्योपनिषद्में असुर वा दासजातिका विशेष लक्षण जैसा लिखा है, वर्तमान पार्वत्य वा वन्य कोल, भौल, शबर आदि अनार्य जातिके आचार व्यवहारमें उसका आभास पाया जाता है । आज भी आदिम जातियोंके मृतोद्देशसे निर्मित प्रस्तर-स्तम्भोंको खोद कर देखनेसे उसके नोचे पोतल तांबे वा सोनेके एक प्रकारके अलङ्कार पाये जाते हैं । स्मरणातीत कालसे भारतको आदिम जातियोंके दुर्भेद्य गिरि-गहरो में आश्रय लेने पर भी, वे इस प्राचीन प्रथाको न छोड़ सकी थीं । दुर्भेद्य पर्णत या अरण्योंमें वास और नगरवासी सुसभ्य जातियोंसे संस्वय न रहनेसे इनका आदिभाव अब भी सम्पूर्णरूपसे परिवर्तित नहीं हुआ । बराहमिहिरने पर्णशबरके नामसे जिस प्राचीन जातिका उल्लेख किया है, उसको 'पतुआ' नामक शाखा अब तक केवल पेड़के पत्तोंसे ही अपना लज्जा-रक्षा करती थी । १८७२ ई०में अंग्रेज-सरकारकी कोशिशसे उन लोगोंने पहले पहल कपड़ा पहनना सीखा है । इस पार्वत्य वा वन्य-जातिकी शाखाएँ हिमालयसे नीलगिरि तक भारतके प्रायः समस्त पार्वत्यप्रदेशोंमें थोड़ी बहुत संख्यामें वास करती हैं । निज न गिरि-गहरो में उनकी दुर्भेद्य दुर्ग रूपमें रक्षा होती रहनेसे और वैदेशिक संस्वय न होनेसे हजारों वर्षोंसे वे एक रीतिसे उसी तरह बस रही हैं । अब पाश्चात्य प्रभावके विस्तारके साथ साथ उनको भी अवस्थाओंमें परिवर्तन हो रहा है और कालान्तरमें सभ्य जातिमें इनकी गिनती होने लगेगी इसके बिना भी इनमें दिखलाई दे रहे हैं ।

ऋक्संहितामें उस आदिम जातिकी सभ्यताका परि-

\* 'तस्मादपि अर्थे इ अर्दानं अश्रुध्यानं अत्रयमानं आहुरासुरो वेदेति । असुराणां हीनोपनिषत् प्रेतस्य शरीरं भिलया वंशनेन अयंकोमेति प्लवृत्तयेनेन वामुं लोकं ज्ञेयन्ती मन्यन्ते ।'

चय मिलता है। यह सम्भ्यता कहाँ गई? सम्भव है, आर्यजातिके प्रभावमें यह जाति दास्यरूपमें गण्य होनेसे, दासत्वके स्त्रिया अन्य कार्योंमें अधिकार न होनेसे तथा अधिकतासे जंगलोंमें वास होनेसे, उन्नत न हो सकी। आर्यसमाजका प्रभाव ब्रह्म चातुर्वर्ण-विभाग इनमें प्रचलित न था, किन्तु ये सभी एकता सूत्रमें आवद्ध थे। इनके सद्गुण एकमात्रता बहुतसी उच्च जातियोंमें भी नहीं पाई जाती। अज्ञानी नागा, सुभद्रा, कोल आदि शब्दोंमें विस्तृत विवरण देना।

भार्यका प्रभाव।—वैदिक ज्योतिषाङ्गकी आलोचनासे स्थूल स्थिर किया गया है कि, ईसाके प्रायः ६००० वर्ष पहलेसे ही वैदिक आर्यसम्भ्यताने विस्तार प्राप्त किया था। इसलिये ८ हजारसे चली आई पञ्चनदकी आर्यसम्भ्यता क्रमशः प्रहायत्तमें विस्तृत हुई थी। पञ्चनदके आर्यगण पहले अग्नि, इन्द्र, वायु आदिको उपासना करते थे।

‘आर्य’ और ‘वेद’ देलो।

सरस्वती और दृशदती-प्रवाहित प्रहार्पदेश ही भारतमें भार्य आर्य-सम्भ्यताके विस्तारका आदि स्थान है, यह बात बहुतोंने स्वीकार की है। वेद-संहिताके प्रचारके समय आर्य-सम्भ्यता इस प्रहायत्त या प्रहार्पदेश तक सीमावद्ध थी। यहाँ पर आर्य ऋषियोंने वेदोंकी संहिताएँ गाई थी और यजुर्वेदका कर्मकाण्ड यहाँ पर अनुष्ठित होता था। यहाँ पर रुद्रकी पूजा प्रवर्तित थी। वेदके ब्राह्मण और आदि आर्यगणोंके प्रचारके समय भार्यजाति उगध अतिक्रम कर सदानोंराके किनारे पहुँची थी। उसी समय शबर, पुण्ड्र, अन्न, मुतिय आदि अनार्यजातियोंके साथ आर्य-संन्धन हुआ था और तो क्या, चैतरेय ब्राह्मणमें उन जातियोंको विभ्रामितकी संज्ञान कहा गया है। वैदिकमूल-ग्रंथकी रचनाके समय आर्यगण दक्षिणात्यमें प्रवेश कर रहे थे।

भारतीय आर्यसमाजका प्रभाव विशेषतय चातुर्वर्ण्य विभाग है। यत्मान पादचारय विद्वानोंका विश्वास है कि आदि वैदिक युगमें जिस समय आर्यगण पञ्चनदमें वास्तु करते थे, उस समय उनमें चातुर्वर्ण्य विभाग संगठित नहीं था। परन्तु यह मत अब समीचीन नहीं समझा जाता। और सत्य भी है, क्योंकि कितनी

समाजकी सर्वादिम अवस्थामें जाति-विभाग सम्भव पर नहीं हो सकता। परन्तु सम्भ्यता-विस्तारके साथ सभी जातियोंमें अवस्थानुसार उच्च नीच भेद प्रथा अव्यपन्मावी है, अन्यथा किसी भी समाजकी रूढ़ि नहीं हो सकती। इस प्रकारका उच्च नीच विभाग केवल भारतीय आर्योंमें ही नहीं, किन्तु जो जातियाँ यत्मानमें सम्भ्य समझी जाती हैं, उन सबोंमें भी परोक्ष या प्रत्यक्षरूपमें प्रचलित है। जब वैदिक आर्यगण पञ्चनदमें वास करते थे उस समय ये सम्भ्यतामें बहुत उन्नत हो गये थे। यह बात ऋक्संहितासे स्पष्ट ज्ञात होता है और इस ऋक्संहितामें ही जब चातुर्वर्ण्यका प्रसंग है, तो ऐसी दृशामें निःसन्देह यह कहा जा सकता है, कि आर्यसमाजमें बहुत पहलेसे ही वर्ण विभाग संगठित था। ‘आर्य’ और ऋक्संहिता देखो।

पुराविद्वगण सभी इसी बातको मानते हैं कि मिसर की सम्भ्यता ही जगत्में सर्वादिम है। किन्तु यहाँ पुरोहित और राजन्यका अधिकार एक होके हाथमें ग्वस्त होनेसे शक्तिका अपलाप हुआ और इसीलिये मिसरीय सम्भ्यता स्थायी न रह सकी। परन्तु आर्यगण पुरोहित और राजन्यका अधिकार विभिन्न हस्तीमें रख कर सम्भ्यताके साथ स्थायी शक्ति-विस्तारमें समर्थ हुए, यहाँ आर्योंका विशेषत्व है।

जो लोग वेदके मन्त्रों द्वारा इन्द्रादि वैदिक देवोंकी स्तुति करते थे या वेद-मन्त्रोंका प्रकाश करते थे वे या उनके अपत्यगण ही वेदमें ‘ब्राह्मण’ नामसे अभिहित हुए हैं। और जो अपने हाथुबलसे राज्य-विस्तारमें समर्थ हुए थे तथा वैदिक स्तोत्रांशोंकी रक्षामें तत्पर थे, वे तथा उनके अनुयायी योरगण ‘क्षत्रिय’ नामसे परिचित हुए और उनके अनुगण प्रजा-साधारण ‘पैश्य’ कहलाये। यह त्रिवर्ण ही वैदिक आर्यसमाजकी शक्ति है। केवल भारतीय आर्य ही क्यों, सुदूर उत्तराप्रदेश, उत्तराखण्ड और शाकद्वीपीय आर्योंमें भी यह त्रिवर्ण ही समाजकी शक्तिरूपमें निर्दिष्ट हुआ है। पारसियोंके आदि भ्रम-शास्त्र ‘जन्व-ग्रन्थ’में इसका प्रमाण मिलता

० “शबर जातीय इतिहास” नयक बनसा पुस्तकालय प्रकाश, प्रथमान, २७-२८ पृष्ठ देखो।

है। विजित अनायासों और समाजघ्न कुछ अनधिकारी नीच आर्यों को ले कर ही शूद्रसमाजकी सृष्टि है। इस शूद्रसमाजसे पार्थक्य रखनेके लिए हो प्रथम लिखण का 'द्विज' कहा गया है और द्विजातिको सेवा ही शूद्रका एकमात्र करीबव बतलाया गया है। क्रमशः भारतवर्षमें आर्य-सभ्यताका विस्तार, विभिन्न जातियोंके संभवसे नाना मिश्र और सङ्कर जातियोंको उत्पत्ति तथा नाना विप्लवोंके कारण धीरे धीरे भारतीय आर्यगणोंने दृढ़तर चातुर्वर्ण्य समाज संगठित किया। गृहसूत्र और नाना स्मृति-ग्रन्थोंमें इसके प्रमाण विद्यमान हैं। हजारों वर्ष योंत चुके हैं, फिर भी नाना विधर्मियोंके प्रचल अनु-क्रमणोंसे भी उस सुदृढ़ भित्तिका नाशनाहो' हुआ है। गृहसूत्र और स्मृतियोंमें चातुर्वर्ण्यका जैसा कुछ विधि निषेधादि वर्णित है, आज भी हिन्दू समाज उसके अनुसार चल रहा है।

गृहसूत्र और धर्मशास्त्रोंका जिस समय प्रचार हुआ था, उस समय ब्राह्मणगण केवल वेदस्तोता वा सामान्य पुरोहित रूपमें नहीं गिने जाते थे, बल्कि उस समय उनका राजा और प्रजा तथा अन्यान्य सभी जातियों पर प्राधान्य विस्तृत था। इसी समयमें कन्नोज, शक आदि भारतवर्षियाँसो क्षत्रियजाति 'वृषल' नामसे परिचित हुई थी। इस ब्राह्मण प्राधान्यकालमें ही किसी किसी क्षत्रियने ब्राह्मण होनेकी चेष्टा की थी, यहाँ तक कि कोई कोई ब्राह्मण नामसे भी परिगणित हुए थे, जिनमें विश्वामित्र और देवापिका नाम उल्लेख योग्य है। इस ब्राह्मण-प्राधान्यके चरमकालमें परशुरामका अवतार कीर्तित हुआ था। बहुत समय पीछे क्षत्रियाभ्युदयका सूत्रपात हुआ, उस समय रामचन्द्रके हाथसे परशुरामको पराजय विधोषित हुई। परन्तु ब्राह्मणोंका सर्वप्रधान सम्मान ज्योंका त्यों बना रहा। उस समय यह स्थिर हो गया था कि ब्राह्मणोंकी ज्ञानचर्चा और वैदिक कर्मानुष्ठान ही प्रधान धर्म है, धर्माचरण द्वारा वे राजाधिराजोंकी अपेक्षा अधिक सम्मानित होंगे। कुछ पाण्डवोंके समयमें क्षत्रिय प्रभावका चरमोत्कर्ष देखा गया था। रामायणसे ज्ञात होता है, कि राजाकी मृत्युके बाद कुल-पुरोहित राज्य अधिकार करते थे और वे ही बादमें उपयुक्त अधिकारीको राज्य

शासन करने देते थे। परन्तु महाभारतके समय राजाकी मृत्युके बाद कुल-पुरोहितका यह अधिकार नहीं था। महाभारतके कर्त्ताने "वोयंश्रेष्ठाय च राजानः" (आदि-पर्व १३०।१६) कह कर क्षत्रियोंके श्रेष्ठत्वकी घोषणा की है। इसके बाद कुरुक्षेत्रके कुलक्षयकर महासमरसे ही क्षत्रिय-प्रभाव स्वयं होने लगा और सामान्त प्रदेशसे अन्य दुर्द्धर्ष जातियाँ भी भारतमें प्रवेश करने लगी। उसी क्षत्रिय-प्रभावके हासके साथ साथ वैदिक इन्द्रादि देव-गण भी पूर्वसम्मान लाभसे वञ्चित हुए। उस समय पूर्व और दक्षिण भारतमें ब्राह्मण-प्रभाव विस्तृत हो चुका था, तब भी उन प्रदेशोंमें अनायासोंका प्रभाव सर्वथा तिरो-हित न हुआ था। पञ्चनद और ब्रह्मर्षिवंशको प्रशान्त प्रकृतिने पूर्व भारतमें विभोपिकामयी मूर्ति धारण की थी। गङ्गाके भीम-प्रवाहमें जनपदोंके नित्य अवस्था परिवर्तन, नित्य तूफानोंका उत्प्लोडन आदि प्रकृति विपर्यय तथा देश भेदसे मानवोंकी अवस्था और आचार पार्थक्यकी पर्यालोचना करके पौराणिक ब्राह्मणगण ब्रह्मा, विष्णु और शिव इन त्रिमूर्तियोंकी कल्पना और उसके साथ ही देश काल-पातोपयोगी नाना देव-देवियोंकी प्रतिमाकी उपयुक्त पूजाका प्रचार करने लगे। उस समय एक ओर जैसे सरल निम्न श्रेणीके उपासकोंके लिए 'नाना मूर्ति-पूजा प्रचलित हो रही थी, दूसरी ओर वैसे ही परम-ज्ञानी आर्य ब्राह्मणोंमें ज्ञानचेष्टाके साथ नाना दार्शनिक तत्त्व उद्भावित हो रहे थे। जिस समय यूरोपीय जगत् एक प्रकारकी चन्य सुपुष्टिमें निस्तब्ध था, उस समय भारतीय ब्राह्मणोंके हृदयमें उच्चतर दार्शनिकतत्त्वविकाशका होना कम गौरवका विषय नहीं है। और तो क्या, उसके शताब्दियों बाद, ईसासे ३ शताब्दी पहले यवन-दूत मेगस्थनिस् भी ब्राह्मणोंकी निर्जन उपवनोंमें जन्म मृत्युकी ब्रालोचनामें लिप्त देख कर चमत्कृत हुआ था। वास्तविक आत्मसंयम और आत्मोत्कर्ष प्राप्तिका अनुराग ब्राह्मणोंमें जैसा प्रचल था, जगत्के इतिहासमें कहीं भी वैसे निदर्शन नहीं मिलता। दर्शन, वेदान्त, सांख्य आदि देखो। आत्मसंयम और आत्मज्ञानके प्रभावसे ब्राह्मणगणोंके भाषातत्त्व और जिस भाषा में वे बातें कहते हैं, वर्तमान सभ्य-जगत् विस्मय

उमकी भूयसी प्रशंसा कर रहा है। ज्ञान, भांग, पाणिनि, अनुषेद आदि मन्द बने। इन्हीं भारतीय आर्य ब्राह्मणोंने अद्रुद्रात्म और आयुर्वेद आदि नाना शास्त्रोंका उद्भावन कर, उनके पन्थानुसरणकारों पाश्चात्य गणोंको उन शास्त्रोंने धन्य बना दिया है।

विभिन्न दर्शनोंकी मृष्टिके साथ साथ नाना मतों और नाना सम्प्रदायोंकी उत्पत्ति होने लगी। प्रत्येक दार्शनिक सम्प्रदायने अपने अपने मतोंके प्राधान्यस्थापन के लिए प्रयत्न किया। परस्परको दार्शनिक प्रतिद्वन्द्विता में ब्राह्मण समाजकी एकताप्रन्थि जिधिल होने लगी। इस प्रकार अन्तर्विप्लवसे ब्राह्मणशक्ति खर्ब हो गई। पण्डित समाजको ऐसी विशृङ्खलताको देख कर क्षत्रिय समाज प्राधान्य-लामकी चेष्टा करने लगा। उसी चेष्टाके फलसे कई एक शतान्दोके बाद जैन और बौद्धधर्मका प्रसार हुआ।

जैन और बौद्ध-प्रभाव।—इंसाके ७९९ वर्ष पहले तेईसवें जैनतीर्थङ्कर श्रोपायवनाथ निर्वाणको प्राप्त हुए। उन्होंने जिस चातुर्धाम धर्मका प्रचार किया उसको ले कर ब्राह्मणसमाजमें महाविद्रुय उपस्थित हो गया। यों तो छन्दोषोपनिषद्के समयसे ही क्षत्रियगण ब्रह्मविद्यामें श्रेष्ठ हो चुके थे, यहां तक कि बहुतसे विद्वान् ब्राह्मण भी इस विद्याके लिए क्षत्रियोंके पास पहुंचा करते थे, उपनिषदादिमें इसका प्रमाण मिलता है। परन्तु महाभारतीय युगमें क्षत्रियोंकी पूर्ववत् मानचर्चा एक तरहसे उठ-सी गई थी। महाभारतसे मालूम होता है कि क्षत्रियगण प्रधानतः हस्तिनापुर, अश्वसुत, रथसुत, धनुषेद आदिकी शिक्षा ग्रहण करते थे। (महाभारत २१।११०, १२०) परन्तु ब्राह्मणसमाजमें दार्शनिक संभ्राम छिड़ने पर, उस आन्दोलनके समय क्षत्रियोंने भी मानचर्चाकी ओर ध्यान दिया। प्रारम्भमें ब्राह्मणसमाजके प्राधान्यको अयहेलना कर मस्तेक उठानेका साहस किसीको भी न हुआ। श्रोपायवनाथने ही सर्वप्रथम ब्राह्मण प्राधान्यको अस्वीकार किया; तथा धर्म और ज्ञानके प्रभावसे ही मानव-समाज श्रेष्ठता प्राप्त कर सकता है, नम्यधूर्जन, नम्यमान और नम्यक्यास्तित ही मोक्षका मार्ग है; ऐसा उपदेश

दिया। परन्तु बहु-संख्यक मानव-समाज उनके मगानु-यतीं हो गया, फिर भी उससे ब्राह्मणसमाजकी विशेष शक्ति नहीं हुई थी।

इसके दो शतान्दो बाद महावीर और सिद्धार्थ नामके दो क्षत्रिय-कुमारोंने अपने अपरिसीम ज्ञान और तपके प्रभावसे, क्रमशः जैन और बौद्धधर्मका प्राधान्य स्थापन किया और वे सफलकाम हुए।

‘जैनधर्म’ ‘महावीर’ ‘बौद्ध’ आदि मन्द देखो।

जैन तीर्थङ्कर महावीरस्वामी और बौद्ध शाक्यसिंह, ये दोनों ही प्रायः समसामयिक थे। इंसाके ५२७ वर्ष पहले महावीर स्वामी मोक्ष गये हैं और इंसाके ५४२ वर्ष पहले शाक्यशुद्धने निर्वाणलाभ किया है। दोनों ही महापुरुष ब्राह्मणधर्मसे ले कर चाण्डाल तक सबको समान इष्टिसे देखते थे। दोनों स्वार्थत्याग जोषोंके प्रति अनुत्तराग, सर्व-साधारणकी मुक्तिकामना और विशुद्ध धर्मोपदेश आदि गुणों पर मुग्ध हो कर सभी जातिके लोग भुएडके भुएड आ कर उनके पैरों पड़ने लगे और जैन तथा बौद्धधर्मके धर्मवीरोंके प्रभावसे ब्राह्मणादि अनेक द्विजातियोंने भी वैदिक मार्गको छोड़ दिया था। जीवहिसाकी प्रवृत्ति उनके हृदयसे धीरे धीरे दूर हो गई और परोक्षमें सभी क्षत्रिय-प्राधान्यको स्वीकार करनेके लिए बाध्य हुए। उससे पहले शूद्रको किसी शास्त्रमें अधिकार न था, किन्तु अब शूद्रोंको भी ज्ञानचर्चा और धर्मचिन्ता करनेका अवसर मिला। इस समयमें, उन्हें अवेज्ञाएण उच्च धर्माधिकार प्राप्त होनेसे वे कष्ट पश्रवाती हो गये और जिस प्रकारसे उनका धर्म निर्विरोधसे भारत भूमि पर प्रचारित हो, उसके लिए सभी विशेष प्रयत्नवान् हुए।

० प्राचीन जैनधर्ममें जिसा है, कि श्रोपायवनाथने पहले भी २२ तीर्थङ्कर और हो चुके थे। उन्होंने भी जैनधर्मका समर्थक प्रचार किया था।

१। महाभारतमें ही महापुरुषों जैनोंका उद्भव है कि, अश्विनमें ही ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति है। यही कारण है कि जेदा अश्विनका महीमा ११ दिनका माना है, वही ब्राह्मणोंका १०-दिनका और वैश्वदेव १२ दिनका माना गया है। यथा—

“अश्विनं कुम्भेण वैश्वदेवतयावधाम्।

गुहासे ब्राह्मणः शम्भुत्वेनैवैवकोषात्। (महाभारत)

जैनधर्म और बौद्धधर्मों में क्या पार्थक्य है, इसका परिचय साधारण समुदायको नहीं है। पहले लोग मूलतः दोनोंको एकसा ही समझते थे। किन्तु दोनोंके धर्ममतकी गवेषणापूर्वक देखनेसे उभय धर्मोंमें बहुत कुछ पार्थक्य मालूम होता है। यद्यपि लक्ष्य दोनोंका "मोक्ष" ही है, तथापि उसकी प्राप्तिके उपाय स्वरूप क्रिया-काण्ड और श्रद्धान-विषयमें बहुत कुछ अन्तर है। जैनधर्म आत्माके बहुत्वको मानता है, उसके मतसे आत्मा अनंतानन्त है, किन्तु बौद्धधर्म आत्माके बहुत्वको स्वीकार नहीं करता। विशेष विवरण 'जैनधर्म' और 'बौद्ध' शब्दमें देलना चाहिये।

साधारण समुदायके समझने और विचारनेमें सुविधाके लिए इन महापुरुषोंने देश-प्रचलित भाषाओंमें जैन और बौद्धधर्मका प्रचार किया, तथा अपने शिष्योंको भी भविष्यमें तदनुवर्त्तों होनेके लिए आदेश दिया। यही कारण है कि गांधी और पालिभाषाओंमें प्राचीन बौद्धग्रन्थ तथा मागधी और अर्द्धमागधी भाषाओंमें प्राचीनतम जैन-ग्रन्थ लिपिबद्ध हुए हैं। पुरातत्त्वविदोंने बहुत आलोचनाके बाद स्थिर किया है कि, प्राचीनतम जैन और बौद्धधर्मशास्त्र ईसाके ३ से ४ शताब्दी पहले सङ्कलित हुए हैं। जैनधर्म, प्रियदर्शी और बौद्ध देवों।

ज्ञविचार्या तदाशौचमिष्यते पत्र वारारान् ॥ ४१३६ ॥

दशाहं ब्राह्मणानां स्याद्ब्रह्मदशाहं विसां भवेत् ।

शूद्राणामर्द्धमासं त्यज्जैनैस्तत्त्वतस्त्रिनोः ॥ ४१४० ॥”

(चन्द्रप्रमथरिक्त जिनवंहिता)

परन्तु यह श्वेताम्बरचार्यका मत है। प्रसिद्ध दिगम्बराचार्य श्रीमज्जिमन्वसलामिनी लिखा है कि, जहां ब्राह्मणोंके लिए १० दिनोंका विधान है, वहां ज्ञविष्योंके लिए २ और वैश्योंके लिए ११ दिन अशौच कहा गया है।

इसके सिवा ब्राह्मणोंके पुराणोंमें ब्राह्मण परशुराम द्वारा इकोस बार पृथिवी निःश्रानिय होनेकी कथा है, उनके उत्तरमें ज्ञविष्योंके प्राधान्य-कालमें सहस्राब्दोंके पुत्र सुमीम द्वारा इकोस बार पृथिवी अत्राक्षर्या करनेका पुत्र लिखनेमें भी श्वेताम्बर जैन-ग्रन्थकर्ता नहीं चुके हैं। परन्तु सुप्राचीन दिगम्बर जैनग्रन्थकारोंने इसका कोई विषय उल्लेख नहीं किया। पुराण देवों।

उक्त दोनों महापुरुषोंके उद्य उपदेश तत्कालीन राजन्व-मण्डलीने प्रहण किये थे, इतोलिए उक्त दोनों धर्मके प्रचारमें विशेष सुविधा हुई थी।

लगभग ईसाके ५१५ वर्ष पहले पारस्याधिप दरायुस (Darius Hystaspes) विस्तासपने सिन्धु नदीके दक्षिणकूलमें अवस्थित गान्धार, सिन्धु, आर्क्षोद और हरयतो पर अधिकार किया था। किन्हींका मत है कि, फारस (Cyrus)के समयसे जरक्षेस (Xerxes)के समय तक उक्त अंश फारसके अधीन था। उस समय अज्ञातशत्रु मगधके सिद्धासन पर अधिष्ठित थे और शासकोंका प्रभाव भी अक्षय्य था। परन्तु ईसासे ४७८ वर्ष पहले कोशलाधिप प्रसेनजित्के पुत्र विरधकने शासकवंशका ध्वंस किया था। इसके कुछ समय बाद अज्ञातशत्रुके शेष वंशधर महानदी आविर्भूत हुए। उसके बाद महापद्मनन्दका अभ्युदय हुआ। पुराणोंमें ये ही क्षत्रियान्तकारों बतलाये गये हैं। ईसासे ३७२ वर्ष पहले चाणक्यके कोशलेसे नन्दवंशका मूलोच्छेद और चन्द्रगुप्तका राज्याभिषेक हुआ था।

श्रावणपेलागोलाके शिलालेखसे ज्ञात होता है कि, सम्राट् चन्द्रगुप्तने जैनोंके शेष श्रुतकेवली भद्रवाहुस्वामीका परम सम्मान किया था और उनके शिष्यत्व स्वीकार करनेमें भी वे पराङ्मुख नहीं हुए हैं। ईसासे ३७७ वर्ष पहले इन भद्रवाहुस्वामीने निर्वाण प्राप्त किया था। पाश्चात्य ऐतिहासिकगण नन्दवंश-ध्वंसकारी उक्त चन्द्रगुप्तको ही अलेक्सन्दरके समसामयिक और Sandrokottos समझ कर भारतीय इतिहास मिस्र-स्थापनमें अग्रसर हुए हैं। उनका कहना है कि, Sandrokottosके विना वे भारतके प्राचीन इतिहासका जटिल ग्रन्थिकी किसी भी तरह नहीं खोल सकते थे। परन्तु यह हम पहले ही प्रमाणित कर चुके हैं कि, पाश्चात्य ऐतिहासिकोंने जिनचन्द्रगुप्तको ध्रुवतारा-लक्ष्य बना कर भारतीय इतिहास-समुद्रसे उत्तर्ण होनेकी चेष्टा की है, वे वास्तवमें अलेक्सन्दरके पूर्ववर्ती हैं। ईसासे ३२६ वर्ष पहले अलेक्सन्दर सिन्धु नदी पार हो कर भारतमें आये थे। किन्तु चन्द्रगुप्तका राज्याभिषेक ईसासे ३७२ वर्ष पूर्वमें हुआ था, तथा ईसासे ३१६ वर्ष पहले उनके

पुत्र विन्दुसारकी राज्य-समामि हुई थी। मियदर्नी देतो।

अशोक मियदर्नी ही अलेक्सन्दरके जियरिमें उदत युवक Sandrokottos नामसे परिचित हुए थे। यही युवक कालान्तरमें समस्त भारतका अधोभर बना था। पहले ब्राह्मणभक्त, फिरजैनधर्मावलम्ब्यो और बौद्ध भक्त हुए थे। इन्होंने प्रयत्नसे बौद्धधर्म मिर्क एशियामें ही नहीं, बल्कि सुदूर यूरोपमें भी प्रचारित हुआ था। इनकी समामें रह कर प्रोकृत मेगस्थिनेस्ने भारतके चित्रका प्रकाश किया था। अशोकके बौद्धधर्म प्रचारके लिए अशेष प्रयत्न और आदर-प्रदर्शन करने पर भी उनके पीत दशरथने आजीवक नामक जैनोंके प्रति ही यथेष्ट अनुराग दिखाया था। बराबरके निकटस्थ नागार्जुनी पर्वत पर खोदित दशरथकी अनुजासनलिपि ही इस बातका प्रमाण है।

समस्त भारतवर्ष किसी समय मौर्यवंशका एक-च्छत्राधीन था। मौर्यवंश-विलोपके साथ ही पश्चिम-सिन्धुप्रदेशमें यवन लोग, उत्तरमें लिच्छिविगण और दक्षिणमें पाण्ड्य और चोलराजगण प्रबल हो उठे। यहां तक कि, उस समय भारतभूमि बहुसंख्यक छोटे छोटे स्वाधीन राज्योंमें विभक्त हो गई। शुङ्गगण नाम भारतके लिए राजचक्रवर्ती थे।

पुष्यमित्र अन्तिम मौर्यराज गृहद्रथके सेनापति थे। गृहद्रथकी मार कर उन्होंने अपने पुत्र अग्निमित्रको मौर्य राज्य प्रदान किया था। तभीसे मित्रवंशकी प्रतिष्ठा हुई थी। यवन, पुष्यमित्र, मौर्य आदि शब्द देखो।

शुङ्गवंशोपगण विदिशामें अभिष्टित थे, मालयि कामिभित्र नाटकमें इसका पता चलता है। उस समय समग्र कलिङ्ग पारखेल ( उर्. मंगूरराज ) नामक एक जैन नृपतिके अधीन था। उन्होंने लालकके पीत हाथि-साहूकी कन्याके साथ विवाह किया था और कुसुम्य-हाथिपतीकी महापत्नीसे मृषिक, जानकीर्णि और राज-गृहके राजाकी पराजित किया था। उस समय दक्षिण-पथमें सातवाहनवंशीय राजाभीमा अम्बुद्वय हो रहा था। महासाहनराज्य का देतो।

लगभग ईसामे १४४ वर्ष पहले मिलिन्द ( Menander ) नामक पञ्जाबके यवन मूर्ति भति प्रबल हो उठे

थे। उन्होंने अयोध्याकी राजधानी साकेतनगरी तक जय कर लिया था। उनके समसामयिक महाभाग्यकार पातञ्जलि उस संप्रभामका आभास दे गये हैं। ईसामे १५४ वर्ष पहले उनका राजकाल शेर हुआ था और जकोंने प्रधान लाभ किया था।

भारतमें शकाधिकार।—हरिवंश और अन्यान्य पुराणोंसे ज्ञात होता है कि, सगरके पिता बाहुराज शक, कम्बोज, तालजङ्घ आदिके हाथसे मारे गये थे। उस समय उन शकोंने हींदर राजाओंके पक्षमें युद्ध किया था। बादमें सगरके हृदयोंका विनाश कर पितृव्या परिग्रोष लेने पर, शक, कम्बोज आदि जातियोंने भा कर यगिष्ठका आश्रय लिया था। यगिष्ठके कहने पर सगरने शकोंका संहार नहीं किया, केवल सरके आधे बाल कटवा दिये। मनुसंहितामें ( १०, ४३-४४ ) लिखा है:—

“शनैस्त् कियानोपादिमाः क्षत्रियजातयः।

युपत्तवः गता लोकं ब्राह्मणादर्जनेन च ॥

पीपट्टकाभीष्टद्वेषः काश्याना यवनाः शकाः ॥”

धोरे धोरे कियानोपके कारण तथा ब्राह्मणोंके अदर्शन होनेसे ये क्षत्रिय जातियां धूपत्तवकी प्राप्त हुई थीं। जैने—पीपट्टक, उड, शक, यवन, काम्बोज, द्राविड आदि।

मनुसंहितासे ज्ञात होता है कि शक यवन आदि बहुतसी जातियां पूर्वकालमें विशुद्ध क्षत्रिय समझी जाती थीं। स्व स्व वृत्तियोंका परित्याग करनेसे और ब्राह्मणोंके न मित्रनेसे सभी धूपत्तवकी प्राप्त हुए थे। सम्भव है, सगर या अन्य किसी प्रबल हिंदू राजाके प्रभावमें भारतवासी शक, काम्बोज आदि क्षत्रिय जाति धूपत्तव प्राप्त और ब्राह्मणहीन हुए थीं। जैने—अधिक दियकी बात नहीं है, गीडाधिप बह्मालसंनने वैश्य जातीय बह्मालके बणिकोंके प्रति कुछ ही कर ब्राह्मणोंके परामर्शमें उनका जल अस्पृश्य बनलाया था, तथा शुभ और पुनोदितोंकी वन्द्य करके उनकी भति नीच समझा था। मिय देशोंसे आगत शक काम्बोज आदिके भाग्यमें भी शायद ऐसा ही रहा था।

मध्य एशियावासियों काम्बोजोंमें भी किसी समय वैदिक आर्य भाषा प्रचलित थी, यह ज्ञान पाकरके विद्वान

स्पष्ट मालूम होती है। शाक, काम्बोज आदि मध्य-एशियावासी विभिन्न जातियों ने बहुत पूर्व कालमें भारतवर्षमें आ कर उपनिवेश स्थापन किया था; इसके भी अनेक प्रमाण पुराणोंमें मिलते हैं।

पहले जिस जातिकी जहाँ अवस्थिति है, उसके नामसे उस जनपदकी प्रसिद्धि हुआ करती थी। गरुड़-पुराणसे ज्ञाना जाता है कि, किसी समयमें दक्षिणापथमें कर्णाटक और कम्बोजघण्ट तथा भारतके दक्षिण-पश्चिममें अम्बष्ठ, द्राविड, लाट, काम्बोज, खीमुख, शाक और आनत इन जनपदोंकी अवस्थिति थी। भारतके दक्षिण-पश्चिममें काम्बोज और शकजातिका वास था, यह बात पुराणोंके सिवा प्राचीन ग्रन्थों और शिलालेखोंमें भी वर्णित है।

हिरोदोटस्ने लिखा है कि, फारसके बादशाह दरायुस के अधीन भारतमें छत्रोप राज्य (Satrapy) था, यह फारसके समस्त प्रदेशोंसे समृद्धिशाली था, तथा उससे कर ६०० तौल (talents) सोना प्राप्त होता था। दरायुसके समय पंजाब और सिन्धु प्रदेश फारसके अधीन पारस्य-सम्राटके अधीन यहाँ जो शकराज आधिपत्य करते थे वे 'छत्रोप' (Satrap)† (प्राचीन शिलालेखोंमें क्षत्रप) नामसे प्रसिद्ध थे। माकिदोनवीर अलेक्सन्दर के साथ पारस्य-पतिका जो महासंप्राम छिड़ा था उसमें भारतीय शक प्रजा ही (Indo-Seythians) उनके दक्षिण हस्त-स्वरूप थी। इन वीरोंमें 'सकसेन' (Sacasenae) नाम देखनेमें आता है। यवन-समरमें पारस्य सम्राटके लिए उन लोगोंने अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया था।

राजपूत-इतिहास लेखक प्रसिद्ध टाडसाहबने लिखा है कि, "जिट (Indo-seythic Getes=जाट), तक्षक और असि आदि शकगण ईसाके जन्मसे ६०० वर्ष पहले भारत

में आये थे। उसी समय जर्कोने एशिया माइनर तक और बादमें स्कन्दनाम (Scandinavia) तक जप किया था। इसके थोड़े ही समय बाद शकजातीय असि (अश्व) और तोचारी तुगरोने बखित्रया राज्यको विपयस्त किया था। वालटिकसागरके किनारेसे आनेवाली शकजातीय असि, फाडी (Cathi) और कम्बरी (Cimbri) लोगोंकी शक्ति रोमकोंको भी अच्छी तरह चिदित हो गई थी।†

कुछ भी हो, पूर्व वर्णित ऐतिहासिक और पौराणिक विवरणोंसे ज्ञात होता है कि, बहु प्राचीनकालसे ही भारतके साथ शाक वा शकजातिका संस्य है।

अब देखना चाहिए कि, भारतके शकोंने किन किन स्थानोंमें और कैसे आधिपत्य विस्तार किया था।

फारसके अखमनीवंशिय (Achaemenidae) राजाओंके समयमें शकोंके पञ्चनद प्रदेशमें आधिपत्य प्राप्त न करने पर भी उसी समयसे शक संस्य ही रहा था। उस समयमें ईसाके पूर्वको धयी गताब्दीमें पञ्चनद प्रदेशमें और खरोष्ठी अक्षर-युक्त मुद्राका प्रचलन तथा पारस्य स्थापत्यका निदर्शन देखनेमें आता है। कनिगहम, डाकूर बुल्लूर आदि प्रन्ततत्त्वविदोंने निश्चय किया है कि, प्रसिद्ध मग पुरोहित अग्निपूजा-प्रवर्तक जरथुस्त-का नाम ही उच्चारणमेंसे 'खरो' ही गया है। उन मग-पुरोहित-द्वारा प्रवर्तित अक्षर ही 'खरो' नामसे प्रसिद्ध हुए थे, ऐसा अनुमान किया जा सकता है + । जहाँ तक सम्भव है, पञ्जाबमें उनके वंशजों द्वारा ही यह लिपि प्रचलित हुई होगी।

‡ राजस्थानमें जो 'शाकम्बरी' देवी हैं, टाड साहबका विश्वास है, कि वे प्रथमतः शाकोंकी अधिष्ठात्री देवी थीं। Tod's Rajasthan. Vol. p. 63

† Tod's Rajasthan Vol. 1

‡ टाड साहबने अपने प्रसिद्ध इतिहास राजस्थानमें दिखाया है, कि अधिकतर राजकुलोंमें शक-रक्त प्रवाहित आश्रयका विषय है कि, फिर भी सर्वोंने पूर्व-सन्धव शीय क्षत्रियके नामसे परिचय देनेमें कुछ द्विविधा नहीं की है।

+ Cunningham's coins of Ancient India p. 36-37

‡ "कर्पाटः काम्बोजपट्टा दक्षिणापथवाकिनः। अम्यंथा द्राविडा लाटाः काम्बोजा खीमुखाः शकाः ॥ आनतवाकिनश्चे व नेयाः दक्षिणपथिभ्यः ॥" (५५/१५)  
† छत्रप वा क्षत्रपसे ही परवर्तिकालमें 'क्षत्रपति' उपाधि प्रचलित हुई थी। सुप्रसिद्ध महाराष्ट्रवीर शिवाजी भी 'क्षत्रपति' उपाधिसे विभूषित हुए थे।



पञ्चनदमें जो 'शाकल' नगर था, सम्भवतः जक या जकोंके यासके कारण उसका नाम 'शाकल' पड़ा था। पहले ही कहा जा चुका है कि, माकिदोन-वीर अलेक-सन्दरके साथ द्रायुसके युद्धके समय द्रायुसके क्षत्रप भारतीय घोरोंने उनकी पार्श्वरक्षा की थी। उन घोरोंने भारतके किम् अंशमें राज्य किया था, यह निश्चितरूपसे नहीं मालूम हो सका।

सम्भवतः उस समय पश्चिम-प्रशाथ और सौराष्ट्र-प्रदेशमें जक-क्षत्रपोंने सामान्यभावसे आधिपत्य किया होगा। परन्तु यह ठीक है कि, अलेकसन्दरके अनुचर यवनोंके प्रभाव-विस्तार और मौर्यवंशके अभ्युदयके साथ ही क्षत्रपोंका प्रभाव मर्य हुआ था। मौर्यराज अशोकके समयमें तुषारण नामक कोई एक यवनसौराष्ट्रमें क्षत्रप थे। सम्भवतः उसी समयमें या उसमें कुछ पहले सौराष्ट्रमें यवनोंका प्रभाव विस्तृत हुआ था। जक सम्बन्धमें इस समयका और कोई उल्लेख नहीं मिलता। उसके बाद यवन-प्रवाह लुप्त होने पर, जकोंका प्रभाव बढ़ा। मत्स्यपुराणमें भी देखा जाता है कि, ७ गर्दभिल, १८ जक, ८ यवन, १४ तुषार, १३ मुकण्ड और १६ हण राजाओंने भारतमें राज्य किया \*। इनमें तुषार, मुकण्ड और हण ये तीन जातियाँ जकजातिकी ही जाती समझी जाती हैं।

जकोंका पुनरभ्युदय ठीक किस्स समय हुआ था, यह बात भारतीय और ग्रीक ग्रन्थोंसे स्पष्ट नहीं मालूम पड़ती। चीनोंके प्राचीन ग्रन्थोंमें इसका सविस्तार वर्णन है।†

जिस्स समय बाहिक (Bactria) देशमें यवन-राज्य-प्रतिष्ठित हुआ था, उस समय चीनके दक्षिणांशसे 'सैक' (जक) जातिने आ कर सोगदियाना और याससिस्त-याना अधिकार किया था, उनके नामानुसार यह स्थान

\* "७ गर्दभिलभावि शकाश्चात्तादमेव तु।

यवनाही भविभन्ति तुषाराथ चतुर्दश।

सकौरग मुकण्डय हण ह्ये कोनविरातिः ॥"

(मत्स्य पृ० २३३ अ०)

Drossin & Revene Numis 1888 p 13

सेस्तान या शकस्थान नामसे प्रसिद्ध हुआ था। ये शक-गण ही किसी समय फारसके अद्यमनोरंधा और माहि-दूनवीरोंके साथ होनेवाले घोरतर संग्राममें हित थे।

इंसासे १६५ वर्ष पहले ये ही शकगण यूचों (Yueh-chi) नामक अन्य एक शाखासे परास्त हो कर और सोगदियाना खो कर बाहिककी तरफ घावित हुए थे। वहां यवनोंके साथ जकोंका कुछ समय तक संग्राम हुआ था। इसी समयमें पार्थिव (पारद) लोग आ कर जकोंके साथ सम्मिलित हुए थे, इन दोनों जातियोंमें जैसी मित्रता थी वैसी ही शत्रुता भी मौजूद थी। बृषभो हो, यह जानि अन्तमें परस्पर सम्बन्ध-सूत्रमें बाधद हुए थे और बादमें एक ही जाति कहलाई थी।

शकजातिय यूचियोंने शकस्थानसे आ कर इंसाने १२० वर्ष पहले बाहिकदेश अधिकार किया, और यवन लोग भगाये जाने लगे। इसके कुछ ही समय बाद कुषान नामको एक शकजातिने परोपनिस्स (पौराणिक तिष्य-गिरि) पार कर काबुल उपत्यकामें प्रदेश पूर्वक यवन-शासनका चिह्न तर्क नष्ट कर दिया और इस तरह कश्मीर उत्तर भारतमें उनका आधिपत्य जम गया। किन्हीं विद्वान्का अनुमान है कि जकोंके प्रभावसे अफोथ्या प्रदेशका अधिकांश उस समय 'साकेत' नामसे प्रसिद्ध था।

शकाधिकारमें भारतके नाना स्थानोंमें जो शिलालेख, ताम्र-शासन और प्राचीनमुद्रा प्राप्त हुई हैं, उनमें मोभास या मोग नामक शकराजका प्रथम उल्लेख देखा जाता है।† किस्सी किस्सी पुराविद्वक्का अनुमान है कि, इस मोग नामक शक राजाके राजत्वकालमें आराकोसिया (Arachosia) वर्तमान गजनी और द्राक्षियाना

० शकोंकी जन्मभूमिका ग्रीक भौगोलिकोंने 'सैकिनी' Sakitni नामसे उल्लेख किया है। इस नामके साथ 'सैकेट' शब्दका संघट्ट घोरारथ है परन्तु किन्ना जासुका है कि 'साक-टोन' नामने ही यवनोंके यहाँ Enkita या Scythia का धारण किया होगा।

+ तदग्रजिज्ञाने भाविभूत कामुद्रेयाने 'मिना' तथा उनके मित्रो मित्रकेमें 'रजनिरजग मङ्गल मोम्ह' नाम देखा जाता है।

Drangiana) प्रदेश 'शकस्थान' नामसे प्रसिद्ध हुआ था, तथा सिन्धु और पञ्चनदका कुछ अंश शकराजमें सम्मिलित हुआ था।

मोगके बाद अजेस और अजिलेस उत्तराधिकारी (करीब ईसासे १०० वर्ष पहले) हुए। इनके साथ पार्थिय वा पारद (Parthian) राजाओंकी विशेष प्रसिद्धता हो गई थी। इसी समयमें पार्थिवराज वोनोनेस और शकपति स्पेलगदम\* शकस्थानमें राज्य करते थे, तथा मोगके चंशघर अजेस सिन्धुनद प्रवाहित जनपदमें आधिपत्य करते थे। उस समय शकस्थानके पार्थिवराजने सिन्धुपतिका प्राधान्य स्वीकार किया था। मोगवंशीयोंकी तक्षशिला (पश्चिम पञ्जाब), जाकले (पूर्व पञ्जाब) और काबुलमें राजधानी थी। थोड़े ही समयमें इस मोगवंशका अधिकार पूर्वमें मथुरा और दक्षिणमें सीरापू तक विस्तृत हो गया था। शकराजकी अधीनतामें मथुरा, सीरापू और मालवमें एक एक क्षत्रप (Satrap) नियुक्त हुए थे। इस क्षत्रपोंकी क्षमता किसी पराक्रमी राजासे कम न होती थी। इनके उद्यम और बलवीर्यके प्रभावने शकाधिकार बहुत कुछ विस्तृत हुआ था।

मथुरामें शकक्षत्रपगण।—मथुराके शक क्षत्रपोंमें रुजुबुल वा राजुबुलका नाम प्रथम है। पहले पहल ये ही क्षत्रप हुए थे और अन्तमें क्षमता और अधिकारवृद्धिके साथ साथ 'महाक्षत्रप' उपाधिकी प्राप्त हुए थे। मथुराके सिंहस्तम्भमें इनका 'राजुल' नामसे उल्लेख है। इस सिंहस्तम्भमें लियककुसुलक नामसे और भी एक क्षत्रपका नाम पाया जाता है।

(Epigraphia Indica; vol iv, p. 54, Numismatic chronicle, for 1890, p. 103, Grundriss der Indo-Arisenen Philologie vol 11 part 3, p. 7)

'मोअस' नामके देखनेसे अनुमान होता है कि, पुराणमें 'मगल' नामक शकदीपीय दानविका नाम वर्णित हुआ है।

\* अब शकस्थानके कुछ अंश 'सैलान' नामसे परिचित हैं।

† खोरस्त्रीकियुक सिक्कोंमें स्पेलहारपुव सधमियथ स्पेलगदमस\* अर्थात् स्पेलहारपुवस्य धर्मियस्य स्पेलगदमस्य ऐता पाया जाता है।

राजुबुलके बाद उनके पुत्र सौदास और हगमास तथा उनके सहयोगी हगानका नाम प्राचीन सिक्कोंमें मिलता है। मथुर के स्तम्भमें सौदासकी कहानी लिखी हुई है। तक्षशिलासे शकराज मोगके ७८ संवत्में उत्कीर्ण, लियक कुसुलकके पुत्र छत्रप कुसुलक पतिकका एक ताम्रशासन मिला है।

कुसुलकके पहले मनिगुल और उनके पुत्र जिहोनिस (ईसासे ८० वर्ष पहले) अपने अपने सिक्कोंमें 'छत्रप' उपाधिका व्यवहार किया। अलावा इसके मोगवंशके अजेसके सहयोगी इन्द्रवर्मा और उनके पुत्र अस्पयमों तथा विजयमित्तपूत नामक कई क्षत्रपोंके नाम उत्तर-भारतमें आविष्कृत प्राचीन सिक्कोंमें निकले हैं। ये शकक्षत्रपगण शककुपन-राजाओंके पहले प्रबल हो गये थे।

शकजाति नाना शाखाओंमें विभक्त हो गई थी, जिनमें कुपन शाखा प्रधान है। शकराज मियउस वा हेरउसके सिक्कोंमें उन्होंने अपना परिचय 'शककुपन' नामसे दिया है। प्रसिद्ध शकाधिप कनिंकाने भी अपने सिक्कोंमें 'कुपनवंश-संवत्सक' लिखा है\*।

चीन-इतिहासके अनुसार यिन-मो-यू नामक एक व्यक्तिने ईसासे ४६ वर्ष पहले क्पिन (काबुल) अधिकार किया था। कोई कोई इतिहासज्ञ इस व्यक्तिकी और मियउसको एक ही समझते हैं।

शककुपनवंश।—शकजातिकी युपति श्रेणी फिर पांच शाखाओंमें विभक्त है, जिनमें कुपन एक है। ईसासे २५ वर्ष पूर्वमें कुपन-शाखाओंने अन्य चार शाखाओंमें प्रधानतः प्राप्त की और कुपन दलपतिकी अधीनतामें पाँचों शाखाओंमें मिल कर काबुल प्रदेश अधिष्टन किया। उस दलपतिकी नाम कुजुलकस (Kujula kadphises) था। इनके सिक्कोंमें खरोश्ट्री लिपिमें इस प्रकार लिखा है—

"कुजुलकसस कुपनयवुगस धमठिदस"। अस्ती चर्चकी अवस्थामें लगभग ईस्वी संवत् १०में इनकी मृत्यु हुई थी। उसके बाद कुजुलकर (Kujulakar Kadphises) नामक 'देवपुत्र' उपाधिधारी एक शककुपन राजका उल्लेख मिलता है। किन्हीका क्याल है कि, ये कुजुलकसके पुत्र थे और इन्हींके समयमें भारतके

\* India. Antiquary 1881, p. 122

अरुतर्माणे' कुपन-भाषिपत्य प्रवर्तित हुआ था। उसके बाद हिम-कनिषसस (Hima Kalphisee) ने उत्तर-भारतमें भाषिपत्य विस्तार किया था। ये परम श्रेय थे और इनके सिषकोंमें विश्वकर्षारी शिवमूर्ति ही तथा यतीश्रीलिपिमें इस प्रकार उपाधि लिगी हुई है—“मह-रजस रजतिरजस सर्वलोय ईश्वरस महोभ्वरस हिमकल्पिसस।” ०

हिम-कानिषके, बाद प्रसिद्ध जगत्कुपन-राज कनिष्कका उद्देश मिश्रता है। राजतरङ्गिणीमें हुक युक्त और कनिष्क इन तीनोंका ही “तुष्कान्वय” नामसे वर्णन किया गया है। इसमें तुष्क ही जगत्पंजीय उद्धरें हैं।

कनिष्क, हुविष्क और वासुदेव।—किन्दीका विश्वास है कि, जगत्कुपन-पंजीय कनिष्कसे ही जगत्संयन् या जगत्सद् प्रवर्तित हुआ है और यहूतोंका यह भी कहना है कि, यह बात विश्वसनीय नहीं है। पुत्रविदु कनिष्कस साहसका मत है कि, प्रसिद्ध जगत्क्षत्रप चण्डने जो संयन् चलाया था, वही जगत्सद् या जगत्संयन्के नामसे प्रसिद्ध हुआ। जगत्संयन्के पूर्वमें कनिष्कका अस्तित्व है।

कनिष्क कट्टर बौद्ध हो गये थे। बौद्धशास्त्र संग्रह करनेके लिये ही उनको समामें द्य धर्मसङ्गीति हुई थी। बहुतसे बौद्ध परिणतोंका विश्वास है कि, इन्होंने कनिष्ककी चेष्टामें नागार्जुन द्वारा महापान मत प्रवर्तित हुआ था। ये बौद्ध होने पर भी ज्ञान, भाषितिक और महापण्यधर्मको अवमानना नहीं करते थे। इनके सिषकोंमें जगत्, भाषितिक और हिन्दू देव-देवियोंकी मूर्ति रहनेसे यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है। कनिष्कका राज्य उत्तरमें काश्मीर, पूर्वमें मयुर, दक्षिणमें सिन्धु और पश्चिममें गान्धार पर्यन्त विस्तृत था। बौद्ध प्रयोगोंके अनुसार, कनिष्कने स्वसत्त भारतमें महापान-मतका प्रचार किया था।

कनिष्कके बाद हुविष्ककी राजशासिकार प्राप्त हुआ। ये भी बौद्धधर्मानुयायी थे। इसके बाद जगत्पिप वासुदेव सिंहासन पर बैठे। पहले बौद्धमिप होने पर भी अन्तमें ये श्रेय हो गये थे। इनके सिषकोंमें विश्वकर्षारी शिवमूर्ति सुतो हुई है। वासुदेवके नामके साथ देवपुत्र उपाधि रहनेसे कोई कोई उन्हें भारतीय हिन्दू समझते हैं, परन्तु भारतमें उनका जन्म और हिन्दूधर्ममें अनुयाय होने पर भी प्रोफ-लिपियुक्त उनके सिषकोंके हेतवसे यही बात होता है कि ये हिन्दूकृत जात नहीं थे। देवपुत्र उपाधिके विषयमें प्रसिद्ध पुराविदु कनिष्कस साहसका लिपना है कि, चीनके सम्राटने जैसे ‘वगपुत्र’ ० की जगह ‘वगपुत्र’ उपाधि ग्रहण की थी, यह ‘देवपुत्र’ उपाधि भी उसी तरहकी है। कनिष्कस इन वासुदेव और पुराणोंका काण्वायन द्विजपंजीय वासुदेव नामके राजाको एक ही समझते हैं। पुराणोंका काण्वायन वासुदेवका जो स्मरण निरूपित हुआ है, जगत्पिप देवपुत्र वासुदेव भी ठीक उसी समझके हैं। काण्वायन वासुदेवने अपने प्रभु शुद्ध या मितपंजीय शैव राजा देवमूर्तिको मार कर सिंहासन आधिकार किया था। लगभग ईस्वी सन् ५१में देवपुत्र वासुदेवका राजायमान हुआ था।

गोपट्ट, भानन और भारतमें शासिकार और दक्षिणार्धमें आन्ध राज्य।—जिस समय उत्तर भारतमें जगत्क्षत्रपण अधिकारविस्तार कर रहे थे, उस समय भी दक्षिण-भारतमें मिश्र मिश्र जगत्क्षत्रप निर्देश गहों थे। इसकी पहली शताब्दीमें मालवा और राजपूतानामें चण्डनेके पिता तथा पश्चिम-भारतमें गहवानके पिता क्षत्रप थे। साह्यान गहवान भी पहले सामान्य क्षत्रप थे, भाननमें मल्लराष्ट्रका कुछ मंडल, उत्तर कोट्टन, गुर्जर, मुराद् भानन ( काटिपायाड) और कच्छ प्रदेशमय जनपदोंको कतवाप कर अपने बलयोगेके प्रभावमें महाराज्य रूप

० बौद्धोंमें आहार स्पष्ट दिना मना है। इसका स्पष्टन स्व महापण्य, राज-धर्ममय मन्त्रोपदेशन भाषितिक विमर्शित्य

० यदि ‘वगपुत्र’ वा ‘वगपुत्र’ की जगह ‘देवपुत्र’ स्मरण हुआ हो और कावकायन दिन-चर-मयण ही हो, तब-च-मयण मय जगत्पंजीय मयण है या नहीं, इस सम्बन्धमें भी आशङ्कता और अनुमान करनेकी आवश्यकता है।

थे। इनके जामाता दीनोकपुत्र उपवदात (ऋषभ-  
दत्त) शककुलमें एक अग्नि गण्य राजा हुए हैं। सुराद्रसे  
नासिक तक उनका अधिकार विस्तृत था। शककुलमें  
जन्म होने पर भी देवद्विजमें उनको प्रगाढ़ भक्ति और  
सद्गममें यथेष्ट अनुत्पन्न था। उन्होंने उत्तमभद्र नामक  
क्षत्रियों के साथ कुटुम्बिता (सम्बन्ध) की थी और महा  
क्षत्रपके आदेशसे उनको सहायताके लिए माल्यों को  
गरास्त किया था। उनके शिलालेखके पढ़नेसे विदित  
होता है कि—“वे ब्राह्मण-भोजन कराते थे, प्रमासक्षेत्रमें  
उन्होंने बहुतसे ब्राह्मणोंके विवाह कराये थे, और  
चातुर्मास्यके समय अनेक भिक्षुओंको असन-चसनादि  
प्रदान किये थे।” अधिकतः सम्भव है कि, ब्राह्मणा-  
नुरक्तिके कारण ही शकाधिपोंमें सहजमें ही भारत-  
वासियोंके हृदयमें अधिकार कर लिया था तथा इसी  
लिए शंकराज्य विस्तृत और स्थायी हुआ था। कोई कोई  
शकक्षत्रप ब्राह्मणानुकूल्यके ही कारण विशुद्ध क्षत्रिय  
समझे गये थे। अन्यथा विदेशीय अहिन्दू राजाके  
लिए लाख ब्राह्मणोंको भोजन कराना सहजसाध्य  
नहीं होता। अब भी किसी नोच-जातिके घर भोजन  
करना ब्राह्मणोंको प्रकृतिके विरुद्ध है। ऐसी दृष्टिमें  
लगभग दो हजार वर्ष पहले लाख ब्राह्मणों का शकोंके  
यहां आहार करना, शकोंके नोच जातिरवका परि-  
चायक नहीं हो सकता। डॉ० भाण्डारकरने लिखा है  
कि इन शक राजाओंने ब्राह्मणधर्म ग्रहण किया था \*।  
इसलिए भी ब्राह्मणोंके निकट वे उच्च जातीय समझे  
गये थे, यह सम्भव है। शिलालेखसे जाना जाता है कि,  
शकराज नहपानके अयम नामक एक मंत्री थे †।

उपवदात नहपानके जामाता होने पर भी वे श्वशुरके  
सिद्धान्त पर बैठे थे, इसका कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं  
मिलता। प्रसिद्ध पुराविद् कनिंगहम साहबने शिला  
लेख और सिक्कोंको सहायतासे लिखा है कि, नहपान-  
वंशके राजत्वके बाद चन्द्र मालवकों क्षत्रप हुए थे,  
और उन्होंने शक-गौरवको स्थायी बनानेके अग्रियायसे

शकायुद्धका प्रचार किया था \* पाश्चात्य भौगोलिक  
टलेमीने इन्हीं राजाको Tiastanes नामसे उल्लेख किया  
है। उज्जयिनीमें उनको राजधानी थी।

मत्स्यपुराणसे बात होता है कि मौर्य वंशीय राजा  
दशरथके पूर्व ही भारतमें शकाधिकार विस्तृत था।  
डॉ० भाण्डारकरके मतसे अश्वभूत्य वा सातवाहन-  
वंशीय राजा गौतमपुत्रके पूर्व से ही शकोंने वाग्धरा  
भारत पर आक्रमण कर सिंधु और राजपूताना तक राज  
विस्तार किया था †। प्राचीन ताम्रलेखादिमें जो शक-  
राजाओंके समयका उल्लेख है सम्भवतः वह किसी  
महाप्रतापशाली शकविजेता द्वारा प्रवृत्त संवत् है।  
उन्होंने यहाँ स्थायी आधिपत्य प्राप्त किया था और  
उन्होंने अधोनतामें नहपान और चन्द्र अधया उनके  
पिताने पश्चिम-भारत और मालवामें क्षत्रप-पद प्राप्त  
किया था।

नहपानका शेषाब्द १२४ ई०में पड़ता है। उसके  
बाद गोतमी पुत्र वा पुडमायोने महाराष्ट्र प्रदेश अधि-  
कार किया था †।

कनिंगहमने उज्जयिनी पति चण्डनको नहपानसे  
बहुत पर्यन्तों कालका पतलाया है, परन्तु यह युक्ति-  
सङ्गत नहीं दीखता। निम्नलिखित विवरणके पढ़नेसे

\* Cunningham's Coins of Mediaeval India.

‘‘बृहद्रथस्तु वर्षाणि तस्य पुत्रश्च सततिः।

पट्टिसिन्धु उरुमा राजा भवित्वा शक एव च।

सतानां दश वर्षाणि तस्य नत्ता भविष्यति।

राजा दशरथोऽपि तु तस्य पुत्रश्च सततिः।

इत्येतं दशमोर्षस्तु ये मोक्षयन्ति वसुन्धराम् ॥’’

(मत्स्य पु०, २७१-२२-२४)

† शुद्ध वा मित्रवंश और कापवायवन्धके आचरणको आलोचना  
करनेसे यही मालूम होता है कि, वे भी शाकद्वितीय ब्राह्मण थे।  
अपने प्रभुको हत्या कर राज्य ग्रहण करना, यह शकोंका  
सामाजिक विशेषत्व है। कुम्भोज-महासमरके कुछ समय बाद  
ही शाकद्वितीय ब्राह्मणोंने भारतमें प्रवेश किया था। पुष्यमित्रादि  
की तरह इनकी भी मित्र उपाधि वंशगत थी।

‡ Bhandarkar's Dekkan, 2nd Ed. P 27.

\* Bhandarkar's Dekkan, p. 1.

† Archaeological survey of western India,  
Junner Inscriptions, no. 10.

नदवान मोर चण्डन समसायिक मालूम होते हैं।

जेनोंको फाल्गुनाचार्य-फणाके गर्दनेसे मालूम होता है कि, उज्जयिनोमें ईसासे ७४ वर्ष पूर्व से ५७ वर्ष पूर्व तक प्रकाशिकार था। उस समय प्रतिष्ठानमें सातवाहनवंशीय जातकर्णिके राज्य करने थे। अधिकतर यही सम्मय है कि, विक्रमादित्य उपाधिधारी सातवाहनवंशीय किमी आन्ध्र राजाने ही मालवामें जकोंको पराजित कर मालव-स्थितकच्छ या विक्रमसंवत्का प्रचार किया है। परन्तु इन आंध्रराजका अधिकार स्थायी नहीं रहा था। वे पराक्रान्त शक नृपतियोंसे युद्धमें धारदार पराजित हुए थे। अन्तमें शक-क्षत्रप चण्डन मालवामें प्रबल हुए थे।

उन्होंने जनेः जनेः सातवाहनों के अधिकारभुक्त अनेक जनपदोंको अधिष्टन कर 'महाक्षत्रप' उपाधि धारण की थी। सातवाहनवंश उम समय दक्षिणापथका अधीश्वर समझा जाता था। उज्जयिनोपति चण्डने सातवाहनवंशीय किमी राजाको समरमें पराजित कर उस घटनाको चिरस्मरणीय बनानेके लिए 'जरसंयत्' प्रचलित किया था। जकोंमें बहुत पूर्वसे ही ब्राह्मणधर्म ग्रहण किया था। यहां तक कि स्वयं शकराज चण्डन दक्षिणापथके प्रसिद्ध अधीश्वरोंके साथ विवाह सम्बन्धमें भाग्यद थे। इस विवाह मूलसे चण्डनके प'जपरमें 'शक' नाम रचाग कर 'दिदू' नाम प्रदण किया था।

शकाजितमें लहरात (रमागत) एक प्रसिद्ध कुन्द है। नदवान भीर चण्डन वे दोनों ही उनसे कुन्दमें उत्पन्न हुए थे। नदवानमें सम्भवतः चण्डनको अयोगनामे हो पढ़ने पश्चिम भारतमें आधिपत्य विस्तार किया था। यह भी भासम्भ्य नहीं कि उन्होंने अथवा उनके जामाता उदयदातने उज्जयिनि पतिके जामनकी उपाधि कर 'महाक्षत्रप' उपाधि प्राप्त पूर्वक पश्चिम-भारतमें सुसुहृन् राज्य विस्तार किया था। उनके प्रभावमें उज्जयिनी पति शकराज विद्यमान और उनके कुन्दमें सातवाहनगण हीनप्रमा हो गये थे। लगभग ईसासे १३३ वर्षमें नदवानका राज्य समाप्त हो चुका था। उम समय उज्जयिनीमें चण्डनके पुत्र उदयदात राजत्य करमें थे।

ये सिफ 'छत्रप' ही सम्भे जाते थे। इसके कुछ ही समय पश्चात् सातवाहन कुन्दतिलक गौतमोपुत्र जनेः कर्णिके ( लगभग ईस से १३३ वर्ष पूर्वमें ) छहरातवंशका ध्वंस कर पुनः दक्षिणात्यमें सातवाहन गौरवकी प्रतिष्ठा की थी। जातकर्णिके प्रभावसे पश्चिम भारतमें शक-क्षत्रपगण अधिकारच्युत हुए और राज्यत्वासे निर्राज्य प्रायः समस्त दक्षिणात्य जातकर्णिके एकच्छया हो गया।

पहरात गंगाघांन शक सेनामैनि दक्षिणरत्यमें प्राप्त कर्णिके पराजित हो कर सम्भवतः मालवाके राजाके निकट आश्रय ग्रहण किया था तथा उन्हींकी सहायतासे जयदामके पुत्र उदयदात पुनः पश्चिम-भारतमें प्रकाशिकार विस्तार करनेमें समर्थ हुए थे। गिरनरसे प्राप्त उदयदात के सुसुहृन् गुलालेष में लिखा है—

"स्वेच्छा-पूर्वक समागत और अनुरक्त प्रजा पुन्ये जो विशेष आश्रय दान देने हैं, पूर्व और पश्चिम आकरावन्ती ( मालवाप्रदेश ), अनुप ( झारख प्रदेश ), नोयूड, क्षानरां ( काठियावाड़ ), सुराद्र ( गोरख भव्र, गोरखकच्छ ( भरोच ), सिन्धु, सीपीर ( पञ्जाबका दक्षिणान् ), कुन्द ( राजपूतानाका कुछ भाग ), सरात ( कोट्टणप्रदेश ), निवार ( भाटनेर प्रांत ) और जनपदोंको जिहोंने अपने बलयोर्तिके प्रभावसे उपार्जित और आधिपत्य विस्तार किया था, समस्त क्षत्रियों द्वारा अन्यायरूपसे 'पौर' उपाधिप्राप्त योधियोंको जिहोंने समूह उदयदात किया था, जिहोंने दक्षिण पथपति जातकर्णिको पुनः पुनः पराजित करके भी उनके साथ सम्बन्ध होनेसे उदयदात न कर महायत्न प्राप्त किया था और राज्यतत्त्व अधिपतिको पुनः राज्य प्रदान किया था, जो स्वयम्बर-समामें अनेक राजकन्याओ द्वारा धारण किये गये थे, उन्हीं महाक्षत्रप उदयदातने नदवत् वर्ण वर्णोंको ब्राह्मणोंके हितार्थ और धर्मको निर्वृत्तिके लिए इस संशुका पुनः निर्माण करवाया है।"

भारतमें प्रकाशिकार सुसुहृन् राज्यत्वासे उत्पन्न हो गये ..... उदयदात के पुत्र उदयदात राजत्य करमें थे।

उक्त प्रमाणसे स्पष्ट है कि, रुद्रदाम राजपुत्र होने पर भी महाक्षत्रप उपाधि उनके पिताको उपलब्ध नहीं थी। इन्होंने अनेकोंको आश्रय दिया था; सम्भव है, उन्होंने लोगों ने मुग्ध हो कर उन्हें अपना अधीश्वर बनाया था, उन्हों-के साहाय्यसे रुद्रदाम महाक्षत्रप हुए थे और पञ्चनदसे फोड़ूण तक उनके अधिकारमें आ गया था। दक्षिणापथ पति शातकर्णिके साथ इनकी कुटुम्बिता थी, इसीलिये इन्होंने उनका राज्य नहीं लिया था। शातकर्णिके साथ उनका कैसा निकट सम्बन्ध था, यह बात शिलालिपिमें स्पष्ट नहीं है। सम्भव है, उन्होंने सातवाहन वंशीय किसी राजकन्याके साथ विवाह किया हो। इधर नासिक में प्राप्त शातकर्णिक वंशीयोंके शिलालेखसे ज्ञात होता है कि—“गोतमीपुत्र शातकर्णिक आसीक, अश्रक, मुस्क, सुराद्र, कुकुर, अपरान्त, अनुप, चिदर्भ, आकर, अचन्ती, वन्ध्यावत्, पारिपाल, सहह, कृष्णगिरि, मच, श्रीस्तन, मलय, महेंद्र, श्रेष्ठगिरि और चक्रोर पर्वतके राजा कहलाते थे।” १।

उक्त जनपदोंके स्थानकी आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि उपर्युक्त जनपदोंमेंसे अधिकांश नहपान या उपवादातके ही अधिकारमें थे और गोतमीपुत्र शातकर्णिके शकाधिपको समरमें पराजित करके उनका उद्धार किया था। परन्तु यह विस्तीर्ण राज्य उनके वंशधरोंके अधिकारमें न रह सका। पहले जो रुद्र-

दामका शिलालेख उद्धृत किया गया है, उसके पढ़नेसे स्पष्ट ही मालूम पड़ता है कि, महाक्षत्रप रुद्रदामने दक्षिणापथ-स्थित जनपदोंके सिवा क्षत्रपाधिकार-भुक्त सुराद्र आदि समस्त जनपदोंको अपने अधिकारमें मिला था और उनकी अधीनतामें सुविशाख नामक एक पद्वह सुराद्रमें क्षत्रप हुए थे। परन्तु रुद्रदामने सहह, कृष्णगिरि आदि दक्षिणापथ-स्थित जनपदों पर कब्जा नहीं किया था; वे स्थान उनके कुटुम्बो शातकर्णिके ही राज्यमें शामिल थे। शातकर्णिके प्रिय पुत्र वाशिष्ठी-पुत्र शातकर्णिक (चतुरपन)ने महाक्षत्रपकी कन्याका पाणिग्रहण किया था १। डा० भाण्डारकरका मत है, कि वाशिष्ठीपुत्र पुडुमायीने १३०से १५४ ई० तक उनके, गोमतीपुत्र यशोध्र शातकर्णिकने १५४से १७२ ई० तक और उनके पुत्र वाशिष्ठीपुत्र शातकर्णिक (चतुरपन)ने १७२ से १९० ई० तक राज्य किया था १। इधर महो-क्षत्रप रुद्रदामके शिलालेख और प्राचीन मुद्राओंके देखनेसे यह निश्चत होता है कि उन्होंने लगभग १३०से १७० ई० तक राज्यशासन किया था। ऐसी दशामें रुद्रदामके शिलालेखमें जिन शातकर्णिका उल्लेख हैं, वे यशोध्र शातकर्णिक ही प्रतीत होते हैं। ज्यादातर यही सम्भव है कि उन्होंने महाक्षत्रप रुद्रदामसे युद्धमें पराजित हो कर रुद्रदामकी दुहिता मट्टरीके साथ अपने पुत्र वाशिष्ठी-पुत्र चतुरपनका विवाह कराया हो। मालूम होता है, इसी सम्बन्धके कारण ही रुद्रदामने दक्षिणापथ पर हस्तक्षेप नहीं किया था। वाशिष्ठीपुत्र चतुरपनके औरस और शक-राजकन्याके गर्भसे मट्टरीपुत्र शकसेनका जन्म हुआ था। चतुरपनके बाद ये महाक्षत्रप-दीर्घवंश शकसेन ही दक्षिणापथके अधीश्वर (१९०से १९७ तक) हुए थे।

शकाधिप रुद्रदामके पितामहने जिस शकाब्दको प्रचार किया था, आगे चल कर वही संवत् उनके और वंशीयोंकी चेष्टासे समस्त भारतमें प्रचलित हो गया।

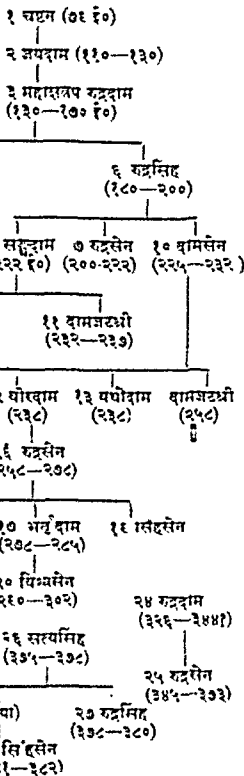
तीजे रुद्रदाम-वंशीय महाक्षत्रप राजाओंकी वंशावली और राज्यकाल उद्धृत करते हैं।

पराकरावन्त्यनूपनी वृदानत सुराद्र-श्वभ्रमकच्छ्रवीरीर-कुक्रोपा-न्तनिपादानां समप्राया तत्प्रभावाय सर्वत्रयाविन्वृत्तवीरसदृज्जातो-त्संकावियेयाना योपेयानां प्रसन्नोत्सादकेन दक्षिणापथपतेस्सात-कर्णिकिरिप गोर्ध्याजमवजीत्यावजीत्य सम्बन्धायावदूतरतया अनु-त्सादनात् प्रातयशसा माद... खविजयेन भ्रष्टराजप्रतिष्ठापकेन स्वय-मंथितम्-महाक्षत्रप-नाम्बानरेन्द्रकन्या-स्वयंवराकेमाल्याप्राप्तदाम्ना महाक्षत्रपेण, रुद्रदाम्ना वर्षवह्लाय गोब्रादम्प्राहितार्थं धर्मकीर्त्ति-वृद्धयर्थं.....सेतुं विधाय सर्वानर-सुदर्शनतरं कारितं १”

Indian Antiquary, vii p, 262,

१। “अधिक-अतसक, मृदमुरडुकुकुरापरत अनुपविदम-आक-रावतिराजद विन्ध्यावतगारियातसहक्याहगिरिमचविरिटन मलयम-हिंद-सेटगिरिचक्रोरपवतपति १” (पुडुमयीका नासिकाका शिलालेख)

† Bhandarkar's Dekkan, 2nd, ed p, 29,



उक्त धारासूची और उपलब्ध मुद्राओंकी साहाय्यतासे ज्ञात होता है कि पश्चिम भारतमें जयचंडीय २८ राजाओं में १म नकाहसे ३१० नकाह तक राजा किया है। १४वें और १५वें शतकके मध्यमें समयमें (लगभग २५५ ई०में) ईश्वरदत्त नामक एक व्यक्तिने एक साम्राज्य गढ़ करनेकी चेष्टा की थी, परन्तु उसकी चेष्टा सफल नहीं हुई। २७वें शतक चंद्रसिंहकी अपनों मुद्राओं केवल महाराज निम्न कर अपना परिचय दिया है।

आर्यावर्तमें गुज और दक्षिणावर्तमें वेदि और वायुवर्तके अम्बुदयसे शतपराज्य गढ़ हुआ था तथा वायव्यवर्तके जा कर राज्यसम्पदा होने शतपराज्यवर्तमें विद्वत्समाजमें मिल गये थे और साथ ही विष्णवत नरकपालिका नाम भी विलुप्त हो गया था।

राजस्थान-इतिहासके लेखक टाड साहबके अनुसंधानों से यह कहा जा सकता है कि—एक राज्य निर्माण हो पश्चिमभारतसे भगाये जाने पर राजस्थानके एक देवका आश्रय लिया था और सूर्यवंशीय राजा बन कर अपना परिचय दिया था।

गान्धारमें महाराज्य—जिम समय मधुरासे कुलवंशीय वासुदेव और पश्चिम-भारतमें महाशयप चंद्रसिंह नरकराज्यका शासन करते थे, उस समय विहार नामक महाकुलवंशीय एक दलशक्तिने परोपनिषद्गिरिकी पार कर कुलवंशके हाथसे गान्धार जप किया था। धोड़े ही समयके भीतर उन्होंने तमाम काबुल उपत्यका और पञ्जाबका कुछ अंश जीत लिया। १म किदारवंशने ४२८ ई० तक राजस्य किया था। ४२८ ई०में फारसके बादशाह १म बरहरानने किदारवंशियोंको सम्पूर्णरूपसे पराजित किया था और इस तरह किदारवंशीय उनके अधीन हुए थे। उसके बाद ४५६ ई०में हुणोंने प्रयत्न हो कर गान्धारराज्य अधिकार किया।

हुणोंकी याम-भूमि हड़के रिया थी। पहले ये भारतके किनारे पर रहते थे। ये भी बादशाहके नामसे उत्पन्न थे। भारतमें जकाधिकार विस्तृत होने पर हमेंसे भी कोई कोई भारतमें आये थे, इगमें सन्देश मर्गे। परन्तु पराक्रमत कुल और महाराजवंशके अधिकारकालमें उनमेंसे किसीने भी मिर न उठया था। १८८ ई०में दक्षिण पश्चिमभारतसे जकाधिकार विलुप्त हुआ था।

उस समय मध्य पश्चिमभारतकी हुण लोग निरिच्छ न थे। अपने सीमावर्त-पक्षकी उन्मुक्त करनेके लिए वे फारसके शासनवंशीय राजाओंके साथ युग युग युग कर रहे थे। यजुदेवके समय लगभग ४३० ई०में शासन-विताकी पराक्रम कर हुणोंने भारतमें सीमावर्त प्रदेश पर अधिकार कर लिया। उनी समय के शासन-विताकी भी चेष्टा कर रहे थे। हुणराज्य ४५५

गुप्तके शिलालेखसे मालूम होता है कि, उन्होंने कई बार युद्धमें हूणोंको पराजित ( ४५२से ४८० ई० ) किया था ।

प्रतनतस्वचिद् कनिगहम और रपसन आदिका मत है, कि हूणोंके दलपतिने किदारकुपनोंसे गान्धारराज्य जीत कर ४६५से ४७० ई०के भीतर शाकलमें राजधानी स्थापित की थी । चीन इतिहासमें वे 'हण-लिहु' और प्राचीन मुद्राओंमेंसे 'राजा लखन उद्यादित्य' नामसे प्रसिद्ध हैं ।

लखनके पुत्र महावीर तोरमनने काश्मीरसे राज-पूताना तक हूणाधिकार विस्तृत किया था ( ४६०-५१५ ई० ) । उनके पुत्र सुप्रसिद्ध मिहिरकुल थे । इन मिहिरकुलके प्रतापसे काश्मीरसे विन्ध्याद्रि तक समग्र-आर्यावर्त्त प्रकम्पित था और गुप्तसाम्राज्य अधःपतित हुआ था । अन्तमें यशोवर्मा, मालवाके राजा विष्णुवर्द्धन और मगधाधिपति नरसिंह गुप्त वालादित्य-की अधिनायकतामें समस्त हिन्दू राजाओंने एकत्र हो कर ५४४ ई०में मिहिरकुलको निपातित किया था और साथ ही 'हणजातिका प्रयत्न प्रताप अस्तमित हुआ था । थोड़े ही समय बाद गान्धारके किदारकुपनवंशीय शाहिराजने हूणोंको सम्पूर्णतः पराजित कर अपने नष्टराज्यका पुनः उद्धार किया था । इस समयसे लगा कर ईस्वी १०वीं शताब्दी तक गान्धारराज्य कुपनवंशके ही अधि-कारमें रहा । सुप्रसिद्ध मुसलमान ऐतिहासिक और ज्योतिर्विद् अलबेदनीने गान्धारके किदारवंशीय राजाओं-को कानिह ( कनिष्क )-राजाके वंशधर लिखा है । और फिर उन्होने राजतरङ्गिणीकार कहलनकी तरह इस किदारवंशकी तुरुष्क वंशोद्भव और काबुलके हिन्दू-राजा बतलाया है । इधर ६५६ ई०में प्रसिद्ध मुसलमान भौगोलिक-मसूदी-कान्धारकी ( गान्धारकी ) राजपूतों-के राज्यान्तर्गत लिखा रहे हैं ।

हम पहले ही लिख चुके हैं कि कनिष्क, चासुदेव आदि कोई कोई शाकाधिप 'देवपुत्र' उपाधिका व्यवहार करते थे । वही 'देवपुत्र' कालान्तरमें जा कर 'राजपुत्र' हो गया है और उसीसे राजपूत शब्दकी उत्पत्ति है । पहले कई जगह कहा गया है कि शक राजाओंकी

खरोष्ठी-लिपिमें 'प' कार छोड़ दिया गया है । बहुत जगह संस्कृत 'राजपुत्र'के स्थानमें खरोष्ठी लिपिमें 'रजपूत' शब्दका प्रयोग हुआ है । अब भी राजपूतानाके रहनेवाले क्षत्रियगण अपनेको 'रजपूत' कहा करते हैं ।

राजपूतानाके प्रसिद्ध ऐतिहासिक टाड साहबने भी लिखा है कि—राजपूतानामें आनेसे पहले राजपूत लोग जाबुलिस्तान और गान्धारमें राज किया था\* । ये शक-वंश सम्भूत होने पर भी सभी हिन्दू क्षत्रिय कहलाते थे । टाड साहबने ईसाकी ५वीं शताब्दीका एक शिलालेख प्रकट कर दिया है कि, शक-राजपूतोंने यादवोंकी कन्या-का पाणिग्रहण किया था और वे क्षत्रिय कहाते थे । अनेक जैनग्रन्थोंमें भी हूणोंकी क्षत्रिय माना गया है । छत्तीस क्षत्रियकुलोंमें हणजातिने भी स्थान पाया है ।

गान्धारके शेष किदार-राजके मंत्री कल्ट ( कलूर ) नामक एक ब्राह्मण थे । अजबेदनीने उनका लगनुरमान (अलकितोरमान ) नामसे वर्णन किया है । इस ब्राह्मण मंत्रीने अर्धबलसे किदारराजके हाथसे गान्धार राज्य छीन लिया था । ये "शाहो" कहलाते थे । गान्धारमें सैकड़ों वर्ष राज्य करनेके बाद, १०२६ ई०में इस राजवंशका राज्यावसान हुआ और मुसलमानोंका अधिकार बढ़ने लगा । इस राजवंशके साथ काश्मीरके क्षत्रिय राजाओं-का अनेक प्रकारका सम्बंध था । राजतरङ्गिणीसे मालूम होता है कि, काश्मीरकी राजमहिषियोंमेंसे बहुतसी गान्धार-राजवंशकी कन्याएँ थीं । गान्धार-राजवंश जंजूह ( जजह ) राजपूत भी समझे जाते थे । टाड साहबने लिखा है कि, गान्धारकी शकवंशीय राजपूत शाखाने राज-पूतानामें आधिपत्य विस्तार किया था ।

शक-संख्य—शाकाधिकारका जो कुछ संक्षिप्त इतिहास कहा गया है, उससे सभी समझ सकते हैं कि शाकद्रोप और वहाँके शकोंके साथ भारत वर्षका विशेष सम्बंध स्थापित हुआ था । पहले वे सभी सूर्योपासक थे । मगा-चार्य जरथुख द्वारा अग्नि पूजाका प्रचार हुआ था और

\* गान्धारसे आनिवृत्त शक-मुद्राओंमें 'जवुत्र' उपाधि देखी जाती है । इसीसे शकोंकी वावभूमि जाबुलिस्तान नामसे प्रसिद्ध हुई ।



प्राकृत्याधिपतियों द्वारा उनके मतानुसार सौर गण-  
गण अग्नि-पूजक हुए थे। भारतमें जो गण मुद्रा उप-  
लब्ध हुई हैं, उनमें सूर्योपासना और अग्निदेवी दोनोंके  
होचित्र हैं। भारतमें भी वे प्रथमतः सौर और अग्नि  
पूजक समझे गये थे। जब भी जो राजपूत अपनेको  
सूर्यपंजीय और अग्निपुत्रोद्भूय बतलाने हैं उनका ऐसा  
कहना सम्भवतः उमो पूर्वतन गणोंकी धर्मपरिचायक  
क्षीण स्मृति मात्र है।

भारतमें जब पहले पहल प्राकाधिपत्य विकसित हुआ  
था, उस समय यहाँ बौद्ध और जैन ये दोनों ही धर्म प्रचल  
थे। परन्तु फिर भी ब्राह्मणोंमें त्रियोपासना पिलुप्त  
न हुई थी। प्राकाधिपतिगण पहले 'भैव' हुए थे। पीछे  
कनिष्कके समयमें इस यंत्रमें बौद्ध और जैनधर्मानुराग  
प्रचल हुआ। अन्तमें ब्राह्मणोंके प्रभावसे अधिकांश  
राजोंने हिन्दूधर्म ग्रहण कर ब्राह्मणोंका प्राधान्य स्वीकार  
किया था। भारतीय क्षत्रियोंके प्रभावमें बौद्ध और  
जैनधर्मका अस्त्युदय हुआ था। संभवतः उस क्षत्रिय-  
प्रभावको विलुप्त करनेके लिए ही नोतिपुत्रगण ब्राह्मणोंने  
गण राजाओंका धारण किया था। इस समय  
गण राजाओंने भी अपनेको मोब्राह्मण भक्त कह कर  
स्वयं प्राणवीर्य प्रगट किया था। बौद्धधर्म जब तक  
विरोध प्रयत्न था, तब तक ब्राह्मणभक्त गण राजगण भी  
सामान्यतः क्षत्र-निष्ठोंको जाध्य देने थे। अन्तमें  
बौद्धानुराग राजोंके हृदयमें विकसित हो उठन हो गई  
थी। ये निरागण मोब्राह्मणभक्त हो गये थे। ब्राह्मणोंने भी  
उन्हीं विमुक्त क्षत्रिय मान लिया था। इन राजाओंके  
प्रभावसे ब्राह्मणधर्मका पुनरुदय हुआ और पूर्वतन  
क्षत्रियप्राधारण मरु होनेके साथ साथ बौद्ध और जैन  
धर्म भी हीन होने लगा।

गण राजा जब क्षत्रिय समझे जाने लगे, तब उनके  
भारतीयत्व और विमुक्त-क्षत्रियत्व प्रतिपादनार्थ ब्राह्मण  
और भद्रकवि-समुदाय यतिगण द्वारा अग्निपुत्रोत्पत्तिकी  
कथाका प्रचार करने लगे और यही सोचो जा कर राजपूत  
समाजमें प्रचल विचारण समझा जाने लगा। अब कोई  
भी राजपूत अपनेको अक्षयंजीय नहीं समझने। कुछ भी  
हो, उसे समझने शाना ब्राह्मणों द्वारा यह सिद्ध कर दिया  
है कि, जब भी राजपूतोंके ध्यान स्वप्नकार, ऐतिहासिक  
और इतराधिकार पूर्वतन गण

गण और आग्नों (सातबाहनों)के राजपूतबाहनों  
काजीपुरमें पत्न्योका अधिपत्य था। पत्न्य देवों। उस  
समय गणगण सौर और ब्राह्मण धर्मावलम्बी होने ल-  
भो बौद्धधर्मका अनादर नहीं करते थे, उनके पूर्वतन  
भारतगण बौद्ध थे और उनके यद्यपि नास्तिक धर्मि  
स्थानोंमें यहूतर बौद्धकीर्तियां स्थापित हुई थीं। अग्नों-  
का प्रभाव सदा होने पर, गण, पत्न्य और काजीके  
प्रभावसे पुनः ब्राह्मण प्राधान्यका स्वभाव हुआ। अग्नों  
के जाम्बवतगणमें ईश्वरदेव नामक वैकुण्ठपंजीय या  
महाशक्तिप कोट्टगणमें प्रचल हो उठे। उनके प्रभावसे  
प्राकाधिपार विनशित हो गया था। यह वैकुण्ठपंजीय  
बादमें कलचुरी या वेदि नामसे प्रसिद्ध हुआ है। किसी  
किसीका अनुमान है कि, इन्हीं महाशक्तिप ईश्वरके  
राज्यात्मसे ही वैकुण्ठ या वेदि संघन प्राप्त हुआ है।  
प्राकाधिपति घोस्वामिके पुत्र यद्वर्तमान पुनः गणोंके मरु-  
गौरवका उच्चार किया था।

गुप्त-प्रभाव।—ईश्वी धर्म जलाशयोंमें सन्तुप्त-विद्यमान-  
द्विगुण गणके प्रभावका दृढन कर भाषावर्तारके सम्राट हुए  
थे। उनके पुत्र समुद्रगुप्तके समयमें, पश्चिम क्षत्रिय  
भारतसे प्राकाधिपत्य विलुप्त हुआ। समुद्रगुप्तने अर्द्धतन्त्र  
यत्न कर भारतमें वैदिक धर्म स्थापित किया।  
गुप्त राजाओंमें अधिकांश वैष्णव और बौद्ध कौटिल्य  
थे। उनके राज्यमें ब्राह्मणोंको पूर्णसम्मान प्राप्त हुआ  
था। ईश्वी धर्म जलाशयोंके शेषमें गौतमपरिब्राह्मण  
काश्चित् भारतमें आये थे और वे यहाँ बौद्ध एवं हिन्दू-  
धर्मका प्रभाव समान देन गये थे। ४२२ ईमें बौद्ध-  
धर्ममें उच्चरत्न नामक किसी एक राजवंशका अस्त्यु-  
दय हुआ था। गुप्ताधिपतारके ईश्वरगणों, ४०६ ईमें,  
समुद्रगुप्तमें गुप्तसिद्ध उद्योगिविद्व भाषासंग्रहने अमरप्रदान  
किया। ४१५ ईमें वैशाखनि अर्द्धाधिके अस्त्युदयके  
सौराष्ट्रमें पत्न्योत्पत्तियं प्रतिष्ठित हुआ। उसा समय  
में गुप्तसम्राट् स्वप्नगुप्तकी मृत्यु होने पर, सीका देव  
जायकावति हुलासत मोरमान मध्याह्नान पत्न्योत्पत्तियं  
कर बैठे। परन्तु कुछ ही समय कर वे गुप्तसम्राट् अस्त्यु-  
दय हो गये। अस्त्युदयके पश्चात् पत्न्योत्पत्तियं ही  
पत्न्योत्पत्तियं प्रचलन होने पर भी उनके पुत्र सिद्ध

कुलने पुनः अपने पूर्वगौरवकी रक्षा की। उन्हेंने गुप्त प्रभावका ध्वंस कर पश्चिम और मध्यभारत अधिकार कर लिया। ५३० ई०में कौरुकके रणक्षेत्रमें आर्यावर्तके राजाओंकी सम्मिलित शक्तिसे मिहिरकुल पराजित हुए। ५३३ ई०में मालवपति यशोवर्मा अपने भुज-वीर्य वलसे नाना स्थानोंको जीतकर भारतके सम्राट् हुए थे। उनकी सभामें सुप्रसिद्ध ज्योतिर्विद्द नराहमिहिर रहते थे। उस समय सौराष्ट्रमें वलभी और वातापिपुर वा बादामीमें चालुक्यगण प्रवल हो गये थे। इधर उत्तर भारतमें मौखरिवंशने गुप्तोंके हाथसे पश्चिम मगध ले कर कान्यकुब्जमें अपनी राजधानी स्थापित की थी। वलभी, चालुक्य और मौखर राजवंश देखो।

स्थापनीयवका वर्द्धनवंश।—इस समय धानेश्वरमें वर्द्धनवंशने अपना मस्तक ऊंचा कर रखा था। वर्द्धनवंशीय चतुर्थ राजा प्रभाकरवर्द्धनने उत्तरमें हूण और दक्षिणमें गुर्जरोंको पराजित कर महाराजोधिाराजको उपाधि प्रहण की थी। कान्यकुब्जके राजा प्रह्वर्मा उनके जामाता थे। प्रभाकरके ज्येष्ठ पुत्र राजवर्द्धन हूणोंके साथ युद्धार्थ उत्तरको ओर भेजे गये थे। इसी समय प्रभाकरकी मृत्यु हो गई। राज्यवर्द्धनने सम्पूर्ण रूपसे हूणोंको परास्त किया और राजधानीमें लौट कर वे पितृसिंहासन पर आरुढ़ हुए और उस समय सुयोग देव कर मालवपतिने कान्यकुब्ज पर चढ़ाई कर दी और प्रह्वर्माको मार कर राज्य ले लिया। परंतु कुछ ही समय बाद राज्यवर्द्धनने उन्हें पराजित कर कान्यकुब्जका पुनरुद्धार किया था। उस युद्धयात्राके समय वे कर्णसुवर्णराज शशाङ्कका दमन करने आये थे। शशाङ्क अत्यन्त वीर-विद्वेषी थे। बोधिट्टम छेदन करनेके कारण ही राजवर्द्धनको उन्हें दमन करना पड़ा था। कपटाचारी शशाङ्क राजाने उनकी वशता स्वीकार कर ली और आमन्त्रणपूर्वक उन्हें अपने शिचिरमें बुला कर विश्वासघातकताके साथ उनकी हत्या कर डाली। राज्यवर्द्धनके प्रियतम सहोदर हर्षवर्द्धनने शशाङ्कका प्रतिजोध लेनेके लिए ससैन्य गौड़ था कर शशाङ्कका राज्य ध्वंस कर दिया। कुछ ही समयमें हर्षवर्द्धन आर्यावर्तके सम्राट् हो गये थे। कान्यकुब्जमें उनकी राजधानी थी।

आर्यावर्त-जयमें समाधिक मत्त हो कर उन्होंने दक्षिणात्य विजयके लिए आर्याजन किया था। वलभी, पतिके उनके समझ पराजय स्वीकार करने पर भी, चालुक्यराज सत्याश्रय पुलिकेशि उनकी गति रोध करनेमें समर्थ हुए थे। हर्षवर्द्धनने पुलिकेशिसे पराजित हो कर दक्षिणात्यको जयाकांक्षा छोड़ दी। उन्हींके राज्यकालमें सुप्रसिद्ध चीन परिव्राजक यूपनचुयंग भारतमें आये थे। पुलिकेशिने भी उस समय 'महाराजाधिराज परम भट्टारक' उपाधि प्रहण की थी। उनकी अपूर्व कीर्ति शिल्प नैपुण्यको पराकाष्ठा इटोराके गुहामन्दिरमें कोदित और चित्रित है। प्रसिद्ध कवि चाणक्य, यूर, दण्डो, दिवाकर और मानतुङ्गने जिस प्रकार हर्षदेवकी सभाको उज्ज्वल किया था, उसी प्रकार पुलिकेशिको सभामें भी खिकोत्ति नामक एक प्रसिद्ध जैनकवि रहते थे, जो अपनेको कालिदास और भारविके समकक्ष समझते थे। ६२८ ई०में चापवंशीय राजा व्याघ्रसुलको सभामें सुविख्यात ज्योतिर्विद्द ब्रह्मगुप्त रहते थे। इसके २ वर्ष बाद सुवि-सूत चालुक्य-राज्य दो भागोंमें विभक्त हो गया। पूर्व भागमें विष्णुवर्द्धनने स्वाधोन गृपति हो कर वेङ्गमें राजधानी स्थापित की। चालुक्य देखो। इसी समय सिंधु प्रदेशके चंच नामक एक ब्राह्मणने अपने प्रमुके हाथसे वल-पूर्वकराज्याधिकार छीन लिया था। लगभग ६४८ ई०में हर्षदेवकी मृत्यु हुई। उसके बाद अर्जुन नामक उनके एक सेनापतिने कान्यकुब्ज अधिकार किया। परंतु चीनसे आई हुई बहुसंख्यक वीरसेनासे वे पराजित हो गये। इसके थोड़े समय बाद यशोवर्मदेवने कान्यकुब्ज पर कब्जा कर लिया। सुप्रसिद्ध महाकवि भर्भृति उनकी सभाको उज्ज्वल किया करते थे।

इसी समयमें मगधमें अपना अपना प्राधान्य स्थापित करनेके लिए गुप्त और मौखरिवंशमें परस्पर महायुद्ध हुआ, जिसमें दोनों ही पक्ष हान्यल हो गये। उसी समय काश्मीरके राजा ललितादित्य मुकापोड दिग्विजयके लिए निकले थे और समस्त आर्यावर्तको उन्होंने विदलित किया था। कान्यकुब्ज, गौड़, गङ्गा आदि अनेक देशोंको उनकी अधीनता स्वीकार करनेके लिए

पाप्य होना पड़ा था। इसके एक वर्ष बाद मगधमें गोबालका और गौड़में जयन्तका अभ्युदय हुआ था।

हिन्दू-साम्राज्य।—गौड़राजपति जयन्त अपने जामाता काशमोरपति जयादित्यको महाप्रत्यासे लगभग ७५० ई०में 'आदिशूर' उपाधि धारण कर पञ्चमीश्वरके अधीनस्थ हुए थे, और कान्यकुब्जराजपति यशोधर्मको सम्भोगे उन्हींने पांच प्रालय और पांच कापस्थोंको बुला कर गौड़-मण्डलमें हिन्दू-धर्मका विस्तार किया था। लगभग ७६० ई०में धर्म-पालने आदिशूरके पुत्र भृशूरके हाथसे गौड़-युद्ध का राज्यका अधिकार ले लिया। महाराज भृशूर राष्ट्रदेजमें बस कर राज्य करने रहे। उत्तरांशमें गौड़ आदि स्थानोंमें पालवंश तथा दक्षिणांश राष्ट्रदेजमें शूरवंशने बहुत दिनों तक राज्य किया था। मालवंशको कौचि बङ्गालके नाना स्थानोंमें अह भी देगनेमें आधा करती है। ये बौद्ध होने पर भी हिन्दूधर्मका अनादर नहीं करते थे। उनको सामयनौतिक प्रचारकालमें बङ्गालमें बौद्ध और हिन्दूधर्म मिश्रित-नामिक मत प्रचलित हुआ था। उस ताम्बिकधर्मका प्रभाव अब बङ्गालमें विलुप्त नहीं हुआ है। पाल राजाओंके समयमें उनके द्वारा परिवर्तित मालव्या-विहार ज्ञानचर्चाके लिए जग-विश्रय हो गया था। चीन, तातार, भातार, इरान आदि नाना दूरदेशोंमें भेकड़ी छात यहाँ विचारजनके लिए आते थे। इस हजार विचारों यहाँ दिना स्वयंके विचार-ध्यान करते थे। इसी ७वीं शताब्दीमें चीन परिक्रमक जो मालव्याके विभविद्यालयकी समृद्धि देन गये थे। पौडे मुसलमानोंके प्रभावसे भारतका ज्ञान-विकसन मालव्या-विहार विश्रय हो गया। विहारके निकट बहुतायत मात्राका स्थानमें उस विभविद्यालयके सामान्य स्मृति-विग्र भर भी मौजूद है।

शूरवंशका प्रभाव मगध पर मेनवंश परहे पटल राष्ट्र-देजमें हो प्रबल हुए। पौडे छोटे छोटे पालवंशकी पचा-सिल कर उन्हींने विधिया, गौड़ और सामन्त बङ्गाल पर अधिकार कर लिया। मेनवंशीय राजाओंमें महाराज बहादुरसे देवका नाम बङ्गालमें प्रसिद्ध है। ये महा-ताम्रिक थे। सामन्त और कापस्थोंमें कुम्भविषय प्रचलन कर ये निरन्तरनीच हुए हैं। इनके पुत्र सत्यन-

सिकके समयसे ही बङ्गाल मुसलमानोंके हाथमें आने लगा था। मेनवंशीय परवर्ती राजाओंने पूर्वबङ्गाल और मगधोपमें बहुत काल तक राज्य किया था; फिर भी उनका पूर्व प्रभाव नष्ट हो चुका था।

'शूर' धर्म 'मेनसवंश' और चन्द्रवंश देखें।

मगध और गौड़में पालवंशके प्रभावके समय कान्य-कुब्जमें यशोधर्म-वंशीय चकायुष इन्द्रायुष आदि महा-राज्य करते रहे; उनके बाद भोज और राठौरोंका आधि-पत्य विस्तृत हुआ। भोज, राठौर और राठौर राजवंश देखें। ईसाकी ८-१०वीं शताब्दीमें, कालकालमें चन्द्रावध पा चन्द्रवंश और नर्मदाके किनारे त्रिपुरी वा नैवार नामक स्थानमें हिहव या चेदियंश प्रतिष्ठित हुआ। प्रसिद्ध चातुर्वर्ण्य पौर-पृथ्वीराजने चन्द्रेलराज परमद्विंद्यको पराजित कर कालकालकाल दित्तो साम्राज्यमें मिला लेने पर भी हिहव-वंशीय चेदिराजाओंने किन्हींकी भी दरयता स्वीकार नहीं की। मुसलमानोंके अधिकारमें भी यह वंश भागो स्वाधीनताभी रखामें समाप्त था। १७३० ई०में मद्रास-प्रान्तका स्वयंसे भोजों भीमलेने हिहव राजधानी स्वयंसे अपने राज्यमें मिला लिया। अब भी स्वयंसे देहववंश मध्य-प्रदेशमें विद्यमान है।

विष्णुवंशमें हिन्दूराज। - पहले लिय चुके हैं कि, ईसाकी ७वीं शताब्दीमें विष्णुवंशमें बालनाशिवप विस्तृत हुआ, परन्तु प्राकल्पण उस अधिक दिन तक भोग न गये, ७११ ई०में महामा इ-बन कासिमने सिंधु पहुँच कर ब्राह्मणराज दाहिरकी पराजित और निहत्त किया। उस समय काशिवके सत्यचारमें विष्णु-प्रदेन विभोग उत्पन्न हुए हो गया था। ७५० ई०में मुसल-मानोंकी आगा कर सिंधो राजधानी विष्णुवंशमें आगवा आधिराज्य जमावा। मुहम्मदके सत्युपदेशमें अनेक बार उनके राज्य पर आक्रमण किया था। ईसाकी १५वीं शताब्दीके अन्तमें सत्युपदेशके सुपरने सिंधुवंशका उत्पन्न होन शिवा और १५ वर्ष तक ये उत्पन्न शताब्दीय करती रहे। १५३६ ई०में इनकी मृत्यु होने पर 'सत्य' मीरान् १५३६ ई०में सिंधु पर अधिकार १५३६ ई०में सिंधुको जाम-उमके १५३६ ई०में

क्रिया और उसके साथ ही साथ सिंधुप्रदेशमें मुसलमान-का प्रभाव फैल गया। सिंधुप्रदेश देखा।

दिल्लोका हिन्दूराज्य।—किसी समय इन्द्रप्रस्थमें चन्द्रवंशीय क्षत्रिय नृपतिगण प्रबल प्रतापसे राज्य कर गये हैं। क्षेमकसे इस वंशका अयत्न हुआ है। उसके बाद प्राचीन इन्द्रप्रस्थकी समृद्धि शकोंके हाथसे विध्वस्त हुई थी। बहुत कालके उपरान्त, लगभग ६३६ ई०में अनङ्गपालके प्रयत्नसे यहाँ तोमरवंशीयोंने राज्य विस्तार किया। इस वंशके १६ राजाओंके राजत्व करनेके बाद ११५१ ई०में अजमेरके राजा चाहमानवंशीय विशालदेवने दिल्ली पर अधिकार किया। इसी सूत्रसे तोमरवंशीय शेष राजा अनङ्गपालने अपनी कन्याका विवाह विशालदेवके पुत्र सोमेश्वरके साथ किया था और प्रतिज्ञा की थी कि सोमेश्वरका पुत्र दिल्ली-सिंहासन पर बैठेगा। तदनुसार सोमेश्वरके पुत्र पृथ्वीराज दिल्ली और अजमेरके राजा हुए। यह चाहमानवंशीय वंश नृपति किसी समय समग्र आर्यावर्त पर अधिकार-विस्तारमें समर्थ होने पर भी, देशवैरी राठोरकुल-कलङ्क जयचन्दके पङ्क-यन्त्रसे ११६१ ई०में मुसलमानोंके हाथ परास्त और निहत्त हुए; और उसके साथ ही आर्यावर्तसे हिन्दु-साम्राज्यका भा अन्त हो गया।

परमार, चाहमान, पृथ्वीराज और राजस्थान देखा।

दाक्षिणात्यमें हिन्दूप्रभाव।—इसका १२वीं शताब्दीमें आर्यावर्त मुसलमानोंके हस्तगत होने पर भी दाक्षिणात्यके हिन्दू राजागण तब भी स्थापित थे। अति प्राचीन समयसे ही अरब, मिश्र, ग्रीस और सिरियाके साथ दाक्षिणात्यके वाणिज्यका सम्बन्ध था। दाक्षिणात्य देखा। पहले लिख चुके हैं कि, इसका १२ शताब्दीसे ४थं शताब्दी तक पश्चिम भारतमें शकाधिपत्य विस्तृत था; और उस समय सातवाहन, पल्लव, पाण्ड्य, कादम्ब आदि-राजगण नाना स्थानोंमें राज्य करते थे।

बौद्ध सान्वाहनका प्रभाव विलुप्त होने पर हिन्दू कादम्बोंका प्रभाव फैला। उस समय महामति शङ्कराचार्य केरलमें आधिभूत हुए। उन्होंने बौद्धदर्शन और वेदांतके सारस्वमको ले कर मायावाद (अद्वैतावाङ्क)का प्रचार किया, जिससे दाक्षिणात्यमें बौद्ध, जैन और विभिन्न तान्त्रिक प्रभाव निवारित हुआ। शङ्कराचार्य देखा।

सातवाहन, पल्लव, पाण्ड्य, आदि राजाओंका प्रभाव मन्द होने पर चालुक्य, राष्ट्रकूट, गङ्गा और चोल आदि क्षत्रिय राजाओंका प्रभाव विस्तृत हुआ। चालुक्योंके विषयमें पहले ही लिखा जा चुका है। मिताक्षराके रचयिता विशानेश्वर चालुक्य-राजसभाके प्रधान पण्डित थे। मान्यखेटमें राष्ट्रकूटोंने, चेरमें (वर्तमान सेलम नामक स्थानमें), गङ्गाके और काञ्चीमें चोल राजाओंने राजधानी स्थापित की थी। १२वीं सदी तक ये स्थापित राजा रहे और परस्परमें युद्ध विग्रह भी किया करते थे। चालुक्य, राष्ट्रकूट, गङ्गा, मौर्य, चोल, काञ्ची-पुर शब्द देखा।

इसका ११वीं शताब्दीमें सूर्यवंशीय राजेंद्र चोलने सम्पूर्ण दाक्षिणात्यका अपने अधिकारमें करके राठ, वङ्गाल, बिहार आदि नाना प्रदेशोंके राजाओंसे कर लिया था। गीढ़ देखा।

११५७ ई०में चेदि-कुलोद्भव विजयलदेवने चालुक्य-राज ३य तैलपकी परास्त कर चालुक्य राजधानी-कल्याण पर कब्जा किया था। उनके प्रधान मंत्री वासव लिङ्गायत सम्प्रदायके प्रतिष्ठाता थे। लिङ्गायत देखा। विजयलदेवके गंशधरोंने केवल २० वर्ष राज्य किया। उसके बाद कर्णाटके होयशल बहालवंशीय २य बहालने उनका राज्य अधिकार कर लिया। कुछ ही समय बाद चालुक्यवंशीय ४थं सोमेश्वरने अपने महासामन्त काकतेय राजाओंको सहायतासे पितृ-राज्य उद्धार करने की चेष्टा की थी, परंतु महावीर २य बहालने उनको सम्पूर्ण चेष्टाओंको व्यर्थ कर दिया था।

दाक्षिणात्यमें यादवराज्य।—बहालगंग यादववंशीय थे, और सभी श्रीरङ्गणके गंशधर कहलाते थे। इनका आदि निवास मथुरा था। इस गंशके इन्द्रप्रहार नामके एक व्यक्तिने दाक्षिणात्यमें एक छोटीसा राज्य स्थापित किया था। राष्ट्रकूट और चालुक्य राजाओंके अधीन महासामन्त रूपमें उनके १८ मस्त वहाँ बिते। उसके बाद ११६५ राजा मिल्लमने ११८६ ई०में कल्याण अधिकार कर राज्यका विस्तार किया और देवगिरिमें राजधानी कायम की। होयशल बहालोंके साथ इनका तीन पुस्त तक विवाद चला, फिर यादवगण ही दाक्षिणात्यके सन्त प्रधान अधेश्वर हुए। सङ्गीतरत्नाकरके प्रणेता प्रसिद्ध

कायस्थ परिवर्तन मॉडल और उनके बाद अनुधर्मनित्त-  
मणिक्रमण मंत्रा थे। प्रसिद्ध वैयाकरण धोषदेव भी  
इस शास्त्रशास्त्रमाके मुख्य परिवर्तन थे। शास्त्रशास्त्रोंके  
अधोत जिनने भी महासामन्त थे, उनमें निकुम्भगण हो  
प्रधान थे। इसी निकुम्भ-राजसमाजे भद्रितीय ज्योति-  
र्विदु भास्करनाथ अस्थान करते थे।

होयजल यज्ञालगण भी शास्त्रवर्गोप थे। पहले ये  
प्राच्य चालुखर राजाओंके अधोत महासामन्त समझे  
जाने थे। इस घंजाके १२ यज्ञालने भी अपनेको  
स्वाधोत नृपति घोषित किया था। उनके घंजापर  
विश्वयुद्धने ११३३से ११३७ ई० तक राज्य किया था  
और उनका अधिकार बहुत विस्तारको प्राप्त हुआ था।  
सुप्रसिद्ध वैष्णव दार्शनिक रामानुज इसी समयमें आयि-  
भूत हुए और वादयवति विश्वयुद्धने उनसे वैष्णव  
धर्म ग्रहण किया। चालुखरीका समुद्रतः अधःगतन  
होने पर, होयजल यज्ञालोने महिपुर तथा और भी  
बहुतसे प्रदेशों पर अपना अधिकार कर लिया। इस  
घंजाके २५ यज्ञालने "नघाट" उपाधि ग्रहण की थी।  
उसके बाद इस घंजाके ५ राजा और हुए। उनके बाद  
अन्तर्देशके सेनापति मारिककाकुर्तेन आ कर यज्ञाल-  
राज्यका अधःम कर आला। बादवर्तके देगे।

किसी समय काकतीय-राजगण चालुखरीके अधोत  
थे और एक बार काकतीय-राज घोषने चालुखरीके  
प्रसिद्ध गौरवके उत्तारके लिए भी चेष्टा की थी। परंतु  
क्षेत्रज्ञ चालुखरीका अधःगतन होने पर घोषम स्वधोत  
ही गये। परंतुनाम निजाम-राज्यके अन्तर्गत औरकुलमें  
स्वधोत काकतीय राजाओंका राजधानी थी। सुप्रसिद्ध  
डोकाकार प्रसिद्धनाथ इस काकतीय-राजसमाजे विराज-  
मान थे। अन्तर्देशने काकतीय प्रभावको नष्ट सृष्ट  
करनेकी बहुत कोशिशों की परंतु ये एककार्य न हो  
सके। बादवर्तघंजाके साथ काकतीय राजाओंका  
जलाश्रयणो घोर समर होता रहा था। अक्षयनाथ  
बादलोके साथ होयजल युद्धमें काकतीय प्रभावसृष्टने  
अन्तर्गत अधःम विमर्शन किया था, तथापि इस द्वि-  
घोषघंजाके १५० वर्ष तक औरकुलमें अन्तर्गत स्वाधोतताको  
रखा ही थी। १५२५ ई०में औरकुल राजा अक्षयनाथके  
अधोत हुआ। बादवर्तके देगे।

काकतीयघंजाके अन्तर्गतके साथ कलिङ्गमें महारज  
भी प्रकल हो उठा था। चालुखरीराजके क्षीणित महारज  
को ११६६ नाममें कलिङ्गके सिंहासन पर अधोतित  
हुए थे। इन्होंने उत्कल जय करके स्वधोतकी  
रगनेके लिए जगन्नाथका प्रसिद्ध महामन्दिर भी  
भुवनेश्वरके केशरगरीरी आदि मन्दिरोंको प्रसिद्धा कराया  
भी। इस महारजके राजाओंने लगभग सौ वर्षों  
अधिक समय तक उत्कलका शासन किया था।

महारज देगे।

महाराजगण चन्द्रवर्गोप थे। इनके अन्तर्गतके बाद  
सूर्यवर्गोप राजाओंने उत्कलका शासन किया। इस  
घंजाके कपिलेश्वरदेवता नाम भारत-पतिरा है। उन्होंने  
अपने वादुवलने दक्षिणात्यके मुसलमान राजाओंकी  
बनेक बार परास्त किया था। और तो पया, दिती-  
श्वर तक उनके प्रभावमें विचलित हो गये थे।

कलिङ्गदेश, उत्कल और गोमनाथपुर देश देगे।

इस घंजाके प्रभावसृष्टके बाद उद्विषामें विद्रोह जय  
स्थित हुआ। तेलिङ्गा मुकुन्ददेवने कौजलकी राज्या-  
धिकार किया। उस समय हिन्दुओंके अन्तर्गतवर्गो  
उत्कलराज्य होनकल हो गया था। सुधोत रामक  
कालावहाइने उद्विष्या आक्रमण कर (१५१५ ई०में)  
उने कौजलके मुसलमान शासनमें सम्मिलित कर  
लिया।

यारने वेरिगिह रिजः और कृष्णानका शासन।

भारतमें आर्य-उपनिवेशके बाद, विभिन्न क्षेत्रवासियों  
का समागम हुआ। पश्चात्तय राज्योंके प्राचीन वि-  
हासोंको जालोषता करनेके विदिन होता है कि, बहुत  
पूर्वकालमें इतिहास जोगिरिग, फेराथ, रामगोत  
और आरितीय राजाओंके संमिलितवने भारत-संसार  
पर महारज की थी। परंतु इस घटनाका कौं प्रथम  
उत्पादन विविध म होवेग, इसके संमिलितवनेके विवर  
में सन्देह रह जाता है। फिर भी वास्तव्य राज  
द्वयुगके मारकाशमकाके बाल किमोती किमोती हैं।  
उनके राजा रका लगभग एक ज्योतीया भारतीय अन्तर्-  
गतमें संघोत होता था। विदिता पराश्वराजसंमिलितके  
अन्तर्गतके समय युगः प्रजाके प्रदेशमें अन्तर्गतका

प्राधान्य स्थापित हुआ। यही कारण है कि, इससे पूर्व की इधे जताव्दीके शेषभागमें माकिदन-पति अलेक-सन्दरके भारताक्रमणसे पश्चिम-भारतमें यवनराजवंशका समावेश पाया जाता है। अलेकसन्दरके साथ क्षत्रिय-राज पुत्र और मौर्यराज अशोकने कैसी प्रतिद्वन्द्विता की थी, यह बात अन्यत्र लिखी गई है।

अलेकसन्दर, पुत्र, विषदजी और यवन सेना।

यवन-राजवंशके अयसानके साथ साग क्रमणः भारतमें शुरु और हणजगतिका प्रभाव विस्तृत हुआ। परन्तु इनमेंसे कोई भी भारतके एकच्छत्राधिपत्यको प्राप्त नहीं हो सके। इसके बाद भारतमें इमलामधर्मावलम्बी म्लेच्छों का प्रादुर्भाव हुआ।

इसका दो जताव्दीके शेषभागमें और ७वीं जताव्दीके प्रारम्भमें भारतवर्षमें एक प्रबल सामयिक विद्रव्य संघटित हुआ। उस समय ब्राह्मण्य-धर्मके घोर अभ्युत्थानके कारण बौद्ध-प्राधान्य विलुप्त हो रहा था। जिस समय प्रसिद्ध चीन-परिव्राजक यूचनचुर्यांग बौद्धधर्म-प्रबोधके संप्रदायं कृतनिवचय हो कर हिमालयके अर्धयुद्ध प्रदेशको पार कर भारतमें विचरण कर रहे थे, ठीक उसी समय सुदूर पश्चिम-अरबमें इमलामधर्मके प्रवर्तक महम्मदको मृत्यु हुई थी। महम्मदीय धर्मोन्माद-से मत्त मुसलमानोंने एक एक कर उत्तर अफरीका, रोमसाम्राज्य और पूर्वमें भारत पर्यन्त समस्त भूभाग हस्तगत कर लिया था। ६४७ ई०में ओसमानने थाना और भरोच जय करनेके अभिप्रायसे सेना भेजी थी। ६६२ और ६६४ ई०में पुनः सिंधुप्रदेश पर आक्रमणकी चेष्टा की गई। इसके उपरान्त महम्मदकी मृत्युके लग-भग ८० वर्ष बाद धोगदादके राजा खलोफा बालिदके महम्मदवीन-फासिम नामक अरबी सेनापतिने ७११ ई०में बलुचिस्तानके मरराज्यको पार कर सिंधुप्रदेश पर चढ़ाई की। उस समय दाहिर नामक एक ब्राह्मण नरपति सिंधुप्रदेशके अधिपति थे। उन्होंने उदत्त और उन्मुक-रूपाण अरबी सेनाका सामना न कर सकनेके कारण अपना राज्य मुसलमानोंको दे दिया। युद्धके समय आलोर और ब्राह्मणावाद नामके दो नगर नष्ट हो गये थे। फासिम और उसके वंशके मुसलमान यहां उपादा दिन

राज्य नहीं कर सके। सीवीर-क्षत्रियोंने लगातार कई बार युद्ध करके मुसलमानोंके नाकीदम कर दिया और आखिर सिन्धुराजाले उन्हें भगा कर ही दम ली।

इसी समयसे भारतमें क्षत्रियप्राधान्य समुपस्थित हुआ। मुसलमानों द्वारा पराजित होनेके बादसे सभी क्षत्रिय सन्तान आत्म-रक्षामें तत्पर होने लगे। राजा हर्ष वर्द्धनके राजत्यके बाद और कोई भी हिन्दू राजा भारतमें एकच्छत्राधिपत्य स्थापन नहीं कर सके थे। चङ्ग, मगध, कन्नोज, कालङ्गर, मालवा, रत्नपुर, गुजरात, सिंधु पञ्जाव, दिल्ली, अजमेर और समग्र दक्षिणात्य प्रदेश छोटे छोटे राजाओं द्वारा शासित होते थे। इतिहास-प्रसिद्ध राट्टकूट, चालुक्य, परमार, चौहान आदि क्षत्रिय राजवंशोंने स्वतन्त्र पताकाय उड़ाई थी। उनमें परस्पर ईर्ष्यान्वित प्रवृत्त रहनेके कारण ऊपरसे सद्भाव होते हुए भी पारस्परिक एकता नहीं थी।

भारतको ऐसी आभ्यन्तरिक विद्रव्यरुतताका अनुभव कर ६७७ ई०में गजनीके सिंहासन पर बैठनेके बादसे सवकनिगम क्रमणः भारत-सीमान्तमें पदार्पण करनेकी चेष्टा करने लगे। भावी विपत्तिको आशङ्कित हो लाहोरके राजा जयपालने उनके विरुद्ध युद्धकी आयोजना की। उस समय दिल्ली, अजमेर, कालङ्गर और कनौज आदिके राजाओंने इनकी सहायता की थी; किन्तु दुर्भाग्यवश वे जयी न हो सके। सवकनिगन्ने पेशावर प्रदेश अपने राज्यमें मिला लिया। उनके पुत्र महमूदने १००१ से १०२६ ई० तक १७ बार भारत पर चढ़ाई की थी, जिसके फल-स्वरूप पश्चिममें पञ्जाव, दक्षिणमें गुजरात, पूर्वमें कनौज उत्तरमें कापमौर पर्यन्त भूभाग उनके हाथमें चला गया। उन्हें भारतमें राज्य करनेकी आकांक्षा नहीं थी, बल्कि घन लूट कर वे परिपुष्ट हुए थे। यही कारण है कि वे भारतमें मुसलमान-राज्य स्थापित न कर सके। १०२० ई०में महमूदकी मृत्युके बाद लाहोर और नागरकोट आदि स्थानोंमें हिन्दूओंने स्वाधीनताकी ध्वजा उड़ानेका प्रयास किया था। लाहोर कुछ दिनके लिए महमूद राजवंशके वैराग्यके शासनाधीन था। अफगानिस्तानमें घोर और गजनीवंशके पारस्परिक विरोधसे गजनीराजवंश उत्सादात हुआ और गौरराजवंश क्रमशः काबुलराज्यमें

प्रतिपक्षि विस्तार करता रहा। ११८६ ई० तक गजनी पंजने लाहौर-राजधानीमें शासनकाय चलाया था।

गौर राज्यजके प्रतिष्ठान महम्मद गोरीने ११७६ ई०में लाहौर अधिकार किया। ११८६ ई०में ये तुमुक मालिकको पराजित और बन्दी कर लाहौर लाये और फिर उन्होंने समस्त पञ्जाब प्रदेशमें अपना प्रभुत्व फैलाया।

सिन्धु प्रदेश अफगानिस्तानमें गजनी और गौर सरदारोंका परस्पर विरोध चल रहा था, जोक उसी समयमें भारत-शासकस्य छोटे राज्यस्य हीमें विभक्त हो कर परस्परको प्रतिपक्षितामें फँसा हुआ था। दिल्ली और अजमेरके राजा चौहान कुतुबुद्दय्य पृथ्वीराज और कान्य-कुब्जाधिपति गजोब'जोय जयचन्द इन दोनोंमें उत्तम-धिकारको ले कर विरोध उपस्थित हुआ। गौरी राज-धानी लाहौरके निकटस्थ राजाभीको परस्परमें विकला-पारी देय, ११६१ ई०में मौका पा कर महम्मद दिल्ली आक्रमणके लिए अग्रसर हुए। निर्गरीके युद्धमें महम्मद गौरी पराजित हो कर भाग गये। परन्तु ११६३ ई०के शनिवार युद्धमें पृथ्वीराज पराजित गये। उनके साथ साथ भारतका हिन्दूशासन भी विद्युत् हो गया। परन्तु'जोय पाल्दयोके बलपूर्वसे प्राप्त इन्द्रप्रस्थ राज-धानी इनने दिनों बाद मुसलमान राज्यजके हाथमें चली गई।

दिल्ली नगरमें राजपाट स्थापन कर महम्मद गोरीने दूसरे ही वर्ष (११६४ ई०में) कनौज और बनारस पर चढ़ाई कर दी। इत्याके मुद्देमें जयचन्द्र पराजित और निहल होनेके बाद उनका राज्य मुसलमान राज्यमें मिला लिया गया। बनारस और कशीज विजयके बाद जयचन्द्रस्य पन-रुनही से कर महम्मद गजनीको लान्य पत्र दिये। जने समाप ये अपने विध्वंस केनापति कुतुबुद्दीनको राज्य-शासनके लिए प्रतिनिधि नियुक्त कर गये। दिल्ली राजधानीमें शासन करनेको कृत्य

सचकमीनके अधिकारके समय (१०३१ ई०) के-प्रदेश अफगानिस्तान राज्यको सीमामें मानि-मदयूर उन सीमाको पञ्जाबके पश्चिममांडा तक विस्तार गये। उसके बाद महम्मद गोरीने सिन्धुके मुद्दे से कर गद्दाके मुद्दाना तक विस्तार भाषावन्त-विस्तार मुसलमान-प्रभुत्व स्थापन किया था।

उनकी मृत्युके बाद (१२०६ ई०)ने प्रतिनिधि कुतु-उद्दीन गजनीके अधीनता-पानका उद्देश कर स्थापित रूपसे दिल्ली राजधानीमें राज्य कर रहे थे, इन्हीं ही भारतपर्यके प्रथम मुसलमान-सम्राट् मन्वरा चाहिए। उनके राज्यकालमें इस्लाम लोदीके शासन काल (१२०६ से १५२६ ई०) तकके समयको पञ्जाबका अधिकारकाल कहा जा सकता है।

मुसलमानों—कुतुबुद्दीन पहले कौतुबाम थे, इन्हीं उनके पंजके १० राजाओंको इतिहासमें 'मुसलमान' कहा है। कुतुबुद्दीनके शासनकालमें गौरीउद्दीन मुसलमान और सिन्धु-प्रदेशके तथा बख्तियार खान और विजय प्रदेशके शासनकर्ता नियुक्त थे। अन्ततम मामर उन-के एक कौतुबामको राजानुप्रदेश जामातुपद् प्राप्त हुआ था। उसी व्यक्तिने कुतुबुद्दीनके पुत्र आसामको राज्य च्युत कर दिल्ली सिंहासन अधिकार किया। उन्होंने मालवा जय कर राजपूतानाके सिवा समस्त भाषावन्त मुसलमान प्राधाय्य स्थापन किया था।

१२३६ ई०में अन्ततमसकी मृत्युके बाद उनके पुत्र कुतुबुद्दीन और फिर कन्या रजिवा सिंहासन पर बैठी थी। रजिवाके सिवा और कोई भी मुसलमान समर्थी भारतके सिंहासन पर नहीं बैठे। एक कौतुबामके प्रति अन्ततम अनुत्क हॉमिके कारण रजिवा राजच्युत हुई। इनके बाद उनके मांसे महम्मद, कुतुबुद्दीन पुत्र असाह और पुत्र असाहइन्हीं पञ्जाबमें राज्य

उनके बहनोंई गयासउद्दीन बलयनखां सिंहासन पर बैठे । उनके राजतन्त्रकालमें यद्दालके नवाब तुगूरिलखां विद्रोही हो गये थे । गयासउद्दीनने अपने हाथसे उन्हें मार कर अपने पुत्र बखराखांको बङ्गालके सिंहासन पर बिठाया । उनकी मृत्युके बाद बखराखांके पुत्र कैकोवाद् दिल्ली सिंहासन पर बैठे । परन्तु ये राज्य-रक्षामें असमर्थ होनेके कारण, खिलजोवंशीय पराक्रान्त अमात्योंने उन्हें मार कर जलालउद्दीनको दिल्लीका सिंहासन प्रदान किया ।

गुलामवंशके राजाओंका सिंहासन पर बैठनेका समय इस प्रकार है—

कुतबउद्दीन	१२०६	बहराम	१२३६
आराम	१२१०	मसाउद्	१२४१
अलतमस	१२११	नसौरउद्दीन	१२४६
रुक्रनउद्दीन	१२३५	सुलबन	१२६६
सुलताना रजिया	१२३६	कैकोवाद्	१२८६

खिलजीवंश ।—कैकोवाद्को राज्य-च्युत करके खिलजी-राजवंशके प्रतिष्ठाता जलालउद्दीन दिल्ली-सिंहासन पर बैठे । उनके उपयुक्त भ्रातृपुत्र अलाउद्दीनने सुन्देलखण्ड, मालवां और दक्षिणात्य जय कर पितृव्यका शासन-सीमाका विस्तार किया । १२६४ ई०में उन्होंने सेना-सहित विध्वापर्यन्त अतिक्रम कर महाराष्ट्रके यादववंशीय राजा रामराज पर आक्रमण किया । इस प्रकार अचानक अतर्कित अवस्थामें आक्रान्त होनेके कारण वे राज्यकी रक्षा न कर सके, इसलिए उन्होंने अधीनता स्वीकार कर ली । जयोद्वस अलाउद्दीन ( १२६५ ई०में ) राजधानीकी लौट रहे हैं, सुन कर जलाउद्दीन उल्लसित मनसे उन्हें आलिङ्गन करनेके लिए अग्रसर होनेवाले थे कि इतनेमें कर हृदय अलाउद्दीनने उन्हें मार डाला और स्वयं दिल्लीके सिंहासन पर अधिकार कर बैठे ।

अलाउद्दीनके चित्तोर आक्रमणकी बात किसीसे छिपी नहीं है । राणा भीमसिंहकी पत्नी प्रथितनामा पद्मिनीदेवीने इसी युद्धमें चितानलमें आत्मविसर्जन किया था । दिल्लीश्वरके प्रसिद्ध सेनापति राजपूतवंशीय मालोक काफूर द्वारा परिचालित दक्षिणात्य विजय बाहिनोनी देवगिरि और द्वारसमुद्रके यादवराज तथा ओरङ्गलके काकतैयोंको पराभूत कर रामेश्वर तक दक्षिण

भारतको तहस-नहस कर डाला था । उनके अन्यतम सेनापति उलयखाने १२६७ ई०में कर्णदेवको पराजित कर गुजरात अधिकार किया था । किन्तु अस्थिर-चित्तता और कर्तव्यहीनताके कारण दिल्लीश्वर ज्यादा दिन इस साम्राज्यसुखको न भोग सके । उनके अधीनस्थ मुसलमान शासनकर्त्ताओंके विद्रोह, कुतलुखां द्वारा परिचालित मुगल-सेनाके आक्रमण तथा चित्तोर, गुजरात और महाराष्ट्र प्रदेशके हिन्दू नरपतियोंके स्वाधीनता-लामके प्रयासने अन्तिम जीवनमें उन्हें बहुत ही हैरान कर दिया था । १३१६ ई०में उनकी मृत्युके समय हरपालदेवने दक्षिणात्यमें स्वाधीनताकी ध्वजा फहराई थी ।

अलाउद्दीनकी मृत्युके बाद काफूरने सिंहासन-अधिकारकी चेष्टा की, परन्तु सम्राट्के तृतीय पुत्र मुबारकने उन्हें गुप्तमाचसे मरवा कर वे खुद सिंहासन पर बैठे । राजपद पर अधिष्ठित हो कर उन्होंने अपने भाई और शत्रुपक्षीय अमात्योंको मरवा दिया । पश्चात् दक्षिणात्यकी ओर अग्रसर हो कर हरपालदेवको पराजित और निहत्त किया । मालिक खुसरू नामक एक इस्लाम धर्मावलम्बी हिन्दू उनका विशेष प्रियपात्र था । राजा-जुग्रहसे यह व्यक्ति राज्यका हर्ता-कर्त्ता हो गया था । दिल्लीमें मद्यपान-निरत और सुख-शय्यामें पड़े पड़े मुबारक जब अपने ऐश्वर्यका उपभोग कर रहे थे, तब उनके प्रियतम खुसरू दक्षिणात्य और मालावार-उपकूल-वर्त्ती प्रदेशोंको जीत कर उनकी समृद्धिको हड़पनेके लिए अग्रसर हुए और सेना-सहित वहांसे लौट कर उन्होंने मुबारकको हत्या की । परन्तु उनका सिंहासन-मासिफा सुख-स्वण शोभ हो नष्ट हो गया । पञ्जावके शासन-कर्त्ता गयासउद्दीन तोगलकने सेना-सहित उपस्थित हो कर दिल्ली पर अधिकार कर लिया और साथ ही खुसरू-का भी काम तमाम किया ( १३२१ ई०में ) ।

खिलजीवंशका अधिकारकाल ( १२८८-१३२१ )

जलालउद्दीन	१२८८	मुबारक	१३१६
अलाउद्दीन	१२६५	खुसरू	१३२१

तुगलकवंश ।—मालिक काफूर और मालिक खुसरूके द्वारा समग्र दक्षिणात्य भूमि मुसलमान-शासनाधीन होने पर भी उस समय महाराष्ट्र-भूमि हिन्दूराजाओंके



प्रतिपत्ति विस्तार करता रहा। ११८६ ई० तक गजनी वंशने लाहौर-राजधानीमें शासनकार्य चलाया था।

गोर राजवंशके प्रतिष्ठाता महम्मद गोरीने ११७६ ई०में लाहौर अधिकार किया। ११८६ ई०में वे खुसरू मालिक-को पराजित और बन्दी कर लाहौर लाये और फिर उन्होंने समस्त पञ्जाब प्रदेशमें अपना प्रभुत्व फैलाया।

जिस समय अफगानिस्तानमें गजनी और गोर सरदारोंका परस्पर विरोध चल रहा था, ठीक उसी समयमें भारत-साम्राज्य छोटे राज्यखण्डोंमें विभक्त हो कर परस्पर की प्रतियोगितामें फँसा हुआ था। दिल्ली और अजमेरके राजा चौहान कुल्लोद्दमव पृथ्वीराज और कान्य-कुब्जाधिपति राठोरवंशीय जयचन्द इन दोनोंमें उत्तराधिकारकी ले कर विरोध उपस्थित हुआ। गोरी-राजधानी लाहौरके निकटस्थ राजाओंको परस्परमें विचट्टा-चारी देख, ११६१ ई०में मौका पा कर महम्मद दिल्ली आक्रमणके लिए अग्रसर हुए। तिरोरीके युद्धक्षेत्रमें मुहम्मद गोरी पराजित हो कर भाग गये। परन्तु ११६३ ई०के थानेश्वर युद्धक्षेत्रमें पृथ्वीराज पकड़े गये। उनके साथ साथ भारतका हिन्दू-शासन भी विलुप्त हो गया। चन्द्रवंशीय पाण्डवोंके बलवीर्यसे प्राप्त इन्द्रप्रस्थ राजधानी इतने दिनों बाद मुसलमान राजवंशके हाथमें चली गई।

दिल्ली नगरमें राजपाट स्थापन कर महम्मद गोरीने दूसरे ही वर्ष (११६४ ई०में) कनीज और बनारस पर चढ़ाई कर दी। इटायाके युद्धमें जयचन्द्र पराजित और निहत होनेके बाद उनका राज्य मुसलमान राज्यमें मिला लिया गया। बनारस और कन्नौज विजयके बाद जय-लब्ध भन-रतनको ले कर महम्मद गजनीको तरफ चल दिये। जाते समय वे अपने विश्वस्त सेनापति कुतबुद्दीनको राज्य-शासनके लिए प्रतिनिधि नियुक्त कर गये। कुतबुद्दीनने दिल्ली राजधानीसे शासन-सम्बन्धी सुव्यवस्था करके ११६५ ई०में ग्यालियर जय किया। उनके प्रसिद्ध सेनापति महम्मद-इ-बिग्लियारने ११६६ ई०में बङ्गालकी राजधानी नवद्वीप पर चढ़ाई की और बङ्गाल पर कब्जा कर लिया। अस्सी वर्षके युद्ध राजालक्षणसेन राज-प्रासादको छोड़ कर विक्रमपुरको तरफ भाग गये।

सबकगौनके अधिकारके समय (६७७ ई०) पेशावर प्रदेश अफगानिस्तान राज्यकी सीमामें शामिल था। महम्मद उस सीमाको पञ्जाबके पश्चिमांश तक विस्तृत कर गये। उसके बाद महम्मद गोरीने सिन्धुके मुह नेने ले कर गङ्गाके मुहाना तक विस्तृत आर्यावर्त-विभागमें मुसलमान-प्रभुत्व स्थापन किया था।

उनकी मृत्युके बाद (१२०६ ई०)-से प्रतिनिधि कुतब-उद्दीन गजनीके अधीनता-पाशका छेदन कर स्वाधीन रूपसे दिल्ली राजधानीमें राज्य कर रहे थे; इसलिए उन्हें ही भारतवर्षके प्रथम मुसलमान-सम्राट् समझना चाहिए। उनके राजत्वकालसे इब्राहिम लोदीके शासन काल (१२०६ से १५२६ ई०) तकके समयको पठानवंश-का अधिकारकाल कहा जा सकता है।

गुलामवंश।—कुतबउद्दीन पहले क्रीतदास थे, इसलिए उनके वंशके १० राजाओंको इतिहासमें 'गुलामराज' कहा है। कुतबउद्दीनके शासनकालमें नसोरउद्दीन मुलतान और सिन्धु-प्रदेशके तथा बख्तियार बङ्गाल और विहार प्रदेशके शासनकर्ता नियुक्त थे। अलतमस नामक उनके एक क्रीतदासको राजानुग्रहसे जामातृपद प्राप्त हुआ था। उसी व्यक्तिने कुतबउद्दीनके पुत्र आरामको राज्य-च्युत कर दिल्ली सिंहासन अधिकार किया। उन्होंने मालवा जय कर राजपूतानाके सिवा समस्त आर्यावर्तमें मुसलमान प्राधान्य स्थापन किया था।

१२३६ ई०में अलतमसकी मृत्युके बाद उनके पुत्र रकुनउद्दीन और फिर कन्या रजिया सिंहासन पर बैठी थी। रजियाके सिवा और कोई भी मुसलमान रमणो भारतके सिंहासन पर नहीं बैठी। एक क्रीतदासके प्रति अत्यन्त अनुरक्त होनेके कारण रजिया राज्यच्युत हुई। उसके बाद उनके भाई बहराम, रकुनके पुत्र मसाउद और अलतमसके पुत्र नसोरउद्दीनने यथाक्रमसे राज्य किया। अलतमसके राजत्वकालमें तातार देशमें चङ्गेज़गाँ नामक मुगलवंशका जो सीमावर्ष सूर्य उदित हुआ था, उसीके प्रसरण कर प्रसारणसे नसोरका भारत-साम्राज्य अस्सोमन होनेके उन्मुख हो गया था। मुगल लोग भारत

उनके बहनोंई गयासउद्दीन बलबनखां सिंहासन पर बैठे । उनके राजतन्त्रकालमें बङ्गालके नवाब तुग़लख़ां विद्रोही हो गये थे । गयासउद्दीनने अपने हाथसे उन्हें मार कर अपने पुत्र बखराखांको बङ्गालके सिंहासन पर बिठाया । उनकी मृत्युके बाद बखराखांके पुत्र फैकीवाद् दिल्ली सिंहासन पर बैठे । परन्तु ये राज्य-रक्षामें असमर्थ होनेके कारण, खिलजोवंशीय पराम्रान्त अमात्योंने उन्हें मार कर जलालउद्दीनको दिल्लीका सिंहासन प्रदान किया ।

गुलामवंशके राजाओंका सिंहासन पर बैठनेका समय इस प्रकार है—

कुतबउद्दीन	१२०६	बहराम	१२३६
आराम	१२१०	मसाउद्	१२४१
अलतमस	१२११	नसीरउद्दीन	१२४६
रुक्नउद्दीन	१२३५	बुलबन	१२६६
सुलताना रजिया	१२३६	फैकीवाद्	१२८६

खिलजीवंश ।—फैकीवाद्को राज्य-च्युत करके खिलजी-राजवंशके प्रतिष्ठाता जलालउद्दीन दिल्ली-सिंहासन पर बैठे । उनके उपयुक्त भ्रातृपुत्र अलाउद्दीनने बुन्देलखण्ड, मालवां और दक्षिणात्य जय कर पितृशका शासन-सीमाका विस्तार किया । १२६४ ई०में उन्होंने सेना-सहित विधरापर्वत अतिक्रम कर महाराष्ट्रके यादववंशीय राजा रामराज पर आक्रमण किया । इस प्रकार अचानक अतर्कित अवस्थामें आक्रांत होनेके कारण वे राज्यको रक्षा न कर सके, इसलिए उन्होंने अधीनता स्वीकार कर ली । जयोद्दत अलाउद्दीन ( १२६५ ई०में ) राजधानीको लौट रहे हैं, सुन कर जलाउद्दीन उल्लसित मनसे उन्हें आलिङ्गन करनेके लिए अग्रसर होनेवाले थे कि इननेमें क्रूर हृदय अलाउद्दीनने उन्हें मार डाला और स्वयं दिल्लीके सिंहासन पर अधिकार कर बैठे ।

अलाउद्दीनके चित्तोर आक्रमणकी बात किसीसे छिपी नहीं है । राणा भीमसिंहकी पत्नी प्रथितनामा पद्मिनीदेवीने इसी युद्धमें चित्तानलमें आत्मधिसर्जन किया था । दिल्लीश्वरके प्रसिद्ध सेनापति राजपूतवंशीय मालीक काफूर द्वारा परिचालित दक्षिणात्य विजय घाहिनीने देवगिरि और द्वारसमुद्रके यादवराज तथा ओरङ्गलके काकतेयोंको पराभूत कर रामेश्वर तक दक्षिण

भारतको तहस-नहस कर डाला था । उनके अन्यतम सेनापति उलयखाने १२६७ ई०में कर्णदेवको पराजित कर गुजरात अधिकार किया था । किन्तु अस्थिर-चित्तता और कर्तव्यहीनताके कारण दिल्लीश्वर ज्यादा दिन इस साम्राज्यसुखको न भोग सके । उनके अधीनस्थ मुसलमान शासनकर्त्ताओंके विद्रोह, कुतलूखां द्वारा परिचालित मुगल-सेनाके आक्रमण तथा चित्तोर, गुजरात और महाराष्ट्र प्रदेशके हिन्दू नरपतियोंके स्वाधीनता-लामके प्रयासने अन्तिम जीवनमें उन्हें बहुत ही हीरान कर दिया था । १३१६ ई०में उनकी मृत्युके समय हरपालदेवने दक्षिणात्यमें स्वाधीनताकी ध्वजा फहराई थी ।

अलाउद्दीनकी मृत्युके बाद काफूरने सिंहासन-अधिकारकी चेष्टा की, परन्तु सम्राट्के तृतीय पुत्र सुवारकने उन्हें गुमभावसे मरवा कर वे खुद सिंहासन पर बैठे । राजपद पर अधिष्ठित हो कर उन्होंने अपने भाई और शत्रुपक्षीय अमात्योंको मरवा दिया । परचातु दक्षिणात्यकी ओर अग्रसर हो कर हरपालदेवको पराजित और निहत् किया । मालिक खुसरू नामक एक इसलाम धर्मावलम्बी हिन्दू उनका विशेष प्रियपाल था । राजा-जुमहसे वह व्यक्ति राज्यका हर्ता-कर्त्ता हो गया था । दिल्लीमें मद्यपान-निरत और सुख-शय्यामें पड़े पड़े सुवारक जब अपने ऐश्वर्यका उपभोग कर रहे थे, तब उनके प्रियतम खुसरू दक्षिणात्य और मालावार-उपकूल-वर्त्ती प्रदेशोंको जीत कर उनकी समृद्धिको हड़पनेके लिए अग्रसर हुए और सेना-सहित वहांसे लौट कर उन्होंने सुवारककी हत्या की । परन्तु उनका सिंहासन-प्राप्तिका सुख-स्वप्न शीघ्र ही नष्ट हो गया । पञ्जावके शासन-कर्त्ता गयासउद्दीन तोगलकने सेना-सहित उपस्थित हो कर दिल्ली पर अधिकार कर लिया और साथ ही खुसरू-का भी काम तमाम किया ( १३२१ ई०में ) ।

खिलजीवंशका अधिकारकाल ( १२५५-१३२१ )

जलालउद्दीन	१२८८	सुवारक	१३१६
अलाउद्दीन	१२६५	खुसरू	१३२१

मुगलवंश ।—मालिक काफूर और मालिक खुसरू-के द्वारा समग्र दक्षिणात्य भूमि मुसलमान-शासनाधीन होने पर भी उस समय महाराष्ट्र-भूमि हिन्दूराजाओंके

प्राधान्यसे पूर्ण-धो, परन्तु गयासुद्दीनने उम देगको जीत कर हिन्दूशासनका उच्छेदन कर दिया था। विदर और ओरख्तकके राजाको कर देने पर उन्हें छुटकारा मिला था। गियासउद्दीन सुवर्णप्राप्त जीत कर जय राजधानीको लींटे तो पुन जूनावा (आलुफवा)के पड़वन्तसे वे भी मारे गये।

युद्ध पिताको मार कर 'महम्मद तुगलक' नाम ग्रहण पूर्वक आलुफवाने १३२५ ई०में पठानराज-सिंहासन पर अधिरोहण किया। ये नाना शास्त्रोंमें सुपरिदित और नाना विद्याओंमें पारदर्शी होने पर भी उनकी एकमात्र अधिमृत्युकारिणी ही उनके समस्त अनर्थों का दोषोंका भाकर हो गई थी। दीलतावादमें राजधानीकी प्रतिष्ठा करनेके लिए उन्होंने दिल्लीके अधियासियोंको जैसा नियुक्त-होना किया था, उसी प्रकार हठकारितासे ही उनका चीन और पारस्यभूमियान अकालमें विलयको प्राप्त हुआ। प्रभूत धन और असंख्य सेना गृथा गष्ट हो जानेसे राज्य में घोर विशृङ्खलता उपस्थित हो गई। उन्होंने अपने राज कोषकी वृत्तिके लिए (नोटकी तरह) ताम्रणखंड चलानेकी गृथा चेष्टा की। इस विषयमें अहृतकार्य होने पर, उन्होंने प्रजा पर असह्यत कर लगा दिया, जिससे राज्यमें घोर विप्लव उठ खड़ा हुआ और उस विद्रोहके कारण दक्षिण और पश्चिम भारत। कुछ देश हिंदू राजवंशोंके और स्थानीय मुसलमान शासनकर्त्ताओंके हाथ लग गये।

महम्मदक कोई पुत्र सन्तान न थी। १३५१में उनका मृत्यु-संवाद विद्री पहुंचने पर, खजाजाजहानने एक ६ वर्षके बालकको राजा बना कर उसकी घोषणा कर दी। उस समय फिरोज तुगलक सेना-विभागमें नियुक्त थे, पर महम्मदके अन्तिम प्रार्थनानुसार उनके भतीजे फिरोजको सिंहासन पर विद्याया गया।

महम्मदने अपने वीर्य और बुद्धिबलसे जिस विनाश भारतसाम्राज्यकी प्रतिष्ठा की थी, शेष जीवनकी दुबु जिना फे कारण उसका वे मूलच्छेदन कर गये। परवर्ती मुगल सम्राट् अकबरशासने अपूर्व मैत्री कौशलसे जिस दृढ़ संघर्षने भारतसाम्राज्यको आवृद्ध किया था, एक और दृढ़वर्ती बुद्धिहीनतासे उसकी दृढ़प्रथि निधिल हो गई थी। इसके सिवा उस समय पठान सेनामें विभिन्न

श्रेणीके मुसलमानोंका समावेश होनेसे भी राज्यमें विशृङ्खलताका सूत्रपात हो गया। तुर्की, अरुगातो, मुगल और इसलाम धर्मावलम्बी हिंदूगण सभी अपने अपने प्राधान्य स्थापनके लिये प्रयत्नशील थे। इसीलिए विभिन्न सम्प्रदायी सेनादल और शासनकर्त्ताओंमें परस्पर विरोध अवश्यभ्रमावो हो गया था।

फिरोज तुगलकने राजासन पर बैठ कर प्रथम ही दक्षिणात्य और बङ्गालके राजाओंको दिल्लीकी अधीनता के शृङ्खलमें आवृद्ध किया और अपनी उदार प्रवृत्तिके कारण स्वल्पमात्र कर ले कर उन्हें स्वाधीनभावसे अपने अपने राज्यकी परिचालना करनेका आदेश दिया। फिरोजावाद नगर-स्थापन ( जो कि आगरके पास है ), मसजिद, प्रासाद, विद्यालय, चिकित्सालय, सराय, पुन, मुसाफिरखाना, कूप और कौंसिस्तम्भ आदिकी प्रतिष्ठा, शतद्रु, कागार और जमुनासे नहर निकालना, बाँध और लम्बी लम्बे भोलें बनाना आदि इनके जीवनके प्रधान कार्य थे। राज-वेधव्यसे ममत्त्व छोड़ कर उन्होंने १३८१ ई०में अपने पुत्र नसीरउद्दीन महम्मदके लिए राज सिंहासन त्याग दिया। परन्तु उस बालकके अपने बुद्धि विपर्ययसे आद्योंके विरोधी हो जानेसे दिल्लीमें महा-हत्याकाण्ड हो गया। इन् घटनाके बाद फिरोजने पुनः शासन-भार अपने ऊपर ले लिया। १३८८ ई०में उनकी मृत्युके बाद पौर गयामुद्दीन सिंहासन पर बैठे। निरन्तर मर्यापानमें आसक्त रहनेसे उनके स्वमन्त्रकीय भारने उन्हें १३९६ ई०में, ( ५ मास राज्य-भोगके बाद ) मार डाला।

गयासकी हत्या करनेके बाद पुण्यात्मा फिरोजके अन्यतम पीत्र आवृष्वरने दिल्ली-सिंहासन अधिकार किया। दस मास राज्य करनेके बाद उसी वर्ष नवम्बर मासमें फिरोजके अन्य पुत्र-गुवराज महम्मदवाँ द्वारा आवृष्वर राज्य-च्युत हुए। १३६० ई०में ये नसीरउद्दीन तुगलक नाम ग्रहण कर दिल्लीके सिंहासन पर बैठे। पीछे उन्हें आवृष्वर और मेवाती-राजपूतोंके विद्रोह दमनार्थ बहुत परिश्रम उठाना पड़ा। आवृष्वरने उन्हें दिल्लीसे भगा दिया और मेवाती राजपूतोंने उनकी राजधानी लूट ली। दोनों युद्धके बादल परिधमसे

वे रोगग्रस्त हो गये और उसीसे ( १३६४ ई०में ) उनकी मृत्यु हो गई।

उनके पुत्र हुमायूँ ४५ दिन राज्य करनेके बाद सहसा मृत्युके ग्रास वन गये। इसलिये सिंहासनको ले कर फिरोजशाह उपस्थित हुआ। इसके बाद मृत राजा नसीरउद्दीन महम्मदके अन्त्येष्टि के लिये सिंहासन पर विठाना निश्चित किया गया। पठान राजवंशके अधिपतनके प्रारम्भमें जो शासनकी विशुद्ध लता उठ खड़ी हुई, उसीने समग्र भारतमें व्याप्त हो कर स्वामी राज्योंका संगठन किया। बालक महम्मदका राजत्व साधारणकी दृष्टिके विरुद्ध था। एक दल महम्मदको ले कर प्राचीन दिल्लीके प्रासादमें रहा और दूसरा दल फिरोज तुगलकके पालनसरत खाँ को ले कर फिरोजाबाद पहुँचा और वहाँ उन्हें राजमुकुट पहनाया गया। अमात्योंके मूढविप्लवसे दिल्ली नगरी जन-शून्य होने लगी। ३ वर्ष लगातार रक्तपातके बाद, १३६६ ई०में इकबाल खाँने महम्मदको हस्तगत करके नसरत खाँको नगरसे भगा दिया। इस राष्ट्रविप्लवके समय बङ्गाल, मालवा, खानदेश, गुजरात आदि स्थानोंके शासनकर्त्तागण स्वाधीन हो गये। जगद्विख्यात मुगल-सम्राट् तैमूरलङ्गको समरकन्दमें रहते हुए इस पठान-विप्लवकी बात मालूम पड़ी। मीका देख कर वे अपनी विपुलसेनाके साथ दिल्लीकी ओर चल पड़े।

१३६८ ई०के सैय्यद मासमें सिंधुनद पार कर वे पञ्जाब प्रदेशको लूटते हुए जनवरी महीनेमें पानीपतकी सड़क पकड़ कर फिरोजाबादके सामने आ पहुँचे। इस युद्धमें पराजित हो कर महम्मदबंशके गुजरात प्रदेशको भाग गये। तैमूरने अपनेको भारत-सम्राट् घोषित किया और स्वदेशको लौटने वचन दे सैय्यद खिजिर खाँ को लाहौर-राजधानीमें अपने प्रतिनिधि स्वरूप छोड़ गये। पहले नसरत खाँने दिल्ली अधिकार करनेकी चेष्टा की, पीछे महम्मद बंशके भी इकबाल खाँके सहयोगसे दिल्ली में घुस कर राज्य नष्ट करनेकी कोशिश की। यहाँ पर १४१२ ई०में महम्मदकी मृत्यु हुई। उनके साथ ही तुगलक वंशका राज्य भी लुप्त हो गया।

तुगलकवंशका राज्यकाल।

गयासउद्दीन	१३२१ ई०
महम्मद तुगलक	१३२५ ई०
फिरोज तुगलक	१३५१ ई०
नसीरउद्दीन महम्मद	१३८७ ( कुछ महीने )
फिरोज ( पुनः )	१३८८ ई०
गयासउद्दीन अफ्टुवर	१३८८ से फरवरी १३८९ तक
अबुबखर	फरवरी १३८९ से नवम्बर तक
नसीरउद्दीन महम्मद ( २ )	१३९०-१३९४ ई०
हुमायूँ	४५ दिन मात्र
महम्मद	१३९४ से १४१२ ( बीचमें २३६६ ई०में ५ दिन तैमूरलङ्गने राज्य किया )

सैय्यद वंश।—महम्मदको मृत्युके बाद अमात्योंके अनुरोधसे बंश-प्रधान और सेनापति दौलत खाँ लोदी को सिंहासन पर अभिषिक्त किया गया। लाहौरके प्रतिनिधि खिजिरखाँने उन्हें पराजित कर दिल्ली अधिकार किया। बंश अवस्थामें १४१६ ई० में दौलत खाँकी मृत्यु हो गई। १४१६ से १४२१ ई० तक खिजिरखाँने बड़ा ज्ञानके साथ दिल्लीके पार्श्ववर्ती स्थानोंका शासन किया। १४२२ ई०में उगकी मृत्यु होने पर उनके पुत्र सुबारक दिल्लीके राजा हुए। १४३५ ई०में वे अपने यत्नमोगी हिंदू-कर्मचारियों द्वारा मारे गये। उसके बाद सैय्यद राज महम्मद (१४३५-१४४५ ई०) और अलाउद्दीन (१४३५-१४७२ ई०)के राज्यकालमें विभिन्न शासनकर्त्ताओं के विद्रोह-दमनके सिवा और कोई उल्लेखयोग्य घटना न घटी। अलाउद्दीन सात वर्ष राज्य करनेके बाद १४५९ ई०में अपने भाईके लिए राजसिंहासनको छोड़ कर राज-कीयकोलाहलसे बचकर ले, बदायूँके निम्नतिलयमें जा धर्मालोचनानामें निरत हुए। उनके बचसर-समयमें बहोललोदी नामक एक सम्भान्तवंशीय अफगानी राजकार्यका पदवेक्षण करते थे। अलाउद्दीन उहाँको अपना उत्तराधिकारी मनोनीत कर गये थे।

लोदी वंश।—घाण्ड्यके उद्देशसे भारतमें आ कर लोदीवंशीय अफगानी लोग क्रमशः अपनी उन्नति कर लगे। खिजिर खाँके साथ तुगलककार्यके बंशके एक बाल खाँका जो युद्ध हुआ था उसमें

अपने अपने हाथसे इकबालका प्राण-संहार किया था। कनौषकारके पारितोषिक-स्वरूप उन्हें सैयद-प्रतिनिधि द्वारा सरहिन्दका शासनकर्तृत्व प्राप्त हुआ। उस व्यक्तिने भतोजे बहोलके साथ अपनी कन्याका विवाह कर दिया। अन्धको मृत्युके बाद बहोलको सरहिन्दका शासनकर्तृत्व प्राप्त हुआ। क्रमशः उनकी अज्ञोभाति चारों ओर फैलने पर अलाउद्दीनको दृष्टि आगुष्ट हुई। सैयद-राजाने उन्हें बन्धक पद दे कर येशेय सम्मानित किया। १४७८ ई०में सिंहासन पर बैठने पर भी, वास्तवमें १४५२ (किसी किसीके मतसे १४५०) ई०में ही अलाउद्दीनके वदाऊँ चले जानेके बादसे ही बहोलका दिल्ली-राजशासन काल समझना चाहिए। २६ वर्षे युद्धके बाद उन्होंने जर्किराजाओंसे जीतपुर छीन लिया। बहूलोलने हिमालयसे ले कर बंगाल तक विस्तृत राज्याको अपने पांच पुत्रोंको बांट देना चाहा था, किंतु अमात्यगणोंकी प्रार्थनाके अनुसार वे अपने इस इच्छाको पूरी न कर सके थे। अमात्योंने उनके एक पुत्रको और बेगम साहबाने अपने पुत्र निजाम खाँको सिंहासन देनेके लिए वादाहने अनुत्प्रेष किया। इसी बीचमें उनकी मृत्यु हो गई।

पुत्रको सिंहासन देनेके लिए बहोल और उनके ज्येष्ठपुत्र बरबाक खाँका अभिमत होने पर भी अमात्योंने सुयराज निजाम खाँको ही सिंहासन पर विठाया। इन्होंने सिकन्दर लोदी नाम धारण कर दिल्ली सिंहासन पर बैठनेके साथ ही विफदाचारी अपने ज्येष्ठ भ्राता बरबाक के विरुद्ध अस्त्रधारण किया और अन्तमें उन्हें जीतपुरके शासनकर्तृत्व पदसे ही उतार दिया। मालवा, बुन्देलखण्ड आदि स्थानोंके हिन्दूराजगण इनके हाथसे निगृहीत हुए थे। १५१० ई०में इनकी मृत्यु होने पर उनके पुत्र इम्राहम लोदी राजा हुए। इनका भ्रातृविरोध और इनके पिताका हिन्दू-विरोध इतिहासमें अनुत्प्रेष्य है।

इनके राजतयकालमें विहारके शासनकर्ता बहादुरगंगा लोदीको और पञ्जाब-पति दौलतखाँ लोदीने दिल्लीके अधीनताप्राप्तके तोड़ डाला। दौलतखाँके सादर आमन्त्रणसे मुगलसम्राट् बबरने सेनासहित काबुलसे आ कर पानीपतके रणक्षेत्रमें (१५२६ ई०में) इम्राहमको परा-

जित और निहत कर दिल्ली-राजसिंहासन पर अधिकार किया। इम्राहमके पतनके बादमें ही पटानवंशके निन्दुर अत्याचार भारतसे लोप हो गये थे।

पानीपतका युद्ध समाप्त होने पर, मुगलोंकी सीमाय लक्ष्मी भारत-सिंहासन पर अधिष्ठित हुई। यहां पर मुगलराजवंशके अधिष्ठानके पूर्वमें पटानशासनसे प्रपीड़ित हो कर जो सब मुसलमानवंश दाक्षिणात्यमें प्रतिष्ठा प्राप्त कर स्वाधीन भावसे शासन कर रहे थे उनका भी संक्षिप्त परिचय दिया जाता है।

महम्मद तुगलकका कठोर अत्याचार ही पटान-साम्राज्यकी अवनतिका मूल कारण है। उनके बादके पचास वर्षोंमें पटान-राजवंशका सम्पूर्णतः अन्धपतन हुआ था। इस पतनके साथ साथ कई जगह मुसलमान राज्यका अशुद्ध्य हुआ था। जिन हिंदू और मुसलमानोंने पटानोंकी अधीनता स्वीकार की थी, वे सभी राज कर देनेके लिए बाध्य थे; परंतु अत्यान्व सभी विषयोंमें वे स्वाधीनभावसे कार्य करते थे।

वे सब मुसलमान शासनकालगण समय समय पर हिंदू कमचारियों पर विश्वास स्थापन कर राजकर्म सम्पन्न करते थे, किन्तु जहां मुन्दाओंका प्रभाव था, वहीं पर हिंदूगण विशेषरूपसे निगृहीत होते थे। इन विद्वेषी म्लेच्छोंके उपद्रवोंसे काशी और पुरीधामके अतिरिक्त कुक्षेत्र, प्रभास, वृन्दावन अयोध्या और गुजरातप्रदेशके नाना तोषक्षेत्र और मन्दिर आदि नष्ट हुए थे, तथा उनके स्थानमें मसजिद् बरगाह आदि बनाई गई थीं। इन निग्रहके समयमें अनेक तैली, जुलाहा, फोरी, पटवा, निकारी, पंजारी और पायताय विभिन्न जातियां इसलाम धर्ममें दीक्षित हो गई थीं। हिन्दूजातिके अभावके कारण धर्म लोप होता देख ब्राह्मणोंने उस समय सामाजिक और पारिवारिक विधिनियम संस्कारके लिए स्मृतिसंश्लेष करके हिंदूधर्मकी रक्षार्थ बहुत कोशिशें की थीं। यही कारण है कि, हिंदूधर्मद्वेषी मुसलमानोंके प्राधान्यकालमें भी हम माध्याचार्य, विध्वंशक भट्ट, अष्टेश्वर, याचस्पति मिश्र, आचार्य नृसामिण, प्रतापचन्द्र, रघुनन्दन और कमलाकर आदिकी हिंदूधर्मकी रक्षामें तत्पर पाते हैं।

पटान संघर्षके विरोध आन्दोलनमें हिन्दूसामाज्य

एक विशेष परिवर्तन हो गया था। मुसलमानोंको एकेश्वर उपासनाका अनुकरण कर हिंदू भी एकेश्वरवादी धर्म प्रवर्तनमें संलग्न हुए थे। ईसासे पूर्वकी ५वीं और ६ठी शताब्दीमें जैसे जैन और बौद्धोंके प्रादुर्भावके समय ब्राह्मण, भिक्षु और आचार्योंके हाथसे धर्मविस्तारका मार्ग खुला था, ईसाको १५वीं या १६वीं शताब्दीमें भी उसी प्रकार ब्राह्मणोंके सिवा साधु संन्यासियोंके वलनसे धर्मसम्प्रदायका प्रचार हुआ था। पूर्वोक्त समयमें पालि और मागधी आदि भाषाओंमें धर्म ग्रन्थ रचे गये थे, इस समयमें भी उसी प्रकार चैतन्य द्वारा बंगला, नानकसे पंजाब, कबोरसे हिन्दो और तुकाराम द्वारा महाराष्ट्र भाषामें नाना ग्रन्थ प्रचारित हुए थे।

एक तरफ जैसे धर्म विप्लवसे भारतमें विभिन्न धर्म सम्प्रदायोंके समावेशके कारण भारतीय हिन्दुओंका धर्म-प्राण उत्तेजित हुआ था, वैसी ही दूसरी तरफ राष्ट्र-विप्लवके कारण भारतके नाना स्थानोंके खण्डराज्योंके अपना अपना स्वाधीन शासन विस्तार भी किया था। इससे दक्षिणात्यमें कई हिंदू राज्य स्थापित होने पर भी मुसलमानोंके हिंदू-विप्लवसे देशको नष्ट करनेवाले महान् अभिन्नूल हुए थे।

महम्मद तुगलककी शासनविश्रुद्धालसे सुवर्णप्राग और गौड़के शासनकर्त्ता विद्रोही हो गये। अन्तमें गौड़ेश्वर सामसुद्दीन समग्र बङ्गाल अधिकार कर स्वाधीनभावसे राज्य करते रहे। फिरोज तुगलक इन्हीं दमन न कर सकनेके कारण १३५७में ये स्वाधीन राजा समके गये। इसके बाद दिनाजपुरके हिंदू राजा गणेश (कंस) सामसुद्दीनके पीतको मार कर १४०५ ई०में सिंहासन पर बैठे। उनके वंशधरोंने लगभग ४० वर्ष राज्य किया। १४४५ ई०में उनके वंशधरको राजाच्युत कर पुनः सामसुद्दीनके वंशधर इल्यासशाही राजाओंने ४२ वर्ष तक राजा किया। उनके राजत्वके शेष समयमें खोजा और हवसियोंका विप्लव हुआ था। हवसी सरदार फिरोज पुरावोंने (१४६१-६३ ई०में) विशेष दक्षताके साथ राजकार्य सम्हाला था। उनके पुत्रको राजाच्युतका मुत्तप करने हवसी-सिंहासन अधिकार किया। परन्तु अमलतोंने १४६६ ई०में पड़पान्त करके उन्हें मार डाला

और खजोर सैयद शरीफको सिंहासन प्रदान किया।

मन्त्रि प्रधान 'अलाउद्दीन हुसैनशाह' नाम धारण कर बङ्गालका शासन करते रहे। १४६४ ई०में उन्होंने खोजा हवसियोंको राजासे बहिष्कृत कर दिया। बालकाल में सुबुद्धिर्वा नामक एक कायस्थ राजकर्मचारिके अधीन कार्य करने समय वे हिन्दुओंके सौजन्यसे विशेष संतुष्ट थे। हिन्दुओंके प्रति श्रद्धा परवश हो कर उन्होंने रूप और सनातन नामक दो धार्मिक हिंदू प्रवरोको राजाकार्यमें नियुक्त किया था। उनके पुत्र नसरत शाह और महमूद शाहके राजाके समय १५३६ ई०में महमूदको पराजित कर शेरशाह बङ्गालके सुलतान बन गये। उनके वंशीयगण दिल्लीसे भगाये जानेके बाद सामर्थ्य होन हो गये। १५६३ ई०में करानीवंशके सुलेमानने उनसे बङ्गालका सिंहासन छोन लिया।

सुलेमानके हिंदूधर्मत्यागी प्रसिद्ध सेनापति काला-पहाड़ने १५६५ ई०में मुकुन्ददेवको पराजित और जगन्नाथमूर्त्तिसे जडा कर बङ्गालमें आधिपत्य विस्तार किया। १५७२ ई०में सुलेमानकी मृत्यु होने पर उनके भाई दाउद खाँको बङ्गालका सिंहासनप्राप्त हुआ। उनके साथ मुगल-सम्राट् अकबर शाहका विरोध उपस्थित होनेसे बङ्गालप्रदेश १५७५ ई०में मुगल-साम्राज्यमें शामिल कर लिया गया।

महम्मद तुगलकके शासनकर्त्ता मालिक उस शर्क (खोजा जहान) ने १३६४ ई०में जौनपुरमें स्वाधीन शासन विस्तार किया। उन्हींके वंशके ६ राजाओंने जौनपुर नगरीको नाना अट्टालिकाओंसे विभूषित किया था। सिकन्दर लोदी द्वारा जौनपुर विध्वस्त होने पर शक्तिवंशका अंत हो गया। जौनपुर देते।

तैमूरलङ्गके भारतक्रमणके समय (१४४३ ई०में) दिल्लीश्वरके सुलतानप्रदेशमें शासनश्रद्धाला स्थापनमें असमर्थ होने पर वहाँके अधिवासियोंने शैब युसुफ नामक एक व्यक्तिको राजा मनोनित किया। १४४५ ई०में लुङ्गशीय जाय गिहदाने उन्हें मार कर सुलतान अधिकार किया। १५३७ तक लुङ्गशीय राजगण यहाँ राजा करने रहे। उसके बाद सिंधुप्रदेशके शासनकर्त्ता शाह हुसैन अरचुनने

जय किया। सम्राट् अकबर शाहने अरघुन-राजाको अपने शासनाधीन किया था। हुगलान देखो।

गुजरातके शासनकर्ता फरहान्-उल मुल्क हिन्दुओंका पक्ष ले कर हिन्दू-मन्दिरादि निर्माण करा रहे हैं, मुन कर दिल्लीधरने १३६१ ई०में जाफर नामके एक विधर्मी राजपूतको शासनकर्ता नियुक्त कर गुजरात भेजा था। १०३६ ई०में महमूद द्वारा विध्वस्त सोमनाथ-मन्दिर भीमदेव द्वारा पुनः संस्कृत होने पर भी जाफरने उसे फिर तुड़वा दिया था। साथ ही अन्यान्य मन्दिर तथा तीर्थक्षेत्र भी जाफर द्वारा अविलित हुए थे। १३६६ ई०में जाफरने सुलतान मुजफ्फर शाह नाम प्रहण कर राजा शासन किया। उनको मृत्युके बाद उनके वंशधर अहमदने (१४१२ ई०में) अनहिलपत्तनमे राजधानी उठा कर अहमदाबादमें स्थापित की। मालवाके राजा हुसङ्ग शाह और खानदेशके फरुकी राजगण उनसे पराजित हुए थे। उनके वंशधर महमूद विगाडाने जनागढ़ और चम्पानगरके हिन्दू सामंत राजा तथा २५ मुजफ्फरने मालवा जय और पुर्तगोजोंके समुद्रके बीच पराजित किया था।

१५२६ ई०में बहादुरशाहने सिंहासन पर बैठनेके साथ ही मालवा पर चढ़ाई की। १५३७ ई०में मालवा राज्य उनके अधिकारमें आया था। चित्तोरके राणा संग्रामसिंहके मालवाको सहायता पृथ्वानेके कारण १५२६ ई०में उन्होंने चित्तोर अयोध किया था। संग्राम-सिंहके मृत्युके बाद इनके चित्तोर अधिकार करने पर राजपूत-कुलललनाय' चिनामें जल कर रुयग सिंधारो। इस अयोधके समय भा तमें पहले पहल तोपका व्यवहार हुआ था।

राणा संग्रामसिंहको विधवा पत्नी राणा कर्णावतीने वैद-निर्घातनके घन हो मुगल-सम्राट् हुमायूँको जरण ली और 'रावो' भज कर उन्हें मित्रताधूममें आयत किया। तदनुसार हुमायूँने चित्तोर अधिकार कर गुजरात आक्रमण किया, जिससे बहादुरशाह दौड छोपकी भाग गये। पुर्तगाज हांग बट्टन द्वितीये वाणिज्यके लिए दौडछोपकी आकांक्षा कर रहे थे। हुमायूँ द्वारा विताडित बहादुरशाहने जब पुर्तगोजोंका आश्रय प्रहण किया, तब पुर्तगोजोंने उन्हें द्राउ छोड़ देनेके लिए वाध्य

किया। उसके बाद शेरशाहके विध्वंसमें हुमायूँ चिनाडित होने पर वे स्वाधीन हो कर राज्य-शासन करने रहे। जब वे पुर्तगोजोंके साथ सन्धि-सङ्ग करनेका प्रयास करने लगे, तब पुर्तगोज नेताओंने उन्हें निमन्त्रण दे कर बुलाया और वहां उनकी हत्या कर डाली। गुजरातके शेर राजा ३५ मुजफ्फर अपना राज्य सम्राट् अकबरशाहको समर्पित कर १५७२ ई०में वे दिल्लीके मन्त्री बन गये। अन्तमें उन्होंने दिल्लीसे भागनेकी चेष्टा की, किंतु सफलता न मिलनेसे अन्तिम जीवन उन्होंने काठियावाड़के हिन्दू राजा रायसिंहके आश्रयमें बिताया।  
गुर्जर देखो।

दिल्लीवर छाँ गोरी नामक एक व्यक्ति फिरोज तुगलकके अमात्य थे, उन्हें मालवाका शासनभार प्राप्त हुआ था। उन्होंने १४०१ ई०में अपनी स्वाधीनता घोषित कर माण्डूनगरमें राजधानी कायम की थी। हांसङ्गावाद्के स्थापयिता उनके पुत्र होसङ्ग विशेष रणदक्ष थे। उनकी मृत्युके बाद महमूदने खिलजी मालव जय करनेके बाद अजमेर, करौली और रणस्तम्भपुर अधिकार किया। ३५ खिलजोगणके समयसे मालवाको बहुत कुछ श्रेष्ठि हो गई थी। १५१२ ई०में नसिरउद्दीन खिलजीके राज्यमें संगठित राष्ट्र विद्रोहके समय मालवाके राजा २५ महमूद मेदिनीराय नामके एक राजपूत सरदारके परामर्शसे चलने थे। मुसलमानोंने मेदिनीरायको राजासे भगानेके लिए गुर्जरपति २५ मुजफ्फरको जरण ली। इसी मूलसे चित्तोरके राजपूतोंके साथ गुजरातके मुसलमानोंका युद्ध आरम्भ हुआ। युद्धमें शालत और मन्दी हो कर सुलतान महमूद मर्हूम लिये गये। उनकी मृत्युके बाद उनके पुत्रने गुर्जरपति बहादुरशाहसे अपने दुःखकी बात कही, १५३६ ई०में उन्होंने मालवा पर अधिकार किया था।

मालवा देखो।

१३१६ ई०में पानदेवाके फरगवी राजा दिल्लीधरके अधीनतापानकी तोह कर स्वाधीनभावने राज्यशासन करने लगे। युद्धानुसारमें उनही राजधानी थी। १५३६ ई०में मुगलोंने उस पर अधिकार जमाया।

तानदेव और फरगवी देखो।

१३८७ ई०में जाफरखाना नामक एक सेनापतिने दिल्ली-सैन्यको पराजित कर दक्षिणात्यमें अपनी स्वाधीनता फैलाई। बाल्यकालमें ये गङ्ग नामक एक ब्राह्मणके दास थे। ब्राह्मणकी उक्तिके अनुसार ये राजा हुए थे। इस कारण उस ब्राह्मणके सदैव व्यवहार और भविष्यन् उन्नति-वचनकी सार्थकता देल कर कृतज्ञतावश उन्होंने 'हुसेन गङ्ग बाह्यणी' नाम ग्रहण कर अपने प्रभुके पवित्र नामसे बाह्यणी राजा स्थापन किया था। ईसाकी १५वीं शताब्दीके मध्यभागमें बाह्यणीराज्य समृद्धिकी चरम सीमा तक पहुंच चुका था। उस समय दक्षिणमें तुर्कमन, पश्चिममें गोआ, उत्तरमें मालवा और उड्डिया तथा पूर्वमें मछलीपत्तन तक दक्षिणाङ्क उनके करतलगत था। ओरङ्गल और विजयनगरके हिंदू राजाओं और मुसलमानोंके साम्प्रदायिक विरोधसे बाह्यणी राजसत्त्वसकी प्राप्त हुआ था। बाह्यणीराजवंश, कूल्यग और विदर देखो।

बाह्यणीराज्यके अग्रपतनके बाद दक्षिणात्यमें पांच स्वाधीन मुसलमान राजोंका अभ्युत्थान हुआ था।

(१) आदिलशाहीवंश—१४८६ ई०में युसुफ आदिल शाहने इस राजकी स्थापना की थी। बीजापुरमें उनकी राजधानी थी। १६८८ ई०में मुगल-सम्राट् औरङ्गजेबने इस पर अधिकार कर लिया।

(२) कुतबशाहीवंश—१५१२ ई०में कुतबउल मुल्कने विदरकी अधीनताको अमान्य कर गोलकुण्डामें स्वतन्त्र राजपाट स्थापित किया था। बादमें हैद्राबादनगरमें राजधानी स्थानान्तरित हुई थी। ओरङ्गल, द्राचिड और कर्णाटप्रदेशके हिन्दू सामन्त राजाओंने कुतबशाहीकी अधीनता स्वीकार की थी। १६८८ ई०में यह मुगलोंके अधीन हो गया।

(३) निजामशाही वंश—बराबर-घासी इस्लाम धर्मावलम्बी ब्राह्मणाधम निजाम उल् मुल्क महमूद गवान द्वारा बुन्देलके शासनकर्ता नियुक्त हुए। उनके पुत्र अहमदने १४६० ई०में अहमदनगरमें राजा स्थापन कर अपनेको स्वाधीन राजा घोषित किया। १६३६ ई०में ग्राहजहाँने इसे मुगल साम्राज्यमें मिला लिया।

(४) इमादशाही वंश—हिन्दूकुलाधम इस्लामधर्मावलम्बी फतेहउल्ला-इमादशाह महमूद गवान द्वारा बरार प्रदेशके, शासनकर्ता नियुक्त हुए थे। उन्होंने १४८६ ई०में

गाविलगढ़में और पीछे इलिचपुरमें राजधानी स्थापित की थी। १५७१ ई०में यह अहमदनगरके निजामशाही राज्यान्तर्भुक्त हो गया।

(५) बरिदशाही-वंश—बाह्यणीराज महमूदके मन्त्रो कासिमवरिद (१४६२ ई०) इस वंशके प्रतिष्ठता थे। उनके पुत्र अमीर बरिदको १५२७ ई०में बिदर राजा प्राप्त हुआ था। उनके वंशधर अलीवरिदने 'शाह' उपाधि धारण कर स्वाधीनभावसे राजशासन किया था। इस वंशके राजाओंकी शासनविश्रुद्धलताके कारण बिदर-राज्य शीघ्र ही बीजापुरके अधीन चला गया था। १६०६ ई० तक बरिदशाहीवंश बिदरमें ही था। १६५७ ई०को यह मुगलोंके हाथ लगा।

पटान-साम्राज्य शक्तिके अयसन्न होने पर, जिस समय उनमेंके मुसलमान शासनकर्तागण विद्रोही हो कर अपनी अपनी स्वाधीनताके लिए लड़-मर रहे थे, ठीक उसी समय विजयनगर, उड्डिया, बघेलखण्ड, मेवाड़ आदि स्थानोंके राजपूतगण प्रभूत शक्ति-संचयसे बलवान हो कर मुसलमानोंका सामना करनेके लिए अग्रसर दृढ़ रहे थे। उस समय दक्षिणात्य, उड्डिया और राजपूतानाके वीरपुत्रगण अपने बलवीर्यके प्रतापसे स्वदेश और स्वजातिके गौरवको रक्षामें तत्पर थे। हिन्दुओंने उन्नतमस्तक और वीरदपसे मुसलमान शासनकर्ताओंको विपर्यस्त कर दिया था, इतिहासमें इसके यथेष्ट प्रमाण पाये जाते हैं। उसी हिन्दू और मुसलमानोंके घोर विप्लवके समय पुर्तगालीने भारतमें पदार्पण किया था।

विजयनगर राज्य—अलाउद्दीनके सेनापति मालिक काफूर द्वारा द्वारसमुद्रके होयशल बल्लालोंके परास्त होने पर, मुसलमान शासनकर्ताओंके उपद्रवसे ममप्र दक्षिणात्य शासनश्रुद्धलतासे शून्य हो गया था। उस समय विजयनगरमें एक स्वाधीन हिन्दू राजवंशका अभ्युत्थान हुआ। प्रतिष्ठता बुद्धययने विजयनगरके सिंहासन पर अपना अधिकार किया। उनके पुत्र सङ्गम तथा पीत हनिहर और वीर बुकरायने दोईएड प्रतापसे १३३६से १३७६ ई० तक दक्षिणात्यका शासन किया। उनके अधिकार कालमें वैदिक धर्मकी पुनः प्रतिष्ठा हुई थी। सुप्रसिद्ध वेदभाष्य श्रीर दर्शनसंग्रहकार माधवा-



चार्य वीर बुकराणके प्रधान मन्त्री थे। गोआके मुसलमानों और बाल्शणीघंजके राजाधोने इनके सामने पराजय स्वीकार किया था। १४४४ ई०में समरकन्द-राजदूत भावदार रजक विजयनगरकी समृद्धिको देखकर दंग रह गये थे। २य देवरायकी शासन-कालके दोपसे मन्त्रिघण परस्पर विद्रोही हो गये और मन्त्रिघर नरसिंहने सिंहासन अधिकार कर लिया। समप्र दाक्षिणात्यने नरसिंहके पुत्र कृष्णदेवरायकी (१५०६-१५३० ई०) अधीनता स्वीकार कर ली थी। उनके पुत्र अच्युतरायने १५३०से १५४२ ई० तक राजा किया। उनके सदाशिव, रामराज और तिरुमल नामके तीन पुत्र थे। इन तीनों पुत्रोंमें वीरवान् रामराजने ही मुसलमानोंकी प्रति-योगिता की थी। १५६५ ई०में दाक्षिणात्यके समस्त मुसलमान राजा एक साथ विजयनगरके विरुद्ध खड़े हुए। तालिकोटके युद्धमें रामराज मारे गये और उनकी राजधानी तहस-नहस कर दी गई। मन्दाजके वेङ्करी-विभागमें तुङ्गभद्रा नदीके दक्षिणी-किनारे पर विजयनगरके ध्वंसावशेष अब भी देखनेमें आता है।

रामराजके अधःपतनके बाद सदाशिव पेद्राकोएडामें भाई तिरुमल्लके पास गये। तिरुमल्लके पुत्र वेङ्कटपतिने वहांसे चल कर चन्द्रागिरिमें राजधानी स्थापित की। उनके वंशमें ४वां वेङ्कटपतिसे १६३६ ई०में भद्रेश शणिकोने मन्दाजनगरमें स्थान प्राप्त किया था। भानगुण्डिके वृत्तिभोगी सरदार नरसिंह राजवंशमें ही उत्पन्न हुए थे। विजयनगर देगा।

गंगा या रीगाराज।—गुज प्रदेशमें चालुक्य प्रतिक्रिया प्राप्त होने पर, बघेलारोंने उस देशमें शासन किया था। उस वंशकी एकतम जाणा बघेलारण्ट (सुन्देलण्ट) में आ कर राजा करने लगी। गोंड और चैदिसैनाको सहायतासे उन्होंने मध्यभारतमें प्रभुत्व विस्तार किया था। सिकन्दर लोदी, बाबर और अकबरजहाद बघेलारोंका विशेष समादर करते थे। अकबरके आश्रित प्रसिद्ध गायक मियां तातसैने बघेलाराज रामचन्द्रदेवकी सभाको आलोकित किया था। रीगां नगरमें उस वंशके सरदार अब भी राजा कर रहे हैं। सुन्देलण्ट और रीगां गंगा देगा देगा।

मराठारण्य।—राजपूतसामन्त राजाधोनेसँ मियाडके

राजवंशने कभी भी मुसलमानोंको ध्वनति स्वीकार नहीं की। बप्पारावल, समरसिंह आदिने पटलेमें ही मुसलमानोंके विरुद्ध अस्वधारण किया था। अलाउद्दीनके चित्तोर आक्रमण और पन्नोके चितारोहणने इतिहासमें अमरत्व प्राप्त किया है। राजपूत कुलतिलक हमीरने मुसलमानोंसे चित्तोर अधिकार किया था। उनके वंशके महाराणा कुम्भ और संभामसिंह मुसलमानोंके विरुद्ध अस्व-धारण करनेमें समर्थ हुए थे। मुसलमानोंके गया अधिकार करने पर संभाम द्वारा परिचालित राजपूत सेना वहां भेजी गई थी। उन्होंने बाबरके सहयोगी हो कर इब्राहिम लोदीके विपक्षमें युद्ध किया था। बाबरको भारत-साम्राज्य-स्थापनके प्रयासों देण कर १५२७ ई०में-वे फतेपुर-सिकरीमें मुगल-सेनाके सम्मुखो ग हुए। इस भीषण-युद्धमें राजपूतगण हत-वत्न हो गये थे। शेरशाह द्वारा हुमायूँके पराजित होने पर बहादुरशाहने चित्तोर आक्रमण कर उसे ध्वंस कर दिया। उसके बाद उदयपुरमें राजपूत-राजधानी स्थापित हुई। उसके बाद दलदीघाट-विजयी महाराणा प्रतापसिंह अकबरशाहको प्रतिद्वन्द्विता कर अक्षय यज्ञ-रथाति छोड़ गये हैं। प्रतापसिंह देला।

उडिया-राज्य।—दिरयात गङ्गवर्णीय राजकुन्दर्गोंका प्राधान्य यथारथानमें लिखा जा चुका है। कलिङ्गके अधिपति राजराजके पुत्र चौडगुण्देवने उकल विजय किया। उनके वंशके ५म राजा अनङ्ग भोमदेवने उग्राश-मन्दिरका संस्कार कराया। अलाउद्दीन खिलजीके राजत्वकालमें राजा नरसिंहदेवने बङ्गालके मुसलमानोंको दिशेदरुपसे निशुण्ठित किया था। प्रयाद है—उस समय हुगली जिलेके पवित्र तीर्थ त्रिषेणो घाट तक उडिया राजाकी सीमा विस्तृत थी। उक्त वंशमें राजा प्रतापचन्द्रदेव चैतन्य महाप्रभुके भक्तिधर्मको उपासनामें मग्न हुए थे। प्रतापचन्द्रके मृत्युके बाद उडियामें विद्रोह उदरिष्ठ हुआ। तेलिङ्गनगर निवासियोंने इन मीके पर मुकुन्ददेवकी राजासन प्रदान किया। राजवंश-परिवर्तनके साथ उडियाकी राजसन्धिका प्राप्त हो चुका था। १५६५ ई०में कालापरहाइने दुर्गल उडियापतिकी पराजित कर उनका राज्य बङ्गालमें मिला लिया था।

पहले ही लिखा जा चुका है कि, पठानराजवंशके अधःपतनके प्राक्कालमें पुर्तगोज नाविक भास्कोदगमा १४८८ ई०में उच्चमाग्रा अन्तरीपमें परिभ्रमण कर कालिकटमें सामरी-राजके समक्ष उपस्थित हुए थे। उस समय अरबदेशीय वणिक् गण भारतमें वाणिज्य-विस्तार कर रहे थे। उन लोगोंने पुर्तगोज समुद्रयात्रके प्रति ईर्ष्यान्वित हो कर मुसलमान-शासनकर्त्ताओंको उत्तेजित करनेकी कोशिशें कीं। अरबियोंकी वाणिज्यका घोर शत्रु जान कर पुर्तगोजोंने अपने देशसे नी-सेना बुला ली। १५०० ई०में बीजापुर, गुजरात और इजिप्टकी सम्मिलित मुसलमान नौ सेना पुर्तगोजोंसे पराजित हो गई। गोआ आदि स्थानोंमें उपनिवेश स्थापन और भारतीय-द्वीपसुओंमें वाणिज्य प्रभावका विस्तार आदि ऐतिहासिक घटनाएँ यथास्थानमें लिखी गई हैं।

पुर्तगोज देखो।

चङ्गेजखाँ और तैमूरकुलतिलक बाबरशाहने, दौलतखाँ लोदीके आमन्त्रणसे भारतमें आ कर १५२६ ई०में प्राचीनपत्रके युद्धमें इब्राहिम लोदीकी परास्त कर पश्चिम-भारत अधिकार किया। जौनपुरमें दूरियाब खाँ लोहानी स्वाधीनता-प्रायासी हो कर जब अफगान राजा स्थापन करनेके लिए बन्दपरिकर हुए, तब बाबरशाहने उन्हें परास्त किया। बादमें उन्होंने बनारस और पटना अधिकार किया। १५२७ ई० में उन्होंने राणा संग्रामसिंहकी फतेपुरसिकरीके युद्धमें दहलत मुगलसेनाका क्षय कर हतबल कर दिया था। बाबरशाह देखो।

मुगल राजवंश।—बाबरके पुत्र हुमायूँने पञ्जाब और अधोध्य प्रदेशको मुगल-साम्राज्यमें मिला लिया। मेवाड़की रानी कर्णावतीको प्रार्थनासे उन्होंने गुर्जर-पति बहादुरशाहको परास्त किया था। इस समय दिल्ली-पूर्वदेशमें शेर खाँ नामक शूरवीरणीय एक अफगान सरदार राज्य कर रहे थे। सिकन्दर लोदीके पुत्र महमूद लोदीके अधीन शेर खाँ काम करते थे। महमूदको पराजित कर बाबरशाहने दूरियाब खाँके पुत्र बालक जलालको राज-प्रतिनिधि नियुक्त किया। दादूखाँके ऊपर राज्य परिचालनका भार सौंपा गया। शेरखाँने दादूकी वशीभूत कर विहार, रोहता और सुनार

दुर्ग पर आधिपत्य प्राप्त किया। शेरखाँके भयसे डर कर बङ्गालके राजा महमूदने जब हुमायूँसे आश्रयकी प्रार्थना की, तो हुमायूँने सेना सहित आ कर पटना अधिकार कर लिया। वर्षा आने पर शेरखाँने मुगल-सेनाको पराजित कर विहार, बनारस, चुनार, कन्नौज, जौनपुर आदि स्थान जीत लिये। हुमायूँके आगराकी तरफ भागने पर वफसरके रणक्षेत्रमें दोनों पक्षोंमें घोरतर युद्ध हुआ: इस युद्धमें हुमायूँने बङ्गालमें कूद कर भागनेकी चेष्टा की। पानीमें हूकने पर एक मिस्तीने उनकी रक्षा की थी।

आगरा पहुंच कर हुमायूँ युद्धका आयोजन करने लगे। कन्नौजके पास फिर मुगल और पठानोंमें युद्ध हुआ। इस युद्धमें पराजित हो कर हुमायूँ सपरिवार भारत छोड़नेके लिए वाध्य हुए थे। उनके भाई कामरानने पञ्जाब देकर शेरखाँकी राजावृष्णा नियुक्त की। शेरखाँद्वारा भारतमें पुनः पठान राजवंशकी प्रतिष्ठा हुई।

पठान राजवंश।—१५४० ई०में शेरशाह नाम धारण कर शेर खाने दिल्लीके सिंहासन पर उपवेशन किया। पश्चात्य लोगोंके आक्रमणसे अपने राजकी रक्षाके अभिप्रायसे उन्होंने रोहतास दुर्ग बनवाया। १५४१ ई०में मालवा प्रदेशको वशीभूत कर उन्होंने विश्वासपातकता पूर्वक रावसिंहके दुर्ग पर कब्जा किया। मारवाड़ राजा अधिकार करनेके बाद उन्होंने कालङ्गर अवरोध किया। कालङ्गरके राजा कीर्तिसिंह असीम साहससे शेरशाहके साथ युद्ध करने लगे। १४४५ ई०में अवरोध के समय जनुपक्षीय एक जलता हुआ गोला शेरशाहके बाहूद्वानेमें आ गिरा जिससे उनकी मृत्यु हो गई। शेरशाहके पुत्र सलीमशाहके द्वारा कालङ्गर अधिकृत होने पर चन्देल-राजवंशका अवसान हो गया। १५५३ ई० तक निर्विवाद राज्य करनेके बाद सलीमके परलोक सिंघारने पर उनके साले सुबारिज खाने अपने भ्रातृजि फिरोजखाँको अन्तःपुरमें ले जा कर तिल्लुरमावसे उसकी हत्या कर डाली और स्वयं 'महमूदशाह' द्वारा नाम रख कर सिंहासन पर बैठे। साधारण लोग इन्हें 'आदिल' नामसे ही जानते थे। दिल्लीमें हिन्दू नामका एक हिन्दू राजा भी था। राज चरित कल्पित और असनासक

राजा का विशेष प्रियपात्र हो गया। क्रमशः यही ध्वनि राज्यका सर्वोच्च और राजा खादिल वा महम्मदशाहका प्रधान परामर्शदाता हो गया था। हिम्मेने अपने बुद्धिबलसे साम्राज्य-शासनमें विशेष पारदर्शिता दिव्यलाई थी।

राजाके व्यापारिकसे राजकोष शून्य हो गया, जिसमें अमानियोंकी भूसम्पत्ति हरणकी आकांक्षा बलवती हो उठी। इस कारण राजाके घोरतर चिन्तङ्गलता उपस्थित हो गई। चुनार-विद्रोहसे अवकाश पा कर इब्राहिम खां नामक राजाके किसी निकटवर्तीवने आगरा और दिल्ली अधिकार कर लिया। इधर राजाके साले सिकन्दरशाहने पञ्जाब प्रदेशमें अपना अधिकार जमा लिया। सिकन्दरके द्वारा पराजित हो कर इब्राहिम राजधानी छोड़ भाग गये। मार्गमें कालपीके पास चुनारसे लौटते हुए हिम्मेके साथ उनकी भेंट हुई। हिम्मेने पीछा कर उन्हें यैना दुर्गमें अवरुद्ध कर लिया। बङ्गालके राजा महम्मदशाह मूरके विद्रोह-दमनके लिए हिम्मेके साथ अवरोध छोड़नेके लिए बाध्य हुए। बङ्गालमें उन्होंने विशेष सुव्यवस्था की थी।

पूरवमें हिम्मेकी युद्ध कार्यमें लगा देख हुमायूँ पञ्जाब पर आक्रमण कर बैठे। सिकन्दरशाहके पराजित होने पर, १५५५ ई०में आगरा और दिल्ली मुगलोंके हाथ लगा। छह मास दिल्लीमें रहनेके बाद, संग-मरमरकी सौद्रीसे गिर कर हुमायूँकी मृत्यु हो गई। हुमायूँकी मृत्युका संवाद सुन कर हिम्मेने बड़े उत्साहके साथ आगरा अधिकार कर मुगल सेनाको दिल्लीसे भगा दिया और स्वयं महाराजाधिराज विक्रमादित्य नाम धारण-पूर्वक दिल्लीके सिंहासन पर उपविष्ट हुए।

इस समय चाँदहवर्षके शुमार अकबर अपने अविभावक यैरामगानके साथ पञ्जाबमें पास कर रहे थे। हिम्मे उनके दमनार्थ पञ्जाबकी ओर अग्रसर हुए। पानीपतमें दोनोंमें मोर संघर्ष हुआ। १५५६ ई०में पानीपतके २वें युद्धमें हिम्मे की हार हो गयी और अकबरके सामने येग हुए। यैरामगाने अकबरके समक्ष ही गिरजोड़ कर मुगल कालक दूर किया। जिस समय मुगलोंके हाथसे हिम्मे मारे गये, उस समय खादिल चुनारमें थे। बङ्गालके विद्रोहदमन कार्यमें भादिलकी मृत्यु हुई और साथ ही शूर-यंत्रका लोप हो गया।

मुगलवंश।—कलौजके युद्धमें शेरशाह द्वारा पराजित हो कर हुमायूँ जोधपुरकी तरफ भागे, पर यहाँ आशर न मिलनेसे उन्हें फिर अमरकोटके राजाके समोप जाना पड़ा। वहाँ १५४२ ई०में बालक अकबरका जन्म हुआ। अमरकोटके राणाप्रसादके साथ विरोध उपस्थित होनेसे हुमायूँकी फारस जाना पड़ा। जाते समय ये अपने भई कम्मरानके होस्ट स्थित शासनकर्ता हिन्द्याकके पास अपने प्रिय पुत्र अकबरको छोड़ गये। बाल्यकालमें अकबरने अपने चचा कम्मरानके हाथसे दो बार निकृति पाई थी। पानीपतके युद्धके बाद, अकबर दिल्ली और आगराके अधीश्वर तो हो गये, पर वास्तवमें यैरामगान पर ही राज्य-शासनका भार रहा। यैरामगान बड़े ही दुर्दान्त थे। उनको कठोर शासनसे समी तस्त हो गये। स्वयं अकबरशाह मातासे मिलनेका बहाना कर दिल्ली पहुँचे और यैरामगानकी अर्धानता त्याग कर १५६० ई०में ये स्वयं राज-शासन करने लगे। इसके बाद मरना जाते समय गुजरातमें यैरामगान गुप्तचरों द्वारा मारे गये।

१५५६ ई०में हुमायूँकी अपघात मृत्युके बाद, राजासनमें उपविष्ट हो कर अकबरशाहने १६०५ ई० तक भारत साम्राज्यका शासन किया था। पिताकी मृत्युके समय आप पञ्जाबके अफगान विद्रोहके दमनमें फँसे हुए थे। राजप्राधिकार प्राप्त करनेके बाद ७ वर्ष तक लगातार युद्ध करके इन्होंने अपने राज-सिंहासनकी हृदय सम्पादन की थी। उस समय जौनपुर, मालवा, गढ़मण्डल आदि स्थान उनके शासनाधीन हुए थे। पहले दिल्ली और आगराके पार्श्वस्थ स्थानोंकी अपने अधिकारमें करने बाद उन्होंने १५५८ ई०में चित्तौर और अजमेर, १५७० ई०में अयोध्या और म्वालिपर, १५७२ में गुजरात और बङ्गाल, १५७८ में उडुप्या, १५८१ में काबुल, १५८६ में काश्मीर, १५९२ में सिन्धु और १५९४ ई०में फान्दाहार राजा जय किया था। उनके जीवनकालमें दक्षिणार्ध-विजयमें अनिर्वाहित हुआ था। १५९५ ई०में अहमदनगर अयोध्याके समय चाँदबीबीके साथ इनका घोरतर युद्ध हुआ। चाँदबीबीने अहमदनगरकी रक्षाके लिए उन्हें बरारप्रदेश दे दिया। अहमदनगर अयोध्याके बाद उन्होंने म्वाजिद

राज्य पर अधिकार किया। १६०५ ई०में अकबरशाहकी मृत्यु हुई।

राजपूतोंके साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापन और हिन्दुओंके प्रति सदैव व्यवहार ही उनकी साम्राज्य-भित्तिके दृष्टीकरणका प्रधान अवलम्बन हुआ था। उनके ४१५ मनसबदारोंमें ५१ हिंदू थे। प्रजाको हितकामनासे उन्होंने जिजिया कर उठा दिया था। टोडरमल्लकी जरीय और राजस्व अवधारण उनके राजत्वकी एक प्रधान घटना थी।

अकबरशाह सिर्फ हिन्दुओंके ही पक्षपाती थे, सो नहीं, जैन, सिख, ईसाई, मुसलमान आदि विभिन्न सम्प्रदायके लोग उनके द्वारा सम्मानित होते थे। प्रसिद्ध धर्म-प्रचारक सेण्टजुभियरके भ्राता ईसाई धर्मके प्रचारार्थ भारतमें आये थे, तो वे भी अकबरशाहके सान्ध्यसम्मिलनमें समर्थ और पूजित हुए थे। आबुलफजलके परामर्शसे और विभिन्न धर्मसम्प्रदायके साथ सामञ्जस्य रखते हुए उन्होंने इलाहीधर्मका प्रचार किया था। विश्वब्रह्माण्डमें मूलस्वरूप सूर्यदेव ही उनके द्वारा प्रवर्तित धर्ममें ईश्वरत्वका प्रधान अवलम्बन हैं—वे ही जगत् प्रकृतिके आधारभूत हैं, सुतरां परब्रह्म रूपमें प्रतिपादित हुए हैं।

वे संस्कृत और फारसी भाषामें विशेष पक्षपाती थे। जो व्यक्ति संस्कृतमें फारसी भाषामें रूपान्तर नहीं कर सकते थे, उनका राजकीय पद पर नियुक्त होना असम्भव था। रामायण, महाभारत, कथासरित्सागर आदि सुललित संस्कृत ग्रन्थ उन्हींके उत्साहसे फारसी भाषामें अनुवादित हुए थे। मियां तानसेनके सङ्गीतालयसे उनकी सभा प्रतिष्ठानित होती थी। अबुलफजलके भाई फैजौने सबसे पहले संस्कृतभाषामें पद्धतशैलीकी शिक्षा प्राप्त की थी।

१६०५ ई०से १६२७ ई० तक अकबरके पुत्र सलीमशाहने जहांगीर नामसे मुगल साम्राज्यका शासन किया। नूरजहांका विवाह, महद्वतका विरोध, इङ्ग्लैण्डके राजवृत सर थमसरोका मुगल-सभामें आगमन और सूरतमें भर्षेजों द्वारा बाणिज्यके लिए कोठी स्थापन तथा पुस्त-गोत्र बणिजों द्वारा अमेरिकासे ताम्रकूटका लाना, ये सब जहांगीरके राजत्वकी विशेष घटनाएँ हैं।

जहांगीर और नूरजहां देखो।

१६२७से १५५८ ई० तक मुगल-सम्राट् शाहजहाने राजत्व किया था। मुगलवंशकी कुञ्जप्रथाके अनुसार ये भी पितृ-विरोधी थे। १६३६ ई०में इन्होंने अहमदनगर जीत कर विद्रोही सेनापति खानिजहान लोदीको काफी सजा दी थी। निजामशाही राज्य-आक्रमणके समय नहाराष्ट्र सेनापति शाहजो (शिवाजीके पिता)ने उनकी विशेष प्रतिद्वन्द्विता की थी। बादमें काबुल और बदाक-सान जीत कर इन्होंने मुगलवंशका गौरव बढ़ा गया। अकबरशाह सुकीर्णसे जिस साम्राज्यभित्तिकी स्थापना कर गये थे, जहांगीरके शासनकालमें उसकी पुष्टि और वृद्धि हुई थी। शाहजहान उसकी सर्वोद्गीनता सम्पादन कर गये। इस समय मुगललोक सौभाग्य-केन्द्र शोष-स्थान तक पहुँच जा चुका था। ताजमहल, मोती-मस-जिद और मथुरासन मुगलगौरवके निदर्शन हैं।

अकबरके यतनातिशयमे लब्ध जो मुगल साम्राज्य धीरे धीरे शाहजहानके समयमें शासन-समुद्दिसे परिवर्तित हुआ था, दुर्घृत्त कुटिल हृदय हिंदूविद्रोही औरङ्गजेवक कठोर शासनके फलसे उसकी अवनतिका सूत्रपात हुआ। हिंदू और मुसलमानोंमें सद्भाव स्थापन कर अकबरशाहने जिस सौख्यतासूत्रका प्रथम किया था, औरङ्गजेवके युद्ध-विपर्ययसे उसका बन्धन शिथिल हो गया। औरङ्गजेव ऐसे विद्रोहरूप वीजका रोपण कर गये कि उस अनर्थ-कारी वीजने मुगल-साम्राज्यका विलोप हो कर दिया।

दाराशिकोह, शाहसुजा, मुराद और औरङ्गजेव, इस प्रकार शाहजहानके चार पुत्र थे। बड़े दाराशिकोह अकबरशाहके धर्मप्रतावलम्ब्यो थे। इन्होंने एक उपनि-पद् प्रथम फारसीभाषामें अनुवादित किया है। ज्येष्ठ पुत्र दाराके गुण और विद्यावतासे संतुष्ट हो कर सम्राट्ने उन्हें ही सिंहासन देनेका निश्चय कर लिया था। औरङ्ग-जेवने १६५८ ई०में आगरा-रणक्षेत्रमें दाराकी पराजित किया। उसके बाद अपने भाई मुराद और वृद्ध पिताको कैद कर उन्होंने शाहसुजाको आक्रान्तमें निर्वासित किया था। १६५६ ई०में दाराशिकोह सिंधुप्रदेशमें पकड़े गये और बादमें औरङ्गजेव द्वारा मरवा दिये गये।

१६५८ ई०में भारत-साम्राज्यके अधीश्वर बन कर औरङ्गजेव प्रबल-प्रतापसे राज्यशासन करने लगे।

उनके अधिकारमें मुगलोंकी सेनायाकि सीमाव्यक्त शीर्षस्थान पर अवस्थित थी, किंतु १७०७ ई०में उनको मृत्युके साथ ही मुगलप्राधान्यका अवनयन हो गया। जिस समय औरङ्गजेब सोमान्त्यक्षीं पार्वत्य राज्योंमें शासन विस्तारके लिए व्यस्त थे, उस समय दिल्ली राजधानीमें सनामी नामक एक हिन्दूसम्राट्यके साथ मुगलोंका घोर विरोध उपस्थित हुआ। किसी मामान्यद्वेषके एक सनामीके साथ एक मुगल-पदातिकका विरोध ही इस संघर्षका कारण था। कई स्वयंयुद्धके बाद सनामी-सम्राट्यकी विजय हुई। अथर्वसे सम्राट्-ने स्वयं मुगल सेनाको उच्छेदित कर दिल्लीके विरोधका दमन किया था। इसके बाद स्वभावजात हिन्दू-विद्वेषसे मुगल-सम्राट् औरङ्गजेबने दिल्लीको अधीनस्थ हिन्दूसेना मालका प्राण-संहार किया। उनके स्त्री पुत्रादि क्रोत-दास रूपमें बिके थे। अनन्तर उन्होंने प्रत्येक दिग्ग पर जिजिया कर लगाया। इसके सिवा दक्षिणात्य-विजय (गोलकुण्डा और बीजापुर-अधिकार) तथा १६८६ ई०में राजपूत-विद्रोह, महाराष्ट्रीय और सिख शक्तिका अभ्यु-त्थान ये भी उनके राज्यके प्रधान घटनाएँ हैं।

औरङ्गजेब देखा।

महाराष्ट्र अभ्युदय।—जो राजपूतगण मुगलोंके चिर-सहाय थे, औरङ्गजेबके विद्वेषवशातः ही उन्होंने मुगल पक्ष छोड़ दिया। मुगलोंके विपक्षमें उदयपुरके राणा राजसिंहके विशेष रण-नेतृत्वका परिधय दे गये हैं। श्वर-दक्षिणात्यमें छत्रपति शिवाजीको छत्रच्छायामें महाराष्ट्र भी विशेष दृशनाके साथ मुगलोंका सामना कर रहे थे। शिवाजी बीजापुर राजके अधीन घाटगिरि दुर्गके अधिनायक थे। उन्होंने साम्य, मैत्री, भेद और दण्डका अथर्वधन-पूर्वक दक्षिणात्यके मुसलमान शासनकर्ताओंको कष्टपुनलियोंकी तरह नचाया था। जिस वानुर्वे और कौशलसे उन्होंने औरङ्गजेबके मनोरथको व्यर्थ किया था, यह महाराष्ट्र इतिहासमें स्पष्टनया लिया है। उनकी वारसत और पुत्रा-आक्रमण तथा प्रतिरिद्विष्टि मुगलों-की राजधानी दिल्लीमें भंग जाना, उनके जीवनकी अद्-भुत घटनाएँ हैं। शिवाजी देखा।

१६८० ई०में शिवाजीकी मृत्यु होने पर उनके पुत्र

शम्भाजीने महाराष्ट्र-रक्षितका संयोजन किया। उन्होंने कई बार मुगल-सेनाको विचर्यस्त किया था। मुघलोंने औरङ्गजेबके उन्हें कौङ्गप्रदेशमें अवरुद्ध कर निश्च करने पर (१६८० ई०) महाराष्ट्र-शक्ति कुछ दिनोंके लिए निमित्त हो गई।

शम्भाजीके शिरच्छेदनके बाद उनके पुत्र शाहू (श्व शिवाजी) राजा हुए। उनके पितृव्य राजाराम राज-कार्यको देव-भाल करने थे। मुगलोंके रायगढ़-दुर्गमें शाहू-को कैद करने पर, राजारामने गिजिदुर्गमें राजोपाधि ग्रहण की। १६६८ ई०में मुगल-सेनापति जुलफिकर खानके गिजि आक्रमण करने पर, राजाराम सताराको भंग गये। इसी समय महाराष्ट्र-सेनामें गृहविच्छेद उपस्थित हुआ। सेनापति शान्तजी घोरपड़में अपनी सेना द्वारा मारे गये। राजाराम और धनजी यादव आदि महाराष्ट्र सरदारगण चौधमं प्रहर्षमें प्रवृत्त हुए थे। इसके प्रतिविधानके लिए सम्राट्ने जुलफिकर खानको महाराष्ट्रोंके विरुद्ध भेजा। एक एक कर महाराष्ट्रोंके सभी दुर्गों पर आक्रमण होने लगे। १६६६ ई०में मतारा-दुर्ग मुसलमानोंके हस्तगत हुआ। जुलफिकर खानने राजाराम को बन्दी करनेके लिए सिद्दगढ़ तक पीछा किया। यहाँ हर्दोमसे राजारामको मृत्यु हो गई।

राजारामके बाद, उनके निश्चयुध श्व शिवाजी राजा हुए। इन बालकी तरफसे उनकी माना तारबवाई राज-कार्यको पर्यालोचना करने लगीं। उस समय भी दक्षिण-में मुगलोंके साथ युद्ध चल रहा था। महाराष्ट्रमें गानके शुभ युद्धों और लूट-भारतमें औरङ्गजेब ज्ञान हो गये। अत्यधिक व्ययने राजकोष प्रायः शून्य हो चला था। सेनापतियोंका वेतन चुकाना भी कष्टकर दिव्यरं होने लगा। श्वर राजपूतोंके साथ युद्ध और आगराके जाटोंके विद्रोहसे गाकीदम था चुकी थी; ऐसी अस्थायी घाघर हो कर सम्राट् औरङ्गजेबकी महाराष्ट्रोंमें गति करनेके लिए घाघर होमा पडा। महाराष्ट्रोंके छाग अम-दून अमपूर्विका प्रस्ताप रसे जाते पर-सम्पिभद्द हो गईं। गवित औरङ्गजेब अमलद्वयसे महाराष्ट्रोंके उपद्रव करने रहे और आघिद १७०७ ई०में धर्मरतनगामें उनकी मृत्यु हो गई।

मृत्यु-समय पर्यन्त औरङ्गजेब दाक्षिणात्यमें मुगल-प्रभाव को अशुभ ण बनाये रखनेमें यत्नशील थे। उनके अधिकार कालमें मुगल-साम्राज्यकी सीमा सुदूर पर्यन्त विस्तृत हुई थी। इस प्रकार वीर्यवत्ताके साथ, काशमीरसे कुमारिके तक साम्राज्य विस्तारमें कोई भी मुसलमान राजा आज तक समर्थ नहीं हुए थे।

औरङ्गजेबने अपने साम्राज्यकी मुआजिम आजम और फामबंसे नामक अपने तीन पुत्रोंको वारं देनेका आदेश दिया था। उनकी मृत्युको बाद तीनों भाई राज्यप्राप्ति के लिए परस्पर विरुद्धाचारों हो गये। अन्य भाइयोंके मारे जानेके बाद मुआजिम 'बहादुरशाह' (शाहआलम) १म नाम धारण कर दिल्लीके सिंहासन पर बैठे। १७७७ ई०से १७१२ ई० तक बहादुरशाहने राज किया।

महाराष्ट्रकेशेरी शिवाजीके वंशधर शाह-युवराज आजिम द्वारा कारामुक हुए। शाहके दाक्षिणात्यमें प्रवेश करने पर, उन्हीं राज्यके वास्तविक उत्तराधिकारी समर्थ बहूतसे महाराष्ट्र सरदारोंने उनका पत्र अवलम्बन किया। धर तारावांसे सिंहासनच्युतिके भयसे शाह को जाली ठहरानेकी चेष्टा की। इसी सूत्रसे एक युद्ध भी हुआ। तारावांसे पराजित होने पर, शाह १७०८ ई०में सताराके राजा हुए। राजा शाहके मंत्री बालाजी विभनाथसे महाराष्ट्र भूमि पर वेणवाका आधिपत्य विस्तृत हुआ। वेणवा देखा।

उद्यपुर, जयपुर और जोधपुरके राजपूत राजाओंको स्वाधीनता प्रदान कर बहादुरशाहने मुगलसाम्राज्यमें शान्ति स्थापित की। राजपूताना और बर्हकी राजधानियोंके नामानुसार उन्हीं शब्दोंमें विशेष विवरण देना चाहिये।

सिल-अभ्युदय—इसकी १५ शताब्दीमें पञ्जावप्रदेशमें वावो नानक द्वारा सिल-धर्म प्रवर्तित हुआ। गुरु नानककी मृत्युके बाद कई एक गुरु चुपचाप मुसलमानोंके अत्याचार सहते हुए लाहौरके पास अवस्थान करते रहे। १६०६ ई०में खुसरूके विद्रोहमें साथ दे कर सिल-दल विशेष निरुद्धित हुआ था। यहाँ तक कि उन्हीं अपनी पास भूमि लाहौरको छोड़ कर शतद्रु और यमुनाके मध्यवर्ती पार्वतीय अन्तराल भूमि

में वास करनेके लिए बाध्य होता पड़ा था। दशहें गुरु गोविन्दने (१६८५ ई०) प्रतिहिंसा-परवश हो कर सिखोंको शस्त्र-विद्याकी शिक्षा दी और मुसलमानोंके निरुत्तरताका प्रतिशोध देनेके लिए वे फरियद हुए। मुसलमानोंने इस संवादको पाते ही क्रुद्ध हो सिखोंके दुर्गों पर कब्जा कर उन्हीं कैद कर लिया और गुरु गोविन्दके परिवारवर्गको मरवा डाला तथा अन्याय सिखोंको विशेष बर्बर-व्यवहारसे उत्पीडित किया। स्वयं गुरु गोविन्द भी जब दाक्षिणात्यमें भेज कर मार डाले गये, तो सिख-सम्प्रदाय उन्मत्तप्राय हो उठा। उन लोगोंने रुन्दा नामक एक संन्यासीकी अधिनायकतामें पञ्जाबके पूर्वभाग पर धावा मार कर मुसलमानोंकी मसजिदें तोड़ फोड़ डालीं और मुल्लाओंको मार डाला। प्रामसे प्रामान्तर आक्रमण करते और तलवारोंसे शत्रुओंका उच्छेद करते हुए वे सहारनपुर तक अग्रसर हुए। सरहिंद सूबेदार इस समय विशेषरूपसे निपीडित हुए थे। बहादुरशाहने बंदाके गिरि-दुर्गमें घेरा डाला; परंतु बन्दाने कौशल-पूर्वक भाग कर अपनी रक्षा कर ली। १७१२ ई०में लाहौरमें बहादुर शाहकी मृत्यु हो गई।

बहादुरकी मृत्युके बाद सिंहासनके पीछे उनके चार पुत्रोंमें विवाद उपस्थित हुआ। मंत्री जुल्फिकर खांके पड़यत्नसे आजिम उस्-शान, खुजिस्ता आलिर और रुफि उल्-फादेर ये तीनों भाई मार डाले गये और बड़े भाई मैन-उद्दीन जहानदारशाह सिंहासन पर बैठे। उक्त चारों पुत्रोंमें आजिम-उस्-शान विशेष योग्य व्यक्ति थे। उनके एकमात्र पुत्र फरुखसियर बङ्गालमें थे, इस लिये वे बच गये।

विलगसी जहाँदार शाहकी कठपुतली बना कर प्रभुत्व करनेकी मनशासे जुल्फिकरने उनकी सहायता की थी। उमरावोंने उनके इस संघर्षव्यवहारसे फरुखसियरको गुला भेजा। विहारके शासनकर्ता सैयद हुसेन अली और इलाहाबादके शासनकर्ता सैयद अबदुल्लाकी सहायतासे आगराके युद्धमें सम्राटको पराजित और राज्यच्युत कर फरुखसियरने सिंहासन अधिकार किया।

राजासन पर बैठ कर उन्होंने अबदुल्ला और हुसेन खलीफो यज़ीर और सेनापति पद पर नियुक्त किया। वास्तवमें ये दो सैयद भाई ही राज्यके सर्वसर्वा ही गये थे। सिंग सरदासोंकी हत्या, १७१७ ई०को महाराष्ट्रोंके साथ संधि, डा० हेमिल्टनकी प्रार्थना पर विना शुक्रके अङ्गरेजोंको बाणिजा करनेकी आज्ञा और २८ ग्रामोंका खरीदना, ये उनके राजकी प्रधान घटनाएँ हैं।

करवसिपर देखो।

१७१६ ई०में फरगसिथरको मार कर उन सैयद भाइयोंने रफी-उदु-राज और रफी-उदु-दौला नामक दो राजपुङ्गवोंको सिंहासन पर बिठाया; परंतु उनके बकाकालमें ही मर जानेसे रोजान अघट्यार महम्मदशाहकी सिंहासन दिया गया। इनके राजमें यज़ीर प्रधान चींग लिज खां निजाम-उल् मुल्क (आसफजा) और सादत अलीने क्रमशः अपने अपने स्वाधीन राज्योंकी स्थापना की। ईश्यावादमें निजामराजवंश और अयोध्यामें यज़ीर वंशकी प्रतिष्ठा हुई थी। अयोध्या और निजाम देखो। १७२०से १७३८ ई० तक महम्मदशाहने राजा किया था। इस समय महाराष्ट्रक्षेत्रमें पेजायाओंका प्रभुत्व हुआ हो गया था। प्रसिद्ध 'बर्गीपउवद्रव' अलिषदीके राजत्वकालमें यङ्गालमें संघटित हुआ था। १७३७ ई०में नादिरशाहने दिल्ली अधिकार किया। नादिरशाह देगो।

नादिरशाहकी मृत्युके बाद, उनके विष्णुगत सेनापति अहमदशाह अबदलीने १७४७ ई०में भारत आक्रमण किया। इस युद्धमें उनका मनोरथ सिद्ध नहीं हुआ।

महम्मदशाहकी मृत्युके बाद उनके पुत्र सुयराज अहमदने १७४८से १७५४ ई० तक राज्य किया। १७५१ ई०के मोहिला-युद्धमें उन्हें सिन्धिघरा और होलकर राजाकी महापत्ता प्रहण करनेकी पड़ो भी। अयदलीके द्वितीय आक्रमणसे उन्होंने पञ्जाबका स्वत्व छोड़ दिया, जिससे यज़ीरके साथ उनका मनोयाद (१७५३ ई०) हो गया। इसके बाद आसफजाके पौत्र गाजीउद्दीनने यज़ीर ही कर उनकी हत्या कर डाली और औरङ्गजेबके वंशधर किन्तो एक राजपुत्रवत्ता २५ आलमगौर नाम रग उन्हें सिंहासन पर बिठाया।

२५ आलमगौरके राजत्वकालमें (१७५४-५६ ई०)

यज़ीर गाजीउद्दीनकी विश्वासघातकतासे क्रोधोद्भूत हो कर अबदलीने दिल्ली आक्रमण और साथ ही उसका ध्वंस कर डाला। अथकी वार भी महाराष्ट्रमें दिल्लीका पक्ष ले कर युद्ध किया था। १७६१ ई०में पानोपतकी ३री लड़ाईमें मुगल और महाराष्ट्र-जिक हमेशाके लिए लुप्त हो गई। अहमदशाह अबदली देखो।

१७५६ ई०में २५ आलमगौरके मारे जाने पर, उनके पुत्र बली जाह १७६० ई०में ग्राह आलमके नामसे दिल्लीके सिंहासन पर बैठे। १८०६ ई०में २५ अकबर और १८३४ ई०में महम्मद बहादुरशाहको दिल्लीका सिंहासन प्राप्त हुआ। परंतु इसी समयने अंग्रेज वणिक सम्प्रदाय ही वास्तवमें भारतका शासन कर रहा था। सिपाहीविद्रोहमें सम्मिलित होनेके अपराधसे वे अंग्रेजोंके विचारसे प्रथममें निवासित हुए। उनकी पत्नी जिनतमहल और पुत्र जोयनवस्त उन्होंनेके साथ ही लिये थे।

मुगलोंका अधिकार-काल।

बाबर—१५२६-३० हुमायूँ—१५३०-४०  
शूरपरा।

शेरशाह }  
सलीमशाह } १५४०-५६ ई०  
धादिलि }  
मुगलवंश।

हुमायूँ	१५५६	रफीउद्दुल्ला	१७१६
अकबर	१५५६	रफीउद्दौला	१७१६
जहांगीर	१६०५	महम्मदशाह	१७१६
शाहजहाँ	१६२७	अहमदशाह	१७२८
औरङ्गजेब	१६४८	आलमगौरशाह (२५)	१७५४
बहादुरशाह	१७०७	शाह आलम	१७५६
जहान्द्यारशाह	१७१२	अकबर (२५)	१८०६
फरगानिशाह	१७१३	महम्मद बहादुर	१८३४

सूरीयं वगैराम और कमें जीहा भाषितय।

बहु पूर्वकालसेही भारतकी समृद्धि चारों ओर ध्यान हो गई थी। उसी प्राचीन समृद्धि पर लुभ हो कर माकिदूनयार कालकेसमयमें भारत आक्रमण किया था। उनके परवर्ती यदन राजगण यथार्थिक भारतीय

समृद्धिके संरक्षणमें यत्नवान् थे। उसी समयसे भारतमें उत्पन्न सभी चीजें सुदूर रोम-साम्राज्यमें पहुँचा करती थीं और उसके बहुत पूर्वसे भी धरत, मिख, फिनिसिया, चीन और भारतीय द्वीपपुञ्जोंके साथ वाणिज्यका संस्व था। मिखवासी और रोमकगण सबसे पहले इस देशमें आये। उनके द्वारा संगृहीत मणि मुक्तादिकी प्रसिद्धि सुदूर यूरोपमें भी हुई थी। धीरे धीरे क्याति जय चारों ओर फैल गई, तब यूरोपीय राजाओंको भी लोभ दृष्टि इस पर पड़ी; किन्तु 'कुजेड' गुडसे उनकी वाणिज्य-कांक्षामें विरोध अन्तराय पड़ा। यही कारण है कि, ईसाकी १५वीं शताब्दीके शेषभागमें स्थलपथके सिवा स्वतन्त्र मार्गके आविष्कारको चेष्टा हुई। १४९२ ई०में नाविक कोलम्बस् पथप्रष्ट हो कर 'इण्डिया'के भ्रमसे अमेरिकामें जा पहुँचे और वह स्थान 'वेष्ट-इण्डिया' नामसे प्रचारित हुआ। उसके बाद नाविक-श्रेष्ठ भास्कोडिगामा १४९८ में कालिकटके राजा सामरोके समक्ष उपस्थित हुए। अलमिदा और अलबुकाकांके शासनकालमें पुर्तगोजोंने भारत, भारतीय द्वीपपुञ्ज, चीन और जापान आदि द्वीपोंमें उत्पन्न होनेवाली चीजों को ले कर लोहितसागरोपकूल, अफ़रोकाके पश्चिमकूल और अमेरिकाके ब्रेजिल राज्ज तक विस्तृत स्थानमें वाणिज्य-सोमा और कहीं कहीं राज्य-सोमा परिवर्द्धित की थी। तात्पर्य यह है कि, वर्तमान समयमें अंग्रेजोंने पृथिवी पर जितने भी स्थानोंमें राज्ज विस्तार किया है, उस प्राचीनकालमें पुर्तगोज दस्युओंने उतनी ही दूर तक सुविस्तृत स्थानमें आधिपत्य विस्तार किया था।

पुर्तगात और पुर्तगीज देखो।

पुर्तगीजोंकी वाणिज्य-समृद्धिको देख कर ईपान्वित ही ओलन्दाज वणिक्, सम्प्रदाय भी पूर्व-भारत (East-India) में वाणिज्यके लिए १५६६ ई०में यव और सुमात्राद्वीपमें आ उपस्थित हुआ। कुछ समय बाद उन लोगोंने प्रबल हो कर पुर्तगीजोंसे बहुतसी कीटियां छीन लीं। गङ्गा-तीरवर्ती चुन्सुरा नगरकी कीटी १७वीं सदीके अन्तमें दुर्गबद्ध हुई थी। १८२४ ई० तक चुन्सुरा ओलन्दाजोंके अधिकारमें रहा। इसी वर्ष अंग्रेजोंने सुमात्राके एक स्थानके बदले चुन्सुरा नगर प्राप्त किया।

१६२३ ई०में आमवयानामें हत्याकाण्ड हो जाने पर ओलन्दाजोंका वाणिज्य प्रभाव ह्रास हो गया।

अंगन्दाज देखो।

१६१२ और १६७० ई०में दो विनेमार वणिक्, सम्प्रदाय भारतमें आये। बङ्गालके गङ्गातीरवर्ती श्रीरामपुर ग्राममें और दक्षिणात्यके ट्रंकुडंबर नगरमें (१६१६ ई०) उनकी वाणिज्यकी कीटी स्थापित हुई थी। १८४५ ई०में अंग्रेजोंने श्रीरामपुर खरीद लिया। पोर्टोनेबो, पडोवा, हलचेरी आदि स्थान भी उन्हींके अधिकार थे।

दिनेमार देखो।

वह प्राचीनकालसे इंग्लैण्डमें भी भारतगमनके मार्ग-आविष्कारको चेष्टा हो रही थी। कैबट, सिवाष्टियन, विलोव, चान्सलर\*, फ्रविसर, डेमिस, हडसन, बकिन और फ्रान्सिस डूक उस पथके पथिक हुए थे। परन्तु उनमेंसे किसीका भी मनोरथ सिद्ध नहीं हुआ। १५७६ ई०में टामस् एडिसन मालसेटी द्वीपके जेसुट् कालेजके अध्यापक हो कर भारत आये थे। उनके पिताके पास भेजे हुए पत्रको पढ़ कर (१५८३ ई०में) रालफा फिच, जेनस् न्युवेरो और लिडस् नामके वणिकोंने स्थलपथसे भारत आनेकी चेष्टा की। पुर्तगीजोंने ईर्ष्यासे उन्हें अर-मज और गोधा नगरमें कैद कर लिया। न्युवेरोने गोधा-में दूकान कर तथा लिडसनने मुगलोंके अधीन काम करके जीवनयापन किया था, परन्तु फिच सिंहल श्याम, बङ्ग, पैगू और मलका आदि द्वीपपुञ्जोंमें परिभ्रमण कर स्वदेश लौट गये थे।

प्रसिद्ध 'अरमादा' वाहिनीके अधःपतनसे (१५८८ ई०में) स्पेन और पुर्तगालोंको मिलित शक्तिका ह्रास होने पर, अंग्रेजोंकी वाणिज्य-आज्ञा बलवती हो उठी। उस समय ओलन्दाजोंके मिर्च आदिकी कीमत दूनो कर देने पर विशेष आग्रहको साथ १६०० ई०में अंग्रेज वणिक्, समितिते "इष्ट इण्डिया कम्पनी" नामसे

\* उक्त महासुभाव उत्तर-महासागरके पगने आ कर रसियाके उत्तरत्य स्थितसागरोपकूलमें गच्छेज वन्दरमें उतरे थे। वहां स्थलपथ द्वारा मास्को राजधानीमें पहुँचे। उन्हींके परामर्शसे भारत, पारस्य आदि स्थानोंमें वाणिज्यके त्रिपु रनवणिकगमनि संग-टित हुई थी।



अपना संगठन कर डाला। उन लोगोंने पहले भारत महासम्मेलन हो पत्रोंमें रद्द कर वाणिज्य किया था। १६२३ ई०के अन्त्यवनाके हत्याकाण्डके बाद अंग्रेज वणिक्-सम्मेलन समुद्र-पथ छोड़ कर भारतमें आनेके लिए बाध्य हुए। कोम्पनी और अंग्रेज देते।

१६०४ ई०में पहले फरासीसी "इष्ट इण्डिया कंपनी" संगठित हो कर भारतमें आई थी। उसके बाद और भी छः फरासीसी वणिक्-सम्मेलन वाणिज्यार्थ भारतमें आये थे। १६६४ ई०को मूरतमें, १६७४ ई०को पुं दीचेरीमें और १६८८ ई०को चन्द्रनगरमें उनको वाणिज्य कोठियाँ स्थापित हुई थीं। कर्नाटक-युद्धमें फरासीसी और अङ्ग्रेजों में घोरतर विवाद प्रारम्भ हुआ। फरासीसी सेनापति लालीकी अधिमृत्युकारितासे फरासीशक्तिका अवसान हो गया। कर्नाटकयुद्धके बाद, १७६३ ई०में इन दोनों जातियोंमें सन्धि स्थापित होने पर, फरासीसियोंकी चन्द्रनगर और पुं दीचेरी पुनः प्राप्त हुआ।

फरासीसी, दुल्हे, चांदसाहब, कर्णाटक, महाराष्ट्र नन्द देते।

इसके बाद भारतमें वाणिज्यके लिए १६६५ ई०में एक-कम्पनी और १७२७ ई०में अष्ट एड कम्पनी संस्थापित हुई। अष्ट एड कम्पनीकी राज-सन्धि प्राप्त करते समय सात वर्षके लिए वाणिज्यसे निवृत्त रहनेका आदेश मिला। उस समय उसके कई एक कर्मचारी ( १७३१ ई०में ) 'सुडरिस कम्पनी' नामसे स्वतन्त्र सम्प्रदाय गठित कर वाणिज्य चलाते रहे। १७८५ ई०में अष्ट एड कम्पनी प्रणवस्त हो पड़ी। १७६३ ई०में उनका वाणिज्य कार्य विलकुल बन्द हो गया। १६०६-६०में सुडरिस कम्पनीका नूतन वन्द्ययुक्त हुआ था। अरबी जर्मन, फरासीसी, पुर्तगाल, इटालीय, ओल्डशाज, सुडरिस, रूस, डिनेमार, स्पेनियाई, फेलिजियन, सुडन और मुर्से आदि प्रायः सभी वणिक्-सम्मेलनों भारतमें वाणिज्योन्मत्त प्रवृत्त किया है। इनमें अङ्ग्रेजोंकी संख्या ही अधिक है।

१६१४ ई०में अंग्रेजोंने भारतमें कोठियाँ स्थापित करने पर भी सामन्तिक प्रतिष्ठा नहीं पाई थी। १६३६ ई०में विलियमस गवर्नरजीय चन्द्रगिरिके अधिपतिके पदांसे अङ्ग्रेजोंने मद्रासकी अधिपतान-भूमिका मस्थापित

कार प्राप्त किया और यहाँ पर सबसे पहले सिद्ध-राज दुर्ग स्थापित हुआ। मद्रास और कोम्पनी देते।

१७४४ ई०में अङ्ग्रेजों और फरासीसियोंमें ३१ यूरोपमें युद्ध चल रहा था, तब अवसर देख कर अङ्ग्रेजों ने दक्षिणात्यमें फरासीसियों पर चढ़ाई कर दी।

१७४८ ई०में आइलासापेलको सन्धिके अनुसार दोनों पक्षका विशद मिट गया। परन्तु निजाम-सिद्दासके उत्तराधिकारके कारण दोनोंमें फिर झगड़ा उठ गया हुआ। आर्कट और कर्णाटक-युद्धका यही कारण था। आर्कट-युद्धमें ( १७५१-६०में ) क्लाइवके हाथसे पराजित हो कर फरासीसीगण विशेष अपद्वय हुए। मद्रास-अलीको आर्कट-सिद्दासन पर विठा कर अङ्ग्रेजोंने वाणिज्यको वृद्धि की थी।

१६३३ ई०को पिप्पलीमें और १६४२ ई०को हुगलीमें कोठी स्थापित हुई। १६६१ ई०में जांब चार्नकने गुवा-नुटी, गोविन्दपुर और फालीघाट ( कलकत्ता )-के लिए सन्धि प्राप्त करली। १६६६ ई०में कोर्ट 'विलियम दुर्ग' ( कलकत्तेमें ) स्थापित हुआ। कलकत्ता देते।

नवाब सिराजउद्दौलाके शासनकालमें ( १७५६ ई० ) कलकत्तामें 'अन्धकूप हत्या' का की गई। इस संवादको या कर क्लाइव और बार्टसन मद्राससे कलकत्ता आ पहुँचे। १७५७ ई०में पलाशीके रणक्षेत्रमें बङ्गालकी भाग्यलक्ष्मी इल्लेहडके हाथ लगी। पराजित वेते।

इसी वर्ष मीरजाफरकी सिद्दासन पर विठा कर अङ्ग्रेजों कम्पनीने २४ परगनाकी जमीन्दारीका कर अपने हाथ ले लिया। १७५८ ई०में क्लाइवके बङ्गाल-शासनके समय शाहभालमने पटना पर चढ़ाई की। १७६० ई०में क्लाइवके विलायत बने जाने पर कम्पनीके बङ्गालके गवर्नर हुए। उस समय शाह भालम मुट्ठी परास्त हो गये। मीरनकी मृत्यु होमेरी बङ्गालके अन्ध परिशीपकी कोर्ट मन्मायना न देस वीरवार में नवाबकी पदचुगत कर उनके भाई मीरजाफरकी सिद्दासन पर विठायी। मीरजाफरने सिद्दासन-सामसे उपहन हो कर अङ्ग्रेजी कम्पनीकी पक्ष मान

मैदनीपुर और चट्टग्राम दे दिया। कम्पनीके कर्मचारी गण बिना शुद्धके वाणिज्य चला रहे थे, यह देख नवाबने अङ्गरेज कौन्सिलको खबर दी। कोई प्रतिकार न होने पर नवाबके साथ कम्पनीका विरोध उठ खड़ा हुआ। गिरिया और उधुआनालाके युद्धमें पराजित हो कर नवाब पटना भाग गये। वहाँ पर महताप जगत्सेठ, राजा रामनारायण, राजा राजवल्लभ और पटनाकी कोठीके अध्यक्ष एलिस साहबकी हत्या कर बतमें उन्होंने बादशाह शाह आलम और नवाब सुजाउद्दौलाकी शरण ली। १७६४-ई०में बखसरके युद्धमें मिलित मुगल-सेना पराजित हो गई। अयोध्या विजेताके पदों नत हो गई और मुगल-सम्राट् अनुप्रहावांशी हो कर अंग्रेजोंके शिविरमें उपस्थित हुए।

फासिमको विद्रोही देख कर अंग्रेजोंने पुनः मीरजाफरकी सिंहासन प्रदान किया। १७६५ ई०में उनकी मृत्यु होने पर उनके पुत्र नाजम उद्दौला नवाब बनाये गये।

१७६५ ई०में क्लाइव दूसरी बार शासनकर्त्तृत्व प्रारण कर भारतमें आये। उन्होंने सुजाउद्दौला और शाहआलमसे इलाहाबादमें साक्षात् किया। उनका राज्य उन्हें पुनः दे देने पर वे अंग्रेजोंके मित्र हो गये। सम्राट् शाहआलमने इस समय कम्पनीको बङ्गाल, बिहार और उड्डियाका दीवानो-पद दे दिया। पलाशी-युद्धके बादसे बङ्गालका राज्याधिकार अंग्रेजोंके अस्तगत होने पर भी, सम्राट्की सनद प्राप्त करनेके बाद ही कानूनन उनका बङ्गाल पर अधिकार हुआ। अब वे वास्तवमें राज्य करनेके लिए प्रवृत्त हुए।

१७६७ ई०में क्लाइवके पुनः विलायत चले जाने पर चालेष्ट और कार्टियर (१७६२-७२ ई०) क्रमसे बङ्गालके शासनकर्त्ता हुए। उस समय (१७७० में) बङ्गालमें 'छिन्नतरिया मन्वन्तर' नामक काल-बुर्भिस पड़ा, जिससे बङ्गालसिपोंकी कालका प्राप्त बनना पड़ा। अन्नके अभावसे बङ्गालके लगभग तृतीयांश लोग मर गये। इस अन्न कष्टके कारण ही बङ्गालमें संन्यासी विद्रोह उपस्थित हुआ था।

क्लाइवके बङ्गालमें रहते महिसुर राज्यमें हैदरअलीका अभ्युत्थान हुआ। हैदरने अपने अग्रतिहत प्रभावसे नाना

स्थानों पर विजय पाई और उन स्थानों पर उनका अधिकार होता गया। अंग्रेजोंको हैदरके भयसे डर कर सन्धि करनेके लिए बाध्य होना पड़ा था। हैदरअली वेला।

१७७२ ई०में वारेन हेस्टिंग्स बङ्गालके शासनकर्त्ता हुए। राजस्व-संग्रहकी सुव्यवस्था करनेके लिए उन्होंने सदर दीवानो और सदर निजाम अदालतोंकी प्रतिष्ठा की। राजस्व-संग्रहके कार्यमें अंग्रेजोंका अधीनस्थ कर्मचारीवर्ग प्रजा पर यथेच्छ व्यवहार करते थे। देवोसिंहकी शपथाचारकथा अब भी बङ्गालके घर घरमें प्रसिद्ध है।

१७७४ ई०का रोहिला युद्ध, १७७५ में नन्दकुमारकी फांसी, चेतसिंहका निर्वासन, अयोध्याकी वेगमका धन लूटना, १म महाराष्ट्र-युद्ध और २य महिसुर युद्ध, ये उनके शासनकालकी विशेष घटनाएँ हैं। उन्होंने १७८५ में विलायतको प्रस्थान किया और फिर भी उन्हें छुटकारा नहीं मिला था। वाग्मिप्रवर वार्कने उनके इस अन्याय-अत्याचारके विषयमें वहाँ अभिशोष उपस्थित किया। इस मामलेमें क्रूरमना हेस्टिंग्सको सर्वस्वान्त हो कर गली गली घूमना पड़ा था। हेस्टिंग्स, नन्दकुमार आदि शब्द देखो।

हेस्टिंग्सके शासनावसानके साथ ही भारतकी शासन-विशुद्धता देख कर पार्लियामेण्ट सभामें घोर आन्दोलन उपस्थित हुआ था। तदनुसार राजमन्त्री पिटने शासनप्रणालीको सुव्यवस्थाके लिए "इण्डिया बिल" बनाया था।

अंग्रेज गवर्नर-जनरलमण्ड —

वारेन हेस्टिंग्स १७७२ ई०से १७७४ ई० तक बङ्गालके गवर्नर थे, बादमें वे भारतके गवर्नर-जनरल पद पर नियुक्त हो कर, रेगुलेटिंग एक्ट (Regulating Act) सन् १७७३ ई० द्वारा निर्दिष्ट कौन्सिल-सभाके साथ भारतकी शासन-विधिका परिचालन करते रहे।

उनके पदत्यागके बाद, सर जन मैकफार्सन्ने २० महीने तक गवर्नर-जनरलका कार्य किया। उसके बाद लार्ड कर्नवालिस (१७८६-९३ ई०) उक्त पद पर नियुक्त रह कर भारतकी शासन-प्रणालीको सुव्यवस्था कर गये। विचार-प्रणालीको सुविधाके लिए वे प्राविन्सियल कोर्ट और प्रजाओंकी जमींदारोंके शोषण दायसे रक्षा करने के लिए (१७९३ ई०में) 'दन्न सादा बन्दोवस्त' कर गये।

तांसेरे महिमुक्तके युद्धमें टीपू मुञ्जतानके साथ उनकी सन्धि हुई, जिसके फलस्वरूप अंग्रेजोंको दिल्लीद्वारा, बड़मेहनद, साल्म और मालाबारप्रदेन प्राप्त हुआ, तथा टीपूके दो पुत्र अंग्रेजोंके पास प्रतिभू श्वरूपा रखे गये।

लार्ड कर्नवालिसने जिन दिनकर कार्योंका अनुष्ठान किया था, सर जान सौरने (लार्ड डेनमाउथ, १७६३-६८ ई०) उनकी सहकारिता की।

सर जान सौर द्वारा टीपू मुञ्जतानके प्रतिभू पुत्रद्वय छोड़ दिये गये। इसके बाद टीपू फिर युद्धकी योजना करने लगे। उनकी आशा थी, कि जगद्विषयात फरारसी पौर नेपोलियन अबकी बार उनकी सहायता करेंगे। मार्किंस आय चेलिस्लोंने (लार्ड मर्निग्टन, १७६८-१८०५ ई०) १७६८ ई०में निजामके साथ सन्धि करके, उनकी सेनाकी सहायताके फारसीसियोंको हतबल कर दिया। दूसरे वर्ष ४४ महिमुक्तयुद्धमें टीपू दलबल सहित पराजित हुये और भगा दिये गये। इससे अंग्रेजोंका प्रभाव चारों ओर फैल गया। मुञ्जतान राजनीतिगत गयनेर चेलिस्लोंने इसी सुयोगमें एक सामन्त-राज्य दधिया लिया। फोर्ट चिलियम कालेज स्थापन, गङ्गासागर-सङ्गममें वर्षीयसीकी प्रथमोत्सव सन्तानका निक्षेपरूप कुप्रथा निवारण, २५ महाराष्ट्र युद्ध, होलकर और सिन्धियाका युद्ध, ये उनके समयको विशेष घटनाएँ हैं।

चेलिस्लोकके शासनकालमें युद्ध-विग्रहमें अंग्रेज कम्पनीको विशेष क्षति उठानी पड़ी थी। डिरेक्टोने भारतीय राजन्यवर्गके साथ वाद विवादमें उनको इच्छा न होनेसे दूसरी बार लार्ड कर्नवालिसको फिर गयनेर जनरल बना कर भेजा। कर्तव्य ३ महीने बाद वास्तविक कारण जानोपुर्तमें उनको मृत्यु हो गई।

इस वर्ष सर जार्ज बार्डो डिरेक्टूरसभा द्वारा सन्धि-स्थापनके लिए आदिष्ट हो कर भारतके गयनेर जनरल-पद पर नियुक्ति हुए। १८०६ ई०में उन्होंने होलकरके साथ सन्धि की तो नहीं, पर चेम्बरलैनके सिपाहियोंके विद्रोहो हो जानेमें अंग्रेजोंकी विशेष विनम्रता होना पड़ा था। डिरेक्टोने मराठानकी शासनशुद्धिके लिए

वहाँके गयनेर वेष्टिङ्गकी पदच्युत कर उनके पद पर बार्डोको नियुक्त किया।

१८०७ ई०में लार्ड मिण्टो गयनेर हो कर फरारसी पधारे। कर्नवालिसकी तरह शान्ति स्थापन पूर्वक कार्य करनेका ही उनका उद्देश्य था, किन्तु कारणवश ये देशीय राजाओंके शासन-सम्बन्धोंको किसी किसी विषयमें हस्तक्षेप बिना किये रह न सके। फरारसीसी और अंग्रेजोंका विरोध ज्यों का त्यों बना था : यूरोपमें कुछ भी हो, भारतमें अंग्रेज लोग फरारसीसियोंसे बहुत डरते थे। फरारसीसियोंका भी भारत पर चिन्तन्य मोम था। भारतमें फरारसीसी अधिकार अंग्रेजोंकी वास्तविकता था, इसीलिए फरारसीसी क्षमताके हासके लिए ही निजाम, सिन्धिया और होलकर आदिके साथ अंग्रेजोंका युद्ध हुआ था। उस समय यूरोपमें नेपोलियनके प्रबल हो जानेसे अंग्रेजोंकी आशङ्का और भी दृढ़ हुई। इसी आशङ्कासे उद्वेलित हो कर लार्ड मिण्टोकी पञ्जाबपति राजा रणजित्सिंह तथा अफगानिस्तान और फारसके शाहके साथ सन्धि कर राजनीतिक बन्धनमें बाध्य होना पड़ा।

१८१३ ई०में मिण्टोके विलायत पदुंगने पर लार्ड मायरा (मार्किंस आर्च हेष्टिन्स) कल्कत्ता आये। १८१४-१५ ई०का नेपालयुद्ध, सिन्धीकी सन्धि, १८१७ ई०का पिण्डारो युद्ध, और १८१७-१८का श्रेय महाराष्ट्र युद्ध, उनके समयको प्रधान घटनाएँ हैं।

१८२३ ई०को श्री जनवरकी लार्ड मायराके मरण याता की। उनकी पत्नीने इस देशमें अंग्रेजों निजामके विस्तारके लिए वारकपुरमें एक अंग्रेजों विद्यालय और डेविडहेवर्से कलकत्तामें 'हिन्दू कालेज'की स्थापना की। धोरामपुररूप केरि, मार्सेमिन भादि मिजोरियोंके चिन्तन, धोरामपुर आदिमें कई एक विद्यालय गठिते थे। उनके प्रयत्नमें १८१८ ई०में "सनायात-वर्षन" नामक एक बङ्गा संवाहपत्र भी मुद्रित होत प्रकाशित हुआ।

लार्ड हेष्टिन्सके विलायत जाने पर मि० एडम गामर एक सिपाहियनने कई मामलत शासनकार्य धरनाए था। ३ वर्ष लार्ड गामरद्वय कल्कत्ता आ पहुँचे। प्रथम प्रद-युद्ध (१८२४-२६ ई०) और गयनपुर-अधिकार

(१८२७ ई०) उनके समयकी प्रसिद्ध घटना है। इसके सिवा उनके शासन-कालमें विद्याशिक्षाकी उन्नतिके लिए एक शिक्षा-समिति और कलकत्ता "संस्कृत-कालेज" प्रतिष्ठित हुआ।

१८२८ से १८३५ ई० तक लार्ड विलियम पैटिडूने कार्य-भार प्रभूण किया। ये हो पहले वेङ्कर-विद्रोहके समय मन्त्राजके गवर्नर थे। इनके ७ वर्षके राज्य-शासनकालमें १५ आय-व्यय-संस्कार, सतीदाह-निवारण, टगोका दमन, राजपूत जातिकी कन्यावध-प्रथाका निवारण, खन्दजातिकी नरवलिका निषेध, शासनप्रणाली और शिक्षाविषयक संस्कार, भारतियोंको राजकार्यमें नियोजित व्यवस्था, महिलुरका शासन करनेका भार-प्रभूण और कुर्ग अधिकार आदि बहुतसे कार्य सम्पादित हुए थे।

लार्ड पैटिडूने दिहोके सम्राट् से साक्षात् करते समय कहा था कि, "अंग्रेज लोग ही अब भारतके वास्तविक अधीश्वर हैं, तैमूर्वशियोंको अब वे सम्राट् कहनेके लिए तयार नहीं हैं।" इससे धुंध हो कर सम्राट्ने सुप्रसिद्ध राजा राममोहन रायको चकोल नियुक्त कर इंग्लैण्ड भेजा था। राममोहन राय देखो।

कम्पनीकी १८१३ ई०में मियाद खतम हो जानेसे, १८३३ ई० तक कम्पनीने नवीन सन्द् प्राप्त कर ली। तदनुसार कम्पनीको अपने अधिकृत राज्योंका भोगाधिकार प्राप्त हुआ और मन्त्रिसभामें अधिष्ठित गवर्नर जनरल (Governor-General in Council) उन स्थानोंको व्यवस्था करने लगे। वेपेट्क देखो।

१८३५ से १८३६ ई० तक लार्ड मैटकाफका शासन-काल है। उन्होने मूद्रणयन्त्रकी स्वाधीनता प्रदान कर भारतीयोंको कृतज्ञतापाशमें आवद्ध किया है।

काबुलके सिंहासनको ले कर उत्तराधिकारियोंमें झगड़ा उपस्थित होने पर, उत्तकें निवारणार्थ लार्ड आकलेण्ड १८३५ ई०में भारत आये। १८४१ ई०में काबुल युद्धकी दुर्गति देख कर डिरेक्टोने १८४२ ई०में लार्ड एलेनबरा पर कार्याभार अर्पण किया।

अफ्जेयद, काबुल, दोस्तमहम्मद आदि देखा।

१८४२ ई०में अंग्रेजोंने वैर-निर्यातन-चय काबुल

अधिकार और तथोयतके अनुसार काबुलियों पर अत्याचार किया था। इसके बाद १८४३ ई०में सेनापति नेपियर द्वारा सिन्धु प्रदेश-जय और ग्वालियर युद्ध समारम्भ हुआ। ग्वालियरके युद्धमें एलेनबरो स्वयं उपस्थित थे। निरन्तर युद्ध-विप्रदमें लगे रहनेसे डिरेक्टोने लार्ड एलेनबराको पदच्युत कर लार्ड हाडिंजकी बड़ा लाट बना कर भारत भेज दिया।

लार्ड हाडिंज (१८४४-४८ ई०) इस देगमें पदार्पण करते ही सिख-युद्धमें व्यापृत हो गये थे। प्रसिद्ध घाटल रणक्षेत्रमें उनका एक हाथ नष्ट हो गया, इसलिये सब कोई 'हतकटा-गवर्नर' कहते थे। हाडिंज, स्पार्जिस्ड और सिख-युद्ध देखो।

हाडिंजके विलायन चले जाने पर लार्ड डलहौसी (१८४८-५६ ई०) गवर्नर-जनरल हो कर भारतमें आये। उनके शासनारम्भसे ही २५ सिखयुद्ध, पञ्जाब अधिकार, २५ प्रभुयुद्ध तथा अयोध्या, सतारा और नागपुर आदि स्थान अधिग्रहण हुए। कम्पनीकी राज्य-सोमाकी युद्धिके सिवा वे भारतियोंके भी हिताकांक्षी हो कर कई सत्कार्याका अनुष्ठान कर गये, जिनमें रेलपथ-विस्तार \* ताडितयासंचाह (Electric Telegraph) टेलीग्राफ, डारु-विभागका संस्कार \* और शिक्षा-विभागकी उन्नतिके लिए सहाय्य (Grant-in-aid)की दान प्रथाका प्रवर्तन आदि प्रधान हैं। इससे छोटे छोटे गांवोंके मद्रसोंको विरोध सहायता और शिक्षा-कार्यका काफी विस्तार हुआ। इसी समय कौन्सिलके अन्यतम सदस्य मशहूमा येनुने कलकत्तेमें एक बालिका विद्यालयकी स्थापना की, जो अब "येनु कालेज" के नामसे प्रसिद्ध है।

१८५६ ई०में लार्ड कैनिंग कलकत्ता पचारे। उस समय फारस और चीनके साथ अंग्रेजोंका युद्ध

\* १८५४ ई०में ता० १ सेप्टेम्बरसे हयडा स्टेशनमें भेजाहो चकने लगी।

† पहले दूरीके अनुसार टिकमें भी महयुनका तात्पर्य था। इनके प्रवर्तने भारतमें सवेर एक ही महयुन पर टिक प्रथा पवर्तित हुई।

हुआ। दोनों ही युद्धों में भारतीय सिपाहो-दलने अंग्रेजों के पक्ष में लड़ कर विपक्षियों को पराजित कर दिया। १८५७ ई० में मुहंमद टोटा कन्नड़के भद्रगुंने भारतमें सिपाही-विद्रोह संगठित हुआ। गिराहोविशेष देखो।

दूसरे ही वर्ष इत्याहायाद दरबारमें महाराणाओं विद्रो-रियाका घोषणा-पत्र पढ़ा गया, सबसे कमनीका राज्य महाराणां भारते-अपने विकटोरियाके शासनार्थीन हुआ। उस समय लार्ड कैनिंग् बहादुरको राज-प्रतिनिधि (Viceroy वायसराय)को आगम्य प्राप्त हुई। उनके समयमें 'इन्कम टैक्स' और 'विध्वविद्यालय' स्थापित हुआ था। कैनिंग् देखो।

लार्ड क्लाइव् १८६२ ई० में भारत आये। इनके समयमें सुपीम कोर्ट और सद्र अदालतने मिल कर 'हाई-कोर्ट' नाम पाया। दूसरे वर्ष नवेम्बर मासमें हिमालय प्रदेशमें धर्म-जात्या नामक स्थानमें क्लाइवको मृत्यु हो गई। उसके बाद पञ्जाब प्रदेशके शासनकर्ता सर जान लारेन्स राज-प्रतिनिधि हुए। १८६२ ई० में भूदानयुद्ध और दुबारा अधिकार तथा १८६६ ई० में उड्डियाका दुर्मिक्ष इनके समयकी प्रधान घटनाएँ हैं। १८५७ ई० में लारेन्सके खिलायत पहुंचने पर उन्हें लार्ड उपाधि प्राप्त हुई थी।

१८६६ ई० में लार्ड मैयो क्लाइवका आये। उस वर्ष उन्होंने अग्न्याग्राके दरवारमें काबुलकी चिह्नकृता निशानके लिए अमीर और अलीको बुलाया। सोमान्तके बाद विर्मयादकी मिठानके लिए उन्होंने अमीरको काबुलका अधिपति हथीकार कर पर साय रणया वार्षिक सहायता और भावदयकनानुसार सख पहुंचानेकी शर्तकारना थी। इसी समय महाराणाओंके मध्यमयुव श्वक भाव परिणतकर भारत देखनेके लिए आये थे। धान्या-मन-प्रोपपुत्रके गोर्टलियर-प्रोपमें शेरअली नामक मुसल-मानके हाथमें १८७२ ई० में लार्ड मैयो मारे गये।

लार्ड मैयोकी इस प्रकारने आकस्मिक मृत्यु होने पर सर चार्ल्स मैनिपरेने कई मास तक कार्य-भार ग्रहण किया था। बादमें लार्ड मार्थमूक राज-प्रतिनिधि हो कर भारतमें आये। विद्रोहका दुर्मिक्ष, बंधीदाराय गायकवाड़की राज्य-कमुति और महाराणाके उद्वेग पुत्र (Prince of Wales) सनन कदवर्धका भारतमें पर्यटन उस समयकी प्रधान घटनाएँ हैं।

१८७३ ई० में मार्थमूकके हाथसे लार्ड लिट्टनेन का भार ग्रहण किया। १८७७ ई० में विलो-शरधारमें मारु-रानी "भारत साम्राज्ञी" (Empress of India) नामसे विधोपित हो गई। २५ और २५ अक्तूबर पुत्र और मन्त्राज्ञा दुर्मिक्ष उनके शासन समयकी प्रधान घटनाएँ हैं।

लार्ड लीटनके वापस जाने पर, १८८० ई० में लार्ड रोपनेने वायसराय हो कर काबुल-राज्यमें सुभृद्धका स्थापनके लिए पर्याप्त प्रयत्न किये। इन्होंने अमीर अहमद रहमान काँकी अमीर खाने अह्लाकार कर काबुल-युद्धका उपसंहार किया। शिक्षा-समिति (Education Commission), स्वायत्तशासन (Self local Government) और सर्वाजातीय महामर्दिमिठी (International Exhibition) इन्हींके समयमें अनुष्ठित हुई थी।

१८८४ ई० के दिसम्बर मासमें लार्ड डकारिनको कार्य-भार दे कर लार्ड रोपन स्वदेशकी गये। डकारिनके समयमें अक्तूबर और नूस्की सोमाका मिठाकरण, २५ प्रलययुद्ध, ग्यालियर दुर्गका वापस करना, जुबिलि मरी-त्सय और भायकर प्रयत्न आदि सम्पादित हुए।

१८८८ ई० में लार्ड लेस्डाउनने भा कर वाय-भार ग्रहण किया। १८९१ ई० में मणोपुरका युद्ध और सम्मति-कानून (Consent Bill)का प्रवर्तन इन्हींके समयकी घटना हैं।

१८९४ ई० में लार्ड लेस्डाउनका कार्य-भार समाप्त होने पर क्लाइव भारतमें आये। गिल-युद्ध और 'ग्रीनड जुबिलि' इन्हींके शासनकालमें अनुष्ठित हुआ था।

लार्ड क्लाइवके विद्यालय पहुंचने पर लार्ड बजेंन भारतके वायसराय हुए। टीस-युद्ध, भारत-साम्राज्ञी विकटोरियाकी मृत्यु और सुवराज जिन्म भाव किन्म (मनन कदवर्ध)का गव्यामिषक (१९०३ ई०) मरी-हमय, ये इनके समयकी प्रधान घटनाएँ हैं।

१९०५ ई० में लार्ड कर्जनके पद-ग्रहण करने पर पूर्व-सत बड़े लार्ड लार्ड मिटोके अह्लाकार जिनीय लार्ड मिटो प्रतिनिधि

कालमें अपनी मतिको स्थिर रख कार्य करके लार्ड मिण्टो असाधारण शक्तिका परिचय देने लगे। भारतके शासन व्यापारमें संस्कार साधन करके उन्होंने भारतवासियोंकी आशा आकाङ्क्षाके प्रति सहायुभूतिका परिचय प्रदान किया। उस समय लार्ड माले भारत सचिव थे। लार्ड मिण्टोने उनके साथ परामर्श कर १६०६ ई०में इण्डिया काउन्सिलस ऐक्टकी विधिवत् किया। लार्ड मिण्टोके शासनकालमें ही पहले पहल बड़े लाटकें शासन परिपक्वमें एक और भारतसचिवकी कौंसिलमें भी दो भारतीय लिये गये थे। अतएव इस घटनाको भारतके ब्रिटिश शासन-इतिहासमें नवयुग कहनेमें कोई अत्युक्ति नहीं होगी। बादमें लार्ड मिण्टोके समयमें जो प्रसिद्ध घटनाएँ हुईं, वे ये हैं— १६०५ ई०के दिसम्बर मासमें युवराज ( वर्त्तमान पञ्चम जार्ज ) प्रिंस आब वेल्सका भारतपदार्पण, १६१० ई०में सम्राट् सप्तम एडवर्डकी मृत्यु और १६११ ई०के जून मासमें महाममारोहसे पञ्चम जार्जका राज्याभिषेक।

लार्ड मिण्टोके विलायत जाने पर लार्ड हार्डिञ्ज बड़े लाट हो कर भारतवर्ष पधारे। इनके समयमें पञ्चम जार्ज और साम्राज्ञी मेरी भारतवर्ष परिदर्शनकी आई थीं। दिल्ली नगरमें एक विराट् राजकीय द्वाार पैठा। दरवारमें सम्राट् ने भारतशासन सम्पर्कमें कुछ परिवर्तनकी बातें घोषित कीं :—(१) कलकत्तेसे भारतको प्राचीन राजधानी दिल्लीमें ब्रिटिश भारतकी राजधानी स्थानान्तरित हुई। (२) विहार, छोटानागपुर और उड़ीसाको बङ्गालसे अलग कर एक स्वतन्त्र विभागमें परिणत किया गया और इस नूतन प्रदेशका शासनभार कौंसिलके एक छोटे लाटके हाथ सपुर्दा हुआ। (३) आसाम प्रदेशको स्वतन्त्र करके उसका शासनभार एक चोफकनिश्चरके हाथ सौंपा गया। अलावा इसके जर्मन और अङ्गरेजका विराट् विश्वयुद्ध लार्ड हार्डिञ्जके ही समयमें १६१४ ई०के अगस्त मासमें छिड़ा था।

१६१६ ई०में लार्ड चेम्स फोर्डके हाथ कांयभार दे कर लार्ड हार्डिञ्ज स्वदेशको गये। भारतके अङ्गरेजी शासनके इतिहासमें उनका शासनकाल चिरदिन स्मरणीय रहेगा, क्योंकि उन्होंने समयमें भारतका

पहले पहल दायित्वमूलक स्वायत्तशासनाधिकारका प्रथम दफा प्रदान किया गया। १६१६ ई०की २३वीं दिसम्बरको इसी बार्डिनके आधार पर गवर्मेण्ट आब इण्डिया ऐक्ट पास हुआ।

राजाभाता ह्यक आव कनाटने राजाके प्रतिनिधि रूपमें भारतवर्ष आ कर संस्कार आइन्का परिवर्तन किया। भारतीय मन्त्रीसमूह नियुक्त हुआ तथा विहार और उड़ीसामें एक भारतीय गवर्नर नियुक्त हुए। वे विशिष्ट बङ्गाली थे, सर सत्येन्द्र प्रसन्नसिंह उनका नाम था और 'लार्ड सिंह' उनकी उपाधि थी। उन्होंने ही भारतवासियोंके मध्य पहले पहल लार्डका पद पाया था और भारतसचिवके सहकारी पदको सुरोभित किया था। लार्ड चेम्सफोर्डका शिक्षा संस्कारकी ओर भी विशेष ध्यान था।

लार्ड चेम्सफोर्डके बाद १६२१ ई०में लार्ड रीडि भारतके बड़े लाट हो कर भारतवर्ष पधारे। वे पहले इङ्ग्लैण्डके प्रधान विचारपति थे और अपने अद्भुत प्रतिभावदसे इतने बड़े विश्वस्त पद पर आसीन हुए। लार्ड रीडिङके बड़े लाट होनेके कुछ ही समय बाद लार्ड लीटन बङ्गके गवर्नर हुए। विहार और उड़ीसाके लार्ड सिंहके बाद सर हेनरी होलर और आसाममें सर-जान कारके बाद सर विलियम मेरिसने शासनभार ग्रहण किया। लार्ड रीडिङके कुछ समयके लिये छुट्टीमें विलायत जाने पर लार्ड लीटन अस्थायीभावमें बड़े लार्ड नियुक्त हुए थे। छः मासके बाद पुनः आ कर लार्ड रीडिङने शासनभार अपने हाथ लिया। वे एक प्रसिद्ध राजनीतिक थे। उनके शासनकालकी उल्लेख योग्य घटना है "बङ्गाल आर्डिनेंस"। उक्त आर्डिन-बलसे बहुसंख्यक देशसेवक राजद्रोहिताके अपराध पर अनिर्दिष्ट समयके लिये पकड़े गये थे।

लार्ड रीडिङके बाद १६२७ ई०में आरविन भारतके बड़े लाट हो कर आये। ये ही वर्त्तमान राजप्रतिनिधि हैं। इनके समयकी प्रथम प्रसिद्ध घटना है, शासनकार्यका तदन्त करनेके लिये "साइमन कमिशन"का भारतागमन। सात विश्व व्यक्तियोंको ले कर उक्त कमिशन संगठित हुआ उन सातोंमेंसे साइमन प्रधान थे।

उन कर्मोद्गमों कोई भारतीय न लिये जानेके कारण भारत भरमें सनसनी फैल गई और जिस दिन (३१ फरवरी १९२८ ई०) उन कर्मोद्गमने भारतमें प्रथम पदार्पण किया उस दिन समग्र भारतवर्षमें उसका प्रतिपाद करनेके लिये हड़ताल मनाया गया।

प्रश्नेत्र-साधनासोभिका अभिधारकान् ।

श्यामल १०५० ६० ई० चर्मोटाई १०६०-६५ ई०  
पलाइय १७६५-६७ चलेष्ट और कार्टियर १०७० ७२  
चार्ले हेडिंगम् १०७२-८५ लाई कर्नवालिस १०८६-९३  
सर जन शौर १०९३ ९८ मार्किट्स आफ् वेलेस्ली

१७९८-१८०५

लाई कर्नवालिस १८०५ सर जार्ज चार्ले १८०५-०७  
लाई मिष्टो १८०७-१३ लाई मायरा १८१४-२३  
लाई सामरट्ट १८२३-२८ लाई वेण्ट्रेड्ड १८२८-३५  
लाई मेटकाफ १८३५ लाई आरलेण्ड १८३६ ४२  
लाई एलेनबरो १८४२-४४ लाई हाडिज १८४४-४८  
लाई डलहौसी १८४८ ५६ लाई कैनिग् १८५६-६२  
लाई एलमिन् १८६२-६३ लाई लार्ल्स १८६४ ६८  
लाई मेयो १८६६-७२ लाई नार्थम् १८६२-७६  
लाई लीडन १८७६-८० लाई रोपन १८८० ८४  
लाई डफरिन १८८४-८८ लाई लेंसटाउन १८८८ ९४  
लाई एलमिन १८९४ ९८ लाई फर्जन १८९८-१९०५  
लाई २५ मिष्टो १९०५-१० लाई २५ हाडिज १९१० १६  
लाई वेगमत्तोर्ड १९१६-२१ लाई रोडिग १९२१-२७  
लाई लीडन (अध्यायी, लाई भारविम १९२७  
मिर्क ४३) मास) ( वर्तमान राष्ट्रप्रतिनिधि )

ब्रह्म, बन्धे और मन्त्रात्र आदि इन्दीमें अन्य सामान-बर्नाभोका निरगद देवता आदि।

भारताचार्य ( सं० पु० ) प्रसिद्ध महामानव-सोकाकार मजुर्ननिभको उपाधि ।

भारतामन्द ( सं० पु० ) सातके साठ मुख्य भेदोंमें एक भेदका नाम ।

भारति ( सं० पु० ) १ सरस्वती । २ शशी ।

भारती ( सं० स्त्री० ) १ भरतपत्नी, स्त्रियां स्त्रीपू । १ यवन, यावय । २ सरस्वती । ३ एक पारसीका नाम । ४ एक पृथिवीका नाम । १२के द्वारा रोड् और धोमरस रगका

वर्णन किया जाता है। यह माधु या संवृत नामसे होता है । ५ ब्राह्मी । ६ संख्यासिधियोंके एक नामसेयै ६६, जट्टराचार्यके गिन्य तोडकादिके गिन्योमेंसे एक गिन्यो उपाधि । जट्टराचार्यके गिन्योके ज्ञानके नावतमानुमान गिरि पुरि भारती आदि उपाधि है । ब्राह्मणको छोड कर अन्य वर्णोंको यह उपाधि नहीं होती । भगवान् जट्टराचार्यके चार प्रधान गिन्योके नाम थे थे—पद्मगद्, हस्तामलय, मण्डन और तोटक । इन्ही तोटकके तीन गिन्योको उपाधि भी—सरस्वती, भारती और पुरी । इनमेंसे भारती उपाधिको लक्षण—

“विद्याभार्या” उन्पूर्वाः शंभार” परिकल्पे ।

दुःखभारं न जानाति भारती परिकल्पिता ॥”

( प्रायतोरिणी अक्षर ४६० )

जो विद्याभारते परिपूर्ण हो कर सभी भारता परि त्याग करते हैं और दुःखभार नहीं जानते, वे ही भारती हैं । यह जगत् दुःखमय है । आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिर्भौतिक इन त्रिनिधि तापोसे सभी निर्णीत हैं । जो ज्ञानके द्वारा इन ज्ञान कर धैर्यदातादिका भय-यन करने हुए समस्त दुःखोंको परितार करनेमें समर्थ हैं, वे ही 'भारती' उपाधिकानके योग्य पात्र हैं ।

महानि जट्टराचार्यके प्रतिष्ठित चार मठोंमेंसे मजु-गिरोंके मठमें पुरि, भारती और मन्वतो इन तीन धेनियोंके संन्यासी रहते थे । वे लोग जट्टराचार्यके मन्वामार नियुंण प्रत्येक उपासक थे और उनसे पूजने पर भी वे अपनेको नियुंण ब्रह्मोपासक बतलाते थे । किन्तु उनके पिभूति आदि मीथिनिक धारण, निरास्यमें अथवाअ, अपमें शुद्ध जट्टरास्वामीके निवायनार पर विश्राम, निर-मन्त्रप्रदान और महिमामन्य आदि प्रसिद्ध निरस्योद पाठार्दि करनेके कारण वे पूर्ण तथा शेष हो समझे जाने थे । किन्तु इनमेंसे बहूतेरे नियुंणोपासक और मोक्ष-क्षानो भी थे, इन्में गन्देद नहीं । जट्टराचार्यकी मायानुपायो धैर्यमयवर्ग और वेदमन्त्र-प्रतिपाद आभ्यन्तान साधन हो रसका मुख्य धर्म था ।

वे लोग संन्यासीको शत्रु, कर्त्तव्य भयान् करी और मू... साधुने अथवा

जलम वहा देते हैं। इसे मृतसमाधि और जलसमाधि कहते हैं।

“संन्यासिना मृतं कार्यं दाहयेन्न कदाचन।

सममूज्य गन्धपुष्पाद्यैर्निलनंदापानु मञ्जवेत् ॥”

(महानि० तन्त्र ८)

संन्यासियोंकी मृतदेह कदापि न जलाये। उसे गन्धपुष्पादि द्वारा अर्चना करके मट्टोंमें गाड़ अथवा जलमें वहा दे।

वर्तमान समयमें बहुतेरे केवल नाम धारण करते हैं, स्वधर्मोचित साधन और नियमानुष्ठान कुछ भी नहीं करते। ये लोग केवल तीर्थ भ्रमण और विजया धूमपान करके जीवन बिताते हैं। सरस्वती, पुरि और पशुपती देखो! ६ एक नदीका नाम।

“भारती सुपयोगा च कावेरी मुर्मुरायथा”

(भारत ३२२।२५)

भारतीकवि—शाङ्ग धरपद्धतिधृत कविभेद। आप काव्य, प्रकाश और काव्यप्रकाशसूत्र लिख गये हैं।

भारती कृष्णाचार्य (सं० पु०) आचार्यभेद, धर्मचक्र।

भारतीचन्द्र (सं० पु०) गढ़ादेशाधिपति एक राजा।

भारतीतीर्थ (सं० पु०) १ तीर्थभेद। २ पक्षदशीके प्रणेता, सुविख्यात सायण और माधवाचार्यके गुरु। इन्होंने वेदान्ताधिकरणन्यायमालाविवरण-प्रमेहसंग्रह नामक ब्रह्मसूत्रभाष्य और व्रतकालनिर्णय तथा पञ्चभूतविवेक नामक ग्रंथ प्रणयन किये हैं।

भारतीय (सं० त्रि०) भारतसंबन्धी, भारतका।

भारतीयति (सं० पु०) तत्त्वकीसुदीप्त्याख्याके प्रणेता, बौधायन युतिके शिष्य।

भारतीयन् (सं० त्रि०) भारती अस्त्यर्थे मनुष्य मस्य च। १ भारती तुल्य। २ विशिष्ट। (पु०) ३ इन्द्र।

भारतीश्रीमूखिंह (सं० पु०) शङ्कराचार्यके मतावलम्बी एक प्रसिद्ध आचार्य।

भारतुला (सं० खी०) वस्तु विद्याके अनुसार स्तम्भके नीचे भारतीमेंसे पांचवां भाग जो बीचमें होता है।

भारतनेय (सं० पु०) भारतका अपत्य।

भारतेश्वर (सं० पु०) १ भारतका अधीश्वर। २ राजा भरत।

भारतेश्वरसूरि—एक जैन सूरि, शिलभद्रके शिष्य।

भारथ (सं० पु०) भारद्वाजपक्षी।

भारथी (हिं० पु०) योद्धा, सिपाही।

भारदण्ड (सं० पु०) १ एक प्रकारका साम। २ भारवधि, बहंगी।

भारदण्ड (हिं० पु०) एक प्रकारकी कसरत या दण्ड। इसमें दण्ड करनेवाला साधारण दण्ड करते समय अपनी पोंड पर एक दूसरे आदमीको बैठा लेता है। वह पुरुष उसके पीठकी नली पर पाँव जमा कर हाथोंसे उसकी करघनी वा बन्धन पकड़ कर झुका रहता है और दंड करनेवाला उसका बोक संभाले हुए साधारण रीतिसे दण्ड करता जाता है।

भारद्वाज (सं० पु०) भरद्वाजस्य अपत्यं गोलापत्यमिति वा भरद्वाज (अष्टाध्यायिभ्यो विदादिभ्यो ञ्। पा ४।१।१०४) इति ञ्। १ द्रोणाचार्य। २ रूपिभेद। इनका रचा हुआ श्रौतमूल और गृह्यसूत्र हैं। ३ अगस्त्य मुनि। ४ मङ्गलग्रह। ५ व्याघ्राट पत्नी। ६ बृहस्पति पुत्र। ७ देशभेद। ८ अस्थि, हड्डी। ९ बृहत्संहितोक्त एक ज्योतिषिद्। १० उपलेखपत्रिकाके रचयिता। (त्रि०) ११ भरद्वाज वंशीय, भरद्वाजके कुलमें उत्पन्न।

भारद्वाजक (सं० त्रि०) भरद्वाजसम्बन्धीय।

भारद्वाजायन (सं० पु०) भरद्वाजस्य गोत्रापत्यं भरद्वाज (अष्टादिभ्यः फञ्। पा ४।१।११०) फञ्। भरद्वाजका गोत्रापत्य।

भारद्वाजी (सं० खी०) १ घनकापांसी, घन कपास। २ नदीभेद। (भारत ६।१।१८)

भारद्वाजीपुत्र (सं० पु०) वैदिक आचार्यभेद।

भारद्वाजीय (सं० त्रि०) १ भारद्वाजसे आगत। (पु०) २ भारद्वाजप्रोक्त-व्याकरण-मतावलम्बी।

भारभारी (सं० त्रि०) भारवहनकारी, बोक उठानेवाला। भारभूतितोर्थ (सं० खी०) प्राचीन तीर्थ जो अमी भरहुत नामसे प्रसिद्ध हैं।

भारभूत् (सं० त्रि०) भारं विभक्ति भू-विभक्। १ भारधारक, बोक ढोनेवाला। (पु०) २ विष्णु।

भारभेष (सं० त्रि०) भरभरषेडं सुभ्रादिस्वात् ढकती। भरसम्बन्धी।



भारव्य ( सं० पु० ) भां द्योनि रवने प्रारभोतीति रव्य मनी पत्याद्यन् । भाग्यवाह्य पत्नी, भगवत्या ।

भारव्यष्टि ( सं० स्त्री० ) भाग्यव्यष्टिः ६ तन् । भाग्यवाहन-वृष्ट, वृष्टी ।

भाग्य ( सं० स्त्री० ) भागं यतीति भाग-या ( भाग्यञ्च-यां कः । या शशां ) इति क । धनुमुण, धनुवहो रम्यी ।

भाग्यम् ( सं० त्रि० ) भाग अन्वयार्थे मत्तुप्, मन्व्य च । भाग-युक्त, योक्त ।

भाग्याह ( सं० त्रि० ) भागं वहतीति अण्, णि य । १ भारिक, भाग द्योनेवाला । २ यहँगी द्योनेवाला । ( पु० ) ३ गडँभ, गडँहा ।

भाग्याहक ( सं० त्रि० ) १ योक्त द्योनेवाला । ( पु० ) २ मोटिया ।

भाग्याहन ( सं० स्त्री० ) भाग्यव्य वाहनं । भाग्यमन्वयी वाहन ।

भाग्याहिक ( सं० स्त्री० ) भाग्यव्य वाहन । भाग्यमन्वयी वाहन ।

भाग्याहिक ( सं० त्रि० ) १ भाग्यवाहनकारी, भाग द्योने-वाला । ( पु० ) २ गजदूर, मोटिया ।

भाग्याहो ( सं० स्त्री० ) भाग्याह गौगदित्वात्, डीप् । १ गौरी । ( त्रि० ) २ भाग्याह, योक्त द्योनेवाला ।

भारवि—एक प्राचीन कवि । विष्णुवात किराताजुंनोय नामक महाकाव्य इन्होंने सुषारस्वर्णिनी लेखनीने निकला है । इनका कवियुगके आर्यावर्षमें भारतवर्षि-का कौन स्थान अर्जुन द्रुमा था उसका अर्थ तक कोई पता नहीं लगा है । कहते हैं कि वे अपने युगको गौरव दे कर हिमालयकी तराईमें चमने जाया करते थे । हिम-गिरिके निकुत्तपुत्र आदिसे महत्कीर्ती अनुभव सौन्दर्यादि देण कर घीरे घीरे उनके हृदयोरमें कवित्व कीज भङ्कु-त्वि होने लगा । कर्मणः इहोमे कथितवके उद्यमन पर स्वल्प जमाया । एक दिन मातृतीय इतिहासको भायो-चना करने करते कौतूहल-निवासो मुषिष्ठिरादि पञ्च-पाण्डवकी कीर्तिरहासे उनके म्मुनियुगमें उचित हुए । मतोमे वे प्रसिद्धि गौरव प्राप्तके बहानेमें निरत हो-जुंमें जा कर बैठा करते थे और भावकी होमर्षेनु पास

होमें खेच्छाहार और खीर-मनादिका सुवासुध कर-धो । उचर शेष हिमगिरिके मधुपुत्रम निकुत्तमें बैठ कर एक एक भोजनपत्रके ऊपर तीन चार या उसमें अधिक इशोकोंकी रचना करते थे । महाकवि भारविने इन प्रकार प्रतिदिनके रचित इशोकोंकी एक संस्कृत कर एक परमोपादेय महाकाव्य प्रकाशित किया । उसी काव्यका नाम किराताजुंनोय है । उसका प्रथम इशोक इस प्रकार है,—

‘विष्णुःकुम्भ्यामभिरम्प पाजनीं प्रतामुश्चि म्मुपुद्क वेदिपुद् ।  
म यषिष्णिज्जो विदितः समसयो मुषिष्ठिरं द्वैताने वनेयपः ॥’

कविने इस महाकाव्यके प्रत्येक सर्गके शेष इशोकों एक एक लक्ष्मी शब्द द्वारा परिगणित किया है । इससे ज्ञान्युपार्णना और हिमालयवर्षणा आदि बहोरो समसोय है । एतद्भिन्न इसके अनेक श्लोक विविध अन्तहार निररने अलङ्कृत और सर्पांतोमद्र अर्थ समक आदि मागाविष-निवर्षणमें प्रथित हैं । विस्तार हो जानेके मपसे वहाँ पर केवल एक उद्धृत किया जाता है,—

दे या का नि नि का वा रे ।  
या दि का हा स्व वा रि का ॥  
का वा रे म म रे वा का ।  
नि स्व म प्य प्य म रर नि ॥  
( भा० ११२३ )

कविने अपने प्रथममें इस प्रकार अनेक पारिहरव दिख-लाया है । एतद्भिन्न केवल एकान्तर दे कर भी अपने अनेक इशोकोंकी रचना की है । यथा—

न नी न तु भी न्मुनेः केभवा गता मना ! न्मु ।  
नुकेज्जुमः न्मुन्नेमो गाने ना न्मुन्मुकर ।  
( भा० ११२४ )

महाकवि भारवि एक असाधारण पारिहर थे । इन्होंने कितनी माकामें पारिहरव और कवित्वजनिक है कर जगत्प्रदल किया था, यह उनकी रचित माला मधु-कवितावलीके प्रति मद्यव करनेमें ही मादूम ही माला है । उनको रचनाके मध्य प्रसारमुत्पन्न विरहो वारर है । प्रथम अधिहास कविता पढ़ने ही मद्यव पाठकका हृदय-कन्ध धान्यरामसे व्यापित और अरिह मुक्तिक हो जाता है । उनकी कविता केवल प्रसादपूर्ण पद्यरव

द्वारा ही परियोगित थी सो नहीं, अन्तर्निहित गभीर भावार्थोंके अपूर्व समावेशचातुर्यसे भी उनके कृतित्वने अनन्य साधारणता लाभ की है। महाकवि भारविकी ललित मधुर रचनाने अर्थगौरवमें जो प्रधान स्थान अधिकार किया है, वह काव्यरस रसिक कोविदोंके निम्न लिखित वचनोंसे ही सहजमें प्रतिपन्न होता है। यथा—

“उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम् ।

नैपथे पदनादित्यं मापे सन्ति प्रयोगुणाः ॥”

प्रसिद्ध टीकाकार महिनाथ भी एक श्लोकमें अन्तरसंपूर्ण नारिकेल फलके साथ भारवि कविकी उत्तिकी तुलना करके रसिकोंको इसकी सरस सारकथाका इच्छा अनुसार आस्वादन करने कह गये हैं। टीकाकारकृत श्लोक यों है,—

“नारिकेलफलवग्मिन् वचो भारवेः सपदि तदिभ्रमन्त्ये ।

स्वादयन्तु रसगर्भनिर्भरं सारमल्पं रक्षिका यथेयित्तम् ॥”

कविधर भारवि सम्भवतः ४थी शताब्दीमें विद्यमान थे। उनका कवित्व-सौरभ तत्परवर्त्तों कालमें चारों ओर फैल गया था। यही कारण है, कि हम लोग ५०० शकमें उत्कीर्ण २५ पुलकेशीकी शिलालिपिमें प्रसिद्ध कवि कालिदासके साथ उनका समावेश देख पाते हैं।

भारवी ( सं० पु० ) तुलसीवृक्ष ।

भारवृक्ष ( सं० पु० ) सौराद्रमृत्तिका, गोपीचन्दन ।

भारशिव—प्राचीन जातिविशेष ।

भारशङ्ख ( सं० पु० ) मृगविशेष ।

भारसह ( सं० लि० ) सह-अच् भारस्य सहः । भारसहन-कारो ।

भारसाधन ( सं० लि० ) कठिन व्यापारसाधनकारो ।

भारहर ( सं० पु० ) हरतीति ह-अच्, भारस्य हरः । भार-वाहक ।

भारहार ( सं० पु० ) भारं हरतीति ह अच् । भारवाहक ।

भारहारिक ( सं० लि० ) १ भारहरणकारो । २ भारवहन-कारो ।

भारहारिन् ( सं० लि० ) भारं हरतीति ह णिनि । भारहरण-कारो, भगवान् विष्णु । पृथिवी जव पापसे परामान्त हुई तभी विष्णुने उनका भारहरण किया ।

भाराक्रान्त ( सं० लि० ) भारेण आक्रान्तः ३ तत् । भार-पीडित, बोकसे लदा हुआ ।

भाराक्रान्ता ( सं० स्त्री० ) एक वर्णिक वृत्तिका नाम । इसके प्रत्येक चरणमें न भ न र स और एक लघु और एक गुरु होते हैं और चौथे, छठे तथा सातवें वर्ण पर यति होती है ।

भारावलम्बकत्व ( सं० पु० ) पदार्थोंके परमाणुश्रोंका पारस्परिक आकर्षण । बहुतसे पदार्थोंकी क्षीनों ओरसे खींचनेमें प्रतिबाधक होता है जिससे वह टूट नहीं सकते । इसी धर्मको भारावलम्बकत्व कहते हैं ।

भारि ( सं० पु० ) इभस्य अरिः पृगोदादित्वात् साधुः । सिंह ।

भारिक ( सं० पु० ) भाऽस्ति वाह्यतयास्य ( अत इति० ) पा ५।१।११५ इति टच् । भारवाहक, वह जो भार होता हो ।

भारिट ( सं० पु० ) पक्षिविशेष, पर्याय—श्यामचटक, शैशिव, कणभक्षक ।

भारिन् ( सं० पु० ) भारोऽस्त्यस्मिन् वेति, भार-इति । १ भारवाहक । ( लि० ) २ भारयुक्त ।

भारी ( हि० वि० ) १ शुभ, बोग्गिल । २ भोषण, कठिन । ३ विशाल, बड़ा । ४ अधिक, अत्यन्त । ५ असह्य, हमर । ६ सूजा हुआ, फूटा हुआ । ७ प्रबल । ८ गम्भीर, जान्त । भारोपन ( हि० पु० ) १ गुरुत्व, भारीका भाव । २ गरीष्ठता, भारी होना ।

भारुचि ( सं० पु० ) धर्मज्ञान और वेदान्तशास्त्रके प्रणेता । विद्वान्भवन्ने इनका नामोल्लेख किया है ।

भारुजिक ( सं० लि० ) भयज शृगालम्भश्चोय । ( पा ५।३।१०८ )

भारुण्ड ( सं० पु० ) रामायणके अनुसार एक यनका नाम । यह पञ्जाबमें सरस्वति नदीके पान पूर्वमें था ।

भारुण्डि ( सं० पु० ) १ उत्तरकुम्भगुप्त्य पश्चिमेट, एक पक्षी का नाम जो उत्तर कुम्भका रहनेवाला है । २ एक ऋषिका नाम । ये भारुण्डि सामके द्रष्टा थे । ३ सामभेद, एक प्रकारका साम ।

भारु ( हि० पु० ) धीरे धीरे चलनेके लिये एक संकेत । कहार लोग इस शब्दका व्यवहार करते हैं ।

भारुप ( सं० स्त्री० ) भारुपमस्य ।

भारोद्भ ( सं० त्रि० ) १ भारशरी, भार ले जाने वाला ।  
 ( पु० ) २ मोटिया, मजदूर ।  
 भारीरजोवन ( सं० स्त्री० ) भारवहन द्वारा जीविका निर्वाह करनेवाला ।  
 भारीनी— १ युक्तप्रदेनके शय्यवस्त्री जिलेका भरजातिका प्रतिष्ठित एक प्राचीन नगर । रायसेतो देखो ।  
 २ भांगी जिलेके भल्लगंज एक प्राचीन गाण्डग्राम । यह गाण्डमे १॥० फीस दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है । यहाँ चन्देला राजाओंका प्रतिष्ठित एक सुप्रान्चीन शिव-मन्दिर विद्यमान है ।  
 ३ गोरखपुर जिलान्तर्गत एक प्राचीन ग्राम । यहाँ कर्ण अलपाराके निकट एक प्रचीन मन्दिरका धर्मसायशेष देखा जाता है ।  
 भारीनी गङ्गान्तर—युक्तप्रदेनके गाजोपुर जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर । यहाँ एक बौद्धविहारका धर्मसायशेष भीर एक सुप्रान्चीन बट गृह नगर आया है । जोन परि-प्राज्ञक फादियान भीर मूदनचुर्गंग यहाँ प्राये हुए थे ।  
 भारीश्री ( सं० स्त्री० ) भारं गहनेति यह-पित्र, स्त्रियां स्त्रीपु, यम्य ऊट् । भारवाहिका, शोक होनेवाली स्त्री ।  
 भारं ( सं० पु० ) भारंश्व देगमेदस्य राजा भण् । भारं-क्षेत्रके राजा ।  
 भारंभूमि ( सं० पु० ) आङ्गिरस भारंशके एक पुत्रका नाम ।  
 भारंवेभ्रत्वोभं ( सं० स्त्री० ) तंभंविशेष ।  
 भारंव ( सं० पु० ) भृगोत्पत्त्यं नटुगोपाशयमिति भृगु-भण् । १ पञ्चराज । २ शुकाचार्य । ३ गज, हाथी । ४ भावनकर्षके मन्त्र प्राक्प्रदेनाम्नां देगविजेर । ( भारंवेवेवभृगव ) ५ भृगुके पंजमें उररन पुत्रव । ६ मार्कण्डेय । ७ कुन्डाल, कुन्धार । ८ जीनक । ९ होरक, होरा । १० मन्त्रभृगुराज, नीला मंगरा । ११ एक उपउत्पत्तका नाम । १२ अमर्षि । १३ कपय । १४ सताशिवर्षिण एक राजा । १५ संयुक्तप्रदेनमें रहनेवाली एक जाति । १६ जातिके लोग अर्धभयको प्राप्त करने हैं, पर इनको दूध बरूषा घेरोकी भी होती है । कुछ लोग इन्हें इतर बलिया भी कहते हैं । ( त्रि० ) १६ भृगुसम्बन्धी ।

भार्गंय—यग भूयनसायके प्रवेता ।  
 भारंयभाचार्य—नामसर्वहनिषयपुके रचयिता ।  
 भारंयन ( सं० स्त्री० ) द्वारकास्थिता वनमेद ।  
 भारंयपुर—युक्तप्रदेनके गोरखपुर जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर । यह धर्मरा नदीके बाएँ तिकारेका स्थित है । इसका वर्तमान नाम भगलपुर है । इसमें निकटवर्ती स्थानोंमें अनेक धर्मसायशेष देखे जाते हैं ।  
 भारंयमिय ( सं० पु० ) भारंयकय मिय, शुकाशिवः देवताकृत्यान् । होरक, होरा ।  
 भारंयब्राह्मण—भरोचपासो ब्राह्मण जातिकी एक जाति ।  
 भारंयग्राम—घणंसङ्करजातिमालाके प्रणयनकर्ता ।  
 भारंयग्राम—एक महत्पुत्र । ये श्व वेगवा पार्श्वरायके गुह थे ।  
 भारंवी ( सं० स्त्री० ) भारंय स्त्री । १ पार्श्वी । भृगोत्पत्त्यं स्त्री भृगु-स्त्रीपु । २ लक्ष्मी । ३ दूर्य, दूर । ४ गोल दूर्य, गोम्बी दूर्य । श्वेन दूर्य, शकेद दूर । ६ भृगुवंशीय स्त्रीमान ।  
 भारंवी—पुरी जिलेमें प्रशक्ति एक जागा मदी । यह महानदीकी कोषामार नदीकी एक शाखामें निरप कर चिकना फोळमें गिरती है ।  
 भारंवीय ( सं० त्रि० ) भारंयसम्बन्धी ।  
 भारंवन ( सं० पु० स्त्री० ) भारंय्य गोलापत्त्यं तंभंवि-विरयान् कम् ( वा ५।१।११ ) भारंका गोलापत्त्य ।  
 भारि ( सं० पु० ) भारंका गोलापत्त्य ।  
 भारी ( सं० स्त्री० ) भृगुपत्त्य, भारींस्त्रय्यया इति ( १० ) इत्यु-डालभ्यसाम् । वा ५।१।१० ) इत्यम्भु भारिकोपत्त्य भृगु मतो स्त्रीपु । वृषीमेव, भारीनी । भारीके देखो ।  
 भारीगुह ( सं० पु० ) आसापिशाचका भीरुत्वमेद । प्रस्तुत प्रजाती—भारी १२३, दशमूत १२३ गेर भीर हर्षिकी यह भी, इन सबके मत्तुमंजकी ११६ गेर हट्ट काग पाक कम्पके पत्तुपान्ज गेर रहते उतार है । पीले बम्पे द्वारा टान कर उम बरापानी १२३ गेर पुगला गूह भीर सिद्ध हरीशर्की उन्नि भीर फिर धामो धामोमें पहाये । हटा हो जाये पर मोन पाव मयु तथा हॉट, पीर, मिर्क, शर-गोमी, इनपकी भीर सेहजत प्रतीक भाव पाव भीर श्व-राज शूर्पं एक तडाक छोड़ है । प्रतिष्ठित यह हरीशर्की

एक और देह चार तोलां करके सेवन करनेसे ध्वास, पांच-  
प्रकारकी खाँसी, अर्श, बँधवि, सुश्न, मलमेद और क्षय-  
रोग जाता रहता है तथा स्वर, घर्ण और अडरानि उहो-  
पित होती है। (भावप्र० श्वासाधिकार)

भाष्यादि (सं० पु०) विषम-उत्तरका कर्मायमेद । प्रस्तुत  
प्रणाली,—भाष्यो, अर्ध, पर्वटक, पुष्कर, शृङ्खवेर,  
पथ्या, कणाह और दशमूत्र इनके समान भागको धाध-  
सेर जलमें सिद्ध कर पीछे आध पाव रहते उत्तार लेनेसे  
यह कर्माय वनता है। इसके सेवनसे विषमउत्तर बहुत  
जल्द दूर होता है। (मैत्रजरत्ना० उत्तराधिक०)

भाद्रांजी (सं० खो०) भारद्वाजो पृथोदरादित्वात् साधु ।  
घनकार्पांसी, घनकपास ।

भाष्यं (सं० पु०) मुद्गलमूल रूपमेद ।

भाष्यां (सं० खो०) भरणीया इति। (शुक्रोपर्वत् । पा  
१।१।१२४) इति षण्त्, टाप् वा भया दीप्त्या आर्या ।  
वेद-विधान द्वारा विवाहिता दाम्, शास्त्र विधिसे विधा-  
हित पत्नी । पर्याय—पत्नी, पाणिपुत्रीती, द्वितीया,  
संहर्षिणी, जाया, दारा, धर्मचारिणी, दार, कल्ल, कल-  
लक । (शब्दरत्ना०) सौ अपकर्म करने पर भी भाष्यांका  
भरण-पोषणे करना उचित है ।

“वक्ष्य नास्वि वती भाष्यां श्रेष्ठे प्रियवादीनी ।

अर्यथं तेन गन्तव्यं यथायथं तथा शृणु ॥”

(ब्रह्मवै० पु० मू० सं० १६ अ०)

जिसके घरमें प्रियवादिनी सती खो नहीं है, उसको  
घनमें जा कर रहना चाहिए, क्योंकि उसके लिए जैसा  
घर है वैसा ही अरण्य, दोनों ही समान हैं ।

मनुमें लिखा है, जिसपरिवारमें भर्ता और भाष्यांमें  
परस्पर नित्य सन्तुष्टि नहीं है, उस कुलका निश्चयसे  
अकल्याण होता है। वस्त्र और आभूषणादि द्वारा  
फान्तिमती हुए बिना खो पतिकी प्रमोदित नहीं कर  
सकती और न स्वामीकी प्रीतिके बिना सन्तानकी  
ही उत्पत्ति हो सकती है । भाष्यां यदि भूषणादि द्वारा  
सर्वदा मनोहर रूपमें सुसज्जिता रहे, तो सम्पूर्ण शृह  
शोभित होता है, और खो यदि रुचिकर न हो, तो  
सम्पूर्ण शृह शोभाहीन होता है ।

जिस कुलमें स्त्रियोंका समादर है, वहां देवतागण

प्रसन्न रहते हैं—यह कुल सर्वदा मङ्गलमय है । जिस परि-  
वारमें शोषण सर्वदा दुःखित रहती हैं, वह कुल शोष  
ही नष्ट हो जाता है । अतएव जो श्रौचदिकी कामना  
करते हैं, उन्हें चाहिए कि नित्य अग्न, भूषण और वस-  
नादि द्वारा स्त्रियोंको सन्तुष्ट रवे । (मनु ३ अ०)

भाष्यं दोष ।—भाष्यां यदि कुर्यात्, कर्ममला, कलह-  
प्रिया, प्रतिवाद्धारिणी, कुक्रियासका, लज्जाहीना  
और परचूद्धारिणी हो, तो उसे वास्तवमें जरार्युक  
समकता चाहिए । जैसे सर्प-युक्त शृहमें वास करने-  
वालाको सर्वदा प्राणनाशका भय रहता है, उसी प्रकार  
इंद्राभाष्यां जिसके शृहमें विद्यमान हो उसको मृत्यु  
निश्चय है, अर्थात् प्रति मूहर्त्समें उसे मृत्युव्यवस्था  
सताती रहती है । भाष्यां वास्तवमें अनुत्तमिणी है या  
नहीं, इस बातकी परीक्षा विभव क्षीण होने पर होती है ॥  
भाष्यंके गुण ।—जो खो गुणशा, अल्प-सन्तुष्टा, पति-  
प्राणा, शूद्रकार्णमें दक्षा, सर्वदा प्रियवादिनी, नित्य स्नान  
करनेवाली, सुगन्ध युक्ता, रूप-भाषिणी, धार्मिका, चित्त  
और देवप्रिया तथा सर्वसौभाग्य-वदिनी होती है, उस-  
का पति मनुष्य होने पर भी स्वर्गाधिपति इन्द्रके समान  
है । इस प्रकारकी भाष्यां बहु पुण्यफल ही प्राप्त होती  
है । भाष्यां अर्द्धाङ्ग-स्वरूपा है, भाष्यां ही एकमात्र श्रेष्ठ  
सुदृढ़ और त्रियर्गका एकमात्र मूल है ।

“सा भाष्यां वा श्रेष्ठे दत्ता सा भाष्यां वा प्रजावती ।  
सा भाष्यां वा पतिप्राया सा भाष्यां वा पतिव्रता ॥  
अर्द्धं भाष्यां मनुष्यस्य भाष्यां श्रेष्ठतमः सखा ।  
मानुष्यमूचं विवर्गस्य भागोमूचं भविष्यन् ॥”  
(भारत १।७४ अ०)

१ “वक्ष्य भाष्यां विरुपाक्षो कर्ममला कलहप्रिया ।  
उत्तरेत्तत्त्वादास्त्वान् सा जरा न जत जरा ॥  
यस्य भाष्यांभ्रतान्पथ परयेमामाभिकान्तिषी ।  
कुक्रिया त्यक्तलज्जा च सा अरा न जत ॥  
दुष्टा भाष्यां शठं मित्रं मृत्याग्नान्तरदायकाः ।  
समर्थं च श्रेष्ठे वाषो मृत्युसि न संशयः ॥  
भा.त्तु मित्रं जानीयत् सुद्रे शूभ्रंशु शुनिम् ।  
भागोच्च विमने क्षीणे दुर्मित्ते च प्रियादिभिम् ॥”  
(गङ्गपु० नीतिशा० १०८, १०९ अ०)

भास्वविन् ( सं० पु० ) भास्वविधेयं शिष्य या तन्मन्त्रानु-  
पत्तौकं मन्त्रप्रदाय ।

भास्वविधेय ( सं० पु० ) १ भास्वविधा गोलापत्य । २ इन्द्र  
प्रथमका नामान्तर । ३ भास्वविधेयं भेद ।

भास्वविधेयःपनिवट्ट-उपनिवट्टभेद ।

भास्ववृक ( सं० पु० ) भास्ववृक, भास्व ।

भास्वता ( हि० पु० ) भास्वी, होमहार ।

भास्वर ( हि० पु० ) एक प्रकार कास जिससे कामज  
बनता है ।

भाष ( सं० पु० ) भाषयति चिन्तयति पदार्थानिनि भू-  
तिच्यु पनाच्यु, भवतीति भू 'अयदेवेति पनच्युम्' इति  
कानिकाकोषों या । १ नाट्योक्तमें विद्वान् नाट्योक्तिमें जहां  
भाष जन्तुका प्रयोग होता है वहां उनका अर्थ विद्वान्  
समर्थना चाहिये । २ मानस विकार, मनकाविकार । ३  
गता । (गीता ३।१६) ४ स्वभाव । ५ अभिभाव । ( रामायण  
३।१।१६ ) ६ वेष्टा । ७ आत्मा । ८ जन्म (अमर) ९ चित्त ।  
( मनु ४।२२७ ) १० क्रिया । ११ लीला । १२ पदार्थ ( खु  
३।६१ ) १३ विभूति । १४ सुष । १५ जन्तु । १६ इत्यादि  
भाष । १७ गौरवित । १८ अग्निपान्तर । ( विशा० )  
१९ विषय । ( इवेतरेण ) २० पर्वान्धोचना । ( मनु ६। ८० )  
२१ प्रेम । ( गीता १०।१८ ) २२ मोक्षि । २३ उपदेश ।  
( धर्मिण ) २४ संगार । ( अनेकार्थकं ) २५ चात्वर्य ।  
( मन्त्रोप देका ) २६ मन्त्रप्रदको ज्ञापनादि ज्ञापना वेष्टाव ।

सङ्केतकीमुद्रोंमें ज्ञापन भाषीका विषय जिस प्रकार  
लिखा है, वही संक्षेपमें उसका विवरण लिखा जाता है ।  
कोछो विचार करने समय तबोंके भाषों पर विवेक रख  
रचना पड़ता है, कारण कौन-सा मन्त्र किन भाषोंमें है, उम-  
में कल देवोंकी उमता है या नहीं, इस बातका विचार  
करके उसका कल विवरण किया जाता है । ज्ञापन भाष  
इस प्रकार है:-

१ ज्ञापन, २ उपदेशन, ३ ज्ञापयति, ४ प्रकाशन, ५  
मानवेष्टा, ६ मानस ७ रामायणवि, ८ भाषयति, ९ अक्षय,  
१० मन्त्रविषय, ११ कौतुक और १२ मित्र । ये ज्ञापन  
भाष हैं । निर्यातविक्रम प्रकाशकों, अनुसार इन भाषोंका  
निर्यात किया जाता है ।

यदि आदि मन्त्रप्रदोंके ज्ञापनादि ज्ञापनभाषीका विवरण  
करना हो तो, उस समय ज्ञापन किस प्रकारमें अक्षय  
है इसका निरूपण करके उस प्रदमें अधिष्ठित मन्त्र ज्ञापन  
प्रदको पूरण करे और प्रहृषण म्योप अधिष्ठित मन्त्रके  
जिस मन्त्रभाषयमें अधिष्ठित है उस मन्त्रानुसंगित  
अंके द्वारा उस पूरित अक्षयों गुणा करे, वीधे मन्त्रों  
अपने अपने जन्मनाक्षराक्षरों उस अक्षयमें जोड़ कर जन्म-  
लम्ब-संख्याक और उद्घायाधि जानकर उसमें मिला है,  
उमके बाद उन अक्षयोंका १२से भाग कर जो बचे उन  
अक्षयोंनाममें ज्ञापन भाष धात होने है । यदि मन्त्र १  
हो तो ज्ञापनभाष, २ हो तो उपदेशनभाष, इसी प्रकार  
अन्य भाषोंका निरूपण किया जाता है ।

यदिप्रदको ज्ञापनादि भाषयलता करने समय ज्ञापन  
हनायनिष्ठ अक्षयमें ५ जोड़ो, फिर मन्त्रप्रदके ३, मन्त्रके  
२, पुष्पके २, वृहस्पतिके ५, शुक्रके ३, शनिके ३, राहुके  
४ और केतुके ५ जोड़ कर भाष विचार किया जाता है ।  
युक्ताक्षराक्षरसे अधिष्ठित होने पर पुनः उसे १२से भाग  
करें, जो बाकी बचे उससे भाष मान्य होता है । यदि  
१६ विद्याया, मन्त्रके २ वृत्तिका, मन्त्रके २० पर्वान्धना,  
पुष्पके २२ भाषणा, वृहस्पतिके ११, पूषायासुगो, शुक्रके  
८ पुष्या, शनिके २७ देवतो, राहुके २ अर्चना और केतुके  
७ अक्षयों ये भाष मन्त्रोंके जन्मनाक्षर कहलाते हैं । परम  
जिन मन्त्रोंके जन्मनाक्षरकी बात लिखी गई है, वह इस  
प्रकार समर्थनी चाहिये ।

इस ज्ञापनभाष भाषयणमें भी अनेक मन्त्रभेद हैं ।  
विश्वीके मतमें—ज्ञापनादि ज्ञापनभाषीका विचार करके  
हो, तो १२वादि प्रहृषण जिस शान्तिमें होवे, उस शान्ति-  
मित अक्षु द्वारा मन्त्रोंके अक्षयके अक्षय गुणा किया  
जाता है । पुनः उस अक्षयों भाषमें पूर्ण कर  
जिस मन्त्रके भाष मन्त्रना की जायगी उस मन्त्र  
जन्मनाक्षरको उसमें जोड़ना होगा । परन्तु  
समर्थकके मन्त्र और ज्ञापनके अक्षय अक्षु इस ही  
को उममें जोड़ कर १२ से भाग कर जो बचे, उस  
से जन्मनाक्षरकादि भाष विचार होता है । विश्वीके मत-  
में—जिस शान्तिमें मन्त्र हो, उस मन्त्रोंके अक्षय  
१२ से उसका गुणा करे, और जिस मन्त्रकी मन्त्र है उस

नक्षत्रपरिमित अङ्को पूर्वगुणित अङ्कमें मिला कर १२-  
से भाग करने पर जो बचेगा, उससे भावोंका निर्णय  
होगा ।

पहले प्रहोंका बलाबल विशेषरूपसे स्थिर किया  
जाना आवश्यक है । कारण, किस स्थानमें प्रहका कीसा  
बल है, इस बातको पहले न जान कर भावोंका विचार  
करना नि-प्रयोजन है । क्योंकि, बलका निश्चय किये बिना  
केवल भाव द्वारा फलका निर्णय नहीं हो सकता, व्यक्ति  
क्रम हो जाता है; इसलिए बलाबल पर विशेष दृष्टि रखना  
ज्योतिर्विदोंका अग्र्य कर्तव्य है ।

निद्रामावस्थित कोई पापग्रह जायास्थानमें रहे तो शुभ  
दायक होता है, किन्तु पापग्रह द्वारा दृष्ट होनेसे कदापि  
शुभकर नहीं हो सकता । यदि अपने शत्रु गृहगत पाप-  
ग्रह जायास्थानमें रह कर शत्रु द्वारा दृष्ट हो, तो पत्नीके  
साथ उसकी मृत्यु होती है । यदि उस स्थानमें शुभग्रह  
हो तथा वह शुभग्रह शुभाशुभ ग्रह द्वारा दृष्ट हो, तो उस-  
को प्रथमा स्त्रीकी मृत्यु होती है । जायास्थानमें शयन-  
भावका फल भी ऐसा ही अशुभ है ।

कोई पापग्रह निद्रा वा शयनावस्थामें सुतस्थान पर  
हो, तो शुभदायक होता है, इसमें किसी प्रकारके विचार-  
की आवश्यकता नहीं । परन्तु वह पापग्रह यदि अपने  
उच्चस्थानमें या अपने गृहमें अथवा मूल त्रिकोणमें रह कर  
सुतस्थानगत हो, तो अवश्य ही सन्तानकी हानि होती  
है । निद्रा वा शयन-भावापन्न शुभग्रह द्वारा दृष्ट हो कर  
सुतरस्थानमें हों तो प्रथम सन्तानकी विघ्न होता है ।

निद्रा वा शयन-भावापन्न पापग्रह मृत्यु-स्थानमें हो  
तो राजा वा शत्रु द्वारा अपमृत्यु होती है । यदि वह  
पापग्रह शुभग्रहके साथ मिला हो अथवा शुभग्रह द्वारा दृष्ट  
हो, तो गङ्गातीरमें मृत्यु होगी ।

शनि, मङ्गल वा राहु मृत्युस्थ होने पर अपमृत्यु वा  
शिरच्छेदन होता है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं ।

कर्मस्थानमें कोई पापग्रह शयन वा भोजन भावमें हो,  
तो उसे दरिद्रताके कारण समस्त भूमण्डलमें परिभ्रमण  
करना पड़ता है ।

चन्द्रके कौतुक अथवा प्रकाश भावमें कर्मस्थान पर  
होने में प्रबल राजयोग होता है । यदि शुभग्रह पापग्रहके

साथ अयुक्त हो कर २, १० ११, ६ वा ५म गृहमें रहे,  
तो महती सिद्धि प्राप्त हुआ करती है ।

रवि शयन-भावमें होनेसे मन्दाग्नि-युक्त, पित्त-  
शूल रोग, स्त्रीपद और अर्श वा भगन्दर रोग होता  
है । उपवेशन-भावमें रहनेसे गिल्पकर्मकारी,  
श्यामवर्ण देहविशिष्ट, उत्तम पिशा-रहित, दुग्ध-युक्त  
और पर-सेवामें रत होता है । यदि रवि नेत्रपाणि-  
भावमें रह कर लग्नके पञ्चम, नवम, दशम और सप्तम  
स्थानमें हो, तो सर्व प्रकारका सुख होता है, तथा  
इन स्थानोंके सिवा अन्य स्थानमें रहनेसे क्रूरप्रकृति और  
जलदोष रोगयुक्त होता है । प्रकाशन-भावमें रहे तो  
वधु-रोगयुक्त, अतिशय क्रोधो, परदेष्टा, धार्मिक और  
धनवान हुआ करता है । परन्तु त्रिकोण और ममम  
स्थानमें रहनेसे दाता, भोक्ता, मानो, राजतनय और  
धनाधिप होगा । रवि गमनेच्छाभावमें रहे तो निद्रा-  
मिलायी, क्रोधो, नगधम, क्रूरप्रकृति, दाम्भिक, रूपण  
और परदार-रत होता है । रवि, गमनभावमें हो तो  
प्रथमा स्त्री और प्रथम पुत्र विनष्ट होता है; तथा समा-  
वसतिभावमें रहनेसे भार्याप्रिय, मानो, अनेक गुणयुक्त,  
विद्या और वित्तसम्पन्न, आगमभावमें रहनेसे मूर्ख,  
सर्वदा कर्मकुशल, मिष्टवादी, कुटिसत-विद्यासम्पन्न,  
निर्दय और पर-निन्दक; भोजन-भावमें रहनेसे दाम्भिक,  
मत्स्यमांसलोभी, शास्त्रवेत्ता और सदाचारी, नृत्यलिप्ता  
भावमें रहनेसे कर्णरोगी, नाना विद्या-कुशल, राजपुत्र्य  
और पण्डित, कौतुकभावमें रहनेसे उत्साहयुक्त, धन-  
धान्य-सम्पन्न, सर्वदा कौतुकपरायण, दाता, भोक्ता  
और गिल्पनिपुण; निद्राभावसे रहनेसे निद्रालु, व्याधि-  
युक्त, प्रवासी, रक्तवधु, क्रोधो और परनिन्दक हुआ  
करता है ।

इस प्रकारसे रविके शयनदि हाद्वय भाव-फलोंका  
निर्णय करना चाहिये । चन्द्रका भावफल—चन्द्र  
शयन-भावमें रहे तो क्रोधो, दरिद्र, अतिशय लम्पट,  
गुहारोगी और आलसी होता है । चन्द्रके शुकु और  
रूपण पक्षके भेदने फलोंमें तारतम्य हुआ करना है । चन्द्र  
उपवेशनभावमें रहे तो विदेष्टा, प्रवासी, पित्तशूलरोगी,  
धनहीन, रूपण और कुटिल; नेत्रपाणि-भावमें रहे तो

भास्तिविन ( सं० पु० ) भास्तिविके जिन्य वा तन्मन्त्रानु-  
षर्त्तकं मन्त्रहाय ।

भास्तिविके ( सं० पु० ) १ भास्तिविका गोलापत्य । २ इन्द्र  
प्रथमभासा नामान्तर । ३ आचार्य भेद ।

भास्तिविकेऽपिनिवृत्त - उपनिवृत्तभेद ।

भास्तिविके ( सं० पु० ) भास्तिविके भास्ति ।

भाषायां ( द्वि० पु० ) भाषी, होनराज ।

भाषांतर ( द्वि० पु० ) एक प्रकार का मन्त्र जिससे कागज  
बनता है ।

भाष ( सं० पु० ) भाषयति चिन्तयति पदार्थानिति भू-  
षिन्त्, पद्यापत्, भद्रमौनि भू भाषयेदनेति यकल्पम् इति  
कानिहीकोपौ वा । १ नाट्योक्तमें विद्वान्, नाट्योक्तिमें जहाँ  
भाष शब्दका प्रयोग होता है वहाँ उसका अर्थ विद्वान्  
समझना चाहिए । २ मानस विकार, मनकाविकार । ३  
मत्ता । (गीता २।१६) ४ मन्त्राय । ५ अग्निभाष । ( रामायण  
२।३।२६ ) ६ वेदा । ७ भाष्या । ८ जगत् (भक्त) ९ विज्ञा ।  
( मनु ५।२२० ) १० क्लिया । ११ लीला । १२ पदार्थ । ( मनु  
३।४१ ) १३ विभूति । १४ सुष । १५ जन्तु । १६ रथादि  
भाष । १७ शौरयित । १८ अग्निभाषांतर । ( विष्णु० )  
१९ विषय । ( शिष्योक्त ) २० पर्वान्तेजना । ( मनु ६।८० )  
२१ प्रेम । ( गीता १।१८ ) २२ योनि । २३ उपदेश ।  
( पाणि ) २४ संसार । ( अनेकार्थक ) २५ भाष्यार्थ ।  
( भाष्योप शेष ) २६ नवमहावी नवनादि द्वादश वेदाय ।

सङ्कलनीयुक्तोंमें द्वादश भाषीका विषय जिस प्रकार  
लिखा है, वहाँ स्थितिमें उसका विवरण लिखा जाता है ।  
कोई विचार करने समय प्रदोके भाषों पर विद्वान् लक्ष्य  
रचना पहना है, वाक्य कौन-सा प्रद किम भाषमें है, उस-  
में कल्प देवीकी शक्तता है वा नहीं, इस बातका निर्णय  
करके उसका कल्प निरूपण किया जाता है । द्वादश भाष  
इस प्रकार है -

१ जपन, २ उपदेशन, ३ मंत्रपाठ, ४ मन्त्रासन, ५  
मन्त्रोपस्था, ६ मन्त्र ७ मन्त्रावस्था, ८ भाषणन, ९ भोक्तन,  
१० कल्पनिष्ठा, ११ कल्पुक्त और १२ विज्ञा । ये द्वादश  
भाष हैं । जिसमें विषय मन्त्रावस्थाके अनुसार इन भाषीका  
निरूपण किया जाता है ।

यदि आदि नवमहावीक मन्त्रादि द्वादशभाषीका विचार  
करना हो तो, उस समय प्रहणन जिस नवमन्त्रोंमें वर्तित  
है इतका निरूपण करके उस मन्त्रमें अधिकृत कल्प  
मन्त्रको पूरण करी और प्रहणन शीघ्र अधिकृत करने  
जिस नवमन्त्रमायमें अधिकृत है उस नवमन्त्रमायमें  
अंक द्वारा उस पूरित मन्त्रको शुद्धा करके, पाँच मन्त्रों  
अपने अपने जगन्मन्त्रावस्थाकी उस मन्त्रमें जोड़ कर उस  
जगन्मन्त्रावस्था और उपायविधि जानकर उसमें निरूपण है,  
उसके बाद उन मन्त्रोंका इदरे भाग कर जो बने उन  
मन्त्रोंमें द्वादश भाष धान होते हैं । यदि देवगु  
हो तो नवमन्त्राय, २ हो तो उपदेशनमाय, दसों प्रकार  
अन्य भाषीका निरूपण किया जाता है ।

यदि प्रदोके नवनादि भाषणना करके समय द्वादश  
द्वानयनिष्ट मन्त्रमें ५ जोड़ो, फिर चन्द्रप्रदोके ३, मन्त्रमें  
२, सुषके ३, पृथ्वीतिके ५, सुषके ३, जिनके ३, सङ्कल  
४ और केतुके ५ जोड़ कर भाष विचार किया जाता है ।  
युक्तान् द्वादशमें अधिक होने पर पुनः उसे इदरे भाग  
करो, जो बाकी बने उसमें भाष मान्य होगा । शिवके  
१६ विज्ञाया, चन्द्रके ३ वृत्तिका, मन्त्रके २० पर्वान्तेजना,  
सुषके २२ भवता, पृथ्वीतिके ११ पर्वान्तामृतो, सुषके  
८ पुष्या, जिनके २७ देवता, सङ्कलके २ मन्त्रों और केतुके  
७ मन्त्रोंका ये नवमन्त्रोंके जगन्मन्त्रावस्था कहलाते हैं । परसे  
जिन मन्त्रोंके जगन्मन्त्रावस्था काग लिखी गई है, वह इस  
प्रकार समझनी चाहिए ।

इस द्वादशभाष भाषणनमें भी समेत समझें हैं ।  
किन्तीके मतसे—नवनादि द्वादशभाषीका विचार करना  
हो, तो उपायविधि प्रहणन जिस रीतिमें होगे, उस रीति-  
में मन्त्र द्वारा मन्त्रादि मन्त्रावस्थाके मन्त्रका शुद्धा किया  
जाता है । पुनः उस मन्त्रकी भाषी पूर्ण कर  
जिस मन्त्रको भाषणना की जायगी उस मन्त्रके  
जगन्मन्त्रावस्थाकी उसमें जोड़ना होगा । उपायविधि  
जगन्मन्त्रावस्था मन्त्र और जगन्मन्त्रावस्था मन्त्र इन दोनों  
को उसमें जोड़ कर १२ में भाग देने पर जो मन्त्रों, उस  
में मन्त्रमें नवनादि भाष निरूपण किया है किन्तीके मतसे—  
जिस रीतिमें प्रद हो, उस मन्त्रको शुद्धा करके  
१५ में मन्त्रका शुद्धा करे, और जिस मन्त्रको प्रद है उस

नक्षत्रपरिमित अङ्कको पूर्वगुणित अङ्कमें मिला कर १२-  
से भाग करने पर जो बचेगा, उससे भावोंका निर्णय  
होगा।

पहले ग्रहोंका बलाबल विशेषरूपसे स्थिर किया  
जाना आवश्यक है। कारण, किस स्थानमें ग्रहका कैसा  
बल है, इस बातको पहले न जान कर भावोंका विचार  
करना नि-प्रयोजन है। क्योंकि, बलका निश्चय किये बिना  
केवल भाव द्वारा फलका निर्णय नहीं हो सकता, व्यक्ति  
क्रम ही जाता है। इसलिए बलाबल पर विशेष दृष्टि रखना  
ज्योतिर्विदोंका अवश्य कर्तव्य है।

निद्राभावस्थित कोई पापग्रह जायास्थानमें रहे तो शुभ  
दायक होता है, किन्तु पापग्रह द्वारा दृष्ट होनेसे कदापि  
शुभकर नहीं हो सकता। यदि अपने शत्रु गृहगत पाप-  
ग्रह जायास्थानमें रह कर शत्रु द्वारा दृष्ट हो, तो पत्नीके  
साथ उसकी मृत्यु होती है। यदि उस स्थानमें शुभग्रह  
हो तथा वह शुभग्रह शुभाशुभ ग्रह द्वारा दृष्ट हो, तो उस-  
को प्रथमा स्त्रीकी मृत्यु होती है। जायास्थानमें शयन-  
भावका फल भी ऐसा ही अशुभ है।

कोई पापग्रह निद्रा वा शयनावस्थामें सुतस्थान पर  
हो, तो शुभदायक होता है, इसमें किसी प्रकारके विचार-  
को आवश्यकता नहीं। परन्तु वह पापग्रह यदि अपने  
उच्चस्थानमें या अपने गृहमें अथवा मूल त्रिकोणमें रह कर  
सुतस्थानगत हो, तो अवश्य ही सन्तानकी हानि होती  
है। निद्रा वा शयन-भावापन्न शुभग्रह द्वारा दृष्ट हो कर  
सुतस्थानमें हों तो प्रथम सन्तानको विघ्न होता है।

निद्रा वा शयन-भावापन्न पापग्रह मृत्यु-स्थानमें हो  
तो राजा वा शत्रु द्वारा अपमृत्यु होती है। यदि वह  
पापग्रह शुभग्रहके साथ मिटा हो अथवा शुभग्रह द्वारा दृष्ट  
हो, तो गङ्गातीरमें मृत्यु होगी।

जनि, मङ्गल वा राहु मृत्युस्थ होने पर अपमृत्यु वा  
शिरश्लेधन होता है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं।

कर्मस्थानमें कोई पापग्रह शयन वा भोजन भावमें हो,  
तो उसे वृद्धिाके कारण समस्त भूमण्डलमें परिभ्रमण  
करना पड़ता है।

चन्द्रके कौतुक अथवा प्रकाश भावमें कर्मस्थान पर  
होने से प्रबल राजयोग होता है। यदि शुभग्रह पापग्रहके

साथ अयुक्त हो कर २, १० ११, ६ वा ५म गृहमें रहे,  
तो महती सिद्धि प्राप्त हुआ करती है।

रवि शयन-भावमें होनेसे मन्दाग्नि-युक्त, पित्त-  
शूल रोग, स्त्रीपद और अर्श वा भगन्दर रोग होता  
है। उपवेशन-भावमें रहनेसे शिल्पकर्मकारी,  
श्यामवर्ण देहविशिष्ट, उत्तम विद्या-रहित, दुःख-युक्त  
और पर-सेवामें रत होता है। यदि रवि नेत्रपाणि-  
भावमें रह कर लग्नके पञ्चम, नवम, दशम और सप्तम  
स्थानमें हो, तो सर्व प्रकारका सुख होता है, तथा  
इन स्थानोंके सिवा अन्य स्थानमें रहनेसे क्रूरप्रकृति और  
जलदोष रोगयुक्त होता है। प्रकाशन-भावमें रहे तो  
चक्षु-रोगयुक्त, अतिशय क्रोधो, परदेष्टा, धार्मिक और  
धनवान हुआ करता है। परन्तु त्रिकोण और समम  
स्थानमें रहनेसे दाता, भोक्ता, मानी, राजतनय और  
घनाधिप होगा। रवि गमनेच्छाभावमें रहे तो निद्रा-  
मिलायी, क्रोधो, नराधम, क्रूरप्रकृति, दाम्भिक, रूपण  
और परदार-रत होता है। रवि गमनभावमें हो तो  
प्रथमा स्त्री और प्रथम पुत्र विनष्ट होता है; तथा सभा-  
वसतिभावमें रहनेसे भार्याप्रिय, मानी, अनेक गुणयुक्त,  
विद्या और विनयसम्पन्न, आगमभावमें रहनेसे मूर्ख,  
सर्वदा कर्मकुशल, मिष्टभावादी, कुतिसत-विद्यासम्पन्न,  
निर्दय और पर-निन्दक; भोजन-भावमें रहनेसे दाम्भिक,  
मत्स्यमांसलोभो, शास्त्रवेत्ता और सदाचारी; नृत्यलिप्सा  
भावमें रहनेसे कर्णरोगी, नाना विद्या-कुशल, राजपूज्य  
और परिद्धत; कौतुकभावमें रहनेसे उत्साहयुक्त, धन-  
धान्य-सम्पन्न, सर्वदा कौतुकपरायण, दाता, भोक्ता  
और शिल्पनिपुण; निद्राभावसे रहनेसे निद्रालु, ध्याधि-  
युक्त, प्रवासी, रक्तचक्षु, क्रोधो और परनिन्दक हुआ  
करता है।

इस प्रकारसे रविके जयनादि हादस भाव-फलोंका  
निर्णय करना चाहिये। चन्द्रका भावफल—चन्द्र  
शयन-भावमें रहे तो क्रोधो, दरिद्र, अतिशय लम्पट,  
गुह्यरोगी और आलसी होता है। चन्द्रके शुद्ध और  
रूपण पक्षके भेदसे फलोंमें तारतम्य हुआ करता है। चन्द्र  
उपवेशनभावमें रहे तो विदेष्टा, प्रयासी, पित्तशूलरोगो,  
धनहीन, रूपण और कुटिल; नेत्रपाणि-भावमें रहे तो



मधुश्रीगो, अश्वीपदो, पाचान्, कर्क, शन और बृहः । मम-  
 नेच्छा-भावने रहे तो अश्विगमनि, माघाची, शनोपद्रोतो  
 और घनहोन, ममावगमनिभावने हो तो शान्त, धार्मिक  
 और पुण्यप्रेष्ठ, आगमनाभावने हो तो पाचान्, प्रिय,  
 शास्त्रप्रवृत्ति, द्विपलोक, बहु स्वयन्विपुक्त, कोषो, महा-  
 कुलो, भोजनभावने हो तो अविनाय कोषो, शान्तिभावने  
 परिशुक्ति, दाता, मोक्ष, अत्यन्त मानो, धनवान्,  
 कर्कमा, निरलोमो, अविनाय एव और नियत प्रयासो;  
 मरुत्पिण्डाभावने हो तो गुणवान् धार्मिक, धनवान्,  
 बहुपुत्रपुत्र और दाता, कीर्तुकाभावने हो तो स्वयंमुक्त-  
 सामन्त पिण्डान् और दाता; मित्राभावने हो तो पापो,  
 पुत्रलोकापुत्र, अविनाय दुःखो और नियत श्रुतिश्रमण-  
 नोष्ठ हुआ करता है ।

महान्ता भावकालः—महान्ता जयनभावने होनेसे लम्पट,  
 कृपण, सुगो, अविनाय कोषो, अत्यन्त निपुण और परिश्रम,  
 उपपेदानरुपागने रहतेने मराधम, धनवान्, कर्कमंकारी,  
 मिश्र और पापी; नेत्रपाणि भावने होनेसे स्वयं स्वयं,  
 पुत्र, दाता और धनपुत्र, देहमें किञ्चिन् जड़ता, भद्र  
 संधि देदनापुत्र, श्वाप, अग्नि, स्वर्ग और जलमें मय  
 पुत्र होता है । यह केवल लक्षणके सिवा अन्य रचनामें  
 रहनेसे होगा । परन्तु लक्षणमें रहनेसे इस्का फल भग्न  
 होगा । महान्ता यदि प्रकाशनभावने रहे तो धनवान्, धार्मिक  
 सुखपुत्र । यामनेवमें क्षतादि चिह्नपुत्र और उचिरे  
 पतन, ममनेच्छाभावने रहे तो प्रकृतिकोषो और  
 धनहीन और कुत्सकागो; ममा

शुभान्, मन्त्र तथा उग्रका अशुभप्रेष्ठ होता है । मम-  
 रभावने रहनेसे वरिष्ठ और अविनाय लम्पट हुआ करता  
 है । दुष्ट उपपेदानभावने हो, तो वरिष्ठ, बहुपुत्र,  
 मोक्षयने, और अत्यन्त पिशुनभावने होता है ।  
 उपपेदानभावनिभय दुष्ट पापप्रेष्ठके साथ मिलित  
 और जगुमर्क द्वारा दुष्ट होनेसे महादुष्टक प्राप्त  
 होता है । परन्तु उग्रभावपुत्र पुत्र स्वयं वरिष्ठ  
 प्रकृते साथ मिलित हो, तो माना प्रकाशने सुख प्राप्त  
 होने के; नेत्रपाणिभावने हो तो अश्वीपदो, विपत्तो  
 होना और पुत्रनाश होता है । इमा काल प्रकाशने  
 भावने दाता, धार्मिक, धनवान्, सुगो और वैश्याग,  
 ममनेच्छाभावने लम्पट, स्वयं, दुष्ट भावोत्पन्न,  
 बहुविध दुःखपुत्र और विनाय कर्ककारी, बहुश्री विविध-  
 गमनभावने जलहीन होय, वाचिष्ण द्वारा धनवान् मरु  
 और मन्त्रिलनय, माना दुःखहीन, स्वो मान् और बहु  
 वैकल्प, ममावगमनिभावने मूर्ख, धनहीन, धार्मिक और  
 निररुपा; आगमनभावने कर्कप्रवृत्ति, शन, अत्यन्त मूर्ख,  
 पापगान्, मराधम, अश्विगमनि, सुग और मुक्कहर्कहीन  
 विजिष्ट; भोजनभावने धनहीन, पात्रेष्टा, प्रवांरते, सेवे,  
 यामदेहमें क्षतादिपुत्र, मरुत्पिण्डाभावने धनवान्,  
 वरिष्ठ, वरिष्ठ, उग्रभावाविश्व, अविनाय कोषो और दो  
 पतनोपुत्र, कीर्तुकाभावने स्वयंजर्तुप, ममावगमिष्ट  
 मरु, दद्रु और स्वर्कहीनो मित्राभावने समस्त दुःख-  
 भा पाय, अत्यायु और विवादाकार होता । मम  
 रभावने दुष्ट मित्राभावने रहे, तो वे काल हीने

प्रकार रत्नयुक्त और राजमन्त्री होती है। गमनेच्छा-भाषमें लगनेसे रहनेसे पण्डित, अन्यथा लिङ्गमें रोग होता है। सभाषसतिभाषमें हो तो वक्ता, दाता, धनवान्, राजसेवान्वित, पण्डित; आगमनभावमें हो तो धार्मिक, पण्डित, मानो, नानानोर्धभूमणशील, उत्साहान्वित और अहंकारी; भोजनभावमें रहे तो नाना प्रकारसे सुखी, मांसलोभी, श्रेष्ठ, कामुक और प्रियभाषी; नृत्य-लिप्साभावमें रहे तो पण्डित, धनवान्, सात्त्विक, अतिशय पेश्वशाली; कौतुकभावमें रहे तो सर्वदा धर्म परायण, नियत उत्साहविशिष्ट और सुखी; निद्राभावमें हो, तो चक्षुरोगी, कृपण, वाचाल और दुःखित हो कर भूमण्डल परिभ्रमणशील होता है। निद्राभावस्थ गुह्य यदि लगनेसे पञ्चम, सप्तम वा दशम गृहमें हों तो स्त्री पुत्रका नाश और लगनेमें हों तो दरिद्रता आती है।

शुकका भावफल।—लगनेके सप्तम वा एकादशस्थानमें शुक शयनभावमें हों, तो नानाविध सुख और अनेक सन्तान होते हैं। सप्तम और एकादशके सिवा अन्य स्थानमें रहनेसे भी सुखी पुत्रनाश होता है। उपवेशनभावमें हो तो धनवान् और धार्मिक; तथा नेत्रपाणि-भावमें रहनेसे चक्षुरोग होता है। वही शुक यदि लगने या सप्तममें हो, तो निश्चय ही अन्न नष्ट हो जाते हैं। एकादशमें होनेसे अतिशय दरिद्र होता है। शुक प्रकाशनभावमें द्वितीय, सप्तम या नवमगृहमें रहे तो धनवान्, धार्मिक और विशुद्धाचारी होगा, इसके सिवा अन्य स्थानमें होनेसे रोगी, नियत विदेशवासी, दुःखभोगी और नृत्यकार्यमें रत रहता है। गमनेच्छाभावमें होनेसे मातृनाश, नित्य उत्साहविशिष्ट, शिल्पकार्यमें निपुण और तीर्थापर्यटनशील; सभावसतिभावमें होनेसे राजमन्त्री, धनेश्वर, समस्त कार्यमें दक्ष और शूलरोगी; आगमनभावमें होनेसे दुःखी, बहुभाषी, पुत्रशोकसन्तप्त और नराधम; भोजनभावमें होनेसे बलवान्, सर्वदा धर्म परायण, वाणिज्य-लक्ष्म अथवा सेवा द्वारा लब्ध धनसे धनवान् होता है। शुक नृत्यलिप्सा भाषमें रहे, तो धार्मी, पण्डित और कवि होता है। यदि वह शुक नीच गृहस्थित हो तो मूर्ख; कौतुकभावमें हो तो धनवान्, सात्त्विक, सर्वदा आह्लाद्युक्त और उत्तम

वक्ता; तथा वही शुक नीचस्थ होने पर इसके विपरीत फल होता है। परन्तु निद्राभावमें होनेसे उपताप-विशिष्ट, नियत फ्लेशभागी, रोगी, दरिद्र और विकलाङ्ग हुआ करता है।

शनिका भावफल।—शनि शयनभावमें होनेसे क्षुधार विकलाङ्ग, गुह्यरोगी और कोपवृद्धि होती है। परन्तु वही शनि यदि लगने, षष्ठ और अष्टम स्थानमें हो तो नियत विदेशवासी, दरिद्र, विद्वत और स्थूलशरीर-विशिष्ट होता है। पञ्चम, सप्तम, नवम वा दशममें हो तो धार्मिक और दाता होता है। उपवेशनभावमें होनेसे श्लोषद और द्रु रोगी तथा नियत पीड़ा एवं धनका नाश होता है। शनि लगनेमें या दशमें उपवेशन-भावमें होनेसे समस्त प्रकार दुःखभोगी; नेत्रपाणिभावमें होनेसे अयोधव्यक्ति भी पण्डित कह कर प्रसिद्ध, धनवान्, धार्मिक और बहुभाषी; प्रकाशनभावमें रहनेसे राजमन्त्री, नानागुण-विभूषित और धार्मिक, गमनेच्छाभाषमें रहनेसे बहुपुत्रविशिष्ट, विपुल धनवान्, पण्डित, दाता, और मानवश्रेष्ठ, गमनभावमें रहनेसे श्लोषदरोगी, दन्ता-घात चिह्नयुक्त, अतिशय क्रोधी, कृपण और परनिन्दक; सभावसतिभावमें रहनेसे स्त्री-पुत्र युक्त, धनशाली और गानारत्नयुक्त; आगमनभावमें रहनेसे अतिशय क्रोधी और रोगी तथा सर्पादि दंशनसे उसकी मृत्यु होती है। शनि भोजनभावमें हो तो मन्दाग्निविशिष्ट, अर्थ, शूल और चक्षुरोगी; नृत्यलिप्साभावमें हो तो चिरकाल धनवान् और धार्मिक; कौतुकभावमें हो तो राजमन्त्री, विपुल धनवान्, दाता, भोक्ता, अतिशयकर्माकुशल, धार्मिक; पण्डित और विशुद्धाचारी, निद्राभावमें हो तो धनवान्, पण्डित, नेत्र और पित्तशूलरोग, द्विमार्या और बहुसन्तानयुक्त होता है।

राहुका भावफल।—राहु शयनभावमें हों तो फ्लेश, अतिशय दुःख, श्लोषदरोग, नियत धननाश और राज पीड़ा होती है। उपवेशनभावमें रहनेसे कुष्ठादिरोगसे पीड़ित और राजा या जहू द्वारा धननाश होता है। इसी प्रकार नेत्रपाणिभावमें निश्चय ही चक्षुरोगी, सर्प और व्याघ्रने भयवान्, अधार्मिक, स्त्रीण, कुटिल, धैर्यगुण-विशिष्ट और बहुभाषी; प्रकाशनभावमें धनवान्, नियत

चक्षुरोगो, श्लोषद्रो, वाचात्, क्रूर, गन्ध और खरः गम-  
नेत्र्या-भावमें रहे तो शक्तिरमनि, मायावी, श्लोषद्रोगी  
और घनहीन, सभाषसतिभावमें हो तो दाता, धार्मिक  
और पुण्यश्रेष्ठ; आगमनभावमें हो तो वाचात्, प्रिय,  
शान्तदृष्टि, द्विपत्नीक, बहु सन्तनियुक्त, क्रोधो, महा-  
दुःखी; भोजनभावमें हो तो अनिद्राय लोभो, प्रातिगणसे  
परिपूर्ति, दाता, भोक्ता, अत्यन्त मानी, घनवान्,  
क्रूरकर्मा, चिररोगी, अनिद्राय ह्य और नियत प्रवासी;  
नृत्यलिप्साभावमें हो तो गुणवान्, धार्मिक, घनवान्,  
बहुपुत्रयुक्त और दाता; कौतुकभावमें हो तो नववसुध-  
मय्यन्त विद्वान् और दाता; निद्राभावमें हो तो पार्ष्णी,  
पुत्रशोकयुक्त, अनिद्राय दुःखी और नियत पृथिवीभ्रमण-  
शील हुआ करता है।

मद्गलका भावफल ।—मद्गल जपनभावमें होनेसे लम्पट  
रूप, सुती, अनिद्राय क्रोधो, अत्यन्त निपुण और पण्डित,  
उपवेदान्तस्थानमें रहतेमे नराधम, घनवान्, क्रूरकर्माकारी,  
निष्ठुर और पार्ष्णी; नेत्रपाणि भावमें होनेसे सर्वत्र सुख,  
पुत्र, दाता और घनयुक्त, देहमें किञ्चित् जड़ता, अद्भु-  
तसिंधि वेदनायुक्त, ध्याय, भक्ति, सर्प और जलमें मय  
युक्त होता है। यह केवल लम्पके निवा अन्य स्थलमें  
रहनेसे होगा। परंतु लम्पमें रहनेसे इसका फल बहुत  
होगा। मद्गल यदि प्रकाशनाभावमें रहे तो घनवान्, शक्ति  
सुगयुक्त; यामनेवमें क्षतादि चिह्नयुक्त और ऊंचेमे  
पतन; गमनेच्छाभावमें रहे तो प्रवामशूल, गुहाशोभो,  
घनहीन और कुकर्मकारी; सभाषित्तभावमें रहे तो  
धार्मिक, बहुसन्तनिविनिष्ट, गुणवान्, दाता, निरोगी;  
आगमनभावमें रहे तो वक्र, कर्परीगो, पिच्छक रोगा-  
शान्त, नराधम और घनवान्, भोजनभावमें रहे तो मंज  
लोभो, क्षुद्राहति, क्रोधो, नियत उस्ताहमरुत्पन्न और घनवान्  
नृत्यलिप्साभावमें रहे तो दाता, भोक्ता और सुखी;  
कौतुकभावमें रहे तो सुपुत्रयुक्त, पत्नी और दो पत्नी  
और बहुकन्यासन्तानयुक्त निद्राभावमें रहे तो मूर्ख, घन-  
हीन, क्रोधो और नराधम होता है। लम्प, द्वितीय, तृतीय  
नयन और एकद्वय, इन स्थानोंमें रहनेसे उक्त प्रकार फल  
होगा है। अन्य स्थानमें होने पर अनुकूल हुआ करता है।

सुषुप्ता भावफल ।—सुषुप्ता जपनभावमें रहे तो धनी,

सुधिन, सख तथा उमका अद्भुत होना है। अन्य  
स्थानमें रहनेसे शक्ति और अनिद्राय लम्पट हुआ रहना  
है। सुषु उपवेदान्तभावमें हो, तो कवि, वाक्पु-  
नौरवर्ण, और अत्यन्त विमुक्ताकारी होता है।  
उपवेदान्तभावस्थित सुषु पावप्रदके साथ मिलित  
और जन्मग्रह द्वारा दृष्ट होनेसे महापातक रोग  
होता है। परंतु उक्तभावस्थ सुषु स्थिति या निवृ-  
त्तके साथ मिलित हो, तो नाना प्रकारके सुख प्राप्त  
होने हैं; नेत्रपाणिभावमें हो तो श्लोषद्रोग, विद्वान्  
हीनता और पुत्रशोक होता है। इस प्रकार महापात-  
भावमें दाता, धार्मिक, घनवान्, सुती और नैऋत्या-  
गमनेच्छाभावमें लम्पट, खोप, दुष्ट भावांमलप्र-  
बहुविध दुःखयुक्त और निष्ठुर कर्मकारो, बहुभोग विनिष्ट-  
गमनभावमें जलश्रेण रोग, घातिष्ठ्य द्वारा घनदाभ सर्व,  
और नन्दितभट, नाना दुःखभोग; खो गात्र और भू-  
वेकल्य, सभाषसतिभावमें मूर्ख, घनवान्, धार्मिक और  
चिररोगी; आगमनभावमें क्रूरप्रकृति, लज्ज, अत्यन्त मूर्ख,  
पापशील, नराधम, अक्षिधरमनि, गुण और मृगहृत्परीण  
विनिष्ट; भोजनभावमें घनहीन, पच्छेष्ट, प्रवासी, रोगो,  
यामदेहमें क्षतादि युक्त; नृत्यलिप्साभावमें घनवान्,  
परिष्ठित, कवि, उन्माहाह्वयिन, अनिद्राय क्रोधो और दो  
पत्नीयुक्त; कौतुक भावमें सर्वजनप्रिय, सभाषित्तविनिष्ट,  
अर्थ, दृष्ट और स्वश्रेणी; निद्राभावमें ममस्त कुशीका  
एकमात्र पात्र, अथायु और विवादाकारी होगा। लम्प  
वा दृशम स्थानमें सुषु निद्राभावमें रहे, तो ये पत्र होने  
हैं, अन्यथा शुभफल होने।

वृहस्पतिभा भावफल ।—वृहस्पति जपनभावमें हो,  
तो विद्वान्, धनसमृद्ध, नाना सुखोक्त, माधुर्य और  
सुखी होता है, उपवेदान्तभावमें हो तो कुशी, बहुमानी,  
रंगी, किन्तो जोके दन्तागालमें पण्डित, निराकर्मेवक  
और श्लोषद्रोगो, नेत्रपाणिभावमें हो तो गौरवर्ण,  
निरोगी और घनी तथा लम्पमें लम्प, पत्र या अहम  
शुद्धमें इसी भावमें रहे, तो जन्मभूषण और सुखी सुख  
होता है। वृहस्पति लम्पमें वा दृशम शुद्धमें रह कर  
यदि प्रकाशनाभावमें हो तो वह मन्तान घनवान्, नराध

प्रकार रत्नयुक्त और राजमन्त्री होती है। गमनेच्छा-भावमें लग्नेमें रहनेसे पण्डित, अन्यथा लिङ्गमें रोग होता है। सभावसतिभावमें हो तो वक्ता, दाता, धनवान्, राजसेवान्वित, पण्डित; आगमनभावमें हो तो धार्मिक, पण्डित, मानो, नानातीर्थभ्रमणशील, उत्साहान्वित और अहंकारी; भोजनभावमें रहे तो नाना प्रकारसे सुखी, मांसलोभी, श्रेष्ठ, कामुक और प्रियभापी; नृत्य-लिप्साभावमें रहे तो पण्डित, धनवान्, सात्त्विक, अति-शय्य श्रेष्ठशाली; कौतुकभावमें रहे तो सर्वदा धर्म परायण, नियत उत्साहविशिष्ट और सुखी; निद्राभावमें हो, तो चक्षु रोगी, कृपण, वाचाल और दुःखित हो कर भूमण्डल परिभ्रमणशील होता है। निद्राभावस्थ शुभ यदि लग्नेसे पञ्चम, सप्तम वा दशम ग्रहमें हों तो स्त्री पुत्रका नाश और लग्नेमें हों तो द्रिष्टता आती है।

**शुकका भावफल।**—लग्नेके सप्तम वा एकादशस्थानमें शुक शयनभावमें हों, तो नानाविध सुख और अनेक सन्तान होती है। सप्तम और एकादशके सिवा अन्य स्थानमें रहनेसे भी सुखी पुत्रनाश होता है। उपवेशनभावमें हो तो धनवान् और धार्मिक; तथा नेत्रपाणि-भावमें रहनेसे चक्षुरोग होता है। वही शुक यदि लग्ने वा सप्तममें हो, तो निश्चय ही चक्षु नष्ट हो जाते हैं। एकादशमें होनेसे अतिशय द्रिष्ट होता है। शुक प्रकाशनभावमें द्वितीय, सप्तम वा नवमग्रहमें रहे तो धनवान्, धार्मिक और विशुद्धाचारी होगा, इसके सिवा अन्य स्थानमें होनेसे रोगी, नियत विदेशवासी, दुःखभोगी और नृत्यकार्यमें रत रहता है। गमनेच्छाभावमें होनेसे मातृनाश, नित्य उत्साहविशिष्ट, शिल्पकार्यमें निपुण और तीर्थपर्यटनशील; सभावसतिभावमें होनेसे राजमन्त्री, धनेश्वर, समस्त कार्यमें दक्ष और शूलरोगी; आगमनभावमें होनेसे दुःखी, बहुभापी, पुत्रशोकस्तन्त और नराधम; भोजनभावमें होनेसे बलवान्, सर्वदा धर्म परायण, वाणिज्य-लब्ध अथवा सेवा द्वारा लब्ध धनसे धनवान् होता है। शुक नृत्यलिप्सा भावमें रहे, तो चांगी, पण्डित और कवि होता है। यदि वह शुक नीच ग्रहस्थित हो तो मूर्ख; कौतुकभावमें हो तो धनवान्, सात्त्विक, सर्वदा आह्लादयुक्त और उत्तम

वक्ता; तथा वही शुक नीचस्थ होने पर इसके विपरीत फल होता है। परन्तु निद्राभावमें होनेसे उपताप-विशिष्ट, नियत फलेगभागी, रोगी, द्रिष्ट और विकलाङ्ग हुआ करता है।

**शनिका भावफल।**—शनि शयनभावमें होनेसे क्षुधाए विकलाङ्ग, गुह्यरोगी और कौपयुद्धि होती है। परन्तु वही शनि यदि लग्ने, पण्ड और अष्टम स्थानमें हो तो नियत विदेशवासी, द्रिष्ट, विद्वत और स्थूलशरीर-विशिष्ट होता है। पञ्चम, सप्तम, नवम वा दशममें हो तो धार्मिक और दाता होता है। उपवेशनभावमें होनेसे शस्त्रीपद और दद्रु रोगी तथा नियत पीड़ा पय धनका नाश होता है। शनि लग्नेमें या दशमें उपवेशन-भावमें होनेसे समस्त प्रकार दुःखभोगी; नेत्रपाणिभावमें होनेसे अदोषल्यक्ति भी पण्डित कह कर प्रसिद्ध, धनवान् धार्मिक और बहुभापी; प्रकाशनभावमें रहनेसे राजमन्त्री, नानागुण-विभूषित और धार्मिक, गमनेच्छाभावमें रहनेसे बहुपुत्रविशिष्ट, विपुल धनवान्, पण्डित, दाता, और मानवश्रेष्ठ, गमनभावमें रहनेसे श्लेष्मरोगी, दन्ता-घात चिह्नयुक्त, अतिशय क्रोधो, कृपण और परनिन्दक; सभावसतिभावमें रहनेसे स्त्री-पुत्र युक्त, धनशाली और नानारत्नयुक्त; आगमनभावमें रहनेसे अतिशय क्रोधो और रोगी तथा सर्पादि दंशनसे उसकी मृत्यु होती है। शनि भोजनभावमें हो तो मन्दाग्निविशिष्ट, अर्श, शूल और चक्षु रोगी; नृत्यलिप्साभावमें हो तो चिरकाल धन-वान् और धार्मिक; कौतुकभावमें हो तो राजमन्त्री, विपुल धनवान्, दाता, भोका, अतिशयकर्मकुशल, धार्मिक; पण्डित और विशुद्धाचारी. निद्राभावमें हो तो धनवान्, पण्डित, नेत्र और पित्तशूलरोग, द्विभार्या और बहुसन्तानयुक्त होता है।

**राहुका भावफल।**—राहु शयनभावमें हों तो फलेश, अतिशय दुःख, श्लेष्मरोग, नियत धननाश और राज पीड़ा होती है। उपवेशनभावमें रहनेसे कुप्रादिरोगसे पीड़ित और राजा वा जन्तु द्वारा धननाश होता है। इसी प्रकार नेत्रपाणिभावमें निश्चय ही चक्षुरोगी, सर्प और व्याघ्रसे भयवान्, अधार्मिक, स्त्रीण, कुटिल, धर्मगुण-विशिष्ट और बहुभापी; प्रकाशनभावमें धनवान्, नियत

धर्मपरायण, विद्वान्वासी, उन्मादान्वित, सात्विक और साधुकर्मकर होता है । इस भावमें राहु कर्कट वा मिथुन रहे तो शिरच्छेदयोग होता है । राहु मन्त्रेन्द्रान्नायमें हो तो बहुपुत्र-विनिष्ट, अतिजय धनवान्, पण्डित, गुणवान्, दाता और पुत्रप्रेष्ठ होता है । समायनतिमायमें कृपण, धनवान्, नाना मनु-गुणसम्पन्न, धार्मिक, पण्डित और विशुद्धाचारी; आगमन-मायमें सबको दुःखदायक और नाना बलेद्युक्त; भोजन-मायमें अत्यन्त लोभो, मन्दाग्निरोगयुक्त, दुःखिन, कृपण, क्रूर और फलहृत्प्रिय, नृत्यलिप्साभावमें ( लग्नमें रहनेसे) गन्ध, कुण्डलाधि आदि द्वारा अभिभूत, चक्षु होन और दुस्वप्य होता है । कौतुकभावमें हो तो सम्पूर्ण गुणोंका भाष्यामरुच्यन्, धनवान् और पित्तदुःखरोगसे पीडित, तथा निद्रामावमें रहे तो जोक और दुःखसे अभिभूत, नाना स्थानवासो, धनहीन और पुत्र रहित होता है ।

( मङ्गलकी० )

रवि भादि नयग्रहके जयनादि द्वादशमासोंका फल इस प्रकारसे स्थिर किया जाता है । इसके सिवा पङ्क-भाव और नयभाव भी है, जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है,—

१ लज्जिन, २ गर्वित, ३ क्षुपित, ४ तृपित, ५ मुदित, और ६ क्षोभित, ये पङ्कभाव हैं ।

यदि कोई ग्रहलग्ने पञ्चमग्रहमें राहुके साथ अवस्थित करे तो वह ग्रह, अथवा अन्य कोई भी ग्रह रवि, जनि और मङ्गलके साथ एकत्र अवस्थान करे, तो उसे लज्जिन भाव कहते हैं । यदि कोई ग्रह अपने मुद्गस्थानमें अथवा अपने मूल स्थितिमें अवस्थान करे, तो वह गर्वितभाव है । यदि कोई ग्रह जलके साथ मिल कर त्रिपुग्रहमें अवस्थित और त्रिपु द्वारा दृष्ट हो तो वह प्रद, अथवा कोई भी ग्रह किसी भी स्वतन्त्रे जनिके साथ एक राशिमें अवस्थित करे, तो वह क्षुपित और जलराशिमें कोई ग्रह दृष्ट कर जल द्वारा दृष्ट न हो, गुन प्रद द्वारा लघु न हो तो तृपित भाव होता है । कर्कट, वृश्चिक और मीन ये जलराशि हैं । किसीके मतमें कुम्भ और मकर भी जलराशि हैं । यदि कोई ग्रह मित्रप्रद द्वारा ही कर जिनके साथ मिल जगन्में अवस्थान करे, तो वह प्रद,

और जो ग्रह गृहस्वयिके साथ मिलित है, वह प्रद सुपुत्र-भाषायण है । जो ग्रह रविके साथ एक राशिमें रह कर पाप ग्रह द्वारा दृष्ट होता है, और यदि उसमें मित्र ग्रह प्रहको दृष्टि हो, तो क्षोभितभाव होता है ।

तन्वादि द्वाव्ज भाषोंमें समस्त ग्रह ही यदि क्षयित और क्षोभित भावमें हो, तो जातकको दुःखका एकमात्र आश्रय समझना चाहिए । यदि तन्वादि द्वाव्ज स्थानोंके किसी स्थानमें दो अथवा उससे अधिक ग्रह हो, तथा उनमें परस्पर विभिन्न भाव हो, अथवा एक ग्रह लज्जित और गर्वित इत्यादि भावतय, वा मायजय युक्त हो, तो उस भावका प्रद-वृत्त फल मिश्र होगा । प्रद यदि दुपन्त्र हो, तो फलको हानि और मङ्गल हो, तो मङ्गल फल होता है । कर्मस्थानमें लज्जित, तृपित, क्षुपित और क्षोभित प्रद होनेसे दुःखप्रभागी होता है । पङ्कभावोंमें मुदित और क्षोभितभाव ही प्रशस्त हैं ।

शोभादि द्वाभाष ।—१ दीन, २ दीन, ३ सुस्थ, ४ मुदित, ५ सुम, ६ प्रपीडित, ७ मुदित, ८ परिहोषमान-योर्ष, ९ प्रवृद्धयोर्ष, १० अधिकयोर्ष, ये द्वाभाष हैं । स्वोप उच्चस्थ ग्रह दीन, नीचस्थ ग्रह दीन, स्वग्रहस्थित ग्रह सुस्थ, मिश्रग्रहस्थित मुदित, जलग्रहस्थित सुम, गृह-युद्धमें पराजित ग्रह प्रपीडित, भग्नगतग्रह मुदित, स्वोप निम्नस्थ गृहको और गतिविशिष्ट गृह परिहोषमान योर्ष, स्वोप उच्च गृहको और गतिविशिष्ट गृह प्रवृद्ध योर्ष, और शुभग्रहके शोभादि पङ्कस्थित गृह अधिक योर्ष कहलाता है । गृहगत दीनभावमें रहे तो उत्तम रूपमें कार्यात्मिक होता है । शोभभावमें ही तो नरपति भी दीनताको प्राप्त होता है । सुपवभाषमें रक्षक धन, लक्ष्मी, कौशल और सुख मिलता है; मुदित भाषमें होनेसे आमोद और यान्त्रित फलकी प्राप्ति, सुमभाषमें होनेसे सर्वदा विपद्; प्रपीडित भाषमें जन्म द्वारा पीडा; मुदितभावमें अर्ध-दान, प्रवृद्धयोर्षमें हर्षा और मोटकादिकी प्राप्ति, तथा अधिक योर्षभावमें राजसङ्ग और विपुत्र मङ्गल प्राप्त होतो है ।

शोभादि नयभाष ।—१ दीन, २ सुस्थ, ३ मुदित, ४ जाम्ब, ५ जम्ब, ६ प्रपीडित, ७ दीन, ८ विपक्ष और ९ मङ्ग । गृहगत स्थानमें दो नय प्रकार भाष धारण कर

स्व स्वं दशाकालमें मिश्र मिश्र फल प्रदान करते हैं ।  
 स्वीय उच्च राशि-गत गृहको दीप्त कहते हैं; इसी प्रकार स्वक्षेत्रगत गृहको सुस्थ, मिश्रराशिगत गृहको मुद्रित, शुभक्षेत्रगतग्रहको शान्त, निम्न या पापगृह-गत ग्रहको होन, शत्रु राशि गतगृहको दुःखित, पापगृह-संयुक्त गृहको चिकल, पराजित गृहको खल और सूर्यकिरणसे दग्ध ग्रहको कुपित कहा जा सकता है ।  
 दीप्तगृहके दशाकालमें मानवको राज्य, उन्साह, शौर्य, धन, वाहन, स्त्री, पुत्र, सुदृढ़, सम्मान और राजसम्मान प्राप्त होता है । सुस्थग्रहके दशाकालमें सुस्थशरीर, राजासे धनकी प्राप्ति, सुख, विद्या, यश, आनन्द, महत्त्व, स्त्री, पुत्र, भूमि, अर्थ और धर्मका लाभ होता है । मुद्रित गृहके दशाकालमें मनुष्य वस्त्रादि, भूमि, गन्धद्रव्य, पुत्र, अर्थ और धर्मको प्रीति करता है तथा पुराणादि धर्म और गीत-श्रवण, दान, पेय और अलङ्कारादिका लाभ होता है । शान्तगृहके दशाकालमें सुख, धर्म, भूमि, पुत्र, कलत्र, यानादि, विद्या, आनन्द, बहुल अर्थ और राजसम्मानकी प्राप्ति होती है । होनगृहके दशाकालमें मनुष्यको बन्धुवियोग, स्थाननाश और कृत्स्ितवृत्ति द्वारा जीवनातिपात, जनसमाज द्वारा परित्यक्त और रोगनिपीडित होना पड़ता है । दुःखित गृहके दशाकालमें मनुष्य अपवादप्रस्त हो कर सर्गदा नानाविध दुःख, विदेशगमन, बन्धुवियोग आदिके कष्ट सहता और चौर, दस्यु और राजासे डरता रहता है । चिकल गृहके दशाकालमें मानवको विकलता और मनोविकार तथा पितादिको मृत्यु, वाहन और चरमाभाव, स्त्री, पुत्र और चौर द्वारा पीडित होना पड़ता है । खलगृहके दशाकालमें मनुष्य कलह, विच्छेद और पितृवियोगजनित दुःख, शत्रु वृद्धि, धन और भूमिनाश तथा आत्मोपजनोंमें निन्द्य जनित कष्ट सहता है । कुपितगृहके दशाकालमें नाना प्रकारसे पापसञ्चय और विद्या, यश, स्त्री, धन, भूमिका नाश इत्यादि नाना प्रकार भ्रमङ्गल होते हैं ।

इस प्रकार भावफल और गृहोंके बलाबल पर विशेष रूपसे लक्ष्य करके फल निर्णय करना चाहिए ।

( सारसूत्री )

इसके सिवा तनु आदि द्वादश स्थानोंमें कौन-कौनसे

गृह रहनेसे किस प्रकार फल होता है, यह विषय यहां बाहुल्यमयसे नहीं लिखा जा सका है । इन द्वादश स्थानोंको तन्वादि द्वादशभाव कहते हैं । द्वादशभाव देखो ।

२७ खियोंके यौवनकालमें स्वभावज अट्टाईस अलङ्कारोंमेंसे अङ्गज प्रथमालङ्कार है । खियोंके भाव, हाव और हला; ये तीन प्रकार अङ्गज अलङ्कार हैं, जो सस्वज कहलाते हैं । ( साहित्यद० ३ परि० )

निर्विकारात्मक-चित्तसे होनेवाली प्रथम क्रियाका नाम भाव है, जन्मसे ही कमी जिसके चित्तमें किसी प्रकारका विकार नहीं हुआ है, पश्चात् जो प्रथम विकार हुआ है, उसे 'भाव' कहते हैं ।

"निर्विकारात्मके चित्तं भावः प्रथमविक्रिया ।"

जन्मनः प्रभृति निर्विकारे मनसि उद्बुद्धमात्रो विकारो भावः ॥

( साहित्यद० ३ परि० )

नायक और नायिकाके प्रथम दर्शनसे चित्तका जो प्रथम विकार है, वह भी भावपद चाञ्च्य है । उदाहरण—

"स एव सुरभिः कालः स एव मलयानिन्नः ।

सैवमपमत्ता किन्तु मनोऽन्यदिव दृश्यते ॥"

( साहित्यद० ३५० )

वही सुरभिकाल है, वही मलयानिल है और वही स्त्री है, किन्तु केवल मन ही अन्य प्रकार मालूम देता है । इस स्थलमें जो मानस विकार है, वही भाव है । इसको प्रणय कहा जा सकता है । सब कुछ ठोक है, किन्तु मन विहृत हो गया है, यह मनकी विहृति ही 'भाव' है ।

भावके अन्य लक्षण ।—शरीर और इन्द्रियवर्गके विकारजनक विभावजनक जो चित्तवृत्ति है, उसीको भाव कहते हैं । पुराण और नाट्यशास्त्रमें रति और भाव दोनोंको एक ही कहा गया है ।

सत्त्व, रजः और तमोमय चित्तविकारका नाम भाव है । भरतने भाव शब्दको इस प्रकार व्युत्पत्ति की है,—"भावयति जनयति रसान् भावः ।" नानाविध अमिन्य सम्बन्धी रस उत्पन्न करता है, इसलिए नाट्यकौत्तमें उसे भाव कहा गया है । यह भाव तीन प्रकारका है,—स्थायी, धर्मिचारी और सात्त्विक । ( अमरटीका मत )

स्थायी-भाव ।—रति, हास, गीक, क्रोध, उत्साह, मय, सुगुप्ता और विस्मय; ये स्थायी-भाव हैं ।

श्रमिन्वारि भाव । निर्वेद, अग्नि, जड़ता, अज्ञान, मद, भ्रम, आलस्य, ईर्ष्य, चिन्ता, मोह, धृति, मोहा, चपलता, हर्ष, आवेग, जलुना, गदगे, विषाद, धोत्रुषुष, निद्रा, अयम्याग, स्वप्न, विरोध, अमर्ष, उग्रता, व्याधि, उन्माद, मरण, ताम और विचर्क ये श्रमिन्वारि भाव हैं ।

सात्त्विक भाव ।—स्वयं, स्वप्न, रोमाञ्च, म्यग्भङ्ग, वेपथु, वैद्यर्ण, अधु धीर प्रत्यय, ये भाड सात्त्विक भाव हैं । ( अमर शोका मग ) अमरवट्ट विषयक चिन्तासुर्गिकको भी भाव कहते हैं । ( मयिनग्याग्यामि )

२८ तन्वोक पश्याचारदितव । दिव्यभाव, धीरभाव और पशुभाव । ( तन्वगाग )

इन तीन प्रकार भावोंमें दिव्य और धीर ये दो भाव उत्तम हैं और पशुभाव अधम । वैष्णव पशुभावमें परमेश्वरको पूजा करते हैं, किन्तु दिव्य और धीर भावमें हो सत्त्वर उत्तमा मिडि प्राप्त होती हैं ।

विभिन्न भावोंका विषय उन्हीं इन्द्रोम देना ।

२६ मन्दीन सङ्गत पदार्थं शीतक हस्तादि चैष्टाभेद ।  
 ३० 'यस्य च क्रियाया क्रियान्तरं लक्षयते स भावः' इति व्याकरणपरिभाषित पदार्थ । जिनको क्रिया द्वारा क्रियान्तर लक्षित हो उसे भाव कहते हैं । इस भावमें सप्तमी विभक्ति होती है, इसलिये इसे भावे सप्तमी कहते हैं । ३१ उर्याति-युक्त पदार्थ, पङ्क आय विकार-युक्त पदार्थ । आय मात्र हो पङ्क भाव विकारयुक्त है । अम-पिण्ड, अम्लित्वयुक्त, पङ्क नजोल, शयनोल, परिमाण-जाल और विनाजयुक्त, ये पङ्क भाव विकार प्रत्येक चम्बुमें हैं । "जायते, अम्लित, पङ्कने, विपरिणमने अपशीयने मर्याति" ये छः पङ्क भाव विकार हैं । जोय जन्म प्रदत्त करता है, अम्लित्वयुक्त होता है, मज्जा घटित होता है, मर्कट परिणत होता रहता है, शयनकाल भी अपरिणत अयक्यामें नहीं रहता, मज्जा शीघ्र होता है, शीघ्रको जब तक मुक्ति न होगी, तब तक जोय इसी पङ्क भाव विकारमें पड़ा रहेगा । मुक्तिके बाद ये भावविकार न रहेंगे ।

तन्वदहर्त और पुरव अमे ।

३२ श्यामलमिड पदार्थमादि बुद्धिधर्म ।

श्यामल (श्यामलो भावैरश्यामलो) इत्यम् ।

भावे श्यामलित भावैरश्यामलं यं गणयते तस्यै कम्पे-

श्यामो भावमन्तान्यता बुद्धिः तदन्वितम्ब यदम् इत्येते । तदपि भावैरश्यामलितं यथा मुनिचम्यकम्बेऽपि तदन्वितम्ब भवति तस्मात् भावैरश्यामलितकत्वात् संकल्पे । ( पराशरपुरा )

धर्म, अधर्म, ज्ञान, अज्ञान, वैराग्य, अवैराग्य, ऐश्वर्य और अनैश्वर्य ये भाव, बुद्धि और सूक्ष्मशरीर भावयुक्त हैं । इन भावों द्वारा अधिवासित होनेके कारण जन्म, जरा और मृत्यु हुआ करता है ।

"पूर्वोक्तमपगतं निवृत्तं महदादिदुःखमपन्तम् ।

संकल्पे निष्प्रागम् भावैरश्यामलितं सिद्धम् ।"

( भास्वतरीका ४० )

सृष्टिके समय प्रदानमें प्रत्येक आत्माके लिए एक एक सूक्ष्म शरीर उत्पन्न हुआ था । यह शरीर अथाह है अर्थात् कदो भी उसका प्रतिजोष नहीं होता । यहाँ तक कि, पर जिलामें भी प्रवेशकर सकता है । यह भादि सृष्टिके समय उत्पन्न हो कर महाजलय तक विद्यमान रहता है, विज्वल नहीं होता । यह शरीर ही संसर्जन करता है, अर्थात् एक शरीरसे उत्क्रान्त हो कर अन्य स्थूल शरीर प्रदत्त करता है । सूक्ष्म शरीर निरूपभोग है । स्थूल शरीरके बिना उस शरीरमें स्वतन्त्ररूपसे सुख दुःखादि भोग नहीं होते हैं । धर्म, अधर्म, ज्ञान, अज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य और अनैश्वर्य भावपद-वाच्य हैं । इन भावोंके संस्कार एव स्थूल शरीरको विद्यमानतामें सूक्ष्म शरीरसे संलग्न होने हैं । जैसे चित्र आधरके बिना और छाया श्लाधिके बिना अथरभान नहीं कर सकती उसी प्रकार बुद्धि भी सूक्ष्म शरीरके बिना निराधर नहीं रहती । यह स्थूल शरीर पुरुषके आगापयार्थके उद्देशमें प्रकृत द्वारा प्रेषित होता है । परन्तु यह प्रकृतिके विपुल्यमें प्रकृतिके आधित है, और शास्त्रान्तर भेदमें दो प्रकारके हैं । तदा जिन प्रकार माना अथ बना कर हाव भाव दिव्य-न्यायी है, स्थूल शरीर भी उसी प्रकार भाव-प्रेरणासे वैज-मनुष्यादि शरीर धारण करता है ।

"शरीरं रूपकोषं मयाः प्रकृतिकं वै बुद्धिः कायं धर्मोऽयम् ।

तदा कदाचित्किया कपोलवियुक्तं क्यमप्ययम् ।"

( भास्वतरीका ४१ )

धर्म, ज्ञान और वैराग्यदि भावपद वाच्य हैं । इन भाव तीन प्रकारका है—सांनिहित, प्राकृतिक और

वैज्ञानिक । स्वतःसिद्धको मांसिद्धिक कहते हैं, स्वामा-  
विकको प्राकृतिक और उपायानुष्ठान-प्रभावको वैज्ञानिक ।  
गर्भमें शुक्र-शोणितका संयोग, प्रथमतः कल्ल, उसके बाद  
सुदुसुद, क्रमशः मांस, पेशी, करण्ड, अङ्ग और प्रत्यङ्ग, फिर  
वाट्यादि अवस्था, ये सब वैज्ञानिक भाव हैं । भावके  
विना लिङ्गका और लिङ्गके विना भावका स्वरूप नहीं  
होता । इसलिए भाव और लिङ्ग नामसे दो प्रकारकी  
सृष्टि प्रवर्तित हुई है । लिङ्ग—तन्मात्र वा सूक्ष्म सृष्टि है,  
भाव—प्रत्ययसृष्टि है । इसका तात्पर्य इस प्रकार है,—  
पुरुषार्थ शब्दादि भोग्य पदार्थ और भोगायतन द्विविध  
शरीर (स्थूल और सूक्ष्म)के विना सम्पन्न नहीं होता ।  
भोगसाधन इन्द्रिय और अन्तःकरण इन दोनोंके विना  
भोगकी सम्भावना क्या है? भाव अर्थात् धर्माधर्मदिके  
विना इन्द्रियादिके रहनेकी वा होनेकी सम्भावना नहीं  
है; और मोक्षकारण विवेक ज्ञान तो होगा ही कहाँसे ?  
इसलिए भावसृष्टि और लिङ्ग-सृष्टि दोनों ही दोनोंके  
कारण हैं । (सांख्यका० १२) 'सांख्यदर्शन' देखो ।

३३ वैशेषिकोक्त पट्पदार्थ । पदार्थ दो प्रकारका है—  
भाव और अभाव । इगमें द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य,  
विशेष और समवाय; ये पट्पदार्थ भावपदवाच्य हैं ।  
(भाषापरि० १४)

३४ प्रत्येक पदार्थासाधारण धर्म ।  
भाव—प्रेमभाक्तके उपासक वैष्णवोंकी चित्तविक्रियाविशेष  
ईश्वरके अपि चित्तके सम्मिलनाभाससापेक्ष विकृत अव-  
स्थाका वास्तविकता अथवा इष्टवस्तुमें ऐकान्तिक आनु-  
रक्तिके कारण तन्मयता और उनके प्रेम-रसास्वादन ग्रहण  
करने पर मानसिक अवस्थान्तर विघटनरूप चित्त  
विकार विशेष ही वैष्णव-सम्प्रदायमें 'भाव' कहलाता है ।  
साधक मालकी भाव प्राप्ति होता है । जो एकाग्र मनसे  
ईश्वर चिन्तामें निमग्न होते हैं, उनके हृदयमें उस चिन्ताके  
अनुरूप प्रकियाएं समुपस्थित होती हैं । इस भावोत्तर-  
की चरमावस्थाका नाम है दशा-प्राप्ति । धर्मप्राण व्यक्त  
मालके ही भक्ति विह्वलताके कारण भाववेग होता है ।  
पृथक् रूपमें विभिन्न दशाप्राप्ति हुआ करता है । दशा ऐवी ।  
नायक-सम्मिलनमें नायिकाके हृदयगत प्रेमकी  
अपूव अभिव्यक्ति कुछ बहिरङ्गमें प्रकटित होती है ।

श्रीकृष्णप्रेमासक्त श्रीराधिकाके हृदयमें जो प्रेमभाव समु-  
द्य उद्भूत होता था, उसका एक एक अन्तरङ्ग और  
बहिरङ्गका विकास ही भावलक्षण है । अन्तरङ्ग, उद्भा-  
स्वर और वाचिक भेदसे अनुभाव रस तीन प्रकारका है ।  
भक्तिके प्राधान्यके कारण भक्तके हृदयमें प्रेमोवेग  
आया करता है । ईश्वरमें प्रेमोतिशयके कारण प्रेमिक-  
के हृदयमें समय-विशेषमें भाव-विषय उपस्थित होता  
है । वैष्णवोंने श्रीकृष्ण प्रेमासुरक्तिको पृथक् चित्तोंमें प्रकटित  
किया है । प्रेमिककी वाचिक वा मानसिक अवस्था  
पर लक्ष्य देनेसे उसके हृदयगत प्रेमका आभास मिलता  
है । हरिनाम-रूप अमृतास्वादनके समय हर्ष, रोमाञ्च,  
अध्रु, स्वरभङ्ग, आदि जो विकार लक्षण अनुभूत होते  
हैं, वे ही उनके भाव वा सुबद्धम्य सूचक अवस्थान्तर  
माल हैं ।

भक्त अनुराग यत्र जत्र जिम भावमें इष्ट वस्तुके ध्यान-  
में निमग्न रहते हैं, तब चित्तकी एकाग्रताके कारण उनके  
हृदय क्षेत्रमें उसी प्रकार ध्यानका एक अनुभाव आ उप-  
स्थित होता है । यही कारण है, कि माधकमाल ही  
चित्तके विकार-हेतु माने ईश्वर-प्रत्यक्ष अपनी भावनाके  
अनुरूप चित्त ही प्रकटित करते हैं । राधाकृष्ण प्रेम-अनु-  
ध्यायी श्रीचिन्तन्य महाप्रभुके हृदयमें सदा हा इम प्रकार-  
का नायिकाप्रेमभाव जागरित होता था । कभी-कभी वे  
विरह-विषुरा श्रोराधाकी तरह "हा कृष्ण, हा कृष्ण" कह  
कर रोने लगते थे और कभी राधिकाकी चिन्तामें उन्मत्त  
हो कर "कहाँ है राई मेरी, कहाँ है" कह कर इतस्ततः  
विह्वलकी तरह घूमा करते थे । यही उनके राधा और  
कृष्ण भावका पूर्ण लक्षण है । कृष्ण-चिन्तामें उनके  
मूर्च्छा, कम्प आदि अन्यान्य भाव भी हुआ करते थे ।  
कृष्णनाम-संकीर्तनमें वे आत्म-विह्वल हो कर नाना  
प्रकार प्रलापवाक्योंसे साधारणमें श्रीकृष्णप्रेम-विषयक  
नाना कथाओंकी अवतारणा करते थे । कभी कभी  
चित्तविकारके आतिशयके कारण मूर्च्छाभावकी प्राप्त  
होने थे । उनके इस कृष्णप्रेमभावमें सर्वदा ही रमणी  
श्रेष्ठा राधिकाका नायिकाभाव और प्रेमिकाके अनुवेद-  
नादि लक्षण दिखलाई देते थे, जिससे उनके धर्मानुयायी  
वैष्णवगण उनके मतके पक्षपाती हो कर नायिका-भावके



लक्षणां हो हो प्रेमयमर्तौ परमाकाष्टा मानते लक्षे हे ।  
प्रेम और भक्ति केने ।

इस हृदयविकार जनित्र भक्तिव्यक्तिको भाव कहा गया है । इसमें अलक्ष्म्याम्भाव स्वयंप्रधान है । अलक्ष्म्या उच्ये—भाव, हाव और हेला अङ्गकः शोभा, कामिनी, योनि, प्रगल्भ्य, शोभाय, नाभयुयं शीघ्र धिये अयज्ञत, तथा लीला, विलास, विभ्रम, किर्त्तिकञ्जिग, चिन्त्यन्ति, विभ्रान्त, मातृश्रियत, कुट्टमित, ललित और विदुमि स्वभावप्र लक्षण हैं ।

जिस प्रकार प्रकियामें मनोवृत्तिके कोट्टमसास्वादन विकारादः निश्च उक्ति होतें हैं उमें उद्गम्यत्र भाव कहते हैं । आशावादि या चिन्तनार सादरा प्रकारके हैं । इसके सिवा प्रेमनिर्भर और भी अनेक प्रकारके भाव समुपनिष्ठा हुआ करते हैं । उनमें १. सात्त्विकभाव, २. महाभाव, ३. स्वभाविसाव, ४. प्रभिन्यागभाव, ५. परस्परवशी भाव, ६. स्वयमित्याव, ७. प्रेमवैचित्र्य, ८. विप्रलम्ब, ९. द्विष्याम्नादादि भाव उल्लेख-योग्य हैं । इन भावोंके आदेशमें बहुधा भक्तोंको द्वाभाप्राप्त हो हुआ करने है । द्वाभा साधारणतः १० प्रकारकी कही गई हैं ।

भारप्रवर्तन ( सं० पु० ) एक प्रकारके मोर्छाङ्क । भावइतिपद - उपनिषद्भेद । भावक ( सं० पु० ) भाव तथा स्वयं करन । १. भाव । २. मानसाधिकार । ( त्रि० ) ३. भावपूर्वा, भावने भय । ४. भाव करनेवाला । ५. अक, प्रमा । ६. उपाहारक, उत्पन्न करने-वाला ।

भावगति ( हि० स्त्री० ) इच्छा, देखा । भावसाक्षात् ( सं० वि० ) भावेन समीक्षा । भाव छाया समीक्ष, जिसका तात्पर्य वदित है ।

भावमय ( सं० वि० ) भक्तिभावसे जमाने योग्य, जो भावकी महापतासे जाता आ सके ।

भावमात्रित ( सं० वि० ) भाव प्रद-पिति । भावमूलक करने में समर्थ ।

भावमात्र ( सं० वि० ) भक्तिले प्रदण करनेयोग्य, जिसमें प्रदण करनेसे पूर्ण मनमें भक्ति-भाव लानेकी आवश्यकता हो । भावमन्त्रमूर्ति—जातिनाभक्तिके स्वयिना एक जैनमूर्ति ।

भावज ( सं० वि० ) भावसे उत्पन्न ।

भावज ( हि० स्त्री० ) भारकी स्त्री, माभी ।

भावन ( सं० वि० ) भयत अवमिति भयम्-अणु । भयदीव । भावता ( हि० वि० ) जो भला लगे । ( पु० ) २. प्रेमभाव, विपत्तम ।

भावनाय ( हि० पु० ) किमो चोत्रका मूल्य या भाव आदि, निर्णय ।

भावव्य ( सं० स्त्री० ) भावमभ्यन्धोव ।

भाववद्भावा ( सं० पु० ) वास्तवमें योगी न करके योगी-की कल्प भावना करना जिनियोंके मतानुसार यह एक प्रकारका पाप है ।

भावदया ( सं० वि० ) किमो भावको दुर्गति देण कर उसकी रक्षाके अर्थ आत्म-करणमें दया लाना ।

भावदेवमूर्ति—कान्दिकाभावकथानकप्रणेत ।

भावदेवो—एक प्राचीन स्त्री कवि ।

भावन ( सं० स्त्री० ) भाषाप्रकट्टर, भावदेवता पेट्ट ।

भावन—भयोच्छामदेवके रायबरेली जिखाम्भगत एक नगर । यह अक्षां २६° २६' ३० तथा देशां ८१° १८' ५०के मध्य अरुमिष्ठ है । भावन नामक एक भद्र-मन्दार अपने नाम पर इस नगरको प्रतिष्ठा कर गये है । मुसलमानों अल्लदाओंमें भरजातिका भयःपन्न होनेमें यह नगर मुसलमान शासनकर्ताके हाथ लगा । यहाँ एक भग्न दृग का धर्मभावयोग देखा जाता है ।

भावनगर—बम्बईके कान्दिवाराइय एक कन्द मितनागर । यह अक्षां २०° ५१' ३० से २२° १२' ३०' ३० तथा देशां ७१° १६' से ७२° २०' ४२' ५०के मध्य अरुमिष्ठ है । भुवर्गमान २८६० वर्ग मीटर और जनसंख्या आर सातके बरीर है । यहाँ कई और लक्षण बहुतायतमें मिलता है तथा साथ हीर वीरके बरतन द्वारा दूधरे कान्दोमें भिजे जाते हैं ।

० उपाहारको प्रमोदके अन्वयान विद्वान्-उपाहारके इतना उपाह विद्वान् रूपसे मिलता है, जिसे उपाहार है, वहमें उपाह कहते हैं ।  
+ इस उपाह विद्वान् विद्वान्को उपाह उपाहारको उपाह कहा गया है । जिसे उपाहारको उपाह उपाहारके ।

उपाहार

१२६० ई०में सेजक नामक सरदारके नैतृत्वाधीनमें मुहिल राजपूत यहाँ आ कर बस गये। उनके लड़के रणजी भावनगर राजवंशके प्रतिष्ठाता थे। १७२३ ई०में भावसिंहने भावनगरको बसाया। स्वयं भावसिंह और उनके लड़के राघव आखेड़जी तथा उनके पौत्र भक्तसिंहने जलदस्तु गणोंका दमन कर स्वदेशमें वाणिज्योन्नतिकी आशासे वर्षई गवर्मेण्टके साथ १७५० ई०में मेल कर लिया। वसंमान राजाका नाम कृष्णकुमार सिंहजी है।

भावना ( सं० ख० ) भूषिण्य, युच् टाप् । १ ध्यान, मनमें किसी प्रकारका चिन्तन करना। २ पर्यालोचना, साधारण विचार या कल्पना। ३ चिन्तका एक संस्कार जो अनुभव और स्मृतिसे उत्पन्न होता है। ४ अधिधासन। विष्णुपुराणके मतसे भावना तीन प्रकारकी है, ब्रह्मभावना, कर्मभावना और ब्रह्मकर्म उभय भावना। संनन्दने आदि ऋषियुग ब्रह्म भावनायुक्त रहते हैं और देवतासे स्थावर तथा चर सबके सब कर्म भावना करते हैं। हिरण्यगर्भ आदिमें कर्म और ब्रह्म दोनों ही विषय भावना है। जिसे जैसा बोध और अधिकार है, उसकी वैसे ही भावना रहती है।

चित्त जैसा होता है भावना भी वैसे ही होती है। चित्तके निर्मल होनेसे ब्रह्मविषयक भावना होती है। इस कारण जिससे चित्त निर्मल हो, शास्त्रोंमें उतांका विधिग्रन्थका दिखलाई गई है। ५ बौद्धमतसिद्ध चार प्रकारकी भावना। ६ कामना वासना। ७ वैदिकके अनुसार किसी चूर्ण आदिको किसी प्रकारके रस या तरल पदार्थमें बार बार मिला कर घोटना और सुखाना जिसमें उस औषधमें रस या तरल पदार्थके कुछ गुण आ जायें।

भावनामयशरीर ( सं० पु० ) सांख्यके अनुसार एक प्रकारका शरीर। इसे मनुष्य मृत्युसे कुछ ही पहले धारण करता है। यह शरीर उसके जन्म भरके किये हुए पापों और पुण्योंके अनुरूप होता है। जब आत्मा इस शरीरमें पहुँच जाती है, तभी मृत्यु होती है। जिस प्रकार जौक जब तक दूसरी घासकी पकड़ नहीं

लेती तब तक पूर्वार्धित घासकी नहीं छोड़ती है, उसी प्रकार जीव भी कर्मानुरूप भावनामय शरीरकी आश्रय किये बिना पूर्वार्धित देहका त्याग नहीं करता।

भावनाश्रय ( सं० पु० ) शिवका एक नाम।

भावनि—सह्याद्रिवर्णित एक राजा ( खला० ३६।१० )

भावनिका ( सं० ख० ) राजकन्यामेद।

( कथासरित्सा० १०।१०२ )

भावनोय ( सं० लि० ) चिन्ता वा विचारयोग्य।

भावपरिग्रह ( सं० पु० ) वास्तवमें धनका संग्रहण करना, पर धनके संग्रहकी मनमें अभिलाषा रखना।

भावपाद ( सं० पु० ) सारस्वतामिधान नामक ग्रन्थके प्रणेता।

भावप्रकाश—वैद्यक ग्रन्थविशेष। यह ग्रन्थ श्रोमन् भाव मिश्र द्वारा विरचित है। यह एक संग्रह ग्रन्थ है और पूर्ण, मध्य तथा उत्तर खण्डमें विभक्त है। इस ग्रन्थमें धन्वन्तरि, आलेख और चरकादिका प्रादुर्भाव, सृष्टि प्रकरण, शरीररतस्व, स्वास्थ्यवृत्ति, परिभाषा, द्रव्यगुण, धात्वादिका शोधन और मारणविधि, पञ्चकर्म, पञ्चनिदान तथा रोगोंके निदान और चिकित्सा आदि आयुर्वेदीय सभी विषय सविस्तार वर्णित हैं। यहाँ तक, कि सिर्फ यही एक ग्रन्थ पढ़नेसे आयुर्वेदीय सभी विषयोंसे जानकार होकर चिकित्साशास्त्रमें पारदर्शी हो सकते हैं। चरक, सुश्रुत, धाम्पट आदि जो कोई भी पुस्तक कर्षों न पढ़ी जाय, उसमें दूसरे पुस्तककी आवश्यकता जरूर होगी पर भावप्रकाश माने गानरमें सागर है। इसी एक ग्रन्थसे आयुर्वेदीय सभी ग्रन्थ पढ़नेका फल होता है। ग्रन्थकारने पुस्तककी समाप्तिमें इस प्रकार लिखा है—

“भावदोर्मानि विम्वमन्वरमथोरिन्दोश्च विद्योतवें।

यावत् सप्त पयोधराः सगिर्यालाशन्ति वृन्दे भुवः ॥

भावचावनिमपदहनं प्राणधरेरस्ते फणामयदले।

तावत् सङ्गिपजः पठन्तु परितो भावप्रकाश शुभम् ॥”

जब तक अन्वरपधमें सूर्यमण्डल और चन्द्रमण्डल रहेगे, जब तक सप्त समुद्र और पर्यंत समूह पृथ्वी पर अवस्थान करेगे और नागराजके फणमण्डल पर जब

तह. पूरिवां भयम्धान करेगो, तब तक मनुष्यैवमग्न इम मनुजमय भावप्रधान प्रवृत्तौ धर्ययन करेगे। इम प्रथमे प्रवृत्तकारका विरोध परिचय नही मिलता है।

भावप्रधान ( सं० पु० ) भावप्रधान देखे।

भाववन्धन ( सं० पु० ) प्रेमरज्जु द्वारा प्रवन्धन, प्रेमयागनमे जोड़ना।

भावबोधक ( सं० पु० ) भावस्य रत्यादेवोपधः अनु- भावकः। १. मुक्तरागादि, यह जिसके द्वारा भावबोध हो। २. मनोभावभाषक।

भावभक्ति ( हि० स्त्री० ) १. भक्ति-भाव। २. सत्कार, आदर। भावभट्टमङ्गोतराय—जनाईन भट्टके पुत्र। रहने अनुप सङ्गोतविद्याम, नष्टोद्दिष्टप्रबोधक भौषपदटीका और मुक्त्तोपकान नामक तीन सङ्गीतज्ञानग्रन्थरचयी ग्रन्थ लिखे हैं।

भावमन ( सं० पु० ) पुङ्गवोंके संयोगसे उत्पन्न मान।

भावमिश्र—१. भावप्रकाश और गुणरत्नमाला नामक ग्रन्थके रचयिता, मिश्र लटकनके पुत्र। २. शृङ्गारमरसोंके प्रणेता। ३. नाट्योक्तिमें प्रमुमंभावान्यक महाशय व्यक्ति।

भाग्युपावाद ( सं० पु० ) १. ऊपरसे झूठ नहीं बोलना पर मनने झूठा बानोंकी कल्पना करना। २. शास्त्रके पारम्परिक अर्थको दबा कर अपना हेतु सिद्ध करनेके लिये झूठमूठ नया अर्थ करना।

भाषमैथुन ( सं० पु० ) मनां मैथुनता विचार या धर्यना करना।

भाषय ( हि० पु० ) यह व्यक्ति जो घातकी गहर घोटनेके समय घामेकी सँझमेसे पकड़े रहता और उलटना रहता है।

भाषयितव्य ( सं० वि० ) भू-लित्-तद्वय। विनाके योग्य। भाषयित् ( सं० वि० ) भू-लित्-तृ-त्। १. मङ्गलार्थी। २. प्रतिपालन और रक्षणापेक्षनकारी, दोमने पालने तथा देखभाल करनेवाला। ३. उच्चावचकर्ता।

भाषयु ( सं० वि० ) भाषयित्वात् कथय, उक्त्, भेदे निरूप- गान् सग्यु। भाषयय्।

भाववचन—सूचोचिनां भावनां उचोचिदिदाभकलाभवाक्यके प्रयोग।

भाववचनकृष्ण एक प्राचीन परिचरने, विद्युत्वाद्य शोचिभने पिता। 'भाव' इनकी संज्ञोपाधि थी। (सूचोचन २. २. ३.) भावरूप ( सं० वि० ) १. यथाशं, प्रवृत्त। २. तिमके अन्तित्व है।

भाववली ( हि० स्त्री० ) जमींदार और भूमामोके बीच उपजकी सँझाई।

भाववचन। सं० क्लृ० ) दवाकरणीकः भावविहित प्रव्य यान्त प्रवृत्।

भाववत् ( सं० वि० ) भावयुक्त।

भाववाचकः ( सं० स्त्री० ) व्याकरणमें यह संज्ञा जिसमें किसी पदार्थका भाव, धर्म या गुण भादि सूचित हो। भाववाच्य ( सं० पु० ) व्याकरणमें विधाका एक रूप। इसमें जाना जाता है, कि वाच्यका उद्देश्य उस विधाका कलां प्रोक्त-कार्य कोई नहीं है, बेलक कोई भाव है। इसमें कलाके साथ वृत्तोंवाको विभक्ति रहती है, विधाकी कर्मकी उपेक्षा नहीं होती और यह सर्वदा एक बचन पुलिग होती है।

भावविकार ( सं० पु० ) भावस्य विकारः ( तद्- )। याचकके अनुसार जन्म, अस्तित्व, परिणाम, यत्न, रूप और नाज ये छः विकार। जोषकी उत्र तक छान नहीं होता, तब तक उसे इस पदु भाव विकारके अर्थात् रहता पड़ता है।

भाषयिष्यंश्वर निषादित्ववृत्त मतपदार्थी प्रवृत्त रोग के रचयिता।

भावविकेक ( सं० पु० ) एक भावविदु बौद्ध परिचर।

भाव कथित और भाषार्थके मतानुसारो मे। धर्मगत बोधिप्रत्ययके वृत्तमे मतका भाव लक्षण वर गये हैं।

भाववृत्त ( सं० पु० ) भावः सता वृत्तः प्रवृत्तोऽस्मादिनि यदा भावः सूचिः तत्र वृत्तः प्रवृत्तः। प्रथा। ( वि० ) २. सूचिप्रवृत्त सारस्योय।

भाववृत्तयति—सोमनाथ प्रसिद्धके एक सुरोहित। इसीमे 'सोमनाथप्रवृत्त' नामक ग्रन्थकी रचना की है।

भाववाचक ( सं० वि० ) भाव प्रकट करनेवाला, जिसमे प्रवृत्त या अर्थोत्तर भाव प्रकट होता है।

भाववचन ( सं० स्त्री० ) एक प्रकारका मन्त्रद्वारा निष- में वृद्ध भाषोकी रचिग होती है।

भावशब्दों ( सं० स्त्री० ) मनोवृत्तिका समन्वय ।  
 भावशर्मन—कातन्त्रपरिभाषावृत्तिके प्रणेता ।  
 भावसन्धि ( सं० स्त्री० ) एक प्रकारका अलङ्कार । इसमें दो विरुद्ध भावोंकी संधिका वर्णन होता है ।  
 भावसत्य ( सं० लि० ) ऐसा सत्य जो ध्रुव न होने पर भी भावकी दृष्टिसे सत्य हो ।  
 भावसंबन्धता ( हि० स्त्री० ) एक प्रकारका अलङ्कार । इसमें कई एक भावोंका अलङ्कार एक साथ वर्णन किया जाता है ।  
 भावसर्ग ( सं० पु० ) तन्म वाओंकी उत्पत्ति ।  
 भावसागर—एक जैनाचार्य, सिद्धान्तसागरके छात्र । इन्होंने १५१० सम्वत्में जन्मग्रहण किया था । काश्या-नगरमें जयकेसरी मूर्तिके निकट ये दीक्षित हुए थे । १५२० सम्वत्में ये इन्हे आचार्यपदसे विभूषित और १५८६ सम्वत्में पञ्चत्वका प्राप्त हुए ।  
 भावसार—शूद्रजातिविशेष । बम्बई प्रदेशके पूना जिलेमें इन लोगोंका प्रधानतः वास है । ये लोग बलराम, कृष्ण और हिङ्गला माताकी अर्चना करते हैं । मृत याक्तिकी जलाते हैं और दश दिन तक अशौच मानते हैं । बालिकाओंका गारहर्षे वर्षमें विवाह होता है । पुरुषगण बीससे पचीस वर्षके मध्य विवाह करते हैं । कन्याका पिता स्वयं मनोनीत वरके पिताके पास जा कर विवाह-सम्बन्ध स्थिर करता है । इनका आचार चाय-हार निम्नश्रेणीके हिन्दुओं-सा है ।  
 भावसिंह—१ राजामानसिंहका पुत्र और भगवानदानके पति । उनके सभापण्डित यद्वन्ते उनके सम्मानके लिये भावविलासकी रचना की । २ मेदिनीराजके पुत्र । इनके आश्रयमें रह कर भट्टचिनायक 'भावसिंहप्रक्रिया' लिख गये हैं ।  
 भावसिंहदेव—बघेलवंशीय एक राजा । आप हीवकल्प-द्रुमके प्रणेता लक्ष्मणभट्टके प्रतिपालक थे ।  
 भावसेन—कातन्त्ररूपमाला और कौमारव्याकरणके प्रणेता ।  
 भावहिंसा ( सं० स्त्री० ) ऐसी हिंसा जो केवल भावमें ही, पर द्रव्यमें न हो ।  
 भावाकृत ( सं० स्त्री० ) मानसिक चिन्ता वा कल्पना-रूपी ।

भावागणेशदीक्षित—सखयाधार्थ्य दीपन-प्रणेता, भाव-विश्वनाथके पुत्र । इन्होंने विद्यानमिश्रके निकट शिक्षा पाई थी ।  
 भावाचार्य—गीतगोविन्द टीकाके प्रणेता ।  
 भावाट ( सं० पु० ) भाव' भावेन चाटतीति अट्-अण् । १ भावक । २ साधु । ३ निवेश । ४ कामुक । ५ नट । ६ भावप्राप्ति ।  
 भावात्मक ( सं० लि० ) किसी विषयकी प्रकृत अवस्थाका सूचक ।  
 भावानुगा ( सं० स्त्री० ) भावं मूर्त्तपदार्थमनुगच्छतीति अनु-गम-ङ्, टाप् । १ छाया । ( लि० ) २ भक्ष्यादि द्वारा अनुगत । ३ अभिप्रायानुगत ।  
 भावाभाव ( सं० पु० ) १ भाव और अभाव, होना और न होना । २ उत्पत्ति और क्षय या नाश ।  
 भावामास ( सं० पु० ) एक प्रकारका अलङ्कार ।  
 भावार्थ ( सं० पु० ) १ वह अर्थ वा टीका जिसमें मूलका केवल भाव आ जाय, अक्षरशः अनुवाद न हो । २ अभि-प्राय, तात्पर्य ।  
 भावालङ्कार ( सं० पु० ) एक प्रकारका अलङ्कार ।  
 भावालीना ( सं० स्त्री० ) भावेषु मूर्त्तपदार्थेषु आलीना । छाया ।  
 भाविक ( सं० लि० ) भावेन निर्वृत्त' टक । १ भावसाध्य पदार्थ; वह अनुमान जो अभी हुआ न हो पर होनेवाला हो । २ अर्थालङ्कारभेद, वह अलङ्कार जिसमें भूत और भावो वाते' प्रत्यक्ष वर्तमानको भांति वर्णन की गई हो । ( लि० ) ३ मर्मज्ञ, जाननेवाले ।  
 भावित ( सं० लि० ) भाव्यते स्मेति भू-णिच् क । १ यासित, सुगंधित किया हुआ । २ प्राप्त, मिला हुआ । ३ विगोधित, शुद्ध किया हुआ । ४ चिन्तित, सोचा हुआ । ५ मिश्रित, मिलाया हुआ । ६ समर्पित, भेंट किया हुआ । ७ सित, जिसमें किसी रस आदिकी भावना दी गई हो । ८ बीजगणितोक्त अर्थरत्न अनेक वर्ग समोकरण द्वारा व्यक्तकरण ।  
 भाविता ( सं० स्त्री० ) भाविनो भावः क्त-टाप् । भावित्व, भाविका भाव ।  
 भावित्र ( सं० स्त्री० ) भवतीति भू । भवादिनाम्ना मिश्रण ।

उप ५१००) गौरीय, स्वर्ग, मरुत और पानात् ।  
 भाषिन् ( सं० वि० ) भाषिन्नाभि भू ( भु म् ) उप ५१० )  
 इति इति, स च विदुमवति । १ भाषिन्वृत् कान्, भाषि-  
 पात्ता ममव । २ भद्रिजश्या, अश्व्य होनेवाली बात । ३  
 भाष्य, मन्त्रोत् ।

भाष्यो ( सं० स्त्री० ) भाष्यः शृङ्गास्त्रेष्टादिशेषो विघनेऽभ्या  
 इति ङीप् । १ ज्योतिषोत् । २ कान् भाष्यमणको अण्यनमा ।  
 ( अण्य म् ५१३११ ) ३ यत्तमान प्रागभाष्य प्रतिपोगिनो ।  
 भाष्यो ( हि० स्त्री० ) भाषिन् शेषो ।

भाषुक ( सं० स्त्री० ) भवतीति भू ( अण्यण्डरुपाभूश्रुति ।  
 वा ३१११४ ) इति उक्त् । १ मन्त्र, आनन्द । ( पु० )  
 २ भाष्योक्तिमे भगिनोवति । ३ मञ्जन, मला भाङ्गो ।  
 ( त्रि० ) ४ भाष्यना करनेवाला, सोचनेवाला । ५ उत्तम  
 भाष्यना करनेवाला, अच्छा तौ सोचनेवाला । ६  
 त्रिस पर कौमल भाष्योका जल्दी प्रभाव पड़ता हो ।

भाषुक-गोकुण्डपात्री एक प्राज्ञप । ये अपुत्रक होनेके  
 कारण यादस्वभाष्यमें श्रीकृष्णकी उपासना करते थे ।  
 निम्नतर पुत्रभाष्यमें हरिभजन करते करते उनकी भाष-  
 सिद्धि हुई । पुत्रस्वप्ने श्रीकृष्णने उन्हें दर्शन दिये ।  
 पीछे उनके मनमें ऐश्वर्यभाष्यका उद्भव होनेके कारण  
 श्रीकृष्ण भगवान् अद्भुत हो गये । अनन्तर यह प्राज्ञप  
 बड़े दुःखित हुए और रातदिन श्रीकृष्णके चरणों में रुम  
 रह कर अपना समस्त विसास लगे । श्रीकृष्णने प्रसन्न  
 हो कर परब्रह्ममें उन्हें किट दर्शन दिये थे । ( भगवद्गीता )

भाषोत्सर्ग ( सं० पु० ) कौथ आदि पुरे भाषोक्ता त्वाय ।  
 भाषोद्भव ( सं० पु० ) एक प्रकारका अद्भुत । इसमें  
 किमी भाषके उद्भव होनेकी संयन्धाका वर्णन होता है ।  
 भाष्य ( सं० स्त्री० ) भू षण्य । १ भवत्य भाषिन्, भाष्य ।  
 होनेवाला । २ भाषना करनेके योग्य । ३ सिद्ध या  
 भाषिन् करनेके योग्य ।

भाष्यना ( सं० स्त्री० ) भाष्यभ्य भाषः क्त् ङाप् । भाष्यत्,  
 भाषोक्ता भाष या चर्मे ।  
 भाष्यत् ( सं० पु० ) एक भाषा । ( विदुत् )  
 भाषक सं० वि० ; यत्ता, बोधनेवाला ।  
 भाषक ( सं० पु० ) भाषाका कर्ता, भाषा ज्ञाननेवाला ।

भाषण ( सं० स्त्री० ) भाष्य-भाषि ष्युत् । १ यथ, बहत् ।  
 २ यत्कृता, व्याख्यान ।

भाषना ( हि० स्त्री० ) भोजन करना, खाना ।  
 भाषा ( सं० स्त्री० ) भाष्यते प्राज्ञ स्वयंभाषिणा प्रमुक्त्ये  
 इति भाष्य ( सुगंध इत्यः । वा ३१३१०२ ) इति भ प्रत्यये,  
 ङाप् । १ रामोक्तौ श्लेष । २ यापय, यातो । भाष्य  
 देश । ३ यागदेशता । पर्वोप—प्राज्ञो, भाष्यो, गित, धाम,  
 यापी, मरुत्तो, स्वाहात्, उक्ति, सपित, भाषिन्, ययन,  
 यन्त् । ( भमर )

४ प्राज्ञाय अद्भुत् भाषा । यथा,— १ संदृष्ट, २  
 प्राज्ञ, ३ उद्योगो, ४ महाराष्ट्रो, ५ भाष्यो, ६ निषर्ग  
 भाष्यो, ७ जगामोरो, ८ ध्रावलो, ९ द्रापिड, १०  
 भीष्मो, ११ पादघात, १२ प्राज्ञ, १३ वाहिक, १४  
 रत्निका, १५ दाहिगाह्य, १६ पैशाचो, १७ भाष्यो, १८  
 जीरसेनो । प्राज्ञ लक्ष्मणमें इन सब भाषाओंके ज्ञान  
 और उदाहरण लिखे हैं । ५ किमी विशेष जनमपुत्रागै  
 प्रसन्नित बातचांत करनेका ढंग, बोली । ६ यह भाष्य  
 जसमें जिसमें पशु पक्षी आदि अपना मनोविचार या  
 भाष्य प्रकट करते हैं । ७ यापी, मरुत्तो । ८ यापुत्रिक  
 हिन्दो । ९ अजिओगय, अज्ञो द्वाय ।

भाषावत्त—मानवजातिके मुखमें उच्चारित ज्ञानरस  
 के सुललित समर्थित और मनोनायकवत्त आकारण  
 समर्थव-भाव्य परायणको भाषा कहते हैं । भाषा  
 साधारणतः दो प्रकारकी है, १ कथित—जिसमें स्वरस्य  
 साध्य ज्ञान या पद चर्यावाली भाष्यवचना नहीं  
 होती, केवल मान मुखोच्चारित ज्ञानविषयान् द्वारा पद  
 या व्यक्ति विशेषका भाष्यवृत्त कायंभाव एक शिष्य  
 जाता है यही कथित भाषा है ( Spoken dialect ) और  
 २ स्वाहात्मिक वृत्तवत्त द्वारा प्रमित तथा मनोनायक  
 यिकान् ज्ञानमें समर्थ है, उद्योगी भाषा ( Language )  
 कहते हैं । कायकानमें वर्णमालाका आधिकार हो  
 जानेमें यह ज्ञान परम्परा निरिपल हो कर लिखित  
 भाषामें ( Written language ) परिवर्तित हो कर है ।

मनुष्य मुखि होनेके बाद भाषाकी शक्ति  
 हुई । पहले स्वयं या भाषक किमी प्रकार का  
 ज्ञानमें मानवमण अपना मनोनायक प्रकट करने

विशाल जगद्व्यक्षमें विचरण करके मानवगण धीरे धीरे दर्शनज्ञान लाभ करने लगे। मानसिक उन्नतिके बलसे वे जितना ही ज्ञानमार्ग पर चढ़ते थे, उतना ही उनकी दृष्टिशक्ति वृत्तिका चिकाग्र पाया था। जब नित्य ध्यवहारमें वस्तुके बदलेमें किसी नैसर्गिक घटनाके ऊपर उनका लक्ष्य पड़ता था, तब उन्होंने ज्ञान और दूरदर्शिताके बल इन विषयके भावपरिष्ठापक शब्दमालाके आविष्कारकी चेष्टा की थी। यत्तमान अनुसन्धानसे इन सब विषयोंका प्रकृत प्रमाण पाया गया है। पर्याप्तकी निभृत गुहामें अथवा वनान्तरालके दुर्भेदा प्राग्गमें लुकायित तथा प्रकृतिकी कोमल गोदमें लालित पालित असभ्य वनचारिगण ज्ञानके अतिरिक्त दूसरा कोई भी विषय अपनोकथित भाषामें व्यक्त नहीं कर सकते थे। कोल, भोल, सन्धाल, शबर आदि असभ्य जातिके उन्नतशैल जाति द्वारा आविष्कृत कोई अभिनव वस्तु देखनेसे वे उसका प्रतिरूप कोई भी अर्धवोधक शब्द प्रयोग नहीं कर सकते। क्योंकि, उस पदार्थके विषयसे वे बिलकुल अवगत नहीं हैं। किन्तु अंगरेज, जर्मन वा अन्य सुसभ्य जातिकी दूसरेकी आविष्कृत वस्तु दिखानेसे ही वे उसी समय उसके अनुरूप एक शब्द प्रयोगको आवश्यकता समझ कर भाषाके मध्य एक शब्दसंगठन कर लेते हैं। इस कारण कालक्रमसे बहुतसे विभिन्न जातीय शब्द अभ्यास्य अनेक भाषाओंके साथ मिल गये हैं। इससे गठित (Coined) शब्द और अपर भाषासे शूरीत (Naturalised) शब्दकी उत्पत्ति हुई है।

शब्दतत्त्वविद्गोंने शब्दसादृश्यके अनुसन्धान आर आलोचना द्वारा दिखाया है, कि प्राचीन आर्यजातिके शब्दानुकरणसे वर्तमान सभ्य जगतकी भाषाकी सृष्टि हुई है। उन आर्यसन्तानोंके उन्नतिके चरममार्ग पर चढ़नेसे वे अपनी आवश्यकीय मन्तव्यसिद्धिके लिये नाना शब्दविष्कारका उपाय निकालते हैं। जगन्का प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेदसंहिता पढ़नेसे ऐसे दुर्बोध्य आवश्यक-

प्रायः प्रत्येक भाषामें विज्ञानीय भाषासे गठित वा शूरीत शब्दोंका प्रयोग देना जाता है। विस्तार हा जानेके भयसे यहाँ पर उद्धृत नहीं किया गया।

कीय बहुतेसे शब्दोंका प्रयोग देखनेमें आता है। देवतत्त्व, भूतत्त्व, जलतत्त्व, ज्योतिस्तत्त्व आदि विषयोंमें उन्होंने पारदर्शिता लाभ करके उन सब विषयोंको उपयोगिताके अनुसार तद्गुरूप शब्दोंको उद्भावना की है।

आर्यप्रथाहमसङ्गसे आर्यजातिकी वैदिक भाषा विभिन्न देशोंमें फैल गई है। यही कारण है, कि हम लोग आर्यभाषागत एक शब्दके अनुरूप संस्कृत, बङ्गला, प्रोक, जर्मन, अङ्गरेज, फरासी आदि भाषामें देखते हैं। विस्तृत विवरण शब्दतत्त्वमें देखो।

मनुष्यकी व्यवसायसिद्ध सामाजिकता, एकल वस-वासेच्छा, परस्परकी सहानुभूति वा सहायता आदि गुण रहनेसे तथा परस्परके आवश्यकतानुसार वैषयिक कथोप-कथनकी सुविधाके लिये मानव वाच्य हो कर भाषाके उद्भवमें मनोयोगी हुए हैं। मानव जातिकी आदिम अवस्थाको कल्पना करनेसे मालूम होता है, कि उसके जन्मको प्रथम अवस्थासे ही मानवगण वस्तु वा व्यक्ति विशेषकी यावतोय अवस्था जाननेमें यत्नवान् थे अथवा उस तरहकी अवस्था द्वारा तत्तद्विषयाङ्ग समूहमें अभिज्ञता लाभ करनेमें चेष्टित होते थे। मानव जितने ही अशिक्षित अवस्थामें षयों न रहे, उसको तात्कालिक अवस्थामें भी वह वाक्यपरम्परा द्वारा मनोभाव व्यक्त करनेमें समर्थ होता था। उस समय उसकी भाषा सुललित और प्राञ्जल नहीं होने पर भी दुर्बोध्य और असम्पूर्ण थी।

मानव-अवस्थाको पर्यालोचना करनेसे उनमें दो विशेषत्व दिखाई देते हैं;—किशोर गिशु-स्वभ व और शिक्षासम्पन्न युवक मूर्त्ति। प्रकृतिके कांक्षशायो गिशुकी आधारभूत शक्ति, इच्छाप्रवणता आर ईश्वरदत्त शारीरिक और मानसिक शक्ति समुच्चयका प्रणिधान करनेसे अनुमान होता है, कि उसके उपयुक्त शिक्षा पानेसे अथवा उसको हृदयनिहित स्वभावज वृत्तियोंके यथानियम कर्षित और स्फुरित होनेसे समय आने पर वह भी पूर्णमात्रामें विकसित हो सकती है। अपर शिक्षित युवक-सम्प्रदायका हृदयजात ज्ञान, मामाजिक आचार और पाण्डित्यानुशीलनकी अनुपायना करनेसे ज्ञात होता है, कि उसको यह गुणपरम्परा पूर्ववृत्तके मुकृतिबलसे उन्में समर्पित हुई है। स्वभावज गुणसम्पन्न व्यक्तिमात

उष्ण ४१७०) त्रीन्लोपय, स्वर्ग, मर्त्या और पाताल ।  
भाविवृत् (सं० लि०) भविष्यतीति भूः ( भु र्वच । उष्ण ४१८ )  
इति इति, स च णिडुमवति । १ भविष्यत् काल, आने-  
वाला समय । २ भवितव्यता, अवश्य होनेवाली बात । ३  
भाव्य, तर्कदीर ।

भावनी (सं० स्त्री०) भावः शृङ्गारचेष्टाविशेषो विद्यतेऽस्या  
इति डीप् । १ स्त्रीविशेष । २ स्कन्द मातृगणकी अन्यतमा ।  
( भारत ६।४३।११ ) ३ वत्तमान प्रागभाव प्रतियोगिनी ।  
भावो (हि० स्त्री०) भाविन देखो ।

भावुक (सं० स्त्री०) भवतीति भूः ( लपवत्पदस्थामृषेति ।  
पा ३।२।१५ ) इति उक्त् प्र । १ मङ्गल, आनन्द । ( पु० )  
२ नाट्योक्तिमें भगिनोपति । ३ सज्जन, भला आदमी ।  
( लि० ) ४ भावना करनेवाला, सोचनेवाला । ५ उत्तम  
भावना करनेवाला, अच्छी तैं सोचनेवाला । ६  
जिस पर फीमल भावोंका जल्दी प्रभाव पड़ता हो ।

भावुक—गोकुलवासी एक ब्राह्मण । ये अपुत्रक होनेके  
कारण वात्सल्यभावमें श्रीकृष्णकी उपासना करते थे ।  
निरन्तर पुत्रभावमें हरिभजन करते करते उनकी भाव-  
सिद्धि हुई । पुत्ररूपमें श्रीकृष्णने उन्हें दर्शन दिये ।  
पोछे उनके मनमें ऐश्वर्यभावका उदय होनेके कारण  
श्रीकृष्ण भगवान् अदृश्य हो गये । अनन्तर वह ब्राह्मण  
बड़े दुःखित हुए और रातदिन श्रीकृष्णके चरणमें रत  
रह कर अपना समय विताने लगे । श्रीकृष्णने प्रसन्न  
हो कर परजन्ममें इन्हें फिर दर्शन दिये थे । (अवतमान)

भावोत्सर्ग (सं० पु०) क्रोध आदि घुरे भावोंका त्याग ।  
भावोदय (सं० पु०) एक प्रकारका अलङ्कार । इसमें  
किसी भावके उदय होनेकी अवस्थाका वर्णन होता है ।  
भान्य (सं० स्त्री०) भूषण । १ अवश्य भवितव्य, अवश  
होनेवाला । २ भावना करनेके योग्य । ३ सिद्ध या  
सावित करनेके लायक ।

भाष्यता (सं० स्त्री०) भावभ्य भावः तल् टाप् । भाष्यत्व,  
भाषीका भाव या धर्म ।

भाष्यरथ (सं० पु०) एक राजा । ( विष्णुपु० )

भाषक (सं० लि०) वक्ता, बोलनेवाला ।

भाषक (सं० पु०) भाषाका प्राता, भाषा जाननेवाला ।

भाषण (सं० स्त्री०) भाष्-भावे ल्युट् । १ कथन, कहना ।  
२ वक्तृता, व्याख्यान ।

भाषना (हि० कि०) भोजन करना, खाना ।

भाषा (सं० स्त्री०) भाषते शास्त्र व्यवहारदिना प्रमुस्यते  
इति भाष् (गुं० भ हनः । पा ३।३।२०२) इति अ प्रत्यय,  
टाप् । १ रागोणीशिव । २ वाक्य, बोली । भाषातत्त्व  
देखो । ३ वाग्देवता । पर्याय—ब्राह्मो, भारती, गिद, वाच,  
वाणी, सरस्वती, व्याहार, उक्ति, लपित, भाषित, वचन,  
वचस् । (अमर)

४ शास्त्रोंय अष्टादश भाषा । यथा,—१ संस्कृत, २  
प्राकृत, ३ उड़ीची, ४ महाराष्ट्री, ५ मागधी, ६ मिथ्या  
मागधी, ७ प्रकाभीरी, ८ ध्रावस्ती, ९ द्राविड़, १०  
भीड़ीय, ११ पाश्चात्य, १२ प्रान्य, १३ वाहोकि, १४  
रन्तिका, १५ दाक्षिणात्या, १६ पैशाची, १७ भावन्ती, १८  
शौरसेनी । प्राकृत लङ्के श्वरमें इन सब भाषाओंके लक्षण  
और उदाहरण लिखे हैं । ५ किसी विशेष जनसमुदायमें  
प्रचलित वातचीत करनेका ढंग, बोली । ६ वह अव्यय  
शब्द जिससे पशु पक्षी आदि अपना मनोविकार या  
भाव प्रकट करते हैं । ७ वाणी, सरस्वती । ८ आधुनिक  
हिन्दी । ९ अभियोगपत्र, अर्जी दावा ।

भाषातत्त्व—प्राग्वजातिके मुलसे उद्यारित प्रथमपरमरा-  
के मुललित समावेश और मनोभावव्यञ्जक व्यकरण-  
समन्वय-साध्य पदावलीको भाषा कहते हैं । भाषा  
साधारणतः दो प्रकारकी है, १ कथित—जिसमें व्याकरण  
साध्य शब्द या पद परम्पराकी आवश्यकता नहीं  
होती, केवल मात्र सुबोधारित शब्दविन्याम द्वारा वस्तु  
या व्यक्ति विशेषका आनुपङ्गिक कार्यभाव व्यक्त किया  
जाता है वही कथित भाषा है ( Spoken dialect ) और  
जो व्याकरणसिद्ध पदपरम्परा द्वारा प्रथित तथा मनोभाव  
विकाश करनेमें समर्थ है, उसीको भाषा ( Language )  
कहते हैं । कालक्रमसे वर्णमालाका आविष्कार हो  
जानेसे वह शब्द परम्परा लिपिबद्ध हो कर लिखित  
भाषामें ( Written language ) परिणत हो गई है ।

मनुष्य-सृष्टि होनेके बाद भाषाकी सृष्टि नहीं  
हुई । पहले वक्ता या शब्दक किमी प्रकार शब्द संयो-  
जनाने मानवगण अपना मनोभाव प्रकट करते थे । इस

विशाल जगद्वक्षमें विचरण करके मानवगण धीरे धीरे दर्शनज्ञान लाभ करने लगे। मानसिक उन्नतिके बलसे वे जितना ही ज्ञानमार्ग पर चढ़ते थे, उतना ही उनकी दृष्टिशक्तिने वृत्तिका विकाश पाया था। जब नित्य व्यवहार्य वस्तुकी बदलेमें किसी नैसर्गिक घटनाके ऊपर उनका लक्ष्य पड़ता था, तब उन्होंने ज्ञान और दूरदर्शिताके बल इन विषयके भावपरिष्ठापक शब्दमालाके आविष्कारकी चेष्टा की थी। वर्तमान अनुसन्धानसे इन सब विषयोंका प्रकृत प्रमाण पाया गया है। पर्याप्तकी निभृत गुहामें अथवा चान्तरालके दुर्भेद प्रान्तमें लुकायित तथा प्रकृतिकी कोमल गोदमें लालित पालित असभ्य चनचारिगण ज्ञानके अतिरिक्त दूसरा कोई भी विषय अपनी कथित भाषामें ध्यक नहीं कर सकते थे। कोल, भोल, सन्धाल, शवर आदि असभ्य जातिके उन्नतशैल जाति द्वारा आविष्कृत कोई अभिनव वस्तु देखनेसे वे उसका प्रतिरूप कोई भी अर्धावोधक शब्द प्रयोग नहीं कर सकते। क्योंकि, उस पदार्थके विषयसे वे बिलकुल अवगत नहीं हैं। किन्तु अंगरेज, जर्मन वा अन्य सुसभ्य जातिके दूसरेकी आविष्कृत वस्तु दिखानेसे ही वे उसी समय उसके अनुरूप एक शब्द प्रयोगको आवश्यकता समझ कर भाषाके मध्य एक शब्दसंगठन कर लेते हैं। इस कारण कालक्रमसे बहुतसे विभिन्न जातीय शब्द अन्यान्य अनेक भाषाओंके साथ मिल गये हैं। इससे गठित (Coined) शब्द और अपर भाषासे उद्भूत (Naturalised) शब्दको उत्पत्ति हुई है।

शब्दतत्त्वविदोंने शब्दसादृश्यके अनुसन्धान आर आलोचना द्वारा दिखाया है, कि प्राचीन आर्यजातिके शब्दानुकरणसे वर्तमान सभ्य जगतकी भाषाकी सृष्टि हुई है। उन आर्यमन्तानोंके उन्नतिके चरममार्ग पर चढ़नेसे वे अपनी आवश्यककी मन्तव्यसिद्धिके लिये नाना शब्दाविष्कारका उपाय निकालते हैं। जगत्का प्राचीनतम ग्रन्थ ऋग्वेदसंहिता पढ़नेसे ऐसे दुर्बोध्य आवश्यक

प्रायः प्रत्येक भाषामें विज्ञातीय भाषासे गठित वा उद्भूत शब्दोंका प्रयोग देखा जाता है। विस्तार हा जिनके भयमें यहाँ पर उद्धृत नहीं किया गया।

कीय बहुतेसे शब्दोंका प्रयोग देवनेमें आता है। देवतत्त्व, भूतत्त्व, जगत्तत्त्व, ज्योतिस्तत्त्व आदि विषयोंमें उन्होंने परदाशिता लाभ करके उन सब विषयोंका उपयोगिताके अनुसार तद्विरुद्ध शब्दको उद्भावना की है।

आर्यप्रवाहप्रसङ्गसे आर्यजातिकी वैदिक भाषा विभिन्न देशोंमें फैल गई है। यही कारण है, कि हम लोग आर्यभाषागत एक शब्दके अनुरूप संस्कृत, बङ्गला, प्रोक, जर्मन, अङ्गरेज, फारसी आदि भाषामें देखते हैं। विस्तृत विवरण गद्यतत्त्वमें देखो।

मनुष्यकी रचनावसिद्ध सामाजिकता, एकल वसासेच्छा, परस्परकी सहायुभूति वा सहायता आदि गुण रहनेसे तथा परस्परके आवश्यकतानुसार वैषयिक कथोपकथनकी सुविधाके लिये मानव वाध्य हो कर भाषाके उद्भवमें मनोयोगी हुए हैं। मानव जातिकी आदिम अवस्थाका कथना करनेसे मालूम होता है, कि उसके जन्मको प्रथम अवस्थासे ही मानवगण वस्तु वा व्यक्ति विशेषकी यावतोग्य अवस्था जाननेमें यत्नवान् थे अथवा उस तरहकी अवस्था द्वारा तत्तद्विषयाङ्ग समूहमें अभिज्ञता लाभ करनेमें चेष्टित होते थे। मानव जितना ही अज्ञान अवस्थामें था न रहे, उसका तात्कालिक अवस्थामें भी वह वाक्यपरम्परा द्वारा मनोभाव ध्यक करनेमें समर्थ होता था। उस समय उसकी भाषा सुललित और प्राञ्जल नहीं होने पर भी दुर्बोध्य और असम्पूर्ण थी।

मानव-अवस्थाको पर्यालोचना करनेसे उनमें दो विशेषत्व दिखाई देते हैं;—किशोर शिशु-स्वभूत और शिक्षासम्पन्न युवक मूर्त्ति। प्रकृतिके क्राड्गणयो शिशुकी आधारभूत शक्ति, इच्छाप्रवणता और ईश्वरदत्त शारीरिक और मानसिक शक्ति समुच्चयका प्रणिधान करनेसे अनुमान होता है, कि उसके उपयुक्त शिक्षा पानेसे अथवा उसको हृदयनिहित स्वभावज वृत्तियोंके यथानियम कर्षित और स्फुरित होनेसे समय आने पर वह भी पूर्णमात्रामें विकसित हो सकती है। अपर शिक्षित युवक-सम्प्रदायका हृदयजात ज्ञान, सामाजिक आचार और पाण्डित्यानुशीलनकी अनुभावना करनेसे ज्ञात होता है, कि उसकी यह गुणपरम्परा पूर्वपुरुषके मुश्तबलसे उसमें समर्पित हुई है। स्वभावज गुणसम्पन्न प्रकृतिमाल



शिक्षाके आतिशय हेतु उत्कर्षताको प्राप्त होत है। उसी प्रकार मानव मानवको चालन्यवस्थासे उपयुक्त शिक्षा मिलने पर वह उन्नत अवस्थामें लाया जाता है। इस विषयमें उसकी पूर्व पुरुषार्जित प्रानवृत्तियों अपेक्षा नहीं रहती। तात्पर्य यह, कि उसकी स्वाभाविक वृत्तियां आप ही आप स्फूर्ति पा कर भाषाज्ञानके उपयोगी होती हैं। फिर एक शिक्षित व्यक्तिकी शिक्षामन्तानको प्रकृति-निर्जनस्थानमें रख देनेसे उसकी कभी भी पूर्वपुरुषको तरह वाक्य-स्फूर्ति नहीं होगी और तो क्या वह शिक्षित सभ्यके गृहवासादिनिर्माणमें अथवा उन लोगोंके समान गिल्गियद्यामें पारदर्शी नहीं होगी। यथार्थमें वह सन्तान भाषाहीन मूककी तरह हो जायगी, किन्तु उसकी हृदयनिहित सचेष्टता विलकुल दूर नहीं होती। उसकी सहजात प्रकृति उसके हृदयक्षेत्रको शिक्षाबोध चपनके योग्य बना देती है।

मनुष्यको आदिम अशिक्षित अवस्थाकी कल्पना करनेसे मालूम होता है, कि वे वर्तमान उन्नतमानव-जाति और वानर-कुलके मध्यवर्ती थे। उस समय वे पश्चादिकी तरह श्रमसहिष्णु, कर्मठ और पश्यादिकी नीडनिर्माण-पट्टताकी तरह गिल्गनिपुण थे। ये सब सहजात कौशल उनमें विद्यमान रहने पर भी यह अज्ञश्य स्वीकार करना पड़ेगा, कि वे सब उस समय प्राकृत भाषासे वञ्चित थे। किन्तु जो व जगत्के अस्फुट अव्यक्त स्वरको तरह उनके भी जिह्वाप्रसे स्वरलहरीका अभ्युत्थान होता था। वह वाक्यावली मार्वित और सुश्राव्य नहीं होने पर भी मानवकी मौलिककथिन भाषाका तरह समझी जाती थी। उसमें भाषागत कोई नियम संयोजित नहीं रहने पर भी वही उन लोगोंकी मनोभावज्ञापक थी। पहले वे लोग नित्य ध्वजहार्य कुछ विषयोंका भावप्रकाश करनेके लिये कितने शब्दोंकी उद्गायन कर लेते हैं। पीछे लगातार अभाव-ज्ञापनमें पारदर्शिता हेतु मानसिक क्रियानिचयका चिकान, जल-वायु प्रकृतताहेतु दैहिक बल और वृत्तिप्रतिकी स्फूर्ति तथा अभिनव वस्तुओंमें चित्तके आशुष्ट होनेसे उन्हें नूतन स्वर संयोजनाकी आशयकता आन पड़ती है। इस प्रकार स्वभावज्ञान मनुष्य नाना विषयोंमें शिक्षाप्रवासी

हो कर भाषाको उन्नतिके लिये शिक्षित और उन्नत मनुष्य रूपमें गिने जा सकते हैं। उनको यह समावसाध्य गुणलक्ष्यशिक्षा जरा भी अपनोदित होनेकी नहीं, बर उन्नत शिक्षाप्रभावसे उनका मनुष्यत्व द्वैवत्तवमें परिणत हो सकता है।

मानव-जन्म ले कर मनुष्यत्वलाभ करनेके कितने दिन बाद मनुष्योंने परम्पराश्रुत-कथा और विषयविशेषके उपयोगी शब्दानुकरण द्वारा मनोभाव ज्ञापन किया था, उसका स्थिर करना कठिन है। उस अवस्थासे वर्तमान उन्नत अवस्थाका विभेद जाननेसे चमत्कर होना पड़ता है।

प्रयोजनीयताके अनुसार अनुकारी शब्द ले कर पहले मानवजातिकी ध्यक्त भाषाका संगठन हुआ। पीछे परम्पराश्रुत कथा और पुनरनुकारों शब्दसमुदाय भाषाके सौष्ठवकी वृद्धि करता है। आगे चल कर घड़ी परम्परा धृत कथा भाषामें रूपान्तरित हुई हैं।

जनसाधारण इस अनुकृतिवाद्को ही भाषाका उत्पत्ति मूलक बतलाते हैं। कोई पदार्थ निःसृत शब्द, जन्तुका स्वतःप्रवृत्त स्वर अथवा इन्द्रियगोचर कोई पदार्थ देखनेसे हम लोगोंके मुखसे बाप हो आप जो स्वर या शब्द निकलता है, उसके अनुकरणसे ही भाषाकी उत्पत्ति स्वीकार की जाती है। अनुकरणशक्ति मनुष्योंकी स्वभावसिद्ध है। यही कारण है, कि हम लोग बालकको बॉबुरी देखनेसे 'बॉबो', कुत्ता देखनेसे 'बॉ मौं', गाय देखनेसे 'हम्पा', कबूतर देखनेसे 'बकबकम्' प्रभृति अनुरूप शब्दका प्रयोग करते देखते हैं। मनुष्यसृष्टिके प्रारम्भमें सम्भवता इसी प्रकार अनुसृष्टिसे आर्य पूर्वपुरुषगण शब्दसृष्टि कर गए हैं।

सुधाचीन संस्कृत भाषामें वैयाकरणोंके षष्ठ्यके हेतु अनेक रूपान्तर हुए हैं। सम्प्रति शब्द ले कर उसके मूलका निर्णय करना एक प्रकारसे असम्भव हो गया है। संस्कृत 'निष्ठीवन' शब्दमें अनुकृत-लक्षण छिपा हुआ है। विशेषरूपसे विपरीय प्राप्त होनेसे अगो उसका वह रूप महजमें अनुभूत नहीं होता। किन्तु उनका प्रकृतिप्रत्यय निर्देश करनेसे निष्ठीवन = नि + षोष् + ल्युट् इस प्रकार पद होना। यह षोष् शब्द या घातु ( अर्थात् मूल शब्द या root ) शुद्ध अनुकरणात्मक है। निष्ठीवन

के कनेके समय मुखसे किंवा भूमि पर गिरनेसे जो शब्द निकलता है, वह संस्कृतमें षोष्, हिन्दीमें पिक् या पिच् और अंगरेजीमें स्पिट् (Spit) प्रभृति शब्दमें अनुकृत हुआ है।

निषेधवाचक इत्यत्र 'न' शब्दका उत्पत्ति भी इसी प्रकार है। पुत्रपोषणेच्छु माता वचने को गोदमें ले कर जब बालपूर्वक दूध पिलानेको उद्यत होती है, तब बालक मुख बन्द कर 'नि नि रा लूँ उ' प्रभृति अव्यक्त स्वर उच्चारण करता है। पहले 'न' उच्चारण कर बालक निषेध-ज्ञापन करता है। बालकको शिक्षासे युवकका अभ्यास होता है। असम्भ्र आदिम मनुष्यने जो सोचा था, अभी सम्भ्र मनुष्यका वही अभ्यस्त हुआ है। आदिमका अनुकरण सम्भ्रका परंपरा-श्रुत हो गया है।

अयोगएड शिशुके इच्छाशक्ति नहीं रहना ही सम्भव है। सुनना उसकी अनुकरणेच्छा बलवती नहीं हो सकती। उसका ऐसा काम केवल शारीरिक-अनुसृतिमूलक है।

वर्तमान भाषाविदोंके मध्य कोई कोई इस अनुकरणवादसे भाषाका अगीकपेयवाद और सम्मतिवाद तथा कोई कोई एक ही बातको उलट पलट कर भाषाको स्वभावज्ञ और अनुकृतिलक्षणा बतलाते हैं।

व्याकरण-विषयमें भाषाका जैसा परिवर्तन हो गया है देन और अवस्थाभेदसे भाषाका वैसा ही उच्चारणवैषम्य प्रतिपादित हुआ है। यही भाषाका विचलनवाद है। इसके अन्वयां एक ही देशमें क्षिप्र-प्रयोगशतः शब्दका भी रूपान्तर हुआ करता है। इसीसे हम लोग सतसिन्धवको जगह हमहिन्द और हिन्दा या 'हिन्द्व' की जगह 'इण्डिया' नामकी उत्पत्ति देखते हैं।

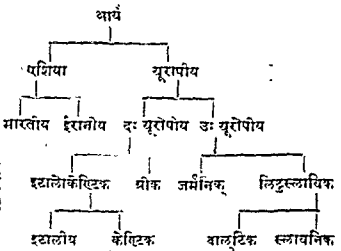
सभी जगह शहरकी भाषासे गांवकी भाषामें स्वातन्त्र्य देखनेमें आता है। गांवकी भाषा शिथिल, विरल ग्रन्थ और दीर्घावयवविशिष्ट तथा शहरकी भाषा साधारणतः दृढ़बद्ध, अस्पष्ट और स्वल्पावयवविशिष्ट होती है। शहरवासिगण परस्परके मिलन और व्यवसाय वाणिज्यमें व्यस्त रहनेके कारण थोड़ी ही घनामें थपता मनोभाव प्रगट करनेको बाध्य हुए हैं।

२ संस्कृत—म, बंगला—ना, हिन्दी—गरी, नैटोन—नि, अंगरेजी—ना प्रभृति।

पहले धातु (root)को शब्दका मूल या प्रकृति ले कर उभमें उपसर्ग (prefix) और प्रत्यय (suffix) जोड़नेमें शब्दका लालित्य तथा अर्थ वैचित्र्य संचयित होता है। आवश्यकतानुसार शब्दके रूपपरिवर्तनके लिए कई एक विभक्ति affix) प्रयुक्त होनेसे भाषाकी अङ्गपुष्टि साधित हुई है। तदन्तर शब्दकी श्रुतिमधुरता बढ़ानेके लिये जनसाधारणका चित्त आकृष्ट हुआ था। इसी शब्दमाधुर्यको बदलनेमें भाषाका लालित्य और पुष्टि साधित हुई है।

कन्दनादि अव्यक्त स्वरके सिवा मनुष्यके एक व्यक्तस्वर (articulate sound) है जिसके द्वारा वे अपना मनोभाव प्रकटित करनेमें समर्थ होते हैं। वर्ण-मालाके आविष्कार प्रसङ्गमें जब वह परस्परश्रुत स्वर-लहरी भाषामें प्रयोगजित हुई, तब उसमें स्वरवर्ण और व्यञ्जनवर्णके समावेशको आवश्यकता आ पड़ी। वर्ण-मालाके उद्भवके पहले नाया पूर्वपर श्रुतिविद्यामें परिणत था। संसारके सर्व प्राचीन उन्नत भाषाओंको वेदभाषा परंपराश्रुत हो चली आती थी; वर्णमालाका आविष्कार होनेसे अर्थात् वह जनसाधारणके पाठ तथा उपलब्धि-को उपयोग हुई है। प्राचीन कालके मनुष्योंकी लिखित भाषा पश्चिचित या कोणाकार लिपिमें देखी जाती थी। असी नाना सुसम्भ्र देशमें भिन्न भिन्न वर्णमालाका व्यवहार होने लगा है। वर्णमाला शब्द देखो।

भाषा और शब्दतत्त्वविद्गण आवश्यकताको ध्रुतगोति-को भाषा नष्टका प्रथम आदर्श मानते हैं। उन्होंने उसी आदर्शको भाषाको सभी भाषाओंको जननी स्थिर कर इस प्रकार एक भाषावंशका विस्तार कल्पना की है।



आर्योंके पाश्चात्य उपनिवेशका अनुसरण कर यूरोपीय भाषाका पौर्वापर्यायनिर्णय करनेमें आर्यजानिके दूरान्तर गमनके कारण भाषाके परिवर्तन-तारतम्यका स्वीकार करना होता है। विभिन्न स्थानमें वास होनेके कारण आर्यजानिकी पाश्चात्यवाहिनो, जावाका भाषा-विपर्याय संघटित हुआ है, वर्तमान यूरोपीय और इन्डो-जर्गन भाषाके सिवा संमितिक श्रेणोकी हिब्रू, फिनि-कोय, आसिरिय, सिरिय, आरब्य और आक्सिनोय प्रभृति भाषाएँ इतिहास तथा साहित्यमें उच्चस्थान अधिकार किया है। उत्तर अफ्रिकाको वर्गन या लिवोय भाषा, मिन्शोय, कोनीय और इथियोपीय प्रभृति हामितिक श्रेणीगत है। दक्षिणपूर्व एशिया अर्थात् चीन, याम, ब्रह्म और तिब्बत प्रभृति देशीय भाषा एक पदासङ्ग है। यूराल अन्धेक चिमागोय पार्वत्य प्रदेशको भाषा मङ्गोलीय, तातार, तुर्क, हन, शक तथा नूराणीय प्रभृति चिमागोमें विभक्त है। इसके अलावा पृथिवीके अन्य स्थानोंमें आदिम असभ्यजातिके मध्य स्वतन्त्र स्वतन्त्र भाषा प्रचलित है। भारत महासागरतय मङ्गास्करसे ले कर मलय और पलिनेशिया द्वीपसुञ्ज प्रशान्त महासागरतय फिलिपाइन, फर्मांजा, जापान प्रभृति द्वापारलिमें एक एक प्रकारकी भाषाका व्यवहार देखा जाता है। इसा तरह फाकेशल पर्वत, अष्ट्रेलिया, इट्रुरिया पकेडिया, मेसोपोटेमिया, सुमिरिया, फलस्क-टका, युकागोर, वस्स, वानटु, आल गेकिन, इरोके और स्कोटा प्रभृति कई एक भाषा यूरोप, अफ्रिका तथा अमे-रिकाके स्थानविशेषमें व्यवहृत थी। सम्प्रति उनमेंसे कई एक भाषा तद्देशवासो द्वारा परित्यक्त हो कर उसके बदले नूतन भाषा ग्रहोत हुई है।

प्रचीन आर्य संस्कृत भाषाके साथ जर्गन भाषाका धात्ववर्णन सौसाद्वय रहनेके कारण शब्दविद्धोने इन्डो-जर्गनीय भाषाको आर्यभाषाके अन्तर्भुक्त रखा है। तदनुसार ये आर्य भाषाएँ १० स्वतन्त्र भाषाकी कल्पना करते हैं।

(१) भारतोय—पैदिक संस्कृत, प्राकृत, पालि प्रभृति।

(२) ईरानीय—मिद्रिया और पारस्यके कथित भाषा, उसमेंसे प्राचीन पारसिक, जन्द (आवस्तिक), याहिद्व,

आकिमीय, कोणाकारलिपिलिखित भाषा, पक्षी, ग्राम-नीय, पजन्द (पारस्य)-अफगान सुदृष्ट प्रभृति।

(३) ग्रीक—ग्रीस और रोमकी विभिन्न भाषा।

(४) आल्बिय श्वेतद्वीपकी भाषा। यह यूरोपीय आर्य भाषाकी अनुरूप है, किन्तु ग्रीकसे स्वतन्त्र है।

(५) आर्मेनीय—इस देशकी विभिन्न भाषा।

(६) इटालीय—लैटिन, फलिस्कान, आर्मेनिया और ओस्कान।

(७) फेल्टिक—वृटेन द्वीपकी प्राचीन भाषा। अर्धो आयरलैण्ड, स्काटलैण्ड और वेल्समें कहीं कहीं यह भाषा प्रचलित है।

(८) जर्मन या ट्यूटन—जर्मन, अंगरेजी, फरासी, ओलन्दाजी, डेनमार, स्कन्देनोवोय, स्वेडिस, नर्स, आरस-लैण्डाय प्रभृति भाषा इसके अन्तर्भुक्त है।

(९) बाल्टिक—प्रूसिय, लिथुवनीय और लेटोय।

(१०) स्लाविक—रूसीय, रथेनीय, बुलगेरीय, सार्मीय, स्लावनाय, क्रोसीय, बोहेमिय और पोलोय।

पूर्वावाही आधो उपनिवेशके मध्य भारताय वैदिक और संस्कृत भाषा जनसाधारणका विशेष आदर्शोय है। ऋग्वेदसंहिताके जैसा सुभावाचन दुर्लभ ग्रन्थ संसार-म दूसरा नहीं है। इसासे आर्घतत्त्व-अन्वेषणमें भारताय संस्कृत भाषाका इतना अधिक आदर्श है। मारुण्डेय कवोत्रुट्टक प्राकृतसंगलक्षमें भाषा, विभाषा, अपभ्रंश और पैशाच ३ प्रभृति संस्कृत भाषाका विभेद करने में आता है। संस्कृत पैशाच, प्राकृत, पद्म प्रभृति सुदृष्ट देशो।

ईरानीय प्रभृति भाषाका ध्वरण पहले ही दिवा गया है। जन्द, अवस्ता और पारस्य प्रभृति शब्दक इतिहासमें

ॐ "महारान्तो शीरसेनी प्राच्यवन्ती च गगणी।

इति पद्मविधा भाषा युक्ता न पुनरुक्था ॥"

"शाकारा चैव चापशातो, शावर्षाभीरिणी तथा।

शाकीति युक्ताः पद्मै विभाषा न तु पद्मविधाः ॥"

"नागरो वाचडुभोगनागरश्चेति ते त्रयः।

अपभ्रंशाः परं सुदमेदत्वात् प्राकृतमताः ॥"

केकेय शीरसेनं च पाश्चात्प्रमिति च त्रया।

परं चाचो नागरा यन्काशं नाप्यन्वा न क्षत्रिणाः ॥"

उनका प्राचोनत्व प्रमाणित हुआ है। तत्त्व शब्द देखो।

इसके अलावा इस विशाल भारतसाम्राज्यमें और भी नाना प्रकारकी भाषा प्रचलित हैं जिनमेंसे द्राविड़ीय, कोलकीय, तिब्बतीय ब्रह्म, खस, तै, मोन, आनाम तथा मलय भाषा सर्वाग्रधान है।

द्राविड़भाषा।—तामिल, तेलगु, कणाडी, मलयालम, तुलु, कोङ्ग और सिंहली भाषा माजित तथा उन्नत है। दक्षिण भारतकी तोड़ा, कोटा, गोंड, खण्ड, इरुवर, कोङ्ग, कुरुम्बर, वेदा और मध्य भारतकी भूईया, भूईहार, विन्नर, कौरव, कोच, माल, माले पहाड़ी, राजमहली, ओरावंन तथा रौतिया प्रभृति जातिकी कथित भाषा अमाजित है।

कोलरीय भाषा।—असुर या आगरिया, भोल, मिलल, भुई, भूईहार, भूमिया, भूमिज, भूजिया, विन्मर, चौरहोड़, वयार, वागाव्हेक, धांगड, गडवा, ही, भौङ्ग, कबर, खडिया या देलको, खरवार कियण, नागेम्बर वा नकासिया, कोल, कोड़ा, कोङ्गवा, मुयासी, मईर, मांभी, मेहन्, मीना, मुण्डा, नहर, सन्धाल, सावभत, जौङ्ग और शवर प्रभृतिकी कथित भाषा।

तिब्बतीय-ब्रह्मभाषा।—इस विभागमें तिब्बतसे ले कर ब्रह्मदेश तक पार्श्वय भूभागकी सभ्य तथा चन्य जातियोंकी लिखित और कथित भाषाकी तालिका दी जाती है। यथा—कछाड़ी या थोडो, मेछ, होजो, गारो, पानिकोच, देवीरा, छुटिया, त्रिपुर या मोरङ्ग, भोट, सर्प, भूटानी, लोपा, चङ्गलु, स्वङ्ग, गुरङ्ग, मुर्मि, नक्ष, नेवार, पहाड़ी, मगर, लेपछा, दफला, मोडो, अरख, लो, आका, मिसमी, बुलिकाटा, तैङ्ग, दिगर, दिगर, मिम्बु, डिमला, सुनावर कण्व भाषा मिलचन, तीव्रस्कन्द, सुमचु। किरान्ती, लिम्बु, कुनावर, प्रमु, चेपङ्ग, वायु और कुसन्द, जातिकी भाषा। नागाजातिकी कथित भाषा—नमसङ्ग या जयपुरिया, वोनपाड़ा, मिडन, तङ्गुङ्ग, मलङ्ग, खरो, गोंगाय तैङ्गसा, लोटा, अङ्गामी, रङ्गमा, अरङ्ग, कुचा, लियङ्ग या फरेङ्ग और मरुम। मिरो, सिफो, जिली और ब्रह्म। कुकियोंकी कथित भाषा—थदी, लुसाई, हङ्गमी, खेङ्ग, मणिपुरो, मरिङ्ग, खोङ्ग, कूपर, तंख्ल,

लुहुप, खुङ्गई, फदङ्ग, चस्कुङ्ग, खुपोम, तकीमी अन्ड, सेङ्गमाई, चैरेल अनाल और नम्फु। कुमी, कामी, मु, यन-योगी या लुङ्ग-ये, पङ्गो, सेन्दु, पोई, शक और कथो। फेरनजातिकी कथित भाषा—स्क्री, वधाई, करेनी, प्यो, तरु, मोपघा गैली, तोङ्गु, लिसान। ग्यरङ्ग, तकपा, मन्याक, थोचू, होर्पा। खासी; तई, थई या प्रामी, लाय, जान, आहोम, खामती, पेटोन, तेयमो। मोनवानम, मोन, कम्बोजम, आनमी और पलीङ्ग।

संस्कृतदिष्यतीति भारतवर्षमें और भी कई एक भाषाका प्रचलन है जो गौड़ीय या मिश्र संस्कृतसे उत्पन्न हुई है। इसका उल्लेख नीचे किया जाता है। बङ्गाल, विहार और आसाम प्रदेशमें—बङ्गला, तिरहुतो या मैथिली, आसामी और उडिया। सभ्य उडियाके वासियोंकी लिखित भाषा प्रायः बङ्गलाकी जैसी है, किन्तु उडिसाके पार्वत्य प्रदेशवासियोंकी भाषा अपेक्षाकृत स्वतन्त्र है। विहार, युक्तप्रदेश, मध्य तथा गुजरात प्रदेशमें—हिन्दी, मैथिली, उर्दू, वज्रभाषा, भोजपुरी, पञ्जाबी, मूलतानी, जाटकी, कश्मीरी, नेपाली, सिन्धी, थरली, ठाकुराली, जियोली, इरावती, मारवाड़ी, गुजराती, कच्छी, मराठी, कोङ्गणी प्रभृति प्रधान हैं।

भारतीय द्वीपपुञ्जके विभिन्न स्थानमें विभिन्न भाषा प्रचलित है जिनमेंसे अधिकांश कथित है। नीचे कुछ लिखित भाषाका प्रमाण दिया जाता है। जो जो जाति जिस जिस भाषामें वातचीत करती है, उनको भाषाका भी प्रायः वही वही नाम रखा गया है। इस द्वीपपुञ्जमें लगभग डेढ़ सौसे भी अधिक जातिका वास है जिनके मध्य भाषागत विशेष पार्थक्य देखा जाता है। नीचे द्वीप वासी तथा उनको भाषाका नाम दिया गया।  
अदनमें... लुगो। अणुनेनो फिलीपाईन।  
आलागातमें... अलोमा न्यूगिनो।  
अनमरोपु... अपयो लुगो।  
अफाक न्यूगिनो। असवली बौद।  
अर... अहतियागो अहतियागो।  
आलोरो आलोरो। आसाहन सुमाता।  
वजुल्यट सिलेविस। वजिग्र मलाका।  
वतुमेरा आम्बयना। वत्तर सुमाता।

कायशी प्रभृति अक्षर और भाषाका उद्भव हुआ है।  
 ११वीं शताब्दीके प्रारम्भमें महम्मूदके भारतवर्ष पर, आक्रमण करनेसे भारतीय भाषा समूहमें पारसिक और अरबी भाषाका समिश्रण आरम्भ हुआ। उस समय वजीर प्रधान, अबुल अयास और अहम्मद मैमिन्दि मुसलमान राजसरकारके सभी कागजात पारसिक भाषामें और चिरस्थायी नदथोपत्र अरबी भाषामें लिखनेकी प्रथा चला गयी। सुतरां उस समय भारतवासीको कर्तव्य जान कर अथवा चाह्य हो कर उक्त दोनों भाषा सीखनेकी पड़ी। इसी प्रकार क्रमशः विजातीय शब्द या पद-निचय भारतीय हिन्दी भाषाके साथ मिल कर १४वीं शताब्दीमें उर्दूभाषाकी उत्पत्ति हुई। हिन्दीको इस अभिनव भाषाकी भित्ति कर उसमें अरबी, पारसिक, तुर्की, संस्कृत, द्राविड, पुर्तगाल और फ़ोरोरीय भाषाका चलित शब्दसमूह संयोजित किया गया है। १६वीं शताब्दीके पहले डा० जन थोको गिल्डसाटने दस भाषा-या कलेवर बढ़ाया। यूरोपवासी वैज्ञानिक अथवा भारतके अन्य स्थानवासी सभी जानियां इसी उर्दू-हिन्दी भाषाको सहायतासे परस्परमें बातचीत करने लगे। नारे यूरोपवाण्डमें फ़रासी भाषा जिस प्रकार जन-साधारणमें परिगृहीत हुई है, उसी प्रकार भारतमें विभिन्न जातिकी भाषा जाननेके लिए हिन्दीभाषाका सीखना आवश्यक है। हिन्दी भाषा सभी भारतवासी जानते हैं। अङ्गरेज, फ़रासी या जर्मन द्वारा हिन्दीभाषामें पूछे जाने पर भारतवासी अनायास उत्तरका उत्तर दे सकते हैं। भाषापरिच्छेद (सं० पु०) महामहोपाध्याय विभवाथ न्याय पञ्चाननरुन न्यायशास्त्रका परिभाषाग्रन्थ। न्यायशास्त्र पढ़नेके पहले भाषापरिच्छेद पढ़ना होता है। इसमें न्यायदर्शनके सभी विषय संक्षेपमें अत्यन्त सुन्दर भाषामें वर्णित हैं। परिश्रुताग्रणी विभवाथने स्वयं ही भाषापरिच्छेदकी सिद्धान्तमुक्तावली नामक टीका रची। यह टीका अत्यन्त सुन्दर और अशेष पाण्डित्यकी परिचायक है। सिद्धान्तमुक्तावलीकी पुनः दिनकरी तथा संद्री प्रकृति टीका है। सिद्धान्तमुक्तावलीमें वे महामहोपाध्याय विद्यानिचामें भट्टाचार्यके पुत्र कह कर परिचित हुए हैं। उन प्रबंधका पहला श्लोक यह है—

‘नूतनेजलधरकरुपे गोपवधुटीदुकुन नीराय ।

तस्को गगः हृदयार्थे गंसार महीकरुस्यगीजाय ॥’

भाषापरिच्छेदमें १६६ श्लोक हैं। इस ग्रन्थमें निम्न-लिखित विषय आलोचित हुए हैं—पदागोहिकग्रन्थ, गुण-गुण और कर्मविभाग सामान्य और विशेषनिरूपण, समा-वायसम्बन्धकथन, अभावविभाग, सप्तपदार्थका साधयर्थ तथा वैधर्म्यकथन, कारणलक्षण, कारणविभाग, अन्वया-सिद्धिलक्षण और विभाग, द्रव्यका समावायिकारणत्व कथन, असमवायिकारणका गुणकर्ममातेष्टित्वकथन, पृथिवीनिरूपण, पृथिवीविभाग, देह, इन्द्रिय और विषय कथन, जल, तेज और वायुनिरूपण, आकाश काल दिक् और आत्मनिरूपण, अनुभूति तथा स्मृतिभेदसे बुद्धिका द्वैविध्यकथन, अनुभूति विभाग, प्रत्यक्षविभाग, प्रत्यक्षविभाग, द्रव्याध्यक्षमें त्यज्यमनःसंयोगके कारणत्व-कथन, सामान्य लक्षणादि भेद द्वारा भौतिक-सचिकर्षमें भेदत्वानिरूपण। अनुमितिच्युत्पादन, परा-मरी लक्षण, ध्याति और पक्षलक्षण, हेत्वा भासविभाग, उपमितिच्युत्पादन, शाब्दबोधप्रकार-परिचय, शाब्दबोध-कारणकथन, असत्तिलक्षण, योग्यता, आकांक्षा और तात्पर्य-निरूपण, मनोनिरूपण, मनका अणुत्वप्रमाण, गुणनिरूपण, मूर्त्त, अमूर्त्त और मूर्त्तामूर्त्त-गुणकथन, विशेष और सामान्य गुणवर्णन, विभुविशेषगुणका अतीन्द्रिय-त्वादिकथन, रूपके द्रव्यादिके अध्येक्षमें कारणत्व, रस गंध तथा स्पर्शननिरूपणपद्धति, स्पर्शान्तर पाकजत्व-कथन, संख्या, परिमाण, पृथकत्व, संयोग, परत्व और अपरत्व तथा बुद्धिनिरूपण, अप्रमाविभाग, संशय लक्षण, संशयकारणकथन, अप्रमाकारणकथन, प्रत्यक्षविभिन्न गुणपरिचय, प्रमानिरूपण, ध्यातिप्रह्लाक उदाहरण, पर-कोय ध्यातिप्रह प्रतिबन्धार्थ उपाधिनिरूपण, उपाधिकारण-कता योजकथन, अनुमानविभाग, सुख तथा दुःख निरूपण, ईच्छा और द्वेषकथन, यत्न और निरूपण-विभाग, गुणत्वकथन, गुणत्वनिरूपण और विभाग, स्नेहनिरूपण, संस्कार निरूपण और विभाग, अदृष्टनिरूपण, शब्द-निरूपण और विभाग। यद्ये सय प्रियव अत्यन्त महोप तथा मुन्दर भाष्यमें वर्णित है।

न्याय और वेदोपदेश दर्शन वेदा ।

दर्शनशास्त्र पद्धतमें पापरिच्छेद और सिद्धान्तमुक्त-  
यलीको पद लेना आवश्यक है।

भाषापाद ( सं० पु० ) भाषायाः पादः । चतुःपाद व्यवहार-  
के अन्तर्गत प्रथम पाद । व्यवहार देखा ।

भाषापादक ( सं० त्रि० ) भाषारण द्वेष भाषामं वना हुआ ।

भाषासम ( सं० पु० ) शब्दलङ्कारभेद काव्यमें केवल  
ऐसे शब्दोंको योजना जो कई भाषाओंमें समान रूपसे  
प्रयुक्त होते हैं ।

भाषासमिति ( सं० स्त्री० ) जैनियोंके अनुसार एक प्रकारका  
आचार जिसके अन्तर्गत ऐसे वातचीत आते हैं ।  
जिससे सब लोग प्रसन्न और सन्तुष्ट हों ।

भाषिक ( सं० त्रि० ) वेदादि परिभाषानिर्वाहक ।

भाषिकस्वर ( सं० पु० ) मन्त्रेतर वेदभागरूप ब्राह्मण ।

भाषित ( सं० स्त्री० ) भाष भाषे क । १ कथन, वातचीत ।  
( त्रि० ) २ कथित, कहा हुआ ।

भाषितपुंस्क ( सं० त्रि० ) भाषितः पुमान् येन कप् । विशेष-  
णत्व प्राप्त जो पुल्लिङ्गादिमें अभिहित होता है ।

भाषितृ ( सं० त्रि० ) भाष-तृच् । भाषण, कथक ।

भाषिन् ( सं० त्रि० ) भाष-इनि । कथक, बालनेवाला ।

भाष्य ( सं० स्त्री० ) भाष्यते विवृततया वर्णयते इति भाष  
ण्यत् । १ सूत्रोंकी को हुई व्याख्या या टीका, सूत्र-  
ग्रन्थोंका विस्तृत विवरण या व्याख्या । २ किसी गूढ़  
वात या वाक्यको विस्तृत व्याख्या ।

भाष्यकार ( सं० पु० ) भाष्यं चूर्णिं करोतीति कृ-( कर्म-  
ण्यप् । पा ३।२।१ ) इत्यण् । महाभाष्यकर्ता मुनि ।  
पर्याय—गोनर्दीय, पतञ्जलि, चूर्णिकृत् । ( विका० )  
पाणिनिके भाष्यकार पतञ्जलिमुनि ।

“अहम्भाष्यकारश्च कुशाग्रधीयधियाभुमी ।

नेव शब्दाभ्युपेः पारं किमन्ये नङ् कुक्षयः ।” ( दुर्गादिह )

भाष्यप्रणयकर्त्ता मात्र । जैसे—वेदान्त सूत्रके शङ्कर,  
रामानुज आदि, योगसूत्रके वेदव्यास, सांख्यसूत्रके  
‘विज्ञानभिक्षु’, गीतमसूत्रके चात्स्यायन, कणादसूत्रके  
प्रशस्त पाद, मोर्मान्सासूत्रके शबरस्वामी इत्यादि ।

भाष्यकृत ( सं० पु० ) भाष्यं करोति कृ-कृिप् तुक् च ।  
भाष्यकारक ।

भास ( सं० स्त्री० ) भासते इति । भाजभाषविद्युत्तोत्रिशु-  
भासत्वात् विज् । १ प्रमा, किरण । २ इच्छा ।

भास ( सं० पु० ) भास्यते इति भास-भावे घञ् । १ दीप्ति,  
प्रकाश । भासते दीप्यते इति भास-कर्त्तरि अच् । २

कुङ्कुम, मुर्गा । ३ मृध, गोमृध । ४ स्वनामव्याप्त पक्षि-  
विशेष, शकुन्तपक्षी । ५ पर्यातमेद । ६ प्रभाकी कन्या ।

७ कविभेद । ८ सहादि वर्णित एक राजा । ९ मयूख,  
किरण । १० इच्छा, चाह । ११ गोगाला । १२ स्वाद,  
लज्जत । १३ मिथ्या ज्ञान ।

भासक ( सं० त्रि० ) १ प्रकाशक, चोतक । २ माल  
विकानि मित्र-भृत एक नाट्यकार ।

भासकर्ण ( सं० पु० ) रावणकी सेनाका मुख्य नायक  
जिसे हनुमानने प्रमदाघन उजाड़नेके समय मारा था ।

भासता ( सं० स्त्री० ) भास पक्षीकी तरह स्वभावविशिष्ट,  
छल बल कौशलसे आहरण ।

भासद् ( सं० स्त्री० ) भासद्ः कटिदेशस्येदं अण् । नितम्ब,  
चूतड़ ।

भासन ( सं० स्त्री० ) दीपन, प्रकाशन ।

भासना ( हि० क्रि० ) १ प्रकाशित होना, चमकना । २  
प्रतीत होना, मालूम होना । ३ देख पड़ना । ४ लिप्त होना,  
फंसना ।

भासन्त ( सं० पु० ) भासते इति भास ( तृभूषदिवसि  
भाषीति । उण् ३।२।२५ ) इति भच् । १ सूर्य । २ चंद्रमा ।  
३ भास पक्षी । ४ नक्षत्र । ५ सुन्दरकार ।

भासमन्त ( सं० त्रि० ) चमकदार, ज्योतिपूर्ण ।

भासमान ( सं० त्रि० ) १ भासता हुआ, दिखाई देता  
हुआ ।

भासमान ( हि० पु० ) सूर्य ।

भासयश्च—एक विषयात् नैयायिक । इन्होंने न्यायसार और  
न्यायभूषण नामक दो ग्रन्थ लिखे हैं ।

भासस् ( सं० स्त्री० ) भास-भासस् । दीप्ति ।

भासाकेतु ( सं० पु० ) भासा दीप्तिस्तत्वाः केतुः ।  
दीप्तिकारक, उजला करनेवाला ।

भासापुर ( सं० स्त्री० ) बृहत्संहितान्तक पुत्रभेद ।  
( बृहत्सं० १६।११ )

भासिक ( सं० पु० ) १ दिखाई पड़नेवाला । २ लक्षित  
होनेवाला, मालूम होनेवाला ।

भासित ( सं० त्रि० ) तेजोमय, चमकीला ।

भासु ( सं० पु० ) सूर्य ।

भासुर ( सं० पु० ) भासते इति ( मञ्ज भाषभेदी पुरन् । पा ३।२।१६१ ) इति घुरच् । १ कुष्ठीपत्र, कोढ़की दवा । ( पु० )  
२ स्फटिक, विहीर । ३ योग, बहादुर । ( ति० ) ४ दोमि-  
युक्त, चमकीला ।

भासुरपुपा ( सं० स्त्री० ) भासुराणि पुष्पाण्यस्याः, टाप् ।  
वृद्धिकालि ।

भासुविहार—पीण्डवर्द्धनके अन्तर्गत एक बौद्धसङ्घाराम ।  
नागौर नदीके पूर्वी किनारे विहारग्राममें आज भी इसका  
ध्वंस-स्तूप देखा जाता है । चीन-परिभाषक यूएन-  
चुवंग यहाँके ७ मी महायान-सम्प्रदायी बौद्धयतिका  
शारदाध्वजन-विषय उल्लेख कर गये हैं ।

भासुरानन्दनाथ—भास्कररायका नामान्तर ।

भासुरि—सहायद्रिर्वाणित एक राजा ।

भासोक—एक प्राचीन राजा ।

भास्कर ( सं० स्त्री० ) भाः करोतीति कृ ( दिवायिभानिशा-  
प्रभाभास्करानन्तान्तादीनि । पा ३।२।२१ ) इति ट । १ सुवर्ण,  
सोना । ( पु० ) २ सूर्य । ३ यज्ञि । ४ योग, बहादुर । ५  
अर्क वृक्ष, मदार । ६ सिद्धान्तशिरोमणि प्रभृति ज्योति-  
ग्रन्थके कर्ता । ७ महादेव । ८ युक्तप्रदेशवासी जाति-  
विशेष । पत्थरके ऊपर चित्र और चेल घूटे आदि बनाना  
इनका जातीय व्यवसाय है । ये लोग जिस प्रणाली  
द्वारा पत्थरों पर चित्र अङ्कित करते हैं उसे भास्करविद्या  
या स्थापत्य कहते हैं । अजयटा, इलोरा, गाढ़पुरी, पुरी,  
सांचो आदि स्थानोंके मन्दिरादि इनके कृतित्वका अपूर्व  
निर्दर्शन है । ९ महाराष्ट्र प्रान्तणकी एक प्रकारकी पदवी ।

भास्कर—१ नामार्जुनके गुरु । २ अमिधानचिन्तामणि-  
वृत्त एक ग्रन्थकार । ३ प्रभासतीर्थ निवासी एक कवि ।  
भोज प्रव-धमें इनका नामोल्लेख है । ४ एक शैव दार्शनिक  
आप भेदाभेदादी थे । ५ उन्मत्तराघवनाटकके  
प्रणेता । ६ काव्यप्रकाश टीका ( साहित्यदीपिका )-के  
प्रणेता । ७ गायत्रीप्रकरणके रचयिता । ८ नानार्थरत्न-  
मालाप्रणयनके कर्ता । ९ प्रायश्चित्तप्रशोधक, प्रायश्चित्त-  
विधि, प्रायश्चित्तगतद्रव्यो और प्रायश्चित्त समुच्चय  
नामक ग्रन्थके प्रणेता । १० मधुरासङ्ग-काव्यके  
रचयिता । ११ शुद्धिप्रकाशकके प्रणेता । १२ आयाजि-

भट्टके पुत्र । १३ स्पन्दसूत्रवार्तिकके रचयिता,  
दिवाकरके पुत्र और रामकण्ठभट्टके छात्र । १४ यगोबंन  
भास्करके प्रणेता । १५ सहयाद्रि-वाणित एक राजा ।  
१६ चंद्रवंशीय एक राजा, आशामराज बल्लभदेवके  
पूर्वपुरुष । १७ एक ज्योतिर्विद्, कवीश्वर महेश्वर-  
चार्यके पुत्र । आप शाण्डिल्यगोत्रीय कविचक्रवर्ती  
ति-विक्रमके वंशधर थे ।

भास्करआचार्य—१ ब्रह्मसूत्रभाष्य और ब्रह्मसूत्रभाष्य  
सागरके प्रणेता । आप एक दार्शनिक शैव और  
भेदाभेदादी थे । संक्षेपाङ्कुरजय ग्रंथमें इनका  
उल्लेख है । २ वाक्ययन्त्राध्यायिके प्रणयनकर्ता ।  
आप एक विख्यात ज्योतिषी थे । आपके पिताका  
नाम महेश्वर था । १११५ ई०में आपकी मृत्यु हुई ।  
करणकुन्डहल, प्रहागम कुन्डहल, ब्रह्मसूत्र्य करण कुन्डहल,  
ब्रह्मसूत्र्य सिद्धान्तकरणकेशरी, गणितपदी, प्रहगणित,  
प्रदलाघव, ज्ञानभास्कर, रेवागणित, लिङ्गशास्त्र, विवाह-  
पटल, सटीकासिद्धांत शिरोमणि और वासना भाष्य,  
श्रुतगणित सूर्यसिद्धांतव्याख्या और भास्कर दीक्षितोप  
नामक ग्रंथके प्रणेता । इन्होंने ११५१ ई०में सिद्धांत  
शिरोमणि और १८४८ ई०में करणकुन्डहलकी रचना की-  
की । भास्कराचार्य देखो ।

भास्करकण्ठ—चित्तार्थबोधटीकाके रचयिता ।

भास्करतीर्थ—शै तीर्थभेद ( ( निघ पु० )

भास्करदीक्षित—१ तत्समुद्राधिप्रायणके प्रणेता । २ रत्न-  
तुलिका सिद्धांतिसिद्धांतनटीकाके रचयिता ।

भास्करदेव—एक प्राचीन कवि ।

भास्करदेव—फीण्डविडुके गजपतिराज विभवभर देवके  
पुत्र ।

भास्करद्युति ( सं० पु० ) भास्करे द्युतिरस्य । १ विश्व ।  
( स्त्री० ) २ सूर्यकी द्युति, सूर्यकी किरण ।

भास्करनृसिंह ( सं० पु० ) वाराणसीवासी एक भाष्य-  
कार । इन्होंने मन्त्रालयके भ्रमुरोप करने पर १७८८ ई०  
में वास्वयान एक कामसूत्रका भाष्य लिखा है । ये मर्त्य-  
श्वर शास्त्रीय छात्र थे ।

भास्करपन्त—एक महाराष्ट्रनेमापति । ये रघुजी मीसले-  
के शीषान थे । बङ्गालमें १०४२ ई०की मुगलध्वंसे

पराजयके बाद उनके मन्त्री मीर हर्षावने भास्करपन्तको कटक पर आक्रमण करनेके लिए बुलाया। किन्तु अलीवर्दी खाँकी सेनाके एकाएक पहुँच जानेसे उनका मनोरथ पूर्ण नहीं हो सका। मीरका पाकर भास्करने बिहार पर आक्रमण किया और वहाँसे मुर्शिदाबाद पर चढ़ाई करनेकी इच्छासे पच्छिम राज्य तक अप्रसर-हुए। यहाँ आकर बर्गियोंने लूटपाट मचाता शुरू कर दिया। इस पर अशोवर्दी खाँ बर्गियोंके अत्याचारसे राज्यरक्षाके लिए आगे बढ़े। दोनों दलमें घोरतर युद्ध आरम्भ हुआ। नवाब सेनापति मोरहवीर महाराष्ट्रके हाथ बन्दी हुए। पहलेसे ही वे बड़े शूरके ऊपर क्रुद्ध थे। इस बार उन्होंने महाराष्ट्रीय पक्षका अवलम्बन कर मुर्शिदाबाद पर आक्रमण तथा जगसरोड बालमचांदका यथासर्वस्व लूट लिया। उसी समय मेदनापुरसे ले कर कंटोया तक प्रायः सभी स्थान महाराष्ट्रके हाथ लगे। गङ्गा नदीमें बाढ आ जानेके कारण ये दलबलके साथ पार हो कर मुर्शिदाबाद नहीं पहुँच सके। श्वर अशोवर्दी अपना दलबल इकट्ठा करने लगे। नदी पार कर नवाबने महाराष्ट्रको बङ्गालसे भगा दिया। उसी समय कर्णाटसे लौट कर रघुजी भोंसले दलबलके साथ उनसे मिले। उनका दमन करनेके लिए सम्राट् महमूद शाहने पेशवा बालाजी वाजीराव और अयोध्यापति सफदर जङ्गको भेजा। १७४३ ई०में कंटोया और वर्तमान तक पहुँच कर अन्तमें रघुजी भोंसले पराजित हुए और भास्करपन्तने दलबलके साथ उड़ीसाकी ओर भाग कर जान बचाई। रघुजीने बङ्गाल लूटनेकी इच्छासे १७४४ ई०में पुनः भास्करपन्तको भेजा। इस समय नवाब अलीवर्दी खाने सन्धिप्रस्तावका बहाना कर भास्कर पण्डितको निमन्त्रित किया। नवाबकी सेना हथियारके साथ छिप रही। भास्कर पण्डित दलबलके साथ मुसलमान शिखरमें पहुँचे और नवाबके आदेशानुसार एक अनुचरसे मारे गए।

भास्करप्रिय ( स० पु० ) भास्करसा मियः ३ तत् । पम-  
रागमणि ।

भास्करमट्ट ( स० पु० ) १. केशवमिश्रकृत तर्कभाषाके तर्कपरिभाषा दर्पण नामक टीकाके रचयिता । २. तृच-

भास्करके प्रणेता । ३. भोजराजके सभापण्डित । गण्डित्यगोतीय कविचक्रवर्ती त्रिविक्रमके पुत्र । अपने प्रतिपालरुसे इन्होंने विद्यापतिकी आस्था पाई थी।

भास्करमट्टपण्डित—दत्तसिद्धान्तमञ्जरीके प्रणेता ।

भास्करमट्टमिश्र तिकाण्डमण्डन—एक प्रसिद्ध सूत्रनिर्घण्टकार, कुमार स्वामिके पुत्र । इन्होंने ज्ञानयज्ञ नामक तैत्तिरीय संहिताका भाष्य लिखा है। इस भाष्यमें इन्होंने भद्रस्वामीका नामोल्लेख किया है। एतद्भिन्न आप स्तम्बसूत्र, ध्वनितार्थकारिका, वीधायनसहस्रभोजनटीका, सूत्रनिर्घण्ट, यजुर्वेदाष्टकभाषा, आरण्यकभाष्य, ऋग्वेदभाष्य, तैत्तिरीय ब्राह्मणकाठकभाष्य ( काठकतयभाष्य ), तैत्तिरीयोपनिषद्भाष्य और भट्ट भास्करीय नामक वेदभाष्य आदि ग्रंथ इनके बनाये हुए मिलते हैं।

भास्करभूपति—विजयनगर-राजवंशके एक राजा ।

भास्करमिश्र ( स० पु० ) पद्मनाभकृत सिद्धसारखतदीपिकोद्धृत एक ग्रंथकार ।

भास्कररविवर्मा—विवाङ्मोडके एक हिन्दू राजा । इन्होंने यहूदी इसायाकी कोचिनमें बसनेकी अनुमति दी थी। उनका दिया हुआ अनुशासन आज भी मित्राक्षरके पास मौजूद है। वहाँके यहूदियोंका कहना है, कि यह आशापत्र ७९६ ई०में दिया गया था। किन्तु उसकी तामिल वर्णमाला देखनेसे वह लिपि तत्परवर्तीकालकी समझी जाती है।

भास्कर रस ( स० पु० ) रसीपत्र विशेष । इसकी प्रस्तुत प्रणाली—विष, पाद, गन्धक, त्रिकटु, सोहागा और जीरा, प्रत्येक एक एक भाग, लोहा, शङ्खमर्म, अम्र, कीड़ीकी भरुम प्रत्येक दो दो भाग, इन सबके समान लवणचूर्ण । इन्हें विजौरा नीचके रसमें ७ दिन भावना दे कर दो रसीकी गोली बनाये। इस गोलीको प्रतिदिन पानके साथ चबा कर खानेसे अग्निही तेजी होती है तथा शूश्रुतिसृजिका और अग्निमान्द्य रोगमें प्रयुक्त होनेसे विशेष उपकार होता है।

( भेषज्य रत्न० अग्नि मान्याधि० )

भास्करराव—एक महाराष्ट्र प्रतिनिधि, रघुनाथरावके पुत्र ।



भास्करराय—भाट्टदीपिकाव्याख्या मत्स्यशिल्पशास्त्रविचार और वाद कौतूहलके प्रणेता ।

भास्कररायदीक्षिन—एक विद्ययात उपनिषद् भाष्यकार । इनके पिताका नाम गम्भीरराय दीक्षित था । इन्होंने नृसिंह तथा शिवदत्तसे शिक्षा प्राप्त की थी । ये १६२६ ई०में वाराणसीक्षेत्रमें विद्यमान थे । दीक्षा ग्रहणके बाद वे भास्करानन्द नाथ या भासुरानन्द नाथ नामसे परिचित हुए थे । इन्होंने निम्नलिखित पुस्तकें रचीं । यथा— फाटकोपनिषद्भाष्य, केतोपनिषद्भाष्य, जावालोपनिषद्भाष्य, त्रिपुरोपनिषद्भाष्य, महोपनिषद्भाष्य, मण्डुकोपनिषद्भाष्य, अभिनववृत्तरत्नाकर, अवधूतगोताव्याख्या, अष्टावक्रगोताव्याख्या, आत्मशोधव्याख्या, ईश्वरगोताव्याख्या, कन्यका पुराण, गुणवती नामक दुर्गामाहात्म्यटीका, चण्डीस्तव-मन्त्रपरिच्छेद, त्रिपुरामहिमटीका, स्तवमन्त्रपरिच्छेद, त्रिपुरामहिमटीका, नवरत्नमाला, भास्वरज वेदाङ्गच्छन्दः सूत्रार्थप्रकाश, मंत्रविभाग, ललिताचनविधि, वारि-वाशरदहस्य, वारिवशादहस्यप्रकाश, वृत्तचन्द्रोदय, शब्द फौस्तुमभूषण, श्रौविद्यान्वचन्द्रिका, सिद्धान्तकौमुदी विलास, सेतुबन्ध नामक वामकेश्वरतन्त्रोक्त नित्यपौडगी की टीका, सौभाग्यभास्कर नामक ललितासहस्रनाम-टीका प्रभृति ।

भास्कररिपुबंधल—सिंहपुर राजवंशके एक राजा, राजा अचलवर्मा समर घंघलके पुत्र । ये लोग यदुचंडीय थे । कपिलवर्द्धन राजकन्या जयावलीके साथ इनका विवाह हुआ था ।

भास्करवंश ( सं० श्लो० ) सूर्यवंश ।

भास्करलयण ( सं० श्लो० ) आषषविशेष । प्रस्तुत प्रणाली—सापुद्रलयण १६ तोला, सौर्यचल १० तोला, विट्टलयण, सेन्धव, घनिश, पोपर, पिपरामूल, तैजपत्ता, कृष्णजोरा, तालोजपत्र, नागकेसर, चर्द, अम्लघेतस, प्रत्येक चार चार तोला, मिर्च, जोग और सोंठ, प्रत्येक दो दो तोला, काड़िमका रीजचूर्ण ८ तोला, दारचीनी और इला-यची ७ तोला इन सब चूर्णको एकत्र मिला कर इसे प्रस्तुत करें । प्रतिदिन आध तोला लयण मड़े और बहीके पानीके साथ खानेसे पातझरैमिह रोग, गुल्म, तीहा, उदर, क्षय, अर्ज, ग्रहण, कुष्ठ, भगन्द, शूल, फास,

शुमि, मन्दाग्नि आदि रोग जाने रहते हैं । यह लयण अग्नि दीप्तकारक और पाचक है । मनुष्योंको भलाके लिये भगवान् भास्करने इस औषधको तैयार किया है । इस औषधके खाते ही निश्चय है, कि सभी प्रकारका अजीर्ण नष्ट हो जायगा । ( भास्कराभिन मन्व ) भास्कर वर्मन—भगदत्तवंशीय गौड़के एक राजा, नारायण देवके यशधर । श्रोहर्षने इन पर आक्रमण किया था । चूपनचुवंगके वर्णनसे मालूम होता है कि, कामरूपमें भी ये राज्यशासन करते थे । प्राग्ज्योतिष देते । भास्करविद्या ( सं० स्त्रो० ) कारकर्म नैपुण्य, परधर-पर चित्र और घेरुट्टे आदि बनानेकी कला । स्पष्टत्व देती ।

भास्करव्रत ( सं० श्लो० ) भास्करोद्देशके व्रत । सूर्यके उद्देशसे किये जाने का एक व्रत । ब्रह्मपुराणमें इस व्रत का प्रसङ्ग है ।

भास्करशर्मा—आयाजि भट्टके पुत्र । आप वृत्तरत्नाकर-सेतु नामक वृत्तरत्नाकरकी एक टीका लिख गये हैं ।

भास्कर सतमी ( सं० स्त्रो० ) व्रतविशेष ।

भास्करशास्त्री—तत्त्वबोधनफाष्यके प्रणेता ।

भास्करशास्त्री—होराशास्त्रार्णवविस्तारके रचयिता । आप सम्भवतः विद्ययात ज्योतिर्विद् भास्करानार्यके शिष्य थे ।

भास्करसोम—एक प्राचीन कवि ।

भास्कराचार्य—भारतवर्षके एक सर्वप्रधान ज्योतिर्विद् । पाटनके भयानीमन्दिरसे आविष्कृत जिलालिपिमें इस प्रकार लिखा है—

शाण्डिल्यवंशमें कविचक्रवर्ती त्रिविक्रमने जन्मग्रहण किया था । इनके पुत्रका नाम था भास्करभट्ट । उन्होंने भोजराजने 'विद्यापति' को उपाधि पार्य थी । भास्करके पुत्र गोविन्द सर्वज्ञ, गोविन्दके मनोरथ, मनोरथके पुत्र कविश्वर महेश्वराचार्य थे । इन्होंने महेश्वराचार्यके पुत्रका नाम था भास्कराचार्य । ये कविपुत्रके वर्णनोय, कृष्णभक्त, सर्वज्ञ विद्यानिपुण और महकवि तथा पुण्यवान् थे । भास्करके पुत्र वेदार्थविद्, पण्डितप्रधान, तार्किक चक्रवर्ती, प्रद्योगविद्वान् लक्ष्मीधर थे । सर्वज्ञाश्रमनिपुण ज्ञान कर राजा जैत्रपालने इन्हें अपने यहाँ ले

गर्भ थे। उनके पुत्र राजा सिधणचक्रवर्तीके देवश्वर चण्डदेव थे। इन्होंने चण्डदेवने भास्कराचार्यकृत शास्त्रसमूहका प्रचार करनेके लिए मठ प्रस्तुत किया था। भास्कररचित सिद्धान्तशिरोमणिप्रमुख प्रधाषलो और उनके वंशधरोंके रचित अन्यान्य ग्रंथ इस मठमें नियमितरूपसे पढ़े जाते थे।'

उक्त शिलालिपिने ज्ञाना जाता है, कि भास्कराचार्यके पिताका नाम था महेश्वराचार्य। इन्होंने जिस वंशमें जन्म लिया था और इनसे जो वंश निकला था, उसमें अनेक विषयात पण्डित प्रवर जन्मग्रहण कर गये हैं। भास्कराचार्यने स्वहृत् गोलाध्यायके अन्तमें भी इस प्रकार परिचय दिया है:—

'आषीत् यथा मुद्रावलाश्रितपुरे श्री विद्यविद्वज्जने।  
नानातज्जनधामिनि विजड्विडिं भाषिडश्यगोशो द्विजः ॥  
श्रीतस्मार्त्तविचारसारचतुरो निःशेषविद्यानिधिः।  
साधुनाम वधिमहेश्वरकृती देवशुचूडामणियाः ॥६१  
तजस्तघरधार्यबन्दयुगलप्रसात प्रसाधः सुधीः  
मुग्धोद्गोषकरं विदग्धगयाकमीतिप्रदं प्रस्तुटम्।  
एवम्यक्त सद्युवितयुवितवहुजं हेस्तावगन्धं विदां  
विद्वान्तगुणं कुतुद्विमथनं चक्रे कविभास्करः (प्रनाध्याय)  
भास्कराचार्यकी निजोक्तिसे जाना जाता है, कि सहायिके पाददेशमें अवस्थित विजड्विडि नामक ग्राममें देवशुचूडामणि महेश्वरके औरससे भास्कराचार्यने जन्म ग्रहण किया था।

सिद्धान्तशिरोमणिके टोकाकार मुनीश्वरके मतानुसार,—

'महाराष्ट्र देशके अन्तर्गत विदर्भके निकट गोदावरीके थोड़ी दूर पर विडु नामक ग्राम है। वहाँसे पाँच कोस दूर लोलावतीके मङ्गलाचरणमें गणेशाय नमो नोलकमलामलकान्तये' इत्यादि वर्णित उन गणेशकी कृष्णवर्ण प्रतिमा आज भी विद्यमान है। अहादनगरसे ४० कोस पूर्व भास्करकी जन्मभूमि उक्त विडु ग्राममें अवस्थित है और वहाँसे ६७ कोस दूर लिम्ब नामक ग्राममें कृष्णस्तरनिर्मित गणेशमूर्ति अब भी नजर आती है।

भास्करकी जन्मभूमि विडु होने पर भी उनके वंश-

धरगण पाठनमें जा सके थे। पाठनके निकटवर्ती महाल-ग्राममें भी भास्करके भ्रातृवंशीय गणक अनन्तदेवके आदेशानुसार उत्कीर्ण शिलालिपि देखनेमें आती है।

भास्कराचार्यने अपने सिद्धान्तशिरोमणिके अन्तमें लिखा है,—“रसगुणपूर्णमहो (१०३६) सम शक-नृपसमयेऽभवन्ममोत्पत्तिः। रसगुण (३६) वर्षेण मया सिद्धांतशिरोमणो रचितः ॥” ५८

उक्त श्लोकानुसार १०३६ प्रकाशमें अर्थात् १११४ ई०को भास्कराचार्यने जन्म लिया और ३६ वर्षकी उम्र (११५० ई०)में सिद्धांतशिरोमणि नामक पुस्तक रची। इनके 'करण कुतूहल' का रचनाकाल निर्देशस्थलमें भी १०७५ प्रकाश लिखा है।

इन्होंने सिद्धान्तशिरोमणि, करणकुतूहल और वासना-भाष्यकी रचना की। इसके अलावा भास्करव्ययहार तथा भास्करविवाहपटल नामक दो छोटे ज्योतिषग्रंथ इन्होंने बनाये हुए हैं। भास्कर देखो।

उक्त ग्रंथोंके मध्य सिद्धांतशिरोमणि सर्वप्रधान है। यह चार खण्डोंमें विभक्त है,—१ला लोलावती या पाटी-गणित (Arithmetic), २रा बीजगणित (Algebra) ३रा प्रदग्गणिताध्याय (Astronomy) और ४था गोलाध्याय। इन्होंने चार खण्डोंमें भास्कराचार्यका यथेष्ट कृतित्व प्रकाशित हुआ है। यद्यपि उन्होंने मध्यमग्रहका बीज-संस्कार 'राजसृगराङ्क' से और मध्यमाधिकारका प्रद-भागणादि मान और स्पष्टाधिकारका परिध्वंशादि सत्र प्रकारका परिमाण ब्रह्मसिद्धांतसे ग्रहण किया है; वहाँ तक कि अयनगत भी पूर्वाचार्यके मतानुसार ही प्रदर्शित हुआ है, तथापि अनेक स्थल पर उन्होंने ऐसी गभीर गवेषणाकी परिचय दिया है, कि उनकी एकमात्र सिद्धांत शिरोमणिकी जालोचना करनेसे ही भारतीय ज्योतिष शास्त्रका सम्यक्त्व ज्ञाना जा सकता है। विप्रना-धिकारमें इन्होंने नाना प्रकारकी अमिनत्र साधनप्रणाली और अर्घ्य बुद्धिर्गीजल दिखलाया है। शंकुके विषयमें इददिकृष्टायासाधन और उद्वांतर संस्कारका भास्करा-चार्यने ही पहले पहल आविष्कार किया है। पातसाधन तथा ग्रहोंके शर-सम्बन्धमें भी इन्होंने पूर्वाचार्यकी बहुत कुछ गलती दिखाई थी। जिस माध्याकांगतस्य (Laws

of gravitation) का भाविष्कार कर सर आइजक न्यूटन संसारमें प्रसिद्ध हो गये हैं, उन न्यूटनके जन्मग्रहणके लगभग आठ सौ वर्ष पूर्व भास्कराचार्य अपने गोलार्धध्यायमें माध्यकार्णिकतत्त्व प्रकाशित कर गए हैं। यह कम् गौरवकी बात नहीं है। इनके करणकुन्दल ग्रन्थके आधार पर ग्रहसाधनके लिए 'जगधन्द्सारणी' नामक एक प्रकाण्ड सारणी प्रस्तुत हुई है। भास्कराचार्यरचित ग्रन्थसमूहकी बहुत सी टीका मिलती हैं। यथा—

१. छोलावती टीका— गृहसिंहपुत्र रामकृष्णकृत गणितामृतलहरी, गृहसिंहनन्दन नारायणकृत पाटीगणित क्रीमुद्रा, गोवर्द्धनरचित गणितामृतसामरी, गणेशदैवशकृत बुद्धिवलासिनी, धनेश्वर दैवशरचित लोलाभूषण, सहीदास और सुनीश्वरकृत लोलावतीविरुति, रामकृष्ण दैवशकृत मनोरञ्जना, रामचन्द्रविरचित लोलावती भूषण, सुर्दास दैवशकृत गणितामृतकृषिका, विश्वेश्वर और चन्द्रशेखर पटनायककी रचित यथाकम लोलावत्युद्धारण प्रभृति टीका उल्लेखयोग्य हैं। इसके अलावा रामोदर, देवीसहाय, परशुराम, रामदत्त, लक्ष्मीनाथ, घृन्दायन, धीधर प्रभृति की टीका भी पाई जाती हैं।

२. बीजगणितटीका— ज्योतिषीकृष्णरचित बीजनवाङ्मुर, रामकृष्ण दैवशका बीजप्रबोध, परमसुखरचित बीजवृत्तिकल्पलता।

३. ग्रहगणिताध्याय और ४ गोलार्धध्यायकी टीका। ग्रहलाघवकार गणेश दैवश तथा उनके प्रपौत्र द्वारा रचित शिरोमणिप्रकाश उल्लेखयोग्य हैं। इसके सिवा गृहसिंह, सुनीश्वर और गोपीनाथकी रचित टीका मिलती हैं।

सुर्दास 'सुर्दास' नामक और रङ्गनाथ 'मित-भाषिणी' नामक समग्र मितान्ताशिरोमणिकी टीका रच गए हैं।

भास्करानन्दस्वामी—काशीके एक साधु और योगी। वेदान्त शास्त्रमें इनकी अच्छी व्युत्पत्ति थी। इन सम्बन्धमें इनके बनाये हुए कई ग्रन्थ भी मिलते हैं। तैलङ्ग स्वामीके स्वर्णवासी होने पर इन्होंने काशीक्षेत्रमें प्रसिद्धि प्राप्त की थी।

भास्कराचर्य ( सं० पु० ) सुभृलोक शिरोरोगमेद । इसका लक्षण—सर्वाँद्यकालमें चक्षु और मूत्र देन पर मन्द मन्द

वेदना आरम्भ हो कर सूर्यकी प्रखरताके साथ साथ बढ़ती है और सूर्यके वस्त होने पर इसका भी हास होता है। इसीको भास्कराचर्य वा सूर्याचर्य रोग कहते हैं। यह त्रिदोषज रोग है। कभी शैत्य और कभी उष्ण विषाये इसका प्रशमन होता है। ( सुभ्रुव शिरोरोगाधि० )

भास्करामृताक्ष ( सं० कु० ) औषधविशेष । प्रस्तुत प्रणाली—बहुसूत्रकी छाल, मोघा, श्वेत पुनर्गया। विजयचंद्र और शतमूली प्रत्येकके १ पल परिमित रसमें स्राजित करके सहस्र-पुटित अवकी शतमूलोके रसमें भावना दे कर गोली बनावे। इसकी मावा और अनुपात रोगीके बलाबलके अनुसार स्थिर करना होगा। इस औषधका सेवन करनेसे सब प्रकारका शूल, प्रसृपित्त, कमला और रक्तपित्त रोग जाता रहता है।

(सौपन्धरत्ना० धर्मविद्याधि०)

भास्करि ( सं० पु० ) भास्करस्यापत्यं इत् । १ वैवल मनु । २ कर्ण । ३ मुनिभेद । ( भारत नास्त्या० ५३ म० )

भास्करीय ( सं० ति० ) भास्कर सम्बन्धीय।

भास्करेष्ट ( सं० स्त्री० ) भास्करस्य इष्ट । आदित्यमका लता।

भास्त्रायण ( सं० स्त्री० ) भस्त्रा-कृत् ( पा ४।३।५ ) भस्त्रा सम्बन्धीय।

भास्मन ( सं० ति० ) भस्मनो विकारः अणु मन्तरत्नम् न टिञ्जोपः । भस्मविकार।

भास्त्रायन ( सं० पु० ) भस्मनो गोत्रापत्यं कम् । भस्म ऋषिका गोत्रापत्य।

भास्वत् ( सं० पु० ) भासः भस्त्वस्येति भास् ( तदस्वग-स्त्वस्मिन्नि मनु० । पा ४।३।५ ) इति मनुष्य मस्य ष । १ सूर्य । २ अर्षां वृक्ष, मक्षरका पेड । ३ शीत, चमक । ४ सोर, बहादुर । ( ति० ) ५ क्षीतिविशिष्ट, चमकदार । ६ प्रकाशक, चमकनेवाला।

भास्वत्कृषिरत्न—सरोजकृषिकाके प्रणेता।

भास्वती ( सं० स्त्री० ) भास्वन्-स्त्रियां ङोप् । १ तदीमता । २ ऊषध्, गायका स्वन । ३ क्षीमिनी । ४ उपोत्प्रेषण-विशेष । इस ग्रन्थके प्रथमे कष्ट और सूर्यमहदकी गणना होती है।

भास्वर ( सं० पु० ) भास्वने इति भास्वत् इत्यमरविशेष

वरन्। पां ३।३।१७) वरन्। १ दिन। २ सूर्य। ३ सूर्यको अनुचरविशेष। इसे भगवान् सूर्यने ताराकासुन्दके वधके समय स्कन्दको दिया था। (खी०) ३ कुट्टी-यध, फोडकी दवा। (त्रि०) ५ दोसियुक, चमकोला।  
सिंखराज (सं० पु०) काणमौराधिपति कुलराजका भतीजा। (राजतरङ्गिणी ८।२३१६)

सिंग (हिं० पुं०) १ भृङ्गी नामका कीड़ा। इसका दूसरा नाम विलनी भी है। २ भौरा। (खी०) ३ बांधा।

सिंगराज (हिं० पुं०) भृङ्गराज देवो।

सिंगाना (हिं० कि०) सिंगोना देवो।

सिंगोरा (हिं० पुं०) १ भृङ्गराज, भौरा। २ भृङ्गराज पक्षो।

सिंगोरो (हिं० खी०) भृङ्गराज नामक पक्षो।

सिंजाना (हिं० कि०) सिंगोना देवो।

सिंजा (हिं० पु०) बड़ो सड़क।

सिंजि (हिं० पु०) डेलवास, गोफना।

सिंजिपाल (हिं० पु०) एक प्रकारका छोटा डंडा जो प्राचीन कालमें फेंक कर मारा जाता था।

सिंड़ी (हिं० खी०) एक प्रकारके पीथेको फलो। इसको तंरकारी वनती है। फलो चार अंगुलसे ले कर बालिशन भर तक लंबी होती है। इसके पीथे जैतसे जेठ तक बोर जाते हैं। जब पीथे ६-७ अंगुलके ही जाते हैं, तब वे दूसरे स्थानमें रोपे जाते हैं। इसको फसलको धाद और निराईको बहुत आवश्यकता होती है। इसके रोगोंसे रस्ते आदि बनाये जाते हैं। एक प्रकारका कागज भी इससे बनता है। वैद्यकमें इसे उष्ण, प्रादी और यच्चिकारक माना है। इसे कहीं कहीं रामंतराई भी कहते हैं।

सिंड़ियाल (हिं० पुं०) सिंजिपाल देवो।

सिंक्षण (सं० स्त्री०) शिक्षाकरण, शिक्षा मांगनेकी क्रिया।

सिंक्षा (सं० खी०) शिक्षा, याचनादी। (पुराणतल्लः।

पा ३।३।२०) इति अ, तत्तच्छाप। १ याचन; मांगना। पर्याय—याच, अर्चना, अर्चना, प्रार्थना।

“वापिन्ये वरते लक्ष्मीस्तदर्थं” काणमौरि।  
तदर्थं राजसेवाया मिक्षा नैव च नैव न ॥” (वाणप्रय)  
२ सेवा। ३ भृति। ४ शिक्षित् वस्तु, मांगो हुई चीज। शांतिपने “श्रासमांला भवेद् मिक्षा” ऐसा

मनुमें लिखा है, —

“श्रुत्वा तद्विज्ञकर्ममतिथिं पूर्वं मांगयेत्।

मिज्ञापन भिन्नं दद्याद्विचिक्त् ब्रह्मचारिणम्।

गृहांको चाहिए, किं बलिभ्रमं समाप्त करनेके बाद सबसे पहले अतिथिको भोजन करावे और मिश्रुक या ब्रह्मचारीको यथाविधि शिक्षा दे। उनका यह शिक्षादान बड़ा ही पुण्यजनक होता है।

ब्राह्मणादि तीन वर्णोंके उपनयनके बाद गुरुगृहमें अस्थान करनेके पहले शिक्षा मांगनेसे जो कुछ मिलता है, वही गुरुको समर्पण कर उनके गृहमें रहना पड़ता है। मनुमें लिखा है, कि ब्रह्मचारियोंको सूर्यको उपासनाके बाद तीन बार अग्निप्रक्षिपण कर यथाविधि शिक्षाचरण करना चाहिए।

उपनीत ब्राह्मण-ब्रह्मचारीको पहले ‘भवन्’ शब्द कह कर शिक्षा मांगना चाहिए। अर्थात् ‘भवन्! शिक्षां देहि।’ पुरुष होनेसे ‘भवन् शिक्षां देहि’ ऐसा कहना चाहिए। धत्त्रिको भवन् शब्द बीचमें ‘मिक्षां भवति देहि।’ धैश्याको भवन् शब्द अन्तमें ‘मिक्षां देहि भवति’ ऐसा कह कर शिक्षा मांगनी चाहिए।

माता, भगिनी, मातृप (माँसी) या जो स्त्री ब्रह्मचारीको विमुक्त न करे, उन्हींसे ब्रह्मचारी पहले शिक्षा मांगे। प्रतिदिन प्रयोजनानुरूप शिक्षा संप्रद कर अकंपट मनसे गुरुको समर्पणपूर्वक उनके गृहमें वास करना चाहिये (मनु २ अ०)।

याज्ञवल्क्यसंहितामें लिखा है, कि ब्रह्मचारीको गुरु-गृहमें अपनी जीवनयात्रा निर्वाहके लिए विशुद्ध ब्राह्मणालयमें शिक्षा मांगनी चाहिए।

(याज्ञवल्क्य सं० १।२८-३०)

स्वजाति अथवा समी वर्णोंसे ब्रह्मचारी शिक्षा मांग सकते हैं, किन्तु पतित, वेदयज्ञादि-विहीन, गुरुकुल धातिकुल तथा चण्डु इन सबोंसे कदापि शिक्षा न मांगें। यदि किसीसे भी शिक्षा न मिले, तो इन सबोंसे शिक्षा मांग सकते हैं। ऐसा करनेमें कोई दोष नहीं है। किन्तु पूर्वोक्तके निकट यदि शिक्षा मिलनेकी सम्भावना रहे और उनके निकट न जा कर इन्होंने शिक्षा मांगी जाय,

भिक्षादान अवश्य कर्तव्य है। जिनके जैसा विभव है, उन्हें उसीके अनुसार भिक्षा देनी चाहिए। प्राप्त भिक्षा देना उचित है।

“भोजनं ह्यन्नकारं वा अन्नं भिक्षामयापि वा ।  
यदस्या नैव भोजनस्य यथाधिमात्मानः ॥  
प्रागप्रदानाद्विज्ञा स्वल्पं अन्नं प्रागचतुष्टयम् ।  
अप्रागनुगुणं पाहर्हन्तकरं द्विजोत्तमाः ॥”

(आदिकृतत्व)

प्रसन्नचारीके सिवा जो कोई व्यक्ति भिक्षुकरूपमें उपस्थित हो, उन्हें भिक्षा अवश्य देनी चाहिए।

व्याधिप्रस्त, अन्नहीन, कुटुम्बविताडित तथा पथ-ह्रान्त इन सबोंको भिक्षाचर्या करनी चाहिए।

“व्याधितस्यान्नहीनस्य कुटुम्ब्यात् प्रच्युतस्य च ।  
अध्वानं वा प्रतप्तस्य भिक्षाचर्यं विधीयते ॥” (विष्णुपु०)

गृहोंके घर जिस दिन अतिथि या भिक्षुक न आवें, उस दिन भिक्षित वस्तु गायको खिला दे अथवा अग्नि-में फेंक दे।

“भिक्षुकाभावे चान्नं गोभ्यो दद्यात् अग्नौ वा क्षिपेत् ॥”

(विष्णुसंहिता)

भिक्षाक (सं० पु०) भिक्षते इति भिक्षु (जल्पमिहकुटुम्बपट-  
वृदःपाकन। पा ३।२।१५१) इति पाकन। भिक्षुक, भोख  
मांगनेवाला।

भिक्षाकरशुभ—रायमुकुटभृत एक प्रंधकार।

भिक्षाकरण (सं० क्ली०) भिक्षायाः करणं। भिक्षाकार्यं,  
भोख मांगना।

भिक्षाकी (सं० स्त्री०) भिक्षाक पितृवात् स्त्रीप् ।  
भिक्षुकी।

भिक्षाचर (सं० पु० स्त्री०) भिक्षां चरतीति भिक्षा-चर  
(भिक्षांननाशेषु च। पा ३।२।१०) इति ट । १  
भिक्षुक, भोख मांगनेवाला। २ काश्मीरराज स्वनामधेयात्  
राजा भोजके पुत्र। (राजतर० ८।१७)

भिक्षाचरण (सं० क्ली०) भिक्षायाश्चरणम्। भिक्षाचर्यं,  
भोख मांगना।

भिक्षाचर्य (सं० क्ली०) भिक्षायाश्चर्यं। भिक्षाचरण।  
भिक्षाचर (सं० स्त्री०) भिक्षाकार्यं, भोख मांगना।  
भिक्षाचर (सं० क्ली०) भिक्षाचर्यं मटनम्। १ भिक्षाचर्य-

गमन, भोख मांगनेके लिये इधर उधर घूमना। जान  
और सवेरे भिक्षाके लिये फेरो नहों देनी चाहिये।  
(कर्मपु० उ० ११ अ०) २ शार्ङ्गधर्यदतिचूच पद  
कवि।

भिक्षादि (सं० पु०) भिक्षा आदि करके पाणिशुद्ध-  
शब्दगण। गण यथा—भिक्षा, गर्भिणी, क्षेत्र, करोष,  
अङ्गार, चर्मन, सहस्र, युवति, पदादि, पद्धति, भयर्षन,  
दक्षिणामत, विषय और श्रोत्र। समूह अर्थमें इस गण-  
के उत्तर अण् प्रत्यय होता है। (पाणिनि)

भिक्षान्न (सं० क्ली०) भिक्षालन्नग्रमन्नम्। भिक्षा द्वारा  
प्राप्त अन्न, वह अन्न जो भोख मांग कर जमा किया गया  
हो।

भिक्षापात्र (सं० क्ली०) भिक्षाहरणार्थं पात्रं मध्यपत्रलोपि  
कर्मधा०। भिक्षाहरणार्थं पात्र, वह बरतन जिसमें भोख-  
मंगे भोख मांगते हैं। २ भिक्षादानसम्प्रदान प्रसन्नचारी  
प्रभृति।

भिक्षाप्रचार (सं० पु०) भिक्षाथ प्रचार। भिक्षाके लिये  
गमन, भोख मांगनेकी फेरो।

भिक्षाभुञ्ज (सं० वि०) भिक्षामोजी, भिक्षा द्वारा तिराह  
करनेवाला।

भिक्षामानव (सं० पु०) भिक्षुकमानव।

भिक्षायण (सं० क्ली०) भिक्षार्थं भ्रमण।

भिक्षार्थी (सं० लि०) भिक्षा-अर्थ-इति। भिक्षाप्राप्ती,  
भिक्षुक।

भिक्षावन् (सं० त्रि०) भिक्षा आस्वयर्थे मनुष् मस्य य।  
भिक्षाकारो, भोख मांगनेवाला।

भिक्षावृत्ति (सं० त्रि०) भिक्षा वृत्तिर्भौविका यस्य।  
भिक्षुक, भोख मांग कर जीविकानिर्वाह करनेवाला।

भिक्षाग्नि (सं० त्रि०) भिक्षां अश्नातीति अग्नि-ग्नि।  
भिक्षुक, भोखमंगे।

भिक्षाशिल्प (सं० क्ली०) भिक्षाग्निमो भिक्षुकस्य भावा  
स्य। वैशुस्य, सुगलपरीरो।

भिक्षाहार (सं० पु०) भिक्षालक्षणः अहारः। भिक्षाग्न।

भिक्षानव्य (सं० लि०) भिक्षु तस्य। प्रायिकण्य।

भिक्षिन् (सं० लि०) भिक्षाकारो तापन।

मिष्ठु ( सं० पु० ) मिष्ठु-याचने ( एनाय'वमिष्ठु उः । पा ३।१।१६८ ) इति उ । ब्रह्मचर्यादि चार आश्रमोंके अन्तर्गत चतुर्थाश्रमों, मिश्रा मागनेवाला । यह आश्रम अन्तिम आश्रम है । यह मिष्ठु शब्द धर्मों और धर्मपर है । पर्याय—परियाजु, कर्मन्दिनु, पाराशरिनु, मस्करिनु, पतिवाजक, पराशरी, वज्रक । ब्रह्म चर्या, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और मिष्ठु यही चार आश्रम हैं । विष्णुपुराणमें इस आश्रमके लक्षणिका विषय इस प्रकार लिखा है,—

तृतीय आश्रमके बाद पुत्र, कलल और सभी द्रव्योंसे स्नेहशून्य तथा मातसर्वाका परित्याग कर चतुर्था आश्रममें प्रवेश करना चाहिए । मिष्ठु व्यक्तिको धर्म, अर्थ और कामरूप त्रिवर्ग साधनसमुदाय तथा यागादिके अनुष्ठानका परित्याग करना उचित है । ये शत्रु, मित्र, क्षुद्र तथा गृह्य सभी प्राणीके समान मित्र हो जाय । वाष्य, मन या कर्म द्वारा जरायुज, अण्डज, प्रभृति किसी जीवका कदापि अभिष्टाचरण न करे । सर्वदा योगरत रहे और सर्वोंका सङ्ग छोड़ दे । इन्हें गांवमें एक रात और नगरमें पांच रात तक रहना चाहिए । इससे अधिक काल तक रहना उचित नहीं । इसके सिवा वे ऐसे स्थानमें रहे, जहाँसे न तो प्रीति ही उपजे और न द्वेष ही हो । जिस समय गृहस्थके पाकादिकी अग्नि बुझ जाय और सबोंका आहार समाप्त हो जाय, उसी समय मिष्ठु, मिश्रा मांगनेके लिए ब्राह्मणोंके घर उपस्थित होवे । जो आश्रममें शारीरिक अग्निको अग्निहोत्ररूपसे, अपने शरीरमें संस्थापन कर मिश्रावरूप हविः समूह द्वारा अपने मुखमें होम करते हैं, तथा चैतन्यरूप अग्नि द्वारा सभी कर्म दहन करनेमें समर्थ हैं, वे ही उत्तम लोक प्राप्त कर सकते हैं । ( विष्णुपुराण ३६ अ० )

मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है, कि ब्रह्मचर्या, गार्हस्थ्य और वानप्रस्थ आश्रमके बाद मिष्ठु नामक चमर आश्रम है । इस आश्रममें मिष्ठुओंको सर्वसद्गुणपरित्याग, ब्रह्मचर्या, कोपि विसर्जन, इन्द्रियसंयम, एक आयासमें बहुत दिनका वासत्याग, कर्मत्याग, मिश्राप्राप्त अन्नसे एक ही बार भोजन, आत्मप्रानावबोधेच्छा तथा आत्मदमन इन सबोंका सर्वदा यत्नपूर्वक अनुष्ठान करना चाहिए । यही मिष्ठुओंका सनातनधर्म है । सत्य, शौच, अनसूया

प्रभृति वर्णाश्रमके साधारण धर्मके प्रति भी मिष्ठुओंको विशेष ध्यान देना उचित है । ( मार्कण्डेयपु० २८ अ० )

ब्राह्मण ब्रह्मचर्य-आश्रमके बाद मिष्ठु-आश्रम गृहण कर सकते हैं । इस आश्रममें वे सुखदुःखरहित, आश्रय-शून्य, जितेन्द्रिय, शम तथा दमगुणसम्पन्न, सबोंके प्रति समदृष्टि, भोगकामनाशून्य और निर्बिचार-विस होवे । ऐसे धर्माचरणके बाद उन्हें ब्रह्मपद प्राप्त होता है ।

( भा० भा०० वर्षाश्रम० प० )

निर्णयसिन्धुमें मिष्ठुओंके धर्म तथा कर्मको पद्धति इस प्रकार लिखी है,—मिष्ठुगण प्रातःकाल उठ 'ब्रह्मण-स्पते' यह मन्त्र जप कर दण्डादि रख देवे, बाद मलमूत्रका परित्याग करे । अनन्तर गृहस्थोंके लिये जैसा शौच विहित है, उससे चार गुणा उन्हें शौच करना उचित है । इसके बाद आचमन कर पर्व तथा द्वादशी दिनको छोड़ अन्य सभी दिनोंमें प्रणव द्वारा दन्तधावन और अग्नि-कृत्रिप्रक्षालन कर जलतर्पणके अलावा स्नान करना चाहिए । तदनन्तर वस्त्रादि पहन कर केजवादिका तर्पण, 'ओं भूर्सर्वपायामि' इत्यादि व्याहृति द्वारा तर्पण करे । बाद त्रिकालमें यथाविहित पूजा और जप होमादिका अनुष्ठान विधेय है । विस्तार हो जानेके भयसे पूरा पूरा नहीं लिखा गया । निर्णयसिन्धुमें विशेष विवरण देते ।

विष्णुसंहितामें चतुर्था आश्रमका विषय इस प्रकार लिखा है,—ब्रह्मचर्या, गार्हस्थ्य तथा वानप्रस्थ इन तीन आश्रमोंसे आत्मिकके निवृत्त होने पर प्राजापात्ययागके बाद सर्वस्व दक्षिणा दे कर आश्रम गृहण करना होता है । इस यागका विषय यजुर्वेदीय उपाख्यान गृधमें लिखा है ।

मिष्ठु स्वयं अग्नि धारोपित कर मिश्राके लिए ग्राममें प्रवेश और सात घरसे मिश्राग्रहण कर सकते हैं । मिश्रा न मिलने पर उन्हें दुःखित नहीं होना चाहिए । वे मिष्ठुकसे मिश्रा न मांगे । मनुष्योंके भोजन कर चुकने और जुटा बरतन धोए जानेके बाद मिष्ठु शृण्मय पात्र, दाघ-मय पात्र या अलावूपाव ( लौका ) में नील मांगे । मिष्ठुकके ये पात्र जलसे ही शुद्ध होते हैं । मिष्ठुकको परित्यक्त या पृथक्के नीचे रात पितानी चाहिए । ग्राममें अधिक वास न करे । इन्हें कौपीन और

सिवा दूसरे यत्नका व्यवहार करना उचित नहीं। कदम गढ़ानेके समय रास्ता देख कर चले। ये यत्नपूत-जल-प्रहण, सत्वपूत-वाक्प प्रयोग तथा मनःपूत आचरण करें। इनको मरने या जीनेकी आकांक्षा नहीं करनी चाहिए। दूसरोंके अपमान करने पर उसे सहा कर लेना उचित है। किन्तु स्वयं दूसरोंका अपमान न करें। मिथुको चाहिए, कि ये किसी को आजीवांदा या नमस्कार न करें। मिथुओंको प्राणायाम धारण और ध्यान-तत्पर होना उचित है। मिथु संसारकी अनित्यता, जरीरकी अशुचिता, जरा द्वारा रूपविपर्यय, शारीरिक और मानसिक, आगन्तुक और स्वाभाविक व्याधि द्वारा उप-ताप, गर्भमें मूत्रपुरीषके मध्य अवस्थिति, उससे श्रोतोष्ण-दुःस्वानुभव, उत्पन्न होनेके समय योनिसङ्कटनिर्गम तथा उस समय विशेष यत्नजना, बाल्यकालमें मूर्खता, गुंजनेके अधीन अवस्थान, अध्ययनमें अत्यन्त कुंज, यौवनमें विषय प्राप्तिके लिए विशेष अयास, अस्तु कार्य करके विषय लाभके बाद, उसका भोग करनेसे नरकगमन, अप्रियका संसर्ग, प्रियजनोंका विरह, नरकमें अत्यन्त दुःख तथा संसार अनित्यता, संसारमें तनिक भी सुख नहीं रहतादि विषयकी आलोचना करें और सर्वदा ध्यान-निरत रहे। इन्हें ध्यानके समय दोनों पैरको दोनों जांघ-में और दाहिना हाथको बाँध हाँध पर रखा कर स्थिर चित्त से परमात्मचिन्तामें निरत रहना चाहिए। तब मिथु एकान्त मनसे निर्मय तथा प्रज्ञान्त चित्त हो चौबीस तंत्र-के अतीत, नित्य, स्थिरातीत, निर्गुण, सर्वांग, सर्जनः पाणिपांदायत सर्वतोऽसिश्चिरीमुख परब्रह्मका ध्यान करें। ऐसा करनेसे परम पद लाभ होता है।

( पितृगुणिका ६५-६६ भ० )

हारोत्संहितामें लिखा है, कि चतुर्थी सोममेंको नाम मिथु या संन्यास है। अज्ञापूर्वक इस् आश्रमकी अनुष्ठान करनेसे स संतुल्यनसे सुटकासि मिले संकता है। वानप्रस्थाधर्ममें रह कर सब प्रकारके पापोंका ध्वंस कर सकने पर इस आश्रमका अधिकार होता है। वान-प्रस्थाधर्ममें रह कर पितरों, देवताओं तथा मनुष्योंके उद्देश्यके दान और श्राद्ध कर एवं अनेकों अग्नि क्रियाकी सामागिके बाद पूजा सध्या उत्तर दिशाकी ओर लक्ष्य

कर यह आश्रम प्रहण करना होगा। यह सोम गृहण करनेके समवे वैवाहिक अग्नि ही साथ लेनी उचित है। इस आश्रमगृहणके बाद स्त्री-पुत्रादिके साथ बान-चित नहीं करनी चाहिए। मिथु चार अंगुष्ठ पधिनके अणु गोबाल रज्जु द्वारा घेयित, समवेप, प्रत्यक्ष तले रेणुनिर्मित त्रिदण्ड धारण करें। इन्हें साच्छान्त यास, कौपीन, जीतेनिवारणी कन्या और दो पादुकाके सिवा और वस्तु रखना उचित नहीं।

मिथु उक्त सभी द्रव्य ले कर संन्यास ग्रहणपूर्वक उत्तम तीर्थ गमन, मन्त्रपूत जसे आचमन और बाद देवताओंको तर्पण करके सूर्यदेवको मंत्र पढ़ कर प्रणाम करे। अनन्तर पूर्वमुख बैठ कर यौगिक गायत्री जपके बाद परब्रह्मके ध्यानमें निमग्न हो जाये। इन्हें प्रतिदिन अपने प्राण धारण निर्मित मिथु माँगनेके लिए जाना चाहिए। ये शोमको ब्राह्मणोंके घर जा करे दाहिने हाथसे सैम्भक कवल मांगे। बायें हाथमें पात्र रखा कर दाहिने हाथसे उसे सम्रह करना चाहिए। मिथु मन्त्र-णोपयोगी अन्न सम्रह करे, बाद घड़ पात्र पवित स्थानमें रख कर समोहित चित्तसे चार अंगुष्ठ द्वारा प्रासमात्रे अन्न आच्छादन कर एक दूसरे पात्रमें रखे। अनन्तर उसे सूर्यादि भूत देवताओंको प्रदान कर दोनों पाँचके पात्रमें भोजन करे। ज्ञानको संध्या बन्दनादि कर ईश्वर-गृहादिमें रात्रिपापन करना चाहिए। उन समवेपे हृदयपत्रमें प्रह्लाका ध्यान करे और ऐसा करनेसे ही उर्ध्व मुक्ति मिलेगी। ( शरीरग० ७ भ० )

हासितके मतानुसार मिथु कुटीचर, वृद्धक, हरे और परमहंस इहो चार धे जोमें विनक है।

“गुणिषां मिथुष्वनु प्रोक्तः सामान्येऽस्तिनी।

तेषां पुनह पुन्य सान् प्रतिमेषां कृषे भूतनः।

कुटीचरो वृद्धको हरेणैव गुहिरथ।

कर्तव्यः परमादसी यो यः परमार्थ ग उतमः ॥ ( शरीर )

उक्त चार धे जोके मिथु एक दूसरेमें धरे छ है। कुटी-चर और हरे म नियन्त्रिणोंका अर्वांश करने हैं तथा वृद्धके देवपूजामें लगे रहने, कथक परमहंस ही परंपर रूप और सामानुजोकेन करते हैं। मृतमश्निकाके संत शोमामने ही चार धे जोके मिथुओंको प्रति प्रवृत्तिका विषय है।

प्रकार लिखा है,--कुटोचर संन्यासग्रहण कर अपने घर या अपने वन्युके घर रहे और मिश्रा मंगि कर जीविका-निर्वाह करे। शिखाधारण, यक्षोपवीत, विद्वेड-और क्रमण्डलु धारण, कापाय वस्त्रपरिधान तथा शुद्धाचारो हो कर रहे। इन्हें विसंध्या गायत्रीका जप हमेशा करना उचित है। सर्वाङ्गमें भस्मलेपन, ललाटे में त्रिपुण्ड्रधारण तथा प्रतिदिन श्रद्धापूर्वक शिवकी स्मृति करना आवश्यक है।

बृहद्रथ--संन्यासाश्रमका अवलम्बन और वन्युपुत्रादिका परित्याग करके सात घरसे भोज्य मांग कर जीविकानिर्वाह करे। एक ही घरका अन्न न लें। छे गोपुच्छ लोमकी रज्जु द्वारा घट्ट निदण्ड, शिष्य, जलपात्र, कौपीन; क्रमण्डलु, गन्नाच्छादन, कन्या, पाटुका, छत्र, पवित्र चर्म, रुद्राक्षमाला, योगपट्ट, वहिर्वास, अजिनी और कृपाण धारण करे। इन्हें सर्वाङ्गमें भस्मलेपन और त्रिपुण्ड्र, शिखा और यक्षोपवीत धारण करना चाहिए। ये वेदाध्ययन और देवताराधनामें रत हो कर सर्वदा चाक्षुपरित्याग और इष्ट देवताजिन्तनमें तत्पर रहे। सन्ध्याकालकी गायत्रीरूप और स्वधर्मोचित क्रियानुष्ठानमें प्रवृत्त हों।

हंस--मिश्र, क्रमण्डलु, शिष्य, मिश्रापात्र, कंधा, कौपीन, आच्छादन, अङ्गवस्त्र, वहिर्वास और रुद्राक्ष माला हमेशा धरनपूर्वक धारण, अङ्गमें भस्मलेपन, त्रिपुण्ड्र धारण तथा शिवलिङ्ग पूजा करे। इन्हें प्रतिदिन आठ कवल अन्न खाना और शिवाके साथ साथ सभी केज कटा देना चाहिए। संध्याकालमें गायत्रीरूप तथा अथवात्स-चिन्तन, तीर्थसेवा, रुच्छ सांद्रायणादि प्रतका अनुष्ठान करना आवश्यक है। ये एक ही रात तक गांवमें रह सकते हैं।

परमहंस--विद्वेड, गोपुच्छ-लोम मिश्रित रज्जु, जल, पवित्र शिष्य, पवित्र क्रमण्डलु, अजिनी, मृन्मण्डली कृपाण, शिखा, यक्षोपवीत तथा नित्यकर्मका परित्याग करे।

इन्हें कौपीन, आच्छादनवस्त्र, शीतनिवारक कंधा, योगपट्ट, वहिर्वास, पाटुका, छत्र, अक्षमाला और रुद्राक्ष माला धारण करना चाहिए। अग्नि-इत्यादि मंत्र द्वारा अंगमें

भस्मलेपन और तीन-चार 'ओं' उच्चारण कर त्रिपुण्ड्र धारण करे।

अत्यंत भोजन और त्रिपुण्ड्रतंत होनेसे मनःसंयोग नहीं होता, इसलिये मिश्रुओंको अपरिमित आहार और काम, क्रोध, लोभ, मोह, हर्ष विपाद प्रभृतिका परित्याग करना चाहिए। ये चार प्रकारके मिश्र शौचाचार और ध्यानपरायण तथा सबके सब मोक्षमिलापी हैं। कुटोचर, बृहद्रथ और हंस मोक्षलाभके उद्देशसे गायत्री को ही उपासना करे। तीनों वेद प्रणवमूलक है और प्रणवमें ही उनका पर्यवसान है; अतएव परमहंसको सर्वदा प्रणवका ही जप करना उचित है। परमहंस निर्जन स्थानमें समाहित तथा आनन्दपूर्वक शैत कर यथाशक्ति समाधिका अवलम्बन करे।

उक्त चार प्रकारके मिश्रुकी अन्वेषिक्रिया भी एक-सी नहीं है। निर्णयसिन्धुके मतसे कुटोचरकी दाह, बृहद्रथको जलतारण, हंसको जटमें निक्षेप और परमहंसको मिट्टीमें गाड़ देनेकी व्यवस्था है। वायुसंहिताके मतसे परमहंसके शिवा अन्य तीन प्रकारके संन्यासीकी मिट्टीमें गाड़ कर पीछे जला देना चाहिए।

विशेष विवरण तत्र सूच्यमें देखो।

२ चद बौद्धसंन्यासी जो संसारमें लिप्त रह कर मिश्रावृत्तिका अवलम्बन करते हैं। बौद्ध मन्त्र देखो। ३ बुद्धमेद। ४ श्रावणों धूप। ५ कोकिलाक्ष। मिश्रक (सं० खी० पु०) मिश्रु रेव, मिश्रु स्वार्थे कन्, या मिश्रते इति मिश्र-उक्। मिश्रोपजीवी, मिश्राः। पर्याय-मोगण, वाचनक, वनीयक, याचना अर्थों।

“ब्राह्मण्यं मिश्रकं वापि भोजनार्थं नुरक्षितम्।  
नाशपोरन्वगतः अग्निः श्रुतिपूजयेत् ॥”

( मनु ३।२५३ )

ब्राह्मण अधम्रा मिश्रुकके उपस्थित होने पर यथा-शक्ति उन्हें भोजन कराना उचित है। इससे शरीर पुष्ट लाभ होता है।

प्रसचारी, यति, विद्यार्थी, गुरुपोषक, अध्वग और क्षोणश्रुति ये छः पारिभाषिक मिश्रुक हैं।

“प्रसचारी यतिश्चैव विद्यार्थी गुरुपोषकः।

अध्वगः क्षोणश्रुतिश्च यदने मिश्रुकाः स्मृताः” ( अथि )



भिक्षुकीपारक ( सं० स्त्री० ) राजतरङ्गिणीवर्णित स्थान-  
भेद ।

भिक्षुणी ( सं० स्त्री० ) भिक्षुकी, धौञ्जनीवर्णितभेद ।

भिक्षु रूप ( सं० पु० ) महादेव ।

भिक्षुसङ्घ ( सं० पु० ) भिक्षुकोंकी समिति वा संघ ।

भिक्षुसङ्घाटी ( सं० स्त्री० ) भिक्षु संघटने इति भिक्षु-सम्-  
घट अण् गौरादिस्थान् टोप् । चोवर, योगियों, संन्या-  
सियों या भिक्षुकोंका कटो पुराना कणड़ा ।

भिक्षुमंगा ( हि० पु० ) भिक्षु, भिक्षारी ।

भिक्षार ( हि० पु० ) भिक्षु मांगनेवाला ।

भिक्षारिणी ( हि० स्त्री० ) भिक्षु मांगनेवाली स्त्री ।

भिक्षारिण ( हि० स्त्री० ) भिक्षारिणी देती ।

भोगारी ( हि० पु० ) भिक्षु का भिक्षु मांगनेवाला ।

भित्तासाहिय—शिल्पायासी राजपूत जातिका धर्मसम्भ  
वाचयिथेय । प्रवाद है, कि मर्दानसिंह नामक एक हिन्दू  
सरदारको यहां राजाना बहुत धारो पड़ गया था, इस  
कारण दिल्लीराजधानीमें ये फौद रखे गये । इस समय  
शाह महम्मद पाड़ि नामक एक सुसलमान फकीरको  
छपासे इहाँने कारागारसे छुटकारा पाया । उक्त सुसल-  
मान फकीरने इन्हें राममन्त्रमें दीक्षा लेनेका आदेश  
किया । इस मतके अचलम्यगण साम्प्रदायिक चिह्न-  
स्वरूप एक बँडो गलेमें पहनते थे । भिक्षुतापति मर्दानके  
निम्न नामक एक शिष्य था । यह जीवनके शेष समयमें  
घड़गाँव नामक स्थानमें आ कर बस गये । तमोसे यहां  
उक्त समाजकी गद्दी स्थापित है । इन लोगोंके मध्य कुछ  
धैर्यवोंका और कुछ इस्लामियोंका आचार प्रचलित

राजा सम्राजशाहके तथा परिचमाञ्जल इकीनारउके  
अधिकारमें था । सम्राट् शाहजहानके शासनकालमें  
१६५० ई०को इकीनाधिपति रामोको पार कर पूर्णद्विपदो  
दङ्गपुन परगनेके ६२ ग्राम अधिकार कर बैठे । इन  
समय यहां बंजारडकेतोंका विशेष उपद्रव होनेके कारण  
तालुकदार गोंडराजपुत्र भवानीसिंह-विधेयके नाम पर  
अपनी सम्पत्ति दान कर गये । वर्तमान तालुकदार उक्त  
भवानीसिंहसे सातवों या आठवों पीढ़ीमें हैंगि । यहाँ  
और भाकला शाखाके सङ्गमस्थलकी भूमि अधिक उर्वर  
है । उत्तरीको निम्न तराई प्रदेशमें भी काफी पान उ-  
जता है ।

२ उक्त परगनेका प्रधान नगर । यह अक्षा० २३'  
४२' उ० तथा देशा० ८१' ५६' पू० रातो नदीके बाएँ  
किनारे अवस्थित है । जनसंख्या ६ हजारके करीब है ।  
कहते हैं, कि १६वीं जताइरीमें इकीनाराजने इन नगरकी  
बसाया । करीब डारें सी वर्ष हुए उन्हींमें परगने समेत  
नगरको गोंडराजवंशके हाथ समर्पण कर दिया । यहाँ  
रातो नदीके किनारे एक पुराना दुर्ग विद्यमान है । शहरमें  
दो स्कूल और एक चिकित्सालय है ।

भित्तार—बन्धईप्रदेशके अहमदनगर जिलेके अन्तर्गत  
एक नगर । यह अक्षा० १६' ६' उ० तथा देशा० ७१'  
४५' पू०के मध्य अवस्थित है । जनसंख्या ५७२२ है ।  
यहाँ कपड़े बुननेकी बहुत-सी कले हैं । यहाँ  
नेवार किया हुआ कपड़ा अग्यान्य देशोंमें भेजा जाता  
है । १८५७ ई०में यहाँ मूनिस्वपलिटो स्थापित हुई है ।  
मिच्छा ( ) मिच्छा देना ।

यहां, वसन्द, सन्द, खस, केली और वप्राजातीय-मुसल-मानोंकी संख्या अधिक है तथा उन्हींकी प्रधानता देखी जाती है। उनमेंसे कुछ लोग स्थानीय प्रसिद्ध पीर-चंगोत्रय हैं। हिन्दुओंमें प्रधानतः लोहानो जातिका वास है। १२७ ई०में शाह अबदुल लतीफने इस नगरको वसाया, इस कारण इसका यह नाम रखा गया है। प्रति-वर्ष उक्त शाह लतीफके स्मरणार्थ एक मेला लगता है।

भिदासखैएडी—मुजफ्फरपुर जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह अक्षा० २६° ३७' उ० तथा देशा० ८५° ५२' पू०के मध्य मुहानदीके किनारे अवस्थित है। नेपाल राज्यके साथ यहां धान्यशस्यादिका वाणिज्य जोरों चलता है।

भिड़ ( हि० खी० ) बरें, दतीया।

भिड़ज ( हि० पु० ) शूर, चोर पुढव।

भिड़जां ( हि० पु० ) घोड़ा।

भिड़ना ( हि० कि० ) १ एक चीजका बड़ कर दूसरो चीजसे टकराना, टकराना। २ लडना, झगड़ना। ३ मैथुन करना, प्रसंग करना। ४ समीप पहुँचना, सटना।

भिड़ ( स० पु० ) भगवते इति भण्ड, पृषोदरादि० साधुः।  
भिड़क्षुप, भिड़ो।

भिड़क ( स० पु० ) भिड़-स्वार्थ-कन्। भिड़का क्षुप।

भिड़ो ( स० खी० ) भिड़ अत्राद्वित्वात् टाप्। क्षुपविशेष, भिड़ो। पर्याय—भिड़ोतक, भिड़, भिड़क, शैत-सम्भव, चतुर्पद, चतुर्गुण सुशाक, अक्षुप्तक, करपण, वृत्तोज। गुण—अम्लरस, उष्ण, प्राही और रज्ज्विकारक।

भिड़ोतक ( स० पु० ) भिड़ो सती तकति हस्तोति तक-अच्। भिड़ोक्षुप, भिड़ो, रामतरोई।

भितरगांव—युक्तप्रदेशके कानपुर जिलान्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह कानपुरसे १० फीस-दक्षिणमें बसा है।

भितरगांवका अर्थ है, ग्रामका मध्यभाग। इससे अनुमान किया जाता है, कि किसी प्राचीन समृद्धिशाली नगरके मध्यभागमें वर्तमान नगर संगठित हुआ है। स्थानीय प्रवाद है, कि प्राचीन फूलपुर नगरके मध्यभाग से ले कर यह ग्राम स्थापित है। अब भी इस नगरसे लगभग आध मील-पूर्वमें जो एक प्राचीन नगरका

ध्वंसावशेष नजर आता है वह बाहरगांव कहलाता है। यहांके लोग इन दो गांवोंको 'बाहरी-भीतरी' या प्राचीन फूलपुरका जीर्ण और संस्कृत विभाग कहा करते हैं।

इस ग्रामके पूर्व ओर आज भी एक बहुत बड़ा देवालय विद्यमान है। इसकी दीवार आठ फीट चौड़ी है। मन्दिर ४७ फीट लम्बा और ३६॥ चौड़ा है। इसकी ईंट १८" × ६" ३" है।

मंदिरगात्रमें घराह-अवतार, दुर्गा, शिव और गणेश प्रभृति देवमूर्ति खोदित हैं। इसकी गठनप्रणाली देख कर प्रतन्तस्वविदुषण अनुमान करते हैं, कि ६वीं शताब्दीमें यह मंदिर बना था। उत्तर भारतके इष्टक-निर्मित प्राचीरके मध्य यह एक अपूर्ण निदर्शन है।

इस देवालयेसे लगभग ३५० हाथ दक्षिण भोभीनागका मन्दिर अवस्थित है जो ध्वंसप्राय स्तूपमें परिणत हो गया है। इसकी ईंटें देखनेसे मालूम पड़ता है, कि यह पूर्वीक देवालयेके समकालमें बना हुआ है। इसके अलाय पार्श्व वक्ती पवाली, सिन्धुया, राड़, वेदावेदीना, खुर्दा, कांचलीपुर और जहर अमोली प्रभृति ग्राममें और भी कितने कायकार्गयुक्त अपेक्षाकृत छोटे छोटे मन्दिर विद्यमान हैं।

भितरी—युक्तप्रदेशके गाजीपुर जिलान्तर्गत एक गण्ड-ग्राम। यह गङ्गानदीके बायें किनारे गाजीपुर नगरसे १० कोस पश्चिममें अवस्थित है। यहांके इष्टकस्तूपकी पर्यालोचना करनेसे देला गया है, कि एक समय यह एक प्राकारपरिवेष्टित दुर्गरूपमें विराजित था। इसकी चूड़ा पर सभृति एक इमामखाड़ा बनाया गया है। इसकी नीचे डालते समय नीचेसे प्राचीन दुर्गवाटिका बाहर हुई थी। अभी भी उस रत्नप्रपत्ते उसके भीतर जा सकते हैं। बहुत दिन तक उसकी ईंटें जनसाधारणके कार्यमें आनेसे मूलरूप विभिन्न अंशमें विभक्त हो गया है। इसका एक ईंट लगभग १६" × १२" × ३" है।

यहांकी एक मसजिदमें कायकार्गयुक्त ३० स्तम्भ सज्जित हैं। उसका युद्धचित्रादि देखनेसे मालूम होता है, कि बौद्धप्रधान्यके समय यहां दो एक बौद्धसंभाराम प्रतिष्ठित थे। इसके अलावा यहां ब्राह्मण्यपरमके अनेक

भिक्षुकीपारक ( सं० स्त्री० ) राजतरङ्गिणीवर्णित स्थान-  
मेद ।

भिक्षुणी ( सं० स्त्री० ) भिक्षुकी, बौद्धस्त्रीपतिमेद ।

भिक्षुरूप ( सं० पु० ) महादेव ।

भिक्षुसङ्घ ( सं० पु० ) भिक्षुकोंकी समिति वा संघ ।

भिक्षुसङ्घाटी ( सं० स्त्री० ) भिक्षु संघटते इति भिक्षु-सम्-  
घट अण् गांरादित्वात् ङीप् । चीवर, योगियों, संन्या-  
सियों या भिक्षुकोंका फटो पुराना कपड़ा ।

भिखमंगा ( हि० पु० ) भिक्षुक, भिखारी ।

भिखार ( हि० पु० ) भीख मांगनेवाला ।

भिखारिणी ( हि० स्त्री० ) भीख मांगनेवाली स्त्री ।

भिखारिन ( हि० स्त्री० ) भिखारिणी देखो ।

भीखारी ( हि० पु० ) भिक्षुक भीख मांगनेवाला ।

भिखासाहिब—धलिवावासी राजपूत जातिके धर्मसम्प्र-  
दायविशेष । प्रवाद है, कि मर्दानसिंह नामक एक हिन्दू  
सरदारको यहां राजाना बहुत धाकी पड़ गया था, इस  
कारण दिल्लीराजधानीमें ये कैद रखे गये । इस समय  
शाह महम्मद पाड़ि नामक एक मुसलमान फकीरकी  
रूपसे इन्होंने कारागारसे छुटकारा पाया । उक्त मुसल-  
मान फकीरने इन्हे राममन्त्रमें दीक्षा लेनेका आदेश  
किया । इस मतके अवलम्बिगण साम्प्रदायिक चिह्न-  
स्वरूप एक घंठो गलेमें पहनते थे । भिकुरापति मर्दानके  
भिखा नामक एक शिष्य था । वह जीवनके शेष समयमें  
घड़गांव नामक स्थानमें आ कर बस गये । तभीसे यहां  
उक्त समाजकी गद्दी स्थापित है । इन लोगोंके मध्य कुछ  
वैष्णवोंका और कुछ इस्लामियोंका आचार प्रचलित  
देखा जाता है ।

भिखिया ( हि० स्त्री० ) भिक्षा देखो ।

भिखियारी ( हि० पु० ) भिखारी देखो ।

भिवुराज—कलिकुलके एक प्राचीन राजा ।

भिगाना ( हि० क्रि० ) भिगोना देखो ।

भिगोना ( हि० क्रि० ) किसी चीजको पानीसे तर करना,  
गोला करना ।

भिङ्गा—अयोध्याप्रदेशके यटराज्य जिलेके अन्तर्गत एक  
परगना । रामी नदी इसकी दो भागोंमें बांटती है ।  
१४८३ ई०में इसका पूर्वांश पार्वत्यराज उदत्तसिंह और

राजा संग्रामशाहके तथा पश्चिमाम्बल इकौनारजके  
अधिकारमें था । सम्राट् शाहजहानके शासनकालमें  
१६५० ई०को इकौनाधिपति रासोको पार कर पूर्वदिक्की  
दङ्गुन परगनेके ६२ ग्राम अधिकार कर बैठे । इस  
समय यहां वंजारकैतोंका विशेष उपद्रव होनेके कारण  
तालुकदार गोंडराजपुत्र भवानीसिंह-विषेणके नाम पर  
अपनी सम्पत्ति दान कर गये । वर्तमान तालुकदार इन्द्र  
भवानीसिंहसे सातवीं या आठवीं पीढ़ीमें होंगे । रामी  
और भाकूला शाखाके सङ्गमस्थलकी भूमि अधिक उर्वरा  
है । उत्तरकी निम्न तराई प्रदेशमें भी काफा धान उर-  
जता है ।

२ उक्त परगनेका प्रधान नगर । यह अक्षा० २७  
४२' उ० तथा देशा० ८१' ५६' पू० रामी नदीके बाएँ  
किनारे अवस्थित है । जनसंख्या ६ हजारके करीब है ।  
कहते हैं, कि १६वीं शताब्दीमें इकौनाराजने इस नगरको  
बसाया । करीब ढाई सौ वर्ष हुए उन्होंने परगने समेत  
नगरको गोंडराजवंशके हाथ समर्पण कर दिया । यहां  
रामी नदीके किनारे एक पुराना दुर्ग विद्यमान है । शहरमें  
दो स्कूल और एक चिकित्सालय है ।

भिङ्गार—बम्बईप्रदेशके अहमदनगर जिलेके अन्तर्गत  
एक नगर । यह अक्षा० १६' ६' उ० तथा देशा० ७४'  
४५' पू०के मध्य अवस्थित है । जनसंख्या ५०२२ है ।  
यहां कपड़े बुननेकी बहुत-सी कले हैं । यहांका  
तैयार किया हुआ कपड़ा अन्यान्य देशोंमें भेजा जाता  
है । १८५७ ई०में यहां अयुनिवर्सलिट्री स्थापित हुई है ।

भिच्छा ( हि० स्त्री० ) भिक्षा देखो ।

भिजघाना ( हि० क्रि० ) किसीको भेजनेमें प्रवृत्त करना,  
भेजनेका काम दूसरेसे कराना ।

भिजघावर ( हि० स्त्री० ) भिजघाउर देखो ।

भिजाना ( हि० स्त्री० ) भिगोना, तर करना, गोला करना ।

भिन्न ( सं० लि० ) जानकार, वाकफ ।

भिटरा ( हि० पु० ) चमोड़ा, वामो ।

भिटना ( हि० पु० ) छोटा गोल फल ।

भिटनी ( हि० स्त्री० ) स्तनके आगेका भाग ।

भिटाशाह—सिन्धुप्रदेशके हदरायाद जिलेअन्तर्गत एक  
नगर । इस नगरमें ज्यादातर मुसलमानोंका ही वास है ।

यहां बसन्द, सन्द, खस केली और वप्राजातीय मुसल-  
मानोंकी संख्या अधिक है तथा उन्हींकी प्रधानता देखी  
जाती है। उनमेंसे कुछ लोग स्थानीय प्रसिद्ध पीर-  
वंशोद्भव हैं। हिन्दुओंमें प्रधानतः लोहानो जातिका वास  
है। १७२७ ई०में शाह अबदुल लताफने इस नगरको  
बसाया, इस कारण इसका यह नाम रखा गया है।  
प्रति वर्ष उक्त शाह लताफके स्मरणार्थ एक मेला  
लगता है।

मिटासर्खैण्टी—मुजफ्फरपुर जिलान्तर्गत एक ग्राम। यह  
अक्षा० २६° ३७' ३०" तथा देशा० ८५° ५२' पू०के मध्य  
मुहानदीके किनारे अवस्थित है। नेपाल राज्यके साथ  
यहां धान्यशस्यादिका वाणिज्य जोरों चलता है।

मिडू ( हि० खो० ) बरै, दूतैया।  
मिडज ( हि० पु० ) शूष, वीर पु०५।  
मिडजाँ ( हि० पु० ) घोड़ा।  
मिडना ( हि० कि० ) १ एक चीजका बड़ कर दूसरी  
चीजसे टकर खाना, टकराना। २ लडना, भगडना। ३  
मैथुन करना, प्रसंग करना। ४ समीप पहुँचना,  
सटना।

मिण्ड ( सं० पु० ) भंगयते इति भण् ड, पुणोदरादि० साधुः।  
मिण्डाक्षुप, मिडो।

मिण्डक ( सं० पु० ) मिण्ड-स्वार्थे-कन्। मिण्डा क्षुप।  
मिण्डा ( सं० खो० ) मिण्ड अत्रादित्वात् टाप। क्षुपविशेष,  
मिडो। पर्याय—मिण्डोतक, मिण्ड, मिण्डक, क्षेत्-  
सम्भव, चतुष्पद, चतुःपुण्ड सुशाक, असुपुलक, करपण,  
वृत्तवोज। गुण—भ्रमरस, उष्ण, प्राही और रुचिकारक।  
मिण्डोतक ( सं० पु० ) मिण्डो सती तकति हसतीति  
तक-अच्। मिण्डाक्षुप, मिडो, रामतरौड़े।

मितरगाँव—युकप्रदेशके कानपुर जिलान्तर्गत एक प्राचीन  
ग्राम। यह कानपुरसे १० कोस दक्षिणमें बसा है।  
मितरगाँवका अर्थ है, ग्रामका मध्यभाग। इससे  
अनुमान किया जाता है, कि किसी प्राचीन समृद्धिशाली  
नगरके मध्यभागमें वर्तमान नगर संघटित हुआ है।  
स्थानीय प्रवाद है, कि प्राचीन फूलपुर नगरके मध्यभाग  
से ले कर यह ग्राम स्थापित है। अथ भी इस नगरसे  
लगभग आध मील पूर्वमें जो एक प्राचीन नगरका

ध्वंसावशेष नजर आता है वह बाहरगाँव कहलाता है।  
यहके लोग इन दो ग्रामोंको 'बाहरी-भोतरी' या प्राचीन  
फूलपुरका जीर्ण और संस्कृत विभाग कहा करते हैं।

इस ग्रामके पूर्व थोर आज भी एक बहुत बड़ा देवा-  
लय विद्यमान है। इसको दीवार आठ फीट चौड़ी है।  
मन्दिर ४७ फीट लम्बा और ३६॥ चौड़ा है। इसकी  
ईट १८" × ६" ३" है।

मंदिरागलमें बराह-अवतार, दुर्गा, शिव और गणेश  
प्रभृति देवमूर्ति खोदित हैं। इसकी गठनप्रणाली देख  
कर प्रतत्तत्त्वविदुगण अनुमान करते हैं; कि दूठी शताब्दीमें  
यह मंदिर बना था। उत्तर भारतके इएक-निर्मित  
प्राचीरके मध्य यह एक अपूर्ण निदर्शन है।

इस देवालयेसे लगभग ३५० हाथ दक्षिण भीमीनागका  
मन्दिर अवस्थित है जो ध्वंसप्राय स्तूपमें परिणत हो  
गया है। इसकी ईटें देखनेसे मालूम पड़ता है, कि यह  
पूर्वाक्त देवालयेके समकालमें बना हुआ है। इसके अलावा  
पार्श्व घाँसी पर्वीली, सिम्भुया, राड, वेदाघेदीना, खुर्दा,  
कांचलीपुर और शहर अमोली प्रभृति ग्राममें और भी  
कितने कायकार्ययुक्त अपेक्षारत छोटे छोटे मन्दिर  
विद्यमान हैं।

मितरी—युकप्रदेशके गाजीपुर जिलान्तर्गत एक गण्ड-  
ग्राम। यह गङ्गानदीके बायें किनारे गाजीपुर नगरसे १०  
कोस पश्चिममें अवस्थित है। यहके इएकस्तूपकी  
पर्यालोचना करनेसे देखा गया है, कि एक समय यह एक  
प्राकारपरिच्छिन्न दुर्गारूपमें विराजित था। इसकी  
चूड़ा पर संश्रुति एक श्यामवाड़ा बनाया गया है। इसकी  
नीचे डालते समय नीचेसे प्राचीन दुर्गयादिका बाहर  
हूँ घो। अमो भी उस रत्नप्रपथसे उसके भीतर जा  
सकते हैं। बहुत दिन तक उसकी ईटें जनसाधारणके  
कार्यमें आनेसे मूलरूप विभिन्न अंशमें विभक्त  
हो गया है। इसका एक ईट लगभग १६" × १२" × ३"  
है।

यहांकी एक मसजिदमें कायकार्ययुक्त ३० स्तम्भ  
सज्जित हैं। उसका बुद्धचिह्नादि देखनेसे मालूम होता  
है, कि बौद्धप्रधान्यके समय यहां दो एक बौद्धधर्मधारा  
प्रतिष्ठित थे। इसके अलावा यहां ब्राह्मण्यधर्मके अनेक

निर्दर्शन पाये जाते हैं। मुसलमानी-अमलदारीमें यहांके ही दोनों निर्दर्शन मसजिद्गठन-कार्यमें नियोजित हुए थे।

उपयुक्त ध्वंसायोजनसे बौद्ध या ब्राह्मण्य धर्मका पीर्वापर्यं निरूपण नहीं किया जा सकता। किंतु दोनोंके शिल्पनैपुण्यको उत्कर्षता देखनेसे अनुभव होता है, कि गुप्तवंशीय हिंदू और बौद्ध-राजाओंमें मतभेद रहनेके कारण समय विशेषसे यहां हिंदू और बौद्धधर्मके प्रचार-के लिये शिल्पचातुर्यको परिपुष्टि साधित हुई थी।

मुसलमान-आधिपत्यमें भी यह प्राम बहुत कुछ चढ़ा बढ़ा था। यद्यपि उन्होंने जातवैरताके कारण हिन्दू और बौद्ध-धर्मनाशका विशेष परिचय दिया था, तथापि हिंदूके ध्वंसप्राय मंदिर-कलेवरको मसजिदमें ला कर उन्होंने उन उन द्रव्योंके रक्षाविषयमें अन्यरूपसे पूर्वकीर्त्तिको रक्षा की है। सीमाग्यका विषय है, कि उन्होंने जात-क्रोध हो कर उसे एकवारगी नष्ट नहीं किया है। गाङ्गी नदीका चार स्तम्भवाला प्रस्तरसेतु मुसलमान-कीर्त्तिका अन्यतम निर्दर्शन है।

पूर्वांत दुर्गके भीतर सप्रार्द स्कंदगुप्तको स्तम्भ-लिपि पाई गई है। उसकी अक्षरावलि कालक्रमसे अस्पष्ट हो गई है। उसमें स्कंदगुप्तकी मृत्यु और कुमारगुप्तका राज्यारोहण, विष्णुमूर्तिको प्रतिष्ठा इत्यादि विषय उल्लेख हैं। उस स्तम्भके नीचे 'श्रीकुमारगुप्त' नामाङ्कित कई एक बड़ी बड़ी ईंटें और उसके निकट ध्वंस-राशिमें (१८८५ ई०में) कुमारगुप्तके नामकी चाँदीकी एक बादासी धाली पाई गई है। इसके अलावा मिट्टीके नीचे गुमराजाओंकी प्रचलित खर्ण, सौव्य तथा ताम्र प्रभृति मुद्रा मिली है। इससे विश्वास होता है, कि भीतरी-दुर्ग एक समय गुमराज कुमारगुप्तके अधीन था। चाहे ये स्वयं अथवा उनके अधीन कोई प्रिय सामन्त उसके अधिकारी थे।

मितह्या (हि० पु०) १ दोहरे कपड़ेमें भीतरी ओरका पहा, कपड़ेके भीतरका परत। (वि०) २ भीतरका, अन्दरका।

मितह्नी (हि० स्त्री०) चक्कीके नीचेका पाट।

मित्तीली—२ अयोध्याप्रदेशके बाटाबांकी जिलान्तर्गत एक परगना। यह कीड़ियालां और चौका नदीके मध्य

अवस्थित है। पहले यह स्थान राइक्याड़ सरदारके अधीन था। सिपाहीविद्रोहके समय जब वे अङ्गरेजोंके विरुद्ध खड़े हुए, तब अङ्गरेजोंने उनका अधिकार छीन लिया और कपूर्थलाके महाराजको हुतहता विस्वरूप यह सम्पत्ति प्रदान की। इसका भू-परिमाण ६९ वर्गमोल है।

२ उक्त प्रदेशके उनाव जिलान्तर्गत एक नगर। यह सई नदीके किनारे अवस्थित है। प्रवाद है, कि छः सौ वर्ष पहले दो कायस्थकुलोद्भव व्यक्तियोंने इस नगरको बसाया। चारों ओर विस्तीर्ण आब्रकानन विराहित रहनेसे नगरको शोभा बड़ी ही मनोरम है।

मित्तीर—युक्तप्रदेशके बरेली जिलान्तर्गत एक गण्डगाम। यह पश्चिम फतेगञ्ज नामसे भी परिचित है। १७१४ ई० की २४वीं अक्टूबरको रोहिलगुद्धमें जो सब अङ्गरेजी सेना यहां मारी गई थी उनके स्मरणार्थ यहां एक प्रस्तर-स्तम्भ स्थापित हुआ है। निकटवर्ती एक गण्डगौलके ऊपर उक्त युद्धनिहत रोहिलासरदार नाजिब खाँ और बलंद खाँका समाधिमंदिर विद्यमान है।

मित्त (सं० यली०) मिघते स्मेति मिद्-क्त (मित्त कर्ण। पा ८।२।५६) इति निष्ठातकारस्य नत्वाभावो निपात्यते। खण्ड, टुकड़ा।

मित्ति (सं० स्त्री०) मिघते इति-मिद्-क्तिर। १ प्राबो, दीवार। पर्याय—कुड्य, कुड्य, कुड्यक, मित्ति। २ भय, डर। ३ खण्ड, टुकड़ा। ४ प्रभेद, अंतर। ५ सम्पत्तिभाग। ६ अवकाश। ७ प्रदेश। ८ वित्त खींचनेका आधार। ९ मृत्भित्ति, नीच।

मित्तिहा (सं० स्त्री०) मिघते मिनत्ति वेति मिद् विपारणे (कृतिभिदिसतिभ्यः कित्। उण् ३।१५०) इति डिट्ठ किच्च। १ कुड्य, दीवार। २ पत्नी, छोटा गाँव। मित्तिपातन (सं० पु०) महामूर्षिक, बड़ा चूहा।

मित्तिचौर (सं० पु०) चोरपतीति चुर-अच्। चौर एव स्वार्थे अण्, चौरः मित्त्वा कुड्यादि मेदेन चौरः। चौर-वियोग, सँधकटा। पर्याय—खानिन, कुड्याच्युत्। मित्तिपातन (सं० पु०) पातयतीति पत-णिच् कर्त्तरि ण्यु, मित्तानां पातनः। महामूर्षिक।

मिद् (सं० खो०) मिघते इति मिद् विवप् । १ प्रभेद, अन्तर । ( लि० ) २ भेदकर्ता, छेदनेवाला ।

मिदक (सं० ह्री०) भिनत्तीति मिद् (बहुलमन्वयापि । उण् २।३७) इति ष्युन् । १ वज्र । २ खड्ग ।

मिदनवाला—पञ्जाबप्रदेशके सर्हिन्द जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम । यह अक्षा० ३१° १०' उ० तथा देशा० ७५° ५०' शतद्रु नदीके बाएँ किनारे अवस्थित है । शतद्रु और बिपाशानदीके अन्तर्बेदी मुख पर अवस्थित रहनेके कारण यहां अच्छी फसल लगती है ।

मिदना (हिं० क्रि०) १ पैयस्त होना, धूस जाना । २ छेदा जाना । ३ घायल होना ।

मिदा (सं० खो०) भेदनमिति मिद् (भिर्भिदादिभ्योऽङ् । पा ३।३।१०५) इति अङ् टाप् । १ बस्त्रादिका विदारण, कपड़ा फाड़ना । पर्याय—विदर, स्फुटन । २ धन्याक, धनिया । ३ भेद । ४ विशेषकरण ।

मिदादि (सं० पु०) पाणिन्युक्त शब्दगणभेद । यथा—मिदा, छिदा, विदा, क्षिपा, शुहा, ध्रुदा, मेघा, गोधा, आरा, हारा, कारा, क्षिपा, तारा, धारा, रैखा, चूडा, पीडा, वर्षा, मृजा, रुपा । मिदादिगणके उत्तर अङ् प्रत्यय होता है । (पाणिनि)

मिदापन (सं० ह्री०) भेदप्रापण ।

मिदि (सं० पु०) भिनत्तीति मिद् (कृगयूकृदिभिदिच्छिदि-ष्यत्त्वं । उण् ५।१५२) इति इ, सञ् कित् । वज्र ।

मिदिर (सं० ह्री०) भिनत्ति विदारयति मिद् (रथिमिदि-गुदिभिदिच्छिदिभिदिमन्दीति । उण् १।५२) इति किरच् । वज्र ।

मिद् (सं० पु०) भिनत्ति विदारयतीति मिद् (पृभिदिष्य-पिथिष्युपिथिदिष्यत्त्वं । उण् १।२५) इति कृ । वज्र ।

मिदुर (सं० ह्री०) भिनत्तीति मिद् (विदिभिदिच्छिदेः-कुरच् । पा ३।२।१६२) इति कुरच् । १ वज्र । (पु०) २ लक्षश्लक्ष ।

मिदुरस्वन (सं० पु०) १ असुरभेद । २ वज्रनिर्घाप । (लि०) ३ वज्रकी तरह शब्दकारो ।

मिदेलिम (सं० लि०) मिद्-कर्म-कर्त्तरि केलिम । स्वयं मिघमान ।

मिघ (सं० पु०) भिनत्ति कूलमिति मिद्-वषप् (पा ३।३।११५) निपातितश्च । कूलभेदकारी नद ।

मिद्र (सं० पु० ह्री०) भिनत्तीति मिद्-रक् । (स्फापितश्चिबश्चिचक्रिक्रविद्युदित्यपितृपीति । उण् ५।१३) वज्र ।

मिनकना (हिं० क्रि०) १ मित्र मित्र शब्द करना । २ किसी कामका अपूर्ण रह जाना । ३ घृणा उत्पन्न होना ।

मिनमिनाना (हिं० क्रि०) मित्र मित्र शब्द करना ।

मिनसार (हिं० पु०) प्रातःकाल, सवेरा ।

मिनहीं (हिं० क्रि०) प्रातःकाल, सवेरे ।

मिन्द—१ ग्वालियर राज्यका एक जिला । यह अक्षा० २३° ३३' से २६° ४८' उ० तथा देशा० ७८° ३३' से ७६° ८' पू०के मध्य अवस्थित है । भू-परिमाण १५५४ वर्गमील है । इसके उत्तर और उत्तर-पूर्वमें चम्बल नदी, पूर्वमें पहज नदी, दक्षिणमें दतिया राजा और भाँसी जिला तथा पश्चिममें ग्वालियर गड् जिला है । जनसंख्या चार लाखसे ऊपर है । इसमें भाण्डर और मिन्द नामक दो शहर तथा ८१६ ग्राम लगते हैं ।

२ उक्त जिलेका एक शहर । यह अक्षा० २६° ३३' उ० तथा देशा० ७८° ४८' पू०के मध्य विस्तृत है । जनसंख्या प्रायः ८०३२ है । पहले यह नगर विशेष समृद्धि-शाली और दुर्गादिसे परिशोभित था, किन्तु अग्नी श्रो-हीन हो गया है ।

मिन्दु—राजपूतानेके उदयपुर सामन्तराज्यके अन्तर्गत एक नगर । यह अक्षा० २४° ३०' उ० तथा देशा० ७७° ११' पू० उदयपुर शहरसे ३२ मील पूर्व और दक्षिणमें अवस्थित है । यह चारों ओर प्राचीर और परिखासे परिघेष्टित है । जनसंख्या पांच हजारसे ऊपर है जिनमेंसे सैकड़ों पीछे ६७ हिन्दु, १६ जैन और शेष १४ में अन्यान्य जातियाँ हैं । यहांके सामन्त सिसोदिया राजपूत उदयपुर राज्यके प्रधान अमात्य हैं और 'महाराजा' उनको उपाधि है । आय ४८०००) रु०की है जिसमेंसे ३२००) रु० दरबारमें करस्वरूप देने पड़ते हैं ।

मिन्दिपाल (सं० पु०) मिदि-इत् मिन्दि विदारणं पालय-तीति पालि अण् । १ हस्तप्रमाण-काण्ड, नालिकाश्च । नालिकाश्च देवा । २ हस्तमेव लघुः, वह छोटी-लाठी जो हाथसे फेंकी जाय । पर्याय—मृग । यह आर्षादिशुभ्रका

एक प्रकारका हस्तक्षेप युद्धात्र था । यह हाथ सदा हाथ लंबा होता था और प्राचीनकालमें शत्रुघातो आयुध पदातिक सेना इसका व्यवहार करती थी ।

अग्निपुराणोक्त धनुर्वेदमें भिन्दिपाल व्यवहारकी प्रणाली इस प्रकार लिखी है :—

“संधान्तमथ विधान्तं गोविर्गं मुदुर्द्धम् ॥

भिन्दिपालस्य कर्माणि लघुइत्य च तान्यपि ॥”

मित्र ( सं० लि० ) मिथते स्मेति भिदुन्कं । १ भेद-विशिष्ट, कटा हुआ । पर्याय—दारित, भेदित, विदारित । २ सङ्कत । ३ अन्य, दूसरा । ४ फुल्ल, प्रस्फुटित, खिला हुआ । ( पु० ) ५ क्षतरोगविशेष । इसका लक्षण,—

“कुन्तशकीपु खड्गाम-विपायादिभिराजयः ।

इतः किञ्चिद्धवन्तु दिभ भिन्न लक्षणमुच्यते ॥”

( मुधुतचिकि० २ अ० )

कुन्त, शक्ति, इपु, खड्गप्र तथा विपाणादि द्वारा कोई आशय भेद हो कर जब उससे स्त्राव निकलने लगता है, तब उसे मिन्न कहते हैं । पकाशय और मूत्राशय प्रभृति ७ आशय हैं । इनमेंसे कोई एक आशय मिन्न हो कर उसमें लेह जमा होनेसे ज्वर और जलन पैदा होती है । मलमूत्रके रास्ते, मुँह और नाकसे लेह गिरता है तथा मूर्च्छा, श्वास, तृष्णा, आध्मान, अरुचि, मलमूत्र और वायुरोध, चर्मनिःसरण, चक्षुरक्तवर्ण, मुत्रमें आमिषगन्ध, शरीरमें दुर्गन्ध, हृदय और पार्श्वमें शूल ये सब उपद्रव उत्पन्न होते हैं ।

आमाशय भेद हो कर उसमें लेह जमा होनेसे रक्त, घमन और अत्यन्त आग्रान तथा शूल होता है । पकाशय भिद् जानेसे वेदना, शरीर गीर्य, नासिका अपोमाण शोथल और कर्ण, नासिका तथा मुखसे लेह गिरता है । आशय भेद न हो कर यदि अतिभेद हो जाय तो सूक्ष्म पर्यसे वायु प्रविष्ट हो कर उसका मोतरी भाग भर जाता और आन्धल्य मुत्र बहुत भारी जान पड़ना है ।

मिन्नकी चिकित्साका विषय इस प्रकार लिखा है—  
नाड़ी भेद करनेसे अकर्मण्य हो जाती है । किन्तु नाड़ी मिन्न न हो कर यदि लम्बिन हो जाय, तो इस प्रकार उस नड़ीको हाथसे दबा कर यथास्थानमें घुसेड़ दे, कि

जिससे गिरा ब्राह्मन होवे । घुसेड़नेके समय उस नाड़ीको पत्रपत्रमें रख कर हाथसे पकड़े । बकरीका घा, यक्षदुम्बरका पत्रा, यष्टिमधु, नीलोत्पल, रक्तोरपत्र, शुकु, उत्पल, जीवक और अममक इन सबोंको एक साथ पीस कर घुन पाक करना चाहिए । यह घी सब प्रकारका ब्राह्मन नाड़ीके निच उपकारी है । पेटमें जो घातिका-आकारका भेद है, वह निकल जानेसे शोना, पृश्नको भस्म और घृण उससे ऊपर बिछा कर सूतेसे बांधना और अग्निताप गर्तसे वहिर्गत भागको छेद देना चाहिये । बाद इस मणके मुँह पर मधु लेप कर बांध दे और पूर्वमुक्त अन्नके परिपाक हो जानेसे घी पिलावे । घृतके अभावमें दुग्ध भी पिया सकते हैं । किन्तु यह दूध या घी गर्भरा, यष्टिमधु, लाक्षा, गोक्षुरी और चित्ता इन सबोंके साथ पाक करके देना चाहिए । इससे मणजन्य वेदना और जलन गहो होती है । उक्त रूप छेदन नहीं करनेसे उदरध्मान शूल अथवा मृत्यु भी हो जा सकती है । त्यक्के नीचे गिरा प्रभृतिको भेद अथवा नहीं भेद कर शिराप्रभृतिके भीतर शय्यके कोष्ठमें घुस कर पूर्वोक्त उपद्रव होने और उससे कोष्ठमें रक्तसञ्चय, इस्त, पाद और मुत्र शोथल, चक्षु रक्त वर्ण तथा मलमूत्रका अवरोध हो जानेसे रोगीको परित्याग कर देना चाहिए ।

जो स्थान मिन्न हो कर अवेडियां बाहर निकल आती हैं, उस मणका मुँह अल्प अथवा अधिक प्रसारित होना उचित है । यदि निर्गत अन्ति उस हो कर न घुसाई जा सके, तो मुखको भी उतना ही प्रसारित करना उचित है । बाद उस अतिके यथास्थानमें स्थापित कर उमी समय सिलाई कर देनी होती है । यदि अन्ति मणने स्थानसे अलग हो जाय, तो रोगीका श्वास रोक कर यथास्थान अन्ति स्थापन करे और पट्ट द्वारा घेष्टन कर उसमें घी लेप दे तथा वायु और पुरीषके मृदु रचयके लिए चिचामैलमयुक्त कुष्ठ गरम घी पिला देवे ।

विशेष विवरण मण रोगमें देता । ( मुधुतचिकि० २ अ० )  
६ नीलमका एक क्षीय जिमके कारण पट्टनेवालेको पति, पुत्रादिका शोक प्राप्त होना माना जाता है । ७ यह संख्या जो पकारसे कुछ कम हो ।

मिन्नक (सं० पु०) मिन्न संज्ञायां क्व । यौद्ध ।  
 मिधकर्ण (सं० त्रि०) १ जिसके कान कुड़लादि पहननेसे फट गये हों । २ मिन्नकर्ण युक्त पशुभेद ।  
 मिधकूट (सं० स्त्री०) कामन्दकीय गीतिनाखोक्त बल-  
 ध्यसनभेद । हस्तो, अश्व, रथ और पदाति आदिका नाम बल है । इस बलके नाना प्रकारके ध्यसन हैं ।  
 मिधकूट उनमेंसे एक है ।  
 मिन्नकर्म (सं० पु०) मिन्नः क्रमो यत् । वाक्यजात उपक्रमराहित्यरूप भान प्रकृत्याप्य काव्यगतद्वेष ।  
 भानप्रक्रम देखा ।  
 मिन्नखुर (सं० पु०) अश्व-पादरोग भेद, घोड़ेके पैरका एक रोग ।  
 मन्त्रगर्भ (सं० त्रि०) कामन्दकी नीति-उक्त बलध्वनन-भेद ।  
 मिन्नगांत्रिका (सं० स्त्री०) मित्र गालमस्याः कप्, टाप्, अत इत्वं । कफटी, कफड़ी ।  
 मिन्नगुणन (सं० स्त्री०) लीलावती-उक्त पूरणभेद, एक प्रकारका गुणा ।  
 मिन्नघन (सं० पु०) भग्नांशका घन परिमाण ।  
 मिन्नजातोय (सं० त्रि०) पृथग् जातोय, मित्र-मिश्र सम्प्रदायका ।  
 मिन्नता (सं० स्त्री०) मिन्न होनेका भाव, अलगवा, भेद ।  
 मिन्नत्व (सं० स्त्री०) मिन्नस्य भाव वा त्व । मिन्नका भाव, जुदाई ।  
 मिन्नदर्शिन (सं० त्रि०) मिन्न-दृश-णिनि । विभिन्न मतका-देखनेवाला ।  
 मिन्नदला (सं० स्त्री०) :सूर्यालता ।  
 मिन्नदृश (सं० स्त्री०) मिन्न पश्यति दृश-क्विप् । मिन्न-दर्शनकारी ।  
 मिन्नपरिकर्मन (सं० स्त्री०) लीलावती-उक्त सख्तेदका-सङ्कलन, व्यवकलनादिरूप अङ्ग संस्काराएक ।  
 मिन्नभागहर (सं० पु०) भग्नांशका भागहर ।  
 मिन्नमिन्नात्मन (सं० पु०) मिन्न मिन्न भेदयुक्त आत्मा-यस्य । चणक, चना ।  
 मिन्नयोजनी (सं० स्त्री०) मिन्न योजयतीति युज्-णिच्-णिनि, डोप् । पापाणभेदकवृक्ष ।

मिधलिङ्ग (सं० स्त्री०) १ अलङ्कारभेद । जहां पर मिन्न वचन और मिन्न लिङ्ग द्वारा उपमा होती है, वहां यह अलङ्कार व्यवहृत होता है । २ पृथक् लिङ्ग-पृथक् चित्र ।  
 मिन्नवर्ग (सं० पु०) भग्नांशका वर्गमूल । २ मिन्न-जातोय ।  
 मिन्नवर्चांस (सं० त्रि०) मिन्नं वर्चांस यस्य । द्रवीभूत मलक ।  
 मिन्नवर्ण (सं० स्त्री०) १ पृथक् वर्ण, मिन्न रंग । २ ब्राह्म-णादि विभिन्नवर्ण ।  
 मिन्नवर्त्ती (सं० पु०) घोड़ेका शूलरोगभेद । इसका लक्षण—  
 “अनीकारेण संयुक्तं शूनं यस्यापजायते ।  
 मिन्नवर्त्तिन्नु तं विद्यात्तु रङ्गं दीनचेष्टितम् ॥”  
 (जयदल)  
 घोड़ेके अतिसारके साथ शूल होनेसे यह रोग होता है ।  
 मिन्नबलकल (सं० पु०) शुच्छकन्द ।  
 मिन्नविट्का (सं० स्त्री०) मिन्ना विट् मलं यथा । १ अलाबूलता । (त्रि०) २ द्रवीभूत मलक ।  
 मिन्नविट्कता (सं० स्त्री०) पित्तजन्य मलभेदरोग ।  
 मिन्नवृत्त (सं० त्रि०) विभिन्न छन्दोप्रथित ।  
 मिन्नवृत्ति (सं० स्त्री०) विभिन्नरूप जावनोपाय ।  
 मिन्नव्यवकलित (सं० स्त्री०) भग्नांशका व्यवकलन ।  
 मिन्नसंकलित (सं० स्त्री०) भग्नांशका सङ्कलन ।  
 मिन्नेण्डन (सं० स्त्री०) रसाञ्जन चूर्ण ।  
 मिन्नार्थक (सं० त्रि०) मिन्नः अर्थो यस्य कप् । अन्य दूसरा ।  
 मिन्म (सं० स्त्री०) भी-बाहुलकात् कसुन् । भय, डर ।  
 मिन्मा (सं० स्त्री०) भीयते इति भी- (पिद्भिदादिभ्योऽट् । पा ३।१।१०४) इति अट् इण्ड्, टाप् । भय, डर ।  
 मिन्मा (हिं० पु०) भ्राता, भाई ।  
 मिन्मि—मध्यप्रदेशके घनमान जिलान्तर्गत एक प्राचीन गण्ड ग्राम । यहाँ प्रतिवर्ष जन्माष्टमीके उपलक्ष्यसे मेला लगता है ।



मिरिंटक ( सं० पु० ) रुद्र भृगाल ।

मिरिण्टक ( सं० पु० ) श्वेत गुंजा ।

मिरिया—सिंधुप्रदेशके हैदराबाद जिलांतगत एक नगर ।

यह अक्षा० २६°५५' उ० तथा देशा० ६८° १४' १५" पू०के मध्य विस्तृत है । म्युनिस्पलिटीके तत्त्वावधानमें नगरकी बहुत शोधकी हुई है ।

मिलङ्ग—भागीरथीकी कलेबर-वर्दिनी पार्वतीय स्रोत-स्त्रिनीविशेष । यह युक्तप्रदेशके गढ़वाल जिलेसे निकल कर दक्षिण-पश्चिममें प्रायः २५ कोसका रास्ता ले कर भागीरथीके साथ मिलती है । यह हिंदूके निकट पुण्य-सलिला समझी जाती है ।

मिलनी ( हि० खो० ) १ भोल जातिको खी । २ एक प्रकारका घासीदार कपड़ा या चारखाना ।

मिलसा ( विदिशा\* )—मध्यभारतके सिंधु राज्यके अंतर्गत एक सुरक्षित प्राचीन नगर । भूपालराजघानासे १३ कोस उत्तर-पूर्व वैजवती ( घेत्या ) नदीके किनारे अक्षा० २३° ३१' ३५" उ० और देशा० ७७° ५०' ३६" पू० नदीतीरवर्ती १५४६ फीट उच्च गण्डशैलेके ऊपर स्थापित है । मिलसा-दुर्ग सुदृढ़ प्राचीर और परिधा द्वारा परिवेष्टित है ।

ध्वंसावशेषके सिवा यहाँका प्राचीन इतिहास नहीं मिलता । इसके समीप वेश्मनगरका ध्वंसावशेष नजर आता है । महाशंश पढ़नेसे जाना जाता है, कि सम्राट् अजोक यहाँ पधारे थे । कालक्रमसे वेश्मनगर जव श्रोहीन हो गया तब मिलसा नगरको ही समझी जग उठी । भारतके निभृततम पार्वतीय प्रदेशमें अवस्थित रहनेके कारण मिलसाकी समृद्धिके ऊपर किसीकी दृष्टि न पड़ी । विभिन्न मतावलम्बी हिंदू-सम्प्रदाय अथवा विधर्मी मुसलमानोंमेंसे कोई भी विद्वेष यशतः इसका सुप्राचीन कीर्तिस्तम्भसमूह नष्ट करनेमें यत्नवान् न हुए । बौद्धप्राधान्यके समय यहाँ अनेक बौद्धस्तूप निर्मित हुए थे । उनमेंसे कितने तो सम्राट् अजोकके पहले और कितने उन्हींके राज्यकालमें बने थे । महामौश्लायन और सारिपुत्र प्रभृति कई एक बौद्धाचार्योंका, जिन्होंने अजोकपर्यन्त ३५ महामोघिसलुमें

० दिशालिपिमें इसका भैरवस्वामी नाम पाया गया है ।

योगदान दिया था, स्मृतिचिह्न आज भी विद्यमान है । निकटवर्ती साची, अधरा, सातधारा और भोजपुर नामक स्थानमें भी बड़े बड़े बौद्धस्तूप नजर आते हैं । इससे प्रतीत होता है, कि एक समय यह जनपद प्रसिद्ध बौद्धक्षेत्ररूपमें गिना जाता था ।

विभिन्न समयमें विभिन्न राजाओंके शासनाधीन रह कर यह नगर १५७० ई०में मुगलसम्राट् शकबर शाहके शासनाधीन हुआ । सम्राट् जहांगीरने १६१० फीट लम्बी एक कमान द्वारा यह दुर्ग सज्जित किया था । इसका कारुकार्य देखनेसे चमत्कृत होना पड़ता है ।

यहाँ भारतका सबसे बड़ियाँ तम्बाकू और गेहूँ-उपजता है । भूपालसे ले कर ललितपुरतक रेलवे लाइन होनेसे स्थानीय वाणिज्यकी विशेष सुविधा हुई है ।

वर्त्तमान समयमें यह स्थान एक तीर्थरूपमें गिना जाता है । घेत्या ( वैजवती ) नदीके किनारे देवमंदिरादि और इधर उधर विक्षिप्त बौद्धस्तूप यास्तियोंके देखनेको चीज है ।

मिलाला—मध्यभारतवासो भोल जातिको शाखा विशेष । ये लोग राजपूत-पिता और भोल मातासे अपनों उत्पत्ति बतलाते हैं । विन्ध्य-पर्वतके भोल-सरदार इसी मिलालावंशसे उत्पन्न हुए हैं । इनका साधारण भोलकी अपेक्षा अधिक सम्मान होता है । बहुतने 'ठाकुर' भी कहलाते हैं ।

मिलार्या ( हि० पु० ) एक प्रसिद्ध जंगली पृष्ठ । यह सारे उत्तरी भारतमें आसामसे पंजाब तक और हिमालयकी तराईमें ३५०० फुटकी ऊँचाई तक पाया जाता है ।

भारतक देतो ।

मिलोदिया—बम्बईप्रदेशके रेवाकान्धाके अन्तर्गत एक छोटा राज्य । भूपरिमाण ६ वर्गमील है । यहाँके सरदार 'ठाकुर' उपाधिधारी हैं । ये लोग गाणक्याइराजकी कर देते हैं । पर्वतकन्दरादिवसे परिशोभित होने पर भी यहाँकी काली मट्टी बहुत उर्वरा है । उत्पन्न द्रव्योंके मध्य रुई, उड़द, सरसोंका बीज, ईस और धान प्रधान हैं ।

मिलोरा—बम्बई प्रदेशके महिकारथा जिलागतगत एक ग्राम । यहाँका शीवन्द प्रभुजीका मन्दिर सम्पन्न विषयात् है ।

मिलोरी—सतारा जिलेके भासगाँव उपविभागान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १६° ५६' ३०" उ० तथा देशा० ७४° ३०' ४५" पू०के मध्य कृष्णा नदीके बाएँ किनारे अवस्थित है।

मिह (सं० पु०) मेलपति मिल-वाहुलकात् लक्। वन्य-जातिविशेष, भोलजाति। भीष देखो।

मिहकेदार—हिमालयस्थ शिवालङ्गविशेष। यह मन्दिर श्रीनगरसे १ मील पश्चिममें अवस्थित है। इन्द्रके परामर्शानुसार वृतीय पाण्डव अर्जुन भूतपति महादेवकी खोजमें हिमालयदेशको गये थे। वहाँ पर मिह (किरात)-मूर्त्ति धारण कर पार्वतीपतिने अर्जुनके साथ मल्ल-युद्ध किया था। (भारत वनपर्व) बहुतेरे इस मिहकेदार मूर्त्तिको 'विल्वकेदार' कहते हैं।

मिहगयी (सं० स्त्री०) मिहाना गयी। गययी, नील गाय।

मिहग्राम—अधोध्याप्रदेशके हर्दई जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। अभी यह विल था विल्वग्राम नामसे भी परिचित है। हर्दई देखो।

मिल्लतक (सं० पु०) मिहप्रियः तक्षः। लोभ पुण्य, लोभ। भोल लोग इस पुण्यके द्वारा अङ्गभूषणादि करते हैं। यह वृक्ष भोलोको अतिशय प्रिय है इसीसे इसका नाम मिल्ल हुआ है।

मिबलभूषण (सं० स्त्री०) मिबल भूषणति भूषि भू षणु। गुजावृक्ष।

मिबलम—१ सेउणदेशाधिपति पाँच या द्वादशशोयराजा। २ देवगिरिके यादवंशशोय एक राजा।

यादवराजवंश शब्द देखो।

मिहमाल—गुर्जर जातिको एक राजधानी। यह श्रीमाल नामसे भी प्रसिद्ध है। भीमाक्ष देखो।

मिहवेश (सं० लि०) मिहुरूपधारी। श्रीमालके राजा और ब्राह्मणादि सभी अधिवासी भोलकी तरह वेशभूषासे सज्जित हो कर तलव उत्सवमें आमोद उपभोग करते थे। (स्कन्दपुराण श्रीभागमहात्म्य ३२०४५८)

मिल्लादित्व—एक प्रतिहारराज भोटके पुत्र।

मिहो (सं० स्त्री०) मिह-डोपू मिहलानां प्रियतवादस्यास्त धात्वः। लोभ, लोभ।

मिल्लीनाथ—बालविवेकिनो नामक प्रथमे प्रणेता।

मिल्लोट (सं० पु०) मिल्लप्रियमुट पत्त यत्प। लोभ वृक्ष।

मिचन्दी—१ बम्बईके धाना जिलान्तर्गत एक तालुक। यह अक्षा० १६° १२' से १६° ३२' उ० तथा देशा० ७२° ५८' से ७३° १५' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २४६ वर्ग मील और जनसंख्या ८० हजारके करीब है। इसमें इसी नामका १ शहर और १६६ ग्राम लगते हैं। तालुकका पश्चिम विभा। पर्यंतमय है, अन्यान्य सभी स्थानोंमें अच्छो फसल लगती है। स्थानीय कम्बाडो नदीका जल विरोप स्वास्थ्यप्रद है।

२ उक्त तालुकका प्रधान नगर। यह अक्षा० १६° १८' उ० तथा देशा० ७३° ३' पू० बम्बईसे २६ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या १०३५४ है। शहरमें धान, सूखो मछली, कपड़े, घास और लकड़ीका वाणिज्य चलता है। यहाँ सब-जजनकी अदालत, अस्पताल और पांच बर्नायगुलर स्कूल हैं।

मिगानो—१ पञ्जाबके हिसार जिलेकी तहसिल। यह अक्षा० २८° ३६' से २८° ५६' उ० तथा देशा० ७५° २६' से ७६° १८' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ७५० वर्गमील और जनसंख्या प्रायः १२४४२६ है। इसमें इसी नामका १ शहर और १३१ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त तहसिलका एक नगर। यह अक्षा० २८° ४८' उ० तथा देशा० ७६° ८' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ३५६१७ है। जयपुर, जयगलमेर और बोका-नेर आदि जनपदोंका विस्तृत वाणिज्य मिवानोंके वाणिज्यकेन्द्रसे चलता है। शहरमें एक एङ्ग्लो-बर्नायगुलर मिडिल स्कूल और एक अस्पताल है।

मिवापुर—मध्यप्रदेशके नागपुर जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २०° ४६' उ० तथा देशा० ७६° ३०' ३३" पू०के मध्य विस्तृत है। १५५० ई०में भीमसा नामक एक गोंड-सरदारने इस नगरको बसाया। उनका बनाया हुआ दुर्ग आज भी मगनावस्थांमें पड़ा है। १८७० ई० तक उनके किसी अन्ध-वंशशरको गृष्टिग-सरकारकी ओरसे चेतन मिलता रहा था। नगर परिकार परित्यक्त है। यहाँ सूती कपड़ेका वाणिज्य चलता है।

मिहस्ती ( अ० पु० ) मशक द्वारा पाने दोनेवाला व्यक्ति, सखा।

मिपक् ( स० पु० ) वैद्य।

मिपक्प्रिया ( स० खो० ) मिपजः प्रिया। गुडू, खी, गुडू, च।

मिपक्जित ( स० खो० ) मिपजा जितं। औपय, दवा।

मिपक्जिता ( स० खो० ) कन्द गुडू, च।

मिपक्भद्रा ( स० खो० ) मिपजि औपये वैद्ये वा भद्रा, शुभदायिका। भद्रदन्तिका।

मिपक्मातृ ( स० खो० ) मिपजां मातेव। अट्ठरूप, अट्टूस।

मिपक्मरा ( स० खो० ) हरीतकी।

मिपक्माता ( स० खो० ) अट्ठरूप, अट्टूस।

मिपज ( स० पु० ) विभेति रोगो यस्मादिति भीलि भोत्यां ( मिपः पुक् हल्यश्च । उण् १।१३० ) इति अजिः युगागमो ह्येस्त्वत्त्वञ्च । १ वैद्य। सुश्रुतादिमें वैद्यके

लक्षण और गुणगुणका विषय इस प्रकार लिखा है,—

धन्यन्तरिने अष्टाङ्ग आयुर्वेदका उपदेश दिया है। वैद्य इस अष्टाङ्ग आयुर्वेदमें विशेषरूपसे पारदर्शी हो कर

चिकित्साकार्य करे। सुदके समय भीरू व्यक्ति जिस प्रकार अवसन हो जाता है, चिकित्सा न सोच कर

केवल शास्त्रज्ञानके बल पर चिकित्सा करनेवाले वैद्यको भी उसी प्रकार अवसन होना पड़ता है। सुन्दर वैद्यको चिकित्सा और शास्त्र दोनों विषयका ज्ञान रहना

बावश्यक है। जो वैद्य चिकित्साकार्यमें चतुर हो कर भी शास्त्रका अध्यायन नहीं करने, वे साधुओंके निकट

मान्य नहीं हो सकते और राजाको चाहिए, कि ऐसे व्यक्तिसे प्राण दण्ड दें। मूल वैद्यके अमृत-सी औषधि देने पर भी उससे कोई फल नहीं होता। यद्यपि शास्त्र, यज्ञ या विपकी नाई अपकारक होती है। जो वैद्य

शास्त्रक्रिया और स्नेहादि क्रिया नहीं जानते, वे लोभ-घनता रोगीको मार डालते हैं। राजाके ध्यान नहीं देनेसे ही ऐसे कुवैद्यका प्रादुर्भाव होता है। रथ जिस प्रकार

हो चक्रयुक्त होनेसे चलनेमें सुन्दर लगता है, उसी प्रकार वैद्य भी यदि चिकित्सा और शास्त्र दोनों ही जानते हो

तभी वे चिकित्साकार्यमें पारदर्शी हो सकते हैं। निष्पत्ती सुदके निकट आयुर्वेदका अध्यायन करना चाहिये।

सुक अपने ज्ञानानुसार शिष्यको उपदेश दे और निष्पत्ती भी दत्तचित्तसे उसका अनुशीलन करे। वैद्यको हेतु, द्रव्य, रस, गुण, चीय, विपाक, दोष, धातु, मलाशय, मर्म, शिरा, स्नायु, संधि, अस्थि, गर्भ सम्भूत द्रव्यका विभाग,

अदृश्यशक्त्या उद्धार, घननिरूपण, विविध भानदोषका तथा साध्य, याप्य और असाध्य रोगका विचार इत्यादि

विषयोंके प्रति विशेष लक्ष्णा रचना चाहिए। सिर्फ एक ही शास्त्रका अध्ययन करनेसे शास्त्रका मर्म मालूम नहीं

हो सकता, अतएव मिपजको अनेक शास्त्रोंका अध्यायन करना उचित है। जो सुदमुखसे शास्त्र सुन कर उसका

अभ्यास और तदनुसार काम करते हैं, वे ही मिपक् हैं। इसके अलावा सभी तस्कर ( उण् ) हैं। चिकित्सा-

शास्त्रमें शक्यतम ही प्रधान है। औषधेनय, औषध, सौधुत तथा पौष्कलायत ये सब ग्रन्थ इसके मूल हैं।

( मुश्रत ३।४ अ० )

भावप्रकाशमें मिपक्के लक्षणादिका विषय इस प्रकार लिखा है,—जो चिकित्सा करते हैं, उन्हें मिपक् या वैद्य कहते हैं। उन्हें शास्त्रार्थमें विशेष वृत्त्युत्पन्न

दृष्टकर्मा, चिकित्सा-कुशल, सुसिद्धहस्त, शुचि, कार्यक्षम, अभिनय औषध और चिकित्साके उपयोगी उपकरणोंमें

सुसज्जित, शीघ्रतापूर्वक उपस्थितबुद्धि, धौर्गतिसम्पन्न, चिकित्साध्यवसायो, मिष्टभाषी सत्यवादी तथा धर्म-

परायण होना चाहिए। उपयुक्त गुणसम्पन्न मिपक् ही प्रशंसनीय हैं।

जो मिपक् कुतिसत बल परिधानकारी, अविपमार्थी, अहिमाती, मनुष्यके साथ व्यवहारमें अनभिन्न और जो बिना बुलाये स्वयं आ कर उपस्थित होयें, वे पांच प्रकारके दोषयुक्त वैद्य धन्यन्तरि समूह होने पर भी

निन्दनीय हैं। ऐसे वैद्यसे चिकित्सा नहीं करानी चाहिए।

मिपक्का कर्म।—लक्षणादि द्वारा सम्यक् रूपसे रोग

देखना और उसको दूर करना ही मिपक्का कर्तव्य है। किन्तु ये आयुर्वेदता नहीं हैं। किसी किसीका कहना

है कि उत्तम रीतिसे केवल व्याधिका निर्णय और रोगको दूर करना ही वैद्यका काम नहीं, पर परमायु

प्रदान करनेमें भी वैद्य समर्थ हैं। क्योंकि एक ही

प्रकारकी आगस्तुक मृत्यु वैद्यके द्वारा अपहृत होती है। धन्वन्तरिने एक सौ एक प्रकारकी मृत्यु बतलाई हैं जिनमेंसे कालवृत्त मृत्यु ही स्वाभाविक और अनिवार्य है। ऐसी मृत्यु निवारण करनेको किसीमें भी क्षमता नहीं। इस कालज मृत्युके अलावा अन्य एक सौ प्रकारकी मृत्युका निवारण करनेमें वैद्य समर्थ हैं। इसीलिये वे आयुध्वाता हैं। ( भावप्र० ) विशेष विवरण वैद्य शब्दमें देखो। चिकित्सकका अन्न अभोज्य है। यदि कोई इनका अन्न खाये, तो उसे प्रायश्चित्त करना पड़ता है। \* यदि कोई वैद्य औषध और मन्त्रको न जान कर चिकित्सा करे, तो उन्हें बोरकी तरह दण्ड देना चाहिए।

“अज्ञातौषधिगन्धस्तु यश्च व्याधेरतत्त्वविद् ।

रोगिभ्योऽर्थं समादत्तो स दण्डवश्चौरवद्विपक् ॥”

२ औषध, दवा । ३ शतघन्धाके क्षेत्रज्ञ पुत्र । ४

विष्णु ।

भिज्जावर्त्त ( सं० पु० ) विष्णुका एक नाम ।

भिष्टा ( हि० पु० ) मल, गू ।

भिष्मिका ( सं० स्त्री० ) दग्धान्न ।

भिस्ज ( हि० पु० ) वैद्य ।

भिस्तटा ( हि० पु० ) मल, गू ।

भिस्तर ( हि० पु० ) ब्राह्मण ।

भिसि—मध्यप्रदेशके चाँदा जिलान्तर्गत एक नगर । यहाँ एक सुन्दर देवमन्दिर विद्यमान है ।

भिसिणो ( हि० पु० ) प्यलनी ।

भिस्त ( अ० स्त्री० ) सर्प, वँकुरष्ट ।

भिस्मा ( सं० स्त्री० ) धमस्तीति भस् दोर्मो बाहुलकात् स, छन्वसि बहुलमितीत्यम् ब्राह्मणभिस्मेति भाग्यप्रयोगाहोकेऽपि । अन्न, अनाज ।

\* “शूद्राश्च ब्राह्मणो भुक्त्वा तथा राजावकारिणः ।

चिकित्सकस्य क्रूरस्य तथा स्त्री मृगशीविनी ॥

शौषट्कान्नं दत्तिकात्तं भुज्जत्वा मासं प्रती भवेत् ॥”

और भी—

“पूयश्चिकित्सात्स्वान्तिं पुंश्चल्योत्स्वन्तमिन्द्रियम् ।

विद्योवाद्दं विद्वत्स्वान्नं शत्रुविक्रियिषो मत्तम् ॥”

( प्रायश्चित्तवि० )

भिस्त ( हि० स्त्री० ) कमलकी जड़, भंसीड़ ।

भिस्तट ( हि० पु० ) पद्मकन्द ।

भिस्तटा ( सं० स्त्री० ) भिस्सामन्नं टीकते इति टीकगती अन्येभ्योऽपोति ड, ततः षृपोदरादित्वात् साधुः । दग्धान्न, जला हुआ भात । अमरटीकासारसुन्दरीमें इसका रूपान्तर भिस्मिटा, भिग्मिटा भिग्मटा और भिस्मिका ऐसा रूप देखा जाता है ।

भिस्सा ( सं० स्त्री० ) अन्न ।

भिस्साण्ड ( सं० स्त्री० ) शार्दूल, कमलकी जड़ ।

भिस्सिटा ( सं० स्त्री० ) भिस्सामन्नं टीकते इति टीकड षृपोदरादित्वात् साधुः । दग्धान्न ।

भीगना ( हि० कि० ) भिगना देखो ।

भीगी ( हि० पु० ) १ अलि, भंघरा । २ एक प्रकारका फतिगा । इसके विषयमें प्रसिद्ध है, कि यह किसी भी कृमिको अपने रूपमें ले भाता है ।

भीचना ( हि० कि० ) १ खींचना, फसना । २ मूँदना, बंद करना ।

भीजना ( हि० कि० ) १ आर्द्र होना, गीला होना । २ लोगोंके साथ हेलमेल बढ़ाना । ३ पुलकित वा गद्गद हो जाना, प्रेममग्न हो जाना । ४ स्नान करना, नहाना । ५ समा जाना, घुस जाना ।

भीट ( हि० पु० ) भीट देखो ।

भीत ( हि० स्त्री० ) भीत देखो ।

भी ( सं० स्त्री० ) भी भीत्या सम्प्रदादित्वात् किय् । भय, डर ।

भी ( हि० अर्थ० ) १ अचक्षु, निश्चय करके । २ विशेष, ज्यादा ।

भीक ( सं० ति० ) भीत, डरा हुआ ।

भीकर ( सं० ति० ) भयकर, डरायना ।

भीष ( हि० स्त्री० ) १ किसी दूरिट्टिका दीनता दिखलाते हुए उदरपूर्तिके लिये कुछ माँगना, भिक्षा । २ मिशामें दो हुई चीज, मैदात ।

भीषम ( हि० चि० ) भयानक, डरायना ।

भीगना ( हि० कि० ) पानी या किसी तरह

संयोगके कारण तर होना ।

भीचर ( हि० पु० ) घोर, बहादुर ।

भीजना ( हि० क्रि० ) भीगना देना ।

भीटा ( हि० पु० ) १ टोलेश्वर भूमि, उमरी हुई पृथ्वी । २ एक प्रकारकी तौल जो प्रायः मन भरके बराबर होती है ।

३ वह ऊँची भूमि जहाँ पानकी खेती होती है, भीटा ।

भीटन ( हि० खी० ) भीसा देना ।

भीटा ( हि० पु० ) १ ऊँची या टोलेश्वर जमीन । २ वह यनाई हुई ऊँची और ढालुनी जमीन जिस पर पानकी खेती होती है और जो चारों ओरसे छाजन या लताओं भादिसे ढकी हुई होती है ।

भीटा ( बीटा )—युक्तप्रदेशके इलाहाबाद जिलान्तगत एक प्राचीन गण्डमाम । बौद्धप्राधान्यके समय यह स्थान उन्नतिकी चरम सीमा पर पहुँच गया था । भारतीय शाक राजाओंकी प्रतिष्ठित बौद्ध-प्रतिमूर्त्ति खोदित लिपि, गुप्त-वंशीय राजा कुमारगुप्त महेश्वरकी स्थापित स्तम्भलिपि तथा बौद्ध-मुद्रादिसे इसका विशेष प्रमाण मिलता है । बौद्धोंके अत्यन्त आग्रहसे यह स्थान 'विभाभयपत्तन' नामक शोभासयौ नगरीमें पर्यवसित हुआ था ।

बीटा, देवरिया, चिकार, मानकुमार, पञ्चमुख और सारिपुत्र प्रभृति परस्पर संश्लिष्ट ग्रामोंकी वर्त्तमान ध्वंसावशिष्ट स्तूपराशिकी कहानी जाननेसे साफ साफ मालूम पड़ता है, कि एक समय ये सब सुप्राचीन बीटा-भयपत्तन नगरीके कीर्तिकलापके मध्य गिने जाते थे ।

इस प्राचीन नगरका कुछ अंश यमुनावयवस्थ 'सुयश-देव' नामक गण्डशैलके ऊपर अब भी नजर आता है । यहाँ पहले एक हिन्दूमन्दिर था । सम्राट् शाहजहानके सेनापति शाईस्ता गानि १०५५ हिजरीमें उसे ध्वंस कर डाला । बाद हिन्दुओंने यहाँ पुनः एक लिंग स्थापित किया है । प्रतिवर्ष कार्तिकके महीनेमें उक्त देवोद्देशसे एक मेला लगता है, जिसमें बहुतसे तीर्थयात्री इकट्ठे होते हैं । पार्श्ववर्त्ती दोरिया नामक ग्राममें अभयवोध बोधि-स्वरकी प्रतिमूर्त्ति शृङ्गारीदेविके नामने पूजित होती है । उक्त देवरियाके 'शिव' नामक स्थानमें एक प्राचीन दुर्गका निदर्शन पाया जाता है । मानकुमारके उत्तरपदिचमकी ओर पञ्चपहाड़ नामक स्थानमें एक बौद्ध सङ्घारामका ध्वंसावशेष नजर आता है ।

इधर उधर विशिष्ट बौद्धस्तम्भमूर्त्तिके बलाया एवं हिन्दू प्राधान्यकी बहुत-सी स्मृतियाँ पड़ी हुई हैं । १५ शताब्दी ( १०१ सम्वत् )की उत्कीर्ण शिलालिपिसे प्रसंग-धर्मविस्तारका आभास पाया जाता है । सोना की-रसोई नामक पर्यंतगुहा, नरसिंह, शिव, नन्दो, विष्णुके अवतारकी मूर्त्ति, चण्डिकामाता, फाली प्रभृति देवमूर्त्ति और पर्यंतगात्रमें खोदित पञ्चबाण्डवमूर्त्ति यहाँके हिन्दू-प्राधान्यका प्रकृतम निदर्शन है ।

भीड़ ( हि० खी० ) १ संकट, आपत्ति । २ एक ही स्थान पर बहुतसे आदिमियोंका जमाव, जन-समूह ।

भीड़भड़का ( हि० पु० ) भीड़-भाड़, बहुतसे आदिमियों। समूह ।

भीड़भाड़ ( हि० खी० ) जनसमूह, भीड़ ।

भीड़ा ( हि० खी० ) १ भीड़ देना । ( वि० ) २ संकुचित, तंग ।

भीड़ी ( हि० खी० ) रामतरोई, मिंठी ।

भीणी ( सं० खी० ) कुमाराशुचर मातृभेद ।

( भारत शल्प० ४० अ० )

भीत ( सं० ह्री० ) भी-क्त । १ भय, डर । ( पु० ) २ भय-भेद । ( लि० ) ३ भययुक्त, डरायना ।

भीत ( हि० खी० ) १ भित्तिका, दीवार । २ विभाग करने-वाला परदा । ३ चटाई । ४ छत, गंच । ५ लण्ड, टुकड़ा । ६ स्थान, जगह । ७ छिद्र, दरार । ८ बुट्टि, कसर । ९ अयसर, मीका । ( वि० ) १० डरा-हुआ, जिसे भय लगा हो ।

भीतर ( हि० क्रि० वि० ) १ अन्दर, में । ( पु० ) २ अंतःकरण, हृदय । ३ रनिवास, जनानगाना ।

भीतरा ( हि० वि० ) भीतर या जनानगानेमें जानेवाला, त्रिपोंमें जाने-जानेवाला ।

भीतरिया ( हि० पु० ) १ वह जो भीतर रहता हो । २ वहनीय ठाण्डके ये प्रधान पुजारी भादि जो मंदिरके भीतर मूर्त्तिके पास रहते हैं ।

भीतरी ( हि० वि० ) १ भीतरवाला, अंदरका ।

भीनरोटांग ( हि० खी० ) कुन्तीका एक पंख ।

भीति ( सं० खी० ) भी-क्ति । १ भय, डर । २ कर्ण ।

भीति ( हि० खी० ) दीवार ।

भीतिकर ( सं० त्रि० ) भयङ्कर, डरावना ।  
 भीतिकारी ( सं० द्वि० ) भयानक, डरावना, खौफनाक ।  
 भीतिकृत् ( सं० द्वि० ) भीति करीति कृ कियप् । भय-  
 कारक, डरावना ।  
 भीती ( सं० स्त्री० ) कुमारानुचर मातृमेद, कार्तिकीयकी  
 एक अनुचरी या मातृकाका नाम ।  
 भीनना ( हि० क्रि० ) समा जाना, भर जाना ।  
 भीनाल—राजपूतानेके अजमेर जिलान्तर्गत एक नगर ।  
 यहां भीनाल राज्यका प्रासाद अवस्थित है ।  
 भीम ( सं० त्रि० ) विभेत्यस्मादिति भी- ( भिभः पुन्या,  
 उप् १।१५७ ) विभेतेर्मक् धातोर्वा पुगागमश्च इति भक् ।  
 १ भयहेतु । पर्याय—दैत्य, दाहण, भोषण, भीष्म, घोर,  
 भयानक, भयङ्कर, प्रतिभय । ( पु० ) २ भयानक रस ।  
 ३ शिव, महादेव । ४ विष्णु, भगवान् । ५ महादेवकी  
 धाठ मूर्त्तियोंमेंसे आकाशमूर्त्ति । "भीमाय आकाशमूर्त्तिये  
 नामः" ( तिथित० ) पार्थिव शिवपूजामें शिवकी आठ मूर्त्ति-  
 की पूजा करनी होती है । ६ गन्धर्वविशैय । ७ अमृ-  
 धेतस । ८ आङ्गिरस वह्निभेद, आङ्गिरस नामकी अग्नि ।  
 ९ दानवभेद, एक राक्षसका नाम । १० अमावसुपशोष  
 नृपभेद । ११ सात्वतवर्गीय नृपभेद । १२ अष्टादशाक्षर  
 मन्त्रभेद ।

"भादी मध्ये तथा चान्ते चतुरग्युतो मनुः ।

जातव्या भीम इत्येव यः स्यादप्यादशाक्षरः ॥" ( तन्त्रसार )

३३ मध्यम पाण्डव भीमसेन । पर्याय—वीरवेणु,  
 यूकोदर, चकजित्, कीजकजित्, किर्मीरजित्, जरासन्य-  
 जित्, हिडिम्बजित्, कटघ्न, नागबल, गुणाबल ।

वायुके औरत और कुन्तीके गर्भसे भीमका जन्म  
 हुआ । एक दिन पाण्डु शिकार खेलनेको बन गए ।  
 यहां उन्होंने मैयुन धर्ममें प्रवृत्त एक मृगरूपी ऋषिको मार  
 डाला । इसी कारण ऋषिने पाण्डुको शाप दिया, 'तुम  
 जब मैयुनमें प्रवृत्त होगे, तभी तुम्हारी मृत्यु होगी । इस  
 प्रकार पाण्डु अभिशाप्त हो कर अत्यन्त कष्टसे समय  
 विताने लगे । अनंतर पाण्डुने एक दिन कुन्तीसे कहा,  
 'मेरे द्वारा पुनोत्पन्न होनेको सम्भावना नहीं, अतएव तुम  
 मेरे निमित्त पुनोत्पादन करो ।' इस पर कुन्तीने स्वामी  
 नियोगानुसार दुर्वासके वर-प्रभावसे धर्मसे परम धार्मिक

एक पुत्र प्राप्त किया । पाण्डुने इस धर्मपरायण पुत्रको पा  
 कर पुनः कुन्तीसे कहा, 'परिष्ठित लोग क्षत्रियको बलश्रेष्ठ  
 कहते हैं; अतएव तुम एक बलवान् पुत्रके लिये पार्थना  
 करो ।' बाद कुन्तीने स्वामीकी यह बात सुन कर वायुका  
 आह्वान किया । इस पर महाबल वायुने मृगाकण्ठे ही  
 कुन्तीके निकट आ कर कहा, 'तुम क्या चाहती हो ?'  
 कुन्ती लज्जित हो गिर नीचे कर बोली, 'मुझे महाकाय  
 बलवान्, सर्वदर्पममञ्जन एक पुत्र प्रदान करे ।' अनन्तर  
 वायुसे महाबाहु भीमपराक्रम भीमने जन्मग्रहण किया ।  
 इस पुत्रके जन्म लेने पर ही आकाशपाणी हुई, कि  
 बालक सभी बलवान् व्यक्तियोंमें श्रेष्ठ होगा । यूकोदरकी  
 जन्म लेते ही एक अद्भुत घटना घटी । भीम माताकी  
 गोदसे गिर गए और उनके मातृस्पर्शसे घबहकी शिला  
 चूर-चूर हो गई । जिस दिन भीमका जन्म हुआ  
 था, उसी दिन दुर्वाघनने भी जन्म लिया । भीम  
 अत्यन्त बलशाली थे—दुर्योधनादि कोई भी उनकी  
 बराबरी नहीं कर सकता था । अतः शुरूसे ही उनके  
 ऊपर दुर्वाघन क्रुध रहते थे । क्रमशः क्रोध और  
 अवस्थाके घनोभूत हो कर दुर्वाघनने विपान्त  
 प्रयोगसे भीमको मार डालनेका विचार किया । बादमें  
 हुआ भी वैसा ही । भीम विपत्तक अन्न खा कर बेहोश  
 हो गए । दुष्ट दुर्वाघनने मौका पा कर भीमको लता-  
 पाश द्वारा अपने ही हाथोंसे बांध कर जलमें फेंक  
 दिया । भीम जलमें डूब कर नागभयनमें नागकुमारों-  
 के ऊपर जा गिरे । सर्पगण चारों तरफसे भीमको उसने  
 लगे जिससे उनके शरीरका विष उतर गया । अन-  
 तर भीम वहां पर नागराज द्वारा रक्षित तथा अमृतपान-  
 से पस्चिन्त हो दश हजार मतवाले हाथोंके तुल्य बलवान्  
 हो कर अपने घर लौटे और अपने भाइयोंके सामने दुर्वा-  
 घनका सारा पद्वयन्त कह सुनाया । तब युधिष्ठिरने  
 भीमसे कहा, 'यह सब वृत्तान्त किसीसे भी न कहना ।  
 अरसे तुम लोग सचेत हो कर रहना । भीमकी  
 मृत्यु नहीं हुई, देव पर दुर्वाघनने पुनः भीमके  
 भोजन द्रव्यमें जहरीला विष मिला कर दिया । इस  
 बार भीमने अनायास ही उस विषको पचा डाला । बाद  
 दुर्वाघन, कर्ण और शकुनि तीनों मिल कर इन

मार डालनेके नाना उपाय दृढ़ने लगे। पाण्डवगण इसे जान कर भी किसी प्रकारका विद्वेष प्रकाशित नहीं करते थे। ये सबके सब द्रोणाचार्यसे अन्वयिष्ठा सीखते थे। भीमने गद्गद्युद्धमें विशेष पारदर्जिता प्राप्त की। दुर्योधन भी गद्गद्युद्धमें उन्हींके बराबर हो गये। बाढ़ दुर्योधन उन पांचों भाइयोंको जतुशुद्धमें जला कर मार डालनेकी चेष्टाकी। धारणावतनगरमें जतुशुद्ध बनाया गया। दुर्योधनने जतुशुद्धदाहके लिए पुरोचन नामक एक व्यक्तिको नियोग किया। पाण्डवगण लगभग एक वर्ष तक उसी जतुशुद्धमें रहे। एक दिन भीमने दुर्योधनके पदरत्नको ताड़ गये और जतुशुद्धमें आग लगा कर माता कुंती तथा भाइयोंके साथ वहांसे चल चले। कुंती और युधिष्ठिरादि छोड़ी दूर जा कर ही बहुत थक गए। इस पर भीम कुंती और भाइयोंको अपने कंधे पर बिठा बहुत दूर ले गए। जब वे निद्रामें पड़े ही व्याकुल हो गए, तब वे सबके सब एक वृक्षके नीचे सो रहे,—फैवल भीमने जग कर रात भर पहल दिया।

जहां पर वे सोये थे, वहांसे छोड़ी दूर पर हिडम्ब नामक एक भयानक राक्षस रहता था। हिडम्बने मनुष्यकी गन्ध पा कर अपनी बहन हिडम्बिकाको उनके निकट भेजा। हिडम्बा जब उनका विनाश करनेके लिए आई, तब पद भीमके सुकुमार रूपको देव मोहित हो गई। श्वर हिडम्ब बहनके लौटनेमें यिच्छन् देव अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और भीम पर दृष्ट पड़ा। बाढ़ भीमके साथ घोरतर युद्ध छिड़ा। युद्धमें भीमने उसे मार कर वनके भयको दूर कर दिया। कुन्ती तथा युधिष्ठिरके आशानुसार हिडम्बाके साथ भीमका विवाह हुआ। हिडम्बा युधिष्ठिरकी आशासे दिनमें ही भीमके साथ यथेच्छा विहार कर प्रतिदिन उन्हें पढ़ाया जाता थी। उसके गर्भसे घटोत्कच नामक एक पुत्र हुआ जो कुरुपाण्डवके युद्धमें असाधारण वीरता दिखा कर अन्तमें कर्णके हाथ मारा गया। भीम माना तथा भाइयोंके साथ एक-एकका नगर गये और वहां उन्होंने वन नामक राजसको मार कर उस नगरको उपद्रवरहित कर दिया।

अर्जुन पाञ्चालराज-गन्धिनी द्रौपदीको मध्यमेद कर ले भाए; माताके आशानुसार पांचों भाइयोंने उनसे

विवाह किया। बाढ़में युधिष्ठिर जब इन्द्रप्रस्थके राजा हुए तब राजसूययज्ञके लिए भीम पहले अर्जुन और कृष्णके साथ मगध गए। वहां जरासन्धकी मार कर उन्होंने सह राजाओंको कारागारसे छुड़ाया। जरासन्ध श्रेतो।

यज्ञके उपलक्ष्यमें भीमने दिग्विजयार्थ पूर्वसे ले कर पाँच देश तक जीत लिया। उनके घोरतरसे पाञ्चाल, विरेह, दशार्ण, रोचमान, पुलिन्द, कुमार, कोशल, उत्तरकोण्ड, मल्लभूमि, भञ्जालदेश, काशी, मत्स्य, मलद, धरत, भार्ग, भोगवान, शर्मक, चर्मक, शक, चर्वद, किरात, मगध, मोदागिरि, पुण्ड्र, कौशिकीक, ताप्रलित, कर्कटक, घट्ट और सुहदेश पाण्डवके शासनाधीन हुए। राजा दुर्योधनने राजसूययज्ञमें कपट दूतकोड़ासे युधिष्ठिरको परामर्श तथा द्रौपदीको जीत कर उन (द्रौपदी)का अपमान किया। द्रौपदी श्रेतो। इस पर भीमने प्रतिश की 'मैं सन्मुख-समरमें दुर्योधनके सामने उनके अन्त-पर भाइयोंकी मार कर दुःशासनके वक्षस्थलका रथ पीड़ा और अन्तमें गद्गद्युद्धमें दुर्योधनका ऊरुभेग चूर चूर कर डालूंगा।

अनन्तर दूसरी बारकी दूतकोड़ासे पांचों पाण्डव तथा द्रौपदी वन गईं। भीमने बारह वर्ष वनवासके अन्त्यन्त किमौर और जटासुरका विनाश तथा यज्ञोंके साथ गुप्त कर मणिमानका काम तमाम किया और कुबेरानुचरोंको विध्वस्त कर उन्हें शापसे छुड़ाया। एक समय वे वनमें भ्रमण करते हुए अजगरकी नहुष द्वारा आक्रान्त हुए थे। नहुष भी मरिचमान श्रेतो।

घोर रात्राके समय गन्धर्वगण जब दुर्योधनको हरण कर ले चले, तब भीमने युधिष्ठिरके आदेशसे अर्जुनका साथ कर गन्धर्वराज चित्तसेनको हराया और कर इन प्रकार दुर्योधनको लाज रखा। जिस समय जयद्रथने द्रौपदीकी हरण करनेकी चेष्टा की थी, उस समय उन्होंने अर्जुनके साथ मिल कर उसे यथोचित दण्ड दिया था। अज्ञातवासके समय वे चलन्त नाम धारण कर मूपरारूपमें (रसोदया) विराटके घर ठहरे थे। बाढ़ कोचनमें जब द्रौपदीके सर्वोत्थानाज्ञाकी चेष्टा की थी, तब शक्तिमानमें ही भीमने कोचक तथा उपकोचकीका विनाश किया। भीमने अपने भुञ्जथलसे विपार्थपति सुगर्मासे विराट-राज्यका उद्धार किया था।

कुक्षेत्रयुद्धमें विशेष वीरता दिखा कर इन्होंने अपनी प्रतिष्ठा पूरी की। दुर्गोघनादि सी भाई उन्हींके हाथ मारे गए। युद्धावसान पर महाराज युधिष्ठिरके साथ इन्होंने राज्य सुखभोग कर महाप्रस्थान किया। महाप्रस्थानके समय वे युधिष्ठिरके साथ उपवासनिरत तथा योग-परायण हो क्रमगत उत्तरको ओर हिमालय पर्वत पर गए। अनन्तर सुमेरु पर्वत पार कर यथाक्रम द्रौपदी, सहदेव, नकुल तथा अर्जुन कालके मुखमें पतित हुए। बाद थोड़ी दूर जा कर भीम पृथिवी पर गिर पड़े और उल्लेखरसे धर्मराजको सम्बोधन कर कहा 'महाराज! मैं आपका बड़ा मित्र था; आज न जानें किस पापसे मेरा पृथिवी पर पतन हुआ।'

इस पर धर्मराजने उनसे कहा,—तुम दूसरेको भक्ष्य वस्तु न दे कर स्वयं अपरिमित भोजन पा लेते थे और अपनेको अद्वितीय बलशाली बतला कर अङ्कार करते थे, इस पापके कारण तुम भूतल पर पतित हुए।

१४ विदर्भाधिपति। महाभारतमें इनका विवरण इस प्रकार लिखा है,—भीम नामके विदर्भदेशमें एक अत्यन्त बलशाली राजा थे। बहुत दिन तक उनके कोई सन्तान न होनेके कारण वे सर्वदा दुःखित रहते थे। एक समय दमन नामक एक महर्षि उनके यहां आये। धर्मश भीमने महर्षिके साथ अपत्यकाम हो कर महर्षिको सतकार द्वारा सन्तुष्ट किया। महर्षिके वरप्रभावसे भीमके दम, दांती और दमन नामक तीन पुत्र तथा दमयन्ती नामकी एक कन्या हुई। नल-दमयन्ती देखो।

१५ महर्षि विद्यामित्रके पूर्वपुरुष, अत्रायणपुरके पुत्र और पुरुरवाके पौत्र। १६ कुम्भकरणके पुत्र, रावणका एक राक्षस सेनापति। १७ गन्धर्वका नाम। १८ पुण्यवंशीय ईलिके पुत्र। १९ महादेव, शिव।

भीम—१ पद्याश्लोभृत एक कवि। २ परिभाषार्थमञ्जरीकी परिभाषेतु शेषर नामक टोकाके रचयिता।

भीम—१ द्वारकाके एक हिंदूनरपति। ये १४३७ ई०में महु-सूयैकाइसे पराजित हुए। २ बोलराजभेद। ३ सह्याद्रिबंधित दो राजा। ४ जयनलमोरके महाराजल वंशोद्भव एक राजा। ५ जम्बूके एक हिंदूराजा। ये १४२४ ई०में गङ्ग-सर्दार यशस्वतके हाथसे मारे गए। ६ जिलादार

वंशीय एक राजा, इन्द्रराजके पुत्र। कोङ्कणप्रदेशमें ये राज्य करते थे। ७ त्रिगर्ग या फोट-काण्डाके अन्वपति। इनके पिताका नाम था राजा विजयराम।

भीम-आचार्य—वृत्सिहस्तोत्रके प्रणेता।

भीमक (सं० पु०) एक प्रकारके गण जो पार्यंतीके फोषसे उत्पन्न हुए थे। (हरिवंश १६६ अ०) २ भीम देखो।

भीमकलम्बक—मल्लारिमाहात्म्यटीकाके रचयिता।

भीमकुमार (सं० पु०) भीमसेनके पुत्र घटोत्कच।

भीमगढ़—सह्याद्रि शिखरस्थित एक दुर्ग। यह खानापुरसे ८ कोस दक्षिण पश्चिममें अवस्थित है। यह दुर्ग उत्तर दक्षिणमें १३८० फुट लम्बा और पूर्वपश्चिममें ८२५ फुट चौड़ा। यह दुरारोह और अत्युच्च शिखर पर अवस्थित है। महाराष्ट्रपति जिवाजीने १६८० ई०में अपने मृत्युकाल तक इस दुर्गको अपने अधिकारमें रखा था। १७१६ ई०में १६ जिलाओंके साथ यह दुर्ग सादुके हाथ सपुर्ण हुआ। १७८७ ई०में किसी किसी नेतागी-सर्दारने बलभगढ़, गन्धर्वगढ़ और भीमगढ़दुर्गको कोल्हारपुर राजासे छीन लिया। इसके कुछ समय बाद ही चिट्तोही आततायियोंको परास्त कर कोल्हार-पुरराजने भीमगढ़ पर पुनः अधिकार जमाया। १८४४ ई०में बेलगांवकी चिट्तोही सेनाओंका दमन करनेके लिये ब्रिटिशसर्कारने दुर्गको अपने हाथ ले लिया।

भीमगुप्त—काश्मीरके एक राजा। त्रिभुवनगुप्तकी मृत्युके बाद ये गद्दी पर बैठे, पर घोड़े ही दिनेके बाद राक्षसी पितामहो दिहाके पङ्कजसे मारे गये (सन्तर० ६ तर०)

भीमयोद्धा—युक्तप्रदेशके सहारानपुर जिलान्तर्गत एक हिन्दू-नीच। यह अज्ञा० २५'५८" उ० तथा देशा० ७८'१४" पू०के मध्य अवस्थित है। देहरादूनके दक्षिण पर्वत-कन्दरके मध्य ३'३ फुट ऊँचे एक प्रलम्ब पर्वतशिखर पर अवस्थित है। एक छोटा कुण्ड ही इस तीर्थक्षेत्रका प्रधान स्थान है। गङ्गाकी गातवाहिनी एक छोटी स्रोतस्थिनी इसके कलेवरको हमेशा बढ़ाती रहती है। प्रवाद है कि, द्वितीय पाण्डव भीमसेन घोड़े पर सवार हो गङ्गाकी गतिसे रोक रहे थे : घोड़ेके खुरके आघातसे निरुद्धस्थ पर्वतमें गुहा बन गई। जो मन्व तीर्थपात्री पाप धण्डनशी मनगामे उन कुण्डमें स्नान



करने माने है, वे इस घोड़ागुहा और स्थानीय देवमन्दिर  
द्वारा कर पवित्र देखें घर लीटते हैं।

भीमनाथी ( स० स्त्री ) एक देवीका नाम।

भीमशान्द्र ( स० पु० ) राजपुत्रभेद।

भीमजानु ( स० पु० ) यम-समास्थित एक राजा।

भीमजी—यच्छके जाड़ेजावंशीय एक राजा, राजा  
धरमजीके पुत्र।

भीमशकलिकरपति—५ नाटकके प्रणेता।

भीमता ( स० स्त्री० ) भीमस्य भावः भीम तल टापू।

भीमत्य, भय करता।

भीमताल—युक्तप्रदेशके कुमायुन जिलान्तर्गत एक  
छोटा हद। यह बर्षा० २६ १६ उ० तथा देशा०  
७६ ४१ पू० समुद्रपृष्ठसे ४५०० फुटकी ऊँचाई पर  
अवस्थित है। पर्वत पर होनेके कारण इसका प्राकृतिक  
सौन्दर्य शनीय मनोहर है। इसके गर्मसे निकली हुई  
जलराशिकी एक छोटी धारा रामगङ्गामें आ कर मिल  
गई है।

भीमतिथि ( स० पु० ) भीमोपोसिता तिथिः मध्यपदलो-  
पक०। भीम-एक.दशो, माघमासको शुक्ल पक्षादशो  
तिथि।

भीमभोजी—बम्बई प्रदेशके पूना जिलान्तर्गत एक उप-  
विभाग भूपरिमाण १०३७ वर्गमील है।

भीमदास—धातुपाठके रचयिता।

भीमदासभूराज—वापयसुपाटोकाके रचयिता।

भीमदेव (१म)—गुर्जरधिपति चातुष्यवंशीय एक राजा,  
कुलभराजके पुत्र। ये एक महावीर थे। सिन्धुप्रदेश  
पर इन्होंने सत्सैन्य चढ़ाई करने देख मालद्वपति भोजदेव-  
ने गुर्जर पर आक्रमण किया और अतहिलवाइपत्तनको  
जाता। पीछे चेदीराज कर्णकी सहायतासे इन्होंने  
मालवराजको निहत्त कर उनके धाराराउपको अगने करने  
कर लिया। ५।वृष राजवंत देवो।

भीमदेव (२य) - चातुष्यवंशीय एक दूसरा राजा। आप  
महाराजाधिराजकी पदवीसे गुर्जरका शासन करते थे।

भीमदेव (३) चातुष्यवंशीय अम्बरराजके पुत्र। इन्होंने  
निकमादित्यको पराजित किया था।

भीमदेव (४) - १ कोष महद्वन्धाधिपति राजा मत्स्याध्रपके

पुत्र। २ काशुलके चतुर्थ हिन्दू-राजा। आप २५० ई०के  
विद्यमान थे।

भीमदेव—अनहिलवाइके एक हिन्दू राजा। भीमनाथ  
आक्रमणके समय इन्होंने महमूद गजनवीके साथ युद्ध  
किया था।

भीमदैवज्ञ—सर्वाथं चिन्तामणि नामक ग्रन्थके प्रणेता।

भीमद्वन्द्वी ( स० स्त्री० ) १ भीमोपोसिताद्वावनी, माघकी  
शुक्ल द्वादशी। २ प्रतभेद। भीमने इस द्वादशीके दिन  
प्रतका अनुष्ठान किया था, इसीसे यह नाम पड़ा। यह  
प्रत अशेष-पुण्यजनक है। हेमाद्रि-प्रतपण्डमें इस प्रतके  
विधान और व्यवस्थादिका विशेष विवरण लिखा है,  
विस्तार हो जानेके भयसे यहाँ पर कुछ नहीं लिखा गया।

भीमनगर—तिगर्ताधिपति भीम द्वारा प्रतिष्ठित नगर,  
फोटकाङ्ककी अन्त्यतम राजधानी। राजा भीमने पर्वत  
पर एक दुर्ग बनवाया था। १००८-६ ई०में सुदतान  
महमूदने काङ्कड़ा चढ़ाईके समय इस दुर्गको तहस नहस  
कर डाला था। नागकोट देखो।

भीमनरेन्द्र—सङ्गीतसुधा नामक ग्रन्थके रचयिता।

भीमनाथ—बम्बईप्रदेशके अहमदाबाद जिलांतर्गत एक  
गण्डग्राम। प्रवाद है, कि यहाँ हिडिम्बा राक्षसी रहती  
थी। माताके साथ पांचो पाण्डव इस वनमें टहरे थे।  
बिना शिवपूजा किये अर्जुन जल नहीं पीयेगे, जान  
कर भीमने उन्हें प्रतारणापूर्वक जमीनमें एक परपर  
गाड़ दिया और अर्जुनसे शिवपूजा करनेको कहा। तद-  
नुसार महाप्रति अर्जुनने यहाँ जा कर कायमनोवाचयसे  
निवारणता की और बादमें घर लौट भोजनादि किये।  
भीमने जब अपनी चातुराई बतला दी, तब कुंती आदि सबके  
सब यहाँ पहुँचे। भीमने जा कर यन्त्रपुपादिकी हटा प्रस्तर-  
मूर्त्ति बाहर निकाली। यह शिव नहीं है, इसे प्रतिभन करने-  
के लिए ज्यों ही भीम दृष्टायात करनेको उद्यत हुए, वहीं ही  
प्रस्तरगतमें दृष्ट निरकलने लगा। ऐसा देव सबके सब  
बड़े ही आश्चर्यान्वित हुए और उसी समयमें उक्त मूर्त्ति  
भीमनाथ महादेव नामसे प्रसिद्ध हुई।

इन्हीं महादेवके नाम पर ग्रामका नाम भीमनाथ पड़ा है।  
१५३५ सम्बन्धमें गह्वर माघप्रतिरि और बाद ६।प्रतिरि  
तथा सुदगिरि द्वारा स्थानीय मन्दिर और ग्रामकी बर्ण

ही उन्नति हुई। देवपूजा और सदायन पालनके लिए यहांके महन्त महाराजको भी प्राम मिले हैं।

प्रत्येक वर्षके श्रावण मासकी शुक्लद्वादशी, पूर्णिमा, कृष्णा पक्षी और अमावस्याको यहां ब्राह्मण भोजन होता है। अमावस्यामें यहां तीन दिन तक एक मेला लगता है। द्वारकायात्रिगण प्रायः भीमनाथके दर्शनके लिए यहां आते हैं। सर्वोको देवोच्छिष्ट प्रसाद अथवा चावल आदि मिलता है।

यहांके महन्त विवाह नहीं कर सकते—वे अतिथि, वैरागी, गोसाईं प्रभृतिके एक चेला बना लेते हैं। पूर्वोक्त माधवगिरिके परवर्ती महन्तोंके नाम मिलना दुर्लभ है। जो माधवगिरि यहांकी चनमाला काट कर बस्ती बसा गये हैं, उन्हींके परवर्ती अमृतगिरि, माधवगिरि, आसनगिरि, शुभानगिरि, क्षेमगिरि, भगवान्गिरि, सुधगिरि तथा ईश्वरगिरि प्रभृतिके नाम पाये जाते हैं। शेषोक्त ईश्वरगिरि ही है। (१८६३-८५ ई०में) ८० हजार रुपये खर्च कर इस स्थानका संस्कार कर गये हैं।

भीमनाथ—रघुनन्दनके तिथितत्त्वोद्भूत एक पण्डित। भीमनाद (सं० पु०) भीमो भैरवो नादो यस्य। १ विद्व, शेर। भीमो नादः कर्मधा०। २ भयानक शब्द। (त्रि०) ३ भगानकशब्दविशिष्ट।

भीमनायक (सं० पु०) काश्मीरके एक राजा। काश्मीर देखो।

भीमपराक्रम—एक पाण्डुराज। पाण्डुराजवंश देखो। भीमपराक्रम (सं० त्रि०) भीमः पराक्रमो यस्य। १ भयानक पराक्रम। (पु०) २ विष्णु। ३ रघुनन्दनकृत मलमास-तत्त्वधृत एक ग्रन्थ।

भीमपलाजी (सं० स्त्री०) सम्पूर्ण जातिकी एक संकर रागिनी। इसके गानेका समय २१ दण्डसे २४ दण्ड तक है। यह धनाश्री और पूर्वीको मिला कर बनाई गई है। इसमें गान्धार, धैवत और निपट तीनों स्वर कोमल और बाकी शुद्ध लगते हैं। इसमें पंचम धादो और मध्यम सवादी होता है। कुछ लोग इसे धीरागकी पुत्रवधू भी मानते हैं।

भीमपाल—एक राजा। शांभु वृक्षायुर्वेदके रचयिता सुरपालके प्रतिपालक थे।

भीमपाल—१ पंचालराज्यके अन्तर्गत यदामयूताधिपति एक राजा, राष्ट्रकूटवंशीय देवपालके पुत्र। इनके पुत्र सुरपालने वृक्षायुर्वेद नामक ग्रन्थकी रचना की। २ काबुलाधिपति साहिबवंशीय शैब हिन्दुराजा। १०२५ ई०में इनका वैधान्त हुआ।

भीमपुर (सं० स्त्री०) भीमस्य पुरं दत्तत्। विदर्भराजकी नगरी, कुण्डिनपुर।

भीमबल (सं० त्रि०) भीमः बलं यस्य। १ भयानक वीर्य। (पु०) २ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। ३ एक प्रकारकी अग्नि।

भीमभट्ट (सं० पु०) एक प्राचीन ग्रन्थकार। पुराण सर्वस्वमें इनका उल्लेख है।

भीमसुख (सं० त्रि०) १ भयङ्कर मुखाकृतिविशिष्ट, डरावना सुहवाला। (पु०) २ वाणभेद। (रामायण ५।४।१५)

भीमर (सं० स्त्री०) युद्ध, लड़ाई।

भीमयू (सं० स्त्री०) आत्मनो भीमं वृषमिच्छति पथच, वेदे निपा निपातनादुत्। पृषमेच्छु स्त्रीगवो। (श्रुक् १।१६।३)

भीमरथ (सं० पु०) भीमो भयानको रथोऽस्य। १ तामस मनुःकल्पमें उत्पन्न असुरविशेष। कूर्मरूपी हरिने इस असुरका वध किया था। २ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। ३ विकृतिके एक पुत्रका नाम। ४ धन्वन्तरिके एक पौत्रका नाम। ५ सत्यभामाके गर्भसे उत्पन्न धीरुष्णके एक पुत्रका नाम। ६ केतुमानके पुत्रका नाम। ७ पाण्डववंशीय एक राजा।

भीमरथवेव—महाशिवगुप्तात्मज एक त्रिकलिङ्गाधिपति।

भीमरथी (सं० स्त्री०) १ मनुष्यकी अतिरूढ़ावस्था।

“यत्तत्कालिके वर्षे यत्तमे मासि यत्तमी। रात्रिर्भीमरथीनाम नराणां दुःखिक्रमा ॥” (रुद्रमन्त्रा) ७७वें वर्षके सातवें मासकी सातवीं रातका नाम भीमरथी है। मनुष्यके लिये यह रात बहुत कठिन होती है और जो इसे पार कर जाता है वह बहुत पुण्यवाता होता है। २ नदीभेद। यह सहा पर्यंतसे निकली है। इस नदीमें स्नानादि करनेसे सभी पाप नष्ट होते हैं।

“गोदावरी भीमरथी कृष्णवेण्यादिफालथा। वषापादोद्भवा नवः स्तूताः पारमथापहा ॥” (विष्णुसू २।३।१६)

भीमरथी—सोमक-सिंधांत-वर्णित-देशभेद ।

भीमराज ( हि० पु० ) कालेरंगको एक प्रसिद्ध चिड़िया । इसकी टांगें छोटीं और पंजे बड़े होते हैं । इसकी लुममें येव-४ १० पर होते हैं । यह प्रायः कीड़े मकोड़े खाती है और कभी कभी चिड़ियों पर भी आक्रमण करती है ।  
भद्रराज देखो ।

भीमराज नाड़गौर—एक महाराष्ट्र राजद्रोही । इसने १८५७-५८ ई०में अंगरेजोंके विरुद्ध लड़ा हो कर दम्बल राज-कोषको लूटा और कोषल दुर्गको दबल किया । पीछे अंगरैज-सेनापति ए. जेस ( Major Hodge )-ने उन्हे निहत्त कर कोषलदुर्ग दबल किया था ।

भीमराज—१ महाद्वि वर्णित एक राजा । २ इंदरके एक राजपूत राजा ।

भीमरावि ( सं० स्त्री० ) भयानक रावि ।

भीमरिका ( सं० स्त्री० ) सत्यनामाके गर्भसे उत्पन्न श्री-कृष्णकी एक कन्या ।

भीमरोमक—जनपदविशेष । ( मत्स्यपु० १२०।४७ )

भीमल ( सं० लि० ) भियोमलः सम्बन्धो यतः । भयङ्कर, दरायता ।

भीमलाट—मध्यप्रदेशके बालाघाट जिलान्तर्गत एक गाण्ड-ग्राम । यहाँ भीमराज द्वारा प्रतिष्ठित एक लाट या प्रस्तर स्तम्भ विद्यमान है । यहाँ गोड़ जातिका ही वास अधिक देखा जाता है । यहाँका प्रजान्त छाया-विस्तारी घटवृक्ष दक्षिणात्यके मध्य सर्वश्रेष्ठ है ।

भीमचर्मा—१ पदयंत्रणीय एक राजा । २ कौशांबीके अधिपति सम्राट् स्कन्दगुप्तका एक सामन्त ।

भीमचलभराज—दक्षिणात्यके एक हिन्दू राजा ।

भीमबाँध—विहार और उड़ीसाके मुद्देर जिलान्तर्गत एक उष्ण मन्त्रवण । यह प्रायविकुण्डसे ८ कोस दक्षिण महा-देव पर्यंतके ऊपर अक्षां २५° ४' ३० तथा देशां ८६° २' पू०के मध्य अवस्थित है । मार्चमासमें इसका उत्साव १४४-१५० ( F ) तक उठता है ।

भीमविमम ( सं० पु० ) १ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम । २ महाद्वि वर्णित एक राजा । ( लि० ) ३ भयानक विक्रम-शाली ।

भीमविक्रान्त ( सं० पु० ) भीमश्यामी । विक्रान्तवर्णित । १ सिंह, शेर । ( लि० ) २ भयानक विक्रमविनिधि ।

भीमवेग ( सं० पु० ) १ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम । २ दानवभेद । ( लि० ) ३ भयानक वेगविनिधि ।  
भीमवेगवय ( सं० पु० ) द्रुतगामी विकट शब्द ।  
भीमवेर—पञ्जावप्रदेशके गुजरात जिलान्तर्गत हिमालयके पादसे निकली हुई एक जलधारा । पार्श्वीय उपत्यका और ग्रामको पार कर यह नदी चन्द्रमागाके साथ मिलती है ।

भीमवेग ( सं० लि० ) १ भयानक वेगयुक्त । ( पु० ) २ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम । ३ एक दानवका नाम ।

भीमवेशवत् ( सं० पु० ) धृतराष्ट्रके पुत्रका नाम ।

भीमशङ्कर—वारह प्रसिद्ध शिवलिङ्गोंमेंसे एक ।

भीमशर ( सं० पु० ) १ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम । २ भयानक शर । ( लि० ) ३ भयानक शरविनिधि ।

भीमशासन ( सं० पु० ) भीमं शासनं यस्य । १ यम । २ कठोर शासनकारी । ३ कठोर शासन ।

भीमशाह—एक राजा ।

भीमशुक्र ( सं० पु० ) एक राजपुत्र ।

भीमसाही—काश्मीरके एक राजा । महामन्त्री इन्द्रमानु-ने इसकी समाको उखल किया था ।

भीमसिंह ( सं० पु० ) एक सुविद्य कवि । शाहू-पर-पञ्चतिमें इनके रचित श्लोक उद्धृत हुए हैं ।

भीमसिंह—१ मेवाड़के एक राजा । ये लक्ष्मणसिंहके चाचा थे । लक्ष्मणकी नयालिगोंमें ये राजकार्यकी देण भाल करते थे । उस समय इनकी धीरता चारों ओर फैल गई थी ।

इन्होंने श्रीहामचंडीय हमीरजकुटी विष्णुवात-कला-पत्नीदेवीसे विवाह किया था । यही विवाह मित्रोदीप-कुन्दाका काल हुआ था । पत्नीके अयोक्तसामान्य कालायण्यको कथा धीरे धीरे दिदीभर अन्त-उदितके कानमें पहुँची । चाहे राजपूत गतिः विनाशकी इच्छासे हो चाहे पत्नीके कलदायण्य पर मुग्ध हो कर हा उद्योने दालबलके साथ चित्तोर पर आक्रमण किया । बहुत दिनों तक घेरा छाते रहनेके बाद भी ये अर्थकार्य हुए । बाद उद्योने यह घोषणा कर दी, कि पतिनीको पा कर हो वे चित्तोर छोड़ देंगे । इतना सुनते ही राजपूतगण भीर-भी दूने उससाहसे लड़ने लगे । दोनों दलके समस्त

युद्धमें बहुत-से लोगोंके मारे जानेके सिवा और कोई फल न निकला। अनन्तर पुनः अलाउद्दीनने सन्धिका प्रस्ताव कर कहा, कि सिर्फ एक ही बार आइनेमें उस अनुपमा मीहिनीकी छाया देख कर ही वे चुपचाप स्वदेश लौट जायेंगे। इस पर विश्वास कर भीमसिंह स्वयं अतिधिरूपी अलाउद्दीनके साथ बातचीत करते हुए दुर्गकी ओर आ ही रहे थे, कि इतनेमें कपटाचारीके गुप्तसेना दल पकाएक राजपूतवीरको बन्दी कर शिविरमें ले चले। शत्रुको कपटजालमें जड़ीभूत कर दुराचार मुसलमानने हुकुम निकाला कि, मैं जब तक पद्मिनी न पाऊंगा, तब तक भीमसिंहको नहीं छोड़ सकता। यह भयावह सम्याद चित्तोरमें पहुँचते हो सभी भग्नहृदय तथा हताश हो गए। स्वयं पद्मिनीदेवीने यवन-कवलित स्वामीको छुड़ानेका एक पद्यन्त रचा। अपना चचा गौरा तथा गौराके भतीजे वीरवर वादलके परामर्शानुसार पद्मिनीका आत्मसर्पण ही स्थिर हुआ। किंतु पद्मिनीके बदले छद्मवेशी सात नौ शिविकायाही राजपूत सेना मुसलमान छावनीमें भेजी गई। यवनराजने भीमसिंहको अपनी प्रियतमा पत्नीके साथ अतिम मुलाकात करनेके लिए आध घण्टेका समय दिया। इतने हीमें भीमसिंह कोले कर कई एक शिविका चित्तोर राजधानीकी ओर चल-चली। मूढ़ अलाउद्दीनने समझा कि, जो सब राजपूत-रत्ननायक पद्मिनीके साथ चिरविदाई लेने आई थीं, वे ही अपनी अपनी शिविकामें बैठ चित्तोर जा रही हैं और उनको सहवासितगण शिविकामें हो हैं। क्रमशः जब आधे घंटा बीत गया तब अलाउद्दीनके मनमें सन्देह हुआ। पत्नीके साथ भीमसिंहका सम्भाषण उन्हें अच्छा न लगा—उनके हृदयमें ईर्ष्या उत्पन्न हुई। उन्होंने तुरत ही शिविकाके कपड़े उतार लेनेका आदेश दिया। कपड़े उतार लिये गए और उससे सशस्त्र सेनादल निकल पड़ा। दोनों दलमें घोरतर युद्ध होने लगा।

इधर अलाउद्दीनके आदेशानुसार एक दलसेना शत्रुके पीछे छोड़ाई गई। भीमसिंह घोड़े पर सवार हो बहुत जल्द ही चित्तोरदुर्ग पहुँच गए। यहाँ गौरा राजपूत-राज भीमसिंहको पत्नी तथा कुलकामिनियोंके सम्भानार्थ उन्नतस्ती तरह लड़े। इस युद्धमें चित्तोरधि-

प्राती देवीके आदेशानुसार बरिसिंह, अजयसिंह प्रभृति राणाके ग्यारहों पुत्र मारे गए। इस बार राणा भीमसिंह देवीकी रक्त पिपासाशान्तिके लिए स्वयं आत्म-विसर्जनमें कृतसंकल्प हुए। यह भयावह ध्यापार काममें लानेके पहले 'जहर व्रत-का' अनुष्ठान हुआ। इसमें राजपूत-कुलकामिनिगण कुलमाहात्म्यरक्षामें समर्थ हुई थीं। पद्मिनी देखो।

जहरव्रत उद्यापित होने पर राणा भीमसिंह लड़ाईको तैयारी करने लगे। उन्होंने एकमात्र अवशिष्ट कनिष्ठ पुत्र को कैलियारा प्रदेश भेज कर निश्चिन्त मनसे समरानल प्रज्वलित किया। उनके अधीनस्थ सामन्तगण राजपूत-कुलकी गौरवस्वार्थ उरसाह पूर्वक अपसर हुए। रणमदसे उन्मत्त तातारसैन्यके साथ रणकेशरी राजपूत वीरोंका घोर संघर्ष उपस्थित हुआ। इसी युद्धमें भीमसिंह मारे गए और चित्तोरनगर मुसलमानोंके हाथ लगा। बाद उन्होंने इसे तहस नहस कर डाला।

२ उक्त घंशके एक राजा, हामोरके पुत्र। ये १७९८ ई०में विद्यमान थे।

भीमसिंह (राव)—मारवाड़के एक अधिपति। ये मारवाड़पति विजयसिंहके पौत्र तथा भूमसिंहके पुत्र थे। राजा विजयसिंहको वार-वधविलासमें आसक्त देख कर सामन्तोंने वीरप्राण भीमसिंहको सिंहासन देनेका सङ्कल्प किया।

सामन्तोंको एक साथ बैठे देख वृद्ध राजा विजयसिंह बड़े ही विचलित हो गये। वे उन्हें खुश करनेके लिए स्वयं सामन्त-शिविरमें पहुँचे। इधर राव भीमसिंह राजसके सामन्तराजके साथ मिल कर वारवधका सब कुछ लूट नागरकी ओर अपसर हुए। यहाँ पर उन्होंने छावनी डाली। यह सुन कर अन्य सभी सामन्तगण पकाएक उद्विग्न हो पड़े। इतने हीमें विजयसिंह सामन्त शिविरका परित्याग कर भीमसिंहके पास पहुँचे।

उन्होंने भीमसिंहको आभ्यासनमें भुला सुजात और शिष्यानी दुर्गका अधिस्थामी बना दिया। मारवाड़का सिंहासन न पा कर युवक भीमसिंह उसी छोटे प्रदेशको पा सन्तुष्ट रहे।

भीमसिंहको देशान्तर भंज कर राजा विजयसिंहने

भरने और स-जान पुत्र जालिमसिंहको गढ़वाल प्रदेशका पूर्वाधिकार दे भीमसिंहको मारवाड़से निकाल देनेका आदेश किया। जालिमने पिताकी आज्ञा पालनार्थ भीमसिंह पर धाया मारा। घोरतर युद्धके बाद भीमसिंह परास्त हो कर प्राणभयसे जयशालमौरकी ओर भाग गये। उसी समय एक विजयसिंहने मानवलीला संघर्षण की। उनकी मृत्युके कुछ पहलेसे ही सामन्त-विद्रोह उपस्थित हुआ था।

भीमसिंहने जयशालमौरमें ही रह कर पितामहकी मृत्युका समाधि सुना और तुरन्त ही अपने अनुचरोंके साथ योधपुर आ धमके। इधर राज्यके प्रकृत उत्तराधिकारी जालिमसिंह राज्यमें प्रवेश करनेके लिए मैरत-नामक स्थानमें शुभमूहूर्त्तकी प्रतीक्षा करने लगे। चतुर भीमसिंहने उन्हे परास्त कर राजमुकुट अपने शिर पर धारण किया। जब भीमसिंहने सुना, कि जालिमसिंहमानलामकी इच्छासे अमसर हुए हैं, तब उन्होंने जालिमकी पकड़नेके लिए एक दलसेना भेजी। मिलारा नामक स्थान पर दोनों दलोंमें मुठभेड़ हुई। अन्तमें जालिमने हार कर मेयारेश्वरकी शरण ली।

मारवाड़-सिंहासन पर बैठ कर राजा भीमसिंहने मरपिशाच सम्राट औरङ्गजेबकी नारिं संहारमूर्त्ति धारण की। अपने राजसिंहासनको कण्टकस्वरूप जान कर उन्होंने पहले अपने चचाको तथा पालक पिताकी मार डाला। पीछे अपने बुल चचाको मार कर उनके लड़कोंके ध्वंससाधनमें प्रवृत्त हुए। इसी प्रकार एक एक कर भारतीय स्वतन्त्रकी मार उन्होंने राहोरकुलकी कलङ्कित किया था।

अन्तमें उन्होंने गुमानसिंहके पुत्र मानसिंहको मारनेकी इच्छासे भ्लावर दुर्ग घेर लिया। कई वर्ष अय-रोधमें वृत्तकार्य भ होनेके कारण भीमसिंह सेनानायकोंके ऊपर अयरोध-भार सौंप कर राजधानी छोड़े। जब सामन्तगण मानसिंहको बन्दी न कर सके, तब राजा भीमसिंहने उन मन्त्रोंकी पिथोरूपसे मन्दिन तथा निर-हृत किया। इस प्रकार भयमानित हो कर सामन्तोंने उनका आक्षेप छोड़ दिया और दयतन्त्ररूपसे विद्रोह-करण करने लगे। सामन्तोंके ऐसे आचरण पर फिर

तथा मानसिंहके बन्दीकरणसे हताश हो कर भीमसिंह घेतनभोगी विजातीय सेनाओंको सहायता लेनेको बाध्य हुए।

इस सेनाको साथ ले उन्होंने उदायन्-सम्बन्धके सामन्ताधिकृत निजामप्रदेश और दुर्ग तथा अन्यत्र सामन्तोंकी बहुत-सी भूसि अर्पना ली।

निजामजयसे स्पष्टित तथा उरसाहित हो कर बेतन-भोगी सेनादलने पुनः भीमसिंहकी अधिनायकतामें भ्लावर नगर अधिकार किया, किन्तु घोड़े ही सेनाके साथ मानसिंह दुर्गमें अग्रवृत्त रहे। लगभग ग्यारह वर्ष तक भ्लावर दुर्गमें अग्रवृत्त रह कर मानसिंहने अन्न कटका सहन करते हुए आत्मरक्षा की थी। इसी अयरोधके समय भीमसिंहकी मृत्यु हुई। १७१२ ई०में ले कर १८०३ ई० तक उन्होंने बड़े उत्कण्ठके साथ राज्यभोग किया था।

भीमसिंहपरिणत—शाङ्गधरपद्मतिष्ठत एक कथि।

भीमसेन—१ एक टोकाकार। इन्होंने १७२३ ई०में सुपा-सागर नामक काठप्रकाश टोका तथा हर्षदेवहन रत्ना पल्लोकी टोका रची। २ दुर्गमांहादर्य टोकाके प्रणेता। ३ धानुपाठ तथा भीमो व्याकरणके रचयिता। राय-मुकुट और पद्मनाभने इनका उल्लेख किया है। ४ वैद्य-योध संग्रह नामक वैद्य ग्रन्थके प्रणेता। ५ गूढनायक या पाकशास्त्रके प्रणयकर्त्ता। ये किरातनगर निवासी थे। ६ यक्षभेद। ७ एक तान्त्रिकाचार्य।

भीमसेन—१ एक प्राचीन नरपति। इन्होंने तोरमानके पहले भारतका शासन किया था। गुमाधरमें लिखा है, कि मय रूचिताद्वित्त उनकी प्रचलित मुद्रा पाई गई है। २ एक हिन्दू राजा। ये ५२ संवत्समें विद्यमान थे। भीमसेन (सं० पु०) १ मध्यम पारश्वय, भीम। मंत्र देवी। २ गणधर्मभेद। ३ कर्पूरभेद। ४ जनमेजयके एक भाईका नाम। ५ पारश्वप्राचीन जनमेजयके एक पुत्रका नाम। भीमसेनकथि—दत्तसंग्रह नामक ग्रन्थके प्रणेता।

भीमसेन उष्य—भीमालके एक राजा।

भीमसेन गडा—इत्याहादादमें जो ४ गिजातिपियुक्त सुना-चौन प्रस्तरलाट विद्यमान है। उन्से ही स्थानीय लोग 'भीमसेनकी गढ़' कहते हैं।

भीमसेनी (हि० पु०) १ भीमसेनी कपूर। (वि०) २

भीमसेन संवधी, भीमसेनका।

भीमसेनी एकादशी (हि० स्त्री०) १ उपेठ शुक्ला एकादशी, निर्जला एकादशी। २ माघ शुक्ला एकादशी।

भीमसेनोकपूर (हि० पु०) कपूर देखो।

भीमस्वामी—एक सुविध ब्राह्मण। राजा धर्मदेव इनके प्रतिपालक थे।

भीमहास (सं० स्त्री०) भीमे प्रोत्सादी हासः प्रताशः पश्य। इन्द्रवृक्ष, गुह्योकी डोरी।

भीमा (सं० स्त्री०) १ भी मक्, स्त्रियार्थात् ष्। १ रोचनाख्य गन्धद्रव्य, रोचन नामका गन्धद्रव्य। २ कशा, चायुक। ३ नदीविशेष। ४ दुर्गादेवी। चण्डीमें लिखा है कि भगवती दुर्गाने हिमाचल पर भयानक रूप धारण कर मुनियोंके त्राणके लिये राक्षसोंका संहार किया था, इसी कारण उनका नाम 'भीमादेवी' पड़ा है।

“पुनश्चाहं यदा भीमं रूपं कृत्वा हिमाचले।

रक्षायि त्रयविष्यामि मुनीनां प्रायकारणान्॥

तदा मां मुनयः सर्वे स्तोभ्यन्त्यानम्रमूर्च्छयः।

भीमादेवीति क्लियत्त तन्मे नाम अभिष्यति॥”

(मार्कण्डेयपु० देवीमा०)

भीमा—बम्बई प्रदेशके अन्तर्गत एक नदी। यह सछाद्रि पर्वतके अक्षा० १६° ४' ३०" उ० तथा देशा० ७३° ३४' ३०" पू० भीमाशङ्कर ग्रामके समीपमें निकल कर पूना, अहमदनगर, शोलापुर और कालादगी जिलेके मध्य होतो हुई दक्षिण पूर्वकी ओर कृष्णानदीमें मिलती है।

भीमाकर (सं० पु०) काश्मीरके एक राजा। इनके पुत्रका नाम इन्द्राकर था।

भीमार्गिन—मन्द्राजप्रदेशके अन्तर्गत एक गिरिसङ्घट। घेड़ती जिलेसे सन्दूर जानेमें इसी राहसे जाना होता है। यह अक्षा० १५° ७' उ० तथा देशा० ७६° ३' पू०के मध्य विस्तृत है।

भीमादि (सं० पु०) भीम आदि करके पाणिभ्युक्त शब्दगण। यथा—भीम, भी म, भयानक, घाह, चर, प्रकन्दन, प्रपात, समुद्र, झू, झुक, दृष्टि, रक्ष, शं, सुक, मूर्ख, खलति। (पाणिनि)

भीमादेव (सं० पु०) काश्मीरके एक राजा।

(राजतर० ८१२१)

भीमार—राजपूतानेके पोधपुर राज्यान्तर्गत एक गाँवग्राम। यह अक्षा० २६° १६' उ० तथा देशा० ७१° ३३' पू०के मध्य विस्तृत है। यहां चौहान-राजपूतोंका वास है। पौरुणसे बालम जानेके रास्ते पर अवस्थित होनेसे यहांके पाणिज्यकी उन्नति हुई है।

भीमावरम्—मन्द्राजप्रदेशके गोदावरी जिलान्तर्गत एक तालुक। भूपरिमाण ३२१ वर्ग मील है। उन्दी, धेल-पुर, छिन्नकापडूम गोष्ठा नदी और अकरोडू आदि बाल और प्रणाली इस तालुकके मध्य हो कर बह गई है, इस कारण खेतोवारोंमें बड़ी सुविधा है। यीरवामरमनगर यहांका प्रधान स्थान है। एतद्भिन्न भीमावरम्, उन्दी, अकरोडू और गुणुपुडी आदि नगरोंमें चायलका विस्तृत कारोबार है।

भीमावरम्—मन्द्राज-प्रदेशके नेल्लूर जिलान्तर्गत एक गाँवग्राम। शृङ्गार-आयकोएडाके पवित्र देवतीर्थके धर्च बर्चके लिये यह ग्राम दान किया गया है। निकटवर्त्ती गण्डशैलके ऊपर अगस्त्यमुनि द्वारा प्रतिष्ठित एक विष्णु मन्दिर और एक गुहा विद्यमान है। इस गुहाके नामने एक भोगणाकार प्रस्तर-प्रतिमूर्त्ति देखायामान है। प्रति-वर्ष वैशाखमासमें यहां नरसिंह स्वामी विष्णुमूर्त्तिके उद्देशसे एक मेला लगता है।

भीमाशङ्कर—बम्बईप्रदेशके पूना जिलान्तर्गत एक शिव-मन्दिर। यह पश्चिमघाट शैलके शिखर पर भीमानदीके किनारे अवस्थित है। दक्षिणात्यमें यह एक प्राचीन तीर्थ समझा जाता है। यहांके प्राचीन भग्नमन्दिरके बदलेमें नानाफड़नवीशने महादेवका एक नया मन्दिर बनया दिया था। उनकी विधवा पत्नी भी इस मन्दिरके शिखरको सुशोभित कर गई है। यहां दो कुएँ हैं जिनमेंसे एक भीमा नदीका उत्पत्तिस्थान समझा जाता है।

इस तीर्थक्षेत्रके उत्पत्ति-सम्बन्धमें यहां पौराणिकी किंवदन्ती इस प्रकार चलित है—अयोध्यापति सूर्य-चंगीय राजाने मृगयाकालमें अज्ञातवशतः हरिणरूपी दो श्रृणियोंको मार डाला। राजा इस पापके प्रायश्चित्तके लिये महादेवको तपस्यामें लग गये। देवादिदेवने उनकी तपस्या पर मुग्ध हो कर उन्हें घर मारनेकी कहा।

तिपुरापुरको युद्धमें पराजित करके महेश्वर उस समय धान्ति दूर कर रहे थे। उनके कपालभागको घर्मांक देण कर भीमकने उस कपालदेनाभिःमृग घर्मांशिले सर्वलोक दिनकर एक सद्यस्त्रके लिये प्राथना की। तदनुसार भीमानदी उत्पन्न हुई। प्रतिवर्ष शिवरात्रि-उपलक्षमें यहां एक यात्रा-उत्सव होता है।

भीमू ( हि० पु० ) भीमसेन।

भीमेज ( सं० क्लो० ) शैवतीर्थभेद। यहां पर भीमेज नामक शिवलिंग अवस्थित है।

भीमेश्वर ( सं० क्लो० ) शिवपुराणोक्त शैवतीर्थभेद।

भीमेश्वर तीर्थ—विदर्भराज भीम द्वारा स्थापित शैवतीर्थ-विनोय। यहां भीमेश्वर शिवलिंग विद्यमान है।

( तागोपपट )

भीमेश्वरनाट्ट—रससर्वस्य नामक अलङ्कार-प्रथके प्रणेता। इनके पिताका नाम रङ्गभट्ट था।

भीमैकादशी ( सं० क्लि० ) भीमेन उपोसिता एकादशी, मध्यपक्षलोपी कर्मधा०। माघ मासकी शुक्ल एकादशी। यह एकादशी-व्रत सर्वोक्त करना उचित है। इस व्रतके करनेसे विष्णुका परमापद बनायास ही लाभ होता है। वैष्णवके मतानुसार ज्ञान भरमें यदि किसी प्रकारका घर्मानुष्ठान न किया जाय, तो ज्ञान, उत्थान, पार्थपरिवर्तन और भीम एकादशी, शिवचतुर्दशी और महाएश्या इन सब व्रतोंका अनुष्ठान करनेसे सभी पाप विनष्ट होते हैं और अन्तमें विष्णुपद प्राप्त होता है। दशमीके दिन संयम करके एकादशीके दिन उपवास और द्वादशीके दिन पारण करना होता है।

“ततः पुत्रप्राप्तौ भीमशिवे पारप्रथाशिविनीम्।

उपोष्य विधिनानेन गच्छेद्विष्णोः परं परम्।

भीमशिवि भौमैवेन न्यातामेकारशी ॥”

( एकादशीव्रत )

एकादशीकी उपवास करके द्वादशीके दिन विष्णुपूजा करनेकी होती है, यह दिन भीमद्वादशी नामसे प्रसिद्ध है। इस व्रतका विधान महेश्वरुपनामें सविस्तार किया है। विस्तार ही ज्ञानके भयसे यहां पर कुछ नहीं लिखा गया।

भीमोत्तरा ( सं० पु० ) कुशावट, कुशहटा।

भीमोदरी ( सं० खो० ) उमा, दुर्गाका एक नाम।

भीमोरा—बम्बईप्रदेशके बाटियावाड़ जिलानामक एक छोटा राज्य। यह अक्षा० २२° ३० तथा देशा० ७१° ११' पू०के मध्य अवस्थित है। भीमोरा नगर इसकी राजधानी है।

भीम्राघली ( हि० पु० ) योद्धाकी एक जाति।

भीर ( सं० पु० ) जातिविशेष। भीमीर देखो।

भीर ( हि० खो० ) १ मीड़ देखो। २ कण, दुःख। ३ मरुद, विपत्ति। (वि०) ४ भयभीत, डरा हुआ।

भीरा ( हि० पु० ) १ मध्य भारत तथा दक्षिण भारतमें मिलने वाला एक प्रकारका घृस। इसकी लकड़ियोंमें शहतीर बनते हैं और इसमेंसे गोंद, रंग और तेल निकालता है। (वि०) २ डरपोक, कायर।

भीराराय—भाटियाके एक हिन्दू राजा। १०६६ ई०में गजनीपति महमूदने इन्हें युद्धमें मारा था।

भीरी ( हि० खो० ) अद्वारका डाल।

भीर ( सं० क्लि० ) विभेताति भी-भये ( भिषःकु, वसुमी०। पा ३।२।१७४ ) १ भयभीत, डरपोक, बुझदिल। पर्याय—तख्त, भीरक, भीलुक, भीलु। (खो०) २ भयभीत। ३ शतावरी। ४ कण्टकारी, मटकटैया। ५ शतपदिका। ६ अज्ञा, बकरी। ७ छाया। (पु०) ८ श्यामल, मोड़ड़। ९ व्याघ्र, शेर। १० इक्षुभेद, ऊबकी एक जाति। ११ मल्लिका पुत्र, बेला फूल।

भीरक ( सं० क्लो० ) भीरु-संज्ञायां कन्। १ घन, जंगल। २ पेचक, ऊबू। ३ इक्षुभेद, जलकी एक जाति। ४ मारव भेद, एक प्रकारकी मछली। ५ रीत्य, चांदी। (वि०) ६ भययुक्त, डरपोक।

भीरकच्छ ( सं० पु० ) भ्रुककच्छका पाठान्तर। मरीच-प्रदेश।

भीरुसेन ( सं० क्लि० ) भीरु भयभीत किंवा बल्य। १ भीरुहृदय, कायर। (क्लो०) २ भयभीत चित्त। ३ हरिण।

भीरुण ( सं० क्लि० ) भयावह, डरावना।

भीरुणा ( सं० खो० ) भीरुणां माघः मन्-टाण्। १ भीरुण्य, डरपोकान्त। २ भय, डर।

भीरुणा ( हि० खो० ) भीरुणा देना।

भीरुपती ( सं० खो० ) भीरुणोय पताण्यभ्या, गीरादिवायु कौर। जलमूर्ती।

भीरुग्रन्थ (सं० पु०) १ भयजनक ग्रन्थ । २ चूला ।  
भीरुग्रान (सं० क्रो०) भीरुणां स्थानं 'अम्बादेः स्वस्येति'  
पत्वं । भीरुओंका स्थान ।  
भीरुसत्त्व (सं० वि०) भयशील चित्तयुक्त ।  
भीरुहृदय (सं० पु०) भोग हृदयं यस्य । हरिण, हिरन ।  
भीरु (सं० स्त्री०) भीरु (ऊर्ध्वः वा । पा ४।१।६६) इति ऊर्ध्व ।  
भयशीला नारी डरपोक बीरत ।

भील—मारवाड़की आदिमनिवासी वन्य तथा पार्वत्य  
जातिविशेष । राजपूतानेके अरवली पहाड़से ले कर  
सिन्धु और राजपूतानेकी मरुभूमि तक तथा खानदेश  
और अल्लदावादेके वन एवं तुङ्गगिखर पर इनका वाम  
देखा जाता है ।

बहुतसे मनुष्य इन भीलोंकी भारतवर्षकी आदिम  
जातियोंमेंसे एक बतलाते हैं । संस्कृत साहित्यमें ये भिल्ल  
तथा किसीके मतानुसार भीर और आभीर भी कहलाते  
हैं । आभीर नाम सुन कर कोई ऐसा भी समझ सकते हैं,  
कि सम्प्रति जो 'अहीर' या 'भाला' कहे जाते हैं, वे ही  
आभीर हैं । अहीर शब्द देखो । पार्वत्य्य दुर्दान्त भीलगण  
उक्त जातिके नहीं हो सकते, किंतु साहित्यदर्पणके "आभीर  
शावरीचापि काष्ठपत्त्रोपजीविपु ।" (अर्थात्) काष्ठजोच  
आभीरी तथा पत्त्रोपजीवीगण शावरी भाषामें वातचोत  
करते हैं । इससे जाना जाता है, कि पूर्व समयमें आभो-  
रियोंकी वन्यकाष्ठसंग्रह करना ही उपजीविका थी और  
अब भी समी जगह भीलोंकी यही वृत्ति है । किन्तु  
गोपजातीय अहीरोंके मध्य ऐसा प्रथा नहीं है । किसीका  
कहना है, कि कालक्रमसे आभीरोंने ही भीर और  
भीरस भील नाम प्राप्त किया है । यदुष्यंश-ध्वंसके  
बाद जब अर्जुन गुजरातसे कृष्णधनिताओंको साथ ले  
रुद्रप्रस्थ आ रहे थे, उसी समय रास्तेमें आभीरदस्त्रुने  
महावीर गाण्डीवधन्यासे उन कृष्णप्रेयसियोंको छोन  
लिया था । वही आभीरगण वर्तमान भीलोंके  
पूर्वपुरुष हैं । महाभारतके समय उनकी जैसी उपजीविका  
थी, अब भी वैसी ही है । किंतु प्राचीन हिंदू धर्मग्रन्थमें  
ये 'भिल्ल' नामक अन्त्यज जाति कह कर प्रसिद्ध हैं ।

भिल्ल देवा ।

एलेमीने इन भीलोंका किहितो (Phyllitae) नामसे

उल्लेख किया है । द्राचिडोय व्याकरण-रचयिता डॉ०  
काल्डवेल साहबके मतानुसार द्राचिडोय 'चिल' अर्थात्  
घनुपसे इस भिल्ल शब्दकी उत्पत्ति हुई है ।

पश्चिम भारतमें इस भीलके सम्बन्धमें नाना प्रकार-  
के प्रवाद सुने जाते हैं । उनमेंसे एक यह है—एक दिन  
महादेव एक गहन वनमें घूमने घूमते वड़े हो थक गए ।  
उसी समय एक अत्यन्त सुन्दरी युवती वहां आ उप-  
स्थित हुई । उस मनमोहिनीको देख कर ही महादेवके  
समी रोग जाते रहे । उन दोनोंके पारस्परिक सहवास-  
से कई एक सन्तान उत्पन्न हुईं जिनमेंसे एक देखनेमें  
बदसूरत थी । एक दिन उसने गुस्तेमें आ कर महादेव-  
के प्रिय वृषको मार डाला । इसी कारण वह घने जंगल  
तथा जनहीन पर्वत पर भगा दिया गया । उसीकी  
सन्तान, समाज-बहिष्कृत भीलजाति है । वे अब भी  
'महादेवके चोर' कह कर अपना अपना परिचय देते हैं ।

इम वन्यजातिमें तीर चलानेको असाधारण क्षमता  
है । प्रवाद है, कि महावीर द्रोणाचार्यने एक भीलराज-  
का अर्घ्य घनुचालन देव कर ईर्ष्यापरवश हो उसकी  
और उसकी प्रजाओंके वृद्धाङ्गुष्ठ काट डालनेका आदेश  
दिया था ।

पश्चिम तथा मध्य भारतके अनेक स्थानोंमें भील  
देखे जाते हैं । वे अपना आदिवास मेवाड़ या मरुदेश  
(योधपुर) बतलाते हैं । एक समय सागर राजपूताना  
इन्हेंके अधिकारमें था । अब भी किसी किसी राज-  
पूतराजके सिंहासनारोहणके समय जब तक भील-  
सत्दार आ कर राजटीका नहीं देख लेता, तब तक उनका  
राज्याभिषेक सिद्ध नहीं होता है ।

बहुत दिनोंसे दस्यु और क्रूर प्रकृतिवाले कहलाने  
पर भी ये माहसी, चोर और विभासी होते हैं ।  
ये आतनाथीके ऊार जैने रंज होते हैं, जैसे ही  
शरणागत तथा आश्रयदाताके प्रति अनुरक्त भी रहते  
हैं,—यहां तक कि, प्राय दे कर भी आश्रितके मङ्गल-  
विधानमें तत्पर रहते हैं । जिन सब घने जङ्गलोंमें लोग  
प्रवेश करनेसे डरता है; वे उन सब दुर्गम वन-  
जङ्गलके कोने कोने तकका हाल जानते हैं, दुरारोह  
गिरिमालामें सुगम पथ ढूँढ निकालते हैं—ये दुर्गम पथ



मृतककी नारवारके सामने रखा जाता है । योगी उस मैद पर पीतलका एक घोड़ा, उसके चारों ओर बहुत-से पैसे और तार गाड़ देता है । घोड़ेके सामने दो माली गड़े जिनमेंमें एकको लाल और दूसरेकी सफेद कपड़े से ढंक कर रखते हैं और घोड़ेको एक डोरीमें बांध देते हैं । अनन्तर योगी मन्त्रोच्चारण कर मृतकके पूर्व पुण्यकी युद्धाता है । योगीके आदेशानुसार मृतकके घंशघर-पितृपुत्रयोंकी परितृप्तिके लिए उपहार दिया जाता है और उस योगीको एक गाय दो जाती है । उसके प्रार्थनानुसार योगी चढ़ प्रस्तुत कर एक गड़देमें पितरोंके उद्देशसे दे देता है । बाद उसमें एक पात्र मद्य और एक पैसा दे कर उस गड़देको बन्द कर देना पड़ता है । अनन्तर मुग्धानिज्ञाता योगीको यथासाध्य उपहार देता है । मृतके आत्मीयगण भी यथाशक्ति मुग्धानिज्ञाताकी उपहारादि देते हैं । अन्तमें आत्मीय कुटुम्ब सभी मिल कर प्रयुक्त मद्यपान तथा मृत्युगीत आरम्भ करते हैं । दूसरे दिन गांध्यालोंमें भोज होता है । इस महाभोजकी सुचारुरूपसे सम्पन्न करनेके लिए आत्मीय स्वजन कोई चायल, कोई गो और कोई अन्य द्रव्य देता है । मृतकके जामाताको एक भैंस देनी पड़ती है । उसके नहों देनेसे मृतकके जाले या भाईकी ही देनी पड़ती है ।

मृतककी विधवा पत्नीसे पहले पूछा जाता है, कि तुम स्वामीके घर रहोगी या मेरे जाओ अथवा सगाई या दूसरा पति करोगी । जब उसकी पत्यन्तर प्रहणकी इच्छा रहती है, तब वह पिताके घर ही जाना पसन्द करती है । मृतकके छोटा भाई रहने पर उस विधवाको दूसरेके घर नहों जाने देता । यह उस विधवाके निकट जाता और अपने कपड़ेसे उसका सिर ढक देता है । तभीसे वह अपने देवरकी स्त्री समझी जाती है और देवर भी उसे भावर पूर्णक करने पर ले आता है । साठ दिनके बाद भोजीय बांध जाने पर वह रत्ना हाथकी नूड़ी या बाता तोड़ डालती है और उसके बदले मद्यपानकी ही हुई नूड़ी या बाता पढ़ती है । तभी 'नालरा' या पुनर्विवाह कदा जाता है । केवल स्वामीका छोटा भाई ही उस विधवाको रख सकता है, सो नहों ।

पर मृत मालीका पत्नीप्रहण भोलोंमें सम्मानका कि है, इसीलिए अल्पवयस्क देवर भी युवती भाभीही नहीं छोड़ता । देवर नहों रहनेसे 'काट' सत्रण होनेके साठ दिन बाद, पिता या कोई भारतीय भा र विधवाको ले जाता है । दो एक महोने तक यह रिवाजे पर रहता है, अनन्तर पिताके आदेशानुसार अन्य किमों शक्तिके साथ सगाई करती है अथवा यह अपनी इच्छासे किसी युवाके साथ रहती है । भोलगण रम्योंकी बड़ी ही कदर करने है । सुनरां जिसके घर युवती जाती है वह जोते जो उसका परिचयग नहों कर सकता । विधवा तो अपने इच्छानुसार तिम किसी पुण्यकी बर सकता है, पर पिताकी स्वप्रेमीभेगे किसीको आत्मसमर्पण नहों कर सकती ।

यदि पिता विधवा कन्याका नातरा या दूसरेके माप विवाह करे दे, तो विधवाके पूर्व स्वामीके घंशघरका उसके पित्तके साथ विवाह गड़ा होता है और यह क्षतिपूर्ति मांगता है । पहले ही विधवाके पिता पर आक्रमण करता और उसका घर जला देता है । अन्तर पञ्चायत बैठती है और उसके आदेशानुसार कन्याके पिताको ५० से २०० रुपये तक उत्तराधिकारीकी देना पड़ता है । इधर विधवाका पिता 'नाल' कागो जामाताके इस क्षतिपूर्णके रूपकेका दावा करता है । इस पर यदि यह रुपये देनेमें मानाकानती करता है, तो पिता उस जामाताका घर जला देता है । जब तक पिता रुपये पा कर संतुष्ट नहों होता तब तक पौराण विवाह चकता रहता है—यहां तक, कि दोनों दम्भें नून नगाबी भी हो जाती है । किन्तु विधवा पिता अथवा आत्मीयकी सभामति न ले कर यदि किसी अन्य पुरुषके पास चली जाय, तो मृतका उत्तराधिकारी उस पुरुष पर आक्रमण और उसीसे रुपये वसूल करता है ।

यदि कोई अविवाहिता अर्द्धा कन्या किमोंके प्रेममें कंग जाय, तो सुरत ही उसके पिता या भारतीय स्वजन इसका पना लगाते हैं—पता सगने पर उस युवकका सिर निम्नार बदां ! कन्याका आत्मीय स्वजन उस पर आक्रमण करने और उसके घरमें लाल लगा देने है । कमी कमी गांधके दूसरे पर भी

जलाये जाते हैं। इस पर प्रामवासी भी इसका बदला चुकानेके लिए कमर कसते हैं। उम्मी तरह कुछ दिन तक दोनों दलमें भारी विरोध चलता है। अन्तमें पञ्चायत कायम होतो है और वह पंचायत कन्याहरणकारोको लगभग एक सौ रुपये तक जुर्माना कर विवाह मित्रा देती है। निष्पत्तिके समय पहले जमीनमें एक गड्ढा खोदते हैं जिसमें जल भर दिया जाता है। बाद कन्याका पिता और पति दोनों ही उसमें एक एक पत्थर फेंकते हैं और उसी समय भगड्ढा तय लग जाता है। अन्तमें पञ्चायत उस जामाताके खर्चसे अपना पेट भरतो है और मद्यपान कर सभी अपना अपना घर चले जाते हैं।

यदि कोई वाग्दत्ता कन्या किसी दूसरे पुरुषके साथ भाग जाय, तो जिसके साथ उसके विवाहकी पहले बात-चीत हुई थी वह भाग्ये पति तुरत ही तौर धनुक ले कर उस कन्याहरणकारोको मार डालता और उसका तथा कन्याके पिताका घर जला देता है। दोनों दलमें वर्षों तक विवाद चलता है। यहां तक, कि उभय पक्षीय प्रामवासी सभी भील इकट्ठे हो कर परस्परमें ही एक दूसरे पर आक्रमण करते हैं। दोनों दलके बहुत-से मनुष्य मारे जाने पर वह विह्वलपवह निर्व्यापित होती है। फिर भी, यदि कोई युवा किसी भीलकुमारोके रूप पर मुग्ध हो कर उसकी कामना करे और वह कुमारो यदि उसके साथ विवाह करनेमें राजी न हो, तो वह युवक गांधीमें यह घोषणा करता है, 'मैंने अमुक कुमारोका पाणिग्रहण किया है और अब कौन अभाग्य उसे ले सकता है?' तब पञ्चायत बैठती है और इसका विचार होता है। कुमारो यदि विवाह करनेमें राजी होती है, तो पहले जो रुपये लगते, अभी उससे दूना पण ले कर कन्याका पिता उसी युवकके साथ कन्याका विवाह कर देता है।

यदि किसीकी स्त्री पतिका परित्याग कर अन्यत्र जा परपुरुषके साथ सहवास करे, तो उसके पति और पतिके वन्धुबंधोके क्रोधकी सोमा नहीं रहती। ये सबके सब मिल कर जिस गांधीमें वह परस्त्रीगामी रहता है, उस गांधीके सब घणोंको जला देता है। इस समय भी पञ्चायत बैठती है। विचारके समय पञ्चायतकी परितृप्ति-

के लिए परस्त्रीगामीको प्रचुर मद्यके साथ उन्मिष्न होना पडता है। पतिको अक्रमर स्त्री पित्त जानते है; किन्तु वह परपुरुषको भीष्मज्ञान सम्मानको ग्रहण नहीं करता। जिसके औरममें वह पुत्र उत्पन्न हुआ है, वह उसीका पुत्र माना जाता है। यदि वह पुरुष उस प्रणयिणोंको छोड़ना न चाहे, तो उसके पतिको लगभग दो सौ रुपये क्षतिपूर्ति-स्वरूप देने पडते हैं।

मृतपुरुषके स्मरणके लिए भीलगण एक प्रस्नर फलक प्रस्तुत करते हैं, उस फलकके हाथमें तलवार और वरछा ढाल सुशोभित एक श्वाघरोहीको मूर्ति बनाई जाती है—कभी कभी तलवार फवच-भूषित पदातिक मूर्ति भी देखी जाती है। जब किसी बालकको मृत्यु होती है, तब उसके स्मारक प्रस्नरफलकमें मनुष्यमूर्तिके बटले एक बूढ़दाकार चक्रधर सर्वमूर्ति अङ्कित होतो है। मृत गिर्योंके लिए कोई मूर्ति नहीं बनाई जानी। गोके सिवा अन्य किसी भी पशुका मांस भीलगण अखाद्य नहीं मानते—यहां तक, कि मरे हुए ऊँटका मांस भी ये खानेमें बाज नहीं आते हैं। इनके कोई याजक या पुरोहित नहीं होता। जो अत्यन्त निम्न श्रेणीका ब्राह्मण है, वही इसका गुरु होता है। गुरु किसीको अपना चेला नहीं बनाते है, ये पुत्रपोषादिक्रमसे गुरु बनाते है। प्रधान गुरुकी आस्था है "कर्मरय"। माताजो तथा देवीमवालो इनके प्रधान उपास्य देता है। इनके मध्य भद्र तथा गुगाजो नामक बीहान वाकको पूजा भी प्रचलित देखी जाती है। गुगाजोकी भी कभी श्वाघरोही और कभी सर्वमूर्तिकी पूजा होती है।

युक्तप्रदेग और बम्बईप्रदेगके भी किसी किसी जिलेमें भील देखनेमें आते हैं। ये राजपूतानेके मरुभूमि या पर्वतवासो भीलकी अपेक्षा बहुत कुछ ज्ञान्त या निष्ठ है। सभी इनसे लकड़ी तोड़ कर बेचते हैं। युक्तप्रदेगके भीलोंका कहना है, कि रोहिलखण्डमें उनके पूर्व-पुरुष राज्य करते थे, राजपूतोंने उन्हें यहांसे भगा कर अपना अधिकार जमाया है। अहमदनगर और नासिकवासी भीलोंका आचार-व्यवहार ठीक मराठो कुनबियोंसा है—ये प्राय्य महत्तरके ही आराधुवर्ती है। अण-रथोके दण्डविधान तथा सामाजिक विवाहकी गोमांसा

इत्यादि इतों महत्तरके हाथ है। ये सब हिन्दू देवदेवियों को जो मानते हैं। महागण्ड अथर्ववेदमें इनको गिनती एनवीं जातिको अर्थात् निम्नश्रेणीमें है। मेघादुर्ग मोर्योंमें कद्र तथा कालीको भोजन मूर्तिको पूजा, पशुपाल और मुषि-यानुसार नरवाङ्ग भा प्रचलित है। राजपूतानेके किम्बा क्रिस्ता क्यानन 'पुलिन्दुद्व' नामक इनके प्रधान उपाम्य देवताका प्रारंभ देखनेमें आता है। भालाक सरदार नायक या नायकड़ा नामस पारचित है।

भाल (हं रत्न) तालका यह सूत्रा मेटा जा प्रायः पचदाक रूपम हा जाता है।

भालगढ़—मध्यभारतके म्यालपर राज्यान्तर्गत एक नगर। भालद्वारा—गुजरातके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। यहां कच्छवाहा भौल्योको राजधानी थी। किन्ता किम्बाका कहना है, कि भोलद्वीप यथेलीमें यहां अधिकार जमाया था। याद् यहां डामोदायाशुक्र राजपूतजातिको प्रतिष्ठा हुई।

भोलवाडा—मध्यभारतके अन्तर्गत एक भूभाग। यह कई एक सामन्तराज्योंके बना है। यहाँ अहमदजराज-निर्दिष्ट भोल या भापावर पञ्जनों है। भारतराज प्रतिनिधिके प्रधान एक. राजकीय कर्मचारी इतको देव रेव करते हैं।

विश्वपर्वतके उत्तर स्थित यह पार्यंत्य भूमिमा घट, भक्त गढ़, भयुषा, भलोराजपुर, जीवाट, काटियावाड़, रत्नमन्ड, मठवाट, दाहो, निमणेरा, बटायणेरा, छाटा वर्णम, कच्छा परोदा, धाता, मूलतान, धनगांव और काळा-बायरा नामक १० सामन्त राज्य मिलता कर बना था। पालि पर्वानो, पमुनिया, राजगढ़, फोर्टहिंद, गढ़दो, छाटा कसरा-वाट, चिकित्तावावाट और भयदपुर सामन्तराज्य तथा हायकर, सख और अहमदगांधन कई एक जिले उत्तम मिलाये गए हैं। ये सब पदले भोलवादाके संपान (Deputy Bail Agency) थे। यहाँके भाष-वासा अकसर हिंदू ही है।

भोलवाडो—बम्बईप्रदेशके मन्नाम जिलामन्तर्गत एक महत्-ग्राम। यह दुल्हा नदीके बाएँ किनारे बसा है।

भोल्य—दक्षिण अरबके मलेश्वर उपसागरस्थित एक सुद-द्वीप। यहाँको बीडकीर्ति और पगोडा (मन्दिर)

समूह मछाट् अजाककी कीर्ति कह कर प्रसिद्ध है। भोलभूषण (मं० र्वो०) भूषणमोति भूषणकी म्पु, म्पु भोजानों भूषण। गुजा, पुंघमो।

भोलु (मं० वि०) विभेमोति भो-रु। भयनीक, इर पोह।

भोलुप (मं० पु०) विभेमोति भो- (विभः कुवमुन्मौ) प ३। २। १५४) १ भोह, भयनीक। २ मन्तुह, भाह।

भोपक (मं० वि०) भोपयते भो विर पु ५ पमुद्। भय-कारक, भयंकर।

भोपटाचार्य—एक आसुर्येन्द्रात्मके प्रणेता। इयुमन्तर्गे मन्त्रमासन्तर्गमें इनका नामोन्देश किया है।

भोपण (मं० पु०) भोपयते इति भो णिच् (विपेदेपु भोप व ५ ७। ३। ४०) इति पुक्, भोपिवास्तुततो मन्वादिशवापु म्पु। १ भयानकरत्त। (पादिप्य) २ कद्रुदक, कूदक। ३ कपोत, कयुतर। ४ हिमाल्य, एक प्रकारका ताल ५। ५ विप। ६ जल्यकी, सन्ई। ७ घटा। (वि०) ८ भयानक, उरायना। ९ जो बहुत उग्र या क्रुष्ट हो।

भोपणक (मं० वि०) भयोहवाद्क, १ शकना।

भोपणना (मं० र्वी०) भोपण होनेका भाग, उरायभावन

भोपणो (मं० र्वी०) मोताकी एक सगीका नाम।

भोषा (मं० र्वी०) भो णिच्, युक्त अह्। १ भयदर्शीय, इर दिगन्ताना। २ भय, इर।

भोदिशाम (मं० पु०) लक्ष्मीशामके पुत्र। भाव गोन भोविन्दु टोका-प्रणेता नारायणके प्रतिपालक थे।

भोन्य (मं० वि०) विभेत्त्वम्यादित् भो मक् (विभः पुण् वा उण् २। १। ४०) इति-मक् वा पुनाममन्। १ भयानक। (पु०) २ भयानक रम्। ३ विप। ४ महाम्। ५ गाङ्गेय, ज्ञाननुगाङ्गपुत्र। इनका उपाधि-विषयन् महाभारतमें इस प्रकार मिलता है,—

महाराज ज्ञाननुने गङ्गासे डयादा। वार गङ्गासे ज्ञान्युसे इस प्रकार प्रतिष्ठा कराई, "मैं गुन पा अगुन जो नाम वर" यममें याग मुक्के हन्नीय या अग्नि वरक्य मर्दों कद्र मकी। अगर कर्ते तो मैं पुनः प्रमने कद्रम पर कमी जाऊंगे।" इस प्रकार प्रतिष्ठापद ही हुँके सुगन्धक समय करतीन करने लगे। तजनाः नाशयुके औरत और गङ्गाके गर्तमें भोज पुन उपाय है।

जिस समय जो पुत्र जन्म ग्रहण करता था, गद्दा उम्मी समय उसको जलमें फेंक देती थीं । इस प्रकार उन्होंने सात पुत्र फेंक डाले । इस पर राजा शान्तनु बड़े ही दुःखित हुए । किंतु गद्दा चली जायंगी, इस डरसे वे उन्हें कुछ कह भी नहीं सकते थे । अन्ततः आठवां पुत्र उत्पन्न हुआ । राजाने दुःखित हो कर अपने पुत्रको रक्षाके लिए गद्दासे कहा, 'हे निन्दुरे ! पुत्रहत्या मत करो । तुम बड़ी ही निर्दयी हो—तुम कौन और किसकी कन्या हो ?' यह सुन कर गंगामे उत्तर दिया 'राजन ! तुम्हारे पुत्रकी हत्या न करूंगी, तुमने जो प्रतिष्ठा की थी वह आज भङ्ग है, सुनरां में अब क्षण भर भी तुम्हारे साथ नहीं रह सकती । मैं जहूकी कन्या गद्दा हूँ, देवकार्य-सिद्धिके लिए मैंने तुम्हारे साथ सहवास किया था । तुम्हारे पुत्रगण महातेजा अष्टवसु थे, उन्होंने वशिष्ठके शापसे मनुष्य होकर जन्म लिया था । वसुओंके साथ मेरी यहाँ प्रतिष्ठा थी, कि उनके जन्म लेते ही मैं उन्हें मानव जन्मसे मुक्त करूंगी । यही कारण है, कि मैंने उन्हें जलमें फेंक डाला । अब तुम अपने पुत्रका पालन करो । मैंने पहले ही तुम्हारे लिए वसुओंसे प्रार्थना की थी । इस पर उन्होंने कहा था, —केवल धूम्रनामक वसु ही कर्मदोषसे बहुत दिन तक मनुष्यलोकमें वास करेंगे । अतएव यह वही धूम्रसु हैं, तुम्हारे पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए हैं । ये कभी भी विवाह न करेंगे—ये धर्मात्मा, दृढमतिश्च तथा सर्वशास्त्रविगारद हो कर सर्वदा तुम्हारे प्रियानुष्ठानमें ही नियुक्त रहेंगे ।'

इतना कह कर गद्दा अन्तर्धान हो गई । शान्तनुने पुत्रका नाम देवव्रत तथा गाङ्गेय रखा । धीरे धीरे देवव्रत पिताकी अपेक्षा सभी विषयोंमें विचक्षण निकले इस समय विद्वत्पण्डितोंका य धनुर्वेदादिमें कोई भी इनकी बराबरी नहीं कर सकता था । राजा शान्तनु एक दिन यमुनाके किनारे गये और वहाँ एक दामकन्या पर उनकी दृष्टि पड़ी । कन्याकी देहसे लगभग एक योजन तक कमलकी-सी गन्ध निहलती थी । राजा उस अनुपम रूप लायण्यवती दामकन्याको देख कर काममोहित हो गए और उससे विवाह करनेके लिये उसके पितामें अपना अभिप्राय प्रकट किया । इस पर कन्याका पिता राजा

हो गया । उसने कहा, "महाराज ! आपकी कन्या देवोंमें मुझे कोई आपत्ति नहीं, किंतु पहले आपको इस प्रकार एक प्रतिज्ञा करनी होगी कि, 'मेरी कन्याके गर्भसे आपके यदि कोई पुत्र उत्पन्न होगा, तो सर्व प्रथम उसीको आप अपना राजसिंहासन प्रदान करें—आप अन्य पुत्रका राज्य पर अभिधिक नहीं कर सकते ।"

राजा सहसा प्रतिज्ञापाशमें आवद्ध न हो कर भ्रम-मनोरथ हो घर लौटे । अनन्तर देवव्रतने यह सुनते ही दासराजाके पास जा कर प्रतिज्ञा की, 'मैंने आजसे जीवन पर्यन्त ब्रह्मचर्य अवलम्बन किया—मैं पुत्र-हीन हो कर भी स्वर्गप्राप्त करूंगा । इस कन्याके गर्भजात पुत्र ही राजा हो'गे ।' देवव्रतकी ऐसी भोग्य प्रतिज्ञा सुन कर आकाशसे देवतागण उनके ऊपर पुण्य-चर्चण करने लगे । देवव्रतने अपनी सुदृढ़ प्रतिज्ञाका पालन किया था, इस कारण ये भोग्य नामसे विख्यात हुए । भोग्यने सत्यवतीकी ला कर पिताको समर्पण किया । शान्तनुने भोग्यका किया हुआ यह दुःसाध्यकर्म सुन कर उन्हें इच्छामृत्युका वर दिया । इस भाव्यसे शान्तनुके चित्राङ्गद तथा विचित्रवीर्य नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए । शान्तनुकी मृत्युके बाद चित्राङ्गद राज-तन्त्र पर बैठे । ये गंधर्वसे मारे गए और भोग्यने उन-को अन्त्येष्टिकिया कर विचित्रवीर्यको कुरुराज्य पर अभिधिक किया ।

भोग्य माता सत्यवतीके आदेशानुसार राज्यपालन करने लगे । बालक विचित्रवीर्य नाममात्रको राजा रहे । अनन्तर भोग्य काशीराजकन्याको स्वयम्बरस्वभामें जा कर वहाँसे अम्बा, अम्बिका और अम्बालिका नामक तीन कन्याओंको पल्लवृक्ष हरण कर अपने देगमें ले आये । उनमेंमें अम्बा भगदत्तके प्रति अनुरक्त थी, अतः उन्हें छोड़ कर शेष अम्बिका और अम्बालिका नामक दो कन्यासे विचित्रवीर्यका विवाह हुआ । विचित्रवीर्य अनुपम अवस्था हीमें करालकालके निवार-बने । अनन्तर सत्यव्रतने पुत्रजोकरने कानर हां दोनों पुत्र बधुके साथ विचित्रवीर्यकी अन्त्येष्टिकिया समाप्त कर भोग्यसे कहा, 'पुत्र ! राजा शान्तनुका वंश, कीर्ति तथा पिण्ड स्तोक तुम पर ही निर्भर है । तुम सर्व शास्त्रवार-

हमों हो, अतः मैं तुममें अत्यन्त आश्वासनपूर्वक हो तुम्हें किमो कार्यमें नियुक्त करूँगा। आज्ञा है, तुम हममें भयभीत न होगे। तुम्हारा प्रिय भ्राता मेरा पुत्र-विचित्रवर्षे अभुवक अवस्थामें ही इस लोकमें चल-रमा है। तुम्हारे भ्रातृजाया रूपर्यायनसम्पत्ता तथा शुभलक्षण ही है पुत्रकामा हूँ ही। अतएव तुम मेरो बंध-परम्पराको रक्षाके लिए मेरे नियोगानुसार इन दो स्तुवा-में पुत्रोत्पादन कर धर्म-रक्षा करो और पितृव्यरूपमें भविष्यिक हो कर धर्मानुसार राजकाज चलाओ।

भोग्यमें माता मरत्यवतीकी यह बात सुन कर कहा, "माता ! आपमें जो कुछ कहा, यह निःसन्देह सुनि-सङ्ग है। किन्तु मैंने जो प्रतिज्ञा की है, उसे आप भले प्रकार जानना हैं यह प्रतिज्ञा केवल आपके लिए ही की गई थी। अब भी मैं उस मरत्यको आशुपण करनेके लिए प्रतिज्ञा करता हूँ, कि मैं वी-लोकवका परिव्याग कर सकना हूँ देवलोकाका साहाय्य छोड़ सकना हूँ अथवा इसमें भी जो अधिक हो मुझे उमें भी छोड़ सकना हूँ पर मरत्यको कर्मों भी नहीं छोड़ सकना। द्युगण किया धर्मराज धमका भले ही स्वयं कर दें पर मैं कदापि मरत्यपथमें न टिगूँगा। आप धर्म-के प्रति दृष्टि रखें हम स्वर्गको विनष्ट न करें। अतिवका भय-वा-नरत्न निन्दा निन्दनीय है, अतएव मेरे द्वारा यह कार्य कदापि सम्पन्न न होगा। आप किमो विमुक्त प्राप्तिकी निषेधा कर यह कार्य सम्पादन करें। मरत्य-पत्नीमें भोग्यका इस प्रकार वृद्धप्रतिष्ठ देव कर उनमें और अनुशेष न किया। उन्होंने धेद्व्याम द्वारा अन्दिता तथा अन्वयिकामें यथाक्रम भूतगण और पाण्डु नामक दो पुत्र उत्पन्न किये। पाण्डुके पांच और भूतगणके सौ पुत्र उत्पन्न किये। प्रति-पादन किया था।

अन्तमें अर्जुनसे आहत हो शरणापना पर एक वर्ष-विश्व-उस समय क्षत्रियपापन होनेके कारण इन्होंने प्राणत्याग न किया। कुम्पाएडवीका युद्ध समाप्त होने पर मुषि छिपने इनसे धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षविषयके अन्वये उपदेश सोचें थे। वेमा कोई भी दृष्टि विवर न था तिमं भोग्यने मुषिछिपने न कहा हो। समस्त जानिवरमें एही उपदेश वर्णित है। अन्तर मूर्यकी गति उत्तरापण होने पर माय महीनेकी शुक्राष्टमीको भोग्यने प्राणत्याग किया। (महाभारत)

भोग्यक (सं० पु०) विद्वान्प्रियाति एक राजा। आप धी-रुण महिषी रुषिमर्णाके पिता थे। (हरिवं ६१ भ०) हरिमती देगे।

भोग्यकमुत्ता (सं० स्त्री०) भोग्यका स्त्री रुषिमती।  
भोग्यकेजाय (सं० पु०) काशीभिन केजाय मूर्तिभेद। (काशी० ३३ प०)

भोग्यगन्धक (सं० पु०) माधवीलता।  
भोग्यगन्धित-भोग्यधराज (सं० पु०) युद्धभो।  
भोग्यजननी (सं० स्त्री०) भोग्यधर जननी माता। गङ्गा।  
भोग्यपञ्चक (सं० स्त्री०) भोग्येण वृत्तमुपविष्ट या पञ्चकम्।  
१ एकदशामे ले कर पूर्णिमा तक पांच तिथि। इसे बह-पञ्चक भी कहते हैं। २ इन पांच तिथियोंमें कलक प्रतमेष्ट। इस प्रत्येक तिथानके विषयमें महाभुवापने इस प्रकार लिखा है,—कार्तिकमासमें शुक्रवासी बका दशामे ले कर पूर्णिमा तक प्रतिदिन प्रातःकाण्ड बका विधि प्रातःश्रम्यादि समाप्त कर बुकवितामह भोग्यका तर्पण करना चाहिए। भोग्यतर्पणके बाद विष्णुविनायक का तर्पण कर भोग्यको निम्नोक्त मन्त्रमें धार्य देव उचित है। मन्त्र यथा —

भोग्यनामधराय नमोऽनेकव्ययकाय ॥  
... नै देवते भोग्याय अर्चना प्रयत्नयेते ॥  
... दिन नियमपूर्वक रहना चाहिए। जो इस-इस प्रकार अनुष्ठान करने हैं, उन्हें देना है। महाभुवापके ३३३ ...  
... विष्णुके ...  
... यथा।

भोग्यने तोषनमन्त्र  
... भोग्याय  
... भोग्याय वि०  
... भोग्यमन्त्र  
... भोग्यमन्त्र  
... भोग्यमन्त्र

मांस मछली नहीं खानी चाहिए। कार्तिकमासमें आमिय खाना बिलकुल मना है। कोई अपारण हो कर कार्तिक-मासमें आमिय भोजन कर सकता है पर उक्त पांचों तिथिमें भूल कर भी न करे।

“एकादश्यादिषु तथा तासु पञ्चमु रात्रिषु।

दिने दिने च स्नातव्यं शीतलाय नदीषु च ॥

वर्जितव्या तथा द्विधा मासभोजनमेव च ॥”

(वृत्त्यतस्य कार्तिकवृत्त्य)

प्रवाद है, कि कार्तिकमासमें उक्त पांचों दिन बगला भी आमिय भोजन नहीं करता, इसीलिए इन पांच तिथिको चकपञ्चक भी कहते हैं।

उक्त पांचों दिन विष्णु भगवान्‌के उद्देशसे पूजा, जप तथा होमादि करना बड़ा ही पुण्यजनक है।

भीष्मपितामह—भीष्म देखो।

भीष्ममणि ( सं० खो० ) हिमालयके उत्तरमें मिलनेवाला एक प्रकारका सफेद रंगका पत्थर या मणि। इसे धारण करनेसे शुभ होता है। भीष्मरत्न देखो।

भीष्ममिश्र—१ श्वएनप्रणेता। २ एक मैथिली एरिडत। इन्होंने कुमारसम्भवटीका, गीतगङ्गा और वृत्तचंपण नामक ग्रंथ लिखे हैं।

भीष्मरत्न ( सं० खो० ) भीष्म भवान्‌के रत्न दुर्लभत्वान्। हिमालयके उत्तर प्रदेशमें होनेवाला शुकुवर्णका प्रस्तर। भीष्मरत्नकी उत्पत्ति तथा परीक्षादिका विषय गण्ड-पुराणमें इस प्रकार लिखा है,—

हिमालयके उत्तर प्रदेशमें यह मणि पाई जाती है। इसका वर्ण दूधसे भी ज्यादा सफेद होता और यह एक प्रकारके विषपरधरमें गिना जाता है।

हिमालयके उत्तर प्रदेशमें देवद्वेपी असुरका वीर्य गिर पड़ा था। उसीसे उस देशमें भीष्मरत्नकी उत्पत्ति निकली है। यह रत्न कुछ तो शुभ वर्ण शङ्ख तथा पद्म तुल्य आभाविशिष्ट, अमलतास फूलके जैसा चमकीला और कुछ होरकके समान प्रभायुक्त होता है।

जो भक्तिपूर्वक हिमालयदेशगोप्यभ विशुद्ध भीष्मरत्न गलेमें धारण करने हैं, उन्हें सब समय सब प्रकारकी सम्पत्ति लाभ होती है। विशेषतः यह मणिधारण करनेसे पृथिवी पर जितने प्रकारके विषय हैं उनके क्षोय

जाने रहते हैं। भीष्मण भरण्यचर द्विंश्र जंतु इस मणि को देख कर डरते हैं। जिसके पास यह मणि रहती है, द्विंश्र जन्तु उसके निकट नहीं जा सकते। भीष्मरत्नके धारण करनेवालोंकी किसी प्रकारका डर नहीं होता। शुण्युक्त भीष्ममणि तीन अंगुलियोंमें धारण कर पितृ-लोकके उद्देशसे तर्पण करनेसे वे बहुत दिनों तक तृप्त रहते हैं। इस मणिसे सर्प, वृष्टिचक्र, अण्डज तथा चूहेका विष नष्ट होता है और भयङ्कर जल, शत्रु, अग्नि तथा चोरका बिलकुल भय नहीं रहता।

निन्दितमणि—शैवाल वर्ण, चक्र वर्ण, कर्कश, पोताम, निम्बभ, मलिन तथा विचण भीष्मरत्न निन्दित हैं। ऐसा भीष्मरत्न धारण करनेसे पद पदमें अनिष्ट होता है। विष्र व्यक्तियण देश, काल और पात्रकी विवेचना कर मूल्यावधारण करे। दुरीतपन्न होनेसे कुछ अधिक भीरु समोपोत्पन्न होनेसे उससे कुछ कम धन्य समझना चाहिए।

भीष्मसू ( सं० खो० ) भीष्मं सूते प्रसूते इति विवप्। गङ्गा। भीष्मस्तवगाज ( सं० पु० ) भीष्मदेशवृत्त श्रोत्रण्यस्तव। महाभारतके भीष्मपर्व ४७वे अध्यायमें यह स्तव है। भीष्मस्वरत्नज ( सं० पु० ) बुद्धभेद।

भीष्मपुत्रमी ( सं० खो० ) भीष्मस्य अष्टमी, या भीष्म-नाजिका अष्टमी। माघ मासकी शुक्लपौर्णमी। इस दिन भीष्मदेवने प्राण त्याग किया था, इसीलिए यह तिथि भीष्माष्टमी नामसे प्रसिद्ध हुई। भीष्मने आजीवन ब्राह्म-चर्याका अवलम्बन कर प्राण छोड़ा था, इसीलिए भीष्मा-ष्टमीके दिन सर्वोक्त भीष्मके उद्देशसे तर्पण करना चाहिए। इस तिथिको उनका तर्पण करनेमें सम्प्रत्यस्-रत्न पाप तत्काल विनष्ट होता है।

“शुल्कान्द्रम्यान्तु मावस्य दद्याद् भीष्माय यो जज्ञम्।

सम्पत्परकृत्तं पाप तन्त्रणान्देव नम्यति ॥”

( तिथिपाल्य )

भीष्म क्षत्रिय थे, तथापि ब्राह्मणोंको उनके उद्देशसे तर्पण करना चाहिए। यदि कोई ब्राह्मण अपनेको वर्णभ्रष्ट समझ भ्रष्टतर्पण न करे, तो उनका सम्प्रत्यस्करण पुण्य समूह बहुत जल्द विनष्ट होता है।

दर्शो हो, अतः मैं तुमसे अत्यन्त आश्वासयुक्त हो तुम्हें किसी कार्यमें नियुक्त करूँगा। आशा है, तुम इसमें असहमत न होगे। तुम्हारा प्रिय भ्राता मेरा पुत्र-विचित्रवार्य अबुवक अवस्थामें ही इस लोकसे चल-बसा है। तुम्हारी भ्रातृजाया रूपर्यावन्सम्पन्ना तथा शुभलक्षणा है। ये पुत्रकामा हुई हैं। अतएव तुम मेरी वंश-परम्पराको रक्षाके लिए मेरे नियोगानुसार दत्त दो स्तुपा-से पुत्रोत्पादन कर धर्म-रक्षा करो और पितृराज्यमें अभिषिक्त हो कर धर्मानुसार राजकाज चलाओ।'

भीष्मने माता सत्यवतीको यह बात सुन कर कहा, "मातः ! आपने जो कुछ कहा, वह निःसन्देह युक्ति-सङ्गुन है। किन्तु मैंने जो प्रतिज्ञा की है, उसे आप भले प्रकार जानती हैं। यह प्रतिज्ञा केवल आपके लिए ही की गई थी। अब भी मैं उस सत्यको अक्षुण्ण रखनेके लिए प्रतिज्ञा करता हूँ, कि मैं कौलोच्यका परित्याग कर सकता हूँ देवलोकका राजत्व छोड़ सकता हूँ अथवा इससे भी जो अधिक हो सके उसे भी छोड़ सकता हूँ पर सत्यको कभी भी नहीं छोड़ सकता। देवगण किंवा धर्मराज धर्मका भले ही त्याग कर दें पर मैं कदापि सत्यपथसे न डिगूँगा। आप धर्मके प्रति दृष्टि रखें हम सबोंको विनष्ट न करें। शत्रियका अस्त्व्याघरण नितान्त निन्दनीय है, अतएव मेरे द्वारा यह कार्य कदापि सम्भन न होगा। आप किसी विशुद्ध प्राणिको नियोग कर यह कार्य सम्पादन करें।' सत्यवतीने भीष्मको इस प्रकार दृढ़प्रतिज्ञ देल कर उनसे और अनुरोध न किया। उन्होंने वेदव्यास द्वारा अम्बिका तथा अम्बालिकासे यथाक्रम भृतराष्ट्र और पाण्डु नामक दो पुत्र उत्पादन कराये। पाण्डुके पाँच और भृतराष्ट्रके सी पुत्र हुए। भीष्मने सबोंका प्रतिपालन किया था।

भीष्मने तार्थत्रयमणके समय महर्षि पुलस्त्यसे अनेक उपदेशान्त तथा भगवान् चित्रगुप्तको पूजा द्वारा श्रित्ति-का कर्त्तव्य-व्रत समाप्त किया था। कुरुपाण्डवके युद्धमें इन्होंने कौरवपक्षका अथलभ्यन कर यह प्रतिज्ञा की थी, कि मैं प्रति दिन दत्त हजार जन्तु सेनाका संहार करूँगा। भीष्म अपने प्रतिनानुसार दत्त दिन तक मोरतर युद्ध कर

अन्तमें अर्जुनसे आहत हो शरशय्या पर पड़ रहे—किन्तु उस समय दक्षिणायन होनेके कारण इन्होंने प्राणत्याग न किया। कुरुपाण्डवोंका युद्ध समाप्त होने पर युधिष्ठिरने इनसे धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्षविषयके अनेक उपदेश सोखे थे। ऐसी कोई भी दुरूह विषय न था जिसे भीष्मने युधिष्ठिरसे न कहा हो। समस्त शान्तिपूर्वमें यही उपदेश वर्णित है। अनन्तर मूर्त्यकी गति उत्तरायण होने पर मात्र महीनेकी शुक्लाष्टमीको भीष्मने प्राणत्याग किया। (महाभारत)

भीष्मक ( सं० पु० ) विदर्भाधिपति एक राजा। आप श्री-कृष्ण महिषी कश्मिणीके पिता थे। ( हरिवंश ६१ अ० ) कश्मिणी देतो।

भीष्मकस्तुता ( सं० स्त्री० ) श्रीकृष्णको स्त्री कश्मिणी। भीष्मकेशव ( सं० पु० ) काशीस्थित केजव मूर्तिभेद। ( काशीच० ३३ अ० )

भीष्मगन्धक ( सं० पु० ) माघवीलता। भीष्मगर्जित-श्रीवस्वराज ( सं० पु० ) बुद्धभेद। भीष्मजननी ( सं० स्त्री० ) भीष्मएव जननी माता। गङ्गा। भीष्मपञ्चक ( सं० स्त्री० ) भीष्मेण वृत्तमुपदिष्टं वा पञ्चकम्। १ एकादशीसे ले कर पूर्णिमा तक पाँच तिथि। इसे षष्पञ्चक भी कहते हैं। २ इन पाँच तिथियोंमें कर्त्तव्य व्रतभेद। इस व्रतके विधानके विषयमें गरुडपुराणमें इस प्रकार लिखा है,—कार्तिकमासमें शुक्लपक्षकी एकादशीसे ले कर पूर्णिमा तक प्रतिदिन प्रातःकाल यथा विधि प्रातःकृत्यादि समाप्त कर कुम्भपितामह भीष्मका तर्पण करना चाहिए। भीष्मतर्पणके बाद पितृपितामहोंका तर्पण कर भीष्मको निम्नोक्त मन्त्रसे अर्घ्य देना उचित है। मन्त्र यथा—

"वयुनामवताराय शान्तनोरात्मजाय च।

अर्घ्यं ददामि भीष्माय आजन्म ब्रह्मचारिणे ॥"

उक्त पाँचों दिन नियमपूर्वक रहना चाहिए। जो इस प्रकार नियम कर इस व्रतका अनुष्ठान करते हैं, उन्हें अनायास स्वर्ग प्राप्त होता है। गरुडपुराणके १२३ अध्यायमें तथा हरिभक्तियिलासके १६६ बिलाममें इसका विस्तृत विवरण लिखा है। विन्तार हो जानेके भयसे यहाँ पर कुछ नहीं दिया गया। उक्त पाँचों दिन

मांस मछली नहीं खानी चाहिए। कार्तिकमासमें आमिष खाना बिलकुल मना है। कोई अपाण्य हो कर कार्तिक-मासमें आमिष भोजन कर सकता है पर उक्त पांचों तिथिमें भूल कर भी न करे।

“एकादश्यादिषु तथा तामु पद्ममु राशिषु।

दिने दिने च स्नातव्यं मीतवापु नदीषु च ॥

वजिनव्या तथा हिवा मांसभोजनमेव च ॥”

(कृत्पतन्व कार्तिककृत्य)

प्रवाद है, कि कार्तिकमासमें उक्त पांचों दिन बगला भी आमिष भोजन नहीं करता, इसीलिए इन पांच तिथिको चक्रपञ्चक भी कहते हैं।

उक्त पांचों दिन विष्णु भगवान्‌के उद्देशमें पूजा, जप तथा होमादि करना बड़ा ही पुण्यजनक है।

भोष्मपितामह—भोष्म देवता।

भोष्ममणि ( सं० खो० ) हिमालयके उत्तरमें मिलनेवाला एक प्रकारका सफेद रंगका पत्थर या मणि। इसे धारण करनेसे शुभ होता है। भोष्मरत्न देवता।

भोष्ममिश्र—१ खण्डनप्रणेता। २ एक मैथिली पण्डित। इन्होंने कुमारसम्भवटीका, गीतशङ्कर और वृत्तदोषण नामक ग्रंथ लिखे हैं।

भोष्मरत्न ( सं० खो० ) भोष्म भयानक रत्न दुर्लभत्वान् हिमालयके उत्तर प्रदेशमें होनेवाला शुक्रवर्णका प्रस्तर। भोष्मरत्नकी उत्पत्ति तथा परीक्षादिका विषय गरुड़-पुराणमें इस प्रकार लिखा है,—

हिमालयके उत्तर प्रदेशमें यह मणि पाई जाती है। इसका वर्ण दूधसे भी ज्यादा सफेद होता और यह एक प्रकारके विषपत्थरमें गिना जाता है।

हिमालयके उत्तर प्रदेशमें देवद्वेयी अमुकरा घोष गिर पड़ा था। उसीसे उस देशमें भोष्मरत्नकी खान निकली है। यह रत्न कुछ तो शुभ्र वर्ण शङ्ख तथा पद्म मुख्य आभाविशिष्ट, अमलतास फूलके जैसा चमकीला और कुछ होरकके समान प्रमाणुक होता है।

जो भक्तिपूर्वक हिमालयदेशगतोत्पन्न विशुद्ध भोष्मरत्न गलेमें धारण करने हैं, उन्हें सब समय सब प्रकारकी मंगलित लाभ होती है। विशेषतः यह मणिधारण करनेसे वृथिघी पर जितने प्रकारके विषय हैं उनके दोष

जाने रहते हैं। भोष्ण अरण्यचर हिंस्र जंतु इस मणि को देख कर डरते हैं। जिसके पास यह मणि रहती है, हिंस्र जंतु उसके निकट नहीं जा सकते। भोष्मरत्नके धारण करनेवालोंको किसी प्रकारका डर नहीं होता। शुण्युक्त भोष्ममणि तीन अंगुलियोंमें धारण कर पितृ-लोकके उद्देशसे तर्पण करनेसे वे बहुत दिनों तक मृत रहते हैं। इस मणिसे सर्प, वृष्टिक, अण्डज तथा चूहेका विष नष्ट होता है और भयङ्कर जल, जलू, अग्नि तथा चोरका बिलकुल भय नहीं रहता।

निन्दितमणि—शैवाल वर्ण, चक्र वर्ण, कर्कश, पोताम, निष्प्रभ, मलिन तथा विषण भोष्मरत्न निन्दित है। ऐसा भोष्मरत्न धारण करनेसे पद पदमें अनिष्ट होता है। विषण व्यक्तित्वाण देग, काल और पावकी विवेचना कर मृत्यावधारण करे। दूरीत्पन्न होनेसे कुछ अधिक और समीपोत्पन्न होनेसे उससे कुछ कम मृत्यु सम्भन्ना चाहिए।

भोष्मम् ( सं० खो० ) भोष्मं सन्ने प्रवृत्ते इति विषयः। गङ्गा।

भोष्मस्तवराज ( सं० पु० ) भोष्मदेवकृत श्रीकृष्णस्तव। महाभारतके भोष्मपर्व ७७वें अध्यायमें यह स्तव है।

भोष्मस्वरराज ( सं० पु० ) बुद्धभेद।

भोष्मःष्टमी ( सं० खो० ) भोष्मव्य अष्टमी, या भोष्म-नाशिका अष्टमी। प्राय मासको शुक्राष्टमी। इस दिन भोष्मदेवने प्राण त्याग किया था, इसीलिए यह तिथि भोष्माष्टमी नामसे प्रसिद्ध हुई। भोष्मने आज्ञावन ब्रह्म-चर्याका अवलम्बन कर प्राण छोड़ा था, इसीलिए भोष्मा-ष्टमीके दिन सबको भोष्मके उद्देशमें तर्पण करना चाहिए। इस तिथिको उनका तर्पण करनेसे मध्यत्सर-वृत्त पाप तत्काल विनष्ट होता है।

“शुक्राष्टम्यान्तु मायस्य दवाद् भोष्मस्य यो जन्म।

सम्बलरत्नं पाप तत्त्रयादित नरपति ॥”

( निर्वाणस्तव )

भोष्म शक्ति श्रेय, तथापि ब्राह्मणोंको उनके उद्देशसे तर्पण करना चाहिए। यदि कोई ब्राह्मण अपने ही बन्धुश्रेष्ठ सम्बन्ध भोष्मतर्पण न करे, तो उनका सम्बत्सरवृत्त पुण्य समूह बहुत जल्द विनष्ट होता है।



“ब्राह्मणाद्यास्तु यो वर्णा ददुर्भोग्याय नो जनम् ।

सवत्सरकृतं पुण्यं तत्कृपायैव नर्थात् ॥” ( तिथितत्त्व )

तर्पण करना सर्वोक्त निन्द्य करार्थ है। किसी किसीका मत है, कि प्रति दिन तर्पणके समय भोग्यका तर्पण करना चाहिए। किन्तु विशेषरूपसे जाना गया है, कि भोग्याष्टमोमें भोग्यतर्पण अवश्यकर्त्तव्य है। प्रति दिन भोग्यतर्पण नहीं करनेसे बड़ा भारी दोष होता है।

ब्राह्मणकी पितृतर्पण करनेके बाद भोग्यतर्पण करना चाहिये। किन्तु क्षत्रियादि वर्ण पितृतर्पण करनेके पहले हो ऐसा करें। तर्पण मन्त्र—

“वैषामपदमगोशाय साङ्गतिप्रनराय च ।

अपुत्राय ददाम्येतं सलिलं भोग्यवर्मणे ॥

भोग्यः शान्तनवो वीरः सत्यवादी जितेन्द्रियः ।

आभिरिन्द्रियात्मोऽनु पुत्र्यन्वाचिता क्रियाम् ॥

( तिथितत्त्व )

जो प्रतिदिन तर्पणके साथ साथ भोग्यतर्पण करते हैं, उनके समो दोष दूर हो कर मुक्त होते हैं।

भुइ ( हि० खी० ) पृथ्वी, भूमि।

भुइधरा ( हि० पु० ) भुइधरा देतो।

भुइफोर ( हि० पु० ) वर्षाकालमें तालाबके आस पास मिलनेवाली एक प्रकारकी खुँभो। लोग इसे तरकारी बना कर खाते हैं।

भुइयाँ—खनामएयात भारतवासी जातिविशेष।

भुइया देतो।

भुइहरा ( हि० पु० ) १ यह स्थान जो भूमिको छोड़ कर बनाया गया हो। २ पृथ्वीके नीचे बना हुआ जमरा, तहखाना।

भुंगाल ( हि० पु० ) तुम्ही या भोपा। इसके द्वारा सैनिक नायों पर अध्यक्ष अपनी आज्ञाकी घोषणा करता है।

भुंजना ( हि० क्रि० ) १ भूजनेका अकर्मक रूप, भूना जाना। २ भुजसना।

भुंजली ( हि० खी० ) एक प्रकारका कीड़ा। इसे पिन्ला भी कहते हैं। इसके जरीर पर बाल होने हैं जो स्पर्म होने ही जरीरमें शुभ जाते हैं जिससे खुजलाहट होनी है।

भुंजा ( हि० वि० ) बिना सींगका, जिसके सींग न हों।

भुंजी ( हि० खी० ) मूँछहीन एक प्रकारकी छोटी मछली। यह गिरदीकी जातिकी होती है। गंधारोंका विधाम है, कि इसके खानेसे खानेवालेको मूँछ नहीं निकलतो।

भुभा ( हि० पु० ) नेमर आदिकी खुँ जो फलके भीतर भरी रहती है और डोडेके सूखने पर बाहर निकलता है।

भुआल ( हि० पु० ) राजा।

भुइंथांवाला ( हि० पु० ) एक प्रकारकी घास। यह वर्षाकालमें प्रायः घरोंके आस पास उगती है।

विशेष विवरण भूम्यामतकी शब्दमें देखो।

भुइकांडा ( हि० पु० ) एक प्रकारकी घास। इसकी पत्तियाँ लहसुनकी पत्तियोंसे चौड़ी होती हैं। इसकी जड़में प्याजकी तरह गोल गांठे पड़ती हैं। यह समुद्रके किनारे या जलाशयोंके पास होता है। इसमें लंबे फूल लगते हैं। इस घासका दूसरा नाम सफेद लस भो है।

भुइंजोल ( हि० पु० ) भूकम्प, भूचाल।

भुइंतरव ( हि० पु० ) सनायकी जातिका एक पेड़। इसकी पत्तियाँ सनायके नामसे याजारीमें बिकती हैं। इसका पेड़ चक्रवर्त्तसे मिलता जुलता है।

भुइंदंधा ( हि० पु० ) १ वह कर जो भूमि पर बिना जलानेके लिये मृतकके सम्बन्धियोंसे लिया जाता है। २ वह कर जो भूमिका मालिक किसी व्यवसायीसे व्यवसाय करनेके लिये ले।

भुइंधरा ( हि० पु० ) आयाँ लगानेकी वह रीति वा ढंग जिसके अनुसार बिना गड़ढा छोड़े ही भूमि पर बरतती वा अन्य पकानेकी चीजोंकी रख कर आग सुलगा देते हैं।

भुइंनास ( हि० पु० ) १ किसी वस्तुके एक छोरकी भूमिमें इस प्रकार दबा कर जमाना कि उसका कुछ अंश पृथ्वीके भीतर गड़ जाय। २ अनार। ३ बिना जड़ का एक छोटा पौधा। यह प्रायः खेतोंमें उगता है। ४ क्रियाशुंकी सिटकियाँ जो नीचेकी ओर पत्थरके गड़होंमें घेडती हैं।

भुइंहार ( हि० पु० ) मिरजापुर जिलेके दक्षिण भाग में रहनेवाली एक अनार्य जाति। भूमिहार देतो।

भुइं ( हि० खी० ) एक प्रकारका कीड़ा। इसका दूसरा नाम पिहा भी है। भुइंली देतो।

भुक्त ( हि० पु० ) १ भोजन, खाद्य । २ अग्नि, आग ।  
भुक्तद्वीप—भुक्तप्रदेशके भुजपरकरनगर जिलान्तर्गत एक  
नगर ।

भुक्तभूपाल ( सं० पु० ) दक्षिणात्यके एक राजा ।  
भुक्खड़ ( हि० वि० ) १ जिसे भूख लगी हो, भूखा । २  
दृष्टि, कंगाल । ३ वह जो बहुत खाता हो और जिसे  
प्रायः भूख लगी रहती हो, पेट ।

भुक्त ( सं० लि० ) भुज-कर्मणि क । १ भक्षित, जो खाया  
गया हो । २ उपभुक्त, भोगा हुआ । भाष्ये क . क्लृ० ) ३  
भक्षण, खाना । ४ कृतभोग, वह जिसका भोग हो चुका  
हो । प्रह्लोको स्फुट गणनामें भुक्त और भोग्यको स्थिर  
करके गणना करनी होती है ।

भुक्ततिथि ( सं० स्त्री० ) वह तिथि जिसके अवस्थानकाल-  
का क्षय हुआ हो ।

भुक्तपूर्वी ( सं० लि० ) पूर्वमनेन भुक्त ( सर्वां च्वा । पा  
१।२।८७ ) इति इति । पूर्वभुक्त यस्तु ।

भुक्तभोग ( सं० लि० ) भुक्तःकृतः भोगो येन । कृतभोग ।  
“जहात्येनां भुक्तभोगामजोऽन्यः ।” ( श्वेता० उ० )

प्रकृतिके भुक्तभोगा होनेसे पुन्यको मुक्ति होती  
है । जब तक प्रकृतिका भोग शेष नहीं होता, तब तक  
मुक्ति की सम्भावना नहीं ।

भुक्तसमुज्झित ( सं० लि० ) आदौ भुक्तं पश्चात् समुज्झितं  
स्तातानुल्लिखत् समासः । पहले भुक्त, पीछे त्यक्त ।  
पर्याय—फेला, पिण्ड, फेल ।

भुक्तमाल ( सं० शब्द० ) भोजनके टोक वाद ।  
भुद्वयत् ( सं० लि० ) भुक्त इय, इशार्थे चतु । भुक्तकी  
तरह ।

भुक्तदृष्टि ( सं० स्त्री० ) उदरगत भुक्तद्रव्यका उपचय ।  
भुक्तशेष ( सं० क्लृ० ) उच्छिष्ट विशेष, जूटा ।

भुक्ति ( सं० स्त्री० ) भुज-क्तिन् । १ भोजन, आहार । २  
धिपयोगभोग, लौकिक सुख । ३ धर्मशास्त्रानुसार चार  
प्रकारके प्रमाणोंमेंसे एक, कर्त्ता, द्रव्य । ४ प्रह्लोका किसी  
राशिमें एक एक अंश करके गमन या भोग ।

भुक्तिपाल ( सं० क्लृ० ) भोजनपाल, खानेका धरतन ।  
भुक्तिपद् ( सं० पु० ) भुक्तिं भोगं प्रददातीति प्र-दा  
( आदत्तपोषणं कः । पा ३।१।१३६ ) इति क । १ मुद,

मूंग । ( लि० ) २ भोगदाता, भोग देनेवाला ।  
भुक्तिमुहिन ( सं० लि० ) सुहितस्य भुक्तिः प्रत्युप्यंभ  
कादित्वात्परनिपातः । सुनुपमभोग ।

भुक्तोच्छिष्ट ( सं० क्लृ० ) भोजनावशिष्ट, जूटा ।  
भुक्वमरा ( हि० वि० ) १ जो भुलों मरना हो, भुक्खड़ । २  
जो खानेके पीछे मरा जाता हो, पेट ।

भुखाना ( हि० क्लृ० ) भूखसे पीड़ित होना ।  
भुखामाता --राजपूतानेके उदयपुर नगरस्थित देवी प्रतिमा-

विशेष । इस देवीचित्रमें मूर्त्तिमती दुर्गिभक्तकी कल्पना-  
की गई है । देवीमूर्त्तिका गला नरमुण्डमालासे  
सुशोभित है, पार्श्व देजमें दुर्गिभक्तके फटोर निःपेषणसे  
निपीड़ित दो जवयेह रखी हुई हैं, सामनेमें एक शृगाल  
नरमांसलोत्सुप हो कर धीरे धीरे आगे बढ़ रहा है ।  
इसको डरावनी-मूर्त्ति पर नजर पड़ने ही युगपत् भय,  
भक्ति और विस्मयका उदय होता है ।

सुबाल ( हि० वि० ) जिसे भूख लगी हो, भूखा ।

भुगतना ( हि० क्लृ० ) १ भोगना, सहना । २ पूरा होना,  
निवटना । ३ बीतना, चुकाना ।

भुगतान ( हि० पु० ) १ निपटारा, फैसला । २ मृत्यु वा  
देन चुकाना । ३ देना, देन ।

भुगताना ( हि० क्लृ० ) १ पूरा करना, संपादन करना । २  
दुःख सहनेके लिये वाध्य करना । ३ दिताना, लगाना ।  
४ चुकाना, वेवाक करना । ५ दूसरेको भुगतानेमें  
प्रवृत्त करना, भोग कराना ।

भुगाना ( हि० क्लृ० ) भोगनाका प्रेरणार्थकरूप, भोग  
कराना ।

भुज ( सं० स्त्री० ) भुज मोटने क । ( आदित्य । पा ६।२।४५  
इति निष्ठा तत्स न । १ टेढ़ा, वक्र । २ रोगी, बीमार ।

भुजनेव ( सं० पु० ) एक प्रकारका मणिगत । इसमें  
रोगीकी भाँपे टेढ़ो हो जानो है और उबर बहुत बढ़  
जाता है । उन्मादके कारण वह बकभक्त करता है  
और उसके व्यवहारोंमें मूजन आ जाती है । यह  
असाध्य रोग है और इसको अवधि शास्त्रोंमें आठ दिन  
कहो गई है ।

भुक्खड़ ( हि० वि० ) मूर्ख, बेवकूफ ।  
भुज ( सं० स्त्री० ) भुजति यद्यो भयतीति भुज ( शृणुपमणि ।

या ३३१२३२) इति क, यदा भुज्यतेऽनेनेति भुज-  
(हल्पवर्ति। या ३३१२२६) इति वच्, वचि गुणाभावः  
हुत्वाभावश्च (या ३३१६१) १ वाहु, भुजा। पर्याय—वाहु,  
प्रवेष्ट, दांस्, बाहः, बाहा, भुजा, दोष, दोषा, कर, हस्त।  
(मेदिनी) इसका शुभाशुभ लक्षण—

दोनों वाहुके मांसल, कुछ चक्र, सुमिलित, विशाल  
आज्ञालु मित्रित, सुगोल, परिच्छन्न और पीघर हानेसे  
महाराज, अमांसल रोमयुक्त और छोटी होनेसे  
दरिद्र; लोमविहान होनेसे सुखा और हस्तिशुण्डकी  
तर्ह प्रदीप्त होनेसे प्रधान होना है। २ हस्तिशुण्ड,  
दायाँको सूँड़। ३ प्रहोके स्पष्टीकरणके लिये तीन राजसे  
ऊन केन्द्र प्रहाद, प्रहोके स्फुट गणनाकालमें अर्धात्  
कौन प्रह किस राजिके कितने अंश, कला और विकला-  
में अवस्थित है उसे जाननेके लिये भुज स्थिर कर लेना  
होना है।

४ कर, हाथ। ५ शाला, डालो। ६ प्रान्त, किनारा।  
७ त्रिभुजका आधार। ८ ज्यामिति या रेखागणितके  
अनुसार किमी क्षेत्रका किनारा या किनारेको रेखा।  
९ लपेट, फंटा। १० छायाका मूल या आधार।  
११ समकोणोंका पूरक कोण। १२ दाँकी संख्याका  
वाधक शब्द-संकेत। १३ भूर्जपत्रवृक्ष, भोजपत्र।

भुजकोटर (सं० पु०) भुजस्व कोटर-स्थ। कक्ष, काण।  
भुजग (सं० पु०) भुजं चक्रं गच्छतांति गम्-ड, डित्,  
टिलोपः। सप, सांप। २ अश्लेषा नक्षत्र। ३ सोसक,  
सोसा। ४ सहायद्विर्घर्णित एक राजा।

भुजगद्वारण (सं० पु०) भुजगं दारयतांति दारि-ल्यु।  
गड्ड।

भुजगनिर्मता (सं० खो०) एक वर्षिक वृत्तका नाम।  
इसके प्रत्येक चरणमें नौ अक्षर होते हैं जिसमें छठा,  
आठवाँ और नयाँ अक्षर गुग और शेष लघु होते हैं।

भुजगपति (सं० पु०) भुजगानां पतिः। वासुकि,  
अनन्त।

भुजगपुत्र (सं० पु०) भुजङ्गस्य पुत्र यस्य। पुत्र वृक्ष भेद।  
भुजगराज (सं० पु०) भुजगानां राजा। टच् नम्रासान्तः।  
शेष, अनन्त।

भुजगनिशुभता (सं० खो०) एक वर्षिक वृत्तका नाम।

इसके प्रत्येक चरणमें नौ अक्षर होते हैं जिनमें पहले दो  
नगण और अन्तमें एक गणण होता है।

भुजगान्तक (सं० पु०) भुजगस्य अन्तकः। गरुड।

भुजगामोजी (सं० पु०) भुजगं वा सम्बन्ध प्रकारेण भुज-  
इति भुजग आ-भुज-णिनि। मयूर, मोर।

भुजगाशन (सं० पु०) भुजगमन्नातीति अग-ञ्यु।  
गरुड।

भुजगी (सं० खो०) सर्पिणी, सांपिन।

भुजगेन्द्र (सं० पु०) भुजगानामिन्द्रः। सर्पगड,  
वासुकि।

धामनपुराणमें लिखा है, कि अनन्तदेव दशमो तिथिमें  
प्रयन करते हैं।

“दशम्या भुजगेन्द्राश्च स्वयन्ते वायुमोजनः।”

(धामनपु० १७।६)

भुजगेश्वर (सं० पु०) भुजगानामीश्वरः। भुजगेन्द्र,  
अनन्त।

भुजङ्ग (सं० पु०) भुजं चक्रं गच्छतीति गम्-लच् मुप्।  
(खच्च विदाच्यः। इति वार्तिकोक्त्या)। डिच्यवक्षे टिलोपः।  
१ सर्प, सांप। २ जार, खोका यार। २ सोसक,  
सोसा नामक धातु। ३ राजाका एक पार्श्ववर्ती अनु-  
चर।

भुजङ्गकन्या (सं० खो०) सर्पिणी, नागकन्या।

भुजङ्गातिनी (सं० खो०) भुजङ्गं सर्पं तद्विषं हन्तीति  
हन-णिनि, त्रिवांडीप्। १ वृक्षविशेष, काकोली।  
पर्याय—सूरि, सर्पाक्षी, क्षुद्रकरी, स्पृहा। २ सर्पना-  
जिनी।

भुजङ्गजिहा (सं० खो०) भुजङ्गस्य जिह्वेय माहृति-  
यस्याः। १ महासमङ्गा, कंगहिया। २ सर्पजिहा, सांप-  
को जीभ

भुजङ्गदमनी (सं० खो०) भुजङ्गो दम्पनेऽनया दम-  
करणे ऽभ्युट् गौरादित्वात् डोप्। नाकुटोक्तम्।

भुजङ्गनायक—कारवेगिनगराधिप एक सामन्तराज, रेदो-  
यंजीय राजा नरसिंह नायकके यंत्रधर। भाप पिताके  
स्वाधीनतागौरवकी रक्षा न कर सके थे। चालुक्यराज  
सोमेश्वरदेव इन्हें पराजित करके बन्धुस्थानमें कन्याप  
नगर लाये थे। यहाँ पर उनकी मृत्यु हुई।

भुजङ्गपणिनी ( सं० खी० ) भुजङ्गस्तदाकार इय पणानि मन्ति यस्या इति-डोप् । नागदमनी ।  
 भुजङ्गपुष्प ( सं० पु० ) भुजङ्ग इय पुष्पमस्य । १ क्षुपभेद । सुधुनके अनुसार एक क्षुपका नाम । २ एक फूलके पेड़का नाम ।  
 भुजङ्गप्रयात ( सं० क्ली० ) भुजङ्गवत् प्रयातं गतिरिय भङ्गीमान्, शब्दचिन्त्यासो यस्य । छन्दोभेद, एक वर्णिक छन्द । इसके प्रत्येक चरणमें बारह वर्ण होते हैं जिनमें पहला, चौथा, सातवां और दशवां वर्ण लघु और शेष गुरु होते हैं अथवा प्रत्येक चरण चार यगणका होता है ।  
 भुजङ्गभुज ( सं० पु० ) भुजङ्गं भुङ्गते इति भुज-भियप् । १ गरुड़ । २ मयूर, मोर ।  
 भुजङ्गभोजी ( सं० पु० ) भुजङ्गं भुङ्गन्ते भुज-णिनि । १ राजसर्प । २ गरुड़ । ३ मयूर ।  
 भुजङ्गम् ( सं० पु० ) भुज क्रीडत्ये इगुपधेति क, भुजः कुटिली-भवन गच्छतीति भुज-गम ( गमेः सुपि वाच्यः । पा ३।१।३८८ ) इत्यस्य वास्तिकात् 'खच् डिङ्गाच्यः' इति डिङ्भावे टिलोपाभावात्-मुम् च । १ सर्प, सांप । २ सोमक, सीसा नामकी धातु ।  
 भुजङ्गलता ( सं० खी० ) भुजङ्गवत् कुटिला तत्पया यालता । नागवह्नी ।  
 भुजङ्गावजुम्भित ( सं० क्ली० ) छन्दोभेद, एक वर्णिक छन्द । इसके प्रत्येक चरणमें २६ वर्ण इस क्रमसे होते हैं— आदिमें दो मगण, फिर एक तगण, तीन नगण, रगण, सगण और अंतमें एक लघु और एक गुरु ।  
 भुजङ्गसंगता ( सं० खी० ) छन्दोभेद, एक वृत्तका नाम । इसके प्रत्येक चरणमें नौ नौ वर्ण होते हैं जिनमें पहले सगण, मध्यमें जगण और अन्तमें रगण होता है ।  
 भुजङ्गवन ( सं० पु० ) भुजङ्गं हन्तीति हन्-वियप् । गरुड़ ।  
 भुजङ्गा ( हि० पु० ) काले रंगका एक पक्षी । इसकी लम्बाई-प्रायः डेढ़ बालिझा होती है । यह पक्षी भारत, चीन और श्याम देशमें पाया जाता है । इसकी बोलो बड़ी सुहायनी लगनी है और प्रतिदिन प्रातःकालमें बोलता है । एक बारमें मात्र चार अण्डे देता है ।

भुजङ्गाशी ( सं० खी० ) भुजङ्गस्यैव अक्षि पुष्पं यस्याः ( अदनीउदरं नाम् । पा ५।४।७६ ) इति अच्, गौरादिभ्याम् डोप् । रास्ता ।  
 भुजङ्गाख्य ( सं० पु० ) भुजङ्गस्य आख्या इय आख्या यस्य । १ नागकेजर । त्रि० । २ सर्पनागक ।  
 भुजङ्गन्तक ( सं० पु० ) १ मयूर, मोर । २ वृष्ट, गोप ।  
 भुजङ्गिका ( सं० खी० ) वेगनदक उपरुणितन एक अग्नि प्राचीन ग्राम । इस ग्राममें एक समय बहुसंख्यक ब्राह्मणोंका वास था । १६ सौ वर्ष पहलेका इस स्थानकी समृद्धिका उल्लेख मिलता है ।  
 भुजङ्गिनी ( सं० खी० ) १ गोपाल नामक छन्दका दूसरा नाम । २ सर्पिणी, नागिन ।  
 भुजङ्गी ( सं० खी० ) भुजङ्ग स्त्रियां डोप् । १ सर्पिणी, सापिन । २ शक्तिवृत्तिभेद । ३ एक वर्णिक वृत्तिका नाम । इसके प्रत्येक चरणमें बारह वर्ण होते हैं जिनमें पहले तीन यगण आते हैं और अन्तमें एक लघु और एक गुरु रहता है ।  
 भुजङ्गेन्द्र ( सं० पु० ) भुजङ्गानां इन्द्रः । स्वर्पराज वासुकि, अन्त ।  
 भुजङ्गेरित ( सं० क्ली० ) छन्दोभेद ।  
 भुजङ्गेश ( सं० पु० ) भुजङ्गानामागः । १ वासुकि । २ शैव । ३ पिङ्गल मुनिका नाम । ४ पनञ्जिका एक नाम ।  
 भुजङ्ग्या ( सं० खी० ) सूर्यामडान्ताक विक्रान्तक्षेत्रकी भुजङ्गीवा ।  
 भुजङ्गदण्ड ( सं० पु० ) बाहुदण्ड ।  
 भुजङ्गदल ( सं० पु० ) हस्त, हथेली ।  
 भुजनगर—बम्बईप्रदेशके कच्छराजकी एक दुर्गामुद्रितन राजधानी । यह अक्षां २३° १५' उ० तथा देशां ६०° ४८' ३०" पू०के मध्य गण्डरीलके पाददेशमें अवस्थित है । बहुत प्राचीन कालसे इस नगरकी समृद्धिका परिचय मिलता है । यहाँके सुप्राचीन फोर्तिलेखन प्रतिलिखालोचनाका प्रकृष्ट विषय है । जनसाधारणका विश्वास है, कि प्राचीन कालमें यह नगर अहिकुण्डेयना भुजङ्गके उद्देशसे उदमर्ग क्रिया गया था । यहाँके राय लोगीका समाधिमन्दिर और भागमण्डोली प्रागमन्थन

आदिकी छतरी १६थीं गताश्रीके पहलेकी बनी हुई मालूम होती है। पतञ्जलिप्राचीन राजप्रासाद, नगरके भीतरकी मस्जिद तथा सुवर्णराय, कल्याणेश्वर और स्व-मण्डप आदि देवमन्दिर देखने योग्य हैं। १६थीं गताश्रीके प्रारम्भमें तथा शेष भागमें यहाँ जो दो बार भूमिकम्प हुआ था उससे नगरकी महती क्षति हुई थी। अन्तिम बारके प्रबल भूकम्पसे यह राजधानी भूगर्भमें ला पता हो गई।

भुजपाग ( सं० पु० ) गलेमें हाथ डालना, गलबाँही।

भुजप्रतिभुज ( सं० पु० ) सरल क्षेत्रकी समानान्तर या आमने सामनेकी भुजाएँ।

भुजफल ( सं० स्त्री० ) भुजेन आनीत फलें। मिश्रान्त-जिरोमणि-उक्त भुज द्वारा आनीत फलमेद।

भुजबंध ( हि० पु० ) १ भुजबन्ध देवो। २ बाजूबंध।

भुजबन्ध ( सं० पु० ) १ भुज वेष्टन। २ बाजूबंध। ३ अंगद।

भुजबल ( सं० पु० ) भुजस्य बलं। बाहुबल।

भुजबल—सुवर्णपुराधिपति। कलिङ्गाधेश्वर हृदयबंधीय प्रथम जाजलदेवने इन्हें परास्त किया।

भुजबल ( हि० पु० ) शालिहोत्रके अनुसार एक भीरो जो घोड़ेके अगले पैरमें ऊपरकी ओर होता है। लोगोंका विश्वास है, कि जिस घोड़ेको यह भीरो होतो है, वह अधिक बलवान होता है।

भुजबलगङ्गा—दाक्षिणात्यके होयशाल-बल्लालधंजाय एक राजा, राजा विष्णुवर्द्धनका नामान्तर। इन्होंने शास्त्राल देवीको ध्याता था। गङ्गा राजधानी तलकाड़ उनके अधिकारमुक्त था। अज्ञाया इसके उन्हीं अपने भुजबलसे और भी अनेक स्थान जीते थे। प्रवाद है, कि रामानुजा-चार्यने उन्हें वैष्णव धर्ममें दीक्षित किया था।

भुजबल भोग—एक धर्मशास्त्रके प्रणेता। कद्रुधरने धात-वियेकमें तथा रघुनन्दनने मीमांसतत्त्वमें इनका नामोक्तेल किया है।

भुजमध्य ( सं० स्त्री० ) भुजस्य मध्यः। १ भुजान्तर-कोट्ट। २ कपूर, कपूर।

भुजमूल ( सं० स्त्री० ) भुजस्य मूलं दंतम्। १ बाहुमूल, कान्त। २ गदा, पषष्ठा।

भुजया ( हि० पु० ) भद्रभूजा।

भुजराम—भद्र तदर्पणके प्रणेता। इनका दूसरा नाम भजनानन्द था।

भुजशालिन ( सं० स्त्री० ) प्रशस्तवाहुसम्पन्न।

भुजगिखर ( सं० पु० ) स्क्वथ, कंधा।

भुजगिर ( सं० स्त्री० ) भुजस्य गिर इय। स्क्वथ, कंधा।

भुजा ( सं० स्त्री० ) भुज टाप्। बांह, हाथ।

भुजान्ष्ट ( सं० पु० ) भुजायाः करस्य कट इव हस्तनय, हाथका नाखून।

भुजागम ( सं० पु० ) वृष्ट, पेड़।

भुजाठकी ( सं० स्त्री० ) कलापविशेष, एक प्रकारकी उद्द।

भुजाप्र ( सं० पु० ) भुजस्य अग्रः दंतम्। कर, हाथ।

भुजादल ( सं० पु० ) भुजाया वाहोर्दल इव। हाथका पंजा।

भुजान्तर ( सं० स्त्री० ) भुजघोरन्तरं मध्यं। १-कोट्ट, गोद। २-पक्ष। ३-दो भुजाओंका अन्तर।

भुजाना ( हि० स्त्री० ) मुनाना देवो।

भुजामध्य ( सं० स्त्री० ) बाहुका मध्यभाग, केशुनी।

भुजामूल ( सं० स्त्री० ) स्क्वथाम, कंधा।

भुजाली ( हि० स्त्री० ) १ एक प्रकारकी बड़ी टेंद्री घुसी।

इसका व्यवहार प्रायः नेपाली आदि करते हैं। इसे कुपरी या खुलरी भी कहते हैं। २ छोटी बरछी।

भुजि ( सं० पु० ) भुजति, भुज्ते वा सर्वानिति भुज ( भोगे द्विचं। उण् ४।१४१ ) इति इ सच किन्, सर्वमसृष्टवा-क्ष्य तथा त्वं। १-यहि, आग। २-भोग। ३-भोका।

भुजिङ्ग ( सं० पु० ) देशमेद।

भुजिया ( हि० पु० ) १ उवाला हुआ धान। २ उवाले हुए धानका चावल।

भुजिष्य ( सं० पु० ) भुज्ते स्थायुच्छिष्टमिति भुज्यते इति वा भुज ( चविभुजिष्या द्विच्यन्। उण् ४।१०८ ) इति दिव्यन्। १-एतन्न। २-हस्तमूल, हाथका मूला। ३-दान्त, सेयक। ४-रोग।

भुजिष्य ( सं० स्त्री० ) भुजिष्य-टाप। १-दासी। २-गजिका-पेश्या।

भुजिष्ठ ( हि० पु० ) भुजङ्गा नामक पशु।

भुज्यु ( सं० पु० ) भुज्यतेऽनेति भुज-भङ्गणे ( भुजि वृद्ध्या

पुत्र लुको। उष् ३२१) इति पुत्रः। १ भाजन, पात। २ अग्नि, आग। ३ वैदिक कालके एक राजाका नाम। ये तुमुके पुत्र थे। अभिनाकुमारने इन्हें समुद्रमें हवनसे बचाया था। (त्रि०) ४ रक्षक।

भुज्जत (सं० त्रि०) भुज्ज-शब्द। भोगकर्ता।

भुज्जान (सं० पु०) भुज्ज-शानच्। भोगकर्ता।

भुटिया (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी धारी जो डोरिए और चारखानेके धुननेमें डाली जाती है।

भुट्ट (सं० पु०) काश्मीरके एक राजा।

भुट्टपुर (सं० स्त्री०) भुट्टराजा कर्तृक निर्मित नगर।

भुट्टा (हिं० पु०) १ मर्काकी हरी बाल। मफा देवो। २ लुभार या बाजरेकी बाल।

भुट्टेश्वर (सं० पु०) भुट्ट कर्तृक भुट्टपुरमें प्रतिष्ठित शिव-मूर्ति विशेष।

भुट्टार (हिं० पु०) यह घोड़ा जो ऐसे प्रदेशमें उत्पन्न हुआ हो जहाँकी भूमि बलुई या रेतीली हो।

भुट्टौर (हिं० पु०) घोड़ोंकी एक जाति। इस जातिके घोड़े गुजरात आदि मरुस्थल देशोंमें होते हैं।

भुट्टोली (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका फूल।

भुट्टारो (हिं० पु०) यह अन्न जो रागिके दाने पर बालमें इँडलके साथ लगा रहता है, लिट्टरी।

भुणिक (सं० पु०) गोत्रप्रवरभेद।

भुन (हिं० पु०) अथल गुंजारका शब्द, मक्खी आदि-का शब्द।

भुनगा (हिं० पु०) १ एक छोटा उड़नेवाला कीड़ा। यह प्रायः फूलों और फलोंमें रहता है और गिशिर ऋतुमें प्रायः उड़ता रहता है। २ कोई उड़नेवाला छोटा कीड़ा, पतंगा। ३ बहुत ही तुच्छ या निरर्थक मनुष्य।

भुनगो (हिं० स्त्री०) इँखके पीपोंको हानि पहुंचानेवाला एक छोटा कीड़ा।

भुनना (हिं० क्ति०) १ भूतनेका अरुमक रूप। २ आगको गरमीसे एक कर लाल होना। ३ रुपये आदिके बदलेमें अठगनी, चौगनी आदिका मिलना।

भुनभुनाना (हिं० क्ति०) १ भुन भुन शब्द करना। २ मन-हो मन कुद कर अस्पष्ट खरमें कुछ कहना, बड़-बड़ाना।

भुनाना (हिं० क्ति०) भूतनेका प्रेरणार्थक रूप। २ रुपये आदिकी अठगनी, चौगनी आदिमें परिणत करना, बड़े सिक्के आदिकी छोटे सिकों आदिसे बदलना।

भुनुगा (हिं० स्त्री०) भुनगा देवो।

भुवि (हिं० स्त्री०) पृथ्वी, भूमि।

भूमग्यु (सं० पु०) १ पौरव भरतपुत्र नृपभेद। २ तद्द-वंशीय प्राचीन धृतराष्ट्र पुत्रभेद।

भूमिया (हिं० पु०) भूमिया देवो।

भुरकना (हिं० क्ति०) १ सूख कर भुरभुरा हो जाना। २ भूलना। ३ चूर्णके रूपके किसी पदार्थकी छिड़कना, भुर-भुराना।

भुरका (हिं० पु०) १ चुकनी, अवीर। २ मट्टीका बड़ा कसोरा, कुज्जा। ३ मट्टी आदिका वह पात जिसमें लड्डके लिखनेके लिये पड़िया मिट्टी घोल कर रखते हैं।

भुरकाना (हिं० क्ति०) १ भुरभुरा करना। २ छिड़कना, भुरभुराना। ३ भुलवाना, बहकाना।

भुरको (हिं० स्त्री०) १ अन्न रत्नके लिये छोटा कोडिला, धुनकी। २ पानीका छोटा गड्ढा। ३ छोटा कुन्हाड़ या कुज्जा।

भुरकुटा (हिं० पु०) छोटा कीड़ा या मच्छड़, छोटा मर्काड़ा।

भुरकुन (हिं० पु०) चूर्ण, चूरा।

भुरकुस (हिं० पु०) चूर्ण।

भुरजी (हिं० पु०) मसभूजा।

भुरण्यु (सं० स्त्री०) भुरण्य-उण्। १ भरण। २ क्षिप्र। (त्रि०) ३ तद्दुष्क, तेज।

भुरत (हिं० पु०) बरसातमें होनेवाली एक प्रकारकी घास। यह आपसे आप उगती है। जब तक नरम रहती है, तब तक पशु इसे बड़े चावसे खाते हैं।

भुरता (हिं० पु०) १ दब कर वा कुचल कर विरुतावस्था-को प्राप्त पदार्थ। २ शोषा या भस्ता नामका सालन। चापा देवा।

भुरभुर (हिं० स्त्री०) १ ऊसर या रेतीली भूमिमें हानि-वाली एक प्रकारकी घास। (पु०) २ बुका।

भुरभुरा (हिं० त्रि०) जिसके कण थोड़ा आघात लगने पर भी बालके समान अलग अलग हो जाय।

भुरभुरोई (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी घास जो ऊसर और

वेताली भूमिमें पतनी है। इसे भुङ्गनी या भुङ्गुर भी कहते हैं।

भुरली (हि० ग्री०) १ भुङ्गली, कमला । १ वेताली कमला-को हानी पट्टु चानियाला एक फोड़ा ।

भुरिन् मं० ग्री०) भरति सव धरतीति भृञ् ( भृज उच्यते २।७२) इति इजि, धातो रुकारान्तादेशः । १ पृथिवी । २ बाहु । ३ धावा पृथिवी, स्वर्ग और पृथिवी ।

भुरी ( हि० ग्री० ) सुरमा देहा ।

भुरगुड ( मं० पु० ) १ गोलप्रयत्नक ऋषिभेद । २ भारगुड पत्ती ।

भुर्यणि ( मं० पु० ) भुर्यं अग्नि न दीमिः । १ कर्ना ।

भुरना ( हि० पु० ) १ एक प्रकारकी रास । इसके विषयमें प्रवाद है, कि इसके स्वानेसे लोग सब बातें भूल जाते हैं । २ भुङ्गनेवाला व्यक्ति, वह जो भूल जाता हो ।

भुरभुडा ( हि० पु० ) गरम राख, आगका पलका ।

भुरवाना ( हि० कि० ) १ भुङ्गनेके लिये प्रेरणा करना, प्रमत्तमें डालना । २ विस्मृत करना, विस्तारना ।

भुरसना ( हि० कि० ) गरम राखमें भुङ्गसना, पलकेमें भुङ्गसना ।

भुराना ( हि० कि० ) १ प्रमत्तमें डालना, धोखा देना । २ विस्मृत करना, भुङ्गना ।

भुराया ( हि० पु० ) धोखा, छल ।

भुर्यंग ( हि० पु० ) सांप ।

भुर्यंगम ( हि० पु० ) सांप ।

भुवः ( हि० पु० ) १ वह आकाश वा अथकाश जो भूमि और सूर्यके अन्तर्गत है, अन्तरिक्षलोक । यह सात लोकोँके अन्तर्गत दूसरा लोक है । लोक अर्ध देवी । २ मात महा-व्याहृतियोंके अन्तर्गत दूसरी महाव्याहृति । मनुस्मृतिके अनुसार यह महाव्याहृति अकारकी उमार मावाके मंग पञ्चमं देवे निकाली गई है ।

भुव ( मं० पु० ) भवन्तीति भू-व । १ अग्नि, आग । २ भुवोत्पन्नः । भृगदि सात लोकोँके अन्तर्गत दूसरा लोक । लोक अर्ध देवी ।

भुवः - गुजरातप्रदेशके कच्छ जिलान्तर्गत एक प्राचीन ग्राम । यह भद्रेश्वरमें ३०० कोस उत्तर पूर्वमें अवस्थित है । यहाँ जो भुवनेश्वर महादेवका भक्त मीर विष्णु-

मान है उसका कारुकार्य प्राचीन चित्रशिल्पकी उत्कृष्टता आभास देता है । मन्दिरमें १२२६ संवत्में उक्तो एक जिलालिपि है ।

भुवद्वन् ( सं० पु० ) भू शब्द, तुदादि-भुवनः धात्व्, अस्त्यस्य मत्तुप् मस्य धः, तान्त्वत्वेऽपि पदत्वं । धात्वुक्त आदित्य ।

भुवद्वसु ( सं० लि० ) धनद ।

भुवन ( सं० क्ली० ) भवन्त्यस्मिन् भूतानिति भू ( भू-भू-भू-भुत्-जिभ्यश्चन्द्रदि । उणा २।६० ) इत्यथ बहुलवचनाद्भाषायामपि प्रयुज्यते इति ष्युन् । १ जगत्, संसार । २ सलिल, जल । ३ गगन, आकाश । ४ जन । ५ मनु-देश संख्या, चौदहकी संख्या । ६ लोक । पुराणा-नुसार लोक चौदह हैं—सप्तसर्ग और सप्तपाताल । भू, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्य ये सात स्वर्ग लोक और अतल, सुतल, वितल, गमस्तिमन्, महातल, रसातल और पाताल ये सात पाताल हैं ।

“पातालानाथ सप्तानां लोकानान्च यदन्तरम् ।

गुपितं तानि कथ्यन्ते भुवनानि चतुर्दश ॥” ( आदिपु० )

७ भूतजात, सृष्टि । ८ एक मुनिका नाम ।

भुवन—आसाम प्रदेशके कच्छाड़ जिलान्तर्गत एक गिरि-श्रेणी । यह बराक और सोनाई नदीका अवधारिकाके मध्य अवस्थित है । इसकी ऊँचाई ७ सौसे ३ हजार फुट तक है । यह पर्यतभूमि जिलेकी पूर्वोत्तरीमामें विस्तृत है । पर्यतके ऊपर जो शिपमन्दिर है, वह तीर्थक्षेत्रमें गिना जाता है । प्रतिवर्ष बहुतसे लोग यहाँ जुटते हैं ।

भुवनकोश ( सं० पु० ) भुवनस्य कोश इव । भूषण, भूमण्डल । भागवत तथा विष्णुपुराणादिमें भुवनकोशका सविस्तार विवरण लिखा है, पर यहाँ अत्यन्त संक्षेपमें दिया जाता है—मैत्रेयके पराजनेसे भुवनकोशका विषय पूछने पर उन्होंने कहा था, कि अम्बु, इक्ष्वा, जाम्बवी, बुध, कौश, शाक और पुण्डरीक ये सप्तौ हीय यथाक्रम लक्षण इभू, सुरा, साँप, वृषि, दुग्ध और जल इन सात समुद्रोंका सञ्चल समभागमें परिचलित हैं । जम्बूद्वीप इन सबके बीचमें है । इसके मध्यभागमें स्थलीय सुमेरु पर्यत है । इसकी ऊँचाई पौराणीक हजारा योजन, तत्र भाग सोलह हजार योजन तथा ऊपरभाग बर्षास हजार

योजन विस्तृत है। इसके मूलकी कुल चौड़ाई मोलह हजार योजन है। सुतरां सुमेरु पृथरूप पत्रकी कणिका अर्थात् योजकोण-स्वरूप संस्थित है। इसके दक्षिणमें हिमवान, हिमकूट और निषध तथा उत्तरमें नील, श्वेत और शृंगो ये सब वर्णपर्वत भारतवर्षादिके मीमानिक-पर्व हैं। मध्यस्थित नील और निषध ये दोनों पर्वत पूर्वपश्चिममें लक्षयोजन तक लम्बे हैं और बाकी दो उनका दशवां भाग है। मेरुके दक्षिणमें पहले भारतवर्ष, बाद क्रिमुद्यय वर्ष और तब हर्मि तथा उत्तरमें रम्यक, हिरण्य और इसके उत्तरमें कुशवर्ण हैं। इनमेंसे हर एक नौ हजार योजन तक विस्तृत है। इलायत वर्ण भी मेरुके चारों ओर नौ हजार योजन तक फैला हुआ है—पूर्वमें मन्दर, दक्षिणमें गन्धमादन, पश्चिममें विपुल और उत्तरमें सुवासर्ष है। इन सब पर्वतों पर क्रमशः ऋद्धय, जम्बू, पीपल, और वट चार वृक्ष हैं जो पर्वतकी ध्वजाके समान ऊँचे हैं। इस पर्वत पर जम्बू वृक्ष होनेके कारण ही इस द्वीपका पेसा नाम पडा है। इस जम्बू वृक्षके महागज-परिमित फल पर्वत पर गिर कर विस्तीर्ण हो जाते हैं। उनकेरससे वहाँकी विद्ययात जम्बूनदी निकल कर गन्ध-मादनको और बह गई है। वहाँके अधियासी इसी नदीका जल पीते हैं। इस जलमें स्वेद या दीर्गन्ध नहीं है। यह जल पीनेसे वहाँके मनुष्योंको जरा या इन्द्रियक्षय नहीं होता, चरन् अन्तःकरण निर्मल हो जाता है। इस नदीके किनारेकी मृत्तिका जम्बू नदी सुवर्णरूपमें परि-पात होती है। यह जम्बूनदीसुवर्ण मिट्टीका भूपण है। मेरुके पूर्व भद्रास्व और पश्चिममें केतुमालवर्ष हैं तथा इनके बीच इलायतवर्ष है। सुमेरुके पूर्वमें चैत्रग घन, दक्षिणमें गन्धमादनघन, पश्चिममें वैसाजयन तथा उत्तरमें मन्दनघन है। अरुणोद, महाभद्र, असिनोद और मानस ये चार देवभोग्य मरोहर मेरुके चारों ओर अवस्थित हैं। शीतान्त, क्रमुच्च, कुररी और मान्यवान् ये सब पर्वत मेरुके पूर्व ओरके केसर हैं। निवृष्ट, त्रिजिह्व, पतङ्ग और रुचक दक्षिण ओरके; जिखियामा, पैदूर्य, कपिल और गन्धमादन पश्चिम ओरके हैं तथा जङ्गकूट, स्वयम्, हंस और नाग ये सब केसर पर्वत उत्तरकी ओर अवस्थित हैं।

मेरुके ऊपर अन्तरोक्षमें चारों ओर हजारों योजन तक ब्रह्माकी पुरी है। इसके चारों ओर तथा इन्द्रादि लोकपालोंके विद्ययात पुर हैं। विष्णुपादोद्भवा गङ्गा चन्द्र-मण्डलकी चारों ओरसे प्रवाहित करती हुई अन्तरोक्षमें प्रलयपुरीमें गिरी हैं। वहाँ पर गिर कर गङ्गा चाग भागोंमें विभक्त हुई है जिनका नाम सोता, अलकनन्दा, चक्षु और भद्रा है। उनमेंसे सोता पूर्व चाहिनो हो कर आकाश-पथमें एक पर्वतसे दूसरे पर्वत पर बह गई है और वाट भद्राश्व नामक पूर्ववर्ष होती हुई समुद्रमें मिलती है। चक्षु भी पश्चिमकी ओर सब पर्वतोंको लांघती हुई केतुमाल नामक पश्चिमवर्ष हो कर मागरमें गिरी है। भद्रा उत्तरगिरि तथा उत्तर कुशवर्ष अतिक्रम कर उत्तर समुद्रमें मिल गई है। मान्यवान् और गन्धमादनपर्वत उत्तर दक्षिणमें नील तथा निषध पर्वत तक लम्बा है। मेरु उन पर्वतोंके बीच कर्मिकाके रूपमें संस्थित है। मर्यादा पर्वतके मध्यवर्ती भारतवर्ष, केतुमालवर्ष, भद्राश्ववर्ष तथा कुशवर्ष जम्बूद्वीपपत्रके पत्रस्वरूप हैं। जठर और देवकूट ये दोनों मर्यादापर्वत उत्तर और दक्षिणमें नील तथा निषध तक फैले हुए हैं। पूर्ण और पश्चिममें आयन गन्धमादन और केसास ये दोनों मर्यादा पर्वत अस्मी याजन तक लम्बे और समुद्रके भीतर घुस गये हैं। मेरुके पश्चिम आदि भागोंमें निषध और पारिपातादि मर्यादा पर्वत अवस्थित हैं।

मेरुके चारों ओर शीतान्त प्रभृति जिन सब केसर पर्वतोंका उल्लेख किया गया है, उन सब पर्वतोंके मध्य उत्तमोत्तम कन्दरू हैं जहाँ निजदेव गायकगण रहते हैं। इन सब कन्दरूमें सुरम्यकानन तथा पुर हैं। इन सब पुरोंमें देवताओंके किन्नरसेवित सर्वा आयनन वर्ष हैं। ये सब स्थानमीम स्वर्ग कहलाते हैं। यहाँ धार्मिक मनुष्योंका वास है। पाणिगण सैकड़ों जन्ममें भी यहाँ नहीं आ सकते। भगवान् विष्णु भद्राश्ववर्षमें हयगिरारूपमें, केतुमालवर्ष-में बराहरूपमें और भारतवर्षमें कूर्मरूपमें अवस्थित हैं। सर्वेश्वर हरि विभ्वरूपमें सर्वाव ही विराजमान हैं।

किशुकरादि जो आठ वर्ण हैं, धं शोक, ध्रम, उद्रे ग, क्षुधा तथा भयादि नहीं हैं। प्रजागण निगनू और सर्वा दुःखविचरित हैं। यहाँ पञ्चदेव वर्णन मही करते--



पार्थिव जल ही प्रचुर परिमाणमें मिलता है, इस कारण जलका कष्ट नहीं होता। इस स्थानमें सूर्य और खेतादि युगनिपम नहीं हैं। इन सब वषोंमें मात मात करके कुन्दाजल और मंत्रहोई नदियां हैं। यही भूचनकोष है।

( विष्णुपु० २।२ अ० )

इस भूचनकोषका विषय भागवतके ५।१६।१७ १८ अध्यायमें और गृह्यसंहिता पुराणके ३०वें अध्यायमें विशेष रूपसे धरिणत है और इस प्रकार अन्य पुराणोंमें भी है। विस्तारके भय यहां नहीं दिया गया। पुराण देखो।

भुवनचन्द्र ( सं० पु० ) काश्मीरराज पृथिवि चन्द्रके पुत्र।

भुवनपति ( सं० पु० ) अग्निका स्रावृमेद, अग्निके भाई एक देवता। भू नयस्य पतिः। २ भूचनका प्रभु, संसारका मालिक।

भुवनपाल—१ कच्छप्रशातवंशीय एक राजा। २ पञ्जालराज्यके अस्तगत वक्षामधुनाके राष्ट्रकूटवंशीय एक राजा।

भुवनपाल—उद्योभैकि विचार शोला नामक माधाकोशकी टाकाके प्रणेता।

भुवनपावन ( सं० लि० ) भुवनस्य पावनः। भुवनको पवित्र करनेवाली गङ्गादेवी।

भुवनमर्त्तु ( सं० पु० ) भूचनस्य भर्त्ता। भूचनपति, संसारका मालिक।

भुवनमति ( सं० खो० ) काश्मीरराज कीर्तिराजकी कन्या।

भुवनमोहनविचाररत्न—नयडीपयासी एक विख्यात नैयायिक। ये प्रसिद्ध नैयायिक श्रीरामशिरोमणिके पुत्र थे।

भुवनराज ( सं० पु० ) काश्मीरके एक राजा।

भुवनशासिन ( सं० लि० ) भूचन शासक-पति। भूचनपति, संसारका शासन करनेवाला।

भुवनसद ( सं० लि० ) भूचनस्थित।

भुवनसिंह—चित्तोरके एक मुहिल्यवंशीय राजा। इन्होंने चाहामानराज कितुद्व और सुल्तान अलाउद्दीनको परास्त किया था।

भुवनाम्नूत ( सं० लि० ) भूचनको विस्मय करनेवाला।

भुवनार्थीज ( सं० पु० ) १ कच्छमेद। २ विभूचनके अधिपति।

भुवनाधीश्वर ( सं० पु० ) विभूचनके अधिपति।

भुवनानन्द। सं० पु० ) विभवप्रदीपके प्रणेता।

भुवनेश ( सं० पु० ) १ शिवसूक्तिमेद। २ स्थानमेद।

भुवनेशानो। सं० खो० ) जगत्कर्त्ता।

भुवनेशो ( सं० खो० ) शक्तिसूक्तिमेद।

भुवनेशो यन्त्र—शृण्णानन्दकृत तन्त्रसारवर्णित शक्तिपूजाका एक यन्त्र।

भुवनेश्वर—उड़ीसाप्रदेशके अस्तगत पुरी जिलेका एक श्रेष्ठ शैवशैव। यह १३५० २० १५ ३० तथा देगा १५ ५० पू० बङ्गाल-नागपुर रेलवेके 'भुवनेश्वर' नामक स्टेशनसे एक कोसकी दूरी पर अवस्थित है। यहांकी जनसंख्या ३०५३ है।

भुवनेश्वर वास्तवमें भूचनके मध्य एक द्रष्टव्य स्थान है। यहांके असंख्य शिवमन्दिर, हिन्दू गिर्णोके अपूर्ण रत्ननाकांश तथा यहांका नयनमोहन भास्करकापे जिन्होंने एक बार स्थिर चित्तसे देखा है, वे मुग्ध हो गए हैं। प्रतिष्ठाताकी अज्ञान्य धन्यवाद विषे बिना बों रह नहीं सकता। हिन्दू, मुसलमान और अंगरेज पुराविद्वगण इस पवित्र मन्दिरवृन्द विभूषित प्राचीन भूमिका उल्लेख कर गए हैं।

प्रतन्त्रशक्ति राजा राजेश्वरालाल मिलके मतमें इस पुण्यभूमिका प्रकृत नाम है 'विभूचनेश्वर'। किन्तु उच्चारणको सुविधाके लिए केवल भूचनेश्वर नाम ही परिचित है। उन्होंने और भी लिखा है,—"उदपगिरिकी हाथीगुफामें उरकोर्ण जिलालिपिमें जिस कलिङ्गनगरी का उल्लेख है, वही यह भूचनेश्वर है। बुद्धके मरण कलिङ्गनगरी बौद्धधर्मका एक प्रधान स्थान गिना जाता था। बुद्धके निर्वाणलाभ करने पर, उनका पवित्र देहावशेष कई एक मण्डलोंमें विभाक्त हो कर प्रधान प्रधान राजाओंके हाथ लगा था, उनमेंसे कलिङ्गनगरीके अधिपतिका बुद्धदेवका पवित्र दन्त प्राप्त हुआ था। पहले कई दन्त कलिङ्गनगरी हीमें स्थापित हुआ। बाद यहांसे गिपलीके निकटवर्ती वसुपुरी या दानव नामक स्थानमें यह दन्त लाया गया। इस प्रकार ईसापूर्व ६००के पहलेमें ही यह स्थान कलिङ्गनगरी कहलाया था। उन्होंने

हाथोगुफासे उत्कीर्ण शिलालिपिमें ऐरराज-प्रतिष्ठित एक सुदृशेय सरोवरका उल्लेख देण कर स्थिर किया है, कि यही सरोवर प्रसिद्ध चिन्दुसागर था तथा भुवनेश्वरमें ही कलिगाधिपतिकी राजधानी थी।

‘छाकि’, हण्टर, फनिहम, राजा राजेन्द्रलाल प्रभृति ऐतिहासिकोंने मादलापञ्जीके ऊपर निर्भर कर एक वाक्यमें लिखा है, कि उड़ीसाके केशरिवंशके प्रतिष्ठाता ययाति-केशरीने ही भुवनेश्वरलिङ्गकी प्रतिष्ठा की और उसी समयसे यह स्थान ‘भुवनेश्वर’ नामसे प्रसिद्ध हुआ।

ऊपर जो सब मत कहे गये हैं, यहांके पुरातत्त्वकी थालीचना करनेसे ये सब युक्तियां निरर्थक-सी जान पड़त हैं। बुद्धदेवके समय भुवनेश्वरमें बौद्धोंका जो प्रधान ब्रह्म था, उसका कोई निदर्शन नहीं मिलता। खण्डगिरि तथा उदयगिरिमें बौद्धकीर्तिका जो निदर्शन देखने में आता है, वह बुद्धदेवके बहुत पीछेका बना हुआ है—इसका कुछ हिस्सा सम्राट अशोकके समयमें प्रतिष्ठित हुआ है। विशेषतः भुवनेश्वर-अञ्चलमें ऐर नामक राजा किस समय राज्य करते थे, इसका प्रमाण नहीं मिलता। हाथोगुफासे उत्कीर्ण शिलालिपिमें जैनधर्मावलम्बो कलिगाधिपति खारवेलको धराःकीर्त्ति लिखी है। इनके साले हाथीसाहबके नाम पर तथा हस्तिमूर्त्तिसे हाथी-गुफाका नाम पड़ा है। राजा राजेन्द्रलाल, फनिहम, हण्टर, प्रभृति पुराविदोंने जिस हाथोगुफाको बौद्धकीर्त्ति कह कर घोषणा की थी, अभी वह जैनकीर्त्ति-सी प्रमाणित हुई है। किन्तु उक्त जैनराज खारवेलने किस समय भुवनेश्वरमें राजधानी स्थापित की थी, उसका आज तक भी कोई प्रमाण नहीं मिलता है। इधर ‘श्री गताश्रमोंमें केशरि वंशके प्रतिष्ठाता ययाति द्वारा भुवनेश्वरकी प्रतिष्ठा कविकल्पना सी मालूम पड़ती है। कारण, उस समय अधवा वादमें उसके केशरिवंशके प्रतिष्ठातारूप ययातिकेशरीका नाम सामयिक लिपि या प्राचीन इतिहासमें वर्णित नहीं हुआ है। जगन्नाथ शम्भु में दिवाया गया है, कि उड़ीसाके वर्तमान ऐतिहासिकगण जो मादलापञ्जीकी बुद्धई देने हैं, उसका प्राचीन अंश

कल्पनामूलक है, ऐतिहासिकोंके निकट उसका कोई मूल्य नहीं। भुवनेश्वरकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें मादलापञ्जीका विवरणको भी उसी प्रकार फाल्गनिक कह सकते हैं।

फाल्गनिक तथा आधुनिक रचित मादलापञ्जीके ऊपर निर्भर न कर प्राचीन ग्रंथसमूह और भुवनेश्वरके नाना स्थानमें उत्कीर्ण सामयिक शिलालिपिसे हमें जो यथार्थ इतिहास मिला है, मादलापञ्जीकी समाप्तिचर्चाके साथ साथ यह नीचे लिखा जाया है। महाभारतके धनु-पर्व(११४अध्याय)में लिखा है,—

राजा युधिष्ठिरने गङ्गासागर संगम पर जा कर पांच सौ नदोंमें स्नान किया और अपने भाइयोंके साथ समुद्र-के किनारेसे कलिंगको ओर यात्रा की। लोमशने कहा, ‘हे कुन्तीनन्दन ! ये सब देश कालंग नामसे प्रसिद्ध हैं। इस प्रदेशमें जहां पर धर्मने देवताओंके शरणगत हो कर यज्ञ किया था, वहाँ वैतरणी नदी है। पर्यतसे सुशो-भित हमेशा ऋषियोंसे युक्त तथा द्विजाति-निषेचित यह यज्ञभूमि वैतरणा नदीके उत्तर तीर पर है जो स्वर्गगामों व्यक्तिको देवयानस्वरूप है। पूर्व समयमें ऋषि तथा अन्यान्य महात्माओंने वहाँ पर यज्ञ किया था। हे राजेन्द्र ! इसी स्थान पर यद्रदेवने यज्ञमें पशु ग्रहण किया था और कहा था, कि यहाँ मेरा हिस्सा है। हे भरतर्षभ ! जब यद्रदेवने पशुहरण किया, तब देवताओंने उनसे कहा, कि आप परस्व प्रार्थन न करें—समस्त यज्ञोंय भागके अभि-लाषो न होंगे। अनन्तर उन्होंने कल्याणस्वरूप वाक्यसे उनका स्तव करके इष्टि द्वारा सन्तुष्ट कर सम्मानित किया। इस पर यद्रदेव पशुका परित्याग कर देवयानमें चले गये। हे युधिष्ठिर ! इस सम्बन्धमें यद्रकी जो गाथा है, सो सुनिये। देवताओंने यद्रके भयसे उर्द्ध सब भागोंमेंसे उर्द्ध्व सद्योजात माग विरकान्द्र प्रदान करनेका सङ्कल्प किया। जो मनुष्य यहां पर यह गाथा गान कर स्नान करते हैं, उनका देवयान नयनपथमें प्रकाशित होता है।’ धर्मग्रन्थयनका कहना है, कि इसके बाद महाभाग पाण्डवोंने त्रौपदीके माध वैतरणीमें उतर कर विनोदोंका तर्पण किया। अनन्तर थोड़ी दूर भा कर युधिष्ठिर बान्हे ‘मैं इस नदीमें स्नान कर मनुष्यमारने

मुक्त हुआ। देविष्ये, मैं आपकी प्रमदनाके हेतु संपूर्ण लोभ देवता हूँ। जयकारी महातमा यानप्रस्थोका स्वर सुना जाता है। इस पर लोभगने कदा, हे राजन्! आप जो गङ्ग सुनते हैं, वह यहाँमे तोम हजार योजनकी दूरी पर निकलता है। आप चुप रहें। हे राजेन्द्र! यह जो मामने वन दिगन्तारि पड़ना है, वही स्वयम्भूत है। यहीं पर प्रतापवान् विश्वकर्मानि स्वयम्भूत का किया था। इस वनमें उड़नेके कश्यपको दक्षिणास्वरूप गिरिकाननके साथ साथ सारी पृथिवी दान कर दी। हे कौश्लेय! उसी समय पृथिवी अवसन्न हो गई। उन्होंने कुछ हो कर लोकेश्वर प्रभुसे कहा, 'भगवन्! मुझे जो आपने मन्त्रके हाथ सौंपा, सो उन्नत नहीं—आपका दान वृथा हुआ। कारण, मैं रमातल अधोन् दक्षिणाकी ओर चली। इस पर कश्यपने पृथिवीकी विषण्णा ज्ञान कर उन्हें प्रमत्त करनेके लिये तपस्या की। पृथिवी उनकी तपस्यामे मन्तुष्ट हुई और पुनः जलमे बाहर निकल कर वेदीरूपमें प्रकाशित हो गई। महाराज! वही मन्थान लक्षणा वेदी प्रकाशित होती है। आप उस पर आरोहण करनेमे वीर्यवान् हो जायेंगे। हे राजन्! यह वेदी समुद्रका आश्रय लिये हुई है—इस पर जानेसे ही आपका मङ्गल होगा। यह वेदी दूनेमे ही समुद्रमें प्रवेश करता है। अतएव आप जिस किसी प्रकार उस पर जा सके, उमाके लिये मैं स्वस्त्यन कहूँगा। ओं विश्वगुप्त विश्वपर! आपकी नमस्कार है। हे देवेन! आप इस समुद्रके लवणका जलमें रहें। हे विष्णो! आप अनि, सूर्य तथा जलकी योनि हैं—आप वीर्य और अमृतकी नाभि हैं। हे पाण्डव! यह स्वयम्भूत कह कर आप अनि गोम उस वेदी पर धड़ जायें। हे विष्णो! अनि आपकी योनि है, वही आपकी देह है। आप वीर्योधार तथा अमृतके साधन हैं। इस वेद्योधारका जप कर प्रायः नशोमें स्थान को जप। हे कुम्भेष्ठ! इसके अलावा देवयोनि समुद्रको कुशाग्रमे जो स्पर्श न करे। अनन्तर स्वस्त्यनकारि स्वयंश कर महातमा युधिष्ठिर नामके राव और लोभगनेके आदेशानुसार सब कार्य समाप्त कर उरुमें महेन्द्र पर्वत पर जा राग बिताए।

उपरोक्त विवरणसे इन कहे एक तीर्थों या पुण्यक्षेत्रों का पता चढ़ता है। श्ला गङ्गासागर-मङ्गल, वाद कश्चित् देशमें घैतरणीतीर्थ तथा उसके किनारे देवयष्टस्थान। वही यज्ञस्थान अभी याज्ञपुर नामने प्रसिद्ध है। विश्वकर्माकी तपस्यास्थान स्वयम्भूत, लवणसागरकी समीपवर्ती वेदी ० जो अभी महावेदी या पुरोत्तम क्षेत्र कहलाती है, वाद महेन्द्राचल है। यह पर्वत गङ्गाप्रदेशमें अवस्थित है और परशुरामका स्थान कह कर आज भी विख्यात है।

महाभारतमें वनपर्वके उक्त पर्वोध्यायमें जिन जिन तीर्थों में पञ्चपाण्डव गए थे, अत्यन्त संक्षेपमें उन्हीं तीर्थोंका उल्लेख है। तीर्थ या पुण्यक्षेत्रके सिवा पाण्डवोंने जिन सब स्थानोंमें पदार्पण किया था, महाभारतकारने उन सबका उल्लेख अप्रामाणिक ज्ञान कर न दिया। अतः गङ्गासागरके महेन्द्राचल मैकड़ों योजन दूर रहने पर भी उनके बीच बहुत-से स्थानोंका महाभारतमें कोई उल्लेख नहीं आया है।

जो कुछ ही, महाभारतके विवरणसे यह ज्ञाना जाता है, कि हम लोगोंका बालोचय भुवनेश्वरक्षेत्र वनपर्वके उक्त पर्वोध्याय-रचनाकालमें विश्वकर्माका तपस्या स्थान स्वयम्भूतका कह कर ही प्रसिद्ध था। उस समय यह स्थान द्वितीय काशी या एकाग्रकानन नहीं कहलाता था। एकाग्रकाननकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें जो महापौराणिक आख्यान परवर्ती कालमें प्रचलित हुआ है, उसका भी कोई आभास नहीं मिलता।

सम्भावना: सुस्तदेवके सम्मुद्रपके समय यह पर्वत स्थान तपस्विनीका त्रिप 'स्वयम्भूत' कह कर परिचित

० गौडाधिप नन्दनयामेनके पुत्र विजयस्योमेके मातृकालमें यह स्थान—'देवनायो दक्षिणावर्तमें पञ्चवरादासीविश्वकर्माकी' अर्थात् दक्षिणावर्तके किनारे कश्यप तथा कश्यपके अधिपत्यवेदी स्थित है। इस वेदीका अन्ततः विश्वम्भूत उदयपर्वतमें जिया गया है।

१ महाभारतके पञ्चपाण्डवोंने स्वयम्भूत का अर्थ 'सम्राज्य' का लगाया है। किन्तु दुर्भाग्यवशानि प्रसिद्ध मुक्त्यर्थ भारत-वीर्यमें स्वयम्भूत अर्थ सम्पु शिखा है।

था। उस समय इस निर्जन वन प्रदेशमें किसी मनुष्य-का घर था या नहीं, इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। बहुत दिनोंसे यह स्थान कलिङ्गदेशके अन्तर्गत रहने पर भी यहाँ जो कोई राजधानी थी, उसका भी सबूत नहीं पाया जाता। गङ्गामण्डपमें चिक्राकोलसे आठ कोस की दूर पर जो कलिङ्गपत्तन और उससे कुछ दूर मनफुर बन्दर है, वहाँ एक समय सुविस्तृत कलिङ्गराज्यकी राजधानी कलिङ्गनगरी तथा भारत-प्रसिद्ध मणिपुर कहलाता था।

बीडप्रमाण्यके समय खण्डगिरि पर बीडोंका समागम तथा घवलगिरि पर बीडधर्मानुरागी सम्राट् मियदर्शोंका अनुशासन था सहो, पर भुवनेश्वरमें किसी भी बीडप्रभावकी सूचना नहीं मिलती। सम्भवतः बहुत पूर्वसे ही इस स्वयम्भूयनमें निर्जन मिय हिन्दू-तपस्वियोंका तपःस्थान रहनेके कारण, अन्य मतावलम्बिगण इसके शान्तिमङ्गके अमिलायों न हुए।

ईस्वी सन् २०० वर्ष पहले पाटलिपुत्र जयकारीसे पराक्रान्त जैनराज खारवेलने खण्डगिरिका अचलशैल भेद कर शुद्ध लोदी और पीले अमृतपूर्व कीर्तिकी प्रतिष्ठा तो की, फिर भी निभूत स्वयम्भूयनके प्रति उनकी दृष्टि न पड़ी। उनके समयमें खण्डगिरि और उदयगिरि नामक शुद्ध पर्वतगात्रसे उत्पन्न मन्दिरादिके द्वारा भूषित होने पर भी स्वयम्भूयन उससे बहुत दिन बाद भी देवमन्दिरसे अलङ्कृत नहीं हुआ था। यहाँ तक कि, ७वाँ जताब्दीमें चीन-परिभ्रमणरु यूएनचुवङ्गने खण्डगिरि प्रभृति बीड-कीर्तिकी पता तो लगाया था, पर सुप्रसिद्ध भुवनेश्वर-क्षेत्रका उन्होंने नाम भी सुना था या नहीं, इसमें सन्देह है। बाद उसके यह क्षेत्र "शाम्भवेश्वर" कहलाया। उदकलखण्डमें लिखा है :—

"एरमेवत् पुत्र क्षेत्र" महादेवेन निर्मितम्।

एत्र साम्राज्यमाक्रान्तः स्थापितः परमेष्ठिता ॥

यदेतच्छाम्भवं क्षेत्रं तमसो नाशनं परम् ।" ( १३ अ० )

प्राचीन कालमें महादेवने इन क्षेत्रका निर्माण किया।

यहाँ प्रजा द्वारा साम्राज्य उमाक्रान्त स्थापित हुए हैं।

इसीसे यह स्थान पापनाशकथेष्ट सम्भवक्षेत्र कहलाता है।

यह शाम्भवेश्वर एकाग्रयन या एकाग्रक्षेत्रमें भी गिना

जाता था। इस स्वयम्भू या एकाग्रयनमें बहुत दिनसे नाना मन्दिरादि-शोभित नहीं रहने पर भी यह निर्जन प्रदेश याराणसीके समान कोटिलिगप्रतिष्ठित तथा श्रेणीर्ष समन्वित था। इसका पता ब्रह्मपुराणसे मिलता है। यथा—

"सर्वपाण्डरं पुष्यं क्षेत्रं परमदुर्लभम्।

निष्कौटियमायुक्तं वाराणसी क्षमप्रभम् ॥

एकाग्रकेनि विरुष्यतं तीर्थाङ्ककमन्वितम् ।"

इस स्वयम्भूयनका एकाग्रयन नाम क्यों पड़ा, इसका सविस्तार पीराणिक आस्थान एकाग्रणवद्में लिपिबद्ध हुआ है। एकाग्र देवों, महाभारतके स्वयम्भूयन ही इसका आदि नाम है। सुनरां इसे बीडयुगका बहुपूर्व-वर्षों कहनेमें कोई अत्युक्ति नहीं। हिन्दू-प्रमाण्यके समय प्रचलित ब्रह्मपुराण तथा उत्कलखण्ड वर्णित एकाग्रयन माहात्म्य रचित हुआ। उस समय सम्भवतः सभी महा-भारतीय उपाख्यान भूल गए थे। किन्तु तब तक भी भुवनेश्वरके सुप्रसिद्ध मन्दिरका निर्माण नहीं हुआ था। भुवनेश्वरके वर्तमान लिङ्गराज, अन्ततचासुदेव प्रभृति मन्दिरसमूह बनाए जानेके बाद एकाग्रपुराणका उत्तर-खण्ड कपिलसंहिता, एकाग्रमन्त्रिका, भुवनेश्वरमाहात्म्य, तथा स्वर्णाद्रिप्रदोदय प्रभृति पीराणिक ग्रन्थ रचे गये, यह उक्त ग्रंथ पढ़नेमें ही सहजमें जान पड़ता है। एकाग्रपुराण प्रभृतिके रचयिता विभिन्न देवमन्दिरादि उत्पत्तिज्ञा अति प्राचीनतय हृदापन करनेमें यत्नवान हुए थे, किन्तु मन्दिराभ्यन्त-रस्थ शिलालिपि समूह तथा मन्दिरादिके रचना-कीगलने उनका उद्देश्य व्यर्थ कर दिया। यहाँ तक, कि इन सब समीचीन पीराणिक उपाख्यानमूलक ग्रंथोंकी रचना होनेके बहुत दिन बाद जो सब मादलापत्री सङ्कलित हुए हैं, वे भी अधिकांश कालपिनकसे प्रभावित होने हैं, ऐसा पहले ही कहा जा चुका है। हम लोग क्यों कर ऐसा शुचतर धर्मियाग उपस्थित करते हैं, प्रमगः उसका परिचय नीचे दिया जाता है।

विन्दुमार

भुवनेश्वर क्षेत्रमें आ कर यात्रीको सबसे पहले विन्दु-सागरमें स्नान करना पड़ता है। ब्रह्मपुराणके मतसे

यह विन्दुसर तीर्थ मय तीर्थोंके जलविन्दुने प्रपूजित है। इसमें स्नान करनेमें सर्वतीर्थ स्थानका फल मिलता है। फिर पद्मपुराणके मतमें भगवान् विनाकृपाणिने सभी तीर्थोंका एक एक विन्दु जल ले कर यह सरोवर निर्माण किया है, इसीलिए इसका नाम विन्दुसागर पड़ा। राजा राजेन्द्रपाल मितका कहना है, कि हाथी-गुफाकी शिलालिपिमें कलिङ्गराज कर्तृक जिम सरोवर प्रतिष्ठाका उल्लेख है वही सर यह विन्दुस्रष्ट है। पुनः इस विन्दुसागर तीर्थवामो पण्डागण महाभारतके वन-पर्यका श्लोक पढ़ कर इस सरोवरको प्राचीनता तथा माहात्म्यको घोषणा करते हैं। किन्तु महाभारतकी सुदृष्ट या हस्तलिखित किताबी पुस्तकमें यह श्लोक नहीं मिलता।

अभी प्रश्न उठता है, कि क्या विन्दुसर पथार्थमें दो हजार वर्ष पहले विद्यमान था ? किन्तु यह असम्भव सा जान पड़ता है। प्रह्लपुराणमें जिस विन्दुसरतीर्थका उल्लेख है वह एक छोटी पुष्करिणी-सी प्रतीत होता है। अभी यह जितना लम्बा चौड़ा है, पूर्वकालमें उतना नहीं था। इस विन्दुसागरके किनारे प्राचीन अनन्तयामुदेवके मन्दिरमें भवदेवमठ रचित जो प्रगल्भ है, वह पढ़नेसे जाना जाता है, कि:—

“प्रासादात्तं स गतु जगतः पुष्यपुष्यैकरीथी ।

चक्रं पातं मरकतमणि लच्छद सुच्छापयोषा ।

गुण्यं वाग्निप्रतिश्रुतिमिषाहर्गपन्तीन तारम् ।

विष्णोर्भागाद्गुण्यमदिशतस्वाधिकं या चक्रामे ॥”

मठ भयदेवने अनन्त यामुदेवके प्रासादके सामने जागतिक पुण्यका एक मात्र पुण्यस्वरूप तथा मरकतमणि-के समान निर्मल सुच्छाद्य-जलजातिनी एक यात्री या सद्गुण प्रस्तुत किया। उस जलके प्रतिविम्बमें मानो अतिकलन-कारी विष्णुका अद्भुत धाम बड़ा ही सुन्दर दीपता था। सुन्दरी मन्मत्तामयिक विचरणने म्हाक स्नाक जाना जाता है, कि यहाँ का विन्दुसागर महात्मा भयदेवकी कृति है। यह सुन्दर सरोवर १३००० फीट लम्बा, ७०० फीट चौड़ा और १६ फीट गहरा है। इसके चारों ओर पत्थर का घाट संघा हुआ है।

विन्दुसागरके बीच पत्थरका बन्ना हुआ एक टापू है

जिसका परिमाण १०० × १०० फीट है। इस टापूके उत्तर पूर्व कोनेमें एक छोटा सा मन्दिर है। स्नानार्थके स्नान यहाँ विष्णुमूर्ति लाई जाता है और मन्दिरके समीप पण्डारके जलसे देवकी विविध शिवा मन्त्र हीने है। स्नानयात्राके सिवा और दूसरे समय कोई भी इस द्वीपमें नहीं जाता। उस समय यहाँ बड़े बड़े कुम्भार रहते हैं। आदर्शका विषय है, कि विन्दुसागरमें कुम्भ से कुम्भार रहने पर भी वे कदापि यात्रियोंका भजन नहीं करते। बिना पूर भयके सैकड़ों बालक इस मो-चरमें आनन्दसे खेलते हैं।

विन्दुसागरमें स्नान कर तीर्थवासी तनगत यामुदेवके मन्दिरमें जाते और विष्णुमूर्तिसे दर्शन करते हैं।

॥ नन्त यामुदेव ॥

विष्णुसागरके मध्यपारके सामने अनन्त यामुदेवका यह मन्दिर है। इस मन्दिरकी लम्बाई १३१ तथा चौड़ाई ११७ फीट है। इसका मुलजाला १६ फीट लम्बी और २५ फीट चौड़ी है। मूल मन्दिरके साथ परदे मोहन, पीछे नाटमन्दिर और तब भोगमण्डप विद्यमान है। फलस पर्यन्त मन्दिरकी ऊँचाई ६० फीट है।

मूलमन्दिर, मोहन, नाटमन्दिर और भोगमण्डप की गडन प्रणाली भुवनेश्वरके अधिष्ठाता लिङ्गराजके भागमें विभक्त प्रधान मन्दिरकी जैसी है। इन चारों भागके बीच ही एक बड़ा दरवाजा है जिम हो कर मित्र मित्र भ्रममें जाना होता है। मूल मन्दिर और मुहानेके के आम पास चारों ओर छोटी बड़ी बहुत-सी प्रसा-मूर्ति हैं। किन्तु नाटमन्दिरमें कोई मूर्ति नहीं है, सिर्फ आंतरमें काले पत्थरकी बनी एक सुन्दर गढ़-मूर्ति विद्यमान है। मूलमन्दिरमें बलराम और कृष्णकी मूर्ति 'अनन्त' तथा 'यामुदेव' नाममें प्रसिद्ध हैं। इन्हीं के मन्दिरका नाम भी 'अनन्त-यामुदेव' हुआ है।

भुवनेश्वरके पण्डा तीर्थोंका कहना है कि इस भय यामुदेवका मन्दिर ही एकप्रधानतया सर्वप्रधान मन्दिर है। इसीसे सर्वप्रथम अनन्त यामुदेवकी मूर्ति के दर्शन न कर तीर्थवासी दूसरे किसी देवता दर्शन नहीं करने। यद्यार्थमें भुवनेश्वरमें प्रथम जो मूल मन्दिर तीर्थवासीके दर्शनार्थ है, उनमें ही यह मन्दिर

ही सवंपिशा प्राचीन है। यह सुविख्यात तथा सुप्राचीन मंदिर यद्गुराज हरिवर्माके मंत्री सर्वांगारप्रवित् राट्टीय धोत्रिय ब्राह्मणप्रवर भवदेव भट्टकी फीत्ति है। भवदेव ही राट्टीय ब्राह्मणकुलके पद्धतिकार थे। अनंत-वासुदेवके प्राचीरमें एक बृहत् शिलाफलक है जिसमें भवदेवके मिल सुप्रसिद्ध कवि दार्शनिक वाचस्पति-रचित भवदेवकी कुलप्रशस्ति वर्णित है। उक्त शिलालिपिमें जाना जाता है, कि यह विख्यात मन्दिर और सम्मुखस्थ विन्दुसागर महात्मा भवदेव भट्ट प्रस्तुत कर गए है।

सुप्रसिद्ध वाचस्पति मिश्रने ८६८ शक अर्थात् ९०६ ई०में न्यायसूत्रोपनिषद् नामक ग्रंथकी रचना की। उस समय उनके मित्र मिल भवदेव भट्टका मो आधिर्भाव होना असम्भव नहीं है। अतः अनंत-वासुदेवका मंदिर १०वीं शताब्दीमें बना होगा, ऐसा स्वीकार करना पड़ेगा।

सिंहराज भुवनेश्वर।

अनंत वासुदेवके दर्शन कर तीर्थगात्री लिङ्गराजके दर्शन करने हैं। भुवनेश्वरक्षेत्रों लिङ्गराजका मंदिर ही सबसे बड़ा है। अर्वा शिलानैपुण्य तथा भास्करकार्ण समन्वित इस मंदिरके लिए आज भुवनेश्वर केवल हिंदूके नहीं, वरन् संसारके सुसम्भ जातिके हो देखने लायक है। किन्तु सागरके दक्षिण प्रायः ६०० हाथ दूर समुद्रय प्राचीरघोषित बड़े चतुरेके मध्य यह महामन्दिर अवस्थित है इसकी लम्बाई ५२० और चौड़ाई ४६५ फीट है। इसके अलावा उत्तरकी ओर २८ फीटका वरामदा है। मुबलागोका परिमाण २३५ फीट है। प्राचीरकी मोटाई ७ फीट ५ इंच है। प्राचीरके चारों ओर बहुत बड़े बड़े प्रवेशद्वार हैं। पूर्वद्वार सबसे बड़ा है और यही सिंहदर-बाजा है जिसके दोनों बगलमें दो बड़ी बड़ी सिंहमूर्ति हैं। प्राचीरके उत्तर-पूर्व कोनेमें अधक प्राचीरके ऊपर नीवतरानाके जैसा पत्थरका बना हुआ एक छोटा घर है—यही नेटमण्डप है। लिङ्गराज भुवनेश्वर जब रथयात्रा कर लीटते हैं, तब इसी घरमें पार्श्वीमूर्ति लाई जाती है। प्राचीरके भीतर २० फीट चौड़े और ४ फीट ऊँचे बराबर बराबर पत्थर गड़े हुए है। एक समय बाहरी शत्रुके हाथसे मन्दिररक्षाके लिए यह दुर्मेघ प्रस्तरायतन बनाया गया था। सम्प्रति इसका कुछ अंश इसीघरके रूपमें व्यप-

हत होता है। इसीकी एक तरफ सुगठित काले पत्थरकी एक नृसिंहमूर्ति है। पश्चिमकी ओर चतुरेके मध्य ओर भी बहुतसे छोटे छोटे शिवालय हैं। उनमेंसे एक मन्दिर २० फीट ऊँचा है, जो मूल मन्दिरकी अपेक्षा बहुत पुराना है। इसका भीतरी भाग चतुरेके समतलसे ५५ फीट नीचा है। यहीं पर आदिलिङ्गमूर्ति विराजमान है। शास्त्रके मतसे अनादिलिङ्ग स्थानान्तर करना निषिद्ध है। इसीसे मूलमन्दिर निर्मित होने पर भी यहांके आदिलिङ्ग स्वस्थान-च्युत नहीं होते। मूलमंदिर निर्माण होनेके समय चतुरा कुछ ऊँचा कर दिया गया इसीसे आदि मन्दिर कुछ नीचा माट्टम पड़ता है। ब्रह्मपुराणमें जिन सब लिङ्गोंका उल्लेख है, उनमेंसे इस सुद मन्दिरके लिङ्ग भी एक है और अन्यान्य प्राचीराम्यन्तरस्थ बहुतसे छोटे छोटे हैं। मूल महामन्दिरका निर्माण हो जानेसे उन सब पुराणोक्त लिङ्गका पूर्वसम्मान हास हो गया है।

पश्चिम तरफ एक कोनेमें भगवतीका मन्दिर है जिसमें तान्त्रिक यामाचारियोंका योनिचिह्न प्रतिष्ठित है। मादलापञ्जीके मतसे राजा विजयकेशरीने यह मन्दिर बनवाया था। किन्तु इस नामके किसी राजाने इस अञ्चलमें किसी समय राज्य किया था, उसका प्रमाण नहीं मिलता।

सिंहदरवाजा हो कर प्रवेश करनेसे पहले एक बहुत बड़ा पत्थरका चतुरा देखनेमें आता है। इसकी एक ओर समतल छत पर गोपालिनीका मन्दिर है। एरडागण कहते हैं, कि इन्हीं गोपालिनीने हृत्ति और यास नामक दो असुरोंको मार कर पकाप्रकाननमें शांति स्थापन की है। एकाक्ष देखें।

इस गोपालिनीमन्दिरकी भूमि मूलमंदिरके चतुरेसे बहुत ही नीची है, किन्तु पूर्वोक्त आदिलिङ्ग मंदिरके समतल पर है। गोपालिनीमंदिरके पश्चिम छः पत्थरोंको सौंठो बनी है जिसके ऊपर और लिङ्गराजके भोगमण्डपके नीचे ठोक बाँचमें प्रवेशद्वारके दक्षिण लिङ्गराजकी शृंगमूर्तिसे घेरो है। इस शृंगका दर्शन कर लिङ्गराजके महामंदिरमें प्रवेश करना पड़ता है।



नरसिंहदेवने कोणार्काका सूर्यमंदिर तथा उसका अपूर्व फ़ीमंघव द्वार प्रस्तुत किया था। लिङ्गराजका उक्त नाटमंदिर और उसका फ़ीमंघव द्वार तो उन्हीं चार गंगराजकी कीर्ति हैं। ११६४ शक ( १२४२ ई० )में यह नाटमंदिर निर्मित हुआ। उक्त शिलालिपिके ऊपर ही राजकुमारोका नाम रहनेसे अनुभव होता है, कि उक्त गङ्गाराजकन्या ही इसका सूत्रपात कर गई है। जान पड़ता है, कि वही राजकन्या प्रयादाबाधयमें तथा आधुनिक मादलापञ्जोमें शालिमीकेशरोकी महिषी कह कर प्रसिद्ध हुई है।

नाटमंदिरको पश्चिमवाली दीवारके गर्भमें हर-पार्वतीकी मूर्ति स्थापित है। नाटमंदिरके पश्चिम पाश्र्वमें मोहन और उसके पश्चिममें लिङ्गराजका देवल है, दोनोंकी गठन एक-सो है और दोनों एक-ही समयके बने हुए प्रतीत होते हैं। पाषाणमय उक्त मोहनका निर्माणकौशल, भास्करकार्य और शिल्पनैपुण्य देखनेसे चमत्कृत होना पड़ता है। महाभारतमें देखा जाता है, कि देवशिल्पी विश्वकर्मा यहाँ तपस्या करते थे। यथार्थमें यह नयनमोहन मोहन उन्हीं देवशिल्पोंके तपस्या-प्रभावसे बना है। अत्यन्त सुदृष्ट प्रतिमूर्तिले सुवृहत् पाषाण-प्रतिमा-अपरूप कौशलसे गठित है, मानों मानवजीवनका संसार चित्र सुस्पष्ट दिखाया गया है, प्रमोदावासाका आनन्दमय चित्र क्या ही सुन्दर सन्निविष्ट हुआ है, प्रकृतिको कल्पित लोलाभूमिने मानों शिल्पोंके कौशलसे सज्जोचना प्राप्त की है फिर भी, उसके साथ अमानुषी तथा कविकल्पित अस्वाभाविक दृश्यका अभाव नहीं है। जिसने देखा है, वही जानता है। सौ कड़ों पृष्ठ लिखने पर भी उसकी प्रष्ट वर्णना करनेमें लेखनी समर्थ नहीं है।

मोहनकी छत भी भोगमण्डपकी छतकी तरह चूड़ा-कार है। ऐसी बड़ी छत सिर्फ दीवारके आधार पर नहीं रह सकती, इस कारण ३० फीट ऊँचे चार सुदृढ़ पाषाणस्तम्भ छतके अवलम्बन स्वरूप हैं। इसके दक्षिण-प्रवेशद्वारके निकट बाईं तरफ एक चौकीन घर है जिसकी कारोगरी पर ताज्जुब होना पड़ता है। किन्तु दुःखकी बात है, कि निर्माता इसका कादकार्य समाप्त न कर सके। इस घरमें पीतलकी कई एक प्रतिमा रती

हैं। लिङ्गराजके उत्सवके समय लिङ्गके बदले ये ही प्रतिमा बाहर लाई जाती हैं। इसके सामने भीर कुछ दूर पर एक छोटे बड़े मन्दिर नजर आते हैं। मोहनकी लम्बाई ६५ फीट और चौड़ाई ४५ फीट है। इसके बाद लिङ्गराजका देवल या महामन्दिर है। अभी चवूतरसे ले कर कलस तक देवलको ऊँचाई १६० फीट है। किन्तु देवलके गर्भपृष्ठ चवूतरसे २ फीट नीचा होनेसे उस समय जो चवूतरा था, वह भी घरकी गहनसे लगभग २१३ फीट नीचा था, सुतरां पहले जब देवल बना उस समय इसको ऊँचाई लगभग १६५ फीट थी। देवलका भूभाग मोहनके समपरिमाणका है, सिर्फ उसके दक्षिण ओरकी मुखशाली कुछ चौड़ी है। किन्तु पूर्वा-पश्चिमका अंग कुछ छोटा है। प्रत्येक मुख शालीके बीच एक बड़ा गर्त है। इसके ऊपर और पार्श्वमें छोटे छोटे गर्त हैं। दूरे पे सष गर्त त्रितालके जैसे मालूम पड़ते हैं। मध्यमुख-शालीका सबसे विचला गर्त बहुत बड़ा और बढ़िया है। इसमें मनुष्याकृतिले भी बड़ी पाषाणमूर्ति रखी है। दक्षिण भागमें गणेशकी, पश्चिममें कार्तिककी और उत्तरमें देवी भगवतीकी मूर्ति हैं। मुखशाली जैसी अनेक शिल्पनैपुण्यको परिचायक है, बाहिरशाली वैसी नहीं है, फिर भी कारोगरी तथा स्थापत्यमें हीन नहीं है। यहाँ भी नाना प्रकारकी पाषाणमूर्ति दिखाई पड़ती हैं। कीनेकी बाहरशालीके गर्त बहुत छोटे हैं—ये पूर्वाक्षके जैसे बड़े नहीं हैं। किन्तु इन छोटे गर्तोंमें दिक्पालकी मूर्ति है—पूर्वको ओर शङ्कर, दक्षिणपूर्वमें अग्नि, दक्षिण-में यम, दक्षिणपश्चिममें निम्बित्ति, पश्चिममें यरण, उत्तर पश्चिममें गणत, उत्तरमें कुबेर और उत्तरपूर्वमें ईश है। मुखशाली, बाहरशाली और मूलमन्दिरकी दीवारमें बहुत से गर्त हैं जिनकी गठन सीधे सादी है। इन सब गर्तोंमें कई एक सिद्ध और ५ फीट ऊँची विभिन्न प्रकारकी पाषाणमूर्ति हैं। कहीं कहीं पर देवतत्त्वकी, कहीं भृङ्गार रसायणमें नरनारीकी युगलमूर्ति हैं। ये युगलमूर्तें इतनी कुचसम्पन्न और शरीराल हैं कि यह लिखा नही जा सकता। इन मूर्तियोंकी संख्या अधिक नहीं है। सुसम्पन्न भंगरेज राजाने ऐसी युगल





भीमदेवका ३४वां अङ्क तथा प्रवहति-सर्वस्मर पाया गया है। चाटेश्वरकी गिलाहिलिपी और २५ नरसिंह देवके सुवृहत् ताग्रयात्मनमें अन्नङ्गभीम या अनोयङ्क भीम दोनोंके नाम मिलते हैं। १म अन्नङ्गभीम उत्कल विजेता जगन्नाथके चतुर्थ पुत्र थे। इन्होंने १० वर्ष तक राज्य किया था। २५ अर्थात् १म व्यक्तिके पीत तथा राज-राजके पुत्र थे। इन्होंने चौतीस वर्ष लगभग ११७५ अंक (१२५३ ई०) तक राज्य किया। भुवनेश्वरकी गिलाहिलिपिमें "राजराजतनुज" तथा अनोयङ्कभीमके ३४ राज्याङ्क रहनेसे हम लोग शेषोक्त अनोयङ्क या अन्नङ्गभीमदेवका भुवनेश्वरके महामन्दिर निर्माता मानते हैं। सम्भवतः गङ्ग-राजके राजवारभूमिमें महामन्दिरका निर्माण कार्य आरम्भ और उनके राज्यावसानके समय प्रायः सम्पूर्ण हुआ था। जो कुछ अंश बाकी था वह नाटमन्दिर तथा भोगमण्डपके साथ उनके पुत्र घोर नरसिंहके द्वारा सुसम्पन्न हुआ। चाटेश्वर देवा। किसी किसीका कहना है, कि देवलका गर्भगृह अर्थात् जहां भुवनेश्वरलिङ्ग अर्पित है, वह देवल और मांहनसे बहुत पुराना है। किन्तु इस गर्भगृहकी भीतरी दीवारमें उत्कर्ष गिलाहिलिपिकी वर्णमाला और अनोयङ्क भीमकी गिलाहिलिपिकी वर्णमाला देखनेसे दोनों एक ही समयमें एक ही व्यक्तिसे लिखी हुई प्रतीत होती है। सुतरां गर्भगृह मय देवल तथा मोहनके कलिङ्गाधिपति गङ्गवंशीय अनोयङ्क भीमकी क्रांति है। महाराज अनयङ्कभीमने 'कृत्तिवास' और 'कृत्ति-वासेश्वर' नामसे हो लिङ्गराजका उल्लेख किया है यह शिलालिपिसे साफ साफ जाना जाता है। यही २५ अनोयङ्क भीम कटक, पुरी तथा गङ्गाम जिलेके नाना स्थानोंमें सुवृहत् शिवमन्दिरकी प्रतिष्ठा कर विरस्मरणीय हो गये हैं। चाटेश्वर और गणेश मन्दिरमें विस्तृत विवरण देला।

महसजिज्ञापरः।

महामन्दिरकी प्रदक्षिणाके बाहर सिंहद्वारके सामने एक छोटा उद्यान और उसमें एक सरोवर है। इसी सरोवरका नाम सहस्रलिङ्ग है। इसके चारों ओर चार चार हाथ ऊँचे एक स्त्री आठ गिवालय हैं। अनेक शिव-लिङ्ग प्रतिष्ठित रहनेके कारण उक्त सरोवरका नाम सहस्रलिङ्ग पडा है। किसी प्राचीन ग्रन्थमें या एकाग्र-

चन्द्रिकामें इस सरोवरका उल्लेख नहीं है, किन्तु स्वर्णाद्रि-महोदयमें इसका माहात्म्य वर्णित है।

तीर्थेश्वरका मन्दिर।

सहस्रलिङ्गसरने विन्दुसागर जानेके रास्ते पर तीर्थेश्वरका मन्दिर अवस्थित है। इस मन्दिरमें विशेष गिलय या कायकार्यका परिचय नहीं है। किन्तु देखनेमें यह महामन्दिरसे यहां तक, कि अनन्त वासुदेवके मन्दिरसे भी पुराना लगता है। चरकपूजाके समय इस मन्दिरकी मचलमूर्त्ति लाई जाती है।

कोटितीर्थेश्वर।

अनन्त वासुदेवके मन्दिरसे पूर्वोत्तर पाच भर जमीन जाने पर एक शूद्र भाद्रयनमें ४० फीट ऊँचा मोहनयुक्त एक देवल (मन्दिर) है। इसीका नाम कोटितीर्थेश्वर है। मन्दिर देवनेसे ही प्राचीन मा बोध होता है। राजा राजेन्द्रलाल मित्रके मतानुसार अति प्राचीन देवल तथा बौद्धचैत्यके मसालेसे यह देवायतन बना है। इस मन्दिरके पीछे पत्थरका शंभा हुआ एक अपरिष्कार सरोवर है जिसका नाम कोटितीर्थ है। यहां अनेक तीर्थयात्री स्नान करने आते हैं।

ब्रह्मेश्वर।

कोटितीर्थसे आध कोस पूर्व ऊँचे स्तूपके ऊपर एक सुन्दर, स्थल, नाना शिल्पयुक्त मन्दिर तथा तदनु रूप मोहन है। यही ब्रह्मेश्वरके नामसे प्रसिद्ध है। इसमें योनि-चिह्नके सिवा ब्रह्मेश्वर नामक छोटा लिङ्ग भी प्रतिष्ठित है। एकाग्रपुराण (१४वें अध्याय-)में लिखा है, कि महादेवने ब्रह्मासे भुवनेश्वर क्षेत्रका सविस्तार माहात्म्य वर्णन कर मन्दिरसे ११-० धनुको दूरी पर अपना विश्रामस्थान बतलाया था, तदनुसार ब्रह्माके आदेशसे विश्वरुमनि यहां ब्रह्मेश्वर मन्दिर बनाया। भक्तोंका विश्वास है, कि अभी जो ब्रह्मेश्वरका मन्दिर है, वह यही विश्वरुम-निर्मित प्राचीन मन्दिर है। किन्तु इस ब्रह्मेश्वरने आधिष्ठान गिलाहिलिपिसे जाना जाता है, कि सोम-वंशीयराजा उद्योतकेजरीको माता फलायतोंने यह मनोहर मन्दिर बनवाया है। ११वीं जनार्दनमें राजा उद्योत-केजरी विद्यमान थे। उन्हींके समय यह पिषात मन्दिर बना। एकाग्रपुराणका उपाख्यान पण्डाभोका

मूर्तियों की यत्न से शिवा किया है और बहुत सी मूर्तियों पर की हैं । किसी मूर्ति में बाघरत्नका दृक् और किसीमें अनेक मंत्रमार्गित है । ये सब मूर्तियाँ लगभग एक फीट से अधिक ऊँची नहीं हैं ।

भुवनाली और बाहरनालोंके अलावा देवल (मन्दिर) का आयतन लगभग ५५ फीट ऊँचा है । इसके ऊपर अनेक सिंहमूर्ति और छोटी बड़ी नाता प्रतिमूर्ति गजर माला हैं । हवा और रोजाने आने जानेके लिये ऊपरसे बहुत-से छोटे घड़े भरोते हैं । कालके अत्यल्पस्यकप मोचे १२ सिंहमूर्ति बैठे हैं और कालके ऊपर सुरक्षित विद्युत् गड़ा है ।

देवल ( मन्दिर )का पूर्वाभाग मोहनमें लगा है । इधर किसी अलतूर या सजायटका भाइभर नहीं है—भीतर और बाहर एक-सा है ।

देवलके आयतनके जैसा गर्भगृहका आयतन भी घन या चतुर्भुजाण है । यह घर भी दो मंजिला है । सोचे मनादिभिन्न भुवनेश्वर विराजमान हैं । इनके ऊपर उनके साथ चान्दीना लगे हुए हैं । इसी अनादि-लिङ्गके दर्शन करनेके लिये हजारों यात्रा भुवनेश्वर आते हैं । पञ्चकोनी भुवनेश्वरक्षेत्रमें अब भी हजारों लिङ्ग परामान हैं । किन्तु उक्त लिङ्ग ही सर्वप्रधान गिने जाते हैं, इसीलिये इनका नाम लिङ्गराज है । यहाँके पौराणिक कथानुसारमें इनका नाम विभुवनेश्वर और भुवनेश्वर लिखा तो है, पर इस लिङ्गमूर्तिके मूल नाम है कृत्तियाम् । मन्दिरके प्रतिष्ठाता कृत्तियाम् ही इस लिङ्गका परिचय दे गए हैं ।

राजा राजेश्वरपालके लिखा है, कि मगधने भा कर यथाविकेजारीने यद्योस्ती मार भगाया और बीशधर्मके ध्वंसावशेषके ऊपर पुनः द्विदूषणं स्थापित किया । उन्होंने ४३५ से ५२६ तक राजकाज चलाया । उन्हींके राज्यकालमें समस्त लिङ्गराजके देवल तथा मोहनका निर्माणकार्य आरम्भ हुआ । किन्तु ये इसे समाप्त न कर सके, उनके पंचपर शूरकेजारीने बहुत दिन तक राजत्व तो किया, किन्तु ये मन्दिरके लिए कुछ न कर सके । उनके उत्तराधिकारी अन्तमें मन्दिरका काम शुरू किया । अन्तमें ललाटेपुष्पकेजारीके

राजत्वकालके ५२८ तक ( ६६६ ई० )में इस मन्दिरका निर्माणकार्य समाप्त हुआ । १९ जनवरीके माद्व्यापञ्जीने मित्र महाजनने जो यह विवरण प्रकृत किया है, यह भी कथि-कल्पना है,--देवल इतिहासके मित्र पाण्डाओंके तीर्थक्षेत्रका प्राचीनतम दिग्दर्शक भी है । यथार्थमें केजारीयंजके कोई भी राजा मगधमें नहीं आये थे । अन्तमें भवसे भाविभूत उद्योतकेजारीके मित्र-कालमें ज्ञाना जाता है, कि उनके प्रतिमाह विभिन्न योर्ने निकलने या कर औद्यु राजाभार प्रदूष क्रिम और उन्हींके पूर्वपुत्र राजा जनमेजय निकलूपापि कइ कर पणित हुए हैं । यथार्थमें उद्योतकेजारीके मित्रा इन यंजके दूसरे किसी राजाको 'केजारी' उपाधि नहीं देनी जाती । इसके अलावा अन्तमें भवदिविमें उद्योतकेजारी और उनके पूर्वपुत्र क्षीरघे, अथवा, विचित्रवोर, अन्तमें मयु, चण्डोहर प्रभृति इन सब सोमयंतीय राजाओंका नामोन्धिये है । माद्व्यापञ्जीमें इनमेंसे एकका भी नाम नहीं मिलता । अन्तः माद्व्यापञ्जीके केजारीयंजकी यथातो पाण्डाओंकी कल्पनामात्र है । लिङ्गराजके देवल और मोहनसे ही मन्दिरनिर्माणकालको सम सम्प्राप्त निष्ठादिपि बाहर ई है । जिन्होंने देवल तथा लिङ्गराजमूर्तिके परामं किये हैं, उनका दृष्टि अवश्य ही उन्निष्ठादिपियों पर पड़ो होगी । इही निष्ठादिपियोंमें महापथाने देवल और मोहनका निर्माणकाल मण्डप हाता है । जगन्नाथके पण्डितान जिस अन्तु मांमके पुत्रयोत्तमके सुप्रसिद्ध मन्दिरनिर्माता बनसते हैं वे ही अन्तपञ्चोम भुवनेश्वरके सुप्रसिद्ध मन्दिरनिर्माता कर कर निष्ठादिपिमें वर्णित हुए हैं । निष्ठादिपिमें प्रसिद्ध

• इस मण्डपमें मित्र महाजनने अपने निम्न लेखके निम्नलिखित श्लोक उद्धृत किये हैं :—  
 "मन्दिरेभ्युक्तिं जयते शक्येदे कीर्तिकालमा ।  
 मगधमहर्षीराजस्य मन्दिरेभ्यु-न केजारी ह ।"  
 जगन्नाथके मन्दिरनिर्माणके उत्तरार्धमें मित्र प्रकार बतलाने श्लोक प्रकृत हुए हैं उन्हीं प्रकार यह भी कल्पित श्लोक है ।  
 इसके लक्ष्मीं मुद्र भी ऐतिहासिक श्रवण मरी है ।  
 1 Mitra's Anti-Quities of Orissa, Vol. II, p. 11  
 \* जनमेजय वद देमी ।

पाया जाता है। सम्भवतः उसी प्रासादमें उद्योतकेशरी रहते थे। कलिङ्गधिपति चोङ्गगङ्गके आक्रमणसे वे राज्य छोड़ कर भाग गये। उनके बहुत कोशिश करने पर भी यह देवल देवप्रतिष्ठाके अभावसे अङ्ग रहित रह गया। शत्रुके हाथसे उनका प्रासाद तहस नहस तो हो गया, पर देवोंहँ शस्त्रे बने हुए देवलने हिन्दूविजेतासे रक्षा पाई, किन्तु विजित वृषवंशको कीर्ति होनेके कारण अङ्गहीन मन्दिरमें देवप्रतिष्ठा प्रतापशाली गङ्गराजगण अनायश्यक तथा हीनचित्तके परिचायक-से प्रतीत होते हैं।

उद्योतकेशरीके पूर्व पुरुषके प्रतिष्ठित रामेश्वरमंदिरका अंधसावरोच उक्त अङ्गलके निकट पड़ा हुआ है।

मेघेश्वर ।

भास्करेश्वरके पूर्व २०० हाथकी दूरी पर मेघेश्वरका प्रसिद्ध मंदिर है। उड़ीसाके प्रत्नतत्त्वमें राजा राजेंद्रलालने इस मंदिरका नाम तक भी उल्लेख नहीं किया। किन्तु एकाग्रपुराण, स्वर्णाद्रि महोदय प्रभृति अनेक ग्रंथोंमें इस मेघेश्वरका माहात्म्य विस्तारपूर्वक वर्णित है। एकाग्रपुराणमें लिखा है,—आठ मेघने सिद्धिलाभकी इच्छासे एकाग्रक्षेत्रमें आनेके लिए देवराज इन्द्रसे प्रार्थना की। बाद उहाने इन्द्रकी आज्ञा पा कर एक साथ ही कल्प वृक्षसे १७०० धनुकी दूरी पर एक निर्मल शिलातल चून लिया और विश्वकर्माको कह कर वहाँ परिला, तोरण, कुण्ड, ग'पुरादि सर्वावयवयुक्त एक तुङ्ग प्रासाद बनवाया। वहाँ उनके दान, अर्चना, तप और यज्ञसे संतुष्ट हो कर महेश्वरने उन्हें दर्शन दिये और घर देना चाहा। मेघोंने प्रार्थना की, 'हम लोगोंने यह प्रासाद बनाया है। आप वहाँ अश्वस्थान करें'। इस पर महादेव बोले, 'मैं वहाँ मेघेश्वर नामसे वास करूँगा। इसका यमलजल युक्त हृद् में मेरा प्रीतिपद तथा सर्वांगपनाशक होगा।' ( एकाग्रपु० ३८ अध्याय )

एकाग्रपुराण चाहे जो कुछ कहे पर मेघेश्वर-मन्दिर उत्कलविजयी चोङ्गगङ्गके पुत्र राजराजके साले महायोर सत्नेश्वर देवको कीर्ति है। मेघेश्वरमें पहले एक शिलाफलक था जो अभी अनन्तवासुदेवके मन्दिरमें भय-देवमठको प्रास्तिकके पास रखा है। जनरल स्टुवार्ट द्वारा उक्त शिलाफलक हटाया गया था और मेजर किटोने

उसे वर्तमान स्थान पर रखा है। इस शिलालिपिसे जाना जाता है, कि गीतमगोलमें राजपुत्र द्वारदेवने जन्म ग्रहण किया। उनके पुत्र मूलदेव, मूलदेवके पुत्र अहिरम और अहिरमके स्वप्नेश्वर नामक पुत्र तथा सुरमा नामकी एक कन्या थी। इसी सुरमासे चोङ्गगङ्ग-राजपुत्र राजराज-देवका विवाह हुआ। विवाहके सम्बन्धसे ही स्वप्नेश्वर गङ्गराजसभामें विशेष सम्मानित होते थे। इन्हीं स्वप्नेश्वर देवने वर्तमान मेघेश्वरका सुंदर मन्दिर बनवाया था। मन्दिरके समीप जो मेघकुण्ड है, वह भी उन्हींका बनाया हुआ है। स्वप्नेश्वरके भगिनीपति राजराज ११वीं शताब्दीमें विद्यमान थे। उस मंदिरकी जैसा शोभा थी, अभी वैसी नहीं है; फिर भी यह देखने लायक है।

मुक्तेश्वर ।

राजारानीश्वर ( मंदिर )-से ६०० हाथकी दूरी पर एक आग्रवन था और वहाँ कई एक सिद्ध पुरुष रहते थे, इसलिये यह स्थान सिद्धारण्य नामसे विख्यात है। वहाँ कई एक शीतल प्रस्रवण भी हैं। अतः ऐसे मनोरम स्थानमें श्रेष्ठ देवालय क्यों न निर्मित हो ? ऐसे सुरम्य निर्जन स्थानमें कौन रहना पसंद नहीं करता ? उत्कलके भूपतिगण विभिन्न समयमें वहाँ मुक्तेश्वर, वेदारेश्वर, सिद्धेश्वर और परशुरामेश्वर प्रभृतिकी सांघायलीकी प्रतिष्ठा कर चिरस्थायी कीर्ति छोड़ गये हैं। वहाँ जितने देवालय हैं, उनमेंसे मुक्तेश्वर या मुक्तीश्वर भूलने लायक नहीं है। उत्कल-शिल्पियोंने इस मंदिरमें अपनी गुण-पणाकी पराकाष्ठा दिखलाई है। किन्तु मंदिरका घेसा दृश्य अभी न रह गया है—अभी यह अस्पष्ट, पर्णहीन तथा अङ्गहीन हो गया है। फिर भी यह अत्यन्त सुंदर विगत गिल्पनीपुष्पका मूर्वादा-परिचायक है। देवल कुल ३५ फीट ऊँचा, मोहन २५ फीट, इसका सामनेवाला तोरण (मैदरात्र) १५ फीट है, किन्तु विभिन्न वांशका रचनाविन्यास, स्थाननिर्वाचन तथा परिमाण-गारिपाट्य देखनेसे शिल्पियोंके अमाधारण कौशलका परिचय मिलता है। जो जहाँके योग्य है, वह वहाँ ही सन्निविष्ट है—जहाँ जो रखनेसे सर्वोका मन आकर्षित हो सकता है, शिल्पियोंने मानों देवजातिप्रभावसे पत्थर ले कर वहाँ चैल बोला है। सजावटकी कथा ही बहार है—बाहों

स्वास्त्योत्कृष्टियत्त पर्वणामात्र है। मंदिरके पश्चिम एक बड़ा मंगीयर है जिसका नाम प्रथकुण्ड है। स्वर्णांदि-मदोद्य तथा एकान्नपुराणमें मन्दिरके चिह्न और पुराण दोमोंका हो माहात्म्य वर्णित है।

भास्करेश्वर ।

प्रद्यंभ्वरके उत्तर-पूर्व एक विस्तोर्ण प्रान्तमें भास्करे-भ्वरका मन्दिर अवस्थित है। एकाम्बुपुराणमें लिखा है, कि स्वर्णामांसी देवताओंमें जब प्रजापति समुद्र तीर्थयज्ञों एकान्नयनका माहात्म्य सुना, तब स्वर्णोंमें महत्प्रशंसा पूर्व देवको यह कह कर भेजा कि, मूर्त्तदेवके ही समी अनु-यत्नों होंगी। मूर्त्त देव यहाँ भाये और इसकी जोगा देव विमोहित हुए। बाद उन्होंने विभ्वरुमांसी लिया कर प्रत्ति-पामके महामन्दिरमें १५०० धनु की दूरी पर एक सुरम्भ हर्म्य प्रस्तुत करवाया और उसमें एक लिङ्ग स्थापित कर नाता उपकरणमें कायमनोवाषय द्वारा उसकी पूजा को। भगवान् कृतिपात्रमें उनकी पूजामें संतुष्ट हो घर दिया, कि मैं स्वयं प्रतिदिन इसी लिङ्गमें रहूँगा।

(एकान्नपुराण १६ अ०)

भक्तगण उक्त उपासवान पर भक्तिपूर्वक विश्वास करने हैं, किन्तु पौरतर्हामिकरण इने समूलक समझते हैं। राजा राजेन्द्रालका विश्वास है, कि भास्करेश्वरलिंग एक हीयकोस्तिन्मम है। यह अगोपालाट भी हो सकता है, क्योंकि उनके साथ इसको तुलना हो सकती है। हिन्दुओंमें इस स्तम्भको ला कर लिङ्ग बना लिया है। यथापूर्वमें इस पाषाण लिङ्गके साथ भूषणे-द्वारण्य किमो लिङ्गका स्तम्भादृश्य नहीं है। इधर मन्दिरको गठन और मालामसाला देवनेसे यह भूषणेभ्वरको महामंदिरको भेषका प्राचान सा प्रतीत होगा है। बीच बीचमें बूना पोतनेसे उरकी प्राचोचना बहुत कुछ लप हो गई है। एक समय यह मंदिर ५० फीट ऊँचा था, अभी कलम तथा समुन्मिता टूट गई है। इसको तिलिमुमि लगभग ४८१० फीट लम्बो, ४७११० फीट चौड़ा और १५ फीट ऊँची है। इसके ऊपर मूर्त्तमंदिर और ११ फीट चौड़ा छोटा मोहन स्थापित है। मंदिर-पाशंगामके गर्भमें एक एक मूर्त्ति रखी है। लिङ्गके समीप

परघरकी मोड़ो बनी है। उसी पर चढ़ कर पुक्तो लिंगके ऊपर जल च्युते और पधारोतिते पूजा करते हैं।

राजारानी देवता

भास्करेश्वरके पश्चिम लगभग एक पाषाणी दूरी पर राजारानीका देवल (मन्दिर) है। सम्मति परित्यक्त रूप कण्टकपृष्ठमें आच्छादित होने पर भी एक मनव इतरे चारों ओरके उपवनकी जोभा स्वर्णोंके विलसती बहार करती थी। इसकी गठननपानो भुवनेश्वरके मन्दिरमें सम्पूर्ण भिन्न है, इसका मोहन भी भिन्न प्रकारका है। किन्तु इसका कागकार्य तथा जिन देवनेमें बमयन होना पड़ता है। बाहर गर्भमें बड़ो हो सुप्रील शान्ति विक सौन्दर्यविनिष्ट मरनाहीकी मूर्त्ति है जो कल्प छोटी होने पर भी दो हाथ ऊँची मालूम पड़ती है। इन सब मूर्त्तगठनमें जिनपौने पथेष्ट बोधयताका परिचय दिया है। इस मन्दिरमें अतद्भूतकी जितनी मूर्त्ति है, दुर्गमें उतनी नहीं है। ये सब अर्द्धील भाषण सुगठित मूर्त्ति देवनेसे बालों बन्द कर लेनी पड़ती है। इसमें बहुत-सी देव देवियोंकी मूर्त्ति है। भाषासे है, कि मन्दिरका प्रतिष्ठाकार्य पूरा न होने पाया, इसीलिये कोई लिङ्ग न करने के कारण यह मन्दिर बहुत दिनोंमें परित्यक्त है और यहाँ की अथहनरहित पाषाणमय अनेक प्रकारकी सुन्दर मूर्त्ति मानो जनसाधारणकी सम्पत्ति हो रही है। अन्तर मूर्त्तों और कर्नल से देखो इन मन्दिरकी देव कर विगुण हुए और इसको अनेक सुन्दर मूर्त्ति उठा ले गए हैं। अब भी उनमेंसे कई एक कलकत्तेके जादूघरमें रखी हुई हैं। बाहुद्वान होने पर भी ये दूरोंकीके विलसती भाट्ट करती हैं। यह मन्दिर देवोद्देश्यमें बनी नहीं उरख्य हुआ, इसका हाल कोई भी नहीं बतला सकते हैं। इसकी गठन प्रणाली तथा जिनकीजल बहुत कुछ प्रद्यंभ्वर मन्दिरके समी है। यह समझाय नहीं, कि उचीतकेदरोंमें अदनी प्राचो लिप्य प्रद्यंभ्वरमन्दिर बनवाया हो और उनके तथा प्र-को स्त्राके दहनमें यह सुन्दर देवल गठित हुआ हो। यहाँ कारण है, कि इस राजारानीका देवल नाम बड़ा है।

महामन्दिरके दक्षिण ५१७ बीघा जङ्गल है। बहुतेका विश्वास है, कि यहाँ पर राजारानीका मन्दिर बन गया था और राजारानीका चिह्न और राजारानीका चिह्न

पाया जाता है। सम्भवतः उसी प्रासादमें उद्योतकेशरी रहते थे। फलिङ्गुधिपति चोङ्गङ्गके आक्रमणसे वे राज्य छोड़ कर भाग गये। उनके बहुत कोशिश करने पर भी यह देवल देवप्रतिष्ठाके अभावसे अङ्ग रहित रह गया। शकुलके हाथसे उनका प्रासाद तहस नहस तो हो गया, पर देवाङ्गशसे वने हुए देवलने हिन्दूविजितासे रक्षा पाई, किन्तु विजित नृपवंशको कीर्ति होनेके कारण अङ्गहीन मन्दिरमें देवप्रतिष्ठा प्रतापशाली गङ्गराजगण अनावश्यक तथा हीनचित्तके परिचायक-से प्रतीत होते हैं।

उद्योतकेशरीके पूर्व पुष्पके प्रतिष्ठित रामेश्वरमंदिरका ध्वंसावशेष उक्त जङ्गलके निकट पड़ा हुआ है।

मेघेश्वर ।

भास्करेश्वरके पूर्व २०० हाथकी दूरी पर मेघेश्वरका प्रसिद्ध मंदिर है। उड़ीसाके प्रत्नतत्त्वमें राजा राजेंद्रलालने इस मंदिरका नाम तक भी उल्लेख नहीं किया। किन्तु एकाग्रपुराण, स्वर्णादि महोदय प्रभृति अनेक ग्रंथोंमें इस मेघेश्वरका माहात्म्य विस्तारपूर्वक वर्णित है। एकाग्रपुराणमें लिखा है,—भांड मेघने सिद्धिलाभकी इच्छासे एकाग्रक्षेत्रमें आनेके लिए देवराज इन्द्रसे प्रार्थना की। बाद उद्दिने इन्द्रकी आज्ञा पा कर एक साथ हो कल्प वृक्षसे १७०० धनुकी दूरी पर एक निर्मल शिलातल न्यून लिया और विश्वकर्माको कह कर वहाँ परिष्ठा, तोरण, कुण्ड, गण्डुदि सर्वोपययुक्त एक तुङ्ग प्रासाद बनवाया। वहाँ उनके दान, अर्चना, तप और यज्ञसे संतुष्ट हो कर महेश्वरने उन्हें दर्शन दिये और वर देना चाहा। मेघोंने प्रार्थना की, 'हम लोगोंने यह प्रासाद बनाया है। आप यहाँ अवस्थान करें। इस पर महादेव बोले, 'मैं यहाँ मेघेश्वर नामसे वास करूँगा। इसका विमलजल युक्त हृद भी मेरा मंत्रिप्रद तथा सर्वराजनाशक होगा। ( एकाग्रपु. ३८ अध्याय )

एकाग्रपुराण चाहे जो कुछ कहे पर मेघेश्वर-मन्दिर उत्कलविजय चोङ्गङ्गके पुत्र राजराजके साले महावीर स्वप्नेश्वर देवको कीर्ति है। मेघेश्वरमें पहले एक मिलाफलक था जो अभी अनन्तवासुदेवके मन्दिरमें भव-देवमहदाका प्रशस्तिके पास रखा है। जनरल स्ट्यूार्ट द्वारा उक्त शिलाफलक हटाया गया था और मेजर किटोने

उसे वर्तमान स्थान पर रखा है। इस शिलालिपिसे जाना जाता है, कि गौतमगोत्रमें राजपुत्र द्वारदेवने जन्म ग्रहण किया। उनके पुत्र मूलदेव, मूलदेवके पुत्र अहिरम और अहिरमके स्वप्नेश्वर नामक पुत्र तथा सुरमा नामकी एक कन्या थी। इसी सुरमासे चोङ्गङ्गराजपुत्र राजराज-देवका विवाह हुआ। विवाहके सम्बन्धसे ही स्वप्नेश्वर गङ्गराजसभामें विशेष सम्मानित होते थे। इन्हीं स्वप्नेश्वर देवने वर्त्तमान मेघेश्वरका सुंदर मन्दिर बनवाया था। मन्दिरके समीप जो मेघकुण्ड है, वह भी उन्हींका बनाया हुआ है। स्वप्नेश्वरके भगिनोपति राजराज ११वीं शताब्दीमें विद्यमान थे। उस मंदिरकी जैसी शोभा थी, अभी वैसी नहीं है; फिर भी वह देवने लायक है।

मुक्तेश्वर ।

राजारानी-देवल ( मंदिर )से ६०० हाथकी दूरी पर एक आग्रयण था और वहाँ कई एक सिद्ध पुण्य रहते थे, इसलिये यह स्थान सिद्धारण्य नामसे विख्यात है। यहाँ कई एक गौतल प्रक्षयण भी हैं। अतः ऐसे मनोरम स्थानमें श्रेष्ठ देवालय क्यों न निर्मित हो ? ऐसे सुरम्य निजंन स्थानमें कौन रहना तसंद नहीं करता ? उत्कलके भूपतिगण विभिन्न समयमें यहाँ मुक्तेश्वर, केदारेश्वर, सिद्धेश्वर और परशुरामेश्वर प्रभृतिकी सांभावलीकी प्रतिष्ठा कर चिरस्थायी कीर्ति छोड़ गये हैं। यहाँ जितने देवालय हैं, उनमेंसे मुक्तेश्वर या मुक्तेश्वर भूलने लायक नहीं है। उत्कल-शिल्पियोंने इस मंदिरमें अपनी गुणपणाकी पराकाष्ठा दिखलाई है। किन्तु मंदिरका वैसा दृश्य अभी न रह गया है—अभी वह अस्पष्ट, वर्णहीन तथा अङ्गहीन हो गया है। फिर भी यह अत्यन्त सुंदर विगत शिल्पनेपुण्यका मर्यादा-परिचायक है। देवल कुल ३५ फीट ऊँचा, मोहन २५ फीट, इसका सामनेवाला तोरण (मिहराव) १५ फीट है, किन्तु विभिन्न अंशका रचनाविन्यास, स्थाननियोजन तथा परिमाण-नारिपाट्य देखनेसे शिल्पीके असाधारण कौशलका परिचय मिलता है। जो जहाँके योग्य है, वह वहाँ ही सन्निविष्ट है—जहाँ जो रखनेसे सर्वोक्त मनोभासकर्मित हो सकता है, शिल्पियोंने मानों दैवप्रतिभायसे पत्थर ले कर वही खेल खेला है। सजावटकी क्या ही बढ़ाव है—कदी

स्वास्त्योद्यकनित्यत पर्यन्तनामक है। मंदिरके पश्चिम पक्ष बड़ा मंगलपर है जिसका नाम अश्वमेध है। स्वर्गादि-महोदय तथा एकाग्रपुराणमें मन्दिररथ लिङ्ग और कुण्ड दोनोंका ही माहात्म्य वर्णित है।

### भास्करेश्वर ।

प्राचीन भारतके उत्तर-पूर्व पक्ष विस्तारमें प्रान्तमें भास्कर-ेश्वरका मन्दिर अवस्थित है। एकाग्रपुराणमें लिखा है, कि स्वर्गवासमें देवताओंमें जब प्रयासि समुद्र तीरपत्ती एकाग्रयनका माहात्म्य सुना, तब सर्वोंने सहस्रांशु सूर्य देवको पर बह कर भेजा कि, सूर्यदेवके ही सभी अनु-पत्ती होगी। सूर्य देव यहाँ भाषे और इसकी जोभा देव विमोहित हुए। बाद उन्होंने विश्वकर्माको लिया कर कृत्तियामके महामन्दिरमें १५०० धनु की दूरी पर एक सुन्दर हर्म्य प्रस्तुत कराया और उसमें एक लिङ्ग स्थापित कर माना उपकरणमें कायमनोयापय द्वारा उसकी पूजा को। भगवान् कृत्तियामने उनकी पूजामें संतुष्ट हो पर दिया, कि मैं स्वयं प्रतिदित इसी लिङ्गमें रहूँगा।

(एकाग्रपुराण १६ भ०)

सकलान उक्त उपासनाय पर मतिपूर्वक विश्वास करने हैं, किन्तु ऐतिहासिकरूप इन्में समुद्रक समझते हैं। राजा राजेंद्रचन्द्रका विश्वास है, कि भास्करेश्वरलिङ्ग एक शीशकीसिन्धुका है। यह भगोकलाट भी हो सकता है, क्योंकि उसके साथ इसकी सुन्दर हो मन्तो हैं : हिन्दुमणि इस स्तम्भकी ला कर लिङ्ग बना लिया है। मयायामें इस पाषाण लिङ्गके साथ भूयसे-इस्वरथ जियो लिङ्गका सीमादृश्य नहीं है। इधर मन्दिरकी गठन और मालममाला देवनेसे यह भूयसेभरकी महामन्दिरकी अंशका प्रान्थन सा प्रमाण होता है। शेष शेषमें पूजा पोतनेसे उसकी प्राचीनता बहुत कुछ लप हो गई है। एक समय यह मन्दिर ५० फीट ऊँचा था, इसी कारण तथा अनुमाना टूट गई है। इसकी मिलिमि मयजग ४८० फीट लम्बी, ३०११ फीट चौड़ी और १५ फीट ऊँची है। इसके ऊपर मूर्तमन्दिर और ११ फीट चौड़ा छोटा मीठन स्थापित है। मन्दिर-पाषाणमके साथ ही एक एक मूर्ति रखी है। लिङ्गके समीप

पत्थरकी मूर्तों बनाई है। उनमें पर पर कर कुछसे दिग्गके ऊपर जल गड़ाने और यथावृत्ति पूजा करते हैं।

### राजराजी देवता

भास्करेश्वरके पश्चिम लगभग एक पारकी दूरी पर राजारानीका देवल (मन्दिर) है। सम्मति परिवर्तक कक फलकदृष्टामें भाष्कादिन होने पर भी परा समय इन्में चारों ओरके उपवनकी जोभा सर्वोंके जितही भाव करनी थी। इसकी गठनप्रणाली भुवनेश्वरके मन्दिमें सम्पूर्ण मित है, इसका मंगलन भी मित प्रकारका है। किन्तु इसका कायकार्य तथा जिल देवनेमें यन्त्रण होना पड़ता है। बाहर गर्तमें बड़ी ही सुन्दर माला-पिक स्त्रीवैपिगिण नरनारीकी मूर्ति है जो मण्डल छोटी होने पर भी दो हाथ ऊँची मालूम पड़ती है। पर मय मूर्तिगठनमें जिनपीने यथेष्ट योग्यताका परिचयित है। इस मन्दिरमें भनदूरकी जिनती मूर्ति है, इनमें उतनी नहीं है। ये सब अश्लील अथच सुगठित मूर्ति देवनेसे भाषे बन्द कर लेनी पड़ती हैं। इसमें बहुत-सी देव देवियोंकी मूर्ति है। भास्करेश्वर, कि मन्दिरका प्रतिष्ठाकार्य पूजा न होने पाया, इसीलिए कोई लिङ्ग रखे के कारण यह मन्दिर बहुत दिनोंमें परिवर्तक है और वही को सशतनरहित पाषाणमय अनेक प्रकारकी सुन्दर मूर्ति मानो जनसाधारणका सम्पत्ति हो रही है। जनन सूर्य और कर्नेल मी देखो इस मन्दिरकी देव कर विमुख हूँ और इसकी अनेक सुन्दर मूर्ति उठा ले गए हैं। मय भी उनमेंसे कई एक कलकलेके जादूपरमें रखा हूँ है। बहुतहीने होने पर भी ये दूरीकोके चित्तको भाव्य बनते हैं। यह मन्दिर देवोंदेवनें वही नहीं उदाहर हुआ, इसका हाल कोई भी नहीं बनना सकते हैं। इसकी गठन प्रणाली तथा जिनकीजल बहुत कुछ प्राचीन मन्दिरके ही है। यह सप्तमय नहीं, कि उद्योगकेद्वारेसे बनने माताके लिए प्राचीनमन्दिर बनवाया हो और उनके तथा उन को म्वाके परनने यह सुन्दर देवल मण्डल हुआ हो। प्राचीन मय है, कि इन राजारानीका देवल नाम पड़ता है।

महामन्दिरके दक्षिण ५०३ चौपा जङ्गल है। बहुत-सी विश्वास है, कि यहाँ पर राजारानी पर। मय भी उन प्रासादका विष्ट और राजीमानन निर्देश

पाया जाता है। सम्भवतः उसी प्रासादमें उद्योतकेशरी रहते थे। कलिङ्गाधिपति चोङ्गङ्गके आक्रमणसे वे राज्य छोड़ कर भाग गये। उनके बहुत कोशिया करने पर भी यह देवल देवप्रतिष्ठाके अभावसे अङ्ग रहित रह गया। शङ्क के हाथसे उनका प्रासाद तहस नहस तो हो गया, पर देवाहं शस्त्रे धन ह्य देवलने हिन्दूविजेतासे रक्षा पाई, किन्तु विजित नृपवंशको काल्पित होनेके कारण अङ्गहीन मन्दिरमें देवप्रतिष्ठा प्रतापशाली गङ्गराजगण अनायप्रयक तथा हीनचित्तके परिचायक-से प्रतीत होते हैं।

उद्योतकेशरीके पूर्व पुरुषके प्रतिष्ठित रामेश्वरमंदिरका ध्वंसावशेष उक्त जङ्गलके निकट पड़ा हुआ है।

मेघेश्वर ।

मास्करेश्वरके पूर्व २०० हाथकी दूरी पर मेघेश्वरका प्रसिद्ध मंदिर है। उड़ीसाके प्रत्नतत्त्वमें राजा राजेन्द्रलालने इस मंदिरका नाम तक भी उल्लेख नहीं किया। किन्तु एकाग्रपुराण, स्वर्णाद्रि महोदय प्रभृति अनेक ग्रंथोंमें इस मेघेश्वरका माहात्म्य विस्तारपूर्वक वर्णित है। एकाग्रपुराणमें लिखा है,—आठ मेघने सिद्धिदाभक्तों इच्छासे एकाग्रक्षेत्रमें आनेके लिए देवराज इन्द्रसे प्रार्थना की। वाद उहने इन्द्रकी आज्ञा पा कर एक साथ हो कर पृथ्वीसे १७०० धनुकी दूरी पर एक निर्मल शिलातल चून लिया और विभवकुम्भीको कह कर वहाँ परिष्ठा, तोरण, कुण्ड, गुणुपदि सर्वावयवयुक्त एक तुङ्ग प्रासाद बनवाया। वहाँ उनके दान, अर्चना, तप और यज्ञसे संतुष्ट हो कर महेश्वरने उन्हे दर्शन दिये और घर देना चाहा। मेघोंने प्रार्थना की, 'हम लोगोंने यह प्रासाद बनाया है। आप यहाँ अवस्थान करें। इस पर महादेव बोले, 'मैं यहाँ मेघेश्वर नामसे घास करूँगा। इसका विमलजल युक्त हृद् भी मेरा प्रीतिप्रद तथा सर्वापा-नाशक होगा।' ( एकाग्रपु. ३८ अध्याय )

एकाग्रपुराण चाहे जो कुछ कहें पर मेघेश्वर-मन्दिर उदकलविजयो चोङ्गङ्गके पुत्र राजराजके साले महावीर स्वप्नेश्वर देवको काल्पित है। मेघेश्वरमें पहले एक शिलाफलक था जो अभी अनन्तवासुदेवके मन्दिरमें भव-देवमठका प्रशस्तिके पास रखा है। जनरल स्टुवार्ट द्वारा उक्त शिलाफलक हटाया गया था और मेजर किटोने

उसे वर्तमान स्थान पर रखा है। इस शिलालिपिसे जाना जाता है, कि गौतमगोत्रमें राजपुत्र द्वारदेवने जन्म ग्रहण किया। उनके पुत्र मूलदेव, मूलदेवके पुत्र अहिरम और अहिरमके स्वप्नेश्वर नामक पुत्र तथा सुरमा नामकी एक कन्या थी। इसी सुरमासे चोङ्गङ्ग-राजपुत्र राजराज-देवका विवाह हुआ। विवाहके सम्बन्धसे ही स्वप्नेश्वर गङ्गराजसभामें विशेष सम्मानित होने थे। इन्हीं स्वप्नेश्वर देवने वर्तमान मेघेश्वरका सुन्दर मन्दिर बनवाया था। मन्दिरके समीप जो मेघकुण्ड है, यह भी उन्हींका बनाया हुआ है। स्वप्नेश्वरके भगिनीपति राजराज ११वीं शताब्दीमें विद्यमान थे। उस मंदिरकी जैसी शोभा थी, अभी वैसी नहीं है। फिर भी वह देवने लायक है।

मुक्तेश्वर ।

राजारानी-देवल ( मंदिर )-से ६०० हाथकी दूरी पर एक आग्रयण था और वहाँ कई एक सिद्ध पुरुष रहते थे। इसलिये यह स्थान सिद्धारण्य नामसे विख्यात है। यहाँ कई एक शीतल प्रस्त्रयण भी हैं। अतः ऐसे मनोरम स्थानमें थोड़ा देवालय क्यों न निर्मित हो ? ऐसे सुरम्य निजंन स्थानमें कौन रहना पसंद नहीं करता ? उदकलके भूषणविभ्रम समयमें यहाँ मुक्तेश्वर, केदारेश्वर, सिद्धेश्वर और परशुरामेश्वर प्रभृतिकी सींभावलीकी प्रतिष्ठा कर चिरस्थायी काल्पित छोड़ गये हैं। यहाँ जितने देवालय हैं, उनमेंसे मुक्तेश्वर या मुक्तेश्वर भूलने लायक नहीं है। उदकल-गिल्पियोंने इस मंदिरमें अपनी गुण-पणाकी पराकाष्ठा दिखलाई है। किन्तु मंदिरका वैसा दृश्य अभी न रह गया है—अभी यह अस्पष्ट, वर्णहीन तथा अङ्गहीन हो गया है। फिर भी यह अत्यन्त सुन्दर विगत शिल्पनैपुण्यका मर्यादा-परिचायक है। देवल कुल ३५ फीट ऊँचा, मोहन २५ फीट, इसका सामनेवाला तोरण (मिहराव) १५ फीट है, किन्तु विभिन्न अंशका रचनाविन्यास, स्थाननियंत्रण तथा परिमाण-गारिपट्टय देखनेसे जित्थोके असाधारण कौशलका परिचय मिलता है। जो जहाँके योग्य है, वह वहाँ ही सविष्टित है—जहाँ जो रचनेसे सर्वोका मन आकर्षित हो सरता है, शिल्पियोंने मानो दैवशक्तिक्रमावसे पत्थर ले कर वहाँ घेज-येगा है। सजावटकी क्या ही बहार है—कहाँ



तो देरके देर पुस्तक्युद्ध है, कहीं मुसलमान तथा मुनिप-  
मित मन्त्रालयमूर्ति, कहीं मन्त्रालयिनी देवीमूर्ति धर्म-  
यन्त्रालय असुरको मन्त्रालय उपना, कहीं भगवतो भद्रवृत्ता  
भोगनाभारको भद्रनिशादानमें निरता, कहीं पञ्चमिर  
भुक्तके लक्षके मोचे भद्रमूर्तिवृत्ति समयो, कहीं सिद्ध  
मायके ऊपर, कहीं सिद्धके साथ हाथोका सुद्ध और  
कहीं हाथोको मूर्तिमें बंधा हुआ सिद्ध है, - पुनः नर्त-  
विगीता हाथनाय-पुनः नाना रूप, कोई नागको है,  
कोई सुद्ध, सोना शपाया लक्ष्युग कलाको है, कोई प्रेमके  
भावेनमें विपतमत्त भाविकून करतो है, - कोई बलिष्ठ  
राश्रममूर्ति बोर हो रही है, सिद्धमंगल निययूतामें  
निमुक्त है, मुग नियको उपदेन दे रही है, कोई पुन्यक  
पद रहा है, कहीं छनके मोचे कोई मारी गड़ी है, कोई  
को दूपाके पर सुभोको हाथमें लिपे हुए है, कोई समान  
गृहके मोचे और कोई कण्ठपके ऊपर मोनाममान है।  
रमनिवीके बाहरी क्या हो बहा है। उनके निर-  
के चित्तमें ही राज है :- कृष्णकी मन्त्रायट, मत्तापलोका  
काम, तथा भद्रकी मन्त्रायट क्या ही सुन्दर है। इसकी  
नामा बहो ही भूय है। यथाधर्म मन्दिरका निय-  
वेदुप्य देवताका उपाय प्रकाशित नहीं की जा सकतो।  
मिष्टमें भगवतो सांगी देना है, वे ही जाले है - उराल  
निगिपीको गीच्छो घम्प्याद द्विदे बिना दुराक कदापि नहीं  
सीटने। इसको कारणसे, येता नियययानुप जो  
मानो प्रकिके ही अनुकूल है। मन्दिरमें जहां जहां जन  
रहनेमें सुद्ध रगता है यहीं पर स्थनापगत प्रश-  
धन नियको कीमत्तमें गृहफलके अर्पण करीमाय है।  
यास्तयिकमें इस निशां सिद्धात्तमें मुक्तिदत्ता मुक्ती  
अन्तके मन्दिरमें जालेमें मग पुनः मोगात्तक कापीको  
कोर नहीं भावा मारता। इच्छा होती है कि राशके  
शिव चरो रहे और उरदी भूकामपन भवामोपतिके  
वैदेवमें मन्त्राय मन्त्राय करे।

मन्त्रई और पीछां मन्त्राय १०० और २५ फीट है।  
इसके तीन धोर पदरमे बंधे हैं और भागकेमो  
छायामे पदरको मोड़ी मोमिन है। इस चारोको है  
एक मन्त्राय है, इतो द्विधे कुरह। मर दिन मन्त्राय जं  
रता है। यही जन कुमोराद्वि मुग हो का पीरो-  
केदार कुरहमें गिरता है। यह कुरह भी ७० फीट मन्त्र  
और २० फीट चौड़ा है। इसके भी तीन पाट पदरको  
बंधे हैं और द्वितीयांममें २० फीट लम्बी तथा १० फीट  
चौड़ी पदर की सांछो है। इस पीरोकेदारका जन रता  
परिकार है, कि १६ फीट गहरा होने पर भी इसका  
नियन्ता भाग दिखलाई पड़ता है। येता पुष्टानु तथा  
परिकार पातोप अल भुवमोपरम और चरो' भी नहीं  
मिलता। इस कुरहके मोचे भी प्रशरण है। निवदुराके  
मन्त्रे पीरोके मन्त्र' यह पुनरितो पीरो थी। यहाँ पर  
थं तक स्थिर गिरनेमान करनेसे शर्पकाम निक  
होता है ७। कविचम'दितामें लिखा है, कि कुरहका  
अल पीरोसे पुनर्ग्रम नहीं होता।

कुरहके पाट पर कई एक छोटे छोटे पर हैं जिनमें  
एकको पाटते शेषारमें ८ फीट ऊँचा एक हनुमान मूर्ति  
और दूसरीमें निरयाहिनी दुर्गामूर्ति गड़ी है। इस देवी-  
की ऊँची सुद्धर मुक्तां मुनोभरकी और द्विगो भी  
मूर्तिमें नहीं है। दोनोंको पूजा प्रतिदिन होती है।

केदार ।

दुर्गादेवीके दक्षिण भागमें ४१ फीट ऊँचा केदारोत्तर-  
का मन्दिर है। इस मन्दिरमें या इसके चौकील माइयमें  
उपनी मन्त्रायट नहीं है। द्वितीये यह बहुत पुनामा-  
या मन्त्राय पड़ता है। इसका मन्त्राय मन्त्राय है।

० "निर कुरह् चर देतो पीरो केमोमन्त्रायते।  
मन्त्रायके कुरह' मन्त्रायमन्त्राय ॥  
मन्त्राय । मन्त्राय कुरहके मन्त्रायमन्त्राय ।  
मन्त्राय मन्त्राय मन्त्रायमन्त्राय ॥  
(मन्त्रायमन्त्राय मन्त्रायमन्त्राय)  
मन्त्रायमन्त्राय मन्त्रायमन्त्राय ।  
मन्त्राय मन्त्राय ॥  
(मन्त्रायमन्त्राय)

मुक्तीभद्रके चारोंमें ही  
मिष्टकी  
मन्त्राय  
मन्त्राय

प्राचीन प्रचीन होता है। ब्रह्मपुराणमें केदारेश्वर लिङ्ग-का उद्देश है। केदारेश्वरके दरवाजेकी चौखटकी दाहिनी ओर एक अस्पष्ट शिलालिपि उत्कीर्ण है। उने पढ़नेसे मालूम होता है, कि १००४ शकमें उदकलजिजेता चोड़गङ्गके आधिपत्य कालमें उक्त मन्दिर बना है। एकाग्रपुराण तथा कविलसंहितामें भी इसका माहात्म्य वर्णित है।

केदारेश्वर मन्दिरके सामने ही गौरीमन्दिर है। शीतला-पण्डोके दिन यहां भुवनेश्वरके सचललिङ्ग गौरीदेवी-से विवाह करने आते हैं।

शिद्वेश्वर ।

मुक्तेश्वरसे १०० हाथ उत्तर-पश्चिम एक अत्यन्त प्राचीन भग्न मन्दिर है एकाग्रपुराणमें लिखा है, कि विष्णुके आदेशानुसार विम्बकर्माने यह मन्दिर बनाया है। शिवको उपासनासे विष्णु यहां सिद्धलाम करते हैं, इसीलिए यहांके अधिदेवताका नाम सिद्धेश्वर है। इस मन्दिर की ऊंचाई ४७ फीट है। मन्दिरके दक्षिणमें चक्रेश्वर, शङ्करेश्वर, शम्भुेश्वर, शप्टेश्वर, वायव्येश्वर, परुणेश्वर, घनेश्वर, पावकेश्वर, चन्द्रशेखर, परशुरामेश्वर आदि बहुत से मन्दिर हैं। शैलोक परशुरामेश्वरका मन्दिर लगभग ६० फीट ऊंचा है। इसका सर्वाङ्ग नाना शिल्पनैपुण्य युक्त है। राजा राजेन्द्रलालका विश्वास है, कि बौद्ध विहारके ढंग पर यह मन्दिर बनाया गया है। इसका कोई कोई मंश विलापतके शैवसनोंके गिरजा-घरके-से मालूम पड़ते हैं। जो कुछ ही, मन्दिरकी गठन देखनेसे या महामन्दिरसे अत्यन्त प्राचीन समझा जाता है। एकाग्रपुराणमें परशुरामेश्वर, दैत्येश्वरके नामसे वर्णित हुए हैं।

भक्तानन्देश्वर ।

परशुरामेश्वरसे थोड़ा दूर उत्तर-पश्चिममें अलायु-केश्वरका मन्दिर है। बहुतोंका विश्वास है, कि मन्दिर-प्रतिष्ठता अलायुकेश्वरके नाम पर ही इसका ऐसा नाम पड़ा है। किन्तु पढ़ले तो कहा जा चुका है, कि अलायुकेश्वरके नामके कोई राजा हुए थे या नहीं, इसका कोई प्रष्ट प्रमाण नहीं मिलता। एकाग्रपुराणके मतानुसार महादेवके अष्टाक्षमण्डलसे ही इसका अष्टाक्षर नाम हुआ है। इस मन्दिरके २०० गज

परिचयमें नाकेश्वर नामक एक सुन्दर अथव परित्यक्त मन्दिर वर्तमान है।

वत्सेश्वर ।

विदुसागरके उत्तरी किनारे बहुत-से छोटे बड़े मन्दिर हैं, जिनमेंसे उत्तरीश्वर प्रधान है। एकाग्रपुराणके मत-से, यहां महादेवने भीममूर्ति धारण की और देवी भगवतीने उन्हें लुभानेके लिए बहुत से रूप धारण किये थे। पृथिवीके मध्य यह स्थान सर्वोक्त अपेक्षा पुण्य-प्रद माना जाता है। इसके निकट भीमेश्वर नामक एक मन्दिर है। प्रवाद है, कि मध्यम पाण्डव भीमने यहां आ कर यह मन्दिर निर्माण किया। किन्तु हम लोगोंका विश्वास है, कि भुवनेश्वर-मन्दिराभ्यन्तरस्थ गिलाफल-कोक राजा भीमदेव द्वारा सम्भवतः यह भीमेश्वरमन्दिर स्थापित हुआ होगा।

उक्त स्थानके उत्तरपश्चिम आध मीलकी दूरी पर रामाश्रम अशोकवन दिखाई पड़ता है। यहां एक समय किसी केजरीराजका प्रासाद था, उसीके निकट रामेश्वरमन्दिर तथा अशोकतीर्थ है अशोकतीर्थके चारों ओर अनेक देवालय हैं जिनमेंसे राम, लक्ष्मण, सीता, भरत, हनुमान प्रभृतिके छोटे छोटे मन्दिर भी नजर आते हैं। इनके समीप ही गोसहस्रहृद् और उसके किनारे गोसहस्रेश्वर मन्दिर है। एकाग्रपुराणमें लिखा है, कि भगवतीने यहां गोचारणके समय लिङ्गमेंसे दूध निकलने देखा था। गोसहस्रेश्वरके उत्तर-पूर्व ईशानेश्वर और इसके बाद यथाक्रम भद्रेश्वर, कुण्डलेश्वर, परमेश्वर, पूर्वेश्वर, स्वर्णकूटेश्वर, वैद्यनाथ, सूर्यमन्त्रातकेश्वर, यद्वेश्वर, बालकेश्वर, भीमेश्वर, उत्पलेश्वर, जटिलेश्वर, आम्नातकेश्वर, वैतालदेवल प्रभृति छोटे बड़े कई एक विद्यालय हैं जिनमेंसे वैताल देवलकी बनायदमें कुछ विशेषता है। इसकी चूड़ा श्रीकोन और ऊपरमें तीन फलस हैं। दूरसे देखनेसे यह दाक्षिणात्यके गोपुर-सा प्रतीत होता है। मन्दिरमें यथेष्ट कार्यकार्य तथा शिल्पनैपुण्य नजर आता है।

गोमेश्वर ।

वैताल देवलसे लगभग १००० हाथ दक्षिण सोमेश्वर का मन्दिर है। इसे देखनेसे मन विमुग्ध हो जाता है।

नो देखके डेर पुलंगुच्छ है, कहां मुसजित तथा मुनिप-  
मित नरनागोमूर्ति, कहां गजयासिनो देवोर्मणि अस्ति-  
गर्मांशुत अमुरको मारनेमें उचता, कहां भगवतो अन्नपूर्णा  
भोजनाशयको जगमिश्रादानमें निरता, कहां पञ्चगिरा  
भुतङ्गके चरके नीचे भद्रसंपादति रमणी, कहां सिद्ध  
हाथोंके ऊपर, कहां मिहके साथ हाथोंका युद्ध और  
कहां हाथोंको मृदुमें बंधा हुआ मिह है,—पुनः नत्त-  
किमोक्त हाथभाय युक्त नामा दृश्य, कोई नाचनेो है,  
कोई मृदङ्ग, कोणा धधया तन्धुग यजाती है, कोई प्रेमके  
भायेगमें मियतमया आलिङ्गन करतो है;—कोई बलिष्ठ  
राक्षसमूर्ति बोध दे रही है, सिद्धविगण जिवपूजामें  
निपुक्त है, गुग्गुलुको उपदेश दे रहे हैं, कोई पुस्तक  
पढ़ रहा है, कहां छतके नीचे कोई नारी गड़ी है, कोई  
स्त्री दरवाजे पर सुगंधको हाथमें लिये हुए है, कोई रमणी  
पृष्ठके नीचे और कोई कच्छपके ऊपर शोभायमान है।  
रमणियोंके बालको क्या दी बहार है। उनके शिर-  
के कितने ही साज हैं;—कूटकी सजावट, लतापत्तोंका  
काम, तथा भाङ्गको बनावट क्या ही सुन्दर है। इसको  
शोभा बढ़ी हो अपूर्व है। यथार्थमें मन्दिरेका जिल्य-  
वेपुष्य लेजानो द्वारा प्रकाशित नहीं की जा सकती।  
जिन्होंने अपनी भांतों देखा है, वे ही जानते हैं—उत्कल  
जिल्लियोंको सेरुद्धों धन्ययाद् दिये बिना दर्शक कदापि नहीं  
लौटते। इनको कारोगरो, पेसा जिल्यवातुर्ष जो  
मानों प्रकृतिके ही अनुकूल है। मन्दिरेमें जहां जहां जल  
रहनेसे सुन्दर लगता है वहां पर स्वभावजत प्रश्र-  
यण जिल्लियोंके कौशलसे गृहायतनके अत्यंत पर्याप्तोण है।  
घास्तविकमें इस निर्गल निवारणमें मुनिदाता मुक्तो  
भरके मन्दिरेमें जायेगे मन पुनः सामारिक कार्योंकी  
ओर नहीं भाना पाहता। इच्छा होती है कि सदाके  
लिए यही रहे और उन्हीं भूतभायन भयानोपनिके  
उद्देश्यमें मनप्राण समर्पण करें।

मुक्तोभरके पार्श्वमें ही एक सरोवर है जिसको

लम्बाई और चौड़ाई यथाक्रम १०० और २५ फीट है।  
इसके तीन ओर पत्थरसे बंधे हैं और नागदेनारो  
छायामें पत्थरको लोढ़ो गोमिन है। इस सरोवरमें वर्ष  
एक प्रलयगर्भ है, इसी लिये कुण्डों सब दिन स्वच्छ उब  
रहता है। यही जल कुम्भोत्कृति मुक्त हो कर गीरो-  
केदार कुण्डमें गिरता है। यह कुण्ड भी ३० फीट लम्बा  
और २८ फीट चौड़ा है। इसके भी तीन घाट पत्थरसे  
बंधे हैं और क्षितिर्गाममें २० फीट लम्बी तथा १० फीट  
चौड़ी पत्थर की सीढ़ी है। इस गौरीकेदारका जन शता  
परिष्कार है, कि १६ फीट गहरा होने पर भी इसका  
निचला भाग दिखलाई पड़ता है। ऐसा सुस्वाद्य तथा  
परिष्कार पानोय जल भुवनेश्वरम और कहां भी नहीं  
मिलता। इस कुण्डके नीचे भी प्रश्रयण है। शिवपुराणके  
मतसे गौरीने स्वयं यह पुष्करिणी छोदी थी। यहां एक  
वर्ष तक स्थिर चित्तसे स्नान करनेसे सर्वकाम सिद्ध  
होता है ७) कपिलसंहितामें लिखा है, कि कुण्डका  
जल पीनेसे पुनर्जन्म नहीं होता ११

कुण्डके घाट पर कई एक छोटे छोटे घर हैं जिनमें  
एकको गौरीो वीवारमें ८ फीट ऊंचो एक हनुमान मूर्ति  
और दूसरीमें सिद्धवाहिनो दुर्गांमूर्ति गड़ी है। इस देवी-  
को जैसी सुन्दर मुकामों भुवनेश्वरकी और कितनी भी  
मूर्तिसमें नहीं है। दोनोंकी पूजा प्रतिदिन होती है।

केदारेश्वर ।

दुर्गादेवीके क्षितिर्भागमें ४१ फीट ऊंचा केदारेश्वर-  
का मन्दिर है। इस मन्दिरेमें या इसके नीचोतन मातृममें  
उतनी सजावट नहीं है। देवनेसे यह बहुत पुराना-  
सा मालूम पड़ता है। इसका गर्भगृह मूढनाश्वरमें बहुत

० "तत्र संपन्नं स्वदेते गौरीं श्रीशिवसुन्दरीं ।

शरनेमगं देव्यं कुण्डं गद्वेगमप्यात्मनम् ॥

स्नात । सस्निन मद्राकुपे म्पत्थरतमर्दिशः ।

इतिपानोऽर्चनं तत्र सर्वकामफलप्रदम् ॥"

(शिवपुराण उक्तपद्य)

१ "मन्दिरेके हनुमान् विग्रहमें निरुद्धशक्तः ।

केरौ उरक वीरका पुनर्जन्मन सिद्धे ॥"

(शिवपुराण)

प्राचीन प्रचीन होता है। ब्रह्मपुराणमें केदारेश्वर लिङ्ग-का उद्देश है। केदारेश्वरके दरवाजेको चीखटकी दाहिनी ओर एक अष्टाष्ट शिलालिपि उत्कीर्ण है। उमे पढ़नेसे मालूम होता है, कि १००४ शकमें उत्कलविजेता चोड़गङ्गके अधिपत्य कालमें उक्त मन्दिर बना है। एकाग्रपुराण तथा कपिलसंहितामें भी इसका माहात्म्य वर्णित है।

केदारेश्वर मन्दिरके सामने ही गौरीमन्दिर है। गीतला-पद्योके दिन यहाँ भुवनेश्वरके सचललिङ्ग गौरीदेवो-से विवाह करने आते हैं।

विदेश्वर ।

मुक्तेश्वरसे १०० हाय उत्तर-पश्चिम एक अत्यन्त प्राचीन भवन मन्दिर है एकाग्रपुराणमें लिखा है, कि विष्णुके आदेशानुसार विश्वकर्माने यह मन्दिर बनाया है। शिवकी उपासनासे विष्णु यहाँ सिद्धलाम करते हैं, इसीलिये यहांके अधिदेवताका नाम सिद्धेश्वर है। इस मन्दिर की ऊँचाई ४० फीट है। मन्दिरके दक्षिणमें चक्रेश्वर, शङ्करेश्वर, शक्रेश्वर, शषट्शेष्वर, घायव्येश्वर, वरुणेश्वर, घनदेश्वर, पावकेश्वर, चन्द्रशेखर, परशुरामेश्वर आदि बहुत से मन्दिर हैं। शैवोक्त परशुरामेश्वरका मन्दिर लगभग ६० फीट ऊँचा है। इसका सर्वाङ्ग नाग शिखरने पुण्य युक्त है। राजा राजेन्द्रलालका विश्वास है, कि बौद्ध विहारके ढंग पर यह मन्दिर बनाया गया है। इसका कोई कोई अंश विलायतके शैवसन्तोंके गिरजा-घरके-से मालूम पड़ते हैं। जो कुछ ही, मन्दिरकी गठन देखनेसे या महामन्दिरसे अत्यंत प्राचीन समझा जाता है। एकाग्रपुराणमें परशुरामेश्वर, 'द्वैत्येश्वर'के नामसे वर्णित हुए हैं।

भद्रापुरेश्वर ।

परशुरामेश्वरसे थोड़ा दूर उत्तर पश्चिममें भद्रायु-केश्वरका मन्दिर है। बहुतोंका विश्वास है, कि मन्दिर-प्रतिष्ठाता भद्रायुकेश्वरके नाम पर ही इसका ऐसा नाम पड़ा है। किन्तु पहले ही कहा जा चुका है, कि भद्रायुकेश्वरके नामके कोई राजा हुए थे या नहीं, इसका कोई प्रष्ट प्रमाण नहीं मिलता। एकाग्रपुराणके मतानुसार महादेवके अष्टाङ्गकण्ठलुसे ही इसका अष्टाङ्गकण्ठक नाम हुआ है। इस मन्दिरके २०० गज

पश्चिममें माकेश्वर नामक एक सुन्दर अप्प परित्यक्त मन्दिर वर्तमान है।

उत्तरीश्वर ।

विदुसागरके उत्तरी किनारे बहुत-से छोटे बड़े मन्दिर हैं, जिनमेंसे उत्तरीश्वर प्रधान है। एकाग्रपुराणके मत-से, यहाँ महादेवने भीममूर्ति धारण की थीर देवी भगवतीने उन्हें लुभानेके लिये बहुत-से रूप धारण किये थे। पृथिवीके मध्य यह स्थान सर्वोकी अपेक्षा पुण्य-प्रद माना जाता है। इसके निकट भीमेश्वर नामक एक मन्दिर है। प्रवाद है, कि मध्यम पाण्डव भीमने यहाँ आ कर यह मन्दिर निर्माण किया। किन्तु हम लोगोंका विश्वास है, कि भुवनेश्वर-मन्दिराभ्यन्तरस्थ गिलाफल-कोक राजा भीमदेव द्वारा सम्भवतः यह भीमेश्वरमन्दिर स्थापित हुआ होगा।

उक्त स्थानके उत्तरपश्चिम आध मीलकी दूरी पर रामाश्रम अशोकवन दिखाई पड़ता है। यहाँ एक समय किसी केजरीराजका प्रासाद था, उसीके निकट रामेश्वरमन्दिर तथा अज्ञोक्ततीर्थ है अज्ञोक्ततीर्थके चारों ओर अनेक टेवालय हैं जिनमेंसे राम, लक्ष्मण, सीता, भरत, हनुमान प्रभृतिके छोटे छोटे मन्दिर भी नजर आते हैं। इनके समीप ही गोसहस्रहृद और उसके किनारे गोसहस्रेश्वर मन्दिर है। एकाग्रपुराणमें लिखा है, कि भगवतीने यहाँ गोचारणके समय लिङ्गमें-से दूध निकलने देखा था। गोसहस्रेश्वरके उत्तर-पूर्व ईशानेश्वर और इसके बाद यथाक्रम भद्रेश्वर, कुण्डेश्वर, पर-मेश्वर, पूर्णेश्वर, स्वर्णकूटेश्वर, घैषनाथ, सूक्ष्माश्रतकेश्वर, रुद्रेश्वर, बालकेश्वर, भीमेश्वर, उत्पलेश्वर, जटिलेश्वर, आश्रतकेश्वर, वैतालकेश्वर प्रभृति छोटे बड़े कई एक गिवालय हैं जिनमेंसे वैताल देवलयकी वनावटमें कुछ चिरो-पता है। इसकी चूड़ा चौकोन और ऊपरमें तीन फलस है। दूरसे देखनेसे यह दक्षिणात्यके गोपुर-सा प्रतीत होता है। मन्दिरमें यथेष्ट कार्यकार्य तथा शिलानैपुण्य नजर आता है।

गोमेश्वर ।

वैताल देवलयसे लगभग १००० हाय दक्षिण सोमेश्वर का मन्दिर है। इसे देखनेसे मन विमुग्ध हो जाता है।

तो देखेंके डेर पुष्पगुच्छ है, कहीं सुसज्जित तथा सुनिय-  
मित नरनारीमूर्ति, कहीं गजयामिनो देवीमूर्ति अस्ति-  
यर्माण अमुरकी मारनेमें उद्यता, कहीं भगवती अन्नपूर्णा  
मोलानाथकी अन्नमिश्रादानमें निरता, कहीं पञ्जगिरा  
भुजङ्गके चक्रके नीचे अर्द्धसर्पाकृति रमणी, कहीं सिंह  
हाथीके ऊपर, कहीं सिंहके साथ हाथीका युद्ध और  
कहीं हाथीको मूर्द्धमें शंभा हुआ सिंह है, —पुनः नर्त-  
कियोंका हाथमाय-युक्त नाना दृश्य, कोई नाचनी है,  
कोई मुदङ्ग, घोणा अथवा तम्बुरा बजाती है, कोई प्रेमके  
आवेशमें प्रियतमका आलिङ्गन करती है, —कोई वलिष्ठ  
राक्षसमूर्ति बोझ ढो रही है, सिद्धपिंगण गिणपूजामें  
नियुक्त है, गुरु गिणको उपदेश दे रहे हैं, कोई पुस्तक  
पढ़ रहा है, कहीं छतके नीचे कोई नारी खड़ी है, कोई  
स्त्री दरवाजे पर सुगंधकी हाथमें लिये हुए है, कोई रमणी  
गृहके नीचे और कोई कच्छपके ऊपर प्रोभायमान है।  
रमणियोंके बालकी क्या ही बहार है। उनके शिर-  
के कितने ही साज हैं :—फलकी सजावट, लतापत्तोंका  
काम, तथा भाङ्गीकी बनावट क्या ही सुन्दर है। इसकी  
शोभा बड़ी ही अपूर्व है। यथार्थमें मन्दिरका गिल्य-  
वेपुण्य लेखनों द्वारा प्रकाशित नहीं की जा सकती।  
जिन्होंने अपनी आंखों देखा है, वे ही जानते हैं—उत्कल  
जिल्लियोंको सैकड़ों धन्यवाद दिये बिना दर्शक कदापि नहीं  
लौटते। इतनी कारीगरी, ऐसा गिल्यचातुर्य जो  
मानों प्रकृतिके ही अनुकूल है। मन्दिरमें जहां जहां जल  
रहनेसे सुन्दर लगता है वहां पर स्वभावात्त प्रश-  
रण गिल्लियोंके काँशलसे गृहायतनके अत्यन्त यत्नमोन है।  
यास्तथिकमें इस निर्जन सिद्धारण्यमें मुक्तिदाता मुक्तों  
भरके मन्दिरमें जानेसे मन पुनः सामारिक कार्योंकी  
ओर नहीं भाना चाहता। इच्छा होती है कि सदाके  
लिए यहां रहे और उन्हीं भूकभायन भयानोपतिके  
उद्देशमें मनप्राण समर्पण करें।

मुक्तोंभरके पार्श्वमें ही एक सरोवर है जिसकी

लम्बाई और चौड़ाई यथाक्रम १०० और २५ फीट है।  
इसके तीन ओर पत्थरसे बंधे हैं और नामकेअनु  
छायामें पत्थर ही सौंदर्य शोभित है। इस सरोवरमें कई  
एक प्रश्रयण हैं, इसी लिये कुण्डों सब दिन स्वयं उत्र  
रहता है। यही जल कुम्भोराहति मुक्त हो कर गौरी-  
केदार कुण्डमें गिरता है। यह कुण्ड भी ७० फीट लम्बा  
और २८ फीट चौड़ा है। इसके भी तीन घाट पत्थरसे  
बंधे हैं और दक्षिणांगमें २० फीट लम्बो तथा १० फीट  
चौड़ी पत्थर की सोढी है। इस गौरीकेदारका जन हला  
परिष्कार है, कि १६ फीट गहरा होने पर भी इसका  
निचला भाग दिवलाह पड़ता है। ऐसा सुव्यापु तथा  
परिष्कार पानीय जल भुवनेश्वरम और कहीं भी नहीं  
मिलता। इस कुण्डके नीचे भी प्रश्रयण है। शिवपुराणके  
मनसे गौरीने स्वयं यह पुष्करिणी खोदी थी। यहाँ एक  
वर्ष तक सिधर चित्तसे स्नान करनेसे सर्वकाम सिद्ध  
होता है ७। कपिलसंहितामें लिखा है, कि कुण्डका  
जल पीनेसे पुनर्जन्म नहीं होता।†

कुण्डके घाट पर कई एक छोटे छोटे घर हैं जिनमेंसे  
एककी शारदी शीवारमें ८ फीट ऊँची एक हनुमान मूर्ति  
और दूसरीमें सिंहयादिनी दुर्गामूर्ति बनी है। इस देवी-  
की जैसी सुन्दर मुखधो भुवनेश्वरकी और किसी भी  
मूर्तिमें नहीं है। दोनोंकी पूजा प्रतिदिन होती है।

केदारेश्वर ।

दुर्गादेवीके दक्षिण भागमें ४१ फीट ऊँचा केदारेश्वर-  
का मन्दिर है। इस मन्दिरमें या इसके चौकीन मंथनेमें  
उतनी सजावट नहीं है। देखनेसे यह बहुत पुराना-  
सा माटूम पड़ता है। इसका गर्भगृह मूर्त्तेश्वरसे बहुत

- ० "तत्र शक्यात् स्वरदेते गौरी वैश्रीश्चमुन्दरी ।  
स्वयमेवा रोगं कुपयं शरणाग्रयागिनम् ॥  
स्नात । तस्मिन् महाकुण्डे गं वनगवनादिना ।  
इति शक्यात्स्वने तत्र सर्वकामतद्वरम् ॥"

(शिवपुराण उत्तरखण्ड)

† "विन्दुज्ज्वे तमुत्थायान् विपुलमे निषददन्तः ।

केदारे उदरं पीत्वा पुनर्जन्म न विदधे ॥"

(कपिलसंहिता)

“काली तारा महाविद्या पोङ्गी भुवनेश्वरी ।”

( तन्त्रसा० )

प्राणतोषिणीमें लिखा है—पुराकालमें भगवान् ब्रह्मा जब जगत्सृष्टि करनेके लिये तपस्यामें निमग्न थे, उस समय ये परमात्मिक परमेश्वरों उनको तपस्यासे संतुष्ट हो कर चैत्र मासकी शुक्ल नवमी तिथिकी आधिभूत हुई थीं ।

“अथ श्रीभुवनां वक्ष्ये शैत्रोक्तयोत्पत्तिमातरम् ।

पुरा ब्रह्मा जगत्सृष्टुं तपोऽतप्यत दारुणम् ।

तपसा तस्य बन्धुषा शक्तिः सा परमेश्वरी ।

चैत्र शुक्लनवम्यान्तु उत्पन्ना तारिणी स्वयं ॥”

( प्राणतोषिणी )

ब्रह्मपुराणमें ये आङ्गिरसवंशधरोंकी कुलदेवी मानो गई हैं ।

“दिदेशाङ्गिरसं धरो ऽ देवी भुवनेश्वरी” ( ब्रह्मपु० १८।५ )

दशमहाविद्या महाविद्या और शक्ति शब्द देखो ।

भुवनेश्वरी कवच ( सं० स्त्री० ) तंबसरोक धारणांय कवचमेद ।

भुवनेश्वरी भैरवी ( सं० स्त्री० ) तंतोक्त भैरवीमेद ।

भुवनेष्ठा ( सं० पु० ) मायातत्कार्यात्मके भुवने भूतजाते तिष्ठति उपहितः सन् यसंत इति भुवने स्था चिच्, तत्-पुरुषे रुति घट्टलमिति सप्तम्या अलुक् ततः पत्यं । सयं व्यापी परमात्मा । ( अथर्व २।१।५ )

भुवनीकस् ( सं० पु० ) भुवने ओरुः स्थानं यस्य । भुवनावासी ।

भुवन्ति ( सं० पु० ) भुवन्तीति तन-वाहु-ति, मुम् । भूमण्डलविस्तारक ।

भुवण्यु ( सं० पु० ) भवतीति ( कन्प्रच विभेच । उण् ३।११ ) इति चकारात् भूनी रपि कन्प्रच । १ सूर्य । २ अग्नि । ३ चंद्रमा । ४ प्रभु ।

भुवणपति ( सं० पु० ) १ अग्निके ज्ञातृमेद, अग्निके भाई । २ भुवलीकपति ।

भुवणस् ( सं० अश्व० ) भवतीति भू ( भूङ्गिषो क्ति । उण् ५।२१६ ) इति असुन्, सच क्तिन् । १ आकाश । २ महा-व्याहृति मेद । भुवः देखो ।

भुवर्लोक ( सं० पु० ) भुवर्चसामो लोकश्चेति । भूरादि सप्तलोकके अन्तर्गत द्वितीय लोक । अन्तरिक्षलोक ।

“भूमिसृग्मिन्नरं यच्च सिद्धादिमुनिसेविताम् ।

भुवर्लोकस्तु षोडश्युक्तो द्वितीयो मुनिवत्तम ॥”

( विष्णुपु० २।७ भ० )

भूमि और सूर्याके अन्धवर्ती जो स्थान है उसे भुव-लोक या द्वितीय लोक कहते हैं । इस लोकमें सिद्धादि और मुनिगण रहते हैं । पृथिवीका विस्तार और परि-मण्डल जितना है, उतना ही भुवर्लोकका विस्तार और परिमण्डल है ।

भुवस्वपति ( सं० पु० ) भुवो लोकस्वामी ।

भुवा ( हिं० पु० ) दर्श, घृषा ।

भुवार ( हिं० पु० ) भुवान् देखो ।

भुवाल ( हिं० पु० ) राजा ।

भुवि ( हिं० स्त्री० ) पृथिवी, भूमि ।

भुविष्ठ ( सं० त्रि० ) भुवि तिष्ठति स्था-क, अलुक् स ततः भवत्यं । भुवि स्थित, पृथिवीस्थित ।

भुविस् ( सं० स्त्री० ) भवतीति भवत्यस्मिन्, रत्नादीनि वा भू ( भुवः क्ति । उण् २।११३ ) इति इसिन्, सच क्ति । समुद्र ।

भुविस्पृश ( सं० त्रि० ) भुवि स्पृशति स्पृश क्तिप, मलुक समास । पृथिवीके स्पर्श करनेवाले ।

भुलेश्वर—भुलेश्वर देखो ।

भुयण्डो—१ पुराणवर्णित त्रिकालज्ञ काकयिथीव । इनके विषयमें यह प्रसिद्ध है, कि ये अमर और त्रिकालज्ञ हैं तथा कलियुगमें होनेवाली सब बातें देवा करते हैं । कुव-क्षेत्रकी लड़ाईके बाद भगवान् धार्कण्यने जब भुयण्डोसे रणवात्ता पूछो, तब उन्होंने उत्तरमें कहा था “सत्य-युगके शुभ-निशुम्ब युद्धमें हमने विना आयासके दैत्यरक्त पान और मांस भक्षण किया था । क्षेत्रायुगके राम-रावणयुद्धमें हमें छोड़ा परिश्रम उठाना पड़ा था । किंतु इस कुवण्डोयुद्धमें हमें भारी कष्ट भुगतना पड़ा ।”

इससे जाना जाता है, कि शुम्भसंहारके कारण देवदातयमें जो युद्ध चला था, वह जगतको एक महती घटना है । राक्षसपति रावणनिघनश्यापारने सामरिक महाघटनाका दूसरा स्थान पाया है और यह तृतीय कैरवयुद्ध पहलके दो युद्धोंको अपेक्षा बहुत हीन है । योगयाज्ञिष्ठ-रामायणके निर्याग्नकरणके पूर्व भाग ( १५-२३ भ० ) में भुयण्डोका उपाख्यान सविस्तार लिखा है ।

इसका सौंदर्य और गिनपनेपुण्य भुवनेश्वरके बहुत कुछ मिलना तुल्यता है। मंदिरकी ऊंचाई ३३ फीट है। इसके मोहनकी लम्बाई और चौड़ाई ३३×२१ फीट है। इसकी बगलमें ही पत्थरका बंधा हुआ एक बड़ा सरोवर है जिसका नाम है पावनागिरी। प्रथमाष्टमीके समय यहां भुवनेश्वरकी सचलमूर्ति लाई जाती है।

शारी देवाल।

महामन्दिरसे उत्तर तथा बड़ादण्ड और विन्दुमागर जानेके रास्ते पर अनेक मंदिर हैं जिनमेंसे मार्गदेवल उल्लेखनीय है। इसकी ऊंचाई ६३ फीट है। मंदिरकी गिनी लगभग २६ फीट चौड़ी है और चरका भोनरोमाग १२×११ फीट है। मंदिर और मोहनमें यथेष्ट गिनपनेपुण्य है। इसकी सजावटमें कुछ विशेषता है। भुवनेश्वरके प्रायः किसी भी मंदिरमें ऐसी सजावट नहीं देखी जाती। इसकी शोभामें अनेक प्रकारकी मूर्तियाँ चित्रित हैं।

कपिलेश्वर।

महामंदिरके सामने एक रास्ता उत्तरमें बड़ादण्ड होता हुआ आध कोस दक्षिण जा कर कपिलेश्वर ग्राममें मिल गया है। यहां बहुतसे ब्राह्मण रहते हैं, उनके पासकुछ बड़े ही परिष्कार परिच्छिन्न तथा सुचित्रित हैं। ग्रामकी अन्तिम सीमा पर कपिलेश्वरका प्रसिद्ध मंदिर है। इसका चबूतरा १०२×१०२ फीट है और चारों ओर ८ फीट ऊंचा दुर्भेद्य प्रस्तरका प्राचौर है। मध्यस्थलमें मोहन, नाटमंदिर और भोगमण्डप-सुका देवाल हैं। यह ४६ फीट ऊंचा है। सारे मंदिरमें ही साधारण गिनपनेपुण्य नजर आता है। देहनेमें ही लिङ्गराजके महामंदिरकी अपेक्षा यह पुराना मालूम पड़ता है। इसका नाटमंदिर और भोगमण्डप मूलमंदिर तथा मोहनमें बहुत पीछे बना था। भोगमण्डपमें नाना प्रकारके सुंदर भाण्डोदक चित्र देखे जाते हैं। मंदिरके दक्षिण प्रवेशद्वारके मोचे एक बड़ा सरोवर है। इसमें गिरिकापी एक प्रत्यय भी है, इसीलिये इसका जल बहुत ही परिष्कार रहता है। ग्रामीण प्रमुख इसका जल पीते हैं। निवपुरान, परकाष्ठपुरान, कपिलसंहिता, स्वर्णादि-महोदय तथा परकाष्ठमंत्रिकामें इसका माहात्म्य वर्णित

है। बहुतसे यात्री कपिलेश्वरका दर्शन करने आते हैं। इनकी नित्य सेवादि भुवनेश्वर-सी होती है।

विद्याराज।

अन्यान्य गिनपिङ्गु की तरह लिङ्गराजकी भी पत्, पुष्प, भङ्ग, वृष्य, जल प्रभृति द्वारा पूजा होती है और जगन्नाथकी तरह यहां भी नित्य अन्नभोगका प्रवण्य है। अन्य स्थानका गिननिर्मात्य अग्राह्य है। किन्तु भुवनेश्वरका निर्मात्य कभी भी कोई परिवर्तन नहीं करत, यात्री परम भक्तिके साथ इसे ग्रहण करते हैं। गिन प्रकार जगन्नाथका अन्नभोग चण्डालसे ले कर ब्राह्मण तक सभी एक साथ बैठ कर आहार कर सते हैं, लिङ्गराजका भोग भी उसी प्रकार ब्राह्मण शूद्र सभी जानि एकत्र भोजन करती है। मोच जातिके होनेसे भी लिङ्गराजका भोग अपवित्र नहीं होता है।

नित्यसेवाके अलावा लिङ्गराजकी द्वादश यात्रा तथा उपयात्रा होती है।

द्वादश यात्री यथा—१ली अगहन मासकी कृष्ण अन्ना-ष्टमीको प्रथमाष्टमी यात्रा, २री इसी मासकी शुक्लपक्षीको प्रायरणोत्सव, ३री पौष पूर्णिमाकी पुष्ययात्रा, ४थी मकर संक्रान्तिमें घृतकमलयात्रा, ५थी माघसप्तमीयात्रा, ६वीं शिवरात्रि, ७थी वैश्रमासमें अशोकाष्टमी, ८वीं वैश्रमासकी शुक्ल चतुर्दशीको दमनमञ्जिका, ९वीं वैश्रमासमें अश्रुवतुतीयाकी चन्द्रनयात्रा, १०वीं आषाढ़की शुक्ल अष्टमीको परशुत्तामाष्टमी यात्रा, ११वीं इसी मासमें शुक्ल चतुर्दशीको शयनचतुर्दशी यात्रा, १२वीं धावणकी शुक्ल चतुर्दशीको पवितारोपणयात्रा। इसके सिवा कालिकामासमें यमद्वितीया तथा उदयानचतुर्दशीयात्रा होती है।

उपयात्रा—अग्रहायणमें धनुसकालिन्, माघमें धनल पञ्चमी तथा भीमैकादशी, फाल्गुनमें कपिलयात्रा और श्रौलयात्रा, चैत्रमें घासंतोपूजाके समय नयासिका, उपेष्ट-में ज्ञातलापण्डो, भाद्रमें जगन्नाथकी और गणेशचतुर्थी, आश्विनमें सोडनद्वितीय तथा द्वादश और कार्तिक-में कुमारोत्सव होता है। भुवनेश्वरके अन्त्येमें अन्त्ये-नित्य एकत्र नश्यते देण।

भुवनेश्वरी ( ३०० स्त्री ) भुवनेश्वरी देवी । दश महाविद्या के अंतर्गत देवीदेव ।

प्राज्ञणके उनको याचकना करने पर भी बड़ा भागियागम मिलसेनीसे घुणा करने हैं तथा एक साथ भोजन भी नहीं करते ।

कोर्चान और गोतवाद्यव्यवसाय छोड़ कर अन्तो ये गाँव गाँवमें चौकीदारो करते हैं । गाँवको श्रेष्ठिके लिये बहुत-से जमींदार या गाँवको पञ्चायत झाड़ूजंगल-परिष्कार, पथघाट निर्माण, झाड़ूदार और शयशेह-को गाँवसे बाहर ले जानेके लिये इन्हें नियुक्त करतो हैं । गाँवमें पातका विवाह होने पर एक रुपया और पातोके विवाहमें ये आठ धाने पाते हैं । विवाहके समय ये मसालचोका भी काम करते हैं । हिन्दू अपने घरमें भूईयालीसे झाड़ू नहीं दिलाते, कारण इनके सुसनेसे गृह आदि अपवित्र हो जाता है । किन्तु किसी किसीके यहाँ इनको वालिका आंगन साफ करतो और खियाँ साधारणतः धाईका काम करती हैं । कभी कभी ये गृहस्थके नित्यव्यावहार्य वस्त्र आदि भी साफ करतो हैं ।

हिन्दूके श्राद्धमें ये वेदी तैयार करते और दुर्गा-रसय आदि कार्याँ आंगनको गोबरसे लोपते हैं । संज्या समय देवप्रदत्त बलिका भाग इनके सिवा दूसरा कोई नहीं पाता । घास्तु-पूजा और घर बनानेमें भी इनकी सहायता लेनी पड़ती है ।

ढाका और ब्रह्मपुत्रनदीके प्राचीन सातयासी भूईयालि-गणके मध्य पराशर और आलम्बान गोत्र प्रचलित है । ये समगोत्रोंमें विवाह नहीं करते । विवाहमें निजश्रेणोंके प्राज्ञण उनको पुरोहितई करने हैं । साधारणतः ये लग पैण्य हैं, धोहरण हो उनके प्रधान उपास्य देवता हैं । ये प्रायः सभी हिन्दू पक्ष करते हैं । पत्तञ्जल साजाधिवर और पोरबदरको पूजा भी इनमें प्रचलित है । आषाढ़ मासके अन्त्य याचोंमें ये तान दिन तक भूमिरूपगादि नहीं करते ।

उच्चश्रेणोय हिन्दुओंके क्रियाकलाप आदिका अनुकरण कर शूद्रश्रेणो कह कर परिचित होनेको चेष्टा करने पर भी ये गाँवमें नहीं रहने पाते । अब भी ये जाति-गत नोच धृत्ति कर जीवन धारण करते हैं । अत्यान्व निजश्रेणोके उँता आज कज इन्होंने ख़रक माँत खाना एकदम छोड़ दिया है । पचास वर्ष पहले ये

चाण्डालोंके साथ बैठ कर खाने थे ; किन्तु अभी उच्च-समाजमें मिलनेको प्रत्यागासे ये अपना साहचर्य परि-हारा करनेको बाध्य हुए हैं ।

भूईया—खनामख्यात भारतवासी जातिविशेष । यद्यार्थ-में यह 'भूईया' शब्द जानिवाचक है अथवा नहीं, इस विषयमें जातितरखिदोंके मध्य आन्दोलन उठ पड़ा हुआ है । पूर्वमें आसामसे पद्विम राजपूताना तथा उत्तरमें युक्तप्रदेशमें दक्षिण मन्द्राज तकके विस्तोर्ण भूभागमें भूईया जातिका वास है । राजपूतानेके भूईया (भूमिया) गण राजपूत, बिहारके भूईया (भूमिहार)गण घामन तथा पूर्ववङ्ग और आसामके भूईया (बाकिया)-गणोंके मध्य मुसलमान और हिन्दूजातिका समावेश रहनेके कारण ये अनुमान करते हैं, कि भूईया शब्द जातिगत न हो कर वर्णव्यक्तिगत था । पहले पहल जिन सब व्यक्तियोंने जंगल काट कर गाँव बसाये थे स्थानीय जमींदार या राजासे भूमिका सत्य पा कर भूईया कहलाने लगे । अब भी आसामके बहुत-से भूम्याधिकारो भूईया कहलाते हैं ।

इस प्रकार गाङ्गपुर और बोनाइ सामन्तराज्य, छोटानागपुर तथा मानभूममें, केउभर तथा लोहारढागाका मुण्डा, ओरायन आदि अनार्यजातिके मध्य भी भूमिज या भूईया उपाधि देलो जाता है । प्रवाद है, कि पत्त-मान भूईया नामधारी अनार्यजातिके पूर्व-पुण्योंने यहाँ आ कर सबसे पहले वास किया था ।

द्राविड-शाखाभुक्त जिस अनार्य समुदायने इस प्रकार पकव वास किया है ये भी भूईया नामधारी जाति रूपमें गण्य होते हैं । हिन्दू, मुसलमान आदि जाति या वर्णके उपाधिवारी भूईयाओंको छोड़ छोटांनागपुर अधरवर्णके दक्षिणम्य गाङ्गपुर, बोनाइ, केउभर और घामडा आदि सामन्त राजावासी भूईयाओंके जातिरच्य-को आलोचना करने पर शेरोक जाति हो यद्यार्थमें भूईया कहलाता है । सिंहभूम, हजारावाग और दक्षिण-बिहारमें मुसहर नामक भूईयाको प्रतिपत्ति देलो जाती है ।

मिर्जापुर यामो भूईयाओंके उदात्तसम्बन्धमें जो एक प्रवाद प्रचलित है वह यों है—मोम और कुम्भनामक



पुरोचामके सुप्रसिद्ध जगन्नाथ मन्दिरके समीप भुवनेश्वरी का कर्को प्रसारमूर्ति स्थापित है। उक्त मूर्ति चतुष्पद् विग्रह है। जगन्नाथ देवों। (स्त्री०) - एक अग्रका नाम। इसका प्रयोग महाभारतके कालमें होता था। यह चमड़े का बनाया जाता था। इसके बीचमें एक गोले रक्षया होता था जिसे चमड़ेके कड़े तममेंसे बांध कर दो लम्बी डोरियोंमें लगा देते थे। डोरों समेत इसका लंबाई तीन हाथ होती थी। इसमें चंद्रवेमें पत्थर भर कर धीरे डोरियोंको दाहिने एाथसे घुमा कर लोग शत्रु पर फेंकते थे।

भूपट्टो (सं० स्त्री०) वायाण क्षेत्रणार्थं चर्ममय चन्द्र-  
रूप भग्नमेद। भुवनेश्वरी देवो।

भूस (हिं० पु०) भूस।

भूसावल—१ बर्ष प्रवेगके पानदेश जिज्ञान्तर्गत एक उपविभाग। यह अक्षा० २०' ४७' ३१" १४' उ० तथा देशा० ७५' ४१' ३६" २४' पू०के मध्य अवस्थित है। भू-परिमाण ५७० वर्गमील है। इसमें ३ शहर और १८० ग्राम लगते हैं। जनसंख्या १०६३१५ है। तातो, पूर्णा, बाघर, पुर, भगवती और सुतो नदीके अलावा यहां ऐतोवारोके लिये हजारों कुए हैं। नदीतोरवर्ती स्थान विशेषमें उर्स्ता और जस्वकी प्रचुरता दिखाई देने पर भी अयरापर स्थान आम, बबूल आदि वनमाला से परिच्छिन्न है। स्थानीय स्वास्थ्य उना खराब नहीं है। केवल पूर्णासे सुणा नदीका पार्यंतर भूभाग स्थानों में रोगोंका प्रकोप देखा जाता है। रोगको प्रचलता और मृतकी अधिकताके कारण यह स्थान जनशून्य हो गया है।

२ उक्त तालुकका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० २१' ३' उ० तथा देशा० ७५' ४७' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या १६३६३ है। यहां पर गुंठ इण्डियन पेनिनसुला रेलवेकी मागपुर ज्ञाप्यायत मट्टन होनेसे स्थानीय पानित्यकी विशेष उन्नति हुई है। यहां १८८२ ई०में म्युनिस्पलिटो स्थापित हुई है। शहरमें सय जजती भद्रागत, मोन भद्रदेवी मठ, दो धर्मशालाएँ मठ और दो अस्पताल हैं।

भूसीहरा (हिं०) भुवनेश्वरी देवो।

भूसीडा (हिं० पु०) भूना रखनेका स्थान।

भूनाकी—पूरं बङ्गासो कृपिजायो निरुष्ट जातिरिति।  
पालकी वहन और दासवृत्ति इनको प्रधान उपाजीया है। इनकी साहसिक प्रकृति और कार्यादि पर गौर करने अनुमान होता है, कि ये ही पूरं समयमें बङ्गके भारत निवासी थे। बाद इन्होंने हिंदूके क्रिया-कलाप और रीति-नैतिको सीखा। दिनाजपुर आदि उत्तर-पूरं क्षेत्रों इनकी गिनती हाड़ीको धेणामें है। इसीके भूनालिगणका कहना है, कि एक समय ये सब हुए थे, बाद अपने कर्मफलसे ऐसा हीन हुए हैं। प्रवाद है, कि एक समय हरशर्यतो दोनों ही भक्तोंकी परितुष्टिके लिये मध्यधाममें पधारे। समी जाति देवोंकी मनोमोहनी मूर्ति दर्शन कर तृप्त हुईं, केवल एक दुर्भाग्य भूनाकी गहकुट खरमें बोला था, 'यदि मैं ऐसा रूपवती युवती पाऊं तो सब प्रकारके निरुष्ट कर्म कर सकता हूँ। देवादिदेवने यह सुन उसे एक रूप-गुणवती माया प्रदान कर धाड़ुदाररूप निरुष्ट कर्ममें नियुक्त किये, उन्नी समयसे ये सब इस प्रकार निरुष्ट कर्म करते आ रहे हैं।

इनमें बड़ा भागिया और छोटा भागिया नामके दो स्वतन्त्र थोक हैं। इनमें पारस्परिक विवाहार्थ तथा सामाजिक आचार-व्यवहार प्रचलित नहीं है। प्रथमके भूनालिगण कृपि, गीतवाद्य और पालकी-वहन कार्य-कार्य करते हैं। किन्तु शैलोक धेणोके भूनालिगण विष्टा के कनेका काम करते हैं। ये डोग, मंदिर या इत्यादि-खोर आदिके अलावा न माप हो निरुष्ट कार्य करते और न अपने-एक-को ही ऐसा निरुष्ट कार्य करने देते हैं। त्रिपुरा-राज्यके सराइलवातो भूनालिगण घूमर पालकी हैं। ये अन्यान्य भूनालो इन्हें अपनी धेणामें गणित नहीं करते हैं।

पूरंके दो धेणोके सिया मिश्रतमें वेहरात कामक उनका एक और थोक है। ये पहालसेनाजन्य मिश्रतमें निर्दिष्ट बंगालका भाद्रिम-वेदारा शक्ति कह कर अन्न-परिचय देते हैं। सम्मन्तः ये तीन राजाओंके सामने ही वेदारा का कार्य करने भा रहे हैं। उनमें अधिकतम मनुष्य कृपिजाय है। अनेक दिग्भूतिवार इन्हें अन्न-दास बनने में जरा मोसकीय नहीं करते। यह ही

प्राज्ञणके उनको याचकना करने पर भी बड़ा भागियागज मिलतेनोसे घुणा करने हैं तथा एक साथ भोजन भी नहीं करते ।

कोर्चन और गोतवाद्यव्यवसाय छोड़ कर अमीये गांव गांवमें चौकोदारी करते हैं । गांवको धर्मशुद्धिके लिये बहुत-से जमींदार या गांवको पञ्चायत झाड़ज गठ-परिष्कार, पथघाट निर्माण, झाड़ूदार और शवदेहको गांवसे बाहर ले जानेके लिये इन्हें नियुक्त करते हैं । गांवमें पातक विवाह होने पर एक रुपया और पातीके विवाहमें ये आठ भते पाते हैं । विवाहके समय ये मसालाचौका भी काम करते हैं । हिन्दू अपने घरमें भूँइमालीसे झाड़ू नहीं दिलाते, कारण इनके घुसनेसे गृह आदि अपवित्र हो जाता है । किन्तु किसी किसीके यहां इनको बालिका आंगन साफ करती और खियां साधारणतः धाँइका काम करती हैं । अभी कमीये गृहस्थके नित्यव्यावहार्य बरतन आदि भी साफ करती हैं ।

हिन्दूके श्राद्धमें ये वेदी तैयार करते और दुर्गा-स्तव आदि कार्योंमें आंगनको गोबरसे लोपते हैं । संज्या समय देवप्रदत्त चलिका भाग इनके सिवा दूसरा कोई नहीं पाता । घासु-पूजा और घर बनानेमें भी इनकी सहायता लेनी पड़ती है ।

ढाका और प्रहपुवनके प्राचीन छातवासी भूँइमालिगणके मध्य परागर और आलम्यान गोत्र प्रचलित है । ये सारंगोक्षीमें विवाह नहीं करते । विवाहमें निम्नश्रेणोंके प्राज्ञण उनको पुराहिताई करने हैं । साधारणतः ये लोग धैर्यवान् हैं, श्रोत्रण्य हो उनके प्रधान उपास्य देवता है । ये प्रायः सभी हिंदू पर्व करते हैं । पतञ्जल खाजाधिपति और पोरपदरको पूजा भी इनमें प्रचलित है । आषाढ़ मासके अन्त्य याचामें ये तान दिन तक भूमिरुपगादि नहीं करते ।

उच्चश्रेणोय हिन्दुओंके क्रिष्कलाप आदिक्ता अनुत्तरण कर शूद्रश्रेणो कह कर पारचित होनेको चेष्टा करने पर भी ये गांवमें नहीं रहने पाते । अब भी ये जतिगत मोक्ष श्रुति कर जीवन धारण करने हैं । अन्त्यान्य निम्नश्रेणोके उस्ता आज कल इन्होंने खूबरता मान लाना प्रकृत छोड़ दिया है । पचास वर्ष पहले ये

चाण्डालोंके साथ बैठ कर पाने थे ; किन्तु अभी उच्च-समाजमें मिलनेको प्रत्याजासे वे अपना साहचर्य परिहारा करनेको धांध हुप हैं ।

भूँइया—स्वनामस्थान भारतवासी जातिविशेष । यथार्थमें यह 'भूँइया' शब्द जातिवाचक है अथवा नहीं, इस विषयमें जातिस्वरविदोंके मध्य आन्दोलन उठ खड़ा हुआ है । पूर्वमें आसामसे पश्चिम राजपूताना तथा उत्तरमें युक्तप्रदेशसे दक्षिण मद्राज तकके विस्तीर्ण भूभागमें भूँइया जातिका वास है । राजपूतानेके भूँइया (भूमिया) गज राजपू, विहारके भूँइया (भूमिहारी) गज वामन तथा पूर्वबङ्ग और आसामके भूँइया (बाकूया)-गणोंके मध्य मुसलमान और हिन्दूजातिका समावेश रहनेके कारण ये अनुमान करते हैं, कि भूँइया शब्द जातिगत न हो कर वर्ग शक्तिगत था । पहले पहल जिन सब व्यक्तियोंने जंगल काट कर गाँव बसाये थे स्थानीय जमींदार या राजासे भूमिका सत्त्व पा कर भूँइया कहलाने लगे । अब भी आसामके बहुत-से भूयाधिकारी भूँइया कहलाते हैं ।

इस प्रकार गाङ्गपुर और बोनाइ सामन्तराज्य, छोटा-नागपुर तथा मानभूममें, केँउबर तथा लोहारडामाका मुण्डा, ओरायन आदि अनाथजातिके मध्य भी भूमिज या भूँइया उपाधि देखी जाती है । प्रयाद है, कि वस्तमान भूँइया नामधारी अनाथजातिके पूर्व-पुरुषोंने यहाँ आ कर सबसे पहले वास किया था ।

श्राविड-शाखाभुक्त जिस अनाथ सम्प्रदायने इस प्रकार पकड़ वास किया है ये भी भूँइया नामधारी जाति रूपमें गण्य होते हैं । हिन्दू, मुसलमान आदि जाति या वंशके उपाधियारी भूँइयाओंको छोड़ छोटाणागपुर अर्धवर्षके दक्षिणम्य गाङ्गपुर, बोनाइ, केँउबर और वामडू आदि सामन्त राज्यासो भूँइयाओंके जातिस्वरको आलोचना करने पर शेरोंक जाति हो यथार्थमें भूँइया कहलातो है । सिँइभूय, हजारावाग और दक्षिण-विहारमें मुसहर नामक भूँइयाको प्रतिपत्ति देखी जाती है ।

मिर्जापुरवासी भूँइयाओंके उत्पत्तिसम्बन्धमें जो एक प्रयाद प्रचलित है वह यों है—मोग और कुम्भगाक

पुतेषामके सुप्रसिद्ध जगन्नाथ मन्दिरके समीप भुवनेश्वरी काकरी प्रहरमूर्ति स्थापित है। उक्त मूर्ति चतुष्पद् विनियुक्त है। जगन्नाथ देवो। (स्त्री०) = वा. जगन्नाथ नाम। इसका प्रयोग महानगरके कालमें होना था। यह चमड़ेका बनाया जाता था। इसके बागमें एक मोल चंद्रमा होता था जिसे चमड़ेके कड़े तममोसे बांध कर दो लम्बी चोरियोंमें लगा देने थे। छोरी समेत इसका लंबाई तीन हाथ होती थी। इसमें चंद्रधर्म पर्यन्त भर कर और चोरियोंको दाहिने हाथसे घुमा कर लोग शत्रु पर फेंकते थे।

भूपरदो (म० स्त्री०) वापाण शेषणार्थं चर्ममय चन्द्र-रूप अल्पमेद। धनुषपदो देतो।

भुस (हि० पु०) भूमा

भुसावल—१ बर्षई प्रदेशके गानदेश जिज्ञान्तर्गत एक उपविभाग। यह अक्षा० २०° ४७' से २१° १४' उ० तथा देशा० ७५° ४१' से ७६° २४' पू०के मध्य अवस्थित है। भू-परिमाण ५७० वर्गमील है। इसमें ३ शहर और १८० ग्राम लगते हैं। जनसंख्या १०६३५ है। तातो, पूर्णा, बाघर, पुर, भगवती और सुली नदीके अन्तर्गत यहां गौतीवारोके लिये हजारी कुए हैं। नदीतीरवर्ती स्थान विशेषमें उर्वरता और जलवकी प्रचुरता दिखाई देने पर भी अस्वास्थ्य स्थान आम, बृहत् आदि यन्मात्रा से प्रतिषेधित है। स्थानीय स्वास्थ्य उतना घराब नहीं है। फेबल पूर्वासि सुधा नदीका पार्यन्त भूभाग स्थानों में रोगोंका प्रकोप देखा जाता है। रोगको प्रचलता और मृतकी अधिकताके कारण यह स्थान जनशून्य हो गया है।

२ उक्त तालुकका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० २१° ३' उ० तथा देशा० ७५° ४७' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या १६३६३ है। यहां पर गुंठ शिड्डयन वेजिनसुधा देवकी नामपुर जगन्नाथ सङ्गन होनेमें स्थानीय पानित्यकी विशेष उन्नति हुई है। यहां १८८२ ई०में म्मुनिस्वामिदेवो स्थापित हुई है। जहरमें स्वयं जनको अहासत, तीन भङ्गरेडो मृहत्, दो यन्त्रियुक्त मृहत् और दो अल्पमाल है।

भुमीहरा (हि० पु०) सुश्रमा देतो।

भुमोऽ (हि० पु०) भूमा स्वामेका स्वाम।  
 भूनामो—पूर्व बङ्गासो कृषिजीवो निरुष्ट जातिरिति। पातकी चहन और दासवृत्ति इनको प्रयाज उन्नतिरिति है। इनकी आकृति प्रकृति और कर्णोद्दि पर गौर करनेमें अनुमान होता है, कि ये हो पूर्व समयमें बङ्गके आदि निवासो थे। याद इन्होंने हिन्दूके क्रिया-कलाप और रीति-नैतिको सीखा। दिनामपुर आदि उत्तर-पूर्व प्रदेशों इनकी गिनतो हाड़ीकी धेणोमें है। हारके भूशमालिगणका कहना है, कि एक समय ये मर चुके थे, याद अपने कर्मफलसे पैसा हीन हुए हैं। प्रकृत है, कि एक समय हरार्यतो दोनों हो भक्तोंको परिनुष्टिके निषे मध्यधाममें पधारे। सभी जाति देवोकी मनोमोहिका मूर्ति दर्शन पर त्त हई, फेबल एक दुर्नाय भूनामो अस्तुष्ट स्वरमें बोला था, 'यदि मैं पैसो रूपवतो युक्तो पाऊं तो सब प्रकारके निरुष्ट कर्म कर सकता हूं। देवादिदेवने यह सुन उसे एक रूप-गुणयतो मार्गो प्राप्त कर भाङ्गवाररूप निरुष्ट कर्ममें नियुक्त किये, वसो समयसे ये सय इस प्रकार निरुष्ट कर्म करने आ रहे हैं।

इन्में बड़ा भागिया और छोटा भागिया नामके दो स्वतन्त्र धोक हैं। इनमें पारस्परिक विवाहादि तथा सामाजिक आचार-व्यवहार प्रचलित नहीं है। प्रथमोके भूशमालिगण कृषि, गीतवाद्य और पालकी-चहन मार्गो कार्य करने हैं। किन्तु शेषोके धेणोके भूशमालिगण विष्ठा फे करनेका काम करते हैं। ये डोम, मेहरार या इतान-चौर आदिके जैसा न भाप हो निरुष्ट कार्य करी और न भयनों खरको हो पैसा निरुष्ट कार्य करने देने हैं। नियुक्त-राज्यके सत्ताहत्यासो भूशमालिगण सुभर पावने हैं। ये अन्त्यान्व भूशमालो इन्में भयनों धेणोमें शान्ति नहो करते हैं।

पूर्वोके दो धेणोके सिया मिथनेओ वेहरा नामक उनका एक और धोक है। ये यद्वालयोनामक मित्रमैक निर्दिष्ट बंगालका भादिम वेहरा जाति कह कर आम परचय देते हैं। सम्मस्तः ये तीन राजाओंके मन्त्रो हो वेहरा का कार्य करते आ रहे हैं। उनमें अर्धवर्त मनुष्य कृषिजीव है। अनेक शिष्टवृत्तिपर इन्में भरत दास बनने जरा मो सकीय नहो करते। यह है

प्राज्ञणके उनकी याचकता करने पर भी बड़ा भागियागण मित्रसेनीसे घृणा करने हैं तथा एक साथ भोजन भी नहीं करते ।

कोर्सन और गोटब्राउन्डसाय छोड़ कर अभी ये गांव गांवमें चौकोदारो बरते हैं । गांवकी धर्मशुद्धिके लिये बहुत-से जमींदार या गांवकी पञ्चायत फाड़ूंगर-परिष्कार, पथघाट निर्माण, फाड़ूंगर और जयदेह-को गांवसे बाहर ले जानेके लिये इन्हें नियुक्त करनी है । गांवमें पालका विवाह होने पर एक रुपया और पालोके विवाहमें ये आठ धाने पाते हैं । विवाहके समय ये मसालचोका भी काम करते हैं । हिन्दू अपने घरमें भूईयालीसे फाड़ू नहीं दिलाते, कारण इनके घुसनेसे गृह आदि अपवित्र हो जाता है । किन्तु किसी किसीके यहां इनको बालिका आंगन साफ करती और खियां साधारणतः धाड़ूका काम करती हैं । कभी कभी ये गृहस्थके नित्यप्यायहार्य बरतन आदि भी साफ करती हैं ।

हिन्दूके श्राद्धमें ये वेदी तैयार करते और दुर्गा-रस्य आदि कार्योंमें आंगनकी गोबरसे लीपते हैं । संख्या समय वैश्वप्रदत्त बलिका भाग इनके सिया दूसरा कोई नहीं पाता । चास्तु-पूजा और घर बनानेमें भी इनकी सहायता लेनी पड़ती है ।

ढाका और ब्रह्मपुत्रनदीके प्राचीन खातवासो भूईयालि-गणके मध्य पराशर और आलम्यान गोत्र प्रचलित है । ये समगोत्रीमें विवाह नहीं करते । विवाहमें निम्नश्रेणीके ब्राह्मण उनको पुराहिताई करने हैं । साधारणतः ये लग पैण्य हैं, श्रोत्रण्य हैं उनके प्रधान उपास्य देवता हैं । ये प्रायः सभी हिंदू पंच करने हैं । एतद्भिन्न खाजाभिन्नर और पोरबदरको पूजा भी इनमें प्रचलित है । आपाढ़ मासके बन्ध वाचोमें ये तान दिन तक भूतिकपगादि नहीं करते ।

उच्चश्रेणीय हिन्दूओंके क्रियाकलाप आदिका अनुसरण कर शूद्रश्रेणी कह कर परिचित होनेकी चेष्टा करने पर भी ये गांवमें नहीं रहने पाते । अब भी ये जाति-गत नोच वृत्ति कर जीवन धारण करते हैं । अन्यत्र निम्नश्रेणीके जैसा आज कल इन्हीं सूअरान मांस खाना परबन्ध छोड़ दिया है । पचास वर्ष पहले ये

चाण्डालोंके साथ बैठ कर खाने थे ; किन्तु अभी उच्च-समाजमें मिलनेकी प्रत्याज्ञासे ये अपना साहचर्य परि-त्याग करनेको बाध्य हुए हैं ।

भूईया—सनामध्यात भारतवासी जातिविशेष । यथार्थ-में यह 'भूईया' शब्द जातिवाचक है अथवा नहीं, इस विषयमें जातिवैयर्थिकोंके मध्य आन्दोलन उठ खड़ा हुआ है । पूर्वमें आसामसे पश्चिम राजपूताना तथा उत्तरमें युक्तप्रदेशमें दक्षिण मद्राज तकके विस्तोर्ण भूभागमें भूईया जातिका वास है । राजपूतानेके भूईया (भूमिया) गण राजपू, विहारके भूईया (भूमिहारो) गण यामन तथा पूर्ववङ्ग और आसामके भूईया (बाकूया)-गणोंके मध्य मुसलमान और हिन्दूजातिका समावेश रहनेके कारण ये अनुमान करते हैं, कि भूईया शब्द जातिगत न हो कर वर्णव्यक्तिगत था । पहले पहल जिन सब व्यक्तियोंने जंगल काट कर गांव बसाये थे स्थानीय जमींदार या राजासे भूमिका सत्त्व पा कर भूईया कहलाने लगे । अब भी आसामके बहुत-से भूयाधिकारो भूईया कहलाते हैं ।

इस प्रकार गाङ्गपुर और बोनाह सामन्तराज्य, छोटानागपुर तथा मानभूममें, कैउम्बर तथा छोहारशगाका मुण्डा, ओरायन आदि अनाथजातिके मध्य भी भूमिज या भूईया उपाधि देखी जाती है । प्रवाद है, कि वर्तमान भूईया नामधारी अनाथजातिके पूर्व-पुरुषोंने यहाँ आ कर सबसे पहले वास किया था ।

द्राविड-शाखाभुक्त जिस अनाथ सम्प्रदायने इस प्रकार एकत्र वास किया है वे भी भूईया नामधारी जाति रूपमें गण्य होते हैं । हिन्दू, मुसलमान आदि जाति या वर्णके उपाधिवारो भूईयाओंको छोड़ छोटेनागपुर अर्धव्यत्याके दक्षिणम्य गाङ्गपुर, बोनाह, कैउम्बर और बामड़ा आदि सामन्त राजावासो भूईयाओंके जातिव्य-की आलोचना करने पर शेषोक्त जाति हो यथार्थमें भूईया कहलातो है । सिंहमून, हजारोयाग और दक्षिण-विहारमें मुसहर नामक भूईयाकी प्रतिपत्ति देती जाती है ।

मिर्जापुर वासी भूईयाओंके उत्पत्तिमन्त्रधर्म जो एक प्रवाद प्रचलित है यह यों है—मोम और बुग्मनामक

श्रविषीके पद्यात्मक मन्त्र और मंत्रों नामके दो लक्ष्यके थे । उनमेंसे मन्त्र मगपके विज्ञान जंगलमें गये और यहाँ तपस्या में निपुण हुए । महेंद्र भी उनकी सेवाके लिये यत्रको चयन पड़े । निरवप्रति महेंद्र यत्रमें जा फलमूल आहरण किया करते थे । जो कुछ फल मिलता या उसका भाधा आपमक्षण करते और भाधा प्राणुनेयके लिये रख छोड़ते थे । जिस निष्पृष्टके तले मन्त्र ध्यानमें निरत थे एक दिन उसीको छाल उग्रीने गा ली । तभीसे ये निष्पृष्ट श्रवि नामसे प्रसिद्ध हुए ।

इस प्रकार पट्टोर तपस्यामें पारङ्ग वर्ष बीत गये । मगयान्ने उनको छत्रनेके लिये एक स्वर्ण-विद्याधरीको भेजा । निष्पृष्टने उसकी सेवा और रूपदर्शन पर कामाभिभूत हो उसके साथ सहवास किया । इस संयोगके फलसे उनके सात पुत्र उत्पन्न हुए । इन सात पुत्रोंके पंजसे मगदिया, तोरयाद, दण्डयार, धेययार मुसहर, भूँइहार या भूँइहार जातिकी उत्पत्ति हुई । उक्त श्रविसे उत्पत्ति हुई थी इस कारण भूँइया लोग अपनेकी श्रविपान् भूँइया पतंगने हैं । मिर्जापुरी-भूँइयागण मुसहर और भूमिहारोंके साथ अपनी आत्मोदत्ता स्वीकार करते हैं, किन्तु छोटानागपुरके भूँइयाके साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखते । शेपाक स्थानके भूँइयागण नग्नकसे अपनी उत्पत्तिको कल्पना करते हैं । किसी किसी स्थानके भूँइयागण कोट, मण्पाण या गामिया जातिकी तरह अपनी उत्पत्ति-काहनी प्रकाश करते हैं ।

गाङ्गपुर और बानारंपासी भूँइया पौर कृष्णवर्ण, बलिष्ठ, सुगन्धि, मधुमति और कर्मांड होते हैं । कठिन परिश्रमसे भी ये नहीं उबलते । उनका चीन्हा मुँड, तार, गण्डास्त्रि, हनु, दंत और त्रिभुजास्त्रि क्षेपनेसे ये समतलप्रासीके जैसे मान्य होते हैं । फिर के उभरनामों पारंगताप भूँइया लोगोंको आह्वान बहुत कुछ सुगन्धीके मिलती-जुलती है । उनके प्रशस्त सुत्र, पुष्ट, अघरीष्ट, छोटि करान और तथा प्रभूनेगे उनका विरल प्रमाण मिलता है । पक्षिके जैसा वे उँकरते भूँइयागण भी बलिष्ठ तथा कुक्षकार हैं । मिर्जापुरीके साथ के उँभरिणीका सादरन अस्त्रि होता है । निरभूपके दक्षिणपथ भूँइयागण अपने-

को 'पयन'वा या 'पयन-का पुत्र' बतलाते हैं । विहार के दक्षिणपथ मुसहरमें से कर छोड़करनाके दक्षिण पट्टोर-पारक वर्षगत सभी स्थानवासों भूँइया श्रविमुनि का श्रविप्रासनको भगना कुलदेवता मानते हैं । सत (अन्तुक) उन लोगोंका जातिनिर्वाचक था। धारजय यह प्रसन्न देवता, मुनि या पूष'पुत्रमें पूजित होता है । इस प्रवादमूलमें पात्रे जो कुछ भी क्यों न हो, पर इतना अवश्य अनुमान किया जाता है, कि मिर्जापुर, निरभूप, गाङ्गपुर आदि सामन्तराज्य तथा विहार और लोहर-ड'गाके पारंगत्य अधिपत्यकावासों भूँइया एक श्रेणीमें निपट थे । विभिन्न स्थानमें पास करनेके कारण उन लोगोंके मध्य अनेक विषयोंमें पृथकता तथा दूरनिवृत्ता हो गई है ।

बंगालके भूँइयाओंके सामाजिक व्यवस्थाका निर्णय करना कठिन है । स्थानविशेषमें व्यवस्था परिवर्तनके कारण ये स्वतन्त्र श्रेणीमें विभक्त हो गये हैं । उद्गमाके सामन्तराज्यके भूँइया-भाषसमें आह्वान प्रदान करके पूर्व-पुत्राश्रित भू संपत्तिकी अपने अयोग रखते हुए एक स्व-तन्त्र दलयुक्त हो गये । उनमें किसी किसीके राजपू कह कर अपना परिचय देने पर भी ये अपनी सामाजिक रीति रीति नहीं छोड़ सकते । आज भी मद्राँके अयो-नक्ष दलपतिमें युद्ध-विश्रमसे सहायता पायेको इष्ठा-नि सभीको पूर्वाग्रहके अनुसार भूमि दात करते हैं । इस प्रकार भूमि दात कर उद्गोसाके गण्डराज सम्मन्वय दल-बन्धसे पुष्ट ही समाजमें बहुत कुछ समुन्नत हुए हैं ।

उद्गमा-राजधनीकी उन्नातिके समय सैनिकार्थक अव-सम्बन्ध कर सहायता आदिने सम्मन्वयके सोचान पर आरंभ कर समाजमें जिस प्रकार प्रतिष्ठानाम किया है, विद्यामें उनके महयोग्य उपनिवेश सम्पादनके क्षर उम प्रकार प्रशस्त होय न पायिके कारण समस्तभाषरि ही चलते हैं । अभी ये सब भूमिजाममें यश्रित हो बालन और राजपूतोंके अयोग श्रवि या अश्रवाण बर्ग अनेक करकेको पाण्य हुए हैं । ये सब अन्वय रीतिके अनुसार पूर्व पकड कर लाते थे । इनके दिग्गामीमें सुतरा- ७ पर भी अनेक पारंगत कर्मांडि से दूय, पारंग- ११

नामसे परिचित हुए हैं। विदेज जा कर सामाजिक व्यवस्थामें हीन होने पर भी उन्होंने भूँइया नामका गौरव परित्याग नहीं किया, किन्तु षण्डाइन लोगोंने समाजमें प्रहृष्ट स्थान पानेकी आशासे घृणापूर्वक उस नामको छोड़ दिया है।

केंउमरके भँइयाओंमें माल, दण्डतेन, खट्टी और राजकुली नामक आठ स्वतन्त्र थोक देखे जाते हैं। राजवंशके साथ संलग्न रहनेसे शैवोक थोडका नाम राजकुली पड़ा है। ऐसा सुना जाता है, कि प्रायः २७ पीढ़ी पहले भूँइयाओंने एक मयूरमंग राजपुत्रको अपहरण कर अपना राजा बनाया। उस राजपुत्रके औरस और भँइया रमणोके गर्नसे जो पुत्र उत्पन्न हुए यही राजकुली कहलाये।

मिर्जापुरी भूँइयाओंके मध्य तोरवाह, मगहिया, दण्डवार, महतवार, महाडेर, मुसहर, भँइहार या भूँइयार नामक आठ थोक हैं। उनमें लोहारडांगा और मानम मिके प्रदेशमें दण्डवार, मगहिया, महतवार, तोरवाह और मुसहर शाखाभुक्त भँइयाका वास करनेमें आता है। इन आठ श्रेणोके नाम कार्य या जीवविशेषके नामसे अनुकृत हुए हैं। तार द्वारा प्राप्त होनेके कारण तोरवाह, दण्ड-(व्यायाम)से दण्डवार, मगधमें वास करनेके कारण मगहिया, सूसा (चूहा) भक्षण करनेसे मुसहर तथा दलपति या मण्डलके पदस्थ होनेसे महतवार, ऐसा नाम पड़ा है। बंगालके मुसहरोंसे ऐसा सुना जाता है, कि करीब ३ या ४ पीढ़ी गुजरी, वे मगध राज्यका परित्याग कर इस देशमें बस गये हैं। उन लोगोंके विवाहादि सभी कार्य यहाँ पर होते हैं। विहारवासो मुसहरोंके साथ उनका कुछ भी सम्पर्क नहीं है।

बंगालके तोरवाह, दण्डवार और महतवारोंमें परस्पर आदान प्रदान प्रचलित है तथा मगहिया, महाडेर, भूँइहार या भँइयार और मुसहरगण परस्परमें पुत्र-कन्याका विवाह देते हैं। सभी समय यहाँ नियम लागू है। कमी कमी वे अपने अपने थोकमें भी विवाह देते हैं।

हजारौथाग और सन्थाल परगनेके भूँइयागण तथा

टिकाहत भूँइयागण जमींदार हैं। इसलिये समाजमें उन्होंने उच्चतन प्राप्त किया है। वे क्रमशः स्थानोय निम्नश्रेणीको राजपूत जातिके साथ मिलनेकी चेष्टा करते हैं। एतद्भिन्न संथाल परगनेमें राय भूँइया और टेजवाला तथा मानममें कातरा, मुसहर और घोरा भूँइया आदि कितने थोक हैं।

पहले ही लिखा जा चुका है, कि इन लोगोंके विवाह सम्यन्धमें विशेष विधिनिषेध नहीं है। एक श्रेणीके मध्य दो तान पीढ़ी बीत जाने भयया उस पूर्वतन सम्यन्धके स्मृतिपथसे अलग हो जानेसे पुनः उस परिवारके साथ विवाह शादी हो सकती है। पूर्व सम्पर्कके कारण कोई अड़चन नहीं रहती। पर विवाहके पहले जातीय पञ्चायत अग्रय वैठती है। विवाह या श्राद्धके समय जाति-कुटुम्बको भोज नहीं देन, स्वश्रेणीवाहभूँइत व्यक्तिके साथ खानपान करने तथा ध्यमिचार-दीपदुष्ट होनेसे पञ्चायत उस व्यक्तिको सजा देती है। साधारणतः एक स्थानवासी भ्रातृवर्गको बकरा, शराष और मन्ना खिलातेसे ही वह दोपसे मुक्त हो जाता है। इस जातीय पञ्चायतका दलपति महतो कहलाता है। यह पद भी उसके पिन्पदानुसारी होता है। यदि कमी कोई बालक महतो दलपति हो, तो पञ्चायतसे सालाह ले कर कोई दूसरा व्यक्ति उसके बदलेमें काम कर सकता है।

इनके कन्यापुत्रके विवाहके लिये देशन्तरमें पात्र पात्रोको तलाश नहीं करने पड़ती। एक स्थानमें दलबद्ध हो कर जो सभ भँइया वास करते हैं यहाँ पर सामाजिक विधिनिषेधकी रक्षा कर अपनेमेंसे ही पात्र या पात्रोको चुन लेते हैं। यदि कोई व्यक्ति समर्थ हो, तो वह एकसे ज्यादा पत्नी खरीद कर सकता है। ये पत्नियाँ स्वामीके घरमें विभिन्न प्रकारमें अथवा पितालयादिमें स्वेच्छासे रह सकती हैं। विवाहके पहले और पीछे श्रियोंको स्वाधीन भ्रमणेच्छा बलवती देवी जाती है। यदि कोई अविवाहिता बालिका इस प्रकार स्वाधीन भायमें रहने समय अपनी श्रेणीके किसी युवकके प्रेममें भासक हो जाय, तो कन्याका पिता साधारण भोज दे कर उसीके साथ विवाह करा देता है। किन्तु यदि

बट अगर आनीय कित्ती पुनरके साथ शुभमेममें फंस जाय, तो पञ्चायत उरको समाप्तके निकाल बाहर करती है। पिता माताका इच्छामे ही पुनरकवाका विवाह होता है। बालक-बालिकाका विवाहका समय बाहर वर्ष तक निर्धारित है। घनी और निर्धनके पक्षमें कन्यापण पांच रुपये, ४ सेर चावल, २ सेर चीनी और १ सेर हल्दी है। विवाहके बाद पर कन्या यदि शोमेंसे कोई गूंगा, उम्माद, कुञ्ज, ध्यञ्जमङ्ग या भन्नाङ्ग हो जाय, तो विवाहकल्पन टूट जाता है।

स्वामी या स्त्रीको यदि एक दूसरेके चरित्र पर संदेह हो, तो विवाहकल्पन टूट जा सकता है, पर पञ्चायतको इस विषयमें प्रष्ट प्रमाण अवश्य दिखलाना होगा। स्वामीहत्याके बाद यह रमणी पुनः विवाह कर सकती है। सगरे-प्रधाके अनुसार ये विधवाविवाह कर सकते हैं, किन्तु उस समय स्त्रीके भ्रतुरको केवल साड़ी और अपने घरमें स्वजाति भोजनके मिया और कुछ नदी देना होता। यदि कनिष्ठ देवर उपेष्ट भाग्यके साथ विवाह करना न चाहे तो यह विधवा रमणी किसी औरके साथ विवाह कर सकती है।

जो रमणी अपने देवरका परिवारण कर दूसरेसे विवाह करती है, उसे पूर्ण स्वामीके औरमजत पुत्र या सम्पत्ति पर कुछ भी अधिकार नहीं रहता। यह बानक अपने चधाके अधीनमें प्रतिपालित हो, पितृ-सम्पत्तिका अधिकारी होता है। यदि देवर उपेष्ट भाग्यके प्रक्षुण करे, तो उसे भर्तृहिता पाहन अपश्य करना होगा तथा उसके बायिग होने पर यदि पृथक पृथक् होना चाहे, तो सम्पत्तिका भाषा साथ और भाषा भनीकोको देना होता है।

इन लोगोंके साथ दलपदवाको व्यवसाय व्यवसाय है। ये भर्तृके या भागीको दत्तक ले सकते हैं, किन्तु जातकीसे तेजा दत्तक निम्न है। साधु पुत्रके विवाह बंडुका, कोड़ी भन्धा या धनतंत्रंग यदि पार्क दत्तक प्राप्त कर सकते हैं। दलपदवाके समय उन्में कितनी विशेष निदमका ध्यान करी करना होगा।

सम्पत्तिका पैदा होने पर एक बर्मात्तन भा कर बचोको कारती है दोपे उम कल्पमें गाह

द्वारा ही जहां निम्न भूमिष्ठ हुआ था। का दिन तक प्रकृतके मृतिका गृहमें रहना पड़ता है। गेय दिनमें पत्नी पूजा करती है। इस दिन परिवारमें सबको क्षीरशाय कराना होता है और रस्ते परकी पुरानी हांडुको केक बनाने हांडुमें रस्ते बना पर पाते हैं। धानी, मृत्ति और बालकको स्नान करानेके समय मन्त्र भा कर मृतिका-गृहको पलिहार करती है।

जातबालकके पांचये या छठे वर्षमें कर्णवेप होता है। विवाहके समय परका पिता गुरुने कन्या परम्प कर धरता है। तदन्तर पातका मामा, जहनी और चार पांच मनुष्य कन्याके पितालय जाते हैं। विवाहकी वाचघोष पकी होने पर घरपक्षीय ध्यतिकर्षीको खिलाता होता है। दूसरे दिन सबेरे गृहस्थित भांगनमें मैदिका एक भागन तैयार कर उम पर कन्याको शङ्का किया जाता है। बापमें प्रम्या और घरपक्षके लोग आ कर कन्याको देखते तथा भागीचांद दे जाते हैं।

घारादान होने पर विवाहका दिन निधार होता है। उसके तीन दिन पहले माठमंगल उहमय समाहित होता है। बापमें कमजः टोकादान, सेलहाडी, भातदान, दण्डन भादि किया अनुष्ठित होती है।

बारातको ले कर पर कन्याके पितालयमें जगती है तथा निर्दिष्ट एक पृथके मंगे विभाज्य करता है। कन्या-पक्षोपगण उम जगह पर भा कर बरके पैर धुवाते और उसके बाद कन्याका पिता भा कर आमाताको पर पर ले जाते हैं। वहां जा कर पर कन्याको बस पृथक पक्ष विवाह संबधके बाद खाना है। तदन्तर पृथ विवाह कर पहले उसमें मिन्दुर देना और तब कन्याके मंगमें मिन्दुर देना है। यही विवाहकल्पनका एकमात्र नियम है।

उन लोगोंमें साधारणतः तीन प्रकारका विवाह प्रचलित देखा जाता है। १. सहीया या पुनारी दान, २. सगरी या विधवाविवाह तथा ३. मनुष्य या परिवर्तन विवाह। ये लोग लोगोंके घरमें मही मही देते। वेत समय धाने पर उने निकटवर्ती लकीके किनारे ले जाते हैं तथा प्राण परिक्रम उन्में पर यथाविरत कर करते हैं। मुगमें धर्मि देतेकी साथ इन्में पर भी कर्म

मन्त्र नहीं है। सब विषयमें ये हिन्दूका अनुकरण करते हैं। जो निकटालभोग्य मृतके मुखमें आग देता है वह दूसरे दिन सबेरे दाहस्थानसे अस्थिग्रस्त उठा कर नदीमें फेंक देता है। उनका अतीव दृग दिन तक रहता है। इस समय यह हविष्यान्न पाक कर खाता है तथा प्रति दिन मृतकको एक पिण्ड देनेके बाद आप खाता है। दशवे दिन क्षीरकर्म समाप्त होने पर आत्मीय कुटुम्ब मृतके घर पर एकत्रित होते और प्रेतका वृत्तिरूपे एक बकरा मार कर खाते हैं। बाद प्रवादि पान और मांस, अन्न आदि भोजनके बाद श्राद्धकार्य सुसम्पन्न होता है।

पहले ही कहा जा चुका है, कि हिन्दूप्रधानस्थानमें रह कर इन्होंने नाना विषयमें उनका अनुकरण करना सीख लिया है। विवाह, जातकर्म, श्राद्धाह, तथा देव-पूजादि भो वे सब हिन्दूके जैसे करते हैं, किंतु दुःखका विषय है, कि पूर्वोक्त किसी भी कार्यमें उन्हें ब्राह्मणकी आवश्यकता नहीं होती। कालो, परमेश्वर, वडाङ्गदेवी, घरित्तामाता आदि उनके प्रधान उपास्य देवता हैं। अनन्तचतुर्वर्गो उनका एक महोत्सव है।

बोनाईवासी भूँहारवासीमें दसुमपत, घामीनीपत, कोई सरपत और घोरम नामक चार प्राम्य देवताकी पूजा प्रचलित है। 'द्विसारा' नामक प्राम्यतिकुञ्जमें उनकी पूजा होती है। उनके मध्य 'देवरी' नामक सम्प्रदाय पुजारीका काम करता है।

भूँहार—युक्तप्रदेशके मिर्जापुरके दक्षिणदिग्वासी अनायै जातिविशेष। घेडरा प्रयासे अर्धान् घन वृक्षल कर उपयोगी कृषिकार्य सम्पन्न करनेके कारण इनकी घेडरिह संज्ञा पड़ी। प्रवाद है, कि वे भौंडाह नामक स्थानसे यहां आ कर हिन्दूके आचार-व्यवहारका अनुकरण करने लग गये हैं। यहां तक, कि वे सन्निकटस्थ भूमिहार ब्राह्मण या क्षत्रियोंके नाम ग्रहण करनेमें जरा भी कुण्ठित नहीं होते। उन्होंने भूमिहारसे अपनेको भूँहार कह जानेकी चेष्टा की थी तथा घीरे घीरे उत्तीसे भूँहार संज्ञा भी प्राप्त कर ली है। उनकी आकृति अनायैसे मिलता जुलता है, इस कारण जातिव्यवधानोंने उन्हें मुण्डा, भूँहार आदि जातिकी समग्रणोंमें शामिल किया है। जोनाथन बनकान साहब उन्हें 'देवारिया' नामसे उल्लेख कर गये हैं।

मिर्जापुरी भूँहारोंमें पन्द्रह थोक हैं जिनमेंसे जोगो-रिह, सुहद, खटकरिह, देवदरिया और पारगोरिहा नामक पांच और पांच थोक घासम मिमिके नामसे कथित हुए हैं। अलावा इसके भूँहार, नाथान, म सार, मल्ल, गिगिबुनघुन, कड़धाराय, दासपूत और भनिहा नाम विभिन्न विषयसे लिपे गये हैं, ऐसा मान्य होता है।

अपने अपने थोकमें विवाह निषिद्ध होने पर भी पारस्परिक आदान प्रदानमें दोष नहीं समझते। ममेरा, चचेरा कुकरा या मौसेरा प्रयासे विवाहमें कोई विशेष आपत्ति नहीं है। एक पीढ़ीके बाद पुनः पितृ और मातृकुलमें विवाह हो सकता है।

पञ्चायन समासे सामाजिक भगड़ेकी निष्पत्ति होती है। बूढ़े मनुष्य हो मध्यस्थ हो कर मामलेका फैसला करते हैं। यदि पुण्य व्यभिचारी और परदारगामी हो, तो उसे दो वर्षके लिए जातिच्युत किया जाता है और यदि रमणियां अपरजातिके पुण्यके प्रेममें फँस गई हो, तो मघमांस देनेसे ही उन्हें रिहाई मिलती है।

इन लोगोंका विवाह बहुत कुछ अनार्यजाति स्त्रीणा है। पुण्य एकसे अधिक विवाह कर सकता है, पणतें कि उनमें उनके मरण पोषणकी सामर्थ्य हो। विवाहके बाद यदि घर कुष्ठादिरोगसे प्रसित हो जाय, तो कन्याका पिता पंचायतकी अनुमति ले कर देवरसे उसका विवाह कर सकता है। विधवा सगर्ह प्रयासे अनुसार विवाह कर सकती है। लेकिन इस समय अपने आत्मीय-घर्मसे मलाह लेना आवश्यक है। यदि देपर उससे विवाह न करना चाहे, तो वह विधवा बिली दूसरेकी घर सकती है।

हिन्दूकी प्रथा देख कर इन लोगोंने भी वृक्ष ग्रहण करना सीख लिया है। किन्तु ये किसी क्रियाकलापका अनुष्ठान नहीं करते। इनकी जातिप्रिया बिलकुल नहीं है। घेचकसे अथवा कुपारेमें यदि कोई मर जाय, तो उसे जमीनमें गाड़ देते हैं और जिसकी मृत्यु इसके परे हुई है उसकी मृतदेह जलाई जाती है। तीसरे दिन क्षीर कर्म करके ये लोग शुद्ध हो जाते हैं। प्रेतपूजा और उपदेवताकी पूजामें जीयवलि दी जाती है।



एकद्विज्ये ये लोग मद्रादेव और धर्मियों माताकी भी  
उपासना करते हैं। येवनारिया नामक ग्राम्य देवताकी  
पूजा प्रचलित है। आश्विनके महीनेमें और फाल्गुनके  
होम्बी पर्वमें ये लोग सामोदप्रसोद्धमें मन्त्र पढ़ते हैं।

मूंकना ( हि० सि० ) १ कुत्तोका ३ 'न' या मीं मीं  
गण्ड करना । २ धर्म पढ़ना ।

मूंक ( हि० म्यो० ) मूंक देना ।

मूंक्या ( हि० पि० ) मूंक देना ।

मूंक्याल ( हि० पु० ) मूंक देना ।

मूंकना ( हि० सि० ) १ किसी वस्तुकी भागमें डाल कर  
या और किसी प्रकार गमीं पहुंचा कर पढ़ाना । २  
तकना, पढ़ाना । ३ दुःख देना, खाना ।

मूंजा ( हि० पु० ) १ भगा हुआ भय, खवेना । २ भङ्ग-  
न जा ।

मूंखरी ( हि० म्यो० ) यह भ मि जो जमींदार नाऊ, बायो,  
फकीर, या किसी संबंधीतो माफोके तौर पर देता है ।

मूंपिया ( हि० पु० ) यह ध्वनि जो मंगनीके हल-वेळीसे  
पैनी करता हो ।

मूंजोख ( हि० पु० ) मूंक देना ।

मूंभारं ( हि० पु० ) यह मनुष्य जिसे पाँचका स्वामी किसी  
दूसरे रूपानमें सुटा कर अपने घटी बनाने और उसे  
निर्वाहके लिये कुछ मासो अमीन दे ।

मूंरो ( हि० पु० ) धार, भीरा ।

मू ( सं० पु० ) भ-जिम् । समाज ।

मू ( सं० म्यो० ) म-भाभारे कर्त्तरि अयादाने या क्त्वि । १  
पृथिवी, भूमि । २ स्थानमात्र, जगह । ३ यामिनि । ४  
मोतातीकी एक मणोरना नाम । ५ मूष्ण । ६ पारि ।

मू ( हि० म्यो० ) मींद ।

मूसा ( हि० पु० ) कर्त्तके समाज हलकी और मुलायम गन्ध-  
कृत वस्तु छोटा टुकड़ा ।

मूक ( सं० म्यो० ) मन्वतोनि मू ( मू-हू-मू-दु-मि-मू-कम् )  
कृष् । उष् । भय । इति कृष् । १ शिर । २ काण ।  
( पु० ) ३ अन्वकार ।

मूकदण्ड ( सं० पु० ) भू वि कदम्ब इव । १ मरुतुदण्ड,  
मुंकी । २ महाभाष्यिका ।

मूकदण्डक ( सं० पु० ) मकदण्डककी वन । कपाकी,  
अन्वकार ।

मूकदण्ड ( सं० पु० ) मीरगमुदरी ।

मूक्य ( सं० पु० ) मूक्यः पृथिव्याः कर्त्त इव । १ मू-  
धायिका । २ शूल, भोल ।

मूकविरथ ( सं० पु० ) कविरथ पृथगेव, किरथ। वेद और  
उपना पान ।

मूक्य ( सं० पु० ) मूक्यः पृथिव्याः कर्त्तः । भूमिमान,  
पृथिवीके ऊपरी भागका महना कृत् प्राकृतिक कर्त्तव्यो-  
ने हिन उठना । विशेष विरथ मूकविरथ इत्ये देवे ।

मूक्यण ( सं० पु० ) उपोनिषादमें निरामरद-का  
पामात् । Radius of the equator

मूक्यणि ( सं० पु० ) एक मुनि ।

मूक्युदारक ( सं० पु० ) पृथिवीके, तिसोड़ा । पर्वत-  
सदृशस्वभावाक, मकोट, लघुकोट, लघुपिच्छक, लघु-  
गोत, लघुमकल, लघुभ तट्टु म, भू क्युदार । इसका मूक्य-  
मणुद, एमि और शूकनामक, चतुस्रोपल कुछ मोठ  
और स्वर्णमारक ।

मूक्य ( सं० पु० ) भुयः पृथिव्याः कर्त्तः । पृथिवीमात्र ।

मूक्यप ( सं० पु० ) भुवि पृथिव्या कद्वय इव, भुयः  
कद्वय इति वा । पसुदेव ।

"मदस्य कर्त्तव्यस्तोरलोमना कर्त्तव्यमः ।

ददुदेव इति त्वामी मेतु निन्दिते मत्तुले ।"

( शिवः ५१ म० )

कद्वयके धर्मसे यातुदेव उरगन हुए इसीमें उभरा  
यह नाम पड़ा ।

मूक्यक ( सं० पु० ) भुवि कपातः कर्त्तः । १ स्वर्णक, २  
एक प्रकारका छोटा बंद या धातु । २ कौशु दारी ।  
३ मोल कपोल, नामा कद्वय ।

मूक्यनी ( सं० म्यो० ) भुवि कृष्णीयः । मूक्यनी ।

मूक्यनापकी ( सं० म्यो० ) भुवि कृष्णापकी । मूक्यनाप,  
भुं कृष्णा ।

मूक्येज ( सं० पु० ) भुयः पृथिव्याः कर्त्तः इव । १ मीरग,  
रीवार । २ कद्वय जिसकी उदरमें समान पर पर-  
वती रहती है ।

मूक्येज ( सं० म्यो० ) मूक्येज दायु । मारपी ।

मूक्येजी ( सं० म्यो० ) मूक्येज क्त्वि । मीरग  
नामक पुरा ।

भूमिन् ( सं० पु० ) भुव त्रिति त्रिणोति शिङ्-विच् ।  
शुक्र, सूर ।

भूस्त्रीवाटिका ( सं० स्त्री० ) काश्मीरकी एक नगरी ।

भूल ( हि० स्त्री० ) १ वह शारीरिक धम जिसमें भोजनकी  
इच्छा होती है । 'लुधा देखो ।' २ आवश्यकता, जरूरत ।

३ अमिलापा, कामना ।

भूलङ्—द्वजतामो संन्यासि-सम्प्रदाय । ये लोग पण्डित ले  
कर भोख मांगते हैं ।

भूलण्ड ( सं० स्त्री० ) १ भूमिलण्ड । २ पत्र और स्कन्द  
पुराणके अन्तर्गत लण्डभेद ।

भूलर ( हि० स्त्री० ) १ भूधा, भूल । २ इच्छा, खाहिश ।

भूलज्जूरी ( सं० स्त्री० ) भूसंलग्ना खजूरी, प्राकपार्थि  
यादित्वात् समाप्तः । शूद्र खजूरी, छोटी खजूरी ।

पर्याय—भूयुक्ता, वसुधावर्जकारिका, भूमिलज्जूरी । गुण—  
मधुर, शीतल, दाह और पित्तनाशक ।

भूना ( हि० वि० ) १ क्षुधित, जिसे भोजनकी प्रयत्न  
इच्छा हो । २ दरिद्र, जिसके पास खाने तककी भी न  
हो । ३ इच्छुक, जिसे किसी बातकी इच्छा या चाह हो ।

भूगन्धा ( सं० स्त्री० ) मुरा नामक गन्धद्रव्य ।

भूगर ( सं० स्त्री० ) भुवः पृथिव्याः गरं । विप, जहर ।

भूगर्भ ( सं० पु० ) १ भयम ति कवि । भूः सर्वम ता  
श्रय मत्ता पृथ्वीगर्भं कुक्षी यत्येति । २ विष्णु । ३

भूमिका अर्धपन्तर भाग, पृथ्वीका भीतरी हिस्सा ।

भूगर्भग्रह ( सं० स्त्री० ) भूमध्यस्थित ग्रह । १ भूमध्य  
स्थित ग्रह, तहलाना । २ तन्त्रांक यन्त्र चहिःस्थितन रेखा-  
लय विशेषात्मक पदार्थ ।

भूगर्भशास्त्र ( सं० पु० ) यह शास्त्र जिसके द्वारा इस  
वातका ज्ञान होता है, कि पृथ्वीका संघटन किस प्रकार  
हुआ है, उसके ऊपरी और भीतरी भाग किन किन तत्त्वों  
के बने हैं, उसका आरम्भिक रूप क्या था और इसका  
वर्तमान विकसित रूप किस प्रकार और किन कारणोंसे  
हुआ है । इस शास्त्रमें पृथ्वी की आदिम अवस्थाके ले  
कर आरंभ तकका एक प्रकारका इतिहास होता है, जो कई  
युगोंमें विभक्त होता है और जिनमेंसे प्रत्येक युग की कुछ  
विशेषताओंका विवेचन होता है । बड़ी बड़ी नदियाँ,  
पहाड़ों तथा मैदानोंके भिन्न भिन्न स्तरों की परीक्षा इस

शास्त्रके अन्तर्गत होती है, और इसी परीक्षाके द्वारा यह  
निश्चिन होता है, कि कौन सा स्तर या भाग किस  
युगका बना है । इस शास्त्रमें यह भी रहता है, कि पृथ्वी  
पर जल वायु और वातावरण आदिका क्या प्रभाव  
पड़ता है ।

भूगोल ( सं० पु० ) भूगोलो मण्डलमिव । भूयनकोप,  
भूमण्डल, गोलाकार मण्डल ।

“मध्ये यमन्तादपत्य भूगोलं ज्योतिः निन्दति ।

विश्रायः परमा गतिं ब्रह्मणो पारव्यात्मिकाम् ॥”

( पर्यधि० )

जिस शास्त्रमें पृथ्वीके ऊपरीभागका विवरण वर्णित  
हो उसे भूगोल कहते हैं ।

उगोल गोल, पृथ्वी तथा भूयनकोप शब्द देखो ।

ज्योतिषिक भूगोल ।

भास्करान्नाथ प्रभृति हिन्दू ज्योतिषियोंके मतसे पृथ्वी  
गोलाकार और अचल है । यह किसी भूत पदार्थका  
अवलम्बन कर अवस्थित नहीं है और न इसकी गति ही  
है । प्रदग्गण और नक्षत्रमण्डल इसीके चारों ओर घूमते  
हैं । कदम्बकुलुम जिस प्रकार केजरकलापसे परि-  
वेष्ट रहता है उसी प्रकार इस भूगोल पर पर्वत, चैत्य,  
मनुष्य, असुर तथा देवगण अवस्थित हैं ।

( सिद्धान्तशिरोमणि गोस्वाम्याय )

आर्यमण्डके मतसे पृथ्वी स्थिर नहीं है, यरन् हमेंजा  
भूमती रहती है । ग्रह, नक्षत्र प्रभृति ज्योतिषमण्डलों  
निश्चल हैं, पृथ्वीकी गतिके अनुसार उनका उदय और  
अस्त होता है ।

सिद्धान्तशिरोमणिकारने गणित तथा युक्ति द्वारा  
पृथ्वीका गोलत्व स्थापित किया है ।

“भूमिः विषयः शशाङ्ग-नविरिव-कुलेगमाकिननपकशा-  
हते हृत्तेःपुचः एव मूरनित्त-सतिता-ज्योतिषेजोमोडपन् ।  
गान्धाधारः स्वेगहत्सैव । यथति निवर्न तिष्ठतीरात्य पृथे  
निष्ठं विश्रम शरत्तु सद्नुमन्नुजादित्यदैत्यं यमन्तात् ॥”

( सिद्धान्तशिरोमणि )

यह परिदृश्यमान गोलाकार मण्डल चन्द्र, बुध, शुक्र,  
मङ्गल, ग्रहवृत्ति, गति और नक्षत्रकलापतसे परिपूर्ण है  
तथा अन्य आधारकी अपेक्षा न कर अपनी

आकाशमें व्यवस्थान करता है। उन्हीं जालिले दानव, मनुष्य तथा देवदेवरादिके साथ विद्वज्मन्सार अधिष्ठित है।

नास्तीय उद्योतिर्विद्वज्जन, पृथिवी मोक्ष नहीं है, यह कल्पना करना भी असम्भव समझने दे। सिद्धांत-जिरोमनिकारने मोलाध्यायमें कहा है, कि मोलात्मभिन्न गणक मानों राजा होय राज्य, यत्ताहोम समा तथा पूत होय भोजनके समान है।

भास्कराचार्यने भौगोलिक मत्तानुसार पृथिवीको समतल बतलाया है—

“यदि मया मुकुटोदरनिभा भगवती पार्ष्णी तदधिः द्विभेः ।  
नरदि दूरमेवेति परिभम्भा विमु नरेस्मरेति नेत्रके ॥”

पृथिवी यदि सूर्योदरको तरह समतल है, तो फिर हममें बहुत ऊँचे पर भ्रमणजाल सूर्य मनुष्य तथा देवता प्राण सर्वथा क्यों नहीं दिखलाई पड़ते ?

पृथिवीको मोलाई साधित करनेके लिए प्राचीन स्थोतिविद्वु लहानाचार्यका कहना है,—

“मया यदि निरूपे भुवतलतलाज-निभा बहुल्यया ।  
कर्मणे न दृष्टिगोचर सुरा यन्ति मुदूतस्थिताः ॥”

यदि पृथिवी समतल होती, तो तालके समान तालपत्र उधो घूँस दूरसे क्यों नहीं गजर धाले ?

पृथिवीको मोलाई होने दिन रात होती है, भौगोलिक मतमसूदनकी जगह भास्कराचार्यने कहा है,—

“यदि निराश्रयकः कनकाचलः किमु तदन्तर्यामः य न दृश्यते ।  
दरगव जनु मेरुसंश्रुमान् कथमुदेति न दृष्टिप्राभायकः ॥”

यदि कनकाचाल सुमेरु राजिका कारण हो, तो सूर्य हमें पर यह स्थूलमय सुमेरु क्यों नहीं दिखलाई पड़ता ? उक्त पद्यमें जब उल्लेखी मोर है, तब फिर भ्रंशुमाला सूर्य दृष्टिपथमें क्यों उदित होने है ?

पृथिवी तो मोर है, किन्तु देखनेमें यह समतल क्यों जाम पड़ती है इसका कारण यह है,—

“अन्वयापत्ता श्रेयः स्वध्यायान् सर्वसिद्धयः ।  
यद्विद्वि कथामेवैव यत्र चरति बहुल्यया ॥”

(सूर्योदयके ।)  
मनुष्य पृथिवीके आकारके समाने अल्पतल छोटे है, मयः यह सूर्योदयकर रहने पर भी अकारण समतल क्षेत्रकी तरह प्रतीत होते हैं।

“मयो कयः स्वयं परिधेः मलाकाः पृथ्वी च पृथ्वी विष्णोः तद्वत् ॥  
मयत्र तद् दृश्यमान इत्यन्ता मनेष तत्र परिभाषयाः ॥”  
(मोलाध्याय ।)

पृथिवी बहुत बड़ी है, यत्ता हमको दृष्टिगत जताज भी उस पर स्थित मनुष्योंको समतल जत्र पड़ता है।

पृथिवीका मोलाध्य प्रमाणित होनेमें, भयदर ही इसका ऊद्बध्यायः मानना होगा। क्योंकि पृथ्वीकाकार पार्थकी एक भाग ऊपर और दूसरा नीचे रहता है। मयः नीचे रहनेवाले अधिवासियोंका मन्त्रक नीचेकी ओर रहनेमें ये गिर जा सकने हैं येना कथान ही सकता है।

इस विषयमें सूर्य सिद्धांतने कहा है,—  
“यदेनेव मदीगोले स्वस्थानमुपस्थितम् ।  
तन्मन्ते मे यतो गोपलक्ष्य कोरुषं क वाच्यः ॥”

मोलाकार पृथिवी समतल आकाशमें स्थित है, तुम्हें उसका ऊद्बध्याय या मयः ही कहाँ है ? मनी अपने पार्थे स्थानकी ऊपर समझने है।

इस विषयमें भास्कराचार्यने भीर भी कहा है।  
“यो यत्र विद्यतवती तत्रस्थमात्ममन्त्रया उत्पत्तिस्थलम् ।  
मन्त्रवनेऽथः कुपदुर्गं यथाविषय मे विनिर्दिशामहेति ॥

मयः शिरसका मुकुटान्तर्यामः इत्या मनुष्य इव नीरदिति ।  
भनामुलाश्रित्येवैषा विष्णोश्च त्रिभिर्भि ने तत्र सर्वं बलम् ॥”

जो मनुष्य जहाँ रहता है वह वहाँ पर रह कर पृथिवी तलतां धरणा पड़तलहय तथा अवरोधी हमके ऊपर स्थित समझता है। पृथिवीके चतुर्थां आकार ३० अंश अर्थात् प्राचीन महाजोपके मन्त्रवलय पर मनुष्य मात्र ही धारामसूदनके ऊपर अधिष्ठित हैं, मयः ये एसे निर्धोम-मायमें बतलाते हैं। किन्तु जो विद्वज्जन प्राण पर १८० अंश अर्थात् नूतनमहाजोपमें रहते हैं, वे हम क्षेत्रीकी अज्ञानापके विचारों मयः मनुष्यके अल्पमय अधिष्ठितक प्रतिविषयके जेसे मानून पड़ते हैं, किन्तु यह असमाय है।

कारण, यह असम्य आकाश पृथिवीके चारी छोटा है। मनुष्य पृथिवीकाभी मनुष्यमानके मन्त्रवले ऊपर धरणापथमें अधिष्ठित आकाश भीर पड़ने प्रीथि चतुर्थां है। हमकोय ज्ञान प्रकार कहाँ रहने है। वे जो उन्हीं प्रकार पड़ें मन्त्रवलय करते हैं।

भूमण्डलके गोलत्वके विषयमें गोलाअध्यायमें अनेक प्रमाण हैं—

“निरक्षदेशे क्षितिमण्डलेषु भ्रुवी नरः पश्चति दक्षिणोत्तरी । तदाश्रितं खे अक्षमन्वन्त् तथा भ्रमद्मन्वन्त् निजमस्ताकोपरि ॥”

“उदग्दिशं याति यथा तथा नरस्ताय स्यान्नतमूत्रमण्डनं ।

उदग्भ्रुवं परयाति चोन्नतं क्षित्वेस्तदन्तरे योजनजान्जाराका ॥”

( गोलाध्याय )

निरक्षदेशस्थ मनुष्य दक्षिण और उत्तर भ्रुवको क्षितिमण्डलके साथ संलग्न तथा भ्रुवाश्रित राशिचक्रा को अपने मस्तकोपरिस्थ आकाशमें जलयन्त्रके समान प्रमणशील देखते हैं। निरक्षदेशसे मनुष्य जितना ही उत्तरकी ओर अग्रसर होंगे, उतना ही वे अपने मस्तको-परिस्थ अक्षमण्डलको पीछेकी ओर अवनत तथा उत्तर भ्रुवकी उत्तरोत्तर उन्नत देखेंगे। इसीसे पृथ्वीका गोलत्व साफ साफ प्रमाणित होता है।

पुराणमें भी पृथ्वीकी गोलाईका प्रकट प्रमाण मिलता है। यथा—

“उद्भूत्स्य पृथिवीच्छायां निर्मितो मण्डलाकृतिः ।

स्वर्मानोस्तु वृहत् स्थानं तृतीयं यत् तमोमयम् ॥”

( मत्स्य १२८१, ० कूर्म ४०।१५ )

यह विपुलायतना पृथ्वी शून्यमार्गमें उत्क्षिप्त शिला-खण्डकी तरह नीचे न गिर कर किसी शक्तिके बल शून्यमार्गमें अवस्थित है, ऐसा भी भास्कराचार्यके गोला-ध्यायमें वर्णित है।

“आकृष्टशक्तिश्च मही तथा यत् खस्थं गुरु स्वाभिमुलां भ्रमक्या । माह्वस्यते तत्पततीव भाति समे समन्तात् क्व पतस्वियं खे ॥”

( गोलाध्याय )

पृथ्वी अपनी आकर्षण शक्तिसे शून्यमें स्थिर है और उसी आकर्षण शक्तिके बलसे आकाशमें उक्षिप्त गुरु वस्तु इसकी ओर आकृष्ट होती है। भूपृष्ठ पर पड़े हो कर जिस प्रकार हम लोग समझते हैं, कि आकाश ऊपरमें अवस्थित है, उसी प्रकार भूमण्डलके चारों ओर स्थित मनुष्य आकाशको ऊपर ही देखते हैं। सुतरां सर्वोंके मतसे यदि पृथ्वी नीचेकी ओर पड़े, तो यह कहाँ अवस्थित होगी? इसका कारण उद्धारसापेक्ष है। यथार्थमें ऊँचा नीचा कोई भी स्थान नहीं है, अतः पृथ्वी आकाशमें स्थिर है।

पौराणिक मतसे भूगोलके वर्णनमें अनेक मतभेद देखनेमें आता है और सम्प्रति ये सब कल्पित ज्ञान पड़ते हैं। गोलाध्यायमें भूगोलपुरनिवेश इस प्रकार वर्णित हुआ है।

“अङ्गानुमध्ये यमकाटीरस्याः प्राकृगन्धिवे रोमकपत्तनस्या ।

अधस्ततः सिद्धपुरं सुमेघः सौम्येऽयं याम्ये वडवानप्ररच ॥

कुहवापादान्तरितानि तानि स्थानानि पद् गोलविदो वदन्ति ॥

लङ्कापुण्ड्रस्य यशोदयः स्यात् तदा दिनार्धं यमकोटिपुपी ।

अधःस्तदा सिद्धपुरेऽस्तहालः स्याद् रोमके रात्रिद्वयं तदैव ॥”

भूगोलके मध्यस्थलमें लङ्का, पूर्वमें यमकोटि, पश्चिम-में रोमकपत्तन, अधःस्तलमें सिद्धपुर, उत्तरमें सुमेघ और दक्षिणमें वडवानल है। (कुमेक) गोलवित् परिदृष्टीने उक्त छः स्थानको भूपरिधिसे पादान्तरित अर्थात् चतुर्थांश समान अन्तरमें अवस्थित बतलाया है। लङ्कापुरमें जब सूर्योदय होता है, उस समय यमकोटिमें दो पहर दिन, सिद्धपुरमें अस्तकाल और रोमकपत्तनमें दोपहर रात रहती है।

ध्रुवोन्नति और अक्षांशके अभावमें भूगोलका मध्य-स्थल निर्णित होता है। गोल शब्द देलो।

“तेषामुपरिगो याति विपुवसो दियाकरः ।

न तानु विपुगहाया नाहस्योन्नतिरिष्यते ॥”

विपुववृत्त उक्त चार पुरीके ऊपर हो कर गया है, अतः सूर्य जब उक्त विपुववृत्त हो कर जाते हैं, तब इन सब स्थानोंमें अक्षच्छाया तथा ध्रुवोन्नति नहीं रहती। इसी लिये उक्त वृत्तको निरक्षवृत्त कहते हैं। जिस दिन रातदिन बराबर होता है, उसी दिन सूर्य इस वृत्तके ऊपर हो कर जाते हैं। निरक्षवृत्त तथा विपुववृत्त परस्पर अभिन्न हैं। उत्तर और दक्षिणमेंरुके आकाशमें दो ध्रुवयतार हैं। निरक्षदेशस्थ मनुष्य उक्त दोनों तारकी शिखिज (Hori-2011) वृत्तमें मिला हुआ देखते हैं। इसीलिये निरक्ष वृत्तमें अवस्थित लङ्का प्रभृति चारों पुरीके ध्रुवोन्नति नहीं है, किन्तु निरक्षदेशसे जितना ही उत्तर बढ़ा जाय, ध्रुव उतना ही ऊँचा दिखलाई पड़ता है। अतः ध्रुवो-न्नतिसे सभी स्थानोंका अक्षांश निकषित होता है।



मिलती हैं। विक्रमसगर, देशाघटोविपृति, दिग्म-  
जय प्रकाश प्रभृति यद्गुत्से संस्कृत 'प्र'धोमें नाना  
जनपदका भूरतान वर्णित है। भारतवासियों-  
ने पूर्वकालसे ही जिस प्रकार स्व लोकका ध्रुवक तथा  
विशेष स्थिर किया था, उसी प्रकार वे भूगोलके भी  
नाना स्थानोंका अक्षांश स्थिर कर गए हैं। यंत्रराज  
नामक प्रथम इसका बहुत कुछ आभास मिलता है।

पाश्चात्य भूगोल—विवरण।

जिस शास्त्रमें पृथिवीपृष्ठका विवरण है, उसे भूगोल  
(Geography) कहते हैं। अर्थात् भूपृष्ठस्थित देशादि-  
के प्राकृतिक विभाग, नद, नदी, हृदयर्थादिका वर्णन,  
जीव, उद्भिज्ज और उत्पन्न सामग्री तथा राजकीय शास-  
नादिके विवरणविशिष्ट शास्त्रको भूगोल कहते हैं। भूगोल  
और इतिहास ये दोनों परस्पर सापेक्ष शास्त्र हैं।

पाश्चात्य जगत्में सुप्रसिद्ध ग्रीक-कवि होमरके  
काव्यमें सर्व प्रथम भूगोलका उल्लेख मिलता है। प्रसङ्ग-  
क्रमसे उक्त काव्यमें अनेक भौगोलिक विवरण दिये गये  
हैं। उस समय अर्थात् ईसा सन् ६०० वर्ष पहले होमर-  
के परवर्ती प्रथमकारण भूगोलका उल्लेख करने आये  
हैं। होमरने पृथिवीको अण्डाकार और समतल तथा  
इसके चारों ओर एक अचिरामयाही जलस्रोत बहता  
है, ऐसा वर्णन किया है। जो कुछ हो, होमर-  
वर्णित भूगोलमें यूरोपके कई एक स्थान और एशिया  
तथा अफ्रीकाका नामोदलेखमात्र है। ईसा सन् ८००  
वर्ष पहलेसे भूगोलका कलेवर कुछ बढ़ा है और उसमें  
पाश्चात्य जगत्के अनेक स्थानका विवरण और नील  
नदीका तथा अफ्रीकाके दक्षिणखण्डवासी यूरोपियोंका  
उल्लेख देखा जाता है।

ईसा सन् ७०० वर्ष पहले किनोकीय वर्णनगण  
अफ्रीका देलने आये। उन्होंने सबसे पहले समुद्रयागा-  
की। अनन्तर पीयागोरा खेरके समय पृथिवीका गोला-  
कार होता साधित हुआ और इसके बाद हिटोके समय-  
में यह सिद्धान्तमें परिणत हुआ। उस समय वर्णन-  
विद्याकी यथेष्ट उन्नति होनेके कारण बहुत-से नवीन  
स्थान आविष्कृत हुए और हिमालयो नामक एक नाविक-  
ने ब्रिटिश क्षेपयुद्धका आविष्कार किया।

होमरके समय पृथिवीके दो विभाग थे, अर्थात् चार  
विभाग हुए—उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम। हीरो-  
दोतस जैसे इतिहासके जनक थे, जैसे ही वे सर्वप्रथम  
भूगोलरचयिता भी थे। वे स्वयं वाचिदलन और इतिवृत्त  
प्रभृति अनेक स्थानोंका परिदर्शन कर सर्वोका वर्णन  
लिख गए हैं।

पुनः आज तक प्रोसूद्देगमें ज्योतिष-शास्त्रको आलो-  
चना नहीं देखी जाती। ईसा सन् ६०० वर्ष पहले दारो-  
निक पण्डित घेलिसूने सबसे पहले एक सूर्यप्रदणको  
गणना की। इसके कुछ दिन बाद ग्रीक पण्डितगण  
अलेकजेण्डियाके ज्योतिर्विद्दोंके अनुकरणसे अक्षांश  
तथा देशान्तरकी गणना द्वारा भूपृष्ठस्थ स्थान-समूहके  
दूरत्वनिर्णयमें सचेष्ट हुए थे।

इसके कुछ दिन बाद ग्रीक-पण्डित पराटोस्थिनिसने  
एक भूगोलकी रचना की। उनके प्रदत्त मानचित्रमें  
यूरोपके बहुतसे स्थान निर्दिष्ट हुए। उस समय  
प्रोसूद्देगनानोंके अनेक पृथि हिंदा भी और पर्यटकगण  
नवीन देश देखनेमें उत्सुक हो कर पृथ्वीके बहुत से  
स्थानोंमें घूमने लगे।

बाद एशिया-माइनर-नियासी प्राचीने पूर्वलघ्य  
विवरणावलीको एकत्र कर सुष्टुल्लभावासे अपना  
भूगोल विवरण प्रकाशित किया।

जो पाश्चात्यदेशके प्रस्तनस्वकी सोजमें हैं उन्हीं  
आज भी प्राचीनोका सहायता लेनी पड़ती हैं।

जब प्राचीने भूगोल रचा, उस समय रोम-  
साम्राज्यके सौभाग्यसर्वको उज्ज्वल किरणसे पृथ्वी  
चमक उठी थी। प्राचीनोका भूगोल उक्त रोमसाम्राज्यमें  
सभी जगह भादूर पूर्वक पढ़ा जाने लगा। उस समय  
अलेकजेण्डिया ज्ञानका भण्डार कद कर संसारमें  
विद्यमान था।

अलेकजेण्डियाकी ज्योतिर्विद्याकी उस समय बहुत  
कुछ उन्नति हुई। उसी समय मिश्रके अन्त्यापानो  
पिलुसियमनगरके सुप्रसिद्ध पाश्चात्य ज्योतिर्विद् टलेमीका  
जन्म हुआ। टलेमीने अलेकजेण्डियाके विभविद्यालयमें  
निश्चिन हो कर भूगोल और भूगोलके सम्बन्धमें अर्ध-  
प्रणकी रचना की। उनकी बनाई हुई पुस्तकका नाम है

प्रमाण—

“मैरोकमयतो मध्ये ध्रुवतारं नमःस्थिते ।

निरक्षदेशसंस्थानामुभये कितिजाभयो ॥

अथो नात्रोच्छ्रयन्नामु ध्रुवयोः कितिजाभयोः ।

नवतिर्नैर्न्यकादसु मेरातकानाकास्तथा ॥” (सूर्यसिद्धान्त )

निरक्षदेशका अक्षांश ०° और मेरुका निरक्षसे ६०° अंश है ।

वाद् जिज्ञान्तगिरोमणिग्रन्थके गोलाध्यायमें भूगोल या भुवनकोपका ह्राप और समुद्रसंस्थान तथा परिधि और पृष्ठफल इस प्रकार लिखा है,—

लवण-समुद्रके मध्यस्थ अर्द्ध भूमिभागको आचार्यगण जम्बूद्वीप कहते हैं । परार्द्ध दो द्वीपके दक्षिण लवण और क्षीरोद्व प्रभृति समुद्र अवस्थित है । पहले लवण-जलधि और पीछे दुग्धसिन्धु है । इसी दुग्धसिन्धुसे अमृत, अमृतांशु चन्द्र तथा लक्ष्मी उत्पन्न हुई थीं और वहाँ पुत्रनीय प्रसादि देवगण तथा वामुदेव वास करते हैं । वाद् इसके दधि, घृत, रक्षु, सुरा और निर्मल जल-मय समुद्र वर्तमान हैं ।

‘पातालके मनुष्योंका आवासस्थल बड़यानल स्वादु-जलमय है और इस पाताल प्रदेशमें फणास्थित मणि-किरणमें समुज्ज्वलकान्ति फणिगण तथा असुरगण वास करते हैं और वहाँ सिद्धगण उज्ज्वल सुवर्णमण्डितदेह दिव्य रमणियोंके साथ क्रोडा करते रहते हैं । इसके वाद् शाक, जाल्मल, कीश (कुश), कौञ्च, गोमेदक तथा पुष्कर द्वीप दो दो समुद्रके अन्तर पर अवस्थित हैं ।

‘लङ्का देशके उत्तर हिमगिरि, वाद् हेमकूट और उसके वाद् सिन्धु तक फैला हुआ निपचदेश है । सिन्धुपुर-के उत्तर शङ्खवन् शुकुनीलवर्ष विद्यमान है और उसीमें द्वीपिदेश अवस्थित है । भारतवर्षके उत्तर किन्नरवर्ष, वाद् हरिवर्ष, सिद्धपुर, फुणवर्ष, कुरुवर्षके वाद् हिरण्यमय और रम्यक वर्ण हैं । माल्यवान् पर्वत यमकोटिपत्तनसे तथा गन्धमादन रोमरूपत्तनसे नीलशैल और निपच तक विस्तृत है । इन दोनों पर्वतोंके बीच इलावर्ष है । जलधि-मध्यवर्ती मालाकी तरह जिसे पण्डितगण भद्रतुरग कहते हैं, गन्धमादन अवस्थित है और उसके मध्यवर्ती भू-भागको फल्गु प्यलिगण-केतुमाल वर्ष कहते हैं । इलायुतवर्ष देवताओंका लीलाक्षेत्र है ।

भास्कराचार्यने पौराणिक भूगोलका ही बहुत एक अनुसरण किया है । किस किस पुराणमें भूगोलका विवरण है, वह पुराणग्रन्थमें अटारहवें पुराणको सूची पढ़नेसे जाना जाता है । विस्तारके भयसे वह यहाँ नहीं लिखा गया । प्रथिबी, भुवनकोप प्रभृति चन्द्र देखो ।

किन्तो किन्तो पुराणके मतसे पृथिवी समतल बत-लार् गई है । भास्कराचार्यने उन सब असमीचीन मतों तथा बौद्धजैनोंके सभी मतोंका गोलाध्यायमें युक्ति द्वारा खण्डन किया है । भास्कराचार्य प्रभृति वरेण्य ज्योति-र्विद्गण गणित ज्योतिषमें असाधारण पाण्डित्य प्रकाशित करने पर भी भौगोलिक देश, द्वीप, सागरादि संस्थांन विषयमें पौराणिक मतकी ही पोषकता कर गये हैं ।

काव्यभावसुलभ भारतवर्षमें जन्मग्रहण कर उन्होंने अपने दुरुद्ध गणित और ज्योतिषके वर्णनाकालमें जो कवित्व दिखलानेकी नहीं छोड़े । वे मानससरोवरका नामोल्लेख करनेके समय कवित्व प्रलीभन नहीं भूल सके थे । इसी कारण लिखा है,—“सुरभु रामारमणधमात्रकाः सुत रमन्ते जलकेलिनामोवासाः ।” इससे स्पष्ट जान पड़ता है, कि वे भूगोलका यथार्थ स्थानका निरूपण करनेमें ध्यान न दे “पुराविदः समवर्षायन” ऐसा कह कर निद्रियन्त हुए हैं ।

भारतवासी बहुत पहलेसे ही भूगोलतत्त्व जानते थे । उन्होंने चाहे योगप्रभावसे हो अथवा अध्यवसायके गुणसे, अति प्राचीन कालसे चित्रपुराणवृत्त उत्तरद्वीप और मोमगिरि ( Aurora Borealis ) का आधिष्कार किया था । पेंतरेय ब्राह्मणमें उत्तरकुरु तथा उत्तरमद्रका उल्लेख है । वाल्मीकिरामायणके किष्किन्धाकाण्डमें सोतान्वेषणके समय सुग्रीव द्वारा समुद्रके दूसरे किनारे-के बहुत से जनपदका जो विवरण मिलता है, उसे पढ़ने-से जान पड़ता है, कि भारतवासी अति प्राचीन कालसे भूमण्डलके बहुत दूर देशसे जानकार थे । महा-भारतमें भी जम्बूद्वीपके निर्माणप्रसङ्गमें भूयुक्तान्-सम्बन्धीय अनेक कथाएँ लिखी हैं । पुराणकी कथा पहले ही वर्णित हो चुकी है ।

पीछे और जैनगण भी भूयुक्तान्तके सम्बन्धमें बहुत-सी बातें लिख गये हैं । जैनोंकी सूर्य-प्रश्रुति, चन्द्र-प्रश्रुति और क्षेयसमाप्तसे भूगोलकी बहुत-सी बातें

मिलती हैं। विषमसागर, देशाचलीयष्टि, दिग्बिजय प्रकाश प्रभृति बहुतसे संस्कृत ग्रंथोंमें नाना जनपदका भूगोलार्थ वर्णित है। भारतवासियों ने पूर्वकालसे ही जिस प्रकार स्व लोकका ध्रुवक तथा विशेष स्थिर किया था, उसी प्रकार वे भूगोलके भी नाना स्थानोंका अक्षांश स्थिर कर गये हैं। यंत्रराज नामक ग्रंथमें इसका बहुत कुछ आभास मिलता है।

पाश्चात्य भूगोल—विवरण।

जिस शास्त्रमें पृथिवीपृष्ठका विवरण है, उसे भूगोल (Geography) कहते हैं। अर्थात् भूपृष्ठस्थित देशादिके प्राकृतिक विभाग, नद, नदी, हृदयपर्यंतादिका वर्णन, जीव, उद्भिज्ज और उत्पन्न सामग्री तथा राजकीय शासनादिके विवरणविशिष्ट शास्त्रको भूगोल कहते हैं। भूगोल और इतिहास वे दोनों परस्पर सापेक्ष शास्त्र हैं।

पाश्चात्य जगत्में सुप्रसिद्ध ग्रीक-कवि होमरके काव्यमें सर्व प्रथम भूगोलका उल्लेख मिलता है। प्रसङ्गपरसे उक्त काव्यमें अनेक भौगोलिक विवरण दिये गये हैं। उस समय अर्थात् ईसवी सन् ६०० वर्ष पहले होमरके परवर्ती ग्रंथकारगण भूगोलका उल्लेख करते आये हैं। होमरने पृथिवीको अण्डाकार और समतल तथा इसके चारों ओर एक अचिरामवाही जलस्रोत बहता है, ऐसा वर्णन किया है। जो कुछ हो, होमर-वर्णित भूगोलमें यूरोपके कई एक स्थान और एशिया तथा अफ्रीकाका नामोल्लेखमात्र है। ईसवी सन् ८०० वर्ष पहलेसे भूगोलका कलेवर कुछ बढ़ा है और उसमें पाश्चात्य जगत्के अनेक स्थानका विवरण और नील नदीका तथा अफ्रीकाके दक्षिणखण्डवासी यूथोपियोंका उल्लेख देखा जाता है।

ईसवी सन् ७०० वर्ष पहले फिनोकीय धनिकगण अफ्रीका देखने आये। उन्होंने सबसे पहले समुद्रयात्राकी। अनन्तर पोथागोरा सेरके समय पृथिवीका गोलारूप हीना साधित हुआ और इसके बाद ही टोके समयमें यह सिद्धान्तमें परिणत हुआ। उस समय धनिकविद्याकी यथेष्ट उन्नति होनेके कारण बहुतसे नवीन स्थान आविष्कृत हुए और हिमिलको नामक एक नायिकने मिटिश षोपपुत्रका आविष्कार किया।

होमरके समय पृथिवीके दो विभाग थे, अर्थात् चार विभाग हुए—उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम। हीरो-दोतस जैसे इतिहासके जनक थे, जैसे ही वे सर्वप्रथम भूगोलरचयिता भी थे। वे स्वयं यात्रिलन और इजिप्ट प्रभृति अनेक स्थानोंका परिदर्शन कर सर्वोत्तम वर्णन लिख गये हैं।

पुनः आज तक प्रोसेद्गेममें ज्योतिष-शास्त्रकी आलोचना नहीं देखी जाती। ईसवी सन् ६०० वर्ष पहले दार्शनिक पण्डित थेलेसने सबसे पहले एक सूर्यग्रहणकी गणना की। इसके कुछ दिन बाद ग्रीक पण्डितगण अलेक्जेंडरियाके ज्योतिर्विदोंके अनुकरणसे अक्षांश तथा देशान्तरकी गणना द्वारा भूपृष्ठस्थ स्थान-समूहके दूरत्वनिर्णयमें सचेष्ट हुए थे।

इसके कुछ दिन बाद ग्रीक-पण्डित एराटोस्त्रिनिसने एक भूगोलकी रचना की। उनके प्रदत्त मानचित्रमें यूरोपके बहुतसे स्थान निर्दिष्ट हुए। उस समय प्रोसेम घानकी अनेक वृत्ति हुई थी और पर्यटनगण नवीन देश देखनेमें उत्सुक हो कर पृथ्वीके बहुतसे स्थानोंमें घूमने लगे।

बाद एशिया-माइनर-निवासी ड्रावोने पूर्वलम्ब विवरणायत्नाको पकड़ कर सुशुद्धताभावसे अपना भूगोल विवरण प्रकाशित किया।

जो पाश्चात्यदेशके प्रगततत्त्वकी लोजमें हैं उन्हें आज भी ड्रावोको सदापता लेनी पड़ती है।

जब ड्रावोने भूगोल रचा, उस समय रोम-साम्राज्यके सीमावर्षुर्षकी उच्च्यल किरणसे पृथ्वी चमक उठी थी। ड्रावोका भूगोल उक्त रोमसाम्राज्यमें समी जगह भाद्र पूर्वक पढ़ा जाने लगा। उस समय अलेक्जेंडरिया घानका भण्डार कद कर संसारमें विख्यात था।

अलेक्जेंडरियाकी ज्योतिर्विद्याकी उस समय बहुत कुछ उन्नति हुई। उसी समय निधके अन्तःपातो यिबुस्मियमगरके सुप्रसिद्ध पाश्चात्य ज्योतिर्विद टलेमोका जन्म हुआ। टलेमोने अलेक्जेंडरियाके विश्वविद्यालयमें शिक्षित हो कर भूगोल और भूगोलके मन्व्यन्धमें व्यर्थ प्रगती रचना की। उनकी बनाई हुई पुस्तकका नाम है



बलमेजिद । ७वीं शताब्दीमें यह ग्रन्थ अरबी भाषामें अनुवादित हुआ । हाफ्सा-अल-रसीद देखें ।

जो कुछ ही, टलेमो ही प्राचीनकालके एकमात्र प्रसिद्ध भूगोल-प्रणेता थे ।

टलेमीप्रकाशित भूगोलमें ग्रीक और रोमकाल में मण्डलका हाल जहां तक जानते थे, सभी वर्णित है । टलेमीकी पुस्तक १४ सौ वर्ष तक पाश्चात्य जगत्में अप्रतिहतभावमें प्रचलित रही । १४वीं शताब्दी तक टलेमीके भौगोलिक ज्ञानमण्डारमें फिर एक भी रत्न सञ्चित न हुआ । अनन्तर रोमका सीमाभ्यसूर्य जब असम्य चर्यर-राहुकचलसे प्रस्त हुआ तब फिर विज्ञान-चर्चा भी पाश्चात्य म खण्डसे जाता रहा ।

बाद १६वीं शताब्दीमें जब यूरोपमें विद्यालोचनाके नवयुगका उदय हुआ, तब शास्त्रचर्चाके विविध द्वार उदाटित हो नाना लुप्त रत्नोंका अनुसन्धान होने लगा । इसी समय स्पेनियाईने जगत्के इतिहासका सीमाभ्य-शीर्ष स्थान दखल किया । फलम्बसने अमेरिकाका पता लगाया । खोलन्दाजगण उत्तमाशाअन्तरीप घूमते हुए भारतवर्ष आ धमके और मेगेलन, डेक, कमान कूक प्रभृति जगद्विख्यात नाविकोंने भूमण्डलका प्रदक्षिण कर भौगोलिकज्ञानकी चरमोन्नति की । इसके परवर्ती समय का भूगोल-विवरण आजकल शिक्षित व्यक्तियोंको विदित है तथा विश्वकोषके महादेश तथा देशादिकी वर्णनामें भी वे सब प्रकाशित हुए हैं और होंगे । अतः विस्तार और पौरुषात्मिकके भयसे उन सर्वोकी आलोचना नहीं की गई ।

भूद्विभागका विवरण ।

पृथ्वीका ऊपरीभाग जल और स्थलभागमें विभक्त है । इसके तीन भाग जल और एक भाग स्थल है ।

जलभाग—महासागर, सागर, उपसागर, प्रणाली, हृद, नदी, उपनदी प्रभृति नामसे कल्पित है ।

जो विस्तोर्ण लवण-जलराशि पृथ्वीकी चोरे हुई है, वही महासागर है, भौगोलिकोंने सुविधाके लिए उसका स्वतन्त्र नानवे अयस्थान-निर्देश किया है । महासागर पुनः पांच भागोंमें विभक्त हैं,—(१) उत्तर (आर्षाटिक) महासागर, (२) दक्षिण (एण्टार्षाटिक) महासागर, (३)

प्रशान्त (पैसिफिक) महासागर, (४) अटलाण्टिक महासागर और (५) भारत (इण्डियन) महासागर ।

१ उत्तरमहासागर—उत्तरमेरुप्रदेशमें । २ दक्षिण-महासागर—दक्षिण मेरुप्रदेशमें । ३ प्रशान्तमहासागर—पश्चिमा और अमेरिकाके मध्य । ४ अटलाण्टिक महासागर—यूरोप और अफ्रीका तथा अमेरिकामें । ५ भारत-महासागर—पश्चिमाके दक्षिणमें ।

उक्त पांचों महासागरके मध्य प्रशान्तमहासागर सर्वोकी अपेक्षा बड़ा और उत्तरमहासागर सबसे छोटा है । सम्पूर्ण जलभागका परिमाणफल प्रायः १४ करोड़ ५० लाख वर्गमील है ।

महासागरकी अपेक्षा छोटे लवणमय जलभागका नाम सागर है । ऐसा जलभाग जो प्रायः चारों ओर स्थल द्वारा घिरा रहता है, वह उपसागर कहलाता है ।

जो सङ्कोर्ण जलभाग दो बड़े बड़े जलभागों परस्पर मिलाता है अथवा जो दो स्थलभागों को प्रवाहित होता है, उसे प्रणाली कहते हैं ।

चारों ओर सम्पूर्णरूपसे स्थल द्वारा घिरे हुए स्वाभाविक जलभागका नाम हृद है । हृद बहुत बड़ा होनेसे सागर कहलाता है । जैसे, कैस्पियन सागर ।

जो जलप्रवाह पर्वत, हृद या प्रखण्डसे निकल कर सागरादिमें गिरता है, उसे नदी कहते हैं ।

जो नदी पर्वतादिसे निकल कर किसी दूसरी नदीमें जा मिलती है, उसे उपनदी और जो नदीसे निकल कर किसी ओर बह जाती है, उसे शाखा नदी कहते हैं । जहां पर दो नदियां मिलती हैं, वह सङ्गम-स्थान कहलाता है । जिस स्थानसे नदी निकलती है वह नदीका उत्पत्तिस्थान और जहां पर नदी समुद्रमें या हृदमें जा मिलती है, उसको नदीमुख या मुहाना कहते हैं । नदीके मुहानेको निकटस्थ त्रिकोणाकार भूमिका नाम डेल्टा है ।

वर्तमान भौगोलिकोंने भूद्विभाग दो महाद्वीपोंमें विभक्त किया है, पूर्ण या प्राचीन महाद्वीप और पश्चिम या नूतन महाद्वीप । इस महाद्वीपके अंतर्गत जो जो विस्तोर्णभूखण्ड हैं, जिसमें अनेक देश हैं, उनको महादेश कहते हैं ।

प्राचीन महाद्वीपमें—(१) एशिया, (२) यूरोप और (३) अफ्रीका। नूतन महाद्वीपमें—(१) उत्तर अमेरिका, (२) दक्षिण अमेरिका, यही पांच महाद्वीप हैं।

अभी अक्सोनिया ( सामुद्रिक ) नामक समुद्र-गर्भस्थ बड़े बड़े द्वीपोंको ले कर भौगोलिकगण एक स्वतन्त्र महादेशको कल्पना करने हैं।

महादेशोंके मध्य एशिया सबसे बड़ा और जनपूर्ण है। यूरोप सबसे छोटा होने पर भी उन्नत तथा सुसभ्य है। अमेरिकाकी जनसंख्या सर्वोकी अपेक्षा थोड़ी है और अफ्रीका सबसे अनुन्नत और असभ्य है। महादेशोंका विवरण उन्हीं ध्य शब्दोंमें देलो।

१४६२ ई०में विख्यात यूरोपीय नाविक कलम्बसने अमेरिकाका आविष्कार कर अपने पोताध्यक्ष अमेरिका मेससुचिके नामानुसार उस स्थानका नाम 'अमेरिका' रखा।

परिमाणफल—समूची पृथिवीका परिमाण साढ़े उन्तीस करोड़ वर्गमीलसे भी अधिक है जिसमेंसे जल भाग साढ़े चौदह करोड़से ऊपर है और स्थल भाग पांच करोड़ है। जनसंख्या लगभग डेढ़ सौ करोड़ है।

स्थलभाग साषाणतः महादेश, देश, द्वीप, उपद्वीप, अन्तरीप, योजक, उपकूल, पर्वत इत्यादि नामसे प्रसिद्ध है।

विस्तीर्ण भूमिखण्डको महादेश और उसके एक एक अंश को देश कहते हैं। चारों ओर जल द्वारा परि-वेष्टित भूमिखण्डको द्वीप और ऐसे ही कई एक द्वीप एकत्र रहनेसे उसे द्वीपसुत्र कहते हैं। इसी प्रकार महादेशके समीपवर्ती प्रायः चारों ओर जल परिवेष्टित कोई कोई भूमि-खण्ड जो एक ओर स्थल द्वारा महादेशके साथ संलग्न है, वह उपद्वीप कहलाता है।

जो भूभाग क्रमशः सूक्ष्म हो कर समुद्रकी ओर चला गया है, उसके अप्रमाणका नाम अन्तरीप है। वह सन्धीर्ण भूमिखण्ड जो किसी से बड़े भूमिखण्डकी मिलाता है, योजक या डमरूमध्य कहलाता है। समुद्रके तीरवर्ती स्थानका नाम उपकूल है।

पृथिवीके ऊपर अत्यन्त ऊँचे प्रस्तरमय स्थानको शैल या पर्वत और बहुत दूर तक फैले हुए ऐसे पर्वतोंको पर्वत श्रेणी कहते हैं। छोटे छोटे पर्वत पहाड़ कहलाते हैं।

पर्वतके अप्रमाणको शृङ्ग, चड़ा या शिखर कहते हैं। यथा, काश्चनजङ्घा।

जिम पर्वतके शृङ्गदेशस्थ छिद्रसे समय समय पर धूम, भस्म, अग्निजिप्सा इत्यादि निकलती है, उसका नाम आग्नेय या ज्वालामुखी पर्वत है।

दो पर्वतोंके बीच विस्तीर्ण प्रान्तरक्षेत्रको उपत्यका और पर्वतमय ऊँची भूमिको अधित्यका कहते हैं।

पार्वतीय ऊँची भूमिको मध्यस्थित नदीका खात अववाहिका (basin) और दो अववाहिकाको मध्य-पार्वत्यमूमि जलवाघ Water shed कहलाता है।

दो पर्वतके मध्यवर्ती सन्धीर्णपथको गिरियर्म, पास या घाटी कहते हैं।

जिस भूमिके ऊपरका भाग प्रायः समान और पर्व-तादिविहीन रहता है, वह समतल भूमि कहलाता है।

वृक्षलतादि परिशून्य जलाशयोंदिविहीन विस्तीर्ण गालुकामय प्रान्तर भूमिको मरुभूमि कहते हैं। मरु-भूमिको मध्यस्थित उर्वरा भूमिका नाम मारवघोष या वेसिस है। यथा-फेजान।

भूपृष्ठ पर नाना जातीय मनुष्योंका वास है। वर्ण और गठनादिके भेदसे मनुष्य जाति तीन प्रधान श्रेणियोंमें विभक्त हैं। यथा—कफेशीय, मङ्गोलीय और निग्रो। मलय और आमेरिक इण्डियन ये दोनों जाति मङ्गोलीय जातिके अन्तर्गत हैं।

१ कफेशीय—इस श्रेणीके मनुष्योंका शरीरगठन और वर्ण सुन्दर होता है, किन्तु इनके बड़ी बड़ी दाढ़ी होती हैं। यूरोपमें, पश्चिम एशियामें फेमपियन सागरके दक्षिणसे दक्षिण-पश्चिममें भारतवर्ष तक और अफ्रीकाके उत्तर भागमें इस जातिका वासस्थान है।

२। मङ्गोलीय—इनका वर्ण पीला, बाल काले, आँखें छोटी, मुँह चिपटा और दाढ़ी थोड़ी होती है। एशिया-के उत्तर पूर्व तथा मध्यप्रदेशमें इस जातिका वास है।

३। निग्रो—इनका चमड़ा काला, नाक चिपटी, होंठ मोटा टुड्डी लम्बी तथा बाल घुंघरीले और भेदकी तरहके होते हैं। ये अफ्रीकाके दक्षिण और मध्य स्थानमें रहते हैं।

४। मलय—ये मङ्गोलीय और निग्रो जातिके मध्यवर्ती

होनेके कारण उनसे बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। मलय उपद्वीप और भारतद्वीप पुत्रमें इनका वास है।

५। आमेरिका या लोहित इण्डियन—ये उत्तर और दक्षिण अमेरिकाके बहुत-से स्थानोंमें पाये जाते हैं। ये लोग ताम्रवर्णके हैं।

ये सब मनुष्य नाना सम्प्रदायमें विभक्त हैं। विभिन्न समयमें विभिन्न प्रवर्तकके अभ्युदयने पृथिवी पर नाना धर्म प्रचलित हुए हैं जिनमेंसे हिन्दू, बौद्ध, मुसलमान, ख्रिष्टान, यहूदी इत्यादि प्रधान हैं।

भूगोलविद्या (सं० खी०) वह विद्या जिसके द्वारा पृथिवीकी आकृति, धर्म, विभाग, गति और सम्बन्ध आदि जाना जाय। (Geography)

भूधन (सं० पु०) शरीर।

भूचक्र (सं० खी०) १ पृथिवीकी परिधि। २ विषुवरेखा। ३ अग्रनवृत्त। ४ क्रान्तिवृत्त। ५ अक्ष और द्रष्टिचिह्न रेखा।

भूचणक (सं० पु०) वृक्षभेद, मुंगफली।

भूचम्पक (सं० पु०) भूमिचम्पकशुष्प, भचम्पा।

भूचर (सं० पु०) भुवि चरताति चर-ट। १ वह जो पृथ्वी पर रहता हो, भूमि पर रहनेवाला प्राणी। २ दोमक।

भूचरसिद्धि (सं० खी०) तन्त्रोक्त सिद्धिभेद।

"ततोऽधिकतराभ्यासात् बलमुत्पद्यते भूचरम्।

येन भूचरसिद्धिः स्वप्नानुत्पत्त्या जये क्षमः ॥"

(दत्तात्रेयसं०)

तन्त्रशास्त्रमें जिन सब सिद्धियों या साधनाओंका उल्लेख है, भूचरसिद्धि उनमेंमें एक प्रधान गिनी जाती है। वास्तविकमें तन्त्रयाज्यकाममें प्रवृत्त कर यदि वे दोष-दोष इस अवचदन-घटना-पटीयस्त्री सिद्धिकी ओर मन निविष्ट विद्या जा सकें, तो निश्चय ही इस सिद्धि या साधनाके प्रभावसे साधकको कोई भी वस्तु अमाप्य, अगम्य या अप्रत्यक्ष नहीं रह जाती। उस समय करतल गत आमलक फन्डके समान अभोक्लिप्त सभी विषय साधकके पास आये आप आ जाते हैं।

किन्तु इस सिद्धिनाममें सम्पूर्ण-रूपसे वृत्तकार्य होना बड़ा ही दुर्भार है। अनेक विद्याशाखाओंको पार कर

सुदृढ़ अभ्यासकी पूर्ण महापतामें अधिकारी हो सकने पर इन सिद्धिरूप समूह सौधजिगर पर चढ़ा जा सकता है। दत्तात्रेयसंहितामें लिखा है, कि योगी उक्त अभ्यासके बलसे इस साधनामें सिद्ध हो जाते हैं, तब उनकी अनुपम रूपमहिमाके कल्पके दृष्टि धर्म हो जाता है और अनेक विघ्न आ-पस्थित होते हैं। यहां तब, कि रूपमुग्ध अज्ञानात् अनङ्गुपीडित हो उनके साथ सहवास करनेकी कामनासे आता है। मूर्तरा इस हालतमें योगी यदि उस अज्ञानके आलिङ्गनमें लिप्त होयें, तो उनका अधःपतन बहुत शीघ्र हो जाता है। उस समय उनकी विन्दुपातवशतः आत्मा क्षीण हो जाती और जो कुछ भी शक्तिशामर्थ्य रहती है, सभी एकबारगी क्षयको प्राप्त होती है। अतएव ऐसी सिद्धिके अधिकारी होनेमें योगी ध्यानको कदापि रमणीका सङ्ग न करना चाहिए। हमेशा सब तरह उन्हें स्वीय विन्दु धारणमें लगा रहना उचित है। इस प्रकार इन्द्रियनिग्रहपूर्वक योगी जब सिद्धिके प्रयासों में तब एक निर्जन स्थानमें जा कर उन्हें पूर्वाहित पापराशिके विनाशके लिए पहले प्रणव जपका अनुष्ठान करना चाहिए। ऐसा करनेसे वे पवित्रता लाभ करेंगे और सभी विघ्नबाधाएँ दूर हो जायंगी।

इसी अभ्यास-योगकी भूचरसिद्धिकी प्रथमावस्था घटलाया गया है। योगी पहले इसी अभ्यासमें प्रवृत्त हो बाद वायु-अमग्राससे कुम्भक अवस्थामें जायें। चाहे दिनमें हो या रातमें, एक महाना तक प्रति-दिन एक बार कुम्भकका अवलम्बन कर इन्द्रियोंका जो प्रत्याहरण करते हैं, उसीका नाम प्रत्याहार है। कुम्भका-वस्थामें उपनीत योगीके लिए उस समय प्रत्याहारका अनुष्ठान भी नितांत प्रयोजनीय है। योगीयलक्ष्मी साधक उस समय अपनी आंखोंमें जो द्रव्यें, कानोंमें जो सुनने, नाकसे जो गन्ध लेंगे, रसनामें जिस रसका आस्वाद लेंगे और हृदय द्वारा जो स्पर्श करेंगे, उन सबोंको आत्मसे ही भावना करने चाहिए। इस प्रकार धनैरित हो योगी व्यक्ति जब यत्नपूर्वक प्रतिदिन एक घट्ट कर पूर्वाक्त विधानोंके अनुष्ठानमें लिप्त रहेंगे, तबो उनके एक अतीत सामान्य सामर्थ्य आ उपस्थित होगी। उस समय वे दूर-दृष्टि, दूरध्वनि प्रभृति अमानुषोचित क्षमता प्राप्त करेंगे।

उनके मुण्डने जो बात निकलेगी वह उसी समय सिद्ध होगी, वे कामचरित्वलाभ करते हैं। उनके मलमूत्रादिका संस्पर्श करनेसे लोहा भी स्वर्णरूपमें परिणत हो जाता है। अधिक क्या, प्रतिदिन अमात्मके बलसे वे खेचरत्न्य और इससे भी अन्य अधिकतर सामर्थ्यलाभके अधिकारो हो सकते हैं। किन्तु योगी जब अपनी इस अलौकिक सामर्थ्यका अनुभव करें तब वे युद्धिबलसे इसे धरना अभ्युद्यत न समझ कर महासिद्धिका फल समझें। उस समय योगीको चाहिए, कि वे अपनी क्षमता किसीसे भी न कहें और न किसी को कुछ शिक्षा हो दें। वे अपनी सामर्थ्य छिपानेके लिए मनुष्यके सामने गुंभे, अन्धे, बहिरि और मूर्खको तरह चुपचाप रह जायं, अन्यथा उनके कार्यमें बाधा पहुँचेगी। वे अपने अभ्यासयोगमें जिधिलप्रयत्न हो जायेंगे और ऐसा होनेसे उन्हें साधारण मनुष्यको नाईं हो जाना पड़ेगा। सुतरां उनके कोई सामर्थ्य नहीं रह जातो। इसीलिए योगी पुरुषको चाहिए, कि वे गुरुका दास्य कदापि न भूँसे और रातदिन यथाविहित अभ्यासके यथापत्तीं होयें। इस प्रकार अभ्यासयोगसे ही क्रमशः योगी परिचयावस्थाको प्राप्त होते हैं। परिचयावस्था और तदनन्तर अनुष्ठेय विषयोंका अनुष्ठान करनेसे ही योगरत गदापुरुष महासिद्धि लाभ कर रुतदृश्य हो जाते हैं।

इस विषयका विस्तृत विवरण दत्तात्रेयचन्द्रिका और प्रदयासके चौदहवें पटलमें देखा।

भूचरो (सं० खो०) योग ब्राह्मणानुसार समाधि अंगको एक मुद्रा। इनका निवास नाकमें है और इसके द्वारा प्राण और अवायुयु दोनों एकत्र हो जातो है।

भूवाल (हिं० पु०) भ कम्प, भ डोल।

भूचित्र (सं० ऋ०) भूयः पृथिव्याः चित्रं। पृथिवीका मानचित्र, मैप।

भूच्छत्र (सं० फलो०) छत्राक, कुकुमुत्था।

भूच्छाय (सं० बलो० खो०) भुवश्छाया (विभाषा सेना-गुणच्छापानिज्ञानम्। पा २।१।२५) इति तत्पुरुषे विभाषया ननु संस्कृतं, छायाबाहुल्येन केवलं यद्योपत्यं। अन्यकार।

भूजम्बु (सं० पु०) भुजो जम्बुद्विप। उपरसयिषेय, सोम्या।

भूजम्बु (सं० फलो०) भुजो जम्बुद्विप सादृश्यात्। १ गोधूम, गेहूं। २ भूमिजम्बुद्विप, धनत्रामुन। ३ विकटूतपुत्र।

भूटान—हिमालयको पूर्वपाद भूमिमें अवस्थित एक पार्वतीय स्वाधीन सामन्त राज्य। यह अक्षां २६° ४५' से २८° ३०' तथा देशां ८६° से ६२° पूर्वमें अवस्थित है। इसके उत्तरमें मोटाराज्य, पूर्वमें अर्द्धसम्य पार्वतीय स्वाधीन जातियोंकी थासममि, दक्षिणमें अंगरेजाधिपत्य ग्यालपाड़ा, कामरूप और जलपाईगुड़ी जिला तथा पश्चिममें सिक्किम राज्य है।

श्यामल समतल जल्यक्षेत्रसमूहके नहीं रहने पर भी इस स्थानका पार्वतीय शाखा अत्यन्त मनोरम है। कहीं तो नतोन्नत गिरिगण्डसमूह लतामण्डपको नाईं श्याम-भूयासे विभाषित है, कहीं बड़े बड़े पौधे तथा वृक्ष अत्यन्त ऊँचे शिखर पर वर्तमान हैं मानों मुकुटधारा राजाके जैसे प्रशान्त पर्वतपुत्र पर शासन करते हों। इन छोटे छोटे वृक्षोंकी शोभा इतनी मनाहारी है, कि समय समय पर पथिकगण दूरसे ही यह अपूर्व दृश्य देख कर मुग्ध और आत्मविस्मृत हो जाते हैं। हिमालय धेणोंके तुषारधवलचत्पट पर यह वृक्षराशि मानो अगणित सेनाकी तरह रणप्रतीक्षामें खड़ी है। उनके ऊपर मेघमालाकी क्रीड़ा बड़ी ही विस्मयोद्दापक है—इसका मायुयें वर्णनातात है।

प्राकृतिक सौन्दर्यजालिनो यह पार्वत्य भूमि मुकामालाका नाईं अत्यन्त मनोरमालाकी वक्षस्वलय पर धारण कर विधाताका मृष्टिकुण्डलनाका परिचय दे रही है। मनोरपर्वतकन्दरा और अर्द्धसम्य जिलरममि हो कर धारे धारे बहती हुई अनेक स्नानस्थानो उम भयावह निजेन पार्वत्य प्रदेशको अतिक्रम कर दक्षिणको और प्रसुत्रमें आमिला है। कहीं कहीं यह जलराशि पर्वतकन्दर भेद कर प्रपाताकारमें गिरती है। जलप्रपातो दानने इन विषयका उद्देश्य किया है, कि उक्त जनधारा इतने ऊँचे स्थानसे भूत पर गिरती है, कि रूपाने दिग्दर्शनमें ऐसा जान पड़ना है, मानो यह मधुसूक्तमें ही विद्योत हो जाती है और नाँचेमें एक मृक्ष जलधारा मृदुमन्दगतिमें पर्वतगावने निकलती हुई—सी जान पड़ती है। मात्रसाईं पक्षीकी प्रवृत्ति—

आ कर इन्होंने भूटानप्रदेशमें घाम किया है, अधिधामो-  
 घृन्द साधारणतः तीन भागोंमें विभक्त है,—श्ला पुगे-  
 दित या धर्मयात्रक, द्वा पेनलो या सरदारगण, ये ही  
 शासनकार्यमें नियुक्त हैं और उग निम्नश्रेणीके कृषि-  
 जीवीगण ।

प्रजासर्व साधारणतः परिश्रमी होते हैं। कृषिकार्यमें  
 उनका विशेष ध्यान है; किन्तु स्थानीय भूभागके प्राकृतिक  
 अवस्थान और राजपुरुषोंके दीरात्म्यसे सर्वस्य अपहरण-  
 के भयसे ये कृषिकार्यमें भी विशेष मनोयोगी नहीं हैं।  
 निम्नश्रेणीके व्यक्तियुग स्वभावतः दरिद्र और उच्चश्रेणी  
 द्वारा सनाये जाते हैं। किसी अवस्थापन्न व्यक्तिकी जब  
 निगाह पड़ती है, तब दरिद्रकी और कहाँ रक्षा—उसको  
 विषयसम्पत्ति धनो छान लेते हैं। राजकीय कर्मचारी-  
 के कौतुकसकी अपेक्षा दरिद्र प्रजाको किसी किसी  
 विषयमें क्षमता है। उनमेंसे किसीको भी भूमिका अधि-  
 कार नहीं है। राजकर्मचारी जब चाहते तभी ये उसे  
 देनेकी बाध्य हैं। "जिसको लाठी उसको भैंस" यह  
 कहावत भूटानके ही राजतन्त्रमें चरितार्थ होती है।  
 राज्यविभाग या जिलाविशेषके शासनकर्त्ताओंको राज-  
 दरवारसे कुछ तनखाह नहीं मिलती। उन्हें जब जो  
 आवश्यकता पड़ती है, उसी समय वे स्वच्छन्द रूपसे  
 प्रजाका लेंद्र चूसने हैं। प्रजाका सर्वस्य अपहरण कर  
 शासनकर्त्ता जो कुछ प्राप्त करते हैं, उससे कुछ अंश  
 उन्हें राजदरवारमें देना पड़ता है, वे यत्पूर्वक जितना  
 ही अधिक कर संग्रह करेंगे और राजसरकारमें जितना  
 ज्यादासे ज्यादा देंगे, उनका उतना ही सम्मान और  
 शासनकर्त्तृपद अधूण रहेगा।

उच्चश्रेणी या राजकीय कर्मचारिगण नाना दोषदुष्ट  
 हैं। भ्रष्टा, फलह, विद्याद तथा परश्रोकातरना उन-  
 का प्रधान अङ्ग है। वे निर्दय और लज्जाहीन भिन्नारी  
 हैं। अवस्थापन्न होनेसे वे दूसरेको चीज मांगनेमें जरा  
 भी क्षम्यमान नहीं समझते। किन्तु यदि उन्हें सुधमांगा  
 द्रव्य न दिया जाय, तो वे वितोर निष्ठुरताके साथ  
 उनका प्राणनाश करनेमें जरा भी कुण्ठित नहीं  
 होते। फिर निम्नश्रेणीके व्यक्ति अपेक्षाएतन् सर्व और  
 सत्यवादी हैं। वे अपनेही परिश्रमसे कपासपत्र, टाँपा-

वृक्षको छाटसे कागज और धान्यादिसे शराव प्रस्तुत  
 कर उसका उपभोग करते हैं।

भूटियारमणी मत्तोरवकी और तनिक भी ध्यान नहीं  
 देतीं। ५ या ६ भाई स्वच्छन्दरूपसे एक ही खाँडा  
 उपभोग कर सकते हैं। ऐसा करनेमें वे कुछ भी पता  
 नहीं मानते। यही कारण है, कि स्त्रियाँ समाधतः  
 दुःशोला तथा असद्गत्या हैं; अनेक स्वामी रहनेके कारण  
 उनका पंशाधिकार ठीक नहीं रहता। क्योंकि, गर्भत्र पुत्र  
 किस चंगको उज्ज्वल करेगा, इसका निश्चय नहीं होनेसे  
 ही प्रकृत उत्तराधिकारका ठोक ठोक पता लगाना मुश्किल  
 हो जाता है। इसीलिए किसी धनवान् परिवारके  
 कर्त्ताकी मृत्यु होनेसे उसकी सारी सम्पत्ति पुत्रकन्याके  
 रहते भी देव या धर्मराजकी अधीकारभुक्त होती है।

भूटियोंके मध्य 'धर्मराज' युद्धका अतारस्वरूप  
 कल्पित है। राज्यके प्रधान सरदारोंमें एकको देवराज  
 चून लेना पड़ता है। राजकीय नियमानुसार देवराज  
 तीन वर्षके लिए सिंहासनका अधिकारी होता है, किन्तु  
 यथार्थमें जब तक उसके राजकार्य-परिचालनकी क्षमता  
 रहती है तब तक यह राजसिंहासन पर आरूढ़ रहता  
 है। देवराज और धर्मराजके सिवा १२ शौद्धयतियोंकी  
 एक धर्मसभा और ६ जिमपे द्वारा एक भजनसभा गठित  
 होती है। ये धर्माचार्यगण राजकीय कार्यके मन्त-दातारूप-  
 में गिने जाते हैं। देवराजके अधीन पर-पिले, या पेम्पे  
 चिचु नदीके पश्चिम देशका और तोंगुफिको पूर्वी भागका  
 शासन करते हैं। उन दोनोंके अधीन ७५ छह सूबा या  
 कमिजनर नियुक्त हैं।

भूटियागण मोटे ताजे, साहसी और बलवान् होते  
 हैं। यथार्थमें ऐसी सुगठन-प्रतिकृति और कर्त्तों भी नहीं  
 देखी जाती। उनके वलिष्ठ शरीर और भी यज्ञीय मुण्डधर्मे  
 कर्दम आचार व्यवहारमें और जो भोजन बना दिया है।  
 मरुया और वेङ्ग नामक मद्य पानसे उनकी आँखें हमेशा  
 रंगी रहती हैं। इसके सिवा उनको वेङ्गभूया ऐसी  
 है, मानो प्रकृतिके गम्भीर द्रव्यको भोजनताके माच्छा-  
 दनमें ढक लिया हो। स्त्रियोंका पहराया पुण्यमन्ना  
 हो है। केवल प्रसिद्ध इतना ही है, कि वे पुण्यकी तरह  
 जूता, भय और मानक पर दौर्गा नहीं पहनतीं।

शूक्रादि विभिन्न मांस तथा चाय उनका प्रधान भोजन है।

उनके रहनेका घर बड़ा ही साफ सुथरा रहता है। भरोषा दरवाजा इत्यादि प्रस्तुत करनेमें वे विशेष शिल्पचातुर्य दिखाते हैं। किवाड़में कभी भी लोहेका फटना नहीं लगता। अत्यन्त सुकींगलसे वे फाटका फटना बना कर किवाड़ या भरोषेका किवाड़ लटका देते हैं।

बीजधर्मके कट्टर विश्वासी होते हुए भी वे छिपेरूपसे उपदेवताको पूजा और भूतयोनिकी वृत्तिके लिए बहुतसे मन्त्रपाठ भी करते हैं। पूजा या उत्सवमें शिङ्गा, शंख, करताल, ढोल, नगारा, बांसुरी आदि वाद्ययन्त्र बजाये जाते हैं। उनकी भाषा तिब्बती भोट-भाषाकी जैसी है। तब स्थानभेदसे उसमें भी परिचर्चन देखा जाता है।

यहां प्रायः दो हजार घैलोङ्ग या लामा पुरोहित तथा सैकड़ों धर्मकुमारी हैं।

प्रत्येक ग्रामके समाप कृषिकार्थके लिए पार्वत्यभूमि परिष्कृत होती है जिसमें गेहूँ, जौ, सरसों, लालमिर्च, सलगम आदि उपजते हैं।

भूदानवासी लोपा नामक जाति बड़ा ही फलहप्रिय, भीष्ट और माया ममताहीन होता है। इनको छोटी आँखें, विरल कृष्णकेश और चिपटा मुख देखनेसे ये बहुत कुछ चीनवासीसे मिलते हैं। प्रौढ़ावस्थामें भी इनके अच्छी तरह मूँछ दाढ़ी नहीं निकलती।

इनमें चङ्गलो नामक एक स्वतन्त्र दल है। इनका वास उत्तरांशमें ही अधिक है, जिस भागामें ये बातचीत करते हैं, यह चङ्गलो कहलाता है जो तिब्बतीय भाषासे बहुत कुछ मिलती जुलती है। ये सब अन्यान्य भूटियोंकी अपेक्षा बुबले, पतले और काले होते हैं।

भूतानी (हि० वि०) १ म टानसम्बन्धी, भू टानदेशका। (पु०) २ भू टानदेशका निवासी। ३ भू टानदेशका घोड़ा। (स्त्री०) ४ म टान देशकी माया।

म दिया—म टानवासी जातिविशेष। भूटान देतो। भूटिया वादान (हि० पु०) एक पहाड़ी पृक्ष। यह पाँच हजारसे ले कर दस हजार फुटकी ऊँचाई तक पहाड़ों

पर होता है। इसका आकार मम्बोला होता है, लकड़ी इसकी मजबूत और गुलाबी रंगकी होती है, मेज कुरसी आदि चीजें इससे बनाई जाती हैं। पृक्षका फल खाया जाता है।

भूट्ट (हि० स्त्री०) १ बालमिश्रित भूमि, बलुई भूमि। २ कूपका सोत, फिर।

भूडोल (सं० पु०) भूकम्प।

भूण (हि० पु०) १ जलपाता, समुद्री सफर। २ जल-त्रमण, जल-विहार।

भूत (सं० स्त्री०) १ न्याय। २ पृथिव्यादि भूतपञ्चक, ये मूल द्रव्य जो सृष्टिके मुख्य उपकरण हैं और जिनकी सहायतासे सारी सृष्टिकी रचना हुई है। पञ्चमूत और मशमूत देखो। ३ मृतशरीर, शव। ४ सत्य। ५ पिशाचादि। ६ जन्तु। ७ कुमार कार्तिकेय। ८ धस्तुतस्य। ९ सृष्टिका कोई जड़ या चेतन, अक्षर या अक्षर पदार्थ या प्राणी। १० प्राणी, जन्तु। यह चार प्रकारका है, योगिन, अण्डज, स्वेदज और उद्भिज्ज। ११ अतीतकाल, गुजरता हुआ जमाना। अतीतकालके पर्याय—पृत्त, अर्षीत, दस्तन, निभूत, गत। १२ वृत्त। १३ देवयोनिविशेष, पुराणानुसार एक प्रकारके पिशाच या देव। ये कद्रके अनुचर हैं और इनका मुँह नीचेकी ओर लटका हुआ या ऊपरकी ओर उठा हुआ माना जाता है। ये बालकोंको पीड़ा देनेवाले प्रद भी कहे जाते हैं। १४ योगीन्द्र। १५ कृष्णचतुर्दशी। १६ भूतनाशक औषध, यह औषध जिसके सेवनसे प्रेतों और पिशाचोंका उपद्रव शान्त होता हो।

“भ्वेतापराजितान् पितृ तपद्भुत्वारिणा।

तेन नस्यप्रदानात् स्यात् भूत् वृन्दस्य विद्रवः॥

अगस्त्यपुण्यस्यै ये समीचत्, मूलकम्॥” इत्यादि।

भ्वेत अपराजिताके मूलको चावलके धोये हुए पानीमें पीस कर उसका नस लेनेसे भूतका उपद्रव चिनट होता है। मिर्चके साथ अगस्त्यपुण्यका नस भी भूतनाशक है। १७ लोघ, लोष। १८ कृष्णपत्र। १९ पुराणानुसार पितृवोके गर्भसे उत्पन्न चातुर्देवके बारह पुत्रोंमेंसे सबसे बड़े पुत्रका नाम। २० व्याकरणके अनुसार क्रियाके तीन प्रकारके मुख्य क्रियाका यह रूप जिसमें यद् सूचिन होता

का व्यापार समाप्त हो चुका। २१ वे कल्पित आत्माएँ जिनके विषयमें यह माना जाता है, कि वे अनेक प्रकारके उपद्रव करतीं और लोगोंको बहुत कष्ट पहुँचाती हैं।

विशेष विवरण प्रोत शब्दमें देवो।

(त्रि०) २२ युक्त, मिला हुआ। २३ गत, वीता हुआ। २४ समान, सदृश। २५ जो हो चुका हो।

भूतक (सं० पु०) पुराणानुसार सुमेरु परके २१ लोकोंमेंसे एक लोक।

भूतकरण (सं० स्त्री०) वैदिक व्याकरणिक संज्ञा-विशेष।

भूतकर्तृ (सं० पु०) ब्रह्मा।

भूतकर्म (सं० पु०) मनुष्यभेद।

भूतकटि—१ बौद्धमतानुसार जीवलोकका सर्वोच्च स्थान। २ शून्यता।

भूतकला (सं० स्त्री०) भूतानां कला। पृथिव्यादि पञ्चभूतोंकी उत्पादिकादि शक्तिभेद, एक प्रकारकी शक्ति जो पंचभूतोंका उत्पन्न करनेवाली मानी जाती है।

भूतकाल (सं० पु०) भूतः कालः, अतीतकाल, बीता हुआ समय।

भूतकालिक (सं० त्रि०) अतीतकाल सम्बन्धीय।

भूतकृत (सं० पु०) भूतानां पृथिव्यादीनां प्राणिनां वा कृत, कर्ता। १ देवता। २ विष्णु।

भूतकेतु (सं० पु०) दश सावर्णिके पुत्रभेद। २ चैताल भेद।

भूतकेतु (सं० पु०) भूतस्य केतु इव। १ स्वनामव्याप्त तृण, सफेद दूध। पर्याय—गोदामी, भूतकेती, अल्पकेती, केती। २ नियुं एटी, नीलसिंधुवारका पींधा। ३ इन्द्र-वारणी। ४ सफेद तुलसी। ५ जटामांसी। ६ पुत्रजीया।

भूतानां केतु इव भूतकेतुः शिवश्चेति केचित्। ० स्त्री-चित्तन्य।

भूतकेती (सं० स्त्री०) भूतकेतु-गीवादित्वात् स्त्रीप्। १ भूतकेतु। २ शोफालिका, नियुं एटी। ३ नीलसिंधु-वार।

भूतकेसरा (सं० स्त्री०) मेथिका, मेथी।

भूतकान्ति (सं० स्त्री०) भूतानां प्रान्तिः। भूत्वोन्माद, भूत लगना।

भूतगण (सं० पु०) भूतानां गणः। भूतसमूह।

भूतगन्धा (सं० स्त्री०) भूतः मर्दानं विनापि प्रसन्नो गन्धोऽस्याः। मूरा नामक गन्धद्रव्य।

भूतगाना (हिं० पु०) बहुत मीला कुचैला या बंधेरा फल।

भूतग्राम (सं० पु०) भूतानां ग्रामः समूहः। भूतसदृश।

भूतप्र (सं० पु०) भूतं हन्तीति हन-प्रक्। १ उग्र, उदर। २ लहसुन। ३ भोजपत्रका पेड़। (त्रि०) ४ भूतनामक, भूतका नाश करनेवाला।

भूतप्री (सं० स्त्री०) भूतप्र स्त्रीप्। १ तुलसी। २ मुक्ति-तिका।

भूतचतुर्दशी (सं० पु०) भूतपिया भूतोद्देशिक्या कर्त्तव्या वा चतुर्दशी, मध्यपक्षोपि कर्म। गौण कार्तिक मासकी कृष्णा चतुर्दशी। इस चतुर्दशीको यमचतुर्दशी भी कहते हैं।

भूतचतुर्दशीके दिन यमपूजा या यमतर्पण अत्यन्त कर्त्तव्य है। इस दिन अरुणोदयकालमें स्नान करना होता है। अरुणोदयकालके बाद यदि कोई स्नान करे, तो उस का संवत्सरकृत पुण्य विनष्ट होता है। उस दिन चन्द्रोदयकालमें स्नान करनेसे नरकका भय नहीं रहता। कृष्ण-चतुर्दशीके दिन अरुणोदयकालमें ही चन्द्रोदय हुआ करता है। पिताके जीवित रहते यमतर्पण और जीम-तर्पण करना निषिद्ध है। उन्हें अरुणोदयकालमें केवल स्नान ही करना चाहिये। इस दिन यदि मङ्गलवार और बिक्र नक्षत्र पड़े, तो शिवपूजा करनेसे शिवपुरको गति होगी है। इस चतुर्दशी और अमावस्याके दिन प्रदोषकालमें दीपदान करना चाहिये। दीपदान करनेसे यममार्गका अन्धकार दूर हो जाता है।

“भमात्स्यामचतुर्दश्याः प्रदोषे दीपदानतः।

यममार्गान्धकारस्थो मुच्यते कार्तिके नरः॥”

(विभिन्न)

इस दिन अरुणोदयकालमें स्नानके बाद यममार्गयाय मन्त्रपके ऊपर निम्नलिखित मन्त्र पढ़ कर पुमान् चाहिये। मन्त्र यथा—

“शिवश्रेष्ठोऽयममुक्त्वा मन्त्रपठेत्तदस्मिन्नु।

हर पापमपामार्गं ध्रान्यमायः पुनः पुनः॥”

स्नानके बाद निम्नलिखित मन्त्रसे यमतर्पण करना चाहिये। मन्त्र यथा—

“वमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च।

पैवस्तथाय कालाय सर्वभूतत्रयाय च।

उद्दुम्बराय दध्नाय नीलाय परमेष्ठिने।

वृकोदराय विश्वाय विश्वगुप्ताय वै नमः ॥”

इस चतुर्दशीके दिन १४ प्रकारका जाक खाना चाहिये। इससे प्रेतलोककी गति नहीं होती है।

चौदह जाक ये सब हैं—ओल, फेमुक, वास्तुक, सर्पप, काल, निम्ब, जवा, गालित्री, हिमलोचिका, पटोल, शीलक, गुडुचो, भण्डाकी और शुपुनिया। (विधितत्व)

भूतचारिन् (सं० पु०) महाद्वैप।

भूतचिन्ता (सं० स्त्री०) पदार्थविषयिणी चिन्ता या अनुशीलन। (सुश्रुत)

भूतजटा (सं० स्त्री०) भूतस्य जटय तत्सद्गत्यान्। जटामांसी।

भूतज्योतिस् (सं० पु०) सुमतिवुत्र राजभेद।

भूतडामर (सं० पत्नी०) तन्त्रभेद।

भूततत्त्व (सं० पत्नी०) भूतानां भावः त्वः। १ पञ्चभूतका भाव या धर्म। २ वह जिसमें भूतनामधेय अपदेयताकी पूजा और उनको अन्तितत्त्वविषयिणी कथा लिपियद्ध हुई हो।

भूततन्त्र (सं० पत्नी०) १ भूतधर्म। २ अष्टाङ्गहृदयका षष्ठभाग। इस भागमें भूतधर्म संवन्धोय विशेष विवरण लिखा है।

भूततृण (सं० पु०) १ विषभेद। २ गन्धद्रव्यविशेष।

भूतत्व (सं० पत्नी०) भूतका भाव या धर्म।

भूतत्त्व (सं० स्त्री०) भू-विषयक तत्त्व।

भूतत्त्वविद्या (सं० स्त्री०) पृथिवीके अभ्यन्तरलिपित पदार्थोंका निर्णयात्मक शास्त्र (Geology)।

भूविद्या देखो।

भूतद्राविन् (सं० पु०) भूतान् पिशाचान् द्रावयतीति द्रु-णिच्, णिन्ति। भूताङ्कू श वृक्ष, लाट कनेर।

भूतद्रुम (सं० पु०) भूतप्रियो द्रुमः। श्लेःसाग्नक वृक्ष।

भूद्रुह (सं० लि०) भूतद्रुह किप्। प्राणिहिसक।

भूतपात्रो (सं० स्त्री०) भूतानि धरतीति भू-न्च्, डोप। पृथिवी।

भूतधामन् (सं० पु०) इन्द्रके एक पुत्रका नाम।

(महाभा० १ प०)

भूतधाविनी (सं० स्त्री०) पृथिवी।

भूतनाथ (सं० पु०) भूतानां नाथः। १ शिव। २ भूत-पति राम।

भूतनाथ—एक कवि। ये प्रजाभूतनाथ नामसे प्रसिद्ध थे।

भूतनायिका (सं० स्त्री०) भूतानां नायिका नियामिका। दुर्गा।

भूतनाशन (सं० स्त्री०) भूतानि प्राणिजानानि नाशयन्तेऽनेनेति नश-णिच्-न्त्युट्। १ रुद्राक्ष। (पु०) २ मल्लहातक, मिलावा। ३ सर्पप, सरसी।

भूतनिचय (सं० पु०) भूतानां निचयः। भूतसमूह।

भूतन्त्रविद् (सं० पु०) भूतत्त्वज्ञ।

भूतपक्ष (सं० पु०) भूतः प्रियः पक्षः। कृष्णपक्ष।

भूतपति (सं० पु०) भूतानां पतिः। १ महादेव। २ कृष्णतुलसीचूष, काली तुलसी।

भूतपत्नी (सं० स्त्री०) भूत इव कृष्णं पत्नं यस्याः, टीप्। तुलसी।

भूतपादप (सं० पु०) भव्यफल वृक्ष।

भूतपाठ (सं० पु०) भूत-प्रतिपाठकः विष्णु।

भूतपुर (सं० पु०) जनपदविशेष और जनपदवासी।

भूतपुण्य (सं० पु०) भूतयुक्तं प्राणिविशिष्टं पुण्यं यस्य। श्योनाक वृक्ष।

भूतपूर्णमा (सं० स्त्री०) भूतानां पूर्णिमा। आश्विनी पूर्णिमा, शरद-पूर्णमा। पर्वोय—शरदा, कौमुदी, अश्वयुजी, जतपर्वी, रतूभूति, कोजागरी।

भूतपूर्व (सं० लि०) भूतः पूर्वः। वरंमानसे पहलेका, इससे पहलेका।

भूतप्रकृति (सं० स्त्री०) भूतादिकी मूलप्रकृति।

भूतप्रतिपेध (सं० पु०) भूतयिताङ्ग, भूत भाङ्गना।

भूतवाल—एक पैषाकरण। जैनेन्द्र ध्याकरणमें इनका उल्लेख है।

भूतवाहन (सं० पु०) भूतात्मनो वाहनः। देवल, पुजारो।

भूतमर्तृ (सं० पु०) भूतानां मर्ता। भूतपति, शिव।

भूतमध्य (सं० पु०) लिप्ता।



भूतभाष्य (सं० पु०) भूतानि द्वित्वादीनि भाषयति ।  
जन्तयतीति भू-णिच्-न्त्यु । १ विष्णु । २ महादेव । (ति०)  
३ भूतपालक ।

भूतभाष्या (सं० स्त्री०) वैनायिक भाष्या । पैनाची देखो ।

भूतभाषिण (सं० स्त्री०) पैनाच भाष्या ।

भूतभृत् (सं० पु०) भूतानि विभक्तौति भू-क्विप् तुगा-  
गमश्च । १ विष्णु । (ति०) २ भूतघाटक ।

भूतभैरव (सं० पु०) १ भैरवकी एक मूर्त्तिका नाम ।

भूतभैरवरस (सं० पु०) रमोपश्रयिणोश्च । इसको प्रस्तुत  
प्रणाली—हस्तात् १५ भाग, गन्धक ६ भाग, नई इमली  
८७ भाग इन्हें सोज और अरुणके दूधमें भावना दे  
कर रोहित जटाके रसमें भावित पारद आध भाग उसमें  
मिन्ना दे और वादमें गोली बनावे । इस औषधका  
विशुद्ध जल, कर्पूर और ताम्बूलके साथ सेवन करके  
सुगले सो रहे । इससे वातव्याधि और अठारह प्रकार-  
के कुष्ठ, कुष्ठजनित उपद्रव, उपश्वर और दाह जाते रहते  
हैं । (संस्क्रधा० कुष्ठनि०)

भूतभौतिक (सं० लि०) भूत और भूतजात ।

भूतमय (सं० लि०) भूतयुक्त ।

भूतमहेश्वर (सं० पु०) विष्णु ।

भूतमातृ (सं० स्त्री०) भूतानां माता । गौरी और पद्मादि  
मान्गण, ब्राह्मी और माहेश्वरो आदि मान्गण ।

भूतमाता (सं० स्त्री०) भूतानां माता । शत्रुादि पञ्च-  
तन्मात्र, शत्रु, स्वयं, रूप, रस और गन्ध यह पञ्च  
तन्मात्र ही भूतमाता हैं ।

( मनु० १२।१७५० )

भूतमारि (सं० स्त्री०) भूतानि मारयतीति भूत मृ-  
णिच्-णिनि । चोडा नामक गन्ध-द्रव्य ।

भूतयज्ञ (सं० पु०) भूतार्थं यज्ञः भूतानि काकादि प्राणि-  
जातानि तान्युद्दिश्यो यो यज्ञ इति धा । गृहस्थके लिये  
कर्त्तव्य पञ्चयज्ञमेंसे एक यज्ञ । इसे बलिद्वैश्य भी कहते हैं ।  
पञ्चयज्ञ और दशरूपेण देगे ।

भूतयोनि (सं० स्त्री०) भूतानां धाकाजातीनां योनि-  
कारणम् । धाकाजाति भूतके उत्पत्तिकारण परमेश्वर ।

भाष्यप्रकाशमें भूत धा उपदेशनादिको उपद्रवरूपा  
घर घर सुनी जाती है । मानवके भूतघेन और

उसको प्रतिषेध किया तथा भौतिक व्याप  
विस्तृत आलोचना भौतिककाएदमें की गई  
भौतिककार

भूतरप (सं० पु०) मन्यन्तरीय देवभेद । भाग०

भूतराज (सं० पु०) भूताधिपति जिव ।

भूतरूप (सं० लि०) भूतको आकृति ।

भूतरूपस्थान (सं० स्त्री०) भूतमय शरीर ।

भूतल (सं० स्त्री०) भुवस्वले । १ पृथिवी, सं  
२ पृथिवीका ऊपरी तल, शरातल । ३ पृथि-  
विचला तल, पाताल ।

भूतलिका (सं० स्त्री०) भूतलं पृथ्वीतलं भाषा  
अस्त्यस्या इति भूतलं ठञ् टाप् । पृका, धमय  
भूतलिपि (सं० पु०) भूतानां लिपिः । भूतदेवत  
भेद ।

भूतलोग्मयन (सं० पु०) दानवभेद । (दीर्घा २४)

भूतवत् (सं० लि०) पूर्ववत्, पहलेके जैसा ।

भूतवर्गा (सं० पु०) भूतसमूह ।

भूतवादिन् (सं० लि०) यथार्थभाषी ।

भूतवास (सं० पु०) भूतानां वासो यत्र । १ कनि  
२ महादेव । ३ विष्णु ।

भूतवाहन (सं० पु०) जियका एक नाम ।

भूतवाहनसारथि (सं० पु०) जिय ।

भूतविक्रिया (सं० स्त्री०) भूतानामिव विक्रियाः  
अपस्माररोग ।

भूतविज्ञान (सं० स्त्री०) भूतयोनि नामक अपदेवता  
करण विषयक ज्ञानज्ञान ।

भूतविट्ट (सं० लि०) सर्वज्ञ, गुजरी वातजने

भूतविद्या (सं० स्त्री०) भूतादि-नियारणार्थां या वि-  
आयुर्वेदके अष्ट विभागका एक । सुधुतमें लि-  
कि इस विभागमें देव, असुर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस,  
लोक, पिनाच, तम्रकादि भाग, यूर्वादि नवप्रद भौ-  
न्दादिप्रद आदिके प्रभावमें उत्पन्न होनेवाले भू-  
तोगोंका विज्ञान और उपाय होता है । यह उपाय  
प्रदानान्ति, पूजा, जप, होम, दान, रत्न पहनने और  
सेवनके रूपमें होता है । (सुभुत सूक्त्या० १ म०)

“गृहभूतविनाशाय नान्निनी शक्तिनी गृहाः ।  
एतेषां निगूहः सम्यक् भूत्विया निगूह्यते ॥”  
(वेदक० २ ४०)

भूतविनायक ( सं० पु० ) भूताधिपति, जिब ।  
भूतविष्णु ( सं० पु० ) दशगोतिमूत्रभाष्यके प्रणेता ।  
भूतघोर ( सं० पु० ) जानिभेद ।  
भूतवृक्ष ( सं० पु० ) १ शाखोट वृक्ष, सिहीरका पेड़ ।  
२ श्योनाक वृक्ष ।  
भूतवृक्षक ( सं० पु० ) श्लेष्मान्तक वृक्ष ।  
भूतवेजो ( सं० स्त्री० ) भूतानामिय वेजोऽरुवाः शौरादि-  
त्वान् डीप् । १ श्वेत शैफालिका, सफेद नियुंष्टी ।  
२ नियुंष्टी ।  
भूतब्रह्म ( सं० पु० ) भूतः पिशाच इव ब्रह्मा । देवल, पुतारी  
भूतशुद्धि ( सं० स्त्री० ) भूतानां देहारम्भकपृथिव्यादि पञ्च  
भूतानां शुद्धिः शोधनं । तन्त्रप्रसिद्ध देहारम्भक चीवीम  
तत्त्वोंके भावनाविधाय संस्कार द्वारा देवरूपता सम्पा-  
दन, पूजादिमें बोज विशेष द्वारा वामकुक्षिस्थित पाप  
पुरणका दहन कर शरीरशोधन । किसी देवता विशेष  
की पूजा करनेसे पहले भूतशुद्धि करना होती है ।  
भूतशुद्धिके बिना पूजा करनेका अधिकार नही है ।  
भूतशुद्धि द्वारा शरीरस्थित पापपुरणके दाध होने पर  
पुनः चन्द्रगलित सुधाको नूतन देह निर्माण कर  
पूजा करने पड़तो है । भूतशुद्धिका व्यापार यज्ञ ही  
कठिन है ।

भूतशुद्धिके सम्बन्धमें नाना प्रकारकी व्यवस्था है ।  
उनमेंसे साधारणतः पूजा पद्धति आदिमें जिमका प्रयोग  
देजा जाता है, पहले वही ही जानी है । संयतचेता  
पुरण किसी देव या देवीको पूजा आरम्भ कर आसनशुद्धि  
प्रभृति विहित विधानोंके अनुष्ठानके बाद देहारम्भ पृथि-  
व्यादि पांच भूतोंका शोधन या देहारम्भक चीवीम तत्त्वोंके  
भावय संस्कार द्वारा देवरूपता प्राप्त करते हैं ।

पूजा पद्धतिमें लिखा है, पहले “त्म्” इस बोचमन्त्र-  
से जल धारा दे कर वहिप्रकारको चिन्ता करने हुए दोनों  
हाथ अपनी गोदमें उत्तान भायसे रखने चाहिए । बाद  
“सोऽहम्” इस भावना द्वारा हृदयस्थ दीपकालिकाकृति  
जीवारमाको मूलाधारस्थित कुलकुण्डलिनोकें साथ सुषुम्ना

पथमें मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध  
और आग्ना नामक छह चक्र भेद कर मस्तकावस्थित  
धर्मोमुप सहस्रदलजाली कमलकर्णिकाके अन्तर्गत पर-  
मात्मामें संयोजित करना उचित है । अनन्तर इस  
परमात्मामें पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, गन्ध, रस,  
रूप, स्पर्श, शब्द, नासिका, जिह्वा, चक्षु, त्वक्, श्रोत्र,  
वाक्, पाणि, पाद, वायु, उपस्थ, प्रकृति, मन, बुद्धि,  
अहङ्कार तथा रूप ये चीवीम तत्त्व बिलीन हैं, ऐसा  
मोचते हुए “यम्” इस ध्रुवर्ण वायु योजका वामनासा-  
पुटमें चिन्तापूर्वक सोलह बार जप कर वायु द्वारा  
अपनी देह परिपूरित करने चाहिए । फिर दोनों  
नासापुट धारण कर उक्त वायुयोजका पुनः बौमठ  
बार जप और इसके बाद कुम्भक कर वामकुक्षि-  
स्थित कृष्णवर्ण पापपुरणके साथ शरीरका संशोधन  
कर उचित है । शरीरके संशोधित होनेसे पुनः  
इस योजका बचीम बार जप कर दक्षिण-नासा  
द्वारा वायु निकालनी चाहिए । अनन्तर “रम्” इस  
वहिवीयोजका रक्तवर्ण ध्यान और सोलह बार जप  
कर वायु द्वारा देह परिपूरित करनी दोतो है । फिर  
दोनों नासापुटका धारण करके इस योजका चौमठ बार  
जप कर कुम्भक करे । कुम्भकके बाद मूलाधार स्थित  
वहिवि द्वारा पापपुरणके साथ शरीर दाध कर पूर्वोक्त वहि-  
योजका बचीम मरनवे जप कर मस्मके साथ वाम  
नासापुट द्वारा वायु निकाले । इस प्रकार वामनासामें  
“उम्” इस योजका शुद्धवर्ण ध्यान कर सोलह बार जप  
द्वारा चन्द्रको ललाट पर ला कर पुनः दोनों नासापुट  
धारणपूर्वक “यम्” इस वरुण-योजके बौमठ बार जप  
द्वारा उस चन्द्रसे विगलित मातृकावर्णमय योयुपधारामें  
समस्त देह विरचित कर “लम्” पृथ्वीयोजके बचीम बार  
जपसे देहका सुदृढ़रूपसे भावना कर दक्षिण नासा द्वारा  
वायु निकालनी चाहिए ।

अनन्तर “हंम” यह योज हृदयमें ला कर कुलकुण्ड-  
लिनी और पृथिवी प्रभृतिको पद्यापथ ध्यानमें स्थापित  
करना होना है ।

शक्तिमें विशेषतः यह है, कि “हंम” योज द्वारा जीव  
प्रभृतिको परम जिब पर संयोजित कर पुनः उनको  
“सोऽहम्” मंत्रसे पद्याध्यान पर लाना पड़ता है ।

“योगसूत्रेण यमामान्य जीवं एदि यमानयेत् ॥” (संस्कार)  
 ज्ञानार्णवमें लिखा है, कि प्राणप्रतिष्ठाक्रमके बाद जीव-  
 को देहमें संस्थापित और कामानुसार अपनी देह स्थिर  
 करनी चाहिये ।

“प्राणप्रतिष्ठाया पश्चाद् जीवं देहे निधारयेत् ।

सुप्तानुं समुत्पन्नं हंसस्य विपरीतकः ॥

उद्वेगं परमेगानि । विषयं त्र्यक्षरी मता ।

प्राणप्रतिष्ठामन्वोऽयं सर्वकर्मणि साधयेत् ।

तेनैव विधिना देवि । शिरीरुर्मान्निजा तनुम् ॥”

( ज्ञानार्णव )

वाराहीतन्त्रमें उल्लिखित हुआ है—भूतशुद्धिकी जगह  
 'हंस' मन्त्र शूद्रको स्मरण करनेका अधिकार नहीं है ।  
 यदि करे, तो उसकी दीक्षा विफल हो जाती है और  
 अन्तमें यह नरकमें जाता है ।

“हंसस्य न स्मरेत् शूद्रा भूतशुद्धौ कदाचन ।

मन्त्राधारकं वाति शोभा च विकला भवेत् ॥”

( वाराहीतन्त्र )

शारदातिलकमें लिखा है,—जीवकी तेजोमय ध्यान  
 कर पुनः 'नमः' मंत्रसे संयोजित करना चाहिये ।

“जीव' तेजोमयं ध्यात्वा नमोमंत्रेण योजयेत् ॥”

( शारदातिलक )

यह हुई विस्तृत भूतशुद्धि । अन्य ग्रन्थमें संक्षेपमें भी  
 इसका वर्णन किया गया है । पुरंदरराजचन्द्रिकामें संक्षेप  
 भूतशुद्धिका विषय इस प्रकार लिखा है,—ज्ञानी साधक  
 अपने हृदय-कमलको धर्मरूप कन्दमे उलपत्र, ज्ञानरूप  
 नाल द्वारा परिजोमित, ऐश्वर्यरूप अष्टदलसे युक्त और  
 वैराग्यरूप कर्णिकालसे समन्वित, इस प्रकार ध्यान कर  
 बाद उसे प्रणय द्वारा विकसित करें । अनन्तर कर्णिका-  
 स्थित प्रदीपकलिकाभिन्न जीवात्माका हृदयमें ध्यान कर  
 मूलमंत्रसे कुण्डलीकी चिन्तापूर्वक सुपुम्नापथमें आत्मा-  
 को परमात्मासे योजित करें ।

विशुद्धे भ्रममें लिखा है, कि अन्वयग्रहणके साथ  
 संयोगके हेतु शरीराकार-म्यरूप भूतोंका विधान ही भूत-  
 शुद्धि है ।

“शरीराकारं ज्ञानं भूतानां कश्चिदोच्यते ।

अन्वयग्रहणयोगात् भूतशुद्धिरसि मया ॥” (विशुद्धेभ्रम)

भूतसंसार ( सं० पु० ) जगत्, विभवग्रहाखण्ड ।

भूतसंक्रामिन् ( सं० त्रि० ) भूतप्राप्त ।

भूतसङ्घ ( सं० पु० ) भूतसमूह ।

भूतसञ्चार ( सं० पु० ) भूतस्थ सञ्चारः । भूतोग्गाराभिः

पर्याय—आवेश, चतकान्ति, प्रहागम । ( शश्विः )

भूतसञ्चारिन् ( सं० पु० ) भूतेषु सञ्चारति इति भूत सम् का

णिनि । दायानल ।

भूतसन्ताप ( सं० पु० ) दानवेदे ।

भूतसंग्रह ( सं० पु० ) प्रलय ।

भूतसर्ग ( सं० पु० ) सृज्यते इति सृज्-भाषे चप् भूतसर्ग

सर्गः । अग्निपुराणमें लिखा है, कि यह भूतसर्ग

चौदह प्रकारकी है,—ब्राह्म, प्रजापतीय, सौम्य, ऐन्द्र,

गान्धर्व, कौवेद, रक्षः, पैशाच, मानुष, स्थावर, वायव,

मार्ग, सर्प और शाकुनिक । ( भविपु० )

भूतसाक्षिन् ( सं० पु० ) सृष्ट पदार्थका साक्षिरूप ।

भूतसाधनी ( सं० स्त्री० ) भूतानि प्राणिनाः साधयति इति

आधारे ल्युट्, डोप् । भूमि, पृथिवी ।

भूतसार ( सं० पु० ) भूतः गतः सारो यस्य । १ इयोपाह

प्रभेद । २ खदिर सार ।

भूतसिद्ध ( सं० पु० ) ताविकोंके अनुसार यह त्रिने

भूत प्रेत आदिको सिद्ध और वज्रमें कर लिया हो ।

भूतमूल्म ( सं० क्ली० ) भूतादितन्मात्र, पञ्चतन्मात्र ।

भूतस्थ ( सं० त्रि० ) भूतावस्थिष्व विष्णु ।

भूतस्थान ( सं० क्ली० ) जीवोंका अवस्थान स्थान ।

भूतहत्या ( सं० स्त्री० ) जीवहत्या ।

भूतहन् ( सं० पु० ) भूर्भृशृश, भोजपतका एत ।

भूतहन्त्री ( सं० स्त्री० ) भूतानि हन्तीति हन्-त्वा, टोप् ।

१ पश्या कर्कोटकी, बांक ककोटो । २ मोल दूयां, मोमी

द्वय ।

भूतहर ( सं० पु० ) भूतानि हरतीति ह-जच् । सुगुण ।

भूतहारी ( सं० क्ली० ) भूतानि हरतीति ह-जिनि । १

द्वेषदाह, द्वेषहार । २ रत्नकरवीर, लाल कनेर ।

भूतहास ( सं० पु० ) सन्निपात उवर-विशेष । इसमें

इन्द्रियां अपना काम नहीं करतीं, योगी धर्म बचना है

और उसे बहुत हँसी जाती है ।

भूता ( सं० स्त्री० ) भन-टाप् । कृष्णा मनुर्दनी ।

भूतानि (सं० पु०) १ श्रुतिभेद । २ काश्यप श्रुति । ३ भूतसमूहका अंश ।

भूताङ्क ग (सं० पु०) भूतानामश्रुत इव निवारकत्वात् स्वनामध्यात वृक्षविशेष, गायत्रुवान । गुण—तीव्रगन्ध, उदकद, उष्ण, कटु, भूत और प्रह आदि-द्वेषभाजक तथा कफघात-निवृत्तन । (रामनि०)

भूताङ्क शरस (सं० पु०) रसीक्य विशेष । प्रस्तुत प्रणाली पारा, लौह, ताम्र, मुक्ता, हरिताल, गन्धक, मनःशिला, नृतिया, रसाञ्जन, समुद्रफेन, सौरोराञ्जन, और पञ्च-लवण प्रत्येक एक भाग, हीरक अष्टमांश, भृङ्गाज, चिता और धूरका दूध प्रत्येकको ६ बार भावना दे कर बन्द कर रखे । पीछे गजपुटमें पाक करे । भलीभांति पाक हो जाने पर दो रस्तीकी गोली बनाये । इसका अनुपान अदरकका रस है । इसका सेवन करनेसे भूतोन्माद जल्द जाता रहता है । इस औषध सेवनकारीके लिये पिप्पली और दगमूलका कपाय पान, स्वेद, तिललीको, तीक्ष्ण और रुध्रो वस्तु पाना विशेष निषिद्ध है । दूध, भैंसका घी और गुह भोजन तथा सरसोंका तेल लगा कर स्नान करना विशेष उपकारक बतलाया गया है ।

(रसेन्द्रसार० उन्मादोपाधि०)

अन्यविध—शुद्ध पारा १ भाग, गन्धक २ भाग, ताम्र ३ भाग, मिर्च १० भाग, अदरकको भस्म ४ भाग, विष १ भाग, सफेद सरसों १ भाग इन सब द्रव्योंको एकत्र अम्लरस द्वारा भावना दे कर गोली बनाये । अनुपान रोगीके बलाबलके अनुसार स्थिर करना होगा । इसके सेवनसे कासरोग प्रशमित होता है । (रगकी०)

भूतात्मक (सं० पु०) भूत सम्बन्धीय भूतमय भूतजात ।

भूतात्मा (सं० पु०) भूतानामात्मा । १ देह । २ परमे-श्वर । ३ शिव । ४ युद्ध । ५ विष्णु । ६ जीवात्मा ।

भूतादि (सं० पु०) भूतानामादिः । १ परमेश्वर । २ सांख्यमतसिद्ध बहद्धारतत्त्व । बहद्धारतत्त्वसे ही पञ्चभूत हुआ है, इसीसे यह तत्त्व भूतसमूहका आदि है ।

भूताधिपति (सं० पु०) भूतनाथ, गिव ।

भूतान्तक (सं० पु०) भूतानामान्तकः पशुीनम् । १ यम । २ यद ।

भूतावन (सं० पु०) भूतानामवनमाधयः पशुीनम् । नारायण ।

भूतारि (सं० क्ली०) भूतानामरिः तत्रियारकत्वात् ह्रीवत्त्वं । हियु, ह्रीं ग ।

भूतार्च (सं० क्ली०) भूतेन कृतः शतम् । भूताविष्ट, भूतप्रस्त ।

भूतार्ण (सं० पु०) भूतः सत्त्वभूतः अर्थो यस्य । पथार्ण ।

भूताली (सं० स्त्री०) भूतानामालीव । १ भूपाटली । २ सुपली ।

भूतवान (सं० पु०) १ विमोतक वृक्ष, बहद्रेका पेड़ । २ ग्राफोट, सहारेका पेड़ । ३ शरीर, देह । ४ विष्णु । ५ संसार, दुनियां ।

भूताविष्ट (सं० लि०) भूतेन आविष्टः । १ पिशाचप्रस्त, जिसे भूत या पिशाच लगा हो । भूत लगने पर निम्न लिखित चक्रधारण करनेसे शुभ होता है । भोजनपत्र पर इस चक्रको लिख कर कवच धारणकी प्रणालीके अनुसार धारण करना होता है ।

भूतान्तक चक्र ।

१	८	१८	२३
२०	२१	३	६
७	२	२४	१०
२२	१६	५	४
५०	५०	५०	५०

ज्योतिस्तत्त्वमें इसका विशेष विवरण लिखा है । २ भूताकान्त, जो भूतों आदिके प्रभावसे रोगी हुआ हो । (भूतायेन (सं० पु०) भूतानामायेनः । भूतसञ्चार, भूत लगना ।

भूति (सं० स्त्री०) भवत्यनयेति भू (जित्वा क्ती) गंगायाम् । पा ३।३।१५४ इति क्विप् । १ महादेवकी अणिमा आदि आठ प्रकारकी सिद्धियां । २ राममुपूत भस्म, यह राक्ष जिते जियजी लगते हैं । ३ भस्म, रास । ४ सम्पत्ति, वैभव, ऐश्वर्य । ५ हस्तिनद्वार, हाथोंका

मन्त्रक रंग कर उसका अद्भुत करना । ३ जाति ।  
 ७ मितृमज्जमेद । ८ मरुमी । ९ शूदिनामही औषधि ।  
 १० रोहिद्रवण, रुमा नाम । ११ भूण । १२ उत्पत्ति ।  
 १३ मना । १४ एक मांस । १५ विष्णु ।

भूतिकः ( स० ह्री० ) भू-तिन्, संज्ञाया कञ् । १ भूतिम्ब,  
 चिरायता ( २ कटराज, कटराल । ३ यमानो, भज्जवायन ।  
 ४ रोहिय वृण, रुमा । ५ चन्द्र ।

भूतिकर्म ( स० ह्री० ) गार्हस्थ्य संस्कार ।  
 भूतिकाम ( स० पु० ) भूतिं कामयते इति कर्म ( कर्मधाया  
 या शश्वर इत्यण् ) १ राजमन्त्री । २ वृहस्पति ( त्रि० )  
 ३ जिसे चेष्वर्षको कामना हो ।

भूतिकील ( स० पु० ) भूतिः जस्प्यादिसम्पत्तेः कील इय  
 जन्तुश्चयात् । भूतात्, गड्ढा ।

भूतिहृत् ( स० त्रि० ) भूति करोति हृ-क्विप् । शिव ।  
 भूतिहृत् ( स० ह्री० ) गार्हस्थ्य संस्कार ।

भूतिगर्भ ( स० पु० ) भूतिः कवित्वा-सम्पत्तिगर्भे अन्तर्धानस्य  
 या भूति जन्तु उपाधि नाम्नोऽन्तर्भावस्य । भवभूति कवि ।  
 भूतिगोपी ( स० स्त्री० ) कुमारानुचर मानुभेद, कार्तिकेय  
 को एक मातृकाका नाम ।

भूतिद्र ( स० पु० ) भूति ददातीति द्रा क । शिव, महा-  
 देव ।

भूतिदा ( स० स्त्री० ) भूतिदा टाप् । गङ्गा ।  
 ( काशीयण २६।१३० )

भूतिनि ( हि० स्त्री० ) भूतिनी देवा ।

भूतिनिधान ( स० ह्री० ) निधोऽनोऽस्मिन्निति नि-धा-  
 अधि करणे ल्युट्, भूत्या निधानं । धनिष्ठा नक्षत्र ।

भूतिना ( स्त्री० षि० ) १ भूतयोगोमें प्राप्त स्त्री । २ प्रकियो,  
 आकियो भाद्रि ।

भूतिनम् ( स० त्रि० ) भूतिरस्त्यस्य मनुप् । ऐश्वर्य-  
 युक्त ।

भूतिया—सतारा त्रिलयासो गिन्धरो पीरु की जातिविशेष  
 ये लोग महाशक्ति बहुत कुछ मित्रते जुलुते हैं, पर  
 इनकी देवभूया अति कर्दवी है। गलेमें कौड़ुकी माया  
 पट्टन कर ये गर गर और मांगते हैं। मिसा ही इनकी  
 एकमात्र उपासीविका है। यहूतेरे भूत प्रतिषेध मन्त्र  
 द्वारा जोषाकी तरह भूत घड़ाने और उतारते हैं। इमी

कार्योंके तथा कर्द्वे परिच्छेदके कारण इनका नाम भूतिया  
 पया है। जन्ममे ले कर मृत्यु तक सभी गन्तकार तथा  
 देवदेवीकी पूजा और उपासनादि ये लोग कृष्णविषयोके  
 तरह करते हैं ।

भूतियुक्त ( स० पु० ) पुराणानुसार कूर्मावक्रके एक  
 देवता नाम । २ इस देवता गिरातो ।

भूतिराज—१ एक जैनपरिष्ठान, सौरकुके पुत्र और इन्द्र-  
 राजके पिता । २ हेन्दुराजके पिता ।

भूतिलय ( स० पु० ) तीर्थभेद । ( भारत बना० १२६ अ० )  
 भूतियर्जन—सप्तदिवर्षागत एक राजा ।

भूतियर्ग ( स० पु० ) १ प्राग्ज्योतिषपुरके अधिपति । २  
 राक्षसभेद ।

भूतियाहन ( स० त्रि० ) नियत एक नाम ।  
 भूतिसित ( स० ह्री० ) रोष्यपातु, चाँदी ।

भूतिस्टम् ( स० त्रि० ) १ चेष्वर्षकारी । २ चेष्वर्षवाच ।  
 भूती ( हि० पु० ) भूतपूजक ।

भूतीक ( स० ह्री० ) भूतिक, वृषोदरादित्याय सायुः । १  
 भूतिम्ब, चिरायता । २ यमानो, भज्जवायन । ३ भूण,  
 रुमा नामही घास । ४ कसृण । ५ कपूर, कपूर ।

भूतवानो ( हि० स्त्री० ) भस्म, रात ।  
 भूतोऽवरतीर्थ ( स० ह्री० ) तीर्थभेद ।

भूतण ( स० ह्री० ) भुषण्णम् । गंधमूल । पर्याय—  
 रोहिय, गामपमिय, रामकपूर, ससृण, जार, इगामक,  
 घ्यामक, पीर, देवजायक । २ भूण्ण, रोहिसमता ।

पर्याय—रोहिय, भूति, भूतिक, कटुधक, मान्णमूल,  
 समालम्बी, छत्र, अनिच्छक, गुह्योज, सुगंध, शुष्णान्,  
 पुंस्त्वयिप्रह, यधिर, अतिगन्ध, अङ्गुरीह, करेन्दुक । गुण—  
 कटु, तिक्त, घातसमूह, भूतप्रहाथन और दाघन विषदोष-  
 नाशक ।

भूतज्य ( स० त्रि० ) भूतयत्र उपदेशनामोके त्रिये वाग ।  
 भूतेन्द्रियज्ञपो ( स० त्रि० ) १ जिसमें पञ्चमूल और इन्द्रियों  
 की जीता हो । २ योगी, संन्यासी ।

भूतेज ( स० पु० ) भूतानां प्राणदायानां प्रतयायानां वाच-  
 प्रदायाश्च इतः । १ शिव । २ परमेश्वर । ३ कल्प ।

भूतेश्वर ( स० पु० ) १ शिव । २ गोर्धभेद । ३ सप्तद्वि-  
 वर्षागत एक राजा । ४ हिमाचल पर्वतस्थित शिवार्चक  
 भेद ।

भूतेष्टका (सं० स्त्री०) इष्टकामेद ।  
 भूतेष्टा (सं० स्त्री०) १ कृष्ण तुलसी । २ आग्निज कृष्ण चतुर्दशी । ३ उपदेशताकी अभिलषित कृष्णचतुर्दशी ।  
 भूतेन्द (सं० स्त्री०) भोदनविशेष ।  
 भूतेन्माद (सं० पु०) भूतहृतः उन्मादः । पिशाच-  
 हृत उन्माद, वह उन्माद रोग जो भूतों या पिशाचोंके  
 आक्रमणके कारण हो ।  
 भूतेपदेश (सं० पु०) प्रहृत उपदेश, यथार्थ विषयमें  
 शिक्षादान ।  
 भूतेपमा (सं० स्त्री०) जीवके साथ उपमा, प्रहृत  
 उपमा ।  
 भूतम (सं० स्त्री०) भुवि उत्तमम् । सुवर्ण, सोना ।  
 भूतराश्रया (सं० स्त्री०) भूयिककर्णों, मूसाकानी ।  
 भूत्रोमवा (सं० स्त्री०) भूत्र्यां भूचिले भवतीति भू-अच्  
 टाप् । आश्रुपर्णी ।  
 भूत्र्यां (सं० स्त्री०) भूयिककर्णों, मूसाकानी ।  
 भूदार (सं० पु०) भुव' दारयतीति दृ ( कर्मण्यण । पा  
 ३।२।१ ) इत्वण् । शूकर, सूअर ।  
 भूदारक (सं० पु०) शूद्र, धीर ।  
 भूदेव (सं० पु०) भुवो भुवि वा देवः । ब्राह्मण । स्व-  
 धर्मनिरत धेनु ब्राह्मण हो इस मर्त्यधाममें देवताके  
 समान पूजित होते हैं । इसी कारण उन्हें भूदेव  
 कहते हैं ।  
 भूदेवदेव—कत्यूर्ध्वर्णाय एक राजा । ये कुमायुज जिलेके  
 ध्यात्रेश्वर मन्दिरके गर्चं चर्चके लिये प्राप्त दान कर  
 गये हैं ।  
 भूदेवपण्डित—नोलकण्टहृत कागिन्यातिलक-टीकाके रच-  
 यिता ।  
 भूदेवमुखोपाध्याय—बङ्गालके एक असाधारण प्रतिभा-  
 शाली ब्राह्मणसंस्थान और प्रसिद्ध ग्रन्थकार । इनके  
 पिताके नाम था विभक्त्याय तर्कभूषण । इनका निवास-  
 स्थान तो पानातुलकृष्ण-नगरमें था, किन्तु ये सदा कल-  
 कत्तेमें रहते थे । यहाँ पर १७४७ शक ( १८२५ ई० )की  
 २री फाल्गुनकी इनका जन्म हुआ ।  
 ये जब आठ वर्षके थे तभी संस्कृत कालेजमें भर्त्ता  
 हुए और तीन ही वर्षमें मुग्धबोध नामक व्याकरण पढ़

लिये । बाद इन्हें धर्मरेजी पढ़नेकी इच्छा हुई । दो  
 वर्ष इधर उधर पढ़ कर इन्होंने छह वर्ष हिन्दूकालेजमें  
 पढ़ा जहाँ इन्हें सर्वोच्च श्रेणीकी छात्रवृत्ति मिली ।

ज्ञानाविभागके कर्तृपक्षगण भूदेवकी विद्या और  
 बुद्धिमत्ताका परिचय पा कर बड़े ही सन्तुष्ट हुए । उन्हों-  
 ने उस समय किसी उच्च पदप्राप्तिकी इच्छा प्रकट न की,  
 वरन् अपने बन्धुओंके साथ मिल कर शैयाखाला,  
 चन्दननगर, श्रीपुर आदि कई एक स्थानोंमें स्कूलकी  
 स्थापना कर आप ही शिक्षकका काम करने लगे ।  
 किन्तु अर्थाभावासे यह काम बहुत दिनों तक न  
 चल सका । अन्तमें ये ५०) ४० मासिक पर मद्रास  
 कालेजके २य अङ्करेजी शिक्षक नियुक्त हुए । इनके  
 कामसे सन्तुष्ट हो कर शिक्षाविभागके कर्त्तानि  
 इन्हें १५०) ४० मासिक पर हवड़ा गवर्मेण्ट स्कूलका  
 प्रधान शिक्षक बनाया । उसी समय हवड़ाके  
 मजिस्ट्रेट और उक्त स्कूलके सभापदक हजसन प्राट  
 साहयके साथ भूदेवका परिचय हुआ । उक्त साहय  
 जब बङ्गालके स्कूल-इन्स्पेक्टर हुए, तब ये अक्सर इन्हों-  
 की सलाह लिया करते थे । भूदेवका बङ्गला भाषा पर  
 बड़ा ही अनुराग था । प्राट साहयके कथनानुसार  
 इन्होंने "शिक्षाविषयक" नामक एक पुस्तकका प्रचार  
 किया । उसी समय इनका ऐतिहासिक उपन्यास  
 प्रकाशित हुआ ।

हंगलौमें नामेल विद्यालयके स्थापित होने पर भूदेव  
 ३००) ४० घेतन पर उसके सुपरिण्टेंडेंट (तत्त्वायभावाक)  
 नियुक्त हुए । उनकी ही चेष्टासे उक्त विद्यालयकी मूब  
 उन्नति हुई । भूदेयने बालकोंकी शिक्षाकी सुविधाके लिये  
 प्राकृतिक विद्यान १ला और २रा फ्लेट, पुष्पवृत्तसार,  
 इङ्ग्लैण्डका इतिहास, रोमका इतिहास और यूनिटर्सकी  
 ज्यामितिका ३रा भाग प्रकाशित किया ।

१८६२ ई०के जून मासमें जब मंडलिकट साहय  
 प्रतिनिधि स्कूल-इन्स्पेक्टर हुए, सब भूदेव भी ४००) ४०  
 मासिक पर सहकारी परिदशक नियुक्त किये हुए ।  
 १८६३ ई०में ये स्कूल-इन्स्पेक्टरके पदिगत इन्स्पेक्टर बने ।  
 ये हिन्दुओंकी प्राचीन शिक्षाप्रणालीके पक्षपाती थे ।  
 १८६४ ई०के वैशाख महौमेंसे इन्होंने छवने कनिष्ठ

पुत्रके नामसे दो आने मूल्यका शिक्षा-दर्पण नामक एक मासिक पत्र निकाला। किन्तु दुःखका विषय था, कि १८६६ ई०में वह पुत्र इस लोकसे चल बसा।

ये गवर्मेण्ट द्वारा उत्तर-पश्चिम प्रदेश तथा पञ्जाबकी शिक्षाप्रणालीके परिदर्शनार्थ भेजे गए। इन सब प्रदेशोंकी शिक्षाप्रणाली देख कर अङ्गरेजी भाषामें इन्होंने जो सुबुद्दत मन्तव्य प्रकट किया, उससे उनके भूयोदर्शन और दोषगुणविचारकी असाधारण क्षमता प्रकाशित हुई और धीरे धीरे ये शिक्षाविभागकी प्रथम श्रेणी पर पहुँच गए। १८६६ ई०को ये 'नार्थ सेन्ट्रल' नामक नव-प्रतिष्ठित विभागके डिभिजनल इन्स्पेक्टर (विभागीय परिदर्शक)के पद पर नियुक्त हुए, कुछ दिन बाद प्रधान परिदर्शक बने।

१८७७ ई०में इन्होंने महाराणी भारतेश्वरीसे G. I. E. की उपाधि प्राप्त की और १८८२ ई०में ये छोटे लाटके वृद्धीय व्यवस्थापक सभाके एक सदस्य बने। १८८३ ई०के कुछ पहले इनका 'पुष्पाञ्जलि' और फिर कुछ दिन बाद 'पारिवारिक' प्रबन्ध प्रकाशित हुआ। पारिवारिक प्रबन्ध ही उनके जातीय जीवनकी विशाल कीर्ति है। अङ्गरेजीमें उच्च शिक्षित और अङ्गरेजरजापुरुषोंके साथ विशेष संलित रहने पर भी ब्राह्मण सन्तान भूदेवने अपनी जातीयता नहीं छोड़ी। जिस समय उच्च शिक्षित वृद्धीय समाज अङ्गरेजी शिक्षाके प्रभावसे अङ्गरेजी रीति नीति और आदर्शके पक्षपाती था, उस समय भी स्वजातिप्रिय तथा स्वधर्मानुरागी भूदेव ब्राह्मणत्व-रक्षामें अत्यन्त यत्नवान् थे। अपने 'आचारप्रबन्ध'में वे अपना मनोभाव इस प्रकार प्रकाशित कर गये हैं—

"जातीयता साधनके लिए हिन्दू समाजको आत्म-प्रकृतिके अनुसार चलना चाहिए। भारतवर्षका एकता-साधन अङ्गरेजकी अधीनतामें ही सम्भव है,—अतएव अङ्गरेजोंके प्रति सम्यक् वस्तु-बुद्धि तथा राजभक्ति दिखलाना चाहिये। किन्तु प्रत्येक विषयमें अङ्गरेजोंका अनुकरण परित्यज्य है। अङ्गरेजोंकी प्रकृतिके साथ हिंदूकी प्रकृति नहीं मिलती। अंग्रेज कार्य-कुशल, अहङ्कारी तथा लोभी, किन्तु हिंदू ध्रमशील,

सुबोध, नम्रस्वभाव और संतुष्टचित्तके होते हैं। अङ्गरेज आत्मसर्वस्व और हिंदू परार्थपर हैं। अङ्गरेजोंसे हिंदूको सिर्फ कार्यकुशलता सीखनी चाहिए और कुछ भी सोपनेका प्रयोजन नहीं।" भूदेव कट्टर हिंदू, यथार्थ स्वदेश प्रेमिक जन्मभूमिके उन्नतिसाधनमें बड़े ही चिन्ताशील थे। इन्होंने हिंदूजातिके सत्त्वगुणसम्पन्न करनेके लिए "आचारप्रबन्ध" प्रकाशित किया। इस प्रबन्धको उपक्रमणिकामें उन्होंने लिखा है—"सदाचार ही मूल धर्म है, धर्मअर्थसे शास्त्रीयविधिका प्रतिपालन करना चाहिए। यहां विधिप्रतिपालनको प्रतिबन्धक पांच वस्तु देयी जाती हैं,—(१) विधि-विषयक अज्ञता, (२) विधिके प्रति श्रद्धाहीनता। (३) विजातीय अनुकरणका आतिशय्य, (४) स्वैच्छाचारिताका प्रायस्य (५) स्वामाविक आलस्य।"

भूदेवको इस बातका बड़ा ही दुःख था, कि उपयुक्त संस्कृत शिक्षाके अभावसे आज ब्राह्मण परिवर्तित इतने घृणित हो गए हैं, इसीलिए हिन्दूसाम्राज्य भी उत्पन्न हो पड़ा है। यही कारण है, कि ब्राह्मण प्रवर भूदेवने जातीय चिकित्साशास्त्र, धर्मशास्त्र प्रभृतिकी भले प्रकारसे अध्यापनाके लिए अपने पिताके नाम पर "विश्वनाथ चतुष्पाठो" की स्थापना और उसके खर्चके लिए एक लाख साठ हजार रुपये दान कर गये। अन्तमें इस चरित्रवाक्य उद्गार महापुरुषने १३०१ सालमें मानवलीला संवरण की।

भूदेवशुक्ल—आत्मतत्त्वप्रदोष और उसको टोका, धर्मविजय नाटक और रसविलास नामक ग्रन्थके प्रणेता।

भूधन (सं० पु०) भुयो धनं यस्य। राजा।  
भूधर (सं० पु०) धरतीति धृ-पचाच्च, भुवां घरः। १ पर्वत, पहाड़। २ यन्त्रमेद, भूधरयन्त्र। मृगामें पारा रख कर उसे बालूसे ढक दे, पीछे उसके चारों ओर ओपले सजा कर उसे आगमें पकावे। इसी यन्त्रको भूधरयन्त्र कहते हैं। ३ शोपनाग। ४ विष्णु। ५ राजा। ६ चाराह अवतार।

भूधर—१ कामिपत्यनिवासी एक ज्योतिर्विदु, भरद्वाज-गोत्रोय देवदत्तके पुत्र। आप सूर्यसिद्धान्तविचरण और नरपतिजयचर्चा-मञ्जरी नामक दो ग्रन्थ लिख गये हैं। २ शङ्कराचार्यकृत साधन पञ्चक-टीकाके रचयिता। ३ सहाद्रिवर्णित दो राजा।

भूधरता ( स० खी० ) भूधरस्य भागः तल-टापू । भूधरका भाव या धर्म, भूधरजगत्क ।

भूधरदास—अगरेके रहनेवाले एक खंडेलवाल जैन कवि । इन्होंने जैनग्रंथ और १६८६में पार्श्वपुराण नामक एक जैनग्रन्थ लिखा जिसका जैनधर्ममें पुराणोंको भाति पूजा होती है ।

भूधरदुर्ग—बम्बईप्रदेशके कोल्हापुर जिलान्तर्गत एक दुर्ग । १८४४ ई०के विद्रोहके बाद अंगरेजोंने इसे तहस नहस कर डाला था ।

भूधरेश्वर ( स० पु० ) भूधराणामोश्वरः । हिमालय, पर्वतोंका राजा ।

भूधाती ( स० खी० ) भूलम्ना धाती । भूम्यामलको, भूई आंवल ।

भूध ( स० पु० ) भुवं धरतीति धृ ( मूलविभुजादित्वात् । पा ३।२।५ ) इत्यस्य चार्त्तिकोक्त्या कः । पर्वत, पहाड़ ।

भूनना ( हि० कि० ) १ अग्निमें रख कर पकाना, भाग पर रण कर पकाना । २ गरम धो वा तेल आदिमें डाल कर कुछ देर तक चलाना जिससे उसमें सौंघापन आ जाय । ३ बहुत अधिक कष्ट देना, तकलीफ पहुंचाना । ४ गरम बालमें डाल कर पकाना ।

भूना ( स० खी० ) रोमक-सिद्धान्तवर्णित चन्द्रविभागान्तर्गत देशभेद ।

भूनाग ( स० पु० ) भुवि नाग इय । उपरसविशेष । पर्याय—क्षितिनाग, भूजन्तु, रक्तजंतुक, क्षितिज, क्षितिजंतु और रक्तगुण्डक । गुण—यज्ञमारक, नानाविमानकारक और रसजारण ।

भूमिग्र ( स० पु० ) क्षपविशेष, चिरायता । पर्याय—अनार्यतिक, कीरात, रामसेनक, किराततिक, हंस, कांततिक, किरातक, कटुतिक । गुण—यातिक, तिक, कफ और पित्तज्वरनाशक, पथ, मणसंरोपक, कुष्ठ, कण्टूति तथा शोकनाशक ।

भूमिवादिक्पाय ( स० पु० ) ज्वररोगमें कपायभेद । इसे भूमिवादिपाचन भी कहते हैं । प्रस्तुत प्रणाली—चिरायता, शुद्धी, मोघा, नागर प्रत्येक द्रव्य दो तोला इन्हें आध सेर जलमें सिद्ध कर आध पाय रहते उतार ले । इसका सेवन करनेसे ज्वर बहुत जल्द दूर हो जाता है ।

( वागट चि० ३ अध्याय )

भूमिवादिक्पाय ( स० पु० ) कपायार्थपयभेद । प्रस्तुत प्रणाली—चिरायता, अतोस, लोघ, मोघा, इन्द्रजी, मुकुची, अतिवला, धनिया और धेलकी छाल इग सब द्रव्योंका एक साथ काढ़ा बना कर मधुके साथ सेवन करनेसे मल-भेद, श्वास, कास, रक्तपित्त और ज्वर दूर होता है ।

( भाय० चरापिका० )

भूमिवाद्यष्टादश ( स० पु० ) कपायार्थविशेष । प्रस्तुत प्रणाली—चिरायता, देवदास, दगमूल, कचूर, मोघा, फटकी, इन्द्रजी, धनियेका ब्याबल और गजपिप्लो कुल मिला कर २ तोला, जल ३२ तोला, शोष ८ तोला । इस कपायका सेवन करनेसे तंद्रा, प्रलाप, कास, अग्नि, दाह, मोह और श्वासादि उपद्रवोंके साथ सब प्रकारका ज्वर नष्ट होता है । ( औपन्यस्ता० चरापि० )

मनोप ( स० पु० ) भूमिलग्नो नोपः शाकपार्थियादिवत् समासः । भूमिकदम्ब ।

भूनेता ( सं० पु० ) भूयों नेता नायकः । राजा ।

भूप ( सं० पु० ) भुवं पाति रक्षतीति ( धातोऽनुत्तरात् ) कः पा ३।२।३ ) इति क । राजा ।

भूपञ्जर ( सं० पु० ) भुवः पञ्जरः । पृथिवी-देहका प्रम-विभाग । पृथिवीपृष्ठका जो भाग हम लोकोके परीक्षा-धोन है, वही भूपञ्जर कहलाता है । बहुतोंने देखा है, कि कुंआ खोदनेके समय विभिन्न प्रकारको मिट्टी निकलती है । एक एक प्रकारको मिट्टी २ या ४ हाथ अथवा इससे भी अधिक परिमाणमें मिलती है । यह मिट्टी एक ही समयमें गडित नहीं हुई है । जलाशय अथवा नदीके धीरे धीरे भर जानेसे विभिन्न प्रकारका मृत्तिकास्तर बन जाता है ।

येसा मालूम होता है, कि इस परिदृश्यमान घटुन्यराके किसी भी अद्भुतप्रत्यक्षका परिवर्तन नहीं होता । किन्तु पृथिवी-पृष्ठ पर बहुत दिन बाद भूपञ्जरका रूपान्तर हो जाता है । पृथिवीको आभ्यन्तरिक गतिके प्रभावसे कभी धीरे धीरे अथवा कभी बहुत जल्द भूपञ्जरका परिवर्तन हो जाया करता है । जो स्थान एक दिन महासमुद्रको तरङ्गके अन्तर्गत था, वही आज अन्नभेरी शैलश्रेणीमें विराजमान है और जिस उन्मूढ पर्वतशृङ्ग पर कादम्बिनीका विध्रामनिपेतन था, वहाँ आज समुद्रका



कल्लोल-कोलाहल वारम्बार ध्वनित होता है। भूतत्त्व-विदोंने पृथिवीके जीवनकी पर्यालोचना कर इसे चार युगोंमें विभक्त किया है,—१ला आर्कियानयुग (Archean Era), इसके पूर्ववर्ती दो विभागका नाम Laurentian Period और Huronian Period। २रा पेलिओजोइक युग (Paleozoic Era) इस युगके Silurian, Devonian और carboniferous विभागमें यथाक्रम कशेरुकास्थिविहीन जीव, मत्स्य, वृक्षलता तथा शम्बुकादिका उद्भव होता है। ३रा मेसोजोइक युग (Mesozoic Era)के Triassic, Jurassic and Cretaceous विभागमें विराटदेह सरोरूपका प्राधान्य देखा जाता है। इस समय थासुकि-सदृश ट्रिसिसोरस और इकथिसोरस प्रभृति प्रकाण्डकाय व्रजगर भूपृष्ठ पर विचरण करते थे, किन्तु अभी वे एकवारगो निर्वृश हो गये हैं। ४था सिनोजोइक (Cenozoic Era) युगके Tertiary और Quaternary विभागमें स्थूल चर्म स्तन्यापायी जीव तथा मनुष्य जातिकी उत्पत्ति हुई है।

उक्त चार युगोंमें पृथिवीके कितने वर्ष बीत चुके हैं, उसका निरूपण करना मनुष्यके लिये दुःसाध्य है। जो कुछ हो, इस अपरिमित कालमें पृथिवीपृष्ठका कितना परिवर्तन हुआ है, वही निरूपण करना भूविद्याका उद्देश्य है। पृथिवीकी प्राचीन अवस्थामें जो सब जीव या उद्भिद् विद्यमान थे, अभी उनका आस्तत्वमात्र भी नहीं है—केवल किसी किसी पर्वतस्तरमें उनका प्रस्तर-भूत कङ्काल उनके अस्तीत्वका परिचय देता है। पार्वत्य-अञ्चलमें प्रस्तरगालायलम्बो विभिन्न स्तरावलीकी अवस्थाकी पर्यालोचना कर भूतत्त्वज्ञोंने अनेक विस्मयकर तत्त्वोंका निरूपण किया है। पहले ही कहा जा चुका है, कि कुंआ (खोदनेके समय विभिन्न प्रकारकी मट्टी स्तरस्तरमें सज्जित है।

कोई पल्लमय मृत्तिकापूर्ण, कोई सुदृढ़ कृष्णवर्ण मृत्तिकामय, कोई बालुकामय और कोई जङ्गल शम्बुकादिके कङ्कालसे पूर्ण स्तर है। कई वर्ष पहले फलकत्तेके किलेके मैदानमें एक अत्यन्त गभीर कूप खोदा गया था। उसमें देखा गया, कि १०० फीट नीचे एक बहुत बड़े वृक्षके फाण्ड अक्षतभावमें विद्यमान है। खिदर-

पुरका "डग" खोदनेके समय बहुत नीचेसे नाना जातीय प्राणियोंका कङ्काल और वृक्षका ध्वंसावशेष निकला था। इससे स्पष्टतया प्रमाणित होता है, कि वह भूभाग पृथिवीकी आभ्यन्तरिक शक्तिके प्रभावसे भूगर्भमें जा छिपा है। वर्षाकालमें जब नदीका पङ्क मिला हुआ पानी निकलता है, तब जहाँ तहाँ पङ्क पड़ जाता है—वह भी एक प्रकारका स्तर है। क्रमशः अन्यान्य पदार्थोंके साथ मिल कर वह स्तर मोटा हो एक नवीन मृत्तिकामें परिणत होता है।

मृत्तिका ही कालक्रमसे पृथिवीके आभ्यन्तरिक शक्ति तथा रासायनिक संयोगसे शैलस्तरमें परिणत होती है। जिस समय किसी स्थानकी मृत्तिका भूमण्डलकी भूक्षेपक तथा अवक्षेपक शक्तिके उन्नत या भूगर्भमें प्रोथित हुई थी, उसी समय वहाँके वासी उद्भिज्ज और जीवजन्तुगण अपनी अधिष्ठानभूत पृथिवीके साथ भूगर्भमें विलीन हो गये थे, किन्तु उनकी अस्थि प्रस्तरके साथ स्तरीभूत हो कर विद्यमान है।

पर्वतके उच्च प्रदेशमें बहुत-से शम्बुकादिके कङ्काल नजर आते हैं। इससे साफ साफ मालूम होता है, कि पर्वतगातस्थ उक्त स्थल एक समय जलचर जीवोंका वासस्थान था और पीछे भूगर्भकी शक्तिके ऊपर उठ गया है।

पर्वत पर बहुत दिन पहले प्रोथित जीवदेह और उद्भिजादिकी प्रस्तरभूत अस्थि मिलनेके कारण भूविद्याकी यथेष्ट उन्नति हुई है। इन सब कङ्कालपूर्ण स्तरमालाओंका पर्यवेक्षण करनेसे कौन देश कितना प्राचीन और कौन कितना समीचीन है, वह अनायास निर्णीत होता है। इन सब प्रस्तरभूत कङ्कालकी भूतत्त्व (Geology) में Fossil remains कहते हैं। इन्हीं सब प्रस्तरास्थिकी परीक्षा द्वारा पृथिवीका अतीत इतिहास मनुष्योंका अधिगम्य हुआ है। जब भूपञ्जरके मध्य एक प्रकारके स्तरीभूत शैलखण्ड पर एक जातिका कङ्काल देखते हैं, तब ऐसा अनुमान किया जाता है, कि उक्त सभी प्रस्तर एक समय उत्पन्न हुआ है और एक समय एक जातीय जीव तथा उद्भिज्ज उक्त शैलस्तर पर विद्यमान थे। यह भूपञ्जर-मृत्तिका जब शैलस्तरमें परिणत हुई थी, तब उस परके रहनेवाले

जीवगण और उद्भिजादि भी साथ ही साथ मस्तरी-भूत हो गए हैं।

पाश्चात्य भूतत्वज्ञाने पृथिवीके विभिन्न देशोंकी शैलस्तरावलीकी पर्यालोचना कर भूपञ्जरका जो गठन-काल निरूपण किया है, वही पर्वत कहलाता है।

अपेक्षाकृत प्राचीनतर स्तरमें अतिकाय जीव तथा उद्भिजाका भग्नावशेष देखनेमें आता है। उसमें पौराणिक सत्ययुगका चित्र वैज्ञानिक मत्यताको बहुत कुछ प्रमाणित करता है। हम लोग उच्च पर्वतके शृङ्गसे सुगमीर खनिमध्यस्थ १ मील तक स्थानका पर्यवेक्षण कर सकते हैं। इसी परीक्षाधीन स्तरसमष्टिकी भूपञ्जर कहते हैं। विस्तृत विवरण पर्वत, प्रस्तर, पृथिवी और समुद्र शब्द देखो।

भूपति (सं० पु०) भुवः पतिः। १ राजा, नृप। राजाको न्यायपरायण हो कर अपनी सन्तानकी तरह प्रजापालन करना चाहिये। राजन और राजवर्म शब्द देखो। २ बटुक भैरव। ३ हनुमतके मतसे एक राग जो मेघरागका पुत्र-माना जाता है।

भूपति—गणितामृतके प्रणेता।

भूपति—एक भाषा कवि। ये अमेठीके महाराज थे। इनका जन्म सं० १६०३ में हुआ था। इनका असली नाम था गुरुदत्तसिंह बन्धल। इनके यहां कवियोंका श्रव मान था। कवीन्द्र आदि कवि इनकी ही सभामें रहने थे।

भूपतिपाल—पालवंशोय एक राजा।

भूपतिराय—बङ्गालके नवाब मुश्तिदकुली खाँका सहकारी। यह इलाहाबादसे मुश्तिदकुलीके साथ आया था। इसकी मृत्युके बाद पुत्र गुलाबराय राजकार्यसे बिलकुल अनभिज्ञ रहनेके कारण दर्पनारायणने कार्यभार ग्रहण किया।

भूपद (सं० पु०) भुवि पदानि मूलान्यस्य। शूक्ष्म, पेड़।

भूपदी (सं० स्त्री०) भूपद गौरादित्वात् ङीप्। मङ्गिका, चमेली।

भूपनारायण—एक कवि। इनका घर कानपुर जिलांतर्गत काकूपुर गांवमें था। ये जातिके भाट थे। इनका जन्म सं० १८५६ ई०में हुआ था। इन्होंने शिवराजपुरके चंदेले क्षत्रिय राजाओंकी वंशावली बनाई।

भूपपुत्र (सं० पु०) राजपुत्र।

भूपरा (हिं० पु०) सूर्य।

भूपरिधि (सं० पु०) भुवः परिधिः। पृथिवीकी परिधि, व्यास।

भूपलाश (सं० पु०) भुवि पलाशमत्स्य। वृक्षभेद।

भूपचित्र (सं० स्त्री०) गोमय, गोबर।

भूपसमुद्र—मन्त्राजप्रदेशके चेल्हरी जिलान्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। पहले यह ग्राम क्रियाशक्तिपुर नामसे मजहर था। यहां १४८० शककी शिलालिपियुक्त एक आजनेय-मन्दिर विद्यमान है।

भूपसिंह—एक राजा। दानरत्नाकरके प्रणेता रामभट्टके प्रतिपालक।

भूपटली (सं० स्त्री०) भुवि जाता पाटलीव। वृक्षविशेष। पर्याय—भूकुम्भी, भूताली, रक्तपुष्पिका। गुण—कटु और उष्ण।

भूपाल (सं० पु०) भुवं पालयतीति पालि रक्षणे (कर्मण्यण्)। पा ३।२।१ इत्यण्। १ राजा। २ काशमीरराज सोमपालके पुत्र। ३ भोजराजका नामान्तर।

भूपाल—मध्यभारतके मालवके अन्तर्गत एक प्रसिद्ध मुसलमानी राज्य। यह अक्षां० २०° २६' से २३° ५४' उ० तथा देशां० ७६° २८' से ७८° ५१' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपारमाण ६६०२ वर्गमील है। इसके उत्तर पश्चिममें सिन्धिया राज्य, पूर्वमें सींगर जिलेका मध्यप्रदेश, दक्षिणमें नर्मदा नदी और होलकर राज्य है। यहांकी नदियोंमें वेतवा और पार्वती नदी प्रधान हैं।

मन्नाट औरङ्गजेवके अफगान सेनापति दोस्त महम्मद इस राजवंशकी प्रतिष्ठा कर गये हैं। इस व्यक्तिने सम्राटकी मृत्युके बाद विद्रोही हो कर निकटवर्ती स्थान पर दखल जमाया और अपनेको स्वाधीन राजा बतला कर तमाम घोषित कर दिया।

यह राजवंश बहुत दिनोंसे अंगरेजोंका आनुगत्य है और उनके साथ सद्भाव करता आ रहा है। १७७८ ई०में सेनापति गोडडके साथ मित्रता करके ये अंगरेजोंके प्रेमभाजन हुए थे। १८०६ ई०में भूपालराजने सिन्धे-राज और रघुजी भोंसलेके आक्रमणसे आत्मरक्षाके लक्ष्य अंगरेजोंसे सहायता मांगी थी। अंगरेज सेनापति उस

समय महाराष्ट्रशक्तिका हास करनेकी कोशिशमें तो थे, पर इस समय अंगरेजोंका वलक्षण करना उनकी विलकुल इच्छा न थी। इस कारण भूपालराजको सहायता दी गई। जब अंगरेजोंसे सहायता नहीं मिली, तब भूपालराजने पिण्डारियोंसे मेल कर लिया। उस सेनादलको ले कर उन्होंने रघुजी भोंसले और सिन्द् राजके सेनादलको विमुख करनेकी चेष्टा की। दोनों दलकी वेशुमार खूनखराबी हुई। आखिर अंगरेजराजने रणक्षेत्रमें उतर कर दोनोंको निरस्त किया। १६१७ ई०में पिण्डारो-युद्धमें अंगरेजोंने भूपालराजसे सहायता पाई थी। पिण्डारो-दस्युदल भूपालके नवाबका दाहिना हाथ था। इन्हींके अदम्य योग्यत्व पर वे सिन्द् राज और नागपुर-पतिके विरुद्ध अख्यधारण करनेमें समर्थ हुए थे। स्वयं दस्युके अत्याचारदमनमें अपनेको असमर्थ देख कर उन्होंने अंगरेजोंसे मेल कर लिया। पिण्डारी देखो।

१८१८ ई०की सन्धिसे अनुसार नवाब अंगरेजोंको ६ सौ पदातिक सेनासे सहायता देनेके लिए राजी हुए और युद्धव्ययके लिये अंगरेजोंसे उन्हें मालवके अंतर्गत ५ जिले मिले।

इसके कुछ समय बाद ही एक बालककी पिस्तौलसे नवाबकी मृत्यु हुई। मृत-नवाबकी कन्या सिकेन्द्र वेगमके साथ उनके भतीजेका विवाह दे कर उन्हींको भूपालके सिंहासन पर बिठाया गया। किंतु उन्होंने राजपद और राजकन्यासे नफरत करके अपने भाई जहां-गीर महम्मदके लिये सिंहासन छोड़ दिया।

विधवा नवाबपत्नीने राजकार्यका कुल भार अपने हाथ लिया। राज्य भरमें अशांति फैल गई। अनेक तर्क वितर्कके बाद १८३७ ई०में अङ्गरेज तहादुरने बीचमें पड़ कर जहां-गीर महम्मदको सिंहासन पर बिठाया। १८४४ ई० तक राज्यशासन करके उनका देहान्त हुआ। पोछे उनकी पत्नी सिकेन्द्र वेगमने राजतन्त्र पर बैठ कर १८६८ ई० (मृत्युकाल) तक प्रजापालन किया था। सिपाहा-विद्रोहके समय अङ्गरेजोंका पक्ष ले कर अपनी सन्तानकी तरह प्रजापालन करके वेगम साहवा अच्छा नाम कमा गई हैं।

माताकी मृत्युके बाद शाहजहान वेगम सिंहासन

पर बैठ कर वंशमर्यादाको अक्षुण्ण रखनेमें समर्थ हुई थीं। १८६७ ई०में प्रथम स्वामीसे उनका विवाह हुआ। इस समय सुलतान जहान वेगम नामको उनके एक कन्या थी। १८१७ ई०में जब तक उनकी दूसरी सादो न हुई तब तक वे पदोंसे बाहर आ कर ही राजकार्य चलाते लगीं। बादमें मौलवी महम्मद सादिक होसेनसे विवाह हो जाने पर वे फिर पदार्जनीन हो गईं। किंतु अन्तःपुरमें रह कर स्वयं सभी काम करती थीं। उनके स्वामी नवाबकी उपाधिसे भूपित होने पर भी उन्हें राज्यसंकांतकी कोई क्षमता न थी। १८७२ ई०में वेगमकी राज्यपरिचालन-शक्ति और राजभक्तिके परितोषिक-स्वरूप वृद्धिशासकरारने उन्हें G. G. S. J.-को उपाधि दी। १८७४ ई०में उनके प्रथम स्वामीसे उत्पन्न कन्या सुलतान जहान वेगमका शुभविवाह हुआ। उनके स्वामी महम्मद अली खाँ उन लोगोंकी तरह मोरझां-खेल शाखाभुक्त अफगान थे। इस रमणीके गर्भसे दो पुत्र और एक कन्याने जन्म लिया। शाहजहान वेगमको राजकार्यमें विलक्षण पारदर्शिता थी। १८८० ई०में होसङ्गाबादसे भूपाल तक जो रेललाइन खुली वह उन्हींके यत्नसे। उसका कुल खर्च उन्हींने ही अपने कोपसे दिया था। १८८१ ई०में नमक पर जो शुल्क लगता था उसे बन्द कर दिया। १९०१ ई०में उनकी मृत्यु हुई। पोछे उनकी एकमात्र कन्या सुलतान जहान वेगम उत्तराधिकारिणी हुई। ये ही वर्तमान शासक हैं और नवाब मुहम्मद नासिर उल्ला खाँकी सहायतासे राजकार्य चलाती हैं। इनके दो पुत्र हैं, बड़ेका नाम है साहिब-जादा उचैद उल्ला खाँ और छोटेका हमीदउल्लाखाँ। १९०४ ई०में वेगमकी जी० सी० आई० ई०की उपाधि मिली है। इन्हें वृद्धिशासकरारसे १६ सलामी तोपें मिलती हैं।

इस राज्यमें ५ शहर और २०७३ ग्राम लगेते हैं। जनसंख्या सात लाखके करीब है जिनमेंसे हिन्दूकी संख्या ही ज्यादा है। यहां पच्छिमी हिन्दी, मालवी, और उर्दू भाषा प्रचलित है। खरीक अनाजमें ज्वार, मकई, उड़द, मूंग, कोदो, और बाजरा तथा रबीमें गेहूँ, चना, जै, पोस्तबीज, अलसी और ईख प्रधान हैं।

राजकार्यकी सुविधाके लिये यह राजा पांच जिलोंमें

विभक्त है। किसीको प्राणदण्ड देनेमें बृटिश-सरकारकी अनुमति नहीं लेनी पड़ती। विचारकार्योंमें अंगरेजोंका कुछ भी अधिकार नहीं है। विद्याशिक्षाकी ओर वेगम साहवाका विशेष ध्यान रहता है। विद्याशिक्षाके प्रचारके लिये शाहजहान् वेगमने अपने राज्यमें घोषणा कर दी थी, कि जिनके पास किसी प्रकारकी सार्दिफिकेट नहीं है, वे राजकार्योंमें कदापि भर्त्ता नहीं किये जायेंगे। फलतः बहुतसे रुपिगण अपने बाल बच्चेको कामोंसे छुड़ा कर स्कूलमें भर्त्ता कराने लगे। कमराः बहुतसे स्कूल भा खोले गये। पहले स्कूलोंकी संख्या राजा भरमें सिर्फ ६३ थी, अभी तीन सौ हो गई है। इनमेंसे "सुलेमान हाई स्कूल" जो भूपाल शहरमें है, प्रधान है। बालिकाओंकी सिलाई तथा नकाशी काममें शिक्षा देनेके लिये भी एक स्वतन्त्र स्कूल है। उक्त सभी स्कूलोंमें निःशुल्क शिक्षा दी जाती है। स्कूलके अलावा १८५४ ई०में 'सिकन्दर वेगम' अस्पताल खोला गया है। १८६१ ई०को सेहोरमें एक कुष्ठाश्रम भी स्थापित हुआ है।

२ मध्यभारतके उक्त सामन्तराज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २३° १६' उ० तथा देशा० ७७° २५' समुद्रपृष्ठसे १६५२ फुट ऊँचेमें अवस्थित है। नगर चारों ओर ईंटोंकी दीवारसे घिरा है। उसके मध्यभागमें एक दुर्ग है। नगरके दक्षिण पश्चिमांशमें एक गण्डरीलके ऊपर फतेहदुर्ग और राजप्रासाद अवस्थित है। इसके दक्षिण पश्चिममें एक सुदीर्घ दीर्घिका है। नगरवासिगण उसका जल पीते हैं। राजा उदयादित्य परमारकी रानीने ११८४ ई०में जो सभामण्डल नामक विशाल मंदिर बनवाया था, अभी उस पर खुदसिया वेगमकी जुमा मसजिद खड़ी है। १८१२-१३ ई०में नागपुर और ग्वालियरकी मिलित शक्तिने उस नगर पर चढ़ाई कर उसके प्राचीरको तहस नहस कर डाला। पीछे १६वीं शताब्दीमें नजर महम्मदने उसका संस्कार कराया। सिकन्दरवेगमने अपने शासनकालमें नगरकी अच्छी उन्नति की, सड़क बनाई गईं और उसके किनारोंमें तमाम रोशनीका प्रबन्ध किया गया। शाहजहान् वेगमने बहुतसी अट्टालिकाओंका निर्माण कर

नगरकी शोभाको बढ़ाया। उन सब अट्टालिकाओंमें ताजमहल, वाड़ा महल, ताजउल-मसजिद, लाल कोठी, प्रिंस आव वेल्स नामक अस्पताल, लेडी लैन्सडौनी नामक जनाना अस्पताल और नया कारागार उल्लेखयोग्य है। १८८५ ई०में ग्रेट इण्डियन पेनिनसुला रेलवे, और १८६५ ई०में भूपाल-उज्जैन-शाखा-लाइनके खुल जानेसे नगर उन्नत दशामें है और जनसंख्यामें भी वृद्धि हुई है। अभी जनसंख्या ८० हजारके करीब है जिनमेंसे हिन्दूकी संख्या सैंकड़ों पीछे ४३, मुसलमानकी ५४ और शैवमें जैन लोग हैं।

१६०३ ई०में म्युनिसिपलिटो स्थापित हुई है। शहरमें चार स्कूल हैं। जिनमेंसे एकमें सिर्फ एंटेके सरदारके लड़के पढ़ते हैं। प्रिंस वेल्स और लेडी लैन्सडौन नामक अस्पतालमें डाकूरो और धात्रीविद्या भी पढ़ाई जाती है।

भूपालपेजन्सी—भारतके बड़े लाटके मध्य भारतीय पेजन्टके भूचूर्त्वाधीनमें परिचालित एक सामन्तराज्य। यह अक्षा० २२° १६' से २४° २१' उ० तथा देशा० ७६° १३' से ७८° ५१' पू०के मध्य अवस्थित है। इसके दक्षिण और पूर्वमें मध्यप्रदेश, उत्तरमें राजपूताना पेजन्सी और ग्वालियर राज्य तथा पश्चिममें कालीसिन्द है। भूपरिमाण ११६५३ वर्गमील और जनसंख्या १० लाखसे ऊपर है। इसके प्रधान शहर ये सब हैं—भूपाल, सिहोर, नरसिंहगढ़, सारङ्गपुर, राजगढ़, खिलचीपुर और घेरसिया।

भूपालगढ़—सतारा जिलेके थानापुर उपविभागस्थ एक गिरिदुर्ग। स्थानीय प्रवाद है, कि भूपाल नामक एक राजाने इस दुर्गको बनवाया। महाराष्ट्रकेशरी शिवाजीने अपने राज्यकी पूर्वीसीमारक्षार्थ यहां पर सैन्यस्थापन किया था। मुगलसेनापति दिलावर खाने शम्भूजीको पिताके विरुद्ध खड़े होनेके लिये उभाड़ा। मुगलसेनासे सहायता पा कर शम्भूजीने विद्रोही हो कर इस दुर्ग पर अधिकार किया था।

भूपालपत्तन—मध्यभारतके चांद जिलान्तर्गत एक भूसम्पत्ति। भूपरिमाण ७०० वर्गमील है। यहांके सरदार गोंडजातिके हैं।

भूपाल साही ( सं० पु० ) गढ़ादेशशाधिपति एक राजा ।  
 भूपालसिंह—नेपालके एक अधिपति, शक्तिसिंहके पुत्र ।  
 भूपाली ( सं० स्त्री० ) एक रागिनी । इसके विषयमें  
 आचार्योंमें भिन्न भिन्न मत देखा जाता है । कुछ तो  
 इसे हिंडोलरागकी रागिनी, कुछ मालकोशकी पुत्रवधु,  
 कुछ संकर रागिनी मानते हैं । कुछ लोग इसे सम्पूर्ण  
 जातिकी, कुछ ओड़व जातिकी मानते हैं । उनका मत है,  
 कि यह कल्याण, गोंड तथा विलावलके मेलसे बनी है ।  
 कुछ लोग इसे हास्परसकी रागिनी कहते हैं, कुछ लोग  
 इसे धार्मिक उत्सवों पर गानेके लिये उपयुक्त नतते हैं ।  
 इसके गानेका समय रातको ६ दण्डसे १० दण्ड तक  
 कहा गया है । इसका स्वरग्राम इस प्रकार है—सा, ग,  
 म, घ, नि, सा । अथवा—रि, घ, सा, रि, ग, म, प ।  
 भूपालेन्द्रमल्ल—नेपालके एक राजा ।  
 भूपुत्र ( सं० पु० ) भुवः पुत्रः । १ मङ्गल । २ नरकासुर ।  
 ( स्त्री० ) ३ जानकी, सीता ।  
 भूपुर ( सं० स्त्री० ) भूरिव पुरम् । यन्त्रवहिनःस्थित रेखा-  
 सन्निवेशयुत भूम्याकार स्थान ।  
 भूपेष्ट ( सं० पु० ) भूपानामिष्टः । १ राजादनीवृक्ष, खिरनी-  
 का पेड़ । ( लि० ) २ राजाओंके अभिलषित ।  
 भूपकम्प ( सं० पु० ) भुवः प्रकम्पः । भूमिकम्प ।  
 भूपल ( सं० पु० ) मुद्गभेद, हरा मूग ।  
 भुवदरी ( सं० स्त्री० ) भुवि ख्याता वदरी । क्षुद्रवदरीविशेष,  
 एक प्रकारका छोटा वेर ।  
 भुवल ( सं० स्त्री० ) नरपतिजय-त्रयोंक जयसाधनोपाय  
 बलभेद । राजाको चाहिये, कि वे स्वरोदयनक्रमे भुवल-  
 का शुभाशुभ स्थिर करके युद्धयाता करें । स्वरोदय देखो ।  
 भुविस्य ( सं० स्त्री० ) भूच्छाय ।  
 भूमट्ट ( सं० पु० ) अङ्गदनाटकके प्रणेता ।  
 भूमचूर्त् ( सं० पु० ) भुवो भर्त्ता । पृथिवीपति ।  
 भूमल ( हि० स्त्री० ) गर्म राख या धूल, गर्म रेत ।  
 भूमाम ( सं० पु० ) भुवो भागः । भूमिभाग ।  
 भूमुञ्ज ( सं० पु० ) भुवं भुनक्ति पालयतीति भुञ्ज-किय् ।  
 राजा ।  
 भूवत् ( सं० पु० ) भुवं विभर्त्तीति भू-विज्य्, ( हसल्य  
 पितृकृति बुक् । पा ६।१।१२ ) इति तुगागमः । १ राजा ।  
 २ पर्वत ।

भूम ( सं० क्ली० ) भूमि, पृथिवी ।  
 भूमक-तृतीया ( सं० स्त्री० ) व्रतविशेष । ( भक्तिवपुराण )  
 भूमण्डल ( सं० कला० ) भुवो मण्डलम् । मण्डलाकार  
 भूमिभाग ।  
 भूमन् ( सं० पु० ) बहुर्भावः बहु-इमनिच्, बहुभू । १ बहुत्व  
 २ अतिशय बहु । ३ विराट् पुरुष ।  
 भूमय ( सं० लि० ) भू-मयट् । सृदात्मक । लिपां डीप् ।  
 छाया, सूर्यपत्नी ।  
 भूमवक श्वर—बङ्गालके वीरभूम जिलास्थित वक श्वरक्षेत्र  
 और तीर्थ । वक श्वर देखो ।  
 भूमानन्द सरस्वती—एक विख्यात योगी । ये ब्रह्मविद्या  
 भरणप्रणेता अर्द्धतानन्दके गुच थे ।  
 भूमि ( सं० स्त्री० ) भवन्ति भूतान्यस्यामिति भू- ( भुवः  
 किय् । उण् . ४।४५ ) इति मि, सुच किय् । पृथिवी ।  
 पर्याय—भू, भूमि, पृथिवी, पृथ्वी, मेदिनी, वसुधा, अवनी,  
 क्षिति, उर्वी, मही, क्षौणी, द्वा, धरा, कु, वसुन्धरा ।  
 भूमिके गुण—

“भूमैः स्वैर्यं गुह्यत्तच्च काठिन्यं प्रसवार्थता ।

गन्धो गुह्यत् शक्तिश्च सद्भातः स्थापना धृतिः ॥”

( भारतमोक्षपत्र )

स्थिरता—अचाञ्चल्य, गुह्यत्व—पतनप्रतिधोमीगुण,  
 काठिन्य, प्रसवार्थता—धान्यादिकी उत्पत्तिक्षमता, गन्ध-  
 शक्ति—गन्धग्रहणसामर्थ्य, सद्भात—श्लिष्टावयवत्व,  
 स्थापना तथा मनुष्याद्याशय, धृति ( पाञ्चमौक्तिक मतसे  
 धृत्यंश ) ये सब भूमिके गुण हैं ।

सब प्रकारके दानकी अपेक्षा भूमिदान श्रेष्ठ है । जो  
 भूमिदान या भूमि-प्रतिग्रह करते हैं वे दोनों ही स्वर्गलोक  
 को जाते हैं ॥

\* “सर्वेषामेव दानानां भूमिदानमनुत्तमम् ।

यो ददाति महीं राजन । निप्रायाकिश्चनाय वै ॥

अङ्गुष्ठमात्रमथवा च भवेत् पृथिवीपतिः ।

न भूमिदानघटशं पवित्रामह विदधते ।

भूमि यः प्रतिग्रहति भूमिं यश्च प्रपच्छति ।

उभौ तौ स्वर्गमापन्नौ नियतं स्वर्गगामिनौ ॥

जो अंगुष्ठमात्र भूमिदान करते हैं, वे पृथिवीपति होते हैं। इस संसारमें भूमिदानके समान और दूसरा कोई दान ही नहीं है। अतः थोड़ा या बहुत जो कुछ भी क्यों न हो, भूमिदान स्वर्ग और मोक्षप्रदायक है, इससे सभी अमीष्ट सिद्ध होते हैं।

भूमिदानमें जितना पुण्य है, भूमिहरणमें उतना ही पाप है। जो भूमिहरण करते, वे नरकमें विष्ठा-कृमि हो कर पितरोंके साथ वास करते हैं। जो दत्त-भूमिकी रक्षा करते हैं, उन्हें दातासे भी अधिक पुण्य होता है। आद्य अंगुलके बराबर भूमिहरण करनेसे उसका तब तक नरकमें वास होता है, जब तक चन्द्र और सूर्य रहते हैं। अतएव भूमिहरण कदापि नहीं करना चाहिये।\*

भूमिका नाम प्रियदत्ता तथा इसके अधिष्ठाता देव विष्णु हैं। भूमिदान या भूमिपूजामें "प्रियदत्तायै भुवे नमः" इस प्रकार प्रियदत्ताका नामोल्लेख कर पूजा करनी चाहिए। भूमिदाता और गृह्णीता दोनों ही प्रियदत्ताका नामोच्चारण कर दान वा प्रहण करे।

"नामास्त्याः प्रियदत्तेति शुभं" देव्याः स्नातनम्।

दाने वाप्यथ यादाने नामास्त्याः परमं प्रियम् ॥"

( तिथितत्त्व )

आह्निकतत्त्वमें लिखा है,—प्रातःकाल विद्यावनसे उठ कर पृथिवी पर पैर रखनेके समय पहले 'प्रियदत्तायै भुवे नमः' कह कर भूमिको प्रणाम करना

यत् किञ्चिद्भूमिदानन्तु सर्वदानोच्चारणम्।

महोपते नरः कोऽपि भूमिदो भूमिमानुयात् ॥

भूमिदानसमं दानं नास्त्यत्र पृथिवीतले।

तस्मादल्पमक्षत्रैव भुक्तिमुक्तिमुलप्रदम् ॥

( पाश्चोत्तरखं ४६ अ० )

\* "स्वदत्तादधिकं पुण्यं परदत्तानुपासनम्।

स्वदत्तां परदत्तां वा यत्प्राद्वत्तं मुचिगिन्दर ॥

स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत् वसुधराम् ॥

य विष्ठायां कृमिर्मूला विभुभिः सह पच्यते ॥

गामेकं स्वर्णमेकं वा भू मेरुव्यदं मंगुलम्।

हरत्स्वक्रमानोति . पावदाहृतसंश्रयम् ॥" ( महाभारत )

Vol. XVI, 61

चाहिए। याद दहिना पैर रखना उचित है। भूमि दो प्रकारकी है,—अशुद्धा और शुद्धा। पुनः अशुद्धा भूमि भी तीन प्रकार की है,—अमेध्या, मलिना और दुष्टा। अमेध्या भूमिका लक्षण,—

"प्रदूते गर्भिणी यत्र विप्लवे यत्र मानुषः।

चापडालैरुपितं प्रथ यत्र विन्यस्यते शरः ॥

मिन्मूत्रोपहतं यत्तु कुण्डपो यत्र दृश्यते।

एवं कम्भजमूचिष्ठा भूमेध्व्येति क्षश्यते ॥"

( तिथितत्त्व )

जिस भूमि पर गर्भिणी सन्तान प्रसव करती है जहाँ मनुष्यको मृत्यु होती है अथवा जहाँ मृतक और विष्ठा-मूत्रादि फेंके जाते हैं, वहा भूमि अमेध्या है। ऐसी भूमि पर रह कर किसी शुभ कार्यका अनुष्ठान नहीं करना चाहिए। दुष्टा भूमि,—

"कृमिकीटपदक्षेपे दूषिता यत्र मेदिनी।

द्रव्यापकर्षयोः क्षिप्तीवान्तेष्व च दृष्टां मनेत् ॥"

"द्रष्टा घनीभूतरलेभ्या" ( तिथितत्त्व )

जहाँ पर कृमि कीड़ाका वास हो और श्लेष्मादि मल जम जाय, वही दुष्टभूमि कहलाती है। मलिना भूमि,—

"नखदन्ततन्जल्वकतुपपांशुरजोमलैः।

मलमपङ्कतुण्यो वापि प्रचल्लुत्ता मलिना भवेत् ॥"

( तिथितत्त्व )

नख दन्त आदि शरीरकी मेल, तुप, धूलि, भग्म, पङ्क और तुणादि द्वारा आवृत भूमिको मलिना भूमि कहते हैं।

उक्त तीनों प्रकारकी अशुद्ध भूमि ही त्याज्य है। ऐसी भूमिका बिना शोधन किये उस पर कोई सुभकर्म करना उचित नहीं। उक्त अशुद्ध-भूमि निम्नलिखित प्रकारसे शोधन की जाती है।

"दहनं खननं भूमेरुपलेपनवापने।

पर्यन्यदर्पणश्चैव शीघ्रं पञ्चविधं स्पृष्टम् ॥"

'वापनं मृदन्तरेण पूरणं' ( तिथितत्त्व )

दहन, खनन, उपलेपन, चृष्टिदर्पण, अथवा अन्य मुक्तिका द्वारा पूरण इन्हीं पांच उपायोंसे भूमि विशुद्ध होती है। अन्य प्रकारसे,—

“सम्मानेनाञ्जनेन सेकेनोद्धेत्सनेन च ।

गवान्च परिवारिण भूमिः शुद्ध्यति पञ्चधा ॥”

‘सम्मानेन तुष्याद्यपनयनं, अञ्जनेन गोमयेनोपलेपनं, सेको जलेन प्रक्षालनं, उल्लिखनं तक्षणां, परिवारिणः गवापस्थापनं’

( शुद्धिनिर्णय )

अशुद्ध भूमिसे तृणादिका अपनयन, उसमें गोमय-लेपन, जल द्वारा प्रक्षालन, तक्षण तथा गामिस्थापन इन पांच प्रकारके कर्म द्वारा भूमि विशुद्ध होती है ।

पृथ्वी पर अक्षर नहीं लिखना चाहिए । यदि कोई मोहप्रयुक्त लेपन या घृथा रेखादि खोचे, तो वह जन्म जन्मान्तर तक मूर्ख होता है ।

“न भूमौ बिलिखेद्वर्षां मन्त्रं न पुस्तके लिखेत् ।

भूमौ तिष्ठति देवेशि जन्मजन्मसु मूर्खता ।

तदा भवति देवेशि ! तस्मात् तत् परिवर्जयेत् ॥”

(योगिनीतन्त्र तृतीयमा० ७ पः)

ज्योतिषके मतसे भूमिके शुभाशुभका विषय मङ्गल ग्रह द्वारा स्थिर करना होता है ।

हम लोगोंके वास्तुशास्त्रमें भूमिके सम्बन्धमें अनेक कथाएँ मिलती हैं । विश्वकर्मा प्रकाशमें लिखा है,—

“रवेता रक्ता तथा पीता कृष्णा वर्णापूर्वशः ॥२४

सुगन्धा ब्राह्मण्यो भूमौ रक्तगन्धा तु क्षत्रिया ।

मधुगन्धा भवेद्रैश्या मद्यगन्धा च शूद्रिया ॥२५

मधुपु ब्राह्मण्यो भूमिः कपाया क्षत्रिया मता ।

अम्बा वैश्या भवेद्भूमिस्तिका शूद्रा प्रकीर्तिता ॥२६

गम्भीरा माहाण्यो भूमिर्दृष्यान्तुद्धमाभिता ॥२७

वैश्यानां समभूमिश्च शूद्राणां विकटा स्मृता ।

सर्वेषां चैव वर्णानां समभूमिः शुभावहा ॥२८

शुक्लवर्णां च सर्वेषां शुभा भूमिरुदाहता ।

कुशकाशुता ब्राह्मी दुर्वा नृपति वर्गमा ॥२९

फलपुष्पलता वैश्या शूद्राणां नृपायुता ।

नदीघाताभिता तद्वन्महापापाण्ययुताम् ॥३०

पर्वताग्रेषु संलग्नां गर्तविवरसंयुताम् ।

वक्रां गूर्धनिमां तद्वल्कटाभ्यां कुर्याप्यीम् ॥३१

मुशतामां महाघोरां वायुना वापि पीडिताम् ।

पाटमहकसंयुतां मध्ये विकटल्पिणीम् ॥३२

स्वश्यालनिभां कृत्वां दन्तकैः परिवारिताम् ।

चैत्यरमशान वल्मीकधूर्तकाक्षयवर्जितां ॥३३

चतुष्पथमहावृन्ददेवमन्त्रिनिवाततः ।

दूराभितां श्वभ्रगतीसुखताञ्चैव विवर्जयेत् ॥३६ (१ अ०)

उजली, लाल, पीली और काली यथाक्रम यहाँ चार प्रकारकी भूमि होती है । सद्रन्धयुक्त मृत्तिका ब्राह्मण, शोणितगन्धयुक्त जमीन क्षत्रिय, मधुगन्धयुक्त वैश्य और मद-सी गन्धयुक्त भूमि शूद्र है । इसी प्रकार ब्रह्मभूमि मधुर, क्षत्रभूमि कपाय, वैश्यभूमि अम्ल और शूद्रभूमि तिक्त होती है । फिर भी, ब्रह्मभूमि गम्भीर, क्षत्र भूमि तुङ्ग, वैश्यभूमि समतल और शूद्रभूमि विकट या असमतल है । सभी वर्णोंमेंसे समभूमि तथा शुक्लवर्णकी भूमि ही शुभदायक होती है । जिस जमीनमें कुशकाश जन्मता है, वह ब्राह्मी अर्थात् ब्राह्मणके लिये, उपयुक्त है, इसी प्रकार दूर्वायुक्त भूमि क्षत्रियोंके लिये, फलपुष्पलतायुक्त भूमि वैश्योंके लिये तथा तृणयुक्त भूमि शूद्रोंके लिये उपयुक्त है । जिस जमीन हो कर नदीकी धारा बहती है अथवा जो जमीन पथरीली, किसी पहाड़के समीप, गर्त और विवर-युक्त, वक्र, वल्मीकयुक्त, देखनेमें खराब, मूषलाकार, बाहु-पीडित, बल और भल्लकयुक्त, कुत्ते और सियारकी वास-युक्त, वक्र तथा दन्तकाष्ठसे आच्छादित, चैत्य, जहाँ श्मशान, वल्मीक और धूर्तका वास हो, जहाँ बड़का पेड़, देव और मन्त्रकारीका वास तथा जो छिद्रगर्भयुक्त हो उस भूमिका परित्याग करना चाहिए ।

शुश्रुतमें भूमिपरीक्षाके विषयमें इस प्रकार लिखा है— जो भूमि शर्करा, प्रस्तर, वल्मीक, श्मशान, देवायतन और बालुका प्रभृति द्वारा दूषित अथवा जो छिद्रविशिष्ट, लोणा या भंगुर नहीं हो, किन्तु स्निग्ध, वृक्षलतादिकी अंकुरविशिष्ट, कोमल, स्थिर, समतल, कृष्ण, गौर या लोहित वर्ण हो, पेसी हो भूमिसे ओषध संग्रह करनी चाहिए । जो भूमि स्निग्ध, शीतल, जलके समीप, शस्य और तृणविशिष्ट, कोमल वृक्ष पूर्ण तथा श्वेतवर्णकी होती है, उसमें जलीयगुण अधिक परिमाणमें रहता है । जो भूमि विविध वर्ण और लघु प्रस्तर पाण्डुरवर्ण तथा अल्पवृक्षांकुरविशिष्ट है उसमें अग्निगुण अधिक रहता है । रुक्ष, अस्मराजिनी वर्णविशिष्ट, अत्यरसयुक्त वृक्ष द्वारा

पूर्ण भूमिमें वायुगुण अधिक पाया जाता है। जो भूमि मृदु, समतल और लिङ्गविशिष्ट, श्यामवर्ण, स्वादाहीन जलयुक्त, सर्वत्र असार पृष्ठ तथा महापर्वतपूर्ण है, उस भूमिमें आकाशगुण अधिक परिमाणमें रहता है।

यह सब विषय पार्थिव और जलीय प्रभृति गुणविशिष्ट भूमिके सम्बन्धमें कहा गया। इनमेंसे जिस भूमिमें पार्थिव तथा जलीय ये दोनों गुण अधिक पाये जाते हैं, उससे विरेचन द्रव्य ग्रहण करना चाहिए। जिस भूमिमें अग्नि, आकाश तथा वायु ये तीनों गुण अधिक परिमाणमें रहते हैं, उससे यमन तथा विरेचन दोनों गुणविशिष्ट द्रव्य और जिस भूमिमें आकाशगुणकी अधिकता रहती है, उससे संयमनीय द्रव्य ग्रहण करना विधेय है।

(सुश्रुत सूत्रसं० ३७ अ०)

२ योगियोंकी एक अवस्था।

“निरुद्धे चेतसि पुरा सविकल्पसमाधिना।

निर्विकल्पसमाधिस्तु भवेदत्र त्रिभूमिकः ॥

व्युत्तिष्ठते स्वतश्चाद्ये द्वितीये परव्योधितः।

अन्ते व्युत्तिष्ठते नैव सदा भवति तन्मयः ॥”

(योगापूर्वार्धदीपिकामें मधुसूदनसरस्वती)

पहले सविकल्प समाधि द्वारा चित्त निरुद्ध होनेसे त्रिभूमिक निर्विकल्प समाधि होती है। पहले व्युत्थान, वाद परिबोधित और तब सर्वदा तन्मयता, यही योगियोंकी त्रिभूमिक अवस्था है। धिक्तेक्षिततादि राजसिक परिणामका नाम व्युत्थान, और केवल विशुद्ध सत्त्व परिणामका नाम परिबोधित है। इन दोनोंके अभिभूत होनेसे तन्मयता रूप निर्विकल्प समाधि होती है। पातञ्जलदर्शनमें लिखा है,—“तस्य भूमिषु विनियोगः।” संयम सीखनेके समय भूमिक्रमसे अर्थात् सीढ़ी पर चढ़नेकी भांति पूर्व पूर्ण अवस्था जीत कर पीछे उत्तरोत्तर सूक्ष्म अवस्था या सूक्ष्म सूक्ष्म आलम्बनका प्रयोग करना चाहिए। इसका तात्पर्य यह, कि संयमभ्यासके सम्बन्धमें उत्तम उपदेश यों है,—योगी पहले स्थूल स्थूल विषयका संयम-प्रयोग करनेको सीखें। जिस प्रकार किसी कोठे अटारी पर चढ़नेके पहले नीचेकी सीढ़ियोंकी ही एक एक करके पार कर ऊपर जाना होता है, उसी प्रकार स्थूल आलम्बन जीत कर सूक्ष्म आलम्बनमें मनःसमाधि करनी पड़ती है।

स्थूल आलम्बनका परित्याग कर एकाएक सूक्ष्म ग्रहण करनेसे संयम अभ्यस्त होना तो दूर रहे, उसकी धारणा भी नहीं होती। सुतरां उसे भूमिक्रमानुसार ही सीखना चाहिए, इसीलिये सूत्रकारने “तस्य भूमिषु विनियोगः।” ऐसा सूत्र निर्देश किया है। सचित्तक, निर्वित्तक, सविचार तथा निर्विचार यही चार संयमशिक्षाकी पूर्वापर भूमि है। पहले सचित्तक भूमि जीत कर वाद निर्वित्तक भूमि और इसी प्रकार क्रमशः चारों भूमि अतिक्रम कर सकने पर निर्विकल्प समाधि लाभ होती है।

शिक्षित, मृदु, विशिक्त, निरुद्ध तथा एकाग्र इन पांच प्रकारकी चित्तकी अवस्थाको भी पञ्चभूमि कहते हैं।

३ स्थानमात्र, जगह। ४ जिहा, जोम। ५ वास-स्थान। ६ क्षेत्र। ७ आधार। यथा—विभ्यासभूमि।

८ रोगियोंकी एक अवस्था।

भूमिकन्दम्ब (सं० पु०) भूमिजातः कदम्बः शाकपार्थिव्यादित्वात् समासः। कदम्बविशेषः। पर्याय—भूनीप, भूमिज, भृङ्गवल्लभ, लघुपुष्प, वृत्तपुष्प, विपन्न, वृणदारक। गुण—कटु, उष्ण, वृष्य, दीपकर, हिम, कृपायतिक, पित्त-वर्द्धक और वीर्यवृद्धिकर।

भूमिकदम्बिका (सं० स्त्री०) मुण्डारीपृष्ठ। (राजनि०)

भूमिकन्दली (सं० स्त्री०) लताभेद।

भूमिकम्प (सं० पु०) भूमेः कम्पः द-त्त्। क्षितिचलन, धरतीका झोलना, भूडोल। यहत्सहितामें भूमिकम्पके लक्षणदि इस प्रकार लिखे हैं,—‘भूमिकम्पके सम्बन्धमें बहुत मतभेद देखा जाता है। किसी किसी परिदृष्टता मत है, कि यह जलद्रव्य-निवासी यहत्प्राणिरुद्ध है। फिर कोई कोई कहते हैं, कि भूभार-धारण क्षिप्र दिग्गजोंका विध्रम ही इसका कारण है। किसीका कहना है, कि वायु द्वारा वायु निहत और पतित हो कर शब्दपूर्वक भूमिकम्प होता है। फिर कोई इसे अट्टककारित बतलाते हैं। किसी किसी आचार्यका कहना है, कि पूर्वकालमें पृथिवी प्रपतन और उत्पतनशील पर्वतोंके उड़ने और गिर जानेसे कम्पित हो कर ब्रह्माके पास गई और प्रार्थना की, “भगवन्! आपने मेरा नाम अचला रखा है। किन्तु अभी मैं सचल तथा अचल पर्वतों द्वारा कांपती हूँ जो मेरे लिये



है। आप, कृपया मुझे इस दुःखसे बचावे।" ध्वजानि पृथिवीको वात सुन कर इन्द्रसे कहा, 'तुम पृथिवीका शोकहरण करने और पर्वतोंके पर-काटनेके लिए चक्र केको।' इस पर इन्द्रने सहमत हो कर पृथिवीसे कहा, 'तुम्हें अब कोई डर नहीं; किन्तु वायु, अग्नि, इन्द्र और वरुण दिवारात्रके पहले, दूसरे, तीसरे और चौथे याममें सत् तथा असत् फल जाननेके लिए तुम्हें कम्पित करेंगे।'

पहले उत्तरफल्गुनी, हस्ता, चित्रा, स्वाती, रेवती, मृगशिरा और अश्विनी नक्षत्र ये ही वायव्यमण्डल हैं। इस वायव्यमण्डलके होनेसे आकाश धूमावृ हो जाता है, हवा बड़े जोरसे बहती है और सूर्य छिप जाते हैं। इस वायव्यमण्डल द्वारा भूमिकम्प होनेसे शस्य, जल और वनौषधियोंका क्षय होता है तथा घणिकोंको श्वयथु, श्वास, उन्माद, ज्वर और कामजात पीड़ा होती है। सुन्दर पुरुष, अस्त्रधारो, वैद्यगण, स्त्री, कवि, गन्धर्व और पण्यशिल्पीगण सौराष्ट्र, कुरु, मगध, दशार्ण तथा मत्स्य-देश पीड़ित होता है। यही वायुवृत्त कम्पन है।

पुष्या, आग्नेय, विशाखा, भरणी, पितृ, अज तथा भाय सप्तम नक्षत्रमें आग्नेय वर्ग होता है। आग्नेयवर्ग होनेसे सात दिन तक तारका और उल्कापातावृत्त आकाश मानो दिग्दाहयुक्त और कुछ दीप्त-सा हो जाती है तथा शतशिल्प अग्नि हवाकी सहायता ले कर विचरण करती है। इस आग्नेय वर्गमें भूमिकम्प होनेसे मेघनाश, जलाशय-शोषण, राजद्वेष तथा दद्रु, विचर्चिका, ज्वर, विसर्पिका और पाण्डुरोग एवं अङ्ग, बाढीक, कलिङ्ग, चङ्ग और द्रविडदेश तथा नाना प्रकारके शहरगण पीड़ित होते हैं। यह अग्निवृत्त कम्पन है।

अभिजित्, श्रवणा, धनिष्ठा, प्राजापत्य, ऐन्द्र, वैश्व, और मूल नक्षत्रमें ऐन्द्रवर्ग है। इसमें वृष्टि गूथ होती है। ऐन्द्रवर्गमें भूमिकम्प होनेसे राजाका नाश और अतिसार, गलप्रद, यदनरोग, सर्दिप्रकोप तथा खांसी, युगन्धर, पीरय, किरात, कीर, अभिसार, हल, मद्र, अर्धुद, सुवासु और मालवदेश पीड़ित होता है। यही इन्द्रवृत्त भूमिकम्प है।

पौष्य, आष्य, आद्रा, अश्लेषा, मूला, अहिम्य और

वारुण नक्षत्रमें वारुणवर्ग होता है। इसमें अनेक जल-गण अंकुशधारसे वर्षा करते हैं। इस वायव्यमण्डलमें भूमिकम्प होनेसे गोनह, वेदि, कुषकुर, किरात और विद्रो-वासियोंका अनिष्ट होता है। यह वायुवृत्त कम्पन है।

वायु, अग्नि, इन्द्र तथा वरुण इन चारसे ही भूमिकम्प होता है। भूमिकम्पके दलपाकका समय छह मास के मध्य है। बिना मेघके वृष्टि, अग्निकी विस्तुलिङ्ग-शिक्षा, वन्यप्राणियोंका प्राममें प्रवेश, रातमें इन्द्र धनुर्धान इत्यादि प्रकृतिकी विपरीत गति होनेसे भूमिकम्प प्रभृति नाना प्रकारके दुर्लक्षण उपस्थित होते हैं।

ऐन्द्रमण्डल यदि वायव्यमण्डलको या वायव्यमण्डल ऐन्द्रमण्डलको विनष्ट करे और इसी प्रकार यदि वारुण तथा आग्नेयमण्डल एक दूसरेको निहत करे, तो उसे वेदानक्षत्रजात कंय कहते हैं। आग्नेय तथा वायव्यमण्डलका परस्पर अभिघात होनेसे राजाकी मृत्यु या पृथिवी पर दुर्भिक्ष, मरक, अनावृष्टि प्रभृति अकल्याण होते हैं। वारुण और ऐन्द्रमण्डलके अभिघातसे सुमिध, कल्याण, वृष्टि तथा प्रीति बढ़ती है, गाएँ प्रचुर दुग्ध-संपन्न होतीं और राजागण ननृत्तचैर हो रहते हैं। वायुवर्ग दो सौ योजन, अग्निवर्ग एक सौ दश, वारुण वर्ग एक सौ अस्सी और ऐन्द्रवर्ग साठसे कुछ ज्यादा योजन तक विचलित करता है। भ्रामकम्पके बाद तीसरे, चौथे और सातवें दिन अथवा महीने पक्षमें या तीन पक्षमें यदि पुनः भूकम्प हो जाय, तो प्रधान राजाका विनाश होता है। ( बृहत्सं० ३२ अ० )

घराहमिहिरने और भी कहा है,—

"उल्का हरिभ्रद्रपुं रजश्च ।

निर्वातभू कम्पकुरुप्रदाहाः ॥

वातोऽतिचपटो प्रहयं रथीन्द्रो ।

नृन्नक्षत्रारागण्य वैकृतानि ॥" ( ३२१४ )

उल्का, गन्धर्वपुट, रज, निर्वात, भूकम्प, दिग्दाह, प्रचण्ड वायु और सूर्यचन्द्रका प्रदण, नक्षत्र तथा ताराओंकी विकृतिका कारण होता है।

भूमिकम्पके सम्बन्धमें इस प्रकार प्रवाद प्रचलित है,—वास्तुकि अपनी सहस्र फणाके ऊपर पृथिवीको धारण किये हुए हैं। जब किसी फणाको विभ्राम

करनेकी जरूरत होती है, तब ये उसे भुकाते हैं जिन्से भूमिकम्प होता है। एक ही समय सभी देशोंमें भूमिकम्प नहीं होता। इसका कारण यह है, कि वे जिस फणा को भुकाते हैं, उसी पर स्थित देशसमूह कम्पित होता है, दूसरा नहीं होता। इस प्रवादको सत्यताके सम्बन्धमें कोई शास्त्रीय प्रमाण नहीं मिलता।

अद्दृतसागरमें भूमिकम्पके धिययमें इस प्रकार लिखा है,—

“भेपे वृश्चिकमे गजः प्रचलति व्यागादिभिः कम्पते।

चापे मीनकुलीरमे च शूपमे सत्यं बलेत् कच्छपः।”

युके कुन्तपरे मृगेन्द्रमिथुने कन्यामृगे पन्ना-

स्वेषामेकतमो यदि प्रचलति क्षीणी तदा कम्पते ॥”

मेघ और वृश्चिक राशियोंमें गज, घनु, मीन, कर्कट और शूप राशियोंमें कच्छप तथा तुला, कुम्भ, सिंह, मिथुन, कन्या और मकरमें पन्नग चलते हैं, इन गजादिके चलनेमें ही भूमिकम्प होता है। व्यासादिने भूमिकम्पका यही कारण बतलाया है। कच्छप और पन्नगके चलनेसे जब भूमिकम्प होता है, तब बहुत-से मेंडूक और पन्नग भूमिकम्पमें बड़े ही सुखस्वच्छन्दसे रहते हैं।

“वच्छपे मरणांशे मरणश्चापि पन्नगे।

सर्वत्र सुखदञ्चैव पृथिव्यां चलिते गजे ॥” (ज्यामिस्तस्य)

“वर्त्मान वैज्ञानिक तथा भूतत्त्वविद्दोंमें भा मतभेद देखा जाता है। बहुतेंने भूगर्भके स्थान विशेषके सामाजिक कम्पनको ही भूमिकम्प बतलाया है। बहुतेंके मतसे आन्नेय गिरिका संज्ञक ही भूमिकम्पका मूलकारण है। जिस कारणसे आन्नेय गिरिके आग निकलती है, उसी प्रकार आभ्यन्तरिक कारणसे ही भूमिकम्प होता है। जिस प्रकार एक गृहत् लीहफण्ड पर एक और भारी हथौड़ी द्वारा खूब जोरसे आघात करनेसे लीहके आघातित अंशसे ले कर दूसरी ओर तक स्पन्दन उत्पन्न होता है, उसी प्रकार इस निरिष्ट पृथिवीसे भी आणविक स्रोत या स्पन्दन उत्पन्न हो कर भूमिको प्रकम्पित करता है। भूगर्भके बहुत नीचे कम्पनजनित शिलोच्चयके घर्षणसे पृथिवीका जो जो स्थल कांप उठता है, उसी स्थलमें थोड़ा बहुत भूकम्प अनुभव होता है। किसी-किसी भूतत्त्वविद्दोंका विश्वास है, कि इस सचल

पृथिवीसे नित्यप्रति आणविकस्रोत निकलता है, किन्तु वह क्षीण स्पन्दन सामान्यतः इन्द्रिय द्वारा अनुभूत नहीं हो सकता। वैज्ञानिक यन्त्र द्वारा इसका बहुत कुछ स्थिर हुआ है, कि भूगर्भस्थ स्थितिस्थापक वाष्पराशि आभ्यन्तरिक बहुव्यापी तापको सहायतासे शब्दपूर्वक विशिष्ट हो कर अकसर भूमिकम्प करती है।

प्रतिवर्ष १०१२ बार पृथिवीके नाना स्थानमें भूकम्पकी कथा सुनी जाती है। कहीं कहीं पर इस प्रकार अनर्धकर कम्पनमें सैकड़ों ग्राम और नगर तहस नहस हो गए हैं—सैकड़ों प्राणा अकालमें कालके मुख पतित हुए हैं। यह सब बात सुन कर शरीर रोमाञ्चित हो उठता है।

भूमिकम्पकी तालिका देखनेसे जान पड़ता है, कि एशियाके पूर्व और दक्षिण अंशमें ही भूमिकम्पका कुछ ज्यादा प्रभाव है। वस्तुतः स्थिर साहयने गणना कर लिया है, कि १८००—५२ ई० अर्थात् ४२ वर्षमें इस अंशमें १६२ बार उल्लेख योग्य भूकम्प हुआ है। यह सब भूकम्प गाङ्गेयमें ही ज्यादा अनुभूत हुआ था। पारस्यके राजचिकित्सक थलजानने आरष्य और पारस्य इतिहाससे ७ वींसे १७वीं शताब्दीमें जो सब भूकम्प हुआ था, उसकी तालिका संग्रह की है। उन्होंने यह दिखलाया है, कि इतने दिनोंके मध्य १११ बार प्राणनाशके भोषण भूमिकम्प हो गया है जिससे कैवल बस्ती और घर ही नहीं, चरन् बहु जनाकीर्ण सैकड़ों नगर अधिवासियोंके साथ भूमिमात् हो गए हैं। एक एक स्थानमें भूमिकम्प सिर्फ एक ही बार हो कर नहीं रह जाता। ६५४ ई०में खुरासानमें बहुदिनव्यापी घोर भूमिकम्प हो गया है। इन सब भूमिकम्पके पहले आकाश मानो एक विशेष भावधारण करता था, प्रचण्ड वायु चलती थी और वर्षडर हवा भी बड़े जोरसे बहने लगते थे। ७मे १७वीं शताब्दीके मध्य पारस्यमें भी ऐसे ही ५२ बार भूकम्पका उल्लेख मिलता है जिससे पारस्यके साथ मोरिया, मेसोपोटेमिया, इजिप्त, तुर्किस्तान, इराक और खुरासान भी कम्पित हुआ था। यह सब भूमिकम्प कभी कभी इजिप्त तक फैल गया था, किन्तु पारस्यके उसी इजिप्तमें बनिष्टकर भूकम्प नहीं हुआ है।

फिर निकटवर्ती देशोंमें भूकम्प होनेसे भी १३वींसे ले कर १७वीं शताब्दी तक मोरिया और जूडियामें कुछ भी भूमिकम्प न हुआ। अफगानिस्तानमें अक्सर भूकम्पकी बात सुनी जाती है। काबुलमें प्रति वर्ष १०।१२ बार भूमिकम्प होता है। १८४१ ई०में जब अंगरेजोंने जलालाबाद पर आक्रमण किया था, उस समय भूकम्पमें जलालाबादका प्रत्येक प्राचीन कंप उठा था।

निम्न वर्णनमें विशेषतः सुन्दरघनमें अनेक बार भूमिकम्प हुआ है, जिसमें सुन्दरघनका बहुत कुछ अंश समुद्रके नीचे चला गया है और यही कारण है, कि प्राचीन मनुष्योंके घरका चिह्न तक विलुप्त हो गया है। यहां तक कि, बङ्गोपसागरके पूर्वतीरवर्ती निम्न अन्तरीपसे ले कर अकयाव तक सभी स्थान धंस कर बहुत नीचे चला गया है। फिर आराकानके उपकूलवर्ती छोटा द्वीप और शीलमाला खाड़ीके समतलक्षेत्रसे बहुत ऊपर उठ गई है। आराकानके निकटवर्ती द्वीपसमूहके भूतल मध्य जो आभ्यन्तरिकअग्नि चिराजमान है, भूतत्त्वविदोंने उसका भी पता लगाया है।

जापानियोंके मध्य एक अद्वितीय भूकम्पतत्त्वज्ञकी कथा सुनी जाती है। उन्होंने पुरावृत्त आलोचना द्वारा दिखलाया है, कि १८५६ ई०को निकोनद्वीपमें एक असाधारण भूकम्प हुआ था जिससे एक रातमें ७२॥ मील लम्बा और १२॥ मील चौड़ा एक हृद वन गया था। ८६३ ई०को भारतमें एक भूकम्प हुआ था जिससे प्रायः दो लाख प्राणी एकवारगी कालके मुखमें पतित हुए थे। इस प्रकार १०४० और ११३६ ई०में भूकम्पसे यथाक्रम पारस्यके ताभिजन नगरमें पचास और गीसनामें दश हजार मनुष्योंकी मृत्यु हुई थी। १५०५ ई०में भूकम्पसे काबुल प्रायः तहस नहस हो गया था। १५६६ ई०को जापानमें जो भूमिकम्प हुआ था, उससे भी अनेक शहरोंका अस्तित्व विलुप्त हो गया है। किन्तु १७०३ ई०के जापानके भूमिकम्पसे एक शहरमें ही दो लाख मनुष्योंके प्राणनाशकी कथा सुननेमें आती है। १७३१ ई०को भी जापानमें भूकम्प हुआ था, किन्तु उससे कुछ विशेष हानि नहीं हुई थी। उस समय चानको प्रसिद्ध राजधानी पेकिन शहरमें लापसे भी अधिक मनुष्य मरे थे।

१७३७ ई०की ११वीं और १२वीं अक्टूबरकी रातको भारी तूफानके साथ प्रचण्ड भूमिकम्पसे गङ्गासागरसे ले कर सभी गाङ्गेय द्वीप प्रायः ६० कोस तक स्थान आलौडित हुआ था। उस भूकम्पसे सिर्फ कलकत्तेमें ही लगभग २०००० जहाज और नाव ह्व गई थीं। उससे गङ्गाके जलने प्रायः ४० फीट ऊंचा हो कर करीब तीन लाख प्राणियोंका नाश किया था।

चेदुवा द्वीपमें १००से २०० हाथ तक ऊंचे दो कर्म-आग्नेयगिरि हैं। इस गिरिकी वदीलत भूकम्प होनेवाले द्वीपका कोई कोई स्थान पूर्वसमतलसे कहीं १२ फीट, कहीं १४ फीट और कहीं १६ फीट ऊंचा उठ गया है। १७५० या १७६० ई०में भूकम्पके साथ साथ ऐसा ही उत्संस्थान आरम्भ हुआ। इसी प्रचण्ड भूकम्पसे प्रलकी राजधानी आवानगरी भी कंप उठी थी।

१७५४ ई०की १ली नवम्बरको पुर्तगालकी राजधानी लिमबन शहरमें जो भूमिकम्प हो गया है, यूरोपके इतिहासमें क्षणकालमें वैसी मनुष्यनाशक व्यापारकी कथा सुननेमें कहीं नहीं आती। यह भूमिकम्प सिर्फ छह मिनट तक था जिससे लिमबन शहर विध्वस्त और साठ हजार मनुष्योंकी अकस्मात् मृत्यु हुई थी। भूकम्पनेके अवश्यम्भायी परिणाम समुद्रके जलोच्छ्वासमें गृहसमूहकी भित्ति भी जलमग्न हो गई थी। जिन्होंने प्राणरक्षाके लिए अपनी वासभूमिका परित्याग कर अन्य स्थानमें आश्रय लिया था, उन्होंने भी इस भीषण तरङ्गाघातसे अपने प्राण खोये थे ऐसा भूकम्प यूरोपमें और कभी भी नहीं हुआ था।

पहले ही कहा जा चुका है, कि एशियाके पूर्वांशमें ज्यादा भूमिकम्प होता है। सुनते हैं, कि १६८६ ई०को जापानमें एक भयानक भूकम्प हुआ था जिससे सारा जापान कंप उठा था। जापानके अन्तर्गत शाकजा प्रदेशसे ले कर मियाको तक सारा भूभाग ४० दिन पूर्वन्त कांपता रहा था। इससे बहुतसे स्थान अग्नि-मंजल गये और कोई-कोई स्थान सागरतर्मगायी हुए थे।

१७१० से १८७२ ई० तक फिलिपान द्वीपमें अनेक बार भूकम्प हुआ था। उसमेंसे ४ धरें दिनके समय ४०

सेकेण्डव्यापी कम्पनसे महानर्था हुआ था। द्वीपके मध्य जहां जहां आग्नेयगिरि था, उनमें-से आग निकलती थी—बहुत-से स्थानसे गरम जल और थालू निकलते थे, किसी किसी स्थानसे तोपकी आवाजकी तरह भयानक शब्द सुनाई पड़ता था।

१७६२ ई०की २री अप्रैलको चट्टग्राममें भयानक भूकम्प होनेके कारण बहुत-से स्थानोंसे जल और गन्ध-युक्त कोचड़ निकला था। इससे बड़धान नामक एक बड़ो नदी एकबारगी सूख गई थी और समुद्रनिकटस्थ बड़ोछेरा नामक ग्राम बहुत-से जीवजन्तुके साथ भू-गर्भशय्या हुआ था। सुननेमें आता है, कि इस भूकम्पसे चट्टग्रामके उपकूलवर्ती लगभग ६० वर्गमील स्थान अरुस्मात् दब गया था और शैवलंतुम नामक मगपहाड़का एक अंश एकबारगी अन्तर्हित हुआ तथा एक दूसरी शाखा इतनी नीचे चली गई थी, कि सिर्फ उसकी चूड़ा ही नजर आती है। उसी समय सीताकुण्ड पहाड़में दो पर्वत दिखाई पड़े। जिस समय चट्टग्राम नोचे दबा जाता था, ठीक उसी समय रामड़ी, रेगुयान और चेदुवाद्वीपका अनेकांश भूपृष्ठसे ऊपर उठा गया था।

सुमात्राके पश्चिम कूल पर सीमो नामक एक छोटा द्वीप है। चैतमासमें वहां एक बार महाभूकम्प हुआ था जिससे आधेसे अधिक द्वीपवासी मृत्युमुखमें पतित हुए थे। सन्ध्याके कुछ पहले वह भूकम्प हुआ था। सभी घर डोलते हैं और छत गिर रही है, पैर कर अधिवासिभृन्द खुले मैदानमें जा खड़े हुए, किन्तु वहां भी उनका निस्तार नहीं। समुद्रसे तालवृक्ष प्रमाण उपर्युपरि तीन तरंग आ कर उन्हें बहा ले गईं। भाग्यवश जिन्होंने रक्षा पाई, उन्होंने देखा कि भूकम्पके बाद ही मानों हजारों तोपकी आवाजका-सा शब्द करता हुआ समुद्र बड़े घेगसे आ रहा है।

मनिलामें अनेक बार भूमिकम्प हुआ था। उनमेंसे १८६३ ई०में जो भूकम्प हुआ, उससे मनिलाद्वीप तहस नहस हो गया था। वहांका सभी घर मिट्टीमें मिल गया। अधिकांश अधिवासी क्षण भरमें ही इनके मेहमान बने।

भारतवर्षमें भूकम्प विरल नहीं है, जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है। उनमेंसे १८१६ ई०की १६ जूनको

दक्षिण-पश्चिम भारतमें और १८६७ ई०के जूनमासमें पूर्व भारतमें जो भूकम्प हो गया है। उसको बाद आनेसे हृदय कांप उठता है दक्षिण पश्चिम भारतमें इस भूकम्पनका केन्द्रस्थल कच्छप्रदेश है। दो तीन मिनट-स्थायी इस महाकम्पनसे कच्छकी राजधानी भुजनगरी चरम दुर्दशाको प्राप्त हुई थी, सभी घर गिरकर भुजनगरी समतल हो गई थी और दो हजारसे भी अधिक मनुष्यों की अकाल मृत्यु हुई थी। १ली जुलाई तक प्रति दिन दो एक बार कम्पन होता हो रहा। पूर्वभारतके कम्पनकी जो कथा कही गई है, वह भी सामान्य नहीं है। इस भू-कम्पनसे सारे बङ्ग और आसामकी यथेष्ट क्षति हुई है। कलकत्तेके बहुत-से घर तहस नहस हो गये, ढाका राज-शाही, दिनाजपुर और रङ्गपुरकी सभी बड़ो बड़ो अट्टालिकायें प्रायः विदीर्ण अथवा समतल हो गई हैं। रङ्ग-पुरके अनेक स्थान भेद कर गरमजल, वाष्प तथा कोचड़ निकलता था—बहुत-सी छोटी छोटी नदियोंकी गति परिवर्तित हो गई। इस भूकम्पसे बंगदेशकी अपेक्षा आसामकी ही ज्यादा हानि हुई थी। ब्रह्मपुत्रके अनेक स्थानोंकी गतिके साथ साथ जलवायुका भी परिवर्तन हुआ है। कछाड़की सभी अट्टालिकायें भूमि-सात् हो गईं—बहुत जीवजन्तु अकालमें करालकालके गाल फंसे। १६०२ ई०के जुलाई मासमें पारस्यके बन्दर-अव्यासमें जो भूकम्प हुआ था, वह भी सामान्य नहीं। इससे भी अनेक गृह विध्वस्त और बहुत-से जन्तुओंकी मृत्यु हुई थी।

भारतवर्षमें जहां नहां उष्ण प्रसवण हैं, वही चतुर्विद्गण उन सयोंको भूकम्पनसम्भूत बतलाते हैं। भारतमें ऐसे प्रवणकी भी कमी नहीं है। भूमिकम्प यहां भी प्रायः हुआ करता है, पर जैसे प्रवण्ड भूकम्पकी संख्या ज्यादा नहीं है।

भूमिकम्पन (सं० क्ती० भूमिः कम्पनं। भूकम्प। भूमिका (सं० खी०) भूमिरिव कायतीति कै-क, खियां टाप, यदुवा भूमिरेव स्वार्थे कन् टाप। १ रचना, वनावट। २ यशान्तर परिग्रह, दूसरा भेष धारण करना। ३ ग्रन्थका आभास। ग्रन्थ बना कर पहले जो उसका सामान्य आभास रहता है, उसीको भूमिका कहते हैं।

ध-वक्तव्य विषयकी सूचना। भूमिरेव स्वार्थे कन् टाप् ।  
५, वेदान्तके मनसे चित्तकी एक अवस्था। क्षित, मूढ,  
विक्षित, एकाग्र और निरुद्ध यही पांच प्रकारकी चित्तकी  
अवस्था है।

अत्यन्त संश्लेषरूपमें उन पांचोंकी भूमिकाके विषय-  
की आलोचना की जाती है।

विन्वा—मनकी अस्थिरता अर्थात् चञ्चलताका नाम  
क्षिप्तावस्था है। मन स्थिर नहीं रहता,—एक ही विषय  
में नहीं लगा रहता। यह हो वह हो ऐसा कह कर  
हमेशा अस्थिर होता है। यह जोंककी तरह एक आधार  
छोड़ कर दूसरा ग्रहण करने और सर्वदा वायुवस्तुकी  
आकांक्षामें अस्थिर रहता है। यही क्षिप्तावस्था है।

मूढ—मन सर्वदा कर्त्तव्याकर्त्तव्यकी अप्राप्य कर काम-  
क्रोधादिके चशीभूत और निद्रातन्द्रादिके अधीन होता  
है—आलस्यादि विविध तमोमय या अज्ञानमय अवस्थामें  
निमग्न रहता है। तभी मूढावस्था कहलानी है।

विक्षित भूमिका—विक्षिप्त अवस्थाके साथ पूर्वोक्त  
क्षिप्तावस्थाका बहुत थोड़ा प्रभेद है। वह यह है, कि  
चित्तकी पूर्वोक्त प्रकारकी चञ्चलतामें क्षणिक स्थिरता  
अर्थात् मन चञ्चलस्वभावका होने पर भी बीच बीचमें  
स्थिरता ही विक्षिप्तभूमिका है। चित्त जब दुःखजनक  
विषयका परित्याग कर सुखजनक वस्तुमें स्थिर होता  
है—चिराभ्यस्त चाञ्चल्यका परित्याग कर थोड़े समयके  
लिए निरवलम्बतुल्य होता अथवा फेवलमात्र सुखास्वादमें  
निमग्न रहता है, वही मनकी विक्षिप्तावस्था है।

एकाग्रभूमिका—एकाग्र और एकतान ये दोनों शब्द  
एक ही अर्थमें प्रयुक्त होते हैं। चित्त जब किसी एक  
वाह्यवस्तु अथवा आभ्यन्तरीण वस्तुका अवलम्बन कर  
निर्वातस्थ निश्चल निष्कम्प दोषविज्ञाकी नाईं स्थिर  
या अविकम्पितभावसे रहता है अथवा चित्तकी रजस्तमी  
घृत्तिसे अभिभूत हो कर फेवलमात्र सात्त्विकवृत्ति  
उदित और प्रकाशमय तथा सुखमय सात्त्विकवृत्तिमात्र  
प्रवाहित रहती है, तभी एकाग्रतावस्था जाननी चाहिए।

निरुद्ध भूमिका—पूर्वोक्त एकाग्र अवस्थामें निरुद्धा-  
वस्थाका बहुत प्रभेद है। एकाग्र अवस्थामें चित्तता  
कोई न कोई अवलम्बन रहता ही है, किन्तु निरुद्धावस्थामें

ऐसा नहीं होता। यह निरुद्धभूमिका अभ्यस्त होनेसे  
चित्त अपनी कारणीभूत प्रकृतिकी प्राप्त कर इतदुत्तार्थ-  
की तरह निश्चेष्ट रहता है। सुतरां उस समय उसके  
किसी भी प्रकारसे विसदृश परिणाम नहीं रहता।  
यही निरुद्धावस्था है।

चित्तकी इन पांच प्रकारकी भूमिकाके मध्य प्रथमोक्त  
तीन अवस्थाके साथ योगका कोई सम्पर्क नहीं है।  
योगमें सुख होता है, ऐसा सुन कर विक्षिप्तचित्तसे कदा-  
चित् योगसञ्चार हो भी सकता है; किन्तु वह स्थायी नहीं  
है। अतएव वह भी योगकी अपोग्य भूमि है। एकाग्र  
और निरुद्ध इन्हीं दो प्रकारकी भूमिकासे योग होता है।  
उनमें निरुद्ध अवस्थाको ही योग शब्दका प्रकृत या मुख्य  
अर्थ जानना चाहिए। इस अवस्थाकी प्राप्त करनेके  
लिए योगीको पहले उपाय द्वारा क्षित, मूढ तथा विक्षिप्त  
अवस्था दूर कर एकाग्र और निरुद्ध अवस्था स्थापित  
करना उचित है। (वेदान्त और पाठ-६०)

भूमिकालिका ( सं० स्त्री० ) गोधूमिकाशाका ।

भूमिकुष्माण्ड ( सं० पु० ) भूमिजातः कुष्माण्डः मध्य-  
पटलोपि कर्मधा० । भुङ्कुङ्गडा ।

भूमिखण्ड ( सं० क्लो० ) १ भूभाग । २ पद्मपुराणका  
खण्डभेद ।

भूमिखजूँरिका ( सं० स्त्री० ) भूमिजाता खजूँरिका ।

भूद्र खजूँरिका, एक प्रकारकी छोटी खजूँर । पर्याय—  
स्वाह्वी, दुरारोहा, मृदुच्छदा, स्कन्धफला, काकककटी,  
खाशुमस्तका । गुण—शीतवार्य, मधुररस, मधुरविपाक,  
स्निग्ध, दधिकारक, हृदयप्रादी, शत और क्षयनाशक,  
गुरु, तृप्तिकर, रक्तपित्तनाशक, विष्टम्भा, शुक्रवर्द्धक, बल-  
कारक तथा कीष्टगत वायु, घर्म, कफ, ज्वर, अतीसार,  
शुष्का, कृष्णा, कास, श्वास, मत्तता, मूर्च्छा, यातुपैच्छिक  
और मदात्ययरोगनाशक । इसके रसका गुण—मत्तता-  
जनक, पित्तकारक, वातघ्न, कफनाशक, रञ्जितक,  
अग्निप्रदीपक, बलकर और शुक्रवर्द्धक । ( भावप्रकाश )

भूमिखजूँरी ( सं० स्त्री० ) भूमिजाता खजूँरी । भूमि-  
खजूँरी, एक प्रकारकी खजूँरी ।

भूमिगम ( सं० पु० ) उग्र ऊँट ।

भूमिगर्त ( सं० पु० ) भूमिविषय, बिल ।

भूमिगुहा ( सं० खी० ) भूमिस्थ गृह, सुरंग ।  
 भूमिगृह ( सं० ह्री० ) भूमिस्थित गृह, तहखाना ।  
 भूमिचम्पक ( सं० पु० ) भूमिजातश्चम्पकः । पुष्पवृक्ष-  
 विशेष, भुदूचपा । पर्याय—ताम्रपुष्प, सन्धिबन्ध,  
 द्रघण । क्षत वा घ्रणमुख पर इसके मूलका प्रलेप  
 देनेसे घ्रण बहुत जल्द पक जाता है ।

यह सुदीर्घ पत्रयुक्त छोटा शुल्म उष्णप्रधान भारत-  
 की तथा ब्रह्मकी दलदल भूमिमें पाया जाता है । सिंहल,  
 यव और कोचिन-चीनमें भी इसकी खेती होती  
 है । इसके पुष्पकी सुगन्ध और पत्रकी कमनीयताकी  
 शोभा देखनेके लिये लोग बहुत परिश्रमके साथ इसे  
 बागानमें अथवा घाटिकामें लगाते हैं । प्रोभकालमें जब  
 इस दण्डहीन वृक्षके पत्रादि ऋड़ जाते हैं, तब पकमात्र  
 गन्धपुष्प ही इस वृक्षकी शोभाको बढ़ाता और मानव-  
 जातिके मनको मोहता है । इसकी गंधख्याति तमाम  
 प्रसिद्ध है ।

आयुर्वेदशास्त्रमें इसकी उपकारिताके सम्बन्धमें  
 नाना प्रकारकी कथाएँ लिखी हैं । इसके रेशीके चूर  
 कर क्षतस्थानमें लगानेसे भारी उपकार होता है । अलावा  
 इसके उदरी रोगमें भी इसके रेशी बड़े फायदेमन्द हैं ।  
 कुचिला, जायफल और घटसनाभके साथ इसके कन्द-  
 चूर्णका प्रयोग करनेसे गलगण्ड विनष्ट होता है ।

इसके कन्दका रंग कुछ पीला होता है । पुष्पसे  
 ले कर रेशी पर्यन्त इसके सभी अंश सुगन्धित होते हैं ।  
 भूमिचल ( सं० पु० ) भूकम्प । भूमिकम्प देखो ।  
 भूमिचलन ( सं० ह्री० ) भूभ्रमचलनम् । भूमिकम्प ।  
 भूमिचारी ( सं० खी० ) आलुकरणीलता, मूसाकानी ।  
 भूमिज ( सं० ह्री० ) भूमेर्जायते इति जन ड । खर्ण, सोना ।  
 १. २ नरकासुर । ३ भूमिकदम्ब । ४ भूमिज गुग्गुलु । ५  
 भूनाग, सोसा । ६ यवज्ञाद, सोरा । ( त्रि० ) ७ भूमि-  
 जात, जो जमीनसे पैदा हुआ हो ।

भूमिज—मानस, सिंहम, आदि पश्चिमवङ्गवासी  
 अनार्य जातिविशेष । इनका आचार, व्यवहार, कार्यकलाप  
 तथा भाषागत सादृश्य देख कर जातितत्त्व विद्वगण  
 अनुमान करते हैं, कि ये लोग सम्भवतः कोलरीय शाखा-  
 भुक्त तथा मुण्डा नामक जातिके समभ्रंशगीत हैं । सुवर्ण-

रेखाकी दोनों पार्श्ववर्ती पार्वतीय अरण्यभूमि—छोटा-  
 नागपुरकी अधित्यकासे ले कर पूर्वमें अयोध्यापर्वत तक  
 फैले हुए भूभागमें इनका वास्तव्य है । यहां पर  
 मुण्डाओंकी तरह उनका भी समाधिस्तम्भ विद्यमान है ।  
 पश्चिमशाखासिंघोंकी कथित मापा मुण्डाओंकी भाषा-  
 से बहुत कुछ मिलती जुलती है । देवपूजा, शवदाह,  
 अस्थिसमाधि तथा प्रेतकृत्यादि सभी कामोंमें ये  
 मुण्डाओंकी ही नकल करते हैं ।

अयोध्या-मिर्चिणोके समीपदेशवर्ती पूर्वाञ्चल  
 वासी भूमिजगण बङ्गालियोंके साथ रह कर बङ्गला भाषा  
 ही बोलते हैं । हिन्दू बङ्गवासियोंने यहां आ कर पहले  
 इस अनार्य जातिको इस भूमिभाग का अधिकारी देखा ।  
 भूदूया, या भूद्वहार प्रभृतिकी तरह हिन्दूगण भूमिका  
 आदिम अधिकारी समझ कर उन्हें भूमिज कहने लगे ।  
 अग्रां ये लोग पूर्वभ्रंशणी हिन्दूके आचार व्यवहार और  
 क्रिया-कलापका अनुष्ठान कर हिन्दूके समभ्रंशणीभुक्त होने-  
 की चेष्टा करते हैं ।

इस जातिकी उन्नतिके सम्बन्धमें अनेक ऐतिहासिक  
 आख्यान मिलते हैं । जङ्गलमहालके चारों ओर स्थान-  
 समूहमें अत्यन्त निष्ठुरताके साथ दस्युवृत्ति करनेके कारण  
 ये 'चूवाड़' कहलाये । अङ्गरेज शासनभुक्त होनेके पहले  
 इन्होंने समय समय पर जातीय आदित्यका परिचय दिया  
 था । १७७८ ई०में राजस्वदायमें पांचेरराज-सम्पत्ति विक  
 जाने पर इन्होंने विद्रोही हो राज्यमें बड़ा ही गोलमाल  
 मचाया । जब तक इस सम्पत्तिकी नीलाम रद्द न हुई  
 और जब तक अंगरेजोंने यह स्वीकार नहीं किया था, कि  
 भविष्यमें कोई दूसरी सम्पत्ति नीलाम न करेंगे, तब तक  
 ये शान्तिपूर्वक न रहे । जितनी ही धार अङ्गरेज गव-  
 र्नेण्ट जङ्गलमहाल पर शासन करनेमें प्रयासी हुए, उतनी  
 ही धार अङ्गरेजोंके साथ भूमिजोंका विवाद चला था ।  
 जब धलभूराजने अङ्गरेजशक्ति फैलनेमें बाधा डाली, तब  
 अङ्गरेज गवर्नेण्ट उसके विरुद्ध खड़े हुईं । अन्तमें  
 उसको राजच्युत कर अङ्गरेजोंने उसके विपक्षियोंके साथ  
 सझाय स्थापित किया ।

बराहभूममें भी राज्याधिकार ले कर पैसा ही गोल-  
 माल उठा । राजा विवेकनारायणकी मृत्युके बाद

पटरानीने अपने वयःकनिष्ठ पुत्रके बदले सर्वाप्रज मध्यमा-पत्नीके पुत्रको ही सिंहासन पर अभिषिक्त करनेको गव-में एसे कहा। किन्तु भूमिजोंको ऐसी न्यायपरता अच्छी न ज'ची, अतः वे विशेष विरक्तिके साथ अङ्गरेजोंके विरुद्ध खड़े हुए। यह विद्रोह अन्तमें बड़ा हो विपत्तिकर हो उठा। यह १८३२ ई०का गङ्गानारायण या चूयाड़-विद्रोह कहलाता है।

पूर्वोक्त पटरानीके पुत्र लक्ष्मणसिंह सिंहासनलाभ-को आशामें अपने बड़े भाईके विरुद्ध खड़े हुए। उपर्यु-परि ऐमे उपद्रवसे विरक्त हो कर राजाने उन्हें कैद कर लिया। कारागारमें लक्ष्मणसिंहको मृत्यु हुई। उनके एकमात्र पुत्र गङ्गानारायण पिताके प्रति क्रिये गये अत्या-चारका प्रतिशोध लेनेके लिये बच रहे।

अनन्तर राजा रघुनाथसिंहको मृत्युके बाद सुप्रिम-कोर्टके विचारानुसार पुनः पटरानीके कनिष्ठ पुत्र माधव-सिंहको छोड़ मध्यमा पत्नीके उद्येष्ठ पुत्र सिंहासन पर बिठाये गये। जब माधवसिंहने देखा, कि अङ्गरेज सर-कारको मना करने पर भी कोई फल न निकला, तब वे अपने भाग्य पर ही निर्भर रहे। अन्तमें भ्रातृराज्यमें दीवान या प्रधान मन्त्रिपद पर नियुक्त हो कर उन्होंने अपना चित्त स्थिर किया। इस काममें रह कर वे व्यव-सायो तथा कृषिजोवियोंको रुपये कर्ज लगा कर बहुत मूढ़ लेने लगे। अतः समस्त प्रजामण्डली उनके अत्या-चारसे न'ग त'ग आ गई। गङ्गानारायण इतने दिनोंसे उनके दोषको खोजमें ही थे। ऐसे अत्याचारी माधवराय-के विरुद्ध उदत्त प्रजामण्डलीको खड़ा करना सहज जान कर वे उन्हें उन्ने जित करने लगे। एक एक कर सैकड़ों मनुष्योंने उनका साथ दिया। सभी एक स्वरसे कहने लगे, कि जब तक ऐसे दुष्ट व्यक्ति राजसंसारसे न निकाल दिये जायं, तब तक चैन नहीं। ऐसा निश्चय करके घटवाल सरदारोंने गङ्गानारायणके साथ जा कर माधवसिंह पर चढ़ाई कर दी और उन्हें पकड़ कर एक पर्वतके समीप ले जा एक सुतीक्ष्ण तीरसे उनका काम तमाम कर दिया।

माधवसिंहको हत्याके बाद बराहभूममें फिरसे लूट पाट होना शुरू हो गया। लोभके वशीभूत हो कर घोर

घोर सारा चूयाड़सम्प्रदाय एकत्रित हुआ। अनन्तर चतुष्पार्श्वस्थ सामन्तराज्ययासी अन्यान्य चूयाड़ भी उनके दलमें आ मिले। इस प्रकार दलपुष्ट हो कर गङ्गानारायणने बड़ाबाजारका राजप्रासाद, मुनसफ-कच-हरी और पुलिसखाना पर चढ़ाई की और उन्हें लूटा। किन्तु सिर्फ दो ही सिपाही उनके हाथसे मारे गये, बाकी सबके सब भागे।

उस समय सारा जङ्गलमहाल गङ्गानारायणके हाथ आया। उस विष्टङ्गलताके समय वे ही एक हत्ता कर्ता थे। उस समय लुण्ठनयोग्य ऐसा कोई भी स्थान न था जिसने उनका कठोर निष्पीडन सह्य न किया हो। १८३२ ई०के अप्रेलसे नवम्बर तक गङ्गानारायण विना किसी रोक टोकके विद्रोहाचरण करनेमें समर्थ हुए। अनन्तर उनका दमन करनेके लिये अङ्गरेजोंने ३ दल पदाति सेना और ८ कमान भेजे। पहले कई एक छोटी छोटी लड़ाई-में तो अङ्गरेज हार गए; किन्तु गोलेके सामने अधिक देर तक न ठहर सकनेके कारण वे पर्यत पर भाग चले।

किन्तु अङ्गरेजीसेनाने उनका पीछा नहीं छोड़ा और अन्तमें गङ्गानारायण दलबलके साथ सिंहभूम प्रदेश लाये गये। यहां उन्होंने दुई मनीष लर्खा जातिको अपने दलमें लानेको चेष्टा की। उसी समय खर्सावानके ठाकुर सर-दारके साथ उनका विरोध चलता था। उन्होंने गङ्गा-नारायणसे कहा, कि यदि वे खर्सावानका दुर्ग अधिकार कर उनके किये हुए अपमानका बदला दे सकें, तो वे सबके सब उन्हींके जैसे वीरके हाथ आत्मसमर्पण कर सकते हैं। किन्तु दुर्ग पर आक्रमण करनेके समय गङ्गा-नारायणको मृत्यु हो गई। खर्सावानराजने उनका सिर अङ्गरेज सेनापति यूटकिनसनके पास रिशवत भेज दा।

खर्सावानपतिने गङ्गानारायणका सिर भेजनेके समय अङ्गरेज सेनापतिको जो पत्र भेजा था, उसमें इन भूमिजोंका सामाजिक इतिहास वर्णित है। उन्होंने लिखा है, कि भूमिजोंके इस देशमें आनेका कोई प्रसङ्ग नहीं है। छोटानागपुरके मुण्डाओंके साथ इनका कोई विशेष पार्ष्ण्य देखनेमें नहीं आता। विषाद, एक साथ भोजन या उपवेशन प्रभृति विषयमें उनका कोई भेदाभेद नहीं

है। पूर्वाञ्चलवासी भूमिजगण हिन्दुओंके साथ रह कर ऐसे उन्नत हो गए, कि वे अपनेको उनके सम्पर्कीय बोलनेमें भी घुणा मानते हैं। धलभूमके भूमिजगण अपनेको स्थानीय आदिम अधिकारो बनलाते हैं। वे मुण्डा, हो या सन्धाल प्रभृतिके साथ कोई सख्य स्वीकार नहीं करते।

बङ्गालके अधिकांश पार्वत्य प्रदेशोंमें ये ही लोग पाये जाते हैं। बाघमण्डीके राजाके सिवा दूसरे सभी अपनेको राजपूत या क्षत्रियवंशसम्भूत बतलाते हैं। अपना क्षत्रित्व प्रतिपादनरूप उद्देश्यसिद्धिके लिए उन्होंने किसी विशिष्ट वंशमें न जा कर स्वतन्त्र वंशकाहिनी प्रचार की है। घराहभूमका राजवंश-विवरणोसे पता चलता है, कि नाथवराह और केशवराह नामक दो विराट राजपुत्र पितासे लड़ाई कर राजा विक्रमादित्यके आश्रयमें पहुंचे। राजा विक्रमादित्यने कनिष्ठ केशवराहके आचरणसे रंज हो कर उसको आरसे चौर देनेका आदेश दिया और स्वयं उसके लेहसे बड़ेके सिरमें राज-टोका तथा राजछल प्रदान किया। बाद उन्होंने नाथ-वराहसे कहा, "एक दिन रातमें तुम घोड़े पर चढ़ कर जितनी दूर जा लाँट आओगे, उतनी दूर तकका मैं तुम्हें अधिकारी बनाऊंगा।" उसी समयसे घराहभूमराज्यकी उत्पत्ति हुई। वरामुम देखो।

दो एकको छोड़ कर सिंहभूम और मानभूमके अधिकांश घटवाल इसी भूमिजजातिके हैं। धलभूमके राजवंश अपनेको क्षत्रिय बतलाते हैं, किन्तु उनकी वंशकहानीसे प्रकृत विवरण फलक जाता है। प्रवाद है, कि पाँचैट राज्यसे रङ्गिनी नामक कालीमूर्त्ति प्रस्थानके समय एक घोवीके घर ठहरी। देवी उस घोवी पर बड़ी प्रसन्न हुई और अपने परिवार-देवताओंमेंसे एक योगिनी ब्राह्मणीके साथ उसका विवाह कर दिया। उसी स्त्रीके गर्भसे धलभूमराजवंशको उत्पत्ति हुई है।

इससे यह अनुमान किया जाता है, कि धलभूमके किसी भूमिज-सरदारने ब्राह्मणको ठग कर पुर्बल्यिके निकटवर्ती पारा-ग्रामसे पाँचैट राजकुलदेवी रङ्गिनीको हरण कर अपनी राजलक्ष्मीके रूपमें प्रतिष्ठा की। धलभूमवासी सभी श्रेणिके लोग इस देवी-

इस जातिके मध्य बहुतेसे मनुष्य धनी देखे जाते हैं। सरदार घटवालगण छोटे छोटे जमोंद्वारा या तालुकदारकी तरह हैं। सरदार अधिकृत भूमि बन्दोबस्त ले कर जो सब घटवाल उक्त सरदारके अधीन रहते हैं, वे जातदार कहलाते और साधारणतः कृषिविधा द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं। इनका आचार व्यवहार तथा रीति नीति बङ्गालियोंसी बहुत कुछ मिलती जुलती है। कोल, मुण्डा, सन्धाल और हो प्रभृति जातिकी अपेक्षा ये परिच्छन्नसमायके हैं। किन्तु दुःखकी बात है, कि अब भी किसी काममें वे अपनी पूर्वजन अनार्य रीतिका ही अनुसरण करते हैं।

इनमें असंख्य थोक पाये जाते हैं, उनमें स्थान विशेषसे कई एक प्रधान और दूसर सभी अप्रधान गिने जाते हैं। एक स्थानके भूमिजगण दूसरे स्थानमें जा बस जाने पर भी वे पूर्व ग्रामी कह कर ही अपना परिचय देते हैं। इस प्रकार उनमें अनेक दल हो गये हैं।

खगोद या श्रेणीमें ये विवाह नहीं कर सकते, किन्तु निकटवर्तीय सम्बन्धमें ३ या ५ पीढ़ी छोड़ कर विवाह करनेमें कोई बाधा नहीं है। अभी बालिकाविवाह प्रचलित होने पर भी ये युवती कन्याके साथ विवाह करना भी अनुचित नहीं समझते। अविवाहिता कन्याके श्रुतमती होने पर भी वे इसकी परवाह नहीं करते। विवाहके

मूर्त्तिकी उपासना करते हैं। मनुष्य-रक्तसे देवी तृप्त होती थी, अतः प्रतिवर्ष विन्ध्यपर्वत पर मनुष्य अशोध यज्ञको सुलावेमें डाल कर देवीके सामने बलि देते थे। लगभग १८६५ ई० तक यहाँ नरयज्ञोत्सव प्रवाहित रहा। इसके साथ साथ विन्ध्यपर्वत पर अनुष्ठित एक दूखरे तृशंस व्यापारका भी लोप हो गया। उस समय अधिवासिगण दो जंगली भैंसको खदेड़ कर निर्दिष्ट वेष्टमीके निकट (काष्ठप्राचीर-परिषेधित एक रङ्गभूम) लाते थे। उवक चारों ओर मवान पर राजा और राजपरिवारस्थ व्यक्ति बैठ रहते थे। यथाविहित पूजादि अनुष्ठानके बाद राजा और राजकुलपुरोहित सबसे पहले बसके उद्देश्यसे दोनों भैंसोंके ऊपर तीर केंधते थे। बाद इसके बहाँ बैठ हुए दूसरे भी एक एक कर उन्नत दोनों भैंसों पर तीर चलाते थे और वे भैंस मारे दुःखके बड़े जोरसे बिछाते और धीरे धीरे वेदोश हो जाते थे। बादमें सभी नीचे उतरते और कुटाराघातसे उन्हें मार देते थे।



पटरानीने अपने दयःकनिष्ठ पुत्रके बदले सर्वांग्रज मध्यमा-  
पताके पुत्रको ही सिंहासन पर अभिषिक्त करनेको गव-  
में एतने कहा। किन्तु भूमिजोंको ऐसी न्यायपंरता अच्छी  
न ज'नी, अतः वे विद्रोह विरक्तिके साथ अङ्गरेजोंके  
विषुद्ध खड़े हुए। यह विद्रोह अन्तमें बडा ही विपत्तिकर  
हो उठा। यहाँ १८३२ ई०का गङ्गानारायण या चूयाड़-  
विद्रोह कहलाता है।

पूर्वोक्त पटरानीके पुत्र लक्ष्मणसिंह सिंहासनलाभ-  
को भागामें अपने गड़े भाईके विरुद्ध खड़े हुए। उपर्यु-  
परि ऐसे उपद्रवसे विरक्त हो कर राजाने उन्हें कैद कर  
लिया। कारागारमें लक्ष्मणसिंहकी मृत्यु हुई। उनके  
एकमात्र पुत्र गङ्गानारायण पिताके प्रति किये गये अत्या-  
चारका प्रनिशोध लेनेके लिये वच रहे।]

अनन्तर राजा रघुनाथसिंहकी मृत्युके बाद सुप्रिम-  
कोर्टके विचारानुसार पुनः पटरानीके कनिष्ठ पुत्र माधव-  
सिंहकी छोड़े मध्यमा पत्नीके ज्येष्ठ पुत्र सिंहासन पर  
विठाये गये। जब माधवसिंहने देखा, कि अङ्गरेज सर-  
कारको मना करने पर भी कोई फल न निकला, तब वे  
अपने भाग्य पर ही निर्भर रहे। अन्तमें भ्रातृराज्यमें  
दीवान या प्रधान मन्त्रिपद पर नियुक्त हो कर उन्होंने  
अपना चित्त स्थिर किया। इस काममें रह कर वे व्यव-  
सायी तथा कृषिजीवियोंको रुपये कर्ज लगा कर बहुत  
सूद लेने लगे। अतः समस्त प्रजामण्डली उनके अत्या-  
चारमें तंग तंग आ गई। गङ्गानारायण इतने दिनोंसे  
उनके दोषको खोजमें ही थे। ऐसे अत्याचारी माधवराय-  
के विरुद्ध उदत्त प्रजामण्डलीको खड़ा करना सहज जान  
कर वे उन्हें उत्तेजित करने लगे। एक एक कर सैकड़ों  
मनुष्योंने उनका साथ दिया। सभी एक स्वरसे कहने  
लगे, कि जब तक ऐतने दुष्ट व्यक्ति राजसंसारसे न  
निकाल दिये जाय, तब तक चैन नहीं। ऐसा निश्चय  
करके घटवाल सरदारोंने गङ्गानारायणके साथ जा कर  
माधवसिंह पर चढ़ाई कर दी और उन्हें पकड़ कर एक  
पर्वतके समीप ले जा एक सुतोक्षण तीरसे उनका काम  
तमाम कर दिया।

माधवसिंहकी हत्याके बाद घराहभूममें फिरसे लूट  
पाट होना शुरू हो गया। लोभके वशीभूत हो कर धीरे

धीरे सारा चूयाड़सम्प्रदाय एकत्रित हुआ। अनन्तर  
चतुष्पार्श्वस्थ सामन्तराज्यवासी अन्यान्य चूयाड़ भी  
उनके दलमें आ मिले। इस प्रकार दलपुष्ट हो कर  
गङ्गानारायणने बडावाजारका राजप्रासाद, मुनसफ-कच-  
हरी और पुलिसखाना पर चढ़ाई की और उन्हें लूटा।  
किन्तु सिर्फ दो ही सिपाही उनके हाथसे मारे गये, बाकी  
सबके सब भागे।

उस समय सारा जङ्गलमहाल गङ्गानारायणके हाथ  
आया। उस विघ्नङ्गलताके समय वे ही एक हर्ता कर्ता  
थे। उस समय लुण्ठनयोग्य ऐसा कोई भी स्थान न था  
जिसने उनका कठोर निषेधन सह्य न किया हो। १८३२  
ई०के अप्रैलसे नवम्बर तक गङ्गानारायण बिना किसी  
रोक टोकके विद्रोहाचरण करनेमें समर्थ हुए। अनन्तर  
उनका दमन करनेके लिये अङ्गरेजोंने ३ दल पदाति सेना  
और ८ कमान भेजी। पहले कई एक छोटी छोटी लड़ाई-  
में तो अङ्गरेज हार गए; किन्तु गोलैके सामने अधिक  
देर तक न ठहर सकनेके कारण वे पर्वत पर-भाग  
चले।

किन्तु अङ्गरेजीसेनाने उनका पीछा नहीं छोड़ा और  
अन्तमें गङ्गानारायण दलबलके साथ सिंहाभूम प्रदेश लाये  
गये। यहाँ उन्होंने दुर्दृ मनोय लड़ा जातिको अपने दलमें  
लानेको चेष्टा की। उसी समय खर्सावानके डाकुर सर-  
दारके साथ उनका विरोध चलता था। उन्होंने गङ्गा-  
नारायणसे कहा, कि यदि वे खर्सावानका दुर्ग अधिकार  
कर उनके किये हुए अपमानका बदला दे सकें, तो वे  
सबके सब उन्हींके जैसे धीरके हाथ आरमसमर्पण कर  
सकते हैं। किन्तु दुर्ग पर आक्रमण करनेके समय गङ्गा-  
नारायणको मृत्यु हो गई। खर्सावानराजने उनका सिर  
अङ्गरेज सेनापति यूल्किनसनके पास रिशवत भेज दा।

खर्सावान पतिने गङ्गानारायणका सिर भेजनेके समय  
अङ्गरेज सेनापतिको जो पत्र भेजा था, उसमें इन  
भूमिजोंका सामाजिक इतिहास वर्णित है। उन्होंने लिखा  
है, कि भूमिजोंके इस देशमें आनेका कोई प्रसङ्ग नहीं है।  
छोटानागपुरके मुण्डाओंके साथ इनका कोई विशेष  
पार्थक्य देखनेमें नहीं आता। विवाह, एक साथ भोजन  
या उपवेशन प्रभृति विषयमें उनका कोई भेदाभेद नहीं

हैं। पूर्वाञ्चलवासी भूमिजगण हिन्दुओंके साथ रह कर ऐसे उन्नत हो गए, कि वे अपनेको उनके सम्पर्कीय बोलनेमें भी घृणा मानते हैं। धलभूमके भूमिजगण अपनेको स्थानीय आदिम अधिकारो बतलाते हैं। वे मुण्डा, हो या सन्ध्याल प्रभृतिके साथ कोई संशय स्वीकार नहीं करते।

बङ्गालके अधिकांश पार्वत्य प्रदेशोंमें ये ही लोग पाये जाते हैं। बाघमण्डोके राजाके सिवा दूसरे सभी अपनेको राजपूत या क्षत्रियवंशसम्भूत बतलाते हैं। अपना क्षत्रित्व प्रतिपादनरूप उद्देश्यसिद्धिके लिए उन्होंने किसी विशिष्ट वंशमें न जा कर स्वतन्त्र वंशकाहिनी प्रचार की है। बराहभूमका राजवंश-विवरणोसे पता चलता है, कि नाथबराह और फेगबराह नामक दो विराट राजपुत्र पितासे लड़ाई कर राजा विक्रमादित्यके आश्रयमें पहुँचे। राजा विक्रमादित्यने कनिष्ठ केशवराहके आचरणसे रंज हो कर उसको आरसे चौर देनेका आदेश दिया और स्वयं उसके लैहूसे बड़े के सिरमें राज-टीका तथा राजछत्र प्रदान किया। बाद उन्होंने नाथ-बराहसे कक्षा, "एक दिन रातमें तुम घोड़े पर चढ़ कर जितनी दूर जा लौट आओगे, उतनी दूर तकका मैं तुम्हें अधिकारी बनाऊँगा।" उसी समयसे बराहभूमराज्यको उत्पत्ति हुई। बराहभूम देखो।

दो एकको छोड़ कर सिंहभूम और मानभूमके अधिकांश घटवाल इसी भूमिजजातिके हैं। धलभूमके राजवंश अपनेको क्षत्रिय बतलाते हैं, किन्तु उनकी वंशकहानीसे प्रकृत विवरण झूठक जाता है। प्रवाद है, कि पाँचेट राज्यसे रङ्गिनी नामक कालीमूर्त्ति प्रस्थानके समय एक घोबीके घर ठहरी। देवी उस घोबी पर बड़ी प्रसन्न हुई और अपने परिवार-देवताओंमेंसे एक योगिनी प्राङ्गणीके साथ उसका विवाह करा दिया। उसी स्त्रीके गर्भसे धलभूमराजवंशको उत्पत्ति हुई है।

इससे यह अनुमान किया जाता है, कि धलभूमके किसी भूमिज-सरदारने ब्राह्मणको ठग कर पुर्कलयाके निकटवर्ती पाराभासे पाँचेट राजकुलदेवी रङ्गिनीको हरण कर अपनी राजलक्ष्मीके रूपमें प्रतिष्ठा की। धलभूमवासी सभी श्रेणिके लोग इस देवी-

इस जातिके मध्य बहुत-से मनुष्य धनी देखे जाते हैं। सरदार घटवालगण छोटे छोटे जमोंदार या तालुकदारकी तरह हैं। सरदार अधिकृत भूमि बन्दोबस्त ले कर जो सब घटवाल उक्त सरदारके अधीन रहते हैं, वे जातदार कहलाते और साधारणतः कृषिविद्या द्वारा जीविका निर्वाह करते हैं। इनका आचार व्यवहार तथा रीति नीति बङ्गालियोंसी बहुत कुछ मिलती जुळती है। कोल, मुण्डा, सन्ध्याल और हो प्रभृति जातिकी अपेक्षा ये परिच्छन्नब्रह्माण्डके हैं। किन्तु दुःखकी बात है, कि अब भी किसी काममें वे अपनी पूर्वजतन अनार्य रीतिका ही अनुसरण करते हैं।

इनमें असंख्य थोक पाये जाते हैं, उनमें स्थान विशेषसे कई एक प्रधान और दूसर सभा अप्रधान गिने जाते हैं। एक स्थानके भूमिजगण दूसरे स्थानमें जा बस जाने पर भी वे पूर्व ग्रामो कह कर ही अपना परिचय देते हैं। इस प्रकार उनमें अनेक दल हो गये हैं।

खगोल या श्रेणोमें ये विवाह नहीं कर सकते, किन्तु निकटवर्तीय सम्वन्धमें ३ या ५ पीढ़ी छोड़ कर विवाह करनेमें कोई बाधा नहीं है। अभी वालिकाविवाह प्रचलित होने पर भी वे युवती कन्याके साथ विवाह करना भी अनुचित नहीं समझते। अविवाहिता कन्याके ऋतुमती होने पर भी वे इसकी परवाह नहीं करते। विवाहके

मूर्त्तिकी उपासना करते हैं। मनुष्य-रक्तसे देवी तृप्त होती थी, अतः प्रतिवर्ष विन्ध्यपर्वत पर मनुष्य अन्नोप बचोको मुलावेमें डाल कर देवीके सामने बलि देते थे। लगभग १८६५ ई० तक यहाँ नरबलिसेव प्रवाहित रहा। इसके साथ साथ विन्ध्यपर्वत पर अनुष्ठित एक दूबरे नृशंस व्यापारका भी लोप हो गया। उस समय अधिवासिगण दो जंगली भैंसोंको खदेड़ कर निर्दिष्ट पेटमीक निकट (काष्ठप्राचीर-परिवेष्टित एक रङ्गभूम) जाते थे। उसके चारों ओर मचान पर राजा और राजपरिवारस्य व्यक्ति बैठे रहते थे। यथाविहित पूजादि अनुष्ठानके बाद राजा और राजकुलपुरोहित सबसे पहले बलके उद्देश्यसे दोनों भैंसोंके ऊपर तीर फेंकते थे। बाद इसके बहाँ बैठे हुए दूसरे भी एक एक कर उन्नत दोनों भैंसों पर तीर चलाते थे और वे भैंसें मारे दुःखके बड़े जोरसे चिंहाते और धीरे धीरे बहोम हो जाते थे। बादमें घनी नीचे उतरते और कुठाराघातसे उन्हें मार देते थे।

पूर्व यदि किसी पुरुषके मंत्रव्रतने सुवती गमिणी हो जाय, तो उसी पुरुषको उसके साथ विवाह करना पड़ता है। इनमें बहुत विवाह और विधवाविवाह भी प्रचलित हैं। स्त्रीका चालचलन मराय होनेसे उसे छोड़ देनेकी विधि है। बड़ा लड़का हो पितृसम्पत्तिका अधिक भाग पाता है और बाकी दूसरेको थोड़ा थोड़ा मिलता है।

काली या महामायाकी पूजामें ये विशेष भक्ति दिखलाने हैं। सिद्धोद्गा या धर्म नामक वे जस्यदाता सूर्यको भी पूजा करते हैं। ये लोग जवदेहको जलाते हैं। मुष्मन्तिके बाद मुष्मन्निदाना पुरुष घर लौट जाता है और मृतकी पत्नी तथा परिवारस्थ अन्य स्त्रियां वहां फलसोमें जल ला उपस्थित होती हैं। चित्ताग्नि जल जाने पर स्त्रियां फलसोके पानीसे धाग बुन्ना देतीं और बाद सबके सब घर लौटती हैं। ये दशवे दिन क्षीरकर्म और ग्यारहवें दिन श्राद्ध करते हैं। घटवाल भूमिजोंमेंसे अनेक सैनिकके काम भी करते हैं।

**भूमिज-गुग्गुलु** ( सं० पु० ) भूमिजो गुग्गुलुः । आशापुर गुग्गुलु । पर्याय—द्वैत्यमेदज, दुर्माह, आशापुरसम्भव, मज्जार, मेदज, महिषासुरसम्भव । गुण—तिक, कटु, कफघातनाशक, मेध्य, भूतघ्न और सुगन्धप्रद । (राजनि०)

**भूमिजम्बु** ( सं० स्त्री० ) भूमिजाता जम्बुः । क्षुद्र जम्बु, छोटा जामुन । पर्याय—नादेयिका, नादेयी, भूजम्बु, भूमिजम्बुका, काकजम्बु, शीतपल्लवा, ह्रस्वफला, भृङ्गवहभा, हत्वा, चमरेष्टा, पिकमक्षा, काष्ठजम्बु । गुण—कषाय, मधुर, श्लेष्मपित्तनाशक, रुचिकर, संग्राहक, हृदय और कण्ठदोषनाशक, धीर्यकर और पुष्टिचर्दक । (राजनि०)

**भूमिजम्बु** ( सं० स्त्री० ) भूमिजाता जम्बुरिति मध्यपदलोपिकर्मधा० । भूजम्बु, छोटा जामुन ।

**भूमिजम्बुका** ( सं० स्त्री० ) स्वनाम-प्रसिद्ध वृक्षभेद । हिमालय पर्वतके पाददेश कुमायुनसे ले कर भूदानपर्यन्त विस्तृत स्थानोंमें तथा दक्षिणभारतमें यह वृक्ष देखनेमें आता है। इसकी जड़का काढ़ा वातरोगमें विशेष उपकारो है।

**भूमिजा** ( सं० स्त्री० ) भूमिज टापू । सीता ।

**भूमिजीविन्** ( सं० पु० ) भूम्या तत्कर्मणादिना जीवतीति जीव-णिनि । १ वैश्व । २ रुचिजीवी, वेतिहर ।

**भूमिजय** ( सं० पु० ) राजा विराटके एक पुत्रका नाम । **भूमिजुम्बुर** ( सं० स्त्री० ) स्वनाम प्रसिद्ध एक प्रकारका छोटा क्षुप । ग्राम्यप्रधान भारतके नदी-किनारे, सिहल में तथा ब्रह्मके आवासे तेनासेरिम पर्यन्त विस्तृत स्थानमें यह वृक्ष पाया जाता है। संस्कृतमें इसे त्रायमाणा कहते हैं। इसके कच्चे रेशेका रस सेवन करनेसे शूलवेदना जाती रहती है। पत्तेका रस दूधके साथ मिला कर पीनेसे उदगमय नष्ट होता है। धनिषेके साथ निकरेशेको छालना काढ़ा कासरोगप्रस्त रोगीको पिलानेमें भारो उपकार होता है।

**भूमितल** ( सं० स्त्री० ) भूतल, पृथ्वीका ऊपरी भाग ।

**भूमितुण्डिक** ( सं० पु० ) जनपदभेद ।

**भूमित्व** ( सं० स्त्री० ) भूमेर्भावः त्व । भूमिका भाव या धर्म ।

**भूमिदण्ड** ( हिं० पु० ) साधारण दण्ड या डंड नामकी कसरत जो दोनों हाथ जमान पर टेक कर और शर-बार उन्दीं हाथोंके बल झुक और उठ कर की जाती हो ।

डंड देने ।

**भूमिदण्डा** ( सं० स्त्री० ) महिला पुष्पवृक्ष, चमेला ।

**भूमिदाडिम्य** ( सं० स्त्री० ) स्वनाम प्रसिद्ध लोहितवर्ण गुल्मभेद । (Cureyherbaecen) कुमायुनके तराई-प्रदेशसे ले कर आसाम और चट्टग्रामके पहाड़ीप्रदेशमें तथा बङ्गाल, अयोध्या और मध्य प्रदेशके समतल क्षेत्रमें फाल्गुन और चैत्रमासमें यह वृक्ष उत्पन्न होते देखा जाता है।

**भूमिदान** ( सं० स्त्री० ) हिन्दुशास्त्रात्क दानभेद । श्राद्धादि कर्ममें तथा प्रतविशेषमें ब्राह्मणकी भूमिदान करनेकी विधि है। धान्यपूर्ण क्षेत्रदान महापुण्यजनक है।

( भूमि इन्द्र देने ।

**भूमिदुन्दुभि** ( सं० पु० ) चर्माच्छादित भूतर्चा । ( वैदिक )

**भूमिदेव** ( सं० पु० ) भूमी देव इव, भूम्या देवो वा । १ ब्राह्मण । २ राजा ।

**भूमिधर** ( सं० पु० ) धरतीति भू-धच् । भूम्या धरः । १ कुल-पर्यंत । २ पर्यंतमात ।

**भूमिप** ( सं० पु० ) भूमिं पाति रक्षतीति पा-(भानोऽनुप्रायो-कः । पा ३।२।३) इति क । राजा, भूपति ।

भूमिपक्षः (सं० पु०) भूमिः पक्ष इव यस्य । वाताश्व ।  
भूमिपति (सं० पु०) भूम्याः पतिः । भूमिनाथ, राजा ।  
भूमिपतित्व (सं० क्ली०) भूमिपतेर्भावः, त्व । भूपतिका  
भाव या धर्म ।

भूमिपाल (सं० पु०) भूमिपालय-नीति पालि-अण् ।  
राजा ।

भूमिपाल—उमाङ्गाधिपति चन्द्रवंशीय एक राजा ।  
विहार प्रदेशके उमगा नगरमें उनकी राजधानी थी ।

भूमिपालक—सह्याद्रिवर्णित एक राजा ।

भूमिपाश (सं० पु०) वृक्षभेद ।

भूमिपिशाच (सं० पु०) भूमौ पिशाच इव, तद्रदाकृति-  
मत्वात् । तालवृक्ष, ताड़का पेड़ ।

भूमिपुत्र (सं० पु०) भूम्याः पुत्रः । १ मङ्गलग्रह । २  
नरकासुर । ३ श्योणाक वृक्ष ।

भूमिपुत्री (सं० स्त्री०) सीता, जानकी ।

भूमिपुरन्दर (सं० पु०) १ राजा । २ दिल्लीपका एक  
नाम ।

भूमिश्रविभाग (सं० पु०) भूम्याः प्रविभागः । सुश्रुतोषत  
औषधाङ्ग भूमिविभाग । किस भूमिसे कौसी औषध  
संग्रह करने होगी, सुश्रुतमें इसका विशेष विचरण लिखा  
है । भूमि शब्द देखो ।

भूमिभाग (सं० पु०) भूम्यङ्ग, स्थान, जगह ।

भूमिभुज (सं० पु०) भूमि भुनक्ति भुज-क्विप् । राजा ।

भूमिभृत् (सं० पु०) भूमि-भृ क्विप्, तुक् च । १ राजा ।  
२ पर्वत ।

भूमिभेदिन् (सं० त्रि०) १ भूमिभेदकारक । २ भूमिसे  
पृथक्-कारी ।

भूमिमण्ड (सं० पु०) भूमि मण्डयति भूपवतीति मङ्गि-  
अण् । अष्टपादिका लता ।

भूमिमण्डन—सह्याद्रिवर्णित एक राजा ।

भूमिमण्डपभूषणा (सं० स्त्री०) भूमि मण्डपं भूपवतीति  
भूषि-न्नु टाप् । माधवी लता ।

भूमिमन् (सं० त्रि०) भूमि अस्त्यर्थे मत्तुप् । भूमियुक्त,  
जिसे भूमि हो ।

भूमिमित्र (सं० पु०) मित्रवंशीय राजभेद ।

भूमिया (हि० पु०) १ भूमिका अधिकारी, भूमिका असल  
मालिक । २ ग्रामदेवता । ३ जमींदार । ४ किसी  
देशके प्राचीन आर मुख्य निवासी ।

भूमिरक्षक (सं० पु०) रक्षतीति रक्ष-ण्वुल्, भूमे रक्षकः  
गमनकाले भूमेरुपरि पादा-प्रदानात् तथात्वं । १  
वाताश्व । २ भूमिरक्षाकारी ।

भूमिरुद (सं० पु०) भूमि-रुह-क । वृक्ष ।

भूमिलम्ना (सं० स्त्री०) शुक्ल गोकर्णा, सफेद फूलकी  
अपराजिता ।

भूमिलता (सं० स्त्री०) १ गङ्गुपुष्पीलता । २ किञ्चु-  
लुका ।

भूमिलवण (सं० क्ली०) मृत्तिकावण, सोरा ।

भूमिलाभ (सं० पु०) भूमे लामोऽत् । १ मृत्तु । २ भूमि-  
प्राप्ति, भूमिकांलाभ ।

भूमिलेपन (सं० षली०) भूमिलिप्यतेऽनेनेति लिप-न्सुट् ।  
१ गोमय, गोबर । २ भूमिका लेपन ।

भूमिलोक (सं० पु०) पृथिवीलोक ।

भूमियर्दन (सं० पु० क्ली०) भूमि चतुर्ध्वतेऽनेनेति घृ-  
णिच्-ल्युट् । मृत शरीर, शव ।

भूमिवह्नी (सं० स्त्री०) माकण्डिका लता, भुदंभांवल।

भूमिग्राय (सं० पु०) भूमौ शेते शो-अच् । १ बालक । २  
वनचटक । ३ भूमिशयन ।

भूमिगय्या (सं० स्त्री०) भूमिरेव गय्या । भूमिरूपगय्या,  
मृत्तिकागय्या ।

भूमिष्ट (सं० त्रि०) भूमौ तिष्ठति स्था-क, अस्यादित्वात्  
पठ्वं । १ प्रणत । २ भूमि पर पतित, पृथिवी पर  
गिरना । ३ जात, उत्पन्न ।

भूमिसल (सं० क्ली०) भूमिदान-रूपं सलं, मध्यपदलोपि-  
कर्मधा० । भूमिदानरूपी यज्ञ । महाभारतमें लिखा है—

“इनुमिः सदितां भूमिं ययगोधूमशालिनीम् ।  
गोऽश्ववाहनपूर्णां वा बाहुवीर्यां दुपार्जिताम् ॥  
निधिगतां ददद् भूमिं सर्वरत्नपरिच्छेदाम् ।  
अन्नधानं जग्ने लोकात् भूमिगन्धं हि तस्य तत् ॥”

(भारत अनुशासनप० ६२ अ०)

बाहुवीर्यं द्वारा उपार्जितां शस्यशालिनीं भूमिदान

करनेका नाम ही भूमिसल है। इस यज्ञके करनेवाले अक्षय लोकको प्राप्त होते हैं।

भूमिसे घस, रत्न, पशु और धान्य तथा यव आदि शस्य उत्पन्न होते हैं। धतपय इहलोकमें भूमिदानकी अपेक्षा उत्कृष्ट दान और कोई भी दान नहीं है। भूमिदाता बहु काल तक समृद्धिशाली हो परमसुखसे कालयापन करते हैं।

जिनने पूर्वजन्ममें भूमिदान किया है, वे ही परजन्ममें भूमिभोग कर सकते हैं। भूमिदान करनेसे तपस्या, यज्ञ, विद्या, सुशीलता, अलोभ, सत्यवादिता, देवाचरणा, गुण शुश्रुषा तथा स्वर्ण, रजत, वस्त्र और मणिमुक्ता आदि विविध धनदानका फल होता है। अनुगामनपर्वके ६२वें अध्यायमें भूमिदानका विशेष विवरण लिखा है, विस्तार हो जानेके भयसे यहां पर कुल नहीं लिखा गया।

भूमिसम्पुट (सं० पु०) शरावादि।

भूमिसम्भवा (सं० स्त्री०) भूमेः सम्भवा उत्पत्तिर्यस्याः। सीता।

भूमिसर (सं० पु०) श्यामाक नृण।

भूमिसव (सं० पु०) प्रात्यस्तोम यज्ञभेद।

भूमिसुत (सं० पु०) भूमेः सुतः। १ मङ्गल। २ नरक। ३ सुर। ४ वृक्ष, पेड़। ४ कौञ्च, फेवाँच।

भूमिसुता (सं० स्त्री०) सीता, जानकी।

भूमिसुर (सं० पु०) ब्राह्मण।

भूमिसेन (सं० पु०) दग्धमनुके एक पुत्रका नाम।

भूमिस्तोम (सं० पु०) एकाहसाध्य यज्ञभेद, एक दिनमें सप्तयज्ञ होनेवाला एक प्रकारका यज्ञ।

भूमिस्तु (सं० पु०) भूमिकोट।

भूमिस्पृश (सं० पु०) भूमिस्पृशतीति स्पृश (स्पृशाऽनुदके क्तिप्। पा ३।२।५८) इति क्तिप्। १ मनुष्य। २ वैश्य।

३ चौरविशेष। ४ अन्ध। ५ खड्ग।

भूमिस्पर्शा (सं० पु०) उपासनाके लिए वीरोंका एक आसन। इसे घञ्जासन भी कहते हैं।

भूमिस्पर्शमुद्रा (सं० स्त्री०) भूमिस्पर्श देखो।

भूमिहार—विहारप्रदेशवासी एक श्रेणीके ब्राह्मण। ये लोग भूँइहार, जमींदार, वामन, मघदिया ब्राह्मण, अयशरू ब्राह्मण और चीपरी नामसे जनसारधानमें प्रसिद्ध हैं। इस

जातिकी उत्पत्ति-कथासे (१) इनका नीचजातित्व कल्पित होने पर भी शारीरिक गठन और उदारप्रकृति देखनेसे इन्हें नीचवंशोद्भव नहीं कहा जा सकता। पर हां, इतना जरूर है, कि ये लोग बहु कालसे ब्राह्मणकी यजनयाजनादि वृत्तिका परित्याग कर भूमिरक्षा और कृषिकार्यादि द्वारा कालयापन करने आये हैं। समय समय पर ये लोग क्षत्रियोचित गुणविग्रहोदि द्वारा अपने अधिकारको कायम रखनेके लिये भी विशेष चेष्टा करते हैं। यज्ञालके 'वारभू'या' नामक प्रसिद्ध राजा वा जमींदारोंने एक समय बड़ी वीरतासे मुसलमान राजाओंका मुकाबला किया था। भूमिवृत्तिसे उन लोगोंका जिस प्रकार 'भूमिक' नाम पड़ा, विहारमें ये लोग भी उसी तरह 'भूँइहार' वामन या वामन नामसे पूर्व ब्राह्मण नामका परिचय देते हैं। वाराणसी, वेतिया और मगधके अन्तर्गत टिकारीके ब्राह्मण राजवंश इसी वामनवंश-सम्भूत हैं।

अरापे, अधिमिथ, चीवे, चीपरी, दीक्षित, डूवे, मवार, मिथ, ओम्हा, पञ्जोवे, पाण्डे, पाठक, गय, सद्द, श्रोती, ठाकुर, तिवारी और उपाध्याय प्रभृति इनकी वंशोपाधि हैं। इन लोगोंके मध्य तीन प्रकारके गोत्र

(१) इनकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें तरह तरहकी कथाएँ सुनी जाती हैं। परशुरामने वृषिबीको निम्नविय करके जिन ब्राह्मणोंको राज्यशासनका भार सौंपा था, उन्हेंके वंशधरोंने धीरे धीरे जातीयवृत्तिका परित्याग कर भूम्यधिकारित्व ग्रहण किया। किसी किसीका कहना है, कि पुत्रहीन अयोध्यापति अम्बरीषके यशमें जिस शुनःशोकको विश्वामित्र ऋषिने दयापरवश हो उत्तमर्गसे बचाया था, वही ब्राह्मण-वंशधरगण ब्रह्मभावहीन हो वामन कहलाये। बहुतेका कहना है, कि मगधपति जरासन्धके यशमें जब लाख ब्राह्मणोंकी उपस्थिति आवश्यक हुई, तब राजदीवान (एक अम्बध कायस्थ)ने कुछ निम्नश्रेणीके लोगोंको यशोपवीत दे कर राजाका अभिलाष पूर्ण किया। राजा इन लोगोंके असदृशभावको देख कर दीवान पर बड़े विगड़े। इस पर दीवानने उनके हाथको रखा ही खा कर राजाका सदेह दूर किया। ये ही लोग पीछे ब्राह्मण-समाजमें नहीं क्षिये जाने पर वामन या वामन नामक स्वतन्त्र समाजभुक्त हुए।

प्रचलित हैं (२) जिनमेंसे कुछ तो ऋषिके नाम पर, कुछ कार्य वा ध्यक्तिगत (३) और कुछ देशगत (४) हैं। इन लोगोंमें सगोत्रमें विवाह नहीं होता। यहां तक, कि कन्याकी माता और बरको माताका एक गोत्र हो, तो भी विवाह सम्बन्धमें बाधा पहुंचती है। किन्तु युक्तप्रदेशके भूमिहारोंमें ऐसी अवस्थामें कोई बाधा नहीं है। इन लोगोंमें बाल्यविवाह ही प्रचलित है। बालक यदि जवान हो जाय, तो कोई दोष नहीं, पर बालिकाके युवती होने पर दोष लगता है। एक पुरुष दो या दो से अधिक विवाह कर सकता है। विवाह-प्रथा प्रायः मैथिल, कनोजिया आदि उच्च श्रेणीके ब्राह्मणों सी है। सिन्दूरदान होनेसे ही विवाह सिद्ध होता है। ये लोग शवदेहको जलाते हैं। १० दिन तक अशीच रहता है, ११वें दिन धाद होता है। कनोजिया ब्राह्मण और कहीं मैथिल ब्राह्मण भी इनके पुरोहित होते हैं।

उच्च श्रेणीके ब्राह्मणके जैसे ये लोग धर्मकर्म करते हैं। इनमें वैष्णव, शाक्त और शैव साम्प्रदायिक उपासना प्रचलित है। साम्प्रदायिक क्रियाकलापमें अभिनिविष्ट रहने पर भी ये लोग कालोमाता और शीतलाकी पूजामें छाग चलि देते हैं तथा प्रति मङ्गलवारको हनुमानकी पूजा करते हैं।

स्थान विशेषमें इन लोगोंकी सामाजिक अवस्था विभिन्न है। दक्षिण-पूर्व बिहारमें ये लोग कायस्थसे हीन समझे जाते हैं। शाहाबाद, सारण और युक्तप्रदेशमें ये लोग राजपूत जातिके समान हैं। पटना और गयाके अम्यष्ट कायस्थ इनके हाथकी कच्ची रस्सोई खाते हैं, पर अन्य श्रेणीके कायस्थ नहीं खाते। उच्च श्रेणीके ब्राह्मणके साथ ये लोग एकल जल वा धूमपान नहीं करते हैं। राजपूतगण इनके हाथसे मट्टीके बरतनमें पानी-

(२) अग्निहोत्र, आधर्व, वाश्लिन्त, भरद्वाज, गर्ग, गोतम, दारोत, काश्यप, कौण्डिन, कौशिक, पराशर, सावर्य, शापिडह्य और वात्स्य।

(३) मूषवरात, चोमाद्रया, एकसेरिया, जलेवार, कोदारिया और पाचभाहया।

(४) यह प्रायः १६२ गोत्र है। यथा—ऐलवार, अम्बारिया, गौड़, शोषभरिया, गंभारिया, चौला प्रभृति।

पीते और खाद्यादि भक्षण करते हैं, किन्तु स्थलविशेषमें इसमें भी वैलक्षण्य देखा जाता है। ये लोग ब्राह्मणके हाथकी कच्ची पकी दोनों तथा राजपूतोंके हाथकी पकी रस्सोई खाते हैं। ये लोग अपने बालकोंको विहित मन्त्र द्वारा उपनयन-संस्कार देते हैं। शैव और शाक्तगण मङ्गलो खाते हैं, किन्तु वैष्णव निरामिवाशी हैं। मधुपान शास्त्रविरुद्ध है।

चारणसी, येतिया, टिकारी, हतोया, तमोखी शिव-हर और मधुवनके जमींदार भूमिहार हैं। पतञ्जल और भी कितने भूम्याधिकारी ब्राह्मण देवनेमें जाते हैं। भूमिहारक—ब्रह्मरजद-वर्णित जातिविशेष।

भूमी (सं० खी०) भूमि पक्षे जीप्। भूमि।

भूमोन्द्र (सं० पु०) भूम्यामिद्र इव, भूमेः इन्द्र ईश्वरो वा। राजा।

भूमोख (सं० पु०) भूमां रोहतीति ख-क। वृक्ष, पेड़।

भूमिसह (सं० पु०) भूमेः सहते उत्सहते उत्पद्यते इति सह-अच्। वृक्षविशेष। पयाप—झारदातु, बरदातु, खरच्छद्र। गुण—शीतल और रक्तपित्त-प्रसादन।

भूम्यन्तर (सं० पु०) भूमेरन्तरः। राजशत्रु।

भूम्य (सं० लि०) भूमिमर्हति यत्। धराई, पृथ्वी पर होने योग्य।

भूम्याङ्गुल्य (सं० स्त्री०) स्वनामख्यातशुषु। गुण—तिकरस, ज्वर, कुष्ठ, आम और सिध्महर।

भूम्याफलो (सं० स्त्री०) अपराजिता-लता।

भूम्यामलको (सं० स्त्री०) भूमिलत्ना आमलकी, शाक पाथिवादित्वात् समासः। शुषुविशेष, भुईआंबला, पर्याय—बहुपुष्पी, जड़ा, अध्वण्डा, तालि, तामलकी, अजटा, सूक्ष्मफला, क्षेतामलकी, वितुन्नक, ऋटा, अमला, अज्जुफटा, ताली, शिवा, भाटा, मला, ऋटामला, अमलाज् ऋटा, भूम्यामलकिका, शिवामलकी, बहुपुष्पा, बहुफला, बहुवीर्या, भूधात्री, गुण—वातकारक, तिक्त, कषाय, मधुर, हिम, पिपासा, कास, पित्त, अस्तक, कफ, पाण्डु और क्षतनाशक।

राजनिघण्टुके मतसे पर्याय—तमाली, ताली, तमालिका, उच्चटा, दृढपादी, वितुन्ना, वितुन्निका, भूधात्री,

चारटी, घृष्या, विपचनी बहुषत्तिका, बहुघोयां, अहि भयादा, विश्वपणीं, हिमालया, अजभटा, वीरा । गुण—कमाय, अमृ, पित्त, मेह और दाहनाशक, शीतल तथा सूत्ररोध नाशक । ( राजनि० )

यह ठंडे स्थानमें प्रायः नरोंके आस पास होती है । इसकी पत्तियां छोटी छोटी एक सीकेमें दोनों ओर होती हैं और इसी सीकेमें पत्तियोंको जड़ोंमें सरसोंके बराबर छोटे छोटे फूलोंको कोठियां लगती हैं जिनके फूल फूलने पर इतने छोटे होते हैं, कि उनको पैलड़ियां स्पष्ट नहीं दिखाई देतीं । जब फूल भङ्ग जाते हैं, तब राईके बराबर छोटे छोटे फल लगने हैं । यह घ्रास ओषधिके काममें आती है । अजीर्ण, दौर्बल्य और यक्ष्माकास रोगोंमें यह विशेष उपकारी है । इसके फलके बीजसे एक प्रकार का तेल निकलता है ।

भूम्यामलो ( स० खो० ) भूम्या आमलते आत्मानं धारयतीति आ-मल-अच् झोप् । भूम्यामलको ।

भूम्यालीक ( स० पु० ) धरती सन्ध्वधी मिथ्या भाषण, किसीकी जमीनको अपना बनाना ।

भूम्याहुली ( स० खी० ) अपराजिता-लता ।

भूम्याहुल्य ( स० फलो० ) भूमिमाहोलति आच्छादयतीति आ-हल-क, सतो यत् । क्षुपविशेष । पर्याय—कुण्डकेतु, मार्कण्डेय, महौषध । गुण—तिक्त, कटु, ज्वर, कुष्ठ और आमनाशक ।

भूर्युद्धराधया ( स० खी० ) मूर्धिककर्णोलता, मूसफानी ।

भूर्यस्—चालुषयवंशीय एक प्राचीन राजा । कान्यकुब्जके निकटवर्ती काञ्चनकटकपुरमें उनको राजधानी थी ।

भूर्यस् ( स० लि० ) अयमनयो रतिशयेन बहुरिति बहु ( द्वि-वचनविभक्त्योपपदे त्रयीवमुनी । पा १।१।५० ) इति ईयसुन् ( बहुलोपो म् च बहुः । पा १।४।१५८ ) इतीयसुन् ईलोपः भुरादेशश्च । बहुतर, अधिक ।

भूर्यस् ( स० अथ० ) भुवे भावाय यस्यति यतते इति-भू-यस्-भिवप् । १ पुनः, फिर । २ बहुत, ज्यादा ।

भूयण ( हि० खी० ) पृथ्वी ।

भूर्यशस् ( स० अथ० ) भूर्यस् घोप्सार्ये शस्, सलोपः । बहुय, बहु प्रकार ।

भूर्यस्कर ( स० लि० ) भूयो बहुतरं करोति कृ-अण् । बहु-तरकारक ।

भूर्यस्थत् ( स० लि० ) भूयो बहुवारं करोतीति कृ-क्विप् । पुनः पुनः कारक ।

भूर्यस्तराम् ( स० अथ० ) अतिशय वार वार ।

भूर्यस्त्व ( स० फलो० ) भूयो भावः त्व । पुनः पुनस्त्व, बहुका भाव या धर्म ।

भूर्यस्विन् ( स० लि० ) पीनपुन्यविशिष्ट ।

भूर्यिष्ट ( स० लि० ) अयमेवामतिशयेन बहुरिति बहु इष्टन् ( इष्टल्य पिच् च । पा १।४।१५६ ) इति विड्भागो बहुःस्थाने भूरादेशश्च । बहुतर, प्रचुर ।

भूर्यिष्टभाज् ( स० लि० ) भूर्यिष्टं भजते भज्-णिव । प्रचुर भजनाकारी ।

भूर्यिष्टशस् ( स० अथ० ) बहु यारमें, कई दफेमें ।

भूर्युका ( स० स्त्री० ) भुवा युक्ता । भूमिखड्गुरी, भुईं-खजूर ।

भूर ( स० अथ० ) भू-कच् । अन्तरोक्ष लोकके अधारिष्ठ चरणसञ्चारयोग्य स्थान, लोक ।

भूर ( हि० वि० ) १ बहुत, अधिक । ( पु० ) २ बाल ।

भूर—अयोध्या प्रदेशके खेरी जिलान्तर्गत एक परगना ।

भूररिमाण ३७६ वर्गमोल है । यहांका चौकानतीरवर्ती विस्तीर्ण भूभाग अधित्यकाकी तरह ऊंचा है । इसके ऊपरी भाग पर बहुत-से समृद्धिशाली प्राम हैं ।

आप्र, अमरुद, बेर आदि असंख्य मधुशकलोंका कानन इसकी प्रोभाको बढ़ता है । यह स्थान समधिक उर्वरा और प्रचुर शस्यशाली है ।

एतद्भिन्न यहांके गणियार नामक निम्न समतलक्षेत्र पर भी अच्छी खेती बारी होती है ।

शरतकालको वृष्टिसे नदीमें इतनी धाढ़ उमड़ आती है, कि आसपासके सभी स्थान बह जाते हैं । पीछे पानीके हट जानेसे जमीन पर जो पंक पड़ जाता है उससे जमीनकी उर्वरा शक्ति बढ़ती है ।

इस परगनेके अन्तर्गत अलीगञ्ज, शादपुर, बड़िया, खेरा और जंगदीशपुर प्राममें बहुसंख्यक दुर्ग, पुष्करिणी आदिका ध्वंसावशेष दृष्टिगोचर होता है ।

स्थानीय अधिवासिगण इसे वेणराजाको कीर्ति बतलाते हैं ।

२ उक्त परगनेका एक प्राचीन प्राम । निकटवर्ती

शाल्वनं नदीके किनारे जो श्वर उधर इष्टकराशि पड़ो है तथा जगह जगह जो बड़े बड़े कूप आदि देखे जाते हैं उनसे अनुमान किया जाता है, कि एक समय यह स्थान जंतुपूर्ण था। उनमेंसे कुछ स्तूप वीर-स्तूप समझे जाते हैं।

भूरज ( हि० पु० ) १ भोजपलका पेड़ । २ पृथ्वीकी धूलि, गर्द ।

भूरजपल ( हि० पु० ) भोजपल ।

भूरति ( सं० पु० ) कृशाश्वके एक पुत्रका नाम ।

भूरथ—सहाद्रिर्वर्णित एक राजा ।

भूरला ( हि० पु० ) वैश्योंकी एक जाति ।

भूरलोखरिया ( हि० स्त्री० ) बलुई मट्टी जिसमें लोमड़ी मांद बनाती है ।

भूरसोदक्षिणा ( हि० स्त्री० ) १ वह थोड़ी थोड़ी दक्षिणा जो किसी बड़े दान यज्ञ या दूसरे धर्मकृत्यके अन्तमें उपस्थित ब्राह्मणोंको दी जाती है। २ वे छोटे छोटे सर्वे जो किसी बड़े खर्चके बाद होते हैं ।

भूरः ( हि० पु० ) १ मट्टीका-सा रङ्ग, धूमिल रङ्ग । २ यूरोप देशका निवासी, गौरा । ३ कच्ची चीनी, खांड । ४ चीनी । ५ एक प्रकारका कवूतर जिसकी पीठ काली और पेट पर सफेद छोटे होते हैं । ६ वह चीनी जो कच्ची चीनीको पका कर और साफ करके बनाई जाती है । ( वि० ) ७ मिट्टीके रङ्गका, खाकी ।

भूरकुम्हड़ा ( हि० पु० ) सफेद रंगका कुम्हड़ा, पेठा ।

भूरगढ़—युक्तप्रदेशके बाँदा जिलान्तर्गत एक दुर्ग । यह बाँदा नगरसे १ मील पश्चिम भरेण्डी ग्रामके पार्श्वदेशमें केन नदीके किनारे अवस्थित है । १७४७ ई०में जैतपुर-राज गुमानसिंहने इस दुर्गको बनवाया था । दुर्ग-भग्नावस्थामें पतित होने पर भी ग्रामकी अवस्था उतनी खराब नहीं है ।

भूरि ( सं० स्त्री० ) भवति भूयते वेति भू- ( अदिशदिमृशुचिडम्ब । उण् ५६५ ) इति क्तिन् । १ स्वर्ण, सोना । ( पु० ) २ विष्णु । ३ ब्रह्मा । ४ शिव । ५ इन्द्र । ६ सोमदत्तके एक पुत्रका नाम । ७ सहाद्रिर्वर्णित एक राजा । ( ति० ) २ प्रचुर, अधिक । ६ बड़ा, भारी ।

भूरिक ( सं० पु० ) १ गायत्री छन्दका एक भेद । ( स्त्री० ) २ पृथ्वी ।

भूरिकर्मन् ( सं० लि० ) भूरि-प्रचुरं कर्म यस्य । प्रचुर कर्मयुक्त ।

भूरिगन्धा ( सं० स्त्री० ) भूरि प्रचुरो गन्धोऽस्याः, ततः प्राप् । १ मुरा नामक गन्धद्रव्य ।

भूरिगम ( सं० पु० ) भूरिमिभरिं गच्छतीति भूरि-गम ( ग्रह-वृद्धनिरिचगमरच । पा ३।३।५८ ) इति अप् । गर्दभ, गध्रा ।

भूरिज ( सं० स्त्री० ) भरति सर्वं धरतीति भूः ( भृञ उच्च । उण् २।७२ ) इति इजि, सच क्ति, घातो-रकारान्ता-देशश्च, ष्टोदरादित्वात् साधुः । पृथ्वी ।

भूरिज ( सं० लि० ) भूरि-जन-ञ । जो एक समयमें बहुत-सा उत्पन्न होता हो ।

भूरिजन्मन् ( सं० लि० ) भूरि जन्म यस्य । बहुजनन, बहुविधजनन ।

भूरिज्येष्ठ ( सं० पु० ) विचक्षुके पुत्र चन्द्रवशीय एक राजा । ( मत्स्य पु० ४६ ब० )

भूरिता ( सं० स्त्री० ) भूरि-भावे तल्-टाप् । भूरित्व, ज्यादती ।

भूरितेजस् ( सं० लि० ) भूरि-प्रभूतं तेजो यस्य । १ अतिशय तेजस्वी । ( पु० ) २ सुवर्ण, सोना । ३ अग्नि, आग ।

भूरिद ( सं० लि० ) भूरि ददातीति दा-क् । प्रभूत-दानकारी, बहुत दान करनेवाला ।

भूरिदक्षिण ( सं० लि० ) भूरिदक्षिणा यस्य । १ बहुत दक्षिणा-दानयुक्त । ( पु० ) २ विष्णु ।

भूरिदा ( सं० लि० ) बहुत बड़ा दानी, बहुत देनेवाला ।

भूरिदात ( सं० लि० ) बहुविध आयुधयुक्त ।

भूरिदायन् ( सं० पु० ) भूरि ददाति यो भूरि-दा-वनिप् । प्रचुर दाता, बहुत दानी ।

भूरिदुग्धा ( सं० स्त्री० ) भूरिणी दुग्धानि यस्य निर्वासा यस्याः । पृश्चिकाली ।

भूरिद्युम्न ( सं० पु० ) भूरि द्युम्नं यस्य । १ नवम मनुके एक पुत्रका नाम । २ चक्रवर्ती राजा जिनका नाम मैतृप्रनियदुमं आया है ।

भूरिधन ( सं० लि० ) भूरि प्रभूतं धनं यस्य । प्रभूत धनयुक्त, बहुत धनवान् ।



भूरिधामन् (सं० पु०) १ नवम मनुके एक पुत्रका नाम ।  
 (ति०) २ प्रभूत तेजोयुक्त, बहुत प्रभावशाली ।  
 भूरिधायस (सं० ति०) बहुकार्यके कर्त्ता, बहुत काम करनेवाला ।  
 भूरिधार (सं० ति०) बहुधार ।  
 भूरिनिष्कम (सं० क्तो०) स्वर्ण, सोना ।  
 भूरिपत्र (सं० पु०) भूरीणि पत्राणि यस्य । उपरतृण ।  
 भूरिपलितद्रा (सं० स्त्री०) भूरि-पलित' केशपाक' दायति' शोधयति इति दैफ्-क, टाप् । पाण्डुरफली ।  
 भूरिपानि (सं० ति०) बहु हस्तयुक्त, जिसके बहुत-से हाथ हों ।  
 भूरिपाश (सं० ति०) प्रभूत बन्धनसाधनपाशोपेत मित्रा-वरुण ।  
 भूरिपुष्पा (सं० स्त्री०) भूरीणि पुष्पाण्यस्याः । शत-पुष्पा ।  
 भूरिपोपिन् (सं० ति०) भूरि-पुप-णिनि । बहुपालक, बहुतोंका पालन करनेवाला ।  
 भूरिप्रयोग (सं० पु०) पन्नानाभदत्तरचित एक संस्कृत अभिधान ।  
 भूरिप्रेम (सं० पु०) भूरिः प्रेमा यस्य प्रेयस्त्व' यस्य । चक्रवाक ।  
 भूरिफली (सं० स्त्री०) पाण्डुरफली ।  
 भूरिफेना (सं० स्त्री०) भूरयः फेना यस्याः । १ समला-वृक्ष । २ भागूदानेका पेड़ ।  
 भूरिवला (सं० स्त्री०) भूरि वल' यस्याः । १ अतिबला, ककहो । (पु०) २ धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम । (ति०) ३ प्रचुर बलयुक्त, बहुत ताकतवर ।  
 भूरिभार (सं० ति०) भूरिः भारो यस्य । प्रभूत भारयुक्त, बोझल ।  
 भूरिभट्ट—निम्बार्क सम्प्रदायके एक धर्मगुरु । आष माधव-भट्टके गुरु और श्रवणभट्टके शिष्य थे ।  
 भूरिमञ्जरी (सं० स्त्री०) श्वेततुलसीवृक्ष ।  
 भूरिमल्ली (सं० स्त्री०) भूरि मल्लते इति मल्ल-अच्, लीप् । अम्ब्रवा, ब्राह्मणो वा पाद्मा नामकी लता ।  
 भूरिमाय (सं० पु० स्त्री०) भूरी माया यस्य । १ ऋगाल, गौदड़ । (ति०) २ प्रभूत मायावी ।

भूरिमूल (सं० ति०) बहु मूलयुक्त । भूमिजिका देखो ।  
 भूरिमूलिका (सं० स्त्री०) भूरीणि मूलानि यस्याः कपू, टापि अत इत्व' । अम्ब्रवा, पाद्मा ।  
 भूरिरस (सं० पु०) भूरी रसः यस्य । १ इशुवृक्ष, जल । ति०) २ प्रभूतरसयुक्त ।  
 भूरिरेतस् (सं० ति०) भूरि प्रभूत' रेतः यस्य । अतिशय रेतोयुक्त ।  
 भूरिलम्ना (सं० स्त्री०) श्वेत अपराजिता ।  
 भूरिवर्षस् (सं० ति०) बहुविध रूपयुक्त, पार्थिव वैद्य-तादि बहुविध रूपयुक्त ।  
 भूरिवीर्य (सं० पु०) पुराणानुसार एक राजाका नाम ।  
 भूरिशास् (सं० अथ०) भूरीणि इति वोप्सायां शस, वा मूरि-चशास् । मूरि भूरि, अनेक वार ।  
 भूरिन्द्रङ्ग (सं० ति०) १ बहु कर्त्तृक आश्रयनीय । २ अत्यन्तान्धयुपेत ।  
 भूरिश्रवस् (सं० पु०) भूरि श्रवो यद्वादिजनित' यशो यस्य । चन्द्रवंशीय सोमदत्त राजपुत्र । ये कौरवोंकी ओरसे महाभारतमें लड़े थे । युद्धमें अर्जुनने इनके हाथ और सात्यकिने सिर काट डाला था ।  
 ( महाभारत )

काशी रामनगरके पास भुइली नामक गाँवमें इनकी राजधानी थी, ऐसा सुना जाता है । अभी उस गाँवमें टूटे फूटे खंडहर वत्त मान हैं जिसमें स्पष्ट हात होता है, कि किसी समय यहाँ किसी बलशाली राजाकी राज-धानी थी । अग्रे तक उक्त स्थानमें हनुमानजीकी एक विशाल मूर्ति है जिसके विषयमें जनसाधारणका विश्वास है, कि उक्त मूर्ति भूरिश्रवा द्वारा ही जीत कर लाई गई थी ।

( ति० ) २ बहुयशोविशिष्ट ।

भूरिश्रवा—१ सह्यान्द्रि वर्णित एक राजा । (सहा० ३३।२६)  
 २ भूरिश्रवा देखो ।

भूरिश्रेष्ठिक (सं० पु०) भूरयः श्रेष्ठिनो यत । गौड़देश-स्थित पुरमेद ।

भूरिषेण (सं० पु०) मनुमेद ( भाग० २।७।४४ )

भूरिलेन—सह्याद्रिवर्णित एक राजा । (सहा० ३३।१७४)

भूरिस्ताह (सं० ति०) भूरि-सह-ण्वि । प्रभूत भार-वहनकारी ।

भूरिस्थात्र ( सं० लि० ) बहुभावमें अर्थात् प्रपञ्चात्मरूपमें अवतिष्ठमान ।

भूरिहन् ( सं० लि० ) भूरिह हन्ति हन्-विधय् । १ बहुततर नाशक । ( पु० ) २ असुरमेद ।

भूरुहरी ( सं० खो० ) भुवर्ष पृथिवीं रुणद्धि भुवि रोह-  
तीति वा भू-रुध वा रुह-क, पृषोदरादित्वात् नकारडकारो,  
गौरादित्वात् ङीप् । १ श्रोहस्तनी वृक्ष, हाथीसूड नाम-  
का पेड़ । २ महाकरज ।

भूरुह ( सं० पु० ) भुवि रोहति प्रादुर्भावतीति भू-रुह-क । १  
रुक्ष, पेड़ । २ अर्जुनवृक्ष । २ शालका वृक्ष ।

भूरुहा ( सं० लि० ) १ मांसरोहिणी । २ दूर्वा, दूब ।

भूरुह ( सं० पु० ) किञ्चलुक कञ्चुभा ।

भूर्ज ( सं० पु० ) ऊर्जं घञ्, भुः ऊजो बलं यस्य, भुवि  
ऊर्जयते इति भू-ऊर्ज-अच् वा । स्वनामध्याय वृक्षविशेष,  
एक प्रकारका पेड़, भोजपत्र । पर्याय—वलकद्र क, भूर्ज,  
सुचर्मा, भूर्जपत्रक, चित्रत्यक्, विन्दुपात्र, रक्षापत्र, विचि-  
त्रक, भूतन, मृदुमल शीतद्रव्य, भूर्जपत्रक, चर्मो, बहुल-  
वलकल, छलपत्र, शिव, स्थिरच्छद, मृदुत्वक्, पत्रपुष्पक,  
मुम, बहुपाठ, बहुत्वक्, मृदुत्वक् ।

इसका गुण—वलकारक, कफरक्तनाशक, कटु,  
कषाय, उष्ण, भूतरक्षाकर, त्रिदोषशमन, पथ्य, कर्णरोग,  
पित्त, राक्षस, मेद और विषनाशक है ।

तन्त्रोक्त यन्त्र तथा कवचादि भूर्जपत्रमें लिख कर  
धारण करना चाहिए । कवच लिखनेके समय वाणको  
छोड़ देना आवश्यक है । भोजपत्रके मध्य जो सब रेखाएँ  
रहती हैं उन्हें वाण कहते हैं । इस वाणके ऊपर लिख  
कर धारण करनेसे अशुभ फल होता है । किन्तु यन्त्र  
लिखनेमें वाणको नहीं छोड़ना होता है ।

भूपृष्ठसे १४०० फीट ऊँची हिमालय शैलमाला पर  
यह वृक्ष पैदा होता है । यह बहुत बड़ा नहीं होता और  
न अधिक दिन तक ठहरता ही है ।

इस पेड़की छाल ही 'भूर्जपत्र' नामसे प्रसिद्ध है ।  
अत्यन्त प्राचीन समयसे भारतवर्षमें धर्मग्रन्थ तथा मन्त्र-  
कवचादि लिखनेके लिए भूर्जपत्र ही व्यवहृत होता है ।  
इस वृक्षको भीतरी छालसे ही लिखने लायक भूर्जपत्र  
पाया जाता है । काश्मीरमें इसीको आजकलको तरह  
पुस्तकाकारमें सजा कर प्राचीन ग्रन्थ प्रस्तुत होते थे ।

सुश्रुतके वैद्यकग्रन्थ, कालिदासके नाटक और बराहमिहिरके  
केज्योतिर्ग्रन्थमें इस भूर्जपत्रका उल्लेख आया है । इस  
देगके पण्डितोंका विश्वास है, कि लिपिसृष्टिके साथ साथ  
आर्योंने इसी भूर्जपत्रमें लिखना सीखा है । फिलहाल  
काश्मीर और हिमालयप्रदेशके नाना स्थानोंमें दूकानदार  
लोग इसी पत्रका व्यवहार करते हैं—वे कागजकी काममें  
नहीं लाते । उनका विश्वास है, कि कागजकी अपेक्षा  
भूर्जपत्र अधिक दिन चलता है । लेख्यकार्यके सिवा इस  
पत्रसे वृष्टिनिवारणके लिए घरकी छौनी, कोई चीज  
वांधनेके लिए पुड़िया और हुकके की कोमल नली तैयार  
होती है । भारतमें प्रायः सभी जगह भूर्जपत्रका व्यवहार  
होता है । परन्तु काश्मीर और हिमालय प्रदेशमें कुछ  
विशेषकर । अब भी काश्मीरके वाजारमें प्रति दिन १५ १६  
नाचे भूर्जपत्रसे लद कर आती हैं । इसके बड़े बड़े  
पत्तोंसे छाता भी बनाया जाता है ।

अकबर बादशाहकी जेष्ट्रासे सभी जगह कागज  
प्रचलित हुआ । उसी समयने भूर्जपत्रका पहलेके जैसा  
आदर तथा श्रयहार बहुत कुछ घट गया है ।

भूर्जपत्रको अत्यन्त पवित्र मान कर हिमालयवासी  
हिंदूगण शवदाहके समय इसे आगमें फेंकते हैं । काश्मीर-  
में अमरनाथके दर्शनके लिए जो सब यात्री जाते हैं, उन-  
मेंसे कितनेही पूर्वचलका परित्याग कर पवित्र भावमें इस  
भूर्जपत्रसे सर्वाङ्गको ढक कर देवदर्शन करते हैं । इसकी  
हरी कधी छाल अच्छी गन्धयुक्त तथा पचननिवारक है ।  
किसी विपैले जन्तुके काटे हुए स्थानमें इसका रस बड़ा  
ही उपकारी है । पत्रका कषाय वातघ्न और हिष्टिरिया  
रोगमें फलदायक तथा वृक्षका पत्ता गवादि गृहपाण्डित  
पशुका खाद्य है ।

भूर्जकण्टक ( सं० पु० ) वणसङ्कर जातिविशेष ।

“श्रात्यात् जायते विप्रत् पापात्मा भूर्जकण्टकः ।”

( मनु १०।२१ )

वात्यब्राह्मण और ब्राह्मणोंके संयोगसे जिस जाति-  
की उत्पत्ति होती है उसे ही भूर्जकण्टक कहते हैं । यह  
जाति देशविशेषमें आवन्त्य, वाटधान, पुष्पध और शैल  
इन चार नामोंसे प्रसिद्ध है । यह जाति अतिशय पाप-  
कारी समझी जाती है ।

भूर्जप्रन्थि ( सं० पु० ) भूर्जस्य प्रन्थिः ६-तत् । १ भोज-  
वृक्षकी गाँठ । २ प्रदाहविशेष ।

भूविद्गण स्पर्शरूपसे दिखा देने हैं, कि पेसा विस्मय-कर परिवर्तन इतिहासके अधिगम्यकालमें भो बहुत हो गया है। लगभग दो हजार वर्ष हुए, हाकिलेनियम और पम्पिया नामक दो जनपूर्ण सुरमा नगरी नेपलसके भिसुमियस् पर्वतके अन्त्युत्पातसे भूगर्भमें धंस गई हैं। सम्प्रति भूतत्त्वविदोंने भूगर्भ खोद कर उक्त दोनों नगरीके बहुत कुछ अंशोंका पता लगाया है। इसके अलावा बहुतसे छोटे बड़े परिवर्तन इस पृथिवी पर प्रतिदिन हुआ करते हैं। पृथिवीके भीतरो तापसे भूपञ्चर परिचालना द्वारा भी बहुत जगह अभावनीय परिवर्तन हुआ है। प्रबल भूमिकंपके बाद किस प्रकार भूभागका परिवर्तन होता है, प्रायः सर्वोंको मालूम हुआ होगा। भूमिकंपसे अनेक स्थानोंमें नदी भिन्नमुखी हो जाती, नगर या जनपद समुद्रगर्भमें प्रवेश करता, किसी स्थानका भूभाग ऊँचा हो जाता और कहीं प्रकाण्ड हृदकी उत्पत्ति होती है।

पृथिवीके आभ्यन्तरिक कायके सिवा वृष्टिपात, जल-प्लावन, नदीका गतिपरिवर्तन तथा शीतातप प्रभृति कारणोंसे भूपृष्ठका प्रतिदिन बड़ा ही परिवर्तन होता है। सभी जानते हैं, कि वर्त्तमान हुगलोके समोप सरस्वतीके किनारे समग्राम १६वीं शताब्दीमें समृद्धिशाली राजधानी था, वह आज जंगलमय हो रहा है। गौड़ और पांडुयाको कथा ऐतिहासिकोंसे छिपि नहीं है। भागीरथी और पद्मानदीके बीच द्रोणाकार भूखण्ड भूविदोंके मतसे अत्यन्त आधुनिक है। कलकत्ते और अन्यान्य स्थानोंमें गभोर कूपखननके समय इसका साफ साफ निदर्शन पाया जाता है।

भूविदोंका कहना है, कि पृथिवीकी आभ्यन्तरिक शक्तसे सभी पर्वत निकले हैं। पर्वत देखो। हिमालय पर्वतसे हजारों फीट ऊँचे स्थान पर अनेक जलचरजीवकी अस्थि पाई जाती हैं। गिवालिक पर्वतश्रेणी पर बहुत बड़े कर्मका कङ्काल नजर आता है। इससे अनुमान होता है, कि इन सब पर्वतमालाओं पर एक दिन समुद्रकी लहरें उठती थीं, बाद भूगर्भस्थ शक्तसे ये उद्भूत हुई हैं। पृथिवी पर जितने पर्वत हैं वे सभी पृथिवीकी आभ्यन्तरिक शक्तसे उत्पन्न हुए हैं। हिमालय पर्वत

जो समुद्रतटमें अवगाहन कर चुशोमित होता था, वह कालिदासकी हिमालय-वर्णना पढ़नेसे जाना जाता है, “पूर्वापरी तोयनिधो वगाहा स्थितः पृथिव्या इव मानदण्डः” अर्थात् हिमालय पूर्ण और पश्चिम तोयनिधियों अवगाहन कर पृथिवीके मानदण्डकी तरह अवस्थित है। भूतास्त्विक पण्डितोंने परीक्षा कर स्थिर किया है, कि हिमालय पर्वत समुद्रगर्भमें निहित था। वे प्राचीन महा-द्रोपका पर्वतसंस्थान देख कर कहते हैं, कि प्राचीन महा-द्रोपके सभी पर्वत हिमालयकी शाखा-स्वरूप है। पश्चिम में पुरांणकालसोमान्त पिरानिजश्रेणीसे ले कर पूर्वमें अष्टाई श्रेणी तक एक ही पर्वतश्रेणीने दोनों ओर दो महासमुद्रमें अवगाहन किया है। अथवा कालिदासने हिमालयको जो मानदण्ड बतलाया है, उसका प्रकृष्ट प्रमाण यह है, कि हिमालयकी स्तरावलीके सन्निवेशसे पृथिवीका वयस निर्धारण करनेकी सुविधा हुई है। हिमालयगात्रसे आविष्टन प्रस्तरभूत अस्थिसे विगत युगके मृत्तिकास्तरको प्राचीनता स्वीकार करने पर साफ साफ मालूम होता है, कि भूविप्लवसे युगयुगान्तरमें पृथिवीके जलस्थलविभागका सविशेष परिवर्तन हुआ है, इसमें कोई सन्देह नहीं। इस भूविप्लवयुगमें शायद पर्वतके पर धे, पीछे गोत्रभिन्न कर्तृक उनके पर काटे जाने पर पृथिवी मानवजातिके रहने लायक हो गई है।

पृथिवी शब्दमें विलुप्त विवरण दलो।

भूशक ( सं० पु० ) भुवि शक इव । भूमोन्द्र, राजा ।  
भूशमी ( सं० खो० ) भूलगना शमी, शाकपाथिवादित्वात् कर्मधा० । लघुशमी, छोटी संम ।

भूशय ( सं० पु० ) भुवि शेते इति भू-शीङ् ( अधिकरणे-शेतेः । पा ३।२।१५ ) इति अच् । १ नेवला, गोध आदि विल-में रहनेवाले जानवर । इस वर्गके जन्तुओंका मांस गुरु, उष्ण, मधुर, स्निग्ध, वायुनाशक और शुक्रवर्द्धक माना गया है । २ विष्णु ।

भूशय्या ( सं० स्त्री० ) भूरेव शय्या, रूपक कर्मधा० । १ भूमिशय्या, भूमि पर सोना । २ शयन करनेकी भूमि ।  
भूशर्करा ( सं० स्त्री० ) भुवि ख्याता शर्करा, शाकपाथि-वादित्वात् कर्मधा० । कन्दमेद ।

भूशायी ( हि० वि० ) १ पृथ्वी पर सोनेवाला । ( पु० ) पृथ्वी

पर गिरा हुआ । ३ मृतक, मरा हुआ ।

भूशूर—चन्द्राधिपति आदि शूरके पुत्र । शूरवंश देखो ।

भूशेखु ( सं० पु० ) भुवि ख्याता शेरुः प्राकपाधिवादि-  
वत् समासः । भूकबुंदारक, लिसोडा ।

भूषण ( सं० स्त्री० ) भूष्यतेऽनेनेति भूष करणे ल्युट् । १  
अलंकार, आभरण, गहना, यह जिसके द्वारा शरीर भूषित  
हो । कचधार्य, देहधार्य, परिधेय और विलेपन यही चार  
प्रकारका भूषण है ।

“कचधार्य देहधार्य परिधेयं विनयेनम् ।

चतुर्भाभूषणं प्रादुः स्त्रीष्यामन्यच्च देविकम् ॥”

उक्त चार प्रकारके भूषणके सिवा स्त्रियोंके अर भी  
अन्य प्रकारके भूषण हैं जो केवल सौन्दर्यवर्द्धक हैं ।

कालिदासने शकुन्तलामें स्पष्ट कहा है,—सुन्दर  
आकृतिके सभी भूषणस्वरूप हैं ।

कालिकापुराणके ६८वें अध्यायमें देवताके उद्देश्यसे  
देय भूषणका विषय इस प्रकार लिखा है,—

“भोग्यभूषोत्तमं नित्यं भूषणानि शूरुष्य मे ।

किरीटञ्च शिरोरत्नं कुण्डलञ्च लम्बाटिका ॥” (स्वादि)

किरीट, शिरोरत्न, कुण्डल, ललाटिका, तालपत्र,  
हाथ, प्रीथेयक, उर्मिका, मालाम्बिका, रत्नसूत्र, उच्छुङ्ग,  
शृङ्गमालिका, पादांघ्रित, नटाघ्रित, अंगुलीच्छादक,  
कटिलन, मानयक, मूर्द्धंतारा, गलन्तिका, अङ्गद, बाहु-  
चलय, शिलाभूषण, शङ्किका, प्रागण्डबन्ध, नाभिपुत्र,  
मालिका, सप्तकी, शृंखला, दन्तपुत्र, यर्णक, ऊपसूत्र,  
नोबो, मुष्टिवन्ध, पादाङ्गद, हंसक, नूपुर, क्षुद्रघण्टिका  
और मुकुटपट्ट प्रभृति भूषण देवीको अत्यन्त प्रिय हैं । इन्हीं  
अर्चित कर देवताके उद्देशसे दान करनेसे सभी प्रकार-  
के अमीष्ट सिद्ध होते हैं ।

किरीट प्रभृति मस्तकके सभी भूषण सुवर्णनिर्मित,  
प्रीथेयसे हंसक प्रभृति भूषण सुवर्ण या रजतनिर्मित कर  
देना चाहिए । अन्य धातुनिर्मित द्रव्य भूषण-पदवाच्य नहीं  
हैं । किन्तु विशेषता यही है, कि ये सब भूषण ताँबेके  
हो सकने हैं, क्योंकि ताँबा सभी जगह सोनाके तुल्य है ।  
ताम्रमें सभी देवगण अवस्थित हैं, अतः ताम्रभूषण धारण  
और दान बड़ा उपकारी है । मनुष्योंको अपने सामर्थ्या-  
नुसार भूषण बनाना चाहिये, किन्तु गलेके ऊपर चांदीका

भूषण पहनना एकदम मना है । जिनकी जैसी शक्ति हो उन्हें  
उसी परिमाणमें भूषणदान करना चाहिये । भूषण हमेशा  
चतुर्वर्गप्रद, सौम्यदानकारी तथा नित्यव्युष्टि और पुष्टि-  
दायक है । अतएव देवताको भूषणदान यथाशक्ति विधेय  
है । ( कालिकापु० ६८ अ० )

भाष्यकारागमें दिनचर्याकी जगह भूषणधारणको विशेष  
क्षिाकर कहा गया है ।

“भूषणं भूषेदङ्गं यथायोग्य विधानतः ।

शुचिभीमाग्यस्तोपद्रवायकं कांचनं स्यूतम् ॥” (भाष्य०)

अनुलेपनके बाद यथायोग्य विधानानुसार शरीरको  
भूषित करना आवश्यक है । क्योंकि, स्वर्णभूषण पवित्र-  
कारक, सौभाग्यवर्द्धक और सन्तोषजनक है । रत्न-  
भूषण प्रदोष तथा दुःस्वप्नविनाशक है । नयप्रहकी दोष-  
शान्तिके लिए सूर्यकी माणिक्य, चन्द्रकी मुक्ता, मङ्गलकी  
प्रवाल, बुधकी मरकतमणि, गृहस्पतिकी पुष्पराग, शुक्रकी  
होरक और जिनकी नीलकान्तमणि, राहु तथा केतुकी  
गोमेद और पैदुर्गमणि इन्हींका भूषणधारण उपकारक  
है । इन सब द्रव्योंका भूषणधारण करनेसे नयप्रहका  
दोष रहने नहीं पाता । ( भाष्य० )

पहले भूषण धारण करनेमें शुभ दिनका विचार करना  
उचित है । ज्योतिषमें दिनके इस विषयमें इस प्रकार  
लिखा है,—पुष्या, हस्ता, पुनर्वसु, मघा, अनुराधा, मृग-  
शिरा, धनिष्ठा, उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरभाद्रपद,  
रोहिणी और चित्रानक्षत्रमें हरिशयनके सिवा दूसरे  
समयमें, शुभतिथि, शुभकरण तथा शुभयोगमें भूषण-  
धारण करना प्रशस्त है । रमणिगण स्वामीके कल्याणके  
लिए उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरभाद्रपद, रोहिणी,  
पुष्या, पुनर्वसु और आश्रा नक्षत्रकी छोड़ कर भूषण  
धारण करें । इसमें भी चन्द्र ताराका विचार करना  
उचित है, क्योंकि चन्द्र और तारेकी शुद्धि रहनेसे यदि  
कोई दोष रहे, तो वह विनष्ट होता है । ( ज्योतिषार-  
संग्रह ) ( पु० ) भूषयति भक्तान्दमिति भूष्यते ऽनेनेति धा  
भूष-ल्युट् या ल्युट् । २ विष्णु । ३ राजविशेष, एक  
राजाका नाम ।

भूषण—सहाद्विवर्णित कई एक राजाके नाम ।

भूषण—छिन्द्वंश्रीय एक राजा । ये अयनकुलजात

वैरवर्गके पुत्र थे। देवल नामक स्थानमें ये राज्य करते थे।

भूपणकवि—कान्यकुब्ज ब्राह्मणकुण्डोद्भव एक विख्यात कवि। कानपुर जिलान्तर्गत टिक्रामपुर गांवमें आपका निवासस्थान था। आपके पिताका नाम था रत्नाकरजी। रत्नाकरजी भगवतीके उपासक थे तथा नित्यप्रति निकटस्थ देवीमन्दिरमें दुर्गापाठ करने जाते थे। देवीका नाम था 'वनकी भूईया'। एक दिन भगवती उनकी उपासनासे प्रसन्न हुईं और चार भक्तोंके मुँहट दिवा कर बोलीं, 'ये ही तुम्हारे चार पुत्र होंगे।' देवीको वाणी अक्षरशः सत्य निकली। कुछ दिन बाद रत्नाकरजीके चार पुत्र उत्पन्न हुए जिनके नाम क्रमशः चिन्तामणि, भूपण, मतिराम और जटाशंकर या नीलकण्ठ थे।

पहले भूपण कविताके विषयमें एकदम अनभिज्ञ थे। आपके ज्येष्ठ भ्राता चिन्तामणिजी दिल्लीपति औरङ्गजेबके दरबारी-कवि थे। बादशाहके दरबारमें उनकी खूब चलती थी। चिन्तामणिजी ही कमाईसे आपका भी भरण-पोषण होता था। एक दिन आपकी भौजाईने अपने स्वामीकी कमाईका गौरव कर आपको कुपूत होनेका बड़े तीक्ष्ण शब्दोंमें ताना दिया। वे ताने-भूषणजीके लिये असह्य थे। सुनते ही आप घरसे निकल पड़े और कुमायूँ नरेशके दरबारमें पहुँचे। इसी बीच आप कविता पूरे तीरसे रचने लगे थे। आपकी कविता पर प्रसन्न हो कर कुमायूँ-नरेशने आपको लाख रुपये नकद दिये और कहा,—'तुम्हें मेरे जैसा दानी कहीं नहीं मिलेगा।' यह शब्द ध्या धा; मानों लहकता हुआ अंगार आपने भी नरेशको खुले शब्दोंमें जवाब दिया,—'आप जैसे दाता तो बहुत हैं परन्तु मुझ जैसा त्वागी याचक भी आपको नहीं मिलेगा। ऐसा कह कर भूषणजीने प्राप्त रुपयेको तृण समान फेंक दिया और अपनी राह ली।

पन्नाके महाराज छत्रसालके दरबारमें भी आप छः महीने तक रहे थे और उन्हींके नाम पर आपने "छत्रसाल दशक" की रचना की। बादशाह औरङ्गजेब हिन्दी कविताका बड़ा प्रेमी था तथा उसे डर था, कि बिना इनकी सहायताके मेरे अत्याचार छिप नहीं सकते।

इनके दरवारके कवि खुशामदी टट्टे थे। बादशाह औरङ्गजेबने एक दिन अपने कवीश्वरोंसे कहा, "तुम लोग हमेशा मेरी वंदाई ही किया करते हो; धया मुझमें कोई दोष नहीं है जो तुम लोग नहीं कहते। जो मेरे दोषोंको प्रकाश करेगा उसीको मैं सत्यवादी तथा स्पष्ट वक्ता समझूँगा।" बादशाह इस प्रकार भी अपने निम्नकोंका पता लगाया करता था। कवि भूपण अपने ज्येष्ठ भ्राता चिन्तामणिके साथ दरबारमें आया जाया करते थे। सब कवियोंको बादशाहके प्रश्नोंका जवाब न देते देख खुद ही उठ खड़े हुए और बोले 'जहांपनाह! खुशामद खुदाको भी प्यारी है इसी कारण आपके दोषोंको प्रकाश न कर केवल आपके गुणोंकी वधानते हैं। परन्तु यदि आपकी आछा सत्यताप्रकाश करनेकी कहती है तो कहनेमें जरा भी डर नहीं। यदि आप सुनना चाहते हैं तो सुनें। अगर आपमें अपना निन्दा और मेरी सत्यता सुननेकी कुछ भी शक्ति है तो सुनें।'।

इतनी लम्बी चीड़ी बहता सुन बादशाह सचमुच डर गया और सोचने लगा। पर कह चुका था 'इसलिये बोला,—इसी समय मेरी सचो तारीफ करो। भूपणने कहा "बादशाह सलामत! आप अपने इस वचनको तोड़ दें। कारण निरवय है, कि आप अपनी निन्दा सुन कर आगबबूले हो जायेंगे और मेरा सिर उड़ाने पर उद्यत होंगे। अतः मेरा वध न करनेका फरमान लिख दें और सब दरबारी अमीरोंकी उस पर गवाही लिखवा दें।" इस पर भूपणने कहा,—

कियलेंकी ठौर बाप बादशाह शाहजहाँ,  
हाथों तलवीहें जिये प्रात उठि बन्दगीको।

यह श्रवण करते ही बादशाह ध्याकुल हो उठे और कवीश्वरोंने इसे अनुमोदित किया। इससे बादशाहकी क्रोधान्धता मानो घृताहुति पड़ी। बादशाह 'सय' तलवार खींच कर मारने पर उद्यत हुआ पर न्यायी मुसाहब और सरदारोंने ऐसा करनेसे मना किया। आप वहाँसे वापस आये। फिर एक समय बादशाहसे आपकी भेंट हुई थी, उस समय भी आपने बादशाहको खूब छकाया था। अन्तमें आपकी वहाँसे भी भागना पड़ा था। आप शिवाजीकी हमेशा प्रशंसा किया करते थे। वहाँसे

भागते भागते आप जंगली और पहाड़ी मार्गोंसे रायगढ़ पहुंचे। नगरके बाहर एक देवी-मन्दिरके पास विश्राम करनेके लिये घोड़ेसे उतरे। उसी समय आपको शिवाजीके सेनापतिके मुलाकात हुई। आपने अपनी सब रामकहानी सेनापतिकी कह सुनाई और शिवाजीकी प्रशंसा करते हुए यह कवित्त पढ़ा—

“इन्द्र जिमि जम्भ पर वावव सुभंभ पर,  
रावण सदम्भ पर रघुकुनराज है।  
पीन वारिवाह पर शंभु रतिनाह पर  
ज्यों सहस्रवाह पर राम द्विजराज है ॥  
दासा द्रुम दुवड पर नीता मृग भुपट्ट पर  
भुवन वितुपट्ट पर जैसे मृगराज है।  
तेज तिमिरंश पर कान्ह जिमि कंध पर  
त्यौ म्लेच्छ वंश पर सेर शिवराज है ॥”

यह सुन कर सेनापतिका हृदय घोरत्वसे फूल गया तथा बार बार पढ़नेको कहा। अन्तमें पढ़ते पढ़ते थक जाने पर सेनापतिने आपको दरवारमें आने कहा।

दूसरे दिन आप दरवारमें पहुंचे, वहां आपने उस सेनापतिको बहुत दृढ़ता पर कुछ पता न चला। अन्तमें शिवाजीको राजसभामें आपने कवित्त पढ़े। सारी सभा मुग्ध हो गई। शिवाजी ने आपको भूरि भूरि प्रशंसा कर उच्च आसन पर बैठनेकी प्रार्थना की और कितनी कविता सुनाने पर शिवाजी प्रसन्न हो वाचन गांव हाथी आदिकी आपको बिलहृत दो। भूषण कवि शिवाजीके साथ स्वयं युद्धमें जाते थे और घोरोंके उत्साह बढ़ाते थे। आपका पूर्वनाम कुछ और था। चित्रकूट नरेश सोलङ्की महाराजने आपको 'कवि-भूषण' की उपाधि दी, आपके 'शिवाजीभूषण' से पैसे पता लगता है। महाराज छत्रसालने आपकी पालकी कन्धे पर ढोई थी। भूषण हजारा, भूषण उल्लास और दूषण उल्लास ये तीन ग्रन्थ और आपके बनाये मिलते हैं। आपको गिनती तोय कवियोंमें होती है।

भूपणदेव—१ एक प्राचीन कवि।

भूपणभट्ट—१ मायत्रीपद्धतिके प्रणेता। २ कादम्बरी उत्तराखण्डके रचयिता। ये वाणके पुत्र थे।

भूपणता (सं० स्त्री०) भूपणस्य भाव, तल-टाप्। भूपणत्व, भूपणका भाव या धर्म।

भूपणन्द्र प्रभ (सं० पु०) किन्नर राजभेद।

भूया (सं० स्त्री०) भूप भावे अ टाप् च। १ अलंकृत करनेकी क्रिया, सजानेकी क्रिया। २ आभूषण, गहना। भूपित (सं० लि०) भूप-क्त। २ अलंकृत, गहना पहने हुआ। २ सजित, सजाया हुआ।

भूष्णु (सं० लि०) भू-गस्तु, १ भवनशाल। पर्याय—भविष्णु, भविता। २ साधुमचनशाल।

भूय (सं० लि०) भूप-यत्। भूपणीय, अलङ्कार पहनाने या सजानेके योग्य।

भूसंस्कार (सं० पु०) भुवः संस्कारः ई-तत्। यज्ञ करनेसे पहले भूमिको परिष्कृत करने, नापने, रेषाएँ खींचने आदिकी क्रियाएँ।

भूसना (हि० कि०) कुत्तोंका बोलना, भूंकना।

भूसा (हि० पु०) तुप, भूसी।

भूसी (हि० स्त्री०) १ भूसा। २ किसी प्रकारके अन्न या दानेके ऊपरका छिलका।

भूसीकर (हि० पु०) अगहनके महीनेमें होनेवाला एक प्रकारका धान। इसका चावल सालों रह सकता है।

भूसुत (सं० पु०) भुवः पृथिव्याः सुतः। १ मङ्गलग्रह। २ वृक्ष, पेड़। ३ नरकासुर। (लि०) ४ जो पृथ्वीसे उत्पन्न हों।

भूसुता (सं० स्त्री०) सीता, जानकी।

भूसुर (सं० पु०) भुवि सुर इव। ब्राह्मण।

भूसृण (सं० स्त्री०) भूलनं वृणं भुवस्सृणमिति वा, पारस्करादित्वात् सुट्। भूतृण, एक प्रकारकी घास।

भूसृथ (सं० लि०) भुवि तिष्ठतीति स्था-क। १ पृथिवीस्थित, जमीन परका। (पु०) २ मनुष्य। ३ गण्डवृद्धी, कंचुआ।

भूसृष्टृग (सं० पु०) भुवं स्पृशतीति स्पृश-क्विन। मनुष्य।

भूसृर्ग (सं० पु०) भुवि स्वर्ग इव अमरलोकधारणात्। सुमेरुपर्वत।

भूसृवेद (सं० पु०) घनाश्रम द्वारा स्वेदविशेष।

स्वेद देखो।

भृकुंश (सं० पु०) कुसि-अच् कुसो भावदीपनं पृषोदरादित्वात् सस्व शत्वं, भुवा कुशो भावप्रकाश इङित्वापनं

यस्य, निपातनात् सम्प्रसारणम् । स्त्रीवेशधारी नट-  
पुरुष ।

भृकुस (सं० पु०) चुरादी पठपुटेत्यादि दण्डकोक्तः कुसिर्भा  
सार्थः, स्त्रीवेश धारयित्वा भृवः कुसयति पुरुषत्वाभिमति  
संज्ञात्वाद्युकारस्य अकारः, ह्रस्वश्च वा, कुसि अच्, यद्वा  
भुवा कुंस इङित्प्रकाशो यस्य निपातनात् संप्रसारणम् ।  
स्त्रीका वेश धारण करनेवाला नट ।

भृकुटी (सं० स्त्री०) कुट कौटिल्ये इति कुट-इत्, भृ, वः  
कुटिः, कौटिल्यं निपातनात् वा संप्रसारणम् । भृकुटी,  
भौह ।

भृगमात्रिक (सं० पु०) भृगमात्रिक ।

भृगवाण (सं० लि०) १ भृगुसदृश । २ दीप्यमान ।

भृगु (सं० पु०) तपसा भृञ्ज्यते पञ्चतपादिभिर्वेति ब्रह्मज  
(प्रीथिर्वादि ब्रह्मजां सम्प्रसारेणं सन्नोपन्नम् । उण् ३।२६) इति  
कु, सम्प्रसारणं सलोपः न्यङ्क्वादित्वात् कुत्वञ्च, यद्वा  
भृञ्जतीति विषय, भृक् उवाला तथा सहोत्पन्न इति उ । १  
मुनिविशेष, एक मुनिका नाम । महाभारतमें इस प्रकार  
लिखा है—पूर्वकालमें भगवान् रुद्रने चारुणिकमूर्ति धारण  
कर एक यज्ञका अनुष्ठान किया । इस यज्ञको देखनेके लिए  
मूर्तिमान् तप, यज्ञ, व्रत, दोक्षा, दिक्पतियोंके साथ  
दिक् समुद्राय, देवपत्नी, देवकन्या तथा देवजननीगण  
सभी प्रसन्न चित्तसे वहाँ पधारे । उस समय ब्रह्मा  
वहिर्यज्ञमें दीक्षित हो कर प्रज्वलित हुतासनमें आहुति  
प्रदान करते थे । अतः देवकन्याको देखते ही उनका  
वीर्यस्खलन हो गया । तब सूर्यने अपनेहाथसे उस वीर्यको  
ग्रहण कर हुताशनमें फेंक दिया । अनन्तर फिरसे भग-  
वान् प्रजापतिका रेतःस्खलन हुआ । तब उन्होंने स्वयं  
उस शुक्रको स्रज द्वारा ग्रहण कर हवनीय द्रव्यकी तरह  
मन्त्रोच्चारण पूर्वक अग्निमें आहुति प्रदान की ।

अग्निमें ब्रह्माका वीर्य आहुत होते ही पहले उसकी  
शिखासे भृगु, सधूम अङ्गारसे अङ्गिरा तथा निर्धूम अङ्गार-  
से कविकी उत्पत्ति हुई । इस प्रकार भृगु प्रभृतिको  
सृष्टि होनेसे चारुणीमूर्तिधारी महादेवने देवताओंको  
सम्बोधन कर कहा, 'मैंने इस यज्ञका अनुष्ठान किया है—  
मैं ही इसका कर्त्ता हूँ । अतएव जो तीन पुत्र उत्पन्न हुए  
वे मेरे ही पुत्र हैं ।' इस पर अग्निने उत्तर दिया,—वे

तीनों पुत्र मुझे ही आश्रय कर मेरे अङ्गसे उत्पन्न  
हुए हैं, सुतरां वे मेरे ही अपत्य हैं । महादेव कदापि इनके  
अधिकारी नहीं हो सकते । इतना कह कर अग्नि चुप  
हो गई । तब भगवान् ब्रह्मा बोले, 'मेरे ही वीर्यसे वे तीनों  
पुत्र उत्पन्न हुए हैं, अतएव वे मेरो ही सन्तान हैं । कारण  
शास्त्रानुसार वीज वीनैवाले हो फलभोगी होते हैं ।' इस  
प्रकार तीनों आपसमें झगड़ने लगे । तब देवताओंने  
मध्यस्थ हो कर उक्त तीनों पुत्रको तीनोंमें बांट दिया ।  
तेजस्वी भृगु महादेवके, अङ्गिरा अग्निके तथा कवि ब्रह्मा-  
के पुत्ररूपमें कल्पित हुए । अनन्तर धीरे धीरे भृगु,  
अङ्गिरा तथा कविके वंशजात प्रजासमुहसे जगत् परि-  
पूर्ण हुआ है । चारुणिकमूर्तिधारी महादेवके यज्ञसे ये  
उत्पन्न हुए थे, अतः इनके वंशसमुदायका नाम चारुण  
पड़ा । किन्तु भृगुसे जो वंश उत्पन्न हुआ है, वह भार्गव  
नामसे प्रसिद्ध हैं । ( भारत अनुशासनप० ८१ अ० )

इसी भृगुवंशमें परशुरामने जन्मग्रहण किया । विष्णु-  
पुराणमें लिखा है, कि भृगु ब्रह्माके मानस पुत्र थे । ये  
दश प्रजापतियोंमेंसे एक हैं । दक्षकन्या ख्यातिके साथ  
इनका विवाह हुआ । इस ख्यातिके गर्भसे विष्णुपत्नी  
लक्ष्मी तथा धाता और विधाता नामक दो पुत्र उत्पन्न  
हुए । महात्मा मेरुकी आश्रयति और नियति नामक दो  
कन्याके साथ दोनोंका विवाह हुआ । उनके पुत्र  
मृकण्डु आर प्राण हुए । धीरे धीरे इनका वंश विस्तृत  
हो कर भार्गव नामसे प्रसिद्ध हुआ । भृगु धनुर्वेदविद्याके  
प्रवर्त्तक थे । ( विष्णुपुराण ) रामायणमें लिखा है,—  
किसी समय जब असुरोंने भृगुपत्नीका आश्रय ग्रहण  
किया, तब असुरोंके नाशार्थ फेंके गये विष्णुके चक्रसे  
भृगुपत्नीका मस्तक कट गया । इस पर भृगुने भगवान्  
विष्णुको जाप दिया । इस शापसे भगवान् विष्णुको  
रामावतारमें पत्नीविद्योग-दुःख भोगना पड़ा था । इन्होंने  
किसी समय क्षत्रिय वीतहयको ब्राह्मणत्व प्रदान  
किया था ।

भृगु सप्तर्षिमेंसे एक हैं । प्रति दिन तर्पण करनेके  
समय भृगुके उद्देशसे तर्पण करना चाहिए । भगवान्  
विष्णुने गीतामें कहा है,—मैं महर्षियोंके मध्य भृगु हूँ ।  
२ शिवका दूसरा नाम । इन्होंने वर-प्रभावसे 'सगर

राजाने पुत्रलाभ किया था। सगर देखो। ३ शुक्रग्रह। ४ सानु। ५ जमदग्नि। ६ अरण्यकण्टकव्याप्त गिरिपार्श्वोच्च देश। निरवलम्बन पर्वतादिके जिस स्थलसे गिरनेसे कोई अवलम्बन नहीं रहता; वही भृगुदेश है। पर्याय—प्रातः, अतद, वृद्ध, पतनस्थान।

भृगु—सहाद्विवर्णित एक राजा।

भृगु—एक प्राचीन ज्योतिर्विन्। फेशायाक, वसन्तराज आदि ज्योतिर्विन्धोमें इनका नाम आया है। भार्गव-मुहूर्त्त, भार्गवसूत्र और भृगुसंहिता नामक कई ग्रन्थ इनके बनाये हुए मिलते हैं। २ आयुर्वेदज्ञ एक प्राचीन ऋषि। ३ भृगुस्मृति नामक एक धर्मशास्त्रकार।

भृगुक (सं० पु०) कूर्मचक्रके दक्षिण पार्श्वस्थित देश-भेद। (मार्कण्डेयपु० १८ अ०)

भृगुकच्छ (सं० स्त्री०) नर्मदाके उत्तरतटस्थित तीर्थक्षेत्र, आधुनिक भड़ोच जो प्राचीनकालमें एक प्रसिद्ध तीर्थ था। भरोच देखो।

भृगुकेशव (सं० पु०) भृगुस्थापित केशवः मध्वपदलोपिक, काशीस्थित भृगुस्थापित केशवमूर्त्तिभेद।

(काशील० ३३ अ०)

भृगुक्षेत्र—प्राचीन तीर्थविशेष। भृगुक्षेत्रमाहात्म्यमें विस्तृत विवरण लिखा है।

भृगुज (सं० पु०) भृगुजयिते जन-ड। १ भृगुके वंशज, भार्गव। २ शुकाचार्य।

भृगुतनय (सं० पु०) भृगोस्तनयः। भृगुतनय, शुकाचार्य।

भृगुतीर्थ (सं० स्त्री०) तीर्थभेद।

भृगुतुङ्ग (सं० स्त्री०) हिमालयकी एक चोटीका नाम। यह एक पवित्र तीर्थस्थान माना जाता है।

भृगुदेव—प्रवराध्यायके प्रणेता।

भृगुनन्दन (सं० पु०) परशुराम।

भृगुनायक (सं० पु०) परशुराम।

भृगुपति (सं० पु०) भृगुणां तहर्शीयाणां पतिः। परशुराम।

भृगुपथ—हिमालयस्थित केदारनाथ तीर्थके समीपका एक तीर्थ।

भृगुप्रक्षवण (सं० पु०) हिमालयसन्निहित पर्वत-विशेष।

भृगुभूमि (सं० पु०) भार्गवपुत्रभेद।

भृगुराम (सं० पु०) परशुराम देखो।

भृगुरेखा (सं० स्त्री०) विष्णुकी छाती परका वह चिह्न जो भृगुमुनिके लात मारनेसे हुआ था।

भृगुलता (सं० स्त्री०) भृगुमुनिके चरणका चिह्न जो विष्णुकी छाती पर है।

भृगुवल्ली (सं० स्त्री०) भृगुणाऽधोता वल्ली। तैत्तिरीय उपनिषद्की तीसरी वल्ली जिसका अध्ययन भृगुमुनिने किया था।

भृगुणास्ति (सं० पु०) भृगुणां पतिः अलुकसं०। परशुराम।

भृगूपनिषद् (सं० स्त्री०) उपनिषद्भेद।

भृग्वङ्गिरस् (सं० पु०) अथर्ववेदके कुछ सूक्तके ऋषि।

भृग्वङ्गिरोविद् (सं० स्त्री०) अथर्ववेदवित्।

भृग्वोश्वरतीर्थ (सं० स्त्री०) तीर्थभेद।

भृङ्ग (सं० स्त्री०) विनर्त्तति भृङ्ग भरणे (भृञ् कित् नृच्।

उण् १।१२४) इति गन्, सच कित्, मुडागमपञ्च। १ त्वच्, दारचीनी। २ धन्नक, अवरक। (पु०) ३ भ्रमर, भौरा। ४ कलिङ्गपत्नी, काले रंगका एक प्रसिद्ध पक्षी जो प्रायः सारे भारत, बरमा, चीन आदि देशोंमें पाया जाता है। इसे भोमराज भी कहते हैं। इसका मांस मधुर, स्निग्ध, कफ और शुकचर्दक माना गया है। ५ भृङ्गराज। ६ भृङ्गाद, भंगरैया। ७ भृङ्गरोल।

८ एक प्रकारका कोड़ा। इसके विषयमें यह प्रसिद्ध है, कि यह किसी कोड़ेके ढीलेको पकड़ कर ले आता है और उसे मिट्टीसे ढक देता है। पीछे उस पर बैठ कर और डंक मार मार कर इतनी देर तक धौर इतने जोरसे 'मिन्न मिन्न' शब्द करता है कि वह कोड़ा भी इसी-की तरह हो जाता है।

भृङ्गक (सं० पु०) भृङ्ग-संज्ञायाम् कन्। भृङ्गराजपत्नी।

भृङ्गखुल्ली (सं० स्त्री०) भृङ्गाढा। इसका गुण कटु, उष्ण, तिक्त, दीपन और रोचन माना गया है।

भृङ्गज (सं० स्त्री०) भृङ्ग इव जायते इति जन-ड। अगुक्काष्ठ।

भृङ्गजा (सं० स्त्री०) भृङ्गज-टाप्। भार्गी, भारङ्गी।

भृङ्गपर्यायिका (सं० स्त्री०) भृङ्ग इव कार्णयात् भृङ्गवर्ण



पर्णमस्या इति लोपः। स्वार्थे कन्-टाप अत इत्वञ्च  
इकारस्य ह्रस्वत्वं। सुश्मैला, छोटी इलायची।

भृङ्गमिय (सं० पु०) भूलीकदम्य।

भृङ्गप्रिया (सं० स्त्री०) भृङ्गार्णा प्रिया, प्रचुरमधुत्वात्।  
माधयी लता।

भृङ्गवन्धु (सं० पु०) भृङ्गार्णा वन्धुरिव मियत्वात्।  
१ कुन्दवृक्ष। २ कदम्बवृक्ष।

भृङ्गमारि (सं० स्त्री०) कोङ्कण-देशप्रसिद्ध केविका पुष्प-  
वृक्ष। इसका गुण मधुर, शीतल, दाह, पित्त, चातश्लेष्म  
और सर्दी नाशक माना गया है। (राजनि०)

भृङ्गमूलिका (सं० स्त्री०) भृङ्गस्य भृङ्गराजस्यैव मूलमस्याः  
क, अजाति वचनत्वात् टाप्, कापि अत इत्वं। भृङ्गाह्ला,  
भ्रमरमाली।

भृङ्गमोहिनि (सं० पु०) १ चम्पक वृक्ष। २ स्वर्णचम्पक,  
कनकचंपा।

भृङ्गरज (सं० पु०) भृङ्गान् रजयतीति अन्तर्भूतण्य-  
र्थाद् रजो अच्, ष्टपोद्वादित्वात् न लोपः। भृङ्गराज।

भृङ्गरजस् (सं० पु०) रजयतीति अन्तर्भूतण्यर्थात् रज्जे  
(सर्वधातुप्रयोगेऽसुन। उष्य ४। १२८) ततो (रजेभ्यः। पा ६। १। २६)  
इति न लोपः ततो भृङ्गार्णा रजाः रजकः, अथवा भृङ्ग  
इव कृष्णवर्ण रजः परागोऽस्य। भृङ्गराज।

भृङ्गरा (सं० स्त्री) भृङ्गराज, भृङ्गरैया।

भृङ्गराज—खनाम-प्रसिद्ध एक पक्षी जो कृष्णवर्ण होता है।

(*Dicurus ater*) इस पक्षीका वर्ण चींचसे ले कर  
पूँछ तक धीरे काला है। बीच बीचमें दो एक पर कुल  
चमकदार काले होते हैं, जिससे यह पक्षी देखनेमें  
सुहावना मालूम होता है। किसी किसीके दो एक  
सफेद पर भी देखे जाते हैं। बच्चोंके पंख और पूँछ  
फीकी और पंखोंके नीचेका भाग सफेद होता है।  
विभिन्न स्थानोंमें वासके कारण इस पक्षिजातिमें  
आवयधिक अनेक विभिन्नता पाई जाती है। अफगा-  
निस्तानसे आसाम और हिमालयसे लगा कर सिंहल तक  
विस्तीर्ण भारतसाम्राज्यमें तथा चीन, श्याम और  
कोचीन चीन आदि खण्डराज्योंमें इनका वासस्थान है।  
यह शीतऋतुकी अधिक पसन्द करता है, इसीलिये श्यान  
विशेषमें शीतके समय इनका भी शुभागमन हुआ करता

है। यह साधारणतः १२से १२। इश् तक लम्बा होता  
है जिनमें पुच्छभाग लगभग ७ इश् है। भोंच, पैर  
और पंजे काले होने पर भी आंखोंके चारों तरफ ललाई  
होती है।

आकृतिकी विभिन्नताको देख कर पक्षितचरविद्वैते इनके  
मध्य श्रेणीविभाग किया है। *D. ater* पक्षी बंगालमें—फिक्का  
भीमराज; पञ्जाबमें—जपाल, कालचित्त; दक्षिणात्यमें—  
कोलसा, बोजङ्ग वा बुचङ्ग; सिन्धुप्रदेशमें—कुण्डि,  
काल-कालचो; युक्तप्रदेशमें धमपल तेलगूमों—जति इन्ता,  
तामिलमें—कुडु कुसम, सिंहल और तामिलमें—कुडु  
कुर्वी एच; अंग्रेजीमें—*Drongo Shrike* नामसे परि-  
चित है।

कृष्णवर्ण देख कर बहुत-से तो इसे "कौओंका राजा"  
कहते हैं। गांवोंमें यह मैदान और बगूलके पेड़ों पर  
स्वच्छन्दतासे विचरण करते देखा जाता है। मैदानोंमें  
भूमते हुए वा पेड़ों पर बैठे बैठे वे अपनी पूँछ हिलाया  
करते हैं। वास पर बैठे हुए कोड़े भन्नेडोंकी चट कर  
जाने हैं। कभी कभी एक जगह बैठ कर खाना  
इसे पसन्द नहीं, एक दो कोड़े खा कर ऋट दूसरे  
स्थानकी उड़ जाता है।

मादा साधारणतः वैशाखसे आषाढ तक अण्डे देती  
है। पेड़ों पर बने पत्तोंकी ओटमें इनकी घोंसले छिपी  
रहते हैं। घोंसला बनानेमें इसके विलक्षण  
गिल्ल मिलाता है। यह लगभग ४से ले कर ५ तक अण्डे  
देती है, जिनमें कुछ तो सफेदसे और कुछ लाल छोट्टे-  
से होते हैं।

*D. longicaudatus* वा *Indian Ashy Drongo*  
पक्षीकी बंगालमें—नीलाफण्ड, लेप चांम—सहिम  
फने, भूटानमें—चेचुम, तामिलमें—पराटु-बलन-कुय्यी  
फहते हैं। ब्रह्मपुलके उत्तरमें राजपूताणा, सिन्धु,  
गुजरात और हजाराकी तरफ इसका वास है।  
इसके अण्डे अपेक्षाकृत छोटे होते हैं।  
इसके सिवा तेनासेरिम प्रदेशमें *nigrescens* सिंहल  
और हिमालयमें *D. Caerulea* (पेट सफेद, धीली),  
सिंहलमें *D. leucopygialis* (क्यूदा पणिका) तथा  
श्याम, ब्रह्मा और कोचीनराज्यमें *D. leucogenis*.

(मुह सफेद) और D. ceneraceus नामक भोमराज प्रधानतः देखनेमें आता है।

यह सुमधुर रसमें गान कर सकता है। श्यामा, बुलबुल और फोफिलको तरह बहुत-से लोग भोमराजको भी पालते हैं। सिर्फ सुतीली तान सुना कर ही यह मनको मोहित नहीं करता, बल्कि अन्यान्य पक्षियोंसे लड़ कर भी यह मनुष्योंके हृदयमें आनन्द पैदा करता है। बुलबुल, मुरगा, तीतर, आदि पक्षियोंको तरह यह भी लड़नेमें पटु होता है। यह आपसमें भी लड़ता है।

भृङ्गराज (सं० पु०) नेत्ररोगाधिकारोक्त नीलोपध विशेष। प्रस्तुत प्रणाली—तिल तैल ४ पल, भृंगराजका रस ४ सेर, कल्क यष्टिमधु १ पल, नियमपूर्वक इस तैलका पाक करना होगा। इस तैलकी नस लेनेसे दृष्टिशक्तिको वृद्धि होती और दृष्टिदोष जाता रहता है। एक मास तक इस तैलका व्यवहार करनेसे बलिपलित्तादि दोष भी दूर होता है।

भृङ्गराज (सं० पु०) भृङ्ग इव राजते इति भृङ्ग-राज-अच् । १ भोमराज, भंगरैया। २ पश्चिमिरोप, भोमराज। ३ भ्रमद, भौरा। ३ यक्षभेद। ४ दापचीनी।

भृङ्गराजक (सं० पु०) भोमराज पक्षी।

भृङ्गराजघृत (सं० पु०) भृङ्ग रोगाधिकारमें घृतीपधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—घृत १ सेर, भोमराजका रस ४ सेर, कल्कार्थ मयूर पित्त १६ तोला। यथानियम इस घृतका पाक करे। सात दिन तक इस घृतकी नस लेनेसे बालोंका असमयमें पकाना बंद हो जाता है।

(भैषज्यरत्ना०)

भृङ्गराजादिचूर्ण (सं० पु०) रसायनाधिकारोक्त चूर्ण-ओषधिविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—भृङ्गराजचूर्ण १ भाग, तिलतैल ॥० आध भाग और आमलको ॥० आध भाग इन सब द्रव्योंको मलीमांति चूर्ण कर एक साथ मिलावे। पीछे चीनी और गुड़के साथ सेवन करनेसे जरा तथा विविध रोगकी शान्ति होती है। (भैषज्यरत्ना०)

भृङ्गरिदि (सं० पु०) भृङ्ग इव रटति इति भृङ्ग-रट-इन्, ष्टोदरादित्वाधिकारागमः। १ शिव-द्वारपाल, शिवजीके द्वाररक्षक।

भृङ्गरिटी (सं० पु०) भृङ्गरिदि ष्टोदरादित्वात् साधुः। १ शिवद्वारपाल। २ लीह।

भृङ्गरोल (सं० पु०) भृङ्ग इव रीति, भृङ्ग-र-बाहुलकात् ओलच् अस्य भृङ्गतुल्यशब्दत्वात्तथात्थं। कीटविशेष, एक प्रकारका कीड़ा। पर्याय—विपस्का, वरोल, तृणपद-पद। इसके काटनेसे बहुत पीड़ा होती है। २५ या ३० यदि एक साथ काटे, तो मृत्यु हो जा सकती है। इसके काटे स्थान पर प्याजका रस लगानेसे बहुत फायदा होता है।

भृङ्गबल्लभ (सं० पु०) भृङ्गानां बल्लभः प्रियः। धारा-कदम्ब, भूमिकदम्ब।

भृङ्गबल्लभा (सं० स्त्री०) भृंगानां बल्लभा। १ भूमिजम्बु। २ तरणोपुष्प वृक्ष।

भृङ्गवृक्ष (सं० पु०) भृङ्गराजवृक्ष, भंगरैया।

भृङ्गसुहृद (सं० पु०) भृङ्गानां सुहृद इव प्रियत्यात्। मन्दुपुष्प वृक्ष।

भृङ्गसोदर (सं० पु०) भृंगानां सोदरस्तुल्यः। केश-राज।

भृङ्गाधिप (सं० पु०) भृंगानामधिपः। १ भृंगोका अधिपति। २ भोमरूल।

भृङ्गानन्दा (सं० स्त्री०) भृंगानामानन्दो, यस्याः भृङ्गानां आनन्द, आनन्दकरो वा। यूथिका, जूहि नामका फूल।

भृङ्गामीष्ट (सं० पु०) भृंगानां अभीष्टः प्रियः मधु-वाहुल्यात्। आम्रवृक्ष, आमका पेड़।

भृङ्गार (सं० स्त्री०) भृ-धारणपोषणायोरिति (यद्-रथज्ञती उष् ३।१३६) इति आरन् निपातनात् जुम् गुक् च वा भृंग जलमियत्त्वेनेति भृङ्ग-ऋ-करणे घञ्। १ लयंग, लौंग। २ सुवर्ण, सोना। ३ सुवर्णनिर्मित वारि-पाल, सोनेका बना हुआ जल पीनेका बरतन। पर्याय—कनकालुका, गुडूक, गडूक। ४ जलपात्रभेद, जल भर कर अनियेक करनेको भारी। यह पाल आठ प्रकारका होता है, यथा सीवर्ण, राजत भौम, ताम्र, स्फाटिक, चान्दन, लौहज और शार्ङ्ग। राज्याभिनेक देखो।

भृङ्गारक (सं० पु०) भृंगार स्वार्थं कन्। भृङ्गार।

भृङ्गारि (सं० स्त्री०) भृङ्ग भृंगवद्वर्णं ऋच्छतीति ऋ-इन्। केविका पुष्प, केवड़ा।

भृङ्गारिका (सं० स्त्री०) भृङ्ग-ऋ- (कर्मपयष् १ पा ३।२।१)

कार्य प्रदान करें। नियमितरूपसे उन्हें वेतन देना आवश्यक है। जो जिस योग्य है उन्हें उसी प्रकारका वेतन देना उचित है। कमी भी वेतनमें गठना नहीं करनी चाहिये। (गण्डपुराण ११२ अ०)

शुकनीतिमें भूत्रके विषयमें इस प्रकार लिखा है—  
विचारके साथ भृत्यकी परीक्षा करनी चाहिए। भृत्यका केवल जाति वा कुल ही परीक्षणयोग्य नहीं है, बल्कि उसके कर्म और स्वभावकी भी परीक्षा करना उचित है। विवाहादि कार्योंमें केवल जाति कुल देखा जाता है, किन्तु भृत्यमें जाति वा कुल द्वारा श्रेष्ठत्व नहीं आता उसका एकमात्र कार्यकुशलता और स्वभावसे ही आदर हुआ करता है। भृत्यको सुगील और निरलस हो कर प्रभुका कार्य सम्पादन करना चाहिए। अपने कार्योंमें जैसा प्रयत्न किया जाता है, प्रभुके कार्योंमें उससे कहीं अधिक और चीगुना प्रयत्न करना आवश्यक है। भृत्यके सर्वदा परितुष्ट, मृदुभाषी, कार्यदक्ष, शुचि और दूसरेके उपकारमें कुशल और अपकारसे पराङ्मुख होना चाहिए; सत्कार्यमें अदीर्घसूतो और असत्कार्यमें दीर्घसूतो होना आवश्यक है, अर्थात् मालिक अगर कोई अच्छे कामके लिए फदे, तो उसे तुरत हो कर दे, और अगर किसी बुरे कामके लिए आज्ञा दे, तो उसे जितना हो सके देर करके करे।

असद्भृत्यके लक्षण ।—गठ, कातर, लोभो, समक्षमें प्रियवादी, मत्त, व्यसनयुक्त, आर्त्त, घूसखोर, जुआड़ी, नास्तिक, दाम्भिक, असत्यवादी, अज्ञाकारो, अपमानकारक, असद्भाष्य द्वारा मर्म-पीड़क, शत्रुका सेवक और अधार्मिक, इन लक्षणोंसे युक्त भृत्य निन्दनीय है। ऐसे भृत्योंको निन्दित भृत्य कहते हैं।

भृत्यको रात्रिके शेषमें उठ कर गृह-कार्यादिकी चिन्ता करके प्रातःकृत्यादिका अनुष्ठान करना चाहिए। डेढ़ मुहूर्त्त अर्थात् लगभग तीन दण्ड समयमें ही अपना काम समाप्त कर कर्मक्षेत्रमें जाना उचित है। वहां जा कर विशेष मनोयोगके साथ प्रभुका कार्य सम्पादन करे। भृत्यकी सर्वदा अनुदत्त वेशमें और प्रभुके पास प्रखलि हो कर रहना चाहिए। जो जिस कार्यमें नियुक्त हों, उन्हें ध्यान पूर्वक उस कार्य-

को ममाम करके दूसरे काममें हाथ डालना चाहिए। क्रिमो भी व्यक्ति पर अज्ञाया भृत्यके लिए विशेष अनिष्ट कर है। भृत्यको उचित है कि प्रभुके रहस्य-विषयको कदापि प्रकट न करे। भृत्य यदि अप्रधान हो और अच्छी तरहसे मालिककी सेवा करे, तो समय पर कमी यह प्रधान हो सकता है; और जो प्रधान है, वे अपने काममें लापरवाही करनेसे समय पर अप्रधान हो जाते हैं। (शुक २ अ०)

अग्निपुराणमें भृत्यके कर्त्तव्यका विषय इस प्रकार लिखा है—भूत्रकी शिष्यकी तरह प्रभुको आज्ञा पालना चाहिए, कमी भी उनके आदेशका उल्लङ्घन न करे। अनुकूल प्रिय वाष्योका प्रयोग करे, हितकर वाष्य अप्रिय होने पर भी निर्जनमें अवश्य करे। कदापि विचिहरण वा प्रभुका अपमान न करे। मालिकके समान वेग-भूया धारण करना भृत्यके लिए निषिद्ध है। मालिक किसी कामके लिए यदि दूसरेको आज्ञा दे, तो उसे तुरत ही वह काम खुद कर देना चाहिए। स्वामीके विषे हुष बल, अलङ्कार और रत्न आदिको सर्वदा धारण करना उचित है। भृत्य बिना आज्ञाके द्वारमें प्रवेश न करे। मालिकके सामने कमी भी अयोग्य स्थानमें न बैठे। प्रभुके समक्ष जृम्भा, निष्टोचन, हास्य, कोप, मृकुटी, उद्गार आदि वर्जनीय है। शठता, नास्तिकता, क्षुद्रता, और चपलता आदि दोष राजसेवाके समय त्याग देना चाहिए। भृत्यको उचित है, कि वह सर्वदा ऐसा ही काम करे जिससे मालिक प्रसन्न रहे। उसे चिरकि त्याग कर सर्वदा अनुरागके साथ काम करना चाहिए, केवल आपत्तिकालमें मालिकके हितके लिए इसके विपरीत करना दोषावह नहीं है। कोई गुह्यविषय में आदेश पाने पर किसी प्रकारका सन्देह वा भय करना उचित नहीं। इन लक्षणोंसे युक्त भृत्य ही सद्भृत्य कहलाता है। इसके विपरीत आचरण करनेवाला कुभृत्य है। (अग्निपुराण २२१ अ०)

भृत्यता (सं० खी०) भृत्यस्य भावः तल टाप् । भृत्यका भाव या धर्म ।

भृत्या (सं० खी०) १ दासी । २ धनन, तनव्याह । भूत्रिम (सं० लि०) भरणजातः भू त्रिमप् । भरणसे जात ।

भूमि (सं० पु०) भूमति भ्राम्यति वेति भूम् भूमेः (संप्रसारण-  
गण्यन् । उण्य् ४।१२०) इति इन् कित्, सम्प्रसारणश्च । १  
वायुवियोग, ध्वंङर । २ जलादि भूमण, पानीमें का  
भंघर या चक्र । ३ धोणाविशेष, वैदिक कालकी एक  
प्रकारकी धोणा । ( ति० ) ४ भूमणशोल, धूमनेवाला ।  
भूम्यध्व ( सं० पु० ) भूमय इव अश्व्याः पत्य । ऋषिभेद,  
एक प्राचीन ऋषिका नाम ।

भृग ( सं० क्ली० ) भृश्यति प्राचुर्येण वरांते इति भृश् क ।  
अत्यधिक, बहुत अधिक ।

भृशक—शकवंगीय एक राजा । युक्तप्रदेशके विजयनौर  
जिलेमें उनके नामकी अङ्कित मुद्रा पाई गई है ।

भृशङ्क्ष्व ( सं० पु० ) नासारोगभेद ।

भृशंपत्तिका ( सं० स्त्री० ) महानिली ।

भृशत् ( सं० पु० स्त्री० ) पापाण ।

भृशम् ( सं० अथ० ) भृश-बाहुलकान् कमु, मान्तमध्ययम् ।  
१ मुद्ग, धार वार । २ शोभन ।

भृशादि ( सं० पु० ) भृश-आदि करके पाणिनि-उक्त शब्द  
गण । यथा—भृश, ग्रीष, चपल, मन्द, परिडत, उत्सुक,  
सुमनस्, दुर्मनस्, अमिमनस्, उन्नमनस्, रहस्, रोहत्,  
वेहन्, वृषन्, शश्वन्, प्रमत्, चेहत्, शुचिस्, शुचिवर्चस्,  
अन्तरवर्चस्, ओजस्, सुरजस्, अरजस् ।

भृष्ट ( सं० त्रि० ) भ्रसृज-क । अग्नि संयोग द्वारा एक, भूना  
हुआ ।

भृष्टकार ( सं० पु० ) मङ्भूजा ।

भृष्टकुलत्थ ( सं० पु० ) भर्जित कुलत्थक, भूनी हुई  
कुलथी ।

भृष्टचणक ( सं० पु० ) भर्जित चणक, भूना हुआ चना ।  
इसका गुण रुचिकर, वातनाशक, रक्तका दोषजनक,  
उष्णवीर्य, लघु, कफ और शैत्यनाशक माना गया है ।

( राजनि० )

भृष्टतण्डुल ( सं० पु० ) भर्जित तण्डुल, भूना हुआ  
चावल ।

भृष्टतण्डुलात्र ( सं० क्ली० ) भर्जित तण्डुलका अत्र, भूना  
हुआ चावल ।

भृष्टमत्स्य ( सं० पु० ) भर्जित मत्स्य, भूनी हुई मछली ।

भृष्टमांस ( सं० क्ली० ) घृतादि द्वारा भर्जित मांस, भूना

हुआ मांस । इसका गुण विदाही तथा रक्त और  
वातादिदोषनाशक माना गया है ।

भृष्टमृत् ( सं० स्त्री० ) अग्नि भर्जन द्वारा दग्ध मृत्तिका,  
जली हुई मट्टी । स्त्रियां गर्भावस्थामें इस मिट्टीको बहुत  
पसन्द करती हैं ।

भृष्टयव ( सं० पु० ) भृष्टश्चासी यवश्चेति । भर्जनविशिष्ट  
यव, भूना हुआ जौ ।

भृष्टान्न ( सं० क्ली० ) भृष्टं अन्नं । भृष्ट तण्डुल, मूट्टी ।  
पर्याय—कुहर, न्याट्या ।

भृष्टि ( सं० स्त्री० ) भ्रसृज-भावे कित् । १ भर्जन, भूना ।  
२ शून्यवाटिका, सूना बगोचा ।

भृष्टिमत् ( सं० त्रि० ) भृष्टि-अस्त्यर्थे मनुष्य । १ अधि-  
युक्त वज्र. वज्र अष्टाधियुक्त । ( पु० ) २ ऋषिभेद ।

भेंट ( हिं० स्त्री० ) १ मिलना, मुलाकात । २ उपहार, नज-  
राना ।

भेंटना ( हिं० क्ति० ) १ मुलाकात करना, मिलना । २ आलि-  
ङ्गन करना, गले लगाना ।

भेंटाना ( हिं० क्ति० ) १ मुलाकात होना, मिलना । २ किसी  
पदार्थ तक हाथ पहुँचाना, हाथसे छुआ जाना ।

भेंड़ ( हिं० स्त्री० ) भेड़ देखो ।

भेंवना ( हिं० क्ति० ) भिगोना, तर करना ।

भेक ( सं० पु० ) विभेति इति भो ( इन् मीकापाशब्दतीति ;  
उण्य् ॥४३) इति कन् । जन्तुविशेष, भेड़क, बेंग । पर्याय—

मण्डूक, वर्षाभू, शालूर, छव, वृद्ध, वृष्टिभू, सादूर, छव-  
ङ्गम, ध्याङ्ग, छवग, शह, नन्दन, गूढवर्चा, अजिह, जिहा-  
मोहन, नन्दक, छतालय, रेक, मण्ड, हरि, लुलुक, शालूक,  
कटुरव । इसके मांसका गुण सधवलकर, ध्रम, तुष्णा,  
दाह, प्रमेह, कुष्ठ और छर्दिनाशक माना गया है । ( राजनि० )  
२ छण्णात्र, काला अवरक । ३ मेघ, वादल ।

भेक—खनाम-भ्रसिद्ध उभयर जीवविशेष ( Frog )  
मण्डूक, भेड़क । भेकतत्त्वकी थालीचना करके प्राणि-  
तत्त्वचिदंनि इसे जल और स्थलचर सरीसृप Amphibi-  
ous reptiles में शामिल किया है । उनमें भी उन्होंने  
पुच्छहीन Anourous और सपुच्छ urodeles इस  
प्रकार दो भेद करके भेकजातिकी प्रथमोक्त ध्रेणीमें शामिल  
किया है ।

भारत, सिंहल, चीन, ब्रह्म, अमेरिका और यूरोपके नाना स्थानोंमें भेकजातिका वास है। उनके विभिन्न श्रेणीके नामोंका मिलना दुष्कर है। मेढकको फरा-सोसी भाषामें—Grenouille, जर्मनीमें—Frosch इटलीमें—Ranocchia, स्पेनीमें—Rana, अंग्रेजीमें—Frog और लैटिनमें—Batrachia salicuta कहते हैं। परन्तु आकृतिगत प्रभेद इनमें सर्वत्र हो पाया जाता है।

आकृतिगत पार्श्वय और विभिन्न स्थानोंमें अस्थि-समावेशके विषय पर लक्ष कर प्राणितत्त्वविदोंने भेक-जातिमें तीन स्वतंत्र श्रेणियां निर्दिष्ट की हैं। उक्त तीन श्रेणियोंके श्रेणीफलककी अस्थियोंके ossa ili और os innominata दृश्य, विस्तृति और सङ्कोचावस्थासे इनका पार्श्वय निर्धारित हुआ करता है। १ Rana वा जलविहारी भेक हमारे देशके सुनहरे मेढकके (Rana palustris) समान है। इसका मुँह जुकीला, आखें करोटिके पार्श्वदेशमें ऊँची, तथा श्रेणी-सन्धानमें पिछले पैरों तक ४ सन्धिस्थान हैं। सामनेके पैर मनुष्यके हाथके समान तीन प्रस्थियोंसे युक्त हैं तथा सामनेके पैरोंमें ४ और पीछेके पैरोंमें ५ उँगलियां हैं। पीछेके पैरोंकी उँगलियां हंसकी भांति चर्मपट्ट द्वारा जुड़ी हुई हैं। २ Tree Frogs वा Hyla bicolor देखनेमें कुछ कुछ बंगालके आसापा-मेढकके समान है। यह पेड़ों और भीतों पर चढ़ सकता है। बंगालका आसापा मेढक सफेद और छोटा होता है, और देखनेमें भिन्न जातीय जीव मालूम पड़ता है। दक्षिण-अमेरिकाके Hyla bicolor की Oxyrhynchus bicolor श्रेणीफलकास्थि अपेक्षाकृत छोटे आकारकी होती है। यह स्वभावतः कृशकाय और इसके पीछे और सामनेके पैरोंकी अँगुलियोंके अप्रभागमें गोलाकार मांस-पिण्ड होता है। ३ बंगालके 'कोला' श्रेणीके मेढकोंमें जिनकी श्रेणीफलकास्थि छोटी (Bufo vulgaris) होती है, वह Bufo और जिनकी वह अस्थि छोटी होने पर भी प्रशस्त है, वह (Pipa monstrata) Pipa नामसे परिचित है।

साधारणतः भेकजातिके नीचेकी डाढ़ोंमें दांत नहीं होते। किन्तु अमेरिकामें Ceratophrys granosa

शाखाके मेढकोंकी डाढ़ोंकी हन् अस्थियां ऐसी ऊँची होती हैं कि वे हर समय दांतोंका काम देती हैं। Bufonidae श्रेणीके मेढकोंके तो दांत होते ही नहीं, पर Hyladactylus शाखाके मेढकोंके नाककी हड्डीमें तथा Sclerophrys श्रेणीके मेढकोंके ऊपर और नीचेके हन् में दांत देखा जाता है। कोई चोज लीलते समय उन दांतोंसे छोटी मछलियां, पानीके अन्य कीड़े मकीड़े आदि चाब जाते हैं। कभी कभी ये जिह्वा द्वारा पिपी-लिका आदि पकड़ कर लील जाया करते हैं। उसके लिए चर्चणकी आवश्यकता नहीं। Pipa श्रेणीके और बड़े 'कोला'-मेढकोंका मुँह ऐसा चौड़ा होता है कि, वे आसानीसे कसेरु जानवरको लील जाते हैं। परन्तु मुख्यतः ये कीट, पतंग आदि ही भक्षण करते हैं। इनके भोज कोमल मांसल नहीं होने, दांनों डाढ़ोंके सामनेका हिस्सा मछली और सर्पादिकी तरह उपास्थि द्वारा गठित और सूक्ष्म चर्म-द्वारा आच्छादित है। इसी कारण ये अनायास ही प्रस्तरादि कठिन पदार्थों पर बैठे हुए कीट-पतंगादिकी ग्रहण करनेमें समर्थ होते हैं।

जिह्वा ही इनके खाद्यादि आहरणको प्रधान प्रसाधक है। अन्यान्य जन्तुओंकी तरह इसके जिह्वामूलमें हड्डी नहीं होती। नीचेकी दोनों डाढ़ोंके संयोगस्थानके गहरसे वह जिह्वा निकली है। जब यह मुँह बन्द किये रहता है, तब इसकी जिह्वा वायु-नलीके छिद्रके मुँह पर रहती है। परन्तु जब यह शिकार पानेकी आशासे जीभको फैलाता है, तब मालूम होता है कि मानो वह जोर लगा कर जीभको निकाल रहा है। शिकारको पकड़ कर जब यह मुँह में ले जाता है, तब जीभको इस ढंगसे घुमाता है कि उसका निचला हिस्सा ऊपर और ऊपरका हिस्सा नीचेकी ओर चला जाता है, फिर वह जीभ मुँहमें जाने पर पूर्व-वत् दिखलाई देता है। शिकार ग्रहण करते समय यह अपनी जीभको ऐसी जल्दीके साथ फैलाता और समेटता है कि पलक मारते मारते काम खत्म हो जाता है। इसकी जीभके आगे एक प्रकारका गोंद जैसा पदार्थ होता है। जीभके फैलते ही कीटादि उसमें सट जाते हैं और फिर उन्हें वह लील लेता है।

मांसपेशियोंके संस्थानके विषयमें आलोचना करके

इतना मालूम हुआ है कि इनके लिये कूदना, तैरना और चलना फिरना विशेष उपयोगी है। पीछेके पैरोंको जड़ जांचे और पेटकी पेशियां कूदने और तैरनेमें सहायता देती हैं तथा सामनेके पैर उसको रक्षामें समर्थ होते हैं। पीछेके पैरों पर जोर दे कर यह अपनी देहको उठता है और बैठते समय पहले अगले पैरोंको जमीन पर टेकता है। १० हात तक ऊंचे स्थानसे गिरने पर भी इसके अङ्ग-प्रत्यंगोंको कोई हानि नहीं पहुंचती। मेढ़कको साम-की तरफ लगभग १०-१२ हाथ तक उछलते देखा गया है। चर्पां अस्तुमें हमारे देशमें डलदल जमीन और तालाबों में मेढ़कोंकी उत्पत्ति होती है। गांवों और शहरोंके शैतान लड़के डेले मार मार कर भेकोंकी स्वभावतः तंग किया करते हैं; क्योंकि उससे मेढ़क कूदते, और तैरते फिरते हैं, जिससे उन्हें मजा आता है। वास्तवमें वर-सातके बाधलोंसे घिरी हुई नीरव रात्रिमें बड़े बड़े 'कोला' मेढ़कोंका लगातार टिर-टिर शब्द और पानोंमें जोरोंसे कूदना पथिकोंके लिए एक भयावह विषय है। उस निस्तब्ध रात्रिमें मेघ-गर्जनके साथ साथ भेकोंके शब्द गोया सचमुच ही उस स्थानमें भीतिका अनिष्ट-निनाद घोषित करता है। बंगालमें तो माताएं लड़कोंको शान्त करनेके लिए 'कोला' मेढ़कका नाम ले कर उन्हें डरा दिया करती हैं।

दिनको चारों तरफ कर्मजगतकी क्रिया प्रारम्भ हो जानेसे भेकोंका गभीर शब्द स्पष्ट सुनाई नहीं देता सही, पर उनकी जलकीड़ा और लम्फनादि देखनेकी चीज है, सन्देह नहीं। उनको उच्चोलनकारी मांसपेशी और अस्थि-शक्तिके आधिपत्य तथा निम्न देहभागके पुष्ट गठनकी उत्कर्षताके अनुसार ही कूदनेमें ये समर्थ होते हैं। आहतिके परिमाणानुसार ये शून्य मार्गमें २० गुने और सामनेकी तरफ एक कुदानमें ५० गुने तक अधिक उछल जाते हैं।

ये भ्वासनालीसे वायु खींच कर फुसफुसमें ले जाते हैं। शीतऋतुमें जब ये गड्ढोंमें छिपे रहते हैं, तब वायु ही इनके लिए विशेष आहार्यरूपमें ग्रहणीय होती है। इनकी पाकस्थली अन्यान्य मांसाशी जन्तुओंके सदृश है। उद्दरस्थ पदार्थोंकी परिपाक-क्रियाकी युद्धिके

लिए एक स्वतन्त्र अन्त (अंतड़ी) है। छोटी छोटी मेढ़कियां जब तालाबोंमें रह कर शैथालादि उद्भिन्न-द्वारा प्राणधारण करती हैं, तब वह शिरा दीर्घाकार रहती है। पीछे जब वे प्रकृष्ट भेकाकार धारणपूर्वक कीटादि खाने लगती हैं, तब वह शिरा प्रायः ५ भागमेंसे ४ भाग घट जाती है। यहतांश तीन गोलाकार पिण्डोंमें विभक्त है। उनमेंसे एकमें पित्तकोप रहता है। प्लाहा गोलाकार और छोटी हो जाती है। जननेन्द्रिय भी यकृतके बीचमें रहती है।

भेकोंकी वायु अधिक होती है। अण्डोंसे बाहर निकलने पर उन्हें बेंगची कहते हैं। बेंगचीकी पूंछ गिर जाने पर उसको देहका पुनर्गठन होता है। उस समय छोटी छोटी मेढ़कियां इधरसे उधर कूदती फिरती हैं। उसके बाद बहुत धीरे धीरे देहकी पुष्टिके साथ उनकी आकृतिका परिवर्तन होते देखा जाता है। मेढ़क बिना मारे अपने आप जल्दी नहीं मरता। अति वृद्धावस्थामें भी यह बहुत दिनों तक भूखों रह कर जीता है।

भेकजातिके गठनपरिचर्चनके तारतम्यानुसार रक्त-चालन-क्रियाका भी रूपान्तर घटा करता है। बेंगची अवस्थामें मत्स्यादिकी तरह इनके भी हृत्पिण्डसे रक्तका संचालन हुआ करता है; परन्तु जब ये पूर्ण भेकरूपको प्राप्त कर लेते हैं, तब इनमें एक सम्पूर्ण दैनिक परिवर्तन हो जाता है। उस समय वे अपने फुसफुसकी सहायतासे श्वासक्रिया करते हैं, और बेंगची अवस्थामें जो उनके रक्त बहानेकी नाली और गहर था, वह भी बहुत कुछ क्षयको प्राप्त हो जाता है। इसके शरीरमें तीन प्रधानतम शिराएं होती हैं,—एकसे मस्तककर्म, दूसरीसे देहके निम्नभागमें और तीसरीसे कोषाकार हृत्पिण्डमें रक्त सञ्चालित होता है। इन तीनों शिराओंसे अन्यान्य शिराओंमें रक्त प्रवाहित होता है।

पशुर्का वा पञ्चरास्थिका अभाव होने पर भी इनकी श्वासक्रियामें विशेष हानि नहीं पहुंचती। यहां तक, कि ये वृद्धावस्थामें सिर्फ वायु-सैवनसे ही जीवन धारण करते हैं। चर्पांके प्रारम्भमें तालाबके आस पास नर और मादोंका सङ्गम होता है। गर्मिणी मेढ़कीके पेट

फूल जानेसे उसकी श्वासक्रियामें व्याघात पहुँचता है। जब तक कि इनका फुसफुस वृद्धिको प्राप्त हो कर श्वास लेनेके काविल नहीं हो जाता, तब तक इनके गलेमें रंगीन-सा कुछ दिखाई पड़ता है। गर्भिणी एक समयमें १३से १४ तक अण्डे देती है। अण्डेमें हरे रंगकी अण्ड-राल रहती है, जो जल्दी जमती नहीं। अण्डेमेंकी राल क्रमशः भ्रूण-रूपमें परिणत और उदरभागका क्षत-चिह्न-नाभिमें पर्यवसित होता है। कभी कभी एक अण्डेमें दो जीवोंकी उत्पत्ति देखनेमें आती है और कभी दो सिर, छह पैर और दो पूँछवाले भयानक जीवकी उत्पत्ति भी देखी गई है। वेगचीकी पूँछ छूने पर भी उससे अन्यान्य क्रियाओंमें कोई बाधा नहीं पहुँचती। ये दांतोंसे शैवालादि उद्भिज्ज पदार्थोंका विश्लेषण कर सकती हैं। उस समय इनकी श्वासक्रिया भी पूर्ववत् अभुण्ण रहती है।

प्राणितत्त्वविद्गण इनकी श्वासशक्तिको देख कर चमत्कृत हुए हैं। स्थानीय वायवीय तापके आधिक्यके कारण इनकी श्वासक्रियामें आतिशय्य देखा जाता है। M. Delaroché ने देखा है, कि ४२° से ४७° डिग्री (F) उष्णतामें रखे हुए मेककी अपेक्षा ८०° F वायवीय उष्णतामें रखा हुआ मेक ४ गुणा अधिक आग्लजन ग्रहण करता है। पानी समेत कांचके गिलासमें तथा गहरी बहती हुई नदीमें जाल डाल कर कई मास तक मेढ़कोंको रोक कर रखा गया है, उससे मालूम हुआ कि यह ज्यादा दिनों तक जीता है। उनकी यह वायु-ग्रहण शक्ति उन्हें दीर्घ समय तक जिलाये रखती है। किसी पत्थरके छिद्र-में प्रविष्ट हो कर यदि मेढ़क किसी कारणसे निकलने न पाये, तो वहाँ वह वायु खा कर जीनेके लिये मजबूर होता है। क्रमशः वर्षों बीत जाने पर जलवायुके गुणसे वह प्रवेश-पथ प्रस्तरकी स्वाभाविक वृद्धिसे आवद्ध हो जाता है। तब उसमें वायु वा आहार्य प्रवेशके लिए किसी प्रकारका छिद्र नहीं रहता। प्राकृतिक परिवर्तनसे प्रस्तर-छिद्रके अवरोधको देख कर अनुमान किया जाता है, कि वह मेढ़क शताब्दियों से उसमें रखा हुआ था, परन्तु आश्चर्यका विषय है, कि तब भी वह जीवित और पुष्ट-देहयुक्त है। पत्थर तोड़ते समय ऐसे जीवित मेढ़क भीतर

से निकलते देखे गये हैं। डा० बकलेण्डने इस बातकी प्रमाणित करनेके लिये १८२५ ई०में कई एक पत्थरके गोलाकार कोप बना कर उनमें हरएकमें एक एक बड़ा मेढ़क छोड़ कर उनके मुँह बन्द कर दिये थे। ये छिद्र पहले कांच और उस पर पत्थर दे कर सिमेण्टसे मूँदे गये थे। अन्तमें उन्हें १३ महीने तक मिट्टीमें गाढ़ कर रखा गया। बाद निकालने पर कई एक तो आकृतियों पुष्ट देखे गये और कईका शारीरिक हास।\*

ये जल और वायुका शोषण (अर्थात् तैरते समय जलग्रहण और श्वासप्रश्वास क्रिया) जिस प्रकारसे करते हैं उसका अनुधावन करनेसे आश्चर्यान्वित होना पड़ता है। ये जितना पानी पीते हैं, उसका कुछ अंश तो पचा डालते हैं और कुछ शरीरके छिद्रोंसे निकल जाता है। शरीरगत जलीय पदार्थ चर्मद्वारासे निकल जाता है, इसलिये ये अधिक उष्णतामें भी जीते रहते हैं। १०४० (F) डिग्री उच्चत पानीमें मेढ़क २ मिनट तक जी सकता है, पर उतनी ही गरम वायुमें यह ४ या ५ घण्टे तक जी सकता है। जिस परिमाणमें यह शरीरान्यन्तरस्थ जलीय पदार्थको निकाल कर गात्रचर्म शीतल रख सकते हैं, तभी तक यह बाह्यताप सह कर जीवन-रक्षामें समर्थ होता है।

जीव-जगत्में रह कर इस क्षुद्राकार जीवन छोड़ा बहुत सभी विषयोंमें भगवच्छक्ति प्राप्त की है। वृक्षकोटर वा प्रस्तरपिण्डके भीतर निवृद्ध अवस्थामें जीवनयापन

\* प्रयाद है, कि पत्थरके भीतर रले हुए ये मेढ़क प्रलयके पूर्ववर्ती युगके थे (Antediluvian touds) डा० बकलेण्डके प्रमाण देनेसे वह भूम दूर हो गया है। १७१७ ई०की विशान-विवरणोंमें (Memoirs of the Academy of Sciences) प्रकाशित हुआ है कि एक प्राचीन एलम-वृक्षके भीतर तथा १७३१ ई०में नैपटज नगरके एक पुराने भोक्वृक्षके भीतर एक मेढ़क बन्द था। उसके प्रवेशपथका नामोनिशान भी न था। वृक्ष ही आहुति और अवस्थाको देख कर अनुमान होता था कि कर्मों का एक शताब्दी पहले वह मेढ़क वृक्षकोटरमें प्रवेश कर पीछे उभरें रह गया था।

एकमाल ईश्वर कृपाके सिया और क्या हो सकता है ? योगीगण जिस प्रकार चित्तवृत्तिका निरोध करके युग-युगान्तर पर्यन्त विद्यमान रहनेमें समर्था होते हैं, इस भेक जातिने भी उसी प्रकार किसी अपूर्व कौशलसे निरुद्ध हो कर आत्मरक्षामें सम्यक् पारदर्शिता प्राप्त की है।

ईश्वरकी अलौकिक सृष्टिमें यह जीव अद्भुत क्षमता-सम्पन्न है। उसका मस्तिष्क, स्नायविक देह तथा चक्षु, कर्ण, नासिका, जिह्वा और त्वक् ये पांचों इंद्रियां अपनी अपनी अवस्थामें क्रियाशील हैं। हां, श्रवण, आघ्राण आदिकी अपेक्षा इनकी दर्शन-शक्तिका प्राख्य अधिक देखनेमें आता है। जिस दृग्मे यह सूक्ष्मरूपसे शिकार को लक्ष्य कर उस पर कूद पड़ता है, उसे देख कर दातों चंगली दवानो पड़ती है। दर्शनके बाद इसकी स्पर्श-शक्ति उल्लेखयोग्य है। एकमाल ताप-सहिष्णुता हो इनके स्पर्शज्ञानका परिचय देता है।

भेकोंके शरीरमें एक प्रकारका विष विद्यमान रहता है। यह विश्वास क्या भारतीय और क्या यूरोपीय समीमें पाया जाता है। यह रस जहां कहीं भी लग जाता है, वहाँ घाव पैदा कर देता है। यह विष देहकी चमड़ी, मस्तक, कंधा और पैतों तथा शरीरंशके कोप-विशेषमें मौजूद रहता है। भेदकको मस्तकनेसे वह रस जोरोंसे निकल पड़ता है।

महावंशके २०वें अध्यायमें लिखा है कि, सम्राज्ञी अशोक-पत्नीने भेक-विषसे मगधस्थ महाबोधि वृक्षको दहन करनेका निश्चय किया था। लगभग ईसाके पूर्व-४थी शताब्दीसे इनके विषका प्रभाव भारतवासियोंके हृदयमें जागरक है।

यूरोपवासी सुसम्भ्य जातिमाल ही तथा ब्रह्मवासी, चीनवासी और भारतवासी निम्नश्रेणीके व्यक्ति भेकका मांस खाते हैं। दक्षिण-भारतमें यूरोपसे आई हुई ईसाई स्त्रियां प्रति शुक्यारको भेकमांस खाती हैं। चीनदेशमें भेकमांसका उपादा आदर है। शुद्ध हृदय जलाशयोंके किनारे और धान्यक्षेत्रोंमें अधिकतासे भेदक देखे जाते हैं। चीनके लोग भेकबहुल स्थानमें जा कर उनका शिकार किया करते हैं। वे एक घंटीमें पतिगा या छोटी

भेदकीको लगा कर उसे तालाव वगैरहमें डालते हैं। किसी बड़े भेदककी दृष्टि उस पर पड़ते ही वह उस पर झपटता है और मुंहमें ले लेता है। डोरीमें बिचाव पड़ते ही शिकारी उसे भटकेसे बंध लेते और टोकनीमें भर कर उन्हें बाजारमें बेच आते हैं।

चीनके बासिन्दा जिस निर्दयताके साथ भेदकोंकी हत्या करते हैं, उसे देख कर हृदयतन्त्री व्यथित हो जाती है। वे भेदकोंसे भरी हुई टोकरो या टब ले जा कर बाजारमें बेचते हैं और खरीददारकी रुचिके माफिक उन्हें काट कर साफ कर देते हैं। पहले वे पैनी छुरीसे उसका सिर उड़ा देते और फिर तमाम चमड़ी उधेड़ डालते हैं। इस तरह जिन्हे जानवरकी सबके सामने चमड़ी उधेड़ कर उसे तौल कर बेचा करते हैं।

फरासीसियोंमें भेकमांस उपदेय और मूल्यवान् खाद्य समझा जाता है। उसे खाद्योपयोगी करनेके लिये भेदकोंको वे बड़े यत्नसे पालते हैं।

हमारे देशमें भेककी उपकारिताके विषयमें कई एक प्रवाद प्रचलित है। विकारग्रस्त रोगीकी मृत्युसे कुछ पहले उसकी आंखोंकी ज्योति घट जानेसे उसे मृत्युका पूर्वलक्षण समझ कर घरकी छियां खपरेके सरवाका काजल आंखोंमें देती है, उस समय कभी कभी वे भेदकके सिरसे जरा सा रस निकाल कर रोगीके कपाल पर लगा देती है। उनका विश्वास है, कि भेकके विषसे रोगीकी आंखोंमें पड़ी हुई जाली अच्छी हो जाती है। इसके प्रयोगसे उपकार होता है सही, पर समय पर वह फलप्रद नहीं होता। रोगविशेषमें भेक-मांसका मील खिलाया जाता है। पदार्थविद्याविदोंने भेक-शरीरमें ताड़ितशक्तिकी सञ्चालन-क्षमता स्पष्टरूपसे दिखला दी है। वाइविलमें भी फेरो राजाकी भेक-विषसिका उल्लेख है।

भेकजमुक्ता (सं० खो०) वह मुक्ता रूप पत्थर जो भेदकके मस्तक पर पाया जाता है। भावप्रकाशकके मतानुसार यह मणि भुजङ्गमणि सरीखा है।

मुक्ता शब्दमें विशेष विवरण देखो।

भेकट (सं० पु०) भेक इय टलति भेक-टल ड। मत्स्य-विशेष, एक प्रकारकी मछली।

भेकनि (सं० पु०) मत्स्यविशेष। इसका गुण—मधुर, शीतल, वृष्य, श्लेष्मकर और शुष्क।



भेकपर्णी ( स० स्त्री० ) भेकाकृति पर्णमस्याः ङीप् । मंहुक-  
पर्णी ।

भेकभुज् ( स० पु० ) भेकं भुङ्क्ते इति भुज्-फ्रिक्त् । सर्प,  
सांप ।

भेकमूल ( स० स्त्री० ) भेकस्य मूलं । भेकका मूल, बेंगका  
मूल ।

भेकराज ( स० पु० ) भेकानां राजा, उच्च समासं । १ महा-  
भेक, बड़ा बेंग । २ भृङ्गराज, भंगरैया ।

भेकासन ( स० बली० ) रुद्रयामलोक पूजाङ्ग आसन-  
भेद । अपनी छाती पर मस्तकको रख कर दोनों पैरको  
कंधेके ऊपर और फिर उसके ऊपर दोनों हाथ रखे ।  
इसोका नाम भेकासन है । इस प्रकार आसन फरके इष्ट  
देवका ध्यान करनेसे बहुत जल्द सिद्धिलाम होता है ।

भेको ( स० स्त्री० ) भेक ( जातेरखीविषयादयोपधात् । पा ४।  
१।६३ ) इति ङीप् । १ भेकमिया, भेदको । पर्याय—  
शिली, गण्डुपदी, सर्पभी । २ मण्डकपर्णीवृक्ष ।

भेकुरि ( स० स्त्री० ) अस्सरोरूप नक्षत्र ।

भेक ( हि० पु० ) बेप देखो ।

भेकज ( हि० पु० ) भेक देखो ।

भेक ( हि० स्त्री० ) १ वह जो कुछ भेंजा जाय । २  
लगान । ३ विविध प्रकारके कर जो भूमि पर लगाये  
जाते हैं ।

भेकना ( हि० क्रि० ) किसी पदार्थके एक स्थानसे  
दूसरे स्थान तक जानेका आयोजन करना ।

भेकवाना ( हि० क्रि० ) भेकनेके लिए प्रेरणा करना, भेकने-  
का काम दूसरेसे कराना ।

भेक ( हि० पु० ) १ सिरके अंदरका मज्जा । २ चन्दा,  
बेहरी ।

भेकवारर ( हि० पु० ) एक प्रथा । इसके अनुसार देहातीमें  
किसी दृष्टि या दिवालियेका दिन चुकानेके लिये आस-  
पासके लोगोंसे चन्दा लिया जाता है ।

भेक ( हि० स्त्री० ) भेक देखो ।

भेकना ( हि० क्रि० ) १ भेकना देखो । ( पु० ) २ कपासके  
पीपेका फल, कपासका डोडा ।

भेक ( हि० स्त्री० ) १ बकरोकी जातिका, पर आकारमें  
उससे कुछ मोटा एक प्रसिद्ध चौपाया । यह बहुत ही

सीधा होता है और किसको किसी प्रकारका कष्ट नहीं  
पहुंचाता । विशेष विवरण भेक शब्दमें देखो ।

भेड़ा ( हि० पु० ) भेड़ जातिका नर, भेड़ा ।

भेड़—१ सहायद्रिचर्णित एक राजा । २ एक आभि-  
धानिक ।

भेड़ागिरि—राजतरङ्गिणीचर्णित एक पर्वत । यह भेर  
भूण्डु नामसे जनसाधारणमें मशहूर है ।

( राजतरङ्गिणी १।३५ )

भेड़िया ( हि० पु० ) एक प्रसिद्ध जङ्गली मांसाहारी  
जन्तु । यह प्रायः बस्तियोंके आस पास भूण्डु बांध कर  
रहता है और गांवोंमेंसे भेड़, बकरियों, मुर्गों अथवा छोटे  
छोटे बच्चों आदिको उठा ले जाता है । यह अपने शिकार-  
को दौड़ा कर उसका पीछा करता है और बहुत तेज  
दौड़नेके कारण शीघ्र ही उसको पकड़ लेता है । रातके  
समय यह बहुत शोर मचाता है ।

भेड़ी ( स० स्त्री० ) भेड़-स्त्रियां ङीप् । १ स्त्री भेप, मादा  
भेड़ । इसका दुग्ध-गुण—लवण, स्वादु, सिग्ध अथच-  
उष्ण, अशमरीनाशक, अहृद्य, तर्पण, केशका हितकर, शुक्क,  
चित्त और कफवर्द्धक । यह कास और वायुरोगमें हित-  
कर है । २ निम्न भूमिके चारों ओरका बांध ।

भेड़ ( स० पु० ) भेड़-वृषोदरादित्वात् साधुः । भेप ।  
भेतरगाँव—अयोध्याप्रदेशके रायबरेली जिलान्तर्गत एक  
नगर । यह रायबरेली नगरसे ६ कोस दूर कानपुर जाने  
के रास्ते पर अवस्थित है । यहाँ अन्नदा देवीके उत्सव-  
पर्वमें प्रतिवर्ष एक मेला लगता है ।

भेतथ्य ( स० लि० ) भी तथ्य । भयाहं, भयके योग्य ।

भेत्सु ( स० लि० ) भिनत्तीति-भित्तु लृच् । भेदकर्ता ।

भेद ( स० पु० ) भिद्व-घञ् । प्राचीन राजनीतिके अनु-  
सार शत्रुको वशमें करनेके चार उपायोंमेंसे तीसरा  
उपाय । साम, दान, भेद और दण्ड ये ही चार उपाय  
हैं । जिस उपायके द्वारा शत्रु दलमेंसे किसीको बहका  
कर अपने दलमें मिला लिया जाय उसोका नाम भेद  
है । पर्याय—उपजाप, पृथक्करण, विश्लेष ।

मत्स्यपुराणमें लिखा है कि जो परस्पर विद्विष्ट, क्रुद्ध  
भीत और अपमानित हैं, उन्हेंके प्रति भेदका प्रयोग करना  
चाहिये; क्योंकि वे भेदसाध्य हैं, जिस दोषसे मनुष्य भय

खाते हैं उन्हें वह दोग दिवा देना उचित है। प्रवल शत्रुके प्रति यदि भेद उत्पन्न न करा सकें, तो उन्हें पराजय करना दुःसाध्य हो जायगा। इसी कारण शत्रुके साथ भेद उत्पन्न कराना नितान्त आवश्यक है। २ अन्तर, फर्क। ३ तात्पर्य, मर्म। ४ रहस्य, भीतरी छिपा हुआ हाल। ५ प्रकार, किस्म।

भेदक (सं० लि०) १ विदारक, छेदनेवाला। २ रेचक, दस्तावर।

भेदकर (सं० पु०) भेदं करोतीति कृ ट, भेदस्य करः। भेदकारक, भेद करनेवाला।

भेदकारिन् (सं० लि०) भेदं करोति कृ-णिनि। भेदक, भेदनेवाला।

भेदकारिण्योक्ति (सं० खो०) एक अर्थालङ्कार।

भेदड़ी (हि० खी०) खड़ी।

भेदधिकारव्यङ्गारनिरूपण—वेदान्तमतावलम्ब्यो प्रसिद्ध धर्मग्रन्थ। नरसिंहदेवने इस ग्रन्थमें रामानुजमतका खण्डन किया है।

भेदन (सं० ह्यो०) मिथ्येत्येनेति भिद-ल्युट्। १ विदारण, छेदना। २ अमलव्यंतस, अमलवेत। ३ हिण्, हांग। ४ शूकर, सूअर। (लि०) ५ भेदकारक, भेदनेवाला। ६ चिरेचनकारक, दस्त लानेवाला।

भेदन (वसईकेला)—१ मध्यप्रदेशके अन्तर्गत एक प्राचीन गोंडराज्य। अभी यह सम्बलपुर जिलेके अन्तर्गत है। एक समय यहाँके गोंड-सरदारका ६० वर्गमील स्थान पर आधिपत्य था। प्रवाद है, कि सम्बलपुरके प्रथम चौहानराज बलरामदेशने प्रायः तीन शताब्दी पहले इस सम्पत्तिको शिशाराय गोंडको प्रदान किया। उक्त शिशारायसे ही यहाँके सरदार-वंशकी प्रतिष्ठा हुई। १८५७ ई०में यहाँके सरदार मनोहर सिंह विद्रोही सुरेन्द्रके साथ मिल गये थे, इस कारण युद्धक्षेत्रमें वे मारे गये। पीछे उनके नाबालिग पुत्र चैतनाय गद्दी पर बैठे। बालकराजके राजत्वकालमें राजपरिवारके मध्य विशेष विष्टङ्गलता उपस्थित हुई। यह देस कर वृष्टि-सरकारने १८७८ ई०में इसका शासनमार अपने हाथ ले लिया।

२ उत्तराखण्डका प्रधान स्थान। यह अक्षा० २१° १२' उ० तथा देशा० ८३° ४७' ३०" पू०के मध्य अवस्थित है।

यहां धान, उड़द, तैलकर चीज और ईखकी चीनीका विस्तृत कारवार है।

भेदनीय (सं० लि०) भिद-अनीयर्। भेदनयोग्य, भेद करने लायक।

भेदबुद्धि (सं० खी०) एकताका नाज या अभाव, फूट। भेदभाव (सं० पु०) अन्तर, फर्क।

भेदवादिन् (सं० लि०) भेदं वदति वद-णिनि। १ भिन्न मतावलम्बी। २ वह जो एक ब्रह्ममें भिन्न रूपत्व या भेदज्ञानकी कल्पना करते हैं। इसी भेदबुद्धिसे द्वैत और अद्वैत मतकी सृष्टि हुई है।

द्वैत, अद्वैत और ब्रह्म शब्द देखो।

एकमात्र वेदान्तशास्त्रमें ही ब्रह्म प्रतिपन्न हुए हैं। अलावा इसके वैशेषिक, सांख्य, पातञ्जल, चार्वाक आदि दर्शनकारण भेदवादीकी आलोचना ले कर भारी आन्दोलन कर गये हैं। वैशेषिक प्रकृति दर्शन शब्द देखो।

न्यायशास्त्रके मतसे,—यस्तु-विशेषके मध्य आपसका विभिन्नता द्योतक जो अप्रत्यक्ष ज्ञान है, वही भेदबुद्धि है। एकमें दूसरेकी प्रकृतिका अस्तित्वभाव देख कर स्वभावतः ही मनमें जो वैपश्य ज्ञानका उत्पत्ति होती है, उस वैपरोत्यका लक्ष्य कर उस विषयकी पृथक्ताको दूर करनेके लिये नैयायिकोंने जिन विशेष मताँकी अवतारणा की है, उसीके आलोचना पर व्यक्तिसाक्ष हैं।

पुराणवर्णित ब्रह्मा, विष्णु और महेश्वरादि उपास्य-देवताविशेषमें जो भेद समझते हैं, वे ही भेदवादी हैं। देवतामें भेद माननेवालोंकी विशेष निन्दनीय बतलाया गया है।

“यस्तु नारायणं देवं ब्रह्मस्त्रादिदेवतैः।

समत्वेनैव वीक्षेत सा पापपट्टी भवेद् भ्रुवम् ॥”

(पप्र०)

रामानुज, कवीर और श्रीचैतन्य महाप्रभुके प्रवर्तित वैष्णव-धर्म एक होने पर भी उनमें मतभेद देखे जाते हैं। वे प्रकृत भेदवादी नहीं हैं, फिर भी दूसरी तरहसे भेदवादी हैं। संक्षेपशास्त्ररजय पढ़नेसे जाना जाता है कि, भास्कर भेदाभेदवादी, अभिनव गुप्त शाक, नीलकण्ठ भेदवादी, प्रमाकरगुड और मण्डनमिथ्र भट्टमतानुयायी थे। (संक्षेपशा० ५।१०)

सभी धर्ममतमें उपासना भेदसे भेदभाव दिखलाया गया है। पीतलिकता, आस्तिक्यवाद और नास्तिक्यवाद उसका कारण है। मूर्त्तिगत उपासना और 'एकमेवाद्वितीय' रूप परब्रह्मकी आराधनामें भेदभाव लक्षित होता है। ईसाई, ब्राह्म आदि मूर्त्तिगत उपासनाके प्रकृत विरोधी हैं, अतएव वे ही यथार्थमें पीतलिक हिन्दूकर्मके घोर द्वेषी हैं। बुद्धदेव इस जगत्में 'अहिंसा परमो-धर्म' प्रचार कर गये हैं। उन्होंने जब सुना, कि राजा विम्बिसार शक्तिपूजामें छागकी बलि देते हैं, तब वे बड़े कातर हुए थे। उन्होंने हिंसाप्रवण पीतलिक हिन्दूधर्म-मूलमें कुठाराघात करनेकी चेष्टा की थी। यही कारण है, कि उनके मतानुसार बौद्धगण हिन्दूधर्मके भेदवादकी कल्पना कर गये हैं।

भेदवादिन्—भागवतपुराण टीकाके प्रणेता।

भेदसह (सं० लि०) भिन्न करनेमें समर्थ।

भेदित (सं० लि०) मिदु-णिच् कर्मणि क। १ भिन्न, विदारित। (पु०) २ तन्त्रके अनुसार एक प्रकारका मन्त्र जो निन्दित समझा जाता है।

भेदित्व (सं० क्ली०) भेदिनो भावः स्व। भेदकका भाव या धर्म।

भेदिन् (सं० लि०) भेत्तुं शीलमस्येति मिदु-णिनि। १ भेदकर्ता, भेद करनेवाला। (पु०) २ अम्लवेतस, अमलवेत।

भेदिनी (सं० लि०) १ भेदकारिणी, भेद करानेवाली। (स्त्री०) २ तन्त्रके अनुसार एक प्रकारकी शक्ति। इसकी सहायतासे योगी लोग पटञ्जको भेद सकते हैं और इस शक्तिके साधनसे बहुत श्रेष्ठ हो जाते हैं।

भेदिनीवटी (सं० स्त्री०) प्लोहा-यष्टताधिकारमें प्रयोग करने वाली एक प्रकारकी दवा। प्रस्तुत प्रणाली—गोधुद, धूरके दूध और पीपलको एक साथ घोंट कर गोली बनावे। इसका सेवन करनेसे विरेचन हो कर सब प्रकारकी प्रबल पोड़ा शान्त होती है।

भेदिया (हि० पु०) १ भेद लेनेवाला, गुप्तचर, जासूस।

२ गुप्त रहस्य जाननेवाला।

भेदिर (सं० क्ली०) मिदुर, चक्र।

भेदी (हि० पु०) १ गुप्त हाल बतानेवाला, जासूस।

२ गुप्त हाल जाननेवाला। ३ भेदिन देखो।

भेदीसार (सं० पु०) बद्धयौका एक यन्त्र। इससे वे काष्ठमें छेद करते हैं। इसका दूसरा नाम बरमा भी है। भेदुर (सं० क्ली०) मिदुर पृषोदरादित्वाद् साधुः। मिदुर, चक्र।

भेध (सं० लि०) मिदु-ण्यत्। १ भेदन करने योग्य, जो भेदा या छेदा जा सके। (पु०) २ शस्त्री आदिको सहायतासे किसी पीड़ित अंग या फोड़े आदिको भेदन करनेकी क्रिया। मणपीड़ा देखो।

भेन (हि० स्त्री०) वहिन। इसका शुद्ध रूप प्रायः भैन है।

भेना (हि० क्लि०) भिगोना, तर करना।

भेभम (हि० पु०) एक प्रकारका बहुत छोटा और पतला बांस जो हिमालयमें होता है। इसका दूसरा नाम रिगाल या निगाल भी है।

भेय (सं० क्ली०) भयभीत, डरसे इधर उधर भागना।

भेयपाल (सं० पु०) राजपुत्रभेद।

भेर (सं० पु०) विभ्रं त्यस्मादिनि भी (भृञ्छ्रुन्दाप्रभ्रति। उष् पा २।२८) इति र्न्। १ पटह। २ भेरी। ३ बुन्दुभी।

भेरव—सह्याद्रिघर्णित एक राजा।

भेरवा (हि० पु०) भारतके प्रायः सभी गर्म देशोंमें मिलनेवाला एक प्रकारका खजूर। इसके पत्तोंके रेशोंसे रस्सियां बनती हैं। इसे पाछनेसे एक प्रकारकी ताड़ी भी निकलती है। इसका व्यवहार बंधई और लंकामें बहुत होता है।

भेरा—पञ्जाब प्रदेशके शाहपुर जिलान्तर्गत एक तहसील। यह अक्षां ३१° ५५' से २२° ३८' उ० तथा देशां ७२° ४३' से ७३° २३' पू०के मध्य अवस्थित है। भू-परिमाण ११७८ वर्गमील और जनसंख्या दो लाखके करीब है। इसके उत्तरमें भेलम नदी और दक्षिण-पूर्वमें चनाब नदी बहती है। इस तहसीलमें १ शहर और २६४ ग्राम लगते हैं। यहांके विज्जभी ग्रामके समीप एक बड़ा भन्न स्तूप देखा जाता है। इसमें पञ्जाब प्रदेशके प्राचीन, ग्रीक समृद्धिके अनेक निदर्शन मिलते हैं। इससे अनुमान किया जाता है, कि एक समय यह बहुत समृद्धियाली नगर था।

२ एक तहसीलका प्रधान नगर। यह अक्षां ३२°

२८° ३० तथा देशा० ७१° ५६' पु० भेलम नदीके बाए किनारे अवस्थित है। भेलम नदीके किनारे स्थापित होनेके कारण यहांको वाणिज्यसमृद्धिकी दिनों दिन वृद्धि देखी जाती है। नगरका प्राचीन अंश आज भी नदीतट पर देखा जाता है। मुगल-सम्राट् वाबरके आक्रमणकालमें यहांके नगरवासियोंने २ लाख रुपये नगद दे कर मुगल-आक्रमणसे आत्म-सम्मानकी रक्षा की थी। पीछे वह निकटवर्ती पार्वतीय अधिवासियोंके द्वारा तहस नहस कर डाला गया। जोधनाथ नगरके ध्वंसावशेषको डा० कनिहमने माकिदून-बीर अलेक्सन्दरके समसामयिक ग्रीकराज्य सोफाइटिसकी राजधानी बतलाया है। १५४० ई०में किसी मुसलमान-पीरकी समाधि मसजिदके चारों ओर वर्तमान नगर बसाया गया। सम्राट् अकबरशाहके शासनकालमें यह एक राजस बसूलका केन्द्रस्थान नमन्ना जाता था।

१७५७ ई०में अफगानराज अहमदशाहके सेनापति नूर उद्दीनने इस स्थानको लूटा और तहस नहस कर डाला। अङ्गी सरदारोंके यत्नसे यहां पुनः लोग आ कर बस गये जिससे नगरको शोभा बढ़ गई। जबसे यह अंगरेजोंके दखलमें आया, तबसे इसकी श्रीवृद्धि हुई है। विख्यात आमेरिक-गुद्रके समय यहां कईका कारवार जोरों चलता था। आज भी घी, देशी और विलायती कपड़े, कम्बल, रेजामो, पशमीने, तलवार, छुरी, लोहे और ताम्रपात्तादि तथा चावल, चीनी और गुड़ आदिका वाणिज्य होते देखा जाता है।

भेरा (हि० पु०) एक प्रकारका पेड़ जो मध्य तथा दक्षिणी भारतमें पाया जाता है। इससे लकड़ी, गोंद, रंग और तेल इत्यादि पदार्थ मिलते हैं। इसको लकड़ी मेज, कुसों, खेतीके औजार और तखीरोंके चौखटे आदि बनानेके काममें आती है, पर जलानेके कामकी नहीं होती। क्योंकि इससे धूआं ज्यादा निकलता है। इसे भेरा भी कहते हैं।

भेरि (सं० खी०) विष्णुति शतबोड्या इति भो (बश्क्या-दयरच। उण् ५६६) इति किन् बाहुलकान् गुणः। गृह-डडका, बड़ा ढोल या नगरा। पर्याय—आनक, दुन्दुभि, भेरी, मानकडुडुभि, आनकडुडुभि।

भेरी (सं० खी०) भेरि कृदिकारदिति पक्षे डीप्। गृह-डडका, बड़ा ढोल या नगरा।

भेरी—१ मध्यभारत एजेन्सीके बुन्देलखण्डके अन्तर्गत एक सामन्त राज्य। भूपरिमाण ३० वर्गमील है। यहांके सरदार पुयारवंशीय राजपूत हैं। वे ब्रिटिश सरकारके इकारानामा और सनदके अनुसार शासन करते हैं। सामन्तराजकी गोद लेनेका अधिकार है। इन्हें २५ अय्यारोही और १२५ पदाति सेना है।

२ उक्त राज्यकी राजधानी। यह बेनवा (वित्तवता) नदीके बाए किनारे अवस्थित है।

भेरीकाग (हि० पु०) भेरी बजानेवाला।

भेरीस्वनमहास्वना (सं० ह्री०) कुमारानुचर मातृभेद।

भेरुण्ड (सं० ह्री०) १ गर्भधारण। (त्रि०) २ भयानक।

भेरुण्डा (सं० खी०) भेरुण्ड-टाप्। १ देवताविशेष।

२ यक्षिणीभेद।

भेरुन—मध्यप्रदेशके सम्बलपुर जिलान्तर्गत एक भू-सम्पत्ति। भूपरिमाण २० वर्गमील है।

भेल (सं० पु०) १ एक प्राचीन ऋषिका नाम। २ भेलक, वेड़ा। (त्रि०) ३ भोव, उरपोक। ४ चञ्चल। ५ मूर्ख, वैव-कूप।

भेल—आयुर्वेद प्रचारक एक प्राचीन महर्षि। आश्रय आदि भेलके और आप पुनर्वासुके शिष्य थे। चरकसे यह बात प्रमाणित होती है, कि भेल ऋषि-प्रणोत चिकित्साशास्त्र इसके पहले प्रचलित था।

भेलक (सं० पु० ह्री०) भेल-स्वार्थे कन्। नद्यादि-तरणसाधन वस्तु, नदी आदि पार करनेका वेड़ा। पर्याय—छ्वय, फोल, उडूप, तरण, तारण, तारकण्व, तरीप। (जटाधर)

भेला (हि० पु०) बड़ा गोल या पिण्ड।

भेली (हि० खी०) १ गुड़ या और किसी चीजकी गोल बट्टी या पिण्ड। २ गुड़।

भेलुपुरा (सं० खी०) वाराणसीधामके अन्तर्गत एक गण्डग्राम।

भेज (हि० पु०) वेप देखो।

भेप (हि० पु०) वेप देखो।

भोजन (सं० क्लो०) भोजनो वैद्यस्येदमित्यणुः निपात-  
नादेत्वं, वा भोजं रोगं जयतीति जि-ड । १ औषध,  
द्वय । औषध सेवनके कालादिका विवरण भावप्रकाशमें  
इस प्रकार लिखा है—

प्रातःकाल ही औषध सेवनका उत्तम समय है, विशेष-  
तः फ्याथऔषध सुबह ही खानी चाहिये । चरकादिमें  
औषधसेवनके ५ समय निर्दिष्ट हुए हैं, जैसे—सूर्योदय-  
काल, दिवाभोजनके पहले और बाद, सायंकालीन  
आहारके बाद, सुदुमुहु और रात्रिकाल ।

प्रथमकाल ।—पित्त और कफके प्राबल्यसे तथा विरे-  
चन वमन और कर्पणके लिये प्रातःकालमें अन्नभोजनने  
पूर्व ही औषध सेवन करना उचित है ।

द्वितीयकाल ।—अपान वायु कुपित होने पर भोजनके  
पहले औषधिका प्रयोग करना प्रशस्त है । अरुचिरोगमें  
नाना प्रकारके मगोहर और रुचिकारक द्रव्यमिश्रित  
भोज्य पदार्थके साथ औषधप्रयोग हितकर है । समान  
वायुके प्रकोपमें और मन्दाग्निमें भोजनके अन्दर अग्नि-  
प्रदीपक औषध देना विशेष उपकारी है । व्यान-  
वायुके प्रकोपमें भोजनके उपरान्त औषध देनी चाहिये ।  
हिका, आक्षेप और कम्प उपस्थित होने पर भोजनके  
पूर्व और पश्चात् औषध सेवन की जा सकती है ।

तृतीयकाल ।—स्वरभंग आदि रोगजनक उदान-  
वायु कुपित होने पर सायंकालमें भोजनके प्रत्येक प्रास-  
के साथ औषध सेवन करना हितकर है । प्राणवायु  
दूषित होने पर हितकर भोजनके बाद औषधि खाना  
ठीक होगा ।

चतुर्थकाल ।—तृष्णा, वमन, हिका और श्वासरोग  
तथा गर्दोषमें अन्नके साथ सुदुमुहुः औषध देनी  
चाहिये ।

पंचमकाल ।—लेखनक्रिया, वृंहण, तथा पचनमें  
रात्रिको अन्नभोजन न करा कर औषध प्रयोग करना  
चाहिए । अन्न खानेके पहले औषध सेवन करनेसे  
औषधका बर्ध प्रबल होता है इसलिए शीघ्र ही  
रोग नष्ट हो जाता है । परन्तु बालक, वृद्ध, युवती, स्त्री  
और कोमल शरीरविशिष्ट रोगियोंको आहारके पहले  
औषध देना ठीक नहीं, क्योंकि उससे उनका बल

घटता है । अन्नके साथ औषध सेवन करनेसे अन्न  
शीघ्र पच जाता है, औषध सेवन करके उसके पचे बिना  
ही भोजन करनेसे तथा खाये हुए भोजनके बिना पचे  
ही औषध सेवन करनेसे व्याधिका उपशम नहीं होता,  
बल्कि और और रोग उत्पन्न हो जाते हैं । औषध पच  
जाने पर वायुका अनुलोम, शरीरकी सुस्थता, शूधा और  
तृष्णाका उद्देक, मनको प्रकुलता, शरीरका लघुत्व, इन्द्रियों  
का प्रसन्नता और उद्गारकी शुक्ति होती है । औषध न  
पचे, तो क्लान्ति, दाह, शरीरकी अवसन्नता, मूर्च्छा,  
मूर्च्छा, शिरोरोग, ग्लानिवोध तथा बलका हास होता है ।

महाण्विधि ।—देवता, गुरु और ब्राह्मणोंको प्रणाम  
कर उनसे आशीर्वाद ले भक्तिके साथ औषध सेवन  
करना चाहिए । औषध सेवन करनेसे पहले गुरुजनोंको इस  
प्रकार आशीर्वाद देना चाहिए, कि जिस तरह प्रपियोंके  
लिए रसायन, देवोंके लिए अमृत और नागोंके लिए  
सुधा उपकारी है उसी प्रकार यह औषध तुम्हारे  
लिए उपकारी होवे । ब्रह्मा, वृक्ष, अश्विनीकुमार आदि  
तुम्हें रोगसे मुक्त करें । पश्चात् रोगोंको प्रशान्तभावसे  
बंध कर आत्मोपजनके समस्त औषध सेवन करना  
चाहिए । स्वर्ग, रीत्य वा मृगमय पात्रमें औषध सेवन  
करना उचित है । ( भावप्र० द्वितीय भा० )

सुश्रुतमें लिखा है—औषध संग्रह करना हो, तो भूमि  
और उपयुक्त कालादिका विषय देखना चाहिए ।

अष्टाङ्ग हृदयसंहितामें भोजन-संग्रहका स्थान इस  
प्रकार निर्दिष्ट है :—

“धन्वत्पारणे देशे समे सन्धिके शुची ।  
रमशानवैत्यायतनभ्यन्नवर्धमोक्तवन्निवे ॥  
सूदी प्रदक्षिणजले कुशरोहिपरस्तुत्वे ।  
बफालकृष्टेऽनाक्रान्ते पादपेर्बलवसरेः ॥  
शस्यते भेषसे जातं युक्तं बर्यासादिभिः ।  
जन्तुजर्षं दवाद्गन्धमविदर्शं च वै श्रुतेः ॥  
मत्वेन्द्रायतयां वाद्यैर्वाक्रान्तं च संविदं ।  
अवगाद्गमशुभ्रसूदीचीं दिशमाधिवम् ॥”

( अष्टाङ्गहृ० ५१/११-५ )

औषधि स्थानविशेषमें और यथासमय संयुक्त होने

पर भेषज को चाहिए, कि निर्दिष्ट परिमाणके अनुसार उसे विभिन्न औषधादिमें प्रयोग करें अथवा रोगके तार-तम्यानुसार रोगीको सेवन करावे ।

औषधसंग्रहका काल ।—औषध संग्रह करते समय उप-युक्त काल पर लक्ष्य रखना आवश्यक है । प्रायुष्कालमें मूल, वर्षाकालमें पत्र, शरत्कालमें त्वक, हेमन्तकालमें क्षीर, वसन्तकालमें सार और प्रोथमकालमें फलग्रहण करना चाहिए । परन्तु यह सर्ववादि-सम्मत नहीं है । सौम्य अर्थात् शीतल या स्निग्ध औषध सौम्यकालमें; वर्षा, शरत् और हेमन्तको सौम्यकाल कहते हैं । दक्ष वा तीव्र औषधियां आम्लेय ऋतुमें संग्रह करना चाहिए । क्योंकि जगत्के पदार्थ साधारणतः सौम्य और आम्लेय इन दो भागोंमें विभक्त हैं । सौम्यऋतुमें भूमिका सौम्यगुण अधिक बढ़ा रहता है, इसलिये उस समय जो जो सौम्य औषधियां उत्पन्न होती हैं, वे सौम्य-गुण विशिष्ट द्रव्य ही विशेष उपकारक हैं । इसी प्रकार आम्लेय औषधोंके सम्बन्धमें समझना चाहिए ।

गोपालक, तापन, घ्राघ, वनचारी या मूत्राहारियोंके पास द्रव्योंको खोज करनी चाहिए । पत्र और लवण आदि द्रव्योंके सम्पूर्ण अंश ही ग्रहण किये जा सकते हैं । इन संग्रहोंमें कालाकालका विधान नहीं है । मधु, घृत, गुड़, पोपल और बिड़ङ्ग ये पुराने हैं तो अच्छे । इसके अलावा और सब चीजें नयी होनी चाहिए । सरस औषधमात्र ही वीर्यवान् होती हैं इसलिये सरस द्रव्य ग्रहण करना चाहिए । सरस द्रव्यके अभावमें संबत्सर-के भीतर जो द्रव्य संगृहीत हुआ है, उसीसे काम चलाना उचित है । औषधग्रह पवित और प्रशस्त रखना चाहिए ।

भेषज कपाय, मग्ध, कल्क, चूर्ण, फ्याथ और अवलेह आदि भेदोंसे नाना प्रकार है । ( सुभ्रुत स्र० ५, ६ अ० )

इसका विवरण उन्हीं शब्दोंमें देखो ।

ज्योतिषके अनुसार भेषजकरण और सेवन दोनों ही उत्तम दिन देख कर करना चाहिए । इसका विषय इस प्रकार लिखा है,—द्रव्यात्मकलग्नोंमें, शनि और मङ्गल-वारके सिवा दूसरे वारमें; शुभचन्द्र और शुभ तिथिमें; पूर्वफल्गुनी, पूर्वाषाढा, पूर्वभाद्रपद, मघा, भरणी,

अश्लेषा, विशाखा और आर्द्राके सिवा अन्य नक्षत्रमें; जन्मनक्षत्र और विष्टिभद्रादि रहित दिनमें भेषजकरण तथा कृत्तिका, मृगशिरा, धनिष्ठा, स्वाती, रेवती, पुष्या, श्रवणा, पुनर्वसु, चित्रा, मूला, ज्येष्ठा, उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरभाद्रपद, हस्ता, अनुराधा और अश्विनी नक्षत्रमें और शुभवारमें भेषज भक्षण प्रशस्त है ।

( ज्योतिष-शा० )

२ जल, पानी । ३ सुख । ( पु० ) ४ विष्णु ।

( विष्णु ष० )

भेषजचन्द्र ( सं० पु० ) राजभेद ।

भेषजागार ( सं० श्लो० ) भेषजस्य अगारं । औषध बनाने-का घर ।

भेषजाङ्ग ( सं० श्लो० ) भेषजस्य औषधस्य अङ्गमवयव इव । अनुपान ।

भेषज्य ( सं० त्रि० ) स्वास्थप्रद आरोग्ययोग्य ।

भेस ( हि० पु० ) १ वाहरी रूप रंग और पहनावा आदि । २ वह बनावटी रूप रंग और नकली पहनावा आदि जो अपना वास्तविक रूप या परिचय छिपानेके लिये धारण किया जाय ।

भेसज ( हि० स्त्री० ) औषध, दवा ।

भैंस ( हि० स्त्री० ) १ गायको जाति और आकाश-प्रकार-का पर उससे बड़ा चौपाया । लोग इसे दूधके लिये पालते हैं । इसके नरको भैंना कहते हैं । विशेष विवरण महिष शब्दमें देखो । २ पंजाब, बंगाल तथा दक्षिण भारत को नदियोंमें मिलनेवाली एक प्रकारकी मछली । इसको लंबाई तीन फुट होती है । इसका मांस खानेमें स्वादिष्ट होता है पर उसमें हड्डियों अधिक होती हैं । ३ एक प्रकारकी घास ।

भैंसरोरगढ़—राजपूतानेके उदयपुर राज्यान्तर्गत एक नगर और गिरिदुर्ग । यह अक्षा० २४° ५८' ७५" तथा देशा० ७५° ३६' ५०" भागनी और चम्बल नदीके संगमस्थान पर एक गण्डरीलके ऊपर अवस्थित है । इसके दुरारोह उत्तर पार्श्वको छोड़ कर और तीनों ही ओर नदी है । इस कारण शत्रुसेनाका दुर्ग पर चढ़ाई करना एक प्रकारसे असम्भव है । दिल्लीके पठानराज अलाउद्दीन ( १२६५-१३१५ ई० ) ने इस दुर्गको अधिकार किया था । हारा-

वती और मेवार नगरके वाणिज्यद्रव्यादि इसी नगर हो कर लिये जाते हैं। उदयपुर राज्यके एक प्रधान सामन्त यहां रहते और आधिपत्य करते हैं। यहांसे तीन कोस पश्चिम वतोलोका सुप्राचीन ध्वंसावशेष समूह दृष्टिगोचर होता है। इस प्राचीन नगरका नाम भद्रावती है। हण-राजाओंके शासनकालमें इसकी वृद्धि श्रेष्ठ हुई थी। वर्त्मान मैसतोरगढ़के चारों ओर जो ध्वंसावशेष और स्तूपराजि बही उसका निदर्शन है। महात्मा टाड साहब यहांके भवनप्राय शिवमन्दिरका अत्याश्चर्य शिल्पनैपुण्य देख गये हैं।

मैसवाल—युक्तप्रदेशके मुजफ्फरनगर जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम। यह यमुना नदीके पूर्व खालके ऊपर मुजफ्फर नगरसे १३॥० कोस दूरमें अवस्थित है। इस ग्रामके ठीक मध्यस्थलमें स्थापयिता पीर घाईयका २० फुट ऊंचा एक समाधिस्तूप है।

मैसा (हि० पु०) मैस नामक पशुका नर। यह प्रायः बोभ ठोने और गाड़ियां आदि खींचनेके काममें आता है। पुराणानुसार यह यमराजका चाहन माना जाता है।  
महिप देखो।

मैसाय (हि० पु०) मैस और मैसेका जोड़ खाना।

मैसासुर (हि० पु०) महिपासुर देखो।

मैसाँरो (हि० स्त्री०) मैसका चमड़ा।

मैश (सं० स्त्री०) शिक्षाणां समूह इति शिक्षा ( भिन्नादि-भ्योऽण् । पा ४।२।७८ ) इत्यण् । १ शिक्षासमूह । २ शिक्षा मांगनेकी क्रिया । ३ शिक्षा मांगनेका भाव । ४ शिक्षा, भोख । ५ शिक्षावृत्तिपादक ग्रन्थग्राल्यायन ।

मैशचर्या (सं० स्त्री०) चर भावे क्यप् टाप्, मैशस्य चर्या । शिक्षाचरण, भोख मांगनेका काम ।

मैशजीविका (सं० स्त्री०) मैशेण जीविका। शिक्षा द्वारा जीवनोपाय। पर्याय - पैरिडन्य ।

मैशमुज् (सं० स्त्री०) मैशं मुहृषते यः मुज्-क्यिप् । शिक्षांगी, शिक्षात्र भोजनकारी ।

मैश्व (सं० स्त्री०) शिक्षाणां समूहः खण्डिकादित्वात् अम् । शिक्षुसमूह ।

मैश्वृत्ति (सं० स्त्री०) मैशेण वृत्तिः जीविका । १ शिक्षा द्वारा जीवनोपाय । ( स्त्री० ) २ जिनकी शिक्षा ही उप-जीविका है।

मैशाकुल (सं० स्त्री०) अतिथिशाला, वह स्थान जहांसे बहुतसे लोगोंको शिक्षा मिलती है।

मैशान्न (सं० स्त्री०) मैशं यदन्नं । - शिक्षालब्ध अन्न ।

मैशाशिन (सं० स्त्री०) मैशं अश्नाति अश-णिनि । शिक्षा-भोजी ।

मैशाहार (सं० स्त्री०) शिक्षालब्ध द्रव्योपजोयो ।

मैशुक (सं० स्त्री०) शिक्षुकमण्डली ।

मैशा (सं० स्त्री०) शिक्षाणां समूहः प्यप् । १ शिक्षा-समूह, भोख । २ अनुराध्रममें करने योग्य एक वृत्ति ।

मैचक (हि० वि०) विस्मित, चकित ।

मैजन (हि० वि०) भयप्रद, भय उत्पन्न करनेवाला ।

मैदा (हि० पु०) भयप्रद, डरावना ।

मैदिक (सं० स्त्री०) भेदं नित्यमर्हति छेदादित्वात् ठप् । नित्यमर्ह दनाह ।

मैन (हि० स्त्री०) वहिन ।

मैना (हि० स्त्री०) १ भगिनी, वहन । २ जगह नामक पक्षी ।

मैनी (हि० स्त्री०) भगिनी, वहन ।

मैने (हि० पु०) वहिनका पुत्र, भान्ज्रा ।

मैम (सं० स्त्री०) भोमस्य नृपस्पेदं अण् । १ भोमनृप-सम्बन्धी, भोमका । ( पु० ) २ राजा उपसेन ।

मैमगव (सं० पु०) एक गोत्रका नाम ।

मैमरथ (सं० पु०) भोमरथमधिकृत्य कृतो ग्रन्थः । भोम-रथाधिकार द्वारा कृत ग्रन्थ ।

मैमसेन्य (सं० पु०) भोमसेनस्यापत्यं कुकृत्यात् अणि प्राप्ते घात्तिकोपत्या ङ्य । भोमसेनका अपत्य ।

मैमायन (सं० पु० स्त्री०) भोमसेनस्यापत्यं युवा, इप्र-न्तात् फक् । भोमका युवा अपत्य ।

मैमि (सं० पु०) भोमका अपत्य ।

मैमी (सं० स्त्री०) भोमिनोपासिता भोमस्य इयं वेति भोम-अण् डीप् । १ भोमपकादशी । यह एकादशी बाल, आनुर और वृद्धको छोड़ कर और सभीकी करनी चाहिये ।

इस एकादशीके दिन उपवास करके द्वादशीके दिन पट-तिलाचार करनेसे सभी प्रकारका पाप जाता रहता है। तिलस्नान, तिलोद्धर्तन, तिलहोम, तिलोदकपान, तिलदान और तिलभोजन यही पट-तिलाचार है। यह पट-तिला-

करण करनेसे कभी भी अवसन्न होना नहीं पड़ता है ।  
भीमैकादशी देखो । भीमस्य राशः अपत्यं अण् डीप ।  
२ भीमराज-नन्दती दमयन्ती । ३ भीमसम्बन्धिनो । ४  
भीमसेन-प्रणीत व्याकरण ।

सैम्यकादशी (सं० स्त्री०) एकादशी व्रतविशेष ।

भीमैकादशी देखो ।

सैयंस (हि० पु०) सम्पत्तिमें भाइयोंका हिस्सा, भाइयोंका  
अंश ।

सैया (हि० पु०) १ भ्राता, भाई । २ बराबरवालीं या छोटों-  
के लिये संबोधन शब्द । ३ नावकी पट्टी या तख्ती ।

सैयाचार (हि० पु०) भाईचारा देखो

सैयाचारी (हि० पु०) भाईचारा देखो ।

सैयादोज (हि० स्त्री०) कार्तिक शुद्ध द्वितीया, भाईदूज ।

सैयामट्ट—धर्मरत्नके प्रणेता, भट्टारक भट्टके पुत्र ।

सैरव (सं० लि०) भोरोरिटं तासकृत, भीरु-अण् । १  
भयानक, जिससे भय हो ।

“सन्धेन च क्रीदेशे गृह्य वासति पाण्डवः ।

तद्रुद्रो द्विगुणं चक्रं बन्तं सैरवं वरम् ॥”

(भारत ११६५।२७)

(पु०) भीमैयङ्करो रवो यत्थ । इति भीरव, ततः  
स्वार्थे अण् । २ ब्रह्मन्, महादेव । (मेदिनी) २ भया-  
नक रस । (अमरटीका भरत) ४ नद्विशेष, एक नद ।

(शब्दरत्ना०) ५ रागभेद, एक प्रकारका राग । यह राग ६

रागोंमेंसे एक है । इसका ध्यान इस प्रकार है—

“गं गाधरःशशिकातिभकलत्रिनयनः ।

सर्वविभूषिततनुर्गैजकृत्तिवासाः ॥

भास्वप्रिशूलधर एण युगुणधारी ।

शुभ्राम्बरो जयति मेरुवरागराजः ॥” (सगीतरत्ना०)

रागविरोधधेय मतसे इसका सरगम इस प्रकार है—

ध नि सा ऋ ग म प : : :

मतान्तरसे—

ध नि सा ऋ ग म ० : : :

गायकगण इसे भीरं कहा करते हैं । ब्रह्माके मतसे  
इसकी पत्नियां ये हैं—मालाश्री, त्रिवणी, गीरी, केदारि,  
मधुमाधुवी और पहाड़ी । भरतके मतसे—बंगाली,  
सैरवी, मध्यमा, सिन्धुवी, मधुमाधवी और विरारी ।

हनुमन्के मतसे—वराटी, मध्यमादि, सैरवी, सिन्धवी और  
बंगाली । सैरवरागके पुत्र ये हैं—देवशाक, नट, विभास,  
श्याम, डोल, अजयपाल । पुत्रवधु—योगिना, रेखव,  
अशिरी, रेवा, बहना और भेटियाल । इसके सखा कलंडा,  
सखी और सुहा है ।

यह राग हनुमन्के मतसे छः रागोंमेंसे पहला राग है,  
और महादेवके मुखसे निकला है । इसको जाति उड्डव  
है । धैवत, निपाद, पड्ज, गान्धार और मध्यम इन  
पांच स्वरोंके मिलने पर जो राग होता है, उसे उड्डव  
कहते हैं । इसका यह धैवत स्वर है । शरदृश्रुतमें प्रातः-  
काल ही इसके गानेका समय है । यह आकारमें महा-  
देवकी भांति अर्थात् सुन्दर संन्यासी, भस्मसूक्षित  
वदन, मस्तकमें जटाभार, जटासे गङ्गाजल गिर रहा है,  
हाथोंमें कङ्कण भूषण, ललाट पर अर्द्धचन्द्र, त्रिनयन,  
सर्प द्वारा स्कन्ध और बाहुवेष्टित, भाल पर तिलक, कंधे  
पर हस्तिचर्म, ध्याघ्रमर्ष पर आसीन, गलेमें मुण्डमाला,  
हाथोंमें त्रिशूल, वृषभ पार्श्वदेशमें अवस्थित है, यही  
सैरवरागको प्रकृत मूर्ति है ।

इसकी रागिणियां पांच हैं—सैरवी, वीरारी, मधु-  
माधवी, सिन्धवी और बङ्गाली । आठ पुत्र हैं—हर्ष,  
तिलक, पुरीय, माधव, सुह, बलनेह, मधु और पञ्चम ।

कहिनाथके मतसे सैरव चौथा राग है । इसकी  
रागिणियां छः हैं—सैरवी, गुजरी, भाया, घेलावनी,  
कर्णाटी और रगतंसा । किसीके मतसे रगतंसा स्थल-  
में बड़हंसी है । इस मतसे भी पुत्र पूर्वोक्त आठ  
ही हैं ।

सोमेश्वरके मतसे रागिणी छः हैं—सैरवी, गुजरी, रेवा  
गुणकली, बङ्गाली, और बडुली । इस मतसे रागिणीके  
साथ इसके गानेका समय प्रोथमश्रुत है ।

भरतके मतसे इसकी रागिणी पांच हैं—मधुमाधवी,  
ललिता, वरारी, चाहाकली और सैरवी । पुत्र ८ हैं,  
पधा—देवशाख, ललित, हर्ष, विलावल, माधव, बङ्गाल,  
विभास और पञ्चम । सैरवरागकी ८ स्त्रियां हैं—सुहा,  
घेलावली, सोररी, कुम्भारी, आन्दाही, बहुलगर्जरी, पट-  
मञ्जरी, मिरवी । मतान्तरसे भार्या—सैरवी, बङ्गाली,  
वरारी, मध्यमा, मधुमाधवी और सिन्धवी । पुत्र—



कोशक, अज्ञयपाल, श्याम, खरताप, शुद्ध और डोल ।  
पुत्रवधू—अष्टी, रिया, बहुला, सोहिनी रम्पेली, सहा ।  
किसीके मतसे सहाका जगह शोभा है । ( नारदपु० )  
गिर्जावाँके मतसे यह ऋषभ और पञ्चमवर्जित है ।

६ शिवाचारा तद्गणभेद । भैरवगणकी उत्पत्तिका  
विवरण इस प्रकार है,—पुराकालमें अन्धकारसुरके साथ जव  
महादेवका घोरतर युद्ध हुआ था, तब अन्धकने महादेवके  
मस्तक पर पद्माघात किया था, जिससे उनके मस्तकसे  
चार भागोंमें विभक्त हो कर रक्तधारा बहने लगी । उन्हीं  
शोणित-धाराओंमेंसे भैरवगणोंकी उत्पत्ति हुई । पूर्वदिशा-  
की रक्तधारासे हुताशन-सद्गण, चन्द्रहारसोमित गलगण्ड,  
विचारराज नामक एक भैरव भाविभूत हुआ । दक्षिण-  
दिशाकी धारासे कामराज नामक एक प्रेतमण्डित अज्ञन-  
सद्गण कृष्णवर्ण भैरव उत्पन्न हुआ । पश्चिम-धारामेंसे  
पलभूषित भैरव हुआ, जिसका वर्ण अतसो कुसुम सद्गण  
था और नाम नागराज । उत्तर-धारासे शूलधारी भैरव-  
की उत्पत्ति हुई, जो देवनेमें अज्ञन-सद्गण था । महादेव  
के क्षतज समस्त रधिरसे एक फलभूषित भैरव उत्पन्न  
हुआ था, जिसका नाम था लम्बितराज ।

( यामपु० ६७ अ० )

शारदीय दुर्गापूजा-पद्धतिमें ८ पूजनीय भैरवोंका  
उल्लेख देखनेमें आता है । इनके नाम हैं, महाभैरव,  
संहारभैरव, अस्तांगभैरव, रुद्रभैरव, कालभैरव, क्रोध-  
भैरव, कपालभैरव और रुद्रभैरव ।

( महावैवर्च प्रकृतिलघु ६१ अ० )

तन्त्रसारके मतसे आठ भैरव इस प्रकार हैं—असि-  
तांग, रुद्र, चण्ड, क्रोध, उन्मत्त, कपाली, भोगण और  
संहार । ( तन्त्रसार )

नन्दी, भृंगी, महाकाल और घेताल ये शिवगणां-  
धिपति भैरव ६ । ( कालिकापुराण ४४ अ० ) ७ करवीर-  
पुरके राजा चन्द्रशेखरकी रानी तारावतीके गर्भसे उत्पन्न  
एक पुत्र । पहले ये भृंगी थे, पीछे घानरमुख हो कर  
भैरव नामसे प्रसिद्ध हुए हैं । विस्तृत विवरणकालिका-  
पुराणमें ४४-४६ अध्यायमें देखें ।

जिन स्थानोंमें काली तारा आदि महाविद्याएं प्रति-  
ष्ठित हैं, वहाँ उनके अधिष्ठाता एक एक भैरव विद्य-  
मान हैं ।

८ दक्षिणकालिकादेवीका भैरव महाकाल । पीठ नीर  
महाविद्या देखो । ९ नागभेद । ( भारत १५७११६ ) शङ्करा-  
चार्य बटुकनाथ और भैरवने उपासनाविधिका प्रचार  
किया था ।

भैरव ( सं० पु० ) ब्रह्मपुराण-वर्णित यक्षभेद ।

भैरव—१ फेत्कारिणीतन्त्रके प्रणेता । २ फाटकवह्निप्रयोग  
वां सावित्रचयनप्रयोग और कौकिली सौत्तामणिप्रयोग  
नामक ग्रन्थके रचयिता । ३ गोप्रदानविधि नामक ग्रंथ-  
के प्रणेता ।

भैरवगङ्गा—कालिकापुराणवर्णित भैरवसरोवर तीर्थ ।

भैरवकम्प—हिमालय पर्वत पर केदारनाथतीर्थके समीप-  
वर्ती एक पर्वतचूड़ा ।

भैरवविपाठिन—कामदोषिकाटिप्पनीके प्रणेता ।

भैरवदत्त—ब्रह्मचन्द्रिका, भैरवदत्तार्क और यक्षोपवीत-  
पद्धति नामक ग्रन्थके रचयिता । २ उड्डुवायवदीपके  
प्रणेता, हरिरामशर्माके पुत्र ।

भैरवदीक्षित—एक विरुपात वैदान्तिक । ये तिलकभैरव  
नामसे परिचित थे । इन्होंने १७६२ ई०में आरुणकेतुक-  
प्रयोग और १७६८ ई०में ब्रह्मसूत्रतारपर्य-विवरण  
लिखा है ।

भैरवदेव—तीरभुक्तिके एक राजा, पुरुषोत्तमदेवके पिता ।  
इनको पत्नी जयादेवी द्वैतनिर्णयके प्रणेता चान्द्रस्वति-  
मिश्रको प्रतिपालिका थीं ।

भैरवदैवज्ञ—मुहूर्तभैरवके प्रणेता विष्णुयात ज्यातिविद्व  
गङ्गाधरके पिता । इन्होंने स्वयं पराशरपद्धति और  
प्रश्नभैरवकी रचना की ।

भैरवभट्ट—होमपद्धतिके प्रणेता ।

भैरवमस्तक ( सं० पु० ) तालके साठ मुख्य भेदोंमेंसे  
एक ।

भैरवमिश्र—एक प्रसिद्ध वैयाकरण, भवदेवमिश्रके पुत्र ।  
आप कारकटीका, गद्यापरिभाषेन्दुशेखर टीका, चन्द्रकला-  
लघुशब्देन्दुशेखरटीका, चन्द्रकलाकारकचन्द्रकला-निर्णय,  
परिभाषावृत्ति वृहतीपरोक्षा, वैयाकरणसिद्धान्त  
टीका, भैरवीय-पञ्चसन्धि, शब्दरत्नटीका और भैरव-  
मिश्रिय नामक व्याकरण ग्रन्थ लिख गये हैं ।

भैरवरस ( सं० पु० ) उपदेश रोगनाशक रसोपधयिरीय,

आतिश्र या गरमीकी बीमारीकी एक दवा जो रसोंसे बनाई जाती है। इसके बनानेकी विधि इस प्रकार है,—सोधा हुआ पारा १०० रत्ती और चीतो ३०० रत्ती, इनको इकट्ठा मिला कर एक लोहेके बरतनमें नीमके डण्डेमें १ पहर तक घोंटो, फिर उसे १०० रत्ती खदिरके साथ मिला कर काजलकी तरह बना लो। उसे २० गोलियां बना कर नेह्रुंके चूरके साथ रख दो। देह पर जब उप-दशके विपजन्त्य प्रण या चट्टे पूरी तरह निकल आवे तब यह औषध सेवन करना चाहिए। पहले तीन दिन तक रोज तीन गोलियां सेवन करो। चौथे दिनसे एक एक गोला रोज देने को चाहिये। १४ दिनमें ये गोलियां पूरी हो जायगी और साथ ही रोग भी आरोग्य हो जायगा। पथ्य—चानी और कम धीका गरम अन्न। पानी पीना या पानो छूना बिलकुल ही वर्जनीय है। असह्य प्यास लगने पर इंच या वाडिमका रस सेवन करना चाहिये। मल त्यागनेके बाद गरम पानीमें शीच करके उसी बरत साफ कपड़ेसे पानो पोंछ लेना चाहिये। चायु, भाग-को गरमी और घामसे वचना चाहिए। चर्ष या शीत-प्रयुक्तोंमें इस आपधके सेवन करनेका उपयुक्त समय है। इसके सेवनसे यदि मुंह पर सूजन आ जाय, तो उसके लिये दूसरी औषध लेनी चाहिए। इसमें परिश्रम करना, ज्यादा चलना फिरना, भार उठाना, पढ़ना लिखना, दिनको सोना और रातको जगना बहुत ही हानिकारक है। सर्वदा कपूर आदिसे सुगन्धित पान खाते रहना चाहिए। इससे कफको नष्ट करनेवाली और पित्तके अनुकूल क्रियायें होंगी। नमक, खटाई खाना और खिरियोंका मुंह देखना बहुत ही अनिष्टकर है। इस प्रकार दो सप्ताह बिता कर पीछे गरम पानोसे नहा कर पथ्य लेना चाहिए। परन्तु जब तक पूर्ववत् प्रकृति न हो जाय, तब तक ध्यायाम करना उचित नहीं। इन सब नियमोंका पालन करते और जितेन्द्रिय रहते हुए औषध सेवन करनेसे उपदश और उसके निमित्तसे हुए पीड़कादि प्रगमिन हो कर तेज और बलकी वृद्धि और हृदियोंकी मजबूती होती है।

भैरवराज—दक्षिणात्यके एक हिन्दूराजा।  
भैरवशाह—नवरत्नके प्रणेता, प्रतापके पुत्र।

भैरवसिंह—एक प्राचीन राजा, नरसिंहके पुत्र। आप अनय राघव टीकाके प्रणेता रुचिपनिके प्रतिपालक थे।

भैरवस्थान—हिमालयस्थ शैवतीर्थभेद।

भैरवाचार्य—श्रीधरचरितोक्त आचार्यभेद।

भैरवाञ्जन (सं० पु०) भाषाओंमें लगानेका एक प्रकारका अञ्जन।

भैरवी (सं० स्त्री०) भैरव-डोप। महाविद्या मूर्त्तिभेद, चामुण्डा।

“चामुण्डा चर्चिका बर्भमुण्डा मार्जारर्चिका।

कर्ममाटि महागन्धा भैरवी च कपालिनी ॥” (हेम)

मन्त्रसारमें भैरवीका विषय इस प्रकार लिखा है।

भैरवी ये हैं, जेने—त्रिपुरभैरवी, सम्पत्प्रदा भैरवी, कौलेज भैरवी, सकलसिद्धिदा भैरवी, भयविध्वंसिनी भैरवी, चैतन्यभैरवी, क्षामेश्वरी भैरवी, परकुटा भैरवी, नित्या भैरवी, वद भैरवी, त्रिपुरवाला भैरवी, नवकूटा भैरवी और अननपूर्णा भैरवी।

“विन्दुशुहुताशस्थो भीतिको विन्दुशेखरः।

विषत्तादिकेन्द्राग्निस्थितं वामाक्षिविन्दुमत् ॥

भाकाश भ्रुवर्दिनृत्यो मनुः सर्गेन्दु खपटवान्।

पञ्चकूटात्मिका बिधा वेवा किपुरभैरवी ॥” (तन्त्रशार)

भैरवीके मन्त्र अनेक प्रकारके हैं, उनमेंसे त्रिपुरभैरवी आदि यथाक्रमसे मन्त्र और पूजा आदि लिखी जाती हैं।

‘दसैरँ हसकलहरैँ हसरौँ’ इस धीजमन्त्रसे त्रिपुरभैरवीको पूजा की जाती है। पूजाक्रम इस प्रकार है,—पहले सामान्य पूजापदतिक्रमसे प्रातःकृत्यादि प्राणायामान्त ममस्तन कार्य करके मूलके लिखित मन्त्रोंसे पीठन्यास, पीठशक्तिन्यास, पीठमनुन्यासादि करके मूलपूजा करें। देवीका ध्यान इस प्रकार है—

“उद्यद्भानुसहस्रमण्यलोमी शिरोमालिका।

रकाक्षितपमोभरा जयवटीं विद्यामभीतिं वरम् ॥

इत्तात्रैर्दधतीं त्रिनेत्रविषलसद्वत्तारविन्दश्रिमं।

शैवी वददिमाशुरत्नमुकुटां वन्दे वनन्दस्मितगाम् ॥”

नवोदित सहस्र भाणु-किरण सद्गुण रक्तवर्ण क्षीम-घसन पहने, गलेमें मुण्डमाला, स्तनद्वय रक्तसे लिल, पद्माभकर चार करोंमें जयमाला, पुस्तक, अभयसुदा, और

वरसुद्रा तथा कपालमें शशिकला, रक्तपद्मको भांति ध्रुविशिष्ट, तीन चक्षु, मस्तकमें रत्न किरीट और मुख पर ईपट्ट हास्य छटा विराज रही है। इस प्रकारसे देवीका ध्यान करनेके पूजा करनी चाहिए। इस पूजामें विशेषता रतनी है, कि नैवेद्यदानके बाद बलिचतुष्टय अर्पित की जाती है। दस लाख मन्त्र जप करनेसे इस देवीका पुरश्चरण होता है। १२ हजार पलाश-पुष्पों द्वारा होम किया जाता है।

सम्पद्प्रदा भैरवी—सम्पद्प्रदाभैरवीकी पूजादि भी त्रिपुरभैरवीके समान है। केवल प्रमेद इतना ही है, कि बीजमन्त्र 'हसरै' 'हसकलरो' 'हसरौ' है, इसी मन्त्रसे पूजाकी जाती है। ध्यान—

आताम्राकंसहस्राभ्यां स्फुरचन्द्र कलाजटाम् ।  
किरीटरत्न विलसच्चित्रचित्रित मौक्तिकाम् ॥  
खड्ग धिरपङ्कत्वमुषड माला विराजिताम् ।  
नयनप्रशोभाभ्यां पूर्णेन्दुवदनान्विताम् ॥  
मुक्ताहारलवाराजत् पीनोन्नत घटस्तनीम् ।  
रक्ताम्बरपरीधानां यौवनोन्मत्त रूपणीम् ॥  
पुस्तकशायं वामे दक्षिणे चाग्रमालिकाम् ।  
वरदानप्रदां नित्यां महासम्पद् प्रदास्मरेत् ॥'

इस ध्यानसे पूजाके नियमानुसार पूजा की जाती है। तीन लाख जप इस मन्त्रका पुरश्चरण है और उसका दशांश होम। अन्य तन्त्रोंमें लिखा है, कि एक लाख जप और उसका दशांश होमसे इस मन्त्रका पुरश्चरण होता है।

कीलेशभैरवी—कीलेशभैरवीकी पूजादि भी सम्पद्प्रदाभैरवीके समान है, सिर्फ 'सहरै' 'सहकलरो' 'सहरौ' इस बीजमन्त्रसे पूजा करना विधेय है।

सकलसिद्धिदा भैरवी—इनकी भी पूजा कीलेशभैरवीके सङ्ग ही, केवल 'सहरै' 'सहकलरो' 'सहरौ' यह बीजमन्त्र-माल भिन्न है।

भयविध्वंसिनी भैरवी—इनकी पूजा 'हसै' 'हसकलरो' 'हसौ' इसबीजमन्त्र द्वारा सम्पद्प्रदाभैरवीके समान की जाती है।

चित्तन्यभैरवी—'सहै' 'सकलहौ' 'सहरौ'। इस बीजमन्त्रसे पूजा करो। इनका ध्यान—

"उद्यद्भानुसहस्राभ्यां नानाप्रकारभूषिताम् ।

मुकुटाग्रजसञ्चन्द्रेखां रक्ताम्बराश्रिताम् ॥

पाशाङ्क शशरां नित्यां वामहस्ते कपालिनीम् ।

वरदामयशामाभ्यां पीनोन्नतपनस्तनीम् ॥"

इस ध्यानसे पूजा की जाती है। इसका पुरश्चरण है, एक लाख जप और दस हजार होम।

कामेश्वरीभैरवी—'सहै'। सकलहौं नित्यङ्गिन्ने भवस्त्रवे हसौ'। इस बीजमन्त्रसे इनकी पूजा की जाती है। ध्यान और पूजादि चैतन्यभैरवीके सङ्ग ही।

पद्कूटाभैरवी—की पूजा 'डरल कसहै' 'डरल कसहे'। इस बीजमन्त्रसे की जाती है। कोई कोई इसका पाठान्तर 'डरलकसहौं' 'डरलकसहौं'। इस प्रकार कहा करते हैं। इसका ध्यान—

"बालसूर्यमभां देवीं जवाकुसुम सधिमाम् ।

मुपडमालावलीरम्यां बालसूर्यं समानुशुक्राम् ॥

सुवर्ण कलसाकारपीनोन्नतपयोधराम् ।

पाशाङ्क शो पुस्तकञ्च तथा च जपमालिकाम् ॥"

नित्याभैरवी—'हस कल रडै' 'हस कलरडौं', 'हस कलरडौं'। इस बीजमन्त्रसे पद्कूटाभैरवीके समान इनकी पूजा होगी।

रुद्रभैरवी—'हस खड्गै' 'हसकलरो' 'हसौ'। यह बीजमन्त्र है; इसी मन्त्रसे पूजा की जायगी। ध्यान—

"उद्यद्भानुसहस्राभ्यां चन्द्रचूडां त्रिलोचनाम् ।

नानालङ्कारसुभगां सर्ववैरिनिवृन्तनीम् ॥

वमद्भिरमुषुपदाशीं कश्चिदा रक्तवासपीम् ।

विशूलं डमर्षं खड्गं तथा खेटकमेव च ॥

पिनाकञ्च शरान् देवीं पाशाङ्कसुभं क्रमात् ।

पुस्तकबाह्यामालाञ्च शिवविंशतिवर्णिताम् ॥"

एक लाख जप इसका पुरश्चरण है और दस हजार होम।

भुवनेश्वरी भैरवी—की पूजा 'हसै' 'हस कलहौं' 'हसौ'। इस बीजमन्त्रसे की जाती है। ध्यान—

"जवाकुसुमपद्मरां दाहिमीकुसुमोपमाम् ।

चन्द्ररेखां जटाजूटां त्रिनेत्रां रक्तवासपीम् ॥

नानाप्रकारसुभगां पीनोन्नतपनस्तनीम् ।

पाशाङ्कशरामतीतिपायन्तीं शिवाभयाम् ॥"

चेतन्यभैरवीकी पूजाके अनुसार ही इनकी पूजा की जाती है।

त्रिपुरालामैरवी—‘ये’ हों सीः इस मन्त्रसे त्रिपुरामैरवीकी पूजापद्धतिके अनुसार इनकी पूजा होगी। तीन लाख जप इस मन्त्रका पुष्पचरण है।

नवकूटामैरवी—‘ये’ फलीं सीः हसकलरों हसीः हसरं हसकलरों हसरों, यही बीज नवकूटाका मन्त्र है, ‘हसं हसकलहों हसीं’ यह सर्वदोषरहित नवाक्षर मन्त्र और हं ह रं द्रीं ह कलरं हों हों हरीं मन्त्र, ये तीनों बीज नवकूटाके मन्त्र हैं। भैरवी-पूजा-पद्धतिके अनुसार पूजा करने चाहिए। १ लाख जप इस मन्त्रका पुष्पचरण है।

“वद वद वाग्वादिनि हेसरीं विलन्ने फलेदिनि महा-मोक्षं कुर्व फलीं हेसीं” यह दोषनी मन्त्र है। यह मन्त्र पहले ६ बार जप कर पश्चात् पूजादि मारम्भ करना चाहिए।

अन्नपूर्णा भैरवी—ऊं ह्रीं श्रीं फलीं भगवति माहे-श्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा’ इस विशाखर मन्त्रसे अन्नपूर्णे-श्वरीभैरवीकी आराधना की जाती है। इस मन्त्रके कामवीजकी छोड़ देनेसे ‘ऊं ह्रीं श्रीं’ नमो भगवति माहे-श्वरि अन्नपूर्णे स्वाहा’ यह ऊनविशाखर मन्त्र होता है। इस मन्त्रका जप और पूजा करनेसे धनधान्यादि ऐश्वर्य-की वृद्धि होती है। सामान्य पूजापद्धतिके नियमानुसार पूजाकी जाती है। ध्यान इस प्रकार है—

“ततकाञ्चनवर्षाभिं बालेन्दुकृत शैलराम् ।  
नवरत्न प्रभादीतमुकुटां कुङ्कुमाख्याम् ॥  
चित्रवस्त्रपरीधानां सफराक्षीं क्रिमोचनाम् ।  
सुवर्षां कलसाकारपीनोन्नतपयोधराम् ॥  
गोक्षारधामधवल्ला पञ्चवक्त्रां विश्लोचनीम् ॥  
प्रसन्नवदना शम्भुं नोजकपटविरानितम् ॥  
कर्पादिनं स्फुरत्सर्पभूषणं कुन्दसन्निभम् ।  
मृत्यन्तमनिशं हृष्टं दृष्टानन्दमयो परं ॥  
यानन्दमुखलोलार्वां मेघसादयं नितम्बिनीम् ।  
अन्नदानरतां नित्यां ममि धीम्यामलङ्कृताम् ॥”

इस ध्यानसे यथाविधि पूजा की जाती है। इसका पुष्पचरण है एक लाख जप, उसके पश्चात् घृताक्त अन्त्रसे उसका दसवां अंश अर्थात् १० हजार होम।

(तन्त्रधार)

२ तीर्थस्थानमें शिव और शिवाणीके जो अनुचर और अनुचारियां रहती हैं, उन्हें भैरव और भैरवी कहते हैं।

३ रागिणी-विशेष। यह रागिणी भैरव रागकी पत्नी है। किसी किसीके मतसे भैरवी मालवरागकी पत्नी है।

“धानवी मालवी चैव रामकीरी च सिन्धुडा ।

आशावरी भैरवी च मालववत्य प्रिया इमाः ॥”

(संगीतदामो०)

हनूमन्के मतसे यह रागिणी सम्पूर्ण जातिकी है, इसके सप्तस्वरविन्यासका भंगम इस प्रकार है—मध्यम, पञ्चम, धैवत्, निपाद, पडङ्ग, श्रुपम और गान्धार। इसका यह मध्यमस्वर है। शरत्ऋतुके प्रमातमें यह रागिणी गायी जाती है। ध्यान—

“सरोवरस्था स्पाटिकस्य मन्दिरे सरोहः शङ्करमर्चयन्ती ।

ताजप्रयोग प्रतिवद्रगीति गीरी तनुर्नरदमे रवीयम् ॥”

(संगीत दामो०)

रागमालाके मतसे इसका स्वरूप—अल्प वयस्का, सुररूपा, सुनेत्रा, विस्तारवदना, केश पिङ्गलवर्णा, अङ्ग अतिमुकुमल, वर्णा जवाकुसुम-सदृश, परिधान श्वेतवसन, गलेमें चम्पकमाला सुशोभित, प्रकुल पद्मयुक्त, पर्वत-गुहामें शिवपूजापरायण और सर्वदा मञ्जीर बजा कर गान करती हैं। कल्लिनाथ, सोमेश्वर और भरतके मतसे भी इसका स्वरूप ऐसा ही है। (सङ्गीतदा०)

यह रागिणी टोरी और बरारीके मिश्रणसे उत्पन्न हुई है। इसका सरगम इस प्रकार है—

स ऋ ग म प ध नि

म प ध नि सा ऋ ग

इसका मध्यम वादी और धैवत संवादी है। (सङ्गीतरत्ना०)

भैरवी—कालिकापुराण-वर्णित पुण्यतोया नदीमें दे।

(कालिकापु० १८ अ०)

भैरवीकवच—तन्त्रसारोक्त देवीमन्त्रयुक्त धारणीय कवच-

भेदे।

भैरवीचक्र (सं० ह्री०) भैरव्याः पूजनार्थं चक्रं । १

तान्त्रिकों या वाममार्गियोंका यह समूह जो कुछ विशिष्ट तिथियों, नक्षत्रों और समयोंमें भैरवीदेवीका पूजन करनेके

लिये एकत्र होता है। इसमें सब लोग एक चक्रमें बैठ कर पूजन और मद्यपान आदि करते हैं। इसमें केवल दोषित लोग ही सम्मिलित होते हैं और वर्णाश्रम आदि का कोई विचार नहीं रखा जाता। २ मद्यपों और अनाचारियों आदिका समूह।

भैरवीभूमि ( सं० स्त्री० ) उद्योगित्येक भूवल-सन्निवेशकी प्रक्रियाविशेष। राजा इसके द्वारा चारों प्रकारके संप्राममें विजयी हो सकते हैं।

भैरवीयाचना ( हि० स्त्री० ) पुराणानुसार वह याचना जो प्राणियोंको मरते समय उनकी शुद्धिके लिये भैरवजी देते हैं। कहते हैं, कि जब इस प्रकारकी यातनासे प्राणी सब पातकोंसे शुद्ध हो जाते हैं, तब शिवजी उसे मोक्षप्रदान करते हैं।

भैरवीशैल—हिमालयस्थित तीर्थभेद।

भैरवीय ( सं० स्त्री० ) १ भैरवसम्बन्धीय। २ भयानक।

भैरवेन्द्र ( सं० पु० ) १ एक राजा। भैरवदेव देखो।

२ शिशुबोधिनी सप्तपदार्यों टीकाके प्रणेता। इनके पिताका नाम लक्ष्मीरमण था।

भैरवेण ( सं० पु० ) शिव।

भैरा ( हि० पु० ) बड़ेडा देखो।

भैरु ( सं० पु० ) भैरव देखो।

भैरो ( सं० पु० ) भैरव देखो।

भैरिक् ( सं० पु० ) भैरि दाघकारी, दुन्दुभि बजानेवाला।

भैरो ( हि० स्त्री० ) बहरी देखो।

भैली—वाराणसीके दक्षिणमें अवस्थित एक परगना। वर्तमान चुनारनगर और दुर्ग इसके अन्तर्भूक है।

चुनार देखो।

भैवाद् ( हि० पु० ) १ भाईचारा, भाईपना। २ विरादरी।

भैपज ( सं० स्त्री० ) भोपजमेव संज्ञायों स्वार्थे वा अण्। १ लायक पक्षी, लया चिड़िया। २ भोपज, औपध। ३ वैद्यके शिष्य आदि।

भैपज्य ( सं० स्त्री० ) भोपजमेवेति भोपज ( अन्ताप्रकथेति भोपजान् ) ज्यः। वा १। २। इति ज्यः। औपध, दया।

भैपज्यरत्नावली—एक वैद्यकग्रन्थ। वैद्य महामहोपाध्याय गोविन्ददास विशारदने इस ग्रन्थका प्रणयन

किया है। लगभग सवा सौ वर्ष हुए इस ग्रन्थका संग्रह हुआ है। ग्रन्थकारने प्रारम्भमें ऐसा लिखा है—

"नत्या सद्भिपजां मुदे गुण्यवतीं गोविन्ददामोऽधुना।

नाना ग्रन्थमहोदधेर्वि तनुते भैपज्यरत्नावलीम् ॥

चदि भ्रियंताम नत्यादृष्ट्वाप्यां गिपंजामियम्।

तथापि नत्या नप्यानामानुक्त्यं विधास्यति ॥"

यद्यपि यह घृष्टोंकी बहुत प्रिय न होगी, तथापि नथ्योंको इससे विरोध अनुकूलता होगी, इसमें सन्देह नहीं। इसमें इस देशमें प्रचलित सारकौमुदी, रसेन्द्र-चिन्तामणि, चन्द्रदत्त रसेन्द्रसारसंग्रह आदि ग्रन्थोंसे औपधियां संगृहीत की गई हैं। औपधियोंकी शिक्षा प्राप्त करनी हो, तो उसके लिये भैपज्यरत्नावली ही सबसे श्रेष्ठ है। इसमें अधिकारक्रमसे औपध बनाने और सेवन करनेके नियम लिखे गये हैं। वर्तमान समयमें भैपज्यरत्नावली ही एकमात्र साधारण वैद्योंके लिये उपाय-स्वरूप है। इस संग्रहसे विशेष उपकार हुआ है।

भैपज्यराज ( सं० पु० ) बोधिसत्त्वभेद।

भैपज्यसमुद्रत ( सं० पु० ) बोधिसत्त्वभेद।

भैणज ( सं० पु० ) भिण्णजो गोत्तापत्यं गगादित्वात् यञ्, तस्य छाताः अण् यलोपः। भिण्णगोत्तापत्य छातसमूह। यह शब्द बहुवचनान्त है।

भैणज्य ( सं० पु० स्त्री० ) भिण्णजो गोत्तापत्यं गगादित्वात् यञ्। तद्गोत्तापत्य।

भैणकी ( सं० स्त्री० ) भौणकस्यस्त्रापत्यं, इञ् लोपः।

भौणककी कन्या रुचिमणी।

भौ ( हि० स्त्री० ) भौं भौं-का शब्द।

भौकना ( हि० स्त्री० ) बरछी, तलवार या इसी प्रकारकी और कोई नुकीली चीज जोरसे धंसाना, घुसेड़ना।

भौंगरा ( हि० पु० ) एक प्रकारकी घेल या लता।

भौंगाल ( हि० पु० ) एक बड़ा भौंपा। इसका एक ओरका मुँह बहुत छोटा और दूसरी ओरका बहुत अधिक चौड़ा तथा फैला हुआ होता है। इसका छोटे मुँहवाला सिरा जब मुँहके पास रख कर कुछ बोला जाता है, तब उसका शब्द चौड़े मुँहसे निकल कर बहुत दूर तक सुनाई देता है। इसका व्यवहार प्रायः भौड़ भाड़के

समय बहुतसे लोगोंको कोई बात सुनानेके लिये होता है।

भोंचाल ( हि० पु० ) भूकम्प देखो।

भोंडा ( हि० वि० ) १ कुरूप, भद्दा। ( पु० ) २ झुआरकी जातिकी एक प्रकारकी घास। पशु इसे बड़े चाँवसे खाते हैं। इसमें एक प्रकारके दाने लगते हैं जो गरीब लोग खाते हैं।

भोंडापन ( हि० पु० ) १ भद्दापन। २ बेहूदगी।

भोंड़ी ( हि० स्त्री० ) एक प्रकारकी भेड़। इसकी छाती परके रोप सफेद और बाकी सारे शरीरके रोप काले होते हैं।

भोंतरा ( हि० वि० ) कुंद धारवाला, जिसकी धार तेज न हो।

भोंदू ( हि० वि० ) १ मूर्ख, बेवकूफ। २ सोधा, भोला।

भोंपू ( हि० पु० ) एक प्रकारका बाजा। यह तुरहीकी तरहका पर बिलकुल सीधा होता है। यह फूंक कर बजाया जाता है। इसका व्यवहार प्रायः चैरागी साधु आदि करते हैं।

भोंसले—महाराष्ट्र राजन्यगणकी वंशोपाधि विशेष। जगत्-प्रसिद्ध महाराष्ट्र-केशरी छत्रपति शिवाजी, सामन्त-प्रधान रघुनाथराव और वर्तमान तञ्जोरके राजगण इसी भोंसले वंशके हैं। वास्तवमें देखा जाय, तो छत्रपति शिवाजीके अभ्युत्थानसे ही इस भोंसले वंशकी ख्याति और सम्मान वर्द्धित हुआ था। प्रसिद्ध अहमदनगर-राजवंशके अधोपतनके बाद इस भोंसलेवंशने प्रतिष्ठा प्रारम्भ किया था।

इस वंशके आविर्भूत भोंसाजीसे ही भोंसलेवंशकी नीव पड़ी है। उन्हींके समयसे यह विवरणो प्रकटित हुई थी, कि राजपूतानेके उदयपुर राज्यके एक राज-दायादसे भोंसाजीका जन्म हुआ। वे किसी खास कारण से दाक्षिणात्यमें वास करने लगे। उन्हींके वंशधरोंने फालांतरमें महाराष्ट्रक्षेत्रमें विजय-वैजयन्ती उड़ाई।

१५७७ ई०में मालोजी भोंसले नामक उक्त वंशके एक प्रथितनामा व्यक्तिको हम इतिहासगमन आलोकित करते पाते हैं। आप भोंसाजीके वंशधर बावाजीके पुत्र थे। बावाजीने फलतनके देशमुख जगपालराव नायक

निम्नालकरकी बहन दीपावाईके साथ अपने पुत्रका विवाह किया था। १५७७ ई०में ही लाखजी यादवराव के प्रयत्नसे वे २५ वर्षकी अवस्थामें मर्तजा निजाम शाहके अधीन सिलेदारके पद पर नियुक्त हुए। इस सामान्य पद पर काम करते हुए वे अपने अध्ययसाय गुणसे जनसाधारणके निकट परिचित हो उठे और क्रमशः अपनी अश्वारोही सेनाकी वृद्धि करते हुए राजसरकारके विशेष प्रीतिभाजन हो गये। तब वे कई गाँवके पटेल बनाये गये। १५६५ ई०में मुगल-सेनाने अहमदनगर पर आक्रमण किया, तो २५ बहादुर निजाम बड़े आफतमें पड़ गये। उपायान्तर न देख उन्हें मालोजीकी अधिनायकता ग्रहण करनेको बाध्य होना पड़ा। इस युद्धमें उन्होंने महाराष्ट्र सेनापति मालोजी भोंसलेको राजाकी उपाधि और पूना एवं सुपा जागीर दे कर उन्हें विशेष सम्मानित किया। उसके बाद मालोजी सिधन और चाकन प्रदेशमें दुर्गाध्यक्षके पद पर नियुक्त हो कर विशेष पदमर्यादाको प्राप्त हुए। वेरुल और इलोरा नगरमें उनका निवास होता था।

इस प्रकार अहमदनगर-राजसरकारमें क्रमशः उनका महत्व प्रसारित होने लगा। १५६६ ई०में एक दिन वे होलीके त्योहार पर अपने पुत्र शाहजीको साथ ले कर अपने प्रतिपालक महाराष्ट्र-पुङ्गव लाखजी यादवरावके साथ भेंट करने गये। उन्होंने सर्वसुलक्षण पञ्चमवर्षीय बालक शाहजीको प्रीतिकी निगाहसे देख कर बड़े प्रेम और स्नेहसे अपनी तीन वर्षकी कन्या जिजयाकी वगलमें बिठा दिया। बालक और बालिका दोनों एक आसन पर बैठे खेलने लगे। यह देख कौतूहल-यश यादवरावने अपनी लड़कीसे हाँस कर कहा—“लहरी, तू इसके साथ ध्याह करेगी ?” यह सुन कर वहाँ बैठे हुए और लोग हाँसने लगे, पर मालोजीने इस विवाहके प्रस्तावका गाम्भीर्यके साथ अनुमोदन किया और लाखजीसे अपने मनकी बात कही। मानि-श्रेष्ठ यादवराव और उनकी पत्नी इस प्रस्तावसे मालोजी पर बड़े विरक्त और क्रुद्ध हुए, परन्तु मालोजी अपनी बातको कार्यरूपमें परिणत करनेके लिए विशेष चेष्टित और अविचलित रहे।

इस घटनाके बाद वे अपने निवास-स्थानमें पहुँचे । यहाँ भवानीदेवीकी 'छपासे उन्हें' बहुतसा शुभधन हाथ लगा और भाईके परामर्शानुसार उस धनसे उन्होंने बहुतसे देवमन्दिर और सरोवर इत्यादि बनवाने लगे, जिससे जनसाधारणमें उनका बहुत ही सम्मान होने लगा । क्रमशः उनके धनागमकी बात चारों तरफ फैल गई, परन्तु उनके कोई राजमर्पादा न होनेसे यादवराजने उनके यहाँ कन्या देना स्वीकार नहीं किया । उपर उन्होंने भी यादवराजके साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित करनेकी आशा नहीं छोड़ी ।

अहमदनगर जैसे पतनशील राज्यमें अर्थ और शक्ति क्या न कर सकती थी ? उन्होंने अर्थ और भुजबलसे राजाको सहज ही चशमें कर लिया । १५६६ ई०में मुगल-सेनाके साथ युद्ध करनेसे उनकी घोरत्व-गाथा चारों तरफ फैल रही थी । वे पाँच-हजारी अश्व-सेनाका नायक बनाये गये और राजाकी उपाधि दो गई । साथ ही पूर्वोक्त दुर्गाधिकार और जागीरके भी वे ही मालिक हुए । तब यादवराजको कोई उन्न करनेकी गुंजाइश नहीं रही । इधर १६०४ ई०में स्वयं राजाने उन्हें कन्या व्याहनेके लिए अनुरोध किया । वे सुलतानकी बात टाल न सके और स्वीकारता दे दी । उसी वर्ष महा समारोहके साथ शाहजी और जिजियावाहिका विवाह हो गया । स्वयं सुलतानने इस विवाह-मण्डपमें उपस्थित रह कर दम्प-तियोंका सम्मान बढ़ाया था ।

ये शाहजी ही भारत प्रसिद्ध महाराष्ट्रकेशरी छत्रपति शिवाजीके पिता थे । १६२७ ई०में जुन्नरके निकटवर्ती सिचनके दुर्गमें शाहजीकी पत्नी जिजियावाहने शिवाजी-रत्नको प्रसव किया । शिवाजीके बाद उनके पुत्र शम्भाजी और पौत्र शाहने पूता और सतराके राजछत्रकी रक्षा की थी । महाराष्ट्र, शिवाजी, शाहजी आदि शब्द देखो ।

शिवाजीके अभ्युदयसे महाराष्ट्र राज-शक्तिने जैसा प्रचण्डमार्ताण्ड-तेज धारण किया था, उनके स्वर्गावा-सके साथ ही पूर्वकी घड़ रश्मिमाला क्षयको प्राप्त होने लगी । शिवाजीने भोंसलेवंशको जो सुख्याति अर्जन की थी, महाराष्ट्रशक्तिके अयःपतनके साथ उसका प्रभाव अस्तमित हो गया । उस समय पार्श्वजी नामक एक

महाराष्ट्र-सरदार वरार प्रदेशमें पहुँच कर महाराष्ट्रशक्ति-की पुनः प्रतिष्ठाके लिए बद्धपरिकर हुए । इसी व्यक्तिसे वरार राज्यमें भोंसले वंशकी प्रतिष्ठा हुई ।

चास्तवमें पार्श्वजी भोंसलेवंशके थे या नहीं, इस विषयको ले कर घोर आन्दोलन हुआ है । सतराके निकटवर्ती स्थानमें वे एक अश्वारोही सेनापतिके पद पर नियुक्त थे । भोंसले-वंशगीरव शिवाजी-वंशका अयःपतन होने पर, उन्होंने इस वंशके विनष्ट गौरवके पुन-रुद्धारक उद्देशसे इस स्थानमें भोंसलेवंशकी प्रतिष्ठा-की थी ।

राजा शाहुजीके राजकालमें पार्श्वजीने ऊँचा सम्मान प्राप्त किया था । शाहुके कार्यमें उनका उन्नतिपथ सुविस्तृत हुआ था । दिल्लीसे लौटनेके बाद वे राजशाहुके द्वारा वरार प्रदेशके सम्पूर्ण महाराष्ट्रीय राजकर वसूल करनेके कार्यमें नियुक्त हुए । पूर्वदिशाका वन्य-विभाग भी उन्हींके अधीन रखा गया ।

पार्श्वजीके भाई रघुजी भोंसले राजा शाहुके विशेष प्रियपात्र थे । राजाकी सालीके साथ विवाह करनेके कारण दोनोंमें एक प्रणय-सम्बन्ध स्थापित हो गया । पार्श्वजीकी मृत्युके बाद रघुजी ही वरार प्रदेशके राजस-संप्राहक हुए । १७३४ ई०में रघुजीने सेनासाहब-सूत्राके पद पर नियुक्त हो कर महाराष्ट्र वाहिनीका नेतृत्व ग्रहण किया ।

१७४५ ई०में इस वंशने समग्र गोएडवाना प्रदेशमें आधिपत्य विस्तार कर लिया । १७८८ ई०में २५ रघुजी पितृसिंहासन पर बैठे । १८१६ ई०में उनकी मृत्युके बाद उनके पुत्र पार्श्वजी सिंहासनके अधिकारी हुए । परन्तु उनका चरित कलुषित होनेके कारण धंड़ाजीके पुत्र मुधाजीने विशेष प्रतिवाद करके और अपना नाम अर्प्या साहब रखके राजकार्यकी परिचालनाका भार स्वयं अपने हाथमें ले लिया । उनके आदेशसे १८१७ ई०में पार्श्वजी नागपुरमें गुप्तचरों द्वारा मरवा दिये गये । अब एकमात्र अर्प्या साहब ही राज्यके अधिकारी रहे, इसलिये उन्हें ही नागपुरका सिंहासन दिया गया ।

अर्प्या साहब ऊपरसे अङ्गरेजोंके मित्र थे, परन्तु भीतर ही भीतर उन्होंने अङ्गरेजोंके साथ शत्रुता करनेमें

कसर नहीं छोड़ी। सीतलदेवी और नागपुरका युद्ध इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। इन दोनों युद्धोंमें वे अङ्गरेजोंसे पराजित हो कर आत्मसमर्पण करने और सन्धिकी शर्तोंके अनुसार सम्पूर्णरूपसे अङ्गरेजोंके अधीन रहनेके लिए बाध्य हुए। १८१८ ई०में अङ्गरेजोंसे राज्य प्राप्त करके भी वे उनके विरुद्धाचारी रहे। उनकी विश्वासघातकतासे नराज हो कर अङ्गरेजोंने २५ रघुजोंके पीत रघुजोंको नागपुरका राज्य समर्पित किया।

१८१८ ई०में अण्णा साहब अङ्गरेजोंकी दी हुई जागीर छोड़ कर सिख-राज्यमें भाग गये। योधपुरमें १८४० ई०की उनकी मृत्यु हुई थी।

नावालिंग रघुजोंके सिंहासन पर बैठने पर अङ्गरेज ही पहले पहल राजकार्यकी देखभाल करते रहे। पीछे जब राजा बालिंग हो गये, तब अङ्गरेज-गवर्मेण्टने उन्हें राज्यभार दे कर सेनाका खर्च चलानेके लिए बरार-राज्यके कई एक प्रदेश अपने हाथमें रख लिये। उसके बाद १८२६ ई०में उन प्रदेशोंको पुनः राजाके हाथ सौंप कर उसके बड़े बृटिश-गवर्मेण्ट देशीय सेनाके ध्यय-वह-नाथ चार्षिक ८ लाख रुपये देने लगी। बेरार देखो।

भोड़का—बम्बई प्रदेशके काठियावाड़ विभागके अन्तर्गत फलघार जिलेका एक सामन्तराज्य। यहाँके सरदार अङ्गरेज और जूनागढ़के नवाबको कर देते हैं। भोई—बम्बई प्रदेशमें रहनेवाली एक धीवर-जाति। नदी आदिसे मछली पकड़ कर बेचना और डोली, पालकी आदि ढोना इनका जातीय काम है।

ये साधारणतः मालभोई, मराठाभोई, काचीभोई और परदेशीभोई इन चार श्रेणियोंमें विभक्त हैं। इन चारों शोकीमें परस्पर विवाह-सम्बन्ध नहीं होता। इसके सिवा भोकरे, चवान, डोंगरे, गुलबन्त, घाटमल, भाटे, कासीद, काठवेत, खटमाले, महलकर, निर्मल, सिद्धे, सिंगार और तिले गोतके भोई लोग स्वगोत्रमें विवाह आदि नहीं करते।

इनकी आकृति, प्रकृति वेशभूषा और भाषा मराठोंके समान है। बलिष्ठ होनेसे इनमें कर्मठता विशेष पाई जाती है। स्वभावतः ये साफ सुधरे और सादृशो-से रहते हैं। आतिथेयो होने पर भी इनमें मद्य पीनेकी

प्रथा है, किन्तु कभी भी कमाईसे ज्यादा खर्च नहीं करते। दस वर्षसे ज्यादा उम्रके लड़के और लड़कियां अपने घर के काम-काजमें लग जाती हैं।

एकादशी आदि हिन्दुओंके पर्वदिनमें तथा दशहराके समय ये अपना काम बन्द रखते हैं। ये अपनेकी मराठी कुनवियोंसे नीचा समझते हैं। धर्ममें ये विशेष आस्था रखते हैं। वहिरोवा, तुलजाभवानी और खण्डवा आदि देवताओंको ये अपना कुलदेवता समझते और आदरके साथ उनकी पूजा करते हैं। इसके अलावा स्थानीय देव-देवी और महादेव, मासुती एवं विठोवाकी पूजाके लिए भी इनमें विशेष आग्रह पाया जाता है। आलन्दी, माधी, पण्डरपुर और तुलजापुर आदि स्थानोंमें ये कभी कभी तीर्था-वन्दनाके लिए जाया करते हैं।

सिमगा, संवत्सरपर्वा, अक्षयतृतीया, नागपञ्चमी, दशहरा और दिवालोके दिन ये नियमानुसार उत्सव मनाते हैं। प्रत्येक सोमवार, आषाढ़ और कार्तिककी एकादशियों तथा शिवरात्रके दिन ये उपवास करते हैं।

विवाह और श्राद्धादि कर्ममें स्थानीय ब्राह्मण इनकी याजकता करते हैं। कानफटा गुस्ताई या कोई निष्ठावान् ब्राह्मणके पास जा कर ये दीक्षा ग्रहण करते हैं। उपदेवता, डाइन और भविष्यवाणी पर इनको विश्वास है। भूताविष्ट व्यक्तियोंको चंगा करनेके लिए ये देशुपो नामक ओभाको बुलाते हैं।

बादयविवाह और विधवाविवाहके लिए इनके यहां कोई विरोध नहीं है। जातकर्म, चूड़ाकरण, विवाह और मृत्यु ये चारों संस्कार निम्नश्रेणीके हिन्दुओंके समान होते हैं। बच्चा पैदा होनेके बाद ५वें दिन ये पट्टशर्क देवीको पूजा करते हैं। ११ दिन तक प्रसूतिके अशीच रहता है, पश्चात् १२वें दिन तक आंगनमें ५ पत्थर गाड़ कर फिरसे पट्टी-पूजा होती है। उसके बाद बच्चेका नाम रखा जाता है। पांचवें वर्षमें बालकका चूड़ाकरण होता है और उस अवसर पर ज्ञाति कुटुम्बको भोज दिया जाता है।

विवाहके समय कन्या अपने घरमें घट स्थापन करनेके बाद गेहूँका एक आसन बनाती है, फिर उस पर एक सुपारी रख कर गणेशकी पूजा करती है। वरका



पिता आ भर पुत्र-वधुको पहरेने ओढ़नेके फपड़े दे कर तथा माथे पर सिन्दूर लगा कर विवाह-कार्य सम्पन्न करता है। उसके बाद घर और कन्या पर तेल चढ़ा कर उन्हें नहलाया जाता है। इसे ले कर ५ दिन तक तेल चढ़ाये जानेको रिवाज है। तदनन्तर कन्याके घरमें बने हुए एक आसन पर घर और घरके पिताको बिठाया जाता है। कन्या-पक्षकी स्त्रियां इकट्ठी हो कर उसके चारों कोनोंमें रखे हुए मिट्टीके घड़ों पर कलाय (रंगान सूत) लपेटती रहती है। इसके बाद कन्या और घरके गठजोड़ा बांध कर उनके हाथोंमें पांच पहलू और कुठार दे दी जाती है और फिर निकटवर्ती मासतिके मन्दिरमें जा कर नवदम्पत्तिको मंगलकामनाके लिए पूजा की जाती है।

दुल्हिनके साथ जब दूल्हा अपने घर वापस आता है, तब फिर पुरोहित आ कर प्रकृत विवाहका अनुष्ठान करता है। यहां होमके बाद पाणिग्रहण, कन्या दक्षिणा, चिकसा और भालका काम पूरा करके विवाह-कार्य समाप्त किया जाता है।

ये मृत-देहको गाड़ते हैं। पहले गरम पानीसे धो कर मुँहको खाट पर सुलाते और सफेद फपड़ेसे ढक देते हैं। सधवा स्त्री मरने पर उसे हरा कपड़ा पहनाते हैं, फिर माथे पर सिन्दूर और फूल तथा आंखोंमें काजल दे कर उसे दाह-स्थानमें ले जाते हैं। विधवा रमणियोंको ऐसा सीमाय नहीं मिलता। विधवाओंको पुरखोंको तरह नशेके किनारे समाधिस्थ किया जाता है।

ये मात्र १० दिनका अशीच मानते हैं। दसवें दिन क्षौरकर्मके बाद अशीचघाती व्यक्ति प्रेतात्माके लिए पिंड-दान देता है। प्रवाद है, कि काक यदि उस पिण्डको न ले तो सम्भन्धा चाहिए कि मृत व्यक्ति प्रेतयोनिको प्राप्त हो कर उसी स्थानमें विचरण कर रहा है। इसके लिए ये कुशका फाक बना कर उससे पिण्डको हुआ देते हैं। तेरहवें दिन श्राद्धका भोग होता है। प्रति वर्ष महालयाके पक्षमें ये प्रेतात्माके लिये तर्पण किया करते हैं।

भोकरीद्वार—दम्बईप्रदेशके खान्देश जिलान्तर्गत सावड तालुकका एक प्राचीन बड़ा ग्राम। यहां ओझुरेअर गिर-मन्दिर विद्यमान है। मन्दिरमें ११६६ सम्यत्की खोदी

हुई एक शिलालिपि है। स्थानीय धर्मशास्त्रा बहत्या-वादे होलकरने बनवाई थी।

भोकसा—युकप्रान्तके पार्वत्य प्रदेश-वासी एक जाति। भौतिक क्रियाओंसे रोग-निराकरण करना ही इनका जातीय ध्यवसाय या काम है। जातीयताके विषयमें ये अनेकांशमें निकटवर्ती थारुओंके समान हैं। पूर्वमें तराई और पीलीभीत जिलेके बाभरसे ले कर पश्चिममें गङ्गातीरस्थ चांदपुर तक विस्तोर्ण स्थानमें इनका वास है।

ये साधारणतः तीन स्वतन्त्र श्रेणियोंमें विभक्त हैं। रामगङ्गा और सरदारके मध्यवर्ती स्थानमें रहनेवाले पुरवी कहलाते हैं तथा रामगङ्गाके पश्चिम और गङ्गाके मध्यवासीगण पछिमी। गङ्गा और यमुनाके मध्यमें रहनेवालोंको ले कर एक स्वतन्त्र थोक चला है। विभिन्न श्रेणोंके लोग परस्पर एक दूसरेको घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं; कोई भी किसीके साथ आहार-व्यवहार या विवाह सम्बन्ध नहीं करता।

ये स्वभावतः खर्वाकार, दृढ़काय और सीधे-सादे होते हैं। देहका रंग और अङ्गोंका गठन प्रायः हथकोंके समान होता है। आंखें छोटी, नीचेके ओठ मोटे, गर्दनकी हड्डी चौड़ी, हनु विलम्बित और अघरोष्ठ गुम्फरमधु-विहीन होते हैं। ऐसी मूर्त्ति देखते ही अनुमान कर लेना चाहिए कि वह भोकसा है। इनकी स्त्रियां मर्दाने-जैसी दोखती हैं।

ये अपनेको परमार-वंशीय राजपूत बतलाते हैं; और इस प्रकार अपने वंशका विवरण सुनाते हैं—“धारा नगरके राजा जयदेवने अपने भाई उद्यादित्यको उसके आचरणसे विरक्त हो कर घरसे निकाल दिया था। उद्यादित्य अपने दुलबलके साथ सारदा नदीके किनारे बनवास नगरमें आ कर रहने लगे। अपने दुलके धे हो सरदार या नायक थे। इसके कुछ ही दिन बाद कुमायूँ राज्यमें शत्रुको सेना आ पहुँची। कुमायूँके राजा अपनी रक्षाके लिए सरदार उद्यादित्यके शरण-पत्र हुए। धीरे धीरे उद्यादित्यकी परमार-सेनाने धा कर पार्व्यवर्ती आक्रमणकारी राजाओंको पराजित कर भगा दिया। राजाने परमार-सेनाको सहायता पर पुनः

हो कर छतब्रताके चिह्नस्वरूप उनके रहनेके लिए कई स्थान दिये। तदनुसार वे अपनी पहलेकी यास भूमिको छोड़ कर यहाँ आ कर बसे। परन्तु दुःखकी बात है, कि यह वंशकी कन्या सबके मुँहसे एक-सी सुननेमें नहीं आती। स्थानविशेषमें विभिन्न किम्बदन्तियाँ भी प्रसिद्ध हैं। कोई कहता है, कि वे दिहोसे यहाँ आ कर बसे हैं और कोई कहता है, कि महाराष्ट्रियों द्वारा भगाये जाने पर उन्हें यहाँ आ कर रहनेके लिए बाध्य होना पड़ा है। महड़ा या देहरादूनो शाखाके भोक्साओंका कहना है, कि उन्होंने देहलीके राजा सुखदेवके आमन्त्रणसे गङ्गाके उस पारसे आ कर देहरादूनमें उपनिवेश स्थापन किया था। राजाके शिकारके काममें वे जङ्गलो रास्ताके परिदृश्य नियुक्त थे। पांच सात पीढ़ो हुई हैं, तबसे वे यहाँके अधिवासी समझे जाते हैं।

इनमें २० गोत्र हैं, जिनमें यदुवंगो, पंचार, पुर्तजा, राजवंशी, तुँयार, बड़गूजर, तबारी, बरहनिया, जलवार, अर्धोई, दुगुगिया, राठोर, नागीरिया, जलाल, उपाध्याय, चौहान और दुनवारिया नामकी १७ शाखाएँ प्रधान हैं तथा दिमार, राठोर, धांगड़ा और गोली ये अग्रधान। नीचेकी तीन शाखाओंसे इस जातिके राजपूत और ब्राह्मण साङ्घर्षका परिचय पाया जाता है। ये इच्छानुसार भिन्न गोत्रोंमें शादी-प्याह कर सकते हैं। परन्तु कोलपुरी और सबना-वासी लोग धारुओंके साथ वैवाहिक सम्बन्ध करते हैं। पूर्वक उद्यादित्यका एक सहचरवंश है, जो भोक्साओंके भाट कहलाता है। वे जङ्गल हीमें रहते हैं। कभी कभी यजमानोंके यहाँ भी जाते हैं। उक्त उद्यादित्यके एक कनौजिया ब्राह्मण सहचार-वंशके लोग इनका पौरोहित्य करते हैं।

देहरादून-वासी महड़ा लोग भिन्नगोत्र होने पर भी मातृगोत्रमें दो पीढ़ीके बाद विवाह-सम्बन्ध कर लेते हैं। यह विवाह इनके यहाँ निषिद्ध नहीं है। यदि किसीकी कन्या विवाहसे पहले पर पुरुषके साथ अवैध प्रणयमें आसक्त हो जाय, तो कन्याका पिता ही जातीय-सभा द्वारा दण्ड पाता है। वह प्रणयी यदि नीच वर्णका हो, तो कन्याको जातिच्युत किया जाता है; अन्यथा स्वजातिका होने पर जुरमाना देनेके बाद उसे अपनी

जातिमें विवाह करनेकी अनुमति दी जाती है। परन्तु यदि वह कन्या किसी उच्चश्रेणीके पुरुषके साथ प्रणयासक्त हो, तो उसको १०) २० जुर्माना देना पड़ता है।

वारह वर्षसे कम उम्रके लड़केका विवाह करनेका नियम नहीं है। लड़कियोंका विवाह बड़ी होने पर ही होता है। विधवाएँ 'करव' प्रथाके अनुसार विवाह कर सकती हैं। द्वितीय विवाहसे उत्पन्न पुत्र अपने पिताकी सम्पत्तिका उत्तराधिकारी होता है। पहले विवाहसे उत्पन्न पुत्र अपने पित्रुच्यके अधीन रहते हैं। विधवाएँ अपने देवरके साथ विवाह कर सकती हैं, परन्तु नाधारणतः स्वामिके कुलको छोड़ कर दूसरोंके साथ ही विवाह करती हैं।

देहरादूनके पूर्वाग्रामें रहनेवाले महड़ा लोग हिन्दू-क्रिया पद्धतिके ही अनुकरणकारी हैं। उनके विवाह और श्राद्ध-कार्यमें गौड़ब्राह्मण पौरोहित्य करते हैं। अपनेको राजपूत कहने पर भी इनमें सूअर, मुरगो आदिका निन्दित मांस-भोजन और मद्यपानकी प्रथा है।

बच्चा पैदा होने पर इनके यहाँ विशेष कोई क्रियानुष्ठान नहीं होता। छठे दिन प्रसूति सोबरमें ही विवाह-देवीकी पूजा करती है। उस दिन आत्मीय कुटुम्बियोंको भोज दिया जाता है तथा घर वगैरह साफ किया जाता है। दूसरे दिन प्रसूति किसी ब्राह्मणके यहाँसे गङ्गाजल ला कर, उसे दूसरे पानीमें मिला कर स्नान करती है। एक मास बाद बच्चेकी मुण्डनक्रिया और ज्ञाति-भोजन होता है। विधवा-विवाह करनेवालेके यदि पुत्र न हो तो वह अपनी खोकी पहलेकी सन्तानको दत्तकर ल सकता है।

इनकी विवाह-प्रथा साधारण हिन्दुप्रथाके समान है। विशेषता इतनी ही है, कि ये विवाहके दिन घरके आंगनमें एक 'माड़ो या मण्डप बनाते हैं, जिसमें नव-प्रहक पूजा होती है। उसके बाद घरमें होमानि जला जाता है, जिसके चारों तरफ नव-दम्पतिको पांच बार प्रदक्षिण करना पड़ता है।

मुर्दोंके ये लोग जला देते हैं। कमी कमी गङ्गाके किनारे जा कर उसको भस्म या हड़्डी गाड़वाते हैं। धाखादि प्रेतकर्ममें इनका विशेष विश्वास नहीं है।

किसीके मरनेके बाद ये तेरह दिन तक रोज किसी गाय-को एक पिष्टक खिला कर फिर आप भोजन करते हैं। तेरहवें दिन ब्राह्मणको चायल, दाल और नैत्रसादि पात्र दान करके शुद्ध होते हैं। प्रेतात्माको परितृप्तिके लिये ये प्रति वर्ष आश्विनमासमें कन्यापक्षीय कुट्टुम्बियोंको भोजन कराते हैं। यहो इनकी श्राद्धक्रिया है।

पूर्वो लोग पछांहके महद्धार्योसि अनेकांगमें भिन्न हैं। ये सत्त्ववादी, मद्यपायी और उपधर्मसेवी होते हैं। स्वभावतः इन्हें धुरी जगह और गन्दे घरोंमें रहना पसन्द है। इसी कारण इन्हें समय समय पर स्थान बदलने पड़ते हैं। ये खेती-वारीके सुभोतेके लिए खेतोंमें पानी देना भी नहीं जानते, यहां तक कि अपने पानेके लिए पानीका इन्तजाम भी नहीं कर सकते। सामान्य खेती वारीके सिवा पशु-शिकार और तालावोंसे मछली पकड़ना इनकी उपजीविका है। इनका खान-पान और धर्म-कर्मादि अधिकांग पछांहके लोगों जैसा है।

ये विवाहादि कार्यमें भी गौड़-ब्राह्मणोंको नियुक्त करते हैं। बहुतसे तो गुरु नानक-प्रवर्तित सिख-धर्मके माननेवाले हैं। जिसने सिख धर्म स्वीकार किया है उसके बाल-बच्चे सब सिख-धर्मको ही मानते हैं। नानक-मठ, देधुरा और श्रीनगर इनके प्रधान तीर्थस्थान हैं।

द्वेष देवियोंमें ये प्रधानतः भवानो और कालिकादेवी-की ही विशेष भक्ति करते हैं। इसके सिवा सरवार-लाखी (लाखदाता) और कालू सैयद (कालूराज) इन दोनों साधु-पुरुषोंको भी ये विशेष अनुरागके साथ पूजते हैं। डेरगाजोखां जिलेके नागहा नामक स्थानमें तथा शिवालिक पर्वतके पाथलोदून नामक स्थानमें सरवार-लाखी-का अस्ताना है। यहांके रहनेवाले हर एक आदमी उक्त साधु तीर्थोंको पूजा करते हैं।

इन्द्रजाल या भौतिक विद्यामें ये विशेष पटुता रखते हैं। साधारण लोगोंका विश्वास है कि ये पशुका रूप धारण करके शत्रुका विनाश कर सकते हैं। पक्ष चालन, मारण और स्तम्भनादि विद्यामें विशेष पारदर्शी देख कर राजा सुदर्शन शाहने इन्हें भूमूल नष्ट करनेकी विशेष कोशिश की थी। अपने उद्देश्यको सिद्धिके लिए एक दिन राजाने इन्हें निमन्त्रण दिया था और

कहा कि 'यदि तुम लोग आ कर मेरे अभीष्टको सिद्ध कर सकोगे तो तुम्हें यथोचित पुरस्कार दिया जायगा।' तदनुसार ये अपने अपने ग्रन्थ ले कर दरबारमें पहुंचे। राजाने इन्हें हाथ पैर बांध कर नदीमें फेंक देनेका आज्ञा दिया। राजाके आदेशानुसार यन्त्र और ग्रन्थादि समेत नदीमें फेंक दिये जानके कारण इनके विद्याका गौरव जाता रहा।

भोकार (हि० खी०) जोर जोरसे रोना।

भोक्च्य (सं० लि०) भुज-कर्त्त रित्त्य । १ भोजनीय, खाने लायक । २ कर्मजन्य अनुभवनीय । शुभ वा अशुभ प्रारब्ध कैसा भी क्यों न हो, उसका अग्रश्य भोग करना होगा।

भोना (सं० लि०) भोगवृ देखो।

भोक्त् (सं० लि०) भुज-कर्त्त रित्त्य । १ भोजनकर्त्ता, खानेवाला। स्नानके बाद विशुद्ध शूद्र घस्त्र पहन कर, हाथ पांव धो कर आत्मीय वस्तुधान्यवके साथ भोजन करना चाहिये। भोजन देखो। २ सुख दुःखादिका भोग-कर्त्ता, सुख और दुःखादिका भोग करनेवाला। न्याय और वैशेषिक मतसे जीवात्मा ही भोक्ता है अर्थात् सुख और दुःखादिका भोग जीवात्माके ही होते हैं। सांख्यके मतानुसार उपचारकर्ममें पुण्य-भोक्ता और प्रकृत पशुमें प्रकृति ही भोक्त्री है। (पु०) भुङ्क्ते जीवरूपेणैति, भुनक्ति, पालयतीति वा भुज-त्त् । ३ विष्णु । ४ भर्त्ता, पति । ५ एक प्रकारका प्रंत ।

भोक्त्व्य (सं० खी०) भोक्त्वर्भावः त्य । भोक्ताका भाव या धर्म।

भोक्त्व्यक्ति (सं० खी०) बुद्धि।

भोग (सं० पु०) भुज्यतेऽस्ती भुज-घञ् । १ सुख, आराम । २ दुःख, तकलीफ । ३ सुख-दुःखादिका अनुभव । ४ स्त्री आदिको भृति, रखेली स्त्रिवीका चेतन । आदि जन्तुसे हाथो, घोड़ा, लुहार आदिका चेतन भी समझा जाता है। ५ भाटकमात्र, भाडा, किराया । ६ सर्प, सांप । ७ सांपका फण । (भगर) ८ घन, दौलत । "हिरण्यसुतभोग" (भृक् ३।४।६) "हिरण्यं न्युर्णमयं भोगं घन" (घाष्य) ९ पालन । १० अन्वयहार । (मेदिनी) ११ भोजन । १२ देह । १३ मान । (शब्दरत्ना०) १४ पुण्यपाप-जनन-योग्य काल ।

“अतीतानागतो भोगो नाशयः पञ्चदशा स्मृतः ।”

( तिथितत्त्व )

सुख-दुःखादिके अनुभावको नाम भोग है। सांख्य-दर्शनमें इसका लक्षण इस प्रकार लिखा है,—“चिद्व-सानो भोगः” ( सांख्यसू० १।१०५ ) प्रमाज्ञान पुरुषाश्रित होने पर भी पुरुषके विकार वा परिमाण नहीं होता। चिन्त अर्थात् चैतन्य पुरुषका स्वरूप, उसमें बुद्धिशक्तिका अवसान अर्थात् प्रतिविम्ब पात होना ही भोग है। प्रकृति और पुरुषके संगोसे जब संसार होता है, तभी उपचार-यग पुरुषके भोग हुआ करता है। प्रमेय वस्तु और तदाकार मनोवृत्ति द्वारा पुरुषमें प्रतिविम्बरूपमें भासता है। शास्त्रोंमें इसीको भोग कहा गया है। प्रति-विम्बके द्वारा विम्बका अणुमात्र भी विकृत नहीं होता। जैसे एकके पैदा किये हुए अन्नमें दूसरेका भोग सिद्ध होता है, उसी प्रकार बुद्धि-रूत कर्ममें अकर्तृ-पुरुषके भी भोग हुआ करता है।

पुरुषके भोग होता है—पुरुष भोग करता है, यह बात अविचेक-वशतः उपचरित हुआ करता है। पुरुष कर्म करता है, इसलिये पुरुष ही फलफल भोग करता है, यह अनुभव भी अविचेक-वश हुआ करता है। वस्तुतः पुरुष अकर्तृ स्वभाव है। बुद्धि ही कर्तृधर्मवती है, उस के अविचेकसे पुरुषमें आरोपित भोग अङ्गीकृत हुआ करता है। परन्तु वास्तवमें विवेचना-पूर्वक देखा जाय तो भोग पुरुषके नहीं होता, प्रकृति ही एकमात्र भोक्ता है। ( सांख्यद० )

पातञ्जलदर्शनमें लिखा है,—भोगमें परिणाम-दुःख, ताप-दुःख और संस्कार दुःख भरा हुआ है।

“परिणामतापसंस्कारदुःखैर्गुणवृत्तिविरोधाच्च सर्व-मेव दुःखविचेकिनाः” ( पातञ्जलसू० २।१५ )

मोहान्ध वा अविचेकी लोग उसके परिणामको न समझ कर भोगके लिये ही लालायित होते हैं, किन्तु जो समझ चुके हैं प्रत्यक्ष कर चुके हैं, वे कभी भी उसके पास नहीं जाते। अविचेकी उसको दुःख समझते हैं। जो परिणाम, ताप और संस्कार-दुःखमें फंसा हुआ है, वह केवल मनका चिकारमाल है। जो केवल सत्त्वगुणके क्लृप परिणामके सिवा और कुछ भी नहीं है, वह सुधा

नहीं, बल्कि सुखनामक दुःख है। जरा ध्यानसे विचार करनेसे यह बात स्पष्ट मालूम हो जाती है, कि भोगमें सुख नहीं है, प्रत्येक भोगके साथ साथ परिणाम-दुःख, ताप-दुःख और संस्कार-दुःख भोगना पड़ता है। इसके लिये एक उदाहरण देना काफी होगा; कोई आदमी दिव्याङ्गनासे संयुक्त हुआ, उस समय उसके जो मनोविकार पैदा हुआ, उसीको उसने सुख माना; जब तक मनो-विकार रहा तभी तक सुख मालूम हुआ, परन्तु उसके दूसरे ही क्षणमें दुःखका दुःख ही रह गया। उस कार्यके करनेमें जो आयु क्षय हुई, उसके लिये प्रकारान्तरसे दूसरा एक दुःख हुआ। और भी देखो, वह मनोविकार वा सुख भी स्थायी नहीं रहा, जोष ही नष्ट हो गया। सुख नहीं रहा, नष्ट हो गया, यह सोच कर और भी एक प्रकारका दुःख हुआ। उस मनोविकारको अत्यल्प कालके लिये सुख मान लिया था, उसके प्रभावसे दूसरे दिन फिर उसीके पानेके लिये लालायित होनेसे और एक प्रकारका दुःख हुआ। भोगको वृद्धि करनेसे रोग होता है, अतः भोगके साथ रोग-भय भी है। अत्यन्त भोग करनेसे रोग होगा ही होगा, उसमें भी दुःख है। अतएव प्रत्येक भोगका परिणाम दुःखमय है, यह कहना विलकुल ठीक और सत्य है। जरा-सा विचार कर देखने-से यह बात प्रत्यक्ष हो जाती है, कि भोगका परिणाम दुःखमय ही है। यही परिणामदुःख है। वस्तुमानकालमें अर्थात् भोगकालमें सैकड़ों दुःख हुआ करते हैं। कहीं यह नष्ट न हो जाय, किस तरह यह स्थायी हो सकता है, कैसे उसे बढ़ाया जा सकता है इत्यादि चिन्तायें भा कर उपस्थित होती हैं। इसके सिवा उसकी आनु-पद्धिक विविध पापमनोवृत्तियां अर्थात् राग, द्वेष और क्रोध आदि उदित हो कर मोतरमें विविध भविष्यत्-दुःखके बीज अङ्कुरित करते रहते हैं। अतएव इसे स्थिर सिद्धान्त समझना चाहिए कि सुखभोगके साथ साथ ही विविध ताप वा दुःख भोगने पड़ते हैं। इस विषयमें और भी एक विशेष बात है, वह यह कि सुख-भोग करनेके साथ ही चित्तमें उसका संस्कार भाव्य हो जाता है। इसीलिये पूर्वानुभूत सुखके तुल्य-रूप सुख भोग करनेकी इच्छा होती है। जब तक वह

नहीं मिलता, तब तक चित्त व्याकुल रहता है। अनपेक्ष सुखभोगका संस्कार भी दुःखजनक है। भोग क्या है? विवेचना करके देखनेसे मालूम होगा कि भोग एक प्रकारका मानसिक विकारमात्र है और कुछ नहीं। सुतरां क्षणपरिणामी सत्त्व, रजः और तमोगुणके क्षणिक परिणामरूप क्षणभंगुर भोगमात्र ही दुःख है। इन सब कारणोंसे अर्थात् प्रत्येक भोगमें परिणाम, ताप और संस्कार ये त्रिविध दुःख होनेके कारण तथा परस्पर विरोधी गुणपरिणाम विद्यमान रहनेसे योगी और विवेकीके लिए सभी दुःख हैं। कभी भी वे उसे सुख नहीं मानते। जो भी शुभ वा अशुभ कर्म पूर्वमें अनुष्ठित हुए हैं, उसका भोग नहीं होनेसे वह किसी भी प्रकार नष्ट नहीं होगा। इस प्रकारसे कर्म करना चाहिए जिसमें संस्कार न हो। संस्कार वासना वा अदृष्ट जनमने पर भोग करना ही पड़ता है। किसी प्रकार योग या यत्न द्वारा उसे नष्ट नहीं किया जा सकता।

(पातञ्जलदर्शन)

१६ पुर। 'नव यदस्य नवतिष्ठन् भोगान्' (शूक् ५।२६।६)  
'भोगान् पुराणि' (सायण) १७ भूमि आदिका भोग। जमीन-जायदाद घग्गेरह अपने दखलमें रहे तो उसे भी भोग कहते हैं। (व्यवहारात्) १८ विभयभेद। १९ व्यूह-भेद। भोगव्यूह पांच प्रकारका होता है।

(कामन्दकी १।६।५८)

२० रचि आदिका राजस्त्रिधत्ति-काल। रचि आदि प्रह एक राजिसे दूसरी राजिमें जब तक गमन नहीं करते, उतना समय उस राजिका भोगकाल है।  
भोग—देवमन्दिरादिमें देवताके उपभोगके लिए चढ़ाया हुआ नैवेद्य आदि। देवदेवियोंके लिए प्रदान किया हुआ अन्नादिको भोग कहते हैं। साधारणतः देवोदेवताओंके सामने भोग रखा जाता है। देवताओंके दिव्य चक्षुओंसे भाग दर्शन करनेके बाद, वह प्रसाद कहलाता है। प्रसिद्ध पुरोधामके जगन्नाथदेवके भोगके लिए जहाँ अन्नव्यञ्जनादि रंगे जाते हैं, वह स्थान भोगमण्डप नामसे प्रसिद्ध है। भोगके समय पण्डा लोग नारायणकी भोगमूर्त्ति चारों तरफ घुमाया करते हैं। उस मूर्त्तिको वे पूज्य स्थानमें रखते कभी भी क्षेत्त नहीं ले जाते।

तामिलदेशमें नववर्षके प्रथम दिनमें एक उत्सव और इन्द्रपूजा होती है। साधारण लोग उससे आनन्द उपभोग करते हैं, इसलिए वह दिनभोगी परिष्कृत नामसे प्रसिद्ध है।

भोगक (सं० वि०) भोग संज्ञायां कन्। भोग-कालीन।  
भोगगृह (सं० क्त०) वह धन जो सम्मोर्गार्थ देवताको दिया जाता है।

भोगगृह (सं० क्त०) भोगाद्य गृहं। पासगृह, रहनेका घर।

भोगग्राम (सं० पु०) प्राचीन ग्रामभेद।

भोगत्व (सं० क्त०) भोगस्य भावः त्व। भोगका भाव या धर्म।

भोगदा (सं० ख०) शक्तिगणभेद।

भोगदावाड़ी—बङ्गालके रंगपुर जिन्धान्तर्गत एक नगर। यहाँ शस्यआदिका अन्ध्या घाण्डिय चलता है।

भोगदेव (सं० पु०) काश्मीरके एक राजा।

भोगदेह (सं० पु०) भोगहेतुको भोगमाधको वा देह। स्वर्ग वा नरक-भोगके लिए सूक्ष्म देह। देहके बिना भोग नहीं होता, इसलिए पाप या पुण्य भोगके लिए एक देह हुआ करता है, उसीको 'भोगदेह' कहते हैं।

“कृते सपिण्डीकरणे नरः संवत्सरात् परम्।

प्रेतवेहं परित्यज्य भोगदेहं प्रयच्छे ॥” (भाद्रकत्त)

मनुष्य सपिण्डीकरणके बाद प्रेतवेह त्याग कर भोगदेहको प्राप्त होता है। एक वर्ष बाद सपिण्डीकरण है, इसलिए एक ही वर्ष बाद भोगदेह हुआ करता है। यदि किसीके संवत्सरमें हा अपकर्म सपिण्डीकरण हो, तो उससे उसके वर्षके भीतर भोगदेह होगी या नहीं? यह प्रश्न जरा ध्यानसे विचार करनेसे उक्त श्लोकसे ही हल हो जाता है। सपिण्डीकरणके बाद भोगदेह होगा, इतना कह देनेसे ही काम चल जाता है, क्योंकि सपिण्डीकरण प्रायः संवत्सरके बाद ही हुआ करता है। 'संवत्सरात् परं' इस पदके श्रेणी कोई आशयप्रकृता न थी। इससे समझना चाहिए, कि वर्षके भीतर सपिण्डीकरण होने पर भी, जब तक वर्ष समाप्त न हो जाय, तब तक भोगदेह नहीं होगी। एक घरनर बंध गया है। सपिण्डीकरण भी नहीं हुआ है, तो उसके भी

भोगदेह नहीं होगा। जब तक कि सपिएडीकरण नहीं होता, तब तक भोगदेह नहीं होगा, प्रतदेह रहेगी ऐसा ही शास्त्र-प्रणेताओंका मत है।

जीव जो बार बार पाट्कौपिक शरीर ग्रहण करता और मारवार उसे छोड़ता है, वही जीवका इह और परलोक-सञ्चरण है। दृश्यमान स्थूल शरीर शास्त्रीयभाषामें पाट्कौपिक कहलाता है। पाट्कौपिक शरीर शुक्ल और शोणितके परिणामसे उत्पन्न है। सूक्ष्म शरीर वैया नहीं है। सूक्ष्म-शरीर अन्तःकरण अर्थात् बुद्धीन्द्रिय-निचयकी समष्टि है या उनके द्वारा रचित है इसीलिये यह अत्यन्त सूक्ष्म है। यह अलेख्य, अभेद्य, अद्वैत और अचलेद्य है। अतएव नरकादि भोगके समय यह उचल-दगिनिमें भस्म नहीं होती, पानीमें नहीं डूबती और न इस देहकी किसी प्रकार विकृति ही होती है। हां, केवल यन्त्रणाका अनुभव हुआ करता है।

(ब्रह्मवैवर्तपु० प्रकृति ख०)

बुद्ध्यागुष्ठ जो जीव पुरुष है वही भोगदेह धारण करके स्वर्ग या नरकादि भोग करता है। इस शरीरमें किसी एक विषयका निरन्तर ध्यान करके शरीर त्यागनेसे वह किसी न किसी समय पुनरुदित होता है। वह उदयका बीज है, अनुष्ठित ज्ञानकर्मका संस्कार है। वह संस्कार सूक्ष्म शरीरमें रहता है और बादमें उसीके बलसे उद्भूत होता है। स्थित संस्कार उद्भूत होनेसे स्मरण और प्रत्यभिज्ञान नामक ज्ञान उत्पन्न होता है। उसके साथ मनोभाव और अवस्थाका भी परिवर्तन होता है। इह-जन्ममें जो जन्मान्तरीय संस्कारोंका उद्बोध होता है, वह इहलोकमें स्वभाव और शकृति इत्यादि कहलाता है मरण-समयमें स्थूल-देह पड़ो रहती है, परन्तु उस देहके अर्जित संस्कार सूक्ष्म-शरीरमें विद्यमान रहते हैं, बुधा नष्ट नहीं होते। इसीलिये मृत्युके बाद उस देहके अर्जित ज्ञान और कर्म अर्थात् धर्मधर्मादि अपने अभिनव अवस्था-को उपस्थापित किये रहते हैं।

जीवने समस्त जीवनमें जो कार्य किये हैं, जैसा ध्यान किया है, मृत्यु-समय उसीके अनुरूप एक नूतन परिषत्तन, एक नूतन भावना उपस्थित होती है। शास्त्रीय भाषामें उसे भावनामय शरीर कहते हैं।

“भोनिमध्मे प्रयवन्ते शरीरत्वाय देहिना।

स्थापुमन्वेऽनुवपान्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥” (स्थिति)

भावनामय देहका दूसरा नाम आतिवाहिक है। आति-वाहिक देह थोड़े दिनों तक रहती है, उसके बाद पूर्व प्रकाशके अनुसार पाट्कौपिक भोगदेह उत्पन्न हुआ करती है, कोई तो मानव-देह पाता है, कोई तिर्यग्देह और कोई देवदेह। पुण्याधिष्य होनेसे पुण्य शरीर अर्थात् दिव्यादि शरीर, पापाधिष्य होनेसे तिर्यकशरीर और पापपुण्यका बल बराबर होनेसे मानवशरीर उत्पन्न होता है। जब तक स्थूल शरीर उत्पन्न नहीं होता तब तक भावनामय शरीरमें अर्थात् आतिवाहिक भावदेहमें सुख दुःखका भोग करता रहेगा। वह भोग स्वप्नभोग-की तरह अस्पष्ट है।

चैतन्यविभ्यत सूक्ष्मदेह अर्थात् जीवात्मा पाट्कौपिक शरीरसे निकल कर पहले आतिवाहिक शरीरमें आकाशस्थो निरालम्बो वायुभूतो निराश्रयः हो कर रहता है। पीछे यथासमय वह जन्म ग्रहण करता है। जो अत्यन्त पापाचारी है, वे मरणके बाद इस पृथ्वीमें आतिवाहिक शरीरमें कुछ दिन रह कर पीछे तमःप्रधान पृथ्वीलादि जड़ शरीर धारण करते हैं। जो ऋषि तपस्वी और ब्रह्मो हैं, वे देवयानके मार्गसे ऊर्ध्वलोकमें और क्रमशः ब्रह्मलोकमें जन्मग्रहण करने हैं। जो सत्कर्मनिष्ठ हैं, वे पितृयानके मार्गसे उर्ध्वगामी हो कर पितृलोकमें उत्पन्न होते हैं। अनन्त सुखभोग करनेके बाद वे पुनः पितृयान पथके व्युत्क्रमसे इहलोकमें अवतरण कर क्रमानुसार मानव शरीर प्राप्त करते हैं (साल्यद०)

साधारणतः इतना कहा जा सकता है, कि जिस देहमें सुख, दुःख वा नरकका भोग होता है, वही भोगदेह है। स्थूल देहसे सुख दुःखका भोग होता है, इसलिये उसे भी भोगदेह कहा जा सकता है। मृत्यु शब्द देखो। भोगना (हि० कि०) १ सुख दुःख या शुभाशुभ कर्म-फलों का अनुभव करना, भुगतना। २ सहन करना, सहना। ३ स्त्री प्रसंग करना।

भोगनाथ (सं० पु०) सायणाचार्यके भाई एक परिचित। इनके पिताका नाम मायण था।

भोगनीपुर—१ युक्तप्रदेशके फानपुर जिलान्तर्गत एक

तहसील । यह अक्ष० २६° ५' से २६° २५' उ० तथा देशा० ७६° ३१' से ८०° २' पू०के मध्य अवस्थित है । भू-परिमाण ३३८ वर्गमील और जनसंख्या ३६६ लाखके करीब है । इसमें भूसा नामका एक शहर और ३६८ ग्राम लगते हैं । तहसीलके दक्षिण यमुना नदी बह गई है ।

२ उक्त विभागका प्रधान नगर और विचार सदर । यह कानपुरसे २०॥ फीस दूर कालपी राजपथके ऊपर अवस्थित है । करीब चार सौ वर्ष हुए, भोगचांद नामक एक कायस्थ इस नगरको बसा गये हैं । आज भी उनके पंजापर इस स्थानका भोग करते आ रहे हैं । स्थानीय भोगसागर नामक विस्तोर्ण जलाशय उन्हीं भोगचांदकी कीर्ति है ।

भोगपति (सं० पु०) १ भोगके अधिपति । २ किसी नगर या प्रान्त आदिका प्रधान शासक या अधिकारी ।

भोगपात्र (सं० स्त्री०) भोगस्य पात्रं । यह पात्र जिसमें देवताके उपभोग नैवेद्यादि रखे जाते हैं ।

भोगपाल (सं० पु०) भोगं भोगसाधनमर्थादिकं पालयतीति भोग-पालि-अण् । १ अभ्यर्क्षक । (त्रि०) २ भोगर्क्षक ।

भोगपिशाचिका (सं० स्त्री०) भोगे पिशाचिका इव तद्रह-नृमत्यात् । क्षुधा, भूख ।

भोगपुर—मन्द्राजप्रदेशके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर । यहां बहुत-से प्राचीन मन्दिरादिका ध्वंसावशेष है ।

भोगमल्य (सं० पु०) १ उत्तरस्थित देशभेद । (शब्द-संहिता १४ अ०) २ उस देशके अधिवासी ।

भोगबन्धक (सं० पु०) बंधक या रेहन रखनेका एक प्रकार । इसमें उधार लिये हुए रुपयेका ब्याज नहीं दिया जाता । उस ब्याजके बढलेमें रुपया उधार देने-वालेको रेहन रचो हुई भूमि या मकान आदि भोग करने अथवा किराए आदि पर चल्नानेका अधिकार प्राप्त होता है ।

भोगमट्ट (सं० पु०) १ योधपुरके प्रतिहारवंशीय एक राजा । ये ब्राह्मणकुमार हरिचंद्रके औरस और भद्रा-नाम्नी एक क्षत्रियकन्याके गर्भसे उत्पन्न हुए थे । २ माङ्गल्य-पद्धतिभूत एक कविय ।

भोगभूमि (सं० स्त्री०) भोगार्थं य भूमिः न कर्माणी । सुखस्थान, यह स्थान जहां सिर्फ भोग ही होता है, काम नहीं होता, भारतवर्षके अतिरिक्त वर्ष ।

भोगभूतक (सं० पु०) यह जो केवल वेतनके लिये काम करे ।

भोगमण्डप (सं० स्त्री०) १ यह स्थान जो देवादिके उभोग्य द्रव्यादि प्रस्तुत करनेके योग्य हो ।

भोगमोक्षप्रदा (सं० स्त्री०) १ सुख और मोक्षदापिनी । २ गङ्गा । ३ भैरवीभेद ।

भोगराय—बालेश्वर जिलेके सत्रिकटस्थ एक बड़ा बांध । यह सुवर्णरेखा नदीके मुहानेके समीप है । पहले मराठोंने बाढ़को रोकनेके लिये नदीके किनारे यह बांध बनवाया था । पीछे ब्रिटिश-सरकारने जनताकी भलाईके लिये १८७० ई०में इसके पश्चात्कारमें एक दूसरा बांध बनवा दिया ।

भोगलदाई (हिं० स्त्री०) खेतमें कपासका सबसे बड़ा पौधा । इसके आस पास बैठ कर देहाती लोग उसको पूजा करते हैं ।

भोगलाभ (सं० पु०) सुखभोगादि प्राप्ति ।

भोगलिप्सा (सं० स्त्री०) व्यसन, लत ।

भोगलिपाल (हिं० स्त्री०) कटारी नामका शस्त्र ।

भोगली (हिं० स्त्री०) १ छोटी नली, पुपली । २ नाकमें पहननेका लॉग । ३ कानमें पहननेका एक प्रकारका गहना । इसे डेटका या तरकी भी कहते हैं । ४ एक प्रकारका सलमा जो चपटे तार या बाड़लेका बना होता है । इससे दोनों किनारोंके बीचकी जंजीर बनाई जाती है ।

भोगधर्म (सं० त्रि०) भोगः कणः कार्यं वा भूत्या अस्त्यस्येति, भोग-मनुष्य, मल्य च धर्म्यं । १ सर्प, साँप । २ नाट्य । ३ गान, गीत । (त्रि०) ४ भोगविशिष्ट ।

भोगवती (सं० स्त्री०) भोगवत् स्त्रियां डीव (शब्द-कारणो जीन् । वा ४।१।७३) १ पातालगङ्गा । २ नागपुरी, नागोंके रहनेका स्थान । ३ नागपत्नी नागोंके स्त्री । ४ नदीभेद, महाभारतके अनुसार एक प्राचीन नदीका नाम । ५ गङ्गा । ६ तोर्षभेद, पुराणानुसार एक तीर्थका नाम । ७ कुमारानुचर मातृभेद, काशिकेयकी

एक मातृकाका नाम । ८ सहाद्रिपर्वतके बालाघाट पर्वत से निकली हुई एक नदी ।

भोगवर्द्धन ( स० पु० ) देशभेद ।

भोगवर्मन ( स० पु० ) १ मौर्य-राजवंशके एक राजा । २ राजा शूरसेनके पुत्र । इनकी माता भोगदेवी नेपाल-राज अशुवर्माका यहिन थीं ।

भोगवस्तु ( स० स्त्री० ) उपभोग्य द्रव्य, नैवेद्य सामग्री ।

भोगवान् ( स० पु० ) भोगवत् देखो ।

भोगवाना ( हि० क्ति० ) भोगनेमें दूसरेको प्रवृत्त करना, भोग कराना ।

भोगविलास ( स० पु० ) आनन्द प्रमोद, सुख चैन ।

भोगसद्गन् ( स० स्त्री० ) भोगार्थ उपभोगार्थ सद्यः । १ वासगृह । २ अन्तःपुर ।

भोगसेन ( स० पु० ) काश्मीरके एक राजा ।

भोगस्थान ( स० स्त्री० ) भोगार्थ स्थान । भोगभूमि । २ सुखदुःखादि भोगात्मक शरीर । ३ रमणी-गेह ।

भोगस्वामिन् ( स० पु० ) एक शास्त्रचित् पण्डित । भुजङ्गिका नामक स्थानमें इनका वास था ।

भोगार्ह—आसामप्रदेशके गारोपहाड़से निकली हुई एक छोटी नदी । क्रमशः पश्चिमकी ओर बह कर यह ब्रह्मपुत्र नदीमें मिल गई है ।

भोगादित्य—एक प्राचीन हिन्दू राजा ।

भोगाना ( हि० क्ति० ) भोगनेमें दूसरेको प्रवृत्त करना, भोग कराना ।

भोगान्तराय ( स० पु० ) वह अन्तराय जिसका उदय होनेसे मनुष्यके भोगोंकी प्राप्तिमें विघ्न पड़ना है ।

भोगारमन्दर—पञ्जाब प्रदेशके हजार जिलान्तर्गत एक पार्वतीय उपत्यका । यह अक्षां ३४° ३०' से ३४° ४८' १५" उ० तथा देशां ७३° १४' १५" से ७३° २४' ३०" पू० के मध्य अवस्थित है । भू-परिमाण ७७४१८ एकड़ है जिनमेंसे ७७ हजार एकड़ जमीनमें खेतीबारी होती है । इस स्थानका प्राकृतिक सौन्दर्य अतीव मनोहर है । चारों ओर भाड़के जंगल हैं । अधिवासिगण गो-महिपादिका लालन पालन करके उन्हींके द्वारा अपना गुजारा चलाते हैं । मौर्यकृतमें यह स्थान बहुत ही मनोरम दीखता है किन्तु यहाँ जाड़ा बहुत पड़ता है । गुजर और स्वातीगण यहाँके प्रधान अधिवासी हैं ।

भोगायतन ( सं० स्त्री० ) भोगस्थ आयतनम् । स्थूलदेह । इस स्थूलदेहमें सुख दुःखादिका भोग होता है, इसीसे इसको भोगायतन कहते हैं ।

भोगार्ह ( स० स्त्री० ) भोगमर्हति अर्ह-अण्, उपपदस० । १ धान्य । ( त्रि० ) २ भोग्यवस्तु मात्र ।

भोगार्ह ( स० स्त्री० ) भोगाय अर्हति इति अर्ह ( अर्हलो-एवंत् । पा ३।१।२२५ ) इति ण्यन् । धान्य, धान ।

भोगावली ( स० स्त्री० ) भोगानां आवली श्रेणिर्यस्यां । १ स्तुतिपाठककी स्तुति । २ नागपुरी, नागोंके रहनेका स्थान । ३ स्तुतिपाठक । ४ भोगश्रेणी । ५ स्तुति ।

भोगावास ( स० पु० ) आचसत्यस्मिन् आ वस-अधिकरणे घञ्, भोगार्थो वा आवासः । वासगृह ।

भोगिक ( स० पु० ) भोगे अभ्यभोगे नियुक्त इति भोग बाहुलकात् ठन् । अध्वरक्षक ।

भोगिकान्त ( स० पु० ) भोगिनां कान्तः प्रियः । घायु, हवा ।

भोगिगन्धिका ( स० स्त्री० ) भोगिनः सर्पस्वेव गन्धो यस्याः कप्, टापि अत इत्वं । १ सर्पगन्धा वृक्ष । २ लघुमंशुष्ट वृक्ष ।

भोगिन् ( स० पु० ) भोगी देखो ।

भोगिनी ( स० स्त्री० ) भोगिन्-स्त्रियां ङीप् । १ राजाका उपपत्नी, राजाकी खेली स्त्री ।

भोगिभुज् ( स० पु० ) भोगिर्न सर्पे भुङ्क्ते भुज्-क्विप् । मयूर, मार ।

भोगिवर्मन्—काश्मीर देशीय एक कवि ।

भोगिवह्म ( स० स्त्री० ) भोगिनां बल्लभं प्रियम् । चन्दन ।

भोगी ( स० पु० ) भोगोऽस्यास्तीति भोग-इति । १ सर्प, नाग । २ नृप, राजा । ३ नापित, हजाम । ४ अश्लेषा नक्षत्र । ५ शेवनाग । ६ भागनेवाला, वह जो भागता हो । ७ जर्मदार । ( त्रि० ) ८ सुखी । ९ इन्द्रियोंका सुख चाहनेवाला । १० भुगतनेवाला । ११ विपयासक । १२ आनन्द करनेवाला, विलासी । १३ विपयी, व्यसनी । १४ खानेवाला ।

भोगीन ( स० पु० ) १ इन्द्रिय-सुखनिरत वा उदरसर्वस्य व्यक्ति । २ राजा वा राजपुत्र । ३ ग्रामपति । ४ नापित ।



कन्यारूपमें जन्मग्रहण किया। यह कन्या जगत्में हाथनी नामसे प्रसिद्ध थी। निशुभाने पिताके आदेशानुसार विधिपूर्वक अग्निदेवके साथ विहार करती रही। एक दिन सूर्यदेव उन्हें देख कर कामातुर हो उठे। सूर्यदेव उनके रूप-लावण्य पर मोहित हो कर उन्हें पानेके लिए चिन्ता करने लगे। पश्चात् उन्होंने अग्निको रूप धारण करके निशुभाको धनमें ले जा कर उनके साथ विहार किया। अग्नि इस घटनासे बड़े ही क्रुद्ध हुए। उन्होंने निशुभाका हाथ पकड़ कर कहा, 'निशुभे! तुमने देव-वर्षाधिके विग्रह चल कर मुझे लङ्घन किया है, इस कारण मेरे औरससे तुम्हारे भव पुत्र नहीं होगा। इस गर्भसे उत्पन्न पुत्र 'मग' नामसे और मग-वंशकी क्रीडिके कारण 'जगन्नाथ' नामसे प्रसिद्ध होगा। मग-गण अग्निजातीय, द्विजातिगण सोमजातीय और भोजक-गण आदित्यजातीय हैं। ये सभी श्रेष्ठ हैं। अग्निरूपी भगवान् सूर्यदेव इतना कह कर अन्तर्धान हो गये।

'अनन्तर महर्षि ऋजिभ्याने ध्यान योगसे अपनी कन्या निशुभाके गर्भसे प्रजा-सृष्टिके विषयको जान लिया और क्रोधमें आ कर उन्होंने अग्निगण दिया कि उस गर्भसे उत्पन्न सन्तान अपूज्य और पतित समझी जायगी। कन्याने पिताके आज्ञाको सुन कर उनसे बहुत अनुनय-चिन्तन किया, परन्तु ऋजिभ्या किसी प्रकार भी प्रसन्न न हुए। तब मुनि-कन्याने निरुपाय हो कर सूर्य-देवसे ही अपने पुत्रको ज्ञाप-सुक्तिके लिए प्रार्थना की। सूर्य हाथनीके कातरवाक्यसे करुणाट्ट हो गए। उन्होंने उसी समय अग्निका रूप धारण करके ऋषि-कन्याके सामने आ कर कहा, 'अग्नि सायुशीले! यह देवो, अपने पिता ऋजिभ्याको, वे अपने नपके प्रभावसे परमेश्वरके अधिभार हुए हैं। ये सर्व विपरीतसे घोरतराग हो कर प्रतिनियत धर्माचरणमें प्रवृत्त हुए हैं। इसलिए मुझमें इतनी शक्ति नहीं, कि मैं इन जैसे अमीघवापय तेजस्वी पुत्रके वापयको अन्यथा कर सकूँ। परन्तु हाँ, मैं अब कार्यानुरोपसे तुम्हें और एक योग्य पुत्र प्रदान करता हूँ। मेरी श्वासे तुम्हारा यह पुत्र वेदविद्यामें पारदर्शी होगा और इसकी वंश-परम्परा जगत्में विलक्षण प्रतिष्ठा प्राप्त करेगी। इनके वंशधर यज्ञिष्ठादि ब्रह्मवादी महा-

त्माओंको मेरा ही अंश समझता। ये निरन्तर मुझमें ही अनुरक्त हो कर मेरा ही नाम गाया करेंगे। प्रतिदिन नपस्यामें निरत हो कर मेरा ही ध्यान और पूजा करेंगे। इस प्रकार मेरे प्रति उनकी ऐकान्तिक भक्ति होनेसे मैं उन श्मश्रु और अण्डाकारी घोरकालयात्री ब्राह्मणों पर प्रसन्न हो कर अन्तमें उन्हें अपने अङ्गमें आश्रय दूँगा। जो दाहिने हाथमें पूर्णक और बाँये हाथमें वरुणा धारण करके, पतिदान द्वारा चदन मण्डल द्रव्य कर, शुद्धभावसे मद्गुणचिन्तने वाग्व्यत हो कर भोजन करेंगे तथा जो प्याकुल चिन्तसे विधि उल्लङ्घन करके भी मेरी पूजामें निरत रहेंगे, वे स्वर्गसे विक्रयुत या कलान्त होने पर भी मेरे प्रसादसे सूर्यके पास ही विहार कर सकेंगे। तुम निश्चय समझना, मैंने जैसा कहा है, तुम्हारे पुत्र वैसी ही होंगे। वे भूतलमें मग-वंशमें उत्पन्न हो कर सम्पूर्ण वेद विद्याका अध्ययन करके महापुरुष नामसे प्रसिद्ध होंगे। भास्कर निशुभा देवोको इस प्रकार आश्वासन दे कर उसी समय अन्तर्धान हो गये और देवो भी अत्यन्त पुनः-कित हुईं। इस प्रकार भोजकीकी वादमें उत्पत्ति हुई है। ये आदित्य और निशुभ नामसे प्रसिद्ध हो कर लोकमें पूजित हुए हैं।

भविष्यपुराणमें एक जगह १४० वे अध्यायमें ऐसा भी लिखा है,—नारदने कहा, शृणु-नन्दन! मैं तुमको मग-प्राज्ञोंका चरित सुनाता हूँ, सो सुनो। ये मग-प्राज्ञेण वेद विद्यामें पारदर्शी हैं और इतने अधिकांग क्रियाकाण्डमें रत हैं। ये विपरीत-क्रमसे वेदाध्ययन करते थे, इसलिए मग और मगु दोनों नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। भगवान् ब्रह्मा, तपोधन ऋषि और पवित्र-सृष्टि सूर्य ये सभी कृष्य धारण करते हैं इसलिए मगगण भी अपने पास दीर्घ कृष्य रखा करते हैं। नियम-विधेय ऋषिगण मीनाचर्यामें रहते हैं, इस कारण ये भी मीना हो कर भोजनादि करते हैं। इस प्रकार शाकडोपोप प्रायः सभी ब्राह्मण मुनिवृत्तिका पालन करते हैं। इसलिए सिद्धिके अगिलापौ ममस्ल मगुणोको चाहिये, कि वे मीन पूर्वक भोजन करें। मगुगण वचको ही सूर्य और वचकीही कारणरूपमें ज्ञान कर प्रतिदिन उन्नीकी अर्चना करते हैं। इनके वचार्चा नामसे प्रसिद्ध होनेवा-

यही कारण है। ये भोज-कन्याके गर्भसे उत्पन्न हुए थे, इस कारण ये भोजक कहलाये। ब्राह्मणोंके जैसे श्रृंख, साम, यजु और अघर्ष नामसे चार वेद हैं, वैसे इनके भी विद्, विश्वरद, विदाद और आङ्गिरस नामसे चार वेद प्रसिद्ध हैं। इन चारों वेदोंको पूर्णकालमें स्वयं प्रजापतिने मर्गोंके लिए व्यक्त किया था। मगगण वेदाध्ययन करते हैं, इसलिये उन्हें वेदह कहा जाता है। सर्व प्राणियोंके लिए प्रीतिकर गेय नामका एक महानाग है। यह महानाग सूर्य-किरणके साथ अपने निर्मोकको छोड़ता है जो अमाहक नामसे प्रसिद्ध है। मग लोग प्रतिदिन अन्न-मन्त्र उच्चारणपूर्वक इस अमाहकको वन्दना करते हैं। जैसे पूजाके समय द्विजगण पुष्पमालम दान करते हैं, वैसे ही मगगण पूजाके समय अमाहक दान करते हैं। जिस प्रकार ब्राह्मणोंमें संस्कारादि समस्त कार्योंमें दर्भ की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार इनमें भी आवश्यकताय यागयज्ञादिमें पवित्र यशर्माका जरूरत पड़ती है। शाकद्वीपके मग बहुधा यशर्मा द्वारा ही पूजा करते हैं। जो सूर्यको पूजामें निरत हो कर शीचाचार पूर्णक सर्वादा सूर्यमन्त्रका जप करते हैं, उन पर सूर्यदेव अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं। मगगण प्रतिदिन जिस वेदमन्त्रका पाठ करते हैं, वही उनके यहां सावित्री मन्त्र माना गया है। परन्तु हे यदुधेष्ठ! हमारे यहां सावित्री-मन्त्र वैसा नहीं है। हम लोग व्याहृतिपूर्वक सावित्री उच्चारण करते हैं। शाकद्वीपीय ब्राह्मण भीनावलम्बी हो कर अमाहक द्वारा ही स्वर्गगति प्राप्त करते हैं। ये कदापि मृत या रजस्वला स्त्रोका स्पर्श नहीं करते। जैसे ब्राह्मणगण यागयज्ञादिमें मन्त्र द्वारा संस्कृत सुराको पान करनेसे दूषित नदी होते, वैसे ही मय इनके लिए पानीय हुआ करता है। इस मयकी विधिपूर्वक मन्त्रसंस्कृत करके पान करनेके कारण ये प्रवृत्त मयपानके दोषो नहीं होते। शाकद्वीपीयगण इसे हयिः समझते हैं। जैसे ब्राह्मणोंका अग्निहोत्र प्रसिद्ध है, वैसे ही इनके लिए 'अच्यु' नामसे अध्वरहोत्र विहित है। ये सिद्धिकी कामनासे प्रतिदिन तिस्रध्या दियाकरकी पञ्चप्रकार धूप वान करते हैं, इत्यादि।

फिर १३३वे अध्यायमें लिखा है, कि शाकद्वीपीय

ब्राह्मण सूर्यके तेजसे विश्वकर्मा द्वारा सृष्ट हुए हैं। इस प्रकार शाकद्वीपी ब्राह्मणोंके विषयमें हम एक ही भविष्यपुराणमें कई प्रकारके प्रमाण पाते हैं। १ म तो यह कि सूर्यके स्वशरीरसे निःसृत और शाकद्वीपाधिपति द्वारा प्रतिष्ठित सूर्यपूजामें नियुक्त आठ व्यक्ति, २ य विश्वकर्मा द्वारा सूर्यशरीरसे निर्मित एक श्रेणी, ३ य अग्नि-जातीय, ४ य सोमजातीय और ५ य भोजक वा आदित्य-जातीय। इन पांचों प्रकारके ब्राह्मणोंमें सूर्यशरीरसे उत्पन्न आठ ब्राह्मण ही सर्वश्रेष्ठ हैं और वे ही सम्भवतः अन्यत्र विश्वकर्मा द्वारा निर्मित कहे गये हैं, क्योंकि विश्वकर्माने ही सूर्यको देह छोड़ कर नाना खण्डोंमें विभक्त कर दी थी। सम्भव है इसी कारणसे ब्राह्मण-गण सूर्याशसम्भव कहे गये हैं। ये ही शाकद्वीपके आदिब्राह्मण समझे जाते हैं। इसी ब्राह्मणवंशमें सम्भवतः ऋजिश्वा ऋषिकी उत्पत्ति हुई थी। ग्रीक ऐतिहासिक दिओदोरसके विचरण पढ़नेसे मालूम होता है, कि पूर्णकालमें शाकद्वीपमें 'अरि-अस्य' नामकी एक श्रेणी वास करती थी। हम इस श्रेणीको 'आर्याश्य' समझते थे। संस्कृत 'ऋजु' धातु और ग्रीक 'अरि' एकार्ध-बोधक है। ऐसी दशामें ऋजिश्वाके वंशधर ही सम्भवतः ग्रीक प्रथकारों द्वारा 'अरिअस्या' कहलाये।

हमने प्रथमतराज द्वारा सूर्यप्रतिष्ठाका प्रसङ्ग जो पहले उद्धृत किया है, उसके पढ़नेसे मालूम होता है, कि अति प्राचीनकालमें शाकद्वीपमें क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, ये तीन ही वर्ण थे, ब्राह्मण नहीं थे। शाकद्वीपके राजाके आवाहगसे सम्भवतः अन्य देशसे प्रथमतः आठ ब्राह्मण आये और वे सूर्यकी सेवामें नियुक्त किये गये तथा उन्होंने ही अपनेको शाकद्वीप-वासियोंकी विशेष भक्तिभद्राके कारण 'सौर' या सूर्यपुत्र कह कर अपना परिचय दिया। प्राचीन ग्रीक भौगोलिक और ऐतिहासिकोंने भी लिखा है, कि शाकद्वीपवासी वीरोंने नाना देश अधिकार कर पूर्णकालमें सौरमतियों (Sauromatian)-को अरक्षेसके तीर पर प्रतिष्ठित किया था। पूर्वक सौर वा सूर्यपुत्र ही सम्भवतः 'सौरमतिय' नामसे प्रसिद्ध हुए थे।

कालान्तरमें इन्हीं सौरमतियोंका प्रभाव रुससे इजिप्त तक विस्तृत हुआ था। अवस्था और विश्वासके

अनुसार उनमें भी कई एक सम्प्रदायोंकी सृष्टि हुई थी। सम्प्रदायिकताके प्रभावसे भविष्यमें उनमें भी परस्पर मर्घर्ष हुआ था। सम्भवतः उन्नीके कालमें अग्निकुल, सोमकुल और सूर्यकुल ये विकृत कल्पित हुए हैं।

भविष्यपुराणमें और भी सात होता है, कि अग्नि-कुल, सूर्यकुल और सोमकुल इन तीन कुलोंके होनेमें पहले ऋषि ऋषिद्वय 'मिहिर' गोत्रके थे। ब्राह्मणोंमें उनके आदिपुरुषमें ही 'भोज' प्रवर्धित हुआ करता है। इसलिये ऋषिद्वय ऋषि मिहिर वा सूर्यवंशीय ही थे, ऐसा मान्य होता है।

पाश्चात्य शब्दशास्त्रविदोंका कहना है, कि वैदिक 'मित' और आयस्तिक 'मिथ'से ही 'मिहिर' शब्दकी उत्पत्ति हुई है।<sup>१</sup> बड़े आश्चर्यकी बात है, कि महाभारतादि प्राचीन संस्कृत ग्रन्थोंमें 'मिहिर' शब्द सूर्यके नामान्तररूपमें व्यवहृत होने पर भी किसी भी वेदमें 'मिहिर' शब्दका उल्लेख नहीं है।

भोजकोंका वेद और विभिन्न कुलोंकी उत्पत्ति।

वेद सर्वादिम ग्रन्थ है। किसी भी जातिका आदि-तत्त्व जाननेके लिए पहले उस जातिके वेद या आदि-ग्रन्थका आध्यय लेना होता है। भविष्य पुराणोक्त ऋषी-के आधार पर मान्य हुआ है, कि शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंके भी चार वेद थे, उनका नाम था विद, विश्वरद, विदाहु और आङ्गिरस। परन्तु इन चारों वेदोंमेंसे भारतमें केवल आङ्गिरस वा अथर्ववेदका ही सम्बन्ध मिलता है, अन्य वेदोंका चिह्न तक नहीं मिलता। बहुत-से प्रमाण इस बातके मिले हैं, कि शाकद्वीपके ब्राह्मण ही पूर्वतन पारस्य-सम्राटोंका परोहित्व करते थे; इस कारण पारस्यदेशमें शाकद्वीपीय वेदोंका होना सम्भव और अनुसन्धेय है।

पारस्यके मग-पुरोहितोंके प्राचीनतम अथस्ता शास्त्रकी आलोचना करके हम उक्त वेदचतुष्टयोंका कुछ कुछ अनुसन्धान पाते हैं। अथस्ता ग्रन्थोंके प्रसिद्ध समालोचक हाम साह्य बहुत गवेषणाके बाद इस निर्णय पर पहुँचे हैं—

"अथस्ता शब्दका मूल आचिस्ताक है। चि = पहली भाषा में आप। आचिस्ताक 'चिस्त' = विद घातुसे उत्पन्न।

वेद कहनेसे जिसका बोध होता है, अचिस्त (अथस्ता) कहनेसे भी उसीका बोध होता है।<sup>२</sup>

हिन्दू-शास्त्रानुसार सर्वोद्वि कालमें एकमात्र वेद ही था, यही तीन मतान्तरमें चार भाषाओंमें विभक्त हुआ है। अधिकतः यही सम्भव है, कि शाकद्वीपीय सौर और अग्नि पूजकोंका ऐसा ही कोई वेद था, भाषाविकल्पमें यही 'अचिस्त' नामसे प्रसिद्ध हुआ। भारतीय वेदोंके अनेक जाणायें लुप्त होने पर भी अब भी चार वेद पाये जाते हैं, किन्तु मगोंका यह सुप्राचीन वेद वा 'अचिस्त' ग्रन्थका अधिकतः ही लुप्त हो गया है।<sup>३</sup> अब पौड्याताका प्रकाश भी है या नहीं, इसमें सन्देह है। जो है, उगमें हम शाकद्वीपीय चतुर्वेदका इस प्रकार आभास पाते हैं—

१ विद—यही सम्भवतः अचिस्त शास्त्रका आदि नाम है। किसीका मत है, कि यह आयस्तिक यथ है।

२ विश्वरद—अग्नी चिस्त (Vishvarad) नामसे प्रसिद्ध है।

३ विदाहु—मूल नाम 'वक्देय-दाहु' है और अब 'वंदो-दाहु' नामसे प्रसिद्ध है।

४ आङ्गिरस—भारतमें अथर्वङ्गिरस वा अथर्ववेदके नामसे ही विख्यात है। परन्तु यह नाम अब पारसिक मगोंके प्राचीनतम ग्रन्थमें नहीं मिलता। अथस्ताके यथ-ग्रन्थमें (४३।१५) 'अग्नि' वा अङ्गिराके प्रति भक्ति-प्रदर्शन और उनका स्तुतिका प्रसङ्ग है। 'आथर्वण' शब्द भी अथस्तामें 'आथर्व' रूपमें कहा गया है। आयस्तिक आथर्व शब्दका अर्थ है अग्नि-पुरोहित। ऋग्वेदके मतसे अथर्वणि ही सर्वप्रथम अग्नि उत्पन्न की थी। मुष्टक उपनिषद्के मतसे उन्होंने पहले ब्राह्मणियोंका प्रातः कर पीछे अङ्गिराको सिलाई थी। अथर्वणि और अङ्गिराने उक्त वेद प्रकाश किया था, इसलिए उसका नाम अथर्वङ्गिरस वा ब्राह्मवेद है। यह वेद आर्यजातिका एक प्राचीन ग्रन्थ होने पर भी शाकद्वीपीय ब्राह्मण (४६।७१), शाकद्वीपीयविदु (४१।७१) और मनुस्मृति

१ Haug's Essays on the Parsis, p. 121.

२ अथर्ववेदमें पितृ शब्दका उल्लेख है—"अथर्ववेदोऽग्नि-भ्यो विदगद्योऽस्यः स्थाह।" (अथर्ववेद ३२३।३६)

३ Haug's Parsis, p. 202, 273.

( १२३ )में केवल ऋक्, यजुः और साम इन तीन ही वेदोंका प्राधान्य स्वीकार किया गया है; अधर्ववेद नहीं लिया गया। इसलिये बहुतांकी धारणा है, कि अधर्ववेद म्लेच्छोंका वेद है, अतः पूर्व कालमें ब्राह्मणगण इसका आदर नहीं करते थे। वास्तवमें अधर्ववेदको म्लेच्छोंका नहीं कहा जा सकता। पाणिनि और महाभारतादि ग्रन्थोंमें अधर्ववेदका आवर्षवेदत्व स्थिर हुआ है; परन्तु शान्तिक, पौष्टिक और अभिचारादि कर्म इसमें विशेषतासे प्रतिपादित हुए हैं, इसलिये यह वेद यद्यपि अनुपयुक्त माना गया है। इसके सिवा इसमें प्रात्यकी प्रशंसा देखी जाती है। ब्राह्मणादि वर्ण त्रय यथा-समय उपनीत न होने पर प्रात्य समझे जाते हैं। मन्वादि संहितामें प्रात्य-निन्दित कहे गये हैं, किन्तु अधर्ववेदका १५वां काण्ड विद्वान् प्रात्योंकी प्रशंसासे भर पड़ा है। इत्यादि कारणोंसे अधर्ववेदको कुछ विशेषता रक्षित हुई है। इधर आबस्तिक यत्त समूह और बन्वीदादके बहुत अंशोंके साथ अधर्ववेदका यथेष्ट सौसादृश्य पाया जाता है। भविष्यपुराणमें भी अधर्वाङ्गिरसको सौरवेद कहा गया है।

ऊपर भविष्यपुराणकी उक्त उद्धृत करके दिखाया गया है, कि शाकद्वीपीय ब्राह्मणगण विषययकमसे वेदोच्चारण करते थे। इस कम्पविषयसे ही सम्भवतः शाकद्वीपीय वेद इस देशके वेदोंसे भिन्न समझा गया था। हम यास्कके निरुक्तमें पाते हैं कि, पूर्वकालमें कम्बोजमें ( वर्तमान फारसके निरुद्धवर्ती) वैदिक संस्कृत भाषा प्रचलित थी। बहुत सम्भव है, कि फारसके उत्तरांशमें अक्सास नदीके किनारे (शाकद्वीपमें) आर्योंमें बहुत पूर्वकालमें किसी समय सुप्राचीन वैदिक भाषा ही प्रचलित थी और उसी भाषा में शाकद्वीपीय वेद प्रचारित हुए थे।

शाकद्वीपीय अग्नि-पूजाकीं हजातों शास्त्र विलुप्त हुए हैं, माना, पर अब तो आदिम आबस्तिक भाषामें उसका जो अति सामान्य निदर्शन मिलता है, उसीसे शाकद्वीपीय वेदका कुछ कुछ आभास पाया गया है। परन्तु उन आदिग्रन्थोंमें अपना प्राचीनत्व बहुत-कुछ खो दिया है। अथ जो अथस्ताशास्त्र मिलता है, वह मजदधर्म वा जरथुल-मतका परिपोषकग्रन्थ है। भविष्यपुराणमें उक्त रूपका-

ध्यान है। पाश्चात्य पुरातत्त्वविदोंकी तरह आलोचना करनेसे निःसन्देह कहा जा सकता है कि, मजदु-धर्मके अभ्युदयसे बहुत पहले मित्र वा सौरधर्म प्रचलित था। उस सौरधर्मसे ही मजदु धर्मकी उत्पत्ति है। मजदु-धर्मके माहात्म्य प्रचारार्थ जो मन्त्र वा स्तय रचे गये थे, उनमें यज्ञकी गाथा ही सबसे प्राचीन है। इस गाथामें उस प्राचीनतम मितधर्मका आभास पाया जाता है\*। परन्तु गाथाकार मितके स्थान पर मजदुवा ( चरुण )को विधानमें अप्रसर थे। हमने जगतके आदिग्रन्थ ऋक्संहितामें मित्रावरुण अर्थात् सूर्य और चरुण देवताकी उपासना देखी है। शाकद्वीपीयगण केवल मितकी उपासनामें अनुरक्त हुए थे और अन्यान्य देवताओंकी मितके अयोन वा उनसे उत्पन्न समझते थे। परन्तु जरथुल मितके स्थानमें उन्होंने अहुरमजदु ( असुरमेधा ) वा चरुणको विद्याया था। उनके मतसे असुरमेधा ही सर्व शक्तिमान और सर्वदेवासुरेश्वर है। उन्हींसे मङ्गलमय जगत्की सृष्टि हुई है। वे सत्स्वरूप हैं और जो कुछ भी गसत् है, वह सब अंमैःशुकी सृष्टि है। इस द्वैतवादके लिए उन्होंने जो मत प्रचार किया है, उसे पाश्चात्य विद्वानोंने एकेश्वरवाद माना है।

जरथुलने अपने मत प्रचारके लिए अपने पूर्वापुत्रोंके प्राह्य वेदको ग्रहण किया था; परन्तु उसमें अपने मतका प्रचार करे पूर्वमतको दबा दिया है। यदि अविस्ताका अधिकांश विलुप्त न होता, तो प्राचीन शाकद्वीपीय सौरधर्मका कुछ परिचय मिल जाता। अलेक्-सन्दर द्वारा पारसियोंके समस्त प्राचीन शास्त्र भस्ममें

\* अविस्ता शास्त्रके गाथा-अंशके अनुवादक मि० मिल साहबने लिखा है— as the mithra-worship undoubtedly existed previously to the Gathic period and fall into neglect at the Gathic period, it might be said that the greatly later inscriptions represent Mazda-worship as it existed among the ancestors of Zarathustrians in a pre-Gathic age even Vedic age." Max Muller's Sacred Books of the East, Vol. XXXI, p. XXX,

परिणत हो जानेसे, पारसिक पुरोहितोंका धृतिकी सहायतासे उसका बहुत थोड़ा ही उद्धार हुआ है। जिर्दोंने अयस्ताशास्त्रक कुछ अंशका उद्धार किया है, ये सभी मसूदा या जरखुन्नमतयालयनी हैं। ऐसी दशामें उन्होंने अपने अभिमत जरखुन्नोय मत और उसके परिपोषक प्राचीन मन्त्रोंके संग्रह करनेकी कोशिश की होगी, इसमें सन्देह ही क्या ! अतएव यह निश्चय है, कि अयस्तामें शाकद्वीपीय वैद्यके नामके सिया तथा गाथासे सीरोंके घोड़े बहुत आचारव्यवहारके सिया और कुछ नहीं मिल सकता।

अब देखना चाहिये, कि शाकद्वीपियोंके धर्मसावगिष्ट वेद अर्थात् अयस्ता और इस देशके वसुपुराणादिके आदि आर्यसमाजका कैसा परिचय मिलता है।

भारतीय वेद और अयस्ताकी गाथाकी० आलोचना करनेसे यह बात हृदयङ्गम होती है, कि अति प्राचीनकालमें वैदिक ऋषि या आर्यगण अति शीतप्रधान देशमें वास करते थे। कवि वा सोम-पुरोहितगण उनके अग्रणी थे, घृष्टहा ( इन्द्र ), मित (सूर्य), वरुण, अग्नि आदि उनके उपास्य थे। उस सुप्राचीन कवियंशमें असुर-गुण काय्य उग्रनाका ( शुक्राचार्याका ) आधिर्भाव हुआ था। उस आदिव्यासस्थानका नाम ऋग्वेदमें 'मन्तीकस्' अयस्तामें 'पेज्ज नयाएजा' अर्थात् धार्यावास और भयिष्यपुराणमें 'आर्यदेश' कहा गया है। बहुत खोजके बाद निश्चय किया गया है कि, वैदिक 'सरपस्' वा आर्यभूमि प्राचीन ईरानके अन्तर्गत वर्तमान सरोकुल नामक हृदके किनारेकी पुण्यभूमि थी। मध्य एशियाके सर्वोच्च भूभागमें पामीर ( वैदिक, आद्यस्तिक और पौराणिक प्रत्योक्त ) में यह स्थान अवस्थित है। अयस्तामें 'हरोधेरेजइति'

अर्थात् सरस्वती नामसे भी उक्त स्थानका उल्लेख है। सरसप् वा सरोकुल हृद ही पुराणोंमें विन्दुसर नामसे वर्णित हुआ है और इस विन्दुसरसे ही सरस्वती, गङ्गा, इक्षु, वसु आदिकी उत्पत्ति है। सरस्वती, गङ्गा आदिके उत्पत्ति-स्थान विन्दुसरके निकटवर्ती चिरनुवारापूतमें आर्योंका आदिवास था। देव भी असुर-युद्धकाय पहले यहां बिना किसी प्रकार विवाहके वास करते थे। तब भी देवासुरके आसन भिन्न भिन्न निर्दिष्ट नहीं हुए थे। यहां तक, कि ऋग्वेदमें भी असुर उपासिते भूयित इन्द्र ( ऋक् १५।४।३ ), वरुण ( ऋक् १।२।४।४ ), अग्नि ( ऋक् ४।२।५, ७।२।६ ), संविता ( ऋक् १।२।५।७ ), यद वा शिव ( ५।४।२।११ ) आदि देवोंके स्तोत्र पाये जाते हैं। तब भी वैदिक आर्योंके हृदयमें 'असुर' हय नहीं समझे जाते थे, देव और असुर पूजक लोग ही एक समझे जाते थे।

अनेक पुराणोंमें यह बात लिखी है कि—उक्त विन्दुसरसे ही इक्षु या वक्षुनदी निकल कर उत्तरसागरमें जा मिली है। महाभारतमें यह नदी शाकद्वीपमें प्रवाहित चक्षुःमर्दिनिका नामसे प्रसिद्ध है और अग्नी Oxus नामसे सर्वत्र परिचित है। अधिकतः यही सम्भव है, कि उक्त चक्षुनदीमें ही कर वैदिक आर्योंकी एक शाखा शाकद्वीपमें गई थी और वहांके राजाओंके पीरोहिर्य-कार्यमें नियुक्त हो कर उन्होंने महासम्मान प्राप्त किया था। ये सूर्यभक्तगण 'ध्रिय' वा देवदूत नामसे प्रसिद्ध हुए थे। अयस्ता और भयिष्यपुराण ( ७१।१८ ) में ओषोंकी प्रजांसा ही०। उस समय भी मग-पुरोहित जरखुन्न ( भयिष्यपुराणीय जरशस्त्र ) नामक ऋषिदीहितका जन्म नहीं हुआ था।

इधर पवित्र आर्यापारतमें अग्निपूजक मत्तयाके साथ इन्द्रपूजक आर्योंके सर्वर्षका वृक्षपात हो रहा था। ऋग्वेदसे मालूम होता है, कि इन्द्रने ( इन्द्रपूजक आर्यों ) कयासत्र नामक मत्तयाकी स्थापक्युत किया था। ( ऋक् १।२।५।३ ) और अग्निपूजक मगोंके आदि वक्षुन्नधर्म लिखा है, कि 'जरखुन्नने पूर्वाकालमें मगोंकी सर्वगण्यमें

० प्राचीन गाथा पर शाकद्वीपियोंका यथेष्ट अनुसंग था, भविष्यपुराणमें उक्त प्रमाण मिलता है—

“दक्षिण गाथा प्रगापन्ति ये पुराणविदो जनाः।

गर्वात्रिते मदावारी कृष्णधर्मां समभिधते ॥

यान्त्सु ह्यं उदेति स्म यावच्च प्रतिष्ठति ।

एषावितन्नु तत् सर्वं वैशमित्यभिधोक्ते ॥”

( भविष्यपुर. १।६।१० )

० भविष्यपुराणमें कवि 'वैश' वा 'सत्य' नामसे प्रसिद्ध हुए हैं। ( भविष्यपुर. १।४।२।४ )

प्रतिष्ठित किया था।' (यत्र ५१११५) ये जरथुख अवस्ता-शास्त्रके प्रचारक स्विप्तम जरथुख न थे, उनके पूर्वपुरुष थे। अवस्तामें लिखा है, कि 'जरथुखने अहुर मजदावसे\* भेंट की थी और उन्होंने ही अग्निपूजाका प्रवर्तन किया था। सम्भवतः ये ही वेदोक्त मधवा और आवस्तिक मगव या मगुओंके आचार्य या नेता हुए थे। वैदिक आर्योंके साथ विरोध हो जानेके कारण वे जन्मस्थानको छोड़ कर चले गये थे और वैदिक ऋषि या उनके वंश-धरमण शीतप्रधान उत्तर भारतमें आ कर उपस्थित हुए थे। दोनों दल एक पिताकी सन्तान और एक स्थानमें उत्पन्न होने पर भी स्थान और मतभेदके साथ परस्परमें दारुण विद्वेषाग्नि जल उठी थी। इसीलिये हम पर-धर्तीकालमें वेदपुराणादिमें असुर प्रभावसे दैवके पराजयके प्रसङ्गमें असुरनिन्दा और उससे परधर्ती अवस्ता-शास्त्रमें यथेष्ट देवनिन्दा देखते हैं। यहाँ तक, कि पुराणादिके 'असुर' शब्दसे जैसा एक देवद्वेषी जघन्य भावका बोध होता है, वैसे ही अवस्तामें भी 'देषव' या 'दैव' शब्दसे भूत वा उपदेवतारूप निरुद्योगनित्वका भाव भल्लकता है।

देवोपासक और असुरोपासकके सम्प्रामको ही वेदके ब्राह्मण और पुराणादि प्रबंधोंमें देवासुरका युद्ध कहा गया है।<sup>१</sup> आर्यजाति असुरको जब देवेद्वर जान कर पूजा करती थी, उसी समय यजुर्वेदीय 'गायत्री आसुरी', 'उष्णिक आसुरी', 'पंक्ति आसुरी' आदि छन्दोंकी सृष्टि हुई थी। इधर अवस्ताके यज्ञमें भी ये छन्द पाये गए हैं। इससे भी बहुत-तेरे अनुमान करते हैं, कि देवासुर-युद्धकी एकल रहते समय वेदका अधिकांश भाग प्रका-

शित हुआ था और उस प्राचीन कालमें अवस्ताकी भी कोई कोई प्राचीन गाथा रची जा चुकी थी। कोई कोई आर्य ऋषि उस समय शाकद्वीपमें पहुँच चुके थे, इसलिए वे इस विद्वेषाग्निको साथ न ले जा सके थे। यही कारण है, कि शाकद्वीपियोंके विचरणमें दैव-विद्वेष देखनेमें नहीं आता। वे जिस धर्म और मतको साथ ले गये थे, वह अवस्ताशास्त्रकी गाथाओंमें पाया जाता है। उन गाथाओंके रचयितामण ही सम्भवतः कवि या श्रोत्र नामसे स्तुत हुए हैं। जरथुखने जिस मतका प्रचार किया था उसमें सूर्यदैवका प्राधान्य स्वीकृत नहीं हुआ; अवस्तामें मित्र (सूर्य) एक मध्यम देव माने गये हैं, परन्तु ऋग्वेदकी भांति अवस्ताकी आदि गाथायें मिथु (मित्र)-का श्रेष्ठत्व लक्षित होता है, जो सौर कवियोंकी उक्ति है। मिहिरयप्तमें उस पूर्ण धृतिकाचिह्नमात्र रक्षित हुआ है।

भविष्यपुराणमें अग्निकुल, सोमकुल और सूर्यकुल इन तीन कुलोंकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें जो उपाख्यान वर्णित है, वह कुछ कुछ रूपक और साथ ही ऐतिहासिक मालूम पड़ता है। शाकद्वीपीय ऋषि मिहिरगोल ऋषिभाका अग्निपूजामें अनुराग मालूम देता है, इसीलिए हावनी वा आहवनीयाग्नि उनका कन्यारूपमें वर्णित है। यहाँ तक कि उन्होंने सूर्यदैवकी उपभोग्य सामग्री अग्निदैवकी अर्पण करनेमें भी इतस्ततः नहीं किया, जब कि उनके वंशीयोंने इसका अनुमोदन नहीं किया, बल्कि उनके प्रदर्शित मार्गमें सौरोंने जारजत्वका आरोप तक कर डाला।<sup>२</sup> सम्भवतः ऋषि ऋजिभ्राने जो अग्निपूजाका बीज बोया है, उसीके फलसे जरथुख या जरदाखको उत्पत्ति हुई है। परन्तु शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंने मूल पर दोष न दे कर फल पर दोषारोपण किया। तात्पर्य यह कि, अग्निपूजा उनके पूर्वपुरुषोंसे ही प्रवर्तित होने पर भी वह उनका पुरुषार्थ नहीं है, पुरुषार्थ सिद्धिका उपाय सूर्यपूजा ही है।

हम ऋग्वेदमें देखते हैं, कि अग्निपूजक लोग 'मधवा' नामसे प्रसिद्ध थे। शाकद्वीपमें यह नाम 'मगव' 'मगु' और 'मग' इस प्रकार कई तरहसे प्रसिद्ध था, प्राचीन ग्रन्थ अवस्ता और भविष्यपुराणसे यह बात स्पष्ट प्रमाणित हो जाती है। जो आठ श्रेष्ठ व्यक्ति शाकद्वीपमें जा कर सूर्यपूजामें नियुक्त हुए थे, वे भी पहले अग्निपूजक

\* अहुरमजदाव संस्कृत भाषामें 'असुरमेधा' है। शाकद्वीपाधिपति भी पुराणोंमें 'मेधातिथि' नामसे वर्णित हुए हैं। इन मेधातिथिके साथ पूर्ववर्तित मेधाका क्या कोई रूपक सम्बन्ध है? भविष्यपुराणमें (७५।१३) नारद भी 'मेधापुत्र'के नामसे कहे गये हैं।

<sup>१</sup> ऐतरेय-ब्राह्मणमें (१।२३) यज्ञके प्रसंगमें देवासुरकी युद्धका विस्तृत रूपसे वर्णित है।

<sup>२</sup> Hang's Essays on Parsis p, 271

'मग' नामसे ही प्रसिद्ध थे। सीर वा सूर्यपूजाके अनु-  
गतां होने पर भी उनका आदि नाम कोई भी  
न छोड़ सके थे। परन्तु जब जरथुस्तने अग्निपूजाके  
प्रचारके लिए सूर्यदेवका श्रेष्ठत्व अस्वीकार किया,  
तब उसी समय सीर मगोंके हृदयमें दाहण  
विद्येपानि जल उठी। ईरानके सभी अग्निपूजकगण  
शाकद्वीप कुन्तोद्भव जरथुस्तके अनुयायी हो गये।  
परन्तु तूरानके सीर प्राणगण अपने इष्टदेवको  
अपमानना न सह सके। जट्टारकके द्वारा शाकद्वीपीय  
कोत्ति बहुत देशोंमें घोषित होने पर भी वे स्वयं शाक-  
द्वीपके सीरगणोंके समक्ष पातित्य दोषसे रूपिन समझे  
गये। एक वंश होने पर भी वे जरथुस्तके वंशीय वा  
उनके अनुयायियों अग्निपुरोहितोंको 'अग्निजात्य' अर्थात्  
अग्निकुल कहते थे और अपनेको 'आदित्यजात्य' वा  
सूर्यवंशीय। सोमयाज्ञो वैदिक आर्यागण, जिन्होंने भारत-  
पर्यमें आधिपत्य विस्तार किया था और उनके वंशीय  
जिन्होंने ईरान और तूरानमें प्रधानतः सोमयागमें समय  
बित्ताया था, सीरोंके द्वारा सोमजात्य सोमकुलके कहे  
जाते थे। भविष्यपुराणमें उन तीनों कुलोंका उल्लेख  
पाते हैं।

अग्निके सर्वप्रधान आचार्य या पुरोहित ही जरथुस्त  
नामसे प्रसिद्ध हुए थे। बहुतसे राजा और सम्पत्ति-  
शाली ध्यतिकारोंने उन महापुरोहितका शिष्यत्व ग्रहण  
किया था और तो क्या, किन्तु किसी जगह जरथुस्त-  
के धर्मके साथ राजनैतिक शासन भी प्रयत्नित हुआ  
था। इस समय शाकद्वीपीय सीरगण क्रमशः हतमान  
और होन बल हुए जा रहे थे। अन्तमें स्थितम जरथुस्त-  
के अम्युदयसे और पुरातन अग्निपूजाके साथ मज्ज-  
धर्म वा एकेश्यरवादका प्रचार होनेमें ईरान और तूरानमें  
युगान्तर उपस्थित हुआ था। छोटेसे ले कर बड़े तक सब  
इस नवधर्मके अनुयायी हुए थे और छोड़े ही समयके  
अन्दर एकेश्यरवादमूलक अग्निपूजन ईरानमहादेशका  
राजकीय धर्म घोषित हुआ। इस समय मित्रधर्म लुप्त  
प्राय हो गया था, जिन मिन स्थानोंमें जरथुस्तका प्रभाव  
था, उन उन स्थानोंसे सीर प्राणगण भाग दिये गए

• वे ही भौतिक नामसे प्रसिद्ध थे।

थे। सम्भवतः इसी समय कुछ मक सीर ब्राह्मणोंने  
भारतमें आ कर आश्रय लिया था और उन्हींको कोत्ति-  
से सीरधर्म भारतमें प्रचलित हुआ था।

त्रिदोषवासी प्रसिद्ध और प्राचीन प्रीक-परिचय  
जानघोसेने ४७० ख्रिष्ट पूर्वमें लिखा है कि, जरथुस्त द्वय-  
युद्धने लगभग ६०० वर्ष पहले आविर्भूत हुए थे।  
आरिष्टरत्न और यूडोफसनेने प्लेटोके ६०० वर्ष पहले  
जरथुस्तका समय निरूपण किया है। प्रसिद्ध पेंतिहासिक  
मिनिना मत है, कि द्वय-युद्धके ५०० वर्ष पहले जरथुस्त  
आविर्भूत हुए थे। इकर बाबिलोनके प्रसिद्ध पेंतिहा-  
सिक पेरोसस लिखते हैं कि, जरथुस्त किसी समय शारि-  
लोनको अयोधर हुए थे और उनके वंशजने यहां २२००  
ख्रिष्ट-पूर्वसे २००० ख्रिष्ट पूर्व तक राज्य किया था।

हम पहले लिख चुके हैं कि, जरथुस्त एक ही नहीं  
हुए हैं, बल्कि कई हुए हैं। सम्भवतः मित्र मित्र जर-  
थुस्तोंके आविर्भूत होनेसे अग्निपूजक मगोंमें मित्र मित्र  
फाल अवधारित हुए थे। इसीलिए शायद एकका समय  
स्थिर करनेमें मित्र मित्र यद्यत् परिष्ठतोंने मित्र मित्र  
मत प्रकट किये हैं। उनमें प्रसिद्ध पेंतिहासिक पेरोसस-  
का मत शंका समझा गया। उनके मतानुसार प्रसिद्ध  
मगाधिपति जरथुस्त अपने काल ४१३२ वर्ष पहलेके  
आदमी मालूम होते हैं। आदि जरथुस्त वा जरथुस्त उनसे  
भी पहलेके हैं।

स्थितम जरथुस्तके समयमें मगोंमें जो सदाचार, रीति-  
नीति, विश्वास और धर्ममत प्रचलित थे, वे सब एक-  
वारगी त्याग न सके थे। उस प्राचीन भित्ति पर उन्होंने  
अपना नव विधान स्थापित किया था, इसीलिए हम शाक-  
द्वीपीय मगोंके आचार-व्यवहार और पूजापरमित्री बहुत-  
सी बातें जरथुस्त द्वारा प्रचारित अथस्तामें भी पाते हैं।  
उन्होंने जिस भाषामें अथस्ता शास्त्रका प्रचार किया था,  
उसका अब निदर्शन भी नहीं मिलता। उस भाषाके साथ  
हमारी वैदिक भाषाका सादृश्य था। इस कारण पादचार्य  
परिष्ठतोंनेसे बहुतोंका कहना है, कि अथस्ताको आदि-  
भाषा ईश्वरको सहायताके बिना नहीं समझी जा सकती।  
और अथस्ता कहनेमें त्रिन्दुभाषाके जिस भाषका शेष  
होता है, वह भी बिना संस्थान जाने सरसमें नहीं समझी

जाता\* ॥ इस मामूली तौर पर निश्चय किया जा सकता है कि, मध्य एशिया या पञ्चनदवासी प्राचीनतम आर्यऋषियोंने जिस भाषामें 'वेद' प्रकाश किया था, उसी भाषामें शाकद्वीपीय भी श्रुतिवद हूए थे और उसीके सारसंस्कृतका छिन्ननिर्देशन अवस्ताके प्राचीन अंशमें पाया जाता है ।

अवस्ताशास्त्र अलोचना करके निश्चय किया गया है, कि अवस्ताकी भाषा किसी समय भी फारस या ईरानकी भाषा नहीं समझी गई थी और न इसका ही कुछ संधान मिलता है, कि वह किसी दिन फारसमें प्रचलित थी या नहीं । फारसमें जब अवस्ता शास्त्र प्रचलित हुआ तब साधारण लोग पहचो भाषामें अवस्ताका अनुवाद पढ़ते थे । इसीलिए अवस्ताके सभी आदिग्रन्थ पहचोी बक्षरोंमें लिखे पाये जाते हैं ।

अवस्ताका भाष्य जिन्द् जिस भाषामें रचा गया है, उसका कुछ निदर्शन उत्तर मद्र (Media) और कास्पिय-सागरके तीर-पर मिलता है । इस पर यह कहा जा सकता है, कि भारतमें जैसे किसी समय संस्कृत कथित भाषारूपमें प्रचलित थी, उसी प्रकार शाकद्वीपमें भी किसीसमय 'जिन्द्' भाषा बोली जाती थी । यहाँकी तरह उनके भी वेद सुप्राचीन वैदिक भाषामें ही ग्रथित थे, क्रमविपर्यय और उच्चारणभेदसे कालांतरमें भारतीय वेदोंसे जो उसका पार्श्वय हो गया है, उसका कुछ निदर्शन हम अवस्तामें पाते हैं\* ।

किसी किसी पुराविदुका कहना है कि, मगाचार्य जरथुस्त्रने मिदोय या उत्तर-मद्रमें जन्मग्रहण किया था और एकेश्वरवादका प्रवर्तन भी । इस उत्तरमद्रमें बहुत पूर्वकालसे ही आर्यसंस्त्रव संघटित हूए थे ; ऋग्वेदके पेत्रेय ब्राह्मण ( ८।१४ ) में इसका प्रमाण मिलता है । इस पेत्रेयब्राह्मणसे ही मालूम होता है कि, वहाँ पर वैदिक यज्ञादि अनुष्ठित होते थे\* ।

उत्तर-मद्र शाकद्वीपके अन्तर्गत था, पारस्यके अन्तर्गत नहीं । उत्तरमद्रके शाकद्वीपीय ब्राह्मण-वंशमें ही जरथुखका जन्म हुआ था । वेदव्यासने जिस प्रकार नाना वेद-मन्त्रोंको संग्रह कर उन्हें भिन्न भिन्न नामोंसे प्रचारित किया था, शाकद्वीपमें जरथुखने भी उसी प्रकार पूर्वतन मन्त्रोंका एकत्र संग्रह कर आवश्यकतानुसार अपना सत् और असत्-रूप द्वैतवाद भी उसके साथ चला दिया था । जैसे यहाँ एक ही वेदको नाना शाखाएँ हो गई थीं, उसी प्रकार शाकद्वीपमें भी पूर्वमें श्रोय वा श्वसदीं तथा जरथुखके प्रभावसे बहुत-सी शाखाएँ फैल गई थीं, इसमें सन्देह नहीं । अवस्ता शास्त्रकी अलोचना करके अध्यापक डर्मे-ष्टे टने लिखा है,—

'That the avesta contains two series of documents, the one from the Magi of Ragha, and the other from the Magi of arpatene.'

Zend-Avesta, intro, p. XXI. । कुछ भी हो, पहले सर्वसाधारणका विश्वास था कि अवस्ता पारसिक मगोंका आदि शास्त्र है । अब वह सन्देह दूर हो गया\* ।

भारतमें शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंका आगमन ।

अब यह देखना है, कि किस कारण और किस समयमें शाकद्वीपीय ब्राह्मण भारतमें आये ? इस विषयको ले कर भविष्यपुराणमें ऐसा उपाख्यान मिलता है,—

उत्तरकुरुव उत्तरमद्रा इति वैराज्याय तेषामिपिच्यन्ते । विराडित्वेवान् अभिपिकतान् आबह्वते ।" ( पेत्रेयश्र० ८।१४ ) हिमवानके उस पार उत्तर दिशामें उत्तरकुरु और उत्तरमद्र नामके दो देश हैं, वहाके आदमी वैराज्यमें अभिषेक करते हैं । इस प्रकारसे जो अभिषेक होते हैं, उन्हें विराड् कहते हैं ।

† "We are now able to understand how it was that the sacred books of Persia were written in a non-persian dialect; it had been written in the language of its composers, the magi, who were not Persians. Between the priests and the people there was not only a difference of calling, but also a difference of race, as the sacerdotal caste came from a non-persian province" ( Sacred Books of the East. Vol, iv, p. xvi. )

\* The Zend Avesta translated by G. Darmesteter ( in the Sacred Books of the East, vol. vi, p. xxvi. )

\* "वत्सामैतत्सामुदीच्यां दिशि ये के च परेष हिमवन्त जनपदाः



'छाद्यन् भादित्योमिं एकमत विष्णु है। इन विष्णुके औरससे जाभ्रवतीके गर्भसे अनुपम रूपवान् साम्बने जन्म-ग्रहण किया। साम्ब युवायस्थामें इतने रूपगर्षित हो गये, कि फिर वे किसी की तरफ देखते भी न थे। एक दिन दुर्वास ऋषि द्वारकामें घूमने आये। साम्बने उनको यह, शुष्क और कृजामूर्त्तिका देण कर मुंह सिकोड़ा था, जिससे दुर्वासने अत्यन्त क्रुद्ध हो कर 'तेरे फोट होगा' ऐसा अभिसम्भात दिया और चले गये।

कुछ दिन बाद नारद द्वारकापुर पहुँचे। किसी बातचीतके प्रसङ्गमें उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा कि, 'स्त्रियोंका विश्वास नहीं करना चाहिए और तो क्या, आपकी महिषियां भी रूपवान् पर-पुरुषको देख कर लोभमें पड़ जाती हैं। श्रीकृष्णने नारदको बात पर विश्वास नहीं किया, इसलिये नारद फिर एक दिन आये। इस समय कृष्णकी महिषियां मद्यके नशेमें चूर हो कर देवतशेखरमें जलक्रीड़ा कर रही थीं। उसी समय नारद साम्बको ले कर यहाँ पहुँचे। मद्यपानसे रमणियां आपसे बाहर हो रही थीं। रचिनणी, मत्स्यमामा और जाम्बवतीके सिया और सभी रमणियां चञ्चल हो उठीं, परंपरमें उनका रेतःस्फलित हो गया। नारदने श्रीकृष्णको द्रिप्त दिया। तब द्वारकानाथने उन रमणियोंको मन्थो-धन करके कहा, 'जब पुत्र स्थानीयका मुंह देण कर तुम

मितके अनुग्रहमें साम्बका रोग दूर हो गया। जहाँ साम्बने मितकी उपासना की थी, वह स्थान मितपनके काममें प्रसिद्ध हुआ था। साम्बने यहाँ मितदेवको माझोवाहू मूर्त्ति बनाई थी। जब मित नामक सूर्यमूर्त्ति बन चुकी, तब साम्ब बट्टी समस्थामें पड़े कि किससे तो इतने प्रतिष्ठा करावे और किसने पौरोहित्य ? नारदने कहा— "लोभो देवल प्राहणोमे सूर्यको पूजा नहीं हो सकती। देवस्य ग्रहण करके पीछे कहीं पनित न हो जाय, इस इरने सहस्राक्षण भी इसी कामके लिए तयार न होये। तुम अपने कुन्ड पुरोहितसे उपयुक्तप्राहण ठीक कर लो।" साम्बने कुन्ड-पुरोहित गौरमुखके पास जा कर यह बात कही। गौरमुखने कहा, "सूर्य-पूजा और सूर्यदेवसे दान किया हुआ द्रव्य जिन्हें लेनेका अधिकार हो, ऐसे प्राहण यहाँ नहीं हैं। जाकड़ोपमें निम्नभाके गर्भजात सूर्यपुत्राण है, ये ही सूर्यपूजाके अधिकारी हैं परन्तु कैसे उन्हें ला सकते हो, यह मैं नहीं कह सकता। सूर्यदेव ही कह सकते हैं।" तब साम्बने सूर्यका आश्रय लिया। सूर्यदेवने साम्बको दर्शन दे कर कहा, "जम्ब द्वीपके बाद जाकड़ोप है, उग जाकड़ोपमें मेरे अंजसे उत्पन्न मग, मसग, मातग और मन्दग ये चार जातियां वास करती हैं। मेरे अंजको ले कर विभवकर्मने उन्हें बनाया है। उनमें मग नामक प्राहण ही हमारे ... है। तुम उन मगोंको मेरे

करके बोले—“हे द्विजेन्द्रगण ! आप सब कोई विशुद्ध भावसे भगवान् मरीचिमालीकी उपासना करनेमें लगे हुए हैं। मैं आप लोगोंके पास ही आया हूँ। मेरा नाम साम्ब है और मेरे पिताका विष्णु। मैंने चन्द्रभागा नदीके तट पर भगवान् सूर्यदेवकी प्रतिमूर्ति प्रतिष्ठित की है। सूर्यदेवने स्वयं ही मुझे भेजा है। अतएव आप लोग अब विलम्ब न करें। भगवान्का पूजाकार्य निर्वाह करनेके लिए शीघ्र आप लोग मेरे साथ चले।” इस पर मर्गोंने कहा—“हे साम्ब ! तुमने जो कहा सो ठीक है। क्योंकि कुछ समय पहले भगवान् दिवाकर स्वयं आ कर हम लोगोंके समक्ष यह वान प्रगट कर गये हैं। इसलिये हम अब देर नहीं कर सकते। यहां जो हमारे १८ कुल हैं, सभी तुम्हारे साथ चलेगे।”

मर्गोंके स्वीकार करने पर साम्बने यत्नपूर्वक उन्हें गरुड़ पर बिठाया और तुरत हाँवे अभीष्ट स्थान पर पहुँच गये। सूर्यदेव इससे बहुत प्रसन्न हुए, उन्होंने कहा—“साम्ब तुम जिन्हें शाकद्वीपसे यहां लाये हो, वे प्रशान्त हृदय शान्तिप्रद मग ब्राह्मण हो विधिके अनुसार मेरी पूजा कर सकते हैं। अतएव हे यदुवंशावतंस ! तुम अब निश्चित होओ, मेरी पूजाके विषयमें भविष्यमें तुम्हें कोई चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं।”

इस प्रकार साम्बने शाकद्वीपसे मगब्राह्मणोंको ला कर चन्द्रभागा नदीके किनारे एक मनोरम पुरी बनवाई। वह पुरी बादमें साम्बपुर नामसे प्रसिद्ध हुआ। उन्होंने इस पुरके भीतर दिवाकरकी मूर्ति स्थापित करके उनकी पूजाके लिए विविध धनरत्नादि रख दिये और भोजकोंको उन सबका अधिकारी बना दिया। सदाचारो मग-गण वेदविहित कर्मानुष्ठानसे सूर्यदेवकी पूजा करने लगे। साम्ब भी निश्चित और सन्तुष्ट हुए। वे फिर सूर्यसे धर प्राप्त करके कृतकृत्य-मनसे उन्हें और मर्गोंको प्रणाम कर द्वारका चले गये। साम्ब द्वारा प्रतिष्ठित मग लोग तभीसे सूर्यपूजामें निरत हो कर यहां वास करने लगे और धीरे धीरे बहुत-सी भोजकन्याओंका उन्होंने पाणिग्रहण भी किया। सूर्यने (किसी समय) कहा था, ‘साम्ब ! ये भोजकगण मग नामसे परिचित और मेरे बड़े मित्र होंगे। इनमें मन्द्य नामके जो

आठ शूद्र हैं, वे भी मेरे परिवारक हैं।’ साम्बने यह सुन कर उन्हें प्रणाम किया और शाकद्वीपसे आये हुए उन मर्गोंका यथेष्ट सम्मान किया। मर्गोंमें जो द्वाज ब्राह्मण थे, उन्होंने दस भोजकन्याओंसे और धाकीके आठ जो शूद्र थे, आठ दासकन्याओंसे विवाह किया था। उनमेंसे जो ब्राह्मणके औरस और भोजकन्याके गर्भसे उत्पन्न हुए, वे ही मग (भोजक) नामसे प्रसिद्ध हुए और जो शूद्रके औरस और दासकन्याके गर्भसे उत्पन्न हुए, वे मन्द्य कहलाये। ये मन्द्य शूद्र लोग उस समय सूर्यके परिचारक हो कर पुत्रादिके साथ साम्बके वसाये हुए पुरमें वास करने लगे तथा मग-ब्राह्मण भी अथङ्गादि धारण करके नाना प्रकार वैदिक मन्त्रों द्वारा सूर्य पूजामें निरत हो कर वहां वास करने लगे।

भविष्यपुराणके जैसा साम्बपुराणमें भी लिखा है, कि साम्बने मित्तवनमें सूर्यकी आराधना की थी और गरुड़ पर चढ़ कर शाकद्वीपी ब्राह्मणोंको यहां लाये थे।

दोनों पुराणोंके अनुसार चन्द्रभागा नदी तट पर मित्तवन है और भी मालूम होता है, कि वहां साम्बने अपने नाम पर साम्बपुर वसाया था। यह ‘साम्बपुर’ शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंका आदि उपनिवेश है। पञ्जाबके प्रसिद्ध मुलतान शहरको ही बहुतेरे प्राचीन साम्बपुर मान लिया है। ईसाकी ७वीं शताब्दीमें चीन-परि-ब्राजक यूएन-सुवङ्गने ‘मूल-साम्बपुर’के (मूलो-सन्-फू-लो) नामसे इस स्थानका उल्लेख किया है, उसके बाद ‘मूलस्थानपुर’ तथा उससे ‘मुलतान’ नाम पड़ा है। भविष्यपुराणसे ज्ञात होता है कि साम्बने यहां सुवर्णका मन्दिर और उसमें सुवर्णकी सूर्यमूर्ति प्रतिष्ठित की थी। ईसाकी ७वीं शताब्दीमें प्रसिद्ध चीनपरिब्राजक यूएन-सुवङ्ग यहांकी सुवर्णमयी सूर्यमूर्ति देख गये थे। उसके बाद आश्रिहानने ईसाकी १०वीं शताब्दीमें भी यहांकी प्रसिद्ध सूर्यमूर्तिका उल्लेख किया है, परन्तु उस समय वह मूर्ति काष्ठमयी थी। उनके समयमें इस स्थानका और एक नाम था ‘आद्य स्थान’। अरबी भौगोलिकोंने

\* Al Beruni's India, translated by E. Sachau, Vol 1 p, 121.

'द्वादश आदित्योंमें एकमत विष्णु हैं। इन विष्णुके औरससे जाम्बवतीके गर्भसे अनुपम रूपवान् साम्बने जन्म-प्रदण किया। साम्ब युवावस्थामें इतने रूपपरिचित हो गये, कि फिर वे किसी की तरफ देखते भी न थे। एक दिन दुर्वासा ऋषि द्वारकामें घूमने आये। साम्बने उनकी रक्ष, शुष्क और कुशमूर्त्तिका देख कर मुंह सिकोड़ा था, जिससे दुर्वासाने अत्यन्त क्रुद्ध हो कर 'तिरे फोड़ होगा' ऐसा अभिसम्पात दिया और चले गये।

कुछ दिन बाद नारद द्वारकापुर पहुँचे। किसी बातचीतके प्रसङ्गमें उन्होंने श्रीकृष्णसे कहा कि, खियोंका विश्वास नहीं करना चाहिए और तो क्या, आपकी महिषियां भी रूपवान् पर-पुरुषको देख कर लोभमें पड़ जाती हैं। श्रीकृष्णने नारदकी बात पर विश्वास नहीं किया, इसलिये नारद फिर एक दिन आये। इस समय कृष्णकी महिषियां मद्यके नशेमें चूर हो कर रैवतशेखरमें जलक्रीड़ा कर रही थीं। उसी समय नारद साम्बको ले कर वहाँ पहुँचे। मद्यपानसे रमणियां आपेसे बाहर हो रही थीं। रुषिभ्रमो, सत्यमामा और जाम्बवतीके सिवा और सभी रमणियां चञ्चल हो उठीं, पद्मपलमें उनका रेतःखलित हो गया। नारदने श्रीकृष्णको दिखा दिया। तब द्वारकानाथने उन रमणियोंकी सम्बोधन करके कहा, 'जब पुत्र स्थानीयका मुँह देख कर तुम लोभकी घशमें नहीं रख सकती, तो इस पापसे तुम सब दस्तुयोंके हाथ पड़ेंगी और साम्बसे भी कहा, कि तुम्हारे जिस रूपको देख कर तुम्हारी माताओंका जो चित्तचाञ्चल्य हुआ है, तुम्हारा वह रूप कुष्ठरोगसे पीड़ित होगा।

साम्बको कुष्ठरोगसे पीड़ित होना पड़ा, ऋषि-वाष्य भी पूरा हो गया। साम्ब बड़े कष्टमें पड़े और आविर उन्होंने नारदकी शरण ली। बड़े करुण-स्वरसे नारदसे बोले—'हे मिधाके पुत्र! मुझ पर प्रसन्न होवे, मेरे आरोग्य होनेका उपाय बतलाइये।' इन्द्र, धाता, पर्जन्य, पुष्य, त्वष्टा, अर्यमा, भग, विवस्वान्, अंशु, विष्णु, चरुण और मित्र वे द्वादश आदित्य हैं।

नारदके उपदेशसे साम्ब इन बारह आदित्योंमेंसे मित्रको तपस्यामें निरत हुए। उससे मित्रदेव प्रसन्न हुए।

मित्रके अनुग्रहसे साम्बका रोग दूर हो गया। जहाँ साम्बने मित्रकी उपासना की थी, वह स्थान मित्रवनके नामसे प्रसिद्ध हुआ था। साम्बने वहाँ मित्रदेवकी साक्षोपासू मूर्त्ति बनाई थी। जब मित्र नामक सूर्यमूर्त्ति बन चुकी, तब साम्ब बड़े समस्यामें पड़े कि किससे तो इनकी प्रतिष्ठा करावे और किससे पीरोहित्य? नारदने कहा— 'लोभो देवल ब्राह्मणोंसे सूर्यकी पूजा नहीं हो सकती। देवस्यं प्रदण करके पीछे कहीं पतित न हो जाय, इस डरसे सद्ब्राह्मण भी इसी कामके लिए तयार न होंगे। तुम अपने कुल पुरोहितसे उपयुक्त ब्राह्मण ढीक कर लो।' साम्बने कुल-पुरोहित गौरमुखके पास जा कर यह बात कही। गौरमुखने कहा, 'सूर्य पूजा और सूर्योद्देशसे दान किया हुआ प्रदण जिन्हें लेनेका अधिकार हो, ऐसे ब्राह्मण यहाँ नहीं हैं। शाकद्वीपमें निशुभाके गर्भजात सूर्यपुत्रगण हैं, वे ही सूर्यपूजाके अधिकारी हैं परन्तु कैसे उन्हें ला सकते हो, यह मैं नहीं कह सकता। सूर्यदेव ही कह सकते हैं।' तब साम्बने सूर्यका आश्रय लिया। सूर्यदेवने साम्बकी दर्शन दे कर कहा, 'जन्म द्वीपके वाद शाकद्वीप है, उस शाकद्वीपमें मेरे अंशसे उत्पन्न मग, मसग, मानस और मन्दग ये चार जातियां घास करती हैं। मेरे अंशको ले कर विश्वकर्माने उन्हें बनाया है। उनमें मग नामक ब्राह्मण ही हमारी पूजाके अधिकारी हैं, तुम उन जंगोंको मेरी पूजाके लिए शीघ्र हो शाकद्वीपसे यहाँ ले लाओ। तुम मेरो घात मानो, कुछ भी इतस्ततः मत करो। शीघ्र हो गड़ड़ पर चढ़ कर उन्हें लानेके लिए शाकद्वीपकी तरफ चल हो दो।' भगवान् दियाकरके कहनेके साथ ही जाम्बवती-नन्दन साम्ब उनकी आज्ञा सिरोंप्रार्थ्य कर तुरत ही द्वारका पहुँचे। वहाँ अपने पिता श्रीकृष्णसे भास्करके दर्शन लाभानादिकी समस्त घटनाका वर्णन करके पितृ-प्रदत्त गड़ड़ पर सवार हो शाकद्वीपको तरफ चल दिये। वे गड़ड़की सहायतासे बहुत ही जल्द शाकद्वीप पहुँचे। वहाँ जा कर देखा, कि बहुसंख्यक तेजस्वी मगब्राह्मणगण धूप दीपादि विविध उपचारोंसे सर्वदा प्रखरकर प्रमा-करकी पूजामें निरत हैं। जाम्बवतीतनय उन सूर्य-सेषक ब्राह्मणोंके दर्शन करके हृष्टचित्तसे भक्तिपूर्वक उन्हें नमस्कार, प्रदक्षिण, अनामय प्रश्न और भूयसी प्रशंसा

करके बोले—“हे द्विजेन्द्रगण ! आप सब कोई विशुद्ध भावसे भगवान् मरीचिमालीकी उपासना करनेमें लगे हुए हैं। मैं आप लोगोंके पास ही आया हूँ। मेरा नाम साम्ब है और मेरे पिताका विष्णु। मैंने चन्द्रभागा नदीके तट पर भगवान् सूर्यदेवकी प्रतिमूर्ति प्रतिष्ठित की है। सूर्यदेवने स्वयं ही मुझे भेजा है। अतएव आप लोग अब विलम्ब न करें। भगवान्का पूजाकार्य निर्वाह करनेके लिए शीघ्र आप लोग मेरे साथ चले।” इस पर मर्गोंने कहा—“हे साम्ब ! तुमने जो कहा सो ठीक ही। क्योंकि कुछ समय पहले भगवान् दियाकर स्वयं आ कर हम लोगोंके समक्ष यह बात प्रगट कर गये हैं। इसलिये हम अब देर नहीं कर सकते। यहां जो हमारे १८ कुल हैं, सभी तुम्हारे साथ चलेगे।”

मर्गोंके स्वीकार करने पर साम्बने यत्नपूर्वक उन्हें गरुड़ पर विठाया और तुरत हाँवे अभीष्ट स्थान पर पहुँच गये। सूर्यदेव इससे बहुत प्रसन्न हुए, उन्होंने कहा—“साम्ब तुम जिन्हें शाकद्वीपसे यहां लाये हो, वे प्रशान्त हृदय शान्तिप्रद मग ब्राह्मण हों विधिके अनुसार मेरी पूजा कर सकते हैं। अतएव हे यदुचंगावर्तस ! तुम अब निश्चिन्त होओ, मेरी पूजाके विषयमें भविष्यमें तुम्हें कोई चिन्ता करनेकी जरूरत नहीं।”

इस प्रकार साम्बने शाकद्वीपसे मगब्राह्मणोंको ला कर चन्द्रभागा नदीके किनारे एक मनोरम पुरी बनवाई। यह पुरी बादमें साम्बपुर नामसे प्रसिद्ध हुआ। उन्होंने इस पुरके भीतर दियाकरकी मूर्ति स्थापित करके उनकी पूजाके लिए विविध धनरत्नादि रख दिये और भोजकोंको उन सबका अधिकारी बना दिया। सदाचारो मग-गण घेद्विहित कर्मानुष्ठानसे सूर्यदेवकी पूजा करने लगे। साम्ब भाँ निश्चिन्त और सन्तुष्ट हुए। वे फिर सूर्यसे धर प्राप्त करके कृतकृत्य-मनसे उन्हें और मर्गोंको प्रणाम कर द्वारका चले गये। साम्ब द्वारा प्रतिष्ठित मग लोग तभीसे सूर्यपूजामें निरत हो कर यहां वास करने लगे और धीरे धीरे बहुत-सी भोजकन्याओंका उन्होंने पाणिग्रहण भी किया। सूर्यने (किसी समय) कहा था, ‘साम्ब ! ये भोजकगण मग नामसे परिचित और मेरे बड़े प्रिय होंगे। इनमें मन्दग नामके जो

आठ शूद्र हैं, वे भी मेरे परिचारक हैं।’ साम्बने यह सुन कर उन्हें प्रणाम किया और शाकद्वीपसे आये हुए उन मर्गोंका यथेष्ट सम्मान किया। मर्गोंमें जो दश ब्राह्मण थे, उन्होंने दस भोजकन्याओंसे और वाकीके आठ जो शूद्र थे, आठ दासकन्याओंसे विवाह किया था। उनमेंसे जो ब्राह्मणके औरस और भोजकन्याके गर्भसे उत्पन्न हुए, वे ही मग (भोजक) नामसे प्रसिद्ध हुए और जो शूद्रके औरस और दासकन्याके गर्भसे उत्पन्न हुए, वे मन्दग कहलाये। ये मन्दग शूद्र लोग उस समय सूर्यके परिचारक हो कर पुत्रादिके साथ साम्बके बसाये हुए पुरमें वास करने लगे तथा मग-ब्राह्मण भी अथङ्गादि धारण करके नाना प्रकार वैदिक मन्त्रों द्वारा सूर्य पूजामें निरत हो कर वहां वास करने लगे।

भविष्यपुराणके जैसा साम्बपुराणमें भी लिखा है, कि साम्बने मितवनमें सूर्यको आराधना की थी और गरुड़ पर चढ़ कर शाकद्वीपी ब्राह्मणोंको यहां लाये थे।

दोनों पुराणोंके अनुसार चन्द्रभागा नदी तट पर मितवन है और भी मालूम होता है, कि वहां साम्बने अपने नाम पर साम्बपुर बसाया था। यह ‘साम्बपुर’ शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंका आदि उपनिवेश है। पञ्जाबके प्रसिद्ध मुलतान शहरको ही बहुतेरे प्राचीन साम्बपुर मान लिया है। ईसाकी ७वीं शताब्दीमें चीन-परि-ब्राह्मणक यूएनचुवङ्गने ‘मूल-साम्बपुर’के (मूल-लो-सन्-कूलो) नामसे इस स्थानका उल्लेख किया है, उसके बाद ‘मूलस्थानपुर’ तथा उससे ‘मुलतान’ नाम पड़ा है। भविष्यपुराणसे ज्ञात होता है कि साम्बने यहां सुवर्णका मन्दिर और उसमें सुवर्णकी सूर्यमूर्ति प्रतिष्ठित की थी। ईसाकी ७वीं शताब्दीमें प्रसिद्ध चीनपरिब्राह्मणक यूएन-चुवङ्ग यहांकी सुवर्णमयी सूर्यमूर्ति देष्ट गये थे। उसके बाद आबूरीहानने ईसाकी १०वीं शताब्दीमें भी यहांकी प्रसिद्ध सूर्यमूर्तिका उल्लेख किया है, परन्तु उस समय वह मूर्ति काष्ठमयी थी। उनके समयमें इस स्थानका और एक नाम था ‘आद्य स्थान’। अरबी भौगोलिकोंने

\* Al Beruni's India, translated by E. Sachau, Vol 1 p, 121.

भो 'सुवर्ण-मन्दिर'-के नामसे इस स्थानका उल्लेख किया है।

माकिन्दन-वीर अलेकजन्दरने जिस समय पञ्जावमें पदार्पण किया था, उस समय उन्होंने यहां हर (Hercules) और मगेश (Bacchus) वा सूर्य मूर्तिको पूजा देखा थी। स्ट्राबोने मगेशिनिसकी जिक्र छेड़ कर लिखा है कि, भारतके नीचे भूभागके लोग हरकी पूजा करने और पार्वतीय भूभागके लोग मगेशकी। इससे आभास पाया जाता है, कि अलेकसन्दरके समयमें (ईसाके पहलेकी ३री शताब्दीमें) सूर्य प्रतिमाकी पूजा प्रचलित हुई थी और मित्त-पुरोहित शाकद्वीपीय मग-प्राहण भो पञ्जावमें मौजूद थे। अलेकजन्दरके बादके यवन और शक राजाओंके सिद्धमें भी हमने मित्त-मूर्त्ति देखा है। पूर्ण कालमें शकराजाओंमें बहुतसे मित्तो-पासक थे और मग-प्राहण उनके पुरोहित थे परन्तु यवन राजाओंके सिद्धोंमें मित्त कहाँसे आये? अधिकतः यही सम्भव है, कि उनके बहुत पहले ही पञ्जावमें मित्तपूजा सर्वत्र प्रचलित थी, यवन राजाओंने भी जनसाधारणके अनुचरों को कर उस मित्तपूजाके चिह्नकी रक्षा की थी।

अलेकजन्दरके आनेसे बहुत पहले पञ्जाव और पश्चिम-भारतमें शाकोंका अभ्युदय हुआ था। भारतवर्ष देखो। और साथ ही शाकोंके साथ मग पुरोहितोंका प्राधान्य भी बढ़ाया था।

प्राचीन शिलालेखोंकी सहायतासे राजस्थान-इतिहासके लेखक टाड साहयने सिद्ध किया है, कि शक राज-पूर्वोंके साथ यादवोंका वैवाहिक सम्बन्ध हुआ था। इधर भविष्यपुराणसे भी मालूम होता है कि, आदित्य-जातीय मग-प्राहणगणोंके यादव या भोजकन्याका पाणि-प्रदण करनेके कारण, उनकी सन्तति 'भोजक' नामसे प्रसिद्ध हुई। दाक्षिणात्यसे मिले हुए प्राचीन शिलालेखोंकी आलोचना करनेसे मालूम होता है कि, भोज और महाभोज नामक पराक्रान्त सामन्त राजगण दाक्षिणात्यके नाना स्थानोंमें अधिपत्य करते थे, तथा कोई कोई 'परवसीर' कहलाये थे। यह भी असम्भव नहीं कि,

उनके सीरोपुरोहितगण 'भोजक' नामसे प्रसिद्ध हुए थे। भोजकोंका आदि नाम 'मग' ही था और जरघुखके मतानुचरों अग्निपुरोहित ही 'मग' नामसे प्रसिद्ध थे। शोषोक अग्निपुरोहितोंके साथ भो बहुत दिनोंसे भारतवासियोंका संस्त्र था और पूर्णकालमें कोई कोई भारतवासी भो जरघुखधर्ममें दीक्षित हुए थे, जिनमें वैजो पण्डित, जेसल पण्डित और उनके भाई गोपाल पण्डितका नाम सुना जाता है। \* उन्होंने अक्स्ता-ग्रन्थका संस्कृत भाषामें प्रचार करनेका प्रयत्न किया था, पर यह नहीं कह सकते कि उनका उद्देश कहां तक सफल हुआ था। नेरिओसिहने यवनका संस्कृत अनुवाद प्रकट करके उनका उद्देश सिद्ध किया था। अधिकतः यहाँ सम्भव है, कि मज्द-पूजाक मगोंसे मित्त-पूजाक मगोंने स्वातन्त्र्य रक्षाके लिये मग नामके बदले 'भोजक' नाम प्रहण किया था।

आगमनकाल और उसका कारण।

भविष्यपुराण, स्वप्नपुराण और प्रहयामलसे भी मालूम होता है कि, शाकद्वीपीय प्राहण श्रीकृष्णके आविर्भावके समय साम्यमन्दिरमें उपस्थित हुए थे। राजतरङ्गिणी और बराह-मिहिरकी बृहत्संहिताके अनुसार, ६५३ कलि-गताब्दमें अर्थात् अबसे ४३५० वर्ष पहले कुरुपाण्डवका जन्म हुआ था और उसी समयमें श्रीकृष्णका आविर्भाव। यह बात महाभारत और पुराणोंके पढ़नेवालोंसे छिपी नहीं है। पहले ही हमने आभास दिया है कि जरघुखके अभ्युदयसे मित्त पूजाकी व्यवस्था हुई थी, तथा मज्द-पूजाके प्रचारके साथ साथ मित्त-पूजाक मग लोग निगृहीत हो कर भारतमें आये थे। वैशिलनके प्रसिद्ध ऐतिहासिक घेरोससका मत उद्धृत करके भी दिखाया है कि ईसाके जन्मसे दो हजार दो सौ वर्ष पहले (अर्थात् अबसे ४१३० वर्ष पहले वाबेदके राजा जरघुख आविर्भूत हुए थे। उनसे बहुत पहले आदि जरघुख होते हैं। अब यवन और भारतीय ग्रन्थोंकी आलोचनासे मालूम होता है कि, जिस समय भगवान् श्रीकृष्ण भारतभूमिमें अपूर्व गोताधर्मका प्रचार कर रहे

† Cunningham's Ancient Geography of India p, 233.

\* Zend Avesta, par Anquetil du Perron, tome 11, 132.

थे, उसी समय पारस्य और शाकद्वीपमें मगाचार्य जरथुख मज्द-धर्मके प्रचारमें लगे हुए थे। जिस समय गीताके निष्कास धर्मको सुनाकर आर्यावर्त्तमें नवयुग प्रवर्तित हुआ था, करीब करीब उसी समय शाकद्वीप और फारसमें जरथुखने पकेधरवाद का प्रचार करके भारी आन्दोलन मड़ा कर दिया था। उस धर्म-संप्राममें सुम्राचीन मित-धर्मके पराजित होने पर मज्द-धर्मका अभ्युत्थान हुआ। यह संघर्ष सिर्फ इष्ट-देवताको ले कर नहीं हुआ, बल्कि जरथुख सामाजिक संस्कारमें भी अपसर हुए थे, जिसमें प्रधान संस्कार था अन्वैष्टि क्रिया। पहले जमानेमें शाकद्वीपो लोग शवको जलाते या समाधिस्थ करते थे, पर जरथुखने प्रचार किया कि जलानेसे अनि और समाधिसे पृथ्वी अपयित होती है, इसलिए ये दोनों कार्य बन्द कर देने चाहिए। उनके नियमानुसार मृत देहको किसी स्थानमें फेंक देना ही ठिक है। परंतु जिन्होंने मज्द-धर्म स्वीकार नहीं किया था, वे (मित पूजक लोग) शवदेहको मिट्टी पर फेंकना पापकार्य समझने थे। श्वर जनता जरथुखके पक्षगती हो गई थी। भविष्यपुराणमें लिखा है कि, साब्र जब ब्राह्मण लानेके लिए शाकद्वीपको गये थे, उस समय वहां सिर्फ १८ घर कुलीनोंके थे। इस वर्णनको यदि रूपक समझा जाय, तो इतना कहा जा सकता है, कि सिर्फ १८ घर कुलीन अर्थात् पूर्वमतावलम्बियोंके थे और बाकी सबोंने जरथुख का मत स्वीकार कर लिया था। भविष्यपुराणके कथा-नुसार, ये ही १८ कुल भारतमें आये थे। परन्तु प्रद-यामलके मतसे, सब गद्दी आये थे, सिर्फ ८ ब्राह्मण आये थे। कुछ भी हो, उक्त विवरणसे मामूली तौर पर इतना समझमें आता है कि करीब चार हजार वर्ष हुए जब शाकद्वीपीय ब्राह्मणगण मुलतान आये थे। यही नगर भारतमें शाकद्वीपियोंका 'आशस्थान' है और इसीलिए पहले 'मूलस्थान' फिर मुलतान इसका नाम पड़ा होगा।

नाम और गोत्र।

प्रहयामलमें लिखा है,—मार्फण्ड, माण्डय, गर्ग, पराशर, भृगु, सनातन, अङ्गिरा और जहू, ये आठ मुनि शाकद्वीपमें थे। उनके पुत्रगण प्रतिदिन प्रहचालना करते थे। देवदेव श्रीहृणक आदेशसे गहड़ जब

उन्हें वहांसे ले आये तब उन्होंने साम्यपुरमें प्रवेश किया। उनके नाम इस प्रकार थे—बराह, सोम, ईशान, शान्ति, भृगु, धनञ्जय, दनु और वसुधर। ये आठों ही ब्राह्मण प्रहदान लेते थे। प्रहदान लेनेके कारण इनका नाम 'प्रहविप्र' पड़ गया। बराह, सूर्य और बृहस्पतिका दान ग्रहण करते थे; सोम सोमका, ईशान मङ्गलका, शान्ति बुधका, भृगु शुकका, धनञ्जय शनिका, दनु राहुका और बराह केतुका दान ग्रहण करते थे। उनमें बराह काश्यप-गोत्रीय थे, सोम कौशिक, ईशान, गौतम, शान्ति वात्स्य, भृगु, भरद्वाज, धनञ्जय पराशर, दनु शारिङ्ग्य और वसुधर मीन्द्रल्यगोत्रीय थे।\*

भाचार-व्यवहार।

भारतमें आ कर घास, वादचकन्याके साथ विवाह और भारतवासियोंके साथ घनिष्ठताके कारण शाकद्वीपियोंका आचार-व्यवहार भारतीयोंके सदृश हो गया था। यहां तक कि कई पीढ़ियोंके बाद सूर्यपूजा और तदुपयोगी अनुष्ठानादिके सिवा अन्य किसी समयमें उनका शाकद्वीपो भाव नहीं मालूम होता था।

सूर्यपूजाके समय धर्मके बदले यज्ञ (आवस्तिक धरेशम<sup>१</sup>) और अश्वज (जिन्दनायामें ऐव्यांहन) धारणन,

\* इस देशके शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंके कुलग्रन्थमें भी आठ ब्राह्मणोंके भागमन्त्री कथा मिली हुई है।

<sup>१</sup> यन्त्रदेशके अतिन्यून पारसी पुरोहितगण अभी इसे Baisom कहते हैं। अयस्तासाखके जानकार मि० हौग कहते हैं, कि—

'A bundle of twigs (beresma uowadays barsom) which are tied together by means of reed. Without these implements, which are evidently the remnants of sacrifices agreeing to a certain extent with those of the Brahmans, no jashne can be performed by the priest Haug's parsis, p. 140

+ The aiwyaanhanem is the girdle or tie with which the Barsom is to be tied together. It is prepared from a leaflet of a date palm, which

पूजाके समय मित्र-भक्तके पत्तजाल वा पतिदानसे मुखा-  
च्छादन, पूजामें सर्पनिर्मोक ध्वजहार, ध्रौप ( आवस्तिक  
'ध्रौप' )की पूजा, श्वसतों ( आवस्तिक 'सोप्यन्त' अर्थात्  
अग्निपुरोहित' )के प्रति भक्ति, इत्यादि अनुष्ठानोंमें वही  
आदि शाकद्वीपीय प्रथा ज्योंकी त्यों मौजूद थी। विशेष-  
तः भविष्यपुराणसे भी मालूम होता है, कि भारत-  
वासियोंके अध्वरहोत्रका तरह शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंके लिए  
'अचपु' नामक होत्र अवश्य प्रतिपाद्य समझा जाता था।  
वर्त्तमान अग्निपूजक पारसी पुरोहित लोग 'इजपु' नामक  
जिस यज्ञको करते हैं, उसीका अवस्तामें 'अचपु' और  
भविष्यपुराणमें 'अचपु' नामसे वर्णन है।<sup>१</sup> भविष्यपुराण-  
से मालूम होता है, कि सूर्यके साथ उनकी पत्नी निक्षभा  
या हावनीकी पूजा की जाती है। इन हावनीकी बात  
अवस्तामें भी कही गई है। अग्निपुरोहितांके आदि कृत्य-  
का नाम भी हावनी था।<sup>२</sup> इसके सिवा और सब पूजाङ्ग  
तथा विधिष्यवस्था सारी भारतीय आर्योंके समान थी।  
परन्तु वर्त्तमान शाकद्वीपी ब्राह्मणोंमें अब यह विशेषत्व  
दृष्टे भी नहीं मिलता। यह कहना शाकद्वीपीय अत्युक्ति  
नहीं, कि शाकद्वीपीय प्रथा एक प्रकारसे लुप्त हो गई है।

शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंका जो विशेषत्व दिखलाया गया  
है, उसके साथ पारसिक अग्निपूजकोंके भूजाङ्गका सादृश्य  
होनेसे यह न समझ लेना चाहिए, कि बर्म्हप्रदेश वासी  
पारसिक और शाकद्वीपीयण एक ही सम्प्रदायके हैं। यंदेश  
प्रदेशके अग्निपूजकगण जरथुल-मतावलम्बी थे और उन-  
के पूर्वपुरुषगण ईसाकी दशवीं शताब्दीमें मुसलमानोंके  
अत्याचारसे भारतमें भाग आये थे।<sup>३</sup> परन्तु सौर शाक-

द्वीपीयण जरथुलके विरुद्धवादी थे तथा हजारों वर्ष पहले  
भारतमें आये थे। शाकद्वीपीयकी अति प्राचीन प्रथा  
दोनों सम्प्रदायोंमें प्रचलित होनेसे दोनों एक ही मालूम  
देंते हैं परन्तु फिर भी यह मानना पड़ेगा कि दोनों सम्-  
प्रदायोंमें बहुत पूर्वकालसे ही कोई संबन्ध नहीं रहा है।

भारतमें शाकद्वीपियोंका वंश-विस्तार।

आदित्यकी उपासना भारतमें वैदिक युगसे प्रचलित  
है। परन्तु शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंके आगमनसे पहले  
सूर्यकी प्रतिमा नहीं बनाई जाती थी, न इस देवताकी  
मूर्त्तिविशेषकी पूजा ही होती थी। मित्रके प्रतिमूर्त्तिका  
बनना और उसको पूजाका प्रचार, ये दोनों ही शाक-  
द्वीपीय ब्राह्मणोंका प्रधान लक्ष्य था। उनकी कौटिलसे  
हजारों वर्ष पहले सम्पूर्ण सम्भव-जगत्में मित्रपूजा प्रचलित  
हुई थी। भारतमें जहां कहीं जितनी भी सूर्यकी मूर्त्तियां  
प्रतिष्ठित हुई हैं, उन सबको प्रतिष्ठा इन शाकद्वीपीय  
ब्राह्मणोंके प्रभाव या प्रादुर्भावसे ही हुई है।

मुलतःनमें शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंका आदि उपनिवेश  
होने पर भी पञ्जाबके अन्तर्गत शाकल नामक स्थानमें  
बहुपूर्वकालसे उनका वास था। सम्भवतः इसीलिए यह  
स्थान 'शाकल' नामसे प्रसिद्ध हुआ था। अब भी  
भारतमें सर्वत्र ही शाकद्वीपीय ब्राह्मणगण अपनेको  
'शाकल द्विज' कहते हैं। किसी समय शाकलद्वीपीय-  
गण भारतमें बहुत स्थानोंमें विस्तृत और गणनीय हुए  
थे, इस बातका आभास ब्रह्मजामलके मिलता है।  
ब्रह्मजामलके १४वे अध्यायमें लिखा है—

शरद्वीपमें चदानि, शाकद्वीपमें सिद्ध, भूमध्यमें

is cut from the tree by priest after he has pou-  
red consecrated water over his hand, the knife  
the leaflet." Haug's Parsis, p. 396. भविष्यपुराणमें  
'अच्य' गोत्वत्ति' नामका एक स्वतन्त्र अध्याय ही है।

<sup>१</sup> यह 'अचपु' होत्रकी प्रक्रिया Haug's Essay on  
Parsis, p. 443-447 में देखना चाहिए।

<sup>२</sup> इनके पुरोहित 'दस्तुर' नामसे प्रसिद्ध हैं। दस्तुर लोग  
अधिकारमें हमारे यहांके ब्राह्मणोंके समान हैं। उनके उपनय-  
नादि संस्कार होते हैं। एकमात्र पुरोहितवर्गके सिवा दस्तुर

लोग अन्य वंशमें विवाह सम्पन्न नहीं कर सकते और न पुरोहित  
वंशके सिवा अन्य पौरोहित्य ही कर सकते हैं।

<sup>३</sup> भविष्यपुराण, शान्त्वराय और गृह्यामलमें शाकद्वीपीय  
शान्त्वपुरमें जो ब्राह्मणगणमनका प्रयोग है, उसे कल्पित उपासना  
कह कर उड़ाया नहीं जा सकता। पुराणोंके सिवा शाकद्वीपी  
ब्राह्मणोंमें भी भारतमें यद किम्बदन्ति जैसी आ रही है। यही  
तक कि हजार वर्ष पहले के सिनालेखमें भी यह विवरण पाया  
गया है। देखो बंगलाका "बंगर-जांतीय इतिहास" भाष्यकी ४  
४ थीं।

ब्रह्मचारी, द्वारकापुरमें देवह, द्राविड और मैथिलमें ब्रह्म-विप्र, धर्माङ्गदेशमें धर्मवका, पञ्चालमें शाहो, सारस्वत-प्रदेशमें शुभमुख, गान्धारमें चित्रपण्डित, तिरहुतमें तिथि-वित्, नाटकाचलमें ( कामरूपमें ) श्मश्रु-सूचक, रुद्रालय-में ज्योतिषी, ब्रह्मदेशमें विधिकारक, वज्राटमें योगवेत्ता, नेपालमें देवपूजक, राढ़देशमें उपाध्याय, गयामें तन्त्र-धारक, कलिङ्गमें जान और गौड़देशमें आचार्य नामसे प्रसिद्ध हैं ।

श्रीक-राजदूत मेगास्थनीजने पाटलिपुत्रमें रहते हुए उस प्रान्तमें पायंत्य-भूमिभागमें सूर्य पूजा देखी थी । प्राचीन पालि-ग्रंथमें भी पाया जाता है, कि बुद्धदेवके समयमें ज्योतिषी शाकद्वीपीय ब्राह्मणगण विशेष प्रचल थे । ब्रह्मजालसूत्र नामक पालिग्रंथमें बुद्धदेव उन ब्राह्मणोंको निन्दा करते पाये जाते हैं । इससे इस बातकी सम्भावना होती है, कि शाकद्वीपीय ब्राह्मणगण बुद्ध-प्रचारित धर्मके विरुद्धवादी थे इमोलिण वीहेंके मूल-ग्रंथमें देवह ब्राह्मणोंको विशेष निन्दा पाई जाती है ।

पहले शाकराजगण भारतमें आ कर बुद्धके माहात्म्य-को सुन कर बौद्धधर्ममें विश्रित हुए थे, परन्तु अपने अपने पितृपुरयानुष्ठित सुप्राचीन मित्वपूजाको छोड़नेके लिए कोई भी तयार न हुए थे, उनके सिक्कोंमें मित्वपूजाका निदर्शन मौजूद है । शाकराजाओंके सिक्कों पर मित्व 'मिहिर' नामसे उल्कीर्ण है । यह मित्वपूजा उस समय एकमात्र शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंके पारोहित्यमें ही सम्पन्न होती थी । इसलिये शाकराजगण बौद्धमतावलम्बी होने पर भी, उनके पुरोहित शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंका प्रभाव एकधारगी विलुप्त नहीं हुआ था । अधिकतः यही सम्भव है, कि इन शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंके प्रभावसे ही परवर्ती समयमें लगभग सभी शाकराजाओंने हिन्दूधर्म ग्रहण किया था और गो-ब्राह्मणके कट्टर भक्त

हो गये थे । यदि ऐसा न होता तो उपवदात जैसे एक विशुद्ध शकाधिप अपनेको गो-ब्राह्मणभक्त कहनेमें गौरव नहीं सम्भक्ते ।

मित्वभक्त शाकद्वीपीय ब्राह्मण लोग 'मित्व' और 'मिहिर' उपाधिका व्यवहार करते थे । प्राचीन शिलालेख और प्राचीन ज्योतिषग्रंथोंमें इस बातका प्रमाण मिलता है । किसी किसी पुराणमें शुद्ध और उनके बादके काण्वायन राजा 'द्विज' कहलाये हैं । प्रसिद्ध प्रतमत्स्वविद् कनिंहाम साहवने शकराज वासुदेवको काण्वायन-वंशीय प्रथम राजा सिद्ध किया है और फिल्ट साहवने, जो कि पुरातत्त्वविद् हैं, काण्वायनवंशीय ३य राजा नारायणको 'तुयार' वंशीय बताया है । ऐसी ढगमें ये काण्वायन ही शाकद्वीपी द्विज सिद्ध होते हैं । 'शुद्धमित्व'के नामसे किसी प्राचीन जैन-ग्रन्थमें भी इन कावर्णन है । इन शुद्ध और काण्वायनोंमें बहुतांकी 'मित्व' उपाधि पाई जाती है । सम्भवतः मित्वभक्त शुद्ध और काण्वायनोंके समय ही शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंका प्रभाव भारत व्यापी हुआ था । उसके बाद अन्धराजाओंने प्रचल हो कर काण्वायन-राज्यका प्राप्त किया और बहुकाल शकोंके साथ संग्राममें लिप्त रहने पर भी अन्तमें २य शक-राजाओंके साथ वैवाहिक सम्बन्धमें आवद्ध हुए थे । इस लिए शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंको इससे फायदाके सिवा कुछ सान नहीं हुआ ।

शक राजाओंका प्रभाव भारतमें बहुत विस्तृत हुआ था और बहुत समय तक रहा था, यह पहले ही कहा जा चुका है । वे शक राजा प्रधानतः 'मित्व' नामक सूर्यभक्त थे, इसलिये उनका 'मित्व' नाम भी पड़ा था । बलभोरारजोंके ताद्वलेखोंमें मित्वकगण 'अनुलवलसम्पन्न' कहलाये हैं, और इसाकी ५वीं शताब्दीमें इन मित्वकोंकी संग्राममें पराजित करके ही सुराद्रके बलमीराजवंशके स्थापयिता

\* Indian Antiquary 1888 p. 91.

१. ये मित्व-पूजक लोग 'मिहिर' 'मिहिरकुल' या 'मिहिरगोत्र' भी सम्भक्ते जाते थे । अब भी जरशुत्र मतावलम्बी बहुतांसे पारसी-पुरोहितवंश मिहिर उपाधि धारण करते हैं, जिनके पूर्वपुरुष-गण मिहिरके उपासक थे ।

\* अथस्तोके यरनमें उपवदात नामके एक ऋषिका उल्लेख है । उसीके अनुकरणसे यह उपवदात नाम हुआ होगा ।

† Fleet's Corpus Inscriptionum Indicarum vol. 111 p. 279.

‡ भारतवर्ष शब्द देखो ।



सेनापति महार्षाका स्त्रीभाग्य उदित हुआ था। उनके यशस्वर महाराज धरपट्ट 'परमादित्यभक्त' के नामसे प्रसिद्ध हुए और तो क्या, सम्राट् हर्षवर्द्धनके पितामह आदित्य-वर्द्धन और प्रपितामह राज्यवर्द्धन दोनोंने ही अपने ताघ लेखमें 'परमादित्यभक्त' उपाधिका व्यवहार किया है।

इसाकी ७वीं शताब्दीमें मैत्रक शकोंका प्रभाव चिल्लत होने पर भी उस समय शकोंकी हण नामकी एक शाखा भारतमें अपना प्रभाव विस्तार कर रही थी। उनके अभ्युदयसे गुप्तसाम्राज्य फँप उठा था। गुप्त-सम्राट् स्कन्धगुप्तकी शिलालिपिसे मालूम होता है, कि वे हणोंके प्रभावकी दमन करनेके लिए बद्धपरिकर हुए थे। उनके समयमें भी देला जाता है कि, इन्दौर और मगधमें सूर्यमन्दिर प्रतिष्ठित हुआ। सभी हण 'मिहर' वा सूर्यभक्त थे। उनके प्रधान अधिपतिने तोरमानके पुत्र 'मिहिरकुल'के नामसे अपना परिचय दिया है। इस मिहिरकुलके प्रभावसे गुप्तसाम्राज्य चूर्ण चिचूर्ण हो गया था। अन्तमें भारतके समस्त राजाओंने मिल कर मिहिरकुलका निपात किया था। इस मिहिरकुलने अपने नामानुसार 'मिहिरेश्वर' नामक एक वृहत् सूर्यमन्दिरकी प्रतिष्ठा की थी।

हमें भविष्यपुराणमें शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंका 'मिहिर-गोल' मिला है। फिर हण-राजा मिहिरकुलके बाद शाक-द्वीपीय ब्राह्मणोंमें बहुताँकी 'मिहिर' उपाधि देली जाती है, जिनमें बोधगयाके वसुमिहिरः और भारतके सर्वा-प्रधान ज्योतिर्विद् बराहमिहिरका नाम उल्लेखयोग्य है। जिन मालवके राजा यशोवर्मने मिहिरकुलको पराजित करके 'विक्रमादित्य' की उपाधि अर्जन की थी, बड़े ही आश्चर्यकी बात है कि, बराहमिहिरने उन्हींकी समाकी बालोक्ति किया था और फिर यशोवर्माके सहयोगी मिहिरकुल-हन्ता गुप्त-सम्राट् बालादित्य मगधके 'मित्र' उपाधिधारी भोजक (शाकद्वीपी) ब्राह्मणोंको सम्मानित करके मगधकी सूर्यसेवाके लिए भूमिदान की थी। हमें वृहत्संहितासे पता लगता है, कि बराहमिहिरके

समयमें भी सूर्यपूजा एकमात्र शाकद्वीपी ब्राह्मणोंके ही अधिकारमें थी। बराहमिहिरने लिखा है—

विष्णुके पूजक भागवत हैं, सूर्यके पूजक मग, शिवके भस्मधारी द्विज, मातृगणके मातृमण्डलविद् ब्राह्मण, ब्रह्माके विप्र, सर्वाहित ज्ञान्तमना बुद्धके शाक्यब्राह्मण और जिनोंके उपासक दिगम्बर लोग हैं। इस प्रकार जो जो जिन-जिन देवोंके उपासक हैं उन्हें अपने नियमानुसार अपने अपने देवोंकी पूजा करने चाहिए।  
(वृहत्संहिता ४०।१६)

बराहमिहिरके बहुत पीछे इसाकी १०वीं शदीमें आवृष्टिहानने भारतमें एकमात्र शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंकी सूर्यपूजाका अधिकारी पाया था।

शिलालेखोंका सहायतासे विदित होता है कि, अबसे १४०० वर्ष पहले मगधमें शाकद्वीपीय भोजक विप्र पुण्या-नुक्रमसे सूर्यपूजाके अधिकारी थे। शाहाबाद जिलेके देववरणार्क ग्रामसे प्राप्त मगध राज २५ जोवितगुमके शिलालेखमें लिखा है कि, देववरणार्क ग्राममें अति प्राचीनकालसे भोजक विप्रोंका वास था। यहाँके वरणार्क नामक सूर्यदेवकी सेवाके व्यय-निर्वाहके लिए मगध-पति बालादित्य देवने भोजक सूर्यमित्रकी यह ग्राम दानमें दिया था। गुप्तराजका अधिकार लुप्त होने पर उस प्रान्त पर वर्मभूपालोंका अधिकार हो गया। उन लोगोंने भी भोजक विप्रोंके देवस्वमें हस्तक्षेप नहीं किया; प्रत्युत समय समय पर इस ग्रामकी प्रहोत्तर सम्भर कर भोजकोंको माफ कर दिया था। उनमेंसे महाराज सर्वयर्माने पहले पहल भोजक हंसमित्रको गांव दिया था। उनके बाद भोजक श्रियमितने अवस्तियर्मासे प्राप्त किया। इसी प्रकार मगध-राज २५ जोवितगुमने भी भोजक बुद्धरमितकी उक्त गांव दिया था\*।

\* २५ जोवितगुमका शिलालेख इसाकी ७वीं शदीमें सुदा हुआ है। उसके अन्तमें लिखा है—“विशपित भौरुष्यावति भट्टारक प्रतिवद्-भोजक-सूर्यमित्रेण उपरिज्ञितम्...ग्रामादिदं पुन परमेश्वर श्रीवासादित्यदेवेन वरशासनेन भगवच्छ्री-वृष्यवासी महारक...परिवाहक...भोजकहंसमित्रस्य समापत्या यथाकाश-ध्यातिभिश्च एवं परमेश्वर श्रीवर्षर्ष...भोजक श्रियमित-यनक एवं

\* Fleet's Inscriptions of the Gupta kings, Vol. 111 p. 168

† R. Mitra's Buddha Gaya, p. 185.

मगधमें भोजक वा मग ब्राह्मणोंका प्रभाव क्रमशः वृद्धि-  
को प्राप्त हो रहा था । ईसाकी १०वीं शताब्दीमें यहां  
मान-राजवंश प्रबल हो उठा । शाकद्वीपी ब्राह्मणोंने इन  
मान-राजाओंसे भी सम्मान पाया था । उनमेंसे कोई  
शास्त्री, कोई सभा-पण्डित, कोई ब्राह्मण-विवाक आदि राज-  
कीय उच्च पदों पर नियुक्त हुए थे । गया जिलेके अन्त-  
र्गत गोविन्दपुर ग्रामसे १०५६ शकाब्दकी खुदी हुई एक  
शिलालिपि मिली है, उसमें मान राजवंश और शाक-  
द्वीपीय किसी प्रसिद्ध पण्डितवंशका परिचय दिया  
गया है ।

घोरे घोरे शाकद्वीपीय ब्राह्मणगण समग्र भारतमें नाना  
शाखाओंमें विभक्त हो गये थे । कृष्णदासरचित मग-  
ध्यक्ति नामक ग्रन्थसे ज्ञात होता है कि, शाकद्वीपी  
विप्रगण विभिन्न स्थानोंमें वासके कारण २४ पुर, १२  
आदित्य, १२ मण्डल और ७ अर्क इन ५५ शाखाओंमें  
विभक्त हुए थे । मगध्यक्तिके विवरणसे मालूम होता है  
कि, उत्तरमें हिमालय, दक्षिणमें निजामराज्य, पश्चिममें  
पञ्जाब और पूर्वमें गौड़ और उत्कल तक प्रायः सर्वांत  
शाकद्वीपीय भोजक विप्र फैले गये थे । जिन-जिन स्थानों-  
में पूर्वकालसे सूर्य मूर्ति प्रतिष्ठित थी, उन उन नगरों वा  
ग्रामोंके नामानुसार 'आर' या पुर, मण्डल, आदित्य और  
अर्क नामकी विभिन्न शाखाएँ कल्पित हुई थीं । मग-  
ध्यक्तिमें जिन सप्ताकोंका उल्लेख है, उनमेंसे वरुणाकं  
भी एक है । इस स्थानसे प्राप्त ७वीं शताब्दीमें  
उत्कीर्ण शिलालेखसे भोजक विप्रोंका जो परिचय मिला  
है, वह पहले ही लिखा जा चुका है । काजीखण्डमें लोम्बाकं  
के परिचयमें और साम्बपुराणमें कानाशंके माहात्म्य  
प्रसङ्गमें शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंके आगमनकी बात विस्तृत-  
रूपसे लिखी है । ईसाकी ११वीं सदीके प्रारम्भमें  
आबूरिहानने साम्बपुराणका उल्लेख किया था । ऐसी  
दशमें ईसाकी ११वीं सदीसे भी बहुत पहले उत्कलमें

शाकद्वीपी ब्राह्मणोंका आना सिद्ध होता है, इसमें सन्देह  
नहीं । कोष्पाकं देखो ।

बंगालमें भोजकब्राह्मणोंका आगमन ।

गौड़में किस समय शाकद्वीपीय प्रहविप्र आये थे  
इस बातका ठीक ठीक पता लगाना कठिन है, कोई  
वास्तविक प्रमाण नहीं मिलता । कृष्णदासके मग-  
ध्यक्तिमें पुण्ड्रार्क और तदन्तर्गत पुण्डरीकार्कका प्रसङ्ग  
पाया जाता है । जिस समय गौड़को राजधानी पुण्ड्र  
वा पुण्ड्रवर्द्धनमें थी, पुण्ड्रवर्द्धनके उस समृद्धिकालमें  
ही सम्भवतः यहां शाकद्वीपी ब्राह्मणोंका आगमन हुआ  
था । राजतरङ्गिणीसे भी हमें ईसाकी ८वीं सदीमें,  
गौड़ाधिप जयन्तके अधिकारकालमें, पुण्ड्रवर्द्धनकी पधेपे  
समृद्धिका परिचय मिलता है । पाल राजाओंके समय-  
में भी पुण्ड्रवर्द्धनकी समृद्धि यथेष्ट थी । राजाचण्डालसेन  
के गौड़नगरमें ईसाके १२वीं सदीके प्रारम्भमें राजधानी  
स्थापन करने पर पुण्ड्रवर्द्धनकी समृद्धि विलुप्त हो गई ।  
ऐसी स्थितिमें अनुमान होता है कि, राजा चण्डालसेनके  
बहुत पहले ही शाकद्वीपी विप्र पुण्ड्रवर्द्धनमें पहुँच गये  
थे । वे यहांके पुण्ड्रार्क नामक सूर्यमूर्ति की सेवामें  
नियुक्त रह कर सम्भवतः 'पुण्ड्राशं' नामकी एक पृथक्  
शाखामें शामिल हुए थे । ये 'पुण्ड्रार्क' शाखावाले गौड़के  
प्रथम शाकद्वीपी द्विज मालूम होते हैं । पुण्ड्रार्कको हम  
मामूली तीर पर वारेन्द्र शाकद्वीपी भक्त सङ्गते हैं, परन्तु  
दुःखका विषय है, कि इस वारेन्द्रश्रेणीके प्रहविप्रोंके आदि  
कुलका परिचय देनेवाला ऐसा कोई ग्रन्थ ही नहीं  
मिलता, जिम्से हम इस पर जोर दे सकें ।

राष्ट्रीय और नदीपावङ्ग-समाजके प्रहविप्रोंके कुछ  
कुल-श्रेण्य उपलब्ध हुए हैं, उनसे हमें बङ्गीय शाकद्वीपी  
ब्राह्मणोंका कुछ कुछ परिचय मिलता है ।

राष्ट्रीय बालि-समाजके प्रहविप्रोंकी कुल-पञ्जिकामें  
लिखा है—शाकद्वीपमें मार्कण्डेय, माण्ड्य, गर्ग, पराजग,  
भृगु, सनातन, अङ्गिरा और जङ्गु ये आठ मुनि थे । उनके  
वंशधर महाजतिके प्रभावसे प्रति दिन प्रह-चालना करते  
थे । प्रह-सम्बन्धी दानग्रहण करनेसे वे प्रहविप्र कहलाये ।  
गर्गु शाकद्वीपमें जा कर उन्हें ले आये, जिनके नाम इस  
प्रकार थे—वराह, सोम, ईशान, शारित, शुक्र, धनञ्जय,

परमेश्वर श्रीमदवन्तिवर्मणा पूर्वं दत्तकमवलम्ब्य... एव महाराजा-  
धिराज परमेश्वर... शासनदानेन भोजक दुर्द्धरमित्यनुमोदित...  
तेन मुख्यते ।" ( Fleet's Inscriptions of the Gupta  
kings, p, 217. )

दत्तु और वसुन्धर ये आठों ही प्रहविम थे, जिनमें वराह काश्यपगोत्री, सोम घृतकौशिक, ईशान गौतमगोत्र ज्ञान्ति वातरयगोत्री, भृगु (शुक) भरद्वाज, धनञ्जय पराजय, दत्तु शाण्डिल्य और वसुन्धर मीरुल्य गोत्रों थे। इन आठोंके वंशधर पृथु, नृसिंह, विष्णु, लोकनाथ, जनार्दन, केजय, कृत्तिवास, नारायण, दण्डपाणि और महानन्द ये दश व्यक्ति मघादेशसे गौडदेशमें जाये। इनकी उपाधियां बृहज्ज्योषी, काश्यपि, आम्हा, आचार्य, घटक, पाठक, मिश्र, उपाध्याय, जमदग्नि और आलम्बान थीं। इनमेंके बृहज्ज्योषीके काश्यपगोत्रको ले कर तथा कजपाटिके घृतकौशिक, ओम्हाके गौतम, आचार्यके मीरुगल्य, घटकके भरद्वाज, पाठकके वात्स्य, मिश्रके शाण्डिल्य, उपाध्यायके पराजय, जामदग्न्य और आलम्बमानको ले कर दश जनोंके दश गोत्र प्रसिद्ध हुए। राष्ट्रीय प्रहविप्र इन्होंने दश व्यक्तियोंकी सन्तान हैं।

(राष्ट्रीय शाकलदी०)

नदिया-बङ्गसमाजको कुलपञ्जिकामें भिन्न भिन्न व्यक्तियोंके नाम और उनके आगमनके कारण इस प्रकार लिखे हैं :-

'कुल और क्लो'से परिपूर्ण नाना वृक्षोंसे शोभित रमणीय सरयू नदीके तट पर घेद्वेशङ्गके पारगामी नाना शाखोंमें कुछल जपयज्ञपरायण ब्राह्मणगण वास करने थे। किसी समय गौडदेशाधीश्वर नृपतिश्रेष्ठ धर्मात्मा शशाङ्क प्रह्वैगुण्यके कारण रोगमें पड़ और कष्ट पाने लगे। वैयोंके अच्छी तरह चिकित्सा करने पर भी उन्हें शांति न मिली जिससे उन्होंने स्वस्वयन करनेको निश्चय किया। राजाके आदेशानुसार मन्त्रियों द्वारा प्रेरित दूतगण सरयूके तट पर जा कर कुछ ब्राह्मणोंको ले आये।

'विष्णु, सनातन, सुयश, शङ्कर, देवधर, सुदर्मा, वासुदेव, प्रजापति, चतुर्भुज, लोकेश चक्रपाणि और माधव ये दश ब्राह्मण गौडदेशके राजा शशाङ्क द्वारा बुलाये जाने पर गौडमण्डलमें आये। राजाने उन महारत्ना विभीके प्रह्वानको जान कर उन्हें अपने भवनमें बुलाया और प्रह्वयश कराया। प्रह्वयशमें जिन्होंने भाग लिया था, उनके गोत्र इस प्रकार हैं:-विष्णुका काश्यप,

सनातनका कौशिक, सुयशका वात्स्य, वासुदेवका शाण्डिल्य, सुदर्माका मीरुल्य, देवधरका पराजय, शङ्करका गौतमगोत्र, चतुर्भुजका जामदग्नि, चक्रपाणिका गण और माधवका आलम्बमान। सुदर्मा तन्त्रधारके कार्यमें, प्रजापति होतृकार्यमें, विष्णु-प्रलोकर्ममें और शंकर सदस्यकर्ममें, सुयशके जपकर्ममें सुयश नियुक्त हुए। चन्द्रके जपकर्ममें सनातन, मङ्गलके जपमें चतुर्भुज, बुधके जपमें चक्रपाणि, बृहस्पतिके जपमें देवधर, शुकके जपमें लोकेश और राहुकेतुके जपकर्ममें सधोवर माधव गौडेश्वर द्वारा नियोजित हुए। ये भूदेवगण यथाविधि राजाके प्रह्वयशको सम्पन्न कर राजाके आदेशसे परिवार-सहित गौडदेशमें ही रहने लगे। उनके ज्योतिःशास्त्रपरायण पुत्रगण प्रह्वोंका दान प्रह्वन करनेके कारण प्रह्विम कहलाये। स्थान-भेदसे इनमें कई समाज हो गये हैं। उपाध्याय, पाठक, आचार्य, मिश्र, बृहज्ज्योषी और क्षीरत ये उनकी वंशोपाधियां हैं।

(उमेशचन्द्र रामोष्ठ्य महादेवकारिका)

इससे मालूम होता है, कि गौडदेशीय शशाङ्क नृपति किसी समय रोगसे पीड़ित हुए थे। रोगसे सुटकारा पानेके लिए उन्होंने सरयू-तीरसे कई ब्राह्मण बुला कर उनसे यज्ञ कराया। उन्हींकी सन्तान गौडदेशमें बसी और प्रह्विम या आचार्य नामसे प्रसिद्ध हुई।

वाल्मि की मध्यराट-समाज और नदीया-बङ्गसमाजके कुलप्रन्थसे ज्ञात होता है कि, पूर्वोक्त समाजके आदिपुत्रगण मध्य-प्रदेशसे राडदेशमें आये थे और शैवोक समाजके पूर्वपुरुष गौडके राजा शशाङ्ककी समाजमें प्रह्वयशके लिए बुलाये गये थे। उत्तरमें हिमालय, दक्षिणमें विन्ध्यगिरि, पिनशन वा सरखतोके अन्तर्धान-प्रदेशसे पूर्वमें तथा प्रयागके पश्चिममें मध्यदेश अवस्थित हैं। (मनुष०) सरयू-तीर इस समाजके बाहर है। इसलिए दोनों समाजोंके पूर्वपुरुष विभिन्न स्थानोंसे आये प्रतीत होते हैं। दोनों समाजके कुल-प्रन्थोंको आलोचना करनेसे भी यही मालूम होता है कि, दोनों ही समाज विभिन्न शाखाओंसे उत्पन्न और विभिन्न समयमें गौडमें आये थे। देवधर, महविम, कोष्पाक, शाकदीपी आदि शब्द देना।

भोजक—जैन पुरोहित ।

भोजकवि—१ चरखारीके रहनेवाले एक भाट-कवि । इनका जन्म सम्यत् १६०१में हुआ था । इनका दूसरा नाम था विहारोलाल बन्दीजन । ये चरखारीके महाराज रतनसिंहके दरबारी-कवि थे । इनकी कविता असाधारण होती थी । इनका बनाया 'भोजभूषण' और 'रस-विलास' ग्रंथ उत्तम हैं । ये शरफो नामकी एक घेश्या पर आशक्त थे ।

२ एक ब्राह्मण-कवि । इनका जन्म स० १७८१में हुआ था । इनकी 'मिश्र' की उपाधि थी । ये महाराज बुद्धूदेके दरबारमें रहते थे । इनका बनाया 'मिश्रशृङ्गा' नामक एक ग्रन्थ है ।

भोजखेरि—मध्यभारतके इन्दौर राज्यान्तर्गत एक ठाकुरात-सम्पत्ति ।

भोजदुहित ( स० स्त्री० ) भोजस्य दुहिता । भोजपुत्री, भोजकन्या ।

भोजदेव ( स० पु० ) भोजो देव इय । भोजराज ।

भोजराज देखो ।

भोजदेव—कच्छके एक राजा, भारमल्लके पुत्र । बाप धर्म-प्रदीप नामक धर्मग्रन्थ बना गये हैं ।

भोजदेव—१ कन्नोज राज रामभद्रदेवके पुत्र । आदिबराह उनकी पदवी थी । २ महोदयाधिपति महेंद्रपालदेवके पुत्र । ३ जयशालमौरके एक महाराज । ४ परमारराज सिन्धुराजके पुत्र । ये मालव और गोपगिरिके अधिपति थे । अपने बाहुबलसे इन्होंने महाराजाधिराजकी उपाधि अर्जन की थी । ये प्रसिद्ध भौगोलिक आल्लूवाणणोके समसामयिक थे । ५ एक प्रतिहार राजा नागभट्टके पुत्र । ६ गिलालपि-वर्णित एक प्राचीन हिन्दूराज ।

भोजराज देखो ।

भोजदेश—प्राचीन कीकट-राज्यके अन्तर्गत देशभेद । यहाँ एक समय व्याघ्रेश्वर शिवमन्दिर प्रतिष्ठित था ।

भोजन ( स० स्त्री० ) भुज् व्युट् । ( व्युट् च । पा ३।३।११४ )

भक्षण, कठिन पदार्थोंका गलसे निगलना । पर्याय—जग्य, जेमन, लेप, आहार, निघस, न्याय, जमन, विघस, अभ्यवहार, प्रत्यवसान, अशन, स्वदन, निगर ।

( राजनि० )

यह स्थूल शरीर अन्नधार पर ही अवलम्बित है । यह भोजन मिलनेसे पुष्ट और न मिलनेसे क्षीण होता रहता है । धर्मशास्त्र अथवा वैद्यक इन दोनोंमें ही भोजन-के विषयकी आलोचना प्रत्यालोचना देखी जाती है । भावप्रकाशमें लिखा है,—

“शरीरे जायते नित्यं वाह्यं नृणाञ्चतुर्विधा ।

धुमुन्ना च पिपासा च सुपुष्पा च रतसृष्टा ॥

भाजनेच्छाविधातात् स्यादंगमर्देऽ रुचिः श्रमः ।

तन्द्राज्ञोचन दीर्घल्यं घातुदाहो बहन्नयः ॥”

( भावप्रकाश )

प्रत्येक मनुष्यको स्वभावतः नित्य चार प्रकारकी अमिलाया उदित होती है । जैसे,—भोजनेच्छा, पानेच्छा, निद्रामिलाय और कामकामना । किन्तु इन सब इच्छाओंको रोक कर भूखके समय भोजन न करनेसे आलस, अरुचि, थकावट, तन्द्रा, नेत्रोंकी दुर्बलता, रसरक्तादि घातुओंकी जोर्णता तथा बलकी हानि होती है । प्यास लगने पर पानी न पीनेसे तालू और कण्ठ सूख जाता है । साथ ही श्रवणेंद्रियमें रुकावट पैदा हो जाती, रक्त सूखने लगता तथा हृदयमें दर्द उत्पन्न हो जाता है । इसी तरह निद्राको रोक देनेसे भोजन की हुई वस्तुका ठीक तरहसे परिपाक नहीं होता । सिवा इसके तन्द्रा आदि कई दोष उत्पन्न हो जाते हैं । जैसे जलानेके लिये कोई चोज न मिलने पर आग स्वयं मन्द पड़ जाती उसी तरह जठराग्निको भी भोग्य-वस्तु प्राप्त होनेसे वह मन्द पड़ जाती है । जिसे हम मन्दाग्निका रोग कहते हैं । जठराग्नि पहले भोजन की हुई वस्तुको पचाती है, जब उसको कुछ नहीं मिलता, तब वह शरीरके कफ आदि दोषोंको तथा इसके बाद रसरक्तादि घातुओंको जलाने लगती है । इसके बाद वह अन्तर्में प्राणवायु तक-को भी जला डालती है । इसलिये भोजन प्रीतिउत्पादक, बलकारक, शरीररक्षक और स्मरणशक्ति, परमायु, योग्य, वर्ण आदिको बढ़ानेवाला है ।

“यथोक्तं गुणसम्पन्नं नरः सेवेत भोजनम् ।

विचार्यं दोष कालादीन् कालवोरुमयोरपि ॥

द्ययं प्रातो मनुष्यायाम् शानं ध्रु तिरोधितम् ।

नान्तराभोजनं कुर्यादिग्नौघ्नमो विधिः ॥



गृहस्थको पलासके पत्तेमें तथा पत्रपत्र (पुरइनी) में भोजन करना विलकुल निषिद्ध है। गृहस्थ यदि आक-के पत्ते, तांघे और लोहेके बरतनमें और कदलीपत्रकी पीठ पर भोजन करे, तो उसे चान्द्रायण मत करना होता है।

“तेजसानां मण्डीनाश्च सर्वस्याभ्रमवस्य च ।  
मसनाधिर्मुदा चैव शुद्धिश्चा मनीषिभिः ॥”

(आह्निकतत्त्व)

सोना, चांदी, पत्थर, शङ्ख और स्फटिकके बने बरतनमें भोजन करना उत्तम है। ये सब पात्र अपवित्र होने पर राख तथा जलसे मल देने पर पवित्र हो जाते हैं।

गोबरसे लोप-पोत कर समभूमिमें मण्डलरेखा खींच कर उस पर भोजनका पात्र रख भोजन करना चाहिये। यह मण्डल ब्राह्मणको श्रीकोन, क्षत्रियको त्रिकोण, वैश्यको गोलाकार और शूद्रोंको अर्द्ध चन्द्राकार खींचना चाहिये। जो लोग मण्डल न बना कर भोजन कर लेते हैं, उनका भोज्य-पदार्थ यक्ष-राक्षस बलपूर्वक हरण कर लिया करते हैं।

“भास्ने पादमारोप्य यो मुहृक्ते ब्राह्मणं ऋचति ।  
मुखेन चान्मन्भ्रानति तुल्यं गोमांस भक्षणैः ॥”

(आह्निकतत्त्व)

भोजनके समय ब्राह्मणको धरती पर पैर रख कर भोजन करना चाहिये। आसन पर पैर रख कर भोजन करनेसे वह भोजन गो-मांस-भक्षण-तुल्य हो जाता है।

दोनों पैर धो कर और भूमिमें रख कर पूर्वाको-ओर मुंह कर ब्राह्मणको भोजन करना चाहिये।

“अर्धपादस्तु सुञ्जीत प्राट्मुखश्चास्ने शुचैः ।  
पादान्यां धरणीं स्पृष्ट्वा पादेनैकेन वा पुनः ॥”

(आह्निकतत्त्व)

जो कुछ भोजन किया जाये वह अपने इष्टदेवको अर्पण कर भोजन करना शास्त्रसङ्गत है।

पैर फौला कर भोजन करना मना है। भोजन करनेके पहले अन्नको देख प्रणाम करना चाहिये। इसके बाद नीचेके मन्त्रसे प्रार्थना करना चाहिये।

“अन्नं दृष्ट्वा प्रणम्यादौ प्राञ्जलिः प्रार्थयेत्ततः ।  
असाकं नित्यमस्त्येतदिति भक्त्याप बन्दयेत् ॥”

(आह्निकतत्त्व)

भोजनके समय बैठने पर पहले नाग, कूर्म, इकर, देवदत्त, धनञ्जय इन पाँचों चाहा वस्तुओंको पृथ्वीमें अन्न दे कर पीछे भोजन करना चाहिये।

“नागः कूर्मश्च इकरो देवदत्ता धनञ्जयः ।

वहिस्ता वायव्यः पञ्च तेषांभूमी प्रदीयते ॥”

(आह्निकतत्त्व)

मीन हो कर भोजन करना चाहिए। पूर्वा ओर मुख कर भोजन करनेसे आयु; दक्षिण ओर मुंह कर भोजन करनेसे यश; और प्रत्यङ्मुख भोजन करनेसे श्रीवृद्धि या धनकी वृद्धि होती है। उत्तर ओर मुख कर भोजन करना उचित नहीं है। दक्षिण मुख हो कर वह व्यक्ति भोजन न करे जिसका पिता-माता जीवित हों। कुछ लोगोंका कहना है, कि केवल पिता जीवित रहनेसे ही दक्षिण ओर मुख कर भोजन न खाना चाहिये, माताके सम्बन्धमें कोई नियम नहीं है। किन्तु माता और पिता दोनोंके ही जीवित रहनेसे दक्षिण मुंहका भोजन निषेध है। भोजनसे पहले दोनों हाथ दोनों पैर और मुंह खूब धो कर भोजन करना चाहिये। इसको पञ्चाद्र्द कहते हैं, जैसे—

“पञ्चाद्रो भोजनं कुर्यात् प्राट्मुखो भोजनाहिततः ।

हृत्तो पादौ तथैवात्यमेपुपञ्चाद्र्दं ता यता ॥”

वैद्यक शास्त्रमें लिखा है कि, सबसे पहले नमस्कोन तथा अदरखवाली वस्तु ही भोजन करना चाहिए। ये हित-जनक, अनिवर्द्धक, रक्षिकर और जिह्वा तथा कण्ठ-शोधक हैं। इसके सम्बन्धमें कुछ लोग कहते हैं, कि नमक पित्तजनक, अदरख और कटुरस भोजन पित्तजनक है, भूले मनुष्यका पित्त स्वाभाविक रूपसे ही बढ़ा रहता है। ऐसी दशामें नमस्कोन और अदरख मिश्रित भोजन कैसे युक्तिसंगत हो सकता है ? इसकी मीमांसा इस तरह लिखी हुई है, कि आयुर्वेदमें कहे हुए लवणके स्थानमें सैन्धव और चन्दनके स्थानमें रक्त-चन्दन आदिका बोध होता है। सैन्धव या नमक त्रिदोष-नाशक, इसलिये पित्तवर्द्धक नहीं है। ‘द्रव्यगुण’में लिखा है, सैन्धव, नमक मधुररस, अग्निप्रदीपक पाचक, ल

याममध्ये न भोज्यं याम्युग्मे न लक्ष्येत् ।

याममध्ये खोत्पत्तिर्यामपुग्माद् वन्नक्षयः ॥ (भावप्र०)

मनुष्यको चाहिए कि, वह नियमतः जैसा कि शास्त्रों में कहा गया है, दोपकाल आदि और प्रातःसन्ध्याका विचार कर भोजन करे। अग्निहोत्रियोंके दैनिक हवन-विधिकी तरह मनुष्यको भी सवेरे और रातिकी एक पहर बाद और दूसरे पहरके भीतर भोजन कर लेना चाहिए। सिवा इस समयके अन्य समयमें भोजन करना मना है। अतः एक पहरके भीतर तथा दोपहरके बाद दिन या रातके समय भोजन न करना चाहिए। क्योंकि एक पहरके भीतर भोजन कर लेनेसे रमकी उत्पत्ति तथा दूसरे पहर बिता कर भोजन करनेसे वीर्यकी हानि होती है।

वैद्यक मतसे दिनको नौ बजेके बाद और बारह बजेके भीतर तथा रातको गौ नौ बजेके बाद तथा बारह बजेके भीतर भोजन करना युक्तिसङ्गत है। किन्तु धर्मशास्त्रमें इस समयका कुछ व्यतिक्रम देखा जाता है।

“याममध्ये न भोज्यं त्रियामन्तु न लक्ष्येत् ।

याममध्ये रक्षितं त्रियामे तु रक्षयः ॥

प्रागुक्त दन्नवचनात् तथापि पञ्चमयामादौ मुख्यकालः ॥”

(आह्निकतत्त्व)

मारांग यह है, कि पहले पहरके भीतर कभी भोजन करना उचित नहीं। फिर तोसरा पहर भी बिता कर भोजन करना विधिसंगत नहीं। अतएव पञ्चम यामाद् ही भोजनके लिये उपयुक्त समय है। बारह बजेके बाद डेढ़ बजेके भीतरवाले समयको पञ्चमयामाद् कहते हैं। आयुर्वेद तथा धर्मशास्त्र दोनोंने नी बजेके पहले भोजन करनेको मना किया है। वैद्यक मतसे नी बजेके बाद बारह बजेके पहले और धर्मशास्त्र मतसे बारह बजेके बाद डेढ़ बजेके भीतर भोजन करनेको कहा गया है।

कुल आदिमियोंका कहना है, कि जिस समय मल और दोषका परिपाक हो कर भूष उत्पन्न हो, वही भोजन करनेका उपयुक्त समय है।

“क्षुत् शम्भवति पक्वेषु रमदीपमत्रेषु च ।

कास्ते वा यदि बाह्ये गोऽन्नकाज उदाहृतः ॥”

(भावप्रकाश)

रसदोष-मलका परिपाक हो जाने पर मलमूत्रादिका

वेग होना, शरीरका हलकापन मोघ होना, पिपासा और भूखका उदय होना आदि लक्षण दिखाई देते हैं। जब ऐसे लक्षण दिखाई दें तो समझना चाहिये, भोजन किया हुआ पदार्थ उत्तमरूपसे जोष हो गया है। मनुष्यको चाहिये, कि वह भोजन और मलमूत्र-त्यागको क्रिया नित्य सम्पादन करता रहे। क्योंकि इन दोनों कार्योंसे ही शरीरको अग्नि वृद्धि होती है। किन्तु यह दोनों काम एकान्तमें करना चाहिये। क्योंकि खुले स्थानमें बैठ कर भोजन करने या मलमूत्र त्याग करनेसे श्रोद्धानि होती है।

भोजनके समय शुभाशुभ दृष्टि—आहार करते समय पितामता, सुहृद्, चिकित्सक, रसोद्भवां, हंस, मयूर, सारस और चकोर पक्षीकी दृष्टि शुभ है। दरिद्र शक्ति, खोटे मनुष्य, भूखे मनुष्य, पापी, रोगी, पापएडो, कुले, मुर्गे आदिकी दृष्टि अशुभ है।

सुवर्ण-पात्रमें भोजन करनेसे त्रिदोषका नाश होता तथा दर्शन शक्ति बढ़ती है। चांदीके पात्रमें भोजन करना आँसूके लिए परम लाभदायक है। सिवा इसके इससे पित्त, कफ और घायुका नाश होता है। काँसेके बरतनमें भोजन करनेसे सुद्धि बढ़ती है, साथ ही भोजनमें रुचि बढ़ती तथा रक्त-पित्त शान्त होता है। पोतलके पात्रमें खानेसे वायुकी वृद्धि होती, रक्त, उष्ण, कृमि तथा कफका नाश होता है। भोजनके लिये लौह और काँचका बरतन सिद्धिदायक, बलकारक तथा रोगनाशक है। परचर और मिट्टीके बरतनमें खानेसे रुचि बढ़ती, अग्नि तेज होता तथा विष और पापका नाश होता है। स्फटिक तथा वैदूर्यमणिका बना बरतन शौनल तथा पचिक है।

“ताम्रपात्रे न भुञ्जीत गिन्नु काल्ये मलात्रित्ते ।

पलाशो पत्रपत्रेषु यद्दी भुक्त्वेन्द यश्चेत् ॥” (आह्निकतत्त्व)

धर्म-सिद्धान्तके अनुसार ताम्र या ताँबेके बरतन तथा टूटे फूटे बरतनमें भोजन नहीं करना चाहिये। काँसेके बरतनमें केवल वही मनुष्य भोजन करे, जो उमरमें नित्य करता आता हो। दूसरा उसमें भोजन न करे।

“वर्षपात्रे तथा शृङ्गे भायसे ताम्र भाजने ।

करे कर्पटके चैव भुक्त्वा चान्द्रायणाम्बलं ॥”

“शृङ्गे—कदली पत्तादि शृङ्गे”

हो सकती हैं। किन्तु अधिक शुष्क चवानेवाली ईश वस्तु है। इसलिये पीनेवाली चीजे सबकी अपेक्षा लघु गुणान्वित हैं। तरल-द्रव्यमिश्रित सूखी चीज भी उत्तमरूपसे परिपाक होती है। किन्तु तरल पदार्थके बिना मिलाने सूखी चीज भोजन करनेसे उसका उत्तमरूपसे परिपाक नहीं होता। क्योंकि तरलताके बिना यह भोजन कर लेने पर भी पिएडोका आकार धारण कर लेता है। सूखी चीज चिउडा आदि, दूध, मछली एक साथ भोजन कर लेने पर तथा चना चनेना आदि वस्तुएं जठराग्निको मन्द कर देती है।

ठोक समय पर अधिक मात्रामें भोजन कर लेने पर अथवा अ-समयमें अधिकया कम भोजन करनेको ही 'विपमाशन' कहते हैं। अधिक अन्न भोजन करने पर आलस्य, सामर्थ्य रहते हुए भी अनुत्साह, शरीरमें भारीपन, पेटका कड़ा हो जाना तथा गड़ गड़ शब्द करना आदि लक्षण दिखाई हैं। मातासे कम अन्नभोजन करनेसे शरीर कृश तथा बलक्षय होता है। भूख न लगने पर भी अन्नभोजन कर लेने पर सामर्थ्य-विहीन बना देता है और शिरमें दर्द, कमी कमी तो हैजा आदि रोग भी हो जाते हैं। भूख मार कर भोजन करनेसे जठराग्नि वायु द्वारा ताड़ित हो कर भोज्य-वस्तुको देरसे परिपाक करती है और फिर दूसरी बार भोजनको रुचि नहीं होती।

भोजनके समय पेटके चार भागमें दो भाग अन्नसे भरना चाहिये, एक भाग पानीसे और एक भाग वायुके सञ्चालित होनेके लिये खाली रखना उचित है। इस तरह भोजन करने पर भोज्य वस्तुके परिपाक होनेमें देर नहीं होती।

आहारिय पदार्थोंके रससे पहले (रसनेन्द्रिय) जीभ तृप्त होती है, पर पीछे वारम्बार आहार करने पर आस्वाद नहीं आता। फलतः थोड़ी देर बाद कुछ जल पी लेना उचित है। क्योंकि पानी पीनेसे जीभ थुल जाती और रसास्वाद मिलने लगता है। बीच बीचमें जलपान करनेसे अन्नका परिपाक भी उत्तमरूपसे होता है। अत्यन्त जल पीनेसे अन्नका ठोक तरहसे परिपाक नहीं होता, फिर भोजनके साथ बिलबुल जल न पीनेसे

भी पाचनक्रियामें गड़बड़ हो जाती है। इसीसे वृद्ध-चाणव्रयने कहा है,—'भोजनस्यामृतवारि'। इसलिये भोजनके समय जठराग्निको जगानेके लिये बीच बीचमें छोड़ा छोड़ा पानी पी लेना युक्तिसंगत है। भोजनसे पहले जल पी लेनेसे शरीर कृश तथा मन्दाग्नि उत्पन्न हो जाता है। भोजनके बीचमें जल पीनेसे अग्नि प्रदीप्त होती है। भोजनके पीछे जल पान करनेसे शरीर स्थूल हो जाता और कफको वृद्धि होती है। वाग्भट्टमें भी लिखा है,—भोजनके मध्यमें जल पीनेसे शरीर स्थूल अथवा कृश नहीं होता, यह समभावमें दृढ़ रहता है।

पिपासित व्यक्तिके लिये भोजन तथा क्षुधातुर व्यक्तिके लिये पानी—ये दोनों ही हानिकारक हैं, क्योंकि भूखे मनुष्यके जल पी लेनेसे जलोदर रोग तथा पिपासित मनुष्यके अन्न खा लेनेसे गुल्मरोग या प्लोहा आदि उदररोग हो जाते हैं।

कुछ लोग ऐसा प्रश्न कर बैठते हैं, कि नीतिज्ञ पुरुष भी भोजनके अन्तमें दूध पी लिया करते हैं सो यह कैसे युक्तिसंगत हो सकता है ? क्योंकि भोजनका समय तीन भागोंमें विभक्त है। इनमें पहला भाग वायुका, दूसरा भाग पित्तका और तीसरा कफका प्रकीर्णकाल है। इसीलिये भोजन करनेके समय तन्मन हो कर पहले मधुर-रसयुक्त द्रव्य, भोजनके मध्यमें खट्टी और नमकीन चीजे और अन्तमें कड़वे और तिक्त पदार्थ भोजन करनेकी विधि है। भोजन करते समय पहले मधुररस भोजन करने से भोजन करनेवाले मनुष्यको वायु और पित्त प्रशमित हो जाता है। भोजनके बीचमें खट्टे नमकीन आदि पदार्थोंके खानेसे पाचन करनेवाली अग्निकी वृद्धि होती है और भोजनके अन्तमें कड़वी और तिक्त तथा कषाययुक्त पदार्थ भोजन करनेसे कफ नष्ट हो जाता है। अब यह संशय होता है कि, भोजनका अन्त काल कफके प्रकीर्णकाल समय है। अतः कफके प्रकीर्ण-समयमें कफ घटानेवाला दूध किस तरह भोजन-संगत हो सकता है ? इसका उत्तर यह है, कि मनुष्य अन्न पानी जो सब द्रव्य पदार्थ भोजन करते हैं, उनके द्रव्यको दूध भोजनके अन्तमें पीनेसे प्रशमित करता है। ब्रह्मपुराणमें भी कहा गया है, कि भोजनके बाद दूध पीना उचित है। किन्तु भोजनके



चिकना, रुचिकर, शीतवीर्य, शुभचर्दक, सूक्ष्म नेत्र सुखा-  
कर और तिद्रोपनाशक है। अदरका कटुरस होने पर भी  
पित्तघर्दक नहीं है और विपाक होने पर मधुर हो जाता  
है। अतएव भोजनसे पहले नमक या नमकीन वस्तु  
तथा अदरक या अदरककी बनी वस्तु भोजन करना  
चाहिये। ये विशेष उपकारक हैं।

भोजनसे पहले दृष्टिदोष-निवारणके लिये ब्रह्मा आदि-  
का स्मरण करना चाहिये, अर्थात् भोजनके पहले ऐसा  
समभक्षना चाहिये कि भोजनकी सामग्री, ब्रह्मा, भोजनके  
छः रस विष्णु तथा भोजन करनेवाले शङ्कर हैं। यह  
याद कर लेने पर भोजन करनेसे दृष्टिदोष नहीं होता।  
अश्विनसुत महावीरका नाम स्मरण करनेसे भी नेत्र-  
विकार नहीं होता।

"अन्नं ब्रह्मा रसो विष्णुर्भोक्ता देवो महेश्वरः।

इति वशिन्त्य भुञ्जानं दृष्टिदोषो न वायते ॥

अञ्जनागर्भसम्भूतं कुमारं ब्रह्मचारिणम्।

दृष्टिदोषविनाशाय हनुमन्तं सराम्यहम् ॥"

( भावप्रकाश )

भोजनके समय सबसे पहले रसोंमें मधुररस, इसके  
बाद खट्टे और चरपरे पदार्थ, नमकीन चीजें, फिर  
कड़वी, इसके उपरान्त तीता और कपाय रसयुक्त वस्तु  
भोजन करना चाहिये। भोजनके पूर्व दाड़िम या अनार  
खाना युक्तिसंगत बतलाया गया है, किन्तु कोला या फर्केट  
फल भोजनसे पहले कभी भोजन न करना चाहिये।  
कमलकी डण्डी, ईल या कन्द यदि खाना हो, तो भोजन-  
के पहले खा लेना चाहिये, भोजनके बाद नहीं।

गुरुपाक भोजन जैसे पुरि सोहारी आदि भूना हुआ  
अन्न तथा चिउड़ा आदि भोजन कर लेनेके बाद कभी  
भोजन न करना चाहिये। यदि परम आवश्यकता हुई,  
तो बहुत थोड़ा भोजन कर सकते हैं।

भोजन करते समय पहले घों आदि गुरुपाक या  
कठिन पदार्थ भोजन करना चाहिये। आहारके अन्तमें  
दही, दूध, आदि द्रव्य पीना अच्छा है। इस नियमके साथ  
भोजन करनेमें बल और स्वास्थ्य स्थिर रहता है।  
भोजनको सामग्रियोंमें इच्छापूर्वक एकके बाद दूसरी  
चीज रुचिके अनुसार खानी चाहिये।

खाद्य और रुचिकर भोजन मनको आनन्ददायक,  
बलकारक, पुष्ट, उत्साह तथा परमायुष्यक है। अर्थात्  
कर भोजन इनके विपरीत गुणवाला होता है। अनिष्ट  
उष्ण अन्न बलनाशक है। चासी भोजन तथा सूखा हुआ  
भोजन ठीक नहीं। इसलिए भोजन ऐसा ही करना  
चाहिये जो न अधिक ठण्डा हो और न अधिक गर्म।

बहुत तेजीसे भोजन करनेसे भोजनकी वस्तुका गुण  
और दोष जानना कठिन हो जाता है। देरसे भोजनकी  
सामग्री ठण्डी तथा खानुद्दीन हो जाती है। इसीलिए  
बहुत जल्दसे तथा बहुत देरसे भोजन करना उचित नहीं।

भोजनमें तीन प्रकारके गुरुद्रव्य होते हैं :—मातागुरु,  
स्वभावसे गुरु, जीर संस्कारसे हो गुरु, ये तीन प्रकारके  
द्रव्य गुरुपाक होते हैं। मन्दाग्निवाले मनुष्य इस तीनों  
प्रकारके भोजनको त्याग करेंगे। इनमेंसे मातामें गुरु  
मूंग आदि अन्न हैं जो अधिक परिमाणमें भोजन करनेसे  
गुरु हो जाते हैं। किन्तु उड़द आदि अन्न स्वभावसे गुरु-  
पाक हैं और फिर विविध प्रकारकी चीजोंके साथ मिला  
जानेसे यह और गुरुपाक हो जाते हैं।

आहारिय द्रव्य छः तरहका होता है। चूसनेवाला,  
पीनेवाला, चाटनेवाला भोजन और चवानेवाला। ये  
क्रमसे गुरु हैं। चूसनेवाली चीजें,—दूध, अनार आदि।  
पीनेवाली—पानी, चीनीका जरबत आदि। चाटनेवाली  
चीजें—मधु आदि। गीली तथा गाढ़ी भोजनकी वस्तुएं  
भात, दाल आदि। भक्ष्यवस्तु लहूँ पेड़ा आदि जो प्राप्त  
प्राप्त खाया जाता है। चवानेवाली चीजोंमें चना बनेना  
तथा चिउड़ा आदि हैं। गुरु और लघुकर, रुचि और  
वृत्तिके अनुसार ही भोजन करना चाहिये। उड़दकी बनी  
चीजोंको आधो मातामें भोजन करना चाहिये और ऐसे  
ही आटे मैदेकी चीजोंको भी। मूंग आदिकी बनी चीजें  
स्वामाविक हो लघु हैं, उन्हें पूर्ण मातामें भोजन करना  
चाहिये। पीनेवाली तरल चीजें और तरक आदि अधिक  
मातामें मिश्रित भात आदि प्रयोजित होने पर भी उन्हें  
गुरु नहीं कह सकते। इसीलिए पीनेवाली वस्तुएं सब  
तरहसे लघु गुणान्वित हैं।

पीनेवाली और लेहा वस्तु—दोनों ही क्रमसे गुरु

हो सकती हैं। किन्तु अधिक गुण चवानेवालो ईश वस्तु है। इसलिये पीनेवाली चीजे सबकी अपेक्षा लघु गुणान्वित हैं। तरल-द्रव्यमिश्रित सूखी चीज भी उत्तमरूपसे परिपाक होती है। किन्तु तरल पदार्थके बिना मिलाने सूखी चीज भोजन करनेसे उसका उत्तम-रूपसे परिपाक नहीं होता। क्योंकि तरलताके बिना यह भोजन कर लेने पर भी पिण्डोका आकार धारण कर लेता है। सूखी चीज चिउडा आदि, दूध, मछली एक साथ भोजन कर लेने पर तथा चना चबेना आदि वस्तुएं जठराग्निको मन्द कर देती है।

ठोक समय पर अधिक मात्रामें भोजन कर लेने पर अथवा अ-समयमें अधिक या कम भोजन करनेको ही 'विपमाशन' कहते हैं। अधिक अन्न भोजन करने पर आलस्य, सामर्थ्य रहते हुए भी अनुत्साह, शरीरमें भारी-पन, पेटका कड़ा हो जाना तथा गड़ गड़ शब्द करना आदि लक्षण दिखाई हैं। मात्सासे कम अन्नभोजन करनेसे शरीर कृश तथा बलशून्य होता है। भूख न लगने पर भी अन्नभोजन कर लेने पर सामर्थ्य-विहीन बना देता है और शिरमें दर्द, कमी कमी तो हैजा आदि रोग भी हो जाते हैं। भूख मार कर भोजन करनेसे जठराग्नि वायु द्वारा ताड़ित हो कर भोज्य-वस्तुको देरसे परिपाक करती है और फिर दूसरी बार भोजनको रुचि नहीं होती।

भोजनके समय पेटके चार भागमें दो भाग अन्नसे भरना चाहिये, एक भाग पानीसे और एक भाग वायुके सञ्चालित होनेके लिये खाली रखना उचित है। इस तरह भोजन करने पर भोज्य वस्तुके परिपाक होनेमें देर नहीं होती।

आहारोप्य पदार्थोंके रससे पहले (रसनेन्द्रिय) जीभ तृप्त होती है, पर पीछे वारम्बार आहार करने पर आस्वाद नहीं आता। फलतः थोड़ी देर बाद कुछ जल पी लेना उचित है। क्योंकि पानी पीनेसे जीभ शूल जाती और रसास्वाद मिलने लगता है। बीच-बीचमें जलपान करनेसे अन्नका परिपाक भी उत्तमरूपसे होता है। अत्यन्त जल पीनेसे अन्नका ठोक तरहसे परिपाक नहीं होता, फिर भोजनके साथ विलकुल जल न पीनेसे

भी पाचनक्रियामें मंड़नदी हो जाती है। इसीसे दूध-चापणधने कहा है,—'भोजनस्यामृतवारि'। इसलिये भोजनके समय जठराग्निको जगानेके लिये बीच-बीचमें थोड़ा थोड़ा पानी पी लेना युक्तिसंगत है। भोजनसे पहले जल पी लेनेसे शरीर कृश तथा मन्दाग्नि उत्पन्न हो जाता है। भोजनके बीचमें जल पीनेसे अग्नि प्रदीप्त होती है। भोजनके पीछे जल पान करनेसे शरीर स्थूल हो जाता और कफको वृद्धि होती है। वाग्मटमें भी लिखा है,—भोजनके मध्यमें जल पीनेसे शरीर स्थूल अथवा कृश नहीं होता, वह समभावमें दृढ़ रहता है।

पिपासित व्यक्तिके लिये भोजन तथा क्षुधातुर व्यक्तिके लिये पानी—ये दोनों ही हानिकारक हैं, क्योंकि भूखे मनुष्यके जल पी लेनेसे जलोदर रोग तथा पिपासित मनुष्यके अन्न खा लेनेसे गुल्मरोग या प्लीहा आदि उदररोग हो जाते हैं।

कुछ लोग ऐसा प्रश्न कर बैठते हैं, कि नीतिवश पुरुष भी भोजनके अन्तमें दूध पी लिया करते हैं सो यह कैसे युक्तिसंगत हो सकता है ? क्योंकि भोजनका समय तीन भागोंमें विभक्त है। इनमें पहला भाग वायुका, दूसरा भाग पित्तका और तीसरा कफका प्रकोपकाल है। इसीलिये भोजन करनेके समय-तन्मन हो कर पहले मधुर-रसयुक्त द्रव्य, भोजनके मध्यमें खट्टी और नमकीन चीजे और अन्तमें कड़वे और तिक्त पदार्थ भोजन करनेकी विधि है। भोजन करते समय पहले मधुररस भोजन करने से भोजन करनेवाले मनुष्यको वायु और पित्त प्रशामित हो जाता है। भोजनके बीचमें खट्टे नमकीन आदि पदार्थोंके खानेसे पाचन करनेवाली अग्निकी वृद्धि होती है और भोजनके अन्तमें कड़वी और तिक्त तथा कषाययुक्त पदार्थ भोजन करनेसे कफ नष्ट हो जाता है। अब यह संशय होता है कि, भोजनका अन्त काल कफके प्रकोपका समय है। अतः कफके प्रकोप-समयमें कफ घटानेवाला दूध किस तरह भोजन-संगत हो सकता है ? इसका उत्तर यह है, कि मनुष्य अब पानी जो सब द्रव्य पदार्थ भोजन करते हैं, उनके शेषको दूध भोजनके अन्तमें पीनेसे प्रशामित करता है। ब्रह्मपुराणमें भी कहा गया है, कि भोजनके बाद दूध पीना उचित है। किन्तु भोजनके

अन्तमें दूही पीता बिलकुल मना है। नमकीन, खट्टा, कड़वा, गरम और जो सब विदाहो द्रव्य भोजन किया जाता है आहारान्तमें दूध पान करनेसे ये सब दोष ग्रन्थ हो जाते हैं। इसलिये भोजनके अन्तमें दुग्धपान युक्तियुक्त है। अतएव समझना होगा, कि भोजनके बाद दुग्धभोजनजनित वर्द्धित कफ नमकीन, खट्टा और कट्टु आदि भोजन-जनित वर्द्धित पित्तके विनष्ट करता है। अतः पित्त विनष्ट हो जाने पर कफ बढ़ाने-वाली शक्तिका हास हो जाता है। इसलिये कफ बढ़ नहीं सकता। इस कारण अग्निमान्द्य आदि रोग उत्पन्न नहीं होते। इसलिये भोजनके बाद दुग्धपान अवश्य कर्त्तव्य है।

मनुष्यको चाहिये, कि वह भोजन कर चुकनेके बाद दन्त-छिद्रोंमें लगे हुए अन्न-कणको तुणखण्ड द्वारा निकाल डाले। इसके बाद जलसे अच्छी तरह कुन्ली कर मुखको साफ कर ले। ऐसा न करनेसे दांतोंमें सटा अन्न सड़ जाता और उससे बढ़ू निकलने लगती है। कुन्ला कर लेने पर दोनों नेत्रोंको भी जलसे धो डालना चाहिए। इससे नेत्रोंको बड़ा लाभ पहुंचता है। इसके बाद नित्य भोजन उत्तमरूपसे पच जानेके लिये अगस्त्यादि महाहमाओ का नाम इस तरह स्मरण करना चाहिये:—विष्णु आत्मा है, विष्णु अन्न है और विष्णु परिपाक करनेवाले हैं, इसलिये विष्णु मेरे किये हुए भोज्य पदार्थको उत्तरूपसे परिपाक करे। अगस्ति, अग्नि और बडधानल ये सब मेरे किये हुए भोजनको ठीकसे पचाये और मुझे परिपाक सुखसे सुखी बना कर मेरे शरीरको निरोग रखें।

अङ्गारक, अगस्त्य, वैश्वानर, सूर्य और अश्विनो-कुमार इन पांच नामोंका प्रत्येक दिन भोजनके बाद स्मरण करना चाहिये। क्योंकि इन नामोंके स्मरण करनेसे भोजन किया हुआ पदार्थ शीघ्र ही परिपाक होता है। इन नामोंके स्मरण करते हुए पेट पर हाथ फेरना चाहिए। भोजनके बाद तुरत ही सो जाना उचित नहीं। क्योंकि ऐसा करनेसे जठराग्नि मन्द पड़ जाते हैं और कफ कुपित हो जाता है। भोजनके बाद पान खाना भी विशेष उपकारक है। (भावप्रकाश)

स्मृतिमें लिखा है, कि भोजनके बाद बैठ कर बापे हाथसे पेट पर हाथ फेरना चाहिये। मन्त्र यह है,—

“अग्निराप्पाययत्वन्नं पाविष्यं पक्वेरितः।

दत्तायकाशो नभसा जयत्यवस्तु मे सुखम् ॥

अन्नं भजाय मे मूमेपागमन्यनिभल्प च।

भवत्येतत् परिष्णो ममास्त्व च्याहितं सुगम् ॥

प्राग्यापानममानानामुदानं व्यानं योस्तथा।

अन्नं नुष्टिकरघ्नास्तु ममास्त्वप्याहृतं सुखम् ॥

अगस्तिरग्निर्घेडवाननरच सुवर्तं ममानं जयत्यरोपम्।

सुवर्तं मे तत् परिष्णामसम्भयं यच्छत्वरोमं मम चास्तु वेदे ॥

विष्णुः रामस्तेन्द्रियवेदेदि प्रथानमृगो भगवान् यथैकः।

सत्येन तेनान्नमशोभमेतद्वारोभयदं मे परिष्णामनेतु ॥

विष्णुस्ताः तथैवात्र परिष्णामश्च वै यथा।

गत्येन तेन मद्भुक्त्वं जीर्णत्वन्मिदं तथा ॥”

यही मन्त्र पाठ कर सी कदम टहलना चाहिये। इसके बाद यादें करवट जरा लेंट जाना चाहिये। इसके बाद पान खाना चाहिये।

भोजनके दोषसे अग्निमान्द्य हो कर नाना तरहके रोग उत्पन्न होते हैं। इसीलिये भोजनके सम्बन्धमें ग्राह्यमें भोजनके विविध दोष वर्णित हैं,—दृष्टद्वारक, अदृष्टद्वारक और दृष्टादृष्टद्वारक। मछली खानेके बाद दूध पीना दृष्टद्वारक स्मृतिमें जो वर्णित है, वह अदृष्टद्वारक तथा स्मृति और आयुर्वेद दोनोंमें वर्णित है वह दृष्टादृष्टद्वारक है। ये तीनों निषिद्ध भोजन कभी न करना चाहिए। इन्हो तीनोंके कारण शरीरमें कर्त तरहके रोग हो जाते हैं। अतएव भोजनके प्रति विशेष लक्ष्य रखना चाहिये। (आधिकार्य)

सुश्रुतमें भोजनके सम्बन्धमें लिखा है,—मधुररस पहले, लघणरस मध्यमें और अन्यान्य रस अन्तमें भोजन करना चाहिये। पहले अनाद, इसके बाद पानीय-पदार्थ तथा इसके उपरान्त भोज्य पदार्थ भोजन करना चाहिए। कुछ लोग इसके विपरीत कहते हैं। उनका कहना है,—गाढ़ पदार्थ सबसे पहले भोजन करना चाहिये। भोजनके प्रारम्भमें हो या मध्यमें या अन्तमें, फलोंमें स्वास्थ-यर्द्धक तथा दोषनाशक कल आंयका ही भोजन करना चाहिये। मृणाल या कमलकी रंडी, शाल, कण,

उत्स आदि भोजन करनेसे पहले ही खा लेना या चीभ लेना चाहिये । भोजनके बाद कभी न भोजन करना चाहिये ।

भूखे मनुष्य ठीक समय पर उच्च आसन पर सम-भावसे बैठ कर भोजनके परिमाण आदिका विचार कर अपने स्वभावके अनुसार स्निग्ध, द्रव्य, प्रधान, लघु और उष्ण-द्रव्य जल्द-जल्द भोजन करना चाहिए । इस तरह ठीक समय पर भोजन करनेसे वृत्ति होती है और भोजन करनेवाले मनुष्यको पीड़ादायक नहीं होता लघु पदार्थ शीघ्र ही परिपाक हो जाता है । जल्द भोजन करनेसे भोज्य-पदार्थ एक साथ ही परिपाक होता है । दोपशून्य प्रधान भोजन सहज ही पच जाता है । नियमितः कित्वा हुआ भोजन धातुओंको बराबर भाग विभाजित करता है । जिन ऋतुओंमें रात बड़ी होती है, उन ऋतुओंमें ऋतुदोषको मिटानेवाली चोर्जोंका नित्य प्रातःकाल सेवन करना चाहिये । फिर जिन ऋतुओंमें दिन बड़े होते हैं, उन दिनोंमें तत्कालिक वस्तुओंको नित्य अपराह्णमें भोजन करना चाहिये । जिस ऋतुमें दिन-रात बराबर होती है, उस ऋतुमें बहोरात बराबर मागोंमें बांट कर ठीक समय पर भोजन करना चाहिये । भूख न रहने पर या भूख मर जाने पर कभी भोजन नहीं करना चाहिये । नियमित समय पर भोजन करना उत्तम है । भूख न रहने पर भोजन कर लेने पर शरीरमें कई तरहके रोग उत्पन्न हो जाते हैं । क्योंकि उस समय शरीर हलका नहीं रहता और तो क्या, मृत्यु तक हो जा सकता है । भूख पीत जाने पर जठराग्नि धामुसे भरी रहती है । अतएव उस समय भोजन करनेसे भोज्य-अन्न कठिनतासे परिपाक होता है । फिर दूसरी बार भोजन करनेकी इच्छा नहीं होती । अल्प भोजन करनेसे सन्तोष नहीं होता और बलक्षय होता है । अधिक खा लेने पर शरीर आलसी, भारी और सुस्त हो जाता है । अतएव दिन रातका समय और दीपादिका विभाग कर दोपशून्य गुण सम्पन्न सुन्दर परिपाक भोजन करना चाहिये ।

निसार, दोपयुक्त, जूठा करंड-पथर, धूलो धूसर तथा पासी अन्न कभी भी भोजन न करना चाहिये ।

अधिक मिठ तथा कच्चा अन्न, और अत्यन्त गर्म तथा अधिकचा भोजन करना वर्जित है । ठण्डे भोजनको फिर गर्म कर भोजन करना और भी हानिकारक है भोजनके बीच बीचमें तथा भोजनके शेषमें पानी पी लेना हानिकारक नहीं है ।

भोजन करने पर भोजन करनेका ध्रम जब तक विद्वरित न हो, तब तक राजाकी तरह बैठ रहना चाहिये । इसके बाद सी कदम चल कर बाईं करवट लेटना उचित है । भोजनोपरान्त अभिलषित शब्द सुनना, स्पर्श करना और रूप-रस-गन्धका सेवन करना अत्युत्तम है । अप्रिय कर्णकटु शब्द सुनना या अस्पर्श आदिका दूना और अपवित्र अन्न भोजन करनेसे या भोजनके बाद अधिक हसनसे कहे जानेका डर रहता है । इसलिये उपयुक्त कार्य नहीं होने चाहिये । गीले या पानीय पदार्थ अधिक और अन्न कम भोजन कर बैठना या सोना न चाहिये । भोजनके बाद आग तापना, तैरना, सवारी पर चढ़ कर घूमना फिरना उचित नहीं । एक बार केवल एक रस वा एक साथ ही कई रसोंका भोजन करना युक्तिसंगत नहीं । एक बार भोजन करके जब तक वह उचित रूपसे पच न जाये तब तक फिर भोजन न करना चाहिये । उलटो खट्टी डकारें आना, हियका जलना तथा जी मिचलाना अपरिपक्वताका चोतक है । अतः ऐसी दशामें दुबारा भोजन करनेसे अग्निमान्द्य हो जाता है । उड़द आदिके बने बरे आदि गरीष्ट भोजन तथा अधिक भोजन न करना चाहिये । मिष्टान्न भोजन नहीं करना चाहिये, या थोड़ा-सा खा कर दूने तीगुने जल न पी लेना चाहिये । क्योंकि ऐसा करनेसे भो अग्नि मन्द पड़ जाती है ।

गुदपाक भोजन थोड़ा ही खाना हितकर है । किन्तु लघुपाक भोजन पेट भर खाय जा सकता है । अत्यन्त उच्च पदार्थ कितना ही भोजन कर लेने पर भी गुदपाक नहीं होता ।

पिण्डो या असम्भ्यकरूपसे थकावट रहने पर भोजन करनेसे अन्नवाही नलिकामें पित्त जमा रहने पर या अन्य किसी 'विदाही' अन्नका भोजन करने पर अन्न विदाध हो जाता है । सूखा, जला हुआ, कठोर अन्न भोजन करने

पर अन्निका नाश होता है। कषा, जला और विषय अन्न यात, पित्त और कफके साथ अजीर्ण रोग उत्पन्न करता है। बहुत अधिक जलपान करनेसे, असमयमें भोजन करनेसे, मलमूत्रका वेग रोकनेसे, समय पर न सोनेसे, लघु और स्वाभाविक अन्न भोजन करनेसे मो उचितरूपसे परिपाक नहीं होता।

हिताहितका विचार कर जो भोजन किया जाता है उसको समग्रान कहते हैं। अधिक हो या थोड़ा हो, अ समय परका भोजन विपमाशन तथा एक बारका किया हुआ भोजन अच्छी तरहसे परिपाक न होने पर भी भोजन करना अध्शन कहलाता है। समग्रान, विपमाशन और अध्शन ये तीनों अहिताचार द्वारा जोधन क्षय होता है अथवा नाना प्रकारका पोड़ाये उत्पन्न होती हैं। अन्न विदग्ध होने पर शीतल जल पीनेसे यह परिपाक होता है। शीतलता द्वारा पित्तका नाश होता है तथा अन्न कुछ पच कर गोचेकी ओर जाता है। भोजन करते ही यदि हृदय, कण्ठ और गला जलने लगे तो अक्षय, छोटी हर्त तथा छोटी हर्तकी युक्तियों या चूर्ण मधुके साथ मिला कर चाटना चाहिये। ऐसा करनेसे विशेष उपकार होगा। (शुभ्रुत)

भोजनसे उत्पन्न अजीर्ण होने पर रोगाधिकारमें लिखे हुए नियमानुसार औषध सेवन करना उपयुक्त होगा। अजीर्ण देखो। ग्राहमें भोजनके सम्बन्धमें विशेष रूकायटें हैं। क्योंकि केवल भोजनसे भी मनुष्यका स्वभाव बदल जाता है। विष्णुपुराणमें भोजनके सम्बन्धमें यों लिखा है—

“क्राता मयान्त श्रुता च देवर्षि पितृ तर्पणम् ।

प्रनास्त रत्नपाण्डिस्तु मुञ्जीत प्रयतां यशी ॥”

(विष्णुपुराण ३।११।७४)

गृहस्थको स्नानके बाद यथाविधि देवर्षि तथा पितृ-तर्पण करना उचित है। इसके बाद रत्नकी अंगूठी पहन कर भोजन करना चाहिये। पहले अतिथि, ब्राह्मण, गुरु और अपने आश्रित व्यक्तियोंकी भोजन करा कर सबसे पीछे आप भोजन करें। भोजन करते समय हाथ मुँह धो कर उत्तर या पूर्वकी ओर मुँह कर भोजन करना उत्तम है। भोजनके समय उल्टू तथा उदास होना उचित नहीं। विदिङ्मुख अर्थात् दो कोनों

के बीचकी दिशाकी ओर मुख करके न बैठना चाहिये। पहले अन्नको जल द्वारा घेष्ठिन करना चाहिये। निम्न या घुरे आदमीके लिये हुए भोजन और जो अणुका तथा अणुद है, ऐसा भोजन न खाना चाहिये। अन्नका कुछ भाग शिथ्य तथा भूखे मनुष्यको दे कर विद्युदपान में भोजन करना उचित है। त्रिपाई पर धाली रख कर, घुरे और तंग स्थानमें या असमयमें भोजन करना उचित नहीं। अन्नका अप्रमाण अन्नको दिये बिना भोजन न करना चाहिये। फल, मांस और शाकसब्जों—ये सब स्वयं जाने पर अमोक्ष्य हैं। वासी अन्न कभी भी न खाना चाहिये। सूखा बेर और सूखा पकाअ कभी न भोजन करना चाहिये। बुद्धिमान् पुरुषको मधु, दधि, घृत, पूत और सत्तूके सिवा कोई भी वस्तु निश्चयरूपसे न खा लेनी चाहिये। तन्मय हो कर भोजन करना चाहिये। पहले कटु तीत, बीचमें नमकीन और पट्टे तथा अन्तमें मोठे पदार्थ खाने चाहिये। जो मनुष्य पहले द्रव पदार्थ बीचमें कठिन और अन्तमें फिर द्रव पदार्थ चांजे खाते हैं, उनके शरीरका बल नहीं घटता तथा उनका स्वास्थ्य नहीं विगड़ता है। इसी तरह नियमसे अनिन्दित भोजन करना आवश्यक है। प्राणादि पञ्चवायुको सुष्टिके लिये भोजन करते समय मीनापत्यकी रहना चाहिये। जो पदार्थ भोजन कर लिया गया, उसको निन्दा करना सर्वथा वर्जित है। भोजनके प्रथम पांच प्रासमें महामीनी होना चाहिये और तो क्या हृद्धार आदि भी करे। भोजनके अन्तमें शान्तन कर पूर्व या उत्तर मुँह हो कर दोनों हाथोंका ऊपरसे धो डालना चाहिये। इसके बाद फिरसे आचमन करना उचित है।

भोजनके बाद बैठ कर यह प्रार्थना करे, कि यायु द्वारा रक्षित अग्नि आकाश द्वारा दलायकाग मेरे शानके पचायें। अन्न पच जानेके बाद इसी अन्नसे मेरे शरीरके पार्थिय परिपुष्ट हो। कर मेरे सुखको वृद्धि हो। यह अन्न प्राण, अपान, समात, उदान, और ध्यान इन पांचों प्राणोंका पुष्ट करके मेरे स्वास्थ्यको बढ़ावे।

गृहस्थकी प्रतिदिन स्वेच्छानुसार अन्न पृथी पर

अशेष प्राणियोंको दे कर इस तरह चिन्ता करनी चाहिये, —  
देव, मनुष्य, पशु, पक्षी, सिंह, यक्ष उरग, वैत्य, प्रेत, पिशाच,  
वृक्ष और अन्यान्य जो सब जीव मेरे अन्नके इच्छुक हैं  
और चींटियाँ, कीड़े, पतङ्ग आदि जो कर्मबंधनमें आवद्ध  
हैं और भूखे हैं, मैं उन लोगोंके लिये यह अन्न पृथ्वी पर  
छोड़ता हूँ। इससे सभी परितृप्त और सुखी हों। जिनके  
माता, पिता और बंधु नहीं हैं और भोजन तय्यार करने-  
का कोई उपाय नहीं है तथा तय्यार करनेके लिये अन्न भी  
नहीं है, मैं उनको तृप्तिके लिये पृथ्वी पर अन्न छोड़ता हूँ।  
ये इस अन्न द्वारा तृप्त तथा शर्मान्वित हों। निखिल जीव,  
यह अन्न और मैं, सभी त्रिष्णुस्वरूप हैं। क्योंकि विष्णु-  
के सिवा जगत्में और कुछ नहीं है। मैं समस्त जीव  
स्वरूप हूँ इसीलिये मैंने समूचे प्राणियोंकी तृप्तिके लिये  
अन्न प्रदान किया। अब सभी सन्तोष लाभ करें।  
गृहस्थको चाहिये, वह इसी तरह मन्त्र पाठ कर श्रद्धाके  
साथ भूतोंके उपकारके लिये पृथ्वीमें अन्न दें। क्योंकि  
गृहस्थ ही सभी आश्रमों तथा प्राणियोंका आश्रयस्थल  
है। इसके बाद कुत्ता, चाण्डाल, पशुपक्षी, पापी और  
अपात्र मनुष्यको तृप्तिके लिये भी पृथ्वी पर अन्न छोड़ना  
अत्यावश्यक है।

इन सब कामोंके बाद गृहस्थको भोजन करना चाहिये।  
(विष्णुपुराण ३।१२ अध्याय) प्रायः सभी पुराणोंमें भोजन-  
के सम्बन्धमें विस्तृत रूपसे वर्णित है। स्थानामावसे  
अधिक वर्णन नहीं दिया जा सका।

भोजनमें वर्जित वस्तुएँ—

“ताम्रपात्रे पयः पानमुच्छिद्ये घृतभोजनम्।

दुग्धे च लवणं दद्यात् सद्यो गोमांसभक्षणम् ॥

यः शूद्रेण समाहूतो भोजनं कुरुते द्विजः।

सुरापश्च स विरोधः सर्वधर्मबहिष्कृतः ॥

कालं रजकतीर्थेषु भोजनं गणिकाश्रये।

शयनं पर्वपादे च ब्रह्महत्या दिने दिने ॥”

(कर्मशौचन)

तांबेके बरतनमें दूध पीने, जूड़में घी और दूधमें  
नमक खानेसे गोमांसभक्षणका पातक लगता है। जो  
प्राह्मण शूद्र दास आमन्त्रित हो भोजन करता है, वह  
सुरापानका दोषी बन सब धर्मसे बहिष्कृत होता है।

रजक तीर्थस्थान या ‘धोवीघाट’ पर स्नान करनी या वेश्या-  
के यहाँ भोजन करने पर और पूर्वकी ओर पैर फेंका कर  
सोने पर उसे नित्य ब्रह्महत्याका पाप लगता है।

अन्नप्राशन रान्द्र देखो।

भोजनके तीन भेद हैं,—सात्त्विक, राजसिक और  
तामसिक।

सात्त्विक भोजन—जिस आहारसे आयु, सत्त्व, बल,  
आरोग्य, उत्साह, सुख और प्रीति उत्पन्न हो और रस  
तथा स्नेहयुक्त, दीर्घकालका स्थायी रहनेवाला मनोहर  
भोजनको सात्त्विक भोजन कहते हैं।

राजसिक भोजन—बहुत कड़वा, बहुत खट्टा, अधिक  
नमकीन, बहुत गर्म, बहुत तेज, विदाही तथा रोग और  
शोकको बढ़ानेवाला भोजन राजसिक भोजन कहा  
जाता है।

तामसिक भोजन—तैयार होनेके बाद सूखा, वासी,  
जूठा, गन्धयुक्त भोजनको तामसिक भोजन कहते हैं। ये  
तीन प्रकारके भोजन सात्त्विक, राजसिक और तामसिक  
प्रकृतिवाले लोगोंके लिये क्रमसे प्रिय हैं।

सात्त्विक प्रकृतिवाले पुरुष तामसिक भोजन करते  
करते तामसिक प्रकृतिवाले बन जाते हैं। इसलिये जो  
पुरुष इहलौकिक और पारलौकिक कल्याणको कामना  
करते हैं, उनको सदा भोजनके प्रति सतर्क रहना  
चाहिये। भगवान् मनुने भी कहा है—

“आक्षत्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राव जिघांसति ॥”

आलस्य और अन्नदोषसे ही मनुष्य अकाल मृत्युको  
प्राप्त होते हैं। इसलिये प्रत्येक बुद्धिमानका कर्त्तव्य है,  
कि वे अपने भोजनके प्रति विशेष दृष्टि रखें।

भोजनकाल (सं० पु०) भोजनस्य कालः। भोजनका समय।  
भोजनगर (सं० श्लो०) भोजस्य नगरं। भोजदेशस्थित  
-नगर, धारापुर।

भोजनत्याग (सं० पु०) भोजनस्य त्यागः क्षत्तत्। भोजन-  
परित्याग, भोजन छोड़ कर उठ जाना। एक पंक्तिमें  
भोजन करनेवालोंमें यदि कोई उठ जाय तो उस पंक्तिके  
सभी लोगोंको भोजन त्याग करना ही विधेय है।

(स्मृति)

भोजनपात्र (सं० श्लो०) भोजनस्य पात्रं । मध्यद्वयाधार, चतुर्धा पात्र जिममें भोजन क्रिया जाता है ।

भोजन देवा ।

भोजनमट्ट ( हिं० पु० ) वह जो बहुत अधिक खाता हो, पेट्ट ।

भोजनमाण्ड ( सं० श्लो० ) भोजनस्य भाण्डं । भोजनका भाण्ड, भोजनपात्र ।

भोजनरत्न ( सं० पु० ) १ काश्मीरके एक राजा । ( राजतर० ७।२५६ ) २ भोजराज ।

भोजनरूति ( सं० स्त्री० ) १ भोजन-व्यवसाय । २ पाप ।

भोजनवेला ( सं० स्त्री० ) भोजनमय वेला । भोजनकाल, खानेका समय ।

भोजनव्यय ( सं० पु० ) भोजने व्ययः । भोजनव्ययमें व्यय, पेट्ट ।

भोजनशाला ( सं० स्त्री० ) पाकशाला, रसोईघर ।

भोजनान्ध्यादन ( सं० पु० ) अन्न खर, खाना कपड़ा ।

भोजनाधिकार ( सं० पु० ) भोजने अधिकारः । भोजन-व्ययमें अधिकार ।

भोजनानन्द—अद्वैतदर्पणटीकाके रचयिता ।

भोजनार्ह ( सं० श्लो० ) शालिधान्य ।

भोजनशाल ( सं० पु० ) पाकशाला, रसोईघर ।

भोजनीय ( सं० वि० ) भुज्-अनीयर् । भोजनयोग्य, खाने लायक ।

भोजनृति ( सं० पु० ) भोजदेव । भोजराज देवो ।

भोजपति ( सं० पु० ) भोजानां भोजवंशोपातां पतिः । १ कंसराज । २ भोजराज, भोजदेशाधिपति ।

भोजपत्र ( हिं० पु० ) एक प्रकारका मन्थोले आकारका पत्र । मज्जपत्र देवो ।

भोजपरीक्षक ( सं० पु० ) रसोईकी परीक्षा करनेवाला ।

भोजपुर ( सं० श्लो० ) भोजस्य भोजराजस्य पुरम् । १ स्वनाम-धरात-देश, राजा भोजका नगर । २ प्राचीन-मगधके अन्तर्गत देगमेद । प्रवाद है, कि जरासन्धकी राजधानी राजगृहमें अति समय शीघ्रणने यहाँ पदार्पण किया था । यहाँके अधिवासियोंकी भाषा भोजपुरी कहलाती है जो भाषायां प्राकृतमें विद्यमान स्वतन्त्र है ।

भोजपुर—मध्यभारतके भूपाल राज्यका एक ग्राम । यह

अक्षां २३° ६' ३०" तथा देशां ७०° ३८' ५०" के मध्य अवस्थित है । जनसंख्या २३७ है ।

भोजपुर—१ युक्तप्रदेशके मुरादाबाद जिलान्तर्गत एक नगर । यह अक्षां २८° ५७' ३०" तथा देशां ७८° ५५' ५०" मुरादाबाद नगरसे ४ कोस उत्तरमें अवस्थित है । २ बङ्गालके जाहाबाद जिलान्तर्गत एक नगर । यह अक्षां २५° ३५' ८" ३०" तथा देशां ८४° १' ४८" ५०" के मध्य अवस्थित है ।

३ बम्बईप्रदेशके नासिक जिलान्तर्गत एक नगर । यहाँके गिरिदुर्गमें धण्डोवाका गुदा-मन्दिर विद्यमान है । भोजपुरिया ( हिं० पु० ) १ भोजपुरका निवासि, भोजपुरका रहनेवाला । ( वि० ) २ भोजपुर संबंधी, भोजपुरका । भोजपुरी ( सं० स्त्री० ) १ भोजराजकी राजधानी । २ भोजपुरकी भाषा । ( पु० ) ३ भोजपुरका निवासि । ( वि० ) ४ भोजपुर संबंधी, भोजपुरका ।

भोजमन्त्र—विदर्भके राजा । आपका जन्म इसीसे तदर्थे ५६ वर्ष पहले हुआ था । आपने सांगानुनकी यक्षुता और धर्मव्याख्या सुन कर बौद्धधर्म प्रदण किया था ।

भोजयितृ ( सं० लि० ) भुज्-यितृ कर्त्तृ गृच् । भोजन-कारयिता, भोजन करानेवाला ।

भोजयितव्य ( सं० लि० ) भुज्-यितृ तय । भोजन करानेके योग्य ।

भोजराज—कान्यकुब्ज आधुनिक नाम कर्नाजके एक विषयात राजा । ये महाराजाधिराज राम-भद्रदेवके पुत्र थे । प्राचीन समयमें एक बार सम्राट् उत्तर-भारत इन्हीं महाराजाधिराजके अधिकात्ममें था । राजतरङ्गिणीसे मालूम होता है, कि एक समय इन्होंने काश्मीर तक अधिकार स्थापित किया था । महोबा, ग्वालियर और देवगढ़के जिलालेनीमें मान्य होता है, कि इन्होंने ८६२ से ८८३ ई० तक राजा किया था । इन्हीं उपाधि थी आदिबरहट । इन्हीं नाम आदिबरहरी मुदा भी उसी समय प्रचलित होती थी यह बात गोपबन्दीके जिलालेनीसे प्रकट होता है । इनके पुत्र तथा उत्तराधिकारी महाराजाधिराज मदेन्द्रपाल्य थे ।

भोजराज—मालवाके परमारवंशी एक सुमरिज राजा । यह राजा विद्वानोंसे पूजित होता था । इसका

म धाराधीश्वर प्रसिद्ध था। कीर्तिकौमुदी, कृत संकीर्णत, मेरुतुङ्गके प्रबन्धचिन्तामणि और बहाल रिडतके भोजप्रबंधसे विद्योत्साहो भोजराजका कुछ परिचय मिलता है।

भोजप्रबंधमें लिखा है—धारा नाम्नी नगरीमें सिंधुल नामका एक राजा और सावित्रि नामकी उसकी एक पत्नी थी। युद्धापेमें राजाको एक लड़का उत्पन्न हुआ। सो लड़केका नाम भोज हुआ। जिस समय राजा सिंधुलका अंतिम काल उपस्थित हुआ, उस समय राजकी उम्र कुल पांच वर्ष की थी। पांच वर्षके इस लड़केको किस तरह राज्यभार सौंपा जाये, राजा इसी-तः चिन्तामें मग्न था। अन्तमें उसने निश्चय किया, कि राज-काजका भार मुझको ही देना चाहिये। यदि राजा ऐसा नहीं करता तो सम्भव था, कि मुझ-राज्यके भेदमें बालक भोजको मार डालता।

उपयुक्त भोजप्रबन्धमें मुझको सिंधुलका सहोदर श्रेठा भाई बताया गया है किन्तु पद्मगुप्तके नवसाहसाङ्क चरितमें लिखा है—

‘व’ पियासुर्गम वाचि मुद्रामदत्त वा वाकूपतिराज देवः ।  
त्यानुजन्मा कविपान्धवस्य भिन्नति तां सम्प्रति सिन्धुराजः ॥  
( नवसाहसाङ्कचरित १६ )

इससे साफ मालूम होता है, कि मुझ वाकूपति सिन्धुराजका सहोदर बड़ा भाई था। उसके मरनेके बाद सिन्धुराजको राज्य मिला। इन राजाओंकी राज-भाके पद्मगुप्त-राजकवि था। इस राज-कविका दोनों राजाओं द्वारा बड़ा सम्मान होता था। यहाँ इस कविकी तत्पर हो विश्वास करना पड़ता है।

उदयपुर तथा नागपुरके भोजके तादृशशासन तथा नवसाहसाङ्कचरितमें ‘सिन्धुराज’ नाम रटने पर भी भोजप्रबन्ध, “बन्धचिन्तामणि इत्यादि ग्रन्थोंमें राजा भोजका ही नाम दिखाई देता है। राजा भोजकी दो पाथियां थीं,—नवसाहसाङ्क और कुमारनारायण। यह पद्मगुप्तके लिखे नवसाहसाङ्कचरितके पढ़नेसे स्पष्ट मानी जाती है।

मेरुतुङ्गने प्रबन्धचिन्तामणिमें लिखा है, कि सिन्धुल का ही ब्रह्माश्रम था। इसीसे मुझ वाकूपतिकी

उस पर कठोर शासन करना पड़ता था। एक बार सिंधुलसे तङ्ग भा कर मुझने उसे देशसे निकाल दिया था। उस समय सिंधुल गुजरातके फासद्वर्गके समोप रहने लगा था। यह स्थान अहमदाबादके करीब कासिन्ध्र पालड़ी नामसे विख्यात है। कुछ दिनोंके बाद वह मालवा लौट आया था। मालवा लौटने पर मुझवाकूपतिने अपने भाईका आदर किया। परन्तु उसका स्वभाव अब तक भी नहीं बदला। सिंधुलकी आंखें निकाल ली गईं और वह जेलखानेमें डाल दिया गया। इसी जेलखानेमें ही भोज-राजका जन्म हुआ था। एक दिन एक ज्योतिषिने कहा था, कि यह लड़का एक दिन तुम्हारे राज्यका अपहारक होगा। यह बात सुन मुझ बहुत चिन्तित हुए और तुरंत ही भोजको मार डालनेका हुक्म दे दिया। इस समय राजा भोज कुछ सयाने थे और कुछ पढ़ा लिखा भी था। राजाका हुक्म सुन कर उसने एक श्लोक बयाना और उसे राजाके पास भेज दिया। राजाने श्लोक पढ़ कर अपना विचार बदल दिया। इसके बाद ही भोज युवराज पद पर प्रतिष्ठित किया गया।

भोजप्रबन्धमें यह कहानी दूसरे ढङ्गसे ही लिखी गई है। उसमें लिखा है,—“मुझ राजा हुआ सही परंतु वह सदा चिन्तित रहा करता था। सोचने लगा कि अंतमें जब भोज ही राजा होगा तब मेरे जीनेसे क्या लाभ ? खूब सोच विचार कर इसने बङ्गालके राजवत्स राजको लिवा लानेके लिये अपने अंगरक्षकको भेजा। महावल वत्सराज धाराधीश्वरके यहाँ आया। परस्पर परामर्श हो चुकनेके बाद वत्सराजने भोजराजके मार डालनेका भार अपने ऊपर लिया। वत्सराजने भोजको पाठशालासे बुला महामायाके मन्दिर्में ले गया। महामायाके सामने भोजको धलि चढ़ा देना उसका उद्देश्य था। यहाँ भोजराजने वरगादके दो पत्ते तोड़ लिये। भोजने एक चाकूसे अपने जंघेकी चौर डाला और रक्तसे उन पत्तों पर कुछ लिख उसने वत्सराजको दिया और कहा, महोदय ! इन पत्तोंका आप राजाको दे दीजियेगा। यह कहकर वह मरनेके लिये तप्यार हुआ। इस समय उसके मुखाकी कांति चमकने लगी उसके मुखकी कांति देख वत्सराजके छोटे भाईने अपने



बड़े भारीसे कहा, 'भार! मरनेके साथ स'सारसे मनुष्यके साथ यदि कुछ जाता है, तो यह बेचल धर्म है। पिता हों या माता या पुत्रकलत्र कोई भी मृत्युके साथ नहीं जाता। यह सब इसी स'सारके नातेदार है। मृत आत्माका यदि कोई साथी है, तो केवल यह धर्म है, दूसरा कोई नहीं। तुम्हारा हृदय धर्मके समान है। देखो, मृत्यु जाति, उम्र, रूप आदि हरण कर लेती है किन्तु धर्मको हरण कर नहीं सकती। यह जान सुन कर भी तुम्हें भय नहीं होता।' छोटे भारीको यह बात सुन कर वत्सराजको वैराग्य उत्पन्न हो गया। फिर उनको भोजके प्रति तलवार उठानेकी हिम्मत न हुई। बल्कि उसने आदरके साथ भोजको अपने पासस्थानमें छिपा रखा और चतुर शिल्पियों द्वारा भोजकी आकृतिका एक मुण्ड रूनसे तर बतर कर राजाको दिखला दिया। भतीजेका मृत मुण्ड देख कर राजाका हृदय कांप उठा। उसने वत्सराजसे पूछा, कि बताओ कि मरनेके पूर्व मेरे भतीजेने मुझसे कहनेके लिये तुमको कुछ कहा था? वत्सराजने कहा—'महाराज! उसने मु'हसे तो कुछ न कहा परन्तु इन पत्तोंकी मुझे आपकी देनेके लिये दिये हैं, सो लीजिये। राजाने पत्रको हाथमें ले लिया। वत्सराजके हाथसे उन पत्तोंको ले कर राजा पढ़ने लगा—

"मान्धातेति मर्षपतिः कृतयुगेऽज्ञद्वारभूतो गता।

सेनुर्ये न मरुदधी विरचितः कावी दशाल्यान्वकः ॥

मन्ये चापि सुभिशिर प्रभूवयो यावद्भवान् भूने।

नेकेनापि सम' गता वसुवती मन्ये त्वया यत्पति ॥"

इन पत्तों पर लिखे श्लोकोंके पढ़ते ही राजा मूर्च्छित हुए। फिर होशमें आ उसने भोजके लिये बहुत रोया गाया। धनमें उसने भोजका चियोग न सह सकनेके कारण आत्महत्या कर लेनेका दृढ़ संकल्प कर लिया। समूचे राज्यमें कुहराम मच गया। दूसरे दिन राजा दरबारमें आया। आज उसके प्राणत्याग करनेका दिन था। कुछ क्षणके बाद दरबारमें एक कापालिक आ पहुंचा। उसने कहा,—'महाराज! आप धर्मों जोका-कुन्ड ही रहें हैं। आपके भतीजेको मैं जीवित कर ला सकता हूँ। आप इमशानमें मेरी कही हुई नाममाँ भेजिये। कापालिकके कहनेके मुनासिब इमशानमें दोमकी

सामग्री भेज दी गई। कुछ देरके बाद वह कापालिक भोजको साथमें ले कर राजसभामें गया। वह कापालिक आदिका भोजना, होम आदिका आडम्बर बेचन वत्सराजकी चालें थीं। जीवित कुमारको आने हुए देख कर मुझको अपार आनन्द हुआ। कुछ दे मुझ तिर राजसिंहासन पर बैठ न सके। यथासम्भव नीच भोजको राजपाटका भार भरण कर आप अपनी रानीके साथ जङ्गलकी ओर चले। ( भोजप्रबन्ध )

इन लेखोंमें मुझके बाद भोजके राजा होनेकी बात यद्यपि दिखाई देती है, तथापि यह यथार्थ या सम्भव मालूम नहीं होता। क्योंकि पद्मगुप्तके नवसाहस्राष्ट्र-चरितमें तात्कालिक जिन सब बातोंका उल्लेख है— इम प्रबन्धमें ठीक उसका विपरीत है। पहले ही कहा गया है, कि कवि पद्मगुप्त, मुञ्ज-याकूपति और उसके छोटे भाईने सिन्धुराजकी समाकी सुजीमित किया था। इस कविने लिखा है, "याकूपति राज्य-भार सिन्धुराजके हाथ सुपुत्र कर अभिकापुर चले गये थे। ( ११६८ ) सिन्धुराजने कोशलाधिपति, बागड़, लाट और मुरलीको जीता था। ( १०-१८-२० ) सिन्धुराजके सिन्धुराजने रत्नवतीके राजा यज्ञाकुजको मार कर स्वर्णकमलके साथ नागराज-कन्या शशिप्रभाको हर लाया था। रत्नवती नर्मदासे ५५ कोस दूर पर अवस्थित है। उदयपुर प्रशास्तिमें लिखा है, कि सिन्धुराजने हुण राजाको भी हराया था।

सिन्धुराजका बड़ा भाई मुञ्ज-याकूपति कब मरा और सिन्धुराज कब राजा हुआ, इसका कहीं भी उल्लेख नहीं है। मेहनतने लिखा है, कि प्रधान मन्त्री यशविरयकी सलाहसे याकूपतिराजने नैलप पर चढ़ाई की थी। गोरारो पार कर जब वह नैलपके राज्यमें पहुंचे, तब नैलपने उसको गिरफ्तार कर उसे कैद कर लिया। बहुत दिनों तक जेलमें रहनेके बाद उसने जेलवालेसे माँगनेकी चेष्टा की और पकड़े जाने पर यह मार आता गया। चालुष्यराज द्वितीय नैलपके जिलालेखोंमें भी मुञ्जयाकूपतिकी पराजयकी बात लिखी है। अनितगति-मुनासित रत्नसन्देशप्रबंधके उपसंहारमें लिखा है, कि १०५० विक्रमाब्द तदनुसार म. १३३ और १३६०में मुञ्जके राज्यकालमें ही इस प्रबंधकी रचना हुई। १५२३

वशिपरिचयसे मालूम होता है, कि दूसरे तैलपका ६१६ शकाब्द या सन् ६६७-६८ ई०में देहान्त हुआ था। ऐसी दशामें सन् ६६५से ६६७ तक याकूपतिको मृत्यु और सिन्धुराजके सिंहासनलामका समय माना जा सकता है।

सिन्धुराजके विक्रम तथा बहुतेरे देगों पर अधिकार स्थापित करनेको बातोंको पढ़ कर यह अनुमान किया जा सकता है, कि सात आठ वर्ष तक ही उसका राज्य था।

कविवर पद्मगुप्तने सिन्धुराजके पराक्रम और राज्य-समृद्धिको बहुतसी बातोंका प्रकट किया, परन्तु भोजराजका नाम तक भी उसने उल्लेख नहीं किया है, सम्भव है और खूब सम्भव है, कि उस समय तक भोजराजका जन्म ही न हुआ हो, अथवा जन्म हुआ हो और बालक रहनेके कारण उसके नामोल्लेख करनेको उसे कोई आवश्यकता न दिखाई दी हो।

उदयपुरकी प्रशस्तिमें भोजके शौर्य, धैर्य तथा प्रताप और विद्वत्ताका परिचय मिलता है, इस प्रशस्तिमें लिखा है—“कविराज भोजकी मैं क्या प्रशंसा करूँ? उसने जो साधन या विधान किया है या जो लिखा है या वह जितना जानते हैं, उतना कौन जान सकता है? चेदिराज इन्द्ररथ, तोगगुल और भीम आदि कर्णाट, लाट, गुजरातके राजा और तुर्क-मुसलमान जिसके नीकरसे पराजित हुए थे, जिसके मीलशूरमण एक एक महारथी थे, जिसकी सैन्यसंख्या अगणित थी; जिसने केदार, रामेश्वर, सोमनाथ, सुएडो, काल, अनल और रुद्र आदि देवाल्योंको स्थापित किया था, उसने यथार्थ ही 'जगती' नामकी रक्षा की थी।

कल्याणके चालुक्यराज तोसरे जयसिंहके ६४१ शकाब्द तदनुसार सन् १०१६-२०में लिखे शिलालेखोंसे पता चलता है, कि भोजराजने कर्णाट पर चढ़ाई की थी। किन्तु इस शिलालेखमें राजा भोजके हार जानेकी भी बात लिखी है। प्रायः १०११ ई०में यह युद्ध हुआ था। प्रबन्धचिन्तामणिमें भी लिखा है, कि गुजरातके राजा चौलुक्यमीमके साथ ( सन् १०२१-६३ ई० ) राजा भोजका युद्ध हुआ था। मेरुतुङ्गने लिखा है कि, “जय

भीम सिंधुको जीतनेमें लगे थे, उसी समय राजा भोजने कुलचन्द्र नामके एक दिगम्बरजैनोंको आदिल-चाड़में सैन्यके साथ युद्ध करनेके लिए भेजा था।

राजधानी पर कब्जा हो गया। फिर कुलचन्द्र विजय पत्र ले कर उज्जैन लौट आया। महाकवि विलहणने विक्रमाङ्कदेवचरित नामक एक ऐतिहासिक काव्यमें लिखा है, कि विक्रमाङ्कके पिता दूसरे सोमेश्वरने ( सन् १०४६से १०६८ और ६६ ई० ) शीघ्रतापूर्वक धारानगरी पर अधिकार कर लिया। राजा भोजको बाधा हो कर भागना पड़ा था ( ६६१-६४ )

भोजकन्या भानुमतोके साथ विक्रमादित्यका विवाह होनेका प्रवाद प्रचलित है। बहुतोंका ख्याल है, कि यह विवाद भोजराजके पराजित होनेके बाद हुआ था।

सुलतान महमूदकी सोमनाथ मन्दिरकी चढ़ाई इतिहासमें प्रसिद्ध है। परमेश्वर भोजराजने उस मन्दिरकी रक्षाके लिये महमूदके साथ घोर युद्ध किया था। लेखोंमें इसी युद्धको मुसलमानोंके साथ भोजके युद्धका वर्णन आया है।

भोजराज पराक्रमी देवभक्त और पराक्रान्त राजा तो था ही, सिवा इसके वह सुकवि भी था। वह अपने पिता और बड़े चाचासे कहीं बढ़ कर कवि हो गया था। कवि ही नहीं बरं महापण्डित और विद्वानोंका पृष्ठपोषक भी था। भोजप्रबोधमें दिखाई देता है, कि सैकड़ों विद्वान् राजा भोजकी सभाको शोभा बढ़ाते थे। भोजराज कविता सुन कर प्रत्येक श्लोकके लिये एक एक कवि-को एक एक लाख दोनार या तात्कालिक मुद्रा प्रदान करता था। उसको सभामें रामदेव, हरिचंश, शङ्कर, कलिङ्गकपूर, विनायक, मदन, विद्याविनोद, कोकिल, तारेन्द्र, लक्ष्मोषर, रामेश्वर आदि कवि तथा विद्वानोंके सिवा कितनी ही कवि और विद्वान् लिखां भी थीं। इन लिखांमें सीता ही प्रधाना थी। भोज-प्रबन्धके लेखकने लिखा है, भोजकी प्रधान रानी लीलावती भी बड़ी विद्वान् थी। यादव सिंघनके समयके शिलालेखोंको पढ़ कर हमें मालूम होता है, कि सुप्रसिद्ध ज्योतिषी भास्कराचार्यके पुत्र पिता भास्करभट्टने भोजराज द्वारा विद्यापतिकी उपाधि प्राप्त की थी।

भोजराजकी सभामें ज्योतिष, काव्य, धर्मशास्त्र, दर्शन अर्थात् आदि सभी शास्त्रोंको आलोचना प्रत्यालोचना होनी थी। वहाँके बहुतैरे विद्वानोंका विश्वास है, कि इस भोजराजकी सभामें सर्व शास्त्रों पर कितने ही भाष्य-निबन्धादिकी रचना हुई थी। उनमें कामधेनु ग्रन्थ ही प्रधान है। अब तक भी महाकाजाधिराज भोजके रचे सरस्वतीकण्ठाकरण, राजमार्तण्ड नामके योगसूत्र-भाष्य, राजमार्तण्ड, राजसुभाष्यकरण और विद्वज्जन-सहस्र नामक ज्योतिषशास्त्र, समराङ्गण नामक वास्तु-शास्त्र और शृङ्गारमञ्जरी कथा नामक खण्डकाव्य आदि बहुतैरे ग्रन्थ मिलते हैं।

सिया इसके भोजराजके नामसे निम्न लिखित ग्रन्थ प्रचलित हैं,—आदित्यप्रतापसिद्धान्त (ज्योतिष), आयु-पेंदमर्चस्य (वैद्यक), चम्पूरामायण, चारुचर्या (धर्मशास्त्र), तत्रप्रकाश (शैव), नाममालिका (कोष), युक्तिकल्पतरु, विद्याचिनोद (काव्य)-विद्वज्जनसहस्र प्रश्नचिन्तामणि, विधान्तविद्याचिनोद (वैद्यक), व्यवहारसमुच्चय (धर्मशास्त्र), जव्दानुशासन, शालि-होय, शिवदत्तरत्नकलिका, समराङ्गण सूत्रधार, सिद्धांत-संग्रह (शैव) और सुभाषितप्रबंध आदि। किन्तु ही विद्वानोंका क्याल है, कि उपर्युक्त ग्रंथ समूह राजा भोजकी सभाके विद्वानोंके रचे हुए हैं।

केवल बहुतैरे ग्रंथ ही राजा भोजके नामसे प्रचलित नहीं परं तारकालिक कितने ही विद्वान् अपने-अपने रचित ग्रंथोंमें भोजराज मत अध्याय श्लोकोंको उद्धृत कर उसका नाम विरह्मरणाय कर गये हैं। इनमें शूलपाणि, दशबल, अज्ञानुग्रह और ह्यार्ल रघुनन्दन द्वारा भोजराज निबंध-कारके रूपमें भावप्रकाश और माधवके रतिनिबन्धमें वैद्यक ग्रंथकाररूपमें केशवार्क द्वारा ज्योतिषशास्त्रकाररूप में और स्वामी, सायण और महीप द्वारा भगिधान रच-यिता और पैयाकररूपमें और चित्तप, देवभर, विनायक क्षोरसरस्वतीकुटुम्बद्विहा आदि कवियों द्वारा कवि-रूपमें प्रसिद्ध हो गया है। प्रसिद्ध दार्शनिक याचस्पति मिथ अपने तत्त्वकीमुद्दी ग्रंथमें 'भोजराजवाचिक' कह कर भोजराजकी प्रशंसा की है।

पहिलपण्डितके सिया मेघनुज आचार्य, राज-

पहम, यत्सराज पहम, मुनिसुन्दरनिष्य, शुभगीत आदि पण्डितोंने भोजप्रबंध लिख कर 'भोजराजकी चरित्रगाथा' गाया है। इन सब लेखोंमें भोजराजकी कीर्ति तथा महात्म्य विशेषरूपसे वर्णित होने पर भी ऐतिहासिकोंके सामने इन सब ग्रंथोंका कुछ विशेष मूल्य नहीं है।

उदयपुर, नागपुर और बड़नगरकी प्रगल्भियोंकी, कीर्तिकीमुद्दी, सुश्रुत संकोत्तन और प्रबंधचिन्तामणि-की आलोचना करने पर मालूम होता है, कि चेद्विराज कर्ण और गुजरातके राजा चैतुष्यमर्माके एक साथ आक्रमण करने पर भोजराज मारा गया था और धारा नगरी शत्रुओंके हाथ आ गई थी। उदयपुरकी प्रगल्भ-में लिखा है, कि भोजराजका योग्य पुत्र उदयदित्यने अपने पिताके योग्ये हुए नष्ट गौरव और नष्टराज्यक्षय-को पुनः प्राप्त किया था। प्रायः १०१० ई०से १०४२ ई० तक भोजराजने धारानगरी और मालवाका शासन किया था। किन्तु ही लोगोंका विश्वास है, कि यही भोज भोजविद्याका प्रवर्तक है।

भोजराजचौर्कावि—शाङ्ग धरपञ्जितभूत एक कवि। चौ-कविहृत्त पद्याली उक्त ग्रंथमें उद्धृत है।

भोजराय—बृंवीके शासनकर्ता। ये सघ्राद् अरु-यशाहके राजत्वकालके बीसवें वर्षमें इस पद पर आसोन हुए। इनके पिता राय सुरज्जन हाड़ा चित्तोर-राजके अधीन रणस्तम्भगढ़के सामन्त थे। अरुयशाहके चित्तोर पर चढ़ाई करने पर रणस्तम्भगढ़ इनके हाथ लगा। तभीसे पिता-पुत्र मुगलसघ्राद्की भाष्य-निष्ठा करनेका पाठ्य हुए। दोनों ही धीर और वीर्यवान् थे। भोजराय उष्टीस्ताके अफगान युद्धमें मानसिहके और दाक्षिणात्यके मुगल अभियानमें शेग अणुद फजलके सहकारीरूपमें गये थे।

इन्होंने मानसिहके पुत्र जगन्सिहके साथ अपनी कन्याकी द्याहा था। जहांगीरने विनूंसिहामन पर ध्वि-ष्ठित हो कर इस कन्याका पालनमहण करना चाहा, किन्तु मुगलोंकी दृष्ट्या देनेमें भोजराय पिलदुल्ल इनकार करने गये। इस पर जहांगीर बड़े विगड़े और इगका प्रति-शोध लेनेके लिये तैयार हो गये। इस समय भोजराय

काबुलमें थे। जब उनको इस बातका पता लगा, तब १०१६ हिजरीमें उन्होंने आत्महत्या कर ली। दूसरे वर्ष उनकी दौहित्रीके साथ सम्राट् जहांगीरका शुभविवाह सम्पन्न हुआ।

भोजराजीय ( स'० लि० ) भोजराज सम्बन्धीय।

भोजवदर—बम्बईप्रदेशके काठियावाड़ विभागके गोहेलवाड़ जिलान्तर्गत एक छोटा सामन्तराज्य। यहांके सरदार गायकवाड़राज और जुनागढके नवाबको कर देते हैं।

भोजवर्मन्—कालञ्जरके चन्देन्द्रवंशीय एक सुप्रसिद्ध राजा। चन्द्राग्रेय-राजवंश देखो।

भोजवाजी—ऐन्द्रजालिक क्रीड़ा। व्यायाम आदिमें धतुर और कौतुकनिपुण मनुष्य अपने अत्याश्चर्यजनक क्रीड़ाओं द्वारा जो रहस्यपूर्ण तमाशादि दिखाते हैं, उसीको भोजवाजी या इन्द्रजाल खेल कहते हैं। जो काम सहजमें होनेवाला नहीं, उसको बातकी बातमें कर दिखाना उसका कौशल्य है। ऐसी ही उनको शिक्षा दी जाती है, जिससे वह असम्भवकी सम्भव कर दिखाते हैं। जैसे सूतेको रेशम बना देना, एकाएक बहुत सांपोंका दृश्य, रुपये हाथसे गायब कर देना, या मट्टीसे रुपया बना देना, कोयलेकी होराके रूपमें दिखाना, अपनी जीमको छेद देना, हत्या, पुनः जीवन्दान, एकाएक नदी तथ्यार कर दिखा देना इत्यादि तमाशो सहज हीमें दिखला सकते हैं। अवश्य ही यह मानना होगा, कि मृत-सजीवनोविद्याके विना जाने कोई मनुष्य किसी मृत शरीरमें प्राणवायुका सञ्चार कर सकता है। अङ्गरेजोंके इस तरहके कठोर शासनमें कमी भी क्रीड़ादिखलानेमें नर हत्या नहीं हो सकती। किन्तु जाङ्गर जो क्रीड़ा कौतुक दिखलाते हैं, वह केवल नजर-वन्दीका कारण है। नजर बांधनेमें वह बहुत निपुण होते हैं।

फिर हम जरूर कहेंगे, कि वेद, पुराण और डामर तन्त्रोंमें इस तरहके कई मन्त्र देखे जाते हैं, जिससे बहुत असम्भवकी यात असम्भव होने पर भी सम्भव हो सकती

है। इन सब कामोंमें द्रव्यगुण ही प्रधान बाधा है और कितने ही कामोंमें मन्त्र आदिकी भी जरूरत होती है और कितने ही कामोंके लिये केवल अभ्यासकी जरूरत है। किन्तु प्रायः सब कामोंमें उत्तम गुरुकी दीक्षाकी परम आवश्यकता है। अन्याया पुस्तकोंमें लिखे मन्त्रोंका कुछ भी प्रभाव नहीं हो सकता। जिस प्रकिया द्वारा मन्त्र मिद्ध करनेका नियम है, उसी प्रकियासे सिद्ध करना आवश्यक है।

यह भोजवाजीगर अंग्रेज जगलर (Juggler) या याजीगारोंसे बहुत मिलने जुलते हैं। इनके बाजीगरके कामोंमें अधिक मन्त्र तन्त्रोंकी आवश्यकता नहीं होती। अभ्यास ही उनका मूलमन्त्र है। इनका कहना है, कि जैसे A. B. या क, ख, से अभ्यास कर अंग्रेजी हिन्दी भाषामें पारंगत हो सकते हैं उसी तरह अभ्याससे ही एक छोटे सांपसे ले कर 'घुघूर' मोटे मोटे वा 'गैहुअन' या करैत आदि चिपेले सांप तक पकड़नेमें समर्थ हुआ जा सकता है। अभ्याससे कुत्तों हाथ चला कर दूसरे एक हाथका रुपया गायब कर दूसरे हाथमें ले सकते और नेत्रके कौनमें तौन इन्चका शलाका घुसेड़ सकते हैं इत्यादि।

हमारे देशमें आजकल भोजवाजीगर जो तमाशो दिखलाते हैं, उसमें द्रव्यगुण, मन्त्र, व्यायाम तथा क्रीड़ा कौतुककी कार्यकुशलता अधिक देखी जाती है। कमी कमी तो वे निराधार रस्सो पर अपना बोझ रख (Rope-Dancing) आकाश मार्गमें आते जाते हैं। कमी दोनों हाथ नीचे टेक कर और पैरोंको आकाशमें खड़ा कर यानी शिर नीचे और पैर ऊपर कर हाथोंके बलसे मोर (Peacock)की तरह चलते हैं। कमी कमी द्रव्योंके गुण दिखा कर अपनेकी अभ्यास नेपुण्यका परिचय देते हैं। जैसे कपड़ेमें चावल रख कर उसको भूज देना, आमकी गुरली जमोनेमें रोप तुरन्त पौधेको अंकुरित करना और पौधा और वृक्ष उत्पन्न कर फल पैदा कर देना या जलमें कमलकी वृष्टि कर देना इत्यादि जिग चीजोंसे यह क्रीड़ा बनाया जाता है, उसको भोजवाजी कहते हैं।

वाजीगर इसी खेलको भानुमतीका पेटारा कहा करते हैं। लोगोंका अनुमान है, कि राजा भोजकी कन्या भानुमतीने इस 'वाजी' या खेलको उत्पन्न किया था। साधारणका विश्वास है, कि ये मन्त्र द्वारा तुंबड़ो बजा कर लोगोंको डूँटिको बांध देते हैं। खेलके प्रारम्भमें वे लाग लाग भेलकी लाग मामीकी माकी खेल देख यह पद कई बार पुनः पुनः उच्चारण करते हैं। यह तुमड़ो खेल रुचिकर तथा आश्चर्यजनक है।

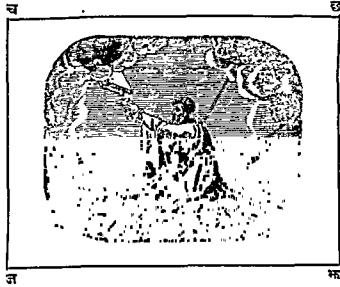
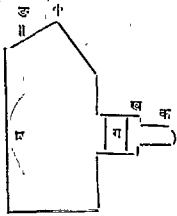
भोजविद्या—पेन्द्रजालिकविद्या, जादूगरी। बहुताका विश्वास है, कि भारत-प्रसिद्ध भोजराजने इस कुहक-विद्याका प्रवर्तन किया है। इसीलिए इस अघटन-घटना-पट्ट विज्ञानका नाम उनके नामानुसार प्रसिद्ध हुआ है। प्रवाद है, कि विद्यानुरागी भोजराजने इस अपूर्व माया विद्याकी उन्नतिके लिए विशेष प्रयत्न किया था। उन्हीके आश्वास और आश्रयमें इस विद्याकी विशेष उन्नति देख कर पण्डित-मण्डली उसकी उन्नतिके लिए बहुरिकर हुई थी। उसीका फल है कि, अथर्व-वेद, पुराण और तन्त्रादिसे अभिचार मन्त्रोंको उद्धृत कर उसे एक स्वतन्त्र विज्ञान वा विद्यारूपमें परिणत कर दिया गया है। मारण, उच्चघटन, वशीकरण, स्तम्भन, रोगनिवारण, भूतप्रसाधन, आकर्षण, मोहन, विद्वेषण आदि नैसर्गिक क्रियाकाण्ड इसी विद्याके अन्तर्गत कर दिया गया है। किस प्रकार और किस रूपमें वह सम्भव हो सकता है इसका समावेश निर्णय करना इस विद्याका प्रधान उद्देश्य है। किस द्रव्यमें क्या गुण है और दूसरे किस द्रव्यके साथ उसे मिलानेसे रासायनिक प्रयोगसे क्या फल हो सकता है, इस बातके समन्वय साधन द्वारा जो अत्याश्चर्य गुण-परम्परा उपलब्ध होती है, उसीका नाम भोजविद्या है।

एक किम्बदन्ति है, कि राजा भोज द्वारा प्रवर्तित इस अद्भुत कला-विद्यामें उनकी रूपगुणवती कन्या चित्रमादित्यकी पत्नी भानुमती विशेष पारदर्शिनो थीं। भानुमतीकी इन क्रीड़ा कुशलताको कहानी सचैव प्रसिद्ध

है। यह भी प्रसिद्ध है कि, भानुमतीने एक दिन अपने जादू-विद्यासे प्रान्तर समुद्रकी सृष्टि कर विक्रमादित्यको गति रोक दी थी। 'बत्तीस सिंहासन' नामकी पुस्तकमें बत्तीस पुतलियोंके जो कथन हैं, वह भोजविद्या-कुशलताका निदर्शनमात्र है।

यह भोजविद्या अधिकांशमें अङ्गरेजी मैजिक (Magic) सदृश है। फिलहाल हमारे देशमें भोज-विद्याकी जैसी सङ्कीर्ण अर्थोत्पत्ति हुआ करती है, अङ्गरेजी Magic शब्दसे भी वैसा ही अर्थका बोध होता है। 'भोजविद्या' कहनेसे जैसे अब सिर्फ भौतिक क्रीड़ा कौशली वाजीगरोंके कार्यामात्रका बोध होता है, वैसे ही अङ्गरेजीमें magic कहनेसे अब छायावाजी सम्बन्धमें आती है।

पहले पहल कागज पर प्रतिमूर्त्ति काट कर उसीसे छायावाजी दिखलाई जाती थी। पहले एक अंधेरे फोटरीके एक कोनेमें बत्ती रख कर कपड़ेसे उसे इस तरह घेर दो, जिससे वह आलोकान्धकारसे विच्छिन्न हो जाय। पीछे उस अंधकार गृहांशमें दर्शक मण्डलको बिठा कर, आलोकभागसे कपड़ेके पास कागजका जैसा चित्र दिखलाया जायगा, उसकी सुस्पष्ट छाया भी वही कपड़ पर पड़ेगी। उस चित्रको जितना ही आलोकके पास ले जाओगे, छाया उतनी ही बड़ी दोखेगी। पीछे जब (magiclantern) भौतिक-प्रदीपका आविष्कार हुआ, तब इस क्षुद्रतर भोजविद्याकी और भी उन्नति हो गई। यह आलोकदण्ड इस तरकीबसे बनाया गया है, कि उसकी आलोक-रश्मि सिर्फ एक ही छिद्रसे निकलती है। उस छिद्रक सुंद पर एक मोटे पेटका कांच रहता है। उसके अधिध्रयण (Focus) स्थानमें आलोक-किरणोंका समूह एकत्रित हो कर पेसे विस्तृतरूपमें फैलता है, कि जिससे उसके अन्दरके कांच पर खींची हुई चित्रावली दर्शक-मण्डलीके सामने स्पष्टरूपसे और बड़े आकारमें प्रतिभासित होती रहती है।



ऊपर भौतिक-प्रदीपका चित्र दिया जाता है। 'क' से 'ख' तकका स्थान एक गोलाकार नल है। 'क' के मुँह पर पूर्वकथित मोटे-पेटका कांच है, 'ग' मार्गचित्र-प्रसारणका स्थान है। 'घ' प्रदीपके अन्दरकी बत्ती है, 'घ'के पीछे जो ऐसा है वह दीप्ति-प्रसाधक (Reflector) है और 'ङ' धुआं निकलनेका मार्ग है। च, छ, झ, भोगे कपड़े पर पड़ा हुआ अक्स या चित्र है।

इस भौतिक छाया-प्रदर्शनी द्वारा जो चित्र दिखलाए जाते हैं वे काँच पर नाना वर्णोंमें चित्रित और ऐसे जिल्ल-नैपुण्यपूर्ण होते हैं, कि लोग उसकी छायाको देखा कर यही समझने लगते हैं जैसे वह सजीव चित्र हो। भौतिकप्रदीपके 'क' चिह्नके अधिध्रयण स्थानमें आलोकमाला संयुक्त होने पर 'ग' मार्गमें प्रविष्ट चित्र साफ-साफ दिखलाई देता है। अधिध्रयण ठीक करनेके लिए नलको घटाया बढ़ाया जा सकता है।

अब जो सोनोमा या वायस्कोप (Bioscope) नामकी चित्र-प्रदर्शनी निकली है, वह भी एक प्रकारकी भौतिक छायावाजी ही है। इसके सिवा भोजवाजीकी तरह फिल-हाल अंग्रेजी magic शब्दसे और एक प्रकारकी खेल दिखाया जाता है। इसकी क्रियाओंमें ऐन्द्रजालिक खेलोंकी तरह हाथ चलायिका अभ्यास करना पड़ता है। बिना एक शिक्षक सहयोगीके यह काम करना असम्भव है।

ताशके खेलमें उनकी सजावट जैसी आश्चर्य-जनक है, उसी प्रकार सजघज और आडुम्बरमें ही अंग्रेजीप्रथासे magic दिखलाई जाती है। दूसरेका रुमाल ले कर सबके सामने फाड़ते समय उसे इस ढंगसे ढुबका लेना पड़ेगा कि किसीको उसका आभास भी न हो। पीछे अपने रुमालको फाड़ कर उसे आगमें जला दो और दर्शकका रुमाल अपने सहकारीको दे कर उसे एक फ्रेममें अच्छी तरह रखवा लो। फिर यथासमय उस फ्रेमको दर्शकोंके सामने रंगमञ्च पर रखो। इधर एक बन्दूकमें उस फटे जले रुमालको भर कर उसका घोड़ा दाब दो। यह बन्दूक भी मामूली नहीं होती, बल्कि खेलके लिए विशेष ढंगसे बनाई जाती है। बन्दूकको उस नलीके बगलमें घैसो ही एक दूसरी नली रहती है, जिसमें यह फटा हुआ रुमाल इस तरफीवसे रखा जाता है, कि घोड़ा दाबने पर आवाज तो होती है, पर रुमाल नहीं निकलता। दर्शकोंको इसका कुछ भी पता नहीं रहता। फिर फ्रेम खोल कर दिखलाते हैं। इसलिए यह सजानेकी हुश-लताका परिचयमात्र है। इसी प्रकार वे और भी बहुत-से अनैसर्गिक खेल दिखलाते हैं, अत्यन्त आश्चर्यकारी आर हास्योद्दीपक होते हैं। Mesmerism द्वारा ज्ञान-हरण करके वे मुँहसे भूतावेशकी तरह अभूतपूर्ण वाक्योंका उद्गायना अथवा Ventriloquism रूप विभिन्न स्वर-विन्याससे भूतप्रेतादि योनियोंकी अवतारणा

वाजीगर इसी खेलको भानुमतीका पेटारा कहा करते हैं। लोगोंका अनुमान है, कि राजा भोजकी कन्या भानुमतीने इस 'वाजी' या खेलको उत्पन्न किया था। साधारणका विश्वास है, कि ये मन्त्र द्वारा तुंगडी बजा कर लोगोंको दृष्टिको बांध देते हैं। खेलके प्रारम्भमें वे लाग लाग मेलकी लाग मामीकी माकी खेल देख यह पद कई बार पुनः पुनः उच्चारण करते हैं। यह तुमडो खेल रुचिकर तथा आश्चर्यजनक है।

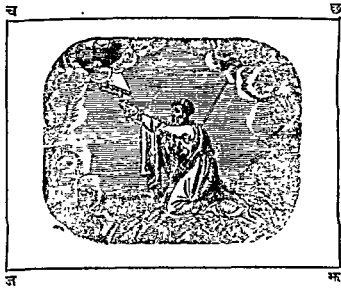
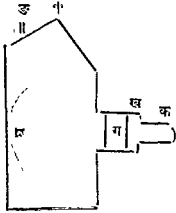
भोजविद्या—पेन्द्रजातिकविद्या, जादूगरी। बहुतांका विश्वास है, कि भारत-प्रसिद्ध भोजराजने इस कुहक-विद्याका प्रवर्तन किया है। इसीलिए इस अघटन-घटना-पट्ट विज्ञानका नाम उनके नामानुसार प्रसिद्ध हुआ है। प्रवाद है, कि विद्यानुरागी भोजराजने इस अपूर्व माया विद्याकी उन्नतिके लिए विशेष प्रयत्न किया था। उन्हींके आश्वास और आश्रयमें इस विद्याकी विशेष उन्नति देख कर पण्डित-मण्डली उसकी उन्नतिके लिए बद्धपरिकर हुई थी। उसीका फल है कि, अथर्व-वेद, पुराण और तन्त्रादिसे अभिचार मन्त्रोंको उद्धृत कर उसे एक स्वतन्त्र विज्ञान या विद्यारूपमें परिणत कर दिया गया है। मारण, उच्चवाटन, वशीकरण, स्तम्भन, रोगनिवारण, भूतप्रसाधन, आकर्षण, मोहन, विद्वेषण आदि नैसर्गिक क्रियाकाण्ड इसी विद्याके अन्तर्गत कर दिया गया है। किस प्रकार और किस रूपमें वह सम्भव हो सकता है इसका समावेश निर्णय करना इस विद्याका प्रधान उद्देश्य है। किस द्रव्यमें क्या गुण है और दूसरे किस द्रव्यके साथ उसे मिलानेसे रासायनिक प्रयोगसे क्या फल हो सकता है, इस बातके समन्वय साधन द्वारा जो अत्याश्चर्य गुण-परन्पर उपलब्ध होती है, उसीका नाम भोजविद्या है।

एक किम्बदन्ति है, कि राजा भोज द्वारा प्रवर्तित इस अद्भुत कला-विद्यामें उनकी रूपगुणवती कन्या विक्रमादित्यकी पत्नी भानुमती विशेष पारदर्शिनो थीं। भानुमतीकी इन मोड़ा कुशलताकी कहानी सर्वत्र प्रसिद्ध

है। यह भी प्रसिद्ध है कि, भानुमतीने एक दिन अपने जादू-विद्यासे प्रान्तर समुद्रकी सृष्टि कर विक्रमादित्यकी गति रोक दी थी। 'बत्तीस सिंहासन' नामकी पुस्तकमें बत्तीस पुतलियोंके जो कथन हैं, वह भोजविद्या-कुशलताका निदर्शनमात्र है।

यह भोजविद्या अधिकांशमें अङ्गरेजी मैजिक (Magic) सदृश है। फिलहाल हमारे देशमें भोज-विद्याकी जैसी सङ्कीर्ण अधोत्पत्ति हुआ करती है, अङ्गरेजी Magic शब्दसे भी वैसा ही अर्थका बोध होता है। 'भोजविद्या' कहनेसे जैसे अब सिर्फ भौतिक मोड़ा कौशली वाजीगरोंके कार्यामात्रका बोध होता है, वैसे ही अङ्गरेजीमें magic कहनेसे अब छायावाजी सम्भ्रम आती है।

पहले पहल कागज पर प्रतिमूर्त्ति काट कर उसीसे छायावाजी दिखलाई जाती थी। पहले एक अंधेरी फोटरीके एक कोनेमें बत्ती रख कर कपड़े से उसे इस तरह घेर दे, जिससे वह आलोकान्धकारसे विच्छिन्न हो जाय। पीछे उस अंधकार गृहोंमें दर्शक मण्डलीकी बिठा कर, आलोकभागसे कपड़ेके पास कागजका जैसा चित्र दिखलाया जायगा, उसकी छुस्पष्ट छाया भीगे कपड़े पर पड़ेगी। उस चित्रकी जितना ही आलोकके पास ले जाओगे, छाया उतनी ही बड़ी दोखेगी। पीछे जब (magic lantern) भौतिक-प्रदीपका आविष्कार हुआ, तब इस क्षुद्रतर भोजविद्याकी और भी उन्नति हो गई। यह आलोकदण्ड इस तरीके से बनाया गया है, कि उसकी आलोक-रश्मि सिर्फ एक ही छिद्रसे निकलती है। उस छिद्रक सुई पर एक मोटे पेटका कांच रहता है। उसके अधिभ्रयण (Focus) स्थानमें आलोक-किरणोंका समूह एकत्रित हो कर पेसे विस्तृत रूपमें फैलता है, कि जिससे उसके अन्दरके कांच पर खींची हुई चित्रावली दर्शक-मण्डलीके सामने स्पष्टरूपसे और बड़े आकारमें प्रतिभासित होती रहती है।



ऊपर भौतिक-प्रदीपका चित्र दिया जाता है। 'क' से 'ख' तकका स्थान एक गोलाकार नल है। 'क' के मुँह पर पूर्वकथित मोटे-पेटका कांच है, 'ग' मार्गचित्र-प्रसारणका स्थान है। 'घ' प्रदीपके अन्दरकी वत्ती है, 'घ'के पीछे जो ऐसा है वह दोसि-प्रसाधक ( Reflector ) है और 'ङ' धुआं निकलनेका मार्ग है। च, छ, झ, भोगे कपड़े पर पड़ा हुआ अक्स या चित्र है।

इस भौतिक छाया-प्रदर्शनी द्वारा जो चित्र दिखलाए जाते हैं वे काँच पर नाना वर्णोंमें चित्रित और ऐसे ग्लिय-नैपुण्यपूर्ण होते हैं, कि लोग उसकी छायाको देखा कर यही समझने लगते हैं जैसे वह सजीव चित्र हो। भौतिकप्रदीपके 'क' चिह्नके अधिभ्रयण स्थानमें आलोकमाला संयुक्त होने पर 'ग' मार्गमें प्रविष्ट चित्र साफ-साफ दिखलाई देता है। अधिभ्रयण ठीक करनेके लिए नलको घटाया बढ़ाया जा सकता है।

अब जो सीनोमा या बायस्कोप (Bioscope) नामकी चित्र-प्रदर्शनी निकली है, वह भी एक प्रकारकी भौतिक छायावाजी ही है। इसके सिवा भोजवाजीकी तरह फिल-हाल अंग्रेजी magic शब्दसे और एक प्रकारकी खेल दिखाया जाता है। इसकी क्रियाओंमें ऐन्द्रजालिक खेलोंकी तरह हाथ चलानेका अभ्यास करना पड़ता है। विना एक शिक्षक सहयोगीके यह काम करना असम्भव है।

ताणके खेलमें उनकी सजावट जैसी आश्चर्य-जनक है, उसी प्रकार सजघज और आडम्बरमें ही अंग्रेजीप्रथासे magic दिखलाई जाती है। दूसरेका रुमाल ले कर सबके सामने फाड़ते समय उसे इस ढंगसे दुबका लेना पड़ेगा कि किसीको उसका आभास भी न हो। पीछे अपने रुमालको फाड़ कर उसे आगमें जला दो और दर्शकका रुमाल अपने सहकारीको दे कर उसे एक फ्रेममें अच्छी तरह रखवा लो। फिर यथासमय उस फ्रेमको दर्शकोंके सामने रंगमञ्च पर रखो। इधर एक बन्दूकमें उस फटे जले रुमालको भर कर उसका घोड़ा दाब दो। यह बन्दूक भी मामूली नहीं होती, बल्कि खेलके लिए विशेष ढंगसे बनाई जाती है। बन्दूकको उस नलीके षगलमें घँसी ही एक दूसरी नली रहती है, जिसमें वह फटा हुआ रुमाल इस तरकीवसे रखा जाता है, कि घोड़ा दाबने पर आवाज तो होती है, पर रुमाल नहीं निकलता। दर्शकोंको इसका कुछ भी पता नहीं रहता। फिर फ्रेम खोल कर दिखलाते हैं। इसलिए यह सजानेकी बुशलताका परिचयमाल है। इसी प्रकार वे और भी बहुतसे अनैसर्गिक खेल दिखलाते हैं, अत्यन्त आश्चर्यकारी आर हास्योद्दीपक होते हैं। Mesmerism द्वारा ज्ञान-हरण करके वे मुँहसे भूतावेशकी तरह अभूतपूर्व वाक्योंका उद्गायना अथवा Ventriloquism रूप विभिन्न स्वर-धिन्याससे भूतप्रेतादि योनियोंकी अवतारणा



और उनके साथ नाना विषयको धार्त्तलाप करते हैं। जिसे हम अधिकांशमें भोजविद्या या magical art-के अनुसाररूप कह सकते हैं, परंतु पहलेके अंग्रेजी साहित्य या बाइबिल धर्मग्रंथमें Magic शब्दका जैसा प्रयोग देखनेमें आता है, वह इससे स्वतन्त्र अर्थमें ही व्यवहृत हुआ है। उक्त ग्रंथमें उप देवता ( Evil spirits ) वा प्रेतात्मा पर शक्ति-सञ्चारक ज्ञानको भौतिकविद्या कहा गया है। Balaam और Ruth mag आदि भोजविद्याके विगारद थे। पूर्वतन ईसाई, फलस्त्रीय वैविलोनीय, इजिप्तीय आदि लोग भोजविद्यामें अभ्यस्त थे।

पूर्वतन इज्राइल और मिश्रदेशके लोग भौतिक-विद्यामें पारदर्शी थे, यह बात बाइबिलके पढ़नेसे मालूम हो जाती है ( Exod. vii. 11 ) हेज़्ज़ेद नवर्गने लिखा है— 'इजिप्तीय पुरातत्त्वकी आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि उन देशमें भोजविद्या-विगारदोंकी एक श्रेणी रहती थी। वे प्रायः दो प्रकारके कार्य करते थे। देवगान्धिरोंमें उपासना और आराधना तथा भोजविद्या रूपविज्ञानकी परिचर्या। जो इस विद्यामें पारदर्शी होने थे वे सर्वत्र संन्यासीकी तरह पूजित और सम्मानित होते थे। बहुधा वे भविष्यद्वक्ताकी तरह देवोपदेश सुना दिया करते और कभी कभी पवित्र मन्त्रोंको पढ़ कर रोगीके मनमें ऐसी भक्तिका उद्रेक करा देते थे, कि उससे बहुत ही जल्दी उसका रोग दूर हो जाता था। ये लोग साधारण ज्ञानके परे अर्थात् पूर्णमात्रामें दिव्यज्ञान प्राप्त थे। ये साधुहृदय महात्मा लोग ज्ञानयोगसे मनुष्यके ज्ञानके परेकी वस्तुओंको भी देख सकते थे। उसको इस मैजिक (magic) विद्याकी दूरदर्शिता और बहुज्ञान सञ्चयका फल कहा जा सकता है। अथवा यों कहना चाहिए, कि ये योगबलसे अलोक-सामान्य वस्तुओंको साधारणके समझ रख दिया करते थे।

हमारे देशमें मृत्युमुखमें पड़े हुए कठिन रोगग्रस्त प्यक्तिकी रोग-शान्तिके लिए जैसे प्रहृष्टान्ति, नारायणकी तुलसीदान और स्वस्त्ययनादिकी व्यवस्था है, ईसाइयोंमें भी वैसी ही व्यवस्था थी। पूर्वोक्त ज्ञानी पुरोहितगण, चिकित्सकीकी व्यवस्थाके साथ-साथ पवित्र मन्त्र पढ़

कर रोग दूर करनेकी कोशिश करते थे। कभी वे रोगीके शरीरगत सामुद्रिक चिह्नकी पर्यालोचना और प्रदाईकी परिचालना करके रोगीको साध्यासाध्यताका निरूपण कर दिया करते थे। इसके सिवा वे स्वप्नादिका भी फलाफल बना देते थे। जब कभी किसी स्थानमें महामारी आदि फैलती दिखाई देती, तो ये पुरोहितगण अपनी-अपनी अभ्यस्त भौतिकविद्याके प्रभावसे उसे दूर करनेका प्रयत्न करते थे। लूसियन Lucian ग्रन्थमें 'इजिप्तीय' भोजविद्याका आभास पाया जाता है। उक्त ग्रन्थमें लिखा है, 'इजिप्तीय' भोजविद्या-पारदर्शी एक मेम्फतीने २३ वर्ष तक पाताललोकमें वास करके आसिस (Isis)-के पास भोजविद्या सीखी।

इजिप्त और वैविलन राज्य किन्तो समय भोजविद्या-विगारद पुरोहितोंका केन्द्र था। उसके बाद यहूशियोंने इस विद्याका अग्रगण्य किया। उन्होंने भी मन्त्रोंद्वारा प्रेतात्माका आह्वान, भूतादिकी अवतारणा और उनके प्रतिपेध तथा सलोमनके नामसे मन्त्रोच्चारण कर रोग दूर करना प्रारम्भ किया। जेसेकामकी विवरणो पढ़नेसे इस विषयका सविस्तार इतिवृत्त प्राप्त हो जाता है।

'सेफेर टोल्दाय् जेस्' नामक ग्रन्थमें ईमामसोहकी शैलीकिक क्रियाबलीके अभिनय सम्बन्धमें इस प्रकार एक उपाख्यान दिया गया है,—डेविडने जेरुसलेमके पवित्र मन्दिरकी नीची डालते समय एक पत्थर पर विश्व पाताके ज्ञानका द्योतक एक मन्त्र अङ्कित देना। बादमें कहीं कुनूह्ल-परवश अन्न युवकगण उस मन्त्रको पा कर अत्यद्भुत कार्य (Miracles) करके जगत्का महा अमङ्गल न कर बैठे, इस ख्यालसे उन्होंने उस मन्त्रको गर्भ-गृहके पीठस्थानमें रख दिया। अन्य कोई उस मन्त्रको न पढ़ सकें, इसलिए तत्कालीन साधुचेता मनीषियोंने उस पवित्र पाठ ( Holy of the Holus ) प्रवेशद्वार पर दो सिंहमूर्तियाँ स्थापित कर दीं। प्रवाद है, कि यदि कोई व्यक्ति मन्दिरमें प्रवेश कर उस मन्त्र द्वारा प्राण-चक्षु प्राप्त करके मन्दिरके बाहर आना चाहता, तो वे दोनों सिंह विकट गर्जन करते जिससे वह उस मन्त्रको वहाँका वहाँ भूट जाता। एक दिन स्वयं ईमामसोहने अपनी अलौकिक भोजविद्या और मन्त्रादिके प्रभावसे

पुनर्निर्मिते विद्य कर उस संवका उदाहृत किया थीर  
उने एक पार्लमेण्ट कागज पर लिख लाये ।  
पोछे अपने जारोके चमड़ेको छेड़ कर उसमें  
उस लेखनोको घुसा दिया । मंदिरमे बाहर जाने  
समय मित्रके गर्शतमे ये उस संवका भूट गये, परन्तु  
उनके जारोके अन्दरको लिपिमे उन्हे फिर उस झानगोठ-  
में ला कर रखा दिया । उस संवके प्रभावमे ही उन्हेने  
अलौकिक कार्य सम्पादन किये थे ।

ईसासमोठ और ईसाई साधुगण जिन अलौकिक  
क्रियाओंका सम्पादन कर गये हैं, उनमेंमे किसी किसीमें  
भौतविद्याका आशाम पाया जाता है । प्राचीन हिन्दु  
योग तथा विषामोचन आदि मोक दार्शनिकगण भौत-  
विद्याका अध्ययन करने थे । इकेसम् एक भौतविद्या-  
विद्वान्द थे । ( Acts, XI १७ ) उनके शक्ति सञ्चारक  
गुण-व्यक्तियुक्त कवचके धारण करनेमे लोगोंको विशेष  
लाभ पहुँचता है । स्वयं ईसासमोठने अपनी दिव्य  
मण्डलीके लिए कहे एक भौतविद्या सम्बन्धी निदग्ध  
लिखे थे । सेलससु आदिने लिखा है कि, हमारे तान-  
कर्मने इजिप्टमे भौतविद्या सौगो थी । पहले यह भौत-  
विद्या सर्वसाधारणकी आदरणीय वस्तु थी । ज्ञानवान्  
स्वकिमात्र तथा दार्शनिकगण प्राणिक घटनाओंके  
समन्वय, प्रदीर्घके संस्थान और उनके सञ्चार-अन्य  
सुखदुःखादिके अनुभवको आलोचना करते थे । ये भौतिक  
जगत्की क्रियाओंका स्वस्थ करके उनीके अनुशासनकोपी  
हो गये थे । यह भौतिकविद्या उस समय magic नाम-  
से कही जाती थी । उसके बाद यह तीन धर्मियोंमें  
विभक्त हो गई— १ Natural या स्वभाविक— पार्थिव  
पदार्थोंके सहयोगमे अपूर्ण घटनाओंका समन्वय-सञ्चार ;  
२ phantasmic या प्रहृषिक—प्रहृषिको सञ्चार-  
शक्ति और प्रदीर्घमें अवस्थित प्रेतान्ताओंका मनुष्यके  
कार्यदि पर फैला प्रभाव हो सकता है, उसका निर्णय भी  
प्रतिशय ; ३ Diabolical या भूतविद्या—सन्ध द्वारा  
भूतद्विक भाषाहृत और उनके द्वारा अलौकिक क्रियाओं-  
का सम्पादन । इसके निराला पूर्णिक miracle (अघटन-  
घटन) और神奇 of Diabolical की शक्तिके ऐतिहा-  
सिक द्वारा ब्रह्म भावो पाषणोका कुछ अंश जो भौत-  
विद्यामे परिष्कृत है ।

सब मान्य होता है, कि हमारे देशका भौतविद्या  
और मृतोपयोग Magic एक ही विधा है । जो विद्या  
हमारे देशमें बहु प्रागोक्तकालमे प्रचलित हो कर बादमें  
भौतविद्या कहलाई, पदो विद्या ईसाके जन्मके बहुत  
पहले इजिप्ट, प्रोस, बैबिलोन और काल्दीय राज्यमे  
विद्युत् प्राप्त करके, भारत या भौतिकविद्याके नाममे  
प्रथित हुई है ।

आलोचना करके देखने पर मान्य होता है, कि यह  
विद्या पहले एक स्थानमें विद्युत् और उन्नति प्राप्त  
करके पोछे विभिन्न देशवासियों द्वारा घृष्ट हो गई है ।  
पुनर्पोकी रीज करनेमे विद्वित होता है, कि जाकबो-  
यासी भौतकलाहण प्रहादि चालना, मृयं-पूजा, स्वयं  
और स्वस्व्यायनादि द्वारा रोग शान्ति आदि अलौकिक  
कार्य सम्पादनमें समर्थ थे । साम्यको बुद्धोगमें मुक्ति  
भौतको द्वारा ही हुई थी । भौतकगण भौतिकविद्या  
जानते थे, हममें सन्देह नहीं । भौतकगण देखो ।

जिन जाकबोयो प्रहृषिकोंने भारतमें भा कर भौत-  
संज्ञा प्राप्त की थी, उन्हींकी अत्यन्त शक्ति मग या मगि  
नामसे फारस और सिंधिया राज्यमें बहु पूर्णकालमें  
पौरुहित्यका कार्य करते थे । ऐतिहासिक मधेपचार  
ज्ञात हुआ है कि, ये मगप्रहृषिकगण उस प्राचीन युगमें  
पहुँच कर जाकी आलोचना करने थे । मगि ( Magi )  
प्रादणोंकी घनाख्याति सुदूर तक विद्युत् थी उनके  
द्वारा उद्भावित और अत्यन्त मोक्ष प्रहृषिका कालांतरमें  
जगन्नाधारणकी आलोचनाका विषय हो गया था ।  
इस मगविद्याकी आलोचना करनेवाली जनता कनना एक  
दार्शनिक सम्प्रदायकेमें गठित हो गई थी । साक्षात्सु  
प्रदीर्घके बलाबलका पर्यवेक्षण करना ही उनको निरुक्त  
उद्देश था । यह सत्प्रदाय मगोय ( Magians ) नाम-  
से प्रसिद्ध था । उस समय ज्ञान-धर्मोंमें उनके समान  
उन्नत और कोरे जो ज्ञानि नहीं थीं । सिंधियावासी  
महात्मा दानिपन् दरारुग द्वारा काल्दीय और बैबिलोन-  
की ज्ञानो-मण्डलीके अत्यन्त बनावे गये थे । वे उस  
समय प्रहृषिकात्वर दार्शनिक सम्प्रदायमें धेणु स्थान  
थे । सादिकात्वरसत्प्रदायके अनुद्वेषी कर्मता मगोय-  
सत्प्रदायका शोध हो रहा था । परन्तु दरारुग

विस्तारपूर्वक राज्याकालमें जर्जुलके सम्बुद्धयसे पुनः मगो-सम्प्रदायका प्रसार वृद्धित हुआ। स्वयं राजा दरायुसेने इस मगोय धर्मकी पोषकता की थी। अबस्ता ही उनका प्रधान धर्मशास्त्र था। पारस्य वा फारस्य देलो।

महम्मद द्वारा इसलामधर्मका प्रचार होने पर मगि-धर्मकी अवनतिका सूत्रपात हुआ। अभी तक फारसमें गबर ( Guebres ) और भारतमें पारसी ( Par es ) इन दो सम्प्रदायोंको भग्नशाखाएँ वर्तमान हैं, परन्तु अब ये अपने पूर्ण-पुरुषों द्वारा उद्भावित भीतिकविद्याका अनु-शीलन नहीं करते बल्कि निरीह भावसे रहते हैं।

मग-पुरोहितों द्वारा उद्भावित यह विद्या उनके वंश-धरों द्वारा अनाहत और परित्यक्त होने पर भी भारत या यूरोपमें यह वृथा अपव्ययित नहीं हुई। शाकद्वीप-यासी मग-पुरोहितोंको यह प्रद्वानविद्यया भारतमें लाये हुए भोजकब्राह्मणोंके नामानुसार भोजविद्यया कहाई और वही पश्चिम पशिया तथा यूरोपअण्डमें मगोंके नामानुसार मगोय विद्या magianism या magic नामसे प्रसिद्ध हुई।

यह प्रवादक भोजराजकी विद्या नहीं है। जिन शाकद्वीपी भोजकोंने अपनी भोजविद्याके प्रभावसे साम्य-के कुपुटोको दूर कर दिया था। उनके वंशधरवण भारतमें भोजविद्याकी उन्नतिके लिए आलोचनापूर्वक जिन गूढ तत्त्वोंका उद्भावन कर गए हैं, उनका पर्य-वेक्षण करनेसे चमत्कृत होना पड़ता है। उस एक ही प्रदाचार्योंकी पश्चिम देशामिमुखो शाखाने पश्चिम-पशियाके काल्दोय, पैबिलीन, इजिप्ट आदि देशोंमें अपनी अपनी मगोयविद्याका विस्तार किया था। प्राचीन ग्रन्थादिसे इस बातका विशेष प्रमाण पाया जाता है।

हिन्दू पुराणोंमें भोजविद्याका जैसा परिचय है, ग्रीक पुरातत्त्व और बाइबिल ग्रन्थमें भी उसका काफी निदर्शन पाया जाता है। मारोचका मायामय हरिण, मायारूप सीता-वध, कालनेमिका माया-आश्रम, श्रोफुय्यका गोवर्द्धन-धारण और फालोयदमन तथा हर्किडलिस और इडलिससके धोरत्यकी कथा, इन सबको कोई कोई भोजविद्यया प्रसून समझते हैं।

यद बात पहले ही लिखी जा चुकी है, कि पार्थिय

पदार्थ, ग्रह और भूतवानिके आवाहन ( चण्डुनामान ) को ले कर यूरोपियोंकी magic विद्या संगठित हुई थी। हमारे देशमें भी उक्त तीन विषयोंको, ले कर भोजविद्याकी पुष्टि हुई है। अब हम इस देशको भोजविद्या या इन्द्रजालमें कौन कौनसे विषय आलोचित हुए हैं तथा उनके द्वारा कौन कौनसे गुण प्राप्त किये जा सकते हैं, इस विषयकी आलोचना करते हैं।

भोजविद्यामें शान्तिकर्म, यशोकरण, स्तम्भन, विद्वे-पण, उच्चाटन और मारण ये पदकर्म ही प्रधान हैं। जिस कर्म द्वारा रोग, कुकृत्या और प्रहादि दोष शान्त होते हैं, उसे शान्तिकर्म और जिससे प्राणिगण यशोभूत होते हैं, उसे यशोकरण कहते हैं। जिन क्रियासे प्राणीकी प्रवृत्ति रुकती है, उसका नाम है स्तम्भन, जिससे परस्पर प्रणयी व्यक्तियोंका प्रणय भङ्गन होता है, उसे कहते हैं विद्वेपण, जिस कर्म द्वारा किसी व्यक्तिको अपने देशादि-से भ्रष्ट किया जा सकता है, उसे उच्चाटन और जिसमें प्राणियोंका विनाश किया जाता है, उसे मारण कहते हैं। इस सब कार्योंमें देवता, दिक् और कालादिको समर्थ कर कार्य करनेसे सफलता प्राप्त होती है।

शान्ति-कार्यको देवी रति है, यशोकरणको वाणी, स्तम्भनकी रमा, उच्चाटनको दुर्गा और मारणकी देवी भद्रकाली है। कर्मको आदिमें यथाकमसे इन देवियोंकी विधिवत् पूजा करके कार्यात्म करना चाहिए।

उसके बाद दिङ्निषमका पालन करना उचित है। जिस दिशामें जो कार्य प्रशस्त है, उस कार्यको उसी दिशामें करना चाहिए। यथा—शान्तिकर्ममें ईशान-दिशा, यशोकरणमें उत्तरदिशा, स्तम्भनमें पूर्वदिशा, विद्वे-पणमें नैर्ऋत, उच्चाटनमें वायु और मारणमें अग्निदिशा प्रशस्त है। सूर्योदयसे दग-दग दण्डके अन्तरमें दिन और रात्रिको वसन्तादि छह ऋतु हुआ करते हैं, अर्थात् सूर्योदयके बाद प्रथम दग दण्ड तक वसन्त ऋतु, उसके बाद श्रौम, फिर दग दण्ड चर्पा, दग दण्ड गरम्, दग दण्ड हेमन्त और शेष दग दण्डमें गिशिर ऋतु होती है। मतान्तरमें ऐसा भी है, कि द्वियसका पूर्वभाग वसन्त है, मध्याह्न भाग श्रौम, अपराह्न चर्पा, प्रदीप गिशिर, मध्य-रात्र शरत् और उषा हेमन्त। ऋषियोंकी इस प्रकारसे

समय निरूपण करके पट्कर्म समाप्त करना चाहिए।

हेमन्त ऋतुमें शान्तिकार्य, वसन्तमें वृषोकरण, जिगिरमें स्तम्भन, श्रौषममें विद्वेषण, वर्षामें उच्चाटन और शरत् ऋतुमें मारण कार्यका अनुष्ठान करना विधेय है। इसके अतिरिक्त तिथि, वार और नक्षत्रादिका भी ध्यान रखना चाहिए। द्वितीय, तृतीय, पञ्चमी और सप्तमी तिथिमें तथा शुभ, बृहस्पति, शुक्र और सोमवार-में शान्तिकर्म करना प्रशस्त है। बृहस्पति अथवा सोम-वार-युक्त पण्य, चतुर्थी, षोडशो, नवमी, अष्टमी अथवा दशमी तिथिमें पुष्टिकर्म करना उचित है। जिस क्षणमें धनजननादिकी वृत्ति होती है, उसे पुष्टिकर्म कहते हैं। दशमी, एकादशी, अमावस्या, नवमी या प्रतिपदा तिथिमें तथा रवि अथवा शुक्रवारमें आकर्षण कार्य करना चाहिए। विद्वेषणकार्यमें शनि अथवा रविवार युक्त पूर्णिमा तिथि ही प्रशस्त है। पण्य, चतुर्दशी और अष्टमी तिथिमें तथा शनिवारमें उच्चाटन कार्य प्रशस्त है। विशेषतः प्रदेश समयमें ही उच्चाटन कार्य करना चाहिए। कृष्णपक्षीय चतुर्दशी, अष्टमी अथवा अमावस्या तिथिमें तथा शनि मङ्गल या रविवारको मारण कार्य किया जाता है। शुभ अथवा सोमवारको तथा पञ्चमी, दशमी अथवा पूर्णिमा तिथिमें स्तम्भन कार्य विधेय है।

शुभप्रहले उदयमें शान्ति पुष्टि आदि शुभ कर्म तथा अशुभ प्रहले उदयमें अशुभ कार्य करने चाहिए। विद्वेषण और उच्चाटन आदि क्रूर कार्य रविवार, रिना तिथिमें तथा मारणकार्य मृत्युयोगमें किया जाता है।

अब किस-किस नक्षत्रमें कौन कौनसे कार्य करनेसे कार्य सिद्ध होती है, यह बात कहो जाती है। स्तम्भन, मोहन और वृषोकरण ये त्रिविध कर्म माहेन्द्र और वारुणके मध्यगत नक्षत्रमें प्रारम्भ करनेसे सिद्ध होती है। श्रेष्ठा, उत्तराषाढा, अनुराधा और रोहिणी नक्षत्र माहेन्द्रमण्डलस्थित होता है और उत्तर भाद्रपद, मूला, जतमिया, पूर्वभाद्रपद और अश्लेषा नक्षत्र वारुणमण्डल मध्यगत इन नक्षत्रोंमें जो कार्य किये जाने हैं, उन कार्योंमें सफलता मिला करती है। पूर्वाषाढा नक्षत्रमें भी उक्त कार्य अनुष्ठित होने पर सिद्धी होती है।

विद्वेषण और उच्चाटन कर्म वह्नि और वायुमण्डल-

स्थित नक्षत्रमें होता है। स्यातो, हस्ता, मृगशिरा, चित्रा, उत्तरफाल्गुनी, पुष्य और पुनर्वसु यद्विमण्डल मध्यस्थित नक्षत्र है। तथा अश्विनी, भरणी, आर्द्रा, घनिष्ठा, ध्रुवणा, मघा, विशाखा एतिका, पूर्वफाल्गुनी और रेवती नक्षत्र वायुमण्डल मध्यस्थित है। इन नक्षत्रोंमें पूर्वोक्त कार्य यथायथ सम्पन्न होने पर वह सिद्धिप्रद हुआ करते हैं।

पहले जैसे तिथि और नक्षत्रकी बातें लिखी गई हैं, उसी प्रकारके लग्न और कालमानके निर्देश इन कार्योंका अनुष्ठान करना उचित है। दिवसका पूर्वभाग, जैसे वसन्त कदा गया है, वृषोकरणके लिए प्रशस्त काल है। मध्यभाग विद्वेषण और उच्चाटनके लिए शेषभाग शान्ति और पुष्टिकर्मके लिए तथा सायंकाल मारणकर्मके लिए उत्तम है। सिंह या वृश्चिक लग्नमें स्तम्भन, कर्कट या तुला लग्नमें विद्वेषण और उच्चाटन, मेष, कन्या, धनु या मोन लग्नमें वृषोकरण, शान्ति और पुष्टिकर्म करना चाहिए। मारण, उच्चाटन और शत्रु-निराकरणदि कर्म भी मेष, कन्या, धनु और मोन लग्नमें प्रशस्त है। इसके बाद उक्त पट्कर्मके भूतोदयको देखना चाहिए। जल-तत्त्वके उदयमें शान्तिकर्म, वह्नितत्त्वके उदयमें वृषोकरण, पृथ्वीतत्त्वके उदयमें स्तम्भन, आकाशतत्त्वके उदयमें विद्वेषण, वायुतत्त्वके उदयमें उच्चाटन और पृथ्वी अथवा वह्नितत्त्वके उदयमें मारणकार्य करना चाहिए। इस प्रकार तत्त्वोदयका विचार करके कार्य करना उचित है। परन्तु शत्रुभय या अन्य किसी प्रकारका महाभय उपस्थित होने पर उसके निवारणार्थ कालाकालका विचार नहीं करना चाहिए। जब कभी ऐसी विपत्ति उपस्थित हो, तभी उसको शान्ति करनेको चाहिए।

इन छह प्रकारके कर्म साधनके लिए देवताविद्योयको आराधना करनेको बात पहले ही कही जा चुकी है। वृषोकरण, शोभाण और आकर्षण कार्यमें रक्तवर्ण देवोको चिन्ता करनेको चाहिए। विष-निवारण, शान्तिकरण और पुष्टि कार्यमें श्वेतवर्ण, स्तम्भनमें पीतवर्ण, उच्चाटनमें धूम्रवर्ण, उन्मादकरणमें रक्तवर्ण तथा मारणकार्यमें कृष्णवर्ण देवीका ध्यान करना चाहिए। इसके सिवा कार्य-कालमें शयन, उत्थान और उपवेशनादि अवस्थान की भी

चिन्ता करनेको विधि है। मारणकार्यमें देवीको उदधाना-  
वन्ध्यामें चिन्ता करने चाहिए। उच्चाटनमें सुप्त और  
अन्यान्य कार्यमें उपविष्ट अवस्थामें ध्यान किया जाता  
है। सात्त्विक कार्यमें उपविष्ट और श्वेतवर्ण, राजसकार्यमें  
पीत, रक्त अथवा द्रव्यामवर्ण तथा तामस कार्यमें यानमार्ग  
स्थित और कृष्णवर्णाका ध्यान होता है। मोक्षकामी  
प्राक्तिको सात्त्विक कार्य करना उचित है। राज्यामिलापो  
ष्यन्कि राजस कार्य कर सकता है। शत्रुनाश और सर्वा  
रोग-निवारण तथा सर्वा प्रकारके उपद्रवोंको शांत करनेके  
लिए तामस कार्य करना उचित है।

उपयुक्त कर्मोंके साधनके लिए एक एक मन्त्र हैं। कर्म  
विशेषके मंत्रमें हुं, फट्, वींफट् और नमः इत्यादि शब्दोंका  
प्रयोग कहा गया है। वन्धन, उच्चाटन और विद्वेषण  
कार्यमें 'हुं' मन्त्र अपना पड़ता है। छेदनमें फट्, प्रह  
रिष्टि निवारणके लिए हुं फट्, पुष्टिकार्य और शान्ति  
करणके लिए वींफट् तथा अग्निकार्यमें अर्धान् होमादिमें  
स्वाहा मन्त्रसे कार्य करना चाहिए।

सर्वा प्रकारको पूजाओंमें नमस् शब्दका प्रयोग ही  
विधिविहित है। शान्ति और पुष्टिकार्यमें स्वाहा,  
वशीकरणमें स्वधा, विद्वेषणमें वींफट् आकर्षणमें हुं,  
उच्चाटनमें वींफट् और मारणमें फट् मंत्रका जप किया  
जाता है। इसके सिवा वशीकरण, आकर्षण और ज्वर  
संताप निवारणके स्वाहा, क्रोध निवारण, शांतिकार्य  
और प्रोत्तिवर्द्धनमें नमः, सम्मोहन, उद्वेगन, पुष्टि-  
कार्य और मृत्युनिवारणकार्यमें वींफट् अन्धोकरणमें  
वींफट् तथा मन्त्रोद्वेगन और लाभालाभ कार्यमें भी वींफट्  
मंत्रका स्मरण करना चाहिए।

इस मंत्रके साधारणतः दो भेद हैं, योजन और  
पह्लव जिस मंत्रको आदिमें नाम रहता है उसे पह्लव  
कहते हैं और जिसके अन्तमें नाम होता है उसे योजन।  
मारण, संसाह, प्रहभृतादि निवारण, उच्चाटन और  
विद्वेषण कार्यमें पह्लव मन्त्र ही प्रशस्त होता है तथा शान्ति,  
पुष्टि, वशीकरण, प्रायश्चित्त, मोहन, स्वम्भन, उच्चाटन  
और विद्वेषण-कार्यमें योजन मंत्र। नामके आदि मध्य  
वा अन्तमें मन्त्र हो, तो वह रोघमंत्र है। अभिमुखी-  
करण, सर्वरोग-निवारण, ज्वरमह-विषपोड़ादि शान्ति

और सम्मोहन-कार्यमें रोघमंत्र कार्यकारी होता है।  
जिसमें नामके एक एक अक्षरके बाद मंत्र रहता है, उसे  
संपुट मंत्र कहते हैं। इस मंत्रसे कीलक कार्य होता  
है। स्वम्भन, मृत्यु-निवारण और रक्षादि कार्य इससे  
अच्छे होते हैं। मन्त्रके दो दो अक्षर और साध्य नामके  
दो दो अक्षर क्रमशः पढ़नेसे सविदर्भ मन्त्र होता है, जो  
वशीकरण, आकर्षण और पुष्टिकार्यमें प्रशस्त है।

इन मन्त्रोंका पन्द्द अधिष्ठात्री देवियों निर्दिष्ट है—  
रुद्र, मङ्गल, गरुड, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, सर्प, किन्द,  
पिशाच, भूत, दैत्य, इन्द्र, सिद्ध, विद्याधर और असुर।  
मंत्रोंके वर्ण और संख्याके भेदसे विभिन्न नाम हुए हैं।  
एकाक्षर मन्त्र—कर्त्तरी, द्वयक्षर मन्त्र—सूची, त्रयाक्षर  
मन्त्र—मुद्गर, चतुरक्षर मन्त्र—मुपल, पञ्चाक्षर मन्त्र—  
क्रक, षडक्षर मन्त्र—शृङ्खल, सप्ताक्षर मंत्र—क्रकच,  
अष्टाक्षर मंत्र—शूल, नवाक्षर मंत्र—वज्र, दशाक्षर  
मंत्र—शक्ति, एकादशाक्षर मंत्र—परशु, द्वादशाक्षर  
मंत्र—चक्र, त्रयोदशाक्षर मन्त्र—कुलिश, चतुर्दशाक्षर  
मंत्र—नाराच, पञ्चदशाक्षर मंत्र—भुपुण्ड्री और  
षोडशाक्षर मंत्र—पस नामसे कहा जाता है। अथ,  
इन षोडश प्रकारके मंत्रोंमें कौन किस कार्यमें  
प्रशस्त है यही दिखलाया जाता है। मंत्रच्छेदनमें  
कर्त्तरी, भेदकार्यमें सूची, अञ्जनमें मुद्गर, क्षोभणमें मुपल,  
वन्धनमें शृङ्खल, छेदनमें क्रकच, घातकार्यमें शूल, स्वम्भन-  
में वज्र, संघनमें शक्ति, विद्वेषणमें परशु, सर्वकार्यमें चक्र,  
उन्मादकरणमें कुलिश, सैन्यभेदमें नाराच, मारणमें  
भुपुण्ड्री और शांति पुष्टि आदि कार्यमें पञ्चमन्त्र प्रशस्त  
है। इन सब शान्त्यादि कर्मोंको धामाचार विरोधी  
समभन्ना चाहिए।

मंत्रोंमें लिङ्गभेद भी है, जैसे पुं, स्त्री और नपुं-  
सक। जिस मंत्रके अन्तमें स्वाहा शब्द है वह स्त्री-संस्क  
है। मनः शब्द-युक्त मंत्र नपुंसक तथा हुं फट् शब्द-  
सहित मंत्र पुरुष नामसे कहा गया है। वशीकरण और  
शांति आदि अमिचार-कार्योंमें पुरुष मंत्र, क्षुद्र क्रियादिके  
विनाशके लिए स्त्रीमंत्र तथा अन्यत्र नपुंसक मंत्र काम-  
में लाना चाहिए। इसके सिवा मंत्रके दो भेद और हैं,  
आग्नेय और सौम्य। मंत्रके अन्तमें ओं शब्द हो तो वह

आग्नेय मंत्र है। इन्दु और अमृताधर-मुक्त मंत्रको सीम्य कहते हैं। आग्नेय मंत्रके मंत्रमें नमः शक्रु हो तो सीम्य और सीम्यमंग पन्वित हो तो आग्नेय कहलायेगा। वाम नासासंभ्रंशस्य बहनेके समय मंत्रको निद्रायस्था है और दक्षिण नासासंभ्रंशस्य बहनेके समय जाग्रत अवस्था। मंत्रके निद्राकालमें जप करनेसे यह जप फलप्रद नहीं होता। दक्षिण नासासंभ्रंशस्य बहनेकालमें आग्नेय मंत्र तथा वाम नासासंभ्रंशस्य बहनेकालमें सौम्य मंत्र प्रयुक्त रहता है। दोनों नाडियोंमें बहनेकालमें सभी मंत्र प्रयुक्त रहते हैं। प्रयुक्त मंत्रसे किया हुआ जप सिद्ध होता है।

इन पट्टकर्मके अनुष्ठान-कालमें विभिन्न आसन कहे गये हैं। पुष्टिकर्ममें पद्मासन, ज्ञान्तिशायमें स्वस्तिकासन, आकर्षण और विद्वेषणमें कृष्णकुटारासन, उच्चाटनमें अर्द्ध स्वस्तिकासन, मारण और स्तम्भनमें विकटासन तथा यज्ञीकरणमें मद्रामन ही प्रस्तात है। यज्ञीकरणमें मेघचर्म, आकर्षणमें व्याघ्रचर्म, उच्चाटनमें उग्रचर्म, विद्वेषणमें घोटाचर्म, मारणकार्यमें महिषचर्म, मोक्षमायनमें गजचर्म तथा स्तम्भन कर्ममें रक्तवर्ण कम्बलास्य पर बैठ कर कार्य करना चाहिए। अनन्तर ज्ञान्ति-कार्यमें पद्म-मुद्रा, यज्ञीकरणमें पाशमुद्रा, स्तम्भनमें गदामुद्रा, विद्वेषणमें मुपलमुद्रा, उच्चाटनमें वज्रमुद्रा तथा मारणमें सङ्ग मुद्राका विन्यास कर कार्य करना उचित है। इसके प्रत्येक कर्ममें पृथक् पृथक् कुण्ड बनानेको विधि है। विद्वेष-कार्यमें त्रिकोण कुण्ड बनाया जाता है। यह कुण्ड एक हातका होना चाहिए। शत्रुपक्षके उच्चाटनके लिए नैर्ऋत कोणमें तथा देवोच्चाटनके लिए मण्डपके वायुकोणमें कुण्डका मुण्ड रखा जाता है।

शत्रुतापन कार्यमें योनिकुण्ड ही प्रस्तात है। मण्डपके अग्निकोणमें यह कुण्ड बनाया जाता है। शत्रु-मारणमें मण्डपके दक्षिणमें अर्द्धचन्द्र कुण्ड करो। शत्रुके रोग-घट्टनके लिए मण्डपके नैर्ऋत कोणमें त्रिकोण कुण्ड करके कार्य करो। विद्वेषण कार्यमें अग्निकोणमें पूर्ण-चन्द्र सङ्घात अथवा चतुरस्र कुण्ड बना कर कार्य करना उचित है। चतुरस्र कुण्डमें यज्ञीकरण, त्रिकोण कुण्डमें आकर्षण, स्तम्भन और उच्चाटन तथा पट्टकोण कुण्डमें मारणकार्य किया जाता है।

पुष्टिकार्यमें मण्डपको उत्तर दिशा, ज्ञान्तिकर्ममें पश्चिमदिशा, उच्चाटनकार्यमें वायुकोण तथा मारण-कार्यमें दक्षिण दिशामें कुण्ड बनाना उत्तम है। अग्नि-धारकासंभ्रंशस्य कुण्डके परिमाणमें शून्याधिकता होने पर कोई विशेष दोष नहीं माना जाता, परन्तु कार्य-कालमें उनको सर्वान् नुलक्षणान्वित करके कर्म करना चाहिए।

अधर्षधैर्यविवृष्ट एक परमज्ञानी ब्राह्मणको बहुत धन और नाना रजभूषणादिसे सन्तुष्ट करके विधानानुसार वरण करो। ब्राह्मणको प्रती हो कर उत्सव और यज्ञके साथ सर्व प्रकार रक्षा-विधान करके हृतीको हित-कामनाके लिए मरणकार्यका अनुष्ठान करना चाहिए। अग्निचारकार्यमें विसर्गो गठना न करना चाहिए। यदि धर्म-श्रवणको गठनाके कारण कार्यका किसी प्रकारसे अङ्गभङ्ग हो जाय, तो कर्मकर्ताके पुत्र, वाम्यु, धन और यज्ञका नाश होता है। देव रक्षाके लिए अग्निचार करनेसे राजा या कर्मकर्ता पापके भागी नहीं होते। नीचे उदाहरणस्वरूप संक्षेपमें कुछ मंत्र दिये जाते हैं,—अधर्ष-पातक उपरज्ञान्तिमंत्र अगस्त्य ऋषिरनुष्टुप्चन्द्रः कालिका देयता जरस्य सदाः ज्ञान्तर्यथे विनियोगः। ॐ कुवेरन्ते मुधं रीद्रं गन्दिनातन्दिमावहन। उवरं मृत्युनयं घोर्ण उवरं नाशयते ध्रुवम्।

ॐ कुवेरन्ते मुरां रीद्रं इत्यादि मंत्रको सहस्र वा दश सहस्र बार जप कर आश्रयत द्वारा होम करनेसे निश्चय ही उपर-ज्ञान्ति होता है।

'ओं नमो भगवति मृतसञ्जीवनि अमुकस्य ज्ञान्तिं कुट कुट स्वाहा' इस मंत्रका जप करनेसे सब प्रकारके उपद्रव नष्ट हो जाते हैं। हारोतमें उवर ज्ञान्तिके लिए बहुत-से मंत्र लिखे हैं, उक्त मंत्रके उपरहारावलि के विषयमें इस प्रकार लिखा है—

'ओं हों क्लों ठः ठः भो भो उवर श्यु श्यु हन हन गर्ज गर्ज ऐकादिकं द्वादहिकं त्वादहिकं चतुराहिकं साप्ताहिकं मासिकं आर्द्धमासिकं वार्षिकं वार्षिकं द्वैवार्षिकं माहूर्त्सिकं नैमेयिकं अट अट अट अट हुं फट् अमुकस्य उवरं हन हन मुञ्च मुञ्च भूम्यां गच्छ गच्छ रवाहा।'

'ओं अयेत्यादि अमुकगोत्रस्य अमुकस्य उत्पन्नञ्जर-

क्षयाय तन्नक्षत्राय एव रश्मिपुनःकवलिनमः । इत्यु-  
त्सृज्य निमज्जयित्वा उत्तरस्यां दिशि पुनःकविसर्जनं  
कर्त्तव्यम् ।'

पढ़ते ओं हौं व्रह्मो इत्यादि मंत्रसे बलिप्रदान करो ।  
ज्वरयुक्त व्यक्ति को नव मुष्टि परिमित तन्दुलोंसे बलि  
पिण्ड पाक किया जाता है । उसके बाद तण्डुल-चूर्ण  
द्वारा एक ज्वरको मूर्त्ति बना कर उसे हल्दीसे रंगो और  
उसके चारों तरफ हरिद्राक चार ध्वजाएँ लगा कर  
हरिद्रा-रसपूर्ण चार पुटपात्र स्थापन कर उससे उस  
पुत्तलिकाको गन्धपुष्प द्वारा भूषित करके बलिप्रदान  
पूर्वक विसर्जन करो । इस प्रकार तीन दिन बलि  
प्रदान करने पर ज्वरकी शांति होती है । ज्वर-मूर्त्ति  
उत्सर्ग करके उत्तर दिशामें विसर्जन की जाती है ।  
गर्गादिमें यही प्रथा भिन्न रूपमें वर्णन की गई है ।  
वाह्य-भयसे यहाँ उन्हें उद्धृत न कर सके ।

मृतसञ्जीवनी मन्त्र—'हौं ओं हुं सः भूर्भुवः स्वः  
ताम्यं कं यजामहे । सुगन्धिं पुष्टिवर्धनं उर्वाकमिव  
धन्धानामृत्योर्मुक्षीय मामृतात् हौं ओं हुं सः ।

शूलरोग-प्रतिकार,—ओमद्येत्यादि अमुक गोतल  
श्रीअमुकदेवगर्भणः शूलरोगप्रतिकारकामनया ओं मिदु-  
ष्टमः इत्यादि पिनाकं विभ्रदागाहि इत्यन्तं मन्त्रं सहस्रं  
अयुतं लक्षं वा जपमहं करिष्यामि इति संकल्प्य शिवलिङ्गे  
ताम्यकविधानेन संपूज्य इमं मन्त्रं जपेत् । ॐ मिदुष्टमः  
शिवतमः शिवोनः सुमना भय परमे ब्रह्म आयुधद्विपाय  
कृत्ति चसानाचर पिनाकं विभ्रदागाहि ।' इति जपत्वा  
दक्षिणां कुर्यात् ।

गर्भजननोपाय,—'ॐ सुक्तापाजाविपाशाश्च मुक्ताः  
सूर्येण रश्मयः । मुक्तसर्वभयाद्गर्भं त्वहो हि मारीच  
स्याहा ।' इस मन्त्रसे जलको धाड़ बार अभिमन्त्रण कर-  
के गर्भिणीको दो, इससे सुखपूर्वक प्रसव होगा ।

निगड्वधन,—'ॐ नमःस्त्रे निम्नं ते तिग्मतेजो यमयं  
विभ्रे ता वन्धकेशं यमेन दत्तं तस्यसंविदानोत्तमेनाके अधि-  
रोहयेन । अस्य निगड्वधनमन्त्रस्य प्रजापतिर्भूयि  
निर्भूयतिदेवता त्रिपुं छन्दो धन्धानादि व्यसनपरिहारायै  
यिनियोगः ।' अयुत जपसे निगड्वदि स्खलन होता है ।

घृष्टिकरण,—'ॐ पुंकरायतंकेर्मवीः श्राययन्तं वसु-

न्तरां । विद्युद्गर्जित-सम्भद्रतोपात्मानं नमान्यहं । एष  
केशेषु जीमूतो नयः समुद्राश्चत्वारस्तस्मै तोगात्मने  
नमः इति ध्यात्वा घाहा वरणमुपचारैः पूजित्वा  
मूलमन्त्रं जपेत् । प्रजापतिर्भूयिषिष्टुपछन्दो वरुण-  
देवता एतद्राज्यमगिवाप्य सुवृष्टयर्थं जपे विनियोगः ।  
मन्त्रस्तु यं गुरुमुत्वाजज्ञेयः नाभिमातजले स्थित्वा  
जपेन्मन्त्रं प्रसन्नधीः । बहुसहस्रं जपेन्मन्त्रं विदिनं श्राय  
यत्नत अथवा पद्सहस्रं जपेन्मन्त्रं तदा घृष्टिभवेद् ध्रुवम् ।

इन सब कार्योंके अभ्यासके लिए एक गुरुकी सहा-  
यता आवश्यक है । गुरु द्वारा मंत्र संज्ञाका यथायथ  
मर्म समझे बिना कर्मकर्त्ता किसी भी कार्योंको सुल-  
भतासे नहीं कर सकता । ये कार्यों तत्तने गुण्य है, कि  
प्रथमे उसका प्रकृत परिचय मिलना दुपकर ही नहीं,  
विद्वन्मनामात्र है ।

अब मन्त्रांगको छोड़ कर पार्थिव पदार्थोंके समन्वय  
गुण कहे जाते हैं । कई पदार्थोंके संमिश्रणसे ऐसी एक  
अभावनीय वस्तुका उद्भावन होता है, कि जिसकी गुणा-  
वली भौतिककाण्डसे उत्पन्न मालूम होगी । यूरोपमें  
किसी समय एक दार्शनिक सम्प्रदायकी काफो प्रतिष्ठा  
थी । उन लोगोंने द्रव्यगुणसे अन्यान्य घातुओंकी सोना  
चांदी बना डालनेकी फोगिजा की । उनकी निकाली हुई  
उस किमीयविद्या (Alchymy)-से कालांतरमें रसायन  
विज्ञानकी उत्पत्ति हुई है ।

हमारे देशके भोजविद्या-विद्वगण इस द्रव्यगुणका  
अन्वेषण करते करते एक अभिनव विद्यामें जा पहुंचे, जो  
हमारे यहाँ भोजविद्याके नामसे प्रसिद्ध है । नीचे  
द्रव्यादिके संमिश्रण गुणसे वशीकरणआदिके विषयमें जो  
कुछ फल पाया गया है, उसीका वर्णन किया जाता है ।

वशीकरण ।

वशीकरण-विज्ञानसे पुरुष और स्त्री दोनोंके वशी-  
भूत किया जा सकता है । लज्जालु लता, अपामार्गकी  
जटा, बहेड़ा, अपराजिता और चाण्डालीलताके रक्त  
करके दूधके साथ कर्दमयत् पीसा । पीछे उस कर्दमके  
एक पट्टय पर लेपन कर उससे वृत्तिका बनाओ । फिर  
उसे पक्षनालमेंके सूतसे घेष्टन करो और एकगर्भकी गायके

दूधसे बने हुए घीमें उस चर्तिकाको मिगा ले। अनंत-चतुर्दशीकी रातको भैरवकी पूजा करके उस चर्तिकाको जला कर उसके धुआंसे काजल पारो। उस काजलसे स्त्री, पुत्र्य यहां तक कि जिसको चाहो उसको यशोभूत किया जा सकता है।

मंत्र द्वारा भी यशोकरण होता है। साधक 'ॐ हो मोहनि स्वाहा' इस मंत्रके जपमें सिद्ध होने पर चन्दन, पुष्प, बरख अथवा किसी भी प्रकारका उत्तम फल, उक्त मंत्रसे एक स्त्री आठ बार अभिमन्त्रित करके जिस किसीके भी हाथमें देगा वही उसके यशोभूत हो जायगा।

'भीं चिटि चिटि चाण्डालि महान्चाण्डालि अमुक' में यशमानय स्वाहा' इस मन्त्रका सात दिन तक जप करनेसे राजाको भी यशमें किया जा सकता है। ताड़पत्रमें इस मन्त्रको लिख कर उम ताड़पत्रको दुग्धमिश्रित जलमें डाल कर पाक करो। उस मन्त्रमें जिसका नाम रहेगा, यह व्यक्ति अवश्य ही यशोभूत होगा, मनान्तर ऐसा भी है, कि शिल्प-कण्टक द्वारा ताड़पत्र पर मन्त्र लिख कर दुग्धके साथ पाक करके तीन दिन तक उसे कईममें गाड़ रखो उसके बाद उसे निकाल कर दुर्गास्त्रिय मण्डप के द्वार पर गाड़ दो। ऐसा करनेसे अवश्य ही यशोकरण होता है। पट्टकर्मक्षीपिका, क्रियोद्दोज, श्राघर और उद्दोश आदि प्रार्थोंमें मन्त्र और प्रक्रियाकी बहुतायत देयी जाती है।

स्त्रियोंको यश करनेके लिए द्रव्यसङ्घके गुणागुण नोचे लिखे जाते हैं। रविवारको काले घट्टेके फूल, लता-शाखा, पत्ते और जड़को पीसो। पीछे उसके साथ कपूर, कुंकुम और मोरोचन मिला कर कपाल पर उसका तिलक लगाओ। उस तिलकको देवते ही हर एक स्त्री तुम्हारे यशमें आ जायगी। १ चिताभस्म, यच्च, कूड़ और तगर-पुष्पको इकट्ठा करके किसी स्त्रीके माथे पर लगानेसे यह उसी समय यशोभूत होगी। २ जिहामल, दन्तमल और नाशामलको ताम्बूलके साथ मिला देनेसे भी स्त्री यशमें हो जाती है। ३ ब्रह्मदण्डी और चिताभस्मको कोई भी पुत्र्य किसी भी स्त्री पर फर्पों न फेंके यह स्त्री अवश्य ही उस पुत्र्यके यशमें हो

जायगी। ४ ताम्बूलके रसमें हरताल और मनःशिला पीस कर मङ्गलवारके दिन ललाट पर उसका तिलक लगानेसे देखने मात्रसे स्त्री यशोभूत होगी। ६ गायके दांत और मनुष्यके दांतको एकत्र लेलके साथ पीस कर कपाल पर उसका तिलक लगानेसे क्रान्ता अपने प्रणयोंके अत्यंत यशमें आ जायगी। ७ यवचूर्ण, हरिद्रा, गोमूत्र, घृत और श्वेत सर्पाप इनको एकत्र पीस कर सुँह पर मालनेसे पद्मकी भांति सुँहको कांति होती है और यह पुत्र्य स्त्रियोंका और राजकुलका प्रियपाल होता है। ८ मोरोचन और पद्मपत्र पीस कर कपाल पर उसका तिलक लगानेसे स्त्री यशोभूत होती है। ९ मालती पुष्प ले कर पट्टसूत्रसे उसकी चर्तिका बना कर अण्डोके तेलसे प्रदाप जलाओ। उस पर शुक्रवारके दिन नूकरोटीमें काजल पार कर उस काजलको आंघमें लगानेसे उसे जो कोई भी स्त्री देनेगी वही उसके यशमें हो जायगी। १० 'ऊं नमः कामाख्यादेवि अमुको मे यशकरा स्वाहा, इस मंत्रको १०८ बार जपनेसे सिद्धि होती है। सिद्धनागाजुन-कक्षपुत्रमें स्त्रियोंको यश करनेके उपाय लिखे हैं। 'ऊं नमो महावक्षिणि पति मे वश्यं कुरु कुरु स्वाहा' इस मंत्रका १०८ बार जप करो, सिद्ध होने पर विधानानुसार क्रियाएँ सम्पन्न करो, इससे पति यशमें हो जायेंगे।

इनके सिवा और भी असंख्य मुष्टियोग कहे गये हैं, जिन्हें अश्लीलताके कारण छोड़ देने हैं। अब राज-यशो-करणका उपाय बतलाया जाता है।

१ कुंकुम, रक्तचन्दन, कर्पूर और तुलसीपत्र इनको एकत्र गायके दूधके साथ पीस कर कपाल पर उसका तिलक धारण करनेसे राजाको भी यश किया जा सकता है। २ हाथमें श्वेत बड़ेलाकी जड़ बाँधनेसे राजाका प्रियपाल बन जा सकता है तथा हरताल, अश्वगंधा, कपूर और मनःशिला इनको बकरीके दूधमें पीस कर उसका तिलक लगानेसे भी राजा यशमें हो जाते हैं। ३ पुष्यानश्वरमें श्वेत घेडलाकी जड़ ला कर उसे कर्पूर और तुलसीपत्रके साथ पीस कर बरख पर लेपन-पूर्वक अपराजिता बीजके तेलसे चर्तिका बनाओ। पत्रकी शुद्धि अवस्थामें उस चर्तिकाको



जला कर उस पर काजल पाते । उस काजल-को आंघोमें लगानेसे राजा वशीभूत होते हैं । पुष्या-नक्षत्रमें अपामार्गका बीज ला कर उसे खाद्य वा पानीय द्रव्यके साथ गाजाको सेवन करा देनेसे भी फल विवर्ध देता है । इन सब कार्योंमें 'शो नमो भास्कराय त्रिकोकात्मने अमुक मन्त्रीपति मे वशी कुण्ड कुण्ड स्वाहा' इस मंत्रका १०८ बार जप करके उसमें सिद्धि पाना शायश्यक है ।

ब्रह्मदण्डी, यच और कुड़ इन्हें इकट्ठे पीस कर ताम्बूलके साथ जिने भी दिया जायगा वह व्यक्ति वज्रमें आ जायगा । बटकी जड़ पानीमें घिस कर विभूति मिला कर ललाट पर तिलक लगानेसे सब ही वशीभूत होते हैं । पुष्यानक्षत्रमें फिर जड़ उन्नाट्ट कर सात बार मंत्र पढ़ कर उसे हाथमें रखनेसे फार्ण-सिद्धि होती है । अपामार्गको जड़ कपिलाके दूधके साथ पीस कर तिलक लगानेसे अथवा उसको जड़को छायामें सुखा कर, बाद-में उसके चूर्णको ताम्बूलके साथ खिलाया जाय, तो विजयग्वं वशीभूत हो सकता है । गोरोचन और अपामार्गकी जड़, अथवा यमदुग्धरकी जड़ पीस कर उसका तिलक लगानेसे भी फल होता है । देवदानी और श्वेत सर्प-को एकत्र पीस कर गुटिका बनाओ, गुटिकाको मुंहमें डालने तथा कूकुम, तगरकाष्ठ, कुड़, हरताल और मन-शिला इनको बनामिकाके रसमें मिला कर तिलक लगाने-से कोई भी वज्रमें हो सकता है । गोरोचना, पत्रपत्र, त्रियंगु और रक्तचन्दन इन्हें एकत्र पीस कर उसका नेत्रों-में अक्षुन करने तथा श्वेत कूचकी छायामें सुखा कर कपिला गायके दूधमें मिला कर उसका तिलक देनेसे फार्ण-ज्वर होता है । श्वेत दूर्वाको कपिला गायके दूधमें मिला कर शरीरमें लेपन करनेसे अथवा सफेद अकचनकी छायामें सूखी हुई जड़को कपिलाके दूधमें माड़ कर तिलक लगाने-से फार्ण निरकल नहीं होता । विल्वपत्र और मातुलङ्ग-को बकरीके दूधमें पीस कर तथा घृतकुमारीके मूल और भांगके बीज इन्हें एकत्र पीस कर उसका तिलक करनेसे वज्रकार्य सकल होता है । हरताल, अभयगन्धा, सिंदूर और कदलोवृक्षके रसको एकत्र माड़ कर तिलक लगानेसे, अपामार्गके बीज बकरीके दूधके साथ पीस कर शरीर

पर लेपन करनेसे ; हरताल और तुलसीपत्र पीस कर कपिलाके दूधके साथ मिला कर उसका तिलक देनेसे तथा अभयगन्धा और मनार्गजलाको भाँवल्लेके रसमें पीसना दे कर उसका तिलक करनेसे सर्वलोक वशीभूत होता है । इन सबोंमें 'शो नमः सर्वलोकवज्रकुष्याय कुण्ड कुण्ड स्वाहा' इस मंत्रको १०० बार जप कर सिद्धि प्राप्त करने चाहिए ।

खम्भन ।

मेढककी चर्वीको रक्त घृतकुमारीके रसमें पीस कर सर्वाङ्ग शरीरमें लेपन करनेसे अग्नि स्तम्भन होता है, अर्थात् उस व्यक्तिका शरीर अग्निसे दग्ध नहीं होता । सफेद अकचनकी रक्त-घृतकुमारीके रसमें पीस कर शरीर में लगानेसे अग्निताप दूर होता है । कदलोवृक्षके रस और रक्तघृत्तको घृतकुमारीके रसमें एकत्र मिश्रित कर शरीरमें लेपनेसे अग्निदग्ध नहीं होता । मेढककी चर्वी और कपूर दोनोंको एक साथ मिला कर शरीरमें लगाने-से अग्निताप नहीं लग सकता । घृतकुमारीके मूल और कदलोवृक्षके मूलको एकत्र पीस कर शरीरमें उसका प्रलेप देनेसे अग्नि दग्ध होनेकी सम्भावना नहीं । पिप्पली, मिर्च और सोंठ तीनोंको एक साथ मिला कर चवानेसे जलता हुआ अंगार खाया जा सकता है । गर्करा और घृतको पी कर सोंठ चवानेसे मुखमें तप्त लौह यदि रसा जाय, तो भी मुख नहीं जलता । 'ॐ नमो अग्निपाय मम नरीरे खम्भन कुण्ड कुण्ड स्वाहा' इस मंत्रको एक सौ-साठ बार जप कर सिद्धि होनेसे अग्निस्तम्भनकार्यमें प्रवृत्त होना चाहिए ।

चर्मकारके कुण्डकी अर्थात् चमार जहाँ चमड़ेको भिगो रखता है वहाँकी मट्टीको मादा चटक पत्तीके रक्त-से युक्त कर जिसके सामने फेंका जाय, उसीका आसन स्तम्भित होगा अर्थात् यह व्यक्ति जहाँ रहेगा वहाँसे दूसरी जगह नहीं जा सकता ।

एक मनुष्य-मस्तककी गोपट्टीमें मट्टी रप कर उसमें सफेद घुँघरोका बीज चपन करो और प्रतिदिन उसे दूधसे नोचने रहो । बादमें उन बीजमें निकले हुए पौधेको शाका, मूल वा फाएट जिसके सामने फेंकेगो, उसमें फिर दूसरी जगह जानेकी शक्ति न रह जायगी ।

इन सब कार्योंमें प्रवृत्त होनेसे पहले 'ओं नमो दिगम्बराय भृगुकाष्ठनसाम्भनं कुब कुब स्वाहा' एक सौ आठ बार जप द्वारा इस मंत्रसे सिद्धि लाभ करनी होती है।

पेचककी विद्याको छायामें सुखा कर उसे पानके साथ किसीको चिल्लातेसे उसकी बुद्धि स्तम्भन हो रहती है। सफेद सरसोंकी भूङ्गा राजके रसमें भापना दे कर उसे अच्छी तरह पीस लो, बादमें कपाल पर तिलक धारण करो, बुद्धिस्तम्भन होगा। सफेद बहेड़े और अषामार्गके मूलको लोहापात्रमें धरल कर जिसके कपाल पर तिलक दोगे, उसकी बुद्धि स्तम्भन होगी। 'ओं नमो भगवते शङ्खपां बुद्धि स्तम्भय स्तम्भय स्वाहा' इस मंत्रको जप कर सिद्ध होनेसे बुद्धिस्तम्भनकार्य सिद्ध होता है।

रधिधारको पुष्यानक्षत्रमें सफेद शपराजिताके मूलको संग्रह कर मुझ और मस्तक पर रखनेसे शत्रु द्वारा फेंके गये अहासे उसका कोई अपकार नहीं होता। जातीशुशके मूलको मुघमें रखनेसे बाघ, राजा और शत्रुका भय नहीं रहता।

सुदर्शनाके मूलको हाथमें और केतकीमूलको मस्तकमें बांधनेसे अश्वरतम्भन होता है। तालमूलको मुलमें और खजूरके मूलको हाथमें धारण करनेसे शत्रुस्तम्भन होता है। सुदर्शना, खजूर और केतकी तीनोंके मूलको चूर कर लोके साथ पान करनेसे शत्रुका अन्न स्तम्भित हो जाता है। पुष्यानक्षत्रमें अषामार्गके मूलको संग्रह कर शरीरमें लेप करनेसे तथा मुघमें खजूरमूल, कट्टेमें केतकीमूल और वाहुमें अकवचनका मूल धारण करनेसे सब प्रकारके अन्न स्तम्भित हो जाते हैं। रधिधारको पुष्यानक्षत्रमें सफेद घुंघचीकी लताका मूल उखाड़ कर जिस व्यक्तिके हाथमें दोगे उसे फिर अन्नका भय नहीं रहता। रधिधारको कामल चिन्त्यपत्र संग्रह कर उसे पत्रमृणालके साथ एकत पीस कर अङ्गमें प्रलेप देनेसे अन्न स्तम्भित होता है। 'ओं अहो कुम्भकर्ण महा-राक्षस नैकगर्गमस्तम्भूत परधैन्यस्तम्भने महाभयवान् स्वाहा' इन मंत्रसे एक सौ आठ बार जप कर सिद्ध होनेसे शत्रुस्तम्भन कार्य करना उचित है।

'ओं नमो विकराक्षसपान महावज्राय पराक्रमाय अनुकल्प्य शुभ-वर्षं धन्यय धन्यय दधिं स्तम्भय स्तम्भय पातय पातय महीगे हूँ ।'

एक सौ आठ बार इस मंत्रजप द्वारा सिद्ध हो कर सफेद अपराजिताके बीजसे तेल निकाले। पाँछे उस तेलको किसी बरतनमें रख कर उसमें घिय, गह्रातकका तेल। अफीम, धतूरे बीजका चूर, तालका रस, गंधक और मैगसिल मिलाये। बादमें पांच रत्तीकी गोली बनाये। उस गोलीका अन्नमें प्रलेप देनेसे उस अन्न द्वारा युद्ध-स्थानमें शत्रुका अन्न खएड खएड हो जाता है। उस अन्नके देखते ही शत्रु भयभीत हो भाग जाते हैं।

'ओ नमः कालरात्रि विष्णुभारिणी मम शत्रुधैन्यस्तम्भनं कुब कुब स्वाहा' एक सौ आठ बार इस मंत्रजप द्वारा सिद्ध हो कर सफेद घुंघचीके फलको श्रमज्ञानमें गाड़ दे। पाँछे उसके ऊपर एक खएड परधर रख कर रौंड़ी, माहो भरी, चाराह, नारमिहो, धैणवी, कामारो, मडा लक्ष्मी और ब्राह्मी इन षष्ट योगिनीकी अर्चना करे तथा गणपति, बटुक और क्षेत्रपालकी अलग अलग पूजा करे। अनन्तर पल्लवान दे कर मांस और मद्य द्वारा उन सब देवताओंकी फिरसे पूजा करनेसे शत्रुसेना स्तम्भित होती है।

'ओं नमो भयङ्कराय खड्गधारिणे मम शत्रुधैन्यं पञ्चापिनं कुब कुब स्वाहा' इस मन्त्रजपसे सिद्ध हो कर मङ्गलवारको काक और पेचक पक्षी पकड़े। बादमें भोजपत्रमें गोरोचन द्वारा उक्त मन्त्र लिपि उसके गलेमें बांध उड़ा दे। ज्यों ही वे दोनों पक्षी शत्रुके सामने पहुँचेंगे, त्यों ही शत्रुसेना छत्रभङ्ग हो कर भाग जायगी तथा राजा, प्रजा और गजाश्वादि वाहकगण पक्षीको देखते ही भयभीत हो जायेंगे।

श्रमज्ञानसे भस्म ला कर उससे एक मट्टीके बरतनके मध्यभागकी लेप दे। अनन्तर उसके ऊपर उक्त मन्त्रके साथ शत्रुका नाम लिपि कर एक नीला तागा उस बरतनमें बांध दे। पीछे उसे जमीनमें गाड़ कर ऊपरसे एक खएड परधर दबा दे। यह योगशत्रुस्तम्भनमें बहुत काम करता है।

गोशालाके चारों तरफ ऊँटकी हड्डी गाड़ देनेसे गो-मेहवादि स्तम्भित होंगे मद्यवा ऊँटके लोम जिस किसी पशु पर फेंकोगे, यही पशु स्तम्भित हो जायगा।

रजस्थला स्त्रीके यत्रकी गोरोचनके साथ शत्रुका

नाम उच्चारण करने हुए किसी एक घड़े में रख छोड़ो। इससे शत्रु स्तम्भित होता है।

दो ऋषि इंद्रको श्मशानके अङ्गारसं पुष्टमें रख कर किसी निज न अरण्यमें रखनेसे मेघस्तम्भन होता है।

यूहतीके मूल और यष्टिमधुको एक साथ पीस कर नम लेनेसे निद्रा स्तम्भित होती है।

पञ्चाङ्गुल परिमित क्षौरिकृश (अथर्व चटादि) के फोलकको नाय पर फेंकनेसे उसी समय वह नाय स्तम्भित हो जायगी।

'ओं नमो भगवते रुद्राय जलं स्तम्भय स्तम्भय ठः ठः ठः' इस मन्त्रको एक सौ आठ बार जप कर पत्रकाष्ठचूर्णको कूप और पुष्करिणी आदिमें फेंकनेसे जलस्तम्भन होता है।

'ओं गर्भं स्तम्भय स्तम्भय स्वाहा' एक सौ आठ बार इस मन्त्र जप द्वारा सिद्ध हो कर ऋतुमानके वाद अंडीके बीज या कर धतूरेका मूल कटिमें बांधनेसे गर्भस्तम्भन होता है।

मतान्तरसे स्तम्भन, 'मोहन और' वशीकरणादिका विषय लिखा जाता है।

भूमिकुम्भाएड और घटके मूलको जलसे पीस कर विभूतिके साथ कपालमें तिलक लगाये। ऐसे व्यक्तिको देवते ही तिलोक वशीभूत हो जाता है।

पुष्यानक्षत्रमें पुनर्नयाके मूल और वट्टदन्तीके मूलको उखाड़ कर उसके साथ जीके बीजको हाथमें बांधे। बांधते समय 'ओं ऐं पुरं शोभय भगवति गम्भीरय स्तुं स्वाहा' इस मन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रित कर दे। यह प्रक्रिया करनेके पहले उक्त मन्त्र पीस हजार बार जप कर सिद्ध हो लेना होगा। इस साधना द्वारा साधक सर्वत्र पूजित होते हैं।

घातोत्क्षिप्त पत्र, मञ्जिष्ठा, अजुं नवृक्ष और तगरकाष्ठ इनका बराबर बराबर भाग जिते तिलामोम अधया जिसके शरीरमें स्वर्ण कराओगे यह व्यक्ति अवश्य वशीभूत होगा।

पुष्यानक्षत्रमें कएटकारी (भट्टकटैया) मूल उखाड़ कर कटिमें बांधनेसे यह व्यक्ति सर्वोका प्रियपात्र बन जाता है तथा शृण्णपक्षकी स्रुतुर्दंभीकी रातको श्मशानस्थित

महानील वृक्षके मूलको उखाड़ कर नरनैन द्वारा अञ्जन करनेसे जगत् वशीभूत किया जा सकता है। श्मशानजात महानील वृक्षके मूलको निज शुकके साथ पीस कर अञ्जन करनेसे जिसको चाहे, वशीभूत कर सकते हैं। जो उक्त मूलको हाथमें बांधता है, वह सर्वोका प्यारा होता है।

पुष्यानक्षत्रमें शङ्खा-नाडो चहनके समय ब्रह्मद्वेषीका मूल उखाड़ कर जिस किसीको पिलाया जायगा, वह वशीभूत होगा। पेचकके हृदय, घृतकुमारो और गैरोचन इनका समान भाग ले कर आँलमें अञ्जन करनेसे त्रिभुवनको दृश्य किया जा सकता है। 'ओं नमो महा-यक्षिणी अमुक मे वशमानाय स्वाहा।' इस मन्त्रका दश हजार बार जप करके पूर्वोक्त सभी प्रक्रिया करनी होती है।

कुल मन्त्रोंको जपसंख्या अलग अलग दी गई है। जिस मन्त्रको जितनी संख्या कही गई है उस मन्त्रका उतनी ही संख्यामें जप करना चाहिये। फिर जहाँ कोई संख्या निर्णीत नहीं है वहाँ एक अचुत यथार्थ दश हजार जप करनेको विधि है।

मृगशिरानक्षत्रमें लाल कनेरकी जड़ उखाड़ कर उसकी नीं उगलीको फील बनाये। पीछे उसे 'ओं ऐं स्वाहा' इस मन्त्रके द्वारा सात बार अभिमन्त्रित करके जिसका नाम उल्लेख करते हुए जमीन रोदींगे वह मनुष्य अवश्य वशीभूत हो जायगा। 'ओं ऐं स्वाहा' यह मन्त्र पहले दश हजार बार जप कर सिद्ध हो जानेके बाद कार्यमें हाथ डालना होगा।

अपामार्गके मूलकी फील सात बार अभिमन्त्रित करके जिसके घरमें फेंकी जायगी, वही व्यक्ति वशीभूत होगा। 'ओं मदनसामदेवाय क् स्वाहा' इस मन्त्रसे एक सौ आठ बार जप कर सिद्ध हो ले, तब काममें हाथ डाले। अपामार्गके मूलका कपालमें तिलक लगानेसे वशीकरण होता है।

किसी कपड़ेमें स्वयम्भु कुमुग बांध कर उसे त्रिमुहाने रास्ते पर शनिवार वा मङ्गलवारको जलाये। पीछे उस घरद्वारक भस्मका 'ओं नमो भैरवीने' मालाका कमल दुपे राजमोहन प्रजावशीचरयो श्रीपुष्पकने कोदरभ

मोहिनि मे सोऽहं' भी पुष्पमादनं' इस मंत्रसे कपाल पर तिलक लगाये। इससे दूसरेकी बात तो दूर रहे, राजा भी यशो-भूत हो जाते हैं। ऋणपक्षीय चतुर्दशीकी रातको इत्यात्मज्ञुलिया दूधके मूल, नरतेल, मधु और हरिताल ये सब द्रव्य एकत्र कर कपालमें लगानेसे सभी मनुष्य यशोभूत किये जा सकते हैं।

'ओं अभ्यर्चणेधरि दुर्बले आइकेजिक जटाकलापे दणार फेटकारिणि स्याहा' इस मंत्रसे कामिनीदृष्टके मूल और हरितालको एकत्र पीस कर गोली बनाये। यह गोली मु'हमें रग कर जिससे जो मार्गमे यह उसी समय दे देगा। घटपत्र और मयूर-शिवात्मसमान भाग ले कर तिलक करनेसे सभी लोक यशोभूत होते हैं। ऋणअपराजिता, भृङ्गराजके मूल, गोरोचन, विजयन्द और श्वेत अपराजिताके मूलको एक साथ पीस कर कुमारीकन्याके हाथमें लेपन करे। पीछे उस लितचक्रके जलके साथ धर्षण कर तिलक करनेसे सर्वलोक यशोभूत होगा। लाल कनेरके पुष्प, कुट्ट, सफेद सरसों, सफेद अकचनका मूल, तगव, सफेद पु'धवी और गोपालककंदीके मूल इन्हें पुष्पानक्षत्रयुक्त ऋणपक्षीय अष्टमी यथया चतुर्दशी तिथिके। एकत्र पीस कर तिलक लगाये। इससे सभी मनुष्य यशोभूत किये जा सकते हैं।

'ओं नमो वरजाक्षिनी सर्वशोकवहारी स्याहा' इस मंत्रको १०८ बार जप कर सिद्ध हो ले। पीछे अपामार्गके मूल और गोरोचनाके एकत्र पीस कर कपालमें तिलक लगानेसे भी जगत् यशोभूत किया जा सकता है।

पेचकका चक्षु ला कर उसमें गोरोचन मिला दे। पीछे यह जिस व्यक्तिको जलके साथ खाने दिया जायगा वही व्यक्ति यशोभूत होगा।

पेचकके दो कान और चटक पक्षीके चक्षु इन्हें एक साथ चूर्ण करे। पीछे उस चूर्णका कपालमें तिलक लगाये, जगत् यशोभूत हो जायगा। फिर यह चूर जिसी व्यक्तिको उसके भक्ष्यद्रव्य और जलके साथ खिलाने अथवा गंधद्रव्य और पुष्पके साथ सु'घनेसे अथवा किसीके मस्तक पर रखनेसे यह उसी समय यशो-हो जायगा। 'ओं ही हूं ह्रीं ह्रः ह्रः कट्ट नमः' यह

मन्त्र हजार बार जप कर पेचकके मांस, कं. कुम, अगुय, रक्तचन्दन और गोरोचन इनके बराबर बराबर भागको एक साथ पीस कर खिलाने अथवा फलके साथ खिलानेसे विजयन् यशोभूत होता है। इससे त्वी और पुष्प दोनों ही यशोभूत हो जाते हैं।

पूर्व दिन उपवास रह कर गोपालककंदीके मूलको उखाड़ो। पीछे उत्तरामिमुखी हो कर उस मूलको ऊखल-में फूटो। यह चूर जितना होगा उतना ही बिकटु अर्धान् मिर्चा, पीपल और सांठ ले कर बकरोके दूधमें पीसो। बाद छायामें सुला कर गोली बनाओ। अनन्तर उस गोलीको रक्तचन्दनके साथ घोंट कर अर्धतो 'ग'गलोंमें लगा करके जिनका स्पर्श करेगे वही यशोभूत होगा। अथवा उस गोलीको समान भाग देवदारु और श्वेतचन्दनके साथ जलमें पीस कर जिसके अ'गमें लगाया जायगा वही यशोभूत होगा। 'ओं नमः श्री इन्द्रायी सर्वव-द्वरी सर्वार्थसाधिनी स्याहा' यह मन्त्र हजार बार जप कर उक्त गोली और गोरोचनको जलमें पीस कर कपालमें तिलक लगानेसे सभी जगह जयलाभ होगा।

ऋणपक्षीय चतुर्दशी अथवा अष्टमी तिथिमें उपवास रह कर देवताको वलि दे। पीछे विजयन्दका मूल उखाड़ कर उसे चूर्ण करे। यह चूर्ण पानके साथ मिला कर जिसे पानेको दोगे, वही यशोभूत होगा। विजयंद और गोरोचनको एक साथ पीस कर तिलक लगाने तथा मैनसिल और विजयन्दको पीस कर बज्रन देनेसे समस्त लोक यशोभूत हो सकता है। विजयन्दके मूलका सात दिन तक पानके साथ प्रयोग करनेसे राजा भी यशोभूत होने हैं, 'ओं नमो मंगयति मातलेश्वरी सर्वमुत्तराक्षिनी सर्वथा महामाये मातङ्गि कुमारिके ज्ञेये लघु जगु यशं कुं कृ स्याहा' इस मन्त्रको जप कर निम्नलिखित प्रक्रिया द्वारा कार्यको सिद्ध करनी होती है। विजयन्दके मूलचूर्णको मस्तक पर रखनेसे सभी मनुष्य यशोभूत होते हैं तथा उस मूल-को मुचामें डाल कर अथवा कटिमें बांध कर जिस नारी-को कामना करे, वही उसके यशोभूता हो जाती है।

श्रमज्ञानके अद्भार और शृगालके रक्तको एकत्र कर जिसके मस्तक पर केका जायगा वही यशोभूत होगा। मयूरके पिच, गोरोचना, जातिपुष्प और गोरोचन इन्हें

एकत्र कर कुमारी द्वारा विसर्वाये। पीछे उसको स्पर्श या पान करनेसे त्रिजगत् यज्ञ किया जा सकता है। चंद्रग्रहणकालमें सफेद अपराजिताका मूल उगाड़ कर उसका अङ्गन करने अथवा लक लगानेसे सर्वलोक चर्य होता है। कष्टकरजका मूल मुष्ममें रगनेसे लोग यशोभूत होता, प्रातवादी मूकवन जाता अथवा कहीं भ्रम जाता है। कृष्णपशीय चतुर्दशी तिथिमें सफेद घुंघचीका मूल उगाड़ कर पानके साथ जिसे छिल्ला-ओगे, वही मनुष्य यशोभूत हो जायगा। मैनसिल, गोरोचन और सफेद अपराजिताके मूलको जलके साथ पीस कर कपाल पर तिलक लगानेसे जिसके साथ वात चीत की जायगी, वही यज्ञ हो जाता है।

सर्वावेष्टित श्वेत अपराजिताके मूलको सूत्रामें रख कर जो धार्क धारण करेगा, उसके वायससे सभी यशोभूत हो जायेंगे। 'ओं वज्रकिररी शिवे रत्न रत्न भगवति मग्गदि अमृतं कुरु कुरु स्वाहा।' सहस्र बार इस मन्त्र-जप द्वारा सिद्ध हो श्वेतअपराजिताके मूलको चवा कर उसका तिलक लगावे। नर अथवा नारी जो कोई उस तिलकको देखेगा वही यशोभूत हो जायगा।

पुष्पानक्षत्रयुक्त कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथिको साधक उपवास रह कर पुष्प, धूप, चलि और घृतप्रदीप प्रदान-पूर्वक 'ओं श्वेतवर्षे सितपर्वातिनी अमतिरते मम कार्यं कुरु कुरु ठः ठः स्वाहा।' इस मन्त्रको १०८ बार जाये। पीछे सफेद घुंघचीके फल और उस जगहनी मिट्टी ले कर उस फलको घृत द्वारा लेपन करे। अनन्तर उसके बीज और मट्टीको एक उत्तम नये बरतनमें रण कर कृष्ण-पशीय चतुर्दशी अथवा अष्टमी तिथिमें जमोनेके अन्दर गाड़ दे। पीछे जब तक उस बीजसे पीछे उग कर उसमें फल न लगे, तब तक 'ओं श्वेतवर्षे सितवातिनी श्वेतपर्वाति-निवातिनी सर्वकार्याणि कुरु कुरु अमतिरते नमो नमः स्वाहा।' इस मन्त्रसे जल सोंचते रहै फल लग जानेसे फिरसे शुचिपूर्वक उपवासी हो धूपदि उपहार प्रदानपूर्वक 'ओं श्वेतहृदयाय नमः। ओं पद्मगुणे निरसे स्वाहा। ओं नमः सर्वज्ञानमये शिष्याय ययत्। ओं नमः सर्वज्ञानमह्ये कय-चाय हु'। ओं नमः नैवक्याय योयत् 'ओं परमन्त्रभेदने भद्राय फट। सर्वाण्यङ्गानि ओं नमोऽनन्तादिनि'

इत्यादि मन्त्रसे न्यास करे; पीछे 'ओं नमो भगवति हुं' श्वेतवासे नमो नमः स्वाहा' इस मंत्रको पढ़ कर उम सफेद घुंघचीके मूलको उगाड़। बाद यशोकरण प्रक्रियामें प्रवृत्त होनेके पहले 'ओं नमो भगवति' इत्यादि मन्त्रका दश हजार बार जप तथा पुनर्मिश्रित तिल और श्वेत यूर्वा द्वारा सहस्र बार होम करना होगा। उक्त श्वेत घुंघचीके मूल और श्वेतचन्दनको पीस कर अथवा मधुके साथ घिस कर शरीरमें लगानेसे सभी यशोभूत होते हैं।

मैनसिल पूर्वोक्त प्रकारके श्वेतगुञ्जा (घुंघची)के मूल और श्वेत चन्दनको पीस कर कपाल पर तिलक लगानेसे सभी यशोभूत होते हैं। पूर्वरूपसे श्वेत गुञ्जाके मूल, श्वेत सर्प और प्रियंगु इनका समान समान भाग ले कर चूर्ण करे। पीछे उस चूर्णको 'भोन् नमः श्वेतगाले वर्जोकरगङ्गारि दुष्टान् यशं कुरु कुरु मे यदमान-स्वाहा' एक सौ आठ बार इस मंत्रजपसे सिद्ध हो कर जिसके मस्तक पर फेंकीये वही यशोभूत होगा।

अधुसके मूल, प्रियंगु, कुट्ट, इलायची, नागकेशर और श्वेतसर्प-इन्हें एकत्र कर जिसके अङ्गमें धूप प्रदान करोगे वही यशोभूत होगा। 'ओं कामिनि माधवि माधवि नमः' इस मन्त्रसे धूपको सौ बार अभिमंत्रित कर लेना होगा। उक्त मंत्रसे सौ बार अभिमंत्रित करके एक पुष्प जिसके हाथमें दिया जायगा, वही यशोभूत होता है। अथवा उक्त मंत्रसे अन्नको अभिमंत्रित करके जिसका नामोल्लेख करने हुए प्रतिदिन सात प्रासके दिसावते सात दिन तक भोजन करेगा, वह धार्क श्वेत हो यशोभूत होगा। 'ओं कटं कटे पार रुविधि ठः ठः' इस मंत्रको उक्त प्रक्रियाके पहले हजार बार जप कर कार्या करनेमें कार्याकी सिद्धि होती है।

'ओं घयटा कर्ष्याय नमः।' इस मंत्रकी दश हजार जपनेके बाद फिर उस मन्त्रसे पत्थरके एक टुकड़े को अभिमंत्रित करे। अनन्तर उसे ग्राम अथवा पुरीके मध्य फेंक दे अथवा उस ग्रामके किसी कुक्षमें उस पत्थरसे आघात करे, तो उस ग्रामकी जिस किसी पत्तु की इच्छा करेगा, पदो प्राप्त होगी।

'ओं नने स्वाहा।' साधक इस मंत्रको दो लाख बार

जप कर घृताक शुग्गुल द्वारा बीस हजार होम करे, तो देवी सीताय प्रदान करती है तथा साधक जो स्पर्श करेगा वह उसी समय यज्ञीभूत हो जायगा ।

'श्री महाप्रभतेनाधिपतये मानिनद्राय अर्पयितममं देदि स्वाहा' इस यज्ञमंत्रसे क्षीरोदुग्धं (जिस दूधसे दूध निकलता हो) सात बार ताड़न और इक्षोस बार अभिमन्त्रित करे तथा उस दूधको एक लकड़ी दाहिनी हाथमें रखे तो अर्पयित अग्नि भी न्यस्त होता है ।

'श्रीं नमो भूतनाथाय यं भूपाल यशं कुम्ब कुम्ब भुवन-क्षोभक सर्वलोकान् क्षोभय क्षोभय स्कें ज्ञो ज्ञो म्बुं स्वाहा ।' रक्तयज्ञ पहन कर यह मंत्र दश हजार बार जप करनेसे सभी नरनारी क्षोभित होती है ।

'श्रीं ऐं अमुकं रत्नय हों स्वाहा ।' इस मंत्रको दश हजार बार जप कर शर्करा, मधु और दुग्धमिश्रित पत्र-पत्र द्वारा एक हजार होम करनेसे सभी लोक यज्ञीभूत किया जा सकता है । जो कोई व्यक्ति उसे देखेगा उसे संतोष उत्पन्न होगा ।

'श्रीं उच्छिष्टचाण्डालि वाग्यादिनि राजमेहनि प्रजा-मोहन त्रीमोहन आन् आन् वैधे वायु वायु उच्छिष्ट-चाण्डालि म्त्वायादिनि की शक्ति कुरे ।' साधक निर्जन स्थानमें बैठ कर उच्छिष्ट मुखसे इस मंत्रको दश हजार बार जपे । बाद उस मन्त्र द्वारा किसी द्रव्यका स्मरण करनेसे वह उसी समय सामने आ जाता है ।

'श्रीं नमो भूतनाथाय समस्तभुवनभूतानि साधय हं ।' इस मंत्रका जप करनेसे महादेव प्रसन्न होते हैं और साधक जिसका स्मरण करेगा, वह उसी समय यज्ञीभूत हो जायगा ।

'श्रीं ह्रीं सः अमुकं मे यशं कुम्ब कुम्ब स्वाहा ।' इस मंत्रको दश हजार बार जपे तथा कुं'कुम्ब, रक्तचन्दन, गोरोचन और कर्पूर इन सब द्रव्योंका बराबर बराबर भाग ले कर गायके दूधके साथ मिलाये । पीछे उक्त मन्त्र द्वारा सात बार अभिमन्त्रित करके ललाट पर तिलक लगाये । इससे राजा यज्ञीभूत होते हैं ।

'श्रीं सुवर्शनाय हुं फट् स्वाहा ।' इस मन्त्रको हजार बार जप कर हस्तानक्षत्रमें पिठवनका मूल उखाड़ कर हाथमें धारण करो । इससे राजद्वारमें पूजनीय होता है तथा विवाहमें जय होती है ।

मञ्जिष्ठा, कुं'कुम्ब, यमानी, घृतकुमारी, चिताकी भस्म और जरीरका रक्त इन सब द्रव्योंको एकत्र कर अपने शुक धारा भायना दो । पीछे पुष्यानक्षत्रमें गोली बनाओ । यह गोली जिसे पिलाई अथवा जलके साथ मिला कर पिलाई जायगे वह निश्चय ही यज्ञीभूत हो जायगा । उक्त गोली राजाको स्पर्श करानेसे चण्ड-मन्त्रके प्रभावसे राजा भी यज्ञीभूत होते हैं ।

'श्रीं ह्रीं रक्तचामुण्डे कुम्ब कुम्ब अमुकं मे वशमानय स्वाहा' इस मन्त्रबलमें चण्डप्रहणके समय उखाड़ी हुई भूतशपराजिताकी जड़ अपने मालिकको लिलानेसे धं यज्ञीभूत हो जायेंगे । उत्तरफल्गुनो, उत्तराषाढा अथवा उत्तरभाद्रपद नक्षत्रमें गर्धरे अश्वत्थवृक्षका मूल उखाड़ कर हाथमें धारण करनेसे राजदरबारमें जयलाम होता है । भरणीनक्षत्रमें आम्रवृक्षके मूल और पूर्वफल्गुनो नक्षत्रमें दाड़िमके मूलको उखाड़ कर हाथमें पहननेसे देव-राज इन्द्र भी यज्ञीभूत होते हैं । अश्लेषा नक्षत्रमें नागकेसरके मूलको उखाड़ कर हाथमें बांधनेसे राजा यज्ञीभूत होते हैं । कटु तैल द्वारा रक्तचन्दन और श्वेत सर्पपत्रा सहस्र होम करनेसे तथा रातको अपने घरमें टांगरक्तके साथ सर्पपत्र द्वारा सहस्र होम करनेसे राजा निश्चय ही यज्ञीभूत होते हैं ।

परवादिजय ।

पुष्यानक्षत्रमें गोजिहा और अपामार्गके मूलको उखाड़ कर मुखमें अथवा मस्तक पर धारण करनेसे 1यवाहमें जयलाम होता है । अगहनको पूर्णिमाको अपामार्गका मूल उखाड़ कर वायु अथवा मस्तक पर धारण करनेसे विवाहमें जय हो सकते हैं । उक्त मूलको शिघामें बांधनेसे बन्धनमें द्रुष्टकारा मिलता है । नटिया सागके मूलको चांशिके कचचमें भर कर मुखमें रखनेसे विवाहो व्यक्ति मूक होता है अर्थात् कहीं भाग जाता है । कृष्णा चतुर्दशीको रातको श्रमज्ञानज्ञान महानोतिवृक्षके मूलको ला कर हाथमें धारण करनेसे विवाहमें जय होता है । सफेद घुंघची वृक्षके मूलको मुखमें रखनेसे द्रुष्ट व्यक्तिके वाक्य रोध होता है । चण्डमन्त्र द्वारा ही ये सब कार्य करने होते हैं । 'श्रीं नमो भस्मि जय धूलि धूसरि अर रणि जय वागध्यं यन्तु स्वाहा' शिव व्यक्तिके मस्तक पर

हाथ रंग कर तीन दिन ग्रामगो इम मन्त्रका जप किया जायगा, यह विवाहमें जयन्तभ करता है।

दुर्घ्न दमन।

शुक्रपक्षमें पुष्यानक्षत्रको शुद्धका मूल उगाड़ कर मन्त्रक या शय्या पर रखनेसे चौरका भय जाता रहता है। अश्लेषा नक्षत्रमें आमलकी वृक्षके मूलको उगाड़ कर हाथमें धारण करनेसे चौर, बाघ और राजाका भय नहीं रहता। आर्द्रानक्षत्रमें दामकी जड़ उगाड़ कर कानमें बांधनेमें निःसन्देह विवाहमें शत्रुकी हार होती है। आसौड़ फलके तेलके साथ अमराफलचूर्ण मिला कर हाथीके शरीरमें लगानेसे मतवाला हाथी घसीभूत हो जाता है। हस्ता नक्षत्रमें हृष्टदंशको मार कर उसका चूर्ण करे। पीछे उक्त चूर्ण द्वारा शरीरलेपन करनेसे हाथी उमे देकाने हो निर भुक्तये भागता है। चित्तपुष्प और हृष्टदंशको एक साथ पीस कर अङ्गमें लगानेसे हाथी जान ले कर भागता है। अपामार्गके मूलको बाहु और मस्तक पर धारण करनेसे दुष्ट हाथी तथा समरादिका भय जाता रहता है। श्वेतअपराजिताके मूलको हाथमें बांधनेसे हाथीका भय निवारण किया जाता है तथा श्वेत वृद्धोंके मूलसे ध्यात्रभय नहीं रहता।

'ओं चिन् चित्तलो वृच्छे आद्ये कुरु कुट कुर्जिज पुच्छ डोलीके उसे चले तरि मुदि भाये गौरिकारं महादेव वृण-जाल आहायाघो पूताकिजे महारा उत्तराजे इह तु भूमि छईजे तारिनेपुनूधक कोजे विवाह जपे मा पुटाले भुजे मोविहिस्काळ' ये ऽनुमण्डकी आज्ञा।' इस मन्त्र द्वारा अपने शरीरसे एक बुंद रक्त निकाल कर बाघके शरीर पर फेंकनेसे बाघ दूर भाग जाता है। किसी ग्राममें, नगरमें या वनमें यदि कोई बाघ उपद्रव मचावे, तो इस मन्त्रको हजार बार जप कर एक शूकरको पीसे। पीछे इस मन्त्र प्रभावसे बाघ स्वयं उस जगह पर आ शूकर या जायगा और उस स्थानको सदाके लिये छोड़ देगा।

यमीकरणप्रकार।

कनूरके श्वशु और हृदय तथा निज देहरेक, गोरोचन और जिह्वाके मन्त्रकी पत्रत कर अश्वन लगानेसे स्त्री यशोभूत होती है। गोरोचन, चिनामस्य, नरनील और निज शुकके एकत्र पीस कर जिस रमणोंको दिया

जायगा वह यशोभूत होती है। चिनामस्य, चर्षी, कुट, तगरकाष्ठ और कुंकुम इनका बराबर बराबर भाग ले कर चूर्ण करे। पीछे उस चूर्णको स्त्रीके मस्तक या पुण्ड्रिके पद पर निक्षेप करे, तो वह रमणी या पुण्ड्रित्यको भर यशोकारका दास होता है। तीस घना, सोहद इन्द्रजी, गोदन्त और नरदन्त इन्हें तेलके साथ पीस कर ल्याट पर तिलक लगानेसे रमणीमात्र हो यशोभूत होती है। सोहागा, यष्टिमधु, गोरोचन, चिनामस्य और काकजिहा, बराबर बराबर भाग ले कर मधुके साथ मिलावे। पीछे उसका तिलक धारण करनेसे तथा पुष्यानक्षत्रमें काले घघुरेके फूल, भरपोनक्षत्रमें फूल, मूल्यानक्षत्रमें पतकी तौड कर कुंकुम गोरोचन और कर्पूरके साथ अच्छी तरह पीस कर तिलक लगानेसे जिसको चाहो यशोभूत कर सकते हो। काकजिहा, वच, कुट, चित्तपुष्प, कुंकुम और अपने रक्तको एक साथ मिला कर कपाल पर तिलक लगानेसे रमणी मात्र यशोभूत होती है।

काकजिहा, वच, कुट, शुक और जोगित इन्हें एकत्र कर जिस स्त्रीको चित्ताभोगे यह ऐसी यशोभूत हो जायगी कि, उस पुण्ड्रिके मरनेके बाद वह ज्ञानमान जा कर रोयेगी। चटक पक्षीका मस्तक, उतना ही श्वेत अकचनका मूल, मजिष्ठा और खदिर जिसे चित्ताया जायगा वहो यशोभूत होता है। सांपकी बँसुल, बनावकी लकड़ी और आड़ोका तेल, इनका बराबर बराबर भाग ले कर धूप प्रदान करनेसे रमणी यशोभूत होती है। अभिनीनक्षत्रमें पलाशवृक्षके फूलको संप्रद कर हाथमें बांधनेसे नारी तुरन्त यशोभूत हो जाती है। पशुनक्षत्रके मूलको मृगशिरा नक्षत्रमें उगाड़ कर अपने हाथमें बांधो। पीछे उसका जिसके अङ्गमें लक्ष्मी कराभोगे यही कामिनी यशोभूत होगी। धनिष्ठानक्षत्रमें शिरोपशुषके मूल, अभिनीनक्षत्रमें पलाशमूल और श्याति नक्षत्रमें घातकी वृक्षके मूलको उगाड़ कर हाथमें बांधनेसे स्त्रीगण यशोभूत होती है। रेवती नक्षत्रमें यटकी कौड़ीकी संप्रद कर हाथमें बांधनेसे तथा मूल्यानक्षत्रमें बरंगमूलको उगाड़ कर शिरोको मिलातेसे यह भयदय यशोभूत होगी। स्वर्णपातमें कुन्डपुस्तके मूलको घिस कर शिरोकी पीठमें

लगा देनेसे तथा अगहनकी पूर्णिमाको अपामार्गके वीज उताड़ कर रिसयोंको छिलानेसे यह यशीभूत होती है। ये दोनों कार्य चन्द्रमन्त्रसे सिद्ध हो कर करने होंगे।

सफेद गुग्गुलीके मूत्र और पञ्चमल अर्थात् दन्त, जिह्वा, कर्ण, नासा और चक्षुके मलको एकत्र कर यदि स्त्रीको खिला सके, तो यह निश्चय ही यशीभूता होगी। 'ओं नमः क्षिप्र' अमुकी मे यशमानय हुं फट् स्वाहा।' मंत्रेरे दांतको माफ कर अभिलषित रमणीका नामोल्लेख करने हुए इस मन्त्रसे समगणपूष जलको मात वार अभिमन्त्रित करके पान करनेसे यह स्त्री यशीभूत हो जाती है। नागकेरके पुष्प, त्रियंगु, तगरकाष्ठ, पत्रकेशर, वच और जटामांसी इन्हे एक साथ चूर कर जो प्लक्ति 'ओं मूलि मूलि महामूली रक्ष रक्ष सर्वांमां क्षेवयेभ्येः परेभ्यः स्वाहा।' इस मन्त्रका पाठ करने हुए उक्त चूर्ण द्वारा अपने शरीरमें धूप लगावेगा, उसे कामदेवके मृष्टश जान कर रमणियां उमके यज्ञ हो जाती है।

'ओं नमः सवार्थे नमः सवान्ये च दामुकीं मे यशमानय स्वाहा।' इस मन्त्रसे अभिमन्त्रित सुगके साथ जिह्वा, दन्त, नासा और कर्णमल अथवा 'ओं नमो वाचाट पथ पथ द्विटि द्रायहि स्वाहा।' इस मन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रित करके विजयन्दका मूल गिलानेसे स्त्री यशीभूत होती है।

अपामार्गचूक्षके मध्यभागके चार अंगुल परिमित काष्ठको 'ओं द्राघिणी स्वाहा ओं हामिने स्वाहा।' इस मन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रित करके वैश्याके घर फेंकनेसे यह उसके अश्रीम हो जाती है। पंचकके चक्षु और मांस, रक्तचन्दन, गोरोचन, कुंकुम, मत्स्यनील इन्हे एकत्र कर तथा 'ओं हो' हो' हुं' फट् नमः' इस मन्त्र द्वारा अपने शरीरमें अभ्यङ्ग करनेसे स्त्री यशीभूत होती है। गिरगिटके दाहिने पैरकी मुखमें रखा कर रतिजिया करनेसे रमणी यशमें धा जाती है। गिरगिटके वाम नेत्रकी मधु और तेलके साथ अञ्जन देनेसे जिस स्त्रीके प्रति दृष्टिपात किया जायगा वही यशीभूत होगी। 'ओं आनन्द ब्रह्म स्वाहा ओं हो' हुं' प्लं कालि कपालि स्वाहा' मन्त्र द्वारा उक्त प्रक्रिया करनी होती है।

'ओं पूजिताय स्वाहा' मन्त्रसे सिद्ध हो कर गिरगिटके

दाहिने चक्षुको कांजी और मधुके साथ मिला कर अञ्जन लगा कर 'ओं नमः कामदेवाय सहकाल सहदश, सहयम सदाहिमे वक्षे धूतन जन्म मम दर्शन उत्कण्ठितं कुक् कुक् दक्ष दृष्टधर कुसुम' वापेन हन हन स्वाहा।' इस मन्त्रको तीन ग्राम तक सौ सौ बार जप करे। सात दिन तक ऐसा करनेसे नारी उसे देखते ही यशीभूता हो जाती है। रातको कामाक्रान्तचित्तसे जिसका नामोल्लेख करने हुए 'ओं स हयल्लो' वल्लो कर वल्ली कामविगात्र अमुकी' काम' प्राहय स्वप्नेन ममरूपेण नगैर्विदारय द्रावय स्वैदेन वन्धय श्री फट्।' इस मन्त्रका जप करोगे यह निश्चय ही यशमें धा जायगी। लवण, तिल, दुग्ध, मधु और घृत अथवा सर्षप, लवण, दुग्ध, और घृत ले कर सात दिन होम करनेसे रूपवर्तिता नारी भी यशीभूत होती है। महानिम्बके पुष्पके साथ प्रति दिन घृत द्वारा 'ओं हो' चामुण्डे तुक् तुक् अमुकी' मे यशमानय स्वाहा।' इस मन्त्रसे सात दिन होम करनेसे कार्यको सिद्धि होती है। मनुष्य-मस्तकके मध्यभागको गर्दभके मस्तिष्कके भर कर भृङ्गराजके रसमें सात दिन भाचना दे। अनन्तर रङ्गकी बत्ती बना कर उस भञ्जापालमें दे प्रदीप बाले। जनिवारको उस प्रदीपको शिवात्म मनुष्यकी खोपड़ीमें घित कर काजल बनावे। पीछे उस काजलको आंखमें लगा कर जिस औरतके प्रति नजर उठायोगे वही यशीभूता और अनुगामिनी होती है।

मैनसिल, हरिताल, स्वोषवीर्य, आर्कोड फलका तेल, हस्तिगण्डका मद इन सबको एक साथ मिला कर कपाल पर तिलक लगानेसे रमणी सहजमें यशीभूत होती है। मैनसिल, त्रियङ्गु, नागकेशर और गोरोचन इन्हे एक साथ मिला कर आंखमें अञ्जन देनेसे कामिनी यशमें आती है। त्रियंगु, वच, तेजपत्र, गोरोचन, रसाञ्जन और रक्तचन्दन द्वारा प्रस्तुत अञ्जनको आंखमें लगा कर जिस किसी स्त्रीके प्रति दृष्टिपात करोगे, वही यशीभूता होगी। सोमराजी और अंकवनके मूलको कटिमें बांधनेसे स्त्री-पुरुष दोनों ही यशीभूत होते हैं। शृण्णपक्षकी अष्टमी अथवा चतुर्दशी तिथिको उखाड़ा हुआ पीले घनूरेका मूल, कुट और देवदास इनके बराबर बराबर भागको



एक साथ चूर करके, पीछे उसे खी अथवा पुरणके मन्त्रक पर फेंकनेसे यज्ञोत्तरण होता है।

जलके साथ आमलकीके मूलको घिस कर भांगमें लगाने अथवा कपालमें तिलक धारण करनेसे खी या पुरण यज्ञोत्तरण होता है। गोपालकर्षटीके मूलको पुष्यानसत्रमें नंगी अथवा मीठे उखाड़ कर उसके साथ मिर्चे, पिपली और सोंठ मिलाये। पीछे गायके दूधमें उसे पीस कर गोली बनाये। उन गोलीको रक्तचन्दनके साथ मिला कर तिलक करनेसे खीगण यज्ञोत्तरण होती है। खीती-नक्षत्रमें वर्यटीके मूल और अनुराधानक्षत्रमें यदुरीके मूलको उखाड़ कर हाथमें बांधनेसे फलदायक होता है। ऊर्ध्व-पुण्यी, अधःपुण्यी, लज्जावती और अपराजिताके पुष्यको सात दिन तक निज शुक्रमें भायना दे कर जिहामल, नामामल, कर्णमल और दन्तमलके साथ मिलाये। उसे किसी खीको भक्ष्यद्रव्यके साथ गिलाने या जलके साथ पिलानेसे रमणी यज्ञमें भा जाती है। श्वेत अकचन, लाङ्गुलिया, यच, लज्जावतीमूल इन्हें चूर कर कुत्तेके दूधके साथ मिलाये। पीछे उसे घतूरेके फलमें रख कर किसी औरतको गिलानेसे इच्छानुरूप फल प्राप्त होता है।

सातवार जलाञ्जलि प्रदानपूर्वक 'ओं विश्वायसुर्नाम मन्वर्षाः कन्यकानामधिपतिः सुरूपं सालङ्कारं देहि मे नमस्तस्मै विश्वायसये स्वाहा।' यह मन्त्र एक मास तक करनेसे अभिलषित कन्या प्राप्त होती है।

स्तम्भन प्रकार।

हल्दी अथवा हरताल द्वारा भोजपत्रके ऊपर अभिलषित व्यक्तिके मूर्तिरूप चन्द्र लिख कर उसे हृत्पिण्डं सूत्र द्वारा घेदनपूर्वक किसी जिलामें बांध रखनेसे गति स्तम्भन होता है। चर्मकार और रजकके कुण्डमेंसे मीलको ला कर उसे पाण्डाल-पत्तियोंके श्रुनुवासमें बांध रखो। उस पीटलीको जिसके सामने रवोगे उसमें फिर उदनेकी शक्ति मढ़ी रहती।

जहां पर गाय, भैंस, भेड़, घोड़े और हाथी रहते हैं। उनके चारों कोनेमें ऊँटको हथी गाड़ देनेसे उक्त गो-महिषादिकी गति स्तम्भन हो जाती है।

मनुष्यको शोषणमें पीली मिट्टी रख कर इच्छापश्याय

चतुर्दशीको रातको उसमें सफेद पुष्यगोका पीठ छोड़े और तीन दिन तक वहाँ जागते रहो तथा प्रतिदिन इनमें उसे सौंचो। अनन्तर 'ओं शुक्रभ्यो नमः। सी वज्रभयः नमः। ओ वज्रकिरणे शिबे रक्ष रक्ष भवेदुगाधि भूयं कुर कुर स्वाहा' इम मन्त्रसे पूजा और जप कर उक्त पीठेपर दृष्टसे प्राणा और ललाटीको तोड़ लो। पीछे गुन मालमें उसे अभिमन्त्रित कर जिसके आसनके तले रथोंमें चढ़ो व्यक्ति स्तम्भित होगा। हल्दीके रसमें तालपत्रमें पत्र और 'ओं महोत्था यज्ञाय अमुकस्य मुनिं स्तम्भय स्वाहा' यह मन्त्र लिख कर उसे चतुरेके मध्य गाड़ देनेसे स्तम्भन होता है। भोजपत्रमें कुंकुम द्वारा शत्रुके नामके साथ एक पत्र बाँधून करो। पीछे उस भोजपत्रको मोले तामेसे लपेट दो, शत्रु उसी समय स्तम्भित हो जायगा। भूद्रराज, अपामार्ग, सर्प, विजयन्, यच और कण्टकारीका रस निकाल कर लोहिके बरतनमें रथो। दो दिन बाद उसका तिलक लगानेसे शत्रुको बुद्धि स्तम्भन होती है। नदीमें पैठ कर 'ओं नमो भगवते विश्वामिताय नमः सर्वं मुक्तिभ्यां विश्वामिताय विश्वामित्रोद्दयति शम्भया भागच्छतु।' मंत्र द्वारा जिसके नामसे सौ बार तर्पण किये जायेंगे, उसका मुण स्तम्भित हो जायगा।

'ओं नमो प्रत्येगरी रक्ष रक्ष ठः ठः' इस मन्त्रको पढ़ते हुए सात छोटे छोटे पत्थरके टुकड़ोंका उखाड़ो। इनमेंसे तीनको कामरमें बाँधने तथा चारको मुँहमें रखनेसे चोरकी गति स्तम्भन होती है।

आकाँड़का, फल, विजयन्, कण्टकारी, सर्पसंग, अपामार्गका मूत्र, कृष्णापराजिता, शिवजटा, मोल, मोनापाठा और श्वेत अपराजिता इनके मूलको रविघार पुष्यानक्षत्रमें उखाड़ कर मुल या मस्तक पर धारण करनेसे शत्रुका अग्र स्तम्भित होता है तथा इसके द्वारा शनि, मूषिक, व्याघ्र, राजा, चोर और शत्रुका भय जाता रहता है। सफेद घुँघुँसोके मूलको उत्तर-मात्रनक्षत्रमें उखाड़ मुण्यो हो उखाड़ कर मुणमें धारण करनेसे शत्रुपक्षका पाण स्तम्भन होता है। शुक्रपक्षकी लघोदनी विषिकी अपामार्ग, घृतकुमारो और विजयदंके मूल उखाड़ कर साथ पीस कर गोली बनाये। उस गोलीको मन्त्रक या बाहुमें धारण करनेसे शत्रुका भय दूर होगा है। गोविन्द,

हडली, द्राक्षा, घट, श्वेतअरराजिना, कृष्णअपराजिता, हस्तिकर्णों और श्वेतकण्टकारी इन सब पौधोंके मूलको रविवार पुष्यानक्षत्रमें उखाड़ कर कदलीवृक्षके मूलसे लपेट दे। पीछे उसे हाथमें कड़ुण घत घारण करने तथा अकनन, कदमेटा, श्वेता, शरपुड्डा और श्वेतगुड नामक पौधोंके मूलको रविवार पुष्यानक्षत्रमें मंत्रह कर मुलमें रतनेसे रणक्षेत्रमें शत्रु स्तम्भित हो रहते हैं। गंभादी अथवा दन्तोमूलको रविवार पुष्यानक्षत्रमें उखाड़ कर तण्डुलोदकके साथ पीसे। अनन्तर तीन दिन उसे पीनेसे शत्रु भय जाता रहता है।

कैतकीवृक्षके मूलको मस्तक और नेत्रमें, ताल-मूलको मुखमें तथा शज्जके मूलको चरण और हृदयमें घारण करनेसे शत्रु सर्गाका षड्ग स्तम्भित होता है। उक्त तीनों प्रकारके मूलको चूर कर घीके साथ पान करनेसे जीवन भर उसे किसी प्रकारका हथियार चोट नहीं पहुंचा सकता।

रविवार पुष्यानक्षत्रमें शिरीषवृक्षके मूलको उखाड़ कर जलमें पीने। उम जलमेंसे आधा अर्धक भोजन करने पर और आधा भोजन कर चुकने पर पी ले। इस प्रकार जब तक उम बीचपका संयन किया जायगा, तब तक उसका शरीर अक्षरसे विद्व नहीं हो सकता। उक्त मूल यदि किसी मेड़के गलेमें बांध दिया जाय, तो वह खड्गसे भी नहीं काट सकता। पुष्यानक्षत्रमें आकन्दवृक्षके मूलको उखाड़ कर एक कौड़ोंमें भर दे। पीछे उस कौड़ीको किसी पके फलमें रपा कर मुलमें डालनेसे शत्रुका शत्रु-स्तम्भन होता है।

सूर्यग्रहणकालमें मन्त्रपाठपूर्वक शरपुड्डके मूलको उखाड़े और उसे मुलमें डाल कर पीनी हो कर रहे। यह व्यक्ति कभी भी शत्रु पादगले विद्व नहीं हो सकता। 'ओं कुन कुन स्वाहा' मन्त्रपाठपूर्वक मूल, पत्र और शाखाके साथ अपराजिताको लताको चूर करो। पीछे उसे तेलमें पका कर शरीरमें लगानेसे अख भय नहीं रहता। गिरगिटके पाए पैरको हरितालसे लेप कर उमे ताम्रके बने हुए कवचमें भर दो। उस कवचको मुलामें रखनेसे शत्रुको सहजमें जीत सकने हो। यह कार्य 'ओं चामुण्डे भयचारिणि स्वाहा' मन्त्रसे करना होता है।

'ओं अहो कुम्भकर्ण महाराक्षस केशोर्गमसम्भूत पर-सैन्यभञ्जन महावद्रो भगवान् आहा अनि' स्तम्भय ठः ठः' द्वाज हजार इस मन्त्र-जप द्वारा सिद्ध हो कर हीरा, सोना, अयरक, चाँदी, पारा और गन्धक इनको बराबर बराबर भागको ज बोरी नीयूके रसमें खरल कर गोली बनाये। पीछे किसी बंध्या या जीववत्सा रमणी द्वारा यह द्रव्यके योज, कपासके धीज और सरसोंको पिसया कर उसमें उक्त गोली रखा दे। अनन्तर सात बार गजपुट द्वारा दग्ध कर उम गोलीको मुहमें रखनेसे शत्रु स्तम्भन होता है। तरह तरहके रोग और जरा मृत्युमें भी यह गोली विशेष उपकारी है।

'ओं तता तता अङ्गारि मे भयमय वन्धकुमारी मूष्ण सिद्धि शालायासल' सद्गर्गी गौरी महादेवकी आहा ओं नमोऽयत्र तुज लुली यतिकामी कृजले वले प्रज्वले प्रमाजु चण्डे श्रीमहादेवकी आहा पावे पायुशले। ओं बनी-धतीकाधरे धपोसे गल हनुवाजु मायापेत्तकी ये मास्वियो हनुमन्तजले य प्रज्वले जुदजे जुदमे वेष्ट ईश्वर महादेवकी पूजा याघेपाल पुशालाहु अग्नि ज्वलन्ती मैधरी जलदृनी दिव्योद् मुद् मैवैश्वानरुथा मवियो देये नारायणा श्रायु सो अग्नि उपाइकदी हरिमें युद् जुजुजायोच्यन्द दलोवष्टि वृष्टि युज्जोवीजले प्रज्वले ई' कामिले आहा पूजा पापु-टाले श्रोसूर्गकी आहा। अहो सूर्य आवादावी दिदोमुजा याजाही कायाम महत्याकद अग्निदुण्ड प्रसाण्ड ज्वालां तपुर आणी पाणि, लिरेपला अग्निदे वैश्वानर नाय मे द्विदिनी धारा धाकेज पूष रोजी महामदी। ओं गुरु मदिशा दुकुक्कला महादुर्ग विहन्ति।

इस महेशमन्त्र, हनुमन्त, नारायणमन्त्र, सूर्यमन्त्र और ब्रह्ममन्त्रको दश हजार बार जप कर जलती हुई आगमें प्रवेश करनेसे आग उसे दग्ध नहीं कर सकती। उक्त मन्त्र एक सी आठ बार जप करते हुए श्वेत परण्डवण्ड-को अभिमन्त्रित कर उसमें फेंक दे। पीछे अग्निस्तम्भन मन्त्र जप कर निर्भयचित्तसे मन्त्रपाठ करते हुए अग्नि-कुण्डमें प्रवेश करो, अग्नि कुछ भी अनिष्ट नहीं कर सकती।

पूतकुमारी और भोलकी एक साथ पीस कर यदि हथेलीमें लेप दो और ऊपरसे जलता हुआ अंगार या

लोहा रज छोड़ो, तो हाथ कुछ भी नहीं जलेगा। अक-  
यनके मूलको रोकके साथ पीस कर हाथमें लगानेसे जाग  
जरा भी नुकसान न पहुंचा सकती। बेगक, मेड़क, मेड़े-  
की चर्बी भयया मेड़ककी चर्बी और नोमकी छाल इन्हें  
एकत्र पीस कर शरीरमें लगानेसे नहीं जलेगा। उक्त  
दोनों योगमें 'ओं नमो भगवति चन्द्रक्रान्ते शुभे ध्याप्रचर्मा-  
नियामिनी चन्द्रमाणि स्याहा।' यह मंत्र पतलाया गया  
है। मेड़ककी चर्बीके साथ नोमकी छाल पीस कर शरीर-  
में लगानेसे अग्नि स्तम्भन होती है। खीपुष्प, गदहका  
मूल और बगलेकी चर्बी इन्हें एक साथ पका कर शरीरमें  
लगानेसे तम लोहा भी उसका शरीर नहीं जला सकता।  
जौक, अकचनका मूल और शीवालकुसुम इन तीनोंको  
बेगकी चर्बीके साथ पीस कर जिस अंगमें लेपन करोगे  
वह अंग नहीं जलेगा। 'ओं अग्निबलवन्ती मैथरी मलीयै  
हनुर्मैथेभ्य नरथिमी गौरी महेश्वर साधु।' मन्त्रोच्चारण-  
पूर्वक पुनकुमारी और तैल इन्हें एक साथ पीस कर  
हाथमें लेपनेसे जलता हुआ लोहा भी कुछ अनिष्ट नहीं  
कर सकता। 'ओं नमो भगवति चन्द्रक्रान्ते शत व्याघ्र-  
नमं परिणद्धयसने चमालय स्याहा।' मंत्रसे मेड़कका  
चर्बी और जौक एकत्र पीस कर विलेपन करनेसे अग्नि  
स्तम्भन होती है।

मेड़ककी चर्बीके साथ उदुग्रान्नपत्र, विल्वपत्र परण्ड-  
पत्र और निम्बपत्र इन्हें पीसी आंनमें पका कर पाद-  
प्रलेपन करनेसे प्रवृत्ति अङ्गुरके ऊपर प्रमण किया जा  
सकता है। 'ओं नमो भगवते चन्द्ररूपाय विकलां त्विहन्ति  
तन्मूकमस्तभारथन चन्द्ररूपेण अग्निपुत्र वरं कृच्छः ४ः।'  
मंत्रसे जौके पीछेकी मेड़ककी चर्बीके साथ पीस कर  
गोली बनाये। पीछे उस गोलीको अग्निमें डाल कर  
अग्निमें प्रवेश करनेसे शरीरमें ताप नहीं लगेगा।  
गिरगिटके बाये पैर और बाये हाथकी मोमसे तथा  
गिरगिटके बाये पैरको पारेके साथ मर्दन करके पानके  
पत्तेसे लपेट कर मुगमें रखनेसे अग्निना नेत्र लुप्त हो  
जाता है। उक्त दोनों कार्य 'ओं अमुताय इंदु पिन्दु  
स्याहा' मन्त्रसे करने होते हैं। भृङ्गराज, कदलीमूल  
और बेगकी चर्बी इन्हें पीसी आंनमें पका कर पादप्र-  
लेपन करनेसे बिना हड्डिके अग्निमें जल सकते हो।

'ओं वज्रकिरणे मर्दनं कुरु कुरु स्याहा।' मंत्रसे मर्द-  
न पुंघनीका रस सर्वाङ्गमें विलेपन करके जलते हुए अंगों  
में पैर रणो, तो पैर नहीं जलेगा। 'ओं त्रिमाचलभो-  
नरे भागे मरानोनाम राक्षसः तल्प मृतपुरीषायां दुर्गा  
स्वाम्ययामि स्याहा।' यह मन्त्र गृहदाहके समय मात कर  
जाप जप कर भूमि पर ताड़न करनेसे अग्नि प्रवृत्त अग्नि  
भी युक्त जाती है। गायके लोम, जलजुक और बेगकी  
चर्बी एकत्र पीस कर किसी कपड़ेमें तमाम लगा देनेसे  
यह नहीं जलेगा। अंडी और गिरीयके पत्तोंके रसको  
पका कर मस्तक पर लगाये और नस्लीयक एक कपड़  
कन्धल मस्तक पर रखे। पीछे उस कन्धलके ऊपर अग्नि  
रखनेसे मस्तक नहीं जलेगा।

तिलनीयक सूत द्वारा बन्धन कर एक कानेके दर-  
तनमें यदि दूध और चावलकी गीर पकाये, तो वह  
सूत नहीं जलेगा। अधिकस्तु उक्त गीर घातेसे कमडा-  
रोग आराम होता है। भोजपत्र भयया कर्बुलोपत्रको  
पुड़िया बना कर उसमें नेल डाल दो। पीछे तेल और  
गोबरसे पाहरी भाग लेप कर उस पुड़ियाके गुण पर  
एक सच्छिद्र बरतन रणो। अनन्तर चूनेके ऊपर उसे रखा  
कर रसोई पका सकते हो, बरतन नहीं जलेगा। एक  
वालेकीकी कांजोसे भिगोए हुए सूतसे लपेट कर जागमें  
जलाओ, तो वात्तकी ही जलेगा सूत ज्योंका त्यों रहेंगा,  
पुनकुमारीके रस द्वारा सूतमें रात बार भाचना है कर  
योगपट्ट धारण योगियोंका चरित्र बनाओ, पाद अग्निमें नहीं  
जलेगा।

सूखरके दूधमें सूतकी भिगो कर यज्ञोपवीत प्रस्तुत  
करनेसे वह नहीं जलता, 'ओं नमो महामाये वरिष्ठे तस्य  
स्याहा' मन्त्रसे सफेद पुंघनीके मूलको अग्निमणित कर  
अग्निमें डाल दो। पीछे अग्निमें रसोई करनेसे पद महीने  
में भी चावल सिक नहीं होगा। उक्त मन्त्रसे पट्टे  
मिर्च और विषयका चूर्ण बना कर पीछे जलता हुआ  
अंगार चपाओ तो मुषा नहीं जलेगा। तुन्दरी भयया  
शास्त्रनीकी लकड़ीके अंगारको गदहके मूत्रमें गिरान कर  
उक्त अंगारको फिरसे प्रक्षालन करनेसे उसमें कोई भी  
कार्य नहीं होता।

'ओं नमो भगवते जलं स्तामय तः पा' मन्त्रसे पदक

नामक द्रव्य लो कर बहुत महीन चूर करो, उसे पुष्करिणी, फूप और दूर्धिकाके जलमें फेक देनेसे जलस्तम्भन होता है। सभी प्रकारके जलस्तम्भन कार्योंमें यही प्रयोग करना होता है। 'ओ नमो भगवते रुद्राय बलस्य विद्रघ कलहप्रिये कलहं साध्यनि तत्रो हि स्वाहा' इस मन्त्रसे घकपुष्पका निर्वास और भैंसका दूध पी कर जो व्यक्ति भैंसका मषदान खाता है, उसे अल और अम्लिका डर नहीं रहता। जो व्यक्ति 'ओ अग्नये उद् स्वाहा' मन्त्रो-चारणपूर्वक गिरगिटके दाहिने पैरको थिलीहसे घेदन कर सुषामें रखता है, यह समुद्रमें भी नहीं डूब सकता। पुष्यानक्षत्रमें सफेद घुंगचीके मूलको कुसुम्भपुष्पके रसमें पीस कर एक कण्ट घटमें रंगावे। पीछे उस यज्ञ-की शरीरमें लपेट कर जब तक चाहे अथाह जलमें रह सकता है, जलमग्न नहीं होता। पूर्वोक्त गुग्गुला मन्त्रसे गुग्गुलामूल उखाड़ना होता है। अलानूचूर्ण और पपव गोपा फल इन्हें एक साथ पीस कर उंगली भर मोटा एक टुकड़े चमड़ेमें लेप दो, पीछे उस चमड़ेको मुग्गालो। अनन्तर उस चमड़े पर बैठ कर नदी या हृद आदि पार कर सकते हो, दूबनेका भय बिलकुल नहीं रहता। गोपाफल और अलावूको एकत्र पीस कर पातुका निर्माण करके गोमांशके चमड़े से उसे लपेट दो। उस पातुका पर बैठ कर जलके ऊपर विचारण कर सकते हो।

घोपाफलचूर्णको रातमें पुष्करिणी, फूप और दूर्धिका भादि जलाशयमें फेक देनेसे जल स्तम्भित होता है। उक्त जलमें लघण डालनेसे जलस्तम्भन निवारित होता है। 'ओ नमो भगवते रुद्राय जलं स्तम्भय स्तम्भय यः यः यः यः ठः ठः ठः।' इस मन्त्रसे मिट्टीका घड़ा बना कर उसमें घोपाफलके चूर्णका उंगली भर मोटा लेप दो पीछे प्रलेपके सूत्र जानें पर उसे जलसे भर दो। कुछ समय बाद उस घड़े के फूट जाने पर उसमेंका जल पूर्ववत् रहेगा, विचलित नहीं होगा।

मकर, शृगाल और येनीको चर्बी तथा जलसपके मस्तकको हरिणके तेलमें पका कर नाक और कानमें प्रलेप देनेसे बहुत समय बिना कण्टके जलमें रह सकते हो। लाल धतूरेका मूल और उसका फल, घुंगचीका

मूल, मकड़ा और दूहूंदर इन्हें एक साथ पीस कर अक्षमें लेप दो। पीछे उस अक्षसे लाल धतूरेका फल काटे, तो शत्रुसेना विनष्ट होती है। हलाहल विष, स्थावर विष, विच्छेद, दूहूंदर, गिरगिट, कृष्णसर्प, नेवलेका मस्तक, पड़ुविन्दु कोट, करवीफल, मदनफल इन सब द्रव्योंके चूरको ऊंटके दूधमें एक साथ पीसनेसे राजशत्रु विनाश होता है। कृष्णसर्पका मस्तक धाउ, उतना ही चिताका मूल, दोनोंके बराबर हलाहल विष, हरिताल ४ पल, पत्रकाष्ठ तीन पल, पलाश फल १६ पल, लाङ्गुलिया ३ पल और नागकेशर ३ पल इन्हें एकत्र चूर्ण कर गढ़हेके दूधमें पीसे। किसी हथियारमें उसका लेप चढ़ा कर शत्रुको स्वश करानेसे उसका अवश्य नाश होता है। उक्त द्रव्योंके नूर्णका जलाशयादिमें डालनेसे उसका जल पेसा दूषित हो जाता है, कि पीनेके लायक नहीं रहता, जो कोई यह जल पीता है, उसको मृत्यु अवश्य होगी।

मोहन।

कृष्णसर्प और भैंसके रक्तमें चूनको भावना दे कर उसमें जड़ समेत कृष्ण-धतूरेके पोषेको मिला दो। बाद उसका धूप देनेसे मनुष्यको मोहित किया जा सकता है। गुड़, करप्रज्वाभि और धूनका चूर इन्हें एक साथ पीस कर पिलाने अथवा धूप देनेसे मोहन होता है। हथनो और भैंसके रूरका मल ले कर उसका अषा-मार्गके फलके साथ धूप देने तथा विष, धतूरेका फल, मूल, पत्र, पुष्प, डाल तथा भैंसका रक्त, पिप्पली और गुग्गुलु इन्हें एकत्र कर रातको धूप देनेसे मनुष्य मोहित होता है। मुर्गीका डिम्ब और मस्तक, मिर्च, हरताल, यज्ञ, धतूरा और चिताकाष्ठ इन सब द्रव्योंका धूप प्रस्तुत कर किसी व्यक्तिके शरीरमें देनेसे वह मोहित हो जाता है। मिर्च, विष, धतूरेका मूल और मयूरको विष्टा बराबर बराबर भाग ले कर अथवा गोरोक्षककंदी, चिता, मनःशिला, चूण, लाङ्गुलिया, अषमार्गको जटा इनके समान भागका धूप प्रस्तुत करनेसे मनुष्यमात्रको ही मोहित किया जा सकता है। दूहूंदर, सर्पमुण्ड, पृथिवीका कण्टक और हरिताल इन्हें एकत्र कर धूप देनेसे मनुष्यमात्र ही मोहित होते हैं।

चूनका चूर, विष, कुंदक मोहिनी ( विपुर्मांकी)

पुण्य) विपरीत, गोरखरुचंटी, धतूरेका बीज, सरसों, मीन-  
कण्ड, लाल कनोर बराबर बराबर भाग ले कर चूर्ण करे।  
पीछे अकयनके फल गरंसे बत्तो बना कर उसमें उक्त चूर्ण  
मिला दे। बादमें कुसुम-मूत्र द्वारा मायाबीजमें उसे  
बांध रवे। अनन्तर धतूरेके पत्तोंके रसमें सात बार  
भायना दे कर उसे सुखा ले। पीछे जलसर्पकी चर्चोंसे  
यह बत्तो लेप कर प्रदोष याले। जो व्यक्ति दूरसे उस  
दोषकी रोगानी देखेगा, वह अग्रय महीन होगा।

उद्याटन।

एक नियन्त्रिण बना कर उसमें ब्रह्मदण्डों और चिता  
मल्लका प्रलेप दे तथा उसके साथ सफेद सरसों मिला  
कर शनिवारकी रातको जिसके घरमें फेंकोगे, वह  
उद्याटन होगा। सफेद सरसों और विलयपत्रको एकत्र  
कर जिसके घरमें गाड़ दोगे, उसका उद्याटन होगा।

दूध, सफ़ेद और बाकोड़का फल इन्हें एक साथ  
मिला कर मोहित व्यक्तिको गिलानेसे स्वास्थ्य लाभ करता  
है। सोया घृत, दुग्ध और श्वेत अकयनका मूत्र एकत्र  
पान करने तथा गव्य घृत और धूपको मिला कर उसका  
धूम्र लेनेसे मोहित व्यक्ति चैतन्य लाभ करता।

रविवारकी रातको घरमें कौबिका पंख गाड़ने, पेचककी  
विष्टा और सफेद सरसोंके चूरकी शरीर पर फेंकने  
और मङ्गलवारकी रातको घरके भीतर पेचकका पट्ट  
गाड़नेसे उद्याटन होता है। 'ओं नमो भगवते रुद्राय  
वृंशूकरालाय अमुकं सपुत्रयान्ध्रयैः सह हन हन दह दह  
पच पच जीम्वं उद्याटय उद्याटय हुं फट् स्याद्वा ठं ठः।'  
एक सी जाठ बार इस मन्त्रको जप कर सिद्ध होनेसे  
उद्याटन-कार्यमें हाथ डालना चाहिये।

उक्त मन्त्रका पाठ करते हुए काक और पेचकका पंख  
ले कर जिसके नामसे १०८ बार होम किया जायगा, उस-  
का उद्याटन होता है। कन्तूरकी चर्चोंसे ले कर मन्तो-  
धारण करते हुए उस व्यक्तिके घरमें फेंकने अथवा चार  
अंगुल परिमित घनुच्यको दृष्टीको उक्त मन्त्रसे अति-  
मन्त्रित करके शत्रुके घरमें गाड़ देनेसे उद्याटन  
होता है। मध्याह्नकालमें जहां मरुता मेटना है  
वहांकी उत्तर तरफकी धूलकी उत्पामिभूषी हो  
मन्तोधारण करते हुए वाम हाथमें उठा कर जिसके घर-  
में फेंका जायगा, यही उद्याटित होता है।

शुद्धार पर गुञ्जाके मूलकी अथवा मूत्राकण्डके  
खदिरकाष्ठके मूलकी शत्रुके दरवाजे पर गाड़नेसे उद्याटन  
होता है। आमलकी फलके चूर्णकी आकीट फलके देवके  
भायना दे कर मन्त्रक पर लेपने और बादमें हन  
और दुग्धपान करनेसे उद्याटन दोषकी जानि होती  
है। ब्रह्मदण्डों, चितामल्ल, विहोकी दृष्टी, मूलका  
मांस और कलुषका सिर सबका बराबर बराबर भाग  
ले कर मनुष्यको सोपड़ीमें रख जिसके घरमें गाड़ जानेके,  
यह परिवार सहित उद्याटित होता है। गरमांस, गृह-  
मांस, गृध्रिनीकी अस्थि, विष, गोका पाद, महिगोका दन्त  
और पेचकका पंख इन्हें एक साथ मिला कर शत्रुके  
घरमें गाड़नेसे तथा ब्रह्मदण्डों, चिन्तामल्ल, चितारूपा  
मूल, रक्त, विष, शूकरका रोम, तितलीको और निम्बशोड  
इन्हें एकत्र कर शत्रुके नामसे सात दिन तक होम करे,  
तो शत्रु उद्याटित होता है। पूर्वोक्त गुञ्जाश्रियोगसे 'ओं नमो  
भगवते अष्टामरेभ्यराय उच्छाद्यय उच्छाद्यय उच्छाद्यय उच्छा-  
द्यय हन हन ठः ठः' इस मन्त्रसे कार्य करना होगा।

रविवारको काकपक्ष ले कर सांघके कंसुल द्वारा उसे  
लपेट दे। ऊपरसे कुसुम सूत्र द्वारा पुनः पुनः घेरन  
करे। अनन्तर निम्बपत्रमें शत्रुका नाम लिखा कर उसे  
भी उसमें छिपका दे। वादमें ऊपरसे यथाक्रम तितानल्ल  
और शत्रु व्यक्तिका वस्त्र ढक दे। इस प्रकार बार बार  
चेष्टितद्रव्य जिसके दरवाजे पर गाड़ा जायगा, यही उद्या-  
टित होता है।

रविवारकी गृध्रिनीके चर्चों, काककी चर्चों, विताकी  
लकड़ी और सरसों एकत्र कर प्रामके यहिभागमें दण्ड करके  
उसको भस्म ले ले। उक्त भस्मको शत्रुके मन्त्रक पर  
फेंकनेसे शत्रुका उद्याटन होता है। शरीरमें मोबर श्वेत  
कर स्नान करनेसे उक्त दोषकी जानि होती है। पर विर-  
गिटकी मार कर उसे स्नान और सफेद धव्य पहना कर  
पूजा करे। पीछे हत्याजप्य रोदन करना उचित है। उक्त  
का बाद चाण्डाल-शुद्धके निकटस्थ काककी चर्चों ला कर  
श्मशानकी धूमि द्वारा उक्त चर्चों यस्तु जला दे। उक्त  
भस्मको कपड़ेमें बांध कर जिसके घरमें फेंका जायगा,  
यह संघुशांघय समेत उद्याटित होता है। निम्बशुद्धीपत्र  
काककी चर्चोंके ब्रह्मदण्डोंके साथ दण्ड कर उसको भस्म

संग्रह करे। पीछे ब्राह्मण, चाण्डाल और म्लेच्छकी चिता-भस्मकी ले कर भूमधूच्छिष्ट (मोम) के साथ चार गोली बनाये। नदीके जलमें अथवा शत्रुके मस्तक पर उस गोलीको फेंकनेसे शत्रुका उच्चाटन होता है। 'ओं नमो भगवते उद्गमरेध्वराय श्रं द्राकरालाय कविलरूपाय अमुकं सपुत्रपशुशान्धयं हन हन दह दह मथ मथ शीघ्रमुच्चाटय हुं फट् ठः ठः।' मन्त्रसे उपर दोनों योग करने होते हैं।

गारुण्य ।

चतुर्दशो तिथिको काककी चर्बी दग्ध कर उस भस्मकी एक उंगलीसे उठा ले। पीछे 'ओं नमो भगवते यद्राय मारय मारय नमः स्वाहा।' इस मन्त्रको पढ़ने हुए उक्त भस्म शत्रुके मस्तक पर अथवा शत्रुके घरमें फेंकनेसे शत्रु या उसका कुल नाश होता है। अभिघनीनक्षत्रमें चार अंगुल परिमित घोड़ेकी हड्डीको 'ओं सुरे सुरे स्वाहा।' मन्त्रोच्चारणपूर्वक शत्रुके घरमें गाड़नेसे शत्रुके कुटुम्बवर्गका विनाश होता है। एक अंगुल परिमित सांपकी हड्डीको 'ओं जय विजयति स्वाहा।' मन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रित करके अद्वैतानक्षत्रमें शत्रुके घर पर फेंक देनेसे शत्रुकी सभी संतान विनष्ट होती है।

भौवृका बीज, पद्मिन्दु नामक कीट, शूकमिच्छिफलका रोम, हिरु और विजयन्दुका फल इनका बराबर बराबर भाग ले कर चूर्ण करे और उस चूर्णको शत्रुके शय्या और आसनादिके नीचे रग दे। इससे शत्रुके सर्वान्द्रमें चित्तासा पड़ जायगा और दश दिनके अन्दर उसकी मृत्यु होगी। तिल, कुमुद, रक्तचन्दन, कुट और मुरगैका पित्र प्रत्येक आठ तोला ले कर अच्छी तरह पीसे। बादमें यह शरीरमें लगानेमें पूर्वार्धक स्फोटकादिका प्रतिकार होता है।

एक स्वर्णदेश (पार्वतीय जन्तुविशेष) को पकड़ कर उसके मस्तक पर शत्रुका गातमल रग दे और ऊपरसे रथसूत्र द्वारा घेदन करे। पीछे मल्लानक फलके साथ उसकी मिट्टीमें गाड़ देनेसे शत्रुका मरण होता है। जलसेक द्वारा उस मल्लानक बीजसे दूध उत्पन्न होने पर शत्रुकी जीवनरक्षा हो सकती है। शत्रुके स्नान और मूलस्थानकी मिट्टीको

सांपके मुखमें डाल कर उसे काले तागेसे लपेट दे। पीछे राहमें धौपेमुद करके उसे गाड़ देनेसे शत्रुका मरण अनिवार्य है, किन्तु उसे उठा लेनेसे दोषकी गान्ति होती है।

फेंकड़ेके बाईं ओरके नीचेका दाँत ले कर बाणका फल तथा गोशिराकी रज्जु बनाये। अनन्तर मिट्टी द्वारा शत्रुकी प्रतिमूर्त्ति गढ़ कर उक्त धनुर्बाण ले 'ओं नमो भगवते द्रव्याय यमरूपिणे कालं संशयावर्त्ते संहारे शत्रु' अमुकं हन हन धुन धुन पाचय घातय हुं फट् ठः ठः ठः' इस मन्त्रको पढ़ते हुए उक्त मूर्त्तिको छेद डाले। ऐसा करनेसे शत्रुकी उसी समय मृत्यु हो जाती है।

गोसर्पकी पूँछ, गिरगिटका मस्तक, इन्द्रगोपकोट, वांसको जड़, हाथीका मूत और हड्डी तथा हत्याहल विष इनका बराबर बराबर भाग ले कर नरमूलके साथ पीसे। पीछे शत्रुके शरीरमें उसे स्पर्श करनेसे चित्तेसे निकल आते हैं और अन्तमें उसकी मृत्यु आ जाती है।

मङ्गलवार भरणी नक्षत्रमें मृत्युशक्तिका भस्म ले कर शत्रुविष्टके साथ मिलाये। पीछे उसे एक ढकानमें रख कर दूसरे ढकानसे ऊपरसे ढक दे। जितने दिनोंमें उस ढकानमेंका पुरीप सूख जायगा, उतने दिनोंमें शत्रुकी मृत्यु होती है। श्वेतअपराजिताका मूल, कुट, लवण, विष तथा शशक, शूकर, मयूर और गोसाँप इनका पित्र और महानिम्यका पत्र इन्हे एकत्र कर सात दिन तक होम करनेसे महाशत्रुका भी निपात होता है। 'ओं नमो भगवते उद्गमरेध्वराय नम शत्रु' गृह गृह स्वाहा इस मन्त्रसे कार्य करना होता है।

रक्तकरवीर काष्ठ द्वारा निर्मित बाण, कुक्कुटास्थि निर्मित धनु और मृतव्यक्तिके फेश द्वारा रज्जु बनाये। पीछे सिन्दूर द्वारा त्रिकोणाकार सप्तमण्डल बना कर उनमेंसे एकमें शत्रुके नामसे कुक्कुट स्थापना करे। अनन्तर इसे ले कर दूठे मण्डलमें धनुषकी पूजा करके 'ओं हस्त्युख गगुम फुगुगुम फुखुफमलुगु कसमालुल गगात् धरितानि मारमायहीना तु सिन्धु पीरुवा नारसिंहयोर प्रचण्डकाण्ड काण्डकी शक्ति लेलेले जिसि-लायो तिसुजगुजि सुच्छु प्रयाति सुच्छारत्' इस मन्त्रसे

पुनः) गिप्सली, गोरस्रकुकुटो, धनूरेका वोज, सरसों, मैन-फल, लाल कनीर बराबर बराबर भाग ले कर चूर्ण करे। पीछे अरुचनके फल रुईसे बत्ती बना कर उसमें उक्त चूर्ण मिला दे। बादमें कुसुम्भ-सूत द्वारा मायाबीजमें उसे बांध रखे। अनन्तर धनूरेके पत्तोंके रसमें सात बार भावना दे कर उसे सुखा ले। पीछे जलसर्पकी चर्बीसे वह बत्ती लेप कर प्रदीप वाले। जो व्यक्ति दूरसे उस द्वीपकी रोशनी देखेगा, वह अवश्य महित होगा।

उच्चाटन।

एक शिवलिङ्ग बना कर उसमें ब्रह्मदण्डी और चिता भस्मका प्रलेप दे तथा उसके साथ सफेद सरसों मिला कर शनिवारकी रातकी जिसके घरमें फेंकोगे, वह उच्चाटन होगा। सफेद सरसों और विद्वपत्रको एकत्र कर जिसके घरमें गाड़ दौंगे, उसका उच्चाटन होगा।

दूध, सक्कड़ और आकौड़का फल इन्हें एक साथ मिला कर मोहित व्यक्तिको पिलानेसे स्वास्थ्य लाभ करता है। सोया घृत, दुग्ध और श्वेत अरुचनका मूल एकत्र पान करने तथा गव्य घृत और धूपको मिला कर उसका धूँआँ लेनेसे मोहित व्यक्ति चैतन्य लाभ करता।

रविवारकी रातकी घरमें कौवेका पंख गाड़ने, पेचककी चिप्टा और सफेद सरसोंके चूरको शरीर पर फेंकने और मङ्गलवारकी रातकी घरके भीतर पेचकका पट्ट गाड़नेसे उच्चाटन होता है। 'ओं नमो भगवते रुद्राय दंप्रकरालाय अमुकं सपुत्रवान्यथैः सह हन हन दह दह पच पच शीघ्रं उच्चाटय उच्चाटय हुं फुट् स्वाहा ठं ठः।' एक सौ आठ बार इस मन्त्रको जप कर सिद्ध होनेसे उच्चाटन-कार्यमें हाथ डालना चाहिये।

उक्त मन्त्रका पाठ करते हुए काक और पेचकका पंख ले कर जिसके नामसे १०८ बार होम किया जायगा, उसका उच्चाटन होता है। कनूतरकी चर्बीसे ले कर मन्त्रोच्चारण करते हुए उस व्यक्तिके घरमें फेंकने अथवा चार अंगुल परिमिति घनुष्यकी हड्डीको उक्त मन्त्रसे अभिमन्त्रित करके शत्रुके घरमें गाड़ देनेसे उच्चाटन होता है। मध्याह्नकालमें जहां गदहा लेटता है वहाँकी उत्तर तरफकी धूलको उत्तरामिमुखी हो मन्त्रोच्चारण करते हुए वाम हाथसे उठा कर जिसके घरमें फेंका जायगा वही उच्चाटित होता है।

गृहद्वार पर शुद्धाके मूलको अथवा मूला नक्षत्रके खदिरकाष्ठके मूलको शत्रुके दरवाजे पर गाड़नेसे उच्चाटन होता है। आमलकी फलके चूर्णको आकौड़ फलके तेलमें भावना दे कर मस्तक पर लेपने और बादमें स्नान और दुग्धपान करनेसे उच्चाटन दोषकी शान्ति होती है। ब्रह्मदण्डी, चिताभस्म, विह्वीकी हड्डी, सुषका मांस और कछुएकी सिर सवका बराबर बराबर भाग ले कर मनुष्यकी खोपड़ीमें रख जिसके घरमें गाड़ आवेगो, वह परिवार सहित उच्चाटित होता है। नरमांस, शूकर-मांस, गृध्रिनांकी अस्थि, विष, गोकपाद, महिषीका पाद और पेचकका पंख इन्हें एक साथ मिला कर शत्रुके घरमें गाड़नेसे तथा ब्रह्मदण्डी, चिन्ताभस्म, चितागृह्ण मूल, रक्त, विष, शूकरका रोम, तितलीको और निम्बबोज इन्हें एकत्र कर शत्रुके नामसे सात दिन तक होम करे, तो शत्रु उच्चाटित होता है। पूर्विके गुञ्जादियोगसे 'ओं नम भगवते उद्दामरेश्वराय उच्छाद्य उच्छाद्य उच्चाटय उच्चाटय हन हन ठः ठः' इस मन्त्रसे कार्य करना होगा।

रविवारको काकपक्ष ले कर सांपके कँचुल द्वारा उसे लपेट दे। ऊपरसे कुसुम्भ सूत द्वारा पुनः पुनः घेष्टन करे। अनन्तर निम्बपत्रमें शत्रुका नाम लिख कर उसे भी उसमें चिपका दे। बादमें ऊपरसे यथाक्रम चिताभस्म और मृत्यु व्यक्तिका चरख ढक दे। इस प्रकार बार बार घेष्टतद्रव्य जिसके दरवाजे पर गाड़ा जायगा, वही उच्चाटित होता है।

रविवारको गृध्रिनीके चर्बी, काककी चर्बी, चिताकी लकड़ी और सरसों एकत्र कर प्रामके यहिर्मगमें दग्ध करके उसको भस्म ले ले। उस भस्मको शत्रुके मस्तक पर फेंकनेसे शत्रुका उच्चाटन होता है। शरीरमें गोबर लेप कर स्नान करनेसे उक्त दोषकी शान्ति होती है। एक गिर-गिटकी मार कर उसे स्नान और सफेद चरख पहना कर पूजा करे। पीछे हत्याजन्म रोदन करना उचित है। इसके बाद चाण्डाल-गृहके निकटस्थ काककी चर्बी ला कर श्मशानकी अग्नि द्वारा उक्त दोनों वस्तु जला दे। उस भस्मको कपड़ेमें बांध कर जिसके घरमें फेंका जायगा, वह संघुवांधव समेत उच्चाटित होता है। निम्बशुश्रुपत काककी चर्बीको ब्रह्मदण्डीके साथ दग्ध कर उसको भस्म

संग्रह करे। पीछे ब्राह्मण, चाण्डाल और म्लेच्छको निता-  
भस्मकी ले कर भूमपूच्छिष्ट ( मोम )-के साथ चार गोली  
बनाये। ' नदीके जलमें अथवा शत्रुके मस्तक पर उस  
गोलीको फेंकनेसे शत्रुका उघाटन होता है। 'ओं नमो  
भगवते उद्दामरेध्वराय श्रृंघ्राकरालाय कपिलरूपाय भ्रमुकं  
सपुत्रपशुशान्धवं हन हन दह दह मथ मथ शीघ्रमुक्त्वा-  
त्य हुं फट् ठः ठः।' मन्त्रसे उक्त दोनों योग करने  
होते हैं।

मारय ।

चतुर्दशा तिथिको काककी चर्बी दूध कर उस भस्म-  
की पद उंगलीसे उठा ले। पीछे 'ओं नमो भगवते यद्राय  
मारय मारय नमः स्वाहा।' इस मन्त्रको पढ़ते हुए उक्त भस्म  
शत्रुके मस्तक पर अथवा शत्रुके घरमें फेंकनेसे शत्रु या  
उसका कुल नाश होता है। शश्विनीनक्षत्रमें चार अंगुल  
परिमित घोड़ेकी हड्डीको 'ओं सुरे सुरे स्वाहा।' मन्त्रो  
धारणपूर्वक शत्रुके घरमें गाड़नेसे शत्रुके कुटुम्बधर्मका  
विनाश होता है। एक अंगुल परिमित मांषकी हड्डी  
को 'ओं त्रय विजयति स्वाहा।' मन्त्रसे मात धार अग्नि-  
मन्त्रित करके शश्विनीनक्षत्रमें शत्रुके घर पर फेंक देनेसे  
शत्रुकी सभी संतान विनाश होती है।

नौका बोज, पट्टविन्दु नामक कौट, शूकसिन्ध्रिफलका  
रोम, हिमू और विजयन्दका फल इनका बराबर बराबर  
भाग ले कर चूर्ण करे और उस चूर्णको शत्रुके जघया  
और आसनादिके नीचे रख दे। इससे शत्रुके सर्वाङ्ग-  
में चित्ता सा पड़ जायगा और दश दिनके अन्दर उसकी  
मृत्यु होगी। तिल, कुमुद, रक्तचन्दन, कुट और मुरगी-  
का पित्र प्रत्येक आठ तोला ले कर अच्छी तरह पीसे।  
बादमें यह शरीरमें लगानेसे पूर्वक स्फोटकादिका प्रति-  
कार होता है।

पल स्वर्णवेश ( पार्वतीय जन्तुविशेष ) की  
पकड़ कर उसके मस्तक पर शत्रुका मात्रमल रख दे  
और ऊपरसे रथतख द्वारा घेदन करे। पीछे मल्लयातक फलके साथ उसको मिट्टीमें गाड़ देनेसे  
शत्रुका मरण होता है। जलसेक द्वारा उस मल्लयातक  
बीजसे घृष्ट उत्पन्न होने पर शत्रुकी जीवनरक्षा हो  
सकती है। शत्रुके स्नान और मृतस्थानकी मिट्टीको

सांपके मुखमें डाल कर उसे काले तागेसे लपेट दे।  
पीछे राहमें धींधीमुह करके उसे गाड़ देनेसे शत्रुका  
मरण अनिवार्य है, किन्तु उसे उठा लेनेसे दोषकी शान्ति  
होती है।

फेंकड़ेके बाईं ओरके नोचेका दाँत ले कर बाणका  
फल तथा गोशिराकी रज्जु बनाये। अनन्तर मिट्टी द्वारा  
शत्रुको प्रतिमूर्त्ति गढ़ कर उक्त धनुर्वाण ले 'ओं नमो  
भगवते वद्राय यमरूपिणे काल' संघावचसें संहारे शत्रु'  
भ्रमुकं हन हन धुन धुन पाचय घातय हुं फट् ठः ठः'  
इस मन्त्रको पढ़ते हुए उक्त मूर्त्तिको छेद डाले। ऐसा  
करनेसे शत्रुकी उभो समय मृत्यु हो जाती है।

गोमर्षकी पूँछ, गिरगिटका मस्तक, इन्द्रगोपकोट,  
वांसको जड़, हाथीका मूत और हड्डी तथा हत्याहल विप  
इनका बराबर बराबर भाग ले कर तरमूतके साथ पीसे।  
पीछे शत्रुके शरीरमें उसे स्पर्श करानेसे चित्तेसे निकल  
धाते हैं और अन्तमें उसकी मृत्यु आ जाती है।

मङ्गलवार भरणी नक्षत्रमें मृत्युशक्तिका भस्म ले  
कर शत्रुविष्टके साथ मिलाये। पीछे उसे एक दकन-  
में रख कर दूसरे दकनसे ऊपरसे ढक दे। जितने दिनों-  
में उस उज्ज्वल-का पुरीप सूख जायगा, उतने दिनोंमें  
शत्रुकी मृत्यु होती है। श्वेतभपराजिताका मूल, कुट,  
लवण, यिप तथा शशक, शूकर, मयूर और गोसोप  
इनका पित्र और महानिम्बका पत्र इन्हें एकत्र कर सात  
दिन तक हांम करनेसे महाशत्रु का भी निपात होता है।  
'ओं नमो भगवते उद्दामरेध्वराय नम शत्रु' यह यह स्वाहा  
इस मन्त्रसे कार्य करना होता है।

रक्तकरवीर काष्ठ द्वारा निर्मित याण, कुष्कुटास्थि  
निर्मित धनु और मृतव्यक्तिके केश द्वारा रज्जु बनाये।  
पीछे सिन्दूर द्वारा त्रिकोणाकार सप्तमण्डल बना कर  
उनमेंसे एकमें शत्रुके नामसे कुष्कुट स्थापना करे।  
अनन्तर रसे ले कर इष्टे मण्डलमें धनुषकी पूजा करके  
'ओं हस्त्युख गगुम कुलुगुम कुलुकमलुगु कसमालुल  
गगावु अरितानि मारमाचहीना तु सिन्धु पीयचा नार-  
सिंहवीर प्रचण्डकाण्ड काण्डकी शक्ति लेलेले जिसि-  
लायो तिसुजगुमि सुच्छु प्रयाति सुच्छाश्त्' इस मन्त्रसे



होती है, उसी प्रकार किसी किसी वृक्षमें विशिष्ट दिन और विशिष्ट नक्षत्रके आवेशसे गुणाधिक्य देखा जाता है। यही कारण है, कि पूर्वतन वेद और ब्रह्मविद् ब्राह्मण-गण उत्कृष्ट फल-प्राप्तिकी आशासे वृक्ष-विशेष पर ब्रह्म-नक्षत्रादिके सञ्चारको लक्ष्यमें रख उसके गुण और बल-का निर्धारण कर लेते थे।

पार्थिव पदार्थके विशेषतः उद्भिज्जादिके गुणागुणका निर्णय जिस प्रकार ब्रह्मबल-सापेक्ष है, उसी प्रकार इन्द्र-जालादि भौतिक क्रियाएं भी द्रव्यबल और यक्षिणी साधन रूप आधिदैविक और आधिभौतिक ज्ञानाधिबलका अपेक्षा रखती हैं। इन्द्रजाल और उसकी सहगामी रासायनिक क्रियाबलमें जो भौतिक रहस्य हैं, उसके द्वारोद्घाटनके लिए आलोचना-परायण हो कर उस विद्वन् मण्डलीने यक्षिणी-साधन और इष्टमन्त्रकी सिद्धि करनेके लिए ध्यवस्था दी है। क्योंकि मनुष्य मन्त्र-सिद्धि द्वारा दैव-शक्ति बिना प्राप्त किये कदापि कोई अलौकिक कार्य नहीं कर सकता। दत्तात्रेय तन्त्रके बारहवें पटलमें योगिनो-साधनका विषय कहा गया है। उनमेंसे उदाहरण स्वरूप दो एक वांते उद्धृत की जाती हैं :—

यद्बहुम्बर वृक्ष पर चढ़ कर 'ओं हो श्रोसारदायै नमः' इस मन्त्रको दस हजार बार जपनेसे ग्रन्थसिद्धि होती है और साधकको चौदह विद्याएं प्राप्त हुआ करती हैं।

श्वेतगुञ्जा वृक्षके पादमूलमें बैठ कर स्थिर चित्तसे 'ओं जगन्मात्रे नमः' इस मन्त्रका दस हजार बार जप करनेसे यक्षिणी सिद्ध होती है और वाञ्छित फल प्रदान करती है। ( दत्तात्रेयतन्त्र, १२।१० और १२ )

रसायन ।

गोमूल, हरताल, गन्धक और मन्ःशिला इनकी समान भागसे अच्छी तरह पीस और सुखा कर शुद्ध स्थानमें रखे। पाँचे ग्यारह दिन बीत जाने पर धूप, दीप और नैवेद्यादि नाना उपचारोंसे यक्षिणीकी पूजा करो। फिर 'ओं नमो हरिहराय रसायनं सिद्धिं कुरु कुरु कुम्भ स्वाहा' इस मन्त्रको १० हजार बार जपो। सिद्धि होने पर उन पिसी हुई चीजोंको बालों-सी बना कर कपड़े में लपेट कर उस पर मिट्टी लपेटो। फिर कपड़े को धो कर

पलाश-काष्ठ पर रखो और ऊपरसे पलाशकाष्ठ डक कर, उस पर आठ पहर तक अग्नि जलाओ। उसके बाद उस भस्मको उठा कर रख दो। अनन्तर किसी ताम्र-पात्रको आगमें अच्छी तरह गरम करके ( लाल हो जाने पर ) उसमें एक चुटकी भस्म डाल देनेसे उसी समय वह ताँबेका पात्र स्वर्णमय हो जायगा। इस रसायन-प्रक्रियाके करनेसे पहले किसी सिद्धक्षेत्रमें बैठ कर एक लाख गायत्री जप करना चाहिए, अन्यथा कार्य-सिद्धि नहीं होगी।

घोड़ेके खुर तथा मूषिक और चककी अस्थिसे ताम्रको अच्छी तरह गलाया जा सकता है। स्वयम्-कुसुम द्वारा पारेकी भस्म अच्छी तरह बनाई जा सकती है। यथार्थमें पारेकी भस्म हुई या नहीं, इस बातकी परीक्षा करनी हो, तो एक रत्ती पारद भस्मको गलित ताम्रमें डाल दो, अगर वह उसी समय सोना हो जाय, तो समझ लो ठीक है।

उदररकरण ।

घेड़ेलाका मूल और ताल-पञ्जाङ्ग अर्थात् ताड़वृक्षकी जड़, छाल, फल, फूल और पत्त इनको एकत्र करके सोनेके ताबीजमें भर कर उसे धारण करनेसे, जो आदमी उस ध्यक्तिको देखेगा, उसकी दृष्टि बन्द हो जायगी। चक्की सात दिन तक अङ्गुलीतैलमें रखा कर बिलौह वेष्टनपूर्वक गुटिका बनाओ। उस गुटिकाको मुँहमें रखनेसे उस ध्यक्तिको कोई भी न देखा सकेगा। साधकको चाहिये, कि हरताल, काली भैंसका दूध और अङ्गुल तैल शकटा करके शरीर पर मालिस करे, फिर वह किसीके दृष्टिमें न आयेगा। उदररकरणीजके तेलमें सफेद सेमरकी रुईकी बत्ती डाल कर उसे जलाओ। उसकी लीसे सिद्ध-पत्र पर फाजल पार कर उसे आंगमें लगानेसे अदृश्य हुआ जा सकता है।

वृक्षोत्पत्तिकरण ।

मयूरको एक सप्ताह तक मयूरशिलाका चूर्ण खिला कर हाथमें लेपन करसे हाथमें नाना प्रकारकी चीजें दीवने लगती हैं। अङ्गुलीके बीजको चूर्ण करके एक सप्ताह तक तिलके तेलमें भावना दे कर खुलाओ। पद्माद् बीजके तेलमें भावना दे कर खुलाओ। फिर उसमें तेल

निकालो। यह अङ्गुली तैलके नामसे प्रसिद्ध है। इससे किसी भी वृक्षको अभिषिक्त करनेसे उसी समय उसमें फल उत्पन्न हो जायेंगे। जलज अथवा स्थलज किसी भी बीजवर्णको अङ्गुलीतैलमें मिला कर जल या स्थलमें डाल देनेसे उसी समय उस वृक्षमें फलपुष्पादि लग जायेंगे। सत्रं वृक्षके रसमें पलीता भिगो कर तैलमें डाल कर जलाओ, फिर उसे पानीमें फेंक दो यह बुझेगा नहीं।

पादुका-प्राशन।

एक हलके-से फाटके टुकड़े को गुआपिण्डसे लेपन कर पानीमें बहा दो, फिर उस बहते हुए फाट पर तीरो, डुबेगा नहीं। अङ्गुलीतैल और श्वेतसर्पको पोस कर हाथ-पैरों या ऊँटके चमड़ेसे बनी हुई अपनी पादुका पर उसका लेप करनेसे वह उसे पढ़न कर बहुत दूर तक चल सकता है। निशिन्द्रावृक्षको जड़, क्युनरकी बीज, पलाशके बीज, लाल अक्यनादि फल और पेचकके हृदय-को ठंडे पानीमें पीस कर उससे पादलेपन करनेसे सी योजन भ्रमण किया जा सकता है।

भिन्न-रूप-दर्शन।

सहजनेके बीजका तैल, क्युनरकी बीज शूकरकी बसा और अपामार्गको जड़, इन्हें समभागमें पेपण करके कपाल पर तिलक लगानेसे पञ्चवदन-विशिष्ट दीवीगो। कृष्ण-चतुर्भुजाकी रात्रिके मयूरके मुँहमें वामनदाटीके बीज और काली मिट्टी इकट्ठी मिला कर उसे मट्टीमें गाड़ रखनेसे उस बीजसे प्रस्तुत रज्जु द्वारा किसी पुण्यको वांछनेसे वह मयूर जैसा दीखने लगेगा। स्त्रीकी रोपड़ोंमें रक्त-गुश्वाकी बीज रख कर उसे मिट्टीमें गाड़ देनेसे जो वृक्ष उत्पन्न होगा, उसका फल मुँहमें रखनेसे वह स्त्री-सदृश दिखाई देगा। हरताल और मनःशिलाका चूर्ण, इनको अङ्गुलीतैलके साथ मिला कर मुँह या मस्तिष्कमें लेपन करनेसे वह अग्निपुत्रके समान दीखने लगेगा।

भोजवाजी।

छोटे छोटे कौतुक।—चारिमक्षिकाके साथ जल पीनेसे अधोवायु निःसृत होती है। नदीकी शैवालको जला कर उसे भँसके दूधके दहीके साथ माड़ कर एक पहर तक रख दो, मेढ़क पैदा हो जायगा। मत्स्यके पित्तके साथ

मत्स्यद्विम्ब रख दो, मछली उत्पन्न हो जायगी। अगस्त्य-पुष्पके रसमें अजून घन कर आंखमें लगाओ, दिनमें आसमानके तारे दीखने लगेंगे। मेढ़कका तैल आंख पर मलनेसे रातको सर्प और दिनको नक्षत्र दिखाई देंगे। क्षीरोवृक्षके दूधको भायना दे कर उसकी बत्ती बनानेसे यह पानीमें जलती रहती है।

सर्प बनाना।—काली अरईकी कलगो १, श्वेतविम्बाकी जड़ १, जवा पुष्प २, लाल शाकका डंडल १ और दण्डीतपल १ लो। काली अरई और जड़ इन दोनोंके ऊपर लाल शाकके टुकड़े-टुकड़े करके रखो, ऊपरसे एक कपड़ा ढक कर "ॐ सिद्धिः सर्वं देवी काराकाम्, आ देवी हंसरात्र, आर् देवी हृद्गङ्गारे, इसी क्षणसे जीव सञ्चारे, ॐ भोलि सर्पं बल बल स्वाहा। चल सर्पं महाभारसे तुम्हें चलाया देवीके घरसे, प्रहाण्डगिरिकी भाग्ना।" इस मन्त्रको १००८ बार जप करनेसे अमावस्यामें सर्पात्पत्ति होता है।

धूम-दर्शन।—मङ्गलवारको कपासके बीजको सर्पके मुँहमें डाल कर जमीनमें गाड़ दो। उस बीजसे उत्पन्न वृक्षकी गईसे बत्ती बना कर अण्डीके तैलसे प्रदीप जलाओ। रातको जिस घरमें यह प्रदीप रहेगा, उस घरमें चारों ओर सर्प ही सर्प दिखाई देंगे। इसी प्रकार विच्छूके मुँहमें बीज डाल कर उपर्युक्त प्रकारकी क्रिया करनेसे रातको विच्छू ही विच्छू दिखाई देने लगेंगे। अण्डीका तैल, शमीपुष्प, सर्पकी केशुली और मेढ़ककी चक्की, इनको इकट्ठा करके रातको प्रदीप जलानेसे सर्वत्र सर्प ही सर्प नजर आवेंगे।

युद्धप्रतिवारको हाथांके मुँहमें तथा रविवारको घोड़-के मुँहमें अङ्गुलीबीज डाल कर पीछे उसे मिट्टीमें गाड़ कर पानी सोंचो। उससे जो वृक्ष उत्पन्न होगा, उसके फलके बीजको तिलोहसे घेष्टन करके मुँहमें धारण करनेसे यह पराक्रमशाली हस्ती या अश्व हो सकता है। इसी तरह घैल, सिंद, मयूर, कुकुर इत्यादि स्थलज तथा मगर मच्छ इत्यादि जलज प्राणियोंको मूर्त्ति धारण की जा सकती है।

एकलासके रक्तसे दर्पणका अर्द्धभाग लेपन करके पर्यंतादि उच्च स्थानमें चढ़ कर उस दर्पणकी आंखों पर

होती है, उसी प्रकार किसी किसी वृक्षमें विशिष्ट दिन और विशिष्ट नक्षत्रके आवेशसे गुणाधिपय देखा जाता है। यही कारण है, कि पूर्वतन वेद और प्रहविदु ब्राह्मण-गण उत्कृष्ट फल-प्राप्तिकी आशासे वृक्ष-विशेष पर प्रह-नक्षत्रादिके सञ्चारको लक्ष्यमें रख उसके गुण और बल-का निर्धारण कर लेते थे।

पार्थिव पदार्थके विशेषतः उद्भिज्जादिके गुणागुणका निर्णय जिस प्रकार प्रहबल-सापेक्ष है, उसी प्रकार इन्द्र-जालादि भौतिक क्रियाएं भी द्रव्यबल और यक्षिणी साधन रूप आधिदैविक और आधिभौतिक ज्ञानाधिबलका अपेक्षा रखती हैं। इन्द्रजाल और उसकी सहगामी रासायनिक क्रियाबलीमें जो भौतिक रहस्य हैं, उसके द्वारोद्घाटनके लिए आलोचना-परायण हो कर उस विद्वन् मण्डलीने यक्षिणी-साधन और इष्टमन्त्रकी सिद्धि करनेके लिए व्यवस्था दी है। क्योंकि मनुष्य मन्त्र-सिद्धि द्वारा दैव-शक्ति बिना प्राप्त किये कदापि कोई अलौकिक कार्य नहीं कर सकता। दत्तात्रेय तन्त्रके बारहवें पटलमें योगिनी-साधनका विषय कहा गया है। उनमेंसे उदाहरण स्वरूप दो एक वाते उद्धृत की जाती हैं :—

यहङ्गुम्बर वृक्ष पर चढ़ कर 'ओं ह्रीं श्रोसारदायै नमः' इस मन्त्रकी दस हजार बार जपनेसे ग्रन्थसिद्धि होती है और साधकको चौदह विद्याएं प्राप्त हुआ करती हैं।

श्वेतगुञ्जा वृक्षके पादमूलमें बैठ कर स्थिर चित्तसे 'ओं जगन्मात्रे नमः' इस मन्त्रका दस हजार बार जप करनेसे यक्षिणी सिद्ध होती है और चाञ्छित फल प्रदान करती है। (दत्तात्रेयतन्त्र, १२।१० और १२)

रसायन।

गोमूल, हरताल, गन्धक और मंत्रशिला इनको समान भागसे अच्छी तरह पीस और सुखा कर शुद्ध स्थानमें रखे। पीछे ग्यारह दिन बौत जाने पर घूप, दूध और नैवेद्यादि नाना उपचारोंसे यक्षिणीकी पूजा फते। फिर 'ओं नमो हरिहराय रसायनं सिद्धिं कुरु कुरु कुरु स्वाहा' इस मंत्रकी १० हजार बार जपो। सिद्धि होने पर उन पिसी हुई चीजोंको गोली-सी बना कर फपड़ेंमें लपेट कर उस पर मिट्टी लपेटो। फिर उसे किसी गढ़-ठेमें

पलाश-काष्ठ पर रखे। और ऊपरसे पलाशकाष्ठ टुक कर, उस पर आठ पहर तक अग्नि जलाओ। उसके बाद उस भस्मको उठा कर रख दो। अनन्तर किसी ताम्र-पात्रको आगमें अच्छी तरह गरम करके (लाल हो जाने पर) उसमें एक चुटकी भस्म डाल देनेसे उसी समय यह तांबेका पात्र स्वर्णमय हो जायगा। इस रसायन-प्रक्रियाके करनेसे पहले किसी सिद्धक्षेत्रमें बैठ कर एक लाख गायत्री जप करना चाहिए, अन्यथा कार्य-सिद्धि नहीं होगी।

घोड़े के खुर तथा मूषिक और चककी अस्थिसे ताम्रको अच्छी तरह गलाया जा सकता है। स्वयम्-कुसुम द्वारा पारेकी भस्म अच्छी तरह बनाई जा सकती है। यथार्थमें पारेकी भस्म हुई या नहीं, इस बातकी परीक्षा करनी हो, तो एक रत्ती पारद भस्मको गलित ताम्रमें डाल दो, अगर वह उसी समय सोना हो जाय, तो समझ लो ठीक है।

अद्वयकरण्य।

बेड़ेलाका मूल और ताल-पञ्जाङ्ग अर्थात् ताड़वृक्षकी जड़, छाल, फल, फूल और पत्त इनको एकत्र करके सोनेके तांबोजमें भर कर उसे धारण करनेसे, जो आदमी उस व्यक्तिको देखेगा, उसको दृष्टि बन्द हो जायगी। चक्को सात दिन तक अंकुलीतेलमें रख कर त्रितीह वैद्यनपूर्वक गुटिका बनाओ। उस गुटिकाको मुहमें रखनेसे उस व्यक्तिको कोई भी न देखा सकेगा। साधकको चाहिये, कि हरताल, काली भैंसका दूध और अंकुल तेल इकट्ठा करके शरीर पर मालिस करे, फिर वह किसीके दृष्टिमें न आयेगा। उदरकरञ्जबीजके तेलमें सफेद सेमरको रुईकी बत्ती डाल कर उसे जलाओ। उसको लीसे सिद्ध-पत्र पर फाजल पार कर उसे आंखोंमें लगानेसे अद्वय्य हुआ जा सकता है।

वृत्तोत्पत्तिकरण्य।

मयूरको एक सप्ताह तक मयूरशिखाका चूर्ण खिला कर हाथमें लेपन करसे हाथमें नाना प्रकारकी चीजें दौलने लगती हैं। अङ्गुलीके बीजकी चूर्ण करके एक सप्ताह तक तिलके तेलमें भावना दे कर, सुखाओ। पञ्चात-उसे बार बार पीसो और सुखाओ। फिर उसमें तेल

निकालो। यह अट्टोली नैलके सामने प्रसिद्ध है। इसमें तिसी ओं पूषको अतिरिक्त करनेसे उसी समय उसमें फल उत्पन्न हो जायेंगे। जलज भयथा स्थलज किन्ती भी बीजवृक्षको अट्टोलीनैलमें मिला कर जल या स्थलमें डाल देनेसे उसी समय उस वृक्षमें फलपुष्पादि लग जायेंगे। रात्रि वृक्षके रसमें पानीला मिश्री कर मेलमें डाल कर जलाओ, फिर उसे पानीमें फेंक दो यह पुष्पेया मदीं।

पादुका-भाषन ।

एक हलके-से काटके टुकड़े की सुश्रावितमें लेपन कर पानीमें बहा दो, फिर उस बहने हुए काट पर तैली, पुष्पेया मदीं। अट्टोलीनैल और अथेतापयको योग कर हाथ-पैरों या ऊँठके चमड़ेसे बनी हुई अपनी पादुका पर उसका लेप करनेसे यह उसे पटन कर बहुत दूर तक चल सकता है। निम्नोद्भाषको जड़, क्यूतकी बीट, पलाजके बीज, माल अथपनादि फल और पेयलके हृद्य-को छेदे पानीमें घोस कर उससे पादलेपन करनेसे सी योजन ध्रमण किया जा सकता है।

विष-रूप-रसनि ।

महंजनके योजन मेल, क्यूतकी बीट झहरको बसा और अयामागकी जड़, इन्हें समभागमें पेपन करके कपाल पर मिलाकर लगानेसे पशुपदन-पिण्ड दीयेंगे। एतन्-क्यूतकी बीटके मयूरके मुँहमें घाममट्टीके बीज और काली मिट्टी इकट्ठी मिला कर उसे महीमें गाड़ रखनेसे उस बीजमें प्रस्तुत रज्जु ठार किन्ती पुष्पको बांधनेसे यह मयूर जैसा दोगने लगेगा। खीकी गोपट्टी-में एक-मुश्राकी बीज रख कर उसे मिट्टीमें गाड़ देनेसे ओ वृक्ष उत्पन्न होगा, उसका फल मुँहमें रखनेसे यह की साहज दिखाई देगा। हरमाल और मनमिललाका चूर्ण, इनकी अट्टोलीनैलके साथ मिला कर मुँह या मस्तक-में लेपन करनेसे यह अतिपुष्पके समान दोगने लगेगा।

भोजवाम्री ।

छोटे छोटे कौतुक।—वारिमिश्रिकाके साथ जल पीने-से अथोवायु निवृत्त होती है। नदीकी शिवालकी जला कर उसे मीसके दूधके दहीके साथ माट्ट कर एक पहर तक रख दो, मेट्टक पैदा हो जायगा। मरुत्वके पित्तके साथ

मरुत्वदिग्ग्य रख दो, मल्लकी उत्पन्न हो जायगी। अगस्त्य-पुष्पके रसमें भक्षण घस कर भांषीमें लगाओ, दिनमें भागमानके तापे दोगने लगेगे। मेट्टकका तेल भांष पर गलनेसे गलकी सर्प और दिक्की मक्षत दिखाई देंगे। शोरीपुष्पके दूधकी भाषना दे कर उसकी बत्ती बनानेसे यह पानीमें जलती रहती है।

सर्प बनावता।—काली भरईकी कलगी १, श्वेतपिम्बा-की जड़ २, जवा पुष्प २, माल नाकका छंडल १ और हल्दीलेपन १ लो। काली भरई और जड़ इन दोनोंके ऊपर माल नाकके टुकड़े-टुकड़े करके रखो, ऊपरसे एक कपड़ा ढक कर "ॐ निर्दिशः स्वर्गं देवीं काराकाम्, भा देवी हं सरसत, भाई देवी हृदुद्गार, इतो धारणं श्रीय राशारे, ॐ मोदि सर्वं बल बल स्वाहा।" धाल सर्प महाभारतसे मुम्हें बालाया देवीके घरमें, प्रजापट्टगिरिकी भागा।" इस मन्त्रकी १००८ बार जप करनेसे अमापस्थामे सर्पोत्पत्ति होती है।

धन-दशंग।—मज्जुवारकी कपासके बीजको सर्पके मुँहमें डाल कर जमीनमें गाड़ दो। उस बीजसे उत्पन्न पुष्पकी रसें बत्ती बना कर अट्टीके तेलमें प्रदोष जलाओ। धनकी जिम घर्में यह प्रदोष रहेगा, उस घर्में धारों और सर्प ही सर्प दिखाई देंगे। इसी प्रकार बिच्छूके मुँहमें बीज डाल कर उपयुक्त प्रकारकी किया करनेसे रात-की बिच्छू ही बिच्छू दिखाई देने लगेगे। अट्टीका तेल, जमीपुष्प, मयूकी फेंसुली और मेट्टककी चरबी, इनको इकट्ठा करके रातको प्रदोष जलानेसे मयूके सर्प ही सर्प नजर आयेगे।

पुष्टरूपनिपायकी हाथोंके मुँहमें तथा रवियारकी घोड-के मुँहमें अट्टोलीबीज डाल कर पीछे उसे मिट्टीमें गाड़ कर पानी मींचो। उससे ओ वृक्ष उत्पन्न होगा, उसके फलके बीजको तिलोहमें घेष्टन करके मुँहमें धारण करने-से यह पराक्रमनाठी हस्ती या भय हो सकता है। इसी तरह पैल, मिठ, मयूर, कुजुर इत्यादि स्थलज तथा मगर मच्छ इत्यादि जलज प्राणियोंकी मुक्ति धारण की जा सकती है।

एकलासके रक्तसे दुर्षणका अर्धभाग, लेपन करके पर्येतादि उच्च स्थानमें चढ़ कर उस दुर्षणकी भांषों पर

रखा कर चन्द्र या सूर्यके चारों तरफ देखनेसे सूर्य या चन्द्रग्रहण दिखालाई पड़ेगा ।

हमारे देशके ऐन्द्रजालिकगण तथा यूरोपीय वर्तमान मेजिसियन लोग जो खेल दिखलाते हैं, उनकी नैपुण्य और कौशल इतना सफाईके लिये हुए हैं, कि देखनेसे एक साथ आश्चर्य और कुतूहल होने लगता है । आम्न-वृक्षके फलादिकी उत्पत्ति-क्रिया नीचे लिखी जाती है ।

यह पहले ही कहा जा चुका है, कि साज-सरंजाम ही ऐन्द्रजालिक क्रियाकी मुख्य चीज है । आम्नवृक्ष दिखलानेके पहले आम्न-मुकुल और फल, कच्चे और पके फल संग्रह कर लेने चाहिए । यथासमय फल और कुकुलादिकी निष्कालिस मधुमें डुबी-फरू रख दो । इससे वे फलादि १ वर्ष ज्योंके त्यों बने रहेंगे । मैजिक दिखलानेके लिए एक विशेष वस्त्रगृह बनाया जाता है, जिसके सामने और भीतर भी काले परदे पड़े रहते हैं । पीछे-के परदेकी ओटमें मैजिक दिखलानेका सामान रखा रहता है । उसमें एक आमकी गुठली, एक नया पीथा और एक मय टहनियों और पत्तोंके आमका पेड़ छिपा रहता है । दिखलाते समय पहले तो वाजे-आजेका आडम्बर करना चाहिए । पीछे लोगोंके मनमें विश्वास पैदा करनेके लिए मंत्र आदि करना चाहिए जैसा माने । मन्त्रके प्रभावसे ही भौतिक क्रियाएं हो रही हों । उसके बाद मिट्टीसे भरे हुए गमलेमें आमकी गुठली गाड़ दो और दर्शकोंसे कह दो, कि अब इसका पीथा बनाते हैं । फिर उसे काले कपड़ेसे ढक कर पीछेकी ओर रख दो । थोड़ा देर तक वाजा बजाते रहो, इतनेमें सहकारी व्यक्ति उसमें बीज सहित पीथा गाड़ देगा । फिर परदा हटा कर दिखाला दो, कि यह पीथा बन गया । इसी तरह और भी लोचू आदिके खेल दिखाये जाते हैं । असलमें सिवा हाथकी सफाईके और इसमें कुछ भी नहीं है । हाँ, सफाई ऐसी वैसी नहो होनी चाहिये । इसके लिए सर्पों अभ्यासकी आवश्यकता है ।

भागुमती-कथित आम्नवृक्षकी उत्पत्ति ( इन्द्रजाल-ग्रन्थमें) अन्य प्रकार है :—सूनीही (मनसा) वृक्षके दूधमें पके आमकी गुठलीकी इक्कीस बार डुबी कर इक्कीस ही बार सुसागो । खेल दिखलाते समय उस सूनी हुई गुठलीकी

मिट्टीमें गाड़ कर थोड़ा पानी छिड़को । २१ एण्ड बाद उससे थंफुर, परते, टहनियां आदि सहित धामका पीथा पैदा हो जायगा ।

— हाथमें अंगारा रखना ।—अण्डीके पेड़के रसमें धतूरेके बीज, हरेंके बीज और अड्डोली इन्हें एक साथ पीस कर हाथमें मलनेसे आगसे हाथ नहीं जलता, जलता अंगारा हाथमें रखा जा सकता है । इसी प्रकार सम्भारो, नमक, फतीला, अफोम, फिटकरी, पारा और कुम्हूटाण्डके छिलकाको सिरकाके साथ अच्छी तरह पीस कर हाथमें रखनेसे भी हाथ नहीं जलता ।

पानीमें आग जलाना ।—झीरिकावृक्षके दुग्धमें भावितवर्तिकाको जला कर पानीमें छोड़ दो, जलता रहेगी । इसी प्रकार जलता हुआ कपूर भी पानीमें छोड़ देने पर जलता रहता है ।

अंधेरे घरमें उजाला ।—एक लोहेके चमचेमें गन्धक गला कर, जलना कम होने पर, उसमें ताम्रचूर्ण छोड़ देनेसे अंधेरे घरमें उजाला हो जाता है ।

विना आगके रांधना ।—नीचेके पालमें आध सेर सद्योद्ध चूर्ण रख कर उसमें उतना ही पानी डाल कर ऊपरके पालमें चावल डाल दो, शीघ्र ही वह उबलने लगेगा ।

कपड़े आदि जलाना ।—कागज या कपड़े पर 'स्पिरिट' डाल कर उसे आग पर रखनेसे उसकी स्पिरिट नाल जल जाती है, कागज या कपड़े नहीं जलती ।

कांटेदार पीथा चवाना ।—जम्बूवृक्षका चर्चण करके उसका रस मु'हमें रखो ; फिर कांटेदार पीथा चवा डालो, कुछ न होगा ।

कांच चवाना ।—पतले कांचके आगमें जला कर अदरफके रसमें बुभा लो, फिर उसे मु'हमें डाल कर चवाओ, कुछ भी न होगा ।

हाथमें गरम तेलका डालना ।—हाथकी हथेली और डालियोंमें अच्छी तरह पानी और नमक मलो । पीछे तेलमें भीगी हुई बती जला कर उससे जलता हुआ तेल हथेली पर टपकाते रहो, जलेगा नहीं । परन्तु उससे पहले दोनों हथेलियोंको अच्छी तरह रगड़ लेना जरूरी है ।

भगिउत्पादम ।—क्याटे-भाट्-पदाजके धूर्णों  
 मोनी मिला कर मध्यकदायक डाल देवेगे भाग जय उठवी  
 है । एक भाग मोनी और तीन भाग गिटकरोके एक प  
 मिला कर तुम्हामो । पीछे एक मोहो या परधके बरतम-  
 में भर कर उसे धाममें जलाया । जब उम बरतममें  
 मोनी ही निकलने लगे, तब उसे भाग परम उठा रो । उस  
 मिश्रण द्रवको गुळी जगहमें रख दो, हवा लगने हो  
 यह भवने भाग जाले लगेगा । एक कामजके टुकड़ों  
 कारपोन तेलमें दूधो कर उसे होरिन पाण पर भागमें  
 उर्मी समय कामज जलने लगेगा ।

कामजके बरतममें रोचना—पहले कामजका टेंगा  
 बना कर उसमें पीपुला या साक तेल डाल कर चूने पर  
 रका दो । इसमेंका तेल जब नीचने लगे, तब उसमें  
 बेगन डाल कर मजमें गुंथ दो ।

मुंहमें चिञ्चोका प्रकाश ।—और और सामनेके  
 धूर्णोंके बीचोंमें एक जलेका टुकड़ा रखा कर जिहास  
 गिलोका रंगना उसमें तुम्हा देवेगे मुंहमें चिञ्चो जगा  
 प्रकाश दिगावे देगा ।

अमका माला ।—कोचके गिलामने भाषा हिम्मा  
 प्रकृतकर उसमें कोच हिम्मा पानी डालो । उसके बाद  
 उसमें दानेदार जला ३ भाग और मोम मध्यकाम ३  
 भाग मिला दो उसमेंसे उष्णत्व रम्यके आकारमें पाण  
 उठवी रहेगी । एक कांचके पात्रको भर कर उसमें  
 कल्-करोट भाक ग्याम एक गुंथ छोड़ देवेगे पानी ऊपर  
 कम्-कोस्टेडू हाइड्रोजन पाणका विभ्य उठेगा । उसमें  
 हवा लगने हो भाग जलने लगेगी ।

अमका करना ।—एक कांचके पात्रमें ५ या ६ बीन्स  
 पानी रख कर उसमें १ बीन्स मध्यकाम और प्राग्करोट  
 मिट्ट और दो टुकड़े प्रकृतके डाल दो । मोहो देवी  
 तमाम पानी आलीकाम हो जावगा ।

पानीमें भागका पहाड ।—काल, रंग और फूल-  
 मध्यक प्रत्येकका ३ बीन्स हिम्मा रो कर अच्छी तरह  
 पोरो । धूर्णों उर्मीकपट्टेमें छान कर एक पोरोषाट या  
 कामजकी मोलाकार पीलीमें भर कर उसका मुंह बन्द कर-  
 के पानीमें छोड़ दो जब तक वह मिश्रित द्रव पीलीके  
 अन्दर रहेगी, तब तक वह पानीके मोतर जलती रहेगी ।

जलती कड़ाहोमें चिड़िया उठाना ।—आटेकी एक  
 घासी या टिन्ना बना उसमें एक छोटी-सी चिड़िया रख  
 दो । भाग-प्रभावके लिए ऊपर एक नली-सी बना  
 देनी चाहिए, नहीं तो यह मर जावगी । पीछे उस टिन्ने-  
 के गारों तरफ घृतकुमारोका गोंद अच्छी तरह लगा दो ।  
 फिर आटेका बड़ा टिन्ना बना कर उसमें घृतकुमारोका  
 गोंद लगाओ और पहलेवाले टिन्नाको उसके अन्दर रख  
 कर मोड दो । उसके बाद उम हवके ऊपरकी गलीमें  
 थोडा बोध कर उसे नीचतो हूँ घोनी कड़ाहोमें सोधा  
 रहेगी रहे । फिर उम उठा कर सोडू डालनेमें चिड़िया  
 उड़ जावगी ।

बरतममें मालि उपग्र करना ।—आतिनी शोधके  
 आकारका मिर्मैक, मायुबुद्रुद्र-रहित एक बर्तके टुकड़े-  
 को धूर्ण-विरणके सामने बाकके ऊपर रखनेसे तरक्षणार्थ  
 यह जलने लगेगा ।

मुम-लिपि ।—दूध, मोम, पलाण्डू भादिके रमसे सफेद  
 कामज पर गिलामका विषय लिखो । पढ़ते समय उस पर  
 भाषको गरमो देवेगे चपत्र साक पढ़े जा सकेंगे । माजू-  
 कलको मोड कर उसे एक दृष्ट तक पानीमें गिगी कर  
 उसमें नाम लिखो । सूखने पर भाहर अदृश्य रहेगी ।  
 पढ़ने समय उस पर गृहितेका पानी डाल कर पढ़ो,  
 साक पढ़नेमें आवेगा ।

धूर्णोंका रंग बदलना ।—मध्यकके धर्ण पर लाल  
 फूल रमनेमें यह सफेद सा हो जाता है, पीछे फिर उसे  
 पानीमें मिला देवेगे लाल हो जाता है ।

द्विगम भूकम्प और भागेवगिरि—मध्यकके २ सेर  
 और नीचालका चर २ सेर इन्हीं पानीमें अच्छी तरह मिला  
 कर गाड़ दो, ८ से १२ घंटेके मोतर भूकम्प हो जावगा ।  
 यदि पायु उरत हो, तो जमीन फूटती या फट जाती है  
 और उसमेंसे भागकी ली धुआँ और धूळ उड़ती है ।

कांचके गिलामसे मिला उठाना ।—एक चौरस  
 परधके टुकड़े पर मूर्ताका लेप करो, फिर जलते हुए  
 प्रदोषको ही पर एक कांचका गिलाम बाँधा दो गिलास-  
 का मोमरी भाग अच्छी तरह गरम हो जाने पर शीघ्र ही  
 उसे मूर्ताके लेप पर जमा कर बिठा दो । यह ख्याल रखना  
 चाहिए, कि गिलासकी गरम पाण जरा भी निकलने

न पाये और न बाहरकी ठंडी हवा उसमें घुसने पाये। जब वह गिलास ठंडा हो जाय, तो उसे पकड़ कर उठाओ, साथमें पत्थर भी उठ आयेगा।

ऊपर जो कुछ भोजवाजीका प्रकरण लिखा गया है, वह अंग्रेजो मैजिक और देशीय वाजोगोत्रोंकी भोजवाजीसे संगृहीत है। भोजवाजी या Magic और देशीय भोजवाजी दोनों एक ही प्रथामें अन्यान्य उपायों द्वारा संग्रो-धित हुई हैं।

अंग्रेजो मैजिक या Black Art उक्त भोजवाजीसे पृथक् है। वह बहुत अंशमें मारण उच्चाटनादि इन्द्रजाल या भोजविद्याके अनुरूप है। Mr. Sibily लिखित फलित-ज्योतिष विषयक ग्रन्थके पढ़नेसे मालूम होता है, कि किसी समय यूरोपमें इस मैजिक-विद्याका बहुत प्रचार था। भूतसाधन, कवच, चक्र और यन्त्र चिह्नादि धारण द्वारा उपदेवताओंका प्रभाव वा आवेश दूर करना आदि भौतिकतत्त्व (Black Art) के विषय वहाँके मगोय विद्या-विशारदों (Magicians) द्वारा विशेषरूपसे ब्राह्मो-चित होते थे। प्रसिद्ध अंग्रेज-भूतत्वविद् Edward Kelly और उनके सहयोगी Dr. Dee-ने किस पद्धतिसे इन्द्रजाल और भौतिकतत्त्वकी ब्रह्मोचना की है, यह बात उनके ग्रन्थ पढ़नेसे ही मालूम पड़ सकती है।

विशेष विवरणके लिये 'भौतिकविद्या' देखो।

- भोजापिप (सं० पु०) भोजस्य अधिपः। कंसराज।
- भोजान्ता (सं० स्त्री०) नदीभेद।
- भोजिक (सं० पु०) ब्राह्मणभेद।
- भोजिन् (सं० लि०) भुज-णिनि। भोजनकर्त्ता खाने-वाला।
- भोजी (सं० पु०) भोजन देखो।
- भोजेश (सं० पु०) १ भोजराज। २ कंस।
- भोज्य (सं० लि०) भुज्यते इति भुज-कर्मणि ण्यत् (भोज्य भवत्ये।) १ भोज्येति इति निपातनात् व कृत्यं। भोजन-योग्य कर्मणि कृत्यं।

भोज्यं भोज्यमिति।

विभक्तौ दानस्य भोज्यं नान्यथा भोज्यं।

(शब्दकोश-प्रकाशक-५१)

है। इनमेंसे 'भोज्य' भक्तसूपादि भात और व्यञ्जनादि का नाम ही भोज है।

"आहारं पड्विधं सुख्यं पेयं लेह्यं तथैव च।

भोज्यं भक्ष्यं तथा चर्षणीं गुरुविद्यात् यथोत्तरम्" ॥ (भाष्य-)

२ श्राद्धानुकरणमें पितरोंकी तृप्तिके लिये देय अन्नानि खिर्चोंको पाच्य श्राद्धके अधिकार नहीं है। अतः उन्हें उस श्राद्धके बदलेमें भोज्योत्सर्ग करना चाहिये। पुरुष जहाँ पर श्राद्ध नहीं कर सकते, वहाँ उन्हें भी भोज्योत्सर्ग करना चाहिये। पितृ वा देवकार्यके भोज्योत्सर्ग कर्त्तव्य है। पिता और माताके बाह्यत्पके समय पोड़स वा अन्न जल दानके बाद तदनुकरण भोज्योत्सर्ग करना होता है।

श्राद्धतत्त्वमें भोज्यदानकी कर्त्तव्यता इस प्रकार लिखी है, 'ओं अद्यामुके मासि भुमुकपक्षे भुमुकतिथौ भुमुकगोत्रस्य पितृरमुकदेवशर्मणः एकोऽहिष्टविधिकु साम्प्रत्युत्तरिकश्राद्धवासरे भुमुकगोत्रस्य पितृरमुकदेवशर्मणः अक्षयस्वर्गकामः सधृतसोपकरणमानन्-भोज्यमर्घितं श्रोविष्णुर्देवतं यथासम्भवगोत्रनाम्ने ब्राह्मणायाः ददानि, ततो दक्षिणा, ततः कृतीतत् सधृतसवस्त्रोपकरणमानन्-भोज्यदानकर्माच्छिद्रमस्तु।' (श्राद्धतत्त्व) भोज्यविशुद्ध ब्राह्मणको दान करना चाहिये।

- भोज्यकाल (सं० पु०) भोज्यस्य भोज्यदानस्य कालः भोज्यदानका समय।
- भोज्यता (सं० स्त्री०) भोजस्य भावः तत्-दाप्। भोज्यका भाव या धर्म।
- भोज्यमय (सं० लि०) खाद्यपूर्ण।
- भोज्यसम्भव (सं० पु०) सम्भवत्यस्मादिति सम्भव-उत्पत्तिकारणं, भोज्यं सम्भवोऽस्य। शरीरस्य उत्पत्तिरस्य, शरीरका यह धातु जो भोजन उत्पन्न होता है।
- भोज्या (सं० स्त्री०) १ भोजन योग्य। २ भोज्यशील राजकन्या।
- भोज्योष्ण (सं० लि०) उष्ण खाद्यद्रव्य।
- भोज्य (हि० पु०) १ भूदानदेश। २ एक प्रकारका वृक्ष-फल। यह प्रायः २५ इंच ५ फुट मोटा और १५ फुट लम्बा होता है।
- भोज्य-भोज्य (सिन्धु) वासी जातिविशेष। ये साधारण

भारत और तिब्बतके मध्यवर्ती हिमालयके तट पर वास करते हैं। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थादिसे चीनराज्य-प्रान्त तिब्बतभूमि भोटदेश नामसे उक्त हुआ है। इस भोटदेशमें किसी समय बौद्धधर्मका श्रोत बहता था। उसी समयसे भारतीय संश्रय घनिष्ट हुआ। वाणिज्य व्यवसाय या अन्यान्य नाना कारणोंसे भोटोंने स्वदेश छोड़ भारतमें विचरण किया। इसी प्रकार एक समय भूटनराज्यमें भोट-दस्युके घोर विद्रवके बाद उस देशमें एक भोट-सरदारवंशकी प्रतिष्ठा हो गई।

मध्य-तिब्बतवासीसे ये लोग जाति-अंशमें, आचार-व्यवहारमें और सामाजिकतामें बहुत भिन्न हैं। ये लोग चार श्रेणीमें विभक्त हैं, यथा—जेचो, लोनपा, छजङ्ग और लोवान।

कुमायूँ जिलावासी भोटयण अपनेको राजवंशी राजपूत और नेपालवासी भूतवालवंशके वंशधर कह कर अपना परिव्य देने हैं। अथोध्याराज नवाब आसफ-उद्दौलाके राजत्वकाल (१७७५-६१)में भारतमें आ कर इन्होंने वास किया है। यहाँ आ कर इन्होंने ब्राह्मणधर्मके अनेक आचार-व्यवहारोंका अनुकरण करना सीखा है। विवाहादि कार्यमें अग्नी ये लोग हिन्दूओं जैसा गोत्र-प्रवरादिका अनुसरण करते हैं, किन्तु बहुत जगह इनमें पार्यैत्य रीतिका भी अनुष्ठान देखा जाता है।

इनका विवाहोत्सव ठीक हिन्दूओं जैसा होता है। जब घर कन्याके घर जाता है तब 'चारहाना' वा दर्याजा-चारका उत्सव होता है। बाद उसके घर और कन्या विवाह मंडपमें लाई जाती है। इस समय एक ब्राह्मण पुरोहित यथायथ मन्त्रपाठ कर विवाहकार्य करता है। सम्प्रदान हो जाने पर कन्याका भाई आकर नव-दम्पतिके स्तिर पर चावल छींट देता है जिसको 'लाईभूजुया' कहते हैं। तदनन्तर मिट्टी पर कुछ घान छींट कर उसके ऊपर घरकी एक पत्थरका डुकड़ा गाड़नेके लिये दिया जाता है। इसीको 'पाथरकी लकीर' उत्सव कहा जाता है।

बाद उसके गंडबन्धन, पासासार (बलङ्कार बदलना), मनघारी (होमानिका प्रदक्षिण), वासी खिलाना (घर-भोजन) और जाति कुटुम्बका भोज होता है।

विवाहके बाद मीर नदीमें बहा दिया जाता है। कन्या पालकी पर समुराल लाई जाती है तथा देवदेवीकी पूजाके बाद स्वामीके घर प्रविष्ट कराई जाती है। घर आकर घर अपनी पत्नीके हाथ चावल, रुपया वा सोना देता है। पक्षान्तरमें कन्या उन सब चीजोंको नाइनकी दान कर देती है। इसको 'खजाना भरना' कहते हैं।

ये बहु-विवाह कर सकते हैं। प्रथमा स्त्री २५, ३५ वा ४५की अपेक्षा दशांश अधिक स्वामीकी सम्पत्ति पानेकी अधिकारिणी है। वह स्वामीके जीवनकाल तक गृहकर्त्ता सम्भो जाती है। साधारणतः पन्द्रह वर्षसे कम उम्रवाली बालिकाका ही विवाह होता है। किन्तु कमी कमी अधिक उम्रमें प्याह होते देखा जाता है। देवर-विवाह निषिद्ध नहीं है। इनमें पति-पत्नी-विच्छेद-को प्रथा नहीं है। यदि कोई पुत्र्य वा रमणी अवैध प्रणयमें आसक्त हों तो दोनों जातिच्युत हो जाते हैं। बाद पञ्चायतको भोज देनेसे फिर वह समाजमें ले लिये जाते हैं।

इनका विवाह तीन प्रकारसे होता है, यथा—१ उच्च अङ्गका विवाह, जो शारत्रोक्त ब्राह्म-विवाहके रेसा अनुष्ठित होता है। २ पैरबुझा वा निम्नश्रेणीका विवाह, जिसमें घरके घर पर ही विवाहका सब कार्य होता है। ३ धरीआ वा अविवाहित पत्नी रक्षा-जो बृद्ध होने तक विवाह नहीं करते ये इस प्रकार एक पत्नी ग्रहण करती हैं।

विसूचिका, सर्पाघात या शिशु-सन्तानकी मृत्यु होने पर गाड़ देते तथा अन्यान्य रोगमें मृत्यु होनेसे जलाते हैं। शयको कवरगाहमें देनेके लिये इनका कोई निर्दिष्ट समाधिस्थान नहीं है। धनी मनुष्य किसी पुण्यतोया नदीमें बहा देनेके लिये शयकी भस्म रख लेते तथा अन्य व्यक्ति उस भस्मको गाड़ देते हैं। अन्वेषेष्टक्रियाके बाद ये निकटवर्ती किसी जलाशयके किनारे एक तृण गाड़ते तथा दश दिन तक उसके ऊपर पानी डालते हैं।

इस तरहके कार्योंमें ब्राह्मण ही उनका पीरोहित्य करते हैं। शक्तिरूपादेवी उनकी प्रधान उपास्य-देवता हैं। पूजामें ये बकरे तथा गन्ध-शूकरादिकी बलि देते हैं। बाद प्रसादी मांस अपनेसे ही रॉष कर खाते हैं। हिन्दू-



न पाये और न बाहरकी टंडी हवा उसमें घुसने पावे। जय वह गिलास टंडा हो जाय, तो उसे पकड़ कर उठाओ, साथमें पत्थर भी उठ आयेगा।

ऊपर जो कुछ भोजवाजीका प्रकरण लिखा गया है, वह अंग्रेजी मैजिक और देशीय वाजीगदोंकी भोजवाजीसे संगृहीत है। भोजवाजी या magic और देशीय भोजवाजी दोनों एक ही प्रथामे अन्यान्य उपायों द्वारा संशोधित हुई हैं।

अंग्रेजी मैजिक या Black Art उक्त भोजवाजीसे पृथक् है। वह बहुत अंग्रेजोंमें मारण उच्चाटनादि इन्द्रजाल वा भोजविद्याके अनुरूप है। Mr. Sibily लिखित फलित-ज्योतिष विषयक ग्रन्थके पढ़नेसे मालूम होता है, कि किसी समय यूरोपमें इस मैजिक-विद्याका बहुत प्रचार था। भूतसाधन, कवच, चक्र और यन्त्र चिह्नादि धारण द्वारा उपदेशताओंका प्रभाव वा आवेश दूर करना आदि भौतिकतत्त्व (Black Art) के विषय यहांके मगीय विद्या-विशारदों (Magicians) द्वारा विशेषरूपसे आलोचित होते थे। प्रसिद्ध अंग्रेज-भूतत्वविद् Edward Kelly और उनके सहयोगी Dr. Dee-ने किस पद्धतिसे इन्द्रजाल और भौतिकतत्त्वकी अलोचना की है, यह बात उनके ग्रन्थ पढ़नेसे ही मालूम पड़ सकती है।

विशेष विवरणके लिये 'भौतिकविद्या' देखो।

भोजाधिप (सं० पु०) भोजस्य अधिपः। फंसराज।

भोजान्ता (सं० स्त्री०) नदीभेद।

भोजिक (सं० पु०) ग्राहणभेद।

भोजिन् (सं० त्रि०) भुज-णिनि। भोजनकर्त्ता खाने वाला।

भोजी (सं० पु०) भोजिन् देखो।

भोजेश (सं० पु०) १ भोजराज। २ फंस।

भोज्य (सं० त्रि०) भुज्यते इति भुज-कर्मणि ण्यत् (भोज्यं भक्ष्ये। पा ७।३।६) इति निपातनात् न कृत्वं। भोजन योग्य, खाने लायक।

"भोज्यं भोजनशक्तिश्च रतिशक्तिश्चैराः क्षियः।

विभवो दानशक्तिश्च नाल्पतपसः फलम्॥"

(चाणक्यवचनक ५१)

भावप्रकाशके मतसे पेष इत्यादि आहार छः प्रकारका

है। इनमेंसे 'भोज्य' भक्ष्यरूपादि भात और ध्यञ्जनादिका नाम ही भोज्य है।

"आहारं पटिवर्धं चुष्यं पेयं लेह्यं तथैव च।

भोज्यं भक्ष्यं तथा चर्ष्यां गुरुविद्यात् यथोत्तरम्॥" (भाष्य०)

२ ध्राद्दानुकल्पमें पितरोंकी तृप्तिके लिये देप अन्नान्दित्त्रियोंकी पार्वणध्राद्देके अधिकार नहीं है। अतः उन्हें उस ध्राद्देके वदलेमें भोज्योत्सर्ग करना चाहिये। पुरुषजहां पर ध्राद्द नहीं कर सकते, वहां उन्हें भी भोज्योत्सर्ग करना चाहिये। पितृ वा देवकार्यका भोज्योत्सर्ग कर्त्तव्य है। पिता और माताके आहत्यके समय पोडस वा अन्न जल दानके वाद तदनुकल्प भोज्योत्सर्ग करना होता है।

ध्राद्दतत्त्वमें भोज्यदानकी कर्त्तव्यता इस प्रकार लिखी है, 'श्रीं अद्यामुके मासि अमुकपक्षे अमुकतिथी अमुकनक्षत्रस्य पितुरमुकदेवशर्मणः एकोऽद्विष्टविधिक-साम्यत्सरिकध्राद्दवासरे अमुकगोतस्य पितुरमुकदेव-शर्मणः अक्षयस्वर्गकामः सघृतसोपकरणमान्न-भोज्य-मर्धितं श्रोविष्णुदेवतं यथासम्भयगोतनाम्ने ब्राह्मणायार्हं ददानि, ततो दक्षिणा, ततः कृतैतत् सघृतसयलोपकरण-मान्न-भोज्यदानकर्त्तव्यमस्त्वु।' (ध्राद्दतत्त्व) भोज्य विशुद्ध ब्राह्मणको दान करना चाहिये।

भोज्यकाल (सं० पु०) भोज्यस्य भोज्यदानस्य कालः।

भोज्यदानका समय।

भोज्यता (सं० स्त्री०) भोजस्य भावः तल्-टाप्। भोज्य-का भाव या धर्म।

भोज्यमय (सं० त्रि०) खाद्यपूर्ण।

भोज्यसम्भय (सं० पु०) सम्भयत्यस्मादिति सम्भय उत्पत्तिकारणं, भोज्यं सम्भयोऽस्य। शरीरस्थित रसधातु, शरीरका वह धातु जो भोजन उत्पन्न होता है।

भोज्या (सं० स्त्री०) १ भोजन योग्या। २ भोज्यशैष राजकन्या।

भोज्योष्ण (सं० त्रि०) उष्ण खाद्यद्रव्य।

भोट (हिं० पु०) १ भूटानदेश। २ एक प्रकारका बड़ा पत्थर। यह प्रायः २५ इंच ५ फुट मोटा और १५ फुट चौड़ा होता है।

भोट—भोटदेश (तिब्रत)-यासी जातिविशेष। ये साधारणतः

भारत और तिब्बतके मध्यवर्ती हिमालयके तट पर वास करते हैं। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थादिसे चीनराज्य-प्रान्त तिब्बतभूमि भोटदेश नामसे उक्त हुआ है। इस भोटदेशमें किसी समय बौद्धधर्मका श्रोत बढ़ता था। उसी समय से भारतीय संस्त्रव प्रनिष्ट हुआ। वाणिज्य व्यवसाय या अन्यान्य नाना कारणोंसे भोटोंने स्वदेश छोड़ भारतमें विचरण किया। इसी प्रकार एक समय भूटानराज्यमें भोट-दस्युके घोर विद्रुवके बाद उस देशमें एक भोट-सरदारवंशकी प्रतिष्ठा हो गई।

मध्य-तिब्बतवासीसे ये लोग जाति-अंशमें, आचार-व्यवहारमें और सामाजिकतामें बहुत भिन्न हैं। ये लोग चार भेणीमें विभक्त हैं, यथा—जाचो, लोनपा, छजङ्ग और लोघान।

कुमायूँ जिलावासी भोटगण अपनेको राजवंशी राजपूत और नेपालवासी भूतवालवंशके वंशधर कह कर अपना परिचय देते हैं। अयोध्याराज नवाब आसफ-उद्दौलाके राजत्वकाल (१७७५-६१)में भारतमें आ कर इन्होंने वास किया है। यहाँ आ कर इन्होंने ब्राह्मणधर्मके अनेक आचार-व्यवहारोंका अनुकरण करना सीखा है। विवाहादि कार्योंमें अभी ये लोग हिन्दूओं जैसा गोव-प्रयादिका अनुसरण करते हैं, किन्तु बहुत जगह इनमें पार्वत्य रीतिका भी अनुष्ठान देखा जाता है।

इनका विवाहोत्सव ठीक हिन्दूओं जैसा होता है। जब घर कन्याके घर जाता है तब 'चारहाना' या दर्वाजा-घारका उत्सव होता है। बाद उसके घर और कन्या विवाह मंडपमें लाई जाती है। इस समय एक ब्राह्मण पुरोहित यथायथ मन्त्रपाठ कर विवाहकार्य करता है। सम्प्रदान हो जाने पर कन्याका माई आकर नव-दम्पतिके सिर पर चावल छींटे देता है जिसको 'लाईभूज्या' कहते हैं। तदनन्तर मिट्टी पर कुछ धान छींटे कर उसके ऊपर वरकी एक पत्थरका टुकड़ा गाड़नेके लिये दिया जाता है। इसीको 'पाथरकी लकीर' उत्सव कहा जाता है।

बाद उसके गंडबन्धन, पासासार (अलङ्कार बदलना), मनघारी (होमानिका प्रदक्षिण), वासी खिलाना (घर-भोजन) और जाति कुटुम्बका भोज होता है।

विवाहके बाद मीर नदीमें बहा दिया जाता है। कन्या पालकी पर ससुराल लाई जाती है तथा देवदेवीको पूजाके बाद स्वामीके घर प्रविष्ट कराई जाती है। घर आकर वर अपनी पत्नीके हाथ चावल, रुपया या सोना देता है। पक्षान्तरमें कन्या उन सब चीजोंको नाइनकी दान कर देती है। इसको 'खजाना भरना' कहते हैं।

ये बहु-विवाह कर सकते हैं। प्रथमा स्त्री २५, ३५ या ४५को अपेक्षा दशांश अधिक स्वामीकी सम्पत्ति पानेकी अधिकारिणी है। वह स्वामीके जीवनकाल तक गृहकर्त्ता समझी जाती है। साधारणतः पन्द्रह वर्षसे कम उम्रवाली बालिकाका ही विवाह होता है। किन्तु कभी कभी अधिक उम्रमें प्याह होते देखा जाता है। देवर-विवाह निषिद्ध नहीं है। इनमें पति-पत्नी-विच्छेदकी प्रथा नहीं है। यदि कोई पुरुष या स्त्री अविध प्रणयमें आसक्त हों तो दोनों जातिच्युत हो जाते हैं। बाद पश्चायतको भोज देनेसे फिर वह समाजमें ले लिए जाते हैं।

इनका विवाह तीन प्रकारसे होता है, यथा—१ उच्च अङ्गका विवाह, जो शास्त्रोक्त ब्राह्मण-विवाहके ऐसा अनुष्ठित होता है। २ पैरुज्जा या निम्नभेणीका विवाह, जिसमें वरके घर पर ही विवाहका सब कार्य होता है। ३ धरौआ या अविवाहित पत्नी रक्षा-जो बूढ़े होने तक विवाह नहीं करते वे इस प्रकार एक पत्नी ग्रहण करती हैं।

विसूचिका, सर्पाघान या शिशु-सन्तानकी मृत्यु होने पर गाड़ देते तथा अन्यान्य रोगमें मृत्यु होनेसे जलाते हैं। शयकी कबरगाहमें देनेके लिये इनका कोई निर्दिष्ट समाधिस्थान नहीं है। धनी मनुष्य किसी पुण्यतोया नदीमें बहा देनेके लिये शयकी भस्म रख लेते तथा अन्य व्यक्ति उस भस्मको गाड़ देते हैं। अल्पेष्टिकियाके बाद ये निकटवर्ती किसी जलाशयके किनारे एक तुण गाड़ते तथा दश दिन तक उसके ऊपर पानी डालते हैं।

इस तरहके कार्योंमें ब्राह्मण ही उनका पीरोहित्य करते हैं। शक्तिरूपादेथी उनका प्रधान उपास्य-देवता है। पूजामें ये बकरे तथा वन्य-शूकरादिकी बलि देते हैं। बाद प्रसादी मांस अपनेसे ही रॉध कर खाते हैं। हिन्दू-

पर्यटकोंमें भी इनकी विशेष आस्था देखी जाती है। 'परमाती अमावस' वा ज्येष्ठ-अमावस्याके दिन रमणियां नाना उपचारसे प्राममें वटवृक्षकी पूजा करती हैं। उनका विश्वास है कि वटके पूजनसे स्वामीकी आयु-वृद्धि होती है। नारायण रूपी वटको वे स्वामी जान भक्ति भ्रदा करती हैं। अथवा नारायण उन पर प्रसन्न होंगे और उनके स्वामीको चिरजीवी बनायेंगे, उस उद्देश्यके वजनसे ही होकर वे पूजा करनेकी बाध्य होती हैं। भाद्रतृतीया और कार्तिकी पञ्चमीमें उपवास करना महापुण्यजनक मानती हैं। नागदेवता और महादेवपूजा वे बड़े आदरके साथ सम्पन्न करती हैं।

ये शालग्राम भक्षण नहीं करते। घोवी, भंगी, चमार और कोड़ी प्रभृति जातिकी ये अस्यूश्य समझते हैं। शूकर, गाय आदिका मांस-भक्षण साधारणतः निषिद्ध है, किन्तु देवोपहारमें प्रदत्त शिशु-शूकरका मांस निषिद्ध नहीं है। भङ्ग वा गांजा पीनेमें कोई बाधा नहीं, किन्तु शराव पीनेसे जातिच्युति होते हैं।

भोटदेश—हिमालय पर्वतके उत्तरस्थित देशभेद। इसका वर्तमान नाम है तिब्बत। बहुत पहले यहाँ बौद्ध-धर्म प्रसारित हुआ था। यहाँके अधिवासी उसी सौम्यमूर्ति शाक्ययुद्धकी उपासना करते हैं। गृहस्थ-गण सामाजिक आचारसे हिन्दुओंके अनुकरणशील हैं। बौद्ध यति लामागण योगि-ऋषियों जैसा अपने धर्ममें निरत रह काल क्षेपण करते हैं।

प्राचीन संस्कृत ग्रन्थादिमें वर्णित भोट या महाभोट राज्य कहां तक विस्तृत था, इसकी प्रकृत सीमाका निर्देश करना कठिन है।

भोटराज्यका इतिवृत्त, भौगोलिक संस्थान और प्रकृतत्वादिका विषय 'तिब्बत' शब्दमें यथास्थान विवृत हुआ है। मज्जुश्रो आदि बहुतसे बौद्ध-महाराथी इस प्रदेशमें धर्मलोकता प्रचार कर गये हैं। तिब्बत देखो। भोटमारी—रङ्गपुर जिलान्तर्गत एक गण्डग्राम। यह अक्षां २६°१' उ० तथा देशां ८६°१३' पू०के मध्य अवस्थित है। यहाँ पटसन, तमाकू, और चावलका जोतसे बाणिज्य चलता है।

भोटवर्मदेव—एक हिन्दू राजा। पञ्जाबके अन्तर्गत चम्पा- (चम्पा) नगरोंमें इनकी राजधानी थी।

भोटाङ्ग (सं० पु०) भोटस्तज्जातिरङ्गमस्य। देशविशेष, भूटान देश। भूटान देश।

भोटिया (हि० पु०) १ भोट वा भूटानदेशका निवासी। (ख्री०) २ भूटानदेशकी भाषा। (वि०) ३ भूटानदेश-सम्बन्धी, भूटानका।

भोटियावादाम (हि० पु०) १ आलुबुलारा। २ मृगकली।

भोटो (हि० वि०) भूटान देशका।

भोटोय (सं० लि०) भोटदेशजात, भूटानदेशमें उत्पन्न।

भोटोया—तिब्बत और भूटान-देशवासी।

तिब्बत और भोट देश।

भोट्या—सिन्धुदेशवासी क्षत्रिय जातिकी एक शाखा।

भोडर (हि० पु०) १ अन्नक, अवरक। २ एक प्रकारका मुश्क विलास। ३ अवरकका चूर जो होली आदिमें गुलालके साथ उड़ाया जाता है, बुका।

भोडल (हि० पु०) अवरक।

भोडागार (हि० पु०) भंडार।

भोडेभ्वर—यम्यई प्रदेशके सिन्धु-विभागके अन्तर्गत एक नगर। यह पार्करसे २ कोस उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। यहाँ राजा भोज परमार द्वारा निर्मित एक दिगो भी शिव-मन्दिर है। शिव-मन्दिरके समीप एक प्राचीन मसजिद भी विद्यमान है।

भोग (हि० पु०) गृह, घर।

भोगगाँव (भोगाँव)—युक्तप्रदेशके मैनपुरी जिलेकी एक तहसील। यह अक्षां २६° ५८' से २७° २६' उ० तथा देशां ७६° १' से ७६° २६' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४५६ वर्गमील और जनसंख्या ढाई लाखके करीब है। इसमें इसी नामका एक कसबा और ३६० ग्राम लगते हैं। यहाँ अरिन्द और ईशान नदी तथा गङ्गाकी एक नहर बहती है।

२ उक्त तहसीलका प्रधान कसबा। यह अक्षां २७° १६' उ० तथा देशां ७६° ११' पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या प्रायः ५५८२ है। प्रवाद है, कि राजा भीमसेन इस नगरको बसा गये हैं। वे स्थानीय मन्दिरके सामनेवाली भीलमें स्नान करके कुष्ठरोगसे मुक्त हुए थे। मुगलोंकी अमलदारीमें यहाँ एक दुर्ग बनाया गया था। यहाँ एक स्कूल है।

भोगिङ्गदेव—एक हिन्दू राजा। ये कलचूर-वंशीय हैहय-  
वंश रामदेवके हाथसे मारे गये थे।

भोपतगढ़—बम्बई प्रदेशके धाना जिलान्तर्गत शाहपुर  
तालुकका एक दुर्ग।

भोपा—भैरवोपासक साधु सम्प्रदाय-विशेष। इस सम्प्र-  
दायके लोग प्रतिमूर्तिको गढ़ कर उनकी पूजा करते हैं।  
सभी बड़े बड़े बाल और मूर्तियाँ रखते हैं तथा ललाट  
पर सिन्दूर लगाते हैं। कोई कोई कमरमें घुंघरू और  
कोई पैरोंमें पैजनी बांध कर नाचते और भैरवका गुण-  
कीर्तन करते हुए मिश्रा मांगने निकलते हैं। युक्तप्रदेश-  
में इनका वास अधिक देखा जाता है। इनके मध्यम  
गृहस्थ और उदासीन दोनों ही सम्प्रदाय हैं।

भोपा—सिन्धुप्रदेश-वासी जातिविशेष। मातादेवकी  
पुरोहिताई करनेके कारण इनका यह नाम पड़ा है।  
'कहीं कहीं' ये रेवारी भी कहलाते हैं।

ये लोग साधारणतः गो, महिष और उष्ट्रादिका  
पालन करते हैं। इनकी स्त्रियाँ उन मवेशियोंके पशु-  
संग्रह करनेमें व्यापृत रहती हैं। ये लोग मारवाड़से  
सिन्धुप्रदेशमें आ कर बस गये हैं। इनकी मुखाकृति  
इन्हें पारस्य देशीय सरीखा बतलाती है। ये लंबे और  
बलिष्ठ होते तथा मुँह सुगठित और नाक तिलपुण्ड्र-सी  
होती है। 'कभी कभी ये लोग सिर्फ ऊँटका दूध पी  
कर सात सात दिन तक यों ही रह जाते हैं।

भोपां ( हि० पु० ) १ एक प्रकारकी तुरही या फूँक कर  
बजाया जानेवाला वाजा। २ मूर्च्छा, बेवकूफ।

भोबरा ( हि० पु० ) एक प्रकारकी घास। इसे भोरन  
भी कहते हैं।

भोमो ( सं० अव्य० ) सम्बोधन।

भोम ( हि० स्त्री० ) पृथ्वी।

भोमरागुड़ी—आसाम प्रदेशके दुरांग जिलान्तर्गत एक  
रक्षित वन-विभाग। भूपरिमाण ३८६७ वर्गमील है।

भोमर्षि—सहाय-वर्णित एक ऋषि।

भोमी ( हि० स्त्री० ) पृथ्वी।

भोर—बम्बई प्रदेशके सतारा राजकीय एजेन्सीके अधीनस्थ  
एक सामन्त राज्य। यह अक्षा० १८° से १८° ४५' उ० तथा  
देशा० ७३° १४' से ७३° १५' पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरि-

माण ६२५ वर्गमील है। इस राज्यके चारों ओर पर्वत हैं।  
१६०६७ ई०में शिवाजीके लड़के राजारामने पुरस्कार-स्वरूप  
यह स्थान शङ्करजी नारायण पन्थ सचिवको प्रदान किया।  
ये जातिके ब्राह्मण हैं। ब्रिटिश-सरकारसे इन्हें  
दत्तक ग्रहणका अधिकार है। ज्येष्ठ पुत्र ही राजसिंहासन-  
के एकमात्र अधिकारी हैं। सामन्तकी उपाधि जागीर-  
दार और पन्थसचिव है। दक्षिणात्यमें भोरके सामन्त-  
राजा सर्वश्रेष्ठ समझे जाते हैं। १६०३ ई०के दिल्ली बर-  
दारसे इन्हें ६ तोपोंकी सलामी मिलती है।

इस राज्यमें भोर नामका १ शहर और ४८३ ग्राम  
लगेते हैं। जनसंख्या डेढ़ लाखके करीब है। ब्रिटिश  
शासनप्रणालीके अनुसार शासनकार्य चलता है।  
दीवानो और फौजदारी मामलेका विचार स्वयं सामन्त  
करते हैं। राजस्व चार लाख रुपयेका है। राज्य भरमें  
कुल ४३ स्कूल और एक अस्पताल हैं।

२ उक्त सामन्तराज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा०  
१८° ६' उ० तथा देशा० ७३° ५३' पू० पूना शहरसे २५  
मील दक्षिणमें अवस्थित है। जनसंख्या चार हजारसे  
ऊपर है। यहाँ राजप्रसाद अवस्थित है।

भोर ( हि० पु० ) १ प्रातःकाल, सवेरा। २ एक प्रकारका  
बड़ा पक्षी। इसके पर बहुत सुन्दर होते हैं। यह  
हरियालीको बहुत पसन्द करता है, इसका प्रधान खाद्य  
ही फल फूल तथा कीड़े मकोड़े। खेतोंकी फसलको  
यह बहुत हानि पहुँचाता है। रातके समय ऊँचे वृक्षों  
पर विश्राम करता है। ३ खमी नामक सदाबिहार-वृक्ष।  
( वि० ) ४ धोखा, भूल।

भोरघाट—बम्बईप्रदेशके पश्चिमघाट पर्वतमालाके मध्य-  
स्थित एक गिरिसङ्घट। यह बम्बई और पूना नगरके मध्य-  
स्थलसे प्रायः बीस कोशकी दूरी पर अक्षा० १८° ४६' ४५'  
उ० तथा देशा० ७३° २३' ३०' पू०के मध्य अवस्थित है।  
इस गिरिसङ्घट पर्यन्त रेलपथका विस्तार शिल्पविद्या  
(Engineering)का अद्भुत निदर्शन है। २०२७ फीट ऊँचे  
विस्तृत पथमें टानेल, सेतु और खिलान द्वारा ऐसा घर्ष-  
चिर्माण भारतमें और कहीं नहीं देखा जाता। यह काम  
सम्पन्न करनेमें प्रायः साठ लाख रुपये खर्च हुए थे।  
१८६१ ई०में पाँच वर्ष बाद इसका काम समाप्त हुआ।

महाराष्ट्र-अधिकारके समय दाक्षिणात्यमें यह द्वाररूपमें गिना जाता था ।

१८०४ ई०में अङ्गरेज-सेनानाी वेल्लेस्लाने बम्बईसे अम्बारोही सेनादलके साथ दाक्षिणात्यजाने आनेकी सुविधाके लिये भोरघाटक रास्ता पूना तक विस्तृत और सुगम कर दिया । बाद उसके १८३० ई०में बम्बईप्रदेशके शासनकर्त्ता सर जान मैकम बहादुरने उसे यानवाहनके लिये उपयोगी बनाया । ये स्वयं लिखा गये हैं, कि इस प्रशस्त पथविस्तारमें कोङ्कण और दाक्षिणात्य प्रदेशका एक मन्दिर मन हो गया है । सेना-परिचालन और वाणिज्यमें बहुत सुविधा हो गई है । यहां तक कि दाक्षिणात्यवासी किसी भी मनुष्यको अब द्रव्यादिके अभावसे कष्ट नहीं उठाना पड़ेगा ।

भोरपी—दाक्षिणात्यवासी निरुद्ध जातिविशेष । ये लोग नाना देशोंमें घूम घूम अभ्यस्त व्यायामक्रीडा और कौतुक जनसाधारणको दिखा कर अपना जीवन-निर्वाह करते हैं । ये बहुत अंशमें कुनबियोंसे मिलते-जुलते हैं । साधारणतः ये दृढ़काय, बलिष्ठ और कष्टसहिष्णु हैं । मद्य और गो-शूकरादिका निन्दित मांस खानेमें ये आपत्ति नहीं करते ।

ये साधारणतः व्यायाम ही करते हों, सो नहीं, अनेक मनुष्य इधर उधर शिक्षा भी मांगते हैं । कोई कोई द्वार द्वार गीत गा कर या नाट्यरहस्यादि दिखा कर जनसाधारणमें प्रीतिउपादान करते एवं उस प्रकारसे लब्ध अर्ण द्वारा परिवारका प्रतिपालन करते हैं । इसके सिवा कोई कोई अर्धवान् व्यक्ति गो-मेवादि भी पालते हैं । बालकगण युवा या प्रौढ़गणके साथ गाय चराने जाते और स्त्रियां वनमें रन्धनोपयोगी काष्ठ और गीयडा चुनती हैं ।

ये स्मार्त्तमतानुसार धर्मकर्म करते हैं । पूर्व दिन ये स्नान कर पुष्पचन्दनादि ले कर स्थानीय वाहरोवा, जनाई और खानहोवा आदि देवमूर्तिको पूजा करते, उसके बाद भोजन करते हैं । देवदेवीके प्रति इनकी विशेष भक्ति रहती है । विवाह और धादादिमें ये ब्राह्मणको पारोहित्यमें नियुक्त करते हैं । जातीय और सामाजिक विभ्रान्तकी निःपत्ति पञ्चायत-सभा द्वारा होती है ।

भोरा ( हि० पु० ) गुजरात, मद्रास और ब्रह्मदेशकी नदियोंमें मिलनेवाली एक प्रकारकी मछली जो प्रायः फुट भर लम्बी होती है ।

भोराई ( हि० खो० ) भोलापन, सिधाई ।

भोराना ( हि० कि० ) १ भ्रममें डालना, बहकाना । २ भ्रममें पडना, धोखेमें आना ।

भोरानाथ ( हि० पु० ) भोलानाथ देखा ।

भोरी ( हि० खो० ) अफोमका एक रोग ।

भोलन भा—दरभङ्गा-निवासी एक मैथिल ब्राह्मण । आप मिथिला भाषामें हरिवंश नामक एक पुस्तक लिख गये हैं ।

भोला ( हि० वि० ) १ सरल, सीधा-सादा । २ मूर्ख वैषकूक ।

भोलानाथ ( सं० पु० ) शिव, महादेव ।

भोलापन ( हि० पु० ) १ सरलता, सिधाई । २ मूर्खता, नादानी ।

भोलामाला ( हि० वि० ) सरल चित्तका, सीधा-सादा ।

भोलि ( सं० पु० ) उद्ग, ऊँट ।

भोस् ( सं० अर्थ० ) भा डोंसि, निपातनात् सिद्ध । १ सम्बोधन । २ प्रश्नविधान ।

भोस—सतारा जिलेके तासगांव तालुकके अन्तर्गत एक गाँव ग्राम । यह अक्षा० १६° ५१' ३० तथा देशा० ७४° ४६' ५० तासगांव नगरसे साढ़े चार कोस दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है । इस ग्रामके पार्श्वस्थ शैलमें महादेवका गुहामन्दिर अवस्थित है । इस मन्दिरमें जानेके लिये पट्टयर्द्धन सामन्तोंके व्ययसे निर्मित एक पथ है ।

यहांको शक सं० ६११में उत्कीर्ण एक शिलालिपिमें कौशल्यापुरके राजा शृङ्गणका नाम मिलता है । प्रत्नतत्त्वविदोंका विश्वास है, कि उक्त राजा शृङ्गण सम्भवतः देवगिरिके यादवराज सिंघन हीमें एवं उनके द्वारा ही कुण्डल और मालकेभरका मन्दिर निर्मित हुआ होगा । स्थानीय प्रवादसे जाना जाता है कि कौण्डल्यपुरमें हिगनदेव नामक एक राजा रहते थे । ये महादेवकी प्रीतिके लिये बहुत यागयज्ञ किया करते । कोई कोई इन्हों शैवप्रधान हिगनदेवकी ही शृङ्गणराज कहा करते हैं । इसके सिवा यहां कन्नाड़ी भाषामें उत्कीर्ण

एक और आपुनिक गिलालिपि पाई जाती है। शिव-मूर्तिके अलावा इस गुहामन्दिरमें अष्टभुजा भवानो, नन्दो और घोरमद्रमूर्ति प्रतिष्ठित हैं। समग्र गुहामन्दिर ५८ फीट लम्बा और ३६ फीट चौड़ा है। इसका कार्य-कार्य उतना खराब नहीं है। प्रति श्रावण-सोमवारमें यहां बहुत लोगोंका समागम होता है।

भोसर (हि० वि०) मूख, बेवकूफ।

भोस्कार—सम्योघनके लिये विनीत वाक्यप्रणाली।

भोहर—शाङ्ग-घर-पद्मति-घृत एक कवि। कोई कोई इन्हें 'डोहर भी कहते हैं।

भौं (हि० स्त्री०) आंखके ऊपरके बालोंकी श्रेणी, भौंह।

भौंकना (हि० क्रि०) १ भौं भौं शब्द करना, कुत्तोंका बोलना। २ निरर्थक बोलना, बक बक करना।

भौंगर (हि० पु०) छत्रियोंकी एक जाति।

भौंचाल (हि० पु०) भ्रूम्य देखो।

भौंड़ी (हि० स्त्री०) छोटा पहाड़, पहाड़ी।

भौंतुवा (हि० पु०) १ खटमलके आकारका एक प्रकारका काले रंगका कीड़। यह प्रायः वर्षा ऋतुमें जलाशयों आदिमें जलतलके ऊपर चक्कर करता हुआ फिरता है। २ एक प्रकारका रोग। इसमें वाहुदुंडके नीचे एक गिलटी निकल आती है। ३ तेलीका घैल जो सवेरेसे ही कोन्ह-में जाता जाता है और दिन भर घूमा करता है।

भौर (हि० पु०) १ भौरा, चंचरीक। २ आवर्त्त, नांद।

भौरकली (हि० स्त्री०) भँवरकली देखो।

भौरा (हि० पु०) १ काले रंगका उड़नेवाला एक पतंग। अमर देखो। २ बड़ी मधुमक्खी, सारंग। ३ हिंडोलेकी एक लकड़ी। यह मयारीमें लगे रहती है और इसमें डोरी वा डंडी बंधी रहती है। ४ लटके आकारका एक बिलौना। इसमें कील वा छोटी डंडी लगी रहती है। इसी कीलमें रस्सी लपेट कर लड़के इसे भूमि पर नचाते हैं। ५ काला वा लाल भड़। ६ रहटकी खड़ी चरखी जो मंघरीको फिराती है। ७ गाड़ीके पहियेका वह भाग जिसके बीचके छेदमें धुरेका गज रहता है और जिसमें आरा लगा कर पहियेको पुटियां जड़ी जाती हैं। ८ पशुओंका एक रोग जिसे चेचक कहते हैं। ९ पशुओंकी मिरगी। १० एक प्रकारका कीड़ जो ज्वार आदिकी

फसलको हानि पहुंचाता है। ११ वह कुत्ता जो गड़-रियोंकी भेड़ोंकी रखवाली करता है। १२ मकानके नीचेका घर तहखाना। १३ वह गड़-ढा जिसमें अन्न रखा जाता है। भौंटाना (हि० क्रि०) १ परिक्रमा करना, घुमाना। २ विवाहकी भांवर दिलाना, विवाह कराना। ३ चक्कर काटना, फेरी लगाना।

भौंरी (हि० स्त्री०) १ पशुओं आदिके शरीरमें रोमां या बालों आदिके घुमावसे बना हुआ वह चक्र जिसके स्थान आदिके विचारसे उनके गुण दोषका निर्णय होता है। २ भंगा कड़ी, बाटी। ३ आवर्त्त, तेज बहते हुए जलमें पड़नेवाला चक्कर। ४ विवाहके समय वर-धुंका अग्नि-की परिक्रमा करना।

भौंह (हि० स्त्री०) भृकुटी, भौं।

भौं (हि० पु०) जगत्, संसार।

भौंका (हि० पु०) घड़ी दीरो, टाकरा।

भौंगिक—भोगकका गोत्रापत्य।

भौंगोलिक (सं० त्रि०) भूगोल संबंधी, भूगोलका।

भौंचक (हि० वि०) जो कोई विलक्षण बात या आकस्मिक घटना देख कर घबरा गया हो, हका बका।

भौंचाल (हि० पु०) भ्रूम्य देखो।

भौज (हि० स्त्री०) भाईकी पत्नी, भौजाई।

भौजकट (सं० त्रि०) भोजकट-देशसंबन्धीय।

भौजाई (हि० स्त्री०) भ्रातृवधु, भाभी।

भौजि (सं० पु०) भोजदेशे भवः इत्। भोजदेशमें उत्पन्न।

भौजीय (सं० त्रि०) भौजे भोजदेशे भवः, गहादित्वात् छ। भोजदेशभव, भोजदेशमें होनेवाला।

भौज्य (सं० पु०) वह राज्यप्रबंध जिसमें प्रजासे राजा लाभ उठाता हो पर प्रजाके सत्त्वोंका कुछ विचार न करता हो।

भौठा (हि० पु०) छोटा पहाड़, टीला।

भौत (सं० पु०) भूतानि प्राणिनोऽधिष्ठत्य प्रवृत्तः अण्। बलिकर्म। यह पञ्चब्रह्मके अन्तर्गत है। भौतनके पहले प्राणियोंके उद्देशसे जो बलि दी जाती है उसे भौत कहते हैं। २ देवल, पुजारी। भूत-भिक्षादिभ्योऽण्। ३ भूतसह। (त्रि०) भूत-तत्त्वेदमित्यण्। ४ भूत-सम्बन्धी।

भौतिक (सं० क्री०) भूतानां विकारः ; इति ठक् । १ मुक्ता मोती । २ सृष्टिविशेष ।

“अष्टविकल्पों देवस्त्वैर्दग्म्योन्मथ पञ्चधा भवति ।

मानुष्यम्बैकविधः समासतो भौतिकः सर्गः ॥”

(साल्व्यका० ५३)

भौतिकसृष्टि ।—ब्राह्म, प्राजापत्य, ऐन्द्र, पैव, गान्धर्व, यक्ष, राक्षस और पैशाच ये आठ प्रकारकी देवयोनि हैं ; पयु, मृग, पक्षी, सरोसुप और स्यावर ये पांच तिर्यग्योनि और मनुष्ययोनि हैं ; एक तरहसे संक्षेपमें यही भौतिक सृष्टि है । चैतन्यके उत्कर्षापकर्षके अनुसार भौतिक सृष्टिके ऊर्ध्व, अधः और मध्य यह तीन विभाग कल्पित हुए हैं । इनमेंसे उर्ध्वलोक अर्थात् पश्चादि स्थावरान्त तिर्यक् शरीर हैं । रजोबहुल मध्यलोक, देवलोक सत्त्व-बहुल, तमोबहुल अधोलोक अर्थात् मानवयोनि हैं । उर्ध्व-तम ब्रह्मासे ले कर स्तम्भ पर्यन्त सभी भौतिक सृष्टि है ।

जब तक लिङ्गदेहकी निवृत्ति नहीं होती, तब तक कोई भी शरीर उत्पन्न होवे, उसमें लिङ्गशायी चैतनकी जरा-मरण-जन्त दुःख प्राप्त होगा । दुःख वस्तुतः प्राकृतिक है, किन्तु प्राकृतिक लिङ्गके साथ अभेद अध्यास रहनेके कारण आत्मा उस प्राकृतिक लिङ्गस्य दुःखको अपनेमें अध्यास करती है । अतएव भौतिक सृष्टि ही दुःखका कारण है । (साल्व्यदर्शन)

३ भूत सम्बन्धि गुणविशेष । दर्शनशास्त्रमें इस भौतिकगुणका विषय इस प्रकार लिखा है—अग्नि, वायु, जल, आकाश और मृत्तिका ये पांच भूत हैं । विशेष विशेष गुण देख कर वस्तुका पार्यय और उसका लक्षण निर्द्धारित होता है । अन्यय और व्यतिरेक इन दो प्रकारकी परोक्षाओं द्वारा देखा गया है कि आकाशका विशेष गुण शब्द, वायुका विशेष गुण स्पर्श, तेजका विशेष गुण रूप, जलका विशेष गुण रस और पृथिवीका विशेष गुण गन्ध है ।

वस्तु ध्वजहारके कुछ काल्पनिक भाव हैं, वे भी गुण कहलाते हैं । यथा—संस्थो, परत्व और अपरत्व आदि इस जातिके गुण ध्वजहारमूलक और उपाधिपक्षपाती हैं । जो पारिमाणिक गुण है वह दो प्रकारका है ; सांसिद्धिक और नैमित्तिक । जो स्वतःसिद्ध है, आश्रय वस्तुके रहनेसे

रहता है और नहीं रहनेसे नहीं रहता, जो आश्रयके साथ एकत्र उत्पन्न है, एकत्र अवस्थित है और एकत्र चिध्वंस होता है, वह सांसिद्धिक गुण है । जिस प्रकार अग्निही उष्णता और जलका द्रवत्व ।

जो आगमापायी अर्थात् निमित्तवशातः उत्पन्न होता है, वह नैमित्तिक है ; जैसे जलका काठिन्य और वायुका शैत्य ।

चक्षु जिसे ग्रहण करता है और जो श्वेत, पीत, लोहित इत्यादि शब्दोंसे उल्लिखित होता है, वह शब्दका अभिधेय है । इसी प्रकार यह कहीं वर्ण और कहीं रंग कहलाता है, जैसे श्वेतवर्ण, रक्तवर्ण, सफेद रंग, काला रंग इत्यादि । वर्ण अनेक प्रकार होने पर भी मूलवर्ण केवल तीन ही हैं, इससे ज्यादा नहीं ; श्वेत, लोहित और कृष्ण । इन तीन वर्णोंका नामान्तर अमिश्रवर्ण है । इसके सिवा जो मिश्रणसे प्रस्तुत होता है, वह मिश्रवर्ण कहलाता है । मूलवर्ण तीनसे कम नहीं हैं और न ज्यादा ही । इसका कारण यह है कि वर्णगुण भौतिक है । आकाश और वायुभूतके कोई वर्ण नहीं है, केवल पृथिव्यादि तीन भूतोंके ही वर्ण हैं । किस भूतसे कौन वर्ण होता है, उसका सिद्धान्त इस प्रकार है—पृथिवीसे कृष्ण, जलसे श्वेत और अग्निसे लोहित ।

“यद्गने रोहितं रूपं तत्संजसः” यच्छुक्रं तदपां

वत् कृष्णं तदक्षयम्” (छान्दोग्य उप०)

इन तीन वर्णोंसे विशेष-विशेष-वर्णोंकी उत्पत्ति हुआ करती है ।

गुरुत्व ।—गुरुत्व गुण स्थिति और जल उभयवर्त्तो है । अन्य किसी वस्तुमें इसकी सत्ता नहीं है । यही कारण है, कि पृथ्वीकी ओर पार्थिव और जलमय वस्तुकी गति होती है । उस गतिके नाम पतन और स्पन्दन है । तेज और वायुभूतमें बिलकुल गुरुत्व नहीं है, इन दोनोंमें गुरुत्वके विपरीत लघुत्व ही है । इसीसे उनकी और उनसे उत्पन्न पदार्थोंकी गति विपरीत और ऊर्ध्वकी ओर होती है । इस गतिके नाम उत्पतन है । कर्मों कर्मों अन्यान्य तेजोमय वस्तुकी जो पृथिवीकी ओर आते देखते हैं, वह गुरुत्व-प्रेरित नहीं, बल्कि वेग-प्रेरित हैं । अग्नि-संयोग अर्थात् पृथिवीमें संलग्न होनेके लिये ऊपरकी

वस्तुकी जो गति होती है, उसीका नाम पतन है। पतनमें दो प्रकारके कारण हैं, यथा—गुरुत्व और वेग। उल्का और वज्रान्नि प्रभृति जो पृथ्वी पर आती हैं, उसका कारण वेग है, गुरुत्व नहीं। गुरुत्व गुण अतीन्द्रिय है, किन्तु यह भ्राचार्यके मतसे स्पर्श अर्थात् त्वगिन्द्रियके द्वारा भी गुरुत्वानुभव हो सकता है।

क्षिति, जल, और तेज इन तीन भूतोंमें द्रवत्व अवस्थित है। द्रवत्व दो प्रकारका है, सांसिद्धिक और नैमित्तिक। जलमें सांसिद्धिक द्रवत्व है और शेष दोनों नैमित्तिक द्रवत्व। नैमित्तिक अर्थात् निमित्तवशतः उत्पन्न। स्पन्दन द्रवत्व गुणका ही कार्यान्तर है। सत्त्वादि द्रव्य जो जल मिलनेसे पिण्डाकृति हो जाता है, यह स्नेहसंयुक्त द्रवत्वका प्रभाव है।

पञ्चभूत और महाभूत शब्द देखो।

( पु० ) ४ महादेव, शिव । ५ उपद्रव्य । ६ आधिष्ठाधि । ७ आँख नाक आदि इन्द्रियों । ८ शरीरादि । ९ बौद्धविशेष । ( लि० ) १० पञ्चभूतसम्बन्धी । ११ पार्थिव, पाँचों भूतोंसे बना हुआ । १२ भूतयोतिसे संबंध रखनेवाला ।

भौतिककाण्ड ( स० ७० ) भूत-सम्बन्धनों क्रिया ।  
भौतिकविद्या देखो ।

भौतिकतत्त्व ( स० ७० ) भूतजगत्की आलोचना विषयक विद्याविशेष । भौतिकविद्या देखो ।

भौतिकविद्या—भूत, प्रेत, दानव, दैत्य, पिशाच, पिशाचो, डाकिनो, योगिनी, और नायिका आदिका परिचय, अमानुषिक घटना या भौतिककाण्ड जिस विद्यासे मादूम होता है, उसको भौतिकविद्या कहते हैं। हमारे शास्त्रोंके अनुसार, जो निशाचर दिव्यभाव प्राप्त करके भी हिंसापरायण हैं, उन्हींको भूत कहते हैं। जिस विद्यासे भूतकी संज्ञा और स्वभावादि जाना जाता है, उसीको भूतविद्या कहते हैं।\*

पृथ्वीकी सभी सम्य और असम्य जातियोंमें भूत, प्रेत, डाकिनो आदिका अस्तित्व तथा विश्वास है। इसके कष्टोंसे बचनेके लिये सब जातियोंमें 'ओम्ना' झाड़ फूंक करनेवाले मौजूद हैं। उन्नीसवीं शताब्दीके उन्नत-शील कितने ही वैज्ञानिक भूत-प्रेतमें अविश्वास प्रकट करते थे। किन्तु अब इस बीसवीं शताब्दीके प्रारम्भमें अमेरिकाके वैज्ञानिक भूत प्रेतमें विश्वास करने लगे हैं। 'पिओसीफी'का विस्तार इसका एकमात्र कारण है। ऐसा मादूम होता है।

हिन्दुओंका विश्वास ।

भारतवर्षमें केवल असम्य और अनार्थ्य जातियोंमें ही नहीं; बल्कि सुसम्य आर्य हिन्दुओंका बहुत पुराने समय से भूत-प्रेतमें विश्वास चला आता है। अथर्ववेदमें यातुधान, दुर्मति आदि दुर्देवोंकी भी स्तुति दिखाई देती है। उस समय लोगोंका यह विश्वास भी था, कि दुर्देव मनुष्यकी कष्ट पहुँचाया करते हैं। किन्तु ऋक्, यजु और साम-संहितामें ऐसे दुर्देवोंके भयकी कोई बात नहीं लिखी है। मृत्युके भयके साथ ही अथर्ववेदके कालमें आर्योंके हृदयमें दुर्देवोंका भय हुआ करता था, किन्तु उसकी उत्पात्तकी कोई बात अथर्ववेदमें नहीं लिखी है। पुराणकालमें भूतप्रेतों पर लोगोंका पूर्णरूपसे विश्वास जम गया था।

मार्कण्डेयपुराणमें बालकोंकी रक्षाके लिये (चेचक) माताओंके साथ साथ भूतोंकी भी पूजाका विधान है।

“विशिषेऽनुह्यारचैवानलं मिश्रञ्च कीर्तयत् ।

भूतानां मातुभिः यदा बालकानान्तु शान्तये ॥”

( मार्कण्डेयपु० ५१/५३ )

भागवतमें लिखा है—दुर्योगके समय महादेवके अनुचर तथा भूत विचरण किया करते हैं।

“एषा घोरतमा बला घोरायां घोरदर्शना ।

चरन्ति यस्यां भूतानिभूते शानुचराणि च ॥

( भागवत ६/१४/२६ )

परन्तु इन सब भूतोंकी उत्पत्ति कैसे हुई, किसी पुराणमें भी इसका विशेष विवरण नहीं मिलता। फिर भी विशुद्धधर्मोत्तरमें लिखा है—“भूतकके दाहादि-कार्य कर चुकनेके बाद बसकी जातिवादि देह हो जाती है।” यह

\* “हिंसाविहारा ये केचिद्विष्य भावमुपाश्रिताः ।  
भूतानीति कृता संज्ञा तेषां संज्ञा प्रवस्तुभिः ॥  
महसंशमिभूतानि यस्माद्स्वपनया निपक् ।  
विद्याया भूतविद्यात्वमत एव निरुच्यते ॥”



केवल मनुष्योंके ही होता है; दूसरे किसी जीवके नहीं होता। इसके बाद मृतात्माके लिये पिण्ड देने पर प्रेतकी भोग-देह मिलती है। प्रेत-पिण्ड नहीं देनेसे मृतात्माकी मुक्ति नहीं होती है। वह आकाशमें शीत, वायु और तापको असीम यातना भोगा करता है। सपिण्डीकरणके बाद उसे दूसरी भोग-देह मिलती है। इसके बाद वह अपने कर्मानुसार स्वर्ग या नरक जाता है। प्रेत देखो।

'मृतकको चित्कार्य हो जाने पर प्रेतयोनि प्राप्त होती है। कुछ लोग कहते हैं कि चित्तामं देनेके बाद ही प्रेतत्व प्राप्त हो जाता है, फिर कुछ शास्त्रवेत्ताओंका कहना है कि जब प्रेतके नामसे पिण्ड-दानादि किया जाता है तभी मृतात्माको प्रेतत्व प्राप्त होता है। प्राण निकल जाने पर पहला पिण्ड श्मशान ले जाते समय, दूसरा पिण्ड आधे रास्तामें और चित्कारोहणके समय तीसरा पिण्ड दे देने पर शवमें कोई दोष नहीं रह जाता। प्रथम दिन जैसा पिण्ड देना चाहिये, उसी तरहका पिण्ड दशों दिन देते रहना चाहिये। पहले दिनके पिण्डसे मूर्द्धा, दूसरे दिनके पिण्डसे गरदन और स्कन्ध, तीसरे दिनके पिण्डसे हृदय, चौथे दिनके पिण्डसे हाथ, पांचवें दिनके पिण्डसे नाभि, छठे दिनके पिण्डसे कटि, सातवें दिनके पिण्डसे शुष्म, आठवें दिनके पिण्डसे उरुहृदय, नौवें दिनके पिण्डसे बुदने और दोनों पैर तथा दशवें दिन प्रेत वायुदेह धारण करना तथा अत्यन्त क्षुधातुर हो जाता है। इसी दिन आमिष पिण्ड देनेकी विधि है। ग्यारहवें और बारहवें दिन प्रेत खाने लगता है। इसी दिन दोष, अन्न, जल, चरु और जो कुछ दिया जाता है, वह प्रेत उच्चारण करके दिया जाता है। इसी पिण्डजनक देह प्राप्त होने पर यमदूत प्रेतको महापथमें ले जाते हैं। इसी तत्त्व यमदूतों द्वारा मार खाते और नाना तरहकी यातनाओंको सहते हुए 'असिपत्र' बनको पार कर भूल प्याससे छटपटाता जीव यमलोकको जाता है। और अठारहवें दिन यमके पूर्वपुरमें आ कर पैतालिस दिन तक पुत्रका दिया हुआ अन्न-जल खाता पीता है। इसके बाद भयंकर आपद्पूर्ण, धन्यभूमिमें अथस्थित सुरेन्द्र नरकमें आ कर जीव रोता

रहता है। यहां यमदूतोंकी ताड़नामें दो महीने तक रहता है। तीसरे महीनेमें गन्धर्व नगरमें आ कर पुत्रके लिये हुए पिण्डको खाता है। चौथे मासमें शैलागमपुरमें लाया जाता है। यहां प्रेतोंके पीठ और सर पर बड़े बड़े पत्थर गिरा करते हैं। इस समय प्रेत-पुत्र आदिके लिये हुए धातुके अन्नसे तृप्त होता है। इसके बाद पांचवें महीनेमें कूरपुरमें तथा छठे महीनेमें त्रिवनगर लाया जाता है। इस समय प्रेत क्षण-क्षण भूल प्याससे फातर होता रहता है। इसकी यहां बड़ा दुःख होता है। द्वादश महीनेके लिये पिण्डसे कुछ तृप्त-लान करता है। इसके बाद प्रेत चार सौ वर्षकी रक्त या श्लेष्मापूर्ण चैतरणीमें लाया जाता है। यहां भयंकर यमदूतोंके द्वारा चिताडित हो प्रेतको २४७ योजन मार्ग नित्य तैरना पड़ता है। आठवें मासमें पिण्ड ला कर अति दुःखद नगरमें तथा नवें महीनेमें नानाकालपुरमें लाया जाता है। वहां नवें मासका पिण्ड पा कर प्रेत नानाकन्दपुर और तप्तपुरमें आता है। पीछे दशवें महीनेमें सुतसनगर ग्यारहवें महीनेमें रुद्रस्थान और बारहवां महीना पूर्ण हो जाने पर 'श्रतिपुर'में लाया जाता है और सब स्थानोंमें क्रमानुसार मासिक पिण्ड भोजन करता है। इसके बाद विचारके लिये यमराज तथा चित्तगुप्तके समीप लाया जाता है। विचारके बाद उसको स्वर्गका सुख तथा नरकका दुःख भोगना पड़ता है।

( गण्यपुराण उ० ल० प्रेतकल्प )

प्रेत शोका कारण ।

किस तरहके मनुष्यको प्रेतकी योनि मिलती है। इसके सम्यग्भ्रममें गण्डपुराण ( उत्तरखण्ड १२ अ० ) में लिखा है—

'जो सदा पाप करता है, जो कुआं बाग उपवन, ( परती ) देवालय जलशाला, अच्छे अच्छे पृष्ठ, भोजन-गृह और पितृपितामहका धर्म विकर्य करता है, लोभके चशीभूत गोचरण स्थान, प्रामसीमा, तड़ाग, उपवन और गुहा आदि पर अधिकार कर ले, खाएडालके हाथसे मारा जाय, जलमें गिरनेसे मृत्यु हो जाय सर्पके दंशसे, प्राणजसे, विजली गिरनेसे, उंसनेवाले जन्तुओंसे और पशुओंके आघातसे, बन्धनसे आत्महत्यासे, विष और

शस्त्रादिके आघातसे, ईजासे, आगसे जलं जानेसे, महारोग तथा पापयोगसे, डाकुओंके हाथसे मर जाय, जिसका संस्कार न हुआ हो उसकी मृत्यु हो जानेसे, आचरणहीन व्यक्तिको मरने पर नृत्योद्देशगादि क्रिया और मासिक पिण्डादि लुप्त करनेवाले मृत आत्माको, जो शूद्र द्विजोंकी अग्नि, नृण, काष्ठ और घृन आदि अपहरण कर ले उसके, तथा पर्वत परसे गिर, रजस्वला आदि दोषसे मरने, जमीन पर मरनेसे या एकान्तमें मृत्यु होनेसे, विष्णु-नामसे वंचित मृत्यु होनेसे, सूतकादि रहनेसे तथा अन्यान्य अपमृत्युओंसे मनुष्य प्रेतयोगि पाता है। इसके सिवा जो ब्राह्मणों तथा देव और गुरुकी वस्तुओंकी चोरो करता है, जो कन्या घेचता है, जो बना अपराधके माता, बहिन, स्त्री, पुत्रवधू और कन्याका परित्याग करता है; न्यासापहारो, मितद्रोहो, परस्त्री-गामी, विश्वास-घातक, गो-हत्याकारी, मद्य पीनेवाला, गुरु पतिसे सम्भोग करनेवाला, कुलका मार्ग छोड़नेवाला, सदा भूठ बोलनेवाला, सुवर्ण और भूमि हरण करनेवाला ये सब मनुष्य भी मृत्युके वाद प्रेत हुआ करते हैं। इसके उपरान्त यह भी लिखा है कि जो तापसी, स्वर्गोत्थी और अगम्या स्त्रोके साथ सम्भोग करते हैं, वे महाप्रेत होते हैं। ( गद्य उ० ख० )

गद्यपुराणके उत्तरखण्ड ( अध्याय ३० )में प्रेतकी एक और विशेषता लिखी है—

जो ब्राह्मण भूले रह कर मर जाते हैं, जो हिंसक जन्तुओंके चोटसे मरते हैं और जो गलेमें फांसी लगा कर मरते हैं, एकाएक कटोर चोटसे मरनेवाला, वाध, अग्नि और विष अथवा ईजासे मरनेवाला, आत्मघाती, गिरनेसे, बन्धनसे, जलमें डूबनेसे, मुच्छके हाथसे, झूदनेसे, महारोग अथवा स्त्रोके पापसे या चाण्डाल, जल, सर्प रजस्वला, अपवित्र रजकादि अशुक्तोंके दू देनेसे जो मनुष्य मरता है, वह नरकभोग कर चुकनेके वाद प्रेत या भूत होता है।

प्रेतके लिये श्राद्ध करनेकी जरूरत है। यदि श्राद्ध आदि क्रिया नहीं हो, तो उस प्रेतकी पिशाचकी-सी गति होती है। फिर जिसके सन्तान आदि नहीं हैं, वे सौ वर्ष तक घोरतर नरक भोग कर यमदूत हुआ करते हैं।

पञ्चोत्तरखण्डमें लिखा है, सत्साईस युग तक दारुण नरक यातना भोग करनेके वाद पिशाच होता है।

प्रेत शब्द देखो।

पिशाचोंका रूप अत्यन्त विचर, फिर भी कराल दीन-मावापन्न और भीतिप्रद, आंखें भीतरकी घसी हुईं पीली, केश उलटे हुए, शरीर काला, पतली जिह्वा, बड़े बड़े होंठ, लम्बो जांघ और बाहु, सूखा मुंह और रूप यमदूतोंकी तरहका होता है।

गद्यपुराणके अनुसार प्रेत अपने कर्मोंके अनुसार यायुरूप शरीर युक्त और अत्यन्त क्षुधातुर होता है। फिर दूसरो जगह लिखा है, भूतगण दिव्यासी होते हैं।

“पिशाचा राज्ञा यज्ञा ये नान्ये दिशि वासिनः।”

( प्रेतकल्प १३३ )

एक प्रेत अपने रूपका वर्णन इस प्रकार करता है—

“इतवाक्या वयं सर्वं नृपसंज्ञा विचेतसः।

न जानीमो दिशं तात विदिशं चाविदुःखिताः॥

गच्छामः कुन वै मृदाः पिशाचाः कर्मजा वयं।

न माता न पितास्माकं प्रेतत्वं कर्मभिः स्वकैः॥

प्राताः स्म सहवा तद्वै दुःखोद्भूतगमाकुलम्॥”

( प्रेतकल्प १२ अध्याय )

हम लोग सभी मूक हैं, बोल नहीं सकते, नाम भी नहीं है और चेतना-रहित हैं, हमें दिशाओंका भी कुछ ज्ञान नहीं, इसीसे हम लोग बड़े दुःखसे जीवन बिता रहे हैं। हम लोग मूढ़ हैं और अपने कार्योंके द्वारा पिशाचयोगिनिमें आये हैं। हम लोगोंके न पिता हैं और न माता, अपने कर्मके अनुसार ही यह दुःख भोग रहे हैं।

गद्यपुराणमें और भी लिखा है—

“कली प्रेतत्वमाप्नोति ताद्यशुद्रक्रियापरः।

कृतादी द्वापरं यावन्नप्रेतो नैव पीडनम्॥” ( १०।१७ )

कलिकालमें अशुद्धक्रियाशील मनुष्यगण प्रेतत्वकी प्राप्त होते हैं। किन्तु सत्य, वेता और द्वापरमें न प्रेत होते थे और न प्रेत-पीड़ा ही होती थी।

प्रेतका विचरण-स्थान।

जो कोई प्रेतयोगि पाता है, वह कहाँ रहता है ? प्रेत-लोकसे दूट कर कहाँ जाता तथा किस तरह पाप भोगता है। प्रेत चीरासी लाख नरकोंका भोग करता

दि ? वहां रात दिन सहस्रों प्रहरों उनको रक्षा करते हैं । इस तरह पहरें रह कर ये किस तरह नरकसे वाहर निकल कर पृथ्वी पर विचरण करते हैं ? इसका उत्तर भी गण्डपुराणमें ही लिखा है,—

'दूसरेका धन अपहरण करनेवाला, और परखी-गामी मनुष्य मरने पर भूत होकर बिना शरीरके ही विचरण करता है। ऐसे भूत या प्रेत भूख प्याससे व्याकुल रहता करते हैं। बन्दीगृह छोड़ कर पशु जैसे घूम कर मर जाता है, प्रेत भी उसी तरह अपने सहोदरोंका वध कर स्वयं ध्वंस हो जाते हैं। ये पितृमार्गका उच्छेद करनेवाले और पितृ-द्वारको रोकनेवाले होते हैं। डाकू जैसे पथिकोंका धन लूट लिया करते हैं, उसी तरह प्रेत भी पितृभागको प्ररण किया करते हैं। यह सुयोग पाकर अपने घरमें आकर मलमूल त्याग करनेके स्थानमें वास करते हैं। वहां रहकर रोगी और दुःखी लोगोंके प्रति दृष्टिपात किया करते हैं। जूटा फेंकनेको जगहमें आकर किसीको एक दिन वाद कर और किसीको कमी उचर चढ़ा दिया करते हैं। ये भूत जातिसे रक्षित होकर जूटे पानी और अन्नको खाया करते हैं। प्रेत अपने कुलको बहुत दुःख देते हैं, मीका पाने पर औरोंको भी तंग करते हैं। जीवितकालमें जिसके साथ उसका विशेष स्नेह रहता है, प्रेत उसको अधिक दुःख दिया करते हैं।

( गण्डपुराण प्रेतकल्प )

प्रेतांश होने पर मनुष्यमें कैसे लक्षण दिखाई देते हैं, इसके सम्बन्धमें भी गण्डपुराणमें लिखा है—'प्रेतोंसे किसीको सुख और किसीको दुःख हुआ करता है। किसीके प्रेतसे पुत्र उत्पन्न होता, और किसीका पुत्र मर भी जाता है। किसीके नसीबमें कमी पुत्र लाभ होता ही नहीं। भाई भाईमें विरोध, सन्तान ही हो कर मर जाना, पशुओंकी मृत्यु, द्रव्यनाशजनित कष्ट, प्रकृतिके विपरीत कार्य, अकरुमात् विपत्तिका आना, नास्तिकता आ जाना, प्रतलोप, घमण्ड, नित्य कलह, माता पिताकी हिंसा, देव-निन्दा, अच्छे ब्राह्मणोंकी निन्दा, हत्याका दोष, नित्यकर्म और जप तप न करना, दूसरेका धन अपहरण करना, तीर्थमें जाकर आसक्त होना, नित्यक्रियाको छोड़ देना

अनिच्छा होना, अच्छे समयमें खेतोंको हानि हो जाना, सद्बुध्यहारका न होना, सबसे कलह करना, पणमें चन्ने पर वायुमण्डलसे कष्ट पाना, हीन जातिके साथ मिलता, नीच कर्मोंमें प्रवृत्ति, अथममें रचि, ध्यसनेके धनका अपव्यय, कार्णिके आरम्भमें हानि, चोर, राजा और अग्नि द्वारा अनिष्ट होना, महारोगोंकी उत्पत्ति, अपने शरीर या अपनी पत्नीकी पीड़ा, ध्रुतिस्मृति, पुराण और धर्म-कर्ममें मानसिकविरक्ति, सदा अभावका होना, देवता तीर्थ और द्विजातियोंको सुहृदयतासे न देखना, प्रत्यक्ष या पीठे देव ब्राह्मणोंका दोष वर्णन करना, स्त्रीका गर्भापात, मासिक धर्मका न होना, बालकोंकी मृत्यु, भाष्योंके साथ विरोध, शुद्धरूपसे वार्षिक श्राद्ध न करना, कलह, व्याघात, पुत्रोंके साथ जत्रु सट्टण वत्ताव करना, प्रीति और सुखका अभाव, सदा घरकी कलह, भोजनके समय क्रोषित हो जाना, परापेसे द्रोह करना, पिताको आश्रम न मानना, अपनी पत्नीके साथ सहवास न करना और दूसरे स्त्रियोंके साथ सहवास करना आदि सभी काम प्रेतांशके लक्षण हैं। क्रियाविहीन, जीवितारूपमें दुष्टोंका साथ, मरने पर धृष्टोत्सर्गादिका न होना, ( सांडका न दगा जाना ) अकाल मृत्यु, भूतकी दाहा-क्रियादिका लोप होना यह सब प्रेत-लौला है।

प्रेतावेश ।

गण्डपुराणमें प्रेतावेशके लक्षण इस तरह लिगे हैं। प्रेत पिशाचयोनि प्राप्त कर जो काम करते हैं, उनके स्वरूप और चिह्नका वर्णन करते हैं,—ये बिना शरीरके होते हैं और भूख प्याससे जर्जरित हो कर वायुधर्मोंके अपने अपने घरोंमें प्रवेश करते हैं और अपने ध्यक्तियोंकी चिह्नोंसे पहचानते हैं। हाथों, घोड़े, बैल अथवा ऊरुप सुला बना कर अपने पुत्र, भार्या और भाइयोंके पास जाते हैं। जो एकापक सौतेसे उठकर करवट बटलता है अथवा आत्माकी विपरीतता देखता है, यह मनुष्य प्रेतसे दुःख पाता है। यदि कोई अपनेको बंधा तथा हर तरहके बन्धनसे बंधा हुआ समझे, स्वप्नमें अन्न, मांस, और अपने पाप करना है, स्वप्नमें जो अपना या अन्न लेकर भागता है और कृष्णा-तुर

परचढ़ता देखे, अथवा दृष्टके साथ जो चले, कूद कर जो आकाशमें चढ़ना चाहे, भूखे रह तीर्थमें जाय, जो अपनी भार्या, पुत्र, भाई, पति और प्रभुको जीवित रहते ही मृत्यु अवस्थामें देखे, उस मनुष्यको प्रेतका अंश जरूर समझना चाहिये। स्वप्नमें भूख और व्याससे दुःखी हो, जो जल और अन्नकी आकांक्षा करता हो, उसके भी भूतावेश समझना चाहिये, ऐसी अवस्थामें तीर्थमें जाकर पिण्डदानादि करना चाहिये। प्रेताचिद् व्यक्ति स्वप्नमें देखता है, कि उसका पिता, पुत्र, भ्राता, स्त्री, ममी घरसे बाहर जा रहे हैं।

हमारे वैद्यकशास्त्रमें भी भूत तथा भूतावशका विस्तार रूपसे वर्णन है, यहां संक्षेपमें लिखते हैं,—

“गुह्यानागतविज्ञानमनवस्या उद्दिष्ट्यात् ।

क्रिया बाह्यमानुषी यस्मिन् स प्रदः परिकीर्त्यते ॥

असङ्ख्येया ग्रहगणा ग्रहाधिपतयास्तु ये ।

व्यज्यन्ते विविधाकारा भिद्यन्ते ते तथाष्टथा ॥”

जो प्राणी गुह्य और अनागत-विज्ञान यानो किसी तरहसे भी जो नहीं देखते और जिनके रहनेका कोई नियत स्थान नहीं तथा जिनका कार्य सदा अमानुषिक हुआ करता है, उनको ही भूत या प्रह कहते हैं। प्रह-गण और ग्रहाधिपति असंख्य हैं और इनके आकार भी नाना तरहके हैं। यह सभी जगह आठ श्रेणियोंमें बांटे गये हैं। जैसे—

“विवाहया श्लुगयाथच तेषां गन्धर्वयज्ञाःपितरो भुजङ्गाः ।

रक्षांसि या चापि पिशाचजातियोऽथवा देवगणग्रहान्यः ॥”

देव, दानव, गन्धर्व, यज्ञ, पितृग्रह प्रेत, भुजङ्ग, राक्षस और पिशाच ये आठ प्रकारके भूत या प्रह मनुष्योंको तंग किया करते हैं। इनकी साधारण संज्ञा देवप्रह है।

उक्त आठ प्रकारके भूताधिष्ठित व्यक्तियोंके लक्षण अलग अलग हैं। जिसके प्रति देवप्रहका आभास होता है वह व्यक्ति सन्तुष्ट, शुद्ध, गन्धमाल्य-प्रिय, तन्द्रा-हीन, असम्बन्ध-संरुद्ध-भाषी, तेजस्वी, स्थिरचेत, घरदाता होता और उसमें ब्रह्मतेज दिखाई देता है।

जिसके प्रति दानवोंका आवेश होगा, उसके शरीरमें पसीना निकलता रहता है तथा वह द्विज, शुभ और

देवताके दोष फहता रहता है और उसको आखें टेढ़ी होती हैं, निर्भय हो जाता और इधर उधर ताकता रहता और अन्नपानादिसे असंतुष्ट और दुष्टात्मा हो जाता है।

गन्धर्व-प्रहसे पीड़ित मनुष्य सन्तुष्ट चित्त, उपवन या उद्यान-सेवी, अपने काममें मस्त और गीत तथा गन्ध-माल्यप्रिय होता है। यह कमी नृत्य करता, कमी हंसता और कमी मनोरम और प्रिय वचन बोलता है।

यज्ञग्रहके वशीभूत मनुष्यकी आंखें लाल रंगकी हो जाती हैं, यह व्यक्ति फोका लाल रंगके कपड़े पहनने-वाले व्यक्तिसे प्रेम करता है और गम्भीरशील, तीक्ष्ण बुद्धि, सहिष्णु और तेजस्वी होता है। थोड़ा बीलता और जो कुछ बोलता प्रिय बोलता है और कहता रहता है कि किसको मैं क्या दूँ ?

“प्रेतेभ्यो विद्युजति संस्तौषु पिपुडान्

शान्तात्मा जज्ञमपि चापतव्यवन्नः ।

मांसेप्युक्लिन्नगुडपायवाभि काम-

स्तुद्भक्तोभवति पितृग्रहामिभूतः ॥”

जिस मनुष्य पर प्रेतावास होता है, वह दाहिने कंधे पर चढ़ डालकर कुशा लेकर मृतव्यक्तिको पिण्डदान करता और गंभीरचित्त, मांसलिप्स, तिल, गुड़ और पायसामिलायी होता है।

जो मनुष्य भुजङ्ग-प्रहसे पीड़ित होता है, वे कदाचित् सर्पको तरह भूमि पर चलता है और जीव द्वारा ओंठोंको चाटता रहता है और बहुत सोनेवाला तथा गुड़, मधु और क्षीर-भोजी होता है। राक्षस-ग्रहाभिभूत मनुष्य मांस, रक्त, विविध मद्य-विकार-लिप्सु, निर्लज्ज, भति निष्ठुर, भति बीर, मोघशील, विपुल बलशाली, निशा-विहारी और अपवित्र रहता है।

“उदस्ताः कृशापर्यथैरप्रसापी

दुर्गन्धो मृतमशुचित्तयातिकोशः ।

वहाशी विजनहिमाम्बुरात्रिसेवी

व्याचेष्ट” प्रमति रुदन् पिशाचवृष्टः ॥”

पिशाच-प्रहसे अभिभूत व्यक्ति उदुर्गन्ध-हस्तयुक्त कृज (पतला-बुबला), कठोर हृदय, बकवादी, मूला-कुचैला, अपवित्र, अत्यन्त चञ्चल और बहुत खोनेवाला होता है तथा पकान्त स्थान, ओस, जल और रात्रि-सेवी तथा

चेष्टा-रहित हो कर झमण करता और रोया करता है।

“देवप्रहः पौर्यामास्यामनुवाः छन्द्यपोरपि ।

गन्धर्वः प्रायशोऽष्टम्यां यन्नारच प्रतिपद्य ॥” इत्यादि ।

मनुष्यके शरीरमें पूर्णिमाके दिन देवप्रह, प्रातःसन्ध्या और सायंसन्ध्याके समय अक्षुर, अष्टमीको गन्धर्व, प्रति पदाको यक्ष, कृष्णापक्षमें पितृप्रह, पञ्चमीको भुजङ्गम, रात को राक्षस और चतुर्दशीको पिशाच प्रवेश करता है। जैसे दर्प आदि स्वच्छ वस्तुओंमें छाया, प्राणि-शरीरमें शीतोष्णता, सूर्यक्रान्तमणिमें सूर्यकिरण और देहमें प्राण प्रवेश करता है, वैसे ही प्रह अर्द्धशित-रूपसे मनुष्यके शरीरमें प्रवेश करता है।

“तपोति वीराणि तथैव दानं प्रतानि धर्मो नियमरच सत्यम् ।

गुणास्तपाद्यावपि तेषु नित्या व्यस्ताः समस्ताश्च यथा प्रभावम् ॥”

तोय तपस्या, दान, व्रत, धर्मनियम, सत्यवादिता और आठ प्रकारके गुण उनके नित्यधर्म हैं। किसी किसी प्रहमें यह सभी गुण होते हैं, और किसी प्रहमें इन गुणोंमें कमी भी रहती है। यह बात प्रहोंके प्रभाव-के अनुसार जानी जाती है।

“तेषां प्रहाणां परिचारका ये कोटीगह्वरायुतपञ्चरत्न्याः ।

अस्मृ यवामासमुजाः सुभीमा निशाविहारश्च तमावितान्ति ॥”

पूर्व-कथित प्रहोंमें किसीके पास करोड़, किसीके पास सहस्र और किसीके पास दश हजार सेवक रहते हैं। ये सभी परिचारकरक, मांस, और वसा भक्षण किया करते हैं। इनका रूप भयंकर है और ये रातको विहार या विचरण किया करते हैं। ये ही परिचारक भूत या सुड़लेके नामसे कभी कभी मनुष्योंके शरीरमें प्रवेश कर उन्हें तंग किया करते हैं।

उर्ध्वयुक्त प्रहोंमें जो देवोंमें सम्मिलित हैं, देवोंके संगसे उनका आचरण देव सद्रूप हो गया है। अतएव ये सब ‘प्रह’ के नामसे पुकारे जाते हैं। इनको देवताकी तरह पूजा तथा प्रणाम करना चाहिये। देवताओंसे जैसे घरकी प्रार्थना की जाती है, वैसे ही इनसे भी घरकी याचना करनी चाहिये। यह देवता या यह देवियाँ जैसे शुद्धाचारयुक्त हैं, वैसे ये भी शील और शुद्धाचारसम्पन्न हैं।

प्रद्वीष्टित मनुष्योंको चिकित्सा नियमपूर्वक जप

और होम करना है। प्रहशान्तिके लिये छाल रंगका मध युक्त पुष्पदार और सब तरहके आहारोप द्रव्यकी बलि देनी चाहिये। यही भूतोत्पातके जमन करनेका सामान्य साधन है। यज्ञ, मद्य, मांस, क्षीर, रधि आदि चीजें, प्रहोंके अनुरूप, दे कर उनके सन्तुष्ट करना चाहिये। जिस जिस दिन, जिस जिस समय प्रह मनुष्योंके शरीरमें प्रवेश करते हैं, उसी उसी दिन तथा उसी उसी समय भूतोत्पातकी शान्तिके लिये प्रहोंकी पूजा करना आवश्यक है। देवालयमें अग्निकी स्थापना कर होम और देवोंको बलि देना चाहिये। कुशा, अरबा चावल, आटा, घृत, छाता और क्षीर आदि चीजें गार्मोंके चबतरों पर दान करना चाहिये। चौराहे पर या भयङ्कर यनमें राक्षसोंको बलि देना चाहिये।

शास्त्रोंमें कहे हुए मन्त्रसे भूतोंकी बलि देना आवश्यक है। केवल बलि द्वारा ही भूतका उत्पात शान्त नहीं होता, उसकी दवा भी करनी चाहिये।

औषध—चकरी, भाल, सेहिया, पेचक (उल्क) इनके चमड़े और बाल तथा हिरू और बकरीका मूत्र, इन सब वस्तुओंको इकट्ठा कर धूँआर देनेसे प्रहदेवकी शान्ति होती है। गजपिप्पलीका मूल, शोंठ, मिर्च, पिप्पल, आंवला और सरसों, ये सब चीजें इकट्ठा कर गो, सर्प, बिल्ली और भालू-पिच्छमें भागना देना चाहिये। ये दवा सूँघने, देहमें मालिश कराने तथा भूताधिष्ठान निराकरण करनेके लिये बड़ा हितकर है।

गद्दा, घोड़ा, उल्क, हाथीका बन्धा, कुत्ता, सिपाय, (शृगाल), गृध्रिनी, काग और सूअर, इन सब जगृभूतोंकी विष्टा (मल) बकरीके मूत्रमें पीस कर तेलमें पकाना चाहिये। यह तेल भूत लगे हुए मनुष्योंके लिये बड़ा ही हितकर है। सिरोंसका बीज, लहसुन, शोंठ, सपेठ सरसों, बच, मजोठ, हल्दी, ये सब वस्तुएँ कूट कर चूर्ण बना कर बकरीके मूत्रमें मिला दो और उसकी यज्ञी बना लो इस वस्तुको छायामें सुखा कर इसका अन्न आँसुमें लगानेसे भूतका आघेग दूर हो जाता है। करबकी जड़, पिप्पल, मिर्च और शोंठ, तिकटू, सोनामूल, बैलकी जड़, हल्दी और दारुहल्दी, ये सब चीजें पकट कूट कर बत्ती बना लेनी चाहिये। इस बत्तीसे काजल तयार कर आँसुमें लगानेसे भूत भाग जाता है।

जो भूत अन्य देवताओं और उपचारोंसे नहीं भागते, वे इस अञ्जनसे भाग जाते हैं। सैन्धव (नमक सेंधा) त्रिकटु (पोपल, मिर्च और शोंठ) हिङ्गु, हरितकी (छोटी हर्) और घच, इन सब चीजोंको कूट कर बकरीके मूत तथा मछलोके पित्तमें अच्छी तरह पीस कर बत्ती बनाने पर इससे काजल तैयार करे और आंखमें यह काजल करनेसे भूत भाग जाता है। पुराना घी, लहसुन, हिङ्गु, सफेद सरसों, घच, सादो दूब, अजलोमी, शेफालिका शिवजटा, सेमलवृक्ष, लयङ्ग, कर्णविपाणिका, शूकशिम्यो, छोटी हर्, कांकड़ाशिङ्गी, मोहनबहोई, आकन्दमूल, त्रिकटु, लताञ्जन, स्रोतोऽञ्जन, अन्ननवृक्ष नैपाली, हरताल, सादो सरसों और सिंह, शेर, चोता, भाल, विहो, घोड़ा, गो, कुत्ता, भेड़, गो-सर्प, ऊँट, न्योला और सेहिया इनको विष्टा (मल), चमड़ा, बाल, भेजा, मूत्र, रक्त, पित्त और नख,—इन सब वस्तुओं द्वारा तेल और घी पका कर सुंधाने और खिलाने तथा अञ्जन करनेसे भूत भागता है।

उपर्युक्त औषधियोंका अञ्जन बनानेके लिए सबको पीस छालना चाहिये, और बटिका बना लेना चाहिये, इसी बटिकाको घिस कर आंखमें अञ्जन लगाना चाहिये। खाने और सेवन करनेके लिये घचाघ बना कर खाना और सेवन करना चाहिये। शरीरमें लगानेके लिये इन्हें पीस कर शरीरमें मलना चाहिये, इससे पका तेल और घी सेवन करनेसे शोष हो भूत भागता है। भूतका दूर करनेके लिये किसी तरहकी अयोग्य औषधियोंका प्रयोग न करना चाहिये, देव-गृहकी तरह इसकी शान्ति करनी चाहिये। मकानके जिस कमरेमें गृह-देवता हों उसी कमरेमें यह शान्ति कराना चाहिये। पिशाच-प्रतिक्रियाके सिवा कभी भी कोई प्रतिफूल आचरण करना उचित नहीं। भूताधिष्ठानके प्रतिफूल आचरण करनेसे भूत उस मनुष्यको तथा वैधकी बहुत तंग करता है। और तो क्या, कभी कभी दोनोंको जान खतरमें पड़ जाती है। अतएव वैधकी सावधान होकर हिताहितका ध्यान रख कर कार्य करना उचित है। (वैधक)

पहले जिन सब भूतोंके उत्पातका वर्णन कर चुके हैं, यह अधिक उम्रके पुरुषोंके लिये है। इसके सिवा बालकों

पर आक्रमण करनेवाले कई ग्रह और हैं। सुश्रुत आदि वैद्यक ग्रन्थोंमें भी प्रकारके ग्रहोंका उल्लेख है। इनके नाम इस तरह हैं:—स्कन्द, स्कन्दापस्माद, शकुनि, रेवती, पूतना, अन्धपूतना, शीतपूतना, मुखमण्डिका और नैगमेश इसके सिवा अनेक वैद्यक ग्रन्थमें भूतरूपिणी मन्दाता, सुनन्दा, मुखमण्डिका, कटपूतना, शकुनिका, शुकरेवती, अर्षका, भूसूतिका, निम्बता, पिलिपिटिका और कामुका इन ग्यारह माताओंके उपद्रवोंकी बात भी लिखी है।

धात्री या नौकरनीकी असावधानता तथा माताके पहलेके किये हुए अपकार तथा मङ्गलाचारके न होनेसे तथा शुद्धि न रखनेके कारण ही बालकोंको भूतकी हवा लग जाती है। बालकको भूतकी हवा लग जानेसे यह कभी भयसे चिहुक उठता है, तथा चमक उठता है और कभी बालक हंसता या रोने लगता है। पूजाके लिये भूत बालकोंकी प्रतिहिंसा किया करते हैं। भूतोंको बलि देनेसे वे संतुष्ट होते हैं। फिर बालक भी आरोग्य हो जाते हैं।

नवग्रह और बालग्रह देखो।

पुराण और तन्त्रोक्त मूल।

उपर्युक्त भूतोंके सिवा पुराण, विशेषतः तन्त्रशास्त्रमें भी नाना भूत-प्रतीका वर्णन दिखाई देता है। इनमें भैरव ही प्रधान हैं। अग्निपुराणके ३२२वें अध्यायमें शाकिनी, क्षेत्तपाल और वैतालकी चर्चा है। स्कन्दपुराण दक्षखण्डमें दक्षपत्न्या विनाशके लिये डाकिनो आदिकी उत्पत्तिकी बात लिखी हुई है। किन्तु प्राचीन पुराणोंमें इन सब भूत-भूतनियोंका कोई विशेष परिचय नहीं मिलता। तान्त्रिकताके प्रभावसे भूतका विश्वास भी दृढ़तर होता गया साथ ही भूत-भूतनियोंका असंख्य मूर्त्तियोंकी कल्पना होने लगी। पुराणोंमें गणपति या गणेश ही भूतोंके मालिक बतलाये गये हैं। स्कन्दपुराणके ब्रह्मखण्डमें भूत गणपति मन्दिरके द्वारपालरूपसे पुकारे गये हैं। (अध्याय ११) किन्तु तन्त्रशास्त्रमें भैरवी ही भूतोंमें श्रेष्ठ गिनी जाती है। देवताओंके अनुसार इनको भी पूजाका विधिविधान लिखा हुआ है। पीछे तान्त्रिकगण निम्न-श्रेणीकी भूत-पूजामें भी विशेष रत होने लगे। इसीलिये शारदा-तिलकमें बटुकभैरवके साथ

आकिनी, राकिणी, टाकिनी, काकिनी, जाकिनी, हाकिनी और मालिनी तथा इनकी सन्तानोंकी पूजाभी दृष्टिगोचर होती है।

दुर्गास्त्वयके समय यह भूत-भूतनो दुर्गादेवीकी सहचरीरूपसे भी पूजा पाया करती हैं।

शाकिनी, हाकिनी आदिकी मूर्ति या सुरत किस तरहकी है, यह तन्त्रमें स्पष्टरूपसे वर्णित नहीं है। किन्तु इसका आभास जरूर मिलता है कि उनकी मूर्ति अत्यंत भयङ्कर है। भयङ्करतमें छिन्नमस्ता, चामपार्श्वस्थ हाकिनी, दक्षिणी वर्णिनीका रूप इस तरह वर्णित है।

वर्णिनीका रूप—बहुत लाल, फिर भी सुन्दर, पीले रङ्गके बाल, नग्न शरीर, बायें हाथमें मुर्देकी घोपड़ी और दाहिने हाथमें कटार, गलेमें सांपका जनेऊ, मुखमें चमक मानो अग्निकी तरह जल रही हो, शरीर छोटा और हाड़की माला आदि आभूषणोंसे ढका, किन्तु उग्र केवल बाह्य वर्णकी है।

आकिनीका रूप बड़ा भयङ्कर होता है। देखनेसे मालूम होता है कि कहांका प्रलयकालीन सूर्य उदय हो गया; माथमें जटा, मानो बिजली चमकती हो, आंखें तीन, दंशन पंक्ति बगुलेकी पांखकी तरह सफेद, किन्तु मुख-वियर फीसा है—अति प्रचण्ड और विकट मुख, स्तन या पयोधर बहुत पतले किन्तु लम्बे, पीले बाल, लकलक जोभ, मुण्डमालासे भूषित, बायें हाथमें चौड़ी और दाहिने हाथमें कटार, फीसा भयप्रद रूप है। चौड़ीसे छिन्नमस्ताके गलेसे गिरते हुए रक्तकी पो रही है।

हिन्दुशास्त्रमें यह साफ लिखा हुआ है कि भूतांग होनेसे ऐसा न रामभक्ता चाहिये कि भूत मनुष्योंके हृदयमें आश्रय प्रदण करते हैं। क्योंकि भूत मनुष्योंके साथ घसो-वास नहीं कर सकता, अथवा कभी मनुष्य शरीरमें प्रवेश नहीं करता। जो भूतविद्याको नहीं जानते वही ऐसा कदा करते हैं। इस देशके कितने ही लोगोंका ऐसा क्याल है, कि भूतकी दृष्टि पड़ने पर अथवा भूतकी हवा लगने पर भूतावेग हुआ करता है।

भूतको दूर करना।

भूतकी हवा लगने पर ऐसे कई तरहके मन्त्र और पन्त हैं, जिनकी द्वारा भूत भगाये जाते हैं। किस तरह

भूतकी हवा लगी, इसका निबटारा उसके लक्षण देखनेसे किया जा सकता है जिस मनुष्यको भूत लगा हो। जैसे अग्निपुराणमें लिखा है—“पश्चांशो भूषणप्रियः”

“गन्धर्वोऽस्ति गोतादिभीमांगो राक्षसाशकः।

दैत्याः स्वाद् मुद्रकाय्यो मानो विद्याधराशकः॥

पियाचांगो भ्राजाकान्धो मन्त्रं दद्यान्निरीक्षण च॥”

भूतावेगमें च्छांश रहने पर मनुष्य आभूषण-प्रिय, गन्धर्वोंगमें माने वजानेका शीकीन, राक्षसांश रहने पर राक्षस-प्रकृति, दैत्यांग रहने पर मुद्रकी प्रकृति, विद्याधरके अंगमें अत्यन्त गर्वयुक्त और पिशाचांशमें मनुष्य ग्लेश्च-आवापन्न हो जाता है। यह सब देव, सुन कर मन्त्रका प्रयोग करना चाहिये।

गद्यपुराणमें प्रेतसे डूटनेका उपाय इस तरह लिखा है,—सुवर्णकी मूर्ति बनाना, उसे सब तरहके गहनेसे भूषित करना, यह मूर्ति पीले च्छांसे ढकी रहनी चाहिये और अगस्त्यन्दनसे चर्चित कर तथा तिलक आदि कर नारायणकी देवमूर्तिकी कल्पना करनी चाहिये। पीछे इसी मूर्तिकी विविध प्रकारके जलसे अभिषिक्त कर प्रतिष्ठा तथा पूर्वकी ओर श्रीधरका, दक्षिणमें मधुसूदन, पश्चिममें वामन, उत्तरमें गदाधर और बीचमें ब्रह्मा और महेश्वरकी पूजा करनी होगी पीछे इस मूर्तिकी प्रदक्षिण कर अग्निमें देवताओंके लिये तथा घृत, दधि और क्षीर द्वारा विश्वदेवताओंके लिये तर्पण करना चाहिये। इसके बाद स्नान कर विनोत भाव और शान्तचित्तसे जपमें मग्न हो कर पहले नारायणकी विधिवत् औद्धैहिक क्रियासम्पन्न करनी होती है। विनोत भावसे और कोप-ह्रीमशून्य हो कर कार्य आरम्भ करना चाहिये। सब तरहकेआध हो जाने पर चूपोत्सव किया जाता है। इसके बाद सत्रह ब्राह्मणोंकी अन्न, पादुका, अंशुडी, रत्न, फाल, आसन और भोग्य पदार्थ प्रदान करना चाहिये। प्रेतके मङ्गलके लिये अन्नजल पूर्ण कण्डस और जप्या घट आदि दान करना चाहिये। अन्तमें नारायणके नामसे सम्पूट कर मन्त्रोच्चारण करना चाहिये।

विधिपूर्वक इस तरह कार्य करनेसे हाथोहाथ शुभ फल प्राप्त होता।

उद्दीश, डामर, शावर आदि बहुतेरे ग्रन्थोंमें भूत भाड़ने-के मन्त्र, यन्त्र, चक्र, कवच (तावीज) औषध तेल, वस्ती, अञ्जन, नस्य आदि बहुतेरे उपाय बतलाये गये हैं। नीचे दो एक प्रक्रियाओंका उल्लेख करेंगे।

वधन मन्त्र—भूत भाड़े जानेसे पहले ओम्भा धरती बांधते हैं, (धमर) वंधनका यह मन्त्र है—'ॐ अईं ह्रीं पुं पुं सिद्धे भवति भवति स्वाहा। ॐ दशाङ्गुलि मिन्दलि विरुन्तहारी भैरुन्त भैरवी विप्राराणी, रोणावन्ध, मुष्टिवन्ध, कृत्यवन्ध, रुद्रवन्ध, भैरववन्ध, ग्रहवन्ध, प्रेतवन्ध, भूतवन्ध, राक्षसवन्ध, फड्कालवन्ध, वैतालवन्ध, पातालवन्ध, आकाशवन्ध, पूर्व-पश्चिम उत्तर-दक्षिण सर्वदिशावन्ध, घे आच कह कह इस इम भवति, भवति भवति दशाधिप्राणी दशांगुली शताखवन्धिनी वन्धासि फट स्वाहा।'

उपयुक्त मन्त्र द्वारा चारों ओर रेखा खींच कर उसके बीचमें बैठ जाने पर भूतोंका उपद्रव नहीं होता।

'हूँ हूँ' अग्निवा मञ्जीवन्ध, निमिनापने नमानिके स्वाहा'

इस मन्त्रसे डाकिनो बांधो जाती है। डाकिनोका मुण्ड बांधनेके लिये "ॐ मरालं सरालं करे ॐ स्वाहा" यह मन्त्र पढ़ना चाहिये।

भूतको दमन करनेके लिये यह मन्त्र है—"ॐ ह्रीं कुरु कुरु स्वाहा" इस मन्त्रसे डाकिनो और राक्षस भागता है।

"ॐ नमो भगवते महानीलोटपल नल-जाम्बुवत्-वालिसुधोवाङ्गद-हनुमन्तसहिताय वज्रहस्तेन शाकिनोनां हन हन दम दम मारय मारय भेद्य भेद्य छेद्य छेद्य सव दोषाद् आकर्षय ओं ह्रीं ह्रीं हूँ फट स्वाहा" इस मन्त्रसे शाकिनी-दमन होता है। "ॐ अयोरे अयोरे रेवे घोसुलि चामुपडे उद्ध्वं कसि हीं ह्रीं हूँ स्वाहा" इस मन्त्रको पढ़ कर सरसों मारना चाहिये।

भाड़नेवाला मंत्र,—

"तेलिनोके तेलका पसार चौरासो सहस्र डाकिनोका तेल, इस तेलका भार मैंने तेल पढ़ दिया, अमुकके जंगमें अमुकका भार। भाड़दलशूले यक्षा यक्षिणो दैत्य दैत्यानी, भूता भूती प्रेता प्रेती दानया दानवी निशा-चौर, सूचीमुखा गाम्बरुलवम् चारुहभया लाड़ी भोगाई चामो पिशाचो अमुकके अङ्गमें घाउ कालजटाका माथा

खाउ, 'ह्रीं' फट स्वाहा' सिद्धि गुरुचरण राढ़की कालि-चण्डीकी आशा ॥" यह मंत्र पढ़ कर सरसोंका तेल पढ़ कर मारे तब भूत भाग जायगा। इसी तरह कई मन्त्र और भी हैं।

जल पढ़नेका मंत्र,—

"ॐ आं श्रीं हूँ मार हस्त गां ह्रीं कारे समस्त दोष हर हर विगर विगर हूँ फट स्वाहा" इस मन्त्रसे जल परोर कर भूतसे सताये हुए मनुष्यकी पिला देना चाहिये और कुछ उसको देह पर भी छोंट देना चाहिये उस समय कच्चे नामको पत्तोका धूँआ देना चाहिए ऐसा करनेसे दैत्यदानवादि भाग जाते हैं।

भूत शान्तिको दवा—(१) सादा अपराजित्की जालनीके जलसे पोस कर उसका नस लेनेसे भूत छोकर भाग जाता है। (२) मिर्चके साथ चक्र फूल रण सूंधिये। (३) सांपका केचुल, दिगु, नीम-पत्ती, यव अंसादा सरसों एक साथ पोस कर उसको मालिश करना चाहिये। (४) गोरौचन, मिर्च, पीपल, नमक और शहद मिला कर उसका अञ्जन बना कर आंखमें लगाना चाहिये, तिकटु (पिपली, मिर्च, सोठ) डहरकरज, देदारु, मञ्जीठ, त्रिफला, कण्टकारी (सादा), मिरीहल्दी, दाग हल्दी, मञ्जीठ, त्रिफला (हर, वहेड़ा, आंवल) और नीम गोमूदमें पोस कर नस लेना चाहिए और गरीरमें मालिश करना, स्नान करना और उसके हांगल मार्जन करना चाहिये। इत्यादि तरह तरह उद्योगसे भी भूत भागता है।

भूतके भयसे बचनेके लिये कितने ओम्भा यन्त्र दिए करने हैं। यहां एक यन्त्रके चित्रका उल्लेख करते हैं

दो वृत्त खींच कर उसमें चार मायावीज लिखन चाहिये। उसके वहिभागमें दो चौकोन खींच कर यपरहनेसे फिर डाकिनो आदिका कुछ भय नहीं रह जात और तो क्या, इससे मृत्युवत्सा रोग दूर हो कर खियोंपुल उत्पन्न होता है।

कवच—भूत-प्रेत आदिका भय भगानेके लिये तर तरहके कवच या तावीज भी हैं, ऐसी तावीजें भोजन पर लिखी जाती हैं। इन कवचोंमें तृसिंहकवच ही सबसे उत्तम कवच है। कितने ही लोगोंका विश्वास है कि



कवच विगुह तथा मीषु और ककोर द्वारा दिये जनि पर  
 उलसे, पहनेने मनुष्यको भूत, प्रेत, पिशाच दैत्य, दानव  
 आदिका रूपशं नहीं हो सकता है। कवच देखते ही  
 सब भाग जनि है। और तो क्या, इस कवचसे मृत-  
 वत्सा तथा काकवन्ध्या आदि जन्मवन्ध्याओंके भी  
 मुक्त हुआ करता है। भोजपत्र पर श्लोकादि लिख कर  
 उस नृसिंहकवचको धारण करनेसे पहले पञ्चगव्यसे  
 गुह और उसको पूजा कर लेना चाहिये। जैसे,—

नारदका कवच ।

अथ नृसिंहकवचं । ॐ नमो नृसिंहाय ॥  
 इन्द्रादिदेवयूदेना तातेश्चर जगत्पतेः ।  
 महाविष्णोर्नृसिंहस्य कवचं प्रदि मे प्रमो ।  
 यस्य प्रपठनाद्विद्वान् वैलोपयचिजया भवेत् ॥

ब्रह्माका कवच ।

शृगु नारद यज्ञामि पुत्रक्षेत्र तपोधन ।  
 कवचं नरसिंहस्य शैलोत्सयिजयाभिधम् ॥  
 यस्य प्रपठनाद्ब्रह्मा शैलोत्सयिजयी भवेत् ।  
 यथाहं जगती वत्स पठानाद्धारणाद्दत्ताः ॥  
 दत्तमीर्जगत्य पाति संहतां च महेश्वरः ।  
 पठनाद्धारणाद् वा यमभूश्च दिगीश्वराः ॥

ब्रह्ममन्त्रमयं वक्ष्ये भूतादिविनिवारकम् ।  
 यस्य प्रसादाद् दुर्गागाम्ने लोत्सयिजयी मुनिः ॥  
 पठनाद्धारणाद् यस्य शान्तरच क्रोधमैत्रवः ।  
 शैलोत्सयिजयस्यापि कवचस्य प्रजापतिः ॥  
 शृण्विच्छन्दोऽस्य गाथयो नृसिंहो देवता विभुः ।  
 श्लो वीजं मे दिशः पातु चन्द्रबर्षां महामनुः ॥  
 उग्रं वीरं महाशिल्प्युं ज्येष्ठान्तं गन्धर्वोमुत्तमम् ।  
 नृसिंहं भीषण्यं भद्रं मृत्युमृत्युं नानाम्बहम् ॥

दापि सदाहरो मन्यो मन्यराजः सुदुर्ममः ।  
 कपटं पातु ध्रुवं श्लो ह्युभगवते चन्द्रपी मम ॥  
 नरसिंहाय ज्याप्तामाग्निं पातु मत्सर्वः ।  
 दीप्तं दृष्ट्वा तथान्तिशाय च नाथिकां ॥  
 सररशोभाय सर्वम सुविनाशाय च धर्मेत्वरविनाशाय  
 दह दह पच पच ह्यं ।

रश्मि रश्मिं चाग्र ह्लादा पातु मुखं मम ॥  
 शारादिरामचन्द्राय नमः पापाद्गुरं मम ।  
 यन्मि पादात् पारंभुगमन्थ शारो नाम, पदं शतः ॥

नारायणाय वारतं च्च मां ही श्रीं च्च हुं पदं ।  
 पद्मरः कटिं पातु ॐ नमो भगवते पदं ॥  
 गानुदेवाय पृष्ठं कर्मी कृन्त्याय कर्मी उहदपम् ।  
 कर्मी कृन्त्याय सदा पातु जानुनी च मनुषामः ॥  
 कर्मी ग्लो कर्मी श्यामताहाय नमः पापात् पददपम् ।  
 श्रीं नृसिंहाय श्लोच यन्मिं मे उदावतु ॥  
 इति ते कवचं वत्स सर्वमन्त्रीयधिप्रहम् ।  
 तव स्नेहान्मवाख्यातं प्रवचस्यं न कस्यचित्तः ॥

गुरुपूजा विधायाप गृहीयात् कवचं ततः ।  
 सर्वपुण्ययुतो भूत्वा सर्वसिद्धियुतो भवेत् ॥  
 शतमन्त्रोत्तरजापि पुरश्चर्याविधि स्मृतः ।  
 ह्यनादीन् दयाशीन इत्या तत् शापकोत्तमः ॥  
 ततस्तु सिद्धकवचः पुण्यात्मा मदनेपमः ।  
 स्पदर्शानुद्भूय भवने ददमीर्षयी बरोरातः ॥  
 अपि वर्षसदस्ताप्या पूजायाः फलमाप्नु मात् ॥

भूजं विहितस्य शुद्धिकां शर्षासां भारयेद् यदि ॥  
 कपटे वा दक्षिणे वाही नरसिंहो भवेत् त्वायम् ।  
 योषिद्रामभुने चैव पुरुषो दक्षिणे परे ॥  
 विभृयात् कवचं पुण्यं सर्वसिद्धियुतो भवेत् ।  
 काकवन्ध्या च या नारी मृतवत्सा च या भवेत् ॥  
 जन्मवन्ध्या नष्टप्रा बहुपुत्रयती भवेत् ।  
 कवचस्य प्रसादेन जीयन्तुको मनेभ्रः ॥  
 शैलोत्सय क्षोभयत्येव शैलोत्सयिजयी भवेत् ।  
 यत्प्रेताः पिशाचाश्च राक्षसां क्षान्ताश्च ये ॥  
 तं दृष्ट्वा प्रसन्नान्ते दैशाद्देशान्तरं ध्रुयम् ।  
 यस्मिन् गृहे च कवचं ग्रामे वा यदि तिष्ठति ॥  
 तं देहन्तु परित्यज्य प्रवान्ति चातिदूरतः ॥”

इसके सिवा भूतके शान्तिके लिये या भूतोंके भयसे  
 बचनेके लिये विविध प्रकारके स्तोत्र भी देखे जाते हैं ।  
 इन स्तोत्रोंमें चटुकर्मरवस्तोत्र और चिपरीत-प्रत्याङ्गित-  
 स्तोत्र प्रधान हैं। भूत पिशाचकी शान्तिके लिये धन-  
 दुर्गा, द्वादश दानव ( बारह भार ) और रणयक्षिणोकी  
 पूजाकी व्यवस्था भी है ।

वनदुर्गाकी पूजा ।

पवित्र स्थानमें एक घेदो बना कर उसमें चारों ओर  
 घेदोका समाना गाड़ना चाहिये । समालपत्र पर षाड

कमलोंको मण्डलाकार रख कर उस पर सिन्दूरसे विभू-  
पित घटकी स्थापना करनी चाहिये । पहले शुद्धा-  
सन पर वैद्य हाथमें कुण्ड ले आचमन कर स्वस्तिवाचन  
कर यह मन्त्र पढ़ना चाहिये—

“सूर्यः सोमो यमः कालः सन्ध्ये भूतान्यहः क्षया ।

पवनो दिक्पतिर्भूमिराकाशं खचरामराः ॥

महा' शासनमास्थाय कल्पध्वमिह सखिभिम् ॥”

इसके बाद फल फूल और जलपूर्ण ताम्रपत्र ले विष्णु-  
रोमघोत्यादि अमुक गोलः श्रीअमुकदेव्यगर्मा घनदुर्गा-  
प्रीतिकामः कृष्णकुमारादिसहित चतुर्गुणैर्धो-पूजनमहं  
करिष्ये ।” इसी तरह सङ्कल्प कर अपनी शाखाके कड़े हुए  
सूत पाठ करना चाहिये, पीछे आसन शुद्ध कर नीचे लिखे  
मन्त्रका पाठ करना चाहिये—

“ॐ अणुसर्वन्तु ते भूता ये भूता शुचि संस्थिताः ।

ये भूता विप्रकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाशया ॥”

इस मन्त्रसे भूतापंशरण कर सामान्यव्यं स्थापन पूर्वक  
‘गो हृदयाय नमः’ इत्यादि क्रमसे अङ्गन्यासादि करना  
चाहिये । इसके बाद ‘श्वेत्स्मृततनु’ गजेन्द्रघटनं  
लम्बोदरं सुन्दरं’ इत्यादि मन्त्रसे गणपतिका ध्यान और  
वाहरीपूजा कर ‘पद्मदन्त’ इत्यादि मन्त्रसे प्रणाम करना  
उचित है । और शिवादि पञ्चदेवता, आदित्यादि नवग्रह,  
इन्द्रादि दश दिक्पाल, मत्स्यादि दश अघतार, ब्रह्मा,  
विष्णु, महेश्वर, गङ्गा, यमुना, लक्ष्मी और सरस्वतीदेवी-  
के नामसे पहले ‘ॐ’ और नामके अन्तमें नमः जोड़ कर  
पायादि द्वारा पूजा और नमस्कार करना चाहिये । भूत-  
शुद्धि और प्राणायाम कर श्रद्धादिन्यास और कराङ्ग-  
न्यास कर गुरुपंक्ति नमस्कार कर कूर्मसुद्राक्रमसे फूल  
हाथमें ले कर इस तरह ध्यान करना चाहिये—

“ॐ देवीं दानवमातरं निजमदपूर्वानमहालोचनाम् ।

दंष्ट्रामोमगुलीं जटालविलमन्मलीं कपालसज्जाम् ॥

बन्दे लोकभयङ्करां घनशक्तिं नागेन्द्रहरोन्मज्जलां

सर्पावद्वनितम्बिन्बिम्बिपुलां वापायान् धनुर्विभूतीम् ॥”

इसका ध्यान कर अपने शिरमें फूल छुआ कर मानसो-  
पचारसे पूजा, विशेषतः अर्घ्य दान, पीठपूजा, पुनः अङ्ग-  
न्यास कराङ्गन्यासादि कर फिर ध्यान करना चाहिये और  
घड़ें में फूल डाल कर देवीका आवाहन करना उचित है ।

‘ॐ दुर्गे दुर्गे रक्षणि स्वाहा’ इस मन्त्रसे आसन,  
‘ॐ ह्रीं वन्दुर्गाय नमः’ इत्यादि क्रमसे षोडशोपचार द्वारा  
यथासम्भव पूजा कर प्रणाम करना चाहिये । इसके  
अनन्तर ‘ॐ क्षूं क्षूं क्षिं क्षीं क्षूं क्षूं क्षूं क्षूं क्षूं क्षूं क्षः  
क्षेत्रपालाय नमः’ इस मन्त्रसे पायादि द्वारा पूजा करना  
चाहिये । पीछे न्यासादि कर यथाविधि ‘द्वादशदानव’  
वारहमह्या और उनकी बहन रणयक्षिणीको पूजा करनी  
चाहिये ।

द्वादशदानव ये हैं—कृष्णकुमार, पुष्पकुमार, रूप-  
कुमार, हरिपागल, मधुभाङ्गर, रूपमाली, गाभूण्डलन  
मोचरासिंह, निशाचौर, सूचोमुख, महामल्लिक और  
वलिभद्र ।

कृष्णकुमारका ध्यान—

“ॐ कृष्णवर्णो महाकायं खड्गखट्वाङ्गधारिण्यं ।

श्वेताम्बवाहनं दैत्यं रक्तमाख्यानुलेपनम् ॥

स्मेराख्यं सुन्दरस्कन्धं पिङ्गान्तं पिङ्गकेशकम् ।

बन्दे कृष्णकुमारश्च भयदं पीतवाससम् ॥”

पूजाका मन्त्र—“ॐ कां कीं कूं कैं कीं कः कृष्णकुमाराय  
नमः ।”

पुष्पकुमाराका ध्यान—

“ॐ पुष्पहस्तं महाकायं पुष्पचापकरं परम् ।

पुष्पमालाधरं कान्तं दिव्यगन्धानुलेपनम् ॥

रक्तारववाहनं क्रूरं रक्ताख्यं रक्तवाससम् ।

ततकाञ्चनवर्षाम् बन्दे पुष्पकुमारकम् ॥”

पूजाका मन्त्र—“ॐ पुष्पाय पष्पहस्ताय स्वाहा । ॐ पुष्प-  
कुमाराय नमः ।”

रूपकुमाराका ध्यान—

“ॐ बन्दे कान्चनवर्षाम् दिग्भुजं शूलहस्तकम् ।

सुन्दरात् सुन्दरं कान्तं नानापुष्पधारिण्यं ॥

रक्तनेत्रं रक्तवस्त्रं रक्तमाख्यानुलेपनम् ।

ध्यात्वैवं पश्येदीमान् दैत्यं रूपकुमारकम् ॥”

पूजाका मन्त्र—‘रूपकुमाराय नमः ।’

हरिपागलका ध्यान—

“ॐ उन्मत्तवैद्यं करपद्मजायाम् भूतं लघुदं परशुं सपाशम् ।

आचूर्णितं निजमदैः स्वक्षितं मुकान्तं यजेन्महास्तं

हरिपागलाख्यं ॥”

पूजाया मन्त्र—'ॐ श्रीं हूं' हरिपागहाय नमः ।'

सुभुमांगरहा भयान—

'ॐ रस्तामनेन विमुक्तस्वभावं मदा जगन्तं परिपूर्णावस्थाम् ।

सात्त्विकं निरामयैः स्फुरित्वासादं धरादेत् सुदेव्यं

सुभुमांगरायम् ॥'

सुभुमांगरही पूजाया मन्त्र—'ॐ मां मां मी मी मी मः

सुभुमांगराय नमः ।'

स्वभागीया ध्यान—

'स्वभावापरं स्वयं स्वमस्व' ननुमुं जम् ।

शून्यवस्वराभावं भागिण्यं सुमनोहरम् ॥

कृष्णान्-व्याप्तं कान्तं नुमां स्वधारिणम् ।

दोषहस्तं दीर्घनामं पाशतटवांगधारिणम् ॥'

पूजाया मन्त्र—'ॐ श्रीं हूं' स्वभासिने नमः ।'

गाभूरुदनका ध्यान—

'ॐ दीर्घानं दीर्घकायं पाशतटवाङ्गधारिणम् ।

कृष्णवर्णा रक्तनेत्रं कन्दर्वायुं शून्योदरम् ॥

स्वतयजधरं कूर्चं रस्तामन्धातुनेनम् ।

गाभूरुदरमं धन्ते सर्वलोकभयद्वरम् ॥'

पूजाया मन्त्र—'ॐ गाभूरुदनाय नमः ।'

मांशरासिंहा ध्यान—

'ॐ रस्तामनेनो भयदो जनानां शून्यं त्रयार्णं करपद्मनेन ।

स्वताम्यहस्तः विमुक्तस्वभावाः यदा जराभीममुल्लो विभानि ॥'

पूजाया मन्त्र—'ॐ मां मांशरासिंहाय नमः ।'

विशालीला ध्यान—

'ॐ कृष्णवर्णा रक्तनेत्रं निताचीरं भयानकम् ।

परितहस्तं दीर्घनामं निकटस्थं दिगम्बरम् ॥

करातरुनं भीमं शुकदेहं शून्योदरम् ।

धरादेत् मदा क्रोधायुतं घटात्स्वर्गादिनं ॥'

पूजाया मन्त्र—'ॐ मां मीं निशालीलाय नमः ।'

शून्योदरका ध्यान—

'दोषस्त्विनेनः विमुक्तस्वभावाः मदा कृष्णो भयदो जनानाम् ।

सुभुमांगरही निरमः प्रसादी मृत्कान्तहस्तो विमुक्तो यमो ॥'

पूजाया मन्त्र—'ॐ मां हूं' सुकोदुवाय नमः ।'

महाभारतिका ध्यान—

'ॐ तिरासनेनः परिपूर्णावस्थो

राशौःगमातेभेपदो जनानाम् ।

करात्पद्मं कन्दमालकयः कन्दमन्त्रं बुद्धिः शून्याः ॥

भीमन्महाभारतिका एव भाति योगमुसारी विमुक्तो जटोपा ।

स्वर्वांगभारी सुकान्तगानी सादृक्षचम्पारहायनः ॥'

पूजाया मन्त्र—'ॐ मां महाभारतिकाय नमः ।'

बलिभद्रका ध्यान—

'ॐ कृष्णांगवस्त्रः स्वर्वांगभारिः सकोपनेनः कविनाम्भेः ।

स्वर्वांगहस्तः रस्तमराशो स वाजिभद्रः पशुसिंहवासः ॥'

स्वयन्निर्गोका ध्यान—

'ॐ दीर्घां दीर्घिका मुष्कुचमुगला धोरदंष्ट्रां करान् ।

रस्तामो कृष्णवर्णां परिस्वयकहस्तः सुपदमालाशुभां ॥

घटात्स्वर्वांगवासं परसुगविभृता शीघ्रचम्पानिदा ।

नित्यं मांतास्त्रिमन्त्रा चक्रपुत्रगता वक्रिणी दीर्घित्वा ॥'

पूजाया मन्त्र—'ॐ श्रीं हूं' स्वयन्निर्गोकाय नमः ।'

पञ्चावचारसे पूजा, यथाशक्ति प्रायाशाम, बलिदान, शौग

और दक्षिणा दे कर पूजा एतम करना चाहिये ।

पहले हम देनामें जैसे ओम्हा थे, यैसे अब हम स्वय

नहो दिताई देते । पहलेके ओम्हा टारनोंको तथा भूमी-

को प्रत्यक्ष नचा देते थे । पाश्चात्य-हवाके लगने तथा

उत्तरोत्तर योग्य मुख्यके अभावमें दस विद्याका जाल प्रायः

लोप हो रहा है । बालकपनमें हमने जैसे गुणी ओम्हा

देने हैं, उनका अब नाममाल सुनाई देता है ।

तिष्ठतमें भूतिया ।

तिष्ठत और चोचमें ताहोंके लोग भूतमें बहुत

उरते हैं । उनके धर्मप्रशुभोंमें उद तरहके भूत प्रेतोंका

उहें प है ।

हिन्दुओंको तरह तिष्ठतके लोग भी मनुष्यके मरने

पर प्रेतको प्राप्ति स्वीकार करते हैं । उनका विश्वास

है, कि गमलोक और नरकमें तथा राजगृहोंके निकट

मितवनमें भूतप्रेतोंका लोक विद्यमान है । इहलोकमें जो

बर्षलोलुप, छपण, परधनहरण करनेवाले तथा पेट्ट होते

हैं, यही मरने पर भूत प्रेत हो भूय त्यागसे व्याकुल

हुमा करते हैं । हिन्दुओंमें जैसे पिण्डदानादि और

श्राद्ध करनेसे प्रेतोंके लुप्त होनेका विश्वास है, उसी तरह

तिष्ठतयालोकोंको भी विश्वास है । महालयार्क दिन जैसे

हिन्दू-पितरों तथा प्रेतोंको मुक्तिके लिये पिण्ड तर्पण आदि

क्रिया करते हैं, उसी तरह तिष्ठतोंको भी यात्रकों द्वारा

उत्तम भोजन और पानीय द्रव्य प्रेतोंके समुत्पिके लिये

प्रदान किया करते हैं। उन लोगों का विश्वास है कि इस दिन (महालयके दिन) उत्तम उत्तम भोजन और पानीय द्रव्य प्रदान करनेसे प्रेत मुक्त हो कर स्वर्ग जाते हैं।

प्रंतरानी हारिती।

हिन्दू तन्त्रमें भूत-शान्तिके लिये जैसे रणयक्षिणीकी पूजाका विधान है, वैसे ही बौद्धोंके रत्नकूटसूत्रमें हारिती नामकी एक यक्षिणीकी भी पूजाका विधान दिखाई देता है। यह यक्षिणी भूखे प्रेतोंकी रानी है। इसका भी प्रज्वलित मुखमण्डल और ५०० सन्तानें हैं। हारिती अपनी सन्तानोंको जीवित शिशु पकड़ कर खिलाती थी। एक दिन बुद्धमहामुद्रल-पुत्र हारितीके घर गये। उन्होंने यक्षिणीके पुत्र शिशु पिङ्गलको अपने कमण्डलुमें छिपा लिया। अपने शिशुको न देख हारिती छटपटाने लगी। अन्तमें यह सर्वाङ्ग महामुद्रल-पुत्रके समीप जा कर शिशुके लिये रोने लगी। तब बुद्धने कहा,—बड़े ही आश्चर्यका विषय है, अपनी ५०० सन्तानोंके साथ वर्षमें द्वाित्वां ही मानव सन्तानोंको खा जाती हो, तब तुम्हें जरा भी कष्ट नहीं होता, किन्तु आज इतनी सन्तानोंके रहने हुए भी तुम्हारा एक लड़का खो गया तो तुम्हें इतना कष्ट हुआ है और तुम बार बार रो रही हो। इस समय हारितीने प्रतिज्ञा की कि यदि मैं अपने इस प्रियतम पुत्रको पाऊँगी तो फिर कभी मनुष्यके शिशुको नहीं खाऊँगी। तब बौद्धने यक्षिणीके पुत्र पिङ्गलको प्रकट कर दिया। उन्होंने कहा, प्रत्येक बौद्धयति तुम्हारे लिये भोजन करते समय एक एक प्रास निकाल देंगे।

नेपाल, तिब्बत, चीन-आदि स्थानोंमें बौद्धमन्त्रिके दरवाजे पर हारितीकी मूर्ति रहती है। इसकी पूजा करनेसे भूत-प्रेतकी कोई आशङ्का या डर नहीं रहता।

डाकिनी और मातृका।

तिब्बतीय बौद्धशास्त्रोंमें नाना नाथ (गौ-पो), कई तरहकी डाकिनी (भू-सो-मा) और माताओंका उल्लेख है। एक एक डाकिनी एक एक नाथ या डाकिनीकी स्त्री है। नाथ भी महाकालीकी एक सेनानी है। डाकिनियोंमें सिंहकी गर्दनवाली डाकिनी प्रधान है। लास्या (नेम्-मो-मा), माला (प्रे-वा-मा); गीता (लूमा), नृत्या

(गरमा), पुष्पा (मे-त्तो-मा) धूपा, (तुग-पो-समा) वीपा (नेङ्ग-सल-मा) और गंधा (ट्रिचा-मा) ये आठ माताएँ हैं। इनके सिवा हयप्रोव (तम्-दिन) और महाकाल बहुत करके भूतोंका राजा कह कर पूजा जाता है। भूतोंमें प्रेत (यि-डु-घ), कुम्भाण्ड (मुल-युम), पिशाच (सा-जा), भूत (द्यु-पो), पूतना (थुल-पो) कटपूतना (लूस्-थुल-पो), उन्माद (म्यो वेद), स्कन्द (भ्येम-वेद्), अपस्मार (त्रजेद् वेद्), यक्ष (प्रोव-शेन), रक्षः (फिन् पो) रेवती (नम्-गु-हि-दोन्), शकुनी (व्यहि-दोन्), ब्रह्मराक्षस (ब्रम्-जेहि-स्मिन-पो) प्रभृति बहुतैरे अप-देवताओंके उद्घातकी वातें भी वे स्वीकार करते हैं।

सिद्ध।

इस देशमें जैसे ओम्हा हैं, तिब्बतमें भी उसी तरहके 'प्रु-च्-चेन्' या सिद्ध हैं। यहाँके ओम्हा उतने सम्मानकी दृष्टिसे नहीं देखे जाते हैं, किन्तु तिब्बतमें सिद्ध बड़े सम्मानकी दृष्टिसे देखे जाते हैं। प्रत्येक लामाके एक एक सिद्ध सहायक या सहचर रहते हैं। भूत पिशाच सिद्ध और भूतोंके साथ इनका विशेष सम्बन्ध रहनेसे लोग इनसे डरते तथा इनकी भक्ति करते हैं। अधिकांश सिद्धमूर्ति दिगम्बर और उनके लंबे बाल रहते हैं। अब तक जितने सिद्ध हो चुके हैं, उनमें पद्मसम्भव ही प्रधान थे। ये ही लामा मतके प्रवर्तक हैं, पद्मसम्भवके सिवा शर्वरा (सा-प-रि-पा), राहुलभद्र या शरभ (सरे-ह-पा), मतस्योदर (लूई-पा), ललितवज्र, कृष्णा-चार्य या कालाचारी (नगु-पो-स्योद्-पा), तिलोपा और नारो भी प्रधान हैं। तिलोपा और नारो अधिक दिनके सिद्ध नहीं। ये सब सिद्ध भूतोंके लुडाने तथा अलौकिक क्राण्ड करनेमें कुशल थे।

भौतिक नाच और चङ्क।

तिब्बतके भौतिक नाचकी (Devil dance) बात बहुतोंने सुनी होगी। प्रायः यह उत्सव वर्षमें एक बार हुआ करता है। भूदान, सिकिम, लादाख, हिमिस आदि जगहोंमें इस उत्सवमें लामा साथ दिया करते हैं। यह उत्सव कहीं 'लो-सि-स्कु-रि' और कहीं चोड या चोड्ग नामसे प्रसिद्ध है। यह चोड्ग-उत्सव वर्षमें जब चार दिन बाकी रहते हैं, तब आरम्भ होता है। उत्सवके आरम्भमें दूर

दूके लोग आकर इतमें सम्मिलित होने हैं। किसी बड़े मठके नामनेके मैदानमें मण्डप तय्यार होता है। तिब्बतीयों लामामोंमें यही सबसे बड़ा उत्सव है। इस उत्सवका उद्देश्य यह है कि लामा इस उत्सवको करके यहाँके जनसाधारणको यह दिमाते हैं कि ये भूत-पिशाचके स्यामायिक उपद्रवोंसे बचाते रहते हैं। इस समय ये देवी, नाथ, धर्मराज, हयग्रीव, क्षेत्रपाल, महा-पाल, जिनमित्र, डाकिराज आदि तरह तरहकी मूर्तियोंके साथ रणशैलमें अभिनय किया करते हैं। इस देशमें रामलीलाके समय तरह-तरहके नकाब मुद् पर डाल कर विकट मूर्ति दिमाते हैं, उसी तरह लामा भी नकाब मुद् पर डाल कर विकट मूर्ति बनाया करते हैं और दर्शकोंसे भय-भक्ति आकर्षित किया करते हैं। इसी चोड़ या चोड़गकी भारतमें चड़क कहते हैं। बंगालमें आजकल चड़क या 'गाजन' यहाँके डोम चण्डाल आदि जाति ही विशेषरूपसे गाया करती है। ये नीच जातीय होने पर भी यमोपवीत धारण कर सन्यास ग्रहण पर हिन्दुओंके भी मियपाल होते रहते हैं। इस चड़क उत्सवका हमारे हिन्दूशास्त्रमें कहीं जिक्र तक नहीं आया है। यह बौद्धकाण्ड है। जब यहाँ बौद्धोंका प्राधान्य था, तब तिब्बतीय लामाओंको तरह इस देशके ध्रमण ही यह उत्सव करते थे। क्योंकि उम समयके बौद्ध राजा ऐसे बड़े चापसे देण्डा करते थे। ध्रमण रङ्ग विरङ्गे साजोंसे सुसज्जित हो तरह तरहका अभिनय किया करते थे, जैसे लामा आजकल करते हैं। यहाँ भी महासमारोह-से धर्मराज और महाकालकी पूजा होती थी। तिब्बतमें अब तक भी उसका नमूना विद्यमान है। यह स्पष्ट है कि बङ्गालकी चड़क पूजा या स्वांग और सन्यास्य घरनाथे उसी प्राचीन बौद्ध उत्सवोंकी यही मही स्मृति-मात्र हैं। यहाँ चड़क-पूजामें जो ऐश्य किये जाते हैं, ये समी और पूर्णरूपसे तिब्बतमें दिये जाते हैं। यहाँ चड़क-पूजाके पुजारी संख्यामें भूतनाथ और भूतका रूप धारण कर नाचते करते हैं, किन्तु तिब्बतमें ऐसा नहीं होता। फेवन् गिर्जरिन उत्सवके मण्डप या पाण्डालमें ही ये ऐसा कर सकते हैं। तिब्बतमें राजासे ले कर रङ्ग तक अपने स्थानोंमें

घेठ यह उत्सव बड़े चापसे देण्डा करते हैं। तिब्बतीयोंका विश्वास है कि इस उत्सवके भीषण बाजाके शब्दोंसे भूत देशसे भाग जाते हैं। यहाँ चड़कमें संख्यासियोंका मन्त्रण्ड ताण्डय नृत्य होता है। तिब्बती लोगोंमें भी यह नाच प्रचलित है। ये इसे 'गरे भूतका नाच' कहा करते हैं।

भूतीकी गान्ति ।

हिन्दुओंके समान तिब्बत, चीन, जापान, ब्राह्म, श्याम आदि सब देशोंके बौद्ध-समाजमें भूत-गान्ति या भूतके भयसे बचनेके लिये विविध प्रकारके यन्त्र, ताबीज आदि पहनते तथा व्यपहार करते हैं।

हिन्दुओंमें जैसे भूतोंके भय दूर करनेके लिये एकान्त स्थानमें या वनमें जा कर पुष्कर आदिकी गान्तिकी प्रयत्नवा है, उसी तरह उपर्युक्त देशोंके बौद्धोंमें भी यह बाने दिखी जाती है। इन सब अनुष्ठानोंमें ये हिन्दुओंकी तरह "श्रीं गमो तधागत अभिश्चित समय धीहुम नमः चन्द्रयज्ञक्रोध अमृत हुम फन्द" जैसे कितने ही तांत्रिक मन्त्र उच्चारण करते रहते हैं।

मुग्धमानोंका विश्वास ।

समी जगहके मुसलमान जिन्य या भूतोंमें विश्वास करते हैं। आयू हुरायरीकी लिखी हुई सुरार्थपुस्तारी नामक पुस्तकमें लिखा है—इसमें जैसे शक्ति और अप (जल) से हमारी मृष्टि की है उसी तरह जिन्य भी मरिज यागी तेज और वायुसे उत्पन्न हुए हैं। जिन्य जहन्ममें रहते हैं, यह अपने इच्छानुसार हर तरहके रूप धारण कर सकते हैं, किन्तु दिवाई नहीं देते। कुछ लोग कहा करते हैं कि जिन्योंकी वेद होती है; किन्तु दिवाई नहीं देते, इसमें ये जिन्य या अंतर्धामों कहालाते हैं। जैसे बाबा आदम तथा हया मानव-जातिके माता पिता हैं उसी तरह 'जान' और 'मरिजा' जिन्योंके माता पिता हैं। स्वभाव, आकार और भाषामें जिन्य मनुष्योंसे बिल्कुल पृथक् हैं। इनमें जो मत्कार्य करते हैं, ये 'जिन्य' और

\* Waddell's Buddhism in Tibet, (p. 525)

नामक पुस्तकमें भूतोंके नाचके विषय देवने का विषय ।

जो सदा असत् और अन्यान्यपूर्ण कार्य करते हैं, वे 'शैतान' कहलाते हैं। जिन्द कभी मनुष्योंकी सुराई नहीं करना चाहते; किन्तु ओभाओंके मन्त्रसे मनुष्योंकी सुराई करने पर तय्यार हो जाते हैं। ये अस्थिभुक् और वायुभुक् हैं। जिन्दोंमें जो ईश्वरके अत्यन्त प्रिय हैं, वे हुरा नामसे प्रसिद्ध हैं। जानके पुत्र सुमास, सुमासके पुत्र ताणुस, और उनके पुत्र हुलियानुस हैं। इसी हुलियानुसके पुत्रका नाम शैतान है। यह महाकूर तथा मानवसे द्वेष करनेवाला है।

तफसिर ईरैजावी नामक कुरानकी टीकामें और तवारीख-ई-रौज-उस-सफा नामक पुस्तकमें है कि शैतान जिन्दके पुत्र होने पर ईश्वरके दया कर जिब्राइल, मिकाइल, इशाइल आदि देवदूतोंकी तरह उसे आज्ञाएँ यानी पतित देवदूतकी उपाधि प्रदान की। बाबा आदमके सामने सर नीचा न करने तथा ईश्वरकी आज्ञाको उल्लङ्घन करने पर शैतान ईबलिस अर्थात् दयाका पात्र न बन सका। शैतानके चार खलीफा हैं—(१) अलिकाका पुत्र मलिका, (२) जन्नसका पुत्र हामूस, (३) बल्लायतका पुत्र मरलुत, (४) वासिफका पुत्र शुसूफ। शैतानकी स्त्रीका नाम अम्मा है। उसके पुत्र नी हैं,—(१) जलवायसून (२) वासिन, (३) आवान, (४) हफन, (५) मरा, (६) लाकिस, (७) मसवूत, (८) दासिम, (९) दलहान।

(१) जलवायसून—अपने नौकरोंके साथ बाजारमें रहता है। बाजारमें जितने सुरे काम होते हैं, उसीके द्वारा होते रहते हैं। (२) वासिन—इस्के द्वारा दुःख और दुश्चिन्ता परिचालित होती है। (३) आवान—राजाओंके दरबारी है। (४) इफफान—मद्यपायी लोगोंके उत्साह देनेवाला है। (५) मरा—नाच गानका नायक है। (६) लाकिस—अग्नि-पूजकोंका राजा है। (७) मसवूत—हरकारोंका मालिक है। (८) दासिम—घरका मालिक है। कुछ लोगोंका कहना है कि यह रसोई घरका मालिक है। जो बहुत दूर धूम कर घरमें आते हैं और आ कर ईश्वर (सुदा) का नाम नहीं लेते, अथवा भोजन करते समय विश्रिल्ला नहीं कहते, यह सब दासिमकी चेष्टा है। (९) दलहान—नमाजके स्थानमें या भोजनालयमें रहता है। उत्तम काममें तरह तरहका विघ्न किया करता है।

उपयुक्त नौ शैतान मनुष्योंके घोर शत्रु हैं। ये मनुष्योंकी पापमें फंसानेकी चेष्टा किया करते हैं।

जिन्दोंका राजा मल्लिक गतसान है, काफपर्वत पर रहता है। इसी पहाड़के पश्चिममें उसके ३ लाख कुटुम्बीजन रहते हैं। पश्चिमशांशमें उसका दामाद अबदुल रहमन ३३००० सेवकोंके साथ राज करता है।

जिन्दोंके राजाओंकी पदवियां अलग अलग हैं। मुसलमान होनेसे 'नुस्', जैसे—तारनुस, हुलियानुस, अग्निपूजक होनेसे 'दुस', जैसे,—सिदुस; यहूदी होनेसे नास्, जैसे—जतुनास् और हिन्दू होनेसे 'तस्', जैसे—नकतस्। हिन्दू होने पर भी नकतस्ने शिस् नामक पैगम्बरके कार्यमें नियुक्त हो कर मुसलमान-धर्म ग्रहण कर लिया है।

मुसलमान जिन्द या भूतोंमें कितने ही इजाम भी हैं। उनके नाम हैं—आवूफर्दा, मसूर, दरवाग, कलिस और आवूमालिक।

तफसीर इ-कवीर नामक ग्रन्थमें लिखा है,—जिन्द चार तरहके होते हैं, (१) फलफिज—आकाशमें विचरण करनेवाला, (२) कुनविज (उत्तरेके केन्द्रमें जिसका वास हो), (३) ब्रह्मिज (मर्त्यलोकमें रहनेवाला) और (४) फडुंसीज (स्वर्गवासी)।

'तफसीर-ई-नियाविश' नामक पुस्तकमें लिखा है,—जिन्दके बारह दल होते हैं, जिनमें ६ दल रुम (टर्की) राज्य—यूनान (ग्रीस) यूरोप (फिरङ्ग) रूस, बाबल और सहतानदेशमें तथा (६) दल मग (कालमकोंका देश) मगम (शाकद्वीप) तथा नौब (निडविया), जङ्घर (जाञ्जीवर), हिन्द (हिन्दुस्थान) और सिन्ध (सिन्धु)-प्रदेशमें वास करते हैं। इन सब जिन्दोंका रूप ६ का १० भाग हवाका और १ का १० भाग मांसका है।

मुसलमान भी भूतकी-शान्तिके लिये या भूत भगानेके लिये नाना प्रकारके मंत्र, तंत्र, चक्र, कथक, तावीज, पलोता आदिका व्यवहार करते हैं। यन्त्र और चक्र आदि विविध रंगोंसे गोमयसे और फोयलेसे लिखा करते हैं। भूत लगे हुए मनुष्यको यन्त्रों या चक्रोंके बीचमें बँधा कर मन्त्र पढ़ा करते हैं। उन चक्रों तथा यन्त्रोंके चारों ओर ताड़ी और फई तरहके मद्य भी रखते हैं।

उमके चारों तरफ फल, फूल, पान, सुपारी भी रहाने हैं। कुछ लोग तो एक भेड़की हत्या कर उमका मुण्ड भी उमके निकट रहने हैं। उममें निकले हुए रजकी घारा जमान पर दिया करते हैं। उम पर दोगर रग कर अभिमन्त्रित किया हुआ पत्थीता जलाते हैं। कुछ लोग भेड़को जगह मुर्गी हो मान करते हैं। जिससे यह सब काम नहीं होता, वे भूत लगे हुए आदमीके हाथमें उमके बड़े दो तांग कपड़े रग देने हैं, इसके बाद भाड़नेवाला अरबों मंत्र पढ़ता हुआ चिन्कार किया करना तथा हाथ मांजा करता है। उम समयका अन्न-परिचालन देखने लायक होता है।

मंत्र—“जाजमनो आलेकुम, पथनु फयनु, हविषवायका, हविषवायका आलमोन आलमोन, सखिकका, आकारसन्, आकारसन्, बल्लिसन् बल्लिसन्, तलिसन् तलिसन्, सुरदन सुरदन, कहलन कहलन, महलन महलन, सखिवन् सखिवन्, सदिदन् सदियन्, नयिअन् नयिअन्, वायहके वातिमाइ सुलेमान विन डाउद ( आली हिम् मुस् मलम ) ओभा-यक, मिन् जानायविल, ममारायकाय, बल्मगराय वाययो मिन् जानैविल इ, मन्ने बल्, इ सर रो।”

अन्तमें भाड़नेवाला रोगीसे पूछता है कि तुमको कोई नशा तथा अङ्गका टटना होता दिया नहीं? सरमें धूँ या मनमें किसी तरहका भय सञ्चार तो नहीं होता या फोड़ेसे उमका सर पकड़ कर कोई घूसरा तो नहीं हिलाता? भूत लगे मनुष्यकी व्यवस्था देण कर ओभा जान जाते हैं, कि भूतने शरीर छोड़ा या नहीं? मनुष्यों-के शरीरमें भूत डाला जाता तथा शरीरमें भूत भगाया भी जाना है। अरबों और फारसी तथा हिन्दीमें लिखे विविध प्रकारके प्रयोगोंमें भूत भगानेके लिये मन्त्र मुसलमान ओभाओंके पास हैं। ये इनसे मंत्रों भी जा सकते हैं।

कुछ शैतान ऐसे हैं जो मनुष्योंके शरीरमें प्रवेश करने पर उसके शरीरकी दो एक सामाहके लिये अमल या शुभशुभ बना देने हैं। यह उस समय कोई बात ही नहीं करता। क्रिमोंके साथ वानचौन मर्दी करता। ऐसे भूतकी पकड़नेके लिये ओभा कुरान-मेंसे—“इन्नुमा आमराहु, इता आराहुनीम अन् इउ

बुन्ना लहु बुन् बुर्द आयकुना क सुनाम लज्जो वे पउई हिल् मन्नुकुनो बुन्नु प्रौन व इन्नुउ तुजौयता” यह आपन तीन बार पढ़ता है।

कभी कभी मुसलमान ओम्मे भूत लगेवाले धार्मिके कागमें यह कहते हैं—“या सम्मिओ तत्पम्माता विस् मग्मे वस् मग्मे फि सम्मे मभूका या सम्मिओ” यह मन्त्र जोरोंसे फूँकते हैं।

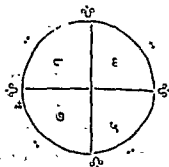
जब भूत अच्छा तरह आसन जमा कर बैठ जाता है, तब उम भूताविष्ट ध्यक्तिका रूप प्रवण्ड हो जाता है। कभी बड़ा पत्थीता ले कर चिराग जलाता, कभी जलते हुए पत्थीतेको मुँहमें डाल कर सुधा देता है। कोई तो मुर्गीका शरीर दातोंसे काट कर ताजा रक्त पीता है। जब यह अर्धशून्य वाते बरता रहता है, तब ओम्हा उर भूतका नाम, निजान, धाम, बंधा या खुला, और कब यह जाना चाहता है तथा उस ध्यक्तिके शरीरको यह क्या करना चाहता है, इत्यादि वाते पूछ लेता है। भूत यदि उचित उत्तर दे तो अच्छा ही है, उत्तर नहीं देने पर ओम्हा जोर जोरसे मन्त्र पढ़ने लगता है। उसे भारता भी है। अन्तमें भूत सभी वाते उचितरूपसे बतानेकी बाध्य होता है। भूतको पदचान लेने पर ओम्हा बारंबार यह पूछने लगता है, कि तुम क्या ले कर यहाँसे जाओगे। इस पर भूत जो चीज मांगता है, उसको एक बरतनमें रख उस बरतनको ओम्हा मन्त्र पढ़ कर भूत लगे हुए मनुष्यके शरीर पर फेरता है। इसके बाद उस चीजको किसी घूसके नाँचे तथा नदी किनारे ले जा कर प्रतिके लिये गाड़ देते हैं या झाड़णों या यानकोंकी दे देते हैं। इस पर ओम्हा भूतको भाग जानेकी कहता है और कहता है, कि तुम यहाँसे चले जाओ और फटे जूने तथा सर पर पदपर ले जाओ। इत्यादि।

इसी समय यह मनुष्य जिसको भूत लगा रहता है। यह बड़े जोरोंसे भागता है। कभी कभी तो ४ या ५ मनका पदपर ले कर भागता है और जब कहीं गिर पड़ता है, तब भूत उसके शरीरसे निकल जाता है। निम्नु ओम्हा उमकी चोटो पकड़े हुए उमके माथ ही जाता है और जब यह गिर जाता है, तब टोड़ता है। गिरने ही प्रायः यह मनुष्य बेदीन ही जाता है। इस

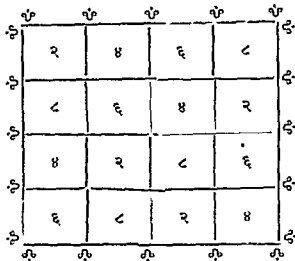
समय ओम्मा कुरानकी "आयत उल कुरसी" इत्यादि पढ़ता है। इसके साथ ही लोहेका चिमटा या गज जमीनमें ठोकता रहता है। ज्यों ही वह मनुष्य जमीन पर गिरता है त्यों ही उसके सरसे दो एक बाल नीच कर एक झोतलमें बन्द कर देते हैं। लोगोंका विश्वास है कि ऐसा करनेसे भूत सदाके लिये फीद हो जाता है। पीछे झोतलको मट्टीमें गाड़ देते हैं। ऐसा करनेसे भूत फिर नहीं आता।

भूतके चले जाने पर वह मनुष्य होश संभालता है। इसके बाद उसका मुँह और आँखें अच्छी तरह धुलवा दी जाती हैं। फिर ओम्मा "आतमख् आतमख् तन्माख् तन्माख्, तरसिहि कल कस्मसे कानहु जस्माल-लातिन् सफरिन् ओटिक ओटिक" यह मन्त्र तीन बार पढ़ता है फिर "लाहोयल् ये लाकुव्-यता इहा विहा हिल् आहि उल् आजिम्" इस मन्त्रसे पानी पड़ कर पीनेको देते हैं। यह जल पीते ही वह मनुष्य कुछ स्वस्थ होता है। इसके बाद उसकी बांहमें या गलेमें भूत-शान्तिका ताबीज या कबच बांध दिया जाता है।\* मुसलमान जिस तरहके मन्त्र और चक्रका व्यवहार करते हैं, उनका चित्र नीचे दिया जाता है—

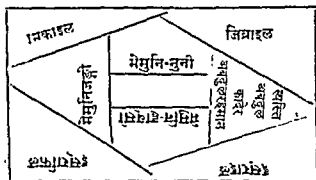
भौतिक चक्र।



भूत नष्ट करनेवाला यन्त्र।



दूरा एक चक्र।



भूताविष्ट शन्दमें चक्र देखो।

पारवत्य देव-वासियोंका विस्वास।

प्राचीनकालमें यूनानी तथा रूमी लोग जगत्के अन्याय लोगोंका तरह जिन्द और शैतानमें विश्वास करते थे। इन लोगोंका यही विश्वास था कि जिन्द या देवग्रहण मनुष्यका मङ्गल और भूत प्रेत या शैतान मनुष्योंका अनिष्ट या बुराई करते रहते हैं।

सुप्रह—मुसलमानोंके यहाँ जिन्द, यूनानियों, और यहूदियोंके यहाँ पञ्जिल या देवदूत कह कर पुकारे जाते हैं। यहूदियोंके तालमूद् नामक प्रधान धर्मशास्त्रमें लिखा है कि नित्य ही पञ्जिलकी पैदाइश होती है और उत्पन्न होते ही वे भगवानका गुण गान कर अपनी इहलोला संवरण कर देते हैं। फिर कहीं कहींके पञ्जिल जड़जीव और विराट्काय हैं। और तो क्या, सी वर्षमें जितना लम्बा

\* क. तफहीर-इ-कबीर, जवाहर-इ-सम्रा, सुराई-बुखारी आदि पुस्तकोंमें विशेष विवरण देख सकते हैं।



संसार विषय ज्ञापना, किन्तु किसी पञ्चिकता उतना ही प्रथम ज्ञात है। कोई जलमें, कोई हवामें, कोई अग्निमें उत्पन्न हुआ है। यह विद्यों के धर्म प्रथममें लिखा है कि भगवान् ने सृष्टिके पहले दिन पञ्चिकता उत्पन्न किया था। दूसरे लोगों का कहना है कि सृष्टिके पांच दिन बाद पञ्चिकता पैदा हुए। सृष्टिके कार्यमें किसीने भगवान् को मलाह ही थी और किसीने मना भी किया था। बाइबिलमें लिखा है, भगवान् के मुंहमें निकले हुए प्रत्येक शब्दसे एक पञ्चिक उत्पन्न हुआ था। (Psalm XXXIII 6.)

राशियों के प्रथममें संसार पञ्चिकता उल्लेख है। बायबल नगदके वनाते समय ये ७० पञ्चिक ७० जातियोंके सृष्टिके नामसे विख्यात हुए थे। इनमें कितने ही उद्योगितायें देय-दूत हैं और कितने ही काल-कल्टे पिशाच। जगत्के सारे पदार्थ, मूल आदिमें एक एक पञ्चिक 'मासाह' सृष्टिके या क्षेत्रपाल-रूपसे मौजूद है। भगवान् ने इनमेंसे इस्त्राएलको सबसे बड़ा बनाया था। हमके सिया आकतरी पल, मेनातोन और सीदाहकोन इन तीन पञ्चिकोंके नाम मिलते हैं। हिब्रु जातिके बायुलमें फेद होनेसे पहले पञ्चिकता नाम कोई नहीं जानता था। इसी जातिमें बायुलनमें पञ्चिकता नाम सुना था। रफायल, मिकायल, जबरियल और उरिमल, इन फेद पञ्चिकोंके नाम उनकी पुस्तकोंमें मिलते हैं। बाइबिलके नये विद्यानमें मिके मिकायल और जबरियलकी बात विशेष-रूपसे वर्णित है।

यूरोपवासी अब पञ्चिक शब्दमें ईश्वर-दूत का अनुमान करने हैं, किन्तु प्राचीन यूनानी तथा रूमी जिल्द और अपदेवना समझते थे।

बाइबिलमें लिखा है कि पहले पञ्चिक प्रायः सभी मध्यरिज और इमानदार थे। उस समय ये ईश्वरके साथ स्वर्गमें रहते थे। किन्तु पीछे लोग लोग और मोहके घनायर्षी हो कर पापके भागी हुए। साथ ही स्वर्गमें भी पतित हुए। सायु-स्वभाय सदाके लिये मिलन हुआ। भवान् का भाव धारण कर पापपट्टमें लिप्त हुए। ये सब पापको पुण्य और पुण्यको पाप समझने लगे। दिसा, प्रेष, पापपट्टि भयदूर मोघने उनके हृदय-साम्राज्य

पर अधिकार किया। इसीलिये बाइबिलमें ये 'Evil angel' या 'Unclean spirit' कहे गये हैं। इनके मालिक शैतान हैं। ये सब मनुष्य ज्ञात पर अपनी शक्तिका दुरुपयोग किया करते हैं। बाइबिलमें यह भी लिखा है, कि शैतान भूतोंके नाम करनेके लिये ही ईशाका जन्म हुआ था।

यह विद्योंके धर्म-ग्रन्थ तालमुदमें यह लिखा है—“इन भूतोंके उदपातके बारे कोई मनुष्य टिक नहीं सकता। मनुष्य संस्थासे उनकी संस्था अत्यधिक है। जैसे कि सैन या बागके चारों ओर कांटा और भाइयोंमें घेर दिया जाता है। उसी तरह मानव-समाजके चारों ओर भूतोंका वास रहता है। यदि आप भूतलोक देखना चाहते हैं, तो कुम्हारके भायेही राण चालनसे अपने पिछोंके चारों ओर छोड़ रखिये। सवेरे उठ कर आप स्वर्गमें कि उस पर कुत्ता पद-चिन्ह अङ्कित हुआ है। यदि आप अपने आंगोसे भूत देखना चाहते हैं तो काली चिड़ीकी जरायु लेकर आगमें जला दिये, पीछे उसको पीस कर उसका किङ्गनास आंगमें लगा दीजिये, फिर आपकी अनायास ही भूत दिखाई देगा।

भूत भाइना।

पहले यूरोपकी प्रायः सारी जातियां भूत मानती तथा भूत ऋद्धयाया करती थीं। रूमियों तथा यूनानियोंके पादुओंमें भूत दुष्टानेका गुण अब भी दिखाई देता है। पहले किसी व्यक्तिको मृत्युपूर्वक दीक्षा देते समय यहाँके पोष भूत भाइ लेते थे। दीक्षा ग्रहण करनेवालेको यह स्वोकार करना पड़ना था कि हम शैतान भूत पिशाचको नहीं मानते। बाइबिलमें यह स्पष्ट मालूम होता है कि ईसासमोह भूत भाइनेमें समर्थ थे। और तो गया, लोगोंकी विश्वास हो गया था कि ईसासमोहका नाम लेते ही भूत भागता है। भूत भाइना तीसरी शताब्दी तक था। पाद्री ही भूत भाइ करतें थे। भूत ऋद्धयानेके पहले और पीछे भूत लगे हुए मनुष्यको कई निपमोंका पालन करना पड़ता था। जैसे—उपवास श्रोत्रपाठ, घुटने टेक कर प्रणाम करना, सब पर हाथ फेरना, यूनानियोंका पालन, कपड़े बदलवाना, पांश्वम-मुण घेंटना, त्रितयका Trinity नाम ले कर दीक्षा देनेवाले व्यक्तिके माथे पर दो तीन बार फूंक मारना। ईसासमोहके जन्मके पहले

तीसरी शताब्दी तक पादरी या पूजारी ही भूत भाड़ते थे। ई० ३री शताब्दीके बाद इस कार्यके लिये अलग कर्मचारी नियुक्त किये गये। रोमी खृष्टानोंकी आनुष्ठानिक पद्धतिमें (Rituale Romanum) प्रायः नौस पत्रोंमें भूत छुड़ानेकी प्रक्रिया लिखी है। पागलपन और भूत-वेशमें कुछ प्रमेद है। इसके वारेमें पद्धति-ग्रन्थमें इस तरह लिखा है,—

'जिसको भूत लगता है, वह अ'टस'ट बकता, और सब समझता है। जो अद्भुत बात मनुष्य नहीं जानता वह उसके मुँहसे निकल पड़ती है। जब उपर्युक्त चिह्न दिखाई दे, तो समझना चाहिये कि भूतका अंश जरूर है।' इस देशमें जैसे ओम्हा, मुसलमानोंमें सयने, तिब्बतियोंमें सिद्ध भूत भाड़ते हैं, वैसे ही रोम-साम्राज्यके खृष्टानोंमें Exorcist भूत उतारनेका काम करते हैं। हमारे देशकी तरह वहाँ भी भूतका नाम घाम आदि पूछने हैं। भूत भाड़नेके लिये गिरजेके एक कोनेमें उसे घुटने टेक कर बैठनेको कहते हैं और क्रूससे भाड़ते हैं। इसके बाद उसके माथे पर पवित्र जलका छीटा दिया जाता है। इसके बाद तरह तरहके मन्त्र स्तोत्र पाठ किया करते हैं। पोछे भूतका नाम पूछते हैं। इसके बाद भूत छुड़ानेका मन्त्र पढ़ते हैं, जिसका तात्पर्य इस तरह है—

"I exorcise thee, unclean spirit, in the name of Jesus Christ, tremble, O Satan thou enemy of the faith, thou foe of mankind, who has brought death into the world; who has deprived men of life, and hast rebelled against justice; thou seducer of mankind, thou root of all evil, thou source of avarice, discord and envy"

यदि इन सब बातोंसे भी भूत भागना नहीं चाहता, तो भाड़नेवाले भूतोंके प्रति कठोरता आरंभ करते हैं और भयङ्कर आवाजके साथ क्रूससे मारते हैं। इस तरह तीन-चार घण्टे भूत उतारनेमें लग जाते हैं। किन्तु अन्तमें भूत भाग जाता है।

हिन्दुओंमें जैसे ओम्हा जलको मन्त्रपूत कर उससे देह

वांधते, घर बांधते तथा स्थान बांधते हैं, रोमी भी वैसे ही किया करते हैं। भूत छुड़ानेके समय वे पेटर नाष्टर (Pater Noster) और आचेमरिया (Ave Maria) का नाम लिया करते हैं।

यूनानी दूसरी तरहसे भूत भाड़ते हैं। जिस मनुष्यको भूत लगता है, उसको यूनानी एक खूँटेसे बांध देते हैं। गिरजाकी पोशाक पहन कर कई याजक उसके पास पहुंचते हैं। प्रायः छः घण्टे तक वे वाइबिलके अंश (Gospels) पढ़ते रहते हैं। इनको एक दिन पहले उपवास करना पड़ता है। दूसरे दिन भी उपवासी हो कर भूत भाड़ना पड़ता है। तीसरे दिन यह पाठ खतम होता है। पाठ करते समय भूताविष्ट मनुष्य भगवानको मानव जाति पर क्रोध प्रकट कर तरह तरहकी वेहदी बातें बोला करता है; किन्तु भूत भाड़नेवाले इसकी जरा भी परवाह नहीं करते। जब पाठ करते हैं, तब यह बड़ी विशुद्धता रखते हैं, उच्चारणमें एक भाँ भूल नहीं हो सकती। पाठ खतम होने पर शुद्धाचारो गुणी याजक आ कर वासिल (St Basil) नामक एक सिद्धका मन्त्रपाठ सुन भूत चकित हो जाता है। उस समय भाड़नेवाला भूतको कठोरताके साथ गाली दिया करता है। भयभीत हो कर भूतको भागना पड़ता है। भूतके छोड़ते ही वह मनुष्य वेहोश हो जमीन पर गिर पड़ता है।

अब भी रोमी ओम्हा दिखाई देते हैं। प्रत्येक समाजमें एक एक ओम्हा एक एक कर्मचारीकी तरह नियत किये गये हैं

उपसंहार ।

ऊपर सभ्य-समाजका विश्वास और अनुष्ठान लिखा गया है। किन्तु सभ्य-समाजकी अपेक्षा असभ्य जंगली जातियोंमें ही भूतका भय अत्यधिक है। भूतोंके भयसे बचनेके लिये वे तरह तरहके उपाय किया करते हैं। इस देशमें भूतचतुर्दशीके दिन भूत-निवारण और भूत भगाने के लिये अपामार्गकी शाखाका चारों ओर घुमाना और चौदह तरहके शाकका भक्षण करना, आग जला कर गांवका प्रदक्षिणा करना आदि जैसी शास्त्रीय बातें दिखाई देती हैं, वैसे दक्षिणकी असभ्य जातियोंमें भी है। एक दिन

कृष्ण रोगी मरण हो कर सौंया समय जग जला कर महा वीरलाहल कर भूत भगवाया करने हैं।

ब्रह्म, भूमि और अग्निमें भवत्य जगिका विराम देवता कहिये।

भौतिकरूपि ( सं० स्त्री० ) भाद्र प्रजापति देवयोनि, पांशु प्रजापति निर्गुणोति और मनुष्ययोनि, इन सबको समष्टि।

भौती ( सं० स्त्री० ) भूतानां भूतगोतीनामियमिति भूत-अणु, तेषु, तेषां भूतानामपि कालियविषयमानन्दयालघात्पथं । रात्रि ।

भौती ( हि० स्त्री० ) एक दान्दिष्ट लंबी और पतली मरुद्धी जिसको महापताने तानेका चरता पुमाने हैं।

भौतय ( सं० पुं० ) भूतेरपत्यं पुमान, भूमि-धत्पत्यौ ष्यञ् । भूमिमुनिर्केपुन, नौदह्ये मनु ।

भूमि मुनिके औरतमें भौतय नामक मनु पुत्ररूपमें उत्पन्न हुए। इस मन्वन्तरमें वासुप, कनिष्ठ, पवित्र, भाजित और धामरूक ये पांशु देवगण आविर्भूत होंगे। भूमिको इस मन्वन्तरमें इन्द्रत्व पद प्राप्त होगा। वे जन्मान्य इन्द्रोंकी तरह मनो गुणोंसे अलङ्कृत थे। धर्मोद्य, अग्निवाद्, भूमि, मुक, माधवजानु और अजित ये मान समर्पि तथा सुक, गौर, मदन, भरत, अनुग्रह, स्वामानो, प्रयोर, धियु, संकन्द, वैजन्वी और सुवन्द, ये उनके पुत्र हैं। ( मरुतयेपु० १०० अ० ) मनु देखो।

भौतकवि—नरहरिर्गंजी एक बन्दी। इनका जन्म-सम्बन्ध १८८१में हुआ था। ये तो जिहा शकबन्दियोंमें इनका काम-रथान था। ये महान् कवि शूद्राररसके चर्चानमें बड़े महकवि और सिद्धहन्त लेखक थे। इनका 'शूद्राररस्ता-कर' ग्रंथ अत्युत्तम है। दयाल-कवि इन्होंने पुत्र थे।

भौत ( सं० पुं० ) भूमेरपत्यं भूमि-निवादिवायु अणु । १. मङ्गलवद । २. नरकगत । ३. अन्तर । ४. रक्तपुनर्गवा । ५. आमनमेष्ट । ६. यह केतु या पुच्छल तारा जो दिव्य और आन्तरिकते परे है। ( ति० ) ७. भूमिसम्बन्धी, भूमिका । ८. भूमिमें उत्पन्न ।

भौतद्वेष ( सं० पुं० ) लज्जितविस्मयके अनुसार प्राचीन-कालको एक प्रकारकी लिपि ।

भौतनाद ( सं० ति० ) ज्योतिषिक मङ्गलप्रदका सञ्चार-

विदेव । मानव-प्रकृतिमें जो मय परिवर्तन होता है याद मङ्गलके प्रकीर्ण ही होता है।

भौमजल ( सं० स्त्री० ) भूमि-अणु, भौम जल । भूमि-सम्बन्धी जल ।

भौमजल तीन प्रकारका है,—जाङ्गल, आनूप और साधारण । जो देग अल्प जल और अल्प पृथ्वी भरा है और जहां रक्तविलका प्रकीर्ण है, उसे जाङ्गलदेग और यहांके जलको जाङ्गलजल । जिस देगमें जल बहुत मिलता, जहां पृथ्वी भारी है और जहां अरसर घात-शुष्क रोगका प्रकीर्ण देगा जाता है उसे आनूपदेग और यहांके जलको आनूपजल तथा जहां आनूप और जाङ्गल दोनों ही देगके लक्षण दिखाई देते हैं उसे साधारण देग और यहांके जलको साधारण जल कहते हैं।

जाङ्गलजल—रुध, लघणरस, लसु, पिच्छा, अमिषयक, कफकारक, हितकर और अनेक प्रकारके विकारका उत्पा-दक है। आनूपजल—अमिषयन्दी, मधुररस, स्निग्ध, गाढ़, शुद्ध, अमिषयक, कफकारक, हृदयप्रदायी और बहुविकार-जनक है। साधारण जल—मधुररस, अमि-प्रदीपक, ग्रीतल, लसु, तृप्तिकारक, क्विकर और विरामा-दाह तथा विदोषनाशक माना गया है।

भौमन ( सं० पुं० ) आदिमर्गं भयनोति भू कर्त्तरि मन, भूमा प्रत्या, तस्यापत्यं अणु, मनन्तद्वयान् न टेलोक । विभक्तमां ।

भौमपाल—ग्यालियरके कच्छवाह-धर्मजोप एक राजा ।

भौमप्रदोष ( सं० पुं० ) यह प्रदोष जो मङ्गलपारको पड़े । इस प्रदोषका माहात्म्य साधारण प्रदोषको अग्रेहा कुछ विशेष माना जाता है।

भौमरत्न ( सं० स्त्री० ) भूर्मी जल, भूमि-अणु, ताट्टी रत्न । प्रयाण, भूंगा ।

भौमराजि ( सं० स्त्री० ) मेघ और पृथ्वी राजियां ।

भौमवती ( सं० स्त्री० ) भौमासुरकी स्त्रीका नाम ।

भौमवार ( सं० स्त्री० ) मङ्गलवार ।

भौमासुर ( सं० पुं० ) नरकासुर नामका असुर ।

भौमिः ( सं० ति० ) भूमिनिधिरोति यः भूमि उन् । १. भूमाधिकारी, जमींदार । २. भूमिधन । ३. भूमि-सम्बन्धीय ।

भीमी (सं० स्त्री०) भूम्यां जाता भूमि-अण्, स्त्रीत्वात्  
लोपे । सीता ।

भीमेश्वरपाल—मवालिबरके कच्छवाहवंशीय एक राजा ।

भीर (सं० पु०) भूरिका गोत्रापत्य ।

भौरिक (सं० पु०) भूरिसुवर्णमधिक्रा रोतीति ठक् ।

कनकाध्यक्ष ।

भौरिकि (सं० पु० स्त्री०) भूरिकस्य ऋषेरपत्यमिभ्र ।

भूरिक ऋषिका गोत्रापत्य ।

भौरिकादि (सं० पु०) पाणिन्युक्त शब्दगण, यथा—

भौरिकि, भौरिकि, श्रीपयत, चेटयत, काणैय, वाणि-  
जक, घालिकाज्य, सैकयत, वैकयत ।

भौरिकि (सं० पु० स्त्री०) भौरिकि बाहुलकात् रस्य ल ।

भौरिकि देखो ।

भौरिक (सं० पु० स्त्री०) भूरिकस्य रगभेदस्यापत्यं

अण् । १ भूरिक खगापत्य । २ राजपूतानाके अरावली

पर्वत और मरुभूमि-मध्यवर्ती स्थानभेद ।

भौरिकी (हिं० स्त्री०) वजरेकी तरहकी पर उससे कुछ

छोटी एक प्रकारकी नाव जो ऊपरसे ढकी रहती है ।

भौवन (सं० लि०) भुवन-सम्बन्धीय ।

भौवनावन (सं० पु०) भुवनका गोत्रापत्य ।

भौवादिक (सं० पु०) भ्यादीं गति पठितः ठक् । भ्यादि-

गणमें पठित धातु ।

भौवावन (सं० लि०) भुव नामक धनिका अपत्य ।

भीसा (हिं० पु०) १ भीड़भाड़, जनसमूह । २ हो दुलड़,

गड़बड़ ।

भ्रंगारी (हिं० पु०) भींगुर ।

भ्रंगी (हिं० पु०) एक प्रकारका गुंजार करनेवाला

पनिगा ।

भ्रंग (सं० पु०) भ्रमश-भावे घञ् । १ अधःपतन, नीचे गिरना ।

२ नाश, ध्वंस । ३ भागना । (लि०) ४ भ्रू, घ, खराव ।

भ्रूशकला (सं० अर्थ०) हिंसा ।

भ्रूशयु (सं० पु०) भ्रूश अयुच् । भ्रूश, अधःपतन ।

भ्रूशन (सं० लि०) अधःपतन ।

भ्रूशिन (सं० लि०) भ्रूश-इनि । भ्रूशयुक्त, नाश-

विशिष्ट ।

भ्रूकुश (सं० पु०) भ्रूवा कुंसो भाषणं यस्य, प्रपो-

दरादित्वात् साधुः । स्त्री-वेशधारी नक्तंकपुरुष, वह

नाचनेवाला पुरुष जो स्त्रीका वेप धर कर नाचता हो ।

भ्रूकुंस (सं० पु०) भ्रूवा कुंसो भाषणं शोभा यस्य

वासः, "भ्रूकुंसादिनामकारो भवतीति वक्तव्यं" इति

वार्तिकोक्त्या उकारस्यात्वं । स्त्रीवेशधारी नक्तंक-

पुरुष । पर्याय—भ्रूकुंस, भ्रूकुंश, भ्रूकुंश,

भ्रूकुंश ।

भ्रूकुटि (सं० स्त्री०) भ्रूवोः कुटिः कौटिल्यं "भ्रूकुंसा-

दीनामकारो भवतीति वक्तव्यं" इति वार्तिकोक्त्या

उकारस्यात्वं । १ क्रोधादि द्वारा भ्रूका कौटिल्य, क्रोधके

मारे भौंहाका सिक्कुटना । २ भ्रूकुटी, भौंहा ।

भ्रत (हिं० पु०) दास, सेवक ।

भट्ट (हिं० पु०) हाथी ।

भ्रम (सं० पु०) भ्रूसु अनवस्थाने इति घः । १ मिथ्याज्ञान ।

पर्याय—भ्रान्ति, मिथ्यामति । (अमर)

न्याय मतसे अप्रमादोपका नाम भ्रम है । एक

प्रकारकी वस्तुमें दूसरो तरहकी वस्तुका ज्ञान होना भ्रम

कहलाता है । जिसमें जो गुणदोष नहीं हैं और उसमे उन

गुणदोषोंका देखना ही भ्रम कहलाता है । जैसे, पण्डित-

को मूले और पाखण्डीको विद्वान् जान लेना । रस्सीको

सांप और सांपको रस्सी समझ लेना भ्रम है ।

दर्शन आदि शास्त्रोंमें भ्रमकी उत्पत्ति तथा निवृत्ति-

का कारण और अवान्तरभेदका भी निर्णय किया गया

है । सांख्य और वेदान्तका कहना है,—भ्रमज्ञान स्वयं

मिथ्या है, परन्तु उसका फल सत्य है । जैसे,—रस्सी-

में सर्पज्ञान होनेसे भय और शरीर कम्पित हो जाता

है, तृष्णातुर मनुष्य मृगतृष्णाके भ्रममें पड़ कर इधर

उधर दौड़ा करता है । यद्यपि भ्रममाल ही असत्त्वस्तु-

अवगाही है, तथापि उसका कुछ न कुछ फल अवश्य है ।

अर्थात् इससे जीवके निवृत्ति प्रवृत्ति उत्पन्न होती रहती

है । खोजने पर पता लगता है कि भ्रमके भिन्न-भिन्न

प्रभाव हैं और फल भी पृथक् पृथक् हैं । यह जान कर

शास्त्रकारोंने भ्रमज्ञानकी कई श्रेणियोंकी कल्पनायें की

हैं । पहले सोपाधिक और निरुपाधिक इसके दो प्रकार

हैं, इसके बाद संचादी, विसंपयादी, आहार्य और

औपाधिक तथा आहार्य ये चार प्रकार बनावे गये हैं ।

सोपाधिक्रम।—यदि दो या इससे अधिक धनु एक जगह रहतीं हों, और एक जगह रहनेकी एक धनुका गुण या रंग दूसरी धनुमें भा गया हो, तो जिस धनुका गुण दूसरी धनुमें आया है, उस धनुको उपाधि और जिसमें गुण आया हो, उसको उपहित कहते हैं। अब उपर्युक्त प्रकारसे उपाधिके संगति एक तरहके स्वभावकी धनुमें दूसरी तरहका स्वभाव दिगाई है, तो उसे सोपाधिक्रम जानना होगा। जैसे—रुद्रिकका स्वभाव स्वच्छ है और रंग सादा है, किन्तु कभी कभी रंगीन चीजोंके साथ रहनेसे यह लोहित तथा पीले रंगकी दिगाई देता है। रुद्रिकमें रक्तवर्णकी प्रतीति सोपाधिक्रम है।

निरुपाधिक्रम।—अब किसी तरहसे भी मिश्रित होनेकी सम्भावना नहीं है फिर भी एक धनुका अन्य धनु हो जाना निरुपाधिक्रम कहा जाता है। जैसे नीला-आकाश है, किन्तु इसका कोई रंग नहीं; फिर भी यह गाढ़ा नीला दिगाई देता है। आकाशका नील रंग होनेका जो भ्रम होता है, यह निरुपाधिक्रम है।

संवादी और विसंवादीभ्रम।—यह जानी हुई बात है कि जिसको किसी बातका भ्रम हो गया है, उसको उस बातमें कोई सफलता नहीं मिल सकती। किन्तु कभी कभी भ्रमज्ञानसे भी फल होता है। जिस भ्रमज्ञानसे कुछ फल होता है, उस भ्रमका नाम संवादी है और जिस भ्रमसे कुछ फल नहीं होता उसे विसंवादी कहते हैं। प्रायः लोगोंको विसंवादीभ्रम ही अधिक होता है। विसंवादीभ्रम कभी कभी हुआ करता है।

मान लो, किसी एक मनुष्यको दूरसे कुहासेकी देग कर धूपका भ्रम हो गया। इसके बाद उसको यह मान हुआ कि जहाँ धूप है वहाँ अग्निका होना आवश्यक है, क्योंकि बिना अग्निके धुआँ दिगाई हो नहीं देता। यह समझ भ्रमिके लिये यहाँ गया और यहाँ धुआँ न होने पर भी अग्नि प्राप्त हो आय, तो उस मनुष्यको जो भ्रम हुआ यह संवादीभ्रम है। यदि यहाँ अग्नि नहीं मिलती तो उक्त भ्रमकी विसंवादीभ्रम कहते। यही भ्रम अधिक हुआ करता है। अथवा दो मनुष्योंकी दो

प्रकाश देग कर एकको धूपका, दूसरेको अग्निका भ्रम हुआ। अब ये दोनों गये तो जिसको अग्निका भ्रम हुआ उसे अग्नि मिल आय, तो संवादीभ्रम और दूसरेको विसंवादीभ्रम हुआ समझो।

“दूरे प्रकाशं दृष्ट्वा मणिं सुदुर्वाभिसारो।  
प्रभातो मण्डितुर्दिग्धु मन्थानान् प्रवेरति ॥  
न जन्मो मण्डितोयथा प्रत्याभिधायता।  
प्रभातो धारताडार्यं मन्थो च मण्डितोः ॥”

आहार्य और उपाधिक आहार्यभ्रम।—गोटा बरके एक तरहकी धनुओंमें दूसरी धनुओंका शान सम्पादन करना आहार्यभ्रम कहलाता है। यदि उपाधि अवलम्बनसे यह कार्य सम्पादित किया गया हो तो यह उपाधिक आहार्यभ्रम होगा। चन्द्र एक धनु है; किन्तु आँसुके उगमसे कुछ बन्ध करके देखनेसे कई दिगाई देते हैं। छोटी धनुको मेगिकाङ्ग (magical glass) से देखने पर बड़े आकारमें देख सकने हो या बड़ी धनुको काँच द्वारा छोटी देगना आहार्यभ्रम कहलायेगा।

ऐन्द्रियिकज्ञान हो या यौक्तिकज्ञान, चाहे औपदेशिकज्ञान हो, सभी ज्ञानोंके भीतर कई गये सैकड़ों भ्रम लिये पड़े हुए हैं। जितने दिन तक यह भ्रम मिट नहीं जाते तब तक आश्रकी आजा करना भ्रमज्ञानके गमान है।

भ्रम उत्पन्न होनेका कारण और उसके निवारणका उपाय—भ्रमोत्पत्तिके तीन कारण हैं, श्रवण, सम्प्रयोग और संस्कार। इनमें श्रवण कई तरहके हैं निमित्तगत फलगत और देशगत। श्रुत्युत्पत्ति जो प्रत्यक्षकी जननी है, उनमें श्रवण ही जाना, यह निमित्तगत श्रवण है। नेत्र प्रत्यक्ष देखतेयाने है। उन नेत्रोंमें यदि विकलौप उत्पन्न हो, तो अधिक उजली धनु भी पीली दिगाई देती है। सन्ध्या समयमें धुंधलापन देखना फल-श्रवण और दूरका निरुद्र तथा निरुद्रका दूर देखना देशगत श्रवण है।

सम्प्रयोग।—सम्प्रयोग जल्दका अर्थ यहाँ येना सम्भवना होगा कि जिस धनुमें भ्रम पैदा हो, उस धनुका समूचा न दिगाई देना अर्थात् उसके किञ्चित्गति पर ही प्रकाश पड़ना।

संस्कार।—संस्कार अर्थात् यहाँ सहज धनुका स्मरण

समझना होगा। किसी मतमें ऐसा कहा गया है, कि संस्कारके बदले सादृश्य ही भ्रमोत्पत्तिका कारण है। उस मतका अभिप्राय यह है कि जो वस्तु दूसरी वस्तुसे मिलती-जुलती नहीं' यानी दूसरी वस्तुसे सादृश्य न होने पर किसी वस्तुमें भ्रम उत्पन्न नहीं होता। रस्सीमें सर्पका भ्रम होता है; किन्तु किसी चीकोन वस्तुमें सर्पका भ्रम नहीं हो सकता। अतएव यह निश्चय है कि किसी सादृश्यवान् वस्तुमें ही दोष या सम्प्रयोगदश भ्रम उत्पन्न होता है।

एक जगह बहुत लोग एकत्र हैं, सन्ध्या समीप है, ऐसे समय उनमें एकाएक मनुष्य 'यह चांदी है' कह कर वहांसे दौड़ा। अन्यान्य मनुष्योंने देखा कि जिस चीजके लिये वह मनुष्य दौड़ा है, यह चांदी नहीं' बरन् सीपका टुकड़ा है। उसकी चमकसे ही उस दौड़े हुए मनुष्यको चांदीका भ्रम हुआ है। उस व्यक्तिके चांदीके भ्रमकी तरह अन्यान्य पदार्थोंमें भ्रमकी बात समझना चाहिये। जिस समय सीपके टुकड़ेमें चांदीका भ्रम हुआ था, उस समय उसके समुद्रितज्ञान विलकुल न था। पहले सीपके टुकड़ेमें दृष्टि निक्षेपके बाद किसी वस्तुके आकारका ज्ञान, उसके बाद चांदीका ज्ञान हुआ। उसमें 'यह' इत्याकारका ज्ञान तथा उसके अनु-रूप वाक्य और उसकी संलग्नताके रूपमें चांदीका ज्ञान या उसके अनुरूप वाक्य एक अभिन्न संसर्गसे उत्पन्न हुआ था। दृष्टि जब सीपके टुकड़ेकी ओर गई थी तब उस देखे हुए पदार्थके सर्वांशका ग्रहण नहीं किया। उसकी बाहरी चमकको ही उसने ग्रहण किया था और केवल उस चमकके ग्रहण करनेसे उस वस्तुका ज्ञान हो आया, जो हृदयमें बहुत दिनोंसे बैठी थी; यानी चांदी तो स्मृतिपथमें पहलेसे अपना घर बना चुकी थी, फट उस चमकाली वस्तुको देखते ही उस (चांदी) का भ्रम हो गया। यह स्मरणात्मक चांदीका ज्ञान 'यह' सम्बन्ध (पहले उत्पन्न होनेवाले भ्रमज्ञानको सम्बन्ध कहते हैं) ज्ञानके साथ मिल जानेका कारण यह है कि प्रायः सभी तरहके ज्ञान किसी भी वस्तुके बाह्य-विशेषणको ही पहले ग्रहण करते हैं पीछे विशेषण विशेष्यरूपमें समा जाता है इसीसे उस मनुष्यने सीपके टुकड़े

की चमक यानी उस वस्तुके विशेषणको ग्रहण कर उसके विशेष्यको जगह पर एक कल्पित विशेष्य चांदीका संयोग किया था, पीछे इसका विलोप हो गया और असली विशेष्य सीपका टुकड़ा दृष्टिगत हुआ। चमकाले सीपके टुकड़ेकी जगह उसका ज्ञान न हो कर चमकदार चांदीका ज्ञान हुआ था। इसीलिये यह भ्रूड ज्ञान था। एक आहार्यभ्रमको छोड़ कर प्रायः सभी तरहके भ्रमोंकी यही प्रणाली है। इस प्रणालीके अनुसार सब जगह एक भावापन्न वस्तु दूसरी भावापन्न वस्तुके रूपमें दिखाई दिया करती है। ऐसे भ्रमोंका ध्वंसोपाय केवल उसका समुचित-परिदर्शन है। यानी जिस वस्तुमें भ्रम उत्पन्न हुआ है, उस पर सम्पूर्णरूपसे जब तक प्रकाश नहीं पड़ता तब तक उस भ्रमका लोप नहीं होता। सांख्यदर्शनमें इस तरहका भ्रम 'अन्यथा ख्याति' कहा गया है।

शङ्कराचार्यका कहना है कि भ्रमोत्पत्तिका मूल अज्ञान है। अज्ञान अनिर्वचनीय तथा दोष-स्थानीय है। दोषस्थानीय अज्ञानका स्वभाव यह है कि यदि किसी वस्तुके सर्वांश या किञ्चिदंश पर उसका अधिकार हो जाता है, तो वह दोष उस वस्तुमें उसी वस्तुके सद्रूप कोई दूसरी उसके विपरीत वस्तु उत्पन्न कर देगा। सीपके टुकड़ेके कुछ अंश पर अधिकार होने पर अज्ञानने चांदीकी सृष्टि की थी। केवल एक अज्ञानका ही ऐसा भाव नहीं है, अन्य वस्तुप' भी दोष, दुष्ट होने पर विपरीत वस्तुको उत्पन्न करती हैं। दावानलसे जला हुआ बेंतका चीज बेंतका अंकुर उत्पन्न न कर फदली (फेला) वृक्षको उत्पादन करता है। दोष क्या कर सकता है और क्या नहीं, यह कोई नहीं कह सकता। दोषके कारण ही सैकड़ों तरहकी वस्तुओंकी सृष्टि होती रहती है।

मीमांसकोंका कहना है कि ज्ञान मात्रही सत्य अर्थात् सद्रस्तु-विवयक है। संसारमें कोई भ्रूडो वस्तु नहीं और न कोई असत्य ज्ञान ही है। सीपके टुकड़ेमें चांदी दिखाई देना केवल प्रवाद ही है। उस समय उस सीपमें सीपका और चांदीका ही ज्ञान हुआ था। दोष और सम्प्रयोग-घटनावलीसे उन दोनों ज्ञानका पार्थक्य नहीं

१. कार्तिका, वैश्रवण या मनोदिनोदके द्विधे भगवता ।

२. ज्योतिष, जौक ।

समनोप (सं० वि०) सम-अनोप । समार्त, भूमि या अन्तर्गत  
नितोशब्दा ।

समभूटो (सं० स्त्री०) समनो अन्तो कुटो अत्रशुभमिष ।

सुनादिव्यय । पर्याय—कापारी, जङ्गलभूटो ।

समस्य (सं० स्त्री०) समस्य भावः स्य । समका भाव या  
धर्म ।

समना (हिं० क्रि०) १. योग्यता, भूय कर्मा ।

समसुन्दक (सं० वि०) जिसका आधिपत्य समके कारण  
हुआ हो ।

समर (सं० पु०) समति प्रतिशुभम् (गीर्ण मोत्या-  
दिना । उप० १।१३२) इति भर्त्वा घ्राभ्यन् सन् दीति  
शुभेदसाहित्याम् साधुः । कीटविशेष । पर्याय—मधुमन्,  
मधुकर, मधुलिङ्ग, मधुप, अलि, छिरेर, पुण्ड्रिह,  
भृङ्ग, पट्टपद, अन्तो, कन्तालाप, जिलोमुष, पुण्ड्रचय,  
मधुस्य, द्विप, भमर, चक्षुरोक, सुकाण्डो मधुलोमुष,  
इन्दिन्दिर, मधुमारक, मधुपद, लघ्व, पुण्ड्रकोट, मधुसुरक,  
भृङ्गराज, मधुलेटिन, रेणुवाम । (अमरतन्त्र)

स्यनाम प्रसिद्ध कीटविशेष । यह देगनेमें कुछ मोला-  
पन लिये जाता है । इसका काटापन तथा मधुलोमु-  
षता देव कर प्राचीन कवि इसकी कृष्णसे तुलना करते  
हैं । कहीं कहीं गोधे रत्नाम्नादी सुमेरीकी भी  
काटा समर कहनेमें नहीं चूकते । काष्णसंसारमें इसीसे  
इसका इतना आदर है ।

सित समर या भीराके रूप भीर उसके मुद्रानसे  
वर्णन गण मोहित हुए थे, यह तथा मोट्टरण समर कीट  
या साधया भीराकी तरहका भीर कोई कीटा ।

सदारी हम दो तरहके ही समर देवने बताते  
हैं । (१) मोट्टकृष्णवर्ण बड़े आकारका कीटा । यह  
छा पैरवाला है, किन्तु महिलायोंकी तरह कारोक पर  
रहने पर भी उसके ऊपर एक चिकना भीर कठिन भाव-  
रत लगा रहता है । एक पुण्ड्रका मधु सेकर जब हमारे  
पुण्ड्र पर जाता चाटना है तब यह पहले उस कठिन  
आवरणकी ही कोत्ता है । इसके पंच पैरों का उड़ जगता  
है । इसका अन्त अन्त विरेच अमलन्द्रमद नहीं । इस-

का उंच रिङ्गके उंकयो तरह कष्टम होता है । इनके  
कांटे हुए स्थान पर गियाजका रस मल होमे बड़ा  
नाम होता है ।

मधुमक्षियोंकी तरह इनकी छाया तप्यार करने नहीं  
देना माया है । ये पुण्ड्रसे मधुसंश्लिप्त करते हैं मरी, किन्तु  
मधुछाना नहीं बनाते । माधारणतः आमके पेड़में जो  
छिद्र या गोलवा रहता है, उसमें यह रहने देखे जाते  
हैं । फिर मृदुस्वीके परसूरे बांसीके टुकड़ोंमें भी यह  
देगे जाते हैं । इनके सिया सुन्दर पके हुए आमके फल-  
में इस जातिके छोटे मीरे भी देखे जाते हैं । ये  
उसमें समा जाते हैं, जिसका कुछ भी चिड़ दिखाई नहीं  
देता ; मानो आमके फलमेंसे ही इनकी उत्पत्ति हो  
गई हो । किन्तु आमके छिलका उतारते ही यह दिखाई  
देता है । (२) भृङ्गराज या छोटा भीम—इसका सब  
अङ्ग काला होने पर भी पूँछ पर पीले रंगका एक दाग  
दिगाई देता है । इनके डंसने पर यह स्थान जलने लगता  
है । एक साथ ही बीम या पचोस मंदरोंके काटने पर  
मनुष्यकी मृत्यु भी हो सकती है । ये मधुछाना मीपार  
कर पुकोत्पादन करते हैं । इनके द्विधे भट्टे में मधु-  
लिया भी पकड़ी जाती हैं । पहले कटे हुए मीरोंकी  
तरह पंथके ऊपरका कडोर और चिकना भावरण  
इसमें नहीं होता । मृदायनचारी बगमाटी समरकृष्ण में  
और नायिका-उपभोगमें पुण्ड्रके साथ गोपियोंकी तुलना  
देव प्राचीन कवियोंने इसकी कृष्णके साथ तुलना की  
है । २ कामुक । (मैदिनी)

समर—घम्याभरणके अन्तर्गत एक देव ।

समरक (सं० पु०) समर इधेति समर (इधे प्रकिञ्चो । पा  
१।१।६६) इति बन् । १ ललाटमस्तिन कृष्णकुण्डल, माथे  
पर लटकनेवाले काल । २ मृङ्ग । ३ बालमूर्तिक । ४  
भगवुसम । ५ बेपनपरमविशेष ।

समरकरण्डक (सं० पु०) झुट्टकीटविशेष । चोर इसके  
मध्य समरकीट भर देने हैं और चोरी करनेके समय उस  
कीटकी छोड़ देने हैं, जिसमें परके दीपक सुख जाते हैं ।

समरकोट (सं० पु०) समर रूप कीटा । कीटविशेष ।

समरभूट (सं० स्त्री०) कामरूपी मोट्टपर्यन्त पुण्ड्र-  
तोषा मदीविशेष ।

भ्रमरच्छली ( स० खी० ) भ्रमरान् छलयतीति छलि-अच्, गौरादित्वात् ङीप् । लताविशेष । इसके पत्ते बादामके पत्तोंके समान होते हैं । इसमें बहुत पतली पतली फलियां लगती हैं । इसकी लकड़ी सफेद रंगकी और बहुत बढ़िया होती है और प्रायः तलवारकी म्यान बनानेके काममें आती है । वैद्यकमें यह चरपरो, गरम, कड़वी, रुचिकारक, अग्निदीपक और सर्वादीपनाशक मानी जाती है ।

भ्रमरदेव—एक प्राचीन कवि ।

भ्रमरपदक ( स० झी० ) छन्दोभेद । इस छन्दके प्रति पादमें १२ अक्षर होते हैं ।

भ्रमरप्रिय ( स० पु० ) भ्रमरस्य प्रियः । धाराकदम्ब ।

भ्रमरमाली ( स० खी० ) भ्रमरान् मारयति गन्धोत्कर्मण व्याकुलयतीति भृ-णिच् अण् गौरादित्वात् ङीप् । मालय-देशप्रसिद्ध पुष्पवृक्षविशेष । इसमें सुन्दर और सुगन्धि फल लगते हैं । पर्याय—भ्रमरादि, भृङ्गमारी, मांस-पुष्पिका, कुष्ठादि, भ्रमरो, यष्टिलता । इसका गुण—तिक, पिच, श्लेष्म और ज्वरनाशक, शोथ, कण्डूति, कुष्ठ, व्रण-दोष और विदीपनाशक ।

भ्रमरवर—उत्कलाधिप राजा कपिलेन्द्रदेवकी उपाधि । कपिलेन्द्रदेव देखो ।

भ्रमरविलासिवा ( स० खी० ) एक वृत्तका नाम । इसके प्रति पादमें ११ अक्षर रहते हैं ।

भ्रमरहस्त ( स० पु० ) नाटकके चौदह प्रकारके हस्त-विन्यासोंमेंसे एक प्रकारका हस्तविन्यास ।

भ्रमरा ( स० खी० ) भ्रमर-अजादित्वात् टाप् । भ्रमर-च्छली ।

भ्रमरातिथि ( स० पु० ) भ्रमरः अतिथिरभ्यागतो यस्य । चम्पकवृक्ष, चम्पाका पेड़ ।

भ्रमरानन्द ( स० पु० ) मधुबाहुल्यात् भ्रमराणां भ्रानन्दो यस्मात् सः । २ बकुल, मौलसरी । २ अविमुक्तक । ३ रकाम्लान ।

भ्रमरालक ( स० पु० ) भ्रमर इव अलति भूयतीति अल-ण्वुल् । ललाटस्थित चूर्णकुन्तल, माथे पर लटकने-वाले बाल ।

भ्रमरालम्ब ( स० पु० ) भ्रूतृण ।

भ्रमरावली ( स० खी० ) १ एक वृत्तका नाम । इसे नलिनी या मनहरण भी कहते हैं । इसके प्रत्येक पादमें पांच सगण होते हैं । २ मंवरोंकी श्रेणी ।

भ्रमरो ( स० खी० ) भ्रमर-ङीप् । १ जतुका, जतु नामकी लता, पुवदात्री । २ मिरगीरोग । ३ पार्वती । ४ भौरकी मादा, भौरि ।

भ्रमरेष्ट ( स० पु० ) भ्रमराणामिष्टः । श्योणाकमेद । भ्रमरेष्ट ( स० खी० ) भ्रमराणामिष्टा । १ भार्गो, भारंगी । २ भूमिजम्बू, भुईं जामुन ।

भ्रमरोत्सवा ( स० खी० ) भ्रमराणां उत्सवः प्रमोदो यस्यां । माधवी ।

भ्रमरवात ( स० पु० ) आकाशका वह वायुमण्डल जो सर्वादा घूमा करता है ।

भ्रमात्मक ( स० त्रि० ) जिससे अथवा जिसके सम्बन्धमें भ्रम उत्पन्न होता हो ।

भ्रमासक्त ( स० पु० ) भ्रमे भ्रमणे आसक्तः युक्तः । १ शस्त्रमार्जक, वह जो हथियार साफ करता हो । ( त्रि० ) २ भ्रमान्वित ।

भ्रमि ( स० त्रि० ) भ्रम-बाहुलकात् इ । भ्रमण । पर्याय—भ्रम, भ्रमो । २ मण्डलाकार गति । ३ मण्डलाकार सैन्य-रचना । ४ घूर्णजल, मंथरी । ५ कुलालचक्र, कुम्हारका चक्र । ६ मूर्च्छा ।

भ्रमिका ( स० खी० ) धातुकीपुण्य ।

भ्रमिन् ( स० त्रि० ) भ्रमो विद्यतेऽस्येति इनि । १ भ्रम-विशिष्ट । जिसे भ्रम हुआ हो । २ चकित, भौचक ।

भ्रमित ( स० त्रि० ) १ जिसे भ्रम हुआ हो, शङ्कित । २ घूमता हुआ ।

भ्रमितनेत्र ( स० त्रि० ) ऐं चाताना ।

भ्रमी ( स० खी० ) १ भ्रमण, घूमना, फिरना । २ चक्र लगाना, फेरी देना । ३ सेनाकी वह रचना जिसमें सैनिक मण्डल बांध कर खड़े होते हैं । ४ तेज बहते हुए पानोंकी भाँर, नाँद ।

भ्रुशिमन् ( स० पु० ) भ्रुशस्य भावः, अतिशये वा इमनिच्, भ्रतो रः । १ भ्रुशत्व । २ अतिशय भ्रुश ।

भ्रुशिष्ट ( स० त्रि० ) भ्रुशस्य अतिशयः अतिशये इष्टन् । अतिशय भ्रुश ।



अष्ट ( मं० वि० ) अष्ट-कर्मरिक्तः । १ च्युत, पतित ।  
२ जो गमराय हो गया हो, बहुत विगड़ा हुआ । ३ दूषित,  
जिसमें कोई दोष था गया हो । ४ दुराचारी । जिसका  
प्राचर्यण गमराय हो गया हो ।

सष्टा ( मं० स्त्री० ) पुंश्र्वली, छिनाल ।

प्राज्ञ ( सं० स्त्री० ) सामभेद । यह माम गवानयन  
व्रतमें विषय नामक प्रधान दिनमें गाया जाता था ।

प्राज्ञः ( सं० स्त्री० ) वैद्यकके अनुसार त्यक्तामें रहनेवाला  
पित्त । नैजमर्दन, अण्माहर्न, आलेपन आदि क्रिया द्वारा  
जो सय स्नेह शरीरमें लगा रहता है, उसका परिपाक  
प्राज्ञः पित्त द्वारा ही होता है । पित्त देवो । २ दौसि-  
शील ।

प्राज्ञयु ( सं० पु० ) भ्रस्त्र अयुचु । १ दौसि । २ सौन्दर्य ।

प्राज्ञदृष्टि ( सं० वि० ) २ प्राणित अरथ, ज्ञान चढ़ाया  
हुआ दृष्टिपार । २ मरुदुद्भेद ।

प्राज्ञन ( सं० स्त्री० ) दीपन, चमक, दमक ।

प्राज्ञम् ( सं० स्त्री० ) तेज, दौसि ।

प्राज्ञस्यम् ( सं० वि० ) प्राज्ञस्-मनुष्य-मस्य यः । दौसियुक्त,  
जोभायमान ।

प्राज्ञिन् ( सं० वि० ) प्राज्ञ-अस्त्यर्थे इनि । दौसियुक्त,  
जोभायमान ।

प्राज्ञिर ( सं० पु० ) पुत्रानुसार भीत्य-मन्वन्तरके एक  
देवता । ( मार्क० पु० १०० अ० ।

प्राज्ञिष्णु ( मं० वि० ) प्राज्ञ-इष्णुचु । १ अलङ्कारादि द्वारा  
दौसियुक्त । ( पु० ) २ विष्णु ।

प्राज्ञिष्णुता ( सं० स्त्री० ) प्राज्ञिष्णुका भाव या धर्म,  
दौसिशीलत्व ।

प्राता ( सं० पु० ) सहोदर, सगा भाई । भ्रातृ देवो ।

प्रातुपुत्र ( सं० पु० ) प्रातुः पुत्रः पृथ्यां अलुक् । प्राता-  
का पुत्र, भतीजा ।

प्रातुपुत्री ( सं० स्त्री० ) प्रातान्ते कन्या, भतीजी ।

प्रातृ ( सं० पु० ) प्राजते इति भ्रातृत्वं नेष्टृत्वञ्च होषिति ।  
उष् २१६ इति तुष्, निष्ठात् साधुः । भाई, सहो-  
दर । पर्याय—सहोदर, भ्रातृनामोदर्थे, सोदर्थे, सगर्भे,  
महज, सोदर ।

अष्टेष्ट भ्राता पितृत्व्य है, पिताकी मृत्युके बाद ये  
कनिष्ठ भ्राताओंके प्रतिपालक होते हैं ।

“अष्टेष्टे भ्राता पितृत्व्यो मूले पितरि लीनतः ।

सर्वेषां स पिता हि स्वान् स सर्वेषामनुपालकः ॥

कनिष्ठस्तेषु सर्वेषु समस्तेषानुवर्त्तते ।

समोऽस्योऽस्योऽस्यो तथैव वनस्तथा ॥”

( गरुडपु० ११५ अ० )

अष्टेष्ट भाईकी स्त्री माताके समान है, इस कारण  
माताके समान उनका भक्ति करता उचित है । उन्हें  
हरण करनेसे मातृहरणके समान पातक और सैकड़ों  
प्राणहत्याके समान पाप होता है ।

“भ्रातृजायापशरी च मातृगामी भयंन्तरः ।

ब्रह्महत्यासहस्रं नभते नास संशयः ॥”

( ब्रह्मवैवर्त्सपु० प्रकृतिकां० ५३ अ० )

पिताकी मृत्युके बाद भाई भाई भिन्न होनेसे उनके  
धर्मकी वृद्धि होती है ।

“भ्रातृणां जीवताः पित्रोः उह्यागो विधीयते ।

तदभावे विभक्तानां धर्मस्तेषो विषर्द्धते ॥

भ्रातृणां यस्तु नेहेत धर्मं कर्मतः स्वार्थया ।

ए निर्मान्यः स्वकादंशात् किंचिद्व्योच्यतेऽननम् ॥”

( व्यास )

पितृसम्पत्तिके जितने भाई अधिकारी हैं उन्हें बराबर  
बराबर हिस्सा मिलना चाहिये ।

भ्रातृक ( सं० वि० ) भ्रातुरागत इति भ्रातृ ( स्वत्वञ्च । पा ५।  
३।७८ ) इति ठञ् । भ्रातासे आगत धनादि, यह धन भादि  
जो भाईसे मिलता हो ।

भ्रातृज ( सं० पु० ) भ्रातृः सहोदरान् जायते इति जन-  
( पञ्चम्यागवातो । पा ३।२।६८ ) इति ङ । भ्राताका अपत्य,  
भाईका लड़का । पर्याय—भ्रातृव्य, भ्रातृपुत्र ।

भ्रातृजाया ( सं० स्त्री० ) भ्रातृजाया ङ तत् । भ्रातृभायं,  
भामो । पर्याय—प्रजायनी ।

भ्रातृत्व्य ( सं० स्त्री० ) भ्रातृभायः त्व । भ्राताका भाव या  
धर्म ।

भ्रातृद्वितीया ( सं० स्त्री० ) भ्रातृमूलार्थां भ्रातृभोजनार्थां  
या द्वितीया, मध्यपद्व्योपि कर्मधा० । यमद्वितीया, काशित  
शुक्रद्वितीया । इस दिन यम और चित्रगुप्तको पूजा करने  
होती है । दिनमानको ८ से माग दे कर उसके पांचवें  
भागमें अर्घा १२ से १० के भीतर यह पूजा की जानी

है। तिथि यदि दोनों दिन पञ्चमयामथापिनो हो, तो युष्मादर-ग्रहतः दूसरे दिन यह कार्य करना होगा।

“यमञ्च चित्रगुप्तञ्च यमदूतारं च पूजयेत्।

अर्च्यैश्चाथ प्रदातव्यो यमाथ सहजद्वयैः ॥”

(निर्णयतिन्धु)

यमद्वितीयाके दिन यम, चित्रगुप्त और यमदूतोंको पूजा करके यमको अर्घ्य देना चाहिये।

कार्तिक मासकी शुक्ल द्वितीयाको यमुनाके यमको निजगृहमें पूजा करके भोजन किया था, इस कारण इसका नाम यमद्वितीया हुआ है। इस दिन अपने घरमें भोजन नहीं करना चाहिये। इस दिन वहनके हाथसे भोजन करना और वहनकी नाना प्रकारकी दान-सामग्री तथा स्वर्णालङ्कार आदि देने चाहिये। इस प्रकारका कार्य अशेष मङ्गलजनक माना गया है।

यदि सगो वहन न हो, तो चचेरी, मीसेरी आदि वहनके हाथसे भोजन करना विधेय है।\*

ब्राह्मणपुराणमें लिखा है—जो नारी इस तिथिमें ताम्बूलादि द्वारा भाईकी पूजा करती है, उसे फिर वैधर्म्य-यन्त्रणाका भोग नहीं करना होता। जो ऐसा नहीं करती है, उसके भाईको आयु क्षय होती है।

“या तु भोजयते नारी भ्रातरं युग्मेकं तिथौ।

अर्चयेच्चापि ताम्बूलैर्न सा वैधर्म्यमान्द्ययात् ॥

भ्रातरायुःश्रमो राजन् ! न भवेत्तत्र कश्चिच्चित् ॥”

(निर्णयतिन्धुवृत्त ब्रह्मण्युपरायण)

दृश्यन्त्यमें इसकी पूजाका विधान इस प्रकार लिखा है। यमद्वितीयाके दिन प्रातःकालमें प्रातःशुभ्यादि करके निम्नोक्त रूपसे स्वस्तिवाचन और संकल्प करना चाहिये। संकल्प, यथा—“ओं तत्सदित्युच्चार्य अर्थ-स्व्यादि अनुकमोलः अनुक देवशर्मां स्वरक्षणकामः यमादि-पूजनमहं करिष्ये ॥” इस प्रकार संकल्प करके शालग्राम शिला वा घटादिमें पूजाके विधानानुसार पूजा करे। पीछे इस मन्त्रसे अर्घ्य देवे।

मन्त्र—“एहं हि मासं यदञ्ज पाशहस्त यमान्तकालोत्तरात्परेण।

भ्रातृद्वितीयाहृतत्रैवपुं जां एहाय चार्घ्यं भगवन्नमस्ते ॥”

\* कार्तिके शुक्लपक्षे द्वितीयायां सुधिष्ठिर।

यमो यमुनायां पूर्वं भोजितः स्वर्गद्वैर्जिव्यतः ॥”

‘इदमध्य यमाय नमः।’ पूजाके बाद इस मन्त्रसे प्रणाम करना होगा।

“धर्मराजनमस्तुभ्ये नमस्ते यमुनाप्रज।

पाहिमा किङ्करैः यार्द्धं द्यर्षं पुत्र नमोऽस्तु ते ॥”

पीछे चित्रगुप्त और यमदूतोंको पूजा करके यमुनाकी पूजा करनी होती है।

“यमस्वर्गमस्तोऽस्तु यमुने षोडशुजिते।

वरदा भव मे नित्यं द्यर्षं पुत्रि नमोऽस्तुते ॥”

इस मन्त्रसे यमुनाको प्रणाम कर, पीछे दक्षिणा-अच्छिद्रावधारणादि करके पूजा शेष करनी होगी।

इस दिन वहन भाईके भोजनकालमें अन्नादि दे कर इस मन्त्रका पाठ करे,—

“भ्रातृत्ववानुजाताहं भुङ्क्ष्व भक्तमिदं शुभम्।

प्रीतये यमराजस्य यमुनाया विशेषतः ॥” (कृत्पत्तत्त्व)

वहन अगर बड़ो हो तो ‘तवाजुजाताह’की जगह ‘तवाप्रजाताह’ मन्त्र कहे।

कहीं कहीं देशकी प्रथाानुसार वहन प्रतिपदके दिन भाईके कपालमें तिलक लगाती और द्वितीयाके दिन भाईको भोजन कराती है। प्रतिपदमें तिलकके विषय का उल्लेख किसी भी शास्त्रमें देखनेमें नहीं आता।

भूतपत्नी (सं० स्त्री०) भूता पतिर्यस्या इति भूतुः पत्नीति वा ऋन्नेभ्यो ङीप्, इति ङीप्, ततः ‘नित्य’ सपन्त्यादिषु इति नान्तादेशः। भूतजाया, भामी। भूतपुत्र (सं० पुं० स्त्री०) भूतः पुत्रः। भूतज, भतीजा।

भूतबल (सं० लि०) भूता अस्त्यस्य बलक्। १ भूतयुक्त। (ह्यो०) २ भूताका बल।

भूतवध् (सं० स्त्री०) भूतुः-वध्। भूतजाया, भामी। भूतभगिनी (सं० स्त्री०) भूता और भगिनी, भाई और वहन।

भ्रातृभाव (सं० पुं०) भ्रातृभावः। पैदा हुए बालकका लग्न पर्यन्त तृतीय भाव। इस भावको भूतस्थान कहते हैं। ज्योतिष मतसे भूताके शुभा-शुभकी चिन्ता इसी भावसे की जाती है। यह भाव शुभ होनेसे भूतभाव शुभ होता है, अशुभ होनेसे यह भाव अशुभ समझना चाहिये।

इसके सम्बन्धमें ज्योतिषशास्त्रमें जो बातें कही गई हैं, उनकी संक्षेपमें आलोचना कर देखना चाहिये।

“भातृस्थानं पद्मत्रयं नानेकादसं कृतम् ।

वरादीन्वराणाञ्च भूतृनामो भवेन्नृप्याम् ॥

भूतृस्थानेऽवर्षादिनायस्य चारिष्याम् ॥

मये वनप्रभे तस्य दशा धीदरशुद्धिदा ॥” (परिजात)

लग्नस्थानसे तीसरा, पांचवां, सातवां, नौवां या ग्यारहवां स्थान भ्रातृस्थान कहलाता है। इन सब स्थानोंके स्वामी प्रहोंके दशमोगकालमें जातके भाईका जन्म होता है। इनमें भाईके स्थानके स्वामी, भाईके स्थानको देखने और भ्रातृभावापन्न प्रहोंमें जो बलवान् होते हैं, उन्हींके दशमोगके समय भाईका जन्म होता है।

बहुभ्रातृ-सुखयोग—यदि वृहस्पति और तीसरे घरके स्वामी अपने घरमें यानी तीसरे स्थानमें ही हों, तो उत्पन्न हुए बालकसे सुख प्राप्त होता है। शुभप्रहके साथ तीसरे घरमें स्वामी यदि लग्नस्थानमें चौथे, सातवें और दशवें घरमें हों, अथवा शुभक्षेत्रमें रह कर शुभनवांशगत हों, तो उस लड़केके कई भाई होते हैं। तीसरे घरके स्वामी या भ्रातृकारक प्रह शुभयुक्त और शुभ-दृष्ट होने पर अथवा भ्रातृभावरान्ति पूर्णबल रहने पर बहुत भाई होते हैं। सातवें यदि मङ्गल हो, आठवें शुक्र और नौवें रवि होने पर सहोदर बन्प्राप्त होते हैं। किन्तु भ्रातृस्थानमें शुभप्रहके योग और दृष्टि रहने पर सहोदर दोर्भाग्यु होते हैं। तीसरे स्थानमें पापप्रहके योग और दृष्टि रहने पर भ्राताको हानि होगी।

“पथे च भवने भोगः क्षतमे राहुसम्भयः ।

अप्ये च यदा सीरिर्भाता तस्य न जीवति ॥

विनाशस्यो वदा जीवो यने सीरिर्बदा यवेत् ॥

राहुञ्च गृहजस्थाने भ्राता तस्य न जीवति ॥” (परिजात)

छठवें मङ्गल, सातवें राहु और आठवें शनि रहने पर भ्राता जीवित नहीं रहता। लग्नमें वृहस्पति दूसरे शनि और तीसरे राहु रहने पर भ्राताका नाम होगा है, भ्रातृभापसे केन्द्र और त्रिकोण स्थानमें पापप्रह रहने पर भ्राताका नाम होता है और शुभप्रह रहने पर भाईको वृद्धि होती है और शुभाशुभ-प्रह रहने पर शुभाशुभ फल हुआ करता है।

तीसरे घरमें रवि हो और उसको पापप्रह देखा हो तो स्पष्ट भ्राता तथा पाप-दृष्ट शनि भी तीसरे स्थानमें हो तो, उसके बाद पैदा हुआ भाई और मङ्गल तीसरे स्थानमें रहनेसे उसके बाद पैदा हुए सभी भाईयोंका विनाश होत है। इसके सम्बन्धमें एक और विशेषता है कि रवि तीसरे स्थानमें रहनेसे बड़ा भाई, शनि रहनेसे छोटा भाई और मङ्गलके रहनेसे छोटे बड़े सभी भाईयोंका विनाश होता है। इसमें पाप और शुभप्रहोंके देखनेको कोई बात नहीं। तीसरे घरके स्वामी और भ्रातृकारक प्रह नीच घरोंमें या नीच नवांश घरमें, पापप्रहमें पापसंयुक्त या क्रूर पष्टांशगत होने और तृतीय घरके स्वामी और भ्रातृकारक प्रहपाप मद्यगत होनेसे भ्राताका नाश हुआ करता है।

भ्रातृहीन योग—तीसरे घरका स्वामी चंद्र यदि छठे, आठवें या बारहवें हो तो उसके बाद उसका कोई भाई नहीं पैदा होता। तीसरे और चौथे घरके स्वामी चौथेमें रहनेसे उसके भाई न होनेकी ही आशा है, किन्तु उपयुक्त तीसरे और चौथे घरके स्वामीके साथ मङ्गल हो, तो उक्त फल नहीं होता। तीसरे घरमें शनिका रहना भ्रातृनाश करनेवाला है। तीसरे घरमें यदि राहु हो तो उसके भाईकी वृद्धि होगी।

बड़े और छोटे भाईको संख्या निर्देश—कुण्डलीके लग्नस्थानसे ग्यारहवें और बारहवें स्थानके प्रह-संख्याको गिन कर बड़े भाईको और दूसरे तथा तीसरे प्रहको संख्यासे छठे भाईको संख्या बतानी चाहिये। तीसरे घरके स्वामी, भाईको बढ़ानेवाला, भाईका स्थान देन वाला और भाईका स्थानयुक्त प्रह—इनमें जो प्रह बलवान् हो उसी प्रह संख्या द्वारा भाईको संख्या बतानी चाहिये। उक्त चार तरहके प्रह यदि नीचेके शतृपुष्टमें अथवा पाषाणान्त या अस्तगतदि दोषसे मूढ़भावापन्न हो, तो उनमें भाईका नाम होता है और स्वयंके बलवान् होने पर भाई दीर्घजीवी होते हैं। उक्त चार तरहके प्रहोंमें यदि आधे बलवान् और आधे बलहीन हों, तो जितने भाई होंगे उसके आधे जीवित रह सकेंगे। इस तरह यह शोक करना होता है, कि कितने भाई जीवित रहेंगे। उक्त चार तरहके प्रह ग्रीह-प्रह हो कर घुरे स्थानमें हों, तो उनमें छोटे भाईयोंकी संख्या कम होगी है। तीसरे घरके

स्वामी यदि नवांशमें हों, तो भी उस नवांशकी प्रहसंख्या-से भी भाईकी संख्या बतलाई जा सकती है। सूक्ष्मतः विचार करनेसे तीसरे घरका स्वामी, भाई उत्पन्न करने-वाला, भ्रातृस्थानको देखनेवाला और भ्राताके स्थानमें स्थिर, इन चारों प्रहोंकी स्फुट गणना कर स्फुटराशि आदिका जोड़ करना होगा। उसके नवांशकी संख्यासे भाईकी संख्या स्थिर करने चाहिये। इनमें यदि किसी प्रहके नीचराशि-अंश या शतु नवांश हो, तो उक्त फल पूर्ण नहीं होता। और यदि उच्चराशि-अंश हो तो उक्त फलसे दूना फल होता है। इन चारों प्रहोंकी अपनी-अपनी दशा और अन्तर्दशा भोगके समय उनकी अनुकूलता तथा प्रतिकूलताके अनुसार भाईके शुभाशुभका विचार करना होगा।

अन्य मतसे भाईकी संख्याका निरूपण—मङ्गलके अष्टवर्ग-चक्रमें मङ्गलस्थित राशिके तृतीय स्थानमें जितनी फल रेखायें होंगी, उतने ही भाई होंगे। किन्तु उस मङ्गलका तीसरा स्थान मङ्गलके नीचग्रह या शतुग्रह होने पर उक्त फल नहीं होगा। भाई आदिको संख्या निक पणके विविध स्थल जाने पर बलवान् प्रहसे भी फलकी कल्पना करने होगी।

भ्रातृभावका स्वामी और भ्राताका एक प्रह, इन दोनोंमें जो प्रह बलवान् होगा, उसी प्रहसे भ्रातृसंख्या बतलानी होगी।

भाई-बहन—यदि तीसरे घरका स्वामी ओजो राशिमें हो अर्थात् पुं प्रहके क्षेत्रमें पुं प्रह यदि देखता हो या पुं प्रहके साथ हो तो भ्राता और तीसरे घरका स्वामी युग राशिमें हो पर अथवा चन्द्र या शुक्र उनको देखें या उनके साथ ही हों, तो बहन होती है।

सुखी और दीर्घायु भाईका योग—केन्द्रमें या त्रिकोणमें तीसरे घरका स्वामी शुभग्रहके घरमें हो, या शुभ प्रहसे देखा जाता हो, या उसके साथ ही मीजूद हो तो उसका भाई सदा सुखी और लम्बी आयुवाला होता है। इस भाईसे वियोग नहीं होता।

माताके गर्भमें हो भाईके नाशका योग—शनिके तीसरे रहने पर माताके गर्भमें दो भाईयोंका नाश होता है।

वृहस्पति, शुक्र या बुध तीसरे रहने पर तीन भ्राता उत्पन्न होते हैं। उक्त प्रह पापग्रहोंसे देखे जाने पर या पाप ग्रहोंके साथ रहने पर दो भाईयोंको मृत्यु हातो है। लग्न-स्थान या मङ्गलसे तीसरे शनि और नवे बुध रहने पर या मङ्गलसे तीसरे राहु स्थित हो और शुभग्रह उसे देखता हो या शुभग्रहके साथ हो, तो तीन बहिनोंका नाश होता है और उत्पन्न हुए लड़केको भुजा और पेटमें बहुतैरे चिह्न देखे जाते हैं। तीसरे घरमें बुध, चन्द्र तीसरे घरके स्वामोके साथ और भ्राता देनेवाला प्रह शनिके साथ रहने पर बड़ी बहन, एक छोटा भाई और तीसरे भाईका नाश होगा। यदि तीसरा पति नीचस्थ और भ्रातृकाग्र राहुके साथ हो, तो तीन बड़े भाई होते हैं तथा छोटाभाई और बहन नहीं होती। केन्द्रके तीसरे घरके स्वामोके नवे और पांचवे स्थानस्थित भ्रातृका-ग्रह वृहस्पतिके साथ उच्च स्थानमें रहने पर सहोदर होते हैं। इन बारहोंमें पहला, तीसरा, चौथा, सातवां, नवां और बारहवां भ्राता तथा इस योगमें उत्पन्न होनेवाला बालक मर जाता है। बाकी पांच भाई बड़ी आयुवाले होते हैं। इन बारह सहोदरोंके छः यमज होते हैं। वृहस्पति या चन्द्रके युक्त मङ्गल ध्वयपतिके साथ हो कर तीसरे स्थान पर होनेसे ७ सहोदर होते हैं। इनमें दोको मृत्यु हो जाती है। यदि लग्नके स्वामी और तीसरे घरके स्वामी आपसमें शत्रु या मित्र हों, तो छोटे भाईसे शत्रुता या मित्रता हुआ करतो है। जिस-जिस भावपतिके साथ लग्नपतिकी शत्रुता और मित्रता होती है उसी-उसी भावसे ही शत्रुता और मित्रता होती है।

भाईके वियोग होनेका योग—बलहीन लग्नके स्वामी और तीसरे घरके स्वामी अथवा भ्राता होनेवाला प्रह आपसमें शत्रु बन कर तीसरे या कष्टकर स्थानमें जाने पर उसी प्रहको दशामें और अन्तर्दशामें भ्राताके साथ भगड़ा तकरार और वियोग तथा उसके लिये धनका अपव्यय तथा भाईकी मृत्यु होती है।

भ्राताकी मृत्युका निरूपण—लग्नके स्वामोके स्फुट राशि आदिको छोड़े जो बाकी बचेगा उसी राशि-अंश आदिसे जो नक्षत्र हो, उस नक्षत्रमें यदि शनि आजाय तो भाईकी मृत्यु हो जाती है। लग्नके स्वामोके स्फुटसे

द्वयों गरके स्वामी और मङ्गलके म्बुटको छोड़ जो बाकी बचेगा उस राशि-अंश पर या मन्मन्मुट, सद्मन्मुट, द्मन्मन्मुट और मङ्गलम्बुटको छोड़ देने पर जो जो लब्ध होगा उस म्बुटोंमें यदि जनि धा जाय, तो भ्राताको मृत्यु होगी है। ये चार म्बुटोंनि निर्दिष्ट नक्षत्र घटित जिस प्रहरी दशा निरूपित होगी उस प्रहरी दशा और अन्तर्दशामें भ्राताको सुख-सम्पत् प्राप्त होता है। मङ्गलके म्बुटसे राहुम्बुटको छोड़ कर और राहुम्बुटसे मङ्गल-म्बुटको निकाल कर जो बाकी बचेगा, उस राशि अंशसे पान्चमे और नवमे घरके स्वामीके उतने दो अङ्ग अंश पर एहस्पतिके जाने पर भ्राताको मृत्यु होती है।

तामरे गृहके स्वामी रविके साथ हो, तो बालक घोर होता है। चन्द्रके साथ रहने पर मानसिक धैर्यगाली, मङ्गलके साथ रहने पर दुष्ट, जड़, कोपी, बुधके साथ रहने पर सच्चे स्वभाव, गृहस्पतिके साथ रहनेसे धीरता गुण-युक्त और सर्वज्ञानर जाननेवाला, शुकके साथ रहने पर कामानुर, विलासी और फलमें पटु, जिनके साथ रहनेसे जड़, राहुयुक्त होनेसे उरपोक और केतुके साथ होने पर पीडादायक होता है।

बलयान तामरे घरके स्वामी शुभग्रहवर्गमें स्थित होनेसे मन्ने स्वभावका बालक होता है और तामरे घरके स्वामीके नीचस्थ, विनष्ट, गन्व-क्षेत्रगत या पापग्रह-युक्त होनेसे बालक असात्विक होता है। भ्रान्ताभावमें रवि मादि नवग्रह हों तो निम्न-लिखित फल होता है। रविके सप्तस्थानमें रहने पर लड़का बलयान, प्रतापी, विक्रमगाली, महोदरने भयभीत, तीर्थ-पर्यटक और युद्धमें शत्रु विजयो तथा राजाका भनि प्रियपात्र हुआ करता है। दूसरे मतसे, रवि तामरे रहने पर सप्तोदरको मृत्यु और दूसरे ग्रह द्वारा रिष्टनाश, धनवान्, स्त्री-सुखपूर्ण गुणवान्, धैर्यगाल, प्रियजनका हितचिन्तक और सहनशील हुआ करता है। पूर्णचन्द्रके तामरे भावमें रहने पर बालक अपने बाहुबलसे धन उपार्जन करता तथा सुन्दर उत्तमा पत्नी प्राप्त करता है। यह बालक दयाशील और अनेक नीरुतोंके साथ तथा सहोदरोंमें सुखी होकर विरोध सुगमसे जोयन विनाता है।

पापक्षेत्रगत तृतीय भागस्थ क्षोणचन्द्र बालकका

वहिनका नाश करता है। शुभक्षेत्रगत तृतीय भाग-पापन पूर्णचन्द्र सुन्दर वहिन देनेवाला होता है। जगन्ना-भरणके मतसे चन्द्रके तामरे रहने पर बालक हिंसक, घमंठी, कञ्जुस, कम बुद्धिवाला, भाईपोंके आश्रयमें रहनेवाला, निर्दय और रोगग्रस्त होता है।

मङ्गल तामरे स्वानमें रहनेसे बालक अपने बाहुबलसे क्रमानेवाला, भाईके लिये दुःखी और तपश्चरपामें विफल हुआ करता है। उच्चस्थानका मङ्गल तामरे भाग-पापन होनेसे बालक मंतीके धनमें सौभाग्यवाली और विलासी होता है तथा नीचस्थानमें या शत्रुके घर रहनेसे धन-सुख-विहीन और निन्दित घरमें रहनेवाला होता है।

बुधके तामरे भावमें रहने पर बणिकोंसे मित्रता और उत्पन्न हुआ बालक बाणिज्य प्रवृत्तिवाला होता है और अपने बुद्धिबलसे अत्यन्त निरंकुश व्यक्तिका भी अपने अधीन कर लेता है। यह बहुत विनीत होता है। यह बालक बहुत भाईवाला तथा उनके आश्रयमें रहने हुए शोचनकालमें सम्पत्ति-सुलभे सम्भोगमें बहुत लय-लीन रहता और गृहावस्थामें संसार-त्यागी हो कर धर्ममें रत होता है। पापग्रहोंके साथ और अलगत बुधके तामरे रहनेसे वहिनकी हानि होती है और शुभ-ग्रहोंके साथ शुभ ग्रहोंके देखे जाने पर तथा उदित रहने पर भ्राता और वहिनके लिये शुभ हुआ करता है।

गृहस्पतिके तामरे भावमें रहने पर बालक छोटा परा क्रमहीन और निर्धन होता है। किन्तु यह बालक भाईके सुपरसे सुखी, शत्रु और मित्र द्वारा सम्मानित तथा उपहन होने पर भी उनके प्रत्युपकारको इच्छा नहीं करता। भोगपादय होने पर भी इसकी अपना धन नहीं मिलता। यह बालक सुजनता रहित, कञ्जुस, बुध-फल-सुपरसे वञ्चित, धनवान् होने पर भी निर्दय तथा अग्निमान्ध रोगसे पीडित और अधिक बुद्ध्यवाला होता है।

शुकके तामरे भावमें रहने पर बालक स्त्री-प्रेमी और मित्र-रहित होता है। इसकी स्त्री अल्प-प्रयुता मिलेगी, इससे सन्तान-सुखकी कालसा पूर्ण नहीं होगी। यह बालक उरपोक और कष्ट स्वभावका, धन रहने पर भी गर्व

करनेमें कञ्जूस, पतला, दुबला, कामी साधुओंसे द्वेष करनेवाला और रूपयतो वहिनवाला होता है।

शनिके तीसरे भावमें रहने पर बालकका हृदय गर्म होता है अर्थात् यह बालक सदा मानसिक सन्ताप भोगा करता है। यह बालक विशेष उद्योगी होता है। इसका आभ्योदय कभी भी निर्दिष्ट नहीं होता। यह बालक अप्रशोचो, अति दुर्मुख, राजद्वारमें सम्मानित, सवारी पर चलेनेवाला, गाँवमें ध्रोष्ट्र, पराक्रमशाल, बहुत लोगोंका पालन करनेवाला, भाईके दुःखसे दुःखित, विदेशवासी, नौचोंका संग-साथ रखनेवाला और अघमें होता है तथा इसकी भुजाओं रोग रहता है।

राहुके तीसरे भावमें रहने पर बालक बाहुबल-शाली और मत्स्युद्ध विद्यामें निपुण होता है। इसका भाई नहीं जाता; यदि जाता भी है, तो अङ्गभङ्ग हो कर। यह बालक धनधान, वीरभावपन्न, खी-पुत्र और मित्रादिके सुखासे सुखी होता है। दूसरे शहरिष्ट कुछ नुकसान नहीं पहुँचाते। राहुतुङ्गो होने पर इसके पास हाथी घोड़े और बहुतेरे नौकर चाकर हुआ करते हैं।

केतुके तीसरे भावपन्न होने पर बालक शत्रुनाश करता है। इस बालकके धन, भोग, विद्या, ऐश्वर्य और तेज अधिकतासे बढ़ता है। उसके मित्रोंका नाश या उसके मित्र रोगपीडित रहते हैं। उसको सर्वदा भय, विकलता और चिन्तासे चिन्तित होना पड़ता है। इसके हाथमें रोग, सुन्दर स्त्रीसे सम्भोग करनेवाला, मानसिक दुःखसे दुःखित और मित्रसम्बन्धोय दुःखसे सदा दुःखी रहता है।

यदि तीसरे घरमें पापग्रह हो और वह उसीमें रहता हो तो उसके सहोदर भाई नहीं उत्पन्न होते। इसके विपरीत होनेसे विपरीत फल भी होता है, यानी तीसरे घरमें यदि शुभग्रह हो, उसमें शुभग्रहोंका ही वास हो, तो उसके कई सहोदर भाई होते हैं। यही भ्रातृस्थान शुभग्रहोंका घर ही और उसमें सभी शुभग्रह रहते हों या इस घरको शुभग्रह देखते हों, तो भी सहोदरोंको बढ़ती ही रहती है। किन्तु पापग्रह तथा शुभग्रहका मिलान होनेसे शुभाशुभ फल भी हुआ करता है।

तीसरे घरके जितने भी नवांश चन्द्र और मङ्गल द्वारा

देखे जाते हैं, उतने ही भ्राता और यहीन होती हैं। किन्तु इन चन्द्र और मङ्गलके शुभाशुभ ग्रहके दृष्टिके अनुसार फल जानना होगा। यदि शनि शरीरस्थानमें रहे और मङ्गल उसको देखता हो, तो उसके सभी सहोदर मर जाते हैं। यदि यह शरीरमें स्थित शनि, बृहस्पति और शुक द्वारा देखा जाता हो, तो निश्चय ही सहोदरोंका मङ्गल होता है। शरीरस्थित शनिको यदि मङ्गल या बुध देखता हो, तो सब सहोदरोंका नाश हो जाता है।

यदि तीसरा घर चन्द्रका क्षेत्र हो, और यदि मङ्गल देखना रहे तो उसके सभी भाई रोगी होते हैं। यदि रवि अपने घरमें हो, और यह घर यदि धर्मस्थान हो, तो सहोदरके जीनेमें संशय होता है। किन्तु एक भाई दीर्घजीवी तथा राजतुल्य होता है। यदि तीसरे भावमें चन्द्र हो, वह चन्द्र किसी पाप ग्रहसे तीसरा न हो और उस पर किसी शुभग्रहको दृष्टि न पड़ती हो, तो उसको माताकी मृत्यु होती है। यदि तीसरे घरमें रवि हो तो बड़े भाईकी, शनि हो तो छोटे भाईको मृत्यु होती है और मङ्गल हो तो बड़े छोटे दोनों भाइयोंको मृत्यु ही जाती है।

ज्योतिष पण्डित भाईके स्थानमें सहोदर, नौकर, अनुजीवी और पराक्रमका विचार किया करते हैं।

( जातकाभरण, कल्पवक, बृहजातकादि )

भ्रातृमत् ( सं० ति० ) भ्राता विद्यतेऽस्य मतुप् । भ्रातृयुक्त ।

भ्रातृव्य ( सं० पु० ) भ्रातुरपत्यमिति ( भ्रातृव्यं च । पा ५।१।१५ ) व्यत् । भ्रातृपुत्र, भतीजा ।

भ्रातृश्वशुर ( सं० पु० ) पत्युज्येष्ठभ्राता श्वशुर इव पूज्यत्वात् । पतिका बड़ा भाई, जेठ, पर्याय—श्वशुरक । भ्रातुः श्वशुरः । २ भ्रातृपत्नीका पिता, भामीका बाप ।

भ्रात्र ( सं० ह्री० ) भ्रातुरिदं, जिवादिवाद्यत् । भ्रातृसम्बन्धी ।

भ्रातृव्य ( सं० पु० ) भ्रातृपत्यं पुमानिति भ्रात् ( भ्रातृव्यं च । पा ५।१।१५ ) इत्यत्र चकाराच्छच इति काशिकोक्तः छ । १ भ्रातृपुत्र, भतीजा । ( ति० ) २ भ्रातृसम्बन्धी ।

भ्रान्त ( सं० ति० ) भ्रम-कूर्चरि-क्त ( अनुनायिकत्वेति । पा-

६।१।१) इति श्लोकः । १ भ्रान्तिविनिष्ट, जिसे भ्रान्ति या भ्रम हुआ है । २ व्यापुन्द, घबराया हुआ । ३ उन्मत्त । ४ घुमाया हुआ । ( पु० ) ५ भ्रमण, घूमना फिरना । ५ पूर्णायमान । ६ मत्तस्ती, मान्द हाथी । ७ गजयुस्तुद, गज धनुष । ८ नलवारणे, हर हाथोंमें से एक । इसके द्वारा दूसरेके चलाये हुए जत्रको धर्य किया जाता है । भ्रान्तापहृति ( सं० खो० ) एक काव्यालङ्कार । इसमें किसी भ्रान्तिको दूर करनेके लिये सत्य वस्तुका वर्णन होता है ।

भ्रान्ति ( सं० खो० ) भ्रम-तिन् ( भ्रुनागिहत्व कित्-मन्तोःकृदिति । पा ६।१।१५ ) इति श्लोकः । १ भ्रम, घोषा । २ मंजय, सदेह । ३ भ्रमण । ४ पागदपन । ५ आयर्त्त, मंयरो । ६ भ्रूञ्चूक । ७ मोह, प्रमाद । ८ एक प्रकारका काव्यालङ्कार । इसमें किसी वस्तुको दूसरी वस्तुके साथ उसको सामान्यता देण कर भ्रमसे उसे दूसरी ही वस्तु समझ लेना वर्णित होता है ।

भ्रान्तिमन् ( सं० खि० ) भ्रान्तिरस्त्यस्य मनुष्य, मन्वय व । १ भ्रमगामयुक्त । ( पु० ) २ अर्थाङ्कारभेद ।

इसका लक्षण—

“याम्यादतस्मिन्स्तदुद्विभ्रान्तिमान प्रतिभोत्थिता ।”

( साहित्यप० १०।६।१ )

साम्यविषयमें एक वस्तुमें अन्य वस्तुका ज्ञान होनेसे यह बालङ्कार होता है, परन्तु यह ज्ञानप्रतिभावलसे उत्पन्न होना चाहिये ।

भ्रान्तिहर ( सं० पु० ) भ्रान्ति हरतीति ह-कर्त्तरि पचाधच् । १ मन्तो । मन्तना द्वारा भ्रान्ति दूर होती है, इसीसे मन्तो-को भ्रान्तिहर कहते हैं । ( खि० ) २ भ्रमनाशक ।

भ्रम ( सं० खि० ) भ्रम-कर्त्तरि श्वादादित्वात् ण । १ भ्रम-युक्त । ( पु० ) २ मत्ताद्रिवर्णित एक राज्ञा ।

भ्रमक ( सं० पु० ) भ्रमणयति भ्रमं जनयतीति भ्रम-णिन् ( वृत्तृन्धी । पा ३।१।१३३ ) इति ष्युन् । १ भ्रमाल, गोवृष्ट । २ घूर्णायमं । ३ प्रस्तरभेद, घुंभक परधर । ४ कान्ति मोहा । ( खि० ) ५ भ्रममें शालनेपाला, बहकानेपाला । ६ सन्देश उरपत्र करनेपाला । ७ व्याजर दिलानेपाला, मन्देश उरपत्र करनेपाला । ८ भूत, चालवाज ।

भ्रमर ( सं० खो० ) भ्रमरः एतं मन्तुमिति भ्रमर

( पुत्राभ्रमर पटराजनादन् । पा ३।१।१३६ ) इति अन् । १ मधु, गदद । इसका गुण—रक्तपित्तनाशक, मूत्रजाव्यकर, गुग्गु, स्वादुपाक, अभिरपन्दो । मधु देतो । २ मृत्युविरोध, एक प्रकारका नाच । इसमें बहुतेसे लोग मंडल बना कर नाचते हैं । पर्याय—रास, मण्डलगत्य, हाथीग । ३ प्रस्तरविशेष, घुम्भक परधर । ४ अपस्माररोग । ५ दोहेका दूसरा भेद । इसमें २१ गुण और ६ लघु मात्राएं होती हैं । ( खि० ) ६ भ्रमरसम्बन्धी, भ्रमरका ।

भ्रामरिन् ( सं० खि० ) भ्रमरं भ्रमरस्त्वेव घूर्णनवस्थात् रूपमस्य, इति । अपस्मार-रोगयुक्त, जिसे अपस्मार रोग हुआ हो ।

भ्रामरी ( सं० खो० ) भ्रमरस्यायं भ्रामरी भ्रमरपट्ट धर्षाः सोऽस्या अस्तोति, अशीभाधच् ङीप् । १ पार्यती । भग-यतीने कहा था,—अरुणाक्ष नामक महासुरके विघ्न उत्पादन करने पर, मैं जगत्की शान्तिके लिये पट्ट-विनिष्ट भ्रमरमुक्ति धारण कर उस महासुरका संहार करूंगी । इस कारण मेरा नाम भ्रामरी होगा । २ पुन-दावी-रता ।

भ्रूश्य ( सं० खो० ) आयुध, हथियार ।

भ्रूप ( सं० खो० ) भ्रूसज-ध्वन् । १ आकाश । २ पात्र-विशेष, यह बरतन जिसमें मङ्गभूजे अनाज रख कर भूतते हैं ।

भ्रूप्रिक ( सं० पु० ) गोत्रप्रवर्त्तकं श्रुतिभेद ।

भ्रूप्रज ( सं० खि० ) भ्रूणा हुआ ।

भ्रूप्रयती ( सं० पु० ) गोत्रप्रवर्त्तकं श्रुतिभेद ।

भ्रूप्र्य ( सं० पु० ) श्रंग या जातिभेद ।

भ्रूत्त्रिक ( सं० पु० ) शरीरको एक नाड़ीका नाम ।

भ्रूकुंस ( सं० पु० ) भ्रूया कुंस्यति परस्व, प्रत्ययः, हृस्वश्च या । स्त्री-विजापारो तत्तकं पुण्य, यह जो स्त्रीका धेनुधारण करके नाचता हो ।

भ्रुकुटी ( सं० खो० ) भ्रूधं कुटिकीटिन्यमिति यष्टीममामः, ‘अभ्रूद्मन्मानीना’ मिति या ह्रस्वः । १ कोषादि द्वारा भ्रूकटिन्य, कोषके मारे भींद गड़ना । २ भ्रुकुटी, भींद ।

भ्रुकुटीमुग ( सं० खो० ) १ भ्रूमन्निगुक्त मुग । २ सपंभेद-एक प्रकारका सांप ।

भ्रूभङ्ग (सं० पु०) भ्रूवो भ्रूभङ्गं ह्रस्वस्य । भङ्ग, भौंह चढाना ।

भ्रू (सं० स्त्री०) ब्राह्म्यति नेत्रोपरि इति भ्रम (अशेष ह्रः । उष्ण २।३८) इति ह्र । आँखोंके ऊपरके बाल, भौंह । पर्याय—चिल्लिका । शुभाशुभ लक्षण—भ्रूके विशाल और उन्नत होनेसे सुखी तथा विपम होनेसे दरिद्र होता है ।

“धिरालोन्नाता मुनिनिदरिद्रा विपमभ्रूवः ।

धनी दीर्घा संघकः भ्रूवाङ्घ्रिभ्रूतसम्भ्रूवः ॥”

(गरुडपु० ६६ अ०)

तन्त्र मतानुसार भ्रूके मध्य पट्टचक्रके अन्तर्गत आङ्गनामक चक्र है । यह ह्र क्ष दो वर्णसे युक्त द्विफल पञ्चाकार है । इसके बीचमें मन अवस्थित है ।

भ्रूकुं (सं० पु०) भ्रूकुं-स-अच् । स्त्रीवेषधारी नर्तक पुरुष, यह नट जो स्त्रीका वेष धारण करके नाचता है ।

भ्रूकुटी (सं० लि०) भ्रूचः कुटिः कौटिल्यं । कोषादि द्वारा भ्रूका कौटिल्य ।

भ्रक्षेप (सं० पु०) भ्रूवक्षेपः । भ्रूभङ्गः संकेत जतानेके लिये भौंह तिरछी करना । २ भ्रूविलास ।

भ्रजाह (सं० स्त्री०) भ्रूमूल ।

भ्रूण (सं० पु०) भ्रूण्यने आश्रयस्ते इति भ्रूण-घञ् । १ बालकको उस समयकी अवस्था जब कि वह गर्भमें रहता है । २ स्त्रीका गर्भ ।

भ्रूणघ्न (सं० लि०) भ्रूणं हन्ति भ्रूण-हन्-क । भ्रूण-हत्याकारी, गर्भके बालककी हत्या करनेवाला ।

भ्रूणहति (सं० स्त्री०) हन्-क्तिन्-हतिः हननं, भ्रूणस्य हतिः । भ्रूणहत्या ।

भ्रूणहत्या (सं० स्त्री०) हननं हत्या, हन-भावे, ष्यप्, भ्रूणस्य हत्या ई-त्त् । गर्भस्थ-बालक-हनन, गर्भके बालककी हत्या ।

भ्रूणहन् (सं० स्त्री०) भ्रूणं हन्तीति भ्रूण-हन्-क (ब्रह्मभ्रूण-वृत्तुषु । पा ३।२।८७) इति ष्यप् । गर्भस्थ-बालक-हनन, गर्भस्थ शिशुकी हत्या करनेवाला । भ्रूणहत्या करनेसे महापातक होता है । यह महापातक प्रायश्चित्त द्वारा दूर होता है । प्रायश्चित्तविधेयके लिये है, कि

भ्रूण यदि पुरुष हो, तो पुंबंध प्रायश्चित्त और यदि स्त्री हो तो स्त्रीबंध प्रायश्चित्त करना आवश्यक है । यदि

भ्रूणका पुंसत्व वा स्त्रीत्व न मालूम हो, तो पुंबंध प्रायश्चित्त करना विधेय है । भ्रूण ब्राह्मणादि जिस वर्णका होगा, प्रायश्चित्त भी उसी वर्णके अनुसार करना होगा । भ्रूहत्या यदि जानकृत हो, तो पूर्ण प्रायश्चित्त और यदि अज्ञानवशतः हो तो उसका आधा प्रायश्चित्त करना होता है । जानकृत ब्राह्मणभ्रूणहत्या करनेसे द्वादशवार्षिक व्रत, क्षत्रियकी करनेसे त्रैवार्षिक व्रत, वैश्यकी करनेसे सार्द्धवार्षिक व्रत और शूद्रकी भ्रूणहत्या करनेसे नवमासिक व्रत करना चाहिये । इससे सभी पाप जाते रहते हैं । प्रायश्चित्त देखो ।

भ्रूप्रकाश (सं० पु०) एक प्रकारका काला रंग । इसे शृङ्गार आदिके लिये भौंह बनाते हैं ।

भ्रूभङ्ग (सं० पु०) भ्रूवो भङ्गः । भ्रूकौटिल्य, क्रोध आदि प्रकट करनेके लिये भौंह चढाना ।

भ्रूभेद (सं० पु०) भ्रूवो भेदः । भ्रूभङ्ग, भ्रूविकार । भ्रूभेदिन् (सं० लि०) भ्रूभेदः अस्थास्तीति इनि ।

भ्रूभेदयुक्त, भ्रूभङ्गयुक्त ।

भ्रूविकार (सं० पु०) भ्रूवो विकारः । भ्रूभङ्ग, भौंह चढाना ।

भ्रूविक्षेप (सं० पु०) भ्रूवो विक्षेपः । भ्रूभङ्ग, नाराजी दिखाना ।

भ्रूविचेष्टित (सं० पु०) भ्रूवो विचेष्टितं । भ्रूक्षेप, त्वयोरी बदलना ।

भ्रूविलास (सं० पु०) भ्रूवो विलासः । भ्रूका विलास, भ्रूभङ्ग ।

भ्रूपे (सं० पु०) १ नाश । २ गमन, चलना । ३ भय, डर ।

भ्रूणम्र (सं० लि०) भ्रूणहत्याकारी-सम्बन्धीय । भ्रूणहृत्य (सं० स्त्री०) भ्रूणहत्या ।

भ्रूलवेय (सं० लि०) भ्रूव इदम्, भ्रूवो वुकच इति टक्, वुकच । भ्रूसम्बन्धीय ।

भ्यासर (हि० वि०) मूर्छा, बेचकूफ ।



## म

म—हिन्दी वर्णमात्राका पचोसवां व्यञ्जन और ०वर्णका ध्वनिम वर्ण। इसका उच्चारण-स्थान होंठ और नासिका है। जिहासे बगले भागका दोनो' होठोंसे स्पर्श होने पर इसका उच्चारण होता है। इस शब्दके उच्चारणमें आन्ध्रप्रदेशप्रयत्न है, अतएव यह वर्ण स्पर्शवर्ण और अनुनासिक है। इसके उच्चारणमें संवार, नाद घोष और अल्पप्राण प्रयत्न लगते हैं। इसका स्वरूप—

“मकार शत्रु शार्ङ्ग स्वयं परमकुण्डली।

तच्छ्वादित्यण्डान्मां नात्रुपंमंदायकम् ॥

एचचेतमरं वर्णं ध्वन्याद्यमं वदा ॥” (कामधेनुतन्त्र)

यह वर्ण शार्ङ्गत्वं परमकुण्डली-स्वरूप, तरुणसूर्य सद्गुण और अनुवर्णप्रदायक, पञ्चदेवमय और पञ्चप्राण-मय है। इस वर्णके अधिष्ठात्री देवताका ध्यान—

“शुभ्यां दक्षुना भीमा पीतशोदितजोचनान्म।

शुभ्याम्बरधरां नित्यां शर्ङ्गाधर्ममौद्गदान्म।

एवं ध्यात्वा भक्तान्मु तन्मन्त्रं दक्षया वनेत् ॥”

(वर्षाधिकारतन्त्र)

इस प्रकार ध्यान करके द्वा बार जप, फोड़े प्रणाम करना उचित है। प्रणामका मन्त्र—

“प्रतिविरहितं वर्णं विविन्दु महितं वदा।

भात्मादित्तर्जसुवर्णं हरिर्वा प्रणमाम्बहम् ॥”

(वर्षाधिकारतन्त्र)

इसके धानक शब्द—काली, क्लेशजित, काल, महाकाल, महान्तर, वैकुण्ठा, यमुधा, चन्द्रो, रवि, पुरुषराजक, कालभद्र, जया, मेघा, विश्वेश, क्षेमसंघक, अट्टर, सम्रा, मान, लक्ष्मी, माता, उग्रभयनो, विर, निय, महावीर, जनिमाना, जनेभर, प्रमता, प्रियम्, कष्ट, शर्वाङ्ग, धरि-मण्डल, मातङ्गमालिनो, विष्णु, धयणा, भरथ, प्रियय,

(वर्षाधिकारतन्त्र)

मातृकान्याममें इस वर्णका जठरमें स्थान करना होता है। काण्डके भादिमें इस वर्णका प्रयोग करनेसे दुःख होता है।

म (सं० पु०) माति निर्माति जगदिति मा-क। १ शिष। २ चन्द्रमा। ३ प्रज्ञा। ४ धम। ५ समय। ६ विर। ७ मधुसूदन।

मई (हि० स्त्री०) १ मयजातिकी स्त्री। २ ऊँटनी।

मई (मं० स्त्री०) अङ्गरेजी पंथ्यां महीना। यह सदा ३१ दिनका होता और प्रायः वैशाखमें पड़ता है।

मउर (हि० पु०) फूलोंका बना हुआ यह मुकुट या सेदरा जो विवाहके समय दूल्हेके सिर पर पहनाया जाता है, मौर।

मउरुझारं (हि० स्त्री०) १ विवाहके बाप-मौर मोलनेकी रहम। २ यह धन जो खरको मौर मोलनेके समय दिया जाता है।

मउरी (हि० स्त्री०) एक प्रकारका तिकीना छोटा मौर। यह कागजका बना होता है और विवाहके समय बग्याके सिर पर रखा जाता है।

मउलसिरी (हि० स्त्री०) मोलसिरी देखो।

मउसी (हि० स्त्री०) भीगी देखो।

मंखी (हि० स्त्री०) एक प्रकारका गहना जिसे बर्षोंके बन्ध-में पहनाते हैं।

मंगला (हि० पु०) मिश्रक, मिश्रमंगा।

मंगन (हि० पु०) मिश्रक, मिश्रमंगा।

मंगनी (हि० स्त्री०) १ मांगनेकी क्रिया या भाष्य। २ यह पदार्थ जो किसीसे हम ज्ञान पर मांग कर लिया जाय कि कुछ समय तक काम लेनेके उपरान्त फिर लौटा दिया जायगा। ३ इस प्रकार मांगनेकी क्रिया या भाष्य।

४ विवाहके पहलेकी एक रहम। इसके अनुमार घर और

कन्याका सम्बन्ध निश्चित होता है। साधारणतः घरपक्ष-  
के लोग कन्या पक्षवालोंसे विवाहके लिये कन्या मांगा  
करते हैं और जब घर तथा कन्याके विवाहकी बातचीत  
पक्की होती है, तब उसे मंगनी कहते हैं। इसके कुछ  
दिनोंके बाद विवाह होता है। मंगनी सिर्फ सामाजिक  
रिति है; कोई धार्मिक कृत्य नहीं। अतः एक स्थान  
पर मंगनी हो जाने पर सम्बन्ध बूट सकता है और दूसरी  
जगह विवाह हो सकता है।

मंगलामुखी ( हि० खी० ) वेश्या, रंडी।

मंगली ( हि० वि० ) जिसकी जन्मकुण्डलीके चौथे,  
षाष्ठे या बारहवें स्थानमें मंगलग्रह पड़ा हो।

मंगवाना ( हि० कि० ) किसीको मार्गनेमें प्रवृत्त करना,  
मांगनेका काम दूसरेसे कराना।

मंगना ( हि० कि० ) १ विवाहकी बातचीत पक्की करना;  
मंगनोका सम्बन्ध करना। २ मंगवाना देखो।

मंगेतर ( हि० वि० ) १ जिसको किसीके साथ मंगनी हुई  
हो, किसीके साथ जिसके विवाहकी बातचीत पक्की हो  
गई हो।

मंगोल—मध्यपश्चिमी और उसके पूर्वकी ओर बसने-  
वाली एक जाति। मङ्गोल देखो।

मंजूर ( अ० वि० ) स्वीकृत, जो मान लिया गया हो।

मंजूरी ( हि० खी० ) स्वीकृति, मंजूर होनेका भाव।

मंफा ( हि० पु० ) १ सूत कातनेके चरखेमें वह मध्यका  
अवयव जिसके ऊपर माल रहती है। इसे मुंडला भी  
कहते हैं। २ अटेरनके बीचकी लकड़ी, मंफेऊ। ३  
चौकी। ४ पलंग, खाट। ( खी० ) ५ यह भूमि जो गोयंड  
और पालोंके बीचमें हो। ( पुं० ) ६ वह पदार्थ जिससे  
रस्सी या पतंगको डोर मंजी जाती है, मांफा।

मंडना ( हि० कि० ) मर्दित करना, दलित करना।

मंडरना ( हि० कि० ) मंडल बांध कर छा जाना, चारों ओर-  
से घेर लेना।

मंडराना ( हि० कि० ) १ मंडल बांध कर उड़ना, चकर  
धेते हुए उड़ना। २ किसीके आस-पास ही घूम फिर  
कर रहना। ३ परिक्रमण करना, किसीके चारों ओर  
घूमना।

मंडरी ( हि० खी० ) पयालकी धनी हुई गोंदरी या चटाई।

मंडलाना ( हि० कि० ) मंडराना देखो।

मंडवा ( हि० पु० ) मण्डप।

मंडा ( हि० पु० ) १ भूमिका एक मान जो दो बिस्वके बरा-  
बर होता है। २ एक प्रकारकी बंगला मिठाई।

मंडार ( हि० पु० ) गड़ढा।

मंडियार ( हि० पु० ) भरवेरी नामक कँटीली झाड़ी।

मंडी ( हि० खी० ) १ थोक विक्रीकी जगह, बड़ी हाट। २  
भूमि मापनेका एक मान जो दो बिस्वके बराबर होता  
हो।

मंडुआ ( अ० पु० ) एक प्रकारका कदम।

मंडा ( हि० पु० ) कमध्वज बुननेवालोंका एक औजार। यह  
नकशा बनानेमें काम आता है। यह लकड़ीका बना होता  
है जिसमें दो शाखें-सी निकली होती हैं। बंडा लगानेके  
लिये सिर पर एक छेद होता है।

मंदाऊ ( हि० पु० ) घोड़ेका एक रोग। इसमें उसके गलेके  
पासकी हड्डीमें सूजन आ जाती है।

मंद्भूप ( हिं पु० ) काली धूप, काला डामर।

मंद्वा ( हि० वि० ) नाटा, टिंगना।

मंद्वा ( हि० पु० ) एक प्रकारका वाजा।

मंद्दी ( हि० खी० ) धाजेकी जातिका एक पेड़। इसकी  
लकड़ी मजबूत होती है और खेतीके सामान तथा गाड़ियां  
बनानेके काममें आती है। छालसे चमड़ा सिन्धिया जाता  
है, फल खाए जाते हैं और पत्तियां पशुओंके चारेके काम  
आती हैं। इसकी जातिका एक और पेड़ होता है जिसे  
गेंडली कहते हैं। जब इसके पीथे छोटे रहते हैं,  
तब इसको छाल पर काटे होते हैं, पर ज्यों ज्यों वह बड़ा  
होता है, छाल साफ होती जाती है। इसकी लकड़ी  
बहुत दिनों तक रहने पर भी खराब नहीं होती। यह  
विशेषतः खेरो, गोरखपुर, अजमेर और मध्यप्रान्तके  
जंगलोंमें होती है। इसके बीज बरसातमें बीए जाते हैं।

मंदान ( हि० पु० ) जहाजका अगला भाग।

मंदा ( हि० खी० ) भावका उतरना, महंगीका उलटा।

मंदोल ( हि० पु० ) एक प्रकारका सिरबंद जिस पर काम  
बना रहता है।

मंसना ( हि० कि० ) १ मनमें संकल्प करना, इच्छा करना।

२ मनसना।

मंसय (अ० पु०) १ पद, स्थान । २ कर्ता, काम । ३ अधिकार ।

मंसा (हि० स्त्री०) १ अमिदधि, इच्छा । २ संकल्प । ३ भूमिमाय, भाजाय ।

मंगूय (अ० वि०) काटा हुआ, धारित किया हुआ ।

मंगूसा (हि० पु०) मन्वसा देखो ।

मंनोष्ट (मं० लि०) भागप्रदानमें यत्न मान ।

मंठयु (सं० लि०) क्षोभेच्छु ।

मंदिष्ट (सं० लि०) भक्तिजय पृथिव्युक्त ।

मक (सं० पु० स्त्री०) म इय कायति, कै-क । जिवादि-तुल्य ।

मकं (हि० स्त्री०) उचार नामक जप ।

मकक (सं० पु०) जीवभेद ।

मकड़ा (हि० पु०) १ बड़ी मकड़ी । २ बहुत जीवताने बहनेवाली एक प्रकारकी शास । यह पशुओं और चिरो-पतः पौष्टिके लिये बहुत पुष्टिकारक होती है । यह दान यथैतक मुला कर रखा जा सकता है । कहीं कहीं गरोप लोग इसके बीज भजाकर भी भक्ति करते हैं ।

मकड़ी (हि० स्त्री०) १ एक प्रकारका प्रसिद्ध कीड़ा जो सारे संसारमें पाया जाता है । विशेष विषय लूता इष्टमें देगे ।

मकतब (अ० पु०) पाठनाला, मकरस्थ ।

मकता (हि० पु०) मगधदेश । भारत-मकरमेमें मगधका यही नाम दिया है ।

मकदूर (अ० पु०) सामर्थ्य, ताकत ।

मकनातोम (अ० पु०) मुख्यक पत्थर ।

मकजूट (अ० वि०) देहन किया हुआ, गिरवी रखा हुआ ।

मकबरा (अ० पु०) समाधि, रीता ।

मकबूजा (अ० वि०) अधिष्टन, कर्मता किया हुआ ।

मकर—(सं० पु०) कृपातीति क हिंसायां क-अयु, ततः मनु-प्यायां कः हिंसकः, या मुगं किततीति मुग क-क, उभय-तापि पूर्वादाग्निश्वात् साधुः । १ अजडमनुविशेष, एक पानीका जानवर । भावप्रकाशके अनुसार यह पादि-गणके अन्तर्गत अजडमनु ही है ।

“इति मकरस्य मेषानकरमप्युक्तः ।”

धरिचः विदुषारथे स्वपदः कविताः इत्यादि ।”

(भारतवर्षा पूर्वस्येव निर्गतं मणः)

मण्डलियोंमें मकर या मगर ही मयैवेष्ट जन्तु है । इसके निम्नलिखित गुण हैं—शोषण, शाननाशन, मगिन्द्र, शुक्रकर, प्राहो, उष्ण और विकार्य, मूत्ररोग, मन्मरो, सुप्त और अतिस्वप्न-सौगानाक । (शरीर २ स्थान ११ पं०) शास कर मगर गद्गा-नदीमें दिखाई देता है । यह गद्गाका बाहन है । कामदेवकी धजाका गिष्ठ मकर है ।

२ मेपादि बाह्य राजियोंमेंमेः द्वायी राशि । इसके इष्टदेव मृगास्य मकर है । उखरापादा नक्षत्र-के अन्तिम तीनों पाद, समूचे धयणा नक्षत्र और मणिष्ठा-के पूर्वपादद्वय इन ही पादोंको मिला कर मकर राशिको गृष्टि होती है । यह राशि पृथोदय, भूमिराशि, अर्ध-अष्टकर, दक्षिण विज्ञाकी स्वामिनी है । यह पिङ्गलगण, भूमिचारी, शीतलम्पभाव, अल्पसन्तान, अल्प स्त्री-संग, पातप्रवृत्ति, वैश्यवर्ण और इसके अङ्ग सब गिचिड है ।

मकरराशिमैं जन्म होने पर मनुष्य परदारानिवादी, संभ्रात घनेका भोगी, राजतुल्य प्रतापान्वित, अति प्रयोग, कुद्देवाला, अत्यन्त पुशुगागुष्टि, मित्रोंसे मानन्द पाने-वाला और धीरस्वभावका होता है । (कीर्ती०) ३ अल्प-भेद, मकर लग्न । मकर लग्नमें जन्म होने पर मनुष्य सम्पूर्ण कर्ममें निपुण होता है । अतिधीर, विकयी, उप-कारी और स्वेच्छापिहारी, अत्यन्त सुख, दानो, अहङ्कारी और विदुक्त चित्त होता है । इस मनुष्यके हात, धोष्ठ और मुख बहुत पुष्ट होते हैं । इस मकरलग्नको यदुर्वर्ण अर्थात् होरा, द्वेककोण, मसांज, नवांज, द्वादशांज, और तीस अंशमें विभक्त करके फलका निर्णय करना चाहिये ।

मकरके प्रथम होरामें जन्म होने पर मनुष्य बाला होता है । हरिणकी तरह बड़े बड़े नेत्र होते हैं । यह सुप्रसिद्ध, श्रोत्रिण, सौम्यमूर्ति, जड, धनी, गिष्टभोगी, ऊँचो नाकवाला, उत्तम-यज्ञ-परिपायी होता है । मकरके द्वितीय होरामें जन्म लेने पर मनुष्यकी आँखें लाल, और यह आन्धरी, मुकुभायुक्त, शरीर लम्बा, काने काने बालवाला, माहसी और शीघ्र कायं करनेवाला होता है ।

मकरके प्रथम द्वेककाममें जन्म होने पर मनुष्यकी विज्ञानबुद्धि, कान्या, पशुलोभ्य, जड, कर्मनीय, मित्तकारी, स्वीचिहनी और मध्य-नेत्रवाला होता है ।

दूसरे द्रेक्काणमें पैदा होनेवाला पुरुष काला, शत्रु, मितभाषी, परस्त्री तथा परधनापहारी होता है। तीसरे द्रेक्काणमें लम्बे ललाटवाला, पापात्मा, दुबला, लम्बा और विदेशवासी हुआ करता है।

मकरराशिका नवांश-फलः—मकरके प्रथम नवांशमें जन्म होनेसे कमजोर दांतवाला, काला, झूठा, बलवान, अनेक खो-गामी, बहुत बोलनेवाला और युद्धप्रिय होता है। तीसरे नवांशमें गाने बजानेका शौकीन, गोरा, लाल आँखें और नखवाला होता है। इसकी नाक बहुत सुन्दर होती है। इसके बहुत मिल होते हैं। यह अंभिमानी और इष्टकर्मका करनेवाला होता है। चौथे नवांशमें जन्म होने पर मनुष्य काला, गोल गोल आँखेंवाला, चौड़े ललाटवाला, लम्बे केश और चिरल दांतवाला होता है। पञ्चम नवांशमें जन्म होने पर मनुष्य क्रोधो, सुन्दर नाकवाला, उत्तम भोक्ता, सुन्दर स्क्न्ध, काला, तथा छाती और बाहें उसको छोटी होती हैं। षष्ठे नवांशमें होने पर सुन्दर वेशधारी, स्वेच्छाविहारी, वक्ता और चौड़े ललाटका होता है। सातवें नवांशमें काला, आलसी, सुयक्ता, कुञ्चितकेशवाला, सुगील होता है। आठवें नवांशमें गम्भीरवृत्ति, कुत्सितप्रकृति, शरीरका लम्बा और सुगील तथा नवें नवांशमें जन्म होने पर मनुष्य बड़ी आँखों और हृदयवाला होता है। यह मेधावी, गानेबजानेमें मस्त और साधुत्वमांघ होता है। (कोष्ठीप्रदीप)

वारहवें अंश और तीसवें अंश आदिके अधिपतिके अनुसार फल हुआ करता है। मकरराशिमें रवि आदि ग्रहोंके रहने पर निम्नलिखित फल हुआ करता है।

मकर राशिमें रवि रहनेसे मनुष्य लोभो, वेश्यासक्त, घुरा काम करनेवाला, डरपोक, चञ्चलचित्त, भ्रमणशील, सब तरहकी सम्पत्तियोंका विनाश करनेवाला और विलासी होता है। मकरराशिमें बैठे रविको यदि चन्द्र देखता हो तो वह मायावी (छली), चपल, वेश्याओंके फेरमें पड़कर सारी सम्पत्तिका नाश करनेवाला होता है। यदि मङ्गल देखता हो, तो रोगी और शत्रु द्वारा पीड़ित होता है। बुधके देखने पर शूर, पशुप्रकृति, परधनापहारी और निन्दित देहवाला होता है, बृहस्पतिके देखने पर शुभ

और सुन्दर काम करनेवाला, बुद्धिमान् सबका आश्रयदाता कीर्त्तिमान् और मनस्वी होता है। शुकके देखने पर शत्रु, प्रवाल और मणिद्वारा जीवन धारी और वेश्याके धनसे धनी होता है। शनिके देखने पर मनुष्य शत्रु विनाशकारी, राजा द्वारा सम्मानित होता है।

मकर राशिमें चन्द्रका फलः—मकर राशिमें चन्द्रके रहनेसे मनुष्य नीतिश, कुछ डरपोक, ऊँची देह वाला, प्रसिद्ध, अल्पक्रोधो, काम-भयभीत, निर्वृण, निर्लज्ज, संतकपि और अत्यन्त लोभी होता है। मकर राशिका चन्द्र रवि द्वारा देखे जाने पर मनुष्य दुःखी, भ्रमणशील, दूसरेका काम करनेवाला, मैला और कुत्सित विपयोंका मालिक और कम बुद्धिवाला होता है। मङ्गल द्वारा देखे जाने पर मनुष्य अत्यन्त विभाव-सम्पन्न, सुन्दर पत्नीवाला, सौभाग्यशाली, धनवान् तथा बाहन पर चलनेवाला होता है। बुधके देखने पर मूर्ख, विदेशमें रहनेवाला, खो-रहित, उपस्वभाव तथा दुःखी रहता है। बृहस्पति द्वारा देखे जाने पर राजा, अत्युत्तम वीर्यसम्पन्न, वृप-गुणयुक्त, सुन्दरदेह, अनेक पत्नी, पुत्र और मित्रवाला होता है। शुक द्वारा देखे जाने पर उत्तम युवती, धन, वाहन, भूषण और अधिक मांगवाला होता है। शनि द्वारा देखे जाने पर मनुष्य आलसी, मलिन देहवाला, धनहीन, कामार्त्त, पर-खोगामी और झूठ बोलनेवाला होता है।

मकरराशिके मङ्गलका फलः—मकरराशिमें मङ्गल रहनेसे मनुष्य पुण्यवान्, धन पैदा करनेवाला, सुख भोगी, मजबूत शरीरवाला, श्रेष्ठतम, विख्यात, सेनापति या राजा, उत्तम पत्नीवाला, अपने मित्रोंसे युक्त, सपदा स्वतन्त्र, रक्षक, सुशील और अनेक उपचारवाला होता है। मकरराशि ही मङ्गलका उच्चस्थान है, द्वादशराशियोंमें मकर वा मङ्गल जैसा बली होता है, वैसे अन्य राशियां नहीं होतीं।

मकरराशिके बुधका फलः—मकरराशि पर बुधके रहने पर मनुष्य नीच, मूर्ख, पशुस्यभाय, दूसरेका काम करनेवाला, कलादिगुण-विहीन, जाना दुःखसे दुःखी, शीघ्रविहारी, बहुत शीलवान्, दुष्ट, असत्य चेष्टावाला, मित-रहित, मलिन-मूर्त्ति, भयसे चकित और निद्रा-विहीन होता है।

मकररानिके वृद्धमति का फल—मकररानिमें वृद्धमति के रहने पर मनुष्य अल्पवयस्वान्, बहुधर्म करने और दुःख मृदुनेवाला होता है, उसका आयु छोटा, मूर्ख, अपत्य-विहीन, गुरु का दान, मातृहत्या, दया, पवित्र और धर्महीन, दुर्बल शरीर, अलोक, विदेशवासि और भ्रमाकुल होता है। मकररानिका वृद्धमति नाथ और भक्ति दुर्बल है।

मकररानिके शुकता फल—मकररानिमें शुक रहने पर मनुष्य व्यायाममें परिश्रान्त रहता है, इसके देह दुर्बल, वैद्यसाक्षर, खांसीका रोगी, घनका लोभी, नामर्द, मूर्ख और दुःख सहनेवाला होता है।

मकररानिस्वित्त जनि का फल—मकररानिमें जनि रहने पर मनुष्य पराये बलमें बली, जिनवी, सुखियों द्वारा सम्मानित, स्नान ध्यानमें रत, विदेशमें रहने-वाला, पत्नी, दानी और जीव्यसम्पन्न होता है।

(कोशीम०)

मकररानिमें इन ग्रहोंके रहने पर पूर्वोक्त फल होता है। इसके विपरीत होनेसे इस फलमें व्यतिक्रम भी होता है। इन ग्रहों पर जैसे दृष्टि होगी, उसीके अनुरूप फल भी हुआ करता है।

मकरकरंड (सं० पु०) प्रान्ति वृत्तकी यह सीमा जहाँसे सूर्य उत्तरायण वा दक्षिणायण होकर लौट आता है।

मकरकुण्डल (सं० जू०) कुण्डल मकर इय इत्युपमित-गमासा। मकराकृति कण्डमुपय, मकरकी आकृतिका एक गहना जिसे गलेमें पहनने है।

मकरकेतन (सं० पु०) मकरेण चिह्नं केतनं ध्वजो यस्य। कल्प, कामदेव।

मकरतार (दि० पु०) बादलेका तार।

मकरध्वज (सं० पु०) मकरेण चिह्निना ध्वजा यस्य। कामदेव।

“कर्तिषा जेयारंथ वन निःशून्ये मारध्वजं ॥”  
(मन ३११)

२ रत्नीयधि-विधि, रत्न-मिन्दूर। इसकी बनावटकी विधि—पारा ८ तोला, गन्धक ८ तोला, इन दोनोंको विधि पूर्वक काश्मली बना कर परके कायमें तीन दिन भापना देना होगा, पाँचे यह एक बोतलमें रत्न घनत्वमें मिश्री हुई मट्टीके हाँडीमें रख, चार पहर तक भांच देने पर यह रत्न-

मिन्दूर तप्पार होता है। अनुपानके अनुसार इसका सेवन करनेमें इसमें बहुतेरे रोग दूर होते हैं।

दूसरी विधि—पारा, गन्धक, निद्रादल, फूड, और स्वटिक, प्रत्येकको समभागमें कागजी जिबुके रसमें एक पहर तक घोट कर बोतलमें रत्न तप्पारके बुकड़ेसे उसका मुद्द बन्द कर सन्धिस्थलमें पूर्वोक्त मिट्टीसे लेपन करना चाहिये, पाँचे समूची बोतल पर भाँ लेप करना होगा, पाँचे एक छिद्रवाले मट्टीके बरतनमें रत्नकर उस बरतनके गले तक भर कर फिर उसका घोमी, मध्यम और तेज भाँचकी गरमीसे चार पहर तक पाक करना चाहिये। पाँचे उसे उगार ली, उग्रा होने पर बोतलमें लगे गन्धकको छुटा कर फेंक दो होगा और जो बचे, उसका सब तरहके रोगोंमें अनुपानके साथ सेवन करना चाहिये।

साधारणतः रत्नसिन्दूर ही मकरध्वजके नामसे विख्यात है। रत्नसिन्दूर देखो।

मकरध्वज तप्पार करनेकी विधि—स्वर्ण, सूर्य, लौह, जायत्रो, जायकल, तीर्थ, कांसा, रत्नसिन्दूर, मृंगा, कस्तुरी, कर्पूर, और अभ प्रत्येकका एक तोला और स्वर्णसिन्दूरका चार भाग, सबको एकत्र कर बरतनमें बल करना होगा। अच्छी तरहसे सरल हो जाने पर यह तप्पार हो जायगा। इसके सेवन करनेसे सब रोग आरोग्य होते हैं। इसको अपेक्षा अधिक उत्तम भीषि दूसरी नहीं है। सब तरहकी प्रकृतिके लोगोंके दिनके लिये स्वयं महादेवने इस भीषिकी वृष्टि की है।

दूसरी विधि—स्वर्ण ८ तोला, पारा १ सेर, गन्धक दो सेर, लाल कपासके फूलका रस और पूतबुमारोके रसमें कमजा घोट कर बोतलमें रखना होगा। पाँचे इस बोतलको कपड़ा और मट्टीसे बन्द कर इसके ऊपर लेप करना होगा, फिर इसे तीन दिन तक पालुकायत्रसे पकाकर पारेकी निचाल लेना होगा। नवमिज सितपहरीकी तरह इसका रङ्ग हो जायेगा। यह ८ तोला, कर्पूर, जायकल, मिर्च और स्वर्ण प्रत्येक ३२ तोला, कस्तुरी आधा तोला, ये सब बीजे पकाकर कर अच्छी तरहसे सरल करके १० रत्नीकी उटिका तप्पार करे। यह भीषि चन्द्रोदय-मकरध्वजके नामसे

प्रसिद्ध है। अनुपान—पानका रस, इन्द्रयव, लवङ्ग या कपासके फूलका रस। यह औषधि मदेगन्ता सैकड़ों खियोंके गर्वको चूर्ण करनेवाली है। यह जराभरण-नाशक, घयःस्थापक, सर्वरोगनिवारक, शुक्रवर्द्धक और मृत्युञ्जयकारक है। (सेन्द्रेणारसं वाजीकरण्याधि०)

मैफण्यरत्नावलीमें मकरध्वजरस और स्वल्पचन्द्रोदय मकरध्वज तथा हृदयचन्द्रोदय मकरध्वज नामक औषधियोंको तय्यार करनेकी अलग अलग विधि देखी जाती है। यथा—

मकरध्वजरस बनानेकी विधि—शोधित सूक्ष्म स्वर्णपत्र १ पल, पारा ८ पल, गन्धक २४ पल, इन्हें लाल कपासके फूल और घृतकुमारी (घाकुमारी) के रसमें मिला कर घृतचन्द्रोदय मकरध्वजको पाक प्रणालीके अनुसार पाक करना होगा। घेतलके मुहं पर लगे हुए रस १ तोला, कपूर, लवङ्ग, मिर्च और जायकल प्रत्येक चार तोला और कस्तूरी ३ माशा, इन सबको एकत्र कर अच्छी तरह धरल कर दो रत्तीके परिमाणको गोली बना लेनी होगी। अनुपान पानका रस। पथ्य चिकनी, मीठी चीजे, कोमल मांस, चीनी मिला हुआ दूध और गायका घी आदि। इसके सेवन करनेसे अग्नि की वृद्धि होती, स्मरण शक्ति तेज्र होती और कामोद्दीपन होता है। यह कामिनीयोंके दर्पका नाश करनेवाला होता है। (मैफण्यरत्ना० वाजीकरण्याधि०)

स्वल्पचन्द्रोदय मकरध्वज बनानेकी विधि—जायफल, लवङ्ग, कपूर, मिर्च प्रत्येक १ तोला, स्वर्ण दो आने भर, कस्तूरी दो आने भर, रससिन्दूर ४ तोला, इन सबको खूब मिला कर गोली बांध लेना चाहिये। ४ रत्तीकी गोली देनी चाहिये। इसके सेवनसे तरह तरहकी पीड़ा शान्त होती तथा यह बलवीर्य्य बढ़ानेवाली होती है।

घृतचन्द्रोदय मकरध्वजकी विधि—सूक्ष्म स्वर्णपत्र १ पल और शोधित पारा ८ पल, इन दोनोंको एकत्र कर मिला देना चाहिये। इसके साथ गन्धक १३ पल मिलाना होगा, पीछे लाल कपासके फूल और घृतकुमारी (घाकुमारी) के रसमें भावना दे कर खूब मिला कर और सुखा कर समतल पेदावाली घेतलमें रख घेतलके मुहंकी एक छड़िया मट्टीके टुकड़ेसे दबा कर

वालसे पूर्ण हंडीमें घेतलको सीधी करके रखना होगा। घेतलके गले तक बालू रहनी चाहिये। इसके बाद क्रमसे तीन दिन आंच देनी होगी। इससे घेतलके मुल पर जो लाल पदार्थ जम जायगा, उसे खुरच लेना होगा। यह औषधि १ पल, कपूर ४ पल, जायफल, त्रिकटु (मिर्च, सोंठ और पिप्पली), लवङ्ग और कस्तूरी, प्रत्येक ४ माशा, इन सबको एकत्र कर खूब मिला कर ५ रत्तीके बराबर गोली बांधनी होगी। पानके साथ सेवन करना चाहिये। पथ्य—घृत, गाढ़ा दूध, मांस, आटा आदि। यह नवोढ़ा उन्मत्ता नारियोंके गर्वको चूर्ण विचूर्ण करनेवाला है और उनकी तृप्तिके लिये अमोघ औषधि है। इसके सेवनसे सभी रोग दूर होते हैं। (मैफण्यरत्नावली ध्वजमन्त्राधि०)

मकरन्द (सं० पु०) मकरमपि अन्दति बध्नाति धारयतीति वा आदि बन्धने अणु, ततः शकन्धादित्वात् साधुः। १ पुष्परस, फूलोंका रस जिसे मधुमक्खियां और भीरे आदि चूसते हैं। २ कुन्दपुष्पद्वय, कुन्दका पौधा। ३ कज्जलक, फूलकी फेसर। ४ एक वृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें सात जगण और एक धगण होता है। इसे राम, माधवी और मञ्जरी भी कहते हैं।

मकरन्द—१ एक प्राचीन कवि। २ गणकतरङ्गिणीके प्रणेता एक ज्योतिर्विद्। इन्होंने १३६० शकमें प्रतिष्ठा लाभ की थी।

मकरन्दकण (सं० पु०) पुष्परसकणिका।

मकरन्दवती (सं० स्त्री०) मकरन्दस्तत्समूहोऽस्या अस्तीति मकरन्द-मत्तुप, यस्य च लापः। १ पाटलाणुष्य। (ति०) २ मधुविशिष्ट।

मकरन्दवास (सं० पु०) घूलकदम्ब।

मकरन्दशर्मा (सं० पु०) एक धर्मप्रवर्त्तक।

मकरन्दिका (सं० स्त्री०) छन्दोभेद। इस छन्दके प्रति चरणमें १६ अक्षर रहते हैं।

मकरपति (सं० पु०) १ कामदेव। २ ग्राह।

मकरम्बुडो—बम्बईप्रदेशके धारवाड जिलान्तर्गत एक गण्ड ग्राम। स्थानीय देवालयमें विजयनगरराज २य हरिहरकी शिलालिपि देखी जाती है।

मकरविभूषणकेतन (सं० पु०) मकरकेतन, कामदेव।

मकरज्युह ( सं० पु० ) मकरः मकराकार ज्युहः । मकरा-  
कार सैन्धविकायाः, एक प्रकारका ज्युह या मेनातवना  
विशुद्धीं शैलिक मकरके भाग्यमें भजे, किये जाने है ।

मकरसंक्रान्ति ( सं० श्लो० ) मकरे शशी संक्रान्तिः ३ तन् ।  
१ मकरसंक्रान्तिं शकित्वा संक्रमणम् । २ हिन्दुसौम्य एक  
पुण्यदिन । मकरसंक्रान्तिका दिन विशेष पुण्यका दिन  
है । इस दिवसे स्नान-दानसे अत्यन्त पुण्य लाभ होता है  
और पापक्षय होता है । मकरसंक्रान्तिमें आरम्भ कर  
सन्ध्या प्राणमास गङ्गा-स्नानकी विधि है ।

यह हिन्दुसौम्य एक महापर्यं दिन है । इसी दिन  
सूर्य मकररानि पर संक्रामित होने है । हिन्दू पञ्चाङ्गके  
गणनानुसार चण्डा ता० २१ पीप या पीपके अन्तिम दिन-  
को रवि मकररानि पर आता है । इसी दिनसे सूर्यकी  
गति उत्तरायण होती है । किन्तु वर्तमान सूर्योपप  
तथा विविध ज्योतिषियोंने अपने गणनानुसार ता० ६ या  
१० पीपसे उत्तरायण गति शिवा किया है । यथाश्रम  
इसी दिनसे सूर्य पीपे छोड़े अपना गति उत्तरायण करता  
है । यह हम अच्छो तरह जानने है कि १०वीं पीपको  
ही सूर्यकी उत्तरायण गति हो जाती है । और कवियोंने  
भी लिखा है—'मकरे प्रपरो रविः ।'

दक्षिणायतकालमें कोरे-भी शुभकर्म करना अच्छा  
गर्हो । क्योंकि हिन्दुनाम्ने उसको निन्दा की है । माघमें  
मकरसंक्रान्तिके बाद उत्तरायण होने पर सभी शुभकर्म  
होने रहने हैं । सुक्रीड ( महाभारत )-के महासमरमें  
जब भीष्म पितामहको पराजित हो कर शर-जप्या पर  
लेटना पड़ा था, उस समय भी ऋषि पितामहने इस  
मरणके लिये इसी उत्तरायणकी प्रतीक्षा की थी और  
जब मकरसंक्रान्तिका दिन आ गया तो उन्होंने इस मकर  
जतीको त्याग स्वर्गप्राप्त पधार भे ।

हिन्दू शास्त्रमें मकरसंक्रान्ति महापुण्यजनक कही  
गई है । इसी दिन स्वर्गका द्वार खुलता है । इस दिन  
सौर्यका स्नान-दान और धातु शुभकालमें देना है ।  
अनेक हिन्दू इस समय गङ्गासागर-मंथन तीर्थमें जा कर  
स्नान और दानादि कर्म हैं । हिन्दू त्रिपदा इस दिन  
गङ्गासागर मंथन कथनमें बदनी मन्त्रात्मको बहा देना  
थी । शास्त्रके अनेक शास्त्रक मानते इस भाग के देवदेवोंमें  
इस प्रकारकी कथा किया था । भाग्यमें देवों ।

इस दिन निलका नैन रग्या कर ही स्नान करना  
चाहिये । यहो शास्त्रीय विधान है । स्नानके बाद  
भोग्य उरुगर्भ और धातुादि करना कर्त्तव्य है । अश्वत्थी  
प्रातःप्राणोन्नत और दक्षिणा दान करना होता है । इसके  
मिया हिन्दू रमणो सोदो मत किया कलती है । इस भागका  
नारायणकी पूजा और गाय चण्डाना ही उद्देश्य है । किन्तु  
यथाश्रम किसे उद्देश्यसे यह मत किया जाता है, यह ईश्वर  
ही जाने । किन्तु इतना जरूर बदा जा सकता है कि  
यह-महिम्नायें अपनी मन्तानकी भलाईके लिये ही यह  
मत किया करती है ।

मकरसंक्रान्तिमें होनेवाले सोदो मत किस तरहसे  
किया जाता है ? केलेके पृष्ठसे एक त्रिज्यकेको नाथ  
तम्पार की जाती है । इस नाथको फूलोंमें अच्छो  
तरह सजा कर उसमें एक जोड़ी केलेकी, एक जोड़ी बेर,  
एक जोड़ी सेम और एक जोड़ी ऐनी तथा पाँचो बत्ती  
रखी जाती है । पीछे नारायणकी पूजा आदि कर सम्प्रा  
समय लड़के सोय निकटके किसी जलाशयमें बत्ती जला क  
उस केलेकी नाथको जलमें तिराने हैं । नाथ तिराने समय  
लड़के "सोदो बहता, माका पून ह सना" यह बात ऊँचे  
स्वरसे कहता और अपने अपने घरको बाते हैं ।

इस दिन यानी मकर संक्रान्तिको रमणोके घरमें भोज  
आदि करनेकी भी व्यवस्था होती है । प्रातःप्राणोके भोजन  
करानेकी भी व्यवस्था है । प्रातःकाल लड़के गङ्गाकी बन्दन  
कर गङ्गास्नान करने जा नाचते गते हैं । यह उत्तराय  
चण्डालमें 'बन्दमाता' नामसे विख्यात है । प्रसिद्ध जिगु-  
बोधकार-एत 'बन्दमाता सुरपुत्री, पुराणकी महिमा सुनि'  
छन्दसे पारिपूर्ति गङ्गाकी बन्दनासे मकरसंक्रान्तिके  
उदसयका नाम 'बन्दमाता' हुआ है ।

मकरसप्तमी ( सं० श्लो० ) माघमासकी शुक्लपक्षमें  
तिथि । सूर्यदेव माघमासमें मकररानिमें उदित होता  
है, इसीसे मकरसप्तमी कहनेमें माघमासकी सप्तमी  
समर्थो जली है, इस दिवका गङ्गास्नान शरीर पातक-  
माजक माना गया है ।

स्नान अक्षोक्षकालमें करना कर्त्तव्य है । पर  
स्नातो तिथि यदि होनी दिन अक्षोक्षकाल तक रहे,  
तो दूसरे दिन सप्तमी रह्य अर्थात् स्नान-दानादि  
होगा ।

इस दिन अष्टोपदयकालमें यथाविधि सङ्कल्प करके  
बेर और अक्षवन्तके सात सात पत्ते सिर पर रख कर  
निम्नोक्त मन्त्रसे गङ्गा-स्नान करे। मन्त्र—

“यद्यन्मन्त्रवृत्तं पार्ष मया सतसु जन्मसु।

तन्मे रोगैश्च शोकैश्च मारुती हन्तु सतमी ॥”

मकरसप्तमीमें स्नान करनेसे सप्तजन्म-वृत्त पाप और  
रोग-शोक जाता रहता है। स्नानके बाद सात बेरके फल  
भीर सात अक्षवन्तके पत्तों द्वारा श्रौसूर्यको अर्घ्य देना  
चाहिये। अर्घ्यमन्त्र—

“ओ जननी सर्वभूतानां सतमी सतशक्तिके।

सतन्वाहृदिके देवि नमस्ते रविमण्डले ॥”

इसके बाद प्रणाम करना चाहिये। प्रणाम मन्त्र—

“ओ सतशक्तिवद् भीत सप्तशोकप्रदीपन।

सतन्वा हि नमस्तुभ्यं नमोजन्तवायु वेपथे ॥”

( कृत्यतत्त्व )

मकरा ( हि० पु० ) १ मङ्ग या नामक अन्न। २ भूरे रंगका  
एक कीड़ा। यह दीवारों और पेड़ों पर जाला बना कर  
रहता है। इसकी दांते बड़ी बड़ी होती हैं। २ हलवाश्यों-  
की एक प्रकारकी घड़िया या चौघड़िया। यह सेव  
बनानेके काम आता है। इसका आकार चौकी-सा होता  
है जिसमें चालनीको तरह छेदवाला लोहेका एक पात्र  
जुड़ा होता है। इसी पात्रमें घोला हुआ बेसन भर कर  
ऊपरसे एक हातसे दबाते हैं जिससे नीचे सेव बन कर  
गिरते जाते हैं।

मकराकर ( सं० पु० ) मकराणामाकरः ६-तद् । समुद्र ।

मकराकार ( सं० पु० ) मकररूपेवाकारो यस्य । १ पङ्-  
ग्रन्थ, कण्टककरञ्ज । ( ति० ) २ मकर या मछलीके  
आकारका ।

मकराट्ट ( सं० लि० ) मकर या मछलीके आकार-  
घाला ।

मकराक्ष ( सं० पु० ) खरका पुत्र और राघवका भतीजा ।  
कुम्भ और निकुम्भके मारे जाने पर यह राघवके कहनेसे  
युद्धमें गया था और रामके द्वारा मारा गया था ।

मकराङ्क ( सं० पु० ) मकरस्तदाकारोऽङ्कश्चिह्नं यस्य ।  
१ कामदेव । मकराङ्कः ५स्य । २ समुद्र । ३ मनुभेद ।

मकरानन ( सं० पु० ) गिवानुचर-भेद, शिवके एक अनु-  
चरका नाम ।

मकराना—राजपूतानेका एक प्रदेश । यहांका संगमरमर  
बहुत प्रसिद्ध होता है ।

मकरायण ( सं० लि० ) मकर-सम्बन्धीय ।

मकराटाई ( हि० स्त्री० ) फालो राई ।

मकरालयः ( सं० पु० ) आलययतेऽस्मिन्निति आलयः,

मकराणामालयः । समुद्र ।

मकरवास ( सं० पु० ) मकरस्य आवासः । समुद्र ।

मकराश्व ( सं० पु० ) मकर पर सवार होनेवाला, वरुणः ।

मकरासन ( सं० स्त्री० ) वृत्रयामलोक पूजाङ्ग आसनभेद ।  
ताम्रिकाका एक आसन जिसमें हाथ और पैर पीठकी  
ओर कर लिये जाते हैं ।

मकरिन् ( सं० पु० ) मकरोऽस्यास्तीति इति । १ समुद्र ।

२ सन्निपात ज्वरविशेष ।

मकरिका ( सं० स्त्री० ) मकराकार पत्रावली ।

मकरिकापत्र ( सं० पु० ) मछलीके आकारका बना हुआ  
चन्दनका चिह्न । इसे प्राचीन कालमें खियां अपनी कन-  
पट्टियों पर बनाती थीं ।

मकरी ( सं० स्त्री० ) १ मगरकी मादा, मगरनी । २ एक  
प्रकारका वैदिकनौत । ३ चक्रोंमें लगी हुई एक लकड़ी ।  
यह करीब करीब आठ अंगुली होती है और किल्लेकी  
नोक पर रख कर तथा इसके दोनों सिरों पर जोतो लगा  
कर जुएसे बांधी रहती है । इस जोतीमें दोनों ओर छंटा २  
लकड़ियां लगी होती हैं । उन लकड़ियोंके घुमानेसे ऊपर  
का पाट आवश्यकतानुसार ऊपर उठाय़ा या नीचे गिराया  
जा सकता है । जब इसे ऊपरका ओर करते हैं, तब  
चक्रीके ऊपरका पाठ भी कुछ ऊपर उठ जाता है जिससे  
आटा कुछ मोटा और हरदरा होने लगता है । जब इसे  
घुमा कर कुछ नीचे करते हैं, तब आटा महीन होने लगता  
है । ४ जहाजमें फर्श या खंभों आदिमें लगा हुआ  
लकड़ी या लोहेका चौकोर टुकड़ा । इसके अगले दोनों  
भाग अंकुसके आकारके होते हैं और उनमें रस्सा आदि  
बांध कर फंसा देते हैं ।

मकरीपत्र ( सं० स्त्री० ) मकरिकापत्र देखो ।

मकरीप्रस्थ ( सं० पु० ) मकर्या उपलक्षितः प्रस्थः ।

मकरो सम्बन्धीय प्रस्थः ।

मकरोलेखा ( सं० स्त्री० ) चित्रभेद ।



मकर ( पा० वि० ) १ अश्विन, माघक । २ श्रुति, तिमि क्षिप कर पुला उपगम हो ।

मकरेका ( हि० पु० ) उचार या मकरेका संज्ञक ।

मकरीत ( हि० पु० ) एक प्रकारका छोटा कौटा । यह कश्मीर भागके इस्लामी पर चिन्ता रहता है ।

मकर्यां ( हि० स्त्री० ) एक प्रकारका गौड़ जो बादलके बर्षामें जाता है । यह मकरेद् या माली लिये पीने योग्य होता है और इसके गोत्र गोत्र दाने होते हैं । मकालिया नामक वस्त्रमादके भागके कारण इसे मकर्यां कहते हैं ।

मकर्यन्—परिमल धनुष्यामी एक पहाड़ी जाति ।

मकर ( सं० पु० ) अग्निम् ।

मकरसद ( सं० पु० ) १ मनोरथ, मनोकामना । २ अनि-प्राय, आपर्ष्य ।

मकर ( अ० वि० ) १ उदित, अभिप्रेत । ( पु० ) २ भनि-प्राय, मतलब । ३ मनोरथ ।

मकां ( पा० पु० ) शूद्र, घर ।

मकारं ( हि० स्त्री० ) बड़ा सुन्दरी, उचार ।

मकान ( पा० पु० ) १ शूद्र, घर । २ निवासस्थान, रहनेकी जगह ।

मकाम ( पा० पु० ) मुख्य देवी ।

मकार ( सं० पु० ) मन्थरूपे कार । १ मन्थरूपयणी । मकारादिपण भाषासंज्ञकस्य अच् । २ मघ, मांस, मरुत्प, मीथुन और मुद्रारूप मकारादि पण्युक्त तन्त्रोक्त पदार्थपञ्चक ।

मकु ( हि० अश्व० ) १ घाटे । २ वरन, धि-पिन, नापद् ।

मकुमा ( हि० पु० ) काकरके पत्नीका एक

मकुट ( सं० स्त्री० ) मकुनेऽनेनेति मकि-भुक्ति-उट्, भागमनाम्भ्यानिउट्यान् म कुटिरीभुवन । कुट्ट देवी ।

मकुति ( सं० स्त्री० ) मकि उति, कु-कुट्टनासन ।

मकुना ( हि० पु० ) १ यह गर हाथ-अपवा छोटे दान ही । २ बिना

मकुमी ( हि० स्त्री० ) एक प्रकारकी भागर बेसन या कनेकी पीठी भर कर

एक प्रकारकी बाटी या तिही । यह बनेका बेसन और गेहूँका आटा एकमें मिला कर उसमें समक, मैथी, सेंग-रेना आदि मिला कर बाटीको भांति भूभनमें बनाई जाती है ।

मकुम्पुर—विदार मरी-नीरवर्गों एक प्राचीन गण्ड प्राय । यहां आज भी पूर्ण-समुद्रिके अनेक निर्देशन इधर उधर पड़े मकर जाते हैं । प्रयाद् है, कि राजा मकुम्ब या मुनुकुम्बने इस नगरको प्रतिष्ठा की थी । उनकी परकी रानी रूपमतीकी बनाई हुई रूपसागर नामक दिगी आज भी विद्यमान है । उसके घाटों और मोड़ियों लगे हुए हैं, किनारे पर कई एक शैव और विष्णुमन्दिर प्रतिष्ठित हैं । अमी भी अष्टधुम प्रभृति विभिन्न नियमूर्ति, गणेश, पार्ष्णी अष्टनिक, नयमद, गददासन, विष्णु और कःकी अतार नारायणमूर्ति प्रभृति माना स्थानोंमें पड़े हुए हैं । यहांके भास्कर शिल्प पर लक्ष्य करके प्रकृत्यविशुद्धन इहं इधो प्रताप्योके पददिकार बना हुआ अनुमान करते हैं ।

एतद्भिन्न यहां एक दुर्गास्थित राजप्रामाद् नगर भांता है । उसकी दीवार लार् और प्राकारादि उनने सुदृढ़ और दुर्भेद्य नहीं हैं । उनके अनेकान परसमान छंग पर बने हुए हैं । कहते हैं, कि स्थानोप शैव हिन्दूराजाके द्वापान-मे उक्त दुर्ग बनाया था ।

मकुर ( सं० पु० ) मकुने इति मकि- ( मकुत्तुंरी ) उट् । ( ११ ) इति उरच् । १ कुट्टालदृष्ट, कुट्टारका संज्ञा जितने यह चाक चुमाता है । २ दपण, गीना । ४ मुकुन, कनी । ५ बहुलदृष्ट, मौलमिरी ।

मकुल ( सं० पु० स्त्री० ) मकुने भुवपति इत्तं मकि-बाहुन-१ बहुल, मौलमिरी । २ मुकुनकनी ।

पुस्तकालिका

मकुष्ठ (सं० पु०) मड़ूते मड़ूते इति वा बाहुलकात् उ. मकुः तिष्ठतीति स्या-क स्य, मकुश्चासी स्थश्चेति (पूर्व-पदादिति । पा ८।१।१०६) इति पत्वम् । १ श्वोहिभेद, एक प्रकारका धान । २ घनमुद्ग, मोठ नामक अन्न । (ति०) ३ मन्थर, मट्टर ।

मकुष्ठक (सं० पु०) मकुष्ठ-स्वार्थे कन् । घनमुद्ग, मोठ नामक अन्न ।

मकुलक (सं० पु०) मकि-मएडने पिच्छादित्वाबुलच्, बाहुलकात्पुनङ्लोपः, स्वार्थे कन् । मुकूलक, दन्ती-पृक्ष ।

मकुनी (हि० स्त्री०) मकुनी देलो ।

मकुला (अं० पु०) १ कहावत, कहनूत । २ घचन, कचन ।

मकौरा (हि० पु०) यह खेत जिसमें ज्वार या बाजरा बोया जाता है ।

मकेचक (सं० पु०) कुमिरोग, चरकके अनुसार एक प्रकारका रोग । इसमें मलके साथ कोड़े निकलते हैं ।

मकी (हि० स्त्री०) मकोय देलो ।

मकोरचा (हि० पु०) मकौर देलो ।

मकोरचा (हि० वि०) मकोयके रंगके समान, ललाईको लिये पीला ।

मकोई (हि० स्त्री०) जंगलो मकोय जिसमें कांटे होते हैं ।

मकोड़ा (हि० पु०) कोई छोटा कोड़ा ।

मकोय (हि० स्त्री०) १ एक प्रकारका क्षुप । इसके पत्ते गोलार्ध लिये लम्बोतरे होते हैं । इसमें सफेद रंगके छोटे फूल लगते हैं । फूलके विचारसे यह क्षुप दो प्रकारका होता है । एकमें लाल रंगके और दूसरेमें काले रंगके बहुत छोटे छोटे फूल लगते हैं । इसकी पत्तियों और फलोंका व्यवहार औषधिके रूपमें होता है । इसे कावेया भी कहते हैं । २ इस क्षुपका फल । ३ एक प्रकारका कंटीला पीथा । यह प्रायः सीधा ऊपरकी ओर उठता है । सुपारीके आकारके इसमें फल लगते हैं । जब ये फल पकते हैं, तब कुछ ललाई लिये पीले रंगके होते हैं । ये फल एक प्रकारके पतले पत्तोंके आवरणमें बंध रहते हैं । फल खट-मिठ्टा होता है और उसमें एक प्रकारका अन्न होता है जिसके कारण यह पाचक होता है । ४ इस पीथिका फल, रसमरी ।

मकोसल (हि० पु०) एक प्रकारका ऊँचा वृक्ष जो सर्वदा हरा-भरा रहता है । इसकी लकड़ी अन्दरसे लाल और बहुत कड़ो तथा दृढ़ होती है । यह इमारतके काममें आती है । आसाममें इससे नावें भी बनाई जाती हैं ।

मकोदा (हि० पु०) लाल रंगका एक प्रकारका कोड़ा । यह करीब करीब एक इंच लंबा होता है । यह प्रायः अनावृष्टिके समय होता है और फसलको बहुत हानि पहुंचाता है ।

मकर (हि० पु०) १ छल, कपट । २ नखरा ।

मकल (सं० पु०) मक्कं गमनं आत्यन्तिकगति मरणं लाति आदत्ते योजयतीति ला-क, पूर्वोदरादित्वात् लकारागमे साधुः । एक प्रकारका खो-रोग । इसमें प्रसवके अनन्तर प्रसूता स्त्रीकी नाभिके नीचे, पसलीमें, मूत्राशयमें वा उसके ऊपर वायुको एक गांठ-सी पड़ जाती है और पीड़ा होती है । इस रोगमें पक्काशय फूल जाता है और मूत्र रुक जाता है ।

मका—मुसलमानोंका पवित्र और सर्वप्रधान प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र । अरबके हेजाज-वंशीय राजाओंकी राजधानी । यह अक्षां २१° ३०' उ० तथा देशां ४° २०' पू०में अवस्थित है । इस नगरमें इस्लाम-धर्मके सुविख्यात चौर महम्मदका जन्म हुआ था । महम्मदके अभ्युत्थानके बहुत पहलेसे ही ग्रन्थोंमें इस नगरकी प्रसिद्धि पाई जाती है ।

लोहितसागरके किनारेसे वैतीस कोसकी दूरी पर पहाड़ी भूमिमें मुसलमानोंका यह पवित्र तीर्थ मका नगर विद्यमान है । नगरकी जड़ पहाड़ी चौरस भूमिमें स्थापित होने पर भी उसके निकटके पहाड़ोंमें कितने ही मकान दिखाई देते हैं । नगरके चारों ओर २०० से ४०० फीट ऊँची पहाड़ी चहारदीवारी है, यहाँ एक भी वृक्ष लतादि दिखाई नहीं देती ।

तीर्थके यात्रियोंके सुभीतेके लिये यहाँके पथ बड़े चौड़े बनाये गये हैं । दोनो ओरके घर पत्थरके बने हुए दिखाई देते हैं । इसको निर्माण-प्रणाली बहुत कुछ पश्चिमो सभ्यताके अनुसार ही है । पथ चौड़े होने पर भी उस पर पत्थर नहीं जोड़े गये हैं । गर्मोंके दिनोंमें चलने तथा उत्तम वायुसे परिचालित बाहुकी छोटोंसे मनुष्यको जैसा दुःख होता है, वैसे ही बरसात

मकरुह (फा० वि०) १ अघ्नित, नापाक । २ घृणित, जिससे देत कर घृणा उत्पन्न हो ।

मकरेडा (हि० पु०) उचार या मषकेका डंठल ।

मकरौष (हि० पु०) एक प्रकारका छोटा कौड़ा । यह भकसर आमके वृत्तों पर चिपटा रहता है ।

मकलई (हि० स्त्री०) एक प्रकारका गोंद जो भादृतसे बन्ध्यांमें जाता है । यह सफेद या लाली लिये पीले रंगका होता है और इसके गोल गोल दाने होते हैं । मकालिया नामक बन्दरगाहसे आनेके कारण इसे मकलई कहते हैं ।

मकयन्—पश्चिम यङ्गयासी एक पहाड़ी जाति ।

मकष्ट (सं० पु०) अग्निमेद ।

मकसद् (अ० पु०) १ मनोरथ, मनोकामना । २ अमि-प्राय, तात्पर्य ।

मकसूद् (अ० वि०) १ उद्दिष्ट, अमिप्रेत । (पु०) २ अमि-प्राय, मतलब । ३ मनोरथ ।

मकां (फा० पु०) गृह, घर ।

मकारं (हि० स्त्री०) बड़ी सुन्दरी, उचार ।

मकान (फा० पु०) १ गृह, घर । २ निवासस्थान, रहनेकी जगह ।

मकाम (फा० पु०) मुकाम देखो ।

मकार (सं० पु०) म-स्वरूपे फार । १ म-स्वरूपवर्ण । मकारादिवर्ण आद्यक्षरेऽस्त्यस्य अच् । २ मघ, मांस, मस्थ, मैथुन और मुद्रारूप मकारादि वर्णयुक्त तन्त्रोक्त पदार्थपञ्चक ।

मकु (हि० अर्थ०) १ चाहे । २ घरज, बलिक । ३ कदाचित्त, ज्ञापद ।

मकुगा (हि० पु०) बाजरेके पत्तोंका एक रोग ।

मकुट (सं० स्त्री०) मकुत्तेऽनेनेति मकि-भूषणे बाहुलकात् बट्, आगमशास्त्रस्यानित्यत्वान् न नुम् । मुकुट, निरोभूषण । कुट्ट देवो ।

मकुति (सं० स्त्री०) मकि उति, पृषोदरादित्वात् साट् । शूद्रशासन ।

मकुना (हि० पु०) १ यह नर हाथी जिसके दांत न हों अथवा छोटे दांत हों । २ बिना मूर्छोंका मनुष्य ।

मकुनी (हि० स्त्री०) एक प्रकारकी कर्चाहो जो आटेके भातर बेसन या चनेकी पीठी भर कर बनाई जाती है ।

२ एक प्रकारकी बाटी या लिट्टी । यह चनेका बेसन और गेहूँका आटा एकमें मिला कर उसमें नमक, मेथी, मंग-रेला आदि मिला कर बाटीकी भांति भूअन्नमें बनाई जाती है ।

मकुन्दपुर—विहार नदीतीरवर्ती एक प्राचीन गण्ड प्राम ।

यहां आज भी पूर्व-समृद्धिके अनेक निदर्शन इधर उधर पड़े नजर आते हैं । प्रयाद है, कि राजा मकुन्द या मुकुन्दने इस नगरको प्रतिष्ठा की थी । उनकी पत्नी रानी ऊपमतीकी बनाई हुई रूपसागर नामक दिग्गी आज भी विद्यमान है । उसके चारों ओर सीढ़ियां लगी हुई हैं, किनारे पर कई एक शैव और विष्णुमन्दिर प्रतिष्ठित हैं ।

अभी भी अष्टभुज प्रभृति विभिन्न शिवमूर्ति, गणेश, पार्वती अष्टगति, नवग्रह, गरुडासन, विष्णु और कलकी भवतार नारायणमूर्ति प्रभृति नाना स्थानोंमें पड़े हुई हैं । यहांके भास्कर शिल्प पर लक्ष्य करके प्रकृतत्वविदुषण इन्हें १६वीं शताब्दीके पहलेका बना हुआ अनुमान करते हैं ।

पतञ्जलि यहां एक दुर्गधिष्ठित राजप्रसाद नगर जाता है । उसको दीवार खार और प्राकारादि उतने सुदृढ़ और दुर्मेघ नहीं हैं । उनके अनेकांश वर्तमान ढंग पर बने हुए हैं । कहते हैं, कि स्थानीय शैव हिन्दूराजाके दीवान-ने उक्त दुर्ग बनाया था ।

मकुर (सं० पु०) मङ्कुरते इति मकि- (मकुरदुर्गरी । उष्ण् । र् । इति उरच् । १ कुमालदण्ड, कुम्हारका डंडा जिससे यह चाक घुमाता है । ३ वर्ण, शीशा । ४ मुकुल, कली । ५ बहुलशुभ, मीलसिरो ।

मकुल (सं० पु० स्त्री०) मङ्कुरते भूयवति रुक् मकि-बाहुल्-कादुलच् । १ बहुल, मीलसिरो । २ मुकुलकनी ।

मकुलक (सं० पु०) दण्डौट्टक ।

मकुष्टक (सं० पु०) मकि-भूषायां-उ, पृषोदरादित्वात् सायु मकुः । मकुं शूरां स्तकति प्रतिहन्तीतिस्तक-पचा-घच् । यनज्ञान मुद्र, मोठ नामक अन्न । पर्याय--मपष्ट, यनमुद्र, कमीठक, अमृत, अरण्यमुद्र, यतीमुद्र । गुण--कषाय, मधुर, रक्तपित्त, ज्वर और दाहनाशक, पथ्य, रुचिकर और सर्वदोष जयकारक । (राजनि०)

भायप्रकाशके मतसे इसका गुण—यातवर्द्धक, प्राहक, कफ-पित्तनाशक, लघु, यमननाशक, कृमिबर्धक और ज्वरनाशक ।

मकुष्ठ (सं० पु०) मड्डते मड्डते इति वा बाहुलकात् उ. मकुः तिष्ठतीति स्या-क स्थ, मकुश्चासी स्थश्चेति (पूर्व-पदादिति। पा ८।३।१०६) इति पत्यं । १ मोहिमेद, एक प्रकारका धान । २ वनमुद्ग, मोठ नामक अन्न । (वि०) ३ मन्थर, महर ।

मकुष्ठक (सं० पु०) मकुष्ठ-स्वार्थे कन् । वनमुद्ग, मोठ नामक अन्न ।

मकुलक (सं० पु०) मकि-मण्डने पिच्छादित्याहुलच्, बाहुलकावनुपङ्गलोपः, स्वार्थे कन् । मुकुलक, दन्ती-वृक्ष ।

मकुनी (हि० स्त्री०) मकुनी देखो ।

मकुला (अ० पु०) १ कदावत, कहनूत । २ वचन, कथन ।

मकोरा (हि० पु०) यह खेत जिसमें ज्वार या बाजरा बोया जाता है ।

मकोचक (सं० पु०) कुमिरोग, चरकके अनुसार एक प्रकारका रोग । इसमें मलके साथ कोड़े निकलते हैं ।

मकी (हि० स्त्री०) मकोय देखो ।

मकोइवा (हि० पु०) मकोई देखो ।

मकोइवा (हि० वि०) मकोयके रंगके समान, ललाईको लिये पोला ।

मकोई (हि० स्त्री०) जंगली मकोय जिसमें कांटे होते हैं ।

मकोड़ा (हि० पु०) कोई छोटा कोड़ा ।

मकोय (हि० स्त्री०) १ एक प्रकारका क्षुप । इसके पत्ते गोलाई लिये लम्बोतरे होते हैं । इसमें सफेद रंगके छोटे फूल लगते हैं । फलके बिचारेसे यह क्षुप दो प्रकारका होता है । एकमें लाल रंगके और दूसरेमें काले रंगके बहुत छोटे छोटे फल लगते हैं । इसकी पत्तियों और फलोंका प्ययहार औषधिके रूपमें होता है । इसे कावेया भी कहते हैं । २ इस क्षुपका फल । ३ एक प्रकारका कंटीला पीया । यह प्रायः सीधा ऊपरकी ओर चढ़ता है । सुपारीके आकारके इसमें फल लगते हैं । जब ये फल पकते हैं, तब कुछ ललाई लिये पीले रंगके होते हैं । ये फल एक प्रकारके पतले पत्तोंके आवरणमें बंध रहते हैं । फल खट-मिठा होता है और उसमें एक प्रकारका अम्ल होता है । जिसके कारण यह पाचक होता है । ४ इस पीयेका फल, रसभरी ।

मकोसल (हि० पु०) एक प्रकारका ऊँचा वृक्ष जो सर्वदा हरा-भरा रहता है । इसकी लकड़ी अन्दरसे लाल और बहुत कड़ो तथा दृढ़ होती है । यह इमारतके काममें आती है । आसाममें इससे नावे भी बनाई जाती है ।

मकोहा (हि० पु०) लाल रंगका एक प्रकारका कोड़ा । यह करीब करीब एक इञ्च लंबा होता है । यह प्रायः अनाष्टिके समय होता है और फसलको बहुत हानि पहुंचाता है ।

मकर (हि० पु०) १ छल, कपट । २ नखरा ।]

मकड़ (सं० पु०) मषकं गमनं आत्यन्तिकगतिं मरणं लाति आदत्ते योजयतीति ला-क, पृषोदरादित्वात् लका-रागमे साधुः । एक प्रकारका स्त्रीरोग । इसमें प्रसवके अनन्तर प्रसूता स्त्रीकी नाभिके नीचे, पसलीमें, मूत्राशयमें वा उसके ऊपर वायुको एक गांठ-सी पड़ जाती है और पीड़ा होती है । इस रोगमें पषवाशय फूल जाता है और मूत्र रक जाता है ।

मका—मुसलमानोंका पवित्र और सर्वप्रधान प्रसिद्ध तीर्थक्षेत्र । अरबके हेजाज-वंशीय राजाओंकी राजधानी । यह अक्षा० २१° ३०' उ० तथा देशा० ४° २०' पू०में अवस्थित है । इस नगरमें इस्लाम-धर्मके सुविख्यात चोर महम्मदका जन्म हुआ था । महम्मदके अभ्युत्थानके बहुत पहलेसे ही प्रन्थोम इस नगरकी प्रसिद्धि पाई जाती है ।

लोहितसागरके किनारेसे पैतीस कोसकी दूरी पर पहाड़ी भूमिमें मुसलमानोंका यह पवित्र तीर्थ मका नगर विद्यमान है । नगरकी जड़ पहाड़ी चौरस भूमिमें स्थापित होने पर भी उसके निकटके पहाड़ोंमें कितने ही मकान दिखाई देते हैं । नगरके चारों ओर २०० से ४०० फीट ऊँची पहाड़ी चढ़ावदीवारी है, यहां एक भी घुसलतादि दिखाई नहीं देती ।

तीर्थके यात्रियोंके सुभीतेके लिये यहांके पथ बड़े चौड़े बनाये गये हैं । दोनों ओरके घर पत्थरके बने हुए दिखाई देते हैं । इसकी निर्माण-प्रणाली बहुत कुछ पश्चिमी सभ्यताके अनुसार ही है । पथ चौड़े होने पर भी उस पर पत्थर नहीं जोड़े गये हैं । गर्मोंके दिनोंमें चलने तथा उत्तम वायुसे परिवर्जित बालुकी छोटोंसे मनुष्यको जैसा दुःख होता है, वैसे ही बरसात

काचड़का कुम्भ भी भोगना पड़ता है। हज़रके समय जानेवाले मुसाफ़िरोंको इतनी मोड़ मज़ाकी गलियोंमें दिखाई देती है कि जिसको हृद नहीं। शायद हो ऐसी मोड़ और कमी दिखाई देती हो।

यहां जलको बड़ी कमी रहती है। कुपू आदिका जल सब चुनकरा है पानी समुद्रके जलकी तरह लय-पाल है। फेवल मक्काको मसजिदके पास ही 'जमजम' नामका एक कुमां है, जिसका जल स्वादु-विदोण होने पर भी लोग पीते हैं। मिया इसके साधारण लोगोंके पानी पीनेके लिये कहीं कहीं तो चर्याका जल सञ्चित किया जाता है और आरफत पहाड़से एक नल निकाल कर मक्केमें जल लाया जाता है। यह आरफत पहाड़, मक्केसे ६-७ घण्टेकी राह है।

नगरके देश स्थानोंमें यह नल खोला जाता है। इसके सिवा नलके भीतर हो से कहीं कहीं फव्वारा हैं। इन फव्वारोंसे जलको पतलों धारा निकलती रहती है। प्रत्येक फव्वारेके पास नगर राजकर्मचारी रहता है। यह गुलामों या पानी देनेवाले भिस्तियोंसे प्रत्येक मसकके लिये कुछ कर घसूल किया करता है। नगरके धनी मनुष्योंके सिवा अन्य साधारण लोगोंके मकानोंमें किराये पर उठानेके लिये भी कमरे बनाये जाते हैं। ये मकान एकसे चार मञ्जिल तक बनाये जाते हैं। इनको बनावट अत्यन्त सुन्दर है। इनमें अपने रहनेके बाद जो कमरे बचते हैं, उनको लोग यात्रियोंके लिये सुसज्जित कर रखते हैं, उसमें यात्रियोंके व्यवहारोपयोगी वस्तुओंका संग्रह रहता है। पासमें ही रस्ता घर भी रहता है। मकान-मालिकोंको यात्रियोंसे जो किराया मिल जाता है, उससे ही उनका चर्प दिन तक निर्वाह हो जाता है। साधारण अट्टालिकाओंमें पांच नगरके राजाकी हैं, दो विद्यालय हैं और मुख्य मसजिद।

पहले ही कहा जा चुका है कि, समूचा नगर पहाड़ों भूमिमें बसा हुआ है। यूनानके पुतले यूनानी महम्मद साहबके जर्मसे बहुत पहले भी लोग इस स्थानके बारेमें जानते थे। वे इसे मकबरा कहते थे।

नगरके भास पास किसी तरहकी फसल पैदा नहीं

होती। यहाँके रहनेवाले दूसरे देशसे आये अन्न-धान्य से ही अपना गुजारा करते हैं। नगरकी रक्षाके लिये नगरके समीप दो एक किला बना हुआ है।

इस समय नगरके बाधेसे अधिक मकान खाली पड़े हैं। इससे यहाँकी जनसंख्या भी कम हो गई है। महम्मदके पूर्वपुत्र हुसैनने इस नगरकी बहुत उन्नति की थी। ये सीरिया आदि देशोंसे हर वर्ष नाना प्रकारकी घेचनेकी चीजें मक्केमें लाते थे।

महम्मदके मरनेके बाद उनके पारसिोंने खलीफाकी पदवी धारण की। इन्होंने निकटके कई राज्यों पर आक्रमण कर अपना अधिकार जमा लिया और उन राज्योंमें इसलाम धर्मका प्रचार कर मक्काका प्रधान स्थान स्थापित किया। महम्मदके दूसरे उत्तराधिकारी ओमरने मिश्रराज्य के अलेक्जेंड्रिया नगरके पुस्तकालयमें आग लगा कर विधर्मोंकी विध्वंसिताका चिरकलङ्कका टीका लगा लिया था।

खलीफा बंगके अधःपतनके बाद मक्काकी राजधानी तुर्कोंके हाथ लगी। उसी समयसे यह मक्का तुर्कोंके अधीन है। मकामें कोबा या परमेश्वरका आलय नामक साधना-मन्दिर अत्यन्त प्रसिद्ध है। कुछ आदमी इसे वैश्वदेवताका प्रसाद या एलहारम भी कहते हैं। यह काबा चौकोन है। इसके चारों ओर स्तम्भ लगे हुए हैं। पूर्व ओर चार चार और बाकी सप्त ओर तीन तीन स्तम्भ या खम्भे लगे हुए हैं। ये खम्भे आपसमें जुटे हुए हैं। चार चार खम्भों पर एक एक युज बना हुआ है। यहाँ जानेवाले मुसाफ़िरोंसे मातृम् हुआ है कि उसमें साढ़े चार सौ ले कर पाँच सौ तक खम्भे लगे हुए हैं और १५२ युज मौजूद हैं।

यह काबा जमीनमें नीचे दिखाई देता है। इसमें प्रवेश करनेके सात दरवाजे हैं। हर एक दरवाजेके समीप नीचे उतरनेके लिये सुन्दर सीढ़ियां बनी हुई हैं। इन सीढ़ियोंसे धीरे धीरे मसजिदके फर्शको पार कर तब 'काबा' में जाना पड़ता है। धर्म-मन्दिरके ठीक बीचमें काबा मौजूद है। यह अन्दाज़ ४४ फीट लम्बा, ३५ फीट चौड़ा और ४० फीट ऊँचा है। नीचे लगे हुए पायेदार खम्भों पर छत पाटी हुई है। इसके भीतर मौक़द़े भाड़ फानुस, लटके दिखाई देने हैं।

काबाके सम्यग्धर्ममें वहांके लोगोंका कहना है कि, इब्राहिमने खुदाकी आज्ञासे इसे बनाया था। यही उनका उपासना मन्दिर था। दूसरे लोगोंका कहना है, कि सृष्टि-रत्ननाके दो हजार वर्ष पहले स्वर्गमें या यहिदतमें यह बना था, किन्तु बाबा आदमने इसे इस धरती पर ला कर इस की स्थापना की। इस बातकी सचाई साधित करनेके लिये ये जो कहानी कहते हैं, उसको हम यहां लिख देते हैं:—

"जगतके आदि सृष्टिकर्ता बाबा आदम और हवा ईश्वर (खुदा)-की आज्ञाकी अवहेलना करनेके कारण धरती पर गिरा दिये गये। इनमें एक बाबा आदम लङ्कामें किसी पहाड़ पर गिरे और हवा अरबमें। बाबा आदम हवासे विलग हो कर बहुत दुःखित हुए। उनकी चञ्चलता और विकलता इतनी बढ़ी कि उन्होंने हवासे मिलनेके लिये ईश्वरसे वन्दना करने लगे। ईश्वरने उनको अपने किये अपराधके दण्ड भोगते हुए दुःखित देखा 'जिब्राइल' नामक दूतको उनके पास भेजा। दो सी वर्षके बाद जिब्राइलकी मददसे अराफत पहाड़ पर हवा और बाबा आदमकी सम्मिलन हुआ। इसके बाद ईश्वरसे बाबा आदमने उपासना-मन्दिर बनानेके लिये प्रार्थना की। आदम पर खुश हो कर ईश्वरने अपने कई कारोबारोंकी मेघ मन्दिर तय्यार करनेके लिये भेजा। यही काबा आज अरबमें मौजूद दिखाई देता है। बाबा आदम इस मन्दिरकी सात बार परिक्रमा करते थे। उनकी मृत्युके बाद यह मन्दिर फिर स्वर्गमें चला गया। इसके बाद उन्हीं आदमके लड़के शेखने पत्थर और गिलावेके संयोगसे एक मन्दिर तय्यार किया। यह भी महाप्रलयमें नष्ट हो गया।

"बहुत दिनोंके बाद इब्राहिमकी स्त्री हेगर और पुत्र इस्माइल अपने मालिक द्वारा देशसे निकाल दिये गये। ये दोनों घूमते घामते चले जा रहे थे। प्याससे ये मृतप्राय हो रहे थे। ऐसे समय एक देवदूतने मेघ-मन्दिरके निकटके उस 'जिमजिम' कुएँ को दिखा दिया। ये दोनों वहीं रह कर यकायद दूर करने लगे। कुछ ही समय बाद 'अमलिकत' वंशके दो आदमी अपने भगे हुए ऊँटको ढोजते ढोजते वहां आ निकले। घूमते-घूमते

यह बहुत थक गये थे और जोरके प्यासे थे। 'जमजम' कुआँ देखा कर उन दोनोंकी जानमें जान आई। कुएँका जल पी कर शान्त होने पर इस्माइल और उसकी माता से उनका परिचय हुआ। इस्माइल और हेगरकी सहकारितासे उन दोनों आदिमियोंने मकाशरोफ को बनाया। कुछ दिनोंके बाद ईश्वरकी आज्ञासे इस्माइलने काबाको बनवाया। इस्मायलने इसके बनानेमें अपने पितासे बहुत मदद ली थी। इस्माइल जिस पत्थर पर छाड़ हो कर काबाकी चहारदीवारीकी ईंट जोड़ते थे, यह पत्थर आज भी वहां रखा हुआ है। दोन ईमानके माननेवाले मुसलमान इस पत्थर पर इस्माइलके पैरोंका निशान देख सकते हैं, किन्तु दुःखका विषय है कि इब्राहिम तथा उनके पुत्र इस्माइलके पदचिह्नित वह पत्थर काबाकी तरह सम्मानित नहीं होता।"

दूसरे लोग कहते हैं, कि इब्राहिम और इस्माइल काबाकी बना रहे थे, कि 'जिब्राइल' नामक एक स्वर्गीय दूतने उन लोगोंको पत्थरका टुकड़ा दिया। इस पत्थरके टुकड़ेके विषयमें एक दन्तकथा सुनाई देती है—  
"जब बाबा आदम स्वर्गमें थे, तब उनके शरीर-रक्षकके रूपमें एक देवदूत नियुक्त था। धीरे धीरे पाप-धर्मोंमें रत हो कर उसके परिणाम-स्वरूप ईश्वर द्वारा दण्डित हो कर पत्थर बन गया। इब्राहिम तथा इस्माइलने इस पत्थरको आदरके साथ कावेमें रखा। यह गिरी हुई हालतमें शुभ्रवर्ण उज्ज्वल दीप्तिमान् मणि था। धीरे धीरे पापियोंके कर-स्पर्शसे यह काला हो गया है।"

काबाके चारों ओर चाँदी मढ़ी हुई है। इसकी एक कोठरीमें दो खम्भे लगे हुए हैं। इन खम्भों पर श्रेणीबद्ध सोनेके चिराग जला करते हैं। काबाके निकट ही ३२ चौथोंकी एक चाँदी की है। इन सब चौथोंमें सात साध चिराग जलते हैं। रातकी यह काबा अंधूक शोभा धारण करता है। काबाका निचला हिस्सा तथा छतकी छोड़ कर सभी हिस्से हर-साला काली, किमघावरें ढक दिये जाते हैं। हज्रके उत्सवके समय ये कपड़े तुर्क राजाओं द्वारा मिश्र राजधानी कायरीमें तय्यार होने हैं। इसके सिवा दीवारों तथा खम्भोंमें भी रङ्गीन मारकान लपेटे हुए हैं। तुर्क-

कायद्रुका दुःख भी भोगना पड़ता है। इनके समय जानेवाले मुसाफिरोंको इनको भोज्य मकानको गलियोंमें दिवार देती है कि जिसका हृद नहीं। जायद हो ऐसी भोज्य और कमी दिवार देती हो।

यहां जलको बड़ी कमी रहती है। कुएँ, आदिका जल मश सुनारा है पानी समुद्रके जलकी तरह लय-पाक है। फेरल मषकाको मसजिदके पास ही 'जमजम' नामका एक कुआँ है, जिसका जल स्वादु-विहोत होने पर भी लोग पीते हैं। सिवा इसके साधारण लोगोंके पानी पीनेके लिये कहीं कहीं तो चर्पाका जल सञ्चित किया जाता है और आरकत पहाड़, मे एक नल निकाल कर मषकेमें जल लाया जाता है। यह आरफत पहाड़, मषकेसे ६-७ घण्टेकी राह है।

नगरके दो स्थानोंमें यह नल खोला जाता है। इसके सिवा नलके भीतर ही से कहीं कहीं फव्वारा है, इन फव्वारोंसे जलको पतली धारा निकलती रहती है। प्रत्येक फव्वारेके पास नगर राजकर्मचारी रहता है। यह गुलामों या पानी देनेवाले भित्तियोंसे प्रत्येक मसरुके लिये कुछ कर वसूल किया करता है। नगरके घनी मनुष्योंके सिवा अन्य साधारण लोगोंके मकानोंमें किराये पर उठानेके लिये भी कमरे बनाये जाते हैं। ये मकान एकसे चार मञ्जिल तक बनाये जाते हैं। इनको बनावट अत्यन्त सुन्दर है। इनमें अपने रहनेके बाद जो कमरे बचते हैं, उनको लोग यात्रियोंके लिये सुसज्जित कर रखते हैं, उसमें यात्रियोंके व्यवहारोपयोगी वस्तुओंका संग्रह रहता है। पासमें ही रस्तेके घर भी रहना है। मकान-मालिकोंको यात्रियोंसे जो किराया मिल जाता है, उससे ही उनका वर्षा दिन तक निर्वाह हो जाता है। साधारण अट्टालिकाओंमें पांच नगरके राजाको है, दो विद्यालय हैं और सुष्प मसजिद।

पहले ही कहा जा चुका है कि, समूचा नगर पहाड़ी भूमिमें बसा हुआ है। यूनानके पुराने यूनानों महम्मद साहबके जन्मसे बहुत पहले भी लोग इस स्थानके बारेमें जानते थे। वे इसे मकबरा कहते थे।

नगरके भास पास किसी तरहकी फसल पैदा नहीं

होती। यहांके रहनेवाले दूसरे देशसे भाये अन्न-पशु से हो अपना गुजारा करते हैं। नगरकी रक्षाके लिये नगरके समीप दो एक किला बना हुआ है।

इस समय नगरके भाषेसे अधिक मकान खान्डी पड़े हैं। इसमें यहांकी जनसंख्या भी कम हो गई है। महम्मदके पूर्वपुत्र हुसैनने इस नगरकी बहुत उन्नति की थी। वे मीरिया आदि देशोंसे हर वर्ष नाना प्रकारकी घेचनेकी चीजें मषकेमें लाते थे।

महम्मदके मरनेके बाद उनके पारसिोंने खलीफाको पदवी धारण की। इन्होंने निकटके कई राज्यों पर आक्रमण कर अपना अधिकार जमा लिया और उन राज्योंमें इसलाम धर्मका प्रचार कर मषकाका प्रधान्य स्थापित किया। महम्मदके दूसरे उत्तराधिकारी ओमरने मिस्त्राय के अलेक्जेंड्रियां नगरके पुस्तकालयमें आग लगा कर विधर्मोंकी विध्वंसिताका चिरकलङ्का टीका लगा लिया था।

खलीफा बंगके अधःपतनके बाद मकानकी राजधानी तुर्कोंके हाथ लगी। उसी समयसे यह मकान तुर्कोंके अधीन है। मकानमें कोबा या परमेश्वरका आलय नामक साधना-मन्दिर अत्यन्त प्रसिद्ध है। कुछ आदमी इसे वेस्तुलाका प्रसाद या एल्हारम भी कहते हैं। यह काबा चीकोन है। इनके चारों ओर स्तम्भ लगे हुए हैं। पूर्व ओर चार चार और बाकी सप ओर तीन तीन स्तम्भ या खम्भे लगे हुए हैं। ये खम्भे आपसमें जुटे हुए हैं। चार चार खम्भों पर एक एक गुर्जा बना हुआ है। यहां जानेवाले मुसाफिरोंसे मांजूम हुआ है कि उसमें साढ़ चार सौ ले कर पांच सौ तक खम्भे लगे हुए हैं और १५२ गुर्जे मौजूद हैं।

यह काबा जमीनमें नीचे दिलाई देता है। इसमें प्रयोग करनेके सात दरवाजे हैं। हर एक दरवाजेके समीप नीचे उतरनेके लिये सुन्दर सीढ़ियां बनी हुई हैं। इन सीढ़ियोंसे धीरे धीरे मसजिदके फरशोंके पार कर तब 'काबा' में जाना पड़ता है। धर्म-मन्दिरके ठीक बाकमें काबा मौजूद है। यह अन्दाज ४४ फीट लम्बा, २५ फीट चौड़ा और ४० फीट ऊंचा है। नीचे लगे हुए पापेदार खम्भों पर छत्र पाटो हुई है। इसके भीतर मौकरी भाद फानुस, लटकके दिखाई देते हैं।

काबाके सम्बन्धमें बाबाके लोगोंका कहना है कि, इब्राहिमने खुदाकी आह्वासे इसे बनाया था। यही उनका उपासना मन्दिर था। दूसरे लोगोंका कहना है, कि सृष्टि-त्वनके दो हजार वर्ष पहले स्वर्गमें या बहिश्तमें यह बना था, किन्तु बाबा आदमने इसे इस धरती पर ला कर इस की स्थापना की। इस बातको सचाई साधित करनेके लिये ये जो कहानी कहते हैं, उसको हम यहां लिख देते हैं:-

"जगतके आदि सृष्टिकर्ता बाबा आदम और हवा ईश्वर (खुदा)-को आह्वाकी अवहेलना करनेके कारण धरती पर गिरा दिये गये। इनमें एक बाबा आदम लड्डूमें किसी पहाड़ पर गिरे और हवा अरबमें। बाबा आदम हवासे बिलग हो कर बहुत दुःखित हुए। उनकी चञ्चलता और विकलता इतनी बढ़ी कि उन्होंने हवासे मिलनेके लिये ईश्वरसे बन्दना करने लगी। ईश्वरने उनकी अपने किये अपराधके दण्ड भोगते हुए टुःसित देखा 'जिब्राइल' नामक दूतको उनके पास भेजा। दो सौ वर्षके बाद जिब्राइलकी मददसे अराफत पहाड़ पर हवा और बाबा आदमका सम्मिलन हुआ। इसके बाद ईश्वरसे बाबा आदमने उपासना-मन्दिर बनानेके लिये प्रार्थना की। आदम पर खुश हो कर ईश्वरने अपने कई कारोगरोंको मेघ मन्दिर तय्यार करनेके लिये भेजा। यही काबा आज अरबमें मौजूद दिखाई देता है। बाबा आदम इस मन्दिरकी सात बार परिक्रमा करते थे। उनकी मृत्युके बाद यह मन्दिर फिर स्वर्गमें चला गया। इसके बाद उन्हीं आदमके लड़के शेखने पत्थर और गिलावेके संयोगमे एक मन्दिर तय्यार किया। यह भी महाप्रलयमें नष्ट हो गया।

"बहुत दिनोंके बाद इब्राहिमकी स्त्री हेगर और पुत्र इस्माइल अपने मालिक द्वारा देशसे निकाल दिये गये। ये दोनों घूमते-घामते चले जा रहे थे। व्याससे ये मृतमाय हो रहे थे। ऐसे समय एक देवदूतने मेघ-मन्दिरके निकटके उस 'जिमजिम' कुएँको दिखा दिया। ये दोनों वहीं रह कर थकावट दूर करने लगे। कुछ ही समय बाद 'अमलिकत' घंशके दो आदमी अपने भगे हुए ऊँटको खोजते, खोजते वहां आ निकले। घूमते-घूमते

यह बहुत थक गये थे और जोरके प्यासे थे। 'जमजम' कुआँ देखा कर उन दोनोंकी जानमें जान आई। कुँपका जल पी कर शान्त होने पर इस्माइल और उसकी माता से उनका परिचय हुआ। इस्माइल और हेगरको सहकारितासे उन दोनों आदमियोंने मंझाशरीफ की बनाया। कुछ दिनोंके बाद ईश्वरकी आह्वासे इस्माइलने काबाकी बनवाया। इस्मायलने इसके बनानेमें अपने पितासे बहुत मदद ली थी। इस्माइल जिस पत्थर पर खड़े हो कर काबाकी चहादीवारीकी ईंट जोड़ते थे, वह पत्थर आज भी वहां रखा हुआ है। दोन इमानके माननेवाले मुसलमान इस पत्थर पर इस्माइलके पैरोंका निशान देख सकते हैं, किन्तु दुःखाको विषय है कि इब्राहिम तथा उनके पुत्र इस्माइलके पश्चिद्धित यह पत्थर काबाकी तरह सम्मानित नहीं होता।"

दूसरे लोग कहते हैं, कि इब्राहिम और इस्माइल काबाकी बना रहे थे, कि 'जिब्राइल' नामक एक स्वर्गीय दूतने उन लोगोंको पत्थरका टुकड़ा दिया। इस पत्थरके टुकड़ेके विषयमें एक दन्तकथा सुनाई देती है— "जब बाबा आदम स्वर्गमें थे, तब उनके शरीर-रक्षकके रूपमें एक देवदूत नियुक्त था। धीरे धीरे पापकर्म्मोंमें रत हो कर उसके परिणाम-स्वरूप ईश्वर द्वारा दण्डित हो कर पत्थर बन गया। इब्राहिम तथा इस्माइलने इस पत्थरको आदरके साथ काबेमें रखा। यह गिरी हुई हालतमें शुभ्रवर्ण उज्ज्वल दीप्तिमान् मणि था। धीरे धीरे पापियोंके कर-सपर्शसे यह काला हो गया है।"

काबाके चारों ओर चाँदी मढ़ी हुई है। इसकी एक कोठरीमें दो खम्भे लगे हुए हैं। इन खम्भों पर श्रेणीबद्ध सोनेके चिराग जला करते हैं। काबाके निकट ही ३२ चोबोंकी एक चाँदी है। इन सब चोबोंमें सात साध चिराग जलते हैं। रातको यह काबा अपूर्ण शोभा धारण करता है। काबाका निचला हिस्सा तथा छतकी छोड़ कर सभी हिस्से हर साला काली किमखावसे ढक दिये जाते हैं। हजके उत्सवके समय ये कपड़े तुर्क राजाओं द्वारा मिश्र राजधानी कायरोमें तय्यार होते हैं। इसके सिवा दीवारों तथा खम्भोंमें भी रज्जिन, मारकोन लपेटो हुई है। तुर्क-



राजाओंकी जब गद्दान जीनां होती है, तब इन चम्पोंका कपड़ा बदला जाता है। ठीक चीकीन भांगनमें काबामन्दिर कपड़ेमें ढका हुआ है, इसलामी यात्रियोंके हृदयमें इसे देख कर स्वभावतः भक्तिकी धारा बहने लगती है। उस पकान्त देवालपमें देवका रहना निश्चय जान धार्मिक मुसलमानोंके हृदयमें ईश्वर-प्रेमका नूतान उठने लगता है। इस पर जब मृदुमन्त्र वायुके शक्तियोंसे इसका फाला कपड़ा हिल जाता है, तब मुसलमान-यात्रियोंकी ईश्वरका न होनेका सन्देह तिल भर भी नहीं रह जाता। धार्मिक मुसलमान अपने अन्ध-विश्वासके कारण कहा करते हैं, काबाकी रक्षाके लिये कितने ही देवदूत नियुक्त किये गये हैं, उन्हींके कारण सदा काबाका कपड़ा उड़ा करता या हिलता रहता है। लगभग ७० हजार देवदूत काबाकी रक्षा करते हैं। क्यामतके दिन जब ईश्वरकी युगाहट होगी, तब ये देवदूत इस काबाकी स्वर्ग ( बहिस्त )में ले जायेंगे।

इसलामधर्म यात्रिगण काबामें पहुंच कर अपना मर मुझ्या देते हैं। इसके बाद 'जमजमा' कुएंका जल उनकी भरपेट पिलाया जाता है। उसके बाद यह काबाकी प्रदक्षिणा करने हैं और काबाका काला घञ्च झूमते हैं। येसा करनेसे उनका पाप छूट जाता है और न करनेसे पापसे मुक्त होनेकी कोई सम्भावना नहीं।

महम्मदके जन्मसे पहले इस काबामें यात्रियोंकी नङ्गा हो कर (दिगम्बर-रूपमें) प्रवेश करना पड़ता था। महम्मदने ही इस कुतूतिकी निकाल बाहर किया था। अब भी जब यात्री जाते हैं, तो काबाके निकट अपने सब कपड़े उतार देते हैं और नङ्गे हो जाते हैं, लज्जा बचाने के लिये कमरमें एक लगे'दो बांध लेते हैं। इसी हालतमें एक बार सुपसिद खलीफा हाफ्ज-अल-रसीद अपनी बेगमके साथ बगदादसे पैदल चल कर मक्का भाये थे। चलते चलते जब थक गये तब राहमें अपने-आप कालीन और गन्धोचे बिछा गये।

अलम्पको, अलहमीका, मालिक आदि मुसलमान लेखकोंने जो बातें लिखी हैं, उनमें मायूम होता है, कि हाकिमाली प्रत्येक मुसलमानका मक्का जाना आवश्यक है। इन लेखकोंने अपनी विवरणोंमें ऐसा

लिखा है, कि धनी मानी मुसलमान, मुसलमानिन सर्वांकी मक्का जाना चाहिये।

सन् १५०३ ई०में लोडोमिको, सन् १६७८ ई०में जोसेफ-पिट, सन् १८१४ ई०में जान लूर बुखारि, सन् १७९३ ई०में लेपनएट रिचार्ड बर्टन, सन् १८७७-७८ ई०में, हाकिमके अनुवादक हर्मन बिकनेल और टी० एफ० फोन आदि पुराण पाद्री भी केवल देखने-सुननेके लिये अरब पहुंचे थे। इन लोगोंका कहना है कि मक्कामें कमी कमी ४० हजारसे अधिक लावों तककी भीड़ हो जाती थी।

लोग कहा करते हैं कि, मुसलमान मक्केमें दूसरे धर्मवालोंको, नहीं जाने देते। जिनको काबा देखनेकी इच्छा है, उनको अपना धर्म त्याग कर मुसलमान बनना पड़ेगा। यह बात यास्तविक सत्य है। स्वयं विगनेल साहबको फोरोसे मुसलमान बन कर मक्का आना पड़ा था। शरबी भाषासे अंगभित्त नाविक युष्क कीन अपना नाम अबदुल महम्मद रख कर मक्कामें जाना चाहते थे। किन्तु जब उन्हें मालूम हुआ कि यह नाम मुसलमान नहीं रख सकते, तब उन्होंने महम्मद अमीन नाम रख कर मक्का प्रवेश कर सके थे।

मक्का मन्दिरके शीर्षमें एक बेशो पर 'कुरान'-की एक प्रति रखी हुई है। यह ग्रन्थ मुसलमानोंके लिये परमाननीय ग्रन्थ है। सिधा, इसके अरबी भाषामें लिख कर कथिताओंको सात तर्पितपां लटकवाई गई है। इन सर्वांका नाम है,—'मुभालकत'।

इस मन्दिरके सामने दूसरा भी एक मन्दिर दिखाई देता है। इसके बाद ही प्रसिद्ध जमजम कुंआ है। यह दोनों विद्याल अट्टालिकाओंसे घिरे हुए हैं। इनके चारों कोने पर चार बड़े बड़े खम्भे खड़े किये गये हैं। इसके कुछ ही दूर पर एक चहारदीवारी है, जो सब मन्त्रियोंको घेरे हुए है। मुसलमानोंके लिये ये सब स्थान बड़े ही पवित्र और रमणीक हैं। प्रत्येक मुसलमानका विश्वास है कि, यह स्थान स्वर्ग या बहिस्त है। मुसलमानोंमें कई फिरके हैं। इनमें मत-पापेक्ष्यके कारण एक बार काबाके कान्ठे परशरबत तहस-महस करनेके लिये देवयिरोधा मिश्रके राजाने अपनी सेना भेजी थी, किन्तु

भगवान्की लुप्रासे इस पत्थरकी रक्षा हुई। उसी समयसे धातुकी चहारदीवारी लगी हुई है। यह जमीनसे ४ फीट ६ इंच ऊँची है।

हरएक वर्ष हजके समय एक महोत्सव होता है। इस अवसर पर एक मेला लगता है, जिसमें भारत, इंग्लैण्ड, चीन, जापान आदि देशोंसे चीजें बिकने आती हैं। इस समय इतनी भीड़ होती है कि लोगोंका स्यच्छ जलके लिये बड़ी कठिनाई होती है। यहाँके नगर-मालिक या शरीफ इन यात्रियोंके कष्टों पर जरा भी ध्यान नहीं देने थे। यह देख विख्यात खटीका हासन-अल-रसोदकी बेगम जीवेशदाने आराफत पहाड़से यह जलका नल, जिसका धर्पण ऊपरमें किया गया है, यैठा कर मका शरीफके जलका कष्ट दूर किया था।

उत्सवके दिन यहाँके पूजारी एक ऊँट पर चढ़ कर काबाकी प्रदक्षिणा करते हैं। साथ ही आप लोगोंको धर्मसम्बन्धी व्याख्यान भी सुनाते हैं। इसलाम-धर्मके प्रवर्तक महम्मदने अपनी बीमारीकी हालतमें ऊँट पर चढ़ कर इस मन्दिरकी परिक्रमा की थी। तभीसे यह प्रथा चली आती है। जिस पहाड़ पर इब्राहिमने प्राण त्याग किया था, उसको आराफा या सत्यलोक कहते हैं।

पहले कह आये हैं कि, इसपहाड़ और उसकी माताकी पिपासा शान्त होनेसे उसी कुएँके पास बस्ती होने लगी। उसी समयसे यह मका नगर आबाद होने लगा था। उस मक-प्रान्तमें एकमात्र जमजम कुआँ था। इसलिये इसका विशेष आदर था। अन्तमें पत्थरकी एक चहारदीवारीसे घेर दिया गया था। इस कुएँके सिया उस प्रान्तमें चार छः कोस तक कोई जलाशय दिखाई नहीं देता।

मकाके अधिवासियोंमें अधिकांश अरबके मुसलमान हैं। इनके सिया दूसरे देशके भी मुसलमानोंकी यहाँ बस्ती देखा जाती है। जो मुसलमान मसजिद-उन्-नवाबी या जियारातको देख जाते हैं, वे हाज्रोंके नामसे पुकारे जाते हैं। यहाँके सब स्थानोंमें काबा जियारात और मसजिद-उल-हारम ही प्रधान हैं। मुसलमानोंकी धार्मिक पुस्तकोंमें मक्काके कोई २६ नाम दिखाई देते

हैं। जैसे,—उम-एल-कीरा, बलाद्-एल-अमीन आदि।

भारतमें विशेषतः बङ्गालमें यह कहा जाता है कि मकामें मक्केअर महादेवका शिष्यलिङ्ग मौजूद है।\* इसलाम-धर्मके प्रवर्तक महम्मद साइबके पहले यहाँ जब अग्नि-पूजकोंका दौरादीर था, तब भारतवासी हिन्दू बाणिज्य तथा तीर्थयात्राके लिये मका जाते थे। जब यहाँ मुसलमानोंका प्राधान्य हुआ तब हिन्दू द्वेषी मुसलमानोंने उनका आना जाना रोक दिया। कहते हैं कि, हिन्दुओंके मक्केअरको मकाकी मसजिदमें छिपा दिया था। आज काबामें रखे काले पत्थरको ही लोग मक्केअर समझते हैं।

लोगोंसे सुना जाता है, कि शिवरात्रिको यदि कोई धार्मिक हिन्दू बेलपत्र तथा गङ्गाजल चढ़ा दे, तो राजा हो जायगा। इस दिन मन्दिरसे 'वम वम' की अवाज सुनाई देती है। चास्तवमें हवामें उड़ते हुए काबाके वल्लोंसे ऐसा ही शब्द हुआ करता है।

मकार (अ० वि०) मकर करनेवाला, छल।

मकारी (अ० खी०) छल, धोखेवाजी।

मषकुल (स० ह्यो०) मक्क-उल-च्। शिलाजतु, सिला-तीत।

मकील (स० ह्यो०) मक्क बाहुलकात् कील। खटिका, खडिया।

मषखन (हि० पु०) दूधमेंकी, विशेषतः गी या मैसके दूधमेंकी, यह चरबी या सार-भाग जो दही या मट्ठेको मधने पर अधया और कुछ विशिष्ट क्रियाओंसे निकाला जाता है और जिसे तपानेसे घी बनता है।

विशेष विवरण नवनीत शब्दमें देखो।

\* यह अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि, जब हिन्दुओंका प्राधान्य था, तब औपनिवेशिक बधिकगण या अन्य हिन्दुओं द्वारा यह शिवलिंग स्थापित हुआ था। जब अरबोंके प्राधान्यमें हुकौके राज्यमें हिन्दू-मन्दिर विद्यमान हैं तब अरबमें क्यों नहीं रहेगा? सम्भवतः हिन्दुओंसे द्वेष करनेवाले मुसलमानोंने इस मक्केअर मूर्तिको काबामें छिपा रखा था और हिन्दुओंको यहाँ न जाने देनेका इन्तजाम था। या

मषमा ( हि० पु० ) १ बर्षां जातिकी मषली। २ मर-  
मषली।

मषली ( हि० स्त्री० ) १ एक प्रसिद्ध छोटा कोटा जो प्रायः  
सारे संसारमें पाया जाता है। यह साधारणतः  
घटों और मैदानोंमें सब जगह उद्भूतो फिरती है। इसके  
छाँवर और दो पर होते हैं। मश्रफ़ देखो।

मषलीनूस ( हि० पु० ) धी आदिमें पड़ी हुई मषली तककी  
चूस लेनेवाला व्यक्ति, भारी, कंजूस।

मषलीमार ( हि० पु० ) १ एक प्रकारका बहुत छोटा जान-  
वर। यह प्रायः मषिज्यां मार मार कर खाया करता है।  
२ एक प्रकारकी छड़ी। इसके सिरे पर चमड़ा लगा  
होता है और जिसकी सहायतासे लोग प्रायः मषिज्यां  
उड़ाते हैं। ३ बहुत ही घृणित व्यक्ति।

मषलीलेट ( हि० स्त्री० ) एक प्रकारकी जाली। इसमें  
बहुत छोटी छोटी घृणियां होती हैं।

मषदूर ( म० पु० ) १ सामर्थ्य, ताकत। २ वश, काबू,  
३ समाई, मुजाइश। ४ क्षीलत, धन।

मषली ( हि० पु० ) १ यह सच्चा घोड़ा जिस पर काले  
फूलके दाग हैं। २ बिलकुल काले रंगका घोड़ा।

मक्षुल मालिक—दिल्लीभर महम्मद इब्न तुगलकका  
एक सहकारी सेनापति। मालिक कबीरकी मृत्यु होने-  
के बाद इसने १३५० ई०में दिल्लीभरके प्रतिनिधि नियुक्त  
हो कर राज्यशासन किया। पीछे पत्नीके पद पर  
बैठ कर १३६० ई०में इस लोकसे चल बसा।

मक्षुरा—मध्यप्रदेशके होजाबाद जिलान्तर्गत एक  
छोटा सामन्तराज्य। भूपरिमाण २१५ वर्गमील है।  
पहले कालोमीत और चर्चा विभाग इसके अन्तर्गत  
रहनेके कारण राज्यसीमा भी बढ़ी चढ़ी थी। पीछे  
पेगवा और सिन्धु राजने इसके अनेक अंश दब्ध कर  
लिये। यहांके सरदार गोंड जातिके हैं। ये लोग  
राजाको किसी प्रकारका कर नहीं देते, सम्पूर्ण-  
रूपसे अंगरेजोंके आहाधीन हैं। दोयानो, फौजदारी  
और राजकीय कार्यालयोंके सामन्तके ही हाथ हैं। उषेष्ट  
पुत्रकी ही गद्दी मिलती है। गेहूँ, चना, चावल, गोंड  
और महुआ, यहांका प्रधान पशुपशु हैं।

२ उक्त राज्यका प्रधान नगर। यह मसौ २२ ४

उ० तथा देशा० ७७ ७ ३० पू०के मध्य अवस्थित है।  
यहां एक गिरिदुर्गके मध्य राजप्रासाद अवस्थित है।

मक्ष ( सं० पु० ) मक्ष-घर। १ स्वदोनाच्छादन, अपने  
दोषकी छिपाना। २ कोष, गुस्ता। ३ समूह, ढेर।  
मक्षवीर्य ( सं० पु० ) मक्ष विविध घोषमस्य प्रियालस्य,  
पियार नामका पेड़।

मक्षिका ( सं० स्त्री० ) मशति जश्नयते इति मश- ( हनि-  
मशिन्यां सिक्म् । उग्न ४।२३ ) १-कीटविशेष, साधारण  
मषली। पर्याय—मक्षोका, मन्त, माक्षिका, मन्धलोनुषा,  
पतङ्गिका, पतिका, अष्टतोदरगता, यमनीया, पलङ्क्या,  
नित्या, यर्वणा। ( ममर ) मषतो प्रायः कृद् कर्कच  
और सङ्गे गले पदार्थों पर बैठती, उन्हींको खाती और  
उन्हीं पर बहुतसे अंडे देती है। इन अंडोंमेंसे बहुतधा  
एक ही दिनमें एक प्रकारका दोला निकलता है। यह  
दोला बिना सिर पैरका होता है और दो सप्ताहमें पूरा  
बढ़ जाता है। बादमें किसी सूये स्थानमें पहुँच कर  
अपना रूप परिवर्तित करने लगता है। प्रायः १०-१२  
दिनमें यह साधारण मषलीका रूप धारण कर लेता है  
और इधर उधर उड़ने लगता है। मषलीके पैरोंमेंसे एक  
प्रकारका तरल और लसदार पदार्थ निकलता है जिसके  
कारण यह चिकनीसे चिकनी चीज पर पेट ऊपर और  
पीठ मोचे करके मो चल सकती है। २ शहदकी मषली।  
मक्षिकामल ( सं० स्त्री० ) मक्षिकाणां मधुमक्षिकाणां  
मलम् । सिक्च, मोम।

मक्षिकासन ( सं० स्त्री० ) मक्षिकाप्यामासनम् । मधुमक्षिका-  
का आसन, शहदकी मषलीका छत्ता।

मक्षोका ( सं० स्त्री० ) मक्षिका शुभेन्द्रादिरवात् क्षीर्याः।  
मक्षिका, मषली।

मक्षु ( सं० स्त्री० ) मक्ष-उत्त । १ शीघ्र । ( त्रि० ) २  
शीघ्रगतियुक्त।

मक्षुदावाद—बङ्गालकी मुसलमान-राजधानी, मुनिदा-  
वादका एक नाम।

मक्षुदनगः—मध्यभारतकी भूपाल एजेन्सीके अन्तर्गत  
एक छोटा सामन्त राज्य। यह ग्वालियरके शासना-  
धीन है। भूपरिमाण ८१ वर्गमील है। यहांके सरदार  
त्रिचिञ्चनीय राजपुत्र हैं। १८८० ई०में यह राज्य

अंगरेजों की शिव-शैली में आया। सामन्तकी उपाधि राजा है। यहाँकी जनसंख्या १५ हजारके लगभग है। राजस्व ३००००) रु० है।

२ उक्त राज्यका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० २४' ४' उ० तथा देशा० ७७' १८' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ढाई हजारके लगभग है। यहाँका किला १७३० ई०में रघुमङ्गके राजा विक्रमादित्यने बनवाया था। शहरमें स्कूल, अस्पताल, कारागार और सरकारी डाकघर है।

मख (सं० पु०) मखनित गच्छन्ति देवा अत्र ति मख सर्पणे (हजमन्) वा शश१२७) इति घञ्, सं०प्रापूर्वक-त्वान् न वृद्धिः वा पुस्वीनि, घ। याग, यज्ञ।

मखक्रिया (सं० स्त्री०) मखस्य क्रिया। यज्ञ-विषयके कार्य।

मखघन (सं० लि०) मखं हन्ति हन टक्। यज्ञनाशक।

मखजन (अ० पु०) भण्डार, कोष।

मखनल (हि० पु०) काला रेशम।

मखतूली (हि० वि०) काले रेशमका, काले रेशमका बना हुआ।

मखत्राता (सं० पु०) त्रायतेरक्षतीति कर्त्तरि तृच्, मखस्य त्राता, विश्वामित्रमखरक्षणसन्धात्वं। १ रामचन्द्र। इन्होंने विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षा की थी। (लि०) २ यज्ञरक्षक, यज्ञकी रक्षा करनेवाला।

मखद्रूम (अ० पु०) १ वह जिसकी सेवा की जाय।

२ स्वामी, मालिक। (वि०) ३ पूज्य, सेवाके योग्य।

मखद्विप् (सं० पु०) मखाय द्वेष्टि द्विप्-विचप्। राक्षस। २ यज्ञद्वेषिमात्र।

मखद्वेषो (सं० पु०) यज्ञघिनकारो राक्षस।

मखाधारी (हि० पु०) यज्ञ करनेवाला, यह जो यज्ञ करता हो।

मखान (हि० पु०) मखन देखो।

मखानपुर—युक्तप्रदेशके कानपुर जिलान्तर्गत एकगण्ड-ग्राम। यह अक्षा० २६' ५४' उ० तथा देशा० ३०' १' २०' उ० कानपुरसे फतेगढ़ जानेके रास्ते पर पड़ता है। यहाँ कादर नामक एक मुसलमान साधुका समाधिमन्दिर विद्यमान है। होलाउत्सवमें यहाँ एक मेला लगता है। इस मेलेमें

सैकड़ों घोड़े गाय विक्रमेका खाती हैं और अनेक तीर्थयात्री भी इकट्ठे होते हैं। २ मैनपुरी जिलेका फिरोजाबादके निकटवर्ती एक ग्राम।

मखाना (हि० पु०) मखना देखो।

मखानाथ (सं० पु०) यज्ञके स्वामी, विष्णु।

मखनिया (हि० पु०) १ मखन बनाने या बेचनेवाला।

(वि०) २ जिसमेंसे मखन निकाल लिया गया हो।

मखनी (हि० स्त्री०) मध्यभारतकी नदियोंमें मिलनेवाली एक मछली। यह प्रायः एक विलश्रत लंबी होती है।

मखप्रभु (सं० स्त्री०) बृहत्सोमलता।

मखमय (सं० पु०) मख स्वरूपे मयट्। यज्ञस्वरूप विष्णु।

मखमल (अ० स्त्री०) १ एक प्रकारका बहुत बढ़िया रेशमी कपड़ा। यह एक ओरसे ऊँचा और दूसरी ओरसे बहुत चिकना और अत्यन्त कोमल होता है। २ एक प्रकारकी रंगीन दरी। इसके बीचो-बीच एक गोल चंदोआ बना रहता है।

मखमली (अ० वि०) मखमलका बना हुआ। २ मख-मलकी तरहका, मखमलका-सा।

मखमित्र (सं० पु०) विष्णु।

मखराज (सं० पु०) यज्ञोंमें श्रेष्ठ, राजसूय यज्ञ।

मखतूक (अ० पु०) ईश्वरकी सृष्टि, परमेश्वरके बनाये हुए प्राणी आदि।

मखदत् (सं० लि०) मख-अस्त्यर्थे मत्तुप् मस्य व। यज्ञ-युक्त, यज्ञ करनेवाला।

मखयल्यय (सं० पु०) याज्ञयल्यय।

मखवह्नि (सं० पु०) मखस्य वह्नि मखाराधयो वह्निरिति-याधत्। यज्ञानि।

मखशाला (सं० स्त्री०) यज्ञशाला, यज्ञ करनेका स्थान।

मखसूस (अ० वि०) जो किसो विशेष कार्यके लिये अलग कर दिया गया हो, खास तौर पर अलग किया हुआ।

मखस्वामी—द्राष्टापणसूत्र-भाष्यके प्रणेता। रुद्रास्कन्दने इनका नामोलेख किया है।

मखस्वामी (सं० पु०) यज्ञके स्वामी, विष्णु।

मत्स्यपुराणम् (मं० वि०) मत्स्यपुराणमत्रे मत्र-णिय । यत्स्य-  
मोक्षो, यत्स्यका हिम्मा मानेयात्ता ।

मत्स्यनि (मं० पु०) मत्स्यसंस्कृतः मत्स्यः । यत्स्यनि ।  
यद् मत्स्ये जो यत्स्यं होमादिके लिये स्थापित की जातो  
है । पर्याय—मत्स्यान्त, महावीर ।

मत्स्याना (हि० पु०) मत्स्यमत्स्यना देतो ।

मत्स्यप्र (मं० पु०) मत्स्यं मगकाले भोज्यं भस्म । मत्स्य-  
प्रोक्षभेद, तालमगणना । पर्याय—पद्मप्रोक्षण । यह तालमें  
उदरगत होता और पद्मप्रोक्षणके समान होता है । तान-  
कालना देतो । २ यथोच भस्म ।

मत्स्यालय (मं० पु०) यत्स्यजाला ।

मत्स्यसुहृद् (मं० पु०) मत्स्यस्य दक्षयत्स्य असुहृत्  
शत्रुनाशक इत्यर्थः । गिय । इन्होंने दक्षयत्स्य विनाश  
दिया था । इसीसे इनका मत्स्यसुहृद् नाम पड़ा ।

मत्स्यो—अयोध्या प्रदेशके उनाय जिलान्तर्गत एक नगर ।  
यद् उनाय नगरमे ४॥ कोस उत्तरमें अवस्थित है ।  
प्रायः हजार वर्ष पहले मत्स्यो नामक किसी लोच-सरदारने  
दत्ते बसाया था । उन्हींके नामानुसार यह स्थान  
आज भी मत्स्यनगर नामसे चला आ रहा है । चार  
जन्तारो पहले मैनपुरीपति राजा ईश्वरसिन्हे लोचोंकी  
परात्म कर यह स्थान दूहाल किया । तमोसे यह  
स्थान उन्हींके संघघरोंके अधिकारमें चला आ रहा है ।

मत्स्येश (मं० पु०) राजसूययज्ञ ।

मत्स्योत्ता (हि० पु०) एक प्रकारका कपड़ा ।

मत्स्युप शब्दरूप रहमान—एक मुसलमान नाथु । सिन्धु  
प्रदेशके निकारपुर जिकमें इनका समाधिमन्दिर विद्य-  
मान है ।

मत्स्युप फजलनाह करनेगी—एक मुसलमान नाथु । ये पीर  
फजलनाह नामसे प्रसिद्ध थे । सिन्धुप्रदेशमें इनके  
समाधिमन्दिरमें जो गिलाफलक उरकीर्ण हैं उमने जाना  
जाता है, कि इनका हि० १२११ जेदहजमें इनका देहान्त  
हूया ।

मत्स्यदुमनू—एक मुसलमानों शौर्ष । यह सिन्धुप्रदेशके  
हालतनगरमें अवस्थित है । पीर महम्मद जोमनने १२०५  
हिजरीमें मत्स्यदुमनूका मन्दिर बनाया । मत्स्यदुमनू और  
महम्मदके स्मरणार्थ यद् १२१० हिजरीमें पुनः एक

समाधिमन्दिर और १२२२ हिजरीमें एक मस्जिद बना  
गई ।

मत्स्युप जहानिया—एक मुसलमान नाथु । पत्तोत्र  
नगरमें इनके स्मरणार्थ एक समाधिमन्दिर और मस्जिद  
निर्मित है । मत्स्यजिदमें ८८१ हिजरीको जिया दुर् जो  
गिलाजिया है, उमने जाना जाता है कि सैयद जहान  
मत्स्युप जहानिया उक्त समयके पहले विद्यमान थे । मत्स्य-  
जिदका बहुत कुछ अंश हिन्दू-मन्दिरका अंशविशेष है  
फर घनाया गया है । इसमें अनेक हिन्दूमूर्ति और  
११६३ सम्बन्धमें उरकीर्ण गिलाजिया पत्तो जानो है ।

मग (हि० पु०) १ राह, रास्ता । २ मगदेश । मगध देश ।

३ एक प्रकारके शाकहोषो प्राण्य । भोजक काप्य  
और मगी देतो । ४ मगधका निवासी । ५ पिपुलीमूल ।

मग (मघ)।—आराकानवासी जातिविशेष । जातियोंके  
जानकारोंका विश्वास है कि, यह इण्डोचोन सम्मिश्रित  
जातिके हैं । इस मग जातिके कई श्रेणियां हैं । जैसे,—  
मारमगरी, भूँइयामग, बरभामग, राजवंशी मग, मारा  
या मैम-मा मग, रोयाङ्ग मग और भोजोया या जुमिया  
मग इत्यादि ।

इस समय इनकी सात श्रेणियोंमें तीन ही श्रेणियां  
बन गई हैं । पहली श्रेणीमें केवल 'जुमिया' दूसरीमें  
मार्मा, म्यामा, रोयाङ्ग या, रणियाङ्ग और तीसरी श्रेणी-  
में मारसुग्री या राजवंशी, बरभा और भुँइया मग हैं ।  
मग जाति स्थानविशेषके कारण ही इन सात या तीन  
श्रेणियोंमें विभक्त है । अक्स बहुत पहले यह जाति  
चट्टग्राम तथा आराकान आदि पहाड़ी देशोंकी आदिम  
जाति कहलाती थी । धीरे धीरे जुमिया और रोयाङ्ग-  
गण चट्टग्रामके समतल मैदानमें आ कर बस गये हैं । इस  
से यह इस समय कुछ उन्नत हो गये हैं । इन  
जातियोंके लोगोंका प्राकृतिक गठन सुहृद् और मासकू  
है । इनका चेहरे पर चीनियोंकी तरह भयङ्क दिखाई देती  
है, इनके क्षीण चौड़े और गण्डे मुल, उच्च तथा फीले  
दुप गाल, नाक मोटी और निचटी, आँसू गाल मास  
और छोटी छोटी देग कर मोमालियोंका स्मरण आता  
है । यह कहना कठिन है कि, क्याचंमें इनकी उन्नति  
किन्तु जानिमें है । साधारणतः पहाड़ी जातियोंमें जिया

रूप रंग देखा जाता है, वैसा ही इनका रूप रंग दिखाई दिखाई देता है। फिर ब्रह्मदेशके समीप होनेसे इनमें जलवायुके प्रभावसे यह अलगाव दिखाई देता है। मरमगरी या राजवंशी मर्गोंको उत्पत्ति और नामोंके सम्बन्धमें कुछ आदिमियोंका कहना है, कि बङ्गालका पूर्वी प्रान्त, नोआखाली और चट्टग्रामके आदिम अधिवासी तथा छोटी जातियोंके साथ ब्रह्मवासियोंका विवाह संस्कार होनेसे एक सङ्कर-जाति उत्पन्न हुई है। फिर कुछ लोग कहते हैं, कि मगधके राजाका यहां राज्य था। इसी समय मगधियोंकी यहां अधिकता हुई थी। उसी समयसे इस जातिको नाम मग हुआ।

आराकानके राजवंश निश्चय ही विहार-राजवंश-सम्भूत मालूम होते हैं। इसमें कोई सन्देह नहीं, कि उस समय यहां हिन्दुओंका आवास था। ब्रह्ममें बौद्धधर्म प्रचार करने तथा समुद्रके किनारे धाण्ड्य ध्वसायके लिये कितने ही बङ्गाली तथा विहारी जाकर चट्टग्राम तथा इसके निकटके स्थानोंमें बस गये। आसाम कूचविहार आदि प्रान्तोंमें जैसे युक्तप्रदेशवासी राजवंशी आदि कई श्रेणीके मनुष्योंका वास था, वैसी ही आराकानके प्रान्तोंमें इनका विस्तार हुआ। इन्हीं लोगोंमेंसे ही किसीने वहांकी आदिम जातियोंसे विवाह कर लिया होगा, उसीसे इन जातियोंकी सृष्टि हुई है।

मर्गोंके तीन जातियों या श्रेणियोंमें चौथीस गोल है। वंशके ये नाम नदियोंके नामसे ही कल्पित किये गये हैं। यहांके लोग ममेरो वनसे भी विवाह कर सकते हैं।

मारमगरी जाति बाल-विवाहकी विशेष पक्षपाती है। किन्तु सामाजिकनाम दूसरी जातिले उन्नत देखी जाती है। फलतः उपयुक्त घरकी कन्या समर्पण करनेमें जरा भी देर नहीं करती। माम्मा या चोङ्गचा जाति सयाने लङ्कीका विवाह अधिक पसन्द करती है। इन लोगोंमें विवाहसे पूर्व भी वर-कन्यामें प्रेम उत्पन्न करनेके लिये उनके एक साथ रहनेका भी आयोजन कर देते हैं। किन्तु साधारणतः इनके विवाहकी प्रथा अन्य जातियोंसे पृथक् है।

१७ या १८ वर्षका बालक विवाहके लिये उपयुक्त

है। पुत्रके पिता अपने पुत्रका विवाहके लिये उपयुक्त कन्याकी तलाश करता है। पाली ठीक होने पर वरका पिता अपने या अपने किसी खास व्यक्तिको भेज कर विवाह पक्का करता है। कन्या पक्षके घर जानेसे पहले कन्याके अभिभावकको बुला कर हाथ जोड़ कर प्रणाम कर 'ओगोस्सा' शब्द उच्चारण करना पड़ता है। इस शब्दका अर्थ यह है, आपके तीर पर एक नाव धा कर लगी है, आप उसको बाधे'गे या छोड़ देंगे। इस पर यदि कन्या-पक्षसे सन्तोषजनक उत्तर मिलता है, तब उसके घरमें प्रवेश करते हैं, नहीं तो उलटे पांव उनको लौट आना पड़ता है। घरमें जा कर वह पूछता है,—“इस घरके खूटे तो मजबूत हैं?” इसके उत्तरमें यही शब्द मिले, कि 'हां मजबूत हैं', तब तो विवाहकी बात चलाई जाती है।

विवाह-सम्बन्ध पक्का हो जाने पर वह लौट आता और वरके अभिभावकसे कहता है। इसके बाद इस विवाहके फलाफलको देखनेके लिये बड़ी उत्सुकतासे कन्या तथा वर-पक्षके अभिभावक एकान्तमें एक मुर्गादा बंध करते हैं और उसकी जीम काट कर विवाहका शुभाशुभ निर्णय करते हैं। वर-कन्या या घरके कोई व्यक्ति भी इस फलाफलको नहीं जान सकता। उस रातको वरका अभिभावक कन्याके घर सो जाता है और उस रातको जो वह स्वप्न देखता है, उस पर भी इस विवाह-सम्बन्धके फलाफलका विचार हुआ करता है। यदि मङ्गलजनक हुआ, तो वरका अभिभावक कन्याके पिताके सामने सर नोचा करके बैठता है और आते समय अंगूठो तथा कुरता बख आदि पुरस्कार दे आता है।

इसके बाद ज्योतिषी बुला कर ग्रहकी देख-भाल करते हैं। इसी समयसे दोनों पक्षसे विवाहकी तैयारी होने लगती है। शूकर, मध, चावल, मसाले आदि तरह तरहकी चीजें एकत्र कर विवाह-भोज हुआ करता है। विवाहके दो दिन पहले ही यह अपने कुटुम्बोंको निमन्त्रण भेजा करते हैं। कुटुम्बवाले सभी एक एक मुर्गी भेज देते हैं। जो मुर्गी नहीं भेज सकते, वह पैसा भी भेज सकते हैं।

३ गुप्तवंश होने हैं। इसका उल्लेख धारिमें आना गुप्त माना जाता है। कइते हैं, कि इसका देशता पृथ्वी है और यह लक्ष्मीदाता है।

मगध ( हि० पु० ) मृग के आटे और घांसे बनाई हुई एक प्रकारकी मिठाई।

मगधर ( हि० पु० ) मगध देशों।

मगधल ( हि० पु० ) एक प्रकारका लड्डूह। यह मृग या उड्डके ससुमें नांभी मिला कर घांसे फेंक कर बनाया जाता है।

मगधा ( हि० पु० ) माग-प्रद्वर्क, राज्या दिगलानेवाला।

मगदी—महिसुरके बंगलौर जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १२° ५०' से १३° १२' ३० तथा देशा० ७७° ४' से ७७° २७' पू०के मध्य अवस्थित है। भूमिमात्र ३५६ वर्गमील और जनसंख्या ६५ हजारके करीब है। इसमें इसी नामका १ जहर और ३६४ ग्राम लगते हैं। इसके दक्षिण-पूर्व भागमें अर्धवली नदी बहती है। स्थानीय साधन-दुर्ग और भीर्य दुर्ग नामक दोनों गिरिजिहार बड़े प्राचीनकालमें ही दुर्ग द्वारा सुरक्षित थे। चोल-राजवंश, विजयनगर-राजवंश और गोंड सरदारोंने क्रमानुसार इस सम्पत्तिका भोग किया था।

२ उक्त तालुकका मगध। यह अक्षा० १२° ५७' २०" ३० तथा देशा० ७७° १६' १०' पू०के मध्य अवस्थित है। ११३६ ई०में किसी चोलराजने इस नगरकी प्रतिष्ठा की थी। १६वीं शताब्दीमें बहमनूरके गोंड सरदार हम्मदिकउने गोंडने इस नगरको जीत कर यहां अपने रहने योग्य एक प्रामाद बतथाया था। १७२८ ई०में महिसुरके हिन्दू राजा गोंड-सरदारको पराजित और बन्दी कर औरंगजेबन ले गये और उन्होंने यहां अपनी शासन-सीमा फैलाई। नगरके उत्तरमें गण्डकीलके दान्द देन पर एक दुर्ग है। हिन्दू गोंड द्वारा प्रतिष्ठित सोमेश्वर धाम भी भग्नावस्थामें विद्यमान है।

मगध ( म० पु० ) मगि अन्तु पूगेदगदिरवात् म्नापु, मग द्वाय दधानि या क, या कण्ठ्यादि मगध-अन्तु। प्राचीन जन पद्मता मेद। महाभारतमें लिखा है,—इस देशके अधिवासा बड़े राजावस है।

“इर गिरिजहार मगधाः प्रेरिगवात्तः कोरवा।

भदोवाः कुदराभ्यान्तः मगधाः इतस्त्वानुदधन्तः ॥”

( भाग्य भाष्यार्थ )

वर्तमान विहार प्रदेश मगध नामसे विख्यात था। प्रत्येकने इसको 'कोकट' कहा गया है अर्थात् हिन्दुमें मगध नाम विद्यमान है। मगधाण मनुके समयमें 'यहां तोर्ष-यात्राके मिया आना मना था।

इसकी सबसे प्राचीन नगरीका नाम गिरिजत्र था। कुशात्मज यस्तुने इस नगरीको स्थापना की थी। यह स्थान गङ्गा और सोनमदके मङ्गल-स्थानके निकट पना हुआ था। गिरिजत्र देवों। राजा अश्वमेधने इस नगरीको अपनी राजधानी बनाया था।

जगत्सन्धके बाद उनके उत्तराधिकारी पाहूद्रोंने बहुत दिनों तक गिरिजत्रका राजत्व किया। इसके बाद इस पर शुनरचंजिर्षीका अधिकांश १२८ वर्ष तक रहा। इसके उत्तरान्त श्रीशुनागर्षका ३६० वर्ष तक यहां राजत्व था। इसी वंशके विविभार राजाके शासनकालमें सुयदेवका अधिमांस हुआ। उसके विशुद्ध उपदेशको सुन कर मगधके राजा विवि-सार विमुक्त हुए। उनके पुत्रने भीदधम ग्रहण किया। उस समय विविसारकी राजधानी राजगृह थी। यह गिरिजत्रके निकट ही था। राजगृह देवों। मन्वन्धके समय पाटलिपुत्र राजधानी थी। पाटलिपुत्र देवों।

पुराणोंके अनुसार मन्वन्ध १०० वर्ष, उसके बाद मौर्व्यवंश १३७ वर्ष, फिर ११० वर्ष शुद्रवंश, उसके बाद कण्व वंशने ४५ वर्ष राज्य किया था।

जिम समय प्रसिद्ध गौर अनेकसन्धर या मिश्रन्धर ने भारतके पञ्चाय पर आक्रमण किया था, उस समय वह मगध 'प्राण्य' ( Prany ) राज्य कहलाता था और इसकी घन-दीर्घतकी अर्थात् संसार भरमें फैल गई थी। यह सुन कर ही मगधको जीत लेनेके लिये सिकन्दरकी मुहूर्त्तने पानी टपक पड़ा था। रणोत्तिये उन्होंने भारत पर चढ़ाई कर दी थी। किन्तु अपनी कीर्तिको रक्षा करनेकी सीटनेकी थी इससे यहां तक पहुंच न सके।

अनेकसन्धर और अरवली देवों।

शुनरचंजीय राजाओंमें भी मगधका राजत्व किया

था। पुण्यपुरमें उनको राजधानी थी। ई० सन् ४ से ६ शताब्दी तक इसका शासनदण्ड उनके हाथमें था। हूणराजा तोरमाण और पीछे मालवाके राजा यशोधर्मके अद्भुत तेजसे गुप्तवंशका अन्त हुआ था। कान्यकुब्ज या कनीजके सम्राट् हर्षवर्द्धनके समयमें मगधमें माधवगुप्त मित धन कर राज्य करते थे। किन्तु जब हर्षवर्द्धनका देहावसान हुआ, तब माधव गुप्तके पुत्र आदित्यसेन सम्राट् हुए। किन्तु इनके बाद ही मगध-राज्य दो भागोंमें विभक्त हो गया। पश्चिमका राजा मीथरि तथा पूर्वका राजा गुप्तवंशके हाथ आया; किन्तु ये दोनों सामान्य राजाकी तरह राज्य करने लगे। इसके बाद टवीं शताब्दीमें गौड़ आदिशूरका अभ्युदय हुआ। मगध इनकी ही अधीनतामें आ गया। किन्तु इनकी अधीनतामें यह बहुत दिनों तक टिक न सका। इन्हींके राजत्वकालमें पालवंशके पहले राजा गोपालने प्रजाकी सहायतासे मगध पर अधिकार जमाया। इसी समयसे मगध विहार नामसे प्रसिद्ध हुआ। बारहवीं शताब्दी तक पालवंशने विहार पर राज्य किया था। पालवंशके अन्तिम राजा गोविन्द पालके बाद बहलालसेनने विहार पर अधिकार किया था। इनके पुत्र लक्ष्मणसेनके हाथ से ही विहार मुसलमानोंके हाथमें गया। मुसलमानोंके राजत्वके पहले मानवंशीय राजाओंने मगधमें जगह जगह राज्य किया था। इन राजाओंके यहां शाकद्वीपीय ब्राह्मणोंका प्राधान्य था। यह उस समयके शिलालेखसे मालूम होता है। विहार देखो।

मगधमें हिन्दुओंका प्रधान तीर्थ गयाक्षेत्र है। बुद्धके आविर्भाव होनेसे पहले यहां हिन्दुओंका प्रावण्य था। बुद्ध भगवान् तथा उनके शिष्योंके उद्योगसे यहां बौद्धधर्मका प्रचार हुआ। यद्यपि नन्दवंशीय राजा तथा उनके पीछेके चन्द्रगुप्त हिन्दू तथा जैनधर्मके पक्षपाती थे, तथापि मौर्यवंशीय सम्राट् अशोकके समय बौद्धधर्म राजधर्मके रूपमें यहां विद्यमान था। फिर अशोकके पुत्र दशरथके समय यहां जैनधर्मका कुछ आदर हुआ। गुप्तवंशीय राजाओंके समय पैदिकधर्मका फिर प्रचार हुआ था; सम्राट् समुद्रगुप्त अभ्येधयथ इस बातका समर्थन कर गये हैं। गुप्त राजाओंके समयमें यहां सौर-

धर्म भी था। पाल राजाओंके समय यहां बौद्धधर्मने प्रधानता पाई थी। इन्हींके समयमें विहार या मगधमें बौद्ध पतियोंके लिये नालन्द नामक विश्वविद्यालय स्थापित हुआ था। मुसलमानोंने आकर भी इस बौद्ध-प्रभावको देखा था और इन्हींके कारण यहांसे बौद्धधर्मका लोप हुआ।

मगधमें गया, पुन-पुन नदी, जयवनका आश्रम और राजगृह धन, आदि पवित्र तथा पुण्य-स्थान हैं। इस्लिये इनका हिन्दू, बौद्ध तथा जैनों आदर करते आ रहे हैं।

“कीकटेपु गया पुपया नदी पुपया पुनःपुनः।

च्यवनाश्रमं पुपयं पुष्यं राजगृहं वनम्।”

मुसलमानोंने मगध पर अधिकार जमा कर इसके प्रसिद्ध नगर राजगृहमें ही अपना स्थान जमाया। इससे यह एक मुसलमानोंका भी तीर्थ होगी। आज भी मुसलमान यहां मकदूम-दर्शनके लिये जाया करते हैं।

राजगृह शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

भविष्य-ब्रह्मण्ड नामक पौराणिक ग्रन्थमें लिखा है कि, मगधकी उत्तरी सीमा पर गण्डको नदी बहती है, जहां हरिहरनाथ विराजमान हैं। दक्षिण विहारकी बगलमें शिव नदी है, पश्चिममें चारल गांव। यह गांव भोजदेशके सीमा पर मौजूद है। पूर्व-सीमा पर गङ्गा तथा दक्षिणांशमें सूर्यपुर मौजूद है। कलमें यहांके मनुष्य आचार हीन होंगे। शाकद्वीपी ब्राह्मण कृष्ण-पुत्र शाम्बका कुष्ठरोग आराम करनेको मगधमें आकर बस गये थे। ये लोग आयुर्वेदज्ञ थे तथा सर्वसाधारण 'इनका आदर-मान करते थे। जीविका-निर्वाहके लिये ये लोग नाना देशोंमें तितर-वितर हो गये। ये लोग अगहन सुदी अष्टमीको सूर्यनारायणका व्रत करते हैं। इस जातिके सिया कुरमी जातिको बस्ती अधिक है। ये क्षार तप्यार किया करते हैं। मगधमें चना आदि रबी अन्न बहुत पैदा होता है।

फलिाकालमें कुछ दिनों तक मुसलमानोंका प्राधान्य रहेगा। इसके बाद समुद्रगामी अनियर्ण जाति आ कर मगध पर कब्जा करेगी। इनके उद्योगसे गङ्गाके किनारे कितनी ही अट्टालिकायें तप्यार होंगी।



मगधमें प्रायः गौन हजार प्राप्त हैं, इनमें गान ही मुख्य हैं—गौन पूर्वमें गान पश्चिममें आठ शक्तिगामों और गान उत्तरमें। इनमें गङ्गाके दक्षिण किनारे नौलकण्ठ-विद्यमान पैरुच्छ, कृत्कार, गण्डकीके किनारे सरम्, गङ्गाके समीप जाकर, बन्सार, विजयपुर, सैरपुर, नगीनाबाद, नरन्दा, विकुला, नानाहा, कुल्दारी, लौहा-दाघन, निराय, मुणया श्रुङ्गा, नरहन, रामपुर, हाजी-पुर, मगु, गन्धार और लालगञ्ज हैं। मगधकी राजधानीका नाम पाटलिपुत्र है।

यह कहनेकी आवश्यकता नहीं कि आज भी पटना या पाटल्लिपुत्र मगधमें विद्यमान है और सबसे श्रेष्ठ नगर है। पाटल्लिपुत्र देण।

( २ ) मगध देशके रहनेवाले मनुष्य । ( ३ ) पौपला-मृत् ( देवगनि )

नागधना ( मं० म्यो० ) पिपपत्नी ।

मगधनाफल ( मं० म्यो० ) पिपपत्नी ।

मगघा ( मं० म्यो० ) मगधमन्त्रधामा देश उत्पत्तिस्थान-श्वेनारहस्यया इति 'अर्ध आदिश्वोऽय्' मियां टाप् । विपपत्नी ।

मगधोय ( मं० ति० ) मगधे भया गहादित्वात् छ । मगध-देजोऽयम् ।

मगधेज ( मं० पु० ) मगधदेशका राजा, जरात्मन्ध ।

मगधेज्वर ( मं० पु० ) मगधस्य तद्राम्यदेशस्य ईश्वरः ।

१ जरात्मन्ध राजा । २ मगधदेशके अधिपतिमाय ।

मगधोद्गता ( मं० म्यो० ) मगधे उद्गयी यस्याः ।

१ विपपत्नी । ( ति० ) २ मगधदेशज्ञान, मगधदेशमें होने-वाला ।

मगना ( हि० पु० ) कागज बनानेमें उसके लिपे नैवार किये हुए गूदेकी धैलिकी क्रिया ।

मगर—नेपालका गोडू-सम्प्रदाय या जातिभेद । ये लोग धानेकी हिन्दू बनाने हैं, सही, पर आज भी बहूने हिन्दुओंय भाषाका व्यवहार करते हैं और तिपपत्नीय रत्न सिद्धांत तथा लामाके उपदेश पर विश्वास रखते हैं । इनकी धारणाति प्रहर्ष भी उन्होंने मिलनी तुलनी है । पर हां, नेपालमें देश मार्गों जातिके साथ ये स्थानीय भाषामें ही बोल्पाय करते हैं । तिपपत्नीय भाषाका

व्यवहार करने पर भी सभी भारतीय नगरोंमें तिपपत्नीय पटना सीपते हैं, प्रायणकी अपना पुरोहित बनाते और गो-मांस मूने तक नहीं हैं । ये लोग पहले मित्रिममें रहते थे, यहांसे लेपना जाति द्वारा मेयो भीर बुनी-नगरके पश्चिममें, फिर यहांसे लिम्बू जाति द्वारा पश्चिममें सरुण और बुहुबुनीके उम पार भगा दिये गये । सभी कालीनदीके दोनों किनारे पर इन लोगोंका वास है । इन लोगोंमें १२ थोक हैं, अपने भोक्षमें रीया-तिक आठान-प्रदान नहीं चलता ।

मगर ( हि० पु० ) १ गडियाल नामक प्रसिद्ध जलजन्तु । २ मोन, मछली । ३ एक प्रकारका गहना जो मछलीके आकारका होता और कानमें पहना जाता है । ( भव्य ) ४ लेकिन, परन्तु ।

मगरतलाय—पराची जिलेका उष्ण प्रखण्डण युक्त एक बड़ा सरोवर । मुसलमानोंके यहां यह 'मगरपीर' वा 'पीर मद्दु' नामसे मशहूर है । यह करानोने प्रायः मादू गौन पोस उत्तममें अर्धमिथत है । इसको लम्बाई १५० गज और चौड़ाई प्रायः ८० गज होगी । इसमें दो सीसे अधिक मगर रहते हैं, इसी कारण इसका मगरतलाय नाम पड़ा है । स्थानीय लोगोंका विश्वास है कि मरिचकी छोड़ कर और सभी जीव इन मगरोंका मगध हैं । सरो-वरके किनारे जीवहरया करनेसे ये सब मगर भुंयके भुंय-आते और उन्से खाते हैं । इस समय ये मागसमें गूय लडते भगदते हैं । मांस या लेने पर ये सबके सब जलमें अर्धमिथ हो जाते हैं ।

सरोवरके किनारे पीरमद्दुकी मस्तजिप है । सिन्धु प्रदेशवासी हिन्दू मुसलमान साथ ही इस पीरकी भक्ति करते हैं । बहूनोंका विश्वास है कि यहां जायकी दग्दानसे भारी पुष्प होना है । इस कारण प्रतिवर्ष सैकड़ों मनुष्य यहां पर दृष्टाने आते हैं ।

मगरवर ( हि० पु० ) मसुद्र ।

मगरव ( मं० पु० ) पश्चिम ।

मगरवीस ( हि० पु० ) काठून और पश्चिमगोपाटने आध-पत्तम होनेवाला एक प्रकारका कटिहर बीस ।

मगरमच्छ ( हि० पु० ) १ मगर वा पश्चिम कागज प्रसिद्ध जलजन्तु । २ बड़ी मछली ।

मगरा—बङ्गालके हुगली जिल्लाका एक नगर । यह अक्षा० २२° ५६' ३० तथा देशा० ८८° २२' ५० मगरा खाल पर अवस्थित है । जनसंख्या लगभग एक सी है । यहां ईष्ट इण्डिया-रेलवेका एक स्टेशन है । स्थानीय उत्पन्न द्रव्यके वाणिज्यके लिये यह स्थान बहुत मशहूर है । यहांकी बालू घर बनानेमें विशेष उपयोगी है । और यह 'मगराकी बालू' नामसे मशहूर है ।

मगराहाट—बङ्गालके २४ परगने जिल्लाका एक गण्ड ग्राम । यह अक्षा० २२° १५' ३० तथा देशा० ८८° २३' ५०के मध्य विस्तृत है । जनसंख्या साढ़े चार सौके करीब है । यहां ई. बी. आर. रेलवेका एक स्टेशन है । यहां चर्च-मिश्रनरी सोसाइटीका एक गिर्जाघर है ।

मगरूर (अ० वि०) अभिमानी, घमंडी ।

मगरूरी (हि० स्त्री०) अभिमान, घमंड ।

मगेरा (हि० पु०) नदीका पेसा किनारा जिसमें बालूके साथ कुछ मिट्टी मिली हो और जो जोतने बोनके योग्य हो गया हो ।

मगरोसन (अ० स्त्री०) नलवार, खुँघनी ।

मगल (स० पु०) मोक्ष-प्रवर्तक ऋषिपदे ।

( प्रवराच्याय )

मगलीपरंड (हि० पु०) रतनजोत भागवेरंडा ।

मजलद्व (फा० पु०) १ चौबीस शोभाओंमेंसे एक । (वि०)

२ पराजित, जो जीत लिया गया हो ।

मगस (हि० पु०) १ पेरे हुए ऊँलोंकी सीडी, छोई । २ शाकद्वीपकी एक प्राचीन योद्धाजातिकी नाम ।

मगसिर (हि० पु०) अगहन मास ।

मगह (हि० पु०) मगधदेश ।

मगहपति (हि० पु०) मगधदेशका राजा, जरासन्ध ।

मगही (हि० वि०) १ मगध-सम्बन्धी, मगधदेशका ।

२ मगहमें उत्पन्न । (पु०) ३ एक तरहका पान ।

मगानन्द—पञ्जाबप्रदेशके सिरमूर राज्यस्थ शिवालिक पर्वतका एक गिरिसङ्घट । यह अक्षा० ३०° ३२' ३० देशा० ७७° १६' ५०के मध्य विस्तृत है । १८५६ईके गुरखा-युद्धके समय इस गिरिसङ्घटके पार्श्ववर्ती नाह्लु नामके स्थानमें अङ्गरेजी-सेनाने छावनी डाली थी ।

मगी—आर्य, शक, वाहिक, पारस्य, चारियम आदि जाति-

के पुरोहित 'मग' वा 'मगी' कहलाते हैं । ये लोग सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी, अग्नि, जल और वायुकी पूजा करते थे । हिरोदोटसने इन्हें 'पर्यंतके ऊपर, जूपिटर वा इन्द्रकी उपासना करते भी देखा था । वे लिख गये हैं, कि असुरों ( Assyrians )-से इन्होंने वीणापाणि ( Penus ) और वरुण ( Uranus ) की उपासना करना सीखा है ।

स्ट्राबोने लिखा है कि, पारसिक पुरोहित पूजाके लिये किसी देव-प्रतिमा या वेदीका निर्माण नही करते थे । वे जूपिटर-रूपमें धी और 'मिथ्र' नामसे सूर्यको उपासना करते थे । कोई कोई कालिककी पूजा भी करता था । मिथ्र ( वैदिक मित्र ) देव ही इस सम्प्रदायके कुन्द्देवता हैं । जरथुस्त्र या जोरो अष्टरो इन मित्र-पूजाकी अधिकांश रीति-नीतिको बद्दल कर अग्निपूजाका प्रचार किया । इस पर आदि मित्रपूजाके साथ उनका विवाद खडा हुआ । किन्तु आखिर जरथुस्त्रकी ही जय हुई थी, बहुत थोड़े मनुष्य आदि मित्र-पूजाके पक्षपाती थे, वे भी अन्तमें जन्मभूमि परित्याग करनेकी बाध्य हुए । भोजकशाण्डे देखो ।

जब बाविलनके सिंहासन पर मिदीयबंश बैठा, उस समय प्रायः ई० सन्से २२३४ वर्ष पहले काल्दोयामें अग्निपूजाक मगी लोगोंका मत प्रवर्तित हुआ था, जिसे बहुतेसे जरथुस्त्र-मतका ही संस्कार समझते थे । इस मतमें पञ्चभूतकी उपासना ही प्रधान थी तथा अग्निदेव ही उपासनाके मूल थे ।

इस देशमें जिस प्रकार याजनक्रियामें ब्राह्मणकी छोड़ कर और किसी जातिकी याजन-क्रिया करानेका अधिकार नहीं है, अग्निपूजाक मगी लोगोंका अधिकार भी उसी प्रकार था । कोई भी भक्त वा उपासक इन मग-पुरोहितोंकी सहायताके बिना कोई देवकार्य नहीं कर सकता था । बलि, होम, मन्त्रपाठ आदि सभी अनुष्ठान एकमात्र पुरोहित ही करते थे । राजासे ले कर प्रजा तक सभी द्रव्यादिकी यहां पहुँचाते और दर्शन रूपमें उनका क्रियाकाण्ड देखते थे । पारस्यपति दरागुस्ने इन अग्निपूजाकी बहुत सताया था । अर्शक्षत्र ( Artaxerxes Longomanus )-के समय उर्होंने अधिपतियोंको अपने मतमें दीक्षित किया था । प्रसिद्ध

पैतृहानिक राजतिसन भवदारक वेष्टरगाष्ट मगोधर्मको  
उपनि जन्म्युय मगमे विद्युत्तुय विभिन्न दन्यते है।

वस्तुय भीर भोजनमाप्य देगे।

मयु ( मं० पु० ) जाबडपयाम्नी प्राणय। मय देगे।

मयुन्दो ( मं० स्त्री० ) मयुन्दो नामक पिनाचोषिरोर।

( भयं २।१५२ )

मगोर ( हि० स्त्री० ) मगोको तरहको एक प्रकारको  
मण्यो, यह विना छिन्नकेको भीर कुड लय्यो लिये काले  
रंगको होनी है। यह डंक मारती है।

मगोरी बर्माप्रदेशके महिकालथा विभागके अन्तर्गत  
एक छोटा सामन्त-राज्य। यहाँके सामन्त राजोर-  
घंतीय राजपूत हैं। ये इंडरके राजाको वारिष ३०  
४० कर देते हैं।

मगज ( अ० पु० ) १ मन्थिक, दिमाग। २ किन्नी फल-  
के बीजकी गरी, गुड़ा।

मगजोवन ( फा० स्त्री० ) नास, सुगन्ता।

मग्न ( मं० वि० ) मग्न क ( भोदितान )। पा ८।२।५५ )

इति निष्ठा तकारम्य नरय ( स्त्री०)मगोवायान्ते च। पा  
८।२।२६। इति मन्थोप, चोः कुत्वक्ष। १ स्नान, बुधा हुआ  
२ तन्मय, लीन। ३ प्रसन्न हर्षित। ४ मद्मन्त्र, नदी  
आदिमें न्यूर। ५ नीचेको ओर गिरा या टलका हुआ, जा  
उन्नत नहीं। ( पु० ) ६ एक पर्वतका नाम।

मप ( सं० पु० ) मपि अन्, पूर्वोदरादिस्यात् सायु। १

होपविशेष, पुषाणानुसार एक ह्योपका नाम जिममें  
भेदका रहते है। २ देवगिरीके, मप नामक भेदकोका  
स्थान। ( हि० ) ३ पुषयिरीके, एक प्रकारका फूल।  
४ घन, मगानि। ५ पुषधर, इनाम। ६ मगप्राणय।

मपकोय भीर भोजनमाप्य देगे।

मपरी ( हि० वि० ) मपरी देव।

मपर-सुखप्रदेशके बन्नी जिलान्तर्गत एक बड़ा ग्राम।

यह भयान् २६ ४५ उ० तथा देगान् ८३ ८ ५० गोमन्-  
पुरमें फोडावाइ जामेके रान्ने पर अवस्थित है। जन-  
संख्या तीन हजारके लगभग है। यहाँ अनेक प्राणीनरय-  
के निरुधंन पाये जाते हैं। किरदारती है वि, कपिलपशु  
महानगरिके अर्धस होनेके बाद, बीडपतिमल इस नगरमें  
जा कर बसे थे।

मामो नदीके दाहिने किनारे नगरके पूर्व भागमें  
प्रसिद्ध हिन्दू भीर मुसलमान पूजित धर्म-प्रपत्तक कपोर  
का समाधिस्थल विद्यमान है। १४५० ई०में विक्रमो  
गान्ते इस रीजाको बनवाया था। पीछे १५३३ ई०में  
नयाव किदाई गांने इसका संस्कार कराया। इसके कुछ  
दक्षिण कपोरके उहे शसि स्थापित एक हिन्दू-नीर्ष भीर  
मसजिद है। दूर दूर स्थानके हिन्दू इस कपोर तीर्थमें  
आते हैं।

नगरके मध्यभागमें १७वीं सदीके मुसलमान शासक-  
कर्ना काजी मन्डोल-उर-रहमानका समाधि-मन्दिर  
विद्यमान है। इसके ठीक पदिनममें एक दुर्गका अर्धमाप-  
शेष नजर आता है, जो मघर-राजघंतीको कौर्षि धामका  
जाना है। पतञ्जिन इस दुर्गके चारों भीर तथा यहाँसे  
ले कर कपोर-रीजाके समीप तकके विस्तृत स्थानमें  
बहुतने इष्टक-स्तूप विस्तृत हैं।

मघरसे एक कोस दक्षिण-पदिनमें शोपरताल नामक  
दिशोके पूर्वों किनारे पर महास्थान डिहो नामक विस्तृत  
अर्धसायशेष पड़ा है। उस अर्धसराजिके ऊपर जीर्वांशेष  
ग्राम बसा हुआ है। इस ग्राममें चार सौ कुछ पूर्व एक  
इष्टक-निर्मित स्तूप देखा जाता है। कहते हैं, कि मुस-  
देवने यहाँ पर मस्जिद मुत्तन कराया था। उस महा-  
स्तूपकी रक्षाके लिये पीछे यहाँ पर एक स्तूप बनाया  
गया है। उक्त स्तूपमें ३ सौ कुछ उत्तर-पूर्वमें ५० फुट  
परिधिका एक दूसरा बड़ा स्तूप पड़ा है, जहाँ पर  
पुष्टदेवने छन्दकले विदाई ली थी। यहाँ पर मघाट  
घनोहने एक स्तूप बनाया दिया है। इस अर्धस स्तूपमें  
३७० फुट उत्तरमें एक भीर भी इष्टक-स्तूप नजर आता  
है। इस स्थान पर जाबडपुत्रने राज-परिच्छेदका हवाग  
किया था। उस घटनाको विस्मरणपोष करनेके लिये  
यहाँ जो स्तूप बनाया, यही पत्तमान स्तूपमें प्रदर्शित  
होता है। इस स्तूपमें भी ५५० फुट दक्षिण-पूर्वमें पैडान  
डिहो नामक विलोपों स्तूप देखागमान है, जो बीज-  
विदाइ माना जाता है। मघर नगरमें ३ कोस उत्तरमें  
कोष नामक ग्राममें कौषेअर नियमन्दिर भीर कुछ  
अर्धसायशेष विद्यमान है।

मघरन् ( सं० पु० ) मघरन् (मघा वृक्ष। पा ३।१।१२८)

इति पक्षे नृ आदेशः, ऋ इत् । १ इन्द्र । २ दनुके एक पुल-  
का नाम ।

मघवती ( सं० खी० ) इन्द्राणी ।

मघवन् ( सं० पु० ) मह्यते पूज्यते इति मह पूजायां  
( रघनुत्तम पूजन पञ्जीहन्ति । उष्ण २।१५८ ) निपातनात्  
हृष्य घ, अयुगागममृच । १ इन्द्र । २ जौनोंके वारह चक्र  
घर्तियोंमेंसे एक । ३ पुराणानुसार सातवे द्वारपरके  
व्यासका नाम । ४ पुराणानुसार एक राक्षसका नाम ।

मघवा ( सं० पु० ) मघवान देखो ।

मघवाजित् ( सं० पु० ) रावणका बड़ा लड़का इन्द्रजित् ।  
इसने इन्द्रको जीत लिया था । इसका दूसरा नाम मेघ  
नाद भी है ।

मघवान् ( हिं० पु० ) इन्द्र ।

मघवाप्रस्थ ( सं० पु० ) इन्द्रप्रस्थ नामक प्राचीन नगर ।

मघवारिपु ( हिं० पु० ) इन्द्रका शत्रु, मेघनाद ।

मघा ( सं० खी० ) मह-घ, हृष्य घत्वं । औषधविशेष  
एक प्रकारकी दवा । २ अश्विनो आदि सप्तार्दश नक्षत्रोंमेंसे  
दसवां नक्षत्र । इस नक्षत्रके अधिपति पितृगण हैं । यह  
नक्षत्र अधोमुखगण है ।

"मूलाश्लेषा कृत्तिका च विशाला भरणी तथा ।

मघा पूर्वाश्रयश्चैव अधोमुखगणः स्मृतः ॥"

( जातकामरण )

मघानक्षत्रमें जन्म होनेसे देवारिगण होता है । शत-  
पद चक्रानुसार नामकरण करनेमें प्रथमादि पादमें म, मि,  
मु, मे, घे चार अक्षर भादिमें होंगे । अर्थात् प्रथम पादमें  
म, द्वितीयमें मि, तृतीयमें मु और चतुर्थपादमें मे इस  
प्रकार आद्यक्षर होगा ।

मघानक्षत्रमें जन्म होनेसे सिंहराशि होती है । इस  
नक्षत्रका प्रथम तीन दण्ड गण्ड है । इस दण्डमें यदि कोई  
जन्म ले, तो उसका परित्याग करना विधेय है ।

"घर्षेण मघदजातानां परित्यागो विधीयते ॥" ( कीटश्री० )

मघानक्षत्रमें जन्म लेनेसे जातवालक विवादशील,  
सिंहविक्रम, सुन्दरलोचन-सम्पन्न, प्रतापशील, अल्प-  
सन्ततियुक्त, चमिता-चिरोद्यो, अल्पधन और विद्यासम्पन्न  
तथा राजसेवक होता है ।

मघानक्षत्र मूसकजातीय है । इसकी आकृति हलके  
सदृश तथा पञ्चतारकायुक्त है ।

अष्टोत्तरीके मतसे—मघा पूर्वफल्गुनी और उत्तर-  
फल्गुनी नक्षत्रोंमें जन्म लेनेसे मङ्गलकी दशा जाननी होगी ।  
इस दशाका परिमाण ८ वर्ष है, प्रति नक्षत्रमें २ वर्ष और  
८ मास हैं । प्रति नक्षत्रके बाद ८ मास तथा प्रतिदण्डमें  
१६ दिन और प्रतिदण्डमें १६ पल होता है ।

विंशोत्तरीके मतसे—मघानक्षत्रमें जन्म होनेसे फेनुकी  
दशामें जन्म होता है । इस दशाका भोगकाल ७ वर्ष  
है ।

मघानक्षत्रमें यात्रा नहीं करनी चाहिये, करनेसे मृत्यु  
होती है । यदि इस नक्षत्रमें व्याधि हो, तो रोगीकी  
मृत्यु अवश्यम्भावी है, ऐसा जानना चाहिये ।

"मघाभरणीहस्त्ये मुले वा ज्वरितोऽपि ।

मृत्युमाश्रते सोऽपि नात्र वार्या विचारण ॥"

( शरीर २ स्या० ४ अ० )

यह शब्द बहुवचनान्त भी देखनेमें आता है ।

"कृष्णपक्षे श्रवोदशा मघास्विन्दोः करे रविः ।

यदा तदा गजच्छाया भ्रातृ पुष्यैरवाप्यते ॥" ( तिथितत्त्व )

मघात्रयोदशी ( सं० खी० ) मघादशम नक्षत्र मघायुक्ता  
त्रयोदशी मध्यपदलोपि कर्माणां । मघानक्षत्रयुक्त, भाद्र-  
मासकी कृष्णतयोदशी । इस तयोदशीमें पितरोंके  
उद्देशसे श्राद्ध अवश्य करानेय है । यह श्राद्ध मधु और  
पायस द्वारा करना होता है ।

"म्राष्टपचामतीतायां मघायुक्ता श्रवोदशी ।

प्राप्य भ्रातृ हि कर्त्तव्यं मधुना पायसेन च ॥

यत् किञ्चिन्मधुना मिथं प्रदद्यात् श्रवोदशीम् ।

तदव्यक्तयमेव स्याद्द्रवोऽथ च भयात् च ॥" ( तिथितत्त्व )

मधुपायस द्वारा करनेमें असमर्थ हो, तो मधुयुक्त जिस  
किसी विदित द्रव्य द्वारा श्राद्ध करे ।

यह श्राद्ध सर्वोंको करना चाहिये । इस श्राद्धमें शूद्र-  
का भी अधिकार है ।

"मघायुक्ता च तत्रापि गस्ता राज्ञस्तत्रयोदशी ।

तत्रार्थं भवेत् श्राद्धं मधुना पायसेन च ॥"

अथ यत् श्राद्धं तन्मधुयोगेन वा अन्नं भवेत्, अतएव मनुचरने  
यत्किञ्चिन्मधुना मिथमित्यनेन मधुमात्रयुक्तं अतोऽत्र मुतरां  
शूद्रत्याकारः ॥" ( तिथितत्त्व )

मधु और पायस द्वारा श्राद्ध करनेसे बहुत फल

आहत हुए। यही भगवती उनके रक्षणरूढ़ी प्रतिनयमभूमि थी। अंगरेज-सैन्यागणिकों के स्मरणार्थ यहाँ स्तुतिस्वरूप बनाया गया है।

मङ्गल—पञ्चाशे वर्षांत एक मानवसंसार। यह भगवा० ३१ १८ से ३१ २२ उ० तथा देगा० ७१ ५५ से ७३ १ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १२ वर्गमील और जनसंख्या ३६६ हजारके करीब है। पहले यह राज्य कन्हूदे, मारदारके अधीन था। पीछे १८१५ ई०में गुरुनामोंकी राज्यमें निकाला गया। भगवती पर यह स्थायी राज्य रूपमें गिना जाने लगा। यहाँके राजा भगिचंगोय राज्यपूत है। इस घंटीने पहले मारवाड़ प्रदेशमें यहाँ पर भा कर राज्य स्थापन किया। ब्रिटिश सरकारको पार्षिक ७० कर देने है।

मङ्गल—चित्तौषाण्डि मृत्युमंतके पुत्र। कहते हैं कि शूद्र पिताको मार कर ये राजगद्दी पर बैठे थे, इसीलिये राज्य-मुद्रका भोग अधिक दिन तकन कर सके। इस कारणव-आचरणसे विरक्त हो कर सभी सामान्तीने मिल कर इन्हें राज्यसे मार भगाया। निरुपाय मङ्गलदेव-पहिएष्टन हो उत्तरमठ प्रदेशमें चले गये और यहाँ एक राज्य बसाया। उनके चंद्रापरमण 'मङ्गलकीप गिह्राट' कह-लाते थे।

मङ्गल—एक प्राचीन कवि। जन साधारणमें ये माधु विन्धमङ्गल नामसे प्रसिद्ध थे। विष्णुमंथ देखो।

मङ्गल (सं० ह्रा०) मङ्गल दिनार्थं सर्वति मङ्गलि दुरदृष्टमने गास्मा हेंति मणि (महाभारत)। उच ५।३०) १ अग्निप्रै तार्थं मिति। अमीष्ट विषयको मित्तिका नाम मंगल है। (त्रि०) २ मंगलविनिष्ट। पर्वण्य—नायुः अथ, अथिः, कल्याण, शुभ, शैव, प्रसन्न, अष्ट, स्वधेयम, जिय, अतिष्ट, कुजान, विष्ट, मष्ट, जस्त। (मन्दरजान्ती) ३ सर्वाथं रक्षत। (मैत्रिं)।

मङ्गलके मन्त्रः—

'मङ्गलाय नमः' विष्णुसंस्कृतिकर्मणः।

एतन्मि मंत्रं शीघ्रं कृत्विमि जगद्विभवा ॥

( एकवचन० )

प्रसिद्धि प्रदान् कर्मोंका आचरण तथा अथवास्त्र वायुकी स्थापना ही मंगलवद् भाग्य है।

मंगलसूत्रक वस्तुएँ—प्रत्येकका पुराणमें लिखा है,—"जलमें भरा घड़ा, प्राणज, घेरवा, मूला अन्न, ऐनक, दही, घी, मधु, लावा, फूल, दूध, गर्म भावन, जर्जर, चैत्र, हाथी, घोड़ा, जलती हुई अग्नि, सोना, पूँस ( पर्ण ) , गरह तरहके पके फल, पतिपुत्रयती स्त्री, प्ररीय, उत्तम मणि, मुक्ता, पुष्पमाला, मद्योमांस और चन्दन ये ही सब वस्तुएँ मंगल-सूत्रक हैं।

वायेँ मियार, नेयला, जयदेह, और दक्षिणमें राजहंस, मयूर ( मोर ), लक्ष्म ( पशुलिप ), कोयल, कबूतर, शंशुचिन्त, चक्याक ( चकई चकपा ), हृत्जमार, चमरो, श्वेतगामर (सफेद चंगर), मघरमा धेनु (बछड़े-वाली गाय ) और अजपापताका, गरह तरहके बाज, मङ्गलधयनि हरिमङ्गुलीचंन, घण्टे और शङ्खका मधु, इत्यादि भी मंगल शब्द हैं। इन्हीं सब वस्तुओंको देना या इनका स्मरण कर मनुष्योंकी यात्रा करनी चाहिये यह सब वस्तुएँ यात्राके लिये मंगलकारक हैं।

और भी लिखा है कि, वायेँ ज्ञाप, जिय, मरा घड़ा, नेयला पतिपुत्रयती शृंगार-की हुई स्त्री, माधुशो मौर सभी स्त्री, मादे फूल, माला, अन्न, खजान, और दाहनी और जलती हुई अग्नि, विम, बैल या सांड, हाथी, बछड़े वाली गाय, सफेद घोड़ा, राजहंस, घेरवा, फूलकी माला, पताका, दही, दूध, मणि, सोना, चाँदी, मुक्ता, मानिषय सुधी-मंसि या यात्रा मंसि, चन्दन, मधु, पूत, हृत्जमार, फल, लावा, मिनधाम्न ( चिकने धान ), हृपण, मादा कमल, फालवन, शंशुचिन्त, कोयल, मर्याम ( माझार ) या बिली, पहाड़, मेघ, मयूर ( मोर ), शुक्र ( तोता ), सारथ, शङ्ख, कोयल और बाजा, ये भव हरा कर यात्रा करनेमें मनुष्यको चारों ओर मङ्गल ही मङ्गल दिगाई देता है।

( प्रत्येक वस्तु माद ओहपुत्रकम २० म० )

"कोविदरिम्ह मंगलसूत्री कर्मणो कीर्तितारः।

दिरत्नं हरिःहरिश्च मरुतो यत्रा तथाधमः ॥

एतानि कर्तव्यं परमेष्ण मन्वेदेष्वदिलयः।

परधियन्तु कुर्वति तथा वस्तुने शंभवे ॥"

( मन्वसूत्र मंगलसूत्र ५३ श्लोक )

प्राणज, गी, अण, सोना, रूई, जल और राजा ये ही साठ वस्तुएँ हम मंत्राणमें मङ्गल करी जायें हैं।

इन्हीं सब वस्तुओंकी पूजा अर्चा करनेसे आयु बढ़ती तथा कई तरहके मङ्गल होते हैं।

जातिभेदमें कुशल-मङ्गल इस तरह पूछना चाहिये,—

‘ब्राह्मणान् कुशलं पृच्छेत् क्षत्रयन्धुमनामयम् ।

वैश्यं क्षेमं समागम्य शूद्रमारोग्यमेव च ॥’

( कूर्मपुराण उपवि० ११ अ० )

ब्राह्मणसे मङ्गल पूछने पर कुशल, क्षत्रिय और मित्त-से अनामाय, वैश्यसे क्षेम और शूद्रसे आरोग्यताकी बात पूछनी चाहिये।

( पु० ) ३ प्रहविशेष, मङ्गलप्रह। पर्याय—अङ्गारक, भौम, कुज, वक्र, महोसुत, वर्द्धाँचि, लोहिताङ्ग, खोन्मुख, ऋणागतक, और क्र रदिक, आघनेय आदि।

। ( ज्योतिस्तत्त्व )

इसका रक्त-गौरमिश्रित रंग है और दक्षिण दिशा है। यह प्रह पुरुष, क्षत्रियजाति, सामवेदी, तमोगुणी, तिक-रसका चखनेवाला है। इसकी राशि मेष है। यह प्रवाल और अवन्तिदेशका राजा है। इसका वाहन भेड़ा है, चार शंशुलका शरीर, लाल मगला और कपड़ा पहनता है। यह भरद्वाज मुनिका पुत्र है। इसकी चार भुजायें हैं, माला, बर्छा, वर, अमय, और जटाधारी। सूर्यके सामने ही रहता है, इसके इष्टदेवके कार्तिकेय और प्रत्यभिदेवता पृथ्वी है। यह ग्रह पितृप्रकृतिका है। युवा, क्रूर स्वभावका, वनचारी, मध्याह्नकालमें प्रवल हो जाता है, नैरिक धातुओंका स्वामी, भूमिचारी, किञ्चित् अङ्गूहीन, कटुरसप्रिय, ताम्रवर्ण तथा लाल वस्तुओंका स्वामी है। ( ग्रहयोगतत्त्व और जनुजात० )

इसके जन्मका विवरण ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें जो लिखा है, वह इस तरह है,—

एक बार सब सहा वसुमती भगवान् विष्णुके प्रकाशित रूपको देख कर काम पीड़ित हुई। इसके बाद यह एक युवतीका रूप धारण कर विष्णुके शय्याकी ओर अग्रसर हुई। विष्णुने उनकी इच्छा जान कर उनका तरह तरहका श्रृङ्गार किया। इसके बाद ही पृथ्वी मूर्च्छित हो गई। विष्णु, भगवान्ने ऐसी दशामें पृथ्वीसे सहवास कर गर्भाधान किया और वहांसे चले गये। ठीक इसी समय उर्वशी नामकी एक अप्सरा उधरसे

ही जा रही थी। उर्वशीने पृथ्वीकी जगा कर उनसे मूर्च्छा आनेका कारण पूछा। पृथ्वीने उससे सब वृत्तान्त कहा। उन्होंने यह भी कहा कि, विष्णु भगवान्के वीर्य-क्षेप करनेसे मेरी यह अवस्था हुई है। विष्णुने मृगाके आकारका पृथ्वीमें वीर्य वपन किया था। इससे शीघ्र ही प्रवाल या मृगेकी तरह एक पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ। यह पुत्र तेजमें सूर्यके समान दीप्तियान् हुआ। फिर समय पा कर यही मङ्गलके नामसे विख्यात हुआ।

( ब्रह्मवैवर्त्तपुराण ६ अ० )

पद्मपुराणमें लिखा है—‘पूर्व समयमें विष्णु भगवान् एक बार पृथ्वी पर घूम रहे थे, ऐसे समय उनके शरीर-से पसीनेका एक बूँद पृथ्वी पर गिर पड़ा। इस बूँद-से लोहितवर्णका एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पृथ्वीने इस पुत्रका स्नेहपूर्वक लालन पालन किया। पीछे यहाँ ब्रह्माके उद्देश्यसे कठोर तपस्या कर ब्रह्ममें स्थान पाया। ( पद्मपुराण स्वर्गख० ११ अ० )

मत्स्यपुराणमें लिखा है, पूर्व समयमें दक्षके यज्ञको ध्वंस करनेके लिये क्रोधित शङ्करके ललाटसे एक श्वेद-विन्दु पृथ्वी पर गिरा। इसी विन्दुसे बहु धक्काकार और अनेक नेतोंवाला, भयङ्कर एक मनुष्य पैदा हुआ। यह मनुष्य वीरभद्रके नामसे प्रसिद्ध हुआ। इन्हीं वीरभद्र द्वारा दक्षके यज्ञका विध्वंस होनेके बाद महादेवने उनसे कहा, तुमने अद्भुतकार्य किया है। अब मनुष्योंके ध्वंस करनेकी आवश्यकता नहीं है। तुम्हारा नाम अङ्गारक रखा गया। तुम ब्रह्ममें अग्रगामी होगे। जो मनुष्य चौथके दिन तुम्हारी पूजा करेगा, उनको आरोग्यता, कान्ति और ऐश्वर्य प्राप्त होगा।

( मत्स्यपु० अङ्गारकत ६८ अ० )

काशीखण्डमें मङ्गलकी उत्पत्ति दूसरी ही तरहसे लिखी हुई है—‘प्राचीनकालमें दाक्षायणीके विषागमें अत्यन्त दुःखी हो महादेवने उग्र तपस्याका अवलम्बन किया। उस समयमें उनके ललाटसे एक श्वेदविन्दु जमीन पर गिरा। उसीसे शीघ्र ही एक लोहिताङ्ग पुत्र उत्पन्न हुआ। पृथ्वीने धात्रीरूपसे इसका लालन पालन किया। इसीलिये इनका नाम महोसुत हुआ। इसके बाद यही महोसुत श्रीकाशीधाममें अङ्गार-

केन्द्र का नाम महादेवजीका एक लिङ्ग स्थापित कर पीरे पीरे लक्ष्मणार्थमें प्रवृत्त हुए । यह अङ्गारकेअपर लिङ्ग कर्मदाअपर नामक दो भागोंके उत्सवभागमें भवस्थित है ।

जितने दिनोंतक उनको देहमें अन्तर्ते हुए मङ्गारके समान जेज प्रगत नहीं हुआ, तब तक यह महात्मा लक्ष्मणार्थमें निरत रहे । लक्ष्मण करने समय ही उनके देहमें भंगारे के मङ्गल जेज प्रगत हुआ था । इसीसे इनका नाम भंगारक पडा । महादेव भगवानने उनको इस कठोर लक्ष्मणार्थ देस सत्यन प्रसन्न हुए और उन्होंने मङ्गल देा कर उनको महत्प्रदका पद दिया । यही मङ्गललोक है ।

मंगलवार, बीसको उत्तरवादिनी मंगामें स्नात कर भक्तिके साथ अङ्गारकेअपरको प्रणाम करनेसे ब्रह्मजान्ति होती है । इस दिनको मङ्गलका योग होता है । मण्डनका जन्म दिन होनेसे यह पर्वका दिन माना जाता है । इस दिन गणनाथको पूजा करनेसे धर्मोका नाश होता है । कार्तिके भंगारकेअपरके भक्त मृत्युपरात्मा भंगारक लोकाका भेजे जाते हैं । ( कालीपत्र १४-२१ )

दामनपुराणमें लिखा है— पहले जमानेमें जब महादेवके अन्धकासुरका विनाश किया था, तब उसके मुंहसे देवतविन्दु जमीन पर गिर पडा । इसी देवतविन्दुसे ही धर्मभुजप्रमज एक बालक उत्पन्न हुआ । इस बालकने उत्पन्न होते ही सत्यन विष्णामित हो अन्धकासुरके रक्त ही पान कर लिया । इसके पीछे महादेवने उसे लक्ष्मीं उपस्थान तथा मंगारके मृगमृगका भार अर्पण किया । इसीका नाम मङ्गल हुआ ।

( कामन्द्युष्य १० पं० )

मङ्गलश्रीकमें इसका स्तव इस तरह लिया हुआ है—

भारतीयोन्मत्तः (सुदुर्लभमन्त्रम् ।  
सुन्दरं चित्तं च भवति विदुः (मन्त्रम् ॥"  
( नवपद्योः )

मङ्गलप्रदके अर्थभावनसे अनुसार मानव अणु प्रान्त तथा मानवका अणु श्रुका बनता है । मङ्गल ही एकमात्र मुक्त बननेवाला है । अणुप्रान्त मनुष्योंको मङ्गलका मनुष्य मान्युपदेक बनता चाहिये । स्तव इस तरह है—

“मंगलो भूमिभूमि कर्मभूमि भवति ॥  
लियायने महाराजः सर्वभूमिभूमिः ॥  
सैरिहो श्रीरामायण समकाली कर्मकः ॥  
पगतमनः पुंसां भोग भूमिः भूमिभूमिः ॥  
भंगारका कर्मभूमि मंगारकाः ॥  
सुदिकतां च हसीं च सर्वकारप्रभः ॥  
एतानि भूमिभूमि प्रोक्तव्याः च सैः ॥  
भूमिं न जानीं तस्य भूमिभूमिः सुदुर्लभम् ॥  
रत्नभूमिभूमि कर्मभूमि भूमिभूमिभूमिभूमि ॥  
भूमिं न जानीं तस्य भूमिभूमि मंगारका ॥  
भूमिभूमिः प्रवृत्तव्या भूमिभूमि मङ्गलः ॥  
मङ्गलप्रदामात्रेण भूमिं तस्य विनाशः ॥  
मङ्गलप्रद नमस्तुभ्यं नमस्ते भूमिभूमिभूमि ॥  
भूमिभूमिभूमिभूमि मङ्गलप्रदः ॥  
भूमिभूमिभूमिभूमिभूमि भूमिभूमिभूमिभूमि ॥  
एतत् पुरवा न भन्देते श्रुत्वा हराः फली भूमिभूमि ॥”

( मङ्गलपुराण )

तनु शक्ति काज्जभाषीमें यदिमङ्गलप्रद हो, तो विप लिगिन फल होता है,—

जन्मजन्ममें मङ्गल रहनेसे बुधादि रोगप्रान्त होता है । उसको नाभि उषा और उसके जगोरका भी पीचला भाग विहृत होता । यह मनुष्य निन्दनीय है । दूसरे लोणीका मत है—रामका मङ्गल मनुष्यको अर्थस्थामें श्रान्त और उच्च सोममें विद्वित करता है और मनुष्य श्रजाङ्ग, फाला रूप, श्राद और श्राद इत्येभ्युद होता । उसका मन श्राद चञ्चल रहेगा । यह भोगीमें भेया तथा फटा और भेया भूमिता कपला पहरेवा और समी सुमोमें चञ्चल रहेगा ।

मङ्गलप्रदमें मङ्गल ही तो यह श्रिजोपी, यथा और प्रयासों होता है । दूसरा मत है,—राम के समय यदि मङ्गल धन स्थानमें हो, तो धान्द्रप्रदके विषयमें विद्वान्, विद्वान्, वराचन, प्रयास करके प्राप्त, अर्थ धनो, भन्मविष, लुभापी, महत्कर्ता, भोगीवारी करने वाला, शरीरमें देवतेपलाय, लोभी, मदा भला सुम भोगीवारा होता ।

यदि मङ्गल सहोदरके स्थानमें रहे, तो उस आमीद-के भ्राताका विनाश होता है या यों कहिये कि उसके भाईको मार डालता है, किन्तु यही मङ्गल ऊँचे घरमें बैठे हों तो वही मनुष्य दीर्घजीवी और राजा होता है। भूमि-सम्बन्धीय चीजोंके द्वारा धन-दीलत प्राप्त होती और यही मङ्गल यदि नीच घरमें बैठा हो तो निर्धन तथा थलुखी बना देता है।

मङ्गल यदि मित्रके स्थानमें बैठे हो तो वह मनुष्य सदा मित्रोंके कामोंसे अपनी जीविका चलाता है और विदेश, मित्रोंके घरमें, पङ्कमय घरमें ही वास करता है। दूसरा मत—बालकके जन्मकालमें यदि मङ्गल मित्रस्थानमें बैठा हो तो उस मनुष्यकी बुद्धि, जड़, और धनहीन, कुटिल, पतला-दुबला, श्लेष्मयुक्त, काला, चंचल, नीचोंकी सेवा करनेवाला, मैला-कुचैला, फटे वस्त्र पहनने-वाला और सदा पापकर्ममें लिप्त रहनेवाला होता है। जन्मके समय यदि मङ्गल पुत्रके स्थानमें रहता है तो पुत्रहीन, धनहीन और दुःखमोगी बना देता है। यही पुत्रस्थान मङ्गलका अपना घर हो या तुल्यस्थान हो, तो निन्दित पुत्र जीवित रहेगा।

जन्मकालमें मङ्गल शत्रुग्रहमें बैठे हो, या अपनी नीच राशिमें रहे, शत्रुस्थानमें रहे तो उस लड़कीकी मृत्यु हो जाती है। यदि किसी राजाका ऐसा पुत्र हो, तो वह तत्काल ही राज्य-भ्रष्ट करता है। नीच या शत्रुराशिगत नहीं रहनेसे केवल छत्रवै स्थानमें रहनेसे उस बालकको राजा बनाता है।

शयनभावमें मङ्गल रहनेसे वह मनुष्य लम्पट, क्षण, अत्यन्त क्रोधो, अत्यन्त निपुण और पण्डित हुआ करता है। यदि शयनभावका मङ्गल पञ्चम स्थानमें रहे तो प्रथम सन्तानका नाश करनेवाला होता है और सातवें स्थानमें रहनेवाला मङ्गल पहली स्त्री धर्मपत्नीका वियोग करता है। यही मङ्गल यदि शत्रुक्षेत्रमें रह कर शत्रु द्वारा देखा जाता हो तो उसका हाथ या कान कट जाता है। किन्तु यही मङ्गल यदि शनि राहुके साथ हो, तो उसका मस्तक कट जाता है। शयनभावमें बैठा मङ्गल लग्नमें रहने पर मानथको नाना-प्रकारके रोगोंसे पीड़ित करता है और अन्तमें कोढ़ो हो कर मरता है।

यदि मङ्गल उपवेशन भावमें हो तो मान्द-अधम, धनवान्, क्रूरकर्म करनेवाला, निष्ठुर, जातिविहिन, पाप-परायण, महारोगी, दरिद्र और किसीके वशमें न रहेगा। यदि उपवेशन भावमें मङ्गल लग्नमें हो तो वह सब काम जरूर होंगे। यह उपवेशन भावमें नवे और दशवें स्थानमें रहनेसे धन, पुत्र, स्त्री, सभीका विनाश होता है। फिर, कई मित्र और शुभ प्रहके साथ मिल कर रहे तो, उन सबोंके बलके अनुसार इसका विपरीत फल भी होता है।

नेत्रपाणि-भावमें रहनेवाला मङ्गल यदि लग्नमें बैठा हो, तो वह मनुष्यको नेत्रविहीन, स्त्रीपुत्रघन रहित दरिद्र बनाता है। यही भाव मङ्गललग्नके सिवा अन्य स्थानोंमें हो तो वह सर्व सुख और पुत्र स्त्री और धनलाभ करनेवाला होता है। किन्तु गांडोंमें दृढ़ जरूर रहेगा और वाघ, सांप और अग्नि जलका सदा भय रहता है। दूसरे और सातवें स्थानमें रहे तो वह मनुष्यको भूमिजीवी, धनहीन और पत्नीका नाश करनेवाला होता है।

प्रकाशन भावमें मङ्गलके रहने पर धनवान्, क्षणिक सुख-युक्त, बाईं आँखमें फूली और दाहिने स्थानसे गिरनेवाला होगा, इसमें जरा भी संशय नहीं। इसी भावका मङ्गल सर्व पुत्रोंका नाश करनेवाला होता है। यही सातवें स्थानमें रहने पर खोका नाश कर देता है और पापग्रहोंके साथ रहने पर जिरु स्थानमें रहेगा वह जातियुक्त हो कर रहेगा।

मङ्गल यदि गमनेच्छा भावमें रहे तो मनुष्य प्रकाश करनेवाला, गुह्यरोगयुक्त, निर्धन भी और बुरे काम करने-वाला होता है। मङ्गल गमनभावमें रहनेसे विदेशमें रहनेवाला, सदा दुःखी, दाद या कोढ़से पीड़ित रहनेवाला होता है। पित्तशूलसे पीड़ित, अत्यन्त नेजस्वी, गांडोंमें दृढ़, जलवाज, धीर, स्त्री, शक्यादी, नेत्रहीन, शिर और दांतका रोगी होता है। किञ्चित् त्वग्दोषका शोषी भी होता है।

गमन-भावका मङ्गल यदि लग्नमें रहे तो यह सब फल होगा, किन्तु अन्य भावमें रहेगा तो यह सब फल नहीं होगा, चरं हर तरफके धनसे धनवान् महादक्ष और





बहुत कम है, वहाँके अधिवासियोंके सुभीतेके लिये सोभी जल-नालियां कटी हुई हैं। इसके सिवा उन्होंने और भी अनेकानेक आलीशान घटनाओंका आविष्कार किया है। ज्योतिर्विदुगण मङ्गललोक-वासियोंके क्रियाकलापोंका निरीक्षण कर बड़े आश्चर्यमें पड़ गये हैं।

**मङ्गलकोट**—बंगालके बड़मान जिलान्तर्गत एक गण्ड-लक्ष्मी। यह अक्षां २३° ३१' उ० तथा देशां ८७° ३६' पू०के मध्य अवस्थित है। इस ग्रामकी प्रसिद्धिका लिये बृहन्नोलतन्त्रमें आया है।

**मङ्गलगिरि**—मन्द्राजप्रदेशके कृष्णा जिलान्तर्गत गण्डूर-कका एक नगर। यह अक्षां १६° २६' उ० तथा देशां ८०° ३६' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या हजारके लगभग है। यहाँ नरसिंहस्वामी (विष्णु)के पर्वतगाल-खोदित दो प्राचीन मन्दिर विद्यमान हैं जो दक्षिण भारतमें तीर्थक्षेत्र समझे जाते हैं। मङ्गलमें बहुत सी शिलालिपियां उत्कीर्ण देखी हैं। पहला दो धनवाला मन्दिर बहुत प्राचीन है। दूसरा अपेक्षाकृत आधुनिक है। उसके सामने गोपुरका कारकायं अतीव मनोहर है। १८३२ में धर्मशास्त्रियोंके समय यहाँ एक बहुत लम्बा चौड़ा पात बनाया गया था। मङ्गलगिरि माहात्म्यमें इसके अनुसंधान विषय लिखा है।

**मङ्गलचण्डिका** ( स० स्त्री० ) मंगला मंगलदायिका चण्डिका चैति, वा सृष्टी मंगला, प्रलये चण्डिका चण्डिका दक्षाः। मंगलचण्डिका, दुर्गा।

मङ्गलचण्डिकापुराणमें लिखा है,—ललितकान्तादेवी चण्डिका हैं। इनके दो हाथ हैं, एक हाथमें वरुणमय है। वर्षा इनका गौर है, रक्तपद्म इनके हैं, कानमें रक्तकुण्डल हैं, सर्वदा हास्य-वस्त्र पहने हुई हैं और नव-अष्टमी और नवमी तिथिमें तथा कामनासे पट, प्रतिमा या घटका करने होती हैं। इस नियम है। शनि और मंगलवार-रुद्र कृष्णचतुर्दशी पड़े, तो

यह दिन अतिशय पुण्यतर है; इस दिन मंगलचण्डिकाकी पूजा विरोध कल्याणकर मानी गई है। मंगलवारमें शुक्रा चतुर्थी होनेसे वह अशुभ तिथि होती है। इस-दिन पूजा करनेसे अशुभफल होता है। ( तिथितत्त्व )

इनकी नाम-निरुक्ति, यथा—

“यद्यो मंगलरूपा च संहारे कोपनिरुपिषी।

तेन मंगलचण्डी सा परिपटतेः परिकीर्तिता ॥”

( भागवत ;

यह देवी सृष्टिकालमें मंगलरूप और संहारकालमें भयङ्कर रूप धारण करती हैं, इसीसे इनका नाम मंगल-चण्डो पड़ा है।

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें इस देवीकी पूजादिका विषय लिखा है। ये हो मूल-प्रकृति और ईश्वरी हैं। त्रिपुर बधके लिये महादेवने ही पहले पहल इन्हींकी पूजा की थी, पीछे मर्त्यलोकमें भी इस पूजाका प्रचार हुआ। ये सर्वदा मंगलविधान करती हैं, इसीसे इनका नाम मंगल-चण्डी है।

“दक्षायै वरुते चण्डी कल्याणेषु च मंगलम्।

मंगलेषु च या दक्षा हा च मंगलचण्डिका ॥

पूर्वाया वरुते चण्डी मंगलेऽपि महोत्तमः।

मंगलाम्नीश्रुदेवी या हा वा मंगलचण्डिका ॥”

( ब्रह्मवैवर्तपु० प्रकृतिल० ४१ अ० )

पूजाका मन्त्र—

“ओं, ह्रीं, श्रीं, ह्रीं, सर्वपुत्र्ये देवि मंगलचण्डिके  
हुं हुं फट् स्वहा” इस मन्त्रसे पूजा करनी होती है।

निम्नोक्त ध्यान-मन्त्रसे मंगलचण्डिकाकी पूजा करनी चाहिये। यथा—

“शैवीं पौडुगवर्षीयां शरवत् सुस्मरयौवनाम्।

सर्वरूपगुणाढ्याम्ब्व कोमलांगी मनोहराम् ॥

श्वेतचम्पकवर्षाभां चन्द्रकोटिसमप्रभाम्।

वह्निशुद्धांशुकाधानां रत्नभूषणभूषिताम् ॥

विम्बोष्ठी मुदतीं शुद्धां शरवत् पद्मनिभाननाम्।

ईषद्धास्यप्रसन्नास्यां मुनीशोत्पलक्षोचनाम् ॥

जगद्धात्रीञ्च दान्त्रीञ्च सर्वभ्यः सर्वसम्पदाम्।

संसारसागरे घोरे पीतरूपावरां भजे ॥”

ध्यानके अन्तमें पूजाके विधानानुसार पूजा करके

मनुष्य के लिये, जिन्से उसकी देह मान्य करनेवाली  
 रहनेकी और बहुत सुखकर भोग करनेवाली होता है।

मनुष्य यदि मानसिकतावादी रहे तो वह  
 मनुष्य धार्मिक, बहुत धनवान, सुखवान, बहुत शक्ति  
 और शक्तिशाली होता है। वही मनुष्य यदि नरों और  
 पशुओं में है, तो धर्महीन, इसके धर्म में वह पशु पर विभक्त  
 हुआ करता है। धर्महीन और धर्महीन रहने पर  
 पशुओं का मान बनता है।

मनुष्य मानसिकतावादी रहे तो कार्यहीन, विलक्षण  
 तथा नोचकान्ति और धनवान होता है। इसी तरह  
 मानसिकतावादी रहनेसे मानसिकता, धृष्टाशक्ति, अनिकोच्य,  
 उग्रताही धीम धर्म, नृपतिताभावमें रहनेसे धनवान,  
 शक्त, मानस और सर्वदा सुखी, कौमुदीभावमें रहनेसे  
 मनुष्य-निरास, माना धनवान, शक्तिवान और बहुतकाम-  
 मुक्त, निष्ठाभावमें रहनेसे सुखी, धनहीन अनिकोच्य और  
 मानसिकतावादी होता है। (मनुष्यहीन)

इसी तरह ज्ञानादि हासन जायेंका फल  
 निश्चय देना चाहिये। इसके लिये लज्जादि बहुत भाव,  
 और शक्तिदि दान जायेंका देना चाहिये।  
 मनुष्यहीनके लिये मनुष्य, पूर्वकल्पानुवी और उत्तरकल्पानुवी  
 मनुष्यमें जन्म होनेसे मनुष्यहीनका देना होता है। इस  
 देनाका परिमाण ८ वर्ष है। इसके प्रति मनुष्यमें २ वर्ष  
 ८ मास, प्रति नरपशुके पक्षमें ८ मास और प्रति पक्षमें २६  
 दिन तथा प्रति पक्षमें २६ दिन होते। इस देनामें  
 मनुष्यके साथ बन्द, अनिश्चय और प्राकृतिक पक्ष  
 भादि भेदक मनुष्य ही है।

मनुष्यहीनके लिये मनुष्य, शक्ति और धनवान  
 मनुष्यमें मनुष्यहीनका देना होता है। इस देनाका भोगकाल  
 ७ वर्ष है। शक्ति और धन २२ वर्षके देते।

मनुष्यहीनके लिये मनुष्य, शक्ति और धनवान  
 मनुष्यमें मनुष्यहीनका देना होता है। इस देनाका भोगकाल  
 ७ वर्ष है। शक्ति और धन २२ वर्षके देते।

मनुष्यहीनका देना मनुष्य, शक्ति, मनुष्य, उत्तर

मनुष्यहीनका देना मनुष्य, शक्ति, मनुष्य, उत्तर  
 मनुष्यहीनका देना मनुष्य, शक्ति, मनुष्य, उत्तर

मनुष्यहीनका देना मनुष्य, शक्ति, मनुष्य, उत्तर  
 मनुष्यहीनका देना मनुष्य, शक्ति, मनुष्य, उत्तर

मनुष्यहीनका देना मनुष्य, शक्ति, मनुष्य, उत्तर  
 मनुष्यहीनका देना मनुष्य, शक्ति, मनुष्य, उत्तर

मनुष्यहीनका देना मनुष्य, शक्ति, मनुष्य, उत्तर  
 मनुष्यहीनका देना मनुष्य, शक्ति, मनुष्य, उत्तर

मनुष्यहीनका देना मनुष्य, शक्ति, मनुष्य, उत्तर  
 मनुष्यहीनका देना मनुष्य, शक्ति, मनुष्य, उत्तर

मनुष्यहीनका देना मनुष्य, शक्ति, मनुष्य, उत्तर  
 मनुष्यहीनका देना मनुष्य, शक्ति, मनुष्य, उत्तर

मनुष्यहीनका देना मनुष्य, शक्ति, मनुष्य, उत्तर  
 मनुष्यहीनका देना मनुष्य, शक्ति, मनुष्य, उत्तर

मनुष्यहीनका देना मनुष्य, शक्ति, मनुष्य, उत्तर  
 मनुष्यहीनका देना मनुष्य, शक्ति, मनुष्य, उत्तर

बहुत कम है, वहाँके अधिवासियोंके सुभीतेके लिए सीधी जल-नालियाँ कटी हुई हैं। इसके सिवा उन्होंने और भी अनेकानेक आलीकिक घटनाओंका आविष्कार किया है। ज्योतिर्विद्गण मङ्गललोक-वासियोंके क्रियाकलापोंका निरीक्षण कर बड़े आश्चर्यमें पड़ गये हैं।

**मङ्गलकोट**—बंगालके वर्द्धमान जिलान्तर्गत एक गण्ड-ग्राम। यह अक्षा० २३° ३१' ३०" तथा देशा० ८७° ३६' ३०" पू०के मध्य अवस्थित है। इस ग्रामकी प्रसिद्धिका विषय ग्रहनीलतन्त्रमें आया है।

**मङ्गलगिरि**—मन्द्राजप्रदेशके कृष्णा जिलान्तर्गत गण्डूर तालुकका एक नगर। यह अक्षा० १६° २६' ३०" तथा देशा० ८०° ३७' ३०" पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या आठ हजारके लगभग है। यहाँ नरसिंहस्वामी (विष्णु मूर्ति)के पर्यतगात्र-खोदित दो प्राचीन मन्दिर विद्यमान हैं, जो दक्षिण भारतमें तीर्थक्षेत्र समझे जाते हैं। मन्दिरगात्रमें बहुत सी शिलालिपियाँ उत्कीर्ण देखी जाती हैं। पहला दो खनवाला मन्दिर बहुत प्राचीन है। दूसरा अपेक्षाकृत आधुनिक है। उसके सामने-वाले गोपुरका कादकायं अतीव मनोहर है। १८३२ ई०के दुर्भिक्षके समय यहाँ एक बहुत लम्बा चौड़ा चहबच्चा बनाया गया था। मंगलगिरि महात्म्यमें इस तीर्थका विषय लिखा है।

**मङ्गलचण्डिका** ( स० खी० ) मंगला मंगलदायिका चासी चण्डिका चैति, वा सृष्टी मंगला, प्रलये चण्डिका अथवा मङ्गले चण्डिका दक्षाः। मंगलचण्डो, दुर्गा।

कालिकापुराणमें लिखा है,—ललितकान्तादेवी ही मंगलचण्डो हैं। इनके दो हाथ हैं, एक हाथमें रर और दूसरेमें अमय है। वर्ण इनका गीर है, रक्तपद्म पर बैठी हुई हैं, कानमें रक्तकुण्डल हैं, सर्वदा हास्य-मुखा हैं, रक्तकीपेय वस्त्र पहने हुई हैं और नव-यौवनसम्पन्ना हैं। अष्टमी और नवमी तिथिमें तथा मंगलवारमें मङ्गलकी कामनासे पट्ट, प्रतिमा या घटकी स्थापना करके इनकी पूजा करनी होती है। इस नियम से पूजा करनेसे लाभ होता है। शनि और मंगलवार-में यदि कृष्णाष्टमी वा अभीष्ट कृष्णचतुर्दशी पड़े, तो

वह दिन अतिशय पुण्यतर है; इस दिन मंगलचण्डोकी पूजा विशेष कल्याणकर मानी गई है। मंगलवारमें शुक्ला चतुर्थी होनेसे यह अक्षया तिथि होती है। इस-दिन पूजा करनेसे अक्षयफल होता है। (तिथितत्त्व)

इनकी नाम-निरुक्ति, यथा—

‘घटो मंगलरूपा च संहारं कोपनिरूपी।

तेन मंगलचण्डो सा पण्डितैः परिकीर्त्तिता ॥’

(भागवत ;

यह देवी सृष्टिकालमें मंगलरूप और संहारकालमें भयङ्कर रूप धारण करती हैं, इसीसे इनका नाम मंगल-चण्डो पड़ा है।

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें इस देवीकी पूजादिका विषय लिखा है। ये ही मूल-प्रकृति और ईश्वरी हैं। त्रिपुर वधके लिये महादेवने ही पहले पहल इन्हींकी पूजा की थी, पीछे मर्त्यलोकमें भी इस पूजाका प्रचार हुआ। ये सर्वदा मंगलविधान करती हैं, इसीसे इनका नाम मंगल-चण्डो है।

‘दत्तायां वर्त्तते चण्डो कल्याणेषु च मंगलम्।

मंगलेषु च या दत्ता सा च मंगलचण्डिका ॥

पूज्यायां वर्त्तते चण्डो मंगलेऽपि महामुतः।

मंगलामिष्टदेवी वा सा वा मंगलचण्डिका ॥’

(ब्रह्मवैवर्तपु० प्रकृतित्व० ५१ अ०)

पूजाका मन्त्र—

‘ओं, ह्रीं, श्रीं, ह्रीं, सर्वपुण्ये देवि मंगलचण्डिके हुं हुं फट् स्वहा’ इस मन्त्रसे पूजा करनी होती है।

निम्नोक्त ध्यान-मन्त्रसे मंगलचण्डोकी पूजा करनी चाहिये। यथा—

‘देवीं पौड्रवर्षीया शरवत् मुखिरवीवनाम्।

सर्वस्वगुणाढ्यान्व चोमन्नांगी मनोहराम् ॥

श्वेतचम्पकवर्षाभां चन्द्रकोटिसमप्रभाम्।

बहिर्द्विंशुक्लाधानां रत्नभूषणभूषिताम् ॥

विष्णोत्री मुदतीं शुद्ध्या शरवत् पद्मनिभाननाम्।

ईषद्भास्यप्रसन्नास्यां मुनीलोत्पलसोचनाम् ॥

जगद्भावीन्व दानीञ्च तर्पन्वः सर्वसम्पदाम्।

संहारसागरे धरे गौतल्पार्वावर् भजे ॥’

ध्यानके अन्तमें पूजाके विधानानुसार पूजा करके

विशेषतः ३ वर पाठ कराव होता हे । इस पुस्तके उपासार्थ  
बहिर् भांडे कावचविधि उपवास देना आवश्यक है । अन्य  
वस्तु -

मंगल-पुस्तक ।

१०० वर्ष तकक अग्नि मंत्रपत्रादिपत्र ।  
इतिहासिक मंत्रि इतिहासपत्रादि ।  
संस्कृतपत्रादि व संस्कृतपत्रादि ।  
दुग्धे मंत्रादि व दुग्धे मंत्रपत्रादि व  
मंत्रादि मंत्रादि व मंत्रादिपत्रादि ।  
मंत्रादिपत्रादि व मंत्रादि मंत्रादिपत्रादि ॥  
दुग्धे मंत्रादि व मंत्रादिपत्रादि ।  
दुग्धे मंत्रादिपत्रादि मंत्रादि मंत्रादिपत्रादि ॥  
मंत्रादिपत्रादि व मंत्रादिपत्रादि मंत्रादि ।  
मंत्रादि मंत्रादि व मंत्रादि मंत्रादिपत्रादि ॥  
मंत्रादि मंत्रादि व मंत्रादि मंत्रादिपत्रादि ॥  
मंत्रादिपत्रादि व मंत्रादि मंत्रादिपत्रादि ॥  
मंत्रादिपत्रादि व मंत्रादि मंत्रादिपत्रादि ॥  
मंत्रादिपत्रादि व मंत्रादि मंत्रादिपत्रादि ॥  
मंत्रादिपत्रादि व मंत्रादि मंत्रादिपत्रादि ॥

इस मङ्गलपुस्तकीकी पूजा करने नियम, पीछे मंगल-  
पत्रके उक्तके बाद संगीत मङ्गलपुस्तके अति उत्तमके पीछे  
देवबालाभोगी की ओ । अगलर यह मंगलाकांक्षी मनुष्य-  
समाजमें प्रचारित हुई है । मंगल लाभ काममें यह मन्त्र  
असौख्य है । प्रकृत्यपरायण मङ्गलपुस्तके मंगल  
कांछितकीप्राप्तिके अर्थमें अन्वेषणमें इस पूजाका विष्णु  
विकल्प निरा है । विकार होनेके अर्थमें यहां पर कुछ  
सही निरा गया ।

३ विष्णु । ३ एक बार, मंगलवार । ४ प्रसाध ।  
मङ्गलपुस्तक ( सं० पु० ) मंगला प्रसाध उपासक वस्तु ।  
परपूर, कच्चा घेद ।

मङ्गलपुत्रे ( सं० स्त्री० ) मंगलायै सुते । मंगलकायैके  
निमित्त कृष्णपत्रि, शुभकायैके निमित्त जगते चादि  
वस्तुना ।

मङ्गलदे - भासात्मदेके अर्थमें लिखेका एक उपनिषत् ।  
यह भासा० २१ २२ से २१ २० उ० तथा देवा० ११  
२३ से २३ २३ पू०के मध्य अवस्थित है । भूपरिमाण

१२५० वर्गमील अथ उत्तरार्धका ही मापके करीब है ।  
इसमें मंगलदे नामक एक नहर अति ७८३ मास  
अगम है ।

२ उक्त त्रिकोण एक नहर । यह भासा० २१ २३  
उ० तथा देवा० १२ से पू०के मध्य मङ्गलपुर नदीके  
बाहिर् किनारे अवस्थित है । अभी यह नहर उत्तम  
दूनामें है । यहांमें २५ कोस दूर दूनाग्रही भाटमें होकर  
लगता है । जहांमें बाणिय व्यापारमाय अगम चलता है ।

मङ्गलपुत्रि ( सं० पु० ) मंगल नगर, विद्यापुत्रावका  
मंगलजनक नगर ।

मङ्गलनौराजत ( सं० स्त्री० ) मंगल मंगलकर मंगलाय  
या नौराजत । प्राग्मङ्गलमें कर्णव्य भगवद्धारिक ।  
प्राग्मङ्गलमें नारायणकी ओ भाग्यो की जाती है उक्त  
मंगल-आरथो या मंगलनौराजत कहते हैं । यह आरथी  
अति शुभकर अथ प्राप्तमाजक है ।

"अष्टिकाय दिवात होइतान् मङ्गलदेविकित्तनेः ।

मंगलपुत्रतु पुत्रोक्तमागम्यं जगत्पुत्रम् ॥"

( इतिमंत्रि २ म० )

मङ्गलपत्र ( सं० स्त्री० ) मंगलिक पत्र, कथपार्थ ।

मङ्गल पाण्डे - एक सिपाही सैनिक । १८०३ ई०के नगरमें  
यह अंगरेजी ३४ सैन्यक देनाय परातिद्धमें प्राहेनिक  
काम करता था । जब कानपुर आदिकी बात छिड़ी,  
तब इस उद्यत सिपाहीमें शरकपुरमें रह कर अंगरेज  
सेनापति बाग ( Lieutenant Bampf ) अति एक  
सरांग भेजतकी गोतांगे उड़ा दिया । पीछे इसने स्वजाति  
सिपाहीकी अंगरेजीके विरुद्ध लयबाह उठायेके लिये  
उत्साह । अंगरेजी सेनाजिसके मध्य रह कर तथा  
जानीवभाही दूपाके लिये, मंगलपाण्डे अपने लोचकी  
दोन्नी पर लपटा हुआ अंगरेजीके विरुद्ध लड़ा हो गया  
था । पीछे विद्रोह नगर होने पर इसी कर्तवीकी सजा  
हुई ।

मङ्गलपत्रक ( सं० पु० ) पत्रांगि पत्र पत्रक, मंगलपत्र  
पाठकः । कर्णव्यकी यह अंगी ली राजामोकी स्तुति  
आदि करता ही ।

मङ्गलपत्र ( सं० स्त्री० ) मङ्गलिक पुत्र पुत्रावका ।

मङ्गलपुर ( सं० स्त्री० ) मंगलपुर ।

मङ्गलपुष्पं ( सं० क्ली० ) मङ्गलकार्यमें व्यवहृत पुष्प, वह पुष्पमाला जो शुभकार्यमें काम लाई जाती है।

मङ्गलप्रतिसर ( सं० पु० ) मङ्गलसूत्र, वह सूत्र जिससे कंचक बांधा जाता है।

मङ्गलप्रद ( सं० त्रि० ) मङ्गल प्रददातीति प्र-दा ( आतरचोपसर्ग० । पा ३।१।३६ ) इति क । १ मङ्गलदाता, मङ्गल करनेवाला।

मङ्गलप्रदा ( सं० स्त्री० ) १ हरिद्रा, हल्दी। २ ग्रामीवृक्ष।

मङ्गलप्रस्थ ( सं० पु० ) भारतवर्षीय एक पर्वत।

( भागवत १।१६।१६ )

मङ्गलवचस् ( सं० क्ली० ) मङ्गलजनक वाक्य, माङ्गलिक वाक्य।

मङ्गलयत् ( सं० त्रि० ) मंगलमत्स्य मनुष्य, मस्य य। मङ्गलयुक्त, मंगलविशिष्ट।

मङ्गलवाद ( सं० पु० ) आजीवाद्, आजीव।

मङ्गलवादिन् ( सं० त्रि० ) मंगल धदति धद णिनि । १ मंगल विषय बोलनेवाला। २ मंगलवादयुक्त।

मङ्गलवाद्य ( सं० क्ली० ) मंगलार्थ वाद्यः। मागलसचक वाद्य, वह वाजा जो शुभ अवसर पर बजाया जाता है।

मङ्गलवार ( सं० पु० ) मंगलस्य मंगलप्रहस्य वारः। रवि आदि सात वारोंमें तीसरा वार जो सोमवारके उपरान्त और बुधवारके पहले पड़ता है। यह वार अशुभवार है। इस वारमें कोई शुभकर्म नहीं करना चाहिये।

इस वारमें जन्म होनेसे उग्र, प्रतापशाली, राजमन्त्री, युद्ध-प्रिय, क्रूरभाषी, क्रुद्ध, सच्यगुणविशिष्ट और चोरोंका नेता होता है।

“उग्रः प्रतापी त्रितिपालमन्त्री रषाप्रियो वक्रवचः सरापं।

वचचानितः शूरगणप्रता वृजस्ववारे प्रभवो मनुष्य ॥”

( कोडीप्रदीप )

मङ्गलवृषभ ( सं० पु० ) लक्षणक्रान्त वृषभ। अच्छे लक्षणोंका बिल जिसे घर पर रखनेसे शीघ्रिद्धि होती है।

मङ्गलराज—दाक्षिणात्यके चालुक्य-राजवंशीय एक महन्-राजा।

मङ्गलशब्द ( सं० पु० ) मंगलजनक शब्द, मंगल-ध्वनि।

मङ्गलशासन ( सं० क्ली० ) शुभसंस्चन।

मङ्गलशासिन् ( सं० त्रि० ) शुभवादी, शुभसूचक।

मङ्गलसिंह—युक्तप्रदेशके फैजाबाद जिलान्तर्गत एक नगर। यह फैजाबाद नगरसे ४१० कोस बाएँ किनारे अवस्थित है। नगरमें कोई प्रतनतत्त्वका निर्दर्शन नहीं रहने पर भी पार्श्ववर्ती सिरहिर, पर्णानन्दपति, उर्फदरा, कचरोशरेगाल, समीया, नचियावान, श्शोना, चांदपुर, कादिपुर, गोडा और तोलापति उर्फजैतपु, आदि ग्रामोंमें बहुत-से इष्टकरूप पड़े हैं। वे सब स्तम्भ भरराजाओं की प्रचीन कीर्ति समझे जाते हैं।

धौरहरा ग्रामके वहिर्भागमें लखनऊके नवाब आसफउद्दौलाका बनाया हुआ एक सुन्दर द्वारपथ तथा एक प्राचीन शिवमन्दिरका ध्वंसावशेष दृष्टिगोचर होता है। आलावा इसके हाजोपुर ग्राममें पीर खाना हसनकी मसजिद, सोनाहाग्राममें सैयद सलारमसाउदका समाधि-मन्दिर, रोनाही ग्राममें भीलिया साहिद और मकनसाहिद नामक साधुका समाधिस्तम्भ तथा मस-जिद, पीरनगर ग्राममें एक मसजिद, कौट सरावग ग्राममें पांचमैया मसजिद और गज-इ-सहियान, मुमताज नगरमें १०२५ हिजरीकी मुमताज खां द्वारा निर्मित कङ्कर-मस-जिद, ताजपुरमें जमाल खांका मकवाड़ा और भान-दुर्गा तथा भावनगर और धौली-अङ्कुरान नामक ग्रामका ध्वंसावशिष्ट दुर्गादि उल्लेख योग्य है।

मङ्गलसमान् ( सं० क्ली० ) सामभेद।

मङ्गलसूत्र ( सं० क्ली० ) मंगलमयसूत्र, वह तागा जो किसी देवताके प्रसाद रूपमें किसी शुभ अवसर पर कलाईमें बांधा जाता है।

मङ्गलस्नान ( सं० क्ली० ) मंगलाद्य स्नानं। यह स्नान जो मंगलकी कामनासे अथवा किसी शुभ अवसर पर किया जाता है। संक्रान्तिमें संघोषधि आदि द्वारा जो स्नान किया जाता है उसे मंगलस्नान करते हैं।

मङ्गला ( सं० स्त्री० ) मंगलमस्या अस्तीति मंगल-वंशं आयच, टाप । १ पार्वती। २ शुक्रदूर्वा, सफेद दूध। ३ पतिव्रता स्त्री। ४ एक प्रकारका करज। ५ हरिद्रा, हल्दी। ६ नीली दूध।

मङ्गला—गुजरातप्रदेशमें प्रवाहित नदी।

मङ्गलागुह ( सं० क्ली० ) मंगलञ्च तत् अगुह चेति नित्य-कर्माधारयः। चार प्रकारके अगुहमेंसे एक।

महानूरवाचन ( मं० श्लो० ) महानूरव भाववर्त्म । महानूर-  
 जन्म कालेन भाववर्त्म । शुद्धवर्त्मने वदने मंगला वाचन  
 कर्म भाववर्त्म है । वदने मंगला वाचन कर्म कर्ममें  
 मंगला भावने उभय भाववर्त्म दूर होता है और बहुत जन्म  
 कर्मको मित्रि होती है । यही कारण है, कि प्रत्येक  
 प्राणमें मंगला कर्म देवोदरमें मंगलावाचन करने ही ।  
 भाववर्त्ममें निर्या है -

“मंगलावाचनं निर्यावाचनं वदन्तं नरः पुत्रिणां भवति ॥”  
 ( भास्कर ० ५११ )

निर्यावाचन, मंगल द्वांन और भूति इन तीनोंमें प्रमा-  
 नित होता है, कि प्रमाणात्ममें मंगलावाचन कर्म  
 भवतव कर्मण है । मंगल निर्यावाचन कहना है, कि  
 कौं भवत्यकता नहीं । काश्चो भाद्रि प्रथमें मंगला-  
 वाचन वदने पर मो उम प्रथको परिममानि नहीं दूर  
 तथा बहुतमें मंगल येमें है तिममें मंगलावाचन नहीं वदने  
 पर मो ये निर्याप्रार्थक समान होतुं मंगे है । अतएव  
 मंगलावाचनको कौं ज्ञापयकता नहीं देनी जाती । प्राणांन  
 निर्यावाचन मंगल इनके उत्तरमें कहने है, कि प्रत्येक ममानिमें  
 मंगल मंगलावाचन हो मो एकमान कारण है, मो नहीं  
 पर ही, इतना तो अवश्य कहा जा सकता है, कि मंगला-  
 वाचनके कर्ममें भवित्थं मंगल हो पर गुण होता है किन्तु  
 पलवत् मंगलप्रथक वदनेमें कर्ममें निर्या होता है । इसी  
 कारणे मो मंगल निर्यावाचन मंगलावाचनको भाववर्त्मना  
 नहीं समझते, पर कदापि सोकार नहीं किया जा सकता  
 अतएव मंगलावाचन भाववर्त्म कर्मण है ।

मंगल द्वांनमें मो निर्या है, यह किन्तुन हीक है,  
 कारण भूतिमें मंगलावाचनका उपदेश है, मनुष्यम उरि  
 करने ही और मंगल मो भवत्यवर्त्म है । अतएव मंगला-  
 वाचन कर्म भाववर्त्म कर्मण है, इसमें ज्ञान भी संदेह नहीं ।

महानूर ( मं० पु० ) महानूर भाववर्त्म । यह भाववर्त्म  
 मो मंगलके निर्या किया जाता है, मंगलावाचन ।

महानूरार्थ ( मं० श्लो० ) मंगलवर्त्म मंगलावाचन ।

महानूरदेवदत्त ( मं० पु० ) यह जो मंगलावाचन उपदेश  
 कर्मके शीघ्रता निर्या करता हो, उपदेशिनी । ये मंगल  
 निर्या कर्मणमें मंगे है ।

“मंगलावाचनं निर्या वदन्तं नरः पुत्रिणां भवति ॥”  
 ( मं० श्लो० )  
 ( मं० श्लो० )

महानूरार्थ—महानूरके भाववर्त्म एक एक छोटा जन्म है ।  
 यह महानूरमें ४ कोम पुत्रोंमें भाववर्त्म है । यही मंगल  
 निर्यावक मंगल कर्मण है ।

महानूरार्थ ( हि० स्तो० ) देवता, वंही ।  
 महानूरार्थ ( मं० वि० ) मंगल वचनं मंगलावर्त्म ।  
 मंगलावर्त्मयुक्त । ( श्लो० ) २ मंगलावर्त्म ।

महानूरार्थ ( मं० पु० ) मंगलावर्त्म भाववर्त्म । मंगल-  
 मंगलावर्त्म कर्मणका भाववर्त्म, मंगला ।

महानूरार्थ—एक प्राणोक्त कर्म ।

महानूरार्थ ( मं० श्लो० ) मंगलावर्त्म कर्मणवर्त्मना  
 कर्मण ।

महानूरार्थ ( मं० पु० ) मंगलावर्त्म भाववर्त्म । १ मंगला-  
 वार्थ । २ भाववर्त्म ।

महानूरार्थ ( मं० श्लो० ) मंगलावर्त्म ।

महानूरार्थ ( मं० श्लो० ) मंगलावर्त्म, मंगलावर्त्म ( पु० ) २ मंगल ।

महानूरार्थ ( मं० वि० ) मंगलावर्त्म मंगलावर्त्म मंगलावर्त्म ।

महानूरार्थ ( मं० वि० ) मंगलावर्त्म । मंगलावर्त्म मंगलावर्त्म ।

महानूरार्थ—महानूरवर्त्मण एक मंगल । ये मंगलावर्त्म वा  
 मंगलावर्त्म नाममें प्रसिद्ध है ।

महानूर—१ महानूरके कर्मण मंगलावर्त्म भाववर्त्म एक मंगला  
 वार्थ । यह भाववर्त्म १२' ४८' में १३' १३' उ० तथा देश ०  
 ०' ४०' में ४१' १०' पू०के मंगल भाववर्त्मण है । भूति-  
 मंगल १८० वर्गमंगल और जन्मवर्त्मण भाववर्त्म मंगल  
 कर्मण है । इसमें एक मंगल और २४३ मंगल मंगल है ।

२ उक्त महानूरका मंगल मंगल । यह भाववर्त्म १२' ५२'  
 १० तथा देश ० ४३' ५२' पू०के मंगल भाववर्त्मण है ।  
 जन्मवर्त्मण मंगल ५२' मंगल है मंगलावर्त्म मंगलावर्त्म ही मंगला  
 भाववर्त्म है ।

३ ३३' मंगलावर्त्ममें यह मंगल मंगलावर्त्मण द्वारा मंगल  
 वाचन मंगल मंगल । मंगला १३४०' १०' में मंगलावर्त्म-  
 में मंगलावर्त्मण मंगलावर्त्म कर्मण मंगलावर्त्मण  
 ३३' में मंगलावर्त्मण मंगलावर्त्मण है ।

ग्रहरमें हैदरकी नौ सेनाका अट्टा बनाया गया । १७६८ ई०में अङ्गरेजी सेनाने इस पर दखल जमाया । १७८३ ई०में यहां पर अङ्गरेजोंके साथ टीपूकी सेनाका घमसान युद्ध हुआ । १७८४ ई०में टीपू सुलतानने फिरसे इसको अपने कब्जेमें कर लिया । १७९६ ई०में यह फिर अङ्गरेजोंके हाथ लगा । तभीसे उन्हींके दखलमें चला आ रहा है । १८३७ ई०में कुर्गविद्रोहके समय गौड़ जातिने इस नगरको जला कर तहस-नहस कर डाला ।

यह नगर मनोहर दृश्योंसे परिपूर्ण है, सर्वत्र परिस्कार परिच्छन्न है तथा वाणिज्य-सम्बन्धिते विशेष उन्नत दशा में है । मालावार उपकूलके प्रसिद्ध नारिकेल-निकुञ्जके मध्य यह नगर नेतावती और गुर्पूर-प्रवाहित-नदीके मुहाने पर अवस्थित है । इस बन्दर वा नगरमें जहाज प्रवेश नहीं कर सकता । पर अरबदेशीय बगाला नामक जहाज सहजमें पण्यट्टय ले कर आ जा सकता है । नदीके मुहानेसे तीन पाव दूर एक आलोक-भवन है जो केवल बन्दर दिखलानेके लिये बनाया गया है ।

यहां मंगलादेवीका प्राचीन मन्दिर अवस्थित है । इसी देवीके नामानुसार इस स्थानका नामकरण हुआ है । पतञ्जिन यहां गणेश और हनुमानके प्राचीन मन्दिर देखे जाते हैं । स्थलपुराणमें उक्त तीनों ही मन्दिरका माहात्म्य गाया गया है । मंगलूरसे १॥ कोस उत्तर गुर्पूर नदीके किनारे एक दुर्ग अवस्थित है, जो 'सुलतानका किला' नामसे मशहूर है । टीपू सुलतानने इस दुर्गको बनवाया था ।

यहां ईसा-धर्म प्रचारके लिये विभिन्न ईसाइयोंका गिरजा है । १८८० ई०में सेण्ट अलोसियस कालेज जेसुरमिशन द्वारा स्थापित हुआ है । उक्त कालेजके अलावा एक सरकारी कालेज, दो म्युनिसिपल अस्पताल और दो प्राइमेट कक्षाधर्म है ।

मङ्गलेश्वरतीर्थ ( सं० क्लो० ) तीर्थमेद । इस तीर्थमें स्नान करनेसे सभी पाप जाते रहते हैं ।

मङ्गलीर—युक्तप्रदेशके सहारनपुर-जिलान्तर्गत एक नगर । यह अक्षा० २६° ४८' ३०" और देशा० ७७° ५३' पू०के मध्य रूरकीसे ६ मील दक्षिणमें अवस्थित है । प्रवाद है कि राजा मंगलसेन नामक महाराज, विक्रमादित्यके

किसी राजपूत सामन्तने इस नगरको बसाया था । ६८३ हिजरीमें सुलतान गयासुद्दीन बलबनकी बगई हुई शाह विलायतकी मसजिद यहाँकी सर्वप्राचीन कीर्ति है । इसके अलावा मंगलराज द्वारा निर्मित एक भग्न-दुर्गका भी निदर्शन पाया जाता है ।

मङ्गल्य ( सं० लि० ) मंगलाय साधु, मंगल-यत् । १ शिवकर, मंगलजनक । २ रुचिर, सुन्दर । ३ साधु । ( पु० ) ४ तायमाणलता । ५ अयवह्य, पोपल । ६ विव्व, घेल । ७ मसूरक, मसूर । ८ जीवक । ९ नारिकेल, नारियल । १० कपित्थ, कैथ । ११ रीटाकरज । १२ जीव नामक शाक । १३ दधि, दही । १४ चन्दन । १५ मंगलागुरु । १६ स्वर्ण, सोना । १७ सिन्दूर ।

मङ्गल्यक ( सं० पु० ) मंगल्य-संज्ञायां क्त, यद्वा मंगलस्य मंगलग्रहस्य प्रिय इति यत्, ततः स्वार्ये क्त । बड़ी मसूर । मङ्गल्यकुसुमा ( सं० स्त्री० ) मंगल्यानि कुसुमानि यस्याः । शङ्खुपुष्पी ।

मङ्गल्यदन्त ( सं० पु० ) काशमीरके एक राजा । मङ्गल्यनामधेया ( सं० स्त्री० ) मंगल मंगलजनकं नामधेयं यस्याः । जीवन्ती ।

मङ्गल्यवस्तु ( सं० क्लो० ) मंगल्यं वस्तु । दर्पणादि मंगलजनक पदार्थ ।

मङ्गल्या ( सं० स्त्री० ) मंगलाय साधुरिति यन् टाप् । १ महिला गन्धयुक्त गुग्गु, एक प्रकारका अगुद जिसमें चमेलीकी-सी गन्ध होती है । २ शमो । ३ अधःपुष्पी । ४ मिसो, जटामांसी । ५ शुकुवचा, सफेद वच । ६ रोचना । ७ प्रिरंशु । ८ शङ्खुपुष्पी । ९ मापपणी । १० जीवन्ती । ११ श्रद्धि । १२ वचा । १३ हरिद्रा, हलदी । १४ चोता नामक गन्धद्रव्य । १५ दुर्वा, दूब । १६ दुर्गा ।

मङ्गाई—नदीमेद ।

मङ्गापुर—मन्नाज प्रदेशके उत्तर आर्कट जिलान्तर्गत चन्द्रगिरि तालुकका एक नगर । कल्याण वेङ्कटेश्वर स्वामीके प्राचीन मन्दिरके लिये यह स्थान प्रसिद्ध है । मन्दिरका गोपुर नानाशिल्पोंसे परिपूर्ण है ।

मङ्गिनी ( सं० स्त्री० ) मंगो नीजिरस्तदस्या अस्तीति इति लोप् च । नौका, नाव ।

मङ्गल खान—एक मुगल-सरदार । इन्हींने द्विहोश्वरके सुल-



मङ्गलाचरण ( सं० क्री० ) मङ्गलस्य आचरणं । मङ्गल-जनक कार्यका आचरण । शुभकार्यके पहले मंगला चरण करना आवश्यक है । पहले मंगला चरण करके कार्यमें लग जानेसे उसका अमंगल दूर होता है और बहुत जल्द कार्यको सिद्धि होती है । यही कारण है, कि ग्रन्थके प्रारम्भमें सभी कवि देवोद्देशसे मंगलचरण कहते हैं । सांख्यदर्शनमें लिखा है—

“मंगलाचरणं शिष्टाचारात् फलदर्शनात् श्रुतिरचेति ॥”

( सांख्यद० १।१ )

शिष्टाचार, फल दर्शन और श्रुति इन तीनोंसे प्रमाणित होता है, कि ग्रन्थारम्भमें मंगलाचरण करना अवश्य कर्त्तव्य है । नव्य नैयायिकोंका कहना है, कि कोई अवश्यकता नहीं । कादम्ब्यो आदि ग्रन्थोंमें मंगलाचरण रहने पर भी उस ग्रन्थको परिस्माप्ति नहीं हुई तथा बहुतसे ग्रन्थ ऐसे हैं जिनमें मंगलाचरण नहीं रहने पर भी वे निर्दिष्टपूर्वक समाप्त हो गये हैं । अतएव मंगलाचरणकी कोई आवश्यकता नहीं देखा जाती । प्राचीन नैयायिक लोग इसके उत्तरमें कहते हैं, कि ग्रन्थ समाप्तिके प्रति मंगलाचरण ही जो एकमात्र कारण है, सो नहीं पर हां, इतना तो अवश्य कहा जा सकता है, कि मंगलाचरणके फलसे अनिष्ट ध्वंस हो कर शुभं होता है किन्तु यद्यत् प्रतिबन्धक रहनेसे कार्यमें विघ्न होता है । इसी कारण जो नव्य नैयायिकगण मंगलाचरणकी आवश्यकता नहीं समझते, यह कदापि स्वीकार नहीं किया जा सकता अतएव मंगलाचरण अवश्य कर्त्तव्य है ।

सांख्य दर्शनमें जो लिखा है, यह बिलकुल ठीक है, कारण श्रुतिमें मंगलाचरणका उपदेश है, साधुगण उसे करते हैं और फल भी अवश्य पाते हैं । अतएव मंगलाचरण करना अवश्य कर्त्तव्य है, इसमें जरा भी संदेह नहीं । मङ्गलाचार ( सं० पु० ) मङ्गलाद्य आचारः । वह आचरण जो मंगलके लिये किया जाता है, मंगलाचरण ।

मङ्गलातोष ( सं० क्री० ) मंगालतुष्यं, मंगलाघाघ ।

मङ्गलादेशवृत्त ( सं० पु० ) वह जो मंगलादिका उपदेश करके जीयिका-निर्वाह करता हो, ज्योतिषी । ये लोग निन्दित पतलाये गये हैं ।

“उत्कोचकाराचौघिका वञ्च काः कितयास्तथा ।

मंगलादेशवृत्तारच भद्राचेन्नयिकैः वद ॥”

( मनु ६।२५८ )

मङ्गलापत्र—मङ्गलभूमिके अन्तर्गत एक एक छोटा जनपद । यह चक्रद्वीपसे ४ कोस पूर्वमें अवस्थित है । यहां राजा विनायक राज्य करते थे ।

मङ्गलामुखी ( हि० स्त्री० ) वेदया, रंडो ।

मङ्गलायन ( सं० लि० ) मंगलं अयनं गतियस्यं । १

मंगलगतियुक्त । ( क्री० ) २ मंगलगति ।

मङ्गलारम्भ ( सं० पु० ) मंगलस्य आरम्भः ६-तत् ।

मंगलजनक कार्यका आरम्भ, गणेश ।

मङ्गलाजुन—एक प्राचीन कवि ।

मङ्गलालम्भन ( सं० क्री० ) मंगलजनक द्रव्यविशेषका स्पर्श ।

मङ्गलालय ( सं० पु० ) मंगलस्य आलयः । १ मंगलावास । २ नारायण ।

मङ्गलावट ( सं० क्री० ) तीर्थाभेद ।

मङ्गलाव्रत ( सं० क्री० ) १ व्रतभेद, उमाव्रत । ( पु० ) २ शिव ।

मङ्गलाहिक ( सं० लि० ) मंगलके लिये प्रात्यहिक अनुष्ठेय कार्य ।

मङ्गलीय ( सं० लि० ) मंगल-छ । मंगलसम्बन्धोय ।

मङ्गलोश—चालुक्यवंशीय एक राजा । ये मंगलराज या मंगलीध्वर नामसे प्रसिद्ध थे ।

मङ्गलूर—१ मन्नाराजके कनाडा जिलेके अन्तर्गत एक प्रधान नगर । यह अक्षा० १२° ४८' से १३° १३' उ० तथा देशा० ७° ४७' से ७° १७' पू०के मध्य अवस्थित है । भूपरिमाण ६८० वर्गमील और जनसंख्या साढ़े तीन लाखके करीब है । इसमें एक शहर और २४३ ग्राम लगते हैं ।

२ उक्त तालुकका प्रधान शहर । यह अक्षा० १२° ५२' उ० तथा देशा० ७४° ५१' पू०के मध्य अवस्थित है । जनसंख्या प्रायः ४५ हजार है जिनमेंसे हिन्दूकी ही संख्या अधिक है ।

१६वीं शताब्दीमें यह नगर पुर्तगालियोंके द्वारा तीन बार लूटा गया था । पीछे १६४० ई०में चेन्नूर राजाभिने यहां दुर्गादि बनवा कर राज्यशासन किया । १७३३ ई०में चेन्नूरराजवंश हैदरअलीसे परास्त हुए । तभीसे

शहरमें हैदरकी नी सेनाका अड्डा बनाया गया । १७६८ ई०में अङ्गरेजी सेनाने इस पर दखल जमाया । १७८३ ई०में यहां पर अङ्गरेजोंके साथ टीपूकी सेनाका घमसान युद्ध हुआ । १७८४ ई०में टीपू सुलतानने फिरसे इसको अपने कब्जेमें कर लिया । १७९६ ई०में यह फिर अङ्गरेजोंके हाथ लगा । तभीसे उन्हींके दखलमें चला आ रहा है । १८३७ ई०में कुर्गचिद्रोहके समय गौड़ जातिने इस नगरको जला कर तहस-नहस कर डाला ।

यह नगर मनोहर दृश्योंसे परिपूर्ण है, सर्वत्र परिस्कार परिच्छन्न है तथा वाणिज्य-समृद्धिसे विशेष उन्नत दशामें है । मालावार उपकूलके प्रसिद्ध नारिकेल-निकुञ्जके मध्य यह नगर नेत्रावती और गुप्तर-प्रवाहित-नदीके मुहाने पर अवस्थित है । इस बन्दर वा नगरमें जहाज प्रवेश नहीं कर सकता । पर अरवदेशीय वगाला नामक जहाज सहजमें पण्यद्रव्य ले कर आ जा सकता है । नदीके मुहानेसे तीन पाव दूर एक आलोक-भवन है जो केवल बन्दर दिखलानेके लिये बनाया गया है ।

यहां मंगलादेवीका प्राचीन मन्दिर अवस्थित है । इसी देवीके नामानुसार इस स्थानका नामकरण हुआ है । एतद्भिन्न यहां गणेश और हनुमानके प्राचीन मन्दिर देखे जाते हैं । स्थलपुराणमें उक्त तीनों ही मन्दिरका माहात्म्य गाया गया है । मंगलूरसे १॥ कोम उत्तर गुप्तर नदीके किनारे एक दुर्ग अवस्थित है, जो 'सुलतानका किला' नामसे मशहूर है । टीपू सुलतानने इस दुर्गको बनवाया था ।

यहां ईसा-धर्म प्रचारके लिये विभिन्न ईसाइयोंका गिरजा है । १८८० ई०में नेपट अलोसियस कालेज जेसुरमिशन द्वारा स्थापित हुआ है । उक्त कालेजके अलावा एक सरकारी कालेज, दो म्युनिसिपल अस्पताल और दो प्राइमेट कक्षाधर्म हैं ।

मङ्गलेश्वरतीर्थ ( सं० क्लो० ) तीर्थभेद । इस तीर्थमें स्नान करनेसे सभी पाप जाते रहते हैं ।

मङ्गलौर—युक्तप्रदेशके सहारनपुर-जिलान्तर्गत एक नगर । यह अक्षा० २६° ४८' उ० और देशा० ७७° ५३' पू०के मध्य रूरकोसे ६ मील दक्षिणमें अवस्थित है । प्रयाद है कि राजा मंगलसेत नामक महाराज विक्रमादित्यके

किसी राजपूत सामन्तने इस नगरको बसाया था । ६८३ हिजरीमें सुलतान गयासुद्दीन बलयनकी यनाई हुई शाह खिलायतकी मसजिद यहाँकी सर्वप्राचीन कीर्ति है । इसके अलावा मंगलराज द्वारा निर्मित एक भवन-दुर्गका भी निदर्शन पाया जाता है ।

मङ्गल्य ( सं० त्रि० ) मंगलाय साधु, मंगल-यत् । १ शिवकर, मंगलजनक । २ रघुचि, सुन्दर । ३ साधु । ( पु० ) ४ तायमाणलता । ५ अश्वत्थ, पीपल । ६ विल्व, घेल । ७ मसूरक, मसूर । ८ जीवक । ९ नारिकेल, नारियल । १० कपित्थ, कीथ । ११ रोडाकरञ्ज । १२ जीव नामक शाक । १३ दधि, दही । १४ चन्दन । १५ मंगलागुरु । १६ स्वर्ण, सोना । १७ सिन्दूर ।

मङ्गल्यक ( सं० पु० ) मंगल्य-संज्ञायां कन्, यद्वा मंगलस्य मंगलप्रहस्य प्रिय इति यत्, ततः स्वार्थे कन् । बड़ो मसूर । मङ्गल्यकुसुमा ( सं० स्त्री० ) मंगल्यानि कुसुमानि यस्याः । शङ्खुपुष्पी ।

मङ्गल्यदन्त ( सं० पु० ) काश्मीरके एक राजा । मङ्गल्यनामधेया ( सं० स्त्री० ) मंगल मंगलजनक नामधेयं यस्याः । जीवन्ती ।

मङ्गल्यवस्तु ( सं० क्लो० ) मंगल्यं वस्तु । दर्पणादि मंगलजनक पदार्थ ।

मङ्गल्या ( सं० स्त्री० ) मंगलाय साधुरिति यत् टाप् । १ मल्लिका गन्धयुक्त गुल्फ, एक प्रकारका अगुरु । जसमें चमेलीकी-सी गन्ध होती है । २ शमी । ३ अधःपुर्पा । ४ मिस्री, जटामांसी । ५ शुक्लवचा, सफेद वच । ६ रोचना । ७ प्रिरंगु । ८ शङ्खुपुष्पी । ९ मायपर्णी । १० जीवन्ती । ११ श्रद्धि । १२ वचा । १३ हरिद्रा, हलदी । १४ चीना नामक गन्ध-द्रव्य । १५ दूर्वा, दूब । १६ दुर्गा ।

मङ्गाई—नदीभेद ।

मङ्गापुर—मन्दाज प्रदेशके उत्तर आर्कट जिलान्तर्गत चन्द्रगिरि तालुकका एक नगर । कल्याण वेङ्कटेश्वर स्वामीके प्राचीन मन्दिरके लिये यह स्थान प्रसिद्ध है । मन्दिरका गोपुर नानाशिल्पोंसे परिपूर्ण है ।

मङ्गिनी ( सं० स्त्री० ) मंगो नौगिरस्तदस्या अस्तीति इति लोप् च । नौका, नाव ।

मङ्ग, खान,—एक मुगल-सरदार । इन्होंने दिल्लीश्वरके सुल-

तान अलाउद्दीनके शासककालमें सिन्धुप्रदेश पर आक्रमण कर उच्च दुर्गको अधिकार किया था।

मङ्गु एडी—बम्बई प्रदेशके धारवाड़ जिलान्तर्गत एक गण्ड-ग्राम। यहां सिद्धलिपि और कालमपेश्वरके काले पत्थरके पत्ते हुए दो प्राचीन मन्दिर विद्यमान हैं। प्रत्येक मन्दिरमें एक एक शिलालिपि देखी जाती है।

मङ्गुप (सं० पु०) नृपभेद। तरुयापत्यं कुर्वादित्वात् प्य। मंगुप, मंगुपका अपत्य।

मङ्गोड़—मध्यभारतके ग्वालियर राज्यके अन्तर्गत एक दुर्ग सुरक्षित नगर। यह अक्षा० २० ६६ उ० तथा देशा० ७८ ६ पू०में पर्वतके नीचे अवस्थित है। यहां १८४३ ई० की २६वीं दिसम्बरको अंगरेजों सेनाके साथ मरहट्टोंका गहरो मुठभेड़ हुई थी। युद्धमें मरहटा-सेना हार खा कर नौ दो ग्यारह हो गई।

मङ्गोल—मध्य-एशिया और उसके पूर्वकी बसनेवाली एक जाति। इनका रंग पीला, नाक चिपटी और चेहरा चौड़ा होता है। संसारके मनुष्योंके जो प्रधान चार वर्ग किये गये हैं, उनमें एक मंगोल भी है। इसके अन्तर्गत नेपाल, तिब्बत, चीन, जपान आदिके निवासी माने जाते हैं। आजसे छः सात सौ वर्ष पहले इस जातिके लोगों-ने एशियाके बहुत बड़े और यूरोपके कुछ भाग पर अधिकार कर लिया था।

मङ्गक्षण (सं० ह्री०) मक्षत्यनेनेति मक्ष-त्युद्। जङ्ग-त्वाण।

मङ्क्षु (सं० अव्य०) मञ्जतीति मस्ज बहुलवचनात् सुः (पा ७।१।६)। १ द्रुत्, तेजसे। २ अत्यन्त, बहुत।

मङ्क्षण (सं० ह्री०) मक्षण पृषोदरादित्वात् सांघुः। जङ्गत्वाण।

मचक (हि० स्त्री०) दवाय, योभ।

मचकूचातनी (सं० स्त्री०) गुल्मभेद।

मचकना (हि० कि०) किसी पदार्थकी, विशेषतः लकड़ी आदिके बने पदार्थकी, इस प्रकार जोरसे दबाना कि उससे मच-मच शब्द निकले।

मचका (हि० पु०) १ भौंका, धका। २ झूलैकी पैंग।

मचना (हि० कि०) १ किसी पैसे कार्यका प्रचलित होना जिसमें कुछ शोर-गुल हो। २ फैलना, छा जाना।

मचरंग (हि० पु०) किलकिला पक्षी।

मचक्रुफ (सं० पु०) १ महाभारतके अनुसार एक यक्षका नाम। २ क्रुक्षेत्रके पासका एक पवित्र स्थान जिसकी रक्षा उक्त यक्ष करता है।

मचार्चिका (सं० स्त्री०) मं शम्भुं चर्चतेतीथेति चर्च्चा-ण्युल्, टाप् अत इत्वं। १ शशस्त, उत्तमता। (ति०) २ सर्वांगेष्ट, जो सबसे उत्तम हो।

मचल (हि० स्त्री०) मचलनेकी क्रिया या भाव।

मचलना (हि० कि०) किसी चीजको लेने अथवा न देनेके लिये जिद्द करना, हठ करना।

मचला (हि० वि०) अनजान बननेवाला, जो बोलनेके अवसर पर जान बूझ कर चुप रहे।

मचलाना (हि० क्रि०) १ के मालूम होना, ओकाई आना। २ किसीको मचलनेमें प्रवृत्त करना।

मचवरम्—मन्द्राज प्रदेशके गोदावरी जिलान्तर्गत थमला-पुर तालुकका एक प्राचीन नगर। यहां याणिज्यकी उतनी उन्नति नहीं देखी जाती।

मचवा (हि० पु०) १ खाट, पलंग। २ खटिया या चौकीका पाया। ३ नाव, किरती।

मचान (हि० स्त्री०) १ धार खम्भों पर बांसका टट्टर बांध कर बनाया हुआ स्थान। इस स्थान पर घैट कर शिकार खेलते या खेलकी रतवाली करते हैं। ३ दीया रखनेकी टिकटी, दीपक।

मचाना (हि० कि०) पैसे कार्य आरम्भ करना जिसमें हुलड़ हो।

मचामच (हि० स्त्री०) किसी पदार्थको दबानेसे होनेवाला मचमच शब्द, दुमचनेका शब्द।

मचारि (माचाड़ि)—राजपुतानेके अलवर-राज्यके अन्तर्गत एक गण्डग्राम। यह अक्षा० २० १५ उ० तथा देशा० ७६ ४० पू०के मध्य अवस्थित है। यहां सम्राट् शेरशाहके प्रसिद्ध यजोरी हीमूका प्रासाद था। मुगल-सम्राट् अकबरशाहके सेनादलके बहुत चेटा करने पर यह स्थान उनके अन्तर्भुक्त हुआ। १६६१ ई० तक यहां अलवर-राजवंशधर राय कल्याणसिंहके पुत्र राय आनन्दसिंहने अपना जामन विस्तार किया था। इसी नगरमें ही उनकी राजधानी थी। १७७५ ई०में अलवर-

दुर्ग अंगरेजोंके दरलमें आने पर यह स्थान श्रीम्रष्ट हो गया है ।

मर्वादा—बम्बई प्रदेशके काठियावाड़ विभागके दलासा पर्वतप्रान्तस्थित एक गण्डग्राम । यहां १६६१ ई०के दिस म्बर मासमें बघेल-विद्रोही सरदार मणिक और अंगरेजी सेनाके साथ घोरतर युद्ध हुआ था, जिसमें फतान हेवर्ट और ला-टुच मृत्युके फरालमुखमें पतित हुए थे । उक्त दोनों सेनानीकी कब्र पर स्मृतिस्तम्भ रक्षित है । उसके बीस कोस दक्षिण-पश्चिम राजकोट-गिर्जांमें इस युद्धके सम्बन्धमें एक शिलाफलक मौजूद है ।

मर्वादा ( हि० खी० ) ऊँचे पार्योंकी एक आदमीके बैठने-योग्य छोटी चारपाई ।

मर्वादा—१ मध्यप्रदेशके सम्बलपुर जिलान्तर्गत एक सामन्त-राज्य । भूपरिमाण १० वार्गमील है ।

२ उक्त सामन्त-राज्यका प्रधान नगर । यह अक्षा० २१° ४६' उ० तथा देशा० ८३° ३८' पू०के मध्य अवस्थित है । यहांके सर्दार-उपाधिधारी जमींदार गौड़वंशीय हैं । पहले वे लोग बड़ा अत्याचार करते थे, पर आजकल शान्त हैं ।

मर्वादा—पञ्जाब प्रदेशके लुधियाना जिलान्तर्गत एक नगर तथा सिमराला तहसीलका सदर । यह अक्षा० ३०° ५५' उ० तथा देशा० ७६° १२' पू०के मध्य शतद्रु-नदीके किनारे अवस्थित है । महाभारतमें इस प्राचीन नगर-समुद्रिका उल्लेख पाया जाता है, किन्तु आजकल इसकी वाणिज्य-समुद्रिका बहुत कुछ हास हो गया है । यहां दो प्राचीन मसजिदें और बहुतसे हिन्दू तीर्थ तथा सिलोंका परम पवित्र एक 'गुरुवाड़ा' विद्यमान है । मर्वादा ( हि० खी० ) वह लकड़ी जो बौलोंके झुपके नीचे रहती है ।

मर्वाला ( हि० पु० ) एक प्रकारका पीधा जो बंगालकी खाड़ी दलदलोंमें होता है । इससे खुरागा बनता है ।

मर्वा ( स० पु० ) १ बड़ी मछली । २ दोहेंके सोलहवें मेरुका नाम । इसमें ७ गुंठ और ३४ लघु माताएँ होती हैं ।

मर्वाअसवारी ( हि० पु० ) कामदेव, मदन ।

मर्वातिनी ( हि० खी० ) मछली फँतानेका लम्बा, कांटा ।

मर्वाड़ ( हि० पु० ) एक प्रसिद्ध छोटा पतिगा । यह वर्पा और श्रीम-ऋतुमें गरम देशोंमें तथा फेवल श्रीम ऋतुमें कुछ ठंढे देशोंमें पाया जाता है ।

विशेष विवरण मशक शब्दमें देखो ।

मर्वा ( हि० पु० ) १ मर्वाड़ देखो । २ क्रोध, गुस्सा ।

मर्वारिया ( हि० खी० ) १ एक प्रकारकी धुलधुल । २ मछली देखो ।

मर्वासीमा ( हि० खी० ) भूमि सम्बन्धी, भगड़ोंका वह निवटारा जो किसी नदी आदिकी सीमा मान कर किया जाता है ।

मर्वा ( हि० खी० ) मछली देखो ।

मर्वाकांटा ( हि० पु० ) एक प्रकारकी सिलाई । इसमें सोंपे जानेवाले टुकड़ोंके बीचमें एक प्रकारकी पतली जाली-सी बन जाती है । २ कालीनमें एक प्रकारकी जालीदार बेल ।

मर्वामार ( हि० पु० ) मर्वाड़, धोवर ।

मर्वान्द्र—नेपालस्थित बौद्ध और हिन्दूपूजित देवताविशेष । नेपाल और मत्स्येन्द्रनाथ देखो ।

मर्वान्द्रगढ़—बम्बई प्रदेशके सतारा जिलान्तर्गत एक गिरिदुर्ग । १६७६ ई०में महाराष्ट्र-केशरी शिवाजीने यह दुर्ग बनवाया था । यहां मत्स्येन्द्रनाथका एक प्राचीन मन्दिर देखा जाता है । पासके ग्रामवासी एक भक्त इस देवताकी पूजाके लिये यहां उपस्थित हुए थे । उनके वंशधरगण अब तक भी इस देव-मन्दिरकी सेवा करते हैं । प्रति वर्ष यहां एक मेला लगता है ।

प्रतिनिधिवंशने १८१० ई० तक इस दुर्गकी अपने अधिकारमें किया था । बाद उसके बापू गोखले-ने इस दुर्गको जीता और पेशवाको इसका शासन करने दिया । १८१८ ई०के बाद यह अङ्गरेजोंके हाथ आया ।

मर्वान्द्रयाता—नेपालराज्यमें मर्वान्द्रनाथ देवके पूजा-पलङ्गमें अनुष्ठित उत्सवमेद । नेपाल देखो ।

मर्वालन्दपुर ( मसलन्दपुर )—बङ्गालके चौबीस परगनाके अन्तर्गत एक गण्डग्राम । यहां आस-पासके गावोंके धरौदने वेचनेके लिये एक हाट लगती है ।

रेलवे स्टेशन रहनेके कारण यहांके वाणिज्यमें विशेष सुविधा होती है। यहाँसे बसीरहाट जाने आनेकी सुविधा है।

मछलागांव—अयोध्या प्रदेशके गोंडा जिलान्तर्गत एक गण्डप्राम। करुणानाथ महादेवका मन्दिर रहनेके कारण यह स्थान विख्यात है। यहां निवरात्रिके उपलक्षमें बहुत मनुष्योंका समागम होता है।

मछली ( हि० खी० ) १ एक प्रकारका जीव जो सदा जन्ममें रहता है। विशेष विवरण मत्स्य ग्रन्थमें देखो। २ मछलीके आकारका कोई पदार्थ। ३ मछलीके आकारका बना हुआ सोने, चांदी आदिका लटकन जो प्रायः कुछ गहनोंमें लगाया जाता है।

मछलीगोता ( हि० पु० ) कुश्तीका एक पेच।

मछलीडंड ( हि० पु० ) एक प्रकारका डंड। इसमें दोनों हाथ जमीन पर पास पास रख कर छाती और कंधो-को जमीनसे ऊपर करते हुए मछलीके समान उछलते हैं। इसमें पंजोंकी नाँचे जमीन पर पटकनेसे आवाज होती है।

मछलोदार ( हि० पु० ) दरीकी एक प्रकारकी चुनावट। मछलोपत्तन—मद्रासप्रदेशके अन्तर्गत भारतीयकूलवर्ती एक प्रधान नगर और बन्दर। यह अक्षा० १६° १२' ३० तथा देशा० ८१° ८' ००के मध्य अवस्थित है। इस नगरकी पूर्वतन वाणिज्य-समृद्धि बहुत दूर यूरोप तक फैली हुई थी। प्रोफ-भौगोलिकोंने इस बन्दरको Malesia ग्रन्थमें उल्लेख किया है। अलावा इसके बहुतोंका अनुमान है, कि इस बन्दरमें पहले समुद्रज मत्स्य (मछली)का कारवार था, इसी कारण इस स्थानका 'मछलोपत्तन' नाम पड़ा।

करमण्डल उपकूलमें इस नगरकी रक्षाके लिये जो दुर्ग है, उससे डेढ़ कोस पर समुद्रके किनारे मछलोबन्दर नामकी द्वीप लोकोकी एक बस्ती है। इसीके नामसे समुद्री बन्दरका नाम 'बन्दर' हुआ है। १८६५ ई० में इस दुर्गसे सेनादल इधर उधर चला गया है, इनलिये यह दुर्ग अगो बूटे फूटे खंडहरोंमें पड़ा है। इसके पास ही प्रोटेस्टेन्ट और रोमन कैथलिक खुरानका एक गिर्जा है। उत्तर-पश्चिमकी ओर ऊँचे स्थान पर

यूरोपियोंका एक मकान देखा जाता है। यहां अगो भी एक फरासीसियोंकी कोठी है। चर्पाकालमें और सब स्थान जलमग्न हो जाता है। १८६४ ई०में भीषण भूकम्प होनेसे यहांका बहुत-सा स्थान टूट गया था।

दाक्षिणात्यके मध्य यह सबसे श्रेष्ठ बन्दर है। कोकनद ( काकनाडा ) और यैजवाड़ासे नाव द्वारा वाणिज्यकी आमदनी रपतनी होनेसे यहांका प्रभाव बहुत कुछ खर्ब हो गया है।

इस स्थानमें हिन्दूशासनके प्राधान्यका कोई भी निदर्शन नहीं देखा जाता। १४०० ई०में सिंहलस्थ अरवी बणिक्ोंने दाक्षिणात्य आक्रमणके समय इस स्थानमें वाणिज्यकी उपयोगिता देख कर यहां वाणिज्य-बन्दर स्थापन किया था। १४२५ ई०में फर्नाटक-राजने दाक्षिणात्यके ब्राह्मणी-राजाओंके साथ युद्धमें मुसलमानों सेनाकी सहायता मिलनेसे उन लोकोकी उपासनाके लिये यहां एक मसजिदु बनानेकी आज्ञा दी। १४७६ ई०में ब्राह्मणी-राज २य महम्मद मछलीपत्तनके अधिकारी हुए। बाद उसके उड़ियाराजवंशके अस्तुत्थानमें ब्राह्मणी-राजवंश हीनबल हो गया और यह बन्दर उन लोकोके अधिकारभुक्त हुआ। क्रमशः जब गजपतिवंशका प्रभाव दब गया तब गोलकुंडा-पति मुलतान कुतब शाहने यहांका आधिपत्य पाया। इस समयसे प्रायः ५० वर्ष तक यह गोलकुंडा-राजके अधिकारमें रहा। तभीसे यहांकी वाणिज्यसमृद्धिकी दिन प्रतिदिन उन्नति होती गई। गोलकुंडा-राजवंशके राजत्वकालमें अंगरेज आदि यूरोपीय बणिक्ोंने यहां प्रवेश किया और वाणिज्यकी उन्नति और विस्तारमें विशेष मनोयोग दिया।

यद्यार्थमें करमण्डल-कुलस्थ मछलीपत्तन ही अंगरेजोंका प्रथम उपनिवेश कहा जाता है। जब पुलिकटमें वाणिज्य-कोठी बनानेमें व्यर्थमनोरथ हुए, तब अंगरेजोंने 'ब्लेव' पोतके अध्यक्ष फीबटेन दिवानकी सहायतासे यहां १६११ ई०में एजेन्सी पोली। यहाँ अंगरेज इष्ट इण्डिया कम्पनीकी 'डम भारतयात्रा' नामसे प्रसिद्ध है। इसके बाद १६२२ ई०में अंगरेज-बणिक्गण ओलन्दाज बणिक्ों द्वारा रपाइस आइरेड और पुलिकटसे प्रितार्जित हो कर मछलोपत्तन आये और यहाँ उन्होंने कोठी बनाई।

१६२८ ई०में वे सब इस स्थानसे विताड़ित हुए। इसके चार वर्ष बाद गोलकुण्डा-राजके फरमानमें उन्होंने फिर इस बन्दरमें प्रवेश किया। उसे अंगरेजों इतिहासमें 'गोलडन-फरमान' कहा गया है।

ओल्न्दाजके बाद अंगरेज वणिक्गण इस स्थानमें वाणिज्यकार्यकी परिचालना करने लगे। उसके बाद १६६८ ई०में फारसी वणिक् वाणिज्यमें हिस्सा लेनेके लिये यहां तक आये। १६८६ ई०में गोलकुण्डा-राजके साथ मनमुटाव हुआ और अंगरेजोंको वाणिज्य-रहित करनेकी आज्ञा दी तथा ओल्न्दाजोंने नगरमें अपना स्वयं जमा कर अंगरेज-वणिकोंको यहांसे विताड़ित किया। किन्तु उनका यह मनोरथ सुसिद्ध नहीं होने पाया। उसके तीन वर्ष बाद सम्राट् औरङ्गजेबके सेनापति जुल-फिकार खाने यहां आकर यहांकी कोठी लूटी। १६८० ई०में अंगरेजगण मुगल-सम्राट्के फरमानके अनुसार मछली-पत्तनके पूर्ण अधिकारी हुए। इसके बाद कर्णाटक युद्ध तक यहां किसी तरहका गोलमाल नहीं हुआ।

१७५० ई०में निजामने यह नगर और आस-पासके स्थान फरासीसियोंको अर्पण किये। १७५६ ई०से लेकर १७५६ ई० तकके लिए अंगरेजोंको इस बन्दरसे अधिकार-च्युत किया गया। शैपोक्त वर्षमें अंगरेज-सेनापति फर्डिने जवरदस्ती यह दुर्ग अपने अधिकारमें कर लिया। १७६६ ई०में सारा उत्तर-सरकार अंगरेजोंके हाथ लगी।

भारतीय सूती कपड़ोंको उत्कृष्टता पर मुग्ध हो कर अंगरेज-वणिकोंने लाभकी आशासे पहले यहां आ कर फोटी खोली। बहुत पहलेसे ही स्थानीय छौंटकी प्रसिद्धि बहुत दूर तक फैली हुई थी। उसकी उत्कृष्टता पर मुग्ध होकर सूदूर यूरोप, पारस्य, अफ्रिका, ब्रह्म और भारतीय द्वीपयुद्ध-वासियोंका मन आकृष्ट हुआ था। वे लोग आदर और आग्रहसे वह छौंट लेने लगे। अभी भी यहांके बुलाहों द्वारा प्रस्तुत प्रसिद्ध 'माटापोल्लम' बख तथा तीलिया, टेबल-क्लाथ आदि उत्कृष्ट सूती कपड़ोंको विदेशमें रफ्तानी होती है।

यह स्थान तेलगू राज्यमें ख्रिष्टधर्म प्रचारका केन्द्र-स्थल माना गया है। ख्रिष्टधर्मके प्रभावसे यहां शिक्षा-की विशेष उन्नति हुई है तथा बहुतेके लोग अंगरेजों द्वारा

पालित होते हैं। १६४ ई०के भोवण भूकम्प और बाढ़ \* से यह नगर सम्पूर्णरूपसे ध्वंस हो गया था, उसी समयसे यहांकी वाणिज्य-समृद्धिका भी ह्रास हो गया है। पत-द्विन्न मद्रासमें रेलपथ विस्तार होने तथा सिकेन्द्राबाद-से रंगून शहरमें सेना नहीं जाने आनेसे १८६५ ई०में यहांका दुर्ग छोड़ दिया गया।

मछलीबन्दर—मद्रास प्रदेशके कृष्णा जिल्लाके अन्तर्गत एक तहसील। मछलीपत्तन देखो।

मछलीमार ( हि० पु० ) मछली मारनेवाला, धोवर।

मछलीशहर—१ युक्तप्रदेशके जौनपुर जिल्लांतर्गत एक तहसील। यह अक्षा० २५' ३०' से ले कर २५ ५५' उ० तथा देशा० ८२' ७' से लेकर ८२' २८' पू०में गोमती नदीके किनार अवस्थित है। घिसवा, मुङ्गरा, बादशाहपुर और गरवारा परगना इसी तहसीलमें हैं।

२ उक्त जिल्लाका एक नगर और उसी नामके तह-सीलका विचार-सदर। यह अक्षा० २५' ४०' उ० तथा देशा ८२' २५' पू०के मध्य अवस्थित है। इस नगरका प्राचीन नाम घिसवा है। प्रवाद है कि, एक भर-सर्दार यहां राजत्व करता था। वह अपने ही नाम पर यह स्थान स्थापित कर गया। नगरका भाग दलदलसे आच्छन्न है। वर्षा ऋतुमें बाढ़से सब स्थान जलमग्न हो जाता है और मछलियां खूब हो जाती हैं, इसीलिये इस स्थानका नाम 'मछलीशहर' पड़ा है। राजपूतोंने पहले भर जातिको यहांसे भगा दिया, बाद वे भी मुसल-मानों द्वारा विताड़ित हुए।

मछवा ( हि० पु० ) १ वह नाथ जिस पर बैठ कर मछली-का अधिकार किया जाता है। २ मत्साह, धोवर।

मछुवा ( हि० पु० ) मछली मारनेवाला, धोवर।

मछुवा ( हि० पु० ) मछुवा देखो।

मछेह ( हि० पु० ) शहदका छत्ता।

मछोतर ( हि० पु० ) मछलीके आकारका, मछलीका वह

\* इय भूकम्पमें मछलीपत्तनके सब यहादि उड़ गये तथा अवस्थ मनुष्य बाढ़में बह गये। मछलीपत्तनकी इय बुद्धशाके वारमें सि० गार्डन मैकेडो विशदरूपते लिख गये हैं।

टुकड़ा जिसकी सहायतासे हरिसमें हल जुड़ा रहता है।

मछरेता—१ अयोध्याप्रदेशके मोतापुर जिलेका मिश्रिल तहसीलके अन्तर्गत एक परगना। राजा डोडरमल इस स्थानकी एक स्वतन्त्र परगनामें निर्दिष्ट कर गये हैं। उस समय केशरीसिंह नामक एक अहमल-राज यहाँके अधीश्वर थे। इस सामान्त-राजके बिना अपराधके अपने फायरुध-कुलोद्भव दीवानकी हत्या करनेसे सम्राट् अकबर शाह दीवानके दो लड़कोंकी इसकी क्षतिपूर्ण करनेके लिये यह सम्पत्ति उनके हवाले की। उन लोगोंकी मृत्युके बाद यह सम्पत्ति कई एक छोटी छोटी जमींदारियोंमें बंट गई। अभी ६६ गांव राजपूत, १० कायस्थ, २ ब्राह्मण, ६॥ वैरागीके तथा ७॥ गांव मुसलमान जमींदारोंके अधिकारमें हैं।

२ उक्त तहसीलके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २७° २५' ३०" तथा देशा० ८०° ४१' ५०" के मध्य गोमती नदीके किनारे अवस्थित है। यहाँ एक प्राचीन दुर्ग और हरिद्वारतीर्थ नामक पुण्यसलिला एक दीर्घिका विद्यमान है।

मजकूर ( फा० वि० ) जिसका उल्लेख या चर्चा पहले हो चुकी हो, जिक्र किया हुआ।

मजकूर-ए-बाला ( फा० वि० ) पूर्वांचल, ऊपर कहा हुआ। मजकूरत ( फा० पु० ) शामिलत देहात अराजकीक लगान जो गाँवके खर्चमें आता है।

मजकूरी ( फा० पु० ) १ तालुकदार। २ वह जमीन जिसका बटवारा न हो सके और जो सर्वसाधारणके लिये छोड़ दो गई हो। ३ चपरासी। ४ बिना धेतनका चपरासी। ५ वह मनुष्य जिसे चपरासी अपनी ओरसे अपने सम्मन आदिकी तामीलके लिये रख लेते हैं।

मजकूरीतालुक—मुसलमान नवाबोंके समय छोटे छोटे परगने या भूसम्पत्तिका स्वतन्त्र बन्दोबस्त विशेष। इस मजकूरी या मतफरोफा तालुकमें भिरोल, मण्डल-धाय, चूनाराली, आसद्नगर ( मुर्शिदाबाद ), जहाँगोर-पुर, कागमारी, शिलवाड़ी, ताहिपुर, चांदलाह, संतोय, सातसरका, महम्मदअमीनपुर, पुन्तुरिया आदि प्रधान हैं। इसके अलावा ६८ हुजरी तालुकदार ( जो

खालसा सिरिस्तामें राज-कर दाखिल करते थे ), अन्य छोटे महल और राजमहल आदि सायरात इस्तीमें हैं। मजकूरी ( फा० खी० ) १ मजकूरका काम। २ जीविका-निर्वाहके लिये किया जानेवाला कोई मोटा और परिश्रमका कामका। ३ पारिश्रमिक, वह धन जो किसीको कोई नियत कार्य करने पर मिले। ४ बोझ ढोने या और कोई छोटा-मोटा काम करनेका पुरस्कार।

मजफरहुसेन—'जाम-इ-जहान-नामा' नामक ग्रन्थके प्रणेता एक मुसलमान पंडित। ये हकीम गुलाम महम्मदके पुत्र तथा हकीम महम्मद फासिमके पील थे। इनके पूर्वपुरुष बड़े प्रसिद्ध थे। गुलाम महम्मदने सम्राट् फरखसियरको शिक्षा देनेके कारण प्रभूत सम्पत्ति उपा-र्जन का थी।

ये यूसुफी उर्फमें महापत खां नामसे भी जनसाधारणमें परिचित थे। इनका जन्म १००६ ई०में औरङ्गाबादमें हुआ था। अत्यन्त शैशवास्था में ही इन्होंने अपनी प्रतिभाका परिचय दिया था। सातवें वर्षमें ही ये कुरान समाप्त कर फारसी भाषा पढ़ने लगे। इसके बाद पन्द्रह वर्षको अवस्थामें ध्याकरण, न्याय, अलंकार विज्ञान और आयुर्वेदशास्त्र अध्ययनमें सफलभूत हुए। विज्ञानशास्त्रमें इन्होंने विशेष व्युत्पत्ति प्राप्त की थी। आयुर्वेदशास्त्रमें इनका ऐसा ज्ञान था कि इनके शिक्षक भी समय समय पर चमत्कृत हो जाते थे। कुछ दिन बाद ही ये दिल्लीश्वरके यहाँ चिकित्सकके पद पर नियुक्त हुए। इनकी रचो बहुत सी पुस्तकें मिलती हैं। इन्होंने पूर्वतन महापुरुषोंकी जीवनियां और अलौकिक घटना-समूह तथा प्राचीन कवियोंकी जीवनी और उनके रचित काव्यादि संग्रह किये। यह महाग्रन्थ १०६६ से ६७ ई० तक पांच भागोंमें समाप्त हुआ।

मजनु ( अ० पु० ) १ पागल, दीवाना। २ आनिक, प्रेमी। अति दुर्बल मनुष्य, बहुत दुबला पतला आदमी। ४ एक प्रकारका वृक्ष। इसकी शाखाएँ झुकी हुई होती हैं। इसे 'धंद मजनु' भी कहते हैं।

मजनु—प्रसिद्ध लैला-मजनु नामक फारसीकाव्यके नायक। इनका प्रशुत नाम था कायस। सामन्त-कन्या लैलाके प्रेममें फँस ये एकप्रकारसे पागल ही हो गये थे। जब

इन्हें यह खबर लगी कि लैला किसी दूसरेके साथ ग्याही जायगी तब ये हताश हो गये और घर छोड़ दिया। इसीलिधे ये 'मजन्' (उन्माद) के नामसे प्रसिद्ध हैं। बाजकाल यह 'लैला-मजन्' नाटक रंगमंच पर खेला जाता है।

मजन् खाँ—सम्राट् अकबर शाहका एक सेनापति। इसने १५०७ ई०में कालङ्गर-युर्ग अधिकार किया था।

मजन्तू (अ० वि०) १ पुष्ट, दृढ़। २ अटल, अचल। ३ बलवान, सबल।

मजन्तूती (हि० स्त्री०) १ दृढ़ता, मजन्तूतका भाव। २ बल, ताकत। ३ साहस, हिम्मत।

मजन्तूर (अ० वि०) विचित्र, लाचार।

मजन्तूरन (फा० क्रि० वि०) विचित्र हो कर, लाचारीसे।

मजन्तूरी (अ० स्त्री०) असमर्थाता, लाचारी।

मजमा (अ० पु०) बहुतसे लोगोंका एक स्थानमें जमाव, जमघट।

मजमुआ (अ० वि०) १ संशुद्धीत, इकट्ठा किया हुआ। (पु०) २ एक ही प्रकारकी बहुतसी चीजोंका समूह, खजाना। ३ एक प्रकारका इत। यह कई इत्तोंकी एकमें मिला कर बनता है। यह प्रायः जमा हुआ होता है।

मजमून (अ० पु०) १ विषय, जिस पर कुछ कहा या लिखा जाय। २ लेख।

मजरिया (फा० वि०) प्रवृत्ति, जो जारी हो।

मजरो (हि० स्त्री०) एक प्रकारका भाड़। इसके डंठलोंसे टोकरे बनाये जाते हैं। यह सिंध और पंजाबमें अधिकता से होता है।

मजरूआ (फा० वि०) जोता और बोआ हुआ।

मजरूह (अ० वि०) घायल, जखमी।

मजल (फा० स्त्री०) मंजिल, पड़ाव।

मजलिस (अ० स्त्री०) १ बहुतसे लोगोंकी बैठनेकी जगह, यह साथ जहां बहुतसे मनुष्य एकत्र हैं। २ सभा, समाज। ३ नाच-रंगका स्थान, महफिल।

मजलिसी (अ० पु०) १ निमन्त्रित ध्यांके, नेवता दे कर मजलिसमें बुलाया हुआ मनुष्य। (वि०) २ मजलिस

सम्बन्धी, मजलिसका। ३ सबको प्रसन्न करनेवाला, जो मजलिसमें रहने योग्य हो।

मजसूम (अ० वि०) अत्याचार पीड़ित, जिस पर जुल्म हुआ हो।

मजद्व (अ० पु०) धार्मिक सम्प्रदाय, मत।

मजहबी (अ० वि०) १ किसी धार्मिक मत या सम्प्रदायसे सम्बन्ध रखनेवाला। (पु०) २ भंगी-सिक्ख, मेहतर-सिक्ख।

मजा (फा० पु०) १ स्वाद, लज्जत। २ आनन्द, खुश। ३ दिह्लगी, मज़ाक।

मजाक (अ० पु०) १ हँसी, ठट्टा। २ प्रवृत्ति, रुचि।

मजाकन (अ० क्रि० वि०) हसी-दिह्लगीके तौर पर, मजाकसे।

मजाकिया (हि० क्रि० वि०) मजाकन देखो।

मजाज (फा० पु०) १ गर्व, अभिमान। २ मिनाज देखो।

मजाज़ (अ० वि०) १ कृत्रिम, बनावटी। २ कल्पित, माना हुआ।

मजार (अ० पु०) २ समाधि, मकबरा। २ कदर।

मजाल (अ० स्त्री०) सामर्थ्य, शक्ति।

मजियिया—पंजाब प्रदेशके अमृतसर जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० ३१°५३' उ० तथा देश० ७५°१' पू०में अमृतसर नगरसे ५ कोस पर अवस्थित है। मधुजाट नामक एक जाट-सर्दारने इस नगरकी प्रतिष्ठा की थी। उनके वंशधर मजियिया सर्दारोंका महाराज रणजित-सिंहके समय खूब खातिर थी। दोनों नगरमें ही सरदारोंकी वासभूमि है।

मजिद खाँ—दाक्षिणात्यके सायनूर दुर्गके एक पठान शासनकर्ता। ये १७२१ ई०में पिता अबदुल गफूर खाँकी मृत्युके बाद पितृ-सम्पत्तिके अधिकारी हुए। राजासिपेकके समय ये दाक्षिणात्यके तत्कालीन मुगल-शासनकर्ता निजामकी आशुकी अवहेला करनेके कारण मुगलके शत्रु हो गये। बादमें जब मुगल सेनाने सायनूर दुर्ग पर चढ़ाई की, तब ये डर कर निजामके शरणपत्र हुए। १७२०-३० ई०की कोल्हापुर-सताराकी लड़ाईमें इनके कोल्हापुर-राजके पशावलम्बन करने पर पुरस्कार-स्वरूप बेलगांवके पूर्व और दक्षिणका कुछ अंश



मिला। १७३० ई०में निजामने इन्हें दक्षिणात्यका सहकारी शासनकर्ता चुन कर वेलगांव-दुर्ग का आधिपत्य प्रदान किया। उसके बाद ये मुन्दा, कनाड़ा और बदनूर प्रदेश अधिकार कर उन्हीं इन्होंने अपने राज्य में मिला लिया।

इस प्रकार जयोन्दाससे गर्वित हो कर १७४६ ई०में इन्होंने छापणा और तुङ्गभद्रा नदीके मध्यवर्ती स्थान भी महाराष्ट्रसे ले लिया।

इस पर पेजवा बाजीरावने क्रुद्ध हो कर उनके विरुद्ध सेना भेजी। १७४७ ई०की सन्धिसे अनुसार मजिद खाँको प्रायः ३६ जिले छोड़ देने पड़े। सिर्फ बांका-पुर, तोरगल और आजमनगर-दुर्ग तथा डुवली, हांगल आदि १२ जिले इनके पास बचे।

१७४८ ई०में निजाम-उल-मुल्कका देहागत होने पर हैदराबादके सिंहासनके लिये उनके पुत्र नासिरजंग और पीत मुजःफरजंगमें विवाद खड़ा हुआ। इस विवादमें फारासीसी-सेनाने मुजःफरजंगको तथा अङ्गरेजों और मजिद-परिचालित सेनाने नासिरको सहायता दी, किन्तु नासिरके आचरणसे विरक्त हो कर उन्होंने मुगलोंका साथ छोड़ दिया।

मजिद खाँ बुद्धिमान, साहसी और वीरचेता थे। लड़ाईमें इनका हृदय जरा भी विचलित नहीं होता था। दक्षिणात्यमें अङ्गरेज, फारासीसी और महाराष्ट्र-विप्लवके समय इन्होंने अदम्य साहसके साथ राजकार्य किया था। आज भी दक्षिणात्यमें जनसाधारणके मुखसे इनकी वीरता और बुद्धिमत्ताका परिचय मिलता है। इन्होंने नई-गुविली नगरीको स्थापना की थी।

मजिष्टर (सं० पु०) मजिस्ट्रेट देता।

मजिस्ट्रेट (अं० पु०) फौजदारी अदालतके अपसर। ये ब्रिटिश भारतके प्रायः जिलेके माल-विभागके प्रधान अधिकारी भी होते हैं।

मजिस्ट्रेटो (अं० खी०) १ मजिस्ट्रेटका कार्य या पद।  
२ मजिस्ट्रेटकी अदालत।

मजोठ (हिं० खी०) समस्त भारतवर्षके पहाड़ी देगोंमें मिलनेवाली एक प्रकारकी लता। इसको सूजी जड़ और छंडलोंकी पानोंमें उबाल कर एक प्रकारका उत्पट

लाल या गुल्नार रंग तैयार किया जाता है। इस रंगसे सूती और रेगमी कपड़े रंगे जाते हैं।

विशेष विवरण मजिठठा शब्दमें देखो।

मजीठी (हिं० खी०) १ यह रस्सी जो जुआडेमें बंधी रहती है, जोत। २ यह ओटनेकी चषीमें लगी हुई बीच-बीचकी लकड़ी। यह हमेशा घूमती है जिससे रस्सेसे बिनोले बलन होते हैं।

मजीया (हिं० पु०) कांसेकी बनी हुई छोटी छोटी कटोरियोंकी जोड़ी। इन कटोरियोंके बीचमें छेद होता है। छेदोंमें डोरा पिरो कर उसीको सहायतामे एक कटोरीसे दूसरी पर चोट दे कर संगीतके साथ ताल देने हैं।

मजूमदार—बादशाहो अमलमें जो व्यक्ति राजस्व-सम्बन्धीय कामजात रखते थे वे मजूमदार कहलाते थे।

मजूर (हिं० वि०) मजदूर देखो।

मजूरा (हिं० पु०) मजदूर देखो।

मजूरो (हिं० खी०) मजदूरी देखो।

मजेठो (हिं० खी०) मृत काननेके चर्खेकी एक लकड़ी। यह नीचेसे उन दोनों छंडोंकी जोड़े रहती है जिनमें पहिया या चक्र लगा होता है।

मजेदार (फा० वि०) १ स्वादिष्ट, जायकेदार। २ अच्छा, बढ़िया। ३ जिससे आनन्द आता हो।

मजेदारी (फा० खी०) १ स्वाद। २ आनन्द, मजा।

मजहन् (सं० ह्यो०) मज्जान करोतीति क्विप् तुगा-गमश्च। अस्थि, हड्डी।

मज्जगतज्वर (सं० पु०) एक प्रकारका ज्वर।

मज्जमनी (सं० खी०) वन्ध्या कर्कोटकी, बाँफ फकीड़ो।

मज्ज (सं० पु०) मज्जति जस्यिष्यति (मज्ज रयन उक्त्तं पूम् प्त्वीत्स्व क्त्वेन स्थेत्स्व मुद्गं न मज्जन्तित्यादिन। उष्य १।१५८) इति कनिन् निपात्यते च। १ पृष्ठादिका उत्तम सारभाग।

२ अरिधमध्यस्थित स्नेहविशेष, हड्डीमेंको मज्जा। पर्याय—शुक्रकर, अस्थिस्नेह, अस्थिसम्भेय, अस्थिसार, मेजस, चोज, अस्थिज, जोयन, देहसार। सुधृतमें लिखा है कि, बड़ी हड्डीके भीतरका मेद ही मज्जा कहलाता है। यदि यह मोटी हड्डीके भीतर हो, तो भी उसे मज्जा ही कहेंगे।

सभी प्राणियोंके हृदयमें जो पतली हड्डी है, उसीमें मेद रहता है।

“हृदयास्थियु विशेष्य मजा त्वम्यन्तरे स्थितः।”

( भावप्र० )

इसका गुण बल, शुक, रस, श्लेष्म, मेद और मजावर्द्धक है। हमलोग जो कुछ खाते हैं, उसका सारांश परिणत हो कर रसरूपमें उत्पन्न होता है तथा असारांश मल और मूलरूपमें बाहर निकलता है। पीछे उस रससे श्रोणित, श्रोणितसे मांस, मांससे अस्थि और अस्थिसे मज्जाको उत्पत्ति होती है।

मजन ( सं० ह्री० ) मसूज व्युद् । १ स्नान, नहाना । २ मज्जा ।

मजन ( सं० पु० ) सकन्दानुचर मातृमेद ।

मज्जाफल ( सं० ह्री० ) माजूफल, मागरगोटा ।

मज्जावितृ ( सं० त्रि० ) मसूज-णिच्, वृच् । मज्जनकारी ।

मज्जर ( सं० पु० ) वृणविशेष, एक प्रकारकी घास ।

मज्जस् ( सं० ह्री० ) मज्जा ।

मज्जसमुद्भव ( सं० ह्री० ) मज्जा समुद्भव उत्पत्तिस्थानं यस्य । शुक । मज्जासे शुककी उत्पत्ति होती है।

मज्जा ( सं० स्त्री० ) मज्जतीति मसूज अच्, अजादित्वात् टाप् । अस्थिसार, नलीकी हड्डीके भीतरका रस । यह बहुत कोमल और चिकना होता है। इसका गुण—घातनाशक, बल, पित्त और कफघ्न, मांस-सा गन्ध-युक्त, वृंहण और बलकर माना गया है।

मज्जाज ( सं० पु० ) मज्जाया जायते इति जन-ञ । भूमिज गुग्गुलु ।

मज्जामेह ( सं० पु० ) प्रमेहमेद, मज्जागत प्रमेह ।

मज्जारजस् ( सं० पु० ) गुग्गुलु ।

मज्जारस ( सं० पु० ) मज्जगरसः । १ शुक, घीये । २ सप्तला, सातला ।

मज्जावहस्रोत ( सं० पु० ) मज्जा धातुवाद्दक नाडी ।

मज्जासार ( सं० ह्री० ) मज्जायां सारो यस्य । जातो-फल ।

मज्जिज्ञा ( सं० स्त्री० ) १ लक्षणाकन्द । २ एक-स्त्री, मादा बगला ।

मसूजक ( सं० त्रि० ) १ मज्जनशील । ( पु० ) २ मंहुक, मेदक ।

मसूजर्क्षा—एक विद्रोहि-द्वलपति । १८१८ ई०के मद्र-में इसने अपनेको मुरादाबादका नवाब बनला कर चित्तो-पिन कर दिया था और कुछ समय तक शासनकार्य भी चलाया था। सिहामन पर बैठ कर धंगरेजोंके घन लूटने और उन्हें मार डालनेके लिये जनसाधारणको उमाड़ा था। उमी मालकी १०वीं अप्रिलको जेनरल जीनमने दलबलके साथ मुरादाबाद आकर इसे पुन सहित पकड़ा और मार डाला ।

मसूजूपा ( सं० स्त्री० ) मज्जन्ति द्रव्याप्यत्र, मसूज उध्न टाप्, निपातनात् सगुधुः । मसूजूपा, छोटा पिटारा ।

मसूजमन्त्र ( सं० ह्री० ) मसूज मनित्र, वृषोदरादित्वात् साधुः । बल, ताकत ।

मफगाँव—युक्तप्रदेशके सीतापुर जिलान्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह निवासनसे ८ कोस उत्तर-पश्चिममें अवस्थित है। यहां धनुडारोनाथके मर्मरपत्थर-निर्मित एक प्रति-मूर्ति है। इसे बहुतेरे तिब्बतीय धीङ्-मूर्ति समझते हैं।

मफगाँव—युक्तप्रदेशके बांदा जिलान्तर्गत माळ तहसील-का एक नगर। यह राजापुर नामसे भी मशहूर है और यमुना नदीके दाहिने किनारे बसा हुआ है। यहां रामा-यणभेता साधक कवि तुलसीदासका वासमयन था। सम्राट् अकबर शाहके समयके अनेक प्राचीन हिन्दू-मन्दिर इस स्थानकी प्राचीन समृद्धि सूचित करते हैं। उन सब मन्दिरोंमें सोमेश्वरका मन्दिर ही सबसे प्रधान है।

राजापुर देवी ।

मफधार ( हि० स्त्री० ) १ नदीकी मध्य धारा, बीच धारा । २ किसी कामका मध्य ।

मफरारसिगद्दी ( हि० स्त्री० ) धैलीकी एक जाति ।

मफला ( हि० वि० ) मध्यका, बीचका ।

मफधार—युक्तप्रदेशमें रहनेवाली एक आदिम जाति। मिर्जापुरके दक्षिणस्थ पर्वतोंके आस पास इस जाति-का अधिक वास देखा जाता है। पर्यट परके जंगलों-को जला कर कृषिकार्य द्वारा अपना निर्वाह करना इनकी प्रधान जीविका है।

जातितत्त्वविद्वगण, इनको पावंतीय गोड़े जातिकी अन्यतम प्रजावा बतलाते हैं। यह मजबूत और बलवान् होते हैं। इनका मुख चिपटा, कपाल धंसा हुआ, नाक

नारक के छेद बड़े, होठ मोटे और लम्बे तथा घूटने निम्नो जातिके जैसे और उन्हींके जैसे काले होते हैं। ये नंगे ही रहते हैं, कुछ लोग लज्जा-निवारणके लिये कौपीनकी तरह कटिमैं बस लपेट लेते हैं। जिन्होंने नगरमें, पाम रह कर सम्भ्रमता स्वीची है केवल वे ही निम्नश्रेणीके मनुष्यके जैसे कपड़े पहनते हैं।

मिर्जापुरा मन्वहार या मांभियोंके मध्य पोश्वा, नेकमा, मराई, बरका और ओलकू ये पांच स्वतन्त्र थोक हैं। कहते हैं, कि ये लोग जम्बलपुरके पश्चिमदिग्घर्णों पर्यन्तमाला तथा नर्मदा और सोनकी उत्पत्ति भूमिमें आ कर यहाँ बस गये हैं। ये पश्चिम-विन्ध्य और कैमूर गिरिमालाके पांचों गढ़ोंको अपनी आदिम वामभूमि बत लाते हैं और साथ साथ यह भी कहते हैं कि, उक्त पांच श्रेणीके पूर्वपुरुष पांच भाई थे और निम्न भिन्न गिरिदुर्गमें राजत्व करने थे। इस प्रकार मराई मण्डलगढ़, मर्षची मण्डलपुरके अन्तर्गत सारणगढ़, नेताम सोणागढ़, सरोता गाढ़ागढ़, कोरचो फुलकरगढ़, उर्रे भंजनगढ़, ओमा मरुयागढ़, पोरात रायगढ़, पोश्वा पाटनगढ़, करियाम खैरागढ़, पोसाम उज्जयिनोगढ़, तेकाम लाडिजगढ़ और अमू चांदगढ़से आये हैं। पूर्वोक्त दुर्गमें इन लोगोंका वास हो सकता है, लेकिन कोरामोंका वास-स्थान विलारोगढ़, मारकामका दन्तगढ़, कुजरोका मोहरगढ़, अरमौरका चिनविलगढ़ तथा अरपत्तियोंका सैदागढ़ आदि स्थान निर्णय करना कठिन है।

प्रायः दश पौड़ोंसे ये लोग आदि वासभूमिका परित्याग कर मिर्जापुरके दुधि और सिरोली परगनेमें तथा सरगुजा सामन्तराज्यमें आ कर बस गये हैं। इन लोगोंका कहना है, कि अयोध्याधिपति रामचन्द्रने जब जनकराजभवनमें महादेवका धनुष तोड़ा तब वह धनुष चार म्पेड़ोंमें विभक्त हुआ। उनमेंसे एक म्पेड़ नर्मदानदीके किनारे गिरा था इसलिये यह स्थान इनका तीर्थ-स्थान माना जाता है। अब भी समय समय पर ये लोग इस तीर्थमें आते हैं।

ये अपने धोकमें विवाह नहीं करते, लेकिन ममोरा, चचेरा, फुफेरा और मसैरा आदि विवाहमें निषेध नहीं मानते हैं। बहुतोंमें गौड़-प्रथाके जैसा भारके लड़के

और लड़कीमें विवाह होता है। सरोताओंकी निरुद्ध समझ कर पोश्वागण उन लोगोंके साथ विवाहादि सम्बन्ध नहीं करते।

दूदश्यामी होने पर भी सधर्माचारो मांभियण परस्परमें पुत्र-कन्या प्रदानमें कुण्ठित नहीं होते हैं। साधारणतः ये लोग एक ही जादी करते हैं, किन्तु खो यदि वन्ध्यादि दोषयुक्त हो जाय तो ये दूसरी जादी भी कर सकते हैं। उच्चश्रेणी अथवा धनशाली मांभियण बहुपत्नो रखनेमें अपना गौरव समझते हैं।

श्यामी अपनी स्त्रीको अपने ही साथ रखते हैं। मित्रोंके मध्य उच्चैष्टा सर्वापेक्षा माननीया और गृहकर्त्तारूपमें विवेचित होती हैं। यहाँ तक, कि जातीय समामें भी वे सम्मान पातो हैं। विवाहके पहले बालिकाओंकी स्वाधीनता कुछ अधिक होती है। वे गौं चगती तथा गांव गांवमें भ्रमण कर अपने जानियोगोंमें अपना परिचय देती हैं। इस तरह स्वेच्छाविदारिणी हो कर यदि वे किसी पुरुषके प्रेममें आसक्त हो जाय, तो उन्हें जातोपसभासे किसी विशेष प्रकारको सजा नहीं मिलती है। कन्याकी इस निन्दनीय आसक्तिके लिये उनके पिता अथवा समय समय पर उनके उपपतिको ममांजकी मन्तुष्टिके लिये भोज देना पड़ता है और तब विवाह होता है। किन्तु यदि युवती कन्या किसी अन्य जातिके पुरुषमें फंस जाय, तो वह जातिमें निकाल बाहर कर दी जाती है तथा उस उपपतिके सहवाममें रह कर अपना गुजारा करती है।

इन लोगोंमें बाल्यविवाह प्रचलित है। किन्तु बालक और बालिकाका यथाक्रम सोलह और बारह वर्षमें ही विवाह दिया जाता है। गौड़ जातिसे इनकी विवाह-प्रथा एकदम स्वतन्त्र है। विवाहकी बात पक्की करनेके लिये पूर्णिमाकी राति ही प्रजस्त है।

विवाहके समय ये लोग कन्याके मामाकी स्त्रीको वस्त्रादि उपहार देते हैं तथा घरका मामा अपने भागिनियकी यौनकन्धरूप रुपये देता है। विवाह हो जाने पर घरकहाँ अपने सालिकी गाय या भैंस उपहारमें देता है। इसको ये लोग मामाकी 'विदाई' कहते हैं।

- इन लोगोंमें व्यवस्था देनेकी भी प्रथा है। वर-वधु-को जब लाने जाते हैं तो पहले उजला वस्त्र पहनते हैं, रंगा हुआ वस्त्र पहनना ऐसे शुभकार्यमें निषेध है। याता-के पहले माता पुत्रकी वरण करती है जो 'परछत्र' कह-लाता है। ये लोग पालकी आदि पर बढ़ कर कन्याके घर नहीं जाते, ऐसा करनेसे जानिच्युति होती है। ये विवाहमें कन्याको हंसुली और वाजू देते हैं।

भूत भगानेके लिये इनकी विशेष रथाति है। अपेक्षा-कृत उच्च मन्वराओंके मध्य ब्राह्मण ही इनके शुभलग्नका विचार करते हैं किन्तु किसी काममें ब्राह्मण पीरोहित्य नहीं करते।

विवाहमें मिन्द्र-दानके बाद सब काम समाप्त होने पर वर और कन्या भीतर घरमें लिखाई जाती है जिसको 'कोद्वर' या 'घासर घर' कहते हैं। इसमें केवल वर और कन्या रहती हैं, दूसरा कोई इस घरमें नहीं जा सकता। कन्याका भाई घरके द्वारको बन्द किये रहता है। जिनको नव दम्पति देखनेकी अभिलाषा होती है वे घर और कन्या-यात्रिगणको कुछ दे कर ही देखने पाते हैं।

द्विरागमनके बाद इनका 'पाकस्पर्श' होता है। नव-विवाहिता कुलवधू अर्गने हाथमें रसोई बना कर स्वजाति-वर्गको खिलाती है।

पतञ्जिन्न द्रिद्रके लिये 'घोणा' विवाह और विधवाके लिये 'सगाई' विवाह भी चलता है। घीणा विवाह प्रथा बहुत कुछ अहमद्-देशीय 'घर-जमाई' प्रथासे मिलता जुलता है, किन्तु इस विवाहमें जामाताको कुछ दिन तक अपने भायी-ससुरालमें काम करना पड़ता है।

सगाई-विवाहमें देवरको ही विवाह करना सर्वथादि-सम्मत है; किन्तु यदि देवरको भीजाईसे विवाह करना नापसन्द हो, तो वह रमणी दूसरेसे विवाह कर सकती है।

विवाहके पश्चात् यदि स्वामी उन्माद, ध्वजभङ्ग या निषह्रेश हो जाय, तो रमणी दूसरेको अपना पति बना सकती है, किन्तु इस अवस्थामें भी देवरको विवाह करना ही नियम है।

सगाईके समय विधवा रमणीके पूर्व विवाह-भद्र

कन्यापण नये स्वामीको लौटा देना पड़ता है। औरस-जात पुत्र पितृघनका अधिकारी होता है। जबलौ पिता जीवित रहते हैं तबलौ कोई भी सम्पत्तिको वांट नहीं सकता। पिताकी मृत्यु होनेके बाद यह अपना अपना हिस्सा ले कर स्वतन्त्र स्थानमें रहता है। विवाहिता पत्नीके गर्भजात और रक्षिता रमणीके गर्भजात सन्तान पितृजातिको प्राप्त होती है, किन्तु अवैध जात सन्तान अपनी श्रेणीमें एक साथ भोजन नहीं कर सकती।

जातपुत्री कोई विधवा रमणी यदि स्वजातिमें विवाह करे, तो उसका पुत्र पितृवन्धुओंके साथ एकत्र वास कर सकता है और पितृ-सम्पत्तिको अधिकारी होता है; किन्तु यदि यह रमणी स्वयं-वहिभूत किसी दूसरे व्यक्तिसे विवाह करे, तो उसका पूर्वस्वामिके धन पर भी अधि-कार नहीं रहता, वरन् वह पुत्र अपने पूर्वपिताके धनका अधिकारी होता है। किन्तु कहीं कहीं यही पुत्र दोनों पिताके ही धनका अधिकारी होते देखा जाता है। विधवा रमणी स्वामीकी सम्पत्तिको वरवाद नहीं कर सकती, लेकिन वे अपने भरण-पोषणका दावा कर सकती हैं।

विधवाके लिये दोनों स्वामिजात सन्तान हीसे मान है। उनमें भी कोई तारतम्य नहीं दिखाई पड़ता। पिताके धनके एकमात्र पुत्रगण ही उत्तराधिकारी होते हैं। सिर्फ ज्येष्ठ पुत्र ही सम्पत्तिके समान भागका दशांश अधिक पाता है। पुत्र नहीं होने पर परिवारके धाता या भ्रातृपुत्रगण और बड़े या छोटे चचा सम्पत्तिके अधिकारी होते हैं, किन्तु इन सबोंको मृत व्यक्तिको विधवा पत्नीका भरण-पोषण करना ही होगा। उसका चालचलन छराव होने पर वह घरसे निकाल दी जाती है। कन्या विवाह पर्यन्त शपिती धनकी अंशभागिनी होती है। उसको तथ तक जीवन-यात्रा और विवाह-व्यय पितृसम्पत्तिसे निर्वाह करना होता है। पिताके मर जानेके बाद जातपुत्र शपिती धनका हकदार नहीं हो सकता, तब यदि पिता मृत्युके समय अपनी पत्नीके गर्भजातको लिख जाय, तो उसको सम्पत्ति-लाभकी आशा रहती है। गृहव्यागी व्यक्तिको धनमें कुछ भी इस्तिवार नहीं रहता।

पुत्रहीन व्यक्ति दत्तक ले सकता है लेकिन दीहितके जीवित रहने पर किमोको दत्तक लेनेको क्षमता नहीं है। इस दत्तक ग्रहणके सम्बन्धमें इनमें बहुत-से नियम हैं जिनमें निम्नलिखित ही प्रधान हैं,—

१। प्रथम दत्तक जीवित रहनेसे द्वितीय दत्तक नहीं ले सकते।

२। अधियाहिता, अन्ध, लंगडा, अपत्नीक और मन्थ्यागी दत्तक ग्रहण नहीं कर सकते।

३। पुत्रहीन विधवा स्त्रीको दत्तक लेनेका अधिकार नहीं। यह अपनी सम्पत्ति किसी निकट आत्मीयको दे सकती है। किन्तु उत्तराधिकारियोंको रायसे विधवा रमणी दत्तक ले सकती है।

४। श्रेष्ठ पुत्रको दत्तक देनेका नियम नहीं है। अधि-याहित पुत्रमात्रको ही दत्तक दिया जा सकता है लेकिन कन्याको नहीं। भ्रातृ सम्पर्कोंय किसी निकटआत्मीयके पुत्रको दत्तक लेना चाहिये। गृहीता और दत्तक दोनों ही एक श्रेणी या धोकभुक्त होगा।

यदि किसी व्यक्तिके दत्तक लेनेके बाद पुत्र उत्पन्न हो, तो उसके दोनों ही पुत्रको पितृसम्पत्तिका समान अंश मिलेगा। विवाह-विवाहमें जिस लड़केको घर-जमाई रखा जाता है वह भी एक प्रकारका दत्तक-सा है। प्रायः तीन वर्ष तक यह भाग्य स्वसुरके यहां रह कर पुत्रके ऐसा सब काम करता है। बाद उसके कन्याके पिता अपनी लड़कीसे उसका विवाह करा देते हैं। इस विवाहका कुल गर्ल कन्याके पिताकी ही देना पड़ता है। विवाहके बाद इस लड़केसे कोई काम नहीं करा सकते और न उसको स्वसुरकी सम्पत्ति पर कुछ अधिकार ही रहता है।

प्रसूतिके गर्भावस्थामें कोई संस्कार नहीं रहता। पूर्वमुग्गी हो कर रमणीको सन्तान प्रत्यक्ष करना होता है। नमारी आती है और जानबालककी मागी काट कर बाहर मैदानमें गाड़ देती है। ७-दिनमें छटि (पट्टी) पूजा होती है। इस दिन प्रसूति और जानबालकको सन्तान करा कर शूंड कराया जाता है।

बर्ही अर्थात् बारह दिनमें जानबालकका मुण्डन

होता है। बालककी पीसी या श्रेष्ठ बहनकी ही प्रसू-तिकागृह साफ करना होता है।

अग्नेहको खुले मैदानमें ले जाते हैं और मृतके मुखमें पिण्ड देकर जलाते हैं और कोई गाड़ भी देते हैं। विवाहके बाद ये मृतकी अस्थि ले कर गंगामें फेंक देते हैं। तीसरे दिन गृहस्थ पुरुष बाल कटाते और चौथे दिन श्राद्धका भोज होता है। दशवें दिन अशौचान्त होने पर जातियोग एकलित हो कर सिरके बाल, दाढ़ी और मूँछ कट-वाते हैं।

श्राद्धके बाद घर लौटते हैं और उसी रातको खानेकी चोज रास्तेमें फेंक देते हैं। कारण, इनका विश्वास है, कि प्रेतात्मा उसी रास्तेमें विचरण करता है। पुत्र उत्पन्न होने पर पातारि आ कर कहता है, कि इस पुत्ररूपमें तुम्हारे पूर्वपुरुषके अमृत व्यक्तिके जन्म लिया है, तब वे उसी मृत व्यक्तिके नामानुसार जातपुत्र का नामकरण करते हैं। गीके बछड़ा देने पर जब यह दूध नहीं पीता, तो उसके प्रतिकारके लिये ओम्हा गुल-वाया जाता है। ओम्हा आ कर कहता है, कि इस बछड़ेके रूपमें तुम्हारे पिताने जन्मग्रहण किया है। यह सुन कर ये लोग बछड़ेको बड़े यत्नमें रखते हैं, और कभी भी उसे हलमें नहीं जोतते।

मृत व्यक्तिकी यादगारीमें ये कभी भी स्मृतिस्तम्भ नहीं रखते। आजकल बहुतसे उग्रत माफी हिन्दूके आचार-व्यवहारका अनुकरण करते हैं।

इनके 'पातारिगण' बहुत कुछ गौड़ जातिके 'प्रधान'-के समतुल्य हैं। वे एकल ही ब्राह्मण और महाब्राह्मणका काम करते हैं। मन्थारगण महादेव, बुड़ा, देवी, लिंगी और विह नामक देव तथा देवी और देवहारिणी आदि देवमूर्तिकी उपासना करते हैं। जलाया इसके ये लोग भूत, नाग और मुसलमान फकीर आदिको भी पूजा करते हैं।

'करम्' नृत्य ही इनमें परम पवित्र है। स्त्री-पुंसर सभी अपने अपने आंगनमें एकल ही कर एक करम् नृत्यकी शास्त्राके चारों ओर नाचते हैं। एक तरफ पुरुष ढोल बजाते और स्त्रियां तान भरती हैं। इस करम्-नृत्यमें सभी शराब पीते हैं।

धनो माभिकगण वाराणसी, प्रयाग, विन्ध्याचल, अमर-कंटक आदि स्थानोंमें तीर्थ करनेके लिये जाते हैं। काशीमें गंगास्नान तथा सोननदीमें स्नान ये बड़ा ही पुण्यजनक मानते हैं। प्रहण आदिमें स्नान धीरे धीरे संक्रान्तिका खिचड़ी पार्वण इनका प्रधान त्योहार है। गौ, ब्राह्मण और गंगाजलमें इनको विशेष भक्ति है। जब कभी कसम खानी पड़ती है, तब ब्राह्मणके पैर, गोपुच्छ अधवा गंगाजल स्पर्शसे ही अपथका निवटारा होता है। कभी कभी अग्निमें कूद अधवा गंगामें जा कर ये लोग अपने दिव्यकी सार्थकता दिखाते हैं। इसके सिवा अन्यान्य अशिक्षित असभ्य जातिकी नाईं डाइन, भूता वेश, स्वप्नफल तथा कृपिकार्यमें देव या भौतिक शक्तिसञ्चार होनेसे इनकी भयस्था विलक्षण हो जाती है। तनिक भी शंका होने पर किसी एक छोटे काममें भी उपदेवतादिकी शान्तिके बिना ये झुटकारा नहीं पाते।

स्त्रियां आभूषण पहनना खूब पसन्द करती हैं। चोली नहीं पहनेसे शरीरकी शोभा नहीं होती। उनका विश्वास है, कि जो चोली नहीं पहनती उनको ईश्वर स्वर्गमें स्थान नहीं देते हैं। बहुत सी स्त्रियां गलेमें शीतलादेवीके मूर्ति-अंकित पदक पहनती हैं।

मभावन—वाराणसी विभागके वस्ती जिलान्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह मोक्षवन नामसे प्रसिद्ध है। यहां दीर्घप्रधानताके समय विहारदि प्रतिष्ठित हुए थे।

मझिया (हि० खी०) लकड़ोकी घड़ पट्टियां जो गाड़ोके पेंडेमें लगी रहती हैं।

मझियाना (हि० कि०) मध्यमें हो कर आना, बीचसे हो कर निकलना।

मकुआ (हि० पु०) हाथमें पहननेकी एक प्रकारकी चूड़ी जो पहेलाके बाद होती है।

मझौरा—युक्तप्रदेशके मुजफ्फर नगर जिलान्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यहां मुसलमानोंकी अनेक कब्र विद्यमान हैं। इममेंसे सैयद महम्मद खां द्वारा ६९२ हिजरीमें निर्मित सैयद ग्राह और उनकी माका समाधि-मन्दिर प्रधान है। यह कब्र सबसे सुन्दर है। पहले सैयद महम्मदने अपनी कब्रके लिये यह मकबारा बनवाया था, पर दुर्भाग्यवशतः उनके जीते-जी प्रियतमा

पत्नीका प्राण-वियोग हो जानेसे उन्हें इस समाधि-मन्दिरमें स्थान दिया गया। (२) सैयद महम्मद खां का श्वेतमर्मर निर्मित समाधिमन्दिर। यह ६८२ हिजरीमें बनवाया गया था। (३) मराण सैयद हुसेनका १००० हि०का बना हुआ समाधि-मन्दिर। (४) सैयद उमार नुरका समाधिमन्दिर और (५) अष्टकोण प्रस्तररूप उल्लेखयोग्य है। शोथक रूप सैयद महम्मद खांके पिताका बनाया हुआ है।

मझेरू (हि० पु०) जुलाहोंके ऊड़ी नामक औजारके बीचकी लकड़ी।

मझेला (हि० पु०) १ चमारोंका एक विलशत लम्बा एक प्रकारका औजार। इससे जूतेका तला सिया जाता है। २ लोहेका एक औजार। इसमें लकड़ीका दस्ता लगा रहता है। यह चमड़े परका खुरखुरापन दूर करनेके काममें आता है।

मझोला (हि० वि०) १ मझला, बीचका। २ मध्यम आकारका, जो आकारके विचारसे न बहुत बड़ा हो और न बहुत छोटा।

मझोली (हि० खी०) १ एक प्रकारकी बेलगाड़ी। २ टेकुरीकी तरहका एक औजार। इससे जूतेकी नोक सी जाती है।

मझौरा—युक्तप्रदेशके फैजाबाद जिलान्तर्गत अकबरपुर तहसीलका एक परगना। यहां पर बैजपुर नामके समीप मघा और विश्वी नामक दो छोटी नदियोंका संगम हुआ है। यह स्थान महापुण्यजनक है। प्रति-वर्ष यहां एक बड़ा मेला लगता है। इस समय उक्त संगममें स्नान करनेके लिये अनेक तीर्थयात्री जुटते हैं। संगमके बाद उक्त दोनों नदियां तोस नामसे बहती हैं। यहां अनेक प्राचीन कीर्ति नजर आती हैं।

मझौली-सालिमपुर—युक्तप्रदेशके गोरखपुर जिलान्तर्गत देवरिया तहसीलके दो बड़े बड़े ग्राम। यह छोटी गण्डकके दोनों किनारे अवस्थित हैं। मझौलीमें हिन्दू और सालिमपुरमें मुसलमान रहते हैं। गण्डकतीरवर्ती मझौली राजाओंका प्रासाद अवस्थित है। इस समृद्ध वंशने बहुकालकी शासन-विशृङ्खलामें प्रचुर सम्पत्ति खो दी है। अमी दृष्टि नरकारकी रूपसे सालिमपुर दिन पर-दिन उन्नति कर रहा है। राजप्रासाद और

दुर्गको छोड़ कर मन्धौलीमें चार प्राचीन जिय-मन्दिर हैं। यहांसे एक कोस दक्षिण पूर्व कुण्डलपुर ग्राममें एक प्राचीनदुर्गका ध्वंसावशेष नजर आता है।

मञ्ज ( स'० पु० ) मञ्जनि उद्योभवतीति मञ्चि मञ्च । १ पट्ट्या, गाट । २ गाटकी चुनो हुई घैठनेकी लोटी पोढ़ी, मँचिया । ३ ऊँचा बना हुआ मंडल । इस पर घैठ कर सर्वसाधारणके सामने किम्पों प्रकारका कार्य किया जाता है।

मञ्चक ( स'० पु० ) मञ्च-स्यार्थे कन् । १ मट्ट्या, पट्टिया । २ इन्द्रकोप, मचान । ३ उद्य मण्डप ।

मञ्चकपत्नी ( स'० स्त्री० ) सुरपत्नीलता ।

मञ्चकाश्रय ( स'० पु० ) मञ्चकः मट्ट्यादिराश्रयो यस्य । मट्टुण, छटमल ।

मञ्चकासुर ( स'० पु० ) असुरभेद ।

मञ्चनआचार्य—आश्रयलायनश्रीन खल-प्रयोग - दीपिकाके प्रणेता ।

मञ्चमण्डप ( स'० पु० ) मञ्चो मण्डप इय । जस्यरक्षार्थं कुटीर, ग्नेतोंमें बनी हुई यह मचान जिस पर ग्नेतिहर लोग घैठ कर पशुओं आदिसे ग्नेतोंकी रक्षा करते हैं।

मञ्चल—मन्द्राज प्रदेशके घेल्दरी जिलान्तर्गत एक गण्ड-ग्राम । यह अर्दीनीसे १० कोस उत्तर अवस्थित है। यहांका रामलिलङ्गस्वामी और मन्ताल चेलम मन्दिर सभसे प्राचीन हैं। राघवेन्द्राचारीके मन्दिरमें एक शिला-फलक नजर आता है, उपरोक्त दोनों मन्दिरका माहात्म्य स्थलपुराणमें कीर्तित हुआ है। प्रायः ३ सौ वर्षका प्राचीन एक संन्यासीका समाधि मन्दिर जनसाधारणके निकट पवित्र समझा जाता है। बहुतों तीर्थयात्री इसके दर्शनमें आते हैं।

मञ्जड़—बम्बई प्रदेशके कराची जिलान्तर्गत शेहरान उप-विभागका एक हद्द । यह अक्षा० २६°२२' से २६°२८' उ० तथा देशा० ६७°३७' से ६७°४७' पूर्वके मध्य अवस्थित है। आरल और नारा नामकी दो नदी इसमें गिरती हैं जिससे इसकी शोभा देखते बनती है। वर्षाके समय इसका प्रसार २० मील लम्बा और १० मील चौड़ा होता है। वर्षाके बाद पानीके हट जानेसे यहां अच्छी फसल लगती है। हद्दका विचला भाग बहुत गहरा है। उसमें तरह तरहकी

मछली रहती है। शीतकालमें प्रसकुटिन पक्षीमिनि हद्दकी शोभा अतीव मनोहर है।

मञ्जदिकरा—मन्द्राजप्रदेशके तियांगुडु राज्यके अन्तर्गत एक नगर । यह अक्षा० ६°२६' उ० तथा देशा० ७६°३५' पू०के मध्य अवस्थित है। यहां स्थानीय जातद्रव्यका विस्तृत वाणिज्य होता है।

मञ्जर ( स'० स्त्री० ) मञ्जवति द्युप्यने इति मन्ज-अर् । १ मुक्ता, मोती । २ तिलकपुष्प, तिलका पौधा । ३ यही, नागयन्त्री ।

मञ्जगवाढ—महिसुर राज्यके हुसेन जिलान्तर्गत एक तालुक । यह अक्षा० १२°४०' से १३°३' उ० तथा देशा० ७५°३३' से ७५°५७' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४३८ वर्गमील और जनसंख्या ६० हजारके करीब है। इसमें सकलेशपुर नामक एक शहर और २७७ ग्राम लगते हैं।

पश्चिमघाट पर्वतमालाका घनविभाग ले कर यह सम्पत्ति संगठित है। इसका प्राचीन नाम घलम है। १४वीं जताब्दीमें विजयनगरके राजाओंने नगरकी आबादी बढ़ाई। उन्होंने पाटेल सरदारोंके हाथ इस स्थान का शासनभार सौंपा। १६वीं जताब्दीके प्रारम्भ तक उन्होंने यहांका शासन किया था। १७६६ ई०में अंग-रेजोंसे श्रीरङ्गपत्तन जाते जानेके बाद उस घंशके शेष राजा घेड्डाद्रिनायकने अपनी राज्यासीमा बढ़ानेकी चेष्टा की। इसके दो वर्ष बाद वे अंगरेजोंसे पकड़े और मारे गये। यहांके प्रायः सभी अधिवासिगण धीरचेता हैं। सभी बन्दूक और तलवारका व्यवहार करते हैं। मञ्जरावाढ पर्वतमालाका प्राकृतिक दृश्य अतीव मनोहर है।

मञ्जरी ( स'० स्त्री० ) १ छोटे पंथे या लता आदिका नया निकला हुआ कल्ला, कौपल । २ कुछ विशेष गृहों या पौधोंमें फूलों या फलोंके स्थानमें एक सीकमें लगे हुए बहुतसे दानोंका समूह ।

मञ्जरिका ( स'० स्त्री० ) मञ्जरी ।

मञ्जरित ( स'० त्रि० ) मञ्जर-तारकादिव्यादित्य् । १ अंकुरित । २ मुकुलित ।

मञ्जरी ( स'० स्त्री० ) मञ्जरि-कृदिकारादिति पक्षे ङीप् । १ मुक्ता, मोती । २ तिलगुण, तिलका पेड़ । ३ लता । ४ मञ्जरी । मञ्जरी देवी । ५ तुलसी । ६ छन्दोभेद । इस छन्दके प्रति पादमें १४ अक्षर करके रहते हैं।

मञ्जरीक (सं० पु०) १ गन्ध-तुलसी । २ मुका, मोती ।  
३ तिलकवृक्ष, तिलका पौधा । ४ तुलसी । ५ वेतस-  
लता, वैत । ६ अशोकका वृक्ष ।

मञ्जरीनम्र (सं० पु०) मञ्जर्यां मञ्जर्यवस्थायामपि नम्रः ।  
वेतसवृक्ष, वैत ।

मञ्जा (सं० स्त्री०) मञ्जि पचाद्यत्र, टाप् । १ छागो,  
बकरी । २ मंजरी ।

मञ्जि (सं० पु०) मञ्जि-इत् । मञ्जरी देतो ।

मञ्जिका (सं० स्त्री०) मञ्जजयतोति मञ्ज-पवुल्, टाप्  
अन इत्यञ्च । वेश्या, रंडी ।

मञ्जिफला (सं० स्त्री०) मञ्जिमञ्जरी फलेऽस्याः । कदली,  
केला ।

मञ्जिरा—बगर प्रदेशके इल्लिचपुर जिलेके अन्तर्गत मेघ-  
घाट विभागका एक प्राचीन ग्राम । इसके सामनेमें  
जो पर्यंत है उसमें गुहामन्दिर और बौद्ध स्तूपगमादि  
देखे जाते हैं । अलावा इसके यहां स्तम्भादि अनेक  
प्राचीन कीर्तियाँ दिखाई देती हैं । सन्निकटवर्ती  
अधित्यकामें एक प्रस्रवण है ।

मञ्जिष्ठा (सं० स्त्री०) धातिशयनेयं मञ्जिमती, मञ्जिमती-  
ष्ट-मत्तुप् । स्वनामख्यात रक्तवर्णं लताविशेष, मञ्जोड ।  
यह समस्त भारतके पहाडी प्रदेशोंमें पाई जाती है ।  
हिमालय पहाड़के ८ हजार फुट ऊँचे स्थानमें तथा  
यवर्षीप, जापान और अफ्रिका तकके विस्तृत स्थानमें  
यह लता देखी जाती है । इसके रेशमें नाना मेवज गुण हैं ।  
इसका सुखी जड़ और डंठलोंको पानोंमें उवाले कर एक  
प्रकारकाव द्रव्य लाल या गुलनार रंग तैयार किया जाता  
है जो सूती और रेशमा कपड़े रंगनेके काममें आता है ।

इसका संस्कृत पर्याय—विकसा, जिङ्गी, समङ्गा,  
कालमेपिका, मण्डूकपर्णी, भण्डोरी, भण्डो, योजनवल्ली,  
कालमेपो, काला, जिङ्गि, भण्डोरी, भण्डिका, भण्डि,  
हरिणी, रक्ता, गौरी, योजनवल्लिका, घमा, रोहिणी, चित्त-  
लता, चिता, चिन्नांगो, जननी, विजया, मञ्जुया, रक्त-  
यष्टिका, क्षत्रिणी; रागाढ्या, काल भाण्डिका, अरुणा,  
ज्वरहन्त्री, छत्रा, नागकुमारिका, भण्डोरलतिका, रागाङ्गी  
वस्वभूषणा ।

पहले ही कहा जा चुका है, कि इसकी जड़ और

डंठलसे रंग बनता है । पहले जड़ और डंठलको अच्छी  
तरह सुखा कर चूर्ण कर ले, पीछे उस चूर्णको जलमें दे  
कर कड़ी आंचमें उवाले । जल जब लाल हो जाय, तब  
उसे पका रंग करनेके लिये उसमें फिटकरी डाल दे ।

हकोमी चिकित्साशास्त्र और वैद्यक ग्रन्थमें इसकी  
गुणावली लिखी है । पक्षाघात, कमला, मूत्रकृच्छ्र, रजः-  
कृच्छ्र और क्षतरोगमें यह विशेष उपकारी है । मंजिष्ठा,  
यष्टिमधुकी जड़ और आमानी इन्हें एक साथ पीस कर  
टूटो हुई हड्डी पर लगानेसे सूजन दब जाती है । इसका  
भिगोया हुआ जल वा पत्राय जरायुस्त्राय, मस्तिक  
विकृति आदि रोगोंमें विशेष फलप्रद है ।

इसका गुण—मधुर, कषाय, उष्ण, गुरु, घ्रण, मेह,  
ज्वर, श्लेष्म, विप और नेत्ररोगनाशक है । यह मंजिष्ठा  
चार प्रकारकी है,—बोल, योजनी, कीन्ती और सिंहली ।  
(राजनि०); कुष्ठ, स्वरभंग और शोधनाशक तथा घर्णा-  
ग्निकारक (राजव०)

मंजिष्ठामेह (सं० पु०) पित्तज प्रमेहमेद, सुश्रुतके अनु-  
सार एक प्रकारका प्रमेह । इसमें मञ्जोडके पानोंके समान  
मूत्र होना है ।

मंजिष्ठाघृत (सं० स्त्री०) शारीरघणाधिकारोक्त घृती-  
पधविशेष । प्रस्तुत प्रणाली,—मंजिष्ठा, चन्दन और पूर्व-  
इन सब द्रव्योंको पीस कर घृतके साथ पाक करनेसे यह  
प्रस्तुत होता है । यदि कोई व्यक्त किसी भी प्रकारकी  
अग्निसे जल गया हो, तो इस घृतका प्रलेप होनेसे बहुत  
जल्द आराम हो जाता है ।

मंजिष्ठाघनेल (सं० स्त्री०) नीलीपधविशेष । प्रस्तुत  
प्रणाली—नेल ४ सेर, कल्कार्थ मंजिष्ठा, रक्तचन्दन,  
मुगरामूल कुल मिला कर १ सेर, पाकार्थ जल १६ सेर,  
इस तेलका लेप देनेसे अग्निदग्ध क्षत बहुत जल्द प्रशमित  
होता है । (भैषज्यरत्ना० सद्योत्पन्ना०)

२ क्षुद्ररोगाधिकारोक्त नीलीपधविशेष । इसकी  
प्रस्तुत प्रणाली—तिलतैल, आध शराव, कल्कार्थ मंजिष्ठा,  
मधुकपुष्प, लाक्षा, मातुलंगमूल, यष्टिमधु २ तोला और  
बकरीका दूध १ शराव । तैलपाकके नियमानुसार इस  
तेलका पाक करना होगा । यह तेल लगानेसे नीलिका  
और पीड़का आदि रोग जाते रहते हैं ।



मञ्जिष्टाराग ( सं० पु० ) मञ्जिष्टादेश रागः । साहित्यवर्ण-  
णोलः पूर्वरागभेद । मोली, कुमुदम और मञ्जिष्टा नामक  
मोन प्रकारका पूर्वराग हैं । इनमें जो अनुराग नष्ट नहीं  
होता तथा अत्यन्त शोभित होता है उसे मञ्जिष्टाराग  
कहते हैं ।

मञ्जी ( सं० स्त्री० ) मञ्जयति दोग्यते इति मञ्जि-इन्, वृदि-  
कारादिति ङीष् । मञ्जरी ।

मञ्जोर ( सं० पु० स्त्री० ) मञ्जति मधुरं शब्दायते इति मञ्ज-  
ध्वनीं वाह्यलकार्ण इत्यन् । १ नूपुर, घुंघरू । २ मन्थान-  
शब्दरञ्जुवन्धनार्थं स्तम्भ, यह स्तम्भ जिसमें मन्थानोका  
झंडा बंधा रहता है । पर्याय—विष्कम्भ, कुटर । ३ एक  
प्राचीन कवि । २ पश्चिम बंगवासी पार्यतीय जाति-  
वियोग । ३ एक प्रकारका छन्द । इसके प्रति चरणमें १३  
बहार करके रहते हैं ।

मञ्जोरक ( सं० पु० ) मञ्जोर द्वय कायति शब्दायते कै-क ।  
नूपुरध्वनितुन्य ध्वनियुक्त, घुंघरूके समान जिसमें  
शब्द हो ।

मञ्जीरा ( सं० स्त्री० ) नदीभेद ।

मञ्जु ( सं० लि० ) मञ्जतीति मञ्ज-ध्वनीं सौत्रिधातुः  
( मृगश्यादयथ । ङष् १३८ ) इति कु । मनोज्ञ,  
सुन्दर ।

मञ्जुकुल ( सं० पु० ) एक वीक्षयति ।

मञ्जुकेजी ( सं० पु० ) मञ्जयो मनोहराः केशाः सन्त्यस्य  
इति । १ श्रोत्रकृष्ण । ( लि० ) २ सुन्दरकेजविनिष्ठ ।

मञ्जुगमन ( सं० लि० ) मञ्जु मनोहरं गमनं यस्य । सुन्दर  
गामो, जिसको अच्छी चाल हो ।

मञ्जुगमना ( सं० स्त्री० ) हंसी ।

मञ्जुगर्त ( सं० पु० ) नेपाल राज्यका प्राचीन नाम ।

मञ्जुगीति ( सं० स्त्री० ) कुमुदुर गीत, बढ़िया  
गात ।

मञ्जुघोष ( सं० पु० ) मञ्जुर्मनोहरो घोषः शब्दः यस्य ।

१ पूर्वजिनभेद । २ तान्त्रिकोंके एक उपास्य देवताका  
नाम । कहते हैं, कि इनका पूजन करनेसे मूर्च्छता दूर  
होती है । तन्त्रसारमें पूजाका विस्तृत विवरण लिखा  
है । विस्तार हो जानेके भयसे यहां पर कुल नहीं  
दिया गया ।

इसका ध्यान—

“अथमिन्द्र सुभं खट्वापुस्तांग पाषि  
सुचिस्मृतिस्तान् पंचनूतः कुमारम् ।

श्रुतपरपरमुच्यं पञ्चनायतान्”

कुमतिरदनदम् मञ्जुघोषं नमामि ( तन्त्रसार )

मञ्जुघोष—एक वीक्षाचार्य । आप वीक्षधर्मका प्रचार  
करनेके लिये चीन देश गये थे । प्रवाद है, कि  
इन महात्माने चीन राज्यसे नेपालमें चीनदेशवासी बौद्धों  
को ले जा कर उपनिवेश बसाया था । इन्होंने ही नेपाल-  
उपत्यका-गहरको भेद कर सञ्चित जलराशिको बाहर  
निकाला और उस देशको वासोपयोगी बना दिया था ।  
नेपालमें उद्योतीरूप आदि बुद्धमन्दिरका स्थापन और  
धर्माचारको नेपाल राजसिंहासन पर स्थापन, ये दोनों  
इन्होंने कीर्त्तित हैं । नेपालमें आज महायान गता-  
वलम्बिगण बड़े सम्मानके साथ इनका पूजन करते  
हैं । बज्रसूत्रो प्रन्थके प्रारम्भमें 'ओं नमो मञ्जुनाथाय,  
जगद्गुरुं मञ्जुघोषं नत्वा धाक्काय चेतसा, इत्यादि  
लिखा हुआ देखा जाता है । नेपाल देतो ।

मञ्जुघोषा ( सं० स्त्री० ) एक अप्सराका नाम ।

मञ्जुदेव—चीनदेशस्थ मञ्जुघोष पर्यंतके एक राजा ।  
ख्यम्भपुराणमें लिखा है,—ये घरदा और मोक्षदा नामक  
अपनी दो पतिनियोंके साथ ख्यम्भुक्षेत्रके दर्शनको गये ।  
राजाने नेपालके हृदको कुजमीरोंसे भरा देव अपने अरसे  
उपत्यका मूमि भेद डाली । यथामत्र कपोतल, मन्थयनी,  
मृगसली, गोकर्ण, धरय और इन्द्रायती आदि उपत्यका-  
का दक्षिण देश उत्प्रात हो गया था । पीछे उन्होंने पद्म-  
गिरिके ऊपरवाले हृदको काट डाला जो परम मयिष्ठ  
उपच्छन्द पीठ कहलाता है । यहां गगानना देवोका  
मन्दिर अवस्थित है ।

मञ्जुदेव ( सं० पु० ) मञ्जुघोष, मञ्जुघी ।

मञ्जुनन्दी—एक प्राचीन कवि, जीयतागके पुत्र ।

० इस पर्वतका प्राचीन नाम है पञ्चसोपरीत । उपरका  
एक एक शब्द यथाक्रम शारक, इन्द्रनीच, मरुच, माणिक्य और  
वेदुर्मयमिषिष्ठ है । बहुतेरे इस पर्वतको आधामके शब्दोंमें  
मानते हैं ।

मञ्जुनाथ—नेपालप्रसिद्ध वीद्वाचार्यमेद । ये मञ्जुघोष और मञ्जुश्री नामसे भी प्रसिद्ध थे

मञ्जुनाजी (सं० त्रि०) १ वह सुन्दरी रमणी जिसके रूपसे दूमरी रमणीका रूप फोका पड़ जाय । २ दुर्गाका एक नाम । ३ इन्द्राणीका एक नाम ।

मञ्जुनेत्र ( सं० त्रि० ) १ सुन्दर चक्षुविनिष्ट, सुन्दर आंख-याला । ( पु० ) २ सुन्दर नेत्र ।

मञ्जुपत्तन ( सं० त्रि० ) मञ्जुश्री-प्रतिष्ठित नगरमेद ।

मञ्जुपाठक ( सं० पु० ) मञ्जु मनोहरं पठतीति पठ-ण्युल् । १ शुक्रपक्षी, तोता । ( त्रि० ) २ सुन्दर पाठ-कर्त्ता, अच्छी तरह पढ़नेवाला ।

मञ्जुप्राण ( सं० पु० ) मञ्जवः प्राणाः यस्य, सर्वव्यापक-तया महाप्राणत्वाद्दस्य तथात्वं । ब्रह्मा ।

मञ्जुमट्ट—अमरकोपटीकाके प्रणेता ।

मञ्जुमद्र ( सं० पु० ) मञ्जु मनोहरं मद्रं मङ्गलं यन्व । जिनविशेष । पर्याय—मञ्जुश्री, ज्ञानदर्पण, मञ्जुघोष, कुमार, अष्टार चक्रवान्, स्थिरचक्र, चक्रधर, ब्रह्माकाय, वादिवार्त्त, नौलोत्पली, महाराज, नील, शार्दूल वाहन, धियाम्पति, पूर्वजिन, खड्गी, दन्ती, विभूषण, बालव्रत, पञ्चचौर, सिंहकेलि, शिखाधर, वागीश्वर । ( त्रिका० )

मञ्जुभाषिन् ( सं० पु० ) मञ्जु भाषते भाष-णिनि । १ सुन्दरभाषी, वह जो अच्छी तरह बोलते हैं । २ छन्दो-मेद । इस छन्दके प्रतिचरणमें १३ अक्षर रहते हैं ।

मञ्जुल ( सं० त्रि० ) मञ्जु मञ्जुत्वमस्त्यस्येति ( विष्णादिभ्यश्च । पा ५।२।१६० ) इति लच् । १ जलाञ्जल, नदी या तालावका किनारा । २ निकुञ्ज । ३ जलरङ्ग-पक्षी । ४ शयल, चीता । ५ हरिणमेद । ६ अञ्जोर-घृक्ष । ( त्रि० ) ७ सुन्दर, मनोहर ।

मञ्जुला ( सं० त्रि० ) एक नदीका नाम ।

मञ्जुवज्र—वीद्धदेवतामेद ।

मञ्जुगदिन् ( सं० त्रि० ) मञ्जु मनोहरं पदति पद्-णिनि । मनोहर वाषपयुक्त, मोठा वचन बोलनेवाला ।

मञ्जुश्री ( सं० पु० ) मञ्जुर्मनोहराः श्रीः शोभा यस्य । मञ्जुघोष ।

मञ्जुश्री—१ स्वयम्भु पुराण-वर्णित चीनदेशान्तर्गत एक पर्वत । २ प्रसिद्ध वीद्वाचार्य मञ्जुघोष । ये भारतवर्षसे

बीद्धधर्म प्रचारके लिये चीनराज्य तक गये थे । यहाँ-से लौट कर वे अपने शिष्योंके साथ नेपाल उपत्यकामें बस गये । नेपाल, मञ्जुघोष और मञ्जुदेव देला ।

आर्यगण्डव्यूह, परमार्थनाममञ्जूत, सद्धर्मपुण्डरीक, सुगतावदान, सुप्रभात स्तव आदि ग्रन्थोंमें इनका माहात्म्य, स्तव और पूजाविधि वर्णित हैं ।

प्रतनत्त्वविदोंका अनुमान है, कि शिव्यमण्डलसे परिवृत्त हो वीद्वाचार्य मञ्जुश्रीने आसाम प्रदेशके अन्तर्गत पञ्चश्रीप-पर्वतसे नेपालराज्यमें जा कर उपनिवेश बसाया था ।

मञ्जुश्रीकीर्त्ति—मोटदेशीय एक बौद्ध लामा ।

मञ्जुश्रीप्रतिष्ठा—बीजोंकी धारणीविशेष ।

मञ्जुहासिन् ( सं० त्रि० ) मञ्जु-मनोहरं हसति हस-णिनि । मधुर हास्ययुक्त ।

मञ्जुहासिनो ( सं० त्रि० ) छन्दोमेद । इस छन्दके प्रति चरणमें १३ अक्षर करके रहते हैं ।

मञ्जुया ( सं० त्रि० ) मञ्जुया पृषोदरादित्यात् साधुः । मञ्जुया, पिटारो ।

मञ्जुसौरभ ( सं० त्रि० ) छन्दोमेद ।

मञ्जुस्वर ( सं० पु० ) मञ्जुघोष, मञ्जुश्री ।

मञ्जूया ( सं० त्रि० ) मञ्जति द्रव्यमस्मिन्, ( मञ्जे दुन्व । उष् ५।७७ ) इति मसञ्ज ऊपन्, नुम्व सच अचोऽन्त्यात् परः, ततो जश्त्वश्चुत्वे मध्यमस्य लोपात् साधुः । १ पिटक, पिटारो । २ पापाण, पत्थर । ३ मञ्जिष्ठा, मजीठ ।

मञ्जेरो—मन्द्राजप्रदेशके मालावार जिलान्तर्गत परणाङ् उपविभागका एक नगर । यह अक्षा० ११° ७' ३० तथा देशा० ७६° ७' ५०के मध्य अवस्थित है । जनसंख्या ४००० है । यहां १८४६ ई०में मोप्लियाओंका जो विद्रोह हुआ था उसमें उन्होंने विशेष निष्पूरताका परिचय दिया था । उन्होंने उद्वत हो कर अंगरेज-सेनापतिके साथ देशीय सेनादलको भी मार डाला । फोले बहुत-सी यूरोपीय सेनाकी सहायतासे उनका अच्छी तरह दमन किया गया था । यहां प्राचीनतत्त्वके अनेक निदर्शन पाये जाते हैं । इनमेंसे कई एक गुहामन्दिर और भूककुच मन्दिर-में खोदी हुई १६५१ ई०की गिलालिपि उल्लेखयोग्य है ।

मञ्जुनपुर—युक्तप्रदेशके इलाहाबाद जिलान्तर्गत एक

मञ्जिष्टाराग ( सं० पु० ) मञ्जिष्टारैः रागः । साहित्यदर्पणोक्तः पूर्वरागभेदः । नीलो, कुमुदम और मञ्जिष्टा नामक तीन प्रकारका पूर्वराग है । इनमें जो अनुराग नष्ट नहीं होता तथा अत्यन्त शोभित होता है उसे मञ्जिष्टाराग कहते हैं ।

मञ्जो ( सं० स्त्री० ) मञ्जति द्योत्यते इति मञ्जि-इन्, कृदिकारादिति लोप् । मञ्जरी ।

मञ्जोर ( सं० पु० क्ली० ) मञ्जति मधुरं शब्दायते इति मन्ज-ध्वनी बाहुल्यत्वात् इन् । १ नूपुर, सुंघकः । २ मन्थान-दृष्टरश्मिबन्धनार्थं स्तम्भ, यह स्तम्भ जिसमें मचानोका शंशा बंधा रहता है । पर्याय—विष्कम्भ, कुटर । ३ एक प्राचीन कवि । ४ पश्चिम बंगवासी पार्वतीय जाति-यिरोप । ५ एक प्रकारका छन्द । इसके प्रति चरणमें १३ अक्षर करके रहते हैं ।

मञ्जोरक ( सं० पु० ) मञ्जो इव कायति शब्दायते कै-कः । नूपुरध्वनितुन्य ध्वनियुक्त, सुंघरूपे, समान जिसमें शब्द हो ।

मञ्जीरा ( सं० स्त्री० ) नदीभेदः ।

मञ्जु ( सं० त्रि० ) मञ्जनीति मञ्ज-ध्वनी मीतघातुः ( द्रुग्व्यादयथ । उण् १३८ ) इति कु । मनोत्र, सुन्दर ।

मञ्जुकुल ( सं० पु० ) एक वीर्ययति ।

मञ्जुकेंजी ( सं० पु० ) मञ्जो मनोहराः केंजाः सन्त्यस्य इति । १ श्रीकृष्ण । ( त्रि० ) २ सुन्दरकेशविशिष्ट ।

मञ्जुगमन ( सं० त्रि० ) मञ्जु मनोहरं गमनं यस्य । सुन्दर गामो, जिसको अच्छी चाल हो ।

मञ्जुगमना ( सं० स्त्री० ) इमं ।

मञ्जुगर्भ ( सं० पु० ) नेपाल राज्यका प्राचीन नाम ।

मञ्जुगीति ( सं० स्त्री० ) तुमुपुर गीत, बहिया गान ।

मञ्जुघोष ( सं० पु० ) मञ्जुमनोहरो घोषः शब्दः यस्य । १ पूर्वमित्रभेदः । २ तान्त्रिकीके एक उपास्य देवताका नाम । कहते हैं, कि इनका पूजन करनेसे मूर्च्छता दूर होती है । तन्त्रसारमें पूजाका विस्तृत विवरण लिखा है । विस्तार हो जानके नयसे यहाँ पर सुन्द नहीं दिया गया ।

इसका ध्यान—

“तन्त्रपरि रं तुम्” गन्धपुस्तोम पाणि  
सुचिरसमिधान्तं पंचभूषः कुमारम् ।  
शुभ्रपरममुष्णं पंचराष्यताम्”

कुमविरहदन्तं मञ्जुघोषं नमामि ( तन्त्रार )

मञ्जुघोष—एक वीर्याचार्य । आप वीर्यधर्मका प्रचार करनेके लिये चीन देश गये थे । प्रवाद है, कि इन महात्माने चीन राज्यसे नेपालमें चीनदेशवासी वीर्यको ले जा कर उपनिवेश बसाया था । इन्होंने ही नेपाल-उपत्यका-गहरको भेद कर सञ्चित जलराशिको बाहर निकाला और उस देशको वास्तोपयोगी बना दिया था । नेपालमें उद्योतीरूप आदि सुजमन्दिरका स्थापन और धर्माकरको नेपाल राजसिंहासन पर स्थापन, ये दोनों इन्होंने कीर्त्ति है । नेपालमें आज महापान मत्त-घलभ्रिगण बढ़े सम्मानके साथ इनका पूजन करते हैं । यज्ञसूत्रो ग्रन्थके प्रारम्भमें ‘ओं तमो मञ्जुनागाय, जगद्गुरु’ मञ्जुघोषं नत्वा याक्काय चेतसा, इत्यादि लिखा हुआ देखा जाता है । नेपाल देखो ।

मञ्जुघोषा ( सं० स्त्री० ) एक अक्सराका नाम ।

मञ्जुदेव—चीनदेशस्य मञ्जुघोषो पर्वतके एक राजा । स्वयम्भूपुराणमें लिखा है,—ये धरदा और मोक्षदा नामक अपनी दो पत्नियोंके साथ स्वयम्भूक्षेत्रके वरानकी गये । राजाने नेपालके हृदको कुम्भीरसे भरा देल अपने अस्त्रों उपत्यका भूमि भेद डाली । यथाक्रम कपोतल, गरुडपत्नी, मृगस्त्री, शोकर्ण, धरय और इन्द्रायती आदि उपत्यका का दक्षिण देश उन्माल हो गया था । पीछे उन्होंने पद्म-गिरिके ऊपरवाले हृदको काट डाला जो परम पवित्र उपच्छन्द पोट कहलाता है । यहाँ त्रिगामना देवीका मन्दिर अवस्थित है ।

मञ्जुदेव ( सं० पु० ) मञ्जुघोष, मञ्जुघोषी ।

मञ्जुनन्दी—एक प्राचीन कवि, जौवनगायके पुर ।

० इय पर्वतका प्राचीन नाम है पञ्चयोगेश । उठका एक एक शत्रु यथाक्रम होकर, इन्द्रनीच, मरुच, भाषिक भी-बेदुर्धनविमविष्ट है । बहुरंगे इय पर्वतके भागामके अन्तर्गत मानते हैं ।

मटिया ( हि० स्त्री० ) मट्टी । २ मृत्नशरीर, लाश ।  
( वि० ) ३ मिट्टीका-सा, मटमैला । ( पु० ) ४ एक प्रकारका लटोरा पक्षी । इसका दूसरा नाम कजला भी है ।

मटियामसान ( हि० वि० ) नष्टप्राय, गया बीता ।

मटियामेट ( हि० वि० ) मलिनयामेट देखो ।

मटिवार ( हि० पु० ) वह क्षेत्र जिनमें विकनी मट्टी अधिक हो ।

मटियाला ( हि० वि० ) मटमैला देखो ।

मटौला ( हि० वि० ) मटमैला देखो ।

मटुका ( हि० पु० ) मटका देखो ।

मटुकीया ( हि० स्त्री० ) मटकी देखो ।

मट्ट ( सं० स्त्री० ) मटति वसत्यचेति मठ-अप्, पृषादरा-दित्यात्प्रदागमें साधुः । गृहका गिरोभाग, छत ।

मट्टक ( सं० पु० ) मट्टस्थविशेष, एक प्रकारकी मछली ।

मट्टी ( हि० स्त्री० ) मिट्टी देखो ।

मट्टा ( हि० पु० ) तक्, छाछ ।

मठ ( सं० पु० ) मठन्ति वसन्ति छात्रादयोऽत्र मठ-अल् ।

१ छात्रादि निलय; वह स्थान जहाँ विद्या पढ़नेके लिये छात्र आदि रहते हैं । २ वह मकान जिसमें एक महन्तकी अधीनतामें बहूतसे साधु आदि रहते हों । ३ देवगृह, मन्दिर । जो मठकी प्रतिष्ठा करते हैं, अन्तकालमें उन्हें स्वर्गकी प्राप्ति होती है । मठप्रतिष्ठा शुभ दिनमें करनी चाहिये, अकाल वा निन्दित दिनमें नहीं । जिस दिन मठकी प्रतिष्ठा करनी होगी, उस दिन पहले वृद्धि-धातु करके पीछे प्रतिष्ठाकार्य करना होगा । प्रतिष्ठा-कार्यका संकल्प इस प्रकार है :—

“ भो! भद्रयामुके मासि अनुकल्पे अनुकथित्यो अनुकगोत्रः श्रीभद्रकेशवशर्मा एतच्छूयाकाष्ठदिमपंचमपरमाणुसमसंख्यवर्ष-सहस्रावच्छिन्नसर्गलोकमहितत्वकामः श्रीविष्णुप्रांतिकामः विष्णु-लोकं प्रांतिकामो वा मठप्रतिष्ठासह करिष्ये । ”

इस प्रकार संकल्प करके प्रतिष्ठाके नियमानुसार प्रतिष्ठा करे । इस प्रतिष्ठाका विस्तृत विवरण अष्टा-विंशतितत्त्व स्मृतिके मतप्रतिष्ठातत्त्वमें लिखा है, विस्तार हो जानेके भयसे यहाँ पर कुछ उद्धृत नहीं किया गया । मठ—धर्माचारो संसारत्यागो, संन्यासियोंका आवास-

स्थान । संसारलिप्सासे विच्छिन्न हो कर मनुष्य जिस स्थान पर आ ब्रह्मचर्यावलम्बन करते हुए शाखाध्ययन करते हैं उसे मठ ( Monastery ) और मठावास-को ब्रह्मचर्य ( monastic life ) कहते हैं । बौद्धसम्प्रदाय-का मठ विहार वा सङ्घाराम कहलाता है । साधारणतः मठमें छात्र वा ब्रह्मचारी संन्यासियोंके रहने योग्य कितने घर, नक्षत्रावलम्बियोंके इष्टदेवमन्दिर, तन्मत-प्रवर्तकको समाधि वा तन्मावलम्ब्यो किसी आचार्यकी गद्दी तथा धर्मशाला और अभ्यासन पथिक वा संन्यासियोंके रहने योग्य कितने घर रहते हैं । अतिथियोंको मठके खर्चसे भोजन दिया जाता है । प्रत्येक मठके खर्चा वर्षोंके लिये कुछ निष्कर जमीन दी हुई रहती है । अलावा इसके भक्तमण्डलीसे प्रतिदिन जो जो उपहार दिया जाता है, उसीसे मठ-वासियोंका खर्चा पूरा जाता है । मठके अध्यक्षको महन्त कहते हैं ।

हिन्दुओंके वैष्णव, शाक, शैव आदि विभिन्न सम्प्रदायके विभिन्न मठ हैं । श्रोत्रोत्तमे पेसे आठ विभिन्न मठ स्थापित हैं । भारतका ज्योषी मठ और ब्रह्मराज्यका ष्यौडूमठ प्राचीन वैष्णव और बौद्धमठका निदर्शन स्वरूप हैं ।

पहले इजितवासी ईसाइयोंके मध्य मठावास कल्पित हुआ था । पीछे महात्मा एन्थनि और पालने लोहित सागरके किनारे मठकी स्थापना की । इसके बाद यूरोपके प्रायः प्रत्येक देशमें ही मठ स्थापित हुआ है । मठावासी ब्रह्मचारी विवाह नहीं कर सकते । किसी किसी सम्प्रदायमें विवाह किया भी जाता है ।

२ पकवाद्यवस्तुविशेष, एक प्रकारका व्यञ्जन । प्रस्तुत प्रणाली—गोहूँके चूरको अच्छी तरह जलमें पीस कर घटिकाकार प्रस्तुत करे । पीछे उसमें इलायची, लवङ्ग, और कर्पूरादि मिला कर घीमें मन ले और तब ऊपरसे चीनीका रस डाल दे । इस प्रकार जो व्यञ्जन बनता है उसीका नाम मठ है । इसका गुण—पृहण, शृष्य, पलकर, सुमधुर, गुह्य, पित्त और वायुनाशक तथा रुचिकर माना गया है । ( भावप्रकाश )

मठग्राम—सहाद्रिके समीपमें अवस्थित एक प्राचीन ग्राम ।

( यद्वादि १११२८ )

नदमाल। यह यमुनाके किनारे अक्षां २५° १७' से २५° ३२' उ० तथा देशां ८०° ६' से ८१° ३२' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २७२ वर्गमील और जनसंख्या ३६ लाखके करीब है। इसमें मध्यनपुर नामक एक शहर और २६६ ग्राम लगते हैं।

मध्यनपुरपट्टा—इलाहाबाद जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षां २५° ३१' १२" उ० तथा देशां ८१° २५' १२" पू०के मध्य अवस्थित है। यहां मुसलमानोंकी ज्यादा संख्या है। प्रति सौमवार और शुक्रवारको यहां हाट लगती है।

मट ( हि० पु० ) मट्टीका बड़ा पात्र । इसमें दूध दही रहता है।

मटक ( हि० स्त्री० ) १ गति, चाल । २ मटकनेकी क्रिया या भाव ।

मटकना ( हि० क्रि० ) १ अंग हिलाते हुए चलना, लचक का नखरेते चलना । २ लीटना, फिरना । ३ अंगों अर्थात् नेत्र, भ्रुकुटी, उंगली आदिका इस प्रकार संचालन होना जिसमें कुछ लचक या नखरा जान पड़े ।

मटका ( हि० पु० ) मट्टीका बना हुआ एक प्रकारका बड़ा घड़ा । इसमें अन्न, पानी इत्यादि रखा जाता है।

मटकाना ( हि० क्रि० ) १ नखरेके साथ अंगोंका संचालन करना, लचकना । २ दूसरेको मटकनेमें प्रवृत्त करना ।

मटकी ( हि० स्त्री० ) १ छोटा मटका, बमोरी । २ मटकानेका भाव, मटक ।

मटकाला ( हि० वि० ) मटकनेवाला, नखरेमें हिलने झोलने वाला ।

मटकीअट ( हि० स्त्री० ) मटकानेकी क्रिया या भाव, मटक ।

मटगौम ( हि० पु० ) एक प्रकारका पेयी हाथी ।

मटनी ( हि० स्त्री० ) मटन मट-अभयमादे नाथे अप, मट-चोपने प्राचोपने धमिगिति मट-चि, बाहुलकात् ति, मटचि गतः हृदिकारादिनि परो ऊप् । मर्षेयामयस्माद्धरत्याद्ध्याप्त्यन्तकार्थं । १ एकवर्ण शुद्धपक्षिधरो, लालरंगकी एक छोटी चिट्ठी । २ पाषाणपट्टि, ओला ।

मटगा ( हि० पु० ) कानहर और धरेलीके जिलेमें पैदा होनेवाली एक प्रकारकी रम्य ।

मटगैरा ( हि० पु० ) विवाहके पहलेकी एक रीति । इसमें किसी शुभ दिन घर या बधूके घरकी स्त्रियां जाती बजाती हुई गांधके बाहर मिट्टी लेने जाती हैं और उत मिट्टीमें कुछ चिगिए भयस्त्रोंके लिये गोलियां भादि बनाती हैं ।

मटमैला ( हि० वि० ) मट्टीके रंगका, धूलिया ।

मटर ( हि० पु० ) एक प्रकारका मोटा अन्न । यह पानी या जम्बू अक्षुमें आरतके प्रायः सभी भागोंमें बोया जाता है। इसके लिये अच्छी जोताई और गादकी आवश्यकता होती है। इसमें एक प्रकारकी लम्बी फलियां लगती हैं जिन्हें छोमी कहते हैं। इसमें छोमियोंके अन्तर गोत्र दाने रहते हैं जिन्हें मटर कहते हैं। शुरूमें ये दाने बहुत ही मोटे और स्यादिष्ट होते हैं और प्रायः तरकारी आदि-के काममें आते हैं। जब फलियां एक जाती हैं, तब उनके दानोंसे दाल बनाई जाती है। कहीं कहीं रोटीके लिये इसका धाटा भी पीसते हैं तथा इसका ससु भी खाने में है। इसकी पत्तियां और चूंकल पशुओंके चारेके लिये बहुत उपयोगी होते हैं। इसके दो भेद हैं, एक दुबिया और दूसरा काबुली मटर। इसका गुण मधुर, स्यादिष्ट, जोतल, पित्तनाशक, रचिकारक, शानकारक, पुष्टिजनक, मलको निकालनेवाला और रक्तपिण्डरको दूर करनेवाला माना गया है।

मटरगश्न ( हि० स्त्री० पु० ) १ धीरे धीरे घूमना, उलटना । २ मीरसपाटा ।

मटरघोर ( हि० पु० ) मटरके पराबर सुंगरु जो पात्र आदिमें लगते हैं।

मटराला ( हि० पु० ) जोंके साथ मिला हुआ मटर ।

मटलनी ( हि० स्त्री० ) मिट्टीका कषा करतन ।

मटस्फटि ( सं० पु० ) मट अयमारु स्फटनि निराफरौनि स्फट-इ । द्वारोम्म, अभिमानका शुरु होना ।

मटा ( हि० पु० ) एक प्रकारका माल क्यूंटा । इसके भुण्ड आमके पेड़ों पर रखा करते हैं।

मटिमाना ( हि० क्रि० ) १ अशुभ करने आदिमें मट्टी मल कर उसे न्याक करना । २ मट्टीमें ढांकना । ३ टालनेके हेतु किसी बातकी मुग कर भी उगना हुआ उपाव न देना, सुनी अनसुनी करना ।

सामन्तने १५२० ई०में वनको काट कर यह नगर बसाया । उनका बनवाया हुआ यहाँ एक आज्ञनेयका मन्दिर है । १७२८ ई०में मरहटोंने इस स्थानको देखल किया तथा मुघारोरावने एक दुर्ग और राजप्रासाद बनवा कर नगरकी जोभा बढ़ाई । १७६२ ई०में मुसलमानोंने इसे आक्रमण कर जीत लिया ; किन्तु दो ही वर्षके अन्दर मरहटोंने उन्हे फिरसे मार भगाया । १७७४ ई०से लगा कर १७६६ ई० तक यह स्थान टोपू सुलतानके अधिकायमें रहा । पीछे टोपू सुलतानको पराजयके बाद यह अंगरेजोंके हाथ लगा । यहाँके चोलराज-मन्दिरमें ३ शिलालिपि देखी जाती हैं ।

मड़मड़ाना ( हि० कि० ) मरमराना देखो ।

मड़राना ( हि० कि० ) मँड़राना देखो ।

मड़ला ( हि० पु० ) अनाज रखनेकी छोटी काठरी ।

मड़वा ( हि० पु० ) मयप देवो ।

मड़वारविलासम्—मद्राज प्रदेशके श्रीविलिपुत्र तालुकका एक गण्ड ग्राम । यहाँका सुवृहत् और सुप्रामोचन शिवमन्दिर बहुत मशहूर है । गौपुरका कारुकाय मनको मोहला है । मन्दिरगावमें बहुत-सी शिलालिपियां नजर आती हैं । स्थलपुराणमें इस देवतीर्थाका माहात्म्य गाया गया है ।

मड़वारी ( हि० पु० ) मारवाड़ी देवो ।

मड़दा ( हि० वि० ) १ मांड खानेवाला । ( पु० ) २ मट्टी या घास फूस आदिका बना हुआ छोटा घर । ३ भुना हुआ चना ।

मड़ड़ा ( हि० पु० ) छोटा कथा तालाव या गड़ड़ा ।

मड़ियार ( हि० पु० ) माखवाड़में रहनेवाली क्षत्रियोंकी एक जाति ।

मड़ुआ ( हि० पु० ) १ बाजरेकी जातिका एक प्रकारका फ़दर । यह बहु प्राचीनकालसे भारतमें बोया जाता है और अब तक बहुतसे स्थानोंमें जंगला दशांमें भी मिलता है । यह वर्षाऋतुमें खाद दी हुई भूमिमें कभी ज्वारके साथ और कभी कभी अकेला बोया जाता है । अधिक वर्षासे इसकी फसलको हानी पहुँचती है । यदि इसकी फसल तैयार होने पर भी खेतोंमें रहने का जाय तो विशेष हानि नहीं होती । फसल काटनेके बाद इसका दाने बर्षों तक

रखे जा सकते हैं और इसी कारण दुर्मिश्र कालमें गरीबोंके लिये इसका बहुत अधिक उपयोग होता है । इसे पोस कर आटा भी बनाते हैं । चावलों आदिके साथ इसे उवाल कर खाते भी हैं । इससे एक प्रकारको जराय बनती है । यह कसैला, कड़ुआ, हलका, गृतिकारक, बलवर्द्धक, त्रिदोषनाशक और रक्तदोषको दूर करनेवाला माना गया है । २ एक प्रकारका पक्षी ।

मड़ैया ( हि० खी० ) १ छोटा मण्डप । २ पर्णशाला, कुटो । ३ मिट्टीका बनाया हुआ छोटा घर ।

मड़ोड़ ( हि० खी० ) मरोड़ देखो ।

मड़ोड़ी ( हि० खी० ) लोहेकी छोटी पेंचदार कटिया ।

मड़ ( हि० पु० ) १ मठ देवो । ( वि० ) २ जो जल्दी हटानेसे भी न हट्टे, अड़ कर बैठनेवाला ।

मड़ना ( हि० कि० ) १ आविष्टत करना, चारों ओरसे घेर लेना । २ बाजेके मुँह पर बजानेके लिये चमड़ा लगाना । ३ बलपूर्वक किसी पर आरोपित करना, किसीके गले लगाना ।

मड़रीपुत्र शकसेन—दाक्षिणात्यके एक राजा ।

गक और सातवाहन-राजवंश देखो ।

मड़वाना ( हि० कि० ) मड़नेका काम दूसरेसे कराना, दूसरेको मड़नेमें प्रवृत्त करना ।

मड़ा—युक्तप्रदेशके देहरादून जिलान्तर्गत एक नगर । यह यमुना-तीरवर्षी कलमी नगरसे १२॥ कोस दूर पड़ता है । यहाँके प्राचीन मन्दिरादि और धर्मसावशेष समूह प्रबलत्वविदोंकी विशेष आदरको सामग्री है । मन्दिरोंमेंसे लक्षा मन्दिर ही सबसे प्राचीन है । आलोचना करनेसे मालूम हुआ है, कि इस मन्दिरके उपकरण किसी सु-प्राचीन धर्मसावशेषसे लिये गये हैं । उसमें जो एक शिलालिपि है उससे जाना जाता है, कि जालन्धर-राज चन्द्रगुप्तको पत्नी ईश्वरा मन्दिरका निर्माण कर गई हैं । राजकुमारो ईश्वरा सिंहपुरराज भास्करकी कन्या और कपिलवर्द्धन-राजकन्या जयावलीकी गर्भसम्भूता थी । उस शिलालेखमें सिंहपुर-राजवंशके ग्यारह, राजाओंके नाम लिखे हुए हैं । सिंहपुर देखो ।

मड़ा ( हि० पु० ) मिट्टीका बना हुआ छोटा घर ।

मठपारी ( हि० पु० ) यह साधु या महन्त जिसके अधि-  
कारमें कई मठ हैं ।

मठपति—बम्बईप्रदेशके धारवाड़ जिल्लायासी ज्ञानिविद्येय ।  
ये लोग स्वनायतः अपरिष्कार हैं । अपरिच्छिन्न स्थानमें  
रहते हुए भी व्याख्यारक्षाको और इनका विशेष ध्यान  
रहता है । सभी बलिष्ठ और दृढ़गठनके हैं । ह्यपि-  
कार्य और मो-महिवादि पालन इनको प्रधान उपजीविका  
है । ये लोग लिङ्गायत हैं, कोई भी मद्य मांस नहीं  
प्राता ।

पासमयनके पारों और कर्षण होने पर भी ये लोग  
अपना अपना अङ्गसीधय करना चाहते हैं । दूसरी  
निष्ठ ज्ञानिको तरह ये अपना शरीर और कपडा कमी  
मैया नहीं रखते । 'स्वो-पुण्य दोनो' ही अलङ्कारमिय  
है । ये पल्लिष्ट, कर्मापटु, सबल और विनयी होते हैं ।  
लिङ्गायतोंको परिचयां इनके जीयनका एक प्रधान  
कर्म है ।

लिङ्गायतोंके विवाहमें ये लोग निमग्नितोंका आदर्-  
सरकार करते हैं । लिङ्गायतको मृत्यु पर ये शयका  
यमसा अङ्ग जलसे धो कर मुषमें विभूति लगा देते हैं ।  
पोंछे कमिस्वान जा कर फिरसे शयका मुल धो डालते  
और तब दफनाते हैं । यहाँका कार्य शेष हो जाने पर  
ये पुतेहितके पैर धो कर घर लीटते हैं ।

याग्य विवाह, विवशा-विवाह और बहु-विवाह इनमें  
प्रचलित देखा जाता है । ये लोग सभी हिन्दू पर्यको  
मानते हैं । तोतदुस्वामी इनके मन्वदाता शुभ हैं ।

मठर ( म० पु० ) मन्वने मनुतेऽवधुष्यते मन ( बचिमनि-  
म्बो विच्य । उष् १।३० ) इति अर्श्विचन् उच्चाज्जातेः ।  
१ मुनिविद्येय । २ जीएड, यह जो मद्य पी कर मतयाला  
हुआ हो ।

मठरना ( हि० पु० ) सोनारों तथा कसगारोंका एक अज्ञार ।  
यह छोटे हथौड़ेकी तरहका होता है । इसका व्यवहार  
उत्त समय होता है जिस समय हथकी चोट ट्रेनेका  
काम पड़ता है ।

मठरी ( हि० स्त्री० ) १ एक प्रकारकी मिठाई । इसका दूसरा  
नाम टिकिया भी है । २ मठी देना ।

मठवार—मध्यभारतके भूषावर पर्यगोंके अन्तर्गत एक ।

मामन्त राज्य । भूगारिमाण १४० घामील है । यह  
राज्य पर्यंत और जङ्गलसे परिपूर्ण है । यहाँ भांगमा  
और भोल जातिके लोग रहते हैं ।

मठाधिपति ( ( सं० पु० ) मठक्य अधिपतिः । मठका  
अध्यक्ष ।

मठाधोग ( सं० पु० ) १ मठका प्रधान कार्यकर्ता । २ मठमें  
रहनेवाला प्रधान साधु या महन्त ।

मठान ( हि० पु० ) मठरना देना ।

मठापतन ( सं० स्त्री० ) मठ, संघाराम ।

मठिया ( हि० स्त्री० ) १ छोटा फुटो या मठ । २ फूलपातु-  
की बनी हुई चूड़ियाँ । मोच जातिकी स्त्रियां ऐसी  
चूड़ियोंको पहनती हैं । ये एक एक बहिमें २०-२५ तक  
होती हैं और कोहनोंसे फलाई तक पहनी जाती हैं ।  
कोहनोके पास जो चूड़ी रहती है वह सबसे बड़ी होती  
है और उसके उपरान्तकी चूड़ियां कमजो छोटी होती  
जाती हैं ।

मठों ( हि० स्त्री० ) १ छोटा मठ । २ मठका अधिकारी,  
मठका महन्त ।

मठुलिया ( हि० स्त्री० ) १ टिकिया या मठरी नामकी ।  
मिठाई । २ मठी देना ।

मठोर ( हि० स्त्री० ) १ दही मघने वा मद्य रखनेकी मठकी ।  
यह साधारण मठकियोंमें कुछ बड़ी होती है । २ मोल  
बनानेकी नाँद, मोलका माड ।

मठोरना । हि० स्त्री० ) १ किसी लकड़ोको सरादनेके  
लिपे रंदा लगा कर ठोक करना । २ मठरना नामक  
हथौड़ेसे धीरे धीरे चोट लगा कर गहने आदि ठोक  
करना ।

मठीरा ( हि० पु० ) एक प्रकारका रंदा । इसमें लकड़ो  
रंदा कर सरादने आदिके योग्य करते हैं ।

महुई ( हि० वि० ) १ छोटा मण्डप । २ पर्णमाला, कुटिया ।  
मद्रक ( म० पु० ) मण्डयनि भूयति क्षेत्रमिति मडि ।  
( यजुर् मन्त्रिण्यंश्वार्यवत्वायि । उष् २।३२ ) इति यजुर्,  
पृषोदरादित्यात् न लोपः । जस्यमैह, मधुभा ।

मद्रकशिरा—मध्यप्रदेशके अगस्तपुर जिल्लातर्गत एक  
नगर । यहाँ मद्रकशिरा तालुकाकी सदर कचहरी है ।  
प्रयाद् है, कि रत्नागिरी सारजित्तय गवर्णपताज नामक शिरा

यहां तक कि कोई कोई रत्न धारण करनेसे रोगनाश और अद्भुत लक्ष्मी प्रसन्न होती है ।

जो मणि कुदिन और कुलग्नमें उत्पन्न होती है वे ही द्योपान्वित समझो जाते हैं । वे द्योपपूर्ण रत्न धारण करनेसे शरीरमें व्याधिरूप नाना शमझूळ होता है । इसी कारण रत्न परीक्षक द्वारा पहले रत्नकी आकृति, वर्ण और द्योपगुणादिको परीक्षा करा लेनी चाहिये । अलावा इसके प्रत्येक मणिके ही तारतम्यानुसार ग्राहण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जातिव्य कल्पित होता है । इन सबकी पुनः श्वेत, रक्त, पीत और कृष्णवर्ण छाया विभेद से ही परीक्षा होती है ।

भारत-भूमि मणिका आकर कह कर चिरप्रसिद्ध है । पृथ्वी पर ऐसा दुर्लभ कोई भी रत्न नहीं जो एक न एक दिन भारतमें संगृहीत हुआ हो । भारतेश्वरी मदारानी विकीरियाके मुकुटका प्रसिद्ध 'कोहिनूर' हीरा, पारस्यशाहके छः लाख रुपयेकी तथा मङ्गूळके इमामकी ३ लाख रुपये मोलकी मुबता और टावनिपर-वर्णिनि विजापुरराजका ५० रत्नो परिमिति माणिक सभी भारतीय रत्न हैं । प्राचीन वेदशास्त्र, रामायण और महा-भारत तथा नाटक्यादिमें मणिका उल्लेख मिलता है । स्वयं नारायण कौस्तुभ मणि धारण करते हैं । श्रीकृष्ण कर्तृक जागवधान पराजय और स्यमन्तक अपहरण पुराणमें लिपियुक्त है । स्यमन्तक-मणिहरणके आन्दोलनमें श्रीकृष्णके प्रति वृथा कलङ्कारोप किया गया था । पीछे श्रीकृष्णने उसका अपनोदन किया । आज भी हम लोगोंके देशमें जो भाद्रमासके नष्ट चन्द्रमाको देखते हैं वे अपनेको वृथा कलङ्कभागी होनेके भयसे स्यमन्तक-हरणकी कथाका उल्लेख करते हुए शान्तिजल धारण करते हैं । उसका मन्त्र इस प्रकार है—

“सिंहः प्रसेनमघीवृ सिंहो जाम्बवता हतः ।

मुकुमारक मापोदीक्षव ह्येष स्यमन्तकः ॥”

फारसमें बहुकालसे मणिका श्राद्ध था । फिनि-कोय वणिक्मण प्रीस और मिथराज्यमें मणि ले जाया करते थे । इजिप्तके धनी लोग पहले मस्तक पर मणि-का मुकुट और हाथमें उसकी अंगूठी पहनते थे । ईसा-जन्मके पांच सदी पहले ऐजिप्तके मन्त्रके प्रतिष्ठाना

ओनोमाक्रिटस तथा हेरोदोतस, प्लेटो, अरिष्टल आदि मरकतादि मणिगुणका उल्लेख कर गये हैं । आलेक-सन्दर मणिमय अलङ्कार पहनते थे ।

इजिप्त और प्रीस-राज्य रोम-साम्राज्यभुक्त होनेके बाद लूटके मालसे रोम-राजमण्डार मणिपूर्ण हो गया था सीजर और क्लियोपेट्रा मणि धारण करते थे । ईसाइयोंके बारह धर्ममतके बक्ता ( Twelve Apostles ) बारह रत्नरूपमें कहे जाते हैं ।

१। पिटार—जाम्बू ।

२। एण्ड्र—सेफायर—नीला ।

३। जन—पमाराड—पन्ना ।

४। जेमस्—केलसोडोनो—पुलक ।

५। फिलिप—सार्दाँनिक—वैगनी स्फटिक ।

६। वार्थोलोमियो—कर्णेलियन—रुधिरारस्य ।

७। मथियस—सूसोलाइट—उज्ज्वल कर्कतन ।

८। टामस—वेरिल—कषकतन ।

९। जेम्स दि इयङ्गर—टोपज—पोखराज ।

१०। यहू उस्तू—सूसोफ्रेज—सज्ज स्फटिक ।

११। मेथियो—एमेथिष्ट ।

१२। सिमेउन—हायासिन्ध—गोमेद ।

६३० ई०में सेमिलके धर्मयाजक सिमोरसने मणिके सम्बन्धमें लिखा है, कि इससे स्वास्थ्य, धन, कान्ति, मान्य, शुभादृष्ट और शक्ति ( क्षमता ) प्राप्त होती है । वर्षके किम्प मासमें कौन मणि धारण करनेसे कीसा शुभफल होता है नीचे उसकी एक तालिका दी जाती है ।

जनवरी—जासिन्ध वा गार्णेट—गोमेद वा पुलक ।

फरवरी—एमेथिष्ट ।

मार्च—छलह्योन वा जासपर ।

अप्रिल—सेफायर—नीला ।

मई—एगेट—अकीक ।

जून—पमाराड—पन्ना ।

जुलाई—ओनिकस—लाल दागवाला हेर्कीक ।

अगस्त—कर्णेलियन—रुधिरारस्य ।

सितम्बर—सूसोलाइट—कषकतन मणि ।

अक्टूबर—वेरिल वा एकोयामेरिन ।



मट्टी—बम्बईप्रदेशके अहमदनगर जिलान्तर्गत एक गण्ड प्राय । यहाँ हिन्दू मुसलमान पवित्र शाहरमजान, महि-  
मवार या कानहोया की दरगाह प्रतिष्ठित रहनेमें यह एक पवित्र तीर्थक्षेत्रमें गिना जाता है । नाना स्थानोंमें हिन्दू और मुसलमान इस तीर्थमें आते हैं ।

इस दरगाहके तथा आम पासके कुछ मन्दिरोँकी छोड़ कर पर्वतके ऊपर कई हिन्दू-राजाओं और सामन्तोंका पास-अपन देगा जाता है । दरगाहके मोतरकी रमजान-की कब्र एक बड़ी भट्टालिका है । यहाँमें कुछ मोचे जाने पर रमजानका साधनगृह पड़ता है । १७२० ई०में विन्दाजी गायकवाड़ द्वारा निर्मित वर्तमान इनामदार और मुत्तारके पूर्वपुरुषका समाधि मन्दिर देगा जाता है । उक्त समाधि-मन्दिरमें विन्दाजी गायकवाड़ और महामात्य निमनाजी सामन्तकी नामयुक्त एक गिला-लिपि है । दक्षिण पूर्वमें जिवाजीके पीत शाहराज-निर्मित (१७३१ ई०) बारछातो है । कहते हैं, कि माता येशु-बाईके साथ जय धे मुगलदिविरमें पन्द्रो हूय, तब उनकी माताने पुत्रके निरापद लौटनेकी कामना कर बारछातो बनानेकी मनना की थी । शाहके प्रारादके समीप और दरगाह-प्रवेशके सामने नगरवाणा अवस्थित है । उसको छत परसे पैडान नगर तक दृष्टिगोचर होता है । कासिम-के विष्णवात जमींदार काहूजी नायकने १७८० ई०में यह नगरस्थाना बनवाया था । महाराष्ट्र-सरदार मोरे दरगाह-के चारों ओर प्राचौर और दो प्रवेशद्वार तथा अहमदनगर के विष्णवात मोजा यणिक, वशाजा मरीका एक दूसरा गेट बनवा गये हैं । बीजापुरके राजाने इसके चारों पार्श्वकी फर्नी पर्वतकी बनवा दी थी । कोलावरके भाऊ साहब अग्रियाने यहाँ चाँदी और पीतलका घोटक प्रदान किया है ।

हिन्दुओंके मध्य प्रवाद है, कि रमजानका पुत्र नाम कनहोया था । ये १३५० ई०में पैडान नगर पधारे । यहाँ साद्व् अन्तो नामक किमी मुसलमानने इन्हें इस्लाम-धर्ममें द्रोहित किया । दोस्तके बाद उनका नाम शाह रम-जान पड़ा । एक दिन ये 'महिमवार' मस्जिद पर चढ़ कर गोदाघरी पार कर गये थे । जमीने मुसलमान-मन्त्राजमें ये पीरशाह रमजान महिमवार नामसे प्रसिद्ध हुए ।

प्रति वर्ष फाल्गुना कृष्णा पक्षमें तिथिको इनके उद्देशमें एक मेला लगता है । कहते हैं, कि समाधि-क्षेत्रके समीप एक निर्दिष्ट स्थान पर चढ़ कर बहुतमे नक्त पर्वत परने कूद पड़े थे, पर पीरकी कृपासे उन्हें जरा भी चोट न आई । दरगाहके लर्च बर्चके लिये सघाट्ट जाह मानम ७५० बीघा निवार जमीन और महाराष्ट्रराज शाह मद्रिमाम दान कर गये थे । किन्तु दुःखका विषय है, कि उक्त ग्रामके जतुर्भाजीको छोड़ कर एक कीटो भी दरगाहके लर्च बर्चके लिये अभी निर्दिष्ट नहीं है ।

मट्टी ( हि० खो० ) १ छोटा मठ । २ छोटा देवालय । ३ पर्णशाला, भोंपट्टी । ४ छोटा घर । ५ छोटा मण्डप ।

मट्टीया ( हि० खो० ) १ मट्टी देवा । ( पु० ) २ मट्टीवाला । मणि ( सं० पु० खो० ) मण ( संघातम्य इन् । उप् ५।१२७ ) इति इन् । १ अक्षरमजानि, प्रस्तरभेद । २ बहु-मूल्य रत्न, जवाहिर । जैसे,—हीरा, पत्ता, मोती, माणिक्य आदि । यह चक्षुका हितकर, जीवल, स्मरण, विषयक, पवित्राकारक, पापनाशक और धीवर्द्धक माना गया है । मणिके मध्य कीम्बहुन ही अर्थ है ।

भूगर्भनिहित बहुमूल्य प्रस्तर ही मणि कहलाता है । इसको गिनती रत्नविशेषमें की जाती है । साधारणतः इन सब पत्थरोंमें यज्ञ या हीरक, मरकत या पद्मा, पध-रान या चूनी, मौक्तिक या मुक्ता, इन्द्रनील या नीलम, वैद्युय या लघुनिवा, गौमीक, विट्टम या प्रवाल और पुष्पराम या पोष्पराम नामक नी रत्न ही प्रधान हैं । एत-द्विज अग्निपुराणके २४वें अध्यायमें महानील, गन्धजास्य, चन्द्रकान्त मूर्धकान्त, रफटिक, पुलक, कर्षेत्तन, ज्योती-रत्न, राजपट्ट, राजमय, सीगन्धिक, यज्ञ, शङ्ख, गौमेद, रघिराज्य, भल्लानक, धृती, सुस्थक, गीम, पीडु, गिरि-धज, भुजङ्गमणि, वज्रमणि, टिट्टिम, पिण्ड, ध्रामर, उत्पल, भोम आदि अनेक प्रकारके रत्नोंका उल्लेख है । राजाजी साहिबे कि ये जयहायमें थे सब मणि धारण करें । आति और गुणकी परीक्षा करके विगुप्त गुणयुक्त मणि धारण करना अवघा वनामाममें रचना उचित है । विगुप्त रत्न मानके शरीरमें अनेक गुण प्रदान करता है ।

यहां तक कि कोई कोई रत्न धारण करनेसे रोगनाश और अदृष्ट लक्ष्मी प्रसन्न होती हैं।

जो मणि कुंठिन और कुलम्भमें उत्पन्न होती है वे ही दोषान्वित समझो जाते हैं। वे दोषपूर्ण रत्न धारण करनेसे शरीरमें व्याधिरूप नाना थमझूठ होता है। इसी कारण रत्न परीक्षक ठारा पहले रत्नकी आकृति, वर्ण और दोषगुणादिको परीक्षा करा लेनी चाहिये। अलग्गया इसके प्रत्येक मणिके ही तारतम्यानुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र जातित्व कल्पित होता है। इन सबको पुनः श्वेत, रक्त, पीत और कृष्णवर्ण छाया विभेद से ही परीक्षा होती है।

भारत-भूमि मणिका आकर कह कर निरप्रसिद्ध हैं। पृथ्वी पर ऐसा दुर्लभ कोई भी रत्न नहीं जो एक न एक दिन भारतमें संगृहीत हुआ हो। भारतेश्वरी महाराणी विकीरियाके मुकुटका प्रसिद्ध 'कोहिनूर' होरा, पारस्यशाहके छः लाल रुपयेकी तथा मङ्कटके इमामकी ३ लाख रुपये मोलकी सुवता और टार्निनियर-वर्णिन विजापुरराजका ५० रत्नो परिमिति नाणिक सभी भारतीय रत्न हैं। प्राचीन वेदशास्त्र, रामायण और महा-भारत तथा नाटकादिमें मणिका उल्लेख मिलता है। स्वयं नारायण कीस्तुभ मणि धारण करते हैं। श्रीकृष्ण कर्तृक जाम्बवान् पराजय और स्वयन्तक अपहरण पुराणमें लिपिबद्ध है। स्वयन्तक-मणिहरणके आन्दोलनमें श्रीकृष्णके प्रति वृथा कलङ्कारोप किया गया था। पीछे श्रीकृष्णने उसका अपनोदन किया। आज भी हम लोगोंके देशमें जो भाद्रमासके नष्ट चन्द्रमाकी देखते हैं वे अपनेकी वृथा कलङ्कभागी होनेके भयसे स्वयन्तक-हरणकी कथाका उल्लेख करते हुए शान्तिजल धारण करते हैं। उसका मन्त्र इस प्रकार है—

"सिंहः प्रसेनमवधीत् सिंहा जाम्बवता हतः।

सुकुमारक मारोदीक्ष्व ह्यप स्वयन्तकः ॥"

फारसमें बहुकालसे मणिका आदर था। फिनि-कोय वणिक्गण ग्रीस और मिथराज्यमें मणि ले जाया करते थे। इजिप्तके धनी लोग पहले मस्तक पर मणि-का मुकुट और हाथमें उसकी अंगूठी पहनते थे। ईसा-जन्मके पांच सदी पहले हेलेनिक-मठके प्रतिष्ठाता

ओनोमाकिडस तथा हेरोदोतस, प्लेटो, अरिष्टटल आदि मरकतादि मणिगुणका उल्लेख कर गये हैं। आलेक-सन्दर मणिमय अलङ्कार पहनते थे।

इजिप्त और ग्रीस-राज्य रोम-साम्राज्यभुक्त होनेके बाद लूटके मालसे रोम-राजमण्डार मणिपूर्ण हो गया था सीजर और क्रिथोपेट्रा मणि धारण करते थे। ईसाइयोंके बारह धर्ममतके बक्ता ( Twelve Apostles ) बारह रत्नरूपमें कहे जाते हैं।

- १। पिटार—जासूफ़र।
- २। एण्ड्र—सेफायर—नीला।
- ३। जन—एमाराल्ड—पन्ना।
- ४। जेमस्—केलसोडोनो—पुलक।
- ५। फिलिप—सादौनिक—थै'गनी स्फटिक।
- ६। वाथॉलोमियो—कर्णेलियन—रुधिरालव्य।
- ७। मथियस—सूसोलाइट—उज्ज्वल कर्कतन।
- ८। टामस—वैरिल—कषकतन।
- ९। जेम्स लि इयङ्गर—टोपज—पोखराज।
- १०। थर्दे उस्—सूसोक्रेज—सख्त स्फटिक।
- ११। मेथिओ—एमेथिष्ट।
- १२। सिमेउन—हायासिन्थ—गोमेद।

६३० ई०में सेमिलके धर्मयाजक सिमोरसने मणिके सम्बन्धमें लिखा है, कि इससे स्वास्थ्य, धन, कान्ति, मान्य, शुभाहृष्ट और शक्ति (क्षमता) प्राप्त होती है। वर्षके किम् मासमें कौन मणि धारण करनेसे कैसा शुभफल होता है नीचे उसकी एक तालिका दी जाती है।

- जनवरी—जासिन्थ या गार्नेट—गोमेद या पुलक।  
 फरवरी—एमेथिष्ट।  
 मार्च—प्लड्डियोन या जासपर।  
 अप्रिल—सेफायर—नीला।  
 मई—एगोट—अक्कीक।  
 जून—एमाराल्ड—पन्ना।  
 जुलाई—ओनिक्स—लाल दागवाला हेकांक।  
 अगस्त—कर्णेलियन—रुधिरालव्य।  
 सितम्बर—सूसोलाइट—कषकतन मणि।  
 अक्टूबर—वैरिल या एकोयामेरिन।

नमस्कर—टोपन—पुण्यनाम ।

दिसम्बर—मणि—मणिप्रपञ्च ।

बहुतेरे मणिप्रपञ्च अर्थविक्रम गुण स्मरण करके उभे धारण करना नही चाहते । प्राग्भक्तो मन्मथो इत्युक्ति-  
ने कर्मो भो मन्मथयान् पत्थर धारण नहीं किया । पर  
भारत-मन्मथो विक्रीणिया मणि धारण करना बहुत  
पसन्द करनी थीं । उन्होंने अपनी कल्याणोंके विषाहकालमें  
भोपल और होल्करमण्डित भद्रद्वार यौतुकमें दिपे थे ।

अनी यूरोपके राजस्य और धनवान् व्यक्तियोंमें  
विषाहके समय अगमो प्रणयिनोको स्वनामाङ्कित मणि-  
मण्डित भंगुटो देवोको प्रथा प्रचलित देवो जानी है ।  
अङ्गरेजो वर्णमालाके प्रमाणुमार कितने स्वच्छ और  
अस्वच्छ प्रस्तर मणिके नाम हैं । भंगुटोके ऊपर  
किमीका भी नाम मन्मिचिजित करनेमें मणियोंका  
आदि-अक्षर ले कर नाम संगठन करना होता है । हम  
लोगोंके भूतपूर्व भारत सम्राट् पद्मवर्षका नाम था  
'Bertie' । उन्होंने विषाहकालमें अपनी प्रणयिनो राज-  
कुमारो अलेक्जन्ड्राको Beryl, Emerald, Ruby, Tur-  
quoise Jacynth और Emerald एक दूसरेके बाद  
बैठा कर नामका परिग्रह दिया था ।

जिस प्रकार मन्म, मर्ष, जम्बूक आदि ज्ञानदेहसे मुक्ता  
उत्पन्न होती है, उसी प्रकार स्थानविशेषमें अङ्ग, शुक्ति,  
भेक और मर्षके मस्तकमें भी मणिको उत्पत्ति कथा  
सुनी जाती है । भव देवके जंगलो जम्बुविद्योय ( Cer-  
vicebra )को देहमें बेजोभर ( Bezoar ) नामक पत्थर  
पाया जाता है । बहुतसे प्राचीन ग्रन्थोंमें तथा टिप्पण-  
लेख, कलाग मन्म पद्मवर्ष, बेलकर आदिके ज्ञानप-  
त्रागतसे इस बातको स्मरणकरना मान्य होतो है । किन्तु  
यह कहां तक सत्य है, उसका कोई सिद्धान्त नहीं किया  
जाता ।

पहले तो कहा जा चुका है, कि होल्करादि मणि पूज्यो-  
मे विक्रयनी है । जिस प्रकार तुलानर प्रोचिप्त यन-  
राजि सिन्धो भगवतोप बाराणसे कोयलेमें क्रागतिल  
होती है अथवा मृत्तिका-वादि अन्धकारके मुक्तेमें पर्यन्त  
भरिपित होती है उसी प्रकार किमी प्रमेमर्षिक हेतु  
ये पत्थर भूगर्भमें पद्मार्थ मणिके परिणत होते हैं । मिट्टी

और बेणु ( वांस ) नामक अङ्गिष्ठ पद्मार्थमें पत्थर पाया  
जाता है । इन सब पद्मार्थोंमें जो उत्कृष्ट है यही रत्न है  
और अग्रजिष्ठ सामान्य पत्थर माल है । स्फटिक  
( Quartz ) और मोमरत्नकी ( Rock crystals ) मणि-  
में गिनती होने पर भी कम मोल होनेके कारण उ-  
च्चमें उसको गणना को गई है । स्फटिकके वर्ण-विभे-  
दानुसार अङ्गरेजोमें विभिन्न नाम हैं ।

मिंहल, भारत, प्रेजिल, अष्ट्रेलिया, कालिफोर्निया,  
साइबेरिया और दक्षिण अफ्रीकाको मणि और मुक्ताका  
आकर कहनेमें कोई अरथुक नहीं । समुद्रगर्भमें मुक्ता  
और भूगर्भमें मणि पाई जाती है, यही प्रसिद्धि है ।

विशुद्ध विवरण हीरकादि द्रव्यमें देवो ।

ऊपर जिन सब प्रस्तरादिका उल्लेख किया गया  
उनको भाषा और नामसे वर्चमान मणिप्रपञ्च ( जीहरी )  
अवगत नहीं हैं । उन्होंने प्रचलित भूत्वयान् प्रस्तरादि-  
का जो नाम दत्तलाया है वह इस प्रकार है—

१ होरा कमान, होरा भोलन्दाजो, होरा परब । २  
चूनी कटा, चूनी नरम, श्यामलेष् ( श्यामदेजमात ),  
चूनी मणिप्रपञ्च । ३ पन्ना पुरातन और दूतन वाज ।  
४ पोकराज । ५ तुरमुनि । ६ नीला । ७ लेगुनिया ।  
८ सोनेका । ९ गोमेष्क । १० भोपल । ११ रंशोषण ।  
१२ रंमिजन । १३ हेकिफ । १४ मोरेष्टोन । १५  
जयरजम् । १६ मुलेमाला । १७ गोरो । १८ पीटो-  
निया । १९ शाने वीनो । २० धनेका । २१ पीरोका ।  
२२ गोदस्ता । २३ एमनो । २४ करकेनक् । २५ राज-  
परम् । २६ मूगा । २७ एमल इत्यादि ।

३ सजाका कण्ठस्थित स्तन, बकरोके गलेको घैलो ।  
४ डिङ्गाय, पुदुपेन्द्रिका अगला भाग । ५ योनिहा  
अगला भाग । ६ नागविद्योय, एक नामका नाम । ७  
अजिन्नर, पद्म । ८ मणिप्रपञ्च । ९ मुक्तिभेद ।

मणिप्रपञ्च ( सं० इति० ) मणिदेवित मणि ( वावादिम्यः इत् ।  
५० श्रुति० ) इति स्वार्थे कन् । अजिन्नर, मिट्टीका  
पत्थर ।

मणिप्रपञ्च ( सं० पु० ) धामपत्ती ।

मणिप्रपञ्च—एक प्राचीन वैद्याकरण । धाम कारकमण्डल,

कारकखण्डनमण्डन, कारकविचार और न्यायरत्न नामक ग्रन्थ लिख गये हैं ।

मणिकर्ण (सं० पु०) कामरूपस्थित शिवलिङ्गभेद । भस्म कूटके ईसानकोणमें मणिकूट नामक एक महागिरि है । इस गिरि पर स्वयं महादेव मणिकर्ण नामक लिङ्गरूपमें अवस्थान करते हैं ।

“भस्मकूटस्य चेशान्यां मणिकूटो महागिरिः ।

मणिकर्णो नाम हरस्तत्र तिष्ठति शिष्टयुगः ॥

स तद्द्वयोजातरूपस्तु मणिकर्ण्य इतीरितः ।

सद्द्वयोजातस्य मन्त्रेण पूजितव्यः सदा शिवा ॥”

( काशिकापु० ८१ अ० )

मणिकर्णिका (सं० स्त्री०) कर्णं भवा इति कर्णं ( कर्णं लक्षणात् कनलङ्कारे । पा ४।३।६५ ) इति कन्, टाप् । काशीस्थित तीर्थविशेष । इसका उत्पत्ति-विवरण काशी खण्डमें इस प्रकार लिखा है—

“त्वदीयात्यास्य तपसो महोपचयदर्शनात् ।

धनमयान्दोलितो मौहिरिह भवयभूषणः ॥

तदान्दोलनतः कर्णान् पपात मणिकर्णिका ।

मणिमिः खंचिता रम्या ततोऽस्तु मणिकर्णिका ॥”

( काशीखण्ड २६ अ० )

महादेवने विष्णुसे कहा था, “हे विष्णो ! तुम्हारा घोर तपस्या देख कर मैं बहुत घबड़ा गया । इस कारण मैंने अपना सिर कुलाया जिससे मेरे कर्णसे विचित्र मणिसमूहखचित मणिकर्णिका नामक कर्णभूषण यहां पर गिर पड़ा । इसी कारण इसका नाम मणिकर्णिका पड़ा है । हे विष्णो ! तुमने अपने चक्र द्वारा ध्वनन किया है, इसीसे इसका नाम चक्रपुष्करिणी हुआ है । किन्तु आज मेरी मणिकर्णिकाके गिरनेसे यह स्थान भाससे मणिकर्णिका नामसे विख्यात होगा ।”

मणिकर्णिकामें स्नान करनेसे अनन्त पुण्यलाभ होता है । समस्त तीर्थोंमें स्नान करनेसे जो पुण्यलाभ होता है मणिकर्णिकामें सिर्फ एक धार मज्जन-स्नान करनेसे वही पुण्य प्राप्त होता है । जो शक्ति मुक्तिका, गोमय और कुजादि तथा स्यशाखोक्त चोकण-मन्त्र, दूर्वा और अपामार्ग इत्यादि पदार्थ द्वारा श्रद्धा-पूर्वक इस मणिकर्णिकामें स्नान करते हैं, उन्हें सब

तीर्थ-स्नान तथा सब प्रकारके दान करनेका पुण्य प्राप्त होता है । यदि कोई श्रद्धापूर्वक भी यथाविधान मणिकर्णिकामें स्नान करे, तो भी उसे स्वर्गकी प्राप्ति होती है ।

मणिकर्णिकामें श्रद्धापूर्वक यथोक्तविधानसे स्नान करके तिल, कुश और यष बादि द्वारा देव और पितृ-तर्पण करनेसे सब प्रकारके यज्ञका फललाभ होता है । श्रद्धापूर्वक मणिकर्णिकामें स्नान और तर्पण करके अभीष्ट मन्त्रका जप करनेसे सभी मन्त्रजपका फल प्राप्त होता है । मणिकर्णिकामें स्नान कर विश्वेश्वरके दर्शन करनेसे सभी यज्ञादिका फल होता है । ( काशीखण्ड २६ अ० )

विशेष विवरण कार्यां शब्दमें देखो ।

२ मणिमय कर्णभूषण ।

मणिकर्णेश्वर (सं० पु०) मणिकर्णया मणिकर्णया वा ईश्वरः । काशीस्थित शिवलिङ्गविशेष ।

काशीमें लिखा है—काशीयात्रीगण मत्स्योदरीमें स्नानादि करके पहले ओङ्कारेश्वरका दर्शन करे । पीछे त्रिविधप, महादेव, रुत्तियास, रत्नेश्वर, चन्द्रेश्वर, केदारेश्वर, धर्मेश्वर, वीरेश्वर, कामेश्वर, विश्वकर्मेश्वर और मणिकर्णेश्वरकी पूजा करना विधेय है । इस प्रकार पर्यायक्रमसे दर्शनादि करना ही उचित है । इच्छानुसार एकके बाद दूसरा नियममङ्गल करके दर्शनादि करनेसे फलको हानि होती है ।

मणिकर्णेश्वर (सं० पु०) मणिकर्णस्तदाख्य ईश्वरः । कामरूपस्थित शिवलिङ्गविशेष ।

‘सर्वतोर्धजले स्नात्वा दृष्ट्वा चन्द्रं सवासं ।

मणिकर्णेश्वरं दृष्ट्वा मुक्तिरस्माच्च’ गते ॥”

( काशिकापु० ८१ अ० )

मणिकाच (सं० पु०) काचविशेष ।

मणिकानन (सं० स्त्री०) मणीनां काननमिव बहुमणि-धारणादस्य तथात्वं । १ फण्ड, गला । २ रत्नवन । मणिकार (सं० पु०) मणि करोतीति कृ-अण् । १ मणि-निर्मित अलङ्कारादि कर्ता, औहरी । पर्याय—वैकरिक । २ न्यायचिन्तामणिकर्ता ।

मणिकुट्टिका (सं० स्त्री०) कुमायकुच्चर मातृभेद ।

मणिकुण्ड—प्राचीन तीर्थभेद । ( शिवपुराण )

मणिमुमुक्षु ( सं० पु० ) त्रिनम्रे ।

मणिपूत ( सं० पु० ) मलयः मणिमयानि कुर्याति निग-  
र्हति पश्य । कामरूपस्थित एक पर्वत । भस्मकृतके  
ज्ञान कर्तव्ये मणिपूत नामक एक महागिरि है । मणि-  
पूत भीर मध्यमाडन पर्वतके मध्य मोहिद्वय मन्दो बहती  
है । इस मणिपूत पर्वत पर स्वयं विष्णु हयमोषमुक्ति  
प्राप्त कर भयमयान करने हैं तथा महादेव भी मणिकर्ण  
नामसे लिहूकरासे विद्यमान हैं ।

"मन्मथस्य नैराश्या मण्युष्टो मरुगिरिः ।  
मणिकर्णो नाम इत्यस्य निरति विगर्हः ॥"  
( काविकावु० ८१ भ० )

"मणिपूतस्वयं शिरोभ्रमादनकम् च ।  
मध्ये स्वर्गि मोहितो मलयुषः ममादिपताः ॥  
मणिकर्णान्ते विन्मूर्च्छमीव स्तम्भपूतः ।  
म प ध्याम प्रमत्तान् विस्तोष्ये च संस्थितः ॥"

( काविकावु० ८० भ० )

मणिपूत ( सं० पु० ) मणि मणिनिर्मितमन्मथार्थं करो-  
तीति इ किं तुक् च । मणिकाम, जाहरी ।

मणिषेनु ( सं० पु० ) षेनुभेद, वृहत्संहिताके अनुसार  
एक बहुत छोटा पुच्छल नारा । इसके पूंछ दूध-सी  
भरित मानी गई है । यह षेनु पश्चिममें उगता है और  
केपल एक पहर दिशाएं देता है ।

मणिमणि ( सं० पु० ) मणीनां मणिः । मणिका आकर,  
मणिको स्थान ।

मणिमुज ( सं० पु० ) एक पणिक वृक्ष । इसके प्रत्येक  
वरणमें नार मगज और एक मगज होता है । इसका  
दूसरा नाम 'अभिकला' और 'जान' भी है ।

मणिमुपनिषत् ( सं० पु० ) उपोभेद । इस उपनिषदे मणि  
वरणमें १५ अध्याय करके रहते हैं । पहले से कर गीदह  
भारत मुक्त और शैव मानी लघु होते हैं । दो, छः, आठ  
और गान पर पनि हैं ।

मणिमाम—विश्वयोगिनिवास्येषो पत्नीना मदीके किनारे  
अपस्थित एक प्राचीन ग्राम ।

मणिमोय ( सं० पु० ) मलयो मोदायां बभूवरायां पश्य ।  
१ कुशिके एक पुष्करा नाम । ( ति० ) २ इत्यन्वयः ।

मणिपूत ( सं० पु० ) १ एक विद्याप । २ मार्वेण-  
नगरीके एक राजा ।

मणिमुमुक्षुनामं लिखा है—मार्वेणराज ब्रह्मरूपके  
एक पुत्र उत्पन्न हुआ । उस बालकके निरंतर स्वर्गके  
समान ज्योतिः सम्पत् एक मुकुटकी देण कर राजाके पुत्र-  
का नाम मणिपूत या मन्मथ रखा । राजा मणिपूतके  
विद्वत्सिंहासन पर बैठ कर अपनी स्थापयता और प्रता-  
पशक्तताका परिचय दिया था । उस समय सिन्हासकी  
किन्नी मुद्रामें एक मणु रहते थे । एक दिन ये सिन्हास-  
कालमें पद्मवृक्षके ऊपर स्थापित एक अमातास्य स्व-  
लोचण्यवनी कुमारीकी देण कर उसे अपने चामपूतमें  
ले भाये । योगिपत्तने उस कन्याका नाम पद्मापती रखा ।  
यह कन्या मुनिके आश्रममें रह कर दिन-दिन ज्ञानिकला  
की तरह बढ़ने लगी । छोटे मुनिधे एने उसे मणिपूत  
राजाके हाथ रीया । पद्मापतीके गर्भमें राजाके पत्नीपार  
नामक एक उत्पन्न हुआ ।

पुत्रके साथ सुलपूर्वक राज्यशासन करने हुए  
राजाने एक महावसुधा अनुष्ठान किया । उसकालमें  
उद्धेनि राजकोप गोल दिया था । राजाकी दानगोला-  
की परीक्षा करनेके लिये देवराज इन्द्र राक्षसरूपमें  
राजाके समीप उपस्थित हुए और गररनपानकी  
इच्छा प्रगट की । माघीकी आकांक्षा पूर्ण करनेमें पुष्पा  
नुष्ठानके समय गररनरूप पापदूष्टमें निमज्जित होना  
पड़ेगा, यह सोच कर राजाने अपने गलेकी काट दासमने  
फटा, 'मेरे गलेमें निकलने हुए रक्तकी पी कर  
अपनी प्यास बुझाओ ।' इसके बाद उस  
राक्षसके पुत्रः रक्तपानकी इच्छा प्रगट करने पर  
राजाने अपनी देहको उद्धे समर्पण किया । राजाके  
देहे दान पर प्रसन्न हो कर देवराजसे अपनी मुक्ति प्राप्त  
की और राजाको माघीपान पर कहा, 'हैं राजन ! मैं  
मुन्मथने माघरत्नने चामपूत हो गया, तुम शीघ्रज्ञापन  
नाम करके समागत परजीभ्य हो जा । अभी तुम  
और क्या चाहते हो, बहो, मुझका धर्मोप पूर्ण करना  
है ।' यह सुन कर राजाने वृक्ष हीमेंके लिये प्रार्थना  
की, क्योंकि यह मनुष्यका मुक्तिसाधक ही मयता है ।  
यह पा कर माघीक जीवण ही महाशक्त मणिपूतमें अपना  
पनस्रोति प्रादुर्भावकी शान कर दिया । परी मन्मथि  
उद्धेमें इस समय अपनी स्त्री और पुत्रका भी दयाप कर  
दिया था ।

राजाके दान पर प्रलुब्ध हो कर दुष्प्रसव नामक एक राजाने उनसे मस्तककी मणि मांगनेके लिये पांच प्राणण को भेजा। राजाने प्रसन्न वदनेसे अपने मस्तकसे उस मणिको उखाड़ कर दे दिया। किन्तु वैध-प्रसादसे उसके मस्तकमें फिरसे मणि उत्पन्न हो गई। उक्त ग्रन्थमें लिखा है—बुद्धदेवने कहा है, कि पूर्ण जन्ममें वे मणिचूड़ थे। इस मणि प्राप्ति का कारण यों है,—

यह मणिचूड़ राजा अरुणके पुत्र थे। राजा अरुणने शिवबुद्धकी समाधिसे ऊपर होरु-वचिन स्तूप बनवा दिया था। उनके पुत्रने उस स्तूपके शिखर पर निज मुकुट और मणि मण्डित एक स्वर्णच्छत्र प्रदान किया। इसी कार्याके लिये वे दूसरे जन्ममें मणिचूड़ हुए थे।

मणिच्छिद्रा (सं० खी०) मणेरिवच्छिद्रमस्यां । १ मेघानामक औपध । २ ऋष्यनाथ्य औपध । ३ महा-मेदा ।

मणिजला (सं० खी०) मणिप्रचूरं जलमस्यां । नदीभेद । मणित (सं० ह्नी०) मण् भावे क । मैथुनकालोन वाष्य, वह वास्तानाप जो खी-प्रसंगके समय किया जाय। पर्याय—रतकुजित ।

मणितारक (सं० पु०) मणेरिव दीप्तिमती तारका यस्य । सारसं पक्षी ।

मणित्थ (सं० पु०) एक प्राचीन ज्योतिर्विद् । चराह-मिहिर और कैशवाकेने इनका नामोल्लेख किया है । ताजकमणित्थ, ताजिकग्रन्थ और साराचली नामक कई ग्रन्थ इनके बनावे हुए मिलते हैं। इनका ग्रीक नाम Manetho है ।

मणिदर (सं० पु०) एक यक्षपति ।

मणिदर्पण (सं० ह्नी०) मणिधिमण्डित दर्पण ।  
(राजत ५११५)

मणिदोष (सं० पु०) रत्नादिका दोष । परीक्षकगण रत्न-परीक्षा द्वारा उस दोषका निर्णय करते हैं ।

मणिद्वीप (सं० पु०) पुराणानुसार रत्नोंका बना हुआ एक द्वीप । यह श्रीरसागरमें है और त्रिपुरसुन्दरीदेवीका निवासस्थान माना जाता है ।

मणिधनु (सं० पु०) १ मणिखचित धनु । २ राजपुत्र-भेद ।

मणिधनुस् (सं० ह्नी०) रामधनु ।

मणिधर (सं० पु०) सर्प, सांप ।

मणिनन्दपण्डित—ध्वजहार-महोदय नामक ज्योतिःशास्त्र-के रचयिता ।

मणिनाग (सं० पु०) नागभेद ।

मणिपद्म (सं० पु०) बोधिसत्त्वभेद ।

मणिपर्वत (सं० पु०) मणोर्नां पर्वतः । गिरिविद्योप ।

मणिपालिन् (सं० त्रि०) मणि पालयति पालि-इति । मणिपालक ।

मणिपुच्छी (सं० खी०) मणि-रिव पुच्छं यस्याः डीप् । मणितुल्यपुच्छयुता स्त्री ।

मणिपुर (सं० ह्नी०) तन्त्रके अनुसार छः चक्रोंमेंसे तिसरा चक्र। यह पद्म नाभिदेशमें अवस्थित है। यह तेजोमय, विद्य तके समान अभायुक, नीले रङ्गका, दश दलोंवाला और शिषका निवासस्थान माना जाता है। कहते हैं, कि यदि इस पर ध्यान लगाया जा सके, तो सब विषयोंका ज्ञान हो जाता है। यह भी कहते हैं, कि इस पर "उ"से "फ" तक अक्षर लिखे हैं।

इस पद्मके ऊपर सुदुर्लभ महापद्म अवस्थित है।

"एतत् परस्वोर्ध्वदेशे महापद्मं सुदुर्लभम् ।

दश पद्मं नीलवर्णं सज्जं धाररूपकम् ॥"

(निर्वाणतन्त्र ६ प०)

इस पद्ममें देवतीर्थ और पञ्चकुण्ड सरोवर हैं। मुक्तिकामी ध्यति इस तीर्थमें स्नान करते हैं।

"मण्यपुरे देवतीर्थं पञ्चकुण्डं सरोवरम् ।

तत्र श्रीकामनातीर्थं स्नाति यो मुक्तिमिच्छति ॥"

(स्त्रयामस)

२ खनामख्यात पुरभेद ।

(भारत १११५।२३) कश्मिर देखो ।

मणिपुर—उत्तर-पूर्व भारतसीमा पर अवस्थित एक देशीय राज्य । यह अक्षां २३° ५०' से २५° ४१' उ० तथा देशां ९३° २' से ९४° ४५' पू०के मध्य विस्तृत है। भू-परिमाण ८४५६ वर्गमील है ।

इसके उत्तरमें नागापहाड़ और नागजातिका निवास पार्वत्य जनधामाग; पश्चिममें कछाड़ जिला; पूर्व-उत्तरमें

झरु और दक्षिणमें तुमसाईं, कुकी और गूतो नामक  
पन्थ जातिकी विधास-भूमि है ।

जो दुर्गम पार्थिवप्रदेशेन आसाम, काछाह, प्रज और  
गडप्राम तक विस्तृत है, उसी पार्थिव भूभागको उपत्यका-  
के ऊपर मणिपुर राज्य बना हुआ है ।

मणिपुरमें गिरिमाळा उत्तर और दक्षिणकी ओर  
फैली हुई है । उन्तानकी ऊँचाई अधिक है । यहाँ  
तक कि मणिपुरकी उपत्यकासे चार दिनका सारुता नै  
करने पर समुद्रपृष्ठमें प्रायः ८००० फुट ऊँची गिरिमाळा  
देखी जाती है । गिरिमाळा प्रायः सर्पिल अयमत्न्य और  
कोणाकार शृङ्खलुके होने पर भी उपत्यकाके समीप बहुत  
कुछ समतल और घोरम देगी जाती है ।

उपत्यकाके ऊपर लोमताक हृद समुच्च और दक्षिण-  
भागमें कैला हुआ है । इस तटके दक्षिण पहाड़के  
किनारे तक समी भूभाग अर्कपित और गुणजङ्गलसे परि-  
पूर्ण है । उत्तर और पूर्वांगमें कुछ घाम देगी जाने है ।  
उत्तरे में उत्तर मणिपुर राजधानी अवस्थित है । उत्तर  
और पश्चिममें अनेक नदियाँ आ कर लोमताक-हृदमें  
गिरी हैं । इसमेंसे एक नदी मणिपुरकी राजधानीके  
भीतर ही कर बह गई है ।

मणिपुरकी ओर जो पश्चर पाया जाता है वह बाट  
पश्चर और स्टेडका ही एक भेद है । कुकी उपत्यका-  
की ओर हृदपश्चर और लीहप्रस्तर यथेष्ट पाया जाता  
है । मणिपुरके उत्तरांगमें जो पश्चर मिलता है, वह  
गूड कडिन और डोग है । इसमें दानिसार (Danisair)  
पश्चर भी देखा जाता है । मणिपुरके उत्तर-पूर्व कोपले  
पाये जाते हैं, पर ये उतने अकष्टे नदीं होने । राज-  
धानीसे प्रायः ७ कोस उत्तर-पूर्व उपत्यकाके ऊपर  
लपलपत है । उस लपलपते ही मणिपुर-वासियोंका  
अभाव दूर होगा है ।

मणिपुरराज्यमें लोमताक हृद ही प्रधान जलानय है ।  
इसका आकार बहुत बड़ा होने पर भी मनि एवं इसका  
आपनन घटना जाता है । भूतवर्षादिद्वारा विभाग है, कि  
पूर्वकालमें मणिपुर एक एक हृदकारमें परिणत था ।  
धीरे धीरे यह अन्तराजि परतो परतो वर्धमान लोमताक-

हृदमें परिणत हो गई है । अन्तराजिगत दूसरा अंग  
उपत्यकाके माना स्थानोंमें भाग नों विकीर्ण है ।

यहाँकी उपत्यका पर उतनी नदियाँ गहीं हैं । मणि-  
पुर और काछाहके पहाड़के मध्य जो राव नदियाँ बहती हैं,  
उनमें जोरो, मुकरु, बराक, एरुङ्ग, ऐङ्गुरा और मेरमिताक-  
प्रधान हैं । जोरो नदी ही अंगरेजी राज्य-सोमासे मणि-  
पुरकी पूषण करती है । इसका जल बहुत स्वच्छ है ।  
बराक नदी ही सबसे बड़ी है । इसमें मुकरु, एरुङ्ग  
और निपाई नदी आ कर मिलती है । सोमकालमें  
सर्वा नदीयोंका जल सूख जाता है ।

मणिपुर पहाड़ पर मागेजद, आरुङ्ग, गुग, देवदाग  
और सुन्दरीरुहा पाया जाता है । इन नदीयों तक ही  
बहुतसे काममें आती हैं । उत्तरांगमें दधेष्ट बांस देना  
जाता है ।

यहाँकी अधित्यकामें तरह तरहके अनाज और तर-  
कारी पाई जाती है । धान ही यहाँका प्रधान अनाज है  
और मणिपुर-वासियोंका प्रधान खाद्य है ।

उपत्यका पर अंगरेजगु उतने नदीं देगी जाने, विन्तु  
पहाड़के अधालमें बहुत स्थल दलपत्त हाथों, बाए, बाँता,  
बनबिलाय और भाट्ट देगी जाने हैं । यहाँ माना जातिके  
हरिण मिलते हैं जिनमेंसे आम्बर हरिण विदेव प्रसिद्ध  
है । दक्षिण और पूर्वांगमें पहाड़ पर ही खेपल गैड,   
अंगली गैस और अंगली गाय देगी जाती है । अंगली  
रूमर, शरमोरा, उरु और लंगूर नामक एक धेणोका  
बन्दर नामा स्थानोंमें विचरण करता है । साधारण  
पक्षियोंका अभाव गहीं है । वर्षाके उष्ण शृङ्ख पर एक  
प्रकारका बड़ा काला बाज पक्षी देखा जाता है ।

मणिपुरमें देसा गिदपधर राय गहीं है, पर दक्षिणाध्व-  
अंगलीसे पृथक्कार पहाड़ों बाँदा देखा जाता है ।  
अन्त्याय स्थानोंमें जो माना जातिके छोटे बड़े सर्प हैं,  
विन्तु ये विशेष अमिच्छक गहीं हैं । परन्तु लङ्करी नामक  
सर्पमें मणिपुरवासो बहुत डरते हैं ।

विशेष—जिसी किस्मोका विचार है, कि महा-  
मानमें जिस मणिपुरका उल्लेख है, अहाँ अहाँ गके माय  
उत्तके पुत्र बन्धु बाहामने युद्ध किया था, यह पक्षी मणिपुर  
है । विन्तु इस भावार्थ-अकारके सुनने जस भी गत्यता

नहीं है। वास्तविक महाभारतीय मणिपुरका वर्तमान अवस्थान निर्णय करनेमें बहुतैरे भूलमें पड़ गये हैं। प्रसिद्ध प्रतन्त्रयचिद्रु फनिहम साहवने मध्यप्रदेशके अन्तर्गत रतनपुरके उत्तर अवस्थित मणिपुरको हो त्रेदि-राज्यकी प्राचीन राजधानी और महाभारतीय मणिपुर बतलाया है। फिर कोई कोई मन्द्राजके निकटवर्ती माहलापुरको प्राचीन मणिपुर कहते हैं। डाकूर अपार्ट-ने दक्षिणात्यके मद्रुरासे ७॥ मील पूर्वमें अवस्थित वर्तमान मणलूर ग्रामको महाभारतीय मणिपुर स्थिर किया है। फिर अयोध्या प्रदेशके सोतापुर जिलेमें प्रवाद है, कि सोतापुरसे १३ कोस दक्षिण मनुआ नामक एक बड़ा ग्राम है। यही ग्राम प्राचीन मणिपुर है। यहां अजुन-के साथ बभ्रुवाहनका युद्ध हुआ था।

उपरोक्त कोई भी मणिपुर महाभारतके समय नहीं था। आधुनिक अलीक प्रवादसे नाना मतकी सृष्टि हुई है।

महाभारतसे जाना जाता है, कि मणिपुरमें कलिङ्गाधिप चित्राङ्गदाके पिताकी राजधानी थी और वह समुद्रके किनारे अवस्थित था। ( भारत ११२१६ अ० )

किन्तु ऊपर जिन सब मणिपुरका उल्लेख किया गया है उनमें कोई भी कभी कलिङ्गराज्यके अन्तर्गत नहीं था। हमने कलिङ्ग शब्दमें यह दिखलाया है, कि वर्तमान गङ्गाम् जिलेके चिकाकोलके निकट जी मनकुर बन्दर है वही कलिङ्गराजधानी महाभारतीय मणिपुर है।  
कलिङ्ग देखो।

वर्तमान मणिपुर राज्य कुछ दिन पहले मणिपुर नामसे प्रसिद्ध नहीं था। ब्रह्मोंके इतिहाससे जाना जाता है, कि यह स्थान पहले क्राशी या काटि नामसे बजता था। आज भी ब्रह्मवासिगण कसेस या कडे नामसे ही इस स्थानका उल्लेख करते हैं। पामहेवा नामक एक नागाराज १७१४ ई०में यहांके राजा हुए और हिन्दूधर्म प्रहण करके उन्होंने अपनी राजधानीका नाम मणिपुर रखा।

वास्तविक मणिपुर और मणिपुरियोंका प्राचीन इतिहास नितान्त अस्पष्ट है। मणिपुरियोंका वेहरा देवनेसे ही वे मोङ्गलोयसे मालूम होते हैं, उसके साथ साथ

जो आर्यरक्त मिश्रित हुआ है, उसमें भी सन्देह नहीं। पोंङ्गके सानराजके सामन्तरूपमें पहले इसी राज्यका उल्लेख मिलता है। पोंगाधिप कोङ्गाने यहांके मणिपुरी सरदारको अपने प्रिय सामन्तरूपमें प्रथम राजदोका प्रदान की थी। इसके बाद इतिहासमें इस भूभागका कोई उल्लेख नहीं है। १७१४ ई०में नागा सरदार पामहेवा यहांके राजा हुए। उनके हिन्दूधर्म ग्रहण करनेके साथ उनका नाम हुआ गरीब नवाज। उनकी प्रजाने मो हिन्दूधर्म ग्रहण किया था।

गरीब नवाजने कई बार ब्रह्मराज्य पर आक्रमण किया था। उनकी मृत्युके बाद ब्रह्मसेना मणिपुर पर चढ़ आई। मणिपुरपति जयसिंहने वृटिश गवर्मेंटको सहायता पहुंचाई थी। इस उपलक्ष्यमें १७६२ ई०को मणिपुरपतिके साथ अंगरेज-राजकी एक सन्धि स्थापित हुई। मणिपुरको सहायताके लिये सेना भेजी गई थी सही, पर वे पीछे लौटा लो गई। १८२४ ई०में अंगरेजोंके साथ जब ब्रह्मराजका युद्ध छिड़ा तब ब्रह्मसेनाने कछाड़, आसाम और मणिपुर पर चढ़ाई कर दी। उस समय मणिपुरपति गम्भीरसिंहने वृटिश गवर्मेंटसे सहायता मांगा। इस बार वृटिश गवर्मेंटने मणिपुरपतिकी सहायतार्थ एक दल सिपाही और कुछ मोलन्दाज सेना कछाड़में भेजी तथा अंगरेज-सेनानायकके अधीन शिक्षित मणिपुरी सेनादल संगठित हुआ। ब्रह्मसेना मणिपुरसे निकाली गई और उसके साथ साथ कुबो उपत्यकासे ले कर निथि नदी तीर तक मणिपुर राज्यकी पूर्वी सीमामें मिला लिया गया। यहां सान जाति आकर बस गई। १८२६ ई०में ब्रह्मराजके साथ अंगरेज गवर्मेंटकी सन्धि स्थापित हुई। इस समय मणिपुर स्वाधीन राज्य समझा जाने लगा। १८३४ ई०में गम्भीरसिंहकी मृत्यु हुई। उनके मृत्युकाल तक मणिपुर आन्तमय और समृद्धिशाली था।

गम्भीरसिंहके मृत्युकालमें उनके पुत्र चन्द्रकीर्तिकी अवस्था सिर्फ एक वर्षकी थी। उनके चचा ( गरीब नवाजके प्रपौत ) नरसिंह राज्यके अभिमायक नियुक्त हुए। १८३४ ई०में वृटिश गवर्मेंटने ब्रह्मराजको कुबो उपत्यका छोड़ दी। इसके बदलेमें मणिपुरराज धार्मिक



१३३५) में देखा महाम्न हुए। इस समय मणिपुरराज्यकी नृत्तल सेना कायम की गई। १८३५ ई०में मणिपुरराज्यका परम्परा संस्कार जालेंके लिये एक पार्लियामेंट एसेम्बली नियुक्त हुए। १८४४ ई०में नरसिंहके राजसंहातका पद-पथ प्रगट हो गया। राजशासक उम चन्द्रवर्षमें नरसिंह की, इस कारण वह पुत्रकी से का क्राउण भाग भाई। ननी नरसिंह ही प्रथम राजा हुए। १८५० ई० (भयने मृत्युवाला) तक वे राजा रहे।

नरसिंहकी मृत्युके बाद उनके भाई द्वैयन्द्रसिंह पृथिन गजमेंएलने मणिपुरके अधिपति बनाये गये। किन्तु नरसिंह नाम मृत्युके न मृत्युके प्रथम उत्तराधिकारी चन्द्र-कीर्ति कलकत्तेके साथ मणिपुर आ गये। द्वैयन्द्रसिंह क्राउण भाग गये। सब चन्द्रकीर्ति ही राजा हुए। १८५१ ई०में अंगरेज गजमेंएलने उन्हें भी मणिपुरका राजा स्वीकार किया।

चन्द्रकीर्ति निश्चिन्त हो कर राज्यभोग नहीं कर सके, पैसाजोके साथ गृहविवादमें घे हमेशा उलझे रहने थे। किन्तु बहु बहुरंग और माला कीजालका अव-लम्बन करने पर भी कोई भी चन्द्रकीर्तिकी सिहासन-धनुष न कर सके। १८७६ ई०में मया-मुदकालमें चन्द्र-कीर्तिने अंगरेजोंकी पक्षे महापत्नी की थी। नागोनि सब अंगरेजोंके कीर्तिसाधुं पर आक्रमण किया उस समय चन्द्रकीर्तिने सेना भेज कर अंगरेजोंका बड़ा उपकार किया था। इसी कारण पृथिन गजमेंएलने उन्हें के. गे. एम. आई, की उपाधिसे भूषित किया।

१८८६ ई०में चन्द्रकीर्तिकी मृत्यु हुई। उनके ही स्त्री भी जिनके मर्त्ये पुत्र उग्रप्र हुए, एक पक्षमें इत्यन्त भारि पौष और दूसरेमें कलचन्द्र, टोकेन्द्रजिन

राज्य पक्षमें भाताने बरमान् पैस की। बड़े भारने उन्हें कोई भाजा हो या नहीं, कद नहीं रहने। किन्तु भातानके चोक कतिधरत पिबनटन साद्व बड़े भारके साथ परामर्श करनेके लिये बन्धुबन्धु भंगे थे। उन्होंने कलकत्तेमें लीड कर एक नव मुद्रवा सेनाएलके साथ मणिपुरकी यात्रा कर दो।

पिबनटनने पार्लियामेंट एसेम्बलीके प्रास्ताविके एक दरवार पैदाया। बड़ेलाएने सेनापति टोकेन्द्रजिनकी पंही करनेका इच्छा दिया है, यह बात मणिपुरमें तमाम फैल गई। पोछे ये भी बन्दी न हो ज्ञान इस भयने कुलचन्द्र दरवारमें उपाधित नहीं हुए। पिबनटनने टोकेन्द्रजिनकी बन्दी कर भेज देनेके लिये कुलचन्द्रको बहना भेजा। इस समय टोकेन्द्रजिनका मध्ये प्रभाव था, उनमें कुलचन्द्र दम करते थे। अतः ये चोक कतिधरका भावेन पालत स कर सके।

पिबनटनके आदेशसे प मंत स्वीकृतने मुरगा सेना से कर राजभयन पर चढ़ाई कर की। मणिपुरी सेना पहलेसे ही तयार थी। बहु संख्या मणिपुरीके निरुद्ध भय संभवक भङ्गेतो सेना महजमें पराम्न हुई। पार्लियामेंट एसेम्बली भी प्रास्ताव न्यून गया और चन्द्रके राजपुरुषगण बन्दी हुए।

यह संवाद ज्ञात हो कलकत्ता पहुंचा। नरसिंह और पृथिनसेवाने प्रयत्न वेधमें मणिपुरकी जा केन। बहु भीमधम मणिपुरी न मद सके। कलचन्द्र और टोकेन्द्रजिन बन्दी हुए। अंगरेजराजने मणिपुर सातवर्षीय एक गालककी सिंहासन पर बिठाया। ये सभी मामलातकी राजा है और भूतपूर्व राजसंहातगण पधरी जिला रियो।

विदेशमें रकनी नहीं होती। वहर्वाणिज्य सुचारुरूपसे चल सके ऐसा स्थलपथ भी नहीं है। अत-र्वाणिज्य जितना चलना चाहिये था, उतना नहीं है। यहांसे ट्यूबोइडा, कपड़ा, गेजम, बेत, मोम, चायका बोज, हाथीका दांत और खर दूर दूर देशोंमें भेजा जाता है।

जाति और धर्म।—मणिपुर अभी हिन्दूका राज्य है। हिन्दूके मध्य जातिभेद है। सुनते हैं, कि मणिपुरी हिन्दू ८ जातिमें विभक्त हैं, किंतु क्षत्रियोंकी ही संख्या और सम्मान अधिक है। यहांके नागा आदि पहाड़ी लोगोंका पहाड़ी धर्म है, किन्तु वे भी अनेकांशमें हिन्दू हैं, सभी देवदेवीकी पूजा करते हैं।

आचार व्यवहार।—सम्प्रान्त हिन्दू सम्प्रदायका आचार-व्यवहार हिन्दूके जैसा विशुद्ध है। मणिपुरमें स्त्री स्वाधीनता है। किन्तु यह स्वाधीनता अपेक्षाकृत नीच सम्प्रदायमें ही अधिक देखी जाती है।

राजत्व।—मणिपुरराज्यका राजत्व उपादा नहीं है। भारत और ब्रह्मकी रीत्यमुद्रा भी मणिपुरमें चलती है। धान चावलमें ही बहुतेरे राजस्य चुकाने हैं, किन्तु आजकल मुद्राका भी प्रचार हो गया है।

अदालत।—मणिपुरमें दो बड़ी अदालत हैं, एक साधारण, दूसरी सामरिक। साधारण विचारालयमें साधारण प्रजाका मामला मुकदमा होता है। इसका नाम चिरप है। चिरप या साधारण विचारालयमें १३ प्रवीण विचारपति रहते हैं, सभी राजाके नियोजित हैं। सामरिक विचारालयमें ८ प्रवीण विचारपति बैठते हैं, सभी उच्चपदस्थ सेनापति हैं। इस अदालतमें शुद्ध सैनिकोंका ही विचार होता है।

सैन्य-शामन्त।—मणिपुर छोटा राज्य है। निज मणिपुर उपत्यकामें १ लाख ३६ हजारसे अधिक लोगोंका वास नहीं है। पहाड़ी जंगली आदि मिला कर दस लाखके करीब होगा। मणिपुर चारों ओर पर्वत प्राचीरसे घिरा है; पथघाट अधिक नहीं है। यहां कुल मिला कर ५६ हजार पदाति सेना, ५०० गोलन्दाज वा कमानीसेना और ५०० करीब सौधर सेना है। अलावा इसके ७००के करीब फुकिपलटन भी हैं।

मणिपुण्यक ( सं० पु० ) सहदेवके शंखका नाम।  
मणिप्रदीप ( सं० पु० ) मणिमयः प्रदीपः। मणिमय-प्रदीप। ( भागवत ५।६।६२ )  
मणिप्रभा ( सं० स्त्री० ) छन्दोभेद।  
मणिवन्ध ( सं० पु० ) मणिवन्धयते यत्, अधिकरणे धन्। १ प्रकोष्ठ और पाणिका सन्निधस्थान, कलाई। पर्याय—मणि, करप्रन्धि, करप्रन्धिक। २ सैन्यव लयणाकार पर्वतभेद। ३ एक नवाक्षरीवृत्त। इसके प्रति चरणमें भगण, मगण और सगण होते हैं।  
मणिवन्धन ( सं० क्त्वा० ) करप्रन्धि, कलाई।  
मणिबीज ( सं० पु० ) मणिरिव दर्शनीयं बीजं यस्य। द्वाङ्मिवृक्ष, अनार।

मणिवेगम—बङ्गालके नवाब मीरजाफरकी प्रधाना महिषी। सिराज-उद्दौलाके विवाहके समय बड़ा धूमधाम हुआ था, उसी समय बहुत-सी नरकी पश्चिमसे मुर्शिदाबाद आई थी जिनमेंसे मणिवेगम और बन्धुवेगम यही दो रूप और गुणमें श्रेष्ठ थीं। मीरजाफरने इन दोनोंको अपने अन्तःपुरमें रखा था। मणिवेगमके रूप-सौन्दर्य और बुद्धिमत्ता पर मीरजाफर आसक्त हो गये। उनके बङ्गालके नवाब होने पर यही मणिवेगम उनकी प्रधाना वेगम हुईं।

इस मणिवेगमके गर्भसे मीरजाफरके कई एक पुत्र थे। उनमेंसे नजम-उद्दौला और सहफ-उद्दौला कुछ दिनोंके लिये नवाब हुए थे।

नजम-उद्दौलाको मृत्यु होनेके बाद उनका सोलह वर्षका भाई तख्त पर बैठा और उनको माता मणिवेगमके हाथ ही राज्यका कुल भार रहा। नवाब मीरजाफरका गुन धन उनके हाथ लगा इसलिये उनका प्रताप भी बढ़ गया। १७७० ई०में चेचकसे सहफ-उद्दौलाकी मृत्यु होने पर बन्धुवेगमका गर्भजात (मीरजाफरका चतुर्थ पुत्र) सुवारक-उद्दौला वारह वर्षकी उम्रमें नवाब हुआ। उसकी विमाना मणिवेगम ही एकमात्र उसकी अविभायिका हुई। इसी समय नन्दकुमारके पुत्र, शुक्दास 'राजा गीदुपत'की उपाधि धारण कर नवाबके दीधान हुए। बाद उसके नन्दकुमारकी फांसी पर मणिवेगम और राजाशुक्दास अपने अपने पदसे ह्युत हुए। एक एक कर

१३३७) को देना महमन हुए। इस समय मणिपुरराज्यकी नृपम श्रीमा कायम की गई। १८३५ ई०में मणिपुरराज्यका परमार संस्थान जाननेके लिये एक पालिटिकल एजेण्ट नियुक्त हुए। १८४४ ई०में नरसिंहके प्राणसंहारका पड़-वस्तु प्रगट हो गया। राजमाता उस पद्वयन्त्रमें जामिन् थीं, इस कारण यह पुत्रकी ले कर कड़ाष्ट्र भाग भाई। श्रीमो नरसिंह ही प्रथम राजा हुए। १८५० ई० (अपने मृत्युकाल) तक वे राजा रहे।

नरसिंहकी मृत्युके बाद उनके भाई देवेन्द्रसिंह श्रुतिन गवर्मेण्टने मणिपुरके अधिपति बनाये गये। किन्तु तीन मास गुजरने न गुजरने प्रथम उसराजिकारी चन्द्र-कोर्णिस बलबलके साथ मणिपुर आ धमके। देवेन्द्रसिंह कड़ाष्ट्र भाग गये। अब चन्द्रकोर्णिस ही राजा हुए। १८५१ ई०में अंगरेज गवर्मेण्टने उन्हें भी मणिपुरका राजा स्वीकार किया।

चन्द्रकोर्णिस निश्चिन्त हो कर राज्यभोग नहीं कर सके, पैमातीके साथ गृहविवादमें वे हमेशा उलझे रहते थे। किन्तु बहुत पदवन्त और नाना कौशलका अय-लम्बन करने पर भी कोई भी चन्द्रकोर्णिसको मिहामन-च्युन न कर सके। १८७१ ई०में नागा-युद्धकालमें चन्द्र-कोर्णिसने अंगरेजोंकी सघेष्ट सहायता की थी। नागोंने जब अंगरेजोंके कीहिमादुर्ग पर आक्रमण किया उस समय चन्द्रकोर्णिसने सेना भेज कर अंगरेजोंका बड़ा उपकार किया था। इसी कारण श्रुतिन गवर्मेण्टने उन्हें के. सी. एस. आई. की उपाधिसे भूषित किया।

१८८६ ई०में चन्द्रकोर्णिसकी मृत्यु हुई। उनके दो स्त्री थी जिनके गर्भमें ६ पुत्र उत्पन्न हुए; एक पक्षमें शूरचन्द्र आदि पांच और दूसरेमें कुलचन्द्र, टीकेन्द्रजिन् आदि चार। शूरचन्द्र ही पहले वैतुक सिंहासन पर बैठे थे, किन्तु १८९० ई०में पैमातीके इरते थे राज्य छोड़ कर भद्ररेजोंके आश्रयमें बलकसा आये। उपर कुलचन्द्र नाममात्रको राजा और टीकेन्द्रजित सेनापति हुए, किन्तु यथापिमें टीकेन्द्रजित राज्यके सर्वप्रथमकर्ता थे। कुलचन्द्रकी भी श्रुतिन गवर्मेण्टने राजा स्वीकार किया।

इपर शूरचन्द्रने कलकत्तेमें बड़े लाटके निरन्तर पुनः

राज्य पानेकी भ्रान्तिये देखासन पैग की। बड़े लाटके उन्हें कोई भागा दी या नहीं, कह नहीं सकते। किन्तु भ्रासामके चोक्त फार्मिडर फिन्गटन साइब बड़े लाटके साथ परामर्श करनेके लिये बन्द कते जाये थे। उन्होंने कलकत्तेमें लौट कर एक कले गुल्फा-सेनाइलके साथ मणिपुरकी यात्रा कर दी।

फिन्गटनने पालिटिकल एजेण्टके प्रासादमें एक दरबार पैठाया। बड़े लाटने सेनापति टीकेन्द्रजिन्की पंती करनेका हथम दिया ही, यह बात मणिपुरमें तमाम फैल गई। पीछे वे भी बन्दी न हो जाय इस भयसे कुलचन्द्र दरबारमें उपस्थित नहीं हुए। फिन्गटनने टीकेन्द्रजिन्की बन्दी कर भेज देनेके लिये कुलचन्द्रकी कहना मंजूर। इस समय टीकेन्द्रजिन्का सघेष्ट प्रभाव था, उनमें कुलचन्द्र डरा करते थे। अतः वे चोक्त फार्मिडरका आदेश पालन न कर सके।

फिन्गटनके आदेशसे कर्नल स्कीन्ने गुल्फा में जा कर राजमयन पर चढ़ाई कर दी। मणिपुरमें पहरेसे हो तयार थी। बहुत संतपक मणिपुरीके अन्य संव्यक भद्ररेजों सेना सहजमें परास्त हुए। टिकल एजेण्टका भी प्रासाद लुंटा गया और चन्द्र-राजपुरुषगण बन्दी हुए।

यह संवाद श्रोत्र ही कलकत्ता पहुंचा। तीन क्षोरने श्रुतिनसेताने प्रयाल पैगने मणिपुरकी जा घेरा। यह भीमचंग मणिपुरी न सह सके। कुलचन्द्र और टीकेन्द्रजिन् बन्दी हुए। अंगरेजराजने मणिपुर राजपंजीय एक गालकत्ता सिंहासन पर बिठाया। ये श्रीमो नाममात्रकी राजा ही और भूतपूर्व राजमहिलागण पथरी जिला-रिषी।

पयगट।—कड़ाष्ट्रने मणिपुर पर्यंत एक प्रजान्त्र पथ ही। १८४२ ई०में प्रता-समर देग होनेके बाद अंगरेज गवर्मेण्टने मयिपन् सेनागालना और यात्रायानकी सुविधाके लिये इस पथकी बनपाया था। १८६५ ई० तक यह पथ अंगरेजोंकी देकरेपमें रहा, पीछे मणिपुर-राजके हाथ दे दिया गया।

पदवाच बाधिप्य।—मणिपुरका पदिवाधिपय अधिर्क नही है। जलपथ नहीं रहनेके कारण पानिज्यश्रव्यकी

विदेशमें रहनी नहीं होती। वहिर्वाणिज्य सुचारुरूपसे चल सके ऐसा स्थलपथ भी नहीं है। अतर्वाणिज्य जितना चलना चाहिये था, उतना नहीं है। यहांसे टट्टोडोड़ा, कपड़ा, रेशम, वेत, मोम, चायका बोज, हाथीका दांत और खर दूग दूर देशोंमें भेजा जाता है।

जाति और धर्म—मणिपुर अभी हिन्दूका राज्य है। हिन्दूके मध्य जातिभेद है। सुनते हैं, कि मणिपुरमें हिन्दू ८ जातिमें विभक्त हैं, किंतु क्षत्रियोंकी ही संख्या और सम्मान अधिक है। यहांके नागा आदि पहाड़ी लोगोंका पहाड़ी धर्म है, किन्तु वे भी अनेकांगमें हिन्दू हैं, सभी देवदेवीकी पूजा करते हैं।

आचार-व्यवहार—सम्प्रान्त हिन्दू सम्प्रदायका आचार-व्यवहार हिन्दूके जैसा विशुद्ध है। मणिपुरमें स्त्री स्वाधीनता है। किन्तु यह स्वाधीनता अपेक्षाकृत नीच सम्प्रदायमें ही अधिक देखी जाती है।

राजस्व—मणिपुरराज्यका राजस्व ज्यादा नहीं है। भारत और ब्रह्मको रीणमुद्रा भी मणिपुरमें चलती है। धान चावलमें ही बहुतेरे राजस्व चुकाते हैं, किन्तु आजकल मुद्राका भी प्रचार हो गया है।

अदालत—मणिपुरमें दो बड़ी अदालत हैं, एक साधारण, दूसरी सामरिक। साधारण विचारालयमें साधारण प्रजाका मामला मुकद्मा होता है। इसका नाम निरप है। निरप या साधारण विचारालयमें १३ प्रवीण विचारपति रहते हैं, सभी राजाके नियोजित हैं। सामरिक विचारालयमें ८ प्रवीण विचारपति बैठते हैं, सभी उच्चपदस्थ सेनापति हैं। इस अदालतमें शुद्ध सैनिकोंका ही विचार होता है।

सैन्य-वामन्त—मणिपुर छोटा राज्य है। निज मणिपुर उपत्यकामें १ लाख ३६ हजारसे अधिक लोगोंका वास नहीं है। पहाड़ी जंगली आदि मिला कर ढाई लाखके करीब होगा। मणिपुर चारों ओर पर्वत प्राचीरसे घिरा है; पषघाट अधिक नहीं है। यहां कुल मिला कर ५६ हजार पदाति सेना, ५०० गोलन्दाज या कमानीसेना और ५०० करीब सौबर सेना है। थलाया इसके ७००के करीब कुकिलपटन भी है।

मणिपुरपत्र ( स० पु० ) सहदेवके शंखका नाम।  
मणिप्रदीप ( स० पु० ) मणिमयः प्रदीपः। मणिमय-प्रदीप। ( भागवत ५।६।६२ )  
मणिप्रभा ( स० खों० ) छन्दोभेद।  
मणिबन्ध ( स० पु० ) मणिविध्यते यत्, अधिकरणे घञ्। १ प्रकोष्ठ और पाणिका सन्धिस्थान, कलाई।  
पर्याय—मणि, करप्रन्धि, करप्रन्धिक्य। २ सैन्यव लवणाकार पर्वतभेद। ३ एक नवाक्षरीयुक्त। इसके प्रति चरणमें भगण, मगण और सगण होते हैं।  
मणिबन्धन ( स० क्रा० ) करप्रन्धि, कलाई।  
मणिबोज ( स० पु० ) मणिरिव दर्शनीयं चीजं यस्य। दाडिम्बवृक्ष, अनार।

मणिचेमग—बङ्गालके नवाब मीरजाफरकी प्रधाना महिषी। सिराज-उद्दौलाके विवाहके समय बड़ा धूमधाम हुआ था, उसी समय बहुत-सी नक्तको पश्चिमसे मुर्शिदाबाद आई थी जिनमेंसे मणिचेमग और बन्धुचेमग यही दो रूप और गुणमें श्रेष्ठ थीं। मीरजाफरने इन दोनोंको अपने अन्तःपुरमें रखा था। मणिचेमगके रूप-सौन्दर्य और बुद्धिमत्ता पर मीरजाफर आसक्त हो गये। उनके बङ्गालके नवाब होने पर यही मणिचेमग उनकी प्रधाना वेमग हुईं।

इस मणिचेमगके गर्भमें मीरजाफरके कई एक पुत्र थे। उनमेंसे नजम-उद्दौला और सहफ-उद्दौला कुछ दिनोंके लिये नवाब हुए थे।

नजम-उद्दौलाकी मृत्यु होनेके बाद उनका सोलह वर्षका भाई तख्त पर बैठा और उनको माता मणिचेमगके हाथ ही राज्यका कुल भार रहा। नवाब मीरजाफरका गुन घन उनके हाथ लगा इसलिये उनका प्रताप भी बढ़ गया। १७७० ई०में चेचकले महफ-उद्दौलाकी मृत्यु होने पर बन्धुचेमगका गर्भजात ( मीरजाफरका चतुर्थ पुत्र ) सुवारक-उद्दौला वारह वर्षकी उम्रमें नवाब हुआ। उसकी विमाता मणिचेमग ही एकमात्र उसकी अभिभाविका हुई। इसी समय नन्दकुमारके पुत्र गुरुदास 'राजा गीरुपत'की उपाधि धारण कर नवाबके दीधान हुए। बाद उसके नन्दकुमारकी फांसी एवं मणिचेमग और राजागुरुदास अपने अपने पदसे च्युत हुए। एक एक कर

अद्वैत-कल्पनासे मन्त्रार्थोंका सब अधिकार हटा दिया। मन्त्रियोगमने जो अद्वैत-कल्पनासे बार बार स्थापित हो कर अन्तमें सुरभामकी सिधायी।

मणिमद्र (सं० पु०) मणिपु मद्र, यथा मणिभिर्मद्रमस्य, मणिमुक्तादि धनाधिपथादस्य तथात्वं। १ जिनके मध्य पुरुषदक्षिणेश। पचांव—जम्बू, पूर्वयश, जलेन्द्र। २ जियताके एक प्रधान गणका नाम। ३ एक प्राचीन कवि। शुभायिनायली ग्रन्थमें इनकी कविता उद्धृत हुई है।

मणिमद्रक (सं० पु०) १ जातिविशेष। २ नागभेद।

मणिमय (सं० पु०) ध्यानी युद्धभेद।

मणिमावर (सं० पु०) सारस पक्षी।

मणिमिति (सं० स्त्री०) १ रक्षादिके ऊपर निर्मित मिति। २ अनन्त नागका घर।

मणिभू (सं० स्त्री०) मणीनां भूमि, भूमिः आकरः। मणि-भूमि, यह गान जिममेंसे रत्न आदि निकलते हैं।

मणिभूमि (सं० स्त्री०) मणीनां भूमिः आकरः मणिमयी भूमिरिति वा। १ रत्नकी गान। २ पुराणानुसार हिमालयके एक तीर्थका नाम। स्कन्दपुराणके हिमवत्पुराणमें इसका माहात्म्य वर्णित है। (शिववत् ८।१०१)

मणिभूमिका (सं० स्त्री०) कृषिम पुत्रिका, बनायटी कन्या।

मणिमङ्गल—मन्त्राजप्रदेशके चेङ्गउपट जिलास्तर्गत एक अति प्राचीन ग्राम और प्रगतस्थानुसन्धाधीका दृष्टव्य स्थान। यहाँ गोपुरयुक्त एक सुन्दर और प्राचीन मन्दिर है। उसकी भावति बहुत कुछ महाकालपुरके महद्वेष-रघुसे मिलती जुलती है। इसी ढंग पर बीड-जीव्यगुहा बनाई गई है।

मणिमञ्जरी (सं० स्त्री०) छन्दोभेद। इस छन्दके प्रति चरणमें १६ अक्षर क्रमके रहते हैं।

मणिमण्डल—दक्षिणार्धके एक राजा, नायकके पुत्र।

मणिमण्डप (सं० पु०) मणिमया मण्डपः। रत्नमय युद्ध।

मणिमन्त्र (सं० स्त्री०) मणिरन्वीनि मनुष्यं। मणिविनिष्ट, रत्नमूर्ति। (पु०) २ नागयिदोष। ३ राक्षसविशेष, कुबेरका सखा। ४ पश्चिमस्थित देशभेद। सिन्धी होंव। ५ पुरभेद। (भारत ३।६६।४)

मणिमन्त्र (सं० स्त्री०) छन्दोभेद। इस छन्दके प्रति चरणमें १६ अक्षर क्रमके रहते हैं।

मणिमन्त्र (सं० स्त्री०) मणिरिव मन्त्रवत् इति मणि-मन्त्र-कर्मणि, घञ्। १ सौम्य लक्षण। २ परीत-विशेष।

मणिमय (सं० स्त्री०) मणि स्वरूपे मयट्। मणि स्वरूप।

मणिमर्दन (सं० पु०) तोषोक्षितभेद।

मणिमाजरा—पञ्जागप्रदेशके शम्भाला जिलेका एक नगर। यह शम्भाला जहरसे २३ मील उत्तर पर्वतके पाददेशके निकट अवस्थित है।

सिपा अम्बुद्वयके पहलेका इस नगरका कोई उल्लेख नहीं मिलता। मुगल-साम्राज्यके अघःपतनके समय १७६२ ई०में गरोबदास नामक एक सिपा-सरदारने ८४ ग्राम दखल कर मणिमाजरामें प्रधान अड्डा किया। उनके पिता मुसलमानोंके अधीन उक्त ८४ ग्रामोंके तहसिलदार थे। गरोबदासने पोछे विजौर दुर्ग जीत कर भरना अधिकार बढ़ाया। पतियालाके राजाने छोड़े दिनोंके अन्दर उक्त दुर्ग उनसे छीन लिया। गरोबके बड़े लड़के गोपालसिंहने १८०६ और पोछे १८१४ ई०में गुलाम-युद्धके समय वृष्टिग गयमेंलटकी खासी मद्द पहुंचाई थी। इस प्रस्थुपकारमें उन्हें राजाकी उपाधि मिली थी। १८१६ ई०में उनकी मृत्यु हुई। इस धंजके शेष राजा भगवानदास पार्षिक प्रायः तीस हजार रुपये जागीरका भोग किया करते थे। उनकी मृत्युके बाद गारो सम्प्रति वृष्टिग सरकारने जप्त कर ली।

मणिमाजराके समीप मनसादेवोंका एक प्रसिद्ध मन्दिर है। देवोंके सामने प्रतिवर्ष एक बड़ा मेला लगता है जिससे यहाँके राजाकी विशेष आय होती है।

मणिमाला (सं० स्त्री०) मणि-गिरिमला माला गार्क-पांथियादियन्ममासः। १ हार, मणियोंकी माला। २ हौमि, वामक। ३ लक्ष्मी। ४ धरतदायिणेश। ५ छन्दो-भेद, शारङ्ग अक्षरोंका एक वृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें लगन, यंगण, मगण, यगण होते हैं।

मणिमिध—१ एक संवृत प्रणकार। इन्होंने व्याकरणकी रचना की। २ पुस्तकदर्पणके प्रणेता।

मणिमुक्ता (सं० स्त्री०) नर्भेद।

मणिमखल (सं० वि०) रत्नहारविमण्डित, मणिमुक्तासे सजा हुआ।

मणिमेष (सं० पु०) १ पयतभेद। २ भारतके दक्षिण-भाग। अवस्थित जनपदभेद। (मार्कण्डेय ० ५८ अ०)

मणिवार—युक्तप्रदेशके बलिया जिलान्तर्गत बांसडीह तहसीलका एक ग्रहण। यह अक्षां २६° १६' उ० तथा देशां ८४° ११' पू० गोगरा नदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। जनसंख्या साढ़े नौ हजारके करीब है। पहले यहाँ जमींदारोंके बड़े बड़े मकान थे जो अभी तहस तहस हो गये हैं। जिले भरमें यही स्थान प्रस्य-विक्रपको प्रधान हाट है। चीनी और कपड़ेका साधारण व्यवसाय चलता है।

मणवादी—मध्यप्रदेशके विलासपुर जिलेमें प्रवाहित एक नदी। यह लोगी पहाड़से निकल कर ७० मील रास्ता नै. कर शिवनाथमें गिरती है।

मणिरङ्ग—काश्मीरराज्यका एक गिरिमण्डल। यह अक्षां ३१° ५६' उ० तथा देशां ७८° २४' पू०के मध्य अवस्थित है। कुनावरसे चिन्तुपाराखत द्वारवङ्ग नदीके उत्पत्ति-स्थान तक यह गिरिमण्डल समुद्रपृष्ठसे प्रायः १५ हजार फुट ऊँचा होगा। वर्षभरमें चार मास यह रास्ता बंद रहता है।

मणिरत (सं० पु०) बौद्धाचार्यभेद।

मणिरत्न (सं० क्ली०) हीरा, जवाहिर।

मणिरत्नमय (सं० वि०) नाना रत्नयुक्त।

मणिरत्नवत् (सं० वि०) मणिरत्न सट्टा।

मणिरथ (सं० पु०) १ मणिमय रथ। २ बोधिसत्व-भेद।

मणिराग (सं० क्ली०) मणेरिय राग; धर्णी उज्जयिन्यमस्य। १ हिंमुल, गिराफ। २ गिका वर्ष।

मणिराज (सं० पु०) मणीनां राजा, राजाऽसत्विभ्यएच् इति ङच्। मणीन्द्र, भ्रेष्ठमणि।

मणिराम—इस नामके अनेक संस्कृत ग्रन्थकारोंके नाम मिलते हैं जिनमेंसे निम्नलिखित उल्लेखयोग्य हैं। १ गुणरत्नमाला नामक वैद्यक ग्रन्थकार। २ भवितलहरी के प्रणेता। ३ वृत्त रत्नावलीके रचयिता। ४ श्लोक संग्रहकार। ५ नीलकण्ठके पुत्र। इन्होंने १७५८ ई०में

ऋतुमंहारचन्द्रिका लिखी। ६ एक प्रसिद्ध टोकाकार, रामचन्द्रके पुत्र और जयरामके पीत। आप कादम्बर्यंसार और भामिनीविलासटीका लिख गये हैं। मणिरामदीक्षित—एक विख्यात स्मार्त्त पण्डित, गङ्गारामके पुत्र और निवदत्त शर्माके पीत। इन्होंने राजा अनूपसिंहके कहनेसे अनूपविलास वा धर्माश्रुधि नामक धर्मशास्त्र, अनूप ध्ववहारसागर नामक ज्योतिःशास्त्र तथा आचाररत्न, समयरत्न और कृतिवत्सर नामक कई ग्रन्थ लिखे हैं।

मणिरामपुर—हुगली जिलेका एक नगर। यह वारकपुरके निकट अवस्थित है। यहाँ अङ्गरेजी विद्यालय है।

मणिरोग (सं० पु०) पुरुषेन्द्रियका एक रोग। इसमें लिङ्गके अग्रभागका चमड़ा उसके मस्तक पर चिपक जाता है और मूत्रमार्ग कुछ चौड़ा हो कर उसमेंसे मूत्रकी महीन धारा गिरती है।

मणिरौहिनी—नेपालके स्वयम्भुक्षेत्रके अन्तर्गत एक तीर्थ।

मणिल (सं० वि०) मणि-सिध्मादित्वादस्त्यर्थे लच्। मणियुक्त।

मणिलिङ्गेश्वर—स्वयम्भुक्षेत्रमें अष्ट वीतराग लोगोंको सुख-समुद्रिके वद्ध नार्ण जो अवस्थान करते हैं उनमेंसे यह मणिलिङ्गेश्वर एक है।

मणिव (सं० पु०) मणि-अस्त्यर्थे व। नागभेद।

मणिपणिक—नयद्वीप; कृष्णनगर भादि स्थानवासी जानिविशेष। पहले यह जाति अनेक स्थानोंमें 'मणिपणिक' नामसे परिचित थी और जहाँगीका काम करती थी। धीरे धीरे इन लोगोंने दूसरा व्यवसाय पकड़ लिया। ये लोग हिन्दू हैं, आचार-व्यवहार नवशासकोंके जैसा है। नवशासकोंके साथ इनका हुक्का पानी चलता है।

अभी इस जातिके लोग अपना पूर्ण व्यवसाय छोड़ कर लाखका व्यवसाय करने लग गये हैं। लाखसे वे दो भिन्न भिन्न पदार्थ निकालते हैं, एक लाक्षारस और दूसरा जतु। लाक्षारस गाढ़ा लोहितवर्ण है। स्त्रियां लाखकी चूड़ियां बनाती हैं। इस व्यवसायमें योने पूंजीकी जरूरत पड़ती है पर अधिक मुनाफा और और लोग भी इस व्यवसायको करने

ये लोग दोनो दुर्गोत्सवादि हिन्दू पर्वोंका यथा-  
शक्ति वालन करने हैं । मयनामवाचक, प्रादय इन्के  
सुसोदित होते हैं ।

गान्धिवर, शगनापाड़ा भादि प्रमोके गोन्वामिगण  
हो इम ज्ञानिके शोभासुद ही । यह ज्ञाति प्रचानतः चैत्यय  
भीरु प्राक सम्प्रदाय-अवलम्बी है । दोनो हो सम्प्रदाय  
पूजा, भास्त्रि, मातामेवा भादि हिन्दूपर्वान्चरित क्रिया-  
कथायका अनुष्ठान करते हैं ।

मणिवाल ( सं० पु० ) मणिरिय शूत्रयान् वालः केजोऽभ्य ।  
भविर्दयस्य पशुभेद ।

मणिवाहन ( सं० पु० ) नृपभेद । ( भाग १६३ अ० )

मणिमोक्ष ( सं० पु० ) दान्तिमपृक्ष, अनारका पेड़ ।

मणिभृङ्ग ( सं० पु० ) मणिमयः भृङ्गः । मणिमय भृङ्ग ।

मणिमौल ( सं० पु० ) पुराणानुसार एक पर्वतका नाम  
जो मन्दराचलके पूर्वमें है ।

मणिप्रवाम ( सं० पु० ) इन्द्रमौलमणि, नीलम ।

मणिमर ( सं० पु० ) मणिमिः म्रियते मय्यते प्रत्यते  
इति भावः, मृ-कर्मणि अच् । मुक्ताहार, मोतियोंको  
माला ।

मणिमूत्र ( सं० स्त्री० ) मुक्तामाला ।

मणिमोपान ( सं० स्त्री० ) मणिमय मोपान, रत्नकी  
सोपनी ।

मणिमन्थ ( सं० पु० ) नागभेद । ( भाग १५० अ० )

मणिमन्त्र ( सं० पु० ) मणिमयः मन्त्रः । मणिमय  
मन्त्र, मणिका बना हुआ मन्त्र ।

मणिमाला ( सं० स्त्री० ) मणिमाला ।

मणिहर्म्य ( सं० स्त्री० ) मणिमय हर्म्य, मणिका घर ।

मणिहार—मुक्तप्रदेशकी ज्ञानिविद्येय । टील भादि  
वस्त्रनामं कर्त्तव्य वेडा कर मन्त्रद्वारादि प्रस्तुत करना ही  
उनका ज्ञातीय व्यवसाय है । ये लोग मणिकार भर्तान्  
होरहादि मन्त्रपात्र वस्त्रवस्त्रो अष्ट कर जो मन्त्रद्वारादि  
प्रस्तुत करते हैं उनके अनुकरणजोयी होनेके कारण  
इस नामको प्राप्त हुए हैं । ये लोग शूद्रोदारमे वि-कुल  
विनिम्न हैं, किन्तु इनमें कौनों कौनों चूड़ी भी बना कर  
भजना मुशारा भज्यता है । मुसलमान और हिन्दूके भेदमें  
यह ज्ञानि हो सम्प्रदायमें विभक्त हैं । मुसलमान लोग

समो सुभो हैं, मातामीया और पांचपायको धरना  
उपास्य मानते हैं । उर्वेष्टमासके प्रथम रविवार और मने  
बरातके दिन ये लोग उन दोनो पोरोंकी पूजा वष्टे टाटकर-  
ने करते हैं । मुसलमान मणिहार १३० घोंकोंमें विभक्त हैं ।

हिन्दू सम्प्रदायके मणिहार हिन्दू देवदेवियोंकी पूजा  
करते हैं । इनमें अयोध्यावासो, अहमदा, पैगवाय,  
बहुरवार, बड्डुजद, चौहान, हाडिया, जगहरार, तुरिया,  
खाटवास, लोभेरी, मणिहार, मधुरिया, रामानन्दी, रेवणा,  
सागर, मनायद, जोसगढ़ और गरगर नामक ११ भोक  
प्रचलित हैं ।

मणिहारो—विहार और उद्दिमाके पूर्णिया जिलामन्त  
एक ग्राम । यह अक्षा० २६ २० उ० तथा देशा०  
८७ ३७ पू० गण्डाके उत्तरी किनारे अर्वाग्गत है । जन  
संख्या चार हजारके करीब है ।

मणो ( सं० स्त्री० ) मणो-शुद्धिकार्यादिनि पदो ङीप् ।  
मणि ।

मणोचक ( सं० स्त्री० ) मणो चकते प्रतिहन्ति शीलया  
इति चक अच् । १ चक्रकाग्र नामक मणि । २ पुराणा  
नुसार जाकटोपके एक वर्षका नाम । ३ एक प्रकारका  
पक्षी ।

मणोयक ( सं० स्त्री० ) मणोय संज्ञायां कन, या मणोय  
कायति क-क । पुण्य, फूल ।

मणोयगी ( सं० स्त्री० ) मणि अस्त्वयं मनुष्य, मस्य यः मणो-  
रिहारस्य दोषः ततो ङीप् । मणियुक्त नदीभेद ।

मणोभरतीर्थ ( सं० स्त्री० ) तीर्थभेद ।

मण्टवी ( सं० स्त्री० ) मण्ट उग्रमादं पाति रक्षतीति मण्ट-  
पाक-जानो संज्ञायां वा ङीप् । शूद्रोपादक ।

मण्टि ( सं० पु० ) गोतमवर्त्मकः श्रुतिभेद ।

मण्टूर ( सं० स्त्री० ) माण्डूर, लोहकोट ।

मण्ट ( सं० पु० ) मण्डले इति मण्डि-राच् । पटकारियेय,  
प्राचीन फालका एक प्रकारका मैदका बना हुआ पदयान ।

प्रस्तुत प्रवाली—वहरी मैदकी घीमें माद कर पीठ  
अथवा जग द्वारा फिरने अच्छो मण्डू मूँधे । बादमें पटक  
प्रस्तुत करे और बिना मण्डके घीमें पकाये । नमक  
हलायपी, लवण, कपूर और मण्डिकादि द्वारा सुगन्धित  
करके शीमें सुंघे । पाँच मिलके बाद उसे बाहर

निकाल ले। इसीका नाम मण्ड है। इसका गुण शरीरका उपचयकारक, शुक्रवर्द्धक, बलकर, सुमिष्ट, गुरु, पित्रंज, वायुनाशक, रुचिजनक और प्रबलाम्नि धत्तिके पक्षमें अत्यन्त उपकारक माना गया है। मैदे, चीनी और घीसे इस प्रकार जो कोई भी खाद्य बनाया जाता है वह भी मण्डकी तरह उपकारक है।

मण्ड (सं० पु० क्लो०) मन्थते ज्ञायतेऽनेन मन्नादिकमिति मन- (क्रमन्वात् डः। उण् १।२।१२) इति ड। १ अन्न और और दधि आदिका अप्ररस। २ सार। ३ पिच्छ। (पु०) मण्डयति क्षेत्रं भूयति मण्डि अच्। ४ परण्ड-ग्रक्ष, अण्डो। ५ प्राकभेद, एक प्रकारका माग। ६ मस्तु, दहीका पानी। ७ भूया, सजावट। ८ दूर्ध, मेढ़क। ९ भक्तादि-भय रस, मांड। इसका लक्षण—

“तण्डुलानां युग्मिदानां चतुर्दशगुणो जले।

रमः सिकथै विरहितो मण्ड इत्यभिधीयते ॥” (भाप्र०)

चौदह गुण जलमें चावलको सुमिष्ट करना होगा।

जब अच्छी तरह सिद्ध हो जाय, तब अन्नका छान कर रसको बाहर निकाल दे। इसी रसका नाम मांड है। यह अतिगुण लघुपाक है। इसमें सांड और सैन्धव डाल कर सेवन करना होता है। इसका गुण प्राही, लघु, शीतल, दीपन, धातुसाम्यशक्त, ज्वरनाशक, बलकर, पित्त, श्लेष्म और श्रमनाशक माना गया है।

“मण्डः प्राही लघुः शीतो दीपनो धातुसाम्यशक्तः।

ज्वरघ्नस्तर्पणो बल्यः पित्तश्लेष्म श्रमपहः ॥” (भाप्र०)

राजबलभके-मतसे मण्डगुण—क्षुधाघृष्टिकर, वस्ति-शोधक, प्राणप्रद, शोणितवर्द्धक, उवर, काफ, पित्त और वायुनाशक।

मण्डमें लाजमण्ड (खलीका मांड) सबसे लघु है। इसका गुण—अग्निजनक, दाह, कृष्णा और ज्वरातीसार-नाशक, अशेष दोष और आमपाचक।

भृष्टवक्त्रका मण्डगुण—हृद्य, पित्तश्लेष्म और वायु-नाशक, अग्निवृद्धिकर, शूल और आनाहरीरोगमें विशेष उपकारक, अग्निवर्द्धक और परिपाचक। (राजव०)

हारीतसंहिताके मण्डवर्गमें मण्ड-गुणका विषय इस प्रकार लिखा है।

धान्य-मण्डगुण—पित्त और श्रमनाशक, वायुवर्द्धक,

रक्तशोधक, प्राही, सन्दीपन और अशमरीरोगनाशक। युगन्ध। (यावताल या जुप्रार) मण्डगुण—श्लेष्म और वायुवर्द्धक, पित्तनाशक, मूत्रवर्द्धक और प्राहक। रक्त-शालि-मण्डगुण—मधुर, प्राही, शीतल, प्रमेह और अशमरी-रोगनाशक, वायु और पित्तवर्द्धक। श्वेत तण्डुल-मण्ड-गुण—मधुर, शीतल, कुछ श्लेष्मकर, शोथनाशक, अशमरी और मेहरीरोगमें विशेष उपकारक और वायुवर्द्धक। यक्ष-मण्डगुण—कपाय, प्राही और विपाकी। गोधूम-मण्डगुण—कपाय, प्राहक और पाचक, मधुर और पित्त-नाशक। कोद्रव-मण्डगुण—ग्दानि और सूच्छांकर तथा लघु। क्षुद्रधान्यमण्डगुण—वायुवर्द्धक, पित्तकारक, श्लीपद, गुल्म और प्रतिश्याय आदि रोगजनक, ग्लानि, सूच्छांकर और लघु।

(हारीत १म स्थान ६० अध्याय मण्डवर्ग)

ज्वरादि रोगमें रोगीके बहुत दुर्बल होने पर पहले मांड देना उचित है। सभी प्रकारके मांडोंमें लाज (खील) का मांड ही विशेष उपकारी बतलाया गया है। केवल शूलरोगमें जीका मांड फायदामंद है।

मण्डक (सं० पु०) मण्डेन कृतः इति मण्ड संज्ञायां कन्। १ पिष्टकविशेष, मैदिकी एक प्रकारकी रोटी, मांडा। इसको प्रस्तुत प्रणाली—पहले सफेद गेहूँको कूट कर सुखा ले। पीछे उसे जांतेमें पीस कर छान ले। इसका नाम समेत या मैदा है। अब उस मैदिकी जलमें गूँध कर करीब आध आध पाचकी लोई बनावे। अनन्तर लोई-की घेल कर धीमी आंचमें पकावे। इसीका नाम मांडा है। यह मांडा दूध, घी, भुङ्ग या सुसिद्ध मांस आदिके साथ खानेमें बड़ी रुचि होती है। इसका गुण शरीरका उपचयकारक, शुक्रवर्द्धक, बलकारक, रुचिकर, मधुर, विपाक, हृद्य-प्राहो और त्रिदोषनाशक माना गया है।

२ माधवीलता। ३ गोताद्विविध, गीतका एक अङ्ग। इसके मो फिर छः भेद हैं, यथा—जलप्रिय, कलाप कमल, सुन्दर, मङ्गल और बल्लभ।

मण्डन (सं० क्लो०) मण्डयतेऽनेन इति मण्डि भूये करणे ल्युट्। १ भूयण, गहना। २ शृङ्गार कर्ता, सजाना। ३ प्रसिद्ध मोमांसकभेद, मण्डनविध। ४ दे कर किसी कथन आदि द्वारा



मण्डनकरि—उपसर्गमण्डन, कविकल्पदु, मन्त्ररथ, मार-  
 क्यमण्डन आदि शास्त्रय मान्योप संस्कृत ग्रन्थकार ।  
 मण्डनगण्ड—सर्ग प्रदेशके सनगिरिजिनेके अन्तर्गत एक  
 गिरिदुर्ग । यह पालकोट समुद्रगार्भमें ई, कोस देना-  
 स्थलसंमं मण्डनगण्डगिरीके ऊपर अवस्थित है । इस  
 गिरिदुर्गके भ्रष्टाया मण्डनगण्डपर्यन्त पर पारकोट और  
 जाम नामक और भी दो दुर्ग हैं । कहते हैं, कि उक्त तीनों  
 दुर्गमें मण्डनगण्ड महापट्टके जरी जियायी द्वारा, पारकोट  
 हबमी द्वारा और जाम शक्ति गा द्वारा स्थापित हुआ था ।  
 किन्तु उनके पठनकारणको पर्यालोचना करनेसे ये और  
 भी बहुत पुराने मान्य होने हैं ।

मण्डनमिथ—जडूनाचार्यके समसामयिक एक सुप्रसिद्ध  
 दार्शनिक । ये धनक गिर्योको ले कर गृहस्थ धर्ममें  
 अग्रजक थे । जडूरयित्रयमें लिखा है, कि जडूरनाचार्य  
 इन्हें पराम्न् करनेके लिये एक दिन इनके दरवाजेके  
 सामने जा गड़े हो गये ।

यहां कुछ क्षणियां सट्टो थीं । जडूरनाचार्यने उनसे पूछा  
 'यथा वतत्या मकतो ही, मण्डनमिथका मकान कीन है ?'  
 उत्तरमें उन लोकोने कहा, "जंविभरका पेषय और मेदा-  
 भेद, जडूनान्तमन्त्रप्रवपधानुपद, स्नानादि विप्रोचित  
 कर्त्तव्य धर्म, मन्त्रादि राजविधान, जैनीति, कापालिक,  
 और्य, शैव, गणेश, शिणु, सूर्य आदि विभिन्न मतवादीको  
 उक्त, आक्षेपण उच्चाटनादि सिद्ध मन्त्र तथा जिसके द्वारा  
 परको शून्यो वसियां स्वयं शोड सकतो है, यही मण्डन-  
 मिथका मकान है ।" जडूरनाचार्यको पया लग गया, कि  
 यही मण्डनमिथका मकान है । बाद ये दरवाजे पर गये,  
 पर दरवाजा बंद था । उन्होंने प्राणायामके प्रसायसे  
 शून्यमार्ग हो कर मण्डनके गृहमें प्रवेश किया । उस  
 समय मण्डनमिथ ज्ञानप्राप्त और विभवेयोंका सङ्ग  
 करके स्वागत यत्रयरी हर्षाक्षमोक्षण कर रहे थे । जडूर-  
 नाचार्यके दोनो पैरों पर उनको दृष्टि पड़ गई । पीछे उन-  
 का सर्पाङ्गु जगोर देख कर ये भाग बचने हो गये और  
 हो वाह कट्टु बचन बोले । उस समय एक व्यास उसी  
 जगद लगे थे, उन्होंने मण्डनमिथसे कहा, 'ये मामास्य  
 धर्माक महो हैं, पाप द्वारा इनकी पूजा करो ।' मण्डनने  
 भी ऐसा ही किया । 'नुभारे माघ ज्ञानोप तथा करने

भाषा ही,' कद कर जडूरने अपना अभिनाय प्रकट किया ।  
 यथाविधि विष्णुको समाम और भोजन करनेके बाद  
 मण्डन ज्ञानप्राप्त करनेके लिये जडूरके सामने गड़े हो  
 गये । जरी यह उहरो, कि यदि तर्षामं मण्डन पराम्न् हो,  
 तो ये संन्यास हो जाय और यदि जडूर पराम्न् हो, तो  
 ये संन्यासधर्माका परित्याग कर गृहो वन जाय । मण्डन-  
 मिथको पत्नी साक्षात् सरस्वती स्वरूपा सरस्वतीको  
 मध्यस्था हुई । पोरसर तर्षा चलेने लग्य । आगिर सरस  
 वाणीने कतिने कहा, 'नाथ' आगती ही हार हुई भय  
 आग जपनी प्रतिज्ञाका पालन कोजिये ।' उमो समय  
 मण्डनमिथने जडूरके चरणोंकी पञ्चना कर उनका  
 ज्ञान्यत्य स्वोकार किया और उनके उपदेशों से संन्यास-  
 धर्मा ग्रहण कर उत्तरकी ओर चल दिये । (एकत्रयण  
 ५६) संन्यास ग्रहणके बाद मण्डनमिथ विष्णुरूप और  
 सुरेश्वरान्याय नामसे प्रसिद्ध हुए ।

संन्यासग्रहणके पहले इन्होंने आपन्नास्योप मण्डन-  
 कारिका, नयनविधेयक और कादोमोशनिर्णयको रचना  
 की । संन्यासग्रहणके बाद ये तीक्ष्णभ्रूतिवार्त्तिक,  
 नैयामसिद्धि, पञ्चोकरणवार्त्तिक, गृहशरण्यापनिषद-  
 वार्त्तिक प्रहसिद्धि, प्रलक्ष्यभाष्यवार्त्तिक, मामगोक्षर्य वा  
 दक्षिणा मूर्तिस्त्रोत्रवार्त्तिक, लघुवार्त्तिक, वार्त्तिकसार और  
 वार्त्तिकसारसंग्रह आदि ग्रंथ लिख कर दार्शनिक तपसमें  
 प्रसिद्धि लाभ कर गये हैं ।

मण्डनमिथसाहित्यपरम्परायिन्—एक विख्यात जामिक ।  
 भाष नातार्चण्ड्यानुगामन नामसे संस्कृत अभिधान रथ  
 गये हैं ।

मण्डनमूलधार—एक प्रसिद्ध पाम्नुशास्त्रविद । इनके  
 पिताका नाम धंशोत्र था । ये वैशाखति शणाशुम्भके  
 आश्रयमें रहते थे । इन्होंने उम्गाहसे इन्होंने सत्रवह-  
 मण्डन नामसे एक गृह्य संस्कृत पाम्नुशास्त्र, देवतागुप्ति-  
 प्रकरण, प्राणाश्मण्डन और कपमण्डन नामक पाम्नुशास्त्र  
 सभरस्योप कई छोटे छोटे ग्रंथ लिखे हैं ।

मण्डप ( सं० पु० ज्ञो० ) मण्डि-नाथे नाम, मण्ड, मण्ड  
 वार्त्तिक वा-कृ । ३ जनविधाम स्वाम, ऐसा स्वाम जही  
 बहुतने लोग धूप, दर्वा आदिसे बपने हुए भेद सकें ।  
 २ बहुतसे आश्रमियोंके बैठनेयोग्य चाही सोनेके पुस्त

पर ऊपरसे छाया हुआ स्थान । ३ किसी उत्सव या समारोहके लिये बांस, फूस आदिसे छा कर बनाया हुआ स्थान । जैसे,—यज्ञ-मण्डप, विवाह-मण्डप । ४ देवमन्दिरके ऊपरका गोल या गावतुम हिस्सा । ५ शामियाना, नंदोवा । ६ देवादि-दत्त वेश्म । जैसे, चण्डी-मण्डप, दुर्गा-मण्डप आदि । मण्डपशब्दका साधारण अर्थ है गृह । देवताके उद्देश्यसे जो घर बनाया जाता है, उसे देवगृह या देव-मण्डप कहते हैं ।

मठ, सङ्घाराम, मन्दिरादिके सामने उच्च वेदीकी तरह जो चतुष्कोण भूमिभाग रहता है, वही मण्डप कहलाता है । ऐसा स्थान प्रायः पटे हुए चतूत्तरेके रूपमें होता जिसके ऊपर खम्भों पर टिकी छत या छाजन होती है । किसी किसी देवमन्दिरके मण्डपका कार्य ऐसा शिल्प-चातुर्यमय रहता है, कि उसे लिल कर शक नहीं कर सकते ।

मण्डपमें एकमात्र पवित्र वस्तु ही रखनी चाहिये । हिन्दू देवमन्दिरादिके सम्मुखस्थ मण्डपमें साधुगण बैठ कर पूजा-होमादि करते हैं तथा कमी कमी देवोपभोग्य द्रव्यादि वहां रख कर देवताके उद्देश्यसे चढ़ाये जाते हैं ।

बौद्धमठ या विहार-संलग्न मण्डपमें केवलमात्र यतिवर्गके पाठयोग्य पवित्र शास्त्रग्रन्थ रखे रहते हैं । श्रमण या बौद्ध भिक्षुगण मण्डपमें बैठ कर सबके सामने शास्त्रग्रन्थका पाठ करते हैं । सिंहल, ब्रह्म आदि देशोंमें यह मण्डप प्रायः पागोडाके आकारमें बना होता है । उसकी छतके ऊपरी तल पर कुछ छोटे छोटे घर रहते हैं । प्रत्येक तलका चार क्रमशः निम्न तलके घरसे छोटा होता है । इसीसे चूड़ादेश सूक्ष्मसे सूक्ष्मतर हो कर उच्चचूड़ पागोडा मन्दिरमें परिणत होता है । इस मण्डपगृहके प्रथम तलके मध्यभागमें जो उच्च स्थान होता है, वही प्रकृत मण्डप या वेदी है । उस वेदीके ऊपर बैठ कर पुरोहित शास्त्रालाप करते हैं तथा धर्मतत्त्वानुसन्धित्वु व्यक्तियोग चारों ओर चर्चार्थ पर बैठ कर धर्मविषयक वचनृता सुनते हैं । सिंहलदेशमें पूर्णिमाकी रातको मण्डपमें बैठ कर शास्त्रपाठ करना एक उत्सव समझा जाता है ।

शास्त्रालोचनाके अलावा मण्डपमें एक और भी नये

ढंगकी कोड़ा होती है । सिंहलमें कमी कमी नारियलके पत्तों आदिसे एक गोलक घंघाकी तरह निकुञ्ज बनाया जाता है । प्रवेशपथसे निकुञ्जके भीतर जानेमें अनेक जटिलपथ अतिक्रम कर जाने होते हैं । कमी कमी उस पथमें जगह जगह दाग काट कर अपदेवताओंका वासस्थान निर्देश कर देते हैं । सबसे आखिरवाले घरमें बुद्धका वासभवन वा अवस्थान-मण्डप निकुपित होता है । बौद्धगण सभी विघ्न-वाधाओंको अतिक्रम कर उस बुद्धमण्डपमें जानेमें विशेष आग्रह और उत्साह दिखलाते हैं तथा एक एक अपप्रहको अधिकार-सीमाको पार कर घे धोरे धोरे बुद्धमण्डपमें अग्रसर होते हैं । मण्डपकी सीमा उलङ्घन करके दो वें मूर्च्छा वा दशाको प्राप्त होते हैं । ऐसा करनेका उद्देश्य यह है, कि बुद्धको प्राप्त करनेमें अनेक विघ्न-वाधाओंको अतिक्रम और कष्ट स्वीकार करना आवश्यक है ।

अपरार्जिता-पृच्छा नामक वास्तुशास्त्रके पचीसवें सूत्रमें मण्डपके लक्षण-सम्बन्धमें जो लिखा है संक्षेपमें उसका वर्णन नीचे दिया जाता है । प्रासाद निर्माणके विषयमें जो प्रमाण उल्लिखित हुआ है, साधारणतः मण्डप भी उसीके अनुसार बनवाना चाहिये, यदि उससे भी बड़ा बनवाना हो, तो प्रासादप्रमाणके एक पादसे आरम्भ कर त्रिगुण पर्यन्त अधिक किया जा सकता है, किन्तु इससे बड़ा करना निषिद्ध है ।

वास्तुदेव-प्रमुख परिदृष्टीमें मण्डपके पांच सात प्रकारके प्रमाण-सूत्र उल्लेख किये हैं । किन्तु अन्यान्य वास्तु-वेदियोंके मतसे मण्डपकी प्रासादके समान अथवा उससे एक पाद अधिक बनवाना उचित है । इसका उच्छ्रय पांच हाथसे अधिक यथासम्भव करना होगा । स्थानान्तरमें नीं, दश, ग्यारह, बारह और तेरह हाथ इसका उच्छ्रय निर्दिष्ट हुआ है । मण्डपमें एक घंटा लटकानेका नियम है । प्रासादकी तरह मण्डप भी अपने अपने वासभवनके सामने ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठभावमें बनवाना उचित है ।

पतञ्जिन अपरार्जिता-पृच्छाके २६वें सूत्रमें भगवान् उशान कच्चूक चर्द्धमान, स्वस्तिक, गरुड़, सुरनन्दक, सर्वतोमठ, कैलास, इन्द्रनील और रत्नोद्भव नामक आठ

प्रकारके मण्डपका विषय उल्लिखित हुआ है। विस्तार हो जानेके कारण उसके भेदादिका वर्णन यहाँ पर नहीं किया गया।

मण्डप विभिन्न प्रकारके ( वि० ) ७ मण्डपवाये, जो नीचे दीये गये हैं।

मण्डपयोग ( सं० श्लो० ) पवित्र स्थान।

मण्डपपुर—मण्डपका प्राचीन नाम। मण्डप देवता।

मण्डप ( सं० श्लो० ) मण्डप-शब्द। निवासो, कौट्य।

मण्डपरोह ( सं० पु० ) मुगलिन, एक प्रकारका मोटा बंद।

मण्डपिका ( सं० श्लो० ) छोटा मण्डप।

मण्डपी ( सं० श्लो० ) छोटा मण्डप, मंडी।

मण्डपूल ( सं० श्लो० ) घुटने तकका घूट जाता।

मण्डप ( सं० वि० ) मण्डप-शब्दके मण्ड। मण्डप-शब्दके।

मण्डपमत ( सं० पु० ) मण्डपति भूपयतीति मण्डि ( वृष्ण-वदित्ति मण्डिपतिभ्यो मण्डिपतिभ्योऽन्ति इत्यम् ) उष् ३।१२८ ) इति भञ्ज, स च कित् । १ मठ, अनाम। २ बभूवत् । ३ मठ । ४ भद्रकूर ।

मण्डपवनी ( सं० श्लो० ) मण्डपवतीति मण्डि-भञ्ज, विषयं शोष् । घोषिष्, नारी।

मण्डप ( सं० वि० ) मण्डि-भञ्ज, भूयण।

मण्डरी ( सं० श्लो० ) मण्डपति भूपयति मण्डि-भञ्ज, विषयं शोष् । घुष्, री।

मण्डल ( सं० श्लो० ) मण्डपति भूपयतीति मण्डि ( वृष्ण-वदित्ति मण्डिपतिभ्यो मण्डिपतिभ्योऽन्ति इत्यम् ) उष् ३।१२८ ) इति कल, १ मण्ड और मण्ड-का परिचय, चन्द्रमा या सूर्यके नारों मार घटनेवाला घेरा जिसे सूर्यमण्डल कहते हैं। २ मण्ड और सूर्यका उरवातक इतिमण्डल। पर्याय—परिचय, परिधि, उप-सूर्यक। ३ नक्षत्रात्, चन्द्रके आकारका घेरा। ४ मण्डलवाकार दिग्मण्डल, चारों दिशाओंका घेरा जो मोटा विस्तार देता है। ५ घृणाकार या अण्डाकार विस्तार, गोला। ६ एक प्रकारका कुल लोग। इसमें अरीयोंके चरनेमें पड़ जाते हैं। ७ हाथन वागमण्डल, शरद रासोका समूह। ८ अर्याय योक्त लंका और वीम योक्त गौड़ा भूमिमण्डल। ९ किशोरे पशुभवा यह सोल भाग जो अर्याय दृष्टिके सम्मुख है। १० मन्ना,

समूह। ११ एक प्रकारका समूह, गैनाकों घृणाकार विभिन्न। १२ एक प्रकार का मण्ड। १३ एक प्रकारका मण्डल, व्यापकता। १४ शरीरको भाग मण्डिपतिमें एक। १५ कुलकूर, कुला। १६ मण्डके घूमनेको कुरा। १७ मण्ड। १८ कोई मोल दान, निर। १९ मण्डिकता एक मण्ड। २० चक्र, गतिवा। २१ नक्षत्रात्। २२ अर्यायके स्थानवाकके आर्याय विभिन्न-विशेष। २३ विष्णु, छाया। २४ रोगके ऊपर शरीरका काम किया हुआ एक प्रकारका कपड़ा। घृणाको रोगका पण्डोमें व्यवहार करते हैं। २५ यह घेरा जो शरीरके समय भोजनपायके चारों तरफ किया जाता है। भोजनके समय भोजनपायके नीचे मण्डल बनाना उचित है। जो बिना मण्डल बनाये भोजन करते हैं, उनका भ्रम राक्षसादि मण्ड पर डालता है।

“साधनाः विनाचार्य भ्रमरा राक्षसालया।  
शान्ति केवलमस्य मण्डलस्य विरक्तं नाम ॥  
भारितवा भगो कदा नसा येन विनामदः।  
मण्डलमनुपयति नित्यं सम्भ्रं कुर्वन्ति मण्डलम् ॥  
( भास्कर० भाद्रकालोनामाध्याय )  
यह मण्डल आरण चतुर्कोणमें, क्षत्रिय त्रिकोणमें,  
वैश्य द्विकोणमें और शूद्र चतुर्लाकारमें बनाये।  
विष्णु विरला भोजन मण्डले देगे।  
इतिम मण्डलका विधान देवोपुत्राणमें इस प्रकार  
लिखा है,—चार हाथमें धारण करने की हाथ तक  
मण्डल होगा, इसमें अधिक नहीं। यह मण्डल १२  
प्रकारका है। तथा—विमल, विजय, यद्र, विमान,  
मुनद, निष, परमं मान, द्विष, लताश, कामवापक, मयक  
और स्वस्तिशब्द। ये सब मण्डल पाँच वर्णोंके पर-  
से बनाये। मुक्तमें ये कर इतिम वर्णोंका समी सूर्यके  
मुनोमन कला करंश है। प्राणि, पक्षि, कुटुम्ब,  
हृदि और हृत्सुत ये सब कर होने चाहिये।

मण्डलस्थान मम, गोमयोपलि, चन्दन, ब्याज,  
कर्पूरचूर्ण और धूप द्वारा अर्चयामित करना होगा।  
मण्डलभूनाय सूर्य, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण  
और ममान रहे। सूर्यनायमें स्वस्ति और मण्डलादि  
देगा हो, बीचमें अण्डक पर रहे। उसके शरीर द्वारा

समसूत्र हों, पञ्चकर्णिका और केशर द्वारा उज्ज्वल रहे। अवशिष्ट भागमें स्वस्तिक चिह्न और कहार नामक जलज पुष्पविशेषका चित्र हो। दाहिने हाथकी मध्यमा, अनामिका और अंगुष्ठांगुलीके योगसे इच्छानुसार पञ्चवर्ण-विन्यास करना होगा। चूर्णविन्यासके समय उँगलियोंका अप्रमाण नोचैकी ओर रहे। इसमें सभी रेखाएँ समान और श्वचिच्छन्न रहनी चाहिये। अंगुष्ठ-पर्वकी अपेक्षा रेखाकी स्थूल न बनावे। परस्पर मिलित, विषम, अधिक स्थूल, विच्छिन्न, कृपरायुक्त, प्रान्तविसर्पी वा ह य मण्डल कदापि न बनावे।

संस्कृतरेखामण्डलमें कलह, वक्ररेखामण्डलमें युद्ध, अति स्थूलरेखामण्डलमें व्याधि, मिश्रित रेखामें पीड़ा, विन्दुयुक्त रेखामें शत्रु-भीति, वृजरेखामें अर्धाहानि, विच्छिन्न रेखामें मृत्यु और नानाविध अशुभ होता है। जो ध्यक मण्डलका विषय जाने बिना मण्डल तैयार करते हैं, उन्हें 'पूर्वोक्त सभी प्रकारके दोष होते हैं। चतुर्कोण और चतुर्द्वार मण्डल बनावे'। मण्डलके प्रमाणानुसार द्वार और पत्र बनाना होगा। हाथसे कम और चार हाथसे अधिक परिमाणका मण्डल न बनावे। मण्डल पूर्वद्वारी होनेसे प्रताप, आयुर्वृद्धि, धी और धर्मादि शुभ होता है। उत्तरद्वारी मण्डल भी शुभकर है। स्वयं गिबजोने पहले पहल यह मण्डल प्रस्तुत किया था। इस मण्डलमें सभी देवता अवस्थान करते हैं। यही कारण है, कि मण्डल प्रस्तुत करके उसके ऊपर घटस्थापन पूर्वक पूजा की जाती है। मण्डलमें पूजा करनेसे सभी देवता पूजित होते हैं।

प्रथम मण्डलमें विद्येश्वरयुक्त शिव और द्वितीय मण्डलमें गणेशयुक्त गिवादिकी पूजा करना होती है। देवोपुराणमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां कुल उद्धृत नहीं किया गया। तन्त्रसार और अन्यान्य तन्त्रमें सर्वतोमद्रमण्डल आदि करके बहुतों मण्डलका उल्लेख है। पूजादि देवकार्यमें ही मण्डल बनानेकी व्यवस्था देखी जाती है। अरब, मिश्र आदि देशोंमें भी देवघण गुमाशुभ जाननेके लिये इस प्रकारका मण्डल बनाया करते थे। मुसलमानोंका कहना है, कि ओसमान इस मण्डलविधायमें

विवेक पारदर्शी थे। लेन साहबने यह विद्या यूरोपमें प्रचार करनेकी चेष्टा की थी, पर उपयुक्त गुणों न मिलने पर धे कृतकार्य न हो सके। यही कारण है, कि यूरोपमें इसका आदर नहीं है। प्रधानको बङ्गालमें २५ ग्रामके ( Headman ) मण्डल कहते हैं। दाक्षिणात्यमें पाटेलका और पश्चिममें मकड़मका जैसा अधिकार है बङ्गालमें मण्डलोंका भी एक समय चेसा ही अधिकार था। उनके अधीन बहुतसे कर्मचारी रहते थे जिनमेंसे पटोआर वा तहसीलदार और चौकीदार प्रधान था।

मण्डलक ( सं० क्ली० ) मण्डल-स्वार्थे कन् । १ विम्ब, छाया । २ कुष्ठभेद, एक प्रकारका कोढ़ रोग । ३ दर्पण । ४ मण्डलाकार व्यूह । ( पु० ) ५ कुबकुर, कुत्ता ।

मण्डलकराजन् ( सं० पु० ) मण्डलाधीश्वर ।  
मण्डलकार्मुक ( सं० लि० ) मण्डलाकार धनुःशाली ।  
मण्डलघाट—हृदयके दक्षिणमें अवस्थित एक प्रधान परगना । यह-रूपनारायण और दामोदर नदीके मध्य अवस्थित है।

मण्डलचिह्न ( सं० क्ली० ) मण्डलाकार चिह्न ।  
मण्डलनृत्य ( सं० क्ली० ) मण्डलेन मण्डलाकारेण प्रवर्तित नृत्यमिति नित्यसमासः । मंडलाकार नृत्य, वृत्तकी परिधिसे रूपमें घूमते हुए नाचना ।

मण्डलपत्रिका ( सं० स्त्री० ) मण्डल मण्डलाकारं पत्रं यस्यां कन् टाप्, अत इत्वं । रक्त पुनर्णवा, लाल गद्द-पूरना ।

मण्डलपुच्छक ( सं० पु० ) फोटभेद । सुश्रुतमें लिखा है, कि यह कोट प्राणनाशक है। इसके काटनेसे सांपका-सा चिप चढ़ता है। क्षार वा अग्नि द्वारा दग्ध स्थान जैसा हो जाता है काटा हुआ स्थान भी वैसा ही देखनेमें लगता है। इसमें रक्त, पीत, कृष्ण और अरुण वर्णकी आमा देखी जाती है। ज्वर, अङ्गमर्द, रोमाञ्च, वेदना, वमन, अतीसाद, कृष्णा, दाह, मोह, कम्प और हिकका आदि उपद्रव होते हैं। इसके काटनेसे यथाविधान प्रतीकार करना आवश्यक है ( सुश्रुत कौटिल्य ८ अ० )

मण्डलपुर—युक्तप्रदेशके सहारनपुर जिलान्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। इसके पास ही 'सुच' नामक एक प्राचीन

ग्रामका भग्नावशेष देखा जाता है। उक्त दोनों ग्राम ले कर प्राचीन धूम्र नगर संगठित था। किरोजगढ़ तुगलक के समय इसको प्राचीन कौंसि और समृद्धि विलकुल-विलुप्त हो गई।

मण्डलपुरन्दर—एक विख्यात जैन-साधु। ये १६वीं शताब्दीमें विजयनगराधिप कृष्णा १के समयमें विद्यमान थे। इन्होंने अमरकोपके आदर्श पर 'मंदादिनीनिघण्ट' नामक एक देशीय अभिधान पद्यमें प्रकाशित किया। मण्डला—मध्यप्रदेशके जव्वलपुर विभागके अन्तर्गत एक जिला। यह अक्षा० २२° १२' से २३° २३' उ० तथा देशा० ७६° ५८' से ८१° ५४' पू०के मध्य अवस्थित है। यह चीफ कमिश्नर द्वारा परिचालित होता है। भूपरिमाण ५,०४४ वर्गमील है। मण्डलानगरमें इसका विचार-सदर है।

प्राकृतिक सौन्दर्यसे विभूषित होने पर भी इस स्थानका विजन चनप्रदेश जनसाधारणके भीतिग्रह है। वनमाला-से समाभ्रन्न अधित्यकाभूमि और निर्भरिणी परिष्कृतित उपत्यकामें दुर्द्धर्ष गोंडु जातिका घास है और साथ साथ बाघ, भालू आदि भयावह हिंस्रजन्तुसे परिपूर्ण इस स्थानकी भोषणता दुगुनी बढ़ गई है। इस निर्जन स्थानमें प्रवासी पथिक जिधर नजर उठाते हैं उधर ही जनशून्य और चनपुर्ण अधित्यकाभूमि दिखाई पड़ती है। कहीं कहीं भरने आदिके वहनेमें उपत्यका और भी शोभामयी हो गई है तथा सुदूरविस्तृत दीर्घ तृणविराजित प्रांतर प्रदेशमें वायुसे आन्दोलित तृणवह्नी दूरसे हरिद्वर्ण ऊर्मिमालाशोभी समुद्रके जैसी मालूम पड़ती है। इसके बीच बीचमें खण्ड खण्ड चनसमूह सागरवक्षमें बहता हुआ पीतसदृश मालूम होता है।

कहीं नदीकी नैकतभूमिमें श्यामल शस्यमण्डित उर्वरक्षेत्र विराजमान है जिसके मध्यस्थलमें उपवनसमूह जनसाधारणकी वासभूमिका परिचय देता है। दक्षिण भागका पार्वत्य प्रदेश स्फटिकाकार, दानेदार प्रेनाइट और पथलचनसे पूर्ण है। अलावा इसके कहीं कहीं कपास होनेवाली काली मिट्टीसे पूर्ण जमीन और सहार नामक बालुकामय मरुभूमि विस्तीर्ण है। यहाँ बहुत-सी छोटी छोटी नदियाँ मेकल पर्वतसे निकल कर

नर्मदामें मिल गई हैं जिससे नर्मदा नदी बड़े वेगसे बह चली है। इस पर्वतसे और भी पश्चिममें घञ्जार और हान्डीन आदि अर्धरूप जलधारा नदीमें गिरती हैं।

नदियोंके पार्वतीय गड्डे गहरे होनेके कारण उनके जलमें खेतोवारीमें कुछ विशेष सुविधा नहीं है। केवल मण्डला नगरके दक्षिण और पूर्ण नर्मदासे भी साधारत तक विस्तृत 'हरवेली' भूमि कुछ उर्वरा है। यहाँ नर्मदाकी बंजर और वेणगङ्गाकी धानवर शाखा बहती है। इन दो नदियोंके बीचकी अधित्यकामें बहुत-सी समृद्धिशाली गोंडु जातिकी वस्ती है। प्रत्येक वस्तीमें छोटा छोटा जंगल है। नगरके पश्चिम एक बड़ा घन है, जिसमें बाघ आदि हिंस्रजन्तु रहने हैं। इस कारण यह स्थान बड़ा ही खीफनाक है। वर्षाकालमें जब संचित जलको धारा बड़े वेगसे पर्वतोंको छेदती हुई नर्मदामें गिरती है तब उसका दृश्य अतीव मनोरम लगता है।

पूर्वोक्त मेकल पर्वतको चौरिया दादरशृङ्ग ३४०० फीट ऊँचा है। शृङ्गके सामने ६ मील चौड़ी एक अधित्यकाभूमि है। इस स्थानकी आवश्यकता बड़ी अच्छी है। स्थानीय सभी पर्वतशृङ्ग महादेव द्वारा रक्षित हैं, ऐसा प्रवाद है।

रामनगर-मन्दिरेके शिलालेखोंसे इस स्थानके प्राचीन राजवंशका परिचय इस प्रकार मिलता है। यादवराय नामक एक राजपूतने स्वयं देख कर सर्वो पाठक नामक एक साधुचेता ग्राहणका परामर्श ग्रहण किया। उक्त ग्राहण के आदेशसे यादवरायने गोंडराज-नागदेवके यहाँ नौकरीके लिये प्रार्थनाकी। राजाने युवक यादवरायके मनोहर रूप और वीरवपु देख कर उन्हें सेनाविभागमें नियुक्त किया। क्रमशः उनके धीर्गवलने राजा नागदेवकी आंवां पर एकाएक आधिपत्य जमा लिया। किसी कारणसे युवक यादव पर खुश हो कर राजाने अपनी कन्याका उनके साथ विवाह कर दिया। राज्यमें उनकी प्रतिपत्ति दिन पर दिन बढ़ती ही गई। राजा नागदेव मरनेके समय अपने जामाता यादवरायको ही उत्तराधिकारी बना गये थे।

नागदेवकी मृत्युके बाद जब यादवराय राजसिंहासन पर बैठे तब उन्होंने उस विश्व विप्रवरकी अपना

मन्त्री बनाया। मन्त्रीकी तीक्ष्णयुद्धि और उनकी तेज-स्वित्तासे मण्डलराज्य समृद्धिशाली हो गया था। यथाथमें एकमात्र यादवराज्यसे ही मण्डलमें गोंड राज्यकी राजधानी स्थापित हुई। उक्त यादवराज्यके ज्येष्ठपुत्रके वंशधरोने यहाँ ३५८ ई० से ले कर १७८१ ई० महाराष्ट्र-युद्ध तक राज्य-शासन किया था। द्वितीय पुत्रके वंशधरगण इतने दिनों तक मन्त्रित्व और राजकार्यादि देखते थे। ६३८ ई०से उक्त वंशके दशवें राजा गोपाल शाह कर्तृक मण्डला राज्य (गोंडवन) गोण्डवाना राज्यके अन्तर्भूक्त हुआ। गोपाल शाहकी मृत्युके बाद समस्त राज्य गढ़ामण्डला या गढ़मण्डल नामसे विख्यात हुआ।

गोपाल शाहके बाद ३८वों पीढ़ीमें राजा संग्राम शाह हुए। इहाँ विख्यात पुरपने गढ़मण्डलराज्यकी उस समय विशेष शक्ति और समृद्धिशाली बनाया था। १५३० ई०में मृत्युके पहले उन्होंने ५२ गढ़ या प्रदेश अधिकार किये। वर्तमान मण्डला, जव्वलपुर, दामो, सागर, नरसिंहपुर, सिवनी, हुसङ्गाबाद और समग्र भूपालराज्य उन्हींके कब्जेमें था।

१५६४ ई०में मुगलसम्राट् अकबर शाहके प्रतिनिधि आसफ खानि गङ्गातीरवर्ती काङ्गा-माणिकपुरमें रह कर बहुत-सी सेनाके साथ गोण्डवानाराज्य पर चढ़ाई कर दी। इस समय दरिद्र जनता दलपत शाहकी विधवा पत्नी रानी दुर्गावती नावालिगोमें राज्यशासन करती थी। मुगलोंकी चढ़ाईसे वह जरा भी न डरी और घोर की पोशाक पहनी। गोण्डवाना-सेनादलने घोर-रमणी-दुर्गावतीकी अधिनायकता स्वीकार की। धीरे धीरे रमणी-वाहिनी मुगलोंके सामने जा धमकी। जव्वलपुर जिलेके सिंगौड़के पास गोंड सेनाने हार खाई और रानीकोई उपाय न देख गढ़की ओर लौटी। यहाँ भी जब मुगलसेनाने आक्रमण करना न छोड़ा तब इन्होंने मंडलामें आश्रय लिया। मण्डलाका दुर्गम गिरिसङ्कट अतिक्रम कर मुगलसेना नगरमें न घुस सके, इस आशंकासे रानी स्वयं सेनादल ले कर गिरिपथकी रक्षामें लग गईं। पहले दिनकी लड़ाईमें रानी दुर्गावतीने बहुत-सी मुगलसेनाको विपर्जस्त किया। आसफ खां परास्त होने पर भी भक्त

मनोरथ न हुए। दूसरे दिन उन्होंने कमानवाही सेनाओंको ले कर रानी दुर्गावती पर आक्रमण कर दिया। युद्धमें रानी बाहन तो हुई पर उनकी वीरत्वबद्धि उस समय भी निर्वापित न हुई। वे आघातकी उपेक्षा कर हिन्दू-वीर्यकी रक्षाके लिये प्रचण्ड विक्रमसे रणक्षेत्रमें अवतीर्ण हुईं। इस समय सहसा उनके सेनादलके पीछे नदी जलसे उमड़ आई जो पहले एकदम सूखी थी। गोंड सेना मुगलयुद्धमें असमर्थ हो कर इसी नदीसे भाग जायगी यह सोच मुगलयोद्धा फूले न समाये, किन्तु वे नदीको स्फोित होते देल चुप हो बैठे, प्राणकी आशा सनोंकी जाती रही। सामने मुगलसेना मूलधारसे मोलावर्षण कर रही है, पीछेसे कलकल नादसे नदीका जल बढ़ कर सेना पर चढ़ाई कर रहा है, इस प्रकार दोनों संकटमें पड़ कर गोंडसेना छत्रभंग हो गई। रानी दुर्गावती किसी तीरसे सेनाको घर्जमें न ला सकी। इधर मुगलवाहिनी छत्रभंग सेनादल पर दूट पड़ते देख घड़ डर गईं तथा बाटमें मुगलोंके हाथ धन्दी और लाञ्छित न होना पड़े, ऐसा सोच उन्होंने तुरत अपने पीलवानकी कमरसे छुरी ले ली और क्षण भरमें अपने कोमलहृदयमें घुसेड़ दी। उनकी यह घोरोचित मृत्यु इतिहासमें ज्वलन्त अक्षरोंमें वर्णित है। इस प्रकार वे अपने कर्ममय जीवनकी घोररथ मुकुटमें अभित कर गईं हैं।

युद्धमें जयी हो मुगल-सेनापति आसफ खांके बहुत धनरत्न तथा हज़ारसे अधिक हाथी हाथ लगे। उनके लौट जानेके बाद राजा चन्द्र शाहके अभियेकके लिये सम्राट् अकबरशाहका आह्वानपत्र लाना पड़ा जिसमें उन्हें नज़राना-स्वरूप दश प्रदेश देने पड़े। उसी समय यह भूपालराज्यमें परिणत हुआ।

राजा चन्द्र शाहके समयसे गढ़मण्डलाके सामन्तोंने द्विद्वीश्वरकी अधीनता स्वीकार की। उनकी दो पीढ़ीके बाद शुन्दला-आक्रमण और युद्ध तथा राजवंशधरोंमें सिंहासन-अधिकारके लिये परस्परमें विवाद खड़ा हुआ और भिन्न देशीय राजाओंको सहायता लेनेसे क्रमशः गोण्डवानाराज्य क्षय होने लगा। सुतर्क १७३१ ई०में महाराज शाहके सिंहासन पर बैठनेके समय राज्यहास

राज्यशासन करनेके बाद उनके लड़के मण्डलिक राज-गर्दा पर बैठे। इन्होंने गुजरात-पति भीमदेवके साथ मिल कर १०८० संवत्में गजनापति महमूदके विरुद्ध युद्ध किया। मण्डलिकके बाद पुत्र परम्परासे हमोरदेव, विजयपाल और ३य नवघनने राज्य किया। राजा ३य नवघन उनेताराजको अपने कावूमें लाये थे।

अनन्तर राजा २य खड्गार राजसिंहासन बैठे। ये अनहिलवाड़पति-जयसिंह सिद्धराजके युद्धमें मारे गये। इसके बाद २य मण्डलिकने ११ वर्ष, धालनसिंहने १४ वर्ष, गणेशने ५ वर्ष, ४थ नवघनने ६ वर्ष, ३य खड्गारने ४६ वर्ष, मण्डलिकने २२ वर्ष और ५म नवघनने राज्य किया था। नवघनके बाद राजा महीपालदेवने ३४ वर्ष शासन किया। आप सोमनाथपत्तनमें एक मन्दिर बनवा गये हैं। १२७८ ई०में ४थ खड्गार सिंहासन पर बैठे। सोमनाथ-मन्दिरका संस्कार और दिउ-अधिकार उनके जीघनकी प्रधान घटना है। इन्हींके राजकालमें मुसलमान सेनापति ग्रामस खाने जूनागढ़ पर अधिकार जमाया। कुछ वर्ष मुसलमानों आधित्यकाके बाद १३३३ ई०में जूनागढ़ पुनः मण्डलिक-राजवंशके हाथ लगा। उसी साल ४थ खड्गारके पुत्र जयसिंहदेव राजसिंहासन पर अधिकार हुए। पीछे यथाक्रम मोकलसिंह (१३४४ ई०) मुगलदेव (१३५६ ई०) महीपालदेव (१३७१ ई०), ४थ मण्डलिक (१३७६ ई०) और २य जयसिंहदेव (१३६३ ई०) राजा हुए। १४११ ई०में गुर्जरपति मुजफ्फर खाने इन्हें परास्त किया।

१४१२ ई०में ५म खड्गार सिंहासन पर बैठे। अल्लाद-शाहके साथ इनका संग्राम हुआ। १४३२ ई०में राव ५म मण्डलिक जूनागढ़के तख्त पर आसीन हुए। इन्होंने १४७१ ई०में महमूद विगाड़ाकी अधीनता स्वीकार कर अपनी जानकी रिहाई पाई।

अहमदाबाद-राजाओंसे पराजित हो कर चूड़ासमा राजाओंने एक सन्धि तक जागीरदार सामन्तरूपमें राज्य-शासन किया था। उन राजकुमारोंके नाम नीचे दिये जाते हैं,—

१४७२ ई०में ५म मण्डलिक भ्राता मापत प्रथम जागीर-दार ठहराये गये। उनके पुत्र छठे खड्गार १५०३ ई०में

और खड्गारके पुत्र छठे नवघन १५२४ ई०में पितृसिंहासन पर बैठे। १५५१ ई०में श्रीसिंह जागीरदार हुए। इस समय सम्राट् अबरशाहने गुजरात पर आक्रमण किया। अनन्तर १५८५—१६७६ ई० तक ७म खड्गारने जागीरदारोंका भोग किया था।

मण्डलित ( सं० लि० ) मण्डलान्वित, गोल किया हुआ।

मण्डलिन ( सं० पु० ) मण्डलं कुण्डलं कुण्डलाकारेण शरीर-वेष्टनमस्यारस्तीति मण्डल-इति। १ सर्पमेव, एक प्रकारका सर्प सुश्रुतमें लिखा है, कि सर्प पांच श्रेणियोंमें विभक्त है। इनमेंसे मण्डली द्वितीय श्रेणिका है। जो सब सर्प विविध प्रकारके मण्डलाकारसे चित्रित, स्थूल और मन्द्यागामो तथा दीप्तसूर्यकी तरह आभाविशिष्ट हैं, उन्हें मण्डली सर्प कहते हैं। इस जातिके सर्प ये सब हैं—

आदर्शमण्डल, श्वेतमण्डल, रक्तमण्डल, त्रिविमण्डल, पृथत, रोध्रपुष्प, मिलिन्दक, गोनस, वृक्षगोनस, पनस, महापनस, वेणुपलक, शिशुक, मदन, पालिहिर, पिगल, तन्तुक, पुष्प, पाण्डु, पङ्गो, अग्निक, वज्रकथाय, कलुप, पारायत, हस्ताभरण, चितक और एणीपद।

सभी प्रकारके सर्पविषका वेग सात प्रकारका है। रस, रक्त, मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शुक्र ये सात धातु हैं। विष-शरीरमें प्रवेश करके पहले रसधातुको दूषित करता है। इस धातुके दूषित होनेसे रक्तधातु दूषित होता है, इस प्रकार धीरे धीरे साती धातु दूषित हो जाती है। इन प्रकार एक एक धातु दूषित करनेकी विषका एक एक वेग कहते हैं।

मण्डलीके विषके प्रथम वेगमें शोणित दूषित हो कर अत्यन्त शीतल हो जाता है। सारे शरीरमें जलन होती है और शरीर पोला पड़ जाता है। द्वितीय वेगमें मांस दूषित हो कर शरीर अत्यन्त पीतवर्ण हो जाता है, जलन देती है और काटा हुआ स्थान सूज जाता है। तृतीय वेगमें मेद दूषित होता है तथा तद्व्युक्त इष्टिस्थिर, तृष्णा वृष्टस्थानमें क्लेद और घर्ष आदि उपद्रव होते हैं। चतुर्थवेगमें विष कोष्ठदेशमें प्रवेश कर ऊपर उत्पन्न करता है। पञ्चम वेगमें सारे शरीरमें जलन होती है।

पथ वेग मज्जा में प्रवेश और ग्रहणोको दूषित करता है। इसके शरीरके गौरव, अतिसार और हृदयको पीड़ा और मूत्रां आदि उपद्रव होते हैं। सप्तम वेग शुक्रके मध्य प्रवेश कर व्यान वायुको अत्यन्त कृषित करता है तथा लोमकूप आदि सूक्ष्म द्वारसे कफ निकलता, पृष्ठ-भङ्ग होता, सभी इन्द्रियोंका कार्य गिथिल हो जाता, राल और स्वेद बहुत निकलता तथा श्वासरोध होता है।

(मुश्रुत कल्पस्थो ४ अ०) विशेष विवरण सर्प शब्दमें देवो।

२ विडाल, विल्ली। ३ नेबलेका जातिको विल्लीको तरहका एक जन्तु। इसे बंगालमें खटाश और युक्तप्रान्तमें कहीं कहीं 'से' धुवार कहते हैं। ४ बटशूक। ५ गोनश सर्प। ६ सर्प।

मण्डली (सं० खो०) मण्डलप्रस्थस्था इति अर्थ आदित्यांश्च गौरादित्वात् ङीप्। १ दुर्वा, द्व। २ गुडुची।

३ गोष्ठी, समूह।

मण्डलीक (सं० पु०) एक मण्डल या बाह्य राजाओंका अधिपति।

मण्डलेश (सं० पु०) मण्डलस्य ईशः। एक मंडल या १२ राजाओंका अधिपति।

मण्डलेश्वर (सं० पु०) मण्डलेश देवो।

मण्डलेश्वर—मध्यभारतके इन्दौर राज्यान्तर्गत एक नगर।

यह अक्षां २२° ११' उ० तथा देशां ७५° ४२' पू० नर्मदाके दाहिने किनारे अवस्थित है। जनसंख्या तीन हजारके करीब है। माऊसे अशीरगढ़ आनेमें इसी स्थान हो कर जाना पड़ता है। नगर और उसके चारों ओरकी जमीन समुद्रपृष्ठसे ६५० फुट ऊँची है। यहाँ पर नर्मदाका प्यास प्रायः ५ सौ गज होगा। यसस्तकाल छोड़ कर अन्य किसी भी समय यहाँसे नाव द्वारा नदी पार नहीं कर सकते। नगर चारों ओर मट्टीकी दीवारसे घिरा है। उसके मध्यभागमें एक किला है। एक समय उस किलेमें अङ्गरेजों सेना रहती थी। इन्दौरके अंगरेज रेसिडेण्टके रामकीय सहकारी (Political Assistant) इस दुर्गमें रह कर अङ्गरेजाधिष्ठल निमारप्रदेश तथा अङ्गरेजोंके हाथ समर्पित होलेकर राजके कुछ प्रदेशोंका शासन करते थे। १८६७ ई०में अङ्गरेजराजने हीलकर-राजके दाक्षिणात्य विभागके कुछ छोटे राज्योंके कदलेमें

उन्हें मण्डलेश्वर छोड़ दिया। अभी इस नगरसे होल करका अधिष्ठल निमारप्रदेश शासित होता है। उक्त-दुर्ग अभी कारागारमें रूपान्तरित हुआ है। कर्णल किट्टिङ्ग इस नगरकी बहुत कुछ उन्नति कर गये हैं।

मण्डहारक (सं० पु०) मण्डं हरति आहरति य्ल्लातीति ह (यदुज्जन्तुवी। पा ३।१।२३३) सुरासम्पादनार्थं मंडप्रहणा-दस्य तथात्वं। शीरिडक, कलवार।

मण्डा (सं० खो०) मंडः कारणत्वेनास्ति अस्या इति अर्थ आदिभ्योऽच्। १ सुरा। २ आमलकी।

मण्डिक (सं० पु०) भारतका पूर्वांशवर्ती जनपदभेद। (महाभारत वन० २५३ अ०)

मण्डित (सं० हि०) मण्डि-कर्णणि-क्त। १ भूषित, सजाया हुआ। २ आच्छादित, छाया हुआ। ३ पूरित भरा हुआ। (पु०) ४ बौद्धगणाधिपविशेष।

मण्डो—पञ्जाबप्रदेशके अन्तर्गत एक सामान्तराज्य। यह अक्षां ३१° २३' से ३२° २४' उ० तथा देशां ७६° ४०' से ७७° २२' पू०के मध्य अवस्थित है। इसके उत्तरमें छोटा बाङ्गाहल, पूर्वमें नागू पहाड़, दक्षिणमें सुकेत और पश्चिममें काङ्गड़ा जिला है। यह राज्य ५४ मील लंबा और ३३ मील चौड़ा है। भू-परिमाण १२०० वर्ग-मील है।

यह राज्य पर्वतकी अधित्यकाभूमिमें अवस्थित है। इसके दोनों ही पार्श्वमें उच्च गिरिश्रेणी हैं। उसका गोघरका धार नामक शृङ्ग ७००० फुट और सिकेन्द्रका-धार ६३५० फुट ऊँचा है। किन्तु और सभी जगह उसकी ऊँचाई ५ हजार फुटसे अधिक नहीं होगी। यह स्थान समथिक उर्वरा है। वन्यविभागमें शिकारोपयोगी नाना जन्तु और पक्षी हैं। अधिवासिगण स्वभावतः ही धलिष्ठ हैं।

यहाँके सामन्तगण वङ्गालके सेनराजवंशीय हैं, किन्तु अभी वे अपनेको चन्द्रवंशीय राजपूत बतलाते हैं। सुकेत-राज्यके किसी राजवंशधरने मण्डोमें आ कर राज्य स्थापन किया। तभीसे वे मण्डियाल कहलाने लगे। राजाको उपाधि सेन है और उनके स्वसम्पर्कीय अपरापर राज पुत्र्योंकी उपाधि सिंद।

राजा बाहुसेन नामक एक सुकेत राजसूताने अप



बड़े मारोंके साथ कलह करके भ्रातृराजाका परित्याग किया और १२वीं सदीके शेष भागमें अपने अदृष्टकी परीक्षाके लिये घरमें निकल पड़े। वे पहले कुलूराजामें और पीछे मङ्गलोरमें जा उठे। यहां एक समय उनके ११वीं पीढ़ाके पूर्वजोंका वास था। उक्त वंशके राजा वाणो ७ सकोराधिपतिको मार कर सफोर-सिंहासन पर बैठे। वहांसे वाणो वितस्ता-तीरवर्ती भोन नगरमें अपना प्रासाद और राजधानी उठा ले गये। यह भोन-नगर वर्त्तमान मण्डोनगरसे ४ मील उत्तरमें अवस्थित है। अन्तमें बाहुसेनसे १६वीं पीढ़ी नीचे राजा अजवर सेनने १५२७ ई०में मण्डोनगरको बसाया। इन्हींसे मण्डोमें प्रकृत सामन्तराजा प्रतिष्ठित हुआ। इसके बाद सुकेत और मण्डावंशमें लगातार युद्धविग्रहादि होने लगा।

१७वीं शताब्दीके शेष भागमें १०म सिख गुरु गोविन्दसिंह मण्डोको देखने आये। उनकी आगमन-वार्त्ता सिख-इतिहासमें अलौकिक बतलाई गई है। प्रवाद है, कि गुरुगोविन्द सिंह कुलूराजसे लौह-पिञ्जरमें आवद्ध हुए। वे अपने योगबलसे उस लौह-पिञ्जरको मण्डोमें उड़ा लाये। राजा ईश्वरीसिंहके राजकालमें (१७९६-१८२६) मण्डोराजा यथाकम कटोचराज, गुरखा और लाहोरपति रणजितसिंहके अधीन रहा। १८४० ई० तक मण्डोराजने लाहोर-शरदारमें कर दिया था। पीछे सेनापति मेनचुराने महाराज खड्गसिंहके लिये मण्डो अधिकार किया। इस युद्धमें कमालगढ़ दुर्ग जीतनेमें सिख सेनाको बहुत कष्ट उठाना पड़ा था। आखिरमें राजाने कोई उपाय न देख लाहोरराजके निकट आत्मसमर्पण किया। किन्तु लाहोरराजकी अर्धालीभी दुराकाङ्क्षा देख कर उन्होंने अङ्गरेजोंको शरण ली। सोम्राउन युद्धके बाद अङ्गरेजोंके साथ उनका अच्छा सन्धाय हो गया। १८४६ ई०में लाहोरकी सन्धिके

बाद यह राजा वृटिश सरकारके हाथ लगा। वृटिशराज-ने पुनः यह राज्य वर्त्तमान राजाके पिताको समर्पण किया। शर्त्त यह ठहरो, कि राजा अपने खर्चसे स्वराज्यमें पथ विस्तार करने तथा चाणिजकी आम-दनी रपतनीका कोई शुल्क ग्रहण न कर सकेंगे। १८५१ ई०में बलघोरकी मृत्युके बाद उनके लड़के विजयसेन जिनकी उमर सिर्फ चार वर्ष की थी, राज्याधिकारी हुए। उनकी नाबालिगी तक पञ्जीरने राजकार्य अच्छो तरह चलाया। १८६६ ई०में बालिग हो कर वे दस धरा-धामको छोड़ परलोकको सिधारे। पीछे उनके जारज पुत्र भवानीसेन उत्तराधिकारी बनावे गये। ये ही वर्त्तमान राजा हैं। वृटिश सरकारसे इन्हें ११ तोपोंकी सलामी मिलती है।

इस राज्यमें मंडी नामक १ शहर और १४६ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या दो लाखके करीब है। राज्यकी आय चार लाखसे ऊपर है। एक लाख रुपये वृटिश सरकारको करमें देने पड़ते हैं। विद्याशिक्षामें यह राज्य बहुत पीछा पड़ा हुआ है। अभी कुल मिला कर बारह स्कूल हैं। स्कूलके अलावा King Edward vii नामक एक अस्पताल भी है।

२ उक्त राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० ३१° ४३' ३० तथा देशा० ७६° ५८' ५० पठानकोटसे १३ मील और सिमलासे ८८ मील दूर पड़ता है। जनसंख्या आठ हजारसे ऊपर है। १५२७ ई०में मंडीके राजा अजवरसेनने इसे बसाया। शहरमें सुन्दर कारुकार्यविशिष्ट देवालय तथा अन्यान्य भवन हैं। यहांकी नदीके ऊपर 'पम्प स' नामक एक पुल है। शहरमें पञ्जलो-वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल और एक अस्पताल है।

मण्डोयान—अयोध्याप्रदेशके लखनऊ जिलान्तर्गत एक नगर। यहां पहले लखनऊके नवाबकी सेना रहती थी। अयोध्याके छठे नवाब सादत अली खानि इस नगरको बसाया। सिपाहीविद्रोहके समय यहां कम्पनीकी सेना रली गई थी। अभी यह मकान टूट फूट गया है, केवल दो एक प्रवेशद्वार और उसके भीतरमेंके धर्ममन्दिरका अंग दृष्टिगोचर होता है। अभी इसके चारों ओर धानकी खेती होती है।

४ प्रवाद है, कि बाणवृक्षके नीचे जन्म होनेके कारण ये जनवाधारणमें बाणो नामसे प्रसिद्ध हुए। उनकी माता जब पूर्ण गर्मा थीं, तब पाम्बवर्षीं किमी राजाके भत्याचारसे रानी-माताको राज्य छोड़ कर भागना पड़ा था। राहमें ही बाणका जन्म हुआ था।

अभी इस नगरकी पूर्वश्री ज्ञाति रही। यह अभी गण्डग्राममें परिणत हो गया है। कहते हैं, कि पहले यहां बहुत विस्तृत जंगल था। उस जंगलमें मण्डल नामक एक ऋषि रहते थे। उन्हांके नामानुसार नगरका नामकरण हुआ था।

पहले यहां भर जातिका वास था। पीछे सैयद सलार सेनापति मालिक आदमने उन्हे मार भगाया। तभीसे यह नगर शखोंके दखलमें रहा। उन्हींने यहां प्रायः १५० वर्ष राज्य किया था। अनन्तर मौलीके रसैला-चौहान वंशोय राजा राजसिंहने शैखवंशका मूलोच्छेद करके यह स्थान अपने ब्राह्मण और कायस्थ कर्मचारियोंको ब्रह्मोत्तर और महायाणमें दान कर दिया। आज भी शैखोंके स्मृतिस्वरूप यहां प्रतिवर्ष सैयद सलारके उद्देशसे एक मेला लगता है।

मण्डोलक (सं० ह्री०) गोधूमचूर्णसे प्रस्तुत पिष्टक-भेद।

मण्डु (सं० पु०) ऋषिभेद।

मण्डूक (सं० पु०) मण्डयति भूपयति जलाशयमिति मण्डि- (शक्तिमण्डिभ्यामूकण् । उष् ४।४२) इति ऊकण् । १ भेक, भेदक । भेक देलो । २ शोणक, सानापाडा । ३ मुनिविशेष । ४ प्राचीनकालका एक राजा । ५ एक प्रकारका नृत्य । ६ घोड़ेकी एक ज्ञाति । ७ दोहा छन्दका पांचवां भेद । इसमें १८ गुरु और १२ लघु अक्षर होते हैं । ८ यद्रतालके ग्यारह भेदोंमेंसे एक ।

मण्डूकपर्ण (सं० पु०) मण्डूकाकृति पर्णमस्य । श्योणाक वृक्ष ।

मण्डूकपर्णी (सं० स्त्री०) मण्डूकपर्ण, गौरादित्यान् स्त्री । १ मञ्जिष्ठा, मजोठ । २ ब्राह्मी, ब्राह्मी वृटी । ३ आदित्यभक्ता । ४ औषधिविशेष । पर्याय—भेकी, मण्डूकी, मूलपर्णी, मण्डूकपर्णिका । गुण—लघु, स्वादु-पाक, शीतल । ५ महीपथि ।

मण्डूकमातृ (सं० स्त्री०) मण्डकस्य मातेव, मण्डूक-पोषकत्वावस्थास्तथात्वं । १ ब्राह्मी वृटी । २ भेकमाता, भेदककी मां ।

मण्डूकसरस (सं० ह्री०) मण्डूक प्रचुरं सरः जाती अच् समासान्तः । सरोवरभेद ।

मण्डूका (सं० स्त्री०) मण्डक-स्त्रियां टाप् । मञ्जिष्ठा, मजोठ ।

मण्डूकालुक—ब्रह्मखण्डवर्णित स्वर्गदेशके अन्तर्गत एक प्रसिद्ध ग्राम । (म० ब्रह्मखण्ड १७ अ०)

मण्डूकी (सं० स्त्री०) मण्डूक-स्त्रियां स्त्री । १ आदित्य-भक्ता । २ ब्राह्मी । ३ क्षुपविशेष । ४ धृष्टयोपित, निर्लज्ज औरत ।

मण्डूकेश—फलगुके किनारे अवस्थित शिवलिङ्गभेद । शिवपुराणके प्रथमं इस लिङ्गके दर्शन करनेसे सर्वसिद्धि लाभ होती है । (शिवपुर० शतस० ३८ अ०)

मण्डूर (सं० पु० ह्री०) मण्डि ऊरच् । १ लोहमल, गलाप हूप लोहेकी मल । पर्याय—शङ्खाण, सिंहाण, सिहाण । (अमर और भरत)

मण्डूरको शोध कर व्यवहार किया जाता है। विना शोधा हुआ मण्डूर बहुत हानिकारक है। भावप्रकाशमें लिखा है, कि गलाप हूप लोहेके मलका नाम मण्डूर है। पर्याय—लोह, सिंहाणिका, किट्टि और सहाण । इसमें लोहेका ही गुण माना है।

रसेन्द्रसारसंप्रभेदं इसके शोधनका विषय इस प्रकार लिखा है,—लोहमें जो सब गुण हैं वही सब गुणलोह मण्डूरमें भी है। सी वर्षसे ऊपरका मण्डूर उत्तम, ८० वर्षका मध्यम और ६० वर्षसे ऊपरका मण्डूर अधम माना गया है। ये तीन प्रकारके मण्डूर औषधके काममें लाये जा सकते हैं। इससे कमका मण्डूर विषसदृश है। वहेड़ेकी लकड़ीमें जला कर सात धार गोमूत्रमें डालनेसे मंडूर शुद्ध हो जाता है। इसका सेवनसे ज्वर, प्लीहा, कमला आदि रोग जाते रहते हैं। मण्डूरसे मुण्ड-लोह दशगुण, मुण्डसे तीक्ष्ण लोह भी दश गुण, मुण्डसे कान्तलोह लक्षगुण फलप्रद है। (रसेन्द्रसार०)

विशेष विवरण कीर्ति शब्दमें देतो ।

मण्डूरवज्रवटक (सं० पु०) औषधविशेष । प्रस्तुत प्रणाली-पीपल, उसका मूल, चर्द, चिनामूल, सोंठ, मिर्च, देवदारु, एरीतकी, आमलकी, बहेंडा, बिड़ङ्ग और मोथा प्रत्येक २४ तोला, कुल मिला कर जितना हो उससे दो गुणा मण्डूर मिला कर अष्टगुण गोमूत्रमें पाक करे। गाढ़ा होने पर दो तोले भरकी गोली बनावे। अनुपात

मद्दा है। इसके सेवनसे पाण्डु, मन्दाग्नि, भरुचि, अर्श, ग्रहणी दोष, ऊरुस्तम्भ, कृमि, प्लोहा, आनाह और गल-रोग आराम होता है। (रलेन्द्रनारसंह पाण्डुरोगाधिकार) मण्डोद (सं० पु०) सहाद्रिखंड वर्णित सप्तसागरमेंसे एक। (सहा० २।४१)

मण्डोदक (सं० क्लो०) मण्ड इय उदकमस्य, मण्ड-मिश्रितमुदकमत्रेति वा। १ चित्रराग। २ विचित्रवर्ण। ३ आतर्पण।

मत् (सं० अव्य०) अनहमहं मद्भवतीति, अस्मच्छब्दात् च्यि प्रत्यये कृते तन्मुक्ति अस्मद्गुणद्वय मदादेशः। पहले जो भामित्व नहीं था, पीछे वही भामित्वभाव, पहले मैं जो नहीं था, वही मैं।

मतंगा (हि० पु०) बङ्गाल और बरमानों मिलनेवाला एक प्रकारका वस। इसके पोर लंबे धीरे सुदृढ़ होते हैं। इसको दीमक नहीं खाती।

मतंगी (हि० पु०) हाथीका सवार।

मत (सं० क्लो०) मन्-भावे क। १ सम्मत, राय। पर्याय—छन्द, अग्निप्राय, आकृत, भाव, आशय। २ धर्म, पन्थ। ३ भाव, आशय। ४ ज्ञान। ५ पूजा। (वि०) ६ पूजित, जिसकी पूजा की गई हो। ७ कुटिस्त, खराब। (कि० वि०) ८ निषेधवाचक शब्द, नहीं।

मतक (सं० वि०) मतः समीकृतः तत्समीप इत्यर्थे चतुरध्यादित्वात् क। १ जहाँ पर भूमि समीकृतकी गई है उसके समीप। २ मत देखी।

मतक—आसामप्रदेशके लखिमपुर जिलेका एक जनपद। यह ब्राह्मपुत्रके दाहिने और बाएँ किनारे अवस्थित है। इसकी पूर्वा सीमा पर सिपो पहाड़ और दक्षिणमें बृहदी-दहिङ्ग नदी है। आहम राजाओंके समय यह स्थान बहुत उन्नत दृशमें था। उस समय यहाँ पर आहम जातिकी ही मतक वा मोयामरिया नामक एक श्रेणिका घास था और वे सभी वैष्णवधर्मावलम्बी थे। आहमराजोंने 'हे' दूर्गापूजामें दीक्षित करनेकी अनेक बार चेष्टा की थी जनता से वे सबके सब बागी हो गये थे। राजा गौरी-पूर्णगर्भ समय व लोग निगन आसाम तक चढ़ आये माताकी रत्न पृथिवी सेनाकी सहायतासे गौरीनाथने उन्हें जन्म हुआ था। दुर्धर्ष मतकीने फिर दूसरी बार

स्वाधीनता अवलम्बन की और अपनेमेंसे किसी एकको सरदार बना कर 'बड़े सेनापति' उसकी उपाधि दी। १८१५ ई०में ब्रह्मसेनाके आसामसे विताडित होने पर पृथिवी गवर्मे एटने मतक-सरदारको एक सामन्त बनाया था। किन्तु १८३६ ई०में उनको मृत्यु होने पर उनके उत्तराधिकारीके साथ पृथिवीगवर्मे टका सन्नाह नहीं रहा। इस कारण कुल स्थान पृथिवीसरकारके हाथ लगा। अभी मतकराज्य नहीं है, केवल कुछ मीजा उनके अधीन रह गया है।

मतङ्ग (सं० पु०) माघति माघत्यनेन घेति मनु अङ्ग्य, दस्य त। १ मेघ, बादल। २ मुनिभेद। ३ दानभेद। ४ राजर्षिभेद, एक ऋषिका नाम जो शबरीके गुह्य थे। अनु शासन पर्वमें लिखा है, कि ये एक नापितके घोड़ेसे एक ब्राह्मणीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे। किसी समय युधिष्ठिरने पितामह भीष्मसे पूछा था, 'क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र किस कार्य द्वारा ब्राह्मणत्व लाभ कर सकता है? तपस्या, सत्कार्य और शास्त्रज्ञान इनमेंसे कौन क्षत्रियादि तीनों वर्णके लिये ब्राह्मणत्वलाभमें उपयोगी है?' कृपा कर सविस्तार कह सुनाइये।

उत्तरमें भीष्मने कहा, धर्मराज! क्षत्रिय आदि तीनों वर्णोंको ब्राह्मणत्वलाभ हीना बहुत कठिन है। ब्राह्मणत्व सबसे श्रेष्ठ है। उसके लिये लाखों वर्ष तक अनेक जन्म धारण करके तपस्या करनी पड़ती है। तुम्हें एक पुराना इतिहास कहता हूँ, ध्यान दे कर सुनो, सब संशय दूर हो जायगा।

"पूर्वकालमें एक ब्राह्मण-स्त्रीके गर्भ और शूद्रके घोड़ेसे एक बालक उत्पन्न हुआ। पुत्रका नाम था मतङ्ग। मतङ्ग सर्वांगुणसम्पन्न थे। ब्राह्मणने मतङ्गको अपना ही औरस-जात समझ कर उसके जातकमाँदि सभी संस्कार्य किये। एक दिन ब्राह्मणने मतङ्गसे कहा, मैं एक यज्ञका अनुष्ठान करूँगा, तुम यज्ञीय समी द्रव्य ले आओ। मतङ्ग एक तेज गधेके रथ पर सवार हो पिताके लिये यज्ञकी सामग्री लाने चल दिये। किन्तु जिस राहसे उन्हें जाना था उस राहसे गधा न जा कर किसी दूसरे राहसे जाने लगा। इस पर क्रोधमें आ कर मतङ्गने उसकी नाक पर दो चार कोड़े जमाये। उस गधेकी माता गधी

पुत्रकी नाक पर सख्त चोट लगा है, देख कर कृष्ण-  
भायसे बोली, 'वत्स ! दुःखित मत होना, वह चण्डाल  
है, इस कारण निन्दुर है, ब्राह्मण क्रमा भी निन्दुर नहीं  
हो सकते। ब्राह्मण जगत्के मित्र हैं। वे सभी भूतों-  
के आहार्यदाता और शासनकर्त्ता हैं। यह निर्दय हृदय जैसे  
योर्गसे उत्पन्न हुआ है, वैसा ही कार्य करता है।'

गधोका यह कर्त्तव्य-वाच्य सुन कर मतङ्गने उससे  
पूछा, 'कल्याणि ! मेरी जननी किस प्रकार दूषिता है  
जिससे मैं चण्डाल हो गया हूँ तथा जिस कारण मेरा  
ब्राह्मणत्व नष्ट हो गया है छल कपट छोड़ कर साफ  
साफ मुझसे कहो, डरो मत।' इस पर गधो बोली,  
'तुम कामोन्मत्ता ब्राह्मणोंके गर्भसे नापितके योर्गसे  
उत्पन्न हुए हो, इसी कारण तुम्हारा ब्राह्मणत्व नष्ट हो  
गया है और तुम चण्डाल हो गये हो।'

अनन्तर मतङ्गने घर आ कर पितासे सब समाचार  
कहे और ब्राह्मणत्व प्राप्त करनेके लिये घोर तपस्या करने  
लगे। इनकी तपस्यासे देवगण डर गये। इन्द्र बार  
बार आ कर इन्हें बरका प्रलोभन देने लगे, पर मतङ्ग  
ब्राह्मणत्वके सिवा और कोई बर लेनेको राजी न हुआ।  
इस प्रकार बहुत दिन बीत गये। एक दिन इन्द्रने पुनः  
आ कर उनसे कहा, 'वत्स ! ब्राह्मण्य नितान्त दुर्लभ है।  
तुम कितनी ही चेष्टा क्यों न करो, ब्राह्मणत्व नहीं पा  
सकते हो। जीव तिर्यक योनिसे मनुष्यत्व लाभ करके  
पहले पुत्रदा वा चण्डालयोनिमें उत्पन्न होता है, सहस्र  
वर्ष उसे निष्ठुर योनिमें परिभ्रमण कर दूद्रत्य लाभ  
करता है। पीछे तोस हजार वर्ष बीत जाने पर वैश्यत्व,  
उसके बाद एक लाख अस्सो हजार वर्षके बाद क्षत्रियत्व  
और क्षत्रियत्वलाभके एक सौ अस्सो लाख वर्षके बाद  
पतित ब्राह्मणत्व लाभ होता है। अनन्तर उस पतित  
ब्राह्मणकुलमें दो सौ साठ करोड़ वर्ष परिभ्रमण कर अन्न-  
जोषि-ब्राह्मणकुलमें जन्म होता है। इसके बाद विशुद्ध  
ब्राह्मणत्वकी प्राप्ति होती है। अतएव तुम ब्राह्मण भिन्न  
कोई और घर मांगो उसे मैं देता हूँ। ब्राह्मण्य तुम्हारे  
लिये दुर्लभ है।

मतङ्गको जब ब्राह्मणत्वलाभकी आशा न रही तब  
उन्होंने हताश हो इन्द्रसे कहा, 'दिवराज ! अब मुझे ऐसा

पक्षी बना दीजिये, जिसको सभी वर्णवाले पूजा करे ; मैं  
जहां चाहूँ, वहां जा सकूँ और मेरी कीर्ति अक्षय हो।'   
इन्द्रने उन्हें यही बर दिया और वे छन्दोदेवके नामसे  
प्रसिद्ध हुए। कुछ दिनोंके उपरान्त उन्होंने शरीरत्याग  
कर उत्तम गति प्राप्त की।"

( भारत अनुवाकन० २६-३० अ० )

मतङ्गज ( सं० पु० ) मतङ्गः मेघ-श्च जायते तदाप्य मुने-  
र्जातो वा जन-ड । हस्ती, हाथी ।

मतङ्गतार्थ ( सं० क्ली० ) तीर्थभेद ।

मतङ्गदेश—कामरूपके वह्निकीणमें अवस्थित जनपदभेद ।

मतङ्ग्यापो ( सं० स्त्री० ) तीर्थभेद ।

( भारत अनुरा० ३० अ० )

मतङ्गाश्रम—गया जिलेके फल्गुनदीके बाएँ किनारे अव-  
स्थित पुण्यस्थान । ( महाभा० २।३।२ ) भविष्य ब्रह्म-  
खण्डके मतसे यही दण्डकारण्य है ।

मतन ( मर्त्तन वा मार्त्तण्ड )—काश्मीरराज्यके अन्तर्गत  
एक प्राचीन भान देवालय । यह अक्षा० ३३' ४२' उ०  
तथा देशा० ७५' २१' पू०के मध्य अवस्थित है । राज-  
तरङ्गिणीमें यह रामपुर स्वामीके नामसे वर्णित है। इसी-  
के समीप एक समय एक जनाकार्ण बड़ा नगर था ।  
यह मन्दिर मार्त्तण्ड वा सूर्यके उद्देश्यसे उत्सृष्ट है ।  
प्रत्नतत्त्वविद् कनिहमके मतसे ३७० ई०में यह मन्दिर  
बनाया गया है, किन्तु गठन-प्रणाली देखनेसे उससे मो  
पुराना मालूम होता है। बहुतांका विश्वास है, कि  
काश्मीरके मध्य अभी जो सब प्राचीन कीर्तियाँ वर्त्तमान  
हैं उनमेंसे यही सर्वाप्राचीन है। केवल प्राचीन ही नहीं,  
वरन् शिलपनैपुण्यमें भी यह काश्मीरमें बेजोड़का है।  
यहांका प्राकृतिक दृश्य ऐसा चमत्कार है, कि कोई कोई  
यूरोपीय भ्रमणकारी इस स्थानको देख कर मुककण्ठसे  
कह गये हैं, कि ऐसी सुन्दर प्राकृतिक शोभा संसारमें  
और कहीं भी नहीं है।

यहांके लोगोंका विश्वास है, कि यह मन्दिर पाण्डु-  
वंशको कीर्ति है। मन्दिर खूब ऊँचा है। इसके दो  
पार्श्व मुखशाली गौर चार पार्श्व चतुरस्र स्तम्भसे  
मण्डित है। समस्त मन्दिर-भूमिकी लम्बाई २२० और  
चौड़ाई १४२ फुट होगी। वर्त्तमान मन् मन्दिरके मध्य

कसाँटीकी बनी हुई बड़ी बड़ी देवमूर्तियां और विचित्र जिन्यवधित मन्मथ्रेणो विराजित हैं। मन्दिरके पास ही एक प्रसिद्ध प्रस्त्रयण है।

मतलब (अ० पु०) १ तात्पर्य, अभिप्राय। २ अर्थ, मानी। ३ अपना हित, निजका लाभ। ४ सम्बन्ध, यास्ता। ५ उद्देश्य, विचार।

मतलबी (अ० वि०) स्वार्थी, खुदगर्ज।

मतल्लिका (सं० स्त्री०) मतं मतिमलति भूययति ष्ठुल, पृथोदादितयात् साधुः। १ प्रशस्त, उमदा। २ छन्दो-भेद।

मतवाला (हिं० पु०) १ उन्मत्त, पागल। २ मदमस्त, नरो आदिके कारण मस्त। ३ जिसे अभिमान हो, ध्यर्ष अहंकार करनेवाला। (पु०) ४ वह भारी पत्थर जो किले या पहाड़ परसे नीचेके जलुओंको मारनेके लिये लुढ़काया जाता है। ५ कागजका बना हुआ एक प्रकारका गावदुमा खिलौना। इसके नीचेका भाग मिट्टी आदि भरो होनेके कारण भारी होता है। जब यह फेंका जाता है, तब सदा खड़ा ही रहता है, जमीन पर लोटता नहीं।

मतानुष्ठा (सं० स्त्री०) न्यायदर्शनोक्त निग्रहस्थानभेद। न्याय दर्शनमें जो सोलह पदार्थ माने गये हैं, निग्रह उनमेंसे एक है। इस निग्रह स्थानके भी फिर २२ प्रकार हैं। इसमें अपने पक्षके दोष पर विचार न करके धार धार विपक्षीके पक्षके दोषका ही उल्लेख किया जाता है।

मतानुयायी (सं० पु०) किसीके मतके अनुसार आचरण करनेवाला, किसीके मतकी माननेवाला।

मतारी—सिन्धुप्रदेशमें हैदराबाद जिलेके अन्तर्गत हाला उपविभागका एक नगर। यह अक्षांश २५° ३६' उ० तथा देशांश ६८° २६' पू० हाला शहरसे २० मील दक्षिणमें अवस्थित है। जनसंख्या ६६०८ है। यहाँ तपाद्वारकी सदर कचहरी, धर्मशाला, सरकारी स्कूल और धाना है। गाना प्रकारके शास्त्र, नेलहन योज, रुई, चीनी और कपड़ेका व्यवसाय होता है। प्रयाद ई. १३२१ ई०में यह बसाया गया है। यहाँ सौ वर्षकी प्राचीन एक सुन्दर जुम्मा मस्जिद और उसके पास दो साधुकी कब्र हैं। प्रतिपक्ष आश्विन-मासमें मस्जिदके सामने मेला लगता

है। इस मेलेमें दूर दूर देशके मुसलमान आते हैं।  
मतावलम्बी (सं० पु०) किसी एक मत, सिद्धान्त या सम्प्रदाय आदिका अवलम्बन करनेवाला। जैसे—बौद्ध-मतावलम्बी।

मति (सं० स्त्री०) मन्यतेऽनयेति इति मन-क्तिन्। १ बुद्धि, समझ। शुभ अशुभके भेदसे बुद्धि दो प्रकारकी है। बुद्धि देवी। २ इच्छा, खाहिश। ३ स्मृति। ४ आर्थ। ५ शाकभेद। (ति०) ६ मेधावी, बुद्धिमान्।

गद्यदुपराणमें मतिकर आँपघका विषय इस प्रकार लिखा है,—पाठा, दो प्रकारका जीरा, कुष्ठ, अश्वगन्धा, अजमोदा, यच, त्रिकटु और लवण इन सब द्रव्योंकी अच्छी तरह पोस कर बाणोशाकके रसमें भायना दे। पीछे उस चूर्णका घृत और मधुके साथ सेवन करे, तो मति वा बुद्धि बढ़ती है।

“पाठा दे जोके कुष्ठमन्यगन्धाज मोदकम्।

यचा त्रिकटुकश्चैव अवयं चूर्णमुत्सामम्॥”

मतिकर्मन (सं० स्त्री०) १ बुद्धिकार्य, समझका काम। २ मानसिक कार्य, दिमागका काम।

मतिगति (सं० स्त्री०) १ मनोभाव। २ चिन्ताका भाव।

मतिगर्भ (सं० ति०) बुद्धिमान्, चतुर।

मतिचिह्न (सं० पु०) अश्वघोषका नामान्तर।

मतिच्छन्न (सं० स्त्री०) प्रष्टुबुद्धि, कुमति।

मतिदर्शन (सं० बली०) यह शक्ति जिसके अनुसार दूसरेकी योग्यता या भावीका पता लगता है।

मतिदः (सं० स्त्री०) मति ददातीति दा-क्, त्रिषां-टाप्।

१ ज्योतिष्मती लता। २ गिमड़ी शूष, संगल। (ति०)

३ मतिज्ञाता, बुद्धिदाता।

मतिध्वज (सं० पु०) जापयपण्डितका भतीजा।

मतिनार (सं० पु०) नृपभेद।

मतिनिश्चय (सं० पु०) बुद्धिकी निश्चयता, मतिकी स्थिरता।

मतिपुर—चीनपरिभाषाक यूपनखुयंग-वर्णित एक प्राचीन जनपद। बहुतेसे पुराविदोंका कहना है, कि रोहिल-खण्डमें धिजनीरके निकट जो मड़यार नगर है, वही प्राचीन मतिपुरकी राजधानी है। शायद मेगास्थिनिस

यहाँके अधिवासियोंका 'मसङ्ग' नामसे उल्लेख कर गये हैं।  
 यूपतयुवंगने लिखा है,—यहाँके राजा शूद्र जातिके  
 हैं, वीरधर्ममें उनका विश्वास नहीं है, उनके समयमें  
 यहाँ २० सङ्काराम थे जिनमें ८०० श्रमण रहते थे।  
 वे सभी श्रमण सर्वास्तिवादी थे। सङ्कारामके अलावा  
 यहाँ और भी ५० देव-मन्दिर थे।

मतिपुर राजधानीसे प्रायः आध कोस दक्षिण एक  
 छोटा सङ्काराम था जहाँ रह कर आचार्यने गुणप्रभतत्त्व-  
 विमङ्गलाग्र प्रणयन किया।

मतिपूर्व (सं० अष्टम) बुद्धिपूर्वक, सोच विचार कर।

मतिभेद (सं० पु०) मतेभेदः। बुद्धिकी मिसता।

मतिभ्रंश (सं० पु०) १ बुद्धिनाश। २ उन्मादरोग,  
 पागलपन।

मतिभ्रम (सं० पु०) मतेषु दुष्टेर्भ्रमः। बुद्धिभ्रंश।  
 पर्याय—भ्रम, मिथ्यामति, भ्रान्ति। अज्ञान ही एकमात्र  
 मतिभ्रमका कारण है।

मतिभ्रान्ति (सं० स्त्री०) मतेषु दुष्टे भ्रान्तिः। बुद्धिभ्रंश,  
 बुद्धिनाश।

मतिमत् (सं० लि०) मतिविद्यनेऽभ्यः मत्तुप्। १ बुद्धि-  
 मान्, विचारवान्। (पु०) २ शिष्य।

मतिमन्त (सं० वि०) मतिमत् देखो।

मतिमान् (सं० लि०) बुद्धिमान्, विचारवान्।

मतिरत्नमुनि—एक विख्यात जैन पण्डित, क्षमागिरिके  
 शिष्य और मतिसागरके प्रशिष्य। इन्होंने भुजनगरमें  
 १५१७ ई०को कुमारसम्भवको एक अवचरि प्रणयन की।  
 मतिराज—एक प्राचीन संस्कृत कवि। सदुक्तिकर्णामृत-  
 में इनकी कविता उद्धृत हुई है।

मनिल (सं० पु०) राजभेद।

मतिवर्द्धन (सं० पु०) एक विख्यात टीकाकार। १७वीं  
 शताब्दीमें ये जीवित थे।

मतिविद्व (सं० लि०) मतिविद्व-पिचप्। मतिमान्,  
 बुद्धिमान्।

मतिविग्रम (सं० पु०) मतेविग्रमोऽग्र। १ उन्माद-  
 रोग, पागलपन। २ बुद्धिभ्रंश, बुद्धिनाश।

मतिशालिन् (सं० लि०) मत्या शालने णिनि। मेधावी,  
 बुद्धिमान्।

मतिष्ट (सं० लि०) अयमयोरप्यमेयामतिशयेन, मतिमान्

येति मतिमत्-इष्टन् मत्तुपो लोपः। अतिशय बुद्धिमान्

मतिपस् (सं० लि०) अयमोयामतिशयेन मतिमान्।

मति-इयसुन्। मत्तुपो लोपः। अतिशय बुद्धिमान्।

मतोर (सं० पु०) तरचूज, कलींदा।

मतीभर (सं० पु०) विश्वकर्माका एक नाम।

मतीर (हि० पु०) एक प्रकारका बाजा।

मतुघ (सं० लि०) १ मतगायक। (शुक् १।१०।५)  
 २ मेधावी, बुद्धिमान्।

मतीन्ध—युकप्रदेशके वंदा जिलान्तगत एक नगर। यहाँ  
 अङ्गरेजी स्कूल, थाना, डाकघर और बाजार हैं। प्रति  
 सोम और गृहस्पतिको यहाँ हाट लगती है। प्रवाद है,  
 कि यहाँ राजा छत्रशालके साथ बहुतसे जैनगुरुका युद्ध  
 हुआ था। सिपाहीविद्रोहके समय यहाँके जमींदार  
 मुरली वावूने कुछ अङ्गरेजोंको आश्रय दिया था, इनो  
 प्रत्युपकारमें उन्हें यह भू-सम्पत्ति मिली है।

मत्क (सं० पु०) माघतीति मद्-पिचप्, ततः स्वार्थे कन्।  
 १ मत्कुण, खटमल। (लि०) २ मत्संबंधी।

मत्कुण (सं० पु०) माघतीति मद्-पिचप्, कुणति इति  
 कुण-क, ततः मद्वासी कुणश्चेति। १ कीदविशेष,  
 खटमल। पर्याय—रक्तपायो, रक्ताक्त, मञ्जकाश्रय,  
 उद्देश। (राजनि०) २ निर्वाणपण हस्ती, बिना दांतके  
 हाथी। ३ निःश्वश्रु पुरुष, बिना मूँछके आदमी। ४  
 नारिकेल, नारियल।

मत्कुणा (सं० स्त्री०) अजातलोम भग।

मत्कुणारि (सं० पु०) मत्कुणस्य अरिः, मत्कुणनाशक-  
 त्वात्स्य तथात्वं। १ इन्द्राशन, भंग। २ शनइश्व,  
 पटसनका पीघा।

मत्कुणिका (सं० स्त्री०) कुमारानुचर मातृभेद।

मत्कृत (सं० लि०) मया कृतं ३ तत्पु०, अस्मत्शब्दस्य  
 मदादेशः। मुफ्फले किया गया।

मत्त (सं० पु०) माघतीति मद्-कर्त्तरि क। शरन् मत्त  
 हस्ती, वह हाथी जिसके मस्तकसे मद् घटता हो।  
 पर्याय—प्रमिन्न, गर्जित, प्रतङ्ग, शरम्मद। २ धुस्तर,  
 घनुर। ३ कोकिल, कोयल। ४ महिष, भैस। (लि०) ५  
 मस्त। ६ मतयाला। ७ उन्मत्त, पागल। ८ प्रसन्न, खुश।

मत्तकाल ( मं० पु० ) लाटदेवका एक अधिपति ।  
मत्तकागिनी ( सं० स्त्री० ) मत्त इव शीव इव कसति  
गच्छति मत्तकासिनो कस-गती प्रहादित्वान् णिनि-डोप् ।  
उत्तमा नागी, अच्छी औरत ।

मत्तसोश ( मं० पु० ) मत्तः सन कीमो यान्तर इव ।  
हस्तो, हाथी ।

मत्तगनन्द ( मं० पु० ) मयैया छन्दका एक भेद । इसके  
प्रत्येक चरणमें ७ मगण और २ गुरु होते हैं । इसका  
दूसरा नाम मालती और इन्द्र्य भी है ।

मत्तगामिनो ( मं० स्त्री० ) मत्त इव गच्छति गम-णिनि-  
डोप् । १ उत्तमा नागी, अच्छी औरत । ( वि० ) २  
उन्मत्तकी तरह गमनशील, पागलकी तरह धर उधर  
चूमना ।

मत्तता ( सं० स्त्री० ) मत्त होनेका भाव, मतवालापन ।

मत्तताई ( हि० स्त्री० ) मस्ती, मतवालापन ।

मत्तनाम ( मं० पु० ) मत्तः नागः कर्मधा० । मदीन्मत्त हस्तो,  
मतवाला हाथी ।

मत्तमयूर ( सं० पु० ) मत्तो मयूरा यस्मात् । १ मेघकी  
देव कर उन्मत्त होनेवाला मयूर । २ मेघ, बादल ।  
३ छन्दोभेद, परन्द्र अक्षरोंका एक वृत्त । इसके प्रत्येक  
चरणमें मगण, तगण, यगण और मगण होने हैं ।

मत्तमयूरक ( मं० पु० ) योद्धृजातिभेद, प्राचीनकालकी  
एक योःडाजातिका नाम ।

मत्तमयूरनाथ—एक प्रसिद्ध शैवाचार्य । इनका असल  
नाम पुशुन्दर था । ये आमर्दकनीथके शिष्य थे । वर्त्त-  
मान भ्यालियर राज्यके अन्तर्गत रणोद और उसके  
निकटवर्ती मत्तमयूर नामक एक प्राचीन स्थानमें १०वीं  
शताब्दीको अयन्तिवर्मा नामक एक राजा राज्य करते थे ।  
रणोद और बिलहरि नामक स्थानसे आविष्कृत शिला-  
लिपिमें ज्ञात जाता है, कि अयन्तिवर्मनि आचार्यपुशुन्दर-  
की असामान्य क्षमताका परिचय पा कर उपेन्द्रपुर नगर-  
से उन्हें निमन्त्रण किया और पीछे वे उनसे शैवधर्ममें

मत्तमातङ्गलीलाकर ( सं० पु० ) एक दण्डकवृत्त । इसके  
प्रत्येक चरणमें ६ रगण होते हैं । जिस दण्डकमें ६  
से अधिक रगण होते हैं, वह भी इसी नामसे पुकारा  
जाता है । केशवदासने ८ ही रगणके छन्दका नाम मत्त-  
मातङ्गलीलाकर लिखा है ।

मत्तर ( सं० पु० ) अस्मत्तुशब्दाद् उत्तरप् प्रत्ययः, मदा-  
देशश्च । मुक्त्से वा अपतेसे अधिक ।

मत्तवारण ( सं० स्त्री० ) मत्तं वारयतीति वृ-णिच्-पञ्चल ।  
१ प्रासादवीथिका वरण्ड, मकानके आगेका दालान वा  
बरामदा । २ प्राङ्गणवारण, आँगनके ऊपरकी छत । ३ पूग-  
चूर्ण, सुपारीका चूर । ४ अपाश्रय, क्षेत्रसंन्यास । ५ मत्त-  
हस्ती, मतवाला हाथी ।

मत्तविलासिनो ( सं० स्त्री० ) छन्दोभेद ।

मत्तसमक ( सं० पु० ) नौपाई छन्दका एक भेद । इसमें  
नवीं मात्रा अवश्य लघु होती है ।

मत्ता ( सं० स्त्री० ) माथति मादृ, यतीति अन्तर्भूत०वर्णान्मद-  
धातोः क्, क्तिथां टाप् । १ मदिरा, शराब । २ श्राव  
अक्षरोंका एक वृत्त । इसके प्रत्येक चरणमें मगण, भगण,  
सगण और एक गुरु होता है तथा ४, ६ पर यति होती  
है ।

मत्ताकीड़ा ( सं० स्त्री० ) छन्दोभेद, तेईस अक्षरोंका एक  
छन्द । इसके प्रत्येक चरणमें दो मगण, एक तगण, चार  
नगण और अन्तमें एक लघु और एक गुरु अक्षर होता है ।

मत्तालम्ब्य ( सं० पु० ) आलम्ब्यते असावित्यालम्ब्यः ।  
आलम्ब्य-कर्मणि घञ्, मत्तस्यालम्ब्यः आश्रयः । प्राङ्गणा-  
घरण, आँगनके ऊपरकी छत ।

मत्तेभगमना ( सं० स्त्री० ) मत्ते भस्व- गमनमिथ गमनं  
यस्याः । स्त्रीविशेष, यह औरत जिम्मेकी चाल मतवाले  
हाथीके समान हो ।

मत्तेयधिक्रीडित ( सं० स्त्री० ) छन्दोभेद । इसके प्रत्येक  
चरणमें २१ अक्षर करके रहते हैं ।

मत्त्या ( हि० पु० ) १ ललाट, माथा । २ निर, मूँड़ । ३

दुष्प्राप्य ग्रन्थका अनुवाद दिया गया है और भारतवर्षके अनेक ऐतिहासिक तत्त्व वर्णित हैं ।

मत्स्य ( स० ३०० श्लो० ) प्रत्तं ज्ञानं तस्य करणमिति मत ( मतजनहस्तात्करणजल्पकर्येषु । पा ४।४।६७ ) इति यत् ।

१ कृच्छ्रशैलका समोकरणादि साधनफलक । २ दाहादिकी मुष्टि, वैद, मूड ।

मत्स्य ( स० ५० ) माघतीति मद्-बाहुलकात् सन् । मत्स्य, मछली ।

मत्स्यगण्ड ( स० ५० ) मत्सानां गण्डोऽत, पृषोदरादि त्वान् साधुः । व्यञ्जनविशेष, एक प्रकारकी पकी मछली । पर्याय—गलप्रह ।

मत्सर ( स० ५० ) मघते इति मद् ( क-भूमादिभ्यः कित । उण् ३।७३ ) इति सरन्, सच कित्, यद्वा मदा सरतीति । १

किसीका सुख या विभव न देख सकना, डाह, जलन । २ क्रोध, गुस्सा । ३ आत्मधिकारविशेष, यह जो सबकी अपनी निंदा करके देख कर अपने आपकी धिकारता हो ।

( त्रि० ) ४ छपण, कंजूस । ५, मत्सरपूर्णा, डाह करनेवाला ।

मत्सरता ( स० ५० ) मत्सरयुक्त होनेका भाव, डाह । मत्सरवत् ( स० ५० ) मत्सर-अस्वर्थ मनुष्य । मत्सरयुक्त, डाह करनेवाला ।

मत्सरिन् ( स० ५० ) मत्सरोऽन्यशुभदे दोऽस्त्यस्येति मत्सर-इति । अन्य शुभदे छा, दूसरोंसे डाह रखनेवाला ।

पर्याय—कर्णजप, दुर्जन, पिशुन, सूचक, नोच, द्विजिह्व, खल । जो मनुष्य मत्सरपरपाण है वे मरकमोगके बाद कीटयोनिको प्राप्त होते हैं ।

“परिमोता कुर्मिर्भवति कीटो भवति मत्सरी ।” ( मनु २।२०१ )

मत्सह—राजमहलसे ५ कोस पूर्वमें अवस्थित एक प्राचीन ग्राम । इस ग्रामसे ही कर मानासह राजमहल गये थे ।

मत्स्य ( स० ५० श्लो० ) माघति लोका अनेनेति मद् ( श्रुत्वन्वञीति । उण् ४।२ ) इति स्यन् । स्वनामस्यात

जलगन्तु, मछली । पर्याय—पृथुरोमा, ऋष, मोन, वैसा, रिण, अण्डज, विसार, शलकली, शकली, ऋस, आत्मागी

संघर, सूक, जलेशय, कण्टकी, शलकी, मच्छ, अनिमिष, शृङ्गी । इसका गुण—सूँदण, गुग्गु, शुक्रवर्द्धक, बलकर, स्निग्ध, उष्ण, मधुर, कफपित्तकर, दीप्तान्तिके पक्षमें हित-

कर, घातरोगनाशक । बड़ी मछलीका गुण—गुग्गु, शुक्रल, मलवर्द्धक । छोटी मछली—लघु, प्राही, प्रद्युतीरोगमें

हितकर । काली मछली—लघु, स्निग्ध, यातन और अनिदोषन । सड़ी मछली—दोषवर्द्धक ; सुखी मछली—विष्टम्भो ; नमकमें रखी हुई मछली—कफपित्तकर, सारक; सामुद्रिक मछली—लघु, शूल्य, मधुर और स्वल्प-मलकारक । ( राजनि० )

मुद्युतमें लिखा है,—मछली दो प्रकारकी है, नदिये और सामुद्र अर्थात् नदीजात और समुद्रजात । रोहित, पाटोन, पाटला, राजीव, यर्मि, गोमत्स्य, कृष्णमत्स्य, वागुजाव, मुरल, सहस्रदंष्ट्र आदि मछलियां नदीजात है । इनका गुण—मधुर, गुरुपाक और वायुनाशक, रक्त-पित्त-कर, उष्ण, शूल्य, स्निग्ध और अल्प तेजस्कर माना गया है ।

सरावर और तड़ागकी मछली स्निग्धकर और मधुर-रमविशिष्ट होती है । महाहृदको मछली बलकारक है । थोड़े जलमें रहनेवाली मछली बलकर नहीं होती ।

निमि, तिमिङ्गिल, कुलिग, पाकमत्स्य, निरालक, नन्दिचारलक, मकर, गार्गक, चन्द्रक, प्रहामीन और राजीव आदि सामुद्र मत्स्य हैं । ये सब गुरुपाक, स्निग्ध, मधुर, अल्प पित्तवृद्धिकर, उष्ण, वायुनाशक, शूल्य, तेजस्कर और श्लेष्मवर्द्धक माने गये हैं । सामुद्रिक मछली मांस खाती है, इसीसे वे विशेष बलकर हैं ।

पोखरे और कूपकी मछली वायुनाशक होनेके कारण सामुद्रिक मछलीसे अधिक गुणविशिष्ट है । तालावकी मछली स्निग्ध, लघुपाक और स्वादिष्ट होती है, इस कारण इनमें कूपकी मछलीसे ज्यादा गुण है । नदीकी मछली मुख और पुच्छको संचालन करती हुई पानोंमें तैरती है, इस कारण उनका बिचला भाग गुरुपाक होता है । सरोवर और तड़ागकी मछलियोंका शिर बहु लघु होता है । सरोवरकी मछलीका बिचला भाग गुरुपाक और ऊपरका भाग लघु जानना चाहिये ।

इनमेंसे सुखी, सड़ी, रोगी, विपाक, सर्प द्वारा हत, विषलित, अस्त्रादि द्वारा विद्ध, जोर्ण, रुष, बाल और अपनी अपनी प्रकृतिको विपरोताचारी मछली अमध्य हैं । ( मुद्युत उश्या० ४५ ब० )

भायप्रकाशमें लिखा है, कि हेमन्तकालमें कूपकी मछली, शिशिरकालमें सरोवरकी मछली, वसन्तकालमें



है। निराट देखा। यह देग राजपूतानेमें अवस्थित है। दिनाङ्कपुरमें एक जङ्गल है जिसे बहुतेरे मत्स्य देग बतलाते हैं। किन्तु यह स्थान प्राचीन विराटराज्य मत्स्य नहीं है। ३ नारायण । ४ द्वादश राजि, मोनराजि ।

“मत्स्यो गढी भूमियुनं सगदं मवीष्यम्”

(जीतिस्तत्त्व)

५ अष्टादशपुराणके अन्तर्गत एक पुराण। यह पुराण महापुराण है। भगवान् विष्णुने मत्स्यरूपमें अवतार ले कर इस पुराणका उपदेश दिया था, इसीसे इसका मत्स्यपुराण नाम रखा गया है।

“पुष्यं पवित्रमापुष्यमिदानीं शशुव दिवाजः।

मत्स्यं पुराणमखिनं यजगाद भदाधरः ॥”

(मत्स्यु० १ अ०) पुराण देखा।

६ भगवान् विष्णुके दश अवतारोंमेंसे पहला अवतार। भगवान् विष्णु पहले पहल मत्स्यरूपमें अवतारों में हुए। शयपधराक्षणमें इसका आदि प्रसङ्ग देखा जाता है। मनु बेला।

महाभारतमें लिखा है,—

पुराकाळमें विषखानके पुत्र प्रजापतिके समान मनु नामक एक महर्षि अति प्रतापशाली राजा थे। उन्होंने तपस्यादि द्वारा पितृ-पितामहको विशेषरूपसे अतिक्रम किया। उन्होंने विनाश बदरोमें एक पैर पर खड़े, हाथोंको ऊपर उठाये और आँसुमुँह हो अग्निमेघनेत्रसे अयुत वर्ष तक घोर तपस्या की। पीछे एक दिन वे चिरिणी नदीके किनारे जटाघाटी हो आर्द्रघ्नसे तपस्या कर रहे थे, इसी समय एक मछलीने यहां आ कर उनसे कहा, भगवन् ! मैं छोटी मछली हूँ, बड़ी मछलीसे डर गई हूँ, अतएव आप मुझे उनसे बचाइये। विशेषतः मोनजातिमें बहुत दिनोंसे यह रोति चली आ रही है, कि बलवान् मत्स्य दुर्बल मत्स्यको सदा भक्षण करते हैं। अतः मैं संकटमें हूँ, आप मुझे बचाइये। इस समय यदि आप मेरा उपकार करेंगे, तो मैं भी किसी समय इसका प्रत्युपकार करूँगी। वैषस्वत मनुने मछलीको वात सुन कर उसे जलसे बाहर निकाला और एक घड़ेमें रख दिया। यह मनुके स्नेहसे दिनों दिन उस्तीमें बढ़ने लगी। वे उसे पुत्रके समान देखते थे। कुछ दिनोंके

बाद यह मछली इतनी बढ़ गई कि उस घड़ेमें उसको गुंजाइश न रही। अनन्तर उस मछलीने मनुको देख कर पुनः उनसे कहा, भगवन् ! आप मेरे लिये अभी कोई दूसरा उत्तम स्थान ढूँढिये। इस पर मनुने उसे घड़ेमेंसे निकाल कर एक तालाबमें रख छोड़ा। उस तालाबकी लम्बाई दो योजन और चौड़ाई एक योजन थी। धीरे धीरे यह मछली इतनी बढ़ी कि उसमें भी उसका अँटान न हुआ। अनन्तर मछलीने फिर मनुसे कहा, पितः ! आप मुझे गङ्गामें ले चलिए। मैं वहीं पर रहूँगी, इस तालाबमें भी गुंजाइश नहीं है। आपने मेरे लिये बहुत कुछ किया, आपके ही स्नेहसे मैं इस प्रकार बढ़ी, अभी आप जो अच्छा समझें वही करें। मनुने मछलीको वात सुन कर उसे वहाँसे निकाल गङ्गामें फेंक दिया। वहाँ भी कुछ दिन रह कर उसने एक दिन मनुसे कहा, प्रभो मेरा शरीर बहुत बढ़ गया, वहाँ तक कि अङ्ग-चालना भी नहीं कर सकती हूँ। अतएव आप मुझ पर दया कीजिये और मुझे एक समुद्रमें उठा ले चलिए। पीछे मनुने उसे गङ्गामेंसे निकाल कर समुद्रमें छोड़ दिया। इस प्रकार एक मत्स्यको दो कर ले जानेंमें मनुको जरा भी क्रोध न हुआ। कारण, इसका भार अमिलायानरूप ही था तथा उसका स्पर्श और गन्ध सुखकर थी।

मछलीने समुद्रमें निश्चित, होते ही मुसकरा कर मनुसे कहा, भगवन् ! आपने मेरी बड़ी रक्षा की है, अतएव उपयुक्त समय जाने पर आपके जो कुछ करना होगा उसे मैं कहती हूँ, ध्यान दे कर सुनिये। प्रलयकाल निकटवर्ती है, इस पृथ्वीका स्थावर जङ्गम प्रभृति सभी पदार्थ बहुत जल्द प्रलय-सलिलमें डूब जायेंगे। यथा स्थावर, यथा जङ्गम, यथा चेतन सर्वाका भोगण काल पहुंच गया है, अतएव आपके लिये जो विशेष हितकर है उसे मैं आपको कर देती हूँ। आप एक रस्सी लगी हुई एक मजबूत नाव बनवाइये। उस नाव पर आप सप्तयिके साथ बैठ जाइये। पहले द्विजोंने जिन सब बीजोंको वात कही थी आप उन सब बीजोंको संग्रह कर उस नाव पर रख विभागप्रभसे रक्षा कीजिये। पीछे आप नाव पर बैठ कर मेरी प्रतीक्षा करेंगे। उस समय मैं शृङ्गयुक्त हो कर आऊँगा।

शुद्ध देखते ही आप मुझे पहचान जायेंगे। मैंने जैसा कहा वैसा ही करे'गे। क्योंकि, आप मेरे बिना ऐसे अर्णवसे उत्तीर्ण नहीं हो सके'गे। मेरी धान पर आप किसी प्रकार शंका नहीं करेंगे। पीछे मनु और मत्स्य परस्पर अनुभात हो कर यथामिलयित स्थानको चले दिये।

तदनन्तर मनुको मत्स्यने जैसा कहा था तदनुसार वे सब प्रकारके बोज ले कर नाव पर सवार हुए। वादमें वे मत्स्यकी चिन्तना करने लगे। इस समय मत्स्य उनको चिन्तासे अवगत हो शृङ्गारूपमें उसी समय वहाँ पहुँच गया। मनुने पर्वतके समान ऊँचे मत्स्यके शृङ्गमें नावकी रस्सी बाँध दी। नाव तरङ्गके बलसे हिलने डोलने लगी। रस्सीमें बाँधा हुआ यह मत्स्य नाव पर बैठे हुए मनु आदिको रक्षा करनेके लिये उस नावको लयजलमें खोचने लगा। यह नाव ऐसे भवाणविके मध्य प्रचण्ड वायुसे सञ्चालित हो मत्स्य चपला स्त्रीकी तरह घूमने लगी। उस समय भूमि वा दिक्-विदिक् कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता था। अन्तरीक्ष और धुलोक सभी जगमग हो गये थे। जगतके इस प्रकार जलाकोण होनेसे केवल मत्स्य, मनु और सप्तऋषि नजर आते थे। इस प्रकार उस मत्स्यने निरलस हो कई वर्षों तक उस नावको जैसे जलसमुद्रमें आकर्षण किया। अन्तमें हिमालय गिरिका जो श्रेष्ठ शृङ्ग है उसीके समीप नाव खोच कर ले गया। पीछे उस मत्स्यने कुछ सुसकार कर ऋषियोंसे कहा, 'आप लोग इस हिमालय शृङ्गमें नावको बाँध दीजिये, देरों मत काँजिये। ऋषियोंने तुरत मत्स्यके कथनानुसार हिमालय-शृङ्गमें नावको बाँध दिया। आज भी हिमालयका यह शृङ्ग नावन्धन नामसे प्रसिद्ध है।

अब मत्स्यने उन ऋषियोंसे कहा, 'मैं ही स्वयं प्रजापति प्रह्ला हूँ। मैंने मत्स्यरूप धारण कर इस महामयसे तुम लोगोंकी रक्षा की। अभी मनु सुरासुर मानव प्रभृति सब प्रकारकी प्रजा क्या उड़, क्या चेतन सर्वोंकी सृष्टि करेंगे। इनके तीव्र तपोबलने प्रजासृष्टि-विषयमें प्रतिभा होगी तथा मेरे प्रसादसे ये प्रजासृष्टिविषयमें मोहकी प्राप्ति नहीं होगी। इतना कह कर यह मत्स्य अन्तर्धान हो-गया।

अनन्तर वैवस्वत मनुने प्रजा सृष्टिकी मनशासे कठोर तपस्याका अनुष्ठान किया और उतरीके प्रतिभावलसे सर्वोंकी सृष्टि की। इसी प्रकार भगवान् विष्णु मत्स्यरूपमें अवतीर्ण हुए थे। ( भारत दनपर्क १८७ अ० )

मत्स्यपुराणमें इस अवतारका विषय इस प्रकार लिखा है—पुराकालमें मनु नामक एक राजा अपने पुत्र-को राज्य भार सौंप कठोर तपस्या करने चले गये। दश हजार वर्ष बीत जाने पर ब्रह्मा एक दिन वहाँ आये और उनसे घर मांगनेको कहा। इस पर उन्होंने घर मांगा कि, जब प्रलयकाल उपस्थित होगा, तब मैं ही एकमात्र चराचर जगतकी रक्षाके लिये यानस्वरूप होऊँ। ब्रह्मा 'तथास्तु' कह कर अन्तर्हित हो गये।

एक दिन मनु आश्रममें पितृवर्षण कर रहे थे। इसी समय एक मत्स्य उनके हाथके ऊपर कूद पड़ा। मनुने दयापरवश ही उसे एक जलपात्रमें रखा। धीरे धीरे वह मत्स्य बढ़ने लगा। मनुने भी उसे पूर्वोक्त क्रमसे समुद्रमें फेंक दिया। समुद्रमें निक्षिप्त होने पर मत्स्यने मनुसे कहा, 'प्रलय बीत जाने पर तुम चराचर जगत्की सृष्टि करोगे और प्रजापति नामसे प्रसिद्ध होगे। मैं ही भगवान् विष्णु हूँ और मत्स्यरूपमें अवतीर्ण ही कर तुम्हारी रक्षा का।' ( मत्स्य १ अ० )

भागवतमें लिखा है, एक दिन शुक्रदेवने राजा परोक्षित से कहा था, 'राजन! भगवान् विष्णु गौ, शिंप, देवता साधु, धर्म और अर्थाकी रक्षा करनेके लिये देह धारण करते हैं। वे वायुकी तरह सभी उत्कृष्ट भूतोंमें भ्रमण करते हैं, पर स्वयं वे निरुष्ट वा उरुष्ट नहीं होने, कारण वे गुणविशिष्ट नहीं हैं। राजन! कल्पके अन्तमें जब ब्रह्मा निद्रायगीभूत हुए तब प्रलयकाल उपस्थित हुआ। उस प्रलयकालमें भूः आदि सभी लोक समुद्रजलमें मग्न हो गये। कालयशतः जब विधाता सो कर उठे तब सभी वेद उनके मुखसे निकल कर सामने गिर पड़े। हयग्रीव उन सत्र वेदोंको चुप ले गया। भगवान् विष्णुको जब यह मान्द्रम हुआ, तब उन्होंने उन वेदके उद्धारके लिये मत्स्यरूप धारण किया।

इस समय संतव्यत नामक एक नारायणपरायण महर्षि जलमें बैठ कर तपस्या करते थे। यद्यो

इस कल्पमें विष्णुमानके पुत्र श्राद्धदेव नामने विम्ब्यात हो विष्णु कर्तृक मनुके पद पर स्थापित हुए थे।

सत्ययज्ञ एक दिन कुनमाला नदीमें तपण कर रहे थे। इसी समय उनकी वज्रजिमें एक मछली उछल कर आई। राजाने उसे नदीमें फेंक दिया, इस पर मछलीने बड़े श्रानवाक्यमें राजाने कहा, 'हे श्रानवरमल ! मैं दुर्बल हूँ, अपने संशयक मकर-कुम्भीरादिसे मैं डर गई हूँ, इस कारण आपका आश्रय लिया था। आपने मुझे नदीमें क्यों फेंक दिया ? सत्ययज्ञके प्रति अनुग्रह दिखलानेके लिये नारादणने महत्स्यरूप धारण किया था, किन्तु सत्ययज्ञको यह कुछ भी मालूम नहीं। मछलीकी बात परराजाके हृदयमें दया उपजी और वे उसे कलमीमें रख कर आश्रयमें ले गये।

एक ही रातमें यह मत्स्य इतना बढ़ा कि कलमीमें उसे जगह न मिली। तब उसने राजासे कहा, 'कलमीमें मेरे रहनेकी गुंजायन नहीं, इसलिये आप मुझे गिरे विस्तृत स्थानमें छोड़ आइये जहां मैं स्वच्छतासे यास कर सकूँ।' इस पर राजाने कलमीसे उसे निकाल कर मणिकच्छजलमें छोड़ दिया। मुहूर्त्त भरमें वह तीन हाथ बढ़ गया और राजासे कहा, 'राजन् ! इस मणिकच्छजलमें भी मेरे रहने लायक जगह नहीं, सो किसी दूसरे विस्तृत स्थानमें दे आइये, क्योंकि मैंने आपकी शरण ली है।

राजा सत्ययज्ञने मणिकच्छमें उस मत्स्यको निकाल कर एक सरोवरमें छोड़ दिया। सरोवरमें उसका आकार बहुत बढ़ा हो गया और वहां भी रहनेका ठौर न मिला। तब उसने राजासे कहा, 'राजन् ! मैं जलवासी हूँ, किन्तु इस सरोवरका जल मुझे सुख नहीं पहुंचा सकता। आपने मेरी रक्षाका भार लिया है, सो मुझे एक बृहत् हृदमें स्थान दीजिये, जहां मैं सुखसे रह सकूँ।' महत्स्यकी बात सुन कर राजाने उसे एक अक्षयजल जलाशयमें फेंक दिया। जब वहां भी उसे काफ़ी स्थान न मिला, तब राजा समुद्रमें छोड़ आनेकी उद्यत हुए। इस समय यह मत्स्य बोला, 'राजन् ! समुद्रमें अधिक बलशाली मत्स्य रहते हैं, मुझे ये सब मार डालेंगे, अतः वहां मत छोड़िये।

उस बड़े मधुरभाषी मत्स्यके इस प्रकार अनुत्प-  
यास्य कहने पर सत्ययज्ञने कहा, 'मत्स्यरूपमें आप हम लोगोंकी मोहित करते हैं। बतलाइये आप कौन हैं ? हम लोगोंमें ऐसा घोरिशाली जलचर न कहीं देखा है और न सुना हो है। आपने एक दिनमें शत योजन विस्तृत सरोवरको भतिक्रम किया, आप सबसुख साक्षात् भगवान् हरि हैं—भूतोंके कल्याणके लिये इस जलचर रूपको धारण किया है। हे पुरुषश्रेष्ठ ! आपकी प्रणाम करता हूँ। विभी ! आप सृष्टि, स्थिति और प्रलयके कर्त्ता हैं और मेरे जैसे गिणदुष्टस्त भक्तजनके मुख्य आत्मा और आश्रय हैं। आप लीलास्वरूप जो जो अवतार धारण करते हैं, यह सभी प्राणियोंकी समृद्धिका कारण है। आपने किस उद्देश्यने इस मत्स्यरूपको धारण किया है, उसे मैं जानना चाहता हूँ।' राजा सत्ययज्ञके इस प्रकार विविध स्तुति करने पर महत्स्य रूपी विष्णु भगवान्ने कहा, 'हे अस्मिन् ! आजसे ले कर सात दिनोंके मोतर तैलौष्य प्रलय-जलधिजलमें निमग्न होगा। तैलौष्य जब प्रलयजलमें निमग्न हो जायगा, उस समय मैं एक बड़ी नाव तुम्हारे निकट भेजूंगा। तुम सभी ओषधि, छोटे और बड़े व्रीह तथा सभी प्राणियोंके ले कर सप्तर्षियोंके साथ उस नाव पर चढ़ जाना। पोछे तुम ऋषियोंके ब्रह्म-नेत्रोबलसे आलोककहीन एकमात्र सागरमें सुस्थिर चित्तसे भ्रमण करोगे। जब प्रवण्ड वायु नावको आन्दोलित करने लगेगा, तब मैं स्वयं यहां पहुंच जाऊंगा। तुम महासर्प द्वारा उस नावको मेरे शृङ्गमें बांध देना। मैं ऋषियोंके तथा तुम्हारे साथ नावको तैलौष्य कर जब तंत्र प्रहाकी नींद नहीं टूटेगा, तब तंत्र समुद्रमें विचरण करूंगा और परब्रह्मविषयक तत्त्वोपदेश देता रहूंगा।' इतना कह कर मत्स्यरूपी विष्णु अन्तर्हित हो गये। विष्णु भगवान् जितने दिनोंके लिये कह गये, राजा उतने दिन प्रतीक्षा करने लगे।

अनन्तर एक दिन राजा सत्ययज्ञने देखा, कि चारों ओरसे घटा घिर आई, मूललाधारमें घर्षा होने लगी और चारों ओरमें पृष्ठी प्लावित हो गई। भगवान्ने जैसा कहा था तदनुसार एक बड़ी नाव उनके सामने उपस्थित

हुई। राजा सभी वृक्षादि और प्राणियोंको ले कर ऋषियोंके साथ उस नाव पर चढ़ गये। मुनियोंने प्रसन्न हो कर कहा, 'इस समय एक मात्र भगवान् विष्णु ही वेड़ा पारुंलगाये थे।'।

अनन्तर राजा जब भगवान्की चिन्तना करने लगे, उस समय महासागरके मध्य एक शृङ्खलारी अयुत योजन विस्तृत स्वर्णमय मत्स्य दिखाई दिया। राजा संतुष्ट हो कर उस मत्स्यके शृङ्खलें स्पर्शरज्जु द्वारा नाव बांध कर मधुसूदनका स्तव इस प्रकार करने लगे, "अविद्या द्वारा जिनका आत्मज्ञान आच्छन्न है। सुतरां अविद्यामूल संसाराश्रममें जो बलेश पाते हैं वे इस संसारमें जिनके अनुग्रहसे पुनः अपने अपने कर्मबन्धनको मोचन कर जिनकी सेवा द्वारा सुखेच्छा परित्याग करनेमें समर्थ होते हैं, आप वही मुक्तिप्रद परमगुरु ही कर हम लोगोंकी हृदयग्रन्थिको छेदन कीजिये। जिस प्रकार चांदी अग्निस्पर्शसे निर्मल हो जाती है और तब अपने वर्णको लाभ करती है, उसी प्रकार पुरुष जिनकी सेवा करके मेरे मलम्बरूप अज्ञानको परित्याग और स्वरूपको उपाजन करने हैं, वही ईश्वर आप मेरे गुरु होंगे। मैंने ज्ञानलाभके लिये आपकी शरण ली है। भगवन् ! परमार्थ प्रकाशक वाक्य द्वारा हृदयसम्भूत प्रन्धिरूप अहङ्कारादिको छेदन कीजिये।

राजाके इस प्रकार स्तव करने पर भगवान्ने सागर-मन्थिलमें विहार करते हुए राजर्षि सत्यव्रतको तस्वोप-देश और सांख्ययोग क्रियासमन्वित दिव्य-पुराण तथा आत्मज्ञानका उपदेश दिया।

राजाने ऋषियोंके साथ नाव पर बैठ कर भगवान्के मुखसे संशयहीन आत्मतत्त्व और सनातन वेद श्रवण किया।

अनन्तर प्रत्येककाल धीतने पर विष्णुने हयग्रीवका संहार कर ब्रह्माको वेद प्रत्यर्पण किया। ज्ञान विमान सम्पन्न राजा सत्यव्रत विष्णुके प्रसादसे वैवस्वत मनु नामसे प्रसिद्ध हुए। इनकी पूजादिका विषय मेघतन्त्रमें इस प्रकार लिखा है,—

यह अवतार सत्ययुगमें हुआ है। इनका रूप— नामिका अधोदेश रोहितमत्स्यके सदृश तथा आकृष्ट

मनुष्याकार, वर्ण धनश्याम। चारों हाथमें शङ्ख, चक्र, गदा और पद्म। मस्तक शृङ्खि-मत्स्य सुवृत्त, वक्षःस्थल पर लक्ष्मीविराजित, सर्वाङ्गमें पद्मका चिह्न और सुन्दर लोचनयुक्त।

'नाम्यधोरोहितसम आकृष्यश्च मराकृतिः।

धनश्यामश्चतुर्बाहुः शङ्खचक्रगदाधरः ॥

शृङ्गिमत्स्यनिभो मूर्दाञ्जनीवन्नोविराजितः।

पद्मचिह्नितसर्वाङ्गः सुन्दरश्च लोचनः ॥"

(मेघतन्त्र २६ अ०)

मत्स्यरूपी विष्णुका हृद्दज अक्षर मन्त्र, 'ओ नमो भगवते मं मत्स्याय' इस मन्त्रसे मत्स्यदेवकी पूजा करनी होती है। वैशाख, कार्तिक, माघ और अग्रहायण मासमें इनकी पूजा करनेमें अभीष्ट मित्र होता है।

हयग्रीवपञ्चरात्रमें मत्स्यावतार मूर्त्तिका लक्षण इस प्रकार लिखा है—मत्स्यमूर्त्ति छत्तोस उँगली लम्बी होनी चाहिये। इस पुच्छदेगक. मान लम्बाईका अष्टमांश रहे। इसे कुछ चक्र भागमें बन्वाना चाहिये। मूर्त्ति विद्युत्तानन रोदिताकृत्तिको होगी। इस प्रकार विधिके अनुसार निर्माणकार्य शेष हो जाने पर इसके आपाद्-मस्तककी नारायणरूपमें कल्पना कर यदि कोई मनुष्य एक मत्स्य भी पद्याविधि स्थापन करे, तो उसे सर्वशुद्धलाभ होता तथा उसकी सभी विपद् दूर होती है।

यदि कोई सुवर्णका मत्स्य बना कर भ्रोलोय प्राप्तरणको दान करे, तो उसे पृथ्वीदानका फल होता है। मत्स्यपुराणमें इसकी दानविधि लिखी है।

६ गिलाभेद। ब्रह्मपुराणके मतसे जो शिला तीन विन्दुयुक्त काञ्चनवर्ण और दीर्घाकार होती है, वही मत्स्याख्य गिला है। इस शिलाको भर्त्तना करनेसे भुक्ति और मुक्ति लाभ होती है। कहीं कहीं काञ्चनवर्णकी जगह कांस्यवर्णका भी उल्लेख है।

पद्मपुराणके मतसे मत्स्यादि तीनों गिला श्यामवर्ण, द्विचक्र और सुचिह्नित हैं। इन तीनों शिलाके दर्शन करनेसे सब प्रकारकी कामना पूरी होती है। इस पुराणमें मत्स्यमूर्त्ति गिलाको कांचवर्णका बतलाया है।

ब्रह्मपुराणके मतसे—जो गिला दीर्घाकार और चक्रमें चिह्नित होती है, जिसका एक चक्र

दक्षिणी ओर गण्डाकृति और बाईं ओर रेखा देती जाती है, वही मत्स्यमूर्ति है। यह मूर्ति शुभप्रद है।

पुराणप्रसंगके मतसे—सोम विन्दु और शङ्ख-चक्र पर निश्चिन दीर्घाकार दक्षिणाम्य शिलाचक्र ही मत्स्य-चक्र है।

मत्स्यचक्रके मतसे—मत्स्याकृति दीर्घाकार और मत्स्यक पर चित्रयुक्त चक्र ही मत्स्यचक्र या मत्स्यमूर्ति शिला है।

नन्वर्के मतसे मत्स्य पञ्च मकारका तृतीय मकार है।

‘प्रथमन्तु भवेन्मय मांश्चैव द्वितीयम् ।

मत्स्यश्चैव तृतीयं स्यादमुद्रा चैव चतुर्थिका ।

पन्चमे येभुन निश्चान् पद्मैते नामतः स्मृताः ॥”

(प्राणतोषिणी)

कुण्डार्णवतन्त्रके पांचवें खण्डके १७वें पटलमें मत्स्य शब्दकी द्युत्पत्तिके सम्बन्धमें इस प्रकार लिखा है—माया, मल प्रभृतिका प्रशमन, मोक्षमार्गका निरूपण और आठ प्रकारके दुःखोंका नाश होता है, इसीसे इसका नाम मत्स्य हुआ है।

मत्स्यक (सं० पु०) मत्स्य स्वल्पार्थे कन् । क्षुद्र मत्स्य, छोटी मछली।

मत्स्यकण्डिका (सं० स्त्री०) मत्स्याम्य कण्डिकेय ।

मत्स्यरक्षण पातल मछली रखनेका यरतन।

मत्स्यगन्धा (सं० स्त्री०) मत्स्यस्येव गन्धो यस्याः, छान्-सादित्वादादित्यानायः । १ लाङ्गुलीयुक्ष, जलपोषल । २ ध्यास-माता सन्पवनीका एक नाम । महाभारतमें इसका विवरण इस प्रकार आया है,—

उपरिचर नामक एक धर्मिष्ठ राजा थे। उनका दूसरा नाम यमु था। राजाने बड़ी कठोर तपस्या की थी। इनकी उग्र तपस्यासे देवराज इन्द्र डर गये। इन्द्रके पदनेसे इन्होंने तपस्या करने छोड़ दी। तदनन्तर इन्द्रने समतीव देनेके लिये इन्द्रे स्फटिकमय आकाश-गामो रथ और चैत्रपत्तोंका माला दी। यमुके पांच पुत्र थे। उन्हीं पांच पुत्रोंके नाम पर इन्होंने देव और राजधानी बनाई थी।

महामनि यमुराज जब इन्द्रके दिये हुए स्फटिकमय विमान पर चढ़ कर आकाशमार्गमें विचरण करने थे,

उम समय अच्यराएँ आ कर इनकी सेवा करती थी। रथ पर बैठ कर आकाशमार्गमें विचरण करनेके कारण उनका नाम उपरिचर हुआ। उनकी राजधानीके समीप शुक्तिमती नामकी एक नदी बहती थी, कोलाहल नामक एक सचेतन पर्यतने कामोपहता हो कर उसकी गति रोक दी। इस पर राजा यमु बड़े विगड़े और कोलाहल पर्यतकी एक ऐसी लात जमादे कि उसमें छेद हो गया। पीछे उसी छेदमेंसे शुक्तिमति नदी निकल पड़ी। कोलाहल पर्यतके सङ्गमसे उस नदीके एक पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई। नदीने राजाका बहुत उपकार माना और दोनों स्वतन उन्हे दे दीं। राजाने उस नदीपुत्रको सेनापति और गिरिका नामकी कन्याकी रानी बनाया।

एक दिन गिरिका ऋतुस्नाता हो कर गर्भधारणकी कामनासे राजाके पास गई, पर उम दिन यमुके पितरोंने प्रसन्न हो कर उन्हे आशेष करनीका आदेश दिया था, राजाने उनका आदेश उल्लङ्घन करना अच्छा नहीं समझा और उसी समय वे आशेषकी चाल दिये, इस प्रकार गिरिकाको अभिलाषा पूरी न हुई। लेकिन वे एककाम चिन्त थे, चलने चलते असामान्यरूप गौरवसम्पन्ना गिरिकाकी याद आ जाती थी। एक तो यस्यस्तकाल, दूसरे काननमें तरह तरहके पुष्प विकसित और फोकिलका कूजन, इससे वे मन्मथ वजायतीं हो कर एक अशोक वृक्षके नीचे बैठ रहे। वहाँ पर उनका रेतःपात हो गया। राजा उम स्थलित रेतकी एक वृक्षके पत्तेमें रथ कर सोचने लगे, किस प्रकार यह रेत गिरिकाके पास जाता जाय जिमसे उसका ऋतु व्यर्थ न निकले, क्योंकि यह रेत अन्वर्थ है। बहुत देर तक सोचनेके बाद राजाने उम शुक्रका स्स्कार कर्के समीपवर्ती त्रीप्रगामो एक श्येनपक्षीसे कहा, ‘सौम्य ! तुम मेरा एक काम करो, यह यह कि इस शुक्रको ले कर मेरी स्त्री गिरिके पास अन्तःपुरमें पहुँचा दो। क्योंकि यह श्याज ऋतुस्नाता है।’ इस पर योगवान् श्येन उम शुक्रको अपनी चोंचमें ले कर आकाशमार्गसे उड़ा, पर मार्गमें किसी दूसरे पक्षीसे आश्रय होनेके कारण यह रेत यमुनातलमें गिर पड़ा। बादिका नामकी एक अच्यराएँ

ग्रहांके शापस मत्सी हो कर जमुना जलमें रहती थी । रेतःके यमुनाजलमें गिरते ही उसने पी लिया । उस मत्सीके गर्भ रहा । पीछे दशवें महानेमें मछुओंने उस मत्सीको पकड़ कर राजा वसुको अर्पण किया । उसके पेटमें एक पुत्र और एक कन्या पाई गई । राजाने उन दोनोंमेंसे बालकको ग्रहण किया । वही मत्स्यजात बालक पीछे मत्स्य नामसे प्रसिद्ध राजा हुए थे ।

अपसरा घोड़े ही समयके अन्दर शाप-विमुक्त हुई । कारण, पहले जब वह शापघ्राणा हो मोनयोनिमें पतित हुई थी, तब भगवान्ने कहा था, 'दो मानव प्रसव करनेसे ही तुम्हारा शाप मोचन होगा ।'

इधर राजा वसुने मत्स्यगन्धवती मत्स्यगर्भजात कन्याको धीवरके हाथ सौंप दिया और कहा, 'यह कन्या तुम्हारे दुद्रिता होगी ।' कन्या धीवरके घरमें पाली पोसी गई थी और उसके शरीरमें मत्स्यकी गन्ध थी, इस कारण उसका नाम मत्स्यगन्धा पड़ा ।

यह कन्या मछुएके घरमें पालित हो कर नाव येनेका काम किया करती थी । एक दिन पराशर तीर्थ-यात्राके लिये अनेक देशोंमें घूमते फिरते यमुना नदीके तीर पर उपस्थित हुए । नदी पार करानेको पराशरने धीवरसे कहा '। धीवरने अपनी कन्या मत्स्यगन्धाको इस कामके लिये नियुक्त किया । नदीके बीचमें नावके पट्टेचने पर पराशर कामातुर हुए और उससे बोले 'कल्याणि ! मेरा मनोरथ पूर्ण करो ।' इस पर कन्याने कहा, 'भगवन् ! देखिय, नदीके दोनों किनारे ऋषिगण हैं वे हम लोगोंको देख रहे हैं, अतएव अभी किस प्रकार हम लोगोंका सङ्गम हो सकता है । इस प्रकार मत्स्यगन्धाके आपत्ति करने पर महर्षिने तपोशलसे वहां फोहरा फौला दिया जिससे तमाम अन्धकार ही अन्धकार छा गया ।

अनन्तर महर्षि द्वारा किये गये कोहरेको देख कर मत्स्यगन्धाने विस्मिता और लज्जामिभूता हो ऋषिसे कहा, 'भगवन् ! मैं पितृवशवर्तिनी कन्या हूँ, मेरा विवाह नहीं हुआ है, आपके साथ सङ्गम करनेसे मेरा कन्याभाव दूषित होगा । कन्याभावके दूषित होनेसे किस प्रकार मैं घर जाऊँगी । अतएव आपसे निवेदन

है, कि आप इसे भलीभांति सोचें और जो अच्छा हो वही करनेका मुझे आदेश करें ।' मत्स्यगन्धाके इस प्रकार कहने पर ऋषि प्रसन्न हुए और बोले, 'मेरे सहयोगसे तुम्हारा कन्याभाव दूषित नहीं होगा । हे भोव ! अभी तुम अभिलषित वरके लिये प्रार्थना करो, मैं देनेको तैयार हूँ ।' इस पर मत्स्यगन्धाने पहले अपने शरीरमें उत्तम सौगन्धके लिये प्रार्थना की । महर्षिने तथास्तु कह कर उसका मनोरथ पूर्ण किया । अनन्तर मत्स्यगन्धाने ऋषिके प्रभावसे ऋतुमती और प्रार्थित-वरलाभसे सन्तुष्ट हो कर अन्न तकर्मा पराशर ऋषिके साथ विहार किया । उसी दिनसे मत्स्यगन्धाका दूसरा नाम गन्धवती पड़ा । मानवगण एक योजन दूरसे भी उसके शरीरकी गन्ध ग्रहण करते थे, इस कारण उसका दूसरा नाम योजनगन्धा भा था । पीछे गन्धवती सत्यवती नामसे प्रसिद्ध हुई ।

मत्स्यगन्धा इस प्रकार उत्तम वर पा कर बड़ी प्रसन्न हुई और पराशरकी अभिलाषा पूरी की । इसी सङ्गमसे वेदव्यासकी उत्पत्ति हुई । इनका जन्म द्वीपमें हुआ था, इस कारण ये द्वीपायन नामसे भी प्रसिद्ध हैं । द्वैवपायन जन्म लेते ही मानाकी आशासे तपस्याके लिये वनमें चले गये । वन जानेके समय द्वैवपायन अपनी मातासे कहते गये कि जब कभी तुम मेरा स्मरण करोगी तभी मैं पहुँच जाऊँगा । विशेष विवरण वेदव्यास शब्दमें देखो ।

भोष्मने पिताका प्रियकार्य करनेकी इच्छासे मत्स्यगन्धाका विवाह उनके साथ होने दिया । पीछे शान्तनु के औरसे और मत्स्यगन्धाके गर्भसे चित्राङ्ग और विचित्रवीर्य नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए ।

(भारत आदिपर्व ६३ अध्याय) शान्तनु और भोष्म देखो ।

२ हयुषा, हीहवेर । ३ मत्स्याक्षी, सोमलता । ४ लाङ्गली वृक्ष, जलपोषल ।

मत्स्यघण्ट ( मं० पु० ) मत्स्यपानां घण्टः विमिश्रणं यत्र । स्थनामध्यात मत्स्यव्यञ्जन विशोय, मछलीका घंट ।

मत्स्यघात ( स० पु० ) मत्स्यस्य घातः हननं । मत्स्य-हनन, मछली पकड़ना ।

मत्स्यवातिन् ( स० ति० ) मत्स्यं हन्तुं शीलमस्य हन

णिनि। मत्स्यज्ञोयो, जो मछली पकड़ कर जीवन्-धारण करता हो, मछुया।

मत्स्यजाल ( सं० क्रो० ) मत्स्य-धारणार्थं जालं, शक-पाथिंययन् ममासः। मछली पकड़नेका जाल।

मत्स्यज्ञोयो ( सं० पु० ) मत्स्येन-मत्स्यधिक्रयादिना जीवति जीव-णिनि। निगादजाति, मछुया।

मत्स्यगिहिका ( सं० खो० ) मत्सं मधुररसं स्पन्दते इति स्पन्द-ण्डुल्-टापु, अत्र इत्वं, पृथोद्वादित्वान् साधुः। शकैराविशेष, मिसरी।

मत्स्यगण्डो ( सं० खो० ) लण्डविकार, मिसरी। यह यौषकं स्निग्ध, धानुयर्दक, सुप्रिय, बलकारक, दन्ताय, हल्को, तृप्तिकारी, सब प्रकारके रोगोंको शान्त-करनेवाली और रक्त-पित्तको नष्ट करनेवाली मानां गई है।

मत्स्यतत्त्व—जलजप्राणिविशेष मत्स्य नामसे प्रसिद्ध है, जिसके द्वारा इन प्राणियोंका तत्त्व जाना जाता है, उसे मत्स्यतत्त्व कहते हैं। पाश्चात्या प्राणितत्त्वविदोंके मतसे मत्स्य Pisces श्रेणियोंके अन्तर्भूक्त है। बोलचालमें इसे मछली कहते हैं। मत्स्य हो जगन्का आदि जीव माना गया है। पुराणमें लिखा है, कि स्वयं भगवान् नारायण मोनरूपमें इस धराधाममें पहले पहल अवतरण हुए थे। मोनरूपमें भगवान्ने पहले पहल अवतार लिया था, इस कारण मोनको जगन्का आदि जीव कहनेमें जरा भी संदेह नहीं होता। यथोक्ति भूतत्त्वकी आलोचना द्वारा जाना गया है, कि पृथ्वीकी प्रथमावस्थामें मत्स्य एकमात्र जीव विद्यमान था। विज्ञानविद्वगण उसीको मत्स्ययुग ( Age of Fishes )की कल्पना कर गये हैं। सुतरां भगवान्के प्रथमावतारको मोन नामसे उल्लेख करना किसी प्रकार असङ्गत नहीं है। फिर भी विशेष बात यह है, कि उस समय जिन सब मत्स्यजातीय जीवने जन्मग्रहण किया था, वे निःसन्देह जलज अवतार माने जा सकने हैं। यह विराट् देह और विशाल आयतन मत्स्य आज भी भूगर्भनिहित अस्थिपत्रसे प्रमाणित होता है।

पृथिवी जन्ममें 'इक्ष्वांसरस' 'प्लिंसोसैरस' आदि जिन सब वृद्धाकार मत्स्यजातीय जीवोंका उल्लेख किया गया है, यह वर्तमान युगके वृद्धाकार तिमि

मत्स्य (perm whale या Pleseter Macrocephalus)की अपेक्षा बहुत बड़ा था। पृथिवी देवो।

अभी कालमाहारम्यसे मत्स्यजातिकी बहुत अवनति हुई है। पृथिवीके नाना स्थानोंमें अर्धान् लयपमय समुद्र तथा सुमिष्ट जलपूर्ण नदी, हृद, तड़ाग या पुर-रिणों आदिमें विभिन्न आकृति और प्रकृतिके अनेक मत्स्य उत्पन्न हुए हैं। भारतवर्षमें जो सब मत्स्य अधिक संख्यामें पाये जाते हैं, साधेरिया या अमेरिकामें उस जातिके मत्स्यका विलकुल अभाव देखा जाता है। [अमेरिकामें जो मत्स्य हैं, यूरोपके स्थानविशेषमें उनका चिह्नमात्र भी नहीं है। मत्स्यजातिका ऐसा स्थानविशेष ( migration )-सम्भवतः जलसंयोगयुक्तः अथवा मत्स्यप्रिय लोगोंके द्वारा ही हुआ होगा। मत्स्यका ऐसा स्वभाव है, कि वे प्रीष्मकालमें दूसरी जगह जा कर रहना पसन्द करते हैं। फिर Seal, Salmon आदि मत्स्य शीतप्रधान देशमें ही उत्पन्न होते हैं। ये हिम-मण्डलजात जीव कहलाते हैं।

पहले कहा जा चुका है, कि मछलियोंके रहनेके लिये विशेष विशेष स्थान निर्दिष्ट हैं। कोई मछली तड़ागमें, कोई हृदमें, कोई नदीमें और कोई समुद्रमें उत्पन्न होता है। दक्षिण-अमेरिकाकी नदीविशेषमें ऐसा एक प्राइन मत्स्य पाया जाता है, कि उसे स्पर्श करते ही घोड़ा तक कम्पितकनेवरने प्राणतया करता है। उस स्थानको छोड़ कर पृथ्वीमें और कहीं भी ऐसा मत्स्य नहीं देखा जाता। भूमध्यसागरमें चांग प्रकारके मत्स्य हैं जिन्हें स्पर्श करते ही शरीर कांप उठता है, किन्तु उनसे प्राण जानका भय नहीं रहता। हाङ्गर प्रीष्ममण्डलमें यास करता है, सम या हिममण्डलमें उसका विलकुल प्रचार नहीं है। किन्तु सर्प, कुम्भीर आदि जीवोंके लिये स्वतंत्र नियम देना जाता है। कोई कोई मत्स्य शत्रुभेदमें स्थान परिवर्तन करता है। श्लिस (Hilsa) या साड् (Shad) और तपसी (Mango-fish) मत्स्य भारत-समुद्रमें बास करता है। केवल अण्ड-प्रसवकालमें ही वे निर्मल सुमिष्टसलिला नदीमें प्रवेश करते हैं तथा अभिमत स्थानमें अण्ड दे कर पूर्वतन वासभूमि समुद्रमें लौट आते हैं। उक्त दोनों प्रकारकी मछलियां सब

समुद्रको छोड़ कर अन्य नदीमें जाती हैं, उस समय उनका मांस बहुत स्वादिष्ट होता है। अन्यथा समुद्रके लवणजलमें उनके मांसमें कोई विशेष स्वाद नहीं रहता। इस प्रकार हिमसमुद्रवासी हेरिंग नामकी मछली प्रतिवर्ष एक बार दल बांध कर सममण्डलके समुद्रमें अंडे देने आती है। पीछे प्रसवकार्य शेष कर पुनः स्वस्थानको लौट जाती है। अपगपर बहुतसे मत्स्य इस प्रकार समय समय पर एक स्थानसे दूसरे स्थानको आते हैं। इस श्रेणीके मत्स्योंका मत्स्यतन्त्रविदोंने Migratory Fish नाम रखा है। एतद्भिन्न एक देशस्थायी वा Non-Migratory नामक एक दूसरी श्रेणीकी मछली देखी जाती है। वे एकमात्र प्रसवकालमें ही सुविधाजनक किसी दूसरे स्थानमें जो यहाँसे करीब हो रहता है जाती हैं। साधारणतः पहाड़ी मछलियोंमें यह नियम देखा जाता है। ये अंडे देनेके समय अपेक्षाएत्र गहरे जलसे छिछले स्थानमें जाती हैं। अन्तमें वे उपयुक्त स्थानमें अंडे दे कर पुनः अपने पूर्व स्थान गभीर जलमें आती हैं। इस समय मत्स्यजीविगण उन्हें पकड़नेके लिये तेज धारकी ओर जाल फैला रखते हैं। मछलियां निम्नामिमुखी प्रपातगतितसे आ कर उस जालमें फँस जाती हैं। अंडे देनेके बाद वे सब मछलियां खानेमें स्वादिष्ट नहीं होतीं। उनके मांसमें कोई स्वाद नहीं रहता और वे बहुत ही रुज दिखाई देती हैं।

मत्स्यजातिका घाघ और आभ्यन्तरिक निदर्शनका लक्ष्य और आलोचना करके मत्स्यवित् परिदृष्टीमें जो स्थिर किया है, नीचे उसका संक्षिप्त विवरण देते हैं। उन्होंने इस जातिके जीवको जीवसङ्घके अन्तर्गत त्रस्थयाधार देह (Vertebrata) जीवमें शामिल किया है। उक्त श्रेणीके मत्स्य (Pisces) अण्डज माने गये हैं।

मत्स्योंके मध्य फिर १० विशिष्ट विभाग देखे जाते हैं। यथा—१ लिक्टोकार्दिन (Leptoecardin) अर्थात् जिनके हृदय नहीं है, वे शोणित और गिरा समूहके सङ्घोचनसे परिचालित होते हैं। इस श्रेणीमें एकमात्र आल्फिय-षसल् लान्समोलेटस जाति देखा जाती है। २ चक्रनुण्डो

(Cyclostomata) अर्थात् जिनका मुख चककी तरह मण्डलाकार है। लाप्रिजातीय मत्स्य इस श्रेणीमें गिना जा सकता है। ३ फ्लोमनुण्डो (Physostomata) अर्थात् जिनका शरीरस्थित वायुक्लोम मुखके साथ संलग्न रहता है। इस जातिके मत्स्योंके डैनेमें अस्थि शलाका नहीं रहती अथवा पृष्ठके परके अप्रभागमें सिर्फ एक शलाका रहती है। ४ निःशलाक (Anacanthina) अर्थात् जिनके डैनेमें शलाका रहती ही नहीं तथा वायुक्लोम भी मुखके मध्य संलग्न नहीं रहता, अपर गलेकी अस्थि पृथक् रहती है। ५ संषल्लमकण्डास्थिक (Pharyngognathin) अर्थात् जिनके गलेकी हड्डियां एकत्र संलग्न हो कर एक खण्ड हो जाती हैं। ६ कण्टकपक्षक (Acanthoptera) अर्थात् जिनके डैनेके पुरोभागमें एक वा उससे अधिक अस्थिशलाका रहती है। इनके गलेकी हड्डियां अलग अलग रहती हैं फनो भी एकत्र संषल्लम नहीं होतीं एवं ऊपरके गलफड़े संचालित हो सकते हैं इस श्रेणीके सभी मत्स्योंके वायुक्लोम नहीं होते। किन्ती किसीमें वायुक्लोम देखा जाता है। ७ गुच्छित-कर्णकूपक (Lophobranchata) अर्थात् जिनके कर्णकूपकी सर्वां शलाकाएँ गुच्छेमें फैली रहती हैं। इनके कर्णकूपका आवरण बड़ा होता है, किन्तु वह चमड़े से इस प्रकार ढंका रहता है, कि उसमेंसे जल निकलनेके लिये सिर्फ एक छोटा छेद अवशिष्ट रहता है। ८ अचनोदमांडिक (Plectognatha) अर्थात् जिनके ऊपरके गलफड़े मस्तकके साथ इस प्रकार संलग्न रहते, कि वे किसी तरह नहीं हिलते डोलते। इस श्रेणीके मत्स्यका मस्तक अस्थिमण्डित रहता है, किन्तु शरीरके अधिकांश स्थानोंमें उपास्थि (छोटी छोटी हड्डियां) हैं। ९ उपास्थि-बहुल (Selachin) अर्थात् जिनकी देहका अधिकांश उपास्थिमय है, वे अति सूक्ष्म शलक वा केवल चमड़े से आवृत रहती हैं। १० चिकणशक्की (Ganoidea) और अस्थिमय हैं।

एतद्भिन्न मत्स्य नामसे प्रसिद्ध जीवोंके अन्तर्गत किन्ने जलज जीव मत्स्यजातिमें गिने जाते हैं। इसमेंसे कौंगा मछली ही प्रधान है। समुद्रज कटल-फिम (Cuttle fish) नामधारी मत्स्यजाति स्वगा-



घाटदेह (Mollusc) - जीव श्रेणियों के अन्तर्गत है। ये सब गिरःपक्षी (Cephalopoda) अर्थात् मस्तक-संलग्न पक्ष तथा एक कोष्ठोंके हैं। इन सब जीवोंकी देह एक कोष्ठयुग्मिष्ट नृणमय आधारमें परिपूर्ण है। ये जन्ममें यह कर मेघकी तरह धूम उगड़ती है और पीछे भाग उठनेमें छिप रहती है। प्रजान्त महासागरमें इस जातिकी मछलियोंका बाम है। ये कभी कभी समुद्रपृष्ठसे इतना ऊंचा ऊपर उठती है, कि जहाजके डेक पर आ गिरती है। इनके शरीरमें Sepia नामक एक प्रकारका रङ्ग निकलता है जो चितकर्म (Water-colour painting) में व्यवहृत होता है।

अंशुशिरालदेह (Rudate) जीवोंके मध्य कण्टक-देहों (Echinodermata अर्थात् जिनके शरीर पर कांटे रहते हैं) छार किस (Star fish) मत्स्य जातिमें गिनी जाते हैं। इस तारक मत्स्यश्रेणिका Craster violaceus देखनेमें बैंगनी रंगका होता है। पतवृमिष्ठ इस श्रेणियोंमें Gomister equestris, Astropecten spinulosus और Astrophyton verrucosum आदि कई प्रकारके प्रभेद देखे जाते हैं। इनमेंसे प्रथमोक्त दो जाति पञ्चपलयुक्त तारकावृत्ति तथा शैतोक्त भी पञ्चपलयुक्त होती हैं। इनके शरीरके ऊपर कांटिकी तरह रंगभेद स्पष्ट होते हैं जिन्हें एक बार काटने पर फिर निकल पड़ते हैं। कभी कभी कटा हुआ एक पल फिर बढ़ कर पेसा लग्न हो जाता है, कि यह एक घूमकेतुके जैसा होयता है। यद्यपि उसका एक पल लम्बमान पुच्छाकारमें परिणत और दूसरा चार पल समभायमें रहता है। अंशुमें हो इनके बच्चे पैदा होते हैं। जाति जेदगे लाल या जर्द अंशु देखे जाते हैं। गर्भिणी अपने शरीरके भीतर एक गड्ढेके मध्य अंशु रेंती हैं। जहां अंशु रहते हैं यह स्थान कुल गोलाकारमें शरीरमें उठा रहता है। निकट ग्यारह दिन गर्भमास यह कर गर्भिणी अंशु देती है। बच्चे अण्डके कोड़े कर जब बाहर निकलते हैं, तब उनको आकृति विमिय रहती है। पीछे ये विनामाताकी आकृतिकी प्राप्त होते हैं। इनका मांस विकार होता है।

पहले ही कटा जा चुका है, कि मत्स्य अस्थ्याधारदेह

जीवश्रेणियोंके अन्तर्गत है। समस्त अस्थियोंके मध्य मत्स्यका मेरुदण्ड ही प्रधान है। यह मेरुदण्ड बहुत सी छोटी छोटी हड्डियोंका बना हुआ रहता है। मनुष्यके मेरुदण्डकी तरह यह भी Spinal chord द्वारा इस प्रकार हृदयबंध है, कि मत्स्यगण इच्छानुसार अपने शरीरको घक कर सकते हैं और उससे शरीरमें कोई हानि नहीं पहुंचती। इस दण्डके मध्य और पृष्ठमें मज्जा रहनेके कारण जीवदेहमें चेतनाजागृता संचार होता है। दण्डके एकाममें करोटी संस्थापित है, यही शानेन्द्रिय मस्तिष्कका आधार है। यह मस्तिष्क मनुष्यके शरीरमें अपेक्षाकृत बहुत और मत्स्यार्थि जीवमें थोड़ा होता है। मस्तिष्कके परिमाणानुसार जीवदेहमें धानका वैषम्य हुआ करता है। मेरुदण्डका अण्डाण प्रमगः सूक्ष्म हो कर लागूलरूपमें परिणत होता है। मनुष्यदेहमें भी यह सूक्ष्माण्ड है, किन्तु यह देहके मध्य हो आण्ड है। किन्ती किसी जलज जीवकी पूंछ ही एकमात्र ग्राहका उपाय है। पूंछके नहीं रहनेसे ये किसी प्रकार जीवननिर्वाह नहीं कर सकते थे। तिभि नामक मनुष्यज मत्स्य ही उसका प्रकृत निदर्शन है। अन्यत्र मत्स्योंके तैरने आदिके लिये पूंछके बदलेमें डेने होते हैं, किन्तु इन स्थूलदेहों तिभि मत्स्यको पूंछ ही एकमात्र जीवनाधार है।

अवस्थाधार-जीवदेहके साधारणतः मध्यभागमें अस्थि, अस्थिके ऊपर मांस, मांसके ऊपर त्वक और त्वकके ऊपर फेज, लोम, जलक या पक्षावरण रहते हैं। मत्स्यजातिगत जल्य हो प्रधान आवरण है, किन्तु किन्ती किन्ती मत्स्यमें उस नियमका भी व्यतिक्रम देखा जाता है। मछलाके दांग और दाढ़ होते हैं। किन्ती किन्ती आकृत मछलोंके दाढ़ नहीं होती, किन्तु दांत होते हैं।

मछलियां जलचर हैं। ये जलमें रह कर कुसकुस द्वारा श्वासधर्म अनायासमें निर्वाह नहीं कर सकती हैं, इस कारण विघाताने उन्हें कुसकुसके बदलेमें एक दूसरा यन्त्र दिया है। उस यन्त्रका नाम है कपोक्ष्पी। उस यन्त्रके द्वारा ये समुद्रमें भी आसानीसे श्वास आदि ले सकती हैं। इस कारण ये वायुपूर्ण जलकी मुगमें ले कर कपोक्ष्पीके मध्य हो कर संचालित कर देती हैं।

इसीसे उनका श्वासग्रहण कार्य सुसम्पन्न होता है। मछलियां वायुके आक्सिजन (Oxygen) द्वारा ही जीती हैं, यदि उन्हें आक्सिजन न मिले तो वे क्षण भर भी नहीं टहर सकतीं। कोई मछली ऐसी भी है जो वायुमिश्रित जलका आक्सिजन ग्रहण करती है और कोई जलसे ऊपर उठ कर श्वास लेती है। इससे जलके शरीरमें जो आक्सिजन प्रविष्ट होता है, उससे वे स्वच्छन्दतापूर्वक प्राणधारण कर सकते हैं। एतद्भिन्न कोई कोई मछली जलके ऊपर बढ़ती हुई आक्सिजन ग्रहण करती है। उनके पृष्ठ, गलक और दबक जगत्कर्त्ता द्वारा इस प्रकार बनाये गये हैं, कि उन्हींसे वे पथेष्ट परिमाणमें आक्सिजन ग्रहण कर सकती हैं।

यद्यार्थमें मत्स्यजातिको जलप्राहक (Water breathers) कहते हैं। किन्तु उस जलमें ओतप्रोतमाद्यसे आक्सिजन मिला रहता है। वे जलग्रहण कर जलसे आक्सिजनमात्र ग्रहण करती हैं, अथगिष्ट जल कान हो कर बह जाता है। ऐसा नहीं होनेसे Cyprinidae और Siluridae श्रेणीकी मछली जो कभी भी शरीर जलको छोड़ कर ऊपरकी ओर नहीं उठती, प्राणधारण नहीं कर सकती थीं। इस श्रेणीकी एक एक मछलीको कांचके गोल बरतनमें रख कर परीक्षा की गई है। मछली रखनेके बाद पादस्थ जलके ऊपरी तलसे कुछ नीचे एक सूक्ष्मपटहकी (diaphragm) द्वन्द्वभायमें आयत करने पर भी नीचेकी मछली वायुस्रष्ट जलतलके आक्सिजनके विना जीवधधारण कर सकती है, पर उनके गलफड़े (gills) को पश्चिम किसी तरह सूक्ष्म अथवा दृढ़ रज्जु द्वारा बांध दिया जाय, तो वह क्षण भर भी श्वास नहीं ले सकती है और मर जाती है।

कुछ मछली ऐसी भी हैं जो जल सेवनकालमें वायु ग्रहण करने पर भी कीचड़के जलसे उनके जीवनमें जरा भी हानि नहीं पहुंचती। मंगुरी, गार्द, गैंडी आदि मछलियां कीचड़में अच्छी तरह रह सकती हैं। ऐसा देखा गया है, कि पुष्करिणीका समो जल धूपसे सूख कर कीचड़ को परत पर पपड़ी पड़ गई है। किन्तु उस पपड़ीके निम्नस्थ कीचड़में गड्ढा बना कर शृङ्गी, मंगुरी आदि मछलियां अपने मुखमेंसे निकली हुई पालके मध्य सूख

पूर्वक पड़ी हुई हैं। ये बिना आक्सिजनके बहुत दिन जीवित रह सकती हैं। उन्हें जलसे आक्सिजन लेनेको जरूरत नहीं पड़ती, वे आश्चर्यकृतानुसार शून्यसे वायुग्रहण करती हैं। एक कांचके बरतनमें धा छोटे चहबन्धमें टेंगरा और मंगुरी मछलीको रख कर श्वास-क्रियाकी पृथकताका जब लक्ष्य किया गया तब देखा गया, कि टेंगरा मछली अपने गलफड़ेसे जलगर्भस्थ वायु ग्रहण करती है और मंगुरी स्वच्छावशतः निश्चेष्ट पड़ी हुई है। वह बीच बीचमें ऊपरकी ओर उठ कर बुद्बुदाकारमें अपने शरीरकी वाष्पको विकीर्ण कर पुनः शून्यदेशसे नूतन आक्सिजन वायु लेती हुई नीचेकी ओर जाती है।

साधारणतः मोठे जलमें जो मछली उत्पन्न होती है वही खाने लायक है। स्थानभेदसे मत्स्यादिको आकृतिमें भी वैलक्षण्य देखा जाता है। सिन्धु, दक्षिण-भारत और सिन्धुप्रदेशमें कहीं कहीं लोग मछली जलाशय आदिसे पकड़ लाते और तब खाते हैं, मरो हुई मछली नहीं खाते। इन सब मछलियोंमें रोहित, मंगुरी और दिगी मछली उत्कृष्ट और बलकारक है। रोगीको पुष्टिके लिये इसके जूसका सेवन कराया जाता है। शृङ्गी मछली दीर्घ-जीवी है। कहते हैं, कि उसकी पूंछ काट डालने पर भी वह नहीं मरती।

समुद्रके लवणजलमें भी कुछ मछलियां पाई जाती हैं, पर उनका मांस उतना स्वादिष्ट नहीं होता। अलावा इसके समुद्रमें और भी अनेक प्रकारकी मछली रहती है जिनके विषयकी आलोचना करनेसे आश्चर्यान्वित होना पड़ता है। इनमेंसे लाल मछली, उड़नेवाली मछली ही उल्लेखयोग्य है।

समुद्रगर्भमें जो उड़नेवाली मछली है, उसे बहुतरे जानते होंगे। वह मछली जलमें स्वच्छन्दपूर्वक तैर सकती है, किन्तु कभी कभी बलवान् जलज जोय कर्त्तृक आक्रान्त होने पर वह आततायीके हाथसे रक्षा पानेके लिये जलसे उछल कर शून्यमार्गमें पक्षी आदिकी तरह विचरण करती है। जब तक उसके डेने भिगे रहते हैं तभी तक वह शून्यमार्गमें टहर सकती है। धूप और वायुसे जब डेनेका जल सूख जाता है, तब डेनेमें उड़नेकी

गति नहीं रहती और यह फिर जलमें गिर पड़ती है।

इस उड़नेवाली मत्स्य जातिकी अंगरेजीमें Seahorse—(Hippocampus) कहते हैं। इनके भी फिर तीन भिन्न भिन्न घोड़ हैं। *Trigla gurnardus*—इसका मुखविषय बाणके जैसा होता है। कंधेके दोनों भागमें गद्गु गद्गु समान नेत्र धारणकारी छोटी छोटी हड्डियाँ उड़ी रहती हैं। इनके pectoral और Central दोनों ही हिस्से उड़नेमें सहायता पहुँचाने हैं।

*Trigla lucerna*—इसके मुखमें एक प्रकारका जलधिय पदार्थ रहता है। रातको जब ये मुख खोले रहती हैं उस समय उस आलोकको देखने ही जलज कीटादि उम्र और आते और उनके मुँहमें फँस जाते हैं। रातको जलका परिस्थान कर जब ये शून्य मार्गमें विचरण करती हैं, तब दूरसे यह मुखालोक उलका (Shooting stars)की तरह मालूम होता है।

*Pegasus Volans*—या द्रागणमुखी उड़नेवाली मछली। इनका प्रत्येक अङ्गप्रत्यङ्ग मीकपुराणोक्त द्रागण (Dragon) नामक जीवके जैसा है। अंगरेजीमें इसे Flying-horse कहते हैं।

एतद्विभन्न स्थानविशेषमें नीर भी कई प्रकारकी अङ्ग न मत्स्यजातिका निर्दशन पाया जाता है। उनके गठन अरेर कार्यादि साधारण मत्स्यजातिमें बहुत भिन्न हैं। ये सभी हिंस्र जन्तुकी तरह शिकार पकड़ कर अपना पेट भरने हैं। हाँ, अदिकी तरह इनकी समुद्रज हिंस्र प्राणिमें गिनती है। नीचे दृष्टान्तरूप धोड़ के नाम उद्धृत किये गये हैं:—

१। मध्य-अमेरिका ज्ञात 'हमर' (*Doras costata*) मत्स्य। प्रतापमाय होने पर यह उत्तम सूर्यदिग्दर्शन भी बहुत दिन ओ सकता है। कभी कभी जलकी सलाजमें यह डूबेका महानगाने जमीन पर घूमता है और निकटवर्ती किसी स्थानमें जल नहीं पानेसे गाली मछलीमें गडगडा बना कर रहता है।

२। रेमोरा या Sucking fish—इसके शिकारकी लोपड़ी पर एक घालके जैसा चिपटा चक रहता है। उस चकके मध्य एक मेरुदण्ड और कुछ पञ्चरपत्र अस्त्रि देखी जाती है। यह चक पत्ते कीगलसे बना हुआ है,

कि यह किसी जहाज या वृद्ध मत्स्यके तलदेगमें बटकाया जा सकता है। जब ये शिकारकी तिकलते हैं, तब उक्त प्रकारसे अपने शरीरकी दूसरेके शरीरमें लगा कर निरापद्रुसे चलते हैं। प्राचीन लोगोका विश्वास है, कि यह रेमोरा मत्स्य पहले अपने मस्तक पर जहाजकी अटकाये रहता था। प्लिनिका वृक्षान्त पढ़नेमें पता लगता है, कि एकदियमें युद्धमें भाराटोनीके जंगी-जहाजकी रेमोरा मत्स्यने दोष रखा था जिसने अणुसकी अंत हुई थी। उन्होंने और भी कहा है, कि समुद्र-गर्मस्थ अत्याश्चर्य सभी विषयोंमें यही मत्स्य प्रधानम है। यदि किसी तरह यह जहाजकी अटका रहे, तो गृफान आदि उसका कुछ भी अस्त्र नहीं कर सकता है।

३। रे (Ray) मत्स्य—यह शीयालके मध्य छिपा रहता है और शिकारकी सज्जोंकमें पानेसे उम पर अटसे चढ़ बैठता और निगल जाता है।

४। एपिबुलस (Epibulus)—यह भी छिपे हुए स्थानमें रह कर शिकारकी बाट जोहता है। मछलीके छोटे बच्चे को देखने ही पकड़ कर खा जाता है।

५। पङ्गुर (Angler)—इसके भीषाममें कुछ कड़ी कड़ी मूँछें निकली रहती हैं। उन मूँछोंके अग्रभागमें बहुत छोटा मांसपिण्ड रहता है। यह भी छोटी छोटी मछलीको पकड़ कर खाता है।

६। स्कर्विणा (Scorpaena)—यह बड़ा ही कट्टर होता है। यहाँ तक कि, अपनेमें २० गुणा बड़े मत्स्यकी भी घोर डालता है।

७। चेलमन (Chelmon)—यह कीड़े मकोड़ेकी खा कर अपना पेट भरता है। जलके ऊपर पल या शाखाओं पर बैठे हुए पतंग आदिकी देखतेमें ही यह अपनी मलाकार सूक्ष्म भासको भागे बढाता और उस पतंगकी लोच लगाता है।

८। आर्चरमत्स्य (Archer-Fish)—यह भी उसी प्रकार शिकारने अपना जीवन धारण करता है। यद्यप्येके निकट साधारणतः इस जातिका मत्स्य देखनेमें आता है।

किर भी कितने मत्स्य देखे हैं जो अभाषतः निर्दिष्ट

होते हैं। जगदीश्वरने उनकी रक्षाके लिये शरीरमें कांटे, खड्ग आदि यथास्थानमें सन्निवेशित किये हैं। कोई कोई मत्स्या पेसा है जिसके सभी छिलकोंमें कांटे देखे जाते हैं। किसीके डैनेके कांटिका अप्रभाग इतना तेज होता है, कि भसावधानयगतः उन्हें हाथसे पकड़नेसे हाथ घायल हो जाता है।

समुद्रज मत्स्याके मध्य हेरि, सार्डिन, पड्डमि, सामन और तुनी मत्स्या यूरोपवासी जनसाधारणके खाद्य हैं। फरासीराज 'शेर्षे' लुरै जब मार्सल बन्दर देखने आये थे, तब उन्होंने तुनीका मांस बड़ी रुचिसे खाया था। पतञ्जिन काड ( Cod वा Morrhu vulgaris ) नामक एक और प्रकारका सामुद्रिक मत्स्या है। इसके यहूतको पोसनेसे एक प्रकारका तेल निकलता है। चिकित्सा-विज्ञानमें इस तेलको विशेष उपकारी और पुष्टिप्रद बतलाया गया है। श्वास, कास और स्नायविक दुर्बलता में Cod-liver oil विशेष फलदायक है। काडमत्स्याके यहूतको पोसनेसे पहले जो तेल निकलता है, वही औषधार्थमें व्यवहृत होता है। दूसरी बारका निकाला हुआ तेल काला होता और रोशनी जलानेके काममें आता है। यूरोपमें काडमत्स्या और हेरिग-मत्स्या पकड़नेके लिये विस्तृत कारवार है। श्युक्ताण्डलैण्ड-घासी काडमत्स्याको पकड़ कर पहले उसके पेटको फाड़ डालते हैं, पीछे यहूत निकाल कर उसे एक बरतनमें रखते हैं। बादमें उसका मेरुदण्ड काट कर दोनों पार्श्वके मांसको बांसकी पट्टियों पर रख कर सुखाते हैं। अनन्तर उसे बाजारमें अधिक मोल पर बेचते हैं। हेरि मत्स्याको भी उसी प्रकार जहाज पर रखनेके बाद चोर फाड़ डालते हैं। पीछे पिसादि निरुष्ट अंशको अलग कर अवशिष्ट मत्स्यको लयणसे ढके रखते हैं। कभी कभी यह मत्स्य धूपमें सिक्त कर ( Smoked ) रखा जाता है। हेरि मत्स्यको सिद्ध कर जो तेल निकालते हैं, उसे परिष्कार करनेके बाद बाजारमें बेचते हैं। तेल निकालनेके बाद कड़ाहमें जो अवशिष्ट मांस-पिण्ड ( tangrum ) रहता है, यह भूमिमें खाद देनेके लिये व्यवहृत होता है।

पतञ्जिन बृहद्वाकार मत्स्यके मध्य डलफिन (Dol-

phin) जनसाधारणका आदरणीय है। इङ्गलैण्डराज ३५, ५५ और ७५ हेनरी तथा रानी एलिजाबेथ इसके मांसको बहुत पसन्द करती थीं। उत्तर-महासागरमें नर-हाल ( Norwhal ) नामक तिमिमत्स्यकी तरह एक प्रकारका मत्स्य है। उसके ऊपरवाले होठमें गेंडुकी तरह दो खड्ग देखे जाते हैं। यह कमसे कम ३० फुट लम्बा होता है। पहले हस्ति-दन्तके समान श्वेतवर्णके इस दन्तको unicorn नामक अद्भुत जीवके कपाल पर सजाते थे।

हिममण्डलके बरफावृत समुद्रजलमें सील ( Seal ) नामक एक प्रकारका जीव देखनेमें आता है जो बहुत कुछ चतुष्पद पशुके समान होता है। मत्स्य, कर्कट आदि जलज जीव इसके एकमात्र आहार्य हैं। ये बहुत देर तक जलमें रह कर और देर तक वायु सेवन करके दिन बिताते हैं। इसी कारण इनकी गिनती मत्स्य-श्रेणीमें की गई है। इनके चार डैने होते, शरीर कठिन और बहुत रोओसे ढका रहता है। जनसाधारण इनका मांस खाते हैं और चमड़ेसे पहननेके कपड़े और जूते बनाते हैं। सीलके चमड़ेसे एक अंगरखा बनानेमें हजारसे ज्यादा रुपया लगता है। कारण अङ्गरेजके उपयोगी सीलमत्स्य प्रायः मिलना ही नहीं। घीधरगण इस सीलजातिको सामुद्रिक व्याम्र वा गो-घरस ( Sea-Wolf वा Sea-calf कहते हैं।

मत्स्यगण साधारणतः जलमेंके छोटे छोटे कीड़े मकोड़े, मत्स्य, शैवाल आदि खाकर जीविकानिर्वाह करते हैं। गर्मिणी अण्डे देनेके समय नर-मत्स्यके पीछे पीछे चलती हैं और उधों ही दो एक अण्डे गर्भस्थानसे बाहर निकलते हैं त्यों ही नर-मत्स्य उन्हें निगल जाते हैं। इस कारण मादा स्वभावतः अण्डे देनेके समय नर मत्स्यका साथ छोड़ कर घैसे जलाशयमें चला जाती है अण्डे बड़े बड़े मत्स्यका रहना सम्भव नहीं है। वहां अण्डे दू कर यह फिर अपने पूर्णजलाशयको लौट आती है। अण्डे धूप और वायुके तापसे धीरे धीरे अपने आकारमें पलट जाते हैं। उन अण्डोंके बच्चोंकी रक्षा करनेके लिये धीवर तथा चीन-देशवासी मत्स्य व्यवसायिगण विभिन्न उपायका अवलम्बन करते हैं।

बहुनालके धोयसोंको तरह चोनयासिगण नदीतीरसे भाण्डोंको गा कर उने फोड़नेकी कोशिश करते हैं। पीछे जब ये नूटने पर आते हैं तब उन्हें राजारमें ले जा कर बेचते हैं। चोनदेगके धोयसोंमें भी मत्स्य डिम्ब बेचनेका व्यवसाय चलता है। ये नदोंके किनारे या जलके ऊपरी भागमें सघःप्रसृत गोंदके समान डिम्बको संघट्ट कर नदी पार्श्वयसों किम्सा गड्डेमें रख देते हैं। दूसरे मत्स्य था कर उन्हें नष्ट न कर दे, इस भयसे गड्डेका मुँह बंद कर देते हैं। चोन-यासियोंका डिम्ब-रक्षण या पालन-प्रथा स्वतन्त्र है। ये हंस, मुर्गी आदि पक्षि-डिम्बको छेड़ कर उसके भीतरकी राल और कुसुमको निकाल कर फेंक डालते हैं। पीछे उसके मध्य सघःप्रसृत गोंदके समान मत्स्य-डिम्ब भर कर छिद्र-पथको बंद कर देते हैं। अनन्तर उसे मुर्गी या हंसके रहनेके स्थानमें सेचनेके लिये रख भाते हैं। इस प्रकार अंडेमेंके डिम्ब कुछ दिन बाद उन्नत हो जाने पर ये उस अंडेको सूर्योत्तापित पात्रजलमें फोड़ देते हैं। ऐसा करनेसे बच्चा बाहर निकल पड़ते हैं। जब तक ये बच्चे जलाशयमें फँकने लायक नहीं होते तब तक उसी पात्रमें रहने देते हैं।

हिन्दूलोग मत्स्यको एक पवित्र जीव मानते हैं। स्वयं भगवान्ने मत्स्यारूपमें अवतार लिया था। मत्स्य-यतारमें उन्होंने वृष्योका भार हरण करके मनुष्यी मनुष्यको महामलयकालमें रक्षा की थी। बहुतांका विश्वास है, कि भगवान्ने उस समय शृङ्गि-मत्स्यका रूप धारण किया था। इस प्रकार बहुनसे धर्मप्राण हिन्दू शृङ्गि-मत्स्य नदी गते। धादादि प्रेतकर्ममें भी मत्स्यो-त्मर्गको व्यवस्था देवी जाती है। एतद्भिन्न सभी प्रकार-को जन्मपूजामें मत्स्यभोगका विधान है। कहीं कहीं देवीदेवसे भगवा प्राणको मत्स्यपूर्ण पुष्करिणीयान प्ररन्वित हुआ है। कोटा-राज्यमें कन्हार (धोखण)के उदेनासे प्रसूत इस प्रकारकी कई पुष्करिणीकी कथा महारामा टाडके उपासकानमें लिगी है। प्रायः सभी प्रकारके शुभ कर्ममें माङ्गलिक निदर्शन-स्वरूप मत्स्य और दूध दिया जाता है। याताकालमें मत्स्यदर्शन शुभफल-प्रद माना गया है।

बहुनीने मत्स्यवृष्टिका हाल सुना होगा। कई बार

वृष्टिपतनकालमें इस प्रकारका मत्स्यपात हो गया है। १८२४ ई०में भारत-साम्राज्यके १४वें संवत्क सेना दलमें कृषके समय मत्स्यवृष्टि हुई थी। १८५६ ई०के जुलाई मासमें मुरादाबादमें भीषण तूफानके समय मत्स्य-पात हुआ था। १८३० ई०को ११वीं फरवरीको ढाका जिले-की मकुनहाटा कोठीमें सामान्य वृष्टिके साथ गांध मृत-मत्स्य गिरा था। १८५३ ई०को १६वीं और १७वीं मईको फतेपुर जिलेमें यमुनासे एक कोस दूर मत्स्यपात हुआ। इस समय डेढ़ सैर घजनका एक एक मत्स्य गिरा था। १८३५ ई०के मई मासमें इलाहाबाद नगरमें तथा १८३६ ई०के २०वीं सितम्बरको कलकत्तासे १० फीस दक्षिण सुन्दरघनमें मत्स्यवृष्टि हुई थी। १८५० ई०की २५वीं जुलाईको काठियावाड़के धर्मार्थ राजकोट नगरमें भीषण तूफान और वृष्टिके समय तथा १८५२ ई०की ३री अगस्तको पूना शहरके सेना-निवासमें मत्स्य-पात हुआ था। एतद्भिन्न ५० वर्ष पहले कलकत्तेके उत्तरवर्ती पराहनगर भक्षालमें और सिंहलद्वीपके कलम्बो दुर्गके समीप मत्स्यवृष्टि हुई थी।

वैज्ञानिक वाणिज्यके अलावा मछलीसे देशका एक और भी भारी उपकार होता है। इससे जमीनकी उत्तम खाद बनती है जिससे जमीन बहुत उपजाऊ होती है। ...भीगा मछलीके छिलके और मिट्टीको मिला कर गाड़ रखनेसे उत्तम खाद तैयार होती है। छोटी इलाकचो, लयङ्ग, शारचीनी आदि गरम मसालेकी चैतीमें मछलीकी खाद आवश्यक है। चोनयासिगण पूलके बगोंचोंमें मछलीको आवेसे घुसोंको मजबूत और हरा करा रखाते हैं।

अतल समुद्रगर्भसे ले कर हिमालयके उच्च गुहा पर्वत वृष्योके सभी स्थानोंमें मछली पाई जाती है। विश्वत देशके १४ हजार फुट ऊँचे परके हृदयमें भी मछलीका अभाव नहीं है। यह सुदूर विस्तृत मत्स्यप्रति मित्र भिन्न स्थानमें भिन्न भिन्न नामसे पुकारी जाती है,—संस्कृत—मत्स्य, मोन; हिन्दी—मछली, पङ्कला—माछ, कल्यू—छपु, तालिम—मोन; अंगरेजी—Fish

दिनेमार और स्वीस--Fisk, जर्मन--Fisch, फरासी--Poisson; ओलन्दाज--Visschen, ग्रीक--Ichthius, हिब्रू--Dag; इटाली--Pesce, लाटिन--Pisces; पोलिश--Rybi; पुर्तगाली--Peixes, रूसिया--Rub; स्पेन--Pescados; अरब--समकत्, पारस्य--महि; ब्रह्म--अनुन्ता; मलय--इकन् इत्यादि।

मत्स्यद्वादशी (सं० स्त्री०) अगहनसुदी द्वादशी। इस दिन मछली खाना एकदम निषिद्ध है।

मत्स्यद्वीप (सं० पु०) मत्स्यप्रधानो द्वीपः शाकपार्थिव्यादित्वात् समासः। पुराणानुसार एक द्वीपका नाम।

मत्स्यधानी (सं० स्त्री०) मत्स्या धोयन्ते यत्रेति मत्स्यधाञ्-लुट् ङीप्। मछली रखनेका वरतन।

मत्स्यनाथ (सं० पु०) मत्स्येन्द्रनाथ। मत्स्येन्द्र देवो।

मत्स्यनारी (सं० स्त्री०) १ सतायतीका एक नाम। २ आधी मछली और आधी आकृतिकी नारीमूर्ति।

मत्स्यनाशक (सं० पु०) १ कुरर पक्षी, करांजुल। (त्रि०) २ मछली पकड़नेवाला।

मत्स्यनाशन (सं० पु०) कुरर पक्षी, करांजुल।

मत्सानी (हि० स्त्री०) पांच प्रकारकी सोमाओंमेंसे एक सोमा। यह नदी या जलाशय आदिके द्वारा निर्धारित होती है।

मत्स्यपित्त (सं० स्त्री०) मत्स्यस्य पित्तम्। मछलीका पित्त।

मत्स्यपित्ता (सं० स्त्री०) कटुरोहिनी, कटकी।

मत्स्यपुटपाक (सं० पु०) पुट द्वारा मछली पकानेका एक भेद।

मत्स्यपुराण (सं० स्त्री०) अठारह महापुराणोंमेंसे एक पुराण। विशेष विवरण पुराण सूत्रमें देखो।

मत्स्यबन्ध (सं० पु०) मीनघातक, धोवर।

मत्स्यबन्धक (सं० त्रि०) मत्स्यान् बध्नाति बन्धं षंलुट्। १ धोवर। (पु०) २ सङ्कर जातिभेद, धोवरकी जाति।

मत्स्यबन्धन (सं० पु०) मछली पकड़नेकी वंशी।

मत्स्यबन्धिन (सं० पु०) मत्स्यान् बद्ध्वा धर्त्तुं शीलमसा मत्स्यबन्ध इति। धोवर-जाति, मछुआ।

मत्स्यबन्धिनो (सं० स्त्री०) मत्स्यबन्धिन स्त्रियां ङीप्। १ मत्स्यधानी। २ धोवरकी स्त्री।

मत्स्यमुद्रा (सं० स्त्री०) सभी पूजाओंमें होनेवाली तान्त्रिकोंकी एक मुद्रा। इसमें दाहिने हाथके पिछले भाग पर बाएँ हाथकी हथेली रख कर अंगूठा हिलाते हैं। यह मुद्रा अभीए सिद्ध करनेवाली मानी जाती है। इसे कूर्म मुद्रा भी कहते हैं।

मत्स्यरङ्ग (सं० पु०) मत्स्यरङ्ग पृषोदरादित्वात् साधुः। मत्स्य रंग पक्षी।

मत्स्यरङ्ग (सं० पु०) मत्स्यान् रङ्गति भक्षणाय तत् समोषं गच्छतीति मत्स्यरङ्गि अच्। एक प्रकारका पक्षी।

मत्स्यराज (सं० पु०) मत्स्यराजु राजा श्रेष्ठः, समासान्त-ष्टच्। १ रोहित मत्स्य, रोह मछली। २ विराट-राज।

मत्स्यरविड (सं० त्रि०) १ कटको। (पु०) २ मत्स्य-तरयविड।

मत्स्यवेधन (सं० पु०) मत्स्यो विध्यतेऽनेनेति मत्स्यविध करणे ल्युट्, मत्स्यानां वेधनमिति च। मछली पकड़नेकी वंशी।

मत्स्यवेधनी (सं० स्त्री०) मत्स्यवेधन-ङीप्। २ मद्गु-पक्षी। २ वडिश, मछली फंसानेकी वंशी।

मत्स्यशकल (सं० स्त्री०) मछलीका चमड़ा।

मत्स्यसंघात (सं० पु०) मछलीकी फांक।

मत्स्यसगन्धी (सं० त्रि०) मत्स्यसगन्धयुक्त।

मत्स्यसन्तानिक (सं० पु०) मत्स्यानां सन्तानिकोऽल। मत्स्यव्यञ्जनविशेष। मछलीमें लयण, अदरकका रस और घैशन आदि मिला कर कड़प तेलके साथ आगमें पका कर यह बनाया जाता है।

मत्स्यसूक्त (सं० स्त्री०) एक प्रसिद्ध तान्त्रिक ग्रन्थ। किसी किसीके मतसे यह ग्रन्थ हलायुधका रचा है किन्तु ग्रन्थमें उसका कुछ भी आभास नहीं मिलता।

मत्स्यन (सं० पु०) मत्स्यं हन्ति हन्-विषप्। मत्स्य-हन्ता, धोवर।

मत्स्या (सं० स्त्री०) कटुकी।

मत्स्याक्षक (सं० पु०) सोमलता।

मत्स्याक्षो (सं० स्त्री०) मत्स्यानां अक्षीणीय अक्षीणिण पुण्य-रूपाणि चक्षुषि पस्यतः। मत्स्यक्षि (बहुव्रीहो) सकल्पयन्तोः

याचंराज जन्माने जिय पुरोका निर्माण किया, यह वर्ण-मान मूर्तिभर-मन्दिर और तन्त्रिकदृष्टियों कटरा प्रामाण्ये मयस्थित था। जोरे चोरे यह सभी ध्यंस हो गया, मन्त्रों यमुना-दुर्ग-ओमित्त वसंमान नदर ही मथुरा नाम से प्रसिद्ध हुआ। किन्तु उनका मत समीचीन प्रतीत नहीं होता। क्योंकि, उद्भूत रामायणके यमनोंसे स्पष्ट प्रमाणित होता है, कि जहाँ मधु श्रुत्यने पुरनिर्माण किया था तथा जहाँ उनके पुत्र लवणने बहुतसे भयन बनयाये थे वहाँ पर रामानुज शत्रुघ्नने शूर-सैनिकोंको राजधानी मथुरा नगरी बसाई था। यह नगरी यमुनातीर तक विस्तृत और विशेष समृद्धिवाली थी। इस प्रकार कटरा नावक स्थानके निकट जो प्रथम नायं मथुरानगरी स्थापित हुई थी, वह असल मथुरा प्रतीत नहीं होती। शूरसैनिकों उन्नतिके साथ साथ यादवोंने पूर्वस्थानसे कुछ ऊपर राजधानी बसाई थी, यहाँ पुराण-इतिहासमें 'मथुरा' नामसे प्रसिद्ध है। इस मथुराकी समृद्धिके साथ साथ मुन्नाचोन मधुपुरी या मथुरा नगरीका परि-स्थान किया गया तथा यह स्थान 'मधुवन' नामसे विख्यात हुआ।

यादव-राजधानी मधुरापुरी यथासमय सुविस्तृत हो कर मथुरामण्डलमें परिणत हुई। मनुसंहिता और पाश्चात्या ऐतिहासिक ग्रंथिनि आश्रित्य आदिके ग्रन्थोंमें यह मथुरामण्डल शूरसेन नामसे वर्णित है तथा इसका अधिकारा यत्समान मथुरा जिलेके अन्तर्गत है।

यह जिला मुन्नाप्रदेशके आगरा विभागके अन्तर्गत है और २७° २७' १४" से २७° ५८' ३०" तथा देगा० ६७° ०१' से ७८° १३' ५०" के मध्य पड़ता है। भूपरिमाण १४४५ वर्गमील है। इसके उत्तर पन्ना जिला और मंडीगढ़, पूर्वमें भंडीगढ़ और गटा, दक्षिणमें आगरा और पश्चिममें भरतपुर राज्य है। यमुनाके दक्षिण कूलस्थ मथुरा नगरही इसका सदर है। १८०३ ई०में सुरूरेजापिकारके बादसे लगायत १८३२ ई० तक इस जिले का शासनकार्य आगरा और लखनऊके सम्पादित होता था। पीछे अरि, महार, बीजा, सादाबाद, जलभर-माट, लोहभोज और महापन नामक ८ तहसील से कर मथुरा जिला संगठित हुआ। तभीसे जिलेका सभो राजकीय कार्य मथुरा सदरमें ही होता है।

यह स्थान बहु प्राचीन है। पुराण-प्रसङ्गमें इसी स्थानको कृष्ण-बलरामका लोलाक्षित बनयाया है। ऐतिहासिक-जगत्में मथुराका माहात्म्य बहुत दूर तक फैला हुआ था। बौद्ध, हिन्दू और मुसलमानको प्रधानताके समय यह स्थान विशेष समृद्धिवाली होनेके कारण लोगोंका इन ओर ध्यान दीष्ट गया था। केषल धीकृष्णका लोलाक्षित होनेके कारण ही जो यह पवित्र तीर्थरूपमें गिना गया है सो नहीं, रीत या रीति जनास्त्री-में यहाँ कितने बौद्ध-विहार और संघाराम प्रतिष्ठित होनेसे स्थानका माहात्म्य तात्कालीन बौद्ध-जगत्में फैल गया था। यही कारण है, कि हम लोग प्राचीन भौगोलिक दृष्टिको "Mouras of the gods" तथा आश्रित्य और प्लिनिके M-thera शब्दमें मथुराका उल्लेख पाते हैं।

चौर-प्रयाहा यमुना नदी इस जिलेकी दो भागोंमें बाँटी है। यमुना छोड़ कर और दूसरी नदी जिले भरमें नहीं है। वर्षाके आरम्भमें ही यमुनाका ऐश्वर्य बढ़ जाता है। उस समय यह सूर्यकन्या यमुना प्रवल श्रेणसे कल कल शब्द करती हुई सब दिशाओंमें फैल जाती है। इस समय यमुनातीरयकी मथुरा और पृन्ना-पनतीर्थप्रामकी शोभाका पारापार नहीं। सौन्दर्य प्रिय मानय यमुनाकी अतुल शोभा देखने तथा तीर्थ करनेकी मननामे श्रीकृष्णको लोलाभूमि शृङ्गारणमें आते हैं। मेघमालाके सहस्र शोर कृष्णवर्ण यमुनाप्रस गायु हितोत्से मान्दोलित और उच्छ्वलित हो कर जैसा सुहायना दीखता है यह जयदेव आदि भक्तकवियोंकी काव्यगीतोंमें सुस्पष्ट और सरल भाषामें वर्णित है।

वन्दान देणे।

मथुरा नगरके वास्तव्य ही कर जो यमुना बह गई है उसका भी हृदय अतीव मनोरम है। उसके बहुतसे पाद श्रीकृष्णकी लोलाभूमि समक्ष कर एक एक तीर्थमें गिने गये हैं। आगे चल कर यमुना प्रवाहसे बहुतसे खात हृदयकारमें बन गये हैं। उन सब छोटे छोटे हृदयोंमें प्रायः सभी समय जल रहता है। स्थानीय श्रेणी बारीके लिये यह विशेष उपकारी है। वर्षासत्रुके बाद जब यमुना सूख कर एक छोटी, खेतम्बिकाका आकार धारण करती

हे तब उसके दोनों किनारे विस्तृत बालुकामय चर पड़ जाता है। उन चरोंको पार कर खेतोंमें पानी लाना बहुत कठिन हो जाता है। ग्रीतकालमें उस चर भूमिमें तरपूज आदिकी खेती होती है।

जिलेका सर्वत्र प्रायः समतल है। केवल दक्षिण-पश्चिम कोणके भरतपुर-मीमान्प्रदेशमें चूत-पत्थरकी गण्डशैलश्रेणी देखी जाती है। वह शैलश्रेणी पार्व-पर्वतों समतलभूमिसे २५० फुट और समुद्रपृष्ठसे दक्षिण-पश्चिमकी ओर ५५६ फुटसे उत्तर-पश्चिममें ५२० फुट तक ऊँची चली गई है।

जिलेके पूर्वभागमें घाट, महावन और सेदावाद तहसील है। गङ्गा और यमुनाके अन्तर्वेदके मध्यमें अवस्थित होनेके कारण यह विभाग स्वभागतः ही बहुत उर्वरा है।

यमुनाके दूसरे किनारे पश्चिम मूभागमें जलके अभावसे काफी फसल नहीं लगती। यहाँकी कोशी, छाती और मथुरा तहसील स्वभाव-सौन्दर्यसे पूर्ण नहीं होने पर भी पौराणिक देवमहादेव तथा प्राचीन ध्वंसा-घरों समूहमें इनका उल्लेख आया है। वे सब देव-चरित्र और पुरातन कीर्ति देखने लायक हैं।

मगधानके अवतार श्रीकृष्ण और बलरामकी लीला-भूमि होने पर भी इस पवित्र क्षेत्रमें वैसी कोई अलौकिक कीर्ति नहीं देखी जाती। कहीं कहीं ऐसी कीर्ति है जो सिर्फ प्राचीन क्रियाकलापकी स्मृतिकी घोषणा करती है। भाज भो मथुराघाममें श्रीकृष्णका जन्मस्थान, वसु-देव और देवकीका कारागृह, कंसराजका दुर्ग प्रभृति स्थान दिखलाया जाता है।

पहले ही कहा जा चुका है, कि वर्षाके बाद मथुरा वा पृथ्वायन-क्षेत्रकी गोभा उतनी नहीं रहती। प्रायः आठ मास तक यमुनाका कलेधर मूल कर एक स्रोतस्त्रिनीके समान हो जाता है। किन्तु वर्षाके चार मास तक यमुनाका घन जलसे प्लावित रहता है, तब स्थानीय सौन्दर्य सी गुणा बढ़ जाता है। तीर्थयात्रिण प्रायः वर्षा ऋतुमें ही यहाँ आते हैं। बहुतमे यहाँ तीर्थकामनासे ८४ वर्षोंका परिभ्रमण करते हैं।

यमुनावन जलप्लावित होनेके साथ ही साथ स्थानीय हृद और पार्वतीय स्रोतस्त्रिनी पूर्ण कलेधरकी धारण

करती है तथा मधुप्राय गण्डशैल, बालुकामय प्रान्तर-समूह और हरिद्वर्णशूद्राश्रयादि तथा फल पुष्पीसे पूर्ण हो कर पृथ्वीको हरा भरा बना देते हैं।

कृषिजीवि अधिवासि-सम्प्रदाय छोटे छोटे ग्रामोंमें न बस कर अष्टाश्रित सुरक्षित बड़े बड़े ग्रामोंमें बास करते हैं। इस प्रकार सैकड़ों मनुष्यके एक बड़े ग्राममें बास करनेके कई कारण हैं। प्रायः यमुना प्लावित समग्र भूमिभागका जल कुछ लवणाक्त हो जाता है। इस कारण सुमिष्ट जलके लोभसे वे एक साथ आ कर बस गये हैं अथवा उन सब स्थानोंको श्रीकृष्णकी लीला-भूमि समझ कर अधिकार कर बैठे हैं। प्रधान जाट और महाराष्ट्र-विश्वयसे आत्मरक्षा करना ही उनके एकल वास-का कारण हो सकता है। मथुरा तहसील छोड़ कर पश्चिम-विभागके सभी स्थानोंमें जलका अभाव है। आगरा नहर-काटो जानेसे कृषिकार्यमें बहुत सुविधा हो गई है।

एकमात्र यमुना और आगरा नहरमें पण्यद्रव्यवाही नावे आ जा सकती हैं। किन्तु मथुरासे आचनरा और मथुरा-हातरस तक रेलपथ हो जानेसे यहाँके वाणिज्य और तीर्थयात्रियोंके पक्षमें बहुत सुभीता हो गया है। जलपथसे वाणिज्यकी सुविधाके लिये मूल आगरानहर-से एक ८ मील लम्बी नहर मथुरा नगर तक काट कर निकाली गई है। रई, लवण, चावल, चीनी, तमाकू और मसाला यहाँका प्रधान वाणिज्य द्रव्य है।

लोह-मिठल नामक विस्तीर्ण जलराशि वर्षा कालमें हृदाकारमें परिणत हो कर दीर्घायतनकी प्राप्त होती है। किन्तु ग्रीत और शीतऋतुमें उसका आयतन लम्बाईमें २॥ और चौड़ाईमें १॥ मील रहता है।

इस जिलेका अधिकांश स्थान वनमय और गोचारण-भूमि है। वन्य-विभागमें जलाने लायक लकड़ोंके अलावा और कोई अच्छी लकड़ी नहीं मिलती। कहीं कहीं गन्ध-क्षेत्र और उपवन दृष्टिगोचर होता है। यहाँके वृक्षादिका फल, छिलका और घोज औषध, रंग या भोजन कार्यमें व्यवहृत होता है। जिलेके पश्चिम वासना और नन्दगाँव नामक स्थानमें एक तरहका पत्थर और मथुरामें कंकड़ पाया जाता है। यहाँके घर प्रायः पत्थरके बने हैं, कहीं कहीं मट्टीके भी घर देखे जाते हैं।



मथुराका पुराणपर ।

मथुराका आदि इतिहास निम्नान्न सम्बन्ध है । रामा-  
यनमें मान्य होता है, कि डाकूयने लक्ष्मणदेवका यश कर  
मथुराके शूरसेनोंको बसाया था, शूरसेनोंके बाम होनेके  
कारण यह विस्तृत जनपद शूरसेन कहलाता था । मनु-  
संहितामें मथुरा वा मथुराका कोई उल्लेख तो नहीं है,  
पर इस शूरसेन-जनपदको प्रदर्शियोंके अन्तर्गत बतलाया  
गया है ।

जायु प्रके पंजपत्तने यहां कुछ समय राज्य किया था,  
रिनु उनके पंजलोपके बाद शूरसेनोंने प्रयत्न हो कर  
राज्य पर अधिकार जमाया । भागवतादि पुराण पढ़नेसे  
मान्य होता है, कि यदुकुन्तिलक धोहृष्णने इसी  
शूरसेनवंशमें अन्नप्रदण किया था । उनके पुत्रपुरुरागण  
यहांका शासन करने थे । पाँडे कंसने कुछ समयके  
लिये इसे अपने द्वापलमें कर लिया और यमुनाके  
किनारे मथुरामें राजधानी बसाई । जायद उसी समय  
मथुराजनपदीका नाम तमाग प्रसिद्ध रहा होगा । धोहृष्णने  
कंसको मार कर उनके पिता उग्रसेनको पुनः मथुरा-  
राज्यमें अभिषिक्त किया । पाँडे जरासन्धके भयसे भी  
हृष्णने अथ मथुराका त्याग कर छारकापुरीमें आश्रय  
लिया उन समय भी यह स्थान शूरसेनोंके हाथमें अगुन  
गहोँ हुआ था । मेगास्थनिजका वर्णन देव कर आरियनने  
लिखा है, कि मेथोरा ( Methora ) और क्लिप्सीबोरा  
( Cleubora ) शूरसेनोंकी इन दो प्रधान नगरी हो कर  
यमुना नदी बहती है । पादचाय वर्णित 'मेथोरा' और  
'क्लिप्सीबोरा' मथुरा और कृष्णपुरका वैज्ञानिक उच्चारण है ।  
इसो जनाब्दीमें मथुरा और कृष्णपुर जगद्विख्यात था तथा  
यहां शूरसेनराज राज्य करते थे, उनका आमास मिलता  
है । फिर क्लिप्सिने लिखा है, कि ये दो प्रसिद्ध नगरी पालि-  
बोया भर्षान् पाटलिपुत्र राज्यके अन्तर्गत थीं । अधिक  
सम्बन्ध है, कि मौर्यराज नश्ट्रमुनके समयमें मुद्राग्रान्त  
शूरसेन राज्य पाटलिपुत्रमें शामिल था । यथार्थमें मथुरा  
मएदन धोहृष्णकी मोनाभूमि होनेके कारण अतिपूर्व  
कालमें केवल रिदुभोका ही पुण्यक्षेत्र समझा जाता है सो  
नहीं, जैन और बौद्ध लोग भी इसे पुण्यभूमि समझ कर  
आश्चर्यको इतिमें देखते हैं । जैनोंके ११वें तीर्थंकर मरिच-

नाथ और ११वें तीर्थंकर जमीनायने मथुरामें जन्म धीर  
हातनाम किया था । इस कारण धार्मिक जैनोंके निकट  
मथुराको प्रत्येक पृथिकृपा तक पवित्र समझी जाती है ।  
प्रवतस्वविदोंके यद्यपि मथुराके अनेक स्थानोंको घोरे  
कर जो सब प्राचीन कौत्सियां गिनाली गई हैं उनका  
अधिकंश जैन है । उनमें जो शिवालिपि उरकीयों हैं उन  
से मान्य होता है, कि नाना धेणोंके जैन मथुरामें गोर्ष  
करने आते थे और ये नाना देवकौत्सिका प्रतिष्ठा कर गये  
हैं । जैनरमणियोंके भी स्थांरस्थापना परिचय पाया जाता  
है । मथुरामें इसी जनाब्दीको एक जैनलिपि पाई गई  
है । उसमें लिखा है, कि कुमारमिता नामक एक साधु  
पतिकी मृत्युके बाद प्रधस्था प्रहण कर जिन्य कुमारमि-  
की उपदेशाश्री हुई थीं । ऐसा प्रमाण दूसरी जगह  
नहीं मिलता, इस कारण यहां उनका उल्लेख किया  
गया ।

जैनोंके साथ यहां बौद्धकौत्सि भी प्रतिष्ठित हुई थी ।  
उपगुन सघाट् भगोकके समसामयिक थे । मथुरामें  
शुद्धजिणोंका अघिष्ठान होने पर भी इन उपगुनके समय  
इसा-जन्मको ४थी जनाब्दीसे ही मथुरामें बौद्धधर्ममें प्रवेश  
किया था । मथुरासे जो प्राचीनतम बौद्धलिपि पावि-  
प्टन हुई है वह बहुत कुछ अगोकलिपिके समान है ।  
इसके द्वारा हम समयके बौद्धधर्मप्रवेशका आभास  
जाता है ।

इसा-जन्मके २रा जनाब्दीके शेष भागमें मथुरामें  
जकाधिपत्य फैला । मथुराके सभी शकसुत्रपण मिती-  
पामक या और थे । उनके समयमें मथुरामें सौस्थपना  
प्रभाव और सूर्यभूजाका विशेष प्रकार हुआ । उस समय  
प्रतिष्ठित भन्न सूर्यभूमि मथुराको पुराकौत्सिके ध्वंसमें  
निकली है । पर्याप्तकालमें इन शक राजाओंमें कौ-  
शैव, कौं शाक और कौं बौद्ध हुए थे । मथुराके शक  
जकाधिपोंके मध्य कनिष्कका नाम सर्वत्र प्रसिद्ध है ।

भातवर्ष देको ।

जकप्रसायके शर्ष होने पर मथुरामएदक  
मुमसघाटके अधिकाशमुक्त हुआ । ६ठी  
मुमसाघाज्य ध्वंस होने पर शूरसेनोंने निरन्तर  
अपयत्न कर अन्तमें एकको राजपद पर

क्रिया। ७वीं शताब्दीके प्रथम भागमें जब चीनपरि-  
प्राजक यूएनचुवंग मधुरामें आये, उस समय भी उन्होंने  
यहां स्थानीय स्वाघोन राजा देखा था।

महावनसे राजा अजयपालदेवकी १२०७ सम्यन्त  
(११५९ ई०) में उत्कीर्ण शिलालिपिसे ज्ञाना जाता है,  
कि उस समय भी मधुरामण्डल यदुवंशीय शूरसेनराजके  
अधिकारमें था। वर्षों राज्यभोग करनेके बाद शूरसेन-  
राजवंशधरोंने महम्मद घोरीके हाथ मधुराराज्य सुपुर्ण  
क्रिया। बीचमें एक बार हिन्दू-अधिकार स्थापित होने  
पर भी मधुरा नगरी अलाउद्दीन खिलजीके समयसे सदा  
के लिये हिन्दूके हाथसे जाती रही। पीछे ब्रिटिश-अधि-  
कारमें आनेके पहले तक यह मुसलमानोंके ही अधिकार-  
में रहा। इस प्रकार हिन्दू, जैन और बौद्ध आदि विभिन्न  
सम्प्रदायकी प्रधानताके लिये ही मधुरामें नाना साम्प्र-  
दायिक-कीर्त्ति प्रतिष्ठित हुई थी।

पहले ही कहा जा चुका है, कि बौद्ध-प्रधानताके  
समय मधुरामण्डलमें बौद्धधर्मका प्रचार-केन्द्र स्थापित  
हुआ था। उस समय इस पवित्रक्षेत्रमें असंख्य कीर्त्ति,  
धर्मपीठ और स्मृतिस्तूप (Relics) प्रतिष्ठित हुए। यहां  
बौद्धप्रभाव बहुत दिनोंसे अभूण्य था। भारतीय तीर्थयात्रि-  
गणोंको छोड़ कर सुदूर चीनदेशसे परिप्राजक फाहियन्ने  
४०० ई०को भारतमें पदार्पण किया। तिब्बतसे काश्मीर,  
काथुल, कन्धार और पञ्जाब अतिक्रम कर बौद्धतत्त्वके  
लुप्त शास्त्रोंका उद्धार करनेकी मनशासे वे पहले पहल  
पीढ़ोंके प्रधान अष्टा मध्यदेशान्तर्गत मधुराधामको ही  
गये। यहां वे एक मास ठहरे थे। उनका वृत्तान्त  
पढ़नेसे मालूम होता है, कि उस समय भी यहां संघा-  
राम और विहारदि प्रतिष्ठित थे। उनमेंसे उन्होंने बहुतांसे  
प्राचीनत्वका निदर्शन-स्वरूप दाताका निर्दिष्ट ताम्रफल  
देखा था। उन सब मठादिमें प्रायः ३ हजार बौद्धयति  
रह कर शास्त्रालोचना करते थे। एतद्भिन्न वे ६ स्मृति-  
स्तूपका उल्लेख कर गये हैं जिनमेंसे धर्मचार्य सारीपुत्र,  
मुद्गलपुत्र और आनन्दका नाम उल्लेखयोग्य है। इससे  
दो सदी बाद प्रसिद्ध चीनपरिप्राजक यूएनचुवङ्ग  
भारतवर्ष (५२६-६४५ ई०) आये। अपने भ्रमणवृत्तान्त  
मधुराप्रसङ्गमें उन्होंने लिखा है, कि उसकी परिधि प्रायः

२० लीग होगी। उनके आगमनकालमें भी फाहियान-  
वर्णित २० सङ्घाराम विद्यमान थे। दुःखका विषय है,  
कि बौद्धप्रधानताकी क्रमिक अवनति हो जानेसे बौद्ध-  
यतियोंकी संख्या भी घटती आ रही थी। उन्होंने यहां  
प्रायः २ हजार यतियोंको शास्त्रालोचना करते देखा था।  
अशोकनिर्मित ४ स्तूप पूर्ववर्ती ४ बुद्धोंके पदचिह्न और  
शाकमुनिशिष्य सारीपुत्र, मौद्गलायन, पूर्णमैत्रायणपुत्र,  
उपालि, आनन्द, राहुल, मञ्जुश्री और अपरापर बोधि-  
सत्त्वके स्मरणार्थ निर्मित कुछ स्तूपोंको कथा उल्लेख  
कर गये हैं। उस समय बौद्धयतिगण प्रतिवर्ष १५,  
५५, ६४ और ६५ मासके उपवासकालमें उक्त स्तूपोंके  
समीप इकट्ठे हो कर अर्चनादि करते थे। नगरके  
पूर्व ५।६ लीगकी दूरी पर उदयुप्त-निर्मित एक संघाराम  
और तन्मध्यस्थ तथागतका नखस्तूप है। उसके उत्तर  
भागमें अवस्थित गण्डरीलके ऊपर एक गुहा बुद्धकी  
विचरणभूमि है। उससे दक्षिण चार बुद्ध और सारी-  
पुत्र, मुद्गलपुत्र आदि बौद्धाचार्योंको उपासनाभूमिका  
विषय उन्होंने लिखा है। अपने आगमनकालमें उन वनोंमें  
वे बौद्धाचार्योंके स्मणार्थ प्रतिष्ठित स्तूपका निरीक्षण कर  
गये हैं। एतद्भिन्न उक्त परिप्राजकने मधुराधाममें ५ हिन्दू  
मन्दिरका अवस्थान भी देखा था।

इससे साबित हुआ, कि बौद्धधर्मके अवसानकालमें  
यहां ब्राह्मणधर्मकी जड़ मजबूत हो रही थी। धर्मसम्प्र-  
दायका परिवर्तन और दीर्घकाल अवस्थान-निवन्धन  
चीनपरिप्राजक-वर्णित बौद्ध-कीर्त्तिस्तम्भ कालक्रमसे  
मग्न, प्रोथित और हिन्दूके हृदयसे सदाके लिये अपतो-  
दित हो गया था। पीछे प्रन्ततत्त्वविद् डा० कनिहमके  
पत्नसे उसके एक एक निदर्शनसे बौद्धप्रधानताका यथेष्ट  
परिचय पाया गया है।

किन्तु कालकी विचित्र गति है। हजारों  
वर्ष बौत चले, जल और वायुके नितान्त दूषित होनेसे  
सभी लोग विनष्ट होने लगे; उसके ऊपर विघाताको  
विडम्बना! कालकी क्षयशील गोदमें रक्षित हो कर भी  
जो स्मृतिचिह्नरूपमें जीता जागता था, दुर्दान्त जननी-  
पति महम्मद, सिकन्दरलोदी, शाहजहान और औरङ्गजेब  
आदि विधर्मों मुसलमानोंके अत्याचारसे धर लूटा और

तद्वन मधुरा कर डाला गया। अगले बात कहनेसे क्या !  
 हिन्दू धर्मके दो मुख्यमार्गोंने हिन्दूकी कौत्सिकी बिल्कुल लीप  
 करनेकी इच्छामें, पूर्वागत धर्मसाधकोंकी तोड़ फोड़ डाला  
 और धनधानकी आगामे दोषार तककी भी मनन कर बर-  
 बाद कर दिया था। उन्होंने बौद्ध या जैन प्रतिष्ठितके मृग,  
 गारु वा हस्त्यवादिको छेद कर डाला था। इस प्रकार  
 एक स्थानके उपकरण अन्य स्थानमें अन्तर्हित हो जानेसे  
 वे जनसाधारणके कामलायक न रह गये हैं। अर्थात् कहीं  
 जैनमूर्तियां बौद्धमूर्तियोंके साथ और हिन्दू मूर्तियां बौद्ध-  
 के साथ मिल गई हैं। इसी कित्ती कित्ती घनी व्यक्तिने  
 देवोद्देशसे मन्दिर निर्माण करके, दोनों प्रकारकी मूर्ति  
 एकमें जोड़ दी है। ऐसा करनेसे प्रलयरचयिष्ट बड़े धाम  
 में पड़ गये हैं। किसी किसी पाषाणय-प्रलयरचयिष्टने  
 पूर्वागत जैन और बौद्धप्रतिमूर्तिके, प्रवेष्टन बना न लगा  
 सकने पर उम्हें एक एक बौद्धप्रतिमूर्ति बतला कर  
 घोषणा कर दी है। किन्तु यथार्थमें अनेक जैनस्मृति  
 देखनेसे आती है। वैजो ( वैजय )-पुरके सेठों द्वारा  
 प्रतिष्ठित मन्दिरके समीप जैनयुगका शिल्पकारों मध्य-  
 दिन एक छोटा प्रकोष्ठ जम्बुस्वामीका भजनगृह  
 समझा जाता है। उनके स्मरणार्थ वेदीके नीचे एक  
 जिलाकालकमें जम्बुस्वामीका नाम खोदित है। यही जंबु-  
 स्वामी-जैनोके देव धृतिकेवली सुपर्णके निर्य है।  
 सुपर्ण देव तीर्थङ्कर महावीरके निर्य थे। मणिरामने  
 पूर्वाक, मन्दिरका निर्माण कर उसमें दश तीर्थंकर चन्द्र-  
 प्रभुकी प्रतिमूर्ति स्थापन की। पीछे सैठ खुनाथ दाम-  
 ने यथाशक्यके एक प्राचीन भग्न मन्दिरसे मणिरामाथकी  
 प्रत्नर प्रतिमूर्ति ला कर उसकी प्रतिष्ठा की थी। मथुरा-  
 मण्डलके नाना प्राचीन स्थानोंकी मूर्ती तोड़ कर बहुत  
 मोमेसे नाना सम्प्रदायकी पुराकौत्सि वादर निकाली जाती  
 है। उसमें स्पष्टतया प्रमाणित होता है कि मथुरा एक  
 समय विवेक सम्पन्नजाती था तथा यहाँ नाना सम्प्रदायों-  
 के वैश्य थे।

मथुराका इतिहास ।

मथुरामें श्रीकृष्णका जन्म, गोपुत्रमें बन्धुत्वमें अरु-  
 स्थान, पुन्यारण्यमें गोदातृणके साथ वैश्वदेवद्वारा, उनका  
 मथुरामें भागमन, वैश्वदेव और राजावद्वय भादि

प्राचीन स्मृतियोंका भाग भी पर्येक हिन्दूके हृदयमें जाग  
 रह है। अधिक क्या, आज भी पर्येक हिन्दूका प्राण  
 मथुरा पुन्यारण्यके नाममात्रमें नाच उठता है। मथुरा  
 अर्थात्नामका एक प्राचीन वैश्वस्थान है। पुन्यारण्य  
 उसके उपकरस्थित एक गण्ड प्रामाणा है। मथुरामें  
 आज भी फंस-कारागार विधानस्थाय भादि प्राचीन पीठ  
 विद्यमान हैं। एतद्भावीत मित्र भिन्न युगमें यहाँ  
 जिन सम्प्रदाय विशेषका अधिष्ठान हुआ था उनके  
 भी अनेक स्मृतिचिह्न आज मथुरावश पर विराज  
 करने हैं।

गोप-बालककल्पमें स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण और उनके  
 अवतार बलदेव लीलाके साधो हो कर मथुराधाममें द्वापरी-  
 लीला देव कर गये हैं। आज भी मथुरा, पुन्यारण्य, गोप-  
 र्दन, गोपुत्र और महायत भादि स्थानोंमें उसके अर्घ्य  
 निदर्शन पड़े हैं। उन सब देवकौत्सियोंके दर्शन करनेसे  
 मनमें आपे आप इस देवतीर्थकी पवित्रता उपलब्ध होती  
 है। प्रमजः इस शैतका माहात्म्य जब चारों ओर घेद  
 गया, तब दूर दूर देवके लोग यहाँ आने लगे। ईद-  
 प्रधानतके समय मथुरा नगर हो गिराण धर्मप्रचारका  
 मुख्यकेन्द्र हुआ था। चांग-परिमाजक पाहिषात भी  
 ज्ञानार्थीमें तथा सुपनयुगमें ७वीं शताब्दीमें इस स्थान-  
 की बौद्ध प्रधानताका उन्मेष कर गये हैं। १०१० ई०में  
 गजनीपनि महमूदके आक्रमण और तुघलकने मथुरानगर  
 बिल्कुल श्रीहीन हो गया। उस महा-विश्रयमें मथुरानगर-  
 की तथा उसके आसपासकी देवभूमिका अनेक प्राचीन  
 कौत्सियां धर्ममें परिणत हो गई थीं। उस समयमें दे  
 कर मुगल-सम्राट् अकबरगाहके राज्य तक हिन्दीमें भी  
 मथुराकी मधुधोका उद्धार करनेकी चेष्टा नहीं की। महमूद  
 और सुलतान मिर्जन्दर लोदी ( १५० ई० ) मथुराका जो  
 सर्पनाश कर गये थे, सम्राट् अकबरगाहमें उसीके शोष-  
 संस्कारकी ओर ध्यान दिया था। परन्तु उम्होंके हीन-  
 चैत गंजशर नाशकहान, और औरकूतेश उमे शिष्टकुल  
 उद्धार गये हैं। मुगल-शासकोंके अयमान पर यहाँ  
 नरयपुरके आर-राजसोने भवना भाषिणरव जैनाया।  
 मुगलोंकी अवगति क्षम कर ज्ञातेन मिर उद्धार।  
 उम अराजकता और नामक-विश्रुलताके समय ज्ञातेन

दशयुद्धों द्वारा नाना स्थान लूटा और विपुल अर्थ उपार्जन किया था। चन्दनसिंह नामक एक व्यक्ति के बलवीर्यसे यशोभूत हो कर जाटदलने उन्हींको अपना दलपति बनाया। १७१२ ई०में सरदार चन्दनसिंह शहरमें आ कर बस गये। यहां उन्होंने एक सुदृढ़ प्रासाद बनवाया था। सुदापा आने पर चन्दनसिंहने अपने अधिरुतप्रदेश लड़कोंके बीच बांट दिये। बड़े लड़के सूर्यमलके भागमें मथुरा आदि अधिकांश राज्य और छोटे प्रतापके भागमें भरतपुरका दक्षिण-पश्चिमभाग पड़ा। चन्दनसिंहकी मृत्युके बाद सूर्यमलने भरतपुर जा कर राजोपाधि ग्रहण की। १७८८ ई०में रोहिला-विद्रोह दमनके लिये मुगल सम्राट् अहमद शाहने जाट सरदार सूर्यमलको बुलाया। जाट और होलकर सेनादलने पंजोर सफदरजङ्गकी अधिनायकतामें युद्धयाता की थी। युद्धकालमें सेनापति सफदर वागी हो गये। इस समय जाट सरदारने दलबलके साथ यजौरका पक्षावलम्बन किया, किन्तु मुगल-सेनापति गाजिउद्दीनकी महाराष्ट्र-सेनासे सहायता मिली थी। दोनों दलमें घोर विवाद चलते देख यजौर-सफदरजङ्ग-अयोध्याकी ओर चल दिये। इधर गाजिउद्दीनने भरतपुरमें डेरा डाला। महाराष्ट्र-सहायोगी सेनादल पर उनका पूर्ण विश्वास न रहनेके कारण वे बहुत दिन तक अवरोधकी रक्षा न कर सके। उन्हींने दिल्ली नगर लौट कर अहमदशाहकी सिंहासनच्युत और २५ आलमगोरकी राजमुकुट पहनाकर अपनी जिघांसावृत्तिकी चरितार्थ किया था।

१७५७ ई०में अहमद शाह दुर्रानोंने जब भारतवर्ष पर आक्रमण किया उस समय सरदार जहानखौर मथुरा-वासीसे कर संप्रदहकी चेष्टा करने लगे। किन्तु अधिवासियोंने विपद् समझ कर दुर्गमें आश्रय लिया। निरापद प्रजावृन्द पर कोई जुल्म न कर सकनेसे उनकी क्रोध-वह्नि प्रज्वलित हो उठी। उन्हींने नगर लूटनेका दृढ़ संकल्प किया। नगरमें जितना धनरत्न था सभी जहान खौरके हाथ लगा। जिन्होंने उन्हें लूटनेमें छेड़ छाड़ की थी, वे सभी मुसलमानोंकी तेज तलवारसे यमपुरकी सिंघारे।

इसके ठीक दो वर्ष बाद नवसम्राट् २५ आलमगोर

मुतचर द्वारा मारे गये। इस विश्वरूढ़ताके समय अफगान-राज अहमदशाहने पुनः दिल्लीकी चढ़ाई कर दी। विषयात चकी गाजि उद्दीन जान ले कर मथुरा भागे। यहां वे भरतपुरके जाट-सरदार और महाराष्ट्र-सेनादलकी एकत्र कर १७६१ ई०में पानीपत रणक्षेत्रमें अग्रसर हुए। मिलित हिन्दूवाहिनी अहमदशाहके साथ युद्धमें परास्त हुईं, किन्तु महाराष्ट्र-सेनापतिके साथ इस घटनाके पहले ही विरोध पैदा हो जानेके कारण सूर्यमल पानीपतकी लड़ाईमें नहीं उतरे। उन्हींने मौका देख कर आगरा नगरकी महाराष्ट्रकचलसे विच्छिन्न कर अपने शासनाधीन कर लिया। सदाशिवभाव देखो।

अहमदशाह दुर्भाग्य शाह आलमकी दिल्ली-सिंहासन पर बिठा कर खदेराको चल दिये। इस समय सुअवसर समझ कर सूर्यमलने रोहिला-यजौर नाजिर-उद्दीला पर चढ़ाई करना ही अच्छा समझा। वे दलबलके साथ दिल्लीसे ३ कोस दूर शाहदेरा नामक स्थानमें जा धमके। अकस्मात् राजकीय सेनादलने उन्हें पकड़ लिया। भलेचढ़के हाथसे ही उनकी जीवलीला शेष हुई थी। उनकी मृत्युके बाद प्रथम दो पुत्रोंने इस अभियानकी अधिनायकता ग्रहण की, किन्तु वे भी मुगलोंके हाथ के शिकार बने। उनके तृतीय पुत्र जाविताखानके विद्रोह के समय आगरा राज्य खो कर १७७६ ई०में इस लोकसे चल बसे। उनके चतुर्थ पुत्र समस्त राज्य चौपट कर आखिरमें भरतपुर सिंहासन पर अधिष्ठित हुए।

१७८८ ई०में सिन्द-राजके साथ राजपूत राजाओंका जब विरोध खड़ा हुआ, उस समय जाटोंने सिन्दराजकी सहायता की थी। जाट-सेनाकी सहायतासे सिन्द-राजने मुलाम कादेर कर्तृक अवरुद्ध आगरा नगरीका पुनरुद्धार किया था। इस समय मथुरा नगरीके साथ साथ आगरा फिरसे सिन्दराजके कचलमें आया। १८०३ ई०में भरतपुरके राजा रणजितसिंहने ५ हजार जाट अन्धयोहीकी ले कर सिन्दराजके विरुद्ध अंगरेज-सेनापति लार्ड लेकका साथ दिया था। इस युद्धमें महाराष्ट्र-सेना पराजित हुईं, जाट-सरदारका पारितोषिक-स्वरूप वृटिण-सरकारसे कृष्णागढ़, रेवारो और मथुराका दक्षिण-पश्चिम भूभाग मिला। किन्तु दूसरे ही वर्ष

समय प्रसंगित विष्णुपुराण मधुमिष हृषा उर समय  
मो मधुसूतमें गाता सोचें और नाता बसका भक्तिरूप ही  
गहो था ।

विष्णुपुराणमें लिखा है—उक्त समयकी शुद्धा द्वाद्गी-  
को उपवास करके मधुसूतमें यमुनाजलमें स्नान और  
विष्णुको भजना करनेमें मधुमेघ पतना पल होता  
है । विष्णुदेवगण प्रयोग उद्योगोत्त पुण्योक्तो मधुसू-  
देव कर कहते हैं, कि मधुसूतमें ज्येष्ठमासकी शुद्धा  
द्वाद्गीकी हमारे कुटुमें वेसा कोई एक उदरग्न हो  
जो यमुनाक्षेत्रमें अष्ट मासकी मुरग द्वाद्गीको  
उपवास कर यमुना जलमें स्नान और विष्णुको  
भजना करे । इससे हम लोग परम गतिको प्राप्त  
होंगे । यह दिन अतिशय पुण्यप्रद है, यमुनामें स्नान,  
विष्णुपूजा, विष्णुपूजाका श्राद्ध आदि जो तीर्थकर्मों  
हैं, उनका अनुष्ठान करनेमें इहलोकमें विविध भोग और  
परलोकमें मोक्षप्राप्त होना है । ( विष्णुपुराण ६/८८ श्लो १० )

विष्णुपुराणके उक्त विवरणमें संवत् इतना ही जना  
जाता है, कि मधुरा नगरी-प्रवाहित यमुता नदी ही हिं-  
के निकट पूर्णकालमें पुत्रतोषं समझो जाती थी ।

यहां तक, कि ७वीं शताब्दीमें चीनपरिभाषक यूएन-  
सुयङ्ग अब मधुरा दर्शनको भाषे उस समय उन्होंने नाता  
समझावके लिये पान हिन्दू देव मन्दिर देखे थे । मुसल-  
मन समय में मधुसूतमें अनेक तीर्थस्थान, अनेक यज्ञ  
और सरोवर देव अत्यन्त गढ़ा हुए थे ।

७वीं शताब्दीके बादमें ही शक्यवर्षासंभुदयका  
सूत्रवाक्य है । महाद्व द्वन्द्वेयको सूत्रके साथ बर्द्धमान  
साक्षात्स्य सोप, मगधमें हिन्दूप्रवर सुत राजाभोका  
प्रधान्यवाम और उनके बाद कन्नौजमें हिन्दूधर्मनिष्ठ  
पतोपम देवका संसुत्र हृषा । प्रायः समस्त भारतीय-  
में फिर कुछ दिक्के लिये महाद्वन्द्ववर्षा प्रसिद्ध हुआ  
था ।

अधिक सम्भव है, कि उस समय धर्मवेत्ता वेत्ताओं  
द्वारा ब्रह्म पुराणोक्त सोचें और धर्मसमुद्र प्रसिद्धि तथा  
महासाहाय्य कीलिन हुआ था । इसके साथ साथ  
शिव, शक्त और सौराण्य में अपने अपने इष्टदेवका

साहाय्य प्रचार करनेको धमनर हुए थे । यथादुर्गात्म  
उनका कौशु आनाम मिलता है ।

ब्रह्मपुराणमें मधुरा साहाय्यमधुमें इस प्रकार  
लिखा है ।

“इन्द्रस्यैव पुणं यन्मा यथा मोक्षप्रभासती ।  
मधुमेवे तपोवृष्ट्या मधुत नाम बराभा ॥  
विश्वीषोऽजना हि मापुरं मम मधुरासु ॥  
सर्वे पौरवर्षोयाना कामं माय विचारया ॥  
न मया कथितं देवे इत्यपारम म्हातमनः ।  
बदत्य न मया पूर्वं वर्षाप्रद मधुमेरे ॥  
मया सुनिधितं पूर्वं सुवाःसुधारं परम् ॥  
मय केषु वृषी यन्मा सर्वरत्नविभूषिता ॥  
एषो विन्दन्ति वीर्यानि [यानि यथासि तन्मू सु ।  
एतिसैरि सदसामि एति कोटि सानि च ॥  
सोर्धगाया न मधुमे मधुरासु मकरिता ।  
मोर्धनं तथा कूरुं दे वीरी दक्षिणोत्तरे ॥  
प्रहसन्तन्व भाषरीं कुरुरेण गयानि पर ।  
पुष्यवा पुष्यवर्धं भेत्तमेरु विभासितान्तरम् ॥  
अभिरुषटं तौत्रुचटं कोटितीर्थममं स्तुतम् ।  
अभिरुक्तं शोमलीर्षं यमन्तिन्दुङ्क लता ॥  
मन्तीर्थं गयान् । दारमादित्यगलितम् ।  
एषा पुष्यं पवित्रम् । महासावनामनम् ।  
कुष्येभ्यन्तरागुणं मधुरासु न मन्दा ॥  
दे यन्ति महामाताः भूषन्ति च समादिताः ।  
मधुरासुसाहाय्यं मे वांत्त परमं परम् ॥”

( ब्रह्म ५० १२८ श्लो )

श्रीकृष्णने यमुनामें कहा था “विधे! ममम जग-  
द्वन्द्वके साथ यह मधुसूतपुरी ही मुझे मिय है । यह सद्-  
की समरायणीके समान समलीय है । इस मधुरासुसहाय-  
का विचार सोम योजन है । वहाँ प्रतिपदोयमें मधु-  
मेघ पतना कालताम होता है । मीने इस पुरीका  
विवरण पहले प्रसा या सद् विरोगी भी नहीं कहा है ।  
इस क्षेत्रमें एक सर्वस्य मूलिन समनीय पुरी है । वहाँ  
बहुसंकरन पवित्र तीर्थ विद्यमान है । मीने मधुरामें  
साठ साठ कोटि महान् और साठ कोटि मीं सोर्धगाया  
निर्देश की है । एतन्मिषम सोर्धनं और सद् कूरु आदि

और भी दो कोटि तीर्थ दक्षिणोत्तरकी ओर विद्यमान हैं। प्रस्कन्द और भाण्डोरादि छः तीर्थ कुक्षेत्रके समान हैं। ये सब तीर्थ अति पवित्र और सर्वांगेष्ट हैं। अस्मि-कुण्ड और वैकुण्ड कोटितीर्थतुल्य तथा चकतीर्थ और अक्रक, अविमुक्त, सोमतीर्थ, यमन, तिन्दुक और द्वादशा-दिश्य तीर्थ हैं। ये तीर्थ अति पवित्र और महापातक-हर हैं। मथुरामण्डलके तीर्थ कुक्षेत्रसे सात गुण अधिक पुण्यप्रद हैं। इस मथुरामाहात्म्यका जो समा-हित हो कर पाठ वा ध्वज्यन करते हैं, ये परमपद लाभ-के अधिकारी होते हैं।"

ऊपर माना तीर्थोंका उल्लेख रहने पर भी यथाह-पुराणमें द्वादशतीर्थ, द्वादश वन और पञ्च स्थलका विशेषरूपसे उल्लेख है।

घराहपुराणमें मथुरामण्डलके अन्तर्गत जिन बारह पवित्र वनोंका उल्लेख है, उनका विवरण इस प्रकार है। प्रथम मधुवन है, इस वनमें विष्णु भगवान् रहते हैं। इस वनका दर्शन करनेसे मानवोंके समस्त धर्मोप सिद्ध होते हैं। द्वितीय तालवन है, भक्तिमान् व्यक्ति इस वनमें आ कर स्नान करनेसे छतच्छत्य लाभ कर सकते हैं। तृतीय कुमुद वन है इस वनमें जाते ही मानवके सर्वा-मोष्ट लाभ होते हैं। विशेषतः भाद्रमासको कृष्ण-एकादशीको यहां आ कर जो व्यक्ति स्नान करते हैं, उन्हें रद्रलोककी प्राप्ति होती है। चतुर्थ कामरुवन है, यहाँ आनेसे मनुष्य विष्णुलोकको जाते हैं। इस वनमें आ कर यदि किसीकी मृत्यु हो जाय, तो उसे अवश्य विष्णुलोक प्राप्त होता है। पञ्चम चक्रुलवन है, इस वनमें जानेसे अन्तमें अग्निलोकको प्राप्ति होती है। षष्ठ मद्रवन है, यह वन यमुनाके दूसरे किनारे अवस्थित है। यह देवताओंको भी दुर्लभ है। यहां आ कर मनुष्य यदि एकान्त मनसे विष्णुका ध्यान करे तो इस वन-महिमासे उसे नागलोक प्राप्त होता है। सप्तम धादिर वन है, इस प्रसिद्ध वनमें जा कर मनुष्य विष्णुलोकके अधिकारी होते हैं। अष्टम महावन है, यह वन विष्णुको बड़ा ही प्रिय है। यहां आ कर स्नान करनेसे इन्द्रलोककी गति होती है। नवम लोहजङ्गवन है, यह लोहजङ्गसे रक्षित है। इस

वन-महिमासे सभी पाप चिनट होते हैं। दशम विन्ध्यवन है, यह वन देवताओंका भी पूजनीय है। यहां आ कर मनुष्य ब्रह्मलोकके अधिकारी होते हैं। एकादश भाण्डोर-वन है, यह वन योगियोंको भी प्रिय है। यहां आ कर घासुदेवके दर्शन करनेसे उसे जन्म मरणका फलेश नहीं रहता। द्वादश वृन्दावन है, यहां आ कर वृन्दावन-चन्द्र श्रीगोविन्दके पदारविन्दका दर्शन करनेसे सब पाप दूर होते हैं और यमका भय जाता रहता है।

द्वादशतीर्थ—१ अविमुक्ततीर्थ, २ विश्रान्तितीर्थ, ३ प्रयागतीर्थ, ४ कनकलतीर्थ, ५ तिन्दुकतीर्थ, ६ सूर्यतीर्थ, ७ ध्रुवतीर्थ, ८ तीर्थराज, ९ ऋषितीर्थ, १० मोक्षतीर्थ, ११ कोटितीर्थ और १२ वायुतीर्थ।

उक्त बारह तीर्थोंके मध्य अविमुक्ततीर्थमें स्नान करनेसे मुक्ति होती है। सभी तीर्थस्नानमें जो फल है एक विश्रान्तितीर्थमें देवमूर्त्तिके दर्शन करनेसे वही फल होता है तथा उसमें स्नान करनेसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। प्रयागतीर्थमें स्नान करनेसे अग्नि-धोमका फल होता है और यहां यदि मृत्यु हो जाय, तो वैकुण्ड लाभ होता है। कनकल अति शुद्धतीर्थ है, यहां स्नानमात्रसे स्वर्गलाभ होता है। तिन्दुकतीर्थमें भी स्नान करनेसे वैकुण्डकी गति होती है। रविवार, संक्रान्तिके दिन और चन्द्रसूर्यप्रहरणमें सूर्यतीर्थमें स्नान करनेसे राज सूययज्ञका फल होता है। ध्रुवतीर्थमें पितृपक्षको धाद कर देनेसे पितरोंकी मुक्ति होती है और स्नानकारी वैकुण्ड लाभ करता है। ध्रुवतीर्थके दक्षिण तीर्थराज है, यहां स्नान करनेसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है और मृत्यु होनेसे वैकुण्डलाभ होता है। ऋषितीर्थके दक्षिण मोक्ष-तीर्थ है, यहां स्नान करनेसे ही मोक्ष और कोटितीर्थमें स्नान करनेसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। वायुतीर्थमें पिण्डदान करनेसे पितृगण तृप्त होते हैं, विशेषतः यहां अष्टमासमें पिण्डदान करनेसे गया-पिण्डदानका फल

७ "रम्यं भुवनं नाम विष्णुस्नाननुरामम् ।

तं दृष्ट्वा मनुजो देवि कृतकृत्यो हि जायते ॥२०

एकादशी शुभपक्षे मासि भाद्रपदे वषा ।

तस्यां कालो नरो देवि कृतकृत्यो हि जायते ॥३१

समय प्रकटित विष्णुपुराण मधुरित हुआ उन समय  
मो मधुरा हीं नाना लोचं और नाना बतका भक्तिरूप ही  
बनीं था ।

विष्णुपुराणमें लिखा है—लेख मायकी मुद्रा द्वाद्गी-  
की रचयाम कर्के मधुरामें समुदाज्जमे स्नान और  
विष्णुकी भक्तिका करनेमें सम्भवेय दसरा पार होना  
है । विष्णुदेवगण अथवाय उपनिमित्त सुदयोको समस्त  
देव बर वरुन हैं, कि मधुराक्षेत्रमें ज्येष्ठमासकी मुद्रा  
द्वाद्गीकी हमारे कृतमें पैसा कोई एक उररम हो  
जा मधुराक्षेत्रमें उभेय मासको मुद्रका द्वाद्गीको  
उदयाम कर समुदा ज्जमें स्नान और विष्णुकी  
भक्तिका करे । हमारे हम लोग परम गतिकी प्राप्त  
होमि । यह दिन अतिशय पुण्यप्रद है । समुगामें स्नान,  
विष्णुपूजा, विष्णुपूजाका श्राद्ध आदि जो तीर्थकर्त्तव्य  
है, उमरा अनुष्ठान करनेमें इहलोकमें विविध भोग और  
परलोकीमें मोक्षप्राप्त होना है । ( विष्णुपुराण ६८ ७० )

विष्णुपुराणके एक विवरणमें केवल इतना ही जाना  
जाता है, कि मधुरा नगरी-प्रवाहित समुदा नदी ही हिंदू-  
के निकट पूज्यतामें पुण्यतीर्थ समझी जाती थी ।

यहां तक, कि ७वीं शताब्दीमें चीनपरिव्राजक युएन-  
चुयुवह जब मधुरा दर्शनको आये उन समय उन्होंने नाना  
सामग्रयोंके निकर पांन हिन्दू देव मन्दिर देखे थे । सुतरां  
उन समय मो मधुरामें अनेक तीर्थस्थान, अनेक यम  
और समेक देव कल्पित नहीं हुए थे ।

७वीं शताब्दीके बादमें ही अष्टमयजुर्मान्नुदयका  
प्रारम्भ है । महाष्ट, हर्षदेवकी मृत्युके मात्र गयंमान  
महाष्टाल लोच, मगधमें हिन्दूधर गुप्त राजाभोका  
नाशयजुर्मान और उसके बाद कन्नौजमें हिन्दूधर्मविष्ट  
यजुर्धर्म देवका अन्त्युत्प हुआ । प्रायः समस्त साम्ययजु-  
र्मान्नुदयके सिवा कुछ दिनके सिवा द्वाद्गीप्रमाण परसिध हुआ  
था ।

अधिक समय है, कि उन समय चर्चवैला ऐतन्वयों  
प्रायः बराह, सुराचोक लोचं और वनममूर प्रतिष्ठित तथा  
लक्ष्मणाशरण धीर्लित हुआ था । उसके साथ साथ  
रूप, गण, और भीरगण का अनेक यजुने इष्टदेवता

माहात्म्य प्रचार करनेका अभिप्राय हुए थे । महापुराणमें  
उमका स्पष्ट आभास मिलता है ।

बराहपुराणमें मधुरा माहात्म्ययजुर्मान्नुदे इम-प्रचार  
लिखा है ।

“यथायं पुरी मया बरा नरेन्द्रप्रतापी ।  
हन्त्रीने कपोलकृष्ण मधुरा नाम पारवा ॥  
सिद्धिबोत्तना हि मापुरं मम मपद्वन्म ॥  
पदे धेडकवनेधानी यथां नाथ विचारवा ॥  
न मया कल्पि देवे इन्द्राद्यव मरुतमनः ।  
कृत्स्न न मया पूर्वं कथिपथ समुत्परे ॥  
मया सुमेधिं पूर्वं सुवात्सुयजुर्मान्नुदं ॥  
मय लोचं पुरी मया कर्त्तारान्विभूतिना ॥  
एषा तिष्ठन्ति तीर्थानि तानि बरयामि सत्सु ॥  
पच्छिमोत्तरे पश्चिमोत्तरे पश्चिमोत्तरे पश्चिमोत्तरे ॥  
सोमोत्तरे पश्चिमोत्तरे पश्चिमोत्तरे पश्चिमोत्तरे ॥  
प्रत्येकान्मम मापरोरं सुपरोरं गमामि पर ॥  
पुनरात्तं पुनरात्तं भेत्तमेत्तं विभक्तिगणम् ॥  
कनिष्ठपदं लोचुवत्तं कनिष्ठोत्तरेण स्मृतम् ॥  
अभिभूक्तं लोचनीयं समन्तित्नुदं ततः ॥  
यत्ततीर्थं तथाकृत्तं द्वाद्गीदित्वात्तनाम् ॥  
एतत्तं पुनरं कथिपथं महाराजनायनम् ॥  
सुदोषात्तुत्तुत्तं मधुराया न मत्तया ॥  
ने कृत्तं महाभागाः भूयश्चान्ति न समारिणाः ।  
मधुरायात्तुत्तं महाराज्यं मे पारित परमं पदम् ॥”

( बराह पुरा १२८ भा० )

धीर्कालने समुपामि कहा था “सिधे ! समय बराह  
क्षीपके मज्ज पद मधुरापुरी ही मुझे प्रिय है । यह हर्ष-  
की अमरायलोके समान समनीय है । इस मधुरामहल-  
का विष्णार सोम योजन है । यहाँ प्रतिपक्षीयोंमें सम्भ-  
वेय दसका कलनाम होना है । मैंने इस पुरीका  
विषय पढ़ने द्वादा या कृत्तं गिर्मानि मो नहीं कहा है ।  
इस क्षेत्रमें यह सर्वथा मूलित समनीय पुरी है । यहाँ  
बहुरंभवत्तं पवित्र तीर्थं विद्यमान है । मैंने मधुरामें  
साठ साठ कोटि महल और साठ कोटि ली लोचंयजु-  
निर्देश की है । यत्तुत्तुत्तुत्तं लोचं और यत्तुत्तुत्तुत्तं

और भी दो कोटि तीर्थ दक्षिणोत्तरकी ओर विद्यमान हैं। प्रस्कन्दन और भाण्डोरादि छः तीर्थ कुण्डोत्तके समान हैं। ये सब तीर्थ अति पवित्र और सर्वांगेष्ट हैं। अस्मिन्कुण्ड और वैकुण्ठ कोटितीर्थतुल्य तथा चक्रतीर्थ और अक्रु, अविमुक्त, सोमतीर्थ, यमन, तिरुदुक और द्वादशादिस्थ तीर्थ हैं। ये तीर्थ अति पवित्र और महापातकहर हैं। मथुरामण्डलके तीर्थ कुण्डोत्तके सात गुण अधिक पुण्यप्रद हैं। इस मथुरामहात्म्यका जो समाहित हो कर पाठ या ध्वज करतें हैं, वे परमप्रद लाभके अधिकारी होते हैं।"

ऊपर नाना तीर्थोंका उल्लेख रहने पर भी यथाहपुराणमें द्वादशतीर्थ, द्वादश वन और पञ्च स्थलका विशेषरूपसे उल्लेख है।

यथाहपुराणमें मथुरामण्डलके धन्तर्गत जिन बारह पवित्र वनोंका उल्लेख है, उनका विवरण इस प्रकार है। प्रथम मधुवन है, इस वनमें विष्णु भगवान् रहते हैं। इस वनका दर्शन करनेसे मानवोंके समस्त धर्मोपसिद्ध होते हैं। द्वितीय तालवन है, भक्तिमान् व्यक्ति इस वनमें आ कर स्नान करनेसे कृतकृत्य लाभ कर सकते हैं। तृतीय कुमुद वन है इस वनमें जाते ही मानवके सर्वांगीष्ट लाभ होते हैं। चतुर्थ वनः भद्रमासकी कृष्ण-एकादशीको यहां आ कर जो व्यक्ति स्नान करते हैं, उन्हें इन्द्रलोककी प्राप्ति होती है। चतुर्थ कामरुवन है, यहां आनेसे मनुष्य विष्णुलोकको जाते हैं। इस वनमें आ कर यदि किसीकी मृत्यु हो जाय, तो उसे अश्वय विष्णुलोक प्राप्त होता है। पञ्चम वक्रुलवन है, इस वनमें जानेसे अन्तमें अग्निलोकको प्राप्ति होती है। षष्ठ भद्रवन है, यह वन यमुनाके दूसरे किनारे अवस्थित है। यह देवताओंकी भी दुर्लभ है। यहां आ कर मनुष्य यदि एकान्त मनसे विष्णुका ध्यान करे तो इस वन-महिमासे उसे नागलोक प्राप्त होता है। सप्तम धादिर वन है, इस प्रसिद्ध वनमें जा कर मनुष्य विष्णुलोकके अधिकारी होते हैं। अष्टम महावन है, यह वन विष्णुकी बड़ा ही प्रिय है। यहां आ कर स्नान करनेसे इन्द्रलोककी गति होती है। नवम लोहजङ्गवन है, यह लोहजङ्गसे रक्षित है। इस

वन-महिमासे सभी पाप विनष्ट होते हैं। दशम विद्यवन है, यह वन देवताओंका भी पूजनीय है। यहां आ कर मनुष्य ब्रह्मलोकके अधिकारी होते हैं। एकादश भाण्डोरवन है, यह वन योगियोंकी भी प्रिय है। यहां आ कर वासुदेवके दर्शन करनेसे उसे जन्म मरणका श्लेश नहीं रहता। द्वादश वृन्दावन है, यहां आ कर वृन्दावनचन्द्र श्रीगोविन्दके पदारविन्दका दर्शन करनेसे सब पाप दूर होते हैं और यमका भय जाता रहता है।

द्वादशतीर्थ—१ अविमुक्ततीर्थ, २ विश्रान्तितीर्थ, ३ प्रयागतीर्थ, ४ कनकलतीर्थ, ५ तिरुदुकतीर्थ, ६ सूर्यतीर्थ, ७ भ्रुवतीर्थ, ८ तीर्थराज, ९ ऋषितीर्थ, १० मोक्षतीर्थ, ११ कोटितीर्थ और १२ वायुतीर्थ।

उक्त बारह तीर्थोंके मध्य अविमुक्तनीधमें स्नान करनेसे मुक्ति होती है। सभी तीर्थस्नानमें जो फल है एक विश्रान्तितीर्थमें देवमूर्तिके दर्शन करनेसे वही फल होता है तथा उसमें स्नान करनेसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है। प्रयागतीर्थमें स्नान करनेसे अग्निधोमका फल होता है और यहां यदि मृत्यु हो जाय, तो वैकुण्ठ लाभ होता है। कनकल अति गुह्यतीर्थ है, यहां स्नानमात्रसे स्वर्गलाभ होता है। तिरुदुकतीर्थमें भी स्नान करनेसे वैकुण्ठकी गति होती है। रविवार, संक्रान्तिके दिन और चन्द्रसूर्यग्रहणमें सूर्यतीर्थमें स्नान करनेसे राजसूययज्ञका फल होता है। भ्रुवतीर्थमें पितृपक्षको श्राद्ध करनेसे पितरोंकी मुक्ति होती है और स्नानकारी वैकुण्ठ लाभ करता है। भ्रुवतीर्थके दक्षिण तीर्थराज है, यहां स्नान करनेसे विष्णुलोककी प्राप्ति होती है और मृत्यु होनेसे वैकुण्ठलाभ होता है। ऋषितीर्थके दक्षिण मोक्षतीर्थ है, यहां स्नान करनेसे ही मोक्ष और कोटितीर्थमें स्नान करनेसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। वायुतीर्थमें पिण्डदान करनेसे पितृगण तृप्त होते हैं, विशेषतः यहां त्रैघ्रमासमें पिण्डदान करनेसे गया-पिण्डदानका फल

॥ "रम्यं भुवनं नाम विष्णुस्नानमनुसामम् ।

तं दृष्ट्वा मनुजो देवि कृतकृत्यो हि जायते ॥३०

एकादशी शुक्लपक्षे मासि भाद्रपदे तथा ।

तस्यां सातो नरो देवि कृतकृत्यो हि जायते ॥३१



द्वेष है। ( ब्रह्म० १५० २० ) बराहपुत्रालये मन्त्रों के बराह मंत्रों देवताओंके भी दुर्गा है, यहाँ स्नात, दान, उप और होय उरुमिं मन्त्र मुक्त फल प्राप्त होता है। यहाँ तब कि, इन सब गोपोंके नाम देनेसे समस्त फल दूर होवे ।

बराहपुत्रालयः— इस अर्चकाल, २५ गोपोंकाल, ३५ कुम्भकाल, ४ महापथ और ५ कुम्भकाल ।

बराहपुत्रालये लिखा है,— सर्वकाल यमुनाके दूनरे विचारे महादहदके निवट भवन्वित है। यहाँके पुत्रालये स्नात करनेसे सब पापोंमें मुक्त हो कर मूर्च्छाकी प्राप्ति होती है। अर्चकालके समीप रातसामु दान कर दे। यहाँ मृग्यु होनेसे मृत्यु धरति विष्णुगोक- ये जाता है। सोरकथल मलिन-मलिनटपसों और पच- हृदयभूषित है, यहाँ एक एक मल उपवास रह कर स्नात करनेसे सोरकथलकी प्राप्ति होती है। कुम्भकाल भी मृग्युभर और वापस है। यहाँ स्नात करनेसे मलिनका प्राप्ति होता है। पुत्रकाल धैर्य निवर्षित है, यहाँ सा कर स्नात करनेसे निवर्षितकी प्राप्ति होती है।

( ब्रह्म० १५० ३० )

उपरोक्त प्रथम बनों और सोपोंकालोंके अनाया बराहपुत्रालये पादायनक, गोकर्ण, प्रथ, निय, सोम, महापथी-पथ, दशाभ्यंघ, मानस, मागपटाभरण, धारण, भङ्ग, यज्ञकीदुनक, मादरीर केनि, काभि- वार, मनसार्ण, वकुल, गोपीभर वसुपथ, फाल्गुनक, दूननाउवन, सर्वोदक, विद्याध, यमुना, कुम्भ- महा धारि सोपों भी मन्त्राभरदकके अन्तर्गत वर्णित हुए है।

उपरोक्त द्वारण वन निव नामधन और बहुदयनका कालमें देना जाता है। बराहपुत्रालये लिखा है, कि अन्तः २५ गोपोंके इलाके कुम्भकाल-विष्णुक दूध, तब उरुमिं मन्त्रोंके जा कर मलिनवपुत्रालयकी विधिसे अनुभार प्राप्ति करनेसे मूर्च्छाकी प्राप्ति होती है।

मदुगर्भकालः

बराहपुत्रालये लिखा है,— काणिकमासको कुम्भकालमें ये दिन मन्त्रा जा कर विद्यानि सोपोंमें स्नात करनेसे होता है। अन्तःके बाह विद् और देवापेमापुत्रके सोपों-

विष्णु, वेजय और विद्यानिदरुंके बाह मद्रिपण करके, उम दिन उपवासों रहे अथवा मूर्च्छादि पवित्र मन्त्र मन्त्रान करे। अन्तः मापेकालमें पापमुक्तिसे विधि एक दानवापुत्रका उपहार करे। इस दिनको राति मन्त्रधर्म विनामो हामो ।

दूसरे दिन रातको विधि पढना है। इस दिन बहुत सपेरे उठ कर प्रातःकर्म समाप्त करना होगा है। योरो मीनालयन-पुपंक धीतवयसे स्नानादि समाप्त कर दिन, रात और कुम्भकाल से विष्णु और देवपुत्रांमं नियुक्त होवे। इस दिन विद्याशिक्षणोंमें रातको जगता होता है। राति कालमें एक प्रयत्नित प्रशोप हामो से कर यातिपण यन जावे और पहले ध्रुवादि अविद्योने क्रम प्रसार अनुभवण किया था, उमो प्रकार यहाँ परितमण करे। यहाँ पर भक्तिमुक्त हो मद्रिपण करनेसे सब प्रकारको कामना सिद्ध होती है, यहाँ तक कि अन्तर्ध फल तक भी प्राप्त होता है।

इसो भाषमें रातको जागरण कर रातको विधि विनाये। अन्तः दूसरे दिन महासमुहकमें उठ कर मूर्च्छादि न होने तक सोपेकालागं जाता कर दे। इस सोपेका नाम दक्षिण कोटिक है। यहाँ भाषमनादि सोप कर हनुमानको प्रमथ करे।

यहाँ पञ्चम, सोपेविष्णु, देवी वसुमती और दामव- द्धिनो अपराजितादेवोंके दर्शन और पापी दूधदेवों तथा वासुदेवोंके निवट प्रार्थना कर मीनों हो प्रस्थान करे। दक्षिण-कोटिकमें आनेके बाद स्नात, विष्णुपेण और देव- ताओंको प्रणाम कर इतुषामादेवोंके दर्शन करने जाये। इसके बाद सोरकथले गोपणलोंके साथ बालककथमें जो सोप्रा की थी, इस रूपधारी कुम्भके विविध सोपेका दर्शन करे। अन्तः सर्वपापहर पशुपुत्र, सर्वरथल, सोरकथल, कुम्भकाल, पुत्रकाल और महापथ दर्शनकी जाये। इनका दर्शन करनेसे महासुख प्राप्त होता है। यहाँ मिष्टमुक्त निवर्षा दर्शन कर हयगुक्तिमें मग्न करे। यहाँ नियत दहमें स्नात करनेसे महासुख प्राप्त होता है। कुम्भकाली मद्रिपण दर्शन कर कदम कथमें जाये, यहाँ भाषमें सिद्धि प्राप्त होती है। यहाँ दक्षिणको और कुम्भके शान्तायं सोपेकोपेपुत्रा मन्त्रिका मन्त्री सोपिको-

विद्यमान है। पीछे वार्धवात नामक कुण्डमें आ कर स्नान और पितृतर्पण करे। अनन्तर क्षेत्रपालको देख कर भूतेश्वर शिवका दर्शन करे। इस शिवका दर्शन नहीं करनेसे मथुरापरिक्रम सफल नहीं होता। जहां कृष्णक्रीड़ा सेतुबंध, बालहृद और कुषकुटकोडन नामक कृष्णको क्रीडामूर्ति है, उनका दर्शन करनेसे शरीरमें कोई पाप रहने नहीं पाता। यहां कृष्णपूजित सुगन्धिभूषित बहुत-से उच्च स्तम्भ हैं। प्रदक्षिण करनेके बाद इन स्तम्भोंकी पूजा करनेसे सभी पाप विनष्ट होते हैं। यहांसे मुक्तिप्रद नारायण-स्थानमें जाये। वसुदेव देवकीकी गर्भरक्षाके लिये यहां पर एकान्त शयन किया करते थे। इस स्थानका प्रदक्षिण कर, पीछे यथाक्रम विघ्नविनायक और कृष्णपालिता कुम्भिका तथा वामना नाम्नी ब्राह्मणी के दर्शन कर गर्लेश्वर शिव, महाविद्येश्वरीदेवी और प्रमामलीका दर्शन करे। उक्त शिवका दर्शन करनेसे तोर्धावाला-फल सिद्ध होगा। यहां पर कृष्ण-बलरामने गोपगणके साथ कंस-पथकी मन्त्रणा की थी, इसीसे यह स्थान सङ्केतक नामसे प्रसिद्ध है। यहां सिद्धेश्वरी नामक सङ्केतकेश्वरी और स्वच्छसलिल सङ्केतकुण्ड है। पीछे सर्वपापहर गोकर्णेश्वरका दर्शन करे। अनन्तर सरस्वती नदी देख कर विप्रराज गणेश और गङ्गा देवनेको आये। बादमें रुद्रमहालय और क्षेत्रप देख कर उत्तरकोटिको ओर यात्रा करे। वहां गणेश्वर गोपोंके साथ कृष्णका घं तक्रीडास्थान और गोपाल कृष्णको देख आये।

कृष्णने बाल्यकालमें जो जो खेल किया था यहां उसका रूप प्रतिष्ठित है। यहांसे यमुनाके जलमें जो महातीर्थ माना जाता है, जा कर स्नान और पितृतर्पण करे। पीछे गार्धतीर्थ, भद्रेश्वर, महातीर्थ और सोम-तीर्थमें स्नान कर सोमेश्वरको देखना होगा। अनन्तर सरस्वतीसङ्गम, घण्टाभरणक, गरुडकेशय, धारालोपनक, वैकुण्ठ, खण्डबेल, मन्दाकिनिसङ्गम, असिकुण्ड, गोप-तीर्थ, मुक्तिकेश्वर, शैलेश्वरगढ़ और विभ्रान्तितीर्थमें देव और पितृतर्पण करके देवपूजा करे। पीछे सुमङ्गला-श्रीधीके समीप जा उनकी अर्चनासे पिप्पलादेश्वरके दर्शन करने होंगे। अनन्तर कर्काटकनाम और कृष्णस्थापिता

सिद्धिजादेवीको देख आये। यह देवी कंस बन्धने लिये आविर्भूत हुई थीं। इसके बाद वज्रानन और शुक्र नवगो-की माधुरीके कुलेश्वर सूर्यदेवका दर्शन और दानादि सम्पन्न कर मथुरायात्रा शेष करनी होती है।\*

परिक्रमकालमें जहां जहां देवता मिलेंगे वहां उनकी पूजा कर मङ्गलके लिये प्रार्थना करे।

( पराहपु० १६०० प० )

बराहपुराणमें जिस प्रकार तीर्थपरिक्रमा वर्णित है उस प्रकार नहीं होती। अभी यज्ञभक्तिविद्यात्मके अनुसार जिस प्रकार तीर्थपरिक्रमा होती है, उसे नीचे लिखते हैं,—

मथुरामण्डलके द्वादश-चन परिक्रमणकालमें गीष्-यात्रिगण मथुरानगरसे निकल कर पांच कोस दक्षिण-पश्चिम वर्त्तमान महोली ग्राममें स्थापित मधुवन जाने हैं। वहांसे दक्षिणामिसुख हो तालवन जाना होता है। यहां पर बलरामने धेनुकासुरको मारा था। वर्त्तमान तार्सिग्राममें तालवन अवस्थित है। पीछे उच्छगांवका कुमुदवन, वाधिग्रामका बहुलावन और कृष्णकुण्डका दर्शन करते हैं।

उक्तबहुलावन नामक पवित्र निकुञ्जका प्राचीन नाम बहुलावती था। सम्भवतः इसी स्थान पर एक समय बहुलावती नगरी स्थापित थी। कालक्रमसे बाधया साम्प्रदायिक विरोधसे यह जनस्थान अरण्यमें परिणत हो गया। किंतु श्रीकृष्णकी लीलामूर्ति मथुरा और गृध्रावनके समीप होनेके कारण यात्रिगण उसे स्मृति पथके वहिर्भूत नहीं कर सकते। प्रवाद है, यहां पर बहुला नामक एक पवित्रचेता तपस्विनी गी रहती थी। एक दिन व्याससे आमान्त होने पर उसने शार्ङ्गलराजके निकट क्षणकालके प्राणमिश्रा की। तदनन्तर वह पुनः अपने स्थानको लौटी और अपने बच्चेकी दूध पिला कर

‘सूर्यं तं वरदं देवं मथुरायां कुलोत्तरम् ।  
हृदया तत्रैव दानत्र दक्ष्णा यात्रां सम्यक्तेत् ॥  
एवं प्रदक्षिण्य कृत्वा नवम्यां शुषभक्रीडये ।  
सर्वं दुष्टं समादाय विष्णुं लोकं महीयते ॥’

( बराहपुराण १६८-८० )

पुनः कालके सामने जा खड़े हुई। यह क्या भीर की  
 ही नहीं था, बल्कि महाशय श्रीहनुमन् पयस्विनीकी मातृपुत्रा  
 ज्ञानसे क्षीण थी। अल्पवयस्य भाग्यक्षीणे उम समस  
 व्यामका रूप छोड़ कर शून्य एक महापदधारी पशुम-  
 मोहनप्राप्तमें बहनोंको दर्शन दिये। यह शून्यकृतके  
 पात्रमें बहुलागावका यौन अस्वस्थ होनेके कारण  
 आज भी यह अनीत-स्मृतिकी घोषणा करता है।

परमानन्दप्रियामके पात्रमें एक दूधन् पुष्करिणी-  
 के दूधरे किनारे बहुलापल-तोषी है। यहाँ एक छोटे  
 गृहके मध्य में मन्दिर विद्यमान है। मन्दिरके प्रतीक-  
 मध्यस्थ एक मन्त्ररत्नात्मके बहुला-गाय, इसका बड़का  
 और जीवन्महर्षी श्रीमधुसूदनमूर्ति स्मृति देवी ज्ञाती  
 है। उक्त पुष्करिणीके दूधरे किनारे सुरलीमनोहरका  
 प्राचीन मन्दिर और गो-मन्दिरके समीप राधाहनुमन् या  
 विहारोत्तोक मन्दिर अवस्थित है। सुरलीमनोहरका  
 मन्दिर प्राचीन निरनैतुक्कमें पूर्ण होने पर भी पर्यया  
 पर्याप्तमें यथा है। किन्तु विहारोत्तोक मन्दिर उससे  
 कुछ हादका बना हुआ है। ऋषिप्रामके पुर्णके  
 समीप भरतपुरराज मूर्धमन्त्रके शुभ महत्त समहनुमन्दास  
 द्वारा स्वीकारागत मन्दिर प्रसिद्धि हुआ है। पौराणिक  
 जनधुनिका माहात्म्य और विगत जगन्मोक्षी समुद्धि  
 इन स्थानका तोषण संस्थापनमें समर्प है, किन्तु  
 महामोग ! यह बहुलापलौ वरमें ही पर्यवसित रहा।  
 श्रीहनुमन्की विचलनमूर्ति समस कर यह स्थान एक तोषमें  
 गिरा जाने लगा।

अक्षय्य यथाश्रम मोग, परिश्रम और सुखदाईको  
 अतिक्रम कर राधाकृत-श्रमकृतमें आना होता है।  
 राधाकृत और श्रमकृत इन दो मरीचिकोंके सातरे  
 यह स्थान राधाकृत ही कहलाता है। श्रीहनुमन्की  
 मरिचि मानक पुत्रको हस्त कर इस मरीचिकमें स्थान दिया  
 था, पीछे ही गो-राधावयमें शुभ हुए थे। यह स्थान  
 मरिचि मोगमें पर्यवसित हो अवस्थित है। यहाँ  
 भी मूलापनके उम गोविन्दकी, गोपीनाथ और मन्त्र-  
 मोहनके मन्दिर हैं। गोविन्दकी मन्दिरके पात्रमें ही  
 एक देवी कृत अवस्थित है। अक्षय्यका विवर है,  
 कि उममें एकका जल हनुमन्पुत्रका नाम और दूधरे-

या धोषाधिकारके लक्षणमात्रके समान हरिदासकी  
 है। किन्तु दोनों ही कृत एक दूधरेके पर्यवसित हैं।  
 इन दोनों कृतोंमें स्थान करनेके बाद एक मरिचिक  
 हाथमें ले कर मन्त्रकृतमें गोपीनाथका जलनाम  
 करना होगा है। पूर्वोक्त मरिचि पुत्रका उपाधनाम स्थान  
 कर मरिचि प्राममें ( राधा और गोपदेव नरयणके मन्त्र-  
 पत्नी परमानन्द अरिहू ) उक्तका पात्र-स्थान करिण  
 हुआ है।

उक्त दोनों कृतमें स्थानप्रामके बाद गोवन्द न  
 पर्यवसित और तन्ममोपपत्ती कृतोत्पत्त, मातुरेकृत,  
 मन्त्रपत्र, मन्त्र मरीचिक, मन्त्रावय मरीचिक आदि निर्णयके  
 दर्शन करने होते हैं। पूर्वोक्त अरिहू-उपगतमें बल्लो-  
 कृत अवस्थित है। गोवन्द पर्यवसितके समीप बर्मा  
 प्राममें हनुमन् और कलामको साथ ही कर गोपराज मन्त्र  
 यतोयतो और रोहिणीके साथ नाम दिया था, (मरीचि  
 इस स्थानका माहात्म्य कंसित हुआ है। मन्त्र मरीचिक-  
 में प्रजा गोपिण्यका श्रुय देव देव पुनर्विन मरिचि  
 हो गये थे, कि उममें उक्त मामोदका उपभोग करनेके  
 लिये एक रात्रिकी छा:प्राम व्यापिनो कर दिया था।  
 परमानन्द पात्रोत्तोक प्राममें ( मानवितका महामन्त्र )  
 यह पुत्रपत्तिका पुष्करिणी अवस्थित है। भरतपुरके  
 राजा नाहरमिहने इस मरीचिकमें परधरकी मीठी बना  
 दी थी।

इसके बाद समी पालिपत्र पैडा दर्शनकी जाने है।  
 प्रयाद है, कि श्रीहनुमन्ने उक्त गोवन्द न-पर्यवसित पारण दिया  
 था, उक्त समय प्रसन्नमरिचिकी पैडा मरिचिक मन्त्रके मन्त्र  
 माध्य प्रदण कर इन्द्रकी गोवन्दिके स्थान पाई थी।  
 यहाँ यहाँ अनुमन्त्र मन्त्र अवस्थित था। मन्त्र  
 श्रीहनुमन्के तोड़ पीड़ करनेपर उमोंके ऊपर सभी  
 एक दूधका मन्दिर बना दिया गया है। अक्षय्य गोवन्द न-  
 पर्यवसितके ऊपरमें अक्षय्य प्राममें आ कर दूधरे किनारे  
 अवस्थित मूर्धमन्त्रिका, विजुरोमिका और सुखदाईका  
 तथा गोवन्द न-पत्रके दर्शन करने हुए गोपानपुर, विजय  
 और मरीचिकी प्राममें आना होगा है। प्रयाद है, कि  
 मरीचिकी प्राममें श्रीहनुमन् और राधिकी वीमर्षिकी  
 मरीचिकी ली थी।

अम्बोरमें गोविन्ददेव और यलदेवके दो प्राचीन मन्दिर तथा गोविन्दकुण्ड नामक एक पुण्यतोया पुष्करिणी हैं। रानी प्रभावती उस पुष्करिणीकी प्रतिष्ठा कर गई हैं। सुना जाता है, कि उस कुण्डमें स्नान करनेसे कुछ रोग आरोग्य होता है तथा इसके किनारे श्राद्धकालमें पिण्डदान करनेसे गयाक्षेत्रमें पिण्डदान करनेके समान फललाम होता है।

यहांसे मथुरा-सीमान्त पार कर भरतपुर राज्यके मन्तर्गत कामधनमें जाना होता है। यह स्थान अभी एक तहसीलके सदररूपमें गिना जाता है तथा मथुरा नगरसे ३६ मील दूर पड़ता है। यहां पर यात्रिगण लुक-लुक गुहा और अघासुर-गुहाका परिदर्शन करते हैं। प्रवाद है, कि इस लुक-लुक गुहामें श्रीकृष्ण गोपबालकोंके साथ ले लुकाचोरी खेलते थे तथा उस अघासुर गुहामें उन्हींने असुरधरका संहार किया था। पीछे काम्यरगाय पार कर यात्रिगण पुनः उच्छ-ग्रामके वल-देव मन्दिरका दर्शन करते हुए पर्वतके ऊपर बर्सेनाग्राम जा लाड़ली-जी, दोहनीकुण्ड, प्रेमसरोवर, संकरीखोर और गह्वरवन देखने आते हैं।

जहां पर दूकमानु और उनकी पत्नीने श्याममनो-मोहिनी श्रीराधाका लालन पालन किया था वहां ललों या लाड़ली जीका मन्दिर स्थापित है। मन्दिरपार्श्वस्थ एक स्थान आज भी राधाका पालन-गृह कहलाता है। चक्रीलीके निकट दोहनीकुण्ड अवस्थित है। पशोवानी अपना दुग्धपात पोते समय इसी जगह राधिका और श्रीकृष्णको विचरण करते देखा था। प्रेम सरोवरमें नवदम्पत्तिका प्रेमसागर उमड़ उठा। उसी प्रेम-प्रवाहसे इस सरोवरको उत्पत्ति हुई है। उसके पास ही दो गण्डशैलके मध्यवर्ती-पथ पर संकरी-घोर देखा जाता है। प्रवाद है, कि गह्वर वनसे जब गोप-ललनाएँ दूधकी कलसी बगलमें दवाए आती थीं, तब उनका दूध लेनेके लिये श्रीकृष्ण यहां पर छिप कर रहते थे।

इसके बाद सङ्केत ग्राममें सङ्केत-स्थान है। यहां चांसुरीके सङ्केत (शगरे) से श्रीराधिका आदि कृष्ण-दर्शनको आती थीं। रिठोरामें चन्द्रायलीका कुञ्ज है, यहां पर राधाको घोषा दे कर भगवान्ने सखी चन्द्रा-

यलीकी मनस्कामना पूरी की थी। नन्दग्राममें नन्दा-लय और पान-सरोवर का पर्यवेक्षण कर यात्रिगण 'कर-हेला' देखने आते हैं। नन्दालयमें आज भी श्रीकृष्णका बाल्य-लीलाक्षेत्र दिखलाया जाता है। भगवान् नन्द-की गायें जब शामको घर लौटती थीं, तब जिस सरो-वरमें वे जल पोती थीं वही पान सरोवर नामसे कीर्तित हुआ है। जहां कदम्ब वृक्षको शाखा पर द्वाय भुला कर श्रीकृष्ण राश्लोला करते थे वही करहेला कहलाता है। इसके बाद कामर्दे है, यहां पर राधाकृष्णने युगल-भूत्तिमें दर्शन दे कर किसी सखीकी शमिलाया पूरी की थी। इसके बाद अञ्जन-पुष्करिणी है—यहां पर श्रीकृष्णने राधिकाको आंखोंमें अञ्जन लगाया था और जहांका जल ले कर राधाने श्रीकृष्णको व्यास मुखाई थी उसका नाम पिपासा-तोर्ध है। इस तीर्थका दर्शन कर वे उत्तरकी ओर बढ़ते हुए खेराके अन्तर्गत क्षदिरवन, शुमारवन, जाधकवन और कीकिलवनका दर्शन कर चरण पहाड़ पर पहुँचते हैं। यहां पेरायतकी पीठ पर सवार हो देवराज इन्द्रने श्रीकृष्णको अरण-वन्दना की थी। उक्त वनोंमें श्रीकृष्णका लीलाप्रसङ्ग है।

अनन्तर यात्रिगण दधिग्राम पार कर परिक्रमाकी उत्तरसोमा कोटवनमें आते हैं। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण दधिग्राममें रह कर गोपियोंके साथ क्रीड़ा कौतुक करते थे तथा बलराम उन्हींके छल परामर्शसे वधान-ग्राममें गौ चराते थे। यहांसे घरकी ओर जानेमें शेषर्दे ग्राम (वर्तमान हधान) जाना होता है। भगवान् श्रीकृष्ण और बलरामने यहां पर गोपाङ्गनाओंको नारायण और भनन्तरूपमें दर्शन दिये थे। अनन्तर यमुनाके किनारे पट्टुच कर खेलवन (शेरगढ़में), विहारवन, चीरघाट, नन्दघाट, बकवन, आतस, नरि-सेमरी, छटिकरा, अक्रूर और भात-रांधा पा कर पृन्दावन आना होता है।

खेलवनमें श्रीकृष्ण माला गूँथ कर गोपियोंके साथ रस कौतुक करते थे। चीरघाटके कदम्बवृक्ष पर वे यज्ञ-धामिनी रमणियोंके स्नान करने समय चीर चुरा कर छिप रई थे। वह 'वखहरण' घाट नामसे भी प्रसिद्ध है। श्रीकृष्णदर्शनकी प्रत्याशामें वरुणदेव एक

दिन कलकत्ते के भवन परमात्र उत्सर्ग समुदाय के लिये ही  
 मने है। वह सब मने ही मनी लोग व्याकुल हो  
 गये। धोहान्ते कलमे पुन का कलका उदार किया।  
 इस मने के लिये निकटवर्ती स्थान भवानी नामसे  
 प्रसिद्ध है। कलकत्ते के राजापुरकी माता धा,  
 कालकत्तेकी राजकुमारसे भवानी, दादा गोदाहूनामीका  
 चरणकला उल्लेखित हुआ। महिम्मारीसे प्रसिद्धी गेव-  
 मासकी हूनासमुर्द्धनीका मनुदानीका मेला मंगला है।  
 वही कलकत्तेके लिये विदमान है। भावतंत्राप्राममें एक  
 बाधनीके पत्नी देवकीकी दौली वादनीसे मधुसूदाताकाकाल-  
 में प्रसन्न हुए किया था। वही माता जो उस घटनाका  
 कथन कर मानसेना नामक एक उग्रमय मानिया जाता  
 है।

वही समुदाय वाक वहांगोवपुर्द्धमें वेदमन, भार-  
 मयके, समीर मयके, भावनीमय, डाहनीम, मानवती  
 पर और वीरि विपरीतसे नाममें विप्रापुत्रु पुर्द्धम कर  
 लोहमन, शक्य और बुधियाका मया भाग्य पड़ना है।

वेदमन धोहान्तेमयाका भावामकभाषा माना  
 जाता है। भावनीमयमें कलकत्तेमें प्रत्यक्षपुत्रकी माता  
 था। डाहनीमीमें धोहान्ते अपती धनी रण कर मान  
 मरीचके किनासे धोहान्तेका मानाप्रल किया। लोह-  
 मनेमें लोहान्तेकी पराक्रम मूलिन हुई। शक्यमें धो-  
 हाकाका मनिदास था। वही मिया लोहान्तेके साथ एकमात्र  
 की पत्नी रहती थी। बुधिया मनेमें किनी बुधके  
 पुत्रके साथ कलकत्तेकी मदनकी माननीका विवाह हुआ।  
 एक दिन लालसामुद्र ही कर धोहान्तेके उभके स्वामीका  
 कर धारण कर माननीके घरमें प्रथम किया। माननी  
 भावनी पूर्णके उभे भवने पर ही लो और ज्ञाने मानय वह  
 कलकी स्वामी कहती लो, कि यदि कोई उभके स्वामीके  
 प्रिया हकपती पर लो, तो दण्डका वही मीचन, पर  
 उभे हैद परपर लाल कर माना है। धोहान्तेके  
 पुत्र कथनेके उभ वेनीका मन्त्रक मूय मूय हो गया  
 था।

इस कथनका परिष्कार कर मीचोवामिनास कलके  
 मनेमें शक्ति और शक्ति (वामिचकी) ही विष्कनकामो-  
 का मनिपर लाल कथने मानमें वेदनीमिचका कथन

कलके हुए कथीके समीर विष्कनकाल और महापुत्रक  
 पदनी है। वही धोहान्तेके मनेमें मूलमें मनीचकी  
 प्रकाश दिखताया था। धोहान्तेका महापुत्रके धोहान्ते  
 मन्त्रिके माता परमाकथन और गोहृण मनीचोवकी  
 मन्त्रिके देवमिचक कथन कर ही माना ही कलके  
 और मनुदानीके परम मनिपर लोके विष्कनकाल पर भा  
 कर पुत्रकथनीकी लो करके है।

ऊपर धोहान्तेके लोवामनकथने मिया प्रकाश कथ-  
 नीका उल्लेख किया गया है, उनी प्रकाश धोहान्तेके लो  
 लोहान्तेमें २४ वन कथनीके लो है। धोहान्तेके मातामन-  
 मनुहृण मन्त्रिकेविनासमें १३३ वर्षोंके परिष्कारकी  
 कथा लिखी है—

१। दाहनीमन—महापुत्र, शक्यमन, कौशिकमन,  
 तावमन, लुमुदमन भावनीमन, उग्रमन ( धानातमन ),  
 शक्तिमन, लोहमन, मनुमन, मनुवामन और विष्कनक  
 का वेकाल।

२। दाहनी उग्रमन—प्रथमन, मन्त्रिकमन, निह-  
 वन, कथनीमन, कथनीमन, प्रेममन, सुरमिमन, मनुमन,  
 मनमनीमिमन, शक्यमनीमन, शक्यमन, परमानमनुमन।

३। दाहनी मनिमन—मनुमन, वाणीमन, कथनी,  
 कथनीमन, मनुमन, कथनीमन, लोहनीमन, मनुमनीमन,  
 मनुमन, मनिमन, मनुमनीमन और लोह का लोहमनु-  
 मन।

४। दाहनी मनिमन—मनुमन, शक्यमनु, मनुमन,  
 मनुमन, मनिमन, कथनी, कथनीमन, शक्य,  
 गोवनीमन, शक्यमन, मनुमन और मनुमन। धोहान्तेमें  
 ५ मीचमन, १२ मीचमन, १२ मीचमन, १२ कथनीमन, १५  
 मीचमन, १२ धोहान्ते और ३३ मनिमन है। प्रथमके  
 मनेमें वेदनीमनिमन मनुमन और मनुमनी मनिमन है।

कथनीमन और मन्त्रिकेविनासके एक लोहनी  
 ही लोके परिष्कनकाल मनुमन है। कथनीके ही मनुमन लोहना  
 है, कि कथनीमनेमें लोह विष्कनक मनुमन  
 लोहके मनेम मिया मनुमनकथनीका लोहना था, कथनीके  
 लोके लोहना। कथनीके मनुमन है, कि कथनीमनेमें  
 कथनीमनका कथनीमन मनुमन कथनीके लोहना मीचमन  
 किया गया था। १५वीं मनीके लोहके मनेम कथनीमन

मठने ब्रजभक्तिविलासमें मथुरापरिक्रमा लिपि-  
बद्ध की। रूपसनातनको चेष्टासे श्रीकृष्णलीलाभूमिका  
अहां तक पता लगाया था तथा परिक्रमाके सम्बन्धमें  
जनताको जहां तक मालूम हुआ था वही ब्रजभक्ति-  
विलासमें वर्णित देखा जाता है तथा उसीके अनुसार  
धार्मिक हिंदूगण मथुराको परिक्रमा करते हैं।

जनसाधारणको मालूम है, कि मथुरामण्डलका  
विलक्षण, भाण्डरीवन आदि स्थान यमुनाके किनारे बसे  
हुए हैं। यमुनाके पूर्वतन खाद देखनेसे भी यमुनाकी  
पूर्वतन गतिका बहुत कुछ ज्ञान हो सकता है तथा आज  
भी वह कालिन्दी कुलध्वंसिनी हो कर स्थानविशेषको  
बंदा देती है। पहले जिस 'यमुनापुलिन' पर श्रीकृष्णने  
गोपाङ्गनाके साथ विहार किया था, अभी वह एक  
बालकामय प्राङ्गणमें परिणत हो गया है।

तीर्थक्षेत्ररक्षाकी और भी एक स्वतन्त्र नियम है,  
किसी प्राचीन देवमन्दिर या देवतीर्थके नदीगर्भमें  
निमज्जित होनेसे पाण्डा या पुगेहितगण उसको रक्षाके  
के लिये विशेष यत्न करते हैं। वे उसीके पार्श्वधर्ती  
भूमिभागमें किसी जगह उसी तीर्थस्थानकी घोषणा  
कर देते हैं। सभी जातिके मध्य यह प्रथा प्रचलित  
देखी जाती है। कौन कह सकता है, कि यह छाप-  
युगकी कथा है, जहां भगवान् श्रीकृष्णने विहार किया  
था, वह आज भी विद्यमान है। युगविपर्ययसे एक नष्ट  
हो गया है और उसके बदलेमें एक दूसरा नया बनाया  
गया है। एतद्भिन्न सुप्राचीन मथुराधाममें साभ्रदायिक  
विप्लवके कारण घोर अनर्थ भी हो गया है।

इस जिलेमें १४ शहर और ८३० ग्राम लगते हैं।  
जनसंख्या ८ लाखके करीब है। जिनमेंसे सैकड़ें पीछे  
६६ हिन्दू और शेषमें मुसलमान हैं। हिन्दूमें जाट और  
चीवे ब्राह्मणकी संख्या ही ज्यादा है। चीवे साधारण  
अधियासियोंकी अपेक्षा बलवान् होते हैं। शून्दावनमें  
महोत्सव देनेमें मथुरावासी चीवे ब्राह्मणको मिठाई  
बिलानी पड़ती है। शून्दावनतीर्थमें यह 'मच्छय' दान  
विशेष पुण्यजनक माना गया है।

यहांकी प्रधान उपज गेहूं, बाजरा, चना और जूआर  
है। साधारण अधियासियोंके मध्य अधिकांश द्विपि-  
जीवी और भूम्याधिकारी हैं।

जलाभावके कारण यहांके अधियासियोंको कभी  
कभी बहुत कष्ट भुगतना पड़ता है। उसके साथ साथ  
दुर्मिक्षरूप महामारी भी अपना दर्शन दे कर लोगोंको  
विपदसमुद्रमें विलोडित करती है। १८१३ ई०में सहार  
परगनेमें ऐसा विपद्घात हो गया है। यहां तक कि,  
अनाभावमें मिनश्रेणीके अधियासियोंको मुट्टी भर  
अनाजके लिये थोड़े मोलमें अपने खो-पुत्रको भी बेचना  
पड़ा था। १८२५-२६ ई०में महावन और जलेश्वरके  
अधियानियोंको अन्नका कष्ट हुआ था। १८३७-३८ ई०को  
मथुरा जिलेके अन्तर्वेदी प्रदेशमें और दक्षिण पश्चिम  
पार्श्वय विभागमें महा अन्नकष्ट उपस्थित हुआ था।  
१८६०-६१ ई०में जलाभावके कारण जिलेके अधिकांश  
स्थानमें फसल विलकुल नहीं हुई। पीछे आधा अधि-  
वासी अपनी जन्मभूमिका परित्याग कर अन्यत्र जा  
वसे। इसके बाद पुनः १८७७-७८ ई०में अनावृष्टिके कारण  
अनाजका मूल्य दूना बढ़ गया। इस समय मथुरा और  
पार्श्वधर्ती लोगोंको महान कष्ट उठाना पड़ा था। कितने  
लोग शर्ततद्देवीको गोदमें सदाके लिये सुखसे सो रहे।  
गवमें १८७८ ई०के अगस्त मास तक प्रतिदिन २०  
हजार लोगोंको अन्न देती रही थी।

विद्याशिक्षणमें यह जिला बढ़ा चढ़ा है। स्कूलके  
अलावा आठ अस्पताल भी हैं।

२ उक्त जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा०  
२७°१४' से २७° ३६' उ० तथा देशा० ७७° २०' से ७७°५१'  
५०'के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ३६६ वर्गमील और  
जनसंख्या ढाई लाखके करीब है। यह पूर्वमें यमुना  
नदी और उत्तर-पश्चिममें भरतपुर पंचतमालाके पार्श्व-  
देश तक विस्तृत है। गोवर्द्धनके निकटवर्ती गिरिराज  
नामक गण्डरील ही उल्लेखयोग्य है। यह पर्वत पाद-  
वर्ती समतलक्षेत्रसे प्रायः १०० फुट ऊंचा और ५ मील  
विस्तृत है। श्रीकृष्णके पौराणिक लीलाप्रसङ्गमें इस  
स्थानका महात्वय गाया गया है। पर्वतके ऊपर श्री-  
कृष्णके उर्ध्वशसे मन्दिर प्रतिष्ठित हुआ है। परिक्रमा-  
में उसका कथञ्चित् उल्लेख किया गया है। काशी-  
धाममें जिस प्रकार शिवलिंगका श्राद्धसेवा जाता है,  
उसी प्रकार इस मथुरा मण्डलमें विष्णु-सूक्तिका भी



जमालपुर और तन्निकटवर्ती कङ्काली या जैनटीला और कटराके रूपसे अनेक बौद्धनिर्माण तथा शिलालिपि निकली हैं। कङ्कालीटीला कङ्कालीदेवीके अधिष्ठान स्नानरूपमें जन साधारण द्वारा पूजित होने पर भी यहां बहुत से बौद्ध और जैनकीर्तिके निदर्शन तथा शकराज-कनिष्क, हुविष्क और वसुदेवके लिपियुक्त वारद दिगम्बर तीर्थ-ङ्करीकी मूर्ति और श्वेतान्धरीके पद्मप्रमानाथकी मूर्ति एवं मौर्य-अक्षरमें लिखित कितने प्रस्तरफलक पाये गये हैं। कङ्कालीटीलाके अदूरस्थ कटराके समीप भूतेश्वर-महादेव मन्दिरके पीछे एक गण्डशैलके ऊपर बहुतसे बौद्ध निदर्शन फीले हुए हैं। उक्त मन्दिरके पार्श्वदेशमें बलभद्रकुण्ड नामक पुण्य-सलिला पुष्करिणी विद्यमान है। यहां अनेक बौद्धकीर्तिके खंडहर रहने पर भी इस स्थानमें हिन्दूमाहात्म्य घोषित होता है। प्रतिवर्ष मेलोनी पूणिमाके दिन बलभद्रकुण्डमें एक मेला लगता है। अलावा इसके १ मील दक्षिण पश्चिममें चौवाडा या चौरासी स्तूप अवस्थित है। उसके एक स्थानसे एक दन्तविमण्डित स्वर्णकीटा पाया गया है। दुःखका विषय है, कि अब भी मथुराका सभी स्थान अन्वेषित नहीं होता, नहीं तो मथुराधामके बहुतसे स्थानोंमें प्रति-मूर्ति और भग्न स्तम्भके सिवा और भी कितनी कीर्ति यां बाहर होतीं। प्रसिद्ध चीन-परिव्राजक ह्युनचुवंग जिन सय बौद्ध संघारामोंका उल्लेख कर गये हैं, प्रलतत्य-विद्वु डा० फर्निहम, फुरार, यार्गस आदिके यज्ञसे स्तूप निहित शिलाफलकसे उनमेंसे यज्ञोविहार, उपयुक्त-विहार, संग्रहितसद्विहार, हुविष्कविहार और कुण्डशुक्-विहारके नाम मिले हैं।

१६६१ ई०में यहांका सुप्रसिद्ध केशवदेवका मन्दिर सम्राट् औरङ्गजेबने तहस नहस कर दिया। यह स्थान आज कटरा कहलाता है। सम्राट् औरङ्गजेबने केशव देवमन्दिरका ध्वंसावशेष ले कर उसके ऊपर एक मस-जिद बनवाई। आज भी मसजिद-गात्रस्थ १७१३ और १७२० सम्बन्धी नागरीलिपिसे उसका स्पष्ट प्रमाण मिलता है।

१८८६ ई०में मथुरासे पृन्दावन रेलपथ ले जानेमें कटराकी जमीन जोड़ने पर बहुत-सी बौद्धमूर्ति और

मौखरिराज महादित्यकी भग्न-शिलालिपि मिली थी। इस कटराके पश्चात्भागमें केशवदेवका वर्तमान मंदिर बनवाया गया है। उसके पास ही पोतरकुण्ड और कंस-का कारा-गढ़ वा श्रीकृष्णकी जन्मभूमि है। इस पोतर-कुण्डके पीछे धुलकोट (मथुरानगरका प्राचीन घर्ष) परिवेष्टित स्थानमें एक बड़ा स्तूप देखा जाता है जो सम्भवतः किसी बौद्ध मठादिका निदर्शन होगा।

बलभद्रकुण्डके समीप भूतेश्वर-महादेव-मन्दिर और चारों ओर टूटे फूटे खंडहरोंकी देरनेसे अनुमान होता है, कि ब्राह्मणके द्वारा कृष्णायतार-प्रसङ्ग उदघातित होनेके पहले यहां शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठा हुई थी। इस प्रकार यहां किसी एक समय काम्यकवनमें कामेश्वर, गोवर्द्धनमें चक्रेश्वर और पृन्दावनमें गोपेश्वरकी मूर्ति प्रतिष्ठित हुई।

भूतेश्वर महादेवमंदिर-संलग्न काजोबाग नामक उद्यानमें एक छोटी मसजिद देखी जाती है। उसमें हिन्दूधर्मका कोई निदर्शन नहीं रहने पर भी उसका गठन-कार्य देखनेसे अनुमान होता है, कि यह एक समय हिन्दू द्वारा बनवाई गई थी। उसका गठनकार्य सम्पूर्णरूपसे हिन्दूभावमें पूर्ण है उसमें मुसलमान मसजिदका विलकुल आभास नहीं है।

कटराका द्वारपथ ती कर दिल्ली जानेकी राह पर 'कुम्भजा' घरका प्राचीर दृष्टिगोचर होता है। अम्बरौयशैल-के समीप पृन्दावनद्वार और शाहगञ्ज सराय होते हुए सम्राट् अकबरशाहके शासनकर्त्ता अली खांकी छतरी-के सामने पहुंचते हैं। इसके पास ही सरस्वती-सङ्गन-की धारा और दक्षिणमें महादेवका मंदिर है। निकट-वर्ती कैलास पर्वत पर गोकर्णेश्वर तीर्थ तथा इस धारा-के निम्नदेशमें गार्गी और शार्गी तीर्थ हैं। प्रवाद है, कि गोकर्ण अष्ट वीतराममेंसे एक है। ये महादेवके अवतार हैं तथा उनको गार्गी और शार्गी नामकी दो पत्नी गौरीके अंशवतारमात्र हैं। यहां बहुत-सी भैरवमूर्ति, शीतला-देवी, मशानी और मायादेवीकी मूर्ति स्थापित हैं। कैलासशैलके अपर पार्श्वस्थ सङ्कके किनारे रामलीला-का मैदान है। उसके करीब ही सरस्वतीकुण्ड अव-स्थित है।





मद ( अ० खी० ) १ लम्बी लकीर जिसके नीचे लेखा लिखा जाता है, खाता । २ कार्य वा कार्यालयका विभाग, सरिद्रा । ३ शीर्षक, अधिकार । ४ ऊँची लहर, ज्वार ।

मदक ( हिं० खी० ) एक प्रकारका मादक पदार्थ । यह अफीमके सतमें धारोक कतरा हुआ पान पमानेसे बनता है । पीनेवाले इसकी छोटी छोटी गोलियोंको चिलम पर रख कर तमाकूको तरह पीते हैं ।

मदकची ( हिं० वि० ) जो मादक पीता हो, मदक पीनेवाला ।

मदकट ( सं० पु० ) मदं कटति प्रकटयतीति कट्-अच् । पण्ड, सांड ।

मदकद्रुम ( सं० पु० ) ताड़का पेड़ ।

मदकर ( सं० पु० ) १ सुस्तर वृक्ष, धतूरेका पेड़ । त्रिपां डीप् । २ घातकीवृक्ष । ३ सुरा, शराब । ( त्रि० ) ४ मत्तताजनक, जिससे मद उत्पन्न हो ।

मदकरिन् ( सं० पु० ) मत्तहस्ती, पगला हाथी ।

मदकल ( सं० पु० ) मदेन कलोऽप्यक्तमधुर ध्वनिर्यस्य । मत्तहस्ती । १ मत्त, मतवाला । २ अर्थक प्रलापी । ( त्रि० ) ३ मदाव्यकवाची, थायला ।

मदकसिरा—१ मन्द्राज प्रदेशके अनन्तपुर जिलेका एक तालुक । भूपरिमाण ४५१ वर्गमील है । यहाँका दक्षिण भाग पर्वतमय है । पश्चिममें उर्वर समतल क्षेत्र है । जलकी प्रचुरताके कारण यहाँ धान बहुतायतसे उपजाता है ।

२ उक्त तालुकका प्रधान नगर । यह अक्षा० १३° ५६' ३०" उ० तथा देशा० ७७° १८' ४०" पू०के मध्य पड़ता है । पहले यहाँ विजयनगरराजके एक पल्लिकाके सामन्तकी राजधानी थी । नगरके उत्तर पर्वत पर परिला और प्राचीर परिघेष्टित एक दुर्ग है । यहाँ सामन्तराज रहने थे । १७४१ ई०में मुरारौराय तथा १७६६ ई०में हैदर-अलीने इस स्थान पर चढ़ाई की थी ।

मदकारिन् ( सं० त्रि० ) मदं मत्ततां करोति कृ-णिनि । मत्तताजनक, जिससे मद उत्पन्न हो । जिससे बुद्धि नष्ट होती है उसीको मदकारी कहते हैं ।

मदकी ( हिं० वि० ) मदक पीनेवाला, मदकची ।

मदकृत ( सं० त्रि० ) मदं करोति कृ-किप्, तुक्, च मत्तता कारक, उन्मादजनक ।

मदकृद्द्रुम ( सं० पु० ) तालवृक्ष, ताड़का पेड़ ।

मदकाहल ( सं० पु० ) वृषभ, सांड ।

मदपूला ( अ० खी० ) यह खो जिसे कीई विना विवाह किये ही रख ले वा घरमें डाल दे, रवेली ।

मदगन्ध ( सं० पु० ) मदस्य दानवस्येय गन्धो यस्य । १ सप्तच्छद वृक्ष, छितवन । २ मद्य, शराब ।

मदगन्धा ( सं० खी० ) मदगन्ध-टाप् । १ मदिरा, शराब । २ अतसी, अलूसी ।

मदगमन ( सं० पु० ) महिप, मैसा ।

मदगल ( हिं० खी० ) मत्त, मस्त ।

मदघ्नी ( सं० खी० ) मदं मत्ततां इन्तीति मद-इन्-ङक डीप् । पूतिका, पोय ।

मदच्युत् ( सं० त्रि० ) गयहन्ता ।

मदच्युत् ( सं० त्रि० ) मत्ततासे इधर उधर घूमना ।

मदजन् ( सं० क्ली० ) हस्ति दानवारि, मत्त हाथीके मस्तकका छाय ।

मदज्वान्—एक पठान-सर्वदार । इन्होंने सिन्धु-प्रदेशके हैदराबाद जिलेका प्राचीन वादिन-नगर ध्वंस किया था ।

मदद ( अ० खी० ) १ सहारा, सहायता । २ किसी कामके लिये नियुक्त मजदूर और राज आदि, साथ काम करवालोंका समूह ।

मददधर्च ( अ० खी० ) १ सहायतामें दिया जानेवाला धन । २ वह धन जो किसीको काम करनेके लिये अगाऊ दिया जाय, पेशगी ।

मदद्गार ( फा० वि० ) सदायाक, मदद् पहुँचानेवाला ।

मदद्विप ( सं० पु० ) मत्तहस्ती, पगला हाथी ।

मदधार ( सं० पु० ) मदप्रधाना धारा यत्र । पर्वतमेद, महाभारतके अनुसार एक पर्वतका नाम ।

मदन ( सं० पु० ) मद्यतीति मद-णिच्-ज्यु । काम-देव ।

इसकी उत्पत्तिका विवरण कालिकापुराणमें इस



कहा, 'ब्रह्मन् ! आपने जो कहा था, कि मैं, विष्णु और महेश्वर दोनों ही तुम्हारे वशवर्त्ती हूँ, सो सिर्फ उसीकी परीक्षा करनेके लिये मैंने आप पर शरद्वेप किया था, मैं निरपराध हूँ, अतएव मेरे इस श्रापको मोचन कीजिए ।' तब ब्रह्मने स्थिर हो कर उससे कहा, 'तुम्हारा श्राप जिस प्रकार मोचन होगा, उसका उपदेश देता हूँ, सुनो ! तुम महादेवके नयनानलसे मस्मीभूत तो जकर होमो, पर उन्हींकी रूपासे फिर शरीर पा जाओगे । महादेव जब फिर विवाह करेंगे, तब वे ही स्वयं तुम्हें जिला देंगे ।' इतना कह कर ब्रह्मा अन्तर्हित हो गये ।

पोछे दृशने मदनकी पत्नी निर्दग्ग कर उससे कहा, 'मदन ! यह मेरो देहजात कन्या है, रति इसका नाम है । तुम इससे विवाह कर सुखसे रहो ।'

एक दिन मदन देवताओंके उसकानेसे महादेवका ध्यानमग्न करने गये और वहाँ पर उनके नयनानलसे मस्मीभूत हो गये । महादेवके साथ जब पार्वतीका विवाह हुआ, तब मदनने पुनः श्रापविमुक्त हो शरीर धारण किया । ( कालिकापु० १७ अ० )

ब्रह्मवैवत्तपुराणमें श्रीकृष्ण जन्मखण्डके ३६वें अध्यायमें मदनका उत्पत्ति-विवरण लिखा है । विस्तार हो जानेके मयसे यहाँ पर नहीं दिया गया ।

१ योगाचार्यरूप शिवका अवतारविशेष । मद्यति भक्तानां मन इति मद्-रूपु, मनसि आनन्दजनकत्वादस्य तथात्वे । ३ महादेव । ( भारत १३।१।७।६ ) ४ मसना, धरादीहा कामिनीयौका भावविशेष । ५ वसन्त । ६ ध्रुवूर, धनूर । ७ मैनफल नामक वृक्ष और उसका फल । पर्याय—पिचुक, मुचुकुन्द, कण्टको, पिण्डी-तक, शल्य, कैट्य, पिण्ड, धाराफल, तगर, कर्दाह, श्वसन, मयवक । गुण—वमिकारक, तिक्त, उष्णवीर्य, लघुत्व, कृष्ण, कफ, आनाह, जोफ, शुष्म और वर्णनाशक । ८ मंदर, भीरा । ९ माय, उवुद । १० खदिर वृक्ष, खैरका पेड़ । ११ वक्रुल वृक्ष, मौलसिरि । १२ कामशास्त्रके अनुसार एक प्रकारका आलिङ्गन । इसमें नायक अपना एक हाथ नायिकाके गलेमें डाल कर और दूसरा मध्यप्रदेशमें लगा कर उसका आलिङ्गन करता है । १३ मोम । १४ अणोरटक वृक्ष । १५ सारिका, मैना ।

१६ ज्योतिषशास्त्रके अनुसार जन्मसे सप्तम शुद्धका नाम । १७ एक प्रकारका गीत । १८ प्रेम । १९ रूपमालउन्दका दूसरा नाम । २० छप्पयके एक भेदका नाम । २१ रत्नन पक्षी ।

मदन—१ एक प्राचीन कवि । भोजप्रबन्धमें इनका उल्लेख है । २ बालसरस्वती नामक ग्रंथके रचयिता । उक्त ग्रंथके द्वारा वे बालसरस्वती नामसे परिचित हुए । अर्जुनयमदेवने अमरुततक ग्रन्थमें इनका नामोल्लेख किया है । ३ श्रीकृष्ण-लोल्ला-काव्यके प्रणेता ।

मदन आचार्य—एक वैद्यक ग्रन्थकार ।

मदनक ( सं० पु० ) मदनयतीति मद्-णिच् ल्यु, स्थायी क । १ दमनक वृक्ष, दौता । २ सिंकय, मोम । ३ खैर । ४ धनूर । ५ मदनवृक्ष, मैनफल । ६ मौलसिरि ।

मदनकण्टक ( सं० पु० ) मदननिमित्तः कण्टक इव । सात्त्विक रोमाञ्च ।

मदनकाकुर्वय ( सं० पु० ) मदनने हेतुना काकुः काम-जन्यो विहृतो रवः अष्टकुट्टध्वनिर्यस्य । पारावत, कवूतर ।

मदनकीर्त्ति—एक प्राचीन कवि । राजशेखरकृत प्रबन्ध-चिन्तामणि ग्रन्थमें इनका नामोल्लेख है ।

मदनगञ्ज—ठाका जिल्लेके मध्य एक नगर । यह, लाल-सिया (लाक्षा) नदीके किनारे नारायणगञ्जके उस पारमें अवस्थित है । यहाँ पाट और स्थानीय नाना द्रव्योंका कारोबार फैला हुआ है । नागवणगंज देखो ।

मदनपृष्ट ( सं० झो० ) मदनस्य शुद्धं । १ खीचह, भग । २ ज्योतिषके अनुसार जन्मकुण्डलीमें सप्तम स्थान । ३ मदन हर छन्दका दूसरा नाम ।

मदनगोपाल ( सं० पु० ) मदनश्चासी गोपालश्चातः । मत्कचिन्तोन्मादकत्वादस्य तथात्वं । श्रीकृष्ण ।

मदनगोपाल—एक प्रसिद्ध योगी । इनका दूसरा नाम गोपालपुरि भी था । ये वैकुण्ठपुरीके गुरु थे तथा इन्होंने द्वादशमहावाक्य-विवरण लिखा ।

मदनचतुर्दशी ( सं० खी० ) मदनोत्सवादिमिका चतुर्दशी । चैत्रमासको शुक्ल चतुर्दशी । इस दिन मदनदेवकी पूजा करनी होती है । पूजा करनेवाला परम मनि पाता है तथा पुत्रपौत्र और सुखकी सम्पत्ति होता है ।



मदनपाल—पालवंशीय एक वृद्धेश्वर ।

पालराजवंश देखो ।

मदनपाल—बुद्धीके राठोरवंशीय एक राजा । ये गोपाल-  
देवके पुत्र थे । इनको राजधानी गांधिपुरमें थी ।  
शिलालिपिसे इनकी घोरताका परिचय मिलता है ।

मदनपाल—कन्नोजके गहस्वार ( राठोर ) वंशीय एक  
राजा, चन्द्रदेवके पुत्र । ये ११६१ संवत्में विद्यमान थे ।

मदनपाल—टाकवंशीय एक हिन्दू-राजा । दिल्लीके उत्तर  
यमुनातीरवर्ती काष्ठा ( काढ़ा ) नगरमें ये राज्य करते  
थे । ये हरिश्चन्द्रके पुत्र, भरतपालके पौत्र और रत्न  
पालके प्रपौत्र थे । मदन पारिजातके प्रणेता विश्वेश्वर-  
भट्ट उनके सभापरिचय थे । मदनचिनोदनिघंटुसे उनका  
राज्यकाल १४३१ सम्बत् ( १३७५ ईस्वी सन् )-से  
स्थिर हुआ है । इनके उरसाहसे आनन्दसज्जवन,  
तिथिनिर्णयसार, मदनपारिजात, मदनपालचिनोद, चन्द्र-  
प्रकाश, शूद्रधर्मयोधिनो, सिद्धान्तगर्भ और स्मृतिकीमुवी  
नामक ग्रन्थ इन्हींके नामसे प्रचारित हुए ।

मदनपाल—बोदायमुताके राष्ट्रकूटवंशीय एक राजा ।

मदनपालमहाराज—करोलीके एक हिन्दूराजा । इन्होंने  
अपने सद्गुणके लिये अंगरेज-सरकारसे G. C. S. 1.  
की उपाधि पाई थी । १८५६ ई०में इनकी मृत्यु  
हुई । बादमें इनका भतीजा लक्ष्मणपाल तख्त पर  
बैठा ।

मदनपुर—युकप्रदेशके ललितपुर जिलान्तर्गत एक  
गण्डग्राम । यहाँ ६ प्राचीन मन्दिर भग्नावस्थामें  
पड़े हैं जिनमेंसे उत्तरको ओर प्राचीन नगरके  
पास स्थापित तीन जैन-मन्दिर सर्वप्रकाश प्राचीन-से  
प्रतीत होते हैं । १२०६ सम्बत्में उत्कीर्ण  
शिलालेखसे इस स्थानका मदनपुर नाम पाया  
जाता है । पतञ्जिन स्थानीय 'धारद्वारी' नामक छोटे  
घरके स्तम्भमें चौहानराज पृथ्वीराजके घटनासम्बलित  
दो शिलालेख हैं । उनमेंसे एकमें पृथ्वीराज कर्तृक  
परमाई ( परमाल ) देवको पराजय और दूसरेमें १२३६  
सम्बत्की जेजक भुक्तिराज्यका अधिकार-प्रसंग उल्लि-  
खित है । एक और स्तम्भलिपिसे ज्ञात होता है, कि  
यह घर पहले स्थानीय एक शिवमन्दिरका दालान था ।

वत्मान बड़ी और छोटी कचहरीके निकट जो तालाब  
उसके उत्तर-पश्चिममें दो और उत्तरपूर्वमें एक शिल्प-  
चातुर्यसे युक्त शिवमन्दिर अवस्थित है ।

मदनपुर—चन्द्रेलाराज मदनवम ( ११२६-११५६ )-द्वारा  
प्रतिष्ठित एक प्राचीन नगर । यह युक्तप्रदेशके हमीर-  
पुर जिलेके कुलपहाड़ तहसीलके अन्तर्गत सेट  
महेट गांवके पास अवस्थित है । आज यह नगर  
सम्पूर्णरूपसे ध्वंसावस्थामें पड़ा हुआ है ।

मदनपुर—नादिया जिलेका अन्तःपाती एक गण्डग्राम ।  
यह कालीगंजसे बहुत करीब पड़ता है । यहाँ एक  
स्टेशन भी है ।

मदनपुर—मध्यप्रदेशके विलासपुर जिलेके मुँगेली तह-  
सीलके अन्तर्गत एक भू-सम्पत्ति । भू-परिमाण २५  
वर्गमील है । यहाँके जमींदार राजगोड़वंशीय हैं ।  
धान, गेहूँ और घना आदि यहाँका प्रधान जात-  
द्रव्य है ।

मदनफल ( सं० पु० ) मैनफल, मयनी ।

मदनवान ( हि० पु० ) एक प्रकारका बेल । इसकी  
कलियां लम्बी तथा दल एकहरे और नुकीले होते हैं ।  
यह वर्षाकालमें फूलता है और इसकी गंध बहुत अच्छी  
पर तीव्र होती है ।

मदनभवन ( सं० स्त्री० ) मदनस्य भवनं । १ मदन-  
गृह, भग । २ जन्मलन्नावधि सप्तम स्थान, ज्योतिषके  
अनुसार जन्म-टिप्पणीमें जन्मसे सातवां स्थान ।

मदनभाषि ( मदनमानवी )—बम्बईप्रदेशके धारवाड़  
जिलेके अन्तर्गत एक गण्डग्राम । यहाँ रामलिंगदेव  
और कल्लुपदेवके प्राचीन दो मन्दिर हैं । दोनों  
मन्दिरमें प्रतिष्ठाकालशापक शिलालिपि देखी जाती है ।

मदनमञ्जुका ( सं० स्त्री० ) मदनदेवके औरस और  
कलिङ्गसेनाके गर्भसे उत्पन्न एक कन्या । ( कथाश्रुतिशा० )  
मदनमञ्जरी ( सं० स्त्री० ) १ वासवदत्तावर्णित नायिका-  
भेद । २ यक्षराज दुर्जुमिकी कन्या । ३ काकभेद, एक  
प्रकारका कौवा ।

मदनमनोरमा ( सं० स्त्री० ) केशवदासके मतानुसार  
सवैयाके एक भेदका नाम । इसे दुर्मिल भी कहते हैं ।  
मदनमनोहर—१ पलपीयूपलता और धादप्रदीपके



होती है तथा देशमें सुमिक्ष आदि सब प्रकारके शुभ-  
लक्षण दिखाई देते हैं।

मदनोत्सव भारतवर्षका एक प्राचीन जातीय महो-  
त्सव है। एक समय भारतवर्षके अधिकांश अधि-  
वासी इस महोत्सवमें शामिल होते थे। राजा, प्रजा,  
धनी, दरिद्र, नागर, नागरी—इस महोत्सवके दिन  
सभी अशान्तिको भूल कर आमोद-प्रमोद सागरमें धुंते  
थे। एक ओर शास्त्रानुसाशन, दूसरी ओर प्रकृतिका  
नवीन भूषण, सुतरां धर्मप्राण मानवका मन इस महा-  
मोदसे सहजमें पिघल जाता था।

जब वसन्त ऋतुके आने पर भारतीय प्रकृति देवी  
अपने पुराने भूषणको फेंक कर नये साजबाजसे अपने-  
को सजाए बैठती थी, कुसुम सौरभययी वासन्ती वन-  
राजि जब धोरगति-मलयानिल-हिल्लोलके मृदुमन्द  
आन्दोलनसे नाच उठती थी, जब कोकिल पुलकित  
हो कर तान अलापती थी, जब मधुलोमी मीरे अपने  
झुंझासे किशलय-दलको हिलाते हुए अर्घोंकी तरह  
चार्दी ओर छूटते थे, नागर-नागरी उसी समयसे बड़ी  
उत्फुक्ताके साथ इस उत्सवके दिनकी गणना करती  
थीं। उत्सवके दिन सङ्गीत, सुरा, अमीर, कुङ्कुम और  
अन्यान्य विलास सामग्रीके प्रभावसे,—सहृदय ऋतु-  
राजके साथ रतिपति मानो सचमुच उच्चाहित हो उठे  
हैं, नागर-नागरियोंकी वसन्तविजय घोषणासे हर्षकोला-  
हल गुगनप्राङ्गण गूँज उठता था।

आजकल यह उत्सव एक प्रकार उठ-सा गया है।  
इसके स्थान पर अमी चर्चमान प्रचलित होलोंने अधि-  
कार जमा लिया है। होली श्रोत्रणके दोलोत्सवका  
अङ्ग है। यह दोलोत्सव कबसे मदनोत्सवके स्थानमें  
चला आ रहा है, यह ऐतिहासिक रहस्य जाननेका  
कोई उपाय नहीं है।

पहले यह मदनोत्सव एक प्रधान उत्सव समझा  
जाता था, प्राचीन पुराण, इतिहास, काव्य, नाटकादि-  
में उसका यथेष्ट प्रमाण मिलता है। पुराणमें मधुमास-  
की शुक्ल तयोदशीको जिस मदनप्रतका उल्लेख है,  
उसका नाम मदनोत्सव है। वसन्तऋतु आने पर  
इसका अनुष्ठान होता था, इस कारण इसका दूसरा नाम

यसन्तोत्सव भी है। पुराणमें मदनप्रत वा मदनोत्सव-  
का विस्तृत विवरण लिखा है, काव्य नाटकादिमें उसका  
लौकिक चित्र भी दिया गया है। अन्यान्य प्रतकी  
तरह इसमें भी कठोरता थी, त्याग स्वीकार था और  
दक्षिणा थी, आमोद-प्रमोदके साथ ब्राह्मण भोजनादि  
भी होते थे। इसका आभास रत्नावली-नाटिकामें  
राजा और विदूषककी कथामें स्पष्टरूपसे धरक है।

राजाने कहा—'वह मनोभव नाममातको परितुष्टि-  
का अनुभव करता है, यह उत्सव उसका नहीं है—  
यह हम लोगोंका महान् उत्सव है।' विदूषकने सहर्ष  
उत्तर दिया,—

"महाराज! यह उत्सव आप लोगोंका भी नहीं  
है और न कामदेवका ही है, यह सिपां इस ब्राह्मण  
बटुका उत्सव है।" प्रतके शेष होने पर राजाके पाद्य,  
अर्घ्य, माल्य-चन्दन और प्रणाममात्र लाभ करनेके समय  
विदूषक वसन्तडाकुरने रानीके निकट स्वस्ति-वाचन-  
की डालो दक्षिणामें पाई।

इस उत्सवमें राजा प्रजा सभी हिंडोले पर झूलते  
हुए यसंतोत्सवका माधुर्य-विस्तार करते थे। महाकवि  
फालिदासने इसका आभास कई जगह दिया है,—रघु-  
चंशमें लिखा है, कि दशरथ कामिनीभुञ्जलताश्लेष-करण्ड  
फितकरणसे हिंडोले पर झूलते थे। यथा,—

"अनुभवन्नुत्सवमृत्सवं

पटुभि मियकयठभिपूषया।

अनपदावजरन्नुपरिभदे

भुञ्जतां जलतामवलाजनः॥ (रघु ६।१६)

इस हिंडोलेकी कथा मालयान्मित्रमें रानी इरा-  
वतीके मुखसे भी गाई गई है।

रत्नावलीमें लिखा है, कि रानी वासवदत्ता  
अशोकवृक्षके तले कामदेवकी पूजा करती थी।  
पूजाके बाद सीमागपवती सधवागण जो पतिपादपकी  
पूजा करती थीं रानी वासवदत्ता यह भी दिखा  
गई है। अशोकवृक्ष ही मदनपूजाका प्रशस्त स्थान  
है। सिद्धदायक होनेके कारण अशोकको पञ्चदोके  
अन्तर्गत माना गया है। भगवान् मन्मथके साथ  
इसका एक और घनिष्ठ सम्बन्ध है, यह यह





और फारस देशसे उत्तम, मध्यम और अधमके भेदसे तीन प्रकारके कुंकुमकी आमदनी होती थी ।

मदनोत्सव अभी विख्यात होली-पर्यन्त रूपान्तरित हो गया है। घृन्दायनमें भगवन्ारायणरूपमें श्रीकृष्ण और यलरामके उद्देशसे यह होली उत्सव मनाया जाता है। पुरीघाममें भी जगन्नाथकी पूजाके उपलक्ष्यमें होलीका आयोजन होता है। उक्त दोनों ही क्षेत्रमें भगवानके उद्देशसे फाल्गुन शुक्लपक्षकी प्रतिपदसे ले कर पूर्णिमा तक फल्गु-उत्सवका अनुष्ठान होता है।

केवल हम लोगोंके देश भारतपर्यन्त ही नहीं, सुदूर इङ्ग्लैण्ड आदि अङ्ग्रेजी राज्योंमें भी इस वसंत-पूजाका विधान देखा जाता है। पूर्वतन अङ्ग्रेजोंके महं दिनमें ( Merry-makings on May Day ) आनन्दोत्सवका विधान था, आज भी बहुतसे अङ्ग्रेजोंमें "May fool" बना कर आमोद्-प्रमोद करनेकी रीति है। मधुराके बाघेन ग्राममें जिस प्रकार वाजे गाजेके साथ होली-उत्सव मनाया जाता है, ठीक उसी प्रकार रोम-राजधानीमें फालिक-अरगी ( Phallic orgies ) मनाया जाता था। जुविनेल ( Juvenal ) और कैटलस ( Catullus )के बनाये हुए प्रंथोंमें उसका यथेष्ट आभास मिलता है। प्रोसरायके इयुनिसियामें भी भारतीय होली-उत्सवका प्रतिरूप निदर्शन पाया जाता है। यहां भी शस्यशमामला प्रकृतिकी प्रतिमूर्त्ति फेलस ( Phallus )के उत्सवमें दौलयात्राकी तरह एक यात्रा और उत्सव मनाया जाता था तथा वर्त्तमान प्रजवासियोंकी तरह ये लोग भी शराबमें चूर हो कर आनन्द लुटते थे। फेलसके उत्सवमें शराब नहीं पीना उत्सवकारीके लिये घृणाका विषय था।

मदनमालिनी ( सं० स्त्री ) वासवदत्तामें वर्णित एक नायिका।

मदनमोदक ( सं० पु० ) वाजीकरणाधिकारमें मोदककी औपघविशेष। यह मोदक स्वल्प और घृहत्वके भेदसे दो प्रकार है। प्रस्तुत प्रणाली—त्रिकटु, त्रिफला, कुट, कचूर, सैन्धवलयण, धनिया, कर्कटशुद्धी, तालीशपत्र, कटफल, नागेश्वद, यमानी, यष्टिमधु, मेथी, जीरा, कृष्ण-जीरा, प्रत्येकका समान चूर्ण, कुछ भुना हुआ बीज

सहित सिद्धिचूर्ण, यह सब चूर्ण मिला कर जितना हो, उतनी चीनी तथा उतना ही घृत और मधुके साथ देवक बनायेके नियमानुसार यह मोदक बनाये। इस प्रकार प्रस्तुत मोदकको स्वल्प मदनमोदक कहते हैं।

महामदनमोदककी प्रस्तुत प्रणाली—शतावरीचूर्ण, भूमिकुम्भाण्डचूर्ण, विजवन्दका मूलचूर्ण और छाल-चूर्ण, गोक्षुरबीजचूर्ण और पिठवनका चूर्ण कुल मिला कर २ पल घीमें भुना हुआ बीज सहित सिद्धिचूर्ण ८ पल, शर्करा ३२ पल; पाकार्यं गतमूलोका रस, भूमि-कुम्भाण्डरस और दुग्ध, प्रत्येक ८ पल ( किसीके मतसे दूध १६ पल ) इन्हें एकत्र कर यथानियम पाक करे। पीछे पाक सिद्ध हो जाने पर उसे उतार ले और ऊपरसे कृष्णतिलचूर्ण २ पल, त्रिकटु, द्वारचीनी, तेजपत्र, इला-यची, सैन्धव, धनिया, जायफल, जयिबी, वाला, जीरा, कृष्णजीरा, कचूर, मोथा, सौंफ, मुचामांसी, जटामांसी, तालीशपत्र, तेजपत्र, वारेन्द्र ( सड़ी पत्तियां ), हरीतकी, सोया, चर्ह, देवदारु, प्रियंगु, लवङ्ग, सरलकाष्ठ और शैलज इन सब द्रव्योंमें जो भुनने लायक हैं गन्धवृद्धिके लिये उन्हें भुन कर चूर्ण बनाये और तब डाल दे। सैन्धव और त्रिकटु उसी हिसाबसे देना चाहिये जिससे यह सुखाद्यु हो। मोदक प्रस्तुत हो जाने पर उसे त्रिकटु और त्रिजातकचूर्णमें मिला कर मिट्टीके बरतनमें रख दे।

यह मोदक वाजीकरणाधिकारमें प्रधान मोदक है। इसका सेवन करनेसे स्त्रीप्रसङ्गमें अधिक क्षमता उत्पन्न होती है।

मदनमोहनो ( सं० स्त्री० ) गणिकारिका, गनियारका पेड़।

मदनमोहन ( सं० पु० ) मदन उन्मादकदासी मोहन-श्वेति क्रमंघा०, मुह-णिक-स्वुट। श्रीकृष्ण।

मदनमोहन तर्कालङ्कार—एक विख्यात गणित। १७३४ शक ( १८१५ ई० )में नदिया जिलेके विल्वप्राममें इनका जन्म हुआ था। इनके पिता रामधन चट्टोपाध्याय कल-कला-संस्कृत कालेजके एक पुस्तक लेखक थे। उनकी मृत्युके बाद उनके भाई रामरत्नने मदनमोहनको कल-कलाके संस्कृत कालेजमें भर्त्ता करा दिया। पर यहां

है कि उनके सुविद्यमान पुत्रसमय पानोंमें भोजनोत्पन्न भी एक पान है। समस्तजातु आने पर जव भोजनके दृष्ट गद्दी गिरने पर प्रसन्नमान उसका फूल चिल्लायेके लिये मंत्र तंत्रका आशय होता थी तथा भोजनोत्पन्नमें मात्र भारतो थी। भोजनको इस प्रकार दीव्यदान करना शास्त्रमें कथितप्रसिद्ध बनलाया है। यथा—

भारतप्रदायोर्कं विक्रमिषु कर्तुं योऽपिमात्रकामसोः ।  
( मत्स्यपुरा ० १४ पं. )

शास्त्रकारोंने समस्त-समागममें भोजनोत्पन्नने नीचे पूजा करना नत्कारियोंके लिये श्वास्वपरक्षाका एक मापन बनलाया है। वैदिकप्रथममें भोजनके अनेक गुण बतलाये गये हैं।

मदनपूजामें भोजनोत्पन्न प्रशस्त होने पर भी अन्ननिदानमें भूतमज्जरीकी ही प्रधानता है। मदनोत्सव-उत्सवके साथ इसका धामान हम अकृतलाके छडे मद्रुमें पाते हैं। पादयासापने तत्र पुत्रमन्त्रमें मदनोत्सव को सोचनेके लिये भूतमज्जरीवचन निषेध कर दिया था। किन्तु परमृत्तिका और मधुकारिकाते यह रहस्य न जान कर मदनपूजाके उद्गमको देवने ही आनन्दित मनमें अन्नद्विय 'पनापूर्य'क मदनको चढ़ाया था।

भारताप इमके, मातृतोमापय, वासयदना, भादि प्रथममें भी मदनोत्सवका उल्लेख देवनेमें आता है।

मदनोत्सवका वासादम्बर बड़ा ही हृदययोगादक है, इसी कारण नरनारी सहज हीमें इस पर अनुत्सव ही जाती थीं। भारतवर्ष जैसे सुहासिष्य देवके लिये धर्मन समागम स्वभावताः मनोरम है मातृम होता है मनु-राजने भारतप्रभापसे ही भारतीयोंकी पहले पगजात लताकुसुम द्वारा सुनोमित कर उत्सवमनन कर दिया था। अमराः यही जातीय मदनोत्सवमें परिणत हो गया। धीरे धीरे उन्मोके साथ भूत, गीत, अश्वर, कंबुज, द्विबोला और सुता भादिसे सम्मिलित हो कर मनुमासको सचमुच मधुमय कर आता था। मनुसमागमके समय प्रियतमोंके सामने मात्र-मर्षदाकी मूढ कर कितने मद्दीगके बहाने मतपाते हो जाते थे।

इस मदनोत्सव उपनयमें शूद्रमोलादिको गण्य कारवागिनपका भी इच्छान देवनेमें आता है। इसी

मदनोत्सव उपनयमें धीहर्षकी समामें रत्नावली-मादिकाका प्रथम अभिनय भेजा गया था। धीहर्षदेव सुप्रसिद्ध यज्ञ मर्गजीय थे, उनका दूसरा नाम गिता-द्विय भी था। ११० से १५० ई० तक ये गिहासन पर धर्मिष्ठित थे। प्रसिद्ध चीनपरिचयाज्ञक यूएनपुवजू उनमें भेंट को पो। इस समय धीहर्षदेव समय उत्तर भारतके भारतीयमिक सम्राट् थे। रत्नावलीकी प्रस्ता-पनामें लिखा है, कि इस मदनोत्सवमें शामिल होनेके लिये उनकी राजधानीमें बहुतसे सामान्यराज निर्मलिन हुए थे।

पहले दो कहा जा चुकाहै, कि भारतीय जातीय मदनो-त्सव कबसे होलीमें परिणत है, उसका ठीक प्रमाण नहीं मिलता। पर हां, इतना अवश्य जाना जाता है, कि जब भारतवर्षके अनुल प्रतापसे समग्र यनिया शब्दका जलस्थल समुपम्वन था। स्थलपथमें गांधार, बाहोके, निरवन, तातार और महाजोन तथा जलपथमें लड्डा, सुमात्रा, यद्यद्वीप और जापान तक बौद्धप्रभाय दिखी देता था, भारतीय पाणिजपदक्ष बणिष्-भारत और प्रमान्त-महासागरमें अर्णयपोत द्वारा हीवने हीपान्तको जाते थे, नार्ददाके सुप्रसिद्ध बौद्ध-विद्यालयमें गाना देवने गाना जातीय अर्णयपनजोड टाल विविध विचार। अनुजोन्ड करने हुए भारत-भारिषको मर्वात्र घोषित करने थे, उस समय इस मदनोत्सवका अनुष्ठान प्रभा-था। बहुतेरे प्रलयैयर्षां पुराणके—

“मन्वन्तानुपुष्करी बुद्ध मद्र मधुम ।  
भारतपूर्व क्विरं द्रपका परमेरसे ॥”

इस मन्त्रमें धीहर्षको अश्वर प्रदानकी प्रथा विन देव कर होलीका मूय मान सकते हैं, पर शीत-स्वर्ष मदनोत्सवमें अश्वर लगाने थे, यही उस समयका चेत था। अभी मदनोत्सवके परिचर्षनधी तद्व अश्वरका भी यर्षा विचर्ष हो गया है। विलापनी रंग-के प्रभावसे मागरीहीके कपडे मोले ये गनी भादि रंगी-से रंगये है। उस समय मदनोत्सवमें काहे कीहृम-से रंगये जाते थे। अश्वरमें गान और शुकुंममें चीन यर्षाकी प्रधानता थी। उस समय वाहोके, बाहोके

और फारस देशसे उत्तम, मध्यम और अधमके भेदसे तीन प्रकारके कु'कुमकी' आमदनी होती थी ।

मदनोत्सव अभी विख्यात होली-पर्यन्त रूपान्तरित हो गया है। वृन्दावनमें भगवन्नारायणरूपमें श्रीकृष्ण और बलरामके उद्देशसे यह होली उत्सव मनाया जाता है। पुरीधाममें भी जगन्नाथकी पुजाके उपलक्ष्यमें होलीका आयोजन होता है। उक्त दोनों ही क्षेत्रमें भगवान्के उद्देशसे फाल्गुन शुक्लपक्षकी प्रतिपदसे ले कर पूर्णिमा तक फल्गु-उत्सवका अनुष्ठान होता है।

केवल हम लोगोंके देश भारतवर्षमें ही नहीं, सुदूर इङ्ग्लैण्ड आदि अङ्ग्रेजी राज्योंमें भी इस वसंत-पूजाका विधान देखा जाता है। पूर्वतन अङ्ग्रेजोंके मई दिनमें ( Merry-makings on May Day ) आनन्दोत्सवका विधान था, आज भी बहुतसे अङ्ग्रेजोंमें "May fool" बना कर आमोद-प्रमोद करनेकी रीति है। मधुराके बाघेन ग्राममें जिस प्रकार बाजे गाजेके साथ होली-उत्सव मनाया जाता है, ठीक उसी प्रकार रोम-राजधानीमें फालिक-अरगी ( Phallic orgies ) मनाया जाता था। जुभिनेल ( Juvenal ) और कैटलस ( Catullus )के बनाये हुए प्र'धोंमें उसका यथेष्ट आभास मिलता है। प्रोसर्राज्यके सु'नुनिसियामें भी भारतीय होली-उत्सवका प्रतिरूप निदर्शन पाया जाता है। यहां भी शस्यश्रमाला प्रकृतिकी प्रतिमूर्त्ति फेलस ( Phallus )के उत्सवमें दोलयात्राकी तरह एक यात्रा और उत्सव मनाया जाता था तथा वर्त्तमान प्रजवासिवाँकी तरह ये लोग भी शराबमें चूर हो कर आनन्द लूटते थे। फेलसके उत्सवमें शराब नहीं पीना उत्सवकारीके लिये घृणाका विषय था।

मदनमालिनी ( स'० खी ) वासवदत्तामें वर्णित एक नायिका।

मदनमोदक ( स'० पु० ) वाजीकरणाधिकारमें मोदक औषधविशेष। यह मोदक स्वल्प और घृह्णके भेदसे दो प्रकार है। प्रस्तुत प्रणाली—त्रिकटु, त्रिफला, कुट्ट, कचूर, सैन्धवलयण, धनिया, कर्कटशुद्धी, तालीशपत्र, कटफल, नागेश्वद, यमानी, यष्टिमधु, मेथी, जीरा, कृष्ण-जीरा, प्रत्येकका समान चूर्ण, कुछ भुना हुआ बीज

सहित सिद्धिचूर्ण, यह सब चूर्ण मिला कर जितना हो, उतनी चीनी तथा उतना ही घृत और मधुके साथ षोडश वनानेके नियमानुसार यह मोदक बनावे। इस प्रकार प्रस्तुत मोदकको स्वल्प मदनमोदक कहते हैं।

महामदनमोदककी प्रस्तुत प्रणाली—शतावरोचूर्ण, भूमिकुम्भाएडचूर्ण, विज्वन्दका मूलचूर्ण और छालचूर्ण, गोशुरबीजचूर्ण और पिठवनका चूर्ण कुल मिला कर २ पल घीमें भुना हुआ बीज सहित सिद्धिचूर्ण ८ पल, शर्करा ३२ पल; पाकार्थ शतमूलीका रस, भूमिकुम्भाएडरस और दुग्ध, प्रत्येक ८ पल ( किसीके मतसे दूध १६ पल ) इन्हें एकत्र कर यथानियम पाक करे। पीछे पाक सिद्ध हो जाने पर उसे उतार ले और ऊपरसे कृष्णतिलचूर्ण २ पल, त्रिकटु, दारचीनी, तेजपत्र, इलायची, सैन्धव, धनिया, जायफल, जयिती, वाला, जीरा, कृष्णजीरा, कचूर, मोथा, सौंफ, मुरामांसी, जटामांसी, तालीशपत्र, तेजपत्र, चारैन्द्र ( सड़ी पत्तियां ), हरीतकी, सोर्वा, चर्द, देवदारु, प्रियंगु, लवङ्ग, सरलकाष्ठ और शैलज इन सब द्रव्योंमें जो भुनने लायक हैं गन्धद्रविके लिये उन्हें भुन कर चूर्ण बनावे और तब डाल दे। सैन्धव और त्रिकटु उसी हिसाबसे देना चाहिये जिनसे वह सुस्वादु हो। मोदक प्रस्तुत हो जाने पर उसे त्रिकटु और विज्जालकचूर्णमें मिला कर मिट्टीके बरतनमें रख दे।

यह मोदक वाजीकरणाधिकारमें प्रधान मोदक है। इसका सेवन करनेसे खीमसज्जमें अधिक क्षमता उत्पन्न होती है।

मदनमोहन ( स'० खी० ) गणिकारिका, गनियारका पेड़।

मदनमोहन ( स'० पु० ) मदन उन्मादकश्चासी मोहन-श्चेति कर्मघा०, मुह-णिच-त्सुट् । श्रीकृष्ण ।

मदनमोहन तर्कालङ्कार—एक विख्यात गणितज्ञ। १७३४ शक ( १८१५ ई० )में नरिया जिलेके विल्वग्राममें इनका जन्म हुआ था। इनके पिता रामधन चट्टीपाषाण्य कलकत्ता-संस्कृत कालेजके एक पुस्तक लेखक थे। उनकी मृत्युके बाद उनके भाई रामरत्नने मदनमोहनको कलकत्तेके संस्कृत कालेजमें भर्त्ता करा दिया। पर यहाँ

२१' २१' ३० तथा देना ० ८१' ५३' २०' पू०के मध्य अय-  
स्त्रिय है । यहाँ मद्राण्यन नामक उपरुष्ट बरभेडा कार-  
वार है । मद्रुनेत्र-मणिषीकी मद्रुनीपनकी कोठोने यहाँ-  
का वास्तुशास्त्रय थायता है ।

मद्रमयोग ( मं० पु० ) मद्रुय प्रयोगः । करिवीका मद्रो-  
डम, हाथियोंका मद्रु भूयता ।

मद्रुमंत्रिनी ( मं० स्त्री० ) मद्रु उन्मत्तता भनक्ति, दूतो-  
करोतीति मद्रु-भनञ्ज ( मन्त्रिण्यदिभ्यो ऋण्यन्त्यः ।  
यः ३।१।१५ ) इति लिति, म्रियां ङीप् । अतमृत्वी ।

मद्रुमण ( मं० वि० ) मद्रुन मणः । १ मद्रु द्वारा उन्मत्त,  
मरीमें मृर । म्रियां ङीप् । २ उन्मोमेद्र ।

मद्रुमुग् ( मं० वि० ) मद्रु-मुग्, विष्णु । मद्रुमयो, त्रिरमे  
मद्रु भयता हो ।

मद्रुम्लिका ( मं० स्त्री० ) मद्रुम्ली ततः कन्, टाप्, पूर्व-  
ह्रस्वय । मन्त्रिका, घेता ।

मद्रुमती ( मं० स्त्री० ) मद्रु-मृय, ङीप् । यनमल्लिका, घेता ।

मद्रुमती—मृयंपंजीय कन्नापपादकी रामपती । कन्नापपाद  
मद्रु वेणो । शाहजीके जायमें पुरोत्पादनमें द्रम हो  
कर सामने भयता पला मद्रुमतीकी यनिष्ठके हाथ मीप  
दिया । यनिष्ठमें मद्रुमती मर्मपती हुई । सात पर्य तक  
जय को मंगल भूमिष्ठ न हुई, तब परशुरसे उमका मर्म  
विरोध किया गया । इस प्रकार जो बालक उत्पन्न हुआ  
उमका नाम मद्रुमक पडा ।

मद्रुमि ( मं० वि० ) मद्रु-मिष्, मृच् । मत्तनाजनक,  
मत्तयाना करने वाला ।

मद्रुमिष्णुः ( मं० स्त्री० ) मद्रुमतीम मद्रु-मिष्णु ( मन्त्रिण्य-  
दुर्गन्दिभ्यो ऋण्यन्त्यः । उण् ३।२३ ) इति मद्रु-मिष्णुच् ।  
१ मत्त, जराय । ( पु० ) २ कामदेव । ३ मीणिक, कन्-  
वार । ४ मद्रुमक । ५ मेष, दास ।

मद्रुमसा ( मं० पु० ) विद्यालय, पाठशाला ।

मद्रुमय ( मं० पु० ) १ मद्रु । २ मत्तनाजनित मद्रु-  
मुक क्वालि, मरीमें मृर कोयी मनुष्य । ३ मत्त कुचरुद्र,  
पापल मृगी ।

मद्रुमय—आशयर्षके द्वाित्तमें विष्णु मक प्रांतका नाम ।

विष्णु विश्व कन्नाय मद्रुमें देव ।

मद्रुमिष्णुर ( मं० पु० ) कामदेवका दक मण ।

मद्रुमेगा ( मं० स्त्री० ) १ उन्मोमेद्र, एक यनिष्ठ दूतिका  
नाम । इयके प्रत्येक चारणमें सात सात मर्ण होते हैं  
त्रिनमें पहले मण्य फिर सगण और अंतमें मुद्रु होता  
है । २ मन्पासे हाथीकी पंक्ति ।

मद्रुपरिविद्यम—मान्द्राप्रवेदनके तिष्ठे यन्तीं त्रिस्तोमोत्त  
नगर । यह अक्षां १' ३०' उ० तथा देशां ०३' ३८'  
२०' पू० श्रीविठ्ठलपुर नगरके ममीय अवस्थित है । यहाँ  
एक सुन्दर मंदिर और नियन्त्रय विद्यमान है ।

मद्रुपारि ( मं० स्त्री० ) हाथीका मद्रुमन् ।

मद्रुविशाल ( मं० पु० ) मद्रु म विशालमद्रुयनितमनाः ।  
मन्तहस्तो, मत्ताना हाथी ।

मद्रुवृत्त ( मं० वि० ) सोमपानमें हृष्ट ।

मद्रुवृत्त ( मं० पु० ) १ हस्तो, हाथी । २ मद्रुममृत्, जराय-  
का टेर ।

मद्रुनाक ( मं० पु० ) मद्रुकरः शोकोऽस्य । उपोद्की,  
पीठ ।

मद्रुशीघ्रक ( मं० पु० ) ज्ञापकाल ।

मद्रुसार ( मं० पु० ) मद्रु सारयति दूतोक्तोति इति मद्रु-  
मृ-ण्यच्, अण् । मृत्पुस, शहमृत्तका पेड़ ।

मद्रुस्यन् ( मं० स्त्री० ) मद्रुस्य स्थानं । १ मद्रुस्थान,  
जराय पीनेकी जगह । २ मुरापान ।

मद्रुस्थान ( मं० स्त्री० ) मद्रुस्य स्थानं । मद्रुपानस्थान,  
जरायस्थान ।

मद्रुहस्तिनी ( मं० स्त्री० ) मद्रुन हस्तिणीय । महाकरज,  
बड़ा करंज ।

मद्रुदि—आसाम-मद्रुनायामी पार्वतीय यम्यत्रातिविगेय ।  
मणिपुर सोमंतमें इनकी बली पार जाती है ।

मद्रुहेतु ( मं० पु० ) मद्रुस्य हेतुः । १ चातकी, घायक  
पेड़ । २ मत्तनाकारक ।

मद्रुगिष्ठ ( मं० स्त्री० ) १ बांध, दकावट । २ प्रयेम,  
अधिकार ।

मद्रुगिष्ठनयेता ( मं० स्त्री० ) १ बे-अधिकार जगदमें  
प्रयेता । २ अनुगिष्ठ हस्तीय, यैरी वापमें हस्तीय  
करना शिममें वैसा करनेका अधिकार न हो ।

मद्रुय ( मं० पु० ) एक अरिचा नाम ।

मद्रुय ( मं० पु० ) मद्रुन मद्रुमयर्षीय ताद्रीति क्वालि

आँच्यां युक्तः । १ तालवृक्ष, ताड़का पेड़ । ( ति० ) २ मद्ययुक्त ।

मदाद्या ( सं० स्त्री० ) मद्येन आद्या । लोहितभिक्ष्यो, लाल कटसरैया ।

मदातङ्क ( सं० पु० ) मद्यजनितः आतङ्कः रोगः । मदात्यय रोगः । मदात्यय देखो ।

मदात्यय ( सं० पु० ) मद्येन अत्ययो नाशोन्मुखता अन्न । मद्यपानजनितरोग, एक प्रकारका रोग जो शराव पीनेसे होता है । पर्याय—मदातङ्क, पानात्यय, मद्यध्याधि, मद्य ।

( राजनि० )

इस रोगका निदान—विषमें जिस प्रकार सन्निपात-प्रकोपणादि गुण हैं, मद्यमें भी वही सब गुण पाये जाते हैं । किन्तु दिव्यमें वे सब गुण अधिक मात्रामें रहने हैं, इस कारण अनियमसे, अधिक मात्रामें वा अहितजनक द्रव्योंके साथ कुसमयमें मद्यपान करनेसे यह मदात्यय रोग उत्पन्न होता है । अर्धमद्यपान करनेसे नाना प्रकारके विकार उपस्थित होते हैं । आहारिये द्रव्योंका उल्लङ्घन कर अतःप्ररत मद्यपान करनेसे अत्यन्त क्लेशकर मदात्ययादिरोग उत्पन्न होता है तथा उससे शरीर विनष्ट हो जाता है ।

इस रोगकी उत्पत्तिका दूसरा कारण—क्रोधयुक्त, भोत, पिपासासक्त, शोकाग्निभूत, क्षुधित, ध्यायामकारी, भारवाहो और पर्यटनप्रयुक्त, क्षीण, मलमूत्रादिका वेगरोधकारी और अनिघातादि द्वारा आहत व्यक्ति यदि मद्यपान करे, तो उसे नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं । अत्यन्त जलपान करने अथवा कृषो वस्तु खानेसे पेट अफरने लगता है । इससे खाई-वस्तु नहीं पचती और शरीर दुबल हो जाता है । ऐसी अवस्थामें मद्यपान करनेसे मदात्ययरोग उत्पन्न होता है ।

इस रोगका सामान्य लक्षण—अत्यन्त शारीरिक फ्लेश, मोह, हृदयमें वेदना, अर्धचि, सर्वदा पिपासा, ज्वर, कमी शीत, कमी उष्ण, शिरःपीडा, पाश्च और विकस्थानमें वेदना, अस्थिसंधिमें वेदना, अतिशय जृम्भण, स्फूर्ण, कम्पन, ध्रान्तिबोध, हृदयका अवरोध, कास, हिवा, श्वास, निद्राशय, शरीरकम्प, कर्णरोग, नेत्र-रोग, मुखरोग, वातजबमि, पित्तजमलभेद, कफज यवनो-

द्वेग, भ्रम, प्रलाप और असाधुताका लक्षण दिखाने देता है । रोगो चित्तभ्रंश हो चुण, भ्रम, लता, पत्र और धूलिपूर्ण वा पक्षिगण कर्तृक आक्रान्त बोध करता है, तथा व्याकुलताके साथ अलोक स्वप्न देखता है ।

यह मदात्यय रोग वातज, पित्तज, श्लेमज और त्रिदोषज है । वातज मदात्ययका निदान है—खीप्रसङ्ग, शोक, भय, मारवहन और पथपर्यटन द्वारा देहफलेदा । रूखी वस्तु वा अल्प और परिमित भोजन करनेवाला व्यक्ति यदि रूखी वा परिणत मद्य रातको जग कर अधिक मात्रामें सेवन करे, तो उसे शीघ्र हो यह वात-जन्य मदात्ययरोग होता है । इस वातिक मदात्ययरोगमें हिष्का, श्वास, शिर घूमना, पाश्चेशूल, अनिद्रा तथा अत्यन्त प्रलाप उपस्थित होता है ।

पित्तज मदात्ययका निदान है—अत्यन्त अम्ल, उष्ण और तीक्ष्ण द्रव्यका भोजन । क्रोधान्वित व्यक्ति यदि तीक्ष्ण, उष्ण और अम्ल मद्य अधिक मात्रामें सेवन करे, तो भी यह तीव्रतर पैत्तिक मदात्यय रोग उत्पन्न होता है । इस रोगमें पिपासा, दाह, ज्वर, धर्मोद्भ्रम, मोह, अतीसार, विभ्रम और शरीर हरिद्वर्णका हो जाता है ।

श्लैमिक मदात्ययका निदान—जो व्यक्ति किसी प्रकारका पित्तधम नहीं करता अथवा दिव्यको सोना, बेकाम बैठना बहुत पसन्द करता है तथा मधुर, स्निग्ध और शुभ द्रव्य खाता है, वह यदि अधिक मात्रामें मद्यपान करे, तो उसे शीघ्र हो श्लैमिक-मदात्ययरोग उत्पन्न होता है । इस रोगमें वमि, अर्धचि, हृत्श्वास और तन्द्रा होती और ऐसा मालूम होता है माणो शरीर आर्द्र-वस्त्र-से अच्छादित हो ।

त्रैदोषिक मदात्ययरोगमें उक्त सभी प्रकारके लक्षण दिखाने देते हैं तथा इसकी उत्पत्ति ऊपर कहे गये कारणोंसे होती है ।

यह मदात्ययरोग पानात्यय, परमद्य, पानाजीर्ण और पानविभ्रमके भेदसे कई प्रकारका है । कफकी अधिकता, देहकी शुच्यता, मुखकी विरसता, मलमूत्ररोध, तन्द्रा, अर्धचि, पिपासा, नरःपीडा और गण्डोंमें यूरे चुम्बनेसे वेदना होनेसे परमद्य नामक मदात्यय जानना चाहिये । पानाजीर्णरोगमें उद्राध्मान, उद्रार और दाह उपस्थित



पीले। इससे वमि, मूच्छा और अतीसार संयुक्त मत्ता बहु ज्वर दूर हो जाती है। मद्यपान करके यदि उसी समय घृतसंयुक्त चीनी चाटे, तो मत्ता जरा भी नहीं आती।

( मत्तम० मदात्यम्पेगाधिका० )

मदान्य ( स० त्रि० ) मदेन अंधः । मद्मत्त, नशोमें अंधा ।

मदामद ( स० त्रि० ) सदा मदीमत्त, हमेशा नशोमें चूर ।

मदाप्रात ( स० पु० ) मदाय मत्ततोद्रेकाय आप्नोयते वाचते स्मेति आ-म्र-कर्मणि क । गजलका, वह बड़ा ढोल जो हाथीकी पीठ पर बजाया जाता है ।

मदाम्वर ( स० पु० ) मदी दानवारिअम्वरमियास्यच्छादक-त्यात् । मत्त हस्ती, पागल हाथी ।

मदार ( स० पु० ) मायति मत्तो भवतीति मठ ( अङ्गि-मदि मन्दिभ्य आत् । उण् ३।१३४ ) १ हस्ती, हाथी । २ धूर्त, चालवाज । ३ शूकर, सूअर । ४ कामुक, अशोक । ५ गन्धमेद, एक प्रकारका गंध द्रव्य । ६ मस्तहस्ती, पागल हाथी । ७ नृपमेद, एक राजाका नाम ।

मदार ( हि० पु० ) १ अकवच, आक । २ मदारी देलो ।

मदारगदा ( हि० पु० ) धूपमें सुखाया हुआ मदारका दूध । यह प्रायः शीघ्र आदिमें डाला जाता है ।

मदारिया—मदारी देलो ।

मदारी ( अ० पु० ) युक्तप्रदेशवासी मुसलमान फकीर-सम्प्रदायविशेष । ये लोग शाह मदारके अनुयायी हैं ।

मकनपुरकी शाह मदार-मसजिदमें जो विचरण लिखा है, उससे मालूम होता है, कि शाह मदारका जन्म १०५० ई०में एक यहूदीके घर हुआ था और यह स्वयं इस्लाम धर्ममें दीक्षित हुए थे ।

ये फरखावादमें रहते थे और सुलतान शरफोके समय कानपुर आये थे । उस समय कानपुरमें 'मकनदेव' नामक जिन रहता था । शाह मदार उस जिनको वहाँसे निकाल कर वहाँ रहने लगे ।

इससे उस स्थानका नाम मकनपुर पड़ा । उनके बहुतसे शिष्य प्रशिष्य थे । ( २६८ हिजरी : १४३३ ई० )

में १५वीं जमादिउल अथलको उनकी मृत्यु हुई । सुलतान इब्राहिम द्वारा निर्मित उनकी एक समाधि मकनपुरमें विद्यमान है ।

ये लोग हिंदूयोगी और संन्यासियोंकी तरह शरीरमें भस्म लगाते हैं, गले और मस्तकमें लौहचूर्ण बांध कर तथा सिर पर टोपी और काला निशान धारण कर घूमने निकलते हैं । ये लोग कभी भी नमाज नहीं पढ़ते और न किसी त्योहारमें उपवास ही रहते हैं ।

प्रायः सभी भंगके नशोमें चूर रहते हैं ।

ऐतिहासिक आलोचनासे मालूम होता है, कि शाह मदार जौनपुरराज इब्राहिमशाह शरफोके शासनकालमें मकनपुर आ कर बस गये थे । स्थानोप प्रवाद है, कि ये चौहानराज पृथ्वीराजके समसामयिक थे और ३८३ वर्ष तक जीवित थे । मृत्युकालमें श्वास रोक कर योगायलम्बन करनेसे उनकी मृत्यु नहीं हुई थी ।

दम रोक कर प्राणरक्षा की थी, इस कारण मृत्युके बाद 'दममदार' नामसे एक उत्सव मनाया जाता है । आज भी मुसलमानोंमें 'दममदारपर्व' देखा जाता है ।

ये लोग इन्हें 'जिन्दाशाह' कहते हैं और अब तक जीवित मानते हैं । रमणो जातिके ऊपर ये बड़े चिरक रहते थे । प्रवाद है, कि रमणियोंके उनके समाधिस्थलमें पहुँचते ही ये हृदयमें दाह और घेदना अनुभव करती हैं ।

कानून-इ-इस्लाम नामक ग्रन्थमें 'धम्माल कुट्टना' नामक इन लोगोंका एक उत्सव देखा जाता है । इस दिन ये लोग एक अग्निकुण्ड बना कर शाह मदार फकीरोंको इकट्ठे करते हैं । 'फतिहा' समाप्त करनेके बाद वे सब फकीर अग्निकुण्डमें चन्दनकाष्ठ फेंकते हैं ।

पोछे उनमें जो प्रधान फकीर रहता है वह सबसे पहले 'दम-मदार' शब्दका उच्चारण करते हुए अग्निमें कूद पड़ता है । बादमें और सभी फकीर उसके पाँछे पोछे उक्त मन्त्र पढ़ते हुए चलते हैं ।

फकीरोंका अग्निविचरण शेष हो जाने पर ये लोग दूध और चन्दनसे उनके पैर धोते हैं । पोछे उन लोगोंके गलेमें माला डाल कर शरदत पान और भोजनादि कराया जाता है ।

मदारियोंके मध्य दो श्रेणों हैं, तकादार और मदेङ्गण । तकादार मदारी विवाहादि करके घरमें रहते हैं और मदेङ्गण संन्यासीकी तरह शहर उधर विचरण कर दिन बिताते हैं ।



होता है। वैज्ञानिक महात्पत्य जिन सब कारणांशों उपरान्त होता है, उन कारणांशोंमें से भी उन्हीं सब कारणांशों में कुछ कारण है। वास्तविकरोगमें इत्य और उत्तरेमें वेदना, शक्त्याप, कष्टसे पुनश्च निर्गम, मूत्रघा, रसि, मलम, निरालोका और सुषुका कर्तसे निजमाय मादुम होता तथा ताका प्रहासे, मीरेय, सुषु, विदक, मृदु, कति सुषुविदुति और अतविदुतिसे विदुप उपरान्त होता है।

अमाशय महात्पयोगका लक्षण—जिस महात्पय-रोगीके रोग लक्षण हो कर सोयेको और गटक गये हो, जिनका पित्तभोग अत्यन्त तीव्र हो गया हो, तीव्रसे जलन देता हो, मूत्र मीठान, तिहा और दन्त घृण या मोचरत्न हो गये हो, यैदको ऐसे रोगीका पित्तियाग करना चाहिये। तिक्का, मय, कम्प, पादुयुद्ध, काम और सुषुपांशुपित्त पानाहत रोगीका भी पित्तियाग करना उचित है।

इस रोगकी चिकित्सा—जिस प्रकार अग्निद्वय स्थानमें अग्नि उरता रुद्ध देना हितकर है, उसी प्रकार मद्य सोनेसे उत्पन्न रोगमें मद्यपान बहुत लाभदायक पणजाना गया है। अनियम या अतिमात्रामें मद्यपान द्वारा जो रोग उत्पन्न होता है, उसे रोकनेके लिये उग-मुक्त अथवा समपरिमाणमें मद्यपान करे।

महा मीठ, घीरत, देर, अनाके रस और घृतकी एकल पर मूत्र जोरसे समते, पीते उगमें अन्नपायन, दूध, जोरा और मीठका जूना तथा मीठप पयामन्मय डाल कर चरनी कराते। अतस्त उरके साथ मद्यपान करनेसे बहुत पुनश्च पात-पैजित महात्पययोग दूर होता है। मद्य ४ पाल, मीठमेठ २ माता, चिकटुका जूना ४ माता और जल २ कर्ष एकल मिया कर पीनेसे वातिक पातपत्य समाप्त होता है। अं, मीथयं, हिमु, विजोला मोक्षुका तिक्का, मीठ और अन्नपायनका सर्ण डाल कर मद्यपान करनेसे पातपत्य योग प्रालोभा होता है। मद्य, मीठ और मीठ ये सब पदार्थ, मूत्र, मत्प्य और आन्तु मांसका रस अन्नके साथ सुषुपांशु निजमाय उग मद्य अन्नप्रद तथा मीठके रस दूर निजमाय प्रथके साथ मद्यपान करनेसे वातिक महात्पत्य दूर होता

है। यीपनमजोगका कामनिर्घोका गाहभानिदु, सुषुजनक रूपजत्पा, उग भाष्यादन भादुने भी प्रथम वातिक महात्पत्य दूर होता है। वैज्ञिक महात्पत्य रोगमें मद्य पकानको तीव्र किया हितकर है तथा सोनी और मधु संयुक्त अर्ध जलमिश्रित प्रयोगमें उचित है। मद्य, दाम, पालसा और अनाके रस द्वारा तीव्र मद्य अथवा सोनी मिश्रित माषुधोद्यम अथवा अल्प कोई मद्य अथवा परिमाणमें जल मिया कर पीनेसे वैज्ञिक महात्पत्य अतितीव्र दूर हो जाता है।

जनक, कपिजन, हिरण, अमितपुच्छ लाप और बहरेके मांसका रस, अन्नरसमुक्त दूध, परचलके पक्षीका जूरा, उदु और मूंगका जूरा तथा अन्नर और सोपके साथ धान या सारो धानका चाणद, अथवा दाम, सोपला, मद्य और पालमेका जूस और मांसरस नामा प्रकारका गर्पण प्रयोग, तीव्र अन्न, पानोप, तीव्र स्थानमें सोना और पैठका, तीव्र पापु रंगद, तीव्रजल सोपयंग, पटपत्र, पत्र, उत्पल, मणि, मुका और चन्दनमिक तीव्र जलस्यारं तथा चन्द्रिकरत्नोपक वैज्ञिक महात्पत्य रोगमें विशेष उपकारी है।

इत्यैविक महात्पत्य रोगमें अन्नपायन और चिकटुके जूनाको मिला कर यज्ञार्पण तथा जी और गेठु जातिके अन्नको दक्ष जूसके साथ भोजन कराये; अथवा अत्यधिक कटुद्वय-जूनाके साथ जीको बनी हुई गोत्र खानेसे दे। बहरेके मांसका रस अथवा जंगली जानवरके मांसका रस, दक्ष अथवा अल्प अन्नमिश्रित कर पान करनेसे इत्यैविक महात्पत्य रोग समाप्त होता है। मद्यके बरतनमें कटु, अम्ल और लवणमिश्रित मोरम मांस भूत कर मिलातेसे जो इत्यैविक महात्पत्य दूर होता है। इस रोगमें रोगीको पानकारक दूधसंयुक्त मद्यपान कर कर पान और रोगीके कलानुसार उपचार कराये।

वातिक, पैतिक और इत्यैविक महात्पत्यरोगमें जो सब नियमों बतलाई गई हैं, माश्रितवातिक महात्पत्यरोग में भी उन्हें मिश्रितमायमें प्रयोग करे।

कौटुके रसकी मुहके साथ रंगन करके कौटु अल्प मात्रा अग्नि तीव्र दूर होता है। सुषुपांशु मद्यो पदि कला को ज्ञाप, जो उगो समय पेट भर करने

कुण्डलाने पुनः कहा, 'आप ऐसा न करें, क्योंकि ये देव-कन्या हैं, इनसे विवाह करनेमें कोई दोष नहीं होगा।' राजकुमारके सहमत होने पर उनके कुलगुरु तुम्बुय वहां आये और वैवाहिक विधि यथारिती सम्पन्न की।

मदालसाको व्याह कर ऋतुध्वज आ रहे थे, कि मार्गमें दैत्योंने उन पर आक्रमण किया। युद्ध होने लगा। अकेले ऋतुध्वजने समस्त दैत्यसेनाको उन्मत्त हस्तीके समान मथ डाला। ये जय प्राप्त कर निर्विघ्न स्त्रीके साथ पिताके राज्यमें उपस्थित हुए। यज्ञ आ कर राज-कुमारने आशोपान्त कुल घटना पितासे कह सुनाई। पिता बड़े प्रसन्न हुए और पुत्रकी भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे।

कुछ दिनोंके बाद राजाने पुनः पुत्रसे कहा, 'तुम इस बार ब्राह्मणोंके लिये पृथ्वी पर पर्यटन करो।' ऋतुध्वज पिताकी आज्ञासे भूलल पर पर्यटन करते करते एक दिन यमुनाके किनारे पहुँचे। वहां पातालकेतु दानव-का छोटा भाई तालकेतु मायाबलसे मुनिका रूप धारण कर एक आश्रममें रहता था। तालकेतुने अपने भ्रातृ-हन्ता ऋतुध्वजको देखते ही पहचान लिया और उनसे बदला चुकानेके लिये अथसर दूढ़ने लगा। उसने ऋतुध्वजसे कहा, 'राजकुमार! आप ब्राह्मणोंकी रक्षाके लिये भ्रमण कर रहे हैं। मैं एक यज्ञ करना चाहता हूँ, पर दक्षिणा देनेकी शक्ति मुझमें नहीं है, अतएव मैं यज्ञ भी नहीं कर सकता हूँ। यदि आप अपना यह मणिमय हार मुझे दे कर मेरे आश्रमकी रक्षा करें, तो मैं जलमें प्रवेश कर धरुण-का स्तय कर आऊँ।' यह सुन कर ऋतुध्वजने अपना हार गलेसे निकाल कर उस ऋषि-रूपधारी दानवको दे दिया। ज्ञातेसमय वह दानव उनसे कह गया, कि जब तक मैं फिर कर न आऊँ तब तक आप मेरे आश्रमकी रक्षा करना। राजपुत्रका हार ले कर तालकेतु राजा शत्रु-जितकी सभामें आया और वही हार दिखला कर कहने लगा, 'घोर ऋतुध्वज मेरे आश्रमके समीप तपस्वियोंके रक्षाकार्यमें नियुक्त थे। पीछे यज्ञदेवी दैत्योंके साथ उनका युद्ध हुआ और वे मारे गये। इस भयङ्कर संवादको सुन कर मद्दालसा स्थिर न रह सकी, मूर्च्छित हो कर जमीन पर गिर पड़ी और फिर न उठी।'

इधर तालकेतु यमुना-तट पर लौट आया और युचराजसे बोला, 'हमारा यज्ञ समाप्त हो गया, अब आप जा सकते हैं। आपने मेरा बहुत दिनोंका मनोरथ पूर्ण किया, आपका मङ्गल हो। राजकुमारने उस कपटो ऋषिको प्रणाम कर पितुराजकी ओर प्रस्थान किया।

राजा और पुरवासिगण कुमारको देख कर नितान्त चिस्मित हुए। कुमारने पिताकी चरणयन्दना करके पूछा, 'पिता! आप ऐसे क्यों उदास हैं? साफ साफ कहिये।' पिताने आशोपान्त कुल घटना कह सुनाई। राजकुमार मद्दालसाको हृदयसे चाहते थे, अतः उसका मृत्युसंवाद सुन कर वे शोकसागरमें डूब गये। किन्तु पिता-माताके सामने शोकप्रकाश करनेमें वे लज्जा बोध करते थे, इस कारण मन ही मन इस प्रकार विलाप करने लगे,—हाय! उस साध्वीवालाने मेरा मृत्युसंवाद सुन कर ही प्राण छोड़ दिये और मैं उससे विमुक्त हो कर अभी तक जाता हूँ! अतएव मेरे समान निर्दय और निष्ठुर व्यक्ति संसार भरमें नहीं होगा।

इस प्रकार राजकुमारने षट् विलाप करनेके बाद मतिको स्थिर कर पत्नीके उद्देशसे जलदान और अन्याय कर्त्तव्य कर्म तो किये, पर प्राणप्रतिमाके विरहमें जरा भी चीन नहीं मिलता, रात दिन गभीर चिन्तामें डूबे रहते थे। इस समय उनके पूर्व मिल नागराज अभ्यतरके दो पुत्रोंने ऋतुध्वजकी ऐसी श्रवस्था देख कर अपने पितासे जा कहा, 'पिताजो! हम लोगोंके प्रिय सखा ऋतुध्वज अभी अपनी प्रियतमा मद्दालसाके विरहमें समस्त सुख-भोगोंका त्याग कर विषण्ण मनसे कालयापन करते हैं। मद्दालसा यदि उन्हें फिर मिल जाय, तो उनका सच-मुच भारो उपकार किया जायगा, किन्तु यह किसका साध्य है, दूसरेकी बात तो दूर रहे स्वयं ईश्वर भी यह काम कर सकें, स'देह है।

नागराजने अपने पुत्रोंकी बात सुन कर उत्तर दिया, 'मनुष्य यदि असाध्य जान कर कोई काम काज न करे, तो उद्यमहानियतः विशेष अनिष्ट होता है। अतएव अपने पुत्र्यन्तरका परित्याग न कर कर्ममें प्रवृत्त हो जाना उचित है। दैव और पुरुषकार इन दोनोंके बलसे सभी

२. बर्षाणां, समानां बर्षाणां । ३. बर्षादि  
कालाधिकारः ।

सप्तमोऽध्यायः ( ३०६ पु० ) सप्तमोऽध्यायः 'सप्त' इति  
विशेषेण दशमोऽध्यायः । सप्तमोऽध्यायः, एक सप्तमोऽध्यायः  
सप्तमोऽध्यायः ।

सप्तमोऽध्यायः ( ३०६ वि० ) सप्तमोऽध्यायः । सप्तमोऽध्यायः  
सप्तमोऽध्यायः ।

सप्तमोऽध्यायः ( ३०६ श्लो० ) सप्तमोऽध्यायः विष्णुके पुत्री कथा ।  
इति सप्तमोऽध्यायः सप्तमोऽध्यायः ।

सप्तमोऽध्यायः ( ३०६ श्लो० ) सप्तमोऽध्यायः विष्णुके पुत्री कथा ।  
इति सप्तमोऽध्यायः सप्तमोऽध्यायः ।

सप्तमोऽध्यायः ( ३०६ श्लो० ) सप्तमोऽध्यायः विष्णुके पुत्री कथा ।  
इति सप्तमोऽध्यायः सप्तमोऽध्यायः ।

सप्तमोऽध्यायः ( ३०६ श्लो० ) सप्तमोऽध्यायः विष्णुके पुत्री कथा ।  
इति सप्तमोऽध्यायः सप्तमोऽध्यायः ।

अथ सप्तमोऽध्यायः सप्तमोऽध्यायः । सप्तमोऽध्यायः सप्तमोऽध्यायः ।  
सप्तमोऽध्यायः सप्तमोऽध्यायः ।

इस समय मदालसाके प्रथम पुत्र उत्पन्न हुआ, पिता-ने उसका नाम विक्रान्त-रखा। मदालसाने पुत्रका नाम सुन कर हास्य किया। एक दिन विक्रान्तको किसीने मारा, वह रोते रोते घर गया और अपनी मातासे रो कर कहने लगा, 'तुम्हें अमुक अमुकने मिल कर पीटा है। मैं राजपुत्र हूँ। उन्होंने मेरो प्रतिष्ठा पर कुछ भी ध्यान न दे कर मुझको मारा है। आप इसका प्रतिविधान करें। उत्तरमें मदालसाने कहा, 'घटस! तुम शुद्ध आत्मा हो, आत्माकी प्रकृति नामके द्वारा कल्पित नहीं हो सकते। राजपुत्र वा विक्रान्त तुम्हारी उपाधि हैं। अतएव अपनेकी राजपुत्र समझ कर तुम्हें अभिमान नहीं करना चाहिये। तुम्हारा यह परिदृश्यमान शरीर पाञ्चभौतिक है। तुम्हारा यह शरीर नहीं है, फिर शरीर पर मार खानेसे रोते क्यों हो। तुम्हारे इन्द्रियनिबन्धों भी विविध भौतिक गुण और अगुण कल्पित हुए हैं। सभी भूत जिस प्रकार भूतोंकी सहायतासे अन्न और जलदानादि द्वारा परिपक्वित होते हैं, तुम्हारी उस प्रकार वृद्धि नहीं है, क्षय भी नहीं है। तुम्हारा यह शरीर आवरणमात्र है। यह शीर्षो हो जायगा, अतः मोहका कर्म आश्रय न लेना। शुभाशुभ कर्मबलसे ही तुम्हारे शरीरमें यह आवरण सन्निवृद्ध हुआ है। पिता, माता और स्त्री तथा आत्मीय अनात्मीय कोई भी कुछ नहीं है, तुम उन पर अधिकर स्नेह भी न करना। जो मोहाच्छन्न चित्तके हैं, वे ही दुःखकी दुःखके उपशमका कारण और भोगकी सुखलाम का हेतु समझते हैं।' विक्रान्त माताके निकट इस प्रकार आत्मज्ञानकी शिक्षा पा कर ज्ञानी और चासनात्यागी हो गये।

द्वितीय पुत्र भूमिष्ठ होने पर पिताने उसका नाम सुवाहु रखा। इस पर भी मदालसाने हास्य किया और इस कुमारको भी पहलेके जैसा आत्मबोधकी शिक्षा दी। शिक्षाके फलसे यह पुत्र भी ज्ञानलाम कर कामना और क्रियाविहीन हो गया।

इसके बाद तृतीय पुत्रके उत्पन्न होने पर राजाने उसका शलुमूढ न नाम रखा। इस बार भी मदालसाने हँस उड़ाई। पाछे मातासे आत्मबोधकी शिक्षा पा कर यह पुत्र भी संसारविरागी संन्यासी हो गया।

अनन्तर चतुर्थ पुत्रके भूमिष्ठ होने पर राजाने मदालसा-से कहा, 'तुम प्रतिशर हमारे नामकरण करनेके समय हास्य करती हो, इस बार तुम ही इस पुत्रका नाम रखो। मदालसाने इस पुत्रका नाम अलर्क (पागल कुत्ता) रखा। राजाने यह नाम सुन कर कहा, 'तुमने नितान्त असम्यग्धु नाम रखा।' मदालसा बोली, राजन्! लोका-चारसे एक नाम रखना होता है, इस कारण कोई एक नाम रख दिया। आपके रचे हुए नामोंमेंसे किसीका अर्थ नहीं है। प्राणपुरुषगण आत्माको सर्वव्यापी बत-लाते हैं। क्रान्ति शब्दसे, एक स्थानसे दूसरे स्थानमें गति, समझा जाता है। आत्मा सर्वज्ञ और सर्वव्यापी है तथा देहके ईश्वर है, तब फिर उनका गति कहाँ? अत-एव आपने विक्रान्त नाम रखा है, उसका कोई अर्थ नहीं होता। आत्माको कोई मूर्ति नहीं है, इस कारण दूसरे पुत्रका नाम जो सुवाहु रखा गया है, वह भी सर्वथा अर्थशून्य है।

तृतीय पुत्रका नाम जो अरिमर्दन रखा गया है, वह भी नितान्त असम्यग्ध है। इसका कारण यह है, कि एकाकी आत्मा समस्त शरीरमें विराजमान है, तब फिर उनके शत्रु तथा मित्र हो कहाँ? भूत द्वारा भूतोंका लय होता है। जिसको मूर्ति नहीं, उसका लय किस प्रकार हो सकता? आत्मा क्रोधादि सर्वविध दोषवर्जित है, तो फिर ये किस प्रकार शत्रुमर्दन कर सकते? यदि केवल व्यवहार-के लिये ऐसे निरर्थक नामको कल्पना की जाती है, तो मैंने जो चौथे पुत्रका अलर्क नाम रखा वह क्यों निरर्थक होगा?

इस पर राजा बोले, 'तुमने जो कुछ कहा, वह ठीक है, किन्तु अभी तुमसे मेरा यही अनुरोध है, कि तीन पुत्रोंकी उपदेश दे कर वनवासी कर चुकी हो अब इस छोटे पुत्र अलर्कको ऐसी शिक्षा दो जिससे यह अपने भाइयोंके मार्गका अनुसरण न करे। यदि वह भी संन्यासी हो जायगा, तो राज्यशासन कौन करेगा? मदालसाने उसे मंजूर कर लिया और अलर्कको राज-नीतिकी शिक्षा देने लगे। उनके उपदेशसे अलर्क राज-नीतिविद्यामें निपुण हो गया।

मदालसाने अपने पुत्रोंको जो उपदेश दिया था, वह

काम करने है। अन्तर में लक्ष्मणा करने जगता हूँ और  
जगता हूँ कि इस महाभारत काटके का दिया हूँगा।  
इसका कह कर मागसाज दिवाकरके पास प्रसादप्रदानकीये-  
ने गये और कतार लक्ष्मणा करने लगे।

मागसाजने अपनी लक्ष्मणा महाभारत और महादेव-  
की प्रणाम कर कर माँगा कि, 'बहुलापूरुवकी पत्नी  
महालक्ष्मणा जिस महाभारतमें मरी है, उसी महाभारतमें मे  
मैंने दूहिवा हो कर जन्मग्रहण करे।' परन्ते इनकी प्रियी  
कान्ति थी, जोर, वीर्यो ही कान्ति होये। ये मागो  
जातिहत्या तथा पदवीही तरह योगिनी और योगमाता  
ही मेरे पर जन्म हो।'

इस पर निवृत्तोंने कहा, 'मेरे प्रसादमें पदवी होमा,  
इसमें जग भी सम्भेद नहीं। भाव उपस्थित होने पर  
गुण भी प्रपन्नविण ही मज्जम विष्ट जाता। मध्यम  
विष्ट भावोंके कल्याण। जिस महाभारतमें मरी है जोर  
उसी महाभारतमें यह सुहावे कतारें जन्म हीगी।'

अन्तर मागसाजने पयाविधाय छाट करके मज्जम  
विष्ट भाव दिवा। पीछे ध्यान करते करते निश्चय  
का स्थाप करते हो उसके मध्यम कर्णमें क्षोणापूरी मदा-  
यमा जन्म हुईं। अन्तमें परमै मागसाजने उस सुदुर्गो-  
की स्त्रियोंकी महाभारतमें विष्टा रखा।

एक दिन मागसाजने अपने दोनो पुत्रोंके बहा, 'गुण  
दोनों राजकुमार मत्तप्यजके पाग जाओ और उन्हें  
निमज्जण कर पदवी बुद्धा होओ।' दोनो मागपुत्र पिता-  
की आज्ञाके राजकुमारके पदवी गये और मागसाजकी  
धनुर्मात्र बह सुहावे। मागप्यज बड़े मज्जम रूप और  
महावीरकी पद विष्टे। पदों मागसाजने कुमारका  
अध्याय साक्षात् किया और कहा, 'भद्र! मेरे परमै गुण  
मन्ते महाभारत ही, महाभारत विनाशुपित्तमें सुहावे  
जो विष्ट धनुष हो, मीमां, मैं महाभारत हूँगा।' मत्तप्यज-  
में उदा दिवा, 'मुझे सोने, चाँदी किमी धनुषकी प्र-  
दाय नहीं।' इतना कह कर उन्होंने अपने दोनो पित्रोंकी  
ज्ञाता दिया।

अन्तर दोनो मागपुत्रोंने पिताके घरलोकें हत्या  
कर कहा, 'पितामही! इनकी पत्नीके किमी पुत्राका  
देखी प्रमाण ही कर स्वामीके मृत्यु रक्षा पर मा-  
-

स्थाप किया है, महाभारत जन्म माग था, ये पदवी-  
कल्याण थी। अन्तों उमारे मिलीके विष्टे हक-  
मन महाभारत ही है, माग परि निजाल करार करके जो  
मज्जम करने हैं, इनका भावी उपकार होगा।'

मागसाजने कहा, कि पक्षभूतमें एक बार विष्टी  
होने पर फिर उनके साथ उसी प्रकार संयोग होना  
क्याय या अनुसूरी मायाके विष्टा और किमी उदायमें  
मज्जम नहीं है।

इस पर महाभारतमें प्रणाम कर महापुत्रिक उमारे कहा  
"तान! भाव पाँद इस समय महाभारतको माया करके  
भो दिया मके, तो मैं परम अनुसूहीक होऊँगा"

मागसाज बोले, 'परम! यदि माया देवनेकी इच्छा है,  
तो दहरे, दिखाना हूँ।' इतना कह कर मागसाज पाके  
मौतर गये और महाभारतको बाहर लाये। पीछे उन सोनो  
की भुजायमें उदायके लिये कुल भानुदूत मज्जम रूप राज  
पुत्रका महालक्ष्मणा दिखाना कर कहा, 'परम! देखो तो मरी,  
पद सुहावे भायां महालक्ष्मणा ही वा नहीं?' राजकुमार  
महालक्ष्मणाको देखने हो जोरके मुस्किज हो पड़े। महालक्ष्मणा  
सोचने मरी कि मेरे प्रति पुत्राका अनुसूरा पदवी जिया  
अविचलित है। अन्तों माया बतला कर मुझे दिख-  
साया गया है, मज्जमय मैं निष्टा हूँ, 'मायावक्य हूँ।  
पायु, आकाश, मेज, जल और वृष्टीके योगमें जिसको  
जन्म है वह मायाके विष्टा और क्या हो सकता है।'

अन्तर मागसाज साकारने जिस प्रकार गुण महाभारत  
की पुनर्जीवित किया था, वह सुहाया। महाभारत  
भायोंको पा कर पुत्रों न समाये और उसी समय उन्होंने  
अपने पीछेका स्मरण किया। स्मरणमात्रमें पीछा उनके  
सामने छाड़ा हो गया। 'अह ये मागसाजने प्रणाम कर  
स्वोगमंत पीछे पर सप्तर रूप और अपने घरकी लौटे।

पर पदवी कर राजकुमारने परमैऽप्यम महाभारत-  
की पुनः जिस प्रकार पाया, कुल ह्रास अपने पिताकी  
बह सुहाया। महालक्ष्मणा भो अनुसूरी और मायाकी प्रणाम  
कर स्वगतमेंकी पयावैद्य धनुर्मात्र की। इस प्रकार बहुत  
दिन किज जाने पर राजा मज्जिमू कायधर्मके धनुषकी  
हुए। पीछे भा कर महाभारतकी साक्षात् पर अति-  
विष्ट किया। महाभारत पुत्रके सामान प्रसादा प्री-  
दायन करने हुए राजकुमारन करने लगे।

तैयार की हुई मदिराका गुण—शीतल, गुह, मोहन, बल-वर्द्धक, हृद्य, रुग्णा और संतापनाशक । कई द्रव्योंको मिला कर जो मदिरा तैयार की जाती है उसे कादम्बरी कहते हैं । इसका गुण—सुमधुर, पित्तश्रमनाशक, मद्बद्धक । पेशव-मदिराका गुण—शीतल और मद्बद्धक । जौ और धानको मदिराका गुण—गुह और विष्टमदायक । सषकड और घातकीके पानीसे तैयार की हुई मदिराका गुण—शीतल और मनोहर । ( राजनि )

गौड़ोमद्य शिश(कालमें, वौष्टो मद्य हेमन्त और मर्षा-कालमें तथा माधवी मद्य शरत्, शीत और वसन्तकालमें पीना चाहिये । सुश्रुतमें मदिराका विषय इस प्रकार लिखा है—

मद्य—उष्ण, तीक्ष्ण, सूक्ष्म, विशद, रुक्ष, आशुकारी, ध्यायी और विक्राशी । उष्णताप्रयुक्त मद्य शैत्य, तथा तीक्ष्णताप्रयुक्त मनको गतिको नाश करता है, सूक्ष्मता-प्रयुक्त मद्य सब अवयवोंमें घुस जाता है, विशदप्रयुक्त कफ और शुकका नाश करता है, रुक्ष होनेके कारण यह वायुको विगाड़ देता है, आशुकारिता होनेके कारण देहमें शीघ्र कार्य करता है । व्यायायो मद्य हर्षोत्पादन, तथा विशदप्रयुक्त मद्य शरीरमें सञ्चरण करता है । यह अग्निसविशिष्ट, लघु, रुचि और अग्नि-शक्तिकर है । किसी किसीके मतसे लवण छोड़ कर और सभी रस मद्रांमें हैं । स्निग्ध अन्न, मांस और अन्यान्य मक्ष-द्रव्योंके साथ मद्यपान करनेसे वायु और बलको वृद्धि होती है । विधिपूर्वक पान करनेसे कामना, मनका तुष्टि, तेजः धैर्य, और अतिविक्रम आदि गुण उत्पन्न होते हैं । यदि अन्न भक्ष्य बिना मक्ष्य द्रव्यके अपरिमित मात्रामें मद्यपान करे, तो शरीरस्थित अग्निके साथ यह मिल कर मत्ता उत्पन्न करता है । मत्ता द्वारा इन्द्रिय भावके अन्याधा होनेसे भ्रम हो कर अप्रकाश्य निगूढ़ भावको प्रकाश करता है । मद्यसेवन करनेसे जब मत्ता भा जाती है, उस समय तीन प्रकारकी अवस्था देखनेमें आती है, यथा पूर्व, पश्चिम और मध्यम मत्ता-की पूर्ववस्थामें धीर्य, प्रीति, रति, हर्ष और वाक्शक्तिकी वृद्धि होती है । मध्यम अवस्थामें हर्ष, प्रलाप तथा न्याय और अन्यान्य दोनों प्रकारकी क्रिया संपादित होती है ।

पश्चिम अवस्थामें क्रियाशक्ति और चेतनाशक्ति जाती रहती है, उस समय यह भ्रम हो कर सो रहता है । अपरिमित मद्य पान करनेसे तरह तरहकी पीडा उत्पन्न होती है । इसका विषय पानात्पय शब्दमें देखो ।

अग्निसविशिष्ट सभी मद्य पित्तकर, अग्निकर, रुचि-कर, भेदक, चानश्लेष्माका शान्तिकर, सुखप्रिय, घमि-शोधक, लघु पाक, विदाहो, उष्ण, तीक्ष्ण, उत्तेजक, प्रसूत-कर और मलमूत्रवर्द्धक माना गया है ।

माद्रीक ( दाल और अंगुरका ) मद्य—अविदाही, मधुर, रुक्ष, पक्वात् कषाय, लघु, सारक, शोथ और विषमस्वरनाशक । मधुर होनेके कारण रक्तपित्त रोगमें भी इसका व्यवहार किया जाता है । खजूर और दालके मद्यमें बहुत थोड़ा प्रभेद है । खजूरका मद्य धायुप्रकोप-कर, विशद, रुचिकर, कफघ्न, एजाकारी, लघु, कषाय, मधुर, सुखप्रिय, सुगन्धित और इन्द्रिय-उत्तेजक माना गया है ।

सुरा—सामान्यतः काम, भ्रम, प्रहृणीदोष, मूत्राघान और धायु-शान्तिकर, स्तन्य, क्षय, पुष्टि तथा अग्निशो-कारो । श्वेता अर्थात् शर्कराजात सुरा—कास, धरो, प्रहृणी, श्वास, प्रतिश्याय, छर्दि, वाक्चि, हृद्य, पेटमें वेदना और शूलनाशक तथा मूत्र, कफघ्न रक्त और मांसघर्द्धक । जैसे संयोगसे प्रस्तुत सुरा—शोषण कफ, वात, अर्श और कोष्ठरोगका शान्तिकर, पित्त और अन्न कफकर तथा रुक्ष । मधुलिका अर्थात् सौंरका सुरा—मलमूत्ररोधक, गुह और श्लेष्माघ्नक ।

आक्षिप्ती ( तिनिशुश्रजात )—रुक्ष, अप्रकफकर, तेजोवृद्धि और परिपाककारक ।

कोहल ( तोक्ष्णमद्यविशेष )—वायु, पित्त और कफ-वृद्धिकर, भेदक, तेजस्कर और सुखप्रिय ।

जगल ( द्राक्षापरिश्रुत मद्य )—मलमूत्ररोधक, उष्ण, परिपाककर, रुक्ष तथा रुग्णा, कफ और शोफका शान्तिकर ।

बषकस ( मद्यविशेष )—हर्षजनक, प्रयादिक, घाटोप, भ्रम और धायुजय शोफका शान्तिकर तथा सारक, शक्तिरोधक, संप्राहक और धायुका प्रकोपकर, अग्निकर, मलमूत्रजनक, विशद, अल्पमादक और गुग्गाक ।

समुद्र एवम्बद्ध कदा दिदीय भीम शक्तिमान्भवन् मार-  
मुद्र वा । इत्यत्र विविध दिशतः साकं चैव पुनरागने  
सद्व्यवस्थितकालमै विद्या है ।

मन्त्रके चतुस्तु द्वीपे वा राजा वाचस्पत्यने उदरे मार-  
मुद्रो दे वयो मन्त्रे प्रसवता मन्त्रपत्रक बः । मन्त्रपत्रा  
काले मन्त्र भवेत् सुखे क्व सां, 'अत्रा । गृहो चतुर्वायुः ।  
मन्त्रपत्रावपन होतै है, इत्यने उदरे इमेजा तुल्य भवेत्ता  
वत्ता है । अत्रत्य मूत्र मन्त्रानुसार मन्त्र करने काले  
उक्त मन्त्र तुल्य वा प्राये, तत्र तुल्य मन्त्रे की हूँ यह  
मन्त्रमय अंगुली हाथमें लिखत कर उमके मन्त्र तो पर  
पर मन्त्र प्रथममें लिखे हुए मन्त्रक है उमका पाठ  
करता । इत्या क्व पर मन्त्रालयाने अर्पणो मद्र श्री ।

पैरौ मन्त्रके अंगुली-लिखित मन्त्रालयानुसार दत्ता-  
लेखके लिखर योग्यिभ्य मान को ।

( मन्त्रं पदेन २०-५० No )

मन्त्रादि ( मं० पु० ) मन्त्र मन्त्रया भावयतीति आ-  
मन्त्रु निनि । कौशिक, कौषल ।

मन्त्राय - युक्तमन्त्रके रोहितकाले विनामानागतं एक  
मन्त्रेण मन्त्र । मन्त्रकत्त यद् मन्त्रपर नामने प्रसिद्ध है ।  
योन परिमाणक इत्यत्र मन्त्रियु नामने प्रत्येक कर मने है ।

११२५ ईसवी यद् मन्त्र भीदीन हो गया । गृध्रोत्तकके  
मन्त्र भीदीपंतीव अत्रगत सुखनामके गुणने  
यद् मन्त्रक मद्र श्री गया । पर उमके छूटे छूटे मन्त्र-  
हरीको मे कर गुणमन्त्रिद्, दिशतः साह-मन्त्रिद्  
और चक्रमन्त्रिका आदि बनया गये । यूननगुणंती  
मन्त्रालय गुणमन्त्र योग्यता और मन्त्रमन्त्रविद्याका उन्नेय  
विद्या है ।

मन्त्रावका ( मं० श्री० ) १ उमनावका, वागनावकाके  
हान्त । २ अंशवका, गुर्वीकी हान्त ।

मन्त्रा ( मं० पु० ) मन्त्रो गुणमन्-अज्ञा भावता यन्त्र-  
हन्ता । कम्पूरी ।

मन्त्रि ( मं० श्री० ) मन्त्रालि कृशोत्र भोदुं मूद्र-एव पुनो-  
हमन्त्रिवात् मन्त्रुः । कर्मणाचक कर्मण्यसोभोर,  
पदेना । यद् अंशो हूँ उमोच भीम कर्मणे कर्मणे  
आयो है ।

मन्त्रि ( मं० वि० ) मन्त्रयोगि मन्त्रि निनि । मन्त्र, मन्-  
काला करयेकता ।

मन्त्रिण ( मं० वि० ) मन्त्रिणोपेन मन्त्रो मन्त्रु, पैरे गुण-  
मन्त्र । मन्त्रिण्य कर्म, चतुर्, मन्त्राणा करयेकता ।  
मन्त्रि ( मं० पु० ) मन्त्र किरण् । १ मन्त्रादि, काल  
श्री । ( वि० ) २ मन्त्र, विद्यने मन्त्र पत्रक  
हो ।

मन्त्रि ( मं० श्री० ) मन्त्रयोगि मन्त्र-किरण् अन्तर्दि एवम्  
टापु । १ मन्त्र कर्मण । ( मन्त्राणा )

मन्त्रावकायेति मन्त्र ( इति मन्त्रोऽपि । उद् ११२५ ) इति  
किरण् । २ मन्त्रक मन्त्रविद्ये, मन्त्राव । दत्तोप-मुन्त्र,  
हृन्त्रिभ्या, मन्त्रा, पश्चिन्त्र, यक्षणावका, मन्त्रोपका,  
प्रमन्त्रा, इत्य, कादम्बरी, पश्चिन्त्रा, कर्म, मन्त्र, मानिका,  
कर्मिणी, मन्त्रावका, मानवी, कर्मोप, मन्त्राविकाव,  
वाहनी, मन्त्रा मीना, मन्त्रा, कर्मिणी, विद्या मन्त्राणा ।  
मन्त्रोक्, मन्त्रु, मन्त्राव, आम्ब, मन्त्रा, योता, मन्त्रावी,  
मन्त्रो, मन्त्रिणा, मन्त्रोता, विद्या, मन्त्रिणी, हरी,  
मुन्त्रादि. मन्त्र, मन्त्रिका, मन्त्रोक्ता. महात्म्या, मन्त्रु,  
मैरेय, मन्त्रावका, मन्त्र, मन्त्र, कर्मण्यमन्त्र, मन्त्रिका,  
मन्त्रिका, मन्त्र, मन्त्रावका, मन्त्रा, मन्त्रोक्, मन्त्रोक्,  
मन्त्रा, वैवम्बु, कर्मिणी, मन्त्रिणा । ( देव )  
मन्त्रोक्, पानत, द्राष्ट, मन्त्रु, मन्त्र, मन्त्र, मैरेय,  
मन्त्रिक, टाडु, मन्त्रु, मन्त्रिकेन्द्र और मन्त्रविद्यारत पै  
कारक प्रकारके मन्त्र है । इत्यत्र सामान्य गुण - तुल्य-  
राज्य, कर्त और वायुनामक, मन्त्रु, मुक्तिकर, हृन्त्र, मन्त्र,  
मन्त्रावका ।

मन्त्रोक् इत्य और मुद्रये जो मन्त्रिण बनाई जाते है,  
उत्तरका नाम मन्त्रोक् है । इत्यत्रा गुण-नीरज, उल्,  
मन्त्रु, वागनामक, विल और कर्मकारक, कौशल, परव,  
कर्मिण और मन्त्रिकारक ।

मन्त्रावकादि मन्त्रावकागुण मन्त्रावका नाम मन्त्रोक् है ।  
इत्यत्रा गुण-मन्त्रु, मन्त्रा उल्, मन्त्र, कर्म, मन्त्रु,  
कर्मण्य, मुन्त्र, मन्त्रो और प्रमेदनामक । जो मन्त्रिण  
मन्त्रने बनाई जाते है उरि पैरौ कर्मणे है । इत्यत्रा गुण-  
कर्म, मन्त्र, मन्त्र, मन्त्राव, कर्मण्य, हृन्त्र विद्यार,  
मन्त्र । मन्त्रके मन्त्रोक् कर्मो हूँ मन्त्रिण मन्त्रो और  
इत्या कर्मणो है । इत्यत्रा गुण-मन्त्रोक्, कर्मण्य,  
मन्त्र, मन्त्रा, मन्त्रावका । यद् मन्त्रावको मन्त्रो

उसं सुखा ले। पीछे जलमें डाल कर जब फिन ऊपर उठता है तब वह शुक्त होता है। यह शुक्त मद्यके समान मादक है। इसका गुण—रक्तपित्तकर, छेदक, पाचक, स्वरका विहृतिकर, जारक, श्लेष्मा, पाण्डु और कृमिनाशक तथा लघुपाक माना गया है। इस शुक्तको चुआनेसे जो रस निकलता है वह तौक्ष्णोष्ण, मृदुल, हृद्य, कफघ्न, कटुपाक और विशेषरूपसे रुचिकर है। गुडरस अथवा मधुके साथ जो शुक्त प्रस्तुत होता है वह चक्षुरोगकर और लघु है।

(सुधुत शरीरस्थान मद्यवर्ग ४५ अ० और उत्तरतन्त्र ४७ अ०)

भायप्रकाशमें लिखा है, कि-मद्य, शीघ्र, मैरेय, मिरा, मदिरा, सुरा, कादम्बरी, चारुणी, हाला और बलवल्लभा ये सब मद्यके नाम हैं। सामान्यतः मादकके लिये लोग जिन सब वस्तुओंका व्यवहार करते हैं, उन्हींको मद्य कहते हैं। यह मद्य अरिष्ट, सुरा, शीघ्र और आसव आदिके भेदसे नाना प्रकारका है। सभी प्रकार का मद्य उष्णवीर्य, पित्तवर्द्धक, वायुनाशक, भेदक, रुक्ष, अतिशय कफकारक, अम्लरस, अनिद्राभिकारक, रुचिजनक, पाचक, आशुकारी, तौक्षण, सूक्ष्ममांसुसारो तथा विशद माना गया है। औषध और जलको एकत्र सिद्ध कर उस काथसे जो मद्य प्रस्तुत होता है उसे अरिष्ट कहते हैं। अरिष्टमें सब प्रकारके मद्यमें अधिक गुण है, विशेषतः लघुपाक है। अरिष्टोंका गुण उन उपादान-द्रव्यके गुणके समान जानना चाहिये।

धान और साठो धानकी पीठोसे जो मद्य बनता है उसे सुरा कहते हैं। सुरा शुद्ध, बलजनक, स्तन्यवर्द्धक, शरीरका पुष्टिसम्पादक, मेदोजनक, कफप्रदायक, धारक तथा शोध, शुद्ध, अर्श प्रहणी और मूलच्छन्नाशक है।

वारुणी सुराका प्रमेदमात्र है। पुनर्णवाको शिला र घिस कर जो सुरा बनती है उसे चारुणी कहते हैं। ताड़ और खजूरके रसको मिला कर जो सुरा तैयार होती है उसका भी नाम चारुणी है। चारुणी सुराके समान गुणदायक है, विशेषतः इसमें लघु तथा पीनश, आध्मान और शूलनाशक गुण है।

रिषके रसके सिद्ध कर जो शीघ्र तैयार होता है उसे पषवरसशीघ्र तथा अपषव ईरके रसमें तैयार किये हुए शीघ्रको शीघ्ररसशीघ्र कहते हैं। पषवरसशीघ्रमें

श्रेष्ठ गुणदायक, स्वर और वर्णप्रसाधक, अग्निवर्द्धक, बलकारक, वायु और पित्तवर्द्धक, सिद्धास्तिधकारक, रुचिजनक तथा मैद्य, जोय, अर्यो, जोय, उदर और कफरोगनाशक गुण माना गया है। शीत-रसशीघ्र पषवरसशीघ्रसे अल्पगुणदायक है।

अपक औषध और जल द्वारा जो मद्य प्रस्तुत होता है, उसे आसव कहते हैं। आसवका गुण उपादानसामग्रियोंके समान जानना चाहिये।

नूतन मद्य—अमियन्दो, त्रिदोषजनक, सारक, बहृद्य, शरीरका उपव्यकारक, वाहजनक, दुर्गन्धयुक्त, विशद-गुणान्वित तथा शुद्ध। पुरातन मद्य—रुचिजनक, कृमिनाशक, कफघ्न, पातापहारक, हृद्यप्राही, सुमन्धित, लघु और रेतशोधक।

मद्यपानके विधानानुसार यथासमय उपयुक्तमात्रामें हितकर द्रव्यके साथ हृष्टचित्तसे जो प्यकि मद्यपान करता है उसका वह पीया हुआ मद्य अमृतके समान गुणकारी है। किन्तु मद्यको स्वभागतः अक्षके समान जानना होगा अर्थात् विधिपूर्वक सेवन करनेसे अद्र-पानादि जिस प्रकार शरीरका हितकर तथा अविधिपूर्वक सेवन करनेसे अहितकर है, मद्यको भी उसी प्रकार जानना चाहिये। सुतरां यथानियम पान करनेसे अमृतके समान फल प्राप्त होता है और यदि अनियमित रूपमें पान क्रिया जाय, तो वह रोगका कारण होता है।

मद्यपान कर मोघा, कुट, जीरा, धनिया और इलायचोको एकत्र चरानेसे मद्यजनित सुखको दुर्गन्धि जाती रहती है। (भायप्र० मद्यवर्ग)

चरक आदि वैद्यक ग्रन्थोंमें मद्यका विषय इसी प्रकार लिखा है, विस्तार हो जानेके भयसे यहां पर कुछ नहीं दिया गया।

ब्राह्मणके लिये मद्यपान निषिद्ध है। मद्यपानसे संज्ञा विलुप्त होती है। महासुनय शुक्राचार्यने सुराके प्रति इस अभिगापवाक्यका प्रयोग किया था—;

“यो ब्राह्मणोऽप्य प्रभूतो कश्चित्  
मोक्षं सुरां पाल्यति मन्दभुक्तिः।





“दिव्यवीरमयो भावः कलौ नामि कदाचन ।

केवलं पशुभावेन मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृप्याम् ॥”

(महानिर्वाणतन्त्र)

कलिकालमें दिव्य और घोरभाव निषिद्ध बतलाया गया है, केवल पशुभावसे ही मन्त्रकी सिद्धि होती है । भैरवतन्त्रमें लिखा है, कि ब्राह्मण महादेवीको मद्य न बढ़ावे और न स्वयं सेवन करे ।

“न दद्याद् ब्राह्मणो मद्यं महादेव्यै कथञ्चन ।

क्षेमकामो ब्राह्मणो हि मद्यं मासं न भक्षयेत् ॥”

(भैरवतन्त्र)

“नाकिलोदकं कांठ्ये ताम्रं गव्यं तथा मधु ।

राजन्यवैश्वयोर्देधं न द्विजस्य कदाचन ॥

एवं प्रदानमासेषा हीनापुत्राक्षयो मयेत् ॥”

(आगमतत्त्ववि०)

कांसेके घरतनमें नारियलका पानी, ताँबेके घरतनमें गव्य और मधु ये सब क्षत्रिय और वैश्यके लिये देने योग्य हैं, ब्राह्मणके लिये नहीं ।

स्मृति, तन्त्र आदि सभी शास्त्रोंमें मद्यपानको निषिद्ध बतलाया है । मनुमें लिखा है—

‘सुरा पीत्वा द्विजो मोहादभिर्युषां सुरा पिबेत् ।

तथा स्यकाये निर्दग्धे मुच्यते किल्बिषात् ततः ॥

सुरा वै मलमदानां पाप्मना च मलमुच्यते ।

तस्माद् ब्राह्मणाराजन्वो वैश्वरज न सुरा पिबेत् ॥

गौडो पैठी च माध्वी च विशेषास्त्रिबिधाः सुराः ।

यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विजोत्तमैः ॥

यद्भारतःपिशाचात् मद्यं भोगं सुरासवन् ।

तद्ब्राह्मणेन नात्तव्यं देवानामारुता हविः ॥”

(मनु ११ अ०)

ब्राह्मण यदि मोहवशतः सुरापान करे तो अग्नि-वर्षाकी सुरा पी कर देहत्याग करके पापमुक्त होवे ।

सुरा अन्नका मल है, इसी कारण ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तोनों वर्णोंके लिये मद्य अपेय है । गौडो, और माध्वी यही तीन प्रकारकी सुरा हैं ।

ब्राह्मणके लिये कोई भी सुरा पेय नहीं है ।

“मद्यमपेयमेवमन्त्राणां” (उपनिः)

मद्य शान, ब्राह्मण नहीं करना चाहिये

कालिकापुराणमें लिखा है, कि ब्राह्मण यदि देवना-को मद्य चढ़ावे तो वे ब्राह्मणपदसे हान होंगे ।

“स्यगायत्रिर्दत्त्वा भात्महत्यामवाप्नुयात् ।

मद्यं दत्त्वा ब्राह्मणस्तु प्रादप्यपदेव हीयते ॥”

(काशिकापु०)

सभी शास्त्रोंमें मद्यपानको निषिद्ध बतलाया है । अतएव ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णोंके लिये मद्यपान विशेष निन्दित है ।

मद्य बारह प्रकारका है, यह पहले ही लिखा जा चुका है । इनका सेवन करनेसे मत्तता आ जाती है, इसीसे सबोंका नाम मद्य रखा गया है । प्राय-श्चित्तका विषय इस प्रकार लिखा है—

“गौडो माध्वीं सुरा पैठी पीत्वा विमः समाचरेत् ।

ततश्छन्दं पराकञ्च चान्द्रायणमनुक्रमत् ॥”

(प्रायश्चित्तवि०)

गौडो, माध्वी और पैठी मद्य पान करके ब्राह्मण ततश्छन्द, पराक और चान्द्रायणका अनुष्ठान करे । इनका सेवन करनेसे ब्राह्मण महापातको होता है । किन्तु क्षत्रिय और वैश्य यदि गौडो और माध्वी मद्यपान करे, तो यह महापातको नहीं होगा । किन्तु पैठी सुरा ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य तोनों वर्णोंके लिये निषिद्ध है ।

“एका माध्वी च गौडो च पैठी च त्रिबिधाः सुराः ।

द्विजातिभिर्न पातव्याः कदाचिदपि कश्चित् ॥”

इति यमवचने द्विजातिपदं ब्राह्मणपरमेव, अतएव द्विजध सुरापाने न त्रिषयादीनां महापातकं । तावदस्तु दोषामावमेवाह-  
इत्याहवचन्यः—

“कामादपि हि राजन्यो वैको वापि कथञ्चन ।

मद्यमेव सुरां पीत्वा न दोषं प्रतिपद्यते ॥”

तत्र पैठीनिषेधस्त्वैश्वर्यकानां, गौडोमाध्वीनिषेधस्तु ब्राह्मण्य-नामेव । (प्रायश्चित्तवि०)

इस वचनसे जाना जाता है, कि गौडो और माध्वी यदि क्षत्रिय और वैश्य पान करे, तो कोई दोष पैठीमद्यपानसे भारी पाप होगा । उक्त

पेसा लिखा है उससे

इस ब्राह्मण जानना होगा ।

क्षत्रिय और वैश्यके लिये



“दिव्यवीरमयो भावः कर्लो नाति कदाचन ।  
केवलं पशुभावेन मन्त्रस्तिद्धिर्भवेन्त्साम् ॥”

(महानिर्वाणतन्त्र)

कलिकालमें दिव्य और वीरभाव निषिद्ध बतलाया गया है, केवल पशुभावसे ही मन्त्रकी सिद्धि होती है । भैरवतन्त्रमें लिखा है, कि ब्राह्मण महादेवीको मद्रा न चढ़ावे और न स्वयं सेवन करे ।

“न दद्याद् ब्राह्मणो मद्यं महादेव्यै कथञ्चन ।  
द्वेषकानो ब्राह्मणो हि मद्यं मार्तं न भक्षयेत् ॥”

(भैरवतन्त्र)

“नाकिञ्चिदकं काल्ये ताम्रे गन्धं तथा मधु ।  
राजन्यवैश्यादेर्धेन द्विजस्य कदानन ॥  
एवं प्रदानमात्रेण हीनासुब्राह्मणो भवेत् ॥”

(भागवततत्त्ववि०)

कांसेके धरतनमें नारियलका पानी, तबिके धरतनमें गन्ध और मधु ये सब क्षत्रिय और वैश्यके लिये देने योग्य हैं, ब्राह्मणके लिये नहीं ।

स्मृति, तन्त्र आदि सभी शास्त्रोंमें मद्रापानको निषिद्ध बतलाया है । मनुमें लिखा है—

“सुरां पीत्वा द्विजो मोहादभिमियां सुरां पिबेत् ।  
सया स्वकाये निर्दग्धे मुच्यते क्लियपात् ततः ॥  
सुरा ये मक्षमत्तानां पाप्मना च मक्षमुच्यते ।  
तस्माद् ब्राह्मण्यराजन्वो वैश्याश्च न सुरां पिबेत् ॥  
गौडो पैठी च माध्वी च विज्ञेयात्रिविधाः सुराः ।  
यथैवेका तथा सर्वा न पातव्या द्विषोन्मैः ॥  
यत्नरत्तःपिशाचात् मद्रयं मांसं सुरासयम् ।  
तद्ब्राह्मणेन नाचष्य देवानामरनता हविः ॥”

(मनु ११ अ०)

ब्राह्मण यदि मोहग्रस्तः सुरापान करे, तो अग्नि-वर्षाके सुरा पी कर देहत्याग करके पापमुक्त होवे । सुरा अन्नका मल है, इसी कारण ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तोनों वर्णोंके लिये मद्रा अपेय है । गौडो, पैठी और माध्वी यही तीन प्रकारकी सुरा हैं । इनमेंसे ब्राह्मणके लिये कोई भी सुरा पेय नहीं है ।

“मदयमदेयमपेयमब्राह्मण” (उपनाः) :

मद्रा दान, पान और ग्रहण नहीं करना चाहिये ।

कालिकापुराणमें लिखा है, कि ब्राह्मण यदि देवता-को मद्रा चढ़ावे तो ये ब्राह्मणयसे होन होंगे ।

“श्वगात्रघर्षिर् दत्त्वा आत्महृत्यामवाप्नुयात् ।  
मद्यं दत्त्वा ब्राह्मण्यस्तु ब्राह्मणपादेव हीयते ॥”

(कालिकापुरा०)

सभी शास्त्रोंमें मद्रापानको निषिद्ध बतलाया है । अतएव ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णोंके लिये मद्रापान विशेष निन्दित है ।

मद्रा वारह प्रकारका है, यह पहले ही लिखा जा चुका है । इनका सेवन करनेसे मत्तता आ जाती है, इसीसे सर्वोका नाम मद्रा रखा गया है । प्राय-शिवतन्त्रका विषय इस प्रकार लिखा है—

“गौडो माध्वी सुरा पैठी पीत्वा विप्रः समाचरेत् ।  
ततश्चन्द्रं पराकश्य चान्द्रायणमनुकाम् ॥”

(प्रायश्चित्तवि०)

गौडो, माध्वी और पैठी मद्रा पान करके ब्राह्मण तसकृच्छ्र, पराक और चान्द्रायणका अनुष्ठान करे । इनका सेवन करनेसे ब्राह्मण महापातको होता है । किन्तु क्षत्रिय और वैश्य यदि गौडो और माध्वी मद्रापान करे, तो यह महापातको नहीं होगा । किन्तु पैठी सुरा ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य तोनों वर्णोंके लिये निषिद्ध है ।

“एका माध्वी च गौडो च पैठी च त्रिविधाः सुराः ।

द्विजातिभिर्न पातव्याः कदाचिदपि कर्हिचित् ॥”

इति यमवचने द्विजातिपदं ब्राह्मणपरमेव, अतएव त्रिविध सुरापाने न त्रिविधादीनां महापातकं । तावदस्त्वं दोषाभावमेवाह श्रुदपाशवकस्य ।—

“कामादपि हि राजन्वो वैश्वो वापि कथञ्चन ।

मद्रमेव सुरां पीत्वा न दोषं प्राप्नुयन्के ॥”

तद्वै पैठीनिषेधकस्यैविकानां, गौडोमाध्वीनिषेधस्तु ब्राह्मण-नामेन । (प्रायश्चित्तवि०)

इस वचनसे ज्ञाना जाता है, कि गौडो और माध्वी सुरा यदि क्षत्रिय और वैश्य पान करे, तो कोई दोष नहीं । किन्तु पैठीमद्रापानसे भारी पाप होगा । उस वचनमें “द्विजातिभिर्न पातव्याः” ऐसा लिखा है उससे द्विजातिकः अर्थात् वहाँ पर ब्राह्मण जानना होगा । कारण, केवलमत्र वैश्वोमाध्वी क्षत्रिय और वैश्यके लिये

भोजनपूर्वमेव दद्यात् नैव गच्छा-  
द्विभोजनोक्तं कर्तव्यं स्वयत् कर्त्तव्यं ॥  
मदा पेना निवर्त्तयन्मना  
मर्त्यानां वै मर्त्यानां मर्त्यानां ।  
मन्तो विद्याः शुभु पाणो मुखा  
देवः नोपाश्रेयश्रयन्तु सर्वे ॥

( महाभारत ११३६ अ० )

आजर्ज जो ब्राह्मण मोहयज्ञानः मुरापान करेगा यह मन्त्रबुद्धि धर्मकयुत, बलवृत्त्यापानकर्म लिप्त तथा इह भी परम्योक्त कर्तित होगा । मीने ब्राह्मणके धर्म-विषयमें इस मोमा और मर्त्यानाको जगन्में स्थापन किया । नाशुगण, ब्राह्मणगण, देवगण आदि सभी इसको ध्यायसे श्रवण करें ।

राजनिर्गच्छमें लिखा है, कि द्विज शीपपार्थमें भी मद्यपान न करे । यहां पर द्विज शब्दमें केवल ब्राह्मण-ही भ्रमभक्ता चाहिये । इस श्रेष्ठ धर्ममें मद्रापान निषिद्ध है । मृन् व्यक्तिको यदि मद्रापान करनेसे जीवन मिल्न जाय, तो भी ब्राह्मणको मद्यपान न कराये ।

"मद्रपयानं कुर्वन्ति शूद्रादिषु मर्त्यानिषु ।

त्रिभेषिभिन्तु न प्रायं यद्रपयन्तु जैवपेन्मृतम् ॥"

( राजनि० )

पुराणादिमें भी ब्राह्मणके लिये मद्रापान निषिद्ध वनजाया गया है ।

छिजातियोंके लिये मद्रा श्रेय, अथेय और असृश्य है, अतएव भूळ कर भी मद्रापान न करें । यदि श्रेष्ठ-ब्राह्मण मद्रापान करे, तो वे भी कर्मसे पतित होने हैं तथा उनके साथ बातचीत भी नहीं करनी चाहिये । ( स्कन्द० १६ अ० )

यद्रुपुराणके २२वें अध्यायमें भी छिजातिके लिये मद्रापान निषिद्ध वनजाया है । विस्तार हो जानेके जयमें उत्सर्गे प्रमाणादि यहां पर नहीं दिये गये ।

महत मगमें भी मद्रापान निषिद्ध है—नारिकेल, लज्ज, पानस, पेक्षव, मधुक, टाटू, ताल, माशिक, ब्राह्म, गौड़, पैष्ट और मधुज ये शारद प्रकारके मद्रा हैं । ये सभी महव प्रायणके लिये अथेय हैं । इन सब मद्राओंमें पैष्टमद्रप सबसे निष्ठ, मधुज और गौड़

मद्रप मध्यम हैं तथा इसके अतिरिक्त और सभी प्रकारके मद्रप उत्कृष्ट हैं । क्षत्रियादि पैष्ट मद्रपको छोड़ कर शेष शारद प्रकारके मद्रप पान कर सकते हैं । अनु-पनीत व्यक्तिये यदि मद्रपपान करे, तो उसे वैधार्मिक मत करना होगा ।

"पैष्टीयाने प्रकण्ठस्य मर्यान्तिकुन्वते ।

माध्वी-गौड़ो-मुरागाने द्रादसादं विधीयते ॥

इतोयान्तु पानेन शुद्धिमान्द्रायगेन तु ।

रात्रन्वयैश्वयोभाति गौड़ो माध्वी न हस्वने ।

मोहान् श्रमश्च वैश्वपथ पीत्वा कृच्छ्रं प्रयं वनेत् ॥

शूद्रादिषु गौड़ो पैष्टीश्च न परिवर्द्धोत्तमस्कृताम् ॥

कामान् पीत्वा मुरा विभो मर्यान्तिकामाचोत् ।

नरेषान्द्रायणं शानात् क्षत्रियो वैश्व एव च ॥

पैष्टीयाने तु शूद्रस्य प्रामान्त्यं विनिर्दिशेत् ।

जानादन्नाशयेगे तु चान्द्रायणस्य स्मृतम् ॥"

( मत्स्यपूक महान्त्य चतुर्विंशतिगारहसे ३६ परम् )

ब्राह्मण यदि पैष्टो मद्रा पान करे, तो मरणात् प्राय-श्चित्त करना होगा । माध्वी और गौड़ो-मुरापानमें शारद वायिक मत तथा अन्य मद्रा मद्यपान करनेसे चान्द्रायण मत द्वारा शुद्धि होगी ।

क्षत्रिय और वैश्य यदि गौड़ो और माध्वी मद्रा-पान करे तो कृच्छ्रमनाचरणसे शुद्धि होगी ।

मद्रापान शूद्रके लिये भी निषिद्ध है । शूद्रको पैष्टो मद्रा पानेसे प्राजापरव मतका अनुष्ठान करना चाहिये । यह सब प्रावदिय । महानतः और पर-वारके लिये जानना चाहिये । शानपूर्वक या अभ्यास-धनतः मद्रापान करनेमें चाश्रायणमतकी अनुष्ठान करना होता है । उत्पत्तितन्त्रमें लिखा है—

"विदमन्त्री भयशीरो न वीरो मयपन्नतः ।

कली तु भारते कथं क्षोषा भारतयागिनः ।

यद् यद् मुरा पीत्वा कर्षाभवा मन्वित रि ॥"

( उत्पत्तितन्त्र ६४ परम् )

जिनका मंसिद्ध हुआ है वे ही पौर हैं, केवल मद्रापानसे पौर नहीं होने । कल्किनायमें मद्रापान करनेमें वर्णान्तर होता पड़ता है । महानिर्वाणतन्त्रमें लिखा है—

“दिव्यवीरमयो भावः कली नाति कदाचन ।

केवलं पशुभावेन मन्त्रसिद्धिर्भवेन्नृषाम् ॥”

( महानिर्वाणतन्त्र )

कलिकालमें दिव्य और वीरभाव निपिद्ध बतलाया गया है, केवल पशुभावसे ही मन्त्रकी सिद्धि होती है । भैरवतन्त्रमें लिखा है, कि ब्राह्मण महादेवीको मद्र न चढ़ावे और न स्वयं सेवन करे ।

“न दद्याद् ब्राह्मणो मद्यं महादेव्यै कथञ्चन ।

क्षेमकामौ ब्राह्मणौ हि मद्यं मार्गं न भक्षयेत् ॥”

( भैरवत० )

“नारिकेलोदकं कांक्ष्ये ताम्रे गन्ध तथा मधु ।

राजन्वयैश्वर्योर्दंभं न द्विजस्य कदाचन ॥

एवं प्रदानमासेषु हीनायुर्ब्राह्मणो भवेत् ॥”

( आगमतत्त्ववि० )

फांसेके वरतनमें नारियलका पानी, ताँचेके वरतनमें गन्ध और मधु ये सब क्षत्रिय और वैश्यके लिये देने योग्य हैं, ब्राह्मणके लिये नहीं ।

सृष्टि, तन्त्र आदि सभी शास्त्रोंमें मद्रपानको निषिद्ध बतलाया है । मनुमें लिखा है—

“सुरां पीत्वा द्विजो मोहादभिवर्णौ सुरां पिबेत् ।

तथा स्वकापे निर्दग्धे मुच्यते किल्बिषपात् ततः ॥

सुरा वै मज्जमत्तानां पाप्मना च मज्जमुच्यते ।

तस्माद् ब्राह्मणराजन्वो वैश्वरज न सुरां पिबेत् ॥

गौडो पैठी च माध्वी च विजेषात्रिविधाः सुराः ।

यथैवैका तथा सर्वा न पातव्या द्विमोक्षमैः ॥

यद्धरत्नपिशाचात् मद्यं मांसं सुरामयम् ।

तद्ब्राह्मणेन नात्सर्वं देवानामरजना हविः ॥”

( मनु ११ अ० )

ब्राह्मण यदि मोहवशतः सुरापान करे, तो अग्नि-वर्णको सुरा पी कर देहत्याग करके पापमुक्त होवे । सुरा अन्नका मूल है, इसी कारण ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य तोनों वर्णोंके लिये मद्र अपेय है । गौडो, पैठी और माध्वी यही तीन प्रकारकी सुरा हैं । इनमेंसे ब्राह्मणके लिये कोई भी सुरा पेय नहीं है ।

“मद्यमद्वैयमप्यममाह” ( उक्तानाः )

मद्र पान, पान और ग्रहण नहीं करना चाहिये ।

कालिकापुराणमें लिखा है, कि ब्राह्मण यदि देवना को मद्र चढ़ावे तो ये ब्राह्मण्यसे हीन होंगे ।

“स्वगाप्रक्षिर् दत्त्वा आत्महत्यामयान्मुषात् ।

मद्यं दत्त्वा ब्राह्मण्यस्तु ब्राह्मणपादेव हीयते ॥”

( कालिकापु० )

सभी शास्त्रोंमें मद्रपानको निषिद्ध बतलाया है । अतएव ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य इन तीनों वर्णोंके लिये मद्रपान विशेष निन्दित है ।

मद्र बारह प्रकारका है, यह पहले ही लिखा जा चुका है । इनका सेवन करनेसे मत्तता आ जाती है, इसीसे सर्वोका नाम मद्र रखा गया है । प्रायश्चित्तका विषय इस प्रकार लिखा है—

“गौडो माध्वी सुरां पैठी पीत्वा विप्रः समाचरेत् ।

तसकृच्छ्रं पराकत्र चान्द्रायणमनुकमात् ॥”

( प्रायश्चित्तवि० )

गौडो, माध्वी और पैठी मद्र पान करके ब्राह्मण तसकृच्छ्र, पराक और चान्द्रायणका अनुष्ठान करे । इनका सेवन करनेसे ब्राह्मण महापातको होता है । किन्तु क्षत्रिय और वैश्य यदि गौडो और माध्वी मद्रपान करे, तो वह महापातको नहीं होगा । किन्तु पैठी सुरा ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य तीनों वर्णोंके लिये निषिद्ध है ।

“एका माध्वी च गौडो च पैठी च त्रिविधाः सुराः ।

द्विजातिभिर्न पातव्याः कदाचिदपि कश्चित् ॥”

इति यमवचने द्विजातिपदं ब्राह्मणपरमेव, अतएव द्विविध सुरापाने न त्रिविधादीनां महापातकं । तावदस्तु दोषाभावेनैवैह वृद्धयाश्रयत्वम् :—

“कामादपि हि राजन्वो वैश्वो वापि कथञ्चन ।

मद्यमेव सुरां पीत्वा न दोषं प्रतिवश्यते ॥”

तदेव पैठीनिषेधस्त्वैवैवैकाना, गौडोमाध्वीनिषेधस्तु ब्राह्मण्या-नामेव ।” ( प्रायश्चित्तविवेक )

इस वचनसे ज्ञाना जाता है, कि गौडो और माध्वी सुरा यदि क्षत्रिय और वैश्य पान करे, तो कोई दोष नहीं । किन्तु पैठीमद्रपानसे भारो पाप होगा । उक्त वचनमें “द्विजातिभिर्न पातव्या” ऐसा लिखा है उससे द्विजातिक अर्थ यहां पर ब्राह्मण जानना होगा । कारण, अल्पान्य वचनोंमें क्षत्रिय और वैश्यके लिये

मद्रासानकी व्यवस्था देनी जानी है। धनपय यहाँ पर द्विजमनिका अर्धे ब्राह्मण जानना चाहिये।

ब्राह्मणोंकी जियाँ भी मद्रासान नहीं कर सकनीं, यदि करें तो उन्हें पतिलोक जानिका अधिकार नहीं रहता।

“तत्रानेः स्त्रीषामपि सुरासाननिषेधः”, यथा भविष्ये,—

“तान्मात् न देव विभेष्य सुरामप्य” व यमन ।

ब्राह्मणपति न देवा वै सुरा पावभयाधर ॥”

“या ब्राह्मणो सुरानि स्वाक्या देवाः पतिलोकं नपति

( भृति )

न जैव” इतिष वैशम्पतीयामनिषेधः ॥”

( प्रापञ्चितवि० )

मनुमें भी ब्राह्मणके लिये मद्रासानका प्रायश्चित्त, अनियर्ण सुरासान द्वारा प्राणत्याग, लिखा है यह क्षानतः तथा अभ्यासयज्ञतः है अर्थात् बार बार पान करनेसे यह प्रायश्चित्त करना होगा।

“एवम मरणप्रापञ्चितं कामकृते यथाह मूहस्तितिः—

सुरासाने कामकृते जगन्मती तां विनिः शिन्तेत् ।

गुणे म दि विनिर्दग्धो मृतः शुजिमाप्नुवान् ॥”

( प्रायश्चित्तवि० )

जो मय प्रायश्चित्तके विधान लिखे गये उन्हे गौड़ों, माध्यों और वैश्योंके सख्यन्धमें जानना चाहिये।

ब्राह्मण यदि पानस, द्राक्ष भादि मद्यपान करें, तो शैश्विक प्रत्याचरण द्वारा शुद्धि होती है।

बालक, दूध और स्त्रोके लिये माघा प्रायश्चित्त बन-लाया गया है। अन्यान्य विषय मय और सुरामार मन्धमें देते।

तन्त्रमें कौलाचारियोंके मद्यपानका विषय इस प्रकार लिखा है—

“कुत्राचारतो धीरः कुत्रघ्नो लदा भवेत् ।

कम्बिदस्तेपने कुर्वीत् गोमदानं महेतरसं ।

सुरासानरतो नित्यं बलिदूजारापयः ।

नररत्ताममरन मरिचो मेघः शूकर एव च ॥

इत्यनेस्तु कपेर्हीनेः पूजयेत् श्रेष्ठेयवान् ।

नित्यं मेमिन्तकं कामं प्रकुर्याद्य दिने बिभे ॥

कुसवारो कुकुरो च विदो च कुपये मया ।

भैरव्याः कल्पिनं चकं संस्थाप्य पूजयन् विभे ॥

सुरासां सोधनं कुर्वीत् पथात् पत्तरेवरि ।

प्रहृते भैरवीचके सर्वं यथां द्विजोत्तमः ॥

निवृत्तो भैरवीचके सर्वं यथाः वृषक् वृषक् ।

विजयाभ्यान्वानुक्त्वम्य द्विजो दद्यात् गुणे गुणे ॥”

( उतरासितन्त्र ६३ पटल )

कुलाचारिगण सर्वेदा कुलसङ्गी हो कर सोमपान करे। शक्तिके उद्देशसे बलि और पूजा दे कर सर्वदा सुरासानमें रत रहे। कुलवार, कुलतिथि और कुलनक्षत्रमें नित्य, नैमित्तिक और काम्यकर्मका अनुष्ठान कर भैरवी-चक्रकी कल्पना करे। भैरवीचक्र कल्पित होनेसे सुरा-शोधन करना होता है। इस चक्रमें सभी वर्ण द्विजोत्तम हैं अर्थात् श्रेष्ठ ब्राह्मण होते हैं। इसका अयसान होने पर पुनः जो जो वर्ण है वह उन्ही वर्णमें रहेगा। इसमें विजया ( सिद्धि ) और अनुकल्प-द्रव्य देना आवश्यक है। सुराके अभावमें गोक्षीर अनुकल्प हो सकता है।

“द्रव्याभावे चं मुहूर्त्तः पूजयेत् परदेवतान् ।

सुराभावे च गाक्षीरं द्विजो दद्यात् गुणे गुणे ॥”

( निरुत्तरतन्त्र ५ पटल )

तन्त्रमें लिखा है, कि जो ब्राह्मण बिना शोधन जिम्मे सुरासान करता है वह ब्रह्मणानी और जो शोधित सुरा-पान करता है वह जलद्वानको तरह तेजस्वी होता है।

“भर्तृस्त्वतां सुरां पीत्वा ब्राह्मणो महदा भवेत् ।

मंस्तृत्वान्तु सुरां पीत्वा ब्राह्मणो ज्येष्ठदामिनवत् ॥”

( उत्पत्तिवृत्त )

किर मृतकामेदन्तन्त्रमें लिखा है, कि ब्राह्मण यदि मद्रासान करें तो महामोक्ष तथा उसी समय शिष्यरूपत्व-की प्राप्त होते हैं, इसमें जन्म भी सर्वेह नहीं। क्षतिपादि सांयुज्य आदि महामोक्ष लाभ करते हैं। जिस प्रकार जलमें जल लीन होता है, उसी प्रकार ब्राह्मण मद्रासान टारा ब्रह्ममें लीन होते हैं। बिना मद्रासानके, तत्प्राप्त नहीं हो सकता। गाथयो तप करनेमें हो ब्राह्मण कह-लाता है, सो नहीं, जब ब्रह्मज्ञान लाभ होता है, तभी ब्राह्मण है। ब्रह्मज्ञान जगद्गत अर्धे इस प्रकार है,— देवनाभोका सम्युत ब्रह्म है परी शैश्विक सुरा है तथा यह सुरत्यभोगप्राप्त ही सुरा कहलाता है। ब्रह्मणापारि

मोचनरूप मन्त्रपाठ करनेसे सुरा ब्रह्ममयी होती है। मन्त्र द्वारा संस्मृत-सुरासे पाप दूर होता तथा मुक्ति प्राप्त होती है। इस प्रकार सुरा पान करनेसे ब्राह्मण, ब्राह्मण पद-बोध्य, वैश्व, अग्निहोत्री और दोक्षायाशिष्ट होते हैं

“ब्राह्मणस्य महामोक्षं मयपाने विप्रवदे ।  
 ब्राह्मणः परमेशमि यदि पानादिकं चरेत् ॥  
 तत्स्रष्ट्यात् शिवरूपोऽसौ सत्यं हि शैलजे ॥  
 तोये तोयं यथा लानं तैजसं तैजसे यथा ।  
 घटे भग्ने यथाकाशं वायी वायुर्यथा मिथे ॥  
 तथैव मदपानेन ब्राह्मणो ब्रह्ममयि मिथे ।  
 क्षीयते नाश संदेहः परमात्मनि शैलजे ॥  
 सायुज्यादिमहामोक्षं नियुक्तं ऋषियादिषु ।  
 मंदपानं विना देवि तत्त्वज्ञानं न क्षम्यते ॥  
 भतएव हि विप्रस्तु मदपानं समाचरेत् ।  
 वेदमातृजपेनेव ब्राह्मण्यो न हि शैलजे ॥  
 ब्रह्मज्ञानं यदा देवि । तदा ब्राह्मण्य उच्यते ।  
 देवानाममृतं ब्रह्म तदेव लौकिकी सुरा ॥  
 सुरत्वं भोगमात्रेण सुरा तेन प्रकीर्त्तिता ।  
 मन्त्रश्रवणं यदा पाठ्यं ब्रह्मशापादि मोचनम् ॥  
 प्रकुर्यात्तु हि येनैव वदा ब्रह्ममयी सुरा ।  
 हविरारोपमात्रेण यद्विदीतो यदा भवेत् ॥  
 शापमोचनमात्रेण सुरा मुक्तिप्रदायिनी ।  
 अतएव हि देवेशि ! ब्राह्मण्यः पानमाचरेत् ॥  
 स ब्राह्मण्यः स वेदशः सोऽग्निहोत्री स दीक्षितः ।  
 यद्बु किं कथ्यते देवि स एव निर्गुण्यात्मकः ॥  
 मुक्तिमार्गमिदं देवि । गोतस्यं पशुषुक्लंटे ।  
 प्रकाशात् शिबिदानिः स्यात् निन्दनीयो न चान्यथा ॥”

( मातृकामेदतन्त्र ३ पटल )

सुराको ग्रीधन करके पान करना चाहिये । सुरा ग्रीधनविधिका विषय तन्त्रमें इस प्रकार लिखा है,—  
 पशासन पर चैत्र कर रताञ्जलिपुष्टसे वाम भागमें शुरुणणको और दक्षिण भागमें गणपतिको प्रणाम करे । अनन्तर मध्यदेशमें देवीको प्रणाम कर तीन बार प्राणा-याम करना होता है। इसके बाद समस्त शरीरमें मातृका वर्णन्यास करके ऋष्यादिन्यास और स्वकल्पविधानानुसार पङ्कन्यास करना उचित है। पीछे भूमि पर

त्रिकोण या पट्टकोण मण्डल बना कर उसके ऊपर मद्रा पात्र रखना होता है। 'कट' इस मन्त्र द्वारा पात्रको प्रोक्षण करके मूल मन्त्र द्वारा उस घटमें मद्रा भर दे। पीछे चतुर्दश स्वराग्नित्र शक्तित्रिको को नाद्विष्णुके संयोगसे उसके ऊपर सौ बार जप करे। अनन्तर धेनु, योनि, गालिनी और मत्स्यमुद्रा दिखावे।

(केशवतन्त्र २ पटल)

अनन्तर इस मद्रापूर्ण घटको पकड़ कर निम्नलिखित मन्त्रका पाठ करना होता है। मन्त्र यथा—

“ओं एकमेव परं ब्रह्म स्यज्ञयुषममयं भुवम् ।  
 कचोऽप्रां ब्रह्महत्यां तेन ते नाशयाम्यहम् ॥  
 ओं सूर्यमपह्नतसम्भू तं वरुणात्तपसम्भये ।  
 भमाधीजगये देवि शुक्रशापादि मुच्यताम् ॥  
 ओं वेदानां प्रणयो वीजं ब्रह्मानन्दमयं यदि ।  
 तेन सत्येन ते देवि ब्रह्महत्यां व्यपोहतु ॥”

इस मन्त्रका पाठ कर निम्नोक्त मन्त्रसे आनन्द-भैरव-का ध्यान करना होगा। ध्यान यथा,—

“रक्तवर्णा चतुर्बाहुं भिनेसं वरदं शिवम् ।  
 जटान्त्रपरं देवं वासुकिकपठ भूषितम् ॥  
 इमरुच्य कपालश्च सुदूरं पारशुचामम् ।  
 धारिणं तं यजेद्देवं व्याप्रचमोन्वरं शिवम् ॥”

इस मन्त्रसे ध्यान कर पूजा करना होती है। पीछे निम्नोक्त ध्यानसे आनन्द-भैरवीको पूजा करनेको विधि है। ध्यान यथा—

“आनन्दभैरवीं देवीं वराभयलक्षतकराम् ।  
 घोरस्यां वारारोहां क्षिण्तां रक्तवातसम् ॥  
 रक्तधर्यां महारोत्रीं सद्गुणं भेरया न्विताम् ।  
 ब्रह्मविष्णु महेशाभेः स्युः मानां शिषां भजे ॥”

पीछे आनन्द-भैरव और आनन्द-भैरवीकी ऐष्य-भायना करके सुधामायत्रीका स्मरण करे।

गायत्री यथा—“ओं सुधादेव्यै धीमहि तन्नो देवी प्रचोदयात् ।  
 इस गायत्रीका पाठ करनेसे मद्राशुद्धि होती है। यह मद्रापान करनेसे भुक्ति और मुक्ति दोनों होती है। प्राणतोषिणी आदिमें भी मद्रा-ग्रीधनका विषय लिखा है, विस्तार हो जानेके भयसे यहां पर कुल नहीं दिया गया। सुरा देवो।



२ वायुदेव पत्नी । ( मण्डल ६१२५५५ ) ३ छन्दा-  
भेद, धार्मिक भक्तियों के एक धार्मिक छन्दका नाम । इसके  
प्रत्येक धारणमें सात मंगल और अंतिमें एक मुष्ट होता  
है । इसका दूसरा नाम मालिनी, उमा और दिवा भी  
है ।

मदिरास ( स'० लि० ) मदिरे इय अस्तिपत्नी यस्य इति  
। अथर्ववेददर्शनम् । वा १५५३१ इति अच् । १ सञ्जन-  
नृत्य मेल, मित्रकी आँखें मद् मरो हो । ( पु० ) २  
विराटासत्रके भाई । ( भारत ५१२० )

मदिराती ( स'० स्त्री० ) मत्तयोजना, मत्त आलीयाली ।  
मदिराष्ट्र ( स'० स्त्री० ) मदिराया म्त्रम् । मदासम्भान-  
मृद, जरावधाना ।

मदिराभ्य ( स'० पु० ) १ विराटासत्रके एक सेनापतिकी  
नाम । ( भारतउदरणम् ) २ हिरण्यहस्तके भ्यसुर प्राचीन  
राजाका नाम । ( भारत भूगोल १५८ अ० )

मदिश्या ( स'० स्त्री० ) मदीश्या अस्तीति मद्-इति इय-  
मतिनायेन मदिनीति इष्टम्, इतो लोपः, टोप् । मदिश्या,  
जराव ।

मदिश्या ( स'० लि० ) मत्तनायुक्त प्रकृत, नशेमें आनन्द  
होनेवाला ।

मदी ( स'० स्त्री० ) मृदनाति घूर्णीकरोति कृष्णक्षेत्रलोपा-  
दिकमिति मृद इत्, कृदिकारादिति पशे लोप्, पूर्वोद्गा-  
दित्वान् साधुः । १ चपकवस्तु, शराय पीनेका बरतन ।  
२ कृषक वस्तु, हलका फाल ।

मदीना ( अ० पु० ) भरवके एक नगरका नाम । यहाँ  
मुमलमानों मन्के प्रवर्तक मुद्गमदसाहब भी समाधि हैं ।

मदीय ( स'० लि० ) मम इत् अमरुच्छ्मदीय । मत्स-  
इन्धी, मेरा ।

मदीयूल ( फा० पु० ) कर्मदाद, यह जो देनदार हो ।

मदीया ( हि० पि० ) मदीया, नशेसे भरा हुआ ।

मदीकाल ( हि० पु० ) दोहके एक मेदका नाम । इन्में  
नेरुद मुष्ट और कौरस लघु मात्राये होती हैं । इसे  
गंधं भी कहते हैं ।

मदुरा—मद्रास प्रेसिडेन्सीका एक जिला । यह मद्रास  
से दक्षिण है । पहले हिन्दुओंके राजत्वकालमें इसका  
मधुरा वा मधुरापुरी नाम था । अंग्रेजोंके शासनकालमें

इसने जिलाका रूप धारण किया । इसका क्षेत्रफल  
८७०१ वर्गमील है । यह अक्षा० ६° ६' से १०° ४६' उ०  
तथा देशा० ७७° ११' से ७६° १६' पूर्वेके मध्य विद्यमान  
है । यह जिला ७: परगनोंमें बँटा हुआ है । इनमें रामा-  
नन्द तथा जियगुत्ता ही प्रधान हैं । मदुरा नगरमें जिले-  
का सदर विचारालय मौजूद है ।

इस जिलेके पश्चिम तथा उत्तरकी ओर पश्चिमघाट-  
की पहाड़ियाँ घेरे हुई हैं । इसके दक्षिण और पश्चिम  
कोने पर स्थित तिरवारूरका पहाड़ उसका एक भंग  
है । शोरोक पहाड़की पलनी शाखा इसी जिलेके अन्त-  
र्गत है । यहाँके रहनेवाले उसे बराह पर्यंत कहते हैं ।  
निकट ही इसके कई सर्वोच्चशिखर भाट हजार फीटसे  
भी अधिक ऊँचे हैं । इन जिलोंके बीचमें कोई सात  
हजार फीटकी एक अपिस्वका मौजूद जो प्रायः पचास  
फीट होगी । यहाँ अंग्रेजोंके उद्योगसे काफी बोई  
जाती और उत्पन्न की जाती है तथा इसकी उत्तरोत्तर  
उन्नति हो रही है । यहाँके क्रोडैकामल नामक स्थानमें  
अद्वैत लोच गमोंके दिनोंमें हवा चाने जाते हैं । इसके  
पूर्वकी ओर नट्टमामके समीप शिखमलय, कदण्ड मलय,  
नाट्टम् और अलगदुगिरिथे भी हैं । इनका सर्पोच्च शिखर  
चार हजार चार सौ फीट है । इन सब पहाड़ोंमें पदने  
मनुष्य रहते थे । इस समय जलवायुके परिवर्तनेसे  
यहाँके स्वास्थ्यमें व्याघात उपस्थित हुआ है । इसलिये  
मनुष्य अब यहाँ नहीं रहते । सिवा इन पहाड़ोंके मदुरा  
नगरके आसपास और भी कई पहाड़ दिखाई देते हैं ।  
उनमें गिरिदुर्ग जोमित दिग्दामय तथा अममलय वा  
हस्तो पर्वत और मुसलमानोंके परम पवित्र कुरुमलय  
पहाड़ उल्लेखनीय हैं । कुरुमलयमें एक मुसलमान-  
कब्रोंका समाधि-मन्दिर है ।

दक्षिणसे पूर्व बहनेवाली पैगाई ही यहाँकी  
प्रधान नदी है । इस नदी-तट पर मदुरानगर बसा  
हुआ है । सुरली, बराह नदी और पट्टिल्लुगुण्ट्ट  
पैगाई नदीका कलेवर बढ़ाती रहती है । सिवा  
इसके गुण्ट्ट और वर्यलाई नामक और भी दो नदियाँ  
बाढ़के पानीसे उमड़ भाती और सागरकी ओर  
धीँकी हैं । अन्तमय समय इनमें कुछ ही धारा

बहती है। इसी समय इनका जल रोक कर पेत पटाया जाता है।

नारे जिलेमें १०६८ वर्गमील भूमि पहाड़ और बन है। इस बनका एक तृतीयभाग बड़रेजोंके अधिकारमें है। पलनो पहाड़ पर शाल वृक्षके सिवा सुपारी, इलायची, दालचीनी और काली मिर्चके भी पेड़ दिखाई देने हैं। पहाड़ोंमें तरह तरहके पत्थरके टुकड़े भी पाये जाते हैं। इनमें तरह तरहके ओपाल, संगमरमर, कैल्सिडोनी, जेस्पाड और गार्नेट प्रधान हैं। खनिज पदार्थोंमें सोरा, नमक, चूना और लोहेका कारोबार ही अधिक है। पलनो पहाड़को धोती हुई जो घारायें बहती हैं, उनमें सोना भी पाया जाता है।

मदुरा राज्यका प्राचीन इतिहास पाण्ड्य राज्यसे विजडित है। मयुरापुरमें पाण्ड्यराजको राजधानी थी। यूनानी भौगोलिक टलेमी और परिप्लोसके लिखे विवरणसे पाण्ड्य-राजवंशको समृद्धि मालूम होती है। मयुरापुरीके स्थल-विवरणमें पाण्ड्य राजवंशका जिक्र दिखाई देता है। इसके अधिकांश स्थानोंमें पौराणिक उपाख्यानोको भरमार है, इसीसे इस पर साधारणको अविश्वास उत्पन्न हुआ है। किंतु इससे दक्षिणात्यमें शैवधर्मका प्रचार तथा शिवलिङ्गकी प्रतिष्ठाका आभास मिलता है। पुरातत्व विभाग द्वारा प्राप्त शिलालेखों तथा ताम्रपत्रोंसे भी मदुराके पाण्ड्यराज्यका पूरा परिचय मिलता है। इससे मालूम होता है, कि ईसा-मसोहसे पांच सौ वर्ष पहलेमे ले कर ११वीं शताब्दी तक पाण्ड्यराजवंशका शासन था। दक्षिणात्यमें राजा राजेन्द्रचोलके अस्त्युदयसे पाण्ड्यराज्यका तेज धोमा पड़ गया। १३वीं शताब्दीमें इस राज्यवंशके अन्तिम राजा सुन्दर पाण्ड्य अपने पिताके सिंहासन पर बैठे। इनके ही राजत्वमें मालिक नायक काफूरने मदुरा पर अधिकार किया। इसके बाद मदुरा पर आठ मुसलमानोंका शासन कायम रहा। मुसलमानोंकी शक्तिके ह्रास होनेके समय १३७२ ई०में कम्पनउदयाने बलपूर्वक मदुराका सिंहासन छीन लिया। १४०४ ई० तक यह नगर [इसी वंशके हाथमें रहा। १४०४—५१ ई० तक यहां दो नायक राज और १४५१से १४६६ ई० तक

फिर एक बार पाण्ड्यराजवंशके चार राजाओंने राज्य किया। इसके बाद १४६६-१५१८ ई०में फिर नायकोंका राज्य हुआ। पाण्ड्य शब्द देखो।

चोल और पाण्ड्यवंशका पराभव तथा मुसलमानोंकी शक्तिहीनता देख कर विजयनगरके राजाने शिर उठाया। पीछे इस राज्यने दक्षिणात्यमें एक विशाल हिन्दू-साम्राज्य स्थापित कर लिया था। १६वीं शताब्दीके प्रारम्भमें विजयनगरके राजाने नायकवंशके प्रतिष्ठाता विम्बनाथ नायकको इस राज्य-शासनमें नियुक्त किया था। विम्बनाथने अपने बल पूर्वकसे केवल मदुराके सिंहासनको ही उज्ज्वल नहीं किया था, परं अपने राज्यको उन्होंने ७२ सरदारोंमें विभाग कर ७२ युजों द्वारा इस नगरकी रक्षा की थी। १५५६-६३ ई० तक विम्बनाथने मदुराके सिंहासन पर आरूढ़ रह कर जिस राज्यका विस्तार किया था, उसीको उनके वंशधरोंने बेरोक टोक भोग किया था। इस वंशके राजा तिरुमलने १६२३-५६ ई० तक अपने बाहुबलसे दक्षिणात्यके तिम्येवली, त्रिवाकुंर, कोयम्पुतुर, सलेम और त्रिचनापल्ली आदि राज्यों पर अधिकार कर अपना प्रभाव अक्षुण्ण रखा था। जेसुरट धर्मसम्प्रदाय इनके बलवीर्यकी बात भली भांति वर्णन कर गया है।

राजा तिरुमलने जिस छोटे साम्राज्यकी प्रतिष्ठा की थी, उसके राज-करमें उन्होंने सेना-विभागको उन्नति कर अपने बलको बढ़ाया। इनके द्वारा मदुरा नगर नाना राजकीय चिह्नोंसे विभूषित हुआ था। उस समयकी अट्टालिकाओंके भान्ना-शेष अव तक मौजूद हैं।

इसके बाद मदुराराजने विजयनगराधिपके हाथसे निकलना चाहा। इस सूबसे मुसलमानोंके साथ उनका एक खण्ट युद्ध हुआ। मुसलमानसे पराजित हो कर उन्होंने राजस्तर दे डुटकारा पाया। राजा तिरुमलके ही अन्तिम समयमें मैसूरका एक प्रबल आक्रमण हुआ। इससे यह बहुत दुर्लभ हुए थे। मेद-मन्डकुगल तिरुमलने अपने राज्यमें मेद-भायकी जैसी सृष्टि की थी, कि उसीके फल स्वरूप उनके मृत्यो परान्त दक्षिणात्यके समूचे राज्य पर मुसलमानोंका राज्य हो गया।

विजयनगरी मृत्युके बाद मद्रास राज्य छिन्न भिन्न हो गया। महाराष्ट्र के राजा शिवाजीके भाई एकोजीके तख्तोर-भाकरमण, मैसूरमें उदयराजवंशके और मुसलमानराज ईदर अलीके आधिपत्य तथा कर्णाटकके नयावीकी राज्य-निष्पत्ति ही मद्रास राज्यको क्षयनतिकार प्रधान कारण है। १५५० ई०में चांद साहबने मद्रास पर आक्रमण किया। तमोने मद्रासमें नायकवंशका अधिकार जमा रहा। इसके बाद २० वर्ष तक मुसलमान और मरहठोंके बार-बार आक्रमणने मद्रासराज्य तहस नहस हो गया। १५६२ ई०में कर्णाटक राज बालाजाके प्रतिनिधिरूपमें भद्रेश-कल्याणने इस जिल्लाका कुछ भाग अपने हाथ ले लिया। कर्णाटकके एक शेर म्नाथोन नयावने १८०१ ई०में उक्त प्रदेशका शासनभार सन तरहसे इष्ट इण्डिया कम्पनीके हाथ सुपुर्द किया। १७६० ई०में युद्धविग्रहके बाद विलिङ्गट तालुक महिपुर राजशासनसे अलग कर लिया गया।

रामनाद और जिवगढ़ा सामन्तराज्यका विस्तृत इतिहास इस प्रकार है—रामनादके सेनुपति-वंशीय मरदार रामेश्वर-मन्दिरके सेवास्य थे। इन लोगोंका कहना है, कि अपोथ्यापति रामचन्द्रने उनके पूर्वपुरुषको इस मन्दिरकी अय्यशाहा प्रदान की थी। इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है, कि सेनुपति राजाओंकी पाण्ड्य-राजवंशके साथ गाढ़ी मित्रता थी। नायकराजाओंके अधिकारकालमें ये सब सेनुपतिमरदार ७२ पलिया सरदारके प्रधान सम्भके जाते थे। मरवर नामक रामनादके दुर्गके अधि-यासीकी सहायतासे नायकवंशने अपनी राजप्रवादाकी रक्षा करने हुए वहाँ राज्यशासन किया था।

१६५६ ई०में निरमल-राजकी मृत्यु होने पर राज्यमें गमाग भगान्ति फैल गई। इस राष्ट्रियुद्धके समय भी सेनुपति अपने वंशानुचरित सार्व और महद्वय व्यवहार दिखला गये हैं। १८वीं शताब्दीके प्रारम्भमें कई बार मुस्लिम वंश जिसने रामनाद उखाड़-सा हो गया। कृषि-कार्यके अभाव और राजनैतिक अस्तित्वमें रामनादका राजतन्त्र छिन्न भिन्न हो गया।

१७२१ ई०में राज्यका कुछ अंश प्रयत्न उत्तमधि-यासीके और कुछ एक विद्रोहिसम्पन्नके अधिकारभुक्त

हो गया। इस सामन्तके पंगभगन जिवगढ़ाके राजा कहलाने लगे।

भद्रेशके अधिकारके प्रारम्भमें इन दोनों सामन्त-वंशोंके बीच घोर विवाद चञ्चल रहा। इसमें दोनों पक्षकी महती क्षति हुई और राजकीय भी गाली हो गया। कोटे धाय चाँडेके अधीन रह कर रामनादकी अस्थी उभरि हुई, किन्तु जिवगढ़ा-राजकार्य ढोला पड़ गया।

मद्रासमें ईसाधर्मका प्रचार दक्षिणार्थके इतिहासमें एक प्रधान घटना है। इस सुभाषीन धर्मप्रचारकारके लिखित विवरणमें हम मद्रासके प्रयत्न इतिहासकी कुछ धारावाहिक घटनाओंका समावेश देखने हैं। १५वीं शताब्दीके प्रारम्भमें मद्रासमें एक जेठुइद ईसा-सम्प्रदायका एक गिरजा प्रतिष्ठित हुआ। यहाँ एक पुर्तगाल-धर्मपात्रक कुछ निरध्रैणोंके महाहोंको ईसाधर्ममें मोक्षित कर अपनी जातीय कार्य चलाये लगा। १६०६ ई०में रायट्टे डि नोबिलि मद्रासपरदर्शनमें आये। मद्रासवासी जनसाधारणकी धर्मनिक देव कर इनने अपनेकी सिद्ध-धर्मप्रचारक घोषित करना चाहा। इस उद्देशको सिद्ध करनेके लिये उनने क्राङ्गानूरके धर्माध्यक्ष (Arch bishop of cranganore) को सलाह ली और उहाँकी सलाहके अनुसार संस्थासोका धेन धारण कर पुर्न प्रयत्नमें अग्रदभन किया। इस समय ये फेकल थीदा चापल, दूध और माग वा कर रहने तथा निर्जन समाग-में रह कर योगसाधन किया करते थे। उनके इस योगवालयनका अन्तत उद्देश्य था। ऐसे निर्जन अन्त-राजमें रह कर उन्होंने तामिल भाषा सीख ला थी।

घोरे घोरे इस पवित्र भाषावतरकी कथा चारों ओर फैल गई। भुण्डके भुण्ड लोग उनका धर्ममत जाननेके लिये आने लगे। उन्होंने अपनेकी रामका कुलीन प्राणव-वंशीय बतला कर जनतामें परिचय दिया और यह भी कहा, कि जातिके फरकमें दोन पर भी ये ईश्वरसाधनाके निमित्त गुरुत्वमें समाने आननपर्य भेजे गये हैं। भक्त हिन्दुमण उनके प्रत्यर्थ, जालगमीरता, तामिलजायमें स्पुन्पति और पुक्तिपुनिकी परिष्कृतवा देन कर मुगल हो गये। एनद्विन्न अयभूतकी तरह उनकी योग्यता देन

कर भी उनके प्रति जनताकी विशेष भक्ति और विश्वास उत्पन्न हो गया था। ईसाधर्मके निदर्शनस्वरूप वे तीन स्तानेके और दो चांदीके क्रोशचिह्न धारण करते थे।

उनके मोहनवाक्य पर मोहित हो कर उस देणके प्रायः अधिकांश लोग उनके चलाये हुए ईसाधर्ममें दीक्षित हुए थे। वह प्रपंची हिन्दुओंकी चिरप्रचलित त्रियापदतिके किसी भी विषयमें हस्तक्षेप नहीं करता था। इस प्रकार जनताको प्रसन्न करके उसने दाक्षिणात्य में अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त कर ली थी। स्वयं राजा तिरुमल-ने उसकी मनोहर बहूता पर मुग्ध हो कर उनके कार्यमें सहानुभूति दिखालाई थी। इस धर्मप्रचारके लिये जेसुरट प्रवरने 'कुन्दन' नामसे तामिल भाषामें एक ईसा-धर्म-ग्रन्थ प्रचार किया। यहां तक कि इसने 'बाइबिल' ग्रन्थका संस्कृतमें अनुवाद करा कर उसे यजुर्वेदका एक अंश साबित करनेकी चेष्टा की। प्रायः ४० वर्ष तक कठोर परिश्रम करनेके बाद उसने १६६० ई०में मन्दाजके निकट-वर्ती एक गण्डग्राममें जीवनलीला संवर्णण की। जीवन-के शेष दिन तक उसने बहुत दीन भावसे ही कालयापन किया था। तामिल भाषामें बनाये हुए उनके कुछ धर्मग्रन्थ प्रचलित हैं।

उनकी मृत्युके बाद जान डि थियो नामक किसी पुर्तगोजने दाक्षिणात्यमें ईसा-धर्मका प्रचार किया। उन्होंने असभ्य मरावर जातिकी सभ्य बनानेके लिये अपना जीवन उरमर्ग कर दिया था। सांप्रदायिक द्वेष-वशतः वे सेतुपतिराजके आदेशसे १६६३ ई०में मारे गये। इस जेसुरट सम्प्रदायके शेष धर्मयाजक बेसचो (Beschi)-ने मदुरामें रह कर तामिल व्याकरण और कुछ साहित्य प्रणयन किये।

राजा तिरुमलके शासनकालमें कुछ पद्य और छल बनाये गये। अपने राज्याकी उत्तरी सीमा उकातुरसे ले कर दक्षिणी सीमा सेतुपति तक एक बहुत लम्बी चौड़ी मड़क बनवा कर उन्होंने यात्रियोंकी सुविधाके लिये बीच बीचमें एक छल स्थापन किया। स्थानीय लोगोंकी सुविधाके लिये वे बहुत-सी पुष्करिणियोंका संस्कार और फूस खनन कर गये थे। पतञ्जिन मधुराका राज-भयन, वसन्तमण्डप, तेष्याकुलम, पुष्करिणी, मीनाक्षी-

देवीका मन्दिर और कुछ गोपुर उनकी कौत्तिके निर्माण हैं। मधुरापुरो सुन्दरलिङ्गके मन्दिर और तिरुमल नायकके प्रासादके लिये प्रसिद्ध हैं। सुन्दरलिङ्गके उत्पत्तिविषयमें स्थलपुराणमें जो विवरण दिया गया है वह इस प्रकार है—  
वे तायुगमें एक दिन देवनर्तकियां इन्द्रालयमें नाच कर रही थीं, इन्द्र मन लगा कर उसे देख रहे थे। इसी समय देवगुरु बृहस्पति वहां पधारे, पर इन्द्रका मन नाच गानमें ऐसा आलुष्ट था, कि वे उनका कुछ भी सत्कार न कर सके। इस पर देवगुरु बृहस्पतिने अपना अपमान समझा और उसी समय गुरुत्व-पदका त्याग कर तपस्याको चल दिये। इन्द्रने जब मारा वृत्तान्त ब्रह्मासे जा कहा, तब पितामहने उन्हें विश्वरूप नामक त्रिशिराकी गुरु बनानेका आदेश किया। श्वर बृहस्पतिकी सोजमें कुछ दूत दूटे। त्रिशिरा त्वष्टाके पुत्र थे, पर दीहित थे दैत्यकुलके। देवगुरुका पद पा कर वे यक्षमें आहुति देनेके समय प्रकाश्यरूपमें देवताओंकी और अप्रकाश्यरूपमें अपने मातामहकुल की मङ्गलकामना करते थे। देवराजको इस बातका पता लगने पर वे बड़े विगड़े और उनका शिर-फाट डाला। त्रिशिरा ब्राह्मण थे, इस कारण इन्द्रको ब्रह्म-हत्याका पाप लगा। पीछे देवताओंकी सहायतासे उन्होंने उस पापको चार भागोंमें विभक्त कर उद्भिद, खी, जल और पृथिवी पर फेंक दिया और इस प्रकार वे ब्रह्म-हत्यापापसे मुक्त हुए। उसी समयसे उद्भिदसे नियास, खीसे रज, जलसे फेन और पृथ्वीसे क्षारमृत्तिका (सज्जी मट्टी) उत्पन्न हुई। इन्द्र पापसे विमुक्त तो हो गये, पर एक दूसरी विपद्ने उन्हें व्या घेरा। त्वष्टाने पुत्र-निघन पर दुःखित हो एक दूसरे बलिष्ठ पुत्रलामके उद्देशसे पुत्रेष्टि यक्ष डान दिया। यक्षके फलसे उनके एक बसोम पराक्रमशाली पुत्र उत्पन्न हुआ। उसका नाम पूत्र रखा गया। पूत्रने घोर घोर इन्द्रको परास्त कर त्रिलोक पर अधिकार जमाया। इन्द्रने कोई उपाय न देख चतुराननके उपदेशसे विष्णुको ग्रहण ली। पद्म-नाभने इन्द्रको दधोचि मुनिकी अस्थिसे यज्ञायुध बना कर पूत्रके साथ युद्ध करनेका आदेश किया। इन्द्रने उसी उपायसे पूत्रका वध किया था। पूत्रमें ब्राह्मणत्व रहनेके

कारण इन्द्र इस बार भी प्रजापति के पापों में गिरा हो कर महाकष्ट पाने लगे। अब नियमाय इन्द्र स्वर्ग त्थाग कर पृथिवी पर आये और वसुमर्दिनि नामों छिप रहे। जाम्बवत नामों अनायमें स्वर्गमें अराजकता देव देव-तामोंमें पूरुषार्ति को ज्ञापन की। वृहस्पति उनका पूरुषं चरराध धामा कर इन्द्रके धर्मोपदेशों निकट। अब वसु-यतनों एक दूसरोंसे भेंट हो गईं, तब वृहस्पतिने पापसंगके लिये उन्हें भूमोर्धमें तीर्थपर्यटन करनेका आदेश दिया। अनंतर तीर्थ-पर्यटन, दर्शन और स्नान करने करने ये कल्याणपुरके निकट कदम्ब वनमें आये। यहाँ आते ही प्रजापति-पाप उनके शरीरमें आता रहा। पाप-मुक्ति-का कारण जाननेकी मतलासे इन्द्रने कदम्ब वनकी तलाश करते करते एक अनादिलिङ्गको देव पाया। याद उन्होंने विश्वकर्माको बुला कर उक्त लिङ्गके ऊपर एक मन्दिर बनवा दिया। लिङ्गका नाम सुन्दर रूप कर इन्द्रने वृहस्पति द्वारा वैदिक मतसे उनको पूजा कराई।

उनकी पूजासे सन्तुष्ट हो कर सुन्दरलिङ्गने उन्हें दर्शन दिये। इन्द्रने भी साक्षात् प्रणिपात हो कर 'प्रति-दिन आपकी पूजा कर सकें' इस प्रकार प्रार्थना की। महादेवने आदेश किया कि, स्वर्गमें बहुत दिनोंमें अरा-जकता पैली हुई है, सिके पूजा करनेके निमित्त राज्य-का त्थाग कर यहाँ रहनेको जरूरत नहीं। स्वर्गमें एक बार पैशाचो पूर्णिमाकी स्वर्गसे आ कर पूजा करनेसे पर्ण भरका पूजाफल लाभ होगा, अभी अपने राज्यको छोड़ आये।

इस प्रकार आदेश दे कर नियमों अन्तर्हित हो गये। पीछे इन्द्र भी स्वर्गको लौटे। तभीसे इन्द्र स्वर्गमें एक बार पैशाचो पूर्णिमाको कदम्ब वन आगे और जिब्रको पूजा कर पापम आती थे। इस प्रकार बहुत दिन बीत गये। कुन्डशेखर पाण्डुराजके शासन कालमें घनश्रव नामों एक वणिक् रहता था। यह एक दिन कहींसे आ रहा था। कदम्ब वनके निकट कल्याणपुरमें राह भूल गया। इस प्रकार कुछ समय भरहने रहनेके बाद उत्तम शासनकी कदम्ब वनमें पूर्णोक्त मन्दिरका लिङ्ग देखा। राज यहाँ पर बिना कर जब मथेरा हुआ, तब यह राजाके समीप आया और इसकी खबर दी। राजाके

उस घनने राजधानी बसाई और महालिङ्गको पूजाकरने-का मर्यादोंकमें प्रचार किया। अतिके रूपमें महादेव उसी राजको राजाके समीप आये और मन्त्रिका संस्कार करनेका आदेश किया। तदनुसार राजाने जंभल कर कर यहाँ राजधानी बसाई और देवालयका संस्कार किया। कालोसे प्रतिलिङ्गको पुजा कर महालिङ्गको पूजाका नियम करवाया गया। राजधानीका नाम क्या रखा जायगा, राजा इसको चिन्ता करने लगे। इसी समय महादेवने प्रवचन हो कर नई पुरीमें अपने मन्त्रक परका समूह छिष्ट किया। यह देश कर राजाने राज-धाभीका मधुरापुरी नाम रखा। इस प्रकार राजा कुन्ड-शेखर द्वारा सुन्दरलिङ्गको पूजा मर्यादोंकमें प्रचारित, मधुरापुरी निर्मित और यह पाण्डुराजाभीको राजधानी-रूपमें परिणत हुआ। यह घटना कब घटी थी, मादम् नहीं।

स्थलपुराणके मतसे जब अयोध्यावति राजारिध धीरासमन्द्र पिताकी आशसे खीदह गर्भके लिये पनमें आये और जब लङ्काधिपति रावणने पञ्चपटों-वनमें सीता-को हरण किया, तब रामचन्द्रने सुमोथके साथ मित्रता करके सीताको तलाशमें लङ्काकी यात्रा कर दी। राहमें अगस्त्य मुनिके आदेशानुसार मधुरापुरीमें टहर कर उन्होंने सुन्दरदेवको पूजा और आराधना की थी।

इस समय राजा अनन्तगुणपाण्ड्य मधुरापुरीमें राज्य करते थे। ये कुन्डशेखरसे ११ पीढ़ी नीचे थे। अनन्त स्थलपुराणके मतानुसार मधुरापुरी तैत्तयुगमें स्थापित हुई। पढ़ते ही कहा जा चुका है, कि राजा कुन्डशेखरने पुरीका निर्माण कर कालोसे प्राधनको बुलाया और सुन्दरदेवको पूजाका प्रदण्य कर दिया। इस-से बहुतसे अनुमान करते हैं, कि कुन्डशेखर पाण्डुराज-के समय दक्षिणदेगमें वैदिक प्राधन नहीं थे और उन्हीं-के समय आर्यवर्षसे प्राधनने आ कर दक्षिणदेगमें उप-निवेश बसाया।

अति प्राचीनकालसे दक्षिणदेगमें शिवलिङ्गका जैसा बहुतप्रकार देगनेमें आना है उससे यह भी सिद्ध हो सकता है, कि यह प्राचिद अर्यान् साम्रिज्यका देगना था। आर्ये प्र-प्रानोंमें दक्षिणदेगमें आ कर उनका प्रचार

तन्नाम देखा और उसे अपना देवता बना लिया। चिद-  
म्बर-माहात्म्यमें लिखा है, कि पञ्चम मनुके पुत्र जब श्वेत-  
वर्ण चिदम्बरतोर्धमें स्नान करनेके बाद हिरण्यवर्णके हो  
गये तब उन्होंने काशीसे तीन हजार ब्राह्मण मंगाये थे;  
यह भी पूर्व अनुमानका पोषक-सा मालूम होता है।

इसमें ६ गोपुर हैं जिनमेंसे एक १५२ फुट ऊंचा है।  
इस देवालयका प्राकार पूर्व-पश्चिममें ७४४ फुट और  
उत्तर-दक्षिणमें ८३७ फुट है। कहते हैं, कि विल्ववनाधी-  
शंशोय राजाओंने बाहुरके बड़े प्राकार और चार गोपुर  
बनवा दिये थे। जो सब नये मण्डप दिखाई देते हैं वे  
विश्वनाथ नायककी कौर्त्ति हैं। अरियनायक सहस्र स्तम्भ-  
मण्डप बनवा गये हैं। मृत्युञ्जय नामक ग्रन्थ पढ़नेसे  
मालूम होता है, कि तिरुमल नायकने गर्भगृहसे ले कर  
कपालीदेवीके मन्दिर तक कुल नया बनवा दिया था  
और उन्हींके समयमें यह देवालय उन्नतिकी चरम सीमा  
तक पहुँच गया था।

पहले शिवगङ्गातोर्धका जलस्पर्श करनेके बाद विश्वे-  
श्वर सुन्दरलिङ्ग और मीनाक्षीदेवीके दर्शन तथा अर्च-  
नादि करने होते हैं। इसके बाद यात्रिगण सहस्र स्तम्भ-  
मण्डप और घसन्तमण्डप देखने जाते हैं। इसे तिरुमल  
नायकने २० लाख रुपये खर्च कर बनवाया था। इसकी  
लम्बाई १०० गज और चौड़ाई २० गज है। इसकी छत  
१२० प्रस्तरखम्भों पर बठकी हुई है, प्रत्येक स्तम्भ २०  
फुट ऊंचा है।

इस मण्डपमें जल निकलनेको नाली भी दी हुई गई है।  
यहाँ सुन्दरलिङ्गदेवका घसन्तक्रोडा-उत्सव मनाया जाता  
है। यह उत्सव वैशाखा शुक्लपञ्चमीसे ले कर पूर्णिमा तक  
दश दिन महासमारोहसे सम्पन्न होता है। उस समय  
उक्त नाली जलसे भरी रहती है, क्योंकि, इससे यहाँकी  
गरम हवा जलके संयोगसे ठंडी होगी। इस घसन्त-  
उत्सव-मण्डपके स्तम्भमें दश प्रकारकी मूर्त्ति रोदित है  
जिनमें तिरुमल और उनसे पहले नी पुण्यकी तथा उनकी  
धर्मपत्नियोंकी मूर्त्ति विद्यमान हैं। कहते हैं, कि उन सब  
मूर्त्तियोंका निर्माण-कार्य १६२४-२६ ई०से आरम्भ हो कर  
१६४६ ई०में शेष हुआ था।

देवालयके पाल और भलट्टारादि देखने लायक हैं।

पालका मूल्य (५००००) हजार ४० और मणिमुक्तादिका  
करौय डेढ़ लाख रुपयेसे अधिक होगा। वहाँसे  
तिरुमल नामका राजभवन देखा जाता है। राजभवन-  
का अभी सिर्फ एक अंश विद्यमान है। दूसरे अंशको  
उनके गोते शोषयनायने तोड़ फोड़ कर उसके मसालेमें  
निशिरापहो-दुर्गाके मध्य राजभवन बनवाया था। पुराने  
राजभवनको धर्मो मरम्भ करा कर उसमें सज्जन जजकी  
कचहरी लगती है। यह भवन दो अंशोंमें विभक्त तथा  
देखने लायक है।

इसके बाद वहाँसे तेषनकुलम नामक गृहत् पुष्करि-  
णो नजर आती है। यह पुष्करिणो राजभवनसे डेढ़  
माल पूर्व-उत्तर पड़ती है। इसकी लम्बाई सब ओर  
१२०० गज करके है। चारों ओर उत्तम प्रेनाइट प्रस्तर-  
की सीढ़ी और सबसे ऊपरमें एक प्रेनाइट पथथरका  
कलस है। बीच बीचमें देवघोटक, मयूर और अन्यान्य  
पशुमूर्त्ति सुशोभित हैं। कलसके चारों ओर घूमनेका  
एक चौड़ा रास्ता है। वहाँ शामको लोग हवा खाने जाते  
हैं। पुष्करिणोके मध्यस्थलमें एक उपक्षीप है जो चारों  
ओर पथथरसे बंधा हुआ है। इसके ऊपर मध्यस्थलमें  
दो मंजिला देवालय और चारों कानमें चार छोटे छोटे  
कायकार्यविशिष्ट देवमन्दिर हैं। मध्यस्थलमें रास्ता  
है और रास्तेको बगलमें तरह तरहकी गुम्फलताप शोभा  
दे रही है।

उत्सवके समय एक दिन देवालय और पुष्करिणोके  
चारों ओर लाख बत्ती जलाई जाती है। उस दिन शाम-  
की सुन्दरलिङ्ग मीनाक्षीदेवीके साथ रथ पर चढ़ कर  
उपक्षोपके चारों ओर भ्रमण करते हैं।

वहाँसे ५ मील दूर तिथपरट्टु न्द्रमसे कन्धमलके  
पार्श्व देशमें एक शैवमन्दिर है। यह मन्दिर भी देखने  
लायक है।

मधुराका प्रधान उत्सव वैशाखी शुक्लपञ्चमीसे ले कर  
पूर्णिमा तक रहता है। पहले देवराज इन्द्र उक्त पौर्ण-  
मासीको ईश्वरकी पूजा करते थे, तदनुसार बाद दिन  
तक उत्सव मनाया जाता है। यहाँके लोगोंको धारणा है,  
कि उक्त पौर्णमासीको सुन्दर लिङ्गकी अर्चना करनेसे  
सम्बत्सर अर्चनाका फल लाभ होता है। यही कारण

है, कि उस दिन ३०१४० एकाद मनुष्य जन्म होते हैं।

इस जिल्लेमें २१ शहर और ४११३ ग्राम लगते हैं। उनमें सेना तोम नामके नरेश हैं। अधिपानियोंमें वेण्णालर, मगरर और वट्टरजाति हो प्रधान हैं। वेण्णालरगण साधारणतः एरिजोपी हैं। प्रवाद है, कि पाण्ड्यराजाओं द्वारा ये लोग इस देशमें लाये गये हैं। यहाँ विन्नुड तामिलनाडामें बोलचाल करते हैं। बहुतेरे इन्हें द्राविडीय जातिके शाखा वनलाते हैं। मगरर और कन्नडगण एरिजवान नामसे प्रसिद्ध हैं। ममुद्रोपकूलवर्ती रामनाद और तिवगण्णा के मध्य मगरर जातिका वाम देशा जाता है। इनके जातिरिक्त गटन और उधममें वैविध्यका स्वरूप करनेसे मालूम होता है कि ये लोग दो यद्दोंके आदिम अधिपानो हैं। ये लोग रामनाद और तिवगण्णाके राजाओं को ही अपना सरदार मानते हैं। एरिजवा शासकोंके पहले इन्होंने मुदरकोज्ज्व द्वारा पौरुताका परिचय दिया है। अन्त्यान्व द्राविडीय जातिके तरह ये लोग शयको गाइते और विधवा-विवाह करते हैं।

वाकुरगण इन्मुदुलि द्वारा आंगिका चलाते हैं। पदुकांडा सामन्तगणमें इनका प्रधान अङ्ग है। ये लोग धर्म उन्नत और दुर्लभ हैं, कि कभी कभी अङ्गरेजोंके भी विरुद्ध गठे हो जाते हैं। इस प्रकार अङ्गरेज-सेनापति पर आक्रमण कर ये कई बार योगताका परिचय भी दे गये हैं। ये लोग किस जातिये उत्पन्न हुए हैं उसका भाज तक भी निर्णय नहीं हो सका है। पार्यन्त प्रसम्य जातिके तरह भूतप्रेतादि उभेदेवताको उपासना करना ही इनका धर्म है। एरिज्वन मुमन्तमानोंको तरह सुन्नत कराने और विर्वा अनेक स्त्रीयों बना गइते हैं।

विद्यानिसामें यह जिला मायूराजप्रांतके मध्य छटा है। प्रायःसर्व स्थूल और सैकेस्त्रीके अन्त्या दो निम्न-कालीय भी हैं। लगभग चार ग्राह रूपसे प्रसिद्ध विद्यानिसामें गर्भ होने हैं। जिल्लेमें कुल मिला कर ५० अस्पताल हैं। मधुरा शहरमें जो अस्पताल है वही सबसे बड़ा है। मया अंत्यगता, सिपिण अस्पताल, जिला स्थूल और अमेरिजन प्रेडोलेट्टमिन्तर्वादि स्थूल इन्हें लायक हैं।

यद्दोंका अन्त्यायु शुक्र, उष्ण और सर्वथा परिष्कृत जाल है। जाड़ा बहुत कम पड़ता और यहाँ ज्यादा होती है। शीत ऋतुमें मतिजय उष्णका प्रादुर्भाव भी देखा जाता है। उष्ण ऋतुमें आनेवाले पानिवीको यद्दों आँसू लगते हैं, तब विन्मुक्तिका प्रकोप देखा जाता है। २ उक्त जिल्लेका एक तालुक है। यह अक्षा० १० ४५ से १० १२' ३० तथा देशा० ७७ ५१ से ७८ १८' ५० के मध्य अवस्थित है। भूगोलाय ४४६ वर्गमील और जनसंख्या तीन लाखसे ऊपर है। इसमें मधुरा नामक एक शहर और २६३ ग्राम लगते हैं। वेण्ण नामकी नदी तालुकके मध्य हो कर बह गई है।

३ उक्त जिल्लेका एक प्रधान नगर है। यह अक्षा० १० ५२' ३० तथा देशा० ७८ ७' ५० देशान्तरके बाएँ किनारे अवस्थित है। जनसंख्या लगभग ३०००० है। यहाँ ईमाज्जम्बके पहलेने पाण्ड्यराजाओंको राजधानी थी। उस समयसे यह नगर राजनैतिक उन्नति और धर्मविस्तारका केन्द्रस्थल हो गया था। राजा तिरमल के अधिकारमें यहाँ नाना कारकाय्ययुक्त जो सीधमाया बनाई गई थी उसका जिल्लेनेपुष्प देवनेदीय है।

मधुरा-स्थल पुराणमें इस स्थानका माहात्म्य गाया गया है। यह दक्षिणात्यका मधुरा वा मधुरापुरो नामसे प्रसिद्ध है। प्रभेद इतना ही है, कि यह विन्नु-क्षेत्र न कहना कर शीघ्र ही कहलाता है। यहाँके राम-भ्यद सुन्दरेन्दर और मोनाशोदेयोका माहात्म्य ही पवित्र है। स्थलपुराणमें मधुराशहरको प्रतिष्ठा और देवसेवकी पवित्रता कोलिग हुई है।

१४वीं शताब्दीमें मधुराशहर पर मुगलशासने आक्रमण किया। उसके अत्याचारसे अधिपानियोंके भागी-द्वन भा गया था। उन्होंने सुन्दरल्लू-मन्दिरके सद्विर्माण को ध्वंस कर अपनी देवसेविता चरितार्थ की। अन्त्या इन्फे इस सुन्दरल्लू मन्दिरके १४ निघर, गोपुर तथा अन्त्याय मन्दिरादि भी तोड़ फोड़ डाले गये। विन्नु मौनमयकमसे सुन्दरेन्दर और मोनाशोदेयोके गर्भ गृह पर उन अन्त्यानियोंको दृष्टि न पड़ी।

मुगलशासन लोग जब यहाँसे हटकर चले गये तब

तत्र मन्दिरके सेवाइत पूजकौते दैवोत्तर सम्पत्तिकी भाय-  
से वर्तमान ४ गोपुर बनवाये थे। मन्दिरके ध्य साय-  
शेयकी आलोचना करके मि० फार्मुसन आदि प्रवतत्त्व-  
गण समलट्टन हो गये हैं। आज भी उत्तर-दक्षिणमें इस्की  
लम्बाई ८४७ फुट और चौड़ाई ७४४ फुट होगी। उसके  
चारों शोरके ६ गोपुरोंमेंसे एककी ऊँचाई १५२ फुट है।  
मदुराके नायकवंशके प्रतिष्ठाता विश्वनाथ नायकके सह-  
कारी और सेनापति वार्यनायक या नायक मुथली जो  
सहस्रसम्ममण्डप बनवा गये हैं उसका भास्करशिल्प  
और त्रिज्जचामुर्थ लिख कर प्रकाज नहीं किया जा सकता।  
जिन्होंने एक धार भी अपनी आंनोंमें उसे नहीं देला है  
वे कुछ मो उपलब्ध न कर सकेंगे। अभी उस मण्डपमें  
६६७ स्तम्भ विराजित हैं।

१. उक्त मन्दिरके अष्टावा राजा तिरुमलका प्रासाद,  
वसन्तमण्डप, तमकस् प्रासाद और तेप्पाकूळम् नामक  
दीर्घिका उल्लेखनीय है। सुन्दरेश्वरदेवकी प्रांभके समय  
स्थानान्तरित करनेके लिये वसन्तमण्डप बनाया गया  
था। तेप्पाकूळम् नामक हृदकी लम्बाई और चौड़ाई  
प्रायः २४०० हाथ है। वर्षमें एक बार इस पुष्करिणीके  
चारों ओर रोगानो जला कर सुन्दरेश्वर-मन्दिरको प्रति-  
मूर्त्तियोंकी नाच पर जलविहार कराया जाता है।

अङ्कुरेणिके अधिकारमें आनेसे मदुरानगरकी बहुत  
धोवृष्टि हुई है। वृष्टि-संस्कारने अपने शर्चसे तिरुमल-  
प्रासादका संस्कार करके उसमें राजकीय कचहरो आदि  
स्थापन की।

मदुरा—आसामप्रदेगके कछाड़ जिलेमें प्रवाहित एक नदी।  
यह वराकनदीकी दक्षिणवाहिनी एक शाखाभाव है।  
उत्तर कछाड़ पर्यंतमालासे यह नदी बौड्पाई नामसे  
निकल कर पोछे मदुरा कहलाने लगी है।

इस नदीको पुण्यसन्निहाके सन्बन्धमें एक किंवदन्ती  
इस प्रकार प्रचलित है,—किसी समय कछाड़के कोई  
राजा अपने राज्यसे निकाल दिये गये। एक रातको  
उन्हे स्वप्न हुआ, 'कुल सवेरे मदुरानदीमें स्नान करते  
समय जिस विसीकी बहने देखोने, उसको उठा लेना।  
उमसे तुम्हारा कल्याण होगा।' सवेरे प्रातःकृत्यादि कर-  
के राजा मदुरानदीमें स्नान करने गये। स्नान कर

सुकनेके बाद उन्हीं अपने नामने एक सांपको बहने  
देखा। राजाने स्वप्नानुसार उसकी पृष्ठका अगला  
भाग पकड़ा। देवते देखने यह सांप एक तेज तलवारमें  
परिणत हो गया। उस तलवारके प्रभावसे राजाने पुनः  
अपने खोये हुए राज्यका उद्धार किया। पोछे उस तल-  
वारको एक मन्दिरमें रख कर वे रणचण्डी नामसे उसको  
पूजा करने लगे। धीरे धीरे यह रणचण्डीदेवो समस्त  
कछाड़वासियोंको कुलदेवी हो गई। यह देवीपोठ कछाड़  
नगरमें स्थापित था। कछाड़-राज्यके वृष्टिग शासनमुक्त  
होने पर रानो उस तलवार और देवमूर्त्तियोंको बड़-  
खोलामें उठा ले गईं। पोछे यह तलवार यहांसे चोरी हो  
गई। १८८२ ई०में कछाड़-विद्रोह इसी देवो अपहरणके  
लिये हुआ था।

मदुरा—यवद्वीपके पश्चिममें संलग्न एक छोटा द्वीप।  
दोनों द्वीपके बीच एक फीस तक एक नाली दौड़ गई  
है। भूतच्यकी आलोचना और यहांके प्राकृतिक अय-  
न्धान द्वारा यह द्वीप यवद्वीपका एक अंग समझा जाता  
है। यहांके लोगोंका कहना है, कि भगवान्के अवतार  
श्रीकृष्ण और बलदेवकी जन्मभूमि मधुरानगरीके नामसे  
इस स्थानका मदुरा (मधुरा) नाम पड़ा है।

यव और यवद्वीप देखो।

यहांके अधिवासो हर हालतमें यवभाषीके अनुरूप  
हैं। किन्तु उनको भाषा यवभाषासे स्वतन्त्र है। इस  
द्वीपके पूर्वभागमें जो भाषा चलती है उसका नाम सुम-  
नप है। उसमें बहुत कुछ स्पेनीय भाषा शामिल है।  
पश्चिमार्ध-वासियोंकी भाषा पुर्तगोजमिश्रित है जो मदुरा  
कहलाती है।

मदुरान्तकम्—१ मान्द्राजप्रदेगके चिङ्गलपट जिलेका एक  
तालुक। यह अक्षा० १२° १५' से १२° ४६' ३०" तथा  
देशा० ७६° ३८' से ८०° ६' पू० बङ्गालकी खाड़ीके किनारे  
अवस्थित है। भूपरिमाण ५६६ वर्गमील और जनसंख्या  
तीन लाखके करीब है। इसमें ३ शहर और ५२४ ग्राम  
लगते हैं। पालार और किलियार नामकी नदी तालुकमें  
बहती है।

२ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १२° ३१'  
३०" तथा देशा० ७६° ५३' पू० मान्द्राज शहरसे ५० मील  
दक्षिण-पश्चिममें अवस्थित है।



मदोरा ( सं० पु० ) मदेन मालवाप्रदेशा उच्यते । १ मल  
हस्तो, पायल हाथा । २ कपोल, क्यूड । ( सि० ) मदेन  
मदोरा उच्यते । ३ मदोमल, मोमो मूर । त्रिषो  
रुप । ४ मदोमला, मदिम । ५ अममोपु, मोमोका  
पौषा ।

मदोम ( सं० पु० ) मदेन ह्येष ह्येन, उद्भवः उभः । १  
मम, ममयाया । त्रिषो रुरूप । २ नारी, स्त्री ।

मदोमल ( सं० सि० ) मदेन मलया उच्यते । १ मल,  
मोमो मूर । २ ममए, ममिमानो ।

मदोमक ( सं० पु० ) मदायन, मोमको शानिका एक  
पेष्ट ।

मदोमस ( सं० सि० ) मदेन उमसः । १ मरु द्वारा  
उमस, मोमो पायल । ( पु० ) २ मलसारोका मन्-  
मेर ।

मदोहापो ( सं० पु० ) मोहित, खोवला ।

मद्र ( सं० पु० ) मद्रतोमि मन्म ( म-द्र-मो-मृ-मिदिनि ।  
उच् १।० ) इति उ । १ पश्चिमिरोर, एक प्रकारका  
जलपत्ती । यह नारतपत्रके प्रायः सभी भागोमें विरोध-  
कर पदायी और जड़ली प्रदेशमें होता है । इसकी  
तन्माई पृष्ठमें चीन तक ३२से ३४ इंच तक होती है ।  
इसके पीमें कुछ पोलापन लिए होते हैं । इसकी पृष्ठ  
पत्ती, चींग पोली और मुंह, कनपटी और गलेके मोचिका  
भाग मोहद तथा पैर काले होते हैं । इसे जलपाद और  
जमपुष्पार भी कहते हैं । इसके मांसका गुण वायु-  
नाशक, शिथल, भेदक, शुककारक, शोथल और रक्तपित्त-  
नाशक माना गया है । २ पर्णमृगमेद, पेष्ट पर रहनेवाला  
एक प्रकारका जंतु । ३ मद्रुमरुतस्य, मंगुरो मछली ।  
४ एक प्रकारका मुसपोत, जंगो जहाज । ५ एक प्रकारका  
मार्द । ६ एक पर्णसंकर शानिका नाम । मनुस्मृतिके इन-  
को उपनि शासन विना और बंदो शानिका मानाये है ।  
ये मध्य यमुनोको तार कर अपनी जोषिका मन्गते हैं ।  
मद्रुमूर्धक ( सं० पु० ) दूध मर्कट, पेष्ट पर रहनेवाला  
एक प्रकारका जंतु ।

मद्रुमुर ( सं० पु० ) मद्राणि जर्न मन्म ह्यप्योति मद्र  
( मद्रुमुर दबान । उच् १।१२ ) इति उरूप, निपातनात् ।

मिद्रः । १ मद्रुमुरिरोर, मंगुरो मछली । यह  
मछलियोमें मंगुरो मछली विरोध मुसकारो होतो है ।  
इसका गुण—मधुर, शिथल, रसवाही, शुककारक और  
शुभ । भावप्रकारके मन्म—शतमानक, कलार, दूध,  
कलानक और लघु । रीठ और मंगुरो मछलीको छात्र  
पर मध प्रकारकी मछलियां कककर होतो है । २ पर्ण  
संकरशानिकिरोर, एक पर्णमद्रुमुरशानि । इस शानिके  
मनुष्य समुद्रमें डूब कर मोती निकालते हैं । ३ मोता-  
पोर, पनडुप्या ।

मद्रुमुरक ( सं० पु० ) मद्रुमुर स्वार्णो कन् । मद्रुमुर  
मरुप, मंगुरो मछली ।

मद्रुमुरमी ( सं० स्त्री० ) मद्रुमी पश्चिमिरोर रमो मत्स्यः  
स्त्री । मद्रुमुरस्य, मोमो मछली ।

मद्रियेरा—माद्राजप्रदेशके कर्नाल जिलेका एक नगर ।  
यह अक्षां १५' १५ उ० तथा देशां ७७' १२' ५०  
दिल्ली गदीके किनारे भयसिद्ध है ।

मद्रुदूर—१ महिपुर शय्यके महिपुर जिलेका एक प्राचीन  
उपविभाग । १८७५ ई०में यह दू गो भागोंमें विभक्त हो कर  
मण्डप और मद्रकन्तो-तानुबके अन्तर्गत हुआ है ।

२ उक्त विभागका एक नहर । यह अक्षां १२' १५'  
उ० तथा देशां ७७' ३५' पू० निमगा गदीके दाहिने किनारे  
अस्थित है । जनसंख्या द्वार हजारमें ऊपर है । परदे  
यह नगर बहुत समृद्धिवाली था । स्थानीय भर्मण्य  
प्राचीन मन्दिर और पुर्कारणी आदि उसका परिचय  
देती हैं । पाण्डवराज अर्जुन अपने गोमंथरंजनात्म  
यहां आये थे और इसका अर्जुनपुर नाम रण गये । हय-  
नाल बन्ध्याशयनीय किन्तु राजाते यह नगर एक  
प्रायजको प्रजाधरामे दिया था । १६११ ई०में टोपू-  
मुलतानके साथ स्वार्थ-कार्यवाहिका जा मुद्र हुआ था  
उसमें कार्थवाहिकने दुर्ग और बहल-गो कौसिली तोड़  
पोष्ट कानो तमोमें इसका संस्कार आज तक होने नहीं  
पाया है । १८७५ ई० तक यहाँ मद्रुदूर तानुबका विचार  
मद्रुदूर । नि-मान नदीके ऊपर एक पुल है । इस  
पुल परसे मद्रुदूर-महिपुर रेलवे स्थान गां है । मद्रुदूर-  
में एक कैथे स्टेज भी है । १८८४ ई०में नहर  
शुभिकारिको स्थापित हुई है ।

मद्दूसाही ( हि० पु० ) एक प्रकारका पुराना पेसा । यह ताबिका चीकोर टुकड़ा होता है ।

मदिक ( स० पु० ) यह मदिरा जो द्राक्षासे बनाई जाती है, द्राक्ष ।

मद्विम ( हि० लि० ) १ मंदा । २ मध्यम, अपेक्षाकृत कम ।

मद्वे ( हि० अण्य० ) १ लेखमें, वाचत । २ बीचमें, में । ३ सम्बन्धमें, विषयमें ।

मद्य (ही०) माद्यति जनोऽनेन मद्य (गद-मद-यमन्धातुपसर्गे) । पा ३।१।१०० इति करणे । सुरा, शराव ।

“मित्तो । मांसनिषेधार्थं प्रकृष्ये किं तेन मद्यं विना मद्यन्वापि तत्र प्रियं प्रियमहो वाराज्याभिः सह । वेभ्याप्यर्थैश्चिः कुतस्तव घनं द्यूतेन चोष्ये । वा एतावानपि संप्रहोस्ति भवतो नष्टस्य कान्या गतिः ॥”

( साहित्यदर्पण )

भारतमें मद्य ।

मद्य क्या सभ्य क्या असभ्य सभी समाजमें विलासकी सामग्री माना गया है । प्रायः सभी सभ्य समाजोंके अनुभवी लोगोंने इसकी सुराईको देख इसके सेवनका निषेध किया है । किन्तु यह देख कर आश्चर्य होता है, कि इतना निषेध रहने पर भी समाज समाजसे इसका पूर्णतः वहीटकार न हो सका । आजकल भारतमें मद्यका इस तरह प्रचार देख कुछ लोगोंकी धारणा है, कि वैदेशिक प्रभावसे ही मद्यका इतना प्रचार बढ़ा है । यद्यपि शरावकी भट्टियाँ उठ गई हैं, तथापि ग्राम-ग्राममें इसकी दुकानोंका खोलना और मद्यका प्रचार करना विदेशी प्रभावका घोटक ही है । कुछ लोगोंका यह भी कहना है, कि देशी भट्टियोंका बन्द करना आधुनिक शासन-कलाका एक चानुर्व्य-पूर्ण कार्य है । यदि कोई यह कहे, कि इसके बन्द कर देनेसे मद्यका प्रचार बन्द-सा दिखाई देता है, तो यह कहना होगा, ऐसी बात नहीं । भट्टियोंके बन्द कर देनेसे किसी तरह इसके प्रचारमें रफा-बट न हुई । घर-घरोंके मट्टकड़ियोंकी चार पैसैकी जगह चार रुपये खर्च करने पड़ते हैं । अतः आर्थिक और व्यवसायिक दृष्टिसे भट्टियोंका बन्द होना भारतकी भलाई नहीं, परं बुराई ही हुई है । देशी मद्योंका प्रचार राक-

विदेशी मद्योंका प्रचार किया गया । इसकी शासन की व्यवसायिक कलाका चानुर्व्य नहीं तो और क्या कहा जा सकता है ।

जैसे आजकल विलासती मद्योंका प्रचार सारे देशमें दिखाई देता है, भारतमें ऐसे ही देशी मद्योंका प्रचार था । अब तो बहुतेरे इसको घुपाकी दृष्टिसे देखते और पीना तो दूर रहे स्वयं तक भी नहीं करते हैं । किन्तु यहां एक दिन यह था, जब भारतका सभ्यसमाज इसकी बे-रोक पीता था और इसे आमोदका सामग्री समझता था । इस समय जिस तरह यूरोपीय सभ्य समाजके स्त्री-पुरुष एकत्र हो कर मद्यपान कर मस्त रहते हैं, उसी तरह भारतका भी सभ्य समाज इससे यक्षित न था ।

हम वेद संहितासे ही भारतीय आर्योंमें मद्यपानका आभास पाते हैं । ऋक्संहितामें ( १।११६।७ ) बहुतों सुराकुम्भका उल्लेख है । उस समयके कलवार धरने मट्टीखानेमें दूति या चमड़ेकी बोटलमें मद्यको रखते थे और उस समयके साधारण लोगोंकी धारणा थी, कि इसको पान करनेसे अमृतकी तरह अमर हो कर रहेंगे । १।११६।१० वैदिक 'सीतामणि' और पात्रपेय यागका मद्य एक प्रधान अङ्ग था । बिना मद्यके ये याग पूरे होते ही न थे । सिवा इसके वैदिक ऋषि सोमरसपानकी जोयनका एक प्रधान कर्त्तव्य मानते थे । सोमरसके बनानेकी विधि, उसकी व्यवस्था, उसके सेवन करनेकी विधि और उसकी रक्षाप्रणालीकी आलोचना करने पर मालूम होता है, कि सोमरस भी एक तीव्र मादक द्रव्य ही है । देवता भी इस सोमरसको पान कर आनन्दमें मग्न रहते थे । सोमरसका पान करना बहुत अच्छा-समझते थे । इसका ऋषेदले पूरा प्रमाण मिलता है । गोम देखो ।

\* “कातेतत्तच्छकारवस्य बृहन्पाः तत् कुम्भां भविष्यन्त समापाः ॥” ( शुक १।११६।७ )

† “एवं विन्मा यत्रामि इति सुरावजो ये ।”

महोदधर ( सं० पु० ) मदेन पावसावस्था का अर्थः । १ मय  
हस्तो, पावसावस्था । २ कपोल, बभ्रुव । ( ति० ) मदेन  
महाद्विजा अर्थः । ३ मदेनमत्त, नरोनि भूत । त्रिषो  
टात् । ४ महोदधर, मदिता । ५ मयमोत्तुव, मोमोका  
पेठ ।

महोदध ( सं० पु० ) मदेन ह्येन ह्येन, उदधः उमः । १  
मय, मयमत्तः । त्रिषो टात् । २ मयो, यो ।

महोदध ( सं० ति० ) मदेन मयमत्त उदधतः । १ मय,  
मोमो भूत । २ मयमो, मयमो ।

महोदध ( सं० पु० ) वकायन, मोमकी जातिका एक  
पेठ ।

महोदध ( सं० ति० ) मदेन उदधतः । १ मय द्वारा  
उदधत, नरोनि पावसा । ( पु० ) २ मयमोरोक, मय-  
भेद ।

महोदधो ( सं० पु० ) कोकिल, कपोल ।

महु ( सं० पु० ) मञ्जोती मसु ( म-मु-गो-वृ-वृ-दिशि ।  
उच्च् ११० ) इति उ । १ पक्षिविशेष, एक प्रकारका  
जन्तुपक्षि । यह भागवतके प्रायः सभी भागोंमें विशेष-  
कर पहाड़ी और जङ्गली प्रदेशमें होता है । इसकी  
लम्बाई पूँछमें चौन तक ३२से ३४ इंच तक होती है ।  
इसके दोनै कूट पांशुपात्र लिए होते हैं । इसकी पूँछ  
बाली, चौन दोनै और मुँह, कनयो और गलेके मोथेका  
भाग मसिह तथा पेर काले होते हैं । इसे जलपाद और  
जलपुच्छ भी कहते हैं । इसके मोसका गुण वायु-  
नाशक, विनाश, भेदक, शुककारक, जोषण और रक्तपित्त-  
नाशक माना गया है । २ पर्णसुगन्ध, पेठ पर रहनेवाला  
एक प्रकारका जंतु । ३ महोदधमसु, मंगुरों मछली ।  
४ एक प्रकारका सुदुर्गन्ध, जंगो जहाज । ५ एक प्रकारका  
मसिह । ६ एक वर्षेसंहर जातिका वन । मनुस्मृतिमें इत-  
की उल्लेख प्रायण निका और बंदी जातिकी मानाये हैं ।  
ये वन्य पशुओंके मार कर अपनी जीविका बनाते हैं ।  
महोदधमसु ( सं० पु० ) वृत्त मसुं, पेठ पर रहनेवाला  
एक प्रकारका जंतु ।

महु ( सं० पु० ) माहति जतं प्रायं हृत्परोति महु  
( मसुत्त १५५ । उच्च् १४० ) इति उदध, निपातकम्

विश्वः । १ मयमविश्व, मंगुरों माहती । यह  
मछलियोंमेंसे मंगुरों मछली विशेष गुणकारी होती है ।  
इसका गुण—मधुर, विनाश, संवाही, शुककारक और  
शुक । भागवतकागके नाममें—पावसावका, कनकर, दुग्,  
कनकरक और मसु । देह और मंगुरों मछलीको पाह  
कर सब प्रकारकी मछलियां कनकर होती हैं । २ मने-  
संकरजातिविशेष, एक वर्षेसुदुर्गन्ध । इस जातिके  
मनुष्य मनुदुर्गं डूब कर मोती निकालते हैं । ३ मोता-  
शोर, वनदुग्धा ।

महुशुक ( सं० पु० ) महोदध मयों वन । महोदध  
मसुत्त, मंगुरों मछली ।

महुशुक् ( सं० वृत्त० ) महोती पक्षिविशेष रहते प्रायः  
शीघ्र । शुकमसुत्त, सीमो मछली ।

महोदध—मान्द्राजमदेनके वन्य त्रिषोटा एक नगर ।  
यह मसु १५ १५ उ० तथा देगा ३३ २३ पू०  
हिन्दो महोके किनारे मयमिद न है ।

महुदूर—१ महोदध राज्यके महोदध जिलेका एक प्रायोन  
उपविभाग । १८७५ ई०में यह दो भागोंमें विभक्त हो कर  
मण्डप और मन्डबन्दी तानुदुर्गके अन्तर्भूत हुआ है ।

२ उक्त विभागका एक शहर । यह मसु १२ ३५  
उ० तथा देगा ३३ ३ पू० निमजा महोके दाहिने किनारे  
जन्मस्थित है । जनसंख्या इतना है जितना ऊपर है । परते  
यह नगर बहुत संसुविज्ञानी था । इधामें भयंकर  
प्राचीर मस्जिद और पुस्तकाली आदि उनका परिणय  
देती है । प्रायः राज मसुत्त अपनी मोथेपरंमहात्मने  
वहाँ आये थे और इसकी अहुंमसुत्त नाम सब मये । हय-  
जात बन्दावर्षनीय किमो राजाने यह नगर एक  
प्रायणको प्रयोगकरते दिया था । १८११ ई०में टो-  
सुदनालके साथ मसुत्त-जानेपतिमका जो युद्ध हुआ था  
उसमें काने गाजिलने दुग् और बहून्-गी कीलियां लोड  
कोय खाडी तामोसे उनका संस्कार आज तक होने मरी  
घाया है । १८७५ ई० तक मसु महोदध तानुदुर्गका विचार  
मदर रहा । निमजा महोके ऊपर एक पुन है । उस  
पुन परसे महोदध-महोदध-रेतने मारन मरी है । महोद-  
धे एक ईसके मदेन भी है । १८८५ ई०में महोदध  
सुविनिर्वातको कर्णपिण हुं है ।

मद्दूसाही ( हि० पु० ) एक प्रकारका पुराना पैसा । यह तथिका चौकीर टुकड़ा होता है ।

मद्विक ( स० पु० ) वह मदिरा जो द्राक्षासे बनाई जाती है, द्राक्ष ।

मद्विम ( हि० ति० ) १ मंदा । २ मध्यम, अपेक्षाकृत कम ।

मद्वे ( हि० अथ० ) १ लेखमें, वाक्य । २ वीचमें, में । ३ सम्बन्धमें, विषयमें ।

मद्य ( ह्री० ) माद्यति जनोऽनेन मद् ( गद-मद-यमश्वात्पुष्योर् ) । पा ३।१।१०० इति करणे । सुरा, शराश्च ।

“मिन्नो । मांखनिवेण्यं प्रकृते कि तेन मयं विना मद्यन्वापि तत्र मित्रं मियमशे वाराण्णयाभिः धर । वेभ्याप्यर्थाभिः कुतस्तव धनं द्यूतेन चौर्ये वा एतावानपि संश्रोऽनि भवतो नश्यन् कान्या गतिः ॥”  
( साहित्यदर्पण )

भारतमें मद्य ।

मद्य क्यां समय क्या असमय समी समाजमें विलासकी सामग्री माना गया है । प्रायः सभी समय समाजोंके अनुभवों लोगोंने इसकी धुराईको देख इसके सेवनका निषेध किया है । किन्तु यह देख कर आश्चर्य होता है, कि इतना निषेध रहने पर भी समय समाजसे इसका पूर्णतः बहिष्कार न हो सका । आजकल भारतमें मद्यका इस तरह प्रचार देख कुछ लोगोंको धारणा है, कि वैदेशिक प्रभावसे ही मद्यका इतना प्रचार बढ़ा है । यद्यपि शरावको भट्टियां उठ गई हैं, तथापि प्राम-प्राममें इसको दुकानोंका धोलना और मद्यका प्रचार करना विदेशी प्रभावका चोतक ही है । कुछ लोगोंका यह भी कहना है, कि देशी भट्टियोंका बन्द करना आधुनिक शासन-कलाका एक चातुर्व्य-पूर्ण कार्य है । यदि कोई यह कहे, कि इसके बन्द कर देनेसे मद्यका प्रचार बन्द-सा दिखाई देता है, तो यह कहना होगा, ऐसी बात नहीं । भट्टियोंके बन्द कर देनेसे कितनी तरह इसके प्रचारमें रफा-बंद न हुई । वरं यहांके भट्टकट्टियोंको चार पैसेकी जगह चार रुपये खर्च करने पड़ते हैं । अतः आर्थिक स्तर व्यवसायिक दृष्टिसे भट्टियोंका बन्द होना भारतकी भलाई नहीं, परं बुराई ही हुई है । देशी मद्योंका प्रचार रोक

विदेशी मद्योंका प्रचार किया गया । इसको शासन और व्यवसायिक कलाका चातुर्व्य नहीं तो और क्या कहा जा सकता है ।

जैसे आजकल विलायती मद्योंका प्रचार सारे देशमें दिखाई देता है, भारतमें वैसे ही देशी मद्योंका प्रचार था । अब तो बहुतेरे इसको घृणाकी दृष्टिसे देखते और पीना तो दूर रहे स्पर्श तक भी नहीं करते हैं । किन्तु यहां एक दिन यह था, जब भारतका सम्यसमाज इसको वैरोक पीता था और इसे आमोदका सामग्री समझता था । इस समय जिस तरह यूरोपीय सम्य समाजके स्त्री-पुरुष एकल हो कर मद्यपान कर मस्त रहते हैं, उसी तरह भारतका भी समय सपान इससे वञ्चित न था ।

हम वेद संहितासे ही भारतीय आर्योंमें मद्यपानका आभास पाते हैं । ऋक्संहितामें ( १।१।६।७ ) बहुरीं सुराकुम्भका उल्लेख है । उस समयके कलवार अपने भट्टीखानेमें द्रुति या चमड़ेकी बोतलमें मद्यको रखते थे और उस समयके साधारण लोगोंकी धारणा थी, कि इसको पान करनेसे अमृतकी तरह अमर हो कर रहेंगे । ( १।१।६।१० ) वैदिक 'सौत्रामणि' और धात्रयेय यागका मद्य एक प्रधान अङ्ग था । बिना मद्यके ये याग पूरे होते ही न थे । सिवा इसके वैदिक ऋषि सोम-रसपानकी जोयनका एक प्रधान कर्त्तव्य मानते थे । सोमरसके बनानेकी विधि, उसकी अवस्था, उसके सेवन करनेकी विधि और उसकी रक्षाप्रणालीको आलोचना करने पर मालूम होता है, कि सोमरस भी एक तीव्र मादक द्रव्य ही है । देवता भी इस सोमरसको पान कर आनन्दमें मग्न रहते थे । सोमरसका पान करना बहुत अच्छा समझते थे । इसका ऋग्वेदसे पूरा प्रमाण मिलता है । घेम देखो ।

० “करोतरान्द्रकादरवस्य बृष्याः इतं कुम्भां मदिदतं सगयाः ॥” ( शुक १।१।६।७ )

१ “स्यं विमम वरामि दंतं सुरावरो यरे ।”  
( १।१।६।१० )

वेदिकयुगमें अर्धराज्य स्वीकृतवान् कालमें प्राप्त करने में। इसीसे सुरा या सोमराज उनके लिये शीघ्रमो-  
 र्त्तिलाली कदाचित् १३ माना जाता था। यही कारण है कि  
 वेदमें सुरापायनका विवेचन या उल्लेख नहीं है। अथवा  
 यह शायद सोमराज्यवादीयोंमें अथवा विचार करने लगे,  
 तब इस मन्त्रकी अर्थवर्तिका उन्हें समझ पड़ी। इसी-  
 लिये आर्योंमें "सोमराज्यवन्देयमन्त्रा" अर्थात् मन्त्र योंमें  
 शोभ नहीं, मन्त्र विचारकी देने योग्य नहीं और मन्त्र  
 विचारके मन्त्र करने योग्य नहीं, इसका प्रचार करने  
 लगे। इस मन्त्र आर्योंमें सुरापायन महापायनकी गिना  
 गया।

सुरापायन कबो होना गया था? इस पर महाभारत-  
 के आदि पर्वमें पार्वतीकापायन इस प्रकार लिखा है—

"देवसुत दृष्ट्वातिके पुत्र कचने मृत-सञ्जोषनी-दिवा  
 मृत-वृक्षकेके लिये मुक्तावापकेका निष्पत्त्य होकार किया।  
 असुरोंने, कच इस विद्याको शोष कर कही देवताओंको  
 भी न बना दे यह शोष कर उसे मार जाता। उनको  
 भविष्यतः सुरामें जान कर मुक्तावापकेको पिता दिया गया।  
 मृत-वृक्ष देवदासिन कच पर मोहित हो गया था। उसने  
 विचारों जा कर कहा, 'कचके विना मैं जी नहीं सकता।  
 गिराना ही मेरे प्राण मेरे, नारोखे अनग हो जायेंगे।'  
 मुक्तावापकेके अथवा मयोद्या दृष्टताके प्रेमोको शोषनदान  
 देलेंगे, लिये मृत-सञ्जोषनी मन्त्रका प्रयोग किया। कचने  
 मुक्तावापकेके उदरमें ही शोषन साम दिया और यहीने  
 मुद्रकी उधार दिया। मुक्तावापके भावी पितामें वृ-  
 ष्ठी, कि मृत उदरके बाहर कीं निष्पत्त्य सकता  
 है। इस उदर विदीर्ण कर निकलनेके लिये और बोरे  
 पारा नहीं। तब उन्होंने कचको मृत-सञ्जोषनी पिता  
 मिला ही और उगमें कहा, कि मृत उदर विदीर्ण  
 कर निकल भावा और बाहर आ कर मुझे शोषित कर  
 देना। कचने ऐसा ही किया, उदरके निकल कर  
 मृतकी शोषित कर दिया। तब मुक्तावापकेके देना, कि  
 असुरोंने मुझे मुक्ताके द्वारा ही प्राण-निष्पत्त्यका एक पात्र  
 कहा था। इसमें सुरा पायनका विवेचन करना उचित है।  
 इसमें सुरापायनका विवेचन किया गया। ४/१० १०।  
 मनु-भीम वागवत्तय शोभने ही शोषनका की है, कि

सुरापायनके लिये बोरे भी प्राणविद्यत नहीं है। यहाँ उल्लेख-  
 का पात्रों, यहाँ पूत्र या यहाँ सोमूच पात्र प्राण भरता ही।  
 यहाँमान अर्धराज्य है। अगिरा, वसिष्ठ, वैशम्पती अर्ध-  
 कृष्ण जात्यहातोंमें केवल यहाँ सुरा-पायनको व्यवस्था की है,  
 विश्व देवत इन्में भी सहमत नहीं। उन्होंने कहा है, कि  
 रुवा, ताँबा या सोमा यका कर और उसे पान कर दे देवता  
 करता ही सुरापायन करलेवालोंका उपयुक्त प्राणविद्यत है।

और तो क्या, न जान मनु कर भी सुरापायन करने पर  
 तिसातिषोको पुत्रा संभार करनेको शोषनकरता है।  
 भगवान् मनुने भी व्यवस्था की है— "सुरा अथवा मन्त्र  
 है, मन्त्र ही पात्र है अथवा प्राणान, शक्तिव और वैश्य कोने  
 भी सुरापायन नहीं करेगा। मीठी, पीले और माधवों के लोभ  
 गहकते सुरा ही पर एक भी प्राणालोके योंमें योग्य नहीं।  
 और तो क्या, जो प्राणालो सुरापायन करतो है वह पत्नीकीक  
 जा नहीं सकता और इस लोकेमें कुलो, मृषिनी या कृष्टी  
 ही कर जन्मग्रहण करती है। आर्योंमें इस तरहकी  
 युक्ति भी देखा जाता है। मनुने स्वयं भावा की है कि  
 राजा, मृत-वत्तो-मनन करनेशने पुरुषके मन्त्रादमें भगका  
 विश्व, सुरापायन करनेवाले मनुष्यको सुरापायन, सुपुत्रों  
 पौरों करनेवाले मनुष्यको कुम्भुरका पद और अन्नदत्ता  
 कारोके मन्त्रादमें कर्षकका विश्व भक्तिन कर छोड़ दे।  
 उन लोकोके साथ किराको भी भोजन, यज्ञ पात्रन  
 पठन पाठन और विवाह समग्र्य स्थापित करना उचित  
 नहीं। ये सब धर्मोंमें यद्विद्यन ही पर शोषनवापके  
 पुराणोंमें विचारन करेगे। उनके मन्त्रादका विश्व देन कर  
 उनके दिन मित उनका परिष्कार करेगे, यही मनुका  
 भावेन है।

धर्मशास्त्रके बड़े अनुशासनमें भी मन्त्रशास्त्र-  
 का मन्त्र बदला था, ऐसा समझी नहीं जाता। मुनि,  
 ऋषि, वसिष्ठ संस्थाओं, तदर्थी अथवा प्राणन परिष्कारन  
 अवयव ही धर्मशास्त्रको ज्ञान मान कर चलते थे। धर्मिक  
 और मन्त्र मन्त्रपायन भी बहुत कुछ मनुकी उधार शास्त्र-  
 का पात्रन करने थे, किन्तु मन्त्रको उधारवर्तनी देलेंगे  
 मन्त्र ही मुद्रिषेव ही है। यहाँमें वेदमन्त्रिकों उदर  
 पात्रोंक शक्तिवत्तकी पालोयका करने पर ही मन्त्रापायन  
 ही मन्त्र ही सकता है, कि मन्त्रके राजाविद्यतों में

कर दृग्द्रोको पर्ण कटी तक मक्का कितना प्रवार और समादर था ।

मनुने मघ-पानके सन्बन्धमें इस तरह कटोर अनुज्ञासन देने पर भी जनसाधारणको अवस्था देख कर मालूम कर लिया था कि ऊँचे दरजेके लोगोंमें हमारी आशाका पालन होता है, किन्तु सर्वासाधारण इसे माननेको तैयार नहीं। इसीलिये उन्होंने यह भी व्यवस्था दी थी, कि मद्यपान, मांस भक्षण तथा मैथूनमें कुछ दोष नहीं। किन्तु इससे बचनेसे और भांग महाफल होता है। अन्तमें उन्होंने व्यवस्था दी है, कि ब्राह्मणोंको मद्यपान सर्वाथा निषेध है। दुःखिय तथा चैश्योंके लिये केवल वैधी मघ निषिद्ध है, किन्तु गौड़ी मघ वे पी सकते हैं। शूद्र सब तरहके मद्य पीनेके अधिकारी हैं।

मनु आदि प्राचीन धर्मशास्त्रोंमें ही नहीं किन्तु श्रौत-सूत्रोंमें भी माध्वीक या महुयका मद्य, गौड़ी या रस ताड़ी आदि मद्यका उल्लेख पाया जाता है।

भारतके आदिकाव्य बाल्मीकीय रासायणमें सुरा और सुरापानकी बात विशेषरूपसे लिखी गई है। इसी रामायणमें एक जगह दिखाई देता है, कि विश्वामित्र वशिष्ठके-आश्रममें जब पचारे तब वशिष्ठने मरेय और उत्तम आसय द्वारा उनकी अभ्यर्थना की थी। फिर भरत जब श्रीरामचंद्रजीको दर्शन-स्वालासासे तपोवनको गये थे, तब पथमें एक रात भरद्वाजका आतिथ्य स्वीकार किया था। भरद्वाजने सुन्दर सुरा तथा विविध मांसां द्वारा उनका

आतिथ्य-सत्कार किया था। यही अयोध्याकाण्ड ध्यान दे कर पढ़नेसे मालूम होता है, कि सुरा या मघ एक समय साधारणमें उत्कृष्ट तथा पीनेयोग्य समझा जाता था।

सती साध्वी सीतादेवी रामके साथ बन जाने समय गङ्गासे प्रार्थना कर कहती हैं—

“या त्वां देवि नमस्यामि प्रार्थयामि च तोभने ।  
प्रातराज्ये नत्स्यामि शिवेने पुनरागते ॥  
गवा शतसहस्रं वन्यापयन्नं पेनस्रम् ।  
त्रादरोभ्यः प्रदास्यामि तव मित्रचिकीर्षया ॥  
सुरापटवस्तेषां मांसभूतोदनेन च ।  
यस्ये त्वां प्रीयतां देवि पुरीं पुनरुपागता ॥”

( रामायण २।१२।६ )

हे देवि ! मैं तुमको नमस्कार करती हूँ और तुम्हारी स्तुति करती हूँ, कि जब नरव्याघ्र (राम) स्वस्थ शरीरसे पुनः लौट आयेँगे और राज्य प्राप्त करेंगे तब मैं तुम्हारे लिये ब्राह्मणोंको उत्तम एक लाख गायें, चरित्र और धन-दान करूँगी और घर-लौट कर तुम्हारी सन्तुष्टिके लिये एक हजार घड़े महुय और पशुओंको महाबलि दे मांसोदन अर्पण करूँगी ।

इसके बाद जब सीता यमुनाको पार करने लगीं, तब भी यमुनाके लिये पूर्वयन् महुय प्रदानकी बात लिखी है। केवल प्रार्थना ही नहीं; उत्तरकाण्डमें लिखा है—  
“अयोध्याके अगोकोट्टयानमें सीताको गोदमें ले कर राजा रामचन्द्र, शचिपति इन्द्र जिस तरह शचिकी अमृतपान कराते हैं, उसी तरह सीताको मरेय महुय पान करा रहे हैं। रामके ध्ययहारके लिये किट्टर तरह तरहके फल और मांसादिको चुटा रहे हैं। नाच गानेमें प्रयोजन किन्नरियोंसे घिरा अक्षरायें तथा कुशले रूपवती

\* “न मांसभक्षणे दोषो न गर्धो न च मैथुने ।

प्रभृतिरेषा भूतानां निवृत्तिसु महाकृता ॥”

† “भैरविकानामुत्पत्ति प्रभृतिपैठीप्रतिषेधः । आद्राप्यस्य तु मद्यमात्रप्रतिषेधोऽप्युत्पत्ति प्रभृत्येव । रामन्यवैश्ययोस्तु न कदाचिदपि गौडभादिमद्यनिषेधः । शूद्रस्य तु न सुराप्रतिषेधो नापि मद्यप्रतिषेधः ।” (मिताक्षरा)

‡ “इन्धुम्भु” स्तथा ज्ञाजान् मरेयांश्च वराश्रवण ।

पानानि च महार्हाणि महाशौचचारवानि ॥”

(रामायण १।१३।२)

० सुरादीनि च पेयानि मांशानि विविधानि च । ३१

सुरां सुराणां विवत पादसन्धं बुभुक्षिता ॥

मांशानि च मुमेक्ष्यानि भवदन्तां यो यदिच्छति ॥” १२

(रामायण अयोध्या ० ६१ सर्ग)

† स्वस्तित् देवि त्वामि त्वां पारयेन्मे प्रतिभक्तम् ।

यस्ये त्वां गोसहस्रेषां सुरापटवतेन च ॥”

हमारे सामने प्रस्तुत है कि वह एक समान रूप से सभी को लागू होना चाहिए।

यह जो कुछ अर्थोत्पत्ति के माध्यम से समाज को सुचारु रूप से चलाने के लिए आवश्यक है, उसे सुचारु रूप से लागू करना चाहिए। इसके अलावा भी सुचारु रूप से चलाने के लिए आवश्यक है।

“यद्यपि सुचारु रूप से चलाने के लिए आवश्यक है।”

(समा. ४) ३३।

दिव्य शक्ति के माध्यम से, मनुष्य और पशु दोनों को समान रूप से सुचारु रूप से चलाने के लिए आवश्यक है। हमें यह जानना है, कि मनुष्य पर कानून की कौन सी शक्ति है।

सामान्य अर्थोत्पत्ति और सामूहिक शक्ति के माध्यम से, हमें यह जानना है, कि सामान्य अर्थोत्पत्ति के माध्यम से मनुष्य को किस तरह से व्यवहार करने से। इसके संबंध में निम्नलिखित है—

“अर्थोत्पत्ति के माध्यम से, मनुष्य और पशु दोनों को समान रूप से सुचारु रूप से चलाने के लिए आवश्यक है।”

(सामान्य अर्थोत्पत्ति ११२५-२३)

सुचारु रूप से चलाने के माध्यम से, हमें यह जानना है, कि सामान्य अर्थोत्पत्ति के माध्यम से मनुष्य को किस तरह से व्यवहार करने से। इसके संबंध में निम्नलिखित है।

“यद्यपि सुचारु रूप से चलाने के लिए आवश्यक है।”

(सामान्य अर्थोत्पत्ति ११२५-२३)

मनुष्य, पशु, मनुष्य और पशु दोनों को समान रूप से सुचारु रूप से चलाने के लिए आवश्यक है।

“दिव्य शक्ति के माध्यम से, मनुष्य और पशु दोनों को समान रूप से सुचारु रूप से चलाने के लिए आवश्यक है।”

(सामान्य अर्थोत्पत्ति ११२५-२४)

सुचारु रूप से चलाने के माध्यम से, हमें यह जानना है, कि सामान्य अर्थोत्पत्ति के माध्यम से मनुष्य को किस तरह से व्यवहार करने से। इसके संबंध में निम्नलिखित है।

सामान्य अर्थोत्पत्ति के माध्यम से, हमें यह जानना है, कि सामान्य अर्थोत्पत्ति के माध्यम से मनुष्य को किस तरह से व्यवहार करने से। इसके संबंध में निम्नलिखित है।

“यद्यपि सुचारु रूप से चलाने के लिए आवश्यक है।”

भारत और पशुओं के समान रूप से सुचारु रूप से चलाने के लिए आवश्यक है।

श्रीकृष्ण और अर्जुन दोनोंको ही मद्य और आसय पानसे लाल होल :नेल, चन्दनचर्चित और पर्याङ्क पर आरुढ़ देखा है । उस समय मद्र माहिष्यायें भी मद्य-पानसे सुख अनुभव करती थीं । विराट्-पर्वमें लिखा है, विराट्-राज-महिषी सुदेष्णा सैरिन्ध्रीको आहा देती हैं :-

“पर्व्यापि त्वं सुमुदिरम सुरामन्नं च कायम् ।

तन्नैनां प्रेषिष्यामि सुराहारी तवान्तिकम् ॥

उत्तिष्ठ गच्छ सैरिन्धि कौचकस्य विवेचनम् ।

पानमानय कल्याण्य पिपासा मां प्रवापते ॥”

अर्थात् हे सैरिन्ध्री ! मुझे पिपासा लगी है । कौचक के घर जा कर मेरे लिये सुरा ले आओ ।

महामारतके मीपलपर्वमें यादवोंके मद्यप्रियता और मद्यपानसे ही यदुवंशका ध्वंस हुआ, ऐसा लिखा है ।

हरिश्चंशमें भी सुरापानका वर्णन आया है । अध्याय १४६ और १४७ से स्पष्ट है, कि क्षत्रिय समाजमें मद्यका समादर होता था । श्रीकृष्ण जिस समय बलदेव आदि यादवोंके साथ पिण्डारकतीर्थमें जलक्रीड़ामें उन्मत्त हो रहे थे, उस समयका विवरण पढ़नेसे मालूम होता है, कि स्वयं श्रीकृष्ण अपनी पत्नियोंके साथ, कादम्बरीप्रिय बलदेव देवतीके साथ, अर्जुन सुभद्राके साथ और अन्यन्य यादव कुमार अपनी अपनी प्रियसीके साथ मद्यपानमें विमोह हो उठते थे । उसी आमोदतरङ्गमें यादव रमणियोंकी अवस्थाका वर्णन करते समय हरिश्चंशके ग्रन्थकर्त्ताने लिखा है,—

“इत्त प्रमुक्तं जलपान्यकैश्च प्रहृष्टरूपाः सुविचिबुस्तदानीं ।

रागोद्वेगा वाक्पिपामपदमत्ता सङ्घर्ष्यातपोद्धननेवपत्न्यः ॥

आरक्तनेत्रा जलमुक्छिताः स्त्रीणां समन्तं पुत्रयामयायाः ।

तेनोपेतुः सुविच्य भैमां मानं बहन्तो मदतं मदय ॥”

( हरिश्चंश १४८॥१० ११ )

बलराम और श्रीकृष्णकी पत्नियां पाकणीसियनसे मत्त हो कर अनुरागपूर्ण परस्पर पिचकारियों द्वारा जलसे मिगोने लगीं । इसी तरह आरक्त नेत्र, जलकेलिमें मद्मत्त स्त्रियां पुरुषोंके तरह मदनमदमें आसक्त हो उठीं ।

पहले ही कहा जा चुका है, कि मद्य-सिधन दोषके कारण यदुवंशका ध्वंस हुआ था । भागवतकार इसके सम्बन्धमें क्या कहते हैं, सुनिये,—

“वाक्पां मदिरां पीत्वा मद्येनमपितचेतसां ।

अज्ञानतामिवान्योन्यं चतुःपञ्चावरोधिताः ॥” (१।१५ अ०)

उनकी मनोवृत्ति चादणी मद्य पान कर बेहोश हो कर आपसमें पहचान न सकनेसे द्वन्द्वयुद्धमें वे मृत्युको प्राप्त हुए । अब उनमें सिर्फ चार पांच ही श्रेय रह गये हैं ।

देवी चण्डिका बहुत सुरापान करती थीं । मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है, कि कुबेर अपने ही चण्डोदेवीके लिये अक्षय सुरापरिपूर्ण पात्र देते थे । महिषासुरके साथ युद्ध होनेके समय भगवती कहती हैं,—रे मूढ़ ! तुम क्षण काल गजंन करो जब तक मैं मद्युपान न कर लूँ ।

अन्यान्य पुराणोंमें जैसे मद्यपानकी निषेध-विधि दिखाई देती है, वैसे ही मद्यपान करनेके दृष्टान्तकी कमी भी नहीं है ।

मूल बात है, कि धृति, स्मृति, तन्त्र आदि ग्रन्थोंमें सर्वत्र ही मद्यपानकी निषेध-विधि दिखाई देती है ।

मदिरा चन्द्र देतो ।

बङ्गालमें चैतन्यदेवके अम्युदपसे पहले शाक्त तान्त्रिकोंका पूर्ण प्रभाव था । उस समय उच्च श्रेणीके ब्राह्मणोंसे ले कर निम्नश्रेणीके लोगोंमें मद्य पीनेकी अभ्युद आदत थी । इस आदतसे उस समय ऐसा ही कोई होगा जो बचा हो । इसी समयकी यह उक्ति है,—

“पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा पुनः शरणागतौ ।

उत्पद्य च पुनः पीत्वा पुनर्जन्म न विद्वसे ॥”

( कानीविलासतन्त्र )

इत्यादि श्लोककी सृष्टि हुई । चैतन्य-महाप्रभु और उनके शिष्योंकी चेष्टासे मद्यपानका बहुत कुछ हास होने पर भी बल शाक्ततन्त्र तथा शाक्तोंके अनुरागसे मद्यपान नहीं रुका । मद्यकी विषयन्तु अपकारिताका अद्यगुण क्षेप लोगोंके हृदयमें इसके प्रति विद्वेष उत्पन्न हुआ । फल यह हुआ, कि सर्वसाधारणमें मद्य प्रचारकी बाढ़ रुक गई । अंग्रेज बमलदादीके शुरूमें





लताका रस मिला कर आंच पर चढ़ाये। इसीको कर्जूर मद्य कहते हैं।

ताल।—“पकतामं दन्तिशाकं ककुमत्र तथैव च।

पतैरेव तु छन्धानात् तालमद्यं प्रकीर्तितम् ॥”

पक्के ताड़के साथ दन्तिशाक और ककुमको पत्तियां रख देनेसे तालमद्य बनता है।

प्लेख।—“इक्षुदण्डं मरीचञ्च यदरञ्च तथा दधि।

शेने तु क्षयण्यं दत्त्वा इक्षुमद्यं प्रकीर्तितम् ॥”

माध्वोका।—“नवं मधु तथा विवर्षं पक्वं शर्करया सह।

छन्धानाज्जायते मद्यं माध्वीकं शरतो रसम् ॥”

नूतन मधु और पके घेलको सफ़रकड़के साथ मिलाने से जो मद्य प्रस्तुत होता है उसका नाम माध्वीक है।

टङ्कमाध्वीक।—“शतावरी टङ्गमूलं लक्ष्णं पञ्चमेव च।

मधुना सह छन्धानात् टङ्कमाध्वीकमीरितम् ॥”

शतावरी, टङ्कमूल, लक्ष्ण और पत्र इन्हें मधुके साथ मिलानेसे टङ्कमाध्वीक बनता है।

मैरेय।—“मालूमूलं बदरी शर्करा च तथैव च।

एषामेकत्रं छन्धानात् मैरेयं मद्यमीरितम् ॥”

घेलको अड़, घेर और सफ़रकड़ इन्हें एक साथ मिलानेसे मैरेयमद्य तैयार होता है।

गोडो।—“दधि तैलौष्यविजया तथैव च । करीकणा।

गुडुन सह छन्धानात् गोडोमद्यं प्रकीर्तितम् ॥”

दधि, तैलौष्यविजया (भंग) और करीकणा इन्हें गुडके साथ मिला कर गोडोमद्य बनाना होता है।

नारिकेलज।—“इन्द्रजिह्वा पक्वधानी नारिकेलजत्रं तथा।

कदलीपत्रसन्धानात् मद्यं तन्नारिकेलजम् ॥”

इन्द्रजिह्वा, पक्वधानी और नारियलका जल इन्हें केलके साथ मिलानेसे नारिकेलज-मद्य होता है।

पैठी।—“शङ्खु जीमदं शिद्वान्मधुन्यादकसमन्वितम्।

बहो सन्तापयेत् किञ्चित् स्थापयित्वा दिनद्वयम्।

शेनेऽग्निं तु सम्प्राप्तो जीवन् तत्र निःश्लिषेत्।

शुद्धवेरं मरीचञ्च भाद्रसद्गं तथैव च।

एतेषामेव छन्धानात् पैठीमद्यं प्रकीर्तितम् ॥”

गम, जलमें अद, सिद्ध अन्न और शङ्खु लीकौ रख कर घीमें आंच दे, दो दिन तक इसी प्रकार रखनेके बाद उसमें जल डाल दे। अनन्तर उसमें, शुद्धवेर, मिर्चा और

विजौरा नीबू मिलाये। इस प्रकार जो मद्य बनता है उसीका नाम पैठीमद्य है।

एतद्भिन्न शुक्राचार्यांके निकाले हुए मृतसञ्जीवनी नामक एक प्रकारके स्वास्त्वकर मद्यका उल्लेख देवनेमें आता है। उसकी प्रस्तुत प्रणाली इस प्रकार है—

नया गुड़ 5२।० सेर, बावलेको छाल, घैरकी छाल और सुपारी 5२ सेर, लोघ 5।० सेर, अदरक 5।० एक पाव, कुल मिला कर जितना हो उससे आठ गुणा जल। पहले गुड़को घोल कर पीछे उसमें यथाक्रम अदरक, बावलाको छाल और घैरकी छाल डाले और अच्छी तरह मिलाये। अनन्तर सुपारी और लोघको डाल कर ढक्कनसे मुंहको ढंक दें और भली भांति बांध कर २० दिन उसी अवस्थामें रहने दें। पीछे मट्टीके मोछिका और मयूराक्षेपि यन्त्रमें घीमें आंचमें उतार करे। इसके बाद सुपारी, एलवालुका, देवदार, लवङ्ग, पत्रगुण्ड, खसखसकी जड़, रत्नचन्दन, सीया, अजवायन, मिर्चा, जीरा, कृष्ण-जीरा, कपूर, जटाभांसी, दारचीनी, इलायची, जायफल, मोथा, सोड, मेथी, मेथशुद्धी और रत्नचन्दन प्रत्येक ४ तोला कूट कर उसमें डाल दे। अनन्तर यथाविधि शुधा कर सुरा उद्धृत कर ले। धातु अर्घान् घायु, पित्त या कफ प्रधानका तथा उमरका विचार कर इसकी मात्रा स्थिर करे।

वैदेशिक सुरा।

ईसा जन्मसे बहुत पहले सुसभ्य मिथयासियोंके मध्य धान और जौमें बनाये गये मद्यका व्यवहार था। हिरोडोटस (४५० ख्रि० पू०), प्लिनि और हेलेनिकस आदि-के वर्णनसे इसका पता लगता है। ग्रीक लोगोंने मिथ-वासियोंसे उक्त ग्रीक मद्य बनानेका तरीका सीखा था। विख्यात कवि आर्किलोचस (Archilochus ७०० ख्रि० पू०), एस्कीइलस (Aeschylus ४७० ख्रि० पू०) सफो-क्रिस और थियोफ्राएस (Theophrastus ३०० ख्रि० पू०) जो आदिसे मद्य बनानेका तरीका लिख गये हैं। मिथ के धान्यमद्यके 'विषम' नामसे ग्रीक लोगोंने स्वदेशीय मद्यका 'त्रिचो' नाम रखा। इस मद्यका ये लोग रोज रोज तथा उत्सवके समय व्यवहार करते थे। जिनोकन द्वारा ४०० ई० तकके पहले रचित 'दण सहस्रको पलायन'



(Wine) बतलाया है। क्या हिन्दुप्रधान भारतमें, क्या ईसाईप्रधान सुदूर यूरोपखण्डमें बहुत पूर्वतनयुगसे मद्य-पानका प्रचार चला आ रहा है। प्राचीन हिन्दुशास्त्र और नाटकविसे इसका प्रमाण पहले ही लिखा जा चुका है। ईसाधर्मग्रन्थ बाइबिलमें भी इसका यथेष्ट निदर्शन है। नोआकी मद्योन्मत्तता (Genesis 1X 21), महात्मा पालकी पानानुज्ञा (Timothy V, 23; Judges 1X 13) आदि पढ़नेसे इसका बहुत कुछ हाल मालूम होता है। स्वयं कवि होमर और मार्सल मद्य की प्रफुल्लकारिता और बलोलोचकताका विषय उल्लेख कर गये हैं।

यूरोपमें जो सब उत्कृष्ट मद्य बनता है उसका अधिकांश सुपक्व फलफलोंके निर्पाससे तैयार किया जाता है। पहले सुपक्व फलोंको चद्दबच्चेमें रख कर मवेशी गंधवा मनुष्यसे रीं दे जाने पर जो रस निकलता है उसे टटका सराब (Must) कहते हैं। पीछे काठके बने हुए एक बड़े हीरेमें उस टटके सिरप आर फलकी सीडी (Mare) को डाल कर सड़ने दिया जाता है। थोड़ी ही देर बाद उसमेंसे भाग उठने लगेगा। उस समय रस भी कुछ गरम हो जाता तथा उससे अङ्गाराम्ल-वाष्प निकलने लगता है। अभी सीडी रसके ऊपर उठ आती है। भागके ऊपर उठने पर नीचेका मद्य नली द्वारा दूसरे बरतनमें छोड़ कर लाया जाता है तथा फलकी सीडियां निचोड़ ली जाती हैं। यदि भाग उठनेके पहले मद्यको थोतलमें भर कर रखा जाय तो उस मद्यसे ग्लोसमें डालनेके समय अङ्गाराम्लके अलसित तौर पर निकलनेके कारण फेन बहुत निकलता है। स्प्याम्पेन (Champagne) आदि उत्कृष्ट मद्य इसी प्रकार पूर्वाहमें चुभाया जाता है। सुरामण्डके रसको निकाल कर भाग उठनेके पहले यदि सीडियां उठा ली जाय, तो मद्य सफेद पर्णका हो जाता है। मद्यका रंग परिवर्तन करने में पहले लाकडाई (Lac-dye) और पीछे सैल (Sellac) का व्यवहार देखा जाता है।

पैक्षानिक हम्बोल्ट (Mr. Humbolt) के मतसे बाणिज्य योग्य उत्कृष्ट मद्य बनानेमें ४७ से ६२ तक बायधिक ताप पर्याप्त है। स्थानविशेषके गौतकालका

ताप ३८° कम अथवा दावण प्रोन्मका उत्ताप ६८° डिग्रीसे अधिक न हो। कारण, ताप अधिक लगनेसे भाग उठने न उठते रस चट्टा हो जाता है। यही कारण है, कि भारतवर्षके समतलक्षेत्रमें कभी भी उत्कृष्ट मद्य प्रस्तुत नहीं होता। प्रोन्मके वाद घर्षास्तुका भागमन भी इसका एक दूसरा कारण है। अङ्गूर पकनेके बाद ही यदि पानी पड़ जाय, तो घूर्णमें सुखा कर किसमिस नहीं बनाया जा सकता। डा० राचिलका कहना है, कि दक्षिणात्यकी कुनावर अधिरथ्यकामें ६से १० हजार फुटकी ऊंचाई पर सुसुखाट्ट अंशुर उत्पन्न होता है। उस स्थानका जलवायु मद्य बनाने लायक है। काश्मीर, कम्घार, कासुल और बोखारा आदि युक्त-प्रदेशके जलवायुकी साम्यताके कारण दाबसे मद्य बनानेमें उतना कष्ट नहीं होता। पास्वराज्यके खोन्डर जिलेमें प्रस्तुत सिराज नामक मद्य एशिया महादेशमें सर्वोत्कृष्ट समझा जाता है। यह साधारणता लाल और सफेद होता है। लाल सिराजमें सैकड़ों पीछे १५ भाग और सफेदमें २० भाग सुरासार मिश्रित है।

मूसा प्रवर्तित ईसाईशास्त्र-धर्मापन्नकीकी दोहाके समय, हेमन्तिक उत्सवमें और अन्यन्य मद्रापर्यमें देवताके उद्देशसे मद्यदान या पानकी व्यवस्था देखी जाती है। प्राचीन ग्रीक लोगोंके मन्त्र पूजापर्यमें भी द्राक्षामद्य छोड़ अन्य प्रकारके मादक द्रव्यका प्रचार था। ये लोग प्रत्येक देवताकी पूजामें अथवापर भोज्य और पुष्पादि उपहारोंके साथ देवताको मद्य चढ़ाते थे। उनही धारणा थी, कि इससे देवता प्रसन्न होते हैं। देवपूजामें ये बलि-के बकरेके सींगोंको मद्यसे घो देते थे। पन्डित देवताके उपभोगार्थं वेदीके ऊपर रखे हुए पिष्टकों पर मद्य डालनेकी प्रथा थी। यहाँ तक कि प्रतिदिन वे जिस मद्य का व्यवहार करते थे उसे भी दिना देवताओंको चढ़ाये नहीं पीते थे। ईसाई और यहूदियोंमें, मद्यपान मिथिद नहीं है।

मादक-द्रव्यमात्रको ही मुसलमानधर्मशास्त्र कुरानमें निषिद्ध बतलाया है। इसी कारण कुरानमें मद्य 'तामाट' नामसे प्रसिद्ध है। किन्तु वर्त्तमान इस्लामधर्मावलम्बी कुरानका बचन उल्लङ्घन कर रात दिन शराबमें मस्न रहने

विश्विनिर्मै. भागें निपायासोके मद्यपानका उल्लेख है। दियोदोरम सिगुलस गैलसियावासी (Galatians) के जियो मद्य सेपनका विषय लिख गये हैं। एको जतादीमें टासिटसने जर्मनयासीके सामाजिक आचार ध्यपहार पर्वानाकालमें बियर (Beer) मद्यप्रचलनका उल्लेख किया है। प्लिनिके वर्णनानुसार जाना जाता है, कि स्पेनदेशका Ceria और प्राचीन गलराज्यका Gervensin नामक उत्तेजक मद्य धानसे बनाया जाता था। धान्य-लक्ष्मी (Ceres) के नामसे उक्त दोनों प्रकारके मद्यका नाम रखा गया था। उक्त देशोंके उत्सव-उपलक्षमें इस मद्यपानका बहुत प्रचार था। सुविषयात रोमक-मघ्राट् जुलियस सीज़र अपनी सेनाओंको बियर मद्य पीने देते थे।

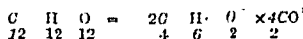
पहले प्राचीन ग्रीटन राज्यमें गलाधिपत्य विस्तारित होने पर वहांके लोगोंने मद्य चूधानेकी प्रथा सीखी। पीछे रोमकोंके ग्रीटन राज्यसे हट जाने पर साक्सनोंने ग्रीटन जोता और वहांके अधियासियोंसे मद्य बनानेका तरीका मालूम कर लिया।

दक्षिण अफ्रिकाको फ्राफरी जाति न्युबिया और आबिसिनियावासी असभ्यजातिके मध्य घान, जी, जुम्हरी, राई आदि उद्भिज्जसे मद्य बनानेकी प्रथा बहुत दिनोंसे प्रचलित है। रुसियाका Quass नामक मद्य आबिसिनियाके तेजहकर bunsu मद्यके जैसा होता है। चीनदेशका समशी मद्य चायलसे बनाया जाता है। तातारजाति घोड़ीके दूधसे कीमिश-सुरा तैयार करती है। जापान द्वीपका सके, अङ्गामी नागाओंका जु और समग्र भारतको निरूप जातिका पचाई मद्य एक सा होता है। कथियन लोगोंके धानसे प्रस्तुत शेरू मद्य, लेपचा, लुसाई, नाग खान, करने और सिमला पहाड़के अधियासियोंका मद्य धान गेहूँ आदिसे प्रस्तुत देगी मद्यके समान है।

पर्वमान मद्य-प्रस्तुतप्रणाली।

यूटिन सरकारकी मद्य (Distillery) में चायल चुभा कर जराब बनाई जाती है। गुड़, ईपके रस, मधु आदि मिष्ट पदार्थ तथा खजूरके रस और ताड़के रस (ताड़ों)से भी मद्य प्रस्तुत होती है। मादक-

प्रधान भांग, गांजा, धतूरेके बीज आदिसे मद्य बनाये जा सकता है। मद्य प्रस्तुत करनेमें पहले खूब बढ़िया रसपूर्ण धानके बीजोंको चुन कर किसी बरतनमें रख छोड़े। पीछे सड़ने पर उसके फेनको बाहर निकाले। अनन्तर नियमानुसार चकचकमें चुभा कर उस द्रव्यके सार पदार्थको प्रहण करे। बिना सुरासार (Alcohol) के मद्य नहीं बन सकता। मद्य बनानेके समय अङ्गारादि पार्थिव-पदार्थके नाश होनेसे सुरासार उत्पन्न होता है। द्राक्षादिको सड़ा कर जब सुरामण्ड (Yeast) तैयार हो जाय तब भाग उठनेके समय दात्रके शार्करपदार्थ सुरासार और अङ्गारासमें रूपांतरित हो जाते हैं।



द्राक्षशर्करा सुरासार अङ्गारास

प्रायः सभी प्रकारके मद्य या शरिष्टादिमें यह सुरासार रहता है, किन्तु जल और अभ्यान्व पदार्थ मिलानेसे यह तेजोहीन हो जाता है। बार बार चुबानेसे निम्न पदार्थ वियोजित तो होता है, पर उसमें जलीय अंश रह ही जाता है। M. Soemmering गो-पटका (Ox's bladder) में मद्य भर कर ऊपरसे मछलीकी पटपटी (Isinglass) टक दे। पीछे १०° से १२° तापमें चुबानेसे अथवा बड़े मुहवाले बोतलमें सुरा भर कर उसका मुह चमड़ेकी घड़ीसे बांध कर धूममें चुबानेसे जलीय भाग उड़ जाता है। यही सुरासार मादकताका बीज है। इङ्ग्लैण्डसे जो परिष्कृत सुरासार (Rectified Spirits of wine) भेजनेके लिये लाया जाता है उसका आपेक्षिक गुरुत्व (Specific gravity) ०.८३५ है। उदाहार देना।

सभी प्रकारके मद्यमें दाबसे बनाया हुआ मद्य ही (Vinum gallicii) प्रधान है। यह बलकारक, उत्तेजक और विरेचक है। इस कारण बहुत पहलेसे इसका ध्यपहार चला आ रहा है।

इसी दाबके मद्यको प्राचीन ग्रन्थोंमें प्रकृत मद्य

( Wine ) बतलाया है। क्या हिन्दूग्रन्थान् भारतमें, क्या ईसाईग्रन्थान् सुदूर यूरोपखण्डमें बहुत पूर्वाननयुगसे मदा-पानका प्रचार चला आ रहा है। प्राचीन हिन्दूशास्त्र और नाटकादिसे इसका प्रमाण पहले ही लिखा जा चुका है। ईसाधर्मग्रन्थ बाइबिलमें भी इसका स्पष्ट निदर्शन है। नोआकी मद्योन्मत्तता ( Genesis 1X 21 ), महात्मा पालकी पानानुज्ञा ( Timothy V, 23 ; Jud- ges 1X 13 ) आदि पदनेसे इसका बहुत कुछ हाल मालूम होता है। स्वयं कवि होमर और मार्सल मद्य की प्रफुल्लकारिता और बलौचे जकताका विषय उल्लेख कर गये हैं।

यूरोपमें जो सब उत्कृष्ट मद्य बनता है उसका अधिकांश सुपष्य दाखफलके तियांससे तैयार किया जाता है। पहले सुपष्य दाखोंको चद्वचचेमें रख कर मयेगी बथथा मनुष्यसे रीं दे जाने पर जो रस निकलता है उसे टटका सराब ( Must ) कहते हैं। पीछे काठके बने हुए एक बड़े हीरेमें उस टटके सिरप आर दाखकी सीठी ( Mare )-को डाल कर सड़ने दिया जाता है। थोड़ी ही देर बाद उसमेंसे भाग उठने लगता है। उस समय रस भी कुछ गरम हो जाता तथा उससे अङ्गाराम्ल-घाण्य निकलने लगता है। अभी सीठी रसके ऊपर उठ आती है। भागके ऊपर उठने पर नीचेका मद्य नली द्वारा दूसरे बरतनमें खींच कर लाया जाता है तथा दाखकी सीठियां निचोड़ ली जाती हैं। यदि भाग उठनेके पहले मद्यको बोटलमें भर कर रखा जाय तो उस मद्यसे प्लासमें डालनेके समय अङ्गाराम्लके अलक्षित तौर पर निकलनेके कारण फेन बहुत निकलता है। स्पाम्पेन (Champagne) आदि उत्कृष्ट मद्य इसी प्रकार प्यांइमें चुआया जाता है। सुरामण्डके रसको निकाल कर भाग उठनेके पहले यदि सीठियां उठा ली जाय, तो मद्य सफेद वर्णका हो जाता है। मद्यका रंग परिवर्तन करनेमें पहले लाकडार ( Lac-dye ) और पीछे लाख ( Seliac ) का व्यवहार देखा जाता है।

वैज्ञानिक हम्बोल्ट ( Mr. Humbolt )-के मतसे आजिज्य योग्य उत्कृष्ट मद्य बनानेमें ४५ से ६२ तक वायविक ताप पर्याप्त है। स्थानविशेषके गीतकालका

ताप ३८° कम अथवा दादण मोष्मका उत्पा ६८° डिग्रीसे अधिक न हो। कारण, ताप अधिक लगनेसे भाग उठने न उठते रस खटा हो जाता है। यही कारण है, कि भारतवर्षके समतलक्षेत्रमें कमो भी उत्कृष्ट मद्य प्रस्तुत नहीं होता। मोष्मके बाद वर्षासत्रुका आगमन भी इसका एक दूसरा कारण है। अङ्गूर एकनेके बाद ही यदि पानी पड़ जाय, तो धूपमें सुखा कर किसमिस नहीं बनाया जा सकता। डा० रायलका कहना है, कि दक्षिणात्यकी कुनावर अपित्यकार्में इसे १० हजार फुटकी ऊंचाई पर सुखाट्टु अंगुर उत्पन्न होता है। उस स्थानका जलवायु मद्य बनाने लायक है। काश्मीर, कम्धार, कायुल और बोलारा ; आदि युक्त-प्रदेशके जलवायुकी साम्यताके कारण दाखसे मद्य बनानेमें उतना कष्ट नहीं होता। पास्परज्यके ग्योल्डर जिलेमें प्रस्तुत सिराज नामक मद्य पार्गया महादेशमें सर्वोत्कृष्ट समझा जाता है। यह साधारणतः लाल और सफेद होता है। लाल सिराजमें सैकड़े पीछे १५ भाग और सफेदमें २० भाग सुरानार मिश्रित है।

मूसा प्रवर्तित ईसाई-शास्त्र-धर्मयाज्ञकोंकी दीक्षाके समय, हीमन्तिक उत्सवमें और अन्यान्य महापर्यमें देवताके उद्देशसे मद्यदान या पानकी व्यवस्था देवी जाती है। प्राचीन ग्रीक लोगोंके मध्य पूजापर्यमें भी द्राक्षामद्य छोड़ अन्य प्रकारके मादक द्रव्यका प्रचार था। ये लोग प्रत्येक देवताकी पूजामें अपरापर भोज्य और पुष्पादि उपहारोंके साथ देवताको मद्य चढ़ाते थे। उनही पारणा थी, कि इससे देवता प्रसन्न होते हैं। देवपूजामें ये बलि-के बरतके सींगोंकी मद्यने धी देते थे। एतद्भिन्न देवताके उपभोगार्थ देवीके ऊपर रखे हुए पिण्डों पर मद्य डालने की प्रथा थी। यहाँ तक कि प्रतिदिन ये जिस मद्यका व्यवहार करते थे उसे भी बिना देवताओंको चढ़ाये नहीं पीते थे। ईसाई और यहूदियोंमें मद्यपान निषिद्ध नहीं है।

मादक-द्रव्यमात्रको ही मुसलमानधर्मशास्त्र कुरानमें निषिद्ध बतलाया है। इसी कारण कुरानमें मद्य 'पानार' नामसे प्रसिद्ध है। किन्तु वर्तमान इस्लामधर्मोपदेश्यों कुरानका बचन उल्लङ्घन कर रात दिन गराबमें मस्त रहने

मद्रप (सं० पु०) मद्रं मद्रदेनं पाति रक्षति पा क ।  
 मद्रपति, मद्रदेशके राजा ।  
 मद्रसुता (सं० स्त्री०) मद्रस्य सुता । मद्रराजकी कन्या  
 मद्रो, पाण्डुकी द्वितीय स्त्री तथा नकुल-सद्वैद्यकी  
 माता ।  
 मद्रकल्पन्ती (सं० स्त्री०) पाणिनिके अनुसार एक देव-  
 का नाम ।  
 मद्रन (सं० पु०) मांहुयतीति मद्र (स्ना-मदि-मृषति-शुन-  
 किम्बो वनिर् । उष् ५।१२२) इति घनिप् । १ निय,  
 महादेश । (वि०) २ मदनगोल ।  
 मद्रर्षीण (सं० त्रि०) मद्रर्षीस्यायमिति (भ-रुधे यन्-  
 षान्यनरत्वा) । पा ५।१।४ इति क्रमेण वच्छयत्-  
 प्रत्ययाः । मद्रर्षीसम्बन्धी । पर्याय—मद्रर्षीय, मद्रर्ष्य ।  
 मद्रिषि (सं० लि०) मम इव विषा यस्य । मत्सदृश,  
 मेरे जैसा ।  
 मधन (सं० स्त्री०) एक रागिनी । यह मैथवरागकी  
 पुत्रवधू माना जाती है ।  
 मधय्य (सं० लि०) १ सोमपानयोग्य । (श्लो०) २  
 सोमयुक्त, मिष्ट । (पु०) ३ मधुमास, चैत्रमास ।  
 मधु (सं० स्त्री०) मन्थन्ते विशेषेण जानगित जना पस्मिन्  
 मन् (कनिषादिनमिमनिजनां गुकृष्टि-नाकिषतरच । उष्  
 १।६) इति उ, घश्चान्तादेशः । १ महुय, शराय । २  
 क्षीर, दूध । ३ जल, पानी । ४ रसमेद, मधुररस । ५  
 पुष्परस, मकरंद । ६ मधुद्रम, मधुपका पेड़ । ७ यसन्त  
 शत्रु । ८ शैत्यमेद । इसे विष्णुने मारा था और इससे  
 उसका मधुसूदन नाम पड़ा । ९ चैत्रमास । १० अशोक-  
 वृक्ष । ११ पश्चिमधु, मुलेठी । १२ मिसरी । १३ नथनीत,  
 मफलन । १४ धून, धो । १५ निय, महादेश । १६ अमृत,  
 सुषा । १७ एक राग जो मैथवरागका पुत्र माना जाता है ।  
 १८ एक छन्द । इसके प्रत्येक चरणमें दो लघु अक्षर होते  
 हैं । १९ शब्द । इसे सामान्यमें मध, तैलद्रूममें तैले कहते  
 हैं । संस्कृत पर्याय—क्षीर, माक्षिक, कुसुमास्य, पुष्पा-  
 स्य, पवित्र, पित्त, पुष्पस्नाह, माथ्योक, सारघ,  
 माक्षिकावाप्त, करटीघान्त, भृगु, पात, पुष्परसोद्भय ।

इसका गुण—शोथघ्न, लघु, ईष्य, कषायसंयुक्त,

मधुररस, रुस, धारक, वृजताकारक, चक्षुका हितकारक,  
 भ्रन्निदानिकारक, क्षयरसक, मणका शोधन मीर रोपण-  
 कारक, ज्वरोरका कोमलतासंपादक, सूक्ष्ममागानुसारो,  
 आह्लादनक, अत्यन्त प्रसन्नताकारी, वर्णप्रसादक, मेघा  
 मीर शुक्लकारी, विनादगुणयुक्त, रुचिकारक, योगवादी,  
 किञ्चित् वायुवर्धक तथा कुष्ठ, अर्श, कास, रक्तपित्त,  
 कफ, प्रमेद, क्षान्ति, मेद, विपासा, यमि, भ्वास, रिचका,  
 अतीसार, मलरुद्धता, दाह, क्षत और क्षयरोगनाशक ।

मक्षिकाके जातिभेदसे मधु ८ प्रकारका है । यथा—  
 माक्षिक, भ्रामर, क्षीर, पीत्तिक, छाल, आर्ष्य, आह्लाक  
 मीर दाल । विष्णुवर्ण बड़ी मधुमक्षिकाको माक्षिक कहते  
 हैं । इस मक्षिकासे जो मधु बनता है उसका नाम  
 माक्षिक-मधु है । इस मधुका घर्ण तैल सा होता है । यह  
 मक्षिका मधु सब मधुसे श्रेष्ठ, लघु तथा नेत्ररोग, कमला,  
 अर्श, क्षत, भ्वास, कास और क्षयपिनाशक है ।

भ्रामर-मधु—कुछ सूक्ष्म प्रसिद्ध छः पैरवाले मीरसे  
 स्फटिकके समान जो मधु निकलता है उसका नाम भ्रामर  
 मधु रक्त है । यह पित्तनाशक, मूत्ररोधक, गुण, मधु,  
 विपाक, भ्रन्निष्यन्दी, अत्यन्त पिच्छिल और शोथघ्न है ।

क्षीर-मधु—कपिलघर्ण सूक्ष्म मक्षिकाका नाम क्षीर  
 है और उससे जो मधु बनता है उसे क्षीर कहते हैं । इस  
 मधुका घर्ण कपिल है । इसमें पूर्वांक माक्षिक-मधुके  
 समी गुण पाये जाते हैं तथा यह प्रमेदनाशक है ।

पीत्तिक-मधु—रुण्यघर्ण मजकके समान छोटी और  
 कषदायक एक प्रकारको मधुमक्षिका है जिसका नाम  
 पीत्तिका है । यह मक्षिका बड़े वृक्षके लोडरमें जो मधु  
 सञ्चय करती है उसे पीत्तिक-मधु कहते हैं । इसका  
 घर्ण घृतके समान है । इसमें दक्ष, उष्णवीर्य, पित्तवर्धक,  
 दाहजनक, रक्तद्रवक, वातवर्धक प्रमेद और मूत्ररुण-  
 नाशक तथा मग्नि आदि क्षतशोधक है ।

छाल-मधु—कपिल और पीतघर्णकी एक प्रकारकी  
 मधुका है । ये प्रायः हिमालयपर्वतके वनमें छाला बनाती  
 है । उस छालसे उत्पन्न मधुको छाल मधु कहते हैं । यह  
 कपिल और पीतघर्णका होता है । पिच्छिल, शोथघ्न,  
 गुण, मधुर, विपाक, भ्रन्निकारक, छिमि, भिन्न, रक्तपित्त,  
 प्रमेद, घ्न, विपासा, मोह और विषदोषनाशक गुण है ।

आर्य-मधु—जगत्कार मुनिके आश्रमजात मधु-  
 कृष्णके निर्वासको आर्य-मधु कहते हैं। मालवेदेशमें  
 यह भूतक नामसे पुकारा जाता है। कोई कोई यह  
 भी कहते हैं, कि तेज डंक और छः पैरवाली पीली एक  
 प्रकारकी मक्खी है उसीको आर्य कहते हैं और उसका  
 बनाया मधु ही आर्य कहलाता है। यह मधु अत्यन्त  
 हितकर, कफ और पित्तविनाशक तथा बल और पुष्टि-  
 वर्द्धक है।

औहालक-मधु—कपिलवर्ण एक प्रकारकी छोटी  
 मक्खी है जो प्रायः बल्मीकमें ही रहती है। इस मक्खीसे  
 कपिलवर्ण अथच अल्प परिमाणमें जो मधु प्रसृत होता  
 उसे औहालक-मधु कहते हैं। इसमें रुचिकारक, स्वर-  
 वर्द्धक, क्षुद्र और विषदीपनाशक, कपाय, अम्लरस,  
 उष्णवीर्य, कटु, विपाक और पित्तवर्द्धक गुण हैं।

दाल-मधु—फूलसे जो मधु भर कर पत्तों पर गिरता  
 है उसे दाल-मधु कहते हैं। यह मधु अम्ल कपायरस-  
 विशिष्ट है, किन्तु कपायरस थोड़ा और मधुररस ज्यादा  
 है। अलावा इसके लघुपाक, अग्निदीप्तिकारक, कफप्र,  
 रुक्ष, रुचिकर, घमि और प्रमेहनाशक, स्निग्ध तथा शरीर-  
 का उपचयकारक गुण भी इसमें हैं।

नूतन और पुरातन मधुका गुण—नूतन मधु पुष्टि-  
 कारक, सारक और उतना कफनाशक नहीं है। पुरातन  
 मधु घारक, रुक्ष, मेदोनाशक तथा अत्यन्त कृशनाकारक  
 है। मधु, चीनी और गुड़ यह सब एक चपे बोनने  
 पर पुराना होता है।

विपैली मक्खियाँ विपैले पुष्पसे आहरण कर मधु  
 बनाती हैं। इस कारण शीतल मधु ही व्यवहार्य और  
 गुणकारी है। विपाक प्रयुक्त उष्ण मधु अथवा उष्ण  
 द्रव्यके साथ मधु का सेवन करना चाहिये। उष्णसं-  
 व्यक्तिके लिये भी उष्णकालमें मधु सेवन निषिद्ध है।  
 कारण, यह विषकी तरह नुकसान करता है।

(माधव-मधुर्वर्ण)

सुभ्रुतमें इसके गुणादिका विषय इस प्रकार लिखा  
 है। मधु—मधुर, पीछे कपाय, रुक्ष, शीतल, अग्नि, वर्ण,  
 बल, लेखन और कान्तिकर, लघु, सुवस्त्रिय, सम्पान,  
 रोषण, शोधन और संसर्गस्यक्तिका वृद्धिकारक, संप्राप्तो-

वृष्टिका हितकर, सूक्ष्मपचगामी, पित्त, श्लेष्मा, मेह, मेद,  
 हिक्का, अवास, अतीसार, छर्दि, वृष्णा, घमि और विष-  
 नाशक, प्रफुल्लताजनक तथा त्रिदोषशान्तिकर। सुभ्रुतके  
 मतमें भी उक्त आठ प्रकारके मधु हैं।

नूतन मधु पुष्टिकर और सारक तथा पुरातन मधु मेद  
 स्पृलताहारी, संप्राप्तो और लेखनकर है। एक मधु  
 त्रिदोषको शान्त करना और अल्प मधु त्रिदोषको बढ़ाता  
 है। विविध प्रकारके द्रव्योंके साथ मिला हुआ मधु सब  
 प्रकारके रोगको आरोग्य करता है।

मधुमें मक्खीका विष रहता है, इस कारण उसे गरम  
 करके रोगीको नहीं खिलाना चाहिये; खिलानेसे उपकार-  
 के बदले अयकार होता है। गरम किया हुआ मधु विषके  
 समान है। वृष्टि जलके साथ जो मधु मिला कर सेवन  
 किया जाता है वह भी भारी बनिए करता है। उष्णद्रव्य-  
 संयुक्त मधु घमनकार्यमें बहुत फायदामेंद है। यह परि-  
 पाक नहीं होता और न उदरमें ही रहने पाता है, इसी  
 कारण चिकित्सक घमन-कार्यमें इसका व्यवहार करते  
 हैं। अष्वयमधु बहुत कष्टदायक होता है।

(सुभ्रुतसंह्या ४५ ग०)

मधुमक्षिका आदि पतङ्गजाति मन्तानोत्पादनके लिये  
 जो घोंसला बनाती है, उसीको मधुचक या छत्ता कहते  
 हैं। यह प्रायः चक्राकार होता है और मक्षिकयाँ कुली-  
 से मधु ला कर उसमें रखती हैं इसी कारण उसका नाम  
 मधुचक पड़ा है। फूलोंसे मधु ला कर जब ये अपने  
 छत्तेमें रखती हैं उस समय यह मधु तरल रहता है।  
 पीछे गाढ़ा हो कर मधुके आकारमें रूपान्तरित होता है।  
 निम्नप्रणोके मनुष्य मित्र मित्र उपायसे मधु सञ्चय  
 करते हैं। शुक अथवा कृष्णपक्षमें मक्षिकयाँ अपना छत्ता  
 छोड़ कर अन्यत्र चली जाती है। उसी समय मधु  
 आहरणकारी उनके छत्तेको उठा लाते और उसे निचोड़  
 कर मधु निकाल लेते हैं। इस प्रकार निचोड़ कर जो  
 मोठी बच जागो है उसे मोम कहते हैं।

मधुमें पुष्परसके तारतम्यानुसार गुणागुण रहना  
 है। कमलानगमें उद्भूत छत्तेका मधु कमलामधु कह-  
 लाता है। इसमें ठोका कमला-नीचू-सी गन्ध रहती है।  
 ओषधके साथ इसका सेवन करनेसे विश्व इंपकार



होता है। पदवस्त्रे लामे लामे छत्रोका मधुः सवसे  
 क्षीयिका गुणकारी है। मधुरोगमें यह बहुत लाभ  
 पहुँचाना है। मधुघातन पुण्यने जो मधु काया  
 जाना है उसका भी नाम मधु है। औषधके  
 अनुगान और अस्त्ररूपमें इसका व्यवहार किया जाता है।  
 मधुमें एक और गुण यह है कि यह दुग्धमन्त्रको दो  
 सत्रेज-क्षणमें मरता है। मधुआदि फलोंको मधु-  
 मण्डलमें रचनेसे यह फलों भी मधु होतीं जो फलों और स्वाद  
 पहले या बना रहता है। यगजिह्व-विषाक्त-पुण्यसे उत्पन्न  
 मधुको मिश्रमधु कहते हैं। उसका सेवन करनेसे  
 दिमराममें गर्मी पहुँचती है। मधिवर्षा ऐसे सूत्रके पुण्य-  
 मधुको शान कर-मतवाली हो जाती है। जिनो फल-  
 शूल-द्वारा मधुप्रकाशक्यायन विधिमें रोमक सेनाशोक  
 विषमधुबानका विषय लिखा है।

मिश्र मिश्र देशमें मधुका मिश्र मिश्र काम है। अरब—  
 धमरु-द्वन्द्व, शंखुनीन। ब्रह्म—प्यन्व, चीन—कुङ्कु-  
 मित्त, श्लोत्तद्वज—Honig, Honing मिश्र—विषस-  
 धमरु, फारसो और स्पेन, Jafel, हिन्दू—देवस, शटभी—  
 Melexmiele, लेस्विन—Mel, मलय—मदु, आयेर-मदुदु,  
 मनिस्सल, छात्रा, पारस्य—सहाद, रूप—Medzसंस्पृष्ट—  
 मधु, बङ्गला—मधु, मऊ, सिहल—सिपनी, स्वीस—  
 Hauiug, जामिल और सैलगु—तपन स्थेना।

मधु-भाहरणकारी छत्तेसे मधु निकालनेके समय एक  
 कलाकार पदार्थके मुगमें तुलसीपत्रका रस लगाकर  
 उसे छत्तेमें घुसे देते हैं। पीछे उस नल हो कर मधु  
 नीचे रने हुए भरतनमें टपकता है। कमी कमी ये  
 सत्राङ्गमें तुलसीपत्रका रस लगा कर शूद्र आदि  
 पर जहां छत्ता रहता है वट्ट जाते हैं और छत्ते  
 को पीछे उतार लाते हैं। तुलसीपत्रके रसको  
 भाँय गन्धसे मक्खनी उनके नज्दीक आ नहीं सकती।  
 छत्तेके नीचे धूनी करनेसे भी मक्खियां अपने स्वामसे  
 भाग जाती हैं। ( म्री० ) २० औषधोक्तोका पेठ। ( वि० )  
 २३ मोडा। मधुदिष्ट।

मधु—एक मन्त्रिक कवि। ये धर्माधिकरणका कार्य करते  
 थे। इन्होंने धर्माधिकरण-मधु नामसे विख्यात थे।  
 मधुक (सं०-हो०) मन्त्रिकेन मधु (सं०-हो०) प। प। ५। १। १६१

मन्त्रिकः यथा मधु-मधुरं कायतीति कैक। २ यति-  
 मधु, जेठो मधु। २ मधु, सीसा। ३ मन्त्रिके। ४  
 पक्षिविक्रमे। ५ मधुकरम्, मधुपना पेठ। ६ मधु-  
 पुण्य, मधुपका मूल। ७ मधुपेठ। ८ औषध।  
 मधुकरुण्ड (सं०-पु०) मधुमधुरा-कण्डः कण्डस्यती-सत्य।  
 कोकिल-कपोसम्।

मधुकरुण्ड—एक प्राचीन-कवि।  
 मधुकरुण्ड ( सं० पु० ) आरुकरुण्ड।  
 मधुकर ( सं० पु० ) करोति-संज्ञितोतीति-मधु-  
 मधुकरा-मन्त्रः। १ अमर, मीठा। २ कामी-पुकर। ३  
 मधुकराजपूर, भंवर।

मधुकरण्ड—शक्तिशास्त्रके अंतर्गत एक गिरिगुण। जिला-  
 लिपिसे जाना जाता है, कि राजा उदयादित्यके वा-  
 मालके परमारराज नववर्षमें जने यहां अपना शासन  
 फैलाया था।

मधुकरसाह—मोड़डा प्रामनिवासी एक भक्त वैष्णव। ये  
 सर्वदा विष्णुनाम कीर्तन वैष्णवचरणकी सेवा कर दिन  
 बिताते थे। एक दिन बहुतसे विष्णुदेवों को पापदिव्यं  
 गंधेके गलेमें माला और नाकमें चन्दन लगा कर उसे  
 वैष्णवके घरमें सुसा दिया। एरणभक्तिपरायण मधुकरने  
 उसे किसी भक्तका सेवा समझ कर उस गंधेके चरणोंकी  
 पूजा की थी। (मद्यमान) उनके आश्रयमें बहुतसे वैष्णव  
 कवि काव्य रचते थे।

मधुकरसाह ( सं० पु० ) राजा प्रतापगुरुके पुत्र।  
 मधुकरसाही—मधुकरसाह-सम्बन्धीय।  
 मधुकरिन् ( सं० पु० ) शिक्षकाविशेष, एक प्रकारकी  
 मणियां।  
 मधुकरिका ( सं० स्त्री० ) -मालदिकगिनितमिल-गणित एक  
 सत्वीका नाम।

मधुहरी ( सं० स्त्री० ) १ अमर, मीठा। २ मन्त्रिया,  
 मीठिया। ३ पक्षे अमरकी मिस्रा, वह मिस्रा जिसमें  
 कैवल्य-पका-हुआ-बाद, स्वाद, राखी तरकारी आदि छी  
 जाती हैं।

मधुकरादिका ( सं० स्त्री० ) -मधुमधुरा कर्त्तव्येय।  
 मीठा मीठ। मधुकरा—मधु, मीठा, मधुकर, मधुकरादी।

इसका गुण—स्वादु, रीचन, शीतल; गुरु, रक्तपित्त, क्षय, ग्वास, कास, शिक्का और भ्रमनाशकः। (भातप्र०)  
मधुकुकीटी (सं० खी०) मधुमधुरा कण्ठकीटी। मधु-  
बीजपुर, अनार। (राजनि०)

मधुकुलीचन (सं० पु०) शिव, महादेव।

(भारत १३१७१२)

मधुकसार (सं० पु०) गुडपुष्पाशुका-सार।

मधुका (सं० खी०) १-यष्टिमधु। २-एक प्रकारकी लता,  
गुडुची। ३-मधुरनिम्बवृक्ष। ४-कृष्णकेशुनी, काली  
अनाजो घास।

मधुकाण्ड (सं० खी०) गृहदारणपक. उपनिषद्का  
प्रथमकाण्ड।

मधुकादि (सं० पु०) विषमन्धरमें कथावभेद। इसको  
प्रस्तुत प्रणाली—यष्टिमधु, रक्तचन्दन, मोथा, आंवला,  
धनिया, खसखसकी जड़, गुलज-और-पटोलपत्र-इन्हें  
एकल कर-३२-तोला जलमें सिद्ध-करे। जब ८-तोला  
जल बच रहे, तब उसे उतार ले। गोठे उममें पीपरका  
चूर्ण २-माशा और उतना ही मधु डाले। इस-का-पायका  
सेवन करनेसे विषमन्धर जाता रहता है।

(भैषज्यरत्नाकर ज्वराधि०)

मधुकाद्विपृत (सं० फली०) घृतीपधविशेष। प्रस्तुत  
प्रणाली—विशुद्ध-गण्डयून ४-शराव, काढ़े-के-रिधे यष्टि-  
मधु ८-पल, द्राक्षा १६-पल। पाकाय-जल-१६-शराव,  
शेष ४-शराव। नियमानुसार-पाक-करनेके-बाद उसमें  
८-पल पीपर डाल दे। इस घृतका सेवन करनेसे कास  
रोग आरोग्य होता है।

मधुकाघर्षाह (सं० फली०) औषधविशेष। प्रस्तुत  
प्रणाली—यष्टिमधु और त्रिफला प्रत्येक-१-तोला, जारित  
लीह ४-तोला, इन्हें मिला कर प्रतिदिन सानेके-समय  
घृतभार मधुके-साथ सेवन करे। इसकी माता २-माशा  
है। इससे नेत्ररोग प्रगमन होता है।

(भैषज्यरत्नाकर नेत्ररोगाधि०)

मधुकाघण्ड (सं० पु०) भवलेह-औषधविशेष। प्रस्तुत  
प्रणाली—चोनी ५२-तोला और शतमूलाका रस-२-सेट,  
इन्हें एकल कर-पाक-करे। पाक-घना होने-पर-यष्टि-  
मधु, रक्तचन्दन, लास, रकोत्तलमूल, रसाञ्जन, कुशमूल,

वन्तकी जड़, त्रिगयन्दकी जड़, अडूसकी जड़, वेरकी  
आंडीका गूदा, मोथा, वेरसोड, मोबरार, दाकहविडा,  
धाईफूल, अगोकाकी छाल, दाण, जपावृक्षमफो-कली,  
मुलायम जामुनका पत्ता, पत्त, शतमूली, भूमिकुम्भाएड,  
रीय, लोह और अन्न प्रत्येक दो तोला इन सब द्रव्योंकी  
एकल चूर पर धीमी आंचमें पकावे। ठंडा होने-पर  
एक पल मधु ऊपरसे डाल दे। इसका सेवन करनेसे  
योनिशूल, कुक्षिशूल, वस्तिशूल, और रक्ततिसार आदि  
पीडाकी शान्ति होती है।

मधुकार (सं० पु०) मधुकट, मधुमयली।

मधुकाश्रय (सं० पु०) मधुच्छिष्ट, मोम।

मधुकाष्ठ (सं० पु०) मधुकट्टक, मधुका पेड़।

मधुकुम्भकुटिका (सं० खी०) मधु; मधुरा कुम्भकुटीय  
पधु कुम्भकुट खियां डीप, स्याँ-कन, खियां टाप।  
जम्बीरी नीवू। पर्याय—मातुलुङ्गा, सुगन्धा, निरिजा,  
पूतिपुणिका, अत्यन्त, देवद्वी। गुण—शीतल, स्वादु,  
गुरु, स्निग्ध और घातपित्तनाशक।

मधुकुम्भकुटी (सं० खी०) मधुकुम्भकुटिका देखो।

मधुकुम्भा (सं० खी०) स्कन्धानुचर मातृभेद। क्रांतिरूप-  
की अनुचरी एक मातृकाका नाम।

मधुकुल्या (सं० खी०) १-मधु-श्रोतविनी। २-कुजा-  
शोषण्य एक नदीका नाम।

मधुकूट—एक प्राचीन कवि।

मधुकूट (सं० पु०) मधुकरोति-सञ्चितो-तीनि-क-किपू  
तुगागमश्च। अमर, भौरा।

मधुकेशट (सं० पु०) मधुना पुष्परसस्य-के-शिरसि-क्षप्र-  
भागे जटति अच्यतोति शर्-कर्त्तरि-अच्। अमर,  
भौरा।

मधुकेश्वर—यनयासोके-अन्तर्गत शिवलिङ्गभेद।।

मधुकैटभ (सं० पु०) मधुपुत्र-कैटभश्च; इतरेतराष्टः।

मधु और-कैटभ-नामक-दो-अमुर।

दैनन्दिने-दु-प्रत्ये-प्रमुञ्चे-गर्भ-कामे।

तस्य-अवपण्डि-तावमुरी-मधुकैटमी ॥ १२५५

(कालिकापु०-६-१-५०)

इसकी उद्वलिका विवरण कालिकापुराणमें-इस  
प्रकार आया है—दैनन्दिन प्रलयकालमें भगवान्-जब-सो

में थे, उस समय एक दिन उनके दोनों कानसे मधु और कैटम नामक दो असुर निकले। इस समय कूर्मपृष्ठ पर स्थित पृथिवी प्रलयजलमें निमग्न थी। पृथिवीके दोनों परिपरानने मृष्टिकालकी प्रज्ञागण जिनसे भानन्-पूर्णक उसको ऊपर नाम कर सके, इसका उपाय भगवतो योगनिद्रा दृढ़ने लगी। इसी उद्देशसे ये भगवान् विष्णुके निकट गईं। विष्णु उस समय निद्रावस्थामें थे, इस कारण कोई उपाय न देकर योगमायाने अपने बाएँ हाथको कनिष्ठांगुलिके अग्रभागको उनके कानमें घुमेंड़ दिया और नालके अग्रभागसे उनका कर्णमल चूर कर दिया। उस घामकर्णके मलसे एक असुर उत्पन्न हुआ। इसके बाद देवाने दाहिने हाथको कनिष्ठांगुलीको उनके दाहिने कानमें रखा। इस बार भी पहलेके जैसा कानके मलसे दूसरा असुर उत्पन्न हुआ। प्रथम असुरने उत्पन्न होते ही मधुपानके लिये उनसे प्रार्थना की, इस कारण महादेशीने उसका नाम मधु रखा। दूसरा असुर महामायाके हाथमें कीड़ेके जैसा दिखाई देता था इस कारण उसका नाम कैटम रखा गया। अब महामायाने उन दोनों असुरोंसे कहा, 'तुम लोग विष्णुके नाथ युद्ध ठान दो। युद्धकालमें जब तुम अपने ही मुखसे मृत्यु चाहोगे, तभी ये तुम्हें मार सकेंगे, अन्यथा उनमें भी ऐसी शक्ति नहीं कि तुम्हें मार सकें।'।

इस प्रकार महामायासे मोहित हो कर ये दोनों असुर विष्णुके शरीर पर स्रमण करने लगे। स्रमण करते करते उन्होंने नाभिपद्मस्थित ब्रह्माको देष कर कहा, 'भाज हम लोग तुम्हें इसी जगद मार डालेंगे। अतएव यदि तुम जीना चाहते हो, तो विष्णुकी निद्रा भङ्ग करो।' अनन्तर ब्रह्मा बहुत डर गये और उन्होंने बहुविध स्तव द्वारा योगनिद्रा जगत्प्रभू महामायाको प्रसन्न किया। योगमायाने स्तवसे सुष्ट हो ब्रह्मासे कहा, 'महामाग! किन्ना लिये तुमने मेरा स्तव किया? कहे, मुझदारा मनोरथ पूर्ण करनी हूँ।' ब्रह्मा बोले, 'विष्णु भगवान् जब तक सो कर न उठें, तब तक आप मधु और कैटम दोनों असुरोंको सम्मोहित रखें, वही तो ये मुझे मार डालेंगे।' अनन्तर महामायाने विष्णुको उड़ाया और मधुकैटमको मोहित किया।

विष्णु भगवान् जब सो कर उठे, तब उन्होंने ब्रह्माको मोत तथा घोररूप दोनों असुरोंसे देवा। अब ये युद्ध करने लगे, किन्तु बहुत देर तक युद्ध करने पर भी उन्हें परास्त न कर सके। क्षेत्रनागमें भी ऐसी शक्ति न रह गई कि ये उन दोनों पीरोंका बोध सहन कर सकें। अनन्तर ब्रह्मने बर्द्धयोजन विस्तृत और बर्द्धयोजन भावत एक शिलारूप स्थितशक्तिकी धारण किया। अब विष्णुने उस शिला पर लड़े हो कर उनके साथ युद्ध करते करते जलमें प्रवेश किया। उस शक्तिके जलमें मग्न होने पर भगवान् विष्णु पांच हजार वर्ष तक जलके भीतर रह उन दोनों असुरोंसे बाहुयुद्ध करने रहे। इस बार भी जब ये उनका घेच न कर सके तब ब्रह्मा बहुत डर गये।

अब उन बलदर्पित दोनों असुरोंने बार बार महामायासे विमोहित हो कर विष्णुसे कहा, 'हे माघध! तुम्हारे युद्ध नैतुण्यसे हम दोनों यद्दे प्रसन्न हुए, अब जो इच्छा हो वर मांगो।' विष्णुने कहा, 'हे महाबल! यदि तुम मुझे पर देना चाहते हो तो यही वर दो कि तुम दोनोंको मृत्यु हमारे हाथसे हो।' असुरोंने भी उसे स्वीकार कर लिया और कहा, 'तुम्हारे ही हाथसे हम दोनोंका वध शोभा पाता है। लेकिन जहाँ जल न हो यहाँ पर तुम हमारा वध करो।' उनकी बात सुन कर विष्णुने ब्रह्मासे कहा, 'अपनी शक्तिरूपिणी शिलाकी शक्ति शीघ्र इस प्रकार धारण करो कि मैं उस पर उदर कर मधुकैटमका वध कर सकूँ।' ब्रह्माने शिलाको उठा कर इतानकोणमें कूर्मपर्वतके रूपमें धारण किया। पायुकोणमें अनन्त और नैऋतकोणमें जगदीश्वरी जगदांबी स्वरूप शैलरूप धारण कर अवस्थान करने लगीं। अग्नि-कोणमें स्वयं विष्णुने उस ब्रह्मशक्तिशिलाको धारण किया। बीचमें ब्रह्मा और एक बराह बैटे। इन प्रकार स्रमण कर विष्णुने चक्र द्वारा मधु और कैटमके मलक जघ पर रख कर काट डाला। यह ब्रह्मशक्ति शिला इस प्रकार चारों ओरसे भूत होने पर भी नीचे बैठ गई। अनन्तर विष्णुने उसे पर्वतपूर्णक उठा कर उस मृत्यु मधु और कैटमके शरीरमें स्थापित कर दिया। पृथिवी भी अब ऊपर उठी, तब दोनों असुरोंके मूर्ते बर डूब ही

गई। तभीसे सुध्वीका दूसरा नाम मेदिनी पड़ा।

( (काशिकापु० ६१ अध्याय )

माकण्डेय-पुराणावर्गत चण्डीमें मधुकैटभका विषय इस प्रकार लिखा है—कल्पान्तमें समस्त जगत्को एकाकी करके भगवान् विष्णु अनन्तके फलके ऊपर सी गये। उस समय मधु और कैटभ नामक दो विष्पात अत्यन्त भयङ्कर प्रकृतिके अतुर उनके कर्णमलसे निकले और प्रल्लाका घघ करनेके लिये उद्यत हो गये। प्रजापति ब्रह्मने विष्णुके नामिकमलका आश्रय लिया था। विष्णुका निद्रामङ्ग तथा असुरोंको मोहित करनेके लिये प्रल्ला योगमायाका स्तव करने लगे।

ब्रह्मके स्तवसे प्रसन्न हो कर योगमायाने विष्णुको प्रयोधित किया और दोनों असुरोंका संहार करनेके लिये वे विष्णुके नेत्र, मुख, नासिका, बाहु, हृदय और वक्षस्थलसे निकल कर प्रल्लाके सामने खड़े हो गईं। नागशय्यासे उठ कर विष्णुने उन दुरात्मा दोनों असुरोंको देखा। वे अतुर अतियोगशाली और पराक्रमी थे। साल लाल आँखें कर जब वे प्रल्लाका घघ करनेको उद्यत हुए, तब विष्णु उनके साथ बाहुसुद्ध करने लगे। इस प्रकार युद्ध करते करते पाँच हजार वर्ष बीत गया। वे दोनों महामायासे विमोहित और अति बलोग्मादसे अभिभूत हुए थे, इस कारण उन्होंने विष्णुसे धर माँगने कहा। भगवान् बोले, 'यदि तुम मुझ पर प्रसन्न हो, तो यही पर दो कि मैं तुम दोनोंका वध कर सकूँ।'।

मधुकैटभने उसे स्वीकार कर लिया और कहा, 'हम दोनों भी तुम्हारे ही हाथसे मरण चाहते हैं, लेकिन जहां जल नहीं हो, यही हमें वध करना।' तदनुसार विष्णु भगवान्ने उनके मस्तकको अपनी जाँघ पर रख कर चक्र द्वारा काट डाला। ( (माकण्डेयवचसी मधुकैटभवध ३म अध्याय )

मधुकोदक ( सं० ह्री० ) जेठोमधुमें उबाला हुआ जल।  
मधुकोय ( सं० पु० ) मध्ययैः एतः कोयः मध्याधारा कोयो या। मधुमक्षिकाएत कोय, जहदकी मधुलीका छत्ता।  
पर्याय—मधुकम।

मधुकम ( सं० पु० ) मधुनः क्रमः पुनःपुनर्मधु पानकमः।  
मधुकोय, जहदकी मधुलीका छत्ता। पर्याय—मधु वार।

मधुकोडा ( सं० खी० ) घो घा तेलमें भूना हुआ एक प्रकारका मधुर पीठा। यह गुण और पुटिकर होता है।  
(चक्र खण्ड्या० २० म०)

मधुक्षीर ( सं० पु० ) मधुवत् क्षीरं निर्वासोऽन्य। पञ्जूर-वृक्ष, खजूरका पेड़।

मधुखजूरिका ( सं० खी० ) मधुमधुरा खजूरी, ततः क्व टाप। बहुत मोठी खजूर। पर्याय—मधुकर्कटिका, कोलकर्कटिका, कण्टकनी, मधुकलिका, माध्वी, मधुरा, मधुरखजूरी, मधुखजूरी। इसका गुण मधुर, वृष्य, सन्ताप और पित्तशान्तिकर, जोतल तथा वीर्यवर्धक माना गया है। (राजनि०)

मधुखजूरी ( सं० खी० ) मधुखजूरिका व्रेतो।

मधुगङ्गा—एक नदीका नाम।

मधुगङ्—१ युक्तप्रदेशके जलौन जिल्लावर्गत एक तहसील। यह वमुना और पाण्डज नदीके संगम पर स्थित है। भूपरिमाण २६२ वर्गमील है। यहांके रामपुर, जगमोहनपुर और गोपालपुरके जमींदार धर्मरेज-सरकारको राजकर नहीं देते। इन सब सामान्तराज्योंका शासन और विचारभार राजाओंके अधीन रहने पर भी जिल्लेके डिप्टी कमिश्नरके मतानुसार उन्हें राजकार्यको परिचालना करनी होती है।

२ उक्त जिल्लेके अन्तर्गत एक नगर और उसी नामका विचारसदर। इस नगरका दूसरा नाम रानीज भी है।

मधुगन्ध ( सं० पु० ) १ बहुलवृक्ष, मौलासुरी। २ अजु न वृक्ष। ३ मधुर गन्ध, मीठी महक।

मधुगन्धममूनक ( सं० पु० ) अजु न वृक्ष।

मधुगान्धक ( सं० त्रि० ) मधु गन्धयुक्त। जिसमें मधुर गन्ध हो।

मधुगायन ( सं० पु० ) मधु गायतीति गे ( वृत् २ च। पा ३।३।१४१ ) इति न्युट्। कोकिल, कोयल। (राजनि०)

मधुगिरि—१ महिसुरराज्यके तमकूट जिल्लाका एक तालुक। भूपरिमाण ४७१ वर्गमील है। यह स्थान बहुत उपजाऊ है। यहांका छिन्नद-जलकी नामक पानका चावल महिसुरवासो बहुत पसन्द करते हैं। पिनाकिनो, जयमंगली और कुमुदनी नदियां इसी तालुक हो कर बहती हैं। मधुगिरि नगरमें तालुकका विचारसदर है।

२ उक्त मूमकूट जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १३° ३६' ३०" तथा देशा० ७७° १६' ५०" मद्रगिरिदुर्गको उत्तरो सीमा पर अवस्थित है। नगर चारों ओर पर्यंतमे गिरा हुआ है। दुर्ग द्वारा सुरक्षित होनेके कारण यह महिमुन-पति हीर भन्नी और टीपुसुलतानके अतिकारकालमे बड़ा समृद्धिशाली हो उठा था। १७७४ और १७९१ ई०में मराठो सेनाने चढ़ाई कर इसे तहस-तहस कर जाला तनोसे यह नगर श्रीहीन अवस्थामे पड़ा हुआ है। यहांके चैंकरमणभ्यामो और महेश्वरका मन्दिर जनताके देवने लायक है। लोहा, रूपात, मृत्तो कपड़ा, कञ्चल तथा तांब्ये, पीतल और चांदीका बरतन तैयार हो कर बिक्री होता है। अन्धाया इमके यहां घायलका विस्तृत कारोबार है।

मधुगिरिदुर्ग—महिमुन राज्यके तुमकूट जिलान्तर्गत एक पर्यत। यह अक्षा० १३° ३६' १०" उ० तथा देशा० ७७° १४' ४०" पू० समुद्रपृष्ठसे ३६३५ फुट पर अवस्थित है। मद्रगिरि नगरको रक्षाके लिये शैलके ऊपर एक प्राचीन दुर्ग है। पर्यत पर बहुत-से प्रखरण हैं। उस पर्यत-गातमें घोड़िन शस्त्रमण्डार जनसाधारणके देवनेकी चीज है। पत्थिगाके सरदार द्वारा निर्मित मृत्पात्रीर-के बन्दलेमें हीरभन्नेने पत्थरका प्राचीर दे कर इस दुर्गका बहुत कुछ संस्कार किया था।

मधुगुप्तन (सं० पु०) मधुर-गुप्तनमस्य। जोभाजनरूप, सर्दिजनका पेड़।

मधुपर् (सं० पु०) याज्ञपेय यज्ञमें मधुमे होनेवाला होम।

मधुघातक (सं० पु०) एक प्रकारका पक्षी।

मधु घोष (सं० पु०) मधु मधु से गीरां यस्य। बोकिल, कोयल।

मधुचक्र (सं० ह्रीं०) मीचाक, शब्दको मपनीका छत्ता।

मधुच्छदा (सं० स्त्री०) मधुः मधु रक्षदः पणमस्याः, मधुरगिया, मोरगिया नामकी वृद्धी। गुण—लघु, पित्त-ह्नेत्रा और अतिमारनाशक। (भाजनाश)

मधुच्छन्दस् (सं० पु०) श्रापेदके मन्त्रद्रष्टा श्रापिभेद। दे मुनिघोष्ट विधामितके पुत्र थे। इनके समय भार्या-घसंके श्रवि-ममात्रमें उपोतिगादि विधानको बहुत कुछ उपरति हुई थी। श्रापेदके गाना स्थानोंमें इमका प्रमाण मिलता है।

मधुच्युम् (सं० त्रि०) १ मधुक्षरित, जो मोठा न है। (पु०) २ विधामितके पुत्र।

मधुज (सं० ह्रीं०) मधु नो जातं जन-य। असकथ, मोम। मधुजश्वोर (सं० पु०) मधु गंधुरः जम्बोरः। मधुर जम्बोर-पुत्र, मोठा नीयूता पेड़।

मधुजम्भ (सं० पु०) मधु रजम्बीर, नागंगी नीयू।

मधुजा (सं० स्त्री०) मधोः मधुर्देत्यभेदतो जाता प्रादु-भूता इति जन-य, टापु। १ पृथ्वी। मधु और कूटमदीत्य के भेदसे पृथ्वीको उरपत्ति हुई है। मधुकैठम देखा।

मधुनो जायने स्म इति। २ सित्त, शकर। पवाप—महाभ्येता।

मधुजित् (सं० पु०) मधु मधुनामानं देत्यं जितयान् इति जि-वयप् तुगागममद्य। पिप्पु। (देशोभा० १५५१२)

मधुजिह्व (सं० त्रि०) मधुरभापिजिह्वोपेत, माधुर्यरसा-स्वादक जिह्वायुक्त।

मधुजोरक (सं० पु०) जोरकभेद, सीफ। इसे बंगलामें मोठा जोरा, नैलङ्गमें पेड़जिलकर, तामिलमें सोम्बू और पम्पेमें आनिघ्न कहते हैं।

मधुजीवन (सं० पु०) विभीतकपुत्र, बड़ेका पेड़। (वेद्यहनि०)

मधुनाल (सं० पु०) श्रीतालपुत्र, ताड़का पेड़।

मधुपण (सं० पु० ह्रीं०) मधुरं तृणं। इधु, ऊत।

मधुनैलयस्ति (सं० पु०) निरुहयस्तिभेद। बंडीका काटा ८ पल, मधु और तेल मिला कर ८ पल, सोयं भाष पल तथा मीन्धय नमक आध पल, इन सब द्रव्योंको एकत्र कर एक लकड़ोके टुकड़े से मिला कर जो पत्ति तैयार की जाती है, उसे मधुनैलयस्ति कहते हैं। इस यस्तिसे मेद, गुल्म, कृमि, प्लीहा, मल और उदायसं दूर होता तथा शरीरोपचय, बल, वर्ण, शुक्र और अग्निको वृद्धि होती है। (भाज०)

मधुत्रय (सं० ह्रीं०) मधुनां मधु रक्षयणां बन्धु। मधुर-द्रव्यसय, मधु, घृत और घौगो इत तीनोंका मधुद।

मधुत्य (सं० स्त्री०) मधु नो भाया स्व। मधुरत्य, मोठा-पन।

मधुदला (सं० स्त्री०) मुर्गा।

मधुदीप ( स० पु० ) मधी वसने दीप्यते इति दीपक ।  
कामदेव ।

मधुदूत ( स० पु० ) मधोद्यसंतस्य दूत इय । धाम्रशूद्र,  
भामिका पेड़ ।

मधुदूती ( स० स्त्री० ) मधोर्वसंतस्य दूतीव । पाटला  
वृक्ष, पाइरका पेड़ । ( भावप्र० )

मधुदोष ( स० पु० ) उदकदोषक, वृष्टि करनेवाला ।

मधुदोह ( स० पु० ) मधुदोहन, मधु निकालनेकी क्रिया  
या भाव ।

मधुद्र ( स० पु० ) मधुने द्राति पुण्यात् पुण्यं गच्छतीति  
द्राक । भ्रमर, भौरा ।

मधुद्वय ( स० पु० ) मधुमंथुरो द्रवो निर्यासोऽस्य ।  
रक्तगिम्बू वृक्ष, लाल सहिजनका पेड़ ।

मधुद्रुम ( स० पु० ) मध्वर्थे मधार्थं मधुत्वाद्द्रुमो वा द्रुमः  
तत्पुष्पेभ्यो मद्यसम्भवाद्स्य तथात्वं । मधूक वृक्ष,  
महुपका पेड़ । पर्याय—मधूक, गुडपुष्प ।

मधुद्विप् ( स० पु० ) मधुद्विष्टि द्विष्टि क्विप् । विष्णु ।  
( भाग० ३।७।१६ )

मधुधा ( स० स्त्री० ) स्तुतिलक्षण-वाचयधारक । सोम-  
धारक ।

मधुधातु ( स० पु० ) मधुना तत्पर्याय नास्ति प्रसिद्धो  
धातुः । माशिक, सोना मफली ।

मधुधार ( स० पु० ) उदकधारायुक्त मेघ, वह मेघ जो  
जलसे भरा हो ।

मधुधारा ( स० स्त्री० ) मधुनो धारा इतत् । मधुधर्षण,  
मधुकी वृष्टि ।

मधुधारी ( स० पु० ) सोना मफली ।

मधुधूलि ( स० स्त्री० ) मधुमंथुरा धूलिरिव । लण्ड,  
शकर ।

मधुधेनु ( स० स्त्री० ) मधुर्वचिता धेनुः । दानके लिये  
मध्यादि-निर्मित सयत्सा धेनु । इस धेनुदानका

विषय यथाहपुराणमें विस्तारपूर्वक लिखा है । स्थाना-  
भायसे यहां पर संक्षिप्त विवरण दिया जाता है—

गौरसे पोतो हुई धृष्टो पर धृगचर्मके ऊपर १६ कलसी  
मधुसे धेनु तथा इसके चतुर्धाश अर्धाम् ४ कलसी  
मधुसे धरस ( बछड़े ) की कल्पना करनी चाहिये । इस

धेनुकी सुवर्णसे मुख, अगुरुचन्दनसे सोंग, तापिसे पीठ,  
पट्टसे गले, गुडसे मुंह, शशरसे जोम, फूलसे दोनों  
होंठ, फलसे दाँत, कुजमे रोम, चाँदोसे खुर तथा  
उत्तम पत्रसे कानकी कल्पना करनी होगी । इस प्रकार  
गाय और बछड़ेकी बना कर इसके चारों ओर तिलपात्र  
रख देने चाहिये । बाद उसके उस गायकी दो कपड़े से  
ढक देवे । हुद्नेका बरतन जो काँसेका हो उसे  
रख कर यथानियम इस गायकी पूजा करनी चाहिये ।  
संक्रान्ति, चन्द्र-सूर्यग्रहण आदि शुभ दिनमें उस  
ब्राह्मणको जो आर्यावर्त्तमें उत्पन्न और वेदवेदाङ्गपारग  
हो, यह धेनुदान करना होता है । जो व्यक्ति इस धेनु-  
को दान करते हैं, उनकी गति यहीं होती है जहां नदी  
मधुवाहिनी, कद्म पायसमय तथा जहां सिद्ध मुनि  
श्रृष्टि आदि रहते हैं । अनेक प्रकारके सुखभोग कर वे  
अन्तमें ब्रह्मलोकको जाते हैं ।

मधुनदी—भोजकटराज्यके अन्तर्गत एक नदी ।

मधुनाड़ी ( स० स्त्री० ) १ मधुचक्रका गत्ते । २ अश्वेदका  
एक मन्त्र ।

मधुनापत्त—एक मराठी ब्राह्मण । ये हैदराबाद-राज  
अनुहुत्सैनके प्रधान मन्त्री थे । १६७६ ई०में इनके आमन्त्रण  
से महाराष्ट्र-केजरी शिवाजी ७० हजार सेनाको ले कर  
हैदराबाद नगरमें घुसे । गोलकुण्डामें उनको अभ्यर्चना  
हुई । ये बाबुहुत्सैनको ओरसे विजापुरराजके साथ लड़े  
थे । मधुनापत्तने सुलतानको हराया था । राष्ट्रचित्तवर्मे  
इनको मृत्यु हुई । हैदराबाद देखो ।

मधुनापित—बङ्गालप्रदेशवासी मयरा या मोदकजातिकी  
एक शाखा । मिट्टाई बना कर घेचना इनका जातीय ध्य-  
साय है । इस जातिकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें एक कहाना  
जो इस प्रकार है,—

महाप्रभु चैतन्यदेवके दो भूत्वोंने उनका मस्तक मुण्डन  
किया था, इस कारण वे दोनों उषधेणोभुक्त हुए । एक  
दिन क्षीरकर्म करनेके बाद जब उन्होंने महाप्रभुको घेसे  
कर्मके लिये जातिच्युतका भय कह सुनाया तब महाप्रभुने  
उन्हे मिट्टाई घेचनेकी आह्वान दी । तमोंसे यह बंध मकरा  
धेणोभुक्त हुआ है । दूसरी कहानोंसे जाना जाता है,  
कि मधु नामक एक मारने निमाइके संन्यासग्रहण करनेके

ममय इतना मिर मुद्रा था। अनंतर उसने महामधुके पास जा कर प्रार्थना की, कि उसने महामधुका मिर मुद्रा है अब यह किस प्रकार जननाधारणके मर शक्य काटेगा ? महामधुकी कृपासे उस मधुनापितका शंका-पर मोक्षका काम कर मधुनापित नामसे प्रसिद्ध हुआ। इनमें विधासतोक्ष, जातिमोक्ष, मधुमोक्ष और शैलाती नामकी चार श्रेणियाँ हैं तथा आलम्बान, भाग्यज, 'कादपप, माहुमाल्य, पराजान और शारिङ्ग्य आदि गोल प्रचलित हैं।

ये लोग एक मोक्षमें विवाह नहीं करते। इनमें बालिका विवाह ही प्रचलित और विधवाविवाह साधारणतः निषिद्ध है। ब्राह्मण इनके हाथका जल पीते हैं। इनमें समो वैष्णव-धर्मावलम्बी हैं।

मधुनालिकरक ( स० पु० ) मधुमधुरा नारिकेलः स्वार्थे वन, रत्नपौरैषवात् रस्य लव्यं। मधु नारिकेल, मोटा नारियल। यह नारियल कोट्टुणमें प्रसिद्ध है। पर्याय—माध्यायक फल, मधुकल, असितज फल, माक्षिक फल, मृदुफल, बहुकूच्यं, हृस्वफल। इसका गुण मधुर, शीतल, दाह, सूष्ण, विचक्षाशक, बल, पुष्टि, कान्ति और पोषणकारक तथा रुचिकर माना गया है।

( रामनि० )

मधुनिष्ठाव ( स० पु० ) मुकुटनिग्धो, सेम। इसका गुण—रुचिकर, मधुर, कुष्ठ कषाय, शीतल, पलकर, आध्मानकर, गुरु और पुष्टिदायक। ( रामनि० )

मधुनिस्तदन ( स० पु० ) विष्णु।

मधुनिदम्बु । स० पु० ) विष्णु।

मधुनी ( स० स्त्री० ) क्षुपतिशेष, एक प्रकारका पौधा। पर्याय—पूतमण्डा, रावसोली, सुमङ्गला। ( रत्नाश० )

मधुनी ( स० पु० ) मधु नपति पुष्येभ्यः संयुद्धानतीति नो ह्यु। समर, भीम।

मधुव ( स० पु० ) मधु पितोति पा-क। १ समर, भीम। २ शहदकी मधसो। मधु जलं पातीति पा-क ( त्रि० )

३ पारित्यसक। ४ मधुवानकर्ता, मधु पीनेवाला।

मधुर—साक्षात्प्र-र्यपित एक राजा।

मधुपथर ( स० पु० ) बहुमृदुल, मीनसिरी।

मधुपदल ( स० पु० ) मधुचक्र, शहदकी मधसोका छत्ता।

मधुपति ( स० पु० ) धोकाय।

मधुपर्क ( स० पु० ) मधुनी पर्कः सम्यक् वस्य वृत्त-पर मधुना मधोद्वनान् तथापर्यं। वृक्षोपचारभेद, सोम उपचारोमेंमें उठा उपचार।

दधि, पून, जल, मधु और चीनी पांच द्रव्योंके एकत्र मिलनेसे मधुपर्क होता है इसमें देयता बहुत संतुष्ट होते हैं। मधुपर्कमें बहुत कम जल दिया जाता है। चीनी, दधि और पून समान मात्रामें तथा मधु अधिक मात्रामें देना उचित है। यह मधुपर्क ज्योतिषोम, आश्वमेध, पूर्ण १८ वा पूजामें कांसिके पात्रमें रग कर दान करना होता है। इससे भयं, धर्म काम और मोक्षकी पूर्ति होती है। ( काश्मिकापु० ६० ब० )

धानामिका और अशुष्टकी मिला कर तथा शेष तीस अशुष्टियोंको फोला कर मधुपर्क देना होता है। पारस्कर गृहसूत्रमें दधि, मधु और पूतकी एकत्र कर कांस्यपात्रमें मधुपर्क देनेकी व्यवस्था है।

"मधुर्क दधिमधुपूतमण्डित कांस्ये कासेन।"

( पास्करगृह्य १।११ )

२ तन्त्रके अनुसार पून, दधि और मधु का संयोग।

इसका उपयोग तांत्रिक पूजनमें होता है।

मधुपर्किक ( स० त्रि० ) मधुपर्कदानके समय कर्त्ता करनेवाला, माङ्गल्कोपस्थापक।

मधु पर्य ( स० त्रि० ) मधुपर्कमहति ( दधकादिभ्यो ङा ) पा १।१।६६ इति म। मधुपर्कार्ह, मधुपर्कके योग्य।

मधुपर्णिका ( स० स्त्री० ) मध्यवर्हित पर्णमस्या। ततः स्वार्थे वन् टाप भूत इत्यक्ष। १ शम्भारी वृक्ष, शंभारी नामका पेड़। २ नीलीवृक्ष, नीली नामक पौधा। ३ पराहकान्ता, चारहो। ४ गृह्णी, गृह्य। ५ सुहर्षिणा।

मधुपर्णी ( स० स्त्री० ) मधु इव दितं पद्मे यस्या गीरादि ह्याम् उदीपु। १ मधुपीतपुत्र, नारंगी मीड़। २ यक्षि-मधु, जैटोमधु। ३ विकृतशूल, कंडकी। ४ मधुपर्णिका देवी।

मधुपाका ( स० स्त्री० ) पाकेन मधुमधुरा, राजद्वारि-ह्यात् पूर्वनिपाताः टापु। यह मुद्रा, रम्युजा।

मधुपाणि (सं० लि०) १ जिसका हाथ मीठा हो। २ जिसके हाथमें मधु हो।

मधुपायिन (सं० पु०) मधु पियतीति पाणिनि, ततः (आतोयुक् निच् क्तोः) पा ७३१३३ इति युक्। १ अमर, मी० रा। २ मधुपानकर्ता, मधु पीनेवाला।

मधुपाल (सं० पु०) मधुरक्षक, जो मधु रखता हो।  
(रामायण ५१०१०१)

मधुपालिका (सं० स्त्री०) मधु पालयतीति पालि-ण्वुल् टाप्, अत इत्वं। गंभारी नामक पक्ष।

मधुपिङ्ग (सं० पु०) एक मुनिका नाम।  
(किल्हपुण्य ७४८)

मधुपिङ्गाक्ष (सं० लि०) १ मधुरके जैसा पीतवर्ण नेत्र-वाला। (पु०) २ मुनिभेद।

मधुपीलु (सं० पु०) मधुर्मधुरः पीलुः। महापीलु, अल-रोट।

मधुपुर—बिहार और उड़ीसाके भागलपुर जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह अक्षा० २५° ५५' ४०" उ० तथा देशा० ८६° ४६' ५१" पू० पर्याणतदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। यह स्थान दुर्गादेवीके श्वापात्र लुरिक-का लीलाक्षेत्र समझा जाता है। जमीनमें गड़ी हुई प्राचीन हिन्दू और मुसलमान राजाओंकी मुद्रा इस स्थानके प्राचीनत्वकी घोषणा करती है।

मधुपुर—बिहार और उड़ीसाके सन्धाल परगनेके अन्त-र्गत एक शहर। यह अक्षा० २४° १५' उ० तथा देशा० ८६° ३६' पू० इष्ट-इण्डियन रेलवेकी काई लाइन पर अव-स्थित है। जनसंख्या सात हजारके करीब है। यह स्थान बहुत स्वास्थ्यप्रद है। स्थानीय पार्वतीय दृश्य बड़ा ही मनोहर है।

मधुपुर—पञ्जाबके मुक्तसापुर जिलेका एक नगर। यह अक्षा० ३२° २२' उ० तथा देशा० ७९° ३६' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या डेढ़ हजारके करीब है।

मधुपुर—बङ्गालप्रदेशके ढाका जिलेके उत्तरमें लगायत मैमनसिंह जिलेके मध्य और ब्रह्मपुर नदी तक विस्तृत एक जङ्गल। यह 'गद्गुजालो' नामसे भी प्रसिद्ध है। पारवर्षको समतल भूमिसे इसकी ऊंचाई ४० फुट है। बीच बीचमें १०० फुट उच्च कुछ गहरे शैल भी देखे

जाते हैं। अभी ढाकाके प्रसिद्ध-जमोदारोंके यत्नसे इसका कुछ अंश आयाद हुआ है।

मधुपुर वा सघार मधुपुर—राजपूतानेके जयपुर राज्यान्त-र्गत एक नगर। यह जयपुर-राजधानीसे २१॥ कोस उत्तर-में अवस्थित है। यहां चैत्र और आश्विनमें मेला लगता है जिसमें बहुतसे लोग एकत्रित होते हैं।

मधुपुर—बिहार और उड़ीसाके दरभङ्गा जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २६° १०' २०" उ० तथा देशा० ८६° २५' १" पू०के मध्य विस्तृत है। बरहमपुर, हरसिंहपुर, गोपालघाट और दरभङ्गा जानेके जो प्रधान पथ हैं वे इसी नगरमें मिले हैं, इस कारण यहांके वाणिज्यकी विशेष सुविधा हुई है। तिरहुत और पूर्णिया जिलेसे साथ वाणिज्य चलानेके लिये भी एक बहुत लम्बा चौड़ा पथ चला गया है। नयादाकी नीलकोठी इसके निकट ही अवस्थित है।

मधुपुर—बम्बईप्रदेशके काठियावाड़ विभागके अन्तर्गत पोरबन्दर राज्यका एक नगर। इस प्राचीन नगरमें श्राद्धनृणाका एक मन्दिर विद्यमान है। प्रवाद है, कि श्रीकृष्णने कृषिपानीदेवोंको हर कर यहीं पर प्याहा था।

मधुपुर वा मधुपुरी—मधुराका एक नाम।  
मधुरा देखो।

मधुपुरी (सं० स्त्री०) मघोस्तन्नातो द्वैत्यस्य पुरी। मधुरा।  
(भागवत ७।१४२१)

मधुपुष्प (सं० पु०) मधु प्रचुराणि पुष्पाण्यन्त्य। १ मधु-द्रुम, मधुपका पेड़। २ गिरीपट्टक्ष, मिरिसका पेड़। ३ अशोकवृक्ष। ४ बहुलवृक्ष, मौलसिरोका गाछ।

मधुपुष्पा (सं० स्त्री०) मधुपुष्प-विवर्णा-टाप्। १ दम्बो-वृक्ष, नागवृत्ती। २ घातकीवृक्ष, धीका पेड़।

मधुपुष्पा (सं० स्त्री०) १ अवाकपुष्प, एक प्रकारका पौधा जिसके फूल अघोमुप होते हैं।

मधुपृक् (सं० लि०) कर्मफल द्वारा संयोजनकारी, कर्म-फलसे रक्षा करनेवाला।

मधुपृष्ठ (सं० लि०) मधुर पृष्ठभाग, सुन्दर पीठवाला।  
मधुपेय (सं० लि०) मधुवन् पातय, मधुके पेसा पीने लायक।



मधुमन्थ ( सं० ति० ) मधुमन्थनायपथ, पून प्रांग मधु-  
पथयुक्त ।  
मधुमन्थ ( सं० पु० ) एक प्रकारका रोग । इस रोगमें  
देनाबने ज्वर आता है । मधुमेर देतो ।  
मधुमिय ( सं० पु० ) मधु मद्युयं यिदमस्य । १ बलराम ।  
२ भूमिभय, भुं-जामुन । ( ति० ) ३ मद्युयिप,  
जटाबी ।  
मधुमल ( सं० पु० ) मधु मधुयं फलमस्य या मधु मद्युयं  
फलान् यस्य । १ मधुनारिकेल, मीठा नारियल । २  
पिकटूलह । ३ दास ।  
मधुकला ( सं० स्त्री० ) १ मज्जर । २ दास ।  
मधुकलिका ( सं० स्त्री० ) मधु मधुयं फलं यस्याः, मधु-  
फलसंज्ञायाम् कन्-त्वात् भठ इत्यं । मधुलज्जुंरिका, मीठा  
लज्जर । ( राजनि० )  
मधुवन ( सं० पु० ) १ प्रजभूमिके एक वनका नाम । २  
मुमोवका बगोला जिनमें भंगूरके फल बहुत होते थे ।  
मधुबहुल ( सं० स्त्री० ) मधुना मयी या बहुला । १ पासली  
लता । २ गुणलघुयिका, सफेद जड़ी ।  
मधुविम्वो ( सं० स्त्री० ) कुन्दुकलता, कुंदक ।  
( वैद्यकनिपट्ट )  
मधुबोज ( सं० पु० ) मधुमधुयं बोजं यस्य । दाडिम,  
अनार ।  
मधुवीजपूर ( सं० पु० ) मधुना मधुपूर्णांनां योजानां पुरा  
समूहो यत् । मधुकषकंटीका, मीठा नीबू । पर्याय—  
मधुपर्णी, मधुरकषकंटी, मधुयती, मधुकषकंटा, मधुर-  
फल, महकला, यदंमाना । इसका गुण—मधुर, जोतक,  
बाह्यनाशक, तिद्रोष-जान्तिकर, कचिकर, पथ्य, शुठ और  
दुग्धकर । ( राजनि० )  
मधुमया ( सं० स्त्री० ) शबकर ।  
मधुमाग ( सं० ति० ) जिसके अंशमें मधु हो ।  
मधुमार ( सं० पु० ) एक मानिक उन् । इसके प्रत्येक  
घरणमें आठ मातायं होती है और अन्तमें जगण  
होता है ।  
मधुमाय ( सं० पु० ) प्राहृत उन्मोमेद ।  
मधुमिदु ( सं० पु० ) मधु लक्ष्मामं देव मितलि माशय-  
सोदि निद-रिप तुगाममव । विष्णु ।  
( भागवत ४।२।१० )

मधुमुज ( सं० ति० ) मधु-भुज-वियप् । शुद्ध सुखभोका,  
पीड़े समय तक सुख-भोग करलेवाया । २ मधुभोजी ।  
मधुमपयो ( हि० स्त्री० ) एक प्रकारकी पत्तो । यह  
कुन्डोका रस मूस कर मद्युय इकट्ठा करती है ।

(शोध विवरण अधिकार करने देतो ।

मधुमस ( सं० पु० ) मीमांशि, मुमाषी ।  
मधुमंशिका ( सं० स्त्री० ) मधु सत्रायिका मंसिका । कोट-  
विशेष, श्रद्धको मण्डो । पर्याय—सरपा । मीमांशि देतो ।  
मधुमज्जन ( सं० पु० ) मधु मधुयो मज्जां यस्यं । आधोद-  
यस, अलोदका पेड़ ।  
मधुमन् ( सं० ति० ) मधुधुररसोऽस्त्यस्य मनुप् । १  
मोधुयुक्त, मधुररसयिनि । २ काश्मीरपुस, कसर ।  
मधुमत—काश्मीरके पास एक देनाका नाम ।

( भाव भोग्य० ६।२२ )

मधुमतिगणेश—काष्पदर्शन नामक वाक्यप्रज्ञान-टोकाके  
रचयिता ।

मधुमती ( सं० स्त्री० ) मधुमत् स्त्रियां स्त्रीप् । १ नदी-  
विशेष । इस नदीका जल अग्निदोषक है । २ उपास्य  
मायिकाविशेष । इसकी उपासनासे सिद्धिलाम होता  
है जिससे सैकड़ों देवदासियां यज्ञोत्सव हो जाती हैं । ये  
सर्ग मरथं या पाताल जहां जाना चाहें वहां देवदासियां  
पहुंचा आती हैं । ( इन्द्राददीरिका १ पटल )

३ पातजल-दर्शनोक्त समाधिस्थितिमेद । अब  
अन्यास और वैराग्य द्वारा रत और लोमल दूर होता  
है, तब सत्यगुणके प्रकाश द्वारा श्रुतम या प्रज्ञा होती  
है । ऐसी प्रज्ञाके उत्पन्न होनेसे मधुमती नामकी समाधि-  
स्थिति होती है । विशेष विवरण समाधि कर्ममें देतो ।

४ गद्दा । ५ इष्याकुके पुत्र हयभक्ती भार्या । यह  
मधु देवकी कन्या थी । ( हरिवं ६।१२-१३ ) ६ उन्मो-  
मेर ।

मधुमती—बहुलके फरीदपुर और यशोर जिलेके मध्य  
प्रवाहित एक नदी । यह पुष्पसलिला गङ्गातरीकी एक  
नाया है । मित्र मित्र स्थानमें यह मित्र मित्र नाम-  
से पुकारा जाता है । नदिया जिलेके कृषिपा अणके  
समीप मून्मदीमें निकल कर यह गङ्गा नामसे बहती  
है दक्षिणकी ओर बहती गई है । यहां इसका नाम

मधुमती है। पीछे बाबरगञ्ज जिलेमें प्रवेश करते समय यह बलेश्वर नामसे पुकारी जाती है। यद्यपि सुन्दरवन होती हुई जहां पर बहोपसागरमें गिरती है यहाँ इसका नाम हरिणघाटा रखा गया है। फरीदपुर जिलेकी बाराशिया और मधुमतीका सहजस्थल कीर्त्तन-खोला नामसे प्रसिद्ध है।

२ योगिनीतन्त्रीक एक नदी। ३ नर्मदानदीकी एक शाखा।

मधुमती—प्रभासक्षेत्रके अन्तर्गत स्थानमेद।

मधुमत्त (सं० लि०) १ यह जो मधु पी कर मत्त हो। २ वसन्तश्रुतिमें प्रसन्न होनेवाला। ३ एक प्रकारका फलज।

मधुमथन (सं० पु०) मधु तन्नामानं दैत्यं मघ्नातोति मन्थन्त्यु। विष्णु। (भागवत ३।६।३६)

मधुमद् (सं० पु०) मद्यकी मादकता शक्ति।

मधुमन्त (सं० पत्नी०) नगरमेद।

मधुमन्थ (सं० पु०) मधुमिथ्रणजात मद्यमेद।

मधुमय (सं० लि०) मधुस्वरूपे मयद्। मधु, मधुके जैसा।

मधुमर्कटी (सं० स्त्री०) मधुजाता मर्कटी, मध्यपदलोपिकर्मधा०। मधुजातखण्ड, शककरका टुकड़ा।

मधुमहो (सं० स्त्री०) मधुप्रधाना महो। मालती।

मधुमस्तक (सं० स्त्री०) मधु मधु रसः मस्तके उपरिभागे यस्य। पिष्टकविशेष, एक प्रकारका पकवान। यह मेदिको घीमें भून कर धीरे ऊपरसे शहदमें लपेट कर बनाया जाता है। यह बलकारक, शुद्ध और भारी होता है।

मधुमाधो (सं० स्त्री०) मधुमती देवी।

मधुमात (सं० पु०) एक राग। यह भैरवरागका सहचर माना जाता है।

मधुमातसारंग (सं० पु०) सारंगरागका एक मेद। इसके गानेका समय दिनोंमें १७ दृष्टसे २० दृष्ट तक माना जाता है। यह सङ्करराग है और सारंग तथा मधुमातके योगसे बनता है।

मधुमाधय (सं० पु०) यस्तनकाल।

मधुमाधय—मधुमाधयी नामकी अमरकोय-टीकाके रचयिता। रायमुकुन्द रामानन्द, भरतसेन आदिने इनका मत उद्धृत किया था।

मधुमाधयक (सं० पु०) पलाशका पेड़।

मधुमाधयसहाय—आनन्दतीर्थकृत तन्त्रसारकी टीकाके प्रणेता।

मधुमाधयी (सं० स्त्री०) मधुयुक्त माधयी। १ यास्तन्वीलता। २ एक प्रकारकी रागिनी। ३ मधुविशेष। ४ छन्दोमेद।

मधुमाध्वीक (सं० स्त्री०) मधुमाधुयुक्त माध्वीक। मद्य, जटाव।

मधुमान—सौराष्ट्र देशके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। यह सिमोदके पश्चिममें अवस्थित है। पाणिनिके कच्छादि-गणमें इस नगरका उल्लेख है।

मधुमारक (सं० पु०) मधुना मारकः भक्षकत्वात् तथात्व-मस्य। झरद, भौरा।

मधुमालती (सं० स्त्री०) मालती पुष्पवृक्ष।

मधुमालपत्रिका (सं० स्त्री०) विषिलिका।

मधुमिध्र (सं० लि०) १ मधुयुक्त (पु०) २ एक प्रत्यकार, भावचन्द्रके पुत्र।

मधुमुरारकविनाशन (सं० पु०) विष्णु और शृणु। इन्होंने मधु, मुर तथा नरकासुरका विनाश किया था। (गीतां० १।२०)

मधुमूल (सं० स्त्री०) मधु मधुर् मूल। रकालुक, रतालू।

मधुमेह (सं० पु०) प्रमेहदोगविशेष।

“धर्ष एव प्रमेहस्तु कालेनाप्रतिकारियः।

मधुमेहत्वमायान्ति सदृशाभ्या मन्वि हि ॥”

(चरकप्रक्या० १७ व०)

उपयुक्त समयमें विक्रितसा नदी करनेसे समो प्रकारके प्रमेहदोग भागे चले कर मधुमेहरूपमें परिणत हो जाते हैं। भायंमकागमें इसका विषय यों लिखा है। मधुमेहदोग दुःसाध्य है। इस रोगमें मूत्र मधुके जैसा उतरता है। यह दो प्रकारसे उत्पन्न होता है। पहला धातुस्रयप्रयुक्त वायुके कुपित होनेसे, दूसरा अन्य दोषसे वायुके अपव्यक्त होनेसे। शोथक रूपसे जो मधुमेह उत्पन्न होता है उसमें दोषोंके समो लक्षण अक्षरसात्

उपनिषद् होते हैं तथा यह कामी पुनः मरणाच्छातो प्रान्तर कर कष्टमाध्य हो जाता है। धातुसर्वके कारण कुपित वायुको जो मधुमेद उत्पन्न होता है उसमें गिरफा कुपित वायुका मन्त्रन दिग्गर्ह देना है। सभी प्रकारके मेहरोगमें मधुमेद समान मोटा पेनाय उत्पन्न है, इस कारण सभी मेहरोगोंको मधुमेह कह सकते हैं।

(भास्करनाम प्रवृत्तिये) प्रेर देते।

सुभुजमें दिखता है—दियागन्ध, अपरिधम और गौण्य, म्निग्य तथा मधुर भक्तता सेवन करनेमें प्रमेह-रोग उत्पन्न होता है। इस प्रकार अहिताचारी पुरुषके बाह्यपित्त क्लेशका विना परिपाक रूप हो मेह धातुके साथ मिल जायों और तब मूत्रवाहिनो नाड़ीके मध्य प्रवेश कर गोचिको और गमन करती है। यहाँ घालिमुचका आश्रय लेनेमें रूँ सुमोने-सी यज्ञणा होती है। करतल और पदतलमें दाह, देह स्निग्ध, विच्छिन्न और भार, मूत्र शुचत्वपूर्ण और मधुर, तन्द्रा, भयमाद, पिपासा, दुर्गन्ध, श्वास, ताप, गलदेन, जिह्वा और व्रतमें मलको उत्पत्ति, केजका अटिलभाय तथा मज्जरुदि ये सब मधुमेहके पूर्व लक्षण हैं। कुछ दिन बीत जाने पर शरीरमें स्फोटक निकल आते हैं।

मधुमेह आसाध्य रोग है। छोड़ी हो दूर चलने पर रोगी बरत जाता और बैठनेको इच्छा करता है। जब बैठ जाता तब बाहकी बाहमें मोँद भा जाती है। सभी प्रकारका मेहरोग पुराना होने पर जब अमतिविधेय हो जाता है तब उसे मधुमेह कहते हैं। मधुमेह रोगीको यदि घेघ र्याग कर दे, तो निम्नलिखित योग द्वारा गिरिजना करना उचित है। ज्येष्ठमासका सूर्यकिरणसे जब पार्श्वतोय मिला तब जाता है तब उसमें लाजकी तख्का रस निकलता है। उस रसको शिवाज्ञान कहते हैं। यह व्यापितानक है। इसमें शनि, शोरे आदि छः प्रकारकी धातुभोका मार भाग है। जनुकी तरह प्रमादिगिह यह शिवाज्ञान स्वीहसे उत्पन्न होता है, इस कारण इसका रस और योर्ध शोरेके समान है। जो शिवाज्ञान तिल, कटु, कषाय, मारक, कटुवाच, उष्ण-धीर्ध, शोषण और शैथनकर है उनमें कृष्णपर्ण, गुह, स्निग्ध और शर्कराद्रोम शिवाज्ञान हो सकते हैं तथा

जिस शिवाज्ञानसे गोमूत-सो गण्य आती है, यह भी धे छ है।

इस प्रकार शिवाज्ञानको प्रातःकालमें सारगण द्वारा (भारण्यपादि, वदपादि, योतकादि, सालसापादि और म्त्रोपादिगणमें जिन सब पृष्ठीका उल्लेख है, उहोके मारकी सारगण बढ़ते हैं) भावित कर सात्तलसे मच्छो तख पोसे। बाद उपयुक्त मात्रामें सेवन कराये। इस मधुमेहस्य गिरिजात भीषयका सेवन करनेसे देह-का पुनः खुलता, नरं ताकत आती, मधुमेह शिलजुह दूर हो जाता और सी वर्षको परमायु होता है।

गिरिजात अमृततुल्य मासिकधातुका जो इतनी प्रणालीसे सेवन किया जाता है। मासिक दो प्रकारका है, स्वर्णप्रमा और रजतप्रमा। स्वर्णप्रमा मधुर और रजतप्रमा अम्ल होता है। मासिक सेवन करने, कर्तृ-का मांस भक्षण और खांससङ्ग गद्दों करना चाहिये। रोगीके श्रद्धापान होने तथा आरोग्यविषयमें पिथेर यत्न करनेसे पित्तदोषजगत मधुमेह और बुद्धादिरोग जाता रहता है।

पश्चिम समुद्रके किनारे जो राव भरहरके पीथे उत्पन्न होते हैं उनको पांसवा सागरकी तरङ्गसे और वायुके दिल्थोलसे सार्णया दिलती रहता है। वर्षा मार पर उसी प्रकारकी भरहरकी छेमो संमह कर उनसे मज्जा निकाले। पाँछे उस मज्जाको सुखा कर चूण करे और चूणको तिलका तख्द्राणामें पास कर तल निदाने। अनन्तर भाग पर चट्टा कर जब उसका पानी शिलजुह जल जाय, तब उतार ल और रूखे गोबरमें एक पख तक रब टाह। बादम शुद्धपक्षक गुर्भादनम इस तैलका यथासाध्य पाँचमाणमें मन्नाक मन्तपाठ करके पान करे। मन्त—

“मन्तार मन्तार्थं शर्मं भद्रं शिरोधर।

शुक्लधराशायि स्वाम्नाज्जगदुत्पन्नः॥”

इस तैलका सेवन करनेमें रागोंके अघा और ऊजुर्ध-दोष संशोधित होते हैं। प्रातःकाल इस तैलको पी कर अथवाहमें स्नेह और लयणवर्जित शोषण पक्वगुका पान करे। इस प्रकार पाच दिन तैल पान करके पाँछे मूंग-का मूस और शरीर पुराने व्यायकका भाग खा कर एक

पक्ष तक पिताये । इससे मधुमेह आरोग्य होता है ।

( मधुत मधुमेहचि० )

इस रोगमें पथ्यापथ्य—

दिनकी बारोके पुराने चावलका भात, मूंग, ममूर, और चनेकी दालका जूस ; बकरे, हरिण और फयूरका मांस, पटोल, हूमर, यशहूमर और सोहिजनकी तरकारी खाना उचित है । रातको गेहूँ वा जीकी रोटी, ऊपर लिखी हुई तरकारी और मषखन उठाया हुआ दूधका सेवन करे । आंवला, जामुन, पक्का केला, कागजी नीबू खाया जा सकता है । इस रोगमें रुक्षकिया, घोड़े और हाथी पर भ्रमण, पर्यटन और व्यायाम आदि विशेष उपकारक है । पीडाकी प्रवलावस्थामें दिनकी भात न खा कर गेहूँ वा जीकी रोटी अथवा केवल मषखन निकाला हुआ दूध पीना आवश्यक है । गरम जलको ठंडा करके पीना और उसी जलसे स्नान करना उचित है ।

निषेध कर्म—कफजनक और गुरुपाक द्रव्य, जलाभूमिजात मांस, दधि, अधिक दूध, मिष्ट द्रव्य, कुम्भाएड, कद्दू, उड़दको दाल, लाल मिर्च और अधिक जलपान, सुरापान, दिवानिद्रा, राति जागरण, अधिक निद्रा, मेथुन और आलस्य इस रोगमें विशेष अनिष्टकारक है ।

मधुमेहिन (सं० त्रि०) मधु मेहः अस्वास्ताति इति । मधु-मेहरोगमुक्त, जिसे मधु मेहरोग हो ।

मधुयष्टि (सं० खी०) मधुर्मधुरो यष्टिः । इक्षु, ऊष ।

मधुयष्टिका (सं० स्त्री०) मधुर्मधुरो यष्टिः ततः कन् टाप् । यष्टिमधु, जेठो मद् । पर्याय—मधुक्, फलोतक, यष्टिमधुका, मधुयष्टी । ( भरत )

मधुयष्टी (सं० स्त्री०) मधुयष्टिःशुक्रादिनादिति पक्षे ङीप् ।

मधुयष्टिका, मुलेठी ।

मधुयीनि (सं० स्त्री०) दाय ।

मधुर (सं० पुं०) मधु माधुर्यं रातीति रा-क्, यदा ( मधु-माधुर्यमत्यास्तीति ऊपरशुक्रमधो रः । पा १।२।१०० ) इति र । १ मिष्ट रस, मीठा रस । पर्याय—मौल्य, रसज्येष्ठ, गुन्य, स्वादु, मधूलक । गुण—प्रोणन, बलकर, वृंहण, एगुपित्तनाशक, रसायन, शुक्र, स्निग्ध, चक्षुका हितकर और तर्पण । ( राजव० )

भायप्रकाशके मतसे मधुररस शीतवीर्य, घातुपोषक,

रतन्यदुग्धघण्टक, बलकारक, प्रसन्नताकारक, यातम, पित्तनाशक, स्थूलताकारक, मलचर्दक, दुर्मिजनक तथा बालक, युद्ध, क्षत, क्षीण, वर्ण, केज, इन्द्रिय और ओजः घातुके लिये प्रजस्त, मांसचर्दक, गुग्गु, भग्न और क्षत सन्धानकारक, चिपटोपनाशक, पिच्छिल, स्निग्ध, प्रीतिजनक और आयुका हितकर ।

अतिरिक्त मधुर रस सेवन करनेसे उग्र, श्वास, गलगण्ड, अर्बुद, कृमि, स्थूलता, अग्निमान्द्य, मेह, मेद और कफरोग उत्पन्न होता है । मधुर रस प्रायः कफकारक होता, रितिके पुराना चावल, जी, मूंग, गेहूँ, मधु, चीनो और जाड़लमांस कफकारक नहीं है ।

२ जीवकवृक्ष । ३ रक्तसिन्धु, लाल सहिजन । ४ राजात्र, एक प्रकारका बड़ा आम । ५ रकेश, लाल रस । ६ गुड़ । ७ मालि, धान । ८ वीजपुरविदेय । ९ स्कन्दके एक सैनिकका नाम । १० यद्ग, रांगा । ११ चिय, जहर । १२ माधुर्यगुण । १३ मञ्जरुण, एक प्रकारको घास । १४ मातुल्लवृक्ष, बिजौरा नोथका पेड़ । १५ वादामका पेड़ । १६ काकोली । १७ पन्थवदर, जंगली बेर । १८ मधुक, महुष्का पेड़ । १९ काकाल्यादिगण । २० श्वेत निःपाव, सफेद सेम । २१ राजमाय, मटर । २२ लीद, लोहा । ( त्रि० ) २३ जिसका स्वाद मधुके समान हो, मीठा । २४ जो सुननेमें भला जान पड़े । २५ मनोरञ्जक, सुन्दर । २६ सुस्त, महर । २७ मन्दगामो, घोर घारे चलनेवाला । २८ जो किसी प्रकार बलेजप्रद न हो, हलका । २९ ज्ञान्त ।

मधुरदं ( द्वि० खी० ) १ सुकुमारता, कोमलता । २ मधुर होनेका भाव, मधुरता । ३ मिठास, मीठापन ।

मधुरक (सं० पुं०) मधुरमंशुया कन् । १ जातु । २ मधुर-स्वार्थे क । ३ मधुर देशं ।

मधुरकण्टक (सं० पुं०) मधुरः कण्टको यस्तु । मधु-य विशेष, एक प्रकारको मछली । पर्याय—कण्टका, कजला, अनन्ता, माधवी । ( इन्द्ररत्ना० )

मधुरकपर्दी (सं० खी०) मधुरवीजमुर, मीठा जाड़ ।

मधुरकुम्भाएड (सं० स्त्री०) कुम्भाएडभेद, वीहड़ा ।

मधुरगञ्जूरी (सं० खी०) मधु गञ्जूरीवृक्ष, मीठी गञ्जूरीका पेड़ ।



मथुराश्रवा (सं० खी०) मथुरस्य मथुररसस्य श्रयो यस्याः ।  
 १ पिण्डप्रवर्जरी, पिण्डपञ्जर । २ मूर्त्वा ।  
 मथुरास्वर (सं० त्रि०) मथुरः स्वरो यस्य । गन्धर्व ।  
 मथुरा (सं० खी०) मथुर-टाप् । १ जनपुत्री । २  
 मिश्रेया, सोयां । ३ मथुरकन्दो, मीठा मीवृ । ४ मेदा ।  
 ५ मधुकी, मुलेरी । ६ मधुगनगरा । ७ मिथुर्याष्टिका ।  
 ८ काकोली । ९ प्रतावरी, प्रतावर । १० घृष्टज्जीवन्ती,  
 बड़ी जीवंती । ११ पालङ्गुनाक, पालकका नाग । १२  
 महाशिम्वी, सीम । १३ फट्ठीचूडा, फेलेका पेड़ । १४ ऋष  
 भक । १५ मन्त्र । १६ महामेदा । १७ मधु खड्जूरीचूडा,  
 मीठी गज्जूरका पेड़ । १८ यष्टिमधु, जेठी मद । १९ मातु  
 लङ्ग । २० मथुरिका, सौंफ । २१ काञ्चिक, जीवंता लता ।  
 मथुराई (हिं० खी०) १ मथुरता । २ मिठास, मीठा-  
 पन । ३ सुन्दरता । ४ कामलता ।  
 मथुराकर (सं० पु०) इधु, ईव ।  
 मथुराक्षर (सं० त्रि०) मथुराणि अक्षराणि यस्य । १ मथुर  
 अक्षरयुक्त वाक्य, सुमथुर वाक्य । २ सुन्दर अक्षर ।  
 मथुराज (सं० पु०) भ्रमर, भौरा ।  
 मथुराजालुक (सं० ह्यो०) मिष्टरसालुकभेद । इसका  
 गुण—शीतल, मधुर, वायुकारक, पाकमें कटु, रुचिकर,  
 दाह और पित्तनाशक, शोथ, तृणा और कफनाशक,  
 अग्निमान्द्य, मल, स्तम्भ और कफकारक । ( वैद्यकनि० )  
 मथुराता (हिं० त्रि०) १ किसी वस्तुमें मीठा रस आ  
 जाना, मीठा होना । २ सुन्दरतासे भर जाना, सुन्दर  
 हो जाना ।  
 मथुरान्तक—चोलराजवंशके एक राजा । ये महाराज  
 गण्डरादित्यके पुत्र थे । कोलराजवंत देतो ।  
 मथुरान्नकट (सं० पु०) पिपाल वृक्ष, चिरीजीका पेड़ ।  
 मथुराम्लक (सं० पु०) मथुरप्रवासो अम्लद्रव्येति नित्य-  
 फमयां, ततः स्वार्थे कन् । १ क्षात्रातक, अमपु ।  
 २ दाडिमवृक्ष, अनारका पेड़ ।  
 मथुराम्बर (सं० पु०) १ नागरङ्ग वृक्ष, नारंगोका पेड़ ।  
 ( वैद्यकनि० ) २ मधुर और अम्लरसयुक्त ।  
 मथुरालापा (सं० खी०) मथुरः धृतिसुगन्धरः आलापः  
 शब्दो यस्याः । १ सारिका, मैना पक्षी । ( राजनि० )  
 ( त्रि० ) २ मथुर आकाशयुक्त, मथुर स्वरसे भर हुआ ।

मथुरालापुत्री ( सं० खी० ) अठान् वाहल कान् गन्,  
 प्रोदरादित्यान् हस्यः लोप च, ततः मथुरा चासी अजा  
 पुत्री चेति नित्यकर्मयां । राजालापु, मीठा कद्दू ।  
 मथुरालिका ( सं० खी० ) क्षुद्र मत्स्यायिरीय, एक प्रकार-  
 की छोटी मछली ।  
 मथुरावट्ट ( सं० पु० ) राजतरंगिणी-वर्णित एक राजा ।  
 ( राज० ७/०६३ )  
 मथुराएक ( सं० ह्यो० ) वल्लभाचार्यवृत्त कृष्णाएकभेद ।  
 मथुरासय ( सं० पु० ) बाघ, आम ।  
 मथुरास्यता ( सं० खी० ) मुलकी मिष्टता ।  
 मथुरिका ( सं० खी० ) मथुर-स्वार्थे कन्, त्रियां टाप्,  
 अत इत्वञ्च । शुषयिरीय, सौंफ । पर्याय—जालेर,  
 शीतशिव, छत्ता, मिश्री, मिश्रेया, सालेय, मिमि, मिसां,  
 मिशि, अचारुगुणो, मंगलाया, मथुरा और मथुरी ।  
 इसका गुण रोचक, शुककारक, दाह, रक्त और पित्त-  
 नाशक माना गया है । ( राज० )  
 मथुरित ( सं० त्रि० ) मथुरयुक्त ।  
 मथुरित्तु ( सं० पु० ) मथुरावृक्षोऽस्य रिपुनाशकत्वात् ।  
 विष्णु । ( गीतगो० २/६ )  
 मथुरिगन् ( सं० पु० ) अयमेंवामनिर्गमेन मथुरः दृष्टादि-  
 त्वान् इमानिच् । १ अनिर्गम मथुर, बहुत मीठा ।  
 २ सौन्दर्य, सुन्दरता ।  
 मथुरी ( हिं० खी० ) १ सौन्दर्य, सुन्दरता । २ प्राचीन  
 कालका एक राजा । यह मुहंसे कूंक कर बजाया  
 जाता था । ३ आश्वत्थ, आमका पेड़ ।  
 मथुरीछ ( हिं० पु० ) दक्षिणा अमेरिकाका एक जंगलो  
 जन्तु । यह ऊंचाईमें विन्ध्यो या कुन के बराबर और  
 रूपमें रोहके समान होता है । यह जन्तु शहदके छत्तों-  
 से शहद सुराईका बड़ा प्रेमी होता है, इसीसे लोग इसे  
 मथुरीछ कहते हैं ।  
 मथुरुद ( सं० पु० ) श्रीश्रद्धापाश्रयिणि शृवणवृक्षे पुत्र ।  
 ( भाग० १/६/०२२ )  
 मथुरेणु ( सं० पु० ) मथुरीपुत्री रेणुस्य । १ कटमा वृक्ष ।  
 २ शुक्रपुत्रपाटला, सफेद पाटलाका फूल ।  
 मथुरोदक ( सं० पु० ) मथुराणि उदकानि यस्य । जल-  
 समुद्र, पुराणानुसार मान नमुद्रांमेने अन्तिम समुद्र ।

इत्यादि नामानि भीरुपुत्र इत्येवं कर्तव्यं भवेत् ।  
( अन्वयः )

स्युतोप ( सं० पुं० ) स्युतोपः ।  
स्युतो ( सं० पुं० ) स्युतोपस्युतिके इति स्वरात्स्यु-  
त्येव स्युतलोति वा कः । मयः, जगद्वः ।  
स्युतोप-आध्याय विद्याभ्यासार्थं सनत्तं एक स्थान ।  
स्युतोप ( सं० पुं० ) स्युतोपुत्रोऽप्युतोऽपः । एकजोभा-  
पुत्रः, स्यात् सोऽद्वयम् ।

स्युतला ( सं० स्त्री० ) स्युतलायां लतीति मध्यपदलोपि  
दर्शनात् । कृत्वा लुक् ।

स्युता ( सं० स्त्री० ) स्युतिष्वा ।

स्युतिक ( सं० स्त्री० ) स्युत् संज्ञायाम् कन् टाप् भूत  
इत्यर्थः । १ राजिका, राई । २ एकद्वानुत्तर मातृभेदः ।  
३ एक प्रकारका मारुतः । यद् स्युतो नामकं गेहूं रौ बनार्हं  
जातौ हि । ४ कपिलद्राक्षा, भूरे रंगस्यै एक प्रकारस्यौ  
द्रावः । ५ पुत्रवत्तमः । ६ जगन्नाथभेदः । मूंग, मगूर,  
उदर मारिटा जगन्नाथान् कहन्ते हि । ( अक्षरार्थः )

स्युतिह ( सं० पुं० ) स्यु लोटि आस्वाद्यतीति लिट्-  
धियात् । भ्रमर, भौरा ।

स्युतो- विद्याभ्यासार्थं समाप एक नगरः ।  
( विवरण पृ० १११ )

स्युतेद्वि ( सं० पुं० ) स्यु केंद्रानि स्यु लिट्कनि ।  
भ्रमर, भौरा ।

स्युतोपुत्र ( सं० पुं० ) स्युति लोपुत्रः । भ्रमर, भौरा ।

स्युतवत् ( सं० लि० ) स्युतभावः, स्यात् सोऽद्वयभावः ।

स्युतो ( सं० स्त्री० ) महाभावनके अनुसात् एक प्राचीन  
हवाया नाम ।

स्युता ( सं० स्त्री० ) स्युता तस्याम्ना दीप्तौ क्तं पञ्च,  
मध्यरश्मीरि कर्मणा० । स्युतास्य स्युता सोऽद्वयं यम-  
तिवत् । यद्वा अनुभवे लक्षण दीप्तौ मारुत स्युतुस्यै  
वर्णात् यो ।

“स्युता स्युत् भूते क्वचनान्तरं सुवि ।  
पुरं स्युत्तं वा स्युत्येव शिवता ह्येव”  
( भाष्यः पृ० १११ ) स्युता देवः ।  
स्युतवान् पदं । ३ लिट्कत्वात् लिट् स्युतोव-  
त्त एक पद । स्युतात् आरि क्वचन स्युतुस्यै भोगता

संवाद ले कर भावे, तत्र इत्येवं इत्येव यन्मि स्युतवत्  
नरके भ्रमर विद्या भा ।

“स्युतिका शिवं कन् स्युत्तं स्युत्तं स्युत्तं ।  
स्युता य एव स्युत्येव स्युत्तुस्यै पञ्चभाषात् ॥”  
( भाष्यः पृ० १११ )

स्यो यन्ति स्युतास्ये इति यत्-अन् । ३ कौशित्य,  
कोशित्य ।

स्युतन-शासनयो विभागके भाजनगद्वि विद्याभ्यासार्थं एक  
वटा ग्रामः । ६३१ ईसवी यद् स्थान स्थानोऽव्यपति हर्ष-  
यत्तं नके अधिकासीं था । स्युता देवो ।

स्युतन-आदिपुराणपरिचित स्थानभेदः ।  
( भाष्यः पृ० १११ )

स्युतन-एक बड़े प्रतिष्ठित विद्यालय और राजसाल  
सञ्जल । इनका जन्मकाल विभक्त सं० १६००के पञ्चाब्द  
और १७००के प्राक्मकाल माना जाता है ।

इहा जन्म पुत्रकला प्राप्तन जातिकी एक ज्ञाना  
प्राप्त जातिके भ्रतगंत तपोनिधि, परिष्ठित माराधनार्थकी  
के प्रणीत गोविन्दजीके भोरसमे जिनमे माराधनां  
दुभा था ।

ये वाक्यकाल ह्येव स्युतुत प्राप्तनये धारण कर माता-  
पत्नी ( कान्ठी ) मे विद्याभ्यास कर्म करे ह्ये थे ।  
स्थान जातिके सर्वगतः प्रथम कान्ठी प्रस्थान इत्येव ही  
किया था ।

विभक्त सं० १७१७मे तत्र जिनमे माराधन  
पर योर मिरोमनि भायो चंदापहन भ्रमरतिरतो  
बिवाले, उस समय “वाटपान” के पद पर इत्येव विभुत्त  
( याथा ) ह्येवगत्तो ध्याय विभुत्त थे । उनके और  
माराधनांके परत्तमे मारुत ह्ये जातिके कारण ये एक  
पदका परिस्थान कर म्दके निधि जिनमे माराधन  
करे ह्ये । इस घटनाके भवनां-ध्यांमोर्द गोविन्द-  
मुक्ता महात्मने एक भवनांकी बहुत कुछ महत्ता  
मेता, परन्तु म्दके माराधन विधि ह्ये म्दकी पुता म्दका  
करनेके निधि म्दक म्दका कर दिवा जिनमे म्दका म्दका-  
के धार्मिक ह्येवमे भायो म्दका म्दका ।

तत्र म्दका म्दकी एक पद पर विभुत्त करनेके निधि  
कान्ठी म्दका म्दका म्दका म्दका । उस भवना

व्यास सुवन भी चतुर्वेद और पट्टशास्त्रमें सम्पन्न हो चुके थे । राजद्रुतके मुग़लसे अमरनिहञ्जिका संदेश श्रवण कर गुल्देवसे आशा ले उन्होंने स्वदेशका प्रन्धान किया और जैसलमेरके निकटवर्ती उपवनमें आ कर उतर गये । यह सम्पूर्ण सम्वाद दूतके मुखसे श्रवण कर राजाने निधावारिधि युवा व्यासजीको गजारूढ़ कर राजधानीमें प्रवेश कराया तथा सम्मानपूर्वक "वाटव्यास" पद दे कर प्रचुर द्रव्य, भूमि, अश्व आदि अर्पण किये और अपनी राजधानीके पश्चिमकी तरफ जिवाई नाम पत्थलके निकट क्षेत्र भी दिया जो आज तक उन्हींके वंशधरोंके पास है ।

व्यासजीकी विद्यासौरभ सारे भारतवर्षमें फैल गई जिसका प्रमाण स्वरूप एक कविका कहा हुआ दोहा अब तक भी प्रचलित है ।

विद्या मधुवन व्यास की चिरराखी चिरदास ।

आधी धूषी सेउवां पूरी पोकर दास ॥ १ ॥

इन्होंने संस्कृत साहित्यके बहुतेले ग्रन्थ भी निर्माण किये थे । इन्हींकी सन्तानने सिन्धु और बलुचिस्तानमें सनातन-धर्मका प्रचार किया और अध्यायि कर रहे हैं ।

इन्हींसे ८वीं पीढ़ीमें विक्रम सं० १८५०के पीयूषाष्टमी चन्द्रवारके दिन पं० जोधराजजीके औरससे महोपदेश नागरी-प्रचारक व्यास मोतीलाल शर्माका जन्म हुआ ।

मधुवनी—१ दरभङ्गा जिलेका उत्तरीय उपविभाग । यह अक्षां० २६° २' से २६° ४०' उ० तथा देशां० ८५° ४५' से ८६° ४४' पू०के मध्य अवस्थित है । भूपरिमाण १३४६ वर्गमील और जनसंख्या दस लाखसे ऊपर है । इसमें मधुवनी नामक एक शहर और १०८४ ग्राम लगते हैं । इस उपविभागके सौराठ नामक स्थानमें मैथिल ब्राह्मणोंका विवाह-सम्बन्धीय एक बड़ा भारी मेला लगता है जिसमें करीब लाख ब्राह्मण समागम होते हैं । इसमें भाषे हूय घर-घर कन्या-पक्षवाले पसन्द कर विवाह-सम्बन्ध स्थिर करते हैं ।

२ एक उपविभागका एक शहर । यह अक्षां० २६° २१' उ० तथा देशां० ८६° ५' पू० दरभङ्गा शहरसे १६ मील उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है । जनसंख्या बीस हजारके

करीब है । यहां बा० एन० डबल रेलवेका एक स्टेशन है । शहरमें एक हाई स्कूल, सरकारी अदालत भी एक छोटा जेल है जिसमें सिर्फ १४ कैदी रखे जाते हैं । मधुवर्ण ( सं० वि० ) १ मधुसूतशरय, सुन्दर स्वरूप-वाला । "धृतमुञ्जना मधुवर्णमन्वन्ते" ( अर्क १।८७ ) 'मधुवर्ण मधुसूतशरय' ( सप्तम ) २ कार्तिकेयके एक अनुचरका नाम ।

मधुघल ( सं० पु० ) कोकिल, कोयल ।

मधुघली ( सं० स्त्री० ) मधुपाना घली । १ यष्टिमधु, जेठो मद् । २ क्लीतनक, करेला ।

मधुवामन ( सं० पु० ) भ्रमर, भौरा ।

मधुवार ( सं० पु० ) मधुनो मधुघ्न वारः, समयः पर्यायो वा । १ मधुकम, मधु पानेकी रीति । २ मधुघ्न पानेका दिन । ३ मधुघ्न, शराव ।

मधुवारिनी ( सं० स्त्री० ) लघु घातकीशूद्र, छोटे धौंका पेड़ ।

मधुवाहन ( सं० पु० ) नानाविध गाडुयादि यदनमें युक्त ।

मधुवाहिर ( सं० वि० ) मधु वह-णिनि । १ निष्ठद्वय-वाही व्यक्ति, मीठा होनेवाला । २ महाभारतके अनुसार एक नदका नाम ।

मधुविद्या ( सं० स्त्री० ) गुर्माविद्याभेद ।

मधुविद्विप् ( सं० पु० ) विष्णु ।

मधुविला ( सं० स्त्री० ) नदीभेद ।

मधुयोज ( सं० पु० ) दाडिम, अनार ।

मधुयोजपूर ( सं० पु० ) मधुकरचर्चितक, मीठा नाव ।

मधुयुज ( सं० पु० ) मधुकृश, मधुपाना पेड़ ।

मधुयुध ( सं० वि० ) मधु-युध षिण् । मधुयुक्त ।

मधुयुध ( सं० वि० ) मधुयुधी ।

मधुविणी—प्रान्तेन नदीभेद । इस नदीके किनारे १६० विक्रमसम्बन्धमें महामामनाधिपति गुणराजके साथ कन्नोजराज महेंद्रपालके सामन्त उन्दभट्टका युद्ध हुआ था ।

मधुवतः सं० पु० ) मधु मधुमञ्जयो मनः व्रतमिव मन-तानुशालनीयं यन्म, यदा मधुवत यति नियतं भुङ्क्ते इति प्रति अण् । भ्रमर, भौरा । ( वि० ) मधुघ्ने व्रतं कर्म यस्य । २ उदकार्थकर्म, यह कर्म जिससे अपना पेट भरा जाय ।





इस बहुमूर्तमूर्त रूप मधु को विनाश करते हैं, इस कारण उनका मधुसूदन नाम पड़ा है।

जो व्यक्ति महाविपद्दुर्म में पड़ कर मधुसूदन नाम स्मरण करते हैं उनको विपत्ति जाती रहती है और अन्त-में वे सुखी होते हैं—

“महाविपत्तीं संशरी वः स्मरन्मधुसूदनम् ।

विपत्तीं तस्य सम्पत्तिर्भवेदित्याह शङ्करः॥”

(प्रज्ञवैवर्तपु० प्रकृतिस० ३४ अ०)

विपद् पड़ने पर लोगोंको मधुसूदन नामका स्मरण करना उचित है, इससे विपत्ति दूर होता है।

पुष्पसूदन—कुल प्राचीन ग्रन्थकार; १ उपनर्गविचार-टीका, चित्ररूपवाद्यटीका, तर्कचूला भाष्यटीका, निप्रश्रुस्थान सूक्तटीका और प्रतिज्ञासूक्तटीकाके प्रणेता; २ चन्द्रो-न्मीलनतन्त्रके रचयिता। ३ ज्योतिःप्रदीपाकुरके प्रणेता। ४ नीतिनिसारसंग्रहके प्रणेता। ५ लघुप्रहमञ्जरीके मूल्क-लयिता। ६ श्राद्धद्वयणके प्रणेता। ७ मंजुभाषिणी नामक विठ्ठभूपण्यटीकाके प्रणेता। ये बालकृतिके छाल गाकुल निवासो नरसिंहके पात्र और माधवके पुत्र थे। १६४४ ई०में इन्होंने अपने ग्रन्थको रचना का था।

मधुसूदन—म्यालियारके एक राजा, भुवनपायके पुत्र। महिपालके बाद में राजसिंहासन पर बैठे। ११६१ सन्मन्स उदकोर्ण उनका शिलालिपि पाई जाता है।

मधुसूदनगोस्वामी—एक विख्यात पण्डित, प्रजराज गोस्वामीके पुत्र। ये महाराज रणजित्सिंहके दानाध्यक्ष थे। राधाकृष्ण और द्वैतज्ञान नामक उनको दो पुत्र थे। १८०७ ई०में देवोदत्तको मृत्यु हुई। मधुसूदनने अपने जीवनकालमें निम्नलिखित ग्रन्थ रचे हैं, यथा— गोदानविधि-संग्रह, जीगन्पितृकृषिभागव्यवस्था, जीगन्पितृकृषिभागव्यवस्थाभार, तद्गामादिप्रतिष्ठाविधि, निर्णय-संग्रह, पञ्चरत्नाग्निविधि, महाप्रभा नामक मिदान्तमुक्ता-यन्त्रो-टीका, मिताभूतासार, मूलज्ञानविधि, पुरोत्सर्ग-विधि, धन्यहारमारोक्षण, व्यवहारार्थसार और समाप्ताद्वाराकृष्णप्रतिष्ठाविधि।

मधुसूदनशार्ङ्ग—तत्त्वनिन्दामणि भागीरथरुद्रकोडार, द्वैतनिर्णय या द्वैतनिर्णयप्रकाश और समदप्रदीपजीर्णो-सार आदि ग्रन्थोंके रचयिता।

मधुसूदनदत्त—बङ्गालके एक प्रसिद्ध कवि।

माझन मधुसूदन दत्त देवो।

मधुसूदनदोशिन—स्मृतिरत्ननायकोंके प्रणेता। आप महेश्वर दीक्षितके पुत्र थे।

मधुसूदनदुजन्ता—अन्याप-द्वैतशतकके प्रणेता।

मधुसूदननापित—नापित जातिके एक बङ्गाली कवि।

‘नलदमयन्ती’ लिख कर ये प्रसिद्ध हो गये हैं। इसके पितामह भी एक कवि थे।

मधुसूदनपण्डित—आर्याशतकके प्रणेता।

मधुसूदनयाचस्पति—अद्वैतमङ्गल, अर्वाचसंक्षेप और मधु-मती नामक मुख्यवीथटीकाके रचयिता।

मधुसूदनसरस्वती—यूद्धदेगोय पापचार्य वैदिक श्रेणिके एक विख्यात पण्डित। ये सभी ज्ञातमें पारदर्शी थे।

एक दिन ये अपने मध्यम भ्राता यादवके साथ पाकट्या गये। वहाँ वाक्याधिपतिने इनको काव्यरचना देख कर बड़ी तारीफ की और कहा, ‘मैं आप पर बहुत प्रसन्न हूँ, स्वस्थान छोड़ कर आप जो चाहें मैं देनेको तयार हूँ।’

मधुसूदनने राजासे इस प्रकार सल्लह हो कर मन ही मन स्थिर किया, कि मनुष्यको प्रशंसा निष्फल है, अनप्य में भगवद्गाराधनामें जोषन व्यतीत करूँगा। इस प्रकार स्थिर कर उन्होंने शङ्करको प्रणाम किया और कायाको यात्रा कर दो। राहमें उन्हें मधुमती नामकी एक नदी मिली। मधुसूदनने नदीके किनारे जा उसको उपासना का। पाँछे नदीमें मूर्त्तिमती ही मधुसूदनके सामने खड़ी हो गई और उन्हें ‘मुँह माँगा’ कर दिया। कहते हैं, कि आज भी उनके स्रातुर्वर्गीयगण नदीमें निर्मोह चित्तसे जाते जाते हैं।

मधुसूदन २० वर्षकी उमरमें घाराणसी गये और वहाँ विश्वेश्वर सरस्वती नामक एक दण्डामे दण्डग्रहण किया। विश्वेश्वरके अतिरिक्त उन्होंने श्रीधरस्वामीने भी ज्ञानाध्ययन किया था। दण्डग्रहणके बाद श्रीधरके समीप नदी तटके किन्सी यन्तमें १७ वर्ष तक तपस्या करके निदि प्राप्त की। जब ये श्रीधरनें थे उस समय अना-वृष्टिके कारण वहाँ घोर दुर्मिन्न पड़ा था। उत्कल-पति मुकुन्ददेव ज्ञानिके लिये श्रीधरमें आये। वहाँ मधुसूदन-के साथ उनका साक्षात् हुआ। राजाके स्तप और सरकार

नर भूयते । नर भूयसूदनं, नरनरको रतिः हीरो, नर-  
नर राजानो भयानोतिरि मिया । इत्येते च, किं उच्यते  
भयानोतिरि राजानो भयानो भयानो ।

विशेषतया मधुसूदनका परिचिन्त्य मौर्य समाजका  
परिचय वा नर उच्ये भयानो भयानो भूयसा वा । यो-  
सिद्ध भयान एव राजानो नरौ भयान न यो । एतः दिन  
इत्येते इत्येते देवा किं मधुसूदन नामक एक यति ई  
तिमको भेषा न इत्येते निरमय हो पुत्र होवा । मधुसूदन  
राजा मधुसूदनको मलासोमे धर्मो निकले । इन समय  
मधुसूदन एक महोर्षे किनारी समाजके सोमे व्यासका  
पुत्र । राजा नरनर मौर्य इत्यो जगत् पर पदुर्षे ।  
राजको पालनेके समय जब सिद्धो सोद्धो नामे उद्यो,  
नर मधुसूदन शिष्यो पद्ये । राजानि निरुपय कर शिष्या,  
कि ये हो मधुसूदन ही । महानगर राजानि यहाँ मौर्य  
बनयावा और मधुसूदनको मियाके निचे पुत्र लीम  
निमुक्त कर दिये । इन पदमाके सोमारे धर्मो मधुसूदन-  
ने भायो सोमो । उनको हम भयानिकर भयानको देवा  
नर बहुमेरे विस्मय हो गये । अब मधुसूदन किनारी  
राजकोम और राजदण मन्दिरेका पालियाम कर सोमो-  
पद्येउनको निकले ।

किन्ती समय परिभाषक मधुसूदन उद्योवा महाराज-  
को परिचय मजामे कयो । मधुसूदनको सर्वनाम-  
वाग्दन्तिकाके सम्भवमे परिचरीके मज्य नर मजने  
लगा । हममे महाराजने हनयवायवा द्वारा निरानिभय  
इत्येक पावा था । इन समयधमे वाग्वायय मैदिचोके  
मजय सर्वत्र प्रभाव प्रचलित है,—

“मधुसूदनमहात्म्ये वाग्देवो वाग्वायवः ।  
वाग्देवो वाग्वायवः मधुसूदनमहात्म्ये ॥”

परिभाषक मधुसूदन पदुर्षो मजयोही कलवा कर  
भयानो सर्वनामवाग्दन्तिकाका कथार्थ परिचय दे मजो  
है । उनके विचलित किमनिचिन मज्य कयो इत्ये  
है—

मधुसूदनमौर्य, मधुसूदनमौर्य, मधुसूदनमौर्य,  
मधुसूदनमौर्य, मधुसूदनमौर्य, मधुसूदनमौर्य,  
मधुसूदन मौर्य, मधुसूदनमौर्य, मधुसूदनमौर्य, मधुसूदनमौर्य,

मधुसूदनमौर्यमौर्य, मधुसूदनमौर्यमौर्य, मधुसूदनमौर्यमौर्य,  
मधुसूदनमौर्यमौर्यमौर्य, मधुसूदनमौर्यमौर्यमौर्य, मधुसूदन-  
मौर्य, मधुसूदनमौर्य, मधुसूदनमौर्य, मधुसूदनमौर्यमौर्य,  
मधुसूदनमौर्य, मधुसूदनमौर्यमौर्य, मधुसूदनमौर्यमौर्य ।

मधुसूदनो ( मं० खं० ) मधुसूदनमौर्य मधुसू-  
दनमौर्य, मधुसूदनमौर्य । मधुसूदनमौर्य नाम ।

मधुसूदन ( मं० पु० ) मधुसूदनके एक राजा ।

मधुसूदन ( मं० खं० ) मधुसूदनमौर्य एक मौर्यका  
नाम ।

मधुसूदन ( मं० खं० ) मधुसूदन, मधुसूदनका पुत्र ।

मधुसूदन ( मं० पु० ) मधुसूदन, नाम ।

मधुसूदनो ( मं० पु० ) मधुसूदन काटका एक मधुसूदन  
राजा । हममे मौर्य लया रहता था ।

मधुसूदन ( मं० पु० ) १ विष्णुमित्रके एक पुत्रका नाम ।  
२ मधुसूदन ।

मधुसूदन ( मं० पु० ) मधुसूदन मधुसूदनको कथा इत्यो  
कथामौर्य । १ मधुसूदन, मधुसूदनके पुत्र । २ मधुसू-  
दन, पुत्र नामका लया । ३ विष्णुसूदनका पुत्र ।

मधुसूदन ( मं० पु० ) मधुसूदन सर्वत्र किंदिनमौर्य  
मधुसूदन मधुसूदन । मधुसूदन मधुसूदनके पुत्र ।

मधुसूदन ( मं० खं० ) मधुसूदन मधुसूदन । १ मधुसूदन,  
मधुसूदन । २ मधुसूदन, मधुसूदनका पुत्र । ३ मधुसूदन-  
मधुसूदन, मधुसूदन नामका मौर्य । ४ मधुसूदन । ५ मधुसूदन ।  
६ मधुसूदन नामको लया ।

मधुसूदन ( मं० पु० ) मधुसूदन, मधुसूदन नामका  
लया । २ मधुसूदन मधुसूदनके पुत्र ।

मधुसूदन ( मं० पु० ) मधुसूदनमौर्य मधुसूदन । मधुसूदन,  
मधुसूदन ।

मधुसूदन ( मं० पु० ) मधुसूदनमधुसूदनमधुसूदन मधुसूदन ।  
१ मधुसूदन । ( मं० पु० ) २ मधुसूदन । ३ मधुसूदनमधुसूदन  
मधुसूदन । ( मं० पु० ) ४ मधुसूदन ।

मधुसूदन ( मं० पु० ) मधुसूदन ।

मधुसूदन ( मं० पु० ) मधुसूदनका मधुसूदनके पुत्र ।

मधुसूदन ( मं० पु० ) मधुसूदन मधुसूदनके पुत्र । मधुसूदन,

५५१) इति ऊक-निपातितश्च वृक्षविशेषः । १ महूपका पेड़ । २ महूपका फूल । ३ मुलेठी । इसका पर्याय—गुड़-पुष्प, मधुद्रुम, वानप्रस्थ, मधुशील, मधुक, मधु, मधुपुष्प, मधुपत्र, मधुवृक्ष, रोधपुष्प, माधव । इसका गुण—मधुर, शीतल, पित्तदाह तथा श्रमनाशक, वातघर्षक, घोर्य और पुष्टिघर्षक ; इसके फूलका गुण मधुर, हृद्य, हिम, पित्तविदाहकारक और फलका गुण वातामय और पित्तनाशक माना गया है । ( राजनि० )

विशेष विवरण मद्रुमा शब्दमें देखें ।  
मधुकपर्णासाहस्री ( सं० खी० ) तुलसीपृक्ष ।  
मधुकपर्णा ( सं० खी० ) अमृष्टा, अमड़ा ।  
मधुकफाणित ( सं० झी० ) मधुक पुपोत्थ शर्करा, मधुपक फल या फूलसे निकाली हुई चीनी । इसका गुण—रस, वायु और पित्तघर्षक, कफनाशक और वास्तदोषकर । ( सुप्रतवकस्था० ५५ अ० )

मधुकरी ( सं० खी० ) मधुहरी देवी ।  
मधुकशर्करा ( सं० खी० ) मधुकस्य शर्करा । मद्रुपके फल या फूलसे निकाली हुई चीनी ।  
मधुकसार ( सं० पु० ) मधुकरस, महूपका सार दूध ।  
मधुल ( सं० पु० ) मधुक देवी ।

मधुच्छिष्ट ( सं० झी० ) मधुनः उच्छिष्टमवशिष्टं । मधुका अवशिष्ट, मोम । पर्याय—सिषधक, शिषधक, शिषध । ( शब्दरत्नाकर ) गुण—क्षततोगर्मे स्निग्ध और हितकर ।  
मधुत्थ ( सं० फली० ) मधु-उत्-स्था-क । मधुच्छिष्ट, मोम ।  
मधुत्थित ( सं० फली० ) मधुनः उत्थितं । सिषध, मोम ।

मधुत्वन्ता ( सं० खी० ) मधुहत शर्करा, शहदसे बनाई हुई चीनी ।  
मधुत्वस्य ( सं० पु० ) मधोश्चित्तस्य उत्सवो यय । १ चैतकी पूर्णिमा । २ यमन्तोत्वसय ।  
मधुदक ( सं० फली० ) मधुमिश्रित उदकं । जलमें मिला हुआ मधु ।

मधुपान ( सं० फली० ) वासन्तिक उद्यान ।  
मधुपत्र ( सं० फली० ) मधोस्त्रन्नामो दैत्यस्य उपघ्न भाग्यः क्षमिप्रानात् फलोपत्यं । मधुरा ।

मधुल ( सं० पु० ) मधु-उरति प्राप्नोतीति मधु-उर-गती क, रस्य लत्वं । जलज बीर गिरिज मधुकवृक्ष, जल-महुआ ।  
मधुलक ( सं० पु० ) मधुल-स्वार्थे कन् । १ जलज मधुक-वृक्ष, जल-महुआ । पर्याय—द्वैर्घपत्रक, गिरिजाक, मधुल, स्वल्पपत्रक । ( फली० ) २ मध, शराव ।

मधुलका ( सं० खी० ) मधुल-कन्, र्विवां टापु, अत इत्वञ्च । १ मूयां । २ यष्टिमधु, मुलेठी । ३ जलपन्त । ( भावप्रकाश ) ४ कुषान्यभेद, एक प्रकारका मोटा घान । ५ स्वल्पगोधूम, छोटे दानेका गेहूं । ६ मध्यदेशज गोधूम, मध्यप्रदेशका गेहूं । ७ स्वल्प गोधूमोदयसुरा, छोटे दानेके गेहूंसे दनी हुई शराव । ८ मस्त्रिकाविशेष, एक प्रकार की मफली । इसके काटनेसे सूजन और जलन होती है । ( शुभ्रुत कल्पस्था० ८ अ० ) ९ मर्कटहस्तिनृण, एक प्रकारको घास ।

मधुनी ( सं० खी० ) मधुल-गीरादित्यात् लीप् । १ फलीत-नक, एक प्रकारका कोड़ा । २ मधुकषर्कटी, मोठा तोषू । ३ आम्र, आम । ४ जलज मधुपष्टि, जलमें उत्पन्न होनेवाली मुलेठी । ५ मध्यदेशज गोधूम, मध्यप्रदेशका गेहूं । ६ मधुकवृक्ष, महूपका पेड़ । ( भावप्रकाश )

मधुवक ( सं० फली० ) मधुच्छिष्ट, मोम ।  
मधेपुरा—१ विहार और उड़ीसाके भागलपुर जिलेका उत्त-रोय उपविभाग । यह अक्षा० २५' २४' से २६' ७' उ० तथा देशा० ८६' १६' से ८७' ८' पू०के मध्य विस्तृत है । भूपरिमाण ११७६ वर्गमील और जनसंख्या साढ़े पांच लाखके करीब है । इसके दक्षिणमें सुगरी नदी बहती है । इसमें मधेपुरा नामक छोटा शहर और ७५७ ग्राम लगते हैं । यहाँकी आवहवा स्थास्थिकर नहीं है ।

२ उक्त उपविभागका एक छोटा शहर । यह अक्षा० २५' ५६' उ० तथा देशा० ८६' ४८' पू० परवान नदीके दाहिने किनारे भागलपुर शहरसे ५२ माल दूर बड़ता है । जनसंख्या पांच हजारसे ऊपर है । यहाँ सरकारी अदालत और एक छोटा जेल है जिसमें सिर्फ १५ कैदी रक्ते जाते हैं ।

मध्य ( सं० झी० ) मन्यने इति-मन् । ( भष्पादमन्व । उष् ५११११ ) इति यक् प्रत्येन निपातितः । १ संन्या-विशेष, दण भरवकी संख्या । २ भयसान, विघ्नान् ।



मध्यशस्त्रस्य पूर्वनिपातः, पूर्वाधरादित्यात् नकारागमः, मध्यन्दिनं पुष्पविकाशकत्वेनास्यास्ततीति अच् । १ । बन्धूकदृष्ट, दुपहरिया फूलका पीथा । ( श्लो० ) २ मध्याह्न ।

मध्यान्दीय ( स० ति० ) मध्याह्न सम्बन्धीय ।

मध्यपञ्चमूलक ( स० श्लो० ) मध्यं मध्यमं पञ्चमूलकम् । पञ्चमूल पाचनविशेष । अतिथला, पुनर्नवा, रेंडो, दोनों शूर्पावर्णी अधार्त शालपर्णी और पृश्निपर्णी को मिलानेसे यह पाचन बनता है ।

मध्यपदलोपिन् ( स० पु० ) मध्यपदस्य लोपोऽस्त्यस्य इति । ज्याकरणप्रसिद्ध शाकपार्थिवादिक मध्यपदलोप-युक्त समासभेद । समास चाक्षयके मध्यस्थित पदका लोप होता है; इसलिये उसका नाम मध्यपदलोपो है । कर्म-धारय और बहुव्रीहि समासमें मध्यपदका लोप होता है ।

मध्यपतित ( स० ति० ) मध्यभागमें पतित, अवस्थित । मध्यपाक ( स० पु० ) तैलादिका पाकविशेष ।

मध्यपात ( स० पु० ) १ मध्यभागमें पतन । २ परिचय, जान-पहचान । ३ ज्योतिषमें एक प्रकारका पात ।

मध्यपुष्प ( स० पु० ) जलचेतस, जल घेत । मध्यप्रदेश—मध्यभारतके अन्तर्गत एक भूमिभाग । यह

अक्षां १७° ५०' से २४° २७' उ० तथा देशां ७६° से ८५° १५' पू०के मध्य अवस्थित है । यह एक चोफ-कमिश्नर द्वारा शासित होता है । यह प्रदेश प्राचीन गोलडयाना राज्य तथा मालव और हिन्दुस्तानका कुछ अंश ले कर गठित है । इसके उत्तरमें मध्य-एशिया; उत्तर पूर्वमें मध्य-एशिया और बङ्गाल; दक्षिण-पूर्वमें बङ्गाल तथा मद्राज और दक्षिण पश्चिममें हैदराबाद है । भूपरिमाण १३०००० चर्गमोल और जनसंख्या चौदह करोड़से कुछ अधिक है ।

इसका प्राकृतिक दृश्य सब जगह एक सा नहीं है । उत्तरमें विन्ध्य-अधिरथकासे निकली हुई घाटा उत्तरकी ओर गंगाको सोमा तक फैल गई है । सागर और दामो जिलेसे दक्षिण मण्डला, जधरपुर, नरसिंहपुर, हुसंगा बाद और निमारका कुछ भाग नर्मदाकी उपत्यकामें तथा निमारका शेष भाग ताप्ती-उपर्यकामें अवस्थित है । इन भागोंमें नद्य मट्टीका और दक्षिणमें पुराने पहाड़के छोटे छोटे पत्थरके टुकड़े का स्तर देखा जाता है । उससे

भी दक्षिण घेतुल, छिन्दवाड़ा, सेवनो और घालाघाट-बञ्जलमें सतपुराकी अधित्यकाकी जमीन दानेदार और बलुई पत्थरकी दीप पड़ती है । शेषोक, जिन्देकी मध्य-अधित्यका प्रायः दो हजार फुट ऊँची होगी । उसके और दक्षिण बरघा और वेणगगाको उपत्यकामें अवस्थित नागपुरका समतल क्षेत्र है । इसके मध्य बरघा, भाण्डारा और चन्दा जिला अवस्थित है । घाटके नीचे छत्तीस-गढ़का समतलक्षेत्र है । छत्तीसगढ़में रायपुर और यिलासपुर जिला लगता है । इस विभागमें जङ्गल और सानुमय सम्यलपुर जिला भी है । सबमें दक्षिणमें चन्दा जिला संलग्न घनभूमि और असभ्य जातिका निवास अर्द्धस्वाधीन राज्यसमूह है ।

यहाँकी सतपुरा शैलमालाका प्राकृतिक दृश्य अति सुन्दर और चित्ताकर्षक है । कहीं समुन्नत शैलमाला और कहीं सुजला मुकला नदीप्रवाहसंकुला उर्वराभूमि है । बोलमाला पत्थरकी अधित्यकामें भी ऊँच और अफीमकी खेती देखनेमें आती है । समुच्च अमरकंटककी जलप्रपातमालासे नर्मदा निकल कर मरघर पत्थर हो कर यह चली है । बरघा, वेणगंगा और गोदावरी हमेशा मानो उतालतरङ्गसे नाच रही हैं ।

इस प्रदेशमें हड़का भी अभाव नहीं है । नद्यायका हृद ही सर्वापेक्षा बड़ा है । इसकी लम्बाई प्रायः १७ मील और कहीं कहीं ६० फुट तक गहरी है । भेराघाट और मुकगिरिकी साभाविक शोभा देखनेसे मन प्रमत्त हो जाता है । यहाँ हिन्दूके तीर्थस्थान भी बहुत हैं ।

इस प्रदेशके निहाई हिन्दूमें गैनीघारो होती है । यहाँ न तो उतना घना जंगल है और न जंगलमें उपयोगी मूल्यवान् काष्ठ ही पाया जाता है । पहले यहाँकी असभ्य जाति 'दहिया' प्रणालीके अनुसार खेतीबारी करती थी और कभी कभी यन्-जंगलकी जग्गा कर छार-चार कर डालतो था । अन्तः मूल्यवान् काष्ठका यहाँ किल-कुल अभाव था । १८६० ई०में जब यन्भाग-रक्षाका कानून जारी हुआ तब मूल्यवान् वृक्षोंका काटना बन्द हो गया । अग्री वृष्टिज सरकारकी देखरेखमें २५७० चर्गमोल स्थान घने जंगलोंमें परिपूर्ण हैं ।

यहाँ नाना स्थानोंमें निष्टुर कापला और खनिज लोहा पाया जाता है । बरोरामें कापला निकालने तथा



खलमेश्वर, अस्ति, रेहली, मोहगांव, मोहारी, देवली, सावनैर। इन नगरोंके मध्य नागपुर और जव्वलपुरमें ही जनसंख्या अधिक है।

कृषि।—यहां धान, जौ, गेहूँ आदि सब प्रकारके शस्य, कपास और अनेक तरहके तेलहन उत्पन्न होते हैं। केवल रायपुरके अञ्चलमें तमाकूको खेती होती है।

वाणिज्य।—यहां लोहेकी ढलाई आदिका काम हाता है, और यही यहाँका प्रधान काम समझा जाता है। बुर हानपुरमें जरीके कामका तथा नागपुर और भण्डारामें जौंदार पहननेके कपड़ेका भारत भरमें आदर है। यहां तरह तरहके कपड़े, लोहेकी बस्तु, नमक, नारियल, विलायती शराब, तमाकू आदिकी आमदनी तथा रई, अनाज, घो, तेलहन बीज और देशीय द्रव्यजातकी रफ्तनी होती है। मध्यभारत, बम्बई और कलकत्तेके साथ यहांका वाणिज्य चलता है। अभी इस प्रदेश हो कर बेङ्गाल-नागपुर रेलवे लाइन डीढ़ जानेसे आमदनी और रफ्तनीमें बहुत सुविधा हो गई है। चर्पाकालमें नदी द्वारा भी वाणिज्य चलता है।

जलवायु।—यह स्थान पार्वत्य है, जमीनके अन्दर बड़े बड़े पत्थर मिलते हैं, पानी पड़नेसे यह स्थान शीघ्र हो धुल जाता है और समुद्रसे दूर भी पड़ता है, आदि कारणोंसे यह स्थान स्वभावतः ही शुष्क और उष्ण है। आपादसे मात्र तक यहाँ मॉनसून वायु चलती है जिससे पानी काफी पड़ता है। ती भी नी मास तक गर्मीका ज्यादा प्रकोप देखा जाता है। वैजाल और ज्येष्ठमासमें यहाँ इस कदर गर्मी पड़ती है, कि वैसे और कहीं भी नहीं पड़ती। यहांका वार्षिक वृष्टिपात ४५ इंच है। इस प्रदेशमें किमी भी ऋतुमें दक्षिण-पूर्वकी वायु नहीं मिलती, शीतकालमें उत्तर पूर्व और पूर्वोप वायु बहती है। किन्तु फाल्गुन मास आते न आते वायु बंद हो जाती है।

इतिहास।—अति प्राचीनकालमें यहाँ मुनिऋषियोंका पास था; उनको पासभूमिकी तीर्थोंमें गिनती की गई है। इस प्रदेशके नाम स्थानोंसे जो जिला-लिपि आविष्कृत हुई है उनसे जाना जाता है, कि यहां एक समय ईह्य या चेदिराजवंश और शयरराजगण

राज्य करते थे। अनन्तर सोमवंशी राजाओंकी चटो हुई। चेदि ईह्य और सोमवंशी देवा। १४वीं शताब्दी तक जव्वलपुर अञ्चलमें सोमवंशी राजाओंका अधिकार रहा। मतपुराके दक्षिण मालवके परमाण राजागण राज्य करते थे। चांदाके गोंड या गोंडवंशमें ईह्यवंशमें ही अधिकार प्राप्त किया था। १०वीं और ११वीं शताब्दीमें उनका प्रभाव बहुत दूर तक फैल गया। सतपुरा अति-त्यकामें निमार और सागर जिला प्रायः ७ मी वर्ष तक जीली नामक भोज सरदारोंके दखलमें रहा। आज भी इस अञ्चलमें जीलीगणोंके प्रभाव और कीर्ति कलापकी गाथा घर घर सुनी जाती है। १४वीं शताब्दीमें इस वंशके आशा नामक अधीरने चान्दाके पहाड़ी अंचल पर प्रबल प्रतापसे अपना गोटी जमा ली थी। मुसलमान ऐतिहासिक फेरिस्ता उसके पराक्रमका उल्लेख कर गये हैं। उसके दश हजार गाय, बीस हजार भैंस और एक हजार घोड़ी थीं। उसीके नामानुसार आगोरगढ़का नाम पड़ा है।

फेरिस्तासे यह भी जाना जाता है, कि प्रायः १३६ ई०में भी चरेलामें स्वाधीन हिन्दू-राजा राज्य करते थे। १४६७ ई०में खरेलाके बाहानी-राजके दखलमें आनेसे यहांका स्वाधीन राजवंश लोप हो गया। मालवमें जब मुसलमान-शक्तिका हास हुआ, तब गढ़मण्डलासे गोंड-राज स प्रामसाह आ कर ५२ गढ़ों पर अधिकार कर बैठा। मपटना देखा।

१६वीं शताब्दीमें पुनः सुवाधीन ईह्यवंशका प्रभाव दिखाई दिया। गोंडोंके अन्वयुद्धसे ले कर मरहटोंके समागम तक यहांका गोण्डयाना प्रदेश सचमुच स्वाधीन था। गोंडराजगण नाममात्रकी दिल्लीश्वरकी अधीनता स्वीकार करने थे। यहां सभी जगह सामन्तशासन-प्रणाली प्रचलित थी। मरहटोंके आगमनसे गोण्डयानाकी सुगमसम्पत्ति विनष्ट हो गई। १७४१से १७५१ ई०के मध्य भोजसंलग्न ईह्यगढ़, चान्दा और छत्तोमगढ़में अपना राज्य फैलाया। गढ़मण्डलाके राजवंश १७६१ ई०में मरहटोंके हाथ राज्य समर्पण करनेकी बाध्य हुए।

महागण्ड-शासननोतिमें दोष गुण दोनों ही थे। पढ़ले तो देशचासिगण उनका कुछ नहीं पाते थे, पर पाँडे





भारोग्य होते हैं। (मैयन्यरत्ना० वातव्याधि-रोगाधि०) मध्यमशी (सं० पु०) १ मध्यम स्थानमें मौजूद। २ देहमध्यस्थित मर्मभागहिसक अर्थात् त्रिशूलके मध्यभाग द्वारा हिसाकारो।

मध्यमसंग्रह (सं० पु०) मध्यमश्चासौ संग्रहश्चेति। खीसंग्रहकष चिकित्साविशेष, मित्ताक्षराके अनुसार खीको अधिकारमें लानेको एक प्रकार। इसमें पुरण खीको बल-आमूयण आदि भेज कर अपने पर अनुरक्त करता है।

मध्यमसाहस (सं० स्त्री०) सहसा क्रियमाणं कृतं वा सहसा-अण्, मध्यमश्च तत् साहसञ्चेति। १ बल-द्विगुणित-व्यक्तिके बल, पशु और अन्नपानादिका नाश, वह कर्म जो सहसा बल और मद्दगानोसे किया जाय। (पु०) २ दण्डविशेष, मनुके अनुसार पांच स्त्री गण तकका अर्ध-दण्ड या जुमाना।

मध्यमस्थ (सं० त्रि०) मध्यमे मध्यमस्थाने तिष्ठतीति स्थाने क। मध्यस्थित, बीचका।

मध्यमस्थेय (सं० स्त्री०) मध्यभागमें अवस्थान-शोभता।

मध्यमा (सं० स्त्री०) मध्यम-टाप्। १ अंगुलीभेद, पांच उंगलियोंमेंसे बीचको उंगली। २ त्र्यक्षरच्छन्दः, तीन अक्षरका छन्द। ३ दृष्टरजस्का नारो, रजस्थला स्त्री। ४ कर्णिका, कनियारो। ५ हृदयोद्विधत बुद्धियुत नादरूप वर्ण। ६ स्त्रीवादिके अन्तर्गत नायिकाभेद, यह नायिका जो अपने प्रियतमके प्रेम या दीपके अनुसार उसका आदर-मान वा अपमान करे। ७ शूद्र-अभ्युत्थ, छोटे जातुनका पेड़। ८ काकोली।

मध्यमागम (सं० पु०) धीमौके चार प्रकारके आगमोंमेंसे एक प्रकारका आगम।

मध्यमाङ्गिरस (सं० पु०) ऋषिभेद।

मध्यमग्नि (सं० पु०) अर्धार्थं अग्नितापविशेष। सुष्टि-मेय काष्ठके चार अंश द्वारा जो अग्नि होती है उसके द्विगुण अग्निता नाम मध्यमग्नि है। (भर्कवि०)

मध्यमाङ्गुलि (सं० स्त्री०) मध्यमा अंगुलिः। अंगुलि-भेद, तर्जनी और अनामिकाके बीचको उंगली।

मध्यमावेष (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम।

मध्यमादि (सं० पु०) मन्त्रोत्तमं एक प्रकारका ताल। इसमें आठ ह्रस्व अथवा चार दीर्घ मात्राएँ होती हैं और तीन आघात और एक खालो होता है।

मध्यमाहरण (सं० स्त्री०) वीजगणित-प्रसिद्ध अल्पक-मानत्रापक गणनाभेद। बीजगणितकी यह क्रिया जिसके अनुसार क्रोडि अल्पक मान निकाला जाता है।

मध्यमिक (सं० पु०) मध्यम इकन्। मध्यम, बीचका।

मध्यमिका (सं० स्त्री०) मध्यमेय कन, टाप् अन् इत्वं। दृष्टरजस्का नारो, रजस्थला स्त्री।

मध्यमोय (सं० त्रि०) मध्यमे मयं मध्यमस्थेयं वेति (गशादिभ्यरत्न। पा ४।२।१३८) इति छ। मध्यम।

मध्यम देणो।

मध्यमेधर (सं० पु०) मध्यमस्य स्थानस्य ईधरः। १ काशीस्थित शिवलिङ्गवितेर। गङ्गामें स्थान कर इस शिवलिङ्गका पूजन करनेसे इहलोकमें पुण्य और परलोकमें शिवलोककी प्राप्ति होती है।

“धन्यास्तु खलु ते विमा मन्दागिन्यां कुनोदकाः।

अर्चयन्ति महादेवं मध्यमेधरगिरयम्॥”

(वर्मपु० ३१ ४०)

२ कुमायूके अन्तर्गत हिमालयस्य एक पुण्यस्थान। १शय-उवपुराणमें और हिमयनगरएडमें इसका माहारम्य वर्णित है।

मध्यमथ (सं० पु०) मध्यमे मधामो मयः। पृथ्वेत-सर्ववपरिमाण, प्राचीन कालका एक परिमाण जो ६ पोन्डो सरसोंके बराबर होता था।

मध्ययोगिन (सं० त्रि०) मध्ययुग्म-णिनि। मध्यावर्त्तो, बीचका।

मध्यरात्र (सं० पु०) मध्या रात्रेः (पूर्वार्धार्धेनि। पा २।२।१) इति समासः, ततः (भर्युर्गर्केनि। पा ४।१।८०) इति समासान्तोऽन्, पुंस्त्वञ्च। निगोथ, आधा रात।

मध्यरेता (सं० स्त्री०) पृथ्वीके मध्यभागस्थित कल्पित रेखा। इसकी कल्पना देवान्तर निहालनेके लिये की जाती है। यह रेखा उत्तर दक्षिण मानो जाती है और उत्तरीय तथा दक्षिणी ध्रुवोंको काटती हुई एक वृत्त बनाती है।

मध्यरज्य (सं० स्त्री०) ज्योतिषोक्त द्वाज्यन-मापन



यहां भांशुआग्रामवासी राष्ट्रीय ब्राह्मणोंने आपममें मेल-  
की आवश्यकता देख कर एक महासभा की। भांशुआके  
निकटवर्ती पिण्डरई ग्रामवांसी भरद्वाजगोत्रके गङ्गाधर-  
भट्ट समापति हुए। कई एक कारणोंसे देवीवरके साथ  
उनका विवाद हो गया। फलतः देवीवर गुस्सा  
कर समासे चल दिये। तभीसे मेदिनीपुर जिलेके  
राष्ट्रीय ब्राह्मण मिनन श्रेणीभुक्त हो कर मध्यश्रेणी कह-  
लाये।

मध्यसूत्र (सं० कृी०) मघारेखा।

मध्यस्थ (सं० त्रि०) मघे वादि-प्रतियान्तरान्तरं तिष्ठ-  
तीति स्था-क। १ मघास्थायी, बीचमें पड़ कर विवाद  
मिटानेवाला। पर्याय—निष्ठ। २ उभयपक्षहीन, जो  
दोनों पक्षोंमेंसे किसी पक्षमें न हो। ३ स्वार्थरक्षापूर्वक  
परार्थसाधक, वह जो अपनी हानि न करता दुआ  
दूसरोंका उपकार करता हो।

मघास्था (सं० स्त्री०) मध्यस्थस्य भावः तल-टाप्।  
मघास्थ होनेका भाव या धर्म।

मघास्थल (सं० बली०) मघा' स्थल', शरीरमघावर्ति  
त्वात् तथास्त्व'। १ कर्षिदेश, फरर। २ बीचका।

मध्यस्थान (सं० बली०) मघा' स्थान'। मध्यभाग,  
बीचका स्थान।

मध्यस्थित (सं० त्रि०) मघे स्थितः। मघास्थ, मध्य-  
वर्ती।

मध्यस्वित (सं० त्रि०) शब्दके मघास्थित वर्णका स्वरितों-  
धारणभेद।

मघा (सं० स्त्री०) मघा टाप्। १ मघामांगुलि, बीच-  
की उंगली। २ नायिकाविशेष, काठकशास्त्रानुसार यह  
नायिका जिसमें लज्जा और काम समान हों। यह  
मघानायिका तीन प्रकारकी है, यथा—मघाधीरा, मघा-  
अधीरा और मघाधीराधीरा। ३ एक वर्णवृत्त। इसके  
प्रत्येक चरणमें तीन अक्षर होते हैं। इसके भाट भेद हैं।  
मघाङ्गुलि (सं० स्त्री०) मघामा अङ्गुलिः। तर्जनी  
और अनामिकाके बीचकी उंगली।

मघ्यान (सं० पु०) मघ्याद् देतो।

मघ्यानयन (सं० बली०) प्रहोकी स्फुट गणना प्रणाली-  
विशेष। रवि आदि प्रहोकी गणना करनेके लिये शीम

मघा, केन्द्र आदि स्थिर कर लेना होता है। इसके बिना  
प्रहोकी स्फुटराजिका धान नहीं होता। सूर्य मेषमें है,  
मैथराजि ३०° डिग्री अर्धात् ३० अंश है। इन तीस अंशों-  
में रवि कहाँ है, कितना अंश, कितना कला और चक्रला  
पर है इसका निर्धारण करनेकी स्फुट कहेते हैं। इसी  
स्फुटको स्थिर करते हुए मघ्यानयन करना होता है।  
केवल केनुका मघ्यानयनका नियम दिखाई नहीं देता,  
फ्योंकि राहुग्रह जिम राजिके जितने अंश पर अवस्थित  
है, उसके सातवाँ राजिके उतने ही अंश पर केतुग्रह  
रहेगा। अतएव राहुका मघ्यानयन करनेसे केतुके फिर  
अघ्यानयन करनेकी जरूरत नहीं रह जाती।

ज्योतिषशास्त्रमें मघ्यानयनका नियम लिखा है। आज  
कालके सिद्धान्तरहस्यके समान ही प्रायः स्फुट गणना  
होती है। सूर्यसिद्धान्त आदि ग्रन्थोंके मतानुसार भी  
स्फुटगणना की जा सकती है।

रवि, बुध और शुक्रके मघ्यानयनके नियम इस  
तरह हैं,—

पहले अर्द्धपिण्ड और दिनराजिको स्थिर करना चाहिये  
अर्द्धपिण्ड और दिनवृन्द निम्नोत्तरूपसे स्थिर करना  
होता है। पहले यह स्थिर कर लेना चाहिये, कि इस  
समय कितना शकाम्द चलता है। इसी शकाम्दके अङ्कसे  
१५१३ अङ्क घटा देनेसे अर्द्धपिण्ड होगा। इस अर्द्धपिण्ड-  
को दो जगह रव एकको ३६४से और दूसरेको ७से गुणा  
करना होगा। ये दो अङ्क पृथक् पृथक् रखने होंगे।  
इस सातसे गुणा किये हुए अङ्कको फिर एक स्थान पर  
रख कर १३५०से भाग देना होगा। इस भागफलका  
उस पृथक् रखे यानी ३६४से गुणा किये हुए अङ्कमें जोड़  
देना चाहिये। फिर इस अर्द्धपिण्डको १०००से गुणा  
करो। इसके बाद इसमें १३३२ जोड़ दो। इसके बाद  
फिर सातसे गुणा किये हुए अर्द्धपिण्डमें इसको जोड़  
कर ८०से भाग दो। भागफलको ३६४से गुणा करो।  
गुणफल अङ्कको अर्द्धपिण्डमें जोड़ दो। ऐसा करनेसे  
दिनवृन्द बन जायेगा।

विशेषु चन्द्रोत्तरे (१५१३) मघान्द विषयः

इताद्वारामे (३६४) गुणित्वा मग-७) मल।



दिनरात्रिको २०से भाग देनेसे भागफल जो होगा उसे एक जगह रख कर पुनः दिनरात्रिको ३से गुणा करो । इसके बाद १००५से भाग दे कर भागफलको पूर्वास्थापित अङ्कमें जोड़ो । योगफल राहुमघाका अंशादि होगा । अनन्तर अर्द्धरात्रिको ३से गुणा करके ४२१ का भाग देनेसे भागफल कलाटि होगा । इसे पूर्वाङ्कमें जोड़ कर देवान्तर पल विपल घटानेसे राहुका शुद्धदिनादि स्थिर होगा । इसके बाद दिनरात्रिको ३०से भाग दे कर जो शेष रहेगा उसे अंश और भागफलको १२से भाग देनेसे जो शेष रहेगा, उसे रात्रि जानो । उसमें राहुका शेषाङ्क ८.२६३०। ४१।१५ जोड़नेसे राहुग्रहकी मघराश्यादि स्थिर होगी ।

इसो नियमसे रवि आदि ग्रहका मध्यान्तयन करना होगा ।

मध्यान्तिक ( स० पु० ) नृतीय वीर्य स्थविर ।

मध्याह्न ( स० पु० ) मध्याह्न देवो ।

मध्याह्नकोसर ( स० पु० ) लिम्बूमेद, एक प्रकारका नोडू ।

मध्यायुस् ( स० ह्री० ) मध्य आयुः । मध्यमरूप आयुः । साधारणतः मनुष्यके तीन प्रकारकी आयु होती है— दीर्घायु, मध्यायु और अल्पायु । ३३से ६५ वर्ष तककी मध्यायु कहते हैं । ज्योतिष ज्ञान द्वारा यह आयु स्थिर की जाती है । ज्योतिषमें इसका विषय इस प्रकार लिखा है,—

“यज्ञहीने विलम्बेशे जीवे केन्द्र विराणामे ।  
पञ्चाष्टमव्यये पापेमध्यमायुर्दाहत्तम् ॥  
सुमे केन्द्र त्रिकोष्पक्षे शनी वलममन्विने ।  
फले वायुग्रमे पापे मन्मथयु इदाहत्तम् ॥  
क्रमे त्रिकोशे केन्द्रे वा मध्यायुश्च भिन्ति ॥”

( सर्वार्षचिन्तामणिय )

लम्नाधिपति बलयान् पूरुषातिके केन्द्र वा कोणस्थित ( लग्न, चतुर्थ, सप्तम और द्वादशका नाम केन्द्र तथा नवम और पञ्चमका नाम कोण है ) होनेसे तथा वधु, अष्टम और द्वादशमें पापग्रह रहनेसे जानककी मध्यायु होती है । केन्द्र और कोणमें शुभग्रह जनि बलयान् तथा पष्टाष्टममें पापग्रह होने पर भी मध्यायु समझी जाती है ।

इसके अतिरिक्त लग्न और केन्द्र कोणमें ममान शुभाशुभका योग होनेसे भी मध्यायु होता है ।

“जन्मत्रनेश्वरः मेता भानोधि मुह्य मुह्य ।  
वा चेदीर्षातुरथवा समे मध्यायुश्च्यते ॥”

( सर्वार्षचिन्तामणिय )

यदि रवि लम्नाधिपति हो और जन्मरात्रिके अधिपतिके साथ रविका समभाव हो, तो मध्यायु होती है । यदि रवि लग्न और रात्रि दोनोंके ही अधिपति हों, तो रवि जिम् रात्रिमें रहते हैं उस रात्रिके अधिपतिके साथ समभावापन्न होने पर भी मध्यायु होती है ।

आयुर्दाय और मृत्यु देवो ।

मध्यारिक ( स० खी० ) एक प्रकारकी लता ।

मध्याञ्जुन—१ कावेरी और कोलरुण नदीके मध्यास्थित पुष्पक्षेत्र । यशिके स्थलपुराणमें इसका माहात्म्य वर्णित है । २ यथारण्यसे दो योजन पश्चिममें अथस्थित एक क्षेत्र ।

मध्यावर्ष स० ह्री० ) वर्षाका मध्यभाग ।

मध्याग्नि ( स० खी० ) एक प्रकारकी लता ।

मध्याहारिणीर्त्विगि ( स० खी० ) ललित विस्तरके अनुसार ६४ प्रकारकी लिपियोंमेंसे एक प्रकारकी लिपि ।

मध्याह्न ( स० पु० ) मध्य अह्न, समासान्तः द्युः ( श्लो-  
क एतेभ्यः । वा १।४।८८ ) इत्यह्नदेजः पुंस्त्वञ्च । १  
दिनका अष्टमुहूर्त्तात्मक मध्यभाग, ठीक दोपहरका समय । इसका दूसरा नाम फुलव-काल है ।

“भर्तुो मुहूर्त्तो विल्लामी दग वत्र च सर्वदा ।  
तत्राग्रमे मुहूर्त्तो यः एः कानः कुवतः स्मृतः ॥  
मन्वाद्भे सर्वदा वन्मन्मदो भवति मन्मन्तः ।  
तन्मादनन्त पत्तरमन्मन्मो विगियन्ते ॥”

( मत्स्यपुरा० भा. २२ अ० )

मध्याह्नकालमें पितरोंके उद्देश्ये श्राद्ध करना होता है । इसकी साधारण विधि यह है, कि यदि कोई निधि दोनों दिन दो मध्याह्नकापिनो हो, तो शिव दिन श्राद्ध होगा इसकी मोमांसाके लिये कुतुब रोहिन और सङ्घ्य आदि मध्याह्नका विभाग है ।

इसका विशेष विषय अह्न इन्दिमें देखो ।



मध्यविजयमें लिखा है, कि वे गोताभाय्यका प्रणयन कर बद्रिकाश्रम गये और वहां उन्होंने व्यासदेवको उक्त ग्रन्थ उपहारमें दिया था। व्यासदेवने भी प्रसन्न हो कर उन्हें तीन शालग्राम जिला दी थी। वे तीनों जिलाएँ मध्वाचार्यके यज्ञसे सुग्रहाण्य, उद्विपि और मध्यतल इन तीन स्थानोंके मन्दिरमें प्रतिष्ठित हुई। उक्त शालग्रामके भलाया उन्होंने उद्विपिमें एक कृष्णमूर्त्तिकी भी प्रतिष्ठा की थी। इस कृष्णमूर्त्ति-प्रतिष्ठाके सम्बन्धमें भी एक उपाख्यान इन प्रकार है,—

किसी वणिक्का एक अर्णवपोत द्वारकासे मल्लपारको जा रहा था। तुल्यके निकट आ कर वह पोत डूब गया। उस पर एक कृष्णविग्रह गोपीचन्दन मिट्टीसे ढका था। मध्वाचार्यको देवज्ञानबल से मान्द्रुम हो गया, सो उन्होंने मूर्त्तिको पानीसे निकाल कर उद्विपिमें उसकी प्रतिष्ठा की। तभीसे उद्विपि मध्वाचार्यकोका प्रधान तीर्थ समझा जाने लगा। मध्वाचार्यने उद्विपिमें कुछ समय रह कर ३७ मूलग्रन्थ और कुछ भाग्य प्रणयन किये। ग्रन्थमालिकास्तोत्रमें उक्त ३७ ग्रन्थोंके नाम इस प्रकार हैं,—

१ ईशायास्योपनिषद्भाष्य, २ उपाधिबल्लहन, ३ स्तोत्रमयज्ञवेदभाष्य, ४ पेत्रेयोपनिषद्भाष्य और उसकी टिप्पनी, ५ कथालक्षण, ६ कृष्णाकर्णामृत महार्णव, ७ कर्मनिर्णय, ८ काठकोपनिषद्भाष्य और उसकी टिप्पनी, ९ केनेोपनिषद्भाष्य और उसकी टिप्पनी, १० छान्दोग्योपनिषद्भाष्य और उसकी टिप्पनी, ११ जयन्तीफल्य, १२ तत्त्वविवेक, १३ तत्त्वसंग्रहान, १४ तत्त्वोद्घोत, १५ तन्त्रसार, १६ तैत्तिरीयोपनिषद्भाष्य और उसकी टिप्पनी, १७ ढाड्जस्तोत्र, १८ नरसिंहनपस्तोत्र, १९ प्रपञ्चनिध्यातवानुमानघण्डन, २० प्रमाणलक्षण, २१ प्रश्नोपनिषद्भाष्य और उसकी टिप्पनी, २२ बृहदारण्यक भाष्य और उसकी टिप्पनी, २३ ब्रह्मसूत्रभाष्य और उसकी टीका, २४ ब्रह्मसूत्रानुभाष्य, २५ ब्रह्मसूत्रानुव्याख्यान (न्यायविवरण), २६ भगवद्गीताभाष्यनिर्णय, २७ भगवद्गीताभाष्य, २८ भागवतपुराणभाष्यनिर्णय, २९ महाभारतभाष्यनिर्णय, ३० माण्डूक्योपनिषद्भाष्य और उसकी टिप्पनी, ३१ मायावादघण्डन, ३२ मुण्डकोप

निषद्भाष्य और उसकी टिप्पनी, ३३ यनिप्रणयकल्प, ३४ यमकाभारत, ३५ विष्णुनख्यनिर्णय, ३६ सदाचारस्मृति, ३७ संन्यासपद्धति।

उपरोक्त ग्रन्थोंके भलाया आत्मज्ञानोपदेश टीका, भार्यास्तोत्र, उपदेशसाहस्रो टीका, उपनिषद्प्रस्थान, फीय ज्योपनिषद्भाष्य और उसकी टिप्पनी, कीर्त्तिसुवनिषद्भाष्य टिप्पनी, षण्णवटीका, मुद्रस्तुति, गोविन्दभाष्य-पीठक, गोविन्दाष्टक टीका, गीष्टपादोपभाष्य टीका, नैस्तिरोयध्र तिचारिकटीका, त्रिपुटीप्रकरण टीका, नारायणोपनिषद्भाष्य टिप्पनी, न्यायविवरण, पञ्चोकरणप्रक्रिया-विवरण, बृहज्जावालोपनिषद्भाष्य, बृहदारण्यकवार्त्तिक टीका, ब्रह्मसूत्रभाष्यनिर्णय, ब्रह्मानन्द, भक्तिरसायन, भगवद्गीताप्रस्थान, भगवद्गीताभाष्यविधेयचक्र, मितभाषिणी, रामोत्तरतापनोथमाय, वाष्यवृत्तिविवरण, वाष्यमुधा टीका, विष्णुमहेश्वरनामभाष्य, वेदान्तवार्त्तिक, शतश्लोकी टीका, संहितोपनिषद्भाष्य टिप्पनी, सत्त्वय, सदाचारस्तुतिस्तोत्र, सूत्रप्रस्थान, स्मृतिविवरण, स्मृतिमार्गसमुच्चय, स्वरूपनिर्णय टीका, हरिमोक्षेस्तोत्र टीका इत्यादि ग्रन्थ इनके यनाये हुए मिलते हैं। उपरोक्त सभी ग्रन्थोंमें माध्वभाष्य अर्थात् द्वैतपक्षमें ब्रह्मसूत्रभाष्य ही सर्वप्रधान और मध्वाचार्यका यथेष्ट पाण्डित्यपरिचायक है।

कुछ दिन बाद मध्वाचार्य द्विगिजयमें निकले और दाक्षिणात्यके शूद्राचार्य आदि आचार्योंको जात्रार्थमें परास्त कर बद्रिकाश्रमको चल दिये। मध्वाचार्योका विश्वास है, कि आज भी वे वहां पर अवस्थान करते हैं। ११२१ गक (११६६ ई०) में उनका तिरोधान हुआ।

मध्वाचार्यके पाण्डित्यगुण पर मुग्ध हो गये हो दिनोंके शन्दर उनके बहुतसे शिष्य हो गये थे। मध्वाचार्यने भी शिष्योंको सुविधाके लिये उद्विपिके मन्दिरके भलाया और भी आठ मन्दिर स्थापन कर उनमें यथाक्रमने राम-सीता, लक्ष्मणसीता, द्विभुजकालीवदमन, चतुर्भुजकालीवदमन, सुविद्युत् इस प्रकार आठ मूर्त्तियोंकी प्रतिष्ठा की। अपने भाई और गोदायरी तोरुष्य प्राप्तग बुज्जो-ज्ञय आठ संन्यासीको उक्त मन्दिरोंका प्रत्यक्षपद प्रदान किया था। वे सब मन्दिर आज भी विद्यमान हैं और



२ तीन भागोंमें विभक्त दिनका मध्यभाग, मध्याह्न-  
का यह साधारण कर्म है। दिवामान ३० दण्ड  
होनेमें पहले द्वा दण्ड बाद दे कर जो द्वा दण्ड ररोगा  
यही मध्याह्न है। दिनमालकी कर्मो बेगी होनेसे भाग  
दे कर मध्याह्नकाल निर्णय करना होता है। दिनमालके  
तीन भाग कल्पित हुए हैं यथा—पूर्वाह्न, मध्याह्न और  
अपराह्न। पूर्वाह्नकाल देव-पूजाके लिये, मध्याह्न  
गिनृहृत्य अधोन् धासादिके लिये तथा अपराह्नकाल  
केवल मपिष्टीकरण धासके लिये विहित हुआ है।

३ पांच भागोंमें विभक्त दिनका तीसरा भाग। दिवा-  
मानकी पांचवसे भाग दे कर पहिले दो भागोंको बाद दे  
कर जो तीसरा भाग रहता है उसोका नाम मध्याह्न है।  
यह काल १२ दण्डके बाद ६ दण्ड माना जाता है।

मध्याह्नोसर ( सं० पु० ) दिनका तीसरा पहर, दोपहरके  
बादका समय।

मध्ये ( सं० लि० ) बायत, वारेमें।

मध्येगङ्गा ( सं० अर्थ० ) गङ्गायाः मध्यां ( पां मध्ये पठ्या  
वा। पा २।१।२८ ) इत्यव्ययीभावसमासः। गंगाके मध्य।

मध्येगुरु ( सं० लि० ) मध्यां गुरुः, ( मध्यादुरी। पा ६।३।१२ )  
इति सप्तम्या अलुक्। मध्यदेशमें गुरु शब्दयुक्त।

मध्येउद्योतिसू ( सं० स्त्री० ) पांच पादका एक वैदिक  
छन्द। इसके पहले और दूसरे चरणमें आठ आठ वर्ण  
तथा तीसरेमें ग्यारह और पुनः चौथे और पांचवसे आठ  
वर्ण होते हैं।

मध्येनगर ( सं० अर्थ० ) नगरस्य मध्यं, नगरके बीचका  
भाग।

मध्येनदि ( सं० अर्थ० ) नद्याः मध्यां। नदीका मध्य-  
भाग।

मध्येपुष्ट ( सं० अर्थ० ) कृष्टस्य मध्यां। पीठका मध्य-  
भाग।

मध्येमार्ग ( सं० अर्थ० ) मार्गस्य मध्यं। मार्गका मध्य-  
भाग, रास्तेके बीच।

मध्येवारि ( सं० अर्थ० ) वारिणो मध्यं। जलका मध्य-  
भाग।

मध्येसभ ( सं० अर्थ० ) सभाया मध्यः। सभाका मध्य-  
भाग।

मध्वोदास ( सं० लि० ) मध्यवर्णमें उदात्तयुक्त, मध्य  
स्वरसे उच्चारण किया हुआ।

मध्य ( सं० पु० ) १ मधु देलां। २ मध्यसम्प्रदायके प्रय-  
त्तक। मध्याचार्य देलां।

मध्यक ( सं० पु० ) शहदकी मधुखी।

मध्यक्ष ( सं० लि० ) मधुके जैसा अक्षियुक्त, जिसके नेत्र  
मधुके जैसे हैं।

मध्यद्व ( सं० लि० ) मधु-अद्-षिवप्। १ उदकपायी, जल  
पीनेवाला। २ मधुपानकारी, मधु पीनेवाला।

मध्यमुखभङ्ग ( सं० पु० ) अप्यपदोक्षित-रचित मध्याचार्य-  
का मतवण्डन विषयक ग्रन्थ।

मध्यमुखमर्दन ( सं० स्त्री० ) मध्यमुखभङ्ग देलां।

मध्यमौसू ( सं० लि० ) मधुरमलयुक्त।

मध्यरिष्ट ( सं० स्त्री० ) घीचकके अनुसार एक प्रकारका  
अरिष्ट। यह संप्रहर्षी रोगमें उपकारी माना जाता है।

मध्यल ( सं० पु० ) मधु भलतीति अल्ल, अणु, संख्या-  
पूर्वकत्वात्, गृह्यभाष्यः। मधुवार, वार वार और बहुत  
शराब पीनेको परिपाटी।

मध्यगोला ( सं० स्त्री० ) मधुगुच्छ।

मध्याचार्य—मध्याचार्यके मतावलम्बि-सम्प्रदायभेद।

माध्य देलां।

मध्याचार्य—माध्य या मध्याचारि-सम्प्रदायके प्रयत्तक  
एक महात्मा। ये दक्षिणात्यपथके अन्तर्गत तुलुय-  
निवासी मधिजीमट्टके पुत्र थे। पहले इनका नाम धा  
वसुदेवाचार्य। नारायण-पण्डितरचित मध्याचार्य-विजय  
आदि साम्प्रदायिक ग्रन्थमें लिखा है, कि स्वयं वायु  
नारायणके आदेशसे धर्मसंस्थापनके लिये धारिभूत हो  
कर मध्याचार्य नामसे प्रसिद्ध हुए। इनका आविर्भाव-  
काल ११२१ तक है। बचपनमें ये अनन्तेश्वरके मठमें  
विद्याभ्यास करते थे। ६ वर्षको उमरमें इन्होंने सनक-  
कुलोद्भव बन्धुप्रज्ञाचार्य ( दूसरा नाम शुभानन्द )में  
दीक्षा ग्रहण की। दीक्षाके बाद इनका गृहदत्त पूर्ण प्रज्ञ  
नाम पड़ा। दाज्ञके साथ ही साथ इन्हें वैराग्यका उदय  
हुआ था। संसारपरित्यागके बाद ये आनन्दतीर्थ,  
आनन्दद्वान, छानानन्द, आनन्दगिरि आदि नामोंसे प्रसिद्ध  
हुए।

मध्यविजयमें लिखा है, कि वे गोताभाष्यका प्रणयन कर बर्दरिकाश्रम गये और वहाँ उन्होंने व्यासदेवको उक्त ग्रन्थ उपहारमें दिया था। व्यासदेवने भी प्रसन्न हो कर उन्हें तीन शालग्राम शिला दी थीं। ये तीनों मिलाने मध्वाचार्यके यज्ञसे सुग्रहण्य, उद्विपि और मध्यतल इन तीन स्थानोंके मन्दिरमें प्रतिष्ठित हुईं। उक्त शालग्रामके अलावा उन्होंने उद्विपिमें एक कृष्णमूर्त्तिकी भी प्रतिष्ठा की थी। इस कृष्णमूर्त्ति-प्रतिष्ठाके सम्बन्धमें भी एक उपाख्यान इस प्रकार है,—

किमी घणिकका एक अर्णघघोन द्वारकासे मलघारको जा रहा था। तुलुवके निकट आ कर वह पीत हूब गया। उस पर एक कृष्णविग्रह गोपीचन्दन मिट्टीसे ढका था। मध्वाचार्यको द्रवज्ञानबलसे मालूम हो गया, सो उन्होंने मूर्त्तिको पानीसे निकाल कर उद्विपिमें उसकी प्रतिष्ठा की। तभीसे उद्विपि मध्वाचार्यको प्रधान तीर्थ समझा जाने लगा। मध्वाचार्यने उद्विपिमें कुछ समय रह कर ३७ मूलग्रन्थ और कुछ भाष्य प्रणयन किये। ग्रन्थमालिकास्तोत्रमें उक्त ३७ ग्रन्थोंके नाम इस प्रकार हैं,—

१ ईशावास्योपनिषद्भाष्य, २ उपाध्विलएडन, ३ श्लोकमयज्ञावेदभाष्य, ४ पेत्रेयोपनिषद्भाष्य और उसकी टिप्पणी, ५ कथालक्षण, ६ कृष्णकणामृत महार्णव, ७ कर्मनिर्णय, ८ काठकोपनिषद्भाष्य और उसकी टिप्पणी, ९ केनोपनिषद्भाष्य और उसकी टिप्पणी, १० छान्दोग्योपनिषद्भाष्य और उसकी टिप्पणी, ११ जयन्तीकल्प, १२ तत्त्वविवेक, १३ तत्त्वसंस्थान, १४ तत्त्वोद्घोष, १५ तन्त्रसार, १६ नैसिरीयोपनिषद्भाष्य और उसकी टिप्पणी, १७ टाडशास्तोत्र, १८ नरमिह्ननघ्नस्तोत्र, १९ प्रपञ्च-मिध्यातवानुमानघ्नएडन, २० प्रमाणलक्षण, २१ प्रत्योपनिषद्भाष्य और उसकी टिप्पणी, २२ घृदादरपक भाष्य और उसकी टिप्पणी, २३ ब्रह्मसूत्रभाष्य और उसकी टीका, २४ ब्रह्मसूत्रानुभाष्य, २५ ब्रह्मसूत्रानुष्याख्यान (न्यायविवरण), २६ भगवद्गीतानामन्यर्थनिर्णय, २७ भगवद्गीतानामन्य, २८ भागवतपुराणनामन्यर्थनिर्णय, २९ महाभारततात्पर्यनिर्णय, ३० माण्डूक्योपनिषद्भाष्य और उसकी टिप्पणी, ३१ भाष्यादाध्वएडन, ३२ मुण्डकोप-

निषद्भाष्य और उसकी टिप्पणी, ३३ यनिप्रणयकल्प, ३४ यमरुभारत, ३५ विष्णुनृत्यनिर्णय, ३६ सदानारम्भुति, ३७ संन्यासपद्धति।

उपरोक्त ग्रन्थोंके अलावा धातमज्ञानोपदेश टीका, अर्थास्तोत्र, उपदेशसाहस्रका टीका, उपनिषद्प्रस्थान, क्वेयव्योपनिषद्भाष्य और उसकी टिप्पणी, कीर्तीतपयुपनिषद्भाष्य टिप्पणी, खपुरटीका, गुरुस्मृति, गांधिन्दुभाष्य-पीठक, गांधिन्दुएडन टीका, गौडपादोपभाष्य टीका, नैसिरीयश्रुतिवार्त्तिकटीका, तिषुटीप्रकरण टीका, नारायणोपनिषद्भाष्य टिप्पणी, न्यायविवरण, पञ्चोपरणप्रक्रिया-विवरण, शृङ्गावालोपनिषद्भाष्य, शृङ्गावरण्यकवार्त्तिक टीका, ब्रह्मसूत्रभाष्यनिर्णय, ब्रह्मानन्द, भक्तिरसायन, भगवद्गीताप्रस्थान, भगवद्गीतानामन्यविवेचन, मितभाषिणी, रामोत्तरनापनोपभाष्य, याष्यश्रुतिविवरण, याष्यसुधा-टीका, विष्णुसहस्रनामभाष्य, वेदान्तवार्त्तिक, जनश्लोको टीका, संहितोपनिषद्भाष्य टिप्पणी, सत्त्व, सदाचारस्तुतिस्तोत्र, सूत्रप्रधान, स्मृतिविवरण, स्मृतिसात्त्वमुच्चय, स्वरूपनिर्णय टीका, हरिमोड़ेस्तोत्र टीका इत्यादि ग्रन्थ इनके बनाये हुए मिलते हैं। उपरोक्त सभी ग्रन्थोंमें माध्वभाष्य अधार्ण है तपक्षमें ब्रह्मसूत्रनाम्य ही सर्वप्रधान और मध्वाचार्यका यद्येष्ट पाण्डित्यवपत्त्वापक है।

कुछ दिन बाद मध्वाचार्य द्वित्रिजयमें निकले और दाक्षिणात्यके जट्टराचार्य भादि आचार्योंको जाग्रार्थमें परास्त कर बर्दरिकाश्रमको चले गये। मध्वाचार्योंका विश्वास है, कि आज भी ये वहाँ पर अवस्थान करते हैं। १२२१ गक ( ११६६ ई० ) में उनका निरोधान हुआ।

मध्वाचार्यके पाण्डित्यगुण पर मुग्ध हो मोड़े हो दिनोंके अन्दर उनके बहुतसे शिष्य हो गये थे। मध्वाचार्यने भी शिष्योंको सुविधाके लिये उद्विपिके मन्दिरके अलावा और भी आठ मन्दिर स्थापन कर उनमें यथाक्रमसे रामस्तोता, लक्ष्मणस्तोता, द्विमुञ्जकालीपदमन, चतुर्भुजकालीपदमन, सुविहृल्ल इस प्रकार आठ मूर्त्तियोंकी प्रतिष्ठा की। अपने भाई और गौडवरी तीरस्थ ब्राह्मण कुन्दोज्ञय आठ संन्यासोक्तो उक्त मन्दिरोंका मध्यक्षपद प्रदान किया था। ये सब मन्दिर आज भी विद्यमान हैं और

गिर्य वंगानुक्रममे अच्यक्ष्णा करने धा रहे हैं। वे आठों मन्दिर तुल्यके अन्तर्गत हैं।

मध्वाचार्य मरने समय अपने प्रिय गिर्य पक्षनाभ-  
मोंधके रामचन्द्रमूर्ति और ध्यामकी दी हुई शालग्राम  
जिन्हा प्रदान कर कह गये थे, कि 'मैरा मत प्रचार करना  
और उद्दिष्टके मन्दिरके लार्की बर्चाके लिये धनरत्न संग्रह  
करना।' गुरुके उपदेशानुसार पक्षनाभने चार मठ  
स्थापन किये। उनके परम्परागत गिर्य वहाँकी अच्य-  
क्ष्णा करने हैं।

मध्वाचार्यका मत,—सबसे पहले एकमात्र अद्वितीय  
आनन्दस्वरूप भगवान् नारायण थे। उस समय ब्रह्मा,  
विष्णु कोई भी न थे। उन विष्णुकी देहसे ही समस्त  
जगत् उत्पन्न हुआ है। वे जीव और ईश्वरकी पृथक्  
सत्ताको स्वीकार करने थे, इस कारण उनका मत द्वैता-  
पाद नामसे प्रसिद्ध हुआ। उनके मतमें एकमात्र भग-  
वान् विष्णु ही अशेष सद्गुण सम्पन्न, निर्दोष और  
स्वतन्त्र हैं, एतद्भिन्न और सभी पदार्थ अस्वतन्त्र अर्थात्  
ईश्वरके अधीन हैं। महोपनिषद्की निम्नलिखित उक्ति-  
से मध्वाचार्यके मतका प्रकृत आभास मिलता है।  
यथा—

'यथा पदां न च गुणं नाना वृक्षसा यथा।

यथा नमः समुद्राभ शुद्धोत्पन्नमे यथा ॥

चीरापक्ष्मां न यथा यथा पुविश्यावपि।

तथा जंवेरवरी भिन्नी सर्वदेव विपक्षणी ॥'

पक्षी और मूलमें, पृथ और रसमें, नदी और समुद्र-  
में, शुद्धजल और लवणमें, चीर और अपहृत द्रव्यमें तथा  
पुरुष और इन्द्रियके विषयमें जैसे पृथक्ता है, ईश्वर और  
जीवमें भी वैसे ही भिन्नता और विलक्षणता है। जीव  
ईश्वरके प्रभेदके अतिरिक्त मध्वाचार्य और भी पांच प्रकार-  
के भेदज्ञान स्वीकार कर गये हैं। यथा—जोवैश्वरभेद,  
जड़वैश्वरभेद, जड़जीवभेद तथा जीव और जड़पदार्थका  
परस्परभेद। ये पांचों भेद मध्वाचार्य द्वारा 'प्रवच्य'

नामसे वर्णित हुए हैं। उनके प्रपञ्चमिष्टवार्तानुसाम-  
व्यवृत्तप्रथममें इस प्रपञ्चका विवरण दिया गया है।

ये परमात्मामें जीवका लय या निर्वाणमुक्ति अथवा  
पाशुपतीका योग और पञ्चरात्रीका सायुष्य भी स्वीकार  
नहीं करते। वे कह गये हैं, कि नारायण वैकुण्ठधाममें  
लक्ष्मी, भूमि और नीलादेवी इन तीन पत्नियोंके साथ  
म्यगीय वैशभूरासे सुशोभित हो कर अनिर्वचनीय  
ऐश्वर्यका सुखभोग करते हैं। वे स्वरूपावस्थामें गुणा-  
तीत हैं, किन्तु जय मायाके साथ संयुक्त होने हैं, तब  
मत्स्य, रजः और तमः ये तीनों ब्रह्मा, विष्णु और शिव-  
रूपमें आविर्भूत हो कर जगत्को सृष्टि, स्थिति और  
प्रलय करते हैं। मायासे उनका उद्भव है और मायाके  
योगसे ही वे अपना अपना काल सम्पादन करते हैं।  
विश्वकारण विष्णुकी हृदय, ललाट और पार्श्वदेशमें  
तथा अन्यान्य अङ्गोंसे शिवब्रह्मादि देवताओंको उत्पत्ति  
हुई है।

वे अपनी गिर्यमण्डलीको जो साधन प्रणालीका  
उपदेश दे गये हैं वह इस प्रकार है—

साधनाका अङ्ग प्रधानतः तीन है। पहला अङ्ग—  
अङ्कन वा विभिन्न अङ्गमें विष्णुका गुरुचक्रादि चिह्न-  
धारण, दूसरा—नामकरण अर्थात् विष्णुके नामानुसार  
पुत्रादिका नाम रखना, तीसरा—भजन, कायिक, वाचिक  
और मानसिक यह त्रिविध भजन। दान, परित्राण और  
परिदक्षण यह त्रिविध कायिक भजन है। सत्य, हिन और  
प्रिय कथन तथा जात्रानुगोचन ये चार वाचिक भजन  
हैं; दया, स्पृहा और श्रद्धा ये तीन मानसिक भजन हैं।  
इनमेंसे एक एकका सम्पादन करके नारायणमें आत्म-  
समर्पण करनेको ही भजन कहते हैं। उनके मतमें विष्णु-  
के प्रसादसे चरमसुखप्राप्ति ही मनुष्यको एकमात्र  
कामनाका विषय और मन्थनाका मुख्य प्रयोजन है। गिर्य,  
ब्रह्मादि सभी देवगण अनित्य और क्षरणाध्ववाच्य हैं, केवल

ॐ 'जोवैश्वरभेदा वैव जड़वैश्वरभेदा तथा।

जीवभेदा विषयवैव जड़जीवभेदा तथा ॥

विषयन्व जड़भेदा यः प्रवच्यो भेदवचकः।

शोऽप्यथकोऽन्यनादिश्च गदिन्वेत्यादिमात्रं यत् ॥'

(उपंदासिधुत)

ॐ 'एकी नारायण भासीत् न ब्रह्मा न च शक्तिः।

आनन्द एक एवाम भागोन्नारायणः प्रभुः ॥'

'निकषोर्देहाग्रत् सर्वमारितीत् ॥'

लक्ष्मी ही यज्ञर है। विष्णु उस क्षराक्षरसे प्रधान और शतन्त है। विष्णुके गुणोत्कर्षका ज्ञान होनेसे ही उनका प्रसाद प्राप्त होता है सही, पर जीवेश्वरका अमेद माननेमें वे जो अनुकूल हैं, यह कभी भी सम्भवपर नहीं है। विष्णुके प्रति जिन्हे प्रीति उत्पन्न होती है उनका फिर जन्मान्तर नहीं होता। वे वैकुण्ठवासी हो कर सारूप्य, सालोक्य, सान्निध्य और साधि ये चार प्रकारकी मुक्ति लाभ करके अनिर्वचनीय सुखभोग करते हैं।

बहुतेरे पेसा समझते हैं, कि मध्याचार्य पहले शैव-प्राहण थे, पीछे वैष्णवधर्ममें दीक्षित हुए। अनन्तर उन्होंने शैव और वैष्णवका परस्पर विवाद मिटानेकी चेष्टा की। किन्तु यह बात सत्य नहीं जंचती। मध्याचार्यका आदि नाम 'वासुदेव' था, इसी नामसे वे आजन्म वैष्णव रहे, ऐसा मालूम होता है। वैष्णवग्रहमें जन्म होने पर भी आदिवैष्णवोंकी तरह पाञ्चरात्र मतमें उनकी आस्था नहीं थी। पाञ्चरात्रोंके 'वासुदेव' ही उपास्य हैं, किन्तु उन्होंने वासुदेवकी जगह 'विष्णु' की स्थापन किया था। पुराविदोंकी धारणा है, कि उन्होंने वैष्णवधर्म-प्रचारके प्रभावसे सुप्ताचान पाञ्चरात्रधर्म लोगोंकी स्मृतिसे विलुप्त हो गया था।

भारततात्पर्यनिर्णयमें उन्होंने लिखा है, कि अग्निादि चतुर्धेद, पञ्चरात्र, भारत, रामायण, ब्रह्मसूत्र और वैष्णव-पुराणोंसे उन्होंने अपना मत सङ्कलन किया है। विष्णुका प्राधान्यस्थापन ही उनका उद्देश्य है। उस उद्देश्यके परिपोषक ग्रन्थ ही उनके प्राह्य हैं, शैव स्मृति-अप्राह्य।

सच पृष्ठिये तो उनके अद्वैतवाद प्रचारसे अद्वैत-वादियोंके हृदयमें भारी धजा पहुँचा था। यहाँ तक कि, शङ्करमतावलम्बी कोई अद्वैतवादी आदित्यपुराणके मध्य मध्याचार्यकी निन्दा करनेसे बाज नहीं आये हैं। जन-साधारणका कौतूहल दूर करनेके लिये यहाँ पर आदित्य-पुराणका उपन्यास उद्धृत किया जाता है :-

'जय सर्वधर्म-विधायित घोर कलिकाल उपनिघ्न होगा, जब अलेच्छागण प्राणपथेनुका वध किया करेंगे, येदपाठ उठ जायगा, जैन-बौद्धादिका वधेष्ट प्राहुंभांय होगा, प्राहण, स्लेच्छाचारी और शूद्र प्राहणपाती होंगे,

उस समय शत्रुराज यस्मिन् प्रादण्यके औरस्मिन् विषया-रमणीके गर्भसे जन्म लेगा और उसका नाम मधु रहेगा। उससे कर्णाट तिलङ्गादिदेश दूषित हो जायगा। यह विषवा-पुत्र पद्मपादुके निकट शिष्यमायमें वेदान्त पढ़ेगा। सम्पूर्ण शास्त्र अध्ययन कर चुकने पर उसके मनमें धुरी धुरी भावनाओंका उदय होगा। इस पर गुद बड़े विरक्त हो कर उसका प्रकृत परिचय पूछेंगे। अनन्तर जब गुरुको मालूम हो जायगा कि उसने कपटनाका अयलम्बन कर शास्त्र सोच लिया है, तब वे मधुसे कहेंगे, 'तेरा कोई भी सिद्धान्त काममें नहीं आयेगा।' इस पर मधु गिड़गिड़ा कर कहेगा, 'आपके बचन अन्वधा होनेको नहीं, आपसे मेरा यही अनुरोध है, कि पूर्वपक्ष मेरे हृदयमें दृढ़ रहे।' गुद जवाब देंगे, 'तुम्हें सिद्धान्तमें अन्धता और पूर्वापक्षमें पटुता तो होगी, पर तुम्हारे शिष्य पाविष्ट होंगे। वे मोहवशसे सिद्धान्तज्ञानहीन, लोभयशसे राजसेवक, क्रोधवशसे पदवभाषी, दन्तप्रमायसे धार्मिक घेनधारी और हेतुवाद्यजनः सर्वशास्त्रतस्य समझनेमें असम होंगे, थोड़े ही दिनोंके अन्दर वे सदाके लिये घोर नरकमें जायेंगे। अस्मिन्स होनेके बाद तुम वेदान्तमूलकी ध्यास्या करोगे, इस कारण दाक्षिणात्यमें मध्याचार्य नामसे प्रसिद्ध होंगे। कलि-युगमें तुम्हारा प्रभाव भी वधेष्ट रहेगा। आर्यायत्त, उत्कल, गौड़, गङ्गातीर, गोदायरोतीर और अयुंदाक्ष्य छोड़ कर अन्य स्थानमें तुम्हारे शिष्य प्रशिष्य फैल जायेंगे। महाराष्ट्रमें ही उनके मतका वध प्रचार होगा। वे हेतुवादी होंगे। वे यही हेतुवाद करेंगे, कि यह जगत् प्रपञ्च-मिथ्या और माया-कल्पित है, ऐसे मायावादी जो हैं वे यस्तुनः तस्यवादी हैं। वे मिथ्यावादी कर्मकांड-प्रयत्नक जैमिनीकी मीमांसाकी, ईश्वर प्रतिपादक, गौतम-प्रणेन न्यायदर्शनकी, पुराणप्रकृतिके विधेरुबोचक कर्णिल-प्रणेन सांख्यकी, ईश्वर प्रतिपादक, वैशेषिकदर्शन और योगशास्त्र पातञ्जल आदिकों ही शैवशास्त्र मानेंगे। यहाँ तक कि, अद्वैतपोषक सर्वधेष्ट वेदान्तशास्त्र, बद्ध-समन्वित धेद, पुराण, उपपुराण, इतिहास, स्मृति घोर उपस्मृति उनके मतसे शैवशास्त्र होंगे।' वे हेतुवादी कहेंगे, 'मनुष्य मदेभरको परास्पर समझते हैं, किन्तु

वेदमार्ग-व्यतिरिक्त पापिष्ठ मध्याचार्यको नहीं मानने।  
पम्बुनः ये उनकी विषया-पुत्र कहा करने हैं।' महादुष्ट  
मधु प्रवृत्तनचार्यांक है, कल्कालमें यही मधु नियमिन्द्रा-  
प्रयत्न करेगा।

मरिपुराणमें मध्याचार्यको शैवदेवों तो बतलाया है,  
पर ऐसा अथवाभावमण न्यायमङ्गल प्रतीत नहीं होता।  
उनके धनन्तेभर नामक नियमिन्द्रा में दीक्षा, शङ्करा-  
चार्य-प्रयत्न तीर्थ उपाधिग्रहण, उनके गया उनके मताय-  
न्त्रियों द्वारा प्रतिष्ठित मन्दिरादिमें विष्णुके साथ एकत्र  
नियुक्तताकी पूजा इत्यादिकी पर्यालोचना करनेसे  
उन्हें कभी भी नियमदेवों नहीं कह सकते। विद्योपतः  
शङ्कर और माध्य गुरुओंके नियुक्त एक दूसरेके गुरुको  
भी नमस्कार और श्रद्धा भक्ति करते हैं और तो पया,  
शङ्करे रिमडके शङ्कराचार्य उद्विपिनगरके एष्णमन्दिरेमें पूजा  
करने आते हैं। इन सत्र दृष्टान्तोंको आलोचना करनेसे  
मालूम होता है, कि मध्याचार्य एक कष्टर वैष्णव थे।  
वैष्णव और शैवसम्प्रदायमें सद्भावस्थापनको ओर उन-  
का विशेष ध्यान रहता था। उन्होंने जिस वार्षिक  
मतका प्रचार किया, वह पूर्णप्रमर्शन नामसे प्रसिद्ध  
है। पूर्णप्रमर्शन देखो। उनके मतानुयत्तों धर्मसम्प्रदाय  
मध्याचार्य या माध्य कहलाते हैं। मान्य देखो।

मध्याधार (सं० पु०) मधुनः आधारः। मधुकम, मधु-  
मयनीका छत्ता।

मध्याघ्न (सं० पु०) यद् रसात्, यंधी हुरे ईव।

मध्यालु (सं० श्लो०) मधु मधुर् आलु, मधुवत् मिष्टव्य  
तधारव्यं। मूल, एक प्रकारके पौधेकी जड़। यह खाई  
जाती है तथा इसका स्वाद बहुत मोटा होता है। गुण—  
रक्तपित्तनाशक, गुरु, स्वादु, शोथल, स्तन्य और शुक्रकर।

मध्यालुक (सं० श्लो०) कन्दविशेष।

मध्यायास (सं० पु०) आघ्न वृक्ष, आमका पेड़।

मध्याग्नि (सं० त्रि०) मधपानकारी, मध पीनेवाला।

मध्यासव (सं० पु०) मधु मधूकपुष्परसस्तेन वृत्त  
जासवः। १ मधूकपुष्पवृत्त मध, मधुपके फूलकी शराव।  
पर्याय—माध्यक, मधु, माध्यक।

मदिरा और मय इन्द्र देखो।

मध्यासयनिक (सं० पु०) मध्यासयनमुत्पाद्यत्वेनास्य-  
त्येति मध्या-सयन-न्व। शीघ्रिक, कालाल।

मध्याह्नि (सं० स्त्री०) मधु द्वारा आहुति, यद् आहुति  
जो मधुसे होती है।

मध्यज्जा (सं० स्त्री०) मधु ईजते प्राप्नोति कारणत्वेनेति  
ईज-क, पृषोदरादित्यात् ह्रस्वः। मदिरा, शराव।

मध्वृच (सं० स्त्री०) वेदकी एक ऋत्ना।

मनः (सं० पु०) मन।

मनःशाय (सं० त्रि०) आप्नोतीति आप अन्, मनसो  
आपः। मनोश।

मनःशुद्ध (सं० त्रि०) मनः द्वारा प्रसाधन।

मनःक्षेप (सं० पु०) मनका उद्देश।

मनःपति (सं० पु०) विष्णु।

मनःपर्याप्ति (सं० स्त्री०) मनसे संकल्प विह्वल या  
बोधप्राप्त करनेकी शक्ति।

मनःपर्याय (सं० पु०) जैन शास्त्रानुसार एक अवस्था  
या ज्ञान। इससे चित्तन अर्थका साक्षात् होता है। यह  
ज्ञान, ईश्यां और अन्तगय नामक ज्ञानापरणोंके दूर होने  
पर निर्वाण या मुक्तिकी प्राप्तिके पूर्वकी अवस्थामें प्राप्त  
होता है। इसमें जीवोंको नरूपो द्रव्यके पर्यायोंका  
साक्षात् ज्ञान होता है। जैन देखो।

मनःप्रसाद (सं० पु०) चित्तप्रसाद, मनकी प्रसन्नता।

मनःप्रीति (सं० स्त्री०) मनकी प्रीति, मनकी प्रसन्नता।

मनःशास्त्र (सं० पु०) मनोविज्ञान, याः ज्ञान्य जिनमें-मन  
और मनोविकारोंका वर्णन हो।

मनःशिल (सं० पु०) मनो मानसं शिलति आकर्षति  
स्वगच्छेनेति शिल्-क। मनःशिला, मैनसिल।

मनःशिला (सं० स्त्री०) मनःशिल खियां टाप, यद्वा मनः  
प्रसादिका शिला धातुविशेषः। रक्तवर्ण धातुविशेष,  
मैनसिल। (Realgar)

पर्याय—कूटटी, मनोश, नागजिह्वा, नैपाकी, शिला,  
मनोगुप्त, कल्याणिका, रोगशिला, गोला, दिधीन्धि।  
गुण—कटु, स्निग्ध, ऐतन, विष, भूतावेग भय और  
उन्मादनाशक। घृश्वकारक, तिक, कफनाशक, मारक,  
छर्दिकारक, कुष्ठ, ज्वर, पाण्डु, कास और श्वासनाशक  
तथा शुक्र और मद्दुन्कारक। (राजनि०)

रसेन्द्रनारसंमर्हमें लिखा है, कि जिस मनःशिलाका  
वर्ण जयाकुसुमके जैसा होता है वही उत्कृष्ट है और

वही आंघ्रिमें व्यवहार्य है। मनःशिलाकी शोध कर आंघ्रिमें व्यवहार करना चाहिये। बिना शोधी हुई मनःशिला बलहास, मलबद्ध, जर्करा, मूत्ररुच्छ, अश्वरी, हृद्रोगी और अग्निमान्यकर तथा जोषित मनःशिला सर्व-रोगनाशक मानी गई है।

मनःशिलाको शोधनप्रणाली—मनःशिलाको जयन्ती-के पत्ते, भृङ्गराज और लाल बकपुष्पके रसमें भावना दे कर दोला यन्त्रमें एक दिन और छागमूत्रमें एक पहर तक पकाये, बाद कांजीसे धो डाले। इसी प्रणालीसे मनःशिला विशुद्ध होती है।

मतान्तर—विजोरा नीबू, अयन्ती, वटपत्त और अद्रकके रसमें बार बार भावना देनेसे मनःशिला विशुद्ध होती है। इसका गुण—कटु, स्निग्ध, तिक्त, कफनाश, लेखन और सारक। भूताघेश, भय, कास और श्वास-निवारक। (रघुनन्दनसंग्रह)

भावप्रकाश-भतमें—बिना शोधी हुई मद्रिकाका सेवन करनेसे बलकी हानि होती है तथा एमि, मल-मूत्ररोग और जर्कराके साथ मूत्ररुच्छ, रोग उत्पन्न होने हैं।

जोषित मनःशिला—गुरु, घर्णकर, सारक, उष्णवीर्य, लेपनगुणयुक्त, कटु, तिक्तरस। स्निग्ध तथा विष, श्वास, कास, भूत, कफ और रक्तदोषनाशक मानी जाती है।

(भावप्रकाश)

यूनान, पश्चिमा और कनसाट नामक स्थानमें मनःशिला आपे आप उत्पन्न होती है। कुमाउन, चित्रल और कादमोरके उत्तर-पश्चिमांशमें हरितालके साथ और कहीं केवल मनःशिलाका खण्ड पाया जाता है।

किसी भावून पात्रमें मनःशिलाको गरम करनेसे यह गल जाती है। अधिक गर्मी पानेसे इसका मौलिक अंश पृथक् नहीं होता वरन् यह इसकी सफेदीको बढ़ाना है। सफेद मनःशिला स्वभावतः ही कठिन, भङ्गप्रपण, स्पष्ट और नयनरञ्जन तथा रक्तघर्ण होता है। १६८ भाग पत्र हाइड्राइड (Arsenious an hydride) और ११२ भाग कण्ठक एकल मिला कर उत्तत करनेसे हृत्तिम रूपापसे मनःशिला प्रस्तुत हो सकती है।

आंघ्रिमें व्यवहार करनेके लिये नीबू भाषया अद्रक-

का रस डाल कर मनःशिलाको विशुद्ध कर लेना होता है। ज्वरमें साधारणतः पारे और हरितालके साथ एकत्र व्यवहार होता है। सोनेका पानी देनेके समय मनःशिलाकी आवश्यकता होती है।

मनःसयाग (सं० पु०) मनसः संयोगः। मनोयोग।

मनःस्थैर्य (सं० श्लो०) मनसः स्थैर्यः। मनकी स्थिरता।

मन (सं० पु०) मन्यन्ते सुरमित्वादिगुणैर्भाद्रियते इति मन्-घ। १ अन्तःकरण, प्राणियोंमें यह शक्ति या कारण जिससे उनमें वेदना, संकल्प, इच्छा, द्वेष, प्रपन्न, बोध और विचार आदि होते हैं। विशेष विवरण मनु, श्रुतमें देखो। २ अन्तःकरणको चार वृत्तियोंमेंसे एक। इससे संकल्प विकल्प होता है। ३ इच्छा, इरादा। ४ जटाभांसी।

मन (हिं० पु०) १ चान्दीस सेरका एक मान या तौल। २ मणि, बहुमूल्य पत्थर।

मनकना (हिं० कि०) १ तर्क वितर्क करना, चि चपट करना। २ हिलना झोलना, चेष्टा करना।

मनकरा (हिं० वि०) चमकदार, प्रकाशमान।

मनका (सं० पु०) १ पत्थर, लकड़ी आदिका पेया हुआ गोल घण्ट या दाना। इसे परो कर माला या सुमिरनी आदि बनाई जाती है। इसे गुरिया भी कहते हैं। २ माला या सुमिरनी। ३ गरदनके पोछेकी द्रुं जो रोड़के बिलकुल ऊपर होती है।

मनकामना (हिं० स्त्री०) मनोरथ, अभिलाषा।

मनकूला (अ० वि०) स्थिर वा स्थावरका उलटा, चर।

मनकूहा (अ० वि०) वियाहिता, जिमके भाग निकाले हुआ हो।

मनगद्गत्त (हिं० वि०) कपोल-कल्पित जिसकी याम्ब-विक सत्ता न हो केवल कल्पना कर ली गई हो।

मनचला (हिं० वि०) १ साहसी, हिम्मतवाला। २ मनिक। ३ घोर, निडर।

मनचाहता (हिं० वि०) १ प्रिय, जिससे मन चाहे। २ मनके प्रतुकुण्ड, पधेच्छ।

मनचाहा (हिं० वि०) इच्छित, अनिर्वापित।

मनचीता ( हि० वि० ) मनचाहा, मनमाया ।  
 मनजान ( हि० पु० ) कामदेव ।  
 मनतोरया ( हि० पु० ) एक प्रकारका पत्नी ।  
 मनन मं० श्लो० ) मन्यत इति मन-न्मुट् । १ अनघरत  
 अनुमिन्नत, विचार । २ वेदान्त शास्त्रानुसार मुनें श्रुप  
 वापसों पर बार बार विचार करना और प्रशोत्तर या  
 शंका समाधान द्वारा उसका निश्चय करना । ३ भली  
 भांति अध्यापन करना । ४ बोधन । ५ धारण । ६  
 पुष्टि । ७ अनुमान ।  
 मनतशील ( स० लि० ) विचारशील, किसी विषय पर  
 अच्छी तरह विचार करनेवाला ।  
 मनमाना ( हि० क्रि० ) गुंजारना, गुंजना ।  
 मनपाड़—मन्द्राज प्रदेशके निम्नैयलं जिलान्तर्गत एक  
 अन्तरोप । यह अक्षां ८° २३' ३०" तथा देशां ६८° ३'  
 पू०के मध्य पड़ता है । समुद्रगर्भस्थ यह गिरिदेश  
 बालुकामय चरसे परिपूर्ण है । निरन्तर समुद्रके कलोल-  
 से प्रतिघात हो कर यह भिन्न भिन्न स्तरवद्द हो गया  
 है । इस शैल-गिरपर पर एक छोटा गिरां सिर ऊंचा  
 कर सृष्टधर्म-प्रधारकी कामना कर रहा है । परिच्छन्न  
 जाकागमें प्रायः तेरह मोलकी यूरसे इसको चोटी देव  
 पड़ती है । मनपाड़के उत्तरस्थ उपसागरकी ओर एक  
 छोटी नदीके मुहाने पर बालुका प्रोथिन एक बड़ा गिरजा  
 है जो प्राचीन कुन्डशेखरपत्तन बन्दरका परिचय देता है ।  
 मनमाया ( हि० वि० ) जो अच्छा लगे, जो मनकी  
 जावे ।  
 मनभायता ( हि० वि० ) १ जो मनको अच्छा लगता हो ।  
 २ प्रिय, प्यारा ।  
 मनभायन ( हि० वि० ) १ मनका अच्छा लगनेवाला । २  
 प्रिय, प्यारा ।  
 मनमति ( हि० वि० ) स्वैच्छाचारी, अपने मनका काम  
 करनेवाला ।  
 मनमथ ( हि० पु० ) मन्मथ देव ।  
 मनमाडु—नासिक जिलेके चादर महकूमका एक नगर ।  
 यह अक्षां २०° ४' ५०" उ० तथा देशां ७४° २८' ४०"  
 पू० नासिक शहरसे ४५ मील उत्तर-पूर्व में ईस्टियन  
 पैनलसुला रेन्डके जम्बलपुर लाइनके किनारे अवस्थित

है । इसके नजदोककका नूहाकारगिरी और उसके  
 पीछेके अंकाई तथा संकाई दो शृङ्ग देवने योग्य  
 हैं । पानदेश और मालेगांवसे यहां रईको आमदनी  
 होती है ।

मनमानता ( हि० वि० ) मनोवर्षित, मनमाना ।  
 मनमाना ( हि० वि० ) १ जिसें मन चाहे, जो मनको  
 अच्छा लगे । २ मनोमोत, मनके अनुकूल । ३ परोच्छ,  
 इच्छानुकूल ।  
 मनमुली ( हि० वि० ) स्वैच्छाचारी, मनमाना काम  
 करनेवाला ।  
 मनमुटाय ( हि० खी० ) धैर्यमत्त्व होना, मनमें भेद  
 पड़ना ।  
 मनमोदक ( हि० पु० ) यह असंभय या कल्पित थात जो  
 अपना प्रसन्नताके लिये बनाई गई हो ।  
 मनमोहन ( हि० वि० ) १ चित्ताकर्षक, मनको लुभानेवाला ।  
 २ प्रिय, प्यारो । ( पु० ) ३ श्रीकृष्णका नामान्तर । ४  
 एक प्रकारका सदाबहार वृक्ष । यह धरमा, जाया आदि  
 देशोंमें पाया जाता है । यह सीधा और ऊंचा होता  
 है । इसकी लकड़ी साफ होती है और इस पर रंग  
 रस्य बिलता है । इसके फूल बहुत सुगन्धित होते हैं  
 जिससे इतर निकाला जाता है । इस इतरको इलंग  
 कहते हैं और यूरुपमें इसको बहुत खपत होती है । यह  
 बीजसे उगता है । इसका प्रचार अथ बंगालमें भो हो  
 गया है । ५ एक मात्तिक छन्दोभेद । इसके प्रत्येक  
 चरणमें चौदह मात्राएं होती हैं ।  
 मनमोहनी ( हि० खी० ) मनको लुभानेवाली ।  
 मनमौजी ( हि० वि० ) मनमाना काम करनेवाला,  
 मनकी मौजके अनुसार काम करनेवाला ।  
 मनरंज ( हि० वि० ) मनोरंजक, मनोरंजन करनेवाला ।  
 मनरंजन ( हि० वि० ) १ मनोरंजन करनेवाला, मनको  
 प्रसन्न करनेवाला । ( पु० ) २ मनोरंजन देवो ।  
 मनयां ( हि० पु० ) नरमा, रामकपास ।  
 मनयांशित ( हि० वि० ) मनोवर्षित देवो ।  
 मनवान—अयोध्याप्रदेशके सीतापुर जिलेका एक पर-  
 गना । इसके उत्तरमें रायो परगना, पुर्यं और दक्षिणमें लल  
 नऊ जिला तथा पश्चिममें गोमती और सरायन नदी है ।

भूविमाण ६६ वर्गमील है। इसके अधिकांश स्थानमें अग्नी खेती-बारी होती है। इस परगनेमें ६६ ग्राम हैं जिनमेंसे ३६ तालुकदारी और ३० जमादारों हैं। ये सब ग्राम पनवार क्षत्रियोंके अधिकारभुक्त हैं। कहते हैं, कि भकरवदादाहादकी भ्रमलद्वारोंमें पनवार जातिके तीन भाईने ग्वालियरसे आ कर लगनऊ जिलेके इतीडा और महना तथा सोतापुर जिलेके सरीरा नोलगांव पर आक्रमण किया और उन्हें जेल लिया। आज भी उनके बंग घरगण उक्त सम्पत्तिका भोग करते हैं। बेवल महना अधिकारीकी सम्पत्ति जस्त कर ली गई, कारण १८५७ ई०के गद्दमें ये बलवाइयोंमें शामिल थे।

-२ उक्त जनयान परगनेके अन्तर्गत एक गण्ड ग्राम और परगनेका सदर। यह लगनऊ और सोतापुरसे १ मील पश्चिम तथा धारी जहरसे ४ मील दक्षिण सरायन नदीके किनारे अवस्थित है। प्रवाद है, कि सूर्यचंडीय राजा मानघाताने यहां पर नगर बसाया था। उनकी मृत्युके बाद यह स्थान जङ्गलसे विलकुल ढक गया। पर्यटिकालमें इसके पूर्वमें एक अहीर और पश्चिममें मुस्ताफा खां नामक एक मुसलमान आ कर बस गया। मुस्ताफाने उस प्राचीन नगरका पुनः निर्माण किया और अपने नाम पर इस स्थानका मानपुर-मुस्ताफाबाद नाम रखा। राजा मानघातके गद्दका ध्वंसावशेष आज भी विद्यमान है। उरुये भूमिके ऊपर नदीमुखी गद्दका सुदृढ़ और सुदृढ़ गडन विस्मयोद्दीपक है। अग्नी ग्राम बासी उम ईंटीकी अपने घर बनानेके काममें लाते हैं। मनपाता (दि० कि०) माननेका प्रेरणार्थक रूप, किसी को माननेमें प्रवृत्त करना।

मनधियम—कालीकटके एक प्रसिद्ध राजा।

गामरी राजवंश गम्भने विस्तृत विवरण देता।

मनश्चिन् (मं० वि०) मानसमें प्रतिफलित।

मनजा (ध० रवी०) १ इच्छा; इरादा। २ तादर्थ्य, मत लव।

मनस् (मं० श्लो०) मन्थने बुधवनेऽनेनेति मन् (अर्ध-भाउम्पोऽनु। उष् ५।१८) इति अतुत्। लिङ्ग जटोर-यवविशेष। सबह अथयशोर्न इम सूत्रम जटोरकी रचना हुई है, इसका दूसरा नाम लिङ्गजटोर है। पांच

ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय, पांच वायु, मन और बुद्धि यही सबह अवयव हैं। वेदान्तके मतमें यह संकल्प और विकल्पादिका अन्तःकरण-वृत्ति-विशेष है और यह कर्मेन्द्रियोंसे मिल कर मनोमयकोज ही जाता है।

“मनो नाम मत्स्यविकल्पादिमका भन्तःकरणतृषा; मनस्यु कर्मदिवैः गदितं मन् मनोमयकोजो भवति।” (वेदान्तसार)

गर्भस्थित बालके मातृचे महीनेमें मनकी गृष्टि होती है। (मुत्तगथ) सुधृतके मतसे पांच ही महीनेमें यह प्रतिबुद्ध होता है।

“पन्चमे मनः प्रतिबुद्धतं भवति”

(सुधृत शारीरस्थ्या० ३५०)

पर्याय—चित्त, चेतस्, हृदय, स्वान्त, एष्ट, मानस, अनङ्गक, अङ्ग। (गन्दरत्ना०) न्यायके अनुसार इसका गुण—परत्व, अपरत्व, संख्या, परिमिति, पृथक्त्व, संयोग विभाग, वेग। मनोप्राय सुख, दुःख इच्छा, देव, मति और चतन। यह परमाणु स्वरूप है। जिनोमणिके मतसे वायव्य परमाणु है।

“परापरत्व संख्यायाः पदार्थगान् मानने।

मनोप्रायं सुखं दुःखमिच्छाद्वेषो मतिः कृतिः ॥

भवोपगयाज श्रमतां तस्यात्सुखमिदेष्यते ॥”

(भाषापरिच्छेद)

सृष्टिकारिकाके मतानुसार इसका लक्षण इम तरह है—

“उभयात्मकमनः संकल्पनमिन्द्रियस्य साधर्म्योत्।

गुण परिणामविशेषानात्वं वाक्यमेदान् ॥”

(शंका० २७५०)

मनमें इन्द्रिय धर्म है। अतः यह उभयात्मक है याने मनको ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रिय दां कहा जाता है। ज्ञानेन्द्रिय पर आरुढ़ हो कर यह काम करता है इसीसे ज्ञानेन्द्रिय तथा कर्मेन्द्रियका अध्यक्ष है अतः यह कर्मेन्द्रिय कहलाता है। मन संकल्पात्मक है, संकल्प अर्थात् विवेचना करना मनका ही असाधारण धर्म है। नेत्र आदि इन्द्रियां चक्षुओंके सामान्य आकाशमात्रको ग्रहण करती हैं। पीछे मन उन्का विशेषाकार निर्दिष्टि करता है। सच्यगुणके परिणाम कई तरहके हैं। मस्यगुणके किसी एक विशेष परिणामसे मनका जन्म है। “महदाव्यं



आप काप्य लगना।' ( भाष्य १३१ ) प्रकृतिका जो प्राथमिक कार्य है, प्रथम चिन्ताका मध्या प्रथम परिणाम है उसको महत्कार्य कहते हैं। इसका कार्य मन है अर्थात् महत्कार्यसे ही मनको उत्पत्ति है। यह मननवृत्तिक है, अर्थात् इसका कार्य मनन होनेसे इसका नाम मन हुआ है। मनन शब्दका अर्थ निद्रनय है। 'तदन्मनयत्यधुनेन्द्र' ( भाष्यदर्शन ३१५ ) निद्रु शरीरका एक अवयव मन है। यह अन्मनय, अर्थात् अन्ध पदार्थोंके परिणामसे उत्पन्न हुआ है।

सांख्य दर्शनके मतानुसार मन जन्मप्रवण है। इसीलिये यह भाव यस्तुओंका विकारविशिष्ट है। भाव शब्दका अर्थ है जायमान यस्तु। जिन जिन यस्तुओंका जन्म होता है उन उन यस्तुओंको वृद्धि, हास, परिवर्तन और विनाश होता ही है। यस्तुके इस तरहके परिणामको द्वायानिक परिदृष्ट भावविकारको संज्ञा देने हैं। आत्माके निश्चाय संसारमें ऐसा कोई यस्तु नहीं जो भावविकारग्रस्त न हो।

प्रकृतिका कार्य नितान्त दुर्बोध्य है। केवल एक मन ही संसारके सभी पदार्थोंका परीक्षक है। किन्तु प्रश्न है कि मनका परीक्षक कौन है? चिन्ता करने पर माह उत्पन्न होता है। यदि यह कहा कि मन स्वयं ही अपना परीक्षक है, तो यह बात युक्तिसंगत नहीं जान पड़ती। क्योंकि, आप ही अपना प्रमाण और आप ही अपना परीक्षक बनना, आप ही अपने कंधे पर चढ़नेके समान है। मन क्या है? उसका रूप कैसा है? उसका शक्ति तथा उसका संस्थान है कैसा है? मन पर इन सब बातोंके निर्णयका भार अर्पण करनेमें अपने कंधे पर आप चढ़नेका श्रेय मनके ऊपर डालना होगा। नैय आदि इन्द्रियावशिष्ट बुद्धि, किसका कैसा आकार है, किसका कैसा गुण है डाक इसका सुस्पष्टतान उत्पन्न नहीं करता, एकनाय मन ही विशिष्ट बुद्धिजनक है। इस तरह यह बात स्थिर रहने पर मनका परीक्षक बुल्लम होता है।

इस पर कबिल कहते हैं—सामान्य प्रमाणान करने पर ही दिव्या देगा। जब आत्मा और मनके विषयका चिन्ता को ज्ञातो है, तब मन और आत्माका भिन्नता स्पष्ट

दिव्या देता है। जो कहते हैं, कि मन और आत्मा एक ही यस्तु है, वे भी आत्मा और मनका विचार करने समय आत्माको भिन्न क्रिये बिना विचारको निश्चित नहीं कर सकते। ये जब मनको गीजते हैं, तभी उनका मन उनको आत्मामें पृथक् हो जाता है और पृथक् हो कर आत्माके रूपको परीक्षा करता है। किन्तु विचारशक्ति का अभाव या भ्रमयज्ञात् उसे वे देख नहीं सकते। इसीलिये मुझसे कहते हैं, कि मनका दूसरा नाम आत्मा है और आत्माका दूसरा नाम मन है।

कुछ लोगोंका कहना है, कि द्वापको तरह मनका भी स्वरूप प्रकाशकत्व शक्ति है। द्वाप जैसे अपनेको या अपनी प्रकाश्य यस्तुको प्रकाशित करता है, उसी तरह मन भी अपनेको और अपने स्वरूप-सत्ताको अवधारण करता है।

मन क्या है? किस पदार्थका नाम मन है—इन प्रश्नोंके उत्तरमें कपिलका कहना है, मन देहकी आश्रय लेनेवालों एक यस्तु है। मन देहाश्रित पदार्थ है सही; किन्तु यह अस्थि-मांसाविकी तरह नहीं है। मन 'मर्द' द्रव्यके परिणाम-विशेषमें उत्पन्न होने पर भी क्षणध्वंसो नहीं। तत्त्वज्ञान होने तक इसका स्थायित्व रहता है, प्राणका संयोग विनष्ट होने पर जब स्थूल शरीर गिर जाता है, तब मन अस्थिमांसको तरह उसमें नहीं रह जाता। शरीर विनाश हो जाता है; किन्तु मनका उस तरह शीघ्र नाश नहीं होता।

नैयायिकोंका कहना है, कि मन नित्य और अपव्य रहित है। मनका अवयव नहीं, इसलिये उपाधि भी नहीं है। अवयव न रहनेसे मनका उपचय-अपचय भी नहीं है। किन्तु आहारादिके कारण मनको आहासवृद्धि देखी जाती है उसे समझना होगा कि यह मनको नहीं, परं मनके रहनेवाले स्थान (गोलक) को है। इस स्थानका उपचय मन पर पड़ता है। बालकवयमें इन्द्रियकी भ्रष्टताके कारण इन्द्रिय शक्तिकी अन्वता रहती है, यौवनमें उन स्थानोंको पुष्ट होनेके साथ साथ इन्द्रियशक्ति भी पूर्ण होती है, फिर मास्य षष्ठ हास प्राप्त होता है, यही पूर्वोक्त निरवयव या अवयवहीन शब्दका नमूना है। निरवयव या अवयवहीन पदार्थका विनाश कैसा है?

अवयवका घट जाना ही उसका अंश होना है। इसी-  
 लिये अवयवरहित मनका विनाश नहीं होता।

मन एक तरहसे अवयवरहित द्रव्य है। द्रव्य कहने-  
 से हमारे सरल ज्ञानमें जो इन्द्रियप्राप्त स्थूलभावका उदय  
 होता है, द्रव्यका रूप टोक वीसा नहीं है। जितमें जिम्का  
 गुण और धर्म रहता है, वह द्रव्य है। यह लक्षण साव-  
 यव तथा अवयवविहीन दोनोंमें ही विद्यमान है।

मन सूक्ष्म है। और तो क्या, मन सावयव परमाणु-  
 के समान है। ऐसा सूक्ष्म होनेसे एक समयमें दो या  
 उससे अधिक वस्तुको ग्रहण नहीं कर सकता। यही  
 कारण है, कि एक समयमें दो वस्तुका ज्ञान नहीं होता।  
 'अन्यत्रेवमना अभुवं गाश्रीयं' यानां में अन्यमनस्क या वहा  
 लिये सुन न सका। एक ओर मन रहने पर दूसरी ओर-  
 से वह उदासीन रहता है इसका कारण मनकी यह पर-  
 माणु सुल्यता है। मन जब एक इन्द्रियमें संलग्न रहता है,  
 तब उसी इन्द्रियमें ही निमग्न रहता है। उस समय उसका  
 ऐसा कोई क्षेत्र (अंश) नहीं रह जाता, जिसमें लिन हो  
 कर उस विषयके भले बुरेका विचार कर सके। स्थूल या  
 सावयव वस्तु ही ही या उससे अधिक वस्तुओंमें  
 संयुक्त हो सकती है। क्योंकि उसके बहुत क्षेत्र या स्थान  
 हैं। किन्तु मन ऐसा सूक्ष्म है, कि एक ही वस्तुमें संयुक्त  
 होनेके समय उसीमें निमग्न हो जाता है। यही कारण  
 है, कि दो मनुष्योंका एक समयमें दो या उससे अधिक  
 ज्ञान उत्पन्न नहीं होता। फिर हम लोगोंका यह भ्रम  
 है, कि भोजनके समय युगपत् स्पर्शन और रसमन ज्ञान  
 उत्पन्न होता है। यथार्थमें यह क्रमशः होता है, युगपत्  
 नहीं होता। जैसे एक स्त्री पत्रावत्र एक छोटी मूर्ति द्वारा  
 एक बार छेड़ने पर उसके युगपत् छिड़ जानेका भ्रम  
 होता है उन्ही तरहका यह भी भ्रम है।

यही नैयायिकोंका सिद्धान्त है। किन्तु सांख्यका  
 मत कुछ और है। सांख्यका कहना है, कि मन अनित्य है।  
 मन उत्पन्न वस्तु है इसीसे यह अनित्य है। अनित्य होनेमें  
 मन घड़े आदिकी तरह क्षण विनाशी नहीं है। मन जीवके  
 जीवन्मय लोच पानो मुक्ति न होने तक जीवित रहता है।

मन सावयव है। मन यदि अवयव रहित होता तो  
 किमोके साथ संयुक्त नहीं होता। मनकी वृद्धि या हास

नहीं होता। उसके आधारस्थानकी दामवृद्धि हुआ करती  
 है। यही दामवृद्धि मन पर आरोपित होती है। मन  
 सूक्ष्म है सही, किन्तु परमाणु सुल्य नहीं। इसका कोई  
 कारण नहीं, कि आंशोंसे दिव्याई न देनेसे ही यह परमाणु  
 की तरह सूक्ष्म और अवयव रहित होगा। यायु भी तो  
 आंशोंसे दिव्याई नहीं देतो तो क्या यायु भी अवयव रहित  
 है? यायु भी सावयव है। यह भी अनेक परमाणुओंका  
 प्रयाह है।

एक समय दो या अधिक ज्ञान नहीं होगा, ऐसा  
 कोई नियम नहीं।

'क्रमशोऽक्रमशश्चेन्द्रियवृत्तिः' इन्द्रियवृत्ति यानो चेन्द्रि-  
 यिक ज्ञान स्थवविद्योयमें क्रमशः होता है, स्थलविद्योयमें  
 एक समयमें हो होता है।

मन सावयव है या अवयवरहित? नश्वर है या  
 अनश्वर? एक समयमें बहुत ज्ञान होता है या नहीं?।  
 इत्यादि प्रश्नों पर दर्शनशास्त्रमें बहुत याद-वियाद  
 है। यहाँ केवल उसका सिद्धान्तमात्र दिताया गया।  
 फिर भी यह नैयायिकोंका युक्ति पर अधिक निर्भर है।  
 किन्तु सांख्यचार्योंका 'निर्भर' ज्ञानसाध्य है, युक्ति  
 उसको केवल सहायकारिणी है। प्रधान धामसावयव यद्दने  
 भी कहा है कि मन सावयव है इसीलिये बहुनेरे लोग  
 मनका अवयवयुक्त होना स्वीकार करते हैं।

छान्दोग्योपनिषद्के ६ कं अध्यायमें इसके मन्त्रधर्मों  
 एक आध्यायिका है, वह मन तरह है,--उद्दालक श्वेत-  
 केतुकी प्रशविष्टु बनानेकी इच्छाने प्रतिदिन उदाहणके  
 साथ प्रश्न पूछा करते थे। एक दिन उन्होंने कहा, "न  
 नाथ कश्चनामतमविज्ञातमुदाहृत्यति" यत्स! हमारे  
 घंके किमो ब्रह्ममोने अद्भुत और अविज्ञात पदार्थोंको  
 घोषणा नहीं को है। अर्थात् समो सर्वधे। इस पर  
 श्वेतकेतुने कहा, कि यह कैसे सम्भव हो सकता है?।  
 श्वेतकेतुके इन प्रश्नके उत्तरमें उद्दालकने वाद्यभूषके  
 रहस्यका उपदेश दे कर पीछे ध्याधारम भूतका तरह सम-  
 भाते समय कहा, "अप्रमयं हि सौम्य! मन सापोमयः  
 प्राणः तेजोमयो वाक्" हे सौम्य! श्वेतकेतो! मन अप्र-  
 मय अर्थात् वाद्यध्वका परिणामविद्योय है। प्राण जल-  
 मय और वाक् तेजोमय है। श्वेतकेतुने इन बातोंका मर्म

न समम् मरुते पर कदा, 'युय एव मां भगवान् विज्ञा पदन्तु' यानो किर कहिये, मैं समम् नहीं सका। तब उद्दालक श्वेतकेतु को समझानेके लिये किर कहते लगे, पृथ्वी धातु, भगवान्तु और तेजोधातु है। धातुका दूसरा नाम भूत और पृथ्वी धातुका दूसरा नाम अन्न है। शाकान, वायु धीर यह (पृथ्वी) तीनों भूत परस्पर मशिंगन हो सर्वांग चिराजमान हैं। पूर्वोक्त तीनों धातु या पांचों धातु आहाराके मिया मारे पदार्थोंका उपादान और पोषक है। बाहरके अन्न आदि धातु आध्यात्मिक धातुमें संयुक्त या सम्मिलित हो कर उन सबोंको स्थिति और पुष्टि कर रहते हैं। इसको चीनि इम तरह है,—

भोजन करनेवाले आहारीको जठराग्निमें भोजन किया हुआ अन्न परिष्कार होकर पहले तीन भागोंमें बट जाता है। जो मूल्यतम भाग (अन्नमल) है वह पुरोप है, जो मध्यम भाग है वह मांस है और जो सूक्ष्म है वह इन्द्रिय और मन है। जैसे दही मधनेके बाद उसमेंसे उसका सार या सूक्ष्म धातु मिश्रितमायमें उत्पन्न होता है, उसी तरह तेज, अग्नि और अन्न ये तीन प्रकारके घाघ जठरामल और वायु द्वारा मथित हो कर उनका सारांज ऊपर उठता है। किर यह नाड़ो मार्गसे निराओं द्वारा परिचालित हो कर ऊर्ध्व पदार्थोंको उत्पत्ति, स्थिति और पुष्टि करता रहता है। उदानवायु सार है उदुगत, अपानवायु अमार निःसारित और प्यान वायु समुत्थित सार समुदायको रस-रक्तादि आकारमें परिणत कर शरीरके सब स्थलोंमें ले जाता है। इसीलिये मैंने कहा है, कि मन अन्नमप है, प्राण जलमय है और वायव तेजोमय है। यदि तुम इसका प्रत्यक्ष करना चाहो तो अन्न, जल और तेज किसोका भी उपयोग न करना और आजके सोलहवें दिन तुम मेरे पास आना।

श्वेतकेतु गुप्तको आज्ञा मान पन्द्रह दिन तक अनाहार रह कर सोलहवें दिन मुझके समीप गया। इसके बाद गुप्तने कहा,—'शुक्रः सीम्प ! यंज्ञि सामानि चाध्येसि।' हे सोल्य ! तुम्हारा शुक, यज्ञ और सामका अध्ययन हो गया है। श्वेतकेतुने कहा,—'न चैनाः प्रतिभान्ति भोः।' हे पिता ! आज मुझे कुछ भी स्मरण नहीं हो रहा है। तब श्वेतने कहा,—जैसे काष्ठके अमाप-

में महान् अग्निपुण्ड्र भी सुख जाता है, किर तनिक अहार भी काष्ठके संयोगमें प्रज्वलित हो उठता है उसी तरह आहारके अमायमें तुम्हारा मन और इन्द्रियां क्षीण हो कर निर्वाण प्रायः हो चुकी हैं, तुम कुछ उपयोग करो, जिससे तुम्हारी जठराग्नि प्रज्वलित हो उठे। इसके बाद तुम देखना, कि तुम्हारे मस्तिष्कमें सभो विषयोंका उदय और तुम्हारा स्मरण-मार्ग शोक हो जायगा। गुप्त उद्दालकने अपने जिन्य श्वेतकेतुको आहारादिकी हाम-पुक्तिमें मनके हाम और पुक्ति होती है, इसको अच्छी तरह समझाया। सांख्य इसी मतका अनुगामी है। इसीलिये सांख्यके मतमें मन अक्षय्यसंयुक्त तथा नश्यत है। नश्यत होने पर भी यह क्षणभङ्गुर नहीं। सांख्यका कहना है, कि मन साक्षान् मूल प्रकृतिसे उत्पन्न हो कर सब शरीरमें रहता है। वह हमारी आत्मामें और तुम्हारी या दूसरेकी आत्मामें विराज रहा है। मोक्ष तथा मदा प्रत्ययके मिया इसका विभाग नहीं होता।

कुछ लोगोंने मनको आत्मा कह चाला है। संक्षेपमें उनके मनकी आलोचना की गई है।

इसका प्रमाण क्या, कि मन आत्मा नहीं है? प्राण और इच्छा आदि चेतन है। गुण, सकृन्प, विकृत, अक्षय्य आदि चेतनका कार्य है। ये सभी मन-विषयोंमें दिखाई देते हैं, दूसरी जगद नहीं। इन्द्रियके सिधित होनेमें जब प्राण तुल्योभाव धारण करना हो तो भी मन निवृत्त नहीं होता। यह स्वप्न, गृह्णति और अनुध्यानादि कार्योंमें ध्यातु रहता है। मन यदि प्रसुप्त, विहीन और ध्वंस हो जाय, तो मारी वारों भी तुम हो जाते हैं। इस अक्षय्यके मिया अन्य प्रमाणोंमें यहो स्पष्ट मालूम होगा, कि मन ही आत्मा है। आत्मा उसमें निवृत्त नहीं। प्रकाश जैसे अपनी सत्तासृष्टि लिये रज दूसरेकी सत्तासृष्टिही उपलब्ध करता है वैसे ही मन भी अपनी सत्तासृष्टिही लिये रज इन्द्रियोंपर यात्रा पदार्थोंकी सत्तासृष्टिही धारण करता है। असंख्यजन्तिसम्पन्न मन विवेक विवेक जन्तु और गुणके अनुसार विवेक विवेक उपाधि धारण करता है। संकल्प-विकल्प जन्तुसे ही मन, वस्तु और मोक्षों जन्तुमें बुद्धि और अपनी सत्तासृष्टि जन्तुमें आत्मा

विद्यमान है। जिसके मस्तिष्क है, उसको मन और आत्मा रहेगी ही। जिसको मस्तिष्क नहीं है, उसको मन या आत्मा नहीं है। मनोगोलक (मनके रहनेका स्थान) के न्यूनाधिक्यके कारण सबका मन एक समान क्षमता शील नहीं। पशु पक्षी आदिका मानसगोलक अपूर्ण रहता है, इसीलिये उनके आत्मा या मन अपूर्ण है। कौटपत्योंके तो उसकी अपेक्षा और भी अपूर्ण है। अतएव आत्मा मन नामसे अव्यय ही दृश्य है; किन्तु वास्तवमें एक है। सब दर्शनशास्त्रोंमें हो एक स्वरसे ही इस मतका खण्डन दिखाई देता है। मन जड़ है, जड़ स्वयं प्रेरित नहीं हो सकता। इसके उत्तरमें कपिल कहते हैं—मनको आत्मा जान कर निश्चिन्त रहना मोक्षार्थियोंके लिये उचित नहीं। श्रेय अपनी धारणा, ध्यान, समाधि और प्रज्ञा द्वारा जान गये थे, कि आत्मा नित्य, शुद्धस्वभाव और चित्तस्वरूप है। मन-शील ज्ञानो मनुष्योंमें यह अनुभव कर लिया है, कि आत्मा, मन और बुद्धिसे बिल्कुल स्वतन्त्र है। इस अनुभवको प्रणाली इस तरह है,—

मन जब स्थिरभावसे अपनेको देखता है, तब उसको मालूम होता है, कि मैं आत्मा नहीं बर मैं आत्माके अधीन हूँ; मैं आत्माको भोगसामग्री हूँ, मैं सक्रिय और सचिकार हूँ और आत्मा निष्क्रिय और निर्विकार है। किसी भी समय आत्मामें विकार दिखाई नहीं देता। संशय, निश्चय, विपर्यय, सन्धान, निर्विचिन ये सब मनमें ही होते हैं। आत्मा इन सबको देखनेवाली धर्मात्मा साक्षी है।

मन जब अपने निर्णय या निर्विचिनमें प्रवृत्त होता है तब यह पूर्वोक्त आत्मामें पृथक् हो जाता है। मन आत्मामें पृथक् न हो कर अपना निर्विचिन नहीं कर सकता। जरा ध्यान देनेमें स्पष्ट देखा जा सकता है, कि ज्ञान स्वयंकार कैसे प्रणाली द्वारा सम्पन्न होता है। "मेरे मन"के सिवा "मैं मन" कोई भी यह बात नहीं कहता, जैसे ही ज्ञान भी नहीं होता है। "मेरा मन" इस अपने उत्पन्न ज्ञानको व्यवहारपरम्परा देखतेसे आत्मामें साथ मनका इन्द्रहृदयभावसे सिवा ऐश्वर्यका सम्बन्ध दिखाई नहीं देता। आत्मा द्रष्टा है और मन दृश्य।

आत्मामें साथ मनका यदि इस तरह इन्द्रत मध्यन्ध नहीं हो तो मनुष्य कभी न कभी अवश्य "मेरे मन" के बदले "मैं मन" कहता। किन्तु कोई यह झमसे भी नहीं कहता इसीलिये विश्राम करना उचित है कि आत्मा मन नहीं।

और भी विचार कर देनासे "मेरा" इत्याकार साक्षात् प्रत्यय मनुष्योंके मनमें बहुत दिनोंसे विद्यमान है और उसके सम्पूर्णके लिए कितने ही विशेषण या सम्बन्ध पूरकवस्तु उसके समान दिखाई देती है। इसी कारणसे यह साक्षात्विद्यान एक समय एक तरह नहीं रहता। भिन्न भिन्न समयमें भी एक समान नहीं रहता। भिन्न भिन्न समयमें भिन्न भिन्न आकार धारण करता है। कभी मेरा मन, कभी मेरा ज्ञान, मेरो बुद्धि, मेरा हाथ, मेरा पैर इत्यादि एक एक ज्ञान या विजिप्त ज्ञान प्रसव करता है। किन्तु जब "मैं ज्ञान" उत्पन्न होता है तब उसमें किसी प्रकारकी अक्षांश नहीं रह जाती। इसी लिए मैं इस आत्मसत्ताबोधक ज्ञान निराकाशा है, और उसमें किसी विशेषण या सम्बन्ध पूरक वस्तुका अन्वय नहीं रहता। इसलिये "मैं" स्वयं स्वतःसिद्ध है। फिर भी "मैं" यह ज्ञान, मनका स्वतःसिद्ध भावविशेष है। इसीलिये यह वृत्ति है।

आत्मा चैतन्य और मन जड़ है। चैतन्यका स्वभाव प्रकाश है और जड़का अन्धकार या अप्रकाश। मनका अप्रकाशस्वभाव अनुभव और युक्तिसे सिद्ध है। मन यदि आत्मामें तब प्रकाश स्वभावका होता, तो मनुष्यकी सुषुप्ति, मूर्च्छा और मुग्ध आदि अवस्था नहीं होती। क्योंकि स्वभावको कभी भी अन्वया नहीं होता। ऐसा नहीं होता, कि जहाँ गत्मा है वहाँ भाग नहीं और जहाँ गत्मा नहीं वहाँ भाग है। अतः सुषुप्ति मूर्च्छा आदि मनका अप्रकाश अवस्थाको देख कर मनका जड़त्व सहज ही निर्णय हो सकता है।

इस पर यह आपत्ति हो सकती है, कि आत्मामें प्रकाश रूपी करनेसे भा यहो फल है। सुषुप्ति, मूर्च्छा आदि अवस्था अवस्था देख कर जैसे मनका अप्रकाशत्व मानते हो, वैसे ही आत्मामें जड़त्व भा मान सकते हो।

इसके उत्तरमें कथितका कहना है, कि यह बात श्रेय नहीं है। क्योंकि आत्माका प्रकाश स्वभाव किसी भी समय नहीं हटता। विरोधा यह है, कि आत्माके साथ मिल कर मनका प्रकाश नष्ट हो जाता है। जैसे दिनमें भीत पर सूर्यका जो प्रकाश रहता है, सूर्यको और एक वृत्तका टुकड़ा रखनेसे जो प्रकाश दोवार पर पड़ता है, यह पहले प्रकाशमें दुगुना हो जाता है। यह द्विगुणित प्रकाश नितान्त तीव्र तथा अत्यन्त उज्ज्वल है। इसी तरह आत्मा और मनके मिल जानेसे उनका प्रकाश द्विगुणित हो जाता है।

इस द्विगुणताके कारण जाग्रतकालका नीतन्त्र प्रथिक सुषुप्त अर्थात् जाग्रतव्यमान होता है। जब प्रांच अज्ञानका मन तमोगुणोद्रेक यज्ञात मलिन रहता है, तब आत्मप्रकाशका प्रतिबिम्ब ग्रहण करनेमें अक्षम रहता है। उस समय आत्मा प्रकाश विलुप्तप्रायः या कम हो जाता। इसीसे सुषुप्ति और मूर्च्छाके समय एक गुण ही प्रकाश रहता है। यानि जाग्रत समयका प्रकाश उस समय घट कर एक गुण ही रह जाता है। इसलिये हमलोग कहते हैं, कि मूर्च्छा और सुप्तिकालमें ज्ञान नहीं रहता, किन्तु उस समय भी आत्मा एक-गुणितप्रकाशमें विराजित रहती है।

इस पर यदि कहा जाय, कि उस अवस्थामें भी आत्मा सचेत रहती है तो उसका प्रमाण क्या? प्रमाण यज्ञो है, कि सुप्तोत्थित और मूर्च्छित व्यक्तिके निद्रा और मूर्च्छा भङ्ग होनेके बाद ही उसे ऐसा मालूम होता है, कि मैं मूर्च्छित था, कुछ भी ज्ञान नहीं था। इस अनुभवके एक देशमें जो 'मैं' और 'था' अंश है, यही तात्कालिक आत्मसत्ता या आत्मप्रकाश रहनेका अनुमानक है। उस समय यदि किसी प्रकारको सत्तास्फूर्ति नहीं रहती तो कभी भी जीवको ऐसा स्मरणमयक ज्ञान उपस्थित नहीं होता। पृथानुभवके लिये स्मृकारके बलसे ही स्मरणमयक ज्ञानका उदय होता है। यह नियम स्वोकार करनेसे यह भी अपवाद स्वोकार करना पड़ेगा, कि उस समय मैं व्यापारिक प्रकाशमें अवस्थित था।

विषयका आकर्षण, मनका अग्रप्रकाश और अज्ञान ये सभी एक हैं। मन जो उस समय आत्मप्रतिबिम्ब

ग्रहण करनेमें अक्षम था, विषयका ग्रहण करनेमें विरत था, उसे और किसीने नहीं देखा, केवल आत्माने ही देखा था। मन अभी तमसाच्छन्न है, आत्माने जैसे मनको अर्थात् तमसाच्छन्न मनको देखा था, इसी कारण निद्रा या मूर्च्छाभङ्गके बाद आत्माको उमका स्मरण रहता है।

मन अपना सत्तास्फूर्तिको स्थिर रख कर दूसरेको प्रकाश करता है, एकमात्र मनके बलसे ही जीव सव्यापार और मनके अभावमें निष्वापार है, सुतरां मन ही आत्मा है, ये बात नितान्त स्पष्ट हैं। आत्मा मनके द्वारा ही विषयको ग्रहण करती है इसीसे मनमें आत्माका प्रथम होता है। (संस्कृत ०)

मन कहाँ अवस्थित है? मनके इस अवस्थितिव्यक्तिको ले कर ज्ञानकारोंमें विभिन्न मत देखा जाता है। किसी किसी पुराण और तन्त्रका मत है, कि मनका स्थान दोनों भूके बीचमें है। देहवापिनो इन्द्र, विष्णु और सुषुम्ना नामकी तीन प्रधान नाड़ी हैं। यह नाड़ी तीन नाभि हैं जो हृदयिण्डसे उत्पन्न हो मूलाधारमें चली गई हैं। यहांसे फिर तीन धारामें निकल कर दोनों पादों और मध्यास्थि या मेरुदण्डका आश्रय करती हुई मन्त्र तक फैल गई हैं। इन तीन प्रधान नाड़ोके अनेक शाखा-नाड़ी हैं। फिर उसके भी अनेक प्रशाखा हैं। कहने का तात्पर्य यह कि समूचा शरीर गिरामय है। जिस प्रकार पोषकता पत्ता जोर्ण होने पर वह तन्तुमय दिखाई देता है, उसी प्रकार शरीर जो तन्तुमय अर्थात् गिरामय है।

उक्त दोनों नाड़ियोंमें मूलाधारतन्तुमें जो सूक्ष्म स्नेहमय तन्तु गुच्छाकारमें हैं। आश्रयीयूल गिराके माधयें स्व स्नेहतन्तु प्रह्लादधके नीचे जा कर शेष हो गये हैं। जिस स्थानमें स्नेहमय तन्तुगुच्छ शेष हुए हैं यह स्थान प्रविष्ट अर्थात् गांडयुक्त है। इस तन्तुप्रविष्टका वृत्त-भाग आवाचक और ऊर्ध्वभाग सहकारक है। मन इस आवाचकमें अवस्थित है तथा यहां पर यह कर अपना कार्य करता है। मन जब सिग्ताकारमें प्रवृत्त रहता है, तब मन्त्रकका समस्त व्यापारमण्डल स्पन्दिता होने लगता है तथा सौख्य, मुहूर्त, सु-आदिके विरोध विरोध स्थान विरत और बुद्धि हो जाने है।

इस विषयमें भी मतभेद देखा जाता है। कोई कहते हैं, कि मनका स्थान मस्तक नहीं है, हृदय है। हृदयके भीतर जो अणुपाकार मांसखण्ड है अर्थात् जिसे हृदयपत्र कहते हैं, उस मांसखण्डके उदराकाशमें ही मनकी वास-भूमि है। उनका यह अनुभव है, कि मनुष्य जो ध्यान वा चिन्ता करते हैं वह हृदयमें रख कर ही करते हैं तथा उनकी ध्येयवस्तु हृदयाकाशमें प्रतिबिम्बित होती है। इस कारण मन मस्तकमें नहीं है, हृदयमें है। नैयायिकोंके मतमें मन द्रव्यपदार्थ है।

“द्रव्यं गुणालया कर्म सामान्यं सविशेषकम् ।  
समायापक्षया भावाः पदार्थाः सतः कीर्त्तिताः ॥  
कित्यप्येतेजो मद्द्रव्योम काशा दिक् देशिनी मनः ।  
द्रव्याधि,.....॥” ( भाष्यपरिच्छेद )

मन्य नैयायिकोंने पहले जागतिक पदार्थको द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समायाय और अभाव इन सात भागोंमें विभक्त किया है। उनके मध्य क्षिति, अप, नेत्र, मस्तक, ध्योम, काल, दिक्, देश और मन ये नौ द्रव्य पदार्थ हैं।

सांख्य मतमें भी मन द्रव्यपदार्थ है। किसी किसीका कहना है, कि त्रिगुणात्मिका प्रकृतिसे मनको उत्पत्ति है। सुतरां मन द्रव्यपदार्थ नहीं हो सकता। मन जब गुणोत्पन्न है तब वह द्रव्यपदार्थ नहीं है, गुणपदार्थ है। इसके उत्तरमें सांख्य कहते हैं, प्रकृति गुणपदार्थ नहीं है, द्रव्यपदार्थ है। प्रकृति पुरुषरूप पशुका बंध करती है, इसीसे उसका गुण नाम रखा गया है। सच पूछिये तो वह गुण पदार्थ नहीं है, द्रव्यपदार्थ है, सुतरां प्रकृतिसे उत्पन्न मन भी गुणपदार्थ नहीं, द्रव्यपदार्थ है।

सांख्यदर्शन देखो।

आत्माके मनःसंयोगसे ही ज्ञान होता है। पहले ही कहा जा चुका है, कि प्राद्वल्यशांदि जो कुछ अनुभव होता है, मन ही उसका प्रधान सहज है। मनके संयोगसे निम्नोक्त प्रणाली द्वारा ज्ञान हुआ करता है। आत्माका मनके साथ, मनका इन्द्रियके साथ और इन्द्रियका विषयके साथ सम्बन्ध होनेसे ज्ञान होता है।

“एवमनःसंयोग एव ज्ञानसामान्ये कारणम् ॥”

( कुकुरादी )

ज्ञानसामान्यके प्रति त्वक् तथा मनःसंयोग ही प्रधान कारण है। विषयके साथ इन्द्रियका, इन्द्रियके साथ मनका और अन्तमें मनके साथ आत्माका इतना द्रुत सम्बन्ध है, कि उसे लिख कर प्रकट नहीं कर सकते। बहुत सा पक्षियोंमें एक साथ सूँड़े द्वारा छेद करनेसे प्रत्येक पक्षीका छेद एकके बाद एक हो जाता है, किन्तु उसका कालकी सूक्ष्मताके कारण अनुभव करना मानवयुद्धिसे बाहर है।

मन बहुत सूक्ष्म है, इसीसे एक कालमें दो विषयका ज्ञान नहीं होता।

“असौगपयान् ज्ञानानां तस्यानुत्पत्तिर्हेष्यते ॥”

( भाष्यपरिच्छेद )

मन अणु है अर्थात् सूक्ष्म है, इसीसे ज्ञानका असीम-पक्ष है, एक कालमें कोई भी ज्ञान नहीं होता। चक्षुका संयोग होनेसे ही ज्ञान होता है सो नहीं। मान लो, मन किसी विषयकी चिन्तना कर रहा है, किन्तु दर्शनेन्द्रिय चक्षुसे किसी एक पदार्थकी देखा। क्या देखनेसे ही उसका ज्ञान हो जायगा ? नहीं, कभी नहीं होगा। कारण, दर्शनेन्द्रियमें ऐसी शक्ति नहीं, कि वह पदार्थका ज्ञान पैदा कर सके। पर हाँ, इतना जरूर है, कि चक्षु और मन दोनोंका परस्पर सम्बन्ध हो कर आत्मासे ज्ञान होता है।

“आत्मा मनसा मुन्यते मन इन्द्रियेण इन्द्रिय विषयेण तसादभ्यर्त्त इत्युक्तं दिना ज्ञानं जायते ॥” ( न्यायदर्शन )

मन इन्द्रियोंके साथ एक समय संयुक्त नहीं हो सकता। धीरे धीरे विभिन्न इन्द्रियके साथ विभिन्न-कालमें संयुक्त हो कर ज्ञान उत्पन्न करता है। निश्चित विषयके साथ एक समयमें इन्द्रियका संश्लेष नहीं होनेके कारण एक समयमें सभी ज्ञान नहीं होता।

मन आत्मगुण और ज्ञान सुखादि प्रत्यक्षकरण है अर्थात् मन द्वारा आत्माके ही ज्ञान सुखादिका प्रत्यक्ष होता है।

“गुणरज्जुज्ञानानुत्पत्तिर्नयं निद्रं ॥”

( गौतमसू० १।१।१६ )

गौतमसूत्रके अनुसार एक कालमें ज्ञानको अनुत्पत्ति ही मनका लक्षण है। मन एक कालमें बहुज्ञान

उत्पन्न नहीं कर सकता, निरत एक विद्ययुक्त मान उत्पन्न करता है।

नारायणविचारका कहना है, 'मुक्तयुक्तस्यैवशाधन-  
विन्दितम्।' किना मनके सुखादिका ज्ञान नहीं होता,  
इसों कारण 'मुक्तयुक्तस्यैवशाधन इन्दितम्' मनः' ऐसा लक्षण  
निर्दिष्ट हुआ है।

यात्म्यावपने कहा है—

मुक्तस्य यन्तु भाषादीनां गन्धार्दीनाम् अस्मिन्मनु  
मुक्तमुक्तानि नाप्यपने मेनातुमीद्रे अस्मि तदादिन्द्रिय संयोगि-  
महाकालिभित्तात्परमस्याः यस्यामिनेनोत्पद्यते मानं अस्मिन्-  
भक्तयुक्त इति मनः।

एककालमें धाराणादि और गन्धादिके सन्निकरूपसे ज्ञान  
उत्पन्न नहीं होता। अतएव इससे अनुमान किया जाता  
है, कि जिस जिस इन्द्रियका ज्ञान होगा, वही वही  
इन्द्रिययुक्त महाकारि अव्यापि एक दूसरा कारण है उस  
उस कारणके असन्निकधानसे ज्ञान उत्पन्न नहीं होता है  
और सन्निकधानसे होता। जिसको महायत्नासे ज्ञान  
होता है उसो इन्द्रियका नाम मन है।

नैयायिकोंके मतसे मनके आठ गुण हैं, संख्यादि-  
पञ्चक, परत्व, अपरत्व और घेग। 'मनाविन्दितं मीमांसकाः  
मननेन्द्रियमिति भाषायादि-प्रवचनो वर्दति।'

मीमांसकोंका कहना है, कि मन विधु है। भाषा-  
यादी घेदाग्निकगण मनका इन्द्रियत्व स्वीकार नहीं  
करते।

सांख्य और नैयायिक दोनोंने ही मनको इन्द्रिय कत-  
नाया है।

पातञ्जलदर्शनमें लिखा है, 'योगभित्तुनिमित्तोः।'  
( पातञ्जल सू. ११२ ) चित्त अर्थात् मनोवृत्तिममूहको  
रोकनेका नाम योग है। योगका स्थापन होनेसे यह  
निरवय हो मनको वृत्तियोंको रोकता है। योग देके।

यहाँ पर मनकी वृत्तिके विषय पर थोड़ा विचार  
करना भावश्यक है। मनोवृत्ति अर्थात् है, एक एक करके  
उत्प्रे गिन नहीं सकते। मनस्वरवयिद्वु योगियोंका कहना  
है, कि मनोवृत्ति अर्थात् होने पर भी उसका अवस्था-  
विभाग अर्थात् नहीं है। मानसिकी मानसिक अवस्था  
पांचसे ज्यादा नहीं है यथा—ज्ञान, मूढ़, विद्वान, एकाग्र  
और निद्रा।

मनकी स्थित्यावस्था—स्थिरता अर्थ पाण्डु नहीं है,  
मनकी अस्थिरता अर्थात् चञ्चलावस्थाका नाम स्थि-  
तवस्था है। मन जो अस्थिर रहता, कभी वहाँ और कभी  
यहाँ झुंझना रहता है, जोकको तरह एकको छोड़ कर  
दूसरेको और फिर उसको भी छोड़ कर तौमरैको एकदुने-  
में जलित्यन्त रहता है, वही उसको स्थित्यावस्था है।  
स्मृत तात्पर्य यह है, कि पाण्डु वस्तुको आकांक्षामें अस्थिर  
रहता हो मनकी स्थित्यावस्था है।

मनकी मूढ़ावस्था—मन जब कर्त्तव्याकारणव्यको  
अप्राप्त कर काम कोपादिके यगीभूत होता है तथा निद्रा-  
तन्त्रादिके अधीन होता है, आत्मव्यादि विषय तमोभय  
या अज्ञानमय अवस्थामें निमग्न रहता है, तब उसे मूढ़ा-  
वस्था कहते हैं।

मनकी विक्षिमावस्था—विक्षिप्त अवस्था और पूर्वोक्त  
स्थित्यावस्थामें बहुत भौड़ा फर्क है। यह यह है, कि  
चित्तके पूर्वोक्त प्रकारके चाञ्चल्यके मध्य क्षणिक स्थिरता  
है अर्थात् मनका चञ्चल भाव होने र भी यह जो बीच  
बीचमें स्थिर हो जाता है, उसी स्थिर होनेका नाम  
विक्षिमावस्था है। मन जब दुःखजनक विषयका परि-  
त्याग कर सुखजनक वस्तुमें स्थिर होता है, विगम्यन्त  
चाञ्चल्यका परित्याग कर क्षणकालके निधे निरचलम-  
तुल्य हो जाता है, अथवा केवलमात्र सुखान्ध्यादमें  
निमग्न रहता है, तब उसे मनकी विक्षिमावस्था कहते  
हैं।

मनकी एकाग्र अवस्था—एकाग्र और एकतान ये दोनों  
जम्द एक ही अर्थमें प्रयुक्त होते हैं। मन जब किसी एक  
याग वस्तु अथवा आम्भयगतो वस्तुका अत्यन्तमन कर  
निर्यातक्य निद्राक्य निद्राक्य दोगजिवाको तरह स्थिर या  
अधिकम्यतमापमें यत्नमाग रहता है, अथवा चित्तको  
रजस्तमो-वृत्ति अमिभूत हो कर केवल सात्त्विक-वृत्तिका  
होना है, अर्थात् प्रकाशमय और सुखमय सात्त्विकवृत्ति-  
मात्र प्रवाहित रहती है, तब जानना चाहिये, कि मनकी  
एकाग्र अवस्था हुई है।

मनकी निद्रावस्था—पूर्वोक्त एकाग्र अवस्थाको  
अपेक्षा निद्रावस्थामें बहुत प्रभेद है,—एकाग्र अवस्था-  
में चित्तका कोई न कोई अचलमन रहता ही है, किन्तु

निरुद्धावस्थामें यह नहीं रहता। उस समय मन अपनी कारणीभूत प्रकृतिको प्राप्त कर कृतकलाधकी तरह निष्प्रेष्ट रहता है; दूधसूत्रकी तरह कैवल्यमाल संस्कारभावापन्न हुआ करता है। अतएव उस समय उसका किन्मो भी प्रकार विसदृश परिमाण नहीं रहता। तभी जानना चाहिये, कि मनकी निरुद्धावस्था हुई है।

मनकी निरुद्धावस्था और मनका लय या विनाश प्रायः समान है। निरुद्धावस्थामें मनका लय होनेसे कुछ भी नहीं रहता। इस पर कोई कोई कहते हैं, कि मनका लय और आत्माका अभाव प्रायः एक ही वान है। लेकिन पातञ्जल इसे नहीं मानने, दोनोंमें बहुत प्रभेद बतलाते हैं। अज्ञ मनुष्योंको ऐसा भ्रम तो होता है, पर मन और आत्मा जो पृथक् पदार्थ हैं यह योगियोंके समाधि-कालमें ही प्रमाणित होता है। मन और आत्माके एक होनेसे समाधि अर्थात् मनोवृत्तिका लय होने ही देह पतन अवश्य होता। लेकिन जब वेमा नहीं होता ही अर्थात् उनका शरीर ज्योंका त्यों बना रहता है तब फिर उस समय उनका मनोलय होनेके कारण आत्माका भी लय हुआ है, ऐसा नहीं कह सकते। वरन् उस समय उनकी आत्माका यथार्थरूप और पार्थिव्य अनुभूत होता ऐसा कहना ही उचित है। अतएव मनोवृत्तिके निरोध-कालमें ही पुण्य वा आत्मा अपने प्रकृतकृपम प्रतिष्ठित रहती है, शून्य समयमें नहीं। अत्यान्व समयमें धं चित्तवृत्तिके साथ एकीभूत हो कर विविध भावमें दिव्याई देती हैं।

मनकी वृत्ति भी प्रधानतः पांच प्रकारकी है। फिर उन पांचके भी दो भेद हैं, जिनमेंमें फलेजदायक होनेके कारण एकरा नाम क्रिष्ट और फलेज (संसारदुःख) का नाशक होनेके कारण दूम्बरेका नाम अक्रिष्ट है। विषय के साथ सम्पर्क होने ही चित्त जो विषयाकारको प्राप्त होता है उसका यह विषयाकार प्राप्ति होनेका नाम वृत्ति अर्थात् देहस्थ इन्द्रिय और बाह्यस्थ विषय इन दोनोंका सम्बन्ध होनेसे मनको विविध अवस्था या परिणाम होता है। उस मनःपरिणामका नाम वृत्ति है, हम लोग उसे ज्ञान कहते हैं। विषय अर्थात् वृत्ति भी अर्थान्वय है वृत्ति अर्थान्वय होने पर भी श्रेणी या प्रकारगत असेष्य

नहीं है। प्रकारगत विभाग प्रधानतः पांच हैं तथा अन्य एक भावमें यह दो हैं। उन दोनोंके नाम हैं क्रिष्ट और अक्रिष्ट। राग, द्वेष, काम क्रोध आदि वृत्तियां पटेज अर्थात् संसार-दुःखका कारण होनेसे क्रिष्ट तथा धृजा, मक्ति, वैराग्य, भैवो और करुणा आदि उसके विपरीत अर्थात् दुःख निवृत्तिरूप मोक्षका कारण होनेसे अक्रिष्ट हैं। मनको ये क्रिष्ट वृत्तियां हेय और अक्रिष्ट वृत्तियां उपादेय हैं।

पांच प्रकारको मनोवृत्तिके नाम ये हैं,—प्रमाणवृत्ति, विपर्ययवृत्ति, विकल्पवृत्ति, निद्रावृत्ति और स्मृतिवृत्ति। अति संक्षिप्त भावमें उनके लक्षणआदि लिखे जाते हैं। मनोवृत्तियां जब अवलम्बित वस्तुके अतिकल्प सादृश्यसे उत्पन्न होती हैं, तभी ये प्रमाण या सत्यमान कहलाती हैं। और विपरीत भावमें उत्पन्न होनेसे उन्हें विपर्यय भ्रम या मिथ्याज्ञान कहते हैं। प्रमाणवृत्तियोंको तीन श्रेणियोंमें विभक्त कर सकते हैं, प्रत्यक्ष, अनुमान और श्राम्य। विशेष विवरण प्रमाण शब्दमें देवो।

जा ज्ञान मिथ्या है, जो अपने रूपमें स्थायी नहीं रहता, अर्थात् जो विषय दर्शनके बाद कुछ और तरहका हो जाता है उस ज्ञानका नाम विपर्यय है। इस विषयकी अच्छी तरह समझनेमें यह कहना पड़ेगा, कि वस्तु एक प्रकारकी है, किन्तु मनोवृत्ति कुछ और है, ऐसा होनेसे ही यह विपर्यय या भ्रम होता है। इस विपर्यय नामक भ्रमके रज्जु सर्प, शूक रजन और मरुमरोचिका आदि अनेक दृष्टान्त हैं।

मनकी विकल्प वृत्ति,—वस्तु नहीं है, अथवा शब्दसे एक प्रकारको मनोवृत्ति उत्पन्न होती है, येमो मनोवृत्तिका नाम विकल्प है। वस्तु नहीं है, अथवा शब्दके प्रमाणसे मनोवृत्ति उत्पन्न होती है, इसका दृष्टान्त आकाश कुमुद है। यथार्थमें आकाशकुमुद नहीं है, फिर भी यह सुनते ही मनमें एक प्रकारकी वृत्तिका उदय हो जाता है। पदार्थ दो है, किन्तु शब्दके प्रमाणसे सिर्फ एक वृत्ति उत्पन्न होनेसे यह भी वृत्ति है।

मनकी निद्रा नामक वृत्ति है, मनोवृत्ति जिसमें सभी पदार्थ लोप होते हैं, उस अज्ञानको अव्यम्बन कर जब मनोवृत्ति उदित रहती है, तब यह निद्रा या सुषुप्ति कहलाती है। वस्तुतः निद्रा भी एक प्रकारको मनोवृत्ति



है। प्रकृतज्ञानमात्र स्वप्नमुक्तके सामान्यदक तमोगुणकी उठे क. अवस्थाको ही हम लोग निद्रा कहते हैं। तब या भ्रमण वरता ही निद्रावृत्ति का आरम्भ है। जब तमो मय भ्रमण भ्रमणनमय निद्रावृत्ति का उदय होता है, तब सर्वव्यापक सत्य गुण अभिभूत रहता है। सुतरां उक्त समय किसी भी प्रकार प्रकाशय वस्तुका प्रकाश नहीं रहता। इसीलिए लोग कहते हैं, 'मैं निद्रित था, मुझे ज्ञान नहीं था। स्वप्नमुक्तमें उसे दिव्यगुण ज्ञान नहीं था जो नहीं, भ्रमण विषयका ज्ञान भवत्य था। यही कारण है, कि निद्रानद्रके बाद यह उक्त समयकी भ्रमण वृत्तिका स्मरण किया करता है। निद्राकालमें भ्रमणनमय या तमोमय वृत्ति अनुभूत हुई थी, इसी कारण निद्रानद्रके बाद उमें उसका स्मरण हो जाता है तथा इसी स्मरणके द्वारा निद्राका वृत्तित्व निर्णय होता है।

मनकी स्मृति नामक वृत्ति,—यम्नू जब एक पार अनुभूत भ्रमण प्रमाण वृत्ति पर आकृष्ट हो जाती है, तब फिर यह नहीं चित्तकी संस्काररूपमें प्रतिष्ठित रहती है। इस प्रकार उसके रहनेका नाम ही स्मृति है। तात्पर्य यह कि, ज्ञानम् अवस्थामें जो देना, सुना या अनुभव किया जाता है चित्तमें उसका संस्कार भाव्य हो जाता है। उद्बोधकके उपस्थित होनेसे ही यह संस्कार या शक्ति विशेष प्रयत्न हो कर चित्तमें इस पूर्वानुभूत वस्तुका स्वरूप दिखला देती है। उन समुद्रित मनोवृत्तिका नाम स्मृति या स्मरण है।

इन पाँचोंके सिवा मनकी और कोई भी वृत्ति नहीं है। इन पाँचों मनोवृत्तिका संक सकनेसे ही सामाजिक दुःख जाता रहता है। अस्वप्न और वैराग्य के सिवाय और किससे भी यह मनोवृत्ति कावूम नहीं लाई जा सकती है। (पाठकप्रश्नपरि)

चेतकालाखमें मनकी उत्पत्ति और धर्मादिका विषय हम प्रकार लिखा है,—जिगुणात्मक महत्त्वमें त्रिगुणान्वित अद्भुत उत्पन्न होता है। इस अद्भुतके भी लोग भेद है। सार्विक, राजनिक और तामनिक। राजन अद्भुतके साथ सार्विक अद्भुतसे समी इन्द्रियां उत्पन्न

होती हैं। यह इन्द्रियां व्यापक हैं,—पंच ज्ञानेन्द्रिय, पाँच कर्मेन्द्रिय और मन।

मनका आशय कर समी इन्द्रियां अपने अपने कार्योंमें प्रयत्नित होती हैं, इस कारण मनकी पुञ्जिन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय दोनों ही इन्द्रिय कह सकते हैं। मनका विषय ज्ञान है। मनका आशय किये बिना कोई भी इन्द्रिय अपना कार्य नहीं कर सकते। चक्षु कार्यादि जो कोई इन्द्रिय अपने कार्योंमें प्रवृत्त होती है उसका प्रदान सहाय मन ही है।

त्रिगुणात्मिका प्रकृतिसे जब मन उत्पन्न होता है, तब सार्विक, राजनिक और तामनिक भेदसे मन भी लोग प्रकारका है। सार्विक मनका लक्षण—

“आन्तिव्यं प्रविभन्ध भोजनभुजाहारव तथा वनो-  
मेधावृद्धितुल्यमारच कथया शान्त्य निर्दम्भता।  
कमानिन्दितमस्तुष्य विनयेभ्यं गदेयादरा-  
येत सर्वगुणान्निस्व भगता गोठा गुदा तानिभिः ॥”  
(भारत० मयम १०)

आस्तिव्य, मोक्ष मीर परलोकार्थमें श्रद्धा, सद्बुद्धि विवेचना पूषेक भोजन, अक्रोध, सत्यवाच्यप्रयोग, मेधा, बुद्धि, धृति, काम, क्रोध और लोभादिमें अग्रवृत्ति, क्षमा, कठपा, आरमन्तव्यज्ञान, कपटामाय, अनिन्दित कर्माचरण, भ्रष्टृदा, विनय और यत्नपूर्वक धर्मानुष्ठान, ये सब सार्विक मनके कार्यों हैं। जिनका मन सत्यगुणान्वित ही उच्चैः इस सब कर्माका अनुष्ठान करना चाहिये। राजनिक मनका लक्षण—

“कायन्ताइमनोवता न वदन्त दुःखगुणैस्त्वन्विका।  
दम्भा कानुक्तान्दमोचानन चापीरता दुष्प्रतिः ॥  
देवकीदम्भानिवातात्पितृमन्दीरिहारवदन्तम्।  
अस्वप्ना हि रजगुह्येन गदितसंवे गुणार्थेनतः ॥”  
(भारत० पूर्व० १)

क्रोध, ताड़नगोष्ठता, अशक्त दुःख और सुखेच्छा, दम्भ, कपटता, कामुकता, मिथ्यावाच्यकथन, अपौरुष, अद्भुत, प्रयत्नमें अनिद्रय अभिमात्रता, अधिक आनन्द और वरिष्ठमन ये सब राजनिक मनके लक्षण हैं। जिनका मन रजगुणान्वित है ये इस सब कार्योंमें प्रवृत्त होते हैं। तामनिक मनका लक्षण—

“नास्तिस्य” सुविषयतातिमर्षितालस्यञ्च दुष्ट मतिः ।  
 प्रीतिनिन्दित कर्मकर्मणि सदा निद्रालुवाहनिर्गम ।  
 भगानं किञ्च सर्वतोऽपि सततं श्रोधान्धता मूढता ।  
 प्रप्लवावा हि तमोगुणेन महत्तस्यैवे गुणारचेतसा ॥”

( भावम० पूर्वख० )

नास्तिकता, अतिशय विषण्णभाव, अधिक आलस्य, दुष्टबुद्धि, सर्वदा निन्दितकर्मजनित सुखमें प्रीति, श्रिया-निशि निद्रालुता, सर्वथा अधानता, सर्वदा क्रोध और मूर्खता ये सब तामसिक मनके लक्षण हैं। जिन सब व्यक्तियोंका मन तमोगुणान्वित है, वे ही इन सब फर्मोंका अनुष्ठान करते हैं।

जीवात्मा मनोयुक्त हो कर ही पाप, पुण्य, सुख, दुःख आदिका अनुभव करता है। इच्छा, द्वेष, दुःख, सुख, विषयग्रहण, प्रयत्न, संकल्प, विचारणा, स्मृति, बुद्धि, कलाविभक्ता, प्राणवायुका ऊर्ध्व नयन, अपानवायुका अधोऽभरण, नयनका उन्मीलन और निमीलन तथा कृत्य करणोत्साह ये सब गुण मनोयुक्त जीवमें पाये जाते हैं।

( भावम० )

बहद्गारसे भ्यारहं इन्द्रियोंको उत्पत्ति होती है। प्रत्येक इन्द्रियके एक एक अधिष्ठात्री देवता है। मनके अधिष्ठात्री देवता चंद्रमा है। ( सुश्रुत शरीरसा० १ भ० )

ज्योतिष मतमें भी चंद्रमा हो मन है। मनके शुभा शुभका विषय चंद्रसे ही स्थिर करना होता है।

“कामात्मा दिनकृन्मनस्तु हिमगुः सत्त्वं कुञ्जा मो वचः ॥”

( धरमा० )

आत्मा सूर्य है, मन चंद्रमा है, बल मङ्गल है। इत्यादि।

धैर्यधर्ममें मनको उत्पत्ति आदिहा विषय जैसा लिखा गया है, सांख्यशास्त्रमें भी वैसा ही है। गर्भस्थित भ्रूणके पञ्चम मासमें मन उत्पन्न होनेसे गर्भिणीको वेद अगुचि रहती है। इस कारण उस स्त्रीको धर्मकर्मका अधिकार नहीं है। मनके उत्पन्न होनेसे भ्रूण अंध कदलाता है। कारण, अंध मनको सहायतासे ही सभी काम भाज करता है। महाभारतमें लिखा है—

“धैर्येणनिर्घ्नं क्लिश्य निमग्नं कल्पना क्षमा ।

स्युषासुता चैव मनसो नव वै गुणाः ॥”

मनके नी गुण हैं। यथा—धैर्य, उपपत्ति, स्मरण, ध्रान्ति, कल्पना, मनोरथवृत्ति, क्षमा, सत् धर्मान् वैरा-ग्यादि, असत् धर्मान् रागद्वेषादि एवं स्थिरता। मन अध्यात्मतत्त्व है।

अप्यात्मं मन इत्याहुः पञ्चभूतात्मधारकम् ।

भ्रमभूतश्च तद्बुद्ध्याचन्द्रमाश्चापि देवतम् ॥”

( भारत भाष्योपख० ४२ भ० )

इसका स्वरूप—

“अनिर्णयमहम्यञ्च ज्ञानभेदं मनः स्थूलम् ॥”

( ब्रह्मसूत्रसंग्रह० प्रवृत्तिसं० २३ अ० )

अनिरूपणीय अदृश्य ज्ञानभेद हो मन कहलाता है। इसे देख या निरूपण नहीं कर सकते, ज्ञान द्वारा ही इसका अनुमान किया जाता है।

मनसना ( हि० क्रि० ) १ श्रादा करना, इच्छा करना । २ संकल्प करना, दृढ़ निश्चय या विचार करना । ३ हाथमें जल ले कर संकल्पका मन्त्र पढ़ कर कोई चीज दान करना ।

मनसव ( भ० पु० ) १ पद, स्थान । २ अधिकार । ३ वृत्ति । ४ कर्म, काम ।

मनसवदार ( फा० पु० ) उच्चपदस्थ पुरुष, यह जो किसी मनसव घरका हो ।

मनसा ( सं० स्त्री० ) मनःभक्तानीए पूर्णाय मननं अस्यस्वा इति मनस् अर्था आदित्याद्यच्च, ततएत्, यद्वा मननमहद्गारमिति स्थिति नाजयतीति सोःक । देवीविरय । पर्याय—कद्र, मनसादेवी, विद्यारी । ( जटापर )

इस देवीका प्रमाय एक दिन बङ्गालमें सर्वत्र विदित था। चैतन्यदेवके भाविसांयमें पहले बङ्गाली महासमारोहमें इस देवीको पूजा करने थे। इनके माहात्म्यका प्रचार करनेके लिये बङ्गालीयोंमें नैकाहों मनसा-भक्त प्रचारित हुए थे। मनसा पूजाके लिये महासमारोह न होने पर भी आज भी अष्टौ महानेके गङ्गाद्वाराके दिन बङ्गालके प्रायः सभी घरोंमें मनसा देवीको पूजा होती है। आज भी योजने पर कई तरहके छन्दोंमें रचित ४० या ५० तरहके मनसा-भक्तके गानकी पुस्तकें मिल सकती हैं।

यह देवी जगन्नाथ मुनिकी पत्नी है। यह धाम्निक्की

मान्सा और वास्तुविद्येकी बहिन है। इनके नामकी अनुपपत्ति इस तरह है—

“मनसा मनसायान्सा इति भवत्युत्पत्तिः ।  
मनसा वा च मनसो मनसा च मनसो ॥  
तेनैव मनसा देवी मनसा वा च दीपयति ।  
मनसा प्यायते वा वा वासात्मनोमोरुषी ॥  
देवता मनसा देवी तेनेव तेन दीपयति ।  
आत्मसायान्सा न वा देवी वैष्णवो विद्वद्वैगिनो ॥”

( ब्रह्मवैवर्ते पुराण प्रकृतिसं. मनसासायान्सा ४५ अ० )

यह देवी काश्यप मुनिकी मानसा बन्धी है। इसीलिये इनका नाम मनसा हुआ अथवा इन्होंने परमात्मका मर्म ही ध्यान करती थी इसीसे यह इसी नामसे पुकारा जाती है। यह देवी आत्माराय, वैष्णवी और सिद्धवैगिनी है।

‘महा जगन्मू मूर्ति सा मुन्दरी च मनाहरा ।  
अमरुतीर्षीति विष्णवाया तेन सा पूजिता मती ॥  
निर्वासय्या च वा देवी तेन शैवायै कथिता ।  
विष्णुमहात्मो उरार्द्रध्यायो तेन नारद ॥  
नामाना मायारविशो यमो जन्मेतदप्य च ।  
नामोऽस्तीति विष्णवाया सा नाममगिनीति च ॥  
निर्वाहर्षुमीना या तेन विद्वरीति सा ।  
विद्वं यमं इत्यु प्राय तेनानिदिद वैगिनी ॥”

( ब्रह्मवैवर्ते पुराण प्रकृतिसं. ४५ अ० )

यह देवी जगन्मूर्ति अथवा शैवधर्म, मुन्दरी और मनीहरा थीं इसीलिये इनका नाम जगन्मूर्ति, शिवकी जिन्या होनेसे शैवा और विष्णुमहात्म होनेसे वैष्णवी कहलाईं। इन्होंने जन्मजपके यज्ञमें नामकी प्राण-रक्षा की थी, इसीसे नामोऽस्ती, विष्णुहारायें समयमें हानिसे विद्वरती और शिवके समयमें सिद्धवैगिनी प्राप्त किया था, इसीलिये इनका सिद्धवैगिनी नाम हुआ।

“मन्साहाकसेन्दरीः मनसा सिद्धवैगिनी ।  
वैष्णवी नाममगिनी शैवी नामोऽस्ती तथा ॥  
जलकाऽविष्णोऽस्तीः मनसा सिद्धवैगिनी च ।  
महाजगन्मू मूर्ति सा देवी विद्ववैगिनी ।  
हाद्वीर्षुमीना नाममर्ति पूजाहाये च यमोऽस्ती ।  
तस्य नाममर्ति मर्ति तस्य वैद्ववैगिनी च ॥

( ब्रह्मवैवर्ते पुराण प्रकृतिसं. ४५ अ० )

मनसा देवीके नाम बारह हैं—जगन्मूर्ति, जगन्मूर्ति, सिद्धवैगिनी, वैष्णवी, नाममगिनी, शैवी, नामोऽस्ती, जलकाऽविष्णो, आग्नि-वमाना, विद्वरती और महाज्ञानपुत्रा । इन बारह नामोंका जो पृष्ठाके समय पाठ करते हैं, उनको वा उनके योगजनोंका नाम वा सर्वका भय नहीं रहता । जिसमें सर्वभय उत्पन्न होता है, उन्हीं भी इन्होंने बारह नामोंका स्मरण करना चाहिये। इससे उनका सर्वभय दूर होता है।

मनसा देवीका उत्पत्ति-वार्ण—

“पुरा नाममनायान्सा कभूपुमोना भुवि ।  
यान् यान् सारद्विना नामान्च ते न जारद्विना नारद ॥  
मनाश्च न समुद्रे भीतः कथयः प्रलयार्थिनः ।  
वेदवीजगन्मूर्तेया चोत्पद्येतेन प्रलयः ॥  
मेषाभिस्तमूरेषीन्ता मनसा समुद्रे ततः ।  
तदया मनसो तेन वामसु मनसा च सा ॥”

( ब्रह्मवैवर्ते पुराण प्रकृतिसं. ४६ अ० )

प्राचीन समयमें मनुष्य सर्वभयसे अत्यन्त घोरतक हुए थे। नाम जिसको डँसता था, वह उसी समय मर जाता था। प्रलयमें कश्यपसे यह बात कही। काश्यपने भयभीत हो कर प्रलायके उपदेन तथा वैश्वानरके मनु-सार बहुनेरे भयोंको सृष्टि की थी। इन्हीं सब भयोंकी अधिष्ठात्री रूपमें उन्हींमें मनसाकी सृष्टि की। इनका तपोव्रत तथा मर्मों सृष्टि हुई थी, इसीलिये इनका नाम मनसा हुआ।

देवी पुनारी अथवायामें महादेवके आलय गईं। यहाँ बहुत समय तक तपस्या करके निरकी सन्मुख किया था। महादेवमें प्रसन्न हो कर इन्होंने महाज्ञान दिया और नाम-वेद अध्ययन करनेके वाक् कथनकथनका महाज्ञान कथन-मंत्रको बोध, स्थाय, पूजा, पुस्तकयत्न धार्मिकी ज्ञान की। मनसा इस तरह ज्ञानप्राप्त कर महा-धर्म आत्मज्ञानपर पुनःसुखमें लपकवा करने गईं। यहाँ तिस्रुग सर्वत्र कथनके लिये लपकवा करने लगी। दोषकाय तक लपकवा-के बाद ये सिद्ध हुईं। भगवान् विष्णुने इनकी लपकी क्षान देन कर पहरे उनको पूजा का और यह पर प्रदान किया कि, “आत्ममें तुम पूर्णों पर गृहित हो।” यानी महादेवने भी इनकी पूजा की। इन्होंने वाक् कथन और देवताओंके

इसके बाद मनु, मुनि और नाम, क्रमसे मनुष्योंने इनकी पूजा की। इसी तरह स्वर्ग, मरुत् और पातालमें मनसा देवीकी पूजाका प्रचार हुआ।

‘कुमारी सा च सम्भूष जगाम संकराद्ययम् ।

भक्त्या संपूज्य कैलासे तुष्टाय चन्द्रशेखरम् ॥

दिव्यं वर्षदृशसन्त्र तं सिन्धे मुनेः सुवा ।

भाशुतोषो महेशभ ताव तुष्टो बभूव ह ॥

महागानं ददौ तस्यै पाठयामास साम च ।

कृष्णगन्तं कल्पतरुं ददाववधकार मुने ॥

लक्ष्मीमायाकामवीर्यं दृष्ट्वन्तं कृष्णपदन्तया ।

सैलाक्यमगानं नाम कवचं पूजनप्रथमम् ॥

सर्वपूज्यञ्च स्तवनं ध्यानं भुवनयावनम् ।

पुरभार्यक्रमत्रापि वेदोक्तं सर्वसम्मतम् ॥

प्राप्ता मृत्युञ्जयाज्ञानं परं मृत्युञ्जवं सती ।

जगाम सगमे सार्धं शुष्करं संकराजया ॥

श्रियुगञ्च तपस्तप्या कृष्णस्य परमात्मनः ।

सिद्धा वभूव सा देवी ददर्श पुरतः प्रभुम् ॥

दृष्ट्वा कृष्णाम् वाञ्छाम् च रूपया च कृषानिधिः ।

पूजाम् च कारयामास चकार च स्वयं हरिः ॥

वस्त्रं च प्रददौ तस्यै पूजिता त्वं भवे भव ।

नरं दत्त्वा च कल्पयास्ये सगभ्रान्तरर्षे विभुः ॥

प्रथमे पूजिता मा च कृष्णेन परमात्मना ।

द्वितीये गोकर्णेन करणंन सुष्ठया च ॥

मनुना मुनिना चैव नागेन मानसादिना ।

पभूष पूजिता सा च श्रियु षोकेषु सुवता ॥”

(महावैवर्तपु० प्रश्नतम० ४६ अ०)

कश्यपने जगन्कार नामक एक महातपस्वीके साथ इनका विवाह कर दिया। एक समय पुत्ररक्षेत्रमें जगन्कार एक वटवृक्षके नीचे मनसा देवीको जाँच पर सर रख सोये हुए थे। सूर्य दृष रहे थे। सन्ध्या उपस्थित हुई देव स्वामीके धमालोप हो जानेके भयसे मनसा बड़ी चिन्तित हुई। उधर स्वामीको निद्रा भी भङ्ग नहीं कर सकता थी। इधर सन्ध्या बोल रही थी। मनसाने निकरसँघ विमूढ़ हो अंतमें धीरे धीरे स्वामीको जगा दिया।

निद्रा टूट जाने पर जगन्कारने मनसा पर क्रोध प्रकट

कर कहा, ‘भद्रे ! तुमने मेरी निद्रा भङ्ग कर दी। जो खो स्वामीकी अधिपकारिणी होती है, वह कुम्भीपाक नरकमें जाती है और परलोकमें उसकी दुर्गतिकी सीमा नहीं रहती।

उस समय मनसाने भयातुर हो कर स्वामीके चरणोंमें गिर कर कहा, ‘भगवन् ! मैं जानती हूँ, कि जो ध्यक्त भृङ्गार, आहार और निद्राभङ्ग करता है, उसकी दुर्गतिकी सीमा नहीं रहती। फिर भी आपकी संध्याकी लोप होने देव मैंने ऐसा किया है। क्योंकि मैं जानती हूँ, कि जो ब्राह्मण सार्यकाल उपस्थित होने पर संध्या उपासना नहीं करता है, उसको ब्रह्मदृष्ट्याका पाप लगता है। आपके इस धमलापके भयसे मैंने आपकी जगाया है और इस अपराधका प्रायश्चित्त लिया है। आप जो उचित दण्ड समझें गुण ध्याज्ये।

जगन्कार मनसाका धर्म सुन कर सूर्यकी जाप देनेके लिये उद्यत हुए। मनसाने सूर्य यह बात जान कर संध्याके साथ धर्म और उनकी सम्बोधन कर कहा,—आपकी निद्रा उबर नरक भङ्ग नहीं होता, तब तक मैं कभी भी अस्त नहीं होता। संध्या होना देता मनसाने आपको निद्रा भङ्ग की है। इसमें मेरा क्या दोष ? आपको मुझे जाप देना न चाहिये। है प्रहसन् ! आप मुझको क्षमा काजिये। सूर्यकी इस दातसे जगन्कार बहुत चिन्तित हुए और उनको अभिशाप नहीं दिया। सूर्य प्रसन्न हो कर अपने स्थानकी पधारे।

जगन्कारने अपने पुर्य-प्रतिज्ञाके अनुसार मनसाका त्याग किया। मनसा अपने पैसा अद्यत्या देव भवने इष्टगुण महादेव और पिता कश्यपका स्मरण करने लगी। महादेव और कश्यपके यहाँ आने पर जगन्कारने प्रणाम कर कहा,—आप लोग यहाँ किम लिये आये हैं। आप आना है मुझे क्या करना होगा ? मैं वैसा ही कार्य करूँ।

प्राप्ताने कहा, यदि तुम मनसाकी त्यागने लायक समझते हो, तो तुमही चाहिये, मनसाके गर्भमें धर्म-पालन करनेके लिये पुत्रोत्पादन करके त्याग करो। क्योंकि जो कोई पैसा नहीं करता और धर्मपलकी छाड़

मनसा धीर धाम्नि की बहिन ही । इनके नामकी मनुष्यनि इस तरह है -

"मनसा धाम्निपुत्री मनुष्यनि ।  
कन्या सा च मनुष्यो बभूवतः च मानसो ॥  
तेनैव मनसा देवी मनसा सा च ह्यनन्तरि ।  
मनसा धाम्नि की वा मनुष्यमनसासा ।  
एव सा मन्सा देवी च तेन तेन हीनोति ।  
मनुष्यमनसा च सा देवी धाम्निपुत्री निवर्तयति ॥"

( मनुवेवांगु मनुष्यनि ० मनुष्यमनसा ४२ भ० )

यह देवी काश्यप मुनिकी मानसा कन्या ही । इसी लिये इनका नाम मनसा हुआ भवता इन्होंने परमात्मका मगन ही ध्यान करती थी इसीसे यह इसी नामसे पुकारा जाती है । यह देवी आम्नातामा, धैर्याधी और मित्रवागिनी ही ।

"या जगन्मता मीमा सा मुन्दरी च मनुष्या ।  
मनुष्योति विन्यासा तेन सा धूमिका मती ॥  
विन्यासा च सा देवी तेन शीतलि कीर्तिता ।  
विद्युमनसाको मनुष्योऽप्यसौ तेन नाद ॥  
नामाना प्रादुर्भवते येन मनुष्यवत्तु च ।  
नमोऽभ्यसि विन्यासा सा नाममिनीति च ॥  
विन्यासा देवी सा तेन विपरीति सा ।  
विद्युं च मनुष्यासा तेन विपरीति कीर्तिता ॥"

( मनुवेवांगु मनुष्यनि ० ४५ भ० )

यह देवी जगन्मते भवत्यत शीघ्रवाणी, सुन्दरी और मनोहरा थीं । इसीलिये इनका नाम जगन्मती, मित्रकी लिये होमेने शीघा और विद्युमनका हानेसे विन्यासा कह लारं । इन्होंने जगन्मतेके पतने नामोंका प्राण-रक्षा का भी, इसीसे नामोभरा, विद्युमनुष्यके समर्थ होनेसे विपहारी और मित्रके समर्थ मित्रवोग प्राप्त किया था, इसीलिये इनका मित्रवागिनी नाम हुआ ।

"मनुष्याः शीघ्रवाणी मनसा विन्यासिनी ।  
विन्यासा नाममिनी मीमा नामोभरा तथा ॥  
मनुष्याः शीघ्रवाणी नामासा विपरीति च ।  
मनुष्याः शीघ्रवाणी च सा देवी विन्यासिनी ।  
मनुष्याः शीघ्रवाणी च सा देवी विन्यासिनी ।  
मनुष्याः शीघ्रवाणी च सा देवी विन्यासिनी ॥"

( मनुवेवांगु मनुष्यनि ० ४५ भ० )

मनसा देवीके नाम बारह हैं—जगन्मता, जगन्मती, मनसा, मित्रवागिनी, धैर्याधी, नाममिनी, शीघी, नामोभरी, जगन्मतामिनी, नाममिनी, मित्रवाणी और महामानसुता । इन बारह नामोंका जो पूजाके समय पाठ करने हैं, उनको वा उनके गीतोंकी भाग वा संप्रका मय नहीं रहता । जिसमें सर्वसम उपपन्न होता है, उन्में भी इन्हीं बारह नामोंका स्मरण करना चाहिये । इससे उनका संप्रका मय दूर होता है ।

मनसा देवीका उत्पत्ति-कारण—

"पुत्रा नाममयापन्ता वभूवन्मिता भुर्व ।  
वान् वान् मारुति नामान्ते न न कर्तन्ति नाद ॥  
मनाश्च मनुष्ये मीमा चामनाः प्रकथयिष्यते ।  
ते देवीमानुषयोषा चोपदेशेन प्रकथयः ॥  
मनाश्चिन्तयन्ते मनासा मनुष्ये ततः ।  
तस्मात्तन्मते न कम्प मनसा च सा ॥"

( मनुवेवांगु मनुष्यनि ० ४६ भ० )

प्राचीन समयमें मनुष्य सर्वसमते भवत्यन्त पौरुष हुए थे । नाम जिसको उन्मता था, वह उसी समय मर जाता था । प्रकथाने कश्यपने यह बात कही । काश्यपने मयमीत हो कर प्रयासे उपदेश तथा चैद्योजने मनुष्यार बहुनेदे मनुष्योंको सृष्टि की थी । इन्हीं मय मीमाकी अधिष्ठात्री रूपसे उन्में मनसाकी सृष्टि थी । इनका तपोबल तथा मनसे सृष्टि हुई थी, इसीलिये इनका नाम मनसा हुआ ।

देवी हुनारी अत्यन्तमें महारूपके मान्य थीं । वही बहुत समय तक तपस्या करके मित्रकी सम्पुष्ट किया था । महारूपमें प्रकथ हा कर इन्हीं महामान किया और नामोभरी अत्यन्त करनेके बाद वज्रवलयकव बाधप्रार कल्पनको दीक्षा, स्वयं, पूजा, पुण्यवत्त धार्त्तिकी मानसा ही । मनसा इन तरह मानसाका एक महापके आजानुसार पुनरुत्थनेमें तपस्या करने गईं । वही तिसुग पपन् कल्पके लिये तपस्या करने लगीं । दीपकाव तक तपस्याके बाद ये सिद्ध हुईं । मयमान विद्युने इनकी मयमें शान देना कर पढ़ने उसकी पूजा का और यह पर प्राम किया है, "मात्रमें तुम पूज्यो पर प्रति है ।" वही महादेवने जो इनकी पूजा को । इनके बाद कश्यप और देवताओंने

इसके बाद मनु, मुनि और नाग, क्रमसे मनुष्योंने इनकी पूजा की। इसी तरह स्वर्ग, मर्त्य और पातालमें मनसा देवीकी पूजाका प्रचार हुआ।

“कुमारो सा च सम्भय जगाम् शंकराजयम् ।  
भक्त्या संपूज्य कैलासे गुहाय चन्द्रोत्तरम् ॥  
दिव्यं वर्षसहस्रञ्च तं सिद्धेयं मुनेः सुता ।  
आशुतोषो महेश्च ताञ्च तुष्टो बभूव ह ॥  
महाजानं ददौ तस्यै पाठयामास ताम च ।  
कृष्यामन्त्रं कल्पतपः ददाव्यपाङ्गर मुने ॥  
जदमीमायाकामवीजं टोऽन्तं कृष्यापदन्तथा ।  
शेलावयमभानं नाम कथञ्च पूजनक्रमम् ॥  
सर्वपूज्यञ्च स्तवन ध्यानं सुवनवाचनम् ।  
पुरुषार्थक्रमञ्चापि वेदोक्तं सर्वगम्मतम् ॥  
प्राप्ता मृत्युञ्जयाञ्च ज्ञानं परं मृत्युञ्जयं सवी ।  
जगाम तपसै ताभ्यां पुष्कर शंकराजया ॥  
भियुगञ्च तपस्तप्त्वा कृष्याख्य परमात्मनः ।  
सिद्धा यमव सा देवी ददर्श पुरतः प्रभुम् ॥  
दृष्ट्वा कृशांगीं वातामूञ्च कृपया च कृपानिधिः ।  
पूजाञ्च कारवामास चकार च स्वयं हरिः ॥  
वस्त्रञ्च प्रददौ तस्यै पूजिता त्वं भवे भव ।  
नरं दत्त्वा च कल्याण्यै सगन्धान्तर्दधे विभुः ॥  
प्रथमे पूजिता सा च कृष्णेन परमात्मना ।  
द्वितीये शंकरेणैव कर्मणेन गुणेश च ॥  
मनुना मुनिना चैव नागेन मानसादिना ।  
बभूव पूजिता सा च त्रिषु क्षेत्रेषु मुक्ता ॥”

(महादेवस्तोत्रं प्रस्तावक ४६ अ०)

कश्यपने जगन्काश नामक एक महानपत्नीके साथ इनका विवाह कर दिया। एक समय पुष्करक्षेत्रमें जगन्काश एक बटवृक्षके नीचे मनसा देवीको जाँघ पर मर रण सोये हुए थे। सूर्य उठ रहे थे। सन्ध्या उपस्थित हुई देव स्वामीके धमालोप हो जानिके भयसे मनसा बड़ी चिन्तित हुई। उधर स्वामीको निद्रा भी भङ्ग नहीं कर सकती थी। इधर सन्ध्या शीत रही थी। मनसाने किञ्चिच्छय विमूढ़ हो अंगमें धीरे धीरे ब्यामीकी जगा दिया।

निद्रा टूट जाने पर जगत्काशने मनसा पर श्लोष प्रकट

कर कहा, ‘भद्रे ! तुमने मेरी निद्रा भङ्ग कर दी। जो र्खी स्वामीकी भ्रिपयकारिणी होती है, वह कुम्भीपाक नरकमें जाती है और परलोकमें उसको दुर्गतिकी सोमा नहीं रहती।

उस समय मनसाने भयातुर हो कर स्वामीके चरणोंमें गिर कर कहा, ‘भगवन् ! मैं जानती हूँ, कि जो ध्यिक शृङ्गार, आहार और निद्रामङ्ग करता है, उसका दुर्गतिकी सोमा नहीं रहती। फिर भी आपको संध्याको श्लोष होते देख मैंने ऐसा किया है। क्योंकि मैं जानती हूँ, कि जो ब्राह्मण सार्यकाल उपस्थित होने पर संध्या उपासना नहीं करता है, उसको ब्रह्महत्याका पाप लगता है। आपके इन धमलापके भयसे मैंने आपको जगाया है और इस अपराधका प्रायश्चित्त दे दिया है। आप जो उचित दण्ड समर्पक मुझ प्रायश्चित्त।

जगन्काश मनसाका शरीर सुन कर सूर्यकी श्राप देनेके लिये उद्यत हुए। भगवान् सूर्य यह बात जान कर संध्याके साथ ध्या और उनकी सम्बोधन कर कहा,—आपको निद्रा उबर तक भङ्ग नहीं होता, तब तक मैं कभी भी अस्त नहीं जाता। संध्या होना देल मनसाने आपको निद्रा भङ्ग कर दिया। इसमें मेरा क्या दोष ? आपको मुझे श्राप देना न चाहिये। दे प्रहान् ! आप मुझको क्षमा काजिये। सूर्यकी इस धातसे जगन्काश बहुत नन्गुष्ट हुए और उनको अर्धग्राप नहीं दिया। सूर्य प्रसन्न हो कर अपने स्थानकी पधारें।

जगन्काशने अपने पुत्र-प्रतिभाके अनुसार मनसाका त्याग किया। मनसा अपने ऐसा अवस्था देल अपने दृष्टगुह महादेव और पिता कश्यपका स्मरण करने लगे। महादेव और कश्यपके वहाँ आने पर जगन्काशने प्रणाम कर कहा,—जाप लीग यहाँ किम् लिये आये हैं। आप आज्ञा दें मुझे क्या करना होगा ? मैं ऐसा ही कार्य करूँ।

ब्राह्मणे कहा, यदि तुम मनसाको त्यागने लायक समझने हो, तो तुमको चाहिये, मनसाके गर्भमें धर्म-पालन करनेके लिये पुत्रोत्पादन करके त्याग करने। क्योंकि जो कोई ऐसा नहीं करता और धर्मपत्नीको छोड़

मनसा और चतुर्विधों प्रति है । उनके मानकों सुस्पष्टि इस तरह है—

पुत्रपुत्रा जगत्प्रदं च सु सुं भवेत्तु सा ।  
एता सा च मतासी कथाया च मानसा ॥  
मेव जगत् देवी मानसा वा च ईश्वरी ॥  
मनसा जगत् देवी वा चतुर्विधमर्थोपरी ॥  
तेन सा मानसा देवी कर्मेण तेन दीयते ॥  
आत्मसात्ता च सा देवी वेद्यया सिद्धयति ॥

( ब्रह्मवेदान्तं प्रवृत्तं प्रवृत्तं ० मन्मथप्रवृत्तं ४५ म० )

यद् देवो कारयत् मुनिषो मानसा कथा है । इसी-  
लिये इनका नाम मनसा हुआ भयवा इन्होंने पर-  
मात्माका समर्थ हो ध्यान करतीं भी इसीमें यद् इसी  
नामने पुकारते जातीं हैं । यह देवो आत्मसात्ता, चैत्यवो  
और सिद्धयोगिनी हैं ।

‘सा जगत्पुत्री सा मुन्दरी च मकरा ।  
मन्मथीति विद्याया देव सा दूषिता तवी ॥  
विद्वेद्यया च सा देवी तेन शैवीणि चरिष्या ॥  
विष्णुमन्मथी मन्मथीत्यदो तेन नारद ॥  
मातासा मन्मथीत्यो तमे उन्मोक्तयत् च ।  
नरोन्मथीति विद्याया सा नामभयिनी च ॥  
सिं महर्षिमेरा सा तेन विप्रसैति सा ।  
सिद्धं मेव इच्छी मां तेनानिच्छि योगिनी ॥’

( ब्रह्मवेदान्तं प्रवृत्तं ० मन्मथप्रवृत्तं ४५ म० )

यद् देवो जगत्प्रदं अथवा गौरवर्णा, सुन्दरी और मनो-  
हरा भी । इसीलिये इनका नाम आत्मसात्ता, नियको  
विद्या हासिमें शोधा और विष्णुमक हासिमें चैत्यवो कह  
लाई । इन्होंने जन्मजयके पक्षमें नामोंका प्राण-रक्षा का  
भी, इसीमें नामोपवा, विप्रसंहासमें समर्थ हासिमें विप्रहरी  
और शिवके समाप सिद्धयोग प्राप्त किया था, इसीलिये  
इनका सिद्धयोगिनी नाम हुआ ।

पुत्रपुत्रा जगत्प्रदो मनसा सिद्धयति ॥  
वेद्यया चतुर्विधो मेवो कोमोन्मथा तथा ॥  
जगत्कारणिकारणमा विप्रसैति च ।  
महासातपुता तेन सा देवी विप्रसैति ॥  
हासिमेव नमसि पुत्रपुत्रो वे वा देव ॥  
सर्व जगत्प्रदं अथवा मन्मथप्रवृत्तं च ॥

( ब्रह्मवेदान्तं प्रवृत्तं ० मन्मथप्रवृत्तं ४५ म० )

मनसा देवोके नाम बाह्य हैं— जगत्पुत्रा, मन्मथ गौरा,  
मनसा, सिद्धयोगिनी, चैत्यवो, नामभयिनी, शैवी, नामोपवा,  
जगत्कारणिका, मन्मथप्रवृत्ता, विप्रसैति और महासातपुता ।  
इन बाह्य नामोंका जो वृत्तके समय पाठ करणें हैं, उन-  
को वा उनके मन्मथोंको भाग वा सर्वेका मय नहीं रहता ।  
जिन्हें सर्वमय उत्पन्न होता है, उन्हें भी इच्छीं बाह्य  
नामोंका स्मरण करना चाहिये । इसमें इनका सर्वमय  
दूर होता है ।

मनसा देवोका उपनि-कारण—

‘पुत्रा नामसात्ताया चतुर्विधमिना मुनि ।  
यान यान स्मरन्ति नामान्म मे न न इति नारद ॥  
मन्मथं नन्दो भीमः कथयः मन्मथसिद्धिः ॥  
वेदयोगानुसंधेया योगदेशेन मन्मथः ॥  
मन्मथिष्ठाद्देवता मनसा मन्मथे नतः ॥  
तथा मनसो तेन वन्मथ मनसा च सा ॥’

( ब्रह्मवेदान्तं प्रवृत्तं ० ४६ म० )

प्राचीन समयमें मनुष्य सर्वमयमें भरपूर योगिन  
हुए थे । नाग जिसको ईश्वरता था, वह उसी समय नर  
जाता था । प्रकृति कल्पमें यह बात कही । कारणने  
भवभोग हो कर प्रकृति उपदेश तथा वेदयोगके अनु-  
सार बहूने देवताओंकी सृष्टि की थी । इच्छीं सब देवोंकी  
अधिष्ठाता स्वयं इन्होंने मनसाकी सृष्टि की । इनका  
तपोव्रत तथा मनसं सृष्टि हुई थी, इसीलिये इनका नाम  
मनसा हुआ ।

देवो पुत्रादी भवकथामं महादेवके भाल्य गर्दं । यही  
बहुत समय तक तपस्या करके नियकी मन्मथ किया था ।  
महादेवमें प्रपन्न हो कर इच्छीं महासातपुत्रा तथा और नाम-  
भेद भयपन्न करनेके बाद जन्मजगत्प्रवृत्त महासातपुत्रा-  
मन्मथो क्षोभा, स्मर, पुत्रा, पुत्रप्रवृत्त आदिकी भाषा की ।  
मनसा इस तरह प्राणनाम कर महा-पुत्रे आत्मसात्ता  
पुत्रप्रवृत्तमें तपस्या करने गईं । यही त्रिपुण परमेश  
कृष्णके लिये तपस्या करने लगी । देवोहा-प तक तपसा-  
के बाद ये सिद्ध हुईं । मन्मथान् विष्णुने इनको तपमें हास  
देव कर पहरे उनको वृत्ता का और यह पर प्रसन्न किया  
कि, “मातसे तुम पूरवो पर पुत्रित हो ।” यही महादेवने  
भी इनकी वृत्ता की । इसके बाद जगत् और देवताओंने

इसके बाद मनु, मुनि और नाग, क्रमसे मनुष्योंके इनकी पूजा की। इसी तरह स्वर्ग, मर्त्य और पातालमें मनसा देवीकी पूजाका प्रचार हुआ।

‘कुमारी सा च सम्भय जगाम् शंकराक्षयम् ।  
भक्त्या संपूज्य कैलासे गुह्या चन्द्रशेखरम् ॥  
दिव्यं वर्णरश्मयन् तं सिंघेयं मुनेः सुवा ।  
आशुतोषो महेशश्च ताम्य सुष्टो वभूव ह ॥  
महागानं ददौ नत्थै पाठयामास साम च ।  
कृष्णमन्त्रं कल्पतश्च ददायवष्टान्नरं मुने ॥  
लक्ष्मीमायाकामर्वाञ्च देवैस्तं कृष्णपदन्तथा ।  
शैलौचयमंगलं नाम कवचं पूजनकथम् ॥  
मर्वपूज्यन् च स्ववर्नं ध्यानं भुवनवाचनम् ।  
पुरधर्षाक्रमश्चापि वेदापतं सर्वमम्मतम् ॥  
प्राप्ता मृत्युञ्जयाञ्च शान परं मृत्युप्रपं सती ।  
जगाम तथै साध्वी पुष्कर शंकराजया ॥  
त्रिभुगन्त्रं तपस्तप्त्वा कृष्णाल्य परमात्मनेः ।  
शिवा वभूव सा देवी ददर्श पुरतः प्रभुम् ॥  
दृष्ट्वा कृतांगी वादान्त्रं कृपया च कृपानिधिः ।  
पूजाञ्च कारयामास चकार च स्वयं हरिः ॥  
वरञ्च प्रददौ तस्यै पूजिता त्वं भये भव ।  
नरं दत्त्वा च कल्पायपै खयभान्तर्द्वेषे त्रिभुः ॥  
प्रथमे पूजिता सा च कृष्णेन परमात्मना ।  
द्वितीये शंकरेणैव करणेलं सुरेण च ॥  
मनुना मुनिना चैव नागेन मानसादिना ।  
वभूव पूजिता सा च त्रिभु लोकेषु मुनया ॥’

(महावैवर्तपु० प्रकृत०) ० ५६ अ०

कश्यपने जगन्काय नामक एक महातपस्वीके साथ इनका विवाह कर दिया। एक समय पुत्ररूपमें जगन्काय एक षट्शुक्के गोत्रे मनसा देवाका जाय पर सर रण सीधे हुए थे। सूर्य दूब रहे थे। सन्ध्या उपलिये हुए देव स्वामीके धमालेप हो जानेके भयसे मनसा बड़ी चिन्तित हुई। उधर स्वामीकी निद्रा भी भङ्ग नहीं कर सकतो थी। इधर सन्ध्या गीत रहो थी। मनमाले किकर्तव्य विमूह हो अंतमें धीरे धीरे स्वामीकी जगा दिया।

निद्रा टूट जाने पर जगत्कायने मनसा पर कोप प्रकट

कर कहा, ‘भद्रे ! तुमने मेरी निद्रा भङ्ग कर दी। जो जो स्वामीकी अप्रियकारिणी होती है, वह कुम्भीपाक गरकमें जाती है और परलोकमें उसकी दुर्गतिकी सीमा नहीं रहती।

उम नमय मनसाने भयानुर हो कर स्वामीके चरणोंमें गिर कर कहा, ‘भगवन् ! मैं जानती हूँ, कि जो धार्मिक भङ्गहार, आहार और निद्रामङ्ग करता है, उसकी दुर्गतिकी सीमा नहीं रहता। फिर भी आपकी संध्याकी लोप होते देव मने ऐसी किया है। पर्यायिक मैं जानती हूँ, कि जो प्राणन सत्यंकण्ड उपमिथन होने पर संध्या उपामना नहीं करता है, उसको ब्रह्मदृष्ट्याका पाप लगता है। आपके इन धमलापके भयसे मने आपकी जगाया है और इस अपराधका मात्र दिया है। आप जो उचित दण्ड समर्भ मुझे द्यांयें।

जगन्काय मनसाका बातें सुन कर सूर्यकी जाप देनेके लिये उचन हुए। भगवान् मने यह बात जान कर संध्याके साथ कहा, आपे और उनकी सम्मोधन कर कहा,—आपकी निद्रा भङ्ग कर भङ्ग नहीं होता, तब तक मैं कमी भी अस्त नहीं जाता। संध्या होता देव मनमाने आपकी निद्रा भङ्ग को है। हममें मेरा क्या दोष ? आपकी मुझे जाप देना न चाहिये। ‘हे प्रभान् ! आप मुझे क्षमा कारिये। सूर्यो इस वातसे जगन्काय बहुत सन्तुष्ट हुए और उनकी आंमनाप नहीं दिया। सूर्य प्रमन्न हो कर अपने स्थानको पधारे।

जगन्कायने अपने पुत्र-प्रतिष्ठाके अनुसार मनसाका त्याग किया। मनसा अपनी ऐमा अदृष्ट्या देव अपने इष्टगुण महादेव और पिता कश्यपका स्मरण करने लगी। महादेव और कश्यपके यहाँ आने पर जगन्कायने प्रणाम कर कहा,—आप लोग यहाँ किम लिये आये हैं ? आप आभा हैं मुझे क्या करना होगा ? मैं घैमा हो काये करूँ।

प्रधाने कहा, यदि तुम मनसाकी दवागने लायक समझते हो, तो तुमको चाहिये, मनसाके गर्भमें धर्म-पाटन करनेके लिये पुषाल्यादन करके त्याग करो। पर्यायिक जो कोई ऐमा नहीं करना और धर्मदत्ताकी छाड़



देना है, उसकी तपस्याका फल नहीं मिलता। पर  
उत्तरा भूट ही जाता है।

जगन्नाथके कण्ठकी यह बात सुन मन्त्र पाठ करने  
हुए मन्त्रार्थकी भाँति हूँ कर कहा, 'मन्त्रों! मेरे हाथके  
हूँ देखिये ही मुझे' काँका सञ्चार हुआ। इस गर्मीमें  
भाँतिहमय एक सन्तान प्रसवदश करेगा। यह  
पुत्र पौत्रकीं कपडों, लेखकों, तपस्यों और बहुतेरे  
मुनीकीं विभूति होगी। पीछे जगन्नाथ मन्त्रार्थकी  
विधिसे उद्देश-वाचकीं प्रशंसित कर आप तपस्या  
करनेके लिये चले गये।

इसके बाद मन्त्रार्थका मतमा निवालयमें गईं। यहाँ  
उनके पुण्यल प्राण हुआ। महादेवकी कृपे इस पुत्रको धैर  
पैदागया अभयल करताया। इसीसे इसका नाम आम्बिक  
हुआ। 'सम्बि' अर्थात् ईश्वरकीं विभूति या इसीसे इसका  
नाम आम्बिक पडा था। इसके उपरान्त मन्त्रमा मुद  
महादेवकी प्रणाम कर गिया फादरपके भाधनमें चली  
आई। (महादेवपुराण अध्याय ४६ ३०)

महाभारतकीं 'आम्बिक मुनिकी माया जगन्नाथकीं  
पत्नीका नाम आया है। किन्तु यह कीक नहीं कहा जा  
सकता कि यह मन्त्रा देवी ही या नहीं। क्योंकि मन्त्रमा  
मायमें उक्तता नहीं उल्लेख नहीं है। मन्त्राके बारह  
नामोंमें भी एक जगन्नाथका नाम आया है। महाभारत-  
में भी जगन्नाथका नाम आया है। महाभारतकीं यथा  
इस तरह है—

यासुकिने जगन्नाथ नामकी एक बहन थी। जगन्-  
नाथकीं जब विवाहकी इच्छा प्रकट की, तब नागनाथ  
यासुकि अपनी धर्मदत्ता बहनकी माया से जगन्नाथ जगन्-  
नाथमुनिके लाम लये और उनमें कहा,—हे जिन  
मन्त्र! आपके लामकी तपसियों यह कथा मेरी बहन  
है, इसे पसोचमें मन्त्र कीजिये। यथाज्ञाति मैं इसका  
अपवर्णन करूँगा। मैं आपके लिये इतने दिनोंमें  
दुःख कष्टकीं पात्र बना हूँ। श्रुतिमें कहा, जर्म यह  
है, कि मैं इसका मन्त्र पौत्रन न करूँगा और यह  
बन्धन मेरा कीं अहित करन नहीं करूँगा, यदि करेगा,  
तो मैं उनी मन्त्र इसका त्याग करूँगा। इसी जर्म  
पर जगन्नाथने जगन्नाथका पालनदल किया।

युद्ध दिवसे बाद जगन्नाथने हीनेके बाद यासुकिकीं  
बहन आने स्वामीं जगन्नाथके समीप गईं और उनके  
धीरममें जर्म उक्तव्यवधान मन्त्रार्थन किया। मुद-  
नाथने मन्त्रको यह यह गर्म दिनों दिन बहने लगा। एक  
दिन जगन्नाथकीं ही मोक्षे जगन्नाथक माया या हम  
सी गये। इस लिये अन्त्यापन जाने लगे। फिर भी  
उनका विद्राभन नहीं हुआ। स्वामीका धर्मपौत्र  
होना देना यह मन्त्रे विना करनेलगा, 'मन्त्रार्थकीं जगन्नाथ'  
या नहीं। यह जगन्नाथ ही धर्मपौत्र स्वामीका ही  
अपवर्णन ही करूँगा और इष्ट देना न करनेके स्वामी  
के धर्मपौत्र होनेका अपराध ही जाता है। स्वामी विद्व  
दिया, कि मुझे यद्ये करना चाहिये, जिससे स्वामीका  
धर्मपौत्र न हो। उन्होंने धीरे धीरे कहा,—मन्त्रा! उचिते  
संख्या मन्त्र उचितन है। संख्यावाचका कारित्वे।

जगन्नाथने निद्रा त्याग कर मन्त्रपत्नियोंके कहा,—हे  
भुजङ्गने! तुमने मेरी अपराध की है। अब मैं तुमके  
पार नहीं रहूँगा। जहाँ इच्छा होगी मैं चला जाऊँगा।  
मेरी प्रविष्टा मिथ्या न होगी। तुम यदि मुझे न भगवती,  
तो सूर्य अन्ध नहीं होगा। इससे तुमने जमा कर भारी  
अपराध किया।

मायकीं जगन्नाथने हाथ जोड़ गेती हुई कहा,—  
हे जिनोचम! इस अपवर्णनकीं वशीलता त्याग करके  
आपकीं उचित नहीं। क्योंकि आप धर्मन हैं। यह  
धर्मपत्नमें यह कर आपकीं सेवा कृपणा, दिवानुष्ठान धीर  
विश्रवाटं करती हूँ। क्योंकि मैं प्राँति आपके साथ  
हमारा विवाह कर दिया है। मैं पत्नी प्रजापिता हूँ  
कि यह लुभ भी नान न कर सकी, अपवध मर्त्य  
मुभकीं क्या करमे? मेरी प्राँतिके हीनेमें यासुकायमें  
प्रसियुत हो चलीं। की है, कि आपकीं वीर्य और मेरे  
गर्भके एक सन्तान उत्पन्न हो, यह भी अब तक नहीं।  
देना हीनेमें हमारीं प्राँतिना बड़ा मन्त्र हुआ। हे मन्त्र  
यन्! मैं अपना जानिकीं विनीतियों ही आपकीं मायाका  
करती हूँ, कि आप प्रवन्त ही। आप अपना सन्तान  
मुभके न तो हूँ। आप तपस्यों मन्त्रार्थ ही कर इस  
आपके रूप मन्त्रार्थन कर किना तरह विद्वरार्थकीं  
मायाकीं त्याग जाने पर उत्पन्न हुए है। यह लुभ कर

जगत्कारने समयानुसार कहा,—हे सुमग ! धैर्यवानर-  
तुल्य परम धार्मिक एक ऋषि तुम्हारे गर्भमें है । यह कह  
कर तपस्या करनेके उद्देश्यसे जगत्कारने वनको प्रस्थान  
किया ।

स्वामीके चले जाने पर वासुकि भगिनी भार्दके घर  
नली गई और अपने भार्दसे सब वृत्तांत कह सुनाया ।  
वासुकिने यह अभिय बात सुन कर कहा, - भद्रे ! तुमको  
जिस उद्देश्यकी पूर्तिके लिये मैंने उन मुनिसे तुम्हारा  
विवाह किया था, वह उद्देश्य सफल हुआ है, या नहीं  
अर्थात् तुम्हारे गर्भ और ऋषिके औरससे जातिके कल्याण  
के लिये एक सन्तानकी आवश्यकता थी । उस उद्देश्य-  
की पूर्ति हुई या नहीं ? यह प्रश्न मेरे पूछने योग्य न होने  
पर भी अत्यंत आवश्यक समझ मैं पूछ रहा हूं । तुम्हारे  
पति महातिशयो और तपस्वी हैं, उनकी लौटा लाना  
बड़ा कठिन काम है ।

अपने भार्दको यह बात सुन कर नागभगिनीने कहा—  
मैंने स्वामीके वनगमनके समय यह विषय पूछा था ।  
उन्होंने कहा है,—'आस्ति' याने तुम्हारे मन अनुरूप ही  
सन्तान तुम्हारे गर्भमें है । मुझे स्मरण है, कि हंसोमें  
भी उन्होंने कभी असत्य भाषण नहीं किया है । उन्होंने  
कहा है, कि अग्नि और सूर्यतुल्य तेजस्वी तुम्हारे एक  
पुत्र होगा ।

समय उपस्थित होने पर जगत्कारके गर्भसे देव-  
तुल्य एक पुत्र उत्पन्न हुआ । गर्भके समय पूछने पर  
स्वामीने 'आस्ति' शब्दका उच्चारण किया था । इसलिये  
पिताके धार्य पर ही उमका नाम आस्तिरु हुआ ।  
आस्तिकने ज्वयन ऋषिके आश्रयमें जा कर साद्गुणवैदका  
अध्ययन किया । इदो आस्तिरु मुनिने जन्मत्रय-सर्प-  
यज्ञके समय सर्पको रक्षा की थी । (भारत १।३४-५० म०)  
जगत्कारके देतो ।

महाभारतका विवरण ऐसा ही है । प्रद्वैवर्न-  
पुराणमें भी लिखा है,—आस्तिकने जन्मत्रयके सर्पमरतके  
समय सर्पकी रक्षा की । किन्तु महाभारतमें ऐसा कुछ  
लिखा दिग्दर्श नहीं देता । प्रद्वैवर्नपुराणमें इनकी पूजा-  
का विस्तृत विवरण लिखा है । इस पुराणके अनु-  
सार नारायण और महादेवने भी इनकी पूजा की थी

तथा मर्त्यलोकेमें भी यह पूजनीया है । इनकी पूजामें  
सर्पमय विदुरित होता है ।

देवी भागवतके २५ स्कन्धमें भी आस्तिकमाना जगत्-  
कारका उपाख्यान दिग्दर्श देता है । यह उपाख्यान भी  
महाभारतके उपाख्यानकी तरह है । इनमें भी मनसा  
नामका उल्लेख और पूजाविधान दिग्दर्श नहीं देता ।  
अनपय आस्तिक माता जगत्कारक मनसा देवी है या नहीं  
यह सुदिमान ही विचार लें ।

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें इनकी पूजाका विधान इस तरह  
लिखा है,—

“पूजा विधानं स्वोर्म च भूदनां मुनि पुत्रवः ।  
ध्यानञ्च गामवेदोक्तं देवीपूजा विधानञ्च ॥”

ध्यान,—

“ध्वनं चक्र वर्याभ्यां रश्मिपद्मभूविनाम् ।  
वक्षिण्युदामुत्तानां नागयगोपकीतिनाम् ॥  
महागानपुताम्रैव प्रवरां गतिनां कर्मात् ।  
शिवाशिव्यादीदीवीश्विदो गिदिमदो भवे ॥”

( ब्रह्मवैवर्तपु० प्रवृत्त० ४६ म० )

इस ध्यानसे तरह तरहके उपचार द्वारा मनसा  
देवीकी पूजा करना होती है । इस मनसा देवीका  
छादजाश्वर मन्त्र इस तरह है,—“ॐ ह्रीं श्रीं कों ऐं  
मनसाईव्यै स्वाहा ॥” यह छादजाश्वर मन्त्र कल्पतरु सद्गुण  
है । इस मन्त्रका पांच लाख जप करनेसे मनुष्यके मख-  
की सिद्धि होती है । जिनका मन्त्र सिद्ध हो जाता है  
वे सिद्ध कहलाते हैं । उनके लिये विष भी अमृत  
तुल्य है । आषाढ महानेकी संक्रान्तिमें या पञ्चमीके  
दिन स्नानों ( सौंज ), शागामें इस देवीका आयाहन कर  
पूजन करना होता है । जो इस प्रकार इनकी पूजा करता  
है, वह धनवान्, पुत्रवान् और कीर्तिमान् होता है ।

ब्रह्मवैवर्तपुराणमें इन्द्र द्वारा मनसाकी पूजाको  
जगह इनका दगाश्वर मन्त्र ऐसा जाता है ।

“गतेऽन्त्य दिनेऽन्त्यं वक्षि विष्णुं शिवं विष्णुम् ।  
सं पूज्यादी देवदेवकं पूज्यान्त्यं वा यन्म ॥  
मो ह्रीं श्रीं मन्त्रा देवीं साहस्रैवैवन्त्र मन्त्राः ।  
दशाङ्गेषु मूलेन ददौ सर्वं यत्किञ्चन ॥”

( ब्रह्मवैवर्तपु० प्रवृत्त० ४६ म० )



मनसा—हिन्दीके एक कवि । ये कविता लालित्य और अनुप्रासोंके लिये प्रसिद्ध हैं । उदाहरणार्थ उनकी एक कविता नीचे देते हैं ।

मलयत्र गारा करें अंगन विगारा करें,  
गहि उर दारा करें मात मुक्तानकी ।  
भारती उवाच करें पंथा चोर दारा करें,  
कहिं विठवारा करें विषद विठानकी ॥  
मुख सौ निहारा करें दुखको विगारा करें,  
मनसा इगारा करें सारा भ विधानकी ।  
मानिक प्रदीपन सौ यारा साजि ताराजूकी,  
भारती उवारा करें दारा देवतान की ॥

मनसादेवी ( सं० खी० ) मनसा चासी देवी चेलि यहा मनसा द्योव्यतीति दिव् अच्, डोप् ( मनसःप्रशयां पा ६।३।४ ) इति विभक्त्या लृक् मनसा ।

मनसाना ( हि० फि० ) १ उर्मगमें आना, तरंगमें आना । २ मनसनेका काम दूसरेसे कराना, संकल्प मन्त्र आदि पढ़ कर या पढ़ा कर दूसरेसे दान आदि कराना ।

मनसापञ्चमी ( सं० ग्री० ) नागपञ्चमी । आपाढ़की कृष्ण पञ्चमीमें मनसादेवीका उत्सव होता है ।

मनसायन ( हि० वि० ) १ मनोरम स्थान, गुलजार । २ यह स्थान जहां मन-यह-भावके लिये कुछ लोग हों ।

मनसाराम—हिन्दीके एक प्रसिद्ध कवि । उनका बनाया नायिका भेदका ग्रन्थ उत्तम है ।

मनसिकार ( सं० पु० ) मनोवाग, ध्यान ।

मनसिज ( सं० पु० ) मनसि जायते इति जन-उ । ( ह्यदन्तान् उतस्याः उवायां । पा ६।३।६ ) इति सप्तम्या अलुक् । १ कामधेय । ( त्रि० ) २ मनोजान माल ।

मनसिन् ( सं० लि० ) मनयुक्त ।

मनसिगय ( सं० पु० ) मनसि शेते इति जो ( भषिक्परो शेते । पा ३।३।१५ ) इति अच्, ततः सप्तम्या अलुक् । कामधेय ।

मनसून ( अ० वि० ) १ जो अप्रामाणिक ठहरा दिया गया हो, अतिपतित । २ परिपक्व, तयागा हुआ ।

मनसूयो ( अ० खी० ) मनसूया होनेका भाव या क्रिया ।  
मनसूया ( अ० पु० ) १ सुनि, भाषोजन । २ इरादा, विचार ।

मनसूर ( अ० पु० ) एक प्रसिद्ध मुसलमान शायर । यह सूफी मतका आचार्य माना जाता है । इसका श्यों जताम्दीमें पैजानगरमें हुसैन हहाजके घर जन्म हुआ था ।

यह 'अनलहक' अर्थात् 'अह' ब्रह्मास्मि' कहा करता था । बगदादके खलीफा मकतददिनने इसे इस्लाम धर्मका विरोधी समझ कर ११६ ई०में सूली पर चढ़ा दिया और इसके शवको भस्म करा दिया था ।

मनसेधू ( सं० पु० ) पुरुष, आदमी ।  
मनसेहरा—१ पञ्जाबके हजारा जिलेको तहसील । यह अक्षा० ३४° १४' से ३५° २०' उ० तथा देशा० ७२° ५५' से ७५° ६' पू० के मध्य अवस्थित है । भूपरिमाण १४८६ वर्गमील और जनसंख्या दो लाखके करीब है । इसमें यहा नामक एक शहर और २४४ ग्राम लगते हैं ।

२ उक्त तहसीलका सदर । यह अक्षा० ३४° २०' उ० तथा देशा० ७३° १३' पू०के मध्य स्थित है । यह शहर अबटाबादके उत्तर शिरहन नदीके सङ्गम पर कालका-सरायसे काश्मीर जानेके रास्ते पर अवस्थित है । यहां तहसीलको कचहरो, डाकघर और थाना है । अधियासी नवी यणिक शस्य और देनजात द्रव्योंका वाणिज्य करते हैं । जनसंख्या पांच हजारसे ज्यादा है । यहां एक पेड़को यणायकूलर मिडिल स्कूल और एक सरकारी अस्पताल है ।

मनसूर इन् जनहर—खलीफा शय मर्यांनके अधीनरथ सिन्धुप्रदेशके एक प्रामनकर्ता । अल मसूदीके मतसे इन्होंने मनसूरियाको प्रतिष्ठा की । किन्तु यर्लाजर महममद इन् कासिमको मनसूरियाके प्रतिष्ठाता बतलाते हैं । त्यों जताम्दीके मध्यभागमें ये सिन्धुप्रदेशका शासन करते थे । खलीफा भायु मन्सुदिनने इन पर अयसन्न हो कर अबदुर खदमानको सिन्धुप्रदेशका प्रामनकर्ता बना कर भेजा । किन्तु सिन्धुनौमास्त पर मनसूरने उसे मार डाला । पीछे क्रावुत तामिमी सिन्धुके प्रामनकर्ता हुए । उन्होंने मनसूरको परास्त और राजस्युत किया । अन्तमें इन्होंने मन्सूमिमें ध्यायके माये जीवन-नीत्या संस्करण की ।

मनसूरकोट—गझाम जिलेके बहमपुर तालुकका एक ग्राम । यह अक्षा० १६° १७' उ० तथा देशा० ८४° ५८' पू०



मना ( सं० स्त्री० ) १ मनन, स्तोत्र । २ मन ।  
मना ( अ० वि० ) १ निरिद्ध, वर्जित । २ जो कुछ करनेसे  
रोका गया हो, वारण किया हुआ । इस अर्थमें इस शब्द-  
का प्रयोग केवल विधेय रूपमें होता है । ३ अनुचिन,  
नामुनासिध ।

मनाई ( हि० स्त्री० ) मनाही देखा ।

मनाक् ( सं० ध्व० ) मन्यने इति मन-शान्ते वाहुत्यकान्  
आक् प्रत्ययः । १ अल्प, थोड़ा । २ मन्द, सुस्त ।

मनाक ( हि० वि० ) अल्प, थोड़ा ।

मनाका ( सं० स्त्री० ) मनाते इति मन ( बलाकारयञ्च ।  
उष् ४।१४ ) हस्तिनी, हथिनी ।

मनाकर ( सं० स्त्री० ) मनाक् यथा तथा करोतीति कृ-  
थञ् । १ मङ्गला, एक प्रकारका अमृत जिसमें चमेलोंकी  
सो गंध होती है । ( त्रि० ) मनाक् अल्पस्य करः । २  
ईपत्कारक, थोड़ा करनेवाला ।

मनागोली—बम्बई प्रदेशके दिनाजपुर जिलेका एक नगर ।  
यह अक्षा० १६° ४०' ३०" तथा देशा० ७५° ५४' ५०"के  
मध्य विस्तृत है ।

मनाज ( सं० स्त्री० ) सामवेद ।

मनादी ( हि० स्त्री० ) मुनादी देखा ।

मनानक् ( सं० ध्व० ) अल्प, थोड़ा-सा ।

मनाना ( हि० कि० ) १ दूसरेकी मानने पर उद्यत करना,  
स्वीकार करना । २ जो थप्रमन्न हो, उससे सन्तुष्ट या  
अनुकूल करना । ३ प्रार्थना करना, स्तुति करना ।  
४ भ्रमसन्नको प्रसन्न करनेके लिये अनुनय विनय  
करना । ५ देवता आदिसे किसी कामके होनेके लिये  
प्रार्थना करना ।

मनायो ( सं० स्त्री० ) मनोः स्त्री मनु ( मनोरीक । पा  
४।१।३८ ) इति ङोप्, उदात्तोकारश्च । मनुकी पत्नी ।

( जटाधर )

मनायु ( सं० वि० ) मनः क्षाय युक्त, जो होना दवायामें  
हो ।

मनार ( हि० पु० ) मीनार देखा ।

मनाल ( हि० पु० ) निमलेकी ओर मिलायेवाला एक  
प्रकारका चक्र । इसके सुन्दर परोंके लिये इसका  
निर्धार किया जाता है ।

मनावन ( हि० पु० ) १ मनानेकी किया । २ भ्रमसन्नको  
प्रसन्न करनेका काम । ३ मनानेका भाव ।

मनावसु ( सं० त्रि० ) मना मननं स्तोत्रं वसु धनं वस्य ।  
स्वय हो जिनका एकमात्र धनस्वरूप है ।

मनायो ( सं० स्त्री० ) मनोः स्त्री मनु ( मनोरीक । पा  
४।१।३८ ) इति ङोप्, औकारश्चात्तादेनः । मनुपत्नी,  
मनुकी स्त्रीका नाम ।

मनाही ( हि० स्त्री० ) निषेध, रोक ।

मनि ( हि० स्त्री० ) मणि देखा ।

मनिका ( हि० स्त्री० ) मान्दामे पिरोया हुआ दामा,  
शुरिया ।

मनिङ्गा ( सं० स्त्री० ) नदीभेद ।

मनित ( सं० त्रि० ) मन बोधे-क्त । प्राप्त, जाहिर ।

मनिया ( हि० स्त्री० ) १ मनिका, शुरिया । २ कण्ठो,  
शुरिया ।

मनियार ( हि० वि० ) १ देदिव्यमान, चमकोला । २ शं-  
नोय, गोमानुक्त ।

मनिहार ( हि० पु० ) चूड़ी बनानेवाला, चुड़िहार ।  
मनियार देखा ।

मनीधार्डर ( अ० पु० ) रूपरेकी हुंशो जो किसीके रूपया  
चुकाने पर एक डाकगानेसे दूसरे डाकगानेमें इसलिये  
भेजा जाता है कि यह यहाँके किसी मनुष्यको हुंशोमें  
लिखी रकम चुका दे । एक रूपानमें दूसरे स्थान पर  
रूपया प्रायः लोग इसी प्रकार डाकगानेकी मारफत भेजा  
करते हैं ।

मनोक ( सं० स्त्री० ) मन्यते गोभाशंमाद्रिये इति मन्,  
( अर्षीवाइपथ । उष् ४।२४ ) इति कोकन् प्रत्ययेन  
निपातनान् माधुः । अङ्गन, अङ्गन ।

मनोर ( हि० स्त्री० ) मोरनी ।

मनीया ( सं० स्त्री० ) ईय भ-टाप्, मनस ईया गमनं  
( ककन्वादिभु दरुप्य वाच्यं । पा १।१।६४ ) इत्यस्य  
यात्तिकोपस्य माधुः । १ सुदि, अषट् । २ म्नुति,  
प्रशंसा ।

मनीषिका ( सं० स्त्री० ) मनीषा, सुदि ।

मनीपित ( सं० स्त्री० ) मनीषा सञ्ज्ञानार्थं तारकादित्या-  
तच्, यद्वा मनसु-ईय-क्त । मनोऽमित्पित, पाम्बुत्त ।



तदा मिथुनधर्मैष प्रजा बोधोऽवर्तते ।

म चापि शतस्त्रयाथा पन्थापत्यान्वजीतजन् ॥”

( भागवत ३।१।३३-३६ )

स्वायम्भुव—१म मनु । पहले ब्रह्मणे जब देवा कि महा-  
वीर्य सप्तर्षि प्रभृति द्वारा मृष्टिका विस्तार नहीं हुआ,  
तब वे बड़े विस्मित हुए और चिन्ता करने लगे—पया  
आश्चर्य है ! मैं सर्वत्र व्याप्त हूँ, निम्न पर भी मेरो प्रजाकी  
निर्य वृद्धि नहीं होती । इससे मालूम होता है, कि देव ही  
इसका एकमात्र प्रतिकूल कारण हैं ! इस प्रकार जब वे  
चिन्तामन थे, तब उनको यह मूर्ति आपे आप दो भागों-  
में बट गई । इस कारण यह अज्ञ भी काय नामसे  
प्रसिद्ध है । उन दोनों अंशों द्वारा वे मिथुन अर्धांश  
सोपुरुष हुए । एक अंश जो पुरुष या उसका नाम  
स्वायम्भुव और दूसरे अंशका नाम शतरूपा रखा  
गया । शतरूपा स्वायम्भुव मनुकी पत्नी हुई । इसी  
समयसे मिथुन धर्म द्वारा प्रजाको वृद्धि होने लगी ।

स्वायम्भुव मनुके शतरूपा पत्नीसे पांच सन्तान हुई  
जिनमेंसे दो पुत्र और तीन कन्या थीं । पुत्रका नाम  
मिथ्यप्रत और उतानपाद तथा कन्याका आकृति, देव-  
हृति और प्रसृति था ।

मनुने आकृतिको कश्चिदे हाथ, देवहृतीको कर्दमके  
हाथ और छोटो प्रसृतिको दक्षके हाथ सौंपा । इनकी  
सन्तान-सन्तानिसे जगत् परिपूर्ण हो गया ।

( भागवत ३।१२।१३-२० )

स्वामेचिप—द्वितीय मनु । जनि इनके पिता तथा  
सुपेण और रोनिष्मत् आदि इनके पुत्र थे । इस मन्व-  
न्तरमें सुपितादि देवता तथा उनके इन्द्र, सोचन और  
ऊर्ध्वर्ष्य स्तम्भादि करके मन्वर्षि थे । इस समय वेद-  
गंगा नामक ऋषिसे उनको पत्नी सुपिताके गर्भसे विभु  
नामक एक विन्ध्यात देवमे जन्मग्रहण किया । ये कौमार  
प्रवचारी थे । भरसो दत्तार मुनिसे इनसे प्रतजिज्ञा  
प्राप्त की थी ।

उत्तम—तृतीय मनु । ये मिथ्यप्रतके पुत्र थे । इनके  
पुत्रका नाम पवन, सृञ्जन तथा यमहोत्रादि था । इन  
मनुके समय प्रमदादि सप्तर्षि हुए । ये सभी यज्ञिष्ठके पुत्र  
थे । सत्य, वेदधृत, भद्र आदि देवता और सत्यजिज्ञ

उनके इन्द्र थे । इस मन्वन्तरमें धर्मकी मृत्युना नामक  
भार्यासे भगवान् पुरुषोत्तम सत्यप्रतीके साथ उत्पन्न  
हुए । सत्यसेन उनका नाम रखा गया । सत्यसेन  
इन्द्रके सखा थे । इन्द्रके हाथमें दुर्युत यज्ञ शतरूपादि  
भूतद्रोही भूतोंका विनाश हुआ ।

तामस—चतुर्थ मनु । ये तृतीय मनु उत्तमके भार्ये  
थे । पृथु, प्याति, नद, केतु, आदि इनके दत्त पुत्र थे । इस  
मन्वन्तरमें सत्यक, हरि और यीर नामक देवगण, त्रिजिन  
नामक इन्द्र और ज्योतिर्धामादि सप्तर्षि थे । इस मन्व-  
न्तरमें उल्लिखित सत्यकादिके भक्तिरिक्त विनिष्ट परामम-  
गाली वैभूतिगण भी देवता हुए थे । वैभूतिगण विभूति-  
के पुत्र थे । कालयज्ञात् जब सभी वेद विनष्ट होनेकी  
थे, तब उन देवताओंमें अपने अपने तेजसे उर्ध्वे नष्ट होने-  
से बचाया था । इसी मनुके समय भगवान् विष्णु  
हरिणोके गर्भमें हरिमेधससे जन्मग्रहण कर हरि नामसे  
प्रसिद्ध हुए । भगवान् हरिने ब्राह्मके मुगसे यज्ञेन्द्रको  
बचाया था । ( भागवत ८।१।५ अ० )

रेवत—पञ्चम मनु । ये चतुर्थ नामस मनुके सहो-  
दर भाई थे । अर्जुन, बलि और विन्ध्यादि इनके पुत्र  
थे । इस मन्वन्तरमें विभु इन्द्र, भूतरेयादि देवगण और  
दिरण्यरोमा, वेदशिरा, ऊर्ध्वर्ष्याहृ आदि ब्राह्मण थे ।

चाक्षुष—षष्ठ मनु । इनके विताका नाम सृष्ट्य था ।  
पूर, पूष्य, सुघृभन आदि उनके पुत्र थे । इस मन्वन्तर  
में मन्वन्तर म इन्द्र, आप्यादिगण देवता तथा हर्षस्मत्  
और कीरकादि ऋषि थे । इसी मनुके समय पैराज्ञके  
औरम और देवसम्भूतके गर्भसे भगवान् विष्णु अपने  
अंशसे जन्म ले कर अजित नामसे प्रसिद्ध हुए ।

( भागवत ८।१।६ अ० )

वैवस्वत—सप्तम मनु । विवस्वानके पुत्र धाददेय  
सप्तम मनु नामसे विवस्वत हुए । सभी इसी मनुका  
अधिकार च्यत रहा है । इक्ष्वाकु, नभाग, भृष्ट, अपॉनि,  
नरिष्मत्, नामाग, दिष्ट, कुरु, पृथ्वी और वसुमान ये  
दत्त वैवस्वत मनुके पुत्र हैं । इस मन्वन्तरमें आदित्य,  
वसु, वरु, विन्ध्वेय, मरुद्रण, दो भक्तिगीकुमार और ब्रह्म-  
गण देवता हैं । पुरन्दर उन देवताके इन्द्र हैं । काश्यप  
भक्ति, यज्ञिष्ठ, विष्णामिव, गोमम, जमदग्नि और भद्राज्ञ





स मानसो मनुषुषं ब्रह्मणः परमेष्ठिनः ।

शतस्वाम्भुव तत्पत्नीं जने धर्मं श्यम्बिषीम् ॥” इत्यादि

( देवीभाग० १०।१।६-७ )

भगवान् विष्णुके नामिषमसे चतुर्मुख ब्रह्मने उतपन्न हो कर निज अन्तःकरणसे स्वायम्भुव मनु और उनकी धर्मरूपिणी पत्नी शतरूपाको उत्पादन किया । इसीसे स्वायम्भुव मनु ब्रह्माके मानस पुत्र कहलाते हैं । स्वायम्भुव मनुके उतपन्न होने पर ब्रह्माने उन्हें सृष्टि करनेका आदेश दिया ।

ब्रह्माने प्रजासृष्टिका भार पा कर स्वायम्भुव मनुने क्षौरसमुद्रके किनारे भगवतोको सृष्ट्ययोगी मूर्त्ति प्रणिष्टा की और वहाँ उनको आराधना करने लगे । देवी भगवतोने तपस्यासे प्रसन्न हो कर उन्हें अभिलषित कर प्रदान किया जिससे वे प्रजासृष्टि करनेमें समर्थ हुए थे । ( देवीभाग० १०।१-७ )

अब स्वायम्भुव मनु पिताके आज्ञानुसार सृष्टिकार्य करने लगे । यथाममय उनके प्रियव्रत और उत्तानपाद् नामक दो पुत्र तथा आकृति, देवहृति और प्रसृति नामक तीन कन्या उत्पन्न हुईं । मनुने आकृतिका महर्षि रुचिके साथ, देवहृतिकी प्रजापति कर्दमके साथ और प्रसृतिका प्रजापति दक्षके साथ विवाह कर दिया । महर्षि रुचिके औरससे आकृतिके एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम यज्ञ रखा गया । यह पुत्र भगवान् आदिपुरुष विष्णुका अंश था । कर्दमके औरससे देवहृतिके सांख्यार्च्य कपिलदेव नामक पुत्र उत्पन्न हुए । प्रजापति दक्षके औरससे बहुत-सी कन्याएँ उत्पन्न हुईं । इनके अतिरिक्त देव, दानव, पशु और पक्षी आदि भी दक्षने उत्पन्न हुए । यही सब प्रजा विम्बसृष्टिकी प्रवर्तक थीं । स्वायम्भुव मन्थतन्में भगवान् यज्ञने याम नामक देवताकोसे परिष्कृत हो अपने मातामह मनुको राक्षससे बचाया था । कपिलने कुछ दिन आध्रममें रह कर निज गर्भधारिणी देवहृतिकी तत्त्वज्ञानस्वरूप कापिल शास्त्र ( सांख्यशास्त्र ) ध्यान-योगादिका उपदेश दिया था । पीछे पुनःहाध्रममें जा कर उन्होंने योगावलम्बन किया । मनुके सभी पुत्रोंने प्राणिजगत्के सुगन्धि और लोकव्यवहारको प्रसिद्धिके लिये दीपवर्ष और समुद्रादिका प्रसन्ध कर दिया था ।

स्वायम्भुव मनुके बड़े लड़के प्रियव्रतका नाम—मां-को लडको पहिलतोके साथ पिपाह हुआ । इनके पुन दन और कन्या एक थीं । कन्या हो सबसे छोटी थी । अनोध, इधमजिह, यज्ञवाह, महावीर, रथमसुन, घृत-पृष्ठ, सयन, मेधातिथि, घीतिहोत और कथि यही उनके दन पुत्र थे । इनमेंसे कथि, सयन और महावीर इन तीनोंने संन्यासधर्म ग्रहण किया था ।

प्रियव्रतकी दूसरी खोसे उत्तम, तामस और रैवत नामक तीन पुत्र हुए । ये सबके सब विम्बयिष्यात हैं । तीनों ही पुत्र पराक्रमी थे और एक एक मन्वन्तरके अधीश्वर हुए थे । प्रियव्रतने इन सब पुत्रोंके साथ ग्यारह दशुद वर्ष तक पृथिवीका भोग किया था । किन्तु आदर्च्यका विषय है, कि इतने दीर्घकालमें भी उनके पेंन्द्रियिक वा शारीरिक बलका जरा भी हास नहीं हुआ ।

एक दिन प्रियव्रतने जब देखा कि सूर्यके पृथिवीके एक भाग पर प्रकाशित होनेसे दूमरा भाग अन्धकार रहता है, तब वे भारी चिन्तामें पड़ गये और कहने लगे,—मेरे राज्य-शासनकालमें ऐसा घ्यतिव्रम नहीं होना चाहिये । योगप्रमापसे मैं इसका जकर निवारण करूंगा । इस प्रकार निदचय करके वे जगत्को आलोक-मय करनेके लिये एक सूर्यसदृश प्रकाशमान रथ पर सवार हुए और प्रतिदिन सात बार करके पृथिवीका प्रदक्षिण करने लगे । उनके पर्वटनसे चक्रनेमि द्वारा जो सब भूभाग घँस गया था उसीसे सप्त सागरको उत्पत्ति हुई । सप्त सागरके मध्य जो सब भूभाग घं वे सप्तद्वीप कहलाये और सात सागर सप्तद्वीपके परिता-स्वरूप हुए । प्रियव्रतके सात पुत्र जग्मु आदि सप्तद्वीपके अधिपति बने ।

द्वितीय मनु—स्वार्पोचिय । यह प्रियव्रतके पुत्र थे । इन्होंने कालिन्दीनद पर देवी भगवतोको मृष्ट्ययोगी मूर्त्ति बना कर बारह वर्ष तक कटोर तपस्या की । भगवतःने प्रसन्न हो उन्हें मन्थन्तराधिपति बनाया । अपने अधि-कारकाल तक पद्याविधि धर्म संस्थापन करने हुए वे पुत्रोंके साथ राज्यभोग करके स्वर्गको सिंघारे ।

तृतीय मनु प्रियव्रतके उत्तम नामक पुत्र थे । राजर्षि

ये सात ऋषि हैं । इस मन्वन्तरमें भगवान् विष्णुने कश्यपकी पत्नी अदितिसे जन्मग्रहण किया है ।

विष्वक्वानके दो पत्नी थीं । दोनों ही विश्वकर्माकी कन्या थीं । संघा और छाया उनका नाम था । किसी किसी ऋषि के मतसे विष्वक्वानके बड़या नामक एक और पत्नी थी । इन तीनों पत्नियोंमें संघाके तीन सन्तान यम, यमी (यमुना) और श्राद्धदेव तथा छायाके एक पुत्र और एक कन्या थी । पुत्रका नाम सवर्ण और कन्याका तपती था । वह कन्या शम्बरणको स्बाही थी । बड़याके गर्भसे दोनों अश्विनीकुमार उत्पन्न हुए ।

सावर्णि—अष्टम मनु । निर्मोक और विरजस्क आदि इनके पुत्र होंगे । इस मनुके समय सुतपा, विरजा और आनृतप्रभा ये सब देवता तथा विरोचनात्मक बलि उन देवताओंके इन्द्र होंगे । गालव, दीप्तिमान्, परशुराम, अश्वत्थामा, रूप, ऋष्यशृङ्ग तथा याददायणादि सप्तर्षि हैं । इस मन्वन्तरमें देवगुणकी पत्नी सरस्वतीके गर्भसे भगवान् अथतीर्ण हो कर सावर्णिम कहलायेंगे ।

दक्ष सावर्णि—नवम मनु । वरुणसे इनका उद्भव है । भूतकेतु, दीप्तकेतु इत्यादि इनके पुत्र होंगे । मरीचि गर्भ प्रभृति देवता, अद्भुत इन्द्र तथा घृतिमान् आदि सप्तर्षि होंगे । इस मन्वन्तरमें भगवान् विष्णु आयुष्मान्-के औरससे अम्बुधाराके गर्भसे जन्म ले कर ऋष्यप नामसे प्रसिद्ध होंगे ।

ब्रह्मसावर्णि—दशम मनु । ये उपश्लोकके पुत्र हैं । भूरिपेण आदि इनकी सन्तान हैं । इस मन्वन्तरमें हविष्मान्, सुकृत, सत्य, जय, मूर्ति आदि सप्तर्षि तथा सुवासन और अचिरुद्धादि देवता और शम्भु इन्द्र होंगे । इस समय भगवान् विष्णु विश्वस्वक् ब्राह्मणके घरमें विष्णुत्रिके गर्भसे उत्पन्न हो कर विश्वक्सेन नामसे प्रसिद्ध होंगे । देवराज इन्द्रके साथ इनकी गाढ़ी मित्रता होगी ।

धर्मसावर्णि—एकादश मनु । इनके सत्यधर्मादि द्वा पुत्र होंगे । इस समय विद्मङ्गम, कालगम निर्वाण और रुचि आदि देवता, वैधृत इन्द्र तथा अरुणादि सप्तर्षि होंगे । भगवान् विष्णु आर्णककी पत्नी वैधृताके गर्भसे जन्म ले कर धर्मसेतु नामसे प्रसिद्ध होंगे ।

रुद्र सावर्णि—द्वादश मनु । देवयान, उपदेव और श्रेष्ठादि इनके पुत्र होंगे । इस मन्वन्तरमें हरितादि देवता, गन्धधामा इन्द्र, तपोमूर्ति, तपस्वी और अनीघ्न आदि सप्तर्षि होंगे । भगवान् विष्णु सत्यवहा ब्राह्मणीकी पत्नी सुनृताके गर्भसे उत्पन्न हो कर सुधामा कहलायेंगे ।

देव सावर्णि—त्रयोदश मनु । चितसेन, विचित्र आदि इनके पुत्र होंगे । इस मन्वन्तरमें सुकर्मा, सुतामादि देवता, दिवस्पति इन्द्र तथा निर्मोक और तत्त्वदर्शादि सप्तर्षि होंगे । भगवान् विष्णु देवहोतसे वृहतोके गर्भसे अंशरूपमें जन्मग्रहण कर योगेश्वर कहलायेंगे ।

इन्द्र सावर्णि—चतुर्दश मनु । ऊरु, गम्भीर, प्रभ आदि इनके पुत्र होंगे । इस मन्वन्तरमें चाक्षुष आदि देवता और शुचि उनके इन्द्र तथा अग्निवाहु, शुचि, शुक्ल और मागध आदि सप्तर्षि हैं । भगवान् विष्णु सत्रायणकी पत्नी विनताके गर्भमें जन्मग्रहण करेंगे । वृद्धानु इनका नाम रहेगा ।

इन चतुर्दश मनुका काल प्रमाण सहस्रयुग है ।

(भाग ० ८।१५)

ये समस्त मनु, मनुपुत्र, सप्तर्षि और इन्द्र प्रभृति परम पुरुष ईश्वरसे नियोजित होते हैं । अर्थात् उन सब मन्वन्तरामें यह प्रभृति जिन पुरुष मूर्ति ईश्वरावतारकी कथा कही गई है, उन सब मूर्तियोंसे नियोजित हो कर ही सभी मनु जगत्का कार्यनिर्वाह करते हैं । चतुर्युगके अन्तमें समस्त श्रुतियों कालग्रस्त हुई थी । इन मन्वन्तरोंमें ऋषिगण अपने अपने तपोबलसे ये सब घटना देखते हैं । पीछे उन श्रुतियोंसे ही सनातनधर्मका फिरसे अभ्युदय होता है । अनंतर भगवान् हरिके आदेशसे मनुगण अपने अपने समयमें संयत हो कर पृथ्वी पर चतुष्पाद धर्मका प्रचार करते हैं । प्रजापाल वे सब मनुपुत्र अपने अपने मन्वन्तरके अयसान तक पुत्र पीतादि क्रमसे धर्मका पालन करते हैं ।

(भागवत ८।१५ अ०)

देवी भागवतमें लिखा है—

“स चतुर्मुख आमाद्य प्रादुर्भाव महामते !

मनुं स्थापयन्तुव नाम जनयामास मानसात् ॥

य मानसो मनुषुर्न । ब्रह्मणः परमेशिनः ।

नतरूपाश्च तपस्वीर्न जने धर्मं स्वस्वेषाम् ॥” इत्यादि

( देवीभाग० १०११६-७ )

भगवान् विष्णुके नामिषद्भस्ते चतुर्मुख ब्रह्माने उत्पन्न हो कर निज अन्तःकरणसे स्वायम्भुव मनु और उनकी धर्मस्वपिणी पत्नी जतरूपाको उत्पादन किया । इसीसे स्वायम्भुव मनु ब्रह्माके मानस पुत्र कहलाते हैं । स्वायम्भुव मनुके उत्पन्न होने पर ब्रह्माने उन्हें सृष्टि करनेका आदेश दिया ।

ब्रह्मासे प्रजासृष्टिका भार पा कर स्वायम्भुव मनुने क्षौरसमुद्रके किनारे भगवतोको मृण्मयी मूर्ति की प्रतिष्ठा की और वहाँ उनकी आराधना करने लगे । देवी भगवतोने तपस्यासे प्रसन्न हो कर उन्हें अमिलपित वर प्रदान किया जिससे वे प्रजासृष्टि करनेमें समर्थ हुए थे । ( देवीभाग० १०११-७ )

अब स्वायम्भुव मनु पिताके आज्ञानुसार सृष्टिकार्य करने लगे । यथानामय उनके प्रियव्रत और उत्तानपाद् नामक दो पुत्र तथा आकृति, देवहृति और प्रभृति नामक तीन कन्या उत्पन्न हुईं । मनुने आकृतिका महर्षि रुनिके साथ, देवहृतिका प्रजापति कर्दमके साथ और प्रभृतिका प्रजापति दक्षके साथ विवाह कर दिया । महर्षि रुनिके औरससे आकृतिके एक पुत्र उत्पन्न हुआ जिमका नाम यज्ञ रत्ना गया । यह पुत्र भगवान् आदियुषुष विष्णुका अंश था । कर्दमके औरससे देवहृतिके माण्ड्याचार्य कपिलदेव नामक पुत्र उत्पन्न हुए । प्रजापति दक्षके औरससे बहुत-सी कन्याएँ उत्पन्न हुईं । इसके अतिरिक्त देव, दानव, पशु और पक्षी आदि भी दक्षने उत्पन्न हुए । यही सब प्रजा विश्वसृष्टिकी प्रवर्तक थीं । स्वायम्भुव मन्वन्तरमें भगवान् यज्ञने याम नामक देवताओंसे परिश्रुत हो अपने मातामह मनुको राक्षससे बचाया था । कपिलने कुछ दिन आश्रममें रह कर निज गर्भधारिणी देवहृति-को तपस्वहानस्वरूप कपिल जात्र ( सांख्यजात्र ) ध्यान-योगादिका उपदेश दिया था । पीछे पुलहाधममें जा कर उन्होंने योगायलम्बन किया । मनुके सभी पुत्रोंने प्राणिकमनुके सुसुप्ति और लोकव्यवहारकी प्रसिद्धिके लिये द्रौपदी और समुद्रादिका प्रवृत्त कर दिया था ।

स्वायम्भुव मनुके बड़े लड़के प्रियव्रतका नाम—को लड़को यहिष्मतीके साथ विवाह हुआ । उनके पुत्र दृग और कन्या एक थीं । कन्या हो सबसे छोटी थी । अनांध, इध्मजिह, यज्ञवाद्, महावीर, रूपमशुक्र, पृत्-पृष्ठ, मयन, मेधातिथि, घीतिहोत और कचि यही उनके दृग पुत्र थे । इनमेंसे कचि, सवन और महावीर इन तीनोंने संन्यासधर्म ग्रहण किया था ।

प्रियव्रतकी दूसरी खोसे उत्तम, तामस और रैवत नामक तीन पुत्र हुए । ये सबके सब विश्वविख्यात हैं । तीनों ही पुत्र पराक्रमी थे और एक एक मन्वन्तरके अधीश्वर हुए थे । प्रियव्रतने इन सब पुत्रोंके साथ ग्यारह अर्बुद वर्ष तक पृथिवीका भोग किया था । किन्तु आदर्चकका विषय है, कि इतने दीर्घकालमें भी उनके चेन्द्रियिक या शारीरिक बलका जरा भी हास नहीं हुआ ।

एक दिन प्रियव्रतने जब देखा कि सूर्यके पृथिवीके एक भाग पर प्रकाशित होनेसे दूसरा भाग अन्धकार रहता है, तब वे भारी चिन्तामें पड़ गये और कहने लगे,—मेरे राज्य-शासनकालमें ऐसा घ्यतिक्रम नहीं होना चाहिये । योगप्रभावसे मैं इसका जरूर निवारण करूँगा । इस प्रकार निश्चय करके वे जगत्को आलोक-मय करनेके लिये एक सूर्यसङ्घा प्रकाशमान रूप पर सवार हुए और प्रतिदिन सात बार उनके पृथिवीका प्रदक्षिण करने लगे । उनके पर्यटनसे चक्रनेमि द्वारा जो सब भूभाग घंटा गया था उसोसे सात सागरको उत्पत्ति हुई । सात सागरके मध्य जो सब भूभाग थे वे सप्तद्वीप कहलाये और सात सागर सप्तद्वीपके परिघा-स्वरूप हुए । प्रियव्रतके सात पुत्र जम्बु आदि गगद्वापके अधिपति बने ।

तिनोप मनु—स्वारोचिर । यह प्रियव्रतके पुत्र थे । इन्होंने कालिन्द्वातट पर देवी भगवतोको मृण्मयी मूर्ति बना कर बारह वर्ष तक कठोर तपस्या की । भगवताने प्रसन्न हो उन्हें मन्वन्तराधिपति बनाया । अपने अधि-कारकाल तक यथाविधि धर्म संस्थापन करने हुए थे पुत्रोंके साथ राज्यभोग करके स्वर्गकी सिपारे ।

तृतीय मनु प्रियव्रतके उत्तम नामक पुत्र थे । यज्ञने

उत्तमने विजयन गङ्गाके किनारे रह कर तीन जप तक चागभयवीजका जप किया। उसी जपके फलसे ये देवीके अनुग्रहमात्रन हुए। इन्होंने निष्कण्टक राज्य और अनवच्छिन्न सन्तति लाभ कर अन्तमें राजर्षियोंके प्राण्य उद्दृष्ट पदको पाया।

चतुर्थ मनु—तामस। ये प्रियव्रतके पुत्र थे। इन्होंने नर्मदाके दाहिने किनारे कामवीजका जप कर जगन्मयो माहेश्वरीकी आराधना की तथा शरत् और वसन्त-कालमें नगराज व्रतानुष्ठान किया। प्रसन्नरूपिणीदेवीके वरसे मनु निष्कण्टक राज्यभोग कर अन्तमें स्वर्गको चले गये।

पञ्चम मनु—तामसके छोटे भाई प्रियव्रतके पुत्र रैवत। राजर्षि रैवतने कालिन्दाके किनारे परमसिद्धिदायक कामवीजका जप कर देवीकी आराधना की। देवीके वरसे इन्होंने मन्वंतराधिपतिको पद प्राप्त किया। रैवत मनु व्यवस्थानुसार धर्मका विभाग कर अन्तमें सर्वोत्तम इन्द्रलोकको गये।

षष्ठ मनु—चाक्षुष। ये अङ्गराजके पुत्र थे। एक दिन इन्होंने पुलकाश्रममें जा कर उनसे कहा,—'मैं आपकी शरणमें पहुँचा हूँ। आप मुझे कृपा वैयासा उपदेश दीजिये जिससे मैं पृथिवीका एकाधिपत्य पा कर अपने वंशको विरस्थाप्य बना सकूँ और अन्तमें मुक्तिलाभ कर स्वर्गको सिधारूँ।' पुलहने मनुकी प्रार्थना पर उन्हें देवीकी आराधना करनेका उपदेश दिया।

चाक्षुष मनु महर्षि पुलहके आदेशसे विरजा नदीके किनारे तपस्वार्थ उपस्थित हुए। यहाँ उन्होंने वाग्भव मन्त्रका जप कर देवी भगवतीकी उपासना की। देवीने तपस्यासे प्रसन्न हो कर उन्हें मन्वंतरीय निष्कण्टकराज्य, प्रभूत बलशाली कुछ पुत्र और विषय भोगके वाद् अन्तमें मुक्तिलाभका वर दिया। चाक्षुषने भगवतीके वरसे मनुश्रेष्ठ हो निष्कण्टक सुख भोग किया था। उनके पुत्रगण भी प्रभूत बलशाली हो कर देवीके परमभक्त और सर्वज्ञ माननीय हुए। राज्यभोगके वाद् चाक्षुष देवी पदमें लीन हो गये थे।

सप्तम मनु—वैवस्वत। इन्होंने भी देवी भगवतीको तपस्या कर मन्वंतराधिपत्य प्राप्त किया।

अष्टम मनु—सूर्य-पुत्र सावर्णि। पूर्वजन्ममें ये देवीको आराधना करके उन्हींके वरसे मनु हुए थे। स्वारोचिप-मन्वन्तरमें ये चैतवंशोद्भव सुरधर नामक राजा थे। पीछे जन्मुसे पराजित हो कर जंगलमें जा छिपे। वहाँ मेघ-श्रुतिके साथ इनका साक्षात् हुआ और उन्हींके उपदेशमें ये देवी भगवतीको मृण्मयी मूर्ति प्रतिष्ठा कर कठोर तपस्यामें प्रवृत्त हुए। देवी भगवतीने इनके प्रति संतुष्ट हो कर अभिलषित वर प्रदान किया। देवीके वरसे ये इस जन्ममें विविध सुख भोग कर दूसरे जन्ममें सावर्णि मनु हुए थे।

नवमादि चतुर्दश मनु—पूवकालमें वैवस्वत मनुके करूप, पुत्रप, नाभग, दिष्ट, शर्वाति और विशंकु नामक महाबल पराक्रान्त छः पुत्र थे। प्रत्येक पुत्रने कालिन्दी नदीके किनारे भगवतीकी मृण्मयी मूर्ति स्थापित कर वहाँ चौदह वर्ष तक उनकी आराधना की। देवीने प्रसन्न हो कर उन्हें अभिलषित वर प्रदान किया।

महापराक्रमी राजपुत्रगण पृथिवी मण्डल पर साप्ताज्य लाभ और विविध विषयका उपभोग कर परजन्ममें मन्वन्तराधिपति हुए थे। देवीके अनुग्रहसे उनमेंसे करूप वक्ष सावर्णि नामसे नवम मनु, द्वितीय पुषधराज मेरुसावर्णि नामसे दशम मनु, तृतीय नाभग सूर्य सावर्णि नामसे एकादश मनु, चतुर्थ दिष्ट चन्द्र सावर्णि नामसे द्वादश मनु, पञ्चम शर्वाति रुद्र सावर्णि नामसे त्रयोदश मनु तथा षष्ठ विशंकु विष्णु सावर्णि नामसे चतुर्दश मनु हुए थे। भगवती ज्ञानमें देवीके अनुग्रहसे ये चौदहों मनु तिसुवनमें महाप्रतापशाली, पराक्रान्त और सर्वलोकके पूज्य हुए। (देवीभाग० १०।१ १३ ७०)

विष्णुपुराणमें लिखा है—प्रथम स्वायम्भुव मनु, द्वितीय स्वारोचिप, तृतीय औत्तमि, चतुर्थ तामस, पञ्चम रैवत और षष्ठ चाक्षुष ये छः मनु हो गये हैं। अभी सूर्य-पुत्र वैवस्वत नामके सप्तम मनुका अधिकार है। स्वायम्भुव मनुका विषय पहले ही लिखा जा चुका है।

द्वितीय मनु स्वारोचिप है। इस मन्वन्तरमें पारावत-गण और तुषितगण देवता, विपदिच्यत उनके इन्द्र, ऊर्ज, स्तम्भ, प्राण, दत्तोलि, ऋषभ, निश्वर और उर्वारिवाय सप्तर्षि थे। चैत और किम्बुय्यादि स्वारोचिपके पुत्र

धे । तृतीय मनु औत्तमि,—इस मन्वन्तरमें इन्द्र, सुगान्ति तथा वसिष्ठके सात पुत्र सप्तर्षि । अश्व, परशु और दिव्य आदि औत्तमिके पुत्र थे । चतुर्थ मनु तामस,—सुरूषगण, हरिगण, सत्यगण और सुधीगण इस मन्वन्तरके देवता थे । प्रत्येककी संख्या सत्ताइस थी । राजा दिविने सौ यम करके इन्द्रत्व प्राप्त किया था । उपांति धर्मा, पृथु, काथ्य, चैत्र, अग्नि, वनक और पौषर ये सब महर्षि थे । नर, उपाति, जाल्, हय, जानुजंघ आदि तामसमनुके पुत्र थे ।

पञ्चम मनु रैवत,—इस मन्वन्तरमें अमिताम, भूत-रजस् और सुमेघसूगण देवता तथा उनके इन्द्र विभु थे । हिरण्यरोमा, देवध्रो, ऊटुर्ध्याहु, वेदवाहु, सुधामा, पर्यव और महामुनि ये सब सप्तर्षि तथा बलधंशु, सुसम्भाह और सत्यक आदि रैवतमनुके पुत्र थे ।

स्थारोचिय, औत्तमि, तामस और रैवत ये चारों मनु त्रियम्बतके वंशमें उत्पन्न हुए । राजर्षि त्रियम्बतने तपस्या द्वारा विष्णुको आराधना की और उसी तपोबलसे उन्हें मन्वन्तराधिपतिका पद प्राप्त हुआ था ।

साक्षुष—षष्ठ मनु । इस मन्वन्तरमें आद्य, प्रसूत, मय्य, वृषुग और लेतागण देवता थे । प्रत्येककी संख्या आठ थी । मनोजय उन देवताके इन्द्र थे । सुमेघा, विराज, हविष्मान, उत्तम, मधु, अतिगामा और सक्षिण्यु ये सप्तर्षि तथा उरु, पुष्य, शनघुम्न, प्रमुद्य, सुमहाबल आदि साक्षुष मनुके पुत्र थे ।

सूर्यके पुत्र धारुह्येय सप्तम मनु हैं । इस वैवस्वत मन्वन्तरमें आदित्य, वसु और ऋगण देवता और पुन्दर उनके इन्द्र हैं । वसिष्ठ, काश्यप, भवि, जमदग्नि, गौतम, विश्वामित्र और नारदाज ये सप्तर्षि हैं । इक्ष्वाकु, नाभाय, पृष्ट, द्रापंति, नरिष्यन्त, नाभ, करपु, वृषभ और यमुमान् ये भी वैवस्वत मनुके पुत्र हैं ।

प्रथम स्यायमभुय मन्वन्तरकालमें आकृतिके गर्भमें भगवान् विष्णु मानसदेव २३ नामसे उत्पन्न हुए । रुद्रारोचिय मनुके समय भगवान् विष्णुने अजितमानस-देव तृपतीके साथ तृपिताके गर्भमें जन्मग्रहण किया । पीछे उन्नत मनुके समय ये तृपित सुरोन्नत सत्त्वगणोंके साथ मन्वाके गर्भमें जन्म ले कर मन्व नामसे प्रसूत हुए ।

नामस मनुके समय उन्होंने सत्य हरिगणोंके साथ हर्षिके गर्भमें जन्म लिया और हरि उन्नत नाम पडा । रैवतमनुके समय हरि गजस्रोके साथ गम्भूतिके गर्भमें उत्पन्न हो कर मानस कहलाये । चात्रय मनुके समय उन्होंने वैकुण्ठ नामक देवताओंके साथ वैकुण्ठाके गर्भमें जन्मग्रहण किया । वैवस्वत मनुके समय भगवान् विष्णुने कश्यपकी पत्नी भद्रितिके गर्भमें यामनरूपमें जन्मग्रहण किया है । पूर्वोक्त मनु, सप्तर्षि, देवता, देवराज और मनुपुत्र, ये सभी भगवान् विष्णुकी विष्णुति हैं ।

शेष मान मनुका विवरण इस प्रकार है,—सावर्णि अष्टम मनु हैं । विश्वकर्माके संज्ञा नामक एक कन्या थी जिसका विवाह सूर्यसे हुआ था । संज्ञाके गर्भसे सूर्यके मनु, वम और यमो नामक तीन संतान उत्पन्न हुए । कुछ दिन बाद संज्ञा जब अपने स्यामीका नेत्र सहन न कर सकी, तब ये छाया नामक एक कन्या हो स्यामीकी सेवामें नियुक्त कर भाग्य तपस्या करने गयी गई । छाया देवनेमें टांग संज्ञाकी उँसो थी । दियाकरने उसे संज्ञा समझ कर उसके साथ संभोग किया जिससे दो पुत्र और एक कन्या उत्पन्न हुई । प्रथम पुत्रका नाम शनिदेव, द्वितीयका सावर्णि और कन्याका नाम तपती रखा गया । सावर्णि सूर्यके अनुरूप थे, इस कारण ये सावर्णि मनु नामसे प्रसिद्ध हुए । इस मन्वन्तरमें सुतप, अमिताम और सुष्यगण देवता, तथा विरोचन यति उनके इन्द्र थे । प्रत्येक देवताको संख्या इकौस थी । गालप, राम, हय, सञ्जयामा, प्यान और शष्य-शृङ्ग आदि सप्तर्षि तथा विराजा, आर्चरीयान् और निर्मो-हादि इस मनुके पुत्र थे ।

दशसावर्णि—नवम मनु । इस मन्वन्तरमें पार, सतीचि, गर्भ और सुषमं ये तीन प्रकारके देवगण हैं । प्रत्येक गणमें बारह देवता हैं और अद्भुत उनके इन्द्र हैं । पृथिवाम, मय्य, वसु, मिधा, भृति, ज्योतिमान और सत्य ये सूर्यके तथा धृतके, क्षीमिषेनु, यक्ष्यन्त, निरामय और वृषुधया आदि मनुके पुत्र होने ।

द्वादशसावर्णि—दशम मनु । इस मनुके समय सुधाम और विरजगण देवता हैं । दोनों गणमें कुछ मित्रा कर

उत्तमने विजयन गङ्गाके किनारे रह कर तीन जप तक वाग्भवजीज्ञा जप किया। उसी जपके फलसे ये देवोंके धनप्रदमाजन हुए। इन्होंने निष्कण्टक राज्य और अनवच्छिन्न सन्तति लाभ कर अन्तमें राजर्षियोंके प्राय उत्कृष्ट पदकी पाया।

चतुर्थ मनु—तामस। ये प्रियव्रतके पुत्र थे। इन्होंने नर्मदाके दाहिने किनारे कामवोजका जप कर जगन्मयो माहेश्वरीकी आराधना की तथा शरत् और वसंत-कालमें नवरात्र धृतानुष्ठान किया। प्रसन्नरूपिणोंदेवोंके वरसे मनु निष्कण्टक राज्यभोग कर अन्तमें स्वर्गको चले गये।

पञ्चम मनु—तामसके छोटे भाई प्रियव्रतके पुत्र रैवत। राजर्षि रैवतने कालिन्दीके किनारे परमसिद्धिदायक कामवोजका जप कर देवोंकी आराधना की। देवोंके वरसे इन्होंने मन्वन्तराधिपतिका पद प्राप्त किया। रैवत मनु व्यवस्थानुसार धर्मका विभाग कर अन्तमें सर्वोत्तम इन्द्रलोकको गये।

षष्ठ मनु—चाक्षुष। ये अङ्गराजके पुत्र थे। एक दिन इन्होंने पुलकाश्रममें जा कर उनसे कहा,—'मैं आपकी शरणमें पहुँचा हूँ। आप मुझे कृपा वैसे उपदेश दीजिये जिससे मैं पृथिवीका एकाधिपत्य पा कर अपने वंशको चिरस्थायी बना सकूँ और अन्तमें मुकिलाम कर स्वर्गको सिंघारूँ।' पुलहने मनुकी प्रार्थना पर उन्हें देवोंकी आराधना करनेका उपदेश दिया।

चाक्षुष मनु महर्षि पुलहके आदेशसे चिरजा नदीके किनारे तपस्यायें उपस्थित हुए। यहाँ उन्होंने वाग्भव मन्त्रका जप कर देवी भगवतीकी उपासना की। देवीने तपस्यासे प्रसन्न हो कर उन्हें मन्वन्तरीय निष्कण्टकराज्य, प्रभूत बलशाली कुल पुत्र और विषय भोगके बाद अन्तमें मुकिलामका वर दिया। चाक्षुषने भगवतीके वरसे मनुश्रेष्ठ हो निष्कण्टक सुख भोग किया था। उनके पुत्रगण भी प्रभूत बलशाली हो कर देवोंके परमभक्त और सर्वत्र माननीय हुए। राज्यभोगके बाद चाक्षुष देवी पदमें लीन हो गये थे।

सप्तम मनु—वैवस्वत। इन्होंने भी देवी भगवतीकी तपस्या कर मन्वन्तराधिपत्य प्राप्त किया।

अष्टम मनु—सूर्य-पुत्र सावर्णि। पूर्वजन्ममें ये देवीकी आराधना करके उन्हींके वरसे मनु हुए थे। स्वरोचिप-मन्वन्तरमें ये चैतन्यनोद्भव सुरथ नामका राजा थे। पीछे शत्रुसे पराजित हो कर जंगलमें जा छिपे। वहाँ मेघ-भ्रष्टिके साथ इनका साक्षात् हुआ और उन्हींके उपदेशसे ये देवी भगवतीकी मृण्मयी मूर्ति प्रतिष्ठा कर कठोर तपस्यामें प्रवृत्त हुए। देवी भगवतीने इनके प्रति संतुष्ट हो कर अभिलषित वर प्रदान किया। देवीके वरसे ये इस जन्ममें विविध सुख भोग कर दूसरे जन्ममें सावर्णि मनु हुए थे।

नवमादि चतुर्दश मनु—पूर्वकालमें वैवस्वत मनुके करूप, पृषध, नाभाग, दिष्ट, शर्याति और त्रिशंकु नामक महापुत्र पराक्रान्त छः पुत्र थे। प्रत्येक पुत्रने कालिन्दी नदीके किनारे भगवतीकी मृण्मयी मूर्ति स्थापित कर वहाँ चौदह वर्ष तक उनकी आराधना की। देवीने प्रसन्न हो कर उन्हें अभिलषित वर प्रदान किया।

महापराक्रमी राजपुत्रगण पृथिवी मण्डल पर साम्राज्य लाभ और विविध विषयका उपभोग कर परजन्ममें मन्वन्तराधिपति हुए थे। देवीके अनुग्रहसे उनमेंसे करूप दक्ष सावर्णि नामसे नवम मनु, द्वितीय पृषधराज मेघसावर्णि नामसे दशम मनु, तृतीय नाभाग सूर्य सावर्णि नामसे एकादश मनु, चतुर्थ दिष्ट चन्द्र सावर्णि नामसे द्वादश मनु, पञ्चम शर्याति रुद्र सावर्णि नामसे त्रयोदश मनु तथा षष्ठ त्रिशंकु विष्णु सावर्णि नामसे चतुर्दश मनु हुए थे। भगवती भ्रामरी देवीके अनुग्रहसे ये चौदहों मनु त्रिभुवनमें महाप्रतापशाली, पराक्रान्त और सर्वलोकके पूज्य हुए। (देवीभाग० १०।१ १३ अ०)

विष्णुपुराणमें लिखा है—प्रथम स्वायम्भुव मनु, द्वितीय स्वरोचिप, तृतीय औत्तमि, चतुर्थ तामस, पञ्चम रैवत और षष्ठ चाक्षुष ये छः मनु हो गये हैं। अभी सूर्य-पुत्र वैवस्वत नामक सप्तम मनुका अधिकार है। स्वायम्भुव मनुका विषय पहले ही लिखा जा चुका है।

द्वितीय मनु स्वरोचिप है। इस मन्वन्तरमें पारायत-गण और तुषितगण देवता, विपश्चित् उनके इन्द्र, ऊर्ज, स्तथ्य, प्राण, दत्तोत्ति, श्रष्टम, निश्वर और उर्वारवाय सप्तर्षि थे। चैत और किम्बुरुयादि स्वरोचिपके पुत्र

गण देवता, द्युति तपस्य, सुतपा, तपोमूल, तपोदान, तपोरति, अकल्माय, तप्यो, धन्वी और परंतप ये सब उक्त मनुके पुत्र थे । पञ्चम रैवत मनुके समय वेद-वाद्य, धेनुगिरा, हिरण्ययोमा, पञ्चान्य, सोमतनय, ऊर्ध्व-बाहु अतिमन्द्य और मत्स्यनेत्र सप्तर्षि, अभूत्प्रजस, प्ररुति, पारितुष्य और रैम्य देवता तथा धृतिमान, अव्यय, युञ्ज, तत्त्वदर्शी, निरुत्सुक, अरण्य, प्रकाश, निर्माह, शनी और सत्यवान मनुके पुत्र थे ।

चाक्षुष नामक षष्ठ मनुके समय—भृगु, नम, विद्य-स्वामि, सुधामा, विरजा, अतिनामा और सहिष्णु सप्तर्षि तथा आप्य, प्रभूत, ऋभु, त्रिदिवचासी, पृथुक और लेटा ये पांच प्रकाशके देवगण थे ।

सप्तम वैव - त मनुके समय अति, वशिष्ठ, कश्यप, गीतम, भरद्वाज, विश्वामित्र और ऋचोकपुत्र जन्मनि ये सप्तर्षि, साध्यगण, रुद्रगण, वसुगण, मरुद्गण, आदित्य गण और अश्विनीकुमार देवता तथा इक्ष्वाकु आदि मनु-के दश पुत्र थे ।

सभी मनुओंके प्रारम्भमें ही मनुष्योंकी व्यवस्था और रक्षार्थके लिये सप्तर्षिगण आविर्भूत होते हैं । यह तो हुआ अनीत छः और वर्त्तमान मनुका विषय, अब भविष्य मनुका विषय लिखा जाता है । अनागत मनुको संख्या छः है । भविष्यत् मन्वन्तरमें सप्तर्षि नामक पांच मनु आविर्भूत होंगे । उनमेंसे एक सूर्यपुत्र होनेके कारण वैवस्वत सप्तर्षि कहलायेंगे । शेष चार प्रजापति प्रहाके पुत्र हैं । इन्होंने मनुके पर्वत पर अति कठोर तपस्या की थी, इस कारण ये मेरुसप्तर्षि नामसे प्रसिद्ध होंगे । इनकी उत्पत्ति इसकी कन्या त्रिपाके गर्भमें है । अतएव ये दक्षके श्रद्धिवादी हैं । कश्चि नामक प्रजापतिके रीच्य और भीत्य नामक दो पुत्र थे, आगे चल कर दोनों ही मनु हुए । शेषोक्त मनु कश्चिकी भार्या भृतिदेवीके गर्भमें जन्म लेनेके कारण भीत्य नामसे प्रसिद्ध हुए हैं ।

सप्तर्षि मनुके समय राम, व्यास, क्षीमात्मन्, भर-द्वाज, सप्तश्यामा, गीतम, भरद्वाज, गाल्य और रुद्र ये सप्तर्षि थे । ये सबके सब प्रसिद्धि और मित्र मित्र मोक्षके प्रयत्नके थे । इन्होंने कृतादि चार युगोंमें प्राय-णादि चार षणों और घाटस्थ्यादि आध्यात्मिक विधान

किया है । यतीवान, अश्वीयान, संयन्, धृतिमान, यमु, चरिण्यु, भाय, विष्णु, राज और सुमति यही दश सप्तर्षिों के पुत्र हैं । मन्वन्तर देखो ।

चतुर्दश मनुका अधिकार शेष होनेसे ही एक कल्प पूरा होता है । मानवोंय एक वर्षमें देवताओंका एक दिन होता है । उत्तरायण देवताओंका दिन और दक्षिणायन रात है । देवताओंके दश वर्षोंमें मनुका एक अहो-रात्र, उसमें दश गुणोंमें मनुका एक पक्ष, इससे भी दश गुणोंमें एक मास, इस प्रकार षाट्ठ मासोंमें एक ऋतु, तीन ऋतुओंमें एक अयन और दो अयनोंमें एक वर्ष होता है । इस प्रकार चार हजार वर्ष सत्ययुगका, चार सौ वर्ष सन्ध्याका और चार सौ वर्ष संध्यांशका समय है । प्रेताका परिमाण हजार वर्ष, इसकी संध्या और संध्यांशका दो सौ वर्ष, कल्पियुगका हजार वर्ष तथा इसकी संध्या और संध्यांशका परिमाण सौ वर्ष है । इसी प्रकार एकदशर युग एक एक मनुका भोगकाल है । मनुका भोगकाल ही मन्वन्तर कहलाता है । इस प्रकार एक मनुका समय दोने पर दूसरे मनु आविर्भूत होने हैं । चौदह मनुका भोगकाल जैव होने पर दो एक कल्प पूरा होता है । ( हरिवन ७-६ भ० )

अन्यान्य विरथा मन्वन्तर उद्धमें देखो ।

हिन्दुशास्त्रमें मानवजातिके आविर्भूत हुए चौदह मनुओंका उल्लेख आया है । एक एक मनुने एक एक मन्वन्तर अर्थात् ४३२०००० त्रैतायुगीन काल बीस हजार वर्ष तक पृथिवीका शासन किया था । ऊपर स्थापनयुगादि चौदह मनुओंका हाल लिखा जा चुका है । उनमेंसे मज्जम वैवस्वत मनुका वर्त्तमान अधिकार है । इन्होंने अपनी धार्मिकताके कारण प्राचीनकालमें ईश्वरका विदेव भुक्त प्रद लाभ किया था । उस समय सभी जगद्दयासी अधर्माचरणोंमें लिप्त थे । जलपथ प्राप्तियोंमें महाप्रलयका विरान्त विचारण लिगा है । उनमें मनुका भी तपा-स्याय कौशिल हुआ है । प्रलयका विषय दग्धे मत्स्य द्वारा पहले हीसे मालूम था । मत्स्यकको भगवान्ने उन्हे एक जहाज बना कर भारभर्रा करने कह दिया था । जब प्रलयकाल उपस्थित हुआ, तब भगवान्के कथनानुसार एक मछली गाँव और उसीने जहाजकी



दश मी देव होंगे, गांति उन देवताओंके इंद्र माने जायेंगे। हविष्मान्, सुहृति, सत्य, अपाङ्मूर्ति, नामाग, अप्रतिभोजा और सत्यकेतु ये सप्तर्षि तथा सुशेव, उत्तमौजा और हरितेन आदि मनुके दश पुत्र होंगे। ये सभी पृथिवीका शासन करेंगे।

धर्मसावर्णि—एकादश मनु। इनके समयमें विद्मगण, कामगण और निमांणरतिगण देवता होंगे। प्रत्येक गणमें तीस देवता करके रहेंगे। श्य इनके इंद्र होंगे। निश्चर, अग्निदेव, वपुष्मान्, विष्णु, आरुणि, हविष्मान् और अनस ये सप्तर्षि तथा सर्वग, सर्वधर्मा और देवानीक आदि मनुके पुत्र होंगे।

रुद्रपुत्र सावर्णि—द्वादश मनु। इस मन्वन्तरमें हस्तिगण, लोहितगण, सुमनोगण, सुकर्मगण और तारगण देवता हैं। प्रत्येक गणमें दश देवता रहने हैं। ऋतधामा उनके इंद्र हैं। तपस्वी, सुतपा, तपोमूर्ति, तपोरति, तपोधृति, दुराति और तपोधन ये सप्तर्षि तथा देववान, उपदेव और देवश्रेष्ठ आदि उक्त मनुके पुत्र हैं।

रोच्य—त्रयोदश मनु। इस मन्वन्तरमें सुत्रामगण, सुकर्मगण और सुधर्मगण देवता हैं। प्रत्येक गणमें ३३ देवता रहते हैं; दिवस्पति उनके इंद्र हैं। निर्मोह, तच्यदर्शी, निधकम्प, निरुत्सुक, धृतिमान, अच्यय और सुतपा ये सप्तर्षि तथा चित्रसेन और विचित्रादि उक्त मनुके पुत्र होंगे।

भार्य—चतुर्दश मनु। इस मन्वन्तरमें चाक्षगण, पवित्रगण, कनिष्ठगण, भ्राजिरगण और चोद्भगण देवता तथा शुचि इन देवताके इंद्र होंगे। अग्निवाहु, शुचि, मागध, भानोघ, युक्त और अजितादि सप्तर्षि हैं तथा ऊरु, गभीर, द्रघ्न आदि उक्त मनुके पुत्र। ये सभी मनुपुत्रगण पृथिवीपाल होंगे।

प्रति चार युग बीतने पर वेद-विमूढ होता है। इसीलिये सप्तर्षिगण भूतल पर अवतर्ण हो कर वेदका उद्धार करते हैं। मनु प्रत्येक सत्ययुगमें धर्मशास्त्रके प्रणेता होते हैं। मनुके अधिकारकाल तक देवगण यज्ञ-भुक् होते हैं। मनुपुत्र और उनके वंशधरगण एक मन्वन्तर तक पृथिवीका पालन करते हैं। मनु, सप्तर्षि, देवराज इंद्र, देवगण और मनुपुत्र भूपालगण, ये लोग प्रति-

मन्वन्तरमें उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार चतुर्दश मनु-वंश जाने पर एक कल्प होता है। मनुगण, मनुपुत्रगण, भूपालगण, इंद्रगण, देव और सप्तर्षिगण ये सभी विष्णुके भुवनस्थितिकारक सात्त्विक वंश हैं।

( विष्णुपु० ३।१-३ अ० )

सभी पुराणोंमें मनु और मनुपुत्रोंका विषय लिखा है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां पर कुल उल्लेख नहीं किया गया। मनुगण हो आदि राजा हैं। मगवान् मनुसे हो इस सृष्टिका पालन होता है।

हरिवंशमें इस मनुका विषय जो लिखा है, नीचे उसका संक्षिप्त विवरण देते हैं—

स्वाम्भुव, स्वरोचिप, औत्तमि, तामस, रैवत, चाक्षस, वैवस्वत, सावर्णि, भौत्व, रोच्य, ब्रह्मसावर्णि, रुद्रसावर्णि, मेरुसावर्णि और दक्षसावर्णि यही चौदह मनु हैं।

ये चौदह मनु ही भूत, चर्तमान और भविष्यत् मनु नामसे कोर्त्तित होते हैं। आजकल वैवस्वत मनुका अधिकार चल रहा है। अतएव इनसे पहले छः मनु हो गये हैं और सावर्णि आदि सात मनु अवशिष्ट हैं। एक एक मनुका अधिकार शेष होने पर यथाक्रम सावर्णि आदि मनु आविर्भूत होंगे।

प्रथम स्वाम्भुव मनु हैं। इन मनुके समय मरीचि, अत्रि, अङ्गिर, पुलह, ऋतु, पुलस्त्य और वशिष्ठ, ब्रह्माके ये सात पुत्र सप्तर्षि तथा याम नामा देवगण थे। अनोघ, अग्निवाहु, मेधा, मेधातिथि, यस्तु, ज्योतिष्मान्, धृतिमान् और हव्य आदि मनुके दश पुत्र थे।

द्वितीय मनु स्वरोचिपके समय वशिष्ठपुत्र और्व, कश्यप, स्तम्य, प्राण, बृहस्पति, दत्त और च्यवन ये सप्तर्षि तथा तुपति देवगण थे। हविध, सुहृति, ज्योति, आप, मूर्ति, अयस्मय, प्रथित, नभस्य, नम और ऊर्ज ये सब मनुके पुत्र थे। तृतीय-औत्तमि मनु। इस मन्वन्तरमें वशिष्ठके सात पुत्र और हिरण्यगर्भके ऊर्ज आदि पुत्र सप्तर्षि, मानुगण देवता तथा ईश, ऊर्ज, तनुर्ज, मधु, माधव, शुचि, शुक्र, सह, नभस्य और नम मनुके पुत्र थे। चतुर्थ तामस मनुके समय काव्य, पृथु, अग्नि, जग्यु, धामा कपोवान् और अकपोवान् ये सप्तर्षि, सत्य-

मनुमाँ ( हि० पु० ) १ मन । २ मनुप्य । ३ नरमा, देव-  
कपाम ।  
मनुमुलादित्य—एक राजाकी उपाधि । इनकी आसा-  
नुसार सर्वज्ञात्माने संक्षेपशास्त्रकारकी रचना की ।  
मनुग ( सं० पु० ) मनुके पौत्र, प्रियव्रतके पुत्र घृतिमान  
और घृतिमानके पुत्र मनुग । ( मार्क० ५१३३ )  
मनुचेहर—फारसके पिसदादीद-वंशीय एक राजा । ये  
फाराहुनके बाद राज-सिंहासन पर बैठे । ये सभारित्र  
और धार्मिक थे । इनके प्रधान मन्त्री जामके साहस  
और बुद्धिकोशलसे फारस राज्यको बहुत कुछ उन्नति  
हुई । एक सी बौध्द धर्म राज्य करने पर मनुचेहरकी मृत्यु  
हुई । इनके पुत्र नौजाके राजत्वकालमें तुषाणराज पशुदेने  
फारस पर चढ़ाई की ।  
मनुज—एक प्राचीन ग्रन्थकार । इन्होंने वैद्यसर्वस्व  
नामक एक पुस्तक लिखी ।  
मनुज ( सं० पु० ) मनोज्ञत इति जन इ । १ मनुप्य,  
आदमी । मनुसे उत्पत्ति हुई है इसलिये मनुज कहा  
जाता है ।  
मनुजपति ( सं० पु० ) मनुजानां पतिः । मनुष्योंके  
अधिपति, राजा ।  
मनुजलोक ( सं० पु० ) मनुष्यलोक ।  
मनुजात ( सं० पु० ) मनु या मानवसे उत्पन्न ।  
मनुजात्मज ( सं० पु० ) १ मानव । त्रिपां टाप् । २ नारी,  
स्त्री ।  
मनुजाद ( सं० त्रि० ) १ नर-भक्षक, मनुष्योंको खाने  
वाला । ( पु० ) २ राक्षस ।  
मनुजाधिप ( सं० पु० ) मनुजानां अधिपः ई तन् ।  
मनुष्योंके अधिपति, राजा ।  
मनुजा ( सं० स्त्री० ) मनुज गौरादित्यात् टाप् । मानुषो,  
स्त्री ।  
मनुजेश्वर ( सं० पु० ) मनुजानां इश्वरः । मनुष्योंके  
राजा ।  
मनुज्येष्ठ ( सं० पु० ) १ अरि, मन्त्रधार । २ वृद्ध,  
वृद्ध । ३ इन्द्रभेद, लाठी ।  
मनुष्य ( सं० पु० ) मनोर्भावः ल्य । मनुहा भाव या  
धर्म ।

मनुष्योत ( सं० पु० ) मनु कर्तृक श्रोत, मनुष्यमे श्रोति  
या दोस्तो ।  
मनुभू ( सं० पु० ) मनोर्भवोति भू-विषय, मनुभूयन्  
पति स्थानं कथ्येति वा । मनुप्य, आदमी ।  
मनुभुग ( सं० स्त्री० ) मन्वन्तर, मनुवरिमित जाल-  
विशेष । मनु और मनन्तर देश ।  
मनुराज ( सं० पु० ) मनु मानव इय राजने इति राज-  
विषय । कुबेर ।  
मनुहित ( सं० त्रि० ) मनुना हितं । १ मनु अर्थात्  
प्रथम द्वारा हित, प्रथममें अवस्थापित । २ मनुष्योंके हित  
या दोस्त ।  
मनुवत् ( सं० अव्य० ) मनुर्विय इषार्थे घनि । मनुके  
जैसा ।  
मनुवृत् ( सं० त्रि० ) मनुष्य कर्तृक निष्पांशित या  
नियुक्त ।  
मनुष्येष्ठ ( सं० पु० ) शिष्यु ।  
मनुप ( सं० पु० ) १ मनुप्य, आदमी । २ पति ।  
मनुप्य देशे ।  
मनुषी ( सं० स्त्री० ) मनुष्यस्य स्त्री, मनुष्य ( इत्यस्यमनुप-  
मनुष्यमत्स्या नाम प्रतिषेधः । पा ४।१।६३ ) इत्यस्य वार्त्ति-  
कोक्त्या टोप्, (इत्यस्त्वित्त्वय । पा ६।४।१२० ) इति षटोपः ।  
मानुषी, स्त्री ।  
मनुषेश्वर ( सं० पु० ) मनुष्येश्वर, मनुष्योंके राजा ।  
मनुष्य ( सं० पु० ) मनोत्पत्त्यमिति मनु ( मनोर्भावो मनुषो  
उठच् । पा ४।१।६३ ) इति यत् युगागमश्च । मनुका  
अपत्य । पर्याय—मर्त्य, मानुष, मनुज, मानव, नर, मृत्तम,  
द्विपद, चेतन, भुक्ष्य, मनु, पञ्चजन, पुरुष, पुरुष, पुमान्,  
ना, मर्ण, चिट् । ( जयापर ) २. श्रद्धाकी जो प्रकाशकी  
मृष्टियमिते एक ।  
"मनोर्भवो मनु नमः प्रकरोमिमे शृणाम् ।  
रतोऽधिष्ठाः कर्मसा दुग्णे च मुग्ममिति ॥"  
( भागवत २।१०।२४ )  
मृष्टि धार तरटकी है, यथा—जगामुज, धाण्डज,  
स्वैदज और उज्जज । इनमेंसे मनुष्य जगामुजमृष्टिके  
है । मनुष्यजगमके मिया जोरकी मुक्ति नहीं हो  
सकती । जगम होने पर मनुष्यको गार्हिये, कि वे मुक्तिके

मोन कर मनु आदिकी रक्षा की थी। आगे चल कर मनु द्वारा पुनः जगत्में मनुष्य जातिकी सृष्टि हुई।

मत्स्य ( भण्डार ) देखो।

हिब्रू लोगोंके निकट यही मनु नोआ (Noah) नामसे प्रसिद्ध हैं।

बाइबिलमें नोआका उपाख्यान इस प्रकार लिखा है, मानव-सृष्टि और उसकी रक्षाके लिये भगवानने कुछ पेद्रिथार्क ( प्रजापति ) नियुक्त किये। नोआ उन्हींमेंसे एक थे। इनके पिताका नाम लामेक (Lamech) था। इनकी आयु ६५० वर्षमें शेष हुई थी।

जीवनकालके पांच सौ वर्ष वीतने पर नोआके श्याम, हाम और जाफेथ नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए। इस समय प्रजासृष्टिके कारण धरा भाराक्रान्त हो गई थी। नरनारियोंके प्रमोन्माद, फामुकता, आपसमें ईर्ष्या और ईश्वरके प्रति अनुरक्ति प्रयुक्त समस्त धरावासीने आसुरिक-भाव धारण कर लिया था। जगदीश्वरने ऐसी विलक्षणता देख पापप्रवाहको दूर करनेके लिये जगत्का नाश करना चाहा। इसकी सूचना उन्होंने अपने प्रिय और भक्त नोआको पहले ही दे दी थी और यह भी कह दिया था कि जब जगद्विनाशका समय आ पहुँचे तब तुम एक जहाज ( Ark ) बना कर आत्म-रक्षा करना। अनन्तर जब वह भोषण काल उपस्थित हुआ, तब नोआने भगवानके आदेशानुसार जगत्के समस्त पदार्थोंको जहाज पर रखा और आप भी सपरिवार उस पर जा बैठे। क्रमशः प्रलय-प्लावनसे धरा परिलुप्त होने लगी। नोआका जहाज ईश्वरकी कृपासे धीरे धीरे आराष्ट गिरिच्छिद्रमें जा लगा। यहाँ वे सपरिवार जहाज परसे उतरे और ईश्वरकी कृतिके लिये यज्ञ करने लगे। जगदीश्वरने उनकी पूजासे संतुष्ट हो आश्वासवाक्यमें उन्हें अभयदान दिया। महाप्लावनके बाद नोआने प्रायः ३५० वर्ष जीवित रह कर धराधाममें प्रजाकी वयेष्ट वृद्धि की। ( Genesis V-IX )

मिन्न मिन्न प्राचीन जातिके निकट नोआ मिन्न मिन्न नामसे प्रसिद्ध थे। इसका प्रमाण उन सब जातियोंका धर्मग्रन्थ ही है। बालचेकवासियोंके मतसे

केराक ( Keiak ) ग्रामके दक्षिण चेकाया अथवा सिलो-सिरियाके समतल क्षेत्र पर नोआका समाधि-मन्दिर विद्यमान है। यहाँ १० फुट लम्बा, ३ फुट चौड़ा और २ फुट ऊँचा एक पत्थरका स्तम्भ गड़ा हुआ है। उक्त समाधि मन्दिर प्रायः ६० फुट ऊँचा है। इस सुसुहृद अष्टालिकाकी बनावट भी देखने लायक है। यह जन-साधारणके निकट एक तोथैशैतनरूपमें गिना जाता है। यहाँसे चार मोलकी दूरी पर हार्मिस निका ( Hermes Nika )-का भग्न मन्दिर देखा जाता है। हार्मिस निकाको ग्रीक और रोमकगण जलदेवता ( Mercury ) मानते हैं। बाइबिल ग्रन्थके नोआ मुसलमानोंके निकट नू ( Nuh ) नामसे परिचित हैं। बाइबिल वा काल-दियाक अधिवासियोंके वैरोससवासी जिशुथ्रस ( Xisuthros ) अथवा जिशुथ्रस ( Sisuthros )-के साथ बाइबिलके नोआ हिद्दागाखोंके मनुको बहुत कुछ सदृशता देखी जाती है। ये ही लिटियानके निकट मौस ( Maus ), क्रिजियानके निकट 'नोए' ( Noe ) और ग्रीकके निकट देउकलिवन ( Deucalion ) नामसे प्रसिद्ध हैं।

महाप्रलयके सम्बन्धमें कालादियन ( Chaldean ) जातिका जो उपाख्यान लिपिवद्ध है वह हिब्रू बाइबिलके जेनेसिस ग्रन्थमें लिखित घटनाके साथ बहुत कुछ मिलता जुलता है। कालदियोंके जिशुथ्रस और आकाडियावासी नोआने अपने असाधारण पवित्र चरित्र गुणसे महाप्लावनसे रक्षा पाई थी। किन्तु शेष सभी मनुष्य अपने पापके प्रायश्चित्तरूप जलमें डूब कर प्राण लौं बैठे। उक्त महाप्लावनके समय जिस निजिर ( Land of Nizar ) नामक स्थानमें जिशुथ्रसका जहाज लगा था वह भी बाइबिलके उत्तर पूर्वकोणमें पोर माम नामक पर्वतके मध्य अवस्थित था।

७ विष्णु । ८ मननप्रधान विद्वान् । ९ अन्तःकरण, मन । १० लक्षाधिकके एक पुत्रका नाम । ११ अग्नि, आग । १२ एक रत्नका नाम । १३ चौदहकी संख्या । १४ प्रथा ।

मनु ( हि० अर्थ० ) ज्ञेय, मानो ।

मनुप्याज (सं० पु०) मनुप्याणां राजा, 'राजाइः शशिभ्यश्च' इति च्। मनुष्योके राजा, मनुष्येन्द्र।  
 मनुप्याजि (सं० खी०) कल्याणजि।  
 मनुप्यलोक (सं० पु०) मूलोक, पृथिवी।  
 मनुप्यविदा (सं० खी०) मनुप्यलोक, भूलोक।  
 मनुप्यसभा (सं० खी०) मनुप्य समूह, जहां मनुष्योंका देर हो।

मनुप्यसय (सं० पु०) १. नरमेधयज्ञ। २. मनुप्यजन यज्ञ, मनुष्य द्वारा किया हुआ यज्ञ।  
 मनुष्येन्द्र (सं० पु०) मनुप्याणामिन्द्रः ई तन्। मानवोंके इन्द्र, मनुष्योंके राजा।

मनुष्यत् (सं० अर्थ०) मनुके यह सङ्ग।  
 मनुसंहिता—मानव-धर्मशास्त्र। स्मृतियोंमें सर्वप्रधान स्मृति मनुसंहिता ही है। मनुके साथ मनुष्योंके अनेक प्रकारके सम्बन्ध हैं। प्रहाके पुत्र मनु, मनुष्योंके आदि पुरुष मनु, स्व्यायम्भुव आदि चतुर्दश मनु, सूर्यपुत्र मनु, पृथिवीके प्रथम राजा मनु, धर्मसूत्रके प्रणेता मनु, इस प्रकार अनेक मनुओंके नाम पाये जाते हैं। परन्तु किम मनुने मनुसंहिताकी रचना की इसका निर्णय करना फाटल है। लिखा है, कि संसारो मनुष्योंके जानने तथा करनेयोग्य विषयोंका उपदेश मनुने अपने जियोंको दिया था। पीछेसे जियोंने उन्हीं उपदेशोंको लिपिबद्ध कर दिया।

मनुविरचित इस संहिताका काल निर्णय करनेमें प्रत्यनस्यविद्वद् महात्मसे पड़े हुए हैं। डाः हस्टर भादिके मतसे यह संहिता ईसाजन्मसे पहले ५वीं शताब्दीमें रची गई। डाः कान्डिचेल, एलफिन्स्टन आदि इसका रचना-काल ईसाजन्मसे पहले ६वीं शताब्दीके किसी समय बतलाते हैं। सर विलियम जोन्स और अष्टावक्र विलसनका कहना है, कि ईसाजन्मसे ८वीं शताब्दी पहले इसका कोई अंश संपूरीत हुआ था। बौद्धगुरुके साम-सामयिक कालमें अथवा उसके परवर्ती समयमें भी कोई कोई अंश रचा गया। उक्त अष्टावक्रके मतमें ईसा जन्मसे पहले दूसरी शताब्दीमें मनुसंहिताने वर्तमान आकार धारण किया है। विलसन साहब यह भी कहते हैं, कि उक्त संहिता पहलेसे मालूम होता है, कि

उसके स्मृतिनिबन्ध प्राचीन स्मृति पुत्रके अंगोत्तर भाग हैं। महर्षि कण्वि द्वारा प्रणीत स्मृत्युद्देशके पाठ्यों समयमें भी इसका कुछ अंश संयोजित हुआ। जिय और शृण चरित्रका कोई उल्लेख न रहनेसे उसका कुछ अंश रामायण और महाभारतके पहलेका मालूम होता है। कारण, रामायण और महाभारतमें भी इसकी इतना-संख्या उद्धृत हुई है। फिर कहीं पर वैदिक युगकी उन्नतिके प्रष्ट निदर्शन भी दिखाई देते हैं। महर्षि भृगुने यत्तमान मनुसंहिताका प्रचार किया, इस कारण यह भृगुसंहिता नामसे भी प्रसिद्ध है। बहनोंका विधान है, कि मानव युगसूत्र और मानवधर्म सूत्रके अन्तर्गत पर यत्तमान संहिता रची गई है। किन्तु श्राद्धयुगका विषय है, कि याज्ञवल्क्य संहिताके साथ मानवयुगसूत्रके अनेक विषयोंमें मेल रहने पर भी मनुसंहिताके साथ अनेक विषयोंमें मेल नहीं देखा जाता।

इस संहितामें जगतकी उत्पत्तिको विवरण, गुरुका धर्मवादान और स्नानविधि, दाराधिनामन, विवाह और विवाह लक्षण, महायज्ञ विधान, सनातन धर्मविधान, ग्राहण आदि चतुर्वर्णियोंको जीविकाके लक्षण, गुरुसूत्रका कर्त्तव्य, भर्त्याभारत्याविचार, शौच, द्रव्य आदिकी शुद्धि, खी-धर्म, यति संन्यासी और राजाओंके धर्म, ब्रह्मदान आदिका विचार निर्णय, साक्षियोंका प्रवर्तविधान, स्त्री और पुरुषका धर्म, दायभाग, दूतकोशा नस्तर आदिकी दृष्टविधान, वैद्य और शूद्रका कर्त्तव्य विधान, गुरूर जातियोंका उत्पत्ति विवरण, चतुर्वर्णोंका आचरण, प्रायश्चित्तविधि, कर्मजनित देदान्तर प्राप्तिरूप उत्तम मध्यम अधम विविध गति, मोक्षापाय, कर्मोंका क्षय और गुण, देवधर्म, जातिधर्म, कुलधर्म और और वेद-विरोधी पापविद्वेषोंके धर्म आदि विवेचन हुए हैं। मनुसंहिताके कर्त्ता महर्षि मनु ही, ऐसा बहनोंका विधान है। परन्तु सचची बात यह नहीं है। मनुसंहितामें देखा जाता है, कि महर्षि मनुने अपने जियोंको जो ज्ञानवस्तु बतलाये थे, कुछ दिनों तक वे उपदेश गुरु परम्परासे प्रचलित थे। अंतमें उन्हीं उपदेशोंका लिपि निष्पन्ने लिपिबद्ध किया। आज बहनोंके मतमें मनुसंहिता मनु रचित नहीं है, बल्कि मनुसंहिता

लिये तोड़ना करे। पुराण आदिमें लिखा है, कि  
लागों जन्मके बाद मनुष्यजन्म होता है। अग्निपुराण-  
में लिखा है,—

“विमुक्तिरनुमाना तु नरयोगिः कृतात्मताम् ।  
ना मुञ्चन्ति हि संसारे विभ्रान्तमनसो गताः ॥  
जीवा मनुष्यता मन्ये जन्म मामयुतैरपि ।  
तदीदृक् दुर्लभं प्राप्य मुक्तिद्वारं विचेतसः ॥ इत्यादि

( भगिनपु० सर्गकथन नामाध्याय )

पुण्यात्माओंके मुक्तिके लिये ही मनुष्यजन्म होता  
है। जो मनुष्यजन्म पा कर मुक्तिके लिये यत्न  
नहीं करने, महात्मायामिभूत हो कर संसारमें विच-  
रण करने : उनका जन्म ही निष्फल है। मनुष्योंके  
पिता, माता, भ्राता सभी भगवान् श्रोहरि हैं।

“मनुष्याणां पिता माता भ्राता च श्रीहरिर्वाहा ।  
विश्वेभ्यो मनुष्याणां पिता माता जनार्दनः ॥  
भ्राता च सर्वलोकानां वात्सल्यगुणसागरः ॥”

( पाद्मोत्तरख० ७८ अ० )

स्वात्त्विक, राजसिक और तामसिक भेदानुसार  
मनुष्य तीन प्रकारके हैं। जिस मनुष्यकी प्रकृति सत्त्व-  
बहुला है वे सात्त्विक, रजगुणाधिक्य प्रकृतिवाले राज-  
सिक और जिनकी प्रकृतिमें तमोगुण अधिक है वे ताम-  
सिक हैं। सत्त्व, रज और तम इन तीनोंके मिलनेसे  
है काम काज चलता है। फिर भी जिनमें जिस गुणकी  
प्रबलता रहती है उनके अन्य दो गुण अप्रबल भावमें उस  
प्रबल गुणकी ही सहायता करते हैं।

जिस प्रकार वायु, पित्त और कफ ये तीनों ही शरीर  
धारणके उपयोगी हैं, फिर भी इनमें जब कोई एक प्रबल  
हो जाता है उस समय अन्य दो भी प्रबलकी सहा-  
यता करते हैं, उसी प्रकार मनुष्यके सम्बन्धमें भी  
जानना चाहिये।

ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसाः ।

अधोमनुष्यश्चित्सा मध्ये गच्छन्ति तामसाः ॥”

( गीता १४ अ० ) । मानव शब्द देखो ।

( ति० ) २ स्तुतिकारक, स्तुति करनेवाला । ३  
मनुष्य सम्बन्धी । ४ मनुष्योंका हित या दोस्त ।

मनुष्यकार ( सं० पु० ) मनुष्यकारः । पुरुषकार,  
पुरुषोंकी की हुई चेष्टा ।

मनुष्यकिल्बिष ( सं० ) मनुष्यस्य किल्बिषः । मनुष्योंके  
पाप ।

मनुष्यहन ( सं० त्रि० ) मनुष्यैः हतः । मनुष्य द्वारा  
किया हुआ बच्छा-खराव ।

मनुष्यगति ( सं० स्त्री० ) जैन शास्त्रानुसार एक कर्म ।  
इसके करनेसे मनुष्य बार बार मर कर मनुष्य होकर  
जन्म पाता है। ऐसे कर्म पर खोगमन, मांसभक्षण,  
चोगी आदि बतलाए गए हैं।

मनुष्यगन्धर्व ( सं० पु० ) मानवरूपी गन्धर्व ।

मनुष्यचर ( सं० त्रि० ) मनुष्यके साथ व्यवहारशील ।

मनुष्यच्छन्दस् ( सं० स्त्री० ) मनुष्यछन्दमेद ।

( तैत्तिरीय १४।१।६।१ )

मनुष्यज ( सं० त्रि० ) मनुष्यान् जायते जनः । मनुष्यसे  
उत्पन्न ।

मनुष्यता ( सं० स्त्री० ) मनुष्यस्य भावः नल्-टाप् । १  
मनुष्यत्व, मनुष्यका भाव या धर्म । २ सम्पत्ता,  
आदमीयत । ३ दयाभाव; चित्तकी कोमलता ।

मनुष्यता ( सं० अर्थ० ) मनुष्यके वाच ।

मनुष्यत्व ( सं० स्त्री० ) मनुष्यस्य भावः त्व । मनुष्यका  
भाव या धर्म ।

मनुष्यदेव ( सं० पु० ) मनुष्येषु देव इव । नरदेव,  
राजा ।

मनुष्यधर्मन् ( सं० पु० ) मनुष्येय धर्म आचारो यस्य  
( धर्मादित्यु केवलनात् । पा १।४।१२४ ) इति समासान्तो  
अनिच् । कुवेर ।

मनुष्ययज्ञ ( सं० पु० ) मनुष्येभ्यो मनुष्यार्थं यो यज्ञः ।  
पांच महायज्ञोंमेंसे एक यज्ञ । अतिथिपूजन, नृयय ।  
अतिथि-सत्कारकी हो मनुष्ययज्ञ कहते हैं। गृहस्थकी  
प्रतिदिन पञ्च महायज्ञका अनुष्ठान करना चाहिये। इसके  
करनेसे पञ्चयज्ञाद्यत पाप दूर होते हैं।

धर्ममहायम देखो ।

मनुष्यरथ ( सं० पु० ) मनुष्यके व्यवहारोपयोगी रथ-  
विशेष, वह रथ जिसे मनुष्य चलाते हैं।

पनोगति ( सं० स्त्री० ) मनसः गतिः १-नत् । १ मनकी गति, चित्त वृत्ति । २ आन्तरिक अभीष्ट, स्वादिष्ट ।

पनोगती ( सं० स्त्री० ) इच्छा, अभिलाषा ।

पनोगुहा ( सं० स्त्री० ) मनसा मनः प्रवृत्तं गुह्ये । मनःशिला, मैनसिल ।

पनोगुप्ति ( सं० स्त्री० ) जैन शास्त्रानुसार मनको अशुभ वृत्तिसे हटानेकी क्रिया या भाव ।

पनोप्रहण ( सं० स्त्री० ) मनसः प्रहणम् । १ मनका प्रहण, मनको लेना । २ मन द्वारा प्रहण, सुख दुःखका भागी ।

पनोप्राहिन ( सं० स्त्री० ) मनसा गृह्णातीति प्रह-णिनि । मन द्वारा प्रहणकारी, मनसे प्रहण करनेवाला ।

पनोप्राहा ( सं० स्त्री० ) मनसा प्राहाः । सुख दुःखादि । सुख दुःख आदि का मनमें ही अनुभव होगा है इत्यर्थसे यह मनोप्राहा है ।

पनोज ( सं० पुं० ) मनसि जातः जन इ । मनसिज, कामदेव ।

पनोजमन् ( सं० पुं० ) मनसो जन्म यस्य । कन्दर्प ।

पनोजब ( सं० पुं० ) मनस इव जयोऽस्य, परद्वय सर्व-गामित्वान् तथात्थं । १ त्रिण्डु । मनसश्चित्तस्य जयः । २ मनका वेग । ३ अनिल या वायुको पत्तो जियामे

उत्पन्न एक पुत्रका नाम । ४ गडके एक पुत्रका नाम ।

५ तीर्थभेदः । भागवतके अनुसार इस तीर्थमें स्नान करनेसे सद्यस्व मोक्षदानका फल होता है । ६ छत्रे मन्व-स्तर्गमें होनेवाले इन्द्र । ७ मेघातिथिके एक पुत्रका नाम ।

पनो जय वेगवद् यस्मिन्, यद्वा मनो जयति पितागमिति

पुत्र्या ध्यायत्यस्मिन् सु सोमेषानुः अच् । ६ पितृतुल्य ।

पर्याय—विन् स्वस्निभ । ६ अतिजय वेगवान् ।

पनोजयस् ( सं० स्त्री० ) मनके समान वेगवान्, वेगवाली ।

पनोजयम ( सं० स्त्री० ) मनोजयत्यस्मिन्, सु-यादुलकान्

अमच् । पितृमन्निभ, पितृतुल्य ।

पनोजया ( सं० स्त्री० ) मनो जयत्येति, सु अच्, टाप् ।

१ अन्नजिह्वा गृह, करिषारोका पेड़ । २ पक्षिजिह्वाचिरो, मार्कण्डेयपुराणानुसार भनिकी जिह्वाका नाम । ३

रुन्दकी माताका नाम । ४ कौच डोपको एक नरौका नाम । मन इव जयो यस्याः । ५ वेगयिजिहा स्त्री ।

मनोजयिन् ( सं० स्त्री० ) मन इव जयोऽस्यस्येति इति । मनोजय, मनके जैसा वेगवान् ।

मनोजयिजि ( सं० स्त्री० ) मनोजय्य कामस्य वृत्तिर्यस्याम् ।

१ कामवृत्ति नामक श्लेष । इसे कर्णाटमें कामज कहते हैं । मनोजयस्य वृत्तिः । २ कामवृत्ति ।

मनोजात ( सं० स्त्री० ) मनसि जातः । मनोजय, मनमें जो है । दर्शन, ध्वषणादि इच्छारूप । मनमें जो उत्पन्न हो उसीको मनोजात कहते हैं ।

मनोजिघ्र ( सं० स्त्री० ) अनुमानलक्ष्य, जिम्मा अंदाजा लगाया गया हो ।

मनोजू ( सं० स्त्री० ) मन इव जयते ज-किप् । मनमें जैसा वेगवाला ।

मनोज ( सं० स्त्री० ) मनो जानति व्यापयति तोषयतीति अन्तर्भूतपर्येषं वा क १ मरलकाष्ठ, मीथी लकड़ी । (वि०

गम्मा जानातीति, यद्वा मनः व्यापयति तोषयतीति ज्ञा-क ।

२ मनोहर । पर्याय—सुन्दर, रचिर, चार, सुपम, साधु,

शोभन, कान्त, मनोरम, रत्न्य, मञ्जु, यंधुर, चंपूर, पेजल,

पेयल, सुमत्सु चाम, अभिराम, नन्दित । ( शम्भरशा० )

३ सुन्दरपुत्र, कुन्द नामक फूल ।

मनोपता ( सं० स्त्री० ) मनोज्ञस्य भावः तल टाप् ।

मनोजका भाव या धर्म, गुरुगुरुतो, सुन्दरता ।

मनोज्ञान्दामिर्वाजित ( सं० पुं० ) कर्मभेद ।

मनोज्ञस्वर ( सं० पुं० ) गंधर्वभेद, सुन्दर स्वर ।

मनोज्ञा ( सं० स्त्री० ) मनोज्ञ-विषयो टाप् । १ मनोहरा,

सुन्दरी । २ मनःजिह्वा, मैनसिल । ३ राजपुत्री । ४ वन्या

कर्कोटका, बाँध ककोटा । ५ धारवासी । ६ स्फुल-

जोरक, मंगेला । ७ ज्ञातोपुत्र्य, आरिषोका फूल । ८

मदिरा, शराब ।

मनोज ( सं० स्त्री० ) १ प्रज्ञाता, अच्छी तरह जानने-

वाला । २ मानयिता, माननेवाला । ३ दाता, देने-

वाला ।

मनोज्ज्वल ( सं० स्त्री० ) मानामक वृत्तिनिरोधजाति, मन-

को वृत्तियोंका निरोध, चित्तको संवत्ताकी रोक कर

प्रथम अध्यायके अन्तिम श्लोकसे अलङ्कृतो है। महर्षि मनुके किन्ती गिन्यने इस शास्त्रका जिस प्रकार वर्णन किया है उससे यह बात स्पष्ट ही मालूम होती है। मनुस्मृतिके प्रथम अध्यायका अन्तिम श्लोक यह है—

‘तथेदं प्रकृतान् शान्त्वं पुरा गृह्ये मनुमन्त्रा।

तथेदं यूयमप्यद्भ्य मत्सकागान्निशोधत ॥’

अर्थात् प्राचीनकालमें भगवान् मनुने हमारे प्रश्नके उत्तरमें जो शास्त्र कहा है, वही मैं यथायथरूपसे कहता हूँ। मनुसंहिताके अन्तिम श्लोकसे भी यही बात पाई जाती है। ‘इत्येतन्मानवं शास्त्रं भृगुमेवतं पठन द्विजः’ अर्थात् मनुके गिण्ये भृगुने जिम शास्त्रका प्रचार किया था उसीका नाम मनुसंहिता है। इससे यह बात भी समझी जाती है, कि मनुके बाद ये उपदेश लिपिबद्ध किये गये थे। वे उपदेश पहले स्वरूपमें ‘मानव धर्मसूत्र’ नामसे प्रसिद्ध थे। वे ही आगे चल कर संहिताके आकारमें प्रथित हुए। यह मनुसंहिता वेदानुकूल है। यथा—

‘वेदार्थोपनिबन्धत्वात्प्राधान्यं हि मनोः स्मृत्यैः।

मन्वर्थविवरीता च या स्मृतिः सा न शक्यते ॥’

सुनरां इससे मनुस्मृतिकी प्रधानता प्रतिपन्न होती है। मनुसंहिता बारह अध्यायोंमें समाप्त है। कुल मिला कर २७०४ श्लोक हैं। इसके आरम्भमें सृष्टिका विवरण दिया गया है। यथा—

आसीदितदंतमोयतमप्रशातमन्तत्रणम् ।

अप्रत्यर्कमविशं यंप्रभुसमिव सर्वतः ॥’ ( मनु १।१ )

मनुस् ( सं० पु० ) मन्वने जानातीति मन शाने उत्सि-नित् च । मनु, प्रजापति ।

मनुसव ( सं० पु० ) मनु वा मनुप्यकृत यत् ।

मनुसाई ( हि० खी० ) १ पुष्यवर्ष, बहादुरी । २ मनुपाता, आदमीयत ।

मनुस्मृति ( सं० खी० ) मनु-प्रणीत एक धर्म-ग्रन्थ । कहा जाता है, कि पहले मनुस्मृतिमें एक लाख श्लोक थे। फिर बारह हजार श्लोकोंमें उसका संक्षेप किया गया। आज कलकी मनुस्मृतिमें द्वाइ हजारसे कुछ ही अधिक श्लोक मिलते हैं। यह भृगु प्रोक्त कहलाती है और इसमें बारह अध्याय हैं। इसमें सृष्टिकी उत्पत्ति, संस्कार, नित्य और नैमित्तिक कर्म, आध्रम, धर्म,

राजधर्म, वर्णधर्म, प्रायश्चित्त आदि विषयोंका वर्णन है। इसके अलावा एक नारद-प्रोक्त मनुसंहिताका पता चलता है पर वह पूरा नहीं मिलती।

विशेष विवरण मनु शब्दमें देखो।

मनुहार ( हि० खी० ) १ मनीषा, खुशामद, यह विनती जो किसीका मान छुड़ाने वा क्रोध शांत करके उसे प्रसन्न करनेके लिये की जाती है। २ सत्कार, आदर। ३ चिन्तय, प्रार्थना।

मनुहारना ( हि० कि० ) १ खुशामद करना, मनाना । २ सत्कार करना, आदर करना। ३ चिन्तय करना।

मनूरी ( अ० खी० ) एक प्रकारकी बुकनी। यह मुरादाबादी कलईके बरतनोंको उजला करनेके काममें आती है। यह धातुओंको गलानेके पुराने घरियोंको छूट कर बनाई जाती है।

मनेजर ( अ० पु० ) प्रबन्धकर्ता, किसी कार्यालय आदिका यह प्रधान अधिकारी जिसका काम सब प्रकारकी व्यवस्था और देख-रेख करना हो।

मनेय—हसनपुर परगनाके खुदियानाला नामक एक छोटी नदीके किनारे अवस्थित एक स्थान। आजकल इसे मिनिया कहते हैं। यह भुइलादीसे ३४ मील पूर्व-दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है।

युवराज सिद्धार्थ ( बुद्ध )-ने अपने अनुचर छन्दकके साथ मनेय नामक स्थानमें घोड़े पर चढ़ कर भयनी नदीको पार किया था। मनेयकोरा नदी वर्त्तमान रामग्रामसे तीन कोस पूर्वमें है। पुराना मनेय शहर वर्त्तमान मनेय नामक गाँवसे प्रायः आध कोसकी दूरी पर था। यहाँ आजकल स्तूपकाकार धर्मसावशेष देखा जाता है जिसे यहाँके लोग ‘तमेश्वर दो’ कहते हैं। क्योंकि इस ऊँचे स्थान पर तमेश्वरनाथ नामक शिवलिङ्ग स्थापित है। यहाँ ‘तमेश्वर सागर’ नामकी एक चतुर्कोण पुष्करिणी भी है। उक्त शिवलिङ्गका दूसरा नाम मन है, सम्भवतः उक्त मनेश्वर शिवलिङ्गके नाम पर ही मनेय नाम हुआ है।

मनोक—एक प्राचीन कवि।

मनोकामना ( हि० खी० ) इच्छा, अभिलाषा।

मनोगत ( सं० खी० ) मनो गतः। मनःस्थित, मनमें जो है।

कछवाहा था । अकबर शाहके मुस्ताहबीमसे ये एक थे । फारसी तथा संस्कृत भाषाओंमें इनकी अच्छी ध्युत्पत्ति थी । फारसी कविताओं में अपना नाम तोमनी रखते थे ।

२ इनका दूसरा नाम फाजीराम रिसालदार था । ये भरतपुरके रहनेवाले थे । इन्होंने एक ग्रन्थ लिखा है जिसका नाम मनोहरशतक है । मनोहरशतककी मनी हरतामैं किर्तीकी सन्देह नहीं हो सकता । निर्वासिह-सरोज कारके समय ये जीवित थे ।

मनोहरकृत्य—पिङ्गलच्छन्दस्त्रुके टीकाकार ।

मनोहर पौ—एक इतिहासके रचयिता ।

मनोहरगढ़—बम्बईप्रदेशके खान्देश पालिटिकल एजेण्टके अधीन सायन्तयाड़ीराज्यके अन्तर्गत एक गिरिदुर्ग । यह अक्षा० १६°२' ४५" उ० तथा देशा० ७४°१' ५०" सायन्त-याड़ीनगरसे १४ मील उत्तर पूर्व अवस्थित है । यह दुर्ग डीम पत्थरोंका बना हुआ है और इसको ऊँचाई प्रायः २५०० फुट है । कहते हैं, कि पाण्डवोंके राज्यकालमें यह दुर्ग बनाया गया है । १८४४ ई०के विद्रोहकालमें इस दुर्गको सेनाने कोलापुर-विद्रोहियोंका पक्ष लिया था । १८४५ ई०के आरम्भमें ही जनरल डेलमाटोने इस दुर्ग पर अधिकार किया । विद्रोहदमन होने पर मनोहरगढ़ और इसका राजस्व सायन्तयाड़ी-राजके हाथ लगा ।

मनोहरता ( सं० स्त्री० ) मनोहर होनेका भाव, सुन्दरता ।

मनोहरदाम—एक हिंदू राजा । इनका जीवन काल १६७८ ई० माना जाता है । ये दानमनोहरके प्रणेता सदाशिवके प्रतिपाद्यक थे ।

मनोहरदास—एक प्रसिद्ध ब्रह्मन्दी-वैष्णव । पश्कर्ता हान-दाम इनके मित्र थे । चरितामृतमें नित्यानन्द शास्त्रामें मनोहरदामका नामोल्लेख है । सातापति ग्रन्थमें लिखा है, कि इनका दूसरा नाम चित्तम भी था । लोग इन्हें भीलिया कहा करते थे । ये शीर्षजातीय पुरुष थे । मैनरो के प्रसिद्ध मनीहरमठमें ये उपास्यत हुए थे । कहते हैं, कि १६५४ तककी २६वीं पूजाकी हुज्जतके अग्रगण्य नामक स्थानमें इनकी मृत्यु हुई थी । इनको कविताका परि-षय पदरत्नप्रद सावित्रे उल्लस पदापलीसे मान्य होता है ।

मनोहरदास—अनुरागवही नामक एक वैष्णव ग्रन्थके प्रणेता । उक्त ग्रन्थ बहूदापयारच्छन्दमें १६१८ तककी रचा गया ।

मनोहरदास मिश्रजी—दिल्लीके एक अच्छे लेखक । इन्होंने भाषाओं हानचूर्णव्यनिसा नामक एक -पेदात्मकी पुस्तक लिखी है ।

मनोहरराय—यगोर जिल्लेके चांअहा ग्रामके उत्तरराष्ट्रीय फायस्थयंगीय जमींदारोंके पूर्वपुरुष ।

मनोहरचोरेधर ( सं० पु० ) एक प्रसिद्ध धार्मिक ।

मनोहरदामां—एक सुप्रसिद्ध कवि और टीकाकार । भाष राजा माणिक्यमठके आदेशसे सुभोगिनो गमक धृत-योध टीका और सुभाषिणो नामक किरताहुं नोय टीका लिख गये हैं ।

मनोहरशाही—सुगिदाशब्द धकलेके अन्तर्गत एक पर-गना ।

मनोहरसिंह—गोडदेशीय एक राजा । राजा हर्षेजने जो साम्राज्यन दान किया था, उसमें इनका नाम देखा जाता है ।

मनोहरा ( सं० स्त्री० ) मनोहर-टापू । १ मनोहरागो । २ जातोपुप । ३ स्वर्णयूथी, मोनहरी । ४ धर नामक यमुकी पहली और गिरिदेकी माता । ५ एक अस्तग-का नाम ।

मनोहरी ( हि० स्त्री० ) एक प्रकारको छोटी बाली जो कानमें पहना जाता है ।

मनोहर्षु ( सं० त्रि० ) मनी हर्तनीति ह-नृच् । मनोहरण-कर्ता, मनको हर्तनेवाला ।

मनोहारो ( सं० त्रि० ) मनी हर्तनीति ह-नृच् । १ मनोहर चित्तकर्तक । ( स्त्री० ) २ अविध्यासी नारी । ३ मनो हरकारिणी ।

मनोहाद ( सं० पु० ) मनसा हृदय । मनका आनन्द । मनको प्रसन्नता ।

मनोहादो ( सं० त्रि० ) १ सुन्दर, मनोहर । २ मनका प्रसन्न करनेवाला, दिल खुश करनेवाला ।

मनोहा ( सं० स्त्री० ) मननिहा, मैनाम ।

मनीनी ( हि० स्त्री० ) १ अस्तनुरुपकी मंनुष्य कन्या,



मनोरी—बम्बईप्रदेशके भाना जिलान्तर्गत एक नन्दर । यह अक्षां ११° १२' ३" उ० तथा देशां ७१° ५०' ५०" के मध्य विस्तृत है । इस नगरमें पुर्तगालीका एक प्राचीन मिस्रा है । श्रीइन्द्र वाणिज्यविभागके छः नन्दरीमेंसे मनोरी एक है ।

मनोल्द ( सं० पु० ) मनसः लयः । मनका लय, मनका नास । प्रकृति-पुरुषके मिलने पर मन अहङ्कारमें लीन हो जाता है ।

मनोली—बम्बईप्रदेशके अन्तर्गत वेल्गाम जिलेका एक नगर । यह अक्षां १५° ५१' उ० तथा देशां ७५° ७' ५०" वेल्गाम शहरसे ४२ मील पूर्वमें अवस्थित है । जनसंख्या पांच हजारसे ऊपर है । यह स्थान पश्चिमी सूनेके कारवारके लिये प्रसिद्ध है । यहाँ पर वेल्सली ( पाछे ल्यूक )-ने मशहर उकैत विन्द्देव वागको बहुत खोजके बाद प्रकटा था । इस नगरमें पञ्चलिङ्गदेवके आठ मन्दिर हैं ।

मनोलील्य ( सं० श्लो० ) वामण्याली ।

मनावती ( सं० खो० ) १ अप्सराभेद । २ चित्राङ्गद विशाधरको कन्याका नाम । ३ अलुत्पति सुमायका कन्याका नाम । ४ पुराणानुसार मेरुपर्वत परके एक नगरका नाम ।

मनोवाञ्छा ( सं० खो० ) अभिलाषा, इच्छा ।

मनाव्याञ्छत ( सं० खो० ) शिञ्छत, मनमांगा ।

मनावत ( सं० खो० ) मनका वेग, चित्तकी गति ।

मनाविकार ( सं० पु० ) मनकी वह अवस्था जिसमें किसी प्रकारका सुखद या दुःखद भाव, विचार या विकार उत्पन्न होता है ।

मनाविकारका उत्पात्ति किसी प्रकारके भाव या विचारके कारण होता है और उसके साथ मनका लक्ष किसी पदार्थ या बातका ओर होना है । जब कोई मनोविकार उत्पन्न होता है, उस समय कुछ शारीरिक विक्रियाएँ भी होती हैं; जैसे रोमाञ्च, स्वेद, कम्प आदि । परन्तु ये विक्रियाएँ साधारणतः इतनी सूक्ष्म होता हैं, कि दूरसेको दिखाई नहीं देती । पर हाँ, मनोविकार यदि बहुत तीव्ररूपमें हो, तो उसके कारण होनेवाली शारीरिक विक्रियाएँ अवश्य ही बहुत स्पष्ट होती हैं और

अक्सर मनुष्यकी आकृतिमें ही उसके मनोविकारोंका स्वरूप प्रकट हो जाता है ।

मनोविज्ञान ( सं० पु० ) शास्त्रविशेष । इसमें चित्तकी वृत्तियोंका विवेचन होता है ।

मनोविद् ( सं० पु० ) मनोज्ञ, वह जो मनका भाव समझ सके ।

मनोविनयन ( सं० श्लो० ) मनःशिला ।

मनोविन्द ( सं० त्रि० ) १ जो मनके प्रतिकूल हो । ( पु० ) द्वैवपुरुषगणभेद ।

मनोवृत्ति ( सं० खो० ) मनसः वृद्धिः । मनका व्यापार, मनका कार्य । मनोविकार देखो ।

मनोवेग ( सं० पु० ) मनोविकार, मनका विकार ।

मनोवेद्गिरिस् ( सं० श्लो० )-मन्त्रविशेष ।

“मुदेवा इति चैकेन देवा गाथश्च दक्षिणाः ।

जपेच्छाकुनयुक्तं वा मनोवेद शिरसि च ॥”

( बृहत्सं० ४५/०३ )

मृग और पक्षियोंको यदि किसी प्रकारका कष्ट हो, तो ‘शाकुनसूक्त’ वा ‘मनोवेद् गिरांसि’ मनका जप करना चाहिये ।

मनोव्यापार ( सं० पु० ) मनकी क्रिया, विचार ।

मनोसर ( हिं० पु० ) मनकी वृत्ति, मनोविकार ।

मनोहत ( सं० त्रि० ) मनसा मनसि वा हतः । प्रतिहत, निराग ।

मनोहन ( सं० पु० ) १ अग्नि, आग । २ असुरभेद, एक दानवका नाम ।

मनोहर ( सं० त्रि० ) हरतीति ह-अच्, मनसो हरः । १

मनोज्ञ, सुन्दर । २ चिन्ताकर्षक, मन हरनेवाला । ( पु० )

३ कुन्वपुत्र । ४ सुवर्ण, सोना । ५ कर्मप्राप्तका तृतीय

दिन । ६ छप्पय छन्दके एक भेदका नाम । इसमें १३

गुरु, १२६ लघु, १४६ वर्ण और १५२ मात्राएँ धपया १३

गुरु, १२२ लघु, १३५ वर्ण और १४८ मात्राएँ होती हैं ।

७ एक संकट रागका नाम । यह गीरे, मारवा और

त्रिगणके मेलसे बना है ।

मनोहर—१ पद्याल्लोघृत एक कवि । २ ब्रह्मज्ञोपनिर्णय-

के प्रणेता ।

मनोहरकवि—१ इनका पूरा नाम राजा मनोहरदास

कछवाहा था। अक्षर शाहके मुसाहवींमेंसे ये एक थे। फारसी तथा संस्कृत भाषाओंमें इनकी अच्छी ध्युल्लसि थी। फारसी कवितारोंमें ये अपना नाम तोसनी रखते थे।

२ इनका दूसरा नाम काशीराम रिसालदार था। ये भरतपुरके रहनेवाले थे। इन्होंने एक ग्रन्थ लिखा है जिसका नाम मनोहरदासक है। मनोहरदासककी मनोहरतामें किताबीके सन्देह नहीं हो सकता। जिससिंह-सरोज कारके समय ये जीवित थे।

मनोहरकृत्या—पिङ्गलच्छन्दसूक्तके टीकाकार।

मनोहर कौं—एक इतिहासके रचयिता।

मनोहरगढ़—बम्बईप्रदेशके ग्वाल्देज पार्लिटिकल कलेजके अधीन सायन्तवाड़ीराज्यके अन्तर्गत एक गिरिदुर्ग। यह भूभाग १६°२४' उ० तथा देशांश ७४°१५' पू० सायन्त-पाडानगरसे १४ मील उत्तर पूर्व अवस्थित है। यह दुर्ग दोस पत्थरोंका बना हुआ है और इसको ऊंचाई प्रायः २५० फुट है। कहते हैं, कि पाण्डवोंके राज्यकालमें यह दुर्ग बनाया गया है। १८४४ ई०के विद्रोहकालमें इस दुर्गकी सेनाने कोलापुर-विद्रोहियोंका पक्ष लिया था। १८४५ ई०के आरम्भमें ही जिनरल डेलमांटोंने इस दुर्ग पर अधिकार किया। विद्रोहदमन होने पर मनोहरगढ़ और इसका राजस्व सायन्तवाड़ी राजके हाथ लगा।

मनोहरता ( सं० स्त्री० ) मनोहर होनेका भाव, सुन्दरता।

मनोहरदास—एक हिंदू राजा। इनका जीवित काल १६७८ ई० माना जाता है। ये दानमनोहरके प्रणेता सदागियके प्रतिपादक थे।

मनोहरदास—एक प्रसिद्ध बङ्गाली-वैष्णव। पद्कसां ज्ञानदास इनके शिष्य थे। चरित्रामृतमें नित्यानन्द जायसामें मनोहरदासका नामोल्लेख है। सारायलि ग्रन्थमें लिखा है, कि इनका दूसरा नाम चैतन्य भी था। लोग इन्हें भोलिया कहा करते थे। वे शर्मजातीय पुत्र थे। जिनसे वे प्रसिद्ध महाशक्तमें से उर्ध्वगत हुए थे। कहते हैं, कि १६५३ तककी २५वीं पूरुषकी दुर्गाके पदनामत्र नामक स्थानमें इनकी मृत्यु हुई थी। इनकी कवितारों परिस्य पदस्यतय साठिमें उद्धृत पदायनोंमें प्रादुम होना है।

मनोहरदास—अनुरागयती नामक एक वैष्णव-ग्रन्थके प्रणेता। उक्त ग्रन्थ बङ्गलापयारच्छन्दमें १६१८ तककी रचा गया।

मनोहरदान निरञ्जनी—हिन्दीके एक अच्छे लेखक। इन्होंने भाषाओंमें ज्ञानचूर्णयचनिका नामक एक वेदान्तकी पुस्तक लिखी है।

मनोहरदास—यगोर जिनके सांयहा प्रभुके उत्तरराष्ट्रीय फायस्थवर्गीय जर्मोदरोंके पूर्वपुत्र।

मनोहरवीरेश्वर ( सं० पु० ) एक प्रांगण जाचार्य।

मनोहरजामो—एक सुप्रसिद्ध कवि और टीकाकार। शाह राजा साण्णियमहदके भादेजसे सुबोधिनो नामक धृत-बोध टीका और सुभाषिणी नामक किराताहुं नाय टीका लिख गये हैं।

मनोहराहाडी—मुर्शिदाबाद चकलेके अलगोंने एक परगना।

मनोहरसिंह—गोंडदेशीय एक राजा। राजा हृदयेशने जो ताप्रभासन दान किया था, उसमें इनका नाम देखा जाता है।

मनोहरा ( सं० स्त्री० ) मनोहर-टापू। १ मनोहादिनी। २ ज्ञातीपुत्र। ३ स्वर्णयूधी, सोनहरी। ४ धर नामक यमुनी पश्चो और गिरिकी माता। ५ एक अस्त्रका नाम।

मनोहरी ( हि० स्त्री० ) एक प्रकारकी छोटी बाली जो कानमें पहनी जाती है।

मनोहरसू ( सं० स्त्री० ) मनो हर्तोति ह-सृच्। मनोहरण-कर्ता, मनको हरनेवाला।

मनोहारी ( सं० स्त्री० ) मनो हर्तोति ह-सृच्। १ मनोहर चिन्ताकर्क। ( स्त्री० ) २ शयिभवासी नारी। ३ मनोहरकाग्नि।

मनोहाद ( सं० पु० ) मनसः हादः। मनका प्राप्ति, मनकी प्रसन्नता।

मनोहादी ( सं० स्त्री० ) १ सुप्रसन्न, मनोहर; २ मनका प्रसन्न करनेवाला, दिल खुश करनेवाला।

मनोहा ( सं० स्त्री० ) मनःजिहा, मैर्मांसः।

मनोती ( हि० स्त्री० ) १ अस्त्रनुष्टकी मनुष्ट करनी,

मनोरी—वर्षाप्रदेशके शाना त्रिजान्तगोन एक बन्दर । यह भशा० १६° १२' ३" उ० तथा देशा० ७१° ५०' पू०के मध्य विलुप्त है । इस नगरमें पुर्तगालीका एक प्राचीन गिर्जा है । सोट्टबन्दर वाणिज्यविभागके छः मन्टरीमेंसे मनोरी एक है ।

मनोलय ( मं० पु० ) मनसः लयः । मनका लय, मनका नाज । प्रकृति-पुरुषके मिलने पर मन अहङ्कारमें लीन हो जाता है ।

मनोलो—वर्षाप्रदेशके अन्तर्गत येल्गाम जिलेका एक नगर । यह भशा० १५° ५१' उ० तथा देशा० ७५° ७' पू० येल्गाम शहरसे ४२ मील पूर्वमें अवस्थित है । जनसंख्या पाच हजारसे ऊपर है । यह स्थान पजामो सूतेके कारखानेके लिये प्रसिद्ध है । यहीं पर वेल्सली ( पोछे ट्यूब )ने मजहर उर्कैत विन्दुदेव बागको बहुत खोजके याद पकड़ा था । इस नगरमें पञ्चलिङ्गदेवके आठ मन्दिर हैं ।

मनोलील्य ( सं० श्लो० ) म्यामण्याली ।

मनावती ( सं० खो० ) १ अस्तराभेद । २ चिन्ताङ्गद विद्याधरको कन्याका नाम । ३ असुरपति सुभायको कन्याका नाम । ४ पुराणानुसार मेरुपर्यंत परके एक नगरका नाम ।

मनोवाञ्छा ( सं० खो० ) अभिलाषा, इच्छा ।

मनोवाञ्छत ( सं० खो० ) ईच्छत, मनमांगा ।

मनावत ( सं० खो० ) मनका वेग, चित्तकी गति ।

मनाविकार ( सं० पु० ) मनकी वह अवस्था जिसमें किसी प्रकारका सुखद या दुःखद भाव, विचार या विकार उत्पन्न होता है ।

मनाविकारको उत्पत्ति किसी प्रकारके भाव या विचारके कारण होती है और उसके साथ मनका लक्ष किसी पदार्थ या बातका ओर होता है । जब कोई मनोविकार उत्पन्न होता है, उस समय कुछ शारीरिक विक्रियाएँ भी हाता हैं, जैसे रोमाञ्च, स्वेद, क्रम आदि । परन्तु ये विक्रियाएँ साधारणतः इतनी सूक्ष्म होती हैं, कि दूसरोंको दिखाई नहीं देती । पर हां, मनोविकार यदि बहुत तीव्ररूपमें हो, तो उसके कारण होनेवाली शारीरिक विक्रियाएँ ध्येय ही बहुत स्पष्ट होती हैं और

अक्रमर मनुष्यको आकृतिमें ही उसके मनोविकारोंका स्वरूप प्रकट हो जाता है ।

मनोविज्ञान ( सं० पु० ) शास्त्रविशेष । इसमें चित्तकी वृत्तियोंका विवेचन होता है ।

मनोविट्ट ( सं० पु० ) मनोव, वह जो मनका भाव समझ सके ।

मनोविनयन ( सं० श्लो० ) मनागिला ।

मनोविरक्त ( सं० वि० ) १ जो मनके प्रतिकूल हो । ( पु० ) देवपुरुषगणभेद ।

मनोवृत्ति ( सं० खो० ) मनसः वृद्धिः । मनका ध्यापार, मनका कार्य । मनोविकार देवो ।

मनोवेग ( सं० पु० ) मनोविकार, मनका विकार ।

मनोवेदज्ञिरस् ( सं० श्लो० ) मन्त्रविशेष ।

“मुदेवा इति वेकेन देवा गावरय दक्षिणाः ।

जपेच्छाकुनयुक्तं वा मनोवेद शिरांसि च ॥”

( श्रुत० ४८०३ )

भृगु और पक्षियोंको यदि किसी प्रकारका फल हो, तो 'शाकुनसूक्त' वा 'मनोवेद शिरांसि' मनका जप करना चाहिये ।

मनोध्यापार ( सं० पु० ) मनकी क्रिया, विचार ।

मनोसग ( हि० पु० ) मनकी वृत्ति, मनोविकार ।

मनोहत ( सं० वि० ) मनमा मनसि वा हतः । प्रनिहत, निराश ।

मनोहृत् ( सं० पु० ) १ अग्नि, आग । २ असुरभेद, एक दानवका नाम ।

मनोहर सं० वि० ) हरीति ह-अन्, मनसो हरः । १ मनोव, सुन्दर । २ चित्तकर्षक, मन हरनेवाला । ( पु० ) ३ कुन्दपुष्प । ४ सुवर्ण, सोना । ५ कर्ममासका तृतीय दिन । ६ छप्पण छन्दके एक भेदका नाम । इसमें १३ गुरु, १२६ लघु, १४६ वर्षा और १५२ मात्राएँ भयथा १३ गुरु, १२२ लघु, १३५ वर्षा और १४८ मात्राएँ होती हैं । ७ एक संकर रागका नाम । यह गौरी, मारया और त्रिवणके मेलसे बना है ।

मनोहर—१ पद्यावलीधृत एक कवि । २ ब्रह्मभोजनिर्णयके प्रणेता ।

मनोहरकवि—१ इनका पूरा नाम राजा मनोहरदास

४ देवादिस्थापन गायत्री आदि वैदिक वाच्य जिनके द्वारा वन आदि किया करनेका विधान हो ।

मोमांसादर्शन प्रतिपादित मन्त्रात्मक ही देवता है । देवता ही मन्त्रस्वरूप है । मोमांसांमं लिप्ता है, कि देवगण शरीरी या सचेतन नहीं हैं । जिन देवताका जो मन्त्र वेदमें निर्दिष्ट है, वह देवता उसी मन्त्रके स्वरूप है । मन्त्रादिरिक देवताको सत्ताके सम्बन्धमें कोई प्रमाण नहीं है, यन् उसके विरोधी प्रमाण ही बहुतेसे मिलते हैं । यदि बिना मन्त्रके एक शरीरी देवता रहे और उन देवताकी पूजाके समय यदि वे आवाहनादि द्वारा करणापूर्वक घट अथवा प्रतिमादिमें अधिष्ठान हो कर पूजादि ग्रहण करे, तो उस मृण्मय प्रतिमादिमें उनका समावेश सम्भव नहीं है । कारण, इन्द्रकी पूजामें यदि उनका घट या मृण्मय प्रतिमामें आवाहन किया जाय और यदि वे पेरायतके साथ उसमें प्रवेश करें, तो वह घट या मृण्मयतिमा पेरायतके साथ इन्द्रदेवका भार बढ़न न कर सकेगी और चूर चूर हो जायगी । फिर ऐसा कौनसा उपाय है, जिससे छोटे घटमें घैले बड़े पेरायतके साथ इन्द्रदेवका समावेश हो सके ? यही सब दोष मिटानेके लिये देवताकी मन्त्रात्मक कहनेमें कोई आपत्ति नहीं रह जाती ।

इसी कारण मोमांसादर्शनमें मन्त्रको ही देवता बन-लाया है । जिस देवताकी पूजादि करने हो, मन्त्र, पाठ द्वारा करनेसे ही वह पूजा सिद्ध होता है । बिना मन्त्रके पूजादि नहीं होगी । देवताओंके स्तुतियाचक शब्दका प्रयोग करनेसे ही मन्त्र होगा नो नहीं । कारण, वेदमें निम्न निम्न देवताका निम्न निम्न मन्त्र बतलाया गया है । यही मंत्र उस देवताका स्वरूपबोधक है । उन्हीं सब निर्दिष्ट मन्त्रोंसे पूजादि करने होगी । ( मोमांसां देतो )

मंत्र शब्दको व्युत्पत्ति—

'मन्त्रान् गायत्रे यन्मन्त्रं मन्त्रात्मकं मन्त्रोक्तिः ।'

( आदिपर्वण )

मनसे ध्यान होता है, इन्हीं मंत्र नाम हुआ है । जो मन्त्रदोषित नहीं हैं, ज्ञानमें उनको निन्द्यता की गई है ।

"अदोषिणानां मन्त्रानां दोषं शब्दु धरन्ते ।

मन्त्रं विद्यावत्तं तस्य जन्तं मन्त्रकं इत्युच्यते ।

तत्फलं तस्य वा भाद्र' उपै वासि ज्योतिर्गन् ॥"

( मन्त्रशास्त्र )

जो व्यक्ति मन्त्रदोषित नहीं हैं, उनके हाथका मन्त्र विद्याके समान और जल मूलके समान है तथा वे जो कुछ करते हैं वह निरालम्ब होता है ।

जो जन्म ले कर सर्वथा संसारदुःखका भोग करने हैं । जन्मके बाद मृत्यु, मृत्युके बाद जन्म भयश्चम्भायी है । इसके हाथसे निकलित पानेका कोई उपाय नहीं । मृत्युमार्गों अर्थियों जोषका वह भयदुःख दूर करनेके लिये भगवत्पुत्रो उपासना प्रणाली निरालो है । एकमात्र भगवद्गाराधना द्वारा ही जायके समस्त प्रकारके दुःख जाते रहते हैं ।

वेदान्तादि माना ज्ञानोंमें इन सब उपासनाधेतां प्रणाली देनी जाती है । यह उपासना ध्यान, मनन और निदिध्यासनरूप है । किन्तु ध्यान-मननादि दुर्बल व्यक्तिके लिये बहुत दुःसाध्य है, इस कारण उन्हें मनुष्य-उपासना ही करनी चाहिये ।

जो दुर्बल व्यक्ति है उनको दुःख-निवृत्तिका उपाय मनुष्योपासनाके सिवा और कुछ भी नहीं है । इतने कारण मनुष्योपासनाकी ज्ञानोंमें प्रतीक्षा की गई है । यह मनुष्योपासना मन्त्रसाध्य है अर्थात् मन्त्र द्वारा ही यह उपासना होती है । इमोचिते धृति, मूर्खता, पुताण और तन्त्रादिमें सभी प्रकारके मन्त्र दिये गये हैं । उन सब मन्त्रोंसे यदि देवपूजा, जप आदिका अनुष्ठान किया जाय, तो जायकी अवश्य चित्तशुद्धि होती है । चित्तशुद्धि होनेसे ही जोय भगवत्पुत्रको पार कर सकता है ।

अनप्य मन्त्र हो एक पैसा स्थापन है, जिससे मनुष्य परमगति लाभ कर सकते हैं । वैदिकोपासना मन्त्री विदुषुत्वाय हो गई है । इस कारण वैदिक मन्त्रोंके दुर्दान्तता नो तदनुकूल है । वैदिक मन्त्रोंका अर्थ समझना नो मूर रहे, उनका ठोक गोरने उच्चारण हो नहीं होता ।

अभी सर्वत्र तांत्रिक और पौराणिक उपासना-प्रणालीका प्रचार है । इस कारण अन्तः पर नो गौड

मनामा । २ किन्ती देवताकी विशेषरूपसे पूजा करनेकी प्रतिज्ञा या मन्त्रव्य ।

मन्त्रव्य ( सं० त्रि० ) मन्त्र्यते इति मन-तप् । १ माननीय, मानने लायक । ( पु० ) २ मत, विचार ।

मन्त्रि ( सं० त्रि० ) मन-क्तिच् ( नक्तिचि दीर्घच । पा । ६।५।१६ ) इति विश्वसूत्रात् न भनुनासिकलोपः । मन्त्रि ।

मन्त्रु ( सं० पु० ) मन्त्र्यते इति मन ( क्ति मनि जनि गाभायादि-न्यन्त्र । उप् १।०३ ) इति तुन् । १ अपराध । २ मन्त्रव्य । ३ प्रजापति ।

आदिक्रमस्वयमे वत्तोस मन्तु अर्थात् अपराधका विषय इस प्रकार लिखा है,—

भगवद्भक्तोंके लिये क्षत्रियके हाथका सिद्धान्त भोजन, अनिषिद्ध दिनमें विना द्रव्यन किये अथवा मैथुनके बाद स्नान न कर विष्णुग्रहमें गमन, शय स्पर्शके बाद विना स्नान किये रजसल्ला स्नासंस्पर्श, स्नान न कर विष्णुग्रहमें प्रवेश, शयस्पर्शके बाद विना स्नान किये विष्णुका निकट अवस्थान, विष्णुको स्पर्श करके वातकर्म, विष्णुका कार्य करते करते पुरोयत्याग, वैष्णवशास्त्रकी निन्दा कर दूसरे शास्त्रकी प्रशंसा, अत्यन्त मलिन वस्त्र पहन कर विष्णुका कर्माचरण, भविष्यपूर्वक आचमन कर विष्णु-नान्द्रश्म गमन, पापाचरण कर विष्णुका उपसर्पण, क्रुदावस्थामें विष्णुस्पर्श, निषिद्धपुण्य द्वारा विष्णुको पुजा, रक्तवस्त्र पहन कर विष्णुके निकट गमन; अन्धकार-म विष्णुस्पर्श, दुष्प्रवृत्त पहन कर विष्णुका कर्माचरण, काकसृष्ट वस्त्र पहन कर विष्णुका कर्माचरण, विष्णुको पुष्पकुसुमोच्छेद दान, चराहर्मांस भोजन कर विष्णुका उपसर्पण, जालपाद और शरारत्मांस भोजन कर विष्णुका उपसर्पण, प्रदोष स्पर्श करके बाद विना हाथ धोये विष्णुस्पर्श आर उनका कर्माचरण, श्रद्धान्त जानके बाद विना स्नान किये विष्णुका उपसर्पण, पिण्याक भोजन कर विष्णुको सेवा, विष्णुको चराहर्मांस निषेदन, मघ-स्पर्श या पान कर विष्णुग्रहमें प्रवेश, दूस्त्रेका वस्त्र या भक्षुचि वस्त्र पहन कर विष्णुका कर्माचरण, विष्णुको गवात्र निषेदन किये विना नवारनभोजन, विष्णुको गन्ध-पुष्प दिये विना धूपदीपदान, जूता या राटाऊं पहन कर

विष्णु-ग्रहमें प्रवेश, विना भेरी शब्दके विष्णुका प्रबोधन, अर्त्तापावस्थामें विष्णु ग्रहप्रवेश, यही वत्तोस मन्तु है ।  
( आदिक्रमस्व चतुर्थ यामार्त्त इत्य )

चराहपुराणमें भी वत्तोस मन्तुओंका विषय लिखा है । विस्तार हो जानेके भपसे उनका विचरण यहाँ पर नहीं किया गया ।

( त्रि० ) ४ धाता, जाननेवाला । ५ मन्तव्य, मन्त्र करने योग्य ।

मन्त्रुमत् ( सं० त्रि० ) ज्ञानयुक्त, ज्ञानी ।

मन्त्रु ( सं० त्रि० ) मन्त्र्यते जानातोति मन ( बहुलमन्त्रवशापि । उप् २।६५ ) इति तुच् । १ विद्वान् । २ मननकर्त्ता । मन्त्रु ( सं० पु० ) मन्त्रान्ते गुम् परिभाष्यते इति मन्त्रि-गुममापणे घञ्, यद्वा मन्त्रयते गुप्ते भाष्यते अच् । १ वेदका यह भाग जिसमें मन्त्रोंका संग्रह है । वेद मन्त्र और ब्राह्मण इन दो भागोंमें विभक्त है ।

“प्रवृत्त ब्रह्मण्यस्वार्त्तमन्त्रं यदत्युक्त्यम् ।” ( ऋक् १।४।१४ )

२ सन्हाद्युक्त मन्त्र, तन्त्रके अनुसार वे शब्द जिनका जप भिन्न भिन्न देवताओंको प्रसन्नता या भिन्न भिन्न काम-नाओंकी सिद्धिके लिये करनेका विधान है ।

‘निषेकादिभ्यदान्तांती मन्त्रैर्वस्वोदितो विधिः ।

तस्य शास्त्रेऽधिकारोऽस्ति शेषा नान्यस्य कर्त्वाचत् ॥”

( मनु २।१६ )

३ गोप्य वा रहस्यपूर्ण वात, परामर्श, सलाह । जिनका अङ्ग विद्यत है, वेसे व्यक्तसे कितो काममें सलाह नहीं लेना चाहिये ।

“व्यङ्गाग्रहीना गधिराः कुर्वन्तिपु रताम य ।

तेषां मन्त्रा न मुखदः प्राक्ताः कविभिरेव च ॥

कामुकानां जडानाम्च खोजितानां तथेव च ।

शत्रुस्वयं गृहे नित्यं जामाता कर्मकारकः ॥

तस्यापि न भवेन्मन्त्रः कार्ष्णिदी कदाचन ॥”

( जैमिनिभारत, भृश्वमेध प०२ म० )

विद्युराङ्ग, अङ्गदान, यच्चिद, कुपोनिम रत्न, कामुक, जड, स्वप्न और शत्रुरके घरमें काम करनेवाला जनाई, इन लोगोंसे यदि मन्त्रणा लो जाय तो कोई काम सिद्ध नहीं होता । विशेष विवरण मन्त्रव्या गद्यमें देखो ।

४ देवादिसाधन गायत्री आदि वैदिक वाक्य जिनके द्वारा यज्ञ आदि क्रिया करनेका विधान हो ।

मोर्मासादर्शन प्रतिपादित मन्त्रात्मक ही देवता है । देवता ही मन्त्रस्वरूप है । मोर्मासामें लिखा है, कि देवगण शरीरो वा सचेतन नहो हैं । जिम देवताका जो मन्त्र घेर्में निर्दिष्ट है, यह देवता उसो मन्त्रके स्वरूप है । मन्त्रादिरिक देवताको सत्ताके सम्बन्धमें कोई प्रमाण नहो है, वरन् उसके विरोधी प्रमाण हो बहुतसे मिलते हैं । यदि बिना मन्त्रके एक शरीरो देवता रहे और उन देवताकी पूजाके समय यदि वे आवाहनादि द्वारा करुणापूर्वक घट अथवा प्रतिमादिमें अधिष्ठित हो कर पूजादि प्रहण करे, तो उस मृण्मय प्रतिमादिमें उनका समावेश सम्भव नहो है । कारण, इन्द्रको पूजामें यदि उनका घट वा मृण्मय प्रतिमामें आवाहन किया जाय और यदि वे पेरायतके साथ उसमें प्रवेश करें, तो यह घट वा मृण्प्रतिमा पेरायतके साथ इन्द्रदेवका भार बढन न कर सकेंगी और चूर चूर हो जायगी । फिर ऐसा कौनसा उपाय है, जिससे छोटे घट्टेमें घेसे बड़े पेरायतके साथ इन्द्रदेवता समावेश हो सके ? यही सब दोष मिटानेके लिये देवताको मन्त्रात्मक कहनेमें कोई आपत्ति नहो रह जाती ।

इसो कारण मोर्मासादर्शनमें मन्त्रकी ही देवता बतलाया है । जिस देवताकी पूजादि करनी हो, मन्त्र, पाठ द्वारा करनेसे हो यह पूजा सिद्ध होता है । बिना मन्त्रके पूजादि नहो होगी । देवताओंके रूतियावाक्य शब्दका प्रयोग करनेसे हो मन्त्र होगा सो नहो । कारण, घेर्में निम्न निम्न देवताका निम्न निम्न मंत्र बतलाया गया है । यही मंत्र उस देवताका स्वरूपबोधक है । उन्हीं सब निर्दिष्ट मन्त्रोंसे पूजादि करनी होगी । ( मोर्मासा देवा )

मंत्र शब्दको व्युत्पत्ति—

धननात् शान्ते यस्मात् तस्मात् मंत्रः प्रकीर्तितः ।

( भाद्रकतरण )

मननसे ताप होता है, इसीमें मंत्र नाम हुआ है । जो मन्त्रशिक्षित नहो है, शास्त्रमें उनकी निन्दा की गई है ।

“मदीरिगता मर्यादा दोषं शृणु बरतने ।  
भक्तं पिशाचो हस्य जतं मूकं च मृगम् ।  
वदन्तं हस्य वा भावः” एवं कति क्वचनोक्तिम् ॥”

( मरकत० )

जो व्यक्ति मन्त्रशिक्षित नहो है, उनके हाथका मन्त्र विष्टाके समान धीर जल मूकके समान है तथा वे जो कुछ करने हैं वह निष्फल होता है ।

जीव जन्म ले कर सर्वदा संसारदुःखका भोग करने हैं । जन्मके बाद मृत्यु, मृत्युके बाद जन्म अवश्यम्भावी है । इसके हाथने निर्दुःखि पानेका कोई उपाय नहो । मूहनशुशो मन्त्रिपति योगका यह अवशुभ दूर करनेके लिये भगवद्गुती उपासना प्रणाली निहाली है । एकमात्र भगवदारुपना द्वारा ही योगके समस्त प्रकारके दुःख जाते रहते हैं ।

वेदान्तादि नाना शास्त्रोंमें इन सब उपासनाओंकी प्रणाली देली जाती है । यह उपासना भयन, मनन और निदिध्यासनरूप है । किन्तु भयन-मननादि दुर्भेद व्यक्तिके लिये बहुत दुःसाध्य है, इस कारण उन्हें समुप-उपासना ही करनी चाहिये ।

जो दुर्बल व्यक्ति है उसको दुःख-निवृत्तिका उपाय समुप-उपासनाके मिया और कुछ भी नहो है । इसी कारण समुप-उपासनाकी शास्त्रोंमें प्रशंसा की गई है । यह समुप-उपासना मन्त्रमाध्य है अर्थात् मन्त्र द्वारा ही यह उपासना होती है । इर्मादिभे श्रुति, स्मृति, पुराण और तन्त्रादिमें समो प्रकारके मन्त्र दिखे गये हैं । उन सब मन्त्रोंसे यदि देवपूजा, जप आदिका अनुष्ठान किया जाय, तो जीवका अथर्व विस्तृति होती है । विस्तृति होनेसे ही जीव भयमागरकी पार कर सकता है ।

अनर्थक मन्त्र हो एक सेना सन्धन है, जिससे मनुष्य परमपति लाभ कर सकते हैं । वैदिकीपानना भनी विस्तृतिवाय हो गई है । इस कारण वैदिक मन्त्रोंको दुर्ज्ञानों में गव्त्ररूप है । वैदिक मन्त्रोंका अर्थ समझना नो पूर रहे, उनका डोक तीरने उच्चारण ही नहो होता ।

अर्थात् मन्त्रोंका तात्पर्य और वैदिकीपानना उच्चारण-प्रणालीका प्रकार है । इस कारण भनी कदा पर तन्त्रोक्त

मनाया । २ किसी देवताको विशेषरूपसे पूजा करनेकी प्रतिष्ठा या स्तुत्य ।

मन्त्र ( सं० लि० ) मन्त्रे इति मन-तत्र । १ माननीय, मानने लायक । ( पु० ) २ मत, विचार ।

मन्त्रि ( सं० लो० ) मन-क्तिच् ( नक्तिचि दीर्घश्च । पा । १।४।३६ ) इति विशेषवृत्तात् न मनुनासिकलोपः । मति ।

मन्तु ( सं० पु० ) मन्त्रे इति मन ( कृमि मनि अनि गाभायादि-मन्त्र । उण् १।०५ ) इति तुच् । १ अपराध । २ मनुष्य । ३ प्रजापति ।

आङ्गिकनरयमं वचोस मन्तु अर्थात् अपराधका विषय इस प्रकार लिखा है,—

भगवद्भक्तोंके लिये क्षतिपके हाथका सिद्धान्त भोजन, निविद्य दिनमें बिना दनुचन किये अथवा मैथुनके वाद् स्नान न कर विष्णुगृहमें गमन, शय स्पर्शके वाद् बिना स्नान किये रजसला लोसंस्पर्श, स्नान न कर विष्णुगृहमें प्रवेश, शयस्पर्शके वाद् बिना स्नान किये विष्णुक निकट अथस्थान, विष्णुको स्पर्श करके वातकर्म, विष्णुका कार्य करते करते पुरोपत्याग, घैष्यशास्त्रकी निन्दा कर दूसरे शास्त्रकी प्रशंसा, अत्यन्त मलिन वस्त्र पहन कर । ३ गृहका कर्माचरण, अविधिपूर्वक आचमन कर विष्णु-मान्दरमें गमन, पापाचरण कर विष्णुका उपसर्पण, कृद्वायस्थामे विष्णुस्पर्श, निविद्यपुत्र द्वारा विष्णुको पूजा, रक्तवस्त्र पहन कर विष्णुके निकट गमन; अन्धकार-म । ४ विष्णुस्पर्श, कृष्णवस्त्र पहन कर विष्णुका कर्माचरण, काकस्पर्श वस्त्र पहन कर विष्णुका कर्माचरण, विष्णुको कुपकुराच्छेद शान, घराहमांस भोजन कर विष्णुका उपसर्पण, जालपाद और शरारमांस भोजन कर विष्णुका उपसर्पण, प्रदाय स्पर्श करनेके वाद् बिना हाथ धोये । ५ विष्णुस्पर्श भार उनका कर्माचरण, श्मशान जानेके वाद् बिना स्नान किये विष्णुका उपसर्पण, पिण्वाक भोजन कर विष्णुको सेवा, विष्णुको वराहमांस निवेदन, मद्य-स्पर्श या पान कर विष्णुगृहमें प्रवेश, दूसरेका धरज या भस्त्रि धरज पहन कर विष्णुका कर्माचरण, विष्णुकी नवाग्र निवेदन किये बिना नवान्नभोजन, विष्णुको गन्ध-पुत्र दिये बिना धूपदोषदान, जूता या चापूज पहन कर

विष्णु-गृहमें प्रवेश, बिना भेरी शब्दके विष्णुका प्रवेशन, शक्तीर्पावस्थामें विष्णु गृहप्रवेश, यद्यो पत्तोम मन्तु हैं ।

( भाद्रिकतरत्र चतुर्ग कामार्द्रं इत्य )

यराहपुराणमें भी वचोस मन्तुओंका विषय लिखा है । विस्तार हो जानेके भयसे उनका विवरण यहाँ पर नहीं किया गया ।

( लि० ) ४ शाता, जाननेवाला । ५ मन्तवीय, मन्त्र करने योग्य ।

मन्तुमत् ( सं० लि० ) शान्त्युक्त, शान्ती ।

मन्तु ( सं० लि० ) मन्त्रे जानातीति मन ( बहुलमन्त्राधि ।

उण् २।६५ ) इति तुच् । १ विद्वान् । २ मननकर्ता ।

मन्त्र ( सं० पु० ) मन्त्रानि गुणं परिभाषयते इति मन्त्रि-शुभभाषणे घञ्, यद्वा मन्त्रयते गुप्तं भाषते धच् । १ वेदका वह भाग जिसमें मन्त्रोंका संग्रह है । वेद मन्त्र और ब्राह्मण इन दो भागोंमें विभक्त हैं ।

“मन्त्र ब्रह्मण्यस्तत्तन्मन्त्रं यदस्तुत्कथ्ये ।” ( शूक् १।४।१४ )

२ तन्त्राद्युक्त मन्त्र, तन्त्रके अनुसार वे शब्द जिनका जप भिन्न भिन्न देवताओंको प्रसन्नता या भिन्न भिन्न काम-नाओंको सिद्धिके लिये करनेका विधान है ।

“निवेकादिभ्यासान्नां मन्त्रैस्त्वोदितो विधिः ।

तस्य शान्तेऽधिकारोऽस्तिव शेषो गान्धर्वस्य कर्त्वाचर ॥”

( मनु २।१६ )

३ गोप्य वा रहस्यपूर्ण बात, परामर्श, सलाह । जिनका अङ्ग विद्यत है, जैसे व्याकसे किसी काममें सलाह नहीं लेनी चाहिये ।

“व्यंज्ञाद्गहीना मधिराः कुर्वन्तिवु रताथ ये ।

वेधो मन्त्रा न सुतदः प्रोक्तः कविभिरेव च ॥

कामुज्ञानां जङ्गमान्त्र्यं स्वजितानां तथैव च ।

अनुस्य यदे निष्पं जामाता कर्मकारकः ॥

तस्यापि न भयेन्मन्त्रः कार्यं शिद्धी कदाचन ॥”

( जैमिनिभारत अर्यभेध ५०२ अ० )

विद्यज्ञान, ब्रह्मज्ञान, वधिद, कुयोभिरेव रत्न, कामुक, अज्ञ, श्रेण और अनुसुरके घरमें काम करनेवाला जनाई, इन लोगोंसे यदि मन्त्रणा हो जाय तो कोई काम सिद्ध नहीं होता । विशेष विवरण मन्त्रव्या गच्छमें देखो ।

४ देवादिसाधन गायत्री आदि वैदिक घाषप जिनके द्वारा यज्ञ आदि किया करनेका विधान हो।

मीमांसादर्शन प्रतिपादित मन्त्रात्मक ही देवता है। देवता ही मन्त्रस्वरूप है। मीमांसामें लिखा है, कि देवगण शरीरो या सचेतन नहीं हैं। जिस देवताका जो मन्त्र वेदमें निर्दिष्ट है, वह देवता उसी मन्त्रके स्वरूप है। मन्त्रादिरिक देवताको सत्ताके सम्बन्धमें कोई प्रमाण नहीं है, यन्त्र उसके विरोधी प्रमाण ही बहुतसे मिलते हैं। यदि विना मन्त्रके एक शरीरो देवता रहे और उन देवताकी पूजाके समय यदि वे आवाहनादि द्वारा करुणापूर्वक घट अथवा प्रतिमादिमें अर्पिष्ठ हो कर पूजादि प्रदण करे, तो उस मृगमय प्रतिमादिमें उनका समावेश सम्भव नहीं है। कारण, इन्द्रकी पूजामें यदि उनका घट वा मृगमय प्रतिमामें आवाहन किया जाय और यदि वे ऐरावतके साथ उसमें प्रवेश करें, तो वह घट वा मृगप्रतिमा ऐरावतके साथ इन्द्रदेवका भार वहन न कर सकेगी और चूर चूर हो जायगी। फिर ऐसा कौनसा उपाय है, जिससे छोटे घड़ेमें घैले वड़ ऐरावतके साथ इन्द्रदेवका समावेश हो सके? यही सब दोष मिश्रणके लिये देवताको मन्त्रात्मक करनेमें कोई आपत्ति नहीं रह जाती।

इसो कारण मीमांसादर्शनमें मन्त्रको ही देवता बतलाया है। जिस देवताकी पूजादि करनी हो, मन्त्र, पाठ द्वारा करनेसे ही वह पूजा सिद्ध होता है। विना मन्त्रके पूजादि नहीं होगी। देवताओंके स्तुतिवाचक शब्दका प्रयोग करनेसे ही मन्त्र होगा सां नहीं। कारण, वेदमें निम निम देवताका भिन्न भिन्न मंत्र बतलाया गया है। यही मंत्र उस देवताका स्वरूपबोधक है। उन्हीं सब निर्दिष्ट मन्त्रोंसे पूजादि करनी होगी। (मीमांसा वेदांश)

मंत्र शब्दकी व्युत्पत्ति—

'मननात् प्रापते यस्मान् तस्मात्तन्मन्त्रः प्रचोदितः।'

(आदिशतक)

मननसे साधन होता है, इसीसे मंत्र नाम हुआ है। जो मन्त्रदीक्षित नहीं है, ज्ञानमें उनकी निन्दा की गई है।

"भद्रीहिकानां मन्त्रानां दोषं शृणु ब्रह्मणे।

मन्त्रं विनाशयं तस्य जज्ञं कुरुमः समुद्रम्।

नस्मिन् तस्य वा धाम् गर्भं काति स्मरेणतन्त्रम्॥"

(मरकत०)

जो व्यक्ति मन्त्रदीक्षित नहीं है, उनके हाथका मन्त्र विष्णुके समान और जल मूत्रके समान है तथा वे जो कुछ करते हैं वह निष्फल होता है।

जीव जन्म ले कर सर्वथा संसारदुःखका भोग करते हैं। जन्मके बाद मृत्यु, मृत्युके बाद जन्म भयश्चम्भायो है। इसके हाथसे निष्कृति पानेका कोई उपाय नहीं। मृत्युदर्शों स्मृतियोंसे जीवका यह भयदुःख दूर करनेके लिये भगवद्गुरु उपासना प्रणायो विनाशो है। एकमात्र भगवद्गुरुप्राप्त्येन ही जीवके समस्त प्रकारके दुःख जाते रहते हैं।

वेदान्तादि नाना ज्ञानोंमें इन सब उपासनाओंको प्रणाली देनी जाती है। यह उपासना श्रवण, मनन और निदिध्यासनरूप है। किन्तु श्रवण-मननादि दुर्बल व्यक्तिके लिये बहुत दुःसाध्य है, इन कारण उन्हें सगुण-उपासना ही करनी चाहिये।

जो दुर्बल व्यक्ति है उसको गुण-निवृत्तिका उपाय सगुणोपासनाके सिवा और कुछ भी नहीं है। इसी कारण सगुणोपासनाको ज्ञानोंमें प्रशंसा की गई है। यह सगुणोपासना मन्त्रसाध्य है अर्थात् मन्त्र द्वारा ही यह उपासना होती है। इसीलिये श्रुति, स्मृति, पुराण और तन्त्रादिमें सबो प्रकारके मन्त्र दिये गये हैं। उन सब मन्त्रोंसे यदि देवपूजा, जप सादिना अनुष्ठान किया जाय, तो जीवको भयश्च विनाशुद्धि होगी है। निस्तुष्टि होनेसे ही जीव भयमागणको पार कर सकता है।

अन्यत्र मन्त्र ही एक ऐसा माध्यम है, जिससे मनुष्य परमगति प्राप्त कर सकते हैं। वैदिकीोपासना अभी निवृत्तप्राय हो गई है। इन कारण वैदिक मन्त्रोंके दुर्बला भा तदनुकरण है। वैदिक मन्त्रोंका अर्थ समझना नो मुश्किल रहे, उनका उद्योग गौरव उच्चारण ही नहीं होता।

अभी मन्त्र साहित्य और ऐतिहासिक इतना-प्रणालीका प्रकार है। इन कारण अभी यज्ञ पर मन्त्रोंका



मन्त्रादि पर ही विचार करना आवश्यक है । महानिर्वाण के द्वितीयोपासनासमं लिखा है—

‘विना इषामममार्गेण कस्मिं नस्ति गतिः विने ।  
 भुक्तिस्मृतिपुराणादी मौराकं पुरा विने ॥  
 भावमाकतेन विधिना कस्मिं देवान यजेत् सुधीः ।  
 कृता राममनुजं च योऽन्य मार्गं प्रवर्तते ॥  
 न वस्त गतिस्त्विति सत्यं सत्यं न संशयः ।  
 कस्मिं तन्वां देता मन्त्राः सिद्धास्त्वंकृतमदाः ॥  
 तन्वाः कर्मसु सर्वेषु जायन्तक्यादियु ॥  
 निरीर्याः भीतजागीया विपरीनोरया इय ।  
 सत्यादी उकला भाषण कस्मिं ते मूनका इय ॥  
 पायासिका यथा भिराी गर्वेन्द्रियसमन्विताः ।  
 अमुरगतः कार्येषु वन्ध्यास्त्रोसङ्गमो यथा ॥  
 न तप कस्तसिद्धिः स्त्रान् धम एव हि केवतम् ।  
 कलावन्द्योदितैर्मार्गाः सिद्धिमिच्छति यो नरः ॥  
 नृपते जाह्नवीतीरे कृषं सनति सुमेति ।  
 नान्वाः पन्था मुचितहेतुरिद्रामुलाय ये ।  
 यथा लन्धोडितो भार्गो मोक्षाय न सुताय न ॥”

( इतस्वरीधितभूत महानिर्वाणतं )

श्रुति, स्मृति, पुराण, उपपुराण, संहिता आदिमें विविध उपासनापद्धति लिखी हैं । फिर भी एकमात्र आगमोक्त उपासना ही आशु फलदायक और सुगम है । इस कारण समीको इस तन्त्रोक्तप्रणालीके अनुसार उपासना करना उचित है । विशेषतः फलिकालमें आगमोक्त विधानके धलाया और कोई भी विधान नहीं है । यदि कोई व्यक्ति आगमविहित मार्गका परित्याग कर अन्य मार्गसे चले, तो उसका कार्य सिद्ध नहीं होता । फलमें तन्त्रोक्त मन्त्र ही सिद्ध और आशुफलप्रद है । वैदिक मन्त्र विपरीन सर्वको तरह निर्धार्य हैं । सत्यादि गुणमें ये सब वैदिक मन्त्र सकल थे, इसमें सन्देह नहीं, पर अभी मृत हो गये हैं । धतपत्र मृत् मन्त्र द्वारा जो सब कार्यानुष्ठान किये जाते हैं ये फलोभूत नहीं होते । एकमात्र आगमोक्त मन्त्र ही इहलोक और परलोकमें सुखप्राप्ति और मोक्षका कारण है ।

वैदिक मन्त्र निष्फल है या तान्त्रिक मन्त्र, इस विषयको सीमांसा करना बहुत फटिन है । पर हां, इतना जरूर

कह सकते हैं, कि वैदिकोपासना विशेष उपासना है । तान्त्रिक उपासना सुलसाध्य है, यह पहले ही कहा जा चुका है । अधिकादिमें ये सब उपासनाप्रणाली अनुष्ठित होती हैं । मुख्य अधिकारोके लिये तान्त्रिक उपासना सुगम है । जिस प्रकार ब्राह्मणके यज्ञोपवीत नहीं होनेसे ये पूजादिके अधिकारो नहीं होते, उसी प्रकार उपयुक्त गुणके निरुक्त मन्त्र नहीं लेनेसे मानव यज्ञोपवीत भी कार्य नहीं कर सकते । ब्राह्मणादि तीन वर्ण यज्ञोपवीत धारण कर सकते हैं, पर तन्त्रोक्त मन्त्र लेनेमें सबोंका समान अधिकार है ।

उपयुक्त गुणके निरुक्त मन्त्र लेना ही श्रेय है । गुणमें कौनसे गुण रहते चाहिये, इसका विषय नीचे लिखा जाता है :—

“चतुर्णां यथानां मन्त्रदाने ब्राह्मण एवाधिकारी, तदुत्तरं विन्यस्यारत्नो द्वितीय परत्ने—

जितेन्द्रियः सत्यवादी ब्राह्मणः शान्तमानसः ।  
 विवृणोति पुरतः सर्वकर्मसामग्याः ॥  
 आसमी देवस्वामी च गुणैव विधीयते ॥”

( इतस्वरीधिति )

ब्राह्मण चारों वर्णोंको मन्त्र दे सकते हैं । जो ब्राह्मण जितेन्द्रिय, सत्यवादी, प्रजागन्धित और विवृणोतिमें रत है, वे ही मन्त्र देनेके योग्य हैं ।

तन्त्रसारमें लिखा है—

“शान्तो दान्तः कुर्वीमन् विनीतः शुद्धवशका ।  
 शुद्धान्तरः सुप्रतिष्ठः शुचिर्दक्षः शुद्धिमान् ॥  
 आसमी ध्याननिष्ठश्च धनवन्मन्त्रविराट् ।  
 निमहानुभवं सातो मुक्तिरश्निधीयते ॥” (तन्त्रसार)

शान्त अर्थात् हृत्कण्ठान्ध-धनितादिरूप विषयमें उत्कृष्ट अनुरागरहित और ज्ञानादिगुणयुक्त, दान्त, कुर्वीम अर्थात् कौलाचाररत, विनयशील, अपमत्त, पवित्रधेन-धारी, स्वयंश्रेष्ठ, सन्ध्यापठनादि कार्यमें निरत, सुप्रतिष्ठ, आश्रमी अर्थात् गृहस्थादि-आश्रममें स्थित, शुद्धरकी धाराधनार्थं तदप, तन्त्र और मन्त्र-विशारद, निमहानु-ग्रहमें शक्त, स्तुतिनिर्वाणं समझान इत्यादि गुणनायो व्यक्ति ही प्रकृत शुद्धवाच्य है । फिर दूसरी जगद यह भी लिखा है, कि जो मन्त्र प्रदान कर उदार बन सकते हैं तथा

अभिशाप द्वारा विनाश करनेमें समर्थ हैं वे ही ब्राह्मण ध्रष्ट, सत्यवादी गृहस्थ गुरुके योग्य हैं ।

जब किसीको अपना गुरु बनाना हो, तब उक्त गुण जिस ब्राह्मणमें देखें, उन्हींको गुरु बनायें । उक्त गुणहीन ब्राह्मणको गुरु बनानेसे कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता ।

जो व्यक्ति गुरुको मनुष्य, मन्त्रकी अक्षर, द्रव्यप्रतिमाको गिला समझते हैं तथा गुरु प्रभृतिके साथ मनुष्य-कामा व्यवहार करते हैं उन्हें घोर नरक होता है- पिता और माता जन्मके कारण हैं, अतएव यत्नपूर्वक उनकी सेवा करना उचित है । किन्तु मन्त्रदाता गुरु धर्माधर्मपथदर्शक हैं, अतएव देवता जान कर उनकी अर्चना करने चाहिये । गुरु पिता माता हैं, अभीष्ट देवतास्वरूप हैं तथा वे ही अन्तमें निस्तार कर्ता हैं । जिसके प्रति महादेव रुष्ट होते हैं, उसका रक्षा गुरुदेव कर सकते हैं, पर गुरुदेवके कुपित होनेसे उसका कोई निस्तार नहीं है । चाषय, न, शरीर और कार्य द्वारा गुरुका सर्वदा हितानुष्ठान करना चाहिये । पिता सेबल शरीर उरपावन करते हैं, पर हान देनेवाले गुरु ही हैं । अतएव दुःख-सागररूप इस भयसागरमें गुरुके मिया और कोई भी परित्याग नहीं है । जिनके मुखमें पर्ण प्रस्रवण शरीर निकलता है, वे अवश्य ही नरकार्यावसे उदार कर सकते हैं ।

गृहीत मन्त्रका परित्याग करनेमें मृत्यु, गुरुका परित्याग करनेसे दूरिद्रता तथा गुरु और मन्त्र दोनोंका परित्याग करनेसे घोर नरक होता है । जो व्यक्ति गुरुके निकट अन्य देवताकी अर्चना करता है, यह अन्त कालमें नरक जाता और उमको पूजादि निष्फल होती है ० ।

- गुरो मालुषवुकिन्नु मन्त्रे वाकरवुडिकम् ।
- प्रतिमासु किन्नावुजि कुर्वाणो नरकं मण्डे ॥
- अन्महेतु रि पितायै पूजनीयो प्रवक्षतः ।
- गुरुविशुधताः पूज्या धर्माधर्मदर्शकः ॥
- गुरुः पिता गुरुमाता गुरुदेता गुरुर्गीतः ।
- जिने रुष्टे गुरुत्वात् गुरो रुष्टे न कश्चन ॥
- गुरोर्हितं प्रकर्तव्यं वादमनःकार्यस्वर्गम् ।
- अभिशापव्यादि निष्प्रायाः प्राप्ते इमिः ॥

निन्दित गुरुके लक्षण—  
 "विरागो वैव गन्तुं दुःखो नेत्रतोमो च यामनः ।  
 कुन्तलः श्यावदनन्धम क्रोडितोऽपिहाकरः ॥  
 हीनाङ्गः कर्पटी तंगो वक्रासी बहुजल्पकः ।  
 एतैर्दोषै विनुकतो यः न गुरुः निष्पगममतः ॥  
 अभिरसामनुष्य कर्ष्य विनय तथा ।  
 विवादीनं शत्रुत्वादि याम्नि गुरुनिदकम् ॥  
 अजरणाकारश्च वर्डेयमभिमानु तदा ।  
 सदा गतरागं गुरुतं गुरुं तन्मेव वनेयेत् ॥" (तन्त्रसार)  
 धवल और कुष्ठरोगी, यामन, कुन्तली, दयावरगत, र्शो-पगोभूत, अधिकाङ्ग, हीनाङ्ग, कपटाचारी, बहुजल्पक, अभिशापप्रस्त, पुत्रहीन, कुरिस्तताकार, भृश, सख्या-यन्त्रादि निष्पकार्यरहित, जड, गुरुनिश्चक, अलक्ष्यो, रक्तविकारो और सदा गर्वित ऐसे दोषयुक्त गुरुके निकट मन्त्रग्रहण नहीं करना चाहिये ।

गुरुको चाहिये, कि वे पहले निष्पकी परीक्षा कर पीछे उसे मन्त्र दें । निष्पके गुरुके निकट उपस्थित होते ही उसे मन्त्रप्रदान करना गुरुको उचित नहीं है ।

निष्पलक्षण—  
 "मानो विनीतः युवात्मा भद्रावान धारणक्रमः ।  
 गमार्थं युजोनिभ प्राणः मपरितो कृतिः ।  
 एवमादिगुणैर्ष्वतः निष्पा भवति नान्ध्या ॥" इत्यादि,  
 (तन्त्रसार)

नररदो पिता देवि मानदो गुप्तेष च ।  
 गुणैर्गुणतो नहि तंगो दुःखतापो ॥  
 यस्य वक्राङ्गिनिर्जो वर्येकमव वसु ।  
 गारुदेमातं तन्देहो नरकार्यं कर्ता भूषम् ॥  
 मन्त्रस्यागाङ्गनेन्मृत्पुण्यं कृपागादिद्रतः ।  
 गुणमंशान्परित्यागादीरथ नरकं मण्डे ॥  
 गुरो हर्षितो यस्तु पूरुदेदकन्देवताः ।  
 च यति नरकं पीरु हा पुजा विरहा भवेत् ॥  
 ठगुनादककदाशार्गीपालं कफदः पिता ।  
 अन्धमवमवुत् गवर्णं निरुत्पर्वर्षे गुरुम् ॥  
 गुरुत्वं गुरुत्वं तु गुरुत्वं नरगुरुत्वं तु ॥" इत्यादि ।

(( तन्त्रसार ))

शमादि-गुणयुक्त, चित्तयो, विमुक्तत्वभाव, धृष्टगान्, धर्मजीव, सर्वकर्मसमर्थ, मष्टं जलम्ना, आभय, सशक्ति और त्रिनेन्द्रिय ये सब गुणयुक्त व्यक्ति शिष्यके उपयुक्त हैं अर्थात् ऐसे गुणयुक्त व्यक्तिको ही गुरु मन्त्रप्रदान करें।

पापाहता, क्रूरकर्मा, पञ्चक, शृणुण, अतिदग्धि, आचिर-स्रष्ट, मन्त्रस्रष्ट, मन्त्रहृषो, निन्दक, मूर्ख, तीर्षहृषो, गुण-भक्तिविहीन, अरुस, मलिनचेरी, अतिशय कातर, दाम्भिक, दग्धि, रोगो, सदा धनरुष्ट चित्त, कौयो, लीन-परतन्त्र, हिंसा और माहसर्पयुक्त, कर्कशभाषी, अन्याय उपाजंनसे धनवान्, परस्त्रोरन, पण्डितहृषो, पण्डितना-मिमानो, सूचक, घाल, बहुभोका, दुश्चरित्र और निन्दित व्यक्तिको गुरु कर्मा भी मन्त्र न दे। ये सब दोषविशिष्ट व्यक्ति शिष्यके लिये अनुपयुक्त हैं।

गुरु जिसे मन्त्र दे, पहले उसे एक वर्ष तक अपने निकट रख कर उसका दोषगुण भलीभांति जांच ले। शिष्यके दोषगुणको परीक्षा किये बिना गुरु यदि उसे मंत्र दे तो शिष्यका किया हुआ पाप गुरुको ही होता है। शास्त्रमें लिखा है, कि मन्त्रोका पाप राजाको, स्वीकृत पाप अपने स्वामीको और शिष्यार्जित पाप गुरुको लगता है। अतएव गुरु शिष्यके स्वाम्यादिको जाने बिना उसे मन्त्र न दे। गुरुके निकट गुणवान् प्रारणको एक वर्ष, क्षत्रियको दो वर्ष, वैश्यको तीन वर्ष तथा शूद्रको चार वर्ष रहना चाहिये। इस प्रकार गुरुके निकट दीर्घ-काल तक रहनेसे गुरु उनका दोषगुण भलीभांति जान जायंगे। पीछे उपयुक्त समय देना कर मन्त्र प्रदान करना उचित है।

'शूद्रगुरुं स्वाधित शिष्यं कर्मिकं परीक्षयेत् ।  
रक्षि चामात्ययो दोषः पत्नीयान् स्वमत्तरि ॥  
तथा शिष्यार्जितं पापं गुरुः प्राप्नोति निश्चिन्तम् ।  
कर्मिण भवेत्सोमो विमो गुणसमन्वितः ।  
वर्षद्वयेन राजस्यो वैश्यास्तु पत्सरेन्द्रिभिः ॥  
चतुर्भिर्दत्तकैः शूद्रः कश्चिज्जा शिष्ययोग्यता ॥'

(सन्तकार)

इसमें कुछ विरोधता है, यह यह है, कि स्वप्नलब्ध मन्त्रमें कोई नियम नहीं है। अर्थात् गुरु यदि शिष्यको

स्वप्नलब्ध मन्त्र प्रदान करना चाहे तो पूर्णतः नियमानु-सार पहले शिष्यको भलीभांति परीक्षा कर ले।

"इत्थो तु न काश्चित्तया, इत्थो तु विन्तो न हि ॥"

(सन्तकार)

मन्त्र, देवता और गुरु इन तीनोंमें भेद नहीं समझना चाहिये। कलिकालमें तन्त्रोक्त विधानानुसार देवताको आराधना करे। परोक्ष सत्ययुगमें वेदान्त, ऋषामें स्मृत्युक्त, द्वापरमें पुराणोक्त और कलिकालमें तन्त्रोक्त कार्य ही बतलाया गया है। कलिभुगमें प्रारण भवयित और शूद्राचारखतरा होते हैं, अतः बिना तन्त्रके वेदादि कार्यमें उनकी सिरि नहीं होती इस कारण गुरुको चाहिये, कि वे तन्त्रोक्त मन्त्र शिष्यको प्रदान करें।

"भागमोत्तगन्धिधानेन कनो देवान् यन्तु मुधा ।

न हि देवाः प्रभोदन्ति कत्रा चान्दविधानतः ॥

इते भुक्तु इव मार्गैः स्वात् देवायां सृष्टिसम्भवः ।

द्वारे तु पुरापाततः कत्रायागमसमतः ॥

अशुद्धाः शूद्रकर्माणाः ब्राह्मणाः कश्चिगन्तराः ।

तंयामागममार्गांश्च विदिने शीतवस्त्रेना ॥

मन्त्रायां देवा शेषा देवता गुरुश्रिया ।

तेषां भिदा न कर्त्तव्या यदोच्छेत्तुभक्तमनः ॥"

(सन्तकार)

मन्त्र लेनेमें विशेषता यह है, कि उदासीन स्वपित उदासीसे, वनस्थ वनयासीसे, यदि यतिसे, गृहस्थ गृह-स्थसे और वैष्णव वैष्णवसे मन्त्रग्रहण करें। गृहस्थ कमी भी उदासीन और संन्यासी आदिसे मन्त्र न ले। आजकल कोई कोई संन्यासीसे भी मन्त्र लेते हैं। परंतु इसमें विशेषता यह है, कि आजकल शाक्त, वैष्णवसे वैष्णव और शैवसे शैव ने लोगों ही मन्त्र ले सकते हैं।

"उदाशिनोऽप्युदाशिनो वनस्थे वनयासिनः ।

यतीन्द्र यतिः प्रारणा गृहस्थानां गुरुहो ॥

वैष्णवे वैष्णवा ब्राह्मः शैवे शैवराया पुनः ।

नातिके विकर्ष विवादोऽभ्यासो न संशयः ॥

गुरुषु च दग्धेषु कृत्वापरि—

सर्वेनाम्नामरिणा च गृहस्थां गुरुकृते ।

कश्चतुष्पातान् विमो वसन्तु कर्त्तव्यमनः ।

देवे शिष्टैरिच्छे च गृहस्थो देवैश्चो भवेत् ॥" (सन्तकार)

कल्याणार्थमें लिखा है, कि स्त्रीपुत्रवान्, दयालु और स्वप्रिय, धनवान् ब्राह्मणको शुभ बना कर उन्हीमें मंत्र लेता चाहिये।

पितादिसे मन्त्रग्रहण करना, निषेध है। योगिनो-दन्त्रं लिखा है,—पिता, मातामह, कनिष्ठ सहोदर और शत्रुपक्षाधित धर्मिकियोंसे मन्त्र न लेना चाहिये। क्योंकि गणेशविमर्षिणीतन्त्रके वचनानुसार यति, पिता, वनवासो और उदासीनके निकट मन्त्रग्रहण करनेसे उनका अनिष्ट होता है। कद्रयामलमें लिखा है,—पति अपने भायोंसे, पिता पुत्र और कन्याको तथा भ्राता सहोदरको मन्त्र न दे। पति यदि सिद्धमन्त्र हीं तभी धे पत्नीको मन्त्र दे सकते हैं। पितादिसे मन्त्र लेना भी निषेध किया गया है उसे सिद्धमन्त्र भिन्न अन्य स्थलमें समझना चाहिये। पितादि यदि सिद्धमन्त्र हीं, तो उनसे मन्त्र लेनेमें कोई दोष नहीं। यति प्रभृतिके निकट यदि सिद्धमन्त्र मिले, तो उनसे भी मन्त्रग्रहण कर सकते हैं।

“विदुमन्त्रं न यदोषात् तथा मातामहस्य च।

सोदरस्य कनिष्ठस्य वैरियन्नाधितस्य च ॥

तथाच गणेश विमर्षिणो—

यत्रोदारा विदुर्दोषा दीक्षा च वनवासिनः।

विविक्ताभंगिया दोगा न या कल्याणदायिना ॥

द्रव्यामले—

न पत्नीं दोषयेद्भर्ता न पिता न दोषयेत् पुत्राम्।

न पुत्रम् तथा भ्राता भ्रातरं न च दोषयेत् ॥

मिद्धमन्त्रो यदि पतिमदा पत्नीं च दोषयेत्।

इत्यादि निषेधवचनोभ्यां मन्त्रं न दद्यात्

इदन्तु सिद्धं तदीश्वरं, मिद्धमन्त्रं न कुन्तव्यं वचनात्।

कोरपि दोषानया अहितज्ञामले—

“तोर्थाचारयुतो मन्थो ज्ञानवान् सुमन्वदितः।

मिद्धविधा यतिः पत्न्यात् पुत्रो स्त्रोत्प्रेरितोऽपि च ॥

यदि भाग्यरक्षणेन मिद्धविधा तमेत् प्रिये।

तदेव तन्तु दोषोत् स्वयत्वा सुनिश्चयस्य ॥”

(कन्यार )

मिद्धमन्त्रके अनिष्टिक मन्त्र यदि पितादिसे लिया जाय, तो प्रायश्चित्त करके फिरसे मन्त्र ग्रहण करना होगा। मायादिमन्त्रका विधान दण्ड दण्डार मायाको जप बनानाया गया है।

मत्स्यमूकमें लिखा है,—पिताका मन्त्र निषेध है अर्थात् उनमें मन्त्र ले कर जपादि करनेसे कोई फल नहीं होता। फिर इसमें विशेषता यह है, कि शीघ्र और ज्ञान मन्त्र-विषयमें कोई दाव नहीं। यह कौलदोषापर है अर्थात् कौलाचारार्थित दोषांशमें पितासे भी मन्त्र लिया जा सकता है। गान्ध, कागो भादि महातोषांशमें तथा चन्द्र-सूर्यग्रहणकालमें मन्त्र लेनेमें कोई दोषविचार नहीं है।

“नानावर्ण्य विदुमन्त्रं गोपे गणके न कृन्तव्यं ॥”

इति वचनं कौलिकमन्त्रदीक्षापरा, जप हेतुः योगिनो तन्त्रे,—जपत्पादादिषिद्यामिच्छत्येष दोक्षानिषिद्यात्, यथा ज्ञातवने तारादिषिद्यायां मत्स्यमूक्ये तथा प्रतिपादनात्, तथाच निजकुलतिलकाय ज्येष्ठ पुत्राय दद्यादित्यादि ॥”

“मन्त्राविमुक्त दानव्याः श्रेष्ठपुत्राय भीतये ॥

महातोषे उरगमे तस्मिन् भेष न दोषः ॥” (कन्यार )

स्वपुत्रस्य और स्त्रीपुत्र मन्त्रका फिरसे स्वीकार कर लेनेमें ही यह शुद्ध होता है। साधुको, सदाचार-तत्परा, सुमन्त्रता, त्रितेन्द्रिया, सर्वमन्त्रार्थवद्वेषा और सुगोला, ऐसो गुणयुक्त स्त्रीसे भी मन्त्र लिया जा सकता है। किन्तु विषया स्त्रीमें धे सब गुण रहने पर भी उनसे कदापि मन्त्र ग्रहण न करे। स्त्री-गुणके निकट मन्त्र लेनेमें शुभकाल होना ही, विशेषतः मातासे यदि मन्त्र लिया जाय, तो उनसे भद्रगुण फल प्राप्त होता है। जहाँ पर स्त्रीगुण हीं निरिच्छ बनलाया गया है, यहाँ उसका अर्थ विषया समझना होगा। क्योंकि उक्त गुणयुक्त स्त्रीसे मन्त्र लेना स्वर्गो प्राप्तिमें स्वीकार किया है।

“मन्त्रावृत्तौ विधा दत्तं संस्कारोपैव सुकर्मिणः।

याभ्यो येन भद्राचरा सुकर्मताः त्रितेन्द्रियाः।

सर्वमन्त्रार्थतराया सुगोला पूजने तथा ॥

सुदोषया भवेत् या हि विद्या हरिभक्तिः।

विना दोषा सुगोला भेदता मातृपुत्रपुत्राः स्यात् ॥

इत्युक्तं स्त्रीरं विषयार्थं ॥” (कन्यार )

शुद्धमे कर्मपूयक मन्त्र लेना चाहिये, नहीं लेनेमें उनको मन्त्रो जपपूजादि निष्फल होनी है। अतएव सफल पदके दोषग्रहण करे। इसमें मनुष्यको दिव्यज्ञान होता है तथा उसके समीपय जाते रहते हैं। मन्त्रवर्णादि स्वामी आधर्मिको दोषाको भावस्थवना है। विना

द्वैतवाक्ये जगत्का कोई भी कार्य होने नहीं पाता । जप, तपस्या आदि सभी कार्य श्रेष्ठा पर निर्भर करना है । मन्त्रश्लोकादि हो कर चाहे किसी भी आश्रममें क्यों न रहे उसका कार्य शय्यप ही मित्र होगा । अदोषित व्यक्ति मरनेके बाद घोर नरकमें जाता है । मन्त्रश्लोकादिहोत व्यक्तिका पितामहत्व दूर नहीं होता ।

यदि कोई शुरुमें मन्त्र न ले कर पुस्तकादि देण कर मन्त्र ले, तो उसे नरक होता है तथा सहस्र मन्त्रपत्रमें भी उसकी मुक्ति नहीं होती । अनप्य सद्गुरुके निकट मन्त्रप्रदण करना ही अथय कर्त्तव्य है । पहले ही कहा जा चुका है, कि ब्राह्मण ब्राह्मणादि चारों वर्णोंको मन्त्र दे सकते हैं । द्वैतातिको मन्त्र देनेमें ब्राह्मण सभी पापोंमें विमुक्त होते हैं ।

“यं ददाति द्विजाभिष्या महात्मन्वं महेश्वरि ।

ग मुक्तः सर्वपापेषु मोक्षेन ब्रह्मसन्निधौ ॥” (उदयामल)

श्रुतिवादि तान वर्णोंको यदि उपयुक्त ब्राह्मण-गुरु न मिले, तो वे पूर्वीक गुणसम्पन्न श्रुतिव-गुरुसे मन्त्र ले सकते हैं । वैश्य और शूद्र वैश्य सद्गुरुसे मन्त्रप्रदण कर सकते हैं । शूद्र यदि शूद्रको मन्त्र दे, तो दोनोंको ही नरक होता है । यह नियम कलिकाल भिन्न अन्य युगके लिये है । कलिमें एकमात्र ब्राह्मण ही चारों वर्णोंके मन्त्रदाता है ; ब्राह्मण भिन्न और किसीको भी मन्त्र देनेका अधिकार नहीं है ।

“ननुयां वर्णानां मन्त्रदाने ब्राह्मण एवाधिकारी ।

भावनुज्ञाप्येन श्रुतिवैशेष्येनैव गुरुत्वं, तथाच

गुणेशरीतन्त्रे प्रथमवदत्ते—

ब्राह्मणाः सर्वकामजः सुधीन् सर्वेष्वनुमदन् ।

तद्भागे द्विजभेदः शान्तात्मा भगवन्मयः ॥

अपविदुःशूद्रजालानां कृषिनेऽनुग्रहे क्षमः ।

श्रुतिवद्वैतानि च गुणैर्भावादीरशा यदि ।

वैश्यः स्वार्त्तनं करश्च शूद्रे नित्यमनुग्रहः ॥

शूद्रः शूद्रमुखात्, भुत्वा विना वा मन्त्रमुत्तमम् ।

एहीरमा नरकं याति दुःखं प्राप्नोति म्लिखताः ॥”

कुत्सार्णवके मतानुसार ब्राह्मण, श्रुतिव, वैश्य और शूद्रके भेदमें मन्त्र सां चार प्रकारका है । गुरु मन्त्र देनेके समय अनुज्ञोपक्रममें वे, कर्मा भी प्रतिन्दोपक्रममें न

दे ; मायावीज मन्त्र ब्राह्मणजातिका, धर्मवीज श्रुतिव-का, कामवीज वैश्यका और पागुभववीज शूद्रजातिका है । यह अनुवीजस्य जो मन्त्र है उसका नाम पीतस्वरूप है । गुरु मन्त्र देनेके समय ब्राह्मण ही अनुवीजयुक्त, श्रुतिव-को तिरौत, वैश्यको द्विवीज और शूद्रको एक वीजयुक्त मन्त्र प्रदान करे ।

“मथ मन्वाणां ब्राह्मण श्रुतिवादिभेदः कुत्सार्णवै-

ब्राह्मणाः कृषिषो वैश्यः शूद्रो भगति वै मनुः ।

भनुज्जनेन वैश्यः स्वयम् प्रतिज्ञोमेन न कश्चिन् ।

भावावीजं ब्राह्मणाः स्वात् भीवीजं कृषिषः स्मृत्म् ।

कामवीजं भेदश्या वाग्भूतं शूद्र इतिहम् ॥

ननुवीजविरचितो मन्त्रः पीतस्वरूपतयाः ।

ननुवीजं ब्राह्मणानां कृषिवाणां त्रिवीजकम् ।

वीजद्वयन्तु वैश्यानां शूद्राणांकेवीजकम् ॥”

शूद्रके लिये निरिह मन्त्र—ब्राह्मण शूद्रोंको कर्मों भी प्रणय या प्रणयवहित मन्त्रप्रदान न करे । यदि कोई ब्राह्मण शूद्रको आत्ममन्त्र, गुरुमन्त्र, अज्ञपामन्त्र ( हंस ) स्वाहा और स्वाहाप्रणययुक्त आदि मन्त्रप्रदान करे तो मन्त्रदाता और मन्त्रगृहीता दोनों ही नरकको जाते हैं । खो अथवा शूद्रको साक्षितो, प्रणय और लक्ष्मो योज ( धां )-का उच्चारण नहीं करना चाहिये, करनेसे नरकको गति होती है । गोपाल, जिय, दुर्गा, मूर्ध और गणेश इन्हींके मन्त्रोंके शूद्र अधिकारी हैं । अन्य देवताका मन्त्रप्रदण करनेसे यह पापमागो होता है ।

“प्रणयार्थं न दातव्यं मन्त्रं शूद्राय सर्वथा ।

आत्ममन्त्रं गुणैर्मन्त्रं मन्त्रज्ञानमन्त्रम् ॥

स्वाहाप्रणययुक्तं शूद्रे मन्त्रं ददश्चितः ।

शूद्रो निरयमात्रोनि ब्राह्मणो यागवधोगतम् ॥

भुक्तिवधि, सावित्री प्रणयं यत्तुत्तमं श्रीशूद्रो यदि ज्ञानीवात् ग गुणैःशुभं मन्त्रात् ।

गोवाहस्य मनुर्देवा महेश्वर्य न वादेने ।

हन्वन्नावात्वादि एतेष्व एतेष्वस्य मनुदाया ।

एषो दीक्षाधिकारी स्वाहाप्रणय पापभाग भवेत् ॥”

सर्वाङ्गी अनुकूल मन्त्र ग्रहण करना उचित है। तारा-चक्र और राशिचक्र आदि चक्रविचारमें जो मन्त्र अनु-कृत होगा वही मन्त्र ग्रहण करना चाहिये।

सिद्धसारस्वत तन्त्रके मतानुसार सूर्य, सूर्य और ब्राह्मण, प्रासादवीज (हौं) प्रणय और कृतमन्त्र इनके सिद्धादि शोधनकी आवश्यकता नहीं।

ताराचक्र, १० राशिचक्र, और नामचक्र इन सब चक्रोंके विचारसे सगुण होने पर भी मन्त्रग्रहण किया जा सकता है। अन्य चक्रविचारकी आवश्यकता नहीं रहती। इसका तात्पर्य यह, कि ताराचक्र, राशिचक्र और नामचक्रका विचार अवश्य कर्त्तव्य है। अन्य ऋषिधनी आदि चक्र द्वारा विचार नहीं करना चाहिये, सो नहीं। क्योंकि इससे दूसरी जगह जो लिखा है, कि धनीको मन्त्र नहीं लेना चाहिये, इत्यादि पचन निष्फल होते हैं। इसमें ऐसी मीमांसा की जा सकती है, कि पूर्वोक्त पचन ताराचक्रादिके प्रशंसाचक्र हैं। मन्त्रग्रहणमें सभी चक्रों द्वारा मन्त्रका उद्धार करके मन्त्र लेना होगा।

सप्रलम्ब, स्त्रीशुक्रमृत्त, मालामन्त्र, त्राक्षरी मन्त्र और वेदिक मन्त्र ये सब मन्त्र लेनेमें भी सिद्धादि शोधनकी आवश्यकता नहीं है। बीस अक्षरसे अधिकका जो मन्त्र रहता है उसे मालामन्त्र कहते हैं। इस मालामन्त्रमें, नपुंसक मन्त्रमें, मूयके अष्टाक्षरी और वज्राक्षरी तथा सब प्रकारके वैदिक मन्त्रोंमें सिद्धादि शोधन नहीं करना होगा। जिस मन्त्रके अन्तमें 'हुं' फट्' रहता है उसे पुंमन्त्र, जिसके अन्तमें स्वाहा है उसे स्त्रीमन्त्र और जिस मन्त्रके बाद नम रहता है उसे नपुंसक मन्त्र कहते हैं।

"ताराचक्रं राशिचक्रं नामचक्रं तथैव च ।

अथ चैव ऋषुषो मन्त्रो नामचक्रं विनियतयेत् ॥"

इति तु मन्त्रतन्त्रा बोधनम्—

तथाच 'धर्ममन्त्र' न दृष्टव्यं च मन्त्रं तथैव च ।

इत्यादि तथा दर्शनार्थं तन्त्रं विचारयन् कारयन्तस्तान् मन्त्रान् तन्त्रिभ्यः ।

मन्त्रधनी सिद्धादिसे मालामन्त्रे च कर्त्तव्ये ।

वेदियेषु च सर्वेषु सिद्धादीषु शोधनम् ॥

इत्येवमिदं तन्त्रं तथा यन्त्रादिसर्वं च ।

एकस्मिन्निर्दिशत इत्येवमिदं तन्त्रं तन्त्रिभ्यः ॥" इत्यादि

काली, तारा, महादुर्गा, स्वर्णिता, छिन्नमस्ता, याग-वादिनी, अन्नपूर्णा, प्रत्यङ्गिरा, कामाद्यावासिनी, वाला, मातङ्गी, जीलवासिनी तथा काली, तारा, घोड़गी, भुव-नेश्वरी, छिन्नमस्ता, धूम्रावती, बगला, मातङ्गी और कमला ये द्वा महाविद्या हैं। इन विद्याका मन्त्र लेनेमें सिद्धादि शोधन, नक्षत्रादिविचार, कालादि शुद्धि और धर्मितादिकी विचार नहीं करना होता। ये सब देवता सिद्धविद्या हैं इसीसे किसी विचारकी जरूरत नहीं होती।

तन्त्रके पूर्वोक्त बचनसे जाना जाता है, कि काली तारादि महाविद्याका मन्त्र लेनेमें कोई विचार नहीं करना होगा। पर यह बात नहीं है, केवल उक्त बचनोंकी उद्धारदान दिया गया है। सभी प्रकारके मन्त्रग्रहण करनेमें विचारकी आवश्यकता है। क्योंकि वही पर लिखा है, कि स्वप्नमें भी वैचिन्मन्त्र लाभ होता है तथा उससे भी अनिष्ट होनेकी सम्भावना है। अतएव भक्त्यी तरह सोच विचार कर मन्त्र लेना चाहिये।

"काली तारा महादुर्गा स्वर्णिता छिन्नमस्ता ।

यागवादिनी अन्नपूर्णा तथा प्रत्यङ्गिरा पुनः ॥

कामाद्यावासिनी बाजा मानद्गी रत्नवायिनी ।

इत्याद्याः सर्वज्ञा देव्यः कर्म पूर्णचक्रप्रदा ।

सिद्धमन्त्रतया ताव युगमेवार्थिभ्यः ॥

काली तारा महाविद्या घोड़गी भुवनेश्वरी ।

भैरवी छिन्नमस्ता च विद्या धूम्रावती तथा ।

बगला छिन्नमस्ता च मानद्गी कमलादिभ्यः ॥

एता द्वा महाविद्याः सिद्धविद्याः कर्मविद्याः ।

ताव सिद्धादेरप्राप्तिं नष्टकरादिविचारया ॥

ब्रह्मरिगेषु च मन्त्रिण्ये नरिगेषु च सिद्धिदयम् ॥

सिद्धविद्या तथा ताव युगमेवार्थिभ्यः ।

नरिगेषु चिन्मन्त्रादीन् दुःखशान्तं कदाचन ॥"

अतएव इन सब बचनों द्वारा यह स्पष्ट हुआ, कि सिद्धविद्या या महाविद्या, कोई भी मन्त्र क्यों न हो, उसका विचार करके ग्रहण करना चाहिये। पहले कुला-कुल पचनका विचार करना होगा।

कुलाकुल चक्र ।

वायु,	अग्नि,	भू,	जल,	आकाश,
अ वा	इ ई	उ ऊ	आ आर	लृ लृ
ए	ऐ	ओ	धी	अ
क	ख	ग	घ	ङ
च	छ	ज	झ	ञ
ट	ठ	ड	ढ	ण
त	थ	द	ध	न
प	फ	ब	भ	म
य	र	ल	व	श
ष	क्ष	ळ	स	ह

वायु, अग्नि, पृथिवी, जल और आकाश इन पञ्च-भूतमय पंचास वर्णोंको क्रमशः रग कर कुलाकुलका निर्णय करना होगा । मन्त्रगृहीताके नामका धादि अक्षर और जो मन्त्र लिया जायगा उसका भी धादि अक्षर, ये दोनों अक्षर यदि एक भूत वा एक देवत हो, तो उस उस मन्त्रको सङ्कुल अन्वया अकुल जानना चाहिये । सङ्कुल मन्त्रग्रहण करना हो शास्त्रसङ्गत है ।

इस कुलाकुल विचारकी सुविधाके लिये एक चक्र अद्विष्ट किया गया है । यह चक्र देखनेसे मन्त्र सहजमें स्थिर किया जायगा । चक्र पांच कोष्ठोंमें बँटा हुआ है । उन सब कोष्ठोंके ऊपरमें वायु, अग्नि, भू, जल और आकाश ये पांच नाम लिखे हुए हैं । नीचे एक कोष्ठोंमें जो जो वर्ण हैं वे एक भूत वा देवत हैं । नामा-पक्षर, मन्त्रापक्षर एक कोष्ठोंमें होनेसे मन्त्रग्रहणमें शुभ है और यदि सापक्ष नामादि वर्ण तथा मन्त्रादि वर्ण एक भूत वा एक देवत न हो, तो उक्त दोनों वर्णोंको परस्पर मिलता रहने पर भी मन्त्रग्रहण लिया जा सकता है । नामादि वर्णोंके साथ क्रिस वर्णोंकी मिलता या अन्तुता है, यह हम तरहसे जाना जाता है । पाठनवर्णों भीमवर्णोंका और मादल वर्ण आग्नेय वर्णोंका मित तथा मादन्वर्णों पार्थिव वर्णोंका और भ्राम्नेय वर्णों पादणवर्णों एवं पार्थिव वर्णोंका अनु है । आकाश सभी वर्णोंका मित है । इस प्रकार वर्णोंकी अनुमितता विचार करके मित मन्त्र ग्रहण करे, अनुमन्त्र नहीं । कुलाकुल चक्रका विचार करनेके बाद राजिचक्र द्वारा विचार करना होता है ।

राजिचक्र ।

मिथुन अ ल क	शुभ उ ऊ श	मेष अ वा इ ई	मीन पर ल व
	ककर ए ऐ	राजि चक्र	म म म म म म
सिंह औ औ	म म म म म म	म म म म म म	म म म म म म

इस प्रकार राजिचक्र स्थिर करके पीछे विचार करना होगा । अपनी जन्मराशिसे मन्त्रराशि वर्णान् जिस राशिमें मन्त्रका भादियर्ण देखा जायगा, उस राशि तक गणना करनेसे यदि यह मन्त्रराशिसे छटा, आठवां या बारहवां हो, तो मन्त्रग्रहण नहीं करना चाहिये । यदि जन्मराशि मालूम न रहे, तो नामके धादि अक्षर सम्बन्धीय राशि ले कर गणना करे । इस गणनामें जो छटा, आठवां और नयां राशिस्थित गणना परित्याग करना होता है । पहला, पांचवां और नयां राशिगत मन्त्र मितके समान हितकारी है । दूसरा, छटा और दशवां राशिस्थित मन्त्रसिद्धि । तीसरा, बारहवां और सप्तवां मन्त्र पुष्टिकर । बारहवां, आठवां और चौथा मन्त्र घातक है । इसमें विरोधता यह है, कि विष्णु मन्त्रवियर्णमें चौथा मन्त्र घातक है । द्वादश राशि ज्ञान, धन, शान्ति, बन्धु, पुत्र, शत्रु, कलत्र, मृत्यु, धर्म, कर्म, आय और ध्यय इन बारह राजियोंकी बारह संज्ञा है । जन्मराशिगत मन्त्र देनेसे मन्त्रकी सिद्धि, धनस्थानस्थित मन्त्रसे धन-ज्ञान, सान्त्वस्थानमें धानाकी उन्नति, बन्धुमित्रता, पुत्र-स्थानमें पुत्रज्ञान, शत्रुस्थानमें शत्रुवृत्ति, कलत्र स्थानमें सामान्य फल, मृत्युस्थानमें मृत्यु, धर्मस्थानमें कार्य-सिद्धि, आयस्थानमें धनसम्पत्ति और ध्ययस्थानमें

सञ्चित धन ध्यय होता है। राशिचक्रमें शुद्धाशुद्धिका विचार करके मन्त्रग्रहण करे।

अनन्तर नक्षत्रचक्र स्थिर करके मन्त्रविचार करना होता है। नक्षत्रचक्रकी गणना सहजमें बोधगम्य नहीं होती, इसलिये नीचे एक चक्र दिया गया है। यह चक्र देखनेमें ही मन्त्र सहजमें स्थिर कर सकेंगे। चक्र मन्त्राईस घटोंमें विभक्त है। इसके एकमें ले कर मन्त्राईस घटों में अग्निनी आदि सत्ताईस नक्षत्रों और बचनोंके अनुसार जिस जिस घरका जो जो घण और गण लिखा है उसीसे मन्त्र स्थिर करना होगा।

नक्षत्रानुसार गण स्थिर करके मन्त्रका विचार करे।

नक्षत्रचक्र।

अग्निनी अ आ देव	भरणो इ मानुष	एतिका ई उ ऊ राक्षस	रोहिणी भृशुल्ल नर	मृगशिरा ए देव	आर्द्रां ऐ नर	पुनर्वसु ओ औ देव	पुष्या क देव	मरुतेया ग ग राक्षस
मया घ ङ राक्षस	पूर्वाफल्गुनी घ नर	उत्तरफल्गुनी छ ज नर	हस्ता झ झ देव	चित्रा ट ठ राक्षस	स्वाति ड देव	विजाया ड ण राक्षस	अनुराधा त थ द् देव	ज्येष्ठा प राक्षस
मूला न प फ राक्षस	पूर्वाषाढा ब नर	उत्तराषाढा भ नर	श्रवणा म देव	घनिष्ठा य र राक्षस	जतभिषा ल राक्षस	पूर्वाभाद्रपद य ज नर	उत्तरभाद्रपद प म ह नर	श्वेती ल श मं देव

जन्म, सम्पत्, विषय, श्रेय, प्रत्यदि, साधक, घण, मित्र और परममित्र इस प्रकार जन्म नक्षत्रमें ले कर मन्त्र मक्षय तक पुनः पुनः गणना करे। यदि जन्म नक्षत्रसे जन्म नक्षत्र तृतीय, पञ्चम या सप्तम हो, तो उन्म मन्त्रका परिवर्तन करे। छटा, आठवां, दसरा, तथा अथवा चौथा मन्त्र शुभ तथा अन्य मन्त्र अशुभ होता है। इस मन्त्रकी भयने अन्तमक्षयसे गणना करनी होगी। जिसका जन्मनक्षत्र मालूम न रहे उसका सनामायसर सम्बन्धि नक्षत्र ले कर गणना करे।

इस नक्षत्रके अनुसार मन्त्र स्थिर हो जाने पर मन्त्र, मन्त्र और अग्निपति चक्रमें मन्त्रका विचार करे। अक्षय, अक्षय और अग्निपति चक्रका विचार उन्हीं मन्त्रोंमें देवे।

स्वजातिमें परम प्रीति, अन्य जातिमें मध्यम प्रीति, राक्षस और मनुष्यमें विवाह और देवगणमें शत्रुता जन्मनी होगी। जन्म नक्षत्र और मन्त्रका भादि अक्षर जिस घरमें पड़ेगा उस घरका मक्षय ले कर गणना करनी होगी। यदि मन्त्र और मन्त्र लेनेवालेका एक गण हो, तो यह मन्त्र शुभ माना गया है। फिर जिसका मरण हो यह देवगण मन्त्र ग्रहण कर सकता है। मनुष्यगण और राक्षसगणमें शत्रुता तथा राक्षसगण और देवगणमें शत्रुता होती है, इसलिये यैसा मन्त्रग्रहण नहीं करना चाहिये।

शुक्रकी चाहिये, कि ये अशुभे तरह गोच विचार कर इन सब चक्रोंमें मन्त्र उद्धार कर जियापको प्रदान करे।

मन्त्रका कालनिर्णय।—यैव माममें मन्त्र लेनेमें सब प्रकारके पुनर्घर्षकी निषिद्धि, विजायमें रत्नलाभ, ज्येष्ठमें मरण, आषाढमें वस्तुनाश, धारणमें शौर्षानु, भाद्रमें वंशनाश, आश्विनमें रत्नलाभ, कार्तिक और मघश्रावणमें मन्त्रनिषिद्धि, पीठमें शत्रुपूजि और पीठ, माघमें मेघाशुद्धि और फाल्गुनमें मन्त्र लेनेमें सब प्रकारके मनोरथ पूर्ण होने हैं।

इस प्रकार माघके शुभाशुभका विचार कर मन्त्रग्रहण करे। हिन्दु मन्त्र लेनेमें यदि विहित मान्य मन्त्रग्रहण हो, तो उन्म माममें मन्त्र न ले। क्योंकि मन्त्रग्रहणमें मन्त्र



कार्ये मिश्रित्वा घनपात्रे गये है। शीतमासमें जो होखा कही गई, यह गोपाल-विषयमें जानना चाहिये। कारण, दूसरे घनमें लिखा है, कि चैत्रमासमें मन्त्र लेनेसे दुःख-भोग और मरण होता है। अतएव चैत्रमासमें गोपाल मन्त्र ही लिखा जा सकता है। आषाढमासमें मन्त्र लेनेसे यन्तुनाश होता है, ऐसा जो लिखा है, यह सभी देवताके पक्षमें नहीं, केवल धींधिया मन्त्र विषयमें जानना चाहिये।

मन्त्रके सम्बन्धमें जो मामला विषय कहा गया वह सिर्फ सौरमास सम्बन्धे। कारण, मन्त्रग्रहणमें चाण्डमासकी कोई आवश्यकता नहीं। सौरमास ही प्रगस्त है।

मन्त्रग्रहणमें पार नियम।—रविवारको मन्त्र लेनेसे विज्ञान, सोमवारको प्राग्नि और मङ्गलवारको आयुक्षय होती है। अतएव इस दिन मन्त्रग्रहण न करे। बुधवारको सौन्दर्य लाभ, वृहस्पतिवारको प्राणशक्ति, शुक्रवारको सौभाग्य और अग्निवारको यज्ञकी दानि होती है। अतः रवि, सोम, बुध, वृहस्पति और शुक्र मन्त्र लेनेका प्रगस्त वार है। केवल अग्नि और मङ्गलवार प्रगस्त नहीं है। इन दो दिनोंमें मन्त्र नहीं लेना चाहिये।

मन्त्रग्रहणमें तिथि-नियम।—प्रतिपद् तिथिमें मन्त्र लेनेसे प्राण-नाश, द्वितीयामें प्राण-शक्ति, तृतीयामें शुचिता, चतुर्थीमें विज्ञान, पञ्चमीमें बुद्धि, षष्ठीमें ज्ञान-क्षय, सप्तमीमें सुखलाभ, अष्टमीमें बुद्धिनाश, नवमीमें शरीर-क्षय, दशमीमें राजसौभाग्य, एकादशीमें शुचिता, द्वादशीमें सर्वकार्यसिद्धि, तयोद्गीर्णमें दृष्टिनाश, चतुर्दशीमें तिर्यक्-योगिनिम्न जन्म, अमावस्यामें कार्यद्वानि और पूर्णिमामें घर्मबुद्धि होती है।

असाध्यवायु शर्षात् जिस जिस दिन वेदपाठ निषिद्ध बतलाया गया है उस दिन मन्त्रग्रहण न करे। संध्यागर्जन, भूमिकम्प और उल्कीपातका दिन असाध्यवायु है। अगवायु शर्षामें जो पक्षी और तयोद्गीर्णका विधान देखा जाता है यह पिण्ड विषयमें जानना चाहिये। पञ्चमी, सप्तमी, षष्ठी, द्वितीया, पूर्णिमा, अयोद्गीर्ण और दशमी तिथि मन्त्रग्रहणमें प्रगस्त है। षष्ठी तिथिमें जियमन्त्र लेनेमें कोई दोष नहीं।

मन्त्रग्रहणमें नक्षत्र।—अभिजित्वा नक्षत्रमें मन्त्र लेनेसे शुभ, भरणीमें मरण, वृश्चिकामें दुःख, रोहिणीमें ज्ञानलाभ, मृगशिरामें सुख, आर्द्रामें यन्तुनाश, पुनर्वसुमें घन, पुष्यामें शत्रुनाश, अश्लेषामें मृत्यु, मघामें दुःखमोचन, पूर्वाश्लेषामें सौन्दर्य, उत्तराश्लेषामें ज्ञान, हस्तामें घन, चित्रामें ज्ञानशक्ति, स्वातिमें यन्तुनाश, विज्यातामें दुःख, धनुष्यामें यन्तुशक्ति, श्रेष्ठामें मृतद्वानि, मूळामें कीर्ति-शक्ति, पूर्वाषाढा और उत्तराषाढामें यज्ञोक्ति, भ्रवणामें दुःख, धनिष्ठामें दारिद्र्य, ज्ञतमिषामें बुद्धिशक्ति, पूर्वभाद्र-पदमें सुख तथा रेवती नक्षत्रमें कीर्तिशक्ति होती है।

आर्द्रा और श्रवणा नक्षत्रका जो नियम किया गया है वह जियमन्त्र और यज्ञविषयमें। श्रेष्ठा और भरणी नक्षत्रको राममन्त्र विषयमें जानना चाहिये।

मन्त्रग्रहणमें योग-नियम।—शुभ, सिद्ध, आयुष्मान्, ध्रुव, प्रीति, सौभाग्य, बुद्धि और हर्षण ये सब योग मन्त्रग्रहणमें प्रगस्त हैं। ख्यायलोत्कर्षमें लिखा है,—प्रीति, आयुष्मान्, सौभाग्य, शोभन, धृति, शक्ति, ध्रुव, सुकर्मा, साधव, शुक्र, हर्षण, यशोयान्, जिय, प्रज्ञा और इन्द्र ये सोलह योग मन्त्रग्रहणमें विशेष प्रगस्त हैं।

मन्त्रग्रहणमें करण-निर्णय—बव, बाल्य, कील्य, तैलिल और यणित्त ये सब करणमन्त्र लेनेमें शुभ है।

मन्त्रग्रहणमें लग्न-निर्णय।—पूष, सिद्ध, कत्या, धनु और मीन इन सब लग्नोंमें तथा चन्द्र तारा बुद्धिमें मन्त्रग्रहण कर्त्तव्य है। पिण्डमन्त्र लेनेमें रिषल्लभ अर्थात् पूष, सिद्ध, वृश्चिक और कुम्भ ये सब लग्न प्रगस्त हैं। जियमन्त्र लेनेमें बल्लभ और अग्निमन्त्र लेनेमें द्वातरक लग्न शुभकर है। मन्त्र लेनेके समय तरक-सोन लग्नको अपेक्षा तीसरे, छठे और गारहणमें स्वानमें यदि पापग्रह तथा लग्न और शीघ्र, सातवें, दशवें, नवें और पांचवें स्थानमें शुभग्रह रहे, तो मन्त्र ले सकत है। मन्त्र लेनेमें यकोग्रह अतिदुष्कारी है।

मन्त्रग्रहणमें पक्ष-निर्णय।—शुक्लपक्षमें मन्त्र लेनेसे शुभ फल होता है। कृष्णपक्षको पञ्चमी तक मन्त्र लिखा जा सकता है। अगस्त्यसंहिताके मतमें मूळ और कृष्ण दोनों ही पक्ष मन्त्रग्रहणमें प्रगस्त है। काशीधरमें लिखा है,—मन्त्रग्रहणको व्यक्तिको शुकृपक्षमें और मीशकाशीकी कृष्णपक्षमें मन्त्र लेना चाहिये।

निषिद्ध मासमें भी तिथिविरोधमें मन्त्रप्रदण किया जा सकता है। रक्षापक्षीमें लिया है,—भाद्रमासकी पक्षी, आश्विनमासकी कृष्ण चतुर्दशी, कार्तिकी शुक्ल नवमी, वैशक्रकी कामचतुर्दशी (किसीके मतसे तयोद्गी), वैशाखकी अक्षयनवमीया, ज्येष्ठमासकी दशहरा, आषाढ़की शुक्लपञ्चमी और ध्रावणकी कृष्णपञ्चमी इन सब दिनोंमें नक्षत्रादि निन्दित होने पर भी मन्त्रप्रदण किया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त चैत्रकी शुक्ल तयोद्गी, वैशाखकी शुक्ल एकादशी, ज्येष्ठकी कृष्ण चतुर्दशी, आषाढ़की नागपञ्चमी, ध्रावणकी एकादशी, भाद्रकी अन्माष्टमी, आश्विनकी महाष्टमी, कार्तिककी शुक्ल नवमी, अग्रहायणकी शुक्ल पक्षी, पौषकी चतुर्दशी, माघकी शुक्ल एकादशी, फाल्गुनकी शुक्ल पक्षी ये सब तिथि मन्त्रप्रदणमें प्रशस्त हैं।

उत्तरायण और दक्षिणायनादि संक्रान्ति-दिनमें, चन्द्रसूर्यप्रदणमें, युगाद्या तिथि और मन्वन्तरा तिथिमें मन्त्रप्रदण प्रशस्त है। मन्त्रप्रदणमें सूर्यप्रदणके जैसा और कोई शुभकाल नहीं है। सूर्य और चन्द्र दोनों ही प्रदणकालमें मन्त्र लेना शुभ है।

कृष्णपक्षकी अष्टमी तिथिमें शुभ लग्णमें, पूर्वमाद्रपद नक्षत्रमें तथा मित्त-तारामें तारात्मन्त्र प्रदण करे। तारा-मन्त्रकी क्षीरामें अनुगाथा और रेततो नक्षत्र तथा अभिजन और कार्तिक मास प्रशस्त है।

शोभायारमें अमावस्या, मङ्गलवारमें चतुर्दशी, रवि-वारमें सप्तमीतिथि, पञ्चमिसे यह सौ पर्वके समान होता है। इस पर्वमें मन्त्र लेनेसे विशेष शुभ होता है।

यागलमें लिखा है—गङ्गादि पुण्यक्षेत्रमें, कुक्षेत्रमें, प्रयागमें, काशीक्षेत्रमें अथवा किसी पौठस्थानमें काला-काल शुद्धिका प्रयोजन नहीं। पतञ्जलि ग्रन्थ स्थानमें मन्त्र लेनेसे ही विमुक्त कालकी और अथर्व ध्यान शक्या होता।

विष्णुयामलमें लिखा है—देवोंके बोधनके महा-नवमी पर्वन्त जितनी तिथियां हैं, प्रत्येक तिथिमें मन्त्र-प्रदण किया जा सकता है। दुर्गादेवोंके बोधनमें, भगोकाष्ठमीमें, रामनवमीमें तथा शुद्ध जव कहे उम

समयमें मन्त्र लिया जा सकता है। (ममें कालाका लके विचारकी जरूरत नहीं।)

शुद्ध कृष्णपूर्वक निम्नको बुझा कर यदि मन्त्र देना चाहें, तो लग्नादि विचार करनेका कोई प्रयोजन नहीं। कारण, इस समय ममस्त याद, ममस्त तिथि तथा ममस्त नक्षत्र ही शुभप्रद है।

मन्त्रस्थाननिर्णय—मोगाद्या, शुद्धगृह, देवालय, कानन, पुण्यक्षेत्र, उद्यान, नदीतीर, भागलकी पृथके समीप, पर्वतार, पर्वतगुरा और गङ्गातट इन सब स्थानोंमें दोष-प्रदण करनेमें कोटिगुण फल होता है।

मन्त्रप्रदणमें निन्दित स्थान।—गया, भास्करक्षेत्र, विरजातीर्थ, चन्द्रपर्वत, चट्टामा, मातङ्गरेण तथा कन्या-गृह इन सब स्थानोंमें मन्त्रप्रदण निषिद्ध है।

यदि शुभ अस्तगत भयया पृक्षाप्रस्थामें रहे अथवा शुद्ध और रवि एक घरमें हों, तो मेघ, पृथिवी और सिद्ध-में मन्त्र लेनेमें कोई दोष नहीं।

मन्त्रप्रदणके पूर्वदिन शुद्ध निम्नको अपने घर पर बुझा कर पवित्र कुम्भजल पर बिठार्ये और निद्रामग्नमें उसकी निगा बांध दे। निम्न जपनकालमें उम मन्त्रका तीन बार पाठ कर श्रेयुद्धका पादपत्र ध्यान करने करने सो जाये।

निद्रामन्त्र—भो दिन दिशि शुभस्थाने स्थाना' मन्त्रान्तर—

'नवी जप विनोय विद्वान् मरागले ।  
रामाय विष्णुवार मन्त्राधिपते नमः ॥  
मन्त्रे कर्म मे तप्य यदि कर्षणं प्रोक्षते ॥  
द्विगुणित्ति स्थानाधिपते सर्व प्रसादाय नमः ॥

दूसरे दिन सर्वेरे शुद्ध निम्नमें स्वर्णका शुभाशुभ पूछे। निम्न समस्त सन्तनियकरण उग्ये कद् सुतार्ये। कन्या, छत्र, रथ, प्रद्वेष, अष्टादिका, पत्र, गर्द, हन्वी, पृथ, मानव, समुद्र, सूर्य, वृष, पर्वत, चोटक, पवित्र मान

६ 'पराज मन्त्रादेरे विरते नन्दरने ।  
नक्षत्रे च मन्त्रे य तथा कर्षणं प्रोक्षते ॥  
न सुदोषात् ततो दोषा सोर्वेरेरेरे कर्षणं ॥

भीरु मद्य ये साय स्वप्नमै देवनेसे मन्त्रकी सिद्धि होती है। (अथर्वण)

मन्त्रके आठ प्रकारके दोष हैं, यथा—अभक्ति, अशस्त्राग्नि, लुप्त, छिद्र, हस्य, क्षीर्ण, कथन और स्वप्नमें कथन।

(१) मन्त्रकी अशस्त्र सम्भन्धका नाम अभक्ति है। मन्त्र ही देवता स्वरूप है, ऐसा जान कर मन्त्र द्वारा उपासना करनेमें देवता प्रसन्न हो कर अभिव्यक्ति फल प्रदान करने हैं। यह मन्त्र केवल अक्षरोंकी समष्टि ही होगा जो सम्भन्ध है उनका मन्त्र सिद्ध नहीं होता, परन्तु उन्हें नरककी प्राप्ति होती है। दूसरे मन्त्रकी प्रशंसा करके अपने मन्त्रकी निष्फल सम्भन्धा भी अभक्ति है।

(२) अशस्त्राग्नि, शुद्ध या निष्कले भ्रमघनतः मन्त्रका यथावैयर्थ्य अथवा यथाधिपय। (३) लुप्तमन्त्रमें यथावका न्यूनत्व। (४) छिद्र मन्त्राश्रयण युक्तयथावका एकदेश न्यूनत्व। (५) हस्य, मन्त्रका क्षीर्णयथावधानमें हस्य शब्द-प्रयोग। (६) क्षीर्ण, मन्त्रका हस्यस्थानमें क्षीर्ण-प्रयोग। (७) कथन, दूसरेके निकट अपना मन्त्र-प्रकाश। (८) स्वप्नमें कथन, निद्राकालमें मन्त्र दूसरेके कहना। मन्त्रके यही आठ प्रकारके दोष हैं। (इत्यथर्वणोपनिषत्)

“अक्षरे ज्ञान्तिः शूरोः शिष्यस्य वा ज्ञान्तया मन्त्रेषु यथावैयर्थ्यं यथाधिपयः। लुप्तः, मन्त्रेषु यथाव्यूनत्वम्। छिद्रः, मन्त्रान्तर्गतयुक्तयथावका कदेशान्यूनत्वम्। हस्यः, क्षीर्ण-स्थाने हस्यप्रयोगः। यद्यप्येतदक्षीणोत्तराश्रयान्तर्भूत-स्थाने यथानुक्तं स्थानं, तथापि एतदक्षीणयोः पृथक्प्राप-दिनस्तस्य पश्यमान्स्थानान् अशस्त्राग्निस्त्रादितरविषया, कथनमन्त्रेषु स्वोपमन्त्रप्रकाश, स्वधर्मव्यति स्वधर्मे प्राज्ञत्वव्यतिरेकेण स्वोप मन्त्रस्य प्रहरणं तस्मिन् स्वोप मन्त्रप्रकाश इति यावत्” (इत्यथर्वणोपनिषत्)

मन्त्रके उक्त प्रकार दोषदुष्ट होनेमें उम्हका प्रायश्चित्त करना होगा। प्रायश्चित्त द्वारा यह मन्त्रशुभमय होता है, नहीं तो वह परम पित्रकी सम्भावना है। जिसमें मन्त्रमें इस प्रकारका दोष होने न पाये, शिष्य इसके विरोध गुणक रहे।

मन्त्रमें अभक्ति दोष होनेमें बहुत्रय, दोष और बहु-

काय क्लेश द्वारा उसे दूर करना होगा। इस प्रकार अभक्ति दूर होनेमें बाद यदि भक्तिका उद्भव हो, तो सिद्धि-प्राप्तमें अधिक विघ्न नहीं होगा।

‘बहु स्वप्न तथा होमात् कामक्षेपनादिरिक्तात्।

परि भक्तिर्भवेत् देवि तस्य सिद्धिरदूता ॥”

(इत्यथर्वणोपनिषत्)

मन्त्रमें अशस्त्राग्निका दोष होनेमें शुद्ध, शुद्धके अभावमें उनके पुन, पुनके अभावमें शुद्धलक्षणविधिपर किसी साधक द्वारा मन्त्रका दोष दृष्टा कर उसके दूसरी बार मन्त्रप्रदान करे।

“शुद्धया गन्तुमेव साधयेन परावने।

अग्रे वृषणं दिव्या पुनर्मन्त्रं प्रकाशेत् ॥”

(इत्यथर्वणोपनिषत्)

मन्त्रमें लुप्तदोष होनेमें शुद्ध, शुद्धके अभावमें शुद्धपुन या कोई साधक समाहित विद्यासे लुप्तयथावका निर्णय करके, निष्कले मन्त्र दे।

मन्त्रमें छिद्रदोष होनेमें शुद्ध आदि यह दोष दूर कर शिष्यको मन्त्रप्रदान करे तथा उसके प्रायश्चित्त स्वरूप त्याग बार जप करे। इत्यादि।

सभी प्रकारके दोषोंको शुद्ध विद्यारविद्यासे निराकरण करे। मन्त्रके द्वा प्रकारके संस्कार—

“अग्न जीवन् पश्चत् वाङ्मे बोधन् तथा।

अभाभिषेको शिम्भोत्तराश्रयान्तर्गतं पुन ॥

तथायं दोषं शुद्धिर्दोषो मन्त्रव्यतिरिक्त ॥” (अथर्वण)

जनन, ज्ञोपन, तापन, बोधन, अभिषेक, विमली-करण, आप्यायन, मर्षण, क्षीण और मुक्ति यही द्वा मंत्रके संस्कार हैं। संस्कार करनेके बाद ही मंत्र लेना उचित है।

निम्नोक्त प्रणालीके अनुसार मन्त्रके द्वा प्रकारके संस्कार करने होते हैं। फुंफुन, रक्तचन्दन मयया मन्त्र द्वारा सुवर्णादि पात्रमें मातृका यंत्र अङ्कित करना होगा। गोष्ठे जलमें लसे रक्तचन्दन और शिष्यमें लसे मन्त्र द्वारा मातृका यंत्र लिख कर मंत्रका संस्कार करना होगा। मातृका यंत्रके निचा अन्य मंत्रका संस्कार नहीं होता। निम्नोक्त प्रणालीके अनुसार मातृका यंत्र प्रस्तुत करना होता है। मातृकायंत्र देखो।

‘हेसो’ इस मंत्रकी वर्णिका करके दो दो स्वर द्वारा येजर अङ्कित करे। पीछे अष्ट दलपत्र अङ्कित करके उन पर अष्टयर्ग लिखे। पत्रके यहिभागमें चार द्वार और चतुष्कीण अङ्कित करके पत्रसे घेर दे। यंत्रके चारों ओर ‘वं’ और चारों कोणमें ‘ऌ’ लिखे तथा कक्षा-रादि म पर्यन्त पञ्चवर्ग, य सं घ पयत, ज सं ह पयत और ल क्ष इन्द्रे पूर्वं शीरसे आरम्भ करके ईजान कोण तक अष्टदल पर लिखना होगा। इसके बाद चतुरस्र और चतुर्द्वार बना कर चतुर्द्वार पर ‘वं’ और चतुष्कोणमें ‘ऌ’ लिख कर यंत्र अङ्कित करे।

मंत्रका जननसंस्कार ।—मातृका यंत्रसे जो मंत्र-घण्टिका उद्धार किया जाता है उसे जनन-संस्कार कहते हैं।

जीवन उद्गृह्यत घण्टिके पंक्तिक्रमसे प्रत्येक घण्टिके प्रणव द्वारा पुष्टि करे। पीछे एक एक घण्टिका मी सी बार जप करना होगा। इसीकी मंत्रका जीवन कहते हैं। किसी किसीने द्वा बार भी मन्त्र जपनेको ध्यवस्था की है।

ताड़न ।—मंत्रके सभी घण्टिको घृधक्, घृधक् लिख कर ‘वं’ इस मंत्रसे चन्द्रोदक द्वारा ताड़न करे, इस प्रकार सी बार करते रहे। किसी किसीके मतमें द्वा बार भी करनेसे काम चल सकता है।

बोधन ।—मंत्रके सभी घण्टिको घृधक्, घृधक् रूपमें लिख कर मंत्रघण्टिके जितने अङ्क हों, उतने ही रत्न कर-पीरपुष्प द्वारा ‘वं’ इस मंत्रसे मंत्रघण्टिका धनन करे। इसीका नाम मंत्रबोधन है।

अभिषेक ।—मंत्रके सभी घण्टिको लिख कर मंत्रा-क्षरसंघपर रत्न करपीर पुष्प द्वारा ‘वं’ इस मंत्रसे एक एक बार सभी घण्टिको अभिमंत्रित करे। पीछे मंत्रोक्त विधानसे अभ्यस्त पाह्य द्वारा मन्त्रकी घण्टि संख्याके अनुसार अभिमन्त्रण करना होता है।

विमलीकरण ।—सुषुम्नाके मूत्र और मध्यभागमें देनयोग्य मंत्रकी चिन्ता कर ज्योतिर्मय अर्धाङ्ग भी हों इस मन्त्रसे मन्त्रव्य दृश्य करे। इसीका नाम मंत्रका विमलीकरण है। भानव्य, मायिक और कार्मण यही तीन प्रकारके मन्त्र हैं। योग्य अर्धाङ्ग ज्ञानसे जो मन्त्र

उत्पन्न होता है उसे मायिक मन्त्र, पुण्यमें उत्पन्न मन्त्रकी कार्मण मन्त्र और ज्ञानों प्रकारके मन्त्रकी भानव्य मन्त्र कहते हैं। ये तीनों प्रकारके मन्त्र मन्त्रशास्त्रनिन्दित हैं। मन्त्रका विमलीकरण करनेसे यह त्रिविध मन्त्र नष्ट होता है।

वाग्यापन ।—स्वर्ण और पुञ्ज भगवा पुष्पोदक द्वारा पूर्वलिखित ज्योतिर्मय मन्त्रका वाग्यापन करे।

तर्पण ।—पूर्वोक्त ज्योतिर्मयमें देव मंत्रकी घण्टिसंख्याके अनुसार जल द्वारा तर्पण करना होगा। इसमें विशेष-पना यह है, कि जन्मिन्त विषयमें मधु द्वारा, विष्णु-मन्त्रमें कर्पूरमिश्रित जल द्वारा तथा जियमन्त्रमें दुग्ध द्वारा तर्पण करना होगा। अभिषेक भी इसी प्रणालीसे करना होता है।

दीपन ।—“ओं ह्रीं श्रीं” इस मंत्रसे मन्त्रका दीपि-साधन करना होगा।

शुद्धि ।—जिस मन्त्रका जप करे, उसे प्रकाश न करे। उसे हमेशा गोपन भावमें रखना होगा। इस प्रकार मन्त्रकी प्रणालीसे मन्त्रका संस्कार करके यदि मन्त्र लिया जाय, तो मन्त्रक अमोघ लाभ करता है।

(संस्कार)

मंत्रप्रहणके पूर्वदिन शुद्ध और शिष्ट होना ही संघन हो कर रहे। वादमें मन्त्र लेनेके दिन शुद्धीक्षा पद्धति-के अनुसार शिष्टकी मन्त्र दे।

घनपरशरामें एक एक देवताका उपासक हेतुनेमें अगता है अर्धाङ्ग कीं कालीमन्त्रका उपासक, कोई तान-मन्त्रका इत्यादि रूपमें विभिन्न घनमें मन्त्रविद्यादि विभिन्न देवताकी उपासनाप्रणाली प्रचलित है। मन्त्रका होता है, उस घनके किसी मन्त्रपुण्यमें उस देवताकी उपासनामें सिद्धि लाभ की थी। तभीमें उनके घन-पराभ्युत्थनमें उन देवताकी उपासना करते आ रहे हैं। एक एक देवताके बहुतमें जो मन्त्र हैं। शुद्ध पूर्वोक्त प्रणालीके अनुसार धीमन्त्रमेंमें कोई धीमन्त्र औ उन्के अनुकूल हो, शुद्ध कर शिष्टकी उपासना करे। किन्तु कुलदेवता ठीक रखना होगा। स्वान कर अन्य देवताका मन्त्र लेनेमें इस कारण कुलदेवताके प्रति भावस्थक है।

मन्त्र लेखमें शैव, वैष्णव, ज्ञानन आदिमें विभेद समझना उचित नहीं। इनमेंसे जिस किसी देवताका मन्त्र पढ़ीं न लेना ही, मन्त्रपूर्वक उनकी उपासना करनेसे ही मन्त्रसिद्धि होगी। काली तारादि नाममें विभेद तो देना जाता है, पर यथार्थमें यह विभेद नहीं है, एक ही। फेवल साधकोंके हितके लिये महात्मापति नामा रूप धारण किया है।

“प्राणानि तं वैश्वनाथ इत्या” इत्यादिगुण्डरम् ।  
 वैश्वानरमुनिं मानं जयमकान्तं मनोहरम् ॥  
 विष्णुकाशिकां केनिर् पञ्चमं दिग्भ्यम् ।  
 नामाख्या पश्चिमि पञ्चानामुगतस्य याम् ॥  
 मा देवी प्रवृत्तं तं तं तं तं तं तं तं तं तं तं ।  
 केवत्र प्रवृत्तं तं तं तं तं तं तं तं तं तं तं ॥  
 भित्तं मा कर्तित्वा यं दं दं दं दं दं दं ।  
 भावतो भित्तं पादकं पदकं पदकं पदकं पदकं ॥  
 एवैव सा महाविद्या नाममात्रं यद्यक् पृथक् ।  
 भित्तित्वा महात्माया पञ्चानामुनिव्या ॥  
 मन्त्रानुप्रदायैव नामान्यं द्यार सा ॥” इत्यादि ।

( इरास्वरीभित्तित्वा उपासन )

भयुरक व्यक्तिते कालीमन्त्र ग्रहण करके सिद्धिलाभ किया है, मैं भी अगर यह मन्त्र ग्रहण करना, तो सिद्धि-लाभ कर सकना था, ऐसा साधकोंकी कमी भी सोचना नहीं चाहिये। जिसके जो कुलदेवता हैं उनका मन्त्र लेना ही उसके पक्षमें शुभकर है।

साधक यदि देवदेवताः बहुतसे मन्त्रलाभ करे, तो उसे उन्हीं सब देवताओंकी पूजादि करनी होगी तथा उन सब देवताओंमें जिस देवताके प्रति उसका भय होगा उसीके मन्त्रादिका अप करना उचित है।

“अथ देवैर् प्रवृत्तं तं तं तं तं तं तं तं तं तं तं, यन्तत्पारवन्ते भयमन्त्रान्ते—

पटुमन्त्री वदा देव गन्तव्यं देवदेवताः ।  
 तस्य कस्य अप कुपन्तं पूजनादिभयैव य ॥  
 तदोत्तममस्कां निषं कुपन्तं प्रयत्नतः ।  
 अन्तर्दिक्त्तु, एवैव य एव प्रयापते ॥”

( इरास्वरीभित्तित्वा )

शुभ निष्पत्तौ मातुं दे कर यदि देवान्तर चले जाय,

या उनकी मूर्तयु हो जाय तथा निष्पत्ति यदि दुरदृष्टयन्तः धारणा मन्त्र भूत जाये, तो निष्पत्तौ उचित है कि यह पहले शुरुयुक्तो मुन्ना कर उन्हे सुल हाल कह सुनाये। पीछे शुरुयुक्त भी उस देवताके मन्त्र-मन्त्र उच्चारण करे। मन्त्र सुन कर यदि निष्पत्तौ यह मन्त्र स्मरण हो जाय, तो निष्पत्ति उसी मन्त्रकी उपासना करे। यदि शुरुयुक्त भी न रहे, तो उस धर्ममें जो कोई मन्त्राभिन्न रहे उसे उन्हींसे मन्त्रग्रहण करना चाहिये। यदि शुरु-यन्तमें कोई भी न रहे, तो मन्त्राभिन्न किसी प्राहणसे पूर्वोक्त नियमानुसार मन्त्र लेना उचित है। निष्पत्ति यदि कतिनाय दुरदृष्टयन्तः कुलदेवता भी भूल जाये, तो पूर्व नियमानुसार शुरुयुक्त से यह माहृम कर ले। यदि देवताका नाम किसी तरह याद न भाये तथा दूसरी तरहसे जाननेका उपाय भी न रहे तो, निष्पत्तौ जिस देवताके प्रति अधिक मन्त्रित रहेगी, वही देवता उसके कुलदेवता होगी।

अथ दुरदृष्टयन्तान् मन्त्रविष्णुर्त्तो मुरी देवान्तरगतै मृते या उपायमाह कान्तोपिलासन्तसे तृतीयपटले—

“दद्या मन्त्रं तथा शिवं मुहुरं ज्ञानं तं गता ।  
 शिवैर्मुं पुन्यावद्दु र्वा मन्त्रो विद्या य विष्णुता ।  
 कि कर्त्तव्यं तदा देवि शिवेभ्य नर माप्रमा ॥  
 भूत्वा चान्यतरस्यास्याताविषहस्य मुदादिने ।  
 पूर्वविद्या तथा भूत्वा कर्त्वा शिवोभ्यो मन्त्रं ॥”

तथा शुरुयुक्तादिना तद्गाथे मन्त्रज्ञाने प्राथेनाधि-  
 लेषु मन्त्रज्ञाने सच्चरितेषु समान्तर्य धयणादयत्नं स्मृति-  
 जायते, प्रचुरदुरदृष्टयन्तं तदाप्यानिश्चये तद्देवतामन्त्रा-  
 न्तरं मूर्त्तौष्यात् तदाप्यतिदुरदृष्टयन्तान् देवताविष्णुर्त्तो  
 यद्गुण देवेषु उच्यन्तेषु यदि स्मृतिजायते, तदा तन्मन्त्रं  
 मूर्त्तौष्यात् । तदापि देवतास्मृतेरभाये यत् प्रचुरतर-  
 भक्तिः मीथोपासना ।

“शान्ताःसमस्तैश्चैव य एव योयसी ।  
 गीतान्तया प्रवन्तेन विचारतय विषयः ॥”

( इरास्वरीभित्तित्वा )

पटले ही कहा जा चुका है, कि शुरु भयवा मुहुरं मन्त्रका ह्याय नहीं करना चाहिये। किन्तु मुह यदि महाशक्तको या देवनिष्क आदि देवीमें युक्त हो, तो

उनका त्याग कर अन्य मुझसे मंत्र ले सकने है। इसी प्रकार मंत्र भी यदि अनुचार्य, गन्धुगृहणन धाघया असंस्पृष्ट और अघैषभाषमें लिया जाय, तो उसका परि-  
त्याग किया जा सकता है, इसमें शंका नहीं।

“यहीतमन्त्रस्त्वकांशो मुक्तान्द्वयमनुवाः ।  
महावातकमुक्तो वा मुक्तचेदन निन्दकः ॥  
अनुचार्यश्च यो मन्त्रः सन्तुष्टो गतस्तथा ।  
अर्गद्वययहीतभाविधिदीक्षा पुराणतः ॥  
त्यक्त्या नर्गप्रवत्नेन पुनर्मात्रं यथाविधि ।  
इति यत्नानुर्वन्तर यहीवात् ॥” (इत्यन्वदभिति)

बिना कारणके मुक्त और मंत्रका त्याग करनेमें पूर्वोक्त फल होता है। मंत्रदाना मुक्तता मृत्यु पर निश्चकी तान दिन अर्थात् होता है।

“गृहीतो देवतामन्त्र साधिव मर्षया कृतम् ।  
यन्मांसस्य विरागस्तु रक्षेद्विद्याप्रदा यतः ॥”  
(इत्यन्वदभिति)

जिन्ह मुझसे मंत्रग्रहण कर जिससे मंत्रका साक्षात् हो, उसीके प्राप्त लक्ष्य रचना चाहीये।

मन्त्रसिद्धिका उपाय—  
“अन्वगनुष्ठिता मन्त्रो यदि भिज्जने जायते ।  
पुनस्तेनेव कर्त्तव्यं ततः सिद्धो भवेत्सुखम् ॥  
पुनरनुष्ठितो मन्त्रो यदि भिज्जने जायते ।  
पुनस्तेनेव कर्त्तव्यं ततः सिद्धो न भवेत्ततः ॥  
पुनः सऽनुष्ठेता मन्त्रो यदि भिज्जो न जायते ।  
उत्ताथास्तथ कर्त्तव्याः सतः सद्गुणभारिजाः ॥  
भ्रामण्य साधनं वरत कीदृशं शीघ्र भोजने ।  
दक्षान्तां कर्त्तव्यं दुर्वात् ततः सिद्धो भवेत्सुखम् ॥”  
इत्यादि । (सन्वकार)

यथाविधि पुरश्चरणादिका अनुष्ठान करनेमें मन्त्रकी सिद्धि होती है। मन्त्ररूपमें पुरश्चरणादिका अनुष्ठान करने पर भी यदि मंत्र सिद्ध न हो, तो पहले की तरह फिरसे पुरश्चरणादि करने होंगे। इस पर भी यदि मंत्रकी सिद्धि न हो, तो पुनः पुरश्चरणादि-  
का अनुष्ठान करना होगा। इस प्रकार शौन बाद यथोक्त विधानसे कार्यानुष्ठान करने पर भी यदि कोई फल न हो तो अनुष्ठेयत मन्त्र प्रकारका उपाय अवगमन करना उचित है। समण, रोषण, यज्ञोत्तरण, पीडन, शोषण

और दाहन से मन्त्र प्रकारके उपाय अवगमन करनेमें निश्चय ही मन्त्रकी सिद्धि होती है।

मंत्रका क्षमण—यं इत्य पाण्डुरीत द्वारा समस्त मंत्रयज्ञोक्त ग्रन्थन करे धर्मात् मंत्रके अन्तर्गत जिनके घणं है, उनमें पृथक् पृथक् करके एक पाण्डुरीत तथा एक नैतक्ष्ण संयमं लिखे। बाद में नितात्म, कर्पूर, कुंकुम, उमोर और चन्दन इन्हें एकत्र कर उसीसे संयमके ऊपर कुछ मंत्र लिख दाले। अनन्तर उस लिखित मंत्रकी दुग्ध, पूत, मधु और जलमें छोड़ दे। यथाविधान पूजा, जप और होम करे। इसीकी मंत्रका क्षमण कहते हैं। इस प्रकार अनुष्ठान करनेसे मन्त्र शीघ्र मंत्र सिद्ध होगा है। इस पर भी यदि सिद्ध न हो, तो मंत्रका रोषण करे। मंत्रका रोषण— ये इत योज द्वारा मन्त्रको पुटिन करके यथासाध्य जप करे। यदि रोषणोत्तरसे भी मन्त्रका सिद्धि न हो, तो मन्त्रका यज्ञोत्तरण करना होगा। मन्त्रका यज्ञोत्तरण— अन्वयक, रघुचन्दन, पृष्ठ, धतूरेका बीज और मन्त्र-  
शिला इन सब द्रव्योंमें भोजनपर मन्त्र लिख कर गलेमें धारण करे। इसीकी मंत्रका यज्ञोत्तरण कहते हैं। इस प्रकार यज्ञोत्तरण करने पर भी यदि मन्त्रसिद्धि न हो तो मन्त्रका पाहन करना होगा। मन्त्रका पाहन,— अघरोत्तर योगसे मन्त्र जप कर अघरोत्तरकृपिनां देवता-  
की पूजा करे। अनन्तर अन्नवकके दूधमें मंत्र लिख कर पर द्वारा सामन्यन करने हुए प्रतिदिन होम करे। इसीका नाम मंत्रका पीडन है। इसमें भी यदि मंत्र सिद्ध न हो, तो मंत्रका शोषण करना होगा। मंत्रका शोषण,— कुछ मंत्रके भादि भाद अन्तर्में विविध पाण्डुरीत योगका जप करे तथा मोक्षुय द्वारा मन्त्र लिख कर हाथमें पहने। इस पर भी यदि मन्त्रसिद्धि न हो, तो मन्त्र-  
शोषण करनेकी कक्षा मन्त्र है। मन्त्रका शोषण,—यं इत पाण्डुरीत द्वारा मंत्रका पुंड्रक कर जप करे तथा उक्त मन्त्रकी यज्ञय मन्त्र द्वारा नैतक्ष्ण पर लिख कर गलेमें पहने। उक्त मन्त्रसे भी मन्त्रसिद्धि नहीं होने पर मंत्रका दाहन करना होता है। मंत्रका दाहन,— अन्वयके एक एक अक्षरके साक्षि, मन्त्र और अन्तर्में यं इत अन्वययोगसे योग कर जप करे तथा पाण्डुरीतके जप द्वारा पद मंत्र लिख कर जपे पर धारण करे।

इन सब प्रक्रियाओंमेंसे एक एक प्रक्रिया करनेसे मंत्र-सिद्धि होती है, बहुत प्रक्रिया अनावश्यक है। एक प्रक्रिया द्वारा यदि मंत्र सिद्ध न हो, तभी पर्यन्त प्रक्रियाकी जरूरत होती है।

मंत्रसिद्धिका दूसरा उपाय—अनुलोम और विलोम-से मात्राका वर्ण द्वारा पुटित करके सी बार मंत्रका जप करे, पाँचे केवल मंत्र जप करना होगा। इस षण्णालीसे जप करते करते जब लाख जप पूरे हो जाय, तब निरवचन जानना कि मंत्र सिद्ध होगा।

मंत्र सिद्ध हुआ या नहीं, यह निम्नोक्त लक्षणसे जाना जाता है।

मन्त्रसिद्धिका लक्षण—मनोरथसिद्धि ही मन्त्रसिद्धिका प्रधान लक्षण है। साधक जब जिस वस्तुकी अभिलाषा करते हैं, तभी वह अभिलाषा पूरी होती है। मृत्यु-हरण, देवतादर्शन आदि भी मन्त्रसिद्धिका लक्षण है। जिसके तपोयोगादि द्वारा मन्त्र सिद्ध होंगे, वह देवताको देख पायेगा, मृत्युनिवारण कर सकेगा, दूसरेका मनोगतभाव जान लेगा तथा उसके अदृश्यगतः परपुरमें प्रवेश, शून्यमार्गमें विचरण तथा सर्वत्र भ्रमणकी शक्ति आ जायेगी। पतञ्जल ऐश्वरी देवताओंके साथ मिल कर वह उनको वात सुन सकेगा। वह भ्रूच्छिद्रदर्शन, पार्थिवतत्वज्ञान, दिगन्त-व्यापिनी कीर्ति, चाहन भूषणादि द्रव्यलाभ तथा दोग्दीयन प्राप्त करेगा। मन्त्रसिद्धि व्यक्ति राजा या राज-परिवारवर्गको वश कर लेता तथा सर्वत्र समकारजनक कार्य विक्रलाते हुए अपना समय व्यतीत करता है। उस व्यक्तिके श्रेष्ठ हो रोगीका रोग तथा सब प्रकारका विप जाता रहता है। वह व्यक्ति सब जगह पाण्डित्यलाभ करता है। वह सर्वत्र विषयभोगमें वैराग्य, मुक्तिकामना, सर्वपरित्यागशक्ति, सर्ववशीकरणक्षमता, अष्टाङ्गयोगका अभ्यास, सर्वभूतोंके प्रति दया तथा सर्वशता-गुणका अधिकारी होता है। इस प्रकारके गुण मध्यविध सिद्धिके लक्षण हैं।

कीर्ति और चाहनभूषणादिका लाभ, दीर्घजीवन, राजमिपता, राजपरिवारादि सर्वजनवात्सल्य, लोक वशीकरण, विपुल वैश्वर्य, अनुल धनसम्पत्ति, पुत्रद्वारादि

सम्पत्ति, ये सब गुण अथम मन्त्रसिद्धिके लक्षण हैं। मन्त्रसिद्धिकी प्रथम अवस्थामें ये सब लक्षण होते हैं। सच्चमुचमें जिस व्यक्तिका मन्त्र सिद्ध हो गया है, वह शिवतुल्य है।

मन्त्रका दोष।—पूर्वकालमें देवराज इन्द्रने सिद्धिके लिये भुवनेश्वरीके एकाक्षर मन्त्रकी आराधना आरम्भ कर दी। बहुत दिन इस प्रकार करते रहने पर भी वे कृतकार्य न हो सके। इस पर उन्होंने मन्त्रके प्रति अभिशाप दिया, जिससे वह मन्त्र तेजहीन हो गया। यही कारण है, कि भुवनेश्वरीके एकाक्षर मन्त्रकी आराधना करनेसे मन्त्र सिद्ध नहीं होता। अनन्तर भुवनेश्वरीने उस जापसे उद्धार पाया। उसे मन्त्रको चाग्वीज द्वारा अभिमन्त्रित कर आराधना करनेसे वह दोष जाता रहता है। इस प्रकार भुवनेश्वरीके कामराजाय अभिमन्त्रित मन्त्रको कामवीज द्वारा पुटित करनेसे भी उसका दोष नष्ट होना है।

ताराविद्याके मन्त्रमें सकारका योग देनेसे शापवोप जाता रहता है। मैत्री आदि विद्याका मन्त्र सुपुत्रादि दोषयुक्त होनेसे जप नहीं करना चाहिये। सुप्त, दग्ध और कोलित मन्त्रका जप करनेसे मृत्यु होती है। मद्गो-मन्त्र, सूँछित, वीर्यहीन, स्तम्भित, छिन्न, वृद्ध और निर्वाय मन्त्र जपनेसे कोई फल नहीं।

विश्वसार तन्त्रमें लिखा है,—छिन्न, वृद्ध, शक्तिहीन, पराङ्मुख, वधिर, नेत्रहीन, कोलित, स्तम्भित, दग्ध, रुस्त, भीत, मलिन, तिरस्कृत, भेदित, सुपुन, मद्गोमन्त्र, सूँछित, हनवीर्य, हीन, प्रध्वस्त, बालक, कुमार, युवा, मोढ़, वृद्ध, निश्चिन्तक, निर्वाय, सिद्धिहीन, मद्, कूट, निरंशक, सत्यहीन, केकर, जीवहीन, धूमित, आङ्घ्रिहित, मोहित, क्षुधात्, अतिदृष्ट, अङ्गहीन, अति क्रूर, सबोड़, शान्त-मानस, स्थानभ्रष्ट, चिकल, निःस्नेह, अतिवृद्ध और पीडित ये सब मन्त्र दूषित हैं।

छिन्न प्रभृतिके लक्षण तन्त्रशास्त्रमें इस प्रकार निर्दिष्ट हैं—जिस मन्त्रके आदि, मध्य और अन्तमें चाग्वीज (य) वा चरणवीज (वं) संयुक्त रहे अथवा जो लिधा, चतुर्धा वा पञ्चधा स्वरविशिष्ट हो, उसे छिन्नमन्त्र कहने हैं।

जिस मन्त्रके आदि, मध्य अथवा अन्तमें दो पृथ्वी-

योज (लं) युक्त हो, उसका नाम मन्त्रमंत्र है। यह मंत्र भुक्ति और मुक्ति के लिये उपयोग है। जिस मंत्रके मध्यमें कामयोज (हो) नहीं हो तथा आदिमें मायायोज (हो) और अंत्ययोज (हो) हो उसे पराङ्मुक्त मंत्र कहते हैं। जिस मंत्रके आदि, मध्य और अन्तमें हं अथवा सं यह योज देना जाय, उसका नाम वधिर है। जो मंत्र पञ्चाक्षर एवं र, न और म वर्जित हो, वह मंत्र नेत्रहीन कहलाता है। इस मंत्रको धारा घना करनेसे दुग्ध, शोक और रोग होता है। जिस मंत्रके आदि, मध्य और अन्तमें 'हं' 'सा' 'हो', 'पे', 'हं', 'फट्', 'हो', 'और नमामि' ये सब योज हों, उसे त्रीक्षित मंत्र कहते हैं। इस मंत्रको धाराघना करनेसे किसी प्रकारकी सिद्धि नहीं होती। जिस मंत्रके मध्यमें लं और फट् इसका कोई एक योज तथा अन्तमें दो योज न रहे, वह मंत्र स्वस्मिन्त कहलाता है। उक्त मंत्रको भी किसी प्रकारकी सिद्धिकी सम्भावना नहीं। जो सत्ताक्षर मंत्र र और य दोनों वर्णोंमें युक्त हो, उसे द्वाय मंत्र, जो चक्षर, त्रयक्षर, चतुक्षर अथवा अष्टाक्षर और फट् योज संयुक्त हो उसे त्रयक्षर कहते हैं। ये सब मंत्र भी सर्व-सिद्धिदायक नहीं हैं। जिस मंत्रके आदिमें हो या ओ, दोनों योनोंमेंसे एक भी नहीं है उसका नाम भीन मंत्र है। जिस मंत्रके आदि, मध्य और अन्तमें चार चार वर्ण रहते हैं यह मन्त्रिन मंत्र कहलाता है। इस मंत्रको धाराघना करनेसे सब प्रकारके विघ्न उपस्थित होते हैं। जिस मंत्रके मध्यमें दकार, आदिमें हुं, और अन्तमें फट्, ये विविध योज हों उसका नाम तिरस्कर मंत्र है। जिस मंत्रके हृदयमें हकारद्वय, शीर्षमें वषट् और मध्यमें वीषट् देखा जाता है वह भेदित मंत्र है। इस मंत्रको उपासना करना मना है। 'हं' 'सा' इस योजविहीन अक्षर मंत्रको सुषुप्त मन्त्र कहते हैं। यिथा मध्या मंत्र अर्थात् त्र्यंदिवत वा पुंदिवत मन्त्र यदि सप्तदशाक्षर और फट्कार पञ्चकादि युक्त हो, वह मन्त्रोत्तम मंत्र कहलाता है। जिस सप्त-दशाक्षर मंत्रके मध्य फट्कार रहे, वह मंत्र मूर्च्छित है। इस मंत्रको उपासनासे किसी प्रकारकी सिद्धि नहीं होती। जिस मंत्रके अन्तमें पञ्च फट्कार रहता है उसे

हृत्प्राप्य मंत्र कहते हैं। जिस मंत्रके आदि, मध्य और अन्तमें फट्कार चतुष्टय विद्यमान हो तथा वह मंत्र यदि अष्टाक्षर अथवा द्वादश, तो यह मंत्र है। जो द्वादश अक्षरवाला 'हो' 'हो' 'हो' इन तीनोंमें चतुष्टय है उसे प्रथम मंत्र कहते हैं। सत्ताक्षर मंत्र पाञ्चर, सत्ताक्षर कुमार और षोडशाक्षर मंत्र युवा कहलाता है। इन सब मंत्रोंकी उपासना करनेसे कोई फल प्राप्त नहीं होता। जिस मंत्रमें चौबीस अक्षर रहते हैं, उसे मीठु और जिसमें तीस, चौगुण, सौ मध्या एक सौ चार अक्षर रहते हैं उसे मूलमंत्र कहते हैं। श्री अक्षरके मंत्रका नाम निम्न है। जिसके अन्तमें 'नमः' और शीर्षमें 'म्याहा' नाम रहता है तथा वषट् और हुं ये दो रूप विद्यमान नहीं हैं, वीषट् एवं फट्कारयुक्त है मध्यम नियमितवर्णविहीन है वह मंत्र गिर्वीर्य है। जिस मंत्रके आदि और मध्यमें पट् प्रशारका फट्कार रहता है वह मंत्र सिद्धिहीन है। जिस मंत्रमें पंचरक्षर वर्णमान है उस मंत्रका नाम मंद है। पञ्चाक्षर मंत्रको शुद्ध, दो अक्षरको निर्दोष, छः अक्षरको केसर और साढ़े पाँच अक्षरवाले मंत्रको धूमित कहते हैं। ये सभी मंत्र निन्दित हैं। साढ़े योज द्वययुक्त परविनाक्षर मध्या त्रिनाक्षर मंत्रको आर्त्तित्त, द्वयविनाक्षर युक्त मंत्रको मोहित, चतुर्विंशति अथवा सप्तविंशति वर्णको क्षुधासं, द्वयविंशति, एकदशाक्षर, पञ्चविंशति वर्ण या त्रयोविंशति वर्णको धनित्त, पटुविंशति, पटुविंशति वा एकविंशतिनाक्षर मन्त्रको अद्भुत, अष्टाविंशति अथवा पञ्चविंशति वर्णयुक्त मन्त्रको अतिमूर्च्छ कहते हैं। ये मंत्र निन्दनीय बन जाये गये हैं। शीघ्र अथवा तीव्र अक्षरवाले मंत्रका नाम धनित्त, नाटोत्तमे त्रिरस्र अक्षर मन्त्रका नाम ममोद्, पैम्प अक्षरयुक्त मंत्रका नाम ज्ञानान्तर, पैम्पके विनाये अक्षरवाले मंत्रका नाम स्थानान्तर है। जिस मंत्रमें नेत्र वा वर्णान् अक्षर रहते हैं उसे विकल्प, जिसमें मी, ट्ट मी, दो मी, एकान्धे अथवा बहान्धे अक्षर रहते हैं उसे निःकण्ठ कहते हैं। चार सौ से से चर हजार अक्षरवाले मंत्रका नाम पविष्ट है। पट् मंत्र नामोत्तम निन्दित है। जिस मन्त्रमें द्वादशसे अधिक वर्ण हों हैं वह पांडन और जिसमें द्वा द्वादशसे अधिक



वर्ण हैं यह स्तोत्र मंत्र कहलाता है। यह स्तोत्र रूप मंत्र होनेसे उसे सात भागोंमें विभक्त करके उपासना करनी होगी।

मंत्र अथवा विद्याकी आराधना करनेमें उषन दोषोंका विचार करना नितास्त आवश्यक है। जो व्यपित ऊपर बतलाये दोषोंका विचार किये बिना मंत्रप्रहण और जपादि करता है, सो कोटि फलमें भी उसको मंत्रसिद्धि नहीं होती। अतएव साधकको चाहिये, कि वे अच्छे तरह मंत्रदोष पर विचार और विधानक्रमसे शान्ति करके उसका प्रहण जपादि करे। मंत्रकी दोषशान्ति —

“तस्यैव हिन्नादिदुष्टा मन्त्रास्तन्वे निरूपिताः ।  
 ते सर्वे सिद्धिमायान्ति मानृकावर्णा प्रभावतः ॥  
 मानृकावर्णैः पुरीकृत्य मन्त्रं विद्यां विशेष्यतः ।  
 शतमष्टोत्तरं पूर्वं प्रजपेत् फलसिद्धये ॥  
 तदा मन्यो महाविद्या यथोक्तफलदो भवेत् ।  
 मानृकापुटितं कृत्वा मध्ये वर्णां विधाय च ॥  
 मन्त्रशर्णास्ततः कुर्वात् शेषं तन्त्रशेदिभिः ।  
 बद्ध्वा तु योनिमुद्राः तां सङ्कोच्यापारपङ्कजम् ॥  
 तदुत्पन्नान् मन्त्रशर्णान् कुर्वन्तश्च गतागतान् ।  
 ब्रह्मरन्त्रानपि ध्यात्वा वायुमापूर्यं कुम्भयेत् ॥  
 सद्यः प्रजपेत् मन्त्री मन्त्रदोषप्रशान्तये ।  
 एषु दोषेषु प्राप्तेषु मायां काममभाषि वा ॥  
 फिक्त्वा चादीं शिष्यश्चैव तद्दूषणं विमुक्तये ।  
 तारसंपुटितो वापि दुष्टमन्त्रोऽपि सिध्यति ॥  
 सत्यं यत्र भवेत्प्रक्रिः सोऽपि मन्त्रः प्रतिष्यति ।  
 प्रणवो मानृकादेवो ह्यल्लेखित्पञ्चमयम् ॥  
 अमृतत्रयसंयोगाद् दुष्टमन्त्रोऽपि सिध्यति ॥”

( तन्त्रशार )

मंत्रके छिन्नादि दोषोंका जो विषय कहा गया है, किन्तोक्त प्रणालीसे उसकी शान्ति होती है। मानृकावर्णों द्वारा मंत्र या विद्याको पुटित कर अर्थात् मन्त्रके पूर्वमें अकारादि क्षकारांत वर्णके एक एक वर्णको पीछे योग कर एक सौ आठ बार जप करे। ऐसा करनेसे मन्त्रके पूर्वोक्त छिन्नादि दोषोंकी शान्ति होती है तथा यह मंत्र यथोक्त रूप फलप्रदान करता है।

अर्थात् मंत्रमें जो जो वर्ण हैं उनसे प्रत्येक वर्णके पूर्व में अकारादि क्षकारांत मानृका वर्णोंके एक एक वर्णको पहले और एक एक वर्णको पीछे योग कर जप करे। अनन्तर योनिमुद्रा बन्धनपूर्वक आधारपत्रको सङ्कोचित करके मूलाधारसे उत्पन्न वर्णोंकी ब्रह्मरन्त्र पर्यंत गतागतरूपसे चिंतना करे। तदनंतर वायु पूरण करके कुम्भक और सहस्र बार जप करनेसे मंत्रदोषकी शान्ति होती है।

अन्य प्रकारके मंत्र यदि पूर्वोक्त छिन्नादिदोषप्रस्त हैं तो मंत्रके आदिमें ह्रीं ह्रूं श्रौं यह तीनों बीज युक्त कर जप करे। तत्रमें यह भी लिखा है, कि ओं बीज द्वारा मन्त्रको पुटित कर जप करनेसे दुष्ट मंत्र सिद्ध होता है। मंत्रशुद्धिकी नाश प्रसारकी प्रणाली कही गई है उनमेंसे जिस प्रणाली पर विश्वास हो उसी प्रणालीके अनुसार मन्त्रोपधान करना चाहिये।

तत्रसे यह भी जाना जाता है, कि प्रणव, मानृकावर्ण और मायाबीज ये तीनों अमृत स्वरूप हैं। इन्हें युक्त कर मंत्र जपनेसे सब प्रकारके मन्त्रदोषकी शान्ति होती है। मंत्रके पहले और पीछे ओं यह मानृका वर्ण तथा ह्रीं आदि तीन बीजमंत्र युक्त कर जप करनेसे मंत्रका दोष विनष्ट होता है। ( तन्त्रशार )

शैव, शाक्त और वैष्णवको अपने अपने कुलदेवताके अनुसार शुभजनक मंत्र लेना चाहिये।

तंत्रशास्त्रमें वैष्णवमंत्रका भी यथायथ विधान है। अभी बहुतोंकी यह प्रारणा है, कि तंत्रमें केवल शैव और शक्तमंत्र ही दिया गया है, पर यथार्थमें सो नहीं है। तंत्रमें शैव, शाक्त, वैष्णव, सौर, गाणपत्य आदि सभी मंत्रोंका विधान देखनेमें आता है तथा दोक्षाप्रदणकालमें उसीके अनुसार मंत्र लिया जाता है। किंतु जहां गोस्वामी मंत्रप्रदान करते हैं केवल यही पर इस नियमका व्यतिक्रम देखा जाता है। वे लोग हरिभक्तिविलास आदिके मतसे मंत्र देते हैं।

उपयुक्त गुरुसे मंत्र ले कर यदि उनकी सम्यक् रूपसे उपासना की जाय, तो उसके तीनों ताप दूर होते हैं और अन्तमें वह परमपदको पाता है। मंत्रसिद्धि हांनेसे परमपुरुषार्थ लाभ होता है।

मंत्र प्रणव वर एति गोमायलभ्यस किमा जगामही

उससे जो ज्ञान प्राप्त होता है वह तत्त्वज्ञानका कारण है। बिना योगके मंत्र द्वारा अथवा बिना मंत्रके केवल योग द्वारा कुछ फल नहीं होता। मंत्र और योग दोनों का साधन करनेसे प्रह्लादान प्राप्त होता है। अंधिरी कोटरमें जिस प्रकार दीपकी सहायतासे घर दिखाई देता है, उसी प्रकार साध्यासमायुत आत्मा योगमहदत्त मंत्रबलसे ही दिखाई देती है। जो विद्ययासक्त हैं उनके लिये आत्मसाक्षात्कार दुर्लभ है। जो निर्दिष्टभाष्यमें मंत्रयोगका अनुष्ठान करते हैं उन्हींके पक्षमें यह आत्म-दर्शन सुलभ है।

“मन्त्राभ्यामेतन् योगेन ज्ञानं ज्ञानाय कल्पयेत् ।

न योगेन बिना मन्त्रेण न मन्त्रेण बिना हि नः ॥

द्वयोरभ्यासयोगो मन्त्रयोगोऽधिकारणम् ।

समाप्तिरिष्टे गेहं घटे दीपेन दृश्यते ॥

एवं साध्यातु साध्या मनुजा गोचरोऽहम् ।

एवं ते कथितं ब्रह्मन् मन्त्रयोगं मनुजसमम् ॥

बुद्धिर्मे विषयावन्तैः सुसर्भं साद्रगात्मि ॥”

( तन्त्रकार )

मंत्रयोगका अभ्यास कर साधक किस प्रकार मुक्ति-लाम कर सकते हैं उसका विषय तत्रमें हम प्रकार लिखा है।

“इदानीं कथये तं च मन्त्रयोगमनुजसमम् ।

विरयं शरीरमिन्द्रियं च मन्त्रात्मकं मुने ॥

चक्षुःश्रोत्रिनेत्रेणोभौश्रोत्रौ श्रवणरूपम् ।

निष्कः कोऽपस्तददन्तं शरीरं नाद्यो मन्त्राः ॥”

( तन्त्रकार )

यह पञ्चभूतमय शरीर प्रह्लाण्ड कहलाता है। इसमें चंद्र, सूर्य और अग्निके तंत्रमें जीय और प्रह्लाकी परता सम्यादित होती है। इस शरीरमें माद्रे तीन करोड़ नाड़ी हैं जिनमेंसे द्वा नाड़ी प्रधान हैं। फिर इन द्वाओंमें भी तीन नाड़ी सबसे प्रधान हैं। चंद्र, सूर्य और अग्नि-रूपमें ये तीनों नाडियाँ मेरुदण्डमें रहती हैं। जो नाड़ी चाम भागमें है वह चंद्ररूपिणी, शुक्रवर्णा, जलिकृषा और अमृतमयी है। इडा उग्रका नाम है। दक्षिणभागमें अरविपत्र सूर्यरूपिणी, दार्दिभ्यं हनुमणवर्णा, पुरुषरूप और विषमय नाडिका नाम पिङ्गवा है। जो नाड़ी

मूलाधारसे ले कर मेरुदण्डके मध्य होती हुई शरीरधर तक चली गई है, उसे सुषुम्ना नाड़ी कहते हैं। यह नाड़ी सब तंत्ररूपिणी और बहुरूपिणी है। इस सुषुम्ना नाड़ीके मध्य विचिता नामकी एक और नाड़ी है जो अमृतनाडिणी और सर्वदेवमयी है। यह विचिता नाड़ी विसर्गस्थानसे ले कर विन्दुस्थान तक चली हुई है। मूलाधारपट्टममें एक त्रिकोण है। उस त्रिकोणके तीन ओर इच्छानाजिक, क्रियानाजिक और ज्ञाननाजिक है। इस त्रिकोणके मध्यस्थानमें एक करोड़ सूर्यसदृश स्वयम्भू-लिंग विद्यमान है तथा ऊपरमें त्रिं यह कामबीज लिखा है। स्वयम्भूलिंगके ऊपर भगिनिनाकार, प्रह्लाकरूपिणी कुण्डलिनी जतिक अयस्थान करती है। बाह्य चतुर्दश पर घ, श, प, स, ये चारवर्णं द्रष्टव्य हैं। मूलचक्रके ऊपर अग्निको तरह तंत्रोमय और हीरककी तरह निर्मल पद्मरूप पत्र है। इस पत्रका नाम अधिष्ठानचक्र है। व, म, म, य, य, ल ये हैं वर्णं पद्मरूप पर लिखे हैं।

चतुर्दशपट्टम आधार-पट्टका मूल है, इस कारण उसे मूलाधार कहते हैं। चक्रका नाम स्वाधिष्ठान चक्र है, क्योंकि यह मूलाधारके ऊपर अवरिपत्र है। इसके नाभिदेशमें मणिपुर है जहाँ अर्वाय प्रभासमयत्र द्वा-दश पत्र हैं। इनका वर्णं मेघकी तरह और तेजोमय है। उन द्वा द्वाँ पर ङ, ङ, ञ, त, थ, द ध, न, प, क ये द्वा अक्षर लिखे हैं। यह पत्र नियंता अधिष्ठान है, इन कारण विष्वका कारण है। इस मणिपुरके ऊपर हृदयके मध्य उपपुत्रमात्र सदृश अनाहत पत्र विद्यमान है। उस पत्रके बाह्य द्वाँ पर क, मे लगावन ट तक बाह्य अक्षर विराजित हैं। उस पत्रमें द्वा हजार दियाकर भद्रन तेजपुत्र वाणलिंग अयस्थान करते हैं। यह वाणलिंग शब्द प्रह्लामय है। यहाँ पर अनाहत शब्द प्रत्यक्ष होता है, इसीमें मुनिर्वनि इसका अनाहत पत्र नाम रखा है। यह पत्र परम पुरुष कर्षक अधि-ष्ठित और आनन्दप्राम है। इसके ऊपर विष्णु चक्र नामक मोन्द पत्र है। इन मोन्द पत्रों पर पृथ्वीवर्णके मोन्द स्वरवर्णं विद्यमान हैं। यह पत्र मद्राजमाने सर्वेश ममुरसपत्र रहता है। यह पत्र जीवके हं स। मन्त्र उपकी विष्णु कर देता है अर्वाय हंसः मे मोन्द।

सोइसे ओं, इस प्रकार परिणत कर देता है। इसी कारण इसका नाम विशुद्ध पद्म पड़ा है। इसे आकाशचक्र भी कहते हैं। इसके ऊपर दोनों भ्रूके बीचमें आत्मा द्वारा अधिष्ठित आन्नाचक्र है। यहां पर गुदकी आधा संकामित होती है, इस कारण इसे आन्नाचक्र कहते हैं। इसके भी ऊपर फौलासपुरी और घोघनी चक्र विद्यमान है।

पहले मन्त्रके पूरक द्वारा मूलाधारमें मनको संस्थापित करना होगा। गुह्यदेश और मेढ्रदेशके बीच मूलाधारमें जो कुण्डलिनी शक्ति है उसे जागरित करना होता है। पीछे ब्रह्मप्रथि, विष्णुप्रथि और रुद्रप्रथिके भेदसे स्वयम्भूलिङ्ग, वाणलिङ्ग और अन्यान्य लिङ्गोंको भेद करते हुए उस कुण्डलिनी देवीको विन्दुचक्रमें ले जाना होगा। अनंतर यहांसे लाक्षारस सद्गुण जो अमृत निकलेगा, उससे कृष्णा नासो योगसिद्धिदायिनी देवीका तर्पण कर ब्रह्मा, विश्णु, रुद्र, ईश्वर, सदाशिव, परशिव, सावित्री, महालक्ष्मी, भद्रकाली, भुवनेश्वरी, डाकिनि, राकिनो, लाकिनो, काकिनो, हाकिनो आदि पदचक्रस्थित देवताओंका तर्पण करना होगा। अनन्तर मन्त्रसाधक उस सुषुम्नापथ द्वारा कुलकुण्डलिनीको पुनर्धार मूलाधारमें लावे। इस प्रकार प्रतिदिन मन्त्रयोगसाधनका अभ्यास करनेसे जरामरण आदि किसीका भी भय नहीं रहता। इस प्रकार उपयुक्त गुदके निकट मन्त्रयोगका अभ्यास करनेसे दूषित समो मन्त्र सिद्ध होते हैं, इसमें संदेह नहीं। यही मन्त्र योग है। इस प्रकार मन्त्र योग सिद्ध होनेसे साधक महादेवके सद्गुणसम्पन्न हो जाते हैं।

इस मन्त्रयोगका अवलम्बन कर निम्नोक्त प्रकारसे धारणा करनी होगी। जो जिस देवताके मन्त्रकी साधना करेगे वे विकृकालादिके अनवच्छिन्न उसी देवमें चित्तकी समर्पण करते हुए जीवब्रह्म ऐक्य करके उसी समय तन्मय हो जाये। यदि साधकका चित्त निर्मल न रहे, तो मन्त्रसिद्ध होनेकी सम्भावना नहीं। इस प्रकार मन्त्रयोगीको अवयवयोग द्वारा अर्थात् जिस किसी अवयवमें ही चित्तसमाधान द्वारा योगअभ्यास करना चाहिये। साधकको उचित है, कि वे अपने अपने देवदेवतामें मन लगाकर धारणाका अभ्यास करें। मन्त्र-

योगी जिस किसी मन्त्रका अवलम्बन कर जप, होम, आदिका अष्टाष्टान करेगा, वही उसका कर्त्तव्य कर्म होगा। जिस समय साधक परमतत्त्व ज्ञान जायगे, उस समय उनके लिये कोई भी विधिनिषेध नहीं रहेगा।

मन्त्रयोगके प्रकारान्तर शारदातिलकमें लिखा है,—

“वषणवत्यं गुणायामं शरीरं उभयात्मकम्।

गुदध्वजानतरे कन्दमुत्तोपाद्भ्यांगुलं विदुः॥”

(तन्त्रवारे)

शिव और शक्ति यह उभयात्मक शरीर छः अंगुल लंबा है। गुह्यदेश और ध्वजके मध्यस्थलमें दो अंगुल उन्नत एक पथ है। इसका विस्तार उससे दूना है। यह पथ गोलकार है। इसके मूलाधारसे जो सप्त नाडियां निकली हैं उनमें तीन ही प्रधान हैं। इन तीनोंमें बाईं तरफकी नाड़ीका नाम इडा, दाहिनी तरफकी पिङ्गला और बीचकी नाड़ीका नाम सुषुम्ना है। सुषुम्ना नाड़ी मेन्द्रण्डमें रहती है। यह शिखा द्वारा दोनों पादांगुष्ठोंमें तथा शिरा द्वारा ऊर्ध्व ब्रह्मस्थान तक चली गई है। यह नाड़ी चन्द्र, सूर्य और अग्निस्वरूप है। इस सुषुम्ना नाड़ीमें चिवा नामकी एक और नाड़ी है जिसके मध्य पद्मसूत्रसदृश ब्रह्मरुद्र है। इस नाड़ीमें सभी आधार विद्यमान हैं। यही दिव्यमार्ग है। इससे अमृतानन्द भोग किया जाता है।

आधारपद्मके मध्यस्थलमें एक अति सुन्दर त्रिकोण मण्डल है। यह त्रिकोणमण्डल दिव्य और ज्योतिर्मय है। उसमें सर्वोक्त आत्मस्वरूपा विद्युत्सुता-सद्गुणी परम देवी कुण्डलिनी अवस्थान करती है। उनका आकार निद्रित सर्पवत् है। यह कुण्डलिनी शक्ति इसका आश्रय कर जीवात्माकी धारण किये हुए है। इसने प्राणका आश्रय लिया है। पूर्वोक्त नाड़ीपथ भी प्राणवायुका आश्रय है। सभी व्यक्ति-योगे मूलाधारसे यथाविधान वायु निकल कर नाड़ीपथ होती हुई शरीरसे बाहर चली गई है। इस प्राणवायुका परिमाण वारह अंगुल मात्र है।

साधक सुरम्य आसन पर बैठ कर मन्त्रयोगका अभ्यास करे। आरम्भके समय वे प्राणवायु द्वारा देहमें

भूतोद्भवको जान लेंगे। पीछे दृढ़ताके लिये देहमें उन मन्त्र भूतोंकी अर्चना करें।

मन्त्रयोगाभ्यासके समय समाहितचित्तसे मंगुलि द्वारा सभी इंद्रियोंको दृढ़करके बद्ध करना चाहिये। अंगुष्ठ द्वारा दोनों कान, दोनों तर्जनी द्वारा दोनों भ्रूज, दोनों मध्यमा द्वारा नासार्द्रय और अग्रगण्ड मंगुलि द्वारा शरीरको दृढ़करके बद्ध कर वायुधारण करना होगा। इसका अभ्यास करने करने तरह तरहके मन्त्र सुननेमें आयेगे। पहले मन्त्र भृङ्गानाद, पीछे घ्राणाध्वनि, घंशोध्वनि आदि सुनाई देंगे। इस प्रकार अभ्यास करनेसे संसारका भ्रशानाम्भकार दूर तथा 'दं'सः' लक्षण शब्दय ब्रह्म उद्भव होता है। विन्दु और विसर्ग पुण्य और मरुत-स्वरूप हैं। इसी पुन्यमरुतिले 'दं'सः' उत्पन्न हुआ है। 'दं' यह घणं पुण्य और 'सः' घणं प्रकृति है। 'दं'सः' इसका नाम भजना है। घांजमत्सादि द्वारा उसकी मर्त्यवा अर्चना करनी चाहिये। जिस समय साधक मरुतपुण्यको धरने नित्य आश्रय मनमें करके वकी-भाषापन्न होते हैं, उस समय यह 'दं'सः' 'सोऽह' रूपमें परिष्क हो जाता है। पीछे मूर्ति स्वरूप सकार और हकार का लोप कर पूर्वघन् सन्धि करनेसे 'मी' यह पद बनता है। इस समय साधक परमानन्दमय, नित्यवैतन्य स्वरूप उस प्रणवको धारनासे पृथक् न समझे। इस समय योगिगण धारननिष्ठ हो कर भाग्यापवापयके भगोचर, भाष, भारतस्वरूप और भातन्त्रसत्तागर प्रणवको स्वरूपमें देखने हैं। इस समय उनके आकार, उकार, मकार, नाद और विन्दुसे पञ्जरविमलमन्त्रित, सभ्यमय, मन्चुव, मन्त्रसुधामागर स्वरूप परम पुण्य मरुतसोभूत होते हैं। यद्यो मन्त्र योगीका धरन लक्षण है।

पूर्वोक्त रूपसे मन्त्रयोगका भय-उत्थन करनेसे हा साधक सिद्ध हो सकते हैं। शेषतः मन्त्र लेनेमें ही सिद्धि प्राप्त होगी, सो मन्त्रों। मन्त्रबद्धन कर यथाविधान पूर्वोक्त रूपसे मन्त्रयोगका अनुष्ठान भी करना होगा।

तत्कालसे मन्त्रसिद्धि परमात्म सहस्रगुरकी रूपसे ही हो सकते हैं, हृदयमें गर्दी।

तत्कालमें उच्चारण, यन्त्रकरण, शान्ति आदिके मन्त्र भी बदे गये हैं।

पुराणादिमें मिन्न मिन्न देवताकी पूजाका मिन्न मिन्न मन्त्र निम्ना है। उन्मो मन्त्रसे उनको पूजा करनी होगी।

हारीतके चिकित्सीयन स्थानमें जो उपरमाणाक मन्त्र लिखा है, यह इस प्रकार है—

“ओं ह्रीं ह्रीं ह्रीं सुवीयाय मदाबन्धपराकमाय सृष्टेपुत्राय भमितनेजसे वेकःहिकदुष्याहिकःकाहिकःचासुपिंक्रमहा-उत्तर-भूतत्वर भयत्तर जोकत्तर शोघत्तर वेलात्तर प्रभृति उग्रगणां दृश दृश हन हन पच पच धयत्तर भयत्तर, किनि किति धानरराजत्तराणां बन्ध बन्ध ह्रीं ह्रीं ह्रीं कट न्याहा।” (हारीत निःकृतिगम्या० २ भ०)

विश्वान, चोम और जापानमें शीदसाम्प्रदायमें भी मन्त्रका प्रचार है। ईश्वरकी उपासनाका मूढ मन्त्रोच्चारण है। यहाँ भी सभी मन्त्र मन्त्रन भावामें लिखे हुए हैं। आराध्य देवताका नाम उल्लेख कर मन्त्र पाठ किया जाता है। उदाहरण के लिये मन्त्रका मर्त्य नरो समक सकते। विभिन्न देवताकी आराधनाके लिये विभिन्न मन्त्र व्यवहृत होता है। ईमाजमसे १५० वय पहले पत्रलिखे हिन्दूधर्ममें “जोयका ईश्वरमें लय” नामक नरत्र प्रकाशित किया। गांधार देवके किस्ती संख्यामी अमरुने पहले पहले इस मन्त्रका प्रचार किया। पीछे ७०० ई०में योगशास्त्रके साथ यह मन्त्र मित्रा दिया गया और तबसे देवोंका नाम मन्त्रवान पड़ा।

मन्त्रके तीन प्रधान विधयः —

- १। आराध्य देवताका नाम।
- २। उच्चारणोप मन्त्र।
- ३। मन्त्रको उच्चारणमन्त्रया निरूपण करनेकी मान्ना।

मन्त्रकी श्रमना भगवाधारण है। मन्त्रपाठकालमें प्रायः गीतके साथ उच्चारित होता है और मंगुलिकी मुद्रा को जानते हैं।

४। जिसमें परामर्श देनेकी योग्यता हो, जो अथवा परामर्श देना जानता हो। ५। भेद जाननेवाला।

मन्त्रकार ( सं० पु० ) मन्त्र करोति ह- न ररभं-कन्-गायदेवकद्वयमन्त्रये। ( राशय० १ ) हा मन्त्र। मन्त्र-हन् मन्त्र रचनेवाला अर्थात्।

मन्त्रकुशल ( सं० लि० ) मंत्राय कुशलः । १ मन्त्रणा-  
दिययमे दक्ष, मन्त्रं जाननेयाला । २ मन्त्रं, तन्त्रमन्त्रं  
पारदर्शी ।

मन्त्रकृत ( सं० पु० ) मन्त्रं कृतवान् मन्त्र-कृ-विश्वप्, तुगा-  
गमदच । १ मन्त्रो, परामर्शं देनेवाला । २ दौत्यकारी ।

“यद्वा भयं मन्त्रकृतो भगवन्मन्त्रिलेखकः ।

पौरवेन्द्रगृहं गत्वा प्रविशेःशान्तमघातं कृतम् ॥”

( भागवत ३।१२ )

( लि० ) ३ मन्त्र प्रयोगकारी या मन्त्रद्रष्टा, मन्त्रकार ।

“तव मन्त्रकृतो मन्त्रं द्वात् प्रशमितारिभिः ।

प्रत्यादिश्यन्त इव मे दृष्टकर्मिदः शराः ॥”

( खुव १ शि६१ )

‘मन्त्रकृतः मन्त्रणां कृष्टः प्रयोक्तृर्वा’ ( मल्लिधाय )

ऋग्वेदानुक्रमणिकार्थे मन्त्रकृतं ऋग्विद्योक्ते जो नाम  
मिले है, अकारादि क्रमसे वे नीचे लिखे जाते हैं,—

अ होमुग, वामदेश्य, अक्षमौजवान्, अगस्त्य, अग्नि,  
अग्निद्युत, स्यौर, अग्निवृषस्यौर, अघमर्षण मायुच्छन्दस,  
अङ्ग और्य, अङ्गिरा, अज्ञमोद्द सौहाल, अलि भौम, अलि  
सांध्य, अनामतपाश्च्येपि, अनिल वातायन, अन्धी-  
गुण्याविश्व, अग्रतिरथ पेन्द्र, अभितपा सौर्य, अनिवर्त्त  
आङ्गिरस, अमहोयु आङ्गिरस, अमरीय चापांगिर, अपास्य  
आङ्गिरस, अरिष्टनेमि तार्थ्य, अरुण वैतहृष्य, अर्चन्  
हिरण्यस्तूप, अर्चानाना आर्ध्र्य, अर्बुद काद्रवेय, अय-  
त्सार काश्यप, अवस्यु आत्रेय, अश्वमेघ भारत, अश्व-  
सुकिकाण्वायन, अष्टकवैश्वामित्र, अष्टादंष्ट्र वैरूप,  
असित काश्यप, आयुःकाण्व, आसङ्गुण्योमि, इदतांगव,  
इधमवाह, इन्द्र, इन्द्रमुक्कवान्, इन्द्र्यकुण्ड, इन्द्रप्रमति-  
यासिष्ठ, हरिभित्ठकाण्व, इव आत्रेय, उच्यथ आङ्गिरस,  
उत्कीलकात्य, उपमन्यु यासिष्ठ, उपस्तुतवाग्निहृष्य, ऊद-  
क्ष्य, आमहोयथ, ऊरुचक्रि आत्रेय, उलवातायन, उशना-  
काण्व, ऊरु आङ्गिरस, ऊरुध्वं कृगन यामायन, ऊरुध्वं-  
प्रोवा, आर्बुदि, ऊरुध्वं नामा बाल, ऊरुध्वंसदुमा  
आङ्गिरस, अग्निश्वा भारद्वाज, अज्ञाभ्य चापांगिर, अष्टण-  
श्चय, अष्टपञ्चराज, ( शापहर ) अष्टम वैश्वामित्र, अष्टय-  
शुद्ध वातरथान्, एक्यु नौषस, पतशवातरथान्, पचयाम-  
रुद आत्रेय, कक्षिवान् दैर्घ्यतमस ( औशिजः ), कण्व-

घौर, कत विश्वामित्र, कपोतनैर्ऋत, करिकतवातरथान्,  
कर्णशुद्धयासिष्ठ, कलिप्रगाथ, कवपपेल्लुपु, कविभाग्य,  
कश्यपमारोच, कुतस आङ्गिरस, कुमार आग्नेय, कुमार  
आत्रेय, कुमार यामायन, कुन्दसुति काण्व, कुल्लमल्यर्हिय  
शैलुपि, कुशिकपेजोरथि, कुशिकसीमर, कुसीदी काण्व,  
कूर्म गार्त्समद, कृत्यशा आङ्गिरस, कृत्युभाग्य, कृश-  
काण्व, कृष्ण आङ्गिरस, केतु आग्नेय, गय आत्रेय, गय-  
प्लात, गर्गभारद्वाज, गविष्टिर आत्रेय, गाथोकीशिक,  
गृत्समद आङ्गिरस शौनदोत्, गृत्समदभाग्य शौनक,  
गोतमरहृगण, गोघा, गोपवन आत्रेय, गोपूतो काण्वा-  
यन, गौरिवीति शाक्य, घर्मसौर्य, घर्मतापस, घोर  
आङ्गिरस, चक्षुर्मानव, चक्षुःसौर्य, चित्तमहायासिष्ठ,  
च्यवनभाग्य, जमदग्निभाग्य, जय पेन्द्र, जरत्कर्णसर्प  
पेरायत, जरिताशाङ्ग, जतिवातरथान्, जेता मायुच्छन्दस,  
तपुमूधा चाहं स्पत्य, ताम्य पाथ्य, तिरश्ची आङ्गिरस,  
त्रसदस्यु पौदकृत्यस्य, त्रित आप्य, त्रिशिरा द्याष्ट,  
त्रिशोक काण्व, त्यरुण त्रैवृण, त्यष्टा गर्भकर्ता, दमन  
चामायन, द्विथ आङ्गिरस, दीर्घतमा औचथ, दुर्मित्र  
कौत्स, दुवस्यु वान्दन, दृढच्युत आगस्त्य, देवमुनि  
पेरम्भद, देवरात वैश्वामित्र देवलकाश्यप, देववात  
भारत देवश्रवा भारत, देवश्रवा यामायन, देवातिथि  
काण्व, देवापि आर्षिपेण, द्युतान मारुति, द्युमि विश्व-  
चर्षणि, आत्रेय, द्युमिनकयासिष्ठ, द्रोणशाङ्ग, द्वित  
आप्य, प्ररुण आङ्गिरस, ध्रुव आङ्गिरस, नमः प्रमेदन  
वैरूप, नर भारद्वाज, नहुपमानव, नामाककाण्व, नामा  
नेदिष्ट मानव, नारदकाण्व, निधुवि काश्यप, निपातिथि-  
काण्व, नृमेध आङ्गिरस, नेमभाग्य, नोधां गोतम, पतङ्ग-  
प्राजापत्य, पराशरशाक्य, पुदच्छेपदं घदासि, पर्वत-  
काण्व, पविल आङ्गिरस, पायु भारद्वाज, पुनर्वत्सकाण्व,  
पुत्रमोद्द सौहोत्र पुत्रमेघ आंगिरस, पुत्रहन्ता आंगिरस,  
पुत्रव्या पेल; पुष्टियु काण्व, पूतदक्ष आंगिरस, पूरण  
वैश्वामित्र, पूरुआत्रेय, पूरुवैष्य, पूवधकाण्व, पौर  
आत्रेय प्रगाथकाण्व, प्रचेता आङ्गिरस, प्रजापति परमेष्ठो,  
प्रजापति वाच्य, प्रजापति वैश्वामित्र, प्रजायान् प्राजा-  
पत्य, प्रतहन् काशोरज देवदासि, प्रतिशत आत्रेय, प्रति-  
प्रम आत्रेय, प्रतिमानु आत्रेय, प्रतिरथ आत्रेय, प्रथ

यासिष्ठ, प्रबुधसु आङ्गिरस, प्रयत्नान् धात्रेय, प्रयोग  
 भाग्यं, प्रवृष्यकाण्य, प्रियमेव आङ्गिरस, वस्तु गीषा  
 यन्, वस्तु धात्रेय, वाहुवृत्तधात्रेय, वृध आत्रेय, वृध-  
 सीम्य, वृहदृक्, वृध गामदेव्य, वृहदिव आशयंण, वृहन्मति  
 आङ्गिरस, वृहस्पति स्तोत्र्य, वृत्रानिधि काण्य, भवमन्  
 वार्यागिर, भरद्वाजवार्हस्पत्य, भगप्रामाथ, भावपथ्य,  
 मिधु आङ्गिरस, मियन् धात्रेयंण, भुवन भाण्य, भृवांग  
 काश्यप, भृशु धादणि, मरुत्य नामद, मथिन वामायण, मधु-  
 चन्द्रा धैर्यामित्र, मनु आत्मव, मनु वैषम्यत, मनु गाम्य-  
 रण, मनुयातम, मनुयामिष्ट, मरुत, मातरिभ्या काण्य,  
 गाम्पाता यैवनाथ, मान्य मैत्रायण, मुद्रलनायैभ्य,  
 मूर्धणव्य आङ्गिरस (नामदेव्य), मुक्तवादा ऋत ज्ञात्रेय,  
 मुद्गोक्तयामिष्ट, मेधातिथिकाण्य, मेध्याकाण्य, मेध्यातिथि  
 काण्य, यक्षमनाजन प्राजापत्य, यजन धात्रेय, यज्ञ प्राजा-  
 पत्य, यमवैषम्यन्, ययाति नाहृण, यशोदा प्रह्ला, रहगण  
 आङ्गिरस, रातहृद्य धात्रेय, रामजामदग्न्य, रेणुधैर्यामित्र,  
 रेत काश्यप, लयवेन्द्र, रुद्राधनाक, यन्स आनेय, वरम-  
 काण्य, वरसमि भालन्त्य, वरु वैवानस, वर आङ्गिरस,  
 वरुण, वरिधात्रेय, यज्ञ अश्य, वसिष्ठ मेवावणि, वस्तु  
 भारद्वाज, वस्तुकर्णं वास्तुक, वस्तुष्टय वास्तुक, वस्तुक वेन्द्र,  
 वस्तुक यासिष्ठ, वस्तुमता, वीहिदभ्य, वस्तुसोचिप आङ्गिरस,  
 वस्तुधृत धात्रेय, वस्तुयय धात्रेय, वाम् आम्भृषो, वान-  
 जूतिवातरसन, वामदेवगीतम, विन्दु-आङ्गिरस, विप्रजुति  
 वातरसन, विप्रवस्तु गीषायत, विप्रन्द्र मीष्यं, विप्रद वेन्द्र,  
 विरूपाङ्गिरस, विवस्वान् आदित्य, विवृदाकाश्यप,  
 विभ्यक्तार्णि, विभ्यक्तमं भीषन्, विभ्यमना गैराभ्य,  
 विभ्यमना धात्रेय, विभ्यामित्र गायिन्, विभ्यावसु देव-  
 गंधर्व, विष्णु प्राजापत्य, विश्य आङ्गिरस, योतहृद्य  
 आङ्गिरस, वृजज्ञार, वृणण यासिष्ठ, वृषागि, वेन्द्र,  
 वृषाणक, वातरसन, वेणुभार्गव, स्वभ्य आङ्गिरस, वषाप्र-  
 वाहु यामिष्ट, शंभुवार्हस्पत्य, जकृत् नामोष, जकिष-  
 यामिष्ट, जहू वामायण, जतप्रमेदरनैरूप, जवरकाशोषन्,  
 जगकर्ण काण्य, जगर्षांग मानर, जगस भावडाज, जितकष्टो  
 काश्यप, जिषो भीमोनर, निरिस्विष्ट भारद्वाज, जिशु  
 आङ्गिरस, जूनमेव भाभिमर्षि, जूनरीत भारद्वाज,  
 दयागाम्य धात्रेय, इन्देन जामेय, धुनकस आङ्गिरस, धून-

वस्तु गीषायत, धुनविद् धात्रेय, धुमिषु काण्य, मरुन्दन  
 आङ्गिरस, मभ्यरण प्राजापत्य, मंधवं आङ्गिरस, मंक्-  
 सुक गामायण, मन्वपृति धादणि, मन्वधरा धात्रेय,  
 मन्वापृण धात्रेय, मन्त्रिरेव्य, मन्वसकाण्य, मन्त्रि-  
 मस्तु आङ्गिरस, मन्वपथि धात्रेय, सान्वातस्मर, मन्व  
 नामडाज, मन्वहृदि वेन्द्र, मन्व आङ्गिरस, मन्व धात्रेय,  
 मन्वेय वार्यागिर, माधनमीषन्, माग्मिन्नाङ्गि,  
 मिन्वुक्षिन् प्रियमेय, मिन्वुषीग भाभरदेय, मुक्त आङ्गि-  
 रस, मुर्धासिहाशोषन्, मुतस्मर धात्रेय, मुदा वैशयन्,  
 मुदीर्न आङ्गिरस, सुवर्णकाण्य, सुवर्ण ताश्येयुष, सुवस्तु  
 गीषायत, सुमित वेत्स्य, सुमित वार्यामन्, सुस्पा  
 वार्यागिर, सुवेश दीर्गि, सुहृदय गीष्य, सुहोभभा-  
 डाज, सोमगि काण्य, सोम, सोमाहृति भाग्यं, स्त्रः  
 मित्र जाङ्ग, स्यूमरदिम भाग्यं, स्वस्वधात्रेय, हृमिल्ल  
 आङ्गिरस, ह्येत प्रागाथ, हविर्धान आङ्गिरस, हिरण्यमं  
 प्राजापत्य धीर हिरण्यम्युष आङ्गिरस ।

इन्दीं मंत्रकृत ऋषियोंके नाममें प्राप्तकोंके गौर प्र-  
 कृत हुए हैं । इसके अलावा मरुत्यपुराणमें १६ मनु-  
 कृत ऋषियोंके नाम मिलते हैं :—भृशु, काश्यप, प्रमेता,  
 रथीच, धामनाथ, शौच्यं, जमदग्नि, वेद, माभ्यत,  
 धात्रेय, कश्यप, योतहृद्य, सुषेधन्, वेद्य, वस्तु, दिगो-  
 दास, प्रह्लाथान, वृत्स, नीलर, अङ्गिरा, गिग भरद्वाज,  
 लक्ष्मण, हनयाच, गार्, मित्रि, मांरति, गिरिगोभि,  
 गाम्पाता, अश्वरीय, सुवनाथ, पुत्रकृष्ण, सुमर, नर-  
 ण्ययान, जहमीष्ट, जमवर्षण, उरिषण, कवि, वृदभ्य,  
 विरूप, वाण्य, मुद्रण, उदभ्य, नरदान, वातजवा,  
 भावपथ्य, सुचिति, वामदेव, उजिज, वृहदृक्, कर्षोतमा,  
 काशोयान्, कश्यप, सार, भाभरमार, निष्णुप, विष्ट,  
 धसित, देवन्, अत्रि, अर्धनागा, इयाकाभ्य, गार्वाष्ट्र,  
 कर्णधुन्, पूर्वातिथि, वसिष्ठ, जकि, पगानर, इष्टप्रमति,  
 मधुसु, निपापयन्, कृत्स्न, विष्यामन्, धात्रेय,  
 देवराज, मनुचन्द्रा, धमर्षाण, अष्टक, गीर्गि, भूतर्षित,  
 मादनि, देवराज, देवराज, पुगन्, वमद्रव, िनिर,  
 जालकृषयन्, अगस्त्य, वृष्टकृष्ण, इष्यवाट, जगतिन्,  
 मन्वन्, वरम धीर मष्टोन् ।

मरुत्यपुराणके अनुसार इन मंत्रकृत ऋषियोंके मन्त्र  
 प्राप्तक, धर्मोप कर्त वेद्व यही तीन वर्ण हैं ।

मन्त्रगण्डक ( सं० पु० ) मंत्रप्रधानो गण्डकः, मध्यपद-  
लोपिकर्मधा० । विद्या ।

मन्त्रगुप्त ( सं० पु० ) दशकुमाररत्नितिकः एक कुमार ।

मन्त्रगुप्ति ( सं० स्त्री० ) मंत्रणागोपन ।

मन्त्रगृह ( सं० पु० ) मन्त्रे मंत्रणाविषये गृहः । गुप्त-  
चर ।

मन्त्रगृह ( सं० स्त्री० ) मन्त्रस्य मन्त्रणाया गृहम् मंत्रणा-  
गार, वह स्थान जहाँ मंत्र वा सलाह की जाती हो ।

“मुमंभुत् मन्त्रगृहं स्नानं चारुणं मन्त्रयेत् ।

अरण्ये निःशक्तिके वा न च रात्रौ अथयन ॥”

( भागवत ११।१।२२ )

मन्त्रजल ( सं० स्त्री० ) मन्त्रपूर्तं जलम् । मंत्रोदक, मंत्र  
द्वारा प्रभावित किया हुआ जल ।

मन्त्रजा ( सं० स्त्री० ) मन्त्रात् जायते इति मन्त्र जन ड,  
टाप् । मंत्रप्रकृति ।

मन्त्रजिह्व ( सं० पु० ) मंत्र एव जिह्वा यस्य । अग्नि ।

“धर्मत् नाम पत्तंती मन्त्रजिह्वे पु गुरुति ।

शोभेव मन्त्ररक्षुष्यन्नुभिताम्भोभिर्पर्याना ॥”

( भाष २।१०।७ )

मन्त्रज्ञ ( सं० पु० ) मन्त्रं जानातीति ज्ञा-क । १ गुप्त-  
चर । (स्त्रि०) २ मन्त्रज्ञाता, मंत्र जाननेवाला । ३ जिसमें  
परामर्श देनेकी शोभ्यता हो । ४ भेद जाननेवाला ।

“व्यवहारान् दिदृक्षुस्तु ब्राह्मण्यो सह पार्थिवः ।

मन्त्रैर्मन्त्रिभिश्चैव विनोतः प्रविशेत् वभाम् ॥”

( मनु ८।४ )

मन्त्रण ( सं० स्त्री० ) मन्त्र-रूप्युट् । मंत्रणा, सलाह ।

मन्त्रणा ( सं० स्त्री० ) मन्त्र-भावे युच्, टाप् । १ निर्जन-  
में कर्त्तव्यावधारण, परामर्श, सलाह ।

कविकल्पलतामें लिखा है, कि काव्यादिमें मंत्रणा  
विषयका वर्णन करते समय निम्नोक्त विषयका वर्णन  
करना आवश्यक है ।

पञ्चाङ्ग, शक्ति, पांडुगुण्य, उपाय, सिद्धि, उदय और  
स्थैर्योन्नति आदिकी मंत्रणा-विषयमें आलोचना करनी  
होती है ।

“मन्त्रे पञ्चाङ्गानाशक्तिपांडुगुणयोपायसिद्धयः ।

उदयाश्चिन्नतनीपारथ स्थैर्योन्नत्यादिसत्तायः ॥”

( कविकल्पलता )

तीन आदनीके साथ मंत्रणा करनेसे यह निश्चय  
हो प्रकाश हो जाती है, अतएव दो आदनीके साथ मिल  
कर मंत्रणा करनी चाहिये ।

“पट्कर्णो भिद्यते मन्त्रभ्रन्वुत्कर्णरच धार्यते ।

दिकर्णरूप तु मन्त्रस्य ब्रह्माण्डे को न बुध्यते ॥”

( गरुडपु० ११४ व० )

कालिकापुराणमें लिखा है, कि राजा बहुविधा विज्ञा-  
रद, विनात, सत्कुलोद्भव, धर्मार्थकुशल और सरल-  
चित्त ब्राह्मणोंको मंत्रि-पद पर नियुक्त करे । मंत्रणा-  
का उपयुक्त समय जान कर उनमेंसे किसी एकके साथ  
मंत्रणा करे । बहुताके साथ तथा सर्वथा मंत्रणा करना  
निषिद्ध है । विशेष आवश्यक होने पर एक बार एकके  
साथ और दूसरी बार दूसरेके साथ इस प्रकार सभी  
मंत्रियोंके साथ मंत्रणा करे । अत्यंत गोपनीय और  
सुरक्षित गृहमें अथवा उपद्रव्यशून्य निर्जन अरण्यमें जा  
कर मंत्रणा करना उचित है । रातकी मंत्रणा नहीं  
करनी चाहिये । मंत्रणामध्यलमें बालक, वानर, नपुं-  
सक, शुक, सारिका तथा अंगमंग मनुष्योंको आने  
नहीं देना चाहिये । राजाओंकी गृह मंत्रणा यदि  
प्रकाश हो जाय, तो भारी अमर्ष होता है । पीछेसे  
सैकड़ों सुदक्ष राजा भी उसका प्रतीकार नहीं कर  
सकते । महाभारतके शान्तिपर्य- और राजधर्मानु-  
शासनपर्वमें मंत्रि-मंत्रणाका विषय इस प्रकार लिखा  
है,—

राजका मूल मंत्रणा है । इस कारण राजाको  
चाहिये, कि वे उपयुक्त मंत्रोंके साथ मंत्रणा करके राज  
कार्य चलावे । राजा सुपरीक्षित, सत्कुलसम्भूत, उत्करोच  
प्रहणमें विरत, व्यभिचारदोषविहीन, सुविश्वस्त, वेदज्ञ,  
अहङ्कारशून्य, विनययुद्धिसम्पन्न, सत्स्वभावास्थित,  
तेजस्व्यो, धीर, क्षमावान, शुचि, अनुरक्त, कार्यदक्ष,  
गम्भीर, अकपट, मितभाषी, कर्त्तव्यकर्त्तव्यविवेक विज्ञा-  
रद, इन्द्रित्त, दयाशाल, देशकालज्ञ और प्रमुखार्थ परायेण  
इन सब गुणोंसे युक्त व्यक्तिफते मंत्रि-पद पर नियुक्त

करे। वैजोहीन, बंधुबंधवपरित्यक्त व्यपिनही मंत्रि बनानेसे सभी कार्य नष्ट होनेकी सम्भावना रहती है। जिम प्रकार अल्पज्ञान सम्पन्न मंत्रि सत्कुश्रोद्भव और धर्मार्थकामयुक्त होने पर भी मंत्रकी परीक्षा नहीं कर सकते, उसी प्रकार असत्कुश्रोद्भव व्यपिन विरक्षण ज्ञान सम्पन्न होने पर भी नायकविहीन सेनाको तरह सूक्ष्म-कार्य पर विचार करनेमें असमर्थ है। अग्निरसद्रव्य व्यपिन बुद्धिमान्, विद्वान् और उपायज्ञ होने पर भी सम्यक् प्रकारसे कार्य नहीं चला सकते। दुर्भानि मूर्ख व्यक्ति कार्य तो कर सकता है, पर किम कार्य का फल होगा, सो वह नहीं जान सकता। अनुरागविहीन मन्त्री कभी भी विश्वासका पात्र नहीं होता। सन-प्य उसके निकट मंत्रणा प्रकाश करना राजाको उचित नहीं। अग्नि जिस प्रकार वायुकी सहायनासे बड़े बड़े वृक्षोंकी भस्ममान् कर डालती है, इसी प्रकार अनु-रक्त मन्त्री भी अन्याय्य मन्त्रियोंके साथ पड़वस्त करके राजाको उत्सन्न कर सकता है। मान्द्रिह गुरुनेमें आ कर नौकरकी कमी पद्व्युत्तर कर देने, कभी निरस्कार करने और कभी उसके प्रति प्रसन्न भी होते हैं। नौकर भी मान्द्रिकके ऐसे व्यवहारकी सहता हो जाता है। मन्त्रिवर्ग भी अनेक समय राजा पर बहूत गुस्सा करते हैं, किन्तु जो मन्त्री राजाकी भलाई चाहता हुआ गुस्से-की रोक सके। बुद्धिमान् राजा सुग दुःख, लाभ-लाभ, जय पराजयको समान जान कर उसीके साथ सभी विषयोंमें मंत्रणा करे। कुटिल व्यक्ति विविध गुणसम्पन्न और अनुत्क भी क्यों न हो, तो भी उसके निकट मंत्रणा प्रकाश करना उचित नहीं। जो व्यक्ति ज्ञुओंका साथ देता है और पुरस्कारियोंका सम्मान नहीं करता, वह ज्ञुके समान है। उसके निकट मंत्रणा प्रकाश करना मानो अपने हाथसे अपने पैरमें कुडासा-पात करना है। अशुचि, अशुद्धारी आत्मरक्षायां, अनु-दृष्ट, क्रोधपरतंत्र और लुब्ध व्यपिन मंत्रणा सुननेके योग्य नहीं हैं।

भाग्यनुक व्यपिन यदि क्षान्तरस्यन् और प्रमुनचत भी क्यों न हो, पहले जिसका पिता भ्रातृव्यवसे परि-त्यक्त हुआ है पाँटे उसने यदि पितृव्य पा कर

विधिपूर्वक सन्कार भी क्यों न पाया हो तथा किसी कारणवज्ज कोई व्यपिन निर्धन बना दिया गया है और पाँटे अमाधारण गुणसम्पन्न हो गया हो, तो भी मुनि-मान व्यपिन पूर्वपित व्यपिनवोंके निकट मंत्रणा प्रकाश न करे। जो प्रसायान्, मेधावी, विद्वान्स्वभावायुष्यन्, ज्ञात्यन्, मानसम्पन्न, आरमन्व्युष्य, प्रियसुहृद्, स्वयवदायी, सधर्मिन्, गम्भीरस्वभावायुष्यन्, तज्ज्ञानोन्, गुरु, पाप-हृषी, प्रगल्भ, संतोषवरायण, मंत्र्य, कान्द्रोन्, शीर्ष-सम्पन्न, युद्धनिगुण और नीतिविनाएद् है तथा जो सान्त्वनायावय द्वारा लोगोंकी घनीभूत कर सकते हैं, पुराणमवासी धार्मिक व्यपिन जिस पर विश्वास करते हैं और जो अपने तथा ज्ञु आदिके विषयसे ज्ञानकार है वे ही मन्त्रणा श्रवणके उपयुक्त हैं। उक्त गुणसम्पन्न और सत्यन् मन्त्री निद्रव्य ही राजाके कल्याणके लिये हमेंना प्रयत्न करता है।

अपने मान्द्रिक, प्रसायान् और ज्ञुपक्षके छिद्रार्थ-पक्षमें मन्त्रेण होना मन्त्रोंका भयव्य कर्षण है। मन्त्रियोंके मन्त्रणावच्छेसे ही राजाका राज्य बढ़ता है। विम मन्त्रियोंको उचित है, कि वे ज्ञुका श्रेय पाते ही उस पर नृश्रां कर दे और ऐसी साधधानीसे चले जिसमें ज्ञु-पक्ष उनकी कार्यगतिका पना न लगा सके। कूर्म जिस प्रकार अपने शत्रुभयपक्षको छिद्राये रगता है, उसी प्रकार मन्त्री भी सभी मंत्रणाकी छिद्राये रये।

मंत्रणा और चर राश्वरक्षार। मूल कारण है। मन्त्री वृत्ति पानेकी भाजानसे राजाका अनुसरण करता है। राजा भी मन्त्री दोनों ही महद्गार, क्रोध, अनिमान और ईर्ष्या परित्यक्त कर दे। राजा महदपट मन्त्रियोंके साथ मन्त्रणा करे। कर्मसे कम तीन मन्त्री नियुक्त करना राजाको उचित है। उन्हीं तीन मन्त्रियोंकी सलाह ले कर पहले राजा धर्मार्थकामज सुकसे पाय जाय और उनसे अपना अनिग्राय कद सुनाये। मूक उन पारोंकी सलाह सुन कर उस विषयमें एक सिद्धांत कर दे। यह सिद्धांत यदि जनसाधारणके सुमार्गिक दृष्टा हो उसीके अनुसार कार्य करना राजाको उचित है।

यदि उन्मन्त्रणमें मंत्रणा की जाय, तो प्रजा क्षान्ता-से घनीभूत हो जाती है। राजा जहां पर मन्त्रणा करे



घर्हा वामन, कुम्भ, कृग, भञ्ज, अन्ध, जड़, नपुंसक वा तिर्यक्योनि मृसने न पाये । नाथ पर या कुजाकाज-विहीन, अमापृत जनशून्य स्थानमें बैठ कर चापशब्दोंपर और अन्नदोषका स्थान करते हुए मन्त्रणा करे ।

फिर यहाँ पर यह भी लिखा है, कि चार पवित्र ग्राह्य, आठ अन्नचारी महाशयपराकांत क्षत्रिय, अतुल वैभवंसम्पन्न इकांस वैश्य, विनोत स्वनाथसम्पन्न जति पवित्र तीन शूद्र और एक शुभ्रपादि अष्टगुणसम्पन्न पुराणवेत्ता सूतको अनाथशय पर नियुक्त करना राजाका कर्त्तव्य है । सभी आमात्य पचास वर्षके, विनोत, बुद्धिवान्, अपक्षपाती, विचारवान्, लोभविहीन और मृगयादि सात प्रकारके दोषोंसे वर्जित होंगे ।

इन अमाथ्योंमेंसे चार ग्राह्यण, तीन क्षत्रिय और एक सूत इन आठोंको मन्त्रिपद पर नियुक्त करें और राजाको उचित है, कि वे उन आठोंसे सलाह लें ।

( भारत सान्तिार्थ, राजधर्मानुशासनार्थ ८५, ८५ अ० )

युक्तिकन्वतधर्मं लिखा है, कि राज्यका मूल मन्त्रणा है । इसलिये जब तक अभीष्ट फल प्राप्त न हो जाय तब तक मन्त्रणा करना न छोड़ें । अर्थ और अनर्थ इन दोनोंका संशय जिससे परीक्षित हो उसे मंत्र कहते हैं । यह मन्त्रणा छिपा कर करनी चाहिये । मन्त्रणाकालमें जड़, मूक, घषिद, तिर्यक्योनि, स्त्री, म्लेच्छ, व्याधिप्रस्त, विकृताङ्ग आदिको उपस्थिति वर्जनीय है । विप अथवा ग्राह्यसे एक हीके प्राण जाते हैं, पर मन्त्रविपुलसे सभी राष्ट्रसम्पद् विनष्ट होता है । इसी कारण गुप्त-स्थानमें मन्त्रणा करना उचित है ।

२ कई आधर्मियोंकी सलाहसे स्थिर किया हुआ मन्त्र, मन्त्रेव ।

मन्त्रतस् (सं० अन्व०) मन्त्रादिति मन्त्र (पञ्चम्यास्तसिपु । वा १।३।२।०) इति पञ्चमी स्थाने तसित् । मन्त्रसे ।

मन्त्रतोय (सं० क्लृ०) मन्त्रपूतं तोयं । मन्त्रजल, मन्त्रपद कर जो जल दिया जाय ।

मन्त्रद (सं० पु०) मन्त्रं ददातीति मन्त्रदाक । शिष्योंके कुलदेवतानुसार शिष्यके कानमें इष्टमन्त्रदाता, मन्त्रदाता गुरु ।

“परापरगुरुव्याज निर्गम्यं शृणु पार्ष्णि ।

आदी सर्वत्र देवसि मन्त्रदः परमो गुरुः ॥

परापरगुरुस्त्वं हि परमेशो त्वहं गुरुः ॥”

( गृहसूत्रतन्त्र २ पट्ट )

मन्त्रदाता गुरु साक्षात् प्रह्लादरूप, मन्त्रदाता गुरुके पिता परम गुरु तथा विष्णुस्वरूप और उनके भी पिता परापर गुरु तथा साक्षात् महाशय तुल्य हैं ।

“मानवस्य महेशानि संक्षेपाश्रियदामि ते ।

गुरुः परमगुरुश्च परापरगुरुस्तथा ।

स्वगुरुः परमेशानि साक्षाद् ब्रह्म न संशयः ॥

तत्पिता परमगुरुः स्वयं विष्णुः क्विती सदा ।

तत्पिता परापरगुरुर्महेश्वरसमः सदा ॥”

( शाक्तानन्दतरङ्गिणीभूत महिषमर्दिनीतन्त्र )

मन्त्रदर्शन ( सं० त्रि० ) मन्त्र-दृश णिन् । १ वेदचित्, वेदश्च ।

“अभ्यन्नावे तु विप्रस्य पाषाणेषोपवादेव ।

था दग्निः स द्विजः किर्मन्त्रदग्निभिरुच्यते ॥”

( मनु ३।२१२ )

२ मन्त्रदर्शनकारिमात्र, मन्त्र देनेवाला ।

मन्त्रदातृ ( सं० त्रि० ) मन्त्रं ददातीति मन्त्रदा गृच् । मन्त्रदानकर्त्ता, गुरु, मन्त्र देनेवाला । मन्त्रदाता गुरु सर्वापेक्षा श्रेष्ठ हैं । गुरुओंके मध्य पहले जन्मदाता पिता; उनसे सौ गुना माना और उनसे अधिक विद्यादाता तथा इन सर्वांग मन्त्रदाता गुरु ही अधिक पूजनयोग्य और श्रेष्ठ हैं । गुरुसे मन्त्रलाभ कर भवसागरसे पार हो जाते हैं इसीलिये वे सर्वापेक्षा पूजनीय हैं । माता, पिता आदि गुरुजनोर्मिलें कोई भी संसार-समुद्रको पार करनेमें समर्थ नहीं है । केवल एक गुरु ही ऐसा कर सकते हैं । अन्तः सत्य, तपस्या और पुण्य आदि सभी गुरु ही हैं । शिष्य मन्त्रदाता गुरुसे इष्ट-मन्त्र लाभ कर उसी मन्त्रके प्रभावसे अनायास ही भयदुःखका मोचन कर सकते हैं ।

गुरु और मन्त्र देणो ।

० “सर्वेषाञ्च गुरुव्याज जन्मदाता परो गुरुः ।

विगुः सतगुणैर्मता पूज्या वन्द्या गरीयसी ॥

मन्त्रदीपति ( सं० पु० ) मंत्रेण दीपित्वादीनिर्मयस्य ।  
 अग्नि ।  
 मन्त्रदृष्ट् ( सं० पु० ) मन्त्रदृष्ट्-क्विप् । मन्त्रदृष्ट्वा ऋषिः,  
 मन्त्रदृष्टत ऋषिः ।  
 मन्त्रदेवता ( सं० स्त्री० ) मन्त्राधिष्ठात्री देवता, मन्त्रका  
 देवता ।  
 मन्त्रद्रुम ( सं० पु० ) चाक्षुष मन्त्रन्तरके इन्द्रका नाम ।  
 मन्त्रधर ( सं० पु० ) १ मन्त्रो । २ मन्त्रणाकुञ्जल, जो  
 मन्त्र अक्षरों तरह जानता हो ।  
 मन्त्रधारिन् ( सं० पु० ) १ सन्धिय । २ मन्त्रणातिष्ठ,  
 जो मन्त्र जानता हो ।

मन्त्रपति ( सं० पु० ) मन्त्रपतिष्ठत देवतापितेय,  
 मन्त्रका देवता ।  
 मन्त्रपत्र ( सं० स्त्री० ) मन्त्रलिखित पत्र, यह पत्र जिसमें  
 मंत्रणावियय लिखा हो ।  
 मन्त्रपूत ( सं० स्त्री० ) मन्त्रेण पूतः । मन्त्र द्वारा  
 पवित्राकृत, मन्त्रमें पवित्र किया हुआ ।  
 मन्त्रपूतारामन् ( सं० पु० ) मंत्रेण पूतः भाशना यस्य ।  
 गण्ड ।  
 मन्त्रप्रयोग ( सं० पु० ) मन्त्रस्य प्रयोगः । मन्त्रका प्रयोग ।  
 मन्त्रफल ( सं० स्त्री० ) मन्त्रणायाः फलम् । मन्त्रका  
 उद्देश्य ।

मन्त्रबीज ( सं० स्त्री० ) मूलमन्त्र ।  
 मन्त्रभेद ( सं० पु० ) मन्त्रणा व्यर्थकरण ।  
 मन्त्रमय ( सं० स्त्री० ) मन्त्र रूपरुपाद्ये मयट् । मन्त्रारमभ,  
 मन्त्रस्वरूप ।  
 मन्त्रमूर्ध्नि ( सं० पु० ) निग्रका एक नाम ।  
 मन्त्रमूल ( सं० स्त्री० ) मन्त्र एव मूलं यस्य । राज्य,  
 राज्यशाका मन्त्रणा हो मूल है । मन्त्रणा ही जिसका  
 प्रधान कारण है वही मन्त्र मूल है ।

मन्त्रपान—बीदधर्मको एक शाखा । इसका प्रचार  
 तिब्बत, नेपाल, भूटान आदिमें ईसापूर्व ७वीं  
 शताब्दीसे है । गुप्तसुयुद्धको भारत-पर्याप्तमें जाना  
 जाता है, कि बीदधर्ममें माना प्रकारको धार्मिक गण  
 और उग्रमय प्रविष्ट हुए थे । इसी प्रकारका बीदधर्म ६५०  
 ई०में निवृत्त देवमें प्रचलित हुआ । अनन्तर और भी  
 ३री, ४थी शताब्दी तक बीदधर्मको अधिक प्रचलन देना  
 जाती है । इस समय उन धर्मका रहस्य केवलमात्र  
 कितना ही अर्धहीन भाषामें समाविष्ट हो कर संवत्स  
 कहलाया । नामात्तुन इस धर्मके प्रवर्तक थे इसीदिने  
 सर्वसाधारणके निकट संवत्सनाका विरोध धार्य था ।

१०वीं शताब्दीमें उत्तर-भारतमें अर्धार्थ काश्मीर तथा  
 नेपालमें तांत्रिक धर्म प्रचलित हुआ । यह तांत्रिक धर्म  
 कालचक्र नाममें विख्यात है । इस धर्मके बीदधर्म  
 संवत्सनाप्रधान अथवा मन्त्र पान करने हैं । इस मन्त्रपानका  
 दूसरा नाम पञ्चपान भी है । उक्त मन्त्रपानके अनुसार  
 पञ्चपान कहलाते थे ।

विद्यादाता मन्त्रदाता धानदो हरिमहिकदः ।  
 पूष्यो वन्द्यश्च सर्वेश्च मातुः जगत्पुष्येर्गुणः ॥  
 मन्त्रगुप्तरीरोनेव गुह्यस्त्वित्युच्यते कुपेः ।  
 अन्वो धन्वो गुह्यममन्त्रान्मारोविना गुह्यः ॥  
 अज्ञानविमिरान्यस्य ज्ञानाञ्जनरत्नाक्षया ।  
 बभूवन्मोक्षितं येन तस्यो भीमुदये नमः ॥  
 अदीक्षितस्य मूर्तस्य निष्कृतिनांति निश्चितम् ।  
 सर्वकर्मजनस्य नरके तल्पगोः स्थितिः ॥  
 जन्मदातामदाता का मातामने गुह्यवस्तुभा ।  
 परं वस्तु न कृतान्ते घोरे संसारसागरे ॥  
 विद्यामन्त्रज्ञानदाता त्रिगुण्यः परकर्मणि ।  
 न कृताः शिल्पमुद्रं संशीलरात्रेभ्योऽपराधः ॥  
 गुह्यनिष्पुगुह्यमहा गुह्यदेवी महेश्वरः ।  
 गुह्यमूर्त्तौ गुह्यः श्रेयः सर्वरामा निर्गुण्यो गुह्यः ॥  
 सर्वनीर्षाभारथैव सर्वदेवामको गुह्यः ।  
 सर्वैवदक्षस्वरय सर्वेभ्यो हरिः स्वयम् ॥  
 अमीहर्षेण द्युते च गुह्यः कर्मो हि रक्षिद्रुम् ।  
 गुह्यो वरं शोचन्दी न हि कर्मो हि रक्षिद्रुम् ॥  
 सर्वे महात्म्य संस्था दद्याथ देवताकथाः ।  
 तमेव शरीं भवति गुह्येव हि देवताः ॥  
 न मुक्तेन विनापाठना न शृणोय विना गुह्यः ।  
 धर्मं दिव्ये न न मुक्तेन च भागं विना तथा ॥

१ मन्त्रदीपति ३० भाग्यमन्त्राणां १६ ५० )

मन्त्रयुक्ति ( सं० स्त्री० ) मन्त्रका प्रयोग ।

मन्त्रयोग ( सं० पु० ) मन्त्रस्य योगः । मन्त्रप्रयोग, मन्त्र पढ़ना ।

“स्तोत्राद्या मन्त्रयोगेन कृत्वा देवी सरस्वती ।

दर्शयिष्यसि यन् सत्यं शक्ये सत्यप्रता हसि ॥”

( गृह्यसू० २६।२ )

मन्त्रला कनामा—मार्गद्राजप्रदेशके कारनुल जिलांतगत नहमलय पहाडका गिरिपथधिशेष । यह अक्षा० १५° ५४ उ० तथा देशा० ७८° ५८ पू०के मध्य विस्तृत है ।

मन्त्रयत् ( सं० अण्० ) मन्त्र इत्यर्थे यत् । १ मन्त्रसदृश, मंत्रके जैसा । ( लि० ) मंत्र अस्त्वर्थे मनुप् । २ मंत्र-युक्त ।

मन्त्रयणं ( सं० पु० ) १ मन्त्रोल्लिखित विषय । २ मन्त्रका एक एक अक्षर ।

मन्त्रवाड़ी—बर्गप्रदेशमें एक छोटा गांव । यह शिगगांव-से ४ मील पूर्वमें अवस्थित है । यहां तीन शिलालिपियां हैं जिनमेंसे एक हनुमान-मार्नरके सामने, दूसरी गांवके पूर्व-फाटकके समीप और तीसरी वामन भादुड़ीको राजसभामें स्थापित हैं ।

मन्त्रवादी ( सं० लि० ) १ मन्त्रज्ञ, मन्त्र जाननेवाला । २ जो मन्त्र उच्चारण करे ।

मन्त्रविद् ( सं० पु० ) मन्त्रं पञ्चाङ्गमन्त्रान् चेतोति विद्-विषय । १ चर । ( लि०, २ मन्त्रदाता । मन्त्रं वेदार्थं चेतोति विद्-विषय । ३ वेदार्थविद्, वेदका अर्थ जाननेवाला ।

“एहं हि एहसायामन्त्रं यं मुञ्चते ।

एकस्तान् मन्त्रविद् भीतः उर्वानर्हति धर्मतः ॥”

( मनु ३।१३१ )

मन्त्रविद्या ( सं० स्त्री० ) तन्त्रविद्या, भोजविद्या, मन्त्रशास्त्र, तन्त्र ।

मन्त्रधुति ( सं० स्त्री० ) गुप्तमंत्र ध्रुवण ।

मन्त्रधुत्य ( सं० क्लृ० ) मन्त्र द्वारा स्मरणीय ।

मन्त्रसंस्कार ( सं० पु० ) मन्त्रस्य संस्कारः । मन्त्रका दश-विध संस्कारः । मन्त्रके दश संस्कार हैं । जिस प्रकार जीव गर्भाधानदि दशविध संस्कार द्वारा विशुद्ध होता है उसी प्रकार मंत्र भी इन सब संस्कारोंसे विशुद्ध होते हैं । परमपत्र गुह्य ही मन्त्रके संस्कारकर्त्ता हैं । वे

मंत्र संस्कार कर शिष्यको देंगे । असंस्कृत मन्त्र निःकल है । मन्त्र देखो । २ विवाह ।

“अवृताश्रुत्काले च मन्त्रसंस्कारकृत पतिः ।

मुलस्य नित्यं दातेह परलोके च योषिताः ॥”

( मनु ५।१५३ )

कुल्लूक और मेधातिथि दोनोंने ही मन्त्रसंस्कारका अथ विवाहविधि लगाया है ।

मन्त्रसंस्कारकृत् ( सं० पु० ) संस्कारं करोति कृ-विषय । पति, स्वामी ।

मन्त्रसंस्किया ( सं० स्त्री० ) मन्त्रस्य संस्किया । मन्त्रका दशविध संस्कार ।

मन्त्रसंहिता ( सं० स्त्री० ) वैदिक मन्त्रसंग्रह, वेदोंका यह अंश जिसमें मन्त्रका संग्रह हो ।

मन्त्रसाधन ( सं० क्लृ० ) मन्त्रस्य साधनं । मन्त्रणाका साधन, मंत्रका साधन, अभिलषित विषयकी सिद्धि ।

मन्त्रसाध्य ( सं० लि० ) मन्त्रेण साध्यः । जो मन्त्रद्वारा साधन किया जाय ।

मन्त्रसिद्ध ( सं० लि० ) मन्त्रेण सिद्धः । मन्त्र द्वारा सिद्ध, जिसे मंत्र सिद्ध हो, जिसका प्रयोग किया हुआ कोई मन्त्र निष्फल न जाता हो ।

मन्त्रसिद्धि ( सं० स्त्री० ) मन्त्रस्य सिद्धिः । मन्त्रकी सफलता, मंत्रमें प्रभाव आना ।

मन्त्रसूत्र ( सं० क्लृ० ) सूत्रमथित मन्त्र, यह रेशम या सूतका तागा जो मन्त्र पढ़ कर बनाया गया हो । इसे गण्डा भी कहते हैं ।

मन्त्रस्पृश ( सं० लि० ) मन्त्रेण स्पृशतीति ( स्पृशोऽनुदेके क्तिन् ) । पा १।२।५ ) इति विद्यन् । मन्त्रकरणक स्पर्श-कर्त्ता, मन्त्र द्वारा स्पर्शकारी ।

मन्त्राराधन ( सं० क्लृ० ) मन्त्रस्य आराधनं । मन्त्रकी आराधना ।

मन्त्रार्पाध्याय ( सं० पु० ) यजुर्वेदोक्त काठकोपनिषद्का ऋषि-अनुक्रमणि नामक अध्याय ।

मन्त्रायली ( सं० स्त्री० ) मन्त्रणासमूह ।

मन्त्रिक ( सं० पु० ) मन्त्रित्वा स्वार्थे कन् । मन्त्री ।

मन्त्रिका ( सं० स्त्री० ) उपनिषद्भेद, मन्त्रिकोपनिषद् ।

मन्त्रित ( सं० लि० ) मन्त्रोऽस्य जातः, इनच या मन्त्र-कः । मन्त्र द्वारा संस्कृत, अभिमन्त्रित ।

मन्त्रिता (सं० स्त्री०) मन्त्रिणी भावः तत्र टाप् । १ मन्त्रिन्य मन्त्रका भाव या धर्म । २ मन्त्रीकी क्रिया, मन्त्रीका काम ।

मन्त्रित्व (सं० पु०) मन्त्रिका कार्यं वा पद, मन्त्रि-पन, मन्त्रिता ।

मन्त्रिन् (सं० पु०) मन्त्री शुभमापणमभ्यास्तोति मन्त्र- इति, यदा मन्त्रयते इति मन्त्र (नन्दिप्रदीपि) वा १।१। १४४ इति णिनि । १ कर्त्तव्यनिश्चयकर्त्ता, यह पुरुष जिसके परामर्शसे राज्यके काम काम होते हैं । पर्याय— धोसचिव, अमात्य, सचिव, धोसख, सामवायिक । इसका लक्षण—

“मन्त्री भक्तः शुचिः शूरोऽनुकृतो बुद्धिमान् प्रभो ।

भाषणीभिरयादिदुःखानः परिच्छेदो मुदंगमः ॥”

(कविकल्पप्रता)

शुचि, यौव, अनुकृत, बुद्धिमान्, क्षमाशील, न्याय- शास्त्रमें विशेष पारदर्शी, परिच्छेदयुक्त और सुदेशोत्पन्न व्यक्ति मन्त्री होनेके योग्य हैं । मत्स्यपुराणमें लिखा है—

“यहभिर्मन्त्रयेत् परमं राजा मन्त्रं वृषत् वृषत् ।

मन्त्रिणामपि नो कुर्वीत् मन्त्री मन्त्रप्रदानम ॥

न क्वचित् कस्य विभ्रमस्य भवतीह सदा वृष्यात् ।

निश्चयश्च सदा मन्त्रे कारं एवेन मूर्खिणा ॥”

(मत्स्यपु० १८६ अ०)

राज्याकी चाहिये, कि वे प्रत्येक मन्त्रीके साथ भिन्न भिन्न समयमें मन्त्रणा करें । मन्त्रीको जो दूसरे मन्त्रीके निष्ठ मन्त्रणा न प्रकाश करनी चाहिये, करनेमें भारी अनर्थ होता है । मन्त्रणा दोष ।

२ परामर्शदाता, सलाह देनेवाला ।

मन्त्रिपति (सं० पु०) मन्त्रिवर, प्रधान अमात्य ।

मन्त्रिप्रधान (सं० पु०) मन्त्रिणां प्रधानः । मन्त्रिश्रेष्ठ, प्रधान मन्त्री ।

मन्त्रिसमुह्य (सं० पु०) प्रधान मन्त्री ।

मन्त्रिबंध—नारोराज इन्द्राय मन्त्रिबंधके आदिपुरुष थे । इनका रत्नमणिरिषे, कौचरे नामक स्थानमें जन्म हुआ था । १६६१-६०में इन्होंने मरहटा-सैनापति यनाजी-राय बाइपका मन्त्रित्व ग्रहण किया ।

जब महाराष्ट्र-राज शाहू सनारा लौट रहे थे, उस समय ताराबाईने उन्हें रोकनेका हुक्म दिया । तदनु-सार धनाज्ञाने उनका मार्ग रोका था । इसी विश्रीदके समयमें नारोराज राजाके विश्वासपात्र बन गये । राजा-ने उन्हें ‘राजाहू’की उपाधि और पत्रितोषिक स्वरूप ४०००००० रुपये । चार वर्ष बाद मर्दान् १७५६ ई०में उन्होंने ‘मन्त्रि’का पिताघ पाया ।

वे अत्यन्त धार्मिक थे । १७६१ ई०में इनके पत्नये सिद्धपुर और आजानप्राममें एक धमशाला खोली गई । इन्होंने अपने प्राममें जो बहुमते मन्दिरादि बनवाये थे तथा प्रात्यनिको यथेष्ट भूमिपत्ति दान की थी ।

१७४७ ई०में नारोराजके परलोक निवारने पर उनके लक्षके धनश्यामने ‘मन्त्री’ का पद प्राप्त किया । धन-श्यामकी जो ग्राम इनाममें मिले थे, वेगया वाय्नाजी-बाजोरायने उनकी सनद दी थी ।

१७९६ ई०में धनश्यामने गिलाडी (तातवाय) में एक मन्दिर बनवाया । अन्धाया इसके उद्देशने काजी-क्षेत्रमें जा कर अनेक मत्कार्य और दानध्यानादि किये थे । यहाँ पर ये कुछ मन्दिर और विश्रामागार बनवा गये हैं । इसके बाद संन्यासधर्मका अग्रसम्बन कर वे जीयनके शेषकाल तक काजीमें ही रहे । १७८० ई०में यहाँ पर उनकी मृत्यु हुई ।

मृत्युके बाद धनश्यामके पुत्र रघुनाथ राय सिद्दा-सन पर बैठे । १७४३ ई०में उनका जन्म हुआ था । रघुनाथ राय अनेक मत्कार्य करके १७८६ ई०में परलोक-की निधारे ।

अनन्तर उनके लक्षके जयवल्लरायने मन्त्रि-पद प्राप्त किया । १८३२ ई०में उनकी मृत्यु हुई । अन्तिम वेगया धाजीरायने भन्यापयुक्त उनके अपिष्टन स्थान स्त्रीम लिये ।

रघुनाथराय जयवल्लका १८०६ ई०में जन्म हुआ । १८३६ ई०में महाराजा प्रतापसिंह द्वारा ये मन्त्रि-पद पर विदाये गये । इन्होंने अपिष्टन स्थानोंमेंमें उनके मिया की संत मनी अपने दृग्दर्शन कर लिये । वे न्यायपरायणता और साहमिकताके लिये विशेष प्रसिद्ध थे । मन्त्री हो कर इन्होंने मुन्नाकरुपमें राज्य प्राप्ति किया था । १८४४ ई०में इन्त्यामपुरमें उनकी मृत्यु हुई ।

इसके बाद मन्त्रिशंशके प्रतिनिधि उनके लड़के शानन्दराय रघुनाथने मन्त्रि-पद प्राप्त किया। १८७४ ई०में ये एक द्वितीय श्रेणीके सरदार हुए। इनकी वार्षिक भाय प्रायः १८१,००० रु० की थी।

मन्त्रिवर (सं० पु०) मन्त्रिणां वरः। मन्त्रिश्रेष्ठ।

मन्त्रिपिक (सं० पु०) चिन्त्यपर्वतका पार्श्ववर्ती देशभेद।

मन्त्री (सं० पु०) १ मन्त्रिन देवो। २ शतरंजकी एक गोटी का नाम। यह राजासे छोटी मानी जाती है और पक्षी की शींग सब गोटियोंमें श्रेष्ठ होती है। यह ड्रेडो सीधी सब प्रकारका चाले चलती है। इसे वजोर या रानी भी कहते हैं।

मन्त्रेश्वर—यज्ञमान जिलान्तर्गत एक गांवका नाम। यह अक्षा० २३' २५' ३०" उ० तथा देशा० ८८' ६ पू०के मध्य अवस्थित है। यहां एक घाना है।

मन्त्रीदक (सं० स्त्री०) मन्त्रपूत उदकं। मन्त्रपूत जल, मंत्र पढ़ा हुआ पानी।

मन्थ (सं० पु०) मन्थयेत्नेन मन्थ करणे धम्। १ मन्थ-दण्डक, मथानी। २ दूध वा जलमें मिला कर मथा हुआ सत्तु। भाष्यप्रकाशमें लिखा है, कि चार पल शीतल जलमें एक पल चूर्ण द्रव्य डाल कर मट्टीके बरतनमें अच्छी तरह मथनेसे मन्थ तैयार होता है। इस मन्थ-पानकी मात्रा दो पल है।

वैद्यकशास्त्रमें अनेक प्रकारके मन्थोंका उल्लेख है। घी, सत्तु, अनार और गुड़से एक प्रकारका मन्थ बनता है। घां, सत्तु, और जलसे दूसरे प्रकारका तथा दाघ, शक्रदू, और ईवके रससे तीसरे प्रकारका मन्थ प्रस्तुत होता है। इसका गुण सद्योवृत्तर, पिपासा और श्रम-नाशक माना गया है।

३ फाण्डमेद, औषधकी पानीमें अंडिनेका एक प्रकार। प्रस्तुत प्रणाली—एक पल द्रव्यको चूर कर एक कुट्टय भर्थात् भाष सेर जलमें डाल दे। पीछे मट्टीके बरतनमें रख कर उसे अच्छी तरह मथ कर कपड़ेमें छान ले। इसकी सेवनमात्रा दो पल है।

४ एक प्रकारका ज्वर जो बालरोगके अन्तर्गत माना

जाता है। वैद्यकके अनुसार यह रोग ज्वरमें गी खाने और पसीना रोफनेसे होता है। इसमें रोगीको दाह, भ्रम, मोह और मतली होती है, प्यास अधिक लगती है, नींद नहीं आती, मुंह लाल हो जाता है और गलेके नीचे छोटे छोटे दाँने निकल आते हैं।

५ मथना, विलोना। ६ क्षुब्ध करना, हिलाना। ७ गर्दन करना, मलना। ८ ध्वस्त करना, मारना। ९ मृगको एक जातिका नाम। १० सूर्यकी किरण। ११ आंखका रोग। इसमें आंखोंसे पानी या कीचड़ बहता है।

मन्थक (सं० पु०) १ एक गोबकार मुनिका नाम। २ मन्थक मुनिके वर्गमें उत्पन्न पुत्रय। (त्रि०) ३ मन्थन-कारी, मथनेवाला।

मन्थज (सं० स्त्री०) मन्थेन मन्थनेन जायते इति जन-ड। नवनीत, मषखन।

मन्थदण्डक (सं० पु०) मन्थाय मन्थनाय यो दण्डः, ततः स्थायै कन्। मन्थानुदण्ड, मथानी। पयांप—वैशाख, मन्थ, मन्थान, मन्था, करहर्षक, मन्थन, भनाट, तक्राट।

मन्थन (सं० स्त्री०) मन्थ-ल्युट्। १ विलोडन, मथना। २ अवगाहन, डूब डूब कर तट्योंका पता लगाना। (पु०) मन्थान्त्यनेनेति मन्थ करणे-ल्युट्। ३ मन्थानुदण्ड, मथानी। ४ कुंधन, कंधना। ५ अग्निमन्थयुक्त।

मन्थनघटी (सं० स्त्री०) अन्नपो घटः अन्नार्थे स्त्रीय, मन्थ-नाथे मन्थनस्य धा। घटी, दही मथनेका बरतन।

मन्थनपर्वत (सं० पु०) मन्थशैल, मन्थर पर्वत।

मन्थरगिरी देवी।

मन्थनोद्भव (सं० स्त्री०) नवनीत, मषखन, नैर्नु।

मन्थर (सं० स्त्री०) क्लेशयतीति मन्थ-वाहुलकाम् अरन्। १ कुसुम्भी, लाल रंग। (पु०) २ फीय, खजाना। ३ फले। ४ दाघ, धाना। ५ मन्थानुदण्ड, मथानी। ६ सूचक, शुभ-चर। ७ मन्दागामी योद्धा। ८ कोष, गुस्ता। ९ वैशाखका महोना। १० दुर्गा। ११ मंथर। १२ हिरण। १३ एक प्रकारका ज्वर, मन्थज्वर। १४ मषखन। १५ फल। (त्रि०) १६ मन्थ, सुस्त। १७ पृथु, भारी। १८ यम, डेढ़, भुका हुआ। १९ निश्चय। २० जड़, मन्थ बुद्धि। २१ नीच, अधम।

मन्थरेत्यर ( सं० पु० ) उदरविशेष । मन्थ देतो ।  
 मन्थरा ( सं० स्त्री० ) मन्थर-त्रियां टाप् । कैकेयोकी  
 दाम्नी । रामके राज्यभिक्षाकाल हाल सुन कर मन्थराने  
 रामको वनवास देनेके लिये कैकेयोकी उमाडा ।  
 कैकेयाने मन्थराके बहकाने पर राजा दशरथसे पूर्व-  
 प्रतिज्ञानुसार दो वर मगि, एक रामचन्द्रको वारह वर्ष  
 वनवास और दूसरा भरतकी राजगद्दी । मन्थरा कैकेयो-  
 के साथ मायकेसे आई थी । ( रामायण )

'रामाभिषेके विष्णार्थं वतल अशानयनः ।

मन्थरा प्रविशत्यादी कैकेयीत्र ततः परम् ॥'

( अष्टाध्यायसामा० भयोध्याका० २ भ० )

मन्थराधि ( सं० पु० ) मध्यकाय, मँभोला आकार ।  
 मन्थय ( सं० पु० ) मन्थ बाहुल्यकात् अय । चामरव्याल,  
 चंथरकीं यायु ।  
 मन्थशैल ( सं० पु० ) मन्थाचल, मन्धर पर्यंत ।  
 मन्धरिणि देतो ।

मन्थसार ( सं० पु० ) नयनीत, मफलन ।  
 मन्था ( सं० स्त्री० ) १ मथनहेतु । २ मेथिका, मेथी ।  
 मन्थाचल ( सं० पु० ) मन्थाद्रि, मन्धरपर्यंत ।  
 मन्थान ( सं० पु० ) महत्तेऽनयेति मन्थ-बाहुल्यकान्  
 भानच् । १ मन्थदण्डक, मथानी । २ आरण्यघ, जमलतास  
 ३ मन्धर पर्यंत । समुद्र मथनेके समय यह पयंत मन्थन-  
 वृत्त बनाया गया था, इसीसे इसका नाम मन्थान हुआ है ।  
 ४ महादेव, शिव । ५ एक वर्णिक छन्द । इसके प्रत्येक  
 चरणमें दो लगन होते हैं । ६ अत्येका एक भेद ।

मन्थानक ( सं० पु० ) मन्थान इवेति ( इनेमिहृती ) या  
 श्रांशेइ इति कन् । मृणभेद, एक प्रकारकी घास ।  
 पर्याय—हरित, इद्रमूल, लूणाद्दु, प । गुण—स्निग्ध, श्लिष  
 और मधुर ।

मन्थानभैरव ( सं० पु० ) अम्बुविस रोगाधिकारमें रसी-  
 पविशेष । प्रस्तुत मणाली—शोषित पाटा, तांबा, दिव्य,  
 पुष्पकमूल, सैन्धव, मन्थक, हरिताल और फट्टकी इनका  
 समान भाग ले कर चूर्ण बनाये । पीछे उस चूर्णको  
 पुनर्णथा, क्षुपदाय, त्रिगुण्टी, तण्डुलीयक और त्रिक  
 कोजातकीके रसमें एक दिन मर्दन करे । इसीका नाम  
 मन्थानभैरव है । इसका परिमाण एक मात्रा माना गया

है । इस भोजनको मनुके साथ चाटनेसे अम्बुविरोग  
 शारीय होता है । ( रश्मिचिरगा ६ भ० )

२ एक प्रामदृष्टयोगी, दृष्टयोग दीपिकामें इनका  
 उल्लेख थाया है ।

मन्थावृत् ( सं० पु० ) वेदवर्णित सर्वभेद । यह वृत्त पर  
 धीयें मुंह लटक रहता है । ( ऐन्दवशा० ३१६ )

मन्थिवृ ( सं० पु० ) मथनकारी, मथनेवाला ।

मन्थिन ( सं० त्रि० ) मन्थ-अन्त्यर्थे इति । १ पीडाकारक ।

२ मन्थनयुक्त । ३ मथनेवाला । ( त्रि० ) ४ मथा  
 हुआ सोमरस ।

मन्थिनो ( सं० स्त्री० ) मन्थो मन्थनं अन्त्यस्थां मन्थ-  
 इति ङीप् । दधिमन्थनपात्र, दही मथनेका बरतन, मटका ।

पर्याय - गगरी, कलसी ।

मन्थिप ( सं० त्रि० ) मथित सोमपात्रकारी, मथा हुआ  
 सोमरस पानेवाला ।

मन्थियम् ( सं० त्रि० ) मथित सोमयुक्त, त्रिसमें मथा हुआ  
 सोमरस हो ।

मन्थिशीचिस् ( सं० त्रि० ) मथित सोमशीमिश्रोत् ।

मन्थी ( सं० त्रि० ) मन्थिन देतो ।

मन्थु ( सं० पु० ) पीरयतके एक पुत्रका नाम ।

मन्थोरक ( सं० पु० ) दुग्धममुद्र, मण्डोरक ।

मन्थोदधि ( सं० पु० ) मथनेसेमन्थ मन्थ कर्मणि मन्थ्  
 मन्थश्चासौ उदधिश्येति, मन्थाय उदधिरिति या । शीर-  
 सागर ।

मन्ध ( सं० पु० ) मन्धने इति मन्धि धन् । १ मनि । २  
 हस्तिजतिविशेष, एक प्रकारका हाथी । इसकी

छाती और मध्य भागकी बन्ति दोल्लो, पेट गन्धा, घनदा  
 मोटा, गन्धा, कोष और पूँछकी चंथरों मोटी होती है ।

दृष्टि इसकी मिट्टके समान क्षेत्रमें लगती है । ३ यम ।  
 ४ जटारानलविशेष । घायु और इन्धेष्माकी मात्रा

अधिक रहने पर अग्नि धीमी हो जाती है । ५ अनाय ।  
 ६ मन्थ । ७ रोगी । ( त्रि० ) ८ भीमा, सुगत । ९

श्लिषित, दोला । १० आरतमी । ११ कुबुद्धि, मुरंग ।  
 १२ मल, पुष्ट ।

मन्धक ( सं० त्रि० ) १ निर्वोध, मुरंग । २ मन्धरानी, मृदु ।  
 ३ बुद्धिमन्थ, मरुत । ( पु० ) मन्धनार्थक, जालि-  
 विशेष ( मन्० अन्ध० )

मन्दकृष्णि ( सं० पु० ) एक ऋषिका नाम ।

मन्दकर्म ( सं० स्त्री० ) १ प्रहृगणकी मन्द स्पष्टगतिका कल्प निराशनेकी एक क्रिया । ( त्रि० ) २ निश्चेष्ट, कार्यहीन ।

मन्दकारिन् ( सं० त्रि० ) मन्द करोति कृ-णिनि । अपकारकारक, गुरुसान करनेवाला ।

मन्दग ( सं० त्रि० ) मन्द अल्प गच्छतीति गम ड । १ मृदु गामी, धीमा चलनेवाला । ( पु० ) २ महाभारतके अनुसार प्राकटीपके अन्तर्गत चार जनपदोंमेंसे एक ।

मन्दगति ( सं० स्त्री० ) प्रद्वैकी गतिकी यह अवस्था जद ये अपनी कक्षामें घूमते हुए सूर्यसे दूर निकल जाते हैं । ( त्रि० ) २ मंद गतिविशिष्ट, धीमा चलवाला ।

मन्दगामिन् ( सं० त्रि० ) मन्द गच्छतीति गम्-णिनि । मृदु-गमनशील, धीमा चलनेवाला । पर्याय—मन्धर, रचैर-गामी, मन्द ।

मन्दचेतस् ( सं० त्रि० ) मन्द चैता यस्य । दुरात्मा, पापाशय ।

मन्दजननी ( सं० स्त्री० ) मन्दस्य शनैश्चरस्य जननी । शनैश्चरकी माता, मूर्खपत्नी ।

मन्दजरस् ( सं० त्रि० ) जो धीरे धीरे बुढ़ापेमें पहुँच रहा हो ।

मन्दज्ञात ( सं० त्रि० ) धीरे धीरे उत्पन्न ।

मन्दट ( सं० पु० ) मन्दमततीति अट्-अच्, शकन्ध्वा-दित्वाच् स्याथुः । पारिमद्रवृक्ष, देवदार ।

मन्दता ( सं० स्त्री० ) मन्दस्य भावः तल-टाप् । १ आलस्य । २ मन्दत्व, धीमापन । ३ क्षीणता ।

मन्दधी ( सं० त्रि० ) मन्दा धीर्यस्य । अल्पबुद्धि, कम अहङ्गवाला ।

मन्दधूप ( सं० पु० ) काला धूप, काला डामर ।

मन्द्य ( सं० स्त्री० ) मन्दते स्तीति अनेन मन्द- ( कृष्णवि-मन्दिनिभाजः क्युः । उष् २।८१ ) इति करणे क्यु । स्तीत ।

मन्दनाम ( सं० पु० ) प्राचीन जनमेद । इनका दूसरा नाम महानाग भी था । मन्डनाम देता ।

मन्दारिधि ( सं० पु० ) मन्दीश घृति ।

( सं० त्रि० २।३४ टीका )

मन्दपाल—धार्मिक तपस्वी और वेदपारण महर्षि । उन्होंने बहुत दिनों तक तपस्या की । अन्तिम श्रेणियों उत्तार्ण हो कर ये पितृलोककी गये थे । सन्तान उत्पादन न करनेके कारण इन्हें अभिलषित लोककी प्राप्ति नहीं हुई । इन्हें अपने कर्मफलोंके भोगसे वञ्चित होना पड़ा । अतएव थोड़े समयमें अनेक पुत्र उत्पादन करनेकी इच्छासे महर्षि पिहङ्गम मण्डलमें गये । यहाँ शङ्खकका रूप धारण कर इन्होंने जरिता नामकी एक शार्ङ्गिकाके गर्भसे ४ पुत्र उत्पन्न किये । न्वाण्डप वनदाहके समय उन चारोंकी वध होनेकी नीयत आ गई थी । अतएव मन्दपालने अग्निकी स्तुति की । इस स्तुतिसे प्रसन्न हो कर अग्निने मन्दपालके चारों पुत्रोंकी रक्षा की ।

( महाभारत )

मन्दप्रज्ञ ( सं० त्रि० ) मन्दा प्रज्ञा यस्य । अल्प ज्ञान ।

मन्दफल ( सं० स्त्री० ) गणित उद्योतिषमें ग्रहगतिका एक भेद ।

मन्दबुद्धि ( सं० त्रि० ) मन्दा बुद्धिर्यस्य । १ मृदुबुद्धि । ( स्त्री० ) २ मंदा बुद्धि, अल्प बुद्धि, कम अहङ्ग ।

मन्दभागो ( सं० त्रि० ) मन्दभाग्य-स्त्रियां ङीप् । हत-भागिनो, अभाग ।

मन्दभाग्य ( सं० त्रि० ) मन्द भाग्य यस्य । हतभाग्य, दुर्भाग्य ।

मन्दभाज् ( सं० त्रि० ) मन्द भाज षिव । मन्दभाग्य, अभाग्य ।

मन्दभाषिणी ( सं० स्त्री० ) मृदुभाषिणी, मधुवादिनी ।

मन्दगति ( सं० त्रि० ) मन्दा गतिर्यस्य । मृदु बुद्धि, वैय-कृत ।

मन्दमेघस् ( सं० त्रि० ) मन्दा मेघा यस्य । मंद्बुद्धि ।

मन्दमन्द ( सं० अर्थ० ) धीरे धीरे ।

मन्दयन्त्रस्य ( सं० पु० ) यजमानोंके प्रीतिविधायक इन्द्र-सला सोम ।

मन्दयन्ती ( सं० स्त्री० ) दुर्गा ।

मन्द्यु ( सं० त्रि० ) स्तुतिगुणक ।

मन्दर ( सं० पु० ) मन्द बंहुलकान् अरः । १ मन्मथील । पुराणानुसार एक गपंत जितसे देवताओंने समुद्रकी मथा था ।

“मन्थानं मन्दरं कृत्वा तथा नैवत्र वासुकिम् ॥”

( भाग्य १।१७।१३ )

महाभारतमें लिखा है, कि यह पर्वत प्यारह हजार योजन नीचे गड़ा हुआ था। सभी देवताओंमें मिल कर इसे उठानेकी कोशिश की, पर वे धनकार्य न हो सके। अनन्तर प्राणाने विष्णुसे यह झाल्ट जा कटा। विष्णुने वासुकिकी पर्वत उखाड़नेका हुकुम किया। तदनुसार वासुकि कल्पपूर्वक इसे उखाड़ कर समुद्रके किनारे ले गये। पीछे देवासुरोंने इसे मन्थानद्वीप बना कर समुद्र मथा। समुद्रमन्थन मन्द देखो। ( भाग्य १।१७, १८ भ० )  
२ मन्दा, आक। २ मय्य। ४ मुकुर, आर्या। ५ मोतीका यह द्वार जिसमें वाट था सोलह लड़ियां हैं। ६ बृहस्पतिद्वाराके अनुसार प्राणादीके योग मन्थानमें हुआ। यह छकोता और तीन हाथ लंबा होता है। इसमें द्वा भूमिकाएँ और अनेक कंठ होते हैं। ७ कुजा द्वीपके एक पर्वका नाम ८ एक वर्षाशुक्ला नाम। इसके प्रत्येक चरणमें एक भगण होता है। ( वि० ) ९ मन्द, घोमा। १० मडा।

मन्दरगिरि—विहार और उड़ीसाके भागलपुर जिलान्तर्गत दांका मय-द्विपजन्में एक प्रसिद्ध पर्वत। यह अक्षां २४° ५०' २८" ३० तथा देशां ८७° ४' ४१' पू०के मध्य विस्तृत है। यह पहाड़ सात सौ फुटमें लंबा भी अधिक ऊँचा है। हिन्दुओंमें यह मन्दरगिरि बड़ा ही पवित्र माना जाता है। इस पहाड़ पर शूल या गुज आदि नगों हैं। यहाँ कहीं छोटे छोटे मरोवर इसके चारों ओर एक सर्पाकार मूर्ति घेरित देखा जाता है। पुराणोंमें कहा गया है कि विष्णुके कानसे एक प्रकाण्ड ईश्वर उत्पन्न हुआ। इस ईश्वरने ब्रह्मा, विष्णु और शिवको संहार करना चाहा। भगवान् विष्णुने इसके साथ द्वा वर्ष तक युद्ध कर इसका निर नाश किया। इस पर भी यह परदेसी तरह ही युद्ध करने लगा। यह दे। विष्णुने इसी मन्दरगिरि पर उसे परत दिया और पुनः दे दबा रखा। लोगोंको धारणा तथा पुराणोंका मत है, कि तबसे विष्णु सदाके लिये इसी पहाड़ पर धाम करने है। मधु और कैटभ नामक दैत्यके मारनेमें भगवान्

विष्णु यहाँ मधुसूदन नामसे विख्यात है। यथा—

“मन्दरे मधुसूतः।” ( पुराण )

कुछ लोग यह भी कहते हैं, कि सुरासुरोंने मिल कर जो समुद्र मन्थन किया था, यह इसी मन्दरगिरि पर्वतमें ही किया गया था। किसी मुनिने लक्ष्मीको धार दे दिया, कि तुम समुद्रमन्थनमें प्रवेश करो। फलतः मेगा ही हुआ। इहाँ लक्ष्मीको उतार करने तथा अनन्त धर्मकी भण्डारोंमें समुद्रका मन्थन किया गया था। उस समय यह पर्वत मथानी और मरुत्त फणाधारी वासुकी नाम रखते बना था। विहारके भागलपुरका यही मन्दरगिरि पुराणोंक मन्दर पहाड़ है। इसमें यहाँके अनेक निश्चित हिन्दुओं को भले ही मन्देश हो सकता है। किन्तु यहाँके और लोगोंको जरा भी मन्देश नहीं है।

इसके अलावा इस पहाड़ पर अनेक प्राकृतिक और मानव निर्मित कीचुहलोत्पादक पुराणीयिण भग्नावशेष मौजूद हैं। इसके निम्न तलमें दो मोलके भीतर स्थित दो छोटे छोटे मालाब हैं। सिवा इस मन्दके मथान तथा परधरकी कितनी ही मूर्तियाँ दिगाई देती हैं। इन सब चोरीको देग कर अनुमान होगा है, कि बहुत दिन पहले यहाँ कोई एक नगर था। यहाँ इस तरहकी एक जनप्रति भी है, कि इस नगरमें ५३ गली और ५२ बाजार थे। इसके सिवा इस पहाड़ पर ८८ छोटे छोटे मालाब थे। मन्दरगिरिके पादमूलमें एक मन्दिर है, जो पहाड़में पड़ा है। इस मन्दिरके निकट अर्धक्य छोटे छोटे चौकोन मन्देश है। कहते हैं, कि दोनगदोके समय मन्देश मन्दरय यहाँ आ कर शेष दान किया करने थे। इसके कुछ ही दूर पर एक टूटी कुटी इमारत है। कुछ लोगोंका कहना है, कि यह सोलताजरा राज प्रासाद है।

इस अष्टादिकाने कुछ ही दूर पर एक इगमदा है जो परधरका बना हुआ है। इस पर मन्देश भागमें लिखा एक जिलाके भी दिगाई देता है। इस जिला-लेगमें मान्य होता है, कि अहमे ३० वर्ष पहले इस नगरका मौजाम फायद रहा। इस समय पीर मन्थानिके दिन मधुसूदनकी प्रतिमूर्ति नगरमें इस पहाड़ पर लौग गे जाने है। इस समय यहाँ दूर दूरमें का दर ३० ४० हजार आदमी सम्मिलित होते हैं। इसके उपरान्त



यहां १५ दिनों तक मेला लगा रहता है। काञ्चीपुर के चोटराजने व्दाधि प्रमन हो कर सब तीर्थोंका पर्यटन किया था, किन्तु ये कर्त्तों नोमोग नहीं हो सके। अन्तमें इस पहाड़ के समीपकी एक पोगरीमें स्नान कर रोगमुक्त हुए थे। इसीलिये इसका पापहारिणी नाम हुआ। लोगोंका कहना है, कि यहां ब्रह्माने लावो वय तक भगवानकी तपस्या की थी। इन्होंने तपस्याके अन्तमें एक सुपारी और अन्यान्य पदार्थ यत्कण्डमें डाला था। यह सुपारी पीछे इसी पोगरीमें गिर पड़ी थी इससे इसका जन्म पुण्यतोया हुआ। इसमें स्नानमात्रसे ही राजाको वर्याय दूर हुई थी। निकटवर्ती ग्रामके अधिवासी मृन्देहको ला कर इस पुण्यतोया पुरकारिणोमें फेंकने हैं।

मन्दर शृङ्ग पर एक बौद्ध मन्दिर है। जैन इस मन्दिरको बहुत पवित्र समझते हैं। यहां सीताकुण्ड नामका एक तालाब है जिसकी लम्बाई १०० फुट और चौड़ाई ५० फुट है। जनरथ है, कि सीता और राम वन गमनके समय यहां कुछ दिनों तक रहे थे। सीताजी इसीमें स्नान किया करती थीं इसीसे यह वर्त्तमान सीताकुण्ड नामसे विख्यात हुआ।

बहुतेरे पण्डितोंका कहना है, कि कालापहाड़ सब देवदेवीकी मूर्तियोंको ध्वंस करता हुआ यहां आ पहुँचा। उसके यहां पहुंचनेसे पहले ही यहांके अधिष्ठाता मधुसूदनने इसी सीताकुण्डमें प्रवेश किया था और मिट्टीके भीतर ही भीतर आप भागलपुरके निकट काजराती नामक जलाशय या क्षोल्में पहुंचे। अन्तमें एक पण्डाकी उन्हींसे स्वप्न दिया। इस पण्डाने मधुसूदनको ला कर मन्दारगिरि पर पुनः स्थापन किया।

सीताकुण्डसे कई फीटकी दूरी पर ऊपरमें एक शङ्खकुण्ड मौजूद है। शङ्ख नामका एक राक्षस इस जलाशयमें रहा करता था। इसीसे इसका शङ्खकुण्ड नाम हुआ। इस कुण्डको लम्बाई तीन फीट और चौड़ाई १ फुट है। महामारतमें लिखा है, कि इसी जङ्घासुरके जरीरसे पञ्चाजन्म शङ्ख बना था। इसके सिवा आकाशगङ्गा नामका एक और भी प्रसवण है। मन्दरगिरिके गहरीमें पत्थरकी बहुतसी मूर्तियां हैं जिनमें नरसिंहरूपकी विष्णु मूर्ति उत्तम है।

वराहपुराणने मालूम होता है, कि भगवान् विष्णुने जियके पुत्र स्कन्धसे कहा था, कि मन्दर सब तीर्थोंसे धरे छे हैं। यहां लक्ष्मीके साथ विष्णु सदा वास करने हैं। योगी जनका तो वास ही हो। अभी यहां स्थानीय जैनी एक वृहत् जैनमन्दिर बनवा रहे हैं।

मन्दरहरिण (सं० पु०) जम्बूद्वीपके आठ उपद्वीपोंमेंसे एक। मन्दराय—मुगल-रणतरीका एक अध्याय। १६०२ ई०में बङ्गालके अन्तर्गत शणद्वीपको ले कर पुर्तगीजोंके साथ मुगलोंका जो युद्ध हुआ उसीमें ये मारे गये।

मन्दविप (सं० वि०) १ विपहीन। २ अति अल्प विप-विशिष्ट।

मन्दविसर्पिन् (सं० त्रि०) मंद मंद गमनशील, धीरे धीरे जानेवाला।

मन्दशोर—मध्यभारतके ग्यालियर राज्यका एक नगर। यह चम्पल नदीकी एक शाखा पर अवस्थित है और उज्जयिनीसे उत्तर-पश्चिम प्रायः ८० मील दूर है। पिण्डारी युद्धके बाद मंदशोरमें ही होलकर और अंगरेजोंके बीच संधि (१८१८ ई०में) हुई थी। यहां एक रेन्वे स्टेशन और मुसलमान-राजाओंके समयका एक पत्थरका कुम्भें दुर्ग है। यहांके अधिवासी मंदशोरकी वशोर कहते हैं। यही रक्तिदेवकी राजधानी सुप्रान्तीन दशपुर है।

इस नगरमें कुमारगुप्त और बन्धुवर्माको एक शिलालिपि है। उस लिपिमें कुमारगुप्तके राज्यप्रामनका उल्लेख है। उनके अधीन विश्वयर्माके पुत्र बन्धुवर्मा दशपुरके शासनकर्त्ता थे।

मन्दस्नान (सं० पु०) मन्दते स्नुह्यादिकं प्राप्नोतीति मन्द- (शृगिभिमन्दिवादिभ्यः क्त्वा। उण् २।५०) इति सानच्। १ अग्नि। २ प्राण। ३ निद्रा। (त्रि०) ४ मोक्षमान, प्रसन्न करनेवाला।

मन्दसानु (सं० पु०) मन्दं मन्दं सनोति द्वातोति मन्दं सन् यादुलकाद् उन्। १ न्यम। २ शय।

मन्दहार—राजपूतोंका एक सम्प्रदाय। मुजफ्फर नगर तथा सहारानपुर जिलेमें इस सम्प्रदायके अनेक राजपूत देये जाते हैं। पञ्चायके निकटवर्ती स्थानोंमें भी बहुतसे मन्दहार रहते हैं। कहे हैं, कि ये गणोध्यासे आ कर

बन्देल तथा घर राजपूतोंको भगा कर छिन्दमें बस गये। बाद उसके इन्होंने पतियालामें कलापेत राजधानी बसाई। अगो वे यमुना नदीके किनारे चौहानके दक्षिणमें सर्वत फैले हुए हैं। किरोजग्राहने पतियालाके अन्तर्गतों समान नामक स्थानमें इन्हें मूख मताया था। मन्दहार, कन्दहार, घरगुजार, शंखराल तथा पणिहार राजपूतोंके मतसे ये रामचन्द्रके पुत्र लयसे उत्पन्न हैं। इसलिये वे अपनेको सूर्यवंशीय राजपूत बतलानेमें गौरव समझते हैं। कर्नालमें जो मन्दहार ई वे भापसमें भावन प्रदान नहीं करते।

मन्दा ( सं० खो० ) मन्द-खियां टापू। संक्रान्तिविशेष। सूर्यको यह संक्रान्ति जो उत्तरफल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तरभाद्रपद भीर रोहिणी नक्षत्रमें पड़े। ऐसी संक्रान्तिमें संक्रमणन्तर तीन दृष्ट तक पुण्यकाल होता है।

“मन्दा मन्दाकिनी ध्माहो घोरा चैत्र मशोदरी।

पक्षमी मिभिता प्रोषा संक्रान्तिः यथा यत् ॥

मन्दा ध्रुवेषु विशेषा मूर्दी मन्दाकिनी तथा।

क्रिमे ध्माट् ध्मा विगानीषादुमे घोरा प्रकीर्तिता ॥”

( विविक्तवत् )

२ यज्ञीकरत्र, लक्षीकरत्र। ( ति० ) मं०, धीमा। ४ जिधिल, ढोला। ५ खरान, निहृष्ट। ६ विगडा हुला, मष्ट भ्रष्ट। ७ सस्ता, सामान्य मूल्यसे कम मूल्य पर विकते-पाला, जो महंगा न हो।

मन्दाक ( सं० ह्री० ) मन्द्यते स्तयते इति मन्द बाहुलकान् भाक। १ स्तयन, स्तुति। २ श्रोत।

मन्दाकिनी ( सं० खो० ) मन्दाकानि श्रोतांसि स्रग्धस्याः इति मन्दाकिनि, यदा मन्दमकिनुं श्रोतमस्याः पिनि, मन्दनाम्नः सरसः भवति गच्छन्तीति। १ स्वर्गगङ्गा। पृथ्वीय—विपद् गंगा, स्वर्गदे, सुरदीर्घिका, स्वर्गङ्गा, देवभूति, स्वर्गवसा, सुरेश्वरो। प्रथमपर्वणके मतसे,—

“मभानायात वा न्येन वा च मन्दाकिनीं स्तुता।

वाजनायुगविस्तीर्णा प्रसेनो योजना स्तुता।

शौरभुवमना नरवस्तुहृत्प्रद्विषो।

वेङ्कटेश्वरं ब्रह्मलोकेश्वरं ततः श्रुतं कर्मागतम् ॥”

( इत्ये० ५० अन्तस० १४ अ० )

गंगाकी जो प्रधान धारा स्वर्गको चली गई है उसका

नाम मन्दाकिनी है। इसकी लम्बाई भयुक्त योजन भीर चौड़ाई एक योजन है। इसका जल दृष्टके जैसा मनुष्यर्ष तथा धर्म्युल्लान्तरकूपक है। यह धारा वेङ्कटमें प्रसलोक होतो हुई स्वर्गको चली धार है।

पर्वमान धर्दिकाध्रमके उत्तर गङ्गाकी जो पद गाया वह गई है उसका भी नाम मन्दाकिनी है। कन्दपुराणके हिमयम्लपदमें इसका माहात्म्य वर्णित है।

२ संक्रान्तिविशेष। मृदुगणके नक्षत्रमें पड़नेमें यह संक्रान्ति होती है। ३ चित्रकूटमें स्थित एक नदी। यह नदी चित्रकूट पर्वतमें निकली है। यह सूर्यपाप-माजिनी है। ४ डारकास्थित नदीविशेष। ५ भाकान गंगा। ६ वारह अक्षरोंकी एक वर्णमूला। इसके प्रत्येक चरणमें दो नगण और दो रगण होते हैं।

मन्दाकान्ता ( सं० खो० ) १ सरह अक्षरोंके एक वर्णमूलाका नाम। इसके प्रत्येक चरणों मगण, भगण, नगण और तगण तथा अन्तमें दो गुण होते हैं बायाँ ५, ६, ७, ८ और १ तथा १२ और १३ अक्षर लघु और शेष गुण होते हैं। २ अन्त भाकान्ता, थोड़ा पराजित।

मन्दाक्ष ( सं० ह्री० ) मन्दे संकुचिते अक्षिणी नेने यन्मात्। ( अक्षयोरदरानात्। वा ५००६ ) इति ममास्तान्ताः अक्ष्य लक्षा।

मन्दाग्नि ( सं० पु० ) मन्द्ः पापनासमर्षध्यामायमिन्-श्वेति। १ अग्निमाद्य रोग कफके मन्द् पदा हुआ जठरानल। माध्य-निदानमें लिखा है,—

मन्द्, तीक्ष्ण ( तेज ), विषम और मर—ये चार तरहका जठरानल है। इस जठरानलमें कफकी अधिकतासे जठराग्नि, पित्तकी अधिकतासे तीक्ष्णाग्नि, वायु-शिवधमे विषमाग्नि और ममता होनेसे समानि हुमा करती है। विषमाग्नि पातजरोग यानो पेटमें वायुकी गड़बड़ हो जाना, तीक्ष्णाग्निमें पित्तकी अधिकता, मन्दाग्नि कफका रोग और समानि निर्दिष्ट किये हुए मोजनकी पचाती है। देखो मन्दाग्निमें तो कमी कमी हलका मोजन पक्का भी है, किन्तु विषमाग्निमें कमी कुछ पचना भीर कमी बिलकुल ही नहीं पचना। भाय-प्रकाशमें लिखा है—



होता है। यह पितृनाशक है। आंग आने पर इसका काजल बना कर लगानेसे बच्चा फायदा होता है। इसका रस कृमिनाशक तथा रक्षक है। इसका ताजा रस कानके दर्दमें या दातोंके मसूड़ोंके दर्दमें बड़ा फायदा पहुंचाता है। मिया इनके यह अन्यान्य कितने ही रोगोंमें व्यवहृत होते देखा जाता है।

१ हस्त, हाथ। २ अर्क-पुष्प, आकन्द। ३ धर्म, धन्यवृक्ष। ४ हस्ती, हाथी। ५ स्वर्ग। ७ विरहपर्वकमिषु के एक पुत्रका नाम। ८ एक विद्याधर। ९ मन्दारचल-पर्वत। १० फल्गुका पेड़, नक्षत्र। ११ विरहपर्वतका पुण्यक्षेत्र। यहां ग्यारह कुण्ड है। बराहपुत्राणमें इस पुण्या धर्मका माहात्म्य विस्तृतरूपसे वर्णित है। यहां संभ्रममें वर्णित करते हैं।

विरहपर्वत पर मन्दारका फूल गिन्धनेसे भगवान् आ कर खेलवाड़ करते थे। इनके प्रभावसे गिरि के अगल बगलमें ग्यारह कुण्ड बन गये थे। यहां आप पक्षाड पर मन्दारवृक्षके नीचे रह कर अर्कों पर दया दिखाते थे। यहां अब भी देत सके गे, कि एकादशी, द्वादशी और चतुर्दशीके दिन मध्याह्न समयमें मन्दारका फूल लपटव जिला रहेगा। मिया इस निशिके और दिन मन्दारमें फूल नहीं मिलता। यहां मन्दारकुण्ड भी है। इस कुण्डमें स्नान कर एक ग्राम भोजन करनेसे परमाग्नि प्राप्त होती है। मनुष्य यहां यदि मर जाय, तो वह विष्णुलोकमें ही जाता है। इस कुण्डके उत्तर ओर प्राणव नामक गिरि है। इस गिरिसे दक्षिणकी ओर तीन धारायें निकली हैं। इनमें जो धारा दक्षिणमें निकल कर उत्तरकी ओर प्रवाहित होगी है, उसका नाम रत्नानकुण्ड है। इसके दक्षिण ओर समश्रोतकी एक बड़ी झील है। मन्दारके पूर्व ओर एक मुहामोटर मीजूद है। हमसे मूयव धारा प्रवाहित होगी है। उसके दक्षिण ऊंचे पर्वतसे पांच धारायें निकली हैं। उसकी पश्चिम दक्षिणमें चरायसे नामकी एक झील है। इसके बायवपक्षीणमें फिर तीन धारायें निकली हैं। इसके दक्षिण तीव्र कीसमें 'मोमोरक' नामकी एक बड़ी झील मीजूद है। पश्चिम ओर तो एक जगहमें समशायें निकली हैं। हमने एक झीलका आकार धारण किया है।

उत्तर त्रिन धाराभोंका यहां उल्लेख किया गया, उन प्रत्येकमें स्नान करनेसे महापुण्य होता है। स्वर्ग भगवानने कहा है, कि सारे विष्णुपरीक्षमें मन्दार ही मेरा 'म्यमन्तवृक्ष' है। यहां ही मैं रहा करता हूँ। इसके दक्षिण ओर मेरा एक झील है। बाईं ओर मेरी गदा रहती है और सामनेकी ओर यथावममें हल, भूमल और शूद्र मीजूद है।

मन्दारपुत्र ( मं० कृ० ) मन्दार या आरका फूल।  
मन्दारमाता ( मं० स्त्री० ) १ मन्दार फूलकी माता। २ वसुकी कन्या एक विद्याधर-भार्या। ३ बार्हस्पति की एक वर्णश्रुति का नाम। इसके प्रत्येक वर्णमें सात तपण और भागमें एक मुक्त होता है।

मन्दारपट्टी ( सं० स्त्री० ) एक मन जो माघ शुद्ध पट्टीके दिन पढ़ता है।

मन्दारसमयी ( मं० स्त्री० ) माघ मासकी शुद्ध सप्तमी। इस दिन मन्दारसमयी व्रत करना होता है। इसका वर्णन भविष्योत्तरपुराणमें आया है।

मन्दारिता ( सं० स्त्री० ) १ मन्दारके प्रति पूजा। २ मन्दार वृक्षनाम्निका।

मन्दारिन् ( सं० लि० ) मन्दार वृक्षमुक्त, जहां बहुतसे आरके पेड़ हों।

मन्दाग्नि—सोमदेशीय बर्मचारियोंकी उपाधि। मन्दाग्नि शब्दकी उत्पत्ति पुष्यगीत भाषाके 'मन्दर' (mandar) शब्दसे है। मन्दर शब्दका अर्थ है नामन करना। यथाधर्म मन्दाग्नि शब्द संस्कृत मन्दिन शब्दका भाव-संगमाय है। मातृयमें मन्दाग्नि शब्दसे उच्च धर्मोंका धर्म-चारी समझा जाता है।

मन्दाग्निके प्रत्येक वर्णमें एक एक शिपटी रहते हैं जिसे मन्दाग्नि कहते हैं।

० 'मन्दाग्नि' शब्दों में मन्दारवृक्ष (मं० मं०) का अर्थ है मन्दाग्नि। मन्दाग्नि शब्दकी उत्पत्ति पुष्यगीत भाषाके 'मन्दर' (mandar) शब्दसे है। मन्दाग्नि शब्दका अर्थ है नामन करना। यथाधर्म मन्दाग्नि शब्द संस्कृत मन्दिन शब्दका भाव-संगमाय है। मातृयमें मन्दाग्नि शब्दसे उच्च धर्मोंका धर्म-चारी समझा जाता है।

'मन्दारिन' भाषा चीनदेशमें प्रचलित है। चीनदेशके विद्वान् तथा उच्चपदस्थ कर्मचारी इसी भाषामें बोलचाल करते हैं। यहाँ यह भाषा कुवान-हुया (Kuan hua) कहलाती है। अन्यान्य भाषाओंकी अपेक्षा इसके अक्षर बहुत थोड़े हैं।

मन्दारी (सं० स्त्री०) एक शर्क, लाल शकबन।

मन्दार (सं० पुं०) १ मन्दार, शकबन। २ शीका पेड़।

मन्दारौय—सपोष्याका एक राजपूत सम्प्रदाय। किसीके मतमें इनके आदिपुरुष कृष्णसिंहके अधिष्ठित मण्डलग्रामके नाम पर तथा किसीके मतमें आदिपुरुषके मध्य मन्दार शाह नामक किसी ध्यनिके नामानुसार मन्दारकौय नाम पड़ा है। इनमेंसे कुछ हिन्दू हैं और कुछ शैज्याहके समय मुसलमानधर्ममें दीक्षित हुए हैं।

मन्दालक (सं० स्त्री०) खड़ी।

मन्दालस्ता (सं० स्त्री०) मदाजला देखो।

मन्दास्य (सं० स्त्री०) मन्दमास्यम् यस्यमात्। लज्जा।

मन्दिबुद्धर (सं० पुं०) मत्स्यविद्येय, एक प्रकारकी मछली।

मन्दिन् (सं० स्त्री०) १ मन्दर, जिससे मद् उत्पन्न हो।

२ हर्ययुक्त, प्रसन्न।

मन्दिनिस्पृश (सं० स्त्री०) हर्षजनक सोमस्पर्शकारी।

मन्दिर (सं० स्त्री०) मरुतने सुपत्ने या स्तूपनेऽत्र मदिह् स्तूपने स्तुती इति मदिह्-किरच् (इति मुरीति। उच्यते। १।२।२)

१ गृह, घर। कुछ लोगोंने स्वप्न, जाप, मद्र, स्तुति,

गति या नामके अर्थमें मदिह्के उत्तर इर प्रत्यय पर मन्दिर

शब्दकी स्थापन-प्रणाली निरूपण की है। अमरशोकामें

भरतने उल्लेख किया है, कि अरण्यके मतसे नगर, पुर

और मन्दिर ये तीनों शब्द पुलिङ्ग और स्त्रीलिङ्गमें गिने

जाते हैं। मन्दिर शब्दका स्त्रीलिङ्ग शब्द मन्दिवा हो

सकता है। जैसे,—

“मन्दिरावास्त्वरातिमधुनुकुट्यदयः।”

मन्दिर शब्दसे स्थापारणतः किसी देव या देवोका

आलय या आपतन समझ गड़ता है। प्राचीन पुराण

तथा धर्मशास्त्र ग्रन्थोंमें इस देवमन्दिरके निर्माण, प्रतिष्ठा

और उसके लिये अनेक फलका विषय लिखा हुआ है।

अमरान्तर्गते मन्दिर बनवानेमें विनया पुण्य होता है, उसका

यर्जन प्रायः सभी पुराण ग्रंथोंमें पाया जाता है।

वामनपुराणमें सभी लिखा है,—“जो विष्णुका मन्दिर

बनवाते है, पवित्र नित्यलोक, उनके हाथमें ही रहते है,

ये इच्छानुसार विविध सुखका उपयोग किया करते है।

इस सत्कीर्तिते ये अपने सात पीढ़ीका उत्तार करते है।

विनयण अपने मनमें सदा चिन्ता किया करते है, कि

हाय ! मेरे कुलमें ऐसा कोई व्यक्ति होगा, जो विष्णुका

भक्त हो और विष्णुका मन्दिर बनवा दे।

“यः कारयेन्मन्दिरं केशवस्य

पुपयान् लोकात्तु च जवेच्छ्रावतात वै।

दत्त्वावासान् पुष्कलाभिपयान्”

भोगान् भुङ्क्ते कामतन्काशनीषां ॥

आवृण्ते चित्तुम् तथा मानुकुम् नरं।

तारयेदारमना साङ्गं विष्णुर्गदिरकारका ॥

रगाम् विवरो दैव्य-गामा गायति वेगिनः।

पुस्तो यदुर्विदस्य हानपस्य तपस्विनः ॥

अपि नः शकृते कश्चिद्विष्णुभक्तो भविष्यति।

हरिमन्दिरकर्त्ता यो भविष्यति शुभितः ॥”

अग्निपुराणमें लिखा है,—“जो लोग अपने मनमें

मन्दिर निर्माणको कल्पना सदा किया करते है, ये अपने

पूर्वजन्मके सैकड़ों ज़रूरसे किये हुए पापसे मुक्त होते

हैं। जो मन्दिर बनवा देते हैं, उनके विषयमें तो कहना

ही क्या है। ये भूत और भविष्यन्के भी हजारों कुलकी

विष्णुलोक भेजते हैं।

इसी तरह विष्णुधर्मा स्तरेके तीसरे काण्डमें भी मन्दिर-

के बनवानेवालेको राजसूययज्ञ तथा अन्नमेघयज्ञके बराबर

फल होता है, ऐसा लिखा हुआ है। साथ ही यह भी

लिखा है; कि किस तरहका मन्दिर बनवानेसे कैसा पुण्य

होता है। मन्दिर—मिट्टी, काष्ठ, पत्थर, लोहा, ताँबा,

चाँदी, सोना तथा मणि-मुक्ता द्वारा निर्माण किया जाता

है। मट्टीके मन्दिर बनवानेको अपेक्षा काष्ठका मन्दिर

बनवानेमें साँ गुना फल अधिक होता है। इसी

तरह पत्थर लोहा आदि चीजोंसे जो मन्दिर बनवाता है,

यह एकको अपेक्षा साँ गुना अधिक फल पाता है।

मन्दिर बनानेका समय।

देवमन्दिर बनानेके समय शास्त्रनिर्दिष्ट शुभाशुभका

विचार कर हाथ डालना चाहिये । ऐसे कामोंमें शुभा-  
शुभका विचार न कर यदि मंदिर बनवाया जाय, तो  
अनेक स्थलोंमें विघ्न भी उपस्थित हो जाता है या देवी  
हो जाती है । बहुत स्थलोंमें उद्देश्यको बिलकुल पूर्ण हो  
नहीं हो पाती ।

महीना—मत्स्यपुराणके मतानुसार चैत्रमास, आषाढ,  
श्रावण, कार्तिक, अगहन, माघ और फाल्गुन—यहो कर  
महीनें मंदिर बनवानेके लिये उपयुक्त हैं । इन महीनोंमें-  
से किसी महीनेमें मंदिर बनवानेवाला कोई न कोई फल  
शुभद्वय पाता है ।

चैत्रमासमें धनरत्न, आषाढमें भूतपरिहारी ( सुन्दर  
और कार्यशील नौकर ), श्रावणमें मित्र, कार्तिकमें धन  
धान्य, फाल्गुनमें पुत्र और रत्नादि तथा माघमें मंदिर  
बनवानेवालेको अधिक लाभकी सम्भावना है, किन्तु  
इसमें अग्निफाल्गुनको आज्ञा देनी है, मिया इनके और  
महीनोंमें मंदिर बनवानेसे अधिकजान स्थलोंमें विघ्न हो  
शुभा करता है ।

नक्षत्र—महीनेकी तरह नक्षत्र तिथि और दिनके शुभ-  
शुभका भी विचार कर लेना चाहिये । नक्षत्रोंमें  
अश्विनी, रोहिणी, मूला, उत्तराषाढा, स्वाती, हस्ता और  
अनुराधा—ये ही नक्षत्र मंदिर बनवानेके लिये  
उपयुक्त हैं ।

वार—रविवार और मङ्गलवारके दिन और मङ्गल  
दिन मंदिर बनवानेके लिये उपयुक्त फलदायक हैं ।

योग—घण्ट, व्याघात, दूत, द्युतोषात, भविष्यत्,  
पिच्छुम्भ, गरुड और पश्चिम योगको छोड़ कर अन्य सभी  
शुभ योगोंमें मंदिर बनवानेका कार्य आरम्भ करना बहुत  
ही फलप्रद है ।

मिया इनके शुभ तिथि और करण एवं श्रेय, मेष,  
मार्गश्र्द और मार्गश्र्द आदि शुभमुहूर्त गण्य कर मंदिरकी  
नीच डालनी चाहिये । हयगौरव मंथने इसका विस्तृत  
विवरण दिनाई देता है ।

हयगौरवके मतानुसार वर्षाके समय किसी तरहका  
वास्तुकार्य करना मना है । इसमें अनुषो, नमो और धनु  
रुंनो तिथि, मङ्गलवार, पितृहरण और अशुभ नक्षत्र  
छोड़ कर शयने चन्द्र तारा शुद्ध और सौम्यवर्षके चंद्र-

स्थिति आदिका अच्छी तरह विचार कर इन कार्यमें  
हाथ डालना चाहिये ।

मंदिरका स्थान-निर्णय ।

साधारणतः उत्तम परिष्कृत स्थानमें ही मंदिर  
बनवाना चाहिये । कौन स्थान अच्छा और कौन बुरा  
है, इसको पहले जान कर लेना उचित है । जगदकी  
जान बिना कराये जहां जहां मंदिर बनवा लेते पर उम-  
को प्रतिष्ठा करनेमें विपरीत फल होता है । किसे स्थान-  
में मंदिर बनवानेसे मंदिर बनवानेवालेको गुण फल  
मिलता है, उसके सम्बन्धमें देवीपुराणमें यों लिखा है,—  
"जिस जगदकी मिट्टी गन्ध, स्वाद, गर्ण और गूदोंमें  
उत्तम जान पड़ती है, उसी जगह मंदिर बनवा कर देव-  
मूर्ति स्थापित करनेमें चाहिये । इसके विपरीतमें गणकी  
अधिक सम्भावना रहती है ।

"देशेऽपि नृदुस्तथा श्रेष्ठे मद्भगवाः सुगन्धमाः ।

प्रशिक्षायाः शुभे स्थाने भवत्यथ नै मनारहाः ॥

गर्वादिजगत्प्रथा भार्गो कल्पन्वातेन वा भवेत् ।

यद्येन न चरुश्रेष्ठ का मरी गणधामा ॥" (देवीपुराण)

मत्स्यपुराणमें स्थान परीक्षाकी एक दुसरी प्रणाली  
दिनाई देती है । इसके मतानुसार भी मंदिर बनवानेमें  
पहले ही स्थानकी परीक्षा करा लेनी चाहिये । प्राज्ञग,  
क्षयिण, वैश्व और दूष्ट इन चार वर्णोंके लिये गार रंग-  
का भूमि या स्थान बनवाया गया है । जैसे—  
प्राज्ञोंके लिये श्वेत वाता स्पष्ट, क्षयिकके लिये रक्त,  
वैश्वोंके लिये पीला और दूष्टोंके लिये काले रंगको  
मिट्टीवाला स्थान उपयुक्त होता है । जिस तरह मिट्टी-  
के रंगका भेद है उसी तरह उन स्थानकी मिट्टीके स्वाद-  
में भी मधुर, कषाय, कटु आदि स्वादकी परीक्षा करना  
होना है । जाम्बोमें प्रायण आदिकी जित जगहकी जैसी  
स्वादुस्त भूमि पर मंदिर बनवाना मिलता है, उसी तरह  
उनकी कार्य भी करना उचित है ।

"पूर्वी भूमि परितोद्गमन् चाम्बु प्रवर्तते ॥

श्रेष्ठा तथा तथा श्रेष्ठा इत्यथा जैमिनिः ॥

विशोः नक्षत्रे मुखिकाकारे परिकल्प ॥

विशाला सुगन्धलाया बलाया क्षयिण्य च ।

वर्णके बहुधा यदोकेन्दुर्द्वेष्ये वा तत्रे ॥" (मत्स्यपुराण)

मन्दिर बनवानेके समय स्थान पसंद कर लेने पर उसको एक और भी परोक्षा कर लेनी चाहिये । यह परोक्षा यह है,—“मनोनीत स्थानमें अरुति आकारका छोटा-सा गड्ढा खुदवा देना चाहिये । इसके चारों ओर लोप-नीत कर बीचमें एक कच्ची मिट्टीके टुकनेमें घी काज कर चारों ओर चार बच्ची लगा देनी चाहिये । जब चारों ओरकी बसियां जल उठें और उनको शिखा पूर्वादिक्को समभावसे प्रकाशित करने लगे, तब उस स्थानको उत्तम समझना चाहिये । जानौंमें इस तरहकी परोक्षित वास्तु सम्बृहिक नामसे प्रसिद्ध है । यह सम्बृहिक वास्तु ही गूढ, प्रासाद आदि बनानेमें ग्राहण आदि सब कर्मांके लिये मङ्गलमय है ।

इस परोक्षाके बाद गड्ढेको भरवा देना चाहिये । इस समय भी एक परोक्षा है—गड्ढेकी निकाली हुई मिट्टीसे गड्ढा यदि भर जाये और कुछ मट्टी बच जाये, तो उत्तम और इसके विपरीत अर्थात् कम हो जाये वानी गड्ढे भरनेमें कुछ मट्टीकी कमी हो जाये, तो उसे निरुद्ध समझना चाहिये । जब पूरा पूरा भर जाय, न कमी हो और न अधिक, तो उससे समताका ज्ञान करना चाहिये ।

उपर्युक्त तीन अथस्थाओंका फल इस तरह है,— प्रथम अथस्था (गड्ढेकी भर कर मट्टी बच जाना) मङ्गल प्राप्ति, दूसरी अथस्था (गड्ढेके भरनेमें मट्टी कम हो जाना) क्षति और तीसरी अथस्था [(मट्टीका सम होना) लाभ क्षतिशून्य फलकी द्योतिका है ० ।

- ० “भरतिनमासे वै गरीं खनुशिनो च खंता ।
- भूतमामरावखं कृत्वा वसिचन्द्रमय ॥
- स्थानेपूरुभूरोधार्पं पूर्वं तत्सर्वदिरुद्रण ।
- दीप्या पूर्वादि षड्दोषाद् वष्यांनमनुपूरुषा ।
- वास्तुः छनूरिको नाम दीप्येते सर्वतस्तु यः ॥
- सुमहा सर्वं वष्यांतां प्रशांतु गयेषु च ।
- भरतिनमासं गरीं परोक्षं पातयुदे ॥
- अधिके भिषमान्नाति न्यूनै र्दानि धमे धमम् ।
- कसकृद्धं उपवा वेदो सर्ववीजानि रोरेवे ॥

मन्दिर-भूमिकी जांचके सम्बन्धमें और भी एक नियम का उल्लेख है । पूर्वांग प्रणालीका अनुसरण न कर सकने पर स्थानकी उरुष्टना तथा अथरुष्टनाकी परोक्षा इस नियमसे भी कर सकते हैं । यह परोक्षा इस तरह है,—कोई स्थान मनोनीत कर लेने पर उसे हलसे जीत देना चाहिये । इस जीते हुए स्थानमें कई चीज गपन करना चाहिये । यह चीज यदि तोन, पांच और सात दिनमें अंकुरित हो, तो उससे क्रमशः उत्तम, मध्यम और निरुद्ध समझ लेना चाहिये । जहां यह गुण नहीं है, वहां मन्दिर कदापि न बनवाना चाहिये । यह स्थान विलकुल स्वयं है ।

हयगोर्षके मतसे जिस स्थानमें बछड़े मदिन गाये साँढके साथ स्वच्छन्दासे विचरण करती हों जिस स्थानमें खियां पुरखोंके साथ केलिक्रीडामें रत हों, जहां पहले राजाओंका बास था या अग्निही भाषार-भूमि थी, या पालिकोंका पवित्र स्थान था और जिस स्थानकी गन्ध काश्मीर, चन्दन, कर्पूर, अगुरु, कमल, उत्पल, जातो (जड़ो), चम्पा, पायल, महिका, नागकेदार, दधि, दूध, घी, मदिता, भासय और प्रोदिकी तरह प्रतीत हो और जिस स्थान पर माङ्गलिक द्रव्यकी ध्यनि होती हो, वह स्थान सभी कर्मांके लिये मन्दिर बनवानेमें सर्वथा उपयुक्त है । इसके अलावा जिस स्थानसे दुर्गन्धि आती हो, घुरे शब्द होते हों और जो स्थान तरह तरहके रंगरा हो, टेढ़ा टाका हो, गूरुंके मुहसा पतला हो, झुपांकार हो, गोमुख तथा सिंकोणाकृति हो, हाथोकी पीठके समान हो ऐसे दुर्लक्ष्य समन्वित स्थान सर्वथा परित्याज्य है ।

हयगोर्ष-पञ्चतारमें सुपन्ना, मद्रिका, पूर्णा और धृष्टा नामक चार तरहकी भूमिका उल्लेख दुम्बार देता है । इन चार तरहकी भूमियोंमें-से उपरकी तीन तरहकी भूमिमें मन्दिर बनवानेका कार्य किया जा सकता है । अंगोक स्थान सर्वथा परित्याज्य है । जो स्थान तिलक, गारियल, बुजा, काज, घघ तथा इन्द्रियर द्वारा सुगोभित है,

दिनगततथेषु यष रोरेनि तासाम् ।  
 न्देश मय्या बनिश भूषं र्दनीदेवरा वरा ॥”  
 (भरगुपाय)

उसका नाम चुपचा है। नदी, समुद्र, तीर्थमान्निध्य, पुण्यरक्ष, क्षीयवृक्ष, वन, उद्यान, लता, शुभ्र तथा दूसरे वक्षीय वृक्षों द्वारा जो स्थान परिजोमित है, उस पवित्र क्षेत्रको भद्रा कहते हैं। वबुल्ल, अगोकर, गुड, आम, लोह-तिक, माधवी, मुद्ग, शूकर धान्य, पुननाग, अदरकती पर्वत और अन्य जलादि द्वारा जो स्थान उपलक्षित हो, उसका नाम पूर्णा होना चाहिये। इसके अलावा जो स्थान बैल, आक और जालयनसे आवृत हो और जहाँ गृध्र, गोमासु, कौय और घेदराये रहती हैं, जहाँको मट्टी कठिन तथा फंकड़ोंसे युक्त है और जहाँ नाना प्रकारके काँटदार वृक्ष दिखाई देने हैं उस स्थानको धूम्रा कहते हैं। यह धूम्रा भूमि ही सर्वथा मंदिर बनवानेके लिये अनुपयुक्त है।

इसके बाद मंदिर बनवानेके लिये स्थान मनोनीत हो जाने पर मंदिरकी भीतके लिये फीमा भूमिका परिमद करना कर्त्तव्य है या परिवृष्टादि भूमिकी किम् तरह परीक्षा को जाये इन सब बातोंका यथायथ विवरण मत्स्यपुराण और हजोगीर्षमें दिया गया है। विषयके बढ़ जानेके कारण यहाँ उसका पूरा पूरा उल्लेख नहीं हो सका।

मंदिर-निर्माण करनेसे पहले चारों ओर एक एक चौकीर ईंट तथा पत्थर गाड़ कर मंदिरका सूत्र तय्यार करना चाहिये। इसी सूत्रसे मंदिरका स्थान चिह्नित कर पीछे उस स्थानमें प्राक्षण गिलाना चाहिये। सिया इसके बाद वैश्याओंको भी यहाँ भोजन कराना होगा।

“यदुत्सा गिरां यथा इदं वा मुनीभिरानु।  
 यदुद्विष्टु निरिषाय यत्विहन्नु कारयेत् ॥  
 एवं कृत्वा यत्विहं” प्राक्षयांस्तत्र भोजयेत् ॥  
 देव्यवसानं पारमेष्ठिप्रदानं शारंगेषु समहितम् ॥”

(मत्स्यपुराण)

जो व्यक्ति मंदिरका कार्य आरम्भ कर चुका है, पीछेसे उसको यदि अपने शरीरमें गुत्तको आदिका रोग हो जाय, तो सम्भ्रता होगा, कि जिस स्थानमें मंदिर मध्यार हो रहा है वहाँ एक जल (हनु) गड़ा हुआ है। उन्हें इस जलको निकलवा कर फेंकना देना चाहिये। बादमें मंदिर बनवानेका कार्य सञ्जा देंगे। यथोक्ति मन्त्राय स्थान मध्यार तथा अल्लक्ष्म्य स्थान मङ्गलप्रद है।

“यदात्मैऽपीच्छदृष्टिः श्वात्म्ये पर जाये।  
 मन्त्रतन्त्रनपेरात्त प्राशते मन्त्रेऽपवा ॥  
 यथाश्वं भयदं यन्मायशुभ्रं मयनात्तन्म ॥”

(मत्स्यपुराण)

हजोगीर्ष-पञ्चरात्रमें लिखा है, कि शुद्धकर्त्तोंको अपने किसी भङ्गको विद्वता देख कर सम्भ्रता होगा, कि वास्तुमें शून्य है। इसके सिया यदि कोई दुर्लक्षण मन्त्र-न्यित शकुन दिखाई दे या उम्का शब्द सुन पड़े तो उस कुलक्षण शब्दमें जिसका नाम सुनाई देगा, उस वास्तुमें उसी आदमीकी हनु होगी।

“आदिशोदास्तनः कल्पं परिषोऽस्तीकारम्।  
 शकुनो ह्यन्वये वारि वस्य वा भूयो भन्ति।  
 कोर्त्येते वस्य वै नाम शस्यं तस्य विनिर्दिशेत् ॥”

(हजोगीर्ष)

इसके बाद विधानानुसार वास्तु मण्डल ठीक कर यहाँ देवताओंकी पूजा करनी चाहिये। इन पूजाके व्यक्तियोंको संख्या शास्त्रानुसारके मयसे नहीं हो गयी।

इसके सम्बन्धमें वास्तु विवरण, वास्तु पुननिर्दिध, किस देवताको कैसे भूत-बलिप्रदान, शुनिवाय मोदनेके समय तथा शुभ्र स्थापनकी पूजा प्रणाली हजोगीर्ष तथा मत्स्यपुराणमें विस्तृत रूपसे लिखी हुई है।

मत्स्यपुराणमें यह भी लिखा है, कि मंदिर यदि जिला तथा पत्थरका बनवाना हो, तो किम् तरहकी मिठा और पत्थरोंसे बनवाना चाहिये। ईंट तथा पत्थर जो भी हो चारों ओरसे समतल तथा चिकना होना चाहिये। येसे ही पत्थरके टुकड़े मङ्गलप्रद हैं। उन शिलागण्डोंमें बुज, दूध, धवज, उख, चामर, मंजूरा, मोरन, कूर्म, मत्स्य, माङ्गलिक मृग, पक्षी, हाथी, यज्ञ, बैल या अन्य कोई अच्छी चीजोंका चिह्न आङ्कन रहे तो मंदिर बनवानेवालेके लिये मङ्गलप्रद है। इसके सिया जो जिला शुद्धपूर्ण, सिमका शरीर गो और घोड़ेके मुँहका चिह्न, पञ्चादि मन्त्रन तथा स्थानिक, वेदिक और मन्त्राधर्मीक चिह्नोंसे चिह्नित है, वह भी मङ्गलजनक है। येसे जिलाओंमें मंदिर निर्माण करनेवाले व्यक्तिको बहुत धन-प्राप्तकी वृत्ति होती है।

जिलागण्डोंकी तरह ईंटोंके दुर्लक्षणोंकी ओर भी दृष्टिदान करना होगा। मत्स्यपुराणके अनुसार मंदिर



गया मृद निर्माणके लिये जिन ईंटोंको उत्खनन होगा ये मृद एक ही तरहकी हों। मृद पकी हुई, देगनेमें सुन्दर और चौकोन होंगी चाहिये। इसके पिपरोत काली काली, छांटी बड़ी, टेढ़ी टाढ़ी, टूटी फूटी हों, उन ईंटोंको कदापि लगाना नहीं चाहिये।

ईंटके उत्खनीके सम्बन्धमें एयरीयं पञ्चरात्रमें लिखा है,—मंदिर और मृद-निर्माणके लिये जिन ईंटोंका प्रयोग हो, उन्हें सभी सुन्दर परिपाटीसे तयार करना चाहिये। सभी ईंट बारह अंगुली होंगी। ये सभी एक रंग, लाल पकी, देगनेमें सुन्दर और साफ हों। इसके विपरीत पूर्वोक्त ईंट या पत्थरसे मकान या मंदिर न बनवाना चाहिये।

पत्थर या ईंट जिनसे मृद तथा मंदिर बनवानेकी इच्छा हो, उसकी यथामात्रसे लगाना चाहिये। मंदिर या प्रामाद यदि ईंटसे बनाया जाना हो, तो उसमें पत्थर या जिहामण्ड न जोड़ना चाहिये। उसे फेयल ईंटोंसे ही गतम करना चाहिये। इसी तरह जिलाण्ड-से बनाये जाने पर ईंटोंका उसमें घुसेड़ना कदापि युक्तिसंगत नहीं। मूल बात यह है, कि ईंट और पत्थर दोनोंके संयोगमें मंदिर बनवाना उचित नहीं। यही एयरीयं और मत्स्यपुराणका मत है।

मत्स्यपुराणमें यह भी लिखा है,—“पहले पूर्वोक्त रूपसे वास्तु बलि दे कर मंदिर निर्माणकी नियत भूमि १६ भागोंमें बंटो जानी चाहिये। इन सोलहों भागोंमें चार भाग मंदिरको गर्भभूमि, बाँकी बारह भाग उसकी भोतके लिये होने चाहिये। चार भागके परिमाणसे भोतको ऊँचाई ठीक करना चाहिये। भोतकी ऊँचाई जितनी होगी, उसके जिनरकी ऊँचाई उससे दूनी बनावनी चाहिये। मंदिरका प्रक्षिप्त करनेके लिये उसके चारों ओर मनुष्योंमें मार्ग रहे। उस मार्गका परिमाण जिनर-परिमाणके चौथाई भागके समान हो। गर्भभूमिका परिमाण जितना होगा, मंदिर या मण्डपका विस्तार उससे दूना होवे। इस प्रकार गर्भपरिमित स्थानकी पांच भागोंमें बाँट कर उसके एक भागमें मंदिर या प्रामादकी पूर्वोक्ता निरूपण करे तथा गर्भभूमिके समान उसका मुलमण्डप बनाये। (मत्स्यपुरा.)

हयग्रीयं पञ्चरात्रके मतमें भी चतुरकोण हीनभूमिकी सोलह भागोंमें विभक्त कर उसके चार भागमें मध्य, बाकी बारह भागमें भोत तैयार करे। इस प्रकार उसके चौथाई भागमें भोतकी ऊँचाई, उससे दूनी मञ्जरो, मञ्जरोके चौथाई भागमें प्रक्षिप्ता और प्रक्षिप्ताके परिमाणानुसार दोनी बगल निर्गम मार्ग बनावे। पीछे मध्य भागमें बद्गहसे चंभे गाड़ने चाहिये और गर्भभूमिके परिमाणानुसार मुलमण्डप स्थिर कर लेना चाहिये। सभी प्राज्ञोंमें वास्तु पूजा करनेके बाद मंदिर निर्माणकार्यमें हाथ शालनेकी कहा गया है।

उक्त लक्षणके शक्तिरिक्त हयग्रीयं धीर मत्स्यमें मंदिर मण्डपादिके और भी कितने लक्षण दिये गये हैं। विस्तार ही जानेके भयसे इनका उल्लेख यहाँ पर नहीं किया गया। प्रागद और मण्डप देखो।

मत्स्यपुराणमें एक जगह लिखा है,—निर्माण प्रणालीके पार्यक्यानुसार प्रासादादिके अनेक नाम रचे गये हैं। जिस प्रासादमें चार द्वार, एक ही शृङ्ग, ऊपरमें सोलह पर तथा जिसके जिनर रंग विरंगने चितित हैं उसका नाम मेघ प्रासाद है। इस प्रकार द्वादशभूमिक प्रासादकी मंदार और दशभूमिककी कैलास कहते हैं। अलावा इसके मंदिरकी बनावटके अनुसार इसके कुण्ड, सिद्ध, मृग, विमान, छन्दक, शीघ्र, शृगाधिप, पद्मिग, छाँदक, सर्वमद्रक, गज, मन्दन, गण्डिवर्द्धन, हंस, पृष, सुपर्ण, पद्मक और समुद्रक आदि नाम रचे गये हैं।

इस प्रकार मंदिरका निर्माणकार्य क्षेत्र ही जाने पर उसके चारों ओर दीवार बनवा देनी चाहिये। एयरीयंके मतसे दीवारकी ऊँचाई प्रासादकी ऊँचाईका चौथाई भाग होनी चाहिये।

मत्स्यपुराणमें लिखा है, कि मन्दिरादि बना कर उसके समीप ही कुछ वृक्ष लगाना और जलानपादि दोड़ाना उचित है। पूर्व दिनामें फलधान वृक्ष, दक्षिणमें क्षीरवृक्ष, पश्चिममें काल-कुसुमादि पत्रिजातित जलानप और उत्तरमें ताल नल आदि वृक्ष तथा सुरस्य पुष्पाटिका होनी चाहिये। सभी दिनाधीन मिश्र वा अश्विनरायमें द्रव्य रचना उचित है। दक्षिणमें तपोपन स्थान, उत्तरमें मातृकापूज, अग्निहोत्रमें मजि

स्थान, नैऋतमें विनायक, वायव्यमें धीनियाम, वायव्यमें प्रहमालिका और उत्तरमें पञ्चगाला तथा निर्मान्य स्थान क्षयप्रय रहने चाहिये। एतद्भिन्न धारणमें वलि-निर्घणस्थान तथा सामनेमें गड्ढस्थान होना चाहिये। इस प्रकार अन्त्याय आयक्ष्यकौय स्थान भी यथायथ भावमें निर्देश कर शुभ मण्डपप्रलयन देवायतन यताना उचित है।

जीर्णोद्धार।

विष्णुधर्मोत्तरमें लिखा है, कि राज्यमें यदि कहीं पर देवालय टूट फूट गया हो उसका जीर्ण संस्कार कर देना उचित है, नहीं तो राज्य भरमें अज्ञाति पील जायगी। देवीपुराणमें लिखा है, कि मूल देवमूर्ति बनयामें जितना फल है उसमें सौ गुना अधिक फल जीर्णोद्धार करनेमें है। ह्यनोर्य पञ्चरात्रमें भी यह मत समर्थन किया गया है।

हरिमन्दिपिलासके मतसे देव या देवालयकी प्रतिष्ठा ह्यनीर्य पञ्चरात्रके विधानुसार ही करनी चाहिये।

( पु० ह्री० ) मन्दिन्ते मोदन्ते लोका यत्र । २ नगर । ३ निविर । ४ वासस्थान । ५ गृह, घर । ६ मालिहोत्रके अनुसार घोड़ेकी जांघका पिछला भाग । ७ समुद्र । ८ एक मन्धर्षका नाम ।

मन्दिरपशु ( सं० पु० ) मन्दिरघरः मन्दिरपरितो वा पशुः मध्यपदलो० । विद्याल, विद्या ।

मन्दिरमणि ( सं० पु० ) मणि, महादेव ।

मन्दिरा ( सं० स्त्री० ) मन्दि० टाप् । १ मन्दिर, भाव-गाला, पुष्टमाल । २ मन्दिर । ३ यावयिधेय, मजीरा नामक वाज ।

मन्दिर ( हि० पु० ) १ घर । २ देवालय । ३ प्रत्येक कवचे या धान आदिके पीछे दाममेंसे काटा जानेवाला यह अल्प धन जो किसी मन्दिर या धार्मिक कृत्यके लिये दूकानदार दाम देते समय काटते हैं । ( हि० ) ४ कटना, काटना ।

मन्दिष्ठ ( सं० लि० ) धनिगय मोहनकर, मन प्रमत्त करनेवाला ।

मन्दी ( हि० स्त्री० ) भावका उतारा, मन्दीका उतरा, मन्दी । मन्दी देते ।

मन्दीर ( सं० पु० ) १ एक प्राणिका नाम । ( ह्री० ) २ मंजोर ।

मन्दीर ( हि० पु० ) एक प्रकारका निरवम् जिम पर काम बना रहता है ।

मन्दु ( मानुगट्ट )—मालयकी प्राचीन राजधानी। घोर-वृंशके होसकूने यहां पर बहुतसे काठकार्य मग्न्य प्रसाद बनयाये थे। उनके राज्यकालमें यह स्थान उन्नतिकी चरम सीमा तक पहुंच गया था। यहां एक पुराने जमानेकी बहुत बढिया ममजिद् है किन्तु यह राज-प्रामादकी मुक्तबला नहीं कर सकती। इन सब प्रामादों-में जो सर्वोत्कृष्ट प्रामाद है उसका नाम जहाजमहल है। जहाज जिम प्रकार जलके ऊपर चलता है, उसी प्रकार यह प्रामाद भी दो पिनाल सराबरके मध्य अवस्थित है। मालयके एक दूसरे राजा बाजबहादुरका प्रामाद भी देखने लायक है।

अभी यह मध्यभारतके चारखण्डका एक परिचयक शहर गिना जाता है। यह नर्मदाके दाहिने किनारे भद्रा० २२' २१' उ० तथा देगा० ७५' २६' पू०के मध्य अवस्थित है। ३१३ ई०में मग्दीगड् स्थापित हुआ था।

१५वीं शताब्दीमें होमदू घोरेने मग्दीगट्ट बनवाया। १५२६ ई०में गुजरातके शासनकर्ता बहादुर शाहने इस गड्को जीत कर अपने राज्यमें मिला लिया। भागिर १५७० ई०में यह स्थान अकरर काठगाहके हाथ गया।

मन्दुमहल निरगिरा—मध्यप्रदेशके अन्तर्गत मध्यपुर जिलेकी एक छोटी जमींदारी। यह मध्यपुर नगरसे ४२ मील दक्षिण पश्चिममें अवस्थित है। यहां धानकी अच्छी फसल लगती है। मन्दुमहलके राजाने १८५८के मद्रमें विद्रोहियोंका साथ दिया था। उनकी जमींदारी छान जाने पर भी १८६२ ई०में लीटा दी गई। यहांके जमींदार निरगिरा ग्राममें रहते हैं, जो उनाली नदीके किनारे अवस्थित है।

मन्दुर ( सं० वि० ) मन्दि उन् । मादकर, भागद जनक ।

मन्दुरा ( सं० स्त्री० ) मग्दीने स्वरानि मीरुने वा कर्त्या पत् । मग्द उरच् ( मन्दिनीमर्षीनि । उच् ११३ ) मन्-प्याप् । १ पाणिनाला, मन्धक, पुष्टमान । २ विद्याके की चटारा ।

मन्दुरिक ( सं० पु० ) साईस ।

मन्देह ( सं० पु० ) १ राक्षसमेह । २ कुनढीप पासी शूद्र जाति ।

मन्दोष ( सं० पु० ) प्रहोंकी गतिमेह । ( Apsis ) सूय-सिद्धातमें लिखा है—

“अक्षररूपाः कात्ररय मूर्त्तौ भगणाभिः ।

शीममन्दोषपातरूपा प्रहायां गतिहेतवः ॥” ( २११ )

कालक्रमसे प्रहोंकी गतिकरण अदृश्यरूप और भगणाश्रित शीमोष, मन्दोष तथा पातनामा मूर्त्ति हुआ करती है ।

“वक्रानुवक्रा कुठिला मन्दा मन्दतरा समा ।

तथा शीमतरा शीमा महाप्यागवक्रा गतिः ॥” ( २१२ )

घक्र, अनुघक्र, कुठिल, मंद, मंदतर, सम, शीमतर और शीम प्रहोंकी यही आठ प्रकारकी गति हैं ।

“ग्रहं मंशोष्य मन्दोन्त्नात्” मंदोषमोगसे राश्यादिका संशोधन किया जाता है ।

मयुरानाथ देवप्रने जो प्रहारण्य रचा है उसमें प्रहोंका मंदोष इस प्रकार है,—

“प्रेमोदोच्चकं नेत्र मैममद्विर्गजांघी वी ।

कुजस्य भतयो नन्दा नेण्डु रसवह्वयः ॥

धृषस्य सप्त कुटुभो नवेनदुद्गादस क्रमात् ।

गुरोर्वाप्यारचनदयमी खं खं राश्यादिकं क्रमात् ॥

भृगोर्ममी नवेनदुध गोऽश्रीसं मन्ददुग्धकम् ।

शनेः मौलारस्यमी रसामी रसवह्वयः ॥

हापरान्ते गुरोर्वारे निर्याये च गता इमे ॥”

२ राशि, १७ अंश, ७ कला और ८ विकला रविका मन्दोष ; ४ राशि ६ अंश, ५७ कला और ३६ विकला मङ्गलका; ७ राशि, १० अंश, १६ कला और १२ विकला बुधका; ५ राशि और २१ अंश वृहस्पतिका; ४ राशि, १६ अंश और ३६ कला शुकका तथा ७ राशि, २६ अंश, ३६ कला और ३६ विकला शनिका मंदोष माना गया है ।

कल्याण्दपिएडकी ३८७से गुणा कर दो लाखसे भाग दें । भागफल जो होगा वही कलादि है । पहले जो २ राशि, १७ अंश, ७ कला और ४ विकला रविका मंदोष बतलाया गया है उसके कलादिके साथ उक्त भागफल कलादिकी जोड़ देनेसे रविका मंदोष निकलेगा ।

इसी प्रकार कल्याण्दपिएडकी २०४से गुणा कर यदि दो लाखसे भाग दिया जाय तो भागफल जो बाधेगा वह कलादि होगा । उस कलादिकी पूर्वकथित मङ्गलके मंदोषके साथ जोड़नेसे मङ्गलका मंदोष निकलेगा । फिर ३६८से कल्याण्दकी गुणा कर दो लाखसे भाग दें । भागफल जो कलादि होगा, उसे पूर्वकथित बुधके मंदोषमें जोड़ें । इससे बुधका मंदोष स्थिर होगा । कल्याण्दकी ६००से गुणा कर गुणनफलमें दो लाखका भाग देनेसे जो कलादि होगा उसे पूर्वकथित वृहस्पतिके मंदोषमें जोड़ें । योगफल वृहस्पतिका मंदोष मालूम होगा । कल्याण्दपिएडकी ५३५से गुणा कर दो लाखसे भाग दें । भागफल कलादि होगा । अब इस कलादिकी शुकके पूर्वलिखित मंदोषमें जोड़नेसे शुकका मंदोष निर्णीत होगा । इसी प्रकार ३६से कल्याण्दपिएडकी गुणा कर यदि गुणनफलमें दो लाखसे भाग दिया जाय तो, भागफल जो कलादि होगा उसे पूर्वकथित शनिके मंदोषमें जोड़नेसे शनिका मन्दोच्च निर्धारित होगा ।

रवि आदि प्रहोंका मंदोष स्फुटके लिये निकालना चाहिये । मङ्गल, बुध, वृहस्पति, शुक और शनि इन पांच प्रहोंके मंदोषमें यदि २४ अंश जोड़ दिया जाय, तो वह सिद्धान्तरहस्यके मंदोषके समान होता है । चन्द्रकेन्द्रसे पांच कला निकाल लेते पर सिद्धान्तरहस्यके चन्द्रकेन्द्रके समान होगा । ऐसा होनेसे ही समस्त प्रहोंके मध्य, शीघ्र और मन्दोष इत्यादि सिद्धान्तरहस्यके समान कर लिये जाते हैं । यही दोनों मत आज कल प्रचलित हैं ।

मन्दोदरी ( सं० खो० ) १ लङ्केश्वर रावणकी पटरानी । यह मय नामक दानवके औरस और हेमा नामकी अप्सराके गर्भसे उत्पन्न हुई थीं । रावणका प्रसिद्ध पराक्रमी पुत्र मेघनाद इसीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था ।

यह पञ्चकन्याओंमें है । रावणके मरने पर इसका विभीषणसे ब्याह हुआ था ।

विशेष विवरण रावण शब्दमें देखें ।

२ कुमारानुचर मातृमेह ।

मन्दोदरीश ( सं० पु० ) रावण ।

मन्दोदरीमुत ( सं० पु० ) श्द्रजित, मेघनाद ।

मन्दोर—राजपूतानेके मध्य योधपुर राज्यका एक विध्यस्त नगर। यह अक्षा० २६° २१' ३० तथा देशा० ७३° ५' ५०के मध्य अवस्थित है।

१३२१ ई०में खण्ड नामक क्रिमो राठौर राजपूतने परिहार राजसे यह स्थान पाया था। १४५६ ई० तक यहां राठौर राज्यकी राजधानी रही। नगर चारों ओर दुर्गमें घाचीरसे घिरा है। यह इतने ऊँचे पर बना हुआ है कि यहांसे निकटवर्ती सभी स्थान दृष्टिगोचर होने हैं। भगवाणेश्वरमेंसे देवदेवोंकी मूर्ति और भारतवर्षके प्राचीन पौरपुरुषोंकी मूर्ति विशेष चित्ताकर्षक है। एल-जिस्त हिन्दू और बौद्धोंकी अनेक कौतूह्यो भी देखी जाती हैं। यहां भजित्सिद्धका एक परित्यक्त राजमासाद् और परलोकगत अन्वान्य बहुनसे राजाओंके स्मरणार्थ मन्दिर विद्यमान हैं।

मन्दोरमें एक समय जूनागढ़ नामक एक दुर्ग था। यहां पञ्चकुण्ड नामक एक तीर्थस्थान है। पञ्चधारामे जलस्रोत जा कर एक साथ मिल गया है, इसीसे पञ्च-कुण्ड नाम पड़ा है। रायगढ़की कौत्सिस्तम्भके समीप एक छोटा मन्दिर है। उस मन्दिरमें पहले दो शिवा लिंग थीं। अभी और भी कितनी शिलालिपियां पाई गई हैं।

यहांकी दो मसजिदोंमेंसे एक ममजिद् मिहोमें मिल गई है। अधिजासियोंमें मालोको संख्या ही अधिक है। वहीजोमें काम करना ही इनको उपयोगिक है। इसीसे मालूम होता है, कि यहां बहुतसे वगीचे लगाये गये हैं। यहां जितने बगीचे हैं उनमें 'दालदागार' और 'बजोर'का बाग ही प्रधान है।

मन्दाण (सं० प्र०) १ हयदुष्य, कुछ गरम। (वि०) २ देवदुष्याण, जो कुछ गरम ही।

मन्त्र (सं० पु०) मन्त्रमें पुत्रने अनेक, मन्त्रिक (सं० वि०) अर्थ। उच्च २११) १ मन्मोर धरानि। २ घाघाजिये, घुंघर। ३ हाथोको एक प्रातिज्ञ नाम। (वि०) ४ कुष्ठ, प्रयत्न। ५ मादनमोच, सुन्दर, मगोहर। ६ मगोर। ७ घीमा। (वि०) ८ धर्मिनेक, सं० गोरमें स्वर्णके तीन भेदोंमेंसे एक। इस प्रातिके स्वर मध्यमें अक्षरहीन होने हैं। इसे उदात्त या उतार भी कहते हैं।

मन्त्रभिद (सं० वि०) मादकतिहायुक।  
मन्त्रयु (सं० वि०) मन्वर जम्बकागताहागी, मन्वर शब्दकी इच्छा करनेवाला।

मन्त्राज (सं० पु०) दक्षिणका एक प्रधान नगर।  
मन्त्राज देवो।

मन्त्राजनी (सं० स्त्री०) मन्त्र-अज्ञान्युट स्त्री। मन्कर रमकी प्रेरयित्री।

'उमो मया पुत्रके विचरने मयु।  
मन्त्राजना गोदरे भन्तवर्गनि।' (शुक् ६।६।१२)

मन्त्राज्ञी (दि० वि०) १ मन्त्राज्ञमें उत्पन्न या मन्त्राज्ञका रहनेवाला। २ मन्त्राज्ञ सम्पत्ती। ३ मन्त्राज्ञका बना हुआ।

मन्त्राण (सं० पु०) जवाहर, भद्रकृत।  
मन्ध (सं० पु०) मन्ध, मथन।

मन्धावृ (सं० पु०) १ मेघाघो। २ सुयनाभके पुत्र, मन्धाता।

मन्त्र (दि० स्त्री०) क्रिमो देवनाकी पूजा करनेको यह प्रतिज्ञा जो क्रिमो नामना विनोयकी पूर्णिके लिये की जाती है, मानना, मनीता।

मन्ना (दि० पु०) जट्टको मरदका एक प्रकारका मोठा निवास। यह बांस भादि कुछ विनोय पृथोमेंसे निकलता है और इसका छपरदार जोवधिके रूपमें होता है।

मन्नारगुडि—१ मन्नाज प्रदेशके अन्तर्गत एक उपविभाग। इसमें मन्नारगुडि और निजलुर्ववसुपुत्रो नामक दो गातुक नगरे हैं।

२ उक्त उपविभागका एक गातुक। यह अक्षा० १०° २६' से १०° ४८' ३० तथा देशा० ७३° १६' से ७३° ३८' ५०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ३०१ वर्गमील और जनसंख्या दो लाखके करीब है। इसमें मन्नारगुडि नामक एक नहर और ११३ ग्राम पंचने हैं। गातुकके दक्षिण पश्चिम भागमें गेहोकराही नहीं होता है।

३ मन्नारगुडि गातुकका नहर। यह अक्षा० १०° ४०' ३० तथा देशा० ७३° ०३' ५० वायव्यपार भद्रोके किनारे अवस्थित है। मोसाम्मून्न नामक ईश्वर प्येतान-से १ मील दक्षिण पड़ता है। जनसंख्या दो लाखके ऊपर है जिनमेंसे हिंदूकी संख्या ज्यादा है। यह प्रधान

देवी कपड़े और भरतनके कारवारके लिये बहुत मजदूर हैं। नगरमें ६६ पुराने जमानेके मंदिर हैं जिनमेंसे ४ विष्णु-मंदिर और ६५ शिवमंदिर हैं। सबसे प्राचीन विष्णु-मंदिर विजयराघव नायकने बनवाया था। मंदिरमें जो शिलालिपियां हैं वे तामिल भाषामें लिखी हुई हैं। हिन्दू मंदिरके अलावा एक पुराना जैन-मंदिर भी नजर आता है। नहरमें एक कालेज और हाई-स्कूल हैं, जो मान्द्राज विद्यालयसे सम्पर्क रखता है।

मन्त्रुराम—अर्थवत्सुत्तवाद्यके रचयिता।

मन्त्रुलाल—एक ऐतिहासिक। ये बहादुर सिंह मुन्नीके पुत्र थे। इन्होंने तारोत्र-इ-शाहआलम' नामक दिल्लीश्वर शाहआलमके विस्तृत इतिहासकी रचना की।

मन्मथ ( सं० पु० ) मंथ पचाद्यम्, पृथोदरादित्वान् । १ कामदेव । ब्रह्मवैवर्त्सपुराणमें लिखा है,—

“मनो मन्थानि तदर्पो पञ्चशक्रेण कामिनाम् ।

तमाम मन्मथस्त्वेन प्रवदन्ति मनीषिणाः ॥”

पञ्चवाण कामियोका मन मथन करता है इसीसे मनोपियोने उसका मन्मथ नाम रखा है। नैषधचरितमें लिखा है—“न मन्मथस्त्व स हि नास्ति मूर्तिः” ( ८१३६ ) अर्थान् तुम मन्मथ नहीं हो। क्योंकि तुम्हारी मूर्ति ही तो नहीं है। कामदेव और मदनमहोत्सव शब्दमें विल्लुत विवरण देखो।

२ कपित्थ वृक्ष, कैधका पेड़। ३ कामचिन्ता। ४

साठ संवत्सरोंमेंसे अननीसवें संवत्सरका नाम। ५ आमका पेड़।

मन्मथकर ( सं० पु० ) कुमारके एक अनुचरका नाम।

मन्मथलेख ( सं० पु० ) प्रेमपत्र।

मन्मथशरी ( सं० स्त्री० ) कपूरशरी।

मन्मथा ( सं० स्त्री० ) मन्मथ टापू। हेमकूटकी वाक्षायणी मन्मथानन्द ( सं० पु० ) मन्मथ आनंदपतीति आनंद-पिन्धु पचाद्यम्। एक प्रकारका आम जिसे महाराजचूत भी कहते हैं।

मन्मथालय ( सं० पु० ) १ आमका पेड़। २ कामियोके मनोरथ पूर्ण होनेको जगह, विहारस्थल, प्रेमी और प्रेमिकाके मिलनेका स्थान।

मन्मथायास ( सं० पु० ) महाराज आम।

मन्मथिन ( सं० लि० ) कामी, कामुक।

मन्मन ( सं० स्त्री० ) १ मननीय धन। २ अशिमत्त काम। ३ मननीय स्तोत्र।

मन्मन ( सं० पु० ) १ गदुगदु आलाप। २ दम्पतीका कथनविशेष, कानमें गुप्त बात कहना।

मन्मथ ( सं० लि० ) मुग्धमें अयस्थित।

मन्मथस् ( सं० ज्य० ) मन्मनस्तोत्र छारा।

मन्मसाधन ( सं० लि० ) अभीष्टपूरणकारी, मनोरथ पूरा करनेवाला।

मन्मोक—एक प्राचीन कवि। सतुक्तिकर्णाश्रुतमें इनकी कविता लिखी है।

मन्य ( सं० लि० ) न-यत्। मननीय, माननेयोग्य। यह धूमरे शब्दके साथ व्यवहार किया जाता है। जैसे—पण्डितमन्य, श्रीमन्मन्य इत्यादि।

मन्यज्ञा ( सं० स्त्री० ) मन्या, गले परकी एक शिरा या नस जो पीछेकी ओर होती है।

मन्यन्तो ( सं० स्त्री० ) अग्निमन्त्रकी कन्या।

( महाभा० वनपर्व )

मन्या ( सं० स्त्री० ) मन्यते प्रायते इत्यभ्युभाषिकमनया, मन्-करणे क्यप् स्त्रियां टाप्। ग्रीवाके पश्चाद्भागकी शिरा, गले परकी नस।

मन्याचाली ( सं० स्त्री० ) घोड़ेका एक रोग।

मन्थार—निम्नश्रेणीकी जातिविशेष। यह कसेरी जातिसे उत्पन्न हुई है। अहमदनगर, धारवाड़ और येलगांव आदि स्थानोंमें इस जातिकी वास देखा जाता है। औरङ्गजेबके समय इस जातिके लोग सुलतमान-धर्ममें दक्षिण हुए। अहमदनगरमें जो मन्थार हैं उनमेंसे कुछ औरङ्गवादीसे आये थे और बाकीकी उत्पत्ति कसेरी जातिसे हुई है। इनमें प्रचलित भाषा दक्षिणी हिन्दु-स्तानी और विशुद्ध कनाडो अथवा मिश्रित-मराठी है। इनके शरीरका गठन मध्यमाकार तथा वर्ण काला और धूसर है। ये लोग सिरको मुड़वा देने, पर दाढ़ी रखते हैं। सिर पर मराठी पगड़ी और जरीरमें अंगरखा पहनते हैं। स्त्रियां हिंदुओंकी तरह शूद्राएँ करती हैं। वे किसीके भी सामने घूँघट नहीं काढती और पुण्यके कार्यमें सहायता करती हैं। स्त्री-पुरुष दोनों ही अति परिष्कार परिच्छिन्न हैं।

कांचकी चूड़ी, लाटकी चूड़ी और लोहेका बरतन बनाना इनका जातीय व्यवसाय है। अलाया इसके सूई, पिन, ताला, चाबी और अन्यान्य चीजोंकी भी बिक्री करते हैं। किसीके तो स्थायी दूकान है, कोई फेरी करके इधर उधर बेचता है। भाषसका विवाद पंचा यन्त्रसे निबटैरा होता है। कोई धनी भादमी मुगिया बनाता है। उसे अर्धदण्ड देनेका अधिकार है। ये लोग सुन्नी सम्प्रदायभक्त होने पर भी प्रधानतः दो श्रेणियोंमें विभक्त हैं,—

१। यज्ञरदार अर्थात् चूड़ी—व्यवसायो और दूसरा गन्यार अर्थात् चूड़ी और बामन-व्यवसायो। इन दोनों श्रेणियोंमें सामाजिक पृथक्ता कुछ भी नहीं है। भाषसमें भादान प्रदान चलता है। निम्नश्रेणियोंके मुसलमानोंमें भी इनका विवाह होता है।

मन्यास्तम्भ ( सं० पु० ) १ वातव्याधिविरोध। माघयके निदानमें लिखा है—

“दिवास्तन्नायानस्नान-विहृतोऽन्निरीक्षणैः।

मन्यास्तम्भं प्रकृते त एव श्लेष्मण्या पुनः ॥”

यह विद्यानिद्रा, आहार और स्नानकी विहृतिसे होता है। श्लेष्मा इसके उत्पत्तिकारण है।

दशमूली काप, पञ्चमूली, रुत स्वेद और नख इस रोगमें विशेष उपकारी है। २ घोड़ेका एक रोग।

फतम्बाभि देवो।

मग्यु ( सं० पु० स्त्री० ) मन्-युच् (यमिर्मनिशुभित्तिरनिम्बो पुन्। उष् ३२० ) १ स्तोत्र। २ कर्म, काम। ३ शोक, दुःख। ४ याग, यज्ञ। ५ क्रोध, गुस्सा। ६ ईश्वर, दीनता। ७ नियम, महादेव। ८ भद्रकार, धर्मज्ञ। ९ अग्नि, भाग। १० राजा वित्तधके एक पुत्रका नाम।

मग्युदेव ( सं० पु० ) १ क्रोधाभिमानो देवता। (मनु ८।३५) २ अपिभेद।

मग्युदेव—एकप्रसिद्ध वैद्याकरण, कल्याणके अनुज और शंभुदेवके पुत्र। इन्होंने परिभाषेगुणोपरोद्धार नामक परिभाषेगुणोपरोद्धारकी टीका, वैद्याकरणसिद्धान्तभूषण-मास्की टीका, शार्ङ्गदेवोपरोद्धार और सधु शार्ङ्गदेवोपरोद्धारकी टीका लिखी है।

मग्युमर्षी ( सं० स्त्री० ) मेरुपर्णी।

मग्युमर्षी ( सं० स्त्री० ) मग्यु मग्युप्। १ क्रोधमुक्त, गुणता-पर। ( पु० ) २ अग्निता एक नाम।

मग्युमय ( सं० स्त्री० ) १ क्रोधमय, गुस्सापर। २ अग्नि दायण, बहुत भयद्वर।

मग्युमी ( सं० स्त्री० ) मग्यु मिनानीनि, 'मिम् हिमनायां किप्' १ कोषकारी, गुस्सा करनेवाला। २ अभिमानो शत्रुका संहार करनेवाला।

मग्युगमन ( सं० स्त्री० ) क्रोधनिवारणका उपाय। मग्युपायिन् ( सं० स्त्री० ) क्रोध पूर्वक सोम भोजनकारी। मग्युसूक्त ( सं० स्त्री० ) श्राद्धेदके १०म मण्डलका ८३वां और ८४वां सूक्त।

मन्त्रो ( मन् हेतुर् मन्त्रो )—एक अंगरेजी सेनापति। मेजर कारनकको मृत्युके बाद मेजर हेतुर् मन्त्रो उनके पद पर अधिकृत हुए। सिपाही-विद्रोहके समय इन्होंने असीम साहस और अदम्य उत्साहसे काम किया था। इसी समय बषसर-युद्धमें विरोध रण-कौशल दिग्ग कर विजय-पताका फहराई थी। १७६४ ई०की २री बषसर-को युद्ध ७-७२ मेना टैकर के बषसरमें जा धमके। यहाँ यज्ञोर सुजा उड़ीला और मीर कामोम ४० हजारके बंदीब सेनाके साथ छावनी डाले हुए थे। उनके बाईं तरफसे जो गङ्गा नदी बहतो थी, उसमें उर्तों पूरा गुमान था, कि कोई भी गङ्गा पार पर निविर्गमें पुन न सकेंगा। पर मन्त्रो एक घोर पुरुष थे, सेना समेत गंगा पार कर छावनी पर चढ़ गाये। सिपायोंमें घड़े तक युद्ध हुआ। यज्ञोरको सेना हार सा कर भागी।

१७७० ई०में फारसीके साथ अंगरेजीका युद्ध छिड़ा। यह संवाद जब भारतवर्ष पहुँचा तब यहाँ उनके अधिष्टन छोटे छोटे स्थान अङ्गरेजोंसेना हट्ट करने लगीं। इसी समय जनरल सर हेतुर् मन्त्रो माग्गाज-मैन्वदलके अभिनेता बन कर पाँचोंपैरो दूख करके लिये भागे बड़े। सर एडवर्ड भारतन जो अंगरेजोंको औरसे कुछ अंगो जहाजके साथ यहाँ उतरे। फारसी सेनापति मि० सैन्जिन तीन युद्धजहाज दे कर उनको बाट जाह रहे थे। भाव दोनों पक्षमें युद्ध छिड़ गया। फारसी सेना हार सा कर सी दी ग्यारह हो गई।

१७८० ई०में टैररमन्त्रोने जव नयी मन्त्र भादि

स्थानोंमें लटपाट मन्वाना धाम्म कर दिया तब मन्वरो  
उनका दमन करनेकी श्राप्ते बढ़े, पर अटनकार्य हो  
काञ्चीपुरको लौट गये ।

१७८१ ई०में मन्वरोने नागपत्तनमें घेरा डाला और  
विशेष कौशल तथा साहसके साथ सफलता प्राप्त की ।  
इस समय मन्वरोके पास चार हजार और शत्रु पक्षमें साठ  
हजारसे भी अधिक सेना थी । इतनी मुठ्ठी भर सेनासे  
उन्होंने नगरको जीत कर बच्छा नाम फसा लिया था ।

१८१८ ई०में इन्होंने जेनरल प्रिजलर ( Pritzel ) के  
साथ ग्रीलापुरमें वेरावाकी सेना पर चढ़ाई कर दी ।  
युद्धमें वंभरेजीकी कुल ६७ सेना हत और ब्लाहत हुई ।  
किन्तु वेरावाकी ८०० से भी अधिक सेना निहत हुई थी ।  
मन्वरो (सर टामस)—एक अद्भुत सेनापति । ये म्हासगो-  
के रहनेवाले वणिक्-पुत्र थे । १७७६ ई०में मान्द्राज-  
पदातिक सैन्य दलमें ये भर्त्सो हुए । महिसुर तथा  
धम्यान्य युद्धोंमें विशेष रणकौशल दिखाने पर इन्होंने  
सेनापतिका पद प्राप्त किया था । १८१७ ई०में कर्णाटक-  
प्रदेशमें शान्तिस्थापन करनेके लिये मान्द्राजसे वहाँ  
आये थे । १८२७ ई०में इनका देहान्त हुआ ।

मन्वन्तर (सं० ह्री०) मनोरन्तरमरिचम् अथवा मनोरन्तर-  
मयकाशोऽवधिवांस्मिनिति । दिव्ययुगका इकहत्तर युग ।

‘मन्वन्तरान्तु दिव्यानां युगानामेकशतम्’ अमर)

इकहत्तर दिव्य-युगका नाम मन्वन्तर है । यह इकहत्तर  
युग सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि इन चारों युगोंका  
साधारण है और मन्वन्तर कहलाता है ।

‘एवं तदुपु गान्ध्याना साधिका होकशतम् ।

इत्यथेतादियुगानां मनोरन्तरमुच्यते ॥’ ( किरणपु० )

‘मन्वां त्वायम्सुसारीनामन्तरमयकाशोऽवधिवां मन्वन्तरम्’  
मन्वन्तर शब्दको ऐसी भी व्युत्पत्ति देखी जाती है ।

सर्वज्ञ नारायणके मतमें ईश्वरयुग सहस्र युग ब्रह्माका  
एक दिन होता है । इसी एक दिनमानका नाम मन्वन्तर  
है । यह चौदह भागोंमें विभक्त है ।

‘दिविकानां युगानान्तु सहस्रं ब्रह्मण्यं दिनम् ।

मन्वन्तरं तथैवैकं तस्य भागान्तुर्दश ॥’

एक एक मन्वन्तर कितने वर्ष तक रहता है, लिङ्ग-  
पुराणमें उसकी संख्या निर्दिष्ट हुई है । इसका मानुष

मान,—३०६७२०००० है । इस प्रकार चौदह मन्वन्तर  
ब्रह्माका एक दिन निकलित हुआ है ।

युग चार है,—सत्य, त्रेता, द्वापर और कलि । इन  
चारों युगोंका एकल मान बराबर है ईश्वर-परिमाण चारह  
हजार वर्षके । प्रथम युगका नाम सत्ययुग है । इसका  
मान ४००० वर्ष तथा सन्ध्या और संध्यांज प्रत्येकका  
मान ४०० वर्ष है, अतः सत्ययुगका मान कुल मिला कर  
४००० हजार ८ सौ वर्ष है । दूसरा त्रेतायुग है । इसका  
मान २००० हजार ६ सौ वर्ष है । तीसरे द्वापर युगका  
मान २४०० वर्ष है । चौथा युग कलियुग है । इसका मान  
१००० हजार २ सौ वर्ष है । इन चारों युगोंका जो मान  
बतलाया गया उसे दिव्य मान जानना होगा । उभोतिप-  
वचनमें सत्यत्रेता आदिका मान इस प्रकार निकलित  
हुआ है,—

‘वल्ग्विमेधा क्रतुर्मानसा ।

वेदा रगादी युजवह्निर्देवाः ।

एतानि मून्यत्रयताहितानि

मुगात्तरसंख्याः परिकीर्तितानि ॥’ (अपविःशास्त्र)

अर्थात् मानुष मानसे सत्यका मान १७२८००० वर्ष,  
त्रेताका १२६६००० वर्ष, द्वापरका ८६४००० वर्ष और  
कलिका मान ४३२०००० वर्ष है । कुल मिला कर  
४३२००००० वर्ष होता है, किन्तु अग्निपुराणमें जो संख्या  
बतलाई गई है उससे मेल नहीं पाना ।

अग्निपुराणके मतसे,—कलियुगका मान ४ लाख  
२२ हजार, द्वापरका ८ लाख ६४ हजार, त्रेताका १२  
लाख ६६ हजार और सत्ययुगका मान १७ लाख २८  
हजार वर्ष है । इस प्रकार चारों युगोंका मानुषमान  
मिला कर ४३ लाख २० हजार वर्ष होता है । इन चारों  
युगोंके एकहत्तर बार आधारांशका नाम एक मन्वन्तर है ।  
इस हिसाबसे एक मन्वन्तरका मान हुआ ३३ करोड़

० ‘मिगन् क्रोडवस्तु वर्षाणां मानुषेया दिव्यान्तराः ।

एतन्परित्स्वपानयानि त्रिगुणान्परिचयानि च ॥

परिचरित्र च महर्गुणा काशो योः साधिकां विना ।

मन्वन्तरस्य संख्येया त्रिगोडस्मिन् परिचिता दिव्याः ॥’

(किरणपु०)

६७ लाख २० हजार वर्ष । ऐसे चौदह मन्वन्तरका एक कल्प होता है ।

कालिकापुराणके मतसे मन्वन्तरका अर्थ है मनुका काल अर्थात् मनु जब तक प्रजा-पालन करते हैं । एक मन्वन्तरके अष्टमिधितिकालको ही मन्वन्तर कहते हैं । इस मन्वन्तरका देवमानसे जो इकहत्तर युग हैं, वही एक मन्वन्तरका परिमाणकाल माना गया है । इस प्रकार चौदह मन्वन्तरका एक कल्प और यह कल्प प्रसादा मिकै एक दिन होता है ।

“मन्वन्तरं मनोः कालो यावत् पानयते प्रजाः ।

एषो मनुः स कालस्तु मन्वन्तरमिति ध्रुवम् ॥

तद्वैकल्यमिदं यैर्देवानामिह जायते ।

तैश्चतुर्दशभिः षड्भूषा दिनैश्चतुर्दशभिः ॥”

(कालिकापुराण २७ भा०)

एक कल्पकाल साक्षात् एक दिन होता है । इसी दिनमानके मध्य चौदहों मनुका कर्मजा अधिकार काल शेष होने पर दूसरे मनुका उदय होगा है । इस प्रकार चौदहों मनु एक एक करके पृथ्वीके राजा हो कर अपने अपने भोवकाल तक राज्य करते हैं । एक एक मनुके राजत्व या अधिकार-कालका नाम ही मन्वन्तर है । मनुओंके नामानुसार ही चौदह मन्वन्तरके चौदह भिन्न नाम पड़े हैं ।

१. 'पर्मिशासिषि गन्तारि भवेत् कल्पियुगं क्रमे ।

द्विषिब्रह्मा सहस्रैश्च गर्हसान्ध्रि साम्पदा ॥

चतुःषोडशसप्तदशैश्च शशापकरी वा मलयदा ।

वर्षाणां द्वादशं प्रोक्तं युगं पूर्वनिर्दिशन्तः ॥

मेवा द्वादशतन्नामि वर्षाणां पणिकेतिनाः ।

पयसापत्या सहस्रेभ्य संतुक्रान्ति भरति निदि ॥

एतु छात्र वा क्रान्तापी वर्षाणां चतुर्दशं वृत्तं युगम् ।

सप्तसौषडशसप्तदा संतुक्रान्ति संपत्तया ॥

विन्दवामिन्तसप्तदशैश्च सहस्राणि न विरतिभिः ।

मातुसेषु प्रमतेन भवेत् चतुर्दशं न वाम् ॥

सप्तसप्तदशं द्वादशानि विना चोत्तरमप्येव च ।

विन्दवित्तं सहस्राणि मन्वन्तरमिति कल्पते ।

चतुर्दशैश्च सप्तदशैश्च सप्तदशैश्च भूषिभिः ।

चतुर्दशैश्च सप्तदशैश्च सप्तदशैश्च ॥” (भट्टि०)

भाग्यवतसे लिया है,—साक्षात् एक दिन चतुर्दश मनुका अधिकारकाल है । एक एक मनुके अधिकार-कालको मन्वन्तर कहते हैं । मनुओंके नाम तथा किस किस मनुके बाद कौन कौन मनु राज्यशासन करते हैं, उसके विषयमें इस प्रकार लिया है,—प्रथम म्यावम्बुव मनु, द्वितीय स्वामेचिप मनु, तृतीय उत्तम, चतुर्थ तामस, पशुम देखत, षष्ठ चाभूय और सप्तम सैवमपल मनु हैं । धर्ममानकालमें देवस्वत मनुका अधिकार चलता है । इसके बाद अष्टम मनु सावर्णि, नवम दक्ष सावर्णि, दशम ब्रह्मसावर्णि, एकादश धर्मसावर्णि, द्वादश रुद्रसावर्णि, त्रयोदश देवसावर्णि और चतुर्दश इन्द्रसावर्णि हैं ।

प्रत्येक मन्वन्तरमें भगवान भिन्न भिन्न अवतार लेते हैं । एक एक इन्द्र और पृथक् पृथक् भागमें देवगण, मर्त्य, मनु और मनुयुगल आदिभूत होते हैं । एक एक मन्वन्तरमें एक एक मनु पृथिवी पर राजा हो कर प्रजाका और एक एक इन्द्र स्वर्गमें रह कर देवताओंका शासन करते हैं । देवताओं पर शाधिपत्य करनेके निवाय यथाकालमें चात्विर्षण करना भी उहाँका काम है । इन्द्रके जन्म होनेसे प्रजा सुखमें रहती है । देवगण प्रजा द्वारा किये गये यज्ञादि कर्मोंमें परिपुष्ट हो कर उन्हें उन सब कर्मोंका उपयुक्त फल देते हैं । मर्त्यगण धर्मशास्त्रकी प्रकाश करते हैं । मन्वन्तरमेंद्वयं भगवान् विभिन्नरूपमें अवतार ले कर उन्हें अपने अपने कर्मोंमें नियुक्त करते हैं । उन्हींके हाथमें धर्मशास्त्रों देख राक्षसों आदिका नष्टकार होता है जिसमें तमाम ज्ञानि विराजती है । पहले पृथिवीके राजा मनु होते हैं । बाद उनके पुत्र सोमोदित्मण मन्वन्तरवालेके देव समय तक एक एक करके राज्यशासन करते हैं । जो मनु राजा होते हैं, उन्हींके समकाल में चतुर्दश मन्वन्तरकाल शेष होता है, जो नहीं । उनके अनन्तरमें उनके पंजापर्वका राजत्व क्यावाक भी मन्वन्तरके शेष समय तक चलता है । इस प्रकार सब तरह मन्वन्तरका विषय-मिल समय चलता है, तथा अन्य इन्द्र मनु तथा देव मर्त्य आदि सभी मन्वन्तरमें आदिभूत हो कर अपने अपने निरूपे कर्मोंमें लग जाते हैं ।

किस मनुके अधिकारकालमें भगवान् का कौन अवतार



होता है, कौन इन्द्र, कौन देवगण और कौन सप्तर्षि होते हैं तथा मनुके पुत्र-पौत्रादि ही कौन हैं, इसका विस्तृत विवरण मनु ग्रन्थमें लिखा जा चुका है। मनु देवों।

मार्कण्डेयपुराणके मन्वन्तरानुवर्णन-अध्याय ध्यानपूर्वक सुननेसे मानव त्रिविध प्रकृतलाभके अधिकारी हो सकते हैं। स्यारोचिष मन्वन्तरका विवरण सुननेसे मानवके मर्मा मनोरथ पूर्ण होते हैं तथा औत्तमि मनुका उपाख्यान सुननेसे धनकी प्राप्ति होती है। इसी प्रकार तामसमे ज्ञान, रैवतसे बुद्धि और सुन्दर स्त्री, चाक्षुषसे आरोग्य, वैवस्वतसे बल, सूर्यसायणिकसे गुणवान् पौत्र, ब्रह्मसायणिकसे माहात्म्य, धर्मसायणिकसे शुभ मति, रुद्र सायणिकसे जय, दक्षसायणिकसे श्रेष्ठजाति और सद्गुण, रीचपसे जलुनाशक्षमता, भीरुपसे देव-प्रसाद, अग्निसे तेजस्वी और गुणवान् बहुपुत्र लाभ होते हैं। प्रत्येक मन्वन्तरके देव, ऋषि और इन्द्र आदिका नाम सुननेसे मानवके संव पाप ज्ञाते रहते हैं। देवर्षि-गण भी प्रसन्न होते और उन्हें शुभमति देते हैं। शुभ-मति पा कर ही मानव सुपथसे चल कर शुभ कर्म करने लगते हैं। शुभ कर्मसे ही उनका विशेष मंगल होता है। विस्तृत विवरण विष्णु पुराणके ३।१२ अध्यायमें देवों।

पुराणादि ग्रंथोंमें मन्वन्तरका उल्लेख रहने पर भी आश्चर्य इस बातका है, कि सुवाचोन वैदिक ग्रन्थोंमें मन्वन्तरका नाम तक भी नहीं आया है।

२ दुर्मिश्र, अकाल।

मन्वन्तरा (सं० स्त्री०) प्राचीनकालका एक प्रकारका उत्सव। यह उत्सव आपाद् शुकु दशमो, ध्रावण कृष्ण अष्टमो और भाद्र शुक्ल तृतीयाकी होता था।

मन्वाच (सं० पु०) धान्य, धान।

मन्वीग (सं० पु०) शानेज।

मण्ड (सं० पु०) मण्डूक, घनमूंग।

मण्डक (सं० पु०) मण्ड देवों।

मकिर (सं० स्त्री०) जनपदभेद।

मम (सं० पु०) मेरा या मेरी।

ममक (सं० स्त्री०) मदीय, मेरा।

ममकार (सं० पु०) १ किसीकी निज्जी संपत्ति, अपना कर्माई हुई संपत्ति। (स्त्री०) २ दिनकर।

ममदृष्ट्य (सं० पु०) ममकार देवों।

ममता (सं० स्त्री०) मम भावें तल टापू। १ 'यह मेरा है' इस प्रकारका भाव, अपनापन। २ मोह, लोभ। ३ अभिमान, गर्व। ४ स्नेह, प्रेम। ५ घह स्नेह जो माताका पुत्रके साथ होता है। ६ उत्तमपत्नी पत्नी, ऋषि दीर्घतमाकी माता। यह ब्रह्मवादिनी मानी जाती थी।

ममतायुक्त (सं० स्त्री०) ममतया युक्तः। १ कृपण, कञ्जूस। ३ अभिमानी, विमाणा। ३ जिसमें ममता हो।

ममत्व (सं० स्त्री०) मम भावें त्व। १ ममता, अपनापन। २ स्नेह। ३ गर्व, अभिमान।

ममरी (हिं० स्त्री०) वनतुलसी, बरई।

ममसत्व (सं० स्त्री०) संप्राम, स्वामित्वके लाभके लिये युद्ध।

ममाथ (सं० स्त्री०) नामभेद।

ममापताल (सं० पु०) मथ्यवधने आल (मथ्यवेदलोपो मरचाणुद् नाप्तः। उण् ५।१०) इति धातुर्वलोपः प्रकारचान्तस्य आपतुङ्गामश्च। विषय।

ममिया (हिं० स्त्री०) जो संबंधमें मामाके स्थान पर पड़ता हो, मामाके स्थानका। जैसे—ममिया साहूदर, ममिया सास।

ममियाडर (हिं० पु०) ममियोरा देवों।

ममियोरा (हिं० पु०) मामाका घर, ममाना।

ममोरा (अ० पु०) आसामके पूर्ण पहाड़ी देशोंमें मिलने-वाली हल्दीकी जातिके वीधेकी जड़। इसके कई भेद होते हैं। यह आंनके रोगोंकी अपूर्व औषध मानी जाती है। कुछ दूसरे पौधोंकी जड़ें भी जो इससे मिलती जुलती होनी हैं, ममोरेके नामसे विकती हैं और उन्हें नकली ममोरा कहने हैं।

मम्मट—संस्कृत बालकृतरशास्त्रके प्रधान पुस्तक काव्य-प्रकाशके कर्ता। कोई कोई काव्य प्रकाशका रचनाकाल १३३५के पूर्व ही बतलाते हैं, क्योंकि १३वीं शताब्दीके माधवाचार्यने सर्वदर्शनसंग्रहमें काव्यप्रकाशका उल्लेख किया है।

परन्तु मम्मटका समय ११वीं शताब्दीका अंतिम भाग मानना ही उत्तम है। कारण, ये मालवाधीन सिन्धुताराके पुत्र भोजराजसे नयोन और काव्य-

प्रकाशके टोकाकार माणिस्यचन्द्रमे प्राचीन है। भोज-  
राजका समय १४वीं शताब्दीका अन्त और १०वींका  
प्रारम्भ माना गया है। मम्मटने काव्यप्रकाशके द्वाय  
उद्घासमें उदात्तालङ्कारके उदाहरणमें—भोजनुरोत्तरत्या-  
गतीनापिणम् यह पद उद्धृत किया है जिसमें भोजराजसे  
मर्मट अर्थात्चौन सिद्ध होते हैं। माणिस्यचन्द्रसे मम्मटकी  
प्राचीनताके विषयमें कुछ कहनेकी जरूरत ही नहीं है।  
क्योंकि इन्होंने काव्यप्रकाशकी सङ्गृहता नामकी टीका  
लिखी है। ११६० ई०में माणिस्यचन्द्रने काव्यप्रकाश-  
की टीका सङ्गृहता बनाई जिसमें उन्होंने लिखा है—

“रसवचनमहाधीनवत्सरे ( १२१६ ) पाति माष्ये ।

काव्ये काव्यप्रकाशस्य सङ्गृहोऽयं समर्थितः ॥”

माणिस्यचन्द्रने धवना समय १२१६ विक्रमो संवत्  
पतलाया है। इसके अनुसार उनका समय ११६० ई०-  
सन् होता है।

काव्यप्रकाशकार मम्मटका कुछ विशेष पृत्तान्त  
नहीं मालूम पड़ता। काव्यप्रकाशकी निदर्शन नामक  
टीकासे इतना मालूम पड़ता है, कि ये शैवागमानुयायी  
शैव थे और 'जन्मदशपाप-विचार' नामक ग्रन्थ इन्होंने  
बनाया है।

मम्मटका जन्म काश्मीरमें हुआ था। जैवट कैपट  
भाई काश्मीरियोंके नामके सङ्ग इतना ही नाम मम्मट  
है। मम्मटने परिकरालङ्कार पर्यन्त काव्यप्रकाश बनाया  
था। भाषाका अंश अष्टमूर्ति पूरा किया।

मम्ममट्ट—सूर्यसिद्धान्त टीकाके प्रणेता।

ममी —भिन्नदेश-प्रसिद्ध रक्षित मृत-मनुष्य (Mummy)।  
मयी ( हि० खो० ) लोहेकी छोटी सामी जो गाड़ोंमें  
धबकेकी नाभिके दोनों ओर उस उदरके मुँह पर लोड  
कर बँधाई जाती है जिसमें धुरेका सिरा रहता है।

मय ( अ० पु० ) मयते द्रुत् मन्थन्तीति मय पचायच् । १  
उच्, ऊंटे । २ अथवा, मयट । ३ मय, योड् । ४  
निकितसक, यैय । ५ गुण, भावन् । ६ दंगमं, एक  
देवता नाम । ७ एक प्रसिद्ध दानव । जिस प्रकार  
देवताओंके निजगी विषयकमां थे, उन्हीं प्रकार मय दानवों-  
के मध्य भाँहतीय थे। रामायणके उपरकाण्डमें ( १३  
सर्गमें ) लिखा है, कि मय दिविके पुत्र थे। उन्होंने

हेमा नामक अम्बराके रूप पर गुप्त हो कर उससे  
वियाह किया था। हेमा रूपमें गुणमें जायके समान  
थी। उसके गर्भसे मायावी और मुद्गुनि नामक दो पुत्र  
और मन्त्रोदरो नामक एक कन्या उत्पन्न हुई। हेमा  
देवकायमें नरह वर्षके लिये स्वर्ग चली गई थी। इससे  
मयकी भारी विरह दुःख हुआ था। इस दुःखका निवा-  
रण करनेके लिये उन्होंने विविध निर्माणशक्तिके प्रया-  
सोंके द्वारा-यैदुर्ग इन्द्रनील चंचित एक स्वर्णमय पुर बनाया  
और यहाँ कुछ काल तक वास किया। कुछ दिन बाद  
ये उस पुरसे निकल कर मयगी कन्या मन्त्रोदरोके साथ  
जङ्गलकी ओर गये। वहाँ रायणके साथ उनकी भेंट  
हुई। वानचौतमें दोनोंका परिचय सुल गया। मय-  
दानव कन्याका पात्र दृष्टते हा थे, अभी रायणकी देण  
कर बड़े प्रसन्न हुए। रायणकी अग्निमुन्दोत्पन्न जान  
कर उन्होंने मन्त्रोदरोकी उनके साथ व्याहना चाहा।  
रायणने यह बात मँजूर कर ली और वनमें मयिकी  
साक्षी रूप कर मन्त्रोदरोका पालनरक्षण किया। इस  
समय यौतुकमें मयने सरोवरलक्ष्य एक 'मोघनागि'  
रायणकी दी थी। इसी शक्तिके आघातसे लक्ष्य  
वेधेज हुए थे।

किङ्किन्ध्याकाण्ड ( ५०-५१ सर्ग )में लिखा है, कि  
वानराण प्रब स्रोताञ्जीकी शोभामें चारों ओर घूम रहे थे,  
उस समय उन्होंने दक्षिण दिशामें मयदानव-रहित ब्रह्म  
विल नामक एक युगमें विल देखा था। इस अगतिवित  
स्थानमें आ कर वे सबके सब राह भूल गये थे। इस  
ब्रह्मविलके मध्य मयदानवका निज-निदर्शन स्वर्णदीप्य  
यैदुर्वादि-निर्मित स्वर्णमय गवाश-शोभित सतलक्ष्य दृष्ट,  
स्वर्णमय दूध और स्वर्णमय पद्मनरम्बादि शोभित सूर्य  
उपवन था। हेमाकी सहचरी और मेदमावदिकी कन्या  
स्वर्णप्रभा नामक एक आपसी घृहस्थामें नियुक्त थी।  
हनूमान जब उस तापसीके पास गये, तब उन्हें मालूम  
हुआ, कि ये सब मयदानवकी बोलि है। ये हेमाके साथ  
यहाँ पर रहते हैं। हेमाके प्रेममें ही आशिर इन्द्रके  
यज्ञाघातमें उनका प्राण विधाय हुआ।

रामायण, महाभारत और ताका युगलीमें मयदानवके  
अन्तधातल निज्य मैतुम्यका शान दिया है। किङ्किन्ध्या

काएटके ४३वें सर्गमें लिखा है, कि मयदानयने मैताक-  
गिरिके ऊपर एक अपूर्व नाना मणिरत्न लखिन प्रासाद  
बनाया था । ' यहाँ अद्भुतमूख नारियां रहती थीं ।

मयदानयने हो युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञकी समा-  
बन्दाई थी, जितने देण कर वपुं वपुं की युद्धि चकरा गई  
थी, दुर्योधनका क्या कहना, घे ी जल मरे थे ।

मयदानयने गिलाजाल भी प्रकाश किया था । मय-  
गिला नामक एक छोटा संस्कृत गिला ग्रन्थ मिलता है ।  
यहूनोंका विश्वास है, कि यह मयदानयका ही रचा  
हुआ है ।

( त्रि० ) ८ गला, जनेयाला ।

मय—१ सूर्यमिडान्त-घर्षित एक प्राचीन ज्योतिर्विद् ।  
सूर्यमिडान्तके मतसे इन्होंने सूर्यमें ज्योतिर्विधा सीखी  
थी । कोई कोई इन्हें मिथ्यदेशीय प्राचीन ज्योतिर्विद्  
तलेमी ( तुलमय ) समझते हैं । किन्तु यह कहाँ तक  
विध्वाम-योग्य है उसका कोई प्रमाण नहीं मिलता ।

२ अमेरिका देशके मेक्सिको नामक देशके प्राचीन  
अधियात्मी । ये किसी समयमें बहुत अधिक उन्नत और  
सभ्य थे । इनकी सभ्यता भारतवासियोंकी सभ्यतासे  
बहुत कुछ मिलती जुलती है ।

मय ( हि० अय० ) तद्वितका एक प्रत्यय जो तद्, प,  
विकार और प्रासुप अर्थमें जड़ोंके साथ लगाया जाता  
है । जैसे, खानन्दमय ।

मयज्ञेय—दक्षिणापथके अन्तर्गत एक पुण्यस्थान ।

मयगल ( हि० पु० ) मत्त हाथी, मदमत्त हाथी ।

मयग्राम—काश्मीरके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम ।

( राज० ८३ भ० )

मयङ्क ( सं० पु० ) चन्द्रमा ।

मयट ( सं० पु० ) मय अटन ( शकादिभ्योऽन उष् ५८८ )

१ मृणयुक्त हर्ष, प्रासाद । २ पर्णकुटीर, पर्णशाला ।

मयन ( सं० पु० ) १ मदनपुत्र, मदनका पेट । ( त्रि० ) २ मधु-  
मयवीका छत्ता ।

मयना ( हि० स्त्री० ) मैना देवी ।

मयमंत ( हि० वि० ) मदमत्त, मत्त ।

मयमस्त ( हि० वि० ) मयमत्त देवी ।

मयपक ( सं० पु० ) मयुष्टकं पुरोद्वादिरथान् साधुः ।  
यनमुद्र, यनमूंग ।

मयस् ( सं० स्त्री० ) सुख, खानन्द ।

मयस्तरस् ( सं० स्त्री० ) मय दानयका बनाया हुआ एक  
सरोवर ।

मयस्तर ( सं० त्रि० ) मयस्तरतोति छ-ट । मोक्षपुत्र-  
कारक ।

मयस्तर ( श० वि० ) उपलब्ध, प्राप्त ।

मया ( सं० स्त्री० ) मयने गच्छति रोमोऽनया मय फ,  
रियां टाप् । १ निकृष्टता । ( त्रि० ) २ अरमद् अर्थकी  
नृतियोंके एक घननमें मया होता है । इसका अर्थ है  
मुफ्फले ।

मया ( हि० स्त्री० ) १ प्रथमाल, माया । २ जगत्, संसार ।  
३ जीव और शरीरका सम्बन्ध, जीवन । ४ प्रेम-पाश,  
प्रेम बंधन । ५ दया, अनुकम्पा ।

मवार ( हि० वि० ) छपाहु, इयाहु ।

मयाराम मिश्र—व्यवहारनिर्णयके प्रणेता ।

मयारी ( हि० स्त्री० ) १ वह इंडा या धरन जिस पर  
दिहोलेकी रस्से लटकई जाती है । २ छाजनकी वह  
धरन जिस पर बहुआके आधार पर बंधे रहती है ।

मयालमुण्डिका—आरामके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम ।

मयियसु ( सं० स्त्री० ) मन्त्रमेद ।

मयी ( सं० स्त्री० ) मय ( पुंभागादिति । पा ५।१।४८ ) इति  
डोप् । मयत्री जाति, ऊंटनी ।

मयु ( सं० पु० ) मयद् गती न्यरूपवादिस्थान्, कु, गदा  
मिनोति सुजघ्नं करोतीति मि ( भ-गुशीवृत्तदिगपरिनिर्णयमि-  
मयजिम्भ उः । उष् १।१० ) इति उ । १ किरण । २ मृग ।

मयुराज ( सं० पु० ) मयूनां किरणानां राजा ( राजाहासिनि-  
म्यष्टन् । पा ५।४।६१ ) इति टच् । कुयेट ।

मयुष्टक ( सं० पु० ) मयून् मृगान् स्तकति प्रीणयतीनि-  
स्तक-अच पर्य । यनमुद्र, यनमूंग ।

मयुष्ट ( सं० पु० ) मयुष्टक देशो ।

मयूक ( सं० पु० ) मयूर, मोर ।

मयूख ( सं० पु० ) मापयन् गणनं प्रमाणयन् धौलपि  
गच्छतीति पुरोद्वादिरथान् साधुः श्वयम्बरकीर्वाणो रपु-  
नाथ, यथा यानि परिगानीय मा ( भाट्ट उंयो मय न । उष्  
१।२५ ) इति उलः मयादेशद्वय । १ किरण, रश्मि । २  
ज्वाला । ३ शक्ति, प्रकाश । ४ कलि । ५ पर्यन्त ।

मयूषमाला (सं० स्त्री०) मयूषाणां माला । किरणमाला ।  
 मयूषवयू (सं० लि०) मयूष अन्वयर्थे मयूष मय्य वः ।  
 किरणमुक्त, इतिमयिनिष्ठ ।  
 मयूषादित्य (सं० पुं०) आदित्यभेद, सूर्यके एक भेदका  
 नाम ।

मयूषिन् (सं० लि०) मयूष अन्वयर्थे इति । मयूषादिनिष्ठ ।  
 मयूषी (सं० स्त्री०) भारतोय प्राचीन सूर्याके एक अक्षर-  
 का नाम । वैशम्पायनोक्त धनुर्वेद प्रथमे इसकी आकृति  
 और कार्यका विषय लिखा है ।

मयूषगरी—जौनपुर जिल्लाकर्त एक प्राचीन गण्डप्रपात ।  
 मयूर (सं० पुं०) मयूरिय सैति शब्दावले इति वा क, दूषो-  
 वरादित्याम्, माधुः, सयया मोनानि हर्ति सर्पांनिनि मी-  
 ऊरन् (नीनात्स्वम्) उष्य १६८) १ शौर । पर्याय -  
 र्वाहिन, घर्दिन, नोलकण्ठ, भुजङ्गमुञ्ज, निम्बायल, निम्बिन्,  
 केचिन्, मेघनादानुलागिन, पनालकिन्, चन्द्रकिन्,  
 मितापाङ्क, ध्वजिन्, मेघानभिन्, कलापिन, निम्बगिष्ठन,  
 चित्रविष्टक, भुक्षामोगिन, मेघनादानुलासक ।

“यदा तु जानकीविभुंशं सचिष्टं पशु-  
 स्तदा गवाः प्राग्भियाः सुमेरु मन्दरादयः ।  
 मयूरमशासमसोऽभारुमाह्वयुद् गगान-  
 स्तदा मयूरमस्तोक जगत्त्रे पत्रमः स्वयम् ॥” (उपद्र )

मयूर सब पक्षियोंमें सुन्दर पक्षी है । यह प्रायः चार  
 फुट लम्बा होता है । इसके लम्बे गरदन और छाती-  
 का रंग बहुत ही चमकीला और चमकीला नीला होता है ।  
 इसके सिर पर बहुत ही सुन्दर कलगी या मोटी होती  
 है । पंख छोटे, पूँछ लम्बी और बहुत सुन्दर होती है ।  
 गर जिस समय प्रसन्न होता है, उस समय जबकी पूँछ-  
 के पर लटके करके सँझलाकार फैला देता है, जिससे यह  
 बहुत ही सुन्दर जाम चढ़ता है । इसका स्वभाव है, कि  
 बादलोंकी गरज सुन कर यह बहुत प्रसन्न होता और  
 फूकता है । पूँछके परों पर बहुत सुन्दर मोल दाग या  
 चिह्नियाँ होती हैं, जिसका रंग नीला होता है और जिस  
 पर सुन्दर सुन्दर मंडल होता है । इन्हें चरित्रका  
 कहते हैं । अनेक परतोंके रंगका रंगमा सुन्दर मेल  
 इसमें होता है, यैसा और किसी पक्षीमें नहीं होता ।

मयूरके पंख या पर बच और वरी इस प्रकार रंग-

दिरंगके रंगोंमें रंग गये, इसका हाल बाल्मीकि रामायण-  
 के उत्तरकाण्डमें इस प्रकार लिखा है, -

हुदांन रायण प्रहामे पर वा कर पूर्यो पारके मनी  
 र्वाकियोरु गूणके समान ममभने लया । धीरे धीरे  
 उसमें भयमान, निरुत्कार, लाज्यता, यहाँ तक कि उनका  
 ध्वंस करना भी शुरू कर दिया । देवगण इसके सारे  
 सदैव मग्नहृत् स्तने लगे । इसी समय राजा मरुत्तका  
 एक भावम हुआ । यहाँमें सभी देवताओंकी निम्नस्त्रण  
 गया था । यथासमय ये हृष्टचित्तमें अपना अपना पक्ष-  
 भाग लेनेके लिये यहाँ उपाभ्यत हुए । यूरूपनिके आई  
 प्रार्थि सरवत्सं यथर्षे होता बने । महाभूमिधामसे एक  
 आरम्भ हुआ । इसी समय रायण पुण्यकर्मिण पर  
 भाता दिगाई दिया । हर्ष गया -विगाद आया । देवता  
 लोग दर गये । इन्होंने रायणके हाथमें बचनेके लिये  
 निर्दग् देनामें प्रवेग किया ।

जिन्होंने निर्दग्देन भारत की भी उनमेंसे इष्ट मयूर,  
 धर्मराज गायम, कुंजर कक्याज और बरुण हीन हुए थे ।  
 इस प्रकार सूर्यने देहवर्षिपर्वन करके रायणके हाथमें  
 रक्षा पार भी । रायणके चले जाने पर देवगण पुनः अपने  
 अपने स्वरुपों आ गये । भवत्तर जिन्होंने जिस पक्षीका  
 जरीर भारत किया था उन्होंने उसके प्रति प्रसन्न हो कर  
 एक एक पर प्रदान किया । इन पक्षीमाओंमेंसे इन्होंने  
 मयूरको चर दिया था । इन्होंने परमें मयूरके जरीरमें  
 हजारों विचित्र मेल हो गये । सांपका मय रित्युत्प  
 जाता रहा । इन्होंने यात्रिवुंद या कर ये प्रसन्न चित्तमें  
 फूकने लगे । उनका माला परनेमें ही नील यणीति रंग  
 था । सभी इष्टके परमें और भी चहरे रंगदिरंगके रंगोंमें  
 रंग गया जिससे जीना परनेमें कहीं चढ़ चढ़ गये । १०

“एषा देवानु गच्छते पराजितं दुर्धम् ।  
 दिरंगकेनि र्वाकियोरु गूणके समान ममभने लया ॥  
 इन्दी मयूर सन्वयो धर्मराजसु बरुणा ।  
 कृत्वासी धनाजने इनाय बरुणोऽभक्तु ॥  
 हरीरादावर्षिदस्यो मयूर मीचरिदस्य ।  
 मीचरिदस्य मयूरस्य भुजङ्गस्य मीचरिदस्य ॥  
 इदं जगत्स्युत्पन्नं यथासं चरिचरिन् ।  
 कर्मसो मयि सुदं प्रसन्नो मीचरिदस्य ॥”  
 (रामायण उ० ६० १०)

प्राणित्त्वयिर्द्विने मयूरको पायोनिनी (Pavoniae) नामक परीको श्रेणोमें नामिल किया है। उक्त धेणोके पक्षियोंकी चौंघ बहुत कड़ी और उसका भगला भाग टेढ़ा होता है। गण्डस्थलमें अन्धान्य भयषयोकी अपेक्षा कम पर होते हैं, मस्तक परोंसे ढका रहता है। पंखमें जितने पर ही उनमेंसे केवल छः ही बड़े हैं। पूंछमें १८ पर हैं जो सबसे लम्बे और बड़े बड़े हैं। मायाको अपेक्षा नरकी पूंछ लंबी होती है।

उद्धित पक्षिश्रेणोके मध्य केवल दो प्रकारके मयूर वर्णन करने योग्य हैं, पहला साधारण मयूर और दूसरा जापानी मयूर।

पहली जातिके मयूरके मस्तक पर २४ पर रहते हैं। पूंछके पर सभी समान नहीं होने, ऊपरवाले सबसे छोटे होते हैं। मयूर रज्जापूर्वक अपनी पूंछको चक्राकार बना सकता है। इस समय सूर्यको किरण उस पर पड़नेसे शोभा ऐसी भव्य हो जाती है, कि वर्णन नहीं कर सकते। नरकी पूंछ उतनी चमकीली और लंबी नहीं होती।

भारतके उत्तरांशमें असंख्य मयूर देखनेमें आते हैं। ये सभी आसानीसे पोंस मानते हैं। बहुतसे देवालयमें पालित मयूर देखनेमें आते हैं।

बाहुनसाह्य तथा अन्धान्य पण्डितोंके मतसे आलेक-सन्दर्क समय मयूर भारतवर्षसे ग्रीस राज्यमें लाया गया। पाछे पदांति यूरोपमें इसका प्रचार हुआ। किसी ऐतिहासिक पाण्डितने विश्वस्त प्रमाणकी दिखलाते हुए यह स्थिर किया है, कि पेरिक्लिससे पहले ग्रीसमें मयूर लाया गया था।

दूसरा धेणोका मयूर (P. Japonensis) नीलापन लिये सभ्य होता है। शरीर पर सूर्यको किरण पड़नेसे यह रंग लुब गहरा दिवारं देता है, तथा किरणके तार-तन्धानुसार एक रंग दूसरे रंगमें परिवर्तित होते देखा जाता है।

इन दोनों जातिके मयूरोंका आकार और गठन एक-सा होता है। किन्तु दूसरी धेणोके मयूरको थोड़ा बड़ोसे बूनी लंबी होती है तथा चोंडा के पर तमाम एक-से रहते हैं। गण्डस्थलमें आठ और

कानके समीप पर नहीं होते। गले और घसःस्थलके पर छोटे और गोल हैं। इसके परोंका रंग गहरा गोल्ला होता है। पूंछके पर साधारणतः घुमर वर्ण हैं, किन्तु मयूरकी किरण पड़नेसे सभ्य हो जाते हैं। पूंछका भगला भाग बहुत लंबा और टेढ़ाकी तरह चिपका होता है। उसके ऊपर सुन्दर आंग हैं। इनकी चौंघ चमकीली सफेद तथा साधारण मयूरकी चौंघसे लंबी और पतली होती है।

अध्याय इसके और भी कितने प्रकारके मयूर देखनेमें आते हैं। 'जापानमयूर' नामक एक प्रकारका मयूर है जो मयल-उपद्वीपमें पाया जाता है। ये देखनेमें बड़े सुन्दर जान पड़ते हैं। इनका वर्ण साधारण मयूरके वर्णसे भूयुक्त है तथा शिखरमें भी बहुत अन्तर है।

'आसामी मयूर' (P. Assamensis) आसाम, मलका, ब्रह्मदेश और भारतीय अन्तरीपोंमें पाये आते हैं। इनका रंग साधारण मयूरके रंगसे बहुत सभ्य और सुन्दर होता है, किन्तु नीलां कुछ कम है।

'जापानी मयूर' नामक एक और प्रकारका मयूर है जिसका गला काला होता है। जापानी मयूर इसका नाम होने पर भी यह जापानमें नहीं मिलता। कोचीन चीनके जंगलोंमें अधिक संख्यामें देखा जाता है।

राजपूत-राजाओंमें मयूरार्कति कीलीन्यपद्मनक चिह्न अनेक समय अग्रहण होता है। मयूर हिन्दू देवता कार्तिकका वाहन है, इसीसे इसको पवित्र पक्षी मानते हैं। केवल इसी देशमें नहीं, यूरोपमें भी मयूरका आदर है।

राजपूत लोग अपनी पगड़ीमें चन्द्रिकाकी मौंस कर उसकी शोभा बढ़ाते हैं। विलायतमें धर्मबोधाओं अपनी टोपीके ऊपर मयूरका पर धारण करते हैं। भारतवासी अनिश्चित लोगोंका विश्वास है, कि मयूरकी पूंछमें ऐन्द्रजालिक क्षमता है, इसी कारण जादूगर अनेक समय एक गुच्छा मयूरकी पूंछ हाथमें ले कर घूमते हैं। विरोधनः जैन-संन्यासिगण मयूरके परको अक्षर काममें लाते हैं।

पुराणमें कई जगह मयूरके सम्बन्धमें उपाख्यान देखनेमें आते हैं। कहते हैं, कि एक दिन शिव अपना

सुदर्शिनियों भगवतीको खुदा करनेके लिये सुन्दर नाम करते थे। मन्दा जो उनका भ्रम था, सुदङ्ग बनाया था। गजानन और कार्तिकेय मयूर पर बैठे समाजा देवते थे। विषधर मयूर लियेके गलेमें लिपट कर मस्तक पर जोरना था। उसी समय वन पटा फिर आई। मयूर मेघको देख कर बहुत प्रसन्न हुआ और सुदङ्गकी ध्वनिको मेघको गज समझ कर जोरसे कूकने लगा। यह शब्द सुन कर मयूरका चित्त-जलु लियेके गलेका मांस बहुत डर गया और भागनेकी कोशिश करने लगा। निकटमें गणेशकी मूर्ति देख कर यह डरके मारे उसमें घुस गया। हाथोंके लगाट पर बैठो हुई मङ्गलभाइए मधुमक्षिका भी डरसे उड़ गई।

दिल्लीके सम्राट् शाहजहानका मयूरामल इतिहासमें बहुत-प्रसिद्ध है। यह मयूरारुति-भागन इस प्रकार बना था, कि कोरे भी उसे देख कर कृत्रिम मयूर नहीं कह सकता था। मार्गण्य जो पूछ पर शोभता था उससे तो यह हृदय स्वभाविक मयूर ना जान पड़ता था। टायरनिगर नामक किमी जीहरोने लिखा है, कि उक्त मयूरामल बनानेमें ई करोड़ रुपये खर्च हुए थे। किन्तु मादिरनामाके ग्रन्थकर्ता दो करोड़ और एकादसाहब एक करोड़ रुपये खर्च करने हैं।

मयूरका मांस खानेसे दीर्घक बहुत उपकार होता है। इसमें धौल, मेरु, आंन, मेघा, पर्ण, म्वर और हनायुका हितकर, बलकर, उत्पन्न, वाताय तथा गुरु और मांसयत्नक भाग्य पाया है। हेमचन्द्र, सिगिर अध्याय दमस्तमें इसका मांस खानेसे बहुत फायदा है। पर्या, शरत् अध्याय प्रौषमें मयूरमांस गहरी रोगना चाहिये। क्योंकि, इस समय मयूर विष खाता है, इस कारण मांस गरम रहता है, खानेसे भारी घनित होता है।

"मयूरः श्रेयसेषा क्रियेणार्यं न्यतुषुषा।  
 दिपे वानो गुरुभेषयो वापिः शुक्लशरः ॥  
 ऐममवशो विगिरे वनोने सेव्यं हि मायूरमुत्तमं मानम् ॥  
 उपयो हि वती विषमोऽप्येव  
 वानोऽस्तीत्युत्तमं पच्यते ॥" (सर्वप्रथम)

शब्दप्रमाणों लिखा है, कि मयूरके मांसको यदि ईशोके नेत्रमें धूल कर खाया जाय, तो यह विषके समाप्त काम करता है।

२ मयूर जिता नामक क्षुप। पर्याय लताभ्या, कान्यो, शेष, मोचमन्त्रक, भवामार्ग। ३ एक मयूरका नाम।

"मयूर इति दिव्यायः भीमान वयु महायुगः।"  
 (सप्तमहा)

४ माकंठेयपुराणानुसार सुमेरु पर्यन्तके उत्तर एक पर्यन्तका नाम।

मयूर—एक प्रसिद्ध कवि। ये मयूरमूढ नामसे प्रसिद्ध थे। माननुद्गाचार्ये प्रणीत भवामाराम्य रोका भीर मेरुनुद्गा-प्रणीत प्रवन्धनिगतामणि प्रन्ध, एङ्गिने मातृम होता है, कि ये प्रसिद्ध कवि बाणमट्टके भ्रातृ और उग्रप्रियोपनि गृह भोजराजके समामट्ट थे। प्रवन्ध-चिन्तामणिमें इन्हें बाणमट्टका मान्य बतलाया है। बाणमट्ट और मयूरमट्ट दोनों ही राममार्गिक कवि थे, शाहू छापकति और प्रेमिद्ध कविगजरोवर पहलेमें यह मातृम होता है। लिखा भी है—

"महो कमारो वारुसेना वनानन्दविवाहः।  
 भीरुश्यामरु गन्धः गयो बाणमयूरयो ॥"

प्रयाह है, कि म रघुनेने सुष्टोमपराय हो कर सूर्यको आराधनाके लिये सूर्यगतक नामक स्तोत्र रच्य लिखा। पीछे सूर्यको कृपासे वे गंगामुक्त हुए। मयूरमट्ट-प्रणीत सूर्यगतकके अन्तिम श्लोक यह है—

"श्रेयाः श्रेयस्य भूयै मयीति विना भीरुश्यामरुतया।  
 वृषहर्षेणय पदेः वा मरुदवि वृषः मयोनेतिवृषः ॥  
 भासोयं नोऽस्ति मयि मयूरमट्ट वकीलमातुः ॥३॥"  
 विनामैश्वर्यं मयामि काने मेऽन मयूरमयारु ॥"  
 २ एङ्गिन्द्रका नामक मयिष्यायके प्रणेता।

मयूरक ( सं० ह्री० ) मयूर घोषेय प्रसिद्धिनिर्दिष्ट मयूर ( एवे प्रसिद्धी ) वा १ ( १६६ ) इति वन शंभु मयूरकले-  
 कानि मुन्नायु निरायु मयाय्यं । १ मयूरकलेय,  
 मृतिवा । पर्याय—मुन्नायुत्र, निगिप्रिय, विमुषक ।  
 २ भवामार्ग, मित्रश । ३ मयूर, मौर । ४ मयूरजिष्या  
 नामक क्षुप । ५ मयूरक । ६ विगमेरु ।

मयूरकाए ( सं० म्यो० ) मयूरक, वाटा ।  
 मयूरकेतु ( सं० पु० ) मयूरकयु ।  
 मयूरगति ( सं० म्यो० ) छन्दोमेरु । इसके प्रणेक मयूरके

२४ अक्षर रहने हैं। इनमेंसे १, ४, ७, १०, १३, १६, २३, २३ और २४वाँ वर्ण लघु तथा ग्रेष वर्ण शुभ होते हैं।

मयूरप्रोचक (मं० श्लो०) मयूरस्य प्रोवापाः कन्ध्यास्य वर्ण इव वर्णां यस्य, बहुमूर्ती रत्न, हस्तश्च । तुत्थ, मृत्तिया ।

मयूरचटक (सं० पु०) मयूर इव चटकः । शृङ्गकृत्, मुर्गा ।

मयूरचूड (सं० श्लो०) मयूरस्य चूडा अप्रमाणा यस्य । स्थण्डिल्य नामक गन्धद्रव्य, सुनेर ।

मयूरचूडा (मं० श्लो०) मयूरस्य चूडेय चूडा शिला यस्याः । मयूरशिखा नामक श्लेष ।

मयूरजङ्घ (सं० पु०) मयूरस्य जङ्घेय जङ्घ यस्य । श्योनाक, सोनापाठा ।

मयूरतुत्थ (सं० श्लो०) मयूर इव तुत्थं, मयूरवर्णत्वात्स्य तथात्वं । तुत्थ, मृत्तिया ।

मयूरध्वज—पुराणवर्णित एक प्राचीन हिन्दू-राजा । रत्न-पुरमें इनकी राजधानी थी। एक समय इन्होंने नर्मदाके किनारे एक महायज्ञका अनुष्ठान किया। ये जितकोधी जितकाम, अस्वायिहीन और शूर थे। देवद्विजमें इनकी प्रगाढ़ भक्ति थी। यद्यपि दोषित हो कर इन्होंने अपने पुत्र ताम्रध्वजको अन्धकारमें निष्कृत किया।

इधर हस्तिनापुरमें राजा युधिष्ठिरने अभ्येयका आभोजन करके अपने यज्ञिय घोड़ेको छोड़ा। महाशौर अर्जुन शंक्रणकी सहायता पा कर घोड़ेके पीछे पीछे चले। मयूरमञ्चके लड़के ताम्रध्वजने उस घोड़ेकी रोक रपना। अब दोनों दलमें घमसान युद्ध चलने लगा। युद्धमें पाण्डव-सेनाकी हार हुई। ताम्रध्वज नारायणकी मूर्च्छित देण कर दोनों घोड़ोंकी पक्षमण्डपमें ले गये। पुत्रके मुपसे युद्धसंवाद सुन कर मयूरध्वजने शंक्रण के पी पुत्रका पथेष्ट तिरस्कार किया।

चतुरचूडामणि शंक्रणने धनञ्जयके कार्याचारके लिये स्वयं पूरु ब्राह्मणका रूप धारण किया और पार्थकी बालक-नित्यरूपमें अपने साथ लिये यद्यपि दोषित राजा और रानीके सामने उपस्थित हो उन्हें आशोर्वाद दिया। राजा मयूरध्वज प्रणाम करनेसे पहले ब्राह्मणका स्वस्ति-

वाचन सुन कर कुछ क्षुब्ध हो रहे। पीछे उनके गरणों में गिर कर आनेका कारण पूछा।

ब्राह्मणने कहा, "एक कालरूपी सिंह मेरे पुत्रकी ले भागा है। यदि आप उसे अपना आधा शरीर स्पोछायर कर दें, तो वह मेरे पुत्रकी छोड़ सकता है।" यह सुन कर राजा अपना आधा शरीर काट डालनेकी तैयार हो गये। राजाकी आशासे रानी कुमुदती और पुत्र ताम्रध्वज भी करपत्र ले कर राजाका शिर काटनेकी प्रस्तुत हुए। इसी समय राजाके दाम नेत्रसे आम् टपक पड़ा। यह देख कर ब्राह्मणरूपी शंक्रणने उनका मनःफलेगप्रदत्त शरीर लेना नहीं चाहा और रोनेका कारण पूछा। उत्तरमें राजाने कहा, 'ब्रह्मन्! मैं द्विगण्ड होनेको यन्त्रणासे नहीं रोता हूँ। मेरा वाहिना अङ्ग तो ब्राह्मणकार्यमें जा रहा है, फेवल बायां अङ्ग रह जाता है जिससे उस अङ्गकी भारी दुःख है। इसीसे फेवल बाएँ नेत्रसे ही आम् टपक रहा है।' राजाके ऐसे यज्ञकी सुन कर भगवान्, वास्तुदेव बड़े प्रसन्न हुए और अपना रूप दिवा कर राजाका आत्किन्न किया। पीछे इन्होंने खो-पुत्रके साथ यज्ञ करनेका हुकुम दिया और कहा, 'तुम राजा युधिष्ठिरके इस घोड़ेको भी रचो और यथासमय दोनों घोड़ोंकी आहुति दे कर विरस्थापिना कीर्ति स्थापन करो।

भगवान्की अपने सामने देव कर राजा मयूरध्वज भक्तिपूर्वक उनकी स्तुति करने लगे। मन्की आराधनासे तुष्ट हो भगवान्ने राजाके प्रार्थनानुसार उम्हेंके यत्नमें उपस्थित रह कर यज्ञ समाप्त कराया। सनभार अर्जुन तीन रात राजाके यहाँ उदरे। पीछे राजा मयूरध्वज अर्जुनकी आत्किन्न कर उनके अभ्यासमें निष्कृत हुए। मयूरध्वज—युक्तपदेशके मित्रनीर जितान्तर्गत दुर्गरहित एक प्राचीन नगर। अभी यह मुनावर नुर या मोरध्वज नामसे मगहर है। प्रवाद है कि पाण्डवोंके समयमाय पिक रत्नपुरराज मयूरध्वजने ही इस नगरकी वसाया। फिर बहनोंका यह भी अनुमान है कि विषय संस्कार ममाउद गाताके जैन जन्म मयूरध्वज ही इस दुर्गके प्रतिष्ठाता थे। यदि यह ठीक हो तो दुर्गका निर्माणकाल १०वीं शताब्दीका प्रारम्भ हो लिया जा सकता है। अभी

दुर्गों अवस्था बर्ही ही जीवनीय है। अधिकांश स्थान टूट फूट गया है। पूर्वभागके टीक बीचमें 'शिरगढ़ वा सिंहगढ़'का जो ध्वंसावशेष है वह एक प्राचीन शीख-स्तूप सरोचा मान्य होता है। इस स्थानकी प्रतिमूर्ति और शिल्पकार्ययुक्त प्रस्तरावली से कर नजीबाबाद और पंथरगढ़के देवमन्दिरादि बनाये गये हैं।

मयूरनृत्य ( सं० पु० ) एक प्रकारका नाच जिसमें चित्र-कन अधिक्त होती है।

मयूरपदक ( सं० कृ० ) मयूरस्थेय पदकं स्थानं । तथा-घात, नयस्तन ।

मयूरपत्र—केकावलीके प्रणेता एक महाराष्ट्र कवि । मयूरपुण्ड्र ( सं० पु० ) १ मयूरको पूँछ, चन्द्रिका । २ माहेभर घूष ।

मयूरपुर—मथुराके समीप एक शील । यहां कालिकेयने एक दानवकी मार कर उसे मयूर बना दिया था। वही मयूर पीछे उनका बाहन हुआ। यहां कालिकेयना पवित्र तीर्थं भवस्थित है। मयूरपुरमाहात्म्यमें इस देवतीयंका विशेष विवरण आया है। ( शिरपुण्य )

मयूरमग्न—उड्ड्याके अन्तर्गत एक देवीय सामन्त राज्य । यह आशा २१' १७" से २२' ३४" उ० तथा देशां ८५' ४०" से ८७' १०" पू०के मध्य विस्तृत है। उड्ड्या भस्मं यह सबसे बड़ा राज्य है। भूपरिमाण ४२४३ वर्गमील है। इसके उत्तरमें मिहभूम, मानभूम और मेदनीपुर जिला; पूर्वमें मिदनापुर और बालेभर जिला; दक्षिणमें पुरां जिला और नोलगिरि सामन्तराज्य तथा पश्चिममें केडभर सामन्त राज्य है।

यहां प्राकृतिक सौन्दर्यका अभाव नहीं है। वही भी शम्भुपूर्णा श्यामल धरित्री, वही नोतिप्रमथी विप्लवीर्ण पनराशि, वही जलमय सुन्दर उपर्यंकाप्रदेश, वही हरिद्वयर्णं मृणालेन विराजित है। गताङ्गिन दक्षिणमें मेघानिनी वर्षतमाता भवना मर उड्डये प्राकृतिक दृष्टी-का धरमोहकं दृश्यता रहते है। इन सब निविद्ध बन-माता और पर्यतयक्ष पर मद्रमण हाथो स्वेच्छाये विच-रण करते हैं। उन सब हाथीयिका निवार किया जाता है।

मयूरमग्न सामन्तराज्य प्रधानतः तीन भागोंमें विभक्त

है—१. असल मयूरमग्न, २. उपेर बाघ और ३. शामनपाटी । दोनोके दो स्थान पहले दृष्टिासकराको देखनेमें थे, किन्तु अभी सामन्तराजके दृग्दर्शने था गये हैं। बालिपदा और शम्भुपुर नामक ग्राम इसके प्रधान महर हैं।

इस राजवंशका प्राचीन इतिहास नहीं मिलता। किन्तु म०य मयूरमग्न-राजने यहां भा कर राजपाट बसाया, टीक टीक मान्य नहीं। पहले छोटानामगपुर, उड्डियाका करद महल और मध्यप्रदेशका कुछ अंज जंगलमें भाग्य था और तो क्या, इस मयूरमग्न राज्य-का भी अधिकांश स्थान पत्थरान्तिके निभूत निवर्तनी-में पर्यैयित था। उस समय भी यहां सम्पत्ताका आलोक चिह्नित नहीं हुआ था। मुसलमान राजाओं-की असलद्वारोंमें मयूरमग्न और उसके सामन्तराजका उद्गलभाग 'भारतखण्ड' और मयूरमग्नके राजा 'भारतखण्ड-के यरस' कहलाते थे।

यहां पहले भद्र, पुराण, बाधुरी, बूँइया और जुमहू, आदि जातिका बान था। प्रयाद है, कि एक समय उन असम्प जातिवोंके किसी मरदाने इस पत्थरूमिमें अपना आधिपत्य फैलाया था।

गाठके मुगल (किसीके मतमें २ हजार और किसीके मतमें १३ सौ वर्ष पहले) तुना जाता है, कि राजपूताने-के जयपुर-राजसम्पत्तीय जगन्निद नामक एक बंधुभा-जंतीय राजपूत तीर्थयात्रीके मननामे पुरोषाव माये। मरान्य लोटने समय वे मयूरमग्न और केडभरमें सामन्तराज्य स्थापन कर गये। उनके आदिनिद और जोतिनिद नामक दो पुत्र थे। दोनों युवराज एक दोनो राज्योके सविपति-पद पर अभिषिक्त हुए। पैतृकी मदी-के दोनों बिलारे भादपुर और जयतिपुरमें उनका राज-पाट स्थापित हुआ। आज भी वे दोनों तम विद्यमान हैं। आदिपुरके भारी बगल आज भी सैकड़ों धर्म-गानिद देवमन्दिर, माना कादकाये युक्त प्रतिमूर्ति, मन्दर-मण्ड और ताजा आदि पूजनार्थ राजाओंकी कौंसि-मीयता करता है। मरान्य राजपूतोंके कौंसि-मीयता अन्तर्निद आज भी विद्यमान है। आज है, कि जो महाभारतके कौंसि-मीयता

उपराधाधारकरा विभक्त



काकापगडा उद्योगोंमें घुमा, तब उसने भाद्रपुरकी प्राचीन कीर्तिपत्रोंकी तहस नहस कर घाना था।

स्थानीय आदिम भद्रिचामियोंकी मनुस्मृतिके लिये इस राजवंशकी स्वतन्त्र उत्पत्ति कदा कल्पित हुई है। प्रवाद है, कि यह राजवंश मयूरका अंश फोड़ कर (मञ्जनकर) उसके कुतुमुने उत्पन्न हुआ था, इस कारण इस वंशका मयूरमञ्ज नाम पड़ा। मयूर इस राजवंशका कुल चिह्न है। पहले यहाँ कोई भी मयूर देखा नहीं करने पाता था। यदि कोई मयूरभञ्जराज्यमें मयूरका वध करता, तो उसे उचिन दण्ड मिलता था। यद्युतरे इसी कियदन्तकी पर विधायक करके मयूरमञ्ज नामकी कल्पना करते हैं। फिर किसी किमोका कहना है, कि आदिम भञ्जराजिका वास होनेके कारण यह स्थान पहले, 'भञ्ज भूमि' कहलाता था। अनार्य भञ्जसरदारोंका प्रमाय गर्प (मञ्ज) कर जप आर्षजानिने यहाँ अपनी गोटी जमाई, तब विजेता सुमन्थ आर्योंने इस स्थानका मयूर-मञ्ज नाम रखा। फिर किसीका यह भी कहना है, कि मयूरमञ्ज नामक किमो भञ्जसरदारकी पराजय होनेसे यह स्थान मयूरमञ्ज कहलाया।

यसैमान मयूरमञ्ज-राजवंश भञ्जराजिके गोष्टीपति हैं। केउम्बर, बोदा, दयापहा, कणिका और घूमसर आदि सामन्तराजवंश अपनेको इसी मयूरमञ्जराजवंश से उत्पन्न बनलाते हैं। मयूरमञ्जराजवंशकी प्राचीन कीर्तिका उल्लेख नहीं मिलता। पूर्वतनराजाओंका कीर्ति चन्दाप चाहे कराल कालके यक्षलमें पतित हुआ है चाहे वह संस्कारसम्पन्न हो कर किसी दूमरेके नामसे विद्योपित होता है। राजकीय इतिहासका नहीं रहना ही इसका एकमात्र कारण है। १५७२ ई०में महाराज घैचानाथभञ्जदेवने चारिपदामें जगन्नाथका मन्दिर बन-याया था। सुमन्थमानोंने जब उद्योग पर चढ़ाई की, उस समय मयूरमञ्ज राजाने राजघारमें रह कर उनका मुकाबला किया तथा उनका एक भी मनोरथ पूरा नहीं होने दिया। यहाँ तक कि, एक भी सुमन्थमान सुवर्णदेवा पार कर कटक नगरीमें घुसने नहीं पाया था। सुमन्थ-मानोंकी विमुख और छतबहु हूए देख वे लौटे। इसी समय सुमन्थमानोंने पीछेसे उन पर चढ़ाई कर दी और राज्य

लूट लिया। यहाँ तक कि सुमन्थमानोंके अत्याचारमें आगमत्ता करनेके लिये उन्हें नाना स्थानोंमें छिप कर रहना पड़ा था।

मरहट्टोंके आक्रमणकालमें भी मयूरमञ्जराजकी बड़ी सुसोवती भेलनी पड़ी थी। लुएठनमिय महाराष्ट्र-जाति-से उत्पीडित हो राजा दामोदरमञ्जदेव और उनके पिन्-पितामहगण हरिहरपुरकी छोड़ भागे थे। उद्योंने विभिन्न गिरिदुर्गोंमें जा कर आरमत्ता की थी। मन्थमें १८०३ ई०को महाराष्ट्र सरदारके साथ भञ्जराजका मेल हो गया। तमोने ले कर घृटिग-अधि,ार पर्वन्त से मरहट्टों-के अधीन रहे थे। १८२६ ई०में राजा यदुनाथमञ्जके साथ घृटिग-सरकारकी सन्धि स्थापित हुई। तदनुसार राजा अङ्गरेजोंको पथायोग्य राजभक्ति दितलाते हुए उनकी अधीनता स्वीकार करनेकी बाध्य हुए। १८६३ ई०में यदुनाथकी मृत्युके पाद राजा श्रीनाथभञ्जदेवने १८६८ तक राज्यशासन किया। पीछे राजा शृण-चन्द्र भञ्जदेवके १८८२ ई०में परलोक सिपारने पर उनके वारह वर्षके लड़के श्रीरामचन्द्र भञ्जदेव मयूरमञ्जके राज-सिंहासन पर बैठे। राजा शृणचन्द्र मञ्जने संपत्ती यदा-न्यता और उच्च अन्तःकरणके लिये अङ्गरेजोंसे 'महाराजा' की उपाधि पाई थी।

राजा श्रीरामचन्द्रका चारिपदामें जन्म हुआ था। कटकके रामेनसा विद्यालयमें उन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त कर १८६२ ई०में कोर्ट भाउ पाठ में राज्यमार अपने हाथ लिया। घृटिग-सरकारके अनुकरण पर ये एक ध्यव स्थापक समा ले कर राजकाय चलाये थे। राज्यकी भूमि जो उपति देगी जानी है, यह उद्योंके परिधमका फल है। उद्योंने प्रसिद्ध भूतन्त्रविद्व डा. पि. एन. घासुकी मयूरमञ्जका तथा प्राक्वधिघा महार्णव सगेन्द्रनाथ घासुकी स्थानीय प्रसन्नस्वका उदार करनेमें निवृत्त किया था। डा. पि. एन. घासु-की गवैरणामे मयूरमञ्जके गुरुमैशनी पहाड़ पर एक बड़ी लोहेकी स्था आचिपूत हुई है। उसी लोहेकी स्था ले कर सुप्रसिद्ध ताता कम्पनी समवेद्युका विजाले लोहेका कारखाना चलाता है। प्राक्वधिघा महार्णवके अनुसन्धान फलसे आज मयूरमञ्जकी अर्धशाय

कीलिका समस्त मन्त्र जगत्के प्रत्येक पुराविद्वेषे निरुद्ध  
 आदर है। १० महागज भोरामचन्द्रमञ्ज जैने विद्वान्, १०  
 बुद्धिमान्, मन्वेजानुरागी भौर नाना गाम्द्विद्वे बंधन  
 मयूरमञ्जमें ही नहीं, साथे उरुह्य प्रद्वेगमें भी कोई मन्त्र  
 नहीं भाते। प्रायः बारह वर्ष हुए जब ये शिकार गेयने  
 जंगल गये थे, वहाँ पर किसी आत्मीयने इन्हें मोलने  
 पावल क्रिया तिमसे कुछ मासके बाद ये पञ्चम्यकी  
 प्राप्त हुए। आप उरुह्यके सामन्त राजाओंमें सर्व-  
 प्रधान थे।

धोरामचन्द्रमञ्जकी मृत्युके बाद उनके उषेष्ट पुत्र  
 पूर्णचन्द्रमञ्ज राजमिहामन पर अनिपिन हुए। ये भी  
 पिता सरावे विनयो, राज्यके उपनिकामो और सरल  
 प्रकृतिके थे। १६२८ ई०के मई मासमें बम्बई नहरमें  
 जो देनाय राजाओंका सम्मेलन हुआ था उसमें आप  
 भी शामिल थे। यहाँ पर तीन दिनके भीतर आपकी  
 भक्तस्नान मृत्यु हो गई। घोड़े उनके छोटे भाई मयूर-  
 मञ्जके मिहामन पर स्मृजित हुए। अभी ये ही वर्षों  
 मान सामन्त हैं। राज्यकी आप दस लाख रुपयेके लग-  
 भग हैं जिनमेंसे १०६७ स० १० आ० ६ पा० एटिज सर-  
 कारकी करमें देने पड़ते हैं।

१६०३ ई०की १ली और २री जनवरीकी भारत प्रति-  
 निधि लाई कर्जन द्वारा दिहोमे मघ्राट् ७म एडवर्डकी  
 राजघरोंके उपलक्षमें जो दरवार लगा था, उसमें मयूर-  
 मञ्जराज राष्ट्रीय सामन्तराजाओंके मध्य विशेष रूपसे  
 सम्मानित और महाराजोपिगाधसे भूषित हुए हैं।

मयूरमञ्जे राजवंश।

- १ महाराज जयसिंह
- २ भादिमञ्जदेव
- ३ महाराज नीलाम्बर मञ्जदेव
- ४ " लक्ष्मणमञ्ज "
- ५ " विष्णुभ्यर "
- ६ " भगन "
- ७ " दिलीपभ्यर "
- ८ " वामदेव "

- महाराज यमुदेव मञ्जदेव
- " विजोति "
- " नारायण "
- " नीलकण्ठ "
- " धोरकेजारी "
- " वरपिंडेभ्यर "
- " त्रिलोकचन "
- " राजर्गभ "
- " श्रीहृण "
- " गदाधर "
- " भारपेभ्यर "
- " गोपीनाथ "
- " राधाहृण "
- " पृथ्वीनाथ "
- " पैकुण्डनाथ "
- " धोरभ्यर "
- " रामचन्द्र "
- " बलमद्र " १४२३-६४
- " हरिकृष्ण " १४६४-६१
- " मोलकान्त " १४६२-१५२०
- " गान्धि " १५२०-५६
- " पैयनाथ " १५५६-१६००
- " जगन्नाथ " १६००-४३
- " हरिहर " १६४३-८८
- " सरपेभ्यर " १६८८-१७११
- " विष्णुनादित्य " १७११-२८
- " रघुनाथ " १७२८-५७
- " गजधर " १७५०-६१
- " रामोदर " १७६१-६५
- " सुमितदेव " १७६६-१८१०
- " यमुनादेव " १८१०-१३
- " मिषिकन " १८१३-२८
- " यदुनाथ " १८२८-३३
- " धोनाथ " १८३३-६८
- " हृणचन्द्र " १८६८-८२
- " श्रीरामचन्द्र " १८८२-१९१७

मयूरमञ्जरी उत्पत्ति कथा और राजवंशकी तात्त्विक मयूरमञ्जरी नामे जैसा पाई गई है, शीक यैसा ही यहाँ पर उद्धृत की गई, किन्तु भद्रराजाओंके जो चार प्राचीन ताक्षणात्मक मिले हैं, उनमें मयूरमञ्जरी उत्पत्ति कथा और राजवंशकी तात्त्विक कुछ और तरहसे लिगी है। १२वीं सदीमें उत्कीर्ण राजा रणमञ्जरीय और उनके लड़के राजमञ्जरीयके ताक्षणात्मकमें लिखा है।

"आत्मांत-कोट्टाभ्रमहातपोयनाधिष्ठाने मायुराण्डं नित्या शूलदाहयोरभद्राख्यः प्रतिपन्ननिधनदशो यमिष्ठ-मुनिपालितो गृपति ।"

अर्थात् कोटि-आधम नामक श्रेष्ठ तपोवन-प्रदेशमें शूलधारी, शूलसंहारमें दक्ष, यमिष्ठमुनिपालित राजा योरभद्र मयूरके अंडेको छेद कर निकले थे।

उक्त विवरणसे मालूम होता है, कि योरभद्र ही मञ्जरीयके आदि राजा हैं। मयूरके अंडेको भक्षण करनेके कारण योरभद्रका राज्य मयूरमञ्ज कहलाया। योरभद्र कोट्टाभ्रममें राजा हुए, इसलिये उनके वंशधर कोट्ट्य-भञ्ज नामसे प्रसिद्ध हुए थे। कोट्ट्यमञ्जके पुत्र दिग्भञ्ज, दिग्भञ्जके रणमञ्जरीय और रणमञ्जरीयके पुत्र राजमञ्जरीय थे। इस वंशके नेत्रमञ्जरीयके ताक्षणात्मकसे ज्ञात होता है, कि उनके पिताका नाम रणमञ्जरीय था। इसके अतिरिक्त मञ्जरीय राजा विद्याधरमञ्जके ताक्षणात्मकमें मिलोमञ्जरीयके उनका पिता, विद्यमञ्जकी पितामह और रणमञ्जरीयके प्रपितामह बतलाया है। ये सभी प्रसिद्ध राजा थे और बहुतों जासन दान कर गये हैं। आश्चर्यका विषय है, कि इन सब राजाओंमेंसे किसीका भी नाम तात्त्विकामेनहीं मिलता।

- मयूररथ ( सं० पु० ) कार्तिकेय, स्कन्द ।
- मयूरोत्तम ( सं० ति० ) मयूररथ रोम इव रोमी पथ्य । मयूरके रोम सट्टन रोमसट्टन रोमयुक्त ।
- मयूरधर्मन—१ कादम्बर्यंगीय एक राजा । कनाडा उपकुल-धर्मी जपन्ती या यनवामी नगरीमें इनको राजधानी थी। कदम्बर वृक्ष पर देवादिदेव महादेवके नारारसे जो पत्थोना टपका था उन्हींसे राजाका जन्म हुआ। इसी जनरगता अनुसंधान कर उनके वंशधरगण कादम्बर कहलाये।

२ उक्त गंगीय राजा मयूरधर्माके पुत्र । बन्धीपुरमें इनका जन्म हुआ था। इन्होंने उत्तरभारतके पञ्जाबीहृत्से कुछ प्राणियोंको मार कर दक्षिणभारतमें बसा दिया था। इन्हींके यत्नसे पावनरोवि, यक्षुर, महद्वर और कद्वय नगर स्थापित हुए। इन्होंने प्रत्येक नगरमें एक एक प्राणियोंको धामपति बनाया था। कारम्बरंग देतो।

- मयूरवाहन ( सं० पु० ) १ कार्तिकेय । २ कल्पकारिका-सारक प्रणेता ।
- मयूरविद्वत् ( सं० ग्री० ) अम्हाता, मोक्षदा ।
- मयूरव्यंसक ( सं० पु० ) १ पूर्व मयूर । मयूरो व्यंसक इति निपातनात् समासः । २ पाणिनीय समास प्रकार-णोक्त निपातनिष्पन्न शब्दमेव ।
- मयूरवामन ( सं० पु० ) कविमेव । बहुतेरे इन्हें मयूरमह समझते हैं।
- मयूरजिष्णु ( सं० ग्री० ) मयूररथ जिष्णु जिष्णु अत्र पस्थाः । म्यनामप्यात् हुपयिषोय । संस्कृत पर्याय—वर्द्धिष्णु, जिष्णिनी, जिष्णु, सुजिष्णु, जिष्णु, जिष्णु-यला, कोकजिष्णु । गुण—स्वादु, मूयश्च्छू और बाल-प्रहादिदोषनाशक तथा वज्रोकरणमें प्रयुक्त ।
- मयूरोष्ण ( सं० पु० ) मयूरवर्ण शेषयुक्त, इन्द्रके दो गोष्ठे ।
- मयूरस्मारिणी ( सं० ग्री० ) मेरुद अक्षरीके एक छन्दका नाम । इसके प्रत्येक पदमें रगण, जगण फिर रगण और अन्तमें गुरु होता है।
- मयूरमारो ( सं० ति० ) १ मयूरके मगान जो अपनी पूँछ फैलाता है। २ गणित, अक्षरीकी ।
- मयूरमथल ( सं० पु० ) ब्रह्माण्ड पुराणानुसार एक तीर्थका नाम ।
- मयूरा ( सं० ग्री० ) १ कृष्ण मुलसी । २ अक्षमोक्ष । मयूरप्राणक—राजा विषयमाके मयूरा । यह अनेक देव-मन्त्रि बनया गये हैं।
- मयूरप्राणी—विद्या और उद्योगके धीरभूम त्रिज्यान्तर्गत गिरडो नगरसे उत्पन्न प्रवाहित एक नदी । यह वैद्य-नाटनीयके पूर्ववर्ती सङ्घाल परलमेके निरर नामक

पर्वतसे निकल कर इरिपुरके समीप धीरभूम जिलेमें प्रवेश करती है। यहाँ यह नदी मयूर वा काना नामसे भी प्रसिद्ध है।

मयूरपत्तन ( सं० म्प्र० ) पृतीयघण्टिनेय । प्रस्तुत प्रणाली—पूत ४ सेर, काढ़के लिये दूजमूल प्रत्येक ३ पल तथा विजयंद, रास्ना, यष्टिमधु और तरुण मयूर-मांस ३ पल ( किमी गिनोके मतसे एक तरुण मयूरका कुल मांस ) । मयूरके पंख, पित्त, आंत, विष्टन, पेट और मुँह इनको छोड़ कर बाँकी सब भांग लेना चाहिये। पाकार्थ जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, दूध ४ सेर। कलकार्थ जौबल, श्यमभक, मेद, महामेद, कंकौल, क्षीर कंकौल, जौबन्ती, यष्टिमधु, मूँग, कल्या और जौबन्ती-गणोक दश प्रकारका द्रव्य प्रत्येक दो तोला। अलगतर पूतपाकके विधानानुसार इस पूतका पाक करना होगा। इसके सेवनसे जितोरोग और अर्द्धित आदि व्याधि दूर होनी है।

दूसरा प्रकार—पूत १६ सेर, पयाधके लिये तरुण मयूर-मांस १२५ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, विजयंद १२५ सेर, जल ६४ सेर, शेष १६ सेर, दूध २४ सेर। कलकार्थ मयोहरीक, जौबक, श्यमभक, मेद, महामेद, कंकौल, क्षीरकंकौल, जौबन्ती, यष्टिमधु, मूँग, कल्या कुल मिला कर ४ सेर। पूत-पाकके विधानुसार इस पूतका पाक करना होगा। इसका सेवन करनेसे जितोरोग, नेत्ररोग, धगन्मार, विपद्दोष, भ्यान्, काम और विषमखर आदि विनष्ट होते हैं। मिरके शूद्रमें तो यह राम पाण है। ( मेषभस्त्राणं निरिस्ताणी० )

मयूरांति ( सं० पु० ) अष्टौषी, छिपयन्ती।

मयूरालामक ( सं० पु० ) प्रातृत्काय, चर्वाच्यतु।

मयूरानन ( सं० पु० ) १ आमनमेद । २ मुग्ध बादनाद जगद्गहात्रका बनाया हुआ प्रसिद्ध मयूरका चर सिद्धामन । यह हारे, माँच-मुका और मोनेमें जडा हुआ था। सोमार में पेशा सिद्धामन धाज तक न कितामें देया है और न सुना है। अद्वैतो-सिद्धामनमें यह "Lacck Throne" नामसे प्रसिद्ध है। पारश्वरारा गादिरजाद जब तिली-को मूटने भाये तब अन्त्याय रजादिके साथ इसे भी भाष में भाये । इसका मूल्य लगभग ६ करोड़ रुपये था।

मयूरिका ( सं० म्प्र० ) मयूरवहू घर्णांशुस्वरयाः मयूर-उत्त-त्वाप् । १ अम्रप्रा, मोरवा । २ विमान, कीटभेद, एक प्रकारका विपैला कीटा ।

मयूरिकाचप ( सं० पु० ) रतिबंधभेद ।

मयूरी ( सं० म्प्र० ) मयूर-गिरवा टोय । १ मयूर-स्वाज्ञानि । २ अम्रमोहा ।

मयूरेज ( सं० पु० ) कानिकेय । गणेशपुतापमें मयूरेजका विवरण प्राया है।

मयूरेश्वर—धीरभूम जिलाम्तर्गत एक गाँवप्राय । यह अक्षां २३°४५'५" उ० तथा देशां ८७°४८'२०" पू०के मध्य मुर्शिदाबादमें मिउट्टी आनेके रास्ते पर अर्धान्धव है। यहाँ रोगके मूर्तेका बड़ा कारखाना है।

मयूरेश्वर ( सं० म्प्र० ) जिह्मनेद ।

मयूरेश्वर ( सं० पु० ) मयूरानवका एक नाम ।

मयोभय ( सं० पु० ) गिय ।

मयोभाव ( सं० वि० ) संसारतुमप्रद ।

मयोभू ( सं० वि० ) यज्ञके फलमें उत्पन्न ।

मयंद ( हि० पु० ) मकरन्द ।

मयंदकीज ( हि० पु० ) १ मकरन्द कीज, फूलका यह भाग जिसमें 'धुषा' या रस रहता है। २ मधुमविषयोका छत्ता ।

मर ( सं० पु० ) १ शूरयु, मरण । २ जगत्, संसार । ३ पृथिवी । ४ विष ।

मरक ( सं० पु० ) सिक्केमें जना यस्मात् मू प्रपादाने अर्धमकः स्वार्थे संज्ञायां वा क्त यडा मू भाषे भ्यु, मरो मरणमिति ज्ञापेन कायात् ज्ञापयते इति की क । १ यह रोग अस्तिमें घोषे हो कालमें अनेक मनुष्य प्राण हो कर मरते हैं, महासागं, हेजा । पयांय—मारो, मारक । ( अशभ ) २ मूरु, मरण । ३ मारकेण्डेयपुराणानुसार एक जातिका नाम । ४ ईश्वरमन । ज्योतिष्कल्पमें जिला है—

"पारश्वराराजमुर्शिदा घट्टि मरो अमये कीट-प्राणा ।  
कारर निरुर्गहा मर्वा । न कार मन्द कानि कीटाः ॥  
कारकाय यतीं मनुष्यमकरी देवतोभ्य भिदेः ।  
मूरुयामा अवेदुर्नीकाट्टिया भूरिदृष्टयका ॥

॥ तस्य चर्मादि रजितं भरतीर्णने वा मृत्पुंश्चरत्करोतिमीरेषु ।  
 सुषोणमृत्पुंश्चरत्करोति वा गैरिचरत्करोति वा मरकत्करोति वा ॥  
 मरकत्करोति वा मरकत्करोति वा मरकत्करोति वा ॥  
 वा मृत्पुंश्चरत्करोति वा मरकत्करोति वा ॥  
 विषयान्तरं यदाही वा मरकत्करोति वा ॥  
 मरिच्य इत्येव श्लोकः परचममममम ॥" (ज्योतिस्तरव)

जिस समय मृत्पुत्र द्वय, धनु, मोन और मिथुन राजिमें रहते हैं, उस समय दुर्गिभ्र और मरक होता है । मृत्पुत्रोंके चारों ओर हाहाकार मच जाता है, शृगाल नवानक जन्म करते हैं, नगर और ग्राम उजाड़-सा दीखत हैं, राजाकी मृत्यु होती है और चारों ओर केवल कट्टाल माला दिमग्नें देतो है । रविपुत्र या मङ्गल यदि मूला, हस्ता, मघा, रेवती और मैत्राणोक्त नक्षत्रमें बरतो हों, तो मरक होता है । गोघ, कौवे, गोइष्ट और कुरो प्रज्ञानसे मांस या हड्डी ले कर नगरमें धूमते हों, तो जानना चाहिये, कि यहाँ अवश्य मरक अर्थात् महामारोका प्रकोप होगा ।

मगयती दुर्गादेवो जिस वर्ष दोला पर आतो हैं उस वर्षमें मरक होता है ।

‘नीहायां रास्वदृष्टिः स्यात् दीपायां मरकं भवेत् ॥’  
 (ज्योतिस्तरव)

जहाँ मरक उपस्थित होता है उस स्थानका अवश्य त्याग करना चाहिये । जिससे मरकका भय न रहे उसके लिये शान्ति करना आवश्यक है । देवीमहात्म्यपाठ, बटुःसैन्यस्तवपाठ, तुलसी द्वारा विष्णुपूजन आदिसे हमको शान्ति होनी है । इसके अनतिरिक्त महामारो उपस्थित होने पर रक्षाकालीपूजा, नगरकीसँन आदिका अनुष्ठान भी देना जाता है । मरु और महामारी देवो ।

५ प्राचीन ज्ञानिविरोध ।  
 ‘वार्ताता मरकाग्नौ वृष्ट्याभावरदारवाः ।  
 पृथ्वरताः स्यात् पंथाः ज्योतीर्णानां चरका ॥’  
 (मरकपद्मेपु० ५५५।१।)

● ‘उत्सर्गादिदेवत्वं महामारोपपुत्रवाम ।  
 सदा विरिच्युत्पत्तं मादहमं इत्येवमम ॥’ (मरु)

मरक ( हि० मरी० ) इत्या कर संकेत करणा, इजारा इ मरक देतो ।

मरकट ( हि० पु० ) मरुट देवो ।

मरकत् ( सं० मू० ) मरकाम् मारिचिपात् तस्मिन्नेव तन्तु, यदा मरके मरणं तर्णोतीति लोभाग्रमरणमनाहृत्य तस्मिन् रत्ने प्रयत्ने इति मरकत्, ममरटोकायां भरतः । हरिदण्डं मरिचिविरोध, पद्मा (Emerald) । संवृत्य पष्पांवा गारुडमन, भद्रमगर्भं, हरिन्मणि, मरक, राजतोड, गरुडाद्विन, रोहिण्येय, मौपणे, गरुडोद्घोर्षं, सुधरुदन, भद्रमगर्भं, गरुडारि, वायवोड, गारुड । मुण—विपचन, भ्रमोक्त, रत्नमें मधुर, धाम और गितनाशक, कनिशर, पुष्टिपद, भूतनाशक ।

‘मरकत्तु यत् स्यात्तु यत् स्निग्धं गात्रं मारुदवमेतन् ॥  
 अन्वत्तं वदुत्तं मरुदोमरकत्तं शुभं विष्णुत् ॥  
 मरिचिकनिमरकत्तं मरिचिं कपु होनशान्तिवृत्तम् ॥

कमलुत् विष्णुत्तं मरकत्तममरुदविनायुक्तं ॥’ (मरुनि०)

जो मरकक रचच्छ अर्थात् सुनिर्मल, चतनमें मारो, छायायुक्त, स्निग्धगात्र, अतोहनकान्ति, अशुद्ध, भङ्गहीन नहो फिर भी सुगन्ध और शृङ्गारयुगवत्क है उसका धारण करनेसे शुभ होता है । जर्जरित अर्थात् कंठरोला, कलिल अर्थात् मिश्रित, कठ, अस्निग्ध, मलिन, चतनमें हलका, होनकान्ति, कलमायवर्ण, नास दीपयुक्त, विष्णुत्तु आदि लक्षणयुक्त मरकत्त अशुभ है । द्यूतामीको भा पेसा मरकत्त नहो धारण करना चाहिये । इस मणिके अविष्णुयो देयता युव है । युवप्रद यदि विकृत है, तो इस रत्नका धारण करनेमें शुभ हाता है । इसका उत्पन्न—

‘शुक्रादिभिः स्निग्धाः कान्तिमान विमलशया ।  
 लघुं चूर्णनिमेः मृत्पुंश्चरत्करोति सिन्धुनिः ॥’  
 ( मरिचपु० )

मरकत् अर्थात् मरकत्त मणिका वर्ण सुगोके पंथके जैसा, स्निग्ध, लावण्ययुक्त और सुनिर्मल होता है । इसके भीतर पेसा जान पड़ता है, मानो बहुत बारीक मोनेहो मूर्चें मरा हो ।

‘शुक्रादिभिः स्निग्धाः कान्तिमान् विमलशया ।  
 लघुं चूर्णनिमेः मृत्पुंश्चरत्करोति सिन्धुनिः ॥’ (मरुतोत्पत्तं)

इन्द्रधनुके गर्भस्थ हरिहर्षके: जैमा पत्नी, मीरकण्ट या मयूर पशोकी तरह काम्निपिनिष्ठ मनोहर और कम-  
नीय कान्ति, इस प्रकारकी मणि मण्डपके यक्षमे निकली  
थी। यह मणि नलिहा नामक कृष्णके अग्रभागके समान  
सूक्ष्म और घमकीली होती है। यह उपमानके ७५<sup>ये</sup>  
अध्यायमें इस मणिकी उत्पत्ति, आकार, जाति, दोष,  
परीक्षा और मूल्यादिका विषय लिखा है।

विस्तृत विवरण करना यक्षमें देनी।

मरकतपत्नी ( मं० स्त्री० ) मरकतमिष पद<sup>ये</sup> यस्याः दौष,  
तद्वर्णं स्याद्व्याद्देवाभ्यास्तथाप्य<sup>ये</sup>। पत्नी नामक पद  
शाक। (रासनि०)

मरकतमय ( सं० द्वि० ) त्रिममें पत्नी हो।

मरकताल ( हि० पु० ) समुद्रकी तरंगीकी उतारकी मरुमें  
अन्तिम अवस्था। यह अनायास्या और पूर्णिमामें हो  
चार दिन पढ़ते होनी है।

मरकता ( हि० द्वि० ) १. दूध कर मरमराना, दूधायके नीचे  
पड़ कर टूटना। २. मुड़कना देना।

मरकहा ( हि० वि० ) मींगमें मारनेवाला, जो पशु खोंग  
में बहुत मारता हो।

मरकाना ( हि० द्वि० ) १. दूध कर चूर करना, इतना  
दूधगा कि मरमराहटका जन्म उत्पन्न हो। २. मुड़काना  
देना।

मरकास्तार-एक प्राचीन नगर। ( अनेक्या माहात्म्य )

मरकूम ( अ० वि० ) लिखित, लिखा हुआ।

मरकीटी ( हि० स्त्री० ) एक प्रकारकी मिठाई।

मरकः ( मं० स्त्री० ) मरकत पुरोदरादिव्याम्, सापुः।  
मरकतमणि।

मरकान्ता ( हि० वि० ) मींगमें मारनेवाला, मरकहा।

मरकम ( हि० पु० ) यह सूटा जो कान्तिमें गाथा रहता है।

मरकोवा-युक्तप्रदेशके ललितपुर जिल्लात्मक एक प्राचीन  
ग्राम। यह कामिनी नदीके किनारे अवस्थित है।

मरगो ( हि० स्त्री० ) कैदमें रहना रोग, मरक।

मरगोल ( अ० पु० ) कदरः कपल, गामीने ला जानेवाली  
मिट्टीरत्नी।

मरगाम-पौरभूम जिलेके रामपुरहाटकके अर्धरात्र पर  
नगर। यह अक्षां २५' ८' ४५" ३० तथा देशां ८७'

५३' ३०" पूर्वके मध्य अवस्थित है। नगर ही बर प्ररका  
नदी बहती है। यहां रैजम बाकी उपजता है और रैजम-  
की चीनी तथा नाभी मस्तुत ही बर मुनिदाबाद भेजी  
जाती है।

मरगट ( हि० पु० ) १. इनामनापट, मुश्कीके जधानेकी  
जगह। ( वि० ) २. जो मरदा उदास रहना हो, मरगट।

३. बहुत ही कुक्षय और विकराल मारतिका, मरगटोम।  
मरगुदर-दुसरोभाग जिलेका एक पहाड। यह अक्षां

२३' ३२' ४५" ३० तथा देशां ८५' २५' २५" पूर्व  
दुसरोभाग और लोहाइया जिलेके सीमागतदेशमें अव-  
स्थित है। यह पर्वत दामोदर नदीकी उपत्यकामें

२४०० फुट और समुद्रपृष्ठमें ३४४५ फुट ऊंचा है।

मरनीया ( हि० पु० ) एक प्रकारकी तरकारी। इस तर-  
कारीका व्यवहार युरोपमें अतिप्रचलित होता है।

मरज ( अ० पु० ) १. बामारी, रोग। २. ग्याह भाइन,  
युरोपत।

मरजाद ( हि० स्त्री० ) १. मीना, हड्डी। २. रोगि, परिपारी।  
३. प्रणिष्ठा, भावर।

मरजादा ( हि० स्त्री० ) मरजा देनी।

मरजिया ( हि० वि० ) १. मर कर जीनेवाला, जो मरनेमें  
रक्ता हो। २. अघपरा। ३. मृतवायु ४. जो प्राण देने पर  
उत्तक हो, मरनेवाला।

मरजो ( अ० स्त्री० ) १. इच्छा, कामना २. भागा, स्वीकृति।  
३. प्रसन्नता, खुशी।

मरजोया ( हि० पु० ) मरजिया देनी।

मरण ( मं० स्त्री० ) प्रियनेनेनेति मृ बरति म्युद्। १. रहस्य  
नाम नामक विषय। (रासनि०) भावे म्युद्। २. विज्ञानोप  
पाध्यमानका मरिगमयन, मृत्यु, मीन। पदार्थ-राज्य,  
कालधर्म, कृपात्म, प्रत्यय, अस्पष्ट, अन्न, गात्र, श्वायु,  
निधाम, भूमिदान, निवृत्त, भाग्योपिक, मृति, दोषिन्वय,  
महाविष्टा, महापथम, मन्वन्त। ( उवाच )

मरणका विषय दर्शनशास्त्रमें इस तरह लिखा है,-  
अध्याय अक्षर और अक्षर है, ज्ञानमिदानक-वाक्यमें  
विशोकः मन पार्थक्य ज्ञेयं। पर यदि देक है, तो मरण  
होना है कि तब मरना कीज है? इस प्रश्नका हल हो  
जामेने प्रथम, जन्म और मरण-इन दोनोंकी सीमांसा

ही जाती है। प्राण्यका कहना है, कि 'जन्म' इति न इत्यो' अग्न्या विद्योःको मो नही मारतो और स्वयं' मो नही मरतो। क्योंकि मरण सामने कोई पदार्थ नहीं है। जिस पदार्थको हम लोग मृत्यु और मरणके नामसे पुकारते हैं, उसके प्रति जरा भीर कर बिचारलेसे सहज ही समझमें आ जायगा, कि मरण क्या है? किन्तो ही सरपाल, लकड़ो, रस्मी आदि भयवर्षोंमें एक 'घट' तथा जल, घासु और मिट्टीमें एक दूधरा भयवर्षी 'घट' बनाया गया। अब स्थिति, जल और घासके पकल होनेसे अंकुर निकला। इसमें जन्मको सूचना की गई। क्योंकि घासका जन्म पहले नहीं था। सरपाल, लकड़ो, रस्मी आदिके मेलसे उमको उत्पत्ति या विकास हुआ, ऐसा कह सकते हैं। अब मरण क्या है? इसके उत्तरमें इतना ही कहना पर्वान हागा, कि उन सब पदार्थोंका जय स्वजातीय संयोगके बाद विजातीय ध्वंस आ जाता है, तब उसीको मरण कहते हैं। हम लोग सरपाल, लकड़ो आदिले घर तथा जल, घासु और मिट्टीमें गड़ा बनाते हैं। स्थिति, जल और बोझ जब इकट्ठा होता है तब योज अंकुरना है, उसमें शाखा पत्तयादि निकलते हैं। अब हम लोग कहते हैं, कि वृक्ष उत्पन्न हुआ है। कुछ दिन बाद जब उन सब भयवर्षोंका जिनमें उक्त भयवर्षो बने है, संयोग ध्वंस हो जाता है, तब क्या हम लोग यह नहीं कहते, कि घर गिर गया है, वृक्ष मर गया है, इत्यादि? अब सोचो, कैसो घटना पर तुमने भन्न, ध्वंस और मरण शब्दका व्यवहार किया है। इस मरणादि शब्दका प्रयोग किया गया है, सिर्फ भयवर्षको जिधे दता, विकार अथवा संयोगध्वंस पर। अब इस विषयको यदि निम्नोय पदार्थमें उदा कर संज्ञोय पदार्थमें ला कर बिचार करें, तो जीवस्तपदार्थका मरण क्या है, सो मोट्टम हो जायगा। जन्म, मरण और कुछ मो नहीं है, सिवाय इसके कि अपूर्ण संयोगमाय जन्म तथा उसका वियोगनाय मरण है। 'मृत्युत्पन्नध्वंसो' मरण और आस्थानिक विस्मरण दोनों एक है। जिन्स कारणपूटने जीवको देहाविच्छेदमें भागद रखा था उस कारणपूट या संयोगविच्छेदके विनष्ट होनेमें अल्पम विस्मरण या महाविस्मरण नामक मरण होता है।

मरण होने पर देहादिमें अन्य प्रकारका विकार उप-

स्थित होता है। अल्प अथवर्षोंके अपूर्ण संयोगका नाम जन्म और उनके वियोगका नाम मरण है। इसीसे सांख्याचार्योंने भी कहा है "मृत्युर्देहप्रकारसंघातविच्छेद संघातम विच्छेदम" अर्थात् मरण सावयव वस्तुका ही होता है, निरवयवका नहीं। निरवयवके अथवर्ष नहीं है, इसलिये मरण भी नहीं है। आत्मा निरवयव है, इस कारण आत्माका मरण नहीं है। जो इन्द्रिय जितान्न सूक्ष्म और निरवयव है उमका भी मरण नहीं है।

आत्मा मरतो नहीं, इन्द्रिय भी नहीं मरतो, यह सिद्धान्त यदि मर्य हो, तो अमुक व्यक्ति मरा है, मैं मरूंगा, मैं मरा, ऐसा न कह कर देह मरो है देह मरेगी, ऐसा कहना ही तो उचित था! तब फिर लोग ऐसा क्यों नहीं कहते? इसका कारण यह है, कि मनुष्य इस दृश्यमान संघातके अर्थात् देह, इन्द्रिय, प्राण, मन इन सबके सम्मिलन भायका विनाश देख कर ही मरण शब्दका प्रयोग करते हैं। किन्तु प्राणसंयोगका ध्वंस ही उक्त शब्दका प्रधान लक्ष्य है। प्राणव्यापारके निवृत्त हुए बिना दूसरोंका सम्बन्ध निवृत्त नहीं होता। 'जीवन' 'मरण' इन दोनोंका घातक अर्थ लगानेसे भी कथित अर्थ प्रतीत होता है। जीवघातमें जीवन और मृ घातमें मरणका बोध होता है। जीव घातुका अर्थ प्राणधारण और मृ घातुका अर्थ प्राणपरिव्याग है। इसमें यह जाना गया, कि प्राण जब तक देहेन्द्रियादिसंघातमें सम्मिलित रहता है तब ही तक उमका जीवन और विच्छेद होनेमें ही मरण है। अल्पय यह कहना होगा कि मरणमें आत्माका विनाश नहीं होता, केवल देहके साथ उसका विच्छेद होता है। जन्ममें भी नूतन आत्माका प्रयोग नहीं होता, सिर्फ नूतन शरीर उत्पन्न होता है। मैं मरा या यह मरा इन सब शब्दोंका अर्थ औपचारिक है। आत्माका अन्वयन रहनेसे ही देहादिर्मरण पर-प्रवयवमय होता है। यही कारण है, कि उम प्रकारके औपचारिक शब्दका प्रयोग किया जाता है। किन्तु प्राण संयोगका ध्वंस यथार्थ मरण है।

जीव जन्म से कर ताजा प्रकारके कारणोंमें स्थित रहता है, उमके मनमें तरह तरहकी भाषणायें रहती हैं। उन शब्दोंका संस्कार सूक्ष्मशरीरमें धीरे धीरे उत्पन्न

होता है। जरा अल्पकाल पढ़ने पर, पानी कटे पुराने कपड़े या साँपके केँचुल हवागनेकी तरह जराजोर्णदेहका परिवर्तन आवश्यक है। आयु नहीं है, मरणकाल आ पहुँचे, पानी जो वाहा पायु अथ तक शरीरपायुकी वसाये हुए थी, जो वाहा तेज वैदिक तापकी समान स्वता आ रहा था, वह पायु और वह तेज अभी शरीरपायु और शरीरतेजके प्रतिबन्ध है। इसी कारण अभी साँपे हुए पदार्थका पचापच पाक और रसरसादिकों उत्पत्ति और सञ्चरण रुक गया है। ऐसी अवस्था देख कर हम लोग कहते हैं, मुमूर्षुकाल पहुँच गया। शरीर और वायुतेज दोनोंका सम्पर्क ज्यों ही विच्छिन्न हुआ, त्योंही अङ्ग प्रत्यङ्ग निश्चिन्त पड़ गया। इस समय मुख्य प्राण अपनी वृत्तिको समेट लेने भार बल-धनुषेण धारण करते हैं। श्वास जोरसे चलने लगता और शीतल कान आदि इन्द्रियाँ अपने अपने स्थानको छोड़ कर प्राणमें मिलती हैं। अब मुख्य प्राण इन्द्रिय-मय सूक्ष्म शरीरको सिक्कुड़ा लेने और अपने स्थान नामिका ह्याग कर कष्टमें आ जाते हैं। इस स्थानमें रह कर ये निश्चिको खींचते हैं। निश्चिको स्थानक्युक्त हो कर प्राणमें मिलता है। इसी समय मुख्य प्राण अपनी उद्गमनवृत्तिका अवलम्बन कर घेतत्वापिच्छित सूक्ष्म शरीरके स्नायु बाहर निकल आते हैं और वायु-कीतिक वा स्थूल शरीर पड़ा रहता है। इसीका नाम मरण वा मृत्यु है।

आँख, कान, नाक, मुँह, नाभि, मण्डहार, पेनायका धार, पैरकी पूजांगुलि, यही सब स्थान प्राण निकलनेके द्वार हैं। जिस अंग हो कर प्राण निकलता है, वह अंग कुछ और निश्चिकता हो जाता है। शीत हो कर निश्चिकते शीतल निश्चिन्त पड़ जाती, मुँह हो कर निश्चिकते मुँह खुला रहता, सिङ्ग हो कर निश्चिकते सिङ्गका छेद बड़ा हो जाता है। यदि प्राणपायु ऊपरवाले छेदमें निकलने मो उच्च शक्ति और यदि तोषिवाले छेदमें निकलने, तो परिवर्तन अल्प शक्ति होगा, ऐसा ज्ञानना साहिब। ऊपरके छेदमें अल्प शक्ति हो तो शीतल निश्चिकते शीतल शक्ति शक्ति शक्ति है। अल्प शक्ति हो कर प्राण निकलनेसे अल्पशक्ति और पादांगुलि हो कर निश्चिकतेमें शक्ति-

की प्राप्ति होती है। निम्नोच्छ्व मीर वसुधनादि द्वारा दृष्टात् मृत्यु होवेन भी ऊपर कर गये निश्चिकता प्रति-पादन होता है।

मरणकालमें स्थूलदेह पड़ो रहती है, किन्तु उच्च देहका अजित संस्कार सूक्ष्मशरीरके अवलम्बन पर रह जाता है, अर्थात् नष्ट नहीं होता। यही कारण है, कि मृत्युके बाद उच्च देहके अजित ध्यानरूप भावों, धर्माभावादि उसको अभिनय अवस्थाको उत्पादन किये रहते हैं। मृत्युवन्तपा उच्च देहकी परिचित गती पान्थुओंकी मुला देती है तथा अविद्यदेह और अविष्यद देहके भोग तथा भोगसम्बन्धी भावनाको ज्ञानमें परिवर्तित करती है। जितने प्रकारको वन्तपा है उनमें मरण वन्तपा सबसे भयानक है। जिस प्रकार किसी उत्कट रोग भयवा मूर्च्छादि दुस्त अवस्थाका भोग होनेसे पृथग्-मन्थित ध्यान रहने नहीं पाता तथा पूर्ववन्तपाविव मुला जाता है उसी प्रकार मृत्यु-वन्तपा भी मुमूर्षुके विष-मान गती भावोंको विस्मृतितागदमें डूबा कर गई गई भावनाओंको उत्पादन करता है।

जीवने जीवण पर्यन्त जो सब काम किये हैं, जैसा ध्यान किया है, जिस भावमें रह कर समय बिताया है, मृत्युके समय उसीके समान एक तथा परिवर्तन, एक गई आयता उपनिष्चन होती है। इसका नाम भावनामय शरीर है। मृत्युमें कुछ पढ़ते जिसे जैसा शरीर है, शीतल शीत हो उसका भावनामय शरीर होगा। यह भावना-मय शरीर स्थान शरीरके अनुरूप है। कारण, भावना-मय शरीरमें जीव अब आध्य होता है, तब यह स्थूलदेह पड़ो रहती है। ऐसी ही अवस्थाका नाम मरण है।

इस भावनामय देहकी कोई कोई भाविचारिक देह करते हैं। यह भाविचारिक देह बहुत भ्रमकालस्थायी है। मरणकालमें दुःखका विषय विस्मृतागदमें इस प्रकार बिता है—

मरते काले मृत्युवन्तपा ज्ञानेन मृत्युवन्तपा...  
 मृत्युवन्तपाविव मृत्युवन्तपाविव मृत्युवन्तपाविव...  
 मृत्युवन्तपाविव मृत्युवन्तपाविव मृत्युवन्तपाविव...  
 मृत्युवन्तपाविव मृत्युवन्तपाविव मृत्युवन्तपाविव...





होता है। ४ यह वृक्ष जो किमीवे, मरने पर उसके संवंधी बनते हैं।

मरन् (मं० पु०) मरं मरणं पति मरणात्पति सप्ततन्ना जंय हेतुत्वान्, ई-न्, यदा मकरन् प्रयोद्गदिस्थान् मापुः। मकरन्।

मरन्ध (मं० पु०) मरन्ध-स्वायं कन्। मकरन्।

मरन्दीकस् (मं० श्लो०) मकरन्ध स्थान, मधुमधयोका छत्ता।

मरुयुती (हि० श्लो०) पहाडोपदेशोमि उरपन्न होनियाला एक प्रकारका पत्त। इसके टुकड़े गज गज मरके गड्डे पौध कर बांध जाते हैं। बोवाई सदा हा मरकतो है, पर मनीके दिनोंमि पानी देनेको आवश्यकता होता है। इसके दो भेद हैं। दोनोंसे मोरपुट बनाया जाता है। इसका जड़का भाजू वा कंद मो काते हैं। कन्दका धा कर उसके लकड़े बनाते हैं। फिर लकड़ेका दवा कर या पुचल कर रस निकालत हैं जिसे सुखा कर मरु बनाता है। यहा रास तापुट कहलाता है। रस निकले हुए तापुके सुखा और पीस कर कोकारके नामसे बाजारमें बेचत है। इसका घेना पहाडोमि अधिकतामें होतो है।

मरुयुषा (हि० वि०) १ मूषाका मास, भुषपट्ट। २ काल, दरिद्र।

मरु (हि० पु०) मरं वेला।

मरुतो (हि० श्लो०) भारत पर्वके प्रायः सभी स्थानोंमि मिलनेवाला एक प्रकारका वृक्ष। इसके लकड़ी कड़ी और बहुत टिकाऊ होता है। इसमें घेनाके ओजार और घरके भण्डे भण्डे संगे भाजू बनाये जाते हैं। यह पेट्ट बोसोसे उरपन्न होता है और आकारमें बहुत छोटा है।

मरमर (पू० पु०) एक प्रकारका दामेदार निचला पदार्थ (marble)। इस पर पोटलेकी भण्डा समक भातो है। इसमें चूनेका भाग उपादा रहता है और इसी जलोमिसे भण्डा कर्मो निकरता है। यहाँ वे सैमारके भिन्न भिन्न प्रदेशोंमि अनेक रंगोंके मरमर मि मिले, पर सबसेद रंग के मरमर हा की लोग विशेषतः म मर या रंग मरमर कहते हैं। काले मरमरका नाम गुमा है। मरमर पदार्थकी मूर्तिप, विनीम, करकः आदि बनाए जाते हैं। इच्छे मरमर टोलोमि आता है, पर भारतपर्वमें

भां यह जोधपुर, जयपुर, कुम्भगढ़ और उधर आदि स्थानोंमि मिलता है। विशेष विरल्य मरमरपर्वे रंगे।

मरमरा (हि० पु०) १ यह पानी जो भोजा मारा हो। २ एक पत्थोका नाम। (वि०) ३ जो मरुजमें टूट जाय, अथ सा दवाने पर मरमर पद करके टूट सामेवाला।

मरमराना (हि० श्लो०) १ मरमर गड्ड करना। २ अधिक दवाय पा कर पेटकी जाला या लकड़ी आदिका मरमर गड्ड करके दबना।

मरमरत (अ० श्लो०) किमी पत्थुके टूटे पड़े भंयोका टोक करनेकी क्रिया या भाव।

मरु (हि० पु०) दो हाथ लंबी एक प्रकारकी मरुटी। यह कन्दकी या घेने तातायोमि पाई जाती है जिनसे घाम फूम अधिक उगता है।

मरुट (हि० श्लो०) १ यह मागो जमोन जो किमीके मागे जाने पर उसके लकड़े-पानीकी मो जाती है। २ पटुपकी पयो छाल जो निकाल कर सुखाई गई हो, मरुका उलटा। ३ यह लकीरे जो घामटोला भादिके पानीके माली पर घमटन या रंग भादिमें बनाई जाती है।

मरवा (हि० पु०) मरवा देणे।

मरवागा (हि० श्लो०) १ मारनेका प्रेरणाधक कण, मारनेके लिये प्रेरणा करना। २ बध कराना। ३ मरना देणे।

मरवार—भारतपर्वको प्राचीन भगव्ये जामिपनेय।

मरवा (हि० पु०) एक प्रकारका माग। इसके पलिया मोल, भूर्तिदार और कोमल हातो है। इसके पेट्ट मोन मार हाथ तक उमि होते हैं। टंठोली और पलिवीरा माग पका कर लोग पाते हैं। इसके दो भेद हैं, पाल और मरुट। मरुट मरमा जामिसे अधिक स्वादिष्ट होता है। मरमा पर्वोत्सुमि घोया जाता है और भारी बुजार तक इसका माग खासेवाय होता है। पूरी बादके पट्टोमि पर इसके लिये पर एक मंजरी निकरतो है जो एक बाजिलमि एक हाथ तक लम्बी होती है। उस समय इसके जंज और पलिया मो कटा हा जातो है तथा देर तक पकाई जाते पर बजिलमि जलता है। मंजरीमि मरुट फूल लगते हैं और टूटोके सुग्धा जाते पर मोन पड़ते हैं। कोर टांटे, मोल, विरटे और घमटो

समाप्त ( २० पु० ) समाप्त इन प्रविष्टि-विधि समाप्त-  
बन्। अन्तर्गत।

समाप्ति ( २० पु० ) समाप्त, अन्त।

समाप्त ( २० पु० ) - समाप्तपत्रों की दक्षिण-पश्चिम-पश्चिम भागमें  
अभिहित। मद्रास, विन्दिश, रामनाथ और त्रिपुण्य  
जिलेमें इन लीगोंका काम है। निष्पत्तियों अन्तर्गत अति  
के साथ इनके आचार व्यवहार आचार शास्त्रिक-प्रतिमें  
पुत्र की मद्रासका नहीं देखी जाती। ये लोग बहुत मज-  
दूर, तागरे, साहसी और परिश्रमी होते हैं। अन्तर्गत  
रंग और जाति हैं। इनकी अर्थि बड़ी बड़ी और आचार  
पंथों होती हैं। विन्दिशका तरदू ये लोग बड़े बड़े केंद्र  
रहते हैं। रामनाथ और त्रिपुण्य जिलेकी विन्दि २५-  
३० हाथ लंबी माछी रहती हैं।

कोड़ेकी लीग कर ये लोग सभी जगहका मांस खाते  
हैं। इनकी विवाह-प्रथा विस्मयजनक है। अन्तर्गत बाल-  
विवाह ही रहता है। विवाहके समय घरकी सम्पत्ति  
अथवा उर्ध्वान्तिकी सम्पत्ति नहीं होती। प्रतिनिधि-  
स्वरूप एक काष्ठका आसन बना कर विवाह-कार्य  
संगठन करते हैं।

ये लोग स्थानीय देव-देवीकी पूजामें जागर, मांस  
और फल मूलादि विधि चढाते हैं। एकजिन भूत-  
प्रेतादिकी पूजामें दूधका पत्ति दी जाती है। दंडा,  
लोग आदिके समय ये लोग इकट्ठी हो कर गाथ गाथ  
करते हैं।

इनमें अनेक चौड़ी-शरीरका काम करते हैं। अपने  
साहित्यके प्रति इनको विशेष श्रद्धा अति रहती है। कोई  
कोई चोरी उद्वेग करके भी अपना गुजारा चढाता है।  
'मरु' शब्दका प्रत्य अर्थ है घोर। रामनाथ और विन्दि  
पत्रोंके समाप्तोंमें 'देवर' और 'उधम' उपाधि देखी जाती  
है। इन जनोंका अर्थ ये लोग ईश्वर लगते हैं। इत्यादि  
शब्दोंके फारसी मुसलमानोंमें अन्तर्गत अथवा फारसी-  
की भाषामें अर्थ कर विन्दि विन्दि-पत्रोंका परिचय  
दिया था।

जिसमें विन्दि फारसी विज्ञानका अनुमान है, कि  
'समाप्त' विन्दि-पत्रोंके साहित्यिक महादेवपत्नी मन्त्री  
जाति है। ये लोग पहरे लोग रहते हैं। इनका विन्दि

विन्दि-पत्रों-मिलता। इन जनोंमें २०० वर्ष पहले  
इन लीगोंका राजा विन्दि-पत्रोंका राजाके साथ युद्ध कर-  
के उन्हें भागी इन गया था।

समाप्तमें दक्षिण-पश्चिम-पश्चिम आदिम समाप्त जाति-  
को ही समाप्त समझाया गया है। देवर साहबका कहना  
है, कि आन्तर्गतकी दक्षिण-पश्चिम-पश्चिम समाप्त जाति ही  
शास्त्रिकके मतानुसार समाप्त और-बाबर है। समाप्तों-  
की साहित्य-प्रति और-बाबर-पत्रोंके ऊपर रहने रहने-  
में मान्य होता है, कि आन्तर्गत समाप्तमें इनमें  
विन्दि प्रकृता नहीं है। किन्तु देवर साहबका मत  
समोचन प्रमाण नहीं होता। पत्रोंके महाभारतमें समा-  
प्तपत्र 'विन्दि' नामसे प्रसिद्ध है।

मरि - पत्रोंके समाप्तपत्रोंके अन्तर्गत उत्तरी महामोक्ष।  
यह आशा ०३' ४१' ३०" में ३३' ५' १५" ३० तथा  
देगा ० ३३' १५" में ०३' २८' ५०" में मध्य विन्दि है।  
यहां अन्तर्गत अर्थ है दूध शौचविन्दि पर मरिना स्वास्त-  
नियाम अस्थित है।

मरि पहाड़के अन्तर्गत अन्तर्गत पहाड़ ही महामोक्ष  
है। ऊपरमें जात, देवदार आदि दूध सुगंधित हैं और  
नोचे जल्य पूष तथा सुवासित काश्मीरकी पर्यतमाता  
दृष्टिगोचर रहती है। दक्षिण अन्तर्गत पहाड़ अनेक ऊँचे  
और अशुभराजक नहीं हैं। किन्तु उनके ऊपर जो दूध  
रहते हैं, वे बड़े ही सुन्दर जात रहते हैं।

समाप्त नामक विन्दि-पत्रोंके एक महामोक्ष अन्तर्गत और  
रहता है। दक्षिण अन्तर्गतके समाप्त समाप्त जात निकल-  
सकती शृंगु हई थी। उत्तरीके समाप्तोंके एक महामोक्ष  
गया गया है। एक अन्तर्गतका अन्तर्गत अन्तर्गत पत्रोंकी  
मुष्का दूर रहता है। समाप्तोंके समाप्त मरि पहाड़ विन्दि  
पहाड़के साथ आ कर मिल गया है।

इस महामोक्षका अन्तर्गत २३० वर्गमील है। इस-  
में दूध २५ मरि और अन्तर्गत अन्तर्गत है। महामोक्ष अन्तर्गत  
यहां की प्रधान उपज है।

महामोक्षका अन्तर्गत ६६० हा है। एक महामोक्षदार  
आसन कामें चढते हैं। यहाँ २ अन्तर्गत और २ अन्तर्गत-  
द्वारे अन्तर्गत तथा २ अन्तर्गत हैं।

परिचय ( २० पु० ) अन्तर्गत अन्तर्गत।

मरिच (सं० ह्नी०) म्रियने मरयति म्मेःमादिभ्रम  
नेनेति मृ-भाह्लकात् इत् । म्रयामप्रयात यत्संज्ञाकार  
कटु द्रव्यविशेष, गोल मिला । इसे नीलद्रुमं म्रियन्तु,  
तामिली म्रियन्तु, महागुडुं म्रियन्तु, कलिद्रुमं मेमन्तु कहते  
हैं । संस्कृत पर्याय- पवित्र, श्याम, फीट, चर्द्दित, कृपण,  
पथनेट, प्लकंड, शाकाद्रु, धर्मपक्षन, कटुक, निरांशुन,  
शोर, कफविरोधि, मृष, सर्वहित, कृष्ण, वेदात्र, कोटक,  
यसिष्ठ । इसका गुण-कटु, तिक्त, उष्ण, लघु, श्लेष्मा-  
माजक, घान, हृमि और हृद्रोगनाशक, अग्निवर्द्धक,  
रक्त और शुक्रनाशक ।

मरिच भाल-मसालेमें गिना जाता है । भंगरेजोंमें  
इसे Pepper कहते हैं । इसका साधारण गुण है कटु,  
उष, उष्ण, शुक्र और वायुनाशक । कविराजों मनेने  
मरिच मरिराम चरमें, अक्षोर्णारोगमें और अश्व रोमों  
बहुत उपकारी है । पीपर और अद्रकक साय मिलनेमें  
यह विकटु नाममें व्यवहृत होता है फेनाहोना और  
धर्मरोगमें मरिच-शूर्णकी मालिश करनेमें बहुत फायदा  
दिखाई देता है । हकीमों मनेने मरिच बलकारक  
बीजक है । कुसुमरोगमें इसका बाहरी प्रयोग किया जा  
सकता है । दन्तरोगमें मरिचचूर्णसे यदि दूधपन  
किया जाय, तो बहुत उपकार होता है । कहते हैं, कि  
सांपके काँटे हुए स्थानमें इसकी लेप देनेमें विष ऊपर  
चढ़ने नहीं पाता, बल्कि सोधे उतर जाता है । उपरजतिन  
पुष्पलतामें तथा सिर दहनेमें यह उसेजक माना गया है ।  
गलेके भीतर फोड़ा होनेमें इसका बाहरी प्रयोग किया  
जाता है । पिच्छोदकमें मरिचको मिस्र कर स्थानमें  
प्राप्तवा देखा गया है ।

सामायनिक- विस्फेलेण-मरिचमें रक्त, घरेको और  
तेल में सोन पदार्थ हैं । इनमेंसे जो रक्त पदार्थ है,  
उसीका स्वाद उष या भवान् है ।

सूरोपमें म्रिच प्राचीनराजदरि मरिचका मसाले और  
भीरपमें व्यवहार चला आ रहा है । केचन सूरोपमें ही  
मही, सूषिकोंके प्रायः सभी स्थानोंमें यह मसालेद्वयमें  
व्यवहृत होता है । अतएव इसके व्यवहारके सम्बन्धमें  
और कुछ लिखना अनापश्यक है ।

सर्वेषां लेडी-मरिचको लता होती है । अनेक

समय यह लता जंगलमें मांषे भाय उपजती है । पत्राभ  
और माण्डात्र पर्यन्तमें बिना रेंवोंके, फाफों मरिच उपज  
होता है । सामान्य और मन्दाकारके जंगलोंमें भी मरिच-  
की लता मिलती है । पतञ्जलन दक्षिण भारतके उष्ण  
प्रधान जलसिक्त स्थानमें इसको खेती होती है । म्रिच  
प्राचीनकालमें यूरोपके साथ आरबहा मरिचका व्यव-  
साय चला आ रहा है । इस प्राणितय विस्तारके लिये  
दक्षिणभारतके दक्षिणांग तत्रमें यह उपजाया जाता है ।  
सुमात्रा, श्याम और मन्डप-उपद्वीप भादिमें मरिचकी खेती  
होती है, किन्तु मन्दाकारका मरिच सबसे उत्तम होता है ।

उत्तरे महादीपमें जब पर्याप्त शुक्र होती है, उसमें कुछ पदार्थ  
मरिचकी लताको काट कर या कलम तैयार कर रोपते  
हैं । म्रिच सब सूक्ष्मकी छात्र अगमान अथवा काटोंमें  
मरो है उद्धीके नीचे इसकी लता रोपी जाती है । वर्षाक  
इसमें लता बहुत मजबूत हो कर पृथ पर चढ़ती है । लता  
सोमसे नीचे हाथ लंबी देनी जाती है, किन्तु कारमें  
छांटेनेमें इनको खरी मटी हो सकती ; तोत पर्यंके बाद  
उसमें मरिच निकलना शुरू होता है । एक एक लतामें  
मरिचके प्रायः २०से ५० गुच्छे तक लगने हैं । ३ वर्ष तक  
लता बढ़ती है, बादमें अर्द्ध बढ़ती, एक-सी रहती है ।  
चार पांच वर्षके बाद लता मरने लगती है । इसके बाद  
पुरानी लताको काट कर नई लगाने हैं । सब्ज वर्णमें  
जब मरिच सात हाथे लगता है, तब गुच्छोंकी तोष कर  
छेमांसे शनि निकाल लेते हैं । अन्तर शूर्णको फिरलने  
अथवा धोमो सोममें उर्द्ध गुत्ताने हैं । गुणवय मरिच-  
की जलमें धो कर उसकी धुत्तो मन्डप कर देनेमें मरिच  
मरिच तैयार होता है । कभी कभी यह ह्नीतिन मीमरे  
भी पत्रिकार किया जाता है ।

१८वीं शतीके अन्तमें डाबूर रोषमयर्म (Roxburgh)  
समूहकोटांसे उता पहाड़ीपर्वतमें जंगली मरिच-  
की लता देव कर पहाड़ी इसकी खेती करने लगे । १७८१  
ईमें उद्धीने एक लंबा खोड़ा मरिचका बगोथा मगा कर  
कर्मोंक पथाम हजार किन्तके, गारे कर्म मीमरे  
किये थे ।

मरिचमें दो तरहके फल लगने हैं, एक स्वा-सार्णीय  
और दूसरा सुष्ण ज्ञातोय । स्वा-सार्णीके फलमें जो  
मरिच निकलता है वह लता भवान् की होता ।

वर्षाभ्यन्तरे केवल कथादा क्रमेण मरिचको गेणो होतो हे। यदा सुवातेके वर्णनेमे एक चेटके गोणे वाच वाच मरिचको कल्पन गाव्ते हे। कल्पको जड मद्रुंमे एक दो जगो हे। मिर्च अगदा प्राण पुन्या रचना हे। पीठे एक वर्षके मोनर मिर्च एक बार उचको जामको बंध देने हे।

अन्यतर मोन प्रकारके मरिच देने जाले हे, कलि-मालीमर, नागर और भाषित-मरिच। इन तीनों प्रकारके मरिचके गुणमें कुछ भी फरकना नही देवी जाती, विष्णु प्रकारकेद्वरे कोरुं कम और कोरुं अधिक उपजना हे। पहले प्रकारका मरिच अधिक परिमाणमें उपजन होला हे, किन्तु इसको उपजना बहुत दुःसाध्य हे। येनमें अच्छी तरह जोताई नहीं होने भयथा बटिया प्याद नहीं देनेके कारण नही लगती। प्याद भयथा जोताईके अनु-सार मरिचके गुणमें भी तादस्तम्य देना जाता हे।

बहुत प्राचीनकालमें यूरोपके साथ पूर्वदेगके मरिचका वाणिज्य चला आ रहा हे। बीच बीचमें इसको बहुत उन्नति हुई थी। फ्रान्सिजर और इनडुने-भियन्तनस्य नामक प्रथम लिखा हे, कि इसाजमके ४ मी वर्ष पहलेमें लोग मरिचका व्यवहार करने आ रहे हे। इनके व्यवसायके सम्बन्धमें कीमुद्वननक विवरण भी देनेमें आता हे। परियनके कथापे हुए पेरि-प्लस प्रथम लिखा हे, कि मोसकुहा (वर्षमान मल-कारका अन्तरीय)से मरिचकी रचना होती थी। जो कुछ हो, मध्यकालमें मरिचका व्यवसाय अन्त्याय मंगालीकी अवेसा अधिक लाभजनक था, इसमें विन्दु-माल मो संदेह नहीं।

प्राचीनकालमें रोम और इटलीरुमें मरिच पर मह-मूल गणाया जाता था। २५ हेनरीके समयमें मरिचके व्यवसायिलोको एक समिति स्थापित हुई। पीछेउर उस समितिकर नाम 'मोसलस कम्पनी' रखा गया हे। मध्य-कालमें मरिचकी दर बहुत बढ़ गई थी। क्योंकि उस समय इरान ही कर मरिच साया जाता था जिससे व्यवसायिलोको त्यादा मरुत और लरवा परता था। इटलीरुमें १ पीठ मरिचका दाम १ लिब्रू था। इसी कारण पुर्नगोत्र लोग भारतवर्ष आनेके लिये अन्य कपका

आविष्कार करनेकी बुनमें लगे। १५४८ ई०में उनका उद्देश्य फलोपुत्र हुआ और तनीमें मरिचकी दर बहुत पर गई। अनन्तर मलयदोपुत्रमें इसको खेती भी होये लगी। इस समय मरिचका व्यवसाय पुर्नगोत्रोका खास हो गया था। जिस्तोउनका वर्णन पट्टेमें मान्द होला हे, कि इस समय पुर्नगोत्र-राज मलयार-उपद्वीपका मरिचके दुर्गके लोगोंके साथ निर्दिष्ट नियमानुसार मरिचका कारबार करते थे। किसीको भी स्वयन्त खेती करनेका अधिकार नहीं था, करनेमें उसे प्राणदण्ड मिलता था।

पक्षिमानकालमें मलयारका खास व्यवसाय उठ-सा गया हे। मलयदोपुत्र और इसके पूर्ववर्ती स्थानोंमें इसको खेती भी होने लगी हे। भारतवर्षमें बहुत अधिक मात्रामें इसको खपनी होती हे।

२ कजोल, कंकोल। ३ कनकजोल, निर्मली। ४ कुप-रिच, लाल मिर्च। ५ मलयक वृक्ष, मध्य गुजराती।

मरिचपत्रक (सं० पु०) मरिचस्य पक्षानांय पक्षानि यस्येति बहुमूर्ती क। १ सरलवृक्ष। २ द्विवर्षक।

मरिचसद्रुण (सं० पु०) कजोलवृक्ष, कंकोल।

मरिचा (हिं० पु०) बड़ा लाल मिरिच। निर्दिष्ट देशों।

मरिचाचूर्ण (सं० ज्ञा०) चूर्णोपयोगे। प्रस्तुत प्रणाली—मरिचचूर्ण २ तोला, विपराचूर्ण १ तोला, दाहिम्यपोजचूर्ण ८ तोला, पुत्राया गुड़ १६ तोला और पयशार १ तोला इन्हें अच्छा तरह मर्दन कर उपयुक्त मात्रामें प्रयोग करनेसे काष्ठनरं कठिन लोगों जाता रहता हे। (मंयन्तरना० कालविचार)

मरिचाघनील (सं० ज्ञा०) तीतीरपविष्टेन। यह लोठ मज्ज और वृद्धके भेदों हे प्रकारका हे। प्रस्तुत प्रणाली—सत्य मरिचाघ नीलमें कट्टीरु ४ सेर, मासुब २५ सेर, बल्लार्थ मरिच, हरिताम्र, मनछाल, माषा, मरुचनका दूध, करवीका मूत्र, नितांदिता मूत्र, गोबरका रस, म्वालककड़ोका मूत्र, कुट्ट, दक्षिण दाहदक्षिण, द्वैपदाह, रजस्यन्त्र प्रत्येक ४ तोला और विष ८ तोला। मेलनकारके विधानानुसार इन लोठको पकाना होता हे। इसका व्यवहार कर्ममें दाह, रजसु कोढ़ आदि रोग मय होने हे।

पुस्तकमरिचापनेल—कट्टु तेल १६ मंत्र, गोमूत्र ६४ सेर, कल्कायं मरिच, तिस्रोधका मूल, कृष्णमूल, अरुणकका दूध, गोबरका रस, वैद्यनाथ, हरिद्रा, वायुहरिद्रा, जटामांती कुट्ट, रक्तचन्दन, गोपाल कर्चंदोका मूल, करवोका मूल, हारताल, मनछाल, चितामूल, इंगलाङ्गनामूल, विष्टह, धातुन्दका बीज, जिरीयको छाल, नोमको छाल, मोषा, खैरका सार, पीपल, यच, उषोतिष्मती, मोरुका दूध, गुल्मज, अमलतामका पत्र, उदकरत्रका बीज, प्रत्येक द्रव्य एक एक पल, विष २ पल, मट्टी या लोहेके बरतनमें तेलपाकके नियमानुसार पाक करे। इस तेलको मालिन बरतने कोट्ट आदि रोग प्रशमित होने हैं तथा देहकी कमनीयता बढ़ती है। कुष्ठान्धिकारमें यह सबसे उमदा तेल है। इस तेलमें गो अन्धादिका भी घातरोग नष्ट होता है। (मैथिल्यारत्ना० कुशरोपाधि०)

मरिचम् ( २० पु० ) द्वियते इति सू- ( अग्निपू- म्पामिभिन । उष्य ४१५८ ) इति इमनिम् । मृत्यु, मरण ।

रिया—आरामवासो सुखलमान जातिको एक शाखा । मरिया ( हि० खो० ) १ यह एकसी जो घाटमें पायनानेकी ओर उंचन लगा कर ऊपरसे एक पट्टीमें दूसरी पट्टी तक धागेको तरह बांधी जाती है । २ नायमें यह मण्डा जो उसके घेदेमें गूदेके नीचे बंधे बालमें लगा रहता है । ३ लोहेकी एक छोटी हथौड़ी । इससे धातुओं पर खुदाईका काम करनेवाले कालको ठोकते हैं ।

मरियाडोह—मध्यप्रदेशके दामोदर जिलामांतमें हटा तहसीलका एक बड़ा ग्राम । यह अक्षा० २४° १६' ३० तथा देशा० ७८° ४२' ५०के मध्य अवस्थित है । यह हटा नगरसे १० मील उत्तर योगिदाहनालेके वि.नारे बसा है । यहां बरकडोसे नामक एक प्रसाद और दुर्ग है । पत्रधारोके सुवेन्दाराज जब मरियाडोह देवने आये, तब यहां पर एक दुर्ग बना कर शरयं रहने लगे । इन ग्रामके समीप उनका एक कूटान्ध था । १८६० ई०में हमीरपुर जिलेके मध्यवर्षी कुछ संनोंको ले कर उन्होंने यह ग्राम संग-रिषीके समर्पण किया था । यह स्थान देवो मीटे कपड़ेके लिये प्रसिद्ध है । पत्रद्विज यहां एक धाना और विद्यालय है ।

मरियाम् उन् जमानो—मुगल शाहनाह अकबरशाहकी प्रपत्न

महिषी और अर्धांगोरके माता । यह कच्छप्रद मरदारके राजा पिहारोमादकी कन्या थी, इसके कच्छराज्य पर मुग्य हो कर मछाएने इससे विवाह किया था । अर्धांगोरके राज्यकालमें १६२३ ई०की भागरा-मगलमें उसकी मृत्यु हुई । अर्धांगिरसे अपने पिताके पिण्यात गिबेन्द्रा-समाधिमन्दिरकी बगलमें अपने पुण्यपत्तो मानाका समाधि-मन्दिर बनवा दिया है । कोई कोई कहते हैं, कि अकबरशाहने ही प्राणप्रिय सहधर्मिणीका मकबरा उसके कहनेके अनुसार अपने समाधि मन्दिरकी बगलमें बनवाया था । यह मकबरा 'रीजा मरियाम्' नामसे मशहूर है । कोई कोई इस 'रीजा मरियाम्' की अकबर शाहकी Maria or Mary नामक मृष्टान् महिषीकी वध बतलाते हैं ।

मरियाम् मकानो—अछाट अकबरशाहकी माता, हुमायूँकी पत्नी और मीरा अहमद जामकी प्रवीता । इसका असल नाम हमीदाबानो बेगम था । मृत्युके बाद मरियाम-मकानो नाम पड़ा । १५४१ ई०में हुमायूँके साथ इसका विवाह हुआ था । अकबरके जन्मके बाद यह मछा तीर्थयात्राकी गई और वहांसे ३ मी बलवान् शरको शोताके साथ दिल्ली राजधानी लीदी । उन लोगोंके रहनेके लिये मरियामकी प्राचीन दिल्ली नगरमें हुमायूँ-मस्जिदकी बगलमें १५६० ई०की आरब-गराय बनवा दी थी । १०३३ ई०की ७८ वर्षकी उमरमें इसका देहान्त हुआ । हुमायूँ-मगजिदमें इसका मकबरा आज भी देखा जाता है ।

मरियादु—१ युक्तप्रदेशके जौनपुर जिलामांतमें एक तहसील । यह अक्षा० २५° २४' से २५° ४४' तथा देशा० ८२° २४' से ८२° ४४' पू०के मध्यमवस्थित है । भूपरिमाण ३२१ चर्गमील और जनसंख्या प्रायः २,५३,४०२ है । इसमें मरियादु नामक एक नगर और ६७८ ग्राम लगते हैं । तहसीलका विस्तार मरियादु परगनेके समान है । इसके प्रायः समो स्थान समतल है, बीच बीचमें कुछ मामास्य अल्पसुख छोटे छोटे हद हैं । उत्तर पश्चिम दोनों दिशा-पूर्वकी ओर विनादी नदी बह गई है । यह नदी तहसील की दो समान भागोंमें बांटती है । इसके उत्तर पूर्वमें नार नदी दौड़ गई है । जौनपुरमें विजापुर नदीकी पत्नी सहक तहसीलके उत्तर-दक्षिण हो कर बहती गई है ।

परीये कामो और प्रकाशपट जामके विषये भी कथयो मद्रके' मो है ।

२ एक मद्रकोर ३ एक प्रकाश पट । यह भयान ३५' ३१' ८" ३० तथा देना ८३' ३८' ३०' पूरके मध्य विद्युत् है । औसत मद्रकोर यह ३२ मीन परितन परिचय पदका है । मद्रकोर मिरा एक कयो मद्रक है । पदमे यह स्थान ज्ञायोके मद्रकेके विषये विशेष प्रसिद्ध था, किन्तु मातकन ये मद्रको जगद भोले मये है । जगर मे एक मद्रकोर कपहरो, दोपयो अशक्य, भद्रको कृत, दाकपट, धाना और गेनामोके रहनेका स्थान है । प्रांत मद्रकपट और मद्रकोरको यह हाट लगती है ।

परी ( दि० खो० ) १ एक प्रकाशका खोप । यह मद्रकोरको देतना है और एक मद्रक बहुतमे जग मले है, महा मारो । २ एक प्रकाशका भूत । लोमोका विद्याम है, कि यह दिव्यो रोमो कृष्ट स्वभावको लोमो प्रेतात्मा होतो है जो किमो रोम, भाषात अधवा किमो अन्य जगलका पूर्वाभूको न पदुंग कर अन्तगुमं मरो हो । ३ मारनपथमें तथा मद्रक, निगाएतुर आदि लोमोमें मिलनेवाया देतो मद्रकोरको पेट । यह पेट देवनेमे बड़ा मनोरम होना है । इसमे तापु निहायो जगो है । तापु लोम पोमे है और उममे मुद्ग भो बनो है । इसकी बामन बानो या मंजुकी तदकायी बनाई जगो है । इसके पुराने स्वप्नमेके मुद्गेमे मद्रकोरका निरूपणा है । यह जाना जानोमे पका कर खाया जाता है, या पोम कर उमको रोदो बनाई जगो है । रोो कू'पो, मूज, रम्भो और जाल बनायेके काममे भाते है । लहरो इसको मद्रक और रिहाऊ होतो है । इस पेटका दूसरा नाम मेरवा भी है ।

मरोन मं० खो० । मू बाहुनका मू रोग । स्वनामरवाय कटुप्रविषय, मोनमिषे । मू रोग देतो ।  
मराणि ( मं० पु० ) शिवले पावगानिषेतिमरणि मू । मू । अन्तगोके । उद्ग ११७० । रोग रोग, मद्रकोरका मद्रक मद्रको । १ मुनिविषय । पुराणामे उहे' प्रकाश मान विरक पुन विरवा है एक प्रकाशनि मद्रक है और मद्रकोरो से निहाया गया है । किमो किमो पुराणमे एको मद्रको नाम 'कन' और किमो किमोमे 'मंजुनि' लिखा है । इसके कथन और मूनिमान मद्रक को पुन मे ।

मरिचिन इनके उहेजमे मरिच बनता होना है । मरिचोमे ये प्रयाग है ।

२ दनुके एक पुनका नाम । रविम १५२२ । ३ एक मद्रकोर नाम जो भुगुके पुन और कद्रवके विवा धे । ४ मद्रकोरि । ५ निवामन यंयो एक रातका नाम । ६ एक प्रायोत नाम जो (०) मद्रकोरके बराबर होना है । ७ एक देवका नाम ।

( मं० ) शिवमे एव देवा मद्रकोरदिनि मू रवि । ८ अन्तगोविषय, एक अन्तगोरा नाम । ९ विरल । १० कालि, ज्योति । निवते पांशुधोला प्रोवा यधवाः मू भयानमे ईनि । ११ मरोनिका, मूगमूला ।

मरोचि - १ मद्रकोरकोके ज्यो । २ एक दिव्योत ज्योति विद् । नादोमरिहातो इनका ज्योति है । ३ जैन-पुराणोके प्रथम तोषुद्र प्राणमेदेवके पोच । ४ पुराणोके मुनि विरल । इनके औरम और मद्रकोरके मरोमे एक पुन उमम हुआ था । ५ एक महिताकोर । ६ उगुराममेद् । मरोनिका ( मं० खो० ) मरोचिदेव लोभे कय टपु । १ मूगमूला, मिरोट । मद्रकोके दिवोमें जय यामुकी लोका मद्रक जगलके बराबर अममान होना है, लय मद्रकोके विरक हो यामु भविष्य उल्ल हो कर लपको उदना खाद्यो है । परम्पु उमको लहे' उमे पदमे लो' देतो । इसमे उम यामुकी लहे' मद्रकोके समाना मने बहने लगती है । लही लहे' मद्रको जमको धारा मो दिहाई देतो है । मूग इसमे प्रायः पोया खाते है इससे इसका दूसरा नाम मूगमूला भी है । मद्रकोः लेतो ।

२ शीतलानुसार जगद्वारमे । ३ विरल । मरोनिको ( मं० पु० ) मरोचि छाण्डोक्कला लभे यधव । १ मू । २ दक्षमार्गनि मद्रकोरमे होमेवारे एक प्रका के देव लोका मल । ३ जगदमेद् । मरोचिजल ( मं० पु० ) मूगमूला । मरोचिको ( मं० खो० ) मरोचिक, मूगमूला । मरोचन । मं० वि० । मरोचि सन्तुर्मे रवि । १ विरल मुक, विरमे विरल हो । २ पु० । ३ मू' मं० कद्रव । मरोचन । मं० वि० । १ मू' मं० मद्रकोरके देवको । २ मरोचिजलमे । मरोचिजल । मं० खो० । मद्रको ।

मरोचिमत् ( सं० वि० ) मरोचि धार्ययर्थे मनुष्य । मरोचि-  
युक्त, जिसमें किरण हो ।

मरोचिमाती ( सं० पु० ) मरोचिमाती अम्पाहोति इति ।

१ मरोचि-मातीयुक्त, गन्ध और मूर्ध्नि । ( वि० ) २  
किरणमालाविशिष्ट ।

मरोज ( सं० वि० ) रोगघ्न, रोगी ।

मरीना ( हि० पु० ) एक प्रकारका बहुत सुलायन ऊनी  
पतला कपड़ा जो मरीतो नामक भेड़के ऊनसे  
बनता है ।

मरीमुञ्ज ( सं० स्त्री० ) पुनः पुनः मार्जन द्वारा परिष्कार  
करना, बार बार मल कर झांक करना ।

मरीमुञ्ज ( सं० स्त्री० ) अनुभव करना ।

मरीयमि ( सं० स्त्री० ) मंगरेजी Mary नामक अण-  
घ्न । रोमकस्त्रिजात्मि जिम मरीयमियुक्तका उल्लेख  
है, यह मेरियुक्त ईसाका नामाक्षर समझा जाता है ।

मरु ( सं० पु० ) धियोने इति लब्धि मृ ( मृदनीति ) उप-  
१० ) इति उ । १ मित्र प्रदेश, मरुभूमि, रेगिस्तान ।

“शरण्या मरुद् भीरु त्वं मरुती मरुज मी ॥”

( भात १३, १२४२० )

२ यह पहाड़, जिसमें जलका अभाव हो । ३ मार-  
पाइ और उसके भाववासके देवका नाम । ४ मरुवक  
पृथ, मरुका नामका गोधा । ५ नरकासुरके सहनर एक  
असुरका नाम । ६ मूर्ध्नि घेनोय भाषीराजविशेष । अणघान-  
में कृत्वि अघतार ले कर अडेच्छोका निपन और मरुको  
अधोप्यारात्ममें अधिविक क्रिया । पीते विनामन्य  
राजाको कन्यासे इनका विवाह हुआ ।

( कल्पि० १८ म० )

७ पशुधोमिंसे एक । ८ भूमि देणे । ८ शीमरातके  
एक पुत्रका नाम । ९ निमिर्षनके राजा हर्षभके एक  
पुत्रका नाम ।

मरुधा ( हि० पु० ) १ अनुजगती या वरुती जातिके एक  
गौधेका नाम । यह गौधा कामोंमें लगया जाता है ।

इसके पत्ते बरसोके पत्तोंमें कुछ बड़े, मुकीने, मोड़े, लम  
और चिहने होते हैं । इसके अण गंध आता है । इसके  
दम देवताओं पर चढ़ाने आते हैं । इसका पेट टूट हो  
हाथ ऊंचा होता है और इसकी कृमियों पर बर्णिक

अणहर्मों तुलसीकी तरह संज्ञा निकलती है । इसमें ज-  
रियोंमें सपेद फूल लगते हैं । जब फूल खट आते हैं  
तब बीजोंमें अण हुए छोटे छोटे बीजको निकल आते  
हैं । बीजपानके पहले पर उनमें बहुत बीज निकलते  
हैं । इन बीजोंको यदि पानीमें डाल दे, तो वे इंगल-  
गोलकी तरह फूल आते हैं । यह पौधा बीजोंमें उगता  
है, पर यदि इसकी बीज न टूटते वा फुलना लगते  
जाय, तो यह भी लय जाती है । इसके प्रभेदमें मरुधा  
दो प्रकारका होता है, काला और सफेद । काले मरुधका  
प्रयोग औषधिकर्ममें नहीं होता और फूल आदिके साथ  
देवताओं पर चढ़ानेके काम आता है । सफेद मरुधा  
औषधियोंमें काम आता है । इसका गुण गरुषट, बहुमा,  
रुखा और रुचिकर तथा तीखा, गरम, हृदयक, विष  
वर्धक, कफ और घागमानक, विष, हृमि और पुष्टमानक  
माना गया है । मरुध देणे ।

२ हिन्दोलिमें यह ऊपरकी लकड़ी जिसमें हिन्दोल  
लकड़ाया जाता है वा हिन्दोलकी लकड़ाके मरुकी जड़ों  
या लकड़ां जाते हैं । ३ मीठ ।

मरुध ( सं० पु० ) १ मयूरभेद, एक प्रकारका मोर । २  
मृगविशेष, एक प्रकारका हस्ति ।

मरुदण्ड ( सं० पु० ) देवविशेष । यह क्षिति दिनामें है  
और हृन्, चिया और स्वामी नक्षत्रोंके अधिकांशमें माना  
गया है ।

मरुकान्तर ( सं० पु० ) बानू या देवका मैदान, रेगिस्तान ।  
मरुकुण्ड ( सं० पु० ) देवविशेष । मरुकुण्ड देणे ।

मरुकुण्ड ( सं० पु० ) बाराहीमहिताके अनुसूत एक देव-  
का नाम । यह कूर्मविभागके अनुसार पश्चिमोत्तर  
दिनामें है और उत्तराकाश, धरम और पश्चिम नक्षत्रोंके  
अधिकारमें माना गया है ।

मरुकेण्ड ( सं० पु० ) निपन्निर्भूमे ।

( कल्पि० मरु० १०१११ )

मरुबोट ( सं० पु० ) देवभेद ।

मरुधोपहन ( सं० स्त्री० ) वहस्तीहताके अनुसूत एक  
देवका नाम । यह क्षिति दिनामें है और हृन्, चिया  
और स्वामी नक्षत्रोंके अधिकांशमें माना गया है ।

मरुध ( सं० पु० ) मरी विज्ञातेदेते जापने इति





'दे पिता ! यदि पूर्व निश्चिन्त स्वामी मेरा पालनप्रदान न करे' तो मुझे तपस्या करनेको आज्ञा दीजिये, तपस्या मिला इस जन्ममें मेरा पति और कोई हो ही नहीं सकता ।' राजा विशाल विकरकैयविभूत हो कुछ स्थिर न कर सके । कन्या तपस्या करने जकूल चली गई । पौर तपस्यासे अब उसका शरीर क्षीण होने लगा और प्राण निकलनेकी भीषण भाव पड़ो तब देवताभेदि उसके पास एक देवदूत भेजा । उम्र दूतने कहा 'मैं देवदूत हूँ, देवताभेदि मुझे तुम्हारे पास भेजा है । मुने ! यह शरीर दुर्लभ है तुम उसे मत त्यागो । तुम्हें एक चक्रवर्ती पुत्र होगा जो जलू भीका सहार कर सारो हीपका अधिकारी बनेगा ।' कन्या बोली, 'दे दूत ! बिना स्वामीके मुझे किस प्रकार पैसा पुत्र मिल सकता ? मैंने तो संकल्प कर लिया है, कि भवोक्षितको छोड़ कर और कोई भी इस जन्ममें मेरे पति नहीं हो सके । मेरे पिता और भवोक्षितके पिता कल्पवने उठे मुझमें विवाह करनेके लिये बार बार सम्झाया, मैंने भी कई बार अनुमति दिये वर दिया, पर उन्होंने एक भी न मानो ।

इस पर देवदूतने कहा, 'मधिक करनेको जरूरत नहीं । तुम्हारे निश्चय हो एक पुत्र होगा । मनपय भयमें द्वारा प्राणत्याग न करना, इसी कालनमें रद कर इस क्षीण शरीरको पालना ।'

उधर भवोक्षितको माला योराने पुत्रने कहा, 'मैं किमिच्छित्कर्मन करना चाहती हूँ तुम मेरी सहायता करना ।' भवोक्षितने उत्तर दिया, 'घन मेरे पिताका है, उसमें मेरा कुछ भी अधिकार नहीं है । पर हाँ, मैं प्रतिज्ञा करता हूँ, जहाँ तक हो सकेगा, मैं अपने शरीरमें जरूर मदद पहुँचाऊँगा ।'

भवोक्षितके इस प्रकार प्रतिज्ञा करने पर राजा परम्य उनके समीप गये और बोले, 'वरा ! मैं तुममें एक धानु मीपना चाहता हूँ, कजूल करे, तो वह ।' भवोक्षितने हाथ जोड़ कर कहा, 'नात ! आप जरा भी न सहिये, बह डाँटे, यह बीम सो पशु ही जो भाव चाहते हैं । चाहे वह साध्य हो वा असध्य, मैं उसे अवश्य कर दूँगा ।' राजाने उत्तर दिया, 'मैं स्वयं गोइमे पील-मुष देवता चाहता हूँ, सो मेरा मनोरथ पूरा करी ।'

भवोक्षित बोले, 'राज ! मैं मायका एकमात्र पुत्र हूँ, फिर भी मैं प्रसन्न हूँ । मेरे श्रोत्रुव कुछ भी नहीं है । ऐसी हालतमें किस प्रकार भाव पीरका सुग देन सकते ?' राजाने कहा, 'तुमने भयपय प्रसन्नकैय भयलभन किया है । मानी अपनी प्रतिज्ञा पर अटल रही और विवाह करे, यही मेरा मनोरथ है ।' भवोक्षित इस पर राजो हो गये ।

अनन्तर एक दिन राजपुत्र भवोक्षित भाग्येकी निकले । यहाँ उन्होंने किसी स्त्रीका मोला सुना । जल्दका अनुसरण करते करते वे उनके पास गये और बोले, 'तुम कीन हो और क्यों रोती हो ?' स्त्रीने जवाब दिया, 'मैं राजा बर-भ्रमके पुत्र पुरुषोभवा घोमान भवोक्षितकी भाया हूँ । दुराग्या अनुत्र मुझे यहाँ हर लाया है, इसीलिये मैं रोती हूँ ।' यह सुन कर भवोक्षित सोचने लगे, 'क्या मन्मथय यह मेरी भाया है । यथा कालन पासो कुछ प्रकृत मायावी राक्षसोंकी भाया है ? जो कुछ हो, मैं अब यहाँ पहुँच गया, तब इसका यथायं तप्य मान्य कर जरूर इसका प्रतिकार करूँगा ।' पीछे अब उठे मान्य दुभा, कि मुनेके पुत्र दृढ़कैयने उम शरीरद्वाराभूषिता कन्याको यहाँ हर लाया है, तब उन्होंने उम मुझमें सुनाया और मार डाला ।

दुराग्या क्षमके मारे आने पर देवदूत यहाँ पहुँच गये और उन्होंने भवोक्षितमें अभिलषित गर मागनेकी कहा । इस पर राजपुत्रने गिलाको कालना पूरे करनेके हेतु एक महापीये पुत्रके लिये प्रार्थना वा । देवताभेदि कहा, 'तुमने इस कन्याका संकट दूर किया है, इस कारण इसके गर्भमें तुम्हें एक महापीलिय चक्रवर्ती पुत्र होगा ।'

इस समय तुल्य नामक मन्त्रके अत्याय सदृशकीके साथ यहाँ पहुँचे और कहने लगे, 'यह मातृकी मेरी ही मन्दिनी है, मातृकी इसका नाम है । अगस्त्यके ज्ञान-से विशालका कन्या हो गई है । तुम इसका पालन प्रदान करो, इसके गर्भमें मुझे पहलवर्ती पुत्र होगा ।' राजपुत्र भवोक्षितने इस बात पर सहमत हो कर उगरे विवाह कर लिया ।

कुछ दिनोंके बाद उनके एक पुत्र उत्पन्न हुआ ।



इतना कह कर मरुतने पाताल और मृत्यु परके सभी नागोंको विनाश करनेके लिये मन्त्रके अन्तको छोड़ा। अन्त्रके नेत्रने ममसा नागलोक दग्ध होने लगा। नागोंने कोई उपाय न देख मरुतको माता भामिनोको शरण ली। भामिनोंने अपने स्वामी भयोक्षितसे नागोंकी रक्षाके लिये अनुरोध किया। इस पर भयोक्षित बोलते, 'नागोंने भारी अपराध किया है, इसी कारण मरुत क्रोधमें आ कर ऐसे काममें प्रवृत्त हुआ है। उसका यह क्रोध सहजमें जन्तु होगा, सो मुझे विध्याम नहीं होता।' अन्तर नागगण भयोक्षितको शरणमें पहुँचे। भयोक्षितने शरणार्थी नागों तथा निज परनी भामिनोके अनुरोध पर कहा, 'अरे! मैं भक्ति नीम मरुतके पास जा रहा हूँ और उनको इस क्षामसे रोचना हूँ। क्षत्रियको ऐसा कदापि उचित नहीं, कि ये शरणगतको विमुख लौटा दे। यदि मरुत मेरी बातको न मानेगा, तो निश्चय जानना कि मैं अपने अन्त्रसे उसके अन्त्रका प्रतिरोध करूँगा।

इस प्रकार नागोंको स्मृत्ययमा दे कर भयोक्षित पुनः के पास गये और बोले, 'मरुत! अन्त्रको रोको, क्रोधके यगीमृत मत होयो।' मरुत पिताकी आज्ञा सुन कर एक-दुकरे उठे देणने लगे और प्रणाम करने हुए बोले, 'सात! इस दुष्ट सर्पोंने सुदृढ अपराध किया है। मैं पृथ्वीका नासककर्ता हूँ, मेरे नासककी भयङ्गा कर इन्होंने आश्रयदात्री निरपराध स्नात प्रतिक्रियाओंको उँस लिया है। इतना हो नहीं, उँसोंने यद्योय पूज और जल को भी दूषित कर दिया है। इसी कारण मैं इन सर्पों का बध करनेको ज्वल हुआ हूँ। मेरा अनुरोध है, आप मुझे इस कामसे न रोके।

पुनःकी बात सुन कर भयोक्षितने कहा, 'मम है भुक्तहोंने भारीभारी अपराध किया है, पर इस समय मेरा अनुरोध तुम्हें अवश्य स्वीकार करना पड़ेगा। नागगण अपने अपराधका दण्ड अर्थात् तरह पा चुके, अब अयना अन्त्र रोको।' इस पर मरुतने कहा, 'यदि मैं इन नागियोंको अर्थात् तरह शक्ति न हूँ, तो मुझे एक जाना पड़ेगा। अन्त्रय आप मुझे इस कामसे न रोके।' भयोक्षित बोले, 'इन परमणीने मेरी शरण ली

है, शरणगतको आश्रय देना क्षत्रियका दायित्व धर्म है। प्रत्यय मेरे दृष्टि दया करो और अब अन्त्र परनाम छोड़ दो।' मरुतने उत्तर दिया, 'ये दुष्ट और भयङ्गी है, इन्हें कदापि क्षमा नहीं कर सकता। मैं मगने धर्मका उद्गृहण करने हुए किम प्रकार आपके बचनका रक्षा करूँगा। दुष्टोंका दमन और जियोका पावन करना ही राजाका कर्तव्य है। येना नहीं करनेसे मरुतकी गति हीनी है।

इस प्रकार पिताके बार बार अनुरोध करने पर भी जब पुत्रने अन्त्र चलाया नहीं छोड़ा, तब एक बार और भयोक्षितने कहा, 'ये सभी परमण उर गये और मेरी शरणमें पहुँचे हैं। इसके लिये मैंने तुमसे वह बार अनुरोध किया, फिर भी तुमने अन्त्र चलाया छोड़ा नहीं। अब निश्चय जानो, मैं स्वयं अन्त्र धारण करूँगा। बेपल तुम ही बाधविहृ नहीं हो, मैं भी अन्त्र चलाया जानता हूँ। मेरे सामने तुम उदर नहीं रहते! पिताका चरना नहीं मानने, इसलिये तुम भक्ति दूषित हो।'।

अन्तर राजा भयोक्षितने कानाम्ब प्रवृत्त कर पुत्रके उदरमें प्रयोग किया। तब मरुतने पिता कह कहा, 'मैंने सिर्फ सुष्टोंका नासन करनेके लिये ही इस संघर्षक अन्त्रकी योजना की है, आरुचा बध करनेके लिये नहीं। मैं आपका पुत्र हूँ, फिर भी सुधर्माने चय कर भावकी आज्ञाका पावन करता आया हूँ, प्रजाका परिपालन ही मेरा कार्य है, तब येना अन्त्राय नहीं हो रहा है।'

भयोक्षितने उत्तर दिया, 'मैंने भी तो शरणगतकी रक्षा करूँगा, येमो प्रतिज्ञा की है, तो फिर तुम क्यों बाधा चालते हो। निश्चय जानो, अब तक हम हैं, तब तक तुम मुझसे पार नहीं पा सकते। चाहे तुम अन्त्रय मेरा बध कर इन दुष्ट सर्पोंको मर्दात करो चाहे मैं अन्त्र चलये तुम्हें मार कर इनको रक्षा करूँ। शरणगतः चाहे जन्म भी क्यों न हो जो इन पर दया नहीं करवाते उनका ज्ञानत पिच्छ है। मैं सन्नित हूँ, ये सब अपमान ही कर मेरी शरणमें पहुँचे हैं, किन्तु तुम इनका धनित कर रहे हो, तो फिर क्यामो मैं मुझका क्यों नहीं बध करूँ?'

इस पर मरुतने उत्तर दिया, 'हित, कामधय, विद्या या सुद कहे कोई भी नहीं मरुतनामने। शरण



मरुतसिद्धि (सं० स्त्री०) १. मरुतसिद्धि । २. इन्द्र ।  
 मरुतसहाय (सं० पुं०) मरुत सहायो यस्य । अग्नि ।  
 मरुतस्तुत (सं० पुं०) १. वायुपुत्र, हनुमान । २. भोम ।  
 मरुतस्तोत्र (सं० पुं०) मरुतोंके साथ स्तुत ।  
 मरुतस्तोम (सं० पुं०) १. मरुतसम्बन्धीय स्तोम । २. एकदा-  
 वागभेद, एक प्रकारका एकदा यज्ञ ।  
 मरुतधत् (सं० पुं०) मरुतधत् देवों ।  
 मरुदाग्नेय (सं० पुं०) मरुत् वायुराग्नेयतेऽग्नेनेति  
 आग्नेयिक करणे घञ् । १. घयित, घीकनी । २. प्राचीन  
 कालको एक प्रकारको घीकनी जो हस्ति या भैंसके  
 चामड़ेसे बनती थी ।  
 मरुद्विष्ट (सं० पुं०) मरुतां देवानामिष्टः । गुग्गुलु, गुग्गुलु ।  
 मरुद्वेप (सं० पुं०) इक्ष्वाकुवंशीय राजभेद । अथमद्वेपके  
 पिताका नाम ।  
 मरुद्वेयी (सं० स्त्री०) अथमद्वेपकी माता ।  
 मरुद्वेज (सं० पुं०) १. मरुभूमि । २. मागवाइका जनपद ।  
 मरुद्वेज (सं० पुं०) मरुत्समूह ।  
 मरुद्वेज (सं० स्त्री०) मरुत्सु वायुसु ध्वजः यताकेय,  
 ममसि वायुयज्ञाद्यलित इवाक्षय्य तथास्य । यातयत्,  
 शुशुका तथा ।  
 मरुद्वेज (सं० पुं०) १. पक्षीय पात्रविशेष । २. समाधिदकी  
 एक जाति । ३. विष्णु ।  
 मरुद्वेज (सं० पुं०) १. पन्नकपाम । २. शुक्रनिम्बी, कवि-  
 करणु । ३. इन्द्र और वरुण । ४. हृत्स्वदिश, छोटा रीर ।  
 मरुद्वेज (सं० स्त्री०) मरुत् वायुस्य उष्णसिक्कारणं  
 यस्याः । ताभ्रमूलाक्षय, कविकरणु ।  
 मरुद्वेज (सं० पुं०) मरुत् वायुस्यो गान्धिविषास्य, ऊर्णां  
 स्तोत्रं विपति बभूवर्षं गच्छतीति तथास्य । १. अथ,  
 घोड़ा । २. देवतय ।  
 मरुद्वेज (सं० पुं०) मरुतीनिर्जलदेशस्य ऋमः, मरुतानो  
 द्रुमो वा । १. विटलदिश । २. बबूल ।  
 मरुद्वेज (सं० स्त्री०) मरुती वायुतां देशानां वा यत्नं  
 पाथाः । साकाज ।  
 मरुद्वेज (सं० पुं०) मरुता वायुता उदरेऽग्नी इति कर्मणि  
 घञ्, यज्ञ मरुतायुपांद् इव यस्य । १. पून, भूमा । २.  
 अग्नि, भाग ।

मरुद्विधा (सं० स्त्री०) मरुतीभेद, मरुद्वेप ।  
 मरुद्विध (सं० पुं०) मरी निर्जलदेशो द्विधो हस्तीश्च । उट्ट,  
 ऊँट ।  
 मरुद्विध (सं० पुं०) यह राजाज और मरुत्सु हरा मरा  
 स्थान जो मरुत्सुसंज्ञां हो, भोसिज । इसे अग्नेयोंमें  
 (अग्नेय) कहते हैं ।  
 मरुद्वेप (सं० स्त्री०) मरुतीभेद, कावेरी नदी ।  
 मरुद्वेप (सं० स्त्री०) मरुत् वस्त्रक यज्ञमान ।  
 मरुद्वेप (सं० स्त्री०) १. पुण्या-मरुतीभेद । २. यज्ञादकी  
 एक नदीका वैदिक नाम । ३. मरुतीमात्र ।  
 मरुद्वेप (सं० पुं०) मरुतीं येषां । १. वायु येष । २. एक  
 देवका नाम ।  
 मरुद्वेप (सं० पुं०) १. निष्कन्ददेश, मरुभूमि । २. रक्षी-  
 यर नामक विद्यापरके पुत्रका नाम ।  
 मरुद्वेप (सं० पुं०) मारवाड देश ।  
 मरुद्वेप (सं० स्त्री०) मरुतीभेद ।  
 मरुद्वेप (सं० पुं०) मरुतीके नाम ।  
 मरुद्वेप (सं० स्त्री०) मरुत्सुमान्यते धार्यते इति मार  
 धारणे कर्मणि घञ्, यत् । पूजा नामकी मत्त, भारतवर्ष ।  
 मरुद्वेप (सं० पुं०) एक देशका नाम ।  
 मरुद्वेप (सं० स्त्री०) देवद्वेप ।  
 मरुद्वेप (सं० पुं०) मरुतीनिर्जलदेशः विषोऽस्य । उट्ट,  
 ऊँट ।  
 मरुद्वेप—विदार और उड़ोनाके परना निर्जातमान एक  
 गंज । परना मरुद्वेपको इस हाटमें विष्णु कागार है ।  
 यहाँ देवदेवात्मके साथी हुए महाज ज्ञान बहवचन  
 की भावद्वेपों और रूपनो होती हैं । धामद्वेपोंमें मरुत,  
 वायव्य, यज्ञ, काठ और योना तथा रूपनोमें मरुत्, वादों,  
 मरुती, धी और मोटा सादि प्रपात है ।  
 मरुद्वेप (सं० पुं०) एक देशका नाम ।  
 मरुद्वेप (सं० स्त्री०) मरुत् निर्जला भूमिः सिद्धिः । १. दामोदर  
 देश, मारवाड । २. यह देश और इस देशका देव  
 वायव्य । ३. निष्कन्दभूमि, मरुभूमि ।  
 मरुद्वेप (सं० स्त्री०) धीमत्सुधारणके पुत्र ।

शास्त्रमें राजा इनका भयपत्र बंध करेगा। अतएव मैं आपकी प्रहार करूंगा। इसमें यदि आप क्षीय करें, तो अनुचित है।

पिता और पुत्र दोनों आपसमें पर मिटनेको तैयार हो गये। जब यह खबर भाग्यवादि मुनियोंको लगी, तब वे यहां आये और मरुसने बोले, 'पिता पर अत्य छोटना उचित नहीं।' चाँछे वे लोग अशोभितको भी समझा कर कहने लगे, 'तुम्हारा यह पुत्र विगयात-विक्रम है, इसका संहार तुम्हें हरगिज नहीं करना चाहिये।' उत्तरमें मरुसने कहा, 'मैं राजा हूँ, दुर्घोका दगन और जिन्दगीका पालन हमारा कर्त्तव्य कर्म है। भुजङ्गोंने भारी अपराध किया है, इसीसे मैं उन्हें दण्ड देता हूँ।' अशोभित बोले, 'शरणागतको रक्षा करना मेरा एकमात्र कार्य है। मेरा यह पुत्र शरणागतके संहारमें प्रवृत्त हुआ है अतएव यह सर्वथा अपराधी है।'

इस पर ऋषियोंने फिर कहा, 'भुजङ्गोंने जिन ब्राह्मण-कुमारोंको डंसा है उन्हें वे ही जिला देंगे। अतएव पितापुत्रमें विवाद करनेकी जरूरत नहीं। तुम दोनों ही राजधर्म हो।' इसी समय अशोभितकी माता यौरा वहां पहुंची और पुत्रसे कहने लगी, 'तुम्हारा पुत्र मरुस मेरे ही कहने पर इन पन्नगोंका संहार करनेको उद्यत हुआ है। अतएव मेरा यही कहना है, यदि मृतब्राह्मण-कुमार जीवित पा जाय तो तुम्हारे शरणागत सर्वगण भी रक्षा पायेंगे।'

तदनन्तर भुजङ्गोंने सभी ब्राह्मण-कुमारोंको दिव्य भोग्याद्य द्वारा जिला दिया। अब मरुस पिताके चरणोंमें गिर कर घन्दना करने लगे। अशोभितने भी प्रमत्पूर्वक आलिङ्गन पर उन्हें आनीबार्द दिया।

राजाधिराज मरुस पहरिपुत्रोंकी जय कर-धर्मतः पृथिवीका पालन करते हुए सभी भोगोंका संगोग करने लगे। विदर्भकी कन्या प्रभायती, सुवीरकी कन्या सीधोरा, मगधपति केतुकी कन्या प्रभायती, सुवीरकी कन्या सीधोरा, केरूपकी कन्या सीरिणी, सिन्धुकी कन्या वासुमती और वेदितकी कन्या सुशोभना यही सात महत्सकी पत्नी थीं। इन सातोंके गर्भसे अठारह पुत्र उत्पन्न हुए। उनमें सुतेजसं नरिष्यन्त धेनु था।

जो ध्याक इन महत्स-उपाख्यानको ध्यानपूर्वक सुनता

है, उनके सभी पाप नष्ट होने हैं तथा जन्तमें यह सुव गतिको प्राप्त होता है। (माहर्षदेव पु० १२५-१३२)

२. यदुर्वजोय करणधमके एक पुत्रका नाम (भाग० ६।२।१।७) ३. राजा जिलियुके एक पुत्रका नाम।

(रवि० ३६।७)

मरुसक (सं० पु०) मरुदिव रत्नकलि हस्ततीति तत्र द्वासे अन्व । १ इवेत मरुवकदृष्ट, सकेद मरुभा । २ देवकादृष्ट । मरुसम (सं० लि०) मरुत्तुल्य वेगगामी, हवाके समान चलनेवाला ।

मरुतपनि (सं० पु०) मरुतां पतिः ६ तत् । इन्द्र । मरुत्पथ (सं० पु०) मरुतां पन्था (मृकपुत्रुःपथामानक्षे । पा १।४।७४) इति असमासान्तः । आकाश ।

मरुत्पाल (सं० पु०) मरुतां दिवान् पालयतीति पालि-अन्व, देवराजत्वादस्य तथात्वं । इन्द्र ।

मरुत्पुत्र (सं० पु०) मरुतो वायोः पुत्रः । भीमसेन ।

मरुत्प्लव (सं० पु०) मरुदिव प्लवते द्रुतं गच्छतीति प्लु-अन्व । सिह, शेर ।

मरुत्फल (सं० लो०) मरुतां वायूनां फलमिष । घनोपल, ओला ।

मरुत्प्लव (सं० पु०) मरुतो देवाः पालनीपत्वेन सन्त्यस्य इति मरुत् (मथ्यादिभ्यश्च । पा ४।२।८६) इति मत्तुप् मरुस्य च, संज्ञायाम् प्रत्ययपरकौ परे न तस्य द् । १ इन्द्र । २ महा-भारतके अनुसार देवताओंके एक गणका नाम जो धर्मके पुत्र माने जाते हैं । ३ हनुमान । (त्रि०) ४ पायु विशिष्ट ।

"बभौ मरुत्वान् विहृतः सुभद्रो बभौ मरुत्वान् विहृतः सुभद्रः । बभौ मरुत्वान् विहृतः सुभद्रो बभौ मरुत्वान् विहृतः सुभद्रः ॥"

(मटि १०।२६)

मटिके इसी एक श्लोकमें सभी अर्धाका उदाहरण है। मरुत्वंती (सं० स्त्री०) धर्मकी पत्नीका नाम । यह प्रजापतिकी कन्या थी।

मरुत्वंतीय (सं० लि०) मरुत्प्लव इन्द्रसर्वधर्मोप माप्यन्दिन याममेद ।

मरुत्सत्र (सं० पु०) मरुतां देवानां सथा (राजःशनि-भ्यश्च । पा १।४।६१) इति टच् । १ इन्द्र । मरुतो वायोः सथा । २ अग्नि ।

मरुत्सवि ( सं० स्त्री० ) १ मरुत्सवी । २ इन्द्र ।  
 मरुत्सहाय ( सं० पु० ) मरुत्स महायो यस्य । भानि ।  
 मरुत्सुत ( सं० पु० ) १ वायुपुत्र, हनुमान । २ भोम ।  
 मरुत्सुतो ( सं० पु० ) मरुत्सोकेनाथ स्युत ।  
 मरुत्सुतोम ( सं० पु० ) १ मरुत्समन्थोप्य स्तोम । २ एकः।  
 प्रागभेद, एक प्रकारका एकान्तर ।  
 मरुत्सुत ( सं० पु० ) मरुत्सुत देश ।  
 मरुत्सुतो ( सं० पु० ) मरुत्सु वायुत्सुतोऽनेनेति  
 आन्वोक्ति करणे घञ् । १ पवित्र, धौकरो । २ प्राचीन  
 बालकी एक प्रकारकी धौकरी जो हरित वा भैरवके  
 घामड़ेसे बनती थी ।  
 मरुत्सुत ( सं० पु० ) मरुत्सो देवानामिष्टः । गुप्तुत्सु, गुप्तुत्सु ।  
 मरुत्सुत ( सं० पु० ) इक्ष्वाकुवंशीय राजभेद । अथमरुत्सुतके  
 पिताका नाम ।  
 मरुत्सुत ( सं० स्त्री० ) अथमरुत्सुतकी माता ।  
 मरुत्सुत ( सं० पु० ) १ मरुत्सुमि । २ मातृवाक्य जनपद ।  
 मरुत्सुत ( सं० पु० ) मरुत्सुमसुद ।  
 मरुत्सुत ( सं० स्त्री० ) मरुत्सु वायुपुत्र ध्वजः पताकेय,  
 भामि वायुपुत्राश्चरित स्वादास्य तथास्य । वायुपुत्र,  
 गुप्तुत्सुता माता ।  
 मरुत्सुत ( सं० पु० ) १ यशोय वासुपुत्रोय । २ भवार्थकी  
 एक शाखा । ३ विष्णु ।  
 मरुत्सुत ( सं० पु० ) १ यनकपास । २ मुक्तिस्त्री, कपि-  
 कवचु । ३ इन्द्र और वरुण । ४ हनुमत्सिंह, छोटा गौर ।  
 मरुत्सुत ( सं० स्त्री० ) मरुत्सु वायुमथे उत्पत्तिकारण  
 यस्याः । तासुमुत्साक्षय, कपिकवचु ।  
 मरुत्सुत ( सं० पु० ) मरुत्सु वायुपुत्रो वासुमिथास्य, ऊर्णा  
 स्त्रीषु विपत्ति बहुतरं गच्छतीति तथास्यं । १ मन्त्र,  
 घोड़ा । २ दीवत्य ।  
 मरुत्सुत ( सं० पु० ) मरुत्सुतसुतस्य पुत्रः, मरुत्सुतसुतो  
 सुतो वा । १ विद्वत्सुत । २ वृक्ष ।  
 मरुत्सुत ( सं० स्त्री० ) मरुत्सु वायुत्सु देवानां वा यत्सु  
 पत्न्याः । भाकान्त ।  
 मरुत्सुत ( सं० पु० ) मरुत्सु वायुत्सु उत्सुतेऽनेनेति  
 कर्मणि घञ् यदा मरुत्सुत्सुत इव यस्य । १ धूम, धूमा । ३  
 भूमि, भाग ।

मरुत्सुत ( सं० स्त्री० ) नदीभेद, मरुत्सुत ।  
 मरुत्सुत ( सं० पु० ) मरुत्सुतसुतसुतो देवो हनुमत्सुत । उद्-  
 ऊँट ।  
 मरुत्सुत ( सं० पु० ) वा उपजाऊ और मरुत्सुत हरा भग  
 स्थान जो मरुत्सुतसुत हो, भोसिज । इसे मरुत्सुतसुत  
 नाम कहते हैं ।  
 मरुत्सुत ( सं० स्त्री० ) नदीभेद, कावेरी नदी ।  
 मरुत्सुत ( सं० स्त्री० ) मरुत्सु कर्मका, वत्सुमात ।  
 मरुत्सुत ( सं० स्त्री० ) १ पुण्य-नदीभेद । २ पद्म-वर्षी  
 एक नदीका वैदिक नाम । ३ मदीमात ।  
 मरुत्सुत ( सं० पु० ) मरुत्सुतसुतः । १ वायु देव । २ एक  
 शैत्यका नाम ।  
 मरुत्सुत ( सं० पु० ) १ निरुत्सुतसुत, मरुत्सुत । २ स्त्री-  
 वर नामक विद्याधरके पुत्रका नाम ।  
 मरुत्सुत ( सं० पु० ) मातृवाक्य देव ।  
 मरुत्सुत ( सं० स्त्री० ) मरुत्सुत ।  
 मरुत्सुत ( सं० पु० ) मरुत्सुतके नाम ।  
 मरुत्सुत ( सं० स्त्री० ) मरुत्सुतसुतसुतो वापते इति मरु-  
 धारणे कर्मणि घञ्, टाप् । वृद्धा नामकी लता, अमरुत्सुत ।  
 मरुत्सुत ( सं० पु० ) एक देवताका नाम ।  
 मरुत्सुत ( सं० स्त्री० ) देवपुत्र ।  
 मरुत्सुत ( सं० पु० ) मरुत्सुतसुतसुतः विपुत्सुत । उद्-  
 ऊँट ।  
 मरुत्सुत — विद्याधर और उद्गीमाके पत्नी जिन्नाभरतक एक  
 गेज । पत्नी जहरकी इस हाटके विष्णुत वासुत है ।  
 यहाँ देवदेवतासुतसुत वापे हुए जहाज द्वारा बहुपुत्रसुत-  
 की भामरुतसुत और वरुतसुत होती है । भामरुतसुतसुत  
 वापुत, रई, काठ और वापे तथा वरुतसुतसुत मरुत्सुत, वापे,  
 वरुतसुत, वापे और लोहा भादि प्रवाल है ।  
 मरुत्सुत ( सं० पु० ) एक देवताका नाम ।  
 मरुत्सुत ( सं० स्त्री० ) मरुत्सुतसुतसुतसुतसुत । १ देवताका  
 देव, मातृवाक्य । २ यह देवता और उद्गीमाका वरु-  
 वापे । ३ निरुत्सुतसुत, मरुत्सुत ।  
 मरुत्सुत ( सं० स्त्री० ) वापुत्सुतसुतसुतसुतसुतसुत ।



मरुभूमि ( १० १०० ) दूध, लता, गुलजादिन बालुकाय विस्तृत भूमिगण्डकी ही मरुभूमि कहते हैं । जिस भूमिकी उर्वराशक्ति जलाभावमें नष्ट हो चुकी है, उस भूमिकी भी मरुभूमि कहते हैं । किन्तु विस्तृत बालुकाय मरुभूमिमें भी मरुपूर्णतः जलाभाव नहीं । कहीं कहीं छोटे छोटे जलाशय भी दिखाई देते हैं । ऐसे स्थान 'ओसिस' कहे जाते हैं । सिरा इसके जनशुभ्य सुपाच्छादित उजाड़ मरुभूमिकी भी मरुभूमि कहते हैं । रूमिया और अमेरिकामें ऐसे भूमिगण्ड अधिक दिखाई देते हैं । संसार के बालुकाय प्रायतः अरबकी शुद्ध मरुभूमि और अफ्रीकाका 'सहारा' नामकी मरुभूमि सबसे बड़ी और विषयात है । किन्तु इन दोनों भूमिगण्डोंके पूर्वाञ्च उपजाऊ हैं । अफ्रीकाका लिविया मरुभूमिलण्ड विशेषरूपसे विषयात है । नेगात्राके निकट मरुदेशमें इधर उधर में घा नहरके स्तूप दिखाई देते हैं । नान नरतरोपमें नोहनद तक पर विस्तृत भूभाग लवणमिश्रित तथा जनशुभ्य होनेमें यहाँकी मिट्टीकी उर्वराशक्ति नष्ट हो चुकी है । केवल बोन बोचमें कहीं कहीं जल दिखाई देता है । ऐसे ही जलाशयों पर वणिक्-पथिक अपनी धकावटकी दूर करनेके लिये आश्रय ग्रहण करते हैं । फेयल ऊँट पर चढ़ कर ही मरुभूमिकी पार किया जाता है । मरुभूमिके मध्यस्थित ऐसे उर्वरा गण्डकी मरुदेश ( Oasis ) कहते हैं ।

ऊँटोंके सिवा दूसरी किसी सवारी पर चढ़ कर मरुभूमिकी पार करना या इधर उधर घूमना किना असम्भव है । क्योंकि ऊँट ही ऐसा जानवर है, जो सूक्ष्मे प्रखर उक्षापमें बालुकाय भूमिमें बिना जलकी सहायताके चल् फिर सकता है । दूसरा कोई जानवर ऐसा कर नहीं सकता । सिवा इसके कमी कमी मरुभूमिमें एक तरलकी प्राणनाशके दूयिन वायु बहा करती है । ऊँट इस हवाकी सूँघ कर जान लेते हैं और इससे बचनेके लिये जमीन पर पेट मटा कर सो जाते हैं । यहाँके व्यवसायी भी यह धान जानते हैं । इस कारण वे ऊँटोंसे मट कर उम्हो पर स्तर रख कर सो जाते हैं । दूयिन वायुके निकल जाने पर ऊँट भाव ही भाग उठ जाता है । उठते ही उसको पीठ पर बड़े बालु दूर हो जाते हैं । उस दवासे

ऊँटकी पीठ पर बालुकी एक मोटी तह जम जाती है । इसीसे ऊँट बालुकाय समुद्रका जहाज कहलाता है ।

पुराने लोगोंका विश्वास था, कि मरुभूमिमें भूतप्रेत या अपदेवनाओंका वास रहता है । पार्श्वनाय परिद्धत हिन्दीने लिखा है, कि अफ्रीकाकी मरुभूमिमें भूतप्रेत मनुष्यका रूप धारण कर पथिकोंके सामने गढ़े हो जाते हैं और शीघ्र ही वायुमें मिल कर अस्तर्दीन हो जाते हैं । मध्य एशियाके लोगोंमें भी यह विश्वास अत्यधिक जमा हुआ है । उनका कहना है, कि कमी कमी तो यह भूत पथिकोंको ऊँट या घोड़ोंसे उडा कर आकाशमें ले जाते हैं ।

अरुगानियोंका विश्वास है, कि पर्यत परके जनशुभ्य स्थानोंमें भूतोंका आवास है । अरुगानी भाषामें इन्हें "वोल पे-वियर्ण" कहते हैं । यह और भी कहते हैं, कि भूतप्रेत या दानवगण सजीव मनुष्योंकी पकड़ कर भक्षण कर जाते हैं ।

मरुभूमि कहनेसे हम लोगोंकी मानवहीन बालुकापूर्ण स्थानका ही कयाल होता है, किन्तु मरु देशका यथार्थ अर्थ है उजाड़, शस्यहीन और परती जमीन । उत्तर अमेरिकामें ऐसे जलपूर्ण तथा बिना जीवों हुए जमीनकी प्रेरिज (Prairies) और रूसी इसको स्टेपिज (Steppes) कहते हैं । भारतमें भी मरुभूमि है । यह सिन्धु नदसे पूर्व राजपूतानेके बीच तक फैली हुई है । यह जमीन बालुकाय होने पर भी कहीं कहीं छोटी छोटी झाड़ों, जङ्गल तथा वृक्षादि दिखाई देते हैं । सिरा इसके कहीं कहीं छोटे छोटे गाँव भी नजर आते हैं । यहाँके लोग बेल, घोड़े, बकरो, ऊँट, गाय, भैंसे पालते हैं । नदी न होनेसे या विस्तृत कोई भी जलाशयके अभावसे कमी कमी फसल नहीं होती । क्योंकि वृष्टिका जल ही इसका प्रधान अवनम्यन है । फसल अच्छी न होने पर प्रायः यामो फेयल दूध ही पो कर रहते हैं । नियमितरूपसे वृष्टि होनेसे यहाँ वाजरा तथा साक सधरी पैदा होती है ।

प्राचीन संस्कृतग्रन्थोंमें राजपूतानेकी मरुस्थली लिखा है । इस समय यह राजपूतानेकी मरुभूमि भी कही जाती है । इसका क्षेत्रफल १०० वर्गमील है ।

सारा बीकानेर राज्य बालुकापूर्ण है । यहाँके

अधिकतः अधियासी नीच जातिके हैं। जाटोंके यहां जाने तथा उपनिवेश स्थापन करनेमें पहले परमारवंशी राजा इस मदमदेशका शासन करते थे। ये ज्ञानप्रिय और धर्मज्ञाथी थे।

एक ही मक्ष पर स्थापित भाग्यपर्यं और अग्निता की मरुभूमियोंमें ऐसा पार्थिवय देव भूतत्त्वविद् आदर्च्य प्रकट करते हैं। आज भी इसके तथ्यका अनुसन्धान करनेमें कोई प्रयासो नहीं हुआ है। स्थान स्थानकी मिट्टी खोद कर जो परीक्षा करने दी, उनको मारुम हुआ है, कि मीरगाक मरुभूमिमें बोरा फोटके नीचे जल मिल सकता है। किन्तु भारतपर्यंके मरुमें ऐसा बात सुनी नहीं जाती। हेममथ नामक स्थानमें देखा गया है, कि दो सौन सौ फीट न गीदनेसे जल दिखाई नहीं देता। अतः ६० फीटके अथर पीनेयोग्य जल मिलता ही नहीं।

स्वच्छ शैलमात्राके (Crystalline rocks) कौनो हुए अंशोंके अग्निप्रस्तर मुख्यधोय बालुकण (Siliceous Sand) में ही मरुभूमिकी उत्पत्ति माननी पड़ेगी। सिया इसके यह भी हो सकता है, कि चकमक पत्थ. ही बालके यशोभूत ही बालुकामें परिजन हो गये हैं और उससे ही इस पिरून मरुभूमियोंकी सृष्टि हुई हो। बर्निक इस जगहमें समी परागोंका पर्यस्तन हुआ करता है। परागमान बालक.से महा रूपान्तर हुआ करते हैं। प्रदर्शिके इस अमर निवमके अनुसार चकमक पत्थके टुकड़ोंका कारणके रूपमें हो जाता कोई असम्भव बात नहीं। फिर यही बालुकारण पृथ्वीके उलायमें उलत हो कर क्वार्टिजमणि शैल (quartz) का रूप ग्रहण करता है। फिर समय या कर यही क्वार्टिकणुयं विचूर्ण हो कर बालुकणमें परिप्लन होता है। इस तरहके बालुकणोंमें परिपूर्ण भूमिप्रकटकी मरुभूमि कहते हैं। त्रिन स्थानोंमें उपयुक्त शैलोंको विद्यमान भी यही देन कालपत्र मरुभूमि हो गयी है।

सिया इसके मरुभूमिकी उत्पत्तिके मन्थनमें एक कारणका और भी उल्लेख किया जा सकता है। समुद्रोंका बर पृथ्वीके वात पर उपागणके रूपमें वा

बन्नी बन्नी ध्वनोंके रूपमें वा जाता है। यही उल्लेखित पोटे गुण कर उर्ध्व बालुकणका रूप प्राप्त कर लेता है। यही बाल या कर पृथ्वीकादि परिपूर्ण मरुभूमि बन जाती है। इसके बालुकण बन्नी रूपके मोक्ष उलायमें विपाक हो जाते हैं। बहुत पुराने समयमें पृथ्वीकायमें बहुत ही इस तरहके समुद्र थे और इस समय भी मौजूद है। कौन कह सकता है, कि किसी न किसी अमावसीय कारणसे पृथ्वीके सागर बाल या कर सुख कर बालुकायय भूणरहित क्षेत्रमें परिप्लन नहोंगे। यही क्षेत्र मरुभूमि कहलाते हैं।

पृथ्वीके बहुतेरे स्थानोंमें बहुत दूर तक कौनों हुई मरुभूमि दिखाई देती है। ऐसा बड़ा बालुकायुक्त भूगण्ड देखा कर हम लोग स्वभावतः मोहित हो उठते हैं। इसका कारण यह है, कि हम लोग यह क्याल करते हैं, कि यदि यह बालुकायुक्त न हो कर उर्ध्व भूमिप्रकट होता तो, इसमें जल्प उदयन होता और जगत्का रूप-कार होता। किन्तु यह ज्ञान मस्तिष्कमें माननेमें पूर्ण हमको यह सोच लेता चाहिये था, कि यह विनाश प्रणाएक भवनी इच्छामें परिष्कारित नहीं होता। उर्ध्व मरुभूमय सृष्टिनिवन्ता विभक्तिताकी इच्छाके अनुसार इस जगत्का परिजायन होता है। विना जगत्के मरुभूमिके लिये कौन काम नहीं करते। मरुभूमि अन्वयन कालपर हो रहा है। इसी कारण पृथ्वीका ऊपरी भाग बालके यशोभूत ही मानाकर धारण करता है। भूतत्त्वकी यह कर जाता जा सकता है, कि 'मरुभूमि' इस तरह कालगतों में एक रूप है अर्थात् मरुभूमि देवके इस तरह मरुभूमिके रूपमें परिप्लन नहोंगे जगत्प्रकारके निवममें बर्णनाया रह जाती। इसीमें जगत्के सृष्टिनिवन्ताको इच्छाके लिये विधाताका आदेश प्रतिपादित हुआ है।

अतः देखा जाता है, कि मरुभूमिका बालुकण रूपके उलायमें उलत हो अमरत्वय हो उठता है। इसका क्या कारण है। इसके मोक्षनमें वैज्ञानिकोंमें अनुसन्धान कर जो निश्चय किया है, उर्ध्व पर सब भाग प्रकाश करते हैं। मोक्षन विन्दायने प्रमाणित कर दिया है, कि बालुकायको तथ्यप्रमाणन-जालि जगत् पायुसे भी अस्पष्टिक है। इसका प्रमाण देते हुए जगत्

कहते हैं :—काठमें तापमञ्जालन जति १२' है, किन्तु बान्द्रको यही जति १०' दिना है। इससे हम भी अनुभव करते हैं, कि सूर्यका उत्साव वृक्षलतादिको उतना जन्म उत्तन नहीं कर सकता। जितना जन्म बान्द्ररूपको उत्सव कर देता है, इसी तरह ठंडा होनेमें भी देखा जाता है, कि जितना जन्म उत्सव बान्द्र उठता हो सकता है उतना जन्म भय पदार्थ युक्तादि नहीं होगा। ये धीरे धीरे ठण्डे होते हैं।

सहारा मरुभूमि—इस मरुभूमिमें जगह जगह बालुका गजिका रूप पहा है। ये सब बालुकासूप स्थिति-मौल नहीं। ये मृदा हवाके रंगसे एक जगहसे दूसरी जगह सञ्चालित हुआ करते हैं। इनके बीच बीचमें दो एक पहाड़ भी दिखाई देते हैं। सिया इसके कहीं कहीं जलसे परिपूर्ण गड्ढे और छोटे छोटे जलाशय भी नजर आते हैं। ऐसी जगहों पर भूमि पर वृक्षलतादि भी उगती हैं।

अनेक समय यहाँकी जलीय वाष्पीन उत्तम वायु लोहित वर्ण वाष्पके समान दिखाई देते हैं। जब इसकी लाल भागा दिग्बलय पर पड़तो है, तब ऐसा मालूम पड़ता है, मानो असंख्य आग्नेय पर्यंतसे अग्निशिखा निकल रही हो। सहारा मरुभूमिमें दो एक पत्तूर और अन्यन्य वृक्ष दिखाई देते हैं। बानर और मृगगण कभी कभी इन सब फलोंको ले कर आपसमें लड़ते-भगड़ते हैं। यहाँ बहुतसे उष्ट्रगर्शी (Ostrich) भी विचरण करते देखे जाते हैं। ये सब छिपकली और शम्भूकादि खा कर अपना पेट भरते हैं। इस मरुस्थलमें कोई निर्दिष्टपथ नहीं है। इस कारण पथिकोंको भ्रमपतारके सहारे ही अपने गंतय स्थानमें जाना होता है। यहाँकी 'सानुन' नामक अनियत् उत्तम वायु ऐसी भयङ्क होती है, कि ऊँट पर रणा हुआ जल घोड़े ही रूपके भीतर सूत जाता है। कहते हैं, कि १८०५ ईमें दो हजार यात्री और १८०० ऊँट प्याससे मर गये थे। १९त सहारा-मरुभूमिमें पथिकगण मरौचिफामें पड़ कर अपने प्राण गंवाते हैं।

अफ्रिकाके उत्तर-पूर्व तथा पूर्व दिनामें जो मरुधिभाग है उसके पूर्व और दक्षिणांगमें तिब्बू नामक चरचर जति

रहती है। उत्तर-पूर्वका 'वाका' मरुभाग (प्राचीन मिरे-माइरा) भूमध्य सागर तक विस्तृत है। दोनोंके ही साथ 'लिविया' नामक मरुभाग संयुक्त है। लिविया-मरु मिश्र राज्यके पश्चिममें अवस्थित है। यह दक्षिणमें ग्युबिया धीरे अफिसिनियाके अनुवर्त्येक तक फैला हुआ है। इसके बाद यह मोल्डनदको पार कर, पुनः मोहिन-सागरके उपरान्त होता हुआ स्थितिप्रेषक तक चला गया है। पीछे स्थितिप्रेषकको पार कर अरबदेशमें पालेन्तिन तक आया है।

अरबदेशके मरुधिभागके मध्यवर्ती स्थलमें प्रसिद्ध सिनाई पहाड़ है। उस पहाड़के वाद्वेगमें जो उर्वरा उपत्यका है वहाँ अंगूर आदि खाने लायक फल उत्पन्न होते हैं।

मिस्रोपोटेमियाका मरु युफ्रेटिस और टाइग्रिस नदीके बीचमें अवस्थित है। मीकाभाषामें मिस्रोपोटेमियाका अर्थ है दो नदियोंके बीचका स्थल। इस कारण उक्त मरुदेशका नाम मिस्रोपोटेमिया हुआ है। अफ्रिका और अरबके मरुक्षेत्रकी अपेक्षा यह स्थान बहुत भयङ्कर है। यहाँका जल रुबणाक तथा गन्धकपूर्ण है।

पारस्थानजामें कुल ८ मरु हैं। समग्र राज्यके दश भागोंमेंसे तीन भागमें मरुभूमि है। जो सबसे प्रधान मरुस्थल है वह मोरॉसन और इराक-अजेमीके बीचमें अवस्थित है। इसके दक्षिणमें फारमानिया मरु है। शेष तीन मरुस्थलका नाम कियार, मेकरान और करकोमा है।

तानारदेशकी मरुभूमि का परिमाण प्रायः ५४० हजार वर्गमील है। इसके आधेमें बालु ही बान्द्र है। यह बालुचापूरक्षेत्र कास्थियन हृदके उत्तरमें होता हुआ डाम-नदी तक चला गया है और युगल नदीके पूर्व इतिमके जंगल (Steppe of Sim)में जा मिला है। मार्ल-हृदके दक्षिण जो ग्याराजेन् प्रदेश है उसकी मरुभूमिमें एक उर्वराक्षेत्र देखा जाता है। यह क्षेत्र रियामदेशका एक छोटा जिला माना गया है। यह जिला इतना छोटा है, कि घोड़े पर चढ़ कर तीन दिनके भीतर ही तमाम भूमि कर लौट सकने है।

मरुगानराज्यका अधिकार स्थान परभूमिमें पूर्ण है। जिधर देमिये, उधर ही परभूमि नजर आती है। केवल पूर्व और उत्तरमें कुछ पर्वत हैं। यहां लोहा और हेलमन्द नदीके किनारे स्थिति होती है।

ऊपर जिन मरुदेशोंका उल्लेख किया गया वे प्रायः समस्तसातमें पृथ्वीपृष्ठके एक देश तक फैले हुए हैं। पर हां, कहीं कहीं पकरीगापाल करनेमें भी उन्हें एक श्रेणीमें प्रथित कह सकते हैं। अफ्रिका महादेशमें जो महारा मरुदेश है उसके पश्चिमदेशवाली अष्टागण्टिक महारागार के बीजाष्टर अन्तरोपने कावजः पूर्वदिगामें महारा, सिध, अरब, ताहार, पारस्य अरुगानिन्तान और भारतपर्वके सिन्धुपदेशस्य मरुदेश पर भूमिमें प्रथित मालूम होते हैं। सोचते यदि सिन्धु नदी नहो बहतो, तो राजपुतानेकी अनुपूर्व मरुस्थलीकी भी हमलोग इसी श्रेणीमें मरु राज्यमें शामिल कर सकते थे। इस विधान मरुभूमि में कहीं कहीं उर्वरक्षेत्र हैं और कहीं कहीं मरु भी देते जाते हैं। पश्चिम-अफ्रिकासे लगायत पश्चिम-भारत तक इस विस्तीर्ण मरुराज्यका विस्तार प्रायः १४ मी भौगोलिक मील है। हम्बोल्ट साष्टकके मतसे यह २७ लाख वर्गमील स्थानकी अधिकार किये हुए है।

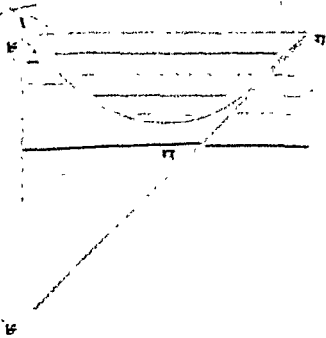
यह विस्तीर्ण मरुराज्य मालूम होता है किसी अभाव-शील कारणसे जगदीश्वर द्वारा अभिशन हुआ है। राज्य शून्य इस मरुराज्यके अन्तर्गतमें और भी विसर्गो मरुभूमि देली जाती है। उक्त मरु साम्राज्यके पश्चिमा विभागके उत्तर मध्य पश्चिमाकी अधिरथकाभूमिवा विस्तीर्ण मरुक्षेत्र नजर आता है।

पश्चिमाकी मध्य मालूमिके मरुदेशके पूर्व जो छोटा पुकारिया नामक क्षेत्र है यह यद्यपि मरुभूमिमें गिना जाता है, पर मरुभूमि है नहीं। यहां काको फलल लगती है। इनके उत्तरमें पर्वतश्रेणियों बहुसंख्यक तद्विषी निकल कर इसको उर्वरा बनाये हुए हैं। मातृविद्याने लगायत मरुदोलिया तक एक और मरुक्षेत्र है। यह क्षेत्र पोक्रेनके विषयात् चहारदिवारी तक फैला हुआ है। चीनराज्यमें इसे शामिल करने है। इसको लम्बाई करीब १५०० मील है।

तापको अत्यन्त प्रचलताके कारण मरुदोलियाको मरु भूमिमें कुछ विशेषता देली जाती है। अफ्रिकाकी महारा मरुभूमिमें छोटा कर एको विशेषता थीर बहो भी नजर नही आती। यहां कभी कभी मरुविषयाका अद्भुत दृश्य दिखाई देता है। इसका कारण यह है, कि पूर्व भारत २ मास तक मरुदेश मरुदोलियामें बहुत नजदीक रहते हैं। इस समय पृथिवी तेजसे चलती है और मरुके निकट रहनेसे अधिक ताप लीकती है। इस कारण मरुविषयमें कुछ विशेषता दिखाई देली है।

उत्तराधणकालमें पूर्व विपुलसंक्रान्ति-विषयमें आते हैं, इसीलिए इनकी दृष्टि पूर्वकी पर्वतकी अवस्था कम रहती है। इस से प भूमिगत पर्वतोंके विषय अधिक ज्ञानमें पड़ती है। इस कारण मध्य मरुके मध्यभागमें दक्षिण गोलाक्ष पर स्थिता उताप अत्यन्त प्रचर हो जाता है। तापको प्रचलताके कारण मरुदोलियाका मरु-क्षेत्र साधारणतः मरु-मरु हीणता है।

दक्षिण-अफ्रिकाके समीपवर्ती नामक भूमि पर इसी प्रकार ताप और उतापके आरम्भानुसार उतापके घटना घटती है। महारा मरुदोलिया मरुभूमिमें पश्चिम-मध्य अनेक समय मायावी मरुविषयाके ज्ञानमें विलय कर प्राय चलते हैं। यह मरुविषया एक दृष्टान्तमात्र है। मरुदेशके दिनोंमें जब वायुकी लक्षणा पक्षसे उल्लताके कारण असामान होना है, तब पृथिवीके निकट ही वायु अधिक उताप हो कर ऊपरत उठता आती है। परन्तु ऊपरकी लक्षणे उतने नदी देली। इसमें उता वायुकी लक्षणे पृथिवीके समानांतर बहने लगती है। लक्षणे दूरसे उठती घारा भी दिगार देली है और व्यापक पश्चिम बहो तो जोगे उता और करम बढ़ाने है। शिन्धु जब यहा पहुंच जाते हैं, तब उताकी भागा उताप वायुपूर्णे वायुधामय स्थान देव कर बिलकुल मरु ही जाती है। इस प्रकार उताप उताप अत्यन्तमें असामान हो कर पश्चिम व्यापक प्राय चलते हैं। किन्तु प्रकार इस मरु-विषयाकी उताप देली है, किन्तु अधिक उताप देली है।



मरुभूमि पर की वायु-सहोंके व्यापकक्षयके कारण जो अत्यल्पपर्यं मरौचिकाका नैसर्गिक चित्र दिग्बलयमें दिखाई देता है, उसका विनाश कारण ऊपर दिये गये नियमों स्पष्ट हो जायगा। चित्रका क एक पृष्ठ है। ए भूपृष्ठको समतल भूमि है और ग एक वृत्त है। जलावा इसके क, प और ग के बीचमें जो मरुदरेवाएँ हैं वे विभिन्न वायुस्तर हैं।

अभी मरुभूमिके क चित्रितपृष्ठा किरणपुञ्जनिज छायापान यथाक्रम विभिन्न घनत्व विभिन्न वायुस्तर हो कर 'स' में पहुँचना है। कसे स में जानेके समय आलोककिरण एक स्तरसे दूसरे स्तरमें प्रवेश कर क्रमशः एकभाग धारण करता है। इस प्रकार अन्तमें यह वेले स्तरमें पहुँचना है, कि जहाँमें आलोककिरण टेढ़ो न यह कर सोपी प्रतिबिम्बित होता है। अतएव ए स्तरमें प्रति विभिन्न चित्र आलोककिरण द्वारा पुनः धीरे धीरे विभिन्न स्तर होना शुभा घटकगतिमें ग तक पहुँचना है। गसे ग में जानेके समय किरणपुञ्जकी चक्रगति क-सो अ तक विपरीत दिशामें होगी। इसका कारण यह है, कि अभी आलोककाला इसके वायुस्तरसे क्रमशः घने वायुस्तरमें प्रवेश करता है। अतएव ग-स्थित दर्शकको ऐसा मालूम होता है, कि क-स्थित पृष्ठादिमें वायुकापूर्ण क्षेत्रके

नीचे क ग पथमें म भा कर ए ग पथसे भा रही हो। इस कारण पृष्ठीकी प्रतिबृद्ध-प्रतिहति साधारणतः पथिकके नयन पर पड़ती है। उस समय ऐसा जान पड़ता है मानो ग स्थानमें जल रहनेके कारण वायु-मध्यस्थ क पृष्ठ ग जलमें प्रवेश कर रहा हो। अतएव मरुभूमि पर किरणण करनेवाले नृणातुर पथिकको यह जलाजय-भा योगीगा, इसमें आश्चर्य ही क्या! ताप और नृणासिद्ध पथिक दूरसे जलाजय जान कर अपनी प्यास बुझाने यीड़ते हैं। अन्तमें जल न पा कर नृणाते-शुष्क-कण्ठ और हलाशवास हो प्राण खा घेड़ते हैं। दृष्टिविग्रम से यह घटना होनेके कारण इसका मरौचिका वा भूग-नृणा नाम रखा गया है।

अमेरिका महादेशमें और भा एक प्रकारका समतल मरुक्षेत्र है। परन्तु यह वास्तुशामय मरुके जैसा नहीं है। उस पर जङ्गलादि देखे जाते हैं। यह समतलक्षेत्र पन्थम, सामनेस आदि नामोंसे प्रसिद्ध है।

मरुभूदह (सं० पु०) मरुभूमि रोक्षित जायते इति रुद (शुक्लपञ्चाशीतः कः। पा ३।१।३५) इति क। १ करोर-पृष्ठ, करोरका पेश, (त्रि०) २ मरुभूमिजात, मरुभूमि-से उत्पन्न होनेवाला।

मरुमही (सं० ख्रा०) मरुभूमि।

मरुव (दि० पु०) मारुचकरा।

मरुल (सं० पु०) स्रियते अर्त्तं यिनेति भू उल। १ कारवृष्य पक्षा। २ जंगली यशकका एक जातका नाम।

मरुय (सं० पु०) मरुं निजं लक्षं वाति प्राप्तीति या-क। १ मरुना। संस्कृत पर्याय-स्वपल, गन्धवत्, फणिशुक्ल, घटुघायं, ज्ञातलक, सुताह, समोरण, जम्बोर, प्रस्य-कुसुम, मरुवक, आश्रम-सुरनिपथ, मरिच। गुण-कटु, तिक्त, उष्ण, हृदि, कुष्ठ, विहृ वृष्य, आधान, शूल और स्वग, द्वापनाशक। (संस्कृत) भावप्रकाशके मतसे इसका पर्याय-मरुसक, मरुवक, मरुव, मरु, फणि पानिशुक्ल, प्रस्यपुष्प, समोरण। इसका गुण-प्रतिप्रद, हृष्य, तिक्त, उष्ण, पित्तपक्षक, लघु, तृिद्वकादिका विषहर, श्लेष्म, वात, कुष्ठ तथा हृमिदोपनाशक, कटुपक, रसिकर, रुक्ष और सुगन्धयुक्त।

मरुपक ( सं० पु० ) मरुप व्याघ्रों इषाओं या बज्र । १ एक  
 फेंकोले वेदिका नाम जिसे मैत्री कहते हैं । पर्याय - पिपाडो-  
 तिक, भयसन, करहाटक, शल्य, मदन । २ स्थानपत्र तुडम्बी,  
 तुडसीका छोटा पत्र । पर्याय - समीप, प्रम्यपुच्छ,  
 कपिशभक, जम्बीर । ३ जम्बीरमेद, एक प्रकारका नींबू ।  
 ४ पुण्यपुत्रविशेष, मरुपका वृक्ष । पर्याय - शुद्धपुत्र,  
 तिलक, कुन्डक । विशेष विवरण मरुभा द्रव्यमें देखो । ५  
 क्षुपविशेष नामदीना । पर्याय - स्वरपत्र गन्धपत्र । ६  
 निलका पीछा । ७ व्याम, वाघ । ८ राहू । ( वि० ) ९  
 मयानक, खीकनाक ।

मरुवा ( ( हि० पु० ) मरुभा देना ।  
 मरुवचूर - मान्द्राजप्रदेशके तञ्जौर जिलान्तर्गत एक प्राचीन  
 ग्राम ।

मरुसम्भव ( सं० स्त्री० ) मरुः सम्भव उपासिस्थानसम्भव ।  
 चाणक्यमूलक, एक प्रकारकी छोटा मूली ।

मरुसम्भवा ( सं० स्त्री० ) मरुी सम्भवो यस्याः ताव् । १  
 महेंद्रवाक्यो । २ क्षुद्र दुरालभा, छोटा घमास । ३ हस्त  
 लक्ष्मि, एक प्रकारका और जिसका पेट बहुत छोटा होता  
 है । ४ कर्वांस, कपास । ५ एक प्रकारका कर्वा

मरुसा ( हि० पु० ) मरुभा देना ।

मरुसाल ( सं० स्त्री० ) मरुभूमि, बान्द्रका मैदान जिसमें  
 निर्जल होनेसे कोई वृक्ष या घनरूपता न उगती हो ।

मरुसाली - राजपूतानेके अन्तर्गत वर्धाग्राम मारवाड-  
 प्रदेशका प्राचीन संस्कृत नाम ।

मरुसाला ( सं० स्त्री० ) मरुी तिष्ठतीति स्या क विषयं  
 ताव् । १ क्षुद्र दुरालभा, छोटा घमास । २ महेंद्रवाक्यो ।

मरुक ( सं० पु० ) विषयं इवेति सू ( मरुविभक्त्यर्थेण्यो ।  
 उ० ५।१६ ) इति ऊक्त्वा, मरुजालरवास्व तथात्वात् । १  
 शुगविशेष, एक प्रकारका मृग । २ मयूर, मोर । ३ जडी,  
 कचूर ।

मरुकता ( सं० स्त्री० ) मरुी धम्यप्रदेशे उद्भवतीति उन्-  
 भू शक्त, विषयं ताव् । १ कर्वांसो, कपास । २ जवाय ।  
 ३ हस्त लक्ष्मि, छोटा मोर । ४ दुरालभा, घमास ।

मरुकु ( सं० स्त्री० ) मरुकभूमि, वैदिकनाम ।

मरुका ( सं० पु० ) मोरवाहन ।

मरुका ( सं० पु० ) मरु देना ।

मरोट ( हि० पु० ) १ मरोटनेवा जग या निला ।  
 २ इतम, उद्वेग आदिके कारण उत्पन्न पीडा । ३ चेंडम,  
 मरोटनेमें पडा हुआ घुमाव । ४ पेटमें पेंडन और  
 पीडा होना, पेट चेंडना । ५ स्यं, घमांस । ६ कौष,  
 मुन्ना ।

मरोटना ( हि० वि० ) १ एक और घुमा कर दूसरी ओर  
 फेरना, बल डालना । २ चेंड कर मरु करना या मार  
 डालना । ३ घुटना उत्पन्न करना, पीडा देना । ४ मरुना,  
 मसलना ।

मरोटनी ( हि० स्त्री० ) एक प्रकारकी पत्नी । यह प्रायः  
 पेटके मरोटके लिये गुणकारी होती है । इसे मुर्गा या  
 अरननी भी कहते हैं ।

मरोटा ( हि० पु० ) १ चेंडन, उमड़ । २ पेटको पीडा ।  
 इसमें अन्धको और कुछ चेंडन-सी जान पड़ती है । इस  
 रोगमें मरोटसर्गके समय पेटमें पेंडन भी होती है और  
 प्रायः कोष्ठपत्र रहता है । कभी कभी भाँपके साथ भी  
 मरोट होता है ।

मरोट्टी ( हि० स्त्री० ) १ चेंडन, घुमाव । २ यह कभी जो  
 आटेमें मने हुए हाथोंमें मलने पर तुरत पर निकलती है ।  
 ३ गांठ, गुल्मी ।

मरोट्टि ( सं० पु० ) मरुपकी जानिया एक बड़ा सामुद्रिक  
 जन्तु ।

मरोट्टिक ( सं० पु० ) मरोट्टि रूप में बन । मरोट्टि देना ।

मरोट्टिन ( सं० पु० ) मरुी निर्जलदेशो जायते क्षिपते  
 मरुतो इव कुनोद्वारिपाम साधुः । मरु ।

मरोठी - बन्धुप्रदेशके भागा जिलेका एक बन्ध । यह  
 ब्रह्म २०' १८" उ० तथा देसा ७०' ४२" पूर्णमें पडता है ।  
 मरीठी - गुजरातप्रदेशके निर्जलित जिलान्तर्गत एक प्राचीन  
 गण्ड ग्राम । यह बिलासपुर गढ़में पार कोष पूर्णमें  
 अवस्थित है । यहां बालाउत नदीके दक्षिण किनारे पर  
 एक समुद्रिप्रानो बनाव्वा बन्दरहा पडा हुआ है ।

मरु ( सं० पु० ) मरुति भेटने इति मरु ( मरु-मि बन्धा-  
 मरुति मरुतिः कः । उ० ३।२४ ) इति वज्र मरुति  
 मरुतीति मरु । १ देह, जगम । २ कचूर, हवा । ३  
 शुद्धवापके एक तुकटा भाव । ४ कामर, पत्थर । ( वि० )  
 ५ मारुतिवा, मार्जत कर्तव्येण ।

मर्कट ( सं० पु० ) मर्कट इत्यर्थे संज्ञायां या कन् । १ गन्तव्यपक्षी, हरगोमा नामक चिड़िया । २ ऊर्णनाम, मकड़ा ।

मर्कट ( सं० पु० ) मर्कति गच्छतीति मर्क ( मर्कटिभ्योऽन । उच् ५१२ ) इति मत्तन् । १ बानर, बन्दर । २ ऊर्णनाम, मकड़ा । ३ स्थावर-विक्रमेद् । ४ गन्तव्यपक्षी, हरगोमा नामक पक्षी । ५ अन्नमोदा । ६ शस्यविशेष । ७ एक प्रकारकी मछली । ८ दोहोंके एक भेदका नाम । इसमें मयह शुक्र भीर चौदह लघु मात्राएँ होती हैं । १ छण्यका भाठयां भेद । इसमें ६३ गुण, २६ लघु कुञ्ज ८६ वर्ण या १५२ मात्राएँ या ६३ गुण, २२ लघु ८५ वर्ण या १४८ मात्राएँ होती हैं ।

मर्कटक ( सं० पु० ) मर्कट स्वार्थे संज्ञायां या कन् । १ लूना, मकड़ा । २ एक दैत्यका नाम । ३ मट्टमा । ४ मकरा नामक घास । मर्कट देवो ।

मर्कटतिन्दुक ( सं० पु० ) मर्कटमिपस्तिन्दुकः, मध्यपद-लोपि कर्मधा० । कुपीलु, एक प्रकारका अथनूस ।

मर्कटपाल ( सं० पु० ) बन्दरोंका राजा, सुभोय ।

मर्कटपिप्लो ( सं० स्त्री० ) मर्कटस्य पिप्लोय । अषामार्ग, चिचड़ा ।

मर्कटमिप ( सं० पु० ) मर्कटस्य मिपः । क्षीरप्लू, पिरनीका पेड़ ।

मर्कटयाम ( सं० पु० ) मर्कट ऊर्णनामस्तस्य घासः धायारस्थानं । १ लूतातन्तु, मकड़ोका जाला । पर्याय-आदायन्ध ।

मर्कट्योर्ष ( सं० स्त्री० ) मर्कटस्य शोर्षमिप तद्वर्णस्था-द्वयास्य तथास्यं । हिंगुल ।

मर्कटद्व ( सं० स्त्री० ) वैजालीके अन्तर्गत द्वन्द्वेद् ।

मर्कटाक्ष ( सं० स्त्री० ) १ कपिकञ्जुव्रीड, फेंयांच । २ गुड़घी आदि मोदक ।

मर्कटाग्र ( सं० पु० ) राजाग्र, जमड़ा ।

मर्कटास्य ( सं० स्त्री० ) मर्कटस्य आस्यमिप तद्वर्णदवा-द्वयास्य तथास्यं । १ बानमुष, बन्दरका मुँद । २ ताम्र, तांबा । मर्कटस्य आस्यमिप आस्यं यस्य । (त्रि०) ३ बानरमुख, बंदरके जैसा मुँहवाला ।

मर्कटिकारुद्र ( सं० स्त्री० ) फेंयांच ।

मर्कटी ( सं० स्त्री० ) मर्कति यानुपेगेन इतस्ततो गच्छतीति मर्क-भट्टन्, त्रिषां ङीप् । १ कपिकञ्जु, भूरी फेंयांच । २ अषामार्ग । ३ अन्नमोदा । ४ कटरभेद, एक प्रकारका बरंज । ५ बानरो, बंदरो । ६ मकड़ी । ७ भोमयद्रम । ८ छहोंके नौ प्रत्ययोंमेंसे मन्तिप्र प्रत्यय । इसके द्वारा मात्राके प्रस्फारमें छन्दके लघु, गुण, कला और वर्णोंको संख्याका परिचयान होता है ।

मर्कटोमत ( सं० स्त्री० ) प्रतयिषेय ।

मर्कटैन्दु ( सं० पु० ) मर्कटे भगविशेषे इन्दुविर । काक-तिन्दुक वृक्ष, कुचिला ।

मर्कत ( सं० पु० ) मरुत देवो ।

मर्कर ( सं० पु० ) मर्कति गच्छतीति मर्क-बाहुलकान् अर् । भृङ्गराज, भंगरेया ।

मर्करा ( सं० स्त्री० ) मर्करे त्रिषां टाप् । १ दूरी, तहलामा । २ भाएड, बर्तन । ३ सुरंग । ४ तिपकला-खो, वांक खो ।

मर्लामाऊ—युक्तप्रदेशके इलाहाबाद जिलेके सोरायन उप-विभागके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम । नगरके चारों बगल पत्थरकी प्रतिमूर्तियाँ और बड़े बड़े स्तूप देणनेसे मालूम होता है, कि एक समय इस नगरमें हिन्दूकी प्रधानता अधुण थी । पीछे मुसलमानोंने उन सब प्राचीन कौंसियोंको तोड़ फोड़ कर उनके माल मसानेसे मस-जिद् बनयाई ।

मर्गाय—पुच्छगौज-अधिकृत गोभाराज्यके सालसेट (गाहा-पुरी) जिलेके अन्तर्गत एक नगर । यह अक्षा० १५° १८' ३०" तथा देशा० ७७° १' ५०"के मध्य विस्तृत है । पश्चिम-से १६ मील दक्षिण-पूर्व जालनदोके किनारे उक्त जिलेके ठीक मध्यस्थलमें मनोहर समतलक्षेत्र पर अवस्थित है । प्रकृतस्थयिदोंके मनसे इस नगरमें बहुत प्राचीनकालसे आर्यजातिका उपनिषेय चला आ रहा था तथा यहाँ पर उनका एक मठ या धर्ममन्दिर भी स्थापित हुआ था । उस मठसे इनका नाम मठग्राम हुआ । वर्तमानकालमें मठग्रामके अपसंज्ञसे मर्गाय कहलाने लगा है । मराठों और मुसल-मानों सेनाने भी इस शहरमें लूटपाट मचाया था । यहाँ बहुत सौ सुन्दर सुन्दर भट्टानिकाएँ हैं । १५६० ई०के शहरमें ईसाधर्मका प्रचार हुआ और १५६५ ई०में एक गिर्रा बनाया गया । शहरमें टाउनहाल, सरकारी स्कूल,

गियेटर और दरिद्राश्रम हैं। १८११ ई०में सेनाओंके रहने के लिये एक युद्ध मकान निर्मित हुआ और एक दल सेना भी रहने लगी। अभी उस मकानमें थोड़ी-सी सेना तथा पुलिस-कर्मचारी रहते हैं।

मनी (दि० स्त्री०) मनी देगी।

मज (सं० स्त्री०) मज्जने इति मृन्मृदो (शृंग्यप्यन। उप् १।५१) इति ऊ, गुणश्च। १ मृदि। २ रजक, धोखी। ३ पीठमह।

मज-पञ्जाबप्रदेशके बहावर राज्यके अन्तर्गत एक पहाड़ी रास्ता। यह अक्षा० ३१° १६' ३० तथा देशा० ७८° २७' ५०के मध्य विस्तृत है। इसकी ऊँचाई १६००से १७०० फुट है। केवल जेठसे स्याउन मान तक इस रास्तेमें लोग आते जाते हैं। पीछे वर्षा पड़ने पर रास्ता बंद हो जाता है।

मज-बङ्गदेशके खुलना जिलेमें प्रवाहित एक नदी। जहाँ पर यह समुद्रसे मिली है यह स्थान भी मजान कहलाता है। यह अक्षा० २१° ४४' ३० तथा देशा० ८६° ३२' ५०के मध्य विस्तृत है। पाटली झोपसे यह दक्षिण मोल दूर पड़ती है। इसका मुख बहुत चौड़ा है। नदीके मुहानेमें प्रायः ४५ मीलके फासले पर पारमद्वा नामक दो झोप हैं।

मज-पहाड़ी-युक्तप्रदेशके पाराणमों विभागके मजपुर जिलेका एक गाँव ग्राम। यहाँ सैयद मन्जर गान्धीकी ओ दरगाह है यह बहुत प्राचीन है। प्रतिवर्ष यहाँ एक मेला लगता है।

मज (दि० स्त्री०) मजो देगी।

मजिया (अ० पु०) १ पद, पड़वी। २ बार, दगा।

मजिया (दि० पु०) रोगने वर्तन जिसमें सघार, मुग्धा, भी आदि रखा जाता है। इसका दूसरा नाम अमृतपान भी है।

मज (सं० पु०) छिपनेइसी इति मृ (सिद्धिर्निष्पि। उप् १।५१) इति तद्। १ मज्जय।

“मनीं मान्वात्म्यात्वा पर्यन्तव्यु मन्वाः।

मनीं च भूमिं मनीं च वास्तवना ॥”

(मार्कण्डेयपुराण १००।१८)

२ मानवक। छिपनेइति। ३ भूतक।

मज-शाम-अंगरेजविद्वान् इत्येतेनांगरेज प्रदेशके अन्तर्गत जिलेके अन्तर्गत एक विभाग। इसके दक्षिण-पूर्वमें उत्तर-पश्चिम तक एक विस्तृत शीतप्रदेश है। इस शीत प्रदेशके पूर्वपूर्वमें स्थान अङ्गुलमें आता है। इस कारण यहाँ सेनीबारी नहीं होगी। पश्चिमभागमें बहुत लम्बा चौड़ा उपरमेश है। यहाँ छोटी छोटी नदियाँ और बान होनेके कारण पानिग्रय-व्यवसायमें बड़ी सुविधा है। बाढ़के समय समुद्रका जल नदीमें प्रवेश करना और पश्चिम कुलजात जलपादिको मछ कर लायता है। दक्षिणभागमें बांध है इसमें समुद्रका जल आगे बढ़ने नहीं पाता और इस कारण फसल भी मछ नहीं होगी।

यहाँके अधिवासिगण मज्जु है। इनकी भाषा भी मज्जु कहलाती है और उत्तरभागकी भाषाएँ कुछ भी नहीं मिलती जुलती।

२ उक्त स्थानका प्रधान नगर। यह अक्षा० ११° ३२' ३० तथा देशा० ८७° ३८' ५०के मध्य गानुपन नदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। गानुपन नदीके किनारे एक देवालय देखा जाता है।

कहते हैं, कि पेरुके प्रधान राजा थ म मने ५३१ ई०में इस नगरको बसाया। इसके बाद १३वीं सदीमें अन्तर्गतके समय इसकी बहुत उन्नति हुई। पहले इसी नगरमें राजधानी थी, पीछे १३२३ ई०में पेरु नगरमें उठा कर लाई गई। पेरु और उदायके साथ अब अन्तर्गतवासियोंका लड़ाई छिड़ी थी उस समय यह नगर कई बार बह-गद और लूटा गया था। १६वीं सदीके अन्तमें अन्तर्गतके राजाने मज-पानको जीत कर यहाँ एक शासनकर्ता नियुक्त कर दिया। इसके बादका कोई इतिहास नहीं मिलता। १७वीं और १८वीं सदीमें अन्तर्गतके राजा द्वारा नियुक्त किये गये शासनकर्ता इसी नगरमें रहते थे। १८२४ ई०के प्रथम अन्तर्गतमें अंगरेजोंने इस नगरमें पैदा दाना और रंगे जीत लिया। १८५२ ई०के द्वितीय युद्धमें अन्तर्गतवासियोंने पुनः इसे उदायकी धैर्य से, पर कोई फल न निश्चय।

मज-शाम-युक्तप्रदेशके बुमायू जिलेका एक ग्राम। यह अक्षा० ३०° २१' ३० तथा देशा० ८०° १३' ५०के मध्य विस्तृत है। उदायकोटीमें आ गमना हुल्लेरा (सं० पु०)



मर्म ( २०० हृत् ) शु ( १००० गुणो मर्मि । उष् ५१२५४ )

शक्ति मर्मिन् । १ श्वरप । २ मत्स्य, वृहस्प ।

"मर्मणा न शिवांशो नृपैर्वा । धर्मानममर्म पततेः ।

स्वाम्युन्दर । न वदतवस्तवधर्मः । मर्मो दबोत्वमः ॥"

( मेघ० २६ )

३ मूर्तिस्वामि । ४ अंधस्वामि ।

"मर्मिणः शिरानामुपनिधमार्तिपतममः ।

मर्मोर्ध्वे तु विदन्ति प्रायः मनु विशेषतः ॥"

( भागवत )

गिरा, स्नायु, मन्धि, मांस और भस्मि—इन सब एकत्रित भवयुक्तो मर्म कहने हैं । मर्मस्थानमें प्राण विशेषरूपसे रहता है । सुधुर्तमें लिखा है,—कि मर्मके १०३ स्थान हैं । ये स्थान पांच भागोंमें बँटे हुए हैं—मांसमर्म, गिरामर्म, स्नायुमर्म, सन्धिमर्म और भस्मि-मर्म । इनमें भो फिर मांसमर्म ११, गिरामर्म ४१, स्नायु-मर्म २७ ५ । इनमेंसे प्रत्येक पद और हाथमें ११, उदरमें और वक्षःस्थलमें १२, पोटमें १४, गर्दनमें और उसके ऊपरभागमें ३७ मर्मस्थान हैं । शिर, तलहृदय, कुर्ण, कूर्वांगिर, गुल्फ, जानु, इन्द्र, यस्त्रि, ऊठ, भाजि, लोहि-नाक्ष और विटव—ये ग्यारह तरहके मर्म प्रत्येक पादमें मौजूद हैं ।

उदर और वक्षस्थलके मर्म—“गुद, यस्त्रि, नाभि, हृदय, स्नानमूल, स्नानरोहित, अपलाप, भयस्तम्भ हैं । पोटके मर्म इस तरह हैं,—कटोकलकण, कुशुन्दर, नितम्ब, पादवसन्धि, पृहती, अंशकलक और अंशकण । बाहुके मर्मोंका नाम,—शिर, तलहृदय, कूर्वा, कूर्वांगिर, मणिबन्ध, इन्द्रयस्त्रि, कूर्पर, भाजि, उर्ध्व, लोहितारक्ष और कश्पर ।

हृदयसन्धिके मर्म,—धमनो ४, मानुका ८, कक्रा-टिका २, विपुर २, कण २, अवाङ्ग २, आयस २, उद्वेप २, गद्ग २, स्वपनो १, सोमग्न ५, शृङ्गाटक ४ और अधि-पति नामक एक । ये ३७ मर्मस्थान स्क्वथसन्धिके ऊपर मौजूद हैं ।

इन सब मर्मोंमें तलहृदय, इन्द्रयस्त्रि, गुणमण्डल और स्नानरोहित आदि मर्मों मांसमर्म हैं । मोला, धमनो,

मानुका, शृङ्गाटक, अवाङ्ग, स्वयनो, कण, स्नानमूल, मन्-लाप, भयस्तम्भ, हृदयनाभि, पादवसन्धि, पृहती, लोहि-नाक्ष और उर्ध्व—ये सब गिरामर्म हैं । भाजि, विटव, कश्पर, कूर्वा, कूर्वांगिर, यस्त्रि, शिर, अंश, विपुर और उद्वेप—ये सब स्नायुमर्म हैं । कटोकलकण, नितम्ब, अंशकलक और गद्ग—ये सब भस्मिमर्म हैं । जानु, कूर्पर, सोमग्न, अधिपति, गुल्फ, मणिबन्ध, कुशुन्दर, आयस और कक्राटिका—ये सब मन्धिमर्म हैं । इन सब मर्मोंके पांच तरहके कार्य हैं,—सद्यःप्राणनाशक, कालान्तरमें प्राणनाशक, विशल्याय, ( जिस जगहके फटिको निकालनेसे घृत्रु होतो है ) वैकल्पिक, ( जिससे शङ्खप्रयङ्गको विवृति हो ) और पोष्टाकर । १-मांस-सद्यः प्राणनाशक है, ३७ कालान्तरमें प्राणनाशक करने-पावने हैं, ३ विशल्याय, ४४ वैकल्पिक और ८ पोष्टा-कर हैं ।

हृदय, यस्त्रि, नाभि, शृङ्गाटक, अधिपति, गद्ग, गिरा और गुद—इन सब स्थानोंमें चोट लगनेसे सद्यः प्राण-नाश होता है । वक्षःमर्म, सोमग्न, तल, शिर, इन्द्रयस्त्रि, कटोकलकण, पादवसन्धि, पृहती और नितम्ब,—इन सब मर्मोंको चोट पड़नेसे पर कालान्तरमें प्राणनाश होता है । उद्वेप और स्वयनो,—ये दोनों मर्म विनाशयन कहे जाते हैं । लोहितारक्ष, जानु, उर्ध्व, कूर्वा, विटव, कूर्पर, कुशुन्दरहृदय, कश्परहृदय, विपुरहृदय, कक्राटोकलक, अंश, अंशकलक, अवाङ्ग, मोलाहृदय, मन्याहृदय, कणहृदय और आयसहृदय,—इन सब मर्मोंमें चोट लगनेसे अल्पकाल प्राण होता है । दो गुल्फ, दो मणिबन्ध और कूर्वांगिर-चार—ये चार मर्मविद्य होनेसे यातना होगी है । शिर-मर्मविद्य होते ही या कुछ देरके बाद प्राण निकल-होता है ।

इन सब मर्मोंमें सद्यःप्राणनाशक मर्म भांजिगुणसे गुणवान् हैं । इन भस्मिगुणका प्रास होनेसे भो घृत्रु हो जातो है । जिन मर्मोंमें कालान्तरमें प्राण नाश होता है, वे सौम्य और भस्मि-गुणसम्पन्न होते हैं । जो सब मर्म विनाशय प्राणनाशक हैं, उनमें यायुका अंश बहुत है । जिनमें समय तक शन्यका सुहृद रूप रहता है, उनमें समय तक यायु अंतर रहतो है । शन्य निहायने ही पर

बांधु निकल आती है। अतएव जब तक जन्म रहता है, तक तक मनुष्य जीवित रहता है। जन्म निकालनेमें ही मृत्यु हो जाती है। जिन मर्मोंका नाम वैकल्प्य है, वह मीमंसा है। इसी मीमंसा तथा जीनलताके कारण ही इनमें प्राणवायु धाम करती है। जो सब मर्मों पांडा देनेवाले हैं, वे अनि और वायु दोनों गुणमयत्र हैं। अर्थात् वायु और अनि दोनों ही यत्नपात्रापात्र हैं। लोगोंका कहना है, कि पांडाकर मर्म केवल अनि और वायुगुणविशिष्ट नहीं, वे पाञ्चमीनिक हैं।

कुछ लोगोंके मतमें मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और शीत—ये पांच पदार्थ ही जो मर्ममें मिलते और बढ़ते हैं, वही सचप्राणनाजक हो जाता है। उक्त धातुओं का संयोग रहनेमें ही इन मर्ममें चोट करनेमें सचः प्राणनाज होता है। जिस मर्ममें पुर्योक धातुओंमें चार धातुओंका संयोग रहता है, उस मर्ममें आघात लगनेसे कालान्तरमें मृत्यु हो जाती है। जिस मर्ममें तीन धातुओंका संयोग रहता है, उस मर्ममें जन्म निकालने ही मृत्यु होती है। जिस मर्ममें दो धातुओंका संयोग रहता है, उसके आहत होने पर अङ्गकी विकलता होती है और जिस मर्ममें केवल एक ही धातु होती है, उसमें चोट लगनेमें केवल मृत निकलता है।

जरीरमें गुणधरा चार प्रकारकी गिरावे हैं वे मर्मों मर्मस्थानमें जुड़ी हैं। ये स्नायु, अस्थि, मांस और ओष्ठोंकी पोषण कर जरीरकी सुदु करता है। मर्मस्थानमें फोड़ा होने पर वायुदृष्टिके निचे गिरावे आहत स्थानके धारों और रौल जाती है और इनमें जरीरमें पोषा अधिक होती है। इस पीडासे मनुष्य जरीर-जरीर हो नाशको प्राप्त होता है या संक्रांति हो जाता है। अतएव जिनकी जन्म बाहर करना हो, उन्हें मर्मस्थानकी अच्छी तरहसे परीक्षा कर जन्म बाहर करना चाहिये।

जो मर्म सचप्राण रहनेवाले हैं, वे अन्नमांस चिद होने पर कालान्तरमें प्राणनाजक हैं। अन्नमांसमें आहत होनेमें जरीरमें विह्वलता उत्पन्न होती है। जो मर्म विह्वल प्राणर है, वह अन्नमांसमें चिद हो कर पोषा उत्पन्न करता है। सचप्राणरमें चोट लगनेमें मृत दिग्में

मृत्यु होती है। जो मर्म कालान्तरमें प्राण हाथ करनेवाले हैं, इनमें यदि चोट लगने तो उममें एक क्षणमें वा एक मासमें मृत्यु हो जाती है। जिस नामक मर्ममें चोट लगनेमें कमी कमी अन्न समसमें ही मृत्यु हो जाती है। जो सब मर्म विह्वल प्राणर वा अङ्ग वैकल्प्यर हैं, उनमें विशेषरूपमें आहत होने पर मृत्यु होती है।

पैरके अंगुठे और उंगलियोंके बीच जिस नामक मर्मके आहत होने पर उमों समस मृत्यु हो जाती है। मध्यमा उंगलीके सामने पाद मूलके बीचमें लगद्वय मर्ममें चोट लगनेमें अत्यन्त बलमें मृत्यु होती है। जिस मर्मके ऊपरके नामको दोनों बगलमें कृष्ण नामक दो मर्मोंका धाम है। इनके आहत होने पर मर्ममें समस पैर कांपता रहता है। गुल्फमणिके निम्न भागके दो कृष्ण गिरा नामक मर्ममें चोट लगनेमें बुद्ध होता है और मूत्रन पैदा हो जाती है। पैर और अङ्गुठे कीइसे गुल्फ नामक मर्मके आहत होनेमें अत्यन्त और 'अङ्ग' होता है। अङ्गके मध्यस्थानमें पीठियों और अङ्गुलि नामक मर्म आहत होने पर मूत्र गिर कर मृत्यु हो जाती है। अङ्ग और ऊपरधामके ज्ञानु नामक मर्म आहत होने पर 'अङ्ग' होता है। ज्ञानुके तीन अङ्गुठे ऊपर दोनों बगल अनि नामक दो मर्म हैं, इनके आहत होने पर पैर अत्यन्त घुल जाता और उमकी गति-निधि बन्द हो जाती है। इनके मध्यमें उमों नामक मर्म आहत होने पर रक्तपाय होता और पैर घुल जाता है। ऊपरमूलस्थान मेंदिताम मर्म आहत होने पर पक्षाघात रोग हो जाता है। पक्षाघात और दोमो मुच के बीच पित्त नामक मर्म आहत होने पर दोमोको कमी हो जाती है। दोमो पैर और दोमो हाथोंमें वही व्याहृ मर्म मौजूद है। इनमें विशेषता यह है कि पैरके गुल्फ, ज्ञानु और पित्त नामक मर्म हाथोंके मणिकल्प, ज्ञानु और वापर नामक तीन मर्मोंके केवल मरणाकर हैं। मरुत्तन और मुचद्वयके बीचके पित्त नामक मर्म काया और शरीरके मणिकल्पन उत्पन्न मर्मके सामक है। यह विदु होने पर एक हा मरुत्तन उत्पन्न होता है। मरुत्तन नामक मर्मके अहत होने पर अंतर्दिग्में विह्वल







